विश्व इतिहास कोश

चन्द्रराज भंडारी

R
९
———
९.९

81136

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि
न लगायें।

081136

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
वर्ग संख्या ...R 2.2... आगत संख्या ...81136...

पुस्तक – वितरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३०वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा १० पैसे के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा।

G. K. U. LIBRARY
13 FEB 19
E-140/199/12

विश्व-इतिहास कोश

(ENCYCLOPEDIA OF WORLD-HISTORY)

प्रकाशक :
ज्ञान मन्दिर प्रकाशन, भानपुरा (मध्य-प्रदेश)

'विश्व-इतिहास कोश' के मूलतः पाँच खण्ड प्रकाशित हुए थे। अब इन पाँचों खण्डों को दो भागों में विभाजित किया जा रहा है। पृष्ठ संख्या में गड़बड़ी न हो इसलिए प्रत्येक खण्ड की सूची उसके प्रारम्भ में ही बनी रहने दी गई है।

दोनों भागों का मूल्य : 300 रुपये

वितरण :

अक्षर प्रकाशन प्रा० लि०, 2/36, अन्सारी रोड, दरियागंज, दिल्ली

मुद्रण : प्रकाश प्रैस, मध्यमेश्वर, वाराणसी

Encylopedia of World-History—Part-I
Compiled by--Chandra Raj Bhandari

विश्व-इतिहास कोश

(पहला भाग)

(खण्ड—१, २, ३, 'अ' से 'क' तक)

081136

R1/9.1
81136

पुस्तकालय
पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

चन्द्रराज भण्डारी

अक्षर प्रकाशन

R
१
६.२

पहले भाग की अनुक्रमणिका

प्रथम खण्ड : 'अ' से 'आ' तक पृष्ठ ३०८
द्वितीय खण्ड : 'इ' से 'ए' तक पृष्ठ ६१८
तृतीय खण्ड : 'ऐ' से 'का' तक पृष्ठ ९३०

दूसरे भाग की अनुक्रमणिका

चतुर्थ खण्ड : 'क' से 'कौ' तक पृष्ठ १२३४
पाँचवां खण्ड : 'ख' से 'घ' तक पृष्ठ १५३०

भूमिका

सबसे पहले सम्यक् ज्ञान की अधिष्ठात्री, आद्यशक्ति, भगवती सरस्वती के चरणों में हम अपनी श्रद्धा के सुमन अर्पित करते हैं, जिसके द्वारा प्रकट होनेवाली अखण्ड ज्योति से संसार के ज्ञान का क्षेत्र हमेशा जगमगाता रहता है। जो मनुष्य की ज्ञान साधना का एकमात्र अवलम्ब है। जिससे महान् प्रेरणा पाकर मनुष्य की संकल्प शक्ति बड़े बड़े कार्य्यों को पूरा कर डालती है। जिसकी शान्त ज्योति संसार के विद्वानों और साहित्यकारों के मार्ग को अपने निर्मल प्रकाश से हमेशा प्रकाशित करती रहती है और जो मनुष्य को कठिनाइयों और बाधाओं पर विजय प्राप्त करने में सहायक होती है।

इसके पश्चात् हम संसार के उन महान् साहित्यकारों, तत्वचिन्तकों, विचारकों और समालोचकों को अपनी अत्यन्त नम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं जिनके महान् साहित्य के अध्ययन ने हमें विश्व-इतिहास पर एक विस्तृत कोष लिखने की प्रेरणा दी, जिनकी रचनाओं ने पग पग पर हमारे मार्ग को प्रकाशित किया। इस ग्रन्थ में जो भी अच्छी चीज है वह सब उन मनीषियों की है तथा जो गलतियाँ और बुराइयाँ हैं वे सब हमारी अपनी हैं। उनके आशीर्वाद का स्रोत निरन्तर हमारे विवेक पर बहता रहे यही प्रभु से प्रार्थना है।

काम काफी बड़ा है, मगर यदि भगवती सरस्वती और संसार के विद्वत् समाज का आशीर्वाद साथ हो तो मनुष्य की संकल्प शक्ति बड़े से बड़े काम को भी आसानी से पूरा कर सकती है।

मानवीय ज्ञान में भूल का होना कोई नवीन चीज नहीं है। बड़े बड़े विद्वानों, साहित्यकारों, महात्माओं और राजनीतिज्ञों से भी भूलें होती रहती हैं। मगर यदि किसी भी वस्तु से प्राप्त होनेवाले इष्ट के मुकाबिले में उस भूल से होनेवाला अनिष्ट अधिक प्रबल न हो, उस भूल से होनेवाली हानि से उस वस्तु से मिलनेवाला लाभ अधिक उपयोगी हो तो सभ्य समाज ऐसी भूलों के लिए क्षमा कर के, नीर क्षीर विवेक से उसमें रहे हुए गुणों को ग्रहण करता है।

विश्व-इतिहास-कोष का प्रथम भाग पाठकों के हाथ में है। इसे उपयोगी बनाने में हमने अपनी शक्ति भर कोई कसर नहीं रक्खी है। फिर भी यह अच्छा है या बुरा इसका निर्णय करना पाठकों के हाथ में है। हाँ, यदि सहानुभूति पूर्ण रुख को रखकर पाठक इसका निर्णय करेंगे, साथ ही हमारी अज्ञता से रहनेवाली भूलों और कमियों के सम्बन्ध में यदि हमें सूचित करने की कृपा करेंगे तो हम उनके कृतज्ञ होंगे।

इस भाग में विश्व-इतिहास, विश्व साहित्य, विश्व-धर्म संस्था, विश्व-क्रान्तियाँ इत्यादि विश्व इतिहास से सम्बन्ध रखने वाले सभी नामों को अकारादि क्रम से छाँट कर उनका विवरण दिया गया है।

विवरण देते समय इस बात का ध्यान रक्खा गया है कि कोई महत्व की बात छूटने न पावे और अनावश्यक विस्तार न हो। संक्षिप्त और सारभूत विवेचन ही हमने अपना लक्ष्य रक्खा है। हर स्थान पर इतिहास से सम्बन्ध रखने वाला विवेचन ही विशेष रूप से किया गया है जहाँ बहुत आवश्यकता समझी वहाँ कुछ तात्विक विवेचन भी कर दिया गया है।

इस प्रकार “अ” और “आ” इन दो अक्षरों के नाम में आनेवाले ५५० नामों का विवेचन इस भाग में आया है जिनमें १३० नाम राजा, सम्राट् और शासकों के, ११८ नाम साहित्य और साहित्यकारों के, ५० नाम धर्म और धर्माचार्य्यों के, २६ नाम महान् क्रान्तियों और क्रान्तिकारियों के तथा १५ नाम वैज्ञानिकों के हैं शेष अन्य ऐतिहासिक नामों का विवेचन है।

इस ग्रन्थ की भाषा के सम्बन्ध में भी थोड़ा-सा संकेत दे देना ठीक होगा। विश्व-कोषों में अकसर शास्त्रीय और कठिन भाषा का प्रयोग किया जाता है जो अधिकतर विद्वान लोगों के ही काम में आ सकती है, साधारण विद्यार्थियों को उसके समझने में कठिनाई होती है। इस कोष में हमने इस नियम का पालन न कर सरल, बोधगम्य और प्रवाही भाषा का ही उपयोग किया है। भाषा के सम्बन्ध में हम अंग्रेज कवि पोप की इस उक्ति के अनुयायी हैं—

It is not enough no harshness gives offence
The sound must seem on echo to the sence

अर्थात् केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है कि शब्दों में कर्णकटुता न रहे बल्कि यह भी आवश्यक है कि शब्द ऐसे हों जिन के उच्चारण मात्र से उनका अर्थ ध्वनित हो जाय।

इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमने इस बात की चेष्टा की है कि इस कोष की भाषा इतनी सरल हो कि एक अपर प्रायमरी का विद्यार्थी भी उसे आसानी से समझ सके।

सन् १९३८ से १९४४ तक इसी प्रेरणा और आशीर्वाद के साथ हमने "वानस्पतिक विश्व कोष" (वनौषधि-चन्द्रोदय) का काम प्रारम्भ कर १० भागों और २२०० पृष्ठों में समाप्त किया था। प्रभु की अनुकम्पा से इस विश्व-कोष ने भारतवर्ष के सभी प्रगतिशील पुस्तकालयों में, लब्ध प्रतिष्ठित चिकित्सा-शास्त्रियों में, सरकारी वन विभाग और चिकित्सा विभाग में तथा इस विषय की शौकीन जनता में अपना स्थान ग्रहण कर लिया है। इसके कई संस्करण निकल चुके हैं, और आज भी अपने विषय की प्रामाणिक पुस्तकों में माना जाता है।

इसके बाद ही सन् १९४५ से हम इस "विश्व-इतिहास-कोष" का ताना बाना बुनते रहे। प्रारम्भ से ही इतिहास के विद्यार्थी रहने के कारण इस विषय में अधिक दिलचस्पी होना स्वाभाविक थी। इसी के परिणाम का पहला रूप इस भाग में पाठक देख सकेंगे। यदि सम्माननीय विद्वानों और कदरदान जनता ने इसकी निरापद भूलों पर ध्यान न देकर हमें उत्साहित किया तो बहुत शीघ्र इस ग्रन्थ के सोलह भाग उनकी सेवा में इस विश्वास के साथ अर्पित होंगे कि पिछले भाग से आगेवाला भाग हमेशा सुन्दर रहेगा और भूलों का परिमार्जन भी यथाशक्ति होता रहेगा।

बहुत प्रयत्न करने पर भी इस भाग में प्रूफ सम्बन्धी कुछ भूलें और एक दो स्थानों पर नामों के सम्बन्ध में भी कुछ भूलें हो गई हैं जिन के लिए हम नम्रतापूर्वक क्षमा चाहते हैं और विश्वास दिलाते हैं कि आगे के भागों में पूरी सावधानी के साथ ऐसी भूलों से बचने का प्रयत्न किया जायेगा।

—लेखक

विषय-सूची नं० १

(अकारादि क्रम से)

अ

नाम	पृष्ठ संख्या
अकबर महान् (भारतीय सम्राट्)	१९
अकबर इलाहाबादी (भारतीय कवि)	२६
अकबर (मुगल शाहजादा)	२६
अक्तूबर-क्रान्ति (रूसी क्रान्ति)	२७
अंकारा-सम्मेलन (अफ्रीका)	३१
अक्का (मेवाड़)	३१
अकमल खां (अफरीदी नेता)	३१
अकलंक (जैनाचार्य)	३२
अकत खां (खिलजी)	३२
अकनजर (उजबेक सरदार)	३२
अक्कादी-साहित्य	३२
अकाली	२३६
अखामनी साम्राज्य (ईरान)	३३
अखनातून (मिस्र)	३४
अक्खा (गुजरात)	३४
अंगुलिमाल (डाकू)	३४
अगुई नाल्दो (फिलिपाइन)	३४
अग्रवाल (भारत)	३५
अगरोहा (भारत)	३६
अग्रसेन (भारत)	३६
अगस्टाइन (रोमन चर्च)	३६
अंकिल टाम्स कैबिन (अमेरिका)	३७
अंग (भारत)	३८
अगेलेसियन (भारत)	३८
अग्निमित्र (शुंग वंश)	३८
अंड्रेमेरी एम्पीअर (फ्रांस)	३८
अंगुत्तर-निकाय (बौद्ध आगम)	३९
अंगद गुरु (सिक्ख गुरु)	३९
अंगकोर (इंडोचायना)	३९
अंगोरा (टर्की)	४०
अंग्रेजी भाषा और साहित्य	४०
अगस्ट विल्हेम श्लेगल (जर्मन)	४७
अगथो क्लेइया	४७
अजंटा गुफाएं (भारत)	४७
अजटेक साम्राज्य (मैक्सिको)	४७
अजमेर (भारत)	४८
अजय वर्मा (मालवा)	४९
अजयदेव (भारत)	४९
अजयपाल (गुजरात)	५०
अजब सिंह (बान्सवाड़ा)	५०
अजमल खां (भारतीय हकीम)	५०
अजात शत्रु (भारतीय सम्राट्)	५०
अजित सिंह (जोधपुर)	५१
अजित केश कम्बली (भारत)	५१
अजीमुल्ला खां (भारत)	५२
अंजो राजवंश (इंगलैंड)	५२
अजोर्स	५४
अंजेलो (इटली)	५५
अंजुमने-तरक्किए-उर्दू	२३६
अटाला मस्जिद (भारत)	५५
अटालस (एशिया माइनर)	५५
अठारह सौ सत्तावन (विद्रोह)	२३१
अड्रियानोपुल का घेरा	५५
अटलांटिक घोषणापत्र	५५

नाम	पृष्ठ संख्या
अंटोनियस (रोम)	५६
अंटोनचेखोव (रूसी लेखक)	५७
अंटोनियो पूसी (इटली)	५७
अढ़ाई दिन का झोपड़ा	५७
अतसिक (मध्य एशिया)	५७
अणहिल (भारत)	५८
अता मल्लिक (फारसी लेखक)	५८
अथानीसियस (योरोप)	५८
अथर्ववेद	५८
अदली शाह (भारत)	५९
अदहम खान (भारत)	५९
अद्वैतवाद	६०
अन्द्रेगीद (फ्रेंच साहित्य)	६१
अनवरी (फारसी साहित्य)	६१
अनका माहम (भारत)	६१
अनंगपाल तोमर (भारत)	६१
अनन्तदेव शिलाहार (भारत)	६२
अनन्तराज (कश्मीर)	६२
अनाम	६२
अनावृत	६३
अन्द्रेदा (पोर्तगीज)	६४
अनफू क्लब (चीन)	६४
अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार	६४
अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठब	६५
,, ,, द्वितीय	६६
,, ,, तृतीय	६६
अन्तर्राष्ट्रीय वित्तनिगम	६६
अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष	६६
अन्तर्राष्ट्रीय अणुशक्ति-अभिकरण	६७
अन्तर्राष्ट्रीय बाल-संकट-कोष	६७
अनेकान्तवाद (जैनसिद्धान्त)	६७
अन्नपूर्णा बाई (नागपुर)	६८
अनन्त वर्म्मन (भारत)	६८
अनहिलवाड़	२३६
अंटोनी माल्येवस्की (पोलैंड)	६९
अदी-इब्न-जैद (अरबी कवि)	६९
अनसन (इंगलैंड)	६९
अन्नागाता (जापान)	६९
अनन्त कीर्ति (जैनाचार्य)	६९
अनुराधापुर (सीलोन)	२३६
अंती ओकस द्वितीय (ग्रीक बाख्त्री)	६९
अतिमा लोगी (विश्व-कोश)	७०
अनवर पाशा (टर्की)	७०
अनानबेन-डेविड (यहूदी)	७०
अनातोल फ्रांस (फ्रेंच लेखक)	७०
अना केरेनिना (रूसी उपन्यास)	७१
अन्नाकस-लूकानस (रोमन कवि)	७१
अन्नाकस सेनेका (लेटिन कवि)	७१
अनसारी मुख्तार अहमद (भारत)	७१
अनुशीलन-समिति (ढाका)	७२
अपभ्रंश-साहित्य	७२
अप्पा साहब (सतारा)	७३
अप्पाराव (तेलगू कवि)	७३
अपरादित्य प्रथम (भारत)	७३
,, द्वितीय ,,	७४
अपोलोनियस (ग्रीक कवि)	७४
अफलातून (ग्रीक तत्व वेत्ता)	७४
अफनासी (रूसी यात्री)	८१
अफीम का युद्ध (चीन)	८२
अफजल खाँ	८३
अफ्रीकी-एशिया-एक्य-सम्मेलन	८४
अफ्रीकी-एशिया-आर्थिक-सम्मेलन	८४
अफ्रीकी-जन-सम्मेलन	८४
अफ्रीका महाद्वीप	८५
अफगानिस्तान	८९
अब्दुर्रहीम खान खाना (हिन्दी कवि)	९०
अब्राहम लिंकन (अमेरिका)	९२
अब्बास शाह (ईरान)	९२
अब्दुल्ला ताहीरी (बगदाद)	९३
अब्बासी खलीफा (अरब)	९३

नाम	पृष्ठ संख्या
अब्बास तैय्यबजी (भारत)	९४
अबीसीनियां	९४
अबुल फजल (भारत)	९५
अबुल कलाम आजाद (,,	९६
अब्दुल्ला-बिन-मेमान	९८
अब्दुल्ला बुखारी (ईरान)	९८
अबुल हसन रूद (फ़ारसी कवि)	९९
अब्दुल मलिक सामानी (ईरान)	९९
अब्दुल मजीद अफरीदी (तुर्की)	९९
अबू मुसलिम (ईरान)	९९
अबुल खैर (मध्य एशिया)	९९
अब्दुल्ला शेबानी द्वितीय	१००
अब्दुल नबी	१००
अबुल-मआली	१०१
अब्दुल्ला खां (मालवा)	१०२
अब्दुल्ला सैय्यद	१०२
अब्दुर्रहमान (अफगानिस्तान)	१०२
अब्दुल नबी (मथुरा)	१०२
अबू तालिब-अल-मकी (अरब)	१०३
अबू-मा-शर (अरब)	१०३
अबू-यूसुफ (अरब)	१०३
अब्दुल गफ्फार खां (भारत)	१०३
अब्दुल्ला सुल्तान पुरी (मौलवी)	१०३
अबुल फजल अहमद	१०४
अबू-सैद-इब्न-अबुलखैर (फारसी कवि)	१०४
अबू-अब्दुल्ला जाफर "रूदागी"	१०४
अबू-नूवास (अरबी कवि)	१०५
अबू-अल-अताइया (,,)	१०५
अबू-दूला-याह	१०५
अबू-बकर (अरब)	१०५
अबू-हनीफ़ाह	१०५
अब्दुल मलिक	१०५
अब्दुल-रज्जाक (मुसलिम यात्री)	१०६
अब्दुल रज्जाक जामी (फारसी कवि)	१०६
अब्राहम-इब्न-एजरा (यहूदी)	१०६
अब्दुल्ला कुतुबशाह (गोलकुण्डा)	१०६
अब्दुल हसन कुतुबशाह	१०७
अब्दुल फतह (मुलतान)	१०७
अबे-प्रेवोस्ट (फ्रेंच लेखक)	१०७
अब्दुल्ला (अरब सेनापति)	१०७
अब्दुर्रज्जाक समरकंदी	१०७
अबू सईद	१०८
अभय सिंह (जोधपुर)	१०८
अभयदेव सूरि (जैनाचार्य)	१०८
अभ्रक (खनिज द्रव्य)	१०९
अभिधम्म पिटक (बौद्ध आगम)	११०
अभिनव भारत सोसायटी	१११
अभिनव गुप्ता	२३६
अभिधर्म कोष (बौद्ध ग्रन्थ)	१११
अभिलषितार्थ-चिन्तामणि	१११
अभिज्ञान शाकुन्तल	१११
अमर सिंह राठौर	११४
अमर सिंह थापा (नैपाल)	११४
अमर सिंह (विहार)	११५
अमर सिंह महाराणा (मेवाड़)	११५
अमर सिंह महाराणा द्वितीय	११६
अम्बर मल्लिक (अहमद नगर)	११६
अम्बा प्रसाद (मेवाड़)	११७
अमरू (कश्मीरी कवि)	११७
अमरू सफ्फारी (ईरानी शासक)	११७
अमर-कोश	११७
अमर चन्द सूरि (जैनाचार्य)	११८
अमृतचन्द्र (जैनाचार्य)	११८
अमित गति सूरि (जैनाचार्य)	११८
अम्बर का युद्ध	११८
अम्ब्रोस (ईसाई सन्त)	११८
अमृत बाजार पत्रिका	११९
अम्बेडकर (हरिजन नेता)	११९
अम्बोएना का हत्याकांड	१२०

नाम	पृष्ठ संख्या	नाम	पृष्ठ संख्या
अमर दास गुरू (सिक्ख गुरु)	१२०	अरब लीग (मिस्र)	१५८
अमानत (उर्दू कवि)	१२०	अरब सुरक्षा-सन्धि	१५९
अमाडियस हाफ-मैन (जर्मन कवि)	१२१	अर्जेण्टिना	१५९
अमानुल्ला अमीर (अफगानिस्तान)	१२१	अर्काट का घेरा	१५९
अमीर मीनाई (उर्दू कवि)	१२१	अर्शक प्रथम (ईरान)	१६०
अमृतसर	१२२	अर्देशिर	१६०
अमीना बेगम	१२२	अर्नोवियस (ईसाई कवि)	१६०
अमेरिका (महाद्वीप)	१२२	अर्नोहोल्फ (जर्मन कवि)	१६०
अम्ब पालिका	१३४	अर्थर शिन्फलर (आस्ट्रिया)	१६१
अयूब खां (पाक-राष्ट्रपति)	१३५	अराई हाकू-सेकी (जापान)	१६१
अयोध्या सिंह उपाध्याय	१३६	अर्थर वान शेंडेल (डच लेखक)	१६१
अयोध्या	१३७	अड्रियान-वान-डेरविन (डच लेखक)	१६१
अरब	१३७	अरमांड (आयर लैंड)	१६१
अराकान (बर्मा)	१४५	अर्जमस (रूस)	१६१
अराकी (जापान)	१४५	अर्नगार वर्ग (नार्वे)	१६२
अरीता (जापान)	१४६	अर्नुल्फ ओवर लैंड	१६२
अरेक्चेयेफ (रूस)	१४६	अर्थर रैंबो (फ्रेंच कवि)	१६२
अरबन द्वितीय (रोमनचर्च)	१४६	अर्वून राजवंश (सिन्ध)	१६२
अरबन पञ्चम	१४७	अर्ल हेग (इंगलैंड)	१६२
अर्जुन देव गुरू (सिक्ख गुरु)	१४७	अर्ल आफ एसेक्स (इंग्लैंड)	१६२
अर्जुन (कन्नौज)	१४७	अर्ल ग्रे (इंग्लैण्ड)	१६३
अर्विद जर्नेफिल्ट (फिनलैंड)	१४७	अल-अहराम (मिस्र के पिरामिड)	१६३
अर्की लोकस (ग्रीक कवि)	१४७	अल-अहराम (मिस्र का दैनिक पत्र)	१६३
अरिस्टो फेनीज (ग्रीस)	१४८	अल-अख्तल (अरबी कवि)	१६३
अर्णोराज (अजमेर)	१४८	अल-उतबी (इतिहासकार)	१६४
अरविन्द घोष	१४८	अल-काली (अरबी लेखक)	१६४
अरविन (वाइसराय)	१४९	अल-खूरी (अरबी कवि)	१६५
अर्थशास्त्र	१४९	अल-गजाली (ईरानी)	१६५
अरस्तू (ग्रीक तत्ववेत्ता)	१५०	अल-बूसीरी (अरबी कवि)	१६५
अर्जुन लाल सेठी	१५४	अल ड्रुस हक्सले (इंगलैंड)	१६५
अर्जुन वर्मा (मालवा)	१५५	अल-जरकाली	१६५
अरुणा आसफ अली	१५५	अल-जहाबी (ईराक)	१६५
अराजकवाद	१५५	अल्कउस (ग्रीस)	१६५
अर्नेस्ट डाउसन (अंग्रेज कवि)	१५७	अल्क-मन	१६६
अरबी पाशा (मिस्र)	१५८	अल्कू[illegible]	१६६

नाम	पृष्ठ संख्या
अल्जीरिया (देश)	१६६
अल्जेर्नन स्विनबर्न (अंग्रेज कवि)	१६७
अल्तमश (दिल्ली का सुल्तान)	१६७
अल्ताई (रूस)	१६८
अल्ताफ हुसेन हाली (उर्दू कवि)	१६६
अल्तूनियां (भारत)	१७०
अल-नाबिगा (अरबी कवि)	१७०
अलपतगीन (गजनी)	१७०
अल्प अरसलन (तुर्क सम्राट)	१७१
अल्फ्रेड महान (इंगलैंड)	१७१
अल्फ्रेड इप्सन (डेनमार्क)	१७२
अल्फ्रेड-डी-मिसे (फ्रेंच कवि)	१७२
अल्फ्रेड-डी-विने ,,	१७२
अल्फोंज दोदे (फ्रेंच लेखक)	१७२
अल्फ्रेड टेनिसन (अंग्रेज कवि)	१७२
अल्फ्रेड हासमैन ,,	१७२
अल्फ्रेडो ओरियानी (इटली)	१७३
अल्फ्रिक (ईसाई सन्त)	१७३
अल-फाराबी (बगदाद)	१७३
अलबानियाँ (देश)	१७४
अल्बर्ट आईंस्टीन	१७५
अल्बर्ट अब्राह्म माइकल्सन	१७५
अल्फोंजो मर्सिनेज तोलेदो (स्पेन)	१७५
अल-बलाधुरी (ईरान)	१७५
अल-बदी (अरबी ग्रन्थ)	१७५
अल्बर्ट	१७५
अल्म किस्त (स्वीडेन)	१७६
अल्बी (फ्रॉस)	१७६
अल्बर्ट मेगनस	१७६
अल-बुस्तानी (अरबी लेखक)	१७६
अल-मिडा (पुर्तगाल)	१७६
अल-बुकर्क ,,	१७६
अल-मुहासिबी (अरब)	१७३
अल-बेरूनी (अरबी यात्री)	१७७
अलवा का ड्यूक	१७८
अल्लसानी-पद्दैन (तेलगू कवि)	१७८
अल-रूसाफी (अरबी कवि)	१७८
अल-शहरस्तानी ,,	१७६
अल-समव-अल-इब्न आदिया	१७६
अल-सिन्द-हिन्द (ज्योतिष ग्रन्थ)	१७६
अलस्टर (आयर लैंड)	१७६
असोशियेटेड प्रेस	१७६
अल-हिलाल (साप्ताहिक)	१८०
अलाउद्दीन खिलजी	१८०
अलाउद्दीन गोरी	१८१
अलाउद्दीन हुसेनशाह	१८१
अलाइड कौंसिल आफ जापान	१८२
अलाई मीनार	१८२
अल्लाफ़ अबुल हुजेल	१८२
अल्लाई (इस्लामी धर्माचार्य)	१८३
अलास्का	१८४
अलिफ लैला	१८४
अली (इस्लामी खलीफा)	१८५
अल-सफदी (अरबी लेखक)	१८५
अल-हसन अलबसरी (अरबी लेखक)	१८५
अली ईमाम	१८५
अलीशेर नवाई (तुर्की कवि)	१८६
अलीशकर बेग	१८७
अली पुल्ली खाँ (जौनपुर)	१८७
अली हजी (फ़ारसी कवि)	१८७
अली मोहम्मद मिर्जा (ईरान)	१८७
अली मावर्दी	१८७
अलीवर्दी खाँ (बंगाल)	१८७
अलीपुर षड्यंत्र	१८८
अलीनगर की सन्धि	१८८
अल-आजार (मिस्र)	१८८
अली सेंड्रो वोल्टा (इटली)	१६३
अलेक्सेएडरो जार प्रथम (रूस)	१६४
,, ,, द्वितीय ,,	१६५
,, ,, तृतीय ,,	१६६
अलेक्जेंडर पोप तृतीय (रोमन चर्च)	१६७

नाम	पृष्ठ संख्या
अलेक्झेंडर हेमिल्टन (अमेरिका)	१९७
अलेक्सेण्ड्रो हर्जेन (रूस)	१९८
अलेक्सेण्ड्रो ओस्ट्रोवस्की (रूस)	१९८
अलेक्झेंडर सर्जिविच पुश्किन	१९९
अलेक्सेण्ड्रो पोप	१९९
अलेक्सी जार (रूस)	१९९
अलेक्सी टाल्स राय (रूसी कवि)	२०१
अलैन (फ्रांस)	२०१
अलोम्प्रा (बर्मा)	२०१
अलेक्सिस कीवी (फिनलैंड)	२०२
अलेक्से बारान्निको (रूस)	२०२
अलेक जान्द्रिनो (फिलिपाइन)	२०२
अलोइस जिरासेक	२०२
अवध	२०२
अवध पञ्च	२०५
अवन्ती पुरी	२०६
अवदान (बौद्ध ग्रन्थ)	२०६
अवन्ति वर्म्मन (कश्मीर)	२०६
अवार-साम्राज्य (मध्य एशिया)	२०६
अवारी (नागपुर)	२०७
अवनीन्द्र नाथ टैगोर (बंगाल)	२०७
अविलार्ड (फ्रांस)	२०७
अविग्नान ,,	२०७
अवेस्तां धर्मग्रन्थ (पारसी)	२०८
अविचेन्ना (ईरान)	२०८
अवेल्लो देवी (भारत)	२०८
अशर साम्राज्य	२०९
असुर-बनिपाल	२०९
अश्वघोष (बौद्ध लेखक)	२०९
अश्वकर्ण	२०९
अशाई शीम्बून (जापानी पत्र)	२१०
अशीदा हितोशी (जापान)	२१०
अशेनानिशी (तुर्कवंश)	२१०
अंशुवर्मन (नेपाल)	२११
अशोक महान	२११
अशोक के धर्म लेख	२१४
अशफाउल्ला (काकोरी)	२२१
अशोक मेहता	२२१
अस्त्राखानी राजवंश (मध्य एशिया)	२२१
असुर संस्कृति	२२२
अश्क (हिन्दी लेखक)	२२४
असंगाचार्य (बौद्ध)	२२४
अर्ल ऑफ मार (स्कॉटलैंड)	२२४
अर्शक (ईरान)	२२५
अस्किलस (ग्रीस)	२२५
असहयोग क्रान्ति (भारत)	२२५
अहमद मिधात (तुर्की कवि)	२२९
अहमदशाह बहमनी	२२९
अहमदशाह मौलवी	२२९
अहमदाबाद	२३०
अहमदाबाद कांग्रेस	२३१
अहमद सामानी प्रथम	२३१
अहमद सामानी द्वितीय	२३२
अहमद शाह दुर्रानी	२३२
अहमदशाह (गुजरात)	२३२
अहमद नगर	२३२
अबुल-फिदा (इतिहासकार)	२३७
अर्द्धमागधी	२३७
अलवर	२३८
अलीगढ़	२३८
अवधी भाषा और साहित्य	२३८
अष्टाध्यायी	२३८
असुर नजीरपाल	२३८
अनवर (उर्दू कवि)	२३९
अनीस ,,	२३९
अप ओकी	२३९
अमीना-बेगम	२४०
अम्बिका चक्रवर्त्ती	२४०
अपोलोनियस	२४०
अर्जुन	२४०

नाम	पृष्ठ संख्या
अल-हम्ब्रा	२४१
अघोर पंथ	२४१
अम्बिका प्रसाद वाजपेयी	२४२
अन्सार	२४२
अमीरखुसरो	२४२
अमीर अली	२४२
अमोघ वर्ष प्रथम	२४२
अब्दुल्ला शेख	२४३
अशीकागा शोगनशाही	२४३
अहमद शौकी	२४४
अहिल्याबाई होलकर	२४४
अक्षय कुमार दत्त	२४५
अज्ञेय	२४५
अज्ञेयवाद	२४५
अलेरिक	२४६
अलफ्रेडथियेट्रिकल कम्पनी	२४६
अरोडा	२४६
अर्ल	२४७
अगासी	२४७
अलंकारशास्त्र	२४७

आ

नाम	पृष्ठ संख्या
आइजनहोवर (अमेरिका)	२४९
आइजक न्यूटन (वैज्ञानिक)	२५०
आइखमेन (जर्मनी)	२५१
आइवन महान (रूस)	२५१
आइसलैण्ड	२५१
आर्कराइट	२५२
आइरिन	२५२
आउटरम	२५२
ऑक्टर लोनी	२५२
ऑक्स (इंगलैण्ड)	२५२
ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी	२५३
ऑकलैण्ड (गवर्नर जनरल)	२५३
ऑक्सफोर्ड	२५४
ऑगस्टस सीजर (रोम-सम्राट्)	२५४
आगरकर	२५६
आगस्ट कैण्ट	२५६
आगम-साहित्य	२५७
आग्रि पिना (रोम)	२५८
आंग्ल जापानी संधि	२५८
आग्ज वर्ग संघ	२५८
आगाखां	२५९
आचुर्गी	२५९
आचारंग सूत्र	२५९
आज (समाचार पत्र)	२६०
आजम हुमायुं	२६०
आजीविक सम्प्रदाय	२६१
आजाद हिन्द फौज	२६१
आटोव्हान गेयरिक (जर्मनी)	२६४
आटीला (हूण सरदार)	२६४
आदर्शवाद (राजनीति सिद्धांत)	२६५
आदित्य प्रथम	२६६
आदिल खां फारुकी	२६६
आदम मिकीवक्स (पौलेण्ड)	२६६
आन्ध्र-सातवाहन	२६६
आनन्द-मन्दिर	२६७
आनन्द-मठ	२६७
आनन्द-भवन	२६७
आनन्द-घन	२६७
आनन्द-वर्द्धन	२६७
आनन्द प्रकाश जैन	२६७
आनन्दपाल	२६८
आनन्दीबाई	२६८
आबू-पर्वत	२६९
आमूर की घाटी	२६९
आयर (अंग्रेज सेनापति)	२६९
आयरकूट (,,)	२७०
आयुर्वेद	२७०
आर्क-विशप	२७२

नाम	पृष्ठ संख्या
आर्य्य-संस्कृति	२७३
आर्य्य-समाज	२७९
आर्गेनन (होमियोपैथिक ग्रन्थ)	२८३
आयशा (अरब)	२८३
आयर्लैंड	२८३
आयस प्रथम (शक राजा)	२८५
आर्थरग्रिफ़िथ (आयरलैण्ड)	२८६
आल्हा चारण (राजस्थान)	२८६
आल्हा खण्ड	२८६
आरीओस्टो (इटाली)	२८६
आलमखान (बुखारा)	२८६
आलम खाँ (मालवा)	२८७
आर्क ड्यूक फ्रांसीस फर्डीनण्ड	२८७
आर्थरलुण्ड क्रिस्त (स्वीडन)	२८७
आर्किमिडेस (यूनान)	२८७
आर्डियल	२८८
आरासन तीर्थ (जैन)	२८८
आरेञ्ज राजवंश (इंग्लैण्ड)	२८९
आर्डिनेन्स	२८९
आरनाल्ड (इटली)	२८९
आर्मेडा (स्पेन का जहाजी बेड़ा)	२८९
आर्डर इन कौंसिल (इङ्गलैण्ड)	२९०
आर्थर वेलेज्ली (इङ्गलैण्ड)	२९७
औलिवर ट्विस्ट	२९०
औलिवर क्रामवेल (इंग्लैण्ड)	२९१
आबरू (उर्दू कवि)	२९२
आश्वलायन सूत्र (बौद्ध ग्रन्थ)	२९२
आस्टरलिज का युद्ध	२९२
आशाधर (जैन लेखक)	२९२
आसफजाह (हैदराबाद)	२९३
आजुर्दा (उर्दू कवि)	२९३
आसबर्ग (इटली)	२९३
आग्जबर्ग की लड़ाई	२९४
आस्ट्रेलिया	२९४
आरजू (उर्दू कवि)	२९६
आस्क्विथ (इङ्गलैण्ड)	२९६
आईन-ए-अकबरी	२९७
आसफ खाँ	२९७
आसाम	२९७
आहवमल सोमेश्वर	२९९
आगरा	२९९
आतिश (उर्दू कवि)	३००
आसफुद्दौला "आसफ"	३०१
आपियस क्लाडियस	३०१
आंकस मार्शियस (रोम का राजा)	३०२
ऑप्टिमेंट	३०२
आम्यूलियस	३०२
आएिटओकस	३०२
आस्ट्रिया	३०३
आसनसोल	३०६
आल्फान्सो (स्पेन का राजा)	३०६
आलिंग्टन	३०६
आर्य्य-भट्ट	३०७
आर्य्य-भट्ट द्वितीय	३०७
आर्थर-चेस्टरलेन (अमेरिका)	३०७
आर्कलायूस	३०७
आदिपुराण	३०८
आरा	३०८
आना (रूस सम्राज्ञी)	३०८
आनाक्सागोरस	३०८

भूल-सुधार

पृष्ठ २९७ पर "आईन-ए-अकबरी" के स्थान पर "आयना-ए-अकबरी", पृष्ठ १९४ पर अलेक्सेण्ड्रो जार की जगह अलेक्झेण्डर जार और पृष्ठ ७१ पर "अन्सारी मुख्तार अहमद" की जगह "अन्सारी-शौकत उल्ला" गलती से छप गया है पाठक इन स्थानों पर भूलों को ठीक कर लेने की कृपा करें।

विषय-सूची २

(विषयानुक्रम से)

अ

नाम	पृष्ठ संख्या
महाद्वीप, देश, प्रान्त और नगर—३६	
अगरोहा (नगर)	३६
अङ्ग (प्रान्त)	३८
अङ्ग कौर (नगर)	३९
अंगोरा ,,	४०
अजमेर ,,	४८
अनाम (प्रान्त)	६२
अफ्रिका (महाद्वीप)	८५
अफगानिस्तान (देश)	८९
अबीसीनिया ,,	९४
अमृतसर (नगर)	१२२
अमेरिका (महाद्वीप)	१२२
अयोध्या (नगर)	१३७
अरब (देश)	१३७
अराकान (प्रान्त)	१४५
अर्जमस	१६१
अलजीरिया (देश)	१६६
अल्ताई (प्रान्त)	१६७
अलवर (नगर)	२४६
अलिब ,,	१७६
अलीगढ़ ,,	२४६
अलस्टर ,,	१७९
अवध (प्रान्त)	२०२
अनुराधापुर (नगर)	२४५
अवन्तीपुरी ,,	२०६
अनहिलवाड़ ,,	२४५
अहमदाबाद ,,	२३०
अहमदनगर ,,	२३२

नाम	पृष्ठ संख्या
आइसलैण्ड (देश)	२५१
आबू पर्वत	२६९
आयर्लैण्ड (देश)	२८३
आसाम (प्रान्त)	२९७
आस्ट्रेलिया (महाद्वीप)	२९४
आगरा (नगर)	२९९
आस्ट्रिया (देश)	३०३
आसनसोल (नगर)	३०६
आरा ,,	३०८
सम्राट्, राजा, राजवंश और शासक १३०	
अकबर महान् (मुगल-सम्राट्)	१९
अकमल खाँ	३१
अकनजर	३२
अखामनी साम्राज्य (ईरान)	३३
अखनातून (मिश्र)	३४
अग्रसेन (भारत)	३६
अग्निमित्र (शुंगवंश)	३८
अजटेक साम्राज्य (मैक्सिको)	४७
अजयवर्मा	४९
अजयदेव	४९
अजयपाल	५०
अजब सिंह	५०
अजातशत्रु	५०
अजित सिंह	५१
अंजो राजवंश (इङ्गलैण्ड) (हेनरी द्वितीय, रिचर्ड प्रथम, जॉन प्रथम, हेनरी तृतीय एडवर्ड प्रथम, एडवर्ड द्वितीय, एडवर्ड तृतीय, रिचर्ड द्वितीय	५२

नाम	पृष्ठ संख्या	नाम	पृष्ठ संख्या
अएटोनियस (रोम)	५६	अमरू सफ्फ़ारी	११७
अटालस (एशिया माइनर)	५५	अमानुल्ला (अफगानिस्तान)	१२१
अतसिक (ख्वारेजम)	५७	अयूब खां (पाकिस्तान)	१३५
अदलोशाह	५९	अर्णोराज (अजमेर)	१४८
अनंगपाल तोमर	६१	अरविन (वाइसराय ,	१४९
अनन्तदेव शिलाहार	६२	अर्जुन वर्मा (मालवा)	१५५
अनन्त राज (काश्मीर)	६२	अरशक प्रथम (ईरान)	१६०
अनावृत (बरमा)	६३	अर्देशिर (ईरान)	१६०
अन्नपूर्णा बाई (भोंसले)	६८	अरबून राजवंश (सिंध)	१६४
अनन्त वर्मन	६८	अलतमश	१६७
अन्तीओकस द्वितीय (ग्रीक)	६९	अलतूनिया	१७०
अप्पा साहब (सतारा)	७३	अलपतगीन (गजनी)	१७०
अपरादित्य प्रथम	७३	अल-परसलन (तुर्की)	१७१
अपरादित्य द्वितीय	७४	अलफ्रेड महान (इङ्गलैण्ड)	१७१
अब्राहम लिंकन (अमेरिका)	९२	अलमिडा (पुर्तगाल)	१७६
अब्बास शाह (ईरान)	९२	अलबुकर्क (,,)	१७६
अब्दुल्ला ताहिरी (बगदाद)	९३	अलवा का ड्यूक (स्पेन)	१७७
अब्बासी खलीफा (अरब)	९३	अलाउद्दीन खिलजी	१८०
अब्दुल मलिक सामानी (ईरान)	९९	अलाउद्दीन गौरी	१८१
अब्वुल खैर	९९	अलाउद्दीन हुसैन शाह	१८१
अब्दुल्ला शैबानी द्वितीय	१००	अली (खलीफा)	१८५
अब्दुल्ला खां (मालवा)	१०२	अलविर्दी खां (बङ्गाल)	१८७
अब्दुल्ला सैय्यद	१०२	अलेकसेन्द्रो जार प्रथम (रूस)	१९४
अब्दुर्रहमान (अफगानिस्तान)	१०२	अलेकसेन्द्रो जार द्वितीय (रूस)	१९५
अबू-बकर (खलीफ़ा)	१०५	अलेकसेन्द्रो जार तृतीय (रूस)	१९६
अब्दुल मलिक (खलीफा)	१०५	अलेक्सी जार (रूस)	१९९
अब्दुल्ला कुतुब शाह	१०६	अलोम्प्रा (बरमा)	२०१
अबुल हसन कुतुब शाह	१०७	अवध के नवाब	२०२
अब्दुलफतह (मुलतान)	१०७	अवन्ति वर्मन (काश्मीर)	२०६
अबुल्ला (खुरासान)	१०७	अवार-साम्राज्य (मध्य एशिया)	२०६
अबू-सईद (उजबिकेस्तान)	१०८	अशुर साम्राज्य	२०९
अभय सिंह (जोधपुर)	१०८	अशुर बनिपाल	२०९
अमरसिंह राठौर	११४	अशोना निशि	२१०
अमरसिंह महाराणा (मेवाड़)	११५	अंशु-वर्मन (नैपाल)	२१०
अमर सिंह द्वितीय	११६	अशोक महान	२१०

नाम	पृष्ठ संख्या
अस्त्राखानी राजवंश (मध्य-एशिया)	२२१
अहमदशाह बहमनी	२२५
अहमद सामानी प्रथम (ईरान)	२३१
अहमद सामानी द्वितीय (ईरान)	२३२
अहमद शाह दुर्रानी	२३२
अहमद शाह (गुजरात)	२३२
अमुर नजीर पाल	२४६
अप ओकी	२४७
अमोघ वर्ष प्रथम	२४८
अशीकागा शोगनशाही	२४८
अहिल्या बाई होलकर	२४८
अलेरिक	२४८
आइजन होवर (अमेरिका)	२४९
आइवन महान (रूस)	२४१
आकलैण्ड (गवर्नर जनरल)	२५३
आगस्टस सीजर (रोम)	२५४
आचुगी शिंदे	२५९
आदित्य प्रथम	२६६
आदिलखां फ़ारुकी	२६६
आन्ध्र-सात वाहन	२६६
आनन्द पाल	२६८
आयस प्रथम (शक राजा)	२८५
आलम खान (बुखारा)	२८६
आर्क ड्यूक फ्रान्सिस फ़र्डिनण्ड	२८८
ऑरेञ्ज राज वंश (इंगलैण्ड)	२८९
ऑलिवर क्रामवेल (इंगलैण्ड)	२९१
आसफजाह (हैदराबाद)	२९३
आस्क्विथ (इंगलैण्ड)	२९६
आंकस मार्शियस (रोम)	३०२
आरिएटओकस (एशिया माइनर)	३०२
आम्यूलियस (आलबालोंगा)	३०२
आल्फ़ोन्सो (स्पेन)	३०६
आर्थर चेस्टरलेन (अमेरिका)	३०७
आर्कलायूस	३०७
आना (रूस सम्राज्ञी)	[illegible]

साहित्य और साहित्यकार

नाम	पृष्ठ संख्या
अकबर इलाहाबादी	२६
अंकिल टाम्स केबिन (उपन्यास)	२७
अक्कादी साहित्य	३२
अंग्रेजी भाषा और साहित्य	४०
अगस्ट विलहेम-श्लेगल (जर्मन)	४७
अंजुमन-ए-तरक्की-ए-उर्दू	२४३
अण्टोन चेखोव (रूस)	५७
अण्टोनिओ पूसी (इटली)	५७
अतामलिक (फारसी लेखक)	५८
अन्द्रेजीद (फ्रेन्च लेखक)	६१
अनवरी (फारसी साहित्यकार)	६१
अण्टोनी माल्येवस्की (पौलेण्ड)	६९
अदी-इब्न-जैद	६९
अनाटोल-फ्रान्स	७०
अनवर (उर्दू कवि)	२४७
अनीस (,,)	२४७
अना केरेनिना (रूसी उपन्यास)	७१
अन्नाकस लुकानस (लैटिन कवि)	७१
अन्नाकस सेनेका (,, ,,)	७१
अपभ्रंश साहित्य	७२
अप्पा राव (तैलगू कवि)	७३
अपोलोनियस (ग्रीक कवि)	७४
अब्दुर्रहीम खानखाना (रहीम)	४०
अबुल फजल	९५
अबुल हसन "रूद" (फारसी कवि)	९९
अबू-तालिब-अलमक्की (अरब)	१०३
अबू-मा-शर (अरब ज्योतिषी)	१०३
अबुल-फजल-अहमद (अरब)	१०४
अबु-सैद-इब्न-अबुलखैर	१०४
अबू-अब्दुल्ला जाफ़र "रूदागी"	१०४
अबु-नुवास (ईरानी कवि)	१०५
अबू-अल-अताइया (अरब)	१०५
अबू-हुला याह	१०५

नाम	पृष्ठ संख्या
अब्दुल रज्जाक जामी (फारसी कवि)	१०६
अब्राहम-इब्न-एजरा (यहूदी)	१०७
अभिनव-गुप्ता (भारत)	२४४
अबे-प्रेवोस्ट (फ्रेञ्च साहित्यकार)	१०७
अभिलषितार्थ चिन्तामणी	१११
अभिज्ञान शाकुन्तल	१११
अमरू (कश्मीरी कवि)	११७
अमरकोश	११७
अमीर खुसरो (फ़ारसी कवि)	२४८
अमानत (उर्दू कवि)	१२०
अमाडियस हाफमेन (जर्मन साहित्यकार)	१२१
अमीर मीनाई (उर्दू कवि)	१२१
अयोध्या सिंह उपाध्याय	१३६
अरिस्टो फेनीज (ग्रीक साहित्य)	१४८
अर्नेस्ट डाउसन (अंग्रेज कवि)	१५७
अर्नोवियस (रोम)	१६०
अर्नो-होल्फ़ (जर्मन)	१६०
आर्थर शिफ़लर (आस्ट्रिया)	१६१
अराई हाकू सेकी (जापान)	१६१
अर्थरवान शेएडेल (डच लेखक)	१६१
आड्रियान-वान डरवीन (डच)	१६१
अल-काली	१६४
अल्डुस-हक्सले (अंग्रेजी साहित्य)	१६५
अल-खुरी	१६५
अल-बुसीरी	१६५
अल-जहरवी	१६५
अलताफ हुसैन हाली (उर्दू कवि)	१६९
अल-नाबिगा (अरबी कवि)	१७०
अल्फ्रेड इप्सन (डेन मार्क)	१७२
अल्फ्रेड-डी-मिसे (फ्रेञ्च कवि)	१७२
अल्फ्रेड डी-बिनी (,,)	१७२
अल्फ़ोन्जे दोदे (फ्रेंच कहानी लेखक)	१७२
अल्फ्रेड टेनिसन (अंग्रेज कवि)	१७२
अल्फ्रेड हासमेन (,,)	१७२
अल्फ्रेडो ओरियानी (इटली)	१७२
अल्फ़िक (इंग्लैण्ड)	१७३
अल-फराबी	१७३
अल्फोञ्जो मसीनेज़ो तोले दो (स्पेन)	१७५
अल-बलाथुरी	१७५
अल-बदी (अरबी अलङ्कार ग्रन्थ)	१७५
अल्म-किस्त (स्वीडन)	१७६
अल्बर्ट्स मेगेनस	१७६
अल-बुस्तानी (अरब)	१७६
अल-मुहासिबी (अरब)	१७६
अल्लसानी पद्दैन (तैलगू कवि)	१७८
अल-रूसाफी (अरब)	१७८
अल-शहरस्तानी (अरब)	१७९
अल-समव अल-इब्नआदिया	१७९
अल-सिन्द-हिन्द (गणित)	१७९
अलिफ-लैला	१८४
अल-सफदी (अरबी लेखक)	१८५
अल-हसन अल-बसरी	१८५
अली-शेर-नवाई (तुर्की कवि)	१८६
अली-हजी (फारसी कवि)	१८७
अलेक सेन्द्रो हर्जेन (रूसी लेखक)	१९८
अलेक सेन्द्रो ओस्ट्रोव्हस्की	१९८
अलेक सेन्द्रो सर्जीविच पुश्किन	१९९
अलेकजेण्डर पोप (अंग्रेजी साहित्य)	१९९
अर्द्ध-मागधी भाषा	२४५
अवधी भाषा और साहित्य	२४६
अल-जरकाली	१६५
अलंकार शास्त्र	२४८
अष्टाध्यायी	२४६
अज्ञेय	२४८
अलेक्सी टालस्टाय (रूस)	२०१
अलेक्सिस कीवी (फ़िनलैण्ड)	२०२
अलोक्से बारान्निको (रूस)	२०२
अलोइस जिरासेक (जेकोस्लाविया)	२०२
अश्वघोष (बौद्ध विद्वान)	२०९
अमर सिंह	२०९

नाम	पृष्ठ संख्या
अश्क उपेन्द्रनाथ	२२४
अस्किलस (ग्रीक)	२२५
अहमद मिधात	२२६
आगस्ट कैरट	२५६
आनन्द मठ	२६७
आनन्द-धन	२६७
आनन्द-वर्द्धन	२६७
आनन्दप्रकाश जैन	२६७
आइन-ए-अकबरी	२९७
आतिश (उर्दू कवि)	३००
आसफुद्दौला	३०१
आल्हा खण्ड	२८६
आल्हा चारण	२८६
आलिवर ट्विस्ट (उपन्यास)	२९०
आरजू (उर्दू कवि)	२९६

धर्म सिद्धान्त और धर्माचार्य्य

नाम	पृष्ठ संख्या
अकलंक (जैनाचार्य)	३२
अगस्टाइन (ईसाई सन्त)	३६
अंगुत्तर निकाय (बौद्ध आगम)	३८
अङ्गद गुरु (सिक्ख)	३९
अजित केश कम्बली	५१
अथर्ववेद	५८
अथानीसियस (ईसाई विद्वान)	५८
अद्वैतवाद	५८
अनेकान्तवाद	६७
अनन्तकीर्त्ति (जैनाचार्य)	६९
अनान बेन डेविड (यहूदी)	७०
अब्दुल्ला बखारी	९८
अब्दुला बिन मैमान (करामाती पन्थ)	९८
अब्दुल-नबी (मौलवी)	१००
अब्दुल्ला सुलतानपुरी (मौलवी)	१०३
अभयदेव सूरि (जैनाचार्य)	१०८
अभिधम्मपिटक (बौद्ध आगम)	११०
अभिधर्म कोष (बौद्धग्रन्थ)	१११
अमृतचन्द्र (जैनाचार्य)	११८
अमरचन्द्र सूरि (जैनाचार्य)	११८
अमितगति सूरि (जैनाचार्य)	११८
अम्ब्रोस (ईसाई सन्त)	११८
अमरदास गुरु सिक्ख गुरु)	१२०
अब्बासी खलीफा	१४१
अबू-बकर खलीफा	१३९
अर्बन द्वितीय (रोमनचर्च)	१४६
अर्बन पंचम (रोमन चर्च)	१४६
अल्लाई शेख	१८१
अली (खलीफा)	१८५
अल-हसन अल-बसरी	१८५
अलेक्झेण्डर पोप तृतीय	१९७
अवदान (बौद्ध ग्रन्थ)	२०६
अवेस्तां (पारसी धर्मग्रन्थ)	२०८
अशोक के धर्मलेख	२१४
असंगाचार्य (बौद्ध आचार्य्य)	२२४
अज्ञेयवाद	२४८
आगम-साहित्य	२५७
आचारंग सूत्र (जैन)	२५९
आजीवक सम्प्रदाय	२६१
आर्य-संस्कृति	२७२
आर्य-समाज	२७९
आश्वलायन सूत्र (बौद्ध)	२९२
आशाधर	२९२

महान्-क्रान्तियाँ और क्रान्तिकारी

नाम	पृष्ठ संख्या
अक्टूबर क्रान्ति (रूस)	२७
अगुइनाल्दो (फिलिपाइन)	३४
अन्सारी मुख्तार अहमद	७१
अनुशीलन समिति ढाका	७२
अबुलकलामआजाद	९६
अब्दुलगफ्फार खाँ	१०३
अभिनव भारत सोसायटी	१११
अठारह सौ सत्तावन	२३१
अरविन्द घोष	१४८
[illegible] (आयरलैण्ड)	१६१

नाम पृष्ठ संख्या

अलीपुर-षड्यन्त्र १८८
अलेकजान्द्रिनो (फिलीपाइन) २०२
अशफाउल्ला (काकोरी षड्यंत्र) २२१
असहयोग क्रान्ति २२५
आजाद हिन्द फौज २६१
आर्थरग्रिफिथ (आयरलैण्ड) २८१
अम्बिका चक्रवर्ती २४८
अन्फू-क्लब (चीन) ६४

राजनीति और राजनीतिज्ञ

अगस्टाइन ३६
अफलातून (ग्रीस) ७४
अरस्तू (ग्रीस) १५०
अराकी (जापानी) १४५
अरीता (जापानी) १४६
अराजकवाद १५५
अल्बर्टस मेगनस १७६
आदर्शवाद २२५
आस्क्विथ (इङ्गलैण्ड) २६६
अपोलोनियस (,,) २४८
अक्षयकुमार दत्त (,,) २४८

वैज्ञानिक

अण्ड्रेमेरी एम्पियर (फ्रेञ्च) ३८
अलबर्ट आइन्स्टीन १७४
अगासी रोडेल्फ २४८
अलबर्ट अब्राहम माइकलसन १७५
अलेक्भेण्डर ग्राहम वेल १६३
अलीसेण्ड्रो व्होल्टा १६३
अविचेन्ना (चिकित्सा शास्त्री) २०८
आइजक न्यूटन २५०
आर्क राइट २५२
आटो व्हान गैयरिक २६४
आयुर्वेद २७०
आर्गेनन २८३
आर्यभट्ट (ज्योतिष) ३०७

नाम पृष्ठ संख्या

आर्यभट्ट द्वितीय ३०७
आर्कलायूस ३०७

कलाकार और कलाकृतियाँ

अंजेला माइकेल (चित्रकार) ५५
अजण्टा गुफाएं ४७
अवनीन्द्रनाथ ठाकुर २०७
अढ़ाई दिन का झोपड़ा ५७
आबू-पर्वत (जैनतीर्थ) २६९
आरासन तीर्थ (जैनतीर्थ) २८८
आपेलीज (चित्रकार) २०९
अल-हम्ब्रा (स्पेन) २४८

अन्तर्राष्ट्रीय संगठन

अंकारा सम्मेलन ३६
अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार ६४
अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ६५
,, ,, द्वितीय ६६
,, ,, तृतीय ६६
अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम ६६
अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ६६
अन्तर्राष्ट्रीय अणुशक्ति अभिकरण ६७
अन्तर्राष्ट्रीय बालसंकट कोष ६७
अफ्रीकी-एशिया ऐक्य सम्मेलन ८४
अफ्रीकी एशिया आर्थिक सम्मेलन ८४
अफ्रीकी वन-सम्मेलन ८४

समाचार पत्र और पत्रकार

अमृत बाजार पत्रिका ११९
अल-अहराम (मिस्र) १६३
असोसिएटेड प्रेस (समाचार एजन्सी) १७९
अवध-पंच २०५
अशाई शिम्बून (जापान) २१०
अर्जुन २४८
आज २६०
अल-हिलाल १८०

सहायक ग्रन्थों की सूची

इस कोष के निर्माण में जिन महान् ग्रन्थकारों की ग्रन्थों से हमें प्रकाश प्राप्त हुआ है उनकी संक्षिप्त सूची नीचे दी जा रही है। पूरी सूची अन्तिम भाग में दी जावेगी।

पं० जवाहरलाल नेहरू	विश्व इतिहास की झलक, हिन्दुस्तान की कहानी
डॉ० भगवत शरण उपाध्याय	विश्व साहित्य की रूपरेखा, प्राचीन भारत का इतिहास
महा पण्डित राहुल सांकृत्यायन	मध्यएशिया का इतिहास २ भाग अकबर
गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा	राजपूताने का इतिहास ८ भाग
डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार	एशिया का आधुनिक इतिहास, यूरोप का आधुनिक इतिहास
बर्वे और चतुर्वेदी	इंग्लैण्ड का इतिहास
श्री सुख सम्पत्ति राय भण्डारी	भारत के स्वातंत्र्य संग्राम का इतिहास
श्री ज्योति प्रसाद सूद	राजनैतिक विचारों का इतिहास भाग १–२–३
आचार्य नरेन्द्र देव	बौद्ध दर्शन
श्री सुरेन्द्रनाथ बिसारिया	आधुनिक राजनैतिक विचार धाराएँ
विनायक गणेश सावरकर	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम
डॉ० पट्टाभि सीतारमैया	कांग्रेस का इतिहास १–२–३ भाग
अमेरिकन प्रकाशन	अमेरिकन इतिहास की रूप रेखा
श्री परशुराम चतुर्वेदी	संत काव्य
डॉ० प्रभात कुमार भट्टाचार्य	प्रतिनिधि राजनैतिक विचारक
जगन्नाथ प्रसाद मिश्र	भारतीय अब्द कोश
श्री देवी प्रसाद मुन्सिफ़	मारवाड़ राज्य का इतिहास
श्री छविनाथ पाण्डेय	पश्चिमी यूरोप
चिन्तामणि विनायक वैद्य	हिन्दू भारत का अन्त
श्री नाथूराम प्रेमी	जैन साहित्य और इतिहास
श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी	विश्व साहित्य
पं० रामनरेश त्रिपाठी	कविता कौमुदी ५ भाग
श्री विश्वेश्वरनाथ झा	भारत के प्राचीन राजवंश १–२ भाग
श्री गुलाब राय एम० ए०	विज्ञान-विनोद
श्री गुरुनाथ शर्मा	मिश्र की राष्ट्रीय प्रगति
परशुराम चतुर्वेदी	उत्तर भारत की संत परम्परा

श्री रामदास गौड	हिन्दुत्व
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	आर्य्य समाज का इतिहास
श्री व्रजरत्न दास	उर्दू साहित्य का इतिहास
श्री अम्बिका प्रसाद वाजपेयी	समाचार पत्रों का इतिहास
श्री शंकर राव जोशी	रोम साम्राज्य
प्लूटार्क (अनु०-मुकुन्दी लाल श्रीवास्तव)	ग्रीस और रोम के महापुरुष
डॉ० प्राणनाथ विद्यालंकार	इंग्लैण्ड का इतिहास
एल-मुकुर्जी	योरोप का इतिहास
विष्णु अनुग्रह नारायण सिंह	इंग्लैण्ड का आर्थिक इतिहास
प्यारे लाल शर्मा	विश्व-इतिहास की रूप रेखा
सुरेन्द्रनाथ सेन	अठारह सौ सत्तावन

साप्ताहिक हिन्दुस्तान और धर्म युग के फाइल—

गुजराती

नवीन जापानी उत्क्रान्ति	चम्पक लाल लाल भाई मेहता
जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास	मोहनलाल दुलि चन्द देसाई

English

H. G. Wells	Out line of History
K. M. Pannikar	A survey of Indian History
Moreland	India from Akabar to Aurangzeb
Homes	History of Indian Mutiny
K. M. Pannikar	The future of South East Asia
Roy-Chaudhari	Political history of Ancient India
Bhandarkar	Early History of Daccan Asoka
E. G. Browne	Literary History of Persia
H. H. Howarth	History of Mangol
L. A. Mills	The New World of South East Asia
Chaldea	The Story of the Nations
John Macy	The Story of the World's Literature
Nawrice W. Ph-d.	A Story of Indian Literature
Hays C. J. H.	A History of Modern Europe
A. Bersidale Keith	A History of Sanskrit Literature
Sarkar & Srivastava	The World Year-Book

विश्व-इतिहास-कोष

Encyclopedia of World History

ज्ञान-मन्दिर—प्रकाशन

पूर्व परिचय

विश्व-इतिहास कोष का प्रारम्भ अकारादिक्रम से किया किया जा रहा है। अभी तक की योजना के अनुसार यह कोष चार-चार सौ पेज के करीब बारह खण्डों में पूर्ण होगा। खण्डों की यह संख्या आवश्यकतानुसार बढ़ भी सकती है।

विश्व-इतिहास-कोष में निम्नलिखित विषयों का समावेश रहेगा—

विश्व-इतिहास, (२) विश्व साहित्य, (३) विश्व-धर्म संस्था, (४) राजनीति शास्त्र, (५) विज्ञान और अनुसन्धान तथा (६) औद्योगिक विकास।

हरएक शब्द का विवेचन संक्षेप में मगर साङ्गोपांग किये जाने की योजना है जैसा कि इस भाग में देखने को मिलेगा।

विश्व-इतिहास कोष के सब भाग प्रकाशित हो जाने पर इसी सिलसिले में दो भाग पौराणिक विश्वकोष और एक भाग बानस्पतिक विश्व-कोष प्रकाशित करने करने की भी योजना है।

अभी तक के अनुमान के अनुसार तीन वर्ष में "विश्व-इतिहास-कोष के सब भाग प्रकाशित कर दिये जावेंगे परिस्थिति के अनुसार यह समय बढ़ भी सकता है।

विश्व कोष का क्षेत्र बहुत विशाल है और मनुष्य की बुद्धि बहुत सीमित है। कई प्रकार की भूलें और अपूर्णताएँ रहना सम्भव है। ये भूलें और अपूर्णताएँ विद्वानों और जानकारों के सहयोग से ही दूर हो सकती हैं। पठित समाज से विनम्र प्रार्थना है कि इस सम्बन्ध में हर प्रकार की सूचना, सजेशन और छूटे हुए शब्दों की जानकारी भेजने की कृपा करें। उनकी सूचनाओं का धन्यवाद पूर्वक उपयोग किया जावेगा।

—लेखक

विश्व-इतिहास-कोष

प्रथम खण्ड

(अकारादि क्रम से)

[अ]

अकबर महान्

(Akbar the Great)

अकबर महान, मुगल साम्राज्य का इतिहास प्रसिद्ध बादशाह हुमायूँ का पुत्र, बादशाह बाबर का पौत्र, जन्म सन् १५४२, राज्यारोहण सन् १५५६, मृत्यु सन् १६०५।

भारतवर्ष के महान इतिहास में राजकीय क्षेत्र के अन्तर्गत जितने महान व्यक्तित्व अपने प्रखर तेज से चमकते हुए नजर आते हैं उनमें मुगल सम्राट अकबर भी अपना एक प्रमुख स्थान रखते हैं। पं० जवाहर लाल नेहरू अपने 'विश्व इतिहास की झलक' नामक ग्रन्थ में एक स्थान पर लिखते हैं :—

"यह एक अजीब बात है कि ईसा के ३०० वर्ष पहले का एक बौद्ध सम्राट् और ईसा के बाद सोलहवीं सदी का एक मुसलमान सम्राट् दोनों एक ही ढंग से और करीब-करीब एक ही आवाज में बोल रहे हैं ताज्जुब नहीं कि यह खुद भारत की ही आवाज हो जो उसके दो महान पुत्रों के जरिये बोल रही हो।"

अकबर का जन्म २८ दिसम्बर १५४२ को आधुनिक, पश्चिमी पाकिस्तान के अमरकोट नामक स्थान में हुआ था। २७ जनवरी सन् १५५६ के दिन देहली के पुराने किले में सम्राट् हुमायूँ का देहान्त हुआ। उस समय अकबर पंजाब में था। हुमायूँ की मृत्यु की खबर पहुँचने पर १४ फरवरी १५५६ को गुरुदास पुर जिले के कलानोर नामक स्थान में अकबर को गद्दीनशीन कर दिया गया।

जिस समय अकबर की गद्दी नशीनी हुई उस समय उसकी उम्र केवल चौदह वर्ष की थी। इसलिये बैरम खाँ नामक सरदार को उसका संरक्षक बनाया गया।

हुमायूँ के जीवन की अव्यवस्था के कारण अकबर की शिक्षा-दीक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं हो सका। उसका समय अधिकतर खेल-तमाशों में ही निकलता रहा मगर अक्षर ज्ञान न होने पर भी अकबर को ज्ञान प्राप्त करने की बेहद जिज्ञासा रही। उसकी स्मरणशक्ति बहुत तेज थी, जो भी बात वह सुनता याद हो जाती थी। उस समय के प्रसिद्ध ग्रन्थों में शायद ही कोई ग्रन्थ ऐसा होगा जिसे उसने नहीं सुना हो। फारसी भाषा की पुस्तकें समझने में उसे कुछ तकलीफ नहीं होती थी। अरबी और संस्कृत के ग्रन्थों का जैसे शाहनामा, महाभारत, रामायण इत्यादि का उसने स्वयं अपने लिये फारसी भाषा में अनुवाद करवाया था।

साम्राज्य विस्तार

जिस समय अकबर राजगद्दी पर बैठा उस समय मुगल साम्राज्य की सल्तनत सिर्फ आगरा से पंजाब तक ही सीमित थी। बंगाल में पठानों का बोलबाला था। राजस्थान में राजपूत रजवाड़े स्वतन्त्रता का उपभोग कर रहे थे, मध्य-प्रदेश में रानी दुर्गावती का प्रताप उरूज पर था, मालवा में माण्डू का सुल्तान शासन कर रहा था और शेरशाह के उत्तराधिकारी का प्रतिनिधि हेमू अकबर के मुकाबले में पूरी तैय्यारी के साथ खड़ा हुआ था। हेमू बड़ा बहादुर और साहसी था। उसने बाईस लड़ाइयों में विजय पायी थी।

कलानोर में अकबर की गद्दीनशीनी के बाद उसने तर्दी-बेग नामक सरदार को पंच हजारी मनसब देकर दिल्ली का गवर्नर नियुक्त किया। मगर हेमू ने आगरा और दिल्ली पर

आक्रमण करके तर्दीबेग को वहाँ से भगा दिया और दोनों राजधानियाँ अपने कब्जे में कर लीं। तर्दीबेग भाग कर अकबर के पास सरहिन्द पहुँचा जहाँ पर बैरम खाँ ने उस पर विश्वासघात का दोष लगाकर कत्ल करवा दिया।

इधर दिल्ली और आगरा पर अधिकार कर जब हेमू ने देखा कि शेरशाह के वंश में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जो सल्तनत का भार सम्हाल सके तब वह स्वयं विक्रमादित्य के नाम से दिल्ली के तख्त पर बैठ गया।

तब अकबर और बैरम खाँ अपनी सेना लेकर पानीपत के मैदान में पहुँचे। हेमू की सेना संख्या और शक्ति दोनों में बढ़-चढ़ कर थी। उसके पास पोर्तुगीजों से मिली हुई तोपें भी थीं। पहले ही हमले में हेमू ने मुगल सेना में भगदड़ मचा दी। मगर दुर्भाग्यवश उसी समय उसकी आँख में एक तीर लग जाने से वह हाथी पर से गिर पड़ा और भारतवर्ष की कमजोर युद्धनीति के अनुसार अपने नेता के गिरते ही हेमू की विशाल सेना भाग खड़ी हुई। हेमू गिरफ्तार कर लिया गया और बैरम खाँ ने अकबर को कहा कि वह अपने हाथ से हेमू का सिर काट कर गाजी की पदवी ग्रहण करे मगर अकबर ने हेमू का सिर काटने से इनकार कर दिया। तब बैरम खाँ ने खुद अपने हाथ से उसका सिर काटा।

इसके बाद अकबर मानकोट के पहाड़ी किले में शेरशाह के वंशज सिकन्दर सूरि पर विजय प्राप्त कर सन् १५५८ में सदल बल आगरा पहुँचा। उसके बाद उसके साम्राज्य की सीमा का विस्तार होने लगा। सन् १५५६ में ग्वालियर का सुदृढ़ दुर्ग अकबर के हाथ में आ गया और इसी वर्ष जौनपुर पर भी उसने विजय प्राप्त कर ली। इस समय तक अकबर की आयु अठारह वर्ष की हो चुकी थी और वह अब बैरम खाँ के अनियन्त्रित संरक्षण में नहीं रहना चाहता था। इसलिये बैरम खाँ को उसने हज करने के लिए मक्का शरीफ भेज देना चाहा। मगर रास्ते में ही गुजरात के अन्दर मुबारक खाँ लोहानी नामक उसके एक दुश्मन ने उसको मार डाला। जब अकबर को यह घटना मालूम हुई तो उसे बड़ा दुःख हुआ और उसने बैरम खाँ के पुत्र और भावी हिन्दी के महान कवि अब्दुर्रहीम को, जो उस समय चार साल का बच्चा था, बुला कर अपने पास रखा।

इसके पश्चात् अकबर ने गुजरात को विजय करने की तरफ ध्यान दिया। गुजरात विजय में अकबर को विशेष कठिनाई नहीं हुई। नवम्बर १५७२ में जब अकबर की फौजें अहमदाबाद के पास पहुँची तब वहाँ का सुल्तान मुजफ्फर शाह तृतीय एक खेत में छिपा हुआ पकड़ा गया। उसे एक छोटी-सी जागीर देकर गुजरात को सम्राट ने अपने साम्राज्य में मिला लिया। इसी समय अकबर को पता लगा कि सूरत का मिर्जा इब्राहीम हुसैन अकबर के अधिकारी रुस्तम खाँ को मार कर आगे बढ़ना चाहता है। उसको रोकने के लिये बड़ौदा से एक छोटी सी सेना लेकर अकबर आगे बढ़ा। मिर्जा इब्राहीम उस समय एक बड़ी सेना के साथ माही नदी के उस पार सरनाल के कस्बे में पड़ा हुआ था। अकबर ने केवल दो सौ सैनिकों के साथ उस पर रात में एकाएक हमला कर दिया। अचानक हमला होने से इब्राहीम की सेना भाग खड़ी हुई। उसके बाद जनवरी १५७३ में अकबर ने सूरत पर घेरा डाल दिया। डेढ़ महीने के घेरे के बाद सूरत भी विजय हो गया।

बंगाल और बिहार विजय

गुजरात विजय के बाद सम्राट् का ध्यान बंगाल और बिहार की तरफ गया। इन प्रान्तों पर विजय प्राप्त करने में अकबर को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। कुछ समय पूर्व ये प्रान्त शेरशाह सूरी के मजबूत गढ़ रह चुके थे मगर अब ये सूरी पठानों के हाथ से निकल कर कर्रानी पठानों के हाथ में चले गये थे। उन दिनों सुलेमान खाँ कर्रानी यहाँ का शासक था जिसका शासन बनारस से आसाम तक और उड़ीसा में फैला हुआ था। उसको जीतने के लिये सम्राट् ने खानजामा के अधीन सेना भेजी। सुलेमान खाँ ने बादशाह से लड़ने के बजाय उसकी अधीनता स्वीकार करके संधि कर ली। सुलेमान खाँ के बाद उसका छोटा लड़का दाऊद खाँ गद्दी पर बैठा। इसने फिर बादशाह के साथ विद्रोह कर दिया। दाऊद खाँ के पास चालीस हजार पैदल सेना, बीस हजार बन्दूकें, तीन हजार छः सौ हाथी और कई सौ लड़ाकू जहाज थे।

R
2
६.१
081136

दाऊद खाँ को दबाने के लिये अकबर ने अपने सर्वश्रेष्ठ सेनापति टोडरमल को बिहार की सेना का सेनानायक बना कर भेजा। उसके बाद सन् १५७६ के जून मास में स्वयं सम्राट् भी अपनी सेना के साथ जलमार्ग से पटना पहुँचा। दाऊद खाँ के पास काफी-बड़ी फौज होने पर भी वह पटना से भाग निकला। फिर कई छोटी बड़ी लड़ाइयों के बाद दाऊद खाँ १२ जुलाई १५७६ को परास्त कर दिया गया।

रानी दुर्गावती से युद्ध (सन् १५६४)

रानी दुर्गावती गढ़ कटंगा के राजा की पत्नी और महोबा के चन्देल राजा की लड़की थी। उसके राज्य में आधुनिक मध्यप्रदेश का प्रायः सारा उत्तरी भाग था। रानी के पति का जवानी ही में देहान्त हो गया था। इसलिये रानी दुर्गावती अपने पुत्र वीरनारायण की अभिभाविका होकर पिछले पन्द्रह सालों से शासन-भार सम्भाले हुए थी। उसकी सेना में बीस हजार अच्छे सवार और एक हजार हाथी रहते थे। बाण और बन्दूक चलाने में वह बड़ी सिद्धहस्त थी। मालवा के सुल्तान बाज बहादुर और मियानो को उसने पराजित किया था।

रानी दुर्गावती ने सुन रखा था कि अकबर की सेना अजेय होती है। उसके आक्रमण की खबर सुन कर उसके बहुत से साथी उसका साथ छोड़कर भाग गये फिर भी रानी दुर्गावती ने हिम्मत नहीं हारी। उसने अपनी अन्तिम लड़ाई गढ़ा और माण्डला के बीच में लड़ी। स्वयं एक बड़े हाथी पर चढ़कर वह अकबरी सेना का मुकाबला कर रही थी। जब दो तीर उसके शरीर में लग गये और उसने अपने आपको बेकाबू पाया तब उसने अपने हाथ से छाती में कटार भोंक कर प्राणान्त कर लिया। उसका पुत्र राजा वीरनारायण भी माँ की तरह बहादुरी के साथ लड़ता हुआ मारा गया। रानी दुर्गावती का राज्य अकबर के साम्राज्य में मिला लिया गया। इसी प्रकार अकबर ने कांगड़ा विजय, कश्मीर विजय, सिन्ध विजय और बिलूचिस्तान पर विजय प्राप्त करके अपने साम्राज्य को बहुत अधिक विस्तृत कर लिया।

राणा प्रताप से संघर्ष

संघर्ष और लड़ाइयाँ तो अकबर ने अपने जीवन में बहुत लड़ीं और हर जगह भाग्य ने उसको विजयी बनाया। मगर जैसे लोहे के चने उसे मेवाड़ में चबाने पड़े वह उसके जीवन की एक अभूतपूर्व घटना और इतिहास की एक अमर चीज है।

राणा उदयसिंह का पुत्र राणाप्रताप सिंह सन् १५७२ में मेवाड़ की गद्दी पर बैठा। उस समय तक मुसलमानों के साथ संघर्ष करते-करते मेवाड़ क्षीण हो चुका था, चित्तौड़ उसके हाथ से निकल चुका था। राणाप्रताप का राज्य उस समय नई राजधानी उदयपुर के पश्चिम में कुम्भलनेर से ऋषभनाथ तक सिर्फ अस्सी मील लम्बा और उतना ही चौड़ा था। राणाप्रताप के साथी और रिश्तेदार जयपुर, जोधपुर, अजमेर, जैसलमेर इत्यादि सभी राजपूत राजा किसी न किसी रूप में सम्राट् के साथ अपमानजनक संधियां कर चुके थे और अपनी लड़कियां दे चुके थे। मगर राणाप्रताप का शरीर और मन किसी दूसरी धातु का बना हुआ था। उसके सामने सीसौदियों का गौरव पूर्ण इतिहास था जिन्होंने सारे इतिहास में फौलाद की तरह टूटना पसंद किया मगर झुकना पसन्द नहीं किया। अपनी आजादी के लिये हंसते-हंसते अपना बलिदान कर देने के सैकड़ों उदाहरणों से उनका इतिहास भरा पड़ा था।

राणाप्रताप और अकबर के संघर्ष का महत्व इस लिये और भी बढ़ जाता है कि एक ओर जहां सारे साम्राज्य की शक्ति और उस शक्ति के साथ अपने नाते रिश्तेदारों का सहयोग सम्मिलित था वहां दूसरी ओर बिना साथियों के एक छोटे से मेवाड़ी टुकड़े का अधिपति राणा प्रताप था। यह लड़ाई एक हाथी और चींटी की लड़ाई की तरह थी।

मगर राणा प्रताप के साथ एक अद्भुत् व्यक्तित्व, एक दुर्दमनीय साहस और कभी समाप्त न होने वाला एक प्रकाशमान आत्म-तेज था। उसका स्वाभिमान अलौकिक था, उसकी आजादी की तमन्ना अजेय थी और उसी अजेय तमन्ना का चिराग अपने दिल में जलाये हुए इस वीर ने अन्त तक इस विशाल साम्राज्य से लोहा लिया। वह जंगल-जंगल में घूमा, अपनी महारानी और बच्चों को घास की बनी हुई रोटी पर गुजारा करते हुए देखा मगर उस

आँधी और तूफान के बीच में भी उसने उस अमरदीप की ज्योति को नहीं बुझने दिया।

यही कारण है कि भारतीय वीरता के इतिहास में अपनी स्वाधीनता के लिये अलख जगाने वाले राजपुरुषों के इतिहास में और अपने धर्म तथा स्वाभिमान की वेदी पर सर्वस्व अर्पण कर देने वाले व्यक्तियों के इतिहास में राणाप्रताप का नाम अपना जोड़ नहीं रखता।

ठीक है, अकबर एक महान सम्राट् था, उसने भारत में एक विशाल साम्राज्य की स्थापना कर हिन्दू और मुसलमानों के दिलों को धार्मिक मतभेदों से ऊपर उठाकर राष्ट्रीयता की भावनाओं से भरा। उसकी यह धार्मिक उदारता प्रशंसनीय थी मगर यह इतिहास का सिर्फ एक पहलू है। उसका दूसरा पहलू राणा प्रताप है। इन दोनों पहलुओं का इतिहास में अलग-अलग स्थान है। इन दोनों पहलुओं में कौन बड़ा है और कौन छोटा है इसका निर्णय करने वाले इतिहासकार गलती में पड़ सकते हैं। ये दोनों पहलू उच्च मानवता के दो ऐसे गुम्बज हैं जिनकी महत्ता एक समान है। मानवता को अपनी रक्षा के लिये अकबर के समान उदारचेता व्यक्ति की जितनी आवश्यकता है प्रताप के समान उत्कट देशभक्त, साहसी, बीर और महान स्वाभिमानी व्यक्तित्व की आवश्यकता भी उससे कम नहीं है।

प्रायः एक चौथाई शताब्दी अर्थात् सन् १५७२ से १५९७ तक राणाप्रताप ने अकबर की जबर्दस्त शक्ति का मुकाबला किया। लड़ाइयाँ तो कई हुईं मगर उनमें हल्दीघाटी की लड़ाई सबसे मशहूर है जिसने भारतवर्ष के इतिहास में हल्दीघाटी को ग्रीस के मशहूर रणक्षेत्र "थर्मापोली" से भी अधिक महत्व प्रदान कर दिया।

सन् १५७६ में राजा मानसिंह मेवाड़ में प्रतापसिंह के द्वारा अपमानित होकर मेवाड़ विजय का संकल्प लेकर गया और एक विशाल सेना को लेकर माण्डलगढ़ में पहुँचा। उसका लक्ष्य गोगुण्डा का पहाड़ी दुर्ग हस्तगत करना था। गोगुण्डा पहुँचने के लिये रास्ते में तेरह-चौदह मील हल्दीघाटी नामक पहाड़ी दर्रे को पार करना था। राणा प्रताप ने तीन हजार सवारों के साथ इसी स्थान पर शाही सेना से मुकाबला करने का निश्चय किया। इस युद्ध में राणा प्रताप ने अपने चेतक घोड़े पर सवार होकर अपना भाला लिये हुए दुश्मनों को चीरते हुए राजा मानसिंह के हाथी पर आक्रमण किया। उसका घोड़ा चेतक हाथी की सूंड पर पांव रख कर खड़ा हो गया और वहीं से राणा प्रताप ने मानसिंह को लक्ष्य कर भाले का जो हाथ मारा तो मानसिंह का मुकुट नीचे गिर गया मगर उसका सिर किसी तरह बच गया। तत्काल शाही सेना ने राणा प्रताप को घेर लिया और वह समय नजदीक था कि उसका जीवनदीप बुझ जाता मगर उसी समय झालाराणा मानसिंह ने बिजली की तेजी से वहाँ पहुँच कर राणा प्रताप का मुकुट अपने सिर पर रख लिया। मुकुट उसके सिर पर देखते ही शाही सेना उसी को प्रताप समझ कर उसके पीछे दौड़ पड़ी। झाला राणा ने शहीद होकर राणा प्रताप को निकल जाने का अवसर दिया। राणा का स्वामिभक्त घोड़ा अत्यन्त क्षत-विक्षत होकर भी राणा को लेकर भागा और उन्हें सुरक्षित स्थान पर पहुँचा कर उसने उसी समय दम तोड़ दिया।

इतिहास के पृष्ठ बदलते गये। अकबर का बनाया हुआ विशाल साम्राज्य भी तहस-नहस हो गया मगर जिन पृष्ठों में राणा प्रताप, हल्दीघाटी और चेतक का नाम है, वे अमर हो गये।

राणा प्रताप ने अपने जीवन में ही चित्तौड़, अजमेर, और माण्डलगढ़ को छोड़ कर सारे मेवाड़ पर फिर से अधिकार कर लिया और स्वाधीनता की उसी जागती हुई ज्योति के साथ सन् १५९७ में अपना शरीर छोड़ा।

उपरोक्त लड़ाइयों के सिवाय अकबर को पश्चिमोत्तर प्रान्त में अनेक लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं। इन लड़ाइयों के द्वारा उसने कांगड़ा विजय (१५७२-७३), काबुल विजय (१५८१), कश्मीर विजय (१५८६) और सिन्ध तथा बलूचिस्तान की विजय (सन् १५९१) में सम्पन्न की।

इस प्रकार काबुल, पंजाब कश्मीर, सिन्ध, उत्तर प्रदेश, बंगाल, बिहार, आसाम, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, गुजरात और राजस्थान का सारा विस्तृत देश उसके विशाल साम्राज्य का अंग हो गया। केवल दक्षिणी भारत का एक बड़ा भाग उसके साम्राज्य से बाहर रहा।

अकबर की राजनैतिक विचारधारा

अनियंत्रित राजतंत्र पद्धति का अनुयायी होने पर भी राजनैतिक क्षेत्र में सम्राट् अकबर का दृष्टिकोण उदारतावादी था। जिस समय उसने राज्य की बागडोर अपने हाथ में सम्हाली उस समय भारत की राजनैतिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो रही थी। पठान साम्राज्य का सूर्य्य अस्त हो रहा था, शेरशाह के वंशज हतप्रभ हो चुके थे। जगह-जगह छोटे-छोटे राजा स्वतंत्रतापूर्वक अपनी मनमानी कर रहे थे।

हिन्दू और मुसलमानों के दिलों में विजित और विजेता की भावनाएं बद्धमूल हो जाने से दोनों के हृदयों में पारस्परिक घृणा के भावों का प्राबल्य हो चुका था। मुसलमान आक्रमणकारियों ने प्रारम्भ में यह समझा था कि तलवार की ताकत पर हम हिन्दू संस्कृति को जड़ मूल से नष्ट-भ्रष्ट कर देंगे। इस सभ्यता को नष्ट करने के लिए उन्होंने लगातार तीन सौ बरस तक इस पर भयंकर प्रहार भी किये। मगर जिस मजबूत बुनियाद पर इस सभ्यता की भव्य इमारत खड़ी थी, उस बुनियाद ने उनकी तलवार की चुनौती को स्वीकार कर लिया। ऊपर से वह इमारत चाहे खण्ड-खण्ड हो गई, लाखों हिन्दू मुसलमान हो गये, हजारों मन्दिर मसजिदों में बदल दिये गये। हिन्दू लोगों पर बड़े-बड़े कर भी लगाये गये, एक वस्तु को नष्ट करने के लिए जितना भी प्रयत्न हो सकता था, सब कुछ किया गया मगर आर्य्य-सभ्यता का जो अमरदीप कई सहस्त्राब्दियों से इस महान् देश में जल रहा था, वह इन बड़े-बड़े तूफानों की चुनौती को स्वीकार करता हुआ उसी शान के साथ जलता रहा।

दिल्ली के तख्त पर गोरी आये, गुलाम आये, खिलजी आये, तुगलक आये, सबने आर्य्य-संस्कृति को इसलाम-संस्कृति में पचा लेने का प्रयत्न किया मगर जिस मजबूत धरातल पर यह संस्कृति जमी हुई थी उसे वे एक इंच भी न हिला सके।

मुसलमानों के अन्तर्गत सम्राट् अकबर पहले व्यक्ति थे जिन्होंने इस सूक्ष्म मगर महान सत्य को समझ कर उसके अनुसार अपने साम्राज्य के राजनैतिक ढांचे का निर्माण किया। वैसे उनसे कुछ समय पूर्व ही इस देश में हिन्दू और मुसलमानों के बीच में यह आम धारणा बन गई थी कि भारतवर्ष में अब दोनों धर्म और सभ्यताओं के साथ-रहने में ही कल्याण है। इसी भावना को धर्म-गुरुओं में सबसे पहले नानक और कबीर ने और राजकीय क्षेत्र में शेरशाह और अकबर ने व्यक्त किया।

सम्राट् अकबर ने पहले पहल इस देश में धार्मिक भावनाओं के ऊपर राष्ट्रीयता की भावनाओं को स्थान दिया। भारतीय राष्ट्रीयता में उन्होंने हिन्दू और मुसलमान दोनों की समान स्थिति को मंजूर कर उसको अमली रूप देने का प्रयत्न किया। ऐसे समय में जब कि देश में राष्ट्रीयता के कोई निशान नहीं थे अकबर ने सारतीय-समाज में इन भावनाओं को जागृत करने का प्रयत्न किया। यह तो नहीं कहा जा सकता कि अकबर को अपने प्रयत्न में पूरी सफलता मिली। मगर एक व्यक्ति अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए अपने प्रयत्न को जितना आगे बढ़ा सकता है उसमें अकबर ने कोई कसर नहीं रक्खी। मुल्ला और मौलवियों तथा कट्टर मुसलमानों के घोर विरोध के बावजूद उसने उस मार्ग को नहीं छोड़ा जिसे वह सच्चा और भारत के लिए कल्याणकर समझता था। यही कारण है कि इतिहास आज उसे "महान्" के भावनापूर्ण शब्द से सम्बोधित करता है।

सम्राट् अकबर की सामाजिक विचारधारा

राजनैतिक क्षेत्र में हिन्दू और मुसलमानों को कंधे से कंधा मिलाकर सामाजिक क्षेत्र में भी अकबर ने इन दोनों मजहब वालों को मिला देने का प्रयत्न किया। उसने हिन्दू और मुसलमानों को परस्पर विवाह सम्बन्ध में जोड़कर, मजहबी विभिन्नता की मूल जड़पर ही कुठाराघात करने का प्रयत्न किया। इस कार्य्य में यदि उसे सफलता मिल जाती तो आज हिन्दुस्तान का इतिहास ही दूसरी तरह का होता। जिस प्रकार शक, कुशान, हूण इत्यादि जातियाँ भारत में आकर भारतीयता में समा गईं उसी प्रकार हिन्दू और मुसलमान भी महान् भारतीयता में समाकर एकाकार हो जाते और साम्प्रदायिकता का प्रश्न ही शेष न रहता। मगर अकबर को इसमें बिलकुल सफलता नहीं

मिली। यह प्रयोग उसने अपने राजघराने से ही प्रारम्भ किया। कुछ राजपूत राजाओं की लड़कियों से उसने स्वयं विवाह किया। इसी प्रकार उसने चाहा कि कुछ हिन्दू भी मुसलिम लड़कियों से विवाह करें। मगर उसका यह प्रयोग सफल नहीं हुआ। तहेदिल से न इसको हिन्दुओं ने स्वीकार किया और न मुसलमानों ने। राजकीय प्रभाव से प्रभावित होकर कुछ मुट्ठी भर लोगों में ऐसे विवाह हुए मगर उनका व्यापक प्रभाव कुछ भी नही हुआ।

सम्राट् अकबर की धार्मिक विचार धारा

धार्मिक मामलों में सम्राट् अकबर के विचार बहुत उदार थे। उसमें इसलामी कट्टरता का नाम भी नहीं था। उसका विश्वास था कि संसार के हर एक धर्म में सचाई का अंश रहता है और उसकी खोज में वह निरन्तर लगा रहता था। मुल्ला लोगों की कट्टरता से उसे नफरत थी। इससे नाराज होकर एक बार जौनपुरी मुल्ला अहमद यज्दी मुअजिज मुल्क आदि ने बादशाह के खिलाफ कुफ्र का फतवा दे दिया था और उसे राज्य से अलग करने का प्रयत्न किया था इससे रुष्ट होकर बादशाह ने हुक्म देकर उन्हें एक टूटी नाव पर बिठाकर बीच गंगा में डुबो दिया था। मुसलमानों के लिए अनिवार्य्य दाढ़ी रखने की प्रथा को उसने तोड़ दिया था। उसने और उसके पुत्र जहाँगीर ने जीवन भर दाढ़ी नहीं रक्खी!

बादशाह के खास दरबारियों में टोडरमल और बीरबल भी थे इनके संसर्ग से बादशाह पर हिन्दू धर्म का प्रभाव भी पड़ा। उसने महाभारत और रामायण का फारसी अनुवाद करवा कर उसका श्रवण किया। सिंहासन बत्तीसी का अनुवाद करने वाले पुरुषोत्तम पण्डित और महाभारत का फारसी अनुवाद करने वाले देवी ब्राह्मण से बादशाह हिन्दू धर्म का अध्ययन करता था।

अकबर ने अपने साम्राज्य में गौ हत्या बिलकुल बन्द करवा दी थी। गौ हत्या का अपराध करने वाले के लिए कानून में मौत की सजा रक्खी गई थी। इसी प्रकार उसने हिन्दुओं की भी कई बुरी प्रथाओं को मिटाने का प्रयत्न किया था। उसने पति के साथ पत्नी को जबर्दस्ती जला देने की प्रथा को बन्द करने के भी आदेश दिये थे।

जैन धर्म के सिद्धान्तों की भी बादशाह बहुत इज्जत करता था। जैन मुनि हीरविजय सूरि, विजय सेन सूरि और भानुचन्द उपाध्याय अकबर के दरबार में पहुँचे थे। हीरविजय सूरि का बादशाह पर बड़ा प्रभाव था। अकबर ने इन्हें जगद्गुरु की उपाधि प्रदान की और इनके उपदेश से पर्यूषण पर्व के दिनों में प्राणिवध को बिलकुल बन्द कर दिया और इस आदेश का उल्लंघन करनेवाले के लिए मौत का दण्ड रक्खा।

हिन्दू धर्म ही की तरह ईसाई धर्म को सीखने के लिए अकबर ने गोवा से पोर्तुगीज जेस्विन पंथी पादरी रिदालफो अकनिवा की अधीनता में तीन पादरियों का एक दल बुलाया था। इस दल का उसने अपने यहाँ भारी सत्कार किया और कई दिनों तक इस दल को वहाँ रखकर उसने ईसाई धर्म के सिद्धान्तों को सुना, मगर इन पादरियों ने उसके सामने खुले शब्दों में इस्लाम की निन्दा की और पैगम्बर के लिए हलके शब्दों का प्रयोग किया जिससे अकबर का दिल उनसे विरक्त हो गया।

दीनेइलाही

अन्त में सभी धर्मों का सार ग्रहण करके उसने "दीने इलाही" नामक एक स्वतंत्र धर्म की स्थापना की और खुद उसका खलीफा बना।

दीने इलाही के अनुयायियों के लिए दाढ़ी मुंडवाना जरूरी था। उनके लिए गौ मांस ही नहीं लहसुन, प्याज खाना भी वर्जित था। दरसनियों के लिए रमजान का रोजा और हज को भी मना कर दिया था। प्रातः, सायं, मध्याह्न और मध्यरात्रि में चार बार पूर्व की ओर मुँह करके प्रार्थना की जाती थी। स्त्री के बांझ होने की अवस्था को छोड़कर कोई भी दूसरा विवाह नहीं कर सकता था, सती प्रथा की भी मनाई थी।❀

❀ दीनेइलाही का पूरा वर्णन इसी शब्द की विवेचना में अगले भागों में देखें।

अकबर के जीवन में इस धर्म के लाखों अनुयायी हो गये थे। मगर उसकी मृत्यु के पश्चात् तुरन्त ही यह छिन्न-भिन्न हो गया।

शासन-व्यवस्था

प्रशासनिक दृष्टि से अकबर का सारा साम्राज्य बारह और बाद में पन्द्रह कमिश्नरियों में बँटा हुआ था। (१) आगरा, (२) दिल्ली, (३) अजमेर, (४) अहमदाबाद, (५) लाहौर, (६) काबुल, (७) मुल्तान, (८) मालवा, (९) अवध, (१०) इलाहाबाद, (११) बिहार, (१२) बंगाल, (१३) बरार, (१४) खानदेश, (१५) अहमदनगर। एक-एक कमिश्नरी में कई जिले होते थे जिन्हें "सरकारें कहा जाता था और एक सरकार में कई तहसीलें होती थीं। जिस कमिश्नरी या जिले की आमदनी एक करोड़ दाम (ढाई लाख रुपये) से अधिक होती थी उसे करोड़ी महल कहते थे। हरएक कमिश्नरी के शासक को सिपहसालार और हरएक जिले के अधिकारी को फौजदार करते थे। पोलिस के अधिकारियों को कोतवाल कहते थे। प्रधान मंत्री को वकील कुल, वित्तमंत्री को वजीर और सैनिक वित्तमंत्री को बख्शी कहते थे।

सेनाध्यक्षों को मन्सबदार कहते थे और इनके एक हजारी, दो हजारी, पांच हजारी, दस हजारी ऐसे कई दर्जे होते थे। हरएक मन्सबदार को निश्चित संख्या में घोड़े, हाथी और पैदल सिपाही दिये जाते थे।

अकबर के जमाने में तांबे, चांदी और सोने के तीन प्रकार के सिक्के, चलते थे। चांदी के रुपये में १७२.५ ग्रेन चांदी रहती थी और नौ रुपयों में एक मुहर मिलती थी जिसमें १०॥ माशे सोना रहता था।

साहित्य और कला का विकास

अकबर को हर प्रकार की कला और साहित्य से बड़ा प्रेम था। कलाकारों की वह बड़ी इज्जत करता था।

स्थापत्य कला के नमूने अकबर की बनाई हुई नवीन राजधानी फतेपुर सीकरी में देखने को मिलते थे। सीकरी की मसजिद का "बुलन्द दरवाजा" अकबरी इमारतों का एक सुन्दर नमूना है। यहाँ के दीवान खास, बीरबल का महल और जोधाबाई का महल भी बहुत दर्शनीय है। दिल्ली में हुमायूँ का मकबरा, अकबरी स्थापत्य कला का एक सुन्दर नमूना है।

चित्रकला का भी अकबर को बेहद शौक था। अब्दुस्समद, दसवन्त और फर्रुख बेग उसके दरबार के मुख्य चित्रकार थे।

संगीत कला का भी अकबर को बड़ा शौक था। महान् संगीतकार तानसेन की कीर्ति को सुनकर सम्राट् ने बघेला राजा रामचन्द्र के दरबार से बुलाकर उसे अपने दरबार में रक्खा था। इसके अतिरिक्त संभू कौवाल भी उसकी सभा का कव्वाली का प्रसिद्ध गायक था।

कविता का भी सम्राट् बड़ा प्रेमी था। यद्यपि तुलसीदास और सूरदास भी उसीके जमाने में हुए थे मगर उनका अकबरी दरबार से कोई सम्बन्ध नहीं रहा। अकबरी दरबार के प्रधान कवि खानखाना रहीम थे जो सारे हिन्दी साहित्य में आज भी चमक रहे हैं।

इसके अतिरिक्त भारतवर्ष के कई महान् ग्रन्थों का अकबर ने फारसी में अनुवाद कराया था। जिनमें हितोपदेश, पंचतंत्र, तारीख कश्मीर, महाभारत, रामायण, लीलावती इत्यादि ग्रन्थ प्रधान हैं।

अकबर के दरबार के नवरत्नों में अबुलफजल, बीरबल, तानसेन, फैजी, बदायूँनी, टोडरमल, शेख मुबारक, खानखाना रहीम और मानसिंह प्रमुख हैं। अपने-अपने क्षेत्र में सब लोग अत्यन्त ऊँचे दर्जे के व्यक्ति थे।

विवाह और पुत्र

अकबर ने वैध और अवैध रीति से कई विवाह किये मगर उसकी मुसलमान पत्नियों में उसकी फूफी की लड़की सलीमा सुलतान प्रधान थी और हिन्दू पत्नियों में जयपुर के कछवाह वंश की जोधा बाई थी जो युवराज सलीम की माता थी। अकबर के तीन पुत्र थे जिनके नाम सलीम, मुराद और दानीयाल थे।

अकबर इलाहाबादी

उर्दू के प्रसिद्ध कवि अकबर इलाहाबादी, सैय्यद तफ़ज्जुल हुसैन के पुत्र बारा, जिला इलाहाबाद के निवासी समय वि० संवत् (१९०३-१९७८)

उर्दू के मशहूर कवि अकबर का जन्म वि० संवत् १९०३ में इलाहाबाद जिले के बारा नामक कस्बे में हुआ था। संवत् १९२४ में इन्होंने अंग्रेजी का प्राइवेट रूप में अच्छा ज्ञान प्राप्त कर वकालत की परीक्षा प्राप्त की और संवत् १९२९ से १९३७ तक वकालत की। संवत् १९३७ में ये मुन्सिफ के पद पर आये और संवत् १९५१ में स्माल कॉज कोर्ट के प्रथम श्रेणी के जज नियुक्त हुए। संवत् १९५५ में इन्हें गवर्नमेण्ट से खाँ बहादुर की उपाधि मिली। ये प्रयाग विश्वविद्यालय के फेलो भी थे और प्रयाग में अपनी इशरत मंजिल नामक कोठी में रहते थे।

कविता करने का महाकवि अकबर को बचपन से ही शौक था इस क्षेत्र में ये मुंशी गुलामहुसैन वहीद के शागिर्द थे और पुराने ढंग की गजलें लिखते थे। मगर जब लखनऊ से संवत् १९३६ में "अवध-पंच" नामक अखबार निकलने लगा तब ये व्यंग और हास्यरस की कविताएँ लिखने लगे। उर्दू कविता क्षेत्र मे इन्होंने एक नवीन शैली का निर्माण किया। जद्यपि उर्दू में एक से एक बढ़ कर कवि हो गये हैं पर अकबर अपने ढंग के एक ही कवि थे। इन्होंने उर्दू को गुलो बुलबुल की महफिल से निकाल कर एक ऐसे मैदान में लाकर खड़ा कर दिया जहाँ से संसार के प्रत्येक हिस्से का रूप रंग दिखाई पड़ता है। अकबर व्यंग और विनोद के आलिम थे। प्रेम, विरह, राजनीति, समाज सुधार आदि सभी विषयों पर इन्होंने ऐसे विनोद पूर्ण ढंग से कविताएँ लिखी हैं कि पढ़ने पर हँसी आये बिना नहीं रहती। उनकी कविताओं के कुछ नमूने—

"उन्हीं के मतलब की कह रहा हूँ, जबान मेरी है बात उनकी,
उन्हीं की महफ़िल सँवारता हूँ, चिराग मेरा है रात उनकी,
फ़कत मेरा हाथ चल रहा है, उन्हीं का मतलब निकल रहा है
उन्हीं का मजमूँ, उन्हीं का कागज, कलम उन्हीं की दावात उन्हीं की

× × ×

बेपरदा नजर आईं जो कल चन्द बीबियाँ,
अकबर जमीं में गैरते कौमी से गड़ गया
पूछा जब उनसे आपका परदा कहाँ गया,
कहने लगीं कि अक्ल पै मरदों की पड़ गया।

× × ×

ऐसा शौक ना करना अकबर, गोरे को न बनाना साला
भाई रंग यही है अच्छा, हम भी काले यार भी काला

अकबर

औरंगजेब का भतीजा मुगल शाहजादा अकबर

मेवाड़ विजय के उपरान्त चित्तौड़ को शाहजादा अकबर के अधिकार में सौंप कर बादशाह औरंगजेब अजमेर लौट गया लेकिन चित्तौड़ में राजपूतों के विरुद्ध अकबर को कुछ भी सफलता नहीं मिली तब उसने अकबर को वहाँ से हटा कर मारवाड़ भेज दिया। मारवाड़ में आकर अकबर ने राजपूतों के सहयोग से एक षड्यन्त्र करके औरंगजेब को राज्य से अलग करने और स्वयं गद्दी पर बैठने के अपने निश्चय का ऐलान कर दिया। मारवाड़ ही में अकबर सिंहासन पर बैठा और बहादुर खाँ को उसने अपना प्रधान मन्त्री बनाया। राजपूतों ने उसे और अधिक उत्साहित किया मगर अकबर की आरामतलबी और विलासप्रियता से उसकी बुद्धि और शक्ति कुण्ठित हो गई थी। इतने में औरंगजेब ने अजमेर की रक्षा की पूरी तैयारी कर ली और अपनी कूटनीतिक बुद्धि से उसने अकबर के नाम एक पत्र लिखा जिसमें लिखा कि बादशाह की आज्ञा के अनुसार अकबर ने राजपूतों को बेवकूफ बनाने में जो सफलता प्राप्त की है उसके लिये बादशाह उससे बहुत खुश हैं और आगे लिखा कि राजपूती फौज को अकबर ऐसी स्थिति में लेकर आवे जहाँ से वह शाहजादा और बादशाह दोनों की सेनाओं के बीच फँस जाय। औरंगजेब ने पत्रवाहक हलकारे को चतुराई से यह समझा दिया कि यह पत्र शाहजादा अकबर को न देकर राजपूत सरदार दुर्गादास या किसी दूसरे सरदार के हाथ में दे दे। जब बादशाह का यह पत्र राजपूत सरदारों के हाथ में पहुँचा तो राजपूत धोखे में

आ गये और उन्होंने अकबर का साथ छोड़ दिया। अकबर की सेना तितर-बितर हो गई और वह स्वयं लड़ाई के मैदान से भाग गया। वह दक्षिण होता हुआ ईरान चला गया जहाँ सन् १७०४ में उसकी मृत्यु हो गई।

अक्टूबर क्रान्ति

रूस की महान बोलशेविक जनक्रान्ति जो २५ अक्तूबर सन् १९१७ को हुई और जिसने रोमानोफ घराने की सुप्रसिद्ध जारशाही को, जो कि तीन सौ वर्षों से रूस में अनियन्त्रित स्वेच्छाचारी शासन कर रही थी, का तख्ता उलट दिया।

संसार के इतिहास में अनियन्त्रित राज्यशक्ति के खिलाफ जनता द्वारा प्रेरित जितनी भी क्रान्तियां हुई हैं रूस की राज्य क्रान्ति उन सब में महान और बेजोड़ है। यद्यपि यह अपने ढंग की पहली क्रान्ति थी मगर अन्य देशों के लिये यह एक चुनौती और संसार भर के क्रान्तिकारियों के लिये एक उदाहरण बन गई।

क्रान्ति की पृष्ठभूमि

करीब तीन सौ वर्षों से रूस के ऊपर निरंकुश जारशाही का स्वेच्छाचारी शासन चल रहा था। मध्य वर्गीय और निम्न वर्गीय जनता, किसान और मजदूर इस शासन में अत्याचार की चक्की में पीसे जा रहे थे। यद्यपि जारशाही के शासन में पीटर दि ग्रेट के समान अच्छे और राष्ट्र का निर्माण करने वाले उदारचेता जार भी हुए पर ऐसे लोग केवल अपवाद स्वरूप ही थे। अधिकतर जार बड़े अत्याचारी, विलासी और जनता का शोषण करने वाले होते थे। इन जारों के शासन में रूस की जनता अत्यन्त दरिद्र, अत्याचार पीड़ित और गुलाम मनोवृत्ति की हो गई।

जनता की इस दुरावस्था से जारशाही रूस सारे यूरोप में सबसे पिछड़ा हुआ और प्रतिगामी देश हो गया। इस दुरावस्था के खिलाफ जिसने भी सिर उठाया वह तुरन्त कुचल दिया गया।

इन्हीं दिनों अर्थात् सन् १८७० के आस-पास यूरोप में साम्यवाद के प्रसिद्ध नेता कार्ल मार्क्स का उदय हुआ। उसकी क्रान्तिकारी विचार धाराएँ सारे यूरोप के शोषित और प्रताड़ित समाज में, मजदूर और किसान वर्ग में मंत्र-शक्ति की तरह तेजी के साथ फैलती जा रही थीं। रूस की भूमि चूंकि ऐसे प्रताड़ित और शोषित जनसमुदाय से भरी पूरी थी इसलिये मार्क्स की विचारधारा को पनपने के लिये सबसे योग्य भूमि रूस में ही प्राप्त हुई।

सन् १८७० में रूस के अन्दर लेनिन नामक उस महापुरुष का जन्म हुआ जिसने आगे जाकर कार्ल मार्क्स की विचार धाराओं को आत्मसात करके एक नवीन इतिहास को जन्म दिया।

सन् १८८७ में जब कि लेनिन की उम्र केवल सत्रह वर्ष की थी उसके बड़े भाई अलेक्झेण्डर को आतंकवादी तरीके से जार की हत्या की कोशिश में भाग लेने के कारण फाँसी पर लटका दिया गया। इस घटना का लेनिन के दिल को बहुत भारी सदमा लगा क्योंकि वह अपने भाई से बहुत अधिक प्रेम करता था।

लेनिन ने सन् १९०३ से रूस में बोलशेविक दल का संगठन करना शुरू किया मगर उसी समय जैसा कि प्रायः हर एक राजनैतिक क्रान्ति में हुआ करता है और गरम तथा नरम दो दल पैदा हो जाते हैं उसी प्रकार रूस में भी समाजवादी लोकतान्त्रिक दल आपसी मतभेद के कारण दो टुकड़ों में विभक्त हो गया। गरम दल बोलशेविक के नाम से और नरम दल मेन्शेविक के नाम से प्रसिद्ध हुआ। बोलशेविक दल का नेता लेनिन था और मेन्शेविक दल का नेतृत्व ट्रॉटस्की के हाथ में था।

सन् १९०५ की क्रान्ति

सन् १९०५ में रूस और जापान के प्रसिद्ध युद्ध में रूस की जगत प्रसिद्ध हार हुई। इसका रूस के जन-मानस पर बड़ा विपरीत प्रभाव पड़ा। इसके पहले सन् १९०३ से ही रूस में क्रान्ति की आग सुलगना प्रारम्भ हो गई थी जिसके फलस्वरूप स्थान-स्थान पर मजदूरों की हड़तालें होना प्रारम्भ हो गई थीं।

खूनी रविवार

सन् १९०५ की २२ जनवरी को रविवार के दिन रूस के किसान और मजदूर प्रदर्शनकारी एक पादरी के नेतृत्व में अपने छोटे पिता जार के पास रोटी कीं माँग करने गये थे। इस शान्त प्रदर्शन पर जार की सेना नें गोलियां बरसाईं, जिससे बहुत से मजदूर मारे गये और रूस के इतिहास में यह रविवार खूनी रविवार के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

इस हत्याकाण्ड से सारे रूस में जारशाही शासन के खिलाफ एक तीव्र घृणा की लहर व्याप्त हो गई और बड़ी-बड़ी राजनैतिक हड़तालें होना प्रारम्भ हुईं। इन्हीं दिनों रूस के बड़े-बड़े शहरों और केन्द्रों में "सोविएट" नामक संगठनों की स्थापना की गई। पीटसबर्ग की "सोविएट" का नेता ट्रॉटस्की बना।

दूमा की स्थापना

जारशाही सरकार ने ऐसे समय में गरम और नरम दल के बीच में फूट डालने के लिये "दूमा" नामक एक संवैधानिक सभा की स्थापना कर नरम दलीय लोगों को शान्त कर दिया। जमींदार लोग क्रान्ति से डर कर थोड़े से सुधारों को लेने पर राजी हो गये। इन सुधारों से खुशहाल किसानों को फायदा पहुँचा। इस प्रकार जारशाही ने किसानों को राजनैतिक दलों के विरुद्ध उभाड़ दिया। जातीय भावनाओं को पैदा कर दिया जिसके परिणाम स्वरूप रूसियों ने यहूदियों की हत्या की और तातारियों ने आर्मेनियन लोगों का कत्ले-आम किया। इसके बाद सरकार ने क्रान्ति के दो मुख्य केन्द्र सेण्टपीटर्स बर्ग और मास्को पर हमला कर वहां की सोविएटों को बुरी तरह कुचल दिया। कहा जाता है कि इस आन्दोलन के सिलसिले में मास्को में एक हजार आदमियों को बिना मुकदमा चलाये फांसी पर लटका दिया गया। सत्तर हजार को जेल भेज दिया गया और भिन्न-भिन्न विद्रोहों में करीब चौदह हजार आदमी मारे गये।

इस प्रकार सन् १९०५ की क्रान्ति बुरी तरह से कुचल दी गई। मगर इसमें से जो चिनगारियाँ निकलीं उन्होंने सन् १९१७ की महान क्रान्ति को जन्म दिया जिसने जारशाही के तख्त को समूचा उलट कर रूस में समाजवादी शासन के नव प्रभात का अभिनन्दन किया।

फरवरी क्रान्ति

सन् १९१७ के अन्तर्गत रूस में हुई क्रान्ति को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है जिसमें पहली को फरवरी क्रान्ति और दूसरी को अक्टूबर क्रान्ति कहते हैं।

सन् १९१४ में प्रथम यूरोपीय महायुद्ध प्रारम्भ हुआ। इस युद्ध से रूस की जनता की हालत और भी शोचनीय हो गई क्योंकि चार करोड़ रूबल प्रतिदिन खर्च होने वाला युद्ध का भयंकर बोझ भी उसके कमजोर कंधों पर आ पड़ा था। इस कारण युद्ध की भावनाओं के खिलाफ रूस का शहरी मजदूर वर्ग जागृत होने लगा। लेनिन और उसके अनुयायियों ने प्रारम्भ से ही युद्ध का विरोध किया और इस युद्ध को पूँजीपतियों और साम्राज्यवादियों का युद्ध बतलाया।

उस समय का तत्कालीन जार निकोलस अत्यन्त अस्थिर बुद्धि का व्यक्ति था जो सम्पूर्ण रूप से अपनी स्त्री जारीना के प्रभाव में था। जारीना ने अपने व्यक्तिगत स्टाफ में "ग्रिगोरी रासपुटिन" नामक एक अत्यन्त दुश्चरित्र और भ्रष्टाचारी व्यक्ति को स्थान दिया और उसे पूर्ण शक्ति सम्पन्न बना दिया। कुछ ही समय में उसने जार और जारीना को अपने प्रभाव में करके रूसी प्रजा पर बड़े-बड़े अत्याचार करना शुरू किये।

इससे सबके दिलों में जार के प्रति अत्यन्त नफरत की भावनाएँ पैदा हो गईं जिसके परिणामस्वरूप सन् १९१६ में जार के एक कुटुम्बी ने ही रासपुटिन की हत्या कर डाली।

इसी बीच रूस में अन्न का भी भारी अकाल पड़ गया जिसने क्रान्ति की चिनगारियों को हवा देकर ज्वालाओं के रूप में परिणित कर दिया। इस सारे विक्षुब्ध वातावरण को देखकर रूस के जार ने अपने आप को अपनी सारी सेनाओं का प्रधान सेनापति घोषित कर दिया।

८ मार्च १९१७ को अन्न के अभाव से दुखित भूखे और क्रान्तिकारी मजदूर अपने कारखानों को छोड़कर अन्न

की माँग करते हुए बाहर निकल आये। इस प्रदर्शन का नेतृत्व महिलायें कर रही थीं। चारों तरफ हजारों नर-नारी रोटी की पुकार कर रहे थे। इस विशाल प्रदर्शन को कुचलने के लिये सरकार ने कज्जाक सेना को भेजा। मगर भूखे नर-नारियों की त्राहिमाम् और रोटी के लिये उनकी दीन पुकार को सुनकर कज्जाक सेना का हृदय पसीज गया और उसने प्रदर्शनकारियों पर गोली चलाने से इन्कार कर दिया। तब सरकार ने जनता पर गोलियाँ चलाने के लिये पोलिस के सिपाहियों को भेजा मगर विद्रोही कज्जाक सैनिकों ने अपनी संगीनें दिखा कर पोलिस वालों को भी वहाँ से भगा दिया।

११ और १२ मार्च को रूस की सारी सेना में विद्रोह की आग फैल गई। विद्रोही सैनिक अपनी रायफलें और मशीन गनें लेकर बाहर निकल आये और राज्य के बहुत से मंत्रियों, पुलिस वालों और खुफिया अधिकारियों को गिरफ्तार करके जेल में पड़े हुए क्रान्तिकारियों को छोड़ दिया। उस समय जार और जारीना राजधानी से बाहर थे।

इस प्रकार फरवरी की क्रान्ति यद्यपि सफल हो गई मगर उस समय लेनिन, ट्रॉटस्की इत्यादि नेताओं के वहाँ उपस्थित न होने के कारण क्रान्तिकारियों को यह नहीं सूझा कि वे शासन की बागडोर किसके हाथ में देवें। उस समय समाजवादी क्रान्तिकारियों में मेन्शेविक दल की प्रधानता थी। १६ मार्च को मेन्शेविक लोगों ने बोलशेविकों से बिना पूछे दूमा के प्रतिगामी सदस्यों के साथ समझौता करके राजुललुआफ नामक एक राजवंशी के नेतृत्व में अस्थायी सरकार की स्थापना कर दी। इस सरकार के सभी सदस्य पुरानी व्यवस्था के समर्थक थे। लुआफ बहुत बड़ा जमींदार था। विदेश मंत्री मिल्युकोफ को बनाया गया, युद्ध मंत्री गुचकोफ को बनाया गया जो बड़ा मिल मालिक और बैंकर था। ग्यारह मंत्रियों में केवल एक सदस्य केरेन्स्की था जो जन समाजवादी दल का था।

इस मन्त्रिमण्डल के बारे में लेनिन ने अपने एक पत्र में लिखा था कि यह सरकार पूँजीपति जमींदार और पूँजीवादी वर्ग की प्रतिनिधि है जो कि लम्बे अर्से से हमारे देश का आर्थिक शोषण कर रहे हैं।

अस्थायी सरकार का पहला प्रयत्न यह हुआ कि रूस के राज-मुकुट की रक्षा कैसे की जाय? अस्थायी सरकार के मंत्री गुचकोफ और शुल्गिन ने पसकोफ नामक स्थान पर जार के पास जाकर उसे समझाया कि वह अपने पुत्र अलेक्सी के पक्ष में सिंहासन छोड़ दे लेकिन जार ने अपने भाई मिखाइल के पक्ष में सिंहासन छोड़ना स्वीकार कर लिया। पेट्रोग्राड लौटकर गुचकोफ ने जार निकोलाई की जगह जार मिखाइल की गद्दी नशीनी की घोषणा की। इस पर मजदूरों ने तुरन्त गुचकोफ को गिरफ्तार करने की माँग पेश की। जनमत की इस जाग्रत अवस्था को देख कर अस्थायी सरकार ने समझ लिया कि अब राजवंश की रक्षा नहीं की जा सकती तब जार मिखाइल से भी इस्तीफा लेकर अस्थायी सरकार ने सम्पूर्ण अधिकार अपने हाथ में ले लिये।

इस प्रकार यद्यपि फरवरी क्रान्ति सफल हो गई मगर उसका मकसद पूरा नहीं हुआ और रूस की शासन सत्ता एक कुँए से निकल कर दूसरी खाई में गिर गई। इस अस्थायी सरकार ने विश्व व्यापी युद्ध में रूस का पार्ट पहले से और भी तेजी से अदा करने के लिये जर्मन मोर्चे पर भारी सेनाएँ भेज दीं जिससे रूस का युद्ध खर्च पहले भी अधिक बढ़ गया।

लेनिन को जैसे ही फरवरी क्रान्ति की खबर मिली उस समय वह स्विट्जरलैण्ड में था। उसे वहाँ से आने की मनाही थी। किसी तरह जर्मनी को रूस के द्वारा युद्ध बन्द करने का आश्वासन देकर वह एक बन्द गाड़ी में जर्मन सीमा को पार कर १७ अप्रैल १६१७ को रूस पहुँच गया। उस समय बोलशेविक पार्टी का केन्द्र क्रशेन्स्की भवन में था इस भवन के सामने की सड़क पर लेनिन रोज भाषण करता था। धीरे-धीरे उसने लोकमत पर विजय पाई, जिसके परिणामस्वरूप २० और २१ अप्रैल को रूस की अस्थायी सरकार की साम्राज्यवादी नीति के खिलाफ पेट्रोग्राड के एक लाख आदमियों ने प्रदर्शन किया। इस प्रदर्शन के विरुद्ध सैनिक अफसरों ने विद्यार्थियों और

दुकानदारों के सहयोग से एक जुलूस निकाला जिसका उद्देश्य अस्थायी सरकार में विश्वास प्रकट करना था। पेट्रोग्राड के कमाण्डर-इन-चीफ कोर्निलाफ ने लेनिनवादी मजदूरों के प्रदर्शन पर सेना को गोली चलाने का आदेश दिया मगर सेना ने गोली चलाने से साफ इन्कार कर दिया।

२ मई को समझौता पसन्द लोगों के प्रयत्न से अस्थायी सरकार में परिवर्तन करके न्याय मन्त्री केरेन्स्की को युद्ध-मंत्री बना दिया गया। केरेन्स्की एक सर्वदलीय सरकार बनाने में सफल हुआ।

मगर इससे भी रोग का इलाज नहीं हुआ। प्रतिदिन सरकार के प्रति असन्तोष बढ़ता जा रहा था और "सोविएट" के प्रभाव का विस्तार हो रहा था।

इसी समय १७ मई को निर्वासित ट्रोटस्की भी न्यूयार्क से रूस में आ गया।

अप्रैल सन् १९१७ में अमेरिका भी महायुद्ध में सम्मिलित हो गया। मगर इंग्लैण्ड और अमेरिका की हालत इस समय बहुत खराब हो रही थी इसलिये उन्होंने केरेन्स्की की सरकार पर पूर्वी मोर्चे पर शक्ति बढाने के लिये जोर दिया। जुलाई १९१७ में केरेन्स्की रूस की अस्थायी सरकार का प्रधान मंत्री बन गया और उसने मन्त्रि-मण्डल पर जोर देकर युद्ध के मोर्चे पर एक भारी आक्रमण करवाया। लेकिन रूसी सेना को तारनोपोल्न मोर्चे पर भारी हार खाना पड़ी और इस लड़ाई में उसके साठ हजार से अधिक आदमी हताहत हुए।

इसी समय अस्थायी सरकार के प्रधान मंत्री केरेन्स्की और प्रधान सेनापति कोर्निलोफ के बीच में झगड़ा हो गया और सितम्बर के प्रारम्भ में कोर्निलोफ अपने कई सेनापतियों के साथ पेट्रोग्राड पर हमला करने के लिये आया मगर राजधानी के नजदीक पहुँचते ही बोलशेविक सेना को सामने देख कर उसकी सेना बदल गई और क्रान्तिकारियों में जा मिली। केरेन्स्की ने फिर अपने नये मन्त्रिमण्डल का गठन किया जिसमें जनरल वेरकोस्की और एडमिरल वेरदेस्की को भी शामिल किया। इन लोगों ने युद्ध के मोर्चे से रूसी सेना को हटा देने की राय दी मगर केरेन्स्की ने उसको नहीं माना।

युद्ध का भारी खर्च सिर पर होने से रूस को उसकी पूर्त्ति के लिये करोड़ों रूबल के नोट छापना पड़े जिससे वहाँ मुद्रा स्फीति बहुत बढ़ गई। रूबल का मूल्य एकदम गिर गया और जरूरी चीजों के भाव आसमान को छूने लगे। कारखानों के लिये कच्चा माल और ईंधन और मजदूरों के लिये रोटी मिलना मुश्किल हो गया। मई महीने में एक सौ आठ कारखाने बन्द हुए, जून में एक सौ पच्चीस कारखानों के ताले लगे जिनसे ३८४५५ आदमी बेकार हुए और जुलाई में ४७७५४ मजदूर बेकार हो गये इस बेकारी और भुखमरी के विरुद्ध जुलाई की ५ तारीख को ५ लाख मजदूरों ने एक विराट् प्रदर्शन किया। इस प्रदर्शन पर दो दिन तक सरकारी सैनिकों ने गोलियां चलाई। बोलशैविक पत्रिका "प्रवदा" के आफिस पर हमला कर उसे तोड़-फोड़ दिया तथा लेनिन पर देश द्रोह का आरोप लगा कर उसके खिलाफ यह प्रचार किया गया कि वह जर्मनी का एजेण्ट है जो रूस को मुसीबत में फँसाने के लिये भेजा गया है। इस अपराध के लिये उसकी गिरफ्तारी का वारण्ट निकाला गया मगर लेनिन के साथियों ने उसे एक जंगल में ले जाकर छिपा दिया।

२४ अक्टूबर को एक खुली मोटर लारी पर सरकार पक्षीय सेना की एक टुकड़ी "प्रवदा" पत्रिका (जो उस समय रगोचीपुत के नाम से निकल रही थी) की नई कापी को जब्त करने के लिये उसके आफिस में पहुँची। खबर लगते ही क्रान्तिकारी सैनिकों की भी एक सशस्त्र कार वहाँ पहुँची और उसने सरकारी सैनिकों को भगा दिया।

इसी दिन लेनिन भी एक मजदूर के वेश में चेहरे को ढके हुए पेट्रोग्राड के समीपवर्त्ती स्मोलनी नामक स्थान पर पहुँच गया। यही स्थान उस समय बोलशेविक पार्टी का प्रधान केन्द्र था।

अक्टूबर क्रान्ति

२५ अक्टूबर का दिन आया और उसी दिन पिछली रात को सोविएट सिपाहियों ने जाकर रेलवे, स्टेशन, तार-घर, टेलिफोन आफिस, बैंक तथा दूसरी सरकारी इमारतों पर कब्जा कर लिया। सरकारी सेनाओं ने कहीं पर कोई प्रतिरोध नहीं किया। क्रान्तिकारी सैनिक समिति ने आज्ञा

दी कि सैनिक क्रूजर आरोरा नेवा नदी में ऊपर की ओर बढ़ कर जार के हेमन्त प्रासाद के पास जाकर उस पर कब्जा करे। अरोरा के कमाण्डर ने यह कह कर इन्कार कर दिया कि नेवा नदी में पानी बहुत कम है उस समय अस्थायी सरकार का अन्तिम शरण-स्थान हेमन्त प्रासाद था। आरोरा के कमाण्डर ने हुक्म मानने से इन्कार किया तो उसे तुरन्त गिरफ्तार किया गया और क्रान्तिकारी सैनिकों ने उस क्रूजर को हेमन्त प्रासाद के पास ले जाकर उसकी तोपों का मुँह महल की ओर कर दिया। इसीदिन सवेरे नौ बजे हेमन्त की ओर जाने वाले सभी रास्तों पर क्रान्तिकारियों ने अधिकार कर लिया। अस्थायी सरकार का मन्त्रिमण्डल उस समय हेमन्त प्रासाद में अपनी अन्तिम बैठक कर रहा था। उसके प्रधान मंत्री केरेन्स्की ने जब यह हालत देखी तो वह रेड क्रास की एक नर्स के कपड़े पहन कर वहाँ से चुपचाप निकल गया और उसी दिन संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के झण्डे वाली एक मोटर पर बैठ कर राजधानी से भाग गया।

२५ अक्टूबर को सवेरे दस बजे क्रान्तिकारी सैनिक समिति ने अस्थायी सरकार को उलट देने की घोषणा की और २६ अक्टूबर को सवेरे पांच बजे सोविएट कांग्रेस ने घोषणा की कि अब सारी शक्ति सोविएट के हाथ में आ गई है। नई सोविएट सरकार का अध्यक्ष लेनिन को और विदेश मंत्री ट्रोट्स्की को बनाया गया।

यूरोपीय रूस के साथ ही मध्यएशिया के रूसी साम्राज्य में भी क्रान्ति की लहर पहुँची और उजबिकेस्तान कजाकिस्तान, किर्गिजस्तान, ताजिकिस्तान, तुर्कमानिस्तान इत्यादि सभी प्रान्तों में जारशाही के खिलाफ बगावत हुई और अन्त में ये सब प्रदेश बोलशेविक सरकार के अन्तर्गत गण राज्य घोषित कर दिये गये।

अंकारा सम्मेलन

घाना की राजधानी अंकारा में हुआ अफ्रीका के स्वतंत्रता प्राप्त राष्ट्रों का एक सम्मेलन जो १९५८ के अप्रैल में घाना के राष्ट्रपति नक्रूमा के निमंत्रण पर बुलाया गया था।

इस सम्मेलन में संयुक्त अरबगणतंत्र, ट्यूनीशिया, घाना, सूडान, लीबिया, लाइबेरिया, मोरक्को और इथोपिया के प्रतिनिधि शामिल हुए थे। सम्मेलन का उद्घाटन घाना के प्रधान मन्त्री नक्रूमा ने किया था। इस सम्मेलन में अफ्रीकी राष्ट्रों की स्वतंत्रता की रक्षा करना, उन्हें सुदृढ़ बनाना, औपनिवेशिक शासन के अधीन पड़े हुए राष्ट्रों को सहायता पहुँचाना और महान् राष्ट्रों से निशस्त्रीकरण के लिए अपील करना इत्यादि विषयों से सम्बन्धित कई प्रस्ताव पास हुए। अफ्रीकी राष्ट्रों के बीच राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सहयोग स्थापित करने तथा हर १५ अप्रैल को अफ्रीकी स्वतंत्रता दिवस मनाने का निश्चय किया गया।

अक्का

मेवाड़ के महीपाल पंवार का पुत्र अक्का जिसने मारवाड़ के राव रणमल को चित्तौड़ गढ़ में पलंग से बाँध कर सन् १४३८ में मार दिया।

अकमल खाँ

भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमान्त में अफ्रीदियों का नेता जिसने सन् १६७१ में मुगल सल्तनत के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया और राजा की पदवी ग्रहण कर ली।

उस समय उत्तर-पश्चिमी प्रान्त के गवर्नर जोधपुर के राजा जसवन्त सिंह थे और शाही सेना का सेनापति अमीन खाँ था। जब अकमल खाँ ने विद्रोह का झण्डा खड़ा किया तो जसवन्त सिंह ने अमीनखाँ को कुछ ठहर कर विद्रोहियों की गतिविधि जानने की सलाह दी। मगर अमीन खाँ ने जसवन्त सिंह की सलाह की उपेक्षा करके अकमल खाँ पर हमला कर दिया। इस लड़ाई में अकमल खाँ ने मुगल सेना को भारी शिकस्त दी। मुगलों के दस हजार सिपाहियों को कैद करके उसने मध्यएशिया की गुलाम मण्डी में बेचने के लिये भेज दिया। अमीन खाँ ने बड़ी कठिनता से पेशावर भाग कर अपनी जान बचाई। उसका कुटुम्ब पकड़ा गया। कुटुम्बियों को छुड़ाने के लिये अमीन

खाँ को बहुत धन देना पड़ा। इस विजय से अकमल खाँ की बहादुरी की ख्याति चारों ओर फैल गई।

अकलंक

एक सुप्रसिद्ध दिगम्बर जैनाचार्य्य जो श्रुत केवली थे। जैन परम्परा के अनुसार इन्होंने शास्त्रार्थ में बौद्ध आचार्य्यों को बहुत करारी हार दी।

इनका समय सन् ६२२ ई० है। जैन परम्परा के अनुसार अकलंक और निकलंक दो भाई थे। इनमें विशेष गुण यह था कि अकलंक जो भी शब्द, श्लोक या शास्त्र वचन एकबार सुन लेते थे वह इन्हें कण्ठाग्र हो जाता था और निकलंक को दो बार सुनने पर कण्ठाग्र होता था।

बौद्ध साधुओं का रहस्य जानने के लिए ये दोनों भाई एक बार बौद्ध साधुओं का वेष बनाकर उनके संघ में चले गये। मगर किसी प्रकार पहचान लिये गये। निकलंक तो वहीं मार डाले गये मगर अकलंक किसी प्रकार वहाँ से निकल भागे।

उसके पश्चात् अकलंक ने शास्त्रार्थ में कई बौद्ध आचार्य्यों को परास्त किया। इन्होंने "राजवार्त्तिक" नामक तत्वार्थ-सूत्र की एक बहुत ही विवेचनपूर्ण टीका की रचना की।

अकत खाँ

अलाउद्दीन खिलजी का भतीजा जिसने दिल्ली की सल्तनत के लोभ में अपने चाचा अलाउद्दीन खिलजी पर जब कि वह रणथम्भौर पर आक्रमण करने के लिये जा रहा था। आक्रमण कर दिया परन्तु उसका आक्रमण असफल हुआ और अलाउद्दीन ने उसे मौत के घाट उतार दिया।

अकनज़र

मध्यएशिया के उजबेक कजाखों के सफेद कबीले का खान जिसका समय सन् १५८० है।

अकनज़र उजबेक कज़ाखों के प्रसिद्ध खान कासिम का लड़का था। अपनी बार-बार की विजयों के कारण इसका शासन आसपास सब दूर फैल गया था। कज़ाख और किरगिज उसे अपना खान मानने में गौरव समझते थे। मुगौलिस्तान के शासक अब्दुर्रशीद खान के पुत्र अब्दुललतीफ सुल्तान को इसने लड़ाई में मारा था। ताशकन्द के शासक बाबा सुल्तान और शैबानी वंश के खान अब्दुल्ला के साथ इसकी गहरी प्रतिद्वन्द्विता थी। सन् १५८० के अन्त में किसी लड़ाई में अकनज़र मारा गया।

अक्कादी साहित्य

सुमेरियन, असीरियन और बैबिलोनियन संस्कृति का मिला-जुला प्राचीन साहित्य अक्कादी साहित्य कहा जाता है। जितनी पुरानी सुमेरियन और बैबिलोनियन सभ्यताएँ हैं, यह साहित्य भी उतना ही पुराना है। ईसा से करीब ३००० वर्ष पूर्व से लेकर ६०० वर्ष पूर्व तक।

यह साहित्य गीली ईंटों पर कीलनुमा अक्षरों में लिखा गया है। इसमें लिखी हुई लिपि 'क्यूनी फार्म' कहलाती है। इस प्रकार का ईंटों पर लिखा हुआ बहुत-सा साहित्य समय के प्रहारों से तथा आक्रामक लोगों के आक्रमण से नष्ट हो गया। फिर भी असीरियन सम्राट् बनिपाल ने अपने संग्रहालय में ऐसी हजारों ईंटें और पत्थर एकत्रित कर लिये थे। जिससे उस समय की साहित्य-परम्परा का कुछ ज्ञान सम्भव होता है।

अक्कादी साहित्य के महाकाव्य की खुदी हुई बारह ईंटें इस संग्रहालय में प्राप्त हुई हैं। इन ईंटों पर जो महाकाव्य खुदा हुआ है उसका नाम "गिल्गमेश" है। इस काव्य में भी सृष्टि प्रलय की कहानी उसी प्रकार वर्णित की गई है जैसी हिन्दू पुराणों में और बाइबिल में वर्णित है, जिस तरह बाइबिल में उस जल प्रलय से सृष्टि की रक्षा "नूह" करता है उसी प्रकार इस महाकाव्य में उस प्रलय से सृष्टि की रक्षा "गिल्गमेष" करता है। गिल्गमेष का पूरा वर्णन आगे के भागों में इस नाम की विवेचना में देखें।

अखामनी साम्राज्य

प्राचीन ईरान का संसार में सर्वप्रथम स्थापित विशाल साम्राज्य जो ई० सन् पूर्व ५५० से ३२६ तक अर्थात् २२५ वर्ष तक पूर्ण उरूज पर रहा और ईरान, इराक, मिस्र, बेबिलोनिया, यूनान तथा भारत की सीमा पर सिंधु नदी के तट तक यह फैला हुआ था।

अखामनी साम्राज्य के पहले ईरान के आस पास तथा काकेशस पहाड़ की पर्वत श्रेणियों में मद्रजाति के कबीलों का शासन था। ये लोग "मिदिया" कहलाते थे। सन् ७८८ ई० पू० इस मद्रजाति ने संगठित होकर बबेरू (बेबिलोनिया) की राजधानी "निनवे" को पराजित कर मद्र-राज्य की स्थापना की। इस राज्य में देवक (देइओक) प्रसिद्ध राजा हुआ, जिसने सब ईरानी कबीलों को मिलाकर एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना की। इसने अपनी राजधानी "अखवतन" (वर्तमान हमदान) को बड़े-बड़े महलों और मजबूत किले से सुदृढ़ कर दिया। यह राज्य ई० पू० ५५० तक कायम रहा।

इन्हीं दिनों दक्षिणी ईरान के एक बड़े कबीले का सरदार "अखामन" नामक व्यक्ति था। इसी अखामन के वंश का नाम अखामनी वंश कहलाया।

आगे चलकर इसी वंश में कुरब नामक एक बहादुर और महत्वाकांक्षी व्यक्ति पैदा हुआ। इसने ई० पू० ५५० में मद्रराज्य के अन्तिम राजा को हराकर अपने को सारे मद्र-राज्य का शासक घोषित किया और अखवतन को ही अपनी राजधानी बनाया। इसके पश्चात् ई० पू० ५४६ में इसने लिदिया या क्षुद्र एशिया को जीत कर अपनी सीमा पूर्वीय भूमध्य सागर तक पहुँचा दी। इस विजय से अपने को मजबूत बना कर सात वर्ष बाद ई० पू० ५३८ में इसने बबेरू पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली। इसके बाद उसने मिस्र पर आक्रमण करके उसे अपने राज्य में मिला लिया और पूरब में अपनी सीमा को सिंधु तट तक पहुँचा दिया अन्त में शक जाति के राजा अर्मोग के साथ युद्ध करते हुए पहले उसको मार कर फिर उसकी रानी तोमुरी के द्वारा यह महान् वीर मारा गया।

सम्राट् दारा (दारयबाहू)

कुरब के बाद इस वंश में दारय बाहू जिसे दारा भी कहते हैं महान् प्रतापी सम्राट् हुआ। इसने ई० स० पूर्व ५२१ से ४८५ तक राज्य किया। इसने अपने राज्य का बहुत विस्तार किया। ई० पू० ५१२ में इसके साम्राज्य की सीमाएँ उत्तर में कालासागर, काकेशस, कास्पियन् और चीन की सीमा तक फैला हुआ शक जाति का प्रदेश, पूर्व में सप्त सिंधु, पश्चिम में भूमध्य सागर और मिस्र की पश्चिमी सीमा तक तथा दक्षिण में अरब तथा अफ्रीका के सहारा रेगिस्तान तक थीं।

एशिया और अफ्रीका में अपने साम्राज्य का विस्तार कर इसने यूरोप में यूनान पर आक्रमण किया। ई० पू० ४९४ में उसने लेद के सामुद्रिक युद्ध में यूनानी सेना को हरा दिया। ई० स० से ४८५ पूर्व ३६ वर्ष का सुदृढ़ शासन कर एक विशाल साम्राज्य अपने उत्तराधिकारियों के लिए छोड़ यह स्वर्गवासी हुआ।

सम्राट् दारा विश्व का पहला शासक था जिसने राजा की मूर्ति के साथ अपने सिक्के चलाये। उसके बाद ग्रीक राजाओं तथा भारतीय नरेशों ने भी इसी प्रकार के सिक्के चलाये। इस सम्राट की शासन-व्यवस्था इतनी उत्कृष्ट थी कि उसकी बहुत-सी बातों को सिकन्दर और उसके उत्तराधिकारियों ने अपनाया। सम्राट दारा के बनाये हुए राजपथ (सड़कें) उसकी राजधानी पर्सेपोलि से मकदूनिया, मिस्र, भारत और मध्यएशिया तक फैले हुए थे। जिन पर डाक ले जाने वाले और लाने वाले घोड़े बराबर तैनात रहते थे। सड़कों पर हर पन्द्रह मील पर धर्मशालाएँ बनी हुई थीं जहाँ मुसाफिरों के ठहरने की व्यवथा थी।

सम्राट् दारा का राज्य एक धर्म-निरपेक्ष राज्य था वैसे ईरान के शाह और वहाँ की अधिकांश जनता भगवान् "अहुरमज्द" को माननेवाली थी। अहुरमज्द के पैगम्बर के रूप में ईसा पूर्व करीब ६०० सन में महान् धर्म नेता जरथोस्ट का आविर्भाव हुआ जो करीब-करीब भगवान् बुद्ध के समकालीन थे।

सम्राट् क्षयार्श

सम्राट् दारा की मृत्यु के बाद अखामनी वंश में सम्राट् "क्षयार्श" हुआ। इसने ई० पू० ४८५ से ई० पू० ४६६ तक १९ वर्ष राज्य किया। ई० पू० ४८१ में उसने यूनान पर आक्रमण किया इस आक्रमण में उसके साथ १२००

जंगी जहाज और २३,१०००० सैनिक थे। उस समय तक संसार में इतनी बड़ी सेना किसी भी युद्ध में शामिल नहीं हुई थी। मगर स्वाधीनता के प्रेमी ग्रीक योद्धाओं ने इस लड़ाई में बड़ी वीरता का प्रदर्शन किया। थर्मापोली की शानदार लड़ाई जिसने ग्रीक लोगों को इतिहास में अमर कर दिया इसी युद्ध में लड़ी गई थी। फलस्वरूप ग्रीक वीरता से तङ्ग आकर ईरानी इस पहाड़ी क्षेत्र को पार नहीं कर सके तब वे अपना रास्ता बदल कर दूसरे रास्ते से आगे बढ़ गये अन्त में ईरान की जबर्दस्त सेना ने यूनानियों को परास्त कर एथेन्स पर अधिकार कर लिया। मगर आगे जाकर सलीमा द्वीप में अन्तिम निर्णायक जल-युद्ध हुआ जिसमें यूनानी जहाजों ने एक दिन में ईरान के २०० जंगी जहाज डुबो दिये। इससे निराश होकर ईरानी सेना वापस लौट गई। ई० पू० ४६६ में सम्राट् क्षयार्श अपने एक शरीर रक्षक के द्वारा मारा गया।

क्षयार्श के पश्चात् अखामनी वंश में आठ बादशाह और हुए। जिनके नाम अर्तक्षत्र प्रथम (ई० पू० ४६६-४२५) क्षयार्श द्वितीय (ई० पू० ४२५-४२४) दारा द्वितीय (ई० पू० ४२४-४०५) अर्तक्षत्र द्वितीय (ई० पू० ४०५-३५६) अर्तक्षत्र तृतीय (ई० पू० ३५६-३३३) दारा तृतीय (ई० पू० ३३३-३३०)

अन्तिम सम्राट् दारा तृतीय पर यूनान के महान् सिकन्दर का प्रबल आक्रमण हुआ जिसने अखामनी साम्राज्य को छिन्न-भिन्न कर नष्ट कर दिया।

अखनातून

प्राचीन मिस्र का फेरोवंशीय नरेश जो ईस्वी सन् से पूर्व १३७५ में हुआ। जिसने मिस्र के अन्दर बहुदेववाद को समाप्त कर एकेश्वरवाद की सर्वप्रथम स्थापना की। इस उपास्य एकेश्वर का नाम "अत्तम" रक्खा गया जो सूर्य्य देवता का पर्यायवाची शब्द है। अखनातून स्वयं एक कवि और लिरिककार भी था। अत्तन देवता की स्तुति में उसने कुछ लिरिकों की रचना की थी।

अखा

गुजरात के भक्तिरस का एक कवि और भक्त

भक्त अखा का जन्म सन् १५९२ के करीब गुजरात के जेतलसर नामक ग्राम में हुआ था मगर बाद में यह अहमदाबाद में आकर रहने लगा था।

भक्त अखा ने दूसरे संत कवियों की तरह गुजराती साहित्य को अपने भजन और कविताओं की देन देकर भक्ति-धारा का रस प्रवाहित किया।

अंगुलिमाल

भगवान बुद्ध के समय का एक प्रसिद्ध और दुर्दमनीय डाकू। अंगुलिमाल की भयङ्कर डाकेजनी और नरहत्याओं से प्रजा बहुत तङ्ग आ गई थी। राजा प्रसेनजित और उसकी राज्य-शक्ति उसे दबाने में बिलकुल असमर्थ हो गई थी।

एक बार भगवान् बुद्ध स्वयं उस क्षेत्र से निकले जहाँ पर अंगुलिमाल रहता था। शुरू-शुरू में अंगुलिमाल ने उन्हें कई दुर्वचन कहे मगर अन्त में बुद्ध की महान् क्षमाशीलता को देखकर तथा उनके उपदेश को सुनकर उसने डकैती छोड़ दी और बुद्ध का अनुयायी बन गया।

अगुइनाल्दो

फिलीपाइन द्वीप के स्वतंत्रता आन्दोलन का नेता सन् १८९६ से १९०१ तक।

जिस समय फिलिपाइन द्वीप समूह स्पेन के अधिकार में था उसी समय से अर्थात् सन् १८९० के आस पास से वहां स्वाधीनता आन्दोलन का प्रारम्भ हो चुका था। वहां के स्वाधीनता आन्दोलन के नेताओं में जोसेरिजाल मर्कादो का नाम विशेष प्रसिद्ध है जिसे सन् १८९६ में स्पेनी सरकार ने प्राणदण्ड दिया।

मर्कादो के पश्चात् वहाँ के राष्ट्रीय आन्दोलन की कमान अगुइनाल्दो ने सम्हाली। अगुइनाल्दो ने फिलिपाइन लोगों के सहयोग से अपने आन्दोलन को बराबर चालू रक्खा, जिस समय स्पेन और अमेरिका की लड़ाई चालू थी उस समय अगुइनाल्दो ने फिलिपाइन की स्वतंत्रता की घोषणा करदी और उसी के नेतृत्व में फिलिपाइन रिपब्लिकन सरकार का संगठन किया गया।

अमेरिका ने स्पेन वालों को युद्ध में परास्त कर दिया और उसके बाद वे वहाँ के राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने में जुट गये। कुछ समय तक फिलिपाइन वालों ने उनका सामना किया मगर उस महाशक्ति के सामने वे टिक नहीं सके। सन् १६०१ में अगुइनाल्दो गिरफ्तार कर लिया गया और १६०२ में अमेरिका ने वहाँ अपना शासन दृढ़तापूर्वक जमा लिया।

अग्रवाल

भारतवर्ष की वैश्य जाति की एक शाखा का नाम, इस जाति के लोग इस समय सारे भारतवर्ष में व्यवसाय और उद्योग धन्धों के निमित्त फैले हुए हैं। देश के बड़े-बड़े निजी उद्योग अधिकतर इसी जाति के हाथ में है।

अग्रवाल जाति की उत्पत्ति कैसे हुई, इसके सम्बन्ध में सुदृढ़ ऐतिहासिक प्रमाण करीब-करीब नहीं मिलते, कुछ पौराणिक आधार और कुछ किम्वदन्तियों के आधार पर ही इस जाति के उद्भव के सम्बन्ध में कुछ बातें जानी जा सकती हैं जो संक्षिप्त में इस प्रकार है—

(१) इस जाति के नामकरण के सम्बन्ध में एक मत यह प्रचलित है कि इस जाति के पूर्वज प्राचीन काल में "अगर" नामक सुगन्धित लकड़ी का बड़े पैमाने पर व्यापार करते थे। इसी से ये लोग "अगरवाल" नाम से प्रसिद्ध हुए। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से यह तो साफ पता लग जाता है कि उस युग में भारतवर्ष में "अगर" का व्यापार बहुत जोरों पर था और यह लकड़ी वणिक जाति के द्वारा बहुत बड़े परिमाण में देश में तथा विदेश में जाती थी। वैश्य जाति के हजारों परिवार "अगर" के व्यापार से जीविका निर्वाह करते थे। इस लकड़ी को खरीदने के लिए उन्हें पूर्व भारत में जाना पड़ता था और बेचने के लिए भी देश विदेश का भ्रमण करना पड़ता था। वैश्य-जाति के जिस वर्ग का 'अगर" के व्यापार से अधिक सम्बन्ध था वे आगे जाकर अग्रवाल कहलाए।

(२) इस जाति के नामकरण के सम्बन्ध में एक और मत यह है कि "अग्रसेन" नामक राजा किसी समय में इस देश में बड़ा प्रसिद्ध हुआ जिसकी राजधानी उसी के नाम पर बसाये हुए "अगरोहा" नामक स्थान में थी। इसी अग्रसेन ने अपने नाम पर 'अग्रवाल" जाति की स्थापना की। मगर यह अग्रसेन इतिहास के कौन से युग में हुआ, उसने क्या-क्या काम किये, किस घटना के वश होकर उसने अग्रवाल जाति की स्थापना की आदि प्रश्न-वाचक चिन्हों का कोई प्रामाणिक उत्तर इतिहास नहीं देता। वैसे पौराणिक आख्यायिकाएं और किम्वदन्तियाँ बहुत हैं जिनके आधार पर तो अग्रसेन का वंशवृक्ष ठेठ ब्रह्मा से मिला दिया जाता है।

खैर, किसी भी तरह हो मगर आगे जाकर इस जाति के कई प्रतिभाशाली व्यक्तियों ने इतिहास में कई महत्व-पूर्ण कार्य किये। शाहबुद्दीन गोरी के द्वारा अगरोहे का ध्वंस किये जाने के पश्चात् वहाँ से इस जाति के लोग निकल कर भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशों में जाकर बस गये।

जो परिवार राज स्थान में जाकर बस गये वे मारवाड़ी अग्रवाल कहलाये उन्होंने वहाँ जाकर अपने को शुद्ध व्यापारिक जीवन में ढाल लिया। जो लोग पंजाब और यू० पी० में जाकर बसे उनका मुगल बादशाहों के जमाने में फिर राजकीय क्षेत्र में प्रवेश हुआ। जिन में राय रामप्रताप, राय इन्द्रमन, राजा पटनीमल, लाला अमीचन्द इत्यादि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

राजस्थान के अग्रवाल व्यवसायी अपने व्यवसाय के प्रचार के लिए, ऐसे काल में जब कि रेल, तार, मोटर इत्यादि आवा गमन के साधन न थे, ठग, पिण्डारी और डाकुओं का आतंक चारों ओर छाया हुआ था—आसाम के समान दूरवर्ती देशों में जहाँ चारों ओर बेंत के घने जंगल छाये हुए थे, जहाँ के लोग इनकी भाषा और इनके रहन-सहन से परिचित नहीं थे वहाँ पैदल चलते हुए पहुंचे, बेंत के जंगलों को साफ कर अपनी बस्तियां बसाईं और अपने व्यवसाय को कायम किया इससे उनकी जोखिम उठाने की शक्ति, व्यापारिक महत्वाकांक्षा और कठोर अध्यवसाय का पता चलता है। आज उन्हीं व्यवसायियों के वंशज आसाम, बंगाल और बम्बई के प्रमुख निजी औद्योगिक क्षेत्रों के संचालक हैं और व्यापार के क्षेत्र में अपनी सानी नहीं रखते।

अगरोहा

हिसार जिले का एक कस्बा जो किसी समय में एक बड़ा शहर था और अग्रवाल जाति की उपत्ति का मुख्य केन्द्र माना जाता था।

अगरोहा का वर्णन करते हुए पंजाब प्रान्त के गजेटियर में लिखा है कि—

"अगरोहा एक बहुत प्राचीन नगर है। यह नगर अग्रवालों का उत्पत्ति केन्द्र माना जाता है जो आज से दो हजार वर्ष पहले बहुत शक्तिशाली थे। यह नगर इतिहास के किसी काल में अत्यन्त वैभवपूर्ण था। वर्तमान अगरोहा गाँव से आधे मील के फासले पर एक प्राचीन नगर और दुर्ग के खण्डहर पाये जाते हैं। इन खण्डहरों को देखने से पता चलता है कि अवश्य किसी समय यह नगर बड़ा वैभवपूर्ण रहा होगा। अनुमान यह है कि जिस समय घाघरा नदी बारहों मास बहती थी उस समय अगरोहा उन धनाढ्य और भाग्यशाली वणिकों की बस्ती थी जो पूर्वी राजपूताना से यहां आकर बसे थे, सन् १८८६ में जब इन खण्डहरों की खुदाई की गई तो भीतर से बड़ी-बड़ी खोलियों की दीवारें ज्यों की त्यों निकलीं और कई पत्थर की मूर्त्तियाँ, सिक्के और बड़ी-बड़ी ईंटें निकलीं। अग्रसेन का बनाया हुआ किला जो ईस्वी सन् के आरम्भ से पहले का बना है आज भी देखने में नया मालूम होता है। सन् ११९४-९५ में शाहबुद्दीन गोरी ने इस नगर पर कब्जा कर लिया, तब यहां के अग्रवाल परिवार यहां से निकल कर सारे भारत में फैल गये। सन् १७७४ में जब सिक्खों का भाग्य उदय हुआ तब पटियाला नरेश राजा अमरसिंह ने अगरोहा के खण्डहरों पर एक किले का निर्माण करवाया।

अग्रसेन

अग्रवाल जाति के संस्थापक राजा अग्रसेन। जिनके सम्बन्ध में अनेकानेक किम्बदन्तियाँ अग्रवाल जाति में प्रचलित हैं। अग्रवाल समाज प्रति वर्ष आश्विन शुक्ल प्रतिपदा को अग्रसेन जयंती भी मनाता है। फिर भी इनके सम्बन्ध में कोई मजबूत ऐतिहासिक जानकारी न होने से अधिक नहीं लिखा जा सकता।

अगस्टाइन

संत अगस्टाइन ईसाई धर्म के एक महान् विचारक, विद्वान, सन्त, रोमन चर्च के फादर, समय सन् ३५४ से ४३० ईस्वी तक।

सन्त अगस्टाइन का जन्म उत्तरी अफरीका में रोम साम्राज्य के एक प्रान्त नूमीडिया में सन् ३५४ में हुआ। उसका परिवार एक मूर्त्तिपूजक परिवार था। युवावस्था में ईसाई धर्म के सुप्रसिद्ध सन्त अम्ब्रोज ने उसे ईसाई धर्म की दीक्षा दी और अपनी विशेष प्रतिभा के कारण ९६ हिप्पो (Hippo) का विशप बना दिया गया।

जिस समय सन्त अगस्टाइन कार्य्य-क्षेत्र में आया उस समय रोम साम्राज्य एक भयङ्कर संक्रमण काल में से गुजर रहा था। इतिहास के अन्दर प्रसिद्ध महान् रोमन साम्राज्य जो गत आठ शताब्दियों से संसार का सबसे गौरवशाली साम्राज्य बना हुआ था अब हूणों के पाशविक और बर्बर हमले का केन्द्र हो रहा था। महान् बर्बर हूण आक्रमणकारी डैन्यूब और राइन नदियों को पार करके फ्रान्स की भूमि को रौंदते हुए रोम की तरफ बढ़ रहे थे। सन् ३७६ में रोम की सेनाओं को तहस-नहस करके सर्विया और बल्गेरिया की भूमि में बस गये और सन् ४१० में अपने राजा अलारिक के नेतृत्व में उन्होंने रोम में खुली लूट की।

रोम में उस समय ईसाई धर्म का प्रवेश हुए बहुत अधिक समय नहीं बीता था। वहाँ के पुरातन मूर्त्ति पूजक धर्मावलम्बी रोम के इस महान् विनाश को देखकर इस की सारी जिम्मेदारी ईसाई धर्म पर थोपने लगे। उनके मत से पुरानी धर्म परम्परा को छोड़ कर इस नवीन धर्म को अपनाने के कारण ही ईश्वर ने रोम को इस सर्वनाश की भट्टी में झोंक दिया। इस ईश्वरीय विपत्ति के कारण ईसाई धर्म के बारे में जन समाज के अन्तर्गत एक विद्रोह की भावना बलवती हो रही थी।

ऐसे ही समय में सन्त अगस्टाइन का प्रादुर्भाव हुआ। संत अगस्टाइन के लिए हूणों के द्वारा रोम पर किया हुआ बाहरी आक्रमण ही चिंता का विषय नहीं था उस समय ईसाई चर्च की आंतरिक स्थिति भी पारस्परिक फूट के कारण अत्यन्त चिंतनीय हो रही थी। आलरियस (Alrius) और अथानासियस (Athanasius) के पारस्परिक गम्भीर

मतभेदों ने आन्तरिक रूप से ईसाई चर्च की स्थिति को कमजोर बना रखा था ।

ऐसी परिस्थितियों पर नियंत्रण करने के लिए सन्त अगस्टाइन ने बड़ी दृढ़ता के साथ अपने आपको पेश किया। उसने अपनी समस्त शक्तियों के साथ रोम की जनता के इस विश्वास का खण्डन करना प्रारम्भ किया कि किसी भी साम्राज्य के उत्थान और पतन में देवताओं की प्रसन्नता या प्रकोप कारणी भूत होते हैं। उसने बतलाया कि मानव-इतिहास का प्रवाह निरन्तर एक संघर्ष के रूप में—पाप और पुण्य की प्रतिद्वन्द्विता के रूप में चलता रहता है। जब पाप का पलड़ा भारी हो जाता है तब प्रभु उसका विनाश करके धर्म राज्य की स्थापना करने का प्रयास करता है। रोम का पतन एक दैविक उद्देश्य की सिद्धि के लिए हो रहा है। रोमवासियों के हृदय को मूर्त्ति पूजक धर्म के दोष से हटाकर उन्हें प्रभु की दया के लिए तैय्यार करना ही इसका उद्देश्य है ।

संत अगस्टाइन ने अपने इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए सिटी ऑफ गॉड (The City of God) नामक महान् ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ का उस समय रोम में बहुत प्रचार हुआ और इसके अध्ययन ने पुरातन विश्वासों की दीवारों को ढहा दिया। उसने इतिहास-दर्शन (Philosophy of History) पर एक नवीन विचार पद्धति से विचार किया। उसने सिद्ध किया कि मानव इतिहास का प्रवाह, पहाड़ी झरने की तरह निरन्तर संघर्ष के बीच चलता रहता है। यह संघर्ष मनुष्य की शैतान प्रवृत्ति (Civitas Terrana) और दैवी प्रवृत्तियों (Civitas Dei) के बीच चलता रहता है। मनुष्य की शैतान प्रवृत्ति अर्थात् सांसारिक राज्य अस्थायी और नाशमान है एक न एक दिन यह अवश्य नष्ट होगा जबकि ईश्वरीय राज्य स्थायी है और वह सदा कायम रहेगा।

अगस्टाइन का ईश्वरीय राज्य एक विश्व व्यापी राज्य है। जिसके अन्दर जाति, वर्ग, रंग तथा राज्य के भेद की चिंता किये बिना प्रत्येक मानव केवल मानव होने के नाते प्रवेश कर सकता है। जब मनुष्य के ऊपर प्रभु की कृपा बरसती है तभी उसे इस महान् राज्य का सदस्य बनने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है।

राज्य व्यवस्था, सम्पत्ति और दास प्रथा के सम्बन्ध में भी अगस्टाइन ने अपने विचार प्रकट किये हैं। सम्पत्ति के सम्बन्ध में उसके विचार अरस्तू से मिलते-जुलते हैं। अर्थात् अगस्टाइन भी समाज में निजी सम्पत्ति का समर्थक है और वह यह भी मानता है कि सम्पत्ति का अभाव और उसका अत्यधिक प्रभाव, और सम्पत्ति की संग्रह प्रवृति मानवीय समाज के लिए खतरनाक है। दास प्रथा का वह एक रूप में समर्थक था। दासों की गणना भी पशुओं की तरह वह सम्पत्ति में ही करता था। उसका विश्वास था कि मनुष्य की पाप प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप ही संसार में दास प्रथा का अस्तित्व है।

कहना न होगा कि सन्त अगस्टाइन की विचारधारा का तत्कालीन यूरोपीय समाज पर और आगे आनेवाले विचारकों पर बहुत भारी प्रभाव पड़ा और उसके दृढ़-व्यक्तित्व और कुशल मस्तिष्क ने ईसाई धर्म की जड़ों को मजबूत करने में और उसकी व्यापकता बढ़ाने में बहुमूल्य सहयोग दिया।

अंकिल टाम्स केबिन्

(Uncle toms cabin)

अमेरिका की सुप्रसिद्ध लेखिका हैरियट बीचर स्टो द्वारा लिखित एक प्रसिद्ध उपन्यास, जिसने समस्त अमेरिका में गुलामी प्रथा के विरुद्ध अत्यन्त प्रबल आन्दोलन को जन्म दिया। हिन्दी भाषा में भी इस उपन्यास का अनुवाद "टाम काका की कुटिया" के नाम से हो चुका है।

सन् १८५२ में इस उपन्यास का प्रकाशन हुआ, कई दृष्टियों से इस पुस्तक ने गुलामी प्रथा के खिलाफ अमेरिकन लोकमत पर जादू का असर कर दिया। वैसे लॉवेल, एमर्सन, ब्राइण्ट, लांगफेलो इत्यादि लेखकों और कवियों ने दास प्रथा के विरुद्ध बहुत कुछ लिखा था। मगर लोकमत को जाग्रत करने में इस उपन्यास ने जो काम किया, वह इसके पहले कोई भी नहीं कर सका था। इस पुस्तक का इतिहास अमेरिकन साहित्य के इतिहास की अत्यन्त आश्चर्यजनक घटना है। यह सन् १८५२ में प्रकाशित हुई और वर्ष की समाप्ति के पूर्व ही इसकी तीन लाख प्रतियां

बिक गईं और पॉवर से चलने वाले आठ प्रेसों को इसकी मांग पूरी करने के लिए दिन रात काम करना पड़ा।

इस उपन्यास में मिसेज स्टो ने दिखलाया कि किस प्रकार निर्दयता को दासता से अलग नहीं किया जा सकता और किस प्रकार स्वतंत्र और दास समाजों में मूलतः समझौता नहीं हो सकता। उत्तर अमेरिका के वोटरों की नई पीढ़ी को इस उपन्यास ने हिला दिया। केवल अमेरिका में ही नहीं इस पुस्तक ने ब्रिटेन, फ्रान्स और अन्य देशों में भी अपने उद्देश्य को पूरा कर दिया। संसार की आधे से अधिक प्रधान भाषाओं में इसका अनुवाद हो गया। दास प्रथा के विरोध में सर्वत्र इसने एक नवीन उत्साह जाग्रत कर दिया।

अङ्ग

अङ्ग बिहार प्रान्त में स्थित आधुनिक भागलपुर और मुंगेर जिलों के क्षेत्र का प्राचीन नाम है। इसकी राजधानी चम्पापुरी थी जहाँ पर जैनियों की परम्परा के अनुसार उनके बारहवें तीर्थंकर वासुपूज्य का निर्वाण हुआ था। यहां के ब्रह्मदत्त नामक एक राजा ने मगध के शक्तिशाली राज्य पर विजय पाई थी। मगर उसके बाद मगध के शक्तिशाली राज्य ने इसे पराजित कर अपने राज्य में मिला लिया।

अगेलेसियन
(Agalassians)

सिकन्दर महान् के आक्रमण के समय झेलम और चिनाव नदी के सङ्गम पर बसनेवाली एक जाति जिसे कुछ इतिहासकारों ने "अग्रश्रेणी" के नाम से भी लिखा है।

जिस समय सिकन्दर महान् विजय पर विजय प्राप्त करता हुआ आगे बढ़ रहा था और उसकी सेना झेलम और चिनाव नदी के संगम पर आबाद शिवि जनपद में पहुँची उस समय शिवि जनपद के ४०००० सैनिक उसकी सेनाओं का मार्ग रोक कर खड़े थे इन्हीं सैनिकों की मदद पर अगेलेसियन जाति का सरदार भी ४०००० पैदल और ३००० घुड़सवारों को साथ लेकर इनसे आ मिला। मगर इन दोनों जनपदों के सैनिकों के पास लाठियों के सिवाय दूसरे कोई हथियार नहीं थे। नवीनतम युद्धसाजसज्जा से युक्त यूनानी सेनाओं के सामने वे कहाँ तक ठहर सकते थे। फिर भी अगेलेसियनस लोगों ने बड़ी बहादुरी से सिकन्दर का मुकाबिला किया। मगर जब वे विजय की आशा छोड़ चुके तो अपने ही हाथों से अपने घरों में आग लगा कर वे उसमें जल कर स्वाहा हो गये पराधीन जीवन की अपेक्षा उन्होंने आग में जलना ज्यादा पसन्द किया।

अग्निमित्र

शुङ्गवंश के प्रसिद्ध समाट् पुष्यमित्र का पुत्र और उत्तराधिकारी। कालिदास के मालवाकाग्निमित्र नाटक का पुरुषनायक। समय ईस्वी सन् से पूर्व १४८ से १४० तक।

अग्निमित्र इतिहास प्रसिद्ध शुङ्गवंश के सम्राट् पुष्यमित्र का पुत्र था। पिता के शासन काल में यह विदिशा (भेलसा) का शासक था। उस समय विदर्भ (बरार) का राजा यज्ञसेन था। यज्ञसेन का चचेरा भाई माधवसेन था। माधवसेन की बहिन मालविका से अग्निमित्र का प्रेम हो गया था। माधवसेन अपनी बहन का विवाह अग्निमित्र से करने के लिए उसे विदिशा ले जा रहा था तब मार्ग में यज्ञसेन ने उसे गिरफ्तार कर लिया, इस पर अग्निमित्र ने विदर्भ पर चढाई करके यज्ञसेन पर विजय प्राप्त की और विदर्भ का राज्य यज्ञसेन और माधवसेन में बांट दिया और मालविका से विवाह कर लिया।

अण्ड्रे मेरी एम्पियर
(Andre Marie Ampere)

फ्रान्स के एक सुप्रसिद्ध विद्युत् शक्ति के वैज्ञानिक जिनका जन्म सन् १७७५ में और मृत्यु सन् १८३६ में हुई।

मेरी एम्पियर का जन्म फ्रान्स के ल्योन्स नगर में हुआ था। गतिमान विद्युत् विज्ञान (Electrodynamies) और धारावाही विद्युत् तथा चुम्बक शक्ति की समानता के सम्बन्ध में इनके आविष्कार का संसार ऋणी है। यद्यपि गैलवानी और व्होल्टा ने विद्युत् धाराओं की उत्पत्ति का रास्ता खोल दिया था और आयर्स्टेड ने गतिमान विद्युत् के चुम्बकीय प्रभाव का प्रयोग बतलाया परन्तु जिस चीज को आजकल विद्युत् धारा कहा जाता है उसकी प्रकृति का निरूपण पहले पहल मेरी एम्पीयर ने किया।

एम्पियर धारा तराजू (Ampere Current Balance) नामक विद्युत् धारा को नापने का यंत्र इन्हीं के नाम पर बनाया गया है। इन्होंने विद्युत् की स्थायी सुइयों (Astatic) का भी अनुसन्धान किया।

इनके सम्मान में विद्युत् धारा की व्यवहारिक ईकाई का नाम एम्पियर पड़ा।

अंगुत्तर निकाय

बौद्ध धर्म के सुत्तपिटक नामक आगम का चौथा निकाय।

सुत्त पिटक में भगवान बुद्ध के लोकोपकारी उपदेश और संवादों का संग्रह क्रिया गया है। इस पिटक में (१) दीघ निकाय (२) मज्झिम निकाय (३) संयुक्त निकाय (४) अंगुत्तर निकाय और (५) खुद्दक निकाय—इन पाँच निकायों का समावेश है।

अंगुत्तर निकाय में दो हजार तीन सौ आठ सूत्र हैं और उनमें एक वस्तु से लेकर ग्यारह वस्तुओं का समावेश क्रमशः किया गया है। प्रथम निपात में एक क्या-क्या है वह सब गिनाया गया है और इसी प्रकार ग्यारहवें निपात में ग्यारह-ग्यारह वस्तुओं का संग्रह किया गया है।

अङ्गद-गुरु

सिक्ख सम्प्रदाय के संस्थापक गुरु नानक के शिष्य जिनका जन्म सन् १५०४ में पंजाब के एक खत्री परिवार में हुआ।

गुरु अंगद का गृहस्थाश्रम का नाम "लहिना" था। यह पहले शक्ति का उपासक था। एक बार किसी फकीर के मुंह से उसने गुरु नानक की बनाई "असादी-वार" की कुछ सुन्दर पंक्तियाँ सुनी। जो उसके दिल पर असर कर गईं और गाने वाले से उसके रचयिता गुरु नानक का पता लगाकर वह करतारपुर में जाकर उनकी शरण में पहुँचा और उनका शिष्य हो गया। गुरु नानक का उस पर इतना स्नेह हो गया कि उन्होंने अपने दो पुत्रों को छोड़ कर अंगद को अपनी गद्दी का उत्तराधिकारी बनाया। गुरु अंगद ने गुरु नानक की रचनाओं को एकत्र करवा कर उन्हें लिपिबद्ध करवाने के लिए गुरुमुखी अक्षरों का अविष्कार किया। लंगर खोलकर आये हुए भक्तों का अतिथि सत्कार करने की प्रथा भी इसीने चलाई। गुरु अंगद का देहान्त सन् १५५२ में हुआ।

अङ्गकौर

हिन्दचीन (इण्डोचाइना) के एक हिन्दू राज्य की इतिहास प्रसिद्ध राजधानी जिसे बौद्ध राजा 'जय वर्मन' ने नौंवी सदी में बनाना प्रारम्भ किया और जिसे उसके पुत्र यशोवर्मन ने बनाकर पूरा किया।

ईसा की तीसरी सदी से लेकर आठवीं सदी तक दक्षिण भारत के राजाओं ने मलेशिया और हिन्द चीन में अपने अनेक उपनिवेश स्थापित किये थे। कई स्थानों पर एक साथ योजनापूर्वक इस प्रकार उपनिवेशों के स्थापित करना यह जाहिर करता है कि उन दिनों समुद्र यात्राएं खूब होती होंगी। ये सब उपनिवेश हिन्दू बस्तियों के रूप में थे और इनके नाम दक्षिण भारतीय ढंग के थे।

इनमें सब से पुराने उपनिवेश का नाम "चम्पा" था। और यह "अनाम" प्रदेश में था। इसी प्रकार ईसा की तीसरी सदी में अनाम में पाण्डुरंग और काम्बोज नामक बड़े-बड़े शहर भी बन चुके थे। जिनमें स्थापत्य कला के बड़े सुन्दर नमूने बने हुए थे।

आठवीं सदी में हिन्दचीन में तीन बड़े-बड़े हिन्दू राज्य थे। नवीं सदी में एक बहुत बड़ा राजा हुआ जिसका नाम जयवर्मन था, इसने इन तीनों राज्यों को मिलाकर एक कर दिया और एक बड़ा साम्राज्य कायम किया। इसी ने अपनी राजधानी बनाने के लिए अंगकौर शहर की नींव डाली और उसके बाद उसके पुत्र यशोवर्मन ने उसे पूरा किया। यह काम्बोजी साम्राज्य लगभग चारसौ बरसों तक कायम रहा।

"अंगकौर थाम" का राजनगर सारे पूर्व में शानदार अंगकौर के नाम से प्रसिद्ध था इसकी आबादी दस लाख से ऊपर थी जो कि उस जमाने के हिसाब से अधिक तम थी। इस शहर के पास ही अंगकौर-वट का अद्भुत मन्दिर था जिसकी स्थापत्य कला बड़ी सुन्दर थी।

तेरहवीं सदी में काम्बोज साम्राज्य पर पूर्व की ओर से अनाम ने, उत्तर से मंगोलों ने और पश्चिम से वहाँ के निवासियों ने एक साथ हमला किया इन आततताइयों से लड़ते-लड़ते यह राज्य बहुत बरबाद हो गया फिर भी अंगकौर पूर्वका सब से शानदार नगर बन रहा। सन् १२९७ में एक चीनी पर्यटक ने अंगकौर के वैभव की बहुत प्रशंसा की है।

मगर सन् १३०० में मीकांग नदी का मुहाना कीचड़ से बन्द हो जाने के कारण अंगकौर नगर पर बहुत विपत्ति आई। पानी को बहने का रास्ता न मिलने से वह इस नगर में घुस गया। जिससे शहर चारों ओर पानी से घिर गया। वहाँ की जनता भूख से व्याकुल हो शहर छोड़कर भाग गई और यह सुन्दर शहर उजाड़ जंगल के रूप में परिणित हो गया।

अंगोरा

तुर्कीका बड़ा और प्रसिद्ध शहर और सन् १९२३ में मुस्तफा कमालपाशा द्वारा तुर्की गणराज्य की घोषणा के बाद बनाई हुई तुर्की की राजधानी। इसके पहले तुर्की की राजधानी कान्स्टेटिनोपल या इस्तम्बूल में थी।

अंगोरा टर्की का एक सुप्रसिद्ध नगर है। सन् १४०२ में तैमूर लंग का यहाँ पर उस्मानी तुर्कों की एक बड़ी फौज से युद्ध हुआ। जिसमें तैमूर ने उस्मानी तुर्कों को हरा दिया। लेकिन समुद्र में उसका जोर नहीं चला और वह बासफोरस को पार न कर सका इसलिए योरप उसकी ज्वालाओं से बच गया।

सन् १९२० में यूनानियों और टर्की का युद्ध बड़े पैमाने पर छिड़ गया और यूनानियों ने १९२१ की गर्मियों में अंगोरा पर कब्जा करने का भारी प्रयास किया। वे एक नगर से दूसरे नगर को जीतते हुए अंगोरा के पास आ पहुँचे पर अन्त में सकरिया नदी पर टर्की फौजों ने उन्हें रोक दिया। तीन हफ्ते तक इस नदी के पास दोनों फौजें भयंकर रूप से लड़ती रहीं। अन्त में यूनानियों के पैर उखड़ गये और वे वापस लौटते हुए रास्ते की सब चीजों को जलाते और नष्ट करते गये। दो सौ मील के उपजाऊ प्रदेश को उन्होंने वीरान बना दिया। दोनों तरफ की सेनाएँ बुरी तरह से थक गईं थीं। वे दुबारा संगठित होने का प्रयत्न कर रही थीं इतने ही में फ्रांस ने अंगोरा से संधि कर ली जिससे कमालपाशा की नैतिक स्थिति कुछ दृढ़ हो गई। इंगलैंड की सरकार अभी तक टर्की के कठपुतली सुलतान को तथा इस्तम्बूल की सरकार को सहारा दे रही थी उसे भी इस सन्धि से धक्का पहुँचा। अगस्त १९२२ में तुर्क सेना ने अपना पूरा संगठन कर यूनानियों पर हमला बोल दिया और उन्हें आसानी से समुद्र पार धकेल दिया। आठ दिनों में यूनानी लोग १६० मील पीछे खदेड़ दिये गये।

अंग्रेजी भाषा और साहित्य

यूरोप में बोली जानेवाली आधुनिक भाषाओं के मूल स्रोत की खोज करने पर हमें पता चलता है कि यूरोप में बोली जानेवाली समस्त भाषाएँ दो विभागों में विभाजित हैं। (१) जर्मनी वर्ग (जर्मनिक) और रोमन वर्ग (रोमन्स)।

आधुनिक जर्मन, अंग्रेजी, डच, स्वीडिश, नार्वेजियन, डेनिश तथा आइसलैंएड की भाषाओं की उत्पत्ति प्राचीन गाथ जाति में बोली जानेवाली जर्मन भाषाओं से हुई है तथा आधुनिक फ्रांस, इटली, स्पेन और पुर्तगाल की भाषाओं की उत्पत्ति रोमन वर्ग की लैटिन भाषा से हुई है। लैटिन भाषा उस समय की शास्त्रीय भाषा थी और इसका उपयोग उस समय के लेखक, धर्म्माचार्य्य, सैनिक, व्यापारी तथा साधारण जनता भी करती थी।

कहना न होगा कि गाथ जाति की प्राचीन जर्मन भाषाओं से ही अंग्रेजी भाषा के प्राचीन रूप "एंग्लो सैक्सन" भाषा की उत्पत्ति हुई। मगर इस एंग्लो सैक्सन भाषा और आधुनिक अंग्रेजी भाषा में इतना अधिक अन्तर है कि आज कल के अंग्रेजों को भी यह भाषा एक विदेशी भाषा की तरह जान पड़ती है और इस प्राचीन भाषा में लिखे हुए ग्रन्थों को समझने के लिए उनका उसी प्रकार अंग्रेजी में अनुवाद करना पड़ता है जिस प्रकार अन्य विदेशी भाषाओं का किया जाता है।

एंग्लो सैक्सन भाषा के उस समय के काव्यों में "बोवुल्फ" नामक काव्य पाया जाता है जिसकी रचना ई० सन् ७०० के आस-पास किसी समय हुई थी। इसी प्रकार

"सेण्ट जुलियाना" तथा "ड्रीम ऑफ दी रूड" भी इसी प्राचीन अंग्रेजी भाषा में लिखे हुए काव्य हैं।

एंग्लो सेक्सन राजा अल्फ्रेड का नाम अंग्रेजी भाषा के विकास में बड़े आदर के साथ लिया जाता है उसने लैटिन भाषा के तत्कालीन विद्वान बीड़के "एक्लेजियास्टिकल हिस्ट्री ऑफ दि एंग्ल्ज"का अँग्रेजी अनुवाद तैय्यार करवाया तथा उसी ने "दी क्रानिकल ऑफ विन्चेस्टर" नामक एक राष्ट्रीय इतिहास भी उस समय की एंग्लोसेक्सन भाषा में तैयार करवाया। इसी प्रकार "इल्फ्रिक" नामक एक ईसाई धर्म गुरु ने सबसे पहला "लैटिन इंग्लिश शब्द कोष" तैयार किया। इसी धर्मगुरु ने सुमधुर अंग्रेजी गद्य में अपने प्रवचन भी दिये और श्रोताओं को इसी भाषा में बाईबिल का सन्देश भी सुनाया। इस प्रकार धीरे-धीरे ८वीं शताब्दी से १४वीं शताब्दी तक अंग्रेजी भाषा का क्रम विकास होता रहा।

अंग्रेजी-साहित्य

वैसे अंग्रेजी भाषा के क्रम विकास के साथ-साथ अंग्रेजी साहित्य का भी क्रमागत निर्माण होता रहा किन्तु इस साहित्य की अविरल धारा का प्रवाह महाकवि, राजनीतिज्ञ और विद्वान जाफरे चासर से प्रारम्भ होता है जो १४ वीं शताब्दी के मध्य काल में हुआ। इस महान लेखक की विद्वत्ता और उसका ज्ञान साधारण जनता और राजदरबार दोनों के सम्बन्ध में असाधारण था। अंग्रेजी भाषा में उसकी अनेक रचनाएँ पाई जाती हैं पर उनमें "ट्रायल्स एण्ड क्रिसीडी" "दि लीजेण्ड ऑफ गुड वीमेन" और "केन्टरबरी टेस" बहुत प्रसिद्ध है। इसके पश्चात् सोलहवीं शताब्दी में एलिजाबेथ युग से अंग्रेजी साहित्य की उल्लेखनीय प्रगति हुई।

एलिजाबेथ युग—सोलहवीं शताब्दी

१६ वीं सदी का युग अंग्रेजी साहित्य में एलिजाबेथ युग कहलाता है। यह युग अंग्रेजी साहित्य में बड़े गौरव का युग है। विश्व का महाकवि और नाटककार शेक्सपियर इसी युग की उपज है।

इस युग में अंग्रेजी-साहित्य के ऊपर इटालियन साहित्य का काफी प्रभाव पड़ा। वियाट और सरे नामक दो अंग्रेज कवियों ने इटालियन महाकवि पेट्रार्क के अनुकरण पर अपनी काव्य रचनाएँ कीं। जिस मुक्त छन्द का सबसे पहले सरे ने प्रयोग किया उसका आगे जाकर अंग्रेजी छन्द परम्परा में बड़ा महत्व सिद्ध हुआ। मुक्त छन्द की इस परम्परा का उपयोग जगत विख्यात कवि मार्लो और शेक्सपियर दोनों ने किया।

कविता-जगत का महान विद्वान एडमण्ड स्पेन्सर भी इंग्लैण्ड को इसी युग की देन है। स्पेन्सर अंग्रेजी भाषा का संस्कार करने वाला माना जाता है। अंग्रेजी में वह होमर और वर्जिल की ऐसी वीर काव्य-परम्परा स्थापित करना चाहता था जिसमें शब्द-गांभीर्य और काव्य शालीनता नये रूप में अभिव्यक्त हों। उसकी अनेक कृतियों में से "दि शेपर्डस केलेण्डर" "दि फेयरी क्वीन" बहुत मशहूर हैं जिनकी शब्द रचना का माधुर्य अमिट है।

जान-डॉन नामक क्रान्तिकारी कवि भी अंग्रेजी साहित्य को एलिजाबेथ युग की ही देन है। जान डॉन कविता की पारम्परिक परम्परा को महत्व नहीं देता न पुरानी उपमाओं को ही स्वीकार करता है। पेट्रार्क के अनुयायी सॉनेट लिखने वालों की उपमाओं को वह ग्रहण नहीं करता। उसकी स्वयं की उपमाएँ एकदम नवीन और अनोखी होती थीं।

नाटक साहित्य

नाट्य-साहित्य के अन्तर्गत मार्लो और शेक्सपियर एलिजाबेथ युग में ही अंग्रेजी साहित्य को प्राप्त हुए थे। इन्हीं दिनों में टॉमस कीड ने पहली बार अंग्रेजी जनता के लिये उचित नाटक और रंग मंच की रचना की। उसकी "स्पेनिश ट्रेजेडी" में सेनेका की पृष्ठभूमि किसी न किसी रूप में विद्यमान थी परन्तु फिर भी उसने उसे ऐसी ट्रेजेडी का रूप दिया जो जनता की समझ से दूर न थी। इंग्लैण्ड की जनता का कीड के इस नाटक ने काफी मनोरंजन किया।

इस युग का दूसरा प्रसिद्ध नाटककार क्रिस्टोफर मार्लो कैम्ब्रिज का रहने वाला एक तरुण नाटककार था। ३० वर्ष की अल्पायु में ही उसका देहान्त हो गया मगर इस

छोटी वय में ही उसकी कृतियों ने अंग्रेजी साहित्य में युगान्तर उपस्थित कर दिया। उसकी कृतियों के अन्तर्गत "टम्बर्लेन दि ग्रेट" "ट्रेजिकल हिस्ट्री ऑफ डाक्टर फास्ट्स" इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

मगर अंग्रेजी नाट्य साहित्य का विजय डंका समग्र संसार के साहित्य में बजाने का श्रेय मानवीय प्रकृति के अनुपम स्रष्टा विलियम शेक्सपियर को है। शेक्सपियर स्ट्रेट फोर्ड ऑन एवॉन का रहने वाला था। १६ वीं शताब्दी के अन्त में इसका आविर्भाव हुआ। यह अभिनेता और नाटककार दोनों था। उसके पहले और पीछे भी इंग्लैण्ड में बहुत से नाटककार हुए मगर जो कीर्ति और यश न केवल इंग्लैण्ड की जनता ने बल्कि सारे संसार ने शेक्सपियर को दिया वह न उसके पूर्ववर्ती किसी लेखक को मिला न उसके पीछे के किसी लेखक को वह प्राप्त हुआ। संसार के नाट्य-साहित्य में उसकी कीर्ति और प्रभाव बे-जोड़ है।

शेक्सपियर ने अपनी कविताओं के अतिरिक्त करीब ३६ नाटकों की रचना की जिनमें कुछ ऐतिहासिक हैं और कुछ काल्पनिक, कुछ कॉमेडी (सुखान्त) हैं, कुछ ट्रेजेडी (दुःखान्त), कुछ रोमान्टिक कॉमेडी हैं कुछ रोमान्टिक ट्रेजिडी।

शेक्सपियर की महान ट्रेजेडी रचनाओं में "हेमलेट" "मेकबेथ" "किंग लियर" "ओथेलो" इत्यादि अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। इसकी रोमान्टिक ट्रेजेडियों में "रोमियो एण्ड जूलियट" तथा "जूलियस सीज़र" का नाम बहुत ही प्रसिद्ध है।*

महाकवि शेक्सपियर नाटकीय संसार में अकेला है। क्या काव्य कुशलता में, क्या चरित्र-चित्रण में, क्या प्लॉट की रचना में, क्या कवित्व में, क्या भाषा और भाव में वह अपनी जोड़ नहीं रखता।

उपन्यास साहित्य

एलिजाबेथ युग में उपन्यास परम्परा के अन्दर अंग्रेजी साहित्य में कोई विशेष चमत्कार नहीं हुआ। इस युग में राबर्ट ग्रीन, टॉमस लॉच, टॉमस डिलोने इत्यादि उपन्यासकारों का नाम लिया जा सकता है। राबर्ट ग्रीन ने इसी युग में अपना "पेण्डोस्टो" लिखा जिसमें लन्दन के उपेक्षित संसार का चित्र अंकित हुआ। टामस लाच की कृति "रोजालाइण्ड" और टॉमस डिलोने की कृति "जेक ऑफ न्यू बरी" का नाम भी इसी युग में उपन्यासों के अन्दर लिया जा सकता है। मगर सही माने में इनको उपन्यास कहना शायद गलत होगा। अंग्रेजी साहित्य में उपन्यास युग का आरम्भ वास्तव में १८ वीं सदी से प्रारम्भ होता है।

गद्य-साहित्य

एलिजाबेथ युग में गद्य साहित्य का भी काफी विकास हुआ। इस युग का पहला महान गद्य लेखक फ्राँसिस बेकन था। बेकन की विचार धारा ने उस समय प्रचलित जनता की धार्मिक भावनाओं को अपनी वैज्ञानिक भावनाओं से चुनौती दी। बेकन की अधिकतर कृतियाँ लेटिन में हैं और यह कुछ कम आश्चर्य की बात नहीं कि इंग्लैण्ड का यह महान गद्यकार अंग्रेजी से उदासीन रहा। सन् १५९७ में उसके निबन्धों का संग्रह प्रकाशित हुआ। इन निबन्धों की शैली अत्यन्त कसी हुई सूत्रों की तरह है। थोड़े शब्दों में अधिक भाव प्रकट करना बेकन का विशेष गुण था। बेकन का समय सन् १५६१ से १६२६ तक है।

पुनर्जागरण युग और उसके पश्चात् सत्रहवीं सदी

इंग्लैण्ड के इतिहास में राजनैतिक और साहित्यिक दोनों ही दृष्टियों से १७ वीं शताब्दी का बहुत महत्व है। इसी सदी में इंग्लैण्ड के बादशाह चार्ल्स प्रथम का सिर पार्लियामेण्ट के आदेश से ह्वाइट हाल में उड़ा दिया गया। इसी सदी में इंग्लैण्ड के उद्धारकर्त्ता क्रामवेल का आविर्भाव हुआ जिसने इंग्लैण्ड की पार्लियामेण्ट की शक्ति को बहुत बढ़ावा दिया। इसी सदी में इंग्लैण्ड में इतिहास प्रसिद्ध गृह-युद्ध हुआ जिसने इस देश के इतिहास में एक नवीन परम्परा की स्थापना कर जनतन्त्रवाद का विकास किया। इसी सदी में विज्ञान और तर्कवाद नवीन शक्ति को प्राप्त कर रहे थे।

---

* शेक्सपियर का विशेष वर्णन इसी कोष के अगले भागों में "शेक्सपियर" नाम के अन्तर्गत देखिये।

इसी सदी ने इंग्लैण्ड में जान मिल्टन के समान महा कवि को पैदा किया जिसकी शालीनता और कवित्व का प्रभाव इंग्लैण्ड के काव्य-जगत में अपनी सानी नहीं रखते। कहा जाता है कि महाकवि मिल्टन अन्धा था मगर फिर भी सूरदास की तरह उसकी लेखनी ने भी यूरोपीय साहित्य के इतिहास में अमर जीवन पाया है। उसके "पेरेडाइज लास्ट" और "पेरेडाइज रिगेण्ड" नामक महाकाव्य अंग्रेजी साहित्य में एक विभूतिमान नक्षत्र की तरह चमक रहे हैं। "पेरेडाइज लास्ट" में ईव और एडम का संघर्ष सब युगों के लिये एक महान कृति है। एडम और ईव संभव है हमारे आज के युग में महत्व न रखते हों मगर मिल्टन के शैतान का विद्रोह निश्चय ही एक जीवित परम्परा है जिसमें हम सदा साँस ले सकते हैं। मिल्टन न केवल प्यूरिटन सम्प्रदाय का वरन् समस्त विश्व का एक महान कलाकार था।

१७ वीं सदी में मिल्टन के अतिरिक्त सेमुअल बटलर, एडमण्ड वॉलेर, जॉन ड्राइडिल, इत्यादि कवि हुए। १७ वीं सदी के यथार्थवादी नाटककारों में जार्ज चेपमेन, डेकर, फ्लेचर इत्यादि नाटककार हुए जिन्होंने अंग्रेजी भाषा के नाट्य साहित्य को समृद्ध बनाया! इस सदी की नाटक परम्परा में कॉमेडी नाटकों का विशेष प्रभाव पड़ा! इथरेज, वाइकर्ले और कॉंग्रीन ने कॉमेडी नाटकों का अंग्रेजी में नए रूप से निर्माण किया। अंग्रेजी के गद्य साहित्य में १७ वीं सदी का पूर्वार्द्ध गंभीर गद्य के निर्माण का है जिसका प्रभाव आज के पाठकों पर भी गहरा पड़ता है। सर टॉमस ब्राउन, जेरमी टेलर और जान मिल्टन १७ वीं सदी में अंग्रेजी गद्य के शक्तिशाली लेखक थे टॉमस ब्राउन ने अपने "अर्न बरियल" और "रेलिजियो मेडीसी" में जिस गद्य शैली का प्रयोग किया वह आश्चर्यजनक है। इसी सदी में रचित आइजक वाल्टन का "कम्पलीट एन्गलर" आज भी पाठकों का ध्यान आकृष्ट करता है!

इसी सदी का सबसे विख्यात गद्यकार सेम्युअल फेब्रिच था। यह लन्दन सोसाइटी का अध्यक्ष था। उसकी डायरी सादी और अद्भुत है जिसका जोड़ अंग्रेजी साहित्य में मुश्किल से मिलता है।

अठारहवीं सदी

अंग्रेजी साहित्य के इतिहास में अठारहवीं सदी "क्लासिकल काव्यों" और विषादपूर्ण काव्यों की रचना शताब्दी है। इस शताब्दी में इंगलैण्ड में औद्योगिक युग का तेजी से विकास हो रहा था और वहाँ का समाज धीरे-धीरे धनी और गरीब के दो भागों में विभक्त होता जा रहा था। जिसका प्रभाव इस सदी की रचना पर पड़ना अवश्यम्भावी था।

इस युग के कवियों में "अलेक्झेंडर पोप" का नाम सबसे अधिक प्रसिद्ध है जिसकीं प्रतिभा व्यंगात्मक काव्यों के लिखने में बेजोड़ थी। इसकी रचनाओं में "दी रेप ऑफ दी लॉक" "डान्सियाड" "दी एपीस्सटल टू डॉक्टर अर्बुथनाट" विशेष प्रसिद्ध हैं जिसमें मनुष्य की व्यंगमूलक प्रवृत्तियों का बड़े सुन्दर ढंग से विकास हुआ है। इस महाकवि ने अपनी रचनाओं से आगे होने वाले काव्य-जगत् पर भी काफी प्रभाव डाला।

इसी युग में प्राकृतिक सौन्दर्य्य का सजीव वर्णन करने वाले कवियों में "जेम्स टॉमसन" बहुत प्रसिद्ध हुआ। इसकी "सिक्स सीजन्स" नामक कविताएँ अंग्रेजी साहित्य में बहुत लोकप्रिय हुईं।

मशीन युग के कारण समाज में अमीरी और गरीबी की जो विषमता साकार होती जा रही थी उसके प्रति विद्रोह की भावना व्यक्त करनेवाले कवियों में "विलियम काउपर" का नाम और विषाद तथा निराशापूर्ण काव्य रचना में "टॉमसग्रे" "विलियम कॉलिन्स" इत्यादि कवियों के नाम उल्लेखनीय हैं।

अठारहवीं सदी के अन्त में अंग्रेजी साहित्य में "रोमान्टिक काव्यों" का काफी प्रचार हुआ। इस क्षेत्र में "विलियम वर्डसवर्थ" का नाम अंग्रेजी साहित्य में अमर है। इस महान् कवि के ऊपर प्रसिद्ध दार्शनिक और राजनीतिज्ञ "रूसो" की विचारधारा का काफी प्रभाव पड़ा। वर्डसवर्थ की कृतियों में "लिरिकल बैलेड्स" "प्रिल्यूड" "कैरेक्टर ऑफ दी हैपीवारियर" "ओड टू ड्यूटो" इत्यादि रचनाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं जिन्होंने अंग्रेजी साहित्य को समृद्ध बनाने में बहुत योग दिया।

इसी युग ने "सेम्यूएल टेलर कोलरिज" "सर वाल्टर स्कॉट" "लार्ड बायरन" इत्यादिं महाकवि अंग्रेजी साहित्य में प्रसूत किये।

जॉन कीट और शैली भी अंग्रेजी साहित्य में इस शताब्दी के रोमाण्टिक काव्य परम्परा के महान् कवि हैं। शैली की रचनाओं में "क्वीनमेब" "रिवोल्ट ऑफ इस्लाम" "प्रोमेथियूस अनबाउण्ड" महान् रचनाएँ हैं और जॉन कीट्स की रचनाओं में "एण्डीमियन" "इजाबेल" और "ईव ऑफ सेण्ट अग्नीज" विशेष उल्लेखनीय हैं।

अठारहवीं सदी का नाटक साहित्य

अठारहवीं सदी के अंग्रेजी नाटक साहित्य में सबसे प्रसिद्ध नाम ऑलीवर गोल्डस्मिथ का आता है। गोल्डस्मिथ की कृतियों में पात्रों का चरित्र-चित्रण अद्भुत शक्ति के साथ चित्रित हुआ है। इन रचनाओं में अकृत्रिम मानवता की साकार झाँकी देखने को मिलती है। गोल्डस्मिथ अंग्रेजी साहित्य की सजीव प्रतिमा है। इसकी कृतियों में "दि गुड नेचर्ड मेन" और "शी स्टूप्स टु कान्कर" विशेष प्रसिद्ध हैं।

गोल्डस्मिथ के अतिरिक्त इस सदी के नाटक साहित्य में रिचार्ड शेरिडन, सर जान वैन ब्रूम, रिचर्ड स्टील, जार्ज लिल्लो इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं।

उपन्यास साहित्य

अठारहवीं सदी अंग्रेजी उपन्यास का प्रारम्भिक काल कहा जा सकता है। इस सदी में डेनियल डीफो के लिखे हुए "राबिन्सन क्रूसो" नामक उपन्यास ने काफी ख्याति प्राप्त की और संसार की अनेक भाषाओं में इस उपन्यास के अनुवाद हुए। इसके बाद सेम्युअल रिचर्डसन, हेनरी फिल्डिंग, लॉरेन्स स्टर्न, विलियम बेकफोर्ड इत्यादि अनेक उपन्यासकार हुए। इस सदी के उपन्यासों में अधिकतर उपन्यास अपराध, पाप, भय, हत्या, प्रतिहिंसा, क्रूरता और कामुकताके चित्रणों से भरे हुए हैं।

कुछ उपन्यासकारों ने यथार्थवाद, हास्य, करुणा इत्यादि मनुष्य की उच्च भावनाओं का चित्रण भी अपने उपन्यासों में किया है जिनमें ऑलीवर गोल्डस्मिथ और फेर्नीबर्नी नामक महिला उपन्यासकार का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। फेनीबर्नी के "इवेलिना" नामक उपन्यास ने लन्दन के पठित क्षेत्र में अच्छी ख्याति प्राप्त की थी।

गद्य-साहित्य

इसी अठारहवीं सदी के अन्तर्गत अंग्रेजी के गद्य साहित्य ने भी अपना नामांकित और ऐतिहासिक विकास किया। राजनीति, धर्म, विज्ञान-सभी क्षेत्रों में ऊँचे स्तर के लोगों की कलम ने इस साहित्य को समृद्ध बनाया। इस क्षेत्र में जार्ज बर्कले का नाम अंग्रेजी साहित्य में बड़े आदर के साथ लिया जाता है। जीवन के एक क्षेत्र में उसने दार्शनिक समस्याओं का प्रवेश किया।

डेविड ह्यूम का नाम भी अठारहवीं सदी के गद्य साहित्य में बहुत प्रभावशाली है। उसने इतिहास के चिन्तन पर अपनी समर्थ लेखनी का प्रयोग किया। मगर सबसे अधिक चमकता हुआ नाम इस सदी के गद्य लेखकों में "एडमण्ड बर्क" का आता है। बर्क एक धुरन्धर राजनीतिज्ञ और धारा प्रवाही भाषण कर्त्ता था! अपने समय का वह धुरन्धर वक्ता था! "इम्पीचमेण्ट ऑफ हेस्टिंग्ज" में उसने वारेन हेस्टिंग्ज के भारत में किये हुए अत्याचारों के खिलाफ जो जोशीले और हृदयग्राही भाषण दिये उनका संग्रह आज के युग में भी पाठक के हृदय में एक उथल-पुथल मचा देता है। बर्क की अधिकतर रचनायें व्याख्यानों के रूप में ही संग्रहीत हुई हैं पर भावों की उदारता और भाषा के प्रवाह में वे अद्वितीय हैं।

उन्नीसवीं सदी

(विक्टोरिया युग)

अंग्रेजी साहित्य में उन्नीसवीं सदी का काव्य-साहित्य जिसका आरम्भ शैली, और कीट्स तथा अन्य रोमाण्टिक कवियों से हुआ, महान साम्राज्ञी विक्टोरिया की सदी थी।

विक्टोरिया युग का सबसे महान कवि टेनीसन माना जाता है। शब्दों की शालीनता और ध्वनि के उपयोग में तो वह अंग्रेजी साहित्य में बेजोड़ हैं। उसकी कृतियों में "दि पेलेस ऑफ आर्ट" "ईडिल्स ऑफ दि किंग" "ड्रीम ऑफ फेयर वुमन" और "इन मेमोरियम" विशेष प्रसिद्ध हैं। अंग्रेजी साहित्य में टेनीसन को लोगों ने काफी पढ़ा है, उसका अनुकरण भी काफी हुआ है।

इस सदी का दार्शनिक कवि राबर्ट ब्राउनिंग भी अंग्रेजी साहित्य में अपना विशेष स्थान सुरक्षित रखे हुए है! साहस और शक्ति उसके शब्द-शब्द से टपकती है। उसकी निर्भीकता मृत्यु के भय को चुनौती देती है। उसकी काव्य-लहरी जीवन के प्रति अगाध विश्वास प्रकट करती है। ब्राउनिंग की रचनाओं में काव्य और नाटक दोनों सम्मिलित हैं। उसकी रचनाओं के संग्रह में "ड्रामेटिक लीरिक्स" "मेन एण्ड वीमेन" और "ड्रामेटिक परसोनी" विशेष उल्लेखनीय हैं।

इसी सदी के उत्तरार्द्ध में एडवर्ड फिट्स जेरॉल्ड ने उमर खैय्याम की रुबाइयों का अंग्रेजी में प्रसिद्ध अनुवाद किया। कहा जाता है कि यह अनुवाद उमर खैय्याम की मूल कृति से भी अधिक सुन्दर बन गया था और इसी अनुवाद ने इस कवि को अंग्रेजी साहित्य में उसकी मूल कृतियों से भी अधिक प्रसिद्ध कर दिया है।

इनके अतिरिक्त डी० जी० रोसेट्टी का नाम भी विक्टोरिया काल के साहित्यकारों में अग्रगण्य रूप से लिया जाता है। उसकी कृतियों में "दि हाउस ऑफ लाइफ" "पोयम्स" "बेलेट्स" इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

इस सदी के इतिहास में चार्ल्स स्विनबर्न के नाम का यदि उल्लेख नहीं किया जायगा तो सम्भव है वह अधूरा रह जाय। स्विन बर्न ने अपने कामुकता प्रधान प्रणय-बहुल नग्न चित्रणों से सारे अंग्रेजी काव्य क्षेत्र में वासना की एक उद्दाम लहर पैदा कर दी। इसकी कृतियों में "इटीनस" "इरेक्थियस" "एटलाण्टाइन केरिडन" विशेष प्रसिद्ध हैं।

नाटक साहित्य

उन्नीसवीं सदी में अंग्रेजी नाटक साहित्य का विशेष विकास नहीं हुआ फिर भी उसके अन्तिम चरण में जार्ज बर्नाड शा ने अपनी अलौकिक नाट्य-कृतियों से अंग्रेजी साहित्य को आलोकित कर दिया। जार्ज बर्नाड शा का जन्म सन् १८५६ में हुआ था और देहान्त सन् १९५० में हुआ। अंग्रेजी नाटकों के इतिहास में बर्नार्ड शा का सृजन काल काफी लम्बा था। उनकी प्रतिभा अत्यन्त प्रखर और असामान्य थी। अंग्रेजी साहित्य के कुछ समालोचकों का विश्वास है कि बर्नार्ड शा अंग्रेजी साहित्य में शेक्सपियर के बाद नाटक साहित्य के सबसे बड़े प्रतिनिधि हैं। इस महान् लेखक ने मानव जीवन से सम्बन्धित यौन, धर्म, आचार, राजनीति, समाज-व्यवस्था-सभी विषयों पर लिखा है। राजनीति, समाज, अर्थ, दर्शन-सभी विषयों पर वह अपने तीखे व्यंगों से चुटीला प्रहार करता है। समस्या प्रधान होने पर भी उसके नाटक अभिनय के क्षेत्र में आज बेजोड़ हैं। उसके नाटकों की रंगमंचीय सफलता के कारण अपने जीवन काल में किसी भी दूसरे कलाकार ने इतना धन नहीं कमाया जितना बर्नाड शा ने कमाया।

उपन्यास साहित्य

अंग्रेजी साहित्य में विक्टोरिया काल के अन्तर्गत उपन्यासों के क्षेत्र में भी अभूतपूर्व उन्नति हुई। इस युग में कला के रूप में उपन्यासों का सृजन सर्वप्रथम आरम्भ हुआ। इस परम्परा का प्रारम्भ जेन आस्टिन नामक एक अंग्रेज महिला ने किया। उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में उसकी कल्पना एकदम मौलिक थी। उसकी कृतियों में "प्राइड एण्ड प्रेजुडीज" "सेन्स एण्ड सेन्सेबिलिटी" इत्यादि उपन्यास उल्लेखनीय हैं। इसी युग में ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा का आरम्भ सर वाल्टर स्कॉट ने किया। इसके उपन्यासों में "ओल्ड मॉर्टेलिटी" "गाइमेनरिंग" "दि एन्टीक्वेरी" "दि टेलिस्मॉन" इत्यादि उपन्यास बहुत लोकप्रिय हुए।

चार्ल्स डीकेन्ज अंग्रेजी साहित्य में उन्नीसवीं सदी का सबसे चोटी का उपन्यासकार है। विनोदात्मक उपन्यास शैली में तो वह अंग्रेजी साहित्य में बेजोड़ है। इंग्लैण्ड के तत्कालीन वातावरण से वह बहुत क्षुब्ध है। उसके उपन्यासों में उसकी समाज विद्रोह की भावनाएँ ज्वलन्त रूप से प्रकाशमान हैं। उसके उपन्यासों में "ऑलीवर ट्विस्ट" 'निकोलस निकल्बी" "ब्लीक हाउस" "हार्ड डाइन्ज" इत्यादि विशेष प्रसिद्ध हैं।

इस युग के अन्य उपन्यासकारों में विलियम मेकपीस थेकरे, एडवर्ड लिटन, चार्ल्स किंसले, चार्ल्स वीड, एमिली ब्रोन्टे, एनिथोनी ट्रोलोप, टॉमस हार्डी, राबर्ट लुई स्टीवेन्सन इत्यादि उपन्यासकारों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इस शताब्दी के अन्तर्गत अंग्रेजी के उपन्यास साहित्य में

मानों एक प्रकार की बाढ़-सी आ गई। सैकड़ों उपन्यासकारों ने हजारों उपन्यास लिख डाले।

मगर इस काल के अंग्रेजी उपन्यास साहित्य में एच-जी० वेल्स ने एक नये युग का प्रादुर्भाव किया। वैज्ञानिक आधार पर निर्मित उसकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उत्कृष्ट श्रेणी का वैज्ञानिक होने के साथ ही साथ वह चिन्तनशील इतिहासकार, विचारक और उपन्यासकार भी था। उसने अपने युग को अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा से सर्वांगीण रूप में प्रभावित किया। उपन्यास, इतिहास और विचारों के क्षेत्र में उसकी पचीसों कृतियाँ आज भी अंग्रेजी साहित्य को प्रकाशमान कर रही हैं। वैज्ञानिक होने के कारण वह सारी मानव जाति को एक इकाई के रूप में देखता था उसके इन्हीं विचारों की झलक "दि वर्ल्ड ऑफ विलियम क्लीसोल्ड" "दि आउट लाइन ऑफ हिस्ट्री" और "जॉन एण्ड पीटर" नामक पुस्तकों में मिलती है।

गद्य-साहित्य

विक्टोरिया काल के गद्य साहित्य को कोलरिज नामक लेखक ने अपने दार्शनिक दृष्टिकोण से बड़ा प्रभावित किया। इसके "बायोग्रेफ़िया लिट्रेरिया" नामक ग्रन्थ ने अंग्रेजी गद्य-साहित्य में अच्छी कीर्ति प्राप्त की। इसी क्षेत्र में चार्ल्स लेम्ब और विलियम हेजिल्ट, टॉमस डी क्विन्सी, विलियम कॉबेट इत्यादि निबन्धकारों का नाम बहुत उल्लेखनीय है।

टॉमस वेबिंग्टन मैकाले भी इस युग में एक अत्यन्त प्रतिभाशाली गद्यकार हुआ। उसकी भाषा में गजब का प्रभाव था। संस्कृत साहित्य का उसका ज्ञान अत्यन्त उच्च-कोटि का था। भारत के वैदिक साहित्य के सम्बन्ध में उसके अनुसन्धान बहुत महत्वपूर्ण थे। टामस कारलाइल भी अंग्रेजी गद्य साहित्य के इतिहास में अपना बहुत ऊँचा स्थान रखता है। उसकी रचनाओं में "सार्टर रिसार्ट्स" "आन हीरोज एण्ड हीरो वर्शिप" तथा "पास्ट एण्ड प्रेजेण्ट" बहुत उल्लेखनीय है। उसकी भाषा का प्रवाह और शब्दों की परम्परा अटूट और अविच्छिन्न है।

जॉन रस्किन भी उन्नीसवीं सदी के अंग्रेजी साहित्य के प्रसिद्ध गद्यकारों में से एक है। अपने "माडर्न पेन्टर्स" नामक ग्रन्थ में उसने सौन्दर्य के दर्शन को धर्म का स्थान दिया है। मगर उसकी सबसे अधिक ख्याति अर्थशास्त्र के सम्बन्ध में किये हुए मौलिक अनुसन्धानों के कारण है। "अन्टू धिस लास्ट" नामक एक छोटी पुस्तक में उसने अपने अर्थशास्त्र सम्बन्धी विचारों को प्रकट किया। उसके ये निबन्ध कार्न हिल मेगजीन नामक एक सामयिक पत्र में प्रकाशित हुए। इस निबन्ध के दो अध्यायों के प्रकाशित होते न होते पत्र के पाठकों ने इतना हल्ला मचाया कि रस्किन को अपने लेख बन्द कर देने पड़े। उसके सम्पत्ति शास्त्र विषयक विचार अत्यन्त मौलिक थे। उसने अपने पूर्ववर्त्ती अर्थशास्त्र के नियमों का जो समाज में विषमता और पूँजीवाद को जन्म देते हैं, डट कर विरोध किया। कहना न होगा कि रस्किन के इन विचारों का आगे जाकर सम्पत्ति शास्त्र की पुरानी विवेचनाओं पर काफी असर पड़ा।

इसी काल के साहित्यकारों में आलोचना के क्षेत्र में मेथ्यु आर्नल्ड का स्थान बहुत ऊँचा है। अंग्रेजी के आलोचना साहित्य में इस विद्वान ने क्रान्ति उपस्थित कर दी!

बीसवीं सदी

बीसवीं सदी के विशिष्ठ अंग्रेजी कवियों में अर्नेस्ट डाउसन, हॉसमेन, वाल्टर डी लामेर, एलियट ईट्स इत्यादि कवियों के नाम उल्लेखनीय हैं। इन कवियों ने अपनी पुरानी निष्ठा को किसी न किसी रूप में जीवित रखा परन्तु ऐसा मालूम होता है कि अब उनका युग समाप्त हो चुका था। इस युग में काव्य का स्थान अब उपन्यासों ने ले लिया था।

इस सदी के नाटककारो में ग्रेनविल बार्कर, जान गाल्र्ज वर्दी, सेण्ट जार्ज इरविन इत्यादि नाटककारों के नाम उल्लेखनीय है, मगर इनमें जार्ज बर्नार्ड शा की तुलना में कोई भी अपना विशेष अस्तित्व नहीं रखते। बर्नार्ड शा का विवेचन ऊपर किया जा चुका है।

उपन्यासकारों में डी० एच० लॉरेन्स, आल्डुस हक्सले, का नाम विशेष उल्लेखनीय है। लारेन्स के "वीमेन इन लव" "दि रेनबो" तथा "आरेन्ज रोट" इत्यादि उपन्यासों में उसने जीवन की खुली व्याख्या की है! उसके "लेडी चेटर्लीज लवर" नामक उपन्यास में यौन

सम्बन्धी नग्नता का पूर्ण प्रदर्शन हुआ है। जीवन के इस नग्न दर्शन के कारण उसकी कुछ प्रतियाँ जब्त भी कर ली गई।

अल्डुस हक्सले का बौद्धिक स्तर इंग्लैण्ड के पिछले उपन्यासकारों से सर्वथा भिन्न है। मनुष्य को वह यौनिक स्तर पर नहीं बौद्धिक स्तर पर खोज कर देखता है। उसकी रचनाओं में "पाइण्ट काउण्टर पाइण्ट" "आइलेस इन गाजा" "एण्डस एण्ड मीन्स" इत्यादि रचनायें बहुत उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार सोलहवीं सदी से बीसवीं सदी तक अंग्रेजी साहित्य ने कविता, नाटक, उपन्यास, गद्य साहित्य, इतिहास, विज्ञान इत्यादि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जो अभूतपूर्व प्रगति की है वह संसार के साहित्य में बे-जोड़ है !

अगस्ट विलहेमश्लेगल

अठारहवीं सदी के जर्मन रोमाण्टिक साहित्य का उपन्यासकार।

श्लेगल ने शेक्सपीयर के नाटकों का अनुवाद भी किया। उसका उपन्यास "लुकिन्दे" प्रणय, कला तथा बौद्धिक निष्क्रियता से पूर्णकृति है। लेकिन उसमें उच्छृंखलता, उन्मुक्त स्वतंत्र प्रेम इत्यादि के जो गुण गाये गये हैं उससे उसकी उस समय के जर्मन साहित्य में कीर्ति हो गई।

अगथोक्लेइया

ग्रीक बाख्तरी के सम्राट् दिमित्रिकी पुत्री और महान् ग्रीक सेनापति और विजेता मिनाण्डर की पत्नी। (ई० पू० १६६ से १४५ तक)।

अजण्टा गुफाएँ

मध्य रेलवे के स्टेशन जलगाँव से अड़तीस मील की दूरी पर स्थित अजण्टा गुफाएँ। जहाँ पर मनुष्य की कला ने पत्थर को वाणी प्रदान की है।

अजण्टा गुफाओं की कलाकृतियाँ मानवीय कला का श्रेष्ठतम उदाहरण हैं। अजण्टा की गुफाएँ चारों ओर पहाड़ से घिरी हुई हैं। ये गुफाएँ लगभग छः सौ गज की दूरी में फैली हुई हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि ये गुफाएँ वर्षा काल में बौद्ध भिक्षुओं को आश्रय देने के लिये बनाई गई थीं।

इन गुफाओं की कुल संख्या उन्तीस है और ऐसा दिखलाई पड़ता है कि इनका भिन्न-भिन्न कालों में निर्माण हुआ है।

अजण्टा की गुफाओं में उन्नीस नम्बर की गुफा बौद्धों का सबसे बड़ा चैत्य है इसका द्वार बहुत ही सुन्दर है। इस गुफा की दीवारों पर नागराज का पूरा परिवार खुदा हुआ है।

सोलह-सत्रह नम्बर की गुफाओं की चित्रकला में छठीं शताब्दी की बौद्धशैली का आभास मिलता है। इन गुफाओं की शैली को लोगों ने कथात्मक शैली का नाम दिया है। इन चित्रों में भगवान बुद्ध का जीवन-चरित्र विविध दृश्यों में अंकित किया गया है।

पहली गुफा की समूची दीवार के भित्ति चित्रों में भगवान बुद्ध की तपस्या और कामदेव के आक्रमण का चित्रण किया गया है। कामदेव अपनी पूरी शक्ति और साधनों के साथ बुद्ध की तपस्या को भंग करने की चेष्टा कर रहा है। एक ओर भयंकर मुखाकृतियाँ हैं, दूसरी ओर सुन्दर और नवयुवती अप्सराएँ अपनी कुटिल भ्रू-भंगियों के द्वारा बुद्ध को आकर्षित करने का प्रयत्न कर रही हैं। दोनों के बीच में भगवान बुद्ध शान्त और वीत-राग रूप में समाधिस्थ होकर बैठे हुए हैं।

मण्डप की दीवार पर राजकुमार सिद्धार्थ के गृह-त्याग के समय का चित्र अंकित है। इन चित्रों में राजकुमार के मुख पर करुणा और गम्भीरता के भावों का जो दिग्दर्शन कराया गया है उसमें बहुत कम रेखाओं का प्रयोग किया गया है फिर भी इनमें जो शक्ति और सजीवता आ गई है वह किसी कला पारंगत आचार्य के हाथों ही से सम्भव हो सकती है।

मगर कला की सबसे उत्कृष्ट अभिव्यंजना सत्रह नम्बर की गुफा में दिखलाई देती है ! इस गुफा को देख कर ऐसा भान होता है मानों कलाकारों ने अपना पूरा जीवन ही इस गुफा को सँवारने में लगा दिया हो। इस

गुफा के एक चित्र में भगवान बुद्ध भिक्षा-पात्र लिये हुए यशोधरा के द्वार पर खड़े हुए हैं। यशोधरा भिक्षा के रूप में अपने सर्वप्रिय पुत्र राहुल का दान कर रही है। यशोधरा के नेत्रों में श्रद्धा और आत्मत्याग का भाव तथा बुद्ध के नेत्रों में विश्व कल्याण की सात्विक भावनाओं का चित्रण करने में कलाकारों ने अपनी कलम को तोड़ दिया है।

इसी गुफा में महा हन्स जातक की कथा भी चित्रित की गई है जिसे चित्रकला के प्रसिद्ध कलाकार अजण्टा का एक प्रतिनिधि भित्ति-चित्र मानते हैं।

अजण्टा के कलाकारों ने कमल और हाथी को अपनी चित्रकारी में प्रधान स्थान दिया है। नारी-सौन्दर्य का भी अजण्टा की चित्रकारी में बड़ा सूक्ष्म और मनोहर चित्रण किया गया है। उनके अंग-प्रत्यंग, उनके केश-कलाप, उनकी हस्त मुद्राओं का इतना सूक्ष्म और वैचित्र्यपूर्ण चित्रण कहीं दूसरे स्थानों पर नहीं पाया जाता। इन चित्रों में कला और कलाकारों की भावनाएँ मानों मुँह से बोल रही हैं।

वास्तव में अजण्टा की कलाकृतियाँ भारतीय कला रुचि का ऐसा जीवित उदाहरण हैं जिस पर कोई भी देश गर्व कर सकता है।

अजटेक-साम्राज्य

मैक्सिको में रहनेवाली एक सैनिक जाति जिसने चौदहवीं सदी के शुरू में मध्य अमरीका के मध्य देश को जीत कर सन् १३२५ के लगभग "टेनो चुहिलन" नाम का शहर बसाया। बहुत शीघ्र यह शहर सारे मैक्सिको की राजधानी और अजटेक राज्य का केन्द्र बन गया। इस शहर की आबादी काफी बड़ी थी।

अजटेक लोग एक सैनिक जाति के थे। इन लोगों ने सैनिक बस्तियां बसाईं, छावनियों का निर्माण किया और चारों तरफ सड़कों का जाल बिछा दिया। दूसरी बातों में चतुर और बहादुर होते हुए भी अजटेक लोग धार्मिक मामलों में पुरोहितों की कठपुतली थे। इनके धर्म में नर-बलि की प्रथा बहुत अधिक थी। हर साल हजारों मनुष्य बड़ी बेरहमी से देवताओं पर बलि चढ़ा दिये जाते थे।

लगभग दो सौ वर्षों तक अजटेक लोगों ने शासन किया। साम्राज्य में प्रकट रूप में सुरक्षा और शान्ति थी लेकिन जनता का शोषण बेरहमी से होता था। जिससे साम्राज्य की जड़ें भीतर ही भीतर पोली हो रही थीं। युद्ध कला में भी ये लोग यूरोप से पिछड़ गये थे। इसलिए सन् १५१९ में जब कि अजटेक साम्राज्य पूर्ण उरूज पर था स्पेन का निवासी हर्नेन कोर्टे वहाँ जा पहुँचा और उसने अपने थोड़े से सैनिकों के साथ इस बड़े और संगठित राज्य पर आक्रमण कर उसे मिट्टी में मिला दिया। उसके पास घोड़े और बन्दूकें थीं। अजटेक वालों के पास ये दो चीजें न होने से वे संख्या में अधिक होने पर भी सामना नहीं कर सके। एक दफा तो कोर्टे को उन्होंने जरूर खदेड़ दिया मगर दूसरी बार उसने उधर ही के कुछ लोगों की सहायता से आक्रमण कर अजटेक शासन का अन्त कर दिया। और शान के साथ बनाई हुई उनकी राजधानी "टेनो चुहिलन" का निशान भी बाकी नहीं रहा।

अजमेर

राजस्थान के मध्यवर्ती क्षेत्र में स्थित, देहली अहमदाबाद रेलवे लाइन पर बसा हुआ एक प्राचीन और प्रसिद्ध नगर।

अजमेर के प्राचीन इतिहास पर प्रकाश डालते हुए "पृथ्वीराज विजय" महा काव्य में लिखा है कि चौहान वंशीय प्रथम पृथ्वीराज के पुत्र अजय देव ने "अजय मेरू" नगर बसाया, इसी को वर्तमान में अजमेर कहते हैं।

कई इतिहासकार इस नगर को महाभारत के पहले का बसा हुआ मानते हैं मगर इस सम्बन्ध में कोई मजबूत आधार नहीं है।

अंग्रेज इतिहासकार कनिंगहम के अनुमान से यह नगर मानिक राय के पूर्वज अजय राज का बसाया हुआ है उसके मतानुसार मानिक राय का समय सन् ८१९ से ८२५ के बीच है।

प्रसिद्ध इतिहासकार जेम्स टॉड के मत से अजमेर

नगर अजय पाल ने बसाया था यह अजय पाल चौहान राजा बीसल देव के लड़के पुष्कर की बकरियाँ चराया करता था। बीसल देव का समय सन् १०२१ से १०८५ तक माना जाता है।

राजपूताना गज़ेटियर के मतानुसार अजमेर नगर ईसवीं सन् १४५ में सबसे पहले चौहान राजा अनहल के पुत्र "अज" ने बसाया था।

जर्मन इतिहासकार लासन के मतानुसार अजमेर का असली नाम अजामीढ़ होना चाहिए। ईस्वी सन् १५० के लगभग "टालोमी" नामक लेखक ने अपनी पुस्तक में "गंगास्मिर" नाम लिखा है वह सम्भवतः अजमेर का ही बोधक होगा।

चौहान लोगों के कुछ भाटों के अनुसार अजमेर का किला और आना सागर तलाब दोनों ही वीसल देव के पुत्र आनाजी ने बनवाये थे।

प्रबन्ध कोष के अन्त की वंशावली में भी अजमेर नगर का निर्माता अजय पाल को बतलाया गया है।

उपरोक्त सारी दलीलों को देखने के बाद यही बात ज्यादा युक्तियुक्त मालूम होती है कि चौहान वंशीय बीसल देव के पुत्र अजय देव ने ही अजमेर नगर बसाया था। क्योंकि इसके पहले चौहानों की राजधानी सांभर में थी और अजमेर नगर के बस जाने पर वह वहां से उठकर अजमेर में आ गई।

चौहान वंश के प्रसिद्ध सम्राट् पृथ्वीराज तृतीय को जब शहाबुद्दीन गोरी ने हरा दिया तो उसके बाद उसने पृथ्वीराज की मुख्य राजधानी अजमेर पर भी एकदम हमला कर दिया। वहाँ पर उसका जरा भी विरोध नहीं हुआ। उसने अजमेर पर तुरन्त अधिकार कर लिया और उसे खूब लूटा।

मुसलमान इतिहासकार "ताज" लिखता है कि—"अजमेर की लूट में इतनी सम्पत्ति मिली मानों समुद्र और पहाड़ों ने अपनी सारी सम्पत्ति यहाँ पर एकत्र कर दी हो जब तक सुलतान अजमेर में रहा उसने तमाम मूर्त्तियों और मन्दिरों को तुड़वा डाला और उनके स्थान पर मसजिदें बनवा दी।" तीसरे विग्रह राज की बनाई हुई संस्कृत पाठशाला को तोड़कर उसके स्थान पर "अढ़ाई दिन का झोंपड़ा" नामक मसजिद बनवा दी।

इसके बाद पृथ्वीराज तृतीय के पुत्र रेनसी को अजमेर का राज्य देकर शाहबुद्दीन गोरी वहाँ से वापस लौट गया।

इसके बाद अजमेर पठान साम्राज्य का तथा उसके बाद मुगल साम्राज्य का एक महत्वपूर्ण अंग रहा। मुसलमानों के आकर्षण का केन्द्र बनने का एक मुख्य कारण यह भी था कि यहाँ पर ख्वाजा मुहीउद्दीन चिश्ती की मशहूर दरगाह होने से यह मुसलमानों का एक बड़ा तीर्थ बन गया था और यहां प्रतिवर्ष एक विशाल मेला लगने लगा और देश तथा विदेश से लाखों मुसलमान जियारत के लिए प्रतिवर्ष यहाँ आने लगे।

ख्वाजा मुहीउद्दीन चिश्ती एक अत्यन्त पहुंचे हुए मुसलमान फकीर थे। कहा जाता है कि उन्हें कई सिद्धियाँ प्राप्त थीं और बहुत से मुसलमानों का ऐसा विश्वास है कि भारत वर्ष में इस्लाम की इतनी बड़ी सफलता का श्रेय इसी महान् फकीर तपस्या और उसकी दी हुई दुआ को है। इस महान् फकीर की यादगार में अजमेर में एक विशाल दरगाह बनी हुई है जो सारे संसार के मुसलमानों का एक महान् आकर्षण केन्द्र है।

अंग्रेजी सल्तनत का आरम्भ होने पर अंग्रेजी राज्य ने सारे राजपूताने की रियासतों पर दृष्टि रखने के लिए अजमेर को अपना केन्द्र स्थान बना रक्खा था। स्वाधीनता के पश्चात् अब यह नगर राजस्थान में मिला लिया गया है।

अजय वर्मा

धार के परमार राजा यशोवर्मा का पुत्र समय सन् ११४४ से ११६० तक।

धार के परमार राजा यशोवर्मा की मृत्यु के पश्चात् अजय वर्मा मालवा के सिंहासन पर बैठा।

अजय देव

साम्भर के चौहान राजा पृथ्वीराज प्रथम के पुत्र विग्रह राज (वीसलदेव तृतीय) का पुत्र, सन् १०६३।

अजयदेव साम्भर के प्रसिद्ध चौहान वंश का राजा था। इसकी पत्नी का नाम सोमला देवी था। उसके तथा सोमला देवी के नाम की ढली हुई मुद्राएं उपलब्ध हैं।

अजयदेव के जीवन का सबसे महत्वपूर्ण काम अजमेर नगर को बसाना है। ग्यारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में इसने अपने ही नाम से इस अजय मेरु नगर की स्थापना की जो बाद में अजमेर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अजमेर के पहले चौहानों की राजधानी साम्भर में थी।

अजयपाल

सोलंकी वंश का गुजरात का राजा जो सन् ११७० के आसपास गुजरात के सिंहासन पर था।

गुजरात के सुप्रसिद्ध जैन राजा कुमारपाल के पश्चात् उसका भतीजा अजयपाल सोलंकी गुजरात की गद्दी पर बैठा। राजा कुमारपाल जैन मतावलम्बी थे और उनके शासन काल में जैन साहित्य और जैन धर्म का बहुत विकास हुआ। मगर अजयपाल जैन धर्म का कट्टर विरोधी था। राजा कुमारपाल ने जिन जैन मन्दिरों का निर्माण करवाया था अजयपाल ने उन्हें नष्ट करने का क्रम जारी रक्खा। ऐसा भी कहा जाता है कि सुप्रसिद्ध जैनाचार्य्य हेमचन्द्र सूरि के शिष्य महाकवि रामचन्द्र सूरि को गर्म किये हुए ताम्बे के पाट पर बिठा कर उसने मरवा डाला।

अजयपाल के समय में सोलंकी राज्य की अवनति का प्रारम्भ हुआ। सिद्धराज जयसिंह द्वारा जीता हुआ मालवे का राज्य इसी के जमाने में सोलंकी राज्य के अधिकार से निकाल कर स्वतंत्र हो गया। सन् ११७६ में अजयपाल की हत्या उसी के एक द्वारपाल ने कर दी।

अजब सिंह

राजस्थान के बाँसवाड़ा राज्य का महारावल अजब सिह। जिसका समय सन् १६८७ से प्रारम्भ होता है महारावल अजब सिंह की बादशाह औरङ्गजेब की सेना से सन् १६९४ में लड़ाई हुई। जिसमें शाही सेना की हार हुई और नवाब कणबाज खाँ मारा गया।

अजमल खाँ

देहली का यूनानी चिकित्सा का मशहूर हकीम सुप्रसिद्ध दवाखाना हिन्दुस्तानी का संस्थापक।

हकीम अजमल खाँ अपने समय का सुप्रसिद्ध चिकित्सक होने के साथ-साथ राष्ट्रीय भावनाओं से भी सम्पन्न था। महात्मा गान्धी के द्वारा सञ्चालित आन्दोलन में इसने बड़ी दिलचस्पी से भाग लिया था।

सन् १९२१ में अहमदाबाद कांग्रेस के मनोनीत सभापति सी० आर० दास जब गिरफ्तार कर लिये गये तब अध्यक्ष के आसन पर इसी हकीम अजमल खाँ को बिठाया गया।

अजात शत्रु

मगध के शिशुनाग वंशीय राजा बिम्बसार या श्रेणिक का पुत्र अजात शत्रु या कोणिक। समय ईस्वी सन् से पूर्व लगभग ४९१ वर्ष।

अजातशत्रु राजा बिम्बसार का पुत्र था। जैन ग्रन्थों में इसी बिम्बसार का नाम श्रेणिक लिखा गया है। अजातशत्रु को भी जैन ग्रन्थों में "कोणिक" के नाम से लिखा गया है। जैन ग्रन्थों के अनुसार कोणिक, राजा श्रेणिक की चेलना नामक पत्नी के गर्भ से पैदा हुआ था।

राजा बिम्बसार के शासन काल में इसको अङ्ग देश का शासक बनाकर भेजा गया था। मगर बिम्बसार के वृद्ध हो जाने पर अजातशत्रु ने उसको कारागार में डाल दिया और अनेक यंत्रणाएं देकर मार डाला और स्वयं मगध के सिंहासन पर बैठा।

सिंहासन पर बैठने के पश्चात् इसने अपने राज्य का विस्तार करना प्रारंभ किया। सबसे प्रथम उसने अपने मंत्री सुनीध और बससकार की मंत्रणा से अपनी सेना को अस्त्र-शस्त्र और सैनिक शक्ति से दृढ़ कर उस समय के सबसे बड़े गणतंत्र राज्य वैशाली पर आक्रमण कर, वहां के लिच्छवि राजवंश को पराजित किया और वैशाली राज्य को अपने राज्य में मिला लिया। उसके पश्चात् उसने उत्तर की ओर हिमालय पर्वत तक अपने राज्य का विस्तार किया तथा अंग, काशी, वैशाली इत्यादि सभी राज्यों पराजित कर अपने राज्य में मिला लिया।

ऐतिहासिक युग में इस प्रकार हम अजातशत्रु के द्वारा भारतवर्ष में सर्वप्रथम एक साम्राज्य की स्थापना होती हुई देखते हैं।

अजित सिंह

जोधपुर के राठौर वंशी राजा जसवन्त सिंह के उत्तराधिकारी।

जिस समय राजा अजित सिंह माता के गर्भ में थे उस समय राजा जसवन्त सिंह को औरंगजेब ने काबुल का शासक बनाकर काबुल भेज दिया था। औरंगजेब मन ही मन इनसे बहुत चौकन्ना रहा करता था। जब महाराजा जसवन्त सिंह का जमरूद थाने पर स्वर्गवास होने का समाचार औरंगजेब को पहुँचा तो औरंगजेब ने तुरन्त अपने अधिकारी को जोधपुर भेज कर मारवाड़ राज्य को साम्राज्य में मिला लेने का आदेश भेज दिया।

जब यह समाचार जमरूद में राठौर सरदारों को मिला तो वे बिना बादशाह की आज्ञा लिये जसवन्त सिंह की दोनों रानियों को लेकर चल पड़े।

लाहौर में जसवन्त सिंह की मृत्यु के तीन मास पश्चात् एक रानी से अजित सिंह पैदा हुआ। वहाँ से रानियों और अजित सिंह को लेकर ये राठौर सरदार देहली आये। जब औरंगजेब को यह बात मालूम पड़ी तो उसने तुरन्त रानियों और बच्चे को महल में लाने का आदेश दिया। मगर सुप्रसिद्ध वीर दुर्गादास राठौर ने सारी स्थिति को समझ कर एक दिन पहले ही मुकुन्ददास खीची को सँपेरे का भेष देकर बालक अजित सिंह को उसकी पिटारी में रख कर वहाँ से निकाल दिया। मुकुन्ददास मारवाड़ में कहीं पर भी नहीं ठहर सका क्योंकि सब दूर बादशाह के आदेश पहुँच चुके थे। तब वह सीधा सिरोही के कालिन्द्री गाँव में पहुँचा और वहाँ जग्गू नामक एक पुष्कर्णा ब्राह्मण के घर पर अजित सिंह को रख दिया।

बारह बरस तक अजित सिंह का लालन-पालन वहीं हुआ और उसके बाद वह अपने सरदारों के साथ इधर-उधर लूट मार करते रहे।

सन् १७०७ में जब औरंगजेब की मृत्यु हो गई तब अजित सिंह ने जोधपुर पर चढ़ाई करके शाही अधिकारियों को मार भगाया और फिर बीस बरस तक जोधपुर की राजगद्दी पर शासन करते रहे और देहली के तख्त पर भी अपना पूरा-पूरा प्रभाव कायम रखते रहे।

राजा अजित सिंह ने इतिहास प्रसिद्ध सैयद बन्धुओं के साथ मिलकर बादशाह फर्रुखसियर को दिल्ली के तख्त से हटा कर सन् १७१९ में फाँसी दे दी और उसके बाद एक के बाद दूसरा इस प्रकार तीन बादशाह दिल्ली के तख्त पर बिठा दिये।

अन्त में इनके पुत्र अभय सिंह ने अपने छोटे भाई बख्त सिंह के द्वारा ३ जुलाई १७२४ को उन्हें निद्रावस्थित हालत में मरवा डाला। इस हत्या के सदमे से दुःखी होकर एक चारण ने यह दोहा कहा है—

> "बख्ता बखत बायरो क्यूँ मारियो अजमाल
> हिन्दुआणीरो सेवरो तुरकाणीरो साल"

अर्थात् हे भले और बुरे का विचार न करने वाले बख्त सिंह! तूने अजितसिंह को क्यों मारा। वह तो हिन्दुओं का सिरमौर और मुसलमानों का कट्टर शत्रु था।

अजीतकेश कम्बली

भगवान बुद्ध के समय में संशयवाद और नास्तिक मत का प्रवर्त्तक। इसके भी उस समय बहुत से अनुयायी थे।

अजीतकेशकम्बली भगवान बुद्ध और महावीर के समकालीन थे। इनके मत से के पाप, पुण्य, लोक, परलोक इत्यादि का कोई अस्तित्व नहीं है। न कोई मुक्त आत्मा है जिसने इह लोक और परलोक का साक्षात्कार किया है। मनुष्य शरीर चार महाभूतों का बना हुआ है। जब वह मरता है तब उसका पार्थिव तत्व पृथ्वी में मिल जाता है। जल तत्व जल में चला जाता है, अग्नि तत्व में मिल जाता है और शेष कुछ नहीं रहता। न उसके पूर्व जन्म का कोई इतिहास है और न आगे की कोई हस्ती है।

अजीमुल्ला खाँ

सन् १८५७ की भारत की महान सैनिक क्रान्ति का ओजपूर्ण मस्तिष्क अजीमुल्ला खाँ। जो क्रान्ति के महान नेता नाना साहब का दाहिना हाथ था।

सन् १८५७ के क्रान्ति युद्ध में प्रधान पार्ट अदा करने वाले महान व्यक्तियों में अजीमुल्ला खाँ का नाम बहुत ऊँचा है। स्वातन्त्र्य संग्राम की सूझ जिन असाधारण बुद्धिशाली व्यक्तियों के मन में सबसे पहले पैदा हुई उनमें अजीमुल्ला खाँ भी एक प्रधान व्यक्ति है।

अजीमुल्ला का जन्म एक गरीब मुसलमान परिवार में हुआ था। गरीबी के मारे उसने बचपन में एक अंग्रेज परिवार में नौकरी कर ली थी। इस परिवार में रह कर उसने कई विदेशी भाषाएँ सीख लीं और थोड़े ही समय में वह अंग्रेजी और फ्रेन्च भाषा धारा प्रवाही रूप से बोलने लगा। इन दो भाषाओं का अध्ययन पूरा कर लेने के बाद संयोग से उसकी विद्वत्ता की कीर्ति बिठूर के राजा नाना साहब तक पहुँच गई। अजीमुल्ला की बुद्धिमत्ता को देख कर नाना साहब बड़े प्रभावित हुए और सन् १८५४ में उन्होंने अपना दूत बना कर अजीमुल्ला को विलायत भेजा।

अजीमुल्ला एक खूबसूरत जवान था। अंग्रेजी रहन-सहन और एटीकेट का उसको पूरा ज्ञान था। इससे लन्दन के राजनैतिक क्षेत्र में वह बहुत जल्दी प्रिय हो गया। फिर भी बिठूर के राजघराने पर दत्तक पुत्र नाना साहब को वैध रूप से घोषित करवाने के जिस उद्देश्य को लेकर वह इंग्लैण्ड गया था वह पूरा न हो सका और वहाँ की सरकार ने गवर्नर जनरल के इस निर्णय को कि दत्तक पुत्र नाना साहब को पिता की पेन्शन पर किसी तरह का अधिकार नहीं है, बहाल रखा। इससे निराश होकर उसे वापस आना पड़ा मगर आने के पहले इसने लन्दन में भारतीय क्रांति के उत्थान की एक रूपरेखा बनाई थी। इसी उद्देश्य से उसने तुर्की और रूस की यात्रा भी की थी। जिस समय वह उधर पहुँचा था उस समय रूस और तुर्की का युद्ध चालू था। उसके बाद वह मिस्र गया और मिस्र के साथ राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश की।

इसके बाद अजीमुल्ला यूरोप के दौरे से लौट कर वापस बिठूर आया। उस समय बिठूर के राजमहल में क्रांति दल के सारे प्रमुख नेताओं की सभा हो रही थी। इसी राजमहल में १८५७ की क्रान्ति का बीजारोपण हुआ था। १८५७ के अप्रैल मास के अन्त में नाना साहब तथा अजीमुल्ला ने क्रान्तिकारी गुप्त संस्थाओं के कार्य में एकरूपता लाने के लिये उत्तर भारत के सारे प्रमुख नगरों की यात्रा की थी और क्रान्ति के लिये ३१ मई का दिन निश्चित किया था। मगर देवदुर्वियोग से और अनुशासन की कमी से सेना का यह विद्रोह निश्चित तिथि से पन्द्रह दिन पहले ही शुरू हो गया और जिस प्रकार अपरिपक्व गर्भ-शिशु समय से पहले पैदा हो जाने पर जीवित नहीं रहता उसी प्रकार यह महान क्रान्ति भी अनुशासन की कमी से अत्यन्त करुणाजनक रूप में असफल हुई।

फिर भी इस क्रांति में जो महान मस्तिष्क, जो महान वीरत्व और जो महान बलिदान की भावनाएँ दृष्टिगोचर हुईं वे इतिहास में अमर रहेंगी। क्रांति की महान् विभूतियों में महारानी लक्ष्मी बाई, नाना साहब, अजीमुल्ला खाँ, तात्या टोपे, मौलवी अहमद शाह, सर्दार कुँवरसिंह इत्यादि के नाम किसी भी तरह से नहीं भुलाये जा सकते।

अंजो राजवंश

इंग्लैंड का एक प्रसिद्ध राजवंश जिसने सन् ११५४ से १३९९ तक इंग्लैण्ड पर शासन किया।

अंजो राजवंश के शासन के समय इंग्लैण्ड के आपसी झगड़े और विद्रोहों का अन्त होकर इंग्लैण्ड ने एक राष्ट्र का रूप धारण किया। इसी राजवंश के समय में वेल्स का प्रान्त भी इंग्लैण्ड के शासन के अन्तर्गत आ गया। आयरलैंण्ड भी इसी राजवंश के समय में इंग्लैण्ड के अधिकार में आ गया और वहाँ पर इंग्लैण्ड के राजा का प्रतिनिधि लार्ड डिप्टी शासन करने लगा। स्कॉटलैण्ड के राजा भी समय पड़ने पर दबकर इंग्लैंड के अधीन हो जाते थे और उसके बाद फिर स्वतन्त्र हो जाते थे। इन्हीं दिनों इंग्लैण्ड के राजा के पास फ्रान्स की भी बहुत-सी जागीरें आ गईं जिसकी वजह से फ्रान्स के राजा

को यह डर लगने लगा कि कहीं फ्रान्स के राज्य सिंहासन पर भी इंग्लैण्ड का राजा अपना हक न जमा ले। इस भय के परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड और फ्रान्स के बीच एक लम्बी लड़ाई चली जो बीच-बीच में रुकती हुई करीब सौ वर्षों तक चलती रही। यह लड़ाई इतिहास में शतवर्षीय युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। इस लड़ाई के परिणाम स्वरूप फ्रान्स के राजाओं ने केले प्रान्त को छोड़ कर बाकी का सारा अपना देश जीत लिया।

अंजो राजवंश के समय में राज्यकार्य में सलाह-मशविरा देने के लिये लार्ड सभा के साथ-साथ जनता के प्रतिनिधियों की भी एक सभा बुलाने का काम प्रारम्भ हुआ। आगे जाकर इसी सभा ने पार्लमेण्ट में हाऊस ऑफ कामन्स का रूप धारण कर लिया। रोमन चर्च का पोप इंग्लैण्ड की धर्म व्यवस्था अथवा धर्माधिकारियों में कोई हेर-फेर न कर सकें इस आशय का कानून भी पार्लमेण्ट ने इसी राज्यवंश के काल में बनाया। इस राजवंश के अन्तर्गत् जिन राजाओं ने इंग्लैण्ड पर शासन किया उनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) हेनरी द्वितीय—स्टीफेन के बाद इंग्लैण्ड की राजगद्दी पर हेनरी प्रथम का नाती हेनरी द्वितीय गद्दी पर बैठा। इसने फ्रान्स के एक सरदार की लड़की एलिनॉर में विवाह किया। इसे अपने नाना के द्वारा इंग्लैण्ड का राज्य और फ्रान्स में नार्मण्डी की जागीर तथा पिता और ससुर के पास से फ्रान्स के अन्जो, मेन, टूरेन, आक्विटेन और पायटू नामक प्रदेश जागीरों के रूप में मिले। इसका समय सन् ११५४ से ११८९ तक था। इसी के शासन काल में सन् ११७२ में आयरलैण्ड इंग्लैण्ड के कब्जे में आ गया और उस समय कितने ही अंग्रेज जागीरदार आयरलैण्ड में जाकर बस गये।

(२) रिचर्ड प्रथम—हेनरी के बाद अंजोवंश का दूसरा राजा रिचर्ड प्रथम गद्दी पर बैठा। जिस समय यह गद्दी पर बैठा उस समय फिलिस्तीन में मुसलमानों और ईसाइयों के बीच में क्रूसेड (Crusadc) की इतिहास प्रसिद्ध लड़ाइयाँ चल रही थीं। रिचर्ड प्रथम भी इन धर्म युद्धों में सम्मिलित हुआ था और कई वर्षों तक इंग्लैण्ड से बाहर फिलिस्तीन में रहा था। इस युद्ध के लिये उसने अपनी सारी निजी जमीन जायदाद बेच डाली थी और इंग्लैण्ड की जनता पर एक भारी टैक्स भी लगाया था।

यूनियन जेक

इंग्लैण्ड के सुप्रसिद्ध राष्ट्र-ध्वज यूनियन जेक का निर्माण भी रिचर्ड ने ही करवाया था। क्रूसेड के धर्म युद्ध में उसने चौथी शताब्दी के एक साधू सेण्ट जार्ज की कीर्ति सुनी थी। इस सेण्ट जार्ज की कीर्ति को अमर बनाने के लिये रिचर्ड प्रथम ने एक सफेद झण्डे पर लाल रंग का क्रॉस बना कर अपना झण्डा बनाया था। इसी झण्डे में आगे चलकर स्कॉटलैण्ड और आयरलैण्ड के राष्ट्रीय चिन्ह भी मिला दिये गये और उसके बाद यही झण्डा ब्रिटिश साम्राज्य के यूनियन जेक के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

(३) जॉन प्रथम—रिचर्ड प्रथम के बाद उसके छोटे भाई जॉन ने कुछ जागीरदारों की सहायता से अपने भतीजे आर्थर को मार कर इंग्लैण्ड का राज्य प्राप्त कर लिया। इसका शासन सन् ११९९ से १२१५ तक चला। इंग्लैण्ड के इतिहास में जॉन का नाम एक अत्याचारी शासक के रूप में लिया जाता है। थोड़ा सा सन्देह होने पर ही यह लोगों को जेल में भेज दिया करता था। रोमन चर्च के तत्कालीन पोप इन्नोसेण्ट तृतीय के साथ इसका बड़ा झगड़ा हो गया था। पोप इन्नोसेण्ट ने इस राजा को धर्मच्युत् और राजच्युत् कर दिया। तब इस राजा ने सन् १२०९ में पोप से सार्वजनिक रूप से क्षमा याचना की।

जॉन के अत्याचारों से तंग आकर इंग्लैण्ड के जागीरदार, धर्माधिकारी और साधारण जनता सब संगठित हो गये और उन्होंने सन् १२१५ में मेग्नाकार्टा (Magna-Carta) नामक अधिकारपत्र तैय्यार करके उस पर जॉन को हस्ताक्षर करने के लिये मजबूर किया। इस अधिकार पत्र में इंग्लैण्ड के इतिहास में पहली बार जनता के हक सार्वजनिक रूप से स्वीकार किये गये और राजा को कई प्रकार के बन्धनों में बाँधा गया। इसलिये इंग्लैण्ड के इतिहास में मेग्नाकार्टा की रचना एक महत्वपूर्ण घटना मानी जाती है।

(४) हेनरी तृतीय—जॉन के बाद उसका बड़ा लड़का हेनरी तृतीय इंग्लैण्ड की गद्दी पर बैठा। इसका

समय सन् १२१६ से १२७२ तक है। हेनरी तृतीय के समय में इंग्लैण्ड का राज्य बहुत कर्जदार हो गया था। उस समय साइमन-डी माण्डफोर्ट नामक जागीरदार ने हेनरी को हरा कर उसे तथा उसके पुत्र एडवर्ड को गिरफ्तार कर लिया और राज्य का ऋण चुकाने तथा राजकार्य चलाने के लिए इंगलैण्ड की ग्रेट कौंसिल की बैठक बुलाई और उसके साथ प्रत्येक जिले और प्रत्येक नगर से जनता का एक-एक प्रतिनिधि भी बुलाकर सम्मिलित किया गया। पार्लमेंट इसी दिन से इस ग्रेट कौंसिल का नाम पार्लमेण्ट रखा गया जिसने आगे जाकर सारे इंग्लैण्ड के इतिहास का निर्माण किया। साइमन-डी माण्डफोर्ट ने इस संस्था का आरम्भ किया था इसलिये इतिहास में उसे "फादर ऑफ पार्लमेण्ट" कहा जाता है।

इसके बाद हेनरी के पुत्र एडवर्ड ने जागीरदारों के एक दल को अपनी तरह मिलाकर अपने पिता के साथ जेल से छुटकारा पाया।

उसके बाद माण्डफोर्ट के पक्ष के जागीरदारों और एडवर्ड के बीच लड़ाई हुई जिसमें माण्डफोर्ट मारा गया।

(५) एडवर्ड प्रथम—हेनरी की मृत्यु के बाद उसका पुत्र एडवर्ड प्रथम के नाम से इंग्लैण्ड की गद्दी पर बैठा। इसने सन् १२७२ से १३०७ तक शासन किया।

एडवर्ड बड़ा पराक्रमी, वीर और महत्वाकांक्षी था उसने सबसे पहले वेल्स के प्रान्त पर विजय प्रात करके उसे अपने राज्य में मिला लिया। सन् १२८४ में वेल्स के एक किले में ही उसकी रानी को एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इसलिये वह प्रिन्स ऑफ वेल्स कहलाया। तभी से इंग्लैण्ड के सबसे बड़े राजा के पुत्र को प्रिन्स ऑफ वेल्स कहा जाता है। उसके बाद एडवर्ड प्रथम ने स्कॉटलैण्ड को अपने राज्य में मिलाने के लिये सन् १३०७ में चढ़ाई की मगर रास्ते में ही एडवर्ड की मृत्यु हो गई और स्काटलैण्ड पर स्थायी विजय करने का स्वप्न अधूरा रह गया।

(६) एडवर्ड द्वितीय—एडवर्ड प्रथम के बाद उसका पुत्र एडवर्ड द्वितीय राजगद्दी पर बैठा जिसने १३०७ से १३२७ तक राज्य किया।

(७) एडवर्ड तृतीय—एडवर्ड द्वितीय के बाद सन् १३२७ में एडवर्ड तृतीय गद्दी पर बैठा। इसके राज्य काल में स्कॉटलैण्ड पर अपना अधिकार कायम करने का इंग्लैण्ड ने फिर से प्रयत्न किया। इसी के राज्य काल में फ्रान्स से शतवर्षीय युद्ध प्रारम्भ हुआ। इसी समय इंग्लैण्ड की धार्मिक व्यवस्था में पोप के द्वारा हेर-फेर करने का विरोध किया गया और इसी के राज्यकाल में पार्लमेण्ट ने राज्य के मन्त्रियों पर अपना दबाव डालने का प्रयत्न किया।

ब्लेक प्रिन्स—एडवर्ड तृतीय का बड़ा लड़का एडवर्ड बड़ा वीर और योद्धा था। वह काले रंग की कवच पहनता था। इसी से इतिहास में वह "ब्लेक प्रिन्स" के नाम से मशहूर है। शतवर्षीय युद्ध में इस ब्लेक प्रिन्स ने सन् १३४६ में क्रेसी के अन्दर, १३४७ में केले के अन्दर और १३५६ में पायटू की लड़ाई में फ्रान्स को भारी पराजय दी और उसके राजा जॉन को गिरफ्तार कर लिया।

एडवर्ड तृतीय के राज्यकाल में सन् १३४९ में इंग्लैण्ड के अन्दर प्लेग की भयंकर महामारी चली जिसमें इंग्लैण्ड की एक तिहाई जनता खतम हो गई और सारे देश में हाहाकार मच गया।

(८) अन्जो राजवंश का आठवाँ और अन्तिम राजा ब्लेक प्रिन्स का लड़का रिचर्ड द्वितीय हुआ। इसने सन् १३७७ से १३९९ तक शासन किया। इसके शासन काल में जॉन विक्लिफ् नामक एक इतिहास प्रसिद्ध धर्म सुधारक हुआ। इसने धर्माधिकारियों के भ्रष्ट आचरण की बड़ी कड़ी आलोचना की। सन् १३८२ में उसने बाइबिल का अंग्रेजी में अनुवाद किया!

रिचर्ड द्वितीय का पार्लमेण्ट से मतभेद होने के कारण उसे गिरफ्तार कर कैद में डाल दिया और वहीं उसकी मृत्यु हुई। उसके साथ ही इंग्लैण्ड के राजा सिंहासन से अन्जो वंश का अन्त हो गया।

अजोर्स

पन्द्रहवीं शताब्दी में जब यूरोप के देश समुद्र पार के मसाले के देशों का पता लगाने के लिए समुद्री रास्तों की खोज कर रहे थे उस समय स्पेन और पुर्तगाल के बीच

खोज किये हुए नये देशों पर शासन स्थापित करने के लिए बड़ी प्रतिद्वन्दता चल रही थी ।

अन्त में इस झगड़े को मिटाने के लिए पोप को बीच में पड़ना पड़ा । अन्त में सन् १४९३ में उसने एक बुल (फतवा) निकाला जिसके अनुसार अजोर्स के पश्चिम तीन सौ मील के फासले पर उत्तर से दक्षिण तक एक काल्पनिक रेखा खींच दी और इस रेखा के पूर्व में जितना गैर इसाई मुल्क मिले उसपर पुर्त्तगाल का और पश्चिम में मिले हुए मुल्क पर स्पेन का अधिकार घोषित कर दिया । इस घोषणा के अनुसार अमरीका महाद्वीप स्पेन के हिस्से में और भारत, चीन, जापान, अमरीका तथा दूसरे पूर्वी मुल्क पुर्त्तगाल के हिस्से में आये ।

अंजेलो

इटली का मशहूर चित्रकार और शिल्पी

माइकेल अंजेलो जिसने इटाली की चित्रकला और शिल्पकला में युगान्तर ला दिया । इसका समय सन् १४७५ से १५५० के बीच में है ।

इटली के शिल्पकारों और चित्रकारों में माइकेल अंजेलो का नाम बहुत प्रसिद्ध है । अंजेलो के बनाये हुए सुन्दर-सुन्दर भित्ती चित्र, दूसरे चित्र और उसकी सुन्दर मूर्तियाँ देखकर आज भी बड़ा आश्चर्य होता है । रोम में सेण्ट पीटर के सुप्रसिद्ध चर्च का गुम्बद माइकेल अंजेलो के ही निरीक्षण में बना था । इस गुम्बद का व्यास १३८ फुट था यह ईसाई धर्म के सब गिर्जों में सबसे विशाल था इस विशाल गिर्जे की कारीगरी को देखकर बड़ा बिस्मय होता है । इस गिर्जे का नव-निर्माण महान कला प्रेमी पोप जूलियस द्वितीय के तत्वाधान में हुआ था ।

अटाला मस्जिद

जौनपुर के सबसे प्रसिद्ध शासक इब्राहीम शर्की के द्वारा जौनपुर में बनाई हुई अटाला मस्जिद जो सन् १४०८ ई० में बनकर पूरी हुई । यह मस्जिद आज भी इब्राहीम शर्की की अमर कीर्ति की द्योतक है ।

अटालस

एशिया माइनर के परगामस का राजा । जिसका समय ईसा के पूर्व दूसरी या तीसरी शताब्दी में है ।

राजा अटालस बड़ा पठनशील और साहित्य प्रेमी था । इसके पुस्तकालय में दो लाख हस्तलिखित ग्रन्थ थे । इन ग्रन्थों का उसने बहुत परिश्रम और धन खर्च करके संग्रह किया था ।

राजा अटालस रोम-राष्ट्र का बड़ा भक्त था । मृत्यु के समय उसने अपने मृत्यु-पत्र में अपना सारा धन और राज्य रोम के लोगों को दे दिया था ।

उस समय रोम का सम्राट टायबीरियस था । राजा अटालस के धन को टायबीरियस ने सीनेट से बिना पूछे रोम की गरीब जनता में बाँट दिया था ।

अड्रियानो पुल का घेरा

सन् १९१२ में तुर्की और इटाली की संधि के पश्चात् तुर्की पर यूनानी लोगों ने वोनीजिलोज के नेतृत्व में बल्गेरिया, सर्विया और माण्टीनिग्रो की सहायता से आक्रमण कर दिया ।

बल्गेरिया और सर्विया की सेना ने अड्रियानो पुल पर घेरा डाल दिया । यह घेरा इतिहास में अड्रियानो पुल के घेरे के नाम से मशहूर है । इधर यूनानी लोग मकदूनिया और थ्रेस में घुस गये । इस सम्मिलित आक्रमण का मुकाबला तुर्की नहीं कर सका और उसे मकदूनिया, अलबानिया और क्रीट द्वीप दुश्मनों को देकर लन्दन में उनसे संधि करनी पड़ी ।

अटलांटिक घोषणा पत्र

१९४१ के अगस्त मास में द्वितीय महायुद्ध के समय इंगलैंड के प्रधान मन्त्री विन्स्टनचर्चिल और अमेरिका के राष्ट्रपति रूजबेल्ट के द्वारा निकाला हुआ एक प्रसिद्ध घोषणा-पत्र जो अटलांटिक घोषणा पत्र के नाम से प्रसिद्ध है । इस घोषणा-पत्र में निम्नलिखित धाराओं का उल्लेख था ।

(१) क्षेत्रीय या किसी अन्य प्रकार के प्रसार या विस्तार का [illegible] किया जावे ।

(२) किसी भी क्षेत्र से सम्बन्धित जनता की प्रकट इच्छा के बिना उस क्षेत्र में कोई परिवर्तन नहीं किया जावे।

(३) सभी लोगों को अपनी इच्छानुसार अपनी सरकार स्थापित करने का अधिकार रहे।

(४) जिन राष्ट्रों को प्रभु सत्ता सम्बन्धी अधिकारों एवं स्वशासन से बलपूर्वक वंचित कर दिया गया है उन्हें वे अधिकार लौटा दिये जांय।

(५) संसार के व्यापार और कच्चे माल तक सभी राष्ट्रों की पहुँच समान रूप से हो।

(६) आर्थिक क्षेत्र में सभी राष्ट्रों के बीच पूर्ण सहयोग रहे।

(७) नाजी जुल्मों का अन्त कर निखिल विश्व में शान्ति की स्थापना की जाय।

(८) ऐसे आक्रामक राष्ट्रों का निशस्त्रीकरण हो जो सामान्य सुरक्षा एवं विस्तृत तथा स्थायी व्यवस्था में बाधक हों और ऐसे राष्ट्रों को प्रोत्साहन दिया जाय जो शस्त्रीकरण के बोझ को हलका करने के लिए व्यवहारिक कदम उठा चुके हों।

अन्टोनियस

रोम के इतिहास-प्रसिद्ध महान् शासक जूलियस सीजर का एक मित्र, बाद में रोम साम्राज्य के एक भाग का शासक, मिस्र की सुन्दरी रानी क्लियोपेट्रा का जूलियस सीजर के पश्चात् दूसरा प्रेमी।

जूलियस सीजर की हत्या के पश्चात् उसके मृत्यु-पत्र के अनुसार रोम साम्राज्य का अधिकारी "आक्टेवियस" को होना था। मगर उस समय अन्टोनियस भी रोम का एक प्रमुख व्यक्ति बना हुआ था। वह राज्य का सारा सूत्र अपने हाथ में लेना चाहता था। इसलिये आक्टेवियस और अन्टोनियस के बीच में बड़ी प्रतिद्वन्दिता चल रही थी। आक्टेवियस को रोम के सुप्रसिद्ध वक्ता और विद्वान सिसरो की बड़ी मदद थी। अन्त में ई० सन् ७१ में आक्टेवियस, अन्टोनियस और रोम की सेना के तत्कालीन सेनापति लेपिडस—इन तीनों व्यक्तियों के बीच में एक समझौता हुआ जिसके अनुसार लेपिडस को स्पेन का, आक्टेवियस को सिसली, सरडीनिया और अफ्रीका के प्रान्तों का और अन्टोनियस को गाल (आधुनिक फ्रांस) का राज्यसूत्र प्राप्त हुआ और इटली के राज्य-शासन में सबका समानाधिकार रखा गया। रोम के शासन में सीजर, पाम्पे और और क्रासस के त्रिगुट के पश्चात् लेपिडस, आक्टेवियस और अन्टोनियस का बना हुआ यह एक दूसरा त्रिगुट था।

राज्य-सूत्र हाथ में आने के बाद अन्टोनियस को पता लगा कि मिस्र की रानी क्लियोपेट्रा ने उसके शत्रु ब्रूटस और काशियस को मदद पहुँचाई थी। इस अपराध की कैफियत तलब करने के लिये अन्टोनियस ने क्लियोपेट्रा को अपने यहाँ बुलाया। यह वही परम सुंदरी क्लियोपेट्रा थी जिसने रोम के महान् शासक जूलियस सीजर को अपनी उँगलियों पर नचाया था।

जिस समय क्लियोपेट्रा को अन्टोनियस का आदेश मिला उस समय उसकी उम्र २८ साल की थी। वह अपने निज के जहाज में बैठ कर सिडनस नदी से आई थी। उसके जहाजों के डाँड़ सोने और चाँदी से मढ़े हुए थे। नाव खेने वाले ताल-स्वर के ऊपर अपने डाँड़ चला रहे थे। मल्लाह सुन्दर और मूल्यवान वस्त्रों से सुसज्जित थे। स्वयं क्लियोपेट्रा भी कुछ कम सुन्दर न थी। सुन्दरता में वह मेनका, रम्भा आदि अप्सराओं को भी मात कर देती थी। उसकी आँखों में ऐसी चितवन थी, जो बड़े-बड़े धनुर्धारियों को भी क्षण भर में उसके पैरों पर लोटा देती थी।

अन्टोनियस क्लियोपेट्रा को देखते ही अपनी सुध-बुध को भूल गया। वह राज-काज भी भूल गया और अपनी पत्नी फुलबिया को भी भूल गया। अन्टोनियस क्लियोपेट्रा के साथ रंग रासों में ऐसा मशगूल हो गया कि राज्य में उसका प्रभाव दिन-प्रति-दिन घटता गया। इस अवसर को देखकर उसके प्रतिद्वन्दी आक्टेवियस ने ई० सन् ८३ में अन्टोनियस पर समुद्री चढ़ाई कर दी। युद्ध में अन्टोनियस का जहाजी बेड़ा अपने शत्रु के जहाजी बेड़े से बहुत बड़ा था, परन्तु उसका निरीक्षण और व्यवस्था अच्छी न होने से उसको हार खानी पड़ी। अन्टोनियस और क्लियोपेट्रा वहाँ से भागे। क्लियोपेट्रा ने इस विपत्ति से बचने के लिये अन्टोनियस से बिना पूछे अपनी मृत्यु की झूठी खबर उड़ा दी।

अन्टोनियस को जब क्लियोपेट्रा के मरने की बात मालूम हुई तो उसने अपने हाथ से अपनी छाती में कटार भोंक कर आत्महत्या कर ली।

अण्टोन चेखोव

(Anton Parelovich chekhov)

बीसवीं सदी का सुप्रसिद्ध रूसी लेखक जिसने मध्यवर्ग और शिक्षित जनता का चित्रण अपने ग्रन्थों में कर रूसी साहित्य की परिधि को विस्तृत किया इसका समय सन् १८६० से १९०४ तक है।

चेखोव अपनी कृतियों में महान रूसी लेखक तुर्गनेवका उत्तराधिकारी माना जा सकता है। उसने रूसी साहित्य के अन्धकार युग को अपनी महान् कृतियों से प्रकाशित किया। अत्यन्त यथार्थवादी होने के साथ-साथ वह महान् कलाकार भी था। हास्यरस और मानवीयता के रससे सिंचित होने के कारण उसका निराशावाद भी पाठक को उकताने वाला नहीं होता। रंगमंच के लिए भी उसने कुछ कृतियाँ लिखीं। इनमें भी देहात के हारे, थके, प्रमादी और विचारों के दरिद्र लोगों का चरित्र चित्रण है जो एक महान् कलाकार के हाथ से चित्रित होने के कारण ही पाठक की सहनशीलता का दम नहीं तोड़ते और उस समय के समाज का नग्न चित्र वास्तविकता के आवरण में प्रदर्शित करते हैं।

अण्टोनिओ पूसी

चौदहवीं सदी का इटालियन कवि। जिसका समय सन् १३१० से १३८८ तक है।

अण्टोनिओ पूसी इटाली का मध्यमवर्गी साहित्यकार था इसने अपने सीनेटों और दूसरे छन्दों में तत्कालीन सामाजिक जीवन को प्रतिबिम्बित किया। इसकी कृतियों में "गिसमिरान्ते" "सेरिएटलोकिओ" "ला-रीनादी ओरियएटे आदि उल्लेखनीय हैं।

अढाई दिन का झोपड़ा

अजमेर का एक ऐतिहासिक और दर्शनीय स्थान। इसको सबसे पहले अजमेर के सुप्रसिद्ध चौहान राजा वीसल देव ने एक संस्कृत विद्यालय के रूप में सन् ११५० के आसपास बनवाया था। उसके पश्चात् शाहबुद्दीन गोरी ने इस विद्यालय को तोड़कर एक मसजिद के रूप में परिणत कर दिया जो आजकल अढाई दिनका झोपड़ा के नाम से प्रसिद्ध है। इसके दरवाजों और मेहराबों की कोराई दर्शनीय है और उस समय की स्थापत्य कला का सुन्दर रूप पेश कर रही है।

अतसिक

ख्वारेज्म के शाह कुतुबुद्दीन का पुत्र जो सन् ११२८ में ख्वारेजम की गद्दी पर बैठा।

ख्वारेज्म उस समय सलजुकी तुर्क सम्राटों का एक करद राज्य था। उस समय सल्जुकी साम्राज्य की गद्दी पर सुलतान सिंजर आसीन था जो कि इस वंश का सबसे प्रतापी और अन्तिम सम्राट् था। ख्वारेज्म, ईराक, ईरान, सीरिया के विशाल क्षेत्र पर इस साम्राज्य की विजय ध्वजा फहरा रही थी।

अतसिक ने ख्वारेज्म का शासक बनते ही सम्राट् से बगावत कर दी। मगर सुलतान सिंजर ने उसपर आक्रमण करके उसके लड़के को मारडाला और अतसिक को बुरी तरह पराजित कर सुलेमान शाह को ख्वारेज्म का अधिकारी बनाकर चला गया। सम्राट् के लौटते ही अतसिक ने सुलेमान शाह को मार भगाया और सारे ख्वारेजम का मालिक बन बैठा उसने सुलतान के अफसरों को कैद करके उनकी सम्पत्ति को जप्त कर लिया। तब सन् ११३८ में सुलतान ने एक भारी सेना लेकर ख्वारेज्म पर आक्रमण किया और दूसरी बार अतसिक को बुरी तरह से हराया। अतसिक भाग गया और सुलतान ने ख्वारेज्म पर अधिकार कर उसका शासक अपने भतीजे सुलेमान को बना दिया।

सुलतान के वापस लौटने पर अतसिक फिर ख्वारेज्म आ गया। ख्वारेज्म के लोगों ने सुलतान के व्यवहार से

रुष्ट होकर अतसिक का साथ दिया। अतसिक ने सुलतान के सब अफ़सरों को मार डाला। वहां का शासक सुलेमान भाग कर सुलतान के पास चला गया। अतसिक ने बुखारा पर भी आक्रमण कर दिया और वहाँ के गवर्नर को मार डाला। इसके बाद फिर उसने सुलतान के प्रति राज भक्ति की शपथ ली और सुलतान ने उसे माफ़ कर दिया।

इस प्रकार बार-बार विद्रोह कर बार-बार क्षमा माँगते हुए अतसिक ने सलजुकी साम्राज्य की नींव को कमजोर कर दिया और फलस्वरूप करा खताई लोगों ने वहां आकर सलजुकी तुर्क साम्राज्य को छिन्न-भिन्न कर डाला और सिंजर को मार डाला।

अणहिल्ल

नाडोल और जालोर के चौहान वंश का छठाँ राजा, राजा महेन्द्र का पुत्र और उसका उत्तराधिकारी। इसका समय ई० सन् १०२१ के करीब का माना जाता है। सुन्धा पहाड़ी पर मिले हुए एक शिलालेख से प्रकट होता है कि अणहिल्ल ने अणहिलवाड़ा के भीम देव को हराया, सांभर पर अधिकार कर लिया, भोज के सेनापति को मारा और मुसलमानों को हराया। नाडोल के अन्दर बना हुआ अणहिलेश्वर का शिव मन्दिर इसी अणहिल्ल का बनाया हुआ माना जाता है।

अता-मलिक

फारसी साहित्य का एक इतिहासकार जो प्रसिद्ध मंगोल विजेता 'हलाकू' का सेक्रेटरी था और बाद में बगदादका गवर्नर बना दिया गया। इसका प्रसिद्ध ग्रन्थ तारीख-ए-जहांनुशा था। जिसमें चंगेज खाँ और हलाकू की दिग्विजयों का उल्लेख है। सन् १२८३ में यह विद्यमान था।

अथानीसियस

ईसाई धर्म का धुरन्धर विद्वान जिसने चर्च के सच्चे आचार विचार का निर्णय किया और एरियन पन्थ के विरुद्ध बहुत कुछ लिखा। यह क्रिस्तान धर्म का पिता स्वरूप माना जाता है ई० सन् की चौथी शताब्दी में यह हुआ था।

अथर्ववेद

आर्य्य धर्म संस्था के मूल ग्रन्थ चार वेदों में से एक वेद।

आर्य्य धर्म के मूल और प्रमाणभूत ग्रन्थों में वेदों का स्थान सब से ऊँचा है। हिन्दू धर्म वेदों को अपौरुषेय या ईश्वर कृत मानता है।

अथर्ववेद में भी अन्य वेदों की भांति "त्रयी विद्या" अर्थात् ज्ञान, कर्म और उपासना पर विचार किया गया है। वैदिक साहित्य में अथर्ववेद के चार नाम मिलते हैं। निगद, ब्रह्म, अथर्व और छन्द। ये चारों नाम इसके चार गुणों के कारण पड़े हैं। निगद नाम इसकी सरलता के कारण पड़ा है। ब्रह्म नाम इसका इसलिए पड़ा है कि यज्ञ का अधिष्ठाता ब्रह्मा इसी वेद के साथ नियुक्त होता है। इसी तरह इसका तीसरा नाम अथर्व है, अथर्ववेद में विराट् का वर्णन करते हुए लिखा है कि—

> यस्माहयो अपात क्षन्, यजुर्यस्यादपाकषत्
> सामानि यस्य लोमानि, अथर्वांगिरसो मुखम्
> (अथर्ववेद १०-७-२०)

इस मंत्र में अथर्व को विराट् का मुख बतलाया गया है विराट् के मुख से ही अग्नि की उत्पत्ति हुई है। इसलिए अथर्व का भाव अग्नि से होता है। अथर्व का चौथा नाम छन्द इसलिए पड़ा कि इसमें हर तरह के छन्दों का प्रयोग हुआ है।

अथर्ववेद में औषधि विद्या और यंत्र, मंत्र तथा तंत्र विद्या का आश्चर्यजनक वर्णन है। तंत्र शास्त्र का तो उद्गम ही अथर्ववेद से है।

अथर्ववेद का देवता चन्द्रमा है, वही ज्योति है और जल स्थान है। पारसी धर्म के प्राचीन ग्रन्थ "अवेस्तां" के गाथा प्रकरण में अथर्ववेद को छन्द ही कहा है। कुछ लोगों की यह मान्यता है कि पारसी धर्म की बहुत सी बातों का मूल स्रोत अथर्ववेद रहा है।

अथर्ववेद की नौ शाखाओं में इस समय केवल दो "पैप्पलाद" और "शौनकीय" उपलब्ध है। शौनकीय शाखा २० मण्डल, ७३१ सूक्त, और ६००० पंक्तियों में संगृहीत है। इस संहिता के अधिकांश मंत्र, तंत्र विद्या,

झाड़ फूँक, मारन, उच्चाटन तथा चिकित्सा से सम्बन्ध रखते हैं। इससे यह अनुमान होता है कि ऋग्वेद कालिक आर्यों की सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना से इस काल में काफी अन्तर पड़ गया था। इस वेद के अन्तर्गत कुछ स्थान बड़े मार्मिक और हृदयस्पर्शी हैं। वरुण के प्रति कहे गये कुछ मंत्र तो अपनी शालीनता में समूचे वैदिक साहित्य में अपनी जोड़ नहीं रखते। मातृ भूमि सम्बन्धी सूक्त (१२-१-६३) देशप्रेम के रोमांचक आदर्शों से भरे पूरे हैं। राज्यारोहण सम्बन्धी कुछ मंत्र भी इसमें बड़े महत्व के हैं जो राजाओं के राजारोहण के समय बोले जाते हैं।

अदली शाह

सम्राट शेरशाह का भतीजा जो सन् १५५४ में शेरशाह के पुत्र सलीम शाह के मरने पर, राज्य के वास्तविक हकदार सलीम शाह के बारहवर्षीय पुत्र को मारकर गद्दी पर बैठा।

मगर अदलीशाह केवल साल भर ही दिल्ली के तख्त पर आसीन रह सका। इब्राहीम खां ने दिल्ली पर आक्रमण करके उसे भगा दिया, उसके बाद उसने चुनार में अपना आसन जमाया मगर वहाँ तीन बरस बाद वह मर गया।

अदहम खान

अनका माहम का पुत्र सम्राट अकबर का दूध भाई

अदहम खान स० अकबर की धाय अनका माहम का पुत्र था। यह स्वभाव का बड़ा दुष्ट और हीन चरित्र था। अनका माहम की सिफारिश से बादशाह अकबर ने इसे सन् १५६१ में मालवा पर आक्रमण करने के लिए सेनापति बनाकर भेजा। उस समय मालवे का शासक सूरवंश का पठान बाजबहादुर था। इसकी प्रेमिका रूपमती मेघ-मल्हार राग की भारत प्रसिद्ध गायिका थी। यह स्वयं भी संगीत का बड़ा प्रेमी था।

सारङ्गपुर के पास सन् १५६१ में बाज बहादुर की हार हुई। मालवे का खजाना शाही फौज के हाथ आया। रूपमती जहर खाकर मर गई। अदहम खां और पीर मुहम्मद ने मालवे में भारी क्रूरता की। इस क्रूरता के शिकार हिन्दू और मुसलमान दोनों हुए। विद्वान शेखों और सैय्यदों को भी उन्होंने नहीं छोड़ा। अदहम ने लूट के माल को अपने हाथ में रखना चाहा। इस माल में बाज बहादुर के हरम की दो सुन्दरी नवयुवतियाँ भी थीं। यह खबर सम्राट अकबर के पास पहुँची, तब अकबर ने यह सोचकर कि माहम अनका अपने पुत्र को बचाने के लिए सब कुछ करेगी। वह चुपचाप बिना खबर दिये मालवा को रवाना हो गया। अदहम खाँ उसे देखते ही हक्का-बक्का हो गया और उसने सम्राट के सामने आत्म-समर्पण कर दिया। अकबर को मालूम होने के कुछ पहले ही माहम अनका ने बाज बहादुर के अन्तःपुर की दोनों सुन्दरियों को जहर देकर मरवा डाला।

सन् १५६२ में सम्राट अकबर ने शमसुद्दीन मुहम्मद अतगा को अपना मन्त्री बनाया। इस समाचार से माहम अनका और उसका पुत्र अदहम खान दोनों गुस्से से पागल हो गये। १६ मई १५६२ की दुपहर को जब कि मुहम्मद अतगा दरबार में बैठा हुआ अपना काम कर रहा था, अदहम खां कटार लेकर वहाँ पहुँचा और अपने दो साथियों की मदद से मुहम्मद अतगा को वहीं सरे दरबार में मार डाला। अदहम खान ने उसको मारने के बाद ही सम्राट अकबर को भी मार डालना चाहा जो उस समय महल में आराम कर रहे थे। शरीर रक्षकों ने अदहम खां का पागलपन देखकर दरवाजे को भीतर से बन्द कर लिया।

मगर ज्यों ही सम्राट को यह बात मालूम हुई वह दूसरे दरवाजे से तलवार लेकर बाहर निकला। अदहम खाँ ने सम्राट के बाहर निकलते ही उसका हाथ पकड़ लिया। तब अकबर ने एक जोर का मुक्का उसकी नाक पर मारा जिससे वह बेहोश होकर गिर पड़ा तब अकबर ने नौकरों से उसे बंधवा कर नीचे गिरवा दिया, अदहम खान का किस्सा तमाम हो गया।

अदहम खाँ की मृत्यु से माहम अनगा को इतना धक्का लगा कि चालीस दिन बाद वह भी इस संसार से कूच कर गई और अकबर का अन्तःपुर इस षड्यन्त्र-कारिणी से मुक्त हो गया।

अद्वैतवाद

प्राचीन वेदान्त-दर्शन के आधार पर जगद्गुरु शङ्कराचार्य द्वारा स्थापित सुप्रसिद्ध "एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति" वाला अद्वैत सिद्धान्त जो वर्त्तमान हिन्दू धर्म के दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता है।

जगद्गुरु शंकराचार्य्य के पूर्व ही यद्यपि वेदान्त-दर्शन का निर्माण हो चुका था फिर भी साधारणतया हिन्दू-दर्शन विवेचना में संसार के निर्माण में प्रकृति और पुरुष इन दो तत्त्वों का निरूपण किया जाता था।

मगर शङ्कर ने अपनी तीव्र निर्णायक विवेचना से सिर्फ एक ही तत्व ब्रह्म का प्रतिपादन किया और अन्य सब वस्तुओं को माया का रूप बतला कर उन्हें असत् या निःस्सार बतलाया। उन्होंने बतलाया कि जिस प्रकार अंधेरे में रस्सी को सर्प समझकर मनुष्य भ्रम का शिकार हो जाता है उसी प्रकार असद्माया में भी वास्तविकता की कल्पना कर वह भ्रम में पड़ जाता है।

हम जिस वस्तु-जगत् को अपने चारों ओर देखते हैं वह ब्रह्म की सत्ता का केवल एक प्रतिबिम्ब है। लेकिन वह सत् नहीं है। वह सत और असत के बीच का एक रूप है।

विशुद्ध ब्रह्म किस प्रकार सब चीजों में व्याप्त है, किस तरह वह एक होकर अनेक रूप में अभासमान है, यह सब तर्क द्वारा समझ में नहीं आ सकता क्योंकि हमारा मस्तिष्क वस्तु जगत् से सीमित है। साधना के द्वारा जब मनुष्य के ज्ञान-चक्षु खुल जाते हैं तभी अद्वैत की एकरूपता उसके सामने प्रत्यक्ष हो जाती है।

शंकर के दर्शन और दृष्टिकोण में दुनिया से इन्कार करने का और आत्मा की मुक्ति के लिए सांसारिक प्रवृत्तियों से बचने का भाव है। त्याग और वैराग्य पर उन्होंने बहुत जोर दिया।

शंकराचार्य्य का जन्म सम्भवतः आठवीं सदी के अन्त में मलाबार प्रदेश में हुआ था। इनके व्यक्तित्व में एक महान् और अलौकिक सामर्थ्य था। वह एक अपूर्व प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। वे गुफाओं में जाकर बैठनेवाले या जंगल के एक कोने में बैठ कर एकान्तवास करनेवाले व्यक्ति नहीं थे। उन्होंने हिन्दुस्तान के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक की यात्राएँ की, अनगिनती लोगों से और विद्वानों से वे मिले, अपने अकाट्य तर्कों से वादविवाद में उन्हें परास्त कर उनको अपना अनुयायी बनाया।

शंकराचार्य ने अपने जीवन का एक निश्चित ध्येय अद्वैत-सिद्धान्त के प्रचार का बना लिया था। उनका कार्य-क्षेत्र कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक का सारा हिन्दुस्तान था। सारे हिन्दुस्तान में वे एक सांस्कृतिक एकता का अनुभव करते थे और यह समझते थे कि बाहरी रूप चाहे जितने भिन्न हों अन्ततोगत्वा सब एक हैं। भारत वर्ष में उनके समय में विचारों की जो अलग-अलग धाराएँ बह रही थीं उनमें एक समन्वय पैदा करने का और विविधता के बीच एकता लाने का उन्होंने पूरा प्रयत्न किया।

भारत वर्ष के धार्मिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में अपनी तीव्र तर्कना शक्ति से उन्होंने एक तहलका मचा दिया। बत्तीस वर्ष के अपने छोटे से जीवन में उन्होंने जो काम कर दिखाया वह इतना व्यापक था कि कई लम्बे जीवनों में भी दूसरा व्यक्ति उसे न कर पाता। उन्होंने अपने शक्तिशाली मस्तिष्क और सम्पन्न व्यक्तित्व की ऐसी छाप हिन्दुस्तान पर डाली कि कई शताब्दियाँ बीत जाने पर भी वह आज तक बनी हुई है। उनमें दार्शनिक और विद्वान का, जड़वादी और रहस्यवादी का, कवि और सन्त का तथा एक व्यावहारिक सुधारक और योग्य संगठनकर्त्ता का अजीब मेल था।

शंकराचार्य्य के कामों का लेखा अद्भुत है। अपनी बुद्धि और तर्कशक्ति के बल पर उन्होंने बौद्ध धर्म के विद्वानों को पराजित किया, बौद्ध संघ की तरह उन्होंने भी सन्यासियों का संघ बनाया जिसमें सब जाति के लोग शामिल हो सकते थे। उन्होंने अपने सन्यासियों के चार विशाल मठ भारत वर्ष के चारों कोनों पर स्थापित किये। जिनमें से शृंगेरी मठ मैसूर में, दूसरा ज्योतिर्मठ बद्रीनाथ में, तीसरा शारदा मठ पश्चिमी द्वारिका में और चौथा गोवर्द्धन मठ जगन्नाथपुरी में था।

शंकराचार्य्य की तर्क-शक्ति के तीव्र प्रहार से बौद्ध धर्म जो पहले उत्तर भारत से दक्षिण भारत में चला गया था अब भारत वर्ष से करीब-करीब गायब हो चुका था। शंकर के ग्रंथों, काव्यों और तर्कों से सारे देश में एक

बौद्धिक हलचल मच गई। वे सिर्फ ब्राह्मणों के ही महान् नेता नहीं बने मगर सारे भारतीय जनसमाज को उन्होंने अपनी ओर आकर्षित कर लिया। यह एक असाधारण बात मालूम होती है कि कोई आदमी सिर्फ अपनी बुद्धि के बल पर एक महान नेता बन जाय और फिर करोड़ों आदमियों पर और इतिहास पर अपनी अमर छाप डाल दे।

शङ्कराचार्य ने अपनी विजययात्रा को वाराणसी में पूर्ण किया जहाँ उनका अन्तिम शास्त्रार्थ मण्डन मिश्र नामक महान् विद्वान से हुआ। मण्डन मिश्र को पराजित कर उन्होंने अपने अन्तिम प्रतिद्वन्दी को अपना अनुयायी बनाया और फिर दक्खिन के गर्म प्रदेश का यह महान तपस्वी हिन्दुओं के प्रसिद्ध तीर्थ स्थान केदारनाथ में ऊँचे हिमालय के बर्फ से ढँके प्रदेश में केवल बत्तीस वर्ष की आयु में परलोकगामी हुआ।

इतनी छोटी सी उमर में, इतने बड़े देश में एक मौलिक विचार धारा, एक नवीन आध्यात्मिक चिन्तन का प्रवाह बहा देना मानवीय प्रतिभा के विकास का एक अनुपम और आश्चर्य्यजनक उदाहरण है।

अन्द्रे-गीद

(Andre-Gide)

फ्रेंच साहित्य के आधुनिक युग का साहित्यकार। अन्द्रेगीद की दो रचनाएँ उल्लेखनीय हैं पहली "ले काव दुवातिका" और "नूरितिर तैरेस्त्र"। गीद का चरित्र-चित्रण अत्यन्त स्पष्ट और सीधा सादा होता है। चरित्रों का व्यक्तित्व धीरे-धीरे खुलता जाता है। कथानक का विकास धीमीगति से और एक सुविचारित पद्धति से होता है। जिसमें घटनाओं का विकास और आलोचना परस्पर गुथे हुए होते हैं। गीद की सारी रचनाएँ समाज, धर्म और आचार की परम्परा के विरुद्ध एक चुनौती है। उसके मत से व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार सब कुछ करने का अधिकार है। उसकी यह विचारधारा उसके सारे साहित्य में स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ती है उसकी शैली अत्यन्त मधुर और रोचक है।

अनवरी

फारसी साहित्य का एक प्रसिद्ध कसीदाक़ार। यह मलिकशाह के पौत्र खुरासान के सुलतान संजर के समय में हुआ। इसने सन् १५५४ में हुए खुरासान के विध्वंस पर "खुरासान के आँसू" नामक काव्य लिखा जो अपने करुणराग के लिए प्रसिद्ध है।

अनका माहम

सम्राट अकबर को बचपन में दूध पिलानेवाली धाय। जिसने आगे जाकर साम्राज्य की राजनीति में अनेक षड़यंत्र किये। इसी के षड्यन्त्र से सम्राट का गार्जियन बैरम खाँ सम्राट् की आँखों में खटक गया और अन्त में उसे वहाँ से निकलना पड़ा। तार्दीबेग का सर्वनाश कराने में भी इसी का हाथ था। पीर मुहम्मद शेरवानी इसका खास मददगार और कृपापात्र था।

अनंगपाल तोमर

तोमर क्षत्रिय वंश का एक प्रसिद्ध राजा जिसने देहली शहर को बसाया। इससे पहले देहली के समीप ही इन्द्र प्रस्थ नामक स्थान देहली की तरह राजधानी का काम देता था।

अनंगपाल प्रथम ने नवीं सदी में दिल्ली शहर को बसाया। अलबेरुनी की यात्रा के समय यह शहर अधिक महत्वपूर्ण नहीं था उस समय प्रतिहार क्षत्रियों की सत्ता के अन्तर्गत यह एक छोटा सा मांडलिक राज्य था।

दिल्ली के सुप्रसिद्ध लौह स्तम्भ के लेख से पता चलता है कि तोमरवंश के दूसरे अनंग पाल ने सन् १०५२ में इस स्तम्भ को मथुरा से उखाड़कर दिल्ली में लाकर खड़ा किया। यह लौह स्तम्भ १५०० वर्ष की धूप और बरसात सहते हुए भी आज ज्यों का त्यों खड़ा है। इस पर न तो जंग ही लगा है न उस पर के अक्षर ही मिटे हैं। अनंगपाल के वंशजों ने करीब १०० वर्षों तक देहली पर राज्य किया फिर साम्भर के चौहान वंशीय वीसलदेव ने सन् ११५२ में दिल्ली को जीत कर तोमर राज्य को समाप्त कर दिया।

अनन्तदेव शिलाहार

ठाणा, के शिलाहार वंश का राजा, नागार्जुन का पुत्र माम्वानी का भतीजा सन् १०८५ से ११२५ तक।

अनन्तदेव शिलाहार नागार्जुन का पुत्र था सन् १०९४ के अपने शिलालेख में उसने अपने आपको कोकण चक्रवर्त्ती लिखा है इससे पता लगता है कि यह बहुत पराक्रमी और तेजस्वी राजा था।

अनन्तराज

कश्मीर का राजा, राजा संग्राम राज का पुत्र सन् १०२९-१०३९ तक।

कश्मीर की कुख्यात दिद्दा रानी ने अपने पश्चात् अपने भाई के पुत्र संग्रामराज को उत्तराधिकारी बनाया। यह बड़ा बुद्धिमान और समर्थ राजा था। इसने मुहम्मद गजनवी के आक्रमण को दो बार विफल किया इसका राज्य काल १००३ से १०२९ तक कहा।

संग्रामराज का पुत्र अनन्त राज हुआ। इसके शासन काल में काश्मीर के एक राजद्रोही सरदार ने मुसलमानों को कश्मीर पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित किया। मगर अनन्तराज और उसके साथी राजपुत्रों ने इस विशाल यवन सेना का बड़ी बहादुरी से मुकाबिला कर उसे भगा दिया। इसके बाद कश्मीर ३०० वर्षों तक मुसलमानी आक्रमणों से सुरक्षित रहा।

अनन्तराज की पत्नी का नाम सूर्य्यमती था जो एक त्रिगर्त राजा की कन्या थी। ये दोनों पति पत्नी बड़ी धार्मिक भावना के थे। दस वर्ष तक बड़े पराक्रम से न्यायपूर्वक शासन कर अपने पुत्र कलश को राज्य सौंप कर ये दोनों बनवास को चल दिये मगर बाद में कलश ने इन्हें बहुत दुःख दिया जिसके फलस्वरूप अनन्तराज की मृत्यु हो गई और सूर्य्यमती उसके साथ सती हो गई।

अनाम

इण्डोचायना का चीन की दक्षिणी सीमा से लगा हुआ एक प्रान्त जो प्राचीन काल में एक स्वतंत्र राज्य के रूप में था।

अनाम का इतिहास बहुत पुराना है। चीन के हान वंश के सबसे शक्तिशाली सम्राट् वू-ती ने अनाम को जीत कर अपने साम्राज्य में मिला लिया था। बू-ती का शासनकाल ईस्वी सन् पूर्व १४० से ८७ तक था। उसके पश्चात् भी अनाम पर कभी चीन का प्रभुत्व हो जाता था और कभी वह स्वतंत्र हो जाता था। चीनी साम्राज्य के अन्दर चले जाने पर भी यहां के राजा तो वही रहते थे सिर्फ चीन वालों को एक नियमित कर दे दिया करते थे और वे चीन के माण्डलिक राजा कहलाते थे।

ईसा की दूसरी शताब्दी में अनाम के दक्षिण में स्थापित चम्पा नगरी के राजा श्रीमार ने अनाम और तोन्किन पर अधिकार कर लिया था। श्रीमार और उसके उत्तराधिकारी राजा भारतीय थे। इनकी भाषा संस्कृत थी। इन लोगों के द्वारा खुदाये हुए शिलालेख दक्षिणी अनाम में प्राप्त हुए हैं। चम्पा के राजाओं में भद्रवर्मन का नाम बहुत प्रसिद्ध है। वह वेदों का विद्वान था उसने भद्रेश्वर शिव के एक विशाल मन्दिर का निर्माण करवाया था कुछ ही समय में यह मन्दिर सारे दक्षिण पूर्वी एशिया में प्रसिद्ध हो गया और धर्म तथा संस्कृति का एक प्रसिद्ध तीर्थ बन गया।

ईसा की तीसरी सदी में अनाम में पाण्डुरंग नामक शहर बहुत उन्नति कर रहा था और यहीं दो सौ वर्षों के बाद काम्बोज का भी एक बड़ा शहर बसाया गया जिसमें पत्थर की बड़ी-बड़ी इमारतें और मन्दिर थे।

लगभग तीन सौ वर्षों तक हिन्द चीन में तीन अलग-हिन्दू राज्य थे मगर नवीं सदी में राजा जयवर्मन ने इन तीनों राज्यों को एक कर दिया और एक बड़े साम्राज्य का सूत्र पात किया। उसने अपनी राजधानी अङ्कोर को बनाना प्रारम्भ किया जिसे उसके पुत्र यशोवर्मन ने पूरा किया।

अनाम और तोन्किंग के राज्यों में चीनी सभ्यता का प्रभुत्व जरूर था मगर इन राज्यों की अपनी भी संस्कृति, धर्म, भाषा और लिपि थी। चौदहवीं सदी में अनाम के लोगों ने अपनी एक लिपि का आविष्कार किया जिसके अक्षर चीनी लिपि के अक्षरों से भिन्न थे। इस लिपि में अनामी लेखकों ने अपना साहित्य लिखना प्रारम्भ किया। चित्र कला इत्यादि क्षेत्रों में भी इन राज्यों की अपनी पृथक शैली थी। साथ ही इन प्रदेशों में भारतीय संस्कृति और धर्म का भी काफी प्रभाव था। पहले यहाँ पर शैव मत का काफी प्रचार था उसके बाद बौद्ध धर्म प्रचारकों ने भी यहां बौद्ध मत का प्रचार किया।

सन १७७८ के आसपास अनाम की राजगद्दी के लिए उसके दो अधिकारियों में आपस में झगड़ा होने लगा। उस समय फ्रान्स के पादरी अनाम में ईसाई धर्म का प्रचार कर रहे थे तथा फ्रान्स के कुछ व्यापारी तथा दूसरे लोग भी यहाँ रहते थे। इन लोगों ने अनाम की राजगद्दी के लिए लड़ने वाले दो उम्मीदवारों में से एक का पक्ष ले लिया। इसी समय फ्रांस में इतिहास प्रसिद्ध राज्य क्रान्ति हो जाने से वहाँ से तो इन लोगों को कोई मदद नहीं मिल सकती थी पर फ्रान्स के पादरियों और व्यापारियों की अपील पर बहुत से फ्रेन्च स्वयं सेवकों ने अपनी एक फौज बना ली और वे राज्य के उम्मीदवार "गिआलोंग" को विजयी बनाने के लिए उसकी मदद पर आ गये। इनकी मदद से गिआलोंग अनाम की गद्दी प्राप्त करने में सफल हो गया।

आगे चलकर यही गिआलोंग बड़ा प्रतापी सम्राट बना इसने अनाम के अतिरिक्त तोन्किन, कोचीन चायना, लाओस और कम्बोडिया को भी अपने साम्राज्य में मिला लिया। चूँकि गिआलोंग फ्रेंच लोगों की मदद से विजयी हुआ था अतएव स्वाभाविक था कि उसके राज्य में फ्रेन्च लोगों का राजनैतिक और धार्मिक प्रभुत्व बढ़ने लगा।

उन्नीसवीं सदी में भी फ्रेञ्च लोगों का प्रभाव वहाँ बढ़ता रहा पर अब यह चीज अनाम की जनता और वहाँ की सरकार की आँखों में खटकने लगी। जगह २ फ्रेञ्च लोगों के खिलाफ विद्रोह होने लगे। तब फ्रेञ्च सेनाओं ने अनाम के तत्कालीन राजा के खिलाफ युद्ध शुरू कर दिया अनाम का राजा मुकाबिला नहीं कर सका और सन् १८६३ की संधि में उसको कोचीन चायना का प्रदेश और एक बहुत बड़ी हरजाने की रकम फ्रेन्च लोगों को देनी पड़ी। १८८३ में अनाम के राजा ने भी फ्रान्स की अधीनता स्वीकार कर ली। १८९३ में लाओस भी फ्रान्स के कब्जे में आ गया और इस प्रकार धीरे २ सारे इण्डोनेशिया में फ्रान्स का प्रभुत्व कायम हो गया और सब बिखरे हुए राज्य एक केन्द्रीय शासन के अधीन हो गये। फ्रान्स के लोगों ने अपने स्वार्थ के लिए यहाँ की जनता का मनमाने ढङ्ग से शोषण करना प्रारम्भ किया।

मगर संसार का दूसरा महायुद्ध मानों इन शोषित और पराधीन जातियों के लिए स्वाधीनता का अमर सन्देश लेकर आया।

ज्योंही द्वितीय महायुद्ध में जापान ने प्रवेश किया दक्षिण पूर्वी एशिया की जनता को साम्राज्यवाद के खिलाफ अपना मोर्चा संगठित करने का अपूर्व अवसर मिला।

उस समय अनाम का सम्राट बाओदाई फ्रेन्च सरकार की कठपुतली मात्र था, वह अनाम तथा इण्डोचायना में उठी हुई स्वतंत्रता की प्रगति को दबाने में असमर्थ था। उस समय यहाँ की स्वाधीनता आन्दोलन का प्रमुख नेता हो-ची-मिन्ह था जो कट्टर राष्ट्रवादी होनेपर भी कम्यूनिस्ट विचारधारा का था। अगस्त १९४५ में जब जापान ने आत्मसमर्पण कर दिया तब उस अवसर का लाभ उठाकर इण्डोचायना में विएटनाम रिपब्लिक के नाम से रिपबलिकन राज्य की घोषणा कर दी गई और अपने को फ्रेञ्च अधिपत्य से पूर्ण रूप से मुक्त कर लिया। अनाम के राजा बाओदाई ने सम्राट पद का परित्याग कर दिया और २ सितम्बर १९४५ को विएटनाम रिपब्लिक का शासन सम्पूर्ण अनाम पर व्यवस्थित रूप से कायम हो गया।

अनावृत

बरमा में ग्यारहवीं सदी के अन्तर्गत पागन राज्य का संस्थापक एक वीर पुरुष।

अनावृत बरमा के मध्यकालीन इतिहास का एक वीर पुरुष था। इसने ग्यारहवीं सदी में इरावती नदी के तट पर वर्तमान मांडले के दक्षिण में पागन नामक एक नये

राजवंश का प्रारम्भ किया। मध्यकाल में यह राज्य बरमा का सबसे शक्तिशाली राज्य था। यह राजवंश लगभग दो शताब्दी तक बरमा में बहुत प्रबल रहा। अराकान, तेना सरिम और शान राज्यों के प्रदेश पागन राज्य के शासन में थे। पागन के राजाओं ने चीन के यूनान प्रान्त पर भी आक्रमण किया था और कुछ समय तक यह प्रदेश भी पागन राज्य के अन्तर्गत रहा था। तेरहवीं सदी में चंगेज खाँ के नेतृत्व में मंगोल सेनाओं ने बरमा पर आक्रमण किया, उसी समय पागन राज्य का भी उस हमले के कारण अन्त होगया।

अन्द्रेदा

जेसुइट सम्प्रदाय का ईसाई पोर्तुगीज पादरी जिसने सबसे पहले ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए तिब्बत में सन् १६२६ में प्रवेश किया मगर जो तिब्बत की राजधानी ल्हासा तक नहीं पहुँच सका।

अन्फू-क्लब

सन् १६१८ में चीन की पेकिंग सरकार के प्रधान मंत्री तुआत-ची-जुई द्वारा स्थापित उसके समर्थकों का एक दल।

चीन के राष्ट्रपति युआन-शी-काई की मृत्यु (१६१६) के पश्चात् रिपब्लिकन शासन का उत्तरी चीन में फिर से संगठन किया गया। कर्नल ली-युआन-तुंग राष्ट्रपति बनाया गया और तुआन-जी-चुई प्रधान मंत्री बना जिसने नये मंत्रि मण्डल का संगठन किया। मगर यह सरकार एक दो महीने से अधिक नहीं चली और जुलाई १६१६ में उसका अन्त हो गया तथा राष्ट्रपति ली-युआन-तुगने अपने पद से इस्तीफा दे दिया। इसके बाद फेंग-कुओं-चुंग राष्ट्रपति बना। यह भी तुआन-ची-जुई के विरोध में था।

अक्टूबर १६१८ में फेंग-कुओ-चुंग का राष्ट्रपति काल समाप्त होने पर तुआन-ची-जुई ने पार्लियामेंट के मेम्बरों को पद और रुपये का लोभ देकर हूसू-शिह-चिंग नामक अपने समर्थक को राष्ट्रपति पद पर निर्वाचित कर दिया।

इसी तुआन-ची-जुई ने अपनी सत्ता अक्षुण्ण रखने के लिए अपने समर्थकों का दल अन्फू क्लब के नाम से संगठित किया। इस क्लब के सदस्यों ने परस्पर मिल कर एक गुटबन्दी बनाई और राजकीय पदों की प्राप्ति के लिए ये एक दूसरे की सहायता करने लगे। तुआन-ची-जुई ने इसी समय जापान से बड़ी-बड़ी रकमें कर्ज लीं। जापान सरकार चीन पर अपना राजकीय और आर्थिक प्रभुत्व स्थिर करने के लिए खुले दिल से कर्ज देती थी और कर्ज की रकम का एक निश्चित भाग अन्फू क्लब के सदस्यों की जेब में पहुँच जाता था। इस प्रकार अन्फू-क्लब की सहायता से तुआन-ची-जुई ने पार्लियामेंट को अपने हाथ की कठपुतली बना रक्खा था। सन् १९२० तक अन्फू-क्लब की सहायता से तुआन-ची-जुई उत्तरी चीन के शासन में अपनी मनमानी चलाता रहा। उसके बाद मंचूरिया के सिपहसालार चांग-त्सो-लिन और हुकुआंग के सिपहसालार त्साओ-कुन की सम्मिलित सेनाओं ने पेकिंग पर आक्रमण कर तुआन-ची-जुई को हराकर उसकी सत्ता को खतम कर दिया।

अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार

संसार में सर्वश्रेष्ठ साहित्य का सृजन करने, मानव हित के लिए उपयोगी कोई वैज्ञानिक आविष्कार करने, संसार को युद्ध की लपटों से बचाकर शान्ति स्थापना में सक्रिय सहयोग करने इत्यादि मानव जाति में महान् कार्य करनेवाले लोगों का सम्मान करने के लिए संसार के कुछ धनी लोगों तथा संस्थाओं ने अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार देने की कुछ योजनाएँ चालू कर रक्खी हैं जिनमें प्रमुख योजनाएँ इस प्रकार हैं।

१—नोबेल पुरस्कार

स्वीडेन के वैज्ञानिक आविष्कारक अलफ्रेड बर्नार्ड नोबेल ने अपनी संचित पूँजी ६० लाख पौण्ड को इस उद्देश्य से दान कर दी कि, उसे स्थायी कोष में जमा कर उसके ब्याज से प्रति वर्ष साहित्य, रसायन शास्त्र, भौतिक शास्त्र, शरीर और औषध विज्ञान तथा विश्वशान्ति के कार्य्य क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण रचना करने या सहयोग देनेवाले महान् विद्वानों को एक-एक पुरस्कार प्रदान किया जाय। प्रत्येक

पुरस्कार की राशि करीब-करीब सवा लाख रुपयों तक होती है।

साहित्य विषयक पुरस्कार का निर्णय स्वीडेन की स्वीडिश एकेडेमी ऑफ लिटरेचर, रसायन और भौतिक शास्त्र विषयक पुरस्कार का निर्णय स्वीडिश एकेडेमी ऑफ साइन्स, शरीर शास्त्र और औषधि शास्त्र विषयक पुरस्कार का निर्णय स्टॉकहोम की कैरोलिस्का इन्स्टीट्यूट तथा शान्ति पुरस्कार का चुनाव नारवे की पार्लियामेंट द्वारा चुने हुए पाँच व्यक्ति करते हैं। कभी-कभी एक-एक पुरस्कार दो-दो तीन तीन विद्वानों में विभक्त हो जाता है, कभी उपयुक्त रचना न मिलने पर पुरस्कार नहीं भी दिया जाता है। नोवेल पुरस्कार का प्रारम्भ सन् १९०१ से हुआ। सन् १९१३ में साहित्य का नोबल पुरस्कार भारत के विश्वकवि स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ टैगोर को मिला। और सन् १९३० का भौतिक विज्ञान सम्बन्धी पुरस्कार भारत के महान् वैज्ञानिक श्रीचन्द्रशेखर वेंकट रमण को मिला। कुछ पुरस्कार विजेताओं के नाम—

साहित्य और कला

सन् १९५५—आइसलैण्ड के श्रीहेलडार किलजन लेक्सनेस
सन् १९५६—पोर्टरीको के श्री जुआन रैमोन जिमनेज
सन् १९५७—फ्रान्स के श्री अलबर्ट कैमास
सन् १९५८—रूस के श्री बोरिस पैस्टर नाक
सन् १९५९—इटली के श्री सेलवेटोर कासीमोडो
सन् १९६०—फ्रान्स के श्री सेण्ट जॉन पर्सा

शान्ति पुरस्कार

सन् १९५७—कनाडा के श्री लेस्टर बी० पियर्सन
सन् १९५८—बेलजियम के श्री रेवरेण्ड डोमेनिक जार्ज पायर
सन् १९५९—इंग्लैण्ड के श्री फिलिप जे० नोएल बेकर

कलिंग पुरस्कार

कलिंग के एक धनी व्यक्ति द्वारा यह १००० पौण्ड का पुरस्कार प्रति वर्ष संसार के सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक लेखक को दिया जाता है। सन् १९५८ में यह पुरस्कार आस्ट्रिया के श्री कार्लबोन फ्रिश को मिला था।

लेनिन शान्ति पुरस्कार

सोविएट रूस के द्वारा यह पुरस्कार शान्ति के लिए उद्योग करनेवाले संसार के श्रेष्ठ व्यक्तियों को दिया जाता है। सन् १९६० में यह पुरस्कार संयुक्त राज्य अमेरिका के श्री क्रूसइटोन को तथा इण्डोनेसिया के श्री डॉ० सुकर्ण को मिला था। यदि हम भूलते नहीं हैं तो भारतवर्ष के डॉ० किचलू भी इस पुरस्कार को पाने वालों में हैं।

जर्मनी पुस्तक व्यवसाय का शान्ति पुरस्कार

सन् १९५० से आधुनिक जर्मनी द्वारा यह पुरस्कार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उन बुद्धिजीवी लेखकों को दिया जाता है जिन्होंने अपने कार्य्य और आचरण के द्वारा मानव जाति की शान्ति रक्षा में योगदान दिया है सन् १९६१ में यह पुरस्कार भारत के उपराष्ट्रपति सर्व पल्ली राधाकृष्णन को मिला है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन

(इन्टर नेशनल लेबर आर्गेनिजेशन)

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् सन् १९१९ में वार्सेलीज की संधि में राष्ट्रसंघ की एक शाखा के रूप में इस इण्टरनेशनल लेबर आर्गेनिजेशन की स्थापना हुई थी। अब वह संयुक्त राष्ट्रसंघ के विशिष्ट अभिकरण के रूप में काम कर रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय प्रचार के द्वारा मजदूरों के रहन-सहन में सुधार करना, उनके आर्थिक और सामाजिक ध्येय की पूर्ति में योग देना इसका उद्देश्य है। संसार के औद्योगिक क्षेत्र का सर्वेक्षण, आंकड़ों को इकट्ठा करना तथा औद्योगिक सुरक्षा और स्वास्थ्य के विकास का यह संगठन करता है। यह संगठन विश्व की सरकारों को इस बात का परामर्श देता है कि वे मजदूरों की रक्षा और विकास के लिए किस प्रकार का आधुनिकतम विधान पारित करें। इस संगठन का प्रधान कार्यालय जिनेवा में है। प्रतिवर्ष इसका एक अधिवेशन होता है जिसमें प्रत्येक देश से दो-दो प्रतिनिधि सरकार के एक प्रतिनिधि मजदूरों का और एक प्रतिनिधि पूंजीपतियों का

सम्मिलित होता है यह संगठन समय-समय पर औद्योगिक सामाजिक तथा श्रम सम्बन्धी प्रश्नों पर अपने प्रतिवेदन और सामयिक पत्रिकाएँ प्रकाशित करता है। इसकी प्रबन्ध समिति में ४० सदस्य रहते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन

कार्लमार्क्स के द्वारा सन् १८६४ में किये हुए लन्दन मजदूर सम्मेलन के द्वारा बनाया हुआ संसार का सर्वप्रथम मजदूर संगठन। इस संगठन ने संसार में सर्वप्रथम मगर बहुत छोटे रूप में मजदूर आन्दोलन की नींव डाली।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वितीय

(इण्टरनेशनल, सेकण्ड)

सन् १८८९ में अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ के निर्माण का साम्यवादी विचारधारा द्वारा दूसरा प्रयत्न। इस समय तक मजदूर संघों और श्रमजीवी दलों के बल और साधन काफी बढ़ चुके थे और उनके बहुत से वैतनिक कर्मचारी थे। सन् १८८९ में बना हुआ यह मजदूर संगठन इण्टरनेशनल सेकण्ड कहलाता है। यह पच्चीस वर्ष तक चला। मगर प्रथम महायुद्ध के समय यह कसौटी पर खरा नहीं उतरा। इस संघ में कई ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने मजदूर आन्दोलन को अपने स्वार्थ का सीधन बनाया। आन्दोलन की आड़ में उन्होंने अपने-अपने देश में ऊँचे-ऊँचे पद स्वीकार कर लिये। कोई प्रधान मंत्री बन गये और कोई राष्ट्रपति मगर जिनके बल पर उन्हें यह सौभाग्य नसीब हुआ था उन लाखों आदमियों को उन्होंने मझधार में छोड़ दिया। इसी संगठन को प्रथम महायुद्ध के बाद I. L O के नाम से राष्ट्र संघ ने पुनः जीवन दान दिया। जिसका वर्णन ऊपर दिया जा चुका है।

अन्तर्राष्ट्रीय तृतीय श्रम संगठन

(इण्टरनेशनल थर्ड)

प्रथम महायुद्ध समाप्त होने पर लेनिन ने सन् १९१९ में मास्को में एक नया अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ बनाया। यह विशुद्ध साम्यवादी संगठन था। इसमें केवल माने हुए साम्यवादी ही शामिल हो सकते थे। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान में यह भंग कर दिया गया।

अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम

(इण्टर नेशनल फाइनेंस कार्पोरेशन I. F. C.)

संयुक्त राष्ट्रसंघ के द्वारा स्थापित अन्तर्राष्ट्रीय कोष। जिसकी स्थापना जुलाई १९५६ में की गई।

इस कोष का उद्देश्य संयुक्त राष्ट्रसंघ के कम विकसित देशों के निजी उद्योग क्षेत्रों (Private sactors) की उत्पादन शक्ति बढ़ाने के लिए कर्ज देना है। इन कर्जों की वसूली के लिए वह सम्बन्धित राष्ट्रों की सरकारों से किसी प्रकार की गारण्टी नहीं लेता। इसकी अधिकृत पूंजी दस करोड़ रुपये की है। इसके कार्य संचालन के लिए एक संचालक मण्डल है जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय बैंक के सभी निर्देशक जो कम से कम एक राष्ट्र के प्रतिनिधि होते हैं सदस्य होते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय बैंक के अध्यक्ष इसके भी अध्यक्ष होते हैं। यद्यपि यह संस्था अन्तर्राष्ट्रीय बैंक से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है पर इसका वैधानिक अस्तित्व और इसका कोष अन्तर्राष्ट्रीय बैंक से बिलकुल स्वतंत्र है। इसका प्रधान कार्यालय वाशिंगटन में है।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष

(इण्टर नेशनल मॉनिटरी फण्ड)

विश्व के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और उद्योग को पारस्परिक सहयोग के आधार पर सुदृढ़ एवं विस्तृत करने के उद्देश्य से दिसम्बर सन् १९४५ में इस कोष की स्थापना हुई। इसका प्रधान कार्यालय वाशिंगटन में है।

इसकी स्थापना तब हुई जबकि ब्रिटेन उड्स संविदापत्र के अनुसार इसके कोष का ८० प्रतिशत भाग विभिन्न राष्ट्रों के द्वारा जमा करा दिया गया। अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान में आनेवाली कृत्रिम रुकावटों को हटाना, कम अवधि के विनिमय को सुविधा देना, अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय को सुदृढ़ करना, इत्यादि इसके उद्देश्य हैं। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष वैदेशिक मुद्रा या सोने की

बिक्री सदस्य राष्ट्रों को करता है जिससे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सहायता मिलती है। विभिन्न राष्ट्रों की सरकारों को उनकी आर्थिक समस्याओं के सम्बन्ध में यह उचित परामर्श भी देता है। यह लागत के मामले में मुद्रा स्फीति को रोकता है तथा आयात पर होने वाले नियंत्रण में कमी लाने का प्रयास करता है। वैदेशिक मुद्रा विनिमय के साधन भी यह सभी सदस्य राष्ट्रों के लिए सुलभ करता है। आवश्यकता पड़ने पर यह अपने सदस्य राष्ट्र के पास उसकी आर्थिक एवं मुद्रा सम्बन्धी समस्याओं के हल के लिए विशेषज्ञों को भेजता है। ये विशेषज्ञ सदस्य राष्ट्र की समस्याओं के अतिरिक्त विनिमय सम्बन्धी बातों में भी अपना सुझाव देते हैं।

इसके १७ कार्यकारी संचालक होते हैं। जिसमें से पाँच सबसे अधिक धन जमा करने वाले सदस्य राष्ट्रों के द्वारा नियुक्त किये जाते हैं शेष १२ सदस्य राष्ट्रों के गवर्नरों द्वारा चुने जाते हैं। इसका प्रबन्ध संचालक कार्यकारी संचालकों के द्वारा चुना जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय अणु शक्ति अभिकरण

(इण्टर नेशनल एटामिक एनर्जी एजेन्सी I. A. E. A)

समस्त संसार में अणुशक्ति का प्रयोग शान्ति, सुरक्षा एवं निर्माण की दिशा में करने के उद्देश्य से इस संस्था की स्थापना जुलाई १९५७ में की गई। इसका प्रधान कार्यालय विएना (आस्ट्रिया) में है।

यह संस्था अणुशक्ति के ऐसे प्रयोगों को प्रोत्साहन नहीं देती जिनसे युद्ध की सम्भावना तथा विध्वंस की आशंका बढ़े।

इसके विधान में एक साधारण सभा, प्रशासक परिषद् और एक महानिर्देशक की व्यवस्था है। प्रशासक परिषद में अधिकतम २३ सदस्य होते हैं। साधारण सभा की बैठक वर्ष में एक बार होती है। प्रशासक परिषद् ही महानिर्देशक का चुनाव चार वर्षों के लिए करती है।

अन्तर्राष्ट्रीय बल संकट कोष

(इण्टर नेशनल चिलरेन्स इमरजेन्सी फण्ड)

युद्ध पीड़ित बालकों की सहायता और उनके स्वास्थ्य की उन्नति के लिए दिसम्बर १९४६ में स्थापित संस्था।

सन १९५० में इसके कार्यक्षेत्र को बढ़ाकर, विश्व भर के खास कर अविकसित देशों के बालकों के लिए हर तरह की आवश्यकताओं की पूर्ति इसके कार्यक्षेत्र में ले ली गई। सन् १९५३ में यह विभाग स्थायी बना दिया गया। इस समय इस संगठन का काम लगभग १०० देशों में चल रहा है। इसके द्वारा मलेरिया, यक्ष्मा आदि कठिन रोगों का निवारण, प्रसूतिगृह और शिशु कल्याण गृहों की स्थापना, शिशु आहार, दुग्ध संरक्षण और वितरण आदि कार्य्य किये जाते हैं। इन कार्य्यों के अतिरिक्त भूकम्प, बाढ़ आदि के समय यह विभाग प्रसूता स्त्रियों और बच्चों की अपेक्षित सहायता करता है। भारत के अन्दर भी इस संस्था के द्वारा करीब सौ से अधिक प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित हो चुके हैं।

अनेकान्तवाद

जैन दर्शन शास्त्र का वस्तु स्वरूप को निर्णय करने वाला सिद्धान्त जिसे स्याद्वाद भी कहते हैं।

जैन-तत्व ज्ञान की नींव स्याद्वाद या अनेकान्त दर्शन पर स्थित है। जर्मनी के विद्वान डॉ० हर्मनजेकोबी का कथन है कि इस स्याद्वाद सिद्धान्त के प्रताप से ही महावीर ने अपने प्रतिद्वन्दियों को परास्त करने में बड़ी सफलता प्राप्त की थी। सञ्जय के अज्ञेयवाद के बिलकुल प्रतिकूल इसकी रचना की गई है।

अनेकान्तवाद का अर्थ है वस्तु के स्वरूप का भिन्न भिन्न दृष्टिकोणों से विचार करना, देखना या कहना। इस सिद्धान्त को दूसरे शब्दों में हम अपेक्षावाद भी कह सकते हैं।

अनेकान्तवाद का कथन है कि "संसार में वस्तु का स्वरूप ही कुछ ऐसे ढंग का है वह एक ही समय में एक ही शब्द के द्वारा पूर्णतया नहीं कहा जा सकता। एक मिट्टी का घड़ा है और उसमें घी भरा हुआ है। ऐसी

हालत में यदि हम उसे एक ही शब्द में मिट्टी का घड़ा कहें तो भी वह ठीक नहीं होगा और यदि एक ही शब्द में उसे घी का घड़ा कहें तो भी ठीक नहीं होगा। इसलिए अनेकान्त कहता है कि द्रव्य रूप में वह मिट्टी का घड़ा है और पर्याय रूप में वह घी का घड़ा है। इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु के स्वरूप का निर्णय भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से करने पर ही हम उसके वास्तविक स्वरूप को समझ सकते हैं।

अनेकान्त निरूपण करता है कि संसार की प्रत्येक वस्तु द्रव्य रूप में अविनाशी है मगर पर्याय रूप में विनाशी है। इसी प्रकार संसार की प्रत्येक वस्तु के स्वरूप का निरूपण करने में जैन दर्शन ने सतभंगी सिद्धांत का निर्णय किया है जिसमें प्रत्येक वस्तु के स्वरूप का सात दृष्टिकोणों से विचार किया जाता है। ये सात दृष्टिकोण (१) स्याद्अस्ति (२) स्यान्नास्ति (३) स्यादस्तिनास्ति (४) स्याद्वक्तव्यम् (५) स्यादास्ति अक्तव्यम् च (६) स्यान्नास्ति अक्तव्यम् च, (७) स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्यं च।

इन्हीं उपरोक्त सिद्धान्तों के आधार पर जैन-न्याय शास्त्र की स्थापना हुई है। अंग्रेजी के विद्वान डॉ० थामस का कथन है कि "न्याय-शास्त्र में जैन न्याय का स्थान बहुत ऊँचा है। इसके कितने ही तर्क पाश्चात्य तर्कशास्त्र से मिलते-जुलते हैं। स्याद्वाद का सिद्धान्त बड़ा ही गम्भीर है वह वस्तु की अपेक्षाकृत दृष्टि से भिन्न भिन्न स्थितियों पर अच्छा प्रकाश डालता है।"

अन्नपूर्णा बाई

नागपुर के भोंसले घराने की विधवा राजमाता, राजा रघु जी भोंसले की धर्मपत्नी।

सन् १८५३ में बरार के राजा रघु जी भोंसले का एकाएक देहान्त हो गया। अपने जीवन काल में वे किसी दत्तक पुत्र को नहीं ले सके थे और न उनके कोई सन्तान थी। इसलिये लार्ड डलहौजी ने उनके सारे प्रान्त को जब्त करके उनके राजमहल के हाथियों को सौ-सौ रुपये में और घोड़ों को बीस-बीस रुपयों में नीलाम कर दिया और उनकी रानियों के सोने और मोतियों के अलंकारों को सरे बाजार नीलाम कर दिया। विधवा राजमाता अन्नपूर्णा का अन्तिम जीवन अत्यन्त अपमानपूर्ण और दुखःमय बीता।

अनन्तवर्मन

कलिंग देश का गंग वंशीय राजा राजराज का पुत्र, समय सन् १०८६ से ११५६ तक।

कलिंग देश आधुनिक उड़ीसा से लेकर आन्ध्र प्रदेश की सीमा तक फैला हुआ था आधुनिक गंजाम, विजगापट्टम और गोदावरी जिले, आन्ध्र अर्थात् पूर्वी घाट का उत्तरीय प्रदेश और महानदी का उत्तरीय प्रदेश तथा उड़ीसा इसमें शामिल था।

ग्यारहवीं सदी के प्रारम्भ में कलिंग देश चालुक्य वंश के हाथ से निकल कर गंग वंश के हाथ में आया।

गंग वंश का दूसरा राजा राजराज था। राजराज का विवाह चोल राजा राजेन्द्र की कन्या रूप सुन्दरी से हुआ था इन्हीं का पुत्र अनन्त वर्मन था जो इस कुल का बड़ा प्रतापी राजा हुआ। इसके इतिहास पर प्रकाश डालने वाले चार शिलालेख प्राप्त हुए हैं।

एक शिलालेख में लिखा है कि राजराज ने चोल राजा द्रमिल से युद्ध करके विजयादित्य की रक्षा की थी। अनन्त वर्मन ने भी पूर्व में वेंगी की और पश्चिम में उत्कल राजा की सहायता की और दोनों दिशाओं में विजय के स्मारक रूप दो जय स्तम्भ खड़े किये।

अनन्त वर्मन का एक ताम्र लेख बंगाल ज० रा० ए० सो० में छपा है। जिसमें उसके द्वारा उड़ीसा को जीत कर अपने राज्य में मिला लेने का उल्लेख है। इस ताम्र लेख में यह भी लिखा है कि पुरी का प्रसिद्ध जगन्नाथ का मन्दिर इसी अनन्त वर्मन—जिसे चोड़-गंग भी कहते हैं—ने बनाया। समस्त संसार का उत्पत्ति कर्त्ता और संसार भर में व्याप्त जगन्नाथ इस सुन्दर मन्दिर में आकर रहने लगा और लक्ष्मी भी रत्ना कर के घर को छोड़ कर यहाँ पर आनन्दपूर्वक रहने लगी।

अएटोनी माल्येवस्की

पौलेएड का एक रोमाण्टिक कवि जिसका समय सन् १७९३ से १८२६ तक है। इसका प्रसिद्ध काव्य 'मार्जा' है जिसमें उसने तुर्कों के विरुद्ध पोलो और यूक्रेनियों के सम्मिलित संघर्ष का वर्णन किया है। इस काव्य में राष्ट्रीयता की उच्च भावनाएं, प्रेम और घृणा के सजीव दृश्य, भूत काल का गौरव और वीरता की कहानियाँ अंकित की गई हैं।

अदी-इब्न-जैद

छठी शताब्दी का प्रसिद्ध अरबी और फारसी भाषा का कवि। (सन् ५८०-६०२) यह ईराक का रहने वाला ईसाई था। इसका फारसी और अरबी दोनों शैलियों पर समान अधिकार था। इसका खानदान अलहीरा के अरब लखमियों का सेवक और प्रिय पात्र था। उस समय इसकी ख्याति अन्तर्जातीय हो गई थी और वह अलहीरा के सब से प्रसिद्ध बादशाह अल-नूमान तृतीय का कृपा भाजन था।

अनसन

इंग्लैएड के राजा जार्ज द्वितीय के समय में अंग्रेजी जलसेना का सेनापति जिसने सन् १७४७ ई० में फ्रान्स की जलसेना को हरा दिया और जिसके परिणाम स्वरूप सन् १७४८ में इंग्लैएड और फ्रान्स के बीच में एक्स ला चेपेल की सन्धि हुई। इस सन्धि के अनुसार प्रशिया के राजा फ्रेडरिक दि ग्रेट को सिलीसिया का प्रान्त मिल गया और मेरिया थेरेसा को आस्ट्रिया की राजगद्दी का अधिकार प्राप्त हो गया।

अन्नागाता

जापान का नाटकीय रंगमंच जिसमें स्त्रियों का पार्ट जापान के अल्पवयस्क तरुण करते थे।

सोलहवीं सदी के अन्त तक जापान के रङ्गमंच पर स्त्री पार्ट की अदायगी वहाँ की महिलाएं करती थीं। इस रङ्गमंच को "ओन्ना कात्रुकी" (नारी रङ्गमंच) कहते थे। मगर सन् १६२९ में शोजाबान के शोगुनी शासन ने इस नारी रंगमंच को सार्वजनिक सदाचार के खिलाफ समझ कर घोषणा के द्वारा उसका अन्त कर दिया। जब नारियां रंगमंच से अलग होगईं तो उनकी जगह स्त्री-पात्र का काम छोटी उमर के तरुण लोग करने लगे इस नई योजना का नाम "अन्नागाता" रक्खा गया। मगर इस योजना से भी जब सर्वजनिक सदाचार की रक्षा होते नहीं देखी गई तो सन् १६५२ में एक दूसरी घोषणा के द्वारा अन्नागाता रंगमंच भी बन्द कर दिया गया।

अनन्त कीर्ति

दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के आचार्य्य जो अनुमानतः ई० स० १०२५ के आसपास हुए। ये बड़े यशस्वी तर्क-शास्त्र के पण्डित थे। इनके लिखे हुए दो ग्रन्थ धर्मज्ञ-सिद्धि और सर्वज्ञ-सिद्धि प्रकाशित हो चुके हैं।

अन्तिओकस द्वितीय

सिकन्दर के ग्रीक सेनापति सेल्यूकस द्वारा स्थापित ग्रीक बाख्त्री साम्राज्य का सम्राट अन्तिओकस द्वितीय। यह सेल्यूकस का उत्तराधिकारी था। इसने मध्यएशिया के अपने साम्राज्य का बहुत उत्तम संगठन और विस्तार किया। ग्रीक इतिहास में यह अन्तिओकस महान के नाम से प्रसिद्ध है मगर इसकी वृद्धावस्था में इसके साम्राज्य का संगठन ढीला हो गया सौर पार्थव तथा बाख्त्री लोगों ने विद्रोह करके स्वतन्त्रा प्राप्त कर ली।

इसके बाद इसके उत्तराधिकारी अन्तिओकस तृतीय ने अपने साम्राज्य को पुनर्संगठित करने के लिये बाख्त्रियों के नेता यूथीदेमो पर हमला किया मगर जब उसमें सफलता नहीं मिली तो उसने बाख्त्री राज्य की स्वतन्त्रता को स्वीकार कर लिया और यूथीदेमो के पुत्र दिमित्रिय के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया। इसके बाद अन्तिओकस ने भारत पर भी आक्रमण किया मगर उसमें भी उसे सफलता न मिली और वापस लौटना पड़ा।

अतिमालोगी

ईसाई सेण्ट इसीदोरँ द्वारा प्राचीन ज्ञान की रक्षा के लिए रचित एक विश्वकोष जो कई सदियों तक यूरोप में ज्ञान कोष का उपयोग देता रहा। इसकी रचना छठीं शताब्दी के अन्तिम चरण में हुई।

अनवर पाशा

तुर्की के जदीद (नवीन) दल का नेता। अनवर पाशा ने कमाल पाशा के पूर्व जदीद तुर्क दल का संगठन किया था और वह तुर्की का एक प्रभावशाली नेता रहा उसके प्रभाव को देख कर तुर्की के सुलतान ने उसे अपने शासन में उच्च स्थान दिया। मगर कमालपाशा का प्रभाव बढ़ने के साथ-साथ तुर्की में अनवरपाशा का प्रभाव कम होने लगा और उसे भाग कर बुखारा आना पड़ा। बुखारा में भी जब मौलवियों के प्रभाव के कारण उसे सफलता न मिली तो वह ताजिकीस्तान की पहाड़ियों में आ गया। इन पहाड़ों में बसनेवाले बासमची लोगों ने अनवरपाशा का समर्थन किया मगर वे लोग भी केवल उसकी सैनिक योग्यता से लाभ उठाना चाहते थे। इसलिए यहाँ पर भी उसे अपने मिशन में सफलता नहीं मिली और इसी निराश स्थिति में उसकी मृत्यु हो गई।

अनानबेन-डेविड

यहूदी जाति में "करायट" सम्प्रदाय का संस्थापक जो आठवीं सदी में हुआ। इस सम्प्रदाय के लोग "ताल्मुद" धर्म ग्रन्थ को न मान कर बाइबिल मात्र को प्रमाण मानते थे और उसी के आदेशों पर चलते थे। करायट सम्प्रदाय के नेताओं ने अपना साहित्य भी प्रचुर मात्रा में निर्माण किया और बाइबिल तथा हिब्रू भाषा के प्रति अपनी निष्ठा से प्राचीन यहूदी परम्परा के नेताओं को प्रभावित किया।

अनाटोल फ्रान्स

फ्रेञ्च साहित्य का अमर उपन्यासकार जो उन्नीसवीं सदी के अन्तिम चरण में तथा बीसवीं सदी के प्रथम चरण में हुआ।

फ्रेञ्च साहित्य के अन्तर्गत बीसवीं शताब्दी, नये यथार्थ वादी आदर्श, नये प्रतीक और नई साधनाओं के साथ अवतीर्ण हुई। साहित्य के अन्तर्गत इस शताब्दी के परिवर्तन की झलक प्रसिद्ध उपन्यासकार "अनाटोल फ्रान्स" के उपन्यासों में। मिलती है। अनाटोल फ्रान्स ने अपनी लोह कलम से फ्रेञ्च भाषा के उपन्यास क्षेत्र को एक नवीन मोड़ दिया।

उसका प्रसिद्ध उपन्यास "थाया" है। थाया एक अत्यन्त सुन्दर और आकर्षक नर्तकी थी। जिसके यहाँ उस समय के अनेक कवियों, दार्शनिकों और विद्वानों का जमघट लगा रहता था। एक ईसाई पादरी जो बड़ा कठिन तपस्वी था और टाट के बने हुए लबादों से अपने शरीर को ढके रहता था, उसको इलहाम हुआ कि थाया का उद्धार करो वह सारे नगर को पाप पथ पर ले जा रही है। पादरी थाया के यहाँ जाकर किसी प्रकार समझा-बुझा कर अपने आश्रम में ले आता है मगर उसका उद्धार करने के साथ ही उसके मन के किसी कोने में एक अहङ्कार की भावना जाग्रत होती है। उसके उपदेशों को सुनकर थाया एक आदर्श तपस्विनी हो जाती है मगर पादरी की भावनाएँ विकृत हो जाती हैं और वह थाया के साथ वासनापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है। उस समय उसकी मनोदशा का वर्णन करने में लेखक ने अपनी कलम तोड़ दी है और बतलाया है कि एक सूक्ष्म अहंकार की भावना ने बढ़ते बढ़ते उस पादरी के अन्दर कितनी कुत्सित भावनाएँ पैदा कर दीं जिसके परिणामस्वरूप थाया का उद्धार हो गया मगर उसके उद्धारक पादरी को अनन्त नरक की यातनाएँ उठाना पड़ी।

वास्तव में इस उपन्यास ने "अनाटोल फ्रान्स" को अमर कर दिया है इसके सिवाय इस लेखक की "लोमंदु मेल" "ल-लिव्रद मोनामी" "ल-येती पीयर" "इस्तवार कोता पेरिन" इत्यादि रचनाएँ भी फ्रेञ्च भाषा की बहुमूल्य सम्पत्ति है।

अना केरेनिना

रूस के प्रसिद्ध साहित्यकार और महात्मा टॉलस्टाय का संसार प्रसिद्ध उपन्यास जो सन् १८७५-७६ में प्रकाशित हुआ।

इस उपन्यास में इस महान् कलाकारने रूस, और सेण्टपीटस वर्ग के उच्च वर्गीय सम सामयिक जीवन का एक सजीव, जीता-जागता, वास्तविक और अनूठा चित्र अंकित कर दिया है। इस उपन्यास में भी महान् कलाकार की कला ने इसकी दूसरी कृतियों ही की तरह राष्ट्रीय सीमा को लांघकर अन्तर्राष्ट्रीय रूप ग्रहण कर लिया है। इस कहानी को पढ़कर कोई भी पाठक यह अनुभव नहीं करता कि वह कोई विदेशी कहानी पढ़ रहा है। अद्भुत कलाकारिता के साथ व्रोन्स्की के प्रति अना के प्रेम का उद्घाटन और विकास होता है। अत्यन्त स्वाभाविक घात-प्रतिघात के साथ कहानी का प्रत्येक दृश्य, प्रत्येक घटना, प्रणय के उतार-चढ़ाव और अन्तिम विपत्ति तक सभी कुछ एक अद्भुत् तरीके से आगे बढ़ता है मगर अन्ततक कहीं भी शिथिलता या अत्यधिक विस्तार का अनुभव नहीं होता सभी कुछ सत्य, सुगम और स्वाभाविक दिखलाई पड़ता है।

अन्नाकस लुकानस

(Annacus lucanus)

लैटिन भाषा का एक प्रसिद्ध रोमन कवि। जिसका समय ईस्वी सन् ३६ से ६५ तक है।

अन्नाकस प्राचीन युग का एक लैटिन भाषा का कवि है। इसने पाम्पेयाई के फार्सलस-युद्ध पर एक वीर काव्य की रचना की। इसकी कविता रोमन महाकवि "वर्जिल" के समकक्ष मानी जाती है। उस काल के अन्य काव्यों की तुलना में यह श्रेष्ठ माना जाता है।

अन्नाकस सेनेका

लैटिन भाषा का एक प्रसिद्ध कवि, जिसका समय ईस्वी सन् पूर्व ४ से लेकर सन् ६५ ई० तक।

यह लुकानस का चाचा था। यह और लुकानस दोनों उस समय प्रचलित रूढ़िवाद के बहुत विरुद्ध थे। प्राचीन मान्यताओं ने उस समय रूढ़ियों का रूप धारण कर लिया था और वे समाज की उन्नति में बाधक हो गईं थीं। अन्नाकस सेनेका ने अपनी कविताओं और नाटकों में इनका प्रबल विरोध किया। जिसके फलस्वरूप रोम के तत्कालीन सम्राट् नीरोने इन दोनों काका भतीजों को देशद्रोही करार देकर देश से निर्वासित कर दिया जिससे मजबूर होकर दोनों को आत्महत्या कर लेनी पड़ी। सेनेका ने नौ ट्रेजिडी-नाटक प्रवास में लिखे थे।

अन्सारी शौकत उल्ला

कांग्रेस के राष्ट्रीय आन्दोलन के समय भारतीय कांग्रेस के एक मुस्लिम नेता डा० शौकत उल्ला अन्सारी। सन् १६२२ में जब महात्मा गांधी गिरफ्तार कर लिये गये उसके बाद कांग्रेस के अन्दर मतभेद होकर दो विचार धाराएं हो गईं। एक विचार धारा ब्रिटिश शासन की कौन्सिल प्रवेश के पक्ष में थी जो 'स्वराज्य पार्टी' के नाम से मशहूर हुई और दूसरी विचार धारा अपरिवर्त्तन के पक्ष में थी इस अपरिवर्तनवादी धारा के समर्थक डा० अन्सारी और राजगोपालाचारी थे। इसके पश्चात् १६२७ में जब मद्रास में कांग्रेस का अधिवशेन हुआ तब डा० अन्सारी इस अधिवेशन के अध्यक्ष थे। इस अधिवेशन में ब्रिटिश सरकार द्वारा भेजे जाने वाले साइमन कमीशन के पूर्ण बहिष्कार का प्रस्ताव पास हुआ। इसी अधिवेशन में यह भी निश्चय हुआ कि कांग्रेस की कार्यकारिणी एक सर्वदल सम्मेलन का आयोजन करे और उसमें वह भारत वर्ष के लिये एक ऐसे विधान का ढाँचा बनाये जो सब दलों को स्वीकृत हो। इसी अधिवेशन में एक प्रस्ताव ऐसा भी पास हुआ जिसमें भारत का अन्तिम लक्ष्य पूर्ण स्वतन्त्रता रखा गया।

सन् १६३३ में जब देश के राजनैतिक आन्दोलन में निराशा का वातावरण छाया हुआ था देश की स्थिति में फिर से जीवन लाने के लिये डा० अन्सारी और डा० विधानचन्द्र राय ने सन् १६३४ के मार्च महीने में कांग्रेसी सदस्यों की एक परिषद् बुलाई। इस परिषद् में अगले

चुनाव को लड़ने के लिये स्वराज्य पार्टी को फिर से जीवित करने का प्रस्ताव किया गया।

डा० अन्सारी राष्ट्रीय विचारों के मुसलमान थे। उन्होंने अंग्रेजी में 'पाकिस्तान' नामक एक पुस्तक लिखी है। उस पुस्तक में पाकिस्तान की कल्पना के मूल आविष्कारक केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के विद्यार्थी चौधरी रहमतअली पर एक टिप्पणी लिखते हुए उन्होंने लिखा है—

"उस समय केम्ब्रिज के भारतीय विद्यार्थियों का साधारणतः यह विश्वास था कि चौधरी रहमत अली को, जो कि न तो कोई विशेष पढ़ाई कर रहा है और न जिसके पास खर्च चलाने के लिये कोई व्यवस्था है, फिर भी जो प्रोपोगेण्डा और दावतों में खूब रुपया उड़ाता है, यह सारी प्रेरणा और धन लन्दन के इण्डिया हाउस से मिलता है। इस बात की पुष्टि इससे भी होती है कि तब तक भारत में पाकिस्तान का नाम न तो किसी ने सुना था न यहां उसकी कोई चर्चा थी उस समय भी इंग्लैण्ड का चर्चिल पंथी दल और टोरी समाचार-पत्र उसका बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन कर रहे थे और पार्लियामेण्ट की दोनों सभाओं में उस पर अनेक बार प्रश्न किये जा चुके थे।"

इन सब घटनाओं से डा० अन्सारी ने उक्त पुस्तक में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि पाकिस्तान और देश विभाजन के कार्य में तथा सम्प्रदायवाद को उकसाने में अंग्रेज राजनीतिज्ञों का कितना गहरा हाथ था।

अनुशीलन समिति ढाका

बंग-भंग के समय में ढाका के अन्दर क्रान्तिकारियों ने अनुशीलन समिति नामक एक संस्था की स्थापना की थी। ढाका अनुशीलन समिति के संस्थापक श्री पुलिन बिहारी दास थे। इस समिति की शाखाएं उत्तरी तथा दक्षिणी बंगाल के कई स्थानों पर फैली हुई थी। उनका अनुशासन और संगठन व्यवस्था भी अच्छी थी।

नवम्बर १९०८ में जब यह समिति गैरकानूनी घोषित की गई उस समय वहाँ से जो कागज प्राप्त हुए उनसे पता चलता था कि इस समिति में प्रवेश करने वाले व्यक्ति को चार प्रतिज्ञाएं करनी पड़ती थीं जो (१) आदि प्रतिज्ञा (२) अन्तिम प्रतिज्ञा (३) प्रथम विशेष प्रतिज्ञा और (४) द्वितीय विशेष प्रतिज्ञा कहलाती थी। इन प्रतिज्ञाओं में ईश्वर, अग्नि, मां काली और अपने नेता को साक्षी बना कर संस्था के आदेशों का पूरा-पूरा पालन करने और अपने विरोधियों को अधिक से अधिक चोट पहुँचाने और समिति के आन्तरिक रहस्यों को किसी पर भी प्रकट न करने का वचन देना पड़ना था और अन्त में कहना पड़ता था कि अगर मैं यह प्रतिज्ञा पूरी न कर सकूं तो ब्राह्मण, पिता-माता और महान देश भक्तों का अभिशाप जला कर मुझे खाक कर दे।

ये प्रतिज्ञाएं अधिकांश अवस्था में भवानी मन्दिर में माँ काली के सम्मुख देव-पूजा के बाद ली जाती थीं। ये भवानी मन्दिर शहर के कोलाहल से दूर एकान्त स्थान में होते थे जहाँ क्रान्ति के पुजारी ब्रह्मचारी और सन्यासी के रूप में शक्ति की आराधना करते थे।

सन १९०८ में ढाका अनुशीलन समिति के गैर कानूनी करार दिये जाने के पश्चात् इसकी शाखा कलकत्ते में खोली गई थी। यहाँ पर श्री मक्खन सेन के नेतृत्व में यह संस्था काफी फली-फूली। देश के अन्य भागों में क्रान्तिकारियों के साथ सम्पर्क बनाये रखने में भी यह संस्था बहुत प्रयत्नशील रहती थी।

अपभ्रंश साहित्य

प्राकृत और मागधी भाषा के परिवार की एक भाषा

सुप्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचन्द्र अपभ्रंश साहित्य के पाणिनी माने जाते हैं। पाणिनी के संसार प्रसिद्ध संस्कृत व्याकरण की ही तरह उन्होंने अपभ्रंश भाषा के एक व्याकरण की रचना की। इन्होंने अपभ्रंश भाषा के साहित्य का एक संग्रह भी किया।

विक्रम की आठवीं और दसवीं सदी के बीच में कवि स्वयंभूदेव और उनके पुत्र त्रिभुवन देव हुए। जिन्होंने हरिवंश पुराण और परम चरित्र (रामायण) की रचना अपभ्रंश भाषा में की। विक्रम की लगभग दसवीं सदी में धनपाल नामक कवि हुआ जिसने "भावी संयता" नामक कथा की अपभ्रंश भाषा में रचना की।

इस कथा का अंग्रेजी अनुवाद जर्मनी के जैन धर्म के सुप्रसिद्ध विद्वान डा० हरमनजेकोबी ने सन् १९१८ में प्रकाशित किया। और इसी का अनुवाद गायकवाड़ ओरिएण्टल सिरीज ने प्रो०गुणे की प्रस्तावना और टिप्पणियों सहित प्रकाशित किया।

महाकवि धवल ने अपभ्रंश भाषा के १८००० श्लोकों में हरिवंश पुराण की। रचना की इसी प्रकार और भी कई जैन विद्वानों और कवियों ने अपभ्रंश साहित्य की खूब श्री वृद्धि की।

यह बात भी ध्यान में रखने योग्य है कि आधुनिक गुजराती भाषा की मूल उत्पत्ति भी इसी अपभ्रंश भाषा से मानी जाती है।

अप्पा साहब

लार्ड डलहौंजी के समय में सतारा का राजा।

सन् १८३९ में ब्रिटिश सत्ता को उलट देने के षड्यन्त्र में शरीक होने के अपराध में लार्ड डलहौजी ने सतारा के राजा छत्रपति प्रतापसिंह को गद्दी से हटाकर उसकी जगह अप्पा साहब को गद्दी पर बिठाया था।

मगर जब सन् १८४८ में अप्पा साहब की मृत्यु हो गई तो उनको निःसन्तान समझ कर सतारा के राज्य को ब्रिटिश राज्य में मिला लिया जब कि छत्रपति के साथ ब्रिटिश सरकार की जो सन्धि हुई थी उसकी पहली शर्त्त इस प्रकार थी।

"बहादुर अंग्रेज सरकार इस बात को मानती है कि दर्ज किया हुआ प्रान्त और प्रदेश छत्रपति महाराज को अथवा उनके संस्थान को दिया जायेगा। महाराज छत्रपति और महाराज के पुत्र-पौत्र वंशज तथा उत्तराधिकारियों को सदा के लिये याने पीढ़ी दर पीढ़ी उपर्युक्त प्रदेश पर राज्य करते रहने का अधिकार है।"

इस शर्त्त के होते हुए भी हिन्दू धर्म शास्त्र के अनुसार अप्पा साहब ने दत्तक पुत्र गोद लिया था फिर भी अंग्रेजों ने सतारा नरेश के निःसन्तान होने का बहाना लेकर सतारा को जब्त कर लिया।

अप्पा राव

तैलगू के राष्ट्रीय कवि गुरजाडा अप्पाराव

आज से सौ वर्ष पूर्व ३० नवम्बर १८६१ को आन्ध्र के विशाखापट्टनम् जिले के रायवरम् नामक ग्राम में श्री गुरजाडा अप्पाराव का जन्म हुआ था। कॉलेज के दिनों में ही उन्होंने तैलगू और अंग्रेजी में कविताएँ लिखना प्रारम्भ किया था। इन्हीं दिनों उनकी सारधंर और चन्द्रहास नामक कविताएँ बंगाल की "रीस एण्ड रैय्यत" नामक पत्रिका में प्रकाशित हुई थीं। उस पत्रिका के तत्कालीन सम्पादक श्री शम्भूनाथ मुकर्जी ने इन कविताओं की बहुत प्रशंसा की थी। उन्होंने उन्हें लिखा था कि आप में देश भक्ति की प्रबल भावनाएँ हैं मगर आपके सामने काँटों का रास्ता है।

श्री अप्पाराव गुरजाडा ऐसे निर्भीक और साहसी कवि थे कि उन्होंने अपनी काव्य वीणा के द्वारा देश भक्ति के विभिन्न सुरों को झंकृत कर जाति को नूतन सन्देश दिया था। उनका "देश भक्ति" नामक गीत जो जनता का कण्ठहार बन गया इस बात का ज्वलन्त उदाहरण है।

३० नवम्बर सन् १९१५ को उनका देहान्त हुआ और ३० नवम्बर १९६१ को उनकी शतवार्षिक जयन्ति सारे आन्ध्र प्रान्त में बड़ी धूमधाम से मनाई गई।

अपरादित्य प्रथम

शिलाहार वंश का प्रतापी राजा। सन् ११२५ से ११४५ तक

अपरादित्य प्रथम, शिलाहार राजा अनन्तपाल का पुत्र था। यह भी एक प्रसिद्ध राजा था। इसका एक पण्डित इसका प्रतिनिधि बन कर काश्मीर की राजसभा में गया था। जिसका कि कश्मीर के कवि मंखा ने अपने श्रीकण्ठ चरित्र में वर्णन किया है।

अपरादित्य द्वितीय

शिलाहार वंश का अन्तिम और प्रतापी राजा। मल्लिकार्जुन का पुत्र। सन् ११७५ से १२०० तक।

दूसरा अपरादित्य शिलाहार वंश का अन्तिम और प्रतापी राजा था। अपने शिलालेखों में उसने अपने लिए 'महामण्डलेश्वर" नहीं बल्कि "महाराजाधिराज" और "कोंकण चक्रवर्त्ति" शब्द का प्रयोग किया है। इससे पता चलता है वह बिलकुल स्वतन्त्र राजा था। अनेक प्रतापी राजाओं की तरह अपरादित्य स्वयं भी बड़ा विद्वान था। याज्ञवल्क्य स्मृति पर अपरार्क टीका उसी की लिखी हुई है। यह ग्रन्थ सारे भारत में आज भी प्रमाणित मानी जाती है। काश्मीर जैसे सुदूर देशों में भी इसे प्रमाण भूत मानते हैं।

अपोलोनियस

ग्रीक साहित्य का कवि जो वीर-काव्यों का बड़ा पक्षपाती थे। इसका प्रसिद्ध काव्य "आर्गोनौटिका" है जिसमें उसने प्राचीन देवोत्तर प्रसंगों को अपने काव्य का आधार बनाया है। इस कवि का अपने समकालीन ग्रीक कवि काली मेकस से गहरा सैद्धान्तिक मतभेद था कालीमेकस स्फुट कविताओं का प्रवर्तक था और अपोलोनियस वीर काव्यों का हिमायती था इन दोनों कवियों के मतभेद से उस समय ग्रीक काव्य-क्षेत्र में दो दल हो गये थे। अपोलोनियस का समय ई० स० पू० २९५ से २१५ तक है।

अफलातून

(Plato)

विश्व का एक महान दार्शनिक, विचारक तथा यूरोपीय राजनीति का जन्मदाता, जो यूनान में पैदा हुआ। जिसने सब से पहले राजनैतिक समस्याओं पर वैज्ञानिक दृष्टि से क्रम बद्ध रूप में विवेचन किया।

अफलातून का जन्म ई० सन् से ४२७ वर्ष पूर्व यूनान के एथेन्स नगर में एक कुलीन घराने के अन्दर हुआ था। उस समय सारा यूनान राजनैतिक दृष्टि से नगर राज्यों में बँटा हुआ था। अफलातून का जन्म ऐसे समय में हुआ जब एथेन्स का नगरराज्य अपने स्वर्ण युग को पार कर अवनति के मार्ग पर आरूढ़ हो गया था। महान विचारक और राजनीतिज्ञ पैरेक्लीज मर चुका था और जनतन्त्र का स्थान "तीस आततायियों" (Thirty Tyrants) की आततायी शाही ने ले लिया था। इसी आततायी शाही ने अफलातून के गुरू सुकरात जैसे महात्मा को केवल अपनी स्वतन्त्र विचारधारा रखने के अपराध में जहर का प्याला पिलाकर मृत्यु-दण्ड दिया था।

सुकरात की इस अनीति पूर्ण हत्या का अफलातून को बहुत ही गहरा सदमा लगा जिसकी वजह से वह जनतन्त्रात्मक शासन के खिलाफ हो गया। वह ऐसे जनतन्त्र को पसन्द भी कैसे कर सकता था जिसने एक ऐसे व्यक्ति को मौत के घाट उतार दिया जिसे वह संसार का सर्वश्रेष्ठ, न्यायशील और बुद्धिमान पुरुष समझता था। संभव है इसी कारण से अपने "रिपब्लिक" नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ में उसने जनतन्त्रात्मक शासन पद्धति को बहुत ही नीचा स्थान दिया है।

प्लेटो जब बीस वर्ष का था तभी वह सुकरात के प्रभाव में आया और जब तक सुकरात जीवित रहा वह उसका शिष्य बना रहा। सुकरात की हत्या से उसकी यह धारणा बन गई कि एक दार्शनिक और एक राजनीतिज्ञ के बीच न केवल ध्येय की एकता का अभाव है वरन् वे एक दूसरे के बिलकुल विरोधी हैं। मगर जन-कल्याण के लिये यह आवश्यक है कि दार्शनिक और राजनीतिज्ञ के बीच की खाई को पाट दिया जाय जिससे सुकरात जैसे तपस्वियों का लाभ राजनीति का क्षेत्र ग्रहण कर सके।

इन सब घटनाओं के प्रकाश में इस महान विद्वान ने अपनी विचार परम्परा का विकास किया और एक ऐसे अद्भुत् तरीके से राज्य, समाज, शिक्षा इत्यादि सभी महत्वपूर्ण सामाजिक विषयों पर गहराई से विचार कर उनमें ऐसा सामञ्जस्य स्थापित किया कि हजारों वर्ष बीत जाने और मानव जाति की विचार धारा में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जाने के बावजूद उसकी विचार धारा की मौलिकता तथा समाजरचना के सम्बन्ध में उसके अनोखे

सिद्धान्तों की महत्ता में आज तक किसी प्रकार की कमी नहीं आई।

प्लेटो की वैसे तो बहुत सी कृतियां हैं मगर उसकी तीन रचनाओं ने संसार के साहित्य में बहुत ऊँचा स्थान ग्रहण किया है—(१) रिपब्लिक (२) स्टेट्समेन (३) लॉज यह बात महत्वपूर्ण है कि इन तीनों कृतियों की विचारधाराओं में थोड़ा बहुत मौलिक अन्तर भी आ गया है जो मनुष्य की आयु और उसके विचारों की परिपक्वता के हिसाब से स्वाभाविक भी है।

रिपब्लिक

सारे संसार का राजनीतिज्ञ और विद्वत् समुदाय रिपब्लिक को अफलातून की सबसे महान और सबसे श्रेष्ठ रचना मानता है। इस ग्रन्थ में अफलातून अपने पूर्ण और सुन्दर रूप में प्रकट हुआ है।

मौलिक रूप से यह एक राजनैतिक ग्रन्थ है जिसका प्रतिपाद्य विषय राज्य का स्वरूप तथा संगठन है मगर इसके साथ ही साथ इसमें समाज शास्त्र, आचार शास्त्र, शिक्षा-शास्त्र और न्याय शास्त्र का भी समावेश हो गया है। इसलिये इस ग्रन्थ का एक नाम "कन्सर्निंग जस्टिस" (Concerning Justice) भी दिया गया है।

रिपब्लिक ग्रन्थ के अन्तर्गत जिस मौलिक प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न अफलातून ने किया है वह प्रश्न "न्याय क्या है ? और जिस आदर्श राज्य में उसकी प्रतिष्ठा होती है उस राज्य का स्वरूप कैसा होना चाहिये ?"

एक आदर्श राज्य की व्याख्या करते हुए अफलातून ने बतलाया है कि एक कल्याणकारी तथा दैवी सम्पद् युक्त राज्य का लक्षण ही यह है कि उसके अन्तर्गत सारे समाज को उचित न्याय प्राप्त हो सके। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये उसमें चार गुणों का समष्टिगत योग क्षेम होना आवश्यक है। ये चार गुण (१) ज्ञान (२) शौर्य्य (३) संयम (४) न्याय हैं।

दूसरी महत्व की बात कल्याणकारी राज्य के लिये उसने यह बतलाई है कि शासन की पवित्रता की रक्षा के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि राजनैतिक और आर्थिक इन दोनों शक्तियों को राज्य में कदापि एकत्रित न होने दिया जाय। शासन की स्वच्छता तथा कुशलता के लिये कोई चीज इतनी घातक नहीं होती जितनी कि राजनैतिक तथा आर्थिक इन दोनों शक्तियों के एकत्रित हो जाने से होती है। राज्य में जिन लोगों के हाथ में राजनैतिक शक्ति होती है उन्हीं के हाथों में अगर आर्थिक शक्ति भी आ जाय तो वे स्वार्थहीन न्याय तथा ज्ञान का मार्ग छोड़ कर अपने वैभव विलास के पीछे जनता का शोषण करना शुरू करते हैं।

इसलिये अफलातून ने रिपब्लिक में समाज को तीन वर्गों में बाँट कर उनके अलग-अलग कर्तव्य सुनिश्चित किये हैं—

(१) एक वर्ग शासकों का वर्ग है। राज्य का शासन चलाने और उसमें न्याय का योगक्षेम करने के लिये एक ऐसा बुद्धिजीवी वर्ग होना चाहिये जिसने शासन संचालन के लिये विशेष प्रकार की शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की हो। शासन संस्था उन्हीं लोगों के हाथ में होना चाहिये जिनमें इस कार्य के लिये आवश्यक प्रकृति प्रदत्त गुण हों। अफलातून ने शासक वर्ग की शिक्षा-दीक्षा पर बहुत जोर दिया है और रिपब्लिक का दूसरा तथा तीसरा अध्याय इसी विवरण से भरा पड़ा है। इस प्रकार के शासकों को उसने आदर्श राजा की संज्ञा दी है। इन राजाओं के कर्तव्य का वर्णन करता हुआ वह लिखता है कि—

"शासक वर्ग के इन बुद्धिजीवी लोगों के पास न तो अपना कोई घर होना चाहिये और न ऐसा गोदाम जो सबके लिये खुला न हो। उन्हें नागरिकों से केवल उतना हीं वेतन लेना चाहिये जो उनकी सामान्य आवश्यकताओं को पूरा कर सके। उन्हें सामान्य भोजनालयों में भोजन करना चाहिये और साधारण घरों में सिपाहियों की तरह रहना चाहिये। सोना और चाँदी को उन्हें छूना भी न चाहिये और न पहनना चाहिये इसी में उनकी मुक्ति है और ऐसा ही करने से वे राज्य के सच्चे संरक्षक बन सकेंगे।

लेकिन यदि उन्होंने घर, भूमि या धन का संचय कर लिया तो वे शासक की जगह गृहस्थी और कृषक बन जावेंगे। सारे समाज के वे मित्र न रह कर शत्रु बन जावेंगे

और जनता के ऊपर अत्याचार करने लगेंगे। वे दूसरों से घृणा करेंगे और दूसरे उनसे घृणा करेंगे और जीवन भर उनके ऊपर बाहरी शत्रुओं की अपेक्षा आन्तरिक शत्रुओं का भय छाया रहेगा और राज्य का विनाश होने में देर न लगेगी !"

अफलातून के द्वारा राजपुरुषों के लिये बनाई हुई इस योजना के साथ जब हम महात्मा गांधी के द्वारा निर्मित मन्त्रियों की आचरण संहिता की तुलना करते हैं तो इन दोनों में एक अद्भुत साम्य नजर आता है। यह एक अजीब बात है कि ईसा से चार सौ बरस पहले का एक महान् दार्शनिक और ईसा की बीसवीं सदी का एक महान् सन्त दोनों एक ही ढंग से और करीब-करीब एक ही आवाज में संसार को चेतावनी दे रहे हैं। १९ अप्रैल १९४७ को महात्मा गांधी ने शासकों या मन्त्रियों के लिये एक आचारसंहिता का निर्माण किया था। उसकी चौथी, पाँचवीं और आठवीं धाराएँ इस प्रकार हैं —

(४) मन्त्रियों का व्यक्तिगत जीवन इतना सादा होना चाहिये कि लोगों पर उसका प्रभाव पड़े। उन्हें हर रोज देश के लिये एक घण्टा शारीरिक श्रम करना ही चाहिये। भले ही वे घर में बैठ कर चर्खा कातें या अपने घर के आसपास साग-सब्जी या अन्न पैदा कर देश का उत्पादन बढ़ाएँ।

(५) मोटर और बंगला तो होना ही नहीं चाहिये। आवश्यक हो वैसा और उतना बड़ा साधारण मकान काम में लेना चाहिये। हाँ, दूर जाना हो तो जरूर मोटर काम में ली जा सकती है मगर उसका कम से कम प्रयोग होना चाहिये।

(६) आज जब देश में करोड़ों मनुष्यों को बैठने के लिये शतरंजी और पहनने को वस्त्र भी नहीं मिलते हैं उस हालत में मन्त्रियों को कीमती सोफासेट, चमकीले फर्नीचर और भड़कीली कुर्सियों का उपयोग नहीं करना चाहिये। ऐसे सादे, सरल और आध्यात्मिक विचार रखने वाले मन्त्रियों या जनता के सेवकों की रक्षा जनता बड़े प्रेम के साथ करेगी। प्रत्येक मंत्री के बंगले के पास जो छः या इससे अधिक सिपाहियों का पहरा रहता है वह अहिंसक मन्त्रिमण्डल के लिए बेहूदा लगना चाहिये।

मगर इतिहास इस बात का साक्षी है कि मनुष्य के स्वाभाविक भोग प्रधान मनोविकारों ने और सत्ता की दुर्दमनीय लालसा ने शासक वर्ग को न तो उस युग में अफलातून की बातें सुनने दीं और न आज के युग में गांधी जी के आदेशों को क्रियात्मक रूप देने दिया। इतिहास मानव प्रकृति की स्वाभाविक कमजोरियों को लिए हुए आज भी उसी गति से चल रहा है जिस गति से ढाई हजार वर्ष पहले चल रहा था।

(२) रिपब्लिक में दूसरा वर्ग उन लोगों का निश्चित किया गया है जो समाज में साहस और शौर्य के गुण का योगक्षेम करे। यह वर्ग सैनिक वर्ग कहलाता है इस वर्ग के ऊपर समाज की आन्तरिक शान्ति की रक्षा और बाहरी आततायियों से उसे बचाने का कर्तव्य निश्चित किया गया था। इस वर्ग की आचार संहिता भी पहले बुद्धिजीवी वर्ग की भाँति रखी गई है अर्थात् यह वर्ग भी सम्पत्ति से तथा पारिवारिक स्वार्थों से अलग रखा गया है।

(३) तीसरा वर्ग समाज का उत्पादक वर्ग है जो खेती करके, वाणिज्य करके समाज के उत्पादन को बढ़ा कर उसका सारे समाज में योगक्षेम करता है। इस वर्ग के लिए सम्पत्ति संग्रह करने, पारिवारिक जीवन व्यतीत करने तथा भोग-विलास की छूट रखी गई है। मगर इसे सांगोपांग रूप में उपरोक्त दो वर्गों के अधीन रहने की व्यवस्था दी गई है। शासन या सुरक्षा के मामले में न तो इस वर्ग से सलाह लेने की आवश्यकता समझी गई और न यह उसमें दखल दे सकता था। इसका काम सिर्फ उपरोक्त दो वर्गों के आदेशों का पालन करना रखा गया।

अफलातून की धारणा थी कि मानव प्रकृति में तीन तत्वों की विशेष रूप से प्रधानता रहती है सबसे पहला तत्व है इन्द्रिय तृष्णा (Appetite) इस तत्व में से भूख, प्यास, काम वासना तथा अन्य कामनाएँ पैदा होती हैं। राज्य के प्रारम्भिक तथा सरलतम रूप में जहाँ कि लोगों का संगठन सूत्र केवल आर्थिक होता है उस समय समाज में इस तत्व की प्रधानता रहती है। मगर यह स्पष्ट है कि समाज का यह स्वरूप अविकसित रहता है और समस्त मानव बुद्धि की अभिव्यंजना इससे नहीं होती। मनुष्य की भूख और कामनाओं से समाज में जो बखेड़े खड़े होते हैं उन पर नियंत्रण

करने के लिए मानव प्रकृति में शौर्य (Spirit) नामक गुण का विकास होता है जिसके परिणामस्वरूप यह आर्थिक समाज सैनिक संगठन में बदल जाता है। किन्तु फिर भी समाज का विकास अपूर्ण रहता है क्योंकि मानव जीवन के बुद्धि तत्व को वहन करने वाला कोई वर्ग उसमें नहीं रहता। इस तत्व का विकास हो जाने पर बुद्धिजीवी शासक वर्ग, शौर्य गुण प्रधान सैनिक वर्ग और इन्द्रिय तृष्णा प्रधान उत्पादक वर्ग-तीनों वर्ग सामाजिक न्याय के लिये अपनी-अपनी सेवाएँ जब राज्य को अर्पित करते हैं तभी एक सुसंगठित और दैवी सम्पद प्रधान राज्य की समाज में स्थापना होती है।

अफलातून का यह वर्ग विभाजन भारतीय वर्ण व्यवस्था की पद्धति से इतना मिलता-जुलता है मानों एक पर दूसरे की छाया हो। भारतवर्ष की वर्ण व्यवस्था में भी इसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ऐसे चार सामाजिक वर्गों की व्यवस्था दी गई है। अन्तर केवल इतना है कि यहाँ शासन सत्ता का भार क्षत्रिय अर्थात् सैनिक वर्ग के हाथ में दिया गया है और ब्राह्मण वर्ग को उस शासक वर्ग पर नियंत्रण करने वाला निरीक्षक माना गया है। ब्राह्मण वर्ग का मान और प्रतिष्ठा क्षत्रिय या शासक वर्ग के ऊपर माना गया है जबकि उनके लिए भोग, विलास और सांसारिक वैभव की मनाई रक्खी गई थी।

भारतीय वर्णमूलक समाज व्यवस्था और अफलातून की समाज व्यवस्था में दूसरा मौलिक अन्तर यह है कि भारतीय वर्ण व्यवस्था की समाज में व्यवहारिक रूप से स्थापना हुई और इसके अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के परिणाम समाज को प्रत्यक्ष रूप में उठाने पड़े जब कि अफलातून की सारी व्यवस्था साहित्य और कल्पना के अन्दर ही सजीव रही। पश्चिमी संसार के कल्पनावादियों में अफलातून का स्थान सर्वप्रथम और सर्वोच्च है। मगर उसकी उत्कृष्ट कल्पना ने इतिहास में कभी साकार रूप धारण नहीं किया। अफलातून का महान लक्ष्य एक आदर्श की खोज था। आदर्श राज्य, राज्य का एक पूर्ण चित्र है, तुलना और समालोचना के द्वारा अफलातून ने उसकी खोज की है, और अपनी कल्पना के आदर्श राज्य के सुन्दर चित्र को उसने अपनी कलम से साहित्य में साकार किया है। रिपब्लिक, स्टेट्स मेन और लॉज, में उसके पात्र गण जो वार्तालाप आपस में करते हैं उनका एक मात्र उद्देश्य है एक पूर्ण राज्य के सिद्धान्तों की तलाश। यथार्थ से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। वह एक ऐसे संसार का चित्र अङ्कित करता है जो मानव जीवन के सच्चे सिद्धान्तों पर आधारित है किन्तु यह सब कल्पना के जगत् में है वास्तविकता के रूप में इस वसुन्धरा पर उसका कोई अस्तित्व नहीं।

इसके विपरीत भारतीय समाज व्यवस्था जो वर्ण व्यवस्था के रूप में चित्रित हुई और राज्यव्यवस्था जो अधिकतर रूप में एकतंत्री शासन के रूप में प्रचलित हुई, यहाँ की समाज के अन्तर्गत उसकी रग-रग में बसी हुई है। हजारों बरसों से, इतिहास के एक अज्ञात काल से इसने हमारे समाज में पूर्ण रूप ग्रहण कर रक्खा है और अपने उन्नत रूप में जहाँ इसने वशिष्ठ, वाल्मीकि, याज्ञवल्क्य, व्यास, मनु, अगस्त्य, शुक्र और कौटिल्य के समान महान समाज व्यवस्थापकों और राज्यनियंत्रकों को ब्राह्मण के रूप में पैदा किया वहाँ मान्धाता, हरिश्चन्द्र, रामचन्द्र, शिवि, दधीचि, युधिष्ठिर, चन्द्रगुप्त मौर्य्य, अशोक, समुद्रगुप्त, चंद्रगुप्त, विक्रमादित्य, हर्षवर्द्धन इत्यादि अनेक न्यायप्रिय, प्रजावत्सल महान् शासकों को भी पैदा किया जो इसी व्यवस्था के बीच पैदा हुए, इसी व्यवस्था में जिन्होंने साँस ली और इसी व्यवस्था में प्रजा का पालन करते हुए जो इतिहास में अमर हो गये। फिर मनुष्य की स्वार्थपरता और उसकी लोभवृत्ति ने जब इस व्यवस्था के मूलप्राण को नष्ट कर दिया, इसके जीवन तत्व को समाप्त कर दिया तो इसके सड़े हुए ढाँचे ने समाज में एक बहुत बड़ा कहर भी पैदा किया, इस निर्बल ढाँचे को रौंदते हुए विदेशी आततायियों ने इस देश को खूब लूटा-खसोटा और अन्त में करीब १००० वर्षों तक यह देश विदेशियों की अमर गुलामी में फँस गया।

मगर इसमें सन्देह की कोई गुञ्जाइश नहीं कि अफलातून की समाज व्यवस्था और आदर्श राज्य की कल्पना केवल कल्पना जगत में फूली फली, वहाँ उसी से मिलती-जुलती समाज व्यवस्था ने भारतीय समाज में पूर्ण व्यवहारिक और साकार रूप धारण किया और इतिहास के

बड़े-बड़े भीषण धक्कों को खाते हुए भी, चाहे क्षत-विक्षत रूप में ही हो वह आज भी समाजमें जीवित है।

अफलातून की शिक्षा-व्यवस्था

उपरोक्त समाज व्यवस्था की स्थापना के लिए अफलातून के मत से यह आवश्यक है कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति समाज के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करके उसमें उचित न्याय का योगक्षेम करे। इसके लिए समाज के प्रत्येक व्यक्ति को विशेष कर शासक वर्ग और सैनिक वर्ग को योग्य शिक्षा से शिक्षित करके उसे उत्तम संस्कारों से संस्कारित करने की आवश्यकता है। इसके लिए अफलातून ने अपनी रिपब्लिक में दो प्रकार की शिक्षा संस्थाओं का सुझाव रक्खा है। एक सामान्य शिक्षा और दूसरी उच्च और वैज्ञानिक शिक्षा। पहली को उसने दूसरी से अधिक महत्व पूर्ण माना है।

शिक्षा जीवन के प्रति मनुष्य के दृष्टिकोण में परिवर्तन करके जीवन में होनेवाली भूलों को रोकती है, समाज के प्रति व्यक्ति के कर्तव्य को वह प्रकाशित करती है। शिक्षा एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा समाज के घटक एक सामाजिक चेतना से भरकर समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करना सीखता है।

सामाजिक उपयोगिता के साथ-साथ अफलातून ने शिक्षा के व्यक्तिगत महत्व को भी नहीं भुलाया है। उसके मतानुसार शिक्षा न केवल समाज सेवा का साधन है बल्कि वह व्यक्ति के लिए सत्य की खोज करने का एक साधन भी है। वह मनुष्य के ज्ञान चक्षुओं को आलोकित करती है ताकि वह इन्द्रिय जगत से परे वास्तविक सत्य का दर्शन कर सके। इस प्रकार सामाजिक धर्म के एक साधन तथा सत्य प्राप्ति के लिए एक ध्रुव बिन्दु के रूप में शिक्षा के ये दो स्वरूप अफलातून के सम्पूर्ण सिद्धान्त में बड़ी सुन्दरता के साथ ग्रथित किये हुए हैं।

अफलातून का मत है कि मानव-जीवन में शिक्षा का क्रम आजीवन चलना चाहिए हाँ उसके साधन, अधिकरण और माध्यम मनुष्य की आयु के अनुसार बदलते रहना चाहिए।

बाल्यकाल में जीवन पर कल्पना का प्रभाव सर्वाधिक होता है, इसलिए प्रारम्भिक शिक्षा का कार्य उस कल्पना को परिमार्जित कर भावनाओं को परिष्कृत करना होता है। किशोर अवस्था प्राप्त होने पर मनुष्य में तर्क का उदय होता है और आत्मा तर्क के द्वारा ग्राह्य बन जाती है इसलिए इस अवस्था में विज्ञान और दर्शन की शिक्षा के द्वारा मनुष्य की तर्कशक्ति को प्रखर और तेजस्वी बनाना चाहिए।

प्रारम्भिक शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य की सामाजिक प्रवृत्ति का विकास करना है और उच्चशिक्षा का ध्येय सत्य की साधना और ब्रह्म का दर्शन है। अफलातून ने सामाजिक प्रवृत्ति के विकास के लिए प्रारम्भिक शिक्षा को अधिक महत्वपूर्ण माना है और रिपब्लिक के एक बड़े भाग में उसका विस्तृत विवेचन किया गया है इसी से "रूसो" के समान महान् दर्शनशास्त्री ने "रिपब्लिक को शिक्षा-विज्ञान का एक महान् ग्रन्थ माना है।"

अफलातून की व्यवस्था में शिक्षा का अनिवार्य होना और उसके ऊपर सम्पूर्ण रूप से राज्य का अधिकार होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त उसने अपने ग्रंथ में स्त्री और पुरुषों के लिए एक ही तरह की समान शिक्षा देने की व्यवस्था दी है, उसके मत से यौन-भेद के अतिरिक्त राज्य सम्बन्धी कार्यों में स्त्री और पुरुष के बीच कोई भेद नहीं है। उसकी यह व्यवस्था एथेन्स की तत्कालीन व्यवस्था के खिलाफ एक प्रकार की बगावत थी क्योंकि उस समय एथेन्स में स्त्रियों को सार्वजनिक जीवन से बिलकुल अलग रक्खा जाता था।

इस शिक्षा व्यवस्था में दूसरी बात यह है कि अफलातून ने इसमें कहीं भी उत्पादक वर्ग का कोई उल्लेख नहीं किया है। यह सारी शिक्षा केवल शासक वर्ग और सैनिक वर्ग के निर्माण के लिए है। उत्पादन वर्ग के लिए कैसी शिक्षा व्यवस्था होनी चाहिए इसका उसने कहीं भी जिक्र नहीं किया है।

उच्चशिक्षा

प्रारम्भिक शिक्षा को समाप्त करने के पश्चात् दो वर्ष तक इन नवयुवकों को सैनिक शिक्षा ग्रहण करनी होगी

जिससे उनमें उचित साहस और वीरता के भावों की उत्पत्ति हो सके।

उसके पश्चात् उच्चशिक्षा की प्राप्ति के लिए उन तेजस्वी और वैज्ञानिक प्रवृत्ति के युवकों को छाँटा जावेगा जिनमें उच्चदर्शन और विज्ञान की अभिरुचि होगी। प्रारम्भिक शिक्षा का उद्देश्य जहाँ युवावस्था में नागरिकता के भावों का योग-क्षेम करना है वहाँ उच्चशिक्षा का उद्देश्य कुछ चुने हुए व्यक्तियों को राज्य का योग्य अभिभावक या शासक बनाना है। इस शिक्षा को बीस वर्ष से लेकर तीस वर्ष की आयु तक देने का रिपब्लिक में विधान है। उच्चशिक्षा का पाठ्यक्रम विद्यार्थियों में ज्ञान का संचार करके उन्हें जीवन के रहस्यों का ज्ञाता बनाना है। इस ध्येय को प्राप्त करने के लिए रिपब्लिक में गणित और ज्योतिष शास्त्र के अध्ययन का विधान है।

दस वर्ष तक इन विषयों का अध्ययन करने के पश्चात् पाँच वर्ष तक तर्क और न्याय (Dialectic) की शिक्षा ग्रहण करने का विधान है इसी शिक्षा के द्वारा विशुद्ध तत्व का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है तत्वसम्बन्धी समस्त विचारों में सर्वोच्च विचार दैवी सम्पद् (Good) की समीक्षा है जो समस्त ज्ञान का लक्ष्य है।

सारांश यह कि उच्चशिक्षा का उद्देश्य "दार्शनिक राजा" तथा अभिभावकों को उत्पन्न करना है जिनका राज्य में सर्वोच्च स्थान रहेगा।

उच्चशिक्षा की जो रूपरेखा "रिपब्लिक" में दी गई है उसके चरितार्थ करने के लिए अफलातून ने ईस्वी सन् से ३८८ वर्ष पूर्व एथेन्स में एक ऐकेडेमी की स्थापना प्रशासक और राजनीतिज्ञ उत्पन्न करने के लिए की थी।

इस प्रकार की उच्चशिक्षा से प्रशिक्षित होकर जो आदर्श राजा शासन के लिए तैय्यार होंगे उनको अफलातूनी व्यवस्था में निर्बाध और निरंकुश शासक के अधिकार दिये गये हैं। ऐसे निरंकुश शासकों के लिए किसी लिखित कानून या स्मृति का कोई नियंत्रण नहीं रक्खा गया है और न ऐसे शासकों को जनमत के प्रति किसी भी प्रकार उत्तरदायी भी माना गया है। ऐसे शासन में सर्वसाधारण का कोई भी भाग नहीं रक्खा गया। सर्वसाधारण को चुपचाप शासक वर्ग की आज्ञाओं का पालन करना पड़ा था।

प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और विद्वान फोस्टर (Foster) के मतानुसार "अफलातून" की सम्पूर्ण राजनैतिक विचारधारा में "दार्शनिक राजा" की धारणा सबसे अधिक मौलिक है।"

फिर भी राजा के हाथ अत्यन्त निरंकुश सत्ता और प्रजा का उसमें किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप न होना अत्यन्त दोषपूर्ण है और यही कारण है कि अफलातून के शिष्य अरस्तू ने अपनी व्यवस्था में दार्शनिक राजा के लिए कोई स्थान नहीं रक्खा है। भारतीय राजनीति में भी आदर्श राजाओं पर कई प्रकार के नैतिक और व्यवस्था सम्बन्धी नियंत्रण रक्खे गये थे।

विवाह-व्यवस्था

शासक वर्ग और सैनिक वर्ग के लिए निजी सम्पत्ति का निषेध करने के साथ ही साथ अफलातून ने अपनी समाज व्यवस्था में इन दोनों वर्गों को पारिवारिक जीवन से भी वंचित कर दिया है।

उसने बतलाया है कि पारिवारिक और सम्पत्ति दोनों एक दूसरे पर आधारित हैं और दोनों ही चीजें मनुष्य की व्यक्तिगत स्वार्थ की भावना को जागृति कर उसे सामाजिक कर्तव्यों से विमुख कर देती हैं। इसके अतिरिक्त परिवार के संकुचित जीवन ने समाज में स्त्रियों के स्थान को अत्यन्त हीन कर दिया है। इस प्रथा के फलस्वरूप स्त्री आर्थिक दृष्टि से पुरुष के अधीन होकर दासता का जीवन व्यतीत करती है, वह घर की चहार दीवारी में बन्द होकर केवल सन्तान उत्पन्न करने और उनका पालन करने के काम की रह जाती है। इस प्रकार समाज का आधा हिस्सा समाज की सेवा करने में असमर्थ हो जाता है।

इसलिए अफलातून स्त्रियों को राज्य की सेवा में लेने और उन्हें उच्चतम शिक्षा प्रदान करने के लिए उन्हें गार्हस्थ्य के जुए से मुक्त करना चाहता था। इस प्रकार विवाह-संस्था का उन्मूलन कर वह नारी को पुरुष के स्तर पर ही ऊँचा उठाना चाहता था।

मगर इसके साथ ही स्त्री और पुरुष के बीच रहनेवाली प्रकृति गत काम लिप्सा की महत्ता को भी वह समझता था और समाज में उत्तम नस्ल की संतान की आवश्यकता से भी वह पूरी तरह परिचित था। इसलिए उसने यह योजना बनाई कि उचित ऋतु और काल में राज्य की ओर से स्वस्थ और सर्वोत्तम युवकों और युवतियों को चुन कर उनको एक साथ रहने का अवसर दिया जाय।

इस प्रकार के समागम से जो सन्तानें उत्पन्न होंगी उनका पालन पोषण राज्य द्वारा स्थापित शिशु गृहों (Creches) में होगा। ताकि न तो किसी बालक को यह पता चलेगा कि उसके माता-पिता कौन हैं और न किसी माता-पिता को ही पता चलेगा कि इन सब बच्चों में उनका बच्चा कौन-सा है। एक ऋतु में उत्पन्न होने वाले सभी बच्चे उस समय विवाहित हुए व्यक्तियों के सामान्य पुत्र पुत्री होंगे, इस प्रकार राज्य स्वयं ही एक बड़ा परिवार हो जावेगा और मेरे तेरे का अन्तर बिलकुल मिट जावेगा।

राज्य के अधःपतित रूप

उत्तम और आदर्श राज्य का सम्पूर्ण विवेचन करने के पश्चात् अफलातून ने "रिपब्लिक" के आठवें और नवें प्रकरण में राज्य के अधःपतित और भ्रष्ट स्वरूपों का विवेचन किया है।

उसका कथन है कि जब समाज में दैवी सम्पद् का ह्रास होकर असुरी सम्पद् जोर पकड़ने लगती है तब राज्य का पतन प्रारम्भ हो जाता है। जब बुद्धि को पदच्युत कर के शौर्य्य उसका स्थान ले लेता है तब राज्य का पहला भ्रष्ट रूप हमारे सामने आता है जिसे सैनिक तंत्र (Timocracy) कहते हैं। इसके बाद एक स्वाभाविक स्थिति यह होती है जब बुद्धि और शौर्य्य दोनों को पराभूत कर धनिक वर्ग शासन सूत्र अपने हाथ में ले लेता है इसे धन-तंत्र (Oligarchy) कहते हैं। इसके आगे की अधःपतित स्थिति में धन का प्रभुत्व नष्ट होकर मनुष्य की विभिन्न तृष्णाएँ प्रभुत्व प्राप्त करने के लिए आपस में संघर्ष करती हैं इसे जनतंत्रवाद (Democracy) कहते हैं। इसके बाद पतन की अन्तिम सीढ़ी वह है जब कि मनुष्य की निकृष्टतम इच्छाएँ समाज पर हावी हो जाती हैं और काम तथा लोभ व्यक्ति और समाज को वशीभूत कर लेते हैं इसे आततायीवाद (Tyranny) कहते हैं। यह हैं आसुरी सम्पद् या पतन का क्रमागत इतिहास जैसे कि क्रमागत उत्थान के इतिहास में आदर्श राज्य का विकास होता है।

स्टेट्स मैन और लॉज

रिपब्लिक के बाद अफलातून की दूसरी महत्वपूर्ण रचनाएँ "स्टेट्स मैन" और "लाज" हैं। यह उसके उत्तर जीवन की कृतियाँ हैं।

रिपब्लिक में आदर्श राज्य की व्यवस्था और दार्शनिक राजा की व्यवस्था करते समय अफलातून ने "सामाजिक कानून" की कोई विवेचना नहीं की। उस ग्रन्थ की विचार प्रणाली के अनुसार दार्शनिक राजा किसी भी रीति-रिवाज और लिखित कानून से बंधा हुआ नहीं होता और न वह शासन-प्रबन्ध में शासित लोगों की रजामन्दी या उनकी सलाह लेने के लिए बंधा हुआ होता है।

मगर रिपब्लिक की रचना के बाद अनुभवों में प्रौढ़ता आने पर उसे यह भान हुआ कि यह आदर्श केवल आदर्श की दुनिया तक ही सीमित है, वास्तविक मानव-समाज के भूतल पर इसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। अतएव अपने अगले इन दो ग्रन्थों में जीवन की वास्तविकताओं के सामने वह झुक जाता है।

अपने स्टेट्स मैन ग्रन्थ में उसने राज्यों का जो वर्गीकरण किया है उसमें यह परिवर्तन स्पष्ट रूप में दिखलाई पड़ता है। इस ग्रन्थ में मोटे रूप में उसने राज्यों को दो भागों में विभक्त किया है। (१) कानून द्वारा निर्मित राज्य और (२) कानून विहीन राज्य। इन दोनों पद्धतियों के फिर उसने तीन-तीन विभाग किये हैं। एकतंत्र, कुलीनतंत्र और जनतंत्र। कानून से स्थापित राज्य में एक का शासन "राजतंत्र" कुछ लोगों का शासन "कुलीनतंत्र" और बहुत लोगों का शासन सुविचारित जनतंत्र कहलाता है इसी प्रकार कानून विहीन राज्य में एक का शासन अत्याचारी राज तंत्र, कुछ का शासन धन तंत्र और बहुत लोगों का शासन अविचारित गणतंत्र के रूप में प्रकट होता है।

कानून विहीन राज्य से कानून समर्थित राज्य निस्सन्देह उत्कृष्ट होता है। कानून विहीन राज्य में जनतंत्र धनतंत्र की अपेक्षा श्रेष्ठ होता है मगर कानून समर्थित राज्य में जनतंत्र निकृष्ट श्रेणी का होता है मगर धनतंत्र की अपेक्षा तो दोनों ही हालतों में जनतंत्र श्रेष्ठ होता है।

इस प्रकार कानून को उसके उचित स्थान पर प्रतिष्ठित करने की जो प्रवृत्ति "स्टेट्स मैन" में अफलातून के अन्दर उदय हुई "लॉज" में उसका पूर्ण विकास हुआ।

लॉज में उसने "आदर्श राज्य" की जगह एक ऐसे "उप आदर्श राज्य" की कल्पना की जो इस मानव लोक में स्थापित किया जा सके। इसलिए इस ग्रन्थ में अफलातून को कल्पना क्षेत्र में गुलांचे भरने के बजाय वास्तविकताओं से टक्कर लेनी पड़ी।

लॉज में अङ्कित राज्य रिपब्लिक में अङ्कित राज्य से कई बातों में भिन्न है। सबसे बड़ा मौलिक अन्तर इसमें यह है कि इस राज्य में कानून सबसे प्रधान है रिपब्लिक की तरह शासक प्रधान नहीं है। इस ग्रन्थ में अफलातून ने कानून को प्रतिष्ठित किया है जिसे रिपब्लिक में बिलकुल उखाड़ कर फेंक दिया था।

मगर अफलातून की कानून सम्बन्धी धारणा आधुनिक धारणा से कहीं अधिक व्यापक है। उसका कानून समस्त जीवन का नियम है। अफलातून कानून और न्याय में कोई भेद नहीं करता था जैसा आज की दुनिया में होता है। वह मनुष्य के समस्त नैतिक जीवन का कानून के द्वारा नियमन चाहता था। अफलातून द्वारा लॉज में वर्णित उप-आदर्श राज्य की दूसरी विशेषता मिश्रित संविधान का सिद्धान्त है जो कानून की प्रतिष्ठा से किसी भी कदर कम नहीं है।

रिपब्लिक में प्रतिपादित निजी सम्पति और निजी परिवार के विरुद्ध विचार प्रणाली को "लॉज" में वह बदल देता है इसलिए इस ग्रन्थ में वह समस्त नागरिकों को चाहे वे शासक हों या शासित, निजी सम्पत्ति और परिवार रखने और उसका सुख भोगने की आजादी कुछ प्रतिबन्धों के साथ देता है। उसका मत है कि समस्त भूमि का नागरिकों में समान वितरण हो, किसी को भी अपनी भूमि बेचने और रेहन रखने का अधिकार न हो। स्थायी रूप से एक पति को एक पत्नी रखने का अधिकार भी इस ग्रन्थ में दिया गया है। इस ग्रन्थ में अफलातून ने नगर सभाओं, परिषदों तथा मजिस्ट्रेटों की भी व्यवस्था दी है इस ग्रन्थ के मतानुसार मजिस्ट्रेट तथा परिषद के सदस्य चुने हुए होने चाहिए।

यह कहना तो गलत होगा कि "लॉज" "रिपब्लिक" का एक विकसित रूप है मगर यह कहने में कोई अतिशयोक्ति न होगी कि "रिपब्लिक" में अफलातून ने जहाँ कल्पना जगत् में उँची-उँची उड़ाने भरी हैं वहाँ लॉज के अन्दर वास्तविकता की वह एक समतलभूमि पर उतर आया है और जीवन की वास्तविकताओं के संघर्ष से पार हो उसने मानव-प्रकृति और यथार्थवाद से अपना नाता जोड़ा है और यही कारण है कि इसी बिन्दु से नाता जोड़ कर उसके शिष्य अरस्तू ने अपने राजनीति शास्त्र (Polities) को आगे बढ़ाया है।

अफनासी

रूस का एक सौदागर जिसने सन् १४६६ से १४७२ तक भारतवर्ष की यात्रा की। उसकी यात्रा का वर्णन कुछ इस प्रकार है—

तारूम से मैं लार गया और लार से बन्दर। यही ओरमुज्द का बन्दर है। यहाँ से भारतीय सागर गया जिसे फारसी में हिन्द समुन्दर कहते हैं। ओरमुज्द बन्दर से समुद्र केवल चार मील है।

यहाँ से भारत में प्रवेश किया। यहाँ मालूम हुआ कि हिन्दू माँस नहीं खाते। न तो बाँझ मवेशी का, न भेड़ का, न मुर्गे-मुर्गियों का और न मछली का! वह सूअर भी नहीं खाते यद्यपि देश में सूअरों की बहुतायत है। वह दिन में दो बार भोजन करते हैं और रात में कुछ नहीं खाते। वह शराब नहीं पीते और न दूसरा ही ऐसा पेय जो नशा करने वाला हो। वह मुसलमानों के साथ नहीं खाते-पीते। उनका भोजन अच्छा नहीं होता। वह आपस में एक दूसरे के साथ नहीं खाते-पीते। यहाँ तक कि अपनी पत्नियों के साथ भी नहीं खाते। वह चाँवल और रोगन (घी) मिली खिचड़ी

और अनेक प्रकार की सब्जियाँ खाते हैं जिन्हें वह रोगन या दूध के साथ पकाते हैं। वह दाहिने हाथ से खाते हैं बाँयें हाथ से कुछ नहीं खाते। वह चम्मच का इस्तेमाल नहीं करते। सफर के समय हर आदमी अपना भोजन आप पकाता है। भोजन के समय वह पर्दा कर लेते हैं।

रूसियों की ही भाँति हिन्दू भी पूर्व की ओर मुँह करके प्रार्थना करते हैं। वह दोनों हाथ ऊपर उठाकर सिर पर रख लेते हैं। फिर जमीन पर पड़ जाते हैं। यही उनका प्रणाम (साष्टांग प्रणाम) करना है। भोजन के पहले उनमें से कुछ अपने हाथ-पाँव धोते हैं और कुल्ला करते हैं।

देवालयों में कोई दरवाजा नहीं होता। उनका रुख पूर्व की ओर होता है। कुछ मूर्तियों का मुख उत्तर की ओर भी होता है। जब हिन्दुओं में कोई मर जाता है तो उसके शरीर को जलाकर उसकी राख पानी में डाल देते हैं। जब किसी औरत के बच्चा होता है तो पति उसे ले लेता है। लड़के का नामकरण पिता करता है और लड़की का माता। उनके आचार व्यवहार अच्छे नहीं हैं और न उनमें कोई शर्म है। मिलते और अलग होते समय वह ईसाई साधुओं की भाँति अपने दोनों हाथ जमीन की ओर कर लेते हैं कुछ बोलते नहीं।

दाबुल से कालीकट पच्चीस दिन का रास्ता है। कालीकट से सिंघल पन्द्रह दिन का, सिंघल से जावा एक महीने का, जावा से पेगू (बर्मा) बीस दिन का, पेगू से चीन और महाचीन फिर एक महीने का! यह सारी यात्रा समुद्र की राह है। चीन से खिताई की यात्रा खुश्की से छः महीने की और समुद्र से चार महीनों की है।

हे मेरे भगवान! मेरी आशाएँ तुझ पर लगी हैं। मैं नहीं जानता कि हिन्दुस्तान से किधर को जाऊँ औरमुज्द से खुरासान को राह नहीं। चगताई के लिये रास्ता नहीं और बहरैन और यज्द्र के लिये भी कोई मार्ग नहीं। सर्वत्र विद्रोह हो रहे हैं। सर्वत्र बादशाह भगाये जा रहे हैं। मिर्जा जहानशाह को उजून (हसन) वेग ने मार डाला है। सुल्तान अबूद सईद को जहर दे दिया गया है। उजून वेग अब शीराज में हैं पर उस मुल्क में उसकी स्वीकार नहीं किया है। यादगार मोहम्मद उसके पास नहीं जाता वहाँ जाने में उसको खतरा मालूम होता है और कोई राह नहीं। मेरे मक्का जाने का मतलब है मुसलमान हो जाना। ईसाई होने की वजह से मक्का जाने में मेरी खैरियत नहीं है। हिन्दुस्तान में रहने का मतलब है अपने पास जो कुछ है सबको खर्च कर डालना। क्योंकि यहाँ का रहन-सहन बहुत मँहगा है। मैं अकेला हूँ पर मेरा रोजाना खर्च ढाई अल्तीना (अशर्फी) है। यहाँ मन भर कर शराब मैंने कभी नहीं पी।

एक स्थान पर अफनासी लिखता है—भगवान रूस की रक्षा करे। इस संसार में रूस के समान अच्छा कोई मुल्क नहीं है यद्यपि वहाँ के बायर अच्छे नहीं हैं।

अफनासी वास्कोडीगामा के भारत पहुंचने से ३२ वर्ष पूर्व भारत में आया था। उस समय इस देश में बहमनी सुल्तान महम्मद शाह तृतीय शासन करता था।

अफीम का युद्ध

अफीम काले रंग की एक विषैली और नशीली वस्तु होती है। इसमें "मार्फिया" और "नरकोटाइन" नामक विषैले तत्व रहते हैं। भारतवर्ष में विशेष रूप से मालवा प्रान्त में इसकी बड़े पैमाने पर बहुत पुराने समय से खेती होती है।

भारत में जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यापारिक पंजे दृढ़ता से जम गये तब उसने दूसरे व्यापारों के साथ अफीम के व्यापार की ओर ध्यान देना प्रारम्भ किया। चीन के लोग पन्द्रहवीं सदी से ही अफीम से थोड़े थोड़े परिचित हो गये थे। उसी समय से भारत से थोड़ी-थोड़ी मात्रा में चीन को अफीम जाती थी मगर यह व्यापार बहुत सीमित था।

उन्नीसवीं सदी में योरोपीय लोगों के सम्पर्क से खास कर ईस्ट इण्डिया कम्पनी की वजह से यह व्यापार चीन में जोर पकड़ने लगा। चीनी लोग तम्बाकू की जगह अफीम को ही पीने के आदी होने लगे। चीनी सरकार लोगों की इस आदत को छुड़ाना चाहती थी क्योंकि इसका वहाँ के लोगों के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ रहा था और यह

व्यापार देश का बहुत सा धन भी खींच कर बाहर ले जा रहा था ।

सन् १८०० में चीनी सरकार ने एक आदेश जारी करके अपने देश में किसी भी काम के लिए अफ़ीम का आना रोक दिया । लेकिन चूंकि इस व्यापार से विदेशी व्यापारियों को अन्धाधुन्ध फायदा हो रहा था इसलिए वे इस आदेश के बावजूद चोरी-चोरी अफ़ीम लाकर कैण्टन बन्दरगाह के द्वारा बड़े-बड़े मुनाफे पर उसे बेचते थे ।

अन्त में चीन सरकार ने अफ़ीम की रोक थाम के लिए एक सख्त और ईमानदार व्यक्ति "लिन-सी-हो" को स्पेशल कमिश्नर नियुक्त किया । उसने फौरन इसके लिए मजबूती से कदम उठाया । वह दक्षिण के कैण्टन नगर पहुँचा जो इस अवैध व्यापार का मुख्य केन्द्र था । वहाँ पर उसने इन विदेशी व्यापारियों के पास से बीस हजार अफ़ीम की अवैध पेटियाँ बरामद की और उन्हें नष्ट करवा दिया । इस कमिश्नर ने जो अफ़ीम नष्ट करवाई थी उसमें अधिक तर अंग्रेज व्यापारियों की थी ।

इस घटना से उत्तेजित होकर इंग्लैण्ड की सरकार ने सन् १८४० में चीन के विरुद्ध लड़ाई छेड़ दी जिसे "अफ़ीम का युद्ध" कहा जाता है । क्योंकि यह युद्ध चीन पर अफ़ीम लादने के लिए ही लड़ा और जीता गया था ।

अंग्रेजों ने अपने जहाजी बेड़े से कैण्टन और दूसरी जगहों की नाका बन्दी कर दी । चीन का कोई बस नहीं चला । दो वर्ष बाद सन् १८४२ में उसे अपमान पूर्ण संधि करनी पड़ी जिसे नानकिंग की संधि कहते हैं । इस संधि के अनुसार उसे अपने पाँच बन्दरगाह विदेशी व्यापार के लिए खासकर अफ़ीम के व्यापार के लिए खोल देने पड़े । कैण्टन के पास हांगकांग टापू पर भी अंग्रेजों ने कब्जा कर लिया और युद्ध के हरजाने के रूप में तथा नष्ट की गई अफ़ीम के हरजाने के रूप में करोड़ों रुपये चीन से वसूल किये । इस प्रकार अंग्रेजों ने अपने स्वार्थ के लिए अफ़ीम के समान जहरीला पदार्थ चीन की जनता पर जबर्दस्ती लाद दिया ।

अफ़जल खां

बीजापुर की आदिलशाही सरकार का एक मशहूर सेनाध्यक्ष जो शिवाजी के खिलाफ अभियान करने में मारा गया ।

सन १६५६ में आदिलशाह की मृत्यु होने पर बीजापुर के नवीन सुल्तान ने छत्रपति शिवाजी का पूर्ण रूप से पराभव करने का निश्चय किया क्योंकि उस समय शिवाजी ने अपनी सैनिक शक्ति का काफी संगठन कर लिया था और बीजापुर के तोरण, राजगढ़, सिंहगढ़, पुरन्धर, कोकण इत्यादि किलों पर उन्होंने अपना अधिकार जमा लिया था ।

अफ़जल खाँ के सेनापतीत्व में एक बड़ी भारी सेना बीजापुर शासन ने भेजी । अफ़जल खाँ शिवाजी के दुर्गम पहाड़ी स्थानों पर पहुंच कर कुछ घबरा गया । उसने कृष्ण भास्कर नामक एक सन्देशवाहक के साथ शिवाजी को एक पत्र लिखा, जिसमें अफ़जल खां ने बचन दिया कि अगर शिवाजी युद्ध करने का विचार छोड़ दे तो वह उसके जीते हुए किलों व जिलों को स्थायी रूप से दिलवा देगा । पत्रवाहक कृष्णजी भास्कर शिवाजी से बड़े प्रेम से मिला और उससे मीठी-मीठी बातें करके उसे कई प्रलोभन दिये । मगर शिवाजी उसकी सारी चालों को समझ गये । उन्हें अपने दूत से मालूम होगया था कि अफ़जल खाँ उन्हें इस कौशल से गिरफ्तार करना चाहता है । उन्होंने कृष्ण भास्कर से कहा कि किसी एक निश्चित स्थान पर वे दोनों बिना रक्षक के आपस में मिलेंगे । अफ़जल खाँ एक हट्टा कट्टा और कद्दावर पुरुष था । गले मिलते समय उसने शिवाजी को जोरों से दबाया और दाहिने हाथ से उनको छुरा भोकने का उपक्रम करने लगा मगर शिवाजी पहले ही से सावधान थे । उन्होंने अपने पास छुपा कर रखे हुए बाघ नख को निकाल कर अफ़जल खाँ की छाती चीर दी और उसे गिराकर उसका सिर काट लिया । उसके बाद दोनों ओर की सेनाओं में भयंकर लड़ाई हुई जिसमें शिवाजी की सेनाओं ने अफ़जल खाँ की सेना को करारी हार दी और उसके सामान और तोपों को लूट लिया ।

अफ्रीकी एशिया ऐक्य सम्मेलन

(अफ्रीकी एशियन सालिडेरिटी कान्फ्रेन्स)

अफ्रीका और एशिया के देशों को एक सूत्र में बाँधने तथा पराधीन देशों की स्वाधीनता की आवाज को बुलन्द करने के लिए यह सम्मेलन मिस्र की राजधानी काहिरा में २६ दिसम्बर १९५७ से १ जनवरी १९५८ तक हुआ था। इस सम्मेलन में दोनों महादेशों से करीब ५०० प्रतिनिधि आये थे। इस सम्मेलन ने कई प्रस्ताव पास किये जिनमें साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, रंगभेद आदि की निंदा की गई। केनिया, कैमेरुन, उगाण्डा, सोमालीलैण्ड, मैडागास्कर, आदि देशों की स्वतन्त्रता की माँग की गई। उत्तरी और दक्षिणी कोरिया, तथा उत्तरी और दक्षिणी विएटनाम को मिला देने का समर्थन किया गया। राष्ट्रसंघ में साम्यवादी चीन और मंगोलिया को स्थान देने की सिफारिश की गई। तथा आइजनहोवर सिद्धान्त और बगदाद संधि को अरब राष्ट्रों के लिए घातक बतलाया गया। काहिरा में इस संगठन की एक स्थाई समिति निर्माण करनेका निश्चय किया गया। इस सम्मेलन का दूसरा अधिवेशन सन् १९६० में कोमाकारी में हुआ।

इस सम्मेलन को साम्यवादी भावना का पूरक मानकर पाकिस्तान, थाइलैण्ड, फिलिंपाइन, मोरक्को, मलाया, साइबेरिया, दक्षिणी विएटनाम, लाओस इत्यादि साम्यवाद विरोधी राष्ट्र इसमें सम्मिलित नहीं हुए। सोविएट संघ से इस सम्मेलन में भाग लेने के लिए २७ व्यक्तियों का एक प्रतिनिधि मण्डल आया था।

अफ्रीकी एशिया आर्थिक सम्मेलन

(अफ्रे-ऐशियन इकानामिक कोआपरेशन आर्गिनिजेशन)

एशिया और आफ्रिका दोनों देशों के बीच आर्थिक सहयोग की वृद्धि करने के उद्देश्य से स्थापित की हुई संस्था। जिसका पहला अधिवेशन सन १९५८ को दिसम्बर में काहिरा में हुआ।

इस सम्मेलन के अध्यक्ष मिश्र के श्री महम्मद रशीद थे। इस सम्मेलन ने दोनों देशों के उद्योग धंधों और वाणिज्य व्यवसाय की उन्नति के लिए अनेक प्रस्ताव पास किये तथा इसके लिए एक स्थायी संस्था का निर्माण किया और इसका कार्यालय काहिरा में रक्खा गया। इस संगठन को सलाह देने वाली एक समिति का निर्माण किया गया जिसमें भारत, चीन, इथोपिया, इण्डोनेशिया, घाना, इराक गीनी, लीबिया, पाकिस्तान, सूडान और संयुक्त अरब गणतन्त्र के प्रतिनिधि रक्खे गये। संगठन की रूपरेखा तैयार करने का भार इसी समिति पर छोड़ा गया। इस सम्मेलन का दूसरा अधिवेशन अप्रैल १९६० को काहिरा में हुआ।

अफ्रीकी जन सम्मेलन

अफ्रीका में अहिंसात्मक क्रान्ति लाने के लिए सुगठित योजना बनाने के लिए घाना में बुलाया हुआ अफ्रीकी देशों का सम्मेलन जिसका पहला अधिवेशन दिसम्बर १९५८ में घाना की राजधानी अंकारा में हुआ।

इस सम्मेलन में अफ्रीका के अलजीरिया, अंगोला, अरब गणतन्त्र, जंजीबार, उगाण्डा, ट्यूनीशिया, टोगोलैण्ड तांगानिका, दक्षिणी रोडेशिया, उत्तरी रोडेशिया, नाइजीरिया मोरक्को, लीबिया, साइबेरिया, केनिया, गिनी, घाना (गोल्डकोस्ट) अबीसीनिया, दहोमी, कैमेरून, सियरालिओन, वेसुरोलैण्ड देशों के प्रतिनिधि शामिल थे। इसके अतिरिक्त ५० राजनैतिक दलों, ट्रेडयूनियनों और छात्र संस्थाओं के भी करीब २०० प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। सम्मेलन की अध्यक्षता केनिया के श्रमिक नेता टॉम-मबोया ने की थी।

सम्मेलन ने एक प्रस्ताव के द्वारा संयुक्त राष्ट्रसंघ से अनुरोध किया कि वह साम्राज्यवादी राष्ट्रों पर इस बात के लिए दबाव डाले कि वे इन देशों की सत्ता वहाँ की जनता के मताधिकार से चुनी हुई गणतन्त्रीय सरकार को सौंपकर स्वयं वहाँ से बिलकुल हट जाय।

दूसरे प्रस्ताव के द्वारा अफ्रीका के स्वतन्त्र राष्ट्रों से अनुरोध किया गया कि अफ्रीका के परतन्त्र देशों द्वारा प्रारम्भ किये गये स्वतन्त्रता संग्राम में वे उन्हें हर तरह की मदद पहुँचावे और दक्षिण अफ्रीका की रंगभेद नीति को प्रोत्साहन देने वाली सरकार से अपना राजनैतिक सम्बन्ध विच्छेद कर लें।

अफ्रीका

अफ्रीका महाद्वीप एशिया के बाद संसार में सबसे बड़ा दूसरा महाद्वीप है। इसका क्षेत्र फल एक करोड़ पन्द्रह लाख वर्ग मील है। अर्थात् यह महाद्वीप एशिया का लगभग दो तिहाई, यूरोप का तिगुना और हिन्दुस्तान से छः गुना है। अफ्रीका के समान संसार में दूसरा कोई महाद्वीप ऐसा नहीं है जिस का तीन चौथाई भाग उष्ण कटिबन्ध में और सिर्फ एक चौथाई भाग शीत कटिबन्ध में हो। इसी कारण इस महाद्वीप में सहारा के समान विस्तृत और सूखा मरुस्थल और बड़े बड़े घने जंगल हैं जिनमें तरह तरह के भयानक बन-जन्तु और विशालकाय साँपों का निवासस्थान है। अफ्रिका के पश्चिमी भाग में गिनी तट का नाम "ह्वाइट मेन्स ग्रेव" अर्थात् गोरी जातियों का श्मशान ही पड़ गया है। क्योंकि यहाँ का गर्म और तर जल वायु (क्लाइमेट) मलेरिया के मच्छरों का जनक है जिससे वहाँ जाने वाले यूरोप निवासी आक्रान्त होकर मर जाते हैं।

अफ्रीका की पर्वत श्रेणियों में दक्षिण पूर्व में ड्रेकन्स वर्ग और पूर्व में कीनिया और किलीमंजरी नामक चोटियाँ सबसे उँची हैं।

झीलों में अफ्रीका की "विक्टोरिया झील" सारे संसार में मीठे पानी की दूसरे नम्बर की झील है। इस झील का क्षेत्र फल सारे सीलोन देश के क्षेत्रफल के बराबर है। विक्टोरिया झील से पूरब की ओर रुडाल्फ़ और न्यासा झीलें, तथा पश्चिम की ओर टाँगानिका और अलबर्ट नाम की झीलें स्थित हैं।

नदियों में अफ्रीका की सबसे बड़ी नदीयाँ नील, कांगो, नाइजर और जेम्बिजी हैं!

नील नदी अफ्रीका की सबसे बड़ी नदी है। इसकी लम्बाई ३५०० मील है। इसकी सहायक नदियों में ब्लू नील और अतबारा ये दो नदियाँ मुख्य हैं! ब्लू नील और अतबारा ये दोनों नदियाँ बाढ़ के समय अपने पानी के साथ चिकनी मिट्टी लाकर मिस्र की मरुभूमि को उपजाऊ बनाती रही हैं। इन्हीं के कारण इतिहास में मिश्र देश को नील का प्रासाद कहते हैं।

काँगो नदी ३००० मील लम्बी है। इसके किनारे पर बसे हुए देश का नाम ही कांगो पड़ गया है जो बहुत समय से बेलजियम का उपनिवेश था मगर सन् १९६० से स्वतंत्र होकर इस समय गृहयुद्ध की ज्वालाओं में झुलस रहा है।

नाइजर नदी २६०० मील और जेम्बिजी नदी १३०० मील लम्बी है। जेम्बिजी नदी के मध्य भाग में "विक्टोरिया प्रपात" नामक एक मशहूर जल प्रपात है जो ४०० फीट की उँचाई से एक दम नीचे गिरता है और जिसका शब्द मीलों तक सुनाई पड़ता है।

इतिहास

अफ्रीका के उत्तरी भाग में समुद्र के किनारे के कुछ प्रदेश रोमन साम्राज्य में सम्मिलित थे। उन्हें छठी–सातवीं शताब्दी में अरब और मूर लोगों ने जीत लिया था। सत्रहवीं शताब्दी में अफ्रीका के दक्षिणी किनारे पर डच लोगों ने "केप आफ गुड होप" बसाया था। उन्होंने सन् १६२५ में पूर्वीय देशों को जाने के लिये विश्राम-स्थल के रूप में एक केन्द्र स्थापित किया। धीरे-धीरे यहाँ पर डच लोग आकर रहने लगे। ये लोग यहाँ पर आदिम जातियों की सहायता से खेती करते थे। इसलिये इनका नाम बोअर पड़ा। यह शब्द "डच किसान" का अर्थ सूचक है। इन बोअर या डच किसानों को अफ्रीका की जंगली जातियों से कई युद्ध करने पड़े। ये लोग साहसी और तेजस्वी होते थे। मगर सभ्य देशों से दूर रहने की वजह से इनकी वृत्तियाँ बहुत संकुचित हो गई थीं।

सन् १८१४ में केप आफ गुड होप को अंग्रेजों ने जीत लिया और सन् १८२० से अंग्रेज लोग भी यहाँ आकर बसने लगे, मगर अंग्रेजों के आचार-विचार बोअर लोगों के आचार-विचारों से बिल्कुल भिन्न थे, तब बोअर लोगों ने अंग्रेजों से परेशान होकर आरेंज और वॉल नदी के बीच वाले प्रदेश में "आरेंज फ्री स्टेट" नाम से एक नवीन उपनिवेश की स्थापना की और बॉल नदी के दूसरे किनारे पर ट्रांसवाल नामक दूसरा उपनिवेश बसाया। इस प्रकार बोअर लोगों ने दो नवीन उपनिवेशों की स्थापना की मगर ये दोनों उपनिवेश स्वतन्त्र होने के

बावजूद आपसी कलह के कारण उन्नति नहीं कर सके। तब इंग्लैण्ड ने सन् १८७७ में इन दोनों उपनिवेशों को अपने राज्य में मिला लिया, मगर इससे ट्रांसवाल की सीमा पर बसने वाले जूलू जाति के लोग बहुत नाराज हुए और उन लोगों ने केटेवायो नामक अपने एक सरदार के नेतृत्व में चालीस हजार सेना एकत्रित कर ट्रांसवाल पर हमला कर के अंग्रेजी सेना को हरा दिया। मगर इसके बाद दूसरी लड़ाई में अंग्रेजी सेना ने जूलू लोगों को हरा कर उनके नेता केटेवायो को गिरफ्तार कर लिया। सन् १८८१ में इंग्लैण्ड के प्रधान मंत्री ग्लेडस्टन ने 'ट्रांसवाल' और 'आरेंज फ्री स्टेट' को बोअर लोगों के स्वतन्त्र उपनिवेश स्वीकार कर लिये।

ट्रांसवाल के स्वतन्त्र हो जाने पर वहाँ प्रजातन्त्र-शासन जारी हो गया और पालक्रूगर नामक एक बोअर नेता इस प्रजातन्त्र का अध्यक्ष हुआ। यह एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति था और वह अपने उपनिवेशों का विस्तार कर के उनको शक्तिशाली बनाना चाहता था। मगर दूसरी ओर दक्षिणी अफ्रीका की केप कालोनी का प्रधान मंत्री सेसिल रोड्स (Cecil Rhodes) भी बड़ा साहसी व्यक्ति था। वह दक्षिण अफ्रीका में अंग्रेजों का साम्राज्य बढ़ाना चाहता था। इन दोनों महत्वाकांक्षी नेताओं के बीच संघर्ष होना अनिवार्य था जो सन् १८९९ में प्रारम्भ हो गया।

बोअर लोगों को यह मालूम था कि हमें आज नहीं तो कल अंग्रेजों से युद्ध करना ही पड़ेगा। इसलिये पालक्रूगर ने पहले ही से युद्ध की तैय्यारी कर रखी थी। बोअर लोग शरीर से हृष्ट-पुष्ट और स्वभाव के साहसी थे। इसलिये उन्हें आरम्भ से ही अंग्रेजी सेना पर विजय प्राप्त होने लगी। उनकी एक सैना ने नैटाल के ऊपर हमला कर सर जार्ज ह्वाइट को गिरफ्तार कर लिया। दूसरे दल ने किम्बर्ले के प्रदेश को उजाड़ दिया और तीसरे दल ने आरेंज नदी के समीप केप कालोनी के भाग पर हमला कर अंग्रेजी सेना को हरा दिया।

अंग्रेजी सेना की इस हार से इंग्लैण्ड का राज्य सिंहासन विक्षुब्ध हो उठा और उस देश की रक्षा के लिये सन् १९०० में केनेडा, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड की सहायता से ढाई लाख सेना लार्ड राबर्ट्स और लार्ड किचनर की अध्यक्षता में जमा कर दी गई। परिणाम जो होना था, वही हुआ। अंग्रेजों की संगठित शक्ति के सामने बोअर लोगों को घुटने टेकने पड़े और ३१ मई १९०२ को 'आरेंज फ्री स्टेट' और 'ट्रांसवाल' बोअरों के दोनों उपनिवेश अंग्रेजी साम्राज्य में मिला लिये गये और सन् १९०५ में उन्हें स्वराज्य के अधिकार प्रदान कर दिये गये।

सन् १९१० में दक्षिण अफ्रीका के आरेंज फ्री स्टेट, ट्रांसवाल, केप कालोनी और नैटाल-इन चारों उपनिवेशों का एकीकरण हो गया और इस संयुक्त राष्ट्र का नाम 'यूनियन आफ साउथ अफ्रीका' (Union of South Africa) रखा गया और इसका पहला प्रधान मंत्री बोथा (Botha) नामक एक अंग्रेज बनाया गया।

दक्षिण अफ्रिका में अंग्रेजी साम्राज्य

आरेन्ज फ्री स्टेट, ट्रांसवाल, केप कालोनी और नैटाल नाम के चार राज्यों को मिला कर यूनियन आफ साउथ अफ्रीका नाम का एक राज्य बना दिया गया और ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत वहाँ के मूल निवासी बोअरों को स्वराज्य दे दिया गया।

अंग्रेज लोगों के दक्षिणी अफ्रीका में बस जाने पर उनके खेतों में काम करने के लिये भारत से मजदूरों को भेजना प्रारम्भ हुआ। लाखों भारतीय मजदूर वहाँ पर भेजे जाने लगे। इन मजदूरों और दूसरे भारतीय लोगों के साथ जिनकी संख्या दक्षिणी अफ्रीका में करीब डेढ़ लाख थी, गोरे लोगों के द्वारा बड़े कठोर अत्याचार किये जाते थे। अंग्रेजी सरकार ने इन लोगों का अपमान करने के लिये कई ऐसे कानूनों का निर्माण किया जो मानवता के भी खिलाफ थे। सन् १८९७ ई० में पास किया हुआ "इमिग्रेशन ला", सन् १९०६ में उपस्थित किया गया एशिया के अमेण्डमेण्ट एक्ट का मसविदा और ट्रांसवाल एशियाटिक कानून जिसके अनुसार प्रत्येक एशियावासी को अपनी ऊँगलियों की छाप देकर रजिस्टर में नाम नोट करवाना पड़ता था भारतीयों के लिए कम अपमानजनक नहीं थे। इसके अलावा इण्डियन इमिग्रेशन-लॉ-अमेण्डमेण्ट ऐक्ट के अनुसार भारतवासियों के विवाह भी अवैधानिक माने जाने लगे और प्रत्येक भारतीय

को न्यायालय में जाकर फिर से विवाह रजिस्टर्ड कराने का कानून बनाया गया।

सन् १८९६ के नवम्बर मास में जब दूसरी बार महात्मा गाँधी नैटाल पहुँचे तो उनके साथ वहाँ के गोरों ने बड़ा अपमाजनक और धींगामुश्ती का व्यवहार किया। उनके जहाज को एक महीने तक बन्दरगाह पर रोक रखा गया। उसके बाद जब वे उतर कर शहर में जाने लगे तो लोगों ने उन पर पत्थर, मछली और सड़े हुए अण्डों की वर्षा की। इस प्रकार की घटनाएँ उनके साथ अनेक बार हुई थीं।

भारतीयों के साथ इस अपमानपूर्ण व्यवहार को देख कर वहीं पर पहले-पहल गांधी जी ने अपने सत्याग्रह आंदोलन का प्रयोग प्रारम्भ किया। यह प्रयोग सन् १९०७ से आरम्भ हुआ और सन् १९१४ तक चलता रहा, जिसके परिणामस्वरूप २ जून सन् १९१४ ई० के दिन 'इण्डियन रिलीफ बिल' को जनरल स्मट्स ने पेश किया और यह बिल पास होने पर १ जुलाई सन् १९१४ को इस पर सम्राट की स्वीकृति भी मिल गई। इस बिल के पास हो जाने से दक्षिण अफ्रीका में रहने वाले भारतीयों को किसी प्रकार राहत की साँस मिली।

दक्षिण अफ्रीका में फ्रांस

अंग्रेजों की ही तरह फ्रांस ने भी अपने उपनिवेशों का विस्तार किया। सहारा का सम्पूर्ण मरुस्थल और अल्जीरिया, मोरक्को, ट्यूनीशिया इत्यादि उपनिवेश फ्रांस के अधिकार में हैं। गिनी तट पर फ्रेंच डेवोमी, सूडान, नाइजीरिया, मेडागास्कर द्वीप इत्यादि भी फ्रांस के अधिकार में रहे हैं। अफ्रीका के पश्चिमी भागों में अंगोला पुर्तगाल का और कांगो बेल्जियम का उपनिवेश रहा है।

अफ्रीका में नवजागरण

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् सारे संसार में स्वाधीनता की जो लहर दौड़ी, उससे अफ्रीका भी वञ्चित नहीं रहा। वहाँ के देशों में भी आजादी की लहर दौड़ गई। मेडागास्कर और अल्जीरिया फ्रांस के बन्धनों से मुक्त हो गये। कांगों ने बेल्जियम के बन्धन को तोड़ डाला। घाना अंग्रेजों के बन्धन से मुक्त हुआ। ट्यूनीशिया भी फ्रांस के बन्धन से निकल गया। अंगोला में पुर्त्तगाल के विरुद्ध भयंकर विद्रोह की अग्नि प्रज्वलित हुई और हो रही है। इस प्रकार अफ्रीका के पराधीन राष्ट्र अपने गुलामी के बन्धनों को तोड़ते हुए अपना नव-निर्माण कर रहे हैं।

अफ्रीका के प्रदेश

व्यवस्थित भौगोलिक दृष्टि से अफ्रीका के विभाग इस प्रकार हो सकते हैं—

(१) नील नदी का बेसिन—नील नदी विषुवत् रेखीय प्रदेश से निकल कर अफ्रीका के पूर्वी ऊँचे पठार पर बहती हुई मिस्र देश में बहती है। सूडान और मिस्र देश की जितनी उन्नति हुई है उसका मूलकारण नील नदी को ही समझना चाहिये। अफ्रीका में मिस्र देश ही एक ऐसा विभाग है जिसकी सभ्यता का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। मिस्र की प्राचीन सभ्यता की याद दिलाने के लिये अब भी वहाँ संसार को चकित करने वाले पिरामिड मौजूद हैं जो प्राचीन काल के विश्व-विख्यात राजाओं की स्मृति में बनाये हुए हैं।

अठारहवीं शताब्दी से मिस्र अंग्रेजों के प्रभुत्व में चला गया था और उसकी सुप्रसिद्ध स्वेज नहर भी अंग्रेजों के अधीन हो गई थी। अंग्रेजी साम्राज्य के प्रभाव को खतम करने के लिए मिस्र में कई बार क्रान्तियाँ हुईं जिनमें जगलूल पाशा के वफद दल ने भी काफी काम किया मगर अन्त में जनरल नजीब के नेतृत्व में मिस्र वासियों ने अंग्रेजी साम्राज्य का तख्ता एकदम उलट कर मिस्र को बिल्कुल आजाद कर दिया। उसके बाद मिस्र के वर्तमान शासक जनरल नासिर ने जनरल नजीब की सरकार को पलट कर अपनी सरकार बनाई। उसके पश्चात् जनरल नासिर की सरकार ने स्वेज नहर के ऊपर अंग्रेजों के अधिकार को चुनौती देकर उस पर मिश्र का अधिकार घोषित कर दिया। जनरल नासिर की इस हिमाकत पर अंग्रेजी सरकार बहुत बौखलाई। उसकी फौजों ने मिस्र के ऊपर आक्रमण कर दिया। हजारों आदमी इस लड़ाई में मारे गये, करोड़ों रुपया बर्बाद हुआ, मगर नतीजा कुछ न निकला। स्वेज नहर पर मिस्र का अधिकार पक्का हो गया। अंग्रेजी फौजों को अपमान पूर्वक पीछे वापस जाना पड़ा।

मिस्र की राजधानी और उसका मुख्य नगर काहिरा है। यह अफ्रीका का सबसे बड़ा नगर है। स्वेज नहर के उत्तरी सिरे पर पोर्ट सैय्यद नामक एक बड़ा और विशाल नगर है जहाँ संसार के सभी देशों के जहाज आकर ठहरते हैं। सिकन्दर महान के द्वारा बसाया हुआ सिकन्दरिया नगर भी मिश्र की शान है और बहुत सुन्दर नगर है।

अटलस प्रदेश

अफ्रीका के जलवायु (क्लाइमेट) के विचार से अटलस प्रदेश एक अच्छा प्रदेश है। यहाँ समुद्र तट पर जाड़ों में अच्छी वर्षा होती है और रूमसागरीय वनस्पति पाई जाती है। अटलस प्रदेश के तीन राजनैतिक विभाग हैं—मरक्को, अल्जीरिया और ट्यूनीशिया। ये तीनों ही पहले फ्रान्स के उपनिवेश थे, मगर अब अल्जीरिया, ट्यूनीशिया आजाद हो गये हैं। अटलस प्रदेश के प्रसिद्ध शहरों में मरक्को की राजधानी फेज, अल्जीरिया की राजधानी अल्जीरियस और ट्यूनीशिया की राजधानी ट्यूनिस उल्लेखनीय हैं।

गिनी तट

गिनी तट के राज्यों में (१) गेम्बिया (२) सियरालिओन (३) गोल्ड कास्ट (४) नाइजीरिया (५) लाइबीरिया (६) केमरून और (७) फ्रेंचवेस्ट अफ्रीका इन सब राज्यों में से अधिकांश अंग्रेजों के प्रभाव में थे, मगर अब धीरे-धीरे ये सब राज्य भी स्वतन्त्रता की राह पर बढ़ते जा रहे हैं।

काङ्गो बेसिन

कांगो नदी के किनारे पर बसा हुआ अफ्रीका का प्रान्त कांगो बेसिन कहलाता है। इस सारे बेसिन पर अभी तक बेल्जियनों का अधिकार था मगर सन् १९६० में जनरल लुलुम्बा के नेतृत्व में कांगो की जनता ने बेल्जियम की सरकार को हटाकर स्वाधीनता प्राप्त कर ली। मगर बेल्जियम के वहाँ से हटते ही कांगो में गृह-युद्ध फूट निकला जनरल लुलुम्बा मार डाले गये और संयुक्त राष्ट्र संघ के बीच में पड़ने के बावजूद भी वहाँ अभी तक गृह-युद्ध जारी है। उसका एक प्रान्त कटांगा अभी तक काँगों में सम्मिलित होने में आनाकानी कर रहा है।

अफ्रीका का पूर्वी पठार

अफ्रीका का विशाल झीलों का पूर्वी पठार, अबीसीनिया की सीमा से दक्षिण में जेम्बिजी नदी तक फैला हुआ है। इस पठार के प्रदेशों में युगाण्डा, केंनिया, टैंगानीका और न्यासालैण्ड सम्मिलित हैं।

युगाण्डा में कपास बहुत होती है तथा यहाँ कहवा, कोको, केला और तम्बाखू की उपज भी उन्नति कर रही है।

केनिया में कहवा, चावल, तम्बाखू, केला और आम की बहुत फसल होती है। मोम्बासा केनिया का प्रसिद्ध बन्दरगाह है और नैरोबी यहाँ का प्रसिद्ध नगर है।

टैंगानिका की राजधानी, मुख्य नगर और बन्दरगाह दारुस्सलाम है। यहाँ से टैंगानिका झील के किनारे तक रेल जाती है।

मोम्बासा और दारुस्सलम के बीच समुद्र तट के समीप जंजीबार और पम्बास नामक दो द्वीप हैं। इन द्वीपों की मुख्य उपज लौंग और नारियल है। ये दोनों द्वीप लौंग की उपज के लिए संसार भर में प्रसिद्ध हैं और सारे संसार को लौंग यहीं से भेजी जाती है।

खनिज सम्पत्ति

दक्षिणी अफ्रीका खनिज सम्पत्ति के लिए शुरू से ही प्रसिद्ध है। यहाँ के खनिज पदार्थों में हीरा, जवाहरात सोना और कोयला मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त ताँबा, टीन लोहा, सीसा, अभ्रक, जस्ता, मैगनीज और प्लेटीनम भी पाया जाता है। हीरे और जवाहरात साउथ वेस्ट अफ्रीका, किम्बर्ले और प्रिटोरिया के पास मिलते हैं। सोना ट्रान्सवाल में कई जगह मिलता है परन्तु ट्रान्सवाल का रेण्ड प्रान्त जिसमें जोहान्सबर्ग का मशहूर नगर स्थित है, सोने की खदानों के लिए बहुत प्रसिद्ध है। कोयले की प्रसिद्ध खानें ड्रेकन्स बर्ग, पहाड़ों के पूर्व की ओर न्यूकैसल नामक नगर में बहुत हैं। न्यूकैसल का कोयला बड़ा उत्तम होता है।

अफ्रीका के द्वीप

अफ्रीका में अटलांटिक महासागर में कुछ द्वीप हैं जिनमें मेडागास्कर सबसे बड़ा है। इस द्वीप में रबड़,

चावल, कपास, कोको, कहवा और तम्बाखू काफी पैदा होता है। दूसरा द्वीप मारिशस है यहाँ की लगभग सारी आबादी हिन्दुस्तानियों की है। यह द्वीप गन्ने की उपज के लिये बहुत प्रसिद्ध है। अफ्रीका के पश्चिम उत्तर में अटलांटिक महासागर के मॉडीरा और कनाड़ी नामक द्वीपों में फल बहुत पैदा होते हैं। जन्जीबार और पम्पा का वर्णन पहले किया जा चुका है।

अफगानिस्तान

भारत वर्ष के उत्तर-पूर्वी सीमान्त पर बसा हुआ एक मुस्लिम राष्ट्र जिसका क्षेत्रफल २५०००० वर्ग मील है जिसकी आबादी १३०००००० है, जिसकी राजधानी काबुल और जिसके प्रसिद्ध शहर कन्दहार, हिरात, मझार-इ-शरीफ और जलालाबाद हैं। इस देश की मुख्य भाषाएं फारसी, पश्तो और तुर्की हैं।

यहां का प्रधान धर्म सुन्नी इस्लाम है। कुछ अल्पमत में शिया लोग भी बसते हैं। यहां का राष्ट्रीय झण्डा काला, लाल और हरे रंग का होता है जिसमें सफेद धारियां होती हैं।

इतिहास

अफगानिस्तान एक प्राचीन देश है जहां का इतिहास कई प्रकार के उतार-चढ़ाव और घटनाओं से युक्त होने के कारण बड़ा दिलचस्प और मनोरंजक हैं। ईसा से करीब पाँच सौ वर्ष पहले यह देश ईरान के सुप्रसिद्ध अखामनी साम्राज्य का एक अंग था। सिकन्दर महान ने अपने प्रबल आक्रमण के द्वारा जब ईरान के अखामनी साम्राज्य को छिन्न-भिन्न कर दिया तब ईरान को पद-दलित करने के बाद भारत विजय के लिये उसे मार्ग में पड़ने वाले अफगानिस्तान को विजय करना पड़ा। सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् यह देश उसके सेनापतियों के द्वारा स्थापित ग्रीक बेक्ट्रियन साम्राज्य का एक अंग रहा जो ईसा के दो सौ बरस पहले तक चलता रहा। उसके पश्चात् यह देश बुद्ध धर्म को मानने वाले कुछ घुमन्तू कबीलों की अधीनता में आता-जाता रहा। भारतवर्ष के मौर्य्य साम्राज्य और मुगल साम्राज्य का शासन भी इस देश पर रहा था।

इसके पश्चात् जब अरबीस्तान में इस्लाम का उदय हुआ और उसका साम्राज्य सारे मध्य एशिया में फैलने लगा तब यह देश भी ईसा की सातवीं शताब्दी से इसी मुस्लिम प्रभाव में चला गया। उसके बाद गजनी में सुबुक्तगीन का उदय हुआ और उसके बाद सुल्तान मुहम्मद गजनवी ने अफगानिस्तान के गजनी नामक स्थान पर अपना शासन स्थापित कर वहीं से हिन्दुस्तान पर अपने सोलह प्रसिद्ध आक्रमण किये। उसके पश्चात् कई शताब्दियों तक यह देश संसार प्रसिद्ध विजेता, आक्रमणकारी चंगेज खाँ, तैमूर लंग, हलाकू आदि का क्रीडा-स्थल बना रहा।

सोलहवीं शताब्दी में मुगल विजेता बाबर ने भारत वर्ष को विजय करने के लिये काबुल को अपना प्रधान केन्द्र बनाया। उसके बाद सन् १७७४ में सुप्रसिद्ध विजेता अहमद शाह दुर्रानी ने इस देश को जीत कर अपना राज्य स्थापित किया और यहीं से उसने अपने दो प्रसिद्ध आक्रमण भारतवर्ष पर किये। अहमद शाह दुर्रानी के बाद उसी का वंश इस देश पर अपना राज्य करता रहा।

सन् १८३९ से १८४२ तक अफगानिस्तान में एक राज्य-क्रान्ति हुई। इस क्रान्ति के फलस्वरूप वहां के अमीर शाह शुजा को अफगानिस्तान छोड़ कर भागना पड़ा और दोस्त मुहम्मद अफगानिस्तान का अमीर हो गया। दोस्त मुहम्मद ने रूस के साथ मिल कर अंग्रेजों के विरुद्ध षड्यन्त्र करना प्रारम्भ किया और पहले अमीर शाह शुजा ने भारत वर्ष में आकर अंग्रेजों से अफगानिस्तान की गद्दी वापस दिलाने के लिये सहायता की प्रार्थना की। उस समय भारत वर्ष में ब्रिटिश शासन के गवर्नर जनरल लार्ड आकलैण्ड थे। जब उन्हें यह पता चला कि दोस्त मुहम्मद अंग्रेजों के खिलाफ रूस के साथ मिल कर षड्यन्त्र कर रहा है तब उन्होंने दोस्त मुहम्मद को गद्दी से उतार कर शाह शुजा को गद्दी पर बिठाने के लिये अपनी सेना भेजी। इस सेना ने दोस्त मुहम्मद को हरा कर कैद कर लिया और शाहशुजा को अफगानिस्तान की गद्दी पर बिठा दिया। परन्तु शाहशुजा वहां की जनता में इतना बदनाम था कि उसके गद्दी पर बैठते ही अफगान प्रजा के अन्दर विद्रोह हो गया और उसने शाहशुजा की हत्या करके अफगानिस्तान की रक्षा के लिये रखी हुई अंग्रेज सेना को काट डाला। तब अंग्रेजी शासन ने जनरल वॉट और

पोलर की अधीनता में एक सेना भेजी। इस सेना ने क़ाबुल को जीत लिया मगर पुराने अनुभवों से अंग्रेजी शासन ने यही निश्चय किया कि रूस और भारत के बीच में अफ़गानिस्तान को एक बफर स्टेट की तरह रखना चाहिये और उसके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना चाहिये।

इसके बाद दोस्त मुहम्मद को ही फिर से अफ़गानिस्तान का अमीर बना दिया गया।

मगर सन् १८८६ में अफ़गानिस्तान के अमीर शेर अली ने रूस के साथ षड्यन्त्र करके रूस के राजदूत को अपने यहां रख लिया और अंग्रेजों के राजदूत को निकाल दिया। तब अंग्रेजों ने अफ़गानिस्तान से फिर लड़ाई की घोषणा कर दी और अफ़गानिस्तान को हरा दिया। मगर इसी बीच शेर अली की मृत्यु हो जाने से उसके लड़के याक़ूब खाँ ने अंग्रेजों से दोस्ती कर ली और वह अफ़गानिस्तान का अमीर बना दिया गया। परन्तु पहले की भाँति फिर अफ़गानिस्तान में अंग्रेज राजदूत की हत्या हो गई और बहुत से अंग्रेज सैनिक कत्ल कर दिये गये। इसका बदला लेने के लिये अंग्रेजों ने लार्ड राबर्ट्स की अधीनता में एक फौज भेजी जिसने याक़ूब खाँ को हरा कर शेर अली के भतीजे अब्दुर्रहमान को अफ़गानिस्तान का अमीर बना दिया। इसके बाद अंग्रेजों ने अफ़गानिस्तान के आन्तरिक शासन के सम्बन्ध में हस्तक्षेप न करने का निश्चय कर अपनी फौजें वहाँ से वापस बुला लीं।

सन् १६०७ में एक एंग्लो-रशियन समझौता हुआ जिसमें दोनों देशों ने अफ़गानिस्तान की स्वतन्त्रता की गारण्टी दी। मगर फिर भी यह देश ब्रिटिश प्रभाव से प्रभावित रहा। इससे इस देश में ब्रिटेन विरोधी भावनाएं बहुत तीव्र हो गईं जिसके फलस्वरूप १६१६ में एक छोटी-सी लड़ाई भी हुई।

सन् १६२६ में अफ़गानिस्तान के अमीर ने अपनी अमीर की पदवी को बदल कर बादशाह (King) की पदवी को ग्रहण किया।

इसके पश्चात् अफ़गानिस्तान में सामाजिक और राजनैतिक सुधारों के लिये सब से महत्वपूर्ण कदम अमीर अमानुल्ला ने उठाया। अमीर अमानुल्ला और उनकी बेगम दोनों ने इंग्लैण्ड में शिक्षा पाई थी। वहां की शिक्षा का प्रभाव उन लोगों के संस्कारों में बद्धमूल हो गया था और वे लोग अफ़गानिस्तान की प्रजा को पश्चिमी प्रजा के साँचे में ढालना चाहते थे। इसके लिये अमीर अमानुल्ला ने अफ़गानिस्तान में जोर-शोर से शिक्षा का प्रचार किया। वहां के बहुत से नवयुवकों को अध्ययन के लिये अमेरिका, इंग्लैण्ड तथा दूसरे यूरोपीय राष्ट्रों में भेजा। स्त्रियों में पर्दा-प्रथा तोड़ने के लिये कानून बनाये और कई बातें ऐसी कीं जिनको वहां के कट्टरपन्थी मुल्ला और मौलवियों ने इस्लाम की शरह के खिलाफ समझा। उन्होंने गुप्त रीति से अमानुल्ला के खिलाफ षड्यन्त्र करना प्रारम्भ किया और जब शाह अमानुल्ला अपनी बेगम सुरैय्या के साथ यूरोप की यात्रा को गये तब पीछे से बचा-ए-सक्का नामक एक भिश्ती के नेतृत्व में क्रान्ति कर दी गई और अफ़गानिस्तान की गद्दी पर खुद बचा-ए-सक्का बैठ गया। मगर तुरन्त ही अफ़गानी सेना का जनरल नादिरशाह, जो उस समय हिन्दुस्तान में था, वापस लौट कर आया और बचा-ए-सक्का को गद्दी से उतार कर स्वंय अफ़गानिस्तान की गद्दी पर बैठा। नादिरशाह के बाद उसका पुत्र मुहम्मद जहीर शाह अफ़गानिस्तान की गद्दी पर आया जो अभी तक वहां का शासन कर रहा है। मुहम्मद जहीर शाह ने भी अपने देश को आधुनिक सभ्यता के सांचे में ढालने का पूरा प्रयत्न किया है और संसार के उन्नत मुस्लिम राष्ट्रों में अपना एक स्थान बना लिया है।

अब्दुर्रहीम खानखाना

हिन्दी के महान कवि, सम्राट् अकबर के गार्जियन बैरम खाँ के पुत्र और एक महान् सेनापति।

अब्दुर्रहीम खानखाना का जन्म सन् १५५६ में बैरम खाँ की मेवाती बीबी के गर्भ से हुआ था। महाकवि रहीम एक असाधारण सुन्दर नवयुवक था। उसकी सुन्दरता को देख कर चित्रकार उसकी तस्वीरें उतारते थे जिन्हें अमीर लोग अपनी बैठकों को सजाने के लिये लगाते थे।

रहीम के पिता बैरम खाँ साहित्य, संगीत और कला में एक प्रवीण पुरुष था। उसकी माँ हरियाना प्रान्त की होने से रहीम के लिये हिन्दी भाषा भी तुर्की और फारसी की तरह मातृभाषा के समान थी। इन तीनों भाषाओं पर रहीम का अच्छा अधिकार था। पैतृक रूप में साहित्य और कविता रहीम को दाय रूप में मिली थी और उसके पश्चात् शायरों, कवियों और कलाकारों से लगातार सम्पर्क रहने के कारण उसको साहित्यिक क्षेत्र में आगे बढ़ने का पर्याप्त अवसर मिल रहा था।

मगर सम्राट् अकबर रहीम का विकास एक कलाकार के रूप में नहीं एक महान सेनापति के रूप में देखना चाहता था। यही कारण है कि सिर्फ नौ वर्ष की उम्र में अकबर ने उसे "मन अम-खान" की उपाधि प्रदान की और उन्नीस वर्ष की उम्र में अकबर ने उसको गुजरात का गवर्नर बना दिया। इसके बाद कई बड़ी-बड़ी लड़ाइयों में अकबर ने उसको सेनापति बना कर भेजा और रहीम ने इस सम्बन्ध में अपने उत्तरदायित्व को पूरी सफलता के साथ निभाया। इसके उपलक्ष्य में अकबर ने रहीम को खानखाना की उपाधि प्रदान की।

मगर उत्कृष्ट सेनापति होने के बावजूद भी रहीम के मस्तिष्क का साहित्यिक विकास में रुकावट नहीं आई। सन् १५९० में रहीम ने बाबर के आत्म-चरित्र "तुज्क बाबरी" का फारसी में अनुवाद किया। यह ग्रन्थ चगताई तुर्की भाषा का महान ग्रन्थ है।

रहीम का असली विकास, जिसने उसको भारत वर्ष में अमर कर दिया, एक बड़े सेनापति, एक बड़े राजनीतिज्ञ या एक बड़े दानी की तरह नहीं हुआ बल्कि एक महान कवि के रूप में हुआ। रहीम केवल हिन्दी ही का नहीं फारसी का भी महान कवि था और उसने सैकड़ों फारसी के कवियों को आश्रय दिया था। बंगाल की रायल एशियाटिक सोसायटी के द्वारा "मासिर रहीमी" नामक एक बहुत बड़ा ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थ में रहीम के आश्रित सैकड़ों फारसी कवियों की कविताओं का संग्रह दिया गया है।

रहीम की हिन्दी कृतियों में दोहावलि, बरवै नायिका भेद, शृंगार सोरठ, मदनाष्टक, रास पंचाध्यायी दम्पत्ति-विलास इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

रहीम की कविताओं के कुछ नमूने इस प्रकार हैं—

१—कमला थिर न रहीम यह साँच कहत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू क्यों न चंचला होय॥
२—कह रहीम सम्पत्ति सगे बनत बहुत बहु रीत।
विपत्ति कसौटी जें कसे तेई साँचे मीत॥
३—कह रहीम कैसे बने केर बेर को संग।
ये रस डोलत आपने उनके फटत अंग॥
४—जाल परे जल जात बहि तजि मीनन को मोह।
रहिमन मछरी नीर को तऊ न छांड़ति छोह॥
५—जे गरीब सो हित करै धनि रहीम वे लोग।
कहा सुदामा बापुरो कृष्ण मिताई जोग॥
६—तरूवर फल नहीं खात है सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम परकाज हित सम्पत्ति संचाह सुजान॥
७—रहिमन मोहिं सुहाय अमिय पियावै मान बिन।
जो विष देहिं पिलाय मान सहित मरिबो भलो॥

जिस प्रकार इस महान कवि का पूर्व जीवन सफलता सम्मान, सुख और समृद्धि के अन्दर बीता उसके विपरीत इसका अन्तिम जीवन भयंकर कष्टों और विपत्तियों के अन्दर व्यतीत हुआ। सन् १५९७ में उसकी बीबी महाबानू और उसके पुत्र हैदर की मृत्यु हो गई। सन् १६०४ में अकबर के पुत्र और रहीम के दामाद दानियाल की मृत्यु हो गई। सन् १६०५ में महान सम्राट् अकबर की मृत्यु हुई और उसी दिन से महाकवि रहीम के दुर्भाग्य और दुर्दिनों का प्रारम्भ हुआ! जहांगीर का पुत्र खुर्रम रहीम का पोती दामाद था। खुर्रम में और नूरजहाँ के दामाद शहरयार में बहुत प्रतिस्पर्धा चलती रहती थी। रहीम अक्सर खुर्रम का पक्ष लेते रहते थे। इसलिये जहाँगीर और उनके बीच में मनसुटाव पैदा हुआ और फिर वह भयंकर दुश्मनी में बदल गया। जहाँगीर ने रहीम के पुत्र दाराब का सिर काट कर उसे थाली में रख कर उस पर कपड़ा ढक कर भेंट के तौर पर रहीम के पास भेजा और कहलवाया कि जहाँपनाह ने आप के पास खरबूजा भेजा है। सत्तर वर्ष के बुड्ढे बाप ने रूमाल को

हटाया तो वहाँ अपने बेटे का सिर देखा। मनुष्य के ऊपर जो अन्तिम दर्जे की मुसीबत और जुल्म हो सकता है वह रहीम ने देख लिया। इस घटना के लिये पीछे से बादशाह ने बहुत पश्चाताप किया और इस घाव को मिटाने के लिये फिर से उन्हें खानखाना की उपाधि, जागीर और पद भी दिया लेकिन वह गहरा घाव इन सब बातों से कैसे भर सकता था। फरवरी १६२७ में रहीम ने दिल्ली में अपना शरीर छोड़ा। हुमायूं के मकबरे से थोड़ी दूर पर उनका भी आलीशान मकबरा बना जिसमें लाल पत्थर में संगमरमर की पच्चीकारियाँ थीं।

अब्राहम लिंकन

यूनाइटेड स्टेट अमेरिका का इतिहास प्रसिद्ध राष्ट्रपति जो सन् १८६० में चुना गया।

संयुक्त राज्य अमेरिका के इतिहास में अब्राहम लिंकन का नाम बहुत ही प्रसिद्ध है। उसकी उदारता, उसकी राष्ट्रभक्ति और मानवता के प्रति उसके अगाध प्रेम ने उसका नाम मानवीय इतिहास के उदारचेता महान् पुरुषों की श्रेणी में रख दिया है।

जिस समय अब्राहम लिंकन संयुक्तराष्ट्र का राष्ट्रपति चुना गया उस समय उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका के बीच एक बड़ा संघर्ष चल रहा था। दक्षिण अमेरिका में यूरोपियन लोगों की बड़ी-बड़ी खेतियाँ होने के कारण वहाँ पर गुलामी की प्रथा बहुत जोरों से चल रही थी।

उन्नीसवीं सदी के शुरू में यूरोप के प्रायः सभी देशों ने गुलामी की प्रथा को गैरकानूनी कर दिया, मगर दक्षिणी अमेरिकनों के विरोध के कारण संयुक्तराज्य अमेरिका में गुलामों का व्यापार गैरकानूनी कर दिया जाने पर भी गुलामी जायज मानी जाती थी। इसलिये जब इंग्लैण्ड से गुलामी की प्रथा उठा दी गई तो गुलामों के व्यापार का प्रमुख बन्दरगाह न्यूयार्क बन गया।

अब्राहम लिंकन व्यक्तिगत रूप से तो गुलामी का विरोधी था ही मगर संयुक्तराज्य के राष्ट्रपति की हैसियत से भी वह गुलाम प्रथा का समर्थन नहीं कर सकता था। फिर भी अमेरिका को गृह-युद्ध की आग से बचाने के लिये और दक्षिण अमेरिका को उत्तरी अमेरिका से अलग न होने देने के लिये उसने समझौते की भावनाओं का अवलम्बन किया। उसने यह मंजूर कर लिया कि जहाँ पर गुलामी पहले से मौजूद है वहाँ पर उसे गैरकानूनी नहीं की जायगी। उसने दक्षिण वालों को खुश करने के लिये यह भी मंजूर कर लिया कि जहाँ पर गुलामी की प्रथा अभी चालू है वहाँ उसे संविधान में भी शामिल करके स्थायी रूप दे दिया जायेगा। वह किसी भी मूल्य के ऊपर संघ को छिन्न-भिन्न नहीं करना चाहता था।

मगर अब्राहम लिंकन की सारी कोशिशें बेकार हुईं। दक्षिण अमेरिका ने अलग हो जाने का फैसला कर लिया और ग्यारह राज्य अलग हो भी गये। अलग होने वाले राज्यों ने अपना संगठन करके उसे कानफेडरेटेड स्टेट्स का नाम दिया और उन्होंने जेफरसन डेविस को अपना नया राष्ट्रपति चुन लिया। गृह-युद्ध भी प्रारम्भ हो गया। राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन की दृढ़ता से दक्षिण अमेरिका वाले हार भी गये। मगर जीत होते ही लिंकन ने दक्षिण वालों के साथ अत्यन्त उदारता का बर्त्ताव किया। टूटे हुए दिलों को फिर जोड़ने का प्रयत्न वह कर ही रहा था कि किसी हत्यारे ने उसे गोली से मार दिया।

अब्राहम लिंकन का जन्म एक बहुत गरीब घराने में हुआ था। अपनी निजी प्रतिभा से वह अमेरिका के उद्धारकों में गिना जाने लगा और संसार के महानतम पुरुषों में आज उसकी गणना होती है।

अब्बास शाह

ईरान के सफावी बंश का प्रसिद्ध बादशाह शाह अब्बास। जिसने सन् १५८७ से १६२६ तक ४२ वर्ष राज्य किया।

सोलहवीं सदी के प्रारम्भ में अर्थात् सन् १५०२ के पूर्व ईरान पर से तैमूरी लोगों के शासन का अन्त हो गया और ईरान की राष्ट्रीय जागृति के फलस्वरूप वहाँ पर सफावी नामक एक राजवंश का शासन प्रारम्भ हो गया। यह राजवंश सन् १५०२ से १७२२ तक ईरान पर शासन करता रहा। इस राजवंश की शासन ईरानी इतिहास में

एक उज्ज्वल सुवर्ण युग माना जाता है। इस शासन में ईरान की राजधानी बड़े-बड़े विशाल और सुन्दर प्रासादों से घिर गई।

सफावी वंश का सबसे प्रमुख और प्रसिद्ध बादशाह अब्बास हुआ जिसने सन् १५८७ से १६२६ तक ईरान पर शासन किया। यह ईरान के सबसे महान शासकों में गिना जाता है। अपने शौर्य्य और संगठन से इसने आक्रमणकारी उजेबकों और उस्मानी तुर्कों को खदेड़ दिया और एक सुदृढ़ राज्य का निर्माण किया। अपनी राजधानी इस्फहान को अधिक से अधिक सुन्दर बनानेमें इसने अपनी शक्तियाँ लगा दीं। शाह अब्बास की इस्फहान की नगर निर्माण कला अपनी उत्कृष्ट रुचि की उत्कृष्ट कृति मानी जाती है।

सफावी शासन काल में ईरानी लोगों की शक्ति का बहुत विकास हुआ। वे तैमूरी शाहजादों को धीरे-धीरे पीछे हटाते गये और उन्हें वक्षु नदी के उसपार धकेल दिया। अब उन लोगों के हाथ में सिर्फ वक्षु नदी पार का भू भाग और अफगानिस्तान का कुछ हिस्सा रह गया।

सफावी शासकों में "शाह अब्बास" सबसे योग्य, नेक और महान था जो भारत के मुगल सम्राट अकबर और जहाँगीर का समकालीन था।

अब्दुल्ला ताहिरी

सन् ८१८ में ताहिर नामक एक व्यक्ति ने ताहिरी राजवंश की स्थापना की थी। ताहिर पहले खलीफा अल-मामून का सेनापति था। खलीफा के लिए पश्चिमी प्रदेश को जीतने के बाद खलीफा ने उसे मेसोपेटोमिया का गवर्नर बगदाद की सेना का सेनापति और इराक का अर्थ सचिव बनाया। मगर कुछ समय पश्चात् खलीफा ताहिर के खिलाफ हो गया और ताहिर ने बगावत कर ताहिरी राजवंश की अलग स्थापना की।

इसी ताहिरी राजवंश का चौथा शासक अब्दुल्ला ताहिरी था। अब्दुल्ला ताहिरी वंश का सब से शक्तिशाली शासक था। इसके समय में खलीफा का शासन नाम मात्र का रह गया था और अरबों के शासन के जुए से मुक्त होकर ईरानी अपना वंश स्थापित करने में सफल हो गये थे।

अब्बासी-खलीफा

महमूद पैगम्बर के चाचा अब्बास के नाम से चला हुआ वंश जो अब्बासी कहलाता है। इस वंश ने बनी-उमैया वंश को खिलाफत से हटाकर अरब में अब्बासी वंश की खिलाफत स्थापित की। अब्बासी खिलाफतों का प्रारम्भ सन् ७४९ से होता है।

अब्बासी वंश के महमूद अब्बासी ने खिलाफत पर से उमैयावंश को नष्ट करने के लिए ईरान के एक बहादुर नवयुवक अबू मुसलिम से सहायता ली। अबू-मुसलिम ईरान के इस्पहान शहर का रहने वाला एक ईरानी मुसलमान था वह एक तीर्थयात्री दल के साथ मक्का आया हुआ था।

अबू मुसलिम की सहायता से महम्मद अब्बासी ने उमैया वंश को हरा दिया किन्तु विजय पूर्ण होने के पहले ही वह मर गया। उसके बाद उसका छोटा भाई सफ्फाह अबुल अब्वास खिलाफत की गद्दी पर बैठा।

अब्वासी वंश ने एक लम्बे समय तक हुकूमत की। इस वंश में कई खलीफा हुए मगर उनमें अबुल अब्बास मंसूर, मेंहदी, हादी, अमीन, मामून और हारूँ-अलरशीद का नाम बहुत प्रसिद्ध है।

उसकी राजधानी बगदाद उस समय शान, शौकत और वैभव में सारी दुनिया में अपना जोड़ नहीं रखती थी, इसकी आबादी बीस लाख से कम नहीं थी। यह एक लम्बी चौड़ी विशाल नगरी थी जिसमें बड़े-बड़े महल, स्कूल, कालेज बड़ी-बड़ी दुकानें, पार्क और बगीचे थे। यहाँ के व्यापारी पूर्व पश्चिम के देशों से बड़ा व्यापार करते थे। साम्राज्य के कोने-कोने से राजधानी तक डाक लाने और ले जाने की पूरी व्यवस्था थी। हारूँ के जमाने में (७८६—८०६ तक) बगदाद अपनी शान शौकत की चोटी पर था। उसके दरबार में चीनी सम्राट के यहाँ से तथा सम्राट शार्लमन के यहाँ से राजदूत मण्डल आते जाते रहते थे।

साहित्यिक विकास

खलीफा मंसूर से लेकर हारू-अल-रशीद तक का समय अरबी साहित्य के चरम विकास का समय है। साहित्य सृजन का जितना विशाल कार्य्य अरबी भाषा में

अब्बासी खलीफाओं के समय में हुआ उतना उसके पहले के किसी युग में नहीं हुआ। खलीफा मन्सूर के राज्य काल में (सन् ७५३ से ७७४ तक) वैद्यक, तर्कशास्त्र, दर्शन और विज्ञान के कई विदेशी ग्रन्थों का अरबी में अनुवाद हुआ। इस समय के अनुवादकों में इब्न मुकफ्फा का नाम विशेष रूप से प्रसिद्ध है। इब्न मुकफ्फा ईरानी जाती और ईरानी धर्म का अनुयायी था। उसने कितने ही ग्रीक दर्शनों के अनुवाद किये थे। संस्कृत साहित्य के भी कई ग्रन्थों का अनुवाद इस काल में अरबी में हुआ था।

खलीफा मामून ने बगदाद में "वेत-अल-हिक्मा" नामक एक ज्ञान सदन की नींव डाली जो सारे अरब जगत में सबसे पहली शोध-संस्था और अध्ययन पीठ थी। अपने विशाल पुस्तकालय और वेधशाला के कारण यह सारे संसार का आकर्षण केन्द्र बन गई थी इतनी बड़ी अनुवाद संस्था प्राचीन जगत् में कहीं भी नहीं देखी गई थी ज्योतिष के विषय में पहले जितना कार्य्य हो चुका था उसकी यहाँ छान बीन की गई। इसके अतिरिक्त और भी अनेक कार्य्य इस संस्था में अनुसन्धान सम्बन्धी हुए।

अब्बास तैय्यब जी

सन् १६३० के मई मास में नमक-सत्याग्रह के सम्बन्ध में महात्मा गांधी को सरकार ने गिरफ्तार कर लिया। तब उनकी गिरफ्तारी के बाद उस सत्याग्रह को संचालन करने का नेतृत्व अब्बास तैय्यबजी नामक एक वृद्ध पुरुष ने ग्रहण किया मगर वे भी १२ मई १६३० को गिरफ्तार कर लिये गये।

अब्बास तैय्यब जी एक प्रतिष्ठित वृद्ध पुरुष थे जो बड़ौदा के दीवान रह चुके थे।

अबीसीनिया

दक्षिणी अफ्रीका का एक प्राचीन देश जो लाल-सागर के दक्षिण पश्चिमी किनारे पर अत्यन्त दुर्गम पहाड़ी प्रदेश में बसा हुआ है। इसे इथोपिया भी कहते हैं।

अबीसीनिया की इतिहास परम्परा बहुत प्राचीन है ऐसा कहा जाता है कि प्राचीन काल में इस देश में एक्सम नामक एक ऐश्वर्य्य सम्पन्न नगरी थी इस नगरी की रानी शेबा थी। शेबा का विवाह जेरूसलेम के सुलेमान (यहूदियों का पूर्व पुरुष) के साथ हुआ और इनके विवाह से जो पुत्र हुआ इसका नाम "मेनेलक" था यही मेनेलक अबीसीनिया का पहला शासक बना। अबीसीनिया के वर्तमान शासक हेलसिलासी मेनेलक की २२५ वीं पुश्त के नरेश हैं।

इस देश की अपनी प्राकृतिक परम्पराओं के कारण दूसरी बड़ी विशेषता यह रही है कि हजारों वर्ष के इतिहास में जब कि संसार के बड़े-बड़े साम्राज्य उलट गये, यह देश अजेय और स्वतन्त्र रहा। सन् १८८५ में इटाली ने इस देश पर आक्रमण का प्रयत्न किया था मगर वह आक्रमण इसके तटवर्ती प्रदेश इरीटिया तक ही सीमित रह गया था जब अबीसीनिया पर हमला हुआ तो अडोवा के ऐतिहासिक युद्ध में यहाँ के तत्कालीन नरेश मैनेलक द्वितीय ने इटाली को बुरी तरह भगा दिया।

सन् १६३५ में इटली के डिक्टेटर मुसोलिनी की सेना ने फिर अबीसीनिया पर हमला किया और इस बार पाँच बरस के लिए यह प्रदेश इटली के आधीन हो गया। मगर पाँच वर्ष पश्चात् फिर अंग्रेजी सेना की सहायता से इटली वाले भगा दिये गये।

इस प्रदेश की स्वतन्त्रता और अजेयता का प्रधान कारण इसकी प्राकृतिक सुरक्षा व्यवस्था है यह बहुत ऊँचे पठारी स्थान पर बसा हुआ है और चारों ओर से विकट पहाड़ियों से घिरा हुआ है कई पर्वत श्रेणियाँ इधर से उधर फैली हुई हैं। इसके अन्दर बहने वाली नदियों में अतबारा और तकाजी दो नदियाँ प्रमुख हैं। इस देश में कई झीलें भी हैं। जिनमें "तना" झील सबसे प्रमुख है। इसी झील से नीली "नील" नदी निकलती है जो ह्वाइट नील से मिलकर मिस्र में बहने वाली विशाल "नील नदी" का रूप ग्रहण कर लेती है।

अबीसीनिया का कुल क्षेत्र फल ४,०७,१५० वर्ग मील है। जिसमें इसके तटवर्ती प्रदेश इरीशिया का क्षेत्र [illegible] भी शामिल है। इस देश में हमेशा से अमर्यादित एक

तंत्री राजतन्त्र प्रचलित रहा है जिसमें सारी सत्ता राजा के अनियंत्रित अधिकार में रहती है।

इस देश के वर्तमान सम्राट हेलसिलासी का व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली है। जब वे किसी राजमार्ग पर निकलते हैं तो लोग जमीन पर लेट-लेट कर उन्हें दण्डवत करते हैं।

अबीसीनिया का राष्ट्रीय झण्डा हरा, लाल और पीले रंग की आड़ी पट्टियों वाला है नवोदित सूर्य्य के सम्मुख शेर की आकृति यहाँ का राष्ट्रीय चिह्न है।

यहाँ बसने वाली जातियों में अमहारा, हरारी, तिगुनिया, गुरेज और सिदामो जातियाँ प्रधान हैं। इनमें से अधिकांश जातियाँ खानाबदोशों की तरह अपने-अपने खेतों में कच्चे मकान बना कर रहती है और ज्यादातर पशु पालन पर अपना निर्वाह करती है मध्य अबीसीनिया में अधिकांश लोग खेती पर गुजारा करते हैं।

धार्मिक दृष्टि से ये जातियाँ इस्लाम धर्म और ईसाई धर्म इन दो धर्मों में बँटी हुई है, इस्लाम धर्म माननेवालों में बहुपत्नीत्व की प्रथा प्रचलित है मगर ईसाई धर्म मानने वाले अक्सर एक पत्नी ही रखते हैं।

अबीसीनिया प्रधान रूप से कृषि प्रधान देश है। यहाँ पर कॉफी की काश्त बहुत बड़े पैमाने पर होती है। कहा जाता है कि काफी का नामकरण ही यहाँ के "काफा" नगर के नाम पर हुआ है। खनिज पदार्थों की दृष्टि से भी यह प्रदेश काफी स्मृद्ध है। यहाँ सोना, लोहा, मैगनीज और प्लेटीनम की बड़ी-बड़ी खदानें हैं। मगर अभी तक उनका बराबर विकास नहीं हुआ है।

अबीसीनिया की राजधानी "अदीसअबाबा" है। जो ७८०० फुट की ऊँचाई पर बसा हुआ है। यह यहाँ का सबसे बड़ा नगर है फिर भी कस्बे की तरह लगता है। अबीसीनिया को लाल सागर के द्वारा संसार से जोड़ने वाला बन्दरगाह "इरीटियो है।" यहाँ की प्रमुख भाषाएँ तिग्रिनिया और तिग्रे है।

अबुल फजल

अकबर के मशहूर दरबारी और वजीर, फारसी के महान् विद्वान, आईने अकबरी तथा अन्य कई ग्रन्थों के रचयिता, धर्म सुधारक तथा स्वतंत्र विचारक।

अब्दुल फजल का जन्म १४ जनवरी सन् १५५१ को आगरा में हुआ था इनके पिता शेख मुबारक अपने समय के के महान् विद्वान और उदारमतावलम्बी थे। इनकी आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी फिर भी इनकी विद्वता से आकर्षित हो बहुत से युवक इनके पास शिक्षा ग्रहण करने आते थे। मुल्ला बदायूनी भी उनके शिष्य थे।

अपने बाल्यकाल की बातों का जिक्र करते हुए अकबर नामा में अबुलफ़जल लिखते हैं—

"१५ वर्ष की उमर में अपने पूज्य पिताजी के ज्ञान भण्डार का अधिकारी हो गया, फिर भी शिक्षा की बातों से सदा दिल मुरझाता था, दुनिया के खटकर्मों से मन दूर-दूर भागता था। पिता अपने तौर तरीके से विद्या और बुद्धि के मंत्र फूँकते थे। यद्यपि ज्ञान बढ़ता था पर वह दिल को नहीं लगता था, कभी तो जरा भी समझ में नहीं आता था कभी शंकाएँ रास्ता रोक लेती थीं। वाणी मदद नहीं करतो थी, रुकावट हलका बना देती थी। मैं भाषणकला का भी उस्ताद था पर जबान नहीं खोल सकता था। जिन्हें आलिम कहा जाता था उन्हें मैंने बेइन्साफ पाया मन चाहता था कि अकेले में रहूँ या कहीं भाग जाऊँ।"

सन् १५७४-७५ में अबुल फजल ने अकबर के दरबार में प्रवेश किया। अबुज फजल वाणी और कलम दोनों के धनी थे। अकबर को ऐसी वाणी और लेखनी की बड़ी जरूरत थी उसने अपने लेखन विभाग में अबुल फजल को काम दिया और सल्तनत के कारनामों का इतिहास लिखवाना भी प्रारम्भ किया।

प्रतिभा कहीं छुपी नहीं रहती, घोर अन्धकार में भी उससे प्रकाश की किरणें निकला करती हैं। अबुल फजल भी अपनी महान् प्रतिभा के बल पर अकबर की आँखों पर चढ़ गये। सम्राट अपने राज्य, घर और शरीर रक्षा की हर बात में इनसे मशविरा लेने लगा। इसी समय उन्हें

हजारी का मनसब प्राप्त हुआ और उसके बाद वे ढाई हजारी मनसबदार हो गये।

अबुल फजल ने अपने जीवन में कई किताबें लिखीं जिनमें (१) आइने अकबरी जिसमें तैमूर, बाबर, हुमायूँ और अकबर के शासन काल का जिम्मेदारी पूर्ण वर्णन है। (२) अकबर नामा (अकबर की सल्तनत का विशाल गझेटियर) (३) मुकाति बाते अल्लामी (अबुल फजल के पत्रों का संग्रह) (४) ऐयारे दानिश (पंचतंत्र का फारसी अनुवाद) (५) रुकआते अबुल फजल (अबुल फजल के छोटे पत्रों का संग्रह और (६) कश्कोल (सुभाषितों का फारसी संग्रह) प्रधान हैं।

अबुल फजल खाली कलम और वाणी के ही धनी नहीं थे वे तलवार के धनी और युद्ध कला के ज्ञाता भी थे। सन् १५९८-९९ में बादशाह ने उन्हें अहमद नगर के अभियान का सेनापति बनाकर भेजा। अहमद नगर की रक्षा उस समय इतिहास प्रसिद्ध वीरांगना चांदबीबी कर रही थी। अहमद नगर को जीतने के पहले असीरगढ़ को जीतना आवश्यक था। असीरगढ़ को लोग अजेय कहते थे। उसके उत्तर की ओर माली का किला था उसे पार करके ही असीरगढ़ पहुँचा जाता था। अबुल फजल को इस अजेय दुर्ग पर अधिकार करना था। उन्होंने इस गढ़ में प्रवेश करने के लिए एक पिछले रास्ते का पता लगाया और घोर अन्धेरीरात में जब कि पानी बरस रहा था अबुल फजल एक छोटी सी सैनिक टुकड़ी को लेकर दुर्ग की समीपवर्ती सांपिन नामक पहाड़ी पर चढ़ने लगे। आधी रात के कुछ पश्चात् उस टुकड़ी ने उस गुप्त रास्ते से होकर माली के फाटक को तोड़ दिया और नगाड़े को बजाया आवाज को सुनते ही अबुलफजल दूसरी ओर से सीढ़ी लगाकर किले के भीतर कूद पड़े और पौ फटते-फटते माली के दुर्ग पर कब्जा कर लिया। असीरगढ़ का अधिकारी बहादुर खां इससे बहुत घबड़ा गया और उसने आत्म समर्पण कर दिया। इस प्रकार अबुल फजल ने अपनी बहादुरी और बुद्धिमानी से असीरगढ़ जैसे अजेय दुर्ग और अहमद नगर पर विजय पाई।

अबुल फजल का धर्म मानवता का धर्म था। मानवता को वे सब धर्मों के ऊपर समझते थे। हिन्दू, मुसलमान ईसाई, पारसी सब उनके लिए बराबर थे। बादशाह भी इसी मत के थे। अबुल फजल ने जब इंजील की प्रशंसा सुनी तो उसी का अनुवाद करने में लग गये। जरथुस्ट को उपासक पारसी लोग जब अकबर के दरबार में आये और उन्होंने पारसी धर्म की विवेचना करते हुए जब अग्नि पूजा की तारीफ की तो बादशाह ने हुक्म दिया कि ईरान की तरह यहाँ भी ऐसे स्थान बनाये जांय जहाँ दिन रात अग्नि प्रज्वलित रहे। इन्हीं सब बातों के कारण कट्टर मुसलमान उन्हें और बादशाह को काफिर कहते थे। मगर अबुल फजल ने कभी इसकी परवाह नहीं की और हमेशा मजहबी संकीर्णता से ऊपर उठकर वे मानव-धर्म की उपासना में मशगूल रहे।

वास्तव में अबुल फजल अकबरी दरबार का एक ऐसा प्रकाशमान रत्न था जो आज भी उस इतिहास में अपनी उसी शान के साथ चमक रहा है और जिसकी बनाई हुई महान् कृतियां भारतीय साहित्य की बहुमूल्य निधि के रूप में सुरक्षित हैं।

अबुल कलाम आजाद

भारतीय स्वाधीनता-संग्राम के एक अग्रगण्य सेनानी। अरबी भाषा के प्रकाण्ड विद्वान्, स्वाधीन भारत के शिक्षा-मंत्री मौलाना अबुल कलाम आजाद।

मौलाना अबुल कलाम आजाद मौलाना मुहम्मद खैरुद्दीन के पुत्र थे। मौ० मुहम्मद खैरुद्दीन भी अपने पुरखाओं के समान इसलाम के धर्मगुरु और अरबी तथा पारसी के धुरन्धर विद्वान थे। उन्होंने अरबी तथा पारसी में अनेक पुस्तकें लिखीं।

सनू १८५७ के गदर के समय देहली में अंग्रेजों के भयंकर अत्याचार को देख कर वे मक्का चले गये। वहीं पर मौ० आजाद का सन् १८८८ में जन्म हुआ। मौ० आजाद के पिता को अंग्रेजी भाषा की तालीम और विलायती रहन-सहन से सख्त नफरत थी। इसलिये उन्होंने मौलाना आजाद को अंग्रेजी तालीम से दूर ही रखा और अरबी तथा पारसी का उच्चतम ज्ञान देने के लिये पढ़ाई

शुरू कर के उनको दर्श-ए-निजामी का पाठ्यक्रम समाप्त करवा दिया।

१४ वर्ष की अवस्था में ही मौ० आजाद ने लिसानुस सिद्क’ नामक उर्दू परचे का सम्पादन शुरू कर दिया। इस पत्र में एक बार ख्वाजा अल्ताफ हुसेन हाली जैसे धुरन्धर विद्वान की लिखी हुई सर सैय्यद अहमद खाँ की जीवनी की जोरदार समालोचना कर डाली। इस समालोचना से उर्दू के सारे पठित समाज का ध्यान इनकी ओर आकर्षित हुआ और केवल १६ वर्ष की उम्र में ये सन् १९०४ में अंजुमन-ए-हिमायत-ए-इस्लाम के लाहौर अधिवेशन के सभापति बनाए गये। उस समय इनके दिये हुए सारगर्भित भाषण से लोग बड़े खुश हुए और इनकी प्राकृतिक विभूति को देख कर हाली साहब ने कहा कि बच्चे के शरीर में बुड्ढे की खोपड़ी जड़ी हुई है।

सन् १९०५ में मिस्र के अल अजहर विश्व-विद्यालय में अरबी की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये ये गये। और सन् १९०७ में वहाँ से वापस आये। जिस समय वे यहाँ पर वापस आये उस समय बंगाल के विभाजन के कारण सारे बंगाल में अशान्ति की तीव्र लहर दौड़ रही थी। एक ओर तो बंगाली देश भक्त अपने शिर को हथेली पर रख कर इस अन्याय के विरुद्ध अंग्रेजी सरकार से लोहा ले रहे थे और दूसरी ओर सर सैय्यद अहमद के समान प्रभावशाली मुसलमान अंग्रेजी सल्तनत की बुनियाद को मजबूत करने का प्रयत्न कर रहे थे। मौलाना आजाद का झुकाव स्वाभाविकतया क्रान्तिकारियों की ओर था और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये सन् १९१२ में उन्होंने अल हिलाल, नामक उर्दू का साप्ताहिक पत्र निकालना प्रारंभ कर दिया।

उस समय मौ० आजाद की उम्र सिर्फ २४ साल की थी और मुसलमानों में अंग्रेजी राज्य के समर्थन करनेवालों की संख्या और प्रभाव बहुत अधिक था। ‘मुसलिम लीग’ की स्थापना हो चुकी थी और मुसलिम लीग के एक प्रमुख निर्माता अली गढ़ कालेज के मंत्री नबाब मुश्ताक हुसेन ने अपने पहले भाषण में यह घोषणा की थी कि इस्लाम की तलवार सदा ब्रिटिश राज्य की सेवा में तत्पर रहेगी।

ऐसे संक्रमण काल में ‘अलहिलाल’ बड़ी सजधज और रोबदाब से सामने आया। चारों ओर तहलका मच गया। इसको देख कर अंग्रेजी सरकार और उसके समर्थक लोगों की बेचैनी बढ़ने लगी। इसी समय मौ० आजाद ने ‘अलहिलाल’ के एक अंक में लिखा :—

वक्त आने दे बता देंगे, तुझे ऐ आसमाँ।
हम अभी से क्या बताएँ क्या हमारे दिल में है।

अन्त में सरकार ने ७ अप्रैल सन् १९१४ को मौ० आजाद को पंजाब, संयुक्त प्रान्त और मद्रास से निष्कासित कर राँची में नजरबन्द कर दिया, जहाँ वे सन् १९२० तक नजरबन्द रहे। इसी नजरबन्दी के समय में उन्होंने अपने मूल्यवान संस्मरण ‘तजकिरा’ के नाम से लिखे और इसी नजरबन्दी की हालत में उन्होंने तरजुमानुल-ए-कुरान के नाम से कुरान शरीफ का अनुवाद कर के उस पर अपनी गवेषणापूर्ण टिप्पणियाँ लिखी हैं। इस पुस्तक के प्रारम्भ में मौ० आजाद की विस्तृत प्रस्तावना है जिसमें उनके इस्लाम सम्बन्धी गम्भीरतम ज्ञान का परिचय मिलता है।

सन् १९२० में रौलट ऐक्ट के खिलाफ महात्मा गांधी का जगत्प्रसिद्ध अहिंसात्मक आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। १९२०-२१ के सत्याग्रह में महात्मा गांधी की रहनुमाई के अन्तर्गत देश की अद्भुत जागृति में मौ० आजाद ने बड़ा महत्वपूर्ण भाग लिया। उनके ओजस्वी भाषणों से मुग्ध होकर जनता ने बड़ी तेजी से आगे कदम बढ़ाया। आंदोलन के बीच में जिस समय प्रिंस ऑफ वेल्स भारत में आये, उस समय यहाँ की जनता में बड़ी अशान्ति और आतंक छाया हुआ था। यहाँ के नेताओं ने ऐसी स्थिति में सार्वजनिक रूप से प्रिंस ऑफ वेल्स का बहिष्कार घोषित कर दिया। इससे अंग्रेजी सरकार ने क्रुद्ध हो कर हजारों लोगों को जेलों में ठूँस दिया। मौ० आजाद भी इस सिलसिले में पकड़े गये और उनकी सजा हुई।

सन् १९२३ में जब मौ० आजाद जेल से बाहर आये उस समय चौराचौरी-काण्ड हो जाने से महात्मा गांधी ने अपना आन्दोलन वापस खींच लिया था। उस समय कांग्रेस में दो प्रकार की विचारधाराओं का संघर्ष चल रहा था। एक विचारधारा असहयोग के पक्ष में थी और दूसरी कौंसिलों में जाकर वहाँ पर सरकारी पद को परास्त करने के पक्ष में

थी। राजेन्द्र बाबू, सरदार पटेल और डा० अंसारी पहली विचारधारा के प्रतीक थे और पं० मोतीलाल नेहरू, सी० आर० दास और विट्ठल भाई पटेल जैसे लोग दूसरी विचारधारा के थे।

इस मतभेद को को दूर करने के लिए दिल्ली में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन बुलाया गया। उस समय मौ० आजाद ने अपनी बुद्धिमानी से कांग्रेस को टूटने से बचा लिया। उनकी दलीलों से कांग्रेस ने निश्चय किया कि जो लोग चाहें धारा सभाओं में जाकर असहयोग आंदोलन को सुदृढ़ बना सकते हैं।

इसके बाद सन् १९३७ में कांग्रेस ने विधान सभाओं में जाकर फिर से शासन सूत्र ग्रहण किया। उस पर नियंत्रण रखने के लिये कांग्रेस ने ३ सदस्यों का एक पार्लामिंटरी बोर्ड बनाया जिसमें डा० राजेन्द्र प्रसाद, सरदार पटेल और मौलाना आजाद सम्मिलित थे।

सन् १९३९ में द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ होने पर कांग्रेस ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि यदि योरोप की पेचीदगियों के कारण युद्ध छिड़ गया तो भारत, जो अपनी मर्जी और निर्णयों से वञ्चित कर दिया गया है, उसमें कोई भी भाग न लेगा।

मगर जब सरकार ने इस पर कोई ध्यान न दिया तो कांग्रेस के विधायक मंत्रिमंडलों से बाहर निकल आये। काँग्रेस के पदत्याग करते ही मि० जिन्ना के आदेश से मुसलिम लीग ने मुक्ति-दिवस मनाया। मुक्ति का अर्थ था काँग्रेसी राज्य से छुटकारा।

इसके बाद रामगढ़ काँग्रेस के अधिवेशन के अध्यक्ष मौलाना आजाद चुने गये। फिर सन् ४२ का इतिहास-प्रसिद्ध 'भारत छोड़ो' का आन्दोलन काँग्रेस ने प्रारम्भ किया जिसमें मौलाना आजाद भी गिरफ्तार कर अहमद नगर के किले में नजरबन्द कर दिये गये। इनकी इसी नजर बन्दी की अवस्था में बेगम आजाद का देहान्त हो गया।

उसके बाद युद्ध समाप्त हुआ। इंग्लैंड में मजदूर दल की सरकार स्थापित हुई। २ सितम्बर सन् १९४६ को पं० जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में अन्तर्कालीन सरकार की स्थापना हुई। देश का विभाजन होकर उसके दो टुकड़े हुए। महात्मा गान्धी और मौलाना आजाद इस विभाजन के प्रबल विरोधियों में से थे। इस समय के इतिहास पर उन्होंने एक पुस्तक लिखी है जिसमें उस समय की सारी गतिविधियों का उल्लेख किया है। इस पुस्तक का कुछ अंश अभी तक अप्रकाशित है। जिसके सम्बन्ध में उन्होंने कहा बतलाते हैं कि मेरी मृत्यु के १० वर्ष बाद इसे प्रकाशित किया जाय।

स्वाधीन भारत की केन्द्रीय सरकार में मौलाना आजाद शिक्षा-मंत्री बनाये गये और मृत्यु पर्यन्त वे इसी पद पर काम करते रहे।

अब्दुल्ला-बिन-मैमान

ईस्लाम धर्म में करामाती पंथ का संस्थापक। करामाती पंथ के अनुसार इस्लाम का सातवाँ इमाम अली अंतिम इमाम है। मृत पुरुषों का कयामत के समय पर फिर पुनरुत्थान होता है। इस सिद्धान्त को यह सम्प्रदाय नहीं मानता। इस पंथ के अनुयायी जब ईरान से भगा दिये गये तो वे भारत में आकर बसे। इस देश में इस सम्प्रदाय के अनुयायियों की संख्या बढ़ने लगी। तत्कालीन मुलतान का राजा और वहां की प्रजा का बहुत सा भाग इस सम्प्रदाय का अनुयायी था। महमूद गजनवी ने मुलतान पर आक्रमण कर इस सम्प्रदाय को छिन्न-भिन्न कर दिया।

अब्दुल्ला बुखारी

ईस्लाम का प्रसिद्ध धर्मशास्त्री जो कि सन् ९०९ से ९१९ तक सामानी वंश के अमीर अहमद के जमाने में मौजूद था। इसने हदीस जामे – अस्सहीत (सहीबुखारी) ग्रन्थ का संकलन किया। इसमें अब्दुल्ला ने सोलह साल के अथक परिश्रम के बाद मुहम्मद पैगम्बर के वचनों और आचारों को छः लाख परम्पराओं के द्वारा संग्रहीत किया। इस्लाम का आज भी यह बहुत प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है।

अबुल हसन रूद

फारसी का प्रथम महान कवि जिसकी फारसी कविताएं बड़ी सरस होती थीं। यह भी नौवीं शताब्दी के अन्त में हुआ।

अब्दुल-मलिक सामानी

ईरान के सामानी वंश का अमीर सन् ६५४-६६१तक

अब्दुल मालिक सामानी वंश के राजानूह प्रथम का पुत्र था। गजनी वंश का संस्थापक अलपतगीन इसके शासन में प्रतिहारों का अफ़सर था। सामानी दरबार ने इसको अपने पद से हटा कर इसके स्थान पर अबू-मन्सूर नामक एक व्यक्ति को नियुक्त कर दिया। इससे नाराज होकर अलपतगीन गजनी चला गया और वहां जाकर उसने गजनी वंश की स्थापना की। इसी वंश में कुछ ही समय बाद अलपत गीन का खरीदा हुआ तुर्की गुलाम सुबुक्तगीन गजनी का शासक हुआ। जो सारे संसार में इस्लाम के प्रचार और अपनी लूटमार के लिए प्रसिद्ध है। अन्त में सुबुक्तगीन और उसके पुत्र महमूद गजनवी ने सामानी साम्राज्य पर चढ़ाई कर उसे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

अब्दुल मजीद अफरीदी

तुर्की का नाममात्र का खलीफा सन् १६२२।

तुर्की में मुस्तफा कमाल पाशा की विजय के बाद वहाँ की नेशनल असेम्बली ने तुर्की की सुलतानियत को खतम कर दिया। सिर्फ धार्मिक खिलाफत को बाकी रक्खा और यह घोषणा कर दी कि तुर्की का खलीफा उस्मानी खानदान में से रहेगा। इसके थोड़े ही दिन बाद भूतपूर्व सुलतान वहिउद्दीन पर देश द्रोह का आरोप लगाया। यह देख कर वहिउद्दीन अंग्रेजों की मदद से भाग गया और उसकी जगह अब्दुल मजीद अफरीदी को नया खलीफा चुनकर उसे धार्मिक रस्म अदायगी के लिए अमीर-उल-मोमिनीन बना दिया।

अबू-मुसलिम

इस्पहान का रहने वाला एक बहादुर मुसलिम युवक जिसने अरब की खिलाफत से उमैया वंश को हटाकर अब्बासी खिलाफत की स्थापना की।

इस समय अरब की खिलाफत खलीफा हिशाम आसीन था और खलीफा की तरफ से खुरासान का गवर्नर नस्र था। अब्बासी वंश के लोग जिसका अधिकारी मुहम्मद अब्बास था अरबी खिलाफत पर अपना अधिकार समझते थे। जिस समय अबू-मुसलिम एक तीर्थयात्री दल के साथ मक्का गया वहां पर महम्मद अब्बासी के साथ उसकी भेंट हुई। मुहम्मद अब्बासी ने उसे अपने विश्वास में ले अपना समर्थन प्राप्त करने के लिए उसे इराक में प्रचारार्थ भेजा। सन् ७४२ से ७४४ तक वह वहां अब्बासी वंश के लिए प्रचार करता रहा। वह अच्छा वक्ता, संगठनकर्ता और ईरानी होने के कारण ईरानियों का विश्वास पात्र था।

लोकमत को धीरे-धीरे अब्बासी वंश के अनुकूल कर सन् ७४७ में अपनी संगठित सेना को लेकर उसने सारे खुरासान और मेर्व पर विजय प्राप्त की और उमैया वंशकी खिलाफत को हटाकर-खिलाफत पर अब्बासी वंश को प्रतिष्ठित किया। जिसके पहले खलीफा सफ्फाह-अबुल अब्बास थे जिन्होंने ७५० से ७५४ तब खलीफा की गद्दीपर शासन किया।

अब्बुल खैर

मध्यएशिया के उजबक राज्य का प्रधान संस्थापक एक बहादुर सेनापति जिसका जन्म सन् १४१३ में हुआ।

अब्बुल खैर ने अपने राज्य की सीमाका बहुत विस्तार किया। उस समय अन्तर्वेद और ईरान का सुल्तान तैमूर लङ्ग का पुत्र शाहरुख था। अब्बुल खैर ने शाहरुख के राज्य पर हमला करके कुछ इलाकों को छीन लिया।

सन् १४४८ ई० में उसे पता लगा कि सुल्तान शाहरुख मर गया है और उसकी गद्दी को सम्हालने के लिये उसका लड़का उलूगवेग खुरासान की ओर गया है। उस समय समरकन्द को अरक्षित देखकर अब्बुल खैर ने समर-

कन्द पर हमला कर इस सुन्दर नगर को जिसे कला के महान प्रेमी शाहरुख ने निर्मित करवाया था, लूट कर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

उसके बाद शाहरुख के मरने के बाद उसके उत्तराधिकारियों में झगड़े हुए जिसमें अब्बुल खैर ने अबू सईद का पक्ष लेकर उसके प्रतिद्वन्दी अब्दुल्ला को शीराज में हराकर मार डाला और अबूसईद को गद्दी पर बैठा दिया। इस जीत के उपलक्ष में अबूसईद ने शाहरुख के पुत्र उलूगबेग की पुत्री राबिया सुल्तान बेगम को अब्बुल खैर को भेंट में दे दिया।

अब्बुल खैर के धन और प्रताप को बढ़ते देख उसके रिश्तेदारों ने विद्रोह करके सन् १४८९ में उसको मार डाला।

अब्दुल्ला शैबानी द्वितीय

उजबक जाति के शैबानी वंश का मशहूर शासक इस्कन्दर शैबानी का पुत्र उजबक जाति का बहादुर और इतिहास प्रसिद्ध खान, जिसने सन् १५८३ से १५९६ तक शासन किया।

अब्दुल्ला द्वितीय उजबक जाति के शैबानी वंश का सबसे बड़ा खान था। अपने पिता इस्कन्दर शैबानी के समय में ही कजाख मरुभूमि से काबुल की सीमा तक के बहुत से प्रतिद्वन्दियों को परास्त कर इसने एक बड़े उजबक राज्य की स्थापना की।

जिस समय भारत वर्ष में सम्राट अकबर और ईरान में सम्राट तहमास्प शासन कर रहे थे उसी समय अब्दुल्ला शैबानी अपने साम्राज्य का विस्तार करने में लगा हुआ था। शाह तहमास्प के मरने के बाद अब्दुल्ला की शक्ति का और विस्तार हुआ। सन् १५८५ में ईरान के प्रतापी शाह अब्बास को उस्मानी तुर्कों की लड़ाई में फँसा देखकर इसने हिरात शहर पर आक्रमण कर दिया और नौ महीने के मुहासिरे के बाद उस पर अधिकार कर लिया। उसके कुछ समय बाद अपने सेनापति अब्दुल मोमिन के सेनापतित्व में नेशापोर और मशद पर आक्रमण कर दिया। मशद को लूटते समय अब्दुल मोमिन ने हजारों शिया मुसलमानों का कत्ल कर डाला और शिया मुसलमानों के उस पवित्र तीर्थ स्थान को बुरी तरह से लूटा। वहाँ के विशाल पुस्तकालय को जला दिया। वहाँ की कब्रों को खोद-खोद कर उनकी लाशों को जलाकर हवा में उड़ा दिया। उन लाशों में शाह तहमास्प की लाश भी थी।

शियों के प्रसिद्ध इमाम रजा की समाधि पर चढ़ाए हुए अति विशाल सोने और रूपे के दीप स्तम्भ, बहुमूल्य धातुओं में जटित कवच, दुर्लभ रत्न तथा कितनी ही अनमोल चीजों को इन लुटेरों ने लूट लिया और नष्ट कर दिया।

जिन्दगी भर संघर्ष करते हुए भी अब्दुल्ला का जीवन असफल रहा। उत्तर से कज्जाख लोगों के खान तवक्कलन उसके राज्य को लूटता रहा और अन्त में उसी के लड़के ने सन् १५९७ में उसे मार डाला।

अब्दुल–नबी

शेख अब्दुल-नबी-सम्राट् अकबर के समय के प्रभावशाली सदर मौलवी (सन् १५६४-१५८२)।

शेख अब्दुल-नबी चिश्ती-सूफी सम्प्रदाय के थे। इस्लामी धर्म शास्त्र और हदीस (पैगम्बर के वचन) के अच्छे जानकार थे। अकबर के शासन में जब मुल्ला सुलतान पुरी की किस्मत ढलने लगी तब इनकी किस्मत ऊरूज पर आगई। सन् १५६४ में अकबर ने इन्हें "सदरूस्सुदूर" अर्थात् सब मौलवियों का अध्यक्ष बना दिया।

शेख अब्दुल-नबी के उपदेशों का बादशाह पर बहुत प्रभाव था। सम्राट् अकबर शेख के जूतों को उठाने और मसजिद में झाड़ू लगाने में भी अपना गौरव समझता था। एक दिन अपने जन्म दिवस के उपलक्ष्य में सम्राट् केसरिया पोशाक पहने महल के बाहर आया। तब शेख ने कहा कि—"यह रंग और केसरिया बाना शरीयत के सख्त खिलाफ है हमे नहीं पहनना चाहिए" यह कह कर उन्होंने एक डंडा बादशाह की उस पोशाक पर मारा।

शेख अब्दुल-नबी का भाग्य सितारा पूर्ण उरूज पर पहुँच गया। काबुल से बंगाल तक और दक्खिन से हिमालय तक फैले हुए विशाल साम्राज्य की मसजिदों के

इमामों की नियुक्ति बादशाह की ओर से ये ही करते थे। दरबार से फ़रमान जारी हुआ कि जब तक सदरूस्सुइरे का हस्ताक्षर और प्रमाण पत्र प्राप्त न हो तबतक परगना हाकिम और तहसीलदार जागीर की आमदनी को मुजरा न दें।

सभी ऐसे जागीरदारों को अब दस्तखत और प्रमाण-पत्र लेने शेख के पास फ़तेहपुर सीकरी आना पड़ता था। सभी लोगों का शेख तक पहुँचना सम्भव नहीं था। जो किसी तरह पहुँच गये वे निहाल हो गये। इसलिए इन जागीरदारों को शेख तक पहुँचने के लिए उनके फर्रासों, दरबानों और भंगियों तक को रिशवतें देनी पड़ती थीं। जो इमाम ऐसा नहीं कर पाते थे उन्हें डण्डे मार कर बाहर निकाला जाता था। इनमें बहुत से लू से झुलस कर मर जाते थे। चारों तरफ़ हाहाकार मचा हुआ था। मगर बादशाह शरीयत का पाबन्द था कुछ कर नहीं पाता था। बारह वर्ष से अधिक समय तक शेखजी इसी प्रकार लोगों की छाती पर मूँग दलते रहे।

जब फैजी और अबुलफ़जल दरबार में पहुँचे तब उन्होंने बादशाह को इनकी करतूतों से वाकिफ़ करना शुरू किया इसी सिलसिले में उनके द्वारा दी हुई कई अवैध जागीरों का भण्डाफोड़ हुआ। जिससे बादशाह का मन उनकी ओर से खट्टा होने लगा।

इन्हीं दिनों मथुरा के एक ब्राह्मण ने एक छोटी मसजिद की जगह शिवालय बनाना चाहा, जब उसे रोका गया तो उसने एक पैगम्बर की शान के खिलाफ़ भी कुछ कहा तब इस ब्राह्मण को कुफ्र के अपराध में फ़तहपुर सीकरी लाया गया। अबुलफ़जल, फैजी और सम्राट् उसकी कत्ल के पक्ष में नहीं थे। मगर शेख का निश्चित मत था कि कुफ्र की सजा कत्ल होना चाहिए और उसको कत्ल करवा दिया गया।

ब्राह्मण के कत्ल की खबर जब बादशाह के पास पहुँची तो उसे बहुत क्रोध आया और अन्त में इन मुल्लाओं की धार्मिक संकीर्णताओं से ऊब कर उसने सन् १५८० में शेख अब्दुन्-नबी और मुल्ला सुलतानपुरी दोनों को जबर्दस्ती मक्का-शरीफ़ हज करने के लिए भेज दिया और कह दिया कि बिना हुक्म के वहाँ से वापस मत आना।

मगर हिन्दुस्तान में एकाधिकार भोगनेवाले इन मुल्लाओं को मक्का का रूखा-सूखा जीवन कैसे पसन्द आता। उन्हें पता लगा कि अकबर का सौतेला भाई मिर्ज़ा महम्मद हकीम काबुल से हिन्दुस्तान जीतने के लिए चल पड़ा है तो उन्होंने सोचा कि काफ़िर अकबर को खतम करने का यह अच्छा मौका है। सन् १५८२ में उनका जहाज खम्भात पहुँचा। फिर वे अहमदाबाद आये। वहाँ आने पर उन्हें मालूम हुआ कि अकबरी दरबार का सब ढाँचा बदल चुका है। अबुलफ़जल और फैजी दरबार के सर्वेसर्वा हो रहे हैं। फिर भी जाने पर कुछ काम हो सकेगा यह सोच कर अबुन नबी फ़तेहपुर सीकरी दरबार में पहुँचे। इनके पहुँचने के पहले ही दरबार में वे सब खबरें पहुँच गई कि ये मक्कामदीने में अकबर को किस प्रकार बेदीन और काफ़िर कह कर उसे बदनाम करते रहते थे।

इन्हें देखते ही बादशाह को बड़ा गुस्सा आया और उसने इस बुड्ढे के मुँह पर एक मुक्का मारा और टोडरमल को हुक्म दिया कि मक्का में बाँटने के लिए इनको जो ७००००) रुपये दिये गये थे उनका हिसाब लिया जाय। हिसाब गड़बड़ निकलने पर उन्हें जेल में बन्द कर दिया गया जहाँ पर एक रात को किसी ने उन्हें गला घोट कर मार डाला।

अबुलमआली

हुमायूँ की सेना का एक सेनापति। बैरमखाँ का प्रतिद्वन्द्वी (१५५१ से १५५६)

अबुलमआली काशगर के किसी ऊँचे वंश का मुसलमान था। हुमायूँ जब ईरान से कन्दहार लौटा तो यह उसके पास नौकर हो गया था। धीरे-धीरे अपनी सेवाओं से हुमायुं के दिल में इसने अपने लिए बहुत स्नेह प्राप्त कर लिया और हुमायुं की फौज में बैरमखाँ के समान ही एक ऊँचा पद प्राप्त करने में सफल हो गया। फरवरी १५५५ में जब हुमायुं ने लाहौर जीत कर शेरशाह सूरि के भतीजे सिकन्दर सूरि पर भारी विजय प्राप्त की उस समय लड़ाई में अबुलमआली भी बैरमखाँ के साथ-साथ बहादुरी से लड़ा

था और दोनों ही व्यक्ति विजय का श्रेय स्वयं लेना चाहते थे तब इस सारी विजय का श्रेय हुमायूँ ने अकबर को दिया ।

हुमायूँ की मृत्यु के पश्चात् १५५६ में जब अकबर की गद्दीनशीनी का समय आया तो अबुलमआली ने गद्दीनशीनी में शामिल होने से इन्कार कर दिया । समझाने पर उसने दरबार में अपने सुरक्षित स्थान के सम्बन्ध में कुछ खास शर्तें मंजूर करवाई और तब गद्दीनशीनी में शामिल हुआ । मगर दावत के समय बैरमखाँ के इशारे पर उसे कैद कर लिया गया । बैरमखाँ उसे उसी समय मरवा डालना चाहता था मगर अकबर ने उस शुभ समय में ऐसा करने से रोक दिया । कुछ दिनों बाद वह कैद से निकल कर भाग गया ।

अब्दुल्ला खां

सम्राट अकबर के समय में मालवे का सूबेदार । जिसे पीर महम्मद की जगह अकबर ने शासक बनाया था ।

अब्दुल्ला खां उजबक जाति का एक मुसलमान सरदार था । सन् १५६४ के जुलाई मास में इसने सल्तनत के खिलाफ विद्रोह का झंडा उठाया था । तब उसको दबाने के लिए स्वयं सम्राट अकबर सेना लेकर आया । माण्डू पहुँच कर सम्राट ने अब्दुला को हरा दिया । अब्दुल्ला भाग कर गुजरात चला गया ।

अब्दुल्ला सैय्यद

दिल्ली में सम्राट फर्रुखशियर के समय में सुप्रसिद्ध सैय्यद भाइयों में से एक ।

सन् १७१३ में जब दिल्ली की सल्तनत दिन प्रति दिन कमजोर होती जा रही थी उस समय यहाँ की राजनीति में सैय्यद बन्धु अब्दुल्ला खां और हुसैन अली दोनों बहुत आगे आ गये थे । इन दोनों भाइयों ने जहाँदार शाह को मार कर फर्रुखशियर को गद्दी पर बिठाया था ।

मगर जब फर्रुखशियर ने बादशाह बनने के बाद सैय्यद अब्दुल्ला को प्रधान मंत्री बनाने से इन्कार कर दिया तो इनका आपसी युद्ध फिर चल पड़ा । बादशाह ने सैय्यद भाइयों का अन्त कर देने का बहुत प्रयत्न किया मगर सैय्यद भाइयों ने किले पर अधिकार करके बादशाह फर्रुखशियर का सिर कटवा डाला । उसके बाद दिल्ली के बादशाहों के पास नाम मात्र की सत्ता रही । वास्तविक शक्ति सैय्यद बन्धुओं के हाथ में केन्द्रित हो गई । करीब आठ वर्ष तक सत्ता उनके हाथ में रही । उसके बाद इनका पतन हुआ । सन् १७२२ में अब्दुल्ल खां को जहर देकर मार डाला गया

अब्दुर्रहमान

याकूब खां के बाद अफगानिस्तान का अमीर जो दोस्त मुहम्मद का भतीजा था ।

सन् १८६० में लार्ड रिपन ने दोस्त मुहम्मद के भतीजे अब्दुर्रहमान को अमीर मानकर अफगानिस्तान से सन्धि कर ली । इससे अफगानिस्तान की विदेश नीति पर अंग्रेजों का नियन्त्रण हो गया । मगर इसी बीच शेर अली के पुत्र अयूबखां ने अब्दुर्रहमान के विरुद्ध विद्रोह किया और हिरात पर अपना स्वतन्त्र आधिपत्य घोषित किया । मैवन्द के युद्ध में उसने अब्दुर्रहमान की सेना को पराजित किया और वह कन्धार की ओर बढ़ा । अब्दुर्रहमान ने अग्रेजी सहायता के लिये प्रार्थना को । अतः अंग्रज सरकार ने जनरल रॉबर्टस को पुनः अफगानिस्तान भेजा । उसकी सहायता से अब्दुर्रहमान ने अपने विपक्षी को पूर्ण पराजित कर दिया और वह सम्पूर्ण अफगानिस्तान का अमीर बन गया ।

अब्दुल नबी

औरंगजेब के शासनकाल में मथुरा का फौजदार और औरंगजेब का एक स्वामी-भक्त नौकर ।

सन् १६६६ में अब्दुल नबी ने मथुरा में एक हिन्दू मन्दिर के भग्नावशेष के सामान से एक मस्जिद बनवाई और उस मन्दिर में लगी हुई खुदे हुए पत्थर की उस छड़ को जिसे दारा शिकोह ने केशवराय के मन्दिर को दिया था, निकलवा डाली । इस घटना से उस जिले के जाटों में जिनका नेता गोकुल नामक व्यक्ति था, बड़ा असन्तोष फैला और उन्होंने विद्रोह करके फौजदार अब्दुल नबी को

कत्ल कर डाला और सादाबाद के परगने को लूट लिया। तब बादशाह ने विद्रोह को दबाने के लिये एक बड़ी फौज भेजी। विद्रोही जाटों ने फौज के साथ बड़ी वीरता से युद्ध किया लेकिन अन्त में हार गये और उनका नेता गोकुल बन्दी बनाकर मार डाला गया।

अबूतालिब-अलमक्की

अरब के सूफी सम्प्रदाय का लेखक जिसने "कुतु-अल कुलूब" नामक रहस्यवादी ग्रन्थ की रचना की। इसकी मृत्यु सन् ९९६ में हुई।

अबू-मा-शर

अरब का प्रसिद्ध ज्योतिषी जिसने समुद्र में होने वाले ज्वार-भाटे का निरूपण करके उसका ज्ञान यूरोप वालों को सिखाया। इसके चार अरबी ग्रन्थों का लैटिन भाषा में अनुवाद हुआ। इसकी मृत्यु सन् ८८६ में हुई।

अबू-युसुफ

खलीफा हारूँ-अल-रशीद के समय का हनीफी, प्रधान न्यायाधीश। खलीफा ने इसे "काजी-अल-कजा" अर्थात् चीफ जस्टिस की उपाधि दी थी। इसने 'किताब-अल-खराज' नामक राजनीति और कानून के एक ग्रन्थ की रचना की। इसका समय सन् ७३१ से ७९८ तक है।

अब्दुल गफ्फार खाँ

सीमा प्रान्त के एक सुप्रसिद्ध मुस्लिम नेता जिन्होंने गांधी जी के झण्डे के नीचे आकर अहिंसा व्रत का पूरी तौर से पालन किया और जो "सीमान्त गांधी" के नाम से प्रसिद्ध हुए।

भारत के राष्ट्रीय संग्राम के इतिहास में खान अब्दुल-गफ्फार खाँ का स्थान बहुत ऊँचा है। पठानों के समान लड़ाकू कौम में पैदा होकर भी इस महान व्यक्ति ने गांधीजी के सिद्धान्तों को हृदयंगम कर अहिंसा धर्म का निष्ठा के साथ पालन किया।

खाँ अब्दुलगफ्फार खाँ ने सीमाप्रान्त में खुदाई खिदमतगार या लाल कुर्त्ती दल के नाम से स्वयंसेवकों का एक विशाल दल संगठित किया। इस दल ने उक्त प्रान्त में बड़ी मुस्तैदी और सहनशीलता से काम किया और पठानों में बड़ी जागृति फैलाई। हजारों पठान नवयुवक इस दल के विजयी झण्डे के नीचे जमा हो गये। इस दल ने सीमा प्रान्त में ब्रिटिश सरकार विरोधी आंदोलन का बड़ी सफलता से संचालन किया।

खान अब्दुलगफ्फार खाँ कांग्रेस और गांधी आन्दोलन के एक अविभाज्य अंग रहे। उन्होंने पूरी निष्ठा के साथ महात्मा गांधी के सिद्धान्तों को आत्मसात करके पालन किया। वे भारत की एक राष्ट्रीयता के अनन्य भक्त रहे। देश के स्वाधीन हो जाने के पश्चात् उनको मजबूरन पाकिस्तान का नागरिक बनना पड़ा। वहाँ पर उन्होंने पख्तूनिस्तान को अलग करने की माँग उठाई। उसके लिये आन्दोलन किया और उसके लिये वे अभी तक पाकिस्तान की जेल में बन्द हैं।

अब्दुल्ला सुलतानपुरी

मुल्ला अब्दुल्ला सुलतानपुरी-हुमायूँ और अकबर के दरबार का सबसे बड़ा धर्माचार्य।

मुल्ला अब्दुल्ला सुलतानपुरी इसलाम का एक कट्टर धर्म गुरु था अरबी साहित्य और इसलामी धर्मशास्त्र में इसने काफी योग्यता प्राप्त कर ली थी। कुरान की आयतें और हदीस इसकी जबान पर रहते थे। सन् १५३२ में ये बादशाह हुमायूँ के दरबार में पहुँचा बादशाह ने इसकी बड़ी इज्जत की और "मखदुल मुल्क" की सम्माननीय उपाधि से विभूषित किया।

हुमायूँ के यहाँ से भाग जाने के बाद यह शेरशाह के दरबार का और शेरशाह के मरने के बाद उसके पुत्र सलीमशाह के दरबार का प्रधान मौलवी हुआ। इसी समय में अर्थात् १५४९ में इसने मेंहदी सम्प्रदाय के धर्म गुरु शेखअल्लाई के विरुद्ध कुफ्र का फतवा देकर उसे सरे दरबार में मरवा दिया।

जब बादशाह हुमायूँ ने दुबारा दिल्ली के तख्त पर अधिकार कर लिया तब मुल्ला सुलतानपुरी का प्रताप एकदम चमक उठा। अकबर बादशाह के गद्दी पर बैठने के बाद भी उसकी नाबालिग अवस्था में इसका प्रताप खूब ऊरूज पर था, इसने उस समय लाखों रुपयों की दौलत जोड़ी। मगर जब बादशाह कुछ बालिग हुए और अबुलफजल, फैजी तथा दूसरे स्वतन्त्र विचारकों की हवा उन्हें लगी, तब वे कट्टर मुल्लागिरि के खिलाफ हो गये। तब वे समय-समय पर मुल्ला सुलतानपुरी का मजाक उड़ाया करते थे।

इस सम्बन्ध में एक स्थान पर बदायूँनी लिखता है कि—

“बादशाह मौलाना सुलतानपुरी को अक्सर बेइज्जत करने और उसकी मजाक करने के लिए बुलाया करते थे। वे उसे अबुलफजल, हाजी इब्राहीम तथा अन्य लोगों से बहस में उलझा देते और उसकी बेइजती का मजा लिया करते थे।”

धीरे-धीरे मौलाना का प्रभाव बादशाह पर से और दरबार पर से उठ गया तब उन्होंने फतवा दिया “हिन्दुस्तान अब कुफ्र का मुल्क हो गया है इसलिए यहाँ रहना उचित नहीं है।” यह कहकर उसने एक मसजिद में डेरा डाल दिया और वहाँ से सम्राट् को काफिर तथा शिया कहकर उनका अपमान करने लगा। यह खबरें अकबर के पास में पहुँचती थी अन्त में परेशान होकर उसने मौलाना को सन् १५७९ में मक्का भेज दिया और कह दिया कि बिना हमारे हुक्म के वहाँ से वापस नहीं आना। लाहौर में मुल्ला सुलतान पुरी के घर में बड़ी-बड़ी कब्रें बनी हुई थीं जिन पर हरे वस्त्र ढँके रहते थे। असल में इन कब्रों की आड़ में उसने अपनी कमाई हुई सारी सम्पत्ति छिपा रक्खी थी। बादशाह को किसी ने इस बात की खबर दे दी। फिर क्या था बादशाह ने आदमी भेजकर सारी कब्रें खुदवाई तो उन कब्रों में से सैकड़ों सोने की ईंटें और चाँदी की ईंटें बरामद हुई जिनका मूल्य उस जमाने में जब सोना ९-१० रुपया तोला था तीन करोड़ रुपये से ऊपर थी।

मुल्ला सुलतानपुरी एकदम पुराने ढंग के कट्टर इसलामी था। अपने विरोधियों का सिर कुचलने में इसे जरा भी अफसोस नहीं होता था आखिर मक्का से वापस लौटने पर सन् १५८२ में इसका देहान्त हुआ।

अबुलफज्ल अहमद

महमूद गजनवी के दरबार का एक साहित्यकार जिसने अरबी पद्य और गद्य की सम्मिलित शैली का ईजाद किया, इस शैली को “मकामात” कहते हैं।

अबूसैद-इब्न-अबुल खैर

फ़ारसी भाषा के साहित्य में सूफी आन्दोलन का पहला प्रसिद्ध कवि, जिसका समय सन् ९६८ से १०४९ तक है। जिसने शैली के रूप में रूबाइयों को सबसे पहले लोकप्रिय बनाया। ईश्वर की भक्ति के साथ शारीरिक और पार्थिव भोगों की उपमाएँ भी पहले पहल इसी ने प्रारंभ की। सूफीवादी काव्यधारा में प्रतीक के रूप में सौन्दर्य, प्रणय, मदिरा सभी प्रयुक्त हुए हैं।

अबू-अब्दुल्ला जाफर “रूदागी”

फारसी का पहला क्लासिकल कवि, जिसने ईरान में दरबारी कविता का प्रारंभ किया। इसका समय ९१४ से प्रारम्भ होता है रूदागी खुरासान का रहने वाला था। ईरान के सामानी नरेश नस्र का यह दरबारी कवि था। उस समय फारसी की कविताओं में नारी, मदिरा और संगीत का आकर्षण इस्लाम के मजहबी अनुशासन को तोड़ कर बढ़ाया जा रहा था। रूदागी की कविताएँ भी इस आकर्षण से बच न सकीं। उसका भावोद्रेक मजहब की प्राचीरें तोड़कर अनिर्वचनीय और अगम्य तत्व की स्तुति में बह चला। उसने तीन ऐतिहासिक काव्य लिखे जिसमें एक का नाम “वामिक और अज्रा” था।

अबु-नुवास

अब्बासी खलीफा हारूं-अल-रशीद के दरबार का विदूषक कवि (सन् ७५०—८१०)

अबु-नुवास जन्म से ईरानी था इसकी शिक्षा बसरा में हुई थी। संयोग से वह बगदाद में खलीफा के दरबार में पहुँच गया उसकी प्रतिभा के सम्मुख दरबार के सब तेजस्वी व्यक्ति दब गये।

अबु-नुवास ने प्रशस्ति, व्यङ्ग, मरसिया तथा उमर खैय्याम की तरह मदिरा सम्बन्धी गीतों तथा खमरियात की की काफी रचना की। उसके मदिरा सम्बन्धी गीतों को सुनकर श्रोता विमुग्ध हो जाते थे। उसने मदिरा पान का समर्थन करते हुए अपनी कविताओं में कहा कि "तौबा और परहेज करने की जरूरत नहीं क्योंकि खुदा की रहमत आदमी के गुनाहों से बड़ी है।" मदिरापान और विलास वासना का अबु-नुवास और उसके इरानी साथियों ने अरब लोगों में खूब प्रचार किया।

अबु-अल अताइया

अरब जनता में आठवीं शताब्दी का जन कवि। इसका जन्म अल-कुफा में एक अरब परिवार में हुआ था जो मिट्टी के बर्तन बनाकर अपनी रोजी कमाता था। अबु-अल अताइया पहला कवि था जिसने जन-भाषा का प्रयोग अपनी कविताओं में किया। उसकी कविता में धर्म भावना को भी काफी स्थान मिला है। इस दिशा में उसने एक युग-प्रवर्त्तक का काम किया।

अबू-दुला याह

अबीसीनिया का एक भाण्ड कवि जिसने अपनी कविताओं में इसलाम के विरुद्ध करारे व्यंग कसे हैं। इसकी मृत्यु सन् ७८० में हुई।

अबू-हनीफाह

मुसलिम कानून व्यवस्था का प्रथम निर्माता। अरब लोगों ने रोमन लोगों की कानून व्यवस्था (जूरिस्प्रूडैन्स) के आधार पर "फ़कह" के नाम से कानून व्यवस्था को चार शाखाओं को जन्म दिया इसमें सबसे प्राचीन और महत्व पूर्ण शाखा "मजहब" अबूहनीफाह ने चलाई। जिससे उस व्यवस्था का नाम "हनीफा" पड़ा। हनीफा अलकूफा और बगदाद में रहा। उसके सम्प्रदाय में बड़ी सहिष्णुता थी।

अबू-बकर

इसलाम के पहले खलीफा, हजरत मुहम्मद के श्वसुर, जिन्होंने सन् ६३२ से ६४२ तक खलीफ़ा की गद्दीपर शासन किया।

हजरत अबू-बकर के दस वर्षीय शासन में इसलाम का राजनैतिक और धार्मिक दोनों ही दृष्टियों से बहुत विकास हुआ। इन्हीं के समय में इसलाम की सत्ता रोम के दमिश्क नगर तक और फिलीस्तीन में पहुंच गई। इन्हीं के शासन काल में नहाबन्द के युद्ध में अरब सेना ने इरानियों को करारी हार दी। ईरान के सासानी वंशका अन्तिम शाह यज्दगर्द तृतीय भागा-भागा फिरा और अन्त में मारा गया।

इनके सम्बन्ध का विशेष वर्णन "अरब" शब्द के विवेचन में देखें।

अब्दुल-मलिक (खलीफा)

उमैयावंश का चौथा खलीफा। सन् ६७३ से ७०५ तक।

उमैया वंश के तीसरे खलीफा म्वाविया द्वितीय ने शासन के बोझ से घबरा कर खिलाफत की गद्दी मेरवान के लड़के अब्दुल मलिक के लिए छोड़ दी मगर गद्दी के उत्तराधिकार के लिए एक दूसरे सरदार अब्दुल्ला ने भी अपना दावा पेश कर दिया। नतीजा यह हुआ कि इस आपसी फूट से खिलाफत दो भागों में बंट गई। अब्दुल्ला ने यमन, सीरिया, फिलीस्तीन और मिस्र पर अपना कब्जा जमा लिया और अब्दुल मलिक ने राजधानी दमिश्क पर कब्जा करके अब्दुल्ला से सीरिया और मिस्र भी छीन लिया।

खलीफा अब्दुल मलिक के और भी प्रतिद्वन्दी थे। एक प्रतिद्वन्दी मुहम्मद मका मदीना में खलीफा बनकर

बैठ गया था उसको भी अब्दुल मलिक ने मारकर भगा दिया। अब्दुल मलिक के काल में भी अरब लोगों को मध्यएशिया में आगे बढ़ने में अच्छी सफलता मिली।

अब्दुल रज़ाक़ (यात्री)

मध्य एशिया के हिरात नगर से भारत आने वाला एक मुस्लिम यात्री जो सन् १४४३ में खान महान् के दरबार से आया था।

"अब्दुलरज़ाक" जिस समय आया था उस समय भारत के दक्षिण में "विजय नगर" का राज्य अपने पूर्ण उरूज पर था। जब वह विजय नगर जाने लगा तो उसके रास्ते में "मंगलूर" शहर पड़ा। उसने अपने यात्रा विवरण में लिखा है कि "मंगलूर के पास मैंने एक अद्भुत मन्दिर देखा जो खालिस पीतल को गला कर ढाला गया था। यह १५ फुट ऊंचा था और इसकी कुर्सी ३० फुट लम्बी और ३० फुट चौड़ी थी" उत्तर की ओर आगे बढ़ने पर उसने बैलूर में और भी अधिक आश्चर्य जनक मन्दिर देखा जिसके लिए उसने लिखा कि "इस मन्दिर की प्रशंसा में यदि कुछ भी वास्तविक बात लिखूंगा तो लोग मुझपर अतिशयोक्ति का दोष लगावेंगे इस लिए कुछ न लिखना ही अच्छा है।" इसके बाद वह विजय नगर पहुंचा उसके वैभव को देखकर तो वह आश्चर्य्य में डूब गया उसने लिखा है कि "यह शहर ऐसा है कि सारी दुनिया में इसकी बराबरी का शहर न तो आंखों से देखनें में आया न कानों से सुनने में आया।"

अबुल रज्जाक के इस वर्णन से विजयनगर के इतिहास और उसके वैभव पर काफी प्रकाश पड़ता है।

अब्दुल रजाक़ जामी

तैमूरी काल का प्रसिद्ध फारसी कवि जिसका जन्म सन् १४१४ में खुरासान के "जामी" नामक ग्राम में हुआ। फारसी के प्रधान सात कवियों में इसका भी नाम गिना जाता है। फ़ारसी साहित्य में फिरदौसी वीर काव्य में रूमी रहस्यवादी काव्य में, शेखसादी नीति और आचार के काव्य में, और हाफिज लिरिक में प्रधान माना जाता था। मगर "जामी" की कीर्ति इन सभी क्षेत्रों में है। उसकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है वह गद्य के क्षेत्र में भी उतना ही प्रभावशाली है। जितना पद्य के क्षेत्र में। लिरिक कविता में उसने तीन "दीवान" लिखे हैं। "हफ्तनौरंग" काव्य फारसी साहित्य में कल्पनाशक्ति और नीतिमत्ता का एक मौलिक और सुन्दर चित्र उपस्थित करता है। "नफहा-तुल उन्स" उसके द्वारा लिखा हुआ सूफीसन्तों के चरित्र का एक कोष है। शेखसादी की 'गुलिस्तां" के अनुकरण पर उसने "बहारिस्तान" नामक एक सुन्दर फारसी काव्य की रचना की जो उसकी रचनाओं में सबसे अधिक लोक-प्रिय हुई।

अब्राहम-इब्न एज्रा

सुप्रसिद्ध यहूदी विद्वान और ग्रंथकार जो इब्रानी (यहूदियों की भाषा) भाषा का प्रकाण्ड पण्डित था। इसका समय सन् १०९२ से ११६७ तक है।

अब्राहम-इब्न-एज्रा सर्वतोमुखी प्रतिभा का विद्वान था। वह ज्योतिष, विज्ञान, दर्शनशास्त्र आदि सभी विषयों का विद्वान होने के साथ-साथ एक प्रतिभाशाली कवि भी था। इब्रानी भाषा पर उसका बहुत जबर्दस्त अधिकार था। उसने गणित, दर्शन, विज्ञान, व्याकरण आदि भिन्न-भिन्न विषयों पर अपनी कलम चलाई। बाइबिल की वैज्ञानिक आलोचना करने वाला वह पहला व्यक्ति था। बाइबिल और पैण्टाट्यूक पर उसका किया हुआ भाष्य बड़ा लोक-प्रिय हुआ। उसने अपने सब ग्रन्थ इब्रानी भाषा में ही लिखे।

अब्दुल्ला कुतुबशाह

गोलकुण्डा का शासक—समय सन् १६२६ से सन् १६७२ तक।

बहमनी सुल्तान महम्मद अली कुतुबशाह की मृत्यु के उपरान्त उनका एक सरदार सुल्तान कुली जो तेलिंगाना का सूबेदार था, स्वयं कुतुब शाह की पदवी धारण कर गोलकुंडा की राजगद्दी पर बैठ गया, तब से इसी खानदान में कुतुब शाह की पदवी प्रारम्भ हो गई जो गोलकुंडा के प्रत्येक सुल्तान के साथ लगती थी।

इसी वंश में आगे चलकर महम्मद कुतुब शाह का

पुत्र अब्दुल्ला कुतुब शाह गद्दी पर बैठा। सन् १६२६ से सन् १६७२ तक यह गोलकुंडा की गद्दी पर नाम मात्र का शासक रहा। वास्तविक शासन इसकी माता हयातबख्श बेगम करती थी।

सन् १६५६ ई० में बादशाह औरङ्गजेब ने इसके राज्य पर चढ़ाई की, तब इसने उसके साथ सन्धि करके अपनी दूसरी लड़की का विवाह औरंगजेब के पुत्र मुहम्मद सुल्तान से कर दिया।

अब्दुल्ला कुतुबशाह कला, साहित्य तथा इमारतें बनवाने के सम्बन्ध में बड़ा शौकीन था। गोलकुण्डा में इसने कई अच्छी-अच्छी इमारतें बनवाईं। कला और साहित्य का प्रेमी होने के कारण दूर-दूर से कवि और साहित्यकार आकर इसके राज्य में बसते थे। यह स्वयं भी फ़ारसी तथा दक्खिनी का कवि था। इसके दरबार में इब्न निशाती, गवासी इत्यादि प्रसिद्ध कवि रहते थे।

अब्बुल हसन कुतुब शाह

कुतुब शाही वंश का अन्तिम राजा जो सन् १६७२ ई० में गोलकुण्डा की गद्दी पर बैठा।

सन् १६८७ ई० में औरंगजेब ने गोलकुण्डा पर हमला करके उसे अपने साम्राज्य में मिला लिया। तब से कुतुब शाही राज-वंश का अन्त हो गया।

अब्बुल हसन कुतुब शाह स्वयं एक कवि और कवियों का आश्रय-दाता था। यह तानाशाह के उपनाम से कविताएँ करता था। इसके दरबार में तबई नामक कवि ने 'बहराम व गुलबदन' नामक एक प्रेम-कहानी को कविता रूप में लिखा है तथा इसी के समय में गुलाम अली नामक कवि ने पद्मावत का दक्खिनी भाषा में अनुवाद किया था।

अब्दुल फतह

दसवीं सदी में महमूद गजनवी के आक्रमण के समय मुलतान का शासक।

अब्दुल फतह इस्लाम के करामाती सम्प्रदाय का अनुयायी था। महमूद गजनवी करामाती सम्प्रदाय को नास्तिक संप्रदाय समझता था। इसलिए मुलतान से नास्तिकता का नाश करने के लिए उसने वहां हमला करना चाहा। मगर रास्ते में राजा आनन्दपाल का राज्य था इसलिए महम्मूद गजनवी ने मुलतान जाने के लिए आनन्दपाल से रास्ता मांगा मगर आनन्दपाल ने अब्दुल-फतह का मित्र होने के कारण रास्ता देने से इन्कार कर दिया। तब उसने आनन्दपाल के राज्य पर ही आक्रमण करके उसे कश्मीर तक खदेड़ दिया।

यह हाल देख अब्दुल फतह ने पहले ही राज्य का सारा सामान ऊँटों पर लदवा कर सीलोन भेज दिया और खुद भी वहाँ से भाग गया।

अबे-प्रेवोस्ट
(Abbe Prevost)

फ्रेन्च भाषा का प्रसिद्ध उपन्यास लेखक, जिसका उपन्यास "मानों-लेस्को" अपने समय का (१७३१) सबसे प्रसिद्ध उपन्यास है। यह एक चरित्रवान पुरुष और चरित्रहीन नारी के कथानक पर लिखा गया है। इसकी भाषा प्राञ्जल और शैली सुरुचिपूर्ण है।

अब्दुल्ला

खलीफा अब्दुल मलिक द्वारा नियुक्त खुरासान का गवर्नर। एक प्रसिद्ध अरब सेनापति (सन् ६८६ से ७०४ तक)

अब्दुल्ला एक प्रसिद्ध अरब सेनापति था। यह खलीफा द्वारा खुरासान का गवर्नर नियुक्त किया गया था मगर कुछ समय बाद खलीफा की उपेक्षा कर यह खुरासान का निरंकुश शासक बन बैठा। इसने वहाँ अपने नामके सोने के सिक्के भी चलाये। खलीफा अब्दुल मलिक ने तब एक आज्ञा के द्वारा इसको कत्ल करवा दिया।

अब्दुर्रजाक समरकन्दी

तैमूरलंग के पुत्र शाहरूख के साथ रहने वाला एक इतिहास लेखक जिसका समय अनुमानतः सन् १४०० से १४८७ तक है।

अब्दुर्रजाक समरकन्दी एक इतिहास लेखक था जो तैमूरलंग के द्वितीय पुत्र शाहरूख का बड़ा कृपा पात्र था और प्रायः उसी के साथ रहता था। इसने "वकाया" लिखना शुरू किया था जिसकी परिपाटी भारत के मुगल सम्राटों ने भी जारी रक्खी थी। तत्कालीन इतिहास पर प्रकाश डालने के लिए उसके अभिलेख बहुत उपयोगी हैं। समरकन्दी के ग्रन्थ "मतल-सादेन" में प्रतिवर्ष की घटनाओं का उल्लेख है।

सन् १४०९ और १४१० के वकाया में एक स्थान पर वह लिखता है—

"उज्बेक मुल्क के स्वामी पुलादखान का अमीर आदिकू बहादुर और अमीर ईसा के नौकर दूत बनकर आए। उन्होंने शिकारी जानवर और दूसरी चीजें बादशाह शाहरूख को भेंट की। राजकुमार मिर्जा मुहम्मद जौकी के लिए लड़की की खास्तगारी करते हुए शाहरुख ने खान के लिए बहुत से उपहार और दूतों के लिए बहुत से इनाम भेजे।"

अबू-सईद

तैमूरलंग के वंश का अन्तिम बादशाह जिसने सन् १४५२ से १४६९ तक शासन किया। यह भारत में मुगल वंश की स्थापना करने वाले मुगल वंशीय "बाबर" का दादा था।

उजबिकस्तान के खान अबुल-खैर की सहायता से बादशाह शाहरुख के पुत्र "अब्दुल्ला" को मारकर अबू-सईद हिरात की गद्दी पर बैठा। तैमूरीवंश का यह अन्तिम शक्तिशाली सुलतान था। अन्तर्वेद, पूर्वी ईरान और अफगानिस्तान उसके राज्य में थे। वह एक चतुर सैनिक और कुशल शासक था।

सन् १४६७ में उजबकों के खान मिर्जा सुलतान हुसेन ने अबू-सईद के राज्य में ख्वारेजम पर हमला कर उसे पामाल कर दिया दूसरी तरफ अजर बेजान में उजून हसन बेगने हमला किया। अबू-सईद उसे दबाने के लिए गया, मगर हारकर बन्दी हो गया और मारा गया।

अभय सिंह

जोधपुर के राठौरवंशी राजा अजित सिंह का बड़ा पुत्र जोधपुर का राजा जो सन् १७२४ में मारवाड़ की गद्दी पर बैठा।

राजा अभय सिंह जिस समय जोधपुर की गद्दी पर बैठे उस समय दिल्ली की सल्तनत दिन दिन कमजोर होती जा रही थी और सारे साम्राज्य में स्थान-स्थान पर विद्रोह पैदा हो रहे थे।

गुजरात का सूबेदार सरबलन्दखां भी इसी समय में विद्रोही हुआ। उसको दबाने के लिए बादशाह ने राजा अभयसिंह को उनके भाई बखत सिंह के साथ भेजा। १७ अक्टूबर सन् १७३० को अभयसिंह और सरबलन्द को फौजों का मुकाबला अहमदाबाद के पास मुचेड़ नामक ग्राम में हुआ। पांच दिन की घमासान लड़ाई के पश्चात् गुजरात के शासक को हराकर उसका शाही तोपखाना और माल असबाब इन्होंने लूट लिया जो अभी तक जोधपुर के म्यूजियम में सुरक्षित हैं।

सन् १७४३ में जयपुर के राजा जयसिंह का देहान्त हो जाने पर अभय सिंह ने अपनी सेना भेजकर अजमेर पर अधिकार कर लिया जो इस समय तक जयपुर के अधिकार में था। इसपर जयपुर के राजा ईश्वरी सिंह ने अजमेर पर चढ़ाई की पर अन्त में दोनों की सन्धि हो गई और अजमेर अभय सिंह के ही कब्जे में रहा। सन् १७४९ में अभयसिंह का देहान्त हो गया।

अभयदेव सूरि

जैन धर्म के सुप्रसिद्ध आचार्य्य तर्क पंचानन अभय देव सूरि जो सन् ९५० ईस्वी के करीब हुए।

अभयदेव सूरि जैनाचार्य्य प्रद्युम्न सूरि के शिष्य थे। जैन सिद्धान्त और जैन न्याय दर्शन के उद्भट विद्वान थे। इन्होंने जैन सिद्धान्त के सुप्रसिद्ध न्यायशास्त्री सिद्धसेन दिवाकर के "सन्मति तर्क" नामक ग्रंथ पर संस्कृत भाषा में "वादमहार्णव" नामक विशाल टीका की रचना की। इस टीका को देखने से मालूम होता है कि वे दर्शनशास्त्र के असाधारण विद्वान थे। जैन धर्म के अनेकान्त दर्शन का

विववेचन करते हुए उन्होंने इस ग्रन्थ में भारत में प्रचलित पक्ष और विपक्ष के समग्र दर्शन शास्त्रों का तुलनात्मक अध्ययन किया है। जिसके फलस्वरूप इस टीका को विक्रम की दसवीं शताब्दी तक प्रचलित सभी दर्शनग्रन्थों का संग्रह कर सकते हैं।

इस टीका के अन्दर वादपद्धति विद्वतापूर्वक इस प्रकार संगठित की गई है कि जिस पक्ष का विवेचन किया जाना है उस पक्ष का प्रतिनिधि अपने सिद्धान्तों का समर्थन पूरी विद्वता के साथ करता है। जिससे पाठक को उसका पूरा ज्ञान हो जाय। फिर दूसरा प्रतिपक्षी अपने मत की स्थापना करता है, फिर तीसरा प्रतिपक्षी दोनों के मत की भ्रान्तियों को दूर करता हुआ अपने मत की स्थापना करता है। इस प्रकार प्रत्येक पक्ष का मत खूबी के साथ प्रस्तुत हो जाता है और पाठक को सभी वाद स्पष्ट रूप से समझ में आ जाते हैं।

यद्यपि इस टीका में सैकड़ों ग्रन्थों का मन्थन करके उनका सार दिया हुआ है फिर भी कुमारिल भट्ट के श्लोकवार्तिक, नालन्दा विश्वविद्यालय के आचार्य्य शांतिरक्षित के तत्वसंग्रह तथा दिगम्बराचार्य्य प्रभाचन्द के प्रमेय कमल मार्त्तण्ड तथा न्याय कमलचन्द्रोदय का विवेचन इस टीका में मुख्य तौर से किया गया है।

सन्मति-तर्क मूल ग्रन्थ प्राकृत में १६७ आर्याछन्द में है जिस पर अभयदेव सूरि की यह टीका २५००० संस्कृत श्लोकों में है। इसी से इस टीका की विशालता समझ में आ सकती है।

अभ्रक (Mica)

एक चमकदार खनिज पदार्थ जो अग्नि के अन्दर नहीं जलता और विद्युत् शक्ति के संचार को बड़ी सहायता देता है।

जब से मानवीय समाज में विद्युत् शक्ति का आविर्भाव हुआ है तब से अभ्रक के प्राकृतिक गुणों ने उसकी अतुलनीय उपयोगिता सब प्रकार से प्रमाणित कर दी है। यह वस्तु विद्युत् शक्ति को जिस प्रकार शून्य सिद्ध करती है उसी प्रकार अग्नि के प्रचण्ड प्रकोप को भी यह तृणवत् समझती है। इसी विशेष गुण के कारण आज के वैज्ञानिक युग में इस वस्तु ने बड़ा महत्व ग्रहण कर लिया है।

पूर्वकालीन युग में रोम, अमेरिका, ग्रीस तथा भारतवर्ष के लोग अभ्रक से परिचित थे और इस चीज को अक्सर सजावट के काम में लिया करते थे।

रोम के प्राचीन साम्राज्य में वायु के झकोरों से दीपक की रक्षा करने के लिए अभ्रक के तख्तों से शीशे का काम लिया जाता था क्योंकि उस समय काँच का निर्माण नहीं हुआ था। अभ्रक से बनाये हुए इस प्रकार के प्रकाशदान रोम के इतिहास प्रसिद्ध हरक्युलेनियम (Herculaneum) में आज भी रक्षित पाये जाते हैं। प्लाइनी के मतानुसार उस समय शयनागार व स्नानागार की खिड़कियों में भी अभ्रक के आयने लगाये जाते थे।

यूनान वाले भी अभ्रक से प्राचीन युग में ही परिचित हो चुके थे। प्लाइनी के मतानुसार उस समय भी यूनानी भाषा में अभ्रक के लिये कई एक शब्द थे जो अभ्रक की विभिन्न प्रकार की जातियों के अर्थ के सूचक थे। कानराड गेन्सर नामक प्राचीन प्रकृति-शास्त्रज्ञ अभ्रक के तख्तों से पूर्ण रूपेण परिचित था। वह लिखता है कि

हैले (Halle) नामक स्थान में अभ्रक की खानें थीं उसका यह भी मत है कि अभ्रक का औषधि के रूप में सेवन करने से उन्माद और कुष्ठ रोग दूर होते हैं। बोटियस (Boetius) नामक लेखक लिखता है कि उस समय स्त्रियाँ अपने मुँह पर अभ्रक का चूर्ण मलती थीं जिससे मुँह की झुर्रियाँ दूर हो जाती थीं।

भारत वर्ष में भी अभ्रक की उपयोगिता से बहुत प्राचीन काल के लोग परिचित थे। खास कर भारतीय चिकित्सा शास्त्र में तो इस वस्तु ने बहुत ही महत्व ग्रहण किया। जिस अभ्रक को आज का युग अग्नि के प्रकोप से सुरक्षित समझता है उसी अभ्रक को भारत के प्राचीन चिकित्सा शास्त्रियों ने कई वनस्पतियों में घोट-घाट कर ऐसी भस्म तैय्यार की जिसका कभी पुनरोत्थान न हो सके। यह भस्म सौ पुटी, पाँच सौ पुटी और सहस्त्र पुटी इत्यादि कई प्रकार की होती है और खाँसी, दमा, उन्माद, क्षय इत्यादि अनेक भयंकर और दुसाध्य रोगों पर यह विजय

प्राप्त करती है। मगर अभ्रक का वास्तविक महत्व विद्युत् शक्ति का आविष्कार होने के पश्चात् प्रकट हुआ है। विद्युत् चमत्कार को प्रकट करने वाले पदार्थों में अभ्रक का सबसे ऊँचा स्थान है। अभ्रक जरा सी रगड़ में विद्युत् शक्ति उत्पन्न कर देता है और स्वयं विद्युत् शक्ति का शोषण न करने वाला होने के कारण उसके संचित स्वरूप का अनुभव करने का अवसर देता है।

अभ्रक गर्मी भी बहुत अधिक सहन कर सकता है। ४००° से ६००° गर्म करने पर भी उसकी पारदर्शक विशेषता और विद्युत् शक्ति के प्रति उदासीनता का गुण उसमें पाया जाता है। ६००° से १०००° की गर्मी से उसकी चमक और बढ़ जाती है और वह चांदी के समान मालूम होने लगता है। इससे भी अधिक गर्मी पाकर वह पिघल जाता है।

संसार में अभ्रक पैदा करने वाले देशों में भारत का स्थान सबसे ऊँचा है। संसार भर की खानों से निकलने वाले अभ्रक का ६०% भाग भारत की खानों से निकाला जाता है। भारत में अभ्रक के दो तीन कटिबन्ध हैं। बिहार के अन्दर मुंगेर, हजारीबाग तथा गया के जिलों में अभ्रक का कटिबन्ध सत्तर मील लम्बा और बारह मील चौड़ा है। इसका प्रधान स्थान कोडरमा है। दूसरा कटिबन्ध मद्रास प्रदेश के नैलोर जिले में फैला हुआ है। इस कटिबन्ध की प्रधान खाने रापुर में हैं। इन दो कटिबन्धों के अतिरिक्त राजस्थान के भीलवाड़ा जिले में भी अभ्रक की खदानें काम कर रही हैं।

अभिधम्मपिटक

बौद्ध साहित्य का एक महत्वपूर्ण आगम ग्रन्थ। इसमें भगवान बुद्ध के उपदेशों के आधार पर बौद्ध दार्शनिक विचारों की व्याख्या की गई है।

अभिधम्मपिटक में (१) धम्मसंगणी (२) विभंग (३) धातुकथा (४) पुग्गल पञ्यति (५) कथा-वत्थू (६) यमक और (७) पट्ठान इन सात ग्रन्थों का समावेश होता है।

धम्मसंगणी में धर्मों का वर्गीकरण और व्याख्या की गई है।

विभंग में उन्हीं धर्मों के वर्गीकरण को आगे बढ़ाया है और भंग जाल खड़ा किया गया है।

धातु कथा में धातुओं का प्रश्नोत्तर रूप में व्याख्यान किया गया है।

पुग्गल पञ्यति में ममुष्यों का विविध अंगों में वर्गीकरण किया गया है। इसका अंगुत्तर निकाय के तीन-पाँच निपात के साथ अधिक साम्य है। मनुष्यों का वर्गीकरण गुणों के आधार पर विविध रीतियों से किया गया है।

कथावत्थू का महत्व बौद्ध धर्म के विकास के इतिहास के लिये सर्वाधिक है। पिटकों के अन्तर्गत होने पर भी इसकी रचना तिस मोग्गलीपुत्त ने की है जो बौद्ध धर्म की तीसरी संगीति के अध्यक्ष थे। यद्यपि यह ग्रन्थ ईसवी सन् से पूर्व तीसरी शताब्दी में उक्त आचार्य ने बनाया था फिर भी उसमें बाद के समय में बौद्ध धर्म में जो मतभेद हुए उनका भी संग्रह होता रहा है। प्रश्नोत्तर शैली में इस ग्रन्थ की रचना हुई है। मत-मतान्तरों का पूर्व पक्ष रूप में समर्थन करके फिर उनका खण्डन किया गया है। विशेष करके आत्मा के अस्तित्व या नास्तित्व पर बौद्ध मन्तव्य की स्थापना की गई है।

यमक में प्रश्नों का उत्तर दो प्रकार से दिया गया है और कथावत्थू तक के ग्रन्थों से जिन शंकाओं का समाधान नहीं हुआ उनका विवेचन इसमें किया गया है।

पट्ठान को महापकरण भी कहते हैं। इसमें नाम और रूप के चौबीस प्रकार के कार्यकरण भाव सम्बन्ध की चर्चा है और बताया गया है कि केवल निर्वाण ही असंस्कृत है बाकी सब धर्म संस्कृत है।

अट्ठ कथा

बौद्ध धर्म की पाँच निकायों पर सीलोन के बौद्ध भिक्षुओं ने जो व्याख्याएँ कीं उनको अट्ठ कथा कहा जाता है।

इन्हीं सीलोनी अट्ठ कथाओं के आधार पर ईसा की चौथी-पाँचवीं शताब्दी में आचार्य बुद्धघोष ने पाँचों निकाय और अभिधम्मपिटक की व्याख्याएँ लिखीं। ये

व्याख्याएँ अट्ठ कथा कही जाती हैं। धम्म पद और जातक की अट्ठ कथाएँ भी बुद्धघोष कृत हैं, ऐसी परम्परागत मान्यता है।

अभिनव भारत सोसायटी

महाराष्ट्र के क्रान्तिकारी दल का एक संगठन जो अभिनव भारत सोसायटी के नाम से काम करता था। श्याम जी कृष्ण, वर्मा, सावरकर बन्धु इत्यादि व्यक्तियों ने इस संगठन का संचालन करने में बड़ा परिश्रम किया।

अभिधर्म कोष

बौद्ध धर्म के आचार्य वसुबन्धु के द्वारा रचित सुप्रसिद्ध ग्रन्थ अभिधर्म कोष।

बौद्ध धर्म के सुप्रसिद्ध आचार्य वसुबन्धु, जो आचार्य असंग के भाई थे और जिनका समय ३९० ई० से ४७० ई० के बीच का माना जाता है, ने इस महान ग्रन्थ की रचना की थी। इस ग्रन्थ की मूल संस्कृत प्रति तिब्बत में सुरक्षित है। बौद्ध धर्म के महान विद्वान राहुल सांस्कृत्यायन तिब्बत से इस मूल ग्रन्थ के फोटो लाए थे। चीनी भाषा में इस ग्रन्थ के दो अनुवाद हैं एक परमार्थ का और दूसरा ह्वेनसाँग का। परमार्थ का अनुवाद ५६३ ई० का किया हुआ है।

इस ग्रन्थ का बौद्ध जगत पर बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा। इस ग्रन्थ में छः सौ कारिकाएँ हैं और वसुबन्धु ने स्वयं इसका भाष्य लिखा है।

यह बड़े महत्व का ग्रन्थ है। सब निकायों में तथा सर्वत्र इसका बड़ा आदर हुआ। इसने बहुत शीघ्र अन्य प्राचीन ग्रन्थों का स्थान ले लिया। वसुबन्धु के अनुसार अभिधर्म कोष में वैभाषिक सिद्धान्त का निरूपण, काश्मीर नय से किया गया है। कोष के प्रकाशित होने पर सर्वास्तिवाद के प्राचीन ग्रन्थों का महत्व घट गया। कोष में अन्य ग्रन्थों से उद्धरण भी दिये गये हैं। इस प्रकार प्राचीन साहित्य के अध्ययन के लिये भी कोष का बड़ा मूल्य है।

अभिधर्म कोष पर कई टीकाएँ लिखी गईं थीं किन्तु इस समय केवल यशोमित्र की "स्फुटार्था" व्याख्या पाई जाती है। इसका सम्पादन वोगिहारा ने जापान में किया है। लुई दि-ला-वाले-पूसें ने चीनी से इस ग्रन्थ का फ्रेंच भाषा में अनुवाद किया है।

अभिलाषितार्थ-चिंतामणि

कल्याण के चालुक्य वंशीय राजा सोमेश्वर (ई० सं० ११२६ से ११३८ तक) तृतीय के द्वारा लिखित एक प्रसिद्ध ग्रन्थ। इसमें राजनीति, युद्धशास्त्र, अश्वशास्त्र, गजशास्त्र, काव्य, तर्क, दान, ज्योतिष तथा मानवीय जीवन में उपयोगी अनेक बातों का विवेचन किया गया है। ज्योतिषशास्त्र के सम्बन्ध में लेखक ने शक १०५१ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा शुक्रवार के ग्रह गणित के लिए ध्रुवाङ्क भी दिये हैं।

अभिज्ञान शाकुन्तल

महाकवि कालिदास की सर्वोत्कृष्ट रचना, संसार के साहित्य को भारतवर्ष की एक महान देन!

अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक का कथाभाग कालिदास ने महाभारत में वर्णित शकुन्तलोपाख्यान से लिया है।

उन्होंने अपनी कथा का विस्तार इस प्रकार से किया है—

शकुन्तला विश्वामित्र मुनि और मेनका अप्सरा की सन्तान थी। महर्षि कण्व के आश्रम में उसका लालन-पालन हुआ था।

पहले अंक में राजा दुष्यन्त शिकार खेलते हुए कण्व मुनि के आश्रम में प्रविष्ट होते हैं। यहाँ पर उनका शकुन्तला के साथ परिचय होकर वह प्रेम में परिवर्तित हो जाता है। दूसरे अंक में उस प्रेम का विकास होता है। तीसरे अंक में शकुन्तला और दुष्यन्त अपना प्रेम प्रदर्शित करते हैं और उन दोनों का गांधर्व विवाह हो जाता है। चौथे अंक में विरह में अन्यमनस्का शकुन्तला को अतिथि रूप में आने वाले महर्षि दुर्वासा के आदर सत्कार का ध्यान नहीं

रहता। इसपर दुर्वासा उसको शाप देते हैं। इसी अंक में राजा दुष्यन्त शकुन्तला से विदा होते समय निशानी या अभिज्ञान के तौर पर उसे अपनी अंगूठी देते हैं। पाँचवें अंक में दुष्यन्त की राजसभा में गौतमी और दोनों तपस्वियों के साथ शकुन्तला जाती है। निशानी की अगूठी नहीं मिलने से राजा सन्देह में उसका त्यागकर देते हैं और शकुन्तला अन्तर्धान हो जाती है। इसके बाद धीवर को मछली के पेट में से वह अंगूठी मिलती है और वह उसे राजा के पास पहुँचा देता है। छठें अंक में विरही राजा का विलाप बतलाया गया है और स्वर्ग से इन्द्र का निमंत्रण राजा को प्राप्त होता है। सातवें अंक में स्वर्ग से लौटते हुए राजा दुष्यन्त हेमकूट पर्वत पर पहुँचते हैं। वहाँ वह अपने पुत्र को देखते हैं और उनका शकुन्तला से मिलन हो जाता है।

महाभारत के शकुन्तलोपाख्यान के साथ कालिदास के नाटक के कथानक में प्रधान भेद दुर्वासा का शाप और दुष्यन्त की दी हुई अंगूठी है। इन दोनों घटनाओं का उल्लेख महाभारत में कहीं नहीं पाया जाता है। कालिदास की इन दोनों कल्पनाओं ने उनके नायक दुष्यन्त को कई प्रकार के दोषों से बचा लिया है। शकुन्तला को गुप्त रूप से ग्रहण करके फिर उसको त्याग देने का दोष दुष्यन्त पर न डाल कर दैव पर डाल दिया है। इससे उन्होंने संस्कृत-साहित्य के इस नियम था कि नायक को उदात्त और सर्वगुण सम्पन्न होना चाहिये की रक्षा कर ली है।

इस नाटक के प्रधान चरित्र शकुन्तला और दुष्यन्त का चित्रण करने में कालिदास ने कला की चरम सीमा को छू लिया है। नाटक के पञ्चम अंक में दुष्यन्त के चरित्र की आलोचना करते हुए बंगाल के महान् नाटककार स्वर्गीय द्विजेन्द्रलाल राय लिखते हैं—

“इस अंक में हम देखते हैं कि राजा दुष्यन्त कामुक और मिथ्यावादी चाहे जो हो, एक मनुष्य अवश्य हैं, उनमें मनुष्यता की मात्रा यथेष्ट है। सामने एक असाधारण रूपवती युवती पत्नी भाव से भिक्षा माँग रही है, वह कह रही है कि मैं तुम्हारी विवाहिता स्त्री हूँ, मुझे ग्रहण करो, किन्तु दूसरी तरफ धर्म का भय है। ब्राह्मण-कन्या गौतमी और ऋषिकुमार खड़े हुए कभी राजा से शकुन्तला के ग्रहण करने के लिये अनुनय-विनय करते हैं और कभी ब्रह्मकोप और अधर्म से विनाश का भय बतलाते हैं। राजा के एक ओर अलौकिक रूप सम्पन्न युवती है, ऋषि का क्रोध है, नारी का अनुनय-विनय है और दूसरी तरफ धर्म का भय है।”

“वे डूबते हैं, किन्तु तैरने में उस्ताद आदमी की तरह ऊपर उठने का प्रयास करके भी ऊपर उठ नहीं सकते। एक दैव-बल उन पर अपना प्रभाव डाले हुए है। वह एक कुहासे में से, उस अस्पष्ट आवरण में से बाहर निकलने की चेष्टा करते हैं, मगर निकल नहीं पाते। इस सारे दृश्य में एक मोह है, सौन्दर्य है, उल्लास भी है, दुष्यन्त हां, एक मनुष्य हैं।”

“इस पञ्चम अंक में हम एक और अपूर्व चीज देखते हैं। देखते हैं, अलक्ष्य में एक युद्ध हो रहा है। एक तरफ क्षत्रिय का तेज है और एक ओर ब्रह्मतेज है। ऋषिकुमारों ने और ऋषि-कन्या गौतमी ने राजा को बड़ी कड़ी झिड़कियाँ दीं, भर्त्सना में कोई बात उठा नहीं रखीं। दुष्यन्त क्रोध नहीं करते, किन्तु अपनी प्रतिज्ञा से पग भर भी स्खलित नहीं होते, साथ ही ब्राह्मण का अभिशाप भी सिर-आँखों पर ग्रहण करते हैं। उसे भी त्याग नहीं कर सकते। अपूर्व दृश्य है।”

“मैं शकुन्तला नाटक के इस पञ्चम अंक को जगत् भर के नाट्य साहित्य में अद्वितीय, अद्भुत, अपूर्व और अतुलनीय समझता हूँ। ग्रीक नाटकों में मैंने ऐसा नहीं पढ़ा, फ्रेंच-नाटकों में भी नहीं पढ़ा, जर्मन-नाटकों में ऐसा दृश्य नहीं देखा, अंग्रेजी के नाटकों में भी नहीं देखा।”

शकुन्तला के चरित्र में भी कवि की लेखनी ने अपना चरम विकास किया है। जिस समय राजा दुष्यन्त सम्पूर्ण नारी-जाति के ऊपर झूठ बोलने और फरेब करने का अपवाद लगाते हैं, तब शकुन्तला का गर्व चोट खाकर जाग उठता है। वह क्रोध में आकर कहती है—हे अनार्य! तुम अपने हृदय के अनुरूप ही सबको देखते हो। तुम धर्म कंचुकधारी तृण से ढँके हुए कूप के समान हो, तुम्हारे समान और कौन होगा। राजन्! तुमने जो मेरा पाणिग्रहण किया है, उसका साक्षी धर्म के सिवाय और कोई नहीं है। कुल-ललनाएँ क्या कभी इस तरह निर्लज्ज होकर पर-पुरुष की आकांक्षा किया करती हैं। क्या तुम यह सम-

झते हो कि मैं स्वेच्छाचारिणी गणिका की तरह तुम्हारे मैं निकट उपस्थित हुई हूँ ?

इसके बाद जब राज पुरोहित राजा को सलाह देते हैं—

महाराज ! श्रेष्ठ ज्योतिषी पण्डित आपसे कह चुके हैं कि आपको पहले-पहल होनेवाला पुत्र चक्रवर्ती के लक्षणों से युक्त होगा। इस मुनि कन्या के होनेवाला बालक यदि चक्रवर्ती के लक्षणों से युक्त हो तब तो इसे विशुद्ध समझ कर अपने अन्तःपुर में स्थान दीजियेगा। अन्यथा इसे अपने पिता के घर भेज दीजियेगा !

पुरोहित के इस लज्जा-जनक प्रस्ताव को सुन कर शकुन्तला ने कहा कि हे भगवती बसुन्धरा ! मुझे स्थान दो। उसी समय स्त्री के आकार की एक ज्योति आकाश से उतर कर शकुन्तला को गोद में लेकर अन्तर्धान हो जाती है। शकुन्तला राजा के प्रत्याख्यान और दुर्वाशा के शाप को लात मार कर अन्तर्धान हो जाती है।

द्विजेन्द्र बाबू लिखते हैं—"इसी जगह कालिदास की कल्पना का महत्व है। यहीं पर शकुन्तला-चरित का चरम-विकास है। यहीं पर साध्वी स्त्री और असती स्त्री का अन्तर सबसे बढ़ कर व्यक्त है। साध्वी स्त्री यहाँ तक ऊँचा उठ सकती है कि पति की निष्करुण अवहेला को तुच्छ करके गर्व के साथ सिर ऊँचा करके खड़ी रहती है। शकुन्तला के प्रत्याख्यान के परिणाम में कवि ने दिखलाया कि दुष्यन्त-कृत शकुन्तला का त्याग अन्याय है और ऋषि का शाप उसे घेरे अवश्य रह सकता है, मगर उसके गौरव को नष्ट नहीं कर सकता।

सातवें अंक में शकुन्तला विरहिणी की अवस्था में देख पड़ती है।—

वसने परिधूसरेवसाना, नियमक्षाममुखी धृतैकवेणी
अतिनिष्करुणस्य शुद्धशीला, ममदीर्घ विरहव्रतं विभर्त्ति।

किन्तु यह विरह पूर्ववर्ती विरह से कुछ भिन्न प्रकार का है। प्रथम विरह प्रथम प्रेम की ही तरह उद्भ्रान्त, उच्छ्वास-पूर्ण और असंयत है। यह विरह दृढ़, शान्त और संयत है। प्रथम विरह में आशंका और सन्देह है। इस विरह में विश्वास और अपेक्षा है।

इस अंक में ही शकुन्तला-चरित्र का एक विशिष्ठ सौन्दर्य हम देखते हैं। यह सौन्दर्य उसका पुत्र गर्व है। दुष्यन्त के आने पर बालक जब माता से पूछता है कि "यह कौन है?" तब शकुन्तला उत्तर देती है कि "अपने भाग्य से पूछो।" इस उत्तर में पुत्र स्नेह, पति का अन्याय और दैव का अत्याचार सब कुछ आ जाता है। इस एक ही उत्तर में पुत्र के प्रति, स्वामी के प्रति, विधाता के प्रति साध्वी शकुन्तला का अभिमान प्रकट है। पुत्र नहीं समझा, इसी से चुप रह गया। राजा समझे, इसी से वे रोती हुई शकुन्तला के पैरों पर गिर पड़े और उन्होंने उससे क्षमा की प्रार्थना की। विधाता ने समझा, इसीसे उन्होंने दोनों प्रेमियों का मिलन सम्पन्न करा दिया।

कालिदास की विश्व जनीन प्रतिभा का प्रधान लक्षण यह है कि जो नाटक उन्होंने डेढ़ हजार वर्ष पहले लिखा है, वह आज भी पुरातन और नवीन अलंकार-शास्त्र के अनुकूल रह कर आचार, नीति और विश्वास के परिवर्तनों को तुच्छ कर के सारे समालोचकों की तीक्ष्ण दृष्टि के सामने पर्वत के सदृश अटल भाव से वैसे ही शिर उठाये गर्व के साथ खड़ा है। यह रचना ऊषा के उदय की तरह उस समय जैसी सुन्दर थी, आज भी वैसी ही सुन्दर है।

जर्मनी के महाकवि गेटे ने अभिज्ञान शाकुन्तल पढ़ कर जो उल्लासोक्ति की है, वह भी बिल्कुल सार्थक है।

'Wouldst thou see spring's blossoms and the fruits of its decline.

Wouldst thou see by what the souls entraptured feasted fed.

Wouldest thou have this earth and heaven in one soul name combine

I name thee Shakuntala, and all at once is said."

गेटे के इन वचनों का बहुत ही सुन्दर भावानुवाद श्री मिरासी ने इस प्रकार किया है :—

वासन्तं कुसुमं फलंच युगपद्, ग्रीष्मस्य सर्वं च यद्
यच्चान्यन्मनसो रसायनमतः सन्तर्पणं मोहनम्।

एकी भूतमभूत पूर्वमयवा, स्वर्लोक-भूलोकयो–
रैश्वर्यं यदि वाञ्छसि प्रिय सखे शाकुन्तलं सेव्यताम् ॥

यदि तुम वसन्त और गीष्म के फूलों और फलों का तथा मन को प्रसन्न करने वाले रसायनों का और स्वर्ग लोक तथा भूलोक के ऐश्वर्यों का एक साथ आनन्द उठाना चाहते हो तो शकुन्तला का अध्ययन करो।

अमरसिंह राठौर

जोधपुर के राठौर वंशी राजा गजसिंह का बड़ा पुत्र जिसका जन्म सन् १६१३ में हुआ था।

राजा गजसिंह ने अपने बड़े पुत्र अमरसिंह राठौर को स्वेच्छाचारी और उद्दण्ड होने के कारण सन् १६३३ में जोधपुर से देश निकाला दे दिया था। मगर अमरसिंह बहुत बहादुर और साहसी तबियत का नव युवक था। उसकी वीरता की कहानियां उसकी छोटी उमर से ही सब दूर प्रचलित हो गई थी। जोधपुर से निकल कर वह बादशाह शाहजहां के दरबार में दिल्ली पहुँचा। शुरू में बादशाह ने उसको कुछ साधारण काम देकर सेना में नौकर रख लिया। कुछ दिनों के बाद उसके अच्छे कामों से प्रसन्न होकर सन् १६३७ में राव की पदवी और मनसब देकर नागौर का शासक बना कर भेज दिया। इसी समय उसकी शादी डूंगरपुर के रावल पूंजा अहाड़ा गहलौत की बेटी अहाड़ी अजायबदे से हुआ। ऐसा कहा जाता है कि इस रानी के प्रेम में अमरसिंह देहली दरबार के प्रति अपने कर्तव्य की उपेक्षा करने लगा। इससे बादशाह ने उसको देहली दरबार में तलब किया। वहां पर सन् १६४४ में दरबार के बख्शी सलावत खाँ से इसका झगड़ा हो गया और उसने क्रोधित होकर भरे दरबार में कटारी से सलावत खाँ को मार डाला और उसी समय किसी दूसरे दरबारी के द्वारा उसका भी प्राणान्त हो गया।

राव अमर सिंह की वीरता की कहानियाँ आज भी राजस्थानी लोगों की जबान पर मौजूद हैं और इनके वीरता पूर्ण जीवन पर कई पुराने ढंग के नाटक अभिनय किये जाते हैं और आधुनिक चलचित्रों के युग में भी इनके ऊपर चलचित्र बनाये गये हैं।

राव अमरसिंह राठौर की स्मृति में नागौर में एक विशाल छत्री भी बनी हुई है जो दर्शनीय है।

अमरसिंह थापा

नाहन का राजा अमरसिंह थापा, जो नैपाल दरबार का प्रधान सेनापति था।

जिस समय अंग्रेजी फौजों के मेजर जनरल जिलेप्सीने नैपाल की सीमा उल्लंघन कर देहरादून क्षेत्र में प्रवेश किया उस समय अमरसिंह ने अपने भतीजे बलभद्र सिंह को केवल छह सौ गुरखा सैनिक देकर जिलेप्सी का अवरोध करने को भेजा। बलभद्र सिंह ने बड़ी फुर्ती से देहरादून से साढ़े तीन मील दूर नाला पानी की सबसे ऊँची पहाड़ी पर एक छोटा सा अस्थायी किला खड़ा किया। उस पर नैपाली झण्डा चढ़ा कर उसे "कलंगा दुर्ग" का नाम दिया।

जिलेप्सी ने कर्नल मावी की अध्यक्षता में एक हजार गोरा पल्टन और ढाई हजार देशी पलटन उस किले पर आक्रमण करने के लिए भेजी। अंग्रेजी फौजों ने सात दिन तक रात दिन कलंगादुर्ग पर गोली बार किया उधर नैपाली भी अपनी बन्दूकों से रात-दिन गोली वार कर रहे थे अंग्रेजी फौजों के सतत प्रयत्न और बढ़िया युद्ध सामग्री के बावजूद भी कलंगा दुर्ग अजेय खड़ा रहा।

जनरल जिलेप्सी ने अंग्रेजी फौजों की विफलता का यह समाचार सुना तो गुस्से से लाल होकर अपनी सुरक्षित सेना को लेकर नाला पानी पर पहुंच गया। उसने तीन दिन तक सारी स्थिति पर विचार करके अपनी सेना को चार विभागों में विभक्त किया और चार कुशल अंग्रेज कमानों के नेतृत्व में चारों दिशाओं से एक साथ आक्रमण कर दिया। उधर से नैपाली गुरखे और उनकी स्त्रियाँ भी किले पर से बराबर बन्दूकें दाग रही थीं। अंग्रेजी सेना का जो योद्धा किले के द्वार के पास पहुँचता वहीं ढेर हो जाता था।

इस बार-बार की विफलता से चिढ़कर जनरल जिलेप्सी स्वयं तीन कम्पनी गोरे सिपाहियों को साथ लेकर बढ़ा परन्तु दुर्ग पर से जो गोलियों और पत्थरों की बौछारें

शुरू हुई तो गोरी पल्टन भाग खड़ी हुई। तब जनरल जिलेप्सी अकेला ही नंगी तलवार घुमाता हुआ कलंगादुर्ग के फाटक की ओर बढ़ा। वह फाटक से करीब तीस गज की दूरी पर था कि एक गोली उसकी छाती को पार करती हुई निकल गई और वह वहीं पर खतम हो गया।

जनरल जिलेप्सी की मृत्यु से सारी अंग्रेजी सेना में भयंकर आतंक छा गया तुरन्त कर्नल मावी ने अंग्रेजी फौजों को वापस लौटने का आदेश दिया और वहाँ से वापस लौट कर देहली के केन्द्र को और मदद भेजने के लिए लिखा। दिल्ली से एक भारी तोपखाना और गोरी पलटन मदद को आ पहुँची। किले पर भयङ्कर गोलाबारी शुरू हुई उधर किले में पानी का अकाल पड़ गया। तब बलभद्रसिंह ने किले का द्वार खोल दिया और बचे हुए सत्तर प्यास से त्रसित स्त्री पुरुषों को लेकर अंग्रेजी सेना के बीच में से निकल गया और उसी जंगल में सबके साथ ऐसा गायब हुआ कि किसी को पता नहीं लगा।

अमरसिंह

सन् १८५७ की महान सैनिक क्रान्ति के महान और बहादुर नेता कुँवर सिंह का भाई अमर सिंह।

२६ अप्रैल सन् १८५८ को सैनिक क्रान्ति के महान वीर ८० वर्ष के वृद्ध कुँवर सिंह की मृत्यु हो गई। इस महान व्यक्ति के इतिहास के रंगमंच से निकल जाने पर उसी की जोड़ के शूर और देशभक्त उसके भाई अमर सिंह ने रंगमंच पर पदार्पण किया। वैसे यह कुँवर सिंह के साथ भी अपनी वीरता के जौहर दिखा चुका था।

भाई की मृत्यु के बाद चार दिन का विश्राम भी न लेकर अमर सिंह ने आरा के ऊपर धावा बोल दिया। आरा के अंग्रेजों की हार के समाचार मिलने पर ब्रिगेडियर डगलस तथा जनरल लुगार्ड के नेतृत्व में गङ्गा के इस ओर पड़ी अंग्रेजों की सेना ने गङ्गा पार होकर अमर सिंह पर हमला किया। सम्मुख युद्ध में सफलता न पाने के कारण उसने छापामार तरीके से लड़ाई लड़ना शुरू किया। इससे अंग्रेजी सेना बड़ी परेशान हो गई और सेनापति लुगार्ड १५ जून को रिटायर होकर इंगलैंड चला गया और उसकी सेना छावनी को लौट गई। इससे उत्साहित होकर अमर सिंह अपने भाई कुँवर सिंह की खास राजधानी जगदीशपुर में प्रवेश कर गया और जगदीशपुर पर अधिकार कर के वहाँ पर स्वाधीनता का झण्डा फहरा दिया और जुलाई, अगस्त तथा सितम्बर तीन महीने तक वहाँ के सिंहासन पर आसीन रहा। ब्रिगेडियर डगलस और उसकी सात हजार सेना ने अमर सिंह को नष्ट करने के लिये सात दिशाओं से जगदीशपुर पर हमला किया। १७ अक्टूबर को अंग्रेजी सेनाओं ने जगदीशपुर को पूरी तरह घेर लिया। मगर अमर सिंह किसी तरह उस घेरे को तोड़ कर निकल भागा। जगदीशपुर अंग्रेजों के हाथ आ गया मगर अमर सिंह नहीं आया।

१९ अक्टूबर को अंग्रेजी सेना ने नौदी गाँव में अमर सिंह की क्रान्तिकारी सेना को पूरी तरह से घेर लिया। ४०० क्रान्तिकारियों में से ३९७ वहीं पर कट गये सिर्फ तीन आदमी बचे जिनमें से एक अमर सिंह था। उसके बाद अमर सिंह कहाँ गया इसका पता न अंग्रेजी सेनाओं को लगा और न आज तक इतिहास को ही लगा।

अमरसिंह महाराणा

मेवाड़ के महाराणा प्रताप के पुत्र जिनका राज्यारोहण सन् १५९७ की जनवरी में चावण्ड में हुआ।

महाराणा अमर सिंह के समय में सम्राट् अकबर ने शाहजादा सलीम के नेतृत्व में एक सेना मेवाड़ पर चढ़ाई करने के लिए सन् १६०० में भेजी, मगर महाराणा अमर सिंह की सेना ने शाही सेना को बुरी तरह शिकस्त दी। तब शाहजादा सलीम निराश होकर मेवाड़ से बंगाल चला गया।

इसके बाद ई० सन् १६०३ के दशहरे के दिन बादशाह ने शाहजादा सलीम को फिर मेवाड़ पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। मगर शाहजादा सलीम मेवाड़ से पूरी तरह परिचित था अतः उसने वहाँ जाने से आनाकानी की और इलाहाबाद चला गया।

सन् १६०५ में सम्राट् जहाँगीर ने गद्दीनशीन होते ही शाहजादा परवेज के नेतृत्व में २०००० सवार तथा कई

बहादुर सेनानायकों को देकर मेवाड़ पर चढ़ाई करने को भेजा। मगर इस लड़ाई में भी राणा अमर सिंह ने शाहजादा परवेज को करारी टक्कर दी। जिससे नाराज होकर बादशाह ने परवेज को युवराज पद से खारिज कर दिया।

सन् १६०८ में शाहजादा परवेज की असफलता के पश्चात् बादशाह ने महावतखाँ को १२००० सवार, २००० बंदूकची, ६० हाथी और ७०-८० तोपें देकर मेवाड़ पर चढ़ाई करने भेजा। मगर इस लड़ाई में भी राणा ने महावत खाँ को बुरी तरह हरा कर भगा दिया। तब बादशाह ने महावत खाँ को बुला कर उसकी जगह अब्दुल्ला खाँ को भेजा।

सन् १६११ में अब्दुल्ला खाँ ने राणापुर की घाटी के पास मेवाड़ की सेना पर हमला किया मगर इस लड़ाई में भी शाही सेना की पराजय हुई हालांकि मेवाड़ की सेना के भी बहुत से बहादुर योद्धा मारे गये। तब बादशाह ने अब्दुल्ला खाँ को वहाँ से हटा कर गुजरात का सूबेदार बना कर भेज दिया।

इन बड़ी-बड़ी हारों से परेशान हो कर स्वयं बादशाह जहाँगीर सन् १६१३ में अजमेर पहुँचा और वहाँ से शाहजादा खुर्रम की अध्यक्षता में १२००० सवार और साथ देकर मेवाड़ पर हमला करने को भेजा और पूरी शक्ति से मेवाड़ पर आक्रमण कर दिया। इस विशाल आक्रमण से महाराणा अमर सिंह अपनी रक्षा नहीं कर सके और अन्त में उन्हें बादशाह के साथ सन्धि करनी पड़ी।

एक बार महाराणा अमरसिंह ने अकबरी दरबार के प्रसिद्ध कवि रहीम के पास दिन रात की लड़ाईयों से घबरा कर यह दोहा लिख भेजा था—

गौड़, कछाहा राठवड़, गोखाँ जोख करन्त
कह जो खानाखान ने, बनचर हुआ फिरन्त

अर्थात्—गौड़, कछवाहा और राठौड़ तो महलों के झरोखा में मौज कर रहे हैं। खाना-खाना से कहना कि हम जंगलों में भटक रहे हैं।

इसके उत्तर में रहीम ने यह दोहा लिखा था—

धर रहसी, रहसी धर्म, खपजासी खुरसाण
अमर विशंभर उपरां, राखो नहचो राण

हे राणा अमर तुम ईश्वर पर भरोसा रक्खो धरती और धर्म रह जायँगे खुरासान वाले (मुगल) खप जावेंगे।

अमर सिंह (महाराणा) द्वितीय

मेवाड़ के राणा जय सिंह के पुत्र अमर सिंह जिनकी गद्दीनशीनी सन् १६७२ ई० में हुई।

औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् शाही गद्दी के उत्तराधिकार के सिलसिले में राणा अमरसिंह द्वितीय ने शाहजादा मुअज्जम का पक्ष लिया था। यही शाहजादा मुअज्जम आगे चल कर मुअज्जम शाहआलम बहादुर शाह के नाम से गद्दी पर बैठा।

अम्बर मलिक

अहमद नगर के आदिलशाही बादशाह का मंत्री तथा सेनापति मलिक अम्बर जो असाधारण बुद्धिवाला उत्कृष्ट राजनीतिज्ञ और कुशल सेनानायक था।

मलिक अम्बर का जहाँगीर कालीन अहमदनगर राज्य के इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। वहाँ के शासन प्रबन्ध में उसने कई महत्त्वपूर्ण सुधार किये। उसने वहाँ की जमीन का लगान का प्रबन्ध राजा टोडरमल की प्रणाली के अनुसार किया। उसने दक्षिण भारत में एक नवीन युद्ध प्रणाली का आविष्कार किया। निजामशाही राज्य की सैनिक शक्ति को उसने बहुत बढ़ा दिया। उसी ने पहले-पहल मराठों को गुरिल्ला युद्ध प्रणाली की शिक्षा दी। इस बहादुर सेनानायक ने करीब बीस वर्ष तक मुगलों की सैनिक शक्ति को परेशान किया।

सन् १६११ में मुगल सेनाओं ने खानजहाँ की अध्यक्षता में अहमद नगर पर आक्रमण किया किन्तु मलिक अम्बर के मराठा सवारों ने उन्हें बुरी तरह पराजित करके गुजरात की ओर भगा दिया। इसके बाद बादशाह ने खानखाना को फिर दक्षिण विजय के लिये भेजा। इस बार उसने मलिक अम्बर की सेना को एक लड़ाई में पराजित कर दिया मगर उससे उसका बल नही टूटा।

इस पर शाहजादा खुर्रम की अधीनता में बादशाह ने सब प्रसिद्ध सेनापतियों के साथ एक बड़ी सेना अहमदनगर

पर आक्रमण करने के लिये भेजी। शाहजादा खुर्रम ने आदिलशाह के पास सन्धि का प्रस्ताव भेजा जिसको उन्होंने तत्काल मंजूर कर लिया। पन्द्रह लाख रुपये की भेंट के साथ स्वयं आदिल शाह शाहजादे के पास हाजिर हुआ और उसने मलिक अम्बर के द्वारा जीते गये सब प्रदेशों को लौटा देने की प्रतिज्ञा की। बादशाह ने इस सन्धि को मंजूर कर लिया और आदिलशाह को फर्जन्दे हिन्द की उपाधि इनायत की।

अम्बा प्रसाद

गुहिल वंश के मेवाड़ का राजा, शक्ति प्रसाद का पुत्र। रावल समर सिंह के समय की सन् १२७४ की प्रशस्ति में इसका नाम आम्र प्रसाद लिखा हुआ है। साम्भर के चौहान राजा वाक्पति राज ने उसे युद्ध में मार डाला।

अमरू

काश्मीर का एक कवि जो सातवीं सदी के लगभग हुआ। इस कवि का "अमरू-शतक" नामक काव्य संस्कृत के सौ सुन्दर श्लोकों में समाप्त हुआ है। इस काव्य की एक-एक पंक्ति प्रणय और रोमांस का सुन्दर वर्णन करती है। संस्कृत साहित्य में यह शतक काफी लोकप्रिय हुआ और इसके श्लोक अनेक स्थानों पर उद्धृत किये जाते रहे हैं।

अमरू सफ्फारी

ईरान के सफ्फारी वंश का दूसरा शासक जिसका समय सन् ८७८ से ९०० ई० तक है।

अमरू खलीफा मोतजिद के शासन काल में खुरासान का गवर्नर था। उस समय अरब से अलग पूर्वी प्रदेश के दो भाग थे (१) ईरान और (२) मावराऊन्नहर (अन्तर्वेद)। अन्तर्वेद का शासन सामानी साम्राज्य के अन्तर्गत था और खुरासान तथा ईरान का एक भाग सफ्फारी वंश के शासक अमरू के अधीन था। नेशापोर के शासक रफी को मार कर अमरू सारे ईरान का शासक हो गया। इसके बाद उसने सामानी साम्राज्य के तत्कालीन शासक ईस्माइल सामानी के खिलाफ अन्तर्वेद पर आक्रमण करने का विचार किया मगर सामानी ने उससे पहले ही बलख को घेरकर थोड़ी लड़ाई के पश्चात् अमरू को पकड़ कर जेल में डाल दिया और सन् ९०३ में उसे कतल करवा दिया।

अमरू बड़ा साहसी, उदार और राजनीतिज्ञ था। सेना और प्रजा उसे बहुत चाहती थी। लेकिन खलीफा का सन्देह उस पर बराबर बना रहा, इसीसे उसने सामानी शासक इस्माइल को खुरासान और ईरान का अमीर बना देने का लालच देकर अमरू के खिलाफ उसकाया। जिस समय सामानी की सेना मेर्व में पहुँची उस समय उसमें केवल दो हजार सवार थे। उस समय अमरू नेशापोर में था और उसके पास सत्रह हजार सवार थे। जब बलख में दोनों सेनाओं का आमना-सामना हुआ तो बिना किसी विशेष प्रतिरोध के ही अमरू गिरफ्तार कर लिया गया। उसकी सेना में न तो कोई मरा, न किसी को चोट आई और न कोई कैदी हुआ।

इस प्रकार अमरू के साथ ही सफ्फारी वंश का अंत हुआ।

अमर-कोश

संस्कृत-भाषा का एक सुन्दर शब्दकोश, जिसके रचयिता का नाम श्री अमरसिंह है।

संस्कृत-भाषा के इस लोकप्रिय कोश में इसके रचयिता ने शब्दों के प्रणयन एवं क्रम के वर्गीकरण में उत्कृष्ट बुद्धि का परिचय दिया है।

संस्कृत-भाषा में इसके पूर्ववर्ती तथा उत्तरवर्ती और भी कोश पाये जाते हैं, मगर अमर-कोश की क्रमबद्ध शैली और लालित्य पूर्ण विवेचना से संस्कृत के विद्यार्थी आज भी इसी कोश को ज्यादा पसन्द करते हैं।

अमर कोश में दिये हुए पर्यायवाची शब्द प्रायः सभी शास्त्र, पुराण, काव्य, नाटक और उपाख्यानों में यथार्थ रूप में प्रयुक्त किये गये हैं।

अमर चन्द्र सूरि

संस्कृत साहित्य के एक विद्वान जैनाचार्य्य जो सन् १२३० ईस्वी के लगभग गुजरात में हुए। ये एक प्रकार से भक्ति सम्प्रदाय के कवि थे। इन्होंने ब्राह्मण साहित्य में भी बाल भारत और कवि कल्पना नामक ग्रन्थों की रचना की। इनके अन्य ग्रन्थों में छन्द रत्नावलि, काव्य कल्पना परिमल, अलंकार प्रबोध, पद्मानन्द काव्य तथा स्यादि-समुच्चय उल्लेखनीय है।

अमृत चन्द्र

दि० जैन सम्प्रदाय के एक प्रसिद्ध आचार्य्य जिनका समय विक्रम संवत् की बारहवीं सदी में किसी समय माना जाता है। दि० जैन सम्प्रदाय में आध्यात्मिक विषय के विद्वानों में आचार्य्य कुन्दकुन्दाचार्य्य के पश्चात् आचार्य्य अमृतचन्द्र का ही नाम आता है। आचार्य्य अमृत चन्द्र के बनाये हुए पांच ग्रन्थ इस समय संस्कृत सहित्य में उपलब्ध हैं (१) पुरुषार्थ सिद्धयुपाय, (२) तत्वार्थ-सार (३) समय-सार टीका (४) प्रवचनसार टीका और (५) पंचास्तिकाय टीका।

इनमें से पहला ग्रन्थ मौलिक है जो जैन श्रावकों के आचार पर प्रकाश डालता है। यह ग्रन्थ दूसरे सब श्रावका-चारों से निराला और अपने ढंग का अद्वितीय है, दूसरा ग्रन्थ आचार्य्य उमास्वाति के "तत्वार्थसूत्र" नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ पर की हुई सुस्पष्ट और सुन्दर पद्य-बद्ध संस्कृत टीका है। शेष तीन ग्रन्थ आचार्य्य कुन्दकुन्दाचार्य्य द्वारा लिखे हुए समयसार, प्रवचनसार और पंचास्तिकाय पर की हुई सुन्दर और विद्वतापूर्ण टीकाएं हैं।

अमित गति सूरि

दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के एक बहुश्रुत आचार्य्य जो धारा नगरी के इतिहास प्रसिद्ध राजा मुंज के सम-कालीन थे। इनका जन्मकाल ई० सन् ९६३ के करीब माना जाता है।

आचार्य्य अमितगति दि० जैन सम्प्रदाय के माथुर संघ के आचार्य्य थे। माथुर संघ का नाम मथुरा नगर के नाम पर पड़ा है। ये जैन धर्म के बड़े विद्वान और विचार-शील आचार्य्य थे। इन्होंने निम्नलिखित जैन ग्रन्थों की संस्कृत भाषा में रचना की —(१) सुभाषित रत्न सन्देह— इस ग्रन्थ में जैन श्रावकों के श्रावक धर्म का निरूपण बड़ी सरल संस्कृत भाषा में बड़े सुन्दर ढंग, से किया गया है। यह ग्रन्थ सन् ९९३ में लिखा गया है। (२ धर्मपरीक्षा— इस ग्रन्थ में अविश्वसनीय पौराणिक कथाओं की आलो-चना बड़े मजाकिया ढंग से की गई है। यह ग्रन्थ सन् १०१३ में लिखा गया। इसके अतिरिक्त पंच संग्रह, आरा-धना, योगसार प्राभृत इत्यादि ग्रन्थों की रचना भी इन्होंने की है।

अम्बर का युद्ध

चन्दा साहब मुजफ्फर जंग और डूप्ले की सम्मिलित सेनाओं के साथ कर्नाटक नवाब के उत्तराधिकारी अनवरु-द्दीन की लड़ाई जो सन् १७४९ में हुई और जो इतिहास में अम्बर के युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। इस युद्ध में चन्दा साहब की सेनाओं ने अनवरुद्दीन को हरा कर मार डाला और कर्नाटक पर अधिकार कर लिया।

अम्ब्रोस

सेण्टअम्ब्रोस, ईसाई धर्म के प्रसिद्ध संत, इटाली के मिलान नगर चर्च के विशप, संत अगस्टाइन के गुरु जिनका जन्म सन् ३४० में और मृत्यु ३९७ में हुई।

संत अम्ब्रोस का ईसाई धर्म के इतिहास में तथा तत्कालीन राजनैतिक विचारधारा में एक महत्वपूर्ण स्थान है। ये सम्राट् थ्यूडोसियस और सम्राट् वेलीएण्टाइन के समकालीन थे, जब सम्राट् वेलीएण्टाइन ने सत्ता के मद से अभिभूत होकर चर्च के धार्मिक क्षेत्र में हस्तक्षेप करने का प्रयास किया तो उन्होंने उनका बड़ी दृढ़ता से विरोध किया और लिखा कि राजनैतिक मामलों में सम्राट् स्वतंत्र हैं मगर धार्मिक क्षेत्र में सम्राट् चर्च के आधीन हैं चर्च उनके आधीन नहीं है। इस प्रकार बहादुरी के साथ उन्होंने चर्च के अधिकार की रक्षा की।

अमृतबाजार पत्रिका

भारतवर्ष की सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय पत्रिका जो कलकत्ता से इस समय अंग्रेजी भाषा के दैनिक पत्र रूप में प्रकाशित होती है।

भारतीय पत्र कला के इतिहास में राष्ट्रीय जागरण उद्देश्य के निमित्त अमृतबाजार पत्रिका का प्रकाशन एक महत्वपूर्ण घटना है।

सन् १८६८ में जैसोर जिले के अमृतबाजार नामक गाँव से शिशिरकुमार घोष और मोतीलाल नामक घोष बन्धुओं ने अमृतबाजार पत्रिका के नाम से एक बंगला की साप्ताहिक पत्रिका निकालना प्रारम्भ किया।

यह वह समय था जब पत्र पत्रिकाओं का प्रचार बहुत ही कम था और पत्रकारों को बड़ी आर्थिक कठिनाइयों में से गुजरना पड़ता था, मगर शिशरकुमार घोष का उत्साह इतना प्रबल था कि ये स्वयं लिखते, कम्पोज करते और छापते थे। अगर कागज नहीं होता तो हाथ से कागज भी बना कर अपनी बनाई हुई स्याही से छाप लेते थे।

सन् १८७२ में पत्रिका का दफ्तर कलकत्ते में लाया गया और तब से अब तक यह पत्रिका कलकत्ते से ही निकलती है।

२१ मार्च सन् १८७८ से पत्रिका का प्रकाशन अंग्रेजी भाषा में होने लगा। ब्रिटिश गवर्नमेण्ट की तरफ से इस पत्रिका का प्रभाव देख कर इसे नीम सरकारी बना देने का प्रस्ताव भी आया। सन् १८७६-७७ में बंगाल के तत्कालीन गवर्नर सर एसली ईडेन ने जब शिशिर बाबू के सामने पत्रिका को नीम सरकारी बना देने का प्रस्ताव रखा तब उन्होंने सर एसली से यह कह कर वह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया कि क्या आप देश में एक भी ईमानदार पत्र का अस्तित्व नहीं रहने देना चाहते।

इसके पश्चात् सन् १८७८ से सन् १९४७ तक पत्रिका के ७० वर्ष अनेक प्रकार के उत्थान और पतन के धक्कों में से गुजरे। मगर इस पत्रिका ने अपने राष्ट्रीय आदर्श को कायम रख कर ब्रिटिश सरकार से बराबर लोहा लिया। इसने कई दफे देशी राजाओं को उन पर चलने वाले राजनीति के कुठार से बचाया। शिशिर बाबू के पश्चात् पत्रिका का सम्पादन उनके छोटे भाई मोतीलाल घोष के हाथ में आया। मोतीलाल घोष के पश्चात् पत्रिका का सम्पादन तुषारकान्ति घोष के ऊपर आया। तब से यह पत्रिका बराबर उन्नति करती जा रही है और इसका एक संस्करण कलकत्ता से और एक संस्करण इलाहाबाद से निकलता है। कलकत्ता से इसी आफिस से बंगला में दैनिक युगान्तर और इलाहाबाद से हिन्दी में अमृतपत्रिका के नाम से पत्रिकाएँ प्रकाशित होती है।

अम्बेडकर

भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के समय में परिगणित जातियों के नेता और स्वतन्त्र भारत की पार्लियामेण्ट में देश के कानून मन्त्री।

दूसरी गोल मेज परिषद् में परिगणित जातियों की ओर से डा० अम्बेडकर ने भाग लिया था। उन्होंने परिगणित जातियों के लिये पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था का समर्थन किया था और जब दूसरी गोलमेज परिषद् ने हरिजनों को प्रथक निर्वाचन का अधिकार दिया तो डा० अम्बेडकर और उनके दल को बड़ी प्रसन्नता हुई लेकिन राष्ट्रीय विचार धारा के लोगों को इससे बड़ा दुख हुआ और इस निर्णय के खिलाफ महात्मा गान्धी ने आमरण अनशन करने की घोषणा कर दी।

सारे देश में बड़ी खलबली मच गई और अन्त में मध्यस्थ लोगों के प्रयत्न से २५ सितम्बर १९३२ को पूना पैक्ट बना। इस समझौते में डा० अम्बेडकर ने सवर्ण हिन्दुओं को अधिकाधिक दबाने का प्रयत्न किया फिर भी पृथक निर्वाचन का सिद्धान्त रद्द कर दिया गया।

डा० अम्बेडकर परिगणित जातियों के विकास के पक्षपाती तो थे मगर वे इन जातियों को सवर्ण हिन्दुओं के साथ सम्मिलित रखना नहीं चाहते थे। वे इन जातियों को एक प्रथक इकाई के रूप में रख कर अधिक से अधिक सुविधाएँ प्राप्त करने के पक्ष में थे। इसी भावना से प्रेरित होकर एक बार उन्होंने समस्त परिगणित जातियों को बौद्ध धर्म स्वीकार करने का फतवा भी दे दिया था।

अम्बोयना का हत्याकाण्ड

सन् १६०५ में डच लोगों के द्वारा किया गया अंग्रेजों का भीषण हत्याकाण्ड।

सन् १६०१ में पुर्त्तगालियों के स्मृद्धिशाली व्यापार को देखकर डच लोगों ने भी पूर्वी देशों में एक कम्पनी स्थापित की।

इस कम्पनी के पास प्रचुर साधन और सम्पत्ति थी। इसके सदस्य महत्वाकांक्षी और साहसी व्यक्ति थे। सन् १६०५ में डच कम्पनी ने अम्बोयना पर अधिकार कर लिया। उसी समय अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी भी खुल चुकी थी और वह भी भारतोय तथा पूर्वी देशों में व्यापार को बढ़ाना चाहती थी। अतः अंग्रेजी कम्पनी और डच कम्पनी में संघर्ष अनिवार्य था। सन् १६२१–२२ में डच कम्पनी ने अंग्रेजों को लेण्टोर और पूलोरन से निकाल दिया। सन् १६२३ में अम्बोयना का भीषण हत्याकाण्ड हुआ जिसमें बहु संख्यक अंग्रेज डच लोगों के हाथ से मारे गये। इस हत्याकांड की सूचना से इंगलैण्ड में क्षोभ छा गया। उसके थोड़े ही दिनों बाद इंगलैण्ड का शासन क्रामवेल के हाथों में आया। तब उसने कड़ी कारवाई करके डचों को सन्धि करने के लिये बाध्य किया। इस सन्धि के अनुसार पूलोरन अंग्रेजों को वापस मिला। ८५ हजार पौण्ड डच लोगों ने अंग्रेजों को जुर्माने के रूप में दिये तथा अम्बोयना में मारे गये अंग्रेजों के उत्तराधिकारियों को भी क्षति पूर्ति के रूप में काफ़ी धन दिया गया।

अब्दुल्ला-बिन-मैमान

ईस्लाम धर्म में फ़रामाती पंथ का संस्थापक। करामाती पंथ के अनुसार इस्लाम का सातवाँ इमामअली अन्तिम इमाम है। मृत पुरुषों का कयामत के टाइम पर फिर पुनरुत्थान होता है इस सिद्धान्त को यह सम्प्रदाय नहीं मानता। इस पंथ के अनुयायी जब ईरान से भगा दिये गये वे भारत में आकर बसे। इस देश में इस सम्प्रदाय के अनुयायियों की संख्या बढ़ने लगी। तत्कालीन मुलतान का राजा अब्दुलफ़तह और वहाँ की प्रजा का बहुत बड़ा हिस्सा इस सम्प्रदाय का अनुयायी था।

अमरदास गुरु

सिक्ख सम्प्रदाय के दूसरे गुरु अङ्गद के शिष्य जिनका जन्म सन् १४७९ में अमृतसर के निकट बसरखा गाँव के एक खत्री परिवार में हुआ।

सिक्ख गुरु अङ्गद की लड़की इनके भतीजे से ब्याही गई थी एक बार उस लड़की के मुँह से सिक्ख गुरू के कुछ पद सुन कर ये विमुक्त हो गये और उमर में गुरू अंगद से बड़े होने पर भी उनके पास जाकर इन्होंने दीक्षा ले ली। गुरू अंगद ने मृत्यु के समय इन्हें अपनी गद्दी पर बिठाया। उस समय इनकी अवस्था ७३ वर्ष की थी मगर इस वृद्धावस्था में भी उन्होंने सिक्ख सम्प्रदाय के लिए काफ़ी काम किया। इनकी रचनाएँ "आदि ग्रन्थ" के अन्तर्गत महलाइ के नीचे उद्धृत की गई हैं। इनकी सबसे प्रसिद्ध रचना "आनन्द" है जो सिक्ख धर्म के उत्सवों के अवसर पर गाई जाती है। २२ वर्ष तक गद्दी पर रहने के बाद ९५ वर्ष की आयु में सन् १५७४ में इनका देहान्त हुआ!

अमानत

सैयद आगा हसन अमानत, उर्दू के एक प्रसिद्ध कवि, जिनका जन्म सन् १८१६ में हुआ।

उर्दू भाषा में इन्दर-सभा नामक पद्यमय नाटक लिख कर इन्होंने सबसे पहले उर्दू में रंगमंच की परंपरा का प्रारंभ किया। इनके लिखे हुए दीवानों में ख़जायनुल-फ़साहत और गुलदस्तये अमानत प्रकाशित हो चुके हैं। इनकी कृतियों में शब्दावली उत्तम मानी जाती है। इनकी कविताओं का नमूना—

परियों की मोहब्बत में एक हाल है दोनों का,
फ़रजान हुआ तो क्या, दीवाना हुआ तो क्या!
नरगिस को बागवाँ से महल है हिजाब का,
चोरी गया चमन से कटोरा गुलाब का।

अमाडियस हाफमेन

उन्नीसवीं सदी में जर्मन साहित्य का प्रसिद्ध कवि कहानीकार, कलाकार और गायक। इसकी कृतियों में रूमानी व्यंग और उच्छृंखलता भरी हुई रहती थी। भूत, प्रेत आदि की अनेक भयानक आकृतियों, छायाओं, स्वप्नों इत्यादि का उसने उपन्यासों में चित्रण किया। उसके उपन्यासों में "डी-एलेक्जीर डेस तुफेल्स" "डरेगोलुने तोफ" इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

अमानुल्ला अमीर

अफगानिस्तान का प्रसिद्ध सुधारवादी अमीर जिसने कमालपाशा की नकल पर अफगानिस्तान में तेजी से पाश्चात्य ढङ्ग के सुधार करना चाहे मगर जो अपनी योजना में असफल रहा।

अफ़गानिस्तान का अमीर अमानुल्ला अमीर हबीबुल्ला का छोटा लड़का था। यह सन् १९१९ में अफ़गानिस्तान की गद्दी पर बैठा। यह अंग्रेजी सरकार की नीति और उसके प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष दवाव के बहुत विरुद्ध था। उसने गद्दी पर बैठते ही भारत पर हमला कर दिया। अंग्रेजों और अफ़गानों के बीच लड़ाई छिड़ गई यह लड़ाई बहुत थोड़े समय चली मगर इसके फलस्वरूप जो संधि हुई उसमें अंग्रेज सरकार ने अफ़गानिस्तान की स्वतंत्र सत्ता को मान लिया और वैदेशिक नीति के सम्बन्ध में भी उस पर के सब बन्धन हटा लिये। इस प्रकार अमानुल्ला का एक उद्देश पूरा हो गया।

इधर से निश्चिन्त हो अमानुल्ला ने अपने देश की सामाजिक और शैक्षणिक दशा सुधारने की ओर ध्यान दिया। उन्हीं दिनों कमालपाशा ने भी तुर्की का पश्चिमीकरण बड़ी सफलता के साथ किया था। अमानुल्ला ने भी उसका अनुकरण कर अफगानिस्तान का पश्चिमी करण करना प्रारम्भ किया। उसकी वेगम सुरैय्या इस कार्य्य में उसकी पूरी मददगार थी। सुरैय्या ने पश्चिमी शिक्षा पाई थी और बुर्के तथा परदे से उसे वेहद नफरत थी।

अमानुल्ला ने अपने देश के बहुत से छात्रों और छात्राओं को शिक्षा ग्रहण करने के लिए विदेशों में भेजा। उसने अफ़गान लोगों की दाढ़ियों को मुँड़वा कर उन्हें कोट, पेण्ट और हेट पहना दिये। स्त्रियों का बुर्का और परदा तोड़ कर उन्हें आजादी से घूमने-फिरने की स्वतंत्रता दे दी।

अपनी शासन व्यवस्था में भी उसने काफी सुधार कर उसे अनुशासनवद्ध कर दिया। अपने पड़ोसी देशों के साथ मित्रता पूर्ण संधियाँ करके अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी इसने अपनी स्थिति मजबूत बनाई। सोविएट रूस, तुर्की, इरान इन सब देशों से उसने अफगानिस्तान सम्बन्ध को सुधार कर सबसे अलग-अलग संधियाँ कीं।

सन् १९२८ में अमानुल्ला और वेगम सुरैय्या यूरोप की शानदार यात्रा पर रवाना हुए। सारे यूरोप में उनका शानदार स्वागत हुआ। मगर यह यात्रा ही उनके पतन का मूल कारण बन गई। उनके पीछे से उनके विरोधी तत्वोंने अफगानिस्तान में उन्हें तरह-तरह से बदनाम करना प्रारम्भ किया और अपना एक मजबूत संगठन वना लिया। उधर अमानुल्ला अपनी वेगम के साथ यूरोप यात्रा का आनन्द ले रहे थे इधर अफगानिस्तान में उनके खिलाफ आग की लपटें उठने लगी थीं।

अमानुल्ला यूरोप यात्रा से वापस लौट कर फिर अपने सुधार कार्य्य में लगे मगर उसी समय सुलगी हुई आग भड़क उठी। विरोधी पार्टियों ने बचा-सका नामक एक भिस्ती के नेतृत्व में बगावत का झण्डा खड़ाकर अमानुल्ला को गद्दी से हटा दिया अमानुल्ला और वेगम सुरैया को देश छोड़ कर भागना पड़ा और बचा-सका अफगानिस्तान का चाहे थोड़े ही समय के लिए हो बादशाह बन बैठा। मगर थोड़े ही दिनों के बाद उसके सेनापति नादिर खाँ ने जो उस समय भारत में था वापस आकर बचा-ए-सका को खदेड़ दिया और स्वयं अफगानिस्तान का अमीर बन गया।

अमीर मीनाई

उर्दू के एक प्रसिद्ध कवि, जिसका पूरा नाम मुफ अमीर अहमद 'अमीर' था और जिनका जन्म सन् १८२ में लखनऊ में हुआ।

अमीर मीनाई सैयद मुजफ्फरअलीखाँ असीर के शिष्य थे। इनकी कविताओं से प्रसन्न होकर नवाब वाजिद अलीशाह ने सन् १८५२ में इन्हें अपने दरबार में रख लिया।

इनकी लिखी हुई कृतियों में इर्शादुसुल्तान, हिदायतुलसुल्तान, मिरातुल गैब, इन्तखाबे यादगार, सनम खानदे इश्क इत्यादि उल्लेखनीय हैं। इनकी कविता का नमूना—

मस्जिद में बुलाता है हमें जाहिदे नाफहम,
होता जो अगर कुछ होश तो मैखाने न जाते।
कह रही है अश्क में यह आँख शरमाई हुई,
हाय, कि कैसी इस भरी महफिल में रुसवाई हुई।
फना कैसी, बका कैसी, जब उसके आशना ठहरे,
कभी इस घर में आ निकले कभी उस घर में जा ठहरे।

अमृतसर

पूर्वी पंजाब का एक प्रसिद्ध और समृद्ध नगर। सिक्ख जाति का प्रसिद्ध तीर्थ स्थान।

अमृतसर पूर्वी पंजाब प्रान्त का एक सुसम्पन्न नगर है। कुछ समय पूर्व कपड़े के व्यापार के लिए यह सारे भारत में दूसरे नम्बर की मण्डी था। यह स्थान सिक्खों का पवित्र तीर्थ स्थान है। सिक्खों के द्वारा निर्मित यहाँ का प्रसिद्ध स्वर्णमन्दिर संसार के दर्शनीय स्थानों में अपना विशेष स्थान रखता है।

गांधी जी के असहयोग आन्दोलन के समय में इस नगर ने भारतीय स्वाधीनता के इतिहास में अपना विशेष स्थान बना लिया है। पंजाब हत्याकाण्ड का सुप्रसिद्ध जलियान वाला बाग इसी नगर में स्थापित है जिसपर घेरा डाल कर जनरल डायर ने सैकड़ों हजारों मनुष्यों को गोली के घाट उतार दिया था। भारतीय स्वाधीनता का इतिहास १३ अप्रैल, जलियान वाला और जनरल डायर को किसी भी प्रकार भुला नहीं सकता।

अमेरिका

दक्षिणी भूखण्ड का एक महान् महाद्वीप, जो ईसा की पन्द्रहवीं शताब्दी तक सभ्य संसार से अपरिचित रहा और जिसका सबसे पहले स्पेनी नाविक कोलम्बस ने पता लगाया। इसके पश्चात् इटली के एक उत्साही नाविक "एमेरिगो वेसपुक्की" के नाम पर इस देश का नाम अमेरिका पड़ा। अमेरिका महाद्वीप उत्तरी अमेरिका, मध्य-अमेरिका और दक्षिणी अमेरिका ऐसे तीन भागों में बँटा हुआ है। कोलम्बिया, इक्वेडर ब्राजील, अमेजिनवेसिन अर्जेण्टिना, क्यूबा, हेटी, जर्मका, प्यूरिटोरिका इत्यादि प्रान्त तथा द्वीप दक्षिणी अमेरिका में हैं—मध्य अमेरिका में पनामा, निकारसुआ, होण्डुरास, कोस्टारिका, सात साल-वेडेर ग्वाटेमाला इत्यादि प्रदेश शामिल हैं। उत्तरी अमेरिका महाद्वीप संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के नाम से प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र में न्यू इंग्लैण्ड, पेनिसिलवीनिया, वर्जीनिया, मेरीलैण्ड, न्यूयार्क, डेलविर, केरोलिना, टेनेसी, नियाग्रा, डेट्राइट इत्यादि क्षेत्र सम्मिलित हैं।

उत्तरी अमेरिका औद्योगिक विकास के सम्बन्ध में सारे संसार में अपना पहला स्थान रखता है और दक्षिणी अमेरिका का कृषि उत्पादन अपनी चरमसीमा पर है।

इतिहास (मय सभ्यता)

ईस्वी सन् से करीब एक हजार वर्ष पूर्व उत्तरी अमेरिका में मय-सभ्यता* के नाम से एक सभ्यता बन गई थी। इस सभ्यता के तीन प्रधान केन्द्र थे मैक्सिको, मध्य अमेरीका और पेरू। इन सभ्यताओं का प्रारम्भ कबसे हुआ यह ठीक तौर से नहीं कहा जा सकता। लेकिन मैक्सिको का पंचांग ई० सन् से पूर्व सन् ६१३ से प्रारम्भ होता है ईस्वी सन् के

---

* बहुत सी नवीन खोजों से पता लगता है कि प्राचीन काल में भारत और अमेरिका के बीच आवागमन के साधन थे। अमरीका के कई स्थानों पर भारतीय ढंग की मूर्तियाँ निकली हैं। महाभारत में पाण्डवों के युग में मय-दानव का उल्लेख आता है जो भवन-निर्माण कला का बहुत विशेषज्ञ था, इसे पाण्डवों ने पाताल लोक से बुलाया था। सम्भव है यह पाताल लोक अमेरिका और मय दानव मय सभ्यता का ही प्रतिनिधि हो।

प्रारम्भ होने तक वहाँ भवन निर्माण कला का बहुत विकास हो चुका था। कई शहरों का निर्माण हो चुका था। रंगाई और बुनाई की कला उरूज पर पहुँच चुकी थी। ताम्बा और सोना काफी तादाद में मिलता था मगर लोहे का ज्ञान लोगों को नहीं हुआ था। उस समय की मूर्तिकला चरम उन्नति की स्थिति में पहुँच चुकी थी।

इस सभ्यता के अन्तर्गत कई छोटे-छोटे राज्य थे, कई भाषाएँ थीं और उन भाषाओं में काफी साहित्य था। शासन सुसंगठित और मजबूत था। शहरों में एक सुसंस्कृत और बुद्धिजीवी समाज था। इन राज्यों का कानून और अर्थ-व्यवस्था बहुत उन्नत थी। सन् ९६० ई० के लगभग "उक्षमल" नगर की नींव डाली गई यह शहर एशिया के बड़े-बड़े शहरों की टक्कर का हो गया था। इसके अतिरिक्त लाबुवा, मयपान, चाओ-पुल्लन वगैरह बड़े-बड़े शहर थे।

मध्य अमेरिका के तीन मुख्य राज्यों ने मिल कर एक संघ बनाया था जिसका नाम "मयपान-संघ" था। यह ईस्वी सन् १००० के लगभग की बात है। इससे यह पता लगता है कि ग्यारहवीं शताब्दी में मध्य अमरीका में सभ्य राज्यों का एक शक्तिशाली संगठन था। दुनिया की दूसरी सभ्यताओं की तरह यहाँ पर भी धर्म गुरु समुदाय जनता और शासन पर अपना पूर्ण प्रभाव रखता था। ज्योतिष उस समय सबसे प्रतिष्ठित विज्ञान समझा जाता था। मयपान का यह संघ सन् ११९० तक कायम रहा उसके बाद सीमावर्ती किसी जाति के आक्रमण से यह नष्ट हो गया लेकिन दूसरे नगर ज्यों के त्यों बने रहे।

इसके सौ वर्ष बाद मैक्सिको से अजेटक जाति के लोगों ने आकर वहाँ एक साम्राज्य का निर्माण किया।

इसी समय दक्षिण अमरीका में पेरू भी सभ्यता का केन्द्र था इस देश में "इनका" का शासन था। यह एक प्रकार का दैवी राज माना जाता था। पेरू में भी कला का बहुत विकास हुआ था। खासकर सुनारों का काम बहुत ही ऊँचे दर्जे का था।

ईसा की सोलहवीं सदी से इस देश में स्पेनी लोगों ने आना प्रारम्भ किया मैक्सिको में हर्नेनकोर्टे ने अपने घोड़ों और बन्दूकों के बल से अजटेक साम्राज्य को छिन्न-भिन्न कर दिया और पेरू में स्पेनी यात्री "पिजारो" ने "इनका" के राज्य को खतम कर दिया और उसे स्पेन के विशाल साम्राज्य में मिला लिया।

मय सभ्यता और पेरू सभ्यता के बहुत से अवशेष मैक्सिको के संग्रहालयों में देखे जा सकते हैं जिनमें एक सुन्दर कलापूर्ण परम्परा के दर्शन होते हैं।

अमरीका में इस प्रकार स्पेनी साम्राज्य की स्थापना होते देख पुर्त्तगाल, फ्रान्स, इंग्लैण्ड इत्यादि देशों में भी साम्राज्य विस्तार की भावनाएँ बढ़ने लगीं। और इन लोगों ने भी अमेरिका के समान सम्पन्न भूमि में अपने हाथ-पैर फैलाना प्रारम्भ किया।

नवीन इतिहास

अमेरिका के प्राचीन इतिहास की रूपरेखा हम ऊपर बतला चुके हैं। आधुनिक अमेरिका जो यूरोपीय देशों के उपनिवेशों के रूप में बसना प्रारम्भ हुआ, उसका इतिहास पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ से शुरू होता है जब कि स्पेन का प्रसिद्ध यात्री कोलम्बस भारत वर्ष को ढूंढते-ढूंढते रास्ता भूल कर अचानक यहां आ पहुँचा था। उसके पश्चात् स्पेनिश लोगों ने मेक्सिको, वेस्टइण्डीज और दक्षिण अमेरिका में अपने उपनिवेश बसा लिये थे।

उसके पश्चात् सत्रहवीं शताब्दी और अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में यूरोपीय लोगों का अमेरिका जाकर बसने के लिये एक प्रवाह चलता रहा। इतनी बड़ी संख्या में इतनी लम्बी दूरी पर जाकर एक साथ हजारों आदमियों के बसने के उदाहरण इतिहास में कम ही मिलते हैं। इसी प्रवाह के कारण एक अज्ञात तथा बियाबान महाद्वीप में एक ऐसे नये राष्ट्र का निर्माण हो गया जिसकी अपनी ही विशेषताएँ और अपना ही भविष्य था।

अपनी मातृभूमि को छोड़ कर यूरोप के निवासियों के द्वारा इतनी दूर एक अज्ञात और बियाबान देश में बसने के कई कारण थे जिनमें आर्थिक और धार्मिक कारण प्रमुख थे। सन् १६२० और १६३५ के मध्य में अनेक प्रकार की आर्थिक कठिनाइयों के कारण इंग्लैड में लाखों आदमी बेकार हो गये। ऐसे लोग रोजगार की तलाश में दूसरे देशों की तरफ निगाह डालने लगे।

इसी प्रकार सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों की धार्मिक क्रान्ति के काल में इंग्लेण्ड के राजा जेम्स प्रथम के राज्यकाल में अपनी धार्मिक स्वाधीनता पर आघात होते देख कर बहुत से प्रोटेस्टेण्ट और प्यूरिटिन सम्प्रदाय के लोग सन् १६२० में मेफ्लावर नामक जहाज पर बैठ कर एक अज्ञात देश की ओर चल पड़े और अमेरिका के किनारे पहुंच कर उन्होंने न्यू-प्लीमथ की पिलग्रिम कालोनी बसाई।

सन् १६३० में इंग्लैण्ड के राजा चार्ल्स प्रथम के राज्यकाल में कुछ प्यूरिटिन लोगों ने अपने धर्म गुरुओं के साथ मेसैचूसेट्स वे नामक कालोनी की स्थापना की।

इसी प्रकार इंग्लैण्ड में क्वेकरों* की स्थिति से असन्तुष्ट होकर विलियम पेन नामक व्यक्ति ने अपने नेतृत्व में बहुत से लोगों को ले जाकर अमेरिका में पेनिसिल्वेनिया नामक उपनिवेश की स्थापना की। सेसिल कैलवर्ट ने इंग्लिश कैथोलिकों के प्रति ऐसी ही भावना से प्रेरित होकर मेरी लैण्ड नामक उपनिवेश की स्थापना की।

जान स्मिथ नामक व्यक्ति ने अपने नेतृत्व में वर्जीनिया नामक उपनिवेश की स्थापना की।

सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों के अन्त में जर्मनी के अनेक छोटे राजाओं की धर्म के सम्बन्ध में अत्याचारपूर्ण नीति के कारण जर्मन लोग भी भारी संख्या में अमेरिका में आकर बसने लगे।

सत्रहवीं शताब्दी के प्रथम तीन चौथाई भाग तक जो यूरोपीय लोग अमेरिका में आये उनमें बहुत अधिक संख्या अंग्रेजों की थी। मगर सन् १६८० के पश्चात् इंग्लैण्ड से आने वाले लोगों की संख्या कम हो गई और जर्मनी, फ्रान्स, आयरलैण्ड और स्विट्ज़रलैण्ड से आने वाले लोगों की संख्या बहुत अधिक बढ़ गई। सन् १६६० तक अमेरिकन उपनिवेशों की जो आबादी करीब ढाई लाख थी वही सन् १७७५ में पच्चीस लाख से ऊपर पहुंच गई।

अमेरिका में बसे हुए इन उपनिवेशों को भौगोलिक स्थिति और सभ्यता के लिहाज से तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

(१) पहला विभाग न्यू-इंग्लैण्ड का था। इसके निवासी प्रधानतया व्यापारी और व्यवसायी थे। न्यू इंग्लैण्ड की भूमि कई प्राकृतिक कारणों से कृषि के लिये उपयोगी नहीं थी। इसलिये इस प्रदेश के निवासियों ने दूसरे लाभदायक पेशे खोज निकाले। इन्होंने पानी की शक्ति को बाँध कर मिलें बना लीं, बन्दरगाहों का निर्माण किया और जहाज बनाने के व्यवसाय को बढ़ावा दिया। इन कारणों से इस उपनिवेश के लोगों का जीवन शहरी रूप में बदलने लगा।

(२) उपनिवेशों का दूसरा बड़ा भू भाग मध्यवर्ती उपनिवेशों के नाम से बसा हुआ था। वहां की आबादी न्यू इंग्लैण्ड की अपेक्षा अधिक मिली-जुली और सहिष्णु थी। पैनिसिल्वेनिया और इसके साथ लगे हुए डिलावेयर की आरम्भिक सफलता का श्रेय विलियम पेन को था। यह अत्यन्त व्यवहारकुशल क्वेकर था। उसका लक्ष्य ही यह था कि किंग चार्ल्स द्वितीय से उसे जो विस्तृत प्रदेश मिला है उसमें विविध धर्मों और विविध जातियों के लोगों को बसाया जाय। इस उपनिवेश का केन्द्र फिलाडेल्फिया था। यह नगर अपनी छायादार और चौड़ी सड़कों, पत्थरों और ईंटों से बने हुए मजबूत मकानों, व्यस्त जहाजी घाटों और भिन्न-भिन्न भाषाओं, धर्मों और पेशों के लोगों की वजह से बहुत प्रसिद्ध हो गया था।

पेनिसिल्वेनिया की तरह ही न्यूयार्क में भी बहु भाषाभाषी लोग एकत्र हो रहे थे। न्यूयार्क का पुराना नाम डच लोगों की अधीनता में होने के कारण न्यू-एम्सटरडम था। मगर १६६४ में अंग्रेज लोगों ने इस बस्ती को जीत कर इसका नाम न्यूयार्क रख दिया।

(३) न्यू इंगलैण्ड और मध्यवर्ती उपनिवेशों के बाद तीसरा विभाग वर्जीनिया, मेरीलैण्ड, कैरोलाइना और जार्जिया नामक दक्षिणी बस्तियों का था जिनकी स्थिति न्यू इंग्लैण्ड और मध्यवर्त्ती उपनिवेशों से सर्वथा विपरीत

---

* सन् १६४६ में विलियम फाक्स ने इंगलैंड में सोसायटी आफ फ्रेण्ड्स नामक संस्था कायम की थी जिसका उद्देश्य धर्म के ढकोसलों को छोड़ना और शान्ति स्थापित करना था। इस संस्था के अनुयायियों को क्वेकर कहते थे।

थी। इन बस्तियों को कैप्टन जान स्मिथ नामक व्यक्ति के नेतृत्व में लण्डन कोलोनाइजिंग कम्पनी की प्रेरणा से इंग्लैण्ड से आने वाले लोगों ने बसाया था। सन् १६१४ में वर्जीनिया तम्बाकू को तैय्यार करने की एक नवीन विधि का आविष्कार हो जाने से इन उपनिवेशों की स्थिति बहुत मजबूत हो गई। इन उपनिवेशों में बसने वाले लोगों ने गुलामों की सहायता से वहाँ की बढ़िया और विस्तृत भूमि पर खेतियाँ करना प्रारम्भ की थीं और वे इन गुलामों की मेहनत के ऊपर रईसों की शान से रहते थे। इनका प्रधान बन्दरगाह चार्ल्स्टन था।

इस प्रकार ये सब उपनिवेश स्वतन्त्र रूप से छोटे-छोटे समूहों में अपनी स्वतन्त्र शासन व्यवस्था के साथ रहते थे। नाममात्र को ये लोग ब्रिटिश सम्राट् के मातहत थे पर वस्तुतः यह शासन नाममात्र का ही था। इन सब उपनिवेशों में अमेरिका की भौगोलिक स्थिति और भिन्न-भिन्न देशों के निवासियों के सहयोग से एक नवीन संस्कृति का उदय हो रहा था। इस संस्कृति का वर्णन करते हुए सन् १७८२ में केण्ट जोन क्रेवकोअर नामक फ्रेंच लेखक ने लिखा था कि अमेरिकन मनुष्य क्या चीज है वह भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के मिलन का एक अद्भुत परिणाम है। आपको अमेरिका में ऐसे परिवार मिलेंगे जिसका दादा अंग्रेज था और दादी डच थी। उसके पुत्र ने एक फ्रेंच स्त्री से विवाह किया और उस पुत्र के चार पुत्रों ने चारों विभिन्न राष्ट्रों की कन्याओं से विवाह किया। यही परिभाषा अमेरिकन की है जो अपने सब पुराने विश्वासों और रीति-रिवाजों को पीछे छोड़ आया है और उसने एक नया जीवन अपनाया है और नये आचार-विचारों को ग्रहण कर लिया है।

हम ऊपर लिख आए हैं कि अमेरिका में बसे हुए ये सब उपनिवेश अपनी-अपनी अलग शासन व्यवस्था के अन्दर एक प्रकार से पूर्ण स्वाधीनता का उपभोग कर रहे थे। मगर जब १७५४ के लगभग अमेरिका में मिसीसिपी घाटी पर से फ्रेंच लोगों का कब्जा हटाने के लिये अंग्रेजों और फ्रेंच लोगों के बीच सप्तवर्षीय युद्ध हुआ उस समय इंग्लैंड ने विजयी होकर फ्रांस को मिसीसिपी घाटी से निकाल तो दिया मगर इस युद्ध में उसको इतना भारी खर्च आया कि वह खर्च अकेले इंग्लैण्ड वासियों से प्राप्त कर लेना सम्भव नहीं था। तब इंग्लैण्ड के बादशाह ने अमेरिकन उपनिवेशों पर अपने शासन का पंजा मजबूत करके अमेरिका वासियों पर कुछ नवीन टैक्स लगा कर इस खर्च को पूरा करना चाहा और इन टैक्सों को वसूल करने के लिये एक सुदृढ़ केन्द्रीय शक्ति के निर्माण की भी उसने आवश्यकता समझी।

इस प्रकार का पहला कदम सन् १७६४ में शुगर-एक्ट के रूप में उठाया गया। इस एक्ट के व्यवहार में आते ही अमेरिकन जनता के अन्तर्गत एक व्यापक असन्तोष फैल गया। इस कानून पर टिप्पणी करते हुए जेम्स ओटिस नामक एक विद्वान ने लिखा था कि—

"पार्लमेण्ट के इस एक कानून ने छः महीनों में अमेरिका के इतने अधिक आदमियों को इतना अधिक सोचने के लिये विवश कर दिया जितना कि इन आदमियों ने अपने सारे जीवन में पहले नहीं सोचा होगा।"

शुगर-एक्ट का यह असन्तोष देश में छाया ही हुआ था कि उसके तुरन्त बाद ही इंगलैंड की पार्लमेण्ट में करेन्सी-एक्ट, विलिटिंग-एक्ट और स्टाम्प-एक्ट नामक कानून बनाकर अमेरिकन जनता पर और भारी प्रहार किया। इन टैक्सों का विरोध करने के लिये अमेरिका के तेरहों उपनिवेशों के लोग संगठित हो गये और सन् १७६५ के अक्टूबर में न्यूयार्क में सब उपनिवेशों के प्रतिनिधियों की एक कांग्रेस बुलाई गई।

इस कांग्रेस ने दृढ़ता पूर्वक यह निर्णय किया कि हमारी धारासभाओं के अतिरिक्त किसी भी शक्ति ने न कोई टैक्स अभी तक लगाये हैं और न संविधान के अनुसार आगे लगा सकती है।

इस प्रकार भयंकर प्रतिरोध को देख कर इंग्लैण्ड की पार्लमेण्ट ने सन् १७७० में चाय टैक्स को छोड़ कर शेष सब प्रकार के टैक्सों को उठा देने की घोषणा की। इससे नरम दल वाले लोगों को काफी सन्तोष हो गया और तीन साल तक इस सन्तोष ने अमेरिकन जनता में एक कृत्रिम शान्ति पैदा कर दी। मगर गरम दल के लोग अभी तक

इस परिवर्तन से सन्तुष्ट नहीं थे। इन गरम दलीय लोगों का नेता सेम्युअल एडम्स नामक एक व्यक्ति था। वह अमेरिका की पूर्ण स्वतन्त्रता का पक्षपाती था। वह ऐसे अवसर की खोज में था जब कि उसे आन्दोलन के लिए उपर्युक्त बहाना मिल जाय।

यह अवसर उसे सन् १७७३ में प्राप्त हुआ जब कि ब्रिटिश गवर्नमेएट ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को उपनिवेशों को निर्यात की जाने वाली चाय के समस्त व्यापार पर एकाधिकार प्रदान कर दिया। इससे औपनिवेशिक व्यापारियों का चाय का व्यापार डूब गया। जिससे वे लोग बड़े उत्तेजित हुए। अमेरिकन गरम दल के लोग १६ दिसम्बर की रात को सेम्युअल एडम्स के नेतृत्व में रेड इण्डियनों का वेश बना कर चाय के तीन जहाजों पर चढ़ गये और उन्होंने चाय की पेटियों को उठा-उठा कर समुद्र में फेंक दिया।

इस घटना ने इंग्लैएड और अमेरिका के बीच के सम्बन्धों को बहुत बिगाड़ दिया और इंग्लैएड की पार्लियामेएट ने एक कानून बना कर बोस्टन के बन्दरगाह को तब तक के लिये बन्द कर दिया जब तक कि अमेरिका के लोग डूबी हुई चाय का मूल्य अदा न कर दें।

इसी प्रकार और भी कई दमनकारी कानून इंग्लैएड की पार्लमेएट ने अमेरिकनों के विरुद्ध बनाये।

इससे उत्तेजित होकर अमेरिका के अन्दर व्यापक असन्तोष फैल गया और जिसका अनिवार्य परिणाम इंग्लैएड और अमेरिका के बीच सप्तवर्षीय युद्ध के रूप में प्रकट हुआ। अमेरिका के हर नगर और हर उपनिवेश में स्वाधीनता के पुजारियों ने अपनी-अपनी सेनाएँ तैय्यार कर लीं और इन सब सेनाओं की सम्मिलित कमान जार्ज वाशिंगटन के हाथ में देकर उसको इन सेनाओं का प्रधान सेनापति बना दिया।

मगर इस सारे असन्तोष के बावजूद अमेरिकन जनता का बहुत बड़ा भाग और काँग्रेस का बहुत बड़ा बहुमत इंग्लैएड से सर्वथा पृथक् हो जाने के पक्ष में नहीं था। संघर्ष और लड़ाई के बीच में भी क्रान्तिकारी लोग सम्राट् के प्रति शुभकामनाएँ प्रकट करते थे। मगर जब अगस्त १७७५ में किंग जार्ज ने एक घोषणा के द्वारा अमेरिका के उपनिवेशों को विद्रोही घोषित कर दिया तब स्थिति और बिगड़ गई और अमेरिकन लोगों की सम्राट के प्रति रही हुई वफादारी धीरे-धीरे कम होने लगी। जून १७७६ में अमेरिका के इतिहास प्रसिद्ध नेता टामस जेफरसन के नेतृत्व में एक समिति का निर्माण किया गया और उसे पूर्ण स्वाधीनता की घोषणा का मसविदा तैय्यार करने को कहा गया।

४ जुलाई १७७६ को टामस जेफरसन के द्वारा लिखी हुई स्वाधीनता की घोषणा को स्वीकृत किया गया। इस घोषणा ने न केवल एक नये राष्ट्र के जन्म की सूचना दी बल्कि उसने मानवीय स्वाधीनता के उन नवीन सिद्धान्तों की भी नींव डाल दी जो आगे चल कर समस्त संसार के लिये एक प्रेरक शक्ति सिद्ध हुई। इस घोषणा का आधार कोई विशिष्ट शिकायतें नहीं अपितु मानवीय स्वाधीनता के वे मूल तत्व थे जिनका समर्थन समस्त अमेरिका में सर्वत्र हुआ। इस घोषणा में कहा गया था—

"हम इस सत्य को स्वयंसिद्ध मानते हैं कि सब मनुष्य समान उत्पन्न हुए हैं। रचयिता ने उन्हें जीवन, स्वतन्त्रता और सुखप्राप्ति के अधिकारों से सम्पन्न पैदा किया है। इन अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिये ही मनुष्य समाज में शासनतन्त्र की स्थापना होती है। जब कभी कोई शासन इन उद्देश्यों का बाधक बन जाता है तब सब लोगों का कर्तव्य हो जाता है कि वे उसे समाप्त कर दें और इस सिद्धान्त को सत्य साबित कर दें कि शासन जनता के लिये है, जनता शासन के लिये नहीं।"

इस घोषणा को घोषित करने के पश्चात् स्वतन्त्रता का युद्ध तीव्रता से चलने लगा। स्पेन और फ्रान्स की सेना भी स्वाधीनता के सैनिकों की मदद करने के लिये आ पहुँची। स्वाधीनता की यह लड़ाई करीब सात वर्षों तक चली और कई हार-जीतों के पश्चात् अन्तिम विजय अमेरिका की हुई और सन् १७८३ में पेरिस के अन्दर अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन की सन्धि हुई। इस शान्ति सन्धि में अमेरिका की तेरह स्टेटों की स्वतन्त्रता पूर्णरूप से स्वीकार कर ली गई और इसी दिन अमेरिका एक सार्वभौम सत्ता सम्पन्न महाद्वीप के रूप में संसार के अन्दर अवतीर्ण हुआ।

अमेरिकन संविधान की स्थापना

पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात् अमेरिकन उपनिवेशों का संगठन और उनके संविधान की रचना का प्रश्न सामने आया। वैसे भिन्न-भिन्न उपनिवेशों को अपनी सुविधाओं के अनुसार अपने-अपने संविधान बनाने का आदेश अमेरिकन काँग्रेस १० मई सन् १७७६ को ही दे चुकी थी। मगर सब उपनिवेशों को संगठित करके एक केन्द्रीय शासन निर्माण कर उसके संविधान को निर्माण करने का काम अभी बाकी था। इसके लिये मई सन् १७८७ में फिलाडैल्फिया स्टेट हाउस में एक फेडेरल कन्वेन्शन हुआ जिसमें सभी उपनिवेशों के विशिष्ट और अनुभवी नेता प्रतिनिधि बन कर आये थे। इस फेडरेशन में जार्ज वाशिंगटन, वेन्जामिन फ्रेंकलिन, गवर्नियर मौरिस, जेम्स विलसन, अलेक्जेण्डर हैमिल्टन और टामस जेफरसन के समान अमेरिका के अत्यन्त सुलझे हुए मस्तिष्क उपस्थित हुए थे।

अन्त में महीनों के वाद विवाद और तीव्र मतभेदों के निराकरण के बाद अलेक्जेण्डर हैमिल्टन के नेतृत्व में सन् १७८८ में न्यूयार्क स्टेट ने नये संविधान को स्वीकृत कर लिया।

अमेरिका का विधान

सन् १७८८ में अलेक्जेण्डर हैमिल्टन के नेतृत्व में तीव्र विवादों के पश्चात् संयुक्तराष्ट्र अमेरिका का जो संविधान स्वीकृत किया गया वह शायद संसार के लिखित विधानों में सबसे पहला था।

इस विधान में अधिकारों का वितरण करते हुए कन्वेन्शन ने टैक्स लगाने, ऋण लेने, समान रूप से तट-कर लगाने और माल के उत्पादन पर कर वसूल करने के अधिकार पूर्ण रूप से केन्द्रीय शासन को दिये। केन्द्रीय शासन को अधिकार दिया गया कि वह मुद्रा ढाले, वजन और नाप के परिमाण को निश्चित करे, पेटेण्ट और कापी राइट की स्वीकृति दे और डाकघर तथा डाक की सड़कें बनवावे। उसे स्थल और जल सेनाएँ संगठित करने और स्टेटों के बीच व्यापार नियन्त्रित करने के अधिकार भी दिये गये। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध और युद्ध के विषय में भी पूर्ण अधिकार उसको दिये गये। उसको अधिकार मिला कि वह विदेशियों को नागरिक बनाने के कानून बनाये, सार्वजनिक भूमियों का नियन्त्रण करे और नये राज्यों को पुरानों के समान यूनियन में सम्मिलित करे।

इस विधान में कानून-निर्माण, शासन और न्याय-विभाग पृथक्-पृक् रखे गये। परन्तु तीनों का एक दूसरे पर नियन्त्रण रहा। कांग्रेस में पास की हुई कोई भी बात तब तक कानून नहीं बन सकती जब तक कि उसे प्रेसिडेण्ट की स्वीकृति न मिल जाय। साथ ही प्रेसिडेण्ट को भी प्रायः सभी महत्वपूर्ण नियुक्तियाँ तथा सब सन्धियाँ सीनेट के सामने पेश करनी पड़ती थीं। कांग्रेस को अधिकार दिया गया कि समय आने पर प्रेसिडेण्ट पर महाभियोगारोपण करके उसे उसके पद से अलग कर दे।

इस विधान के अनुसार राज्य सरकारें अपने-अपने क्षेत्र में समान रूप से सर्वोपरि रखी गईं। वे किसी भी संवैधानिक अर्थ में किसी की अधीन संस्थाएँ नहीं हैं और केन्द्रीय तथा राजकीय शासन दोनों की नींव जनता की सर्वप्रभुत्व सम्पन्नता के विशाल आधार पर स्थिर रखी गई।

आज के इस युग में भी एक अमेरिकन नागरिक का सम्बन्ध केन्द्रीय शासन की अपेक्षा राज्य-शासन से अधिक पड़ता है क्योंकि म्युनिसिपल और स्थानीय शासन का नियन्त्रण, पुलिस के कार्य, कारखानों और मजदूरों के नियम, कम्पनियाँ बनाने की इजाजत, दीवानी और फौजदारी मामलों में न्याय, शिक्षा का नियन्त्रण और जनता के स्वास्थ्य, सुरक्षा और सुख-सुविधा की व्यवस्था आदि सारे महत्वपूर्ण कार्य राज्य शासन के ही अधिकार में रखे गये हैं, केन्द्रीय शासन के हाथ में नहीं।

संविधान के अन्तर्गत भविष्य में संशोधन अथवा परिवर्तन की व्यवस्था भी रखी गई मगर साथ ही उसके नियम बहुत कठोर रखे गये हैं जिससे अन्धाधुन्ध संशोधन और परिवर्त्तन से बचा जा सके। कांग्रेस की दोनों सभाओं के दो-तिहाई सदस्य या दो-तिहाई राज्य कन्वेन्शन में एकत्र होकर संविधान में संशोधन पेश कर सकते हैं। ये संशोधन दो प्रकार से कानून बनते हैं या तो स्टेटों की तीन-चौथाई

धारा-सभाओं द्वारा या तीन-चौथाई स्टेटों के कन्वेन्शनों के द्वारा स्वीकृत होने पर। इन दोनों में से किस उपाय का प्रयोग किया जाय इस बात का निर्णय कांग्रेस करती है।

इंग्लैण्ड से दूसरी लड़ाई

सन् १८१२ में अमेरिका से इंग्लैण्ड की एक और झड़प हो गई। इंग्लैण्ड के जहाजों ने सन् १८०६ से १८१२ तक छः हजार सत्तावन बार अमेरिकन नागरिकों को बलपूर्वक भर्त्ती किया इसके अतिरिक्त उत्तर पश्चिमी प्रदेश के निवासियों पर कनाडा स्थित ब्रिटिश एजेण्टों ने इण्डियनों के द्वारा आक्रमण करवा के उनको बहुत कष्ट पहुँचाया था। इसके अतिरिक्त और भी कई कारण ऐसे पैदा हो गये थे जिससे इंगलैण्ड के प्रति अमेरिका की भावनाएँ बहुत कुंठित हो रही थीं। इसी के परिणाम स्वरूप सन् १८१२ में इंग्लैण्ड और अमेरिका के बीच दूसरा युद्ध प्रारम्भ हुआ। इस युद्ध में भी अमेरिका ने इंगलैण्ड को करारी पराजय दी मगर अमेरिका के लिये यह विजय बहुत मँहगी पड़ी। इसमें उसके इक्कीस हजार नाविक, तीस हजार सिपाही और चौदह सौ जहाज नष्ट हो गये। पर इतनी भयकर हानि के बावजूद भी इस युद्ध ने सारे अमेरिका में राष्ट्रीय एकता और देश-भक्ति की भावनाओं को बहुत सुदृढ़ कर दिया।

अमेरिका का गृह युद्ध

अमेरिका के ये उपनिवेश स्वतंत्र हो गये मगर इनके घरेलू झगड़ों का अन्त नहीं हुआ। उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका के बीच संघर्ष प्रारम्भ हुआ। उत्तरी अमेरिका सभ्य संसार के साथ रहकर गुलामी की प्रथा को खतम करना चाहता था।

मगर दक्षिणी अमेरिका की स्थिति इससे कुछ भिन्न थी। दक्षिणी अमेरिका के देशों में ब्राझील, गायना, वेनेजुला, कोलम्बिया, इक्वेडर, पेरू, बोलीविया, अर्जेण्टिना, उरुग्वे, चिली, पाराग्वे इत्यादि उल्लेखनीय हैं। इन देशों में स्पेन, पुर्त्तगाल, अंग्रेज इत्यादि सभी यूरोपियन जातियों के लोग बसते थे। यह एक विस्तृत देश होने से इन लोगों की खेती बड़े-बड़े विस्तृत क्षेत्रों में होती थी। इन विस्तृत क्षेत्रों की खेती के लिए इन्हें हजारों मजदूरों की आवश्यकता पड़ती थी। वहाँ के मूल निवासी रेड इण्डियन इन लोगों की मजदूरी करना पसन्द नहीं करते थे। इस लिए इन लोगों की मजदूरों की जरूरतों को पूरी करने के लिए लोग अफरीका से हबशी मजदूरों को पकड़ कर लाते थे। गुलामों का व्यापार उस समय बाकायदा संगठित व्यापार हो गया था। जिस प्रकार इस समय पशुओं की खरीद बिक्री के लिए बाकायदा हाट, मेले और मण्डियाँ लगती हैं उसी प्रकार इन गुलामों की खरीद बिक्री के लिए बड़ी-बड़ी मण्डियाँ लगती थीं जहाँ पर ये गुलाम स्त्री, पुरुष और बच्चे बड़ी निर्दयतापूर्वक खरीदे और बेचे जाते थे।

दक्षिण अमेरिका में भी यह गुलाम प्रथा अपने चरम वीभत्स रूप में प्रचलित थी। वहाँ पर तमाखू के विशाल खेत इन्हीं गुलामों की मेहनत से सर सब्ज रहते थे।

इस प्रकार उत्तर और दक्षिणी अमरीका के अन्तर्गत दो विभिन्न प्रकार की अर्थ प्रणालियों का विकास हो रहा था। उत्तरी अमेरिका में भूमि कम होने से वहां कल, कारखाने और मशीन युग का संचार हो रहा था जिससे वहाँ पर लोगों के अन्दर किसी कदर कुछ-कुछ समानता की भावना का विकास हो रहा था और दक्षिण अमेरिका में खेती के बड़े-बड़े विशाल फार्म होने से वहाँ पर गुलामी की प्रथा कानून से सम्मत और आवश्यक मानी जाती थी। उत्तरी अमेरिका वाले औद्योगिक प्रदेश होने के कारण गुलामी की प्रथा से घृणा करते थे और उसे मिटाना चाहते थे।

सन् १८३० में उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका के बीच तट कर और चुंगी को लेकर कई झड़पें हो गईं। हर एक राज्य अपने-अपने अधिकारों के प्रति सावधान था और फेडेरल सरकार के ज्यादा हस्तक्षेप को कोई पसन्द नहीं करता था। इन मतभेदों के कारण उत्तर और दक्षिण अमेरिका के बीच मत भेदों की खाईं चौड़ी होती गई।

इसी बीच सन् १८६० में इतिहास प्रसिद्ध मानवता का समर्थक "अब्राहम लिंकन" यूनाइटेड स्टेट्स अमेरिका का राष्ट्रपति चुना गया। यह चुनाव दक्षिण वालों के लिए सिर दर्द हो गया। क्योंकि अब्राहम लिंकन गुलामी प्रथा का विरोधी था। फिर भी अमेरिका की तत्कालीन परिस्थिति

को देखकर उसने स्पष्ट कर दिया कि जिन क्षेत्रों में अभी गुलामी की प्रथा चल रही है वहाँ उसे बन्द नहीं किया जावेगा मगर नये क्षेत्रो में वह चालू नहीं की जावेगी।

मगर इस आश्वासन से दक्षिणी क्षेत्रों को संतोष नहीं हुआ और धीरे-धीरे उनमें से कई राज्य अमेरिकन संघ से अलग हो गये और ऐसी स्थिति दिखलाई देने लगी कि अब संयुक्त राज्य छिन्न-भिन्न हो जायगा। अब्राहमलिंकन ने अपने सिद्धान्तों से नीचे उतर कर भी राष्ट्र की एकता कायम रखने के लिए समझौता करने की पूरी कोशिश की मगर उसे सफलता नहीं मिली। दक्षिण के ग्यारह राज्यों ने संयुक्त राष्ट्रों से अलग होकर "कॉनफ्रेडरेटेड स्टेट्स" के नाम से अपना एक अलग संघ बनाया और 'जेफर सन डेविस' को अपने संघ का राष्ट्रपति चुन लिया।

इसके बाद सन् १८६१ के अप्रैल में उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका के बीच बाकायदा गृहयुद्ध छिड़ गया। दोनों तरफ की विशाल फौजें युद्ध के मैदान में आ गईं। उत्तरी अमेरिका के पास औद्योगिक क्षेत्र होने के कारण आवागमन के साधन तथा दूसरी सामग्रियाँ और जन बल ज्यादा था। दक्षिण अमेरिका में दूसरे साधन कम होने पर भी सैन्य संचालन की पद्धति अच्छी थी। उनका प्रधान सेनापति जनरल "ली" युद्ध-कौशल का अच्छा जानकार था। इसलिए शुरू में दक्षिण अमेरिका को एक के बाद दूसरी विजय मिलती गई मगर इस लम्बी लड़ाई में दक्षिण अमेरिका वाले लड़ते-लड़ते अन्त में पस्त हो गये। उत्तरी अमेरिका के जहाजी बेड़े ने उनके समुद्री रास्ते को काट कर इंग्लैण्ड से उनका सम्बन्ध विच्छेद कर दिया। अन्त में सन् १८६५ में उत्तरी अमेरिका की विजय के साथ यह गृह युद्ध समाप्त हुआ।

गृह युद्ध की समाप्ति के पश्चात् जब प्रेसिडेण्ट लिंकन देश का पुनर्निर्माण की योजना बनाने में व्यस्त थे उसी समय उन्हें किसी दुष्ट व्यक्ति ने गोली से मार दिया।

लिंकन की मृत्यु के बाद अमरीकन कांग्रेस ने युद्ध के अपराधी दक्षिणी क्षेत्र के गोरों को भिन्न-भिन्न कठोर सजाएं दीं, कइयों के मताधिकार छीन लिए, गुलामी प्रथा को एकदम गैर कानूनी घोषित कर दिया। हब्शी गुलामों को नागरिकता के पूरे अधिकार देकर इसे अमेरिकन संविधान में सम्मिलित कर लिया। इस प्रकार इस महान् देश से गुलामी के समान दारुण प्रथा का अन्त हुआ।

इस गृह युद्ध ने यद्यपि अमेरिका की शक्तियों का बहुत ह्रास किया, मगर इस देश के पास कोयला, लोहा, पेट्रोल इत्यादि बुनियादी उद्योग की मूलभूत वस्तुओं का प्रचुर भण्डार होने से अपने उद्योगों का तेजी से विकास कर सारी क्षति की पूर्ति कर ली और अगले पन्द्रह वर्षों में अर्थात् सन् १८८० तक संसार के औद्योगिक क्षेत्र में यह इंग्लैण्ड से मुकाबिला करने लगा।

अमेरिका का आर्थिक विकास

सन् १८६५ में गृह-युद्ध की समाप्ति के पश्चात् अमेरिका के औद्योगिक, व्यवसायिक और कृषि सम्बन्धी विकास ने अत्यन्त तेजी के साथ अपनी कला बाजी दिखाना प्रारम्भ की। इसी समय अमेरिकन राष्ट्र का आधार भूत बुनियादी उद्योग फौलाद अपनी उन्नति के चरम शिखर पर पहुँच गया। फौलाद उद्योग में ओपियन हर्थ नामक एक नवीन प्रणाली का आविष्कार हो जाने से उत्कृष्ट श्रेणी का फौलाद बनाने में केवल पैंतीस डालर प्रति टन व्यय पड़ने लगा जब कि इसके पहले तीन सौ डालर प्रति टन पड़ता था।

अमेरिका में फौलाद उद्योग का विकास करने में वहाँ के धन कुबेर एण्ड्रू कार्नेगी का सबसे प्रधान हाथ है। सन् १८७५ ई० में उसने मनाँग हीला नदी के तीर पर जो फौलाद की मिल स्थापित की थी वह सारे देश में सबसे बड़ी थी। कई दृष्टियों से कार्नेगी की कहानी यूनाइटेड स्टेट्स के बड़े व्यापार का इतिहास है। सन् १८७५ से अगले पच्चीस वर्षों तक उसने इस व्यवसाय पर अपनी प्रभुता रखी। मगर सन् १९०१ में लोहे के सब कारखानों को मिला कर एक नया संगठन बनाया गया जिसका नाम "यूनाइटेड स्टेट्स स्टील कार्पोरेशन" रखा गया। लोहे के उद्योग की तरह ही दूसरे उद्योग भी अमेरिका में तेजी से फलने-फूलने लगे। सन् १८४४ में एफ० बी० मोर्स के द्वारा बिजली की टेलिग्राफी पूर्ण कर लेने के पश्चात् इस

महाद्वीप के दूर-दूर के भाग खम्भों और तारों के जाल द्वारा एक दूसरे से बंध गये।

सन् १८७६ में अलेक्झेण्डर ग्राहम बैल के द्वारा टेलिफोन के यन्त्र का आविष्कार हो जाने पर आधी शताब्दी के अन्दर एकसौ साठ लाख टेलिफोन देश के आर्थिक और सामाजिक जीवन को गति प्रदान करने लगे। सन् १८८९ में लीनो टाईप कम्पोजिंग मशीन के आविष्कार के बाद आठ पेजी समाचार-पत्रों की दो सौ चालीस हजार प्रतियाँ हर एक घण्टे में छप कर निकलना संभव हो गया।

अमेरिका के वैज्ञानिक विकास में टामस एडीसन का नाम अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सन् १८८० में विद्युत् शक्ति के प्रयोग में इसने डायनुमा का प्रयोग करके अमेरिकन जीवन में क्रान्ति पैदा कर दी। सन् १८८०के बाद एडीसन के द्वारा आविष्कृत चमकीले बिजली के लैम्पों ने लाखों घरों को इतनी सस्ती, सुरक्षित और उत्तम रोशनी पहुँचा दी जितनी कि उससे पहले कभी उपलब्ध नहीं हुई थी। इसके बाद ही एडीसन ने ग्रामोफोन के सुप्रसिद्ध बोलने वाले यन्त्र का आविष्कार किया और उसके बाद जार्ज ईस्टमेन की सहायता से उसने सिनेमा मशीन का भी निर्माण किया।

कृषि की उन्नति

औद्योगिक क्रान्ति के समान ही कृषि-उद्योग के अन्तर्गत भी अमेरिका में अभूतपूर्व क्रान्ति हुई। सन् १८६० से १९१० तक पचास वर्षों में यूनाइटेड स्टैट्स में खेतों की संख्या बीस लाख से बढ़ कर साठ लाख पर पहुँच गई और खेती का क्षेत्रफल चालीस करोड़ एकड़ से बढ़ कर अट्ठासी करोड़ एकड़ हो गया। गेहूँ का उत्पादन सत्रह करोड़ तीस लाख बुशल से बढ़ कर तिरसठ करोड़ पचास लाख बुशल हो गया। मकई का उत्पादन चौरासी करोड़ बुशल से बढ़ कर दो सौ अट्ठासी करोड़ बुशल पर जा पहुँचा। रूई का उत्पादन अड़तीस लाख इकतालीस हजार गाठों से बढ़ कर एक करोड़ सोलह लाख गाँठ हो गया।

१८६० के बाद के तीस वर्षों में जितनी भूमि अमेरिका में खेती के नीचे आई उतनी उसके सारे इतिहास में कभी नहीं आई थी। इसी अवधि में अमेरिका की जनसंख्या भी बढ़ कर दुगुनी हो गई।

कृषि उद्योग की इस असाधारण सफलता का कारण पश्चिम दिशा में अमेरिकन उपनिवेशों का विस्तार था। इस सफलता का दूसरा कारण कृषि-कार्यों में यन्त्र-कला का उपयोग था। सन् १८४० में सायरस मैकोरमिक नामक मिस्त्री ने एक ऐसे रीपर का आविष्कार किया जिससे एक आदमी एक दिन में पाँच या छः एकड़ की फसल काट सकता था। उसने इन रीपरों का कारखाना खोल कर सन् १८६० तक बीस वर्षों में ढाई लाख रीपर बेच दिये।

इसी प्रकार अन्न बोने, काटने, दाने को भूसे से अलग करने, छिलका उतारने, दूध से क्रीम निकालने, खाद फैलाने, आलू बोने इत्यादि सब प्रकार की मशीनों के आविष्कारों ने किसान के श्रम को हल्का करके उसकी दक्षता को बढ़ा दिया।

प्रथम महायुद्ध और अमेरिका

सन् १९१४ में प्रथम महायुद्ध का प्रारम्भ हुआ। अमेरिका बहुत समय तक इस युद्ध से तटस्थ रहा। मगर जब जर्मनी ने सन् १९१७ में बौखला कर तटस्थ राष्ट्रों के भी जहाज डुबाने प्रारम्भ कर दिये तब अमेरिका इसे सहन नहीं कर सका और उसने सन् १९१७ के अप्रैल में जर्मनी के विरुद्ध युद्ध घोषणा कर दी। सन् १९१८ के नवम्बर में इंग्लैण्ड, फ्रांस और अमेरिका की सम्मिलित शक्ति ने जर्मनी को हरा दिया और ११ नवम्बर १९१८ को अमेरिका के राष्ट्रपति विलसन के इतिहास प्रसिद्ध चौदह सूत्रों के आधार पर विरामसंधि हो गई। सन् १९१९ में पेरिस में विजयी मित्र राष्ट्रों का एक शान्ति-सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में अमेरिका के राष्ट्रपति विलसन महान कीर्ति और लोकप्रियता के साथ आये थे। उनके घोषित १४ सूत्रों की सारे संसार में चर्चा हो रही थी। मगर जब वर्साई की संधि का मसविदा संसार के सामने आया तो लोगों ने महसूस किया कि केवल सिद्धान्त और लच्छेदार बातों से ही संसार का कल्याण नहीं हो सकता। वर्साई की संधि भी उन्हीं साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों का एक अशोभनीय नमूना था जो विलसन और लायडजार्ज के दिमाग से निकला था।

दूसरा महायुद्ध और अमेरिका

दूसरे महायुद्ध की घोषणा सन् १९३८ में हुई। इसमें भी अमेरिका शुरू-शुरू में तटस्थ रहा। फिर जब जर्मन फौजों ने फ्रांस को जीत कर डंकर्क की लड़ाई में मित्रराष्ट्रों को भारी पराजय दी, इंगलैण्ड पर हवाई आक्रमण करना प्रारम्भ किया और ऐसे विपत्तिकाल में शासन की बागडोर महान् राजनीतिज्ञ चर्चिल के हाथ में आई तब उसने अमेरिका जाकर रूजवेल्ट को युद्ध में उतरने के लिए तैय्यार किया। उधर जर्मनी की मदद करने के लिए जापान भी तैयार हो रहा था। जैसे ही अमेरिका ने युद्ध घोषणा की वैसे ही कुछ दिनों के बाद जापान के जहाजी बेड़े ने अमेरिका के हवाई बन्दर पर पहुँच कर सारे अमेरिकन बेड़े को डुबो दिया और इधर सिंगापुर में मित्रराष्ट्रों के प्रिन्स ऑफ वेल्स और एक दूसरे विशाल जहाज को डुबो दिया। उधर रूस में जर्मनी बढ़ता जा रहा था इधर बर्मा पर अधिकार करके जापान हिन्दुस्तान की ओर बढ़ रहा था। इस विपत्ति से पार पाने के लिए अमेरिका और इंग्लैण्ड दोनों ही भयंकर रूप से चिन्तित थे। ऐसे कठिन समय में अमेरीका की विज्ञान प्रयोगशाला में परमाणु बम के तैयार होने की सूचना मिली और राष्ट्रपति रूजवेल्ट और प्रधान सेनापति आइजनहोवर ने सलाह करके जापान के हिरोशिमा और नागासाकी दो शहरों पर परमाणु बम का प्रहार किया।

यह प्रहार अत्यन्त भीषण हुआ। दोनों शहर अपने आस-पास की सैकड़ों वर्ग मील भूमि के साथ बरबाद हो गये। हजारों बेगुनाह नागरिक, स्त्रियाँ और बच्चे उस भयङ्कर मृत्यु प्रहार में चिरनिद्रा में सो गये। जो बचे वे अन्धे, लूले, लंगड़े और अपंग हो गये।

इधर जापान में यह भयंकर दुर्घटना घट रही थी उधर रूस के भयंकर जाड़े ने जर्मन सेना के हाथ पैर ढीले कर दिये और रूसी सेना के प्रबल प्रहार से वह दम तोड़ कर भागने लगी।

एकदम युद्ध का पासा पलट गया। विजयोन्मत्त नाजी सेनाओं की जीत हार में बदल गई, जापान को बिना शर्त आत्मसमर्पण करना पड़ा और [illegible] द्वितीय महायुद्ध की विभीषिका समाप्त हुई और जैसे पहले के युद्ध के पश्चात् शान्ति रक्षा के लिए लीग ऑफ नेशन्स अस्तित्व में आई थी उसी प्रकार इस बार संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना हुई।

राष्ट्रपति रूजवेल्ट के पश्चात् ट्रूमेन अमेरिका का राष्ट्रपति चुना गया और अमेरिका का विदेश मन्त्री जॉन डलेस हुआ।

इस युद्ध के पश्चात् अमेरिका और रूस दोनों देश संसार की दो महान् शक्तियों के रूप में प्रकट हुए। अमेरिका लोकतन्त्री और साम्राज्यवादी शक्तियों का प्रतिनिधित्व करता है और रूस साम्यवादी शक्तियों का।

मित्रराष्ट्रों ने अपने संगठन बल से नाजी शक्तियों को खतम कर दिया मगर उनकी जगह उनसे बहुत अधिक शक्तिशाली रूस और उसके सहायक कम्युनिस्ट राष्ट्र उनके प्रबल प्रतिद्वन्द्वियों के रूप में सामने आकर खड़े हो गये हैं जो नाजी शक्तियों से बहुत अधिक शक्तिशाली हैं।

यह प्रतिद्वन्दता बहुत तेजी के साथ इतिहास के पृष्ठों को बढ़ती जा रही है। दोनों शक्तियाँ संसार के नव-स्वाधीनता प्राप्त देशों को अपने ग्रूप में मिलाने के लिए एड़ी-चोटी का पसीना बहा रही है। वैज्ञानिक आविष्कार, उच्चतम शक्ति के परमाणु बम, हाइड्रोजन बम, राकेट इत्यादि संहार अस्त्रों के निर्माण में मानों बाजी लगाकर दोनों देश भागे चले जा रहे हैं। नव-स्वाधीनता प्राप्त देशों में प्रतिदिन कहीं न कहीं क्रान्ति होने के समाचार आते हैं। कहीं सरकार उलटती है, कहीं फौजी शासन होता है, कहीं हत्याएँ होती हैं, कहीं जासूस पकड़ जाते हैं, कहीं शान्ति सम्मेलन होते हैं, कहीं निरस्त्रीकरण पर विचार होता है मगर पारस्परिक सन्देह, भय और आतंक का जो वातावरण संसार पर छाया हुआ है वह कम होने के बजाय बढ़ता जा रहा है, इतिहास मानव जाति की एक अनिश्चित धारा में पड़ कर बह रहा है और कल सवेरे संसार के किस देश में क्या होनेवाला है इसकी भविष्यवाणी आज शाम तक कर सकने में भी कोई समर्थ नहीं है।

अमेरिका अपने मित्र देशों की संख्या बढ़ाने और उनकी सहानुभूति प्राप्त करने के लिए अरबों, खरबों डॉलर

दूसरे देशों को कर्ज के रूप में दे रहा है। जहाँ कहीं कम्युनिस्टों का आतंक उसे बढ़ता हुआ दीखता है उसे कम करने के लिए वह हर तरह की सहायता भेजने का प्रबन्ध करता है।

राष्ट्रपति ट्रूमेन के पश्चात् अमेरिका का युद्धकालीन सर्वेच्च सेनापति जनरल आइसनहोवर अमेरिका का राष्ट्रपति चुना गया। इसके समय में भी शस्त्रास्त्रों की घुड़-दौड़ और विदेशी सहायता का प्रवाह उसी प्रकार चलता रहा। विदेश मंत्री डलेस की साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों के कारण कुछ क्षेत्रों में अमरीका की बदनामी हुई।

राष्ट्रपति आइसनहोवर के पश्चात् डिमाक्रेटिक पार्टी का नेता श्री कैनेडी अमेरिका का वर्तमान राष्ट्रपति हैं। श्री कैनेडी एक युवक, उदार चेता, साहसी और विश्वशान्ति के निर्माण के लिए ईमानदारी से काम करनेवाले व्यक्तियों में से एक हैं। उधर रूस का प्रधान मंत्री खुश्चेव भी अपने पूर्ववर्त्ती डिक्टेटरों की अपेक्षा कुछ नरम और समझौता पसन्द प्रवृत्ति का व्यक्ति हैं वह भी चाहता है कि किसी प्रकार यह विनाशकारी प्रतिद्वन्दता और मनुष्य की युद्धलिप्सा खतम होकर सब राष्ट्रों को रचनात्मक रूप में अपने-अपने सिद्धान्तों का प्रचार और अपने राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति करने का अवसर मिले मगर दिखलाई ऐसा पड़ रहा है कि स्टेलिनवादी कट्टर पन्थियों का जोर अभी रूस में कम नहीं पड़ा है और चीन तो उनका खास अड्डा ही है ये लोग खुश्चेव की समझौतावादी नीति को सफल नहीं होने देना चाहते।

इस प्रकार अभी तक इतिहास टेढ़ी-मेढ़ी गति से आगे बढ़ रहा है। लोकतंत्रवादी और साम्यवादी ये दो विशाल समूह अपनी भयङ्कर प्रतियोगिता में सारे विश्वमानव को पीस डालने का प्रयत्न कर रहे हैं। फिर भी इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि इस समय विश्व की दो प्रमुख शक्तियों में एक महान् शक्ति अमेरिका की है और निकट भविष्य में मानव-जाति का जो काला या उजला इतिहास लिखा जाने वाला है उसकी एक प्रमुख जिम्मेदारी इस देश पर रहेगी।

अमेरिका के बड़े नगर

न्यूयार्क—अटलांटिक तट पर बसा हुआ अमेरिका का सबसे बड़ा नगर और अमेरिका की राजधानी। पहले इस नगर को हालैण्ड निवासी प्रवासियों ने न्यू-एम्सटर्डम के नाम से बसाया था मगर अंग्रेजों के अधिकार में आने पर इस नगर का नाम न्यूयार्क रक्खा गया। यह आबादी के लिहाज से संसार का दूसरे नम्बर का नगर है। इसकी आबादी ७५ लाख से अधिक है। न्यूयार्क की स्थिति बड़े मार्के की है, यह एक प्रसिद्ध बन्दरगाह है और मध्यवर्त्ती मैदान, झीलों और सेण्टलॉरेन्स नदी से नहरों और रेलों द्वारा मिला है। न्यूयार्क के गगनचुम्बी भवन संसार में प्रसिद्ध हैं। यहाँ पर कुछ इमारतें हजार-हजार फीट से भी ज्यादा ऊँची हैं। जिनमें सौ-सौ मंजिल तक बने हुए हैं। न्यूयार्क में लोहे का सामान और कपड़ा बनाने के बहुत से कारखाने हैं।

शिकागो

शिकागो नगर अमरिका के मकई पैदा करने वाले क्षेत्र का मुख्य केन्द्र है। इस नगर ने पिछले सवा सौ वर्षों में आश्चर्य्यजनक उन्नति की है। सन् १८४० में यह ४००० आदमियों की एक छोटी सी बस्ती थी। अब यह पचास लाख से ऊपर आबादी का एक विशाल नगर हो गया है। यह करीब चालीस रेलवे लाइनों का जंकशन, और मिशीगन झील के दक्षिण सिरे का प्रसिद्ध बन्दरगाह है। यहाँ करीब ५० मील के फैलाव में जहाजों के ठहरने के डाक बने हुए हैं। यह नगर सारे संसार में मांस की सबसे बड़ी मण्डी है। यहाँ के कसाईखानों में करीब दो लाख पशु प्रतिदिन कटते हैं। यह नगर संसार में अपनी धन-सम्पत्ति के लिए प्रसिद्ध मगर दुराचार, व्यभिचार और अनैतिक कार्य्यों के लिए कलंकित है।

वाशिंगटन

अमेरिका के प्रथम राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटन के नाम पर बसाया हुआ यह शहर भी यूनाइटेड स्टेट्स का प्रमुख नगर है। यह यूनाइटेड स्टेट्स के पश्चिमी भाग में स्थित है। इसके आसपास के क्षेत्रों में सेव के बड़े-बड़े बगीचे लगे हुए हैं। यहाँ से फलों के मौसम में १०००० से

अधिक लदे हुए रेल के वैगन पूर्वी प्रदेशों को भेजे जाते हैं।

पिट्स वर्ग

अपालेशियन कोल क्षेत्र के उत्तरी सिरे पर बसा हुआ यह नगर संसार में इस्पात बनाने का सबसे बड़ा केन्द्र है।

डेट्रायट

ह्यूरेन झील से ईरी झील को आते हुए जलमार्ग पर डेट्रायट नाम का प्रसिद्ध नगर है जिसकी आबादी बीस लाख के करीब है यहाँ पर मोटरकार, चेसिस और ट्रेक्टर बनाने के बड़े-बड़े विशाल कारखाने हैं।

अमेरिकन साहित्य

राजनैतिक और आर्थिक विकास के साथ-साथ ज्ञान, विज्ञान और साहित्य के विकास की परम्परा भी अमेरिका में खूब तेजी के साथ चली। विज्ञान के क्षेत्र में जहाँ "एडिसन" के समान महान् विभूतियों ने पैदा होकर नवीन खोजों की एक श्रृंखला बद्ध विकास क्रान्ति का प्रारम्भ किया वहाँ साहित्य और विचार के क्षेत्र में राल्फ-वाल्डो एमर्सन, हेनरी डेविड थोरो, हेनरी वर्ड्सवर्थ लांग-फेलो, मार्कट्वेन, डोन हार्वेल्स, वाल्टह्विटमेन, एमिली डिकिन्सन इत्यादि साहित्यकारों ने अपनी गम्भीर विचार प्रणाली और उत्कृष्ट लेखन शैली से संसार के साहित्य में अपना उच्च स्थान प्राप्त कर लिया है।

इमर्सन संसार की अंगुली पर गिनने योग्य उन महान् प्रतिभाओं में से एक है जिसने अपनी विचारपरम्परा, चिन्तनशीलता और निबन्धकारिता से सारे संसार का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। इसकी कृतियों में "नैचर" "दी अमेरिकन स्कालर", "दी डिविनिटि स्कूल एड्रेस" इत्यादि कृतियां बहुत प्रसिद्ध हैं। एमर्सन का समय सन् १८०३ से १८८२ तक है।

ऐसा कहा जाता है कि एमर्सन अमेरिका के सुप्रसिद्ध विचारक और चिन्तक हेनरी डेविड थारो का शिष्य था। थारो एक प्रकृतिवादी लेखक था और आध्यात्मिक स्वतंत्रता में विश्वास करता था। उसका जीवन एक संत के जीवन की तरह था। महात्मा गांधी रूस के टालस्टाय की तरह थारो की विचारधारा से भी बड़े प्रभावित थे। उसकी कृतियों में "लाइफ विदाउट प्रिन्सिपल" "दी मेन उड्स" "केप-काड" आदि प्रसिद्ध हैं। इसका समय सन् १८१० से १८६२ तक था।

वाल्टह्विटमेन भी अमेरिका के साहित्य में एक महान् प्रतिभा के रूप में प्रकट हुआ। अपनी कविताओं में उसने प्राचीन परम्पराओं और शास्त्रीय पद्धति की परवाह नहीं थी। कविता की शैली, पिङ्गल, तुक, संकेत, छन्द इत्यादि सभी क्षेत्रों में उसने एक नवीन युग का सृजन कर दिया। इसकी कृतियों में "लीह्वज् ऑफ ग्रास" "डिमाक्रेटिक विस्टाज" इत्यादि प्रसिद्ध हैं। उसकी सबसे पहली कृति "लीह्वज ऑफ ग्रास" है जो सन् १८५५ में तैय्यार हुई। उसने लिखा "कि मेरी कृतियों को सावधानी से पढो क्योंकि वे रक्त मांस से निर्मित मानव को छूती हैं। अमेरिका से भी अधिक ख्याति ह्विटमेन को इंग्लैण्ड में मिली। इसका समय १८१९-१८९२ है।

महिला साहित्यकारों में "एमिलि डिकिन्सन" अमेरिकन साहित्य में एक प्रकाश पुंज की तरह जगमगा रही है। उसके बनाये हुए "लिरिक" माधुर्य्य, ओज और प्रासाद गुणों से भरे हुए हैं। इसका समय १८३० से १८८६ तक है।

यथार्थवादी क्षेत्र में "विलियम डीन हॉवेल्स" और "हेनरी जेम्स" का नाम प्रसिद्ध है। उसके उपन्यास, कहानियां, कविताएँ निबन्ध इत्यादि सभी साहित्य कई खण्डों में प्रकाशित हुआ है। इसके उपन्यासों में सबसे सुन्दर "दी लैदर उड गॉड" है। इसका समय सन् १८३७ से १९२० तक है।

हेनरी जेम्स का समय सन् १८४३ से १९१६ तक है। यह भी यथार्थवादी साहित्य के क्षेत्र में बड़ा नामाङ्कित है। इसके उपन्यासों में "दी एम्बेसेडर" "दी गोल्डन बॉल" "दी पोर्ट्रेट ऑफ लेडी" इत्यादि प्रसिद्ध हैं।

अमेरिका की प्रसिद्ध लेखिका हैरियट बीचर स्टो की महान् कृति "अंकिल टॉम्स केबिन" ने सारे अमेरिका में गुलामी-प्रथा के विरुद्ध धूम मचा दी। यह कृति सन् १८५२ में प्रकाशित हुई।

मार्कट्वेन व्यङ्ग और विनोद के क्षेत्र में अपनी सानी नहीं रखता मगर गम्भीर साहित्य रचना में भी वह पीछे

नहीं है। "टॉम साअर" "लाईफ ऑन दी मिसीसिपी" "हकलबेरी फिन" इत्यादि उसकी श्रेष्ठ कृतियां हैं। इसका समय १८३६ से १९१० तक है।

इसी प्रकार एडगर एलेन पो (१८०९-४९) विलियम क्यूलेनब्रियां (१७९४-१८४८) फिलिप फ्रेनू इत्यादि साहित्यकार भी अमेरिकन साहित्य के चमकते हुए सितारे हैं।

अमेरिका में हिब्रू-साहित्य

अंग्रेजी साहित्य के साथ-साथ अमेरिका में बसे हुए यहूदी साहित्यकारों के द्वारा हिब्रूभाषा का साहित्य भी प्रकाश में आया। उन्नीसवीं सदी के अन्तिम चरण से वहाँ हिब्रू साहित्य का प्रकाशन शुरू हुआ। जे० डी० आइन्जेस्टाइन ने हिब्रू भाषा के कोष और काव्य संग्रह प्रकाशित किये।

अमेरिकन हिब्रू साहित्यकारों में इस्राइल एफ्रान्स और मेयर वेक्समेन नामक दार्शनिक विद्वानों के नाम उल्लेखनीय है। हिब्रूभाषा के कवियों में फ्राइन्स्टाइन, हालकीन, हिलेल वाव्जी, सिल्किनेर इत्यादि तथा उपन्यासकारों में ब्लैक, रिजेल्सन, टवेर्स्की इत्यादि के नाम उल्लेखनीय है।

अमेरिका के राष्ट्रपति

१—जार्ज वाशिंगटन	सन् १७८९–९७
२—जान एडम्स	सन् १७९७–१८०१
३—टॉमस जैफरसन	सन् १८०१–१८०९
४—जेम्स मेडिसन	सन् १८०९–१८१७
५—जेम्समनरो	सन् १८१७–१८२५
६—जॉनक्विन्सी एडम्स	सन् १८२५–१८२९
७—एण्ड्रयू जैक्सन	सन् १८२९–१८३७
८—मार्टिनवान बुरेन	सन् १८३७–१८४१
९—विलियम हैरीसन	सन् १८४१–१८४१
१०—जान टाइलर	सन् १८४१–१८४५
११—जेम्स नौक्स पोक	सन् १८४५–१८४९
१२—जैकारी टेलर	सन् १८४९–१८५०
१३—मिलर्ड फिलमार	सन् १८५०–१८५३
१४—फ्रैंकलिन पियर्स	सन् १८५३–१८५७
१५—जेम्स बुकानिन	सन् १८५७–१८६१
१६—अब्राहम लिंकन	सन् १८६१–१८६५
१७—एण्ड्रयू जॉनसन	सन् १८६५–१८६९
१८—यूलिसिस एस० ग्राण्ट	सन् १८६९–१८७७
१९—रूदर फोर्ड बी० हेस	सन् १८७७–१८८१
२०—गेम्स गारफील्ड	सन् १८८१–१८८१
२१—चेस्टर ए० आर्थर	सन् १८८१–१८८५
२२—ग्रोवरक्लीवलैण्ड	सन् १८८५–१८८९
२३—बेंजामिन हैरीसन	सन् १८८९–१८९३
२४—ग्रोवर क्लीवलैण्ड	सन् १८९३–१८९७
२५—विलियम मैक किन्ले	सन् १८९७–१९०१
२६—थियोडोर रूजवेल्ट	सन् १९०१–१९०९
२७—विलियम हावर्ड टैफ्ट	सन् १९०९–१९१३
२८—वुडरो विलसन	सन् १९१३–१९२१
२९—वारेन डी० हार्डिंग	सन् १९२१–१९२३
३०—केलविन कूलिज	सन् १९२३–१९२९
३१—हर्बर्ट हूवर	सन् १९२९–१९३३
३२—फ्रैंकलिन डी० रूजवेल्ट	सन् १९३३–१९४५
३३—हैरी ट्रूमेन	सन् १९४५–१९५३
३४—ड्वाईट डी० आइजनहोवर	सन् १९५३–१९६१
३५—जॉन एफ० कैनेडी	सन् १९६१–

अम्बपालिका

भगवान् बुद्ध के समय में लिच्छवि गण राज्य वैशाली की एक इतिहास प्रसिद्ध नगर वधू।

अम्बपालिका एक अज्ञात कुल शीला लड़की थी जो वैशाली के बाहर एक आम के वृक्ष के नीचे पड़ी हुई पाई गई थी इसीलिए इसका नाम आम्रपाली या अम्बपालिका रक्खा गया।

अम्बपालिका ने बाल्यावस्था में से निकल कर जब यौवन की देहली में पैर रक्खा तो उसका सौन्दर्य्य मानों शत सहस्र धाराओं से फूट निकला। उसके सारे अङ्गों की बनावट अत्यन्त सुघड़ और सुन्दर थी, उसकी आँखों में मदिरा

का दरिया लहराता था और उसकी हंसी में संगीत के सारे स्वर मानों एक साथ बज उठते थे।

कहा जाता है कि उस समय वैशाली राज्य में एक कानून था कि जो लड़की अप्रतिम सौन्दर्य्य की अधिकारिणि होती थी और अज्ञात कुल शीला होती थी, उसकी शादी न करके उसकी स्थापना नगर वधू के रूप में कर देते थे। इस रूप में वह कला की अधिष्ठात्री देवी बन कर सारे समाज में अपनी दिव्य कला का योगक्षेम करती थी। सारे समाज के रसिक और कला प्रेमी लोग उसकी कला का रसास्वादन लेते थे।

अम्बपालिका भी वैशाली की नगर वधू बनी। संगीत नृत्य, काव्य, वाद्य इत्यादि सभी कलाओं में पारंगत हो उसने भारत के रसिक समाज का ध्यान आकृष्ट करना प्रारम्भ किया। बड़े-बड़े राजा, महाराजा, सरदार तथा पठित समुदाय के लोगों से उसकी महफिल में जमघट जमा रहता था। स्वयं मगधराज बिम्बिसार भी उसकी कला के अनुरक्त और प्रेमी थे ऐसी इतिहास की कल्पना है।

इतनी शान, शौकत, वैभव और सुख के होते हुए भी अम्बपालिकाको यह भान होता था कि इस सब वैभव के बीच भी न मालूम कैसी एक अनजान अपूर्णता उसके दिल को कचोटती रहती है। न मालूम कैसी एक शून्यता उसके मन पर अपनी छाया डाले हुए है। वह इसकी खोज करती थी मगर पता नहीं चलता था।

इतने में ही तथागत भगवान् बुद्ध का वैशाली में आगमन हुआ। हजारों दर्शनार्थी उनके दर्शनों को जाने लगे यह देख कर अम्बपालिका भी अपने सुवर्ण रथ पर सवार होकर भगवान् बुद्ध के दर्शनों को चली।

भगवान् बुद्ध के दर्शन करते ही उसे ऐसा भान हुआ मानों जिस अज्ञात वस्तु की वह खोज में थी। वह अचानक उसे मिल गई। उसने बड़ी श्रद्धा से उन्हें अपने घर भोजन का निमंत्रण दिया, भगवान् बुद्ध ने उसे स्वीकार किया। उसके घर जाकर बुद्ध ने उसे प्रबोध दिया, वह प्रभावित हुई और दुनिया के सारे सुख वैभव को लात मार कर *बुद्ध सरणं गच्छामि संघम सरणं गच्छामि धम्मंम सरणं गच्छामि*—कह कर बुद्ध देव की शिष्य हो गई।

अय्यूब खाँ

पाकिस्तान के राष्ट्रपति, उसके पहले पाकिस्तानी सेनाओं के सेनापति उसके पहले सम्भवतः ब्रिटिश शासन के समय में नसीराबाद सैनिक छावनी के एक अफसर।

सन् १९४७ में पाकिस्तान के राष्ट्र का सूत्रपात हुआ। वहाँ श्री मुहम्मदअली जिन्ना के आधिपत्य में सरकार बनी। श्री जिन्ना की मृत्यु के पश्चात् वहाँ कई बार नई-नई सरकारें बनीं। शासन में स्थायित्व बिलकुल नहीं आने पाया। शासन की इस अस्थिरता के कारण सारे देश में भ्रष्टाचार और अनैतिकता का दौर दौरा हो गया। जनता में दरिद्रता बढ़ने लगी।

इस सारी स्थिति को देखकर सन् १९५८ में पाकिस्तान के तत्कालीन गवर्नर जनरल श्री इस्कन्दर मिर्जा ने जो सम्भवतः वहाँ के सैनिक कमाण्डर भी थे, फौजी क्रान्ति की घोषणा कर मन्त्रिमण्डल को बरखास्त कर दिया और सारे शासन सूत्र अपने हाथ में ले लिये इस कार्यवाही में जनरल अय्यूब उनके सहयोगी थे।

मगर तुरन्त ही इस्कन्दर मिर्जा से जनरल अय्यूब के तीव्र मतभेद हो गये, जिसके फलस्वरूप इस्कन्दर मिर्जा को देश छोड़ कर जाना पड़ा और पाकिस्तान की सारी शासन सत्ता जनरल अय्यूब के हाथों में आ गई।

सत्ता हाथ में लेते ही जनरल अय्यूब ने सारे पाकिस्तान में फौजी कानून की घोषणा कर दी। जिससे सारे देश में आतङ्क का साम्राज्य छा गया।

उसके बाद जनरल अय्यूब ने सारे देश में भ्रष्टाचारी मंत्रियों और अधिकारियों की जाँच करना प्रारम्भ किया। कई मंत्रियों के पास से गैर कानूनी ढङ्ग से रक्खा हुआ लाखों टन अनाज बरामद किया। कई भ्रष्टाचारी उच्चपदाधिकारियों को बरखास्त किया, कइयों की जायदादें जप्त कीं। कइयों को जेल भेजा, कइयों को राजनैतिक क्षेत्र से निकाल बाहर किया।

इसके बाद जैसे-जैसे व्यवस्था जमने लगी वैसे-वैसे उन्होंने फौजी कानून की सख्ती में ढील देना शुरू किया। और कुछ समय तक ऐसा मालूम होने लगा मानों सारे देश में सुव्यवस्था और शान्ति की स्थापना हो गई है।

इस जमाने में पाकिस्तान का उत्पादन भी बढ़ा, वहाँ के औद्योगिक क्षेत्र में भी उन्नति हुई, वहाँ से होने वाले निर्यातकों के अंकों में भी सन्तोषजनक वृद्धि हुई तथा वहाँ की प्रजा में किसी कदर खुश हाली नजर आने लगी।

जनरल अय्यूब की दिखलाई देनेवाली इन सफलताओं का और पाकिस्तान की अस्थिर शासन व्यवस्था में स्थायित्व लाकर उसे एक सुसंगठित राष्ट्र बनाने की प्रक्रिया का अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव भी अच्छा हुआ जिसके फलस्वरूप अमेरिकन सरकार के निमन्त्रण पर जब वे अमेरिका गये तो उनका इतना भारी स्वागत हुआ जो अब तक किसी भी पाकिस्तानी नेता का नहीं हुआ था।

मगर सारी बातों के बावजूद जनरल अय्यूब अपनी तानाशाही प्रवृत्तियों को ज्यों की त्यों कायम रखना चाहते थे। प्रजा के अन्दर बढ़ती हुई विधान की माँग और गणतन्त्रीय पद्धति से चुनाव की आकांक्षा को दबाने के लिए उन्होंने "बुनियादी प्रजातन्त्र" के नाम से एक नवीन नुस्खे का आविष्कार किया। जिसमें बालिग मताधिकार की जगह उन्होंने "मर्यादित मताधिकार" की व्यवस्था रक्खी।

मगर ऐसा दिखलाई पड़ता है कि इस नवीन योजना में उन्हें अधिक सफलता नहीं मिली और जनता के अन्दर भीतरी असन्तोष बढ़ता रहा। इस असन्तोष का विस्फोट पूर्वी पाकिस्तान में सबसे पहले प्रारम्भ हुआ, वहाँ के विद्यार्थी समुदाय ने साहस पूर्वक वहाँ जोरदार आन्दोलन शुरू किया जो जबर्दस्त दमन के बावजूद भी दबाया नहीं जा सका।

जनरल अय्यूब ने भारतवर्ष से अपने बिगड़े हुए सम्बन्ध सुधारने के लिए भारतवर्ष का भी दौरा किया और फिर अपने देश में भारत के प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू को बुला कर उनका भारी स्वागत किया। भारत वर्ष के बीच के नहरी पानी, नदियों का बँटवारा आदि समस्याओं का उन्होंने और पं० नेहरू ने मिल-जुल कर समझौता निकाल लिया जिससे कुछ समय के लिए ऐसा मालूम होने लगा मानों दोनों देशों के बीच बिगड़े सम्बन्ध अब सुधर जावेंगे और इस क्षेत्र में भी जनरल अय्यूब यश प्राप्त कर लेंगे

लेकिन यह सारा स्वप्न भंग हो गया जब भारत और पाकिस्तान के बीच की मूलभूत समस्या कश्मीर का प्रश्न सामने आया। इस समस्या का समाधान न निकलता था न निकला बल्कि इस समस्या को लेकर दोनों देशों में तनाव पहले से भी अधिक बढ़ गया।

इस असफलता से क्रुद्ध होकर एक तरफ तो उन्होंने फिर से सुरक्षा परिषद् के दरवाजे को खटखटाया है दूसरी तरफ भारत के शत्रु चीन से सांठगांठ कर उससे सीमा समझौता करने की धमकी भारत को दे रहे हैं। और इस प्रकार अपनी राजनैतिक विफलता में एक अध्याय और जोड़ रहे हैं।

जनरल अय्यूब एक कुशल संगठनकर्ता, दृढ़-प्रतिज्ञ, साहसी और अपने देश के प्रति वफादार व्यक्ति हैं। पाकिस्तान की बिगड़ी हुई अस्थिर शासन व्यवस्था को उन्होंने एक स्थिर और दृढ़ रूप दिया है मगर उनका दिमाग एक कुशल सेनाध्यक्ष का दिमाग है, मंजे हुए राजनीतिज्ञ का नहीं। सेनानायकों के अन्तर्गत जो तानाशाही प्रवृत्ति रहती है उससे वे बच नहीं सके हैं। यह प्रवृत्ति उनके दिमाग में सोलहों कला से जागृत है जो उन्हें एक प्रगल्भ राजनीतिज्ञ बनाने से हमेशा रोकती रहती है देखना यह है कि आनेवाला समय उनके सम्बन्ध में क्या निर्णय देता है।

अयोध्या सिंह उपाध्याय

हिन्दी भाषा में भिन्न तुकान्त पद्य के एक सफल कवि जिनका जन्म सन् १८६५ में आजमगढ़ जिले के निजामाबाद में हुआ। इनका उपनाम "हरिऔध" था। ये गद्य और पद्य दोनों के सफल लेखक थे। हिन्दी के साथ ही संस्कृत और फारसी के अच्छे जानकार थे। इन्होंने कई पुस्तकों के अनुवाद भी किये और संस्कृत की शैली पर कुछ फुटकर कविताओं की रचना की।

मगर इनका सबसे उत्कृष्ट महाकाव्य जिसने इनको हिन्दी के अग्रणी महाकवियों की पंक्ति में बिठा दिया वह "प्रिय-प्रवास" है। कृष्ण के वियोग में विक्षुब्ध राधा की मनोभावनाओं का इस महाकाव्य में सजीव चित्रण किया गया है। कालिदास के मेघदूत की भाँति पवन को

अपना दूत मान कर राधा जो सन्देश अपने प्रिय को भेजती है वह बड़ा हृदयग्राही है।

एकाध पद्य का नमूना देखिए—

"जो होता है निरत तप में मुक्ति की कामना से
आत्मार्थी है न कह सकते आत्मत्यागी उसे हैं
जीसे प्यारा जगतहित और लोकसेवा जिसे है
प्यारी सच्चा अवनितल में आत्मत्यागी वही है।"

अयोध्या सिंह उपाध्याय का दूसरा महाकाव्य वैदेही बनवास है।

अयोध्या

भारतवर्ष की अत्यन्त पवित्र सप्त महा नगरियों में से एक प्रसिद्ध नगरी जहाँ पर भगवान रामचन्द्र अवतीर्ण हुए थे।

भारत की पौराणिक परम्परा में इन सप्त महानगरियों का वर्णन करते हुए लिखा है :—

अयोध्या मथुरा माया, काशी काञ्ची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव, सप्तैते मोक्षदायिकाः॥

इसी अयोध्या नगरी में रघुवंश के महाराजा रघु ने रघुवंशी सत्ता की स्थापना की थी। इसी रघुवंश की परम्परा में मान्धाता, हरिचन्द्र, दिलीप, अज, दशरथ आदि हमारी प्राचीन गौरवमयी परम्परा के महान् शासकों ने शासन किया था।

राजा दशरथ के पुत्र रामचन्द्र हुए। उनके समय में अयोध्या नगरी की क्या शोभा थी इसका वर्णन करते हुए महर्षि बाल्मीकि लिखते हैं :—

"पवित्र सरयू नदी के किनारे कौशल प्रान्त की राजधानी के रूप में बसी लोकप्रसिद्ध अयोध्या नगरी है। जिसकी लम्बाई १२ योजन और चौड़ाई ३ योजन है। इस नगरी में बड़ी-बड़ी विशाल अट्टालिकाएँ और बड़े-बड़े राजमार्ग बने हुए थे जिन पर सदैव जल का छिड़काव होता था। उनके किनारे-किनारे छाया के लिये लगाये हुए पुष्प वृक्षों की सुगन्धि से सारा वातावरण सुगन्धित रहता था। राजप्रासाद सुन्दर और भव्य बने हुए थे।

राजा रामचन्द्र का शासन इतना न्यायपूर्ण और उदार था कि उनके रामराज्य की कल्पना विकास के इस महान् युग में भी भारतवासियों के लिये आदर्श बनी हुई है और इसी ने राजा रामचन्द्र को भगवान रामचन्द्र के रूप में परिणत कर दिया जो आज भी ३५ कोटि मनुष्यों के उपास्य देवता हैं।

आज भगवान् रामचन्द्र की यह महापुरी अपनी बहुत साधारण अवस्था में स्मृति रूप में फैजाबाद जिले में बसी हुई है और चैत्र की रामनवमी पर यहाँ बहुत बड़ा दर्शनीय मेला लगता है।

अरब

मध्यएशिया के दक्षिण पथ का एक रेगिस्तानी देश, जिसके पश्चिम में मिस्र, उत्तर में सीरिया और ईराक, पूर्व में ईरान, दक्षिण में भारतवर्ष और उत्तर-पश्चिम में एशिया कोचक और कुस्तुन्तुनिया हैं। यह देश इस्लाम धर्म का मूल उत्पत्ति-स्थान है।

रेगिस्तानी देश होने के कारण अरब उपजाऊ प्रदेश नहीं है। इसलिए यहाँ के निवासी इसलाम के उदय के पूर्व अक्सर छोटे बड़े कबीलों में रहकर घुमक्कड़ जीवन-व्यतीत करते थे। सिर्फ मक्का और मदीना के दो नगर इस देश में सम्पन्न थे जहाँ व्यापारी, सामन्त और पुजारी लोग रहा करते थे।

इस्लाम के उदय के पूर्व इस देश के लोग मूर्त्तिपूजक थे। मक्का में प्राचीनकाल में एक मन्दिर बना हुआ था जिसे लोग काबा कहते थे। इसमें मूर्ति की जगह एक काला पत्थर जिसे "हज्र-अस्वद" कहते थे रक्खा हुआ था। इसका आकार शिवलिंग से कुछ मिलता-जुलता था। इसके अतिरिक्त इस मन्दिर में लात, मलात, शम्स (सूर्य्य) आदि की कई मूर्तियाँ थीं। हर साल इस मन्दिर में एक मेला लगता था जिसमें दूर-दूर से हजारों यात्री आकर दर्शन करते थे।

अरब कबीलों का जीवन अक्सर घुमक्कड़ और खानाबदोश जीवन था। दो-दो, चार-चार खानदान अपने

कबीले बनाकर रहते थे। खानदान का व्योवृद्ध आदमी इन कबीलों का मुखिया होता था। सन् ५७० के पहले इस रेगिस्तानी मुल्क में इतिहास की कोई बड़ी घटना नहीं घटी।

मगर सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ में इस देश में ऐसी जबर्दस्त घटना हुई जिसने न केवल इस देश के बल्कि सारे संसार को इतिहास में एक भारी तूफान और क्रान्ति पैदा कर दी। यह घटना अरब में पैगम्बर मुहम्मद का अवतीर्ण होना और उनके द्वारा संसार में इस्लाम के सन्देश का प्रचार करना था।

पैगम्बर मुहम्मद का जन्म मक्का के हाशिम वंश में सन् ५७० में हुआ। उनके पिता का नाम अब्दुल्ला और माँ का नाम आमना था। अरब जाति की उस समय जैसी दुर्दशा हो रही थी छोटे-छोटे कबीलों में बँटकर वे लोग आपस में जिस प्रकार लड़ते रहते थे उसे देखकर उनके दिल पर बड़ी चोट पहुँचती थी। वे शुरू से ही बड़े तेजस्वी और प्रतिभावान् व्यक्ति थे। वे पढ़े लिखे नहीं थे। फिर भी अपनी स्वाभाविक बुद्धि से वे कई वर्षों तक मक्का की एक धनाढ्य स्त्री खादिजा के कारवाँ के सरदार होकर देश-विदेश में घूमने जाया करते थे। आगे जाकर यही खादिजा उनकी पत्नी हुई।

देश-विदेश में घूमने के कारण उनकी भेंट ईसाई और यहूदी धर्म के विद्वानों और धर्माचार्य्यों से होती रहती थी। इन मुलाकातों के कारण धीरे-धीरे उनका विश्वास मूर्ति पूजा पर से हट गया।

धीरे-धीरे उनके अन्दर एक इलहाम एक अन्तः-प्रेरणा का प्रकाश फैलने लगा, भीतर से कुछ गैबी आवाज का उन्हें अनुभव होने लगा जिसके परिणामस्वरूप चालीस वर्ष की अवस्था में उन्होंने अपने आपको खुदा का पैगम्बर घोषित कर दिया और अपने चलाये हुए नये मत का नाम इसलाम रक्खा। मूर्ति पूजा के खिलाफ उन्होंने जिहाद कर दिया।

धार्मिक क्रान्ति

मूर्ति पूजा के खिलाफ दिये गये उनके फतवे से मक्का के पण्डे पुजारी और दूसरे लोग उनके खिलाफ हो गये जिसके फलस्वरूप महम्मद को सन् ६२२ में मक्का से भाग कर मदीने जाना पड़ा। इस हिजरत के उपलक्ष्य में इस्लाम में हिजरी संवत् का प्रारम्भ हुआ। मदीना के लोगों ने हजरत मुहम्मद का बड़ा स्वागत किया और उस शहर का पुराना नाम "यस्रिब" बदल कर मदीनतुन्नबी या मदीना कर दिया। मदीना के जिन लोगों ने विशेष रूप से हजरत मुहम्मद की मदद की थी वे "अन्सार" कहलाये।

सामाजिक क्रान्ति

धार्मिक क्षेत्र में हजरत मुहम्मद मूर्ति पूजा के खिलाफ जोरदार आवाज बुलन्द कर रहे थे और सामाजिक क्षेत्र में वे इसलाम के झण्डे के नीचे आने वाले सब लोगों में भाई चारे की भावना का जोशीला मंत्र फूंक रहे थे। इस्लाम में आने के पहले व्यक्ति चाहे जिस छूत, अछूत, नीच ऊँच जाति का रहा हो इसलाम के झण्डे के नीचे आते ही वह सब जमात में बराबरी का दर्जा प्राप्त कर लेता था। यद्यपि ये नियम आगे जाकर ढीले हो गये और मानव स्वभाव की भेदभाव मूलक प्रवृत्ति ने अरब के मुसलमानों और बाहर से आने वाले मुसलमानों के बीच भेद भाव की एक रेखा खींच दी मगर यह अपवाद रूप में थी। इसलाम का असली सिद्धान्त उसके झण्डे के नीचे आने वाले हर इन्सान में समानता और भाई चारे का व्यवहार करना था। इसलाम के इस सिद्धान्त ने उस समय के लाखों लोगों को अपनी ओर आकर्षित किया। क्योंकि उस समय प्रचलित जरथुस्टी, ईसाई और बौद्ध धर्म के अनुयायियों में भेदभाव की ये दीवारें बहुत मजबूत होती जा रही थीं।

धार्मिक और सामाजिक दृष्टिकोण के साथ-साथ पैगम्बर ने राजनैतिक और आर्थिक दृष्टिकोण का भी इसलाम की स्थापना के समय पूरा-पूरा ध्यान रखा।

राजनैतिक और आर्थिक क्रान्ति

वे जानते थे कि उस युग में बिना राजनैतिक और सैनिक शक्ति के किसी भी धर्म का प्रचार सम्भव नहीं

था। लोग समझाने बुझाने की शक्ति की अपेक्षा तलवार की शक्ति पर अधिक विश्वास करते थे इसलिए पैगम्बर ने इसलाम के धार्मिक संगठन के साथ उसका राजनैतिक और सैनिक संगठन भी बहुत तत्परता के साथ किया।

राजनैतिक और सैनिक संगठन की मजबूती के लिए ऐसी अर्थ-व्यवस्था की आवश्यकता थी जिसमें नीचे के सैनिकों से लेकर ऊपर के अधिकारियों तक को लूट की आमदनी में से उचित हिस्सा मिले। लूट की आमदनी को उस समय "माले-गनीमत" कहते थे, हजरत मुहम्मद ने माले गनीमत की एक नई व्याख्या करके विजय से प्राप्त होने वाली आमदनी में से $\frac{1}{5}$ सरकारी खजाने में (बैतुल-माल) देकर शेष आमदनी को सब योद्धाओं में बराबर-बराबर बांट देने की व्यवस्था की।

लूट में बहुत सी सुन्दर स्त्रियाँ और दास दासी भी आते थे। इनका बंटवारा भी पद और हैसियत के अनुसार हो जाता था सबसे सुन्दर और तरुण स्त्रियाँ बड़े अधिकारियों को मिलती थीं और बची हुई दूसरे लोगों के हिस्से में आती थीं।

विस्तृत राज्य स्थापित करने के इच्छुक एक व्यवहार कुशल धर्म नेता की यह अनोखी सूझ थी। जिसने मनुष्य की "कामिनी और कांचन" की भावनाओं को जाग्रत कर रेगिस्तान के दुर्द्धर्ष जीवन को बितानेवाली घुमक्कड़ बुद्धू जाति में तथा आसपास के दूसरे देशों की जनता में इसलाम के झण्डे के नीचे आने के लिए एक अजीब उत्साह पैदा कर दिया। जिसकी प्रेरणा से हजारों सैनिक प्रवृति के लोग इसलामी सेना में भरती होने लगे और बढ़ते हुए बैतुल माल के खजाने से एक बलशाली सैनिक शक्ति की नींव डाल दी।

माले गनीमत की इस नई व्याख्या ने आर्थिक वितरण को एक नये रूप में पेश किया। जिसने अल्लाह के स्वर्गीय इनाम तथा अनन्त जीवन के ख्याल से उत्पन्न होने वाली निर्भीकता से मिलकर दुनिया में वह उथल-पुथल पैदा की जिसे हम इसलाम का सजीव इतिहास कह सकते हैं। जिस इतिहास ने केवल पचहत्तर वर्षों में सिंधुतट से लेकर स्पेनतक और सिर दरिया से नील नदी तक फैले एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की।

हिजरत के दस वर्ष बाद सन् ६३२ में हजरत मुहम्मद का देहान्त हो गया उनकी मृत्यु के समय पश्चिमी अरब के कितने ही प्रमुख कबीलों ने इस्लाम को स्वीकार किया तथा अपनी निरंकुशता को कम करके एक संगठन में बंधना चाहा। उस समय तक सारे अरबी भाषी लोगों में इसलाम घर कर चुका था। पैगम्बर ने अरब देश की परस्पर में लड़ने वाली अनेक जंगली जातियों को संगठित करके एक नवीन इसलामी राष्ट्र का निर्माण किया।

खिलाफत का प्रारम्भ

अबू-बकर (६३२–६४२)

पैगम्बर की मृत्यु के पश्चात् खलीफा पद के लिए कुछ झगड़े हुए मगर अन्त में हजरत अबू-बकर पहले खलीफा हुए। अबू-बकर दस साल तक खलीफा रहे इन्हीं के समय में खालिद के सेनापतित्व में अरबी सेना ने रोम को हराकर दमिश्क पर कब्जा कर लिया। फिलीस्तीन पर भी इन्हीं दिनों अरब लोगों ने अपनी विजय पताका फहरा दी और ईरान के सासानी वंश के शाह यज्दगर्द तृतीय को भी हराकर अरबी सेना ने ईरान में इसलाम का प्रचार किया। सन ६४२ में हजरत अबू-बकर का देहान्त हुआ।

हजरत ऊमर

हजरत अबू-बकर के पश्चात् हजरत ऊमर इसलाम के दूसरे खलीफा हुए। इनके समय में इसलाम विशुद्ध धार्मिक रूप से बदलकर एक विश्वविजयी सैनिक संगठन का रूप ले चुका था। अब इसलाम पैगम्बर के जमाने का इसलाम नहीं था जब कि इसलाम स्वीकार करते ही आदमी सामाजिक समानता का अधिकारी हो जाता था। अब अरबी मुसलमान और बाहर के मुसलमानों के बीच भेदभाव की एक हलकी रेखा पैदा हो गई थी।

हजरत ऊमर के समय में मिश्र के ऊपर अरबी सेनाओं ने अधिकार कर लिया। ऐसा कहा जाता है कि मिस्र की विजय के समय सिकन्दरिया का विशाल पुस्तकालय जो उन

दिनों शायद संसार में सबसे बड़ा पुस्तकालय था अरबी सेनाओं ने जला दिया। आजकल के कुछ इतिहासकार इस घटना को गलत भी बतलाते हैं।

हजरत ऊमर केवल दो बरस खलीफा रहे, इस थोड़े से समय में ही उनके सादे जीवन और न्यायप्रियता की बहुत सी कहानियाँ इतिहास में लिपिबद्ध हुई। लेकिन वह सब केवल अरबी मुसलमानों के लिए थीं विदेशी या विजातीय मुसलमान उसके अधिकारी नहीं थे।

अन्त में एक ईरानी गुलाम ने अपनी जाति पर किये गये अत्याचार का बदला लेने के लिए हजरत ऊमर की हत्या कर डाली।

उसमान

हजरत ऊमर के बाद तीसरे खलीफा उस्मान हुए जिन्होंने सन् ६४४ से ६५२ तक शासन किया। इनके शासन काल में उमैया वंशी सरदार म्वाविया को सीरिया का शासक बनाकर दमिश्क भेजा गया। जिसने रोमन राज्य प्रणाली के ढंग पर वहाँ शासन करना प्रारम्भ किया।

खलीफा उसमान के शासन में खुरासान और तुर्कों के राज्य पर अरबों ने जोरदार आक्रमण किया। ख्वारेज्म और बलख के लोगों ने भी खलीफा की अधीनता स्वीकार थी। खलीफा उसमान के बढ़े हुए ऐश्वर्य्य और विलास को देखकर किसी ईर्ष्यालु व्यक्ति ने उनकी भी हत्या कर डाली

खलीफा अली
(सन ६५२–६६१)

खलीफा उसमान के कतल के पश्चात् पैगम्बर के दामाद अली इसलाम के चौथे खलीफा हुए। इन पर तथा इनके पुत्र हसन और हुसैन पर पैगम्बर का बड़ा प्रेम था। लेकिन दमिश्क का गवर्नर म्वाविया जो एक शक्तिशाली व्यक्ति था, अली से बहुत जलता था। अली का सारा समय म्वाविया के साथ संघर्ष में बीता। म्वाविया के षड्यन्त्र से अली के बड़े पुत्र हसन को उन्हीं की बीबी ने जहर देकर मार दिया और म्वाविया के पुत्र मजीद ने अली के दूसरे पुत्र हुसैन को उनके ६९ साथियों के साथ घेर कर प्यास से तड़फा-तड़फा कर मार दिया। करबला में हुसैन और उनके ६९ साथियों की मौत बड़ी नृशंसतापूर्ण दर्दनाक घटना है जिसको याद करके आज भी इसलाम को मानने वाले लोगों को आँखों से आँसू निकल पड़ते हैं। इस घटना ने करबला और हुसैन को इसलामी इतिहास में अमर कर दिया जिसकी स्मृति में आज भी संसार के सुन्नी मुसलमान मोहर्रम का दिन मनाते हैं।

उम्मैय्या-वंश

खलीफा अली की मृत्यु के पश्चात् खलीफा की गद्दी उमैया वंश के हाथों में आई। उमैया वंश का पहला खलीफा म्वाविया मेरवान हुआ। जो कि पहले खलीफाओं के शासन में दमिश्क का गवर्नर था। इसका समय सन् ६६१ से ६७० तक है।

म्वाविया खलीफा के राज्यकाल में उसके गवर्नर अब्दुल्ला ने खुरासान को विजय कर लिया। इसके बाद अब्दुल्ला के भाई हाकिम ने सबसे पहले वक्षु नदी को पार कर के तुखारिस्तान को जीता और बलख के दक्षिण पूर्व हिन्दुकुश पहाड़ तक प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया।

खलीफा म्वाविया के शासनकाल में बुखारा और समरकन्द भी उसके अधिकार में आ गये।

म्वाविया मेरवान के सहित उमैया वंश में तेरह खलीफा हुए जिनके नाम क्रमशः (१) म्वाविया मेरवान प्रथम (६६१-६७०) (२) यजीद (६८०-६८३) (३) खलीफा म्वाविया द्वितीय (६८३) (४) खलीफा अब्दुल मलिक (६८३-७०५) (५) खलीफा वलीद (७०५-७१४) (६) खलीफा सुलेमान (७१४-७१७) (७) खलीफा ऊमर द्वितीय (७१७-७२०) (८) खलीफा यजीद द्वितीय (७१९-७२४) (९) खलीफा हिशाम (७२३-७४२) (१०) खलीफा वलीद द्वितीय (११) खलीफा यजीद (तृतीय) (१२) इब्राहीम (१३) मेरवान।

इन खलीफाओं में पाँचवें खलीफा वलीद के शासन काल में मेर्व का गवर्नर कुतैब नामक एक बहादुर और कट्टर मुसलमान को बनाया। मध्यएशिया में अरब

शासन और इसलाम की मजबूत नींव डालने में कुतैब ने बड़ी बहादुरी से काम लिया । *

इसी काल के लगभग अर्थात् सन् ७११ में दक्षिण अफ्रीका का अरब सेनापति "तरीक" समुद्र पार कर स्पेन पहुँचा। वह जिब्राल्टर पर उतरा था इसलिए उसकी स्मृति में उसका नाम "जबलुतरीक" (तरीक की पहाड़ी) रक्खा गया जो आगे चल कर "जिब्राल्टर" के रूप में बदल गया ।

तरीक के नेतृत्व में अरबी सेनाओं ने केवल दो बरस में स्पेन को जीत लिया । कुछ दिनों के बाद पुर्तगाल को भी उन्होंने अपने राज्य में मिला लिया । फ्रान्स में भी वे घुस गये और इस बात की सम्भावना नजर आने लगी कि सारा यूरोप उनके अधिकार में चला जावेगा मगर इसी समय सावधानी से काम लेकर वहाँ की फ्रेंक जाति ने चार्ल्स माटेल के नेतृत्व में अरबों को रोकने की कोशिश की और एक बड़ी सेना तैय्यार कर तूर की लड़ाई में अरबों को बुरी तरह से हरा दिया । इस हार से अरबों का सारे यूरोप को जीतने का स्वप्न चूर-चूर हो गया । फिर भी स्पेन पर उनका शासन ईसाइयों के जबर्दस्त दबाव के बावजूद पाँच सौ बरस तक बराबर चलता रहा । उन्होंने अपनी राजधानी कारडोवो को एक विशाल, सुन्दर और अरब संस्कृति का उच्चतम मॉडल बना दिया जिसकी आबादी दस लाख थी ।

कुछ ही समय पश्चात् अरब की खिलाफत पर से उमैया वंश हट कर अब्बासी वंश आ गया । मगर स्पेन के गवर्नर ने जो कि उमैया वंश का था अब्बासी खलीफा को मानने से इन्कार कर दिया । इस तरह स्पेन अरब साम्राज्य से अलग हो गया और बगदाद का खलीफा बहुत दूर होने के कारण तथा घरेलू झगड़ों के कारण इधर ध्यान नहीं दे सका ।

अब्बासी खलीफा

(७४६–८१८)

उमैया वंश की खिलाफत को अब्बासी वंश के सरदार अबुल अब्बास ने अबू-मुसलिम नामक एक बहादुर ईरानी सरदार की सहायता से सन् ७४९ में खतम कर दी । और हजरत पैगम्बर के चचा अब्बास के नाम से स्थापित अब्बासी वंश की खिलाफत प्रारम्भ हुई । इस खिलाफत में कुल ३७ खलीफा हुए ।

अब्बासी वंश की उमैया वंश से पुरानी दुश्मनी थी । हजरत अली के अनुयायी करबला की दर्दनाक घटनाओं को भूल नहीं सकते थे । उमैया वंश से बदला लेने के लिए अब्बासियों ने उन्हें चुन-चुन कर कत्ल करना प्रारम्भ किया । चारों तरफ खून के दर्दनाक नजारे नजर आने लगे । अब्बासी वंश के पहले खलीफा अबुल अब्बास ने उमैया वंश को जड़ मूल से नष्ट करने का हुक्म दे दिया । जब इतने से भी संतोष न हुआ तो उमैय्या वंश की कब्रों को खुदवा कर उनकी लाशों के कंकालों को चूर-चूर कर के हवा में उड़ा दिया । उधर खुरासान के गवर्नर अबू-मुसलिम ने भी उमैया वंश का नाम मिटा देने में कोई कसर नहीं रक्खी ।

तब उमैया के पक्षपातियों ने चीनी सम्राट् स्वेन-चुंग की सहायता से बुखारा, सान और फर्गाना में भयंकर संघर्ष किया । लेकिन समरकंद के शासक जियाद ने अत्यन्त निर्दयता से बगावत को दबा दिया ।

अब्बासी खलीफाओं के समय में अरबों और ईरानियों के सम्बन्ध में बहुत सुधार हुआ । इन्हीं खलीफाओं के समय में संस्कृत, ग्रीक इत्यादि भाषाओं के उत्तमोत्तम ग्रंथों का अरबी में अनुवाद करवा कर अरबी भाषा के साहित्य को समृद्ध किया गया । ईरान के सासानी राज्य का प्रभाव अरब खलीफा शासन में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगा ।

दूसरे अब्बासी खलीफा मन्सूर ने सन् ७६२ में ईराक के सुप्रसिद्ध बगदाद नगर की स्थापना की और सन् ७६८ में उसे खलीफा की राजधानी बनाया गया । इसके पहले उमैया वंश के खलीफाओं की राजधानी दमिश्क (सीरिया) थी और अब्बासी खलीफाओं ने पहले अपनी राजधानी कूफा में और उसके बाद मदैन में बनाई जो बहुत पहले से ईरान की राजधानी रहती आई थी ।

---

* इसका विशेष वर्णन "कुतैब" नाम के साथ देखें ।

अब्बासी वंश का लम्बा शासन अपेक्षा कृत अच्छा था। यद्यपि खून खराबी, कत्लेआम पहले ही की तरह चल रहे थे फिर भी अरब इतिहास में अब्बासी युग ज्ञान-विज्ञान का युग समझा जाता है। इस जमाने में उमैयाओं के जमाने से काफी तबदीलियाँ शुरू हो गईं थीं। अरब के गृहयुद्ध ने सारे अरब साम्राज्य को हिला दिया था। स्पेन के अरब राज्यपाल ने जो उमैया था अब्बासी खलीफा को मानने से इन्कार कर दिया। उत्तरी अफ्रीका की गवर्नरी भी स्वतन्त्र हो गई और मिस्र ने तो अपना दूसरा खलीफा ही घोषित कर दिया। इस तरह अब्बासियों की खिलाफत में सारा अरब साम्राज्य टुकड़े-टुकड़े हो गया। अब खलीफा का सारी इस्लामी दुनियाँ पर प्रभुत्व नहीं रहा। मुसलमानों में इतनी फूट पड़ गई कि स्पेन के अरब और अब्बासी आपस में एक दूसरे को अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखते थे।

अब्बासी युग में उसके पाँचवें खलीफा हारूँ-अल-रशीद का युग सबसे ज्यादा उरुज पर था। इसका समय सन् ७८६ से ८०६ तक था। हारूँ-अल-रशीद और शहरजादी तथा अलिफलैला की कहानियों से सारा अरबी साहित्य चमक रहा है। बगदाद का नाम भी इन्हीं दिनों इतिहास में अमर हो गया। हारूँ के दरबार में सम्राट् शार्लमेन और चीनी सम्राटों के यहाँ से राजदूत मंडल आये थे। अब्बासी साम्राज्य के देश शासन की व्यवस्था में, ज्ञान में, विज्ञान में और व्यापार में यूरोप से बहुत आगे बढ़े हुए थे।

इन्हीं दिनों अरब लोगों में विज्ञान के अन्दर नई दिलचस्पी पैदा हुई इसीलिए अरबों को आधुनिक विज्ञान का जन्मदाता कहा जाता है। आयुर्वेद की चरक, सुश्रुत आदि कई ग्रन्थों का अरबी भाषा में अनुवाद किया गया। गणित के सम्बन्ध में भी अरबों ने भारतवर्ष से बहुत कुछ सीखा। भारतीय चिकित्सक और गणितज्ञ बड़ी संख्या में बगदाद जाते ये और बहुत से अरब विद्यार्थी पढ़ने के लिए तक्षशिला विश्वविद्यालय में आते थे। जो उस समय आयुर्वेद की शिक्षा के लिए बहुत प्रसिद्ध था। उन्हीं दिनों अरबों ने कागज बनाने की कला चीन से सीखी। खुद अपने आविष्कार भी अरब वैज्ञानिकों ने किये उन्होंने ही सबसे पहले दूरबीन और कुतुबनुमा का आविष्कार किया। चिकित्सा में अरब के हकीम और जर्राह सारे यूरोप में मशहूर थे। इस सारे ज्ञान-विज्ञान का केन्द्र बगदाद था।

आधुनिक इतिहास

सऊदी अरब साम्राज्य

क्षेत्रफल ६००,००० वर्गमील, जनसंख्या ७,०००,००० (लगभग)

राजधानी—मक्का (या हेजाज), रियाध (या नेज्द)

प्रमुख नगर—होफुफ, मुबर्रज, शाकरा नेज्द में, मदीना, जिद्दा, याम्बू हेजाज में। जिद्दा मक्का का तथा यान्बु मदीना का बन्दरगाह है।

धर्म—मुसलमान भाषा—अरबी

सऊदी अरब अरब के पठार का मुख्य राज्य है। इस राज्य का निर्माण स्वर्गीय इब्न सऊद के द्वारा किया गया था। सन् १९०१ में जब उसकी अवस्था केवल २० वर्ष की थी उसने अपने चालीस साथियों की सहायता से रियाध के अमीर पर विजय प्राप्त कर ली एवं शीघ्र ही वह अरब राज्यक्रांति का नेता बन गया। प्रथम विश्व युद्ध के समय उसे टी. ई. लारेन्स (T. E Lawrence से आर्थिक सहायता एवं अस्त्र-शस्त्रों की मदद मिली। टी. ई. लारेन्स एक अंग्रेज एजन्ट था उसने सउद को टर्की के विरुद्ध की गई रेगिस्तानी क्रांति (Desert Revolt) में सहायता की। युद्ध के अंतिम काल में टर्की की हार होने पर सऊद ने सम्पूर्ण अरब के पठार को टर्की की दासता से मुक्त करा दिया एवं कुछ स्थानीय सैनिकों की सहायता से स्वयं को सन् १९२७ में हेजाज, नेज्द एवं अन्य अधिनस्थ राज्यों का बादशाह घोषित कर दिया। उसके द्वारा शासित प्रदेश सन् १९३२ में सउदी अरब साम्राज्य बन गया।

हेजाज एवं नेज्द आज भी अलग-अलग शासित राज्य हैं। नेज्द में जिसकी राजधानी रियाध है इब्न सऊद का पूर्ण अधिकार था। इब्न सऊद की अनुपस्थिति एवं बीमारी की अवस्था में उसका सबसे बड़ा लड़का राजकुमार सऊद वाइसराय के रूप में कार्य करता था। हेजाज, जिसकी राजधानी मक्का है, के संविधान में एक मंत्रियों की समिति का

प्रबंध किया गया था जिसका प्रमुख सऊद का दूसरा लड़का राजकुमार फ़जल था एवं वह अपने पिता की अनुपस्थिति में वाइसराय की तरह कार्य करता था। मक्का में एक सलाहकार विधान सभा एवं कई गाँवों में नगरपालिकाएँ एवं जातीय समितियाँ हैं जिनके सदस्यों का चयन बादशाह स्वयं करता था।

इस मरुस्थलीय पिछड़े हुए देश में थोड़ी सी सड़कें एवं रेलमार्ग हैं। यहाँ पर केवल एक रेलमार्ग डाम्मन (बेहरिन के पास) से रियाध तक है जो सन् १९५१ में प्रारंभ किया गया था और एक सड़क जिद्दा से मक्का और रियाध तक तथा दूसरी मक्का से मदीना तक है।

आधुनिक वर्षों में सऊदी अरब की प्रगति :—

बादशाह अब्दुल अजीज इब्न सउद की मृत्यु और उसके पुत्र सउद के राज्याभिषेक के पश्चात से सऊदी अरब एक निश्चित एवं सुचारु शासन व्यवस्था की ओर अग्रसर हो रहा है।

तेल इस मरुस्थलीय राज्य के लिए तरल सोना साबित हुआ है। इसका उत्पादन संयुक्त राज्य की अरेबियन-अमरिकन आइल कम्पनी द्वारा होता है जिसका प्रमुख क्षेत्र फारस की खाड़ी के किनारे धारन है। इस तेल से प्राप्त होने वाले अतिरिक्त धन से अरब की सामाजिक गति में शीघ्रता से परिवर्तन हो रहा है।

इब्न सऊद की मृत्यु के कुछ माह पूर्व भावी बादशाह सऊद ने जो आधुनिक विचारधारा का व्यक्ति है तथा पाश्चात्य विचारों एवं शासन प्रणाली से परिचित है, सरकारी ढाँचा बनाना प्रारम्भ किया। देश की समस्याओं का निरीक्षण करने के लिए कई मंत्रियों की नियुक्तियाँ की गई।

बादशाह ने सर्वप्रथम अपने देश की. सुरक्षा के लिए सेना को शक्तिशाली बनाया। इसके लिए प्राविधिक (Technical) और फौजी सहायता आवश्यक थी किंतु विदेशों द्वारा जब यह सहायता प्रदान की गई तो उसने इन्कार कर दिया क्योंकि उसके विचार में इस प्रकार की सहायता का अर्थ देश प्रभुत्व पर दूसरों का अधिकार करना था जिसको वह कदापि सहन नहीं कर सकता था। दूसरी प्रमुख समस्या उसके विस्तृत साम्राज्य के भिन्न-भिन्न भागों को जोड़ने के लिए उत्तम यातायात व्यवस्था की थी। अतः नई सड़कें तथा रेल मार्गों के निर्माण के लिए बहुत बड़ी स्वीकृति दी गई।

इसी समय सऊद ने स्कूलों, कालेजों एवं सैनिक स्कूलों के निर्माण के लिए एक योजना प्रारंभ की। अशिक्षा एवं अज्ञान के विरुद्ध प्रारंभ किये गये इस आन्दोलन में विदेशों से शिक्षकों एवं अध्यापकों की सहायता ली गई। देश की वर्तमान समय की आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए प्राविधिक (Technical) शिक्षा को विशेष महत्व दिया गया। वे सऊदी जो पहले ऊँट और घोड़ों पर सवार होते थे अब जहाजों एवं रेलों पर यात्रा करते देखे जाते हैं। स्वास्थ्य योजनाओं पर भी बहुत सा धन व्यय किया गया। ग्रामों एवं शहरों के लिए जलाशय बनाये गये। नये अस्पताल एवं स्वास्थ्य केन्द्रों का निर्माण किया गया। बादशाह सऊद के पथ-प्रदर्शन में सऊदी अरब सामाजिक एवं कृषी संबंधी सुधार एवं प्रगति की ओर अग्रसर हुआ।

इसके बावजूद भी ये राजकुमार देश में परिवर्तन लाने के लिए जो आन्दोलन चल रहा है, उसके प्रमुख हैं। क्योंकि उनकी विदेश यात्राओं ने उनको नियमित जीवन का विचार प्रदान किया है जिसको बदांयु शासक इब्बन सउद नहीं समझ सकता था। दूसरे लोग जो अच्छी सरकार के लिए तर्क देते हैं वे वही सऊदी युवक हैं जिन्हें विद्याध्ययन के लिए ब्रिटेन, फ्रांस और संयुक्त राज्य भेजा गया है।

अरबी साहित्य

अरब लोगों का साम्राज्य विस्तार जितना विशाल और प्रभाव पूर्ण है उनका साहित्य विस्तार भी उससे कम वैभव पूर्ण नहीं है। साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने सारे संसार से बहुत कुछ लिया भी है और बहुत कुछ दिया भी है।

जिस प्रकार अरब का राजनैतिक और सामाजिक इतिहास वास्तव में इस्लाम के उदय के साथ-साथ चलता है उसी प्रकार उसके साहित्यिक इतिहास का शृंखलाबद्ध निर्माण भी इस्लाम के बाद ही देखने में आता है। जिस

अरबी भाषा और साहित्य का आज प्राधान्य है और जिसने सैकड़ों वर्षों तक संसार में प्रसिद्धि पाई है वह कुरैश जाति की बोली थी। वही उस समय के सांस्कृतिक विचारों, धार्मिक चिन्तन और साहित्यिक भावनाओं का माध्यम बनी।

इसका यह तात्पर्य्य नहीं कि इस्लाम के पूर्व अरब में कोई साहित्यिक चेतना थी ही नहीं। ईस्लाम के पूर्व भी अरब में गद्य, पद्य और ख्यात गीतों का हवाला मिलता है। ये ख्यात गीत ज्यादातर मौखिक रूप में ही सुनाये जाते थे और इनको सुनाने वाले उस जमाने में 'राविया" कहलाते थे।

आठवीं सदी के राबियों और कवियों में "हम्माद-अल-राविया" "अलशन्फरा" "इम्रू-आल-कैस",अल-इब्न-आदिया (यहूदी) आदि के नाम विशेष प्रसिद्ध है। यह अरबी साहित्य का पहला युग था। इस समय अरबी कसीदों का उदय और विस्तार हो चुका था।

इस्लाम के उदय के कुछ पहले अल-हिजाज का जुहैर इब्न-अबी- सुल्मा अरबी साहित्य के क्षेत्र में बहुत प्रसिद्ध हो रहा था।

हजरत मुहम्मद की मृत्यु के पश्चात् अरबी साहित्य एक नवीन युग में प्रवेश करता है। जब अरबी सेनाएँ युद्ध के मैदान में देश पर देश विजय करती हुई एक विशाल इस्लामी साम्राज्य की रचना में मशगूल हो रही थीं उसी समय धार्मिक दृष्टि से कुरान और धर्म-शास्त्रों का पाठ शुद्ध करने की ओर लोगों का ध्यान गया। इन्हीं दिनों "वाहब-इब्न मुनब्बीह" "अल-हसन-अलबसरी इसलामी धर्म-ज्ञान के प्रतीक माने जाते थे।❀ इस्लाम के अनेक फिरकों ने अल-हसन को अपना प्रधान धार्मिक नेता माना था।

इसके बाद अरबी साहित्य का तीसरा युग अब्बासी खलीफाओं के समय में प्रारम्भ हुआ। इस समय इस्लामी सल्तनत ने एक जमे हुए साम्राज्य का रूप ग्रहण कर लिया था। लोगों को सोचने, समझने और साहित्य निर्माण के लिए अवकाश मिलने लगा था। अब्बासी खलीफा वैभव, ऐश और आराम के साथ-साथ साहित्य और कविता की उन्नति पर भी ध्यान देने लगे थे क्योंकि यह भी उनके मनोरंजन के अनेक पहलुओं में से एक पहलू था।

अब्बासी खलीफा हारूंअल रशीद और अलमामून के जमाने में अरबी साहित्य की बहुत उन्नति हुई। खलीफा अल-मामून ने अपनी राजधानी बगदाद में "बैतल-अल-हिक्मा" नामक एक शोध केन्द्र की स्थापना की जिसमें बढ़िया-बढ़िया विदेशी साहित्य का अरबी भाषा में अनुवाद किया जाता था। भारतीय साहित्य के एक गणित ज्योतिष के ग्रन्थ का अनुवाद एक अरबी लेखक इब्राहीम अलफजरी ने "अल-सिन्द-हिन्द" के नाम से किया जिसने अरब ज्योतिष के मूलभूत सिद्धान्तों में ही एक क्रान्ति लादी। इस ग्रन्थ के द्वारा भारतीय अङ्क-प्रणाली का भी अरब लोगों को पहले-पहल ज्ञान हुआ और अरबों के द्वारा ही यह अङ्क प्रणाली संसार में फैली।

इस काल के प्रधान लेखकों और कवियों में अबु-नुवास, अबु-अल-अताइया, अबु-हनीफार इत्यादि विशेष प्रसिद्ध थे। इनका विशेष परिचय इसी ग्रन्थ में इनके नामों के साथ देखना चाहिए।

इसी युग में अरबी साहित्य में विज्ञान की भी काफी प्रगति हुई। "अबू मा-शर" ने ज्वार भाटे के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। लैटिन भाषा में उसके चार ग्रन्थों के अनुवाद हुए और भी अनेक अरबी ग्रन्थों के विदेशी भाषा में अनुवाद हुए।

इन्हीं दिनों इस्लाम के अन्दर प्रसिद्ध सूफीमत का भी प्रचार हुआ। इन सूफी सन्तों में भी बड़े-बड़े कवि, दार्शनिक और तत्वज्ञानी पैदा हुए। इनमें "अल-मुहासिबी" ,"अल-मक्की" "जुनैद", "अल-हल्लाज" इत्यादि सूफियों के नाम उल्लेखनीय हैं।

दसवीं सदी में "अलिफलैला" की हजार कहानियों ने अरबी साहित्य में एक उत्क्रान्ति कर दी। राग, रंग, वैभव, विलास और यौन-सम्बन्धों से परिपूरित होने के कारण विद्वान और धार्मिक अरब विद्वानों ने इनकी बहुत निन्दा की मगर संसार की अनेक भाषाओं में छोटे, बड़े, संक्षिप्त

❀ इन नामों का विशेष विवेचन इन नामों के साथ के विवेचन में देखें।

पूरे अनेक अनुवाद इस ग्रन्थ के हो जाने से अरबी साहित्य की तरफ सारे संसार का ध्यान आकर्षित हो गया।

इसके बाद सोलहवीं सदी से उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ तक अरबी साहित्य गैबी दुनिया में छिपा रहा उसके बाद उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में इसका नवीन जागरण हुआ।

उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में अरबी साहित्य के अन्तर्गत नाटकों और उपन्यासों का बहुत विकास हुआ। इसके पहले अरबी में नाटक और रंगमंच का कोई खास स्थान न था क्योंकि यह चीज इस्लाम की शरह के कुछ विपरीत जाती थी। मगर अब चारों ओर नई सभ्यता की हवा फैल रही थी और लोग मजहब की संकीर्णताओं से ऊपर उठ कर खुले मैदान में आने लगे थे। इस क्षेत्र में सीरिया, मिस्र और ईराक दूसरों की अपेक्षा ज्यादा प्रगतिशील थे।

इस क्षेत्र में अब्दुल्ला अल-बुस्तानी, अहमद शौकी, जमील सिदकी, अलजहावी, अलरुस्ताफी इत्यादि साहित्यकारों के नाम बहुत प्रसिद्ध हैं। अहमद शौकी की रचनाओं में "मजनू-लैला" "अली-बे-अल कबीर" "अमीरत-अल-अन्दुलम" इत्यादि रचनाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं। अल जहावी की "सौरह-फिअल-जहीम" (नरक में विद्रोह) नामक रचना अरबी साहित्य में बहुत लोकप्रिय हुई।

अराकान

बर्मा का एक प्रसिद्ध बन्दरगाह। जहाँ पर सत्रहवीं सदी में मंगोल राजवंश राज्य करता था। बंगाल के चटगाँव जिले के संबंध में बंगाल के मुसलमान शासकों और अराकान के मंगोल राजाओं में संघर्ष होता रहता था। यद्यपि सत्रहवीं सदी के प्रारम्भ में दोनों पार्टियों ने फेनी नदी को दोनों राज्यों की सीमा मान लिया था मगर अराकानियों के जहाजी बेड़े में बहुत से पुर्तगीज नाविक भर्ती हो गये थे ये लोग चटगाँव में बस गये थे और कइयों ने वहाँ की औरतों से शादी कर ली थी। इन जोड़ों से उत्पन्न होनेवाली अधगोरी सन्तानें भी अराकान के जहाजी बेड़े में भर्ती हो गई थी।

ये लोग बड़े साहसी और चतुर नाविक थे। इनमें माघ और पुर्तगीज दोनों जातियों के लोग थे। ये जलमार्ग से बंगाल में घुस आते थे और लूट-मार करके भाग जाते थे। इन लोगों की हरकतों से बंगाल का वह भाग उजाड़ हो चला था। अपनी लूट के माल में से ये लोग आधा भाग अराकान के राजा को दे देते थे और आधा आपस में बाँट लेते थे। ये लोग "हरमद" कहलाते थे।

पूर्वी बंगाल की इस लूट खसोट को समाप्त करने के लिए बादशाह ने शाईस्ता खाँन को बंगाल का सूबेदार बनाकर भेजा, शाईस्ता खाँ बड़ा मेहनती, उत्साही और बहादुर आदमी था उसने इन समुद्री डाकुओं का मुकाबिला करने के लिए तुरन्त एक वर्ष के भीतर एक जहाजी बेड़ा तैय्यार करवाया और उसे सम्पूर्ण युद्ध सज्जा से सज्जित करके बहुत से फिरंगियों को अच्छी नौकरी की लालच देकर अपनी ओर फोड़ लिया। सन् १६६५ में उसने एकाएक आक्रमण करके "सन्दीप" टापू को जीत लिया।

अब शाइस्ता खाँ ने चटगाँव को जीतने की योजना बनाई। उसने अपने लड़के उम्मीद खाँ को एक भारी सेना देकर खुश्की रास्ते से और इब्नसऊद की कमान में अपना जहाजी बेड़ा जलमार्ग से भेजा। इस लड़ाई में मुगल सेना ने अराकानियों को करारी हार दी, अराकानियों के १३० जहाज मुगल सेना के हाथ लगे और चटगाँव पर मुगल फौजों का अधिकार हो गया।

अराकी

एडमिरल अराकी, जापान के सैतो मन्त्रिमण्डल का एक प्रभावशाली सदस्य।

सैयुकाई दल के नेता श्री इनुकाई की हत्या (सन् १९३२) हो जाने के पश्चात् जनरल सैतो और जनरल अराकी के नेतृत्व में जापान में नये मन्त्रिमण्डल का निर्माण हुआ। जिस समय मंचूरिया में अपने साम्राज्य का विस्तार करने के लिए जापानी सरकार पूरा प्रयत्न कर रही थी उस समय जनरल अराकी ही उसका प्रधान संचालक था। इनका मन्त्रिमण्डल १९३४ तक कायम रहा।

अरीता

जापान का परराष्ट्र मन्त्री, जो श्री मत्सुओका से पूर्व जापान का विदेश मन्त्री था (सन् १९४०)

द्वितीय महायुद्ध के समय में अरीता जापान का एक प्रभावशाली परराष्ट्र मन्त्री था जब द्वितीय महायुद्ध चल रहा था और जर्मन सेनाएँ हालैण्ड की भूमि को रौंद रही थी उस समय दक्षिण पूर्वी एशिया के हालैण्ड के साम्राज्य को खतरे में देख जापान की निगाह उस तरफ गई और विदेश मंत्री अरीता ने अपनी नीति स्पष्ट करते हुए कहा कि—

"यदि यूरोपीय युद्ध की प्रगति के कारण डच ईस्ट इण्डीज या इण्डोनेशिया की स्थिति में कोई महत्वपूर्ण परिवर्त्तन हुआ तो जापान उसकी उपेक्षा नहीं कर सकेगा। क्योंकि नीदरलैण्ड ईस्ट इण्डीज का जापान के साथ बहुत अधिक घनिष्ठ और आर्थिक सम्बन्ध है" अरीता को डर था कि जब जर्मनी हॉलेण्ड पर कब्जा कर लेगा तो हॉलेण्ड के अधीनस्थ इण्डोनेसिया ब्रिटेन और अमेरिका के प्रभाव में चला जायेगा और जापान को वहां से पेट्रोल, रबर, टीन आदि वस्तुएँ मिलना बन्द हो जावेंगी। जापान को यह इष्ट नहीं था इसलिए विदेश मंत्री अरीता ने पहले ही यह घोषणा कर दी।

अरक्चे येफ

रूस के जार अलेक्झेंडर प्रथम का सलाहकार जनरल अरक्चेयेफ। यह किसानों की अर्द्धदासता का जबर्दस्त समर्थक था। इसी के कहने से अलेक्झेण्डर ने किसानों की इच्छा के विरुद्ध उनकी सैनिक बस्तियाँ बसाई थीं। रूस की पश्चिमी सीमा पर सन् १८२० के करीब ३७५ हजार सैनिक बस्तियाँ थीं। किसानों ने जबर्दस्ती बसाई जाने वाली सैनिक बस्तियों के खिलाफ कई विद्रोह किये जिनको जनरल अरक्चेयेफ ने निर्दयतापूर्वक दबा दिये। कुछ लोगों ने जब जार से इन सैनिक बस्तियों को उठा देने के लिए कहा तो उसने जवाब दिया कि "हर हालत में सैनिक बस्तियाँ मौजूद रहेंगी चाहे इसके लिए हमें पीट्स बर्ग से चूदवातक के सारे रास्ते लाशों से ढक देने पड़े।

अर्बन द्वितीय

रोमन चर्च का अधिपति जो सन् १०९५ में रोमन चर्च की गद्दी पर था।

उन्हीं दिनों सेलजुक तुर्क लोगों ने शक्तिशाली होकर रोमन साम्राज्य के पूर्वीय भाग के कुस्तुन्तुनिया के सम्राट् को हरा दिया। (सन् १०७१) और एशिया माइनर को छीन लिया। ये लोग जेरूसलेमा और फिलीस्तीन जाने वाले ईसाई यात्रियों को सताने लगे। कुस्तुन्तुनिया के ठीक सामने नेसिया की किला था वह तुर्कों के हाथ में था। यह रोम के पूर्वीय साम्राज्य के लिए घातक था।

सन् १०८१–१११८ में सम्राट् अलेक्सियस रोम की गद्दी पर बैठा। उसने नास्तिकों को निकालने में अपने को असमर्थ समझा, चर्च के अधिपति अर्बन द्वितीय से सहायता माँगी।

अर्बन द्वितीय ने सन् १०९५ में फ्रान्स के क्लेर्मण्ट नामक स्थान में एक धर्म-सभा बुलाई।

पोप ने अपने निमंत्रण पत्र में—जिसका परिणाम इतिहास बहुत अच्छा हुआ—वीर भटों और पैदल सिपाहियों के आपसी कलह की तीव्र निन्दा की और पूरब में अपने पीड़ित भाइयों की रक्षा के लिए सब ईसाई मतावलम्बियों को आह्वान किया। उसने लिखा—

"यदि ऐसा न किया जावेगा तो अहंकारी तुर्क अपनी शक्ति को बढ़ाते चले जावेंगे और ईश्वर के सच्चे सेवकों को दुःख देंगे। मैं हृदय से प्रार्थना करता हूँ कि हमारे ईश्वर का वह पवित्र समाधि स्थान जो कि अपवित्र नास्तिकों के हाथ में पड़ गया है तुम्हारे द्वारा फिर से अपने अधिकार में आ जाय। ईश्वर इसके लिये तुम्हें शक्ति दे। वहाँ की पवित्र भूमि दूध और शहद से भरी पड़ी है। पवित्र मन्दिर की यात्रा का मार्ग पकड़ो। दुष्टों के हाथ से उसे छुड़ाकर अपने अधीन कर ले। ईश्वर तुम्हारा सहायक है।"

इस एहलान के साथ अर्बन द्वितीय ने लोगों को उस महान् क्रूसेड यात्रा के लिए आह्वान किया जिसके बड़े-बड़े वर्णनों से यूरोप के मध्यकालीन इतिहास के पृष्ठ रंगे हुए पड़े हैं।

पोप ने कहा "जो लोग क्रूसेड यात्रा करना चाहते हैं उन्हें जाते समय एक क्रॉस छाती पर बाँधना पड़ेगा और यह दिखलाने के लिए कि वे अपना काम पूरा करके लौट रहे हैं उसी क्रास को लौटते समय पीठ पर बाँध कर आना होगा।

अर्बन ने इस भाषण के द्वारा केवल उन्हीं लोगों को उत्तेजित किया था जो अपने स्व-जातीय बन्धुओं से लड़ रहे थे तथा जो डाकू पेशा थे। इन लोगों ने पोप की बात पर विशेष ध्यान दिया और इनमें से बहुत से क्रूसेडर (धर्मयोद्धा) हो गये।

अर्बन पंचम

रोमन चर्च का पोप (सन् १३६६) जिसने इंग्लैण्ड के राजा से वह कर माँगा जो कि पोप का सामन्त होने पर राजा जॉन ने देने का वचन दिया था। इसके उत्तर में इंग्लैण्ड की पार्लियामेंट ने कहा कि बिना अनुमति लिये प्रजा को इस प्रकार के बन्धन में डालने का राजा जॉन (इंग्लैण्ड का पूर्ववर्त्ती राजा) को अधिकार नहीं था। इस टाइम पर जॉन विक्लिफ़ नामक आलोचक ने पोप की कठोर आलोचना करना प्रारम्भ की। उसने सिद्ध करन चाहा कि राजा जॉन के साथ पोप की जो शर्त हुई थी वह न्याययुक्त न थी। उसने इस बात का जोरों से समर्थन करना प्रारम्भ किया कि यदि धर्मसंस्था की सम्पत्ति का दुरुपयोग हो तो राजा को उसे जब्त करने का अधिकार है तथा बाइबिल के अनुसार काम करने के अतिरिक्त पोप को और किसी बात का अधिकार नहीं है।

अर्जुन देव गुरु

सिक्ख सम्प्रदाय के पाँचवें गुरु। गुरु अर्जुन देव सिक्ख सम्प्रदाय के चौथे गुरू रामदास के पुत्र थे। गुरु अमर दास इनके नाना थे। इनका जन्म सन् १५६३ में अपने नाना के घर हुआ था।

गुरु अर्जुन देव ने सिक्ख धर्म के लिए अपने छोटे से जीवन काल में बहुत से काम किये। अमृतसर, तरन तारन जैसे नगरों में उन्होंने कई तालाब खुदवाये। सिक्खों की शिक्षा से लिए समुचित प्रबन्ध किया। इनके जीवन का सबसे महत्वपूर्ण कार्य्य "आदिग्रंथ" का सम्पादन और संशोधन करवाना था। यही आदिग्रन्थ आज तक सिक्ख सम्प्रदाय के आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शन का काम कर रहा है। आदिग्रन्थ को उन्होंने गुरु अङ्गद द्वारा निर्मित गुरुमुखी लिपि में भाई गुरुदास से लिखवाकर सन् १६०४ में तैयार किया था। गुरु अर्जुन देव की रचनाएँ उक्त ग्रन्थ के अन्तर्गत संख्या में सबसे अधिक है और वे महला ५ के नीचे भिन्न-भिन्न रागों में लिखी गई हैं।

गुरु अर्जुनदेव को कुछ लोगों के षड्यंत्र से बादशाह जहांगीर के राज्य काल में राजद्रोही घोषित करके जेल में डाल कर अनेक कष्ट दिये गये। वहाँ से निकलने के बाद केवल ४३ वर्ष की अवस्था में रावी नदी में डूब कर इन्होंने जल समाधि ले ली।

अर्जुन

कन्नौज के सम्राट् हर्षवर्द्धन का एक मंत्री जिसने सम्राट् हर्षवर्द्धन की मृत्यु के उपरान्त सिंहासन पर अधिकार कर लिया तथा अपने दरबार में चीन के राजदूत वांग-ह्वेन-सी पर आक्रमण किया। इस समाचार से तिब्बत का राजा स्रांग स्तम्-सगम-पो बहुत नाराज हुआ और उसने भारतवर्ष पर आक्रमण कर तिरहुंत को जीत कर अर्जुन को बन्दी बना लिया।

अर्विद जर्नेफिल्ट

फिनलैण्ड का प्रसिद्ध साहित्यकार जिसका समय १८६१-१९३२ तक है। यह टालस्टाय के अनुकरण पर लिखने वाला एक प्रतिभाशाली साहित्यकार था। उसके कई उपन्यास, नाटक और कहानियों की रचनाएँ फिनलैण्ड के साहित्य में एक सुघड़ परम्परा का प्रारम्भ करती है।

अर्किलोकस

ग्रीक साहित्य में लिरिक काव्य का रचयिता प्राचीन ग्रीक कवि।

आर्किलोकस का समय ईस्वी पूर्व सातवीं सदी समझा

जाता है। इस कवि के आइएम्बिक छन्दों में अपनी कविताएँ लिखीं जो आगे के कवियों के लिये मार्ग-दर्शक बनी। ये कविताएँ उसने अपना अपमान करने वाली पत्नी और उसके पिता के विरुद्ध लिखीं। आर्किलोकस की कविताएँ राजनीति और प्रेम दोनों विषयों पर होती थीं।

अरिस्टो फेनीज

ग्रीक नाट्य-साहित्य में कॉमेडी (सुखान्त) नाटकों का प्राचीन लेखक। इसका समय ई० पू० ४५० से ३८५ तक है।

अरिस्टो फेनीज के ग्यारह कॉमेडी नाटक इस समय उपलब्ध हैं। अरिस्टो फेनीज एथेन्स की प्राचीन कॉमेडी का सबसे प्रधान लेखक था। उसने अपने कई नाटकों में एथेंस और स्पार्टा के पारस्परिक युद्धों के खिलाफ शांति स्थापना के पक्ष में आवाज उठाई थी। इन नाटकों में एथेन्स के युद्ध लोलुप लोगों की बड़ी मजाक उड़ाई गई है।

अर्णो राज

अजमेर के प्रसिद्ध चौहान वंशीय राजा अजय राज का पुत्र। इसको आनाख, आनलदेव और आनाजी भी कहते हैं। इसका समय ई० सन् ११०८ और ११५० के बीच माना जाता है।

अर्णोराज की तीन रानियाँ थीं पहली मारवाड़ की सुधवा, दूसरी गुजरात के सोलंकी राजा सिद्धराज जयसिंह की कन्या कान्चन देवी और तीसरी सोलंकी राजा कुमार पाल की बहन देवल देवी।

इनमें से पहली रानी सुधवा से उसके जगदेव और विग्रह राज नामक दो पुत्र हुए तथा दूसरी रानी से सोमेश्वर नामक एक पुत्र हुआ।

अर्णोराज ने अजमेर में आना सागर नामक तालाब बनाया।

अर्णोराज की अपने साले सिद्धराज से और गुजरात के राजा कुमार पाल से लड़ाइयाँ हुई थीं। कुमारपाल के एक राज कर्मचारी आहड़ को अर्णोराज ने अपनी तरफ मिला लिया था और आहड़ ने कुमारपाल के सैनिकों को धन देकर पहले ही अपनी तरफ मिला लिया था। इसलिये जब कुमारपाल और अर्णोराज के बीच लड़ाई शुरू हुई तो कुमारपाल के सैनिक बिना लड़े ही पीठ दिखाकर भागने लगे। यह स्थिति देख कर कुमारपाल अपना हाथी अर्णोराज के समीप ले गया और अपने बाण से अर्णोराज को घायल करके कुमारपाल ने उसके हाथी घोड़े छीन लिये इस पर अर्णोराज ने अपनी बहन जल्हण का विवाह कुमारपाल से करके आपस में मैत्री कर ली।

सन् ११५१ में अर्णोराज के बड़े पुत्र जगदेव ने अर्णोराज की हत्या कर डाली और खुद राजगद्दी पर बैठ गया।

अरविन्द घोष

बंगाल के महान राजनैतिक और आध्यात्मिक नेता। बंगाल के अन्तर्गत बंग-भंग के समय जिन महान नेताओं ने देश में जागृति की ज्योति फैलाई थीं उनमें श्री अरविन्द घोष का आसन बहुत ऊँचा है।

श्री अरविन्द घोष का जन्म लन्दन में हुआ था। वहीं पर उन्होंने शिक्षा प्राप्त की। देश लौट कर शुरू-शुरू में वे बड़ौदा कालेज के वाइस प्रिंसिपल हो गये। मगर जब बंगाल में राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ तब वे कलकत्ता चले गये और "वन्दे मातरम्" नामक अंग्रेजी पत्र का सम्पादन करने लगे। अंग्रेजी भाषा पर उनका अद्भुत अधिकार था और उनके लेखों में लोकमत को उत्तेजित करने की भारी शक्ति थी। लोग उनके लेखों को बड़े आदर के साथ पढ़ते थे। बंगाल के राजनैतिक जागरण के समय वे वहाँ के एक प्रभावशाली नेता थे।

अलीपुर के प्रसिद्ध षड्यंत्र केस में श्री अरविन्द घोष भी पकड़ लिये गये और उन पर हत्या तथा राजद्रोह के भयंकर आरोप लगाये गये। मगर उस समय के प्रमुख और तरुण वकील देशबन्धु चित्तरंजन दास की तर्क-पूर्ण पैरवी से वे उस केस से छूट गये।

मगर श्री अरविन्द घोष का महत्व संसार में उनकी राजनैतिक प्रवृत्तियों से नहीं अपितु उनकी आध्यात्मिक

प्रवृत्तियों से बहुत बढ़ा है। षडयन्त्र केस से मुक्त होने के कुछ ही समय बाद वे ब्रिटिश भारत को छोड़ कर पाण्डुचेरी चले गये और वहाँ पर उन्होंने एक उत्कृष्ट आध्यात्मिक आश्रम की स्थापना की। आध्यात्मिक क्षेत्र में उन्होंने जो महान चिन्तन और मनन किया और उसके आधार पर जो साहित्य तैय्यार किया वह न केवल भारत वर्ष में प्रत्युत् समस्त संसार के आध्यात्मिक साहित्य में एक अपूर्व निधि की तरह सुरक्षित रहेगा। अरविन्द घोष ने अपने चिन्तन और अनुभूतियों के द्वारा भारतीय योग-शास्त्र को नवीन और आधुनिक रूप दिया है। उनके आश्रम से सैकड़ों जिज्ञासुओं ने अपनी आत्म-पिपासा को शान्त किया है। उनका लिखा हुआ "सावित्री" नामक महाकाव्य साहित्य और आध्यात्मिक विज्ञान को उनकी एक अनोखी देन है ?

अरविन (वाइसराय)

सन् १९२८ में भारत के सुप्रसिद्ध वाइसराय लार्ड अरविन। जिनके शासन काल में आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी ने अपने लाहौर अधिवेशन में पण्डित जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग को छोड़ कर तथा नेहरू रिपोर्ट को अस्वीकार कर पूर्ण स्वतन्त्रता को भारत का लक्ष्य घोषित किया।

सन् १९२८ में कांग्रेस अधिवेशन में ब्रिटिश सरकार को यह अल्टीमेटम दिया गया कि यदि सरकार ३१ दिसम्बर १९२९ तक सर्वदल सम्मेलन द्वारा आयोजित नेहरू रिपोर्ट को पूर्ण रूप से स्वीकार कर ले तो कांग्रेस उतने से ही सन्तुष्ट हो जायगी अन्यथा वह पूर्ण स्वाधीनता का लक्ष्य घोषित कर अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन का संगठन करेगी।

इस पर तत्कालीन वाइसराय लार्ड अरविन ने ३१ अक्टूबर १९२९ को यह घोषित किया कि २० अगस्त १९१७ के प्रसिद्ध वक्तव्य के अन्तर्गत सरकारी नीति का खास लक्ष्य औपनिवेशिक स्वराज्य ही है और इसी दिशा में आगे बढ़ने के लिए सरकार ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों के प्रतिनिधियों की एक राउण्ड टेबिल कान्फ्रेन्स बुलाने का विचार कर रही है मगर इस परिषद् से कांग्रेसी लोग सन्तुष्ट नहीं हुए और उन्होंने लाहौर कांग्रेस में पं० जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में पूर्ण स्वाधीनता की घोषणा कर दी।

और इसके परिणामस्वरूप अपने लक्ष्य पर आगे बढ़ने के लिये गाँधी जी ने नमक कानून भंग करने का एलान किया। १२ मार्च सन् १९३० को उनकी सुप्रसिद्ध दण्डी-यात्रा प्रारम्भ हुई। इस आन्दोलन के फलस्वरूप सारे देश में अपूर्व उत्साह का संचार हुआ और सारे देश में चारों ओर नमक कानून भंग किया जाने लगा। सारे देश में गिरफ्तारियाँ हुईं, जुलूसों पर लाठी-प्रहार किये गये। हजारों स्त्री-पुरुषों से देश की जेलें भर गईं।

अन्त में भारतीय नेता तेजबहादुर सप्रू, जयकर, श्रीनिवास शास्त्री इत्यादि की मध्यस्थता से १७ फरवरी १९३१ को महात्मा गाँधी लॉर्ड अरविन से मिले और ३१ मार्च सन् १९३१ को भारत के राजनैतिक इतिहास में प्रसिद्ध गाँधी-अरविन पैक्ट हो गया। असहयोग आन्दोलन स्थगित कर दिया गया, सम्पूर्ण राजनैतिक बन्दी मुक्त कर दिये गये और दूसरी राउण्ड टेबिल कान्फरेंस की तैय्यारी होने लगी। अप्रैल सन् १९३१ में लार्ड अरविन त्यागपत्र देकर चले गये।

अर्थ शास्त्र

मनुष्य और समाज की आर्थिक परम्पराओं का नियमन करके आर्थिक जीवन को सुसंगठित करने में पथ प्रदर्शन करने वाला शास्त्र जिसे अंग्रेजी मे इकानोमिक्स (Economics) कहते हैं।

विज्ञान के विकास के साथ जब समाज में मशीन युग का आविर्भाव हुआ और समाज का उत्पादन छोटे-छोटे घरेलू उद्योगों के बजाय बडे-बड़े विशालकाय कारखानों के द्वारा होना प्रारंभ हुआ, तब सारे संसार में एक महान् औद्योगिक क्रान्ति हुई और समाज में पूंजीवादी वर्ग और मजदूर-वर्ग नाम के ऐसे दो वर्ग कायम हो गये।

इसी औद्योगिक क्रान्ति की वजह से समाज में १—धन की उत्पत्ति, २—धन का विनिमय, ३—धन का वितरण और ४—धन का उपभोग। इन चारों चीजों का

नियमन करने के लिए एक नवीन शास्त्र के निर्माण की आवश्यकता हुई।

इसके पहले भी धन की उत्पत्ति और विनिमय सम्बन्धी प्रश्नों को हल करने के लिए समाज में कुछ नियम बने हुए थे, मगर उन्होंने एक विशिष्ट शास्त्र का एक रूप ग्रहण नहीं किया था।

भारत में आज से ढाई हजार वर्ष पहले मौर्य-साम्राज्य के संस्थापक आचार्य कौटिल्य का लिखा हुआ 'अर्थ-शास्त्र' इस समय पाया जाता है। यह अर्थ-शास्त्र वास्तव में राज-नीति और समाज नीति को निर्देश करने वाला महान् ग्रन्थ है, मगर आधुनिक अर्थ-शास्त्र की परिभाषा में इसका पूर्ण रूप से समावेश नहीं हो सकता।

वर्तमान रूप में अर्थ-शास्त्र के शास्त्रीय रूप का विकास पाश्चात्य देशों में प्रारम्भ हुआ। मशीन युग का प्रारम्भ सबसे पहले वहाँ होने के कारण वहाँ पर इस शास्त्र को फूलने-फलने का अनुकूल वातावरण मिला। प्रसिद्ध अर्थ-शास्त्री आदम स्मिथ अर्थ-शास्त्र के जन्मदाता माने जाते हैं। मार्शल ने इस शास्त्र को स्थायी रूप प्रदान करने में सराहनीय कार्य किया है। अब बहुत तीव्रगति से इस शास्त्र का विकास हो रहा है और इसकी गणना सामाजिक विज्ञान में होने लगी है।

फिर भी अर्थ-शास्त्र के बहुत से सिद्धान्त अभी तक निर्विवाद नहीं हैं। पूँजीवादी और साम्यवादी देशों की आर्थिक धारणाओं में कई स्थानों पर मौलिक अन्तर पाया जाता है।

इंग्लैण्ड के सुप्रसिद्ध विद्वान जॉन रस्किन ने उन्नीसवीं सदी में मौजूदा अर्थ-शास्त्र के कई सिद्धान्तों के विरुद्ध (Unto this last) 'अंटू दिस लास्ट' नामक एक छोटी-सी पुस्तक में अर्थ-शास्त्र सम्बन्धी अपने मौलिक विचारों को प्रकट किया। इंग्लैण्ड के पूँजीवादी समाज में इससे बहुत तहलका मच गया था। उसके अर्थ-शास्त्र सम्बन्धी विचार अत्यन्त मौलिक थे। उसने अपने पूववर्ती अर्थ-शास्त्र के सिद्धान्तों का जो समाज में विषमता और पूँजीवाद को जन्म देते हैं, डँटकर विरोध किया। कहना न होगा कि रस्किन के इन विचारों का आगे जाकर अर्थशास्त्र की पुरानी धारणाओं पर काफी प्रभाव पड़ा। फिर धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों समाज में पूँजी और मजदूरी की विषमता कम होती जा रही है, त्यों-त्यों इस शास्त्र के सिद्धान्त स्थायी रूप ग्रहण करते जा रहे हैं।

अरस्तू (Aristotal)

यूनान का संसार-प्रसिद्ध दार्शनिक, राजनीतिज्ञ, विचारक और समाज-शास्त्री, अफलातून का शिष्य, यूनान की तत्कालीन महान् शिक्षा संस्था "लेसियम" का संस्था-पक। जन्म ईस्वी सन् पूर्व ३८४, मृत्यु ईस्वी सन् पूर्व ३२२।

अरस्तू का जन्म मकदूनिया के स्टेगीरा नामक स्थान में ईस्वी सन् से ३८४ वर्ष पूर्व हुआ था। १८ वर्ष की अवस्था में वह एथेन्स आया और शिक्षा प्राप्त करने के लिए अफलातून की एकेडेमी में भरती हुआ और बीस वर्ष तक अर्थात् अफलातून की मृत्यु तक वह उसी एकेडेमी में रहा। इन बीस वर्षों के लगातार सम्पर्क के कारण अफलातून की विचारधारा का उस पर गहरा प्रभाव पड़ा। ईस्वी सन् से ३४२ वर्ष पूर्व वह मकदूनिया में संसार के महान विजेता सिकन्दर महान् का शिक्षक नियुक्त हुआ। ईस्वी सन् पूर्व ३३४ में उसने फिर एथेन्स में आकर अपने प्रसिद्ध विद्यालय "लेसियम" की स्थापना की।

अरस्तू यद्यपि अफलातून का शिष्य था और उसकी आचार शास्त्र सम्बन्धी तथा राजनैतिक विचार धाराओं का उसके जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा था फिर भी वह उसका अन्धानुयायी न था। अफलातून ने राज्य के सम्बन्ध में जहाँ एक आदर्श की खोज में उत्कृष्ट कल्पनाएँ कीं वहाँ इस बात की उसने तनिक भी चिन्ता नहीं की कि मानवीय दुर्बलताओं को मद्देनजर रखते हुए वास्तविकता के धरातल पर इस आदर्श की स्थापना सम्भव है या नहीं। मगर अरस्तू ने अपनी हरएक विचारधारा का निर्णय करते समय मानवीय दुर्बलता और समाज की स्थिति को कभी नजरअन्दाज नहीं किया। साधारण तौर पर यह कहा जा सकता है कि अफलातून एक महान् भावुक और कल्पनावादी बिचारक था जबकि अरस्तू एक यथार्थ-वादी और जीवन की वास्तविकताओं पर ध्यान देने वाला महान् व्यक्ति था। उसने कल्पना और सिद्धान्त तथा

वास्तविकता और व्यवहार के बीच स्पष्ट रूप से एक विभाजक रेखा खींचकर अपनी विचारधारा का संचालन किया है।

पालिटिक्स

अरस्तू की सबसे महान् और संसार प्रसिद्ध रचना "पालिटिक्स" नामक ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ आठ खण्डों में विभक्त है। इनमें से सातवें और आठवें खण्ड में आदर्श राज्य और उसके सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है। चौथे, पाँचवे तथा छठे खण्ड में संविधानों का स्वरूप, उसके भेद तथा उनमें होने वाले परिवर्तनों का विवेचन किया गया है। पहला खण्ड इस विशाल ग्रन्थ की विस्तृत भूमिका की तरह है। इस प्रकार आदर्श की स्थापना तथा यथार्थ का विश्लेषण एक ही ग्रन्थ में कर अरस्तू ने एक नवीन राजनीति विज्ञान को जन्म दिया।

राज्य का स्वरूप

पॉलिटिक्स के प्रथम खण्ड में राज्य के स्वरूप तथा उसकी स्थापना के सम्बन्ध में इस महान् दार्शनिक ने युक्तियुक्त ढङ्ग से विवेचन किया है।

अरस्तू का मत है कि राज्य की उत्पति मानव जीवन की सुख-सुविधा के लिए हुई और जीवन में सुख और सुविधा का योगक्षेम करने के लिए ही वह जीवित है। राज्य सिर्फ व्यक्तियों का समुदाय नहीं है बल्कि वह समुदायों का समुदाय है। यह समुदाय एक स्वाभाविक समुदाय है क्योंकि इससे अलग रहकर मनुष्य अपने जीवन लक्ष्य की प्राप्ति नहीं कर सकता। राज्य ऐसे लोगों का संगठन है जो एक दूसरे से भिन्नता रखते हुए भी कुछ सामान्य आधारों में एकमत हैं। जिस प्रकार मानव-विकास के लिए परिवार एक स्वाभाविक संस्था है उसी प्रकार राज्य उससे भी अधिक मानव-विकास के लिए अवश्यक और स्वाभाविक है। व्यक्ति के विकास का जो कार्य परिवार में प्रारम्भ होता है उसकी पूर्ण परिणति राज्य में होती है।

आगे चल कर अरस्तू कहता है कि राज्य यद्यपि एक स्वाभाविक संस्था है पर मानव-आकांक्षा से वह सर्वथा स्वतन्त्र नहीं है। भिन्न-भिन्न काल और भिन्न-भिन्न देशों में उसके सदस्यों की मनोभावना के अनुसार उसके भिन्न-भिन्न रूप निर्धारित होते हैं।

राज्य मानव-जातिका एक सर्वोच्च समुदाय है। परिवार, ग्राम इत्यादि अन्य सभी मानव-समुदाय इसमें शामिल हैं। जिस प्रकार विभिन्न अङ्गों से परिपूर्ण मानव-शरीर एक पूर्ण समष्टि है, कोई भी अङ्ग उस समष्टि से अलग होकर जीवन धारण नहीं कर सकता। आँख तभी देख सकती है और कान तभी सुन सकते हैं जब कि वे शरीर की पूर्ण समष्टि से अभिन्न हों। इसी प्रकार राज्य भी मानव समुदाय की एक महान् समष्टि है कोई भी परिवार या कोई भी ग्राम उससे अलग रहकर अपने वास्तविक स्वत्व की रक्षा नहीं कर सकता।

यहाँ एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात को ध्यान में रखना आवश्यक है वह यह कि अरस्तू की राज्य की कल्पना का क्षेत्र उस समय यूनान में स्थापित "नगर राज्य" की कल्पना तक ही सीमित है। उसी को वह मानव समाज का अन्तिम और पूर्णरूप मानता है। बड़े-बड़े साम्राज्यों की स्थापना का वह विरोधी था। उसके विचार में बड़े साम्राज्यों की स्थापना मनुष्य की उन्नति की नहीं पतन की सूचक हैं। अपने खास शिष्य सिकन्दर की जिगीषा प्रकृति और महान् साम्राज्य स्थापना की लालसा को उसने कभी पसन्द नहीं किया।

राज्य का कार्य्य-क्षेत्र

राज्य के कार्य्य क्षेत्र में मानव कल्याण की कौन-कौन सी चीजों का समावेश होता है और राज्य अपने नागरिकों से किस प्रकार का सहयोग चाहता है इसकी विवेचना करते हुए अरस्तू कहता है कि राज्य पर मानव-जीवन को सुख पहुँचाने वाले सभी कार्य्य करने की पूर्ण जिम्मेदारी है केवल अपने नागरिकों के अधिकारों की रक्षा तथा न्याय प्रदान करने तक ही उसकी सीमाएँ सीमित नहीं है। राज्य के कार्य्यों के सम्बन्ध में उसका दृष्टिकोण निषेधात्मक (Negative) नहीं बल्कि रचनात्मक (Posetive) है। उसके मतानुसार राज्य का कार्य्य मानव-जीवन को केवल पापों से रोकना नहीं बल्कि अपने नागरिकों को पूर्ण नैतिक और धर्मयुक्त बनाना है। इस कार्य्य में वह भारतीय राजनीति

शास्त्र के अत्यन्त सन्निकट है जिसमें राजा के कर्तव्यों का वर्णन करते हुए बतलाया है कि राजा की जिम्मेदारी प्रजा की केवल इहलौकिक सुख-सम्पदा तक ही परिमित नहीं है प्रत्युत उसकी पारलौकिक सुख-सम्पदा की जिम्मेदारी भी उस पर है अर्थात् वह अपनी प्रजा के धर्म और आचरण का इस प्रकार निर्माण करे कि उसका सुपरिणाम उसे परलोक में भी प्राप्त हो।

अरस्तू का भी यही कहना है कि वह राज्य जो अपने सदस्यों की पाप वृत्तियों को दबाने तक ही सीमित रहता है और उन्हें धर्मयुक्त जीवन व्यतीत करने के लिए कोई शिक्षा नहीं देता वह एक सच्चा राज्य कदापि नहीं हो सकता। यहाँ यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि आगे के यूरोपीय राजनीतिज्ञों ने राज्य का कर्तव्य मनुष्य की अपराध वृत्ति पर बन्दिश लगाने तक ही अर्थात् उसके निषेधात्मक स्वरूप तक ही निश्चित किया है।

सम्पत्तिका स्वरूप और उसका उपयोग

अरस्तू ने अपने ग्रन्थ पॉलिटिक्स में सम्पत्ति के स्वरूप उसकी मर्यादा और उसके उपयोग की विस्तार के साथ विवेचना की है। उसके मतानुसार सम्पत्ति का मूलभूत उद्देश्य नैतिक और धर्मपूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए मनुष्य की आवश्यकताओं को पूरा करना है। उसकी भूख को शान्त करने के लिए अच्छा भोजन, ऋतुओं की आवश्यकता के अनुसार पहनने को वस्त्र और रहने को हवादार मकान तथा आतिथ्य, उदारता और मित्रता जैसी सद्प्रवृत्तियों की पूर्ति के लिए आवश्यक साधनों की पूर्ति, ये सब चीजें सम्पत्ति के क्षेत्र के अन्तर्गत आती हैं। संम्पत्ति का संग्रह उतना ही होना चाहिए जो समाज में सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए हमारी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर दे। उससे अधिक संग्रह करने की प्रवृत्ति मनुष्य में पाप भावनाओं का उदय करती है और वह एक अच्छे जीवन के मार्ग में साधक न होकर बाधक हो जाती है।

जिस प्रकार सम्पत्ति का अभाव राज्य और समाज के लिए घातक होता है उसी प्रकार बल्कि उससे भी बहुत अधिक सम्पत्ति का प्रभाव समाज के लिए घातक होता है।

मुद्रा के प्रयोग और प्रचार के सम्बन्ध में आज से तेईस सौ वर्ष पूर्व प्रकट किये गये अरस्तू के विचार मनन करने के योग्य है। अरस्तू के मतानुसार मुद्रा केवल एक साधन है लक्ष्य नहीं। मुद्रा की रचना केवल विनिमय की सुविधा के लिए हुई है। इस वस्तु को तथा व्यापार को धन संचय का एक साधन बनाना इस चीज को अरस्तू अस्वाभाविक तथा समाज के लिए घातक समझता है।

अरस्तू के मतानुसार निजी सम्पत्ति की व्यवस्था अच्छे जीवन के लिए एक आवश्यक साधन है। मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के लिए वह नितान्त आवश्यक है। सम्पत्ति के सम्बन्ध की इस विचारप्रणाली में वह अफलातून की पद्धति को पसन्द नहीं करता जिसमें अफलातून ने निजी सम्पत्ति की व्यवस्था का अपने रिपब्लिक में कड़ा विरोध किया है। अरस्तू के मतानुसार एक मर्यादित मात्रा में निजी सम्पति का होना मानव जीवन के लिए परम आवश्यक है इसके अभाव में मनुष्य उचित तरीके से अपने कर्तव्य का पालन नहीं कर सकता। जो लोग होटल तथा घरके भोजन में, निजी मकान तथा किराये के मकान में, तथा एक पत्नी और वेश्या के बीच में एक भिन्नता महसूस करते हैं वे निजी सम्पत्ति और सार्वजनिक सम्पत्ति के इस अन्तर को भली प्रकार समझ सकते हैं। निजी सम्पत्ति में एक आत्मानूभुति रहती है, वह एक ऐसा दर्पण है जिसमें व्यक्ति स्वयं अपना प्रतिबिम्ब देखता है। बिना निजी पूंजी के एक पूर्ण नागरिक जीवन व्यतीत करना असम्भव है।

निजी सम्पत्ति का समर्थन करने के साथ-साथ उसके वितरण में किसी हद तक विषमता का भी अरस्तू ने समर्थन किया है, पर हर स्थान पर उसने सम्पत्ति की मर्यादाएँ निश्चित की हैं। उसका मत है कि समाज में असली और भयङ्कर भूल जो समाज का विच्छेद कर डालती है तभी प्रारम्भ होती है जब मनुष्य सम्पत्ति को एक साधन न मान कर जीवन का लक्ष्य मानना प्रारम्भ कर देता है। और इस साधन को लक्ष्य समझ लेने के कारण ही समाज में वर्ग संघर्ष और शोषण की भावनाएँ उत्पन्न हो जाती हैं।

अरस्तू की सम्पत्ति के सम्बन्ध में सारभूत मन्तव्य यह

है कि सम्पत्ति का स्वामित्व निजी हो मगर उसका उपभोग सार्वजनिक हो और इस प्रकार वह व्यक्तिवाद तथा साम्यवाद दोनों के बीच के एक मध्यवर्ती मार्ग का अवलम्बन करता है।

अरस्तू और वैधानिक शासन

राज्य के शासन को विधान की मर्यादा से मर्यादित कर उसमें कानून को प्रधान स्थान देने वाले यूरोपीय राजनीतिज्ञों में अरस्तू का स्थान सबसे पहला है। अफलातून ने अपने रिपब्लिक ग्रन्थ में आदर्श राजा की इच्छा को ही सबसे बड़ा कानून माना था, यद्यपि आगे जाकर अपने "लॉज" (Laws) नामक ग्रन्थ में मानवीय दुर्बलताओं पर विजय पाने के लिए कानून की आवश्यकता को स्वीकार की है। पर कानून के शासन को उसने आदर्श शासन के रूप में स्वीकार नहीं किया है।

मगर अरस्तू राज्य तथा सामाजिक जीवन के लिए कानून की स्थापना को अनिवार्य समझा है। कानून के समर्थन में उसका विचार है कि अधिक से अधिक बुद्धिमान मनुष्य का काम भी समाज में कानून के बिना नहीं चल सकता। मनुष्य में स्वभावतः ऐसी कमजोरियां और विकार रहते हैं कि यदि उनपर कानून का नियंत्रण नहीं तो वे समाज में अशान्ति और अराजकता का वातावरण पैदा कर सकते हैं। इसलिए यदि हम चाहते हैं कि राज्य और शासन पर मानवीय विकारों का प्रभाव न पड़े तो हमें कानून को सर्वोपरि और राज्य को उसके आधीन बनाना होगा। कानून की छाया में मनुष्य की वासनाओं पर नियंत्रण होकर उसको पूर्ण विकसित होने का अवसर मिलता है। कानून से समर्थित शासन अनियन्त्रित शासन की अपेक्षा इसलिए भी श्रेष्ठ है कि इसमें प्रजा के सम्मान की जो रक्षा हो सकती है वह निरंकुश शासन में नहीं हो सकती।

नागरिकता की व्याख्या

नागरिक अधिकारों के सम्बन्ध में अरस्तू ने जो व्याख्या की है वह आजकल के नागरिक अधिकारों की व्याख्या से बहुत भिन्न है। अरस्तू के मतानुसार एक राज्य में रहने वाला हर एक व्यक्ति वहां की नागरिकता के अधिकार को प्राप्त नहीं कर सकता। नागरिक अधिकारों की कसौटी निवास स्थान, कानूनी अधिकार और जन्म के आधार पर भी निश्चित नहीं की जा सकती। अरस्तू के मतानुसार नीति निर्धारक तथा न्याय सम्बन्धी कार्यों में भाग लेने के लिए एक ऊँचे नैतिक और बौद्धिक स्तर की आवश्यकता है और इतना ऊँचा स्तर राज्य के प्रत्येक निवासी में नहीं पाया जाता। अरस्तू के मतानुसार स्त्रियों, बच्चों, दासों, मिस्त्रियों तथा हाथ से काम करने वाले मजदूरों में यह गुण नहीं पाया जाता इसलिए वे नागरिक अधिकारों को प्राप्त करने के योग्य नहीं माने जा सकते। इस प्रकार अरस्तू की व्यवस्था में समाज के एक बहुत बड़े भाग को नागरिकता के अधिकारों से वंचित रख दिया गया है।

अरस्तू का मत है कि राज्य की स्थापना एक उत्कृष्ट और सुखमय जीवन की प्राप्ति के लिए हुई है। इसलिए राज्य के पदों को राज्य के प्रति की हुई सेवाओं का पुरस्कार नहीं समझना चाहिए। राज्य के पदों और उसके संगठन में उन लोगों का अधिक भाग होना चाहिए जो नैतिक और बौद्धिक दृष्टि से श्रेष्ठतर हैं न कि उनका जो अधिक धनाढ्य हैं या जो स्वतंत्र जन्म के कारण समान हैं किन्तु जो नीति की दृष्टि से हीन हैं। मतलब यह कि अरस्तू राजशक्ति के वितरण में धन और कुलीनता को सापेक्ष अधिकार देता है उनके निरपेक्ष अधिकार को वह स्वीकार नहीं करता। शासन करने का निरपेक्ष अधिकार वह केवल बुद्धि और नैतिकता को देता है।

फिर भी यह यह प्रश्न खड़ा रहता है कि राज्य की सार्वभौम शक्ति किस व्यक्ति या व्यक्ति समूह में केन्द्रीभूत रहना चाहिए। सार्वभौम शक्ति जन-साधारण के हाथ में हो, धनिकों के हाथ में हो, कुलीनों के हाथ में हो या एक सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति के हाथ में हो ? अरस्तू का मत है कि सभी पद्धतियों की अपनी-अपनी कठिनाइयाँ हैं और यह सिद्धान्त भी कि सभी शक्तियों के ऊपर कानून की शक्ति का नियंत्रण होना चाहिए कठिनाइयों से खाली नहीं है। पर इस विषय पर अत्यधिक विचार मन्थन के पश्चात् वह इसी निर्णय पर पहुँचता है कि "सर्वोच्च शक्ति जनता के हाथ में होना चाहिए कुछ थोड़े से व्यक्तियों के हाथ में नहीं" यह

सिद्धान्त भी यद्यपि अपवादों से खाली नहीं है फिर भी इसमें सत्य का अंश है।

पर इसके साथ ही अरस्तू यह भी चेतावनी देता है कि यह सिद्धान्त हर प्रकार के समाज पर लागू नहीं हो सकता, यह पिछड़ी हुई जातियों में या ऐसे राज्य में जहाँ कि सर्वसाधारण भले-बुरे का निर्णय करने में असमर्थ है सफल नहीं हो सकता। जिस राज्य में सर्वसाधारण के अन्तर्गत एक उँचे दर्जे की बुद्धि और राजनैतिक चेतना का योग क्षेम हो वहीं यह सिद्धांत लागू हो सकता है और जहाँ जनता इस योग्य हो वहाँ भी राज्य के सर्वोच्च पद तो उन्हीं कुलीन लोगों को दिये जाने चाहिए जो जीवन के प्रारंभ से ही उच्च शिक्षा, दिव्य संस्कार और उन्मुक्त वातावरण में पले तथा विकसित हुए हों। जन-साधारण को तो केवल शासन की नीति निर्धारण करने, अधिकारियों और न्यायाधीशों को चुनने और उनके कार्यों की जाँच करने का अधिकार होना चाहिए।

राज्य संस्था के आदर्श और उसके भेद

उपरोक्त बुनियादी बातों का विवेचन करने के उपरान्त अरस्तू राज्य के आदर्श, इसके लिए आवश्यक भौतिक और मानसिक स्थिति तथा उसके विभिन्न भेदों का उल्लेख करता है।

उसका कथन है कि जनसंख्या तथा क्षेत्र के दृष्टिकोण से राज्य को न तो अधिक बड़ा होना चाहिए न अधिक छोटा। यदि राज्य बहुत छोटा होगा तो वह अपनी स्वाधीनता की रक्षा न कर सकेगा और यदि बहुत बड़ा होगा तो उसमें एकता स्थापित न हो सकेगी। नागरिकों की जनसंख्या में बुद्धि और राष्ट्रीयता के भाव व्यापक हों। ऐसे राज्य को न तो बहुत धनाढ्य होना चाहिए न बहुत गरीब। उसे बाहरी आक्रमणों से सुरक्षित होना चाहिए। अधिक धन संग्रह, व्यापार या साम्राज्य के विस्तार की आकांक्षा से उसे रहित होना चाहिए। उसका स्वरूप महान् होना चाहिए। विराट् नहीं। अधिक महत्वाकांक्षाओं से उसे ऊपर रहना चाहिए।

इसके बाद अरस्तू ने राज्य के विभिन्न स्वरूपों का दिग्दर्शन कर के उनके गुण दोषों का विवेचन किया है जिनमें राजतंत्र (Monarchy) मध्य वर्ग तंत्र (Polity) कुलीनतंत्र (Aristocracy) जन तंत्र (Democracy) और आततायी तंत्र (Tyranny) सम्मिलित हैं।

उसके बाद शासन के विभिन्न विभागों का वर्णन किया गया है जिनमें (१) विधान निर्मात्री सभा (२) न्याय रक्षक व्यवस्था तथा (३) न्यायालय हैं।

इसके पश्चात् अरस्तू ने राज्य में होने वाली आन्तरिक क्रान्तियों तथा उनके कारण और उनके निवारण के उपाय बतलाये हैं।

इस प्रकार उसने अपने "पालिटिक्स" नामक महान् ग्रन्थ में आज से २३०० वर्ष पूर्व "राजनीति विज्ञान" के बारीक से बारीक तत्वों की, समाज-शास्त्र के सिद्धान्तों की और आचार शास्त्र के नियमों की जो पारदर्शी व्याख्या की है उस देख कर आज के इस वैज्ञानिक युग में भी इस महान् विद्वान के प्रति श्रद्धा से मस्तक झुक जाता है। इस महान् दार्शनिक की विचारधारा ने आगे आने वाले युग में सैकड़ों राजनीति के विद्वानों के मार्ग को अपने प्रकाश से प्रकाशित किया। यूरोप के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ मैकेयाली, दाँते, माण्टेस्क्यू, स्पेन्सर, मिल इत्यादि सभी महान् विचारकों ने इसकी विचारधारा से लाभ उठाया तथा उसकी रचना आधुनिक यथार्थवाद, व्यवहारवाद तथा उपयोगितावाद की जनक रूप में ही साबित हुई है।

अर्जुन लाल सेठी

राजस्थान और मध्यप्रदेश के राजनैतिक और क्रान्तिकारी नेता!

आरा के समीप निमेज नामक स्थान पर एक महन्त के घर पर डाका डाला गया और उसे मार डाला गया। यह केस आरा षड्यन्त्र केस के नाम से प्रसिद्ध है। इस षड्यन्त्र केस में मोतीचन्द और माणकचन्द नामक दो जैन युवक गिरफ्तार हुए जिनमें एक को फांसी की सजा हुई और दूसरा सरकारी गवाह बन कर छूट गया।

इन युवकों ने राजस्थान के क्रान्तिकारी नेता अर्जुन लाल सेठी की शिक्षा समिति में शिक्षा पाई थी। इसलिये इसी सिलसिले में श्री अर्जुन लाल सेठी की भी इन्दौर में

गिरफ्तारी हुई और कोई मजबूत प्रमाण न होने पर भी केवल सन्देह में सरकार ने इन्हें पाँच बरस तक नजर-बन्द रखा।

श्री अर्जुन लाल सेठी एक ओजस्वी वक्ता और जैन दर्शन के मंजे हुए विद्वान थे। मगर इनका विश्वास सशस्त्र क्रान्ति पर था। गांधी जी के अहिंसा युग में इनकी प्रवृत्तियों का अधिक विकास नहीं हो सका और इनका उत्तर जीवन बड़े कष्ट में बीता।

अर्जुन वर्मा

धार के परमार राजा सुभटवर्मा का पुत्र। इसने सन् १२१० से १२१६ तक राज्य किया।

इसके द्वारा खुदाए हुए सन १२११, १२१३ और १२१५ के लिखे हुए दान-पत्र प्राप्त हुए हैं। जो उसने मण्डप दुर्ग, भृगु कच्छ (भड़ौच) और नर्मदा के तीर पर बसे हुए अमरेश्वर से जारी किये थे। एक दानपत्र में लिखा है कि उसने गुजरात के राजा दूसरे जयसिंह को परास्त किया।

अर्जुन वर्मा के गुरु और जैन विद्वान आशाधर के शिष्य मदन ने जो कि गौड़ ब्राह्मण था इसके सम्बन्ध में एक नाटक लिखा था जो कमाल मौला की मसजिद में लगी हुई शिलाओं पर खुदा है। इस नाटक में अर्जुन वर्मा को भोज का अवतार लिखा है।

अर्जुन वर्मा कवियों का आश्रय दाता होने के साथ स्वयं भी अच्छा कवि था। अमरू शतक की रसिक संजीवनी टीका उसका प्रसिद्ध ग्रन्थ है। कहा जाता है कि उसने भोज के ग्रन्थों पर भी टीकाएँ लिखी थीं ऐसा मालूम होता है कि वह अपने पूर्वज भोज के समान ही शूर, विद्वान और भाग्यशाली था। क्योंकि उसके बाद ही मालवा का बैभव एक प्रकार से नष्ट हो गया।

अरुणा आसफ अली

भारत वर्ष के प्रसिद्ध कार्यकर्त्ता बैरिस्टर आसफअली की पत्नी जिन्होंने सन् १९४२ की जनक्रान्ति में, गोवा की क्रान्ति में तथा और भी अनेक राजनैतिक कार्यों में बड़ी दिलचस्पी और बहादुरी से भाग लिया।

अरुणा आसफ अली का जन्म एक हिन्दू कुल में हुआ था। प्रारम्भ से ही यह प्रगतिशील विचारों की महिला थी। जाति और धर्म के बन्धनों को तोड़कर इन्होंने बैरिस्टर आसफ अली के साथ विवाह किया था। आसफअली की राजनैतिक प्रवृत्तियों को देखकर इनमें भी राजनैतिक चेतना जाग्रत हुई।

सन् १९४२ की जनक्रान्ति- के संचालन में अरुणा आसफ अली का प्रमुख स्थान था। समाजवादी दल के नेता श्री अच्युत पटवर्धन के साथ इन्होंने अण्डर ग्राउण्ड रहकर बड़ी बहादुरी से आन्दोलन का संचालन किया।

अरुणा आसफ अली के जीवन का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य गोवा के स्वाधीनता आन्दोलन में भाग लेकर उस आन्दोलन को चर्म सीमा पर पहुँचाना था। गोवा की मुक्ति में इनका काफी अच्छा भाग था।

अराजकवाद (Anarchism)

राजनीति विज्ञान की एक विशिष्ट विचारधारा जो समाज में राज्य की स्थिति का विरोध करती है!

यह एक ऐसी राजनैतिक विचारधारा है जो देश में या समाज में प्रत्येक संगठित राज्य-शक्ति का अन्त करके ऐसे समाज का निर्माण करना चाहती है जिसमें राज्य का काई अस्तित्व न हो।

अराजकवादी राज्य के स्थान पर मनुष्यों की ऐसी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करना चाहते हैं जिसमें सेना, न्यायालय तथा कारागार का कोई स्थान न हो!

अराजकवाद कोई नवीन सिद्धान्त नहीं है। चीन और ग्रीस के प्राचीन राजनीतिज्ञों की विचारधारा में इसके मूल भूत अंकुर पाये जाते हैं। मगर इसका पूर्ण विकास आधुनिक युग में १८ वीं और १९ वीं शताब्दी के बीच में हुआ। इस विचारधारा के संस्थापकों में विलियम गाडविन (William Godwin), मेक्स स्टरनर (Max-stirner), जोसेफ प्राउडोन (Joseph Proudhon) इत्यादि का नाम आता है मगर इस विचार धारा के प्रमुख आचार्य जिहोंने अराजकवाद पर वैज्ञानिक पद्धति से विचार किया है माइकेल बाकुनिन (Michel Bakunin) और प्रिन्स क्रोपाटकिन (Prince Kroptkin) हैं।

माइकेल बाकुनिन एक रूसी क्रान्तिकारी तथा प्रचारक था। यह विकेन्द्रित समाजवाद का समर्थक था और ऐसे समाज की स्थापना करना चाहता था जिसमें स्थानीय संस्थाएँ राज्य की सहायता के बिना पारस्परिक सहयोग से कार्य करें। प्रान्तीय, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्वतन्त्र संघ की स्थापना उसका अन्तिम ध्येय था! वह संसदीय प्रणाली का कट्टर विरोधी था और हिंसा तथा क्रान्ति में विश्वास करता था। धर्म-संस्था पर उसका बिल्कुल विश्वास न था और जन-क्रान्ति के द्वारा समाजवाद की स्थापना पर उसका विश्वास था। प्रारम्भ में सन् १८६४ ई० में लन्दन में कार्ल मार्क्स के द्वारा बुलाये हुए सम्मेलन में बाकुनिन भी सम्मिलित हुआ था। वह कई वर्ष साइबेरिया में कैद रह कर तीन साल पहले वहाँ से भाग आया था। बाकुनिन के अनुयायी खास तौर पर दक्षिणी योरप के इटली और स्पेन इत्यादि लेटिन देशों से आये थे। इस सम्मेलन में बाकुनिन और मार्क्स के विचारों का संघर्ष हुआ किन्तु उसमें बाकुनिन की विचारधारा को सफलता न मिली! फिर भी बाकुनिन के छोटे-छोटे समुदायों ने विभिन्न देशों में हत्या काण्डों का आतंक मचा दिया। उदाहरणार्थ उन्होंने रूस के जार, इटली के राजा हम्बाट, फ्रांस के राष्ट्रपति कार्नट, आस्ट्रिया की सम्राज्ञी एलिजाबेथ तथा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के राष्ट्रपति मेकिनले की हत्या की। सन् १८८३ में अमेरिका के शिकागो नगर में एक और संघर्ष हुआ जो "हे मार्केट क्लेश" (Hay Market Clash) के नाम से प्रसिद्ध है। उस समय से अराजकवाद अमेरिका में इतना बदनाम हुआ कि आज अमेरिका जाने वाले प्रत्येक मनुष्य को इस घोषणा पर हस्ताक्षर करने पड़ते हैं कि वह अराजकवाद में विश्वास नहीं करता!

प्रिन्स क्रोपाटकिन

प्रिन्स क्रोपाटकिन बाकुनिन का शिष्य था तथा सबसे पहला व्यक्ति था जिसने अपने ग्रन्थों में अराजकवाद का पूर्ण क्रमवद्ध और वैज्ञानिक विवेचन करके यह सिद्ध कर दिया कि यह केवल एक काल्पनिक आदर्श ही नहीं है। उसने साम्यवादी अराजकवादी के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया और बड़े-बड़े उद्योग धन्धों के स्थान पर छोटे-छोटे गृह-उद्योगों की उन्नति पर बल दिया। क्रोपाटकिन का मत था कि श्रम वितरण (Divison of Labour) मानव जाति का सबसे बड़ा शत्रु है। वह चाहता था कि मजदूरों से कम काम लिया जाय और उन्हें उनकी आवश्यकताओं के अनुसार पारिश्रमिक दिया जाय। वह राज्य के स्थान पर व्यक्तियों की स्वतन्त्र संस्थाएँ स्थापित करना चाहता था जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छा से सम्मिलित होगा। क्रोपाटकिन ने अराजकवाद पर कई बहुमूल्य ग्रन्थों की रचना की है जिनकी विचारधारा तर्कसंगत और गम्भीर है। इन ग्रन्थों में "रोटी का सवाल" और "संघर्ष या सहयोग" उल्लेखनीय हैं।

अराजकवाद के मूल सिद्धान्त

(१) अराजकवाद राज्य का विरोधी है और उसके अस्तित्व को अनावश्यक एवं अवांछनीय समझता है। इस सिद्धान्त के अनुसार राज्य एक ऐसी संस्था है जिसके द्वारा कुछ गिने चुने अधिकारी अपने अन्याय पूर्ण एकाधिकार को स्थिर रखने का प्रयत्न करते हैं। अराजकवादियों का विश्वास है कि जब तक राज्य का स्थान दूसरे समुदाय नहीं ले लेते तब तक समाज में बेकारी एवं आर्थिक चिन्ताओं का साम्राज्य बना रहेगा और हम अपने नवीन समाज की रचना करने के उद्देश्य में कदापि सफल न हो सकेंगे। इस विचारधारा का विश्वास है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति को समाप्त करने के पूर्व ही राज्य को समाप्त कर देना चाहिये क्योंकि राज्य के कारण ही व्यक्तिगत सम्पत्ति एकत्रित होती है!

(२) अराजकवादी राज्य तथा वर्गहीन समाज की स्थापना करना चाहते हैं। अराजकवादी ऐसे राज्यहीन समाज की स्थापना करना चाहते हैं जिसमें पूँजीपतियों का कोई स्थान न हो और उत्पत्ति के सब साधनों पर व्यक्तियों का सामूहिक अधिकार हो। कोकर (Coker) ने आदर्श समाज के काल्पनिक समझौते का वर्णन करते हुए लिखा है कि "हम यह चाहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति अनाज, वस्त्र, यातायात इत्यादि किसी भी उद्योग में साल भर में १२०० से लेकर १५०० घण्टे काम करे और उसके बदले में

जीवन में आवश्यक विभिन्न समुदायों द्वारा उत्पादित सभी वस्तुओं को प्राप्त करे।"

(३) अराजकवाद पारस्परिक सहयोग के द्वारा एक आदर्श समाज की रचना करना चाहता है। लावेस डिकेन्सन का मत है कि हम जिस समाज की स्थापना करना चाहते हैं उसमें व्यवस्था का अभाव न होगा। परन्तु उसमें शक्ति को कोई स्थान नहीं होगा।

यहाँ पर यह प्रश्न उठ सकता है कि शक्ति का अस्तित्व न होने पर विभिन्न समुदायों में आपस में होने वाले झगड़ों को अराजकवाद किस प्रकार से सुलझायेगा ? इसका उत्तर यह है कि पहले तो अराजकवादी प्रत्येक व्यक्ति को ऐसी शिक्षा देना चाहते हैं जिससे वह अपने व्यक्तित्व का विकास कर सके। ऐसी अवस्था में पारस्परिक झगड़े उत्पन्न होने की संभावना ही नहीं रहेगी। झगड़े केवल स्वार्थपरता तथा अधिकार प्राप्ति के लिये होते हैं। दूसरे प्रतिद्वन्दिता ही शत्रुता तथा पारस्परिक झगड़ों का मूल कारण है। इसलिये व्यक्तिगत सम्पत्ति, सत्ता और प्रतिद्वन्दिता का अन्त हो जाने पर मनुष्यों के हृदयों में स्वयं ही समाज-सेवा, भ्रातृत्व की भावना और सहयोग की भावनाएँ जागृत हो जायेंगी और तब पारस्परिक झगड़ों के उत्पन्न होने का कोई प्रश्न ही नहीं रहेगा !

(४) अराजकवाद का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति को पूँजीवाद, राज्य एवं धर्म के नियन्त्रण से मुक्त करना है। क्रोपाटकिन के मतानुसार धर्म प्रकृति के रहस्यों को प्रकट करने का एक असफल प्रयास है अथवा यह एक ऐसी नैतिक प्रणाली है जो जनता के अज्ञान तथा अन्धविश्वास पर प्रकाश डाल कर उसमें वर्त्तमान राजनैतिक तथा आर्थिक व्यवस्था के अन्यायों को सहन करने की भावना उत्पन्न करती है। बाकुनिन का मत है कि राजनीति, सत्ता, सम्पत्ति तथा धर्म मानव इतिहास के निम्नस्तर पर मनुष्य से सम्बन्धित थे क्योंकि इनका सम्बन्ध किसी न किसी रूप में इच्छाओं तथा भय से है। राज्य की स्थापना निजी सम्पत्ति की रक्षा के लिये हुई तथा धर्म इन दोनों की रक्षा के लिये उत्पन्न हुआ। इस कारण यदि व्यक्तिगत सम्पत्ति का अन्त कर दिया जाय तो सम्पत्ति विषयक अपराधों का अन्त हो जायगा। वैयक्तिक अपराध दूषित मनोवृत्ति का फल है। ऐसे अपराध राज्य द्वारा दण्ड दिये जाने से नहीं रुकते वरन् उनका उपाय अपराधियों की मनोवृत्ति में सुधार करना है।

अराजकवाद की समालोचना

अराजकवाद की आलोचना करते हुए कहा जाता है कि अराजकवादी प्रजातन्त्र के वर्त्तमान रूप और पूँजीवादी शासन व्यवस्था के घोर विरोधी हैं। वे ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते हैं जिसमें प्रत्येक व्यक्ति राज्य के नियन्त्रण से मुक्त रह कर अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास और स्वतन्त्रता का पूर्ण उपयोग कर सके। यद्यपि उनके ये समस्त विचार अत्यन्त आकर्षक एवं कल्याणकारी हैं किन्तु यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि व्यवहारिक जगत में उनका किञ्चित् मात्र भी मूल्य नहीं है।

वास्तव में कोई भी मनुष्य न तो सम्पूर्ण रूप से अच्छा होता है न सम्पूर्ण रूप से बुरा। यह धारणा गलत है कि राज्य को समाप्त कर देने से ही मनुष्यों की स्वार्थ पूर्ण भावनाएँ नष्ट हो जायँगी। सत्य बात यह है कि मनुष्य यथार्थ में मनुष्य हैं न कि देवता। वास्तव में मनुष्य के स्वार्थ और स्वेच्छाचार पर अंकुश रखने के लिये राज्य जैसी शक्तिशाली संस्था की परम आवश्यकता है। समाज में व्यवस्था बनाये रखने के लिये कानून की आवश्यकता है और कानून का होना राज्य की स्थापना का सूचक है।

अर्नेस्ट डाउसन

बीसवीं सदी के प्रारम्भ का एक अंग्रेज कवि। सन् १८६७ से १६०० तक।

अंग्रेजी साहित्य के इतिहास में बीसवीं सदी का आगमन एक नवीन युग के प्रारम्भ का द्योतक था। उन्नीसवीं सदी की रोमांटिक परम्परा अब धीरे-धीरे समाप्त हो रही थी और उसके स्थान पर विषाद और करुणा की भावनाओं से ओत-प्रोत नये लिरिकों की रचना होने लगी जिनमें एक आकर्षक सौन्दर्य रहता था।

अर्नेस्ट डाउसन भी इसी प्रकार का एक कवि था। काव्य के प्राचीन प्रतीकों का वह नये सिरे से प्रयोग करता था।

अरबी पाशा

मिस्र का रहने वाला ठेठ मिस्र वासी किसान, जो एक मामूली सिपाही से धीरे-धीरे बढ़ते हुए अपनी योग्यता से मिस्र का सेनापति बन गया और उसके बाद जब तौफीक-बे के समय में प्रजा-प्रतिनिधि सभा की मिस्र में स्थापना हुई तब अरबी पाशा मिस्र का युद्ध मन्त्री हुआ।

मिस्र की प्रजा-प्रतिनिधि सभा ने जब देश की आय-व्यय व्यवस्था पर विचार करना प्रारम्भ किया तो वहाँ के गोरे अधिकारी बौखला उठे और उन्होंने मिस्र वासियों को समझाया कि देश की आर्थिक समस्या को अभी आप लोग नहीं समझ सकते। देश हित के लिये यह आवश्यक है कि इस चीज को आप हमारे पर छोड़ दें। मगर जब प्रजा के प्रतिनिधियों ने कहा कि देश के आय और व्यय के निरीक्षण के ऊपर हमारा पूरा अधिकार है। देश की आधी आय के साधन जो अंग्रेज सरकार के यहाँ रेहन रख दिये गये हैं उन पर हम हाथ नहीं डालेंगे मगर बचे हुए आधे साधनों पर विचार करने का हमें पूरा अधिकार है।

इससे नाराज होकर सन् १८८७ में ब्रिटेन के अधिकारी लॉर्ड क्रोमर ने यह घोषणा कर दी कि अगर हमारी बात को नहीं मानी गई तो तलवार के बल पर उसको मनाई जावेगी।

इस घोषणा से क्रुद्ध होकर राष्ट्रीय भावना वाले मिस्र के सब लोग अरबी पाशा के झण्डे के नीचे एकत्र हो गये। शासक वंश के लोग भी इस आन्दोलन में शामिल हो गये। मिस्र के प्रधान मन्त्री शरीफ-बे ने भी अपना इस्तीफा दे दिया। अरबी पाशा युद्ध मन्त्री बनाया गया।

इन घटनाओं से क्रुद्ध होकर इंग्लैण्ड की सरकार ने ब्रिटिश जहाजी बेड़े को अलेग्जेण्ड्रिया के तट पर खड़ा कर दिया और मिस्र के गवर्नर को हुक्म दिया कि मन्त्रि-मण्डल को तोड़ दिया जाय और अरबी पाशा को देश से निकाल दिया जाय।

मगर इससे भी मिस्र की जनता पस्त हिम्मत नहीं हुई। मिस्र के चौदह सूबेदारों में से ग्यारह ने अरबी पाशा के नेतृत्व को मान लिया था। काहिरा में एक राष्ट्रीय संघ कायम किया गया जिसका अरबी पाशा सिपहसालार बनाया गया। अज़-अज़ार विश्वविद्यालय के आचार्य ने मिस्र के गवर्नर को देशद्रोही का फतवा दे दिया।

इस उत्तेजनापूर्ण स्थिति को देख कर अंग्रेजों ने फिर भेद नीति की चाल चली। उन्होंने तुर्की के सुल्तान को अपनी ओर मिलाया और उससे यह घोषणा करवाई कि अरबी पाशा अंग्रेजों के खिलाफ नहीं है। मेरे और मुसलमानों के खिलाफ बगावत करना चाहता है। इस भेद नीति से अरबी पाशा के साथियों को बहुत सन्देह हुआ और उनमें से बहुत से उसके संगठन से अलग हो गये। अरबी पाशा की सैनिक शक्ति कमजोर हो गई। फिर भी उसने बची खुची शक्ति से लड़ाई शुरू कर दी। जिसका नतीजा यह हुआ कि तेलेगबीर नामक स्थान पर उसकी भयंकर हार हुई। अरबी पाशा अंग्रेजों के हाथ में पड़ गया। सरकार ने उसे विद्रोही जाहिर करके सीलोन में नजरबन्द कर दिया। जहाँ सन् १९११ में उसकी मृत्यु हो गई।

अरबी पाशा पर टिप्पणी करते हुए एक अंग्रेज लेखक ने लिखा है—

"अरबी पाशा ने मिस्र वासियों में नई जान डाल दी। मिस्र आज एक स्वतन्त्र देश है मगर स्वतन्त्रता की इस नींव को अरबी पाशा ने ही डाली है इसमें कोई सन्देह नहीं। अरबी पाशा का बड़प्पन यही था कि अपने को वह मिस्र वासी समझता था और मिस्र के लिये ही जिया और मरा था।"

अरबलीग

अरब राष्ट्रों की एकता कायम रखने के लिए बनाया हुआ अरबी राष्ट्रों का एक संगठन जिसकी स्थापना मार्च १९४५ में मिस्र की राजधानी काहिरा में हुई।

संसार की डाँवाडोल और ज्वलनशील स्थिति को देख कर संसार के सभी राष्ट्र अपनी सुरक्षा के लिए अपने पड़ोसी राष्ट्रों के साथ एक सूत्र में आबद्ध होकर अपने को शक्ति-सम्पन्न करने की मनोवृत्ति से काम ले रहे हैं। इसी मनोवृत्ति से प्रेरित होकर मिस्र, ईराक, जोर्डन, सीरिया, लेबनान, सऊदी अरब, सूडान, ट्यूनीशिया, यमन तथा मोरक्को ने एक संधि पत्र पर हस्ताक्षर कर अरब लीग

नामक एक संगठन की स्थापना की। इस संगठन में सूडान सन् १९५६ में और मोरक्को सन् १९५८ में शामिल हुए।

इस संगठन का उद्देश्य, सदस्य राष्ट्रों की स्वाधीनता और प्रभु सत्ता की रक्षा करना, सदस्य राष्ट्रों के आपसी विवाद, वैमनस्य और कटुता के कारणों को मिटाना, सदस्य राष्ट्रों में आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक सम्बन्धों को बढ़ाना तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपनी स्थिति को मजबूत करना है।

इस संगठन के वर्ष में दो बार अधिवेशन होते हैं। इस संगठन की एक सामान्य परिषद, एक विशेष समिति, एक सचिवालय तथा एक राजनैतिक समिति है। राजनैतिक समिति में सभी सदस्य राष्ट्रों के परराष्ट्र मंत्री सदस्य रहते हैं। इस संगठन के जनरल सेक्रेटरी सन् १९५२ से मिस्र के भूतपूर्व परराष्ट्र मंत्री श्री अब्दुल खालिक हासाउना हैं।

अरब सुरक्षा संधि

मिस्र, इराक, सीरिया, जोर्डन, और लेबनान इन पाँच अरब देशों का संगठन जो जुलाई १९५० में स्थापित हुआ।

इस संगठन का उद्देश्य इस संधि पत्र पर हस्ताक्षर करने वाले देशों के बीच राजनैतिक, सैनिक और आर्थिक सम्बन्ध स्थापित करते हुए किसी भी बाहरी सशस्त्र आक्रमण के प्रतिरोध की व्यवस्था करना है। तथा अरब लीग से सम्बन्धित देशों के उत्तरदायित्व को निर्द्धारित करना है।

अरजेण्टिना

दक्षिण अमेरिका के दक्षिणी हिस्से में बसा हुआ देश जिसका क्षेत्रफल १०८४३५९ वर्ग मील और जनसंख्या १९-८५८००० (१९५७) है। इसकी राजधानी बुएनास एरिज, भाषा स्पेनिश और इटालियन, धर्म-रोमन कैथलिक और सिक्का-पेसो है। इस देश के मुख्य शहर रोसारियो, कारडोबा, एहेलेनेडा, सान्ता-फे, टुकुमान, मेण्डोजा, लाप्लेटा, बाहिया ब्लेन्का इत्यादि हैं।

अर्जेण्टिना दक्षिणी अमेरिका का दूसरा बड़ा रिपब्लिक है। इस की शासन व्यवस्था यूनाइटेड स्टेट्स की शासन व्यवस्था के अनुकूल है। यहाँ की पार्लियामेंट में दो हाऊस होते हैं। अपर चेम्बर को सेनेडो कहते हैं जिसमें ३० सदस्य होते हैं और लोअर चेम्बर को केमेरा-डी-डिप्यूटाडोस (Camera De-Diputados) कहते हैं जिसमें १५८ मेम्बर होते है। १९४९ और १९५६ के संशोधित विधान के अनुसार पार्लियामेंट के दोनों हाउस, प्रेसिडेण्ट और वाइस प्रेसिडेण्ट बालिग मताधिकार के आधार पर चुने जाते हैं।

अरजेण्टिना मूलतः यहाँ के मूल निवासी रेड इण्डियनों का देश है। सन् १५१५ में स्पेनी यात्री दान-जुआन, डाइफ़ (Donjuan Diaz) यहाँ पर आया और उसने १५३६ में बुएनासएरिज को यहाँ की राजधानी बनाया। सन् १८१६ में यह स्पेनवालों से स्वतंत्र हो गया। इस समय यहां के निवासी स्पेनिश और इटालियन हैं।

यहाँ की शिक्षा-व्यवस्था लैटिन अमेरिकन देशों में बहुत पिछड़ी हुई है। यहाँ पर साक्षर लोगों का अनुपात ७ से लेकर १० प्रतिशत तक है।

अर्जेण्टिना की राजधानी "ब्यूनोस आयर्ज" दक्षिण अमेरिका का सबसे बड़ा नगर है, यहाँ की आबादी २२॥ लाख है। ब्यूनोस आयर्ज का आबादी के हिसाब से संसार में बारहवाँ तेरहवाँ नम्बर है।

अर्जेण्टिना के पश्चिमी भाग में एण्डीज पहाड़ की श्रेणियाँ और पूर्वी भाग में विशाल मैदान हैं। यहाँ की मुख्य पैदावार गेहूँ है जो बहुत बड़ी तादाद में विदेशों को भेजे जाते हैं। इस देश में पम्पास और एण्डीज के बीच में कुछ ऐसे खुश्क भाग हैं जहाँ पहाड़ी नदियों से सिंचाई कर के रूम सागरी फलों के बगीचे लगाये जाते हैं। यहाँ अंगूर की शराब बनाने के कारखाने हैं।

अर्जेण्टिना में रेलों का जाल-सा बिछा हुआ है।

अर्काट का घेरा

सन् १७५१ में चन्दा साहब के पुत्र रजासाहब के द्वारा लॉर्ड क्लाइव के विरुद्ध लगाया हुआ मुहासरा जो इतिहास में अर्काट का घेरा के नाम से मशहूर है।

दक्षिणी भारत में अंग्रेजों की योजनाओं को विफल करने के हेतु चन्दा साहब ने त्रिचनापल्ली के चारों

और घेरा डाल दिया ! मगर इसी समय अंग्रेजों के प्रतिनिधि लॉर्ड क्लाइव ने त्रिचनापल्ली से चन्दा साहब की सेनाओं को हटाने के लिये उनकी राजधानी अर्काट पर हमला किया और उस पर अधिकार कर लिया । चन्दा साहब ने जब यह सुना तो उसने अपने पुत्र रजा साहब को लगभग आधी सेना देकर अर्काट का उद्धार करने भेजा । रजा साहब ने अर्काट पर आकर घेरा डाल दिया । क्लाइव ने ५३ दिन तक इस घेरे का साहसपूर्वक सामना किया । अर्काट का घेरा भारत में अंग्रेजी राज्य के इतिहास में महत्त्वपूर्ण घटना है । इसमें अंग्रेजों और भारतीयों ने बहुत साहस पूर्ण वीरता का परिचय दिया पर अन्त में जीत क्लाइव की हुई ।

अरशक प्रथम

ईरान में पार्थव शाम्राज्य का संस्थापक शक जाति की एक शाखा ता-हि-या का वंशज (ई०स०पू. २४६ से २४७) ।

अरशक प्रथम के पूर्वज मूलतः सिरदरिया (यक्सर्त नदी) के पास के रहने वाले थे । ये शक जाति की दाहै शाखा के वंशज थे । जो बाद में जाकर कास्पिय के किनारे ईरान की सीमा तक पहुँच गये । इनके एक कबीले ने कास्पियन समुद्र के पास तक फैले हुए अखामनी साम्राज्य के प्रान्त पार्थिया पर अधिकार कर लिया तभी से ये लोग पार्थव कहलाये और इन्होंने आगे जाकर विशाल पार्थव साम्राज्य की स्थापना की जो करीब ४०० बरस तक ईरान पर शासन कर रहा ।

अर्देशिर

ईरान के इतिहास प्रसिद्ध सासानी वंश का संस्थापक

सिकन्दर के सेनापति सेल्यूकस के वंशजों का साम्राज्य जो कि पश्चिम भारत से लेकर एशिया कोचक तक फैला हुआ था तीन सौ वर्षों तक चलता रहा । उसके बाद मध्य-एशिया के पार्थव नामक कबीले ने इस साम्राज्य का अन्त कर दिया । इन्हीं पार्थव लोगों ने गण राज्य के आखिरी दिनों में रोमन सेनाओं को भी करारी हार दी । करीब ढाई सौ वर्षों तक पार्थव जाति का शासन चलता रहा । मगर अन्त में एक घरेलू क्रान्ति से इनका अन्त हो गया । ईरानी लोगों ने एक संगठित क्रान्ति कर पार्थव वंश का शासन समाप्त कर दिया और उनके स्थान पर अपनी जाति के "अर्देशिर" को बादशाह की गद्दी पर बिठा दिया । यही "आर्देशिर" सासानी वंशका संस्थापक और उसका पहला शासक था । यह जरथोस्टी धर्म का कट्टर अनुयायी था । और दूसरे धर्मों के प्रति असहिष्णु था । अर्देशिर ने सासानी साम्राज्य का विस्तार किया । रोमन साम्राज्य से इसकी बराबर लड़ाइयां होती रहती थीं ।

अरिस्टो फ़ेनिज

ई० स० पूर्व पाँचवी सदी में एथेन्स का प्रसिद्ध कामेडी नाटकों का रचयिता ।

अर्नोबियस

रोमन साम्राज्य का एक ईसाई मतावलम्बी कवि जिसने अपने "अदवर्सस नाति ओनज" पुस्तक में ईसाई धर्म के पक्ष में रोम की पुरानी पेगन संस्कृति के देवताओं की परम्परा की कटु आलोचना की ।

अर्नो-होल्फ़ (Arno Holz)

उन्नीसवीं सदी का प्रकृतिवादी जर्मन कवि और लेखक। समय सन् १८७५ के लगभग ।

उन्नीसवीं सदी के अन्तिम चरण में जर्मन साहित्य और कला के क्षेत्र में एक प्रकृतिवादी आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ । इस आन्दोलन का मूल उद्देश्य इस सिद्धान्त का प्रचार करना था कि कला और साहित्य का मूल उद्देश्य प्राकृतिक वस्तुओं के वास्तविक निरूपण तक ही मर्यादित रहना चाहिए । अर्नो-होल्फ इस विचारधारा का नेता था । उसकी रचनाओं में "पापा हामलेत" और "डी-फामिली-सेलिके" प्रसिद्ध हैं इनमें उसने बर्लिन की झोपड़ियों की ध्वनियों और श्रमिकों के चेहरों के भावों तक को प्रतिबिम्बित किया है ।

अर्थर-शिन्झलर

(Arthur-Schnitzler)

आस्ट्रिया की राजधानी विएना का रसवादी कवि और गायक जो उन्नीसवीं सदी के अन्तिम चरण में पैदा हुआ।

आर्थर शिन्झलर प्राचीन विएना की कीर्ति का एक सफल गायक था। उसने उसके गौरव की बेल को अपनी कला से सींचा। विएना का अनिवार्य पतन उसके पात्रों के चरित्र में स्वाभाविक रूप से चित्रित हुआ है। इस कवि के नायक नारी को भोग्य और काम वासना के साधन की वस्तु मात्र मानते हैं। इस नाटककार की कृतियों में "मार्शेन" "लिवेलाई" "पारासेल्सस" "डास वाइड लैण्ड" इत्यादि प्रसिद्ध हैं। नये आचारों की खोज करता हुआ यह नाटककार इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि "मानव जाति के आचार की व्यवस्था वह चाहे नवीन हो चाहे प्राचीन एकदम अपूर्ण है।"

अराई हाकुसेकी

जापान में इदो काल का सबसे महान् चीनी ज्ञान का विद्वान। समय १६५७ से १७२५ ई० तक।

जापान में इदो काल (१६०३-१८६८) में चीनी ज्ञान के प्रति जापानी लोगों का विशेष आकर्षण हुआ। इस आकर्षण ने धीरे-धीरे एक साहित्यिक आन्दोलन का रूप ले लिया। अराई हाकुसेकी इसी इदो काल का चीनी भाषा का महान् पण्डित था। उसने अपनी रचना "हाँकान्पू" में जापानी सामन्ती युग का पूरा भण्डा फोड़ किया है।

अर्थरवान-शेण्डेल

(Arthur Van Schendel)

डच साहित्य का प्रसिद्ध गद्य लेखक जिसका जन्म सन् १८७२ में हुआ।

आर्थरवान शेण्डेल डच साहित्य के अत्यन्त प्रभावशाली गद्य लेखकों में से थे। इसने प्रकृतिवाद और प्रभाववाद दोनों के विरुद्ध अपनी कलम उठाई। प्रारब्ध और एकान्त उसकी दो प्रधान समस्याएँ हैं। इसने प्रायः तीस से अधिक उपन्यास लिखे जिनमें एक भी साधारण कोटि का नहीं है। उसकी कृतियों में "इन-ज्वर्वर" "ड-वाटर मान" बहुत प्रसिद्ध हैं।

अड्रियान-आनडेरवीन

डच साहित्य का प्रसिद्ध गद्यकार जिसने लिरिक कविता के माधुर्य वाली अनेक कहानियाँ और कुछ उपन्यास लिखे।

अर्माण्ड

आयर्लैण्ड में सन् १६४६ में होने वाली बगावत का नेता अर्माण्ड। इंग्लैण्ड में क्रामवेल के द्वारा प्रजातन्त्र की स्थापना होनेपर आयर्लैण्ड में सन् १६४६ में अर्माण्ड नामक एक सैनिक की अध्यक्षता में बगावत प्रारम्भ हुई और इन लोगों ने राजपुत्र चार्ल्स के नाम की दुहाई फेर दी। इस बगावत का दमन करने के लिये इंगलैण्ड ने क्रामवेल को दस हजार सैनिकों के साथ भेजा। वहाँ जाकर इसने अपने सैनिकों की सहायता से ड्राघेडा (Dragheda) और वेक्स फोर्ड नामक बागियों के दो किलों पर अधिकार कर लिया और जिन लोगों का झुकाव राजपुत्र चार्ल्स की तरफ था उन सब की हत्या कर दी गई। उसके बाद क्रामवेल अपने दामाद आयर्टन को वहाँ का शासन सौंप कर वापस चला आया। आयर्टन ने सन् १६५१ में वहाँ की बगावत को बिल्कुल नष्ट कर दिया।

अर्जमस

रूसी साम्राज्य का एक शहर जहाँ पर वोल्गा नदी तट की कलमक, तातार, बाश्किर इत्यादि जातियों ने तथा बोल्गा के दाहिने तट के रूसी किसानों ने जारशाही के विरुद्ध भयंकर विद्रोह किया। जार की शक्तिशाली सेनाओं ने इस विद्रोह का दमन करके विद्रोहियों से भयंकर बदला लिया और अर्जमस नगर में सन् १६७० में ग्यारह हजार आदमियों को फाँसी पर चढ़ा दिया।

अर्नगार वर्ग

नार्वे की प्रादेशिक भाषा का महान लेखक जो नार्वे में उन्नीसवीं सदी के अन्तिम चरण में हुआ। इसके लिरिक और प्रबन्ध काव्य राष्ट्रीय भावनाओं और धार्मिक प्रेरणाओं से ओत-प्रोत थे।

अर्नुल्फ़-ओवरलेण्ड

नाजीशासन काल में नार्वे का एक कवि जो चारसाल तक नाजियों की जेल में रहा। उसकी सबसे प्रसिद्ध और अमर कृति "वी ओवलिवर आल्त" है। उस कठोर और क्रूर समय में कितनी साधना और तप की आवश्यकता थी यह अर्नुल्फ के जीवन में प्रमाणित हुई और वही जीवन इस कृति की पंक्तियों में साकार हो उठा है जिसमें उसने मृत्यु को खुली ललकार दी है।

अर्थर-रेम्बो

(Arthur Rimbaud)

अस्पष्ट शैली, रहस्यवाद और प्रच्छन्न भावों का फ्रेञ्च कवि। जिसने अपनी कविताओं में एक गोपनीय प्रच्छन्न और असामान्य तत्व का चित्रण और पूजा की है।

अरबून राजवंश

सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में सिन्धप्रान्त पर शासन करने वाला अरबून राजवंश।

इस राजवंश का स्थापक शाह वेग अरबून कन्दहार का शासक था। सन् १५१६ में बाबर ने जब कन्दहार पर चढ़ाई की तब अरबून वहां से भाग कर सिन्ध की तरफ मुड़ा और सन् १५२० में सिन्ध के ठट्ठा शहर पर अधिकार कर उसे लूट लिया।

इस प्रकार सिन्ध में अरबून वंश का राज्य स्थापित हुआ। इस वंश के राज्य को शाह हुसेन ने बहुत बढ़ाया। उसने मुल्तान को अपने राज्य में मिला लिया और लंगा वंश का अन्त कर दिया।

अर्लहेग

प्रथम महायुद्ध के समय में ब्रिटिश स्थल सेना के सर्वोच्च सेनापति।

अर्ल ऑफ़ एसेक्स

इंग्लैण्ड में महारानी एलिजाबेथ का एक कृपा पात्र सरदार जो अपनी सुन्दरता खुशमिजाजी और बहादुरी के कारण एलिजाबेथ का प्रिय पात्र हो गया था।

जब नैदरलैण्ड के निवासियों ने अपनी स्वाधीनता के लिए स्पेन की राजशक्ति के विरुद्ध जबर्दस्त विरोध कर दिया और स्वतंत्र प्रजातंत्र स्थापित कर लिया तब रानी एलिजाबेथ ने अर्लऑफ लिसेस्टर और सर फिलिप्स सिडनी को स्पेन के विरुद्ध नेदरलैण्ड के प्रजातंत्र की मदद करने भेजा था।

उसके बाद जब आयर्लैण्ड में अर्लऑफ ओनील ने ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा किया तब उसे दबाने के लिए भी एलिजाबेथ ने अर्लऑफ एसेक्स को भेजा था। मगर ऐसा कहा जाता है कि किसी अन्तरंग प्रतिहिंसा को चरितार्थ करने के लिए ही रानी ने उसे यह कठिन काम सौंपा था।

मगर अर्ल आफ एसेक्सने बड़ी बहादुरी के साथ आयर्लेण्ड के इस अभियान को सफल किया और उसने अर्लऑफ ओनील को पकड़ लिया। लेकिन रानी विजय का सेहरा अर्लऑफ एसेक्स के सिरपर नहीं बँधने देना चाहती थीं इसलिए उसने तुरन्त ऐसेक्स के विरोधी लार्ड मौण्टजाय को आयर्लेण्ड भेजा और ऐसेक्स को हुक्म दिया कि वह तुरन्त वहां से वापस लौट आवे।

लेकिन रानी की इस भेद पूर्ण आज्ञा से एसेक्स बड़ा क्रोधित हुआ और उसने वह आज्ञा ठुकराकर अर्लऑफ ओनील को बन्दी बना कर लण्डन ले आया।

इस विजय से इंग्लैण्ड में बड़ी खुशी छा रही थी। रानी ने पहले तो एक बड़ा भारी दरबार कर अर्ल ऑफ एसेक्स का एक विजयी वीर की भाँति भारी सत्कार किया। मगर बाद में उसकी ओर कठोर दृष्टि से देखते हुए कहा कि—

"अर्ल ऑफ ऐसेक्स तुमने वीरता पूर्वक शत्रु को पराजित किया, इंग्लैण्ड की सेवा की, इसके लिए हमने तुम्हारा पूर्ण सम्मान किया परन्तु तुमने राजाज्ञा का उल्लंघन किया और तुम दरबारी अदब के खिलाफ सादे और मैले वस्त्रों में दरबार में आये, इसकी यही सजा है कि तुम्हारी तलवार छीन ली जाय।

रानी ने उसी पराजित शत्रु अर्ल ऑफ ओनील को अर्ल ऑफ एसेक्स से तलवार छीनने का आदेश दिया।

अर्ल ऑफ एसेक्स इस अपमान पूर्ण घटना से एकदम उत्तेजित हो रानी के सामने चला गया और तलवार निकाल कर घुटनों के बल से उसके दो टुकड़े कर दिये और रानी के सामने फेंक दिये।

रानी क्रोध से लाल होगई और उसने आदेश दिया कि इस विद्रोही को गिरफ्तार कर लिया जाय और कल सूर्योदय से पहले ही इसका सिर काट लिया जाय। दूसरे दिन सवेरे इस महान् प्रतापी अर्ल का सिर काट लिया गया।

ऐसा कहा जाता है कि रानी एलिजाबेथ और अर्ल-ऑफ एसेक्स के सम्बन्ध अत्यन्त मधुर थे। मगर जब उसे पता लगा कि अर्ल ऑफ एसेक्स का प्रणय राजमहल की किसी सुन्दर दासी से है तो वह प्रतिहिंसा की आग में जल उठी और उसका बदला उसने इतनी कठोरता से लिया। इन बातों में कितना सत्य है कहा नहीं जा सकता।

अर्ल ग्रे

सन् १८३० में इंग्लैण्ड के राजा चौथे विलियम के समय में इंग्लैण्ड का प्रधान मन्त्री जिसने सन् १८३० से १८३४ तक इस पद पर काम किया।

अर्ल ग्रे के मन्त्रिमण्डल के समय सन् १८३१ ई० के मार्च में लार्ड जॉन रसेल नामक मन्त्री ने पार्लमेण्ट के सुधार का बिल पेश किया। टोरीदल ने इस बिल का बड़े जोरों से विरोध किया फिर भी यह बिल एक वोट की अधिकता से पास हो गया। इसी समय इस बिल के ऊपर लोकमत की जानकारी प्राप्त करने के लिये राजा ने पार्लमेण्ट को भंग कर नया चुनाव करवाया। नई पार्लियामेण्ट में यह बिल बहुत अधिक मतों से पास हुआ मगर लॉर्ड-सभा में जाकर यह बिल फिर नामंजूर कर दिया गया। इसके बाद पार्लमेण्ट के सामने फिर तीसरी बार यह बिल पेश हुआ जिसमें दोनों सभाओं के सदस्य संयुक्त रूप से बैठे और दोनों सदनों की सभा ने सम्मिलित रूप से बैठ कर सन् १८३२ ई० में इस बिल को पास कर दिया।

अल-अहराम (मिस्र के पिरामिड)

मिश्र में प्राचीन काल में बने हुए विशाल पिरामिड या स्तूप जिनके नीचे मिस्र के प्राचीन सम्राटों की कब्रें हैं। सबसे बड़ा पिरामिड चौथे राजवंश के सम्राट खुफु (चिओप्स) ने ईसा से ३००० वर्ष पहले बनाया था। यह पिरामिड ४५० फुट ऊँचा और ७४६ वर्गफीट में फैला हुआ गिजेह नामक स्थान पर है इसमें पत्थर की तेईस लाख चट्टानें लगी हैं एक-एक चट्टान का वजन ढाई-ढाई टन है। जिस जमाने में मशीनों का नाम न था उस जमाने में लोगों ने कैसे ढाई-ढाई टन की तेईस लाख चट्टानें एक दूसरे पर चुनकर रक्खी होंगी सोचकर बुद्धि चकरा जाती है। मिस्र के पिरामिड दुनिया के सात आश्चर्यों में से एक माने जाते हैं।

अल-अहराम

मिस्र का सुप्रसिद्ध दैनिक पत्र जिसका प्रारम्भ सन् १८७५ में हुआ। इस दैनिक पत्र के प्रतिष्ठाता सलीम-तकला थे। जिनका समय सन् १८४१ से १८९२ तक था।

अल-अखतल

अरबी भाषा का एक ईसाई कवि जो दमिश्क में शाह अव्वल मलिक का राजकवि था। सन् ६८५-७०५।

अल-उतबी

महमूद गजनवी की फौज के साथ रहने वाला एक इतिहास लेखक। यह मुहम्मद गजनवी की हरएक चढ़ाई पर युद्धों में उसके साथ रहा था। महमूद गजनवी ने जितनी लड़ाइयाँ लड़ीं उन सबका आतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन अल-उतबी ने किया है। इसलिए इसके वर्णनों में ऐतिहासिक तथ्यों की अपेक्षा आतिशयोक्ति और स्वामि-भक्ति का पुट अधिक है और इसी कारण यह अलबेरूनी की तरह ऐतिहासिक दृष्टि से विश्वसनीय नहीं माना जा सकता।

महमूद गजनवी के द्वारा कन्नौज पर किये हुए आक्रमण और मथुरा की लूट का वर्णन उसने इस प्रकार किया है :—

"जिहून (सिंध) झेलम और चन्द्र नदियों को पार-कर वह सीधे तिब्बत पहुँचा। मुहम्मद जहाँ कहीं पड़ाव डालता लोगों के प्रतिनिधि आकर उसकी अधीनता स्वीकार कर राजनिष्ठा प्रकट करते थे। उसके कश्मीर पहुँचने पर वहाँ के सेनापति शासीन का पुत्र हवाली मुहम्मद के पास नौकरी के लिए आया। पर जब उसे बतलाया गया कि गैर-मुसलिमों को सेना में स्थान नहीं मिलता तब हवाली बीनी के लुटेरों में शामिल हो सेना के आगे-आगे चलने लगा। महमूद की सेना एक के बाद एक घाटी पार करती हुई आगे बढ़ने लगी। इस प्रकार हिजरी सन् ४०९ में रज्जब मास की २० तारीख (ई० स० १०१८) को यमुना पारकर महमूद की सेना राजा हरून के वरण के किले के समीप पहुँच गई। हरून बहुत बड़ा राजा था। मगर महमूद की सेना-समुद्र को देखकर उसने दस हजार साथियों के साथ किले से उतर इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया।"

"यहाँ से फौज कलजन्द के किले के पास पहुँची। कलचन्द के पास बहुत अधिक धन और मजबूत सेना थी। अपने हाथी, अश्वारोही और पैदल सेना लेकर वह एक घने जंगल में महमूद की राह देख रहा था। सुलतान ने अपनी बीनी सेना को जंगल में घुसने की आज्ञा दी। शत्रु सेना कुछ समय अपने स्थान पर डटी रही। बाद में उसने हमले किये पर अन्त में यह स्पष्ट हो गया कि सब बातें अल्लाह की मरजी से हुआ करती हैं। तलवार कितनी ही अच्छी क्यों न हो, उसमें कितना ही जोर क्यों न हो, उसकी धार कितनी ही तेज क्यों न हो, मुसलमान के शरीर के पास पहुँचते ही वह निस्तेज हो जाती है। अन्त में निरुपाय हो शत्रु प्राण बचाने के लिए नदी में कूद पड़े। कलजंद ने पहले अपनी बीबी को खंजर से मार डाला फिर वह भी छुरा घुसेड़कर दोजख में पहुँचा।

अन्त में मथुरा की लूट और उसमें मिली अपार-सम्पत्ति का वर्णन करते हुए उतबी लिखता है—

"यहाँ मूर्तियों के एक हजार मन्दिर थे। जो किले की तरह बने थे और शहर के बीच में एक सबसे ऊँचा मन्दिर था। उसकी सुन्दरता या नक्काशी का वर्णन करना लेखक की लेखनी या चितेरे की कूँची के लिए असम्भव है।" यदि कोई ऐसी इमारत बनाने का विचार करे तो उसे एक-एक हजार दिनारों की एक लाख थैलियाँ खर्च करनी पड़ेगी और अत्यन्त कुशल कारीगरों की सहायता से भी वैसी इमारत २०० वर्षों में तैयार न हो सकेगी। मूर्तियों के जो ढेर मिले उनमें शुद्ध सोने की पाँच हाथ ऊँची पाँच मूर्तियाँ थीं। इनमें से एक मूर्त्ति पर ऐसा रत्न जड़ा था जिसका मूल्य ५०००० दीनार से कम न था। एक मूर्ति के पैर में चार लाख चार सौ मिसकाल सोना निकला। चाँदी की मूर्तियाँ तो इतनी थीं कि तौलने वाले थक गये।"

अल-उतबी के उपरोक्त वर्णन को पढ़ने से यह स्पष्ट मालूम होता है कि उसकी भाषा एक निष्पक्ष इतिहासकार की भाषा से नहीं प्रत्युत एक भाटों द्वारा कही जाने वाली विरुदावली की भाषा से अधिक मिलती है।

अल-काली

खलीफा अल-हाकिम द्वितीय (९६१-९७६) के समय में कारडोवा विश्वविद्यालय का शिक्षक। प्राचीन अरबी साहित्य पर इसने "अल-अमाली" नामक ग्रन्थ की रचना की इसका जन्म सन् ९०१ में और मृत्यु ९६७ में हुई।

अल-खूरी

बैरूत के पत्र "अल-बर्क" का सम्पादक जो एक कवि के रूप में सारे अरब संसार में विख्यात हो गया ।

अल-गजाली

ईराक और ईरान का ईस्लामी धर्म का प्रकाण्ड पण्डित जिसकी मृत्यु सन् ११११ में हुई ।

अल-बुसीरी

तेरहीं शताब्दी का नामाङ्कित अरबी कवि जिसने "अल-बजा" नाम से पैगम्बर की जीवनी लिखी । इसका समय सन् १२१२ से १२९६ तक है ।

अल्डुस हक्सले

इंग्लैण्ड का महान् विचारक, दार्शनिक और उपन्यासकार इसका जन्म सन् १८९४ में हुआ ।

अल्डुस हक्सले इंग्लैण्ड में आधुनिक युग का महान् विचारक और उपन्यासकार है । प्रथम महायुद्ध के पश्चात् किसी भी साहित्यकार ने इंग्लैण्ड के बौद्धिक जीवन का ऐसा सच्चा चित्रण ऐसी प्रभावशाली भाषा में नहीं किया जैसा हक्सले ने किया है । उसकी सुन्दरतम मौलिक कृतियों में "पॉइण्ट काउण्टर पॉइण्ट" "ब्रेवन्यूवर्ल्ड" "आइलेस इन गाजा" "क्रोम येलो" "एण्टिक हे" "एण्ड्स एण्ड मीन्स" इत्यादि हैं । उन्नीसवीं सदी के कवियों की तरह वह यौन-अनुभूति के पीछे पागल नहीं है । वह उससे दूर है । मनुष्य के बौद्धिक स्तर को हक्सले उसी प्रकार खोलकर देखता है जिस प्रकार एक इंजीनियर मशीन के पुर्जों को खोल कर देखता है । हक्सले के विचारों में पारदर्शी शक्ति है उसकी कलम में तेज है । अपनी कलम की नोक से वह समाज को जगाने का प्रयत्न करता है ।

हक्सले ने अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में राम कृष्ण मिशन के लॉस एञ्जिल्स मठ के आचार्य्य स्वामी प्रणवानंद से बाकायदा शिष्यत्व की दीक्षा ग्रहण की थी ।

अल-जरकाली

अरब का ज्योतिषी जिसे चासर आर्सेकीलेस भी कहते हैं । इसने सन् १०८० में स्पेन के तोलेदो नामक स्थान एक ज्योतिर्विज्ञान का पूरक चक्र बनाया जो तोलेदो-चक्र के नाम से प्रसिद्ध है ।

अल-जहावी

जन्म-सन् १८६३

ईराक का प्रसिद्ध कवि और लेखक, जिसने अपनी अनूठी गति, प्रवाह, कवित्व और हास्य से अरबी भाषा में जीवन ला दिया । उसका प्रसिद्ध काव्य सौरह फ्रि-अल-जहीम "नरक में विद्रोह" उसके भावों की विशालता और दिमाग की आजादी को प्रकट करता है । बहिश्त का वर्णन करता हुआ वह लेबनानी बगीचों का उसके ग्रीष्मकालिक पर्वत शिखरों का, उसकी नाजनीनों का, शराबों का और यौन-कामनाओं का वर्णन करने लगता है । अल-जहावी के दोजख के अन्तिम दृश्य में लैला और उसका प्रणयी सामरी आ पहुँचते हैं । फिर लेखक, कवियों, दार्शनिकों और वैज्ञानिकों की समूची जमात को नरक में लाकर बिठा देता है क्योंकि इन लोगों को खुदा के ऊपर विश्वास नहीं था । इसी बीच उनमें से एक वैज्ञानिक उस भीषण नरक में आग बुझाने के इंजन की ईजाद कर लेता है जब तेजी से वहाँ की आग बुझने लगती है तो नरक के शासक हैरान हो जाते हैं । दोजख की सबसे भयङ्कर सजा का जरिया जब आग ही बुझ जावेगी तो फिर क्या होगा । अन्त में दैवी शक्तियों को बीच-बिचाव से मामला ठण्डा होता है ।

अल्किउस

ग्रीक साहित्य में सोलो लिरिकों की रचना करने वाला कवि यह एक प्रतिष्ठित कुल में पैदा हुआ था । इसका समय ईस्वी पूर्व की सातवीं सदी का मध्यकाल है । इसकी कविताएं शब्द-लालित्य, भावुकता और माधुर्य्य से भरी हुई होती थीं ।

अल्क-मन

ग्रीक साहित्य में कोरस लिरिकों का रचयिता। इसकी बनाई हुई लिरिकों के कुछ अंश अभी प्राप्य हैं। यह लड़कियों के गाने योग्य कोरस-लिरिक बनाता था।

अल्कुइन

(Alcuin)

महान् सम्राट् शार्लमेन के साम्राज्य का शिक्षा अधिकारी जो अपने समय का बेजोड़ साहित्यकार था। इसका समय सन् ७३४ से ८०४ तक का ही।

अलजीरिया

उत्तरी अफ्रीका का भूमध्य सागर के किनारे बसा हुआ एक देश। इसका क्षेत्रफल ८,४७,५०० वर्गमील और जनसंख्या ९५,२६,७२६ (सन् १९५४ की गणना के अनुसार) है। यहाँ का प्रधान धर्म इसलाम है। इस देश की राजधानी अल्जीयर्स है। इसके पश्चिम में मोरक्को, पूर्व में ट्यूनीशिया और दक्षिण में फ्रेन्च वेस्ट अफ्रीका है। यहाँ की प्रधान भाषा अरबी और फ्रेन्च है। इसके मुख्य नगर ओरान, काँस्टेंटाइन, बोन, फिलिपविले, सीदी-बेल-अब्बास, ब्लिडा, मसकारा इत्यादि हैं।

प्राचीन काल में इस देश का नाम नोमिडिया था। ईसवी सन् से १४६ वर्ष पूर्व यह रोम का उपनिवेश बना। जर्मनी के निकट बसने वाली वाण्डाल नामक क्रूर जाति उत्तर पूर्व जर्मनी से चलकर गॉल और स्पेन को कुचलती हुई सन् ४४० में यहाँ पहुँची थी। उस समय यह देश सभ्यता और वैभव के शिखर पर था। वाण्डाल जाति ने इसे बुरी तरह से रौंदकर खतम कर दिया। सन् ६५० के करीब इस देश पर मुसलमानों का आक्रमण हुआ और उनका इसपर अधिकार हो गया। सन् १४९२ में स्पेन से निकाली हुई मूर और यहूदी जातियाँ यहाँ आकर बस गईं। सन् १५१८ में इस पर तुर्की का अधिकार हुआ। लगभग तीन सौ वर्ष तक यह बारबरी जाति के समुद्री लुटेरों का केन्द्र बना रहा। सन् १८३० में यह फ्रान्स वालों के अधिकार में आया।

अलजीरिया का स्वतंत्रता युद्ध

हम ऊपर बतला आये हैं कि करीब सवा सौ वर्षों से अधिक समय से अलजीरिया फ्रान्स का एक उपनिवेश रहा है। जिस प्रकार संसार के दूसरे साम्राज्यवादी देशों ने अपने उपनिवेशों की जनता का शोषण किया, फ्रान्स भी अलजीरिया के शोषण में उनसे पीछे नहीं रहा। अलजीरिया की नब्बे प्रतिशत जनता मुसलमान है।

दूसरे महायुद्ध के पश्चात् सारे संसार में स्वाधीनता की जो प्रबल झंझावात चली उसने सारे संसार की गुलाम और औपनिवेशिक जनता को झकझोर दिया। अलजीरिया भी उस हवा से कैसे बच सकता था। सन् १९५४ से वहाँ की जनता ने भी फ्रान्स के विरुद्ध अपना स्वातंत्र्य आन्दोलन चालू कर दिया। एक नवम्बर १९५४ के दिन वहाँ के राष्ट्र वादियों ने स्वतंत्रता का पहला बिगुल बजाया था तब से बराबर सन् १९६२ तक अलजीरिया के लोग अपने प्राणों की बाजी लगाकर फ्रान्स की सरकार से लोहा ले रहे हैं। इन आठ वर्षों में दोनों पक्षों की धन और जन की भयङ्कर हानि हुई है। सरकारी रिपोर्ट के अनुसार इस अष्ट वर्षीय युद्ध में फ्रान्स का करीब सात हजार करोड़ रुपया और २०००० सैनिकों की क्षति हुई है जब कि सामने वाली अलजीरियन जनता के साढ़े तीन लाख व्यक्तियों का बलिदान हुआ है। मगर अलजीरिया के लोगों के अनुसार इस संघर्ष में १० लाख अल्जीरियन मारे गये हैं।

राष्ट्रवादी अलजीरियन लोगों ने अपनी स्वतंत्र सरकार का दफ्तर ट्यूनीशिया में सन् १९५९ से खोल रक्खा है और संसार के ३१ देशों ने इस सरकार की वैधानिकता को अपनी मान्यता दे दी है।

अलजीरिया के इस तीव्र और दुर्दमनीय प्रतिकार के आगे अन्त में फ्रान्स की सरकार को झुकना पड़ा और १८ मार्च १९६२ को दोनों देशों के बीच एक युद्ध विराम समझौता हो गया। इस समझौते के फलस्वरूप फ्रान्स ने स्वीकार किया कि (१) अलजीरियायी राष्ट्रवादियों के प्रतिनिधि अलजीरिया की ९० लाख मुसलमान जनता का प्रतिनिधित्व करते हैं। (२) सहारा के तैलक्षेत्र सहित सम्पूर्ण अलजीरिया एक अखण्ड देश है (३)

गिरफ्तार किये गये ५,००० अल्जीरियन सैनिकों को फ्रांस सरकार युद्ध बन्दियों की तरह रखेगी।

इसी प्रकार अल्जीरिया के प्रतिनिधियों ने भी निम्न ३ शर्तें मंजूर की। (१) फ्रान्स की सेनाएं तीन वर्षों में अल्जीरिया से धीरे-धीरे हट जावेगी। (२) मर्सअल कोचर का बन्दरगाह और सहारा का अणुबम परीक्षण स्थल अल्जीरिया सरकार फ्रान्स को पट्टे पर दे देगी। (३) तथा फ्रान्स के निवासी जो अलजीरिया के नागरिक बनना चाहेंगे उन्हें अल्जीरिया सरकार नागरिकता का अधिकार देगी।

ओ० ए० एस०

जब फ्रान्स के राष्ट्रपति डी० गाल ने अलजीरिया की स्वतंत्रता को सिद्धान्ततः स्वीकार कर ली तो अलजीरिया में रहने वाले फ्रान्स निवासी बेहद क्रुद्ध हो गये और उन्होंने अलजीरिया और फ्रान्स दोनों के विरुद्ध O. A. S नामक एक गुप्त संगठन बना लिया। यह गुप्त संगठन अलजीरिया की स्वतंत्रता का कट्टर विरोधी है और आवश्यकता पड़े तो अलजीरिया के साथ डी-गाल की सरकार को भी उलट देने की इसकी तैय्यारी है। यह गुप्त संगठन इस प्रकार प्रतिदिन अलजीरिया में गुप्त खून, खराबी और हत्याकाण्ड का संचालन कर रहा है। फ्रान्स की सरकार इस संगठन को दबाने की पूरी तैय्यारी कर रही है। हालही में ओ० ए० एस० संगठन का प्रधान नेता फ्रांस की सरकार द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया और उसके पश्चात् अलजीरिया की राष्ट्रीय सरकार और ओ० ए० एस० के बीच में भी समझौता हो गया।

अल्जेर्नन स्विनबर्न

प्रणाय बहुल नग्न चित्रणों का अंग्रेज कवि सन् १८३७ से १९०९ तक।

अल्जेर्नन स्विनबर्न की शिक्षा ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में हुई थी। उसकी कविता उसके नग्न प्रणय निवेदनों के कारण शीघ्र ही प्रसिद्ध हो गई। सन् १८६६ में वह जब अपनी "पोयम्स एण्ड बेलेड्स" नामक कृति को लेकर सामने आया तब उसके वासनापूर्ण, कामोत्तेजक, भाव विद्रोही नग्न प्रणय चित्रों ने काव्य जगत् में हलचल मचा दी। इसके काव्यों में "इटिनस" "एटलाएटा इन कैलीडन" और "इरेक्थियास" विशेष प्रसिद्ध हैं।

अल्तमश

गुलाम खानदान का देहली का सुलतान, जिसे कुतुबुद्दीन ने खरीद कर, उसकी योग्यता देख अपना उत्तराधिकारी बना दिया जो कुतुबुद्दीन के बाद भारत का बहुत बड़ा विजेता हुआ। सन् १२३६ में इसका देहान्त हुआ।

अल्तमश कुतुबद्दीन का खरीदा हुआ गुलाम था। तबकात-ई-नासिरी में लिखा है कि "अल्तमश को बेचने के लिए उसका मालिक उसे गजनी में लाया। शाहबुद्दीन गौरी ने उसको खरीदना चाहा मगर उसका मालिक उसके जितने दाम मांगता था वह शाहबुद्दीन देना नहीं चाहता था तब शाहबुद्दीन ने एहलान करवा दिया कि इस गुलाम को गजनी में कोई न खरीदे" तब कुतुबुद्दीन ने बादशाह की आज्ञा को स्वीकार कर उसे देहली में खरीदा।

अल्तमश भी कुतुबद्दीन के समान ही बहादुर और तेजस्वी था। धीरे-धीरे वह भी अपनी बहादुरी और गुणों के बल पर कुतुबद्दीन का प्रिय पात्र हो गया। कुतुबद्दीन ने उसे अपनी लड़की व्याह कर दामाद बना लिया कुतुबद्दीन की तमाम विजय यात्राओं में अल्तमश उसके दाहिने हाथ की तरह उसके साथ रहा।

लाहौर में जब कुतुबद्दीन की मृत्यु हुई उस समय अल्तमश बदायूं में सूबेदार था। कुतुबद्दीन के लड़के आराम शाह के नालायक निकल जाने के कारण सब सरदारों ने अल्तमश को अपना सुलतान बना लिया। कुछ सेनाधिकारियों ने उसका विरोध किया मगर वे दबा दिये गये। शासन सत्ता हाथ में आने पर अल्तमश ने अपनी विजय यात्रा प्रारम्भ की।

सन् १२२६ में उसने रणथम्भोर पर आक्रमण कर उसे जीत लिया। उसके पश्चात् सन् १२२७ में शिवालिक प्रान्त में मण्डोवर पर चढाई कर उसे जीता। इसके बाद अल्तमश ने ग्वालियर के सुप्रसिद्ध और अभेद्य दुर्ग पर चढाई की। इस समय यह किला कछवाहों के हाथ से निकल कर प्रतिहारों के अधिकार में था। सन् १२३२ में अल्तमश

ने इस किले पर घेरा डाला। मालदेव के लड़के मंगलदेव ने लड़ाई शुरू की। ग्यारह महीने तक मुसलमानी सेना इस किले पर घेरा डाले पड़ी रही। अन्त में एक रात को मंगलदेव भाग गया और किला अल्तमश के हाथ में आ गया।

सन् १२३४ में अल्तमश ने मालवा पर चढ़ाई की और किले सहित भेलसा को ले लिया। वहाँ पर १०५ गज ऊँचा भेल स्वामी का विशाल मन्दिर था, अल्तमश ने उसे तोड़ दिया।

भेलिसा से अल्तमश उज्जयिनी की ओर बढ़ा। उज्जैन में महाकाल का जो प्रसिद्ध देवालय था उसे उसने तोड़ दिया और भारत वर्ष के सुप्रसिद्ध न्यायी सम्राट् विक्रमादित्य की मूर्ति को भी उसने तोड़ डाला। वहाँ पर मिली हुई कुछ ताँबे की मूर्तियों और महाकाल की पत्थर की मूर्ति को वह दिल्ली ले गया। इस टूटे हुए महाकाल के मन्दिर को ग्वालियर के राणो जी सिंधिया ने फिर से बनवाया। महाकाल के ऊँचे शिखर वाले देवालय को राणो जी सिंधिया के शेणवी दीवान रामचन्द्र ने अपनी कमाई हुई सारी पूंजी लगा कर बनवाया।

इस विजय यात्रा के सिवाय अल्तमश का दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य्य उसको मालिक कुतुबद्दीन के द्वारा प्रारम्भ की गई कुतुबमीनार को बनवा कर पूरा करना था। कुतुबद्दीन अपने जीवन काल में उसकी सिर्फ एक मंजिल बनवा सका था। अल्तमश ने उस पर तीन मंजिल और बनवा कर तथा गुम्बज छत्री लगवा कर इस महान् कलाकृति को पूरा किया।

सन् १२३६ में इस दुर्दमनीय विजेता को मौत का पैगाम मिला और यह दीन-दुनिया से कूच कर गया।

अल्ताई

रूस के पश्चिमी साइबेरिया में स्थित अल्ताई पर्वत श्रेणियाँ। अल्ताई का अर्थ सुवर्ण पर्वत होता है। इस पर्वत माला में सोने और ताम्बे की कई खदानें हैं। इसके सिवाय अल्ताई की पर्वत मालाओं में खुदाई करने पर कई प्राचीन संस्कृतियों का पता लगा है। रूस का पुरातत्व विभाग इस पर्वत श्रेणी में खुदाई करके प्राचीन इतिहास का पता लगाने में बहुत क्रियाशील है।

इस पर्वतमाला और इसके पश्चिमोत्तर प्रदेश में खुदाई करने पर कई कब्रें मिली हैं जिनसे करासुक नामक एक प्राचीन संस्कृति का पता लगा है जो ई० पू० १२०० से ८०० तक मध्यएशिया के उत्तरापथ में विद्यमान थी।

अल्ताई पर्वतमाला की खुदाई से शक जाति के इतिहास पर भी बहुत प्रकाश पड़ता है।

अल्ताई पर्वतमाला की "पाजीरिक घाटी" पर कई बड़े-बड़े टीले बने हुए हैं जिनकी खुदाई करने के लिए प्रोफेसर रुदेन्को और उनकी पार्टी वहाँ पर पहुँची। इन टीलों के बगल में उन्होंने अपना कैम्प लगाया। पानी से बिलकुल शून्य होने के कारण इस घाटी पर कोई मानव नहीं रहता।

ये टीले वास्तव में प्राचीन युग की कब्रें हैं। इन टीलों के ऊपर छाई हुई मिट्टी की तहों को निकाल देने पर लकड़ी के बने हुए तहखाने दिखलाई देने लगते हैं। तहखानों को खोला जाता है लेकिन वहाँ कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। हर चीज पर बर्फ की मोटी तह जमी हुई दिखलाई पड़ती है। यह निरन्तर जमी रहनेवाली बरफ उन तहखानों और उसके अन्दर रक्खी हुई प्रत्येक चीज को हजारों बरस का समय गुजर जाने पर भी अभी तक सुरक्षित रक्खे हुए हैं।

अल्ताई पर्वत श्रेणी हमेशा बर्फ से ढकी हुई नहीं रहती फिर इन टीलों के नीचे यह अक्षय बरफ कहाँ से आती है, इसकी खोज करने पर पता लगा कि बरफ की ये तहें कृत्रिम रूप से जमाई हुई हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इन टीलों का निर्माण पतझड़ ऋतु में किया गया होगा ताकि नमी और पाला टीलों में प्रवेश कर प्रत्येक चीज को बरफ से ढक दे। गर्मी के दिनों में तहखानों के ऊपर जमाई हुई चट्टानों के कारण धूप उनमें प्रवेश नहीं कर पाती और बरफ के पिघलने की नौबत नहीं आती इस प्रकार यह बरफ सैकड़ों वर्ष बीत जाने पर भी ज्यों की त्यों बनी रहती है।

उस बरफ़ को हटाने के लिए उस पर खौलता हुआ पानी डाला गया तब वह बरफ़ पिघल-पिघल कर हट गई। बरफ़ हटने पर पता लगा कि पुरातत्व विदों का ज्ञान बढ़ाने वाली अनेक बहुमूल्य चीजें वहां पर संग्रहीत है। कसीदागरी से युक्त चमड़े की चीजें, रेशम और फर से बने हुए महिलाओं के वस्त्र और प्राचीन योद्धाओं के शिरस्त्राण इत्यादि। पार्टी की कलाकार वेरा सुन्स्तोवा ने तुरन्त इन चीजों के चित्र बनाना प्रारम्भ कर दिया ताकि चमड़े, फर, रेशम से बनी इन चीजों के सजीव रंगों का रेकार्ड रक्खा जा सके।

क० माइसोवा अपने वर्णन में लिखते हैं कि—"पुरातत्व के इतिहास में ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिलता जहाँ हजारों साल पुरानी चमड़े, रेशम, फर या फैल्ट की चीजें सही सलामत रूप में उपलब्ध हुई हों। मिश्र के शाही समाधि स्थलों में अनेक सुन्दर चीजें मिली थीं लेकिन वहां के महीन कपड़ों, चमड़े तथा लकड़ी की चीजों को जैसे ही बाहर निकाला गया हाथ से छूते ही वे राख का ढेर होगई उनके फोटो भी नहीं लिये जा सके मगर यहां से निकली हुई चीजें आज भी उतनी ही मजबूत और सुन्दर दिखलाई देती हैं मानों वे आज ही बनाई गई हों।

मजबूत देवदारु से बनी शव-पेटिका इतनी भारी थी कि उसे बिना तोड़े बाहर निकालना असम्भव था। उसके तोड़ने पर उसमें एक स्त्री और एक पुरुष के शव का जोड़ा मिला। ये दोनों शव इतनी अच्छी हालत में थे कि ऐसा मालूम होता था मानों हाल ही में दफ़नाये गये हों। ये शव एक शक सैनिक और उसकी पत्नी के थे। सैनिक का रंग सांवला था और पत्नी का रंग गोरा था। पुरुष की छाती और कंधो पर गोदना गुदाया हुआ था इनके सिवा वहाँ पर फेल्ट का एक बहुत बड़ा कार्लीन मिला जिसपर स्मृद्धि की देवी का रंगीन चित्र बना था। एक दूसरा मखमली कालीन भी मिला जो बहुत मूल्यवान था, इस कालीन के नमूने से शोधकों को उस शक योद्धा के दफ़नाने के समय का पता जानने में मदद मिली। इससे पता लगा कि ये शव ईसा पूर्व छठी या पाँचवी सदी के हैं।

कब्र की दीवार के पीछे चौदह उत्तम जाति के घोड़ों के सुन्दर साजों सामान से कसे हुए शव मिले। लकड़ी पर नक्काशी के काम और सीने के काम से सुसज्जित जीनें इनपर कसी हुई थीं। उन दिनों में मृतक स्वामी के साथ उसकी पत्नी, उसके घोड़े जीवित अवस्था में ही दफ़नाने का रिवाज था।

इस प्रकार अलताई की इस पर्वतमाला में टीलों के रूप में बनी हुई इन कब्रों ने आज से ढाई तीन हजार बरस पुरानी सभ्यता के सूत्र इतिहासकारों को भेंट किये हैं जिनसे उस समय की शक संस्कृति, करासुक संस्कृति, मिनूसून संस्कृति, और अन्द्रोनीय संस्कृति की विश्वस्त जानकारी प्राप्त होती है।

अलताफ़ हुसेन 'हाली'

उर्दू-साहित्य के एक सुप्रसिद्ध कवि, जिनका जन्म सन् १८३७ में पानीपत में हुआ।

जहाँगीराबाद के नवाब मुस्तफा खाँ के सम्पर्क में आने से अलताफ़ हुसेन हाली में उर्दू की कविता का प्रेम जाग्रत हुआ और कविता बना-बनाकर वे महाकवि गालिब के पास भेजने लगे। इनकी काव्य-प्रतिभा को देख कर तत्कालीन मुसलिम नेता सर सैयद अहमद ने इन्हें अपनी मित्रमण्डली में शामिल कर लिया।

इनकी कविताओं में मुसद्दस हाली बहुत मशहूर है। यह ग्रन्थ सर सैयदअहमद की कल्पनाओं को साकार रूप देने के लिये लिखा गया था। ६ पंक्तियों वाले इसके छन्दों में इतना ओज और माधुर्य भरा हुआ है कि पढ़ने और सुनने वाले दोनों ही बाग-बाग हो जाते हैं।

इसके अतिरिक्त दीवाने हाली भी इनका एक मशहूर ग्रन्थ है जिसमें इनकी गजलों और रूबाइयों का संग्रह है। मजमूये नज्म-ए हाली में उर्दू की और मजमूये नज्म-ए फारसी में इनकी फारसी कविताओं का संग्रह है।

भाषा की सरलता, भावों की प्रौढ़ता और कविता का बहाव ,ये हाली की प्रमुख विशेषताएँ हैं। उर्दू-साहित्य के इतिहास में महाकवि हाली का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। गद्य-लेखक और आलोचक की दृष्टि से भी आधुनिक उर्दू-साहित्य में 'हाली' मार्ग प्रदर्शक माने जाते हैं। उनकी शायरी के कुछ नमूने इस प्रकार हैं—

बुरा शेर कहने की गर कुछ सजा है ,
अबस झूठ बकना अगर नारवा है ।
गुनहगार वाँ छूट जायेंगे सारे ,
जहन्नुम को भर देंगे शायर हमारे !

× × ×

कहते हैं जिसे जन्नत वह एक झलक है तेरी ,
सब वाइजों की बाकी रंगी बयानियाँ हैं ।

× × ×

शायरी मर चुकी अब जिन्दा न होगी यारों ।
याद कर करके उसे जी न कुढ़ाना हरगिज ॥

अल्तूनिया

गुलाम वंश की रजिया बेगम के शासन काल में सरहिन्द का शासक अल्तूनिया । जिसने रजिया बेगम की सल्तनत के खिलाफ सबसे पहले विद्रोह का झण्डा उठाया ।

रजिया बेगम एक बुद्धिमती, प्रतिभाशाली, न्यायप्रिय और योग्य शासिका थी । राज्य की रक्षा करने के सम्बन्ध में वह बहादुर भी थी । मगर स्त्री सुलभ चंचलता, उद्दाम वासना और यौवन के आवेगों से वह बची हुई नहीं थी । उसकी यह नारी सुलभ कमजोरी उसके शासन के क्षेत्र में बड़ी बाधा बनकर खड़ी हो गई । इस कमजोरी से पराभूत होकर वह अपने अस्तबल के रक्षक एक हब्शी गुलाम जमालुद्दीन याकूत से प्रेम करने लगी । इस हीन व्यक्ति के साथ प्रेम करने के कारण उसके सरदार उसके खिलाफ हो गये ।

इनमें सबसे पहले सरहिन्द के शासक अल्तूनिया ने उसके विरुद्ध बगावत का झण्डा खड़ा किया । उस बगावत को दबाने के लिये रजिया अपनी सेना के साथ राजधानी से चल पड़ी । जब वह तबरहिन्द पहुंची तो तुर्की अमीरों ने उसके प्रेमी गुलाम याकूत को मार डाला और उसे किले में बन्दी बनाकर रख दिया ।

मगर ऐसे विकट समय में बेगम रजिया ने अपना प्रेम पूर्ण कटाक्ष अल्तूनिया पर फेंक कर उसे अपने वश में कर लिया । उसने रजिया के खोये हुए साम्राज्य को वापस पाने के लिये दिल्ली पर आक्रमण किया मगर उसमें उसे सफलता नहीं मिली । उसके साथियों ने उसके साथ दगा किया । वह रजिया बेगम सहित विद्रोही हिन्दुओं के हाथ में पड़ गया जिन्होंने सन् १२४० में उन दोनों को मार डाला ।

अल-नाबिगा

धुबियान का रहने वाला अरबी कवि । जो इस्लाम के उदय से पूर्व पचास वर्ष तक सीरिया के गस्सानी दरबार में रहा था । उसकी कविता पर उस दरबार की शैली का खूब असर पड़ा । वह अलहीरा के ईरान प्रभावित दरबार में भी कुछ समय तक रहा उसकी कविता में दोनों दरबारों का चित्रण है ।

अलपतगीन

खुरासान का प्रसिद्ध सेनापति जिसने गजनी वंश के संस्थापक सुबुक्तगीन को एक गुलाम के रूपमें खरीदा था ।

अलपतगीन को सामानी वंश के शासक इस्माइल ने एक गुलाम के रूप में खरीदा था । सामानी वंश के छठे सम्राट अबुल मलिक के समय यह प्रतिहारों का अफसर था । सामानी सम्राट नूह के जमाने में यह सिपहसालार बना दिया गया । जब नूह की मृत्यु हुई तो उसका पुत्र मन्सूर सामानी वंश का सम्राट बना । अल्पतगीन और सम्राट मंसूर के सम्बन्ध अच्छे नहीं थे । एक बार सम्राट ने उसे धोखे से मरवा देने के लिए दरगाह में बुलाया मगर अलपतगीन को इस षड्यन्त्र का भेद मालूम हो गया । तब उसके अमीरों ने अलपतगीन को बादशाह से बदला लेने को उकसाया । मगर जबाब में अलपतगीन ने कहा कि यदि मैं बादशाह से बदला लेने का प्रयत्न करूँ तो दुनिया क्या कहेगी ? जिस अलपतगीन ने ६० वर्षों तक सारे सामानी साम्राज्य को सम्हाले रक्खा उसी ने ८० वर्ष की आखिरी उम्र में उसी वंश के खिलाफ बगावत करके बादशाह बनने का प्रयत्न किया । मैंने सारी उम्र वफादारी

और नेकनामी में गुजारी है अब इस आखिरी उम्र में यह काम मुझसे नहीं होगा। गलती और गुनाह चाहे किसी का हो मगर जब तक मैं खुरासान में हूँ तब तक यह बात नहीं होगी। इसलिए मेरे लिए अब यही अच्छा है कि खुरासान से बाहर चला जाऊँ। जब तक मेरे हाथ में तलवार है मुझे रोटी की कोई कमी नहीं पड़ सकती। इसलिए मेरे अमीर, मेरी सेना और सब नुमाइन्दे बादशाह की सेवा में चले जाँय और उसकी सेवा में रहें। मैं अब हिन्दुस्तान जाऊँगा और वहाँ काफिरों के खिलाफ धर्म युद्ध और जिहाद में भाग लूँगा। अगर मारा जाऊँगा तो शहीद होऊँगा और यदि जीता रहा तो काफिरों को इसलाम के झण्डे के नीचे लाऊँगा।

निजामुल मुल्क ने अपने सियासतनामे में लिखा है कि पैंतीस वर्ष की उम्र में उसने खुरासान की सिपहसालारी पाई वह बड़ा ही इमानदार, विश्वासपात्र, बहादुर, होशियार और ईश्वर से डरने वाला था। वह कई बरसों तक खुरासान का गवर्नर भी रहा। उसके गुलामों में सुबुक्तगीन नामक एक गुलाम भी था जो आगे जाकर सुप्रसिद्ध गजनी वंश का संस्थापक हुआ।

खुरासान से निकल कर अलपतगीन बामियान, और काबुल जीतता हुआ गजनी पहुँचा। गजनी के राजा लोपक को उसने हराया और फिर वह गजनी में ही रहने लगा। गजनी से वह हिन्दुस्तान गया और वहाँ लूट मचाई वहाँ से लूट का भारी सामान लेकर जब वापस गजनी गया तो इस विजेता के झण्डे के नीचे बहुत से लड़ाकू मुसलिम एकत्र हो गये।

अलपतगीन के कोई सन्तान न होने से उसने अपने प्रिय गुलाम सुबुक्तगीन को अपने शासन का उत्तराधिकारी बनाया। अलपतगीन की मृत्यु सन् ९६३ में हुई।

अल्प अरसलन

(सन् १०६३ से १०७३)

सल्जुकी तुर्क सम्राट् जिसका साम्राज्य वक्षु नदी से फ़ुरात नदी तक और कास्पियन समुद्र के तट से फारस की खाड़ी तक के विशाल क्षेत्र में फैला हुआ था।

ईरान में सामानी साम्राज्य का अन्त होने पर उसके साम्राज्य को कराखानी और गजनवियों ने आपस में बाँट लिया। मगर थोड़े ही दिनों बाद गजनवियों की शक्ति को तुर्कमान सल्जुकी नेता तुगरल खान सल्जुकी ने १०३६ ई० में गजनी नेता मसऊद को भारी हार देकर नष्ट कर दिया और युद्ध क्षेत्र में ही सिंहासनारोहण किया था।

इसी तुगरल खान की मृत्यु के पश्चात् उसका भतीजा अल्प अरसलन इस विशाल साम्राज्य का स्वामी बना। इसने पुराने वजीर को हटाकर राजनीति शास्त्र के आलिम निजामुलमुल्क को अपना वजीर बनाया। निजामुलमुल्क बड़ा न्यायप्रिय, विचार सहिष्णु और साहित्यानुरागी था।

अल्प अरसलन के समय में सलजुकी तुर्कों ने पहले-पहल रोमन राज्य पर आक्रमण किया। इस आक्रमण में रोम के आधीन आरमेनिया का एक भाग उजाड़ हो गया।

इस यात्रा से लौटने के बाद अल्प अरसलन ने वक्षु नदी के पारवर्ती क्षेत्रों को जीतने का विचार किया। वह दो लाख सेना लेकर सन् १०७२ में इस विजय-यात्रा पर निकला। मगर उसे रास्ते ही में वेरजेम के किलेदार ने मारडाला।

अल्फ्रेड महान्

इंग्लैण्ड का एक पराक्रमी, विद्वान और महान राजा। वेसेक्स के राजा एगबर्ट का नाती। जिसका समय सन् ८७१ के करीब है।

जिस समय अल्फ्रेड गद्दी पर बैठा उस समय इंग्लैण्ड पर लगातार डेन जाति के आक्रमण हो रहे थे और उन्होंने इंग्लैण्ड के नार्दब्रिया, मर्सिया, ईस्ट एंगलिया इत्यादि स्थानों पर अधिकार कर लिया था। सन् ८७१ तक सिर्फ वेसेक्स को छोड़कर इंग्लैण्ड के अधिकांश भाग पर उनका अधिकार हो गया था।

अल्फ्रेड महान् ने आक्रामक डेन जाति का बड़ी वीरता से करीब सात वर्षों तक मुकाबिला किया और अन्त में सन् ८७८ में उसने डेनों को हरा दिया और उनसे एक सम्मान पूर्ण संधि कर ली जिसे "वेडमोर की संधि" कहते हैं।

उस समय विदेशी शत्रुओं का मुकाबिला करने के लिए इंग्लैण्ड के पास अच्छी जल सेना नहीं थी। अल्फ्रेड ने बड़े-बड़े जहाज बनवाकर एक मजबूत जल सेना तैय्यार की। उसने एक राष्ट्रीय सेना "मिलिशिया" के नाम से तैय्यार की। स्थान-स्थान पर किले बनाकर समुद्र की तट बन्दी कर दी और वहाँ सेना रख दी।

अल्फ्रेड महान् का नाम अंग्रेजी भाषा और साहित्य के विकास में भी बड़े आदर के साथ लिया जाता है। उसने "क्रानिकल आफ विन्चेस्टर" नामक एक राष्ट्रीय इतिहास और लैटिन इंग्लिश शब्दकोष तैय्यार करवाया था।

अल्फ्रेड इब्सन

डेनमार्क का एक साहित्यकार जिसका जन्म सन् १८५२ में हुआ। इसकी कृतियों में उसका नाटक 'मैफिस्टों फेलिक्स' तथा उसके दो तीन कविता संग्रह प्रसिद्ध हैं।

अल्फ्रेड-डी-मिसे

उन्नीसवीं सदी का फ्रेञ्च कवि। यह एक प्रयोगवादी कवि था। इसके लिरिकों में विविधता प्रचुर मात्रा में है इसकी ध्वनि व्यंगात्मक और विनोदशील है। इसका प्रसिद्ध काव्य "नाईट्स" है। इस संग्रह की कविताएँ हृदयस्पर्शी हैं। इसके चरित्र चित्रण बड़ी बारीकी और स्वाभाविकता से हुए हैं।

अल्फ्रेड-डी-विनी

उन्नीसवीं सदी का फ्रेञ्च साहित्यकार और कवि। इसकी कविताओं में चिन्तन की प्रतिभा और शालीनता के दर्शन होते हैं। इसकी कविताएँ प्रतीकवादी हैं जिनमें इस कवि की चिन्तन-शक्ति और काव्यकला उद्द्योतित होती है।

अल्फोंज-दोदे
(AlPhonse-Dawdet)

फ्रेंच भाषा का मशहूर कहानीकार, जिसने फ्रेञ्च कहानी साहित्य में अपनी अद्भुत क्षमता का परिचय दिया। इसकी कहानियों में उत्कृष्ट दर्जे की सुरुचि, भावुकता का सम्मोहन और सूक्ष्म व्यङ्ग की झलक पाई जाती है। स्थान-स्थान पर हास्य रस की धाराएँ छूटती हैं। इसने कुछ उपन्यास भी लिखे हैं मगर उन्होंने इसकी कहानियों की तरह अधिक प्रसिद्धि प्राप्त नहीं की। उन्नीसवीं सदी के मध्यकाल में यह हुआ।

अलफ्रेड टेनिसन

अंग्रेजी साहित्य का विक्टोरिया कालीन महाकवि। जिसका समय सन् १८३२ से १८७५ तक है।

इंग्लैण्ड में विक्टोरिया काल में टैनीसन का नाम वहाँ के काव्य-जगत में सब से प्रथम आता है। उत्कृष्ट शब्द रचना, और भावों के प्रवाह और ध्वनियों के उपयोग में वह अंग्रेजी साहित्य में बेजोड़ है।

टैनीसन की छोटी-छोटी कविताएँ जैसे "दी पैलेस ऑफ आर्ट" "दी ड्रीम ऑफ फेअर वीमेन" इंग्लैण्ड में बड़े आदर से पढ़ी जाती हैं। उसके काव्य-ग्रन्थों में "इडिल्स ऑफ दी किंग" और "इन मेमोरियम" बहुत प्रसिद्ध और सफल काव्य माने जाते हैं।

"इन मेमोरियम" काव्य उसने अपने मित्र आर्थर हैलम की मृत्यु पर उसकी स्मृति में लिखा है। वास्तव में उसकी यह कृति उस युग की सर्वश्रेष्ठ कृति होगई है।

टैनीसन एक स्वप्नमयी सृष्टि का महान् कवि था, कविता करते समय उसकी दृष्टि से वास्तविक दुनिया ओझल हो जाती थी और वह स्वप्नलोक की दुनिया में विचरण करने लगता था उसकी कल्पनाएँ शत, सहस्त्रमुखी होकर उसकी कविता में प्रवाहित हुई हैं। वह प्रत्यक्षलोक का नहीं कल्पना लोक का कवि था।

इंग्लैण्ड के काव्य क्षेत्र में उसका अपना एक निश्चित स्थान है, वह पढ़ा भी बहुत गया है और उसका अनुकरण भी काफी हुआ है।

अल्फ्रेड हॉसमेन

बीसवीं सदी का प्रसिद्ध अंग्रेज कवि, केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में लैटिन भाषा का प्रोफेसर-सन् १८५६ से १९३६ तक।

अल्फ्रेड हॉसमेन बीसवीं सदी के प्रमुख अंग्रेज कवियों

में से एक है "ओपशायर लैंड" और "लास्ट पोयम्स" उसके प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थों के द्वारा साहित्य क्षेत्र में उसने काफी ख्याति उपार्जन की है। मनुष्य हृदय में उठने वाले आवेगों का उसने बड़ी सजीव शैली में वर्णन किया है। उसने पुराने शब्दों के नवीन प्रयोग किये।

अल्फ्रेडो-ओरियानी

उन्नीसवीं शताब्दी में इटली का सबसे समर्थ यथार्थवादी (Realistic) उपन्यासकार। उसका प्रसिद्ध उपन्यास "जैलेसी" सम्भवतः उस दिशाका प्रतीक होगया है।

अल्फ्रिक

लैटिन इंग्लिश कोष का सर्वप्रथम रचयिता। अल्फ्रिक एक ईसाई धर्म गुरु था। इसके बाइबिल सम्बन्धी प्रवचन बड़े सुन्दर होते थे।

अल-फ़ाराबी

इस्लामी जगत् का महान् दार्शनिक, विद्वान और संगीत शास्त्री।

सामानी-राजवंश के काल में बगदाद ने कई साहित्यकार और दार्शनिक पैदा किये थे। उनमें अल-फ़ाराबी का नाम बहुत ऊँचे स्थान पर है। कहा जाता है कि अल-फ़राबी सत्रह भाषाओं का पण्डित था। तुर्की, फ़ारसी, अरबी, सुरियानी, इब्रानी, और यूनानी तो उसकी मातृभाषा की तरह थी। शिक्षा समाप्त करने के बाद फ़राबी बहुत समय तक बगदाद में रहा। वह शान्त और एकान्त जीवन को बहुत पसन्द करता था। उसके ऊपर यूनानी सोफिस्टों और बौद्ध भिक्षुओं के जीवन का बहुत प्रभाव पड़ा था। वह स्वयं सूफियों की पोशाक में रहता था।

यह बात स्पष्ट है कि यूरोप ने यूनान के महान् दार्शनिक सुकरात, प्लेटो और अरस्तू के साथ सम्बन्ध स्थापित करने और प्रेरणा लेने में अरबी विद्वानों के उपकार को मुक्त कंठ से स्वीकार किया है। यदि अरबी विद्वानों और विचारकों ने अपनी कलम न उठाई होती तो शायद हम यूनान के गम्भीर दर्शन को आज पा भी नहीं सकते थे। यूरोप के पुनर्जागरण में यूनान के प्राचीन दार्शनिकों का बहुत बड़ा हाथ है। अल-फ़ाराबी अरस्तू के ग्रन्थों का महान् भाष्यकार था उसके भाष्य और ग्रन्थ इतने महत्वपूर्ण समझे गये कि विद्वानों ने उसे "द्वितीय अरस्तू" का नाम दिया। अरस्तू को पुनर्जीवित करने में अल-फ़राबी की सेवाएं अमूल्य हैं। फ़राबी ने अपनी खोजों से अरस्तू के ग्रन्थों का जो संख्या क्रम निश्चित किया था उसे आज भी वैसा ही माना जाता है।

अलबानिया

बालकन प्रदेश का युगोस्लाविया, ग्रीस और एड्रियाटिक समुद्र से घिरा हुआ एक छोटा देश। जिसका क्षेत्रफल १०,६२९ वर्गमील है। वहाँ की जनसंख्या १९५७ में ११,५०००० थी। इसकी राजधानी तिराना है। यहाँ का प्रधान धर्म इसलाम और उससे कम रोमन केथोलिक है। इसका राष्ट्रीय झण्डा लाल रंग का है जिस पर दो काली पट्टियाँ और पाँच सितारों के निशान रहते हैं।

अलबानिया इतिहास में सबसे पहले ईसा की चौथी और पाँचवी शताब्दी में गाथ जाति—जो कि बाद में जर्मन जाति के नाम से प्रसिद्ध हुई—के अधिकार में था। छठी सदी में यह रोमन साम्राज्य का एक अङ्ग था। सातवीं सदी से चौदहवीं सदी तक सर्बियन लोगों ने इस छोटे देश पर शासन किया। पन्द्रहवीं सदी से बीसवीं सदी के प्रारम्भ तक यह टर्की के आधीन रहा। प्रथम महायुद्ध के समय इसमें शासन के खिलाफ़ विद्रोह भड़क उठा और सन् १९२० में यह आजाद हो गया। सन् १९२८ में यहाँ पर किंग जोग का शासन हुआ। दूसरे महायुद्ध में जर्मनी और इटाली ने इस पर आक्रमण करके अपने अधिकार में ले लिया उसके बाद सन् १९४६ में यहाँ पर गणतंत्र की घोषणा की गई। जनरल एनवर होदजा यहाँ की प्रेसिडियम ऑफ़ पीपल्स एसेम्बली के चेअरमेन और कमाण्डर इनचीफ है और मंत्रिमण्डल के अध्यक्ष कर्नल जनरल महमत शेहू है।

अलबानिया योरप का एक पिछड़ा हुआ देश है वह कृषक और पशु पालक लोगों का देश है। यह देश सोवियट गुट के अन्दर है। यहाँ की मुख्य पैदावार तम्बाकू, इमारती लकड़ी, ऊन, फ़र, जैतून का तैल, मछली इत्यादि है। यहाँ के जंगलों में इमारती लकड़ी बहुत अच्छी होती है। दूध देने वाले और ऊन पैदा करने वाले पशु यहाँ काफीतादाद में है।

अलबर्ट आइन्स्टीन

विश्व का एक महान् वैज्ञानिक, परमाणु शक्ति का आविष्कारक, अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार नोवल प्राइज के विजेता, जन्म सन् १८७६ मृत्यु सन् १६५५।

विश्व के महान् वैज्ञानिक अल्बर्ट आइन्स्टीन का जन्म जर्मनी के उलम नामक स्थान पर एक यहूदी परिवार में सन् १८७६ में हुआ था। बचपन से ही आइन्स्टीन को विज्ञान तथा संगीत में बड़ी रुचि थी।

आइन्स्टीन के पिता इनको इलेक्ट्रिकल इन्जीनियरिंग के व्यवसाय में लगाना चाहते थे मगर आइन्स्टीन को व्यवसायिक क्षेत्र में दिलचस्पी नहीं थी तब इनके पिता ने इन्हें गणित का विशेष अध्ययन करने की अनुमति प्रदान की। ज्यूरिच पोलिटेकनीक एकेडेमी से उन्होंने गणित में एण्ट्रेन्स की परीक्षा पास की।

मगर यहूदी परिवार में जन्म लेने के कारण उन्हें जर्मनी में कहीं भी नौकरी नहीं मिली। कुछ समय पश्चात् उन्हें बर्न में स्वीस पेटेण्ट आफिस में क्लर्क की नौकरी मिल गई। वहाँ पर वे अवकाश के समय में स्थान और समय सम्बन्धी प्रश्नों का हल निकाला करते थे। एक दिन जब उन्होंने अपने प्रश्नों का सही-सही हल निकाल लिया तो तो वे उस हल को लेकर एक पत्र सम्पादक के यहां पहुँचे। सम्पादक ने उस हल को अपने पत्र में प्रकाशित कर दिया और उसी दिन से आइन्स्टीन की गणना वैज्ञानिकों में होने लगी। उस समय उनकी आयु २६ साल की थी।

आइन्स्टीन ने सबसे पहले इस बात का प्रतिपादन किया कि विश्व का कोई भी भाग प्रत्येक व्यक्ति को एक समान नहीं दिखलाई पड़ता। पैदल चलने वाला, मोटर में चलने वाला और वायुयान में उड़ने वाला हम तीनों के अनुभव विश्व के विशिष्ट भूभाग के प्रति एक समान नहीं होते प्रत्येक अनुभव उस अनुभवकर्त्ता की परिस्थिति के अनुसार सापेक्ष होता है।

आइजकन्यूटन के इस सिद्धान्त का कि "दुनिया की प्रत्येक वस्तु स्वाभाविक रूप से स्थिर होने की ओर प्रवृत है" आइन्स्टीन ने खण्डन किया। उन्होंने सिद्ध किया कि वास्तव में प्रत्येक वस्तु गतिमय अवस्था में (State of motion) में रहती है। परन्तु समस्त गतिमय वस्तुओं के वेग (Velocitics) परस्पर सापेक्ष्य होते हैं। चल वस्तुओं में केवल प्रकाश की गति ही अपरिवर्त्तनशील अर्थात् १,८६००० मील प्रति सेकण्ड रहती है। अन्य चल वस्तुओं की गति, दिशा और आकार सभी सापेक्ष्य रहते हैं।

सन् १६०५ में उनके द्वारा प्रस्तुत किया गया सापेक्ष्य वाद का सिद्धान्त (Theory of Relativity) विश्व के वैज्ञानिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है।

अलबर्ट आइन्स्टीन के जीवन की प्रमुख घटनाएँ इस प्रकार हैं—

(१) सन् १६०५-६ में उन्होंने क्वाण्टम थिओरी को विकसित किया।

(२) सन् १९१३ में वे बर्लिन में केसर विलियम फिजिकल इन्स्टीट्यूट के संचालक हुए और प्रशियन साइन्स एकेडेमी के सदस्य निर्वाचित किये गये।

(३) सन् १६२१ में ब्रिटिश रॉयल सोसायटी के सदस्य निर्वाचित हुए।

(४) सन् १६२२ में उन्हें भौतिक शास्त्र पर अन्तर्राष्ट्रीय नोवेल प्राइज प्राप्त हुआ।

(५) सन् १६३३ में यहूदी होने के कारण जर्मनी से निर्वासित होकर प्रिस्टन विश्वविद्यालय न्यूजर्सी में पहुँचे।

(६) सन् १६३६ में इन्होंने प्रेसिडेण्ट रूजवेल्ट को परमाणु शक्ति का सैनिक-शस्त्र के रूप में प्रयोग न करने की चेतावनी दी।

(७) सन् १६४० में ये अमेरिका के नागरिक और सन् १६४५ में वर्ल्ड गवर्नमेण्ट के एडवोकेट बने।

(८) अपने अन्तिम दिनों का उपयोग इन्होंने यूनिफाईड फील्ड थिओरी (Unified Field Theory)

के विकास में लगाये। सन् १९५५ में इनका देहान्त हो गया।

डॉ० आइन्स्टीन द्वारा अनुसन्धान की गई बातें संक्षेप में इस प्रकार हैं।

(१) वस्तुओं की निरपेक्ष गति नहीं नापी जा सकती।

(२) गति के परिणाम स्वरूप वस्तुओं के भार में वृद्धि हो जाती है। गर्म करने पर वस्तुओं का भार बढ़ जाता है। इससे यह मालूम होता है कि शक्ति में भार रहता है।

(३) वस्तु को शक्ति के रूप में और शक्ति को वस्तु के रूप में परिवर्त्तित किया जा सकता है।

(४) हमें जो कुछ दृष्टिगोचर होता है या हमें जो कुछ ज्ञात है। वह हमारी स्थिति के कारण है यदि विश्व को बाहर से देखें तो हमें कुछ और ही दिखाई देगा।

अलबर्ट अब्राहम माइकलसन

(Albert Abraham Michelson)

जर्मनी का एक वैज्ञानिक जिसने इण्टर फेरो मीटर (Inter Ferometer) नामक प्रकाश की तरंग लम्बाई नापने के यंत्र का आविष्कार किया जो इसी के नाम पर मशहूर हुआ।

ईथर के अनुसार पृथ्वी की गति को निकालने की कोशिश इसका एक महत्वपूर्ण प्रयोग है। यह प्रयोग इसने सन् १८८० में बर्लिन में किया मगर परिणाम कुछ नहीं निकला। इसके द्वारा आविष्कृत इण्टर फेरो मीटर से जिसका नाम इसी के नाम पर रखा गया है प्रकाश तरंग की लम्बाई बहुत यथार्थता के साथ निकाली जा सकती है। सन् १८९३ में इसने एक प्रमाणित मीटर की एक लम्बाई पर लाल केडमियम (Cadmium) प्रकाश की तरंग लम्बाई का मान निकाला। प्रकाश के वेग को निकालने की विधियों का सुधार करने में यह अपने जीवन के अन्तिम दिनों तक लगा रहा। एशलान स्पेक्ट्रस्कोप (Echelon Spectroscope) विश्रेणी वर्ण दर्शक नामक एक उच्च सूक्ष्मदर्शितावाला स्पेक्ट्रस्कोप भी इसी की वजह से प्रकाश में आया। इसने भौतिक विज्ञान पर संसार का अन्तर्राष्ट्रीय नोबल प्राइज प्राप्त किया। लन्दन की रॉयल सोसायटी का कोपल मेडल भी इसे प्राप्त हुआ।

अल्फोंजो मर्सीनेज तोलेदो

स्पेन के तालावेरा नामक चर्च का प्रधान पादरी जो साहित्यकार भी था। पादरी होते हुए भी इसकी वृतियों में यौन-शृंगार का खुला वर्णन हुआ है। सुन्दर शब्द योजना के अन्दर उसने वेश्याओं की चपलता और धूर्तता का वर्णन किया है। इसका समय सन् १३९८ से १४७० तक है।

अल-बलाधुरी

एक ईरानी इतिहास लेखक जो अरबी भाषा में लिखता था। इसका ग्रन्थ फुतूह-अल-बुल्दान मुस्लिम राज्य के मूल का निरूपण करनेवाला ग्रन्थ है।

अल-बदी

अब्बासी खलीफा "इब्न-अल-मुहताज" द्वारा लिखित काव्य और अलंकारों का निरूपण करनेवाला अरबी ग्रन्थ जिसमें अरबी-आदर्शों के आधार पर अलंकार के सिद्धान्त बनाये गये हैं। इस ग्रन्थ का लेखक सुलतान केवल एक दिन के लिए सुलतान बना था। दूसरे ही दिन उसकी हत्या कर दी गई। इसकी हत्या सन् ९०८ में हुई।

अलबर्ट

जर्मनी की एक रियासत सेक्सकोवर्ग का राजकुमार अलबर्ट जिसके साथ सन् १८४० में इंग्लैण्ड की महारानी विक्टोरिया ने अपना विवाह किया।

अल्बर्ट चतुर, दूरदर्शी और मिलनसार व्यक्ति था। इसलिये उसके प्रति सब लोगों के हृदयों में प्रेम-भाव था। विवाह के इक्कीस वर्ष बाद सन् १८६१ में उसकी मृत्यु हो गई। इसकी मृत्यु से सब लोगों को बड़ा दुःख हुआ।

अलमक्विस्त
(Alm Qwist)

स्वीडन का एक प्रसिद्ध उपन्यासकार जिसने फ्रेञ्च उदार दलवादी आन्दोलन से प्रभावित हो श्रमिक आन्दोलन के पक्ष में कई निबन्ध और कहानियाँ लिखीं। यह अपने समय का सर्वोत्तम उपन्यासकार होने के साथ-साथ नाटककार भी था। यथार्थवादी साहित्य का यह प्रसिद्ध लेखक था।

अल्बि

फ्रान्स का एक नगर जहाँ पर ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी में ईसाई पादरियों के वैभव, विलास और दुराचार-पूर्ण जीवन के विरुद्ध विद्रोह की भावना का जन्म हुआ उन दिनों इसको नास्तिकता की भावना कहते थे। इस प्रकार की भावनाओं के प्रतिनिधि अपने आपको कथारि (श्रेष्ठ) कहते थे। सर्व साधारण में ये अल्बिजियन्स के नाम से प्रसिद्ध थे। ऐसे लोगों को दबाने के लिए उस समय के धर्माधिकारियों और शासकों ने बड़े क्रूर उपायों से काम लिया था।

अल्बर्ट्स मेगनस

तेरहवीं सदी में अरस्तू के ग्रन्थों का प्रसिद्ध टीकाकार। महात्मा डोमिनिस का अनुयायी होने के कारण यह डोमिनिकन कहलाता था।

इस काल में अरस्तू के साहित्य पर लोगों की बहुत श्रद्धा हो गई थी। सब लोग उसे दार्शनिक तत्ववेत्ता कहा करते थे। उस समय के विद्वानों का मत था परमेश्वर ने अरस्तू को इस योग्य बनाया कि वह प्रत्येक विषय और शास्त्र पर अन्तिम सिद्धान्त लिख सकता था। अल्बर्ट्स मैगनस, तथा टामस आक्विनस ने बिना किसी संकोच के इसके सम्पूर्ण ग्रन्थों पर टीका की थी।

अल-बुस्तानी

अरबी साहित्य के इतिहास का लेखक जिसने "अल-मराहिल" के नाम से अरबी साहित्य के इतिहास को तीन खण्डों में प्रकाशित किया।

अलमिडा (Almeide)

सन् १५०५ ई० में भारतीय समुद्रतट पर पुर्तगाली सरकार का पहला गवर्नर जिसने पुर्तगालियों की सुरक्षा के लिये कई किले बनवाये।

अलबुकर्क (Albuquerque)

सन् १५०६ में पुर्तगाली गवर्नर अलमिडा के वापस जाने के बाद पुर्तगाल सरकार का नवीन गवर्नर अलबुकर्क।

अलबुकर्क एक कुशल सैनिक और निपुण शासक था। उसके समय में भारतवर्ष में पुर्तगाल की शक्ति अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई थी। भारत के अन्दर पुर्त्तगाली शक्ति को मजबूत बनाने और भारत के विदेशी व्यापार पर पुर्तगाल का एकाधिपत्य स्थापित करने के सम्बन्ध में उसने बहुत प्रयत्न किये। सन् १५१० में उसने गोवा पर अधिकार कर लिया और एक वर्ष के बाद ओर्मुज को भी जीत लिया। उसने अदन के बन्दरगाह पर भी अपना प्रभाव कायम कर लिया और कुछ समय के पश्चात् सकोत्रा पर भी अपना अधिकार कर लिया। जिसके परिणाम स्वरूप पूर्व और पश्चिम के अनेक व्यापारिक केन्द्रों पर पुर्तगालियों का अधिकार हो गया। लंका में मनार, कोलम्बो और अफ्रीका में सोफाला तथा मोजाम्बिक और पूर्व में अम्बोयना पुर्तगालियों के मुख्य व्यापारिक केन्द्र थे।

अलबुकर्क ने भारत वर्ष में ईसाई धर्म के प्रचार का भी प्रयत्न किया। उसने पुर्तगाल और भारत के व्यक्तियों के बीच में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने की भी कोशिश की। मगर इन प्रयत्नों में उसे सफलता नहीं मिली और भारतीय जनता उससे रुष्ट हो गई।

अल-मुहासिबी

सुन्नी सम्प्रदाय का रहस्यवादी सूफी विद्वान जिसने "रिआयह-लि-हकूक इलाह" नामक ग्रन्थ लिखा। यह दर्शक शास्त्र का विद्वान था इसकी मृत्यु सन् ८५७ में हुई।

अलबेरूनी

इतिहास प्रसिद्ध अरबी यात्री और इतिहास लेखक (सन् १०३०)

प्रसिद्ध इतिहास लेखक अलबेरूनी ख्वारेजम का रहने वाला मुसलमान था। ख्वारेज्म को जीतने के बाद महमूद गजनी दूसरे कैदियों के साथ अलबेरूनी को भी गजनी ले आया। अलबेरूनी गणित और ज्योतिषशास्त्र का बड़ा विद्वान था। अरबी लोगों को गणित और फलित ज्योतिष का जो ज्ञान ग्रीक लोगों से प्राप्त हुआ था उसका भी अलबेरूनी ने पूर्ण अध्ययन किया था। भारत वर्ष में आने पर हिन्दू ज्योतिष भी उसने शौकिया सीख लिया। मध्य-काल की भारतवर्ष की सामान्य व्यवस्था के विवेचन में अलबेरूनी का विवेचन बड़ा प्रमाणिक है। क्योंकि उसने हिन्दुओं के शास्त्र, दर्शन, इतिहास इत्यादि अनेक विषयों का ज्ञान प्राप्त कर उसे लेखबद्ध किया है।

भारत के मध्यकाल अर्थात् सन् १००० से १२०० ई० तक का इतिहास जानने के लिए अलबेरूनी की "इण्डिया" (हिन्दुस्तान) नामक पुस्तक बहुत उपयोगी है। जिस प्रकार हिन्दूकाल के पहले विभाग अर्थात् सन् ६०० से ८०० तक का इतिहास जानने के लिए चीनी यात्री हुएन सांग का वर्णन बहुत उपयोगी है उसी प्रकार सन् १००० से १२०० ई० तक के लिए अलबेरूनी का भारत वृत्तान्त भी उतना ही उपयोगी है।

दोनों ही लेखक विदेशी थे। दोनों ने हिन्दुस्तान में रह कर संस्कृत का ज्ञान प्राप्त किया था। दोनों ने जो कुछ लिखा ऐतिहासिक और आलोचनात्मक दृष्टि से लिखा। मुसलमान होते हुए भी अलबेरूनी की दृष्टि निष्पक्ष और स्पष्ट दिखाई देती है। हिन्दू लोगों के विषय में तथा उनके धर्म, संस्कृति या दर्शन के प्रति उसने कहीं भी निरादर का भाव प्रकट नहीं किया।

अलबेरूनी ने अपने ग्रन्थ में सारे भारत की भौगोलिक स्थिति का बड़ा रोचक वर्णन किया है जिससे उस समय की स्थिति पर बड़ा प्रकाश पड़ता है—

इस भौगोलिक वर्णन में उसने कन्नौज को केन्द्र माना है। क्योंकि उसके आने के समय यद्यपि यह नगर महमूद गजनवी के आक्रमण से उजड़ चुका था मगर उसके कुछ पहले ही यह करीब सारे भारत की सभ्यता का केन्द्र था। सम्राट् हर्ष के समय से ही यह साम्राज्य की राजधानी थी। परिणामतः चार सौ बरसों के लगातार वैभव से यह नगर हिन्दू संस्कृति, विद्वता और कला का केन्द्र बन गया था। चारों ओर से वहाँ विद्वान, धनवान और बहादुर लोग आकर इकट्ठे हो गये थे। भारतीय लेखक राजशेखर ने भी भारत का भौगोलिक वर्णन करते हुए कन्नौज को ही केन्द्र माना है। ऐसी स्थिति में अगर अलबेरूनी ने कन्नौज को केन्द्र मानते हुए भारत का भौगोलिक वर्णन किया तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

अलबेरूनी लिखता है कि—"कन्नौज गंगा के पश्चिमी किनारे पर बसा हुआ है मगर इस समय उजड़ा हुआ है। आज-कल राजधानी गंगा के पूर्व में एक मंजिल पर "बारी" में है। इसके बाद अलबेरूनी ने प्रयाग के गंगा-यमुना संगम तथा वहां के "अक्षय वट" का उल्लेख किया है। प्रयाग से दक्षिण की ओर समुद्र के किनारे तक के मुख्य नगरों का वर्णन अलबेरूनी ने दिया है और लिखा है कि "अन्त में दारूर देश के जोर राजा का राज्य है।" इसका मतलब द्राविड़ देश के चोल साम्राज्य से है जिसके अधिकार में उस समय कांची, मलय, कोकण और मद्रास प्रान्त का अधिकांश भाग था।

इसके बाद अलबेरूनी "बारी" से पूर्व दिशा के प्रदेशों का वर्णन करते हुए, अयोध्या, बनारस, पाटलिपुत्र और मुग्द गिरि या मुंगेर का उल्लेख करता है। यहाँ उस समय पाल राजाओं की राजधानी थी, इन नगरों के पश्चात् चम्पा, दुगमपुर का वर्णन करके उसने गंगा सागर के प्रसिद्ध तीर्थ का वर्णन किया है जहाँ गंगा समुद्र में मिलती है।

फिर "बारी" से उत्तर पूर्व जाने पर भूतान और तिब्बत मिलते हैं यहाँ के लोग काले और तुर्कों के समान चपटी नाक वाले होते हैं। भूतान से पूर्व दिशा में कामरूप और पश्चिम दिशा में नैपाल के उस पार भूतेश्वर नामक सबसे ऊंचा पर्वत है।

कन्नौज से दक्षिण पश्चिम की ओर जाते हुए जज-

भुक्ति'' मिलता है इसकी राजधानी ''खजुराहो'' है। कालंजर और ग्वालियर के दो दुर्भेद्य किले इसी राज्य में हैं।''

''फिर कन्नौज से दक्षिण जाते हुए मार्ग में असी, सहन, जेन्द्र और गुजरात की राजधानी बजान मिलती हैं।'' बजान को कई इतिहासकार भीनमाल समझते हैं मगर बहुत से लोग जयपूर के समीपवर्त्ती ''नरेना'' को बजान समझते हैं।

''बजान के दक्षिण में मेवाड़ का राज्य है उसकी राजधानी जित्तौर (चित्तोड़) है मेवाड़ के दक्षिण में मालवा की राजधानी धार है। मालवा से पूर्व सात फरसाख (दूरी का उस समय का नाप) पर उज्जयिनी तथा उज्जयिनी से दस फ़रसाख पर भेलसा है।

''धार के दक्षिण में नर्मदा के किनारे नेमार और नेमार के बाद मराठा देश तथा उसके बाद कोकण है।''

''बजान के दक्षिण पश्चिम अनहिलवाड़ और समुद्र किनारे पर सोमनाथ है। अनहिलवाड़ के दक्षिण लाट देश है। उसकी राजधानी भड़ौंच तथा समुद्र किनारे पर रिहंजूर नगर है।

इसके पश्चात् अलबेरूनी ''काश्मीर'' का वर्णन करते हुए लिखता है कि ''काश्मीर'' में घोड़ों या हाथियों का अभाव है श्रीमान् लोग सवारी के लिए ''पालकी'' का उपयोग करते हैं। झेलम नदी के किनारे पर बारामूला है। इस नदी का और गंगा का उद्गम स्थान एक ही है। सिंधु नदी के उद्गम कुलर्जक तक पहुँचने के लिए गिलगिट से मार्ग है। उस स्थान में भट्ट तुर्क रहते हैं और उनके राजा को भट्टशाह कहते हैं।

हिन्दुस्तान की दक्षिणी सीमा समुद्र है। सिंधु के छोटे बड़े अनेक मुहाने पार करने पर समुद्र के किनारे से जाते हुए पहले कच्छ मिलता है कच्छ के बाद सोमनाथ है इन दोनों स्थानों पर समुद्री डाकू बहुत ज्यादा हैं। अन्त में अलबेरूनीने पश्चिम और पूर्व समुद्र के संगम पर रामेश्वर और सेतु का वर्णन किया है।

इस प्रकार अपनी पुस्तक में अलबेरूनी ने भारतवर्ष का भौगोलिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक सभी तरह का सुन्दर वर्णन किया है। भारतीय इतिहास के अन्वेषण करने में इसका विवेचन एक आधार शिला का काम देता है।

आलवा का ड्यूक

नीदरलैण्ड के शहर एण्टवर्प का गवर्नर जनरल जिसे स्पेन के शासक फिलिप्स ने नीदरलैण्ड के विद्रोह को दबाने के लिए पूर्ण अधिकार के साथ भेजा था। सन् १५६८ ई० में इस आलवा के ड्यूक ने इन्क्वीजिशन (धार्मिक) अदालत के द्वारा नीदरलैण्ड के सारे निवासियों को एक ही फैसले में काफिर करार देकर मौत की सजा दे डाली। यह आश्चर्यजनक फैसला इतिहास में बेमिसाल है जिसने तीन-चार लाइनों के फैसले में ही ३० लाख आदमियों को मौत के घाट उतार दिया।

स्पेन एक बहुत बड़ा राज्य था और नीदरलैण्ड केवल व्यापारियों की और साधारण जनता की आबादी थी। दोनों में कोई बराबरी नहीं थी लेकिन फिर भी नीदरलैण्ड को दबाना स्पेन के लिये मुश्किल हो गया। बार-बार हत्या कांड होते रहते थे। पूरी-की-पूरी आबादियाँ मौत के घाट उतार दी जाती थीं। मनुष्यों का कत्लेआम करने में आलवा और उसके सेनापति, चंगेज खाँ और तैमूर लंग को मात दे रहे थे! आलवा एक के बाद दूसरे शहर पर घेरा डालता था। असैनिक स्त्री-पुरुषों की हत्या करता था मगर फिर भी नीदरलैण्ड की जनता की आजादी की माँग के सामने उसे पराजित होना पड़ा।

अल्लसानी पद्देन

विजय नगर के महान शासक कृष्णदेव राय के दरबार का प्रसिद्ध तैलगू भाषा का कवि! कृष्णदेव राय की सभा में बहुत ऊँचे दर्जे के साहित्यकार और कवि रहा करते थे। इन कवियों में तेलगू कवि अल्लसानी पद्देन बहुत प्रसिद्ध रहा। वह आन्ध्र कविता का पितामह कहलाता था।

अल रूसाफी

इराक के कुर्दिश खानदान में पैदा हुआ, अरबी भाषा का कवि (सन् १८७५-१९४५)

अलरूसाफी अरबी भाषा का ऐसा कवि है जिसकी

भाषा में मादकता, सम्मोहन और उच्चश्रेणी की भावुकता है धार्मिक मामलों में उसके विचार बहुत स्वतन्त्र है। अरब और तुर्की जीवन के अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग का वह पारदर्शी ज्ञाता है। अंग्रेजी, फ्रेञ्च इत्यादि विदेशी भाषाओं का जानकार न होने पर भी अरबी भाषा पर उसका पूर्ण अधिकार है।

अल शहरस्तानी

अरबी साहित्य का लेखक जिसने अपने ग्रंथ "अल-मिलाल-व-वा-निहाल के अन्दर संसार के सब धर्मों की इस्लाम के प्रकाश में आलोचना की है।

अल-समव अलइब्न आदिया

प्राचीन समय का यहूदी कवि जो मदीना के पास तैमा के दुर्ग में रहता था। ईसा की छठीं शताब्दी में यह अपनी काव्य प्रतिभा के लिए काफी प्रसिद्ध था। उस समय के काव्य "कसीदों" के रूप में प्रख्यात थे।

अल-सिन्द-हिन्द

हिन्दू ज्योतिष और गणित की एक संस्कृत पुस्तक का अरबी अनुवाद। यह अनुवाद इब्राहीम अल-फजारी नामक एक अरबी विद्वान ने जिसकी मृत्यु सन् ७७७ में हुई, किया था। इसी ग्रन्थ में पहले-पहल भारतीय अङ्क प्रणाली का उल्लेख हुआ। इसी से अरबी में अंकों को "हिन्द-सा" कहते हैं। यहीं से यह अंक माला-अल-ख्वारिज्मी के ग्रंथों द्वारा यूरोप के देशों में प्रचलित हुई। "अल-सिन्द-हिन्द" का प्रकाशन संसार के इतिहास में युग प्रवर्तक मानने योग्य था। अल ख्वारिज्मी की मृत्यु सन् ८५० के लगभग हुई।

अलस्टर

उत्तरी ऑयलैंण्ड का एक प्रान्त। जहाँ पर इंग्लैण्ड का प्रभुत्व स्थायी रूप से जमाने के लिए इंग्लैण्ड के राजा जेम्स प्रथम ने अलस्टर प्रान्त के छः जिलों की जमीन वहाँ के मूल निवासियों से छीन कर वहाँ पर इंग्लैण्ड वालों को बसा दिया। वहाँ पर जमीनें मुफ्त में मिलती देख कर इंग्लैण्ड और स्कॉटलैण्ड के सैकड़ों परिवार वहाँ आकर बसने लगा।

इस तरह अलस्टर आयलैंण्ड में इंग्लैण्ड की एक छावनी-सी बन गया। आयलैंण्ड वालों ने इसका प्रबल विरोध किया। इधर अलस्टर के प्रवासी आयलैंण्ड वालों से तीव्र घृणा करने लगे। आयलैंण्ड को इस प्रकार दो दलों में विभक्त कर इंग्लैण्ड ने अपनी राजनैतिक धूर्तता की उस पर मुहर लगा दी। अलस्टर की यह समस्या करीब तीन सौ वर्ष तक दोनों देशों के लिए सिर दर्द बनी रही।

असोशियेटेड प्रेस

भारतीय समाचार एजेन्सी। जिसकी स्थापना सन् १९१० में स्वर्गीय किरणचन्द्र राय और ऊषानाथ ने सी कोट्स नामक अंग्रेज के सहयोग से की थी।

भारतवर्ष में सबसे पहली समाचार एजेन्सी शिमला में सी० कोट्स नामक अंग्रेज ने कोट्स न्यू सर्विस के नाम से की थी। मगर इस सर्विस का काम सिर्फ सरकारी विभागों को ही समाचार देने का था।

बंगाल के श्री ऊषानाथ सेन ने १९०३ में कोट्स से भेंट की थी। जब सन् १९१० में के०सी० राय और ऊषानाथ सेन ने असोशियेटेड प्रेस की स्थापना की तब उन्होंने मि० कोट्स का सहयोग भी प्राप्त किया और कोट्स की न्यू सर्विस को भी असोशियेटेड प्रेस एजेन्सी में मिला ली।

असोशियेटेड प्रेस की एजेन्सी व्यापक रूप से भारत वर्ष में समाचारों के आदान-प्रदान का काम करने लगी। सन् १९१० से सन् १९४३ तक 'असोशियेटेड प्रेस इण्डिया' के नाम से ही इस सर्विस का काम चलता रहा। यद्यपि सन् १९१२ के लगभग लन्दन की रायटर कम्पनी ने असोशियेटेड प्रेस एजेन्सी को खरीद लिया था।

अलहिलाल

कलकत्ते से मौ० अबुल कलाम आजाद के द्वारा सम्पादित और प्रकाशित एक उर्दू साप्ताहिक पत्र जो १ जून सन् १९१२ से निकलना आरंभ हुआ।

अंग्रेजी साम्राज्यवादी नीति के विरुद्ध और अंग्रेजों के समर्थक तथा साम्प्रदायिक भावनाओं को बढ़ावा देने वाले सर सैयद अहमद जैसे मुसलमान नेताओं के विरुद्ध अलहिलाल पत्र में बड़ी तीव्र आलोचनाएँ की जाती थीं। इस कारण इस पत्र की लोकप्रियता बहुत तेजी से बढ़ गई और छः महीने के अन्दर ही इसकी ग्राहक संख्या ११ हजार हो गई जो कि उस समय के समाचार पत्रों की ग्राहक संख्या में एक रिकार्ड थी।

पहले तो मुसलिम समाज में अलहिलाल का विरोध होने लगा, पर जैसे-जैसे समय बीतता गया वैसे २ कुछ लोगों ने अपना रवैया बदलना प्रारम्भ किया। हकीम अजमल खाँ और जस्टिस सर वजीर हसन इन बदलने वाली हस्तियों में विशेष प्रभावशाली व्यक्ति थे जस्टिर सर वजीर हसन ने सारे देश में दौरा करके मुसलिम लीग के विरोधी और प्रतिक्रिया वादी दृष्टिकोण के बदलने की चेष्टा की जिसके परिणामस्वरूप सन् १९१३ में मुसलिम लीग के लखनऊ वाले अधिवेशन में मुसलिम लीग के विधान में 'ब्रिटिश राज्य की वफादारी' के स्थान में 'भारत के लिये उपयुक्त स्वशासन' शब्द का समावेश किया गया।

अलाउद्दीन खिलजी

खिलजी वंश का भारत का सम्राट्, एक दुर्दमनीय विजेता सन् १२९६ से १३१६ तक।

अलाउद्दीन खिलजी, सुलतान जलालुद्दीन खिलजी का भतीजा और दामाद था। अपने शासन काल में जलालुद्दीन ने अलाउद्दीन को कड़ा का सूबेदार बना दिया था। सूबेदार बनते ही अलाउद्दीन ने सुलतान से मालवा पर चढ़ाई करने की इजाजत मांगी। आज्ञा मिल गई मगर मालवे के साथ ही अलाउद्दीन ने दक्षिण में बरार पर भी हमला कर वहाँ के यादव वंशी राजा रामचन्द्र को हरा दिया। इस विजय के समाचार से जलालुद्दीन बहुत खुश हुआ और वह अलाउद्दीन से मिलने कड़ा आया। जिस समय ये दोनों चाचा भतीजा गले मिल रहे थे उसी समय अलाउद्दीन के इशारे से उसके एक साथी ने बुड्ढे सुलतान को मार डाला और अलाउद्दीन देहली की राजगद्दी पर बैठ गया। गद्दी पर बैठते ही उसने जलालुद्दीन के सब पक्षपातियों को मरवा डाला।

गद्दी पर बैठने के बाद उसने अपनी विजय यात्रा प्रारम्भ की। सन् १२९७ में उसने गुजरात पर हमला किया और वहाँ के राजपूत राजा कर्ण को हराकर उसका राज्य छीन लिया। इसी लूट में सुलतान को "काफूर" नामक एक दास मिला जो आगे चलकर "मलिक काफूर" के नाम से इसका प्रधान मन्त्री और सेनापति बना।

सन् १३०० में अलाउद्दीन ने रणथम्भौर पर हमला किया और दो बार युद्ध करने के बाद उसे जीत लिया।

उस समय मेवाड़ के राणा भीमसेन की रानी पद्मिनी के रूप और सौन्दर्य्य की कहानियाँ चारों ओर फैल रही थीं। अलाउद्दीन के कानों पर भी उसके रूप और सौन्दर्य्य की कहानी पहुँची और इस मदान्ध सुलतान ने राणा भीमसिंह को कहलवाया कि या तो महारानी पद्मिनी को उसके हरम में भेज दें या फिर लड़ाई के लिए तैय्यार रहें। इस संदेश से राजपूतों का खून खौल उठा। उन्होंने इस अपमानजनक शर्त्त से लड़कर मरजाना अच्छा समझा। अलाउद्दीन ने सन् १३०३ में चितौड़ पर चढ़ाई की। सुलतान की बलशाली सेना के सामने चित्तौड़ की मुट्ठी भर सेना कहाँ तक लड़ सकती थी फिर भी अलाउद्दीन को इस लड़ाई में राजपूती तलवार का जौहर देखने को मिला। केशरिया बाना पहने हुए इन महावीरों की तलवारों के हाथ को देखकर वह दंग हो गया। गोरा और बादल की साहस पूर्ण कहानियाँ और मौत के साथ उनका खिलवाड़ इसी समय इतिहास के पृष्ठों पर अमर रूप से अङ्कित हो गया। राजपूत वीर एक-एककर मारे गये और किले के ऊपर सैकड़ों राज परिवार की औरतें जौहर में जलकर मर गईं। चितौड़ के राज घराने की औरतों का इतना बड़ा जौहर इतिहास में अमर है।

अलाउद्दीन ने चितौड़ जीता मगर वहाँ सिवाय जली

हुई लाशों और खण्डहरों के सिवा उसे और कुछ न मिला।

चित्तौड़ विजय के बाद उसने जैसलमेर जीता। उसके बाद उसने अपने सेनापति मलिक काफूर को दक्षिण विजय के लिए भेजा, मलिक काफूर ने पहले देवगिरी को जीता फिर आगे बढ़कर वरंगल और द्वारसमुद्र पर भी अधिकार कर लिया। इस विजय यात्रा से अलाउद्दीन का दक्षिण में भी कुछ हिस्से को छोड़कर सब दूर अधिकार हो गया। इतना बड़ा राज्य अभी तक किसी मुसलिम शासक का नहीं हुआ था।

अलाउद्दीन के शासन काल में उत्तर पश्चिम से मुगलों के आक्रमण भी बराबर होते रहते थे। मगर अलाउद्दीन ने बड़ी बहादुरी के साथ मुगल आक्रमण-कारियों के दाँत खट्टे कर दिये। दिल्ली में रहने वाले मुगलों ने भी एक बार उसके विरुद्ध षड़यन्त्र किया मगर अलाउद्दीन को पता लग गया और एक हीरात में उसने ३०००० मुगलों को मरवा डाला।

अलाउद्दीन पढ़ा-लिखा नहीं था मगर शासन करने में बड़ा कुशल था। उसका शासन बड़ा सख्त था। विद्रोहों को वह बड़ी बेरहमी से दबाता था। बहुत से अमीरों और सरदारों की जागीरें उसने विद्रोह के सन्देह में छीन ली, शराब खाने और जुआघर सख्ती से बन्द करवा दिये क्योंकि विद्रोह अक्सर ऐसी ही स्थानों से संगठित होते हैं।

हिन्दुओं के साथ उसका व्यवहार अत्यन्त क्रूर था। हिन्दुओं पर बड़े टैक्स लगकर उनको निर्धन कर डालने पर उसने कमर कस ली थी। उसके राज्य में कोई हिन्दू चाँदी, सोना, जवाहिरात और अधिक रुपया नहीं रख सकता था। बड़े-बड़े हिन्दू जमीदार भी घोड़े पर नहीं चढ़ सकते थे और न बढ़िया कपड़े पहन सकते थे।

अलाउद्दीन एक कट्टर मुसलमान था फिर भी काजी और मुल्लाओं को राज कार्य्य में हस्तक्षेप नहीं करने देता था। वह बड़े हौसले का मनुष्य था। उसने एक नया मजहब चलाने का भी प्रयत्न किया था। वह पहला मुसलमान था जिसने दक्षिण में आक्रमण कर अपने साम्राज्य का इतना विस्तार किया। सन् १३१६ में उसका देहान्त हुआ।

अलाउद्दीन गौरी

गोर का अफगान सरदार जिसने गजनी के सुलतान पर आक्रमण कर गजनी को तहस-नहस कर डाला। सन ११५० के करीब।

गजनी से वायव्य दिशा में गौर का पहाड़ी इलाका है जहाँ पर अफगान जाति के लोग रहते हैं। अफगानिस्तान के अन्य भागों के समान ही यहाँ के लोग भी पहले हिन्दू थे मगर इसलाम का प्रचार हो जाने के बाद वे मुसलमान बना दिये गये। बहुत समय तक गौर के शासक गजनी के सुलतानों की अध्यक्षता में रहे। मगर एक बार गजनी के सुलतान बहिराम ने बिना कारण गौर के शासक कुतुबद्दीन गौरी को मरवा डाला और उसके भाई सैफुद्दीन का भी गजनी में कत्ल करवा दिया।

अलाउद्दीन गौरी कुतुबद्दीन गौरी का तीसरा भाई था। भाइयों के कत्ल से पागल हो अलाउद्दीन गौरी ने गजनी पर चढ़ाई कर दी। सुलतान बहिराम भी एक भारी सेना लेकर गजनी से निकला मगर अलाउद्दीन ने बहिराम की सब सेनाओं को बुरी तरह से हरा दिया। उसके बाद अलाउद्दीन ने बड़ी क्रूरता से गजनी शहर से अपना बदला लिया। सात दिन तक वह शहर को लूटता और जलाता रहा तथा वहाँ कत्लेआम मचाता रहा। महमूदी राजाओं के महलों को—जो उस समय संसार में बेजोड़ थे—उसने तोड़-फोड़ डाला, स्त्रियों और बच्चों को उसने गुलाम बना लिया। इसीलिए गजनी के इतिहासकार उसको "जहान्-सोज" (संसार को जलाने वाला) कहते हैं।

अलाउद्दीन हुसैन शाह

बंङ्गाल का हुसैनी वंश का पहला शासक जिसने सन् १४६३ से १५१६ तक बंगाल का शासन किया। वह एक योग्य पुरुष था जिसने अपनी विजयों से अपने राज्य का बहुत विस्तार किया।

अलाउल मुल्क

सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी का प्रधान मौलवी।

सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने जब बहुत सा मुल्क जीत लिया तो अकबर की तरह एक नये धर्म की स्थापना करने का उसने भी विचार किया। उसने अपने भावों को प्रकट करते हुए अपने प्रधान मौलवी से कहा--

"अल्लाह ताला ने पवित्र नबी को चार मित्र दिये जिनकी योग्यता और सामर्थ्य पर इस्लाम की स्थापना हुई। इस इस्लाम की स्थापना के द्वारा नबी का नाम कयामत के दिन तक जिन्दा रहेगा। अल्लाह ताला ने मुझे भी चार मित्र दिये हैं उलूग खां, जफर खां, नुसरत खां और अलब खाँ। यदि मैं चाहूँ तो अपने इन चारों दोस्तों की ताकत से एक नये मजहब की स्थापना कर सकता हूँ। मेरी तलवार और मेरे दोस्तों की ताकत आम खलक को मेरा मजहब मंजूर करने के लिये मजबूर कर देगी इस मजहब के द्वारा मेरा तथा मेरे दोस्तों का नाम नबी के नाम की तरह कयामत के दिन तक जिन्दा रह सकता है।"

जब उसने काजी अला उल मुल्क से इस बारे में राय पूछी तो काजी ने बतलाया कि मजहब और कानून खुदा ताला के बस की चीजें हैं। इन्सान की तमन्ना से वे कभी पैदा नहीं हो सकते। आदिम काल से उनकी व्यवस्था नबियों और पैगम्बरों के द्वारा होती चली आ रही है। जैसे राजकीय शासन और व्यवस्था का आयोजन राजाओं के द्वारा प्रतिपादित होता है, उस तरह मजहब और ईमान की व्यवस्था पैगम्बरों के द्वारा होती है। जब तक यह दुनिया मौजूद है तब तक मजहब और ईमान की स्थापना का काम राजाओं और विजेताओं से न कभी हुआ है और न होगा।

काजी अला उल मुल्क की यह सलाह अलाउद्दीन को पसन्द आई और उसने मजहब की स्थापना का विचार छोड़ दिया।

अलाइड कौन्सिल ऑफ जापान

द्वितीय महायुद्ध में जापान के बिना शर्त्त आत्म समर्पण के बाद वहाँ पर मित्र राष्ट्रों के डिक्टेटर जनरल मैक आर्थर के लिए बनाई गई मित्र राष्ट्रों की परामर्श दात्री समिति (१९४५)

अगस्त १९४५ में जब जापान ने बिना शर्त्त आत्मसमर्पण कर दिया तब विजयी मित्रराष्ट्रों ने जापान के सम्राट की व्यवस्थित सरकार को तो वैसे ही कायम रहने दिया मगर उसकी सैनिक शक्ति पर अपना नियन्त्रण स्थापित करने के सारे अधिकार अपने प्रधान सेनापति जनरल मैकआर्थर को दे दिये।

जनरल मैक आर्थर को अपने कार्य्य में परामर्श देने के लिए मित्र राज्यों की एक कौन्सिल नियुक्त की गई। जिसे अलाइड कौन्सिल ऑफ जापान कहते हैं। इस कौन्सिल में अमरीका, ब्रिटेन, चीन और रूस के प्रतिनिधि सम्मिलित थे। अमरिका का प्रतिनिधि कौन्सिल का अध्यक्ष भी था। इस कौन्सिल का पहला अधिवेशन ५ अप्रैल १९४६ को हुआ था।

अलाई मीनार

कुतुब मीनार के ठीक उत्तर में चार सौ पचास फीट की दूरी पर अलाउद्दीन खिलजी के द्वारा प्रारम्भ की गई एक मीनार जो केवल अस्सी फुट ऊँची उठ पाई थी कि अलाउद्दीन का देहान्त हो गया और यह मीनार अधूरी रह कर खण्डहर हो गई। बड़े-बड़े दिग्विजयी बादशाहों के मनसूबे भी समय के फेर में पड़ कर किस प्रकार अधूरे रह जाते हैं यह मीनार इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

अल्लाफ़ अबुलहुजैल

इस्लाम के "मोतजला" सम्प्रदाय का आचार्य्य। सन् ७८८ से ८२० ई० तक।

अरबी साहित्य में जब यूनानी और भारतीय दर्शन ग्रंथों के अनुवाद होने लगे और प्लेटो तथा अरस्तू की विचारधाराओं का ज्ञान वहाँ के लोगों को होने लगा तो उसका प्रभाव अरबी विद्वानों और साक्षर लोगों पर पड़ना स्वाभाविक था। इसी प्रभाव का परिणाम इस्लाम में मोतजला सम्प्रदाय की उत्पत्ति थी। मोतजंला सम्प्रदाय का सबसे बड़ा और सबसे पहला आचार्य्य अल्लाफ अबुलहुजैल था। इस सम्प्रदाय का प्रधान केन्द्र बसरा था। अल्लाफ का मत था कि अल्लाह में कोई विशेषण या गुण नहीं होता, जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है, अल्लाह केवल भलाइयों का

स्रोत है। अल्लाह निर्गुण है, ईश्वर की सर्वशक्ति सत्ता मर्यादित है, चमत्कार झूठे हैं, जगत् अनादि नहीं है इत्यादि।

कितने आश्चर्य की बात है कि जिस समय अल्लाफ इस्लाम के अन्दर अद्वैत ईश्वर और निर्गुण ब्रह्म का प्रचार कर रहा था ठीक उसी समय भारत वर्ष में जगद्गुरु आद्य शंकराचार्य "एकोब्रह्म द्वितीय नास्ति" के रूप में अद्वैतवाद का प्रचार कर रहे थे। कभी-कभी भिन्न-भिन्न देशों के महापुरुषों की विचारधारा में कितनी एकरूपता होती है इसका यह एक प्रत्यक्ष उदाहरण है।

अल्लाफ के पश्चात् मोतजला सम्प्रदाय का दूसरा आचार्य्य नज्जाम था जिसकी मृत्यु सन् ८४५ में हुई।

अल्लाई

शेख अल्लाई। मुसलमानों में मेंहदी सम्प्रदाय के तीसरे गुरु।

ईसा की पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में जौनपुर में सैय्यद मुहम्मद जौनपुरी नामक एक महान् विद्वान् और सन्तपुरुष आविर्भूत हुए। ऐसा कहा जाता है कि एक बार जब ये ध्यानावस्थित थे तब इन्हें एक खुदाई इलहाम हुआ कि "तू मेंहदी है।"

हिन्दू धर्म वाले जिस प्रकार आने वाले युग के अवतार "कल्की" को मानते हैं उसी प्रकार मुसलमान आने वाले युग के पैगम्बर "मेंहदी" को मानते हैं।

सैय्यद मुहम्मद के प्रचार का ढंग और उनके उपदेश का तरीका ऐसा अच्छा था कि लोग उनकी ओर आकृष्ट होने लगे और धीरे-धीरे मेंहदी सम्प्रदाय के नाम से मुसलानों में एक सम्प्रदाय कायम हो गया।

इन्हीं सैय्यद मुहम्मद जौनपुरी के शिष्य अब्दुल्ला नियाजी मेंहदी सम्प्रदाय के दूसरे गुरु हुए और उनके शिष्य शेख अल्लाई मेंहदी सम्प्रदाय के तीसरे गुरु थे।

शेख अल्लाई ने मनुष्य मात्र और उसमें भी गरीब लोगों की भलाई को अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया। उन्होंने अपना सब माल-असबाब गरीबों में बाँट दिया। उनकी वाणी में जादू का असर था। लोग उनकी बातों पर मुग्ध थे। उन्होंने अपने पंथ के लिए नियम बनाया कि उनकी सम्प्रदाय के सब लोग आठों पहर हथियार बन्द रहें। तीर, धनुष, ढाल, तलवार हमेशा साथ रखना उनके अनुयायियों के लिए अनिवार्य था जिससे उस अव्यवस्था के युग में वे अपनी आत्मरक्षा कर सकें। कैसे आश्चर्य की बात है कि उनके दो सदी बाद सिक्खों के धर्म गुरु गोविन्द सिंह ने भी सिक्ख सम्प्रदाय में यही नियम चला कर सिक्खों को हथियार बन्द कर दिया।

मेंहदी पंथ के धर्म गुरु शेख अल्लाई को इस प्रकार सिर उठाते तथा अपने अनुयायियों को सशस्त्र करते देख कट्टरपंथी मुसलमान मौलवियों की नींद हराम हो गई। उस समय देहली के तख्त पर शेरशाह के पुत्र सलीमशाह आसीन थे और ऊनके दरबार के सबसे बड़े मौलवी और धर्माचार्य्य मुल्ला मुलतानपुरी थे। शेख अल्लाई की सफलता को देख कर मौलवी साहब बहुत घबराये और उन्होंने बादशाह से कहा कि—"शेख अल्लाई इन गरीब लोगों को हथियार बन्द कर सल्तनत के भीतर बगावत की आग सुलगा रहा है और कुफ्र को भड़का रहा है।"

तब बादशाह ने अल्लाई को दरबार में बुलाया। वे अपने सशस्त्र सैनिकों के साथ दरबार में गये और कुरान की आयतों पर ऐसा सारगर्भित भाषण दिया कि सुननेवालों की आँखों में आँसू बहने लगे और स्वयं सुलतान भी द्रवीभूत हो गया। मुल्ला सुलतानपुरी को उन्होंने कहा कि "तू दुनिया का पण्डित है मगर दीन का चोर है एक नहीं अनेक धर्म विरोधी कार्य खुल्लमखुल्ला कर रहा है।" अल्लाई की सभाएँ दरबार में कई दिन तक होती रहीं। आगरे में भी अल्लाई के सम्प्रदाय का बड़ा जोर था। कितने ही अधिकारी लोग अपनी नौकरियाँ छोड़ कर उनके साथ हो गये। सारी खबरें मुल्ला सुलतानपुरी बढ़ा-बढ़ा कर बादशाह को सुनाते थे अन्त में तंग आकर बादशाह ने उन्हें दक्षिण में निर्वासित कर दिया।

निर्वासित होकर शेख अल्लाई दक्षिण के सीमान्त नगर हंडिया में पहुँचे। वहाँ का हाकिम शिरवानी उनका उपदेश सुनते ही उनका अनुयायी हो गया। उसकी सेना का भी बहुत-सा भाग इनके सम्प्रदाय में आ गया।

हिंडिया में शेख अल्लाई की सफलता को मुल्ला सुलतानपुरी ने बादशाह को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर बतलाया जिससे वह बहुत क्रोधित हुआ और उसने सन् १५४६ में अपने दरबार में उनको खुलेआम कोड़ों से पीट कर मरवा डाला।

शेख अल्लाई धार्मिक प्रवचनों के साथ लोगों की आर्थिक स्थिति को समानता पर लाने के लिए भी प्रवचन देते थे। संसार के गरीब लोगों की स्थिति पर उन्हें बड़ी दया और तरस आता था। एक तरह से वे उस युग के समाजवादी नेता थे।

अलास्का

यूनाइटेड स्टेट् अमेरिका द्वारा अधिकृत कनाडा के उत्तर पूर्व का प्रान्त। इस प्रान्त पर पहले रूस का अधिकार था। सन् १८८० के करीब यूनाइटेड स्टेट्स की सरकार ने इसे रूस से खरीद लिया।

अलास्का में पाषाण युग के बहुत पुराने जमाने में एशिया और अमेरिका को जोड़ने के लिए एक खुश्की रास्ता था। मनुष्यों के घुमक्कड़ कबीले इसी मार्ग से होकर एशिया से अमेरिका जाया करते थे। बाद में किसी कारण वश यातायात का यह मार्ग कट गया उसके बाद पन्द्रहवीं सदी तक एशिया और अमेरिका को जोड़ने का कोई साधन नहीं रहा। उसके बाद समुद्री रास्तों द्वारा ही संसार से अमरीका का पुनः सम्बन्ध स्थापित हुआ।

सन् १७२८ में कप्तान वाइट्स् वेरिंग नामक डेनमार्क निवासी ने एशिया और अमेरिका को अलग करने वाले जलडमरूमध्य को खोज निकाला। जो आज भी उसीके नाम पर वेरिंग डमरूमध्य के नाम से प्रसिद्ध है। वेरिंग समुद्र पार करके अलास्का जा पहुँचा।

अलास्का समूर नामक जानवरों के लिए बहुत प्रसिद्ध है। समूर उत्तरीय ध्रुव प्रदेश की एक प्रकार लोमड़ी होती है जिसके बाल बहुत मुलायम होते हैं। इसकी खाल से गुलबन्द बनाये जाते हैं जो बहुत कीमती होते हैं। इसकी खाल को अंग्रेजी में "फ़र" कहते हैं।

अलास्का में सोने और ताम्बे की खानें भी हैं।

अलिफ लैला

अरबी भाषा का प्रसिद्ध कहानी ग्रन्थ। जिसमें विशेष कर खलीफा हारूं-अल-रशीद को दरबार की रंगरेलियों का वर्णन है।

मगर जिसकी मनोरंजन शक्ति इतनी अधिक है कि प्रायः संसार की सब भाषाओं में इसके अनुवाद हो चुके हैं। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें एक कहानी में से दूसरी कहानी निकलती है जिस प्रकार भारतीय साहित्य के हितोपदेश-पंचतंत्र में निकलती है। इसकी कहानियों में कई स्थानों पर रोमान्स, कामुकता और स्त्री-पुरुषों की रंगरेलियों का वर्णन होने से अरबी के कई विद्वानों ने अश्लीलता का दोष लगाकर इसकी तीव्र निन्दा की है और इसे अरबी साहित्य का कलंक बताया है। मगर इन आलोचनाओं या निन्दाओं से इसके प्रचार में कोई कमी नहीं आई उलटे उसके प्रचार में वृद्धि ही हुई। मनुष्य की वासनाओं और उसकी कामलिप्सा को भड़काने वाले सहित्य की निन्दा भी उसके प्रचार का एक साधन बन जाती है।

अलिफ लैला की कहानी संक्षिप्त में इस प्रकार है।

यह कहानी बादशाह शहरयार और उसके छोटे भाई शाह जमान की है। ये दोनों भाई अपनी-अपनी बीबियों की चरित्रहीनता से विरक्त हो देश विदेश में घूमते रहे। अन्त में उन्हें एक जिन्न मिला जिसने उन्हें बतलाया कि औरत का कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। इसके बाद शहरयार लौट कर अपने राज्य में आता है और अपने राज्य में से सर्वश्रेष्ठ सुन्दर तरुणी को हर एक रात में बुलाता है और रात भर उससे अपनी काम-लिप्सा शान्त कर सवेरे उसे मरवा डालता है।

शहरयार के इस अन्याय पूर्ण काम को देखकर उसके वजीर की कन्याएं जिनका नाम शहजाद और दीनजाद है चिन्तित हो उठती हैं और इस अत्याचार को रोकने के लिए शहजाद अपने पिता से कह कर स्वयं शहरयार के शयन कक्ष में पहुँचती है और उसे एक कहानी सुनाने लगती है। कहानी जब उत्कंठा की बीच मञ्जिल पर पहुँचती है तब सवेरा हो जाता है और शाह की उत्कंठा

इतनी तीव्र हो जाती है कि वह उस कहानी का अंत देखने के लिए आकुल होकर वजीरजादी की जान को एक दिन के लिए और बख्श देता है। दूसरे दिन फिर वही हालत होती है, एक कहानी में से दूसरी कहानी निकल कर वह फिर अधूरी छूट जाती है। इस प्रकार लगातार एक हजार रातें वजीरजादी कहानियों की शृंखला में पूरी कर देती है फिर भी कहानी का अन्त नहीं आता। इसी बीच वजीर जादी को शाह से तीन पुत्र भी हो जाते हैं। अन्त में वजीर जादी और राज्य की दूसरी युवतियां शाह के क्रोध से छुट्टी पा जाती है और आराम से रहने लगती है।

अलादीन का चिराग, अलीबाबा चालीस चोर, सिन्दबाद जहाजी की कहानियां सब इसी आलिफलैला की कहानियों की लड़ी में से उद्भूत हुई हैं। इस ग्रन्थ के अंग्रेजी और फ्रेञ्च भाषाओं में पूरे अनुवाद भी हुए और इसके सांक्षिप्त रूप "अरेबियन नाइट्स" के रूप में बालकों के लिए भी प्रकाशित किये गये।

अली

इस्लाम के चौथे खलीफा। पैगम्बर की पुत्री फातिमा के पति। सन् ६५२ से ६६१ तक।

पैगम्बर के देहान्त के बाद खलीफा पदवी के लिए आपस में झगड़े होने लगे। हाशिम खानदान के लोग जिनमें पैगम्बर के दामाद अली आदि लोग थे खलीफा पद पर अपना अधिकार समझते थे। मगर इनके विरोधियों की संख्या भी काफी थी, इसलिए पैगम्बर के बाद खलीफा का पद अबू-बकर को मिला।

चौबीस बरस के बाद हजरत अली को खलीफा बनने का अवसर प्राप्त हुआ। खलीफा उस्मान के बाद अली को सन ६५२ में खिलाफत की गद्दी मिली।

यद्यपि अली को इतने समय के बाद खलीफा का पद प्राप्त हुआ फिर भी दमिश्क का गवर्नर म्वाविया उनसे भयङ्कर द्वेष रखता था। अली भी म्वाविया को उखाड़ने का पूरा प्रयत्न करते रहे मगर म्वाविया का बनी-उमैया वंश उस समय एक अत्यन्त शक्तिशाली वंश था। उमैया वंश के साथ संघर्ष में अली को शहीद होना पड़ा। वे किस जगह लड़ते हुए मारे गये। इसका निश्चित प्रमाण नहीं मिलता। खुरासान का तुर्बत-हैदरी स्थान, अफगानिस्तान का मजार-शरीफ शहर, दोनों ही स्थानों मे से किसी एक जगह उनके शहीद होने का अनुमान किया जाता है। अली के बड़े लड़के हसन को म्वाविया के षड्यंत्र से उन्हीं की बीबी ने जहर देकर मार डाला और अली के दूसरे पुत्र हुसैन को, म्वाविया के पुत्र यजीद ने, करबला के मैदान में उनके ६९ साथियों सहित प्यास से तड़फा-तड़फा कर अत्यन्त बेरहमी से मार डाला। इन्हीं की यादगार में आज दुनिया भर के सुन्नी मुसलमान मोहर्रम मना कर उस अत्यन्त करुणाजनक दुर्घटना की स्मृति ताजी करते हैं।

अल सफदी

अरबी साहित्य का एक विश्व कोष रचयिता। जिसने २६ खण्डों में एक विशाल विश्व कोष की रचना की। इसकी मृत्यु सन् १३६३ में हुई।

अलहसन-अलबसरी

इस्लाम मजहब के सिद्धान्तों का निष्णात विद्वान। जिसकी मृत्यु सन् ७२८ ई० में हुई।

अलहसन-अलबसरी के प्रवचन इस्लामी सिद्धान्तों के ही प्रतीक नहीं, अरबी गद्य के भी उत्तम नमूने हैं। इसी कारण इसलाम के अनेक फिरके उसे अपना धर्म नेता मानने लग गये थे। इस्लाम के सम्बन्ध में उसकी व्याख्याएँ बहुत आदर से देखी जाती थीं। फिर भी उस युग में लेखन शक्ति का विकास न होने से सारा कार्य्य मौखिक ही होता था।

अली इमाम

सन् १९३१ में होने वाली लण्डन गोलमेज कान्फरेन्स के मुस्लिम प्रतिनिधि!

अली इमाम जिस समय लण्डन की गोलमेज कान्फरेन्स में जाने की तैय्यारी कर रहे थे उस समय अफ्रीका के प्रसिद्ध सत्याग्रही भवानीदयाल सन्यासी उनसे मिलने गये। उस भेंट का हाल लिखते हुए भवानीदयाल ने एक स्थान पर लिखा है—

"जब मैंने सर अलीइमाम से पूछा कि आप कब विलायत के लिये रवाना हो रहे हैं तो उन्होंने जवाब दिया—"मुझसे मुल्क और कौम के साथ भूल से एक

गुनाह हो गया है उसी के प्रायश्चित के लिये मैं लण्डन राउण्टेबल कान्फरेन्स में शरीक होने जा रहा हूँ ।"

"गुनाह कैसा गुनाह ? भवानी दयाल ने आश्चर्य से पूछा ।

उत्तर में सर अली इमाम ने जो जवाब दिया वह इस प्रकार है—

"अंग्रेज वाइसराय लार्ड मिण्टो ने सर आगा खां वगैरह के साथ मुझे भी तार देकर कलकत्ता बुलाया था और उन्होंने मुल्क की मौजूदा हालत की तस्वीर खींच कर हमें यह समझाया कि हिन्दुओं की राष्ट्रीयता और उनका शासन अंग्रेजों के लिये उतना खतरनाक नहीं है जितना कि मुसलमानों के लिये । यदि हिन्दुओं की राष्ट्रीय तमन्नाएँ पूरी हो गईं तो अंग्रेज तो अपना बोरिया-बिस्तर बाँधकर इंगलैण्ड चले जायेंगे पर मुसलमान कहाँ जायेंगे । उनको तो हर हालत में यहीं रहना होगा । इसलिये अंग्रेज सरकार को मुसलमानों के लिये बड़ी चिन्ता हो रही है । अगर जल्दी ही कोई उपाय नहीं हुआ तो मुसलमानों की खैर नहीं है ब्रिटिश हुकूमत के बाद इस देश पर लोकतन्त्र के अनुसार हिन्दुओं के बहुमत की सरकार बनेगी । मुसलमानों को पुश्त-दरपुश्त के लिये हिन्दुओं की गुलामी करनी पड़ेगी और उनकी ठोकरें खानी पड़ेगी । इस मुसीबत से बचने का सिर्फ एक ही उपाय है कि मुसलमान हिन्दुओं से अलग एक राष्ट्र की माँग पेश करें । मुसलमान नेता यदि एक डेप्युटेशन लेकर मेरे पास आवें और मेरे कथनानुसार माँगे पेश करें तो शेष सब काम मैं बना दूँगा ।"

सर अली इमाम के साथ हुई बात चीत से यह स्पष्ट पता चलता है कि देश-विभाजन की भावना पैदा करने में अंग्रेज राजनीतिज्ञों का कितना बड़ा हाथ था ।

अली शेर नवाई

तुर्की भाषा का एक महान कवि जिसको तुर्की साहित्य का कालिदास भी कहा जाता है । इसका जन्म सन् १४४१ में हिरात में हुआ ।

अली शेर नवाई का नाम तुर्की साहित्य में उसी प्रकार अमर है जिस प्रकार संस्कृत साहित्य में कालिदास का और अंग्रेजी में शेक्सपियर का है ! अली शेरनवाई की शिक्षा समरकन्द में हुई । मशहूर सूफी सन्त खोजाउबेदुल्ला और फारसी के मशहूर कवि जामी से नवाई को बहुत प्रेरणा मिली है ! यद्यपि नवाईने "फानी" के नाम से फारसी में भी कविताएँ की हैं लेकिन उसका नाम उसकी तुर्की कविताओं के कारण अमर है । आजकल मध्य-एशिया की सबसे प्रगति प्राप्त उजबक जाति का वह परम श्रद्धा भाजन कवि है । उजबक राजधानी ताशकन्द में नवाई के नाम से एक बड़ी सुन्दर और विशाल नाट्य शाला स्थापित की गई है । नवाई की जीवनी को लेकर उजबक लेखक ऐबक ने एक उपन्यास नवाईं के नाम से लिखा है जिस पर उसे स्टालिन पुरस्कार प्राप्त हुआ है । नवाई ने ७० से अधिक पुस्तकें लिखी हैं लेकिन उनमें से ५ काव्य सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं जिनके नाम—(१) खैरतुल-अबरार (२) फरहाद शीरी (३) सद्देसिकन्दरी (४) लैला-मजनू और (५) हप्त–किशवर हैं ।

नवाई कवि होने के साथ-साथ एक बड़ा जमींदार भी था और उसको बड़ी बड़ी इमारतें तथा जन साधारण के लिए धर्मशालाएँ, अस्पताल और स्कूल बनाने का भी बहुत शौक था । उसकी बनाई हुई सबसे बड़ी इमारत "इखलास" हिरात नगर के बाहर यन्जील नहर के किनारे पर बनी थी जो २० साल में तैयार हुई थी ! कितने ही ही हजार आदमी इसके बनाने के लिये रोज काम करते थे । इखलास के भीतर सुन्दर स्कूल, अस्पताल और मस्जिद बनी हुई थी । इस अस्पताल में उस समय के प्रसिद्ध चिकित्सक हकीम गयासुद्दीन चिकित्सा करते थे । इसके सिवाय भी नवाई ने बहुत से स्कूल, धर्मशालाएँ और हम्माम बनवाये थे ।

विद्वानों और कलाकारों के लिये भी नवाई का दरबार हमेशा खुला रहता था । एशिया का प्रसिद्ध चित्रकार कमालुद्दीन बेहजाद नवाई के ही संरक्षण में आगे बढ़ा जो कि "नजाकते कलम बेनजीर" "सूरते हालता मुसव्विर" इत्यादि नामों से पुकारा जाता था । बेहजाद के बनाये हुए चित्र अब भी दुनिया के चित्र संग्रहालयों में मिलते हैं ।

अलीशकर बेग

तुर्कमान जाति का तैमूर का एक प्रभावशाली सरदार जिसे तैमूर ने हमदान, दीनवर, खुजिस्तान इत्यादि स्थानों का शासक नियुक्त किया था। अलीशकर के पोते यार अली को बाबर ने गजनी का शासक नियुक्त किया था। इसी वंश में बैरम खाँ हुआ जो कई बरसों तक हुमायूँ के साथ रहा और बाद में नाबालिग अकबर का गार्जियन हुआ।

अलीकुली खाँ

खानेजमा अलीकुली खाँ जौनपुर का शासक जिसने सन् १५६५ में अकबर की सल्तनत के खिलाफ विद्रोह किया।

अलीकुली खाँ मध्यएशिया में उजबेकिस्तान में रहने वाली उजबक जाति का एक सरदार था। इसके पूर्वजों ने उजबेकिस्तान से तैमूर का शासन खतम कर बाबर को वहाँ से मार भगाया था। बाद में अलीकुली खाँ किसी तरह हुमाबूँ की नौकरी में आ गया और हुमायुँ ने उसे जौनपुर का शासक नियुक्त कर दिया था। मगर जौनपुर में अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित करने के लोभ में इसने सन् १५६५ में बगावत कर दी। इसका भाई बहादुर खाँ और चाचा इब्राहीम भी इसके साथ थे। बादशाह ने इस विद्रोह को दबाने के लिए स्वयं सेना लेकर प्रस्थान किया। प्रयाग से थोड़ी दूर मानिकपुर में बादशाह की सेना का पड़ाव पड़ा। मगर अलीकुली खाँ ने पटना के पास गण्डक के तीर हाजीपुर में जाकर अपनी मोर्चेबन्दी की। दिसम्बर १५६५ में गंगा के बीच नाव पर दोनों पक्षों में सुलह हुई। अलीकुली खाँ ने दरबार में आकर सम्राट् से क्षमा मांगी। सम्राट् ने उसे क्षमा कर दिया।

अली-हजी

इस्पहान का रहने वाला फारसी भाषा का एक कवि, जिसे किसी षडयन्त्र के सिलसिले में ईरान से भागकर भारत आना पड़ा। इसने चार दीवान और सात मस्नवी की रचना की। इसकी रचनाओं में "तज्किएतुल मुआसिरी" और "तज्किएतुल अहवाल" उल्लेखनीय हैं। दूसरा ग्रन्थ उसका आत्मचरित है जिसमें उस ने अपना और अपने समकालीन कवियों का वर्णन किया है। अली-हजी की मृत्यु सन् १७६६ में बनारस में हुई।

अली मुहम्मद मिरजा

(सन् १८४४)

ईरान में उन्नीसवीं सदी के प्रसिद्ध धार्मिक आन्दोलन "बाबीवाद" का आचार्य्य, जिसने अपने आपको "मेंहदी" घोषित किया। मिर्जा अली मुहम्मद द्वारा संचालित "बाबीवाद" का यह आन्दोलन सूफी आधारों पर तथा कम्यूनिज्म की प्रारम्भिक विचारधारा के आधार पर खड़ा किया गया था। इस्लाम की शरह के खिलाफ होने के कारण इस आन्दोलन को कुचल दिया गया, इसके बहुत से अनुयायी मार डाले गये और बहुतों को काफी यन्त्रणाएँ उठानी पड़ीं। कुछ समय के बाद इस आन्दोलन की एक शाखा ने "बहाबी" आन्दोलन का रूप ग्रहण किया।

अली-मावर्दी

इस्लाम का सुप्रसिद्ध राजनीति शास्त्र और कानून का निर्माता, जो बगदाद के कॉलेज का प्रोफेसर था। इसका बनाया हुआ प्रधान ग्रन्थ "अल अहकाम-अलसुलतानिया" था। सुन्नी इसलाम के राजनैतिक सिद्धान्तों का इसमें बड़ा प्रामाणिक विवेचन किया गया है। इसकी मृत्यु सन् १०५८ में हुई।

अलीवर्दी खाँ

बङ्गाल का मुसलमान नवाब। सिराजुद्दौला का नाना।

अलीवर्दी खाँ ने सन् १७४१ से १७५६ तक बङ्गाल की गद्दी पर रह कर शासन किया। उसने बङ्गाल के चोर-डाकुओं का दमन किया, जमींदारों के विद्रोह को दबाया। यद्यपि वह कोई बड़ा दबंग शासक न था फिर भी उसका पन्द्रह वर्ष का शासन बंगाल में सुव्यवस्था और शान्ति के साथ बीता।

अलीवर्दी खाँ अंग्रेजों की कूटनीति, जालसाजी और धोखेबाजी से पूरी तरह वाकिफ था। उसने इनका दमन

करने का भी प्रयत्न किया मगर वह इतना शक्तिशाली और बुद्धिमान नहीं था कि अंग्रेजों का मुकाबला कर पाता। मरते समय उसने सिराजुद्दौल्ला से कहा था कि इन फिरङ्गियों पर सख्त नजर रखना। मैं जिन्दा रहता तो तुम्हें इस डर से मुक्त कर देता पर अब तुम्हें ही यह काम करना होगा। इन फिरङ्गियों में ये अंग्रेज सबसे ज्यादा जोरावर हैं। उन्हें किले या फौज में आगे मत बढ़ने देना वर्ना मुल्क खो बैठोगे।

परिणाम वही हुआ जो अलीवर्दी खाँ ने कहा था। सिराजुद्दौल्ला को अपने ही विश्वासघाती सेनापतियों के कारण अपनी जान देनी पड़ी और मुल्क भी चला गया।

अलीपुर षड्यन्त्र

३० अप्रैल सन् १९०८ को मुजफ्फरपुर के समीप एक लगाड़ी पर बम फेंका गया जिससे दो निर्दोष यूरोपियन महिलाओं की हत्या हो गई। जाँच करने पर मालूम पड़ा कि बम फेंकने वालों का इरादा इन महिलाओं को मारने का नहीं था बल्कि वे कलकत्ते के तत्कालीन डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट मिस्टर किंग्ज फोर्ड की हत्या करना चाहते थे।

इस घटना से चारों ओर कुहराम मच गया। पोलिस ने माणिक टोला बाग की तलाशी लेकर बम, डिनोमाइट आदि कुछ विस्फोटक चीजें प्राप्त कीं और चौंतीस मनुष्यों को गिरफ्तार किया जिनमें सुप्रसिद्ध बंगाली नेता अरविन्द घोष भी शामिल थे। यह केस अलीपुर षड्यन्त्र केस के नाम से प्रसिद्ध है। इस केस में भारत के सुप्रसिद्ध नेता देश बन्धु चितरंजनदास ने बड़ी योग्यता के साथ अभियुक्तों की पैरवी की थी।

इस मुकदमें में नरेन्द्रनाथ गोस्वामी नामक एक नवयुवक सरकारी गवाह बन गया था। मगर उसको जेल ही में अभियुक्त कनाईलाल दत्त और सत्येन्द्रनाथ ने मार डाला। कनाईलाल बड़ी निर्भीकता से फाँसी पर चढ़ गया। उसकी शव-यात्रा के साथ हजारों मनुष्य और महिलायें थीं और उसकी राख को लेने के लिये हजारों मनुष्य उत्सुक हो रहे थे। सुप्रसिद्ध एंग्लो-इण्डियन पत्र स्टेट्समेन ने उसकी तारीफ में एक लेख लिखा था।

इस केस के चौंतीस अभियुक्तों में से हाई कोर्ट द्वारा केवल पन्द्रह अपराधी सिद्ध हुए। उन्नीस व्यक्ति छूट गये। इन छूटने वालों में बंगाल के महान नेता अरविन्द घोष भी थे।

अलीनगर की सन्धि

सिराजुद्दौला के द्वारा अंग्रेजों से की गई सन्धि।

जिस समय सिराजुद्दौला और अंग्रेजों के बीच में झड़प चल रही थी और अंग्रेज लोग उसके कई साथियों को विश्वासघात के लिये तैय्यार कर रहे थे उस समय सिराजुद्दौला ने सारी परिस्थितियों से तंग आकर अंग्रेजों से एक सन्धि की थी वह अलीनगर की सन्धि के नाम से प्रसिद्ध है।

इस सन्धि के द्वारा सिराजुद्दौला ने अंग्रेजों की बतलाई हुई सारी शर्तें ज्यों की त्यों मंजूर कर ली थी और वह किसी तरह से यह चाहता था कि अंग्रेजों से युद्ध न लड़ना पड़े।

मगर अंग्रेजों ने इस नौजवान नवाब की कमजोरियों को अच्छी तरह समझ लिया था और वे उसका सर्वनाश करने पर उतारू हो गये थे। जिसके परिणामस्वरूप प्लासी का युद्ध हुआ और सिराजुद्दौला का सर्वनाश हुआ।

अल-अजार

मिस्र का एक बड़ा विश्वविद्यालय जिसने मिस्र में राष्ट्रीय भावनाओं का प्रचार करने में बहुत सहयोग दिया।

अल-अजार का विश्वविद्यालय इस्लामी संस्कृति का केन्द्र स्थल है। इस विद्यालय ने मिस्र के राष्ट्रीय जागरण में बड़ा महत्वपूर्ण हाथ बँटाया और इसका प्रधान श्रेय जलालुद्दीन-अल-अफगानी नामक एक विद्वान व्यक्ति को है जो इस्लामी धर्म का बड़ा विद्वान होने के साथ-साथ मिस्र की राष्ट्रीयता का भी उपासक था। अलअफगानी के कारण ही अल-अजार विश्वविद्यालय राष्ट्रीय भावना का घर बन गया और उसके प्रयत्न से ही विद्यालय की शिक्षा

प्रणाली में प्राण और चेतना जाग्रत हो गई । सन् १८७१ में उसने अज-अजार विद्यालय में प्रवेश किया और उसका काया पलट कर दिया ।

अल-अफगानी

उन्नीसवीं सदी में मिस्र के अन्दर नवीन राष्ट्रीय चेतना का प्रवाह बहाने वाला एक प्रसिद्ध नेता ।

जलालुद्दीन अल-अफगानी का जन्म सन् १८३८ में अफगानिस्तान में हुआ था । उसकी शिक्षा बुखारा में हुई थी । सन् १८६६ में वह मिस्र की राजधानी काहिरा नगर में आया । यहाँ से फिर वह तुर्की के प्रधान नगर कुस्तुन्तुनिया में गया । यहाँ पर अल-अफगानी के व्याख्यानों से इस्लामी दुनिया में बड़ी हलचल मच गई । जलालुद्दीन इस्लामी धर्म का पूर्ण ज्ञाता होते हुए भी स्वतन्त्र विचार का था । इस्लाम धर्म के सम्बन्ध में उसकी नवीन विचार-धारा से तुर्की की जनता ने उसे अंगीकार नहीं किया । तब वह वहाँ से १८७१ में काहिरा आया और अल-अजार विद्यालय में शिक्षक हो गया ।

जिस समय जलालुद्दीन अफगानी मिस्र में आया उस समय मिस्र के ऊपर अंग्रेजों का फौलादी पंजा धीरे-धीरे मजबूत हो रहा था । जलालुद्दीन की राष्ट्रीय विचारधारा ने अंग्रेजों को चौकन्ना कर दिया और उन्होंने पूरी शक्ति लगा कर मिस्र के शासक तोफीक-बे के द्वारा जलालुद्दीन को मिस्र से बाहर निकलवा दिया ।

जलालुद्दीन अफगानी मिस्र से निकल गया मगर फिर भी मिस्र की राष्ट्रीय भावना का दमन नहीं हुआ वह और भी जोरों के साथ आगे आई ।

अलीमर्दान खाँ

कन्धार के ऊपर ईरानी शासन का गवर्नर अली मर्दान खाँ ।

सन् १६२२ ई० में जब कि भारत पर सम्राट् जहाँगीर का शासन चल रहा था उसी समय ईरान के शासक ने कन्धार पर कब्जा कर लिया । अलीमर्दान खाँ ईरान की ओर से कन्धार का शासक बना हुआ था ।

इसके बाद सम्राट् शाहजहाँ ने काबुल के सूबेदार सईद खाँ के द्वारा अलीमर्दान खाँ को कन्धार का किला मुगलों के हवाले कर देने के लिए एक खासी रकम का प्रलोभन दिया मगर अलीमर्दान खाँ ने ईरानी शासन से विश्वासघात करने से इन्कार कर दिया और उसने ईरान के शासक को किले की रक्षा के लिये सेना भेजने को लिखा किन्तु ईराक का शाह अलीमर्दानखाँ को सन्देह की दृष्टि से देखता था इसलिये उसने सेना नहीं भेजी । तब मजबूर होकर उसने सईद खाँ को किला सौंप दिया । अलीमर्दान को सईद खाँ से एक लाख रुपये मिले और वह साम्राज्य का एक सरदार बना लिया गया ।

अलीमर्दान खाँ का मुगल दरबार में बहुत सम्मान हुआ । सम्राट् ने उसे बहुत धन दिया और स्वयं उसके घर जाकर उसे सम्मानित किया । वह कश्मीर और पंजाब का गवर्नर बना दिया गया और उसे सातहजारी मनसब का पद प्राप्त हुआ ।

अलीबन्धु

मौलाना मोहम्मद अली और शौकत अली जो सन् १६२१ के कांग्रेस की ओर से चलाये गये खिलाफत के आन्दोलन में महात्मा गान्धी के साथ थे, मगर खिलाफत का अन्त होने के पश्चात् मुस्लिम लीग में सम्मिलित हो गये ।

महात्मा गान्धी ने सन् १६२०-२१ में जब अपना असहयोग-आन्दोलन चलाया उस समय मुस्लिम देशों में खिलाफत की रक्षा का प्रश्न बड़ा जोर पकड़ रहा था । महात्मा गान्धी ने भी इस प्रश्न को अपने आन्दोलन में सम्मिलित कर लिया । इसके परिणामस्वरूप कई ऐसे मुस्लिम नेता जो साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के थे, वे भी इस आन्दोलन में राष्ट्रीय बाना पहन कर सम्मिलित हो गये । अली-बन्धु भी इसी प्रकार के लोगों में थे ।

शुरू-शुरू में गान्धीजी के तत्वावधान में इन्होंने बड़ी बहादुरी के साथ उस आन्दोलन में भाग लिया । अंग्रेजी सल्तनत से कड़ा मुकाबला किया । जेल जाने का कष्ट उठाया और उस समय के आन्दोलन के प्रधान नेताओं में इनकी गणना होने लगी ।

इनकी माता जो बीअम्मा के नाम से प्रसिद्ध थीं, बड़ी साहसी और दृढ़-निश्चय वाली महिला थीं। वह हमेशा खादी पहनती थीं, और खादी का ही एक कफन अपने साथ रखती थीं और अपने दोनों लड़को में हमेशा जाँनिसारी की भावना भरती रहती थीं।

उसी समय किसी शायर ने इन अली-बन्धुओं के लिये एक निम्नलिखित शेर कहा था :—

शौकत अली भी देख लो, गाँधी के साथ हैं।
एक मुश्त खाक हैं मगर, आँधी के साथ हैं॥

मगर जब टर्की में खिलाफत का अन्त हो गया और अंग्रेज राज-नीतिज्ञों ने असहयोग आन्दोलन को असफल करने के लिये मुसलमानों की साम्प्रदायिक भावनाओं को उभाड़ने का सफल प्रयत्न किया, तब अली बन्धुओं ने भी राष्ट्रीय बाने को छोड़ कर साम्प्रदायिक बाने को धारण कर लिया और मिस्टर जिन्ना के सहयोगी बन गये। उसके बाद इनका सारा जीवन इसी प्रकार के साम्प्रदायिक वातावरण को उभाड़ने में बीता।

अलेमानी

प्राचीन गाल प्रदेश या आधुनिक फ्रांस से पूर्व दिशा में बसने वाली एक जर्मन जाति, जिसे फ्रांस जाति के राजा क्लोविस ने सन् ४९६ में हराया। जिस समय क्लोविस अलेमानी जाति से युद्ध कर रहा था उस समय अपनी स्थिति कमजोर देख उसने ईश्वर से प्रार्थना की कि "हे प्रभु यदि इस युद्ध में विजयी हो जाऊँ तो मैं तेरी शरण में आ जाऊँगा अर्थात् क्रिस्तान हो जाऊँगा।" जीत जाने पर वह रोमन पंथ का क्रिस्तान हो गया। पोप की और उसकी मैत्री का यूरोप के इतिहास पर बड़ा प्रभाव पड़ा।

अलेक्झेंडर महान्

यूनान का संसार प्रसिद्ध महाविजेता जिसे "सिकन्दर" या "अलिक सुन्दर" भी कहते हैं। जिसका समय ई० सन् पूर्व ३३६ से ३२३ तक है।

सिकन्दर पितृ-परंपरा से हरक्युलीज का एवं मातृ-परंपरा से इयेकस का वंशज था। इसके पिता का नाम फिलिप था। जिस दिन सिकन्दर का जन्म हुआ था, उसी दिन एफेसस में डायना का मन्दिर जल कर खाक हो गया। इससे एथेंस में जितने ज्योतिषी थे, उन्होंने उस घटना को अत्यन्त अपशकुन् मूलक समझा।

पर सिकन्दर के जन्म के साथ ही उसके पिता को कई बड़ी-बड़ी सफलताएँ मिली, इससे वह बड़ा प्रसन्न हुआ और समझा कि जिस पुत्र का जन्म ऐसी सफलताओं के बीच हुआ है, वह अवश्य ही महान् विजेता होगा।

सिकन्दर बचपन से ही बड़ा सभ्य, बहादुर और साहसी स्वभाव का था। एक बार एक व्यक्ति फिलिप के पास ब्यूसी फेलस नामक एक घोड़ा बेचने के लिए लाया। जब फिलिप का कोई आदमी उस पर बैठने का प्रयत्न करता, तब वह उछल कूद कर ऐसी दुलत्तियाँ फेंकने लगता कि किसी को उस पर बैठने की हिम्मत नहीं होती थी। इसी से फिलिप ने उसको अदमनीय और व्यर्थ समझकर वापस लौटाने की आज्ञा दे दी। यह देखकर पास ही खड़े हुए १६ वर्ष के सिकन्दर ने पिता से उस घोड़े पर चढ़ने की आज्ञा माँगी।

इस पर फिलिप ने सिकन्दर को घोड़े पर चढ़ने की अनुमति दी। सिकन्दर घोड़े के पास दौड़ कर चला गया और उसकी लगाम पकड़ कर उसे तुरन्त सूर्य की तरफ घुमा दिया। वह समझ गया था कि यह घोड़ा अपनी परछाहीं देखकर भड़कता है। फिर उसकी लगाम थामे हुए उसने उसे कुछ दूर आगे बढ़ाया और हल्के हाथ से उसकी पीठ ठोकी। ज्योंही उसने उसे आगे बढ़ने के लिए उत्सुक और तेजी पर आते हुए देखा त्योंही एक छलांग मार कर उसकी पीठ पर बैठ गया और उसे पूरे वेग के साथ छोड़ दिया। जब घोड़ा पसीने-पसीने हो गया तब सिकन्दर उसे लेकर वापस चला आया। उसको इस तरह सफलतापूर्वक आते हुए देख कर सब 'वाह, वाह!' करने लग गये। उसके पिता फिलिप की आँखों में तो खुशी के आँसू आ गये। उसने हर्षातिरेक में कहा कि "ए मेरे बेटे! तू अपनी बराबरी का, अपनी योग्यता के अनुरूप कोई दूसरा राज्य ढूँढ़ ले, क्योंकि मकदूनियाँ का राज्य तेरे लिए बहुत छोटा है।"

वह ब्यूसी फेलस घोड़ा जब तक जीवित रहा, तबतक

बड़ी-से-बड़ी लड़ाइयों में अलेक्झेण्डर के साथ रहा और कई बार इसने उसको कई बड़ी-बड़ी दुर्घनटाओं से बचाया जिस प्रकार चेतक ने महाराणा प्रताप को बचाया था।

सिकन्दर की शिक्षा उस समय के महान राजनीतिज्ञ और विद्वान अरस्तू के तत्वावधान में हुई थी। अरस्तू ने उसे नीतिशास्त्र और राजनीति-विज्ञान की शिक्षा पूर्ण रूप से दी। साथ ही कुछ ऐसे गुप्त और दुर्बोध सिद्धान्तों का भी उसे परिचय कराया जिन्हें दार्शनिक लोग अपने अत्यन्त मेधावी शिष्यों को ही मौखिक रूप से बतलाया करते थे।

जिस समय सिकन्दर की उम्र २० वर्ष की थी, उसी समय पौसेनियस नामक एक व्यक्ति ने उसके पिता फिलिप की हत्या कर डाली। उस समय मकदूनियाँ का राज्य प्रबल शत्रुओं से घिरा हुआ था। आस-पास की असभ्य जातियाँ चारों तरफ विद्रोह मचा रही थीं और कुछ ही दूर थीबन लोगों ने विद्रोह मचा रखा था। उस विद्रोह को दबाने के लिए सिकन्दर चल पड़ा। थीबन लोग बड़ी वीरता से लड़े मगर सिकन्दर की बड़ी सेना से वे अपनें नगर की रक्षा न कर सके। सिकन्दर ने उन्हें बुरी तरह से पराजित कर ६ हजार लोगों को तलवार के घाट उतार दिया और २० हजार को गुलाम बनाकर बेंच दिया।

इसके कुछ दिनों के पश्चात् अलेक्झेंडर ने ग्रीस वालों को साथ मिलाकर ईरान के विशाल साम्राज्य पर अभियान करने का विचार किया। ग्रीस वालों ने उसको अपना सेनापति मान लिया।

ईरान पर अभियान

अलेक्झेंडर ने जिस समय ईरान पर अभियान करने का विचार किया, उस समय उसकी सेना में ३० हजार पैदल और ४ हजार घुड़सवार थे। सिकन्दर ने इन सब सैनिकों को मकदूनियाँ की जागीरें, छोटे कस्बे, गांव और अच्छे-अच्छे खेत सब बाँट दिये और उनकी पूर्ण सहानुभूति प्राप्त कर एका दृढ़ संकल्प शक्ति के साथ उसने अपने अभियान को प्रारंभ किया।

ईरान का सम्राट् दारा तृतीय एक प्रतापशाली सम्राट् था। उसके पास लाखों की तादाद में सेना थी और उसके साम्राज्य का विस्तार भी बहुत बढ़ा हुआ था, मगर उसकी सेना में अनुशासन और युद्ध कला की पूरी जानकारी नहीं थी। सिकन्दर की सेना संख्या में कम होते हुए भी अनुशासनबद्ध और युद्धकला में पारंगत थी।

सम्राट् दारा तृतीय से सीधी लड़ाई के पूर्व सिकन्दर को ग्रेनिफस नदी के किनारे पर दारा के सेनानायकों से संघर्ष करने का अवसर आया।

इस लड़ाई में सिकन्दर को भयंकर प्रतिरोध का सामना करना पड़ा और ऐसा अवसर भी आ गया था कि जब उसके प्राण संकट में पड़ गये होते, मगर इसी समय क्लाइडस नामक एक वीर सैनिक ने आकर उसके प्राणों की रक्षा की। अन्त में सिकन्दर की पैदल सेना ने शत्रु के पैर उखाड़ दिये और उसे भगा दिया।

इस युद्ध से ईरान की सेनाओं में सिकन्दर का बड़ा आतंक छा गया। इसी समय ईरान का सम्राट् दारा तृतीय भी अपनी ६ लाख सेना के साथ सूसा से चल पड़ा था और सिकन्दर ज्योंही सीलीसिया से आगे बढ़ा त्योंही दारा आ पहुँचा। दोनों ओर की सेनाओं में भयंकर लड़ाई हुई। सिकन्दर की जाँघ पर तलवार चलाकर दारा ने उसे जख्मी कर दिया, पर अन्त में सिकन्दर की सेनाओं ने दारा की सेना को गहरी पराजय दी और दारा को रण-क्षेत्र से भाग कर अपने प्राणों की रक्षा करनी पड़ी। दारा के शिविर की लूट में सोने चाँदी की बहुमूल्य वस्तुओं के साथ दारा की माँ, उसकी सम्राज्ञी और उसकी दो अविवाहित लड़कियाँ भी पकड़ी गईं। जब उन लोगों ने दारा के रथ और धनुष को देखा तो उसे मरा हुआ समझकर वे रोने लगीं। अलेक्झेंडर उस समय भोजन करने के लिए जा रहा था। उसने एक आदमी भेजकर उन्हें कहलवाया कि दारा अभी जीवित हैं, उनके लिये आप अफसोस न करें। मुझसे भी आप को किसी प्रकार के कष्ट पाने की आशंका न करनी चाहिये। आप यहाँ भी उसी सम्मान और इज्जत के साथ रहेंगी, जिस इज्जत से अपने राज्य में रहती थीं।

उसने उनके लिए दास-दासियों की और खर्च की भी पूरी व्यवस्था कर दी और उनके सदाचार तथा निर्मल

चरित्र की रक्षा करने के लिए पूर्ण व्यवस्था कर दी। सम्राट् दारा की रानी अपने समय की अद्वितीय सुन्दरी समझी जाती थी। इसी प्रकार दारा भी अपने समय का सबसे ऊँचा और सबसे अधिक रूपवान सम्राट् समझा जाता था। दोनों कन्याएँ भी अपने माता-पिता के अनुरूप थीं, किन्तु सिकन्दर ने—जो शत्रु पर विजय प्राप्त करने की अपेक्षा अपनी आत्मा पर संयम रखना ज्यादा राजोचित समझता था—कभी उनके साथ घनिष्ठता प्राप्त करने की चेष्टा न की। उसने मानो उनके शारीरिक सौन्दर्य के जवाब में अपने आत्म संयम और चरित्र की महत्ता को अधिक महत्व दिया।

इसके कुछ दिनों के पश्चात् दारा की महारानी का सिकन्दर के पड़ाव में देहान्त हो गया; तब सिकन्दर ने धूम-धाम और बड़ी इज्जत के साथ उसके शव का अन्त्येष्टि संस्कार कराया।

इसी समय ईरान की रानी की सेवा में जो खोजे नियुक्त थे, उनमें से टाइरियल नाम का खोजा किसी प्रकार घोड़े पर चढ़ कर भाग निकला और रानी की मृत्यु का समाचार देने के लिए दारा के पास जा पहुँचा। रानी की मृत्यु का समाचार सुन कर दारा को बहुत दुःख हुआ मगर जब खोजा ने सिकन्दर के द्वारा राज परिवार के सम्मान का पूरा बयान किया तो उसे सन्तोष हुआ।

सम्राट् दारा के साथ दूसरा युद्ध

अलेक्झेंडर की दारा के साथ जो लड़ाइयाँ हुईं, उनमें सबसे बड़ी और अन्तिम लड़ाई गागेमेला की थी। उस समय चन्द्र ग्रहण पड़ा हुआ था, जिसके ११ दिन बाद सिकन्दर तथा दारा की सेनाएँ इतनी पास आ गईं कि एक सेना दूसरी सेना को भली भाँति देख सकती थी। दारा की सेना में १० लाख सैनिक थे, जिससे घबराकर सिकन्दर के सेनापतियों ने सलाह दी कि दारा की सेना पर रात में आक्रमण करना अधिक अच्छा होगा, पर सिकन्दर ने जवाब दिया कि मैं चोरों की तरह लड़कर विजय नहीं प्राप्त करना चाहता और अपने तम्बू में जाकर रात भर गाढ़ी नींद में सोया।

सवेरा होते ही उसने ब्यूसीफेलस घोड़े को बुलाया और उस पर सवार होकर अपनी सेना को उत्साहित कर अपने शत्रु पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में भी दारा की विशाल सेना को हारकर भागना पड़ा और दारा को भी एक घोड़ी पर सवार होकर रणक्षेत्र छोड़ना पड़ा।

इसी लड़ाई के पश्चात् एक तरह से ईरान के सुप्रसिद्ध अखामनी साम्राज्य की समाप्ति हो गई और सिकन्दर एशिया का राजा घोषित हुआ। यहाँ से जो खजाना लूटा गया, वह २० हजार खच्चरों और ५ हजार ऊँटों पर लाद कर भेजा गया।

उसके पश्चात् सिकन्दर दारा का पता लगाने चल पड़ा। ११ दिन में उसने ४१२ मील की यात्रा अपने सैनिकों के साथ तै कर ली। रास्ते में प्यास लगने और पानी न मिलने के कारण उसके बहुत से सैनिक मर गये। उसे मालूम हो गया था कि दारा को बेसस नामक व्यक्ति ने पकड़ रखा है। सिर्फ ६० सैनिक सिकन्दर के साथ सैनिक-शिविर तक पहुँच सके। यहीं पर उसके अग्रगामी सैनिकों को दारा बहुत ही घायल और मरणासन्न अवस्था में एक रथ पर पड़ा हुआ मिला। उसने उनसे पीने का पानी माँगा। पोलिस्ट्रेटस नामक सैनिक ने उसे पीने को ठंडा पानी दिया। पानी पीकर दारा ने कहा कि "यह मेरे दुर्भाग्य की पराकाष्ठा है कि आज तुमने मेरे साथ जो उपकार किया है, उसका बदला चुकाने में भी मैं असमर्थ हूँ, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि तुमने मेरे साथ जो इन्सानियत का बर्त्ताव किया, उसके लिये सिकन्दर तुम्हें अवश्य धन्यवाद देगा। मुझे आशा है कि सिकन्दर ने मेरी माता, पत्नी तथा बच्चों के साथ जो सद्व्यवहार किया है, उसका बदला उसे देवता लोग देंगे। तुम सिकन्दर से कह देना कि मैं उसके प्रति कृतज्ञता स्वीकार करते हुए अपना यह दाहिना हाथ उसे समर्पित करता हूँ।" इतना कहकर उसने अपने नेत्र हमेशा के लिए बन्द कर लिए।

इस प्रकार महान ईरानी साम्राज्य के एक प्रतापी सम्राट् का इतिहास ने ऐसा करुणाजनक अन्त देखा।

थोड़ी देर के पश्चात् जब सिकन्दर वहाँ पहुँचा तो उसे बड़ा दुःख हुआ। उसने अपना चोंगा उतार कर उसके मृत शरीर पर ओढ़ा दिया। दारा के शव को राजकीय शान-शौकत के साथ उसकी माता के पास भिजवा दिया।

ईरान को विजय करने के बाद अलेक्झेंडर ने हिरकेनियाँ में प्रवेश किया। वहाँ से चलकर वह पार्थिया पहुँचा। वहाँ पर उसने अपनी वेश-भूषा को बदल कर ईरान और मकदूनियाँ दोनों की वेश-भूषा को मिलाकर ऐसी पोशाक धारण की, जो बहुत बनावटी और चमकीली न होते हुए भी रोबीली थी।

आगे जाकर भी सिकन्दर वहाँ के निवासियों की चाल ढाल के अनुकूल अपने रहन-सहन में बराबर परिवर्तन करता रहा और वहाँ के लोगों को भी यूनानी रहन-सहन के तरीकों में ढालने की चेष्टा करता रहा। इस कार्य के लिये उसने वहाँ के ३० हजार लड़कों को चुन लिया और उन्हें ग्रीक भाषा सिखाने तथा मकदूनियन प्रणाली से शस्त्र-विद्या की शिक्षा देने के लिए अनेक शिक्षक नियुक्त कर दिये।

मिस्र-विजय

ईरान के पश्चात् सिकन्दर ने मिस्र देश को जीत कर अपना प्रभुत्व स्थापित किया और वहाँ उसने अपने नाम पर समुद्र के तट पर 'अलेक्झेंड्रिया' नामक एक विशाल नगर की केवल २७ दिनों में रचना की। अलेक्झेंडिया का नगर आज भी मिस्र देश का सबसे सुन्दर नगर है।

सिकन्दर की हत्या का प्रयत्न

एक बार लिमनस नामक मकदूनिया के एक सिपाही ने सेनापति पारमेनियों के पुत्र फिलोटस की मंत्रणा से सिकन्दर की हत्या करने का षड़यंत्र रचा। यह बात लिमनस के एक मित्र को मालूम हुई और उसने इस खबर को सिकन्दर के पास पहुँचा दिया। सिकन्दर को यह हाल सुनकर बड़ा क्रोध आया। उसने लिमनस को तुरन्त पकड़ लाने के लिए एक सैनिक भेजा, लिमनस ने उस पर आक्रमण किया, पर अन्त में उस सैनिक के हाथ से मारा गया। तब सिकन्दर को इस षडयंत्र के सम्बन्ध में फिलोटस पर सन्देह हुआ, उसने फिलोटस को पकड़वा मँगाया और उसे प्राण-दण्ड की सजा दी।

क्लाइडस की हत्या

क्लाइडस सिकन्दर का बहुत विश्वास-पात्र व्यक्ति था। मगर एक दिन सिकन्दर के साथ भोजन करने के उपरान्त जब इन लोगों ने खूब मदिरा पान कर लिया तब वहाँ पर एकत्रित लोगों में से एक ने ऐसी कविताओं का पाठ करना शुरू किया, जिनमें मकदूनियों के उन सेना-नायकों की हँसी उड़ाई गई थी, जो ईरानी लोगों से युद्ध करने में पराजित हो गये थे। इस पर क्लाइडस को बहुत बुरा लगा उसने कहा—

"असभ्य जाति के लोगों और शत्रुओं के बीच में मकदूनियाँ के सेनापतियों की हँसी उड़ाना उचित नहीं है। यद्यपि वे दुर्भाग्यवश हार गये थे, फिर भी वे उन लोगों से ज्यादा काबिल थे, जो इस समय उनकी दिल्लगी उड़ा रहे हैं!"

इस पर सिकन्दर ने कहा कि "तुम अपनी पैरवी आप कर रहे हो और अपनी कायरता को दुर्भाग्य कह कर छिपाना चाहते हो?"

क्लाइडस ने कहा कि "जिसे आप मेरी कायरता कहते हैं, उसी ने एक बार स्पिथ्रीडेटीज की तलवार से भागते समय आपकी रक्षा की थी। मकदूनियां के लोगों ने आपके लिए जो जोखिम उठाई है, उसी के कारण आज आप इतने ऊँचे स्थान पर पहुँच गये हैं कि फिलिप को अपना पिता अस्वीकार कर अपने को एमन देवता (बृहस्पति) का पुत्र कहने की हिम्मत करते हैं।"

इस प्रकार के उत्तेजनापूर्ण वातावरण में सिकन्दर ने उत्तेजित होकर एक सैनिक के हाथ से बरछी छीन कर क्लाइडस के शरीर में घुसेड़ दी। वह चीख मार कर तुरन्त गिर पड़ा।

उसके पृथ्वी पर गिरते ही सिकन्दर के होश ठिकाने आ गये। उसने क्लाइडस के मृत शरीर से बरछी खींचकर अपने शरीर में भोंकना चाहा, मगर शरीर-रक्षकों ने उसका हाथ पकड़ लिया और उसे जबरदस्ती उसके निजी कमरे में ले गये। सारी रात सिकन्दर उसके लिए खूब रोता रहा। फिर लोगों के समझाने से उसको कुछ शान्ति हुई।

भारत विजय की यात्रा

अब सिकन्दर ने भारत की ओर यात्रा करने का निश्चय किया। इस यात्रा में उसने जो लड़ाइयाँ लड़ीं, उनमें उसे अनेक जोखिमें उठानी पड़ीं और उसका शरीर

भी बहुत क्षत-विक्षत हो गया। जल-वायु की प्रतिकूलता तथा आवश्यक भोजन-सामग्री की कमी से भी उसकी सेना को बहुत कष्ट उठाना पड़ा। वह दृढ़ता के साथ विघ्न-बाधाओं एवं दैव की प्रतिकूलता पर विजय पाने के प्रयत्न में जुट गया। उसका विचार था कि साहसी मनुष्य के लिए किसी भी कठिनाई पर विजय पाना असंभव नहीं है और कायरों के लिए कोई भी स्थान सुरक्षित नहीं है।

कठिनाइयों का सामना करने तथा जोखिम उठाने में सिकन्दर का साहस अजेय था। एक बार वह एक सिंह से भिड़ गया और द्वन्द-युद्ध में उसे पछाड़ कर ही छोड़ा।

भारत के मार्ग में चलते हुए वह तक्ष-शिला पहुँचा। तक्ष-शिला के राजा का भारतीय राज्य मिस्र देश के बराबर था। वह अनेक हरे-भरे क्षेत्रों और फूलों एवं फलों से भरा हुआ था। वहाँ का राजा बड़ा बुद्धिमान था। सिकन्दर से भेंट होने पर उसने कहा —

"यदि आपका उद्देश्य हम लोगों को भोजन और जल से वञ्चित रखने का नहीं है तो हम लोगों को परस्पर युद्ध करने से क्या लाभ! यदि आप सोना-चाँदी इत्यादि अन्य वस्तुओं के विषय में कहते हों और आप की अपेक्षा मेरे पास ये अधिक मात्रा में हों तो इनका कुछ भाग मैं आप को देने को तैयार हूँ। किन्तु यदि आप के पास इनकी प्रचुरता हो तो मुझे आप से भी इन चीजों के लेने में एतराज न होगा।"

यह सुनकर सिकन्दर इतना प्रसन्न हुआ कि राजा को उसने गले से लगा लिया। उसने राजा की भेंट स्वीकार करली और बदले में उससे अधिक मूल्य की भेंट भेजवा दी और एक हजार टेलेंट (यूनानी सिक्का) नगद भी उसके पास भेजवा दिया।

पुरू राजा से युद्ध

इसके बाद सिकन्दर का हिन्दुस्तान के सीमावर्ती राज्य के राजा पुरू से इतिहास प्रसिद्ध युद्ध हुआ। इस युद्ध का वर्णन करते हुए वह स्वयं लिखता है—

"दोनों सेनाएँ झेलम नदी (हाइडेसपीज) के दोनों किनारों पर पड़ी हुई थीं। सामने के किनारे पर पुरू ने युद्ध क्रम से अपने हाथी खड़े कर रखे थे। मैंने शत्रु को भुलावा देने के इरादे से शिविर में रात-दिन शोर-गुल करते-रहने की आज्ञा दे रखी थी। एक अँधेरी रात को जब खूब बरसात हो रही थी। उस समय कुछ आगे बढ़ कर मैंने नदी पार करने की चेष्टा की और कुछ चुने हुए सवारों के साथ नदी के बीच में एक छोटे से टिब्बे पर जा पहुँचा। वहाँ जोरों की आँधी और बिजली की कड़क के साथ घोर वृष्टि होने लगी। बिजली के गिरने से मेरे कुछ आदमी मर भी गये। उसी स्थिति में उस टापू को छोड़ कर हम लोग किनारे की ओर बढ़े।

जब पुरू को मेरे नदी पार करने की बात मालूम हो गई तो वह अपनी बहुत सी सेना के साथ हमारी ओर झपटा। मैंने शत्रु की विशाल सेना का ख्याल कर और हाथियों की मुठभेड़ से बचने के लिए अपनी सेना को दो भागों में बाँट दिया। एक का सेनापति मैं खुद बना, दूसरी का कोनस हुआ। मैंने शत्रु के बाएँ पक्ष पर और कोनस ने दाहिने पक्ष पर आक्रमण किया। हम लोग दोनों पक्षों के सैनिकों को तितर-बितर करने में सफल हुए। अब ये लोग भाग कर मध्य भाग में पहुँचे, जिससे हाथियों के सामने काफी भीड़ हो गई। वहाँ एकत्र होकर वे हमारे सैनिकों के साथ गुत्थम-गुत्था होकर लड़ने लगे। उन्हें पूर्णतया पराजित करने में हमें दिन के आठ घंटे लग गये।"

राजा पुरू गिरफ्तार हो गया और वह सिकन्दर के सामने लाया गया। जब सिकन्दर ने उससे पूछा कि तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार किया जाय?

पुरू ने उत्तर दिया कि जैसा एक विजयी राजा एक पराजित राजा के साथ करता है।

सिकन्दर ने यह सुनकर पुरू का राज्य उसे लौटा दिया और अपनी ओर से भी कुछ प्रान्त उसके राज्य में मिलाकर पुरू को वहाँ का अपनी ओर से गवर्नर बना दिया।

पुरू राजा के साथ जो युद्ध हुआ, उसमें सिकन्दर विजयी तो हुआ, मगर उससे मकदूनियाँ के सैनिकों की हिम्मत टूट गयी। लगातार की लड़ाइयों से वे लोग काफी परेशान हो चुके थे। सिकन्दर गंगा नदी को पार कर आगे का प्रवेश भी जीतना चाहता था, मगर सैनिकों ने बड़ी

दृढ़ता से उसका विरोध किया। लाचार होकर सिकन्दर को वापस लौटने का निर्णय करना पड़ा।

वापस लौटते समय उसने समुद्र के रास्ते से लौटना निश्चय किया। इस वापसी यात्रा में भी उसे छोटी-बड़ी कई लड़ाइयाँ करनी पड़ीं। एक बार मलियन लोगों की लड़ाई में उसके प्राणों पर संकट आ गया। केवल दो शरीर-रक्षकों के साथ वह किले की दीवार पर चढ़कर भीतर शत्रु के बीच में कूद पड़ा। शत्रु-पक्ष के लोगों ने उसे चारों ओर से घेर लिया। सिकन्दर बड़ी वीरता से आत्मरक्षा कर रहा था। इतने में दूर खड़े एक सैनिक ने निशाना ठीक करके ऐसा बाण छोड़ा जो उसके कवच को छेद कर छाती के नीचे पँसली में घुस गया। सिकन्दर उस प्रहार को सह न सका, और पीछे हटकर एक घुटना टेकर उसने अपने को गिरने से बचाया। यह देखकर उसे मार डालने की इच्छा से वह सैनिक अपनी तलवार लेकर उस पर झपटा, मगर सिकन्दर के दोनों शरीर-रक्षक उस प्रहार के बीच में आ गये। एक तो वहीं खतम हो गया, किन्तु दूसरा आहत होकर भी उसकी रक्षा कर रहा था। इसी बीच में सिकन्दर की गर्दन पर एक सैनिक ने इतने जोर से गदा का प्रहार किया कि उसको दीवार का सहारा लेना पड़ा और बेहोश हो गया।

इसी भयंकर समय में मकदूनियाँ की सेना भीतर घुस आई और उसने चारों ओर से सिकन्दर को घेर लिया और उसे उठाकर अपने शिविर में ले आई। बात की बात में उसके मरने की खबर सारी सेना में फैल गई।

किन्तु जब बाण का ऊपरी भाग काट कर उसका कवच उतार लिया गया और वह फिर होश में आ गया तब लोगों को तसल्ली हुई।

नदियों के मार्ग से समुद्र तक पहुँचने में उसे सात महीने लग गये। सिलसटिस नामक टापू में पहुँचकर उसने देवताओं को बलि चढ़ाई। इसके बाद उसने अपने समुद्री बेड़े को किनारे-किनारे यात्रा करने का आदेश दिया और स्वयं स्थल मार्ग से लौट पड़ा। खाद्य-सामग्री की कमी के कारण पोराइट देश में उसे बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। वहाँ उसकी सेना का एक बड़ा भाग नष्ट हो गया। १ लाख २० हजार पैदल तथा १५ हजार घुड़ सवारों में से केवल एक चौथाई सेना उसकी भारत से लौट सकी।

उसके जीते हुए प्रदेशों में जब इस बात की खबर पहुँची कि सिकन्दर की बहुत सी सेना भारत के रास्ते में खतम हो चुकी है तो सब दूर विद्रोह की भावनाएँ फैलने लगीं। उसके देश मकदूनिया में उसके प्रतिनिधि ऐंटीपेटर के विरुद्ध ओलिंपियस और क्रियोपेट्रा ने विद्रोह का झंडा खड़ा कर उसके देश पर दखल जमा लिया।

जब सिकन्दर फारस देश में पहुँचा तब वहाँ साइरस की समाधि को खुला हुआ पाया। इस अपराध के अपराधी पोलीमेकस नामक मकदूनियन को उसने प्राण दण्ड दिया, और उस समाधि पर जो इबारत खुदी हुई थी, उसे उसने फिर से ग्रीक अक्षरों में खुदवा दिया। उसमें लिखा था।

"महाशय, चाहे तुम कोई हो और चाहे किसी देश से आये हो, यह जान लो कि मैं फारस साम्राज्य का संस्थापक साइरस हूँ। मेरे शरीर के ऊपर जो जमीन का एक छोटा सा टुकड़ा है, कृपाकर मुझे उसी के नीचे पड़ा रहने दो।"

इस इबारत को पढ़कर सिकन्दर बड़ा प्रभावित हुआ। उसे ख्याल हुआ कि संसार में मनुष्य की सभी बातें कितनी अनिश्चित और परिवर्तनशील हैं।

वहाँ से वह सूसा पहुँचा और उसने सम्राट दारा की लड़की स्टेटिरा से विवाह कर लिया और अपने बहुत से मित्रों का विवाह भी चुनी हुई फारस की कुमारियों के साथ करा दिया। जिन ३० हजार लड़कों को वह सुयोग्य शिक्षकों की देख-रेख में छोड़ गया था, उन्होंने अब तक बड़ी उन्नति कर ली थी। उनका विलक्षण कौशल और हस्त-लाघव देखकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ।

अब वह बेबीलोनिया जाने की तैयारी करने लगा। उसके ज्योतिषियों ने वहाँ जाने से उसे मना किया मगर उसने नहीं माना।

रास्ते में उसे कई प्रकार के अपशकुन हुए जिससे उसकी तबीयत और भी घबरा उठी और उसने समझा कि उस पर से देवताओं की कृपा कम हो गई। उसे

अपने मित्रों पर भी आशंका होने लगी। अन्त में १८ जून को उसे ज्वर ने आकर घेरा और ३० जून को ३३ वर्ष की अवस्था में उसकी मृत्यु हो गई।

कई दिनों के बाद इस बात का पता लगा कि उसको आमोलियस नामक व्यक्ति ने जहर दिया था। इस अपराध में ६ वर्ष बाद राजा ओलम्पियस ने कई लोगों को मृत्यु दण्ड दिया।

सिकन्दर के मरते ही उसका विशाल साम्राज्य उसके सेनापतियों ने बाँट लिया और वे भी आपस में लड़ते-भिड़ते रहे।

अलेक्झेण्डर मुडीमेन

सन् १९२४ में भारत सरकार के गृह सदस्य जिनकी अध्यक्षता में एक रिफार्म कमेटी की स्थापना हुई।

फरवरी १९२४ में भारतीय धारासभा में भारत की वैधानिक प्रगति पर एक प्रस्ताव पेश हुआ। स्वराज्य दल के नेता पं० मोतीलाल नेहरू ने इस प्रस्ताव में एक संशोधन रखा और सपरिषद् गवर्नर जनरल पर इस बात का जोर दिया कि भारत में शीघ्र ही पूर्ण उत्तरदायी शासन की स्थापना की जाय, सन् १९१९ के एक्ट में आवश्यक सुधार किया जाय और इस उद्देश्य के लिये एक राउण्डटेबिल कॉन्फरेंस की आयोजना की जाय। इस प्रस्ताव और संशोधन के परिणामस्वरूप सन् १९२४ में भारत सरकार के गृह-सदस्य सर अलेग्झेण्डर मुडीमेन की अध्यक्षता में एक रिफार्म कमेटी की स्थापना हुई। जिसमें श्री तेज बहादुर सप्रू, श्री मोहम्मदअली जिन्ना इत्यादि भारतीय सदस्य भी सम्मिलित थे।

अलेग्झेण्ड्रिया

ग्रीस के विजेता अलेग्झेण्डर महान् के द्वारा मिश्र में बनाया हुआ एक प्रसिद्ध नगर और बन्दरगाह जिसका निर्माण ई० सन् से ३२३ वर्ष पूर्व हुआ।

अलेग्झेण्ड्रिया मिस्र का एक बहुत सुन्दर विशाल और रमणीक शहर तथा बन्दरगाह है। अलेग्झेण्ड्रिया की सुप्रसिद्ध इमारतें, फव्वारे, बाग-बगीचे और शिल्प कारीगरी को प्रदर्शित करने वाली अन्य चीजें दर्शनीय हैं।

अलेग्झेण्ड्रिया का पुस्तकालय संसार भर में सबसे विशाल था। जिस समय छपाई की कला का आविष्कार नहीं हुआ था उस समय इस पुस्तकालय में कई हजार हस्त लिखित पुस्तकों का संग्रह था। एक समय अलेग्झेण्ड्रिया सारे संसार में शिक्षा का प्रसिद्ध केन्द्र था। मिस्र के सम्राट टोलेडमो प्रथम ने अलेग्झेण्ड्रिया में एक ऐसे विश्व विद्यालय की स्थापना की थी जो संसार का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता था। अलेग्झेण्ड्रिया का पुस्तकालय और अजायब घर दोनों संसार के शिक्षित और विचारवान लोगों के लिये एकत्रित होने के केन्द्र थे।

अलेग्झेण्ड्रिया के बीच में एक सौ फीट लम्बा पोम्पियाई का स्तूप खड़ा हुआ है। यह स्तूप विद्रोही प्रजा का दमन करने के उपलक्ष्य में डेक्लीटेन नामक राज्याधिकारी के सम्मान में खड़ा किया गया है।

रोम का साम्राज्य खतम होने पर मिस्र में अरब के खलीफाओं का अधिकार हो गया। खलीफा की सेना का नेता अमोर नामक व्यक्ति था। ऐसा कहा जाता है कि अलेग्झेण्ड्रिया की विजय के पश्चात् खलीफा ऊमर की आज्ञा से उसने सिकन्दरिया के सारे पुस्तकालय को जला दिया। कई इतिहासकार इस घटना में सन्देह करते हैं।

अलेक्झेन्डर ग्रेहम बेल

टेलिफोन के सुप्रसिद्ध आविष्कर्ता अलेक्झेण्डर ग्रेहम बेल जिसका जन्म सन् १८४७ ई० में स्कॉटलेण्ड की राजधानी एडिनबरा में हुआ। इसको शिक्षा इंग्लैण्ड में हुई। कुछ समय के पश्चात् यह केनेडा गया और एक गूँगे-बहरों के स्कूल में अध्यापक हो गया।

गूँगे बहरे लोगों को पढ़ाते हुए बेल को इस बात का ज्ञान हो गया था कि शब्द मनुष्य के कानों तक हवा के कम्पनों (Vibrations) द्वारा पहुँचता है। इससे उसको यह विचार हुआ कि जिस प्रकार शब्द के कम्पन कान की झिल्ली पर प्रभाव डालते हैं उसी प्रकार वे चमड़े की या लोहे के पतले पत्तर की डिस्कस (Discs) पर भी प्रभाव डाल सकते हैं। उसने एक शीशे को धुएँ से काला करके उस पर शब्द के कम्पनों के अंक बनाये। इसी से उसको यह ख्याल हुआ कि ये कम्पन बिजली के तार द्वारा दूसरे सिरे पर भी पहुँचाये जा सकते हैं।

वेल को शब्द के सिद्धान्तों का तो पर्याप्त ज्ञान था मगर विद्युत शास्त्र से वह अनभिज्ञ था। एक समय उसे वाशिंगटन जाना पड़ा। वहाँ पर विद्युत् शास्त्र के विशेषज्ञ जोसेफ हेनरी से उसकी मुलाकात हुई। हेनरी से उसने विद्युत् शास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया और अपने सहकारी वाट्सन के साथ ध्वनि सम्बन्धी तार के प्रयोग करने लगा।

एक दिन वेल और उसका सहकारी वाट्सन ध्वनि सम्बन्धी तार पर कुछ काम कर रहे थे। जिस सिरे पर वाट्सन यन्त्र के ऊपर काम कर रहा था उसकी एक स्प्रिङ्ग खराब हो गई थी। वाट्सन स्प्रिंग को निकाल कर हथौड़े से टोकने लगा। उस ठोकने का शब्द दूसरे सिरे पर बैठे हुए वेल को सुनाई दिया। इससे वेल को विश्वास हो गया कि जब हथौड़ा ठोकने की आवाज सुनाई पड़ती है तो आदमी की आवाज भी अवश्य सुनाई देना चाहिये।

इसके पश्चात् ४० सप्ताह अदम्य उत्साह के साथ काम करने के पश्चात् १० मार्च सन् १८७६ को इनका बनाया हुआ यन्त्र बोलने लगा। उसके बाद फिलाजेलफिया की शतवर्षीय प्रदर्शनी में वेल का यह यन्त्र रखा गया। वहाँ पर ब्राजील के बादशाह और इंगलैण्ड के विज्ञानवेत्ता लार्ड कैल्विन ने उस यन्त्र को देखा और उसकी प्रशंसा की। सन् १८८१ में ६० लाख डालर की पूँजी से वेल टेलिफोन कम्पनी का संगठन हुआ और तब से इस यन्त्र का प्रचार सारी दुनिया में बड़ी तेजी से हो रहा है। और इसकी गिनती मनुष्य के दैनिक जीवन की, सरकारी कामों की और व्यवसायिक प्रतिष्ठानों की अनिवार्य आवश्यकताओं में की जाती है!

अलीसेण्ड्रो होल्टा (Ailess..ndro volta)

इटली का एक सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक जिसका जन्म सन् १७४५ और मृत्यु सन् १८२७ में हुई और जिसने विद्युत-शक्ति के सम्बन्ध में कई नवीन अनुसन्धान किये।

अलीसण्ड्रो वोल्टा का जन्म इटाली के कोमो नगर में हुआ। सन् १७७६ में यह पेविया यूनिवर्सिटी में भौतिक विज्ञान के प्रोफेसर बनाया गया। विद्युत् शक्ति के परिमाणिक नाप पर अपने अनुसन्धानों के कारण इसकी तुलना प्रसिद्ध वैज्ञानिक कुलाम्ब के साथ की जाती है। बहुत समय तक यह अपने दो तिनकों के द्वारा बनाये हुए विद्युतमापक यन्त्र (Electrometer) से काम लेता रहा जब तक कि एल्यूमीनियम इलेक्ट्रोस्कोप का निर्माण नहीं हो गया। इलेक्ट्रो स्कोप को और सुग्राहक बनाने के लिए इन्होंने उसके बटन में एक संचक जोड़ दिया। इस प्रकार का इलेक्ट्रोस्कोप होल्टा का कण्डेन्सिंग इलेक्ट्रोस्कोप कहलाता है।

अपने दूसरे आविष्कार में—जिन्होंने वैज्ञानिक जगत् में इन्हें अमर कर दिया—इन्होंने सबसे पहले यह सिद्ध किया कि विद्युत केवल रगड़ खाने की क्रिया से ही उत्पन्न नहीं होती बल्कि रासायनिक विधि से भी पैदा की जा सकती है। इसके पहले सारे वैज्ञानिक जगत् का यही विश्वास था कि विद्युत शक्ति केवल रगड़ या संघर्ष की क्रिया से ही उत्पन्न हो सकती है। इसके पश्चात् विद्युत् शक्ति के सम्बन्ध में इन्होंने और भी कुछ महत्वपूर्ण अनुसन्धान किये।

सन् १८०४ में इन्होंने पेविया युनिवर्सिटी से अपना इस्तीफा पेश किया। उस समय नैपोलियन बोनापार्ट का इनके देश पर शासन था। उसने इनका इस्तीफा नामंजूर करते हुए लिखा कि—

"मैं होल्टा के त्यागपत्र को स्वीकार नहीं कर सकता। अगर प्रोफेसर की हैसियत से उनका काम बहुत भारी हो गया हो तो वे सालभर में केवल एक लैक्चर देकर ही अपने पद पर रह सकते हैं पर मैं उसके सदस्यों की श्रेणी में से एक महत्वपूर्ण नाम को हटाने की इजाजत देता हूँ तो समस्त युनिवर्सिटी को आघात लगेगा। फिर एक अच्छे वैज्ञानिक को अपने सम्मान क्षेत्र में ही प्राण छोड़ना चाहिए।'

इन्हीं के सम्मान में विद्युत शक्ति के नाप की एक व्यवहारिक इकाई का नाम वॉल्ट (Volt) रक्खा गया।

अलेक्झेण्डर जार प्रथम

रूस का इतिहास प्रसिद्ध जार, जार पावल का पुत्र रानी एकतारिना सेकण्ड का पोता (सन् १८०१—१८२५)

रूस के जार पॉवल की हत्या को बाद उसका पुत्र अलेक्झेण्डर प्रथम रूस के जार की गद्दी पर बैठा। रूस के प्रसिद्ध जार पीटर का वंश समाप्त होने पर अलेक्झेण्डर के पूर्वजों को जर्मनी से लाकर जार की गद्दी पर बिठाया गया था। इसलिए इस वंश में रूसी खून की अपेक्षा जर्मन-खून की प्रधानता थी।

अलेक्झेण्डर प्रथम के शासन के समय यूरोप के अन्दर औद्योगिक क्रान्ति का प्रारम्भ हो चुका था और उसकी लहरें धीरे-धीरे रूसमें भी पहुँच रही थी। इसलिए जार अलेक्झेण्डर प्रथम ने रूस के यातायात और व्यापारिक विकास के लिए कई जलपथों का निर्माण किया। सन् १८०३ में उसने एकातेरिना नामक नहर बनाकर कामा और द्वीना नदियों को आपस में जोड़ दिया। सन् १८०४ में ओगिन्स की नहर बनाई गई जिसने काला सागर और बाल्टक सागर को मिला दिया। कुछ समय पश्चात् मारीइन्स्क और तिखविन की नहर प्रणाली बनकर तैय्यार हो गई। जिसके द्वारा बाल्टक समुद्र का सम्बन्ध रूस के भीतरी भागों से हो गया।

अलेक्झेण्डर प्रथम के शासन में आने से पूर्व ही फ्रान्स में राज्य क्रान्ति हो चुकी थी और उसका एक व्यापक प्रभाव सारे संसार पर पड़ रहा था रूस पर भी उसकी छाया पड़ रही थी। इसलिए ऐसी परिस्थिति से बचने के लिए अलेक्झेण्डर रूस के शासन में सुधार करना चाहता था। उसने एक पत्र में लिखा था कि "मैं देश को स्वतंत्रता दूँगा और उसे पागलों के हाथ का खिलौना न बनाने दूँगा।" उसने शासन में दृढ़ता लाने के लिए शासन में आठ मंत्रालयों की स्थापना की। शिक्षा का विकास करने के लिए खरकोफ और कजान में नये विश्वविद्यालयों की स्थापना की और सेण्टपीटर्स वर्ग के विश्वविद्यालय को फिर से संगठित किया।

अलेक्झेण्डर के शासन काल के समय में ही यूरोप में नैपोलियन के आक्रमणों का बवण्डर उठ रहा था। जार अलेक्झेण्डर ने नैपोलियन को दबाने के लिए सेनापति कुतुजोफ़ की अधीनता में एक बड़ी सेना भेजी, उस समय नैपोलियन अपनी डेढ़ लाख सेना के साथ इंग्लैण्ड पर आक्रमण की तैयारी कर रहा था। कुतुजोफ़ ने नैपोलियन की विराट् शक्ति से उस समय टक्कर लेना उचित नहीं समझा और वहाँ से वापस लौट आया।

उधर नैपोलियन रूस को विश्राम नहीं लेने देना चाहता था सन् १८१२ के जून मास में वह अपनी सेना के साथ रूस पर चढ़ आया। रूसी सेना का सेनापति कुतुजोफ एक कुशल सेनापति था उसने नैपोलियन की विशाल सेना से टक्कर लेकर नष्ट होना पसन्द नहीं किया। छोटी-बड़ी लड़ाइयाँ करके चतुराई के साथ उसने पीछे हटने की नीति को पसन्द किया। पीछे हटते हुए ये लोग स्वयं अपने ही नगरों और खाद्य सामग्री को नष्ट कर देते थे। यह एक आश्चर्य की बात थी कि इस युद्ध में रूस की जनता भी पूरी शक्ति से शासन की सेनाओं का साथ दे रही थी। खाली रूसी ही नहीं बल्कि कल्मक, तातार इत्यादि दूसरी जातियों के सैनिक भी नैपोलियन की सेना से लड़ रहे थे। नैपोलियन की सेना को भयंकर कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था क्योंकि पीछे हटते हुए रूसी सैनिक काम में आने वाली किसी भी वस्तु को नहीं छोड़ते थे खड़ी फसलों को भी वे नष्ट करते जाते थे। नैपोलियन चाहता था कि रूसी सेना से आमने-सामने की भिड़न्त हो जाय जिससे लड़ाई का फैसला लगे। मगर रूसी सेनापति सामने की लड़ाई में आना नहीं चाहता था वह नैपोलियन की सेना को ऐसी चूहेदानी में फँसा देना चाहता था जहाँ वह शीत और भूख से तड़फ कर अपनी मौत मर जाय।

अन्त में रूसी सेनापति नैपोलियन को बढ़ाता हुआ मास्को तक ले गया। इस स्थान पर सब सेनापतियों ने अन्तिम और बड़ी लड़ाई लड़ने की सलाह दी, मगर सेनापति कुतुजोफ ने कहा कि मास्को का चला जाना रूस का चला जाना नहीं है। उसने नागरिकों को मास्को खाली करने का आदेश दिया और रात को स्वयं रूसी सैनिकों ने ने ही मास्को में आग लगा दी। छः दिन तक यह आग मास्को में जलती रही। नैपोलियन को मास्को मिला लेकिन जले-भुने एक खण्डहर के रूप में।

सितम्बर में जाड़ा भयंकर रूप से प्रारम्भ हो गया, मास्को का जाड़ा सारे संसार में प्रसिद्ध है। नैपोलियन की सेनाएँ उसी जाड़े में ठिठुर-ठिठुर कर मरने लगीं। नैपोलियन ने रूस के सामने संधि का प्रस्ताव रक्खा मगर किसी ने उस पर कान नहीं दिया।

अक्टूबर की ६ तारीख को नैपोलियन ने अपनी फौजों को मास्को छोड़ने का हुक्म दिया। सैनिक एक तरफ जाड़े से अकड़ रहे थे दूसरी तरफ भूख से। घोड़ों को मार कर खाने के सिवाय उनके पास कोई खाद्य सामग्री नहीं थी। रास्ते के गाँव और नगर बिलकुल उजाड़ थे। भूखमरी के साथ बीमारी ने भी आक्रमण किया। वापस लौटते-लौटते नैपोलियन की सेना के केवल तीस हजार सैनिक बच गये थे। इसी समय से नैपोलियन का जो पतन होना शुरु हुआ वह कहीं भी नहीं रुका।

नैपोलियन की इस पराजय के बाद जार की शक्ति बहुत बढ़ गई। अब वह सारे यूरोप के भाग्य और व्यवस्था की जिम्मेदारी को अपने कन्धों पर समझने लगा। अरकचेयेफ नामक सरदार का जार पर बड़ा प्रभाव था लेकिन जनता इस व्यक्ति से बड़ी घृणा करती थी। क्योंकि यह अत्यन्त निरंकुश और किसानों की दासता का समर्थक था। इसने रूस में किसानों की मरजी के खिलाफ हजारों सैनिक बस्तियाँ बसाईं इन बस्तियों में किसानों को जबर्दस्ती रक्खा जाकर उनसे सिपाहियों का काम लिया जाता था। किसानों ने ऐसी बस्तियों के खिलाफ विद्रोह करना प्रारम्भ किये जिन्हें अरकयेचाफ ने बड़ी निष्ठुरता से दबा दिया।

इसके बाद अलेक्झेण्डर ने काकेशस प्रान्त को विजय कर साम्राज्य में मिला लिया।

सन् १८२६ तक रूस के अन्दर मशीन युग भी काफी विकास कर चुका था। सन् १८०४ में रूस में जहाँ २४२७ कारखाने थे वहाँ १८२६ में ५२६१ कारखाने और २११००० मजदूर हो गये। मशीन युग का स्वाभाविक प्रभाव क्रान्ति की लहर को उत्पन्न करना है। सारे यूरोप की तरह रूस में भी इस युग ने अपना प्रभाव बतलाया और राज्य सत्ता को नष्ट करके उसके स्थान पर स्वाधीन रूसी गणतन्त्र कायम करने के लिए रूस में कई गुप्त और क्रान्तिकारी संस्थाएँ स्थापित हुईं। कर्नल अलेक्झेण्डर मुराक्योफ, कर्नल पावन इवालं, कर्नल पेस्टल इत्यादि व्यक्ति इन संस्थाओं के नेता थे। ये लोग एक संगठित विद्रोह की तैयारी कर रहे थे जो १४ दिसम्बर १८२५ को फूटने वाला था मगर उसके पहले ही जार अलेक्झेण्डर प्रथम का नवम्बर १८२५ में देहान्त हो गया।

अलेक्झेण्डर जार द्वितीय

रूस का जार, जार निकोलाई प्रथम का पुत्र अलेक्झेण्डर जार द्वितीय-सन् १८५५ से १८८१ तक।

उन्नीसवीं सदी के मध्य में रूस में औद्योगिक पूँजीवाद का प्रभाव बहुत अधिक बढ़ रहा था। इसलिए अलेक्झेण्डर द्वितीय इच्छा होने पर भी किसानों की दासता को कायम नहीं रख सकता था। इसलिए सन् १८६१ में एक कानून बना कर उसने किसानों की अर्द्ध-दासता को खतम कर दिया। लेकिन इसके साथ ही उसने जमींदारों के स्वार्थों का भी बहुत ध्यान रक्खा और जमीदारों से किसानों को जो जमीन मिली उसके मुआवजे के रूप में ९० करोड़ रूबल किसानों से जमीदारों को दिलाये। यह रकम सरकारी खजाने से दी गई जिसे ४९ वर्ष की किश्तों में सरकार ने किसानों से वसूल करने की व्यवस्था की।

इतनी बड़ी रकम किसानों से जमीदारों को दिलाने से किसानों में असन्तोष उत्पन्न होना स्वाभाविक था और यह असन्तोष कई राजनैतिक दलों और आन्दोलनों के पैदा होने की पृष्ठभूमि बन गया।

इन विद्रोही नेताओं में सबसे उल्लेखनीय नाम चेर्नीशेवस्की का आता है। इसकी कलम और वाणी में बड़ी ताकत थी। जारशाही ने उसे पकड़ कर साइबेरिया में चौदह बरस के लिए निर्वासित कर दिया। चौदह बरस पूरे होने पर उसे फिर बन्दी बना कर रख दिया! अन्त में २७ वर्ष के बाद यह छोड़ा गया और इसी वर्ष उसका देहान्त हो गया।

अलेक्झेण्डर द्वितीय के टाइम में दूसरा प्रसिद्ध राजनैतिक आन्दोलन नरोद्निक आन्दोलन था। जो कारखाने के मजदूरों के सहयोग बिना केवल किसानों के संगठन

द्वारा ही समाज में समाजवाद की स्थापना पर विश्वास करता था । इस संस्था के सदस्य बड़ी त्याग की भावना को रखते हुए गाँवों में किसानों के बीच में जा बसते थे और अपने सिद्धान्तों का प्रचार करते थे । उन्होंने किसानों को जमीदारों के खिलाफ भड़काने की बहुत कोशिश की मगर उसमें वे सफल नहीं हुए और सन् १८७६ में वे भारी संख्या में गिरफ्तार कर लिये गये ।

बचे हुए नरोद्निक लोगों ने "जेम्ला-इ-वोल्या" नामक एक राज्य संगठन किया । इसका नेता प्लेखानोफ नामक एक क्रान्तिकारी था । एक संगठन "नरोदनिक वोल्या" था जो गुप्त रीति से जार और उसके बड़े अधिकारियों की हत्या करना चाहता था । इस कार्य्य में कई बार असफल होने के बावजूद उन्होंने अपने लक्ष्य को नहीं छोड़ा और अन्त में एक मार्च १८८१ को उन्होंने जार अलेक्झेण्डर द्वितीय की हत्या कर डाली ।

अलेक्झेण्डर जार तृतीय

जार अलेक्झेण्डर द्वितीय का पुत्र, रूस का जार। सन् १८८१ से १८९४ तक ।

अलेक्झेण्डर द्वितीय की हत्या हो जाने पर उसका पुत्र अलेक्झेण्डर तृतीय जार की गद्दी पर बैठा । यह व्यक्ति अत्यन्त भीरु, स्वार्थी और प्रतिगामी विचारों का था । इसका विचार था कि विद्रोह की जितनी चिनगारियाँ समाज में फैलती हैं वे सब शिक्षित लोगों के द्वारा फैलती हैं । इसलिए यह शिक्षा प्रचार का विरोधी था । इसका मत था कि छोटे तबके के लोगों जैसे गाड़ीवान, कोचवान, नाई, धोबी, छोटे दुकानदार इनको ऊँची शिक्षा के लिए प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए । सन् १८८४ में एक कानून बना कर उसने यूनिवर्सिटियों से अपने कुलपति और प्रोफेसरों को निर्वाचित करने के अधिकार छीन लिए और स्त्रियों के लिए उच्च शिक्षा ग्रहण करने पर कई प्रतिबन्ध लगा दिये ।

रूसी जाति के अतिरिक्त जो दूसरी जातियाँ रूस में रहतीं थीं उनके लिए कई कठोर कानूनों का निर्माण हुआ । यहूदियों के लिए भूमि खरीदने और गाँवों में बसने की मनाई कर दी गई ।

इन सब प्रतिगामी प्रवृत्तियों के खिलाफ रूसी जनता में क्रान्ति की भावनाओं का बीजारोपण होने लगा । कार्ल-मार्क्स की विचारधारा का भी इन दिनों संसार में तेजी से प्रचार हो रहा था और इस विचारधारा के फलने-फूलने के लिए रूस में सबसे अधिक अनुकूल भूमि तैय्यार हो रही थी ।

सबसे प्रथम क्रान्तिकारी मजदूर संगठन रूस के दक्षिणी भाग में अदेस्सा के अन्तर्गत "युगेनी जास्लवस्की" के नेतृत्व में स्थापित हुआ मगर जारशाही सरकार ने इसको बुरी तरह से कुचल कर "युगेनी जास्लवास्की" को जेल में बन्द कर दिया, जेल में ही उसका देहान्त हो गया । इसी प्रकार विक्टर अबनोर्स्की ने पीटरबर्ग में रूसी मजदूरों का उत्तरी संघ कायम किया मगर इसको भी सरकार ने उतनी ही बुरी तरह से कुचल दिया ।

यद्यपि अलेक्झेण्डर तृतीय स्वयं उच्च शिक्षा के अधिक प्रसार के खिलाफ था मगर संसार में उस समय ज्ञान विज्ञान की जो हवा चल रही थी उससे न वह स्वयं बच सकता था और न अपने देश को बचा सकता था । जारशाही के इसी युग में रूस के अन्दर बड़े-बड़े वैज्ञानिक, लेखक और साहित्यकार पैदा हुए ।

उस समय के वैज्ञानिकों में जगत्प्रसिद्ध रसायन शास्त्री मेन्देलोयफ (१८३४-१९०७) अपनी खोजों के द्वारा संसार के वैज्ञानिक क्षेत्र में एक क्रान्ति पैदा कर रहा था उसके द्वारा आविष्कृत की हुई "रासायनिक तत्वों की युग क्रमिक पद्धति" को सारे संसार ने स्वीकार किया । मगर जारशाही ने उसको इन स्वतंत्र विचारों के कारण पीटर वर्ग के विश्वविद्यालय से निकाल दिया ।

इस काल के दूसरे विज्ञान वेत्ताओं में प्रसिद्ध शरीर शास्त्री सेचेनोफ़, और बनस्पति शास्त्री तिमिरिया जोफ़ थे । ये दोनों विज्ञान वेत्ता भी जार के कोप भाजन हुए । मगर तिमिरिया जोफ का यह सौभाग्य था कि उसने बोलशेविक क्रान्ति को अपनी आँखों के सामने देखा और कम्युनिस्ट सरकार और रूसी जनता के द्वारा प्रदत्त महान् सम्मान को प्राप्त किया ।

इसी समय रूसी साहित्य, पत्रकार कला और समालोचना में अच्छे-अच्छे व्यक्तित्व प्रकट हुए । समालोचकों

और पत्रकारों में पिसरोफ का नाम उल्लेखनीय है जो सिर्फ २८ साल की उम्र में मर गया और १८६२ से १८६६ तक जेल में बन्द रहा फिर भी इतिहास में अपनी अमर कीर्ति छोड़ गया।

इसी काल ने तुर्गनेव के समान महान् लेखक (१८१८-१८८३) पैदा किया। जिसने अपने उपन्यासों में सन् १८४० से १८६० तक के रूसी जन जीवन का बोलता हुआ चित्र अङ्कित किया।

चित्रकला, नाट्यकला और संगीतकला में भी इस युग में अनेकानेक ऐसी प्रतिभाएँ सामने आईं जिनके लिए किसी भी युग को गर्व हो सकता है।

इसी युग में जारशाही ने समरकन्द को रेल के द्वारा कास्पियन समुद्रतट से मिला दिया। इस रेलवे के फलस्वरूप रूसी कारखानों के लिए जो कपास की गाँठें ऊँटों पर लद-लद कर आती थीं अब आसानी से आने लगीं। कास्पियन सागर के दूसरे तट को रेल के द्वारा रूस से पहले ही मिला दिया गया था। जिसके कारण अफगानिस्तान तक रूस की पहुँच आसानी से हो गई थी। अंग्रेज लोग मध्यएशिया में रूस की इस बढ़ती को बड़ी चिंता की दृष्टि से देखते थे। कई बार तो रूस की इस प्रगति को रोकने के लिए रूस और इंग्लैण्ड के बीच लड़ाई होते-होते बची।

अलेक्जेण्डर पोप तृतीय

रोमन चर्च के पोप।

जर्मनी के बादशाह फ्रेडरिक प्रथम सन् (११५२) के समय में रोमन-चर्च और सम्राट् के बीच में वैमनस्य की वृद्धि होती गई। फ्रेडरिक इटली का सम्राट् बनना चाहता था मगर लम्बार्ड नगर वाले हमेशा उसका विरोध और पोप का अनुमोदन करते रहे। मिलन नगर वाले भी सम्राट् से सन्तुष्ट नहीं थे। उन्होंने एक बार राजकीय आदेश को पैरों तले कुचल डाला तब क्रोधित हो फ्रेडरिक ने सन् ११५४ में मिलन नगर पर चढ़ाई कर दी। कई बार चढ़ाइयाँ करके सन् ११६२ में उसने मिलन और क्रेमा पर अधिकार कर लिया। उस समय इटली के इन छोटे-छोटे गए राज्यों में बड़ी फूट थी और ये आपस में हमेशा लड़ते रहते थे।

इस सारी स्थिति को देखकर लम्बार्ड वालों ने सम्राट् के खिलाफ गुप्त रूप से एक संघ बनाया इस संघ में क्रिमोना, ब्रेसिया, माण्टुआ और वर्गामी सम्राट् के प्रतिकूल संगठित हुए। कुछ पोप के उत्तेजित करने से और कुछ संघ की सहायता से मिलन नगर फिर से खड़ा हो गया। इस समय फ्रेडरिक रोम-विजय करने में लगा था। उसकी आन्तरिक अभिलाषा सेण्ट पीटर के पद पर एक प्रतिवादी पोप को बिठाने की थी। कुछ समय बाद वेरोना, पियासेन्जा, पार्मा भी सम्राट् विरोधी संघ में शामिल हो गये। अब यह निश्चय हुआ कि एक नवीन नगर बसाया जाय जिसमें सम्राट् के विरुद्ध लड़ने के लिए एक सेना संगठित की जाय। इसी प्रेरणा पर संघ ने पोप अलेक्जेण्डर तृतीय के नाम पर अलेक्जेण्ड्रिया नगर बसाया। जो अब भी वर्तमान है। पोप अलेक्जेण्डर संघवालों का परम मित्र और सम्राट् का विकट शत्रु था। सन् ११७६ में सम्राट् की सेना और संघ की सेना के बीच लेनानों में भयङ्कर युद्ध हुआ। ऐसे युद्ध मध्य युग के यूरोप में बहुत कम देखने में आये। इस युद्ध में विरोधी सेना ने मिलन नगर के नेतृत्व में सम्राट् की सेना को करारी हार दी।

इसके बाद वेनिस में एक महती सभा हुई। इस सभा में पोप अलेक्जेण्डर तृतीय भी उपस्थित था। उस सभा में संघ और सम्राट् के बीच में संधि हुई। जिसे सन् ११८३ में स्थायी रूप दे दिया गया। नगर वालों को करीब-करीब सब अधिकार मिल गये। बादशाह के अधिकार नाम मात्र के रह गये। फ्रेडरिक को मजबूर होकर उस पोप को अङ्गीकार करना पड़ा जिसकी आज्ञा न मानने की उसने शपथ खाई थी। इसी समय से इस विरोधी दल का नाम "गेल्फ" पड़ गया।

अलेक्जेण्डर हैमिल्टन

संयुक्तराष्ट्र अमेरिका का पहला वित्त मंत्री, बैंक ऑफ दी यूनाइटेड स्टेट्स का संस्थापक, अमेरिका के सर्वप्रथम लिखित विधान को निर्माण करने वाली विधान परिषद् का प्रभावशाली सदस्य।

जिस प्रकार अमेरिकन क्रान्ति ने संसारव्यापी ख्याति के दो प्रभावशाली व्यक्ति वाशिंगटन और बेंजामिन फ्रेंकलिन को उत्पन्न किया उसी प्रकार वहाँ के नवजात लोकतंत्र ने भी अद्भुत योग्यता वाले दो व्यक्तियों को पैदा किया। इन दोनों का नाम टामस जैफ़र्सन और अलेक्भेण्डर हैमिल्टन था। इन दोनों व्यक्तियों को शीघ्र ही अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हो गई। ये दोनों व्यक्ति अमेरिकन जीवन की परस्पर विरोधी दो बलवान और अनिवार्य विचारधाराओं के प्रतिनिधि थे। हैमिल्टन अधिक सुदृढ़ यूनियन और मजबूत राष्ट्रीय शासन का पक्षपाती था और टामस जैफ़र्सन अधिक व्यापक और स्वतन्त्र लोकतन्त्र का हामी था।

हैमिल्टन के सार्वजनिक जीवन का आदर्श कुशलता, व्यवस्था और संगठन प्रियता थी। उसने सन् १७७५ से १७८९ तक जो न्यूनताएँ राष्ट्र के जीवन में देखीं उसको दूर करने में ही अपनी सेवाएँ अर्पित करने की प्रेरणा मिली। जिन मामलों में दूसरे लोग बहुत सम्भल कर और प्राचीन सिद्धान्तों पर चलाना पसन्द करते थे ऐसे मामलों में हैमिल्टन अपनी साहसपूर्ण और सुनिश्चित योजनाएँ उपस्थित करता था। हाउस ऑफ रिप्रेज़ेण्टेटिव्स ने जब उसे सरकार की आर्थिक साख को पूर्णतया बनाए रखने की योजना बनाने को कहा तो हैमिल्टन ने सरकार की मितव्ययिता और प्रभावशाली शासन के सिद्धान्तों का प्रातिपादन किया। उसने बतलाया कि औद्योगिक उन्नति, व्यापारिक विस्तार और शासन की सफलता के लिए अमेरिका की साख का ऊँचा रहना नितान्त आवश्यक है। उस समय बहुत से लोग अमेरिका पर चढ़े हुए ऋण की अदायगी न करने, या उसकी अदायगी आंशिक रूप में करने के पक्षपाती थे पर हैमिल्टन ने न केवल केन्द्रीय सरकार पर चढ़े हुए ऋण को पूरा अदा किया जाने पर बल दिया बल्कि उसने एक ऐसी भी योजना बनाई जिसके अनुसार केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारों के द्वारा लिये हुए युद्ध सम्बन्धी ऋण का भी उत्तरदायित्व अपने पर ले ले। उसने एक बैंक ऑफ दी यूनाइटेड स्टेट्स की योजना बनाई और देश के विभिन्न भागों में उसे अपनी शाखाएँ खोलने का अधिकार दिया। उसने राष्ट्रीय टकसाल की स्थापना करने का भी समर्थन किया। उसने राष्ट्रीय व्यवसाय को विकसित करने के लिए उद्योग संरक्षण के सिद्धान्त की नीति पर तट कर लगाने का समर्थन किया। इन उपायों का परिणाम भी तुरन्त हुआ। इनसे अमेरिका के केन्द्रीय शासन की साख बहुत मजबूत हो गई और उसे जितनी आय की आवश्यकता थी वह उत्पन्न होने लगी। उसके उद्योग और व्यवसाय की उन्नति होने लगी जिससे कि व्यापारियों का एक वर्ग दृढ़ता पूर्वक राष्ट्रीय शासन का समर्थन करने लगा।

अलेक्भेण्डर हेर्ज़ेन

(Aleksander Herzen)

रूसी साहित्य का एक प्रसिद्ध गद्य-लेखक, जिसका समय सन् १८१२ से १८७० तक है।

हेर्ज़ेन रूसी साहित्य का एक नामाङ्कित गद्य लेखक और उपन्यासकार है। अध्ययन काल में वह गणित का विद्यार्थी था मगर व्यावहारिक जीवन में उसने साहित्य के क्षेत्र को अपनाया। वह कार्ल-मार्क्स का समकालीन और समाजवादी विचारधारा का समर्थक था। उसकी कलम की नोक में सोये हुए को जगा देने की अद्भुत क्षमता थी। अपने सजीव उपन्यासों की सजीव तर्कना-शक्ति के कारण प्रतिगामी राज्य शक्ति ने उसे देश से निर्वासित कर दिया। रूस से लन्दन जाकर वहाँ उसने "दी बेल" पत्र का सम्पादन किया, उसकी लिखी हुई आत्मकथा शैली और भाषा की दृष्टि से बेजोड़ है। इस प्रकार रूसी साहित्य और इतिहास में अमर होकर सन् १८७० में उसने अपना शरीर त्याग किया।

अलेक्भेण्डर ओस्ट्रोव्स्की

(Aleksander Ostrovsky)

रूसी नाट्य रंग-मंच का एक सफल साहित्यकार। जिसने रूसी रंगमंच पर मध्य वर्ग के जीवन, निम्न वर्गीय नागरिक, सौदागर और अधिकारियों के जीवन को अभिव्यक्त किया। रूसी रंगमंच को उसकी पुरानी मान्यताओं से मुक्त कर आधुनिक नवीन रूप में ढाल दिया। वह यथार्थवादी कॉमेडीज़ और नाटकों का रचयिता था इसका समय १८२३ से १८८६ तक है।

अलेक्जेण्डर सर्जीविच पुश्किन

(Aleksander Sergeyeych Pushkin)

रूस का महान् कवि और लेखक "पुश्किन" जिसने रूसी साहित्य के अन्तर्गत एक नवीन युग की स्थापना की। रूसी साहित्य का यह युग "पुश्किन युग" के नाम से प्रसिद्ध है।

महान् कवि और साहित्यकार "पुश्किन" का जन्म सन् १७९९ में रूस के मास्को नगर में हुआ था। बाल्यावस्था से ही इस विचक्षण व्यक्ति के अन्दर उत्कृष्ट साहित्यिक प्रतिभा के दर्शन होने लग गये थे। सोलह वर्ष की आयु पूर्ण होने के पहले ही जब यह स्कूल में पढ़ता था—इसने अपने स्कूली जीवन के संस्मरण में कुछ कविताएँ लिख कर सुनाईं। इन कविताओं के अन्तराल में उसका भविष्य चमक उठा। सन् १८२० में उसने अपनी कविताओं का संग्रह "हस्लान एण्ड दमिला" नाम से प्रकाशित किया। ये कविताएं इतनी लोकप्रिय हुईं कि सारा रूसी समाज उसपर मुग्ध हो गया। रूसी कवि जुकोव्स्की जो कि अपने को पुश्किन का गुरु मानता था उस कविता संग्रह को देखकर नाच उठा और उसने उसे अपना ऐसा शिष्य माना जिसने गुरु को पराजित कर दिया।

पुश्किन की अनेक रचनाओं में "जिप्सी" और 'बोरिस गोदनोव" नामक कृतियां बहुत प्रसिद्ध हुईं। मगर उसकी चरम सफलता उसके "ओनेगिन" नामक उपन्यास में हुई। इस उपन्यास की जोड़ का कोई दूसरा उपन्यास रूसी साहित्य में प्रकाशित नहीं हुआ ऐसा कई आलोचकों का मन्तव्य है। इस उपन्यास में कुमारी तातियाना के द्वारा "ओनोगिन" के प्रति प्रेम प्रदर्शन की भावना को प्रकट करने में लेखक अपनी कलम तोड़ देता है। आलोचकों का कथन है कि संसार के उपन्यास साहित्य में ऐसी हृदय ग्राही आत्माभिव्यक्ति और कहीं भी नहीं है। अगर पुश्किन और कुछ भी न लिखकर केवल यही चीज लिख जाता तो भी वह संसार में अमर हो जाता।

पुश्किन ने अपने छोटे से अल्पकालिक जीवन में और भी कई कहानियाँ, उपन्यास और कविताएं लिखी जिन्होंने न केवल रूसी साहित्य में बल्कि सारे संसार के साहित्य में उसे अमर कर दिया। केवल ३७ वर्ष की अल्पायु में सन् १८३६ में उसका देहान्त हो गया।

अलेक्जेण्डर पोप

अंग्रेजी साहित्य का सबसे बड़ा व्यंग कवि। इसका समय सन् १७०२ से १७७० तक है।

व्यङ्ग को अपनी कला से प्रकाशित कर उसे एक विशिष्ट रस के रूप में प्रस्तुत करने में अलेक्जेण्डर पोप को अच्छी सफलता मिली है। उसका प्रसिद्ध ग्रन्थ "दी रेप ऑफ दी लॉक" और "डन्सियाड" है। "दी रेप ऑफ दी लॉक" में उसने अठारहवीं सदी के समाज का जो व्यंग पूर्ण सजीव चित्र खींचा है वह बड़े महत्व का है। "डन्सियाड" में उसने तत्कालीन मूर्खों का जो रूप चित्रित किया है वह समूचा हास्यरस से भरपूर है।

अलेक्जेण्डर पोप ने होमर की कृतियों का अनुवाद भी किया है। अलेक्जेण्डर पोप की कृतियों का उसके परवर्ती साहित्य पर भी काफी प्रभाव पड़ा। अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि "ऑलिवर गोल्डस्मिथ" और "सेम्यूएल जान्सन" पर उसकी शैली की छाप है हालांकि काल की दृष्टि से दोनों भिन्न-भिन्न है।

अलेक्सीजार

रोमनौफ वंश का दूसरा रूसी जार जिसने सन् १६४५ से १६७६ तक रूस का शासन किया और जिसके शासन काल में रूसी साम्राज्य का बहुत विस्तार हुआ।

जिस समय अलेक्सी रूस की गद्दी पर बैठा उस समय उसकी उम्र केवल सोलह साल की थी और राज्य की सारी शक्ति वहाँ के एक सरदार मोरोजोफ के हाथ में थी। मोरोजोफ और मास्को का नगर कोतवाल प्लेशचेफ बहुत ही क्रूर और पाशविक अत्याचारी थे। इनके अत्याचारों के कारण मास्को तथा दूसरे शहरों में बड़े-बड़े विद्रोह खड़े

हुए। इन विद्रोहों में प्लेशचेफ मारा गया और मोरोजोफ को मास्को छोड़कर भागना पड़ा।

जार अलेक्सी के समय में रूसी साम्राज्य का बहुत विस्तार हुआ। पौलैण्ड का यूक्रेन नामक धन-धान्य से पूर्ण विशाल प्रान्त सन् १६५३ में पाँच वर्ष के भीषण संघर्ष के पश्चात् रूस के अधिकार में आ गया। इस संघर्ष का नेता बगदान नामक एक व्यक्ति था।

वोल्गा नदी के दोनों तटों के घने जंगल और मैदानों में सत्रहवीं सदी में यूराल और अल्ताई वंशीय अ–रूसी जातियाँ रहती थीं। इन जंगलों में समूरी खाल वाली लोमड़ियों की संख्या बहुत अधिक थी। इन समूरी जानवरों की खाल उस समय बहुत महँगे भावों में बिकती थी। वोल्गा प्रदेश की ये जातियाँ रूसी सरकार को टैक्स देती थीं फिर भी रूसी शासकों के अत्याचार के कारण यहाँ के लोग जब तब विद्रोह कर बैठते थे। सन् १६६२ में इस विद्रोह ने भयंकर रूप धारण किया। इस विद्रोह का नेता सैय्यद सादिर नामक व्यक्ति था मगर यह विद्रोह दबा दिया गया।

दूसरा भयंकर विद्रोह जार अलेक्सी के समय में स्टेपन राजिन के नेतृत्व में हुआ। राजिन ने कज्जाखों की एक बड़ी सेना का संगठन कर कई बार जार शाही की सेना से सफल मुकाबला किया।

जारित्सिन (आधुनिक स्टेलिन ग्रेड) के निवासियों ने उसे शहर पर अधिकार करने में मदद की। सन् १६७० के वसन्त में राजिन दूसरी बार वोल्गा नदी के किनारे पर पहुँचा। वह कई हजार अनुशासन सम्पन्न सैनिकों का कमाण्डर था। गरीबों के प्रति उसका प्रेम, उसकी दानशीलता और उदारता ने उसे चारों तरफ मशहूर कर दिया था। स्टेलिनग्रेड पर अधिकार कर लेने के बाद उसने अस्तराखान के ऊपर अधिकार कर लिया। प्रत्येक स्थान के नगरों की जनता जारशाही के विरुद्ध उसकी मदद को तैय्यार रहती थी। इसी से राजिन को एक के बाद दूसरी सफलता मिलती हुई चली गई। मगर अन्त में सिम्बिर्क्स नामक स्थान पर जार की नई सेना आ जाने से राजिन को हार खानी पड़ी। जार की सेना ने राजिन के पक्षपाती किसानों से भयंकर बदला लिया। बन्दी किसानों को पकड़ कर अर्जमस नगर में ले जाया गया और वहाँ बड़ी यन्त्रणा देकर उन्हें मारा गया। कहा जाता है कि करीब तीन महीने में अर्जमस नगर में ग्यारह हजार आदमियों को फाँसी पर चढ़ाया गया। राजिन के पहले दोनों हाथ और पैर काट डाले गये और फिर उसका सिर धड़ से अलग कर दिया गया।

रूसी भाषा के महाकवि पुश्किन ने स्टेपन राजिन को रूसी इतिहास का अत्यन्त काव्यमय पुरुष कहा है।

जार अलेक्सी के समय में रूसी साम्राज्य का साइबेरिया के विशाल प्रान्त पर भी अधिकार हुआ। इस अधिकार के समय रूसियों को मंगोलों से जबरदस्त संघर्ष करना पड़ा।

जार अलेक्सी के समय में ही रूस और चीन के बीच में ७ सितम्बर १६८६ को एक समझौता हुआ जिसमें दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों ने खड़े होकर संधि पत्र की प्रति को हाथ में लेकर अपने अपने सम्राटों के नाम से, सारे संसार के भगवान की शपथ लेकर अपने मन की ईमानदारी का प्रदर्शन किया। इसके बाद दोनों ओर से भेंटें दी गईं। योरप के किसी भी राज्य से बिल्कुल समानता के स्तर पर चीन की यह पहली सन्धि थी।

साइबेरिया के ऊपर रूसी अधिकार हो जाने के पश्चात् उस क्षेत्र में रूसी सरकार ने अपनी बस्तियाँ बसाना प्रारम्भ किया। साइबेरिया इतना ठण्डा मुल्क है कि रूस की सर्दी भी उसके आगे कोई हस्ती नहीं रखती। ऐसी सर्दी में जगह-जगह किलेबन्दी करके सैनिकों को रखना पड़ता था। उन सैनिकों के लिये अन्न की भी एक बड़ी समस्या थी। तब रूसी सरकार ने साइबेरिया में खेती करने वाले किसानों को मुफ्त में जमीनें देना प्रारम्भ किया और रुपया तथा बीज भी आसान शर्तों पर उधार देना प्रारम्भ किया जिसके परिणामस्वरूप सत्रहवीं सदी के अन्त तक साइबेरिया में जगह-जगह रूसी बस्तियाँ और गाँव बस गये थे। सत्रहवीं सदी के अन्त तक पश्चिमी साइबेरिया के दक्षिणी जिले कृषि-प्रधान हो गये। रूसी प्रवासियों ने एशिया के उत्तरी भागों की खोज-पड़ताल में बहुत काम किया। उन्होंने वहाँ

लोहे और नमक की खानों का पता लगाकर काम शुरू किया। रूसी यात्रियों ने अपने यात्रा विवरण तथा साइबेरिया के नक्शे प्रकाशित किये। इस प्रकार साइबेरिया रूसी सरकार के लिये धन प्राप्ति का एक महत्वपूर्ण स्रोत बन गया। वहाँ की बहुमूल्य समूरी खालों की पश्चिमी योरप, चीन और ईरान में बड़ी माँग थी। इस आमदनी से सरकार अपने सैनिक खर्च और नौकरों के वेतन को चुका देती थी।

जार अलेक्सी के समय में रूस के उच्च वर्ग और बुद्धिजीवी वर्ग पर भी पश्चिमी योरप की सभ्यता का प्रभाव तेजी से पड़ता जा रहा था। पश्चिमी योरप उस समय संस्कृति के साथ-साथ विलासिता में भी बहुत आगे बढ़ा हुआ था। उसकी नकल रूस का उच्च वर्ग भी कर रहा था।

इस युग में साहित्य, इतिहास, युद्ध-विज्ञान, चिकित्सा, गणित, भूगोल, चित्रकारी इत्यादि समस्त विषयों पर रूसी साहित्य में तेजी से प्रगति हो रही थी। बहुत-सी विदेशी किताबों का रूसी में अनुवाद भी इस युग में हुआ। प्रसिद्ध कलाकार "सिमओन उषाकोफ" भी उसी समय में हुआ, जिसकी कला रूस के तत्कालीन जीवन की झाँकी दिखाने में दर्पण का काम करती थी। इसी युग में पहले पहल मास्को के राज-दरबारियों को नाट्य-कला का परिचय मिला। जबकि महाबस्ती के एक पुरोहित गडाफ्रेड ग्रेगोरी ने जार अलेक्सी के शासनकाल में रूसी विद्यार्थियों और जर्मन अभिनेताओं से एक नाटक मण्डली बनवाई और ऐतिहासिक कहानियों को लेकर रंगमंच पर नाटक खेले। पीछे एक नाटक-गृह बनाया गया जिसके अन्दर रूसी भाषा में लिखे नाटकों का भी अभिनय होने लगा। अभिनय के समय एक विशेष आसन पर बैठकर जार अलेक्सी भी नाटक देखता था और जारीना अलग एक पर्दे में बैठकर नाटक देखती थी। नवीनता की ओर लोगों की अभिरुचि इतनी बढ़ गई थी कि उससे नाराज होकर गिर्जे के अधिकारी निकोन ने रूस के सभी वाद्य-यन्त्रों की होली जला डालने की आज्ञा दी।

अलेक्सी टालस्टाय

(Alcksyey Tolstoy)

पारनेसियन परम्परा का एक रूसी कवि जिसका समय सन् १८१७ से १८७५ तक है। महात्मा टॉलस्टाय से यह भिन्न है।

यूरोप की पारनेसियन परम्परा में से अलेक्सी टॉलस्टाय भी एक सफल कवि हैं। यह परम्परा राजनैतिक और सामाजिक समस्याओं से बिलकुल अलग है। अलेक्सी टॉलस्टाय की कविताएँ भी नैतिक काव्य-शैली से भिन्न है, यद्यपि उसके कुजुमा पुत्कोव के नाम से लिखे गये व्यङ्ग, रूस के घर-घर में प्रचलित हैं। "प्रिन्स-सेरेब्रियानी" नामक उसका एक ऐतिहासिक उपन्यास भी प्रसिद्ध है। मगर इस कलाकार की वास्तविक ख्याति इसके द्वारा रची हुई लिरिकों से है। उसकी लिरिक सौन्दर्य और माधुर्य्य की प्रतीक है। बसन्तकाल की सुगन्ध, ताजगी, प्रेम वेग इत्यादि पर उसकी कविताएँ यूरोपीय साहित्य में अनुपम है।

अलैन

फ्रान्स के समीप ब्रिटनी प्रदेश का एक वीर पुरुष जिसने ब्रिटनी प्रदेश से नारमन लोगों को निकाल कर सन् ९३८ में बाहर कर दिया। नारमन लोग ब्रिटनी को नारमण्डी राज्य में मिलाना चाहते थे।

अलोम्प्रा

बर्मा के इतिहास प्रसिद्ध राजवंश आवा का एक प्रतापी राजा (सन् १७८४)

बरमा में तूं-गूं-राजवंश सत्रहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में समाप्त हो गया। उसके बाद प्रसिद्ध आवा-राजवंश वहाँ की राजसत्त पर प्रतिष्ठित हुआ। अलोम्प्रा इसी राजवंश का एक प्रतापी शासक था। अलोम्प्रा ने बरमा के दूसरे राज्यों को अपने शासन के अधीन करने में काफी सफलता प्राप्त की। उसने पेगू, तेनासरीम आदि राज्यों को जीत कर सन् १७८४ में अराकान को भी जीत कर अपने राज्य में मिला लिया। सन् १७९३ तक सम्पूर्ण बरमा आवा राजवंश के अधीन हो

गया था। मगर उसके बाद ब्रिटिश राजनीति और सैनिक शक्ति के सामने आवा राजवंश ने घुटने टेक दिये।

अलेक्सिस कीवी

(Alexis Kivi)

आधुनिक फिनलैण्ड की भाषा का मौलिक कवि, जिसका समय सन् १८३४-१८७२ तक है। कीवी रोमाण्टिक परम्परा का बड़ा भावुक और यशस्वी कवि था। उसने विश्व साहित्य का काफी अध्ययन किया था। फिनलैण्ड के रंगमंच का सूत्रपात उसके नाटक "लिया" से हुआ। फिनलैण्ड की जनता के जीवन का अपनी रचनाओं में सजीव चित्रण करके उसने वहाँ के साहित्य में यथार्थवादी परम्परा का सूत्रपात किया। उसकी रचनाओं में कुछ एकाँकी कॉमेडी और उपन्यास भी हैं।

अलेक्सेवारान्निको

रूसी साहित्य के एक प्रसिद्ध लेखक और विद्वान जिन्होंने हिन्दी तथा अन्य विदेशी भाषाओं का भी गहन अध्ययन किया था।

अलेकजान्द्रिनों

फिलीपाइन द्वीप के "हुक बली हप" नामक कम्युनिस्ट विचारधारा से प्रभावित दल का नेता। सन् १९४५

द्वितीय महायुद्ध के अन्तिम दिनों में जब फिलिपाइन द्वीप का शासन सूत्र राष्ट्रपति ओसमेना ने अपने हाथ में लिया उस समय फिलिपाइन में साम्यवादी विचारधारा से प्रेरित "हुक बली हप" दल का बहुत प्राबल्य था। इसका नेता अलेकजान्द्रिनों था। शुरू-शुरू में फिलिपाइन सरकार ने इस दल को शक्ति के बल पर कुचल देना चाहा पर इसमें सफलता न मिलने पर उसने इससे समझौता करना चाहा, कुछ समय के लिए समझौता हो भी गया। मगर उद्देश्यों में समानता न होने से सन् १९४९ में आन्दोलन फिर भड़क उठा। परिणामस्वरूप दक्षिण-पूर्वी एशिया के और देशों की तरह १९४९ में फिलिपाइन में भी हुक बली हप दल की समाप्ति हो गई।

अलोइस जिरासेक

जेकोस्लाविया के राष्ट्रीय दल का लेखक और उपन्यासकार। समय १८५१-१९३०

उन्नीसवीं सदी के चौथे चरण में जेकोस्लाविया के साहित्यिक क्षेत्र में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय विचारधाओं वाले दो दल हो गए थे। राष्ट्रीय दल वालों की सहानुभूति स्लाव देशों के साथ खास कर रूस के साथ थी। अलोइस जिरासेक-साहित्य के इस राष्ट्रीय दल का नेता था। इसकी रचनाओं ने सारे जेक इतिहास को स्पर्श किया। प्रथम महायुद्ध के समय उसके उपन्यासों ने जेक राष्ट्रीय भावना को बहुत जाग्रत किया। जिससे वे बहुत लोकप्रिय हुए।

अवध

उत्तर प्रदेश का मुगल काल और ब्रिटिश काल में एक प्रसिद्ध प्रान्त। मुगल-साम्राज्य के पतन और अंग्रेजी-साम्राज्य की स्थापना के मध्यवर्ती संक्रमण-काल में भारतवर्ष के राजनैतिक रंग मञ्च पर कुछ समय तक अवध के नवाबों ने भी अपनी कलाबाजियाँ बतलाई थीं और इस प्रकार भारत के राजनैतिक इतिहास में उन्होंने भी अपना एक स्थान बना लिया है।

नवाब सआदत खाँ

अवध के नवाबी राज-वंश का संस्थापक सआदत खाँ (बुहानुल मुल्क) नामक एक ईरानी मुसलमान था जिसका जन्म ईरान के खुरासान प्रान्त के नौशापुर नामक नगर में एक प्रतिष्ठित कुल में हुआ था।

सआदत खाँ एक महत्वाकांक्षी, साहसी और षड्यंत्री व्यक्ति था। अपनी महत्वाकांक्षाओं को ईरान में चरितार्थ होते न देख कर वह भारतवर्ष चला आया। उस समय देहली के सिंहासन पर बहादुरशाह प्रथम आसीन था। सआदत खाँ की प्रतिभा और राजनैतिक बुद्धि को देख कर उसने उसे ३ हजारी मनसब देकर अपने दरबार में रख लिया। उसके बाद उसके लड़के मुहम्मद शाह ने सआदत खाँ को ७ हजारी मनसब देकर अवध का सूबेदार बना दिया।

ऐसा कहा जाता है कि दिल्ली के बादशाह के इस एहसान का बदला विश्वासघाती सआदत खाँ ने नादिरशाह

को दिल्ली के ऊपर आक्रमण करने की प्रेरणा देकर चुकाया। इसी की प्रेरणा से नादिरशाह ने दिल्ली पर हमला कर के भयंकर कत्लेआम किया।

नवाब सफदर जंग

सआदत खाँ को कोई पुत्र न होने से उसने अपने दामाद अब्दुल मंसूर को अपना उत्तराधिकारी बनाया, जो नवाब सफदर जंग के नाम से अवध का नवाब नियुक्त किया। सन् १७५६ में सफदर जंग की मृत्यु हो गई।

नवाब शुजाउद्दौला

सफदर जंग का पुत्र शुजाउद्दौला एक कुशल शासक था और अंग्रेजों के साम्राज्य विस्तार की भावना देखकर वह उनसे घृणा करता था। बंगाल के नवाब मीर कासिम को जो कि क्लाइव और मीर जाफर के षड्यंत्र से नवाबी से पदच्युत होकर बंगाल से भागा था, इसने उसे अपने यहाँ शरण दी थी मगर जब इस सम्बन्ध में अंग्रेजों से उसका सामना हुआ तब उसे अपनी स्थिति का ज्ञान हुआ। इसके परिणामस्वरूप उसने अंग्रेजों से एक सन्धि की और अपने राज्य की रक्षा का सम्पूर्ण भार ईस्ट इंडिया कंपनी, को सौंप कर स्वयं निश्चिन्त हो गया।

आसफ-उद्दौला

शुजा-उद्दौला के पश्चात् उसका पुत्र आसफ-उ-द्दौला अवध का सूबेदार बना वह अपनी राजधानी को फैजाबाद से उठाकर लखनऊ ले आया, क्योंकि उसका स्वभाव, उसकी माँ नवाब बेगम से मेल नहीं खाता था और वह उससे दूर ही रहना चाहता था।

लखनऊ उस समय एक बहुत छोटा सा कस्बा था आसफ-उ-द्दौला ने इस कस्बे को सुन्दर शहर के रूप में परिवर्तित कर दिया। उसने यहाँ अनेक सुन्दर इमारतें और मनोहर बगीचों का निर्माण किया जिनमें बड़ा इमाम बाड़ा, रूमी दरवाजा और ब्रिटिश रेजीडेंसी का भवन उल्लेखनीय है।

आसफ-उ-द्दौला वास्तव में एक शानदार नवाब था। उसका दरबार भारत के तत्कालीन सभी दरबारों में अधिक भव्य, सजित और आलीशान था। दिल्ली का शाही-दरबार भी उसके नवाबी दरबार के आगे पानी भरता था।

आसफ-उ-द्दौला की ख्याति इतनी बढ़ी कि बहुत से गोरे व्यापारी भी दिल्ली को छोड़कर लखनऊ में आकर बसने लगे।

आसफ-उ-द्दौला की इस उदारता तथा उसकी शौकीन मिजाजी ने राजकीय खजाने का दिवाला निकाल दिया साथ ही ईस्टइण्डिया कम्पनी का १॥ करोड़ रुपये का कर्ज उसे अदा करना था। आसफ-उ-द्दौला किसी प्रकार बेगमों से यह रुपया वसूल करना चाहता था।

सन् १७८१ में इसके लिये चुनार में वह लार्ड हेस्टिंग्स से मिला और उससे कहा कि ये बेगमें अंग्रेजों के विरुद्ध चेतसिंह की सहायता कर रही हैं, अगर उनकी सम्पत्ति उसे दिला दी जाय तो वह कम्पनी का सारा ऋण अदा कर सकता है।

लार्ड हेस्टिंग्स तो ऐसे मौके की तलाश में था ही, उसने जाँच का नाटक करने के लिये उस समय के प्रधान जज सर एलीजा एम्पी को सहायता ली, बेगमों का अपराध सिद्ध कर दिया गया और उनके महलों पर घेरा डाल दिया गया उनका भोजन बन्द कर दिया गया। उन्हें तरह-तरह की यन्त्रणाएँ कर दी गईं जिसके फलस्वरूप परेशान होकर इन निस्सहाय बेगमों को अपना सुरक्षित सारा धन दे देना पड़ा। फिर भी सन् १७९८ में जब आसफुद्दौला मृत्यु हुई तब उसके खजाने में एक फूंफी कौड़ी भी बाकी न थी और राजकर्मचारियों का कई मास का वेतन चढ़ा हुआ था।

सआदत खाँ द्वितीय

आसफ-उ-द्दौला की मृत्यु के पश्चात् उसका सौतेला भाई सआदत खाँ द्वितीय अवध का सूबेदार हुआ। आसफ-उ-द्दौला का कर्ज चुकाते-चुकाते उसकी नाक में दम आ गया, तब उसने राज्य की भीतरी और बाहरी सुरक्षा का भार ईस्ट इण्डिया कम्पनी को देकर उसके बदले में अपना आधा राज्य कम्पनी को दे डाला।

इस प्रकार सन् १८०१ में कम्पनी को वे जिले मिल गये, जिन पर आगे जाकर आगरा प्रान्त का निर्माण हुआ।

इसके पश्चात् अपने शासन के शेष १४ वर्ष उसने बहुत योग्यता के साथ बिताये। लखनऊ नगर को सुन्दर

और आकर्षक बनाने के लिये उसने भी कई भव्य इमारतों और बगीचों का निर्माण करवाया। दिल-कुशा तथा फरहत बक्श कोठी उसी की बनवाई हुई है। उसने अपने खजाने को बढ़ाने की ओर भी ध्यान दिया और सन् १८१४ में जब उसकी मृत्यु हुई तो उसके खजाने में १४ करोड़ रुपया नकद था।

गाजी-उद्दीन हैदर

नवाब सआदत खाँ द्वितीय के पश्चात् उसका पुत्र गाजी-उद्दीन हैदर सन् १८१४ में अवध की गद्दी पर बैठा। लार्ड हेस्टिंग्स ने इसको दिल्ली की पराधीनता से मुक्त करके स्वतन्त्र बादशाह घोषित किया।

गाजी-उद्दीन हैदर ने भी लखनऊ को अनेक सुन्दर इमारतों और बागों से अलंकृत किया जिनमें शाह-मंजिल, मुबारिक मंजिल, छतर मंजिल और गोमती के किनारे मोती महल नामक इमारतें बहुत मशहूर हैं।

गाजी-उद्दीन हैदर के विषय में अंग्रेज पादरी विशप हेवर ने—जो सन् १८२४ में लखनऊ आया था लिखा है—बादशाह ऊँचे क़द तथा सुन्दर व्यक्तित्व सम्पन्न एक हँसमुख पुरुष है। उसकी गर्दन पर घुंघराली लटें बल खाती रहती हैं और शानदार मूँछें उसके चेहरे की रौनक को बढ़ाती रहती हैं। वार्तालाप में वह बहुत सभ्य है और उसका प्रत्येक शौक सुरुचिपूर्ण तथा सुसंस्कृत है। किन्तु यूरोपियन रमणियों को शिकायत है कि उनकी ओर वह अधिक ध्यान नहीं देता।

सन् १८२७ में गाजीउद्दीन की मृत्यु हो गई।

नासिर उद्दीन हैदर

गाजी-उद्दीन हैदर के पश्चात् उसका लड़का नासिर-उद्दीन हैदर गद्दी पर बैठा। यह अत्यन्त ऐय्याश, मूर्ख और शराबी था। इसने मुकद्दरा आली नामक एक वर्ण-संकर स्त्री से ब्याह किया था, परन्तु विवाह के पीछे बादशाह को ज्ञात हुआ कि मुकद्दरा बेगम के और भी अनेक प्रेमी हैं। यहाँ तक कि उसका सगा पिता वाल्टर्स भी उसका प्रेमी है, तब बादशाह ने मुकद्दरा को वहाँ से निकाल दिया। वह अपनी सारी दौलत लेकर कलकत्ता चली गई।

नासिर-उद्दीन ने लखनऊ में एक वेधशाला का निर्माण कराया था और उसका अध्यक्ष कर्नल विल्कास नामक एक अंग्रेज ज्योतिषी को बनाया था।

सन् १८३७ में नासिर-उद्दीन की मृत्यु हो गई।

नवाब मुहम्मद अली शाह

नासिर-उद्दीन के पश्चात् उसका चचा मुहम्मद अली शाह अवध की गद्दी पर बैठा, नासिरउद्दीन की विधवा बेगम ने इसका विरोध किया और अपने दत्तक पुत्र मान-जान को गद्दी पर बैठा दिया! इस पर रेजिडेंट कर्नल लो और उसके सहकारी कैप्टन शेक्स पियर नवाब बेगम को समझाने के लिए उसकी ड्योढ़ी पर गये, पर ड्योढ़ी दारों ने उन्हें कैद कर लिया, तब रेजीडेंसी की सेना ने अपने हाथियों की सहायता से ड्योढ़ी का फाटक तोड़ डाला। नवाब बेगम और उसका बेटा मान-जान गिरफ्तार कर लिये गये और रेजीडेंट की प्रेरणा से दी हुई नवाब की आज्ञा से दोनों माँ-बेटे को चौक के बाजार से होकर हुसेनाबाद तक नंगा करके पैदल ले जाया गया। रास्ते में अंग्रेजों के पिट्ठुओं तथा नवाब के चापलूसों ने उन पर थूका। इस प्रकार का घृणित आचरण उच्चवंश की महिला के प्रति किसी इतिहास में नहीं देखा गया। इसके लिये अंग्रेज इतिहासकारों ने कर्नल लोको बहुत धिक्कारा है।

सन् १८४१ में प्रिंस ऐड्रेक्सिस साल्टीहोफ ने अपनी लखनऊ की यात्रा के वर्णन में कर्नल लो का वर्णन करते हुए लिखा है कि उसकी सारी शान-शौकत और उसका सारा प्रदर्शन किसी भी यूरोपियन बादशाह की शान-शौकत को लज्जित करने वाली है। वह हाथी पर बैठ कर बाहर निकलता है, उसके हाथी के हौदे का मूल्य इतना है कि उसके बदले में कोई "डची" या 'ड्यूक' की रियासत खरीदी जा सकती है। उसका यह हौदा सोने का है और उस पर अनेक हीरे, मोती, लाल, और नीलम तथा अन्य अलभ्य रत्न जड़े हुए हैं।"

प्रिंस साल्टी होफ के कलकत्ता पहुँचते ही कर्नल लो को मजबूर होकर इस्तीफा देना पड़ा। उसने अपनी सारी सम्पत्ति तथा अवध की लूट का सारा माल कलकत्ते की पामर कम्पनी में जमा करा रखा था, परन्तु कलकत्ता

पहुँचते ही उसे मालूम हुआ कि पामर कम्पनी ने अपना दिवाला निकाल दिया है और वह फिर से दरिद्र हो गया है।

सन् १८४२ में मुहम्मदअली शाह की मृत्यु हो जाने पर उसका पुत्र अमजदअली शाह नवाब हुआ। सन् १८४७ में इसकी मृत्यु हो गई।

वाजिद अलीशाह

अमजद अली शाह के बाद उसका पुत्र इतिहास-प्रसिद्ध वाजिद अली शाह गद्दी पर बैठा, जिसके ऐशो इशरत, राग-रंग और रईसी की कहानियाँ आज भी लखऊ और उत्तर प्रदेश में प्रचलित हैं। इनके पिता खजाने में करीब डेढ़ करोड़ रुपया नकद छोड़ गये थे। वाजिद अली शाह शौकीन मिजाज के आदमी थे ही, धन और सत्ता की कमी थी ही नहीं, दिन रात सुरा और सुन्दरियों के बीच में ऐशो-इशरत में उनका समय बीतने लगा।

वाजिदअली शाह ने दो करोड़ रुपया खर्च कर के लखनऊ में सुप्रसिद्ध कैसर बाग लगवाया और उसके भीतर की इमारतें तैयार करवाईं। राज्य का प्रबन्ध कुमंत्रियों के हाथ में पड़कर नष्ट हो गया। अंग्रेजी सरकार ने इन्हें कई बार चेतावनी दी, पर कोई नतीजा नहीं निकला। अन्त में यहाँ तक अशान्ति फैली की कम्पनी ने राज्य को जप्त कर लिया और २० लाख रुपये साल की पेंशन देकर इनको कलकत्ते की मटिया बुर्ज में भेज दिया। कुछ समय के बाद मटिया बुर्ज में भी वही लखनऊ जैसी रंगरेलियाँ मचने लगीं। वहाँ पर भी उन्होंने एक ऐसा चिड़िया घर बनवाया, जिसे देखने के लिए दूर-दूर के देशी और विदेशी यात्री आया करते थे। सन् १८८७ ई० में नवाब वाजिद अली शाह की मृत्यु हो गई।

अवध के नवाबों का इतिहास देखने से पता चलता है कि इनमें प्रायः सभी ऐयाश, विषयानुरक्त और रागरंग के शौकीन थे। शासन की योग्यता इनमें शायद ही किसी में रही हो। अंग्रेजी शासन भी ऐसे ही लोगों को गद्दी पर बिठाना पसन्द करता था जो उसके हाथ की कठपुतली बने रहें।

नवाबी समय में साहित्य का विकास

फिर भी एक बात यह देखने को मिलती है कि नवाबों की भोग-लालसा और राग-रंग की प्रवृत्तियों में से उर्दू कविता के विकास को बड़ी सहायता मिली। दिल्ली की बादशाहत के कमजोर हो जाने से वहाँ के बहुत से अच्छे-अच्छे कवि अवध के नवाबों के दरबार में आ-आकर आश्रय पाने लगे। अवध के ये नवाब लोग कवियों को बड़ी इज्जत के साथ आश्रय देते थे और स्वयं भी कविता करते थे। उर्दू के प्रसिद्ध कवि आरजू, सौदा, मीर, इंशा, जुरत, नुसहिफी आदि बहुत से कवियों ने अवध के वैभव पूर्ण दरबार में आकर अपने अन्तिम दिन व्यतीत किये थे।

कवियों को आश्रय देने के साथ-साथ कविता करने में भी नवाब वंश बहुत अग्रगण्य था।

नवाब आसफ-उ-द्दौला 'आसफ' के उपनाम से अच्छी कविता करते थे। इनका बनाया हुआ एक दीवान है, जिसमें तीन सौ पृष्ठों में गजलें, डेढ़ सौ पृष्ठों में रूबाइयाँ और सौ पृष्ठों में मंसनवियाँ हैं।

नवाब वाजिद अली शाह भी बहुत अच्छे कवि और संगीत विद्या के ज्ञाता थे। ये हमेशा सुन्दर स्त्रियों, कवियों और गवैयों से घिरे रहते थे। कविता में ये अपना नाम "अख्तर" और टुमरी में "जाने आलम-पिया" रखते थे। इनकी रचनाएँ इतनी अधिक हैं कि इनसे करीब ४० जिल्दें बनती हैं। गजलों के इन्होंने ६ दीवान लिखे हैं तथा मर्सिये, कसीदे और मसनवियाँ भी कई जिल्दों में संगृहीत हुई हैं।

अवध पञ्च

लखनऊ से निकलने वाला उर्दू का एक प्रसिद्ध, साप्ताहिक पत्र, जो सन् १८७७ से निकलना प्रारम्भ हुआ।

मुंशी मुहम्मद सज्जाद ने इस पत्र को निकालना प्रारम्भ किया था। इस पत्र का उर्दू भाषा और साहित्य पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। हास्य-रस प्रधान पत्रों में हिन्दुस्तान में शायद यह पहला पत्र था। इसके व्यंग्य, चुटकले अत्यन्त तीखे एवं हास्यपूर्ण होते थे। इसकी भाषा टकसाली समझी जाती थी।

अवन्ती पुरी

भारत की सात प्राचीन महापुरियों में से एक प्रसिद्ध नगर। इसका पूर्ण परिचय “उज्जयिनी” के प्रकरणमें देखें।

अवदान

जिस प्रकार बौद्ध सिद्धान्तों के प्रतिपादन के लिए “जातक” साहित्य की पाली भाषा में रचना हुई उसी प्रकार संस्कृत भाषा में बौद्ध दर्शन को प्रतिपादन करने वाले ग्रन्थ “अवदान” कहलाये। इन अवदानों में सबसे प्राचीन ‘अवदान-शातक” है। इस ग्रन्थ का चीनी अनुवाद ईसा की तीसरी सदी में हुआ। दिव्यावदान में गद्य और काव्य दोनों का सुन्दर संग्रह है, यह सन् ४०० के पहले लिखा जा चुका था। आगे चलकर “अवदान कल्प-लता” काश्मीरी कवि क्षेमेन्द्र ने सन् १०५२ में लिखी। “कल्पद्रुमावदान माला” “रानावदानमाला” भद्र कल्पनावदान” आदि ग्रन्थ भी इसी अवदान परम्परायें हैं।

अवन्ति-वर्मन

काश्मीर के उत्पल वंश का प्रथम राजा जिसने सन् ८५५ से ८८३ तक राज्य किया।

जिस समय अवन्ति वर्मन ने शासन की बागडोर अपने हाथ में ली उस समय कश्मीर की हालत अत्यन्त अव्यवस्थित और अराजकता पूर्ण हो रही थी। अवन्ति वर्मन ने इस सारी अव्यवस्था को मिटाकर देश में शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित की। इसने कश्मीर में कई नहरों को बनवाकर सिंचाई का प्रबन्ध किया। अवन्ति वर्मन ने कश्मीर में कई मन्दिरों का निर्माण करवाया।

अवन्ति वर्मन का मन्त्री सूर्य्य भी कश्मीर के इतिहास में एक प्रभावशाली व्यक्ति हुंआ उसके नाम पर बसा हुआ सूर्यपुर नगर अभी भी कश्मीर में विद्यमान है अवन्ति वर्मन के दरबार में कई साहित्यिक भी रहते थे। इनमें आनन्द वर्मन का नाम उल्लेखनीय है जिसने “ध्वन्यालोक” नाम ग्रन्थ की रचना की।

अवार-साम्राज्य (ज्वान ज्वान)

हूण जाति के विध्वंस के पश्चात् मध्यएशिया में स्थापित एक नवीन साम्राज्य जिसने सन् ४०० से ५८२ ई० तक शासन किया।

मध्य एशिया से हूणों का विध्वंस होने के पश्चात् और तुर्क जाति के इतिहास में पदार्पण करने के पूर्व मध्यवर्त्ती काल में करीब पौने दो सौ वर्षों तक आवारों का शासन रहा। हूणों का नाश होने के पश्चात् स्यान-पी या तुङ्ग-हू नामक कबीले ने मंचूरिया, मंगोलिया और चीन के कुछ भागों पर अपना शासन स्थापित किया। इन्हीं का एक शक्ति सम्पन्न राजवंश तोबा था जिसकी स्थापना सन् ३१५ के करीब और समाप्ति पाँचवी सदी में हुई ! अवार-जाति का सम्बन्ध इसी तोबा वंश से था जिन्हें मुकरू तोबा भी कहते हैं। इसा हूणजन का निवास स्थान बैकाल सरोवर के नजदीक तथा गोबी रेगिस्तान के उत्तर में था। तोबा के एक राजकुमार “इलू” का दास मुकरू था। किसी कारण वश मुकरू इस राजकुमार की सेवा से भागकर जंगल में चला गया और वहाँ लुटेरों के एक दल का सरदार बन गया। मुकरू का पुत्र शरुक हुआ। शरुक ने अपने पिता की जमात को और बढ़ाकर एक बड़ा कबीला कायम करा लिया और उस कबीले का नाम “अवार” रक्खा। पहले चीन में अवार कबीले का नाम ‘ जू-जून” था जिसे तोबा सम्राट् ताई-हू-तोने बदलकर “ज्वान-ज्वान” कर दिया।

इसी मुकरू के वंश में आगे चल कर एक शक्तिशाली सरदार शे-लुन हुआ। इसने कुछ और कबीलों को जीतकर अपनी सैनिक शक्ति को मजबूत कर “खान” की उपाधि धारण की। कोरिया से अल्ताई तक फैले हुए इसके साम्राज्य में चीन का भी कुछ भाग था। शे-लुन मध्य एशिया के वणिक पथ के भी कुछ भाग का स्वामी था। ये लोग भी हूणों की तरह कभी चीन को लूटते थे और कभी उसकी मदद करते थे।

अवारों पर चीनी सभ्यता और बौद्ध धर्म का बड़ा प्रभाव था। तो-बा सम्राट् भी बौद्ध थे। इतिहास की परम्परा के अनुसार अन्त में अवारों के अन्दर भी घर की फूट फैली

जिसके परिणाम स्वरूप इन लोगों के सहारे तुर्क लोगों ने लाभ उठाया और तुर्कों के सरदार तू-मिन ने विद्रोह करके अवार-साम्राज्य को समाप्त कर विशाल तुर्क साम्राज्य की नींव डाली।

अवारी

सन् १९२५ में जब कांग्रेस के असहयोग आन्दोलन में चारों तरफ गतिरोध और जड़ता फैल गयी। उस समय सारे भारतवर्ष के नवयुवकों में जाग्रति की एक नवीन लहर फैली। उस समय मध्य प्रान्त के नागपुर नगर में नवयुवकों ने अपनी जिम्मेदारी पर शस्त्र-सत्याग्रह का आन्दोलन शुरू किया। इसका उद्देश्य उस शस्त्र कानून का भंग करना था जिसके अनुसार भारतवासियों के लिये सरकार ने शस्त्रों के रखने की मनाही कर रखी थी। इस आन्दोलन के नेता जनरल अवारी थे जो कांग्रेस के एक लोक-प्रिय कार्यकर्त्ता थे।

अवनीन्द्रनाथ टैगोर

बंगाल के सुप्रसिद्ध चित्रकला के आचार्य जिनका आर्ट 'टैगोर आर्ट' के नाम से मशहूर है।

डा० अवनीन्द्रनाथ टैगोर ने भारतीय चित्रकला में नवीन जीवन का संचार किया और उनकी कला न केवल भारतवर्ष में अपितु संसार में आदर की वस्तु हो गई। संसार के कलाकारों को उन्होंने एक नवीन मार्ग बतलाया। मनुष्य के आन्तरिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण को प्रकट कर सौन्दर्य और ललित कला का वातावरण उपस्थित करने में इनकी कला ने बड़ी सहायता दी।

अविलार्ड

न्याय और दर्शनशास्त्र का ज्ञान प्राप्त करने के लिए देश-विदेश में भ्रमण करने वाला ब्रिटनी (फ्रान्स) का एक नवयुवक जिसका जन्म सन् ११०० में हुआ।

अविलार्ड एक जिज्ञासु प्रवृत्ति का नवयुवक था। उसने न्याय और दर्शनशास्त्र की शिक्षा प्राप्त करने के लिए कई स्थानों का भ्रमण किया, कई विद्यापीठों से सम्पर्क स्थापित किया। उसने लिखा है कि पेरिस में बहुत से ऐसे विद्वान् रहते हैं जिनके पास न्याय तथा ब्रह्मविद्या की शिक्षा पाने के लिए दूर-दूर से विद्यार्थी आते हैं।

अविलार्ड ने स्वयं भी न्याय, दर्शन और धर्म की शिक्षा देना प्रारम्भ किया और उसमें उसे बहुत अधिक सफलता प्राप्त हुई। देश-विदेश से हजारों छात्र उसके पास शिक्षा ग्रहण करने को आने लगे।

कई लोगों का खयाल है कि अविलार्ड ने ही सबसे पहले पेरिस यूनिवर्सिटी की स्थापना की। मगर ऐतिहासिक प्रमाणों से इस विचार का अनुमोदन नहीं होता। पर यह सत्य है कि उसने धर्म सम्बन्धी मतभेदों को सर्व-साधारण में प्रचार करने का बड़ा यत्न किया। उसकी शिक्षा देने की पद्धति बहुत उत्तम कोटि की थी। उस समय के ईसाई सन्त बर्नर्ड अविलार्ड भी इस स्वतंत्र विचारधारा के बहुत विरुद्ध थे और उनके कारण अविलार्ड को बहुत कष्ट भी उठाना पड़ा।

अविग्नान

फ्रान्स राज्य की सीमा के नजदीक एक शहर जहाँ पर रोमन चर्च के पोप की गद्दी स्थापित की गई। यहाँ पर एक विशाल प्रासाद का निर्माण कराया गया। इस प्रासाद में सन् १३१४ से १३७५ तक कई पोप बड़े ठाठ और वैभव से रहे।

इससे पहले रोमन चर्च के पोप की प्रधान गद्दी रोम के चर्च में ही रहती थी। मगर फ्रान्स के बादशाह फिलिप रोमन चर्च के पोप बोनीफेस अष्टम के बीच में जब झगड़ा होगया तब फिलिप ने बोर्डो में आर्क विशप को इस शर्त्त पर पोप बनने में मदद दी कि वह अपनी राजधानी फ्रान्स में रक्खे। इस नवीन पोप ने समस्त कार्डिनलों (धर्म संस्था के उच्च अधिकारी) को लियन में निमंत्रित किया और क्लेमेण्ट पंचम के नाम से पोप पद पर आरूढ़ हुआ। जब तक वह धर्माध्यक्ष रहा, उसने अपनी गद्दी फ्रान्स में ही रक्खी। उसके बाद उसके उत्तराधिकारियों ने अविग्नान को अपना प्रधान केन्द्र बनाया। जहाँ पर ६० बरसों तक कई पोप बड़े ठाठ से रहे।

अवेस्तां (झेन्द अवेस्तां)

पारसियों का पूजनीय धर्मग्रन्थ। जिस प्रकार आर्य्य लोग वेदों को, मुसलमान कुरान को और ईसाई बाइबिल को अपने धर्म के सबसे पूज्य और पवित्र ग्रन्थ मानते हैं उसी प्रकार "अवेस्तां" पारसी समाज का पवित्र धर्म-ग्रन्थ है।

इस ग्रन्थ की रचना पारसी धर्म के संस्थापक इरान के सुप्रसिद्ध धर्म संस्थापक "जरथोस्ट" ने की, ऐसा बतलाया जाता है। कम से कम उसका गाथाभाग जरथोस्ट द्वारा निर्मित बताया जाता है। जरथोस्ट के समय निर्णय के सम्बन्ध में अभी तक कोई मजबूत प्रमाण उपलब्ध नहीं है। फिर भी जहाँ तक अनुमान किया जाता है ईसा के पूर्व की सातवीं सदी में जरथोस्ट का होना माना जाता है। जबकि भारत वर्ष में बुद्ध और महावीर, चीन में कन्फ्यूशस, यूरोप में पाइथा गोरस विशिष्ट धर्म-क्रान्तियों का संचालन कर रहे थे उसी समय ईरान में भी जरथोस्ट ने एक धार्मिक क्रान्ति का प्रादुर्भाव किया था। वह शताब्दी सारे विश्व में धार्मिक क्रान्तियों की शताब्दी थी।

अवेस्तां प्राचीन ईरानियों का धर्मग्रन्थ है। इसी के नाम पर वहाँ की भाषा का नाम भी "अवेस्तां" पड़ गया है। इस ग्रन्थ की भाषा कई अंशों में संस्कृत से मिलती-जुलती है। उच्चारण भेद के अन्तर पर ध्यान न दिया जाय तो उसके मन्त्र ऋग्वेद की ऋचाओं से मिलते-जुलते मालूम होते हैं। इस समय अवेस्तां के कुछ खण्ड ही उपलब्ध हैं। ईरान के सासानी साम्राज्य के समय में यह ग्रंथ इक्कीस खण्डों में पाया जाता था, ऐसा पारसी लोगों का विश्वास है।

अवेस्तां तीन भागों में विभक्त है (१) "वेन्दीदाद" जिसमें गाथाओं का संग्रह है (२) "विस्पेरद" जिसमें यज्ञ मंत्रों का संग्रह है और (३) "यस्न" जो प्रणाली से सम्बन्ध रखता है।

अवेस्तां में पारसियों के मूल देवता "आहुक मज्द" की स्तुति भी की गई है। अवेस्तां में स्थान-स्थान पर सुन्दर कविताओं का परिचय भी मिलता है। अवेस्तां के ऊपर आगे जाकर जो टीका हुई उसे "झेन्द" कहते हैं। टीका और मूल मिलाकर सारे ग्रन्थ को "झेन्द-अवेस्तां" कहते हैं। झेन्द की भाषा पहलवी या पार्थियन है। अवेस्तां के सम्बन्ध में कुछ दूसरी धार्मिक रचनाएँ भी हुई हैं जिनके नाम "बुन्दहिश" "दीन्कर्त" तथा "मैन्यो इ खिरद" है।

अविचेन्ना

ईरान का मशहूर चिकित्साशास्त्री और दार्शनिक जो अब्बासी खिलाफत के समय में हुआ। इसको महमूद गजनवी अपने दरबार में जबर्दस्ती रखना चाहता था तब डर के मारे यह भाग कर ईरान के जियारी राजा काबूस इब्न वश्मगीर की शरण में चला गया। अविचेन्ना ने अरबी और फारसी—दोनों भाषाओं में कई कसीदे लिखे। इसके लिखे हुए फारसी के बहुत से कसीदे और गजलें गलती से उमर खैय्याम की मान ली गई हैं। अविचेन्ना ने "दानिशनाम-ए-अलाई" के नाम से विज्ञान का एक विश्वकोष तैय्यार किया। अरबी गद्य में लिखे हुए दर्शन और चिकित्सा ग्रन्थों के कारण उसका यश चारों ओर फैल गया। इसने अपने ग्रन्थों में यूनानी दार्शनिक अरस्तू के ज्ञान का भी संग्रह किया है। इसकी पुस्तकों ने यूरोपीय सभ्यता को भी प्रभावित किया। यूरोप में प्रिंटिंग प्रेस का आविष्कार होते ही अविचेन्ना के साहित्य की धूम मच गई थी। सन् १०३७ में हमदान में उसकी मृत्यु हुई। उसकी कब्र ज्वर-पीड़ितों के लिए एक तीर्थ बन गई।

अवेल्ल देवी

चेदी के कल्चुरी हैहय-वंश के राजा कर्ण की पत्नी, हूण-वंश की राजकन्या, यशकर्ण की माता।

ग्यारहवीं शताब्दी में जबलपुर के नजदीक चेदी प्रान्त में कल्चुरी हैहयवंश राज्य करता था। इस राज्य के संस्थापक राजा गांगेय का पुत्र राजा कर्ण बहुत प्रतापी हुआ। अवेल्ल देवी इसी राजा कर्ण की पत्नी थी। यह राजा कर्ण सन् १६३८ में राजगद्दी पर बैठा। इसने बहुत बड़े-बड़े प्रान्तों को विजय करके अपने राज्य में मिलाया। इसकी सत्ता बनारस के आगे बिहार तक फैली हुई थी। बनारस में इसने कर्ण मेरु नामक एक मन्दिर बनवाया था। इसने

कर्णावती नामक एक नगर बसा कर विद्वान ब्राह्मणों को ब्रह्मोत्तर सम्पत्ति के रूप में दान दे दिया। चोल राजाओं से इसने तैलंगाणी का भी बहुत-सा हिस्सा जीत लिया था। इसके अतिरिक्त दक्षिण में चोल और पांड्य, पूर्व में हूण और गौड़, उत्तर में गुर्जर और कीर देशों के जीतने का उल्लेख भी इसके शिलालेखों में पाया जाता है। इससे पता चलता है कि उत्तर में उसकी विजय हिमालय तक पहुँच गई थी। यह भी सम्भव मालूम होता है कि उत्तर में मुसलमानों की अधीनता स्वीकार करके रहने वाले गुर्जर या प्रतिहार सम्राट को जीत कर मुसलमानों को देश के बाहर मार भगाया। राजा कर्ण की सेवा में १३६ राजा रहते थे। राजा कर्ण विद्वानों का आश्रयदाता था। उसकी राज्यसभा में कई कवि लोग रहते थे। कर्ण का राज्यकाल १०४० से १०८० तक माना जाता है।

राजा कर्ण के पुत्र का नाम यशःकर्ण था। कर्ण की मृत्यु के समय उसकी उम्र छोटी होने से राज्य का कार्य-भार उसकी माता अवेल्ल देवी ने कुछ समय तक सम्हाला था।

अशर-साम्राज्य

एशिया का एक प्राचीन साम्राज्य जो अपने उत्कर्ष के समय में मिस्र से ईरान तक फैला हुआ था। इस साम्राज्य की राजधानी निनीवे या नाइनस थी। निनीवे पुराने जमाने का एक मशहूर नगर था। सम्राट् सेन केरिब के जमाने में इस शहर का वैभव बहुत बढ़ा-चढ़ा था। करीब दो सौ साल तक यह बहुत बड़ा व्यापारिक केन्द्र बना रहा। यहाँ का पुस्तकालय अपने जमाने में सारे संसार में मशहूर था। ईस्वी सन् से ६१२ वर्ष पूर्व अखामनी शासकों ने मिलकर इस फूलते-फलते शहर को तहस नहस कर डाला।

अशुर-बनिपाल

असीरियन साम्राज्य का सम्राट् जिसने अपनी राजधानी निनवे में पुरानी वस्तुओं का एक महान् संग्रहालय बनवाया था। इस संग्रहालय में ईसा पूर्व ३००० वर्ष से लेकर ६०० वर्ष तक की इंटे जिन पर पुराने इतिहास और महाकाव्य खुदे हुए हैं संग्रहीत की गई थीं। इन इंटो पर उस काल के खुदे हुए एक महाकाव्य "गिल्गमेष" का पता लगा है। यह काव्य बारह इंटो पर खुदा हुआ है जिसमें सृष्टि के प्रलय और उसके पुनर्निर्माण की कहानी बड़े रोचक ढंग से लिखी हुई है।

एक भावुक सम्राट् की निष्ठा से यदि ये सब ईट-पत्थर संग्रहीत न किये गये होते तो अति प्राचीन सुमेरियन और बेबीलेनियन संस्कृति का पता हमें न लग पाता इस सम्राट् का समय ईसा पूर्व ६६८ से ६६१ वर्ष तक है।

अश्व-घोष

बौद्ध साहित्य का उद्‌भट विद्वान जो ईसा की पहली शताब्दी में हुआ।

अश्वघोष साकेत का रहने वाला ब्राह्मण था। यह कुशान वंशीय सम्राट् महाराज कनिष्क के समय में हुआ था। इसने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया था और कश्मीर में होने वाली तीसरी बौद्ध संगति का इसी ने संचालन किया था।

अश्वघोष ने काव्य और नाटक दोनों लिखे उसके काव्यों में "बुद्ध चरित्र" और "सौन्दरनन्द" नाम का दो महाकाव्य बहुत प्रसिद्ध है। "सूत्रालंकार" भी अश्वघोष की ही रचना थी। उसकी रचनाओं पर वाल्मीकि का प्रभाव था और अश्वघोष का प्रभाव कालिदास के रघुवंश और कुमारसम्भव पर दिखलाई पड़ता है। अश्वघोष के नाटकों के कुछ छिन्न-भिन्न अंश तुरफाना में मिले हैं, इनमें से एक का नाम "शारि पुत्र प्रकरण है"

अमर सिंह

अमरकोश के रचयिता अमरसिंह जो सम्भवतः चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का समकालीन था।

अश्व कर्ण

अलेक्झेण्डर महान् के आक्रमण के समय भारत और काबुल के बीच में स्थित अश्वक नामक एक जाति का सरदार।

अफगानिस्तान पर विजय प्राप्त करने के बाद जब सिकन्दर भारत की सीमाओं के समीप आया तब उसे सीमावर्ती कई दुर्द्धष जातियों से कड़ा संघर्ष करना पड़ा। इनमें से एक जाति अश्वक (Assakenoi) थी। इसका सरदार अश्वकर्ण ने २०००० घुड़सवार ३०००० पैदल सेना के साथ सिकन्दर को रोकने का प्रयत्न किया। मालकन्द के समीप मस्सक नामक उनका एक सुदृढ़ किला बना हुआ था। सिकन्दर को अश्वकर्ण के साथ अत्यन्त कड़े मुकाबिले का सामना करना पड़ा मगर उसके सौभाग्य से अचानक एक तीर अश्वकर्ण को जा लगा और उसके गिरते ही भारतीय युद्ध नीति के अनुसार अश्वक की सेना ने आत्मसमर्पण कर दिया। अश्वकर्ण की सुन्दर पत्नी को सिकन्दर ने अपने हरम में डाल लिया।

अशाई-शिम्बून

जापान के प्रसिद्ध व्यवसायिक नगर ओसाका से प्रकाशित होने वाला प्रसिद्ध दैनिकपत्र। जिसकी दस लाख से अधिक प्रतियाँ सन् १९३१ तक छपना प्रारम्भ हो गई थीं।

साक्षरता और शिक्षा प्रचार के साथ-साथ जापान में पत्र-पत्रिकाओं ने असाधारण रूप से उन्नति की। जापान का पहला दैनिक पत्र सन् १८७२ में प्रकाशित होना प्रारम्भ हुआ था मगर सन् १९३० तक तो वहाँ पत्र पत्रिकाओं की जैसे बाढ़ सी आ गई।

ओसाका से प्रकाशित होने वाले अशाई-शिम्बून और मैनिशि शिम्बून की दस-दस लाख से अधिक प्रतियाँ छपती थीं। राजधानी टोकियों से प्रकाशित होने वाले दो दैनिक पत्रों की साढ़े छः-छः लाख प्रतियाँ छपती थीं। इन चार बड़े दैनिक पत्रों के अतिरिक्त एक हजार से अधिक दैनिक पत्र जापान के भिन्न-भिन्न स्थानों से प्रकाशित होने लगे थे। जिस देश की जनसंख्या कुल साढ़े छः करोड़ हो उस देश में इतने दैनिक पत्रों का प्रकाशित होना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि जापानी जनता को विदेशों में घटने वाली घटनाओं के प्रति कितनी अधिक दिलचस्पी थी।

अशीदा हितोशी

द्वितीय महायुद्ध में जापान के आत्मसमर्पण के पश्चात् जापान के मिन्सेइतो दल के नेता जिन्होंने सन् १९४८ में सोशल डेमाक्रेटिक दल के नेता कातायामा के द्वारा त्यागपत्र देने पर जापान में नवीन मंत्रिमण्डल का निर्माण किया। मगर थोड़े ही दिनों में इस मंत्रिमण्डल पर रिश्वत और भ्रष्टाचार का आरोप लगाया गया और उसे अक्टूबर १९४८ में इस्तीफा देना पड़ा।

अशेना निशि

सातवीं सदी में मध्य एशिया के अन्तर्गत पूर्वी तुर्क राजवंश की एक शाखा जिसने तुर्क साम्राज्य के समाप्त होने के पश्चात् अपना साम्राज्य स्थापित किया।

जिस समय अशेना-निशि के खाकान सत्ता में आये उस समय पूर्वीय तुर्कों का राज्य अपनी आपसी फूट के कारण अन्तिम सासें ले रहा था। उस समय के एक शिला लेख में तुर्की साम्राज्य की हालत का चित्र खींचते हुए लिखा है कि—

"तुर्की वंश के स्थापक तू-मिन के बाद उसके छोटे भाई और उनके बाद उसके पुत्र कगान (खान) हुए। हालत यह थी कि हरेक छोटा भाई बड़े को पसन्द नहीं था, पुत्र पिता के विरुद्ध था सभी कगान मूर्ख और डरपोक थे। परिणाम यह हुआ कि चीनी लोगों ने इनके बीच में फूट डालकर आपस में लड़वा दिया जिससे उनके पुत्र और पुत्रियाँ चीनियों के दास हो गये।"

"ओ तुर्क लोगों! किसने तुम्हारे कानून और शासन को नष्ट किया, तुमने खुद अपना नाश किया। कहाँ से आये वे शस्त्रधारी जिन्होंने तुम्हें छिन्न-भिन्न किया। हे तुर्क जनता! तू पूर्व गई, पश्चिम गई, तेरा खून पानी की तरह बहा, तेरी हड्डियों का ढेर पहाड़ की तरह हो गया, तेरे कुलीन पुरुष दास और कुलीन स्त्रियाँ दासियाँ बन गईं।"

ऐसी विपन्न अवस्था में अशेना वंशी राज-कुमार इलतेरेस कई तुर्क कबीलों को मिलाकर उनका कगान गू-इ-लु के नाम से बना। इसने सन् ६८२ से ६९३ तक अपना

संगठन कर शासन किया। सन् ६६३ में एक लड़ाई में यह मारा गया।

इसके बाद इसका भाई मो-चो कगान बना। मो-चोके शासन में अशेना-तुर्क साम्राज्य एक बार फिर उन्नति की चरम शिखर पर पहुँच गया। इसने कई बार चीन की तत्कालीन साम्राज्ञी वू की सेनाओं से डटकर लोहा लिया और उसे पराजित किया और अपनी माँगे उससे मनवाकर शान्त हुआ। इसने अपने साम्राज्य का काफी विस्तार किया। सन् ७१६ में मो-चो की हत्या कर दी गई।

मो-चो के बाद गू-इ-लू का पुत्र मोगलियान कगान बना। जिसने सन् ७१६ से ७३५ तक राज्य किया।

अंशुवर्मन

नैपाल में ठाकुरी राजवंश का संस्थापक और उसका पहला राजा। इसका समय छठी सदी के अन्त या सातवीं सदी के प्रारम्भ में माना जाता है।

अंशुवर्मन पहले लिच्छवी वंश के नरेश शिवदेव का मन्त्री था। उस समय सम्भवतः नैपाल लिच्छवी वंश की सत्ता में रहा होगा और अंशुवर्मन को वहाँ का शासक बनाकर भेजा होगा। मगर शीघ्र ही अंशुवर्मन ने वहाँ के पुराने राजकुल का अन्त करके राजदण्ड को धारण कर लिया और ठाकुरी राजवंश की प्रतिष्ठा की। उसने नैपाल में एक संवत् भी चलाया जिसका आरम्भ सन् ५९५ ई० से माना जाता है। अंशुवर्मन ने करीब चालीस बरस तक राज्य किया। तिब्बत के तत्कालीन सम्राट सांग-सान-गम्पो के साथ उसने अपनी कन्या का विवाह किया। यह एक अन्तर्जातीय और अन्तर्देशीय विवाह था।

अशोक महान्

भारतवर्ष में मौर्य्य कुल का महान बौद्ध सम्राट जिसने भारतवर्ष के इतिहास को अपने धर्म पूर्ण शासन से अमर आलोक प्रदान किया। इसका समय ई० सन् पूर्व २६९ से लेकर २३२ तक है।

इंग्लैण्ड के अमर इतिहास लेखक एच० जी० वेल्स ने एक स्थान पर लिखा है कि—

“संसार के इतिहास में अनेक बड़े-बड़े सम्राटों का प्रादुर्भाव हुआ जिन्होंने अपने न्याय और उदारता से इतिहास में कीर्ति प्राप्त की मगर समग्र संसार के इतिहास में महान अशोक का चरित्र इतना उज्ज्वल है जिसका मुकाबला कोई भी दूसरा सम्राट नहीं कर सकता जो सारे आकाश में चन्द्रमा की तरह इतिहास में प्रकाशमान है।

मौर्य्य साम्राज्य के सम्राट बिन्दुसार की मृत्यु के उपरान्त उनका पुत्र अशोक वर्धन मगध की राजगद्दी पर आसीन हुआ। जिस समय अशोक सम्राट् की गद्दी पर आसीन हुआ उस समय उसका साम्राज्य पश्चिम में हिन्दुकुश पर्वत से पूर्व में बङ्गाल की खाड़ी तक, उत्तर में हिमालय, कश्मीर और नैपाल तक और दक्षिण में मैसूर तक फैला हुआ था। दक्षिण के कुछ हिस्से और दक्षिण पूर्व का कलिङ्ग देश उसकी सीमाओं से बाहर था। इसी हिस्से को अपने साम्राज्य में मिलाने की इच्छा से अशोक ने एक विशाल सेना के साथ अपने राज्यारोहण के नवें वर्ष में कलिङ्ग देश पर आक्रमण किया। कलिङ्ग के राजा ने बड़ी बहादुरी के साथ इस आक्रमण का मुकाबला किया मगर अन्त में कुछ कूटनीतिक चालों से और कुछ मार काट के द्वारा कलिङ्ग की पराजय हुई। इस युद्ध में भयंकर रक्तपात हुआ। एक शिलालेख के अनुसार इस युद्ध में दोनों ओर के एक लाख आदमी मारे गये।

इस लड़ाई और मारकाट ने उसके दिल पर इतना गहरा असर डाला कि उसने आगे कभी भी कोई लड़ाई न लड़ने का संकल्प किया। इस विजय के बाद अशोक ने अपनी तलवार को म्यान में रख लिया। उसका हृदय जन-कल्याण में लग गया। इस बात का वर्णन करते हुए उसने अपने एक धर्म लेख में लिखा है—

“देवताओं के प्रियदर्शी सम्राट ने अपने अभिषेक के आठवें वर्ष में कलिङ्ग को जीता। डेढ़ लाख आदमी वहाँ से कैद करके लाये गये, एक लाख वहीं मारे गये और इससे बहुत अधिक स्वयमेव रोग से मर गये।”

कलिङ्ग विजय के बाद से ही देवताओं के प्रियदर्शी बड़े उत्साह से धर्म की रक्षा और प्रचार में जुट गये। उनके हृदय में कलिङ्ग विजय के लिये पश्चाताप शुरू

हुआ क्योंकि किसी अपराजित देश पर विजय प्राप्त करने में लोगों की हत्या, मृत्यु और कैदी बनाकर लेजाया जाना जरूरी होता है। प्रियदर्शी सम्राट को इस बात पर गहरा दुःख और पश्चाताप होता है।

सम्राट अशोक बौद्ध धर्म का अनुयायी था उसने कभी अपना व्यक्तिगत् धर्म अपनी प्रजा पर जबर्दस्ती लादना नहीं चाहा। प्रचार के द्वारा और साहित्य के द्वारा प्रेम के साथ उसने जनता में बौद्ध धर्म का प्रचार किया। उसका मत था कि सभी धर्मों में जो कि चित्त-शुद्धि और संयम का सम्मान करते हैं, पारस्परिक सहिष्णुता होना चाहिये।

अशोक की धर्म लिपियाँ

भारतीय इतिहास में अशोक की धर्म लिपियों का स्थान अनूठा और असाधारण है। यद्यपि ये धर्म लिपियाँ किसी ऐतिहासिक शोध में अधिक मदद नहीं करतीं और न ये किसी व्यक्ति की प्रशंसा के रूप में लिखी गई हैं, फिर भी इनका महत्व सारे संसार के साहित्य में सबसे अधिक इस लिये है कि इनमें एक भावुक और धर्मपरायण सम्राट ने अपना हृदय खोल कर सारी मानव जाति के सन्मुख रख दिया है। जिन सिद्धान्तों के ऊपर उसने अपने जीवन में अमल किया, जिन सिद्धान्तों को अपने मत से उसने मानव जाति के लिये कल्याणप्रद समझा उन्हीं का दिग्दर्शन उसने इन धर्म लिपियों में कर दिया है। उसके एक धर्म लेख में लिखा है—

"सारे धर्म किसी न किसी अच्छाई के कारण आदरणीय हैं। दूसरे धर्मों का आदर करके मनुष्य अपने धर्म को ऊँचा उठाता है और साथ ही दूसरे लोगों के धर्मों की भी सेवा करता है।"

अशोक के धर्म लेख पत्थर के खम्भों और पर्वत की शिलाओं पर हिमालय से मैसूर तक और उड़ीसा से काठियावाड़ तक खुदे हुए मिलते हैं। अशोक के शिलालेखों में चौदह धर्म लेख तो बहुत प्रसिद्ध हैं। जिनमें से एक पेशावर जिले के शहबाज गढ़ी में, एक हजारा जिले के मन्सेहरा नामक स्थान पर, एक जूनागढ़ के पास गिरनार पर्वत पर, एक थाना जिले के सौपारा नामक स्थान पर, एक देहरादून जिले के कालसी नामक स्थान पर, एक पुरी जिले के धौली नामक स्थान पर, एक गन्जाम जिले के जौगढ़ नामक स्थान पर और एक निजाम जिले के इरागुडी नामक स्थान पर उपलब्ध हैं। ये लेख पहाड़ की चट्टानों पर खुदे हुए पाये गये हैं।

इनके अतिरिक्त सात लेख स्तम्भों पर खुदे हुए हैं। इन स्तम्भों में से टोपरा और मेरठ के स्तम्भ तो दिल्ली लाये गये हैं। कौशाम्बी का स्तम्भ इलाहाबाद के किले में खड़ा किया गया है और रामपुरवा के तीन स्तम्भ चम्पारन जिले में खड़े हैं। ये सारे अभिलेख उस समय के साहित्य में अपना अमर स्थान रखते हैं।

तीसरी बौद्ध संगीति

बौद्ध धर्म का देश विदेशों में प्रचार करने के कार्य में प्रियदर्शी अशोक ने बहुत महत्वपूर्ण हाथ बँटाया। चीन, जापान, बरमा, सीलोन, तिब्बत इत्यादि संसार के दूरवर्ती भागों में बौद्ध धर्म के महान वृक्ष की जो टहनियाँ फैलीं उनमें अशोक का सबसे अधिक महत्वपूर्ण योगदान था। बौद्ध धर्म का देश विदेश में प्रचार करने के लिये उसने आश्चर्यजनक संगठन किया। इस विषय में उसका सबसे महत्वपूर्ण कार्य पाटलिपुत्र में बौद्ध संगीतिका तीसरा महान् अधिवेशन बुलाना था। अशोक के समय में बौद्ध धर्म के आचार्यों में कुछ महत्वपूर्ण मतभेद पैदा हो गये थे। इन मतभेदों को दूर करके प्रचार कार्य को संगठित करने के लिये अशोक ने अपने अभिषेक के सत्रहवें वर्ष में यह संगीति बुलवाई थी। इस संगीति के प्रधान सुप्रसिद्ध बौद्ध धर्माचार्य मोग्गलिपुत्त तिस्य थे। नौ मास के निरन्तर वाद-विवाद के पश्चात् स्थविरों के पक्ष में संगीति ने अपना निर्णय दिया। इस संगीति के निर्णय के अनुसार बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिये बौद्ध धर्माचार्य मध्यन्तिक काश्मीर और गांधार को, आचार्य मज्झिम हिमालय को, आचार्य महारक्षित यवन देश को, आचार्य सोण और उत्तर, सुवर्ण भूमि या ब्रह्म देश को, आचार्य महाधर्म रक्षित महाराष्ट्र को, आचार्य महादेव महिष्मण्डल को और सम्राट के पुत्र महेन्द्र लङ्का को बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिये गये। इसके पश्चात् सम्राट की पुत्री और महेन्द्र की बहन संघमित्रा ने पवित्र बोधि वृक्ष की शाखा सीलोन में ले जाकर लगाई।

इस प्रकार अशोक ने अपने साम्राज्य के समस्त साधन और अपने परिवार तक को अत्यन्त निष्ठा के साथ धर्म प्रचार और लोकनिष्ठा के लिये उत्सर्ग कर दिया।

इसके अतिरिक्त सम्राट अशोक ने जनसाधारण की सुविधाओं के लिए अपने साम्राज्य में और साम्राज्य से बाहर विदेशों में स्थान-स्थान पर धर्मशालाएँ, कुँए जलाशय और चिकित्सा के लिये अस्पतालों का निर्माण करवाया था। ओषधियों में काम आने वाली वनस्पतियाँ और जड़ी बूटियाँ जो इस देश में नहीं पैदा होती थीं, उन्हें दूसरे देशों से यहाँ लाकर लगाया गया।

शिल्प और स्थापत्य कला

प्रियदर्शी सम्राट को भवन निर्माण कला और नगर निर्माण कला का बहुत शौक था। कहा जाता है कि नैपाल में ललित पाटन और काश्मीर में श्रीनगर नामक शहर इन्होंने ही बसाये! सम्राट अशोक ने आजीवक सन्यासियों के लिये गया में बराबर नाम की पहाड़ी में जो दरी गृह बनवाये थे उनकी छतें, दीवारें आदि वज्रलेप के कारण शीशे की भाँति चमकती हैं। आजकल ये लोमष ऋषि की गुफाओं के नाम से प्रसिद्ध हैं।

अशोक के बनाये हुए स्तम्भ वास्तुकला की प्रतिमूर्ति हैं। ये नीचे से मोटे और ऊपर से पतले चूड़ी उतार आकार के बने हुए हैं हरएक स्तम्भ चालीस से पचास फुट ऊँचा और वजन में लगभग पचास टन का है। शुरू में इन स्तम्भों में सिंह, बैल, हाथी इत्यादि की मूर्तियाँ बनी हुई हैं और इनके शिखर घण्टे के आकार के बने हुए हैं। इन पशुओं की आकृति में इतनी स्वाभाविकता है कि उनके सच्चे होने का भ्रम होता है। इनकी पालिश, सजीवता आदि देखकर पाश्चात्य कला विशारदों ने फारसी माडलों से इनकी अनुरूपता बतलाई है। ये स्तम्भ इतने चमकदार और चिकने हैं कि अनेक बार इन्जिनियरों को उनके धातु से बने होने का भ्रम हुआ है। इसके अतिरिक्त इन स्तम्भों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने का काम भी अत्यन्त कठिन रहा होगा।

इतिहासकार विन्सेएट स्मिथ ने एक उदाहरण देते हुए बतलाया है कि फीरोज शाह तुगलक ने जो एक उच्चकोटि का वास्तु कला निर्माता था और जिसके दरबार में दूर-दूर के इन्जिनियर रहते थे—दिल्ली से बारह मील दूर टोपरा नामक स्थान में जो अशोक का स्तम्भ खड़ा हुआ था उसे अपनी राजधानी की शोभा बढ़ाने के लिये दिल्ली लाना चाहा। मगर उस स्तम्भ को टोपरा से दिल्ली किस प्रकार लाया जाय इसके लिये बड़े-बड़े इन्जिनियरों की बुद्धि चकरा गई। अन्त में स्तम्भ के नीचे रूई का एक अम्बार खड़ा किया गया। पास ही बिना बैलों की बयालीस गाड़ियाँ खड़ी की गईं। फिर स्तम्भ को रूई के जरिये गाड़ियों पर लादा गया। प्रत्येक गाड़ी पर दो सौ आदमी लगे। इस प्रकार बारह मील की दूरी तय करने के लिये आठ हजार से अधिक आदमियों की जरूरत पड़ी। ऐसी स्थिति में ये स्तम्भ चुनार से लेकर निजाम राज्य तक कैसे पहुँचे होंगे यह भी एक प्रश्न वाचक चिन्ह है।

साम्राज्य की सीमाएँ

अशोक के साम्राज्य की सीमाएँ उत्तर पश्चिम में हिन्दू कुश पर्वत तक थी। हिरात, कन्दहार, काबुल, बालूचिस्तान, जो चन्द्रगुप्त ने सैल्यूकस से जीते थे, अशोक के साम्राज्य में थे। कपिशा, जलालाबाद और कश्मीर भी अशोक के शासन में में। बौद्ध परम्परा के अनुसार नैपाल भी उसके राज्य में था। पूर्व में बंगाल अशोक के साम्राज्य के अन्तर्गत था और कलिंग को स्वयं अशोक ने जीता था। पश्चिम में अशोक के साम्राज्य की सीमा पश्चिमी समुद्र तक पहुँच गई थी। सौराष्ट्र, जूनागढ़, बम्बई का थाना जिला उसके साम्राज्य में था। दक्षिण में अशोक के साम्राज्य की सीमाएँ मैसूर तक पहुँच गई थीं।

अशोक का शासन

अशोक इस विशाल साम्राज्य का एकछत्र शासक था। उसका साम्राज्य, तक्ष शिला, उज्जयिनी, तीसली और सोनागिरि के चार केन्द्रों द्वारा शासित होता था। इन चारों केन्द्रों में तथा मुख्य-मुख्य प्रान्तों में राजकुल के या किसी सम्भ्रान्त कुल के विश्वसनीय व्यक्ति शासक के रूप में नियुक्त किये जाते थे। जिले के शासकों को प्रादेशिक कहते थे। विभागों के स्वामी को महामात्र कहते थे। अन्तःपुर का महामात्र "स्त्र्यध्यक्ष महामात्र", नगर का महा-

मात्र "नगर महामात्र" और सीमान्त का महामात्र "अन्त महामात्र" कहलाते थे। महामात्रों के अधिकार मन्त्रियों के समान होते थे और इनका पद कौटिल्य के समय से चला आता था।

सम्राट अशोक ने धर्म महामात्र के नाम से प्रजा के इहलौकिक और पारलौकिक हित के लिये नये धर्माधिकारियों की नियुक्ति की थी। ये धर्माधिकारी धार्मिक प्रवृत्तियों की रक्षा और दण्डनीति की कठोरता को कम करते थे। प्रतिवेदक के नाम से सम्राट ने ऐसे रिपोर्टरों का एक दल बनाया था जो प्रजा की आवश्यकताओं की जाँच करके उसकी रिपोर्ट सरकार को देते रहें। उसने अपने शासन की मूलनीति अहिंसा को रखा था।

प्रियदर्शी अशोक भारतीय इतिहास में सबसे बड़े साम्राज्य का स्वामी होता हुआ भी एक तपस्वी की भाँति अपना जीवन व्यतीत करता था वह अत्यन्त उदारचेत्ता था। सारा प्राणिजगत उसके आदर का पात्र था।

दुनिया के महान सम्राट मारकस आरेलियस, अकबर, कान्स्टेण्टाइन इत्यादि के साथ इतिहास उसकी तुलना करता है। मगर उदारता, दिव्य मानवता और उच्च आदर्शों की दृष्टि से वह सबसे अलग और सबसे ऊँचा था। मगर साथ ही मानव जगत की यह सचाई कि राजनीति में अत्यन्त उच्च आदर्शवादिता सफलता नहीं देती, अशोक के जीवन में चाहे सत्य साबित न हुई हो मगर उसकी मृत्यु के बाद उस सिद्धान्त ने अपनी सत्यता जाहिर कर दी और अशोक के मरते ही उसका साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया।

अशोक के धर्म लेख

सम्राट अशोक ने अपने राज्यकाल के विभिन्न वर्षों में जनता को प्रबोध देने के हेतु अपने साम्राज्य के विभिन्न भागों में कई धर्म लेख खुदवाए थे।

उन लेखों का हिन्दी अनुवाद नीचे प्रस्तुत किया जाता है।

(१)

यह धर्मलिपि देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा की आज्ञा से खुदवाई गई है। इस पृथ्वी पर कोई किसी जीवधारी जन्तु को बलिदान अथवा भोजन के लिए न मारे अथवा किसी प्रकार का समाज न करे देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् ऐसे समाजों में अनेक प्रकार के दोष देखते हैं। यद्यपि कुछ समाज ऐसे भी हैं जो देवताओं के प्रियदर्शी सम्राट् को अच्छे मालूम होते हैं। पहले देवताओं के प्रियदर्शी सम्राट् की पाकशाला में व्यञ्जन बनाने के निमित्त हजारों पशुओं का बध हुआ करता था। पर आज से उनकी पाकशाला में केवल दो मोर और एक हिरण का वध होगा। जिसमें भी हिरण का वध नियमित नहीं है। भविष्य में ये तीन प्राणी भी नहीं मारे जाएँगे।

(२)

देवताओं के प्रियदर्शी सम्राट् के साम्राज्य में सर्वत्र और उनके सीमा प्रदेश में रहनेवाली जातियों (जैसे चोल, पाड्य, सतिय पुत्र, केरल पुत्र आदि) के राज्य में ताम्रपर्णी (लङ्का) तक तथा यूनानियों के राजा एण्टी ओकस के राज्य में और उसके पार्श्ववर्त्ती दूसरे राज्यों में सर्वत्र देव प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् ने दो प्रकार की चिकित्साओं का प्रबन्ध किया है—मनुष्य-चिकित्सा और पशु-चिकित्सा। जिन-जिन स्थानों पर मनुष्यों और पशुओं के उपयोग में आनेवाली औषधियों के पौधे नहीं हैं, उन-उन स्थानों पर वे बाहर से लाये और लगाये गये हैं। प्रत्येक पथ पर मनुष्यों और पशुओं के लिए कुएँ खुदवाये गये हैं और वृक्ष लगवाये गये हैं।

(३)

देव प्रिय प्रियदर्शी राजा इस प्रकार कहते हैं :— राज्याभिषेक के बारहवें वर्ष में मैं इस प्रकार के आदेश किये हैं मेरे राज्य में सर्वत्र धर्म्मयुत, राजुक और नगरों के राज्याधिकारी पाँच वर्ष में एक बार सभा में एकत्रित हों और इस प्रकार की धर्म शिक्षाओं का प्रचार करें :—

"अपने माता, पिता, मित्रों, संगियों और सम्बन्धियों की धर्मयुत सेवा करना अच्छा और उचित है। ब्राह्मणों और श्रमणों को भिक्षा देना, प्राणियों के जीवन का सत्कार करना और अपव्यय तथा कटु वचन से बचना, अच्छा और उचित है। बौद्ध संघ इस प्रकार के धर्मयुतों को नियुक्त करेगा और उन पर निगाह रक्खेगा।

सुदूर अतीत काल से यहाँ पर प्राणियों का नाश—जीवों के प्रति निर्दय व्यवहार सम्बन्धियों, श्रमणों तथा ब्राह्मणों

के प्रति अनादर भाव चले आ रहे हैं। आज देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने - जोकि, देवताओं के प्रिय और धर्मकार्य के बड़े भक्त हैं।—ढिंढोरा पिटवा कर लाव, लशकर, हाथी, मशाल और स्वर्गीय वस्तुओं को प्रजा को दिखला कर धर्म को प्रकट किया है। जैसा सैकड़ों वर्षों पहले कभी नहीं हुआ था वैसा देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्मानुशासन में होता है। आज जीवधारी पशुओं का सत्कार, उनके लिए दया, सम्बन्धियों, ब्राह्मणों और श्रमणों के लिए सत्कार, माता-पिता की आज्ञा का भक्ति के साथ पालन और वृद्धों का यथोचित आदर होता है। अन्य विषयों की तरह इस विषय में भी धर्म का विचार किया गया है और देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी इसको बराबर प्रचलित रक्खेगा। देवताओं के प्रिय राजा प्रियदर्शी के पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र इस धर्म के प्रचार को सृष्टि के अन्त तक कायम रक्खेंगे। धर्म और भलाई में दृढ़ रह कर वे लोग धर्म की शिक्षा देंगे। क्योंकि धर्म की शिक्षा देना सब कार्यों से उत्कृष्ट है और भलाई के बिना कोई धर्म का कार्य नहीं होगा। धार्मिक प्रेम का दृढ़ होना और उसकी वृद्धि होना वाँछनीय है। इस शिलालेख को खुदवाने का प्रधान उद्देश्य यह है कि वे लोग अपने को इस सर्वोच्च भलाई के कामों में लगावें और इसकी अवनति न होने दें। राज्याभिषेक के बारहवें वर्ष में देवताओं के प्रियदर्शी सम्राट् ने इसे खुदवाया है।

(४)

देवताओं के प्रियदर्शी सम्राट् कहते हैं कि, पुण्य करना बहुत कठिन है। जो पुण्य करते हैं वे कठिन कार्य्य करते हैं। अभी तक मैंने स्वयं बहुत से पुण्य कार्य्य किये हैं। मेरे पुत्र, पौत्र और कल्पान्त तक के सब वंशधर मेरी ही तरह पुण्य कार्य्य करेंगे और जो सुकृत कार्य्य के करने में किंचित् मात्र भी प्रमाद करेगा, वह पाप का भागी होगा। क्योंकि पाप करना बहुत आसान है। देखो अतीत काल में धर्म्म का प्रबन्ध करने वाले कर्म्मचारी न थे, परन्तु मैंने अपने राज्यभिषेक के तेरहवें वर्ष में धर्म का प्रबन्ध करने वाले कर्म्मचारी नियुक्त किये हैं। ये लोग सब सम्प्रदाय के लोगों से धर्म का स्थापन और उत्कर्ष करने के लिए और धर्म्मयुतों की भलाई करने के लिए मिलते हैं। वे यवन, कम्बोज, गान्धार, सौराष्ट्र, पेतेनिक और सीमा प्रदेश को अन्य जातियों के साथ मिलते हैं, वे योद्धाओं और ब्राह्मणों के साथ, गरीब अमीर और वृद्धों के साथ, उनकी भलाई और सुख के लिये, और सत्य धर्म के अनुयायियों के मार्ग को सब विघ्नों से रहित करने के लिए मिलते हैं। जो लोग बन्धनों में हैं उन्हें वे सुख देते हैं। और उनकी बाधाओं को दूर करके उन्हें मुक्त करते हैं। क्योंकि उन्हें अपने कुटुम्ब का पालन करना पड़ता है। पाटलिपुत्र तथा अन्य नगरों में, वे मेरे भाई बहनों तथा अन्य सम्बन्धियों के घर में यत्न करते हैं। सब स्थानों पर धर्म महामात्र लोग सच्चे धर्मानुयायियों, दान करने वालों और धर्म में दृढ़ लोगों से मिलते हैं। इसी उद्देश्य से यह लिपि खुदवाई गई है।

(५)

देवताओं के प्रियदर्शी सम्राट् कहते हैं :—प्राचीन काल में हर समय में राजकार्य, मनोनिवेश और गुप्तचरों के समाचारों को सुनने की प्रथा न थी। मैंने इस प्रकार का नियम कर दिया है कि, चाहे जिस समय में—खाने के समय, विश्राम के समय, शयनागार में, एकान्त में, अथवा वाटिका में—वे कर्मचारी लोग जिनके ऊपर प्रजा विषयक कार्यों का भार है मुझ से मिल सकते हैं। मैं अपनी प्रजा के सम्बन्ध की सब बातें उनसे जान लेता हूँ। मेरी कही हुई शिक्षाओं को मेरे धर्म महामात्र लोग प्रजा से कहते हैं। इस प्रकार मैंने यह आज्ञा दी है कि, जहाँ कहीं धर्मोपदेशकों की सभाओं में मतभेद अथवा झगड़ा हो, उसकी सूचना मुझे सदा मिल जाना चाहिए। क्योंकि, न्याय के प्रबन्ध में जितना उद्योग किया जाय कम है। मेरा यह कर्त्तव्य है कि शिक्षा द्वारा लोगों का उपकार करूँ। निरन्तर उद्योग और न्याय का उचित प्रबन्ध सर्वसाधारण के हित की जड़ है। और इससे अधिक फलदायक कुछ नहीं है। मेरे सब यत्नों का मुख्य उद्देश्य है कि, मैं सर्वसाधारण के ऋण से मुक्त हो जाऊँ। जहाँ तक मुझ से हो सकता है मैं उन्हें सुखी रखने का प्रयत्न करता हूँ। और इस बात का भी प्रयत्न करता हूँ कि, भविष्य में भी स्वर्गसुख प्राप्त करें। भविष्य में मेरे पुत्र और पौत्र भी सर्व साधारण के हित में रत रहें। इसी उद्देश्य से मैंने यह लिपि खुदवाई है।

(६)

देवताओं के प्रिय राजा प्रियदर्शी की यह बड़ी इच्छा है कि, सब स्थानों में सब जातियाँ सुखी रहें। सब लोग समान रीति से इन्द्रियों का दमन करें। और आत्मा को पवित्र बनावें। मनुष्य संसार की बातों में अधीर है। संसार-चक्र के कारण वह जितनी बातें कहता है उतनी कर नहीं सकता। फिर भी आंशिक रूप से उसे कर्तव्य पालन में रत रहना चाहिए। दान एक श्रेष्ठ धर्म है। लेकिन जो लोग आर्थिक हीनता के कारण दान नहीं कर सकते उन्हें संयम, चित्त शुद्धि, कृतज्ञता, दृढ़-चिन्तना आदि गुणों का एकान्त पालन करना चाहिए।

(७)

प्राचीन समय के राजा लोग अहेरिया के लिए जाया करते थे। अपना जी बहलाने के लिए वे जानवरों का शिकार तथा अन्य इसी प्रकार के खेल किया करते थे। मैं देवताओं का प्रियदर्शी सम्राट् अपने राज्य के दशवें वर्ष से इस प्रकार मनोरंजन को बन्द करता हूँ। अब मुझे सत्यज्ञान प्राप्त हो गया है। आज से ब्राह्मणों की भेंट करना उनको दान देना, वृद्धों से परामर्श करना, द्रव्य बांटना, राज्य में प्रजा से भेंट करना, प्रजाजनों को धार्मिक शिक्षा देना आदि कार्य ही मेरे मनोरंजन की सामग्री होगी। इस प्रकार देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् अपने भले कामों से उत्पन्न हुए सुखों को भोगता है।

(८)

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् कहते हैं :—लोग बीमारी में, पुत्र, कन्या के विवाह में, पुत्र के जन्म पर, और यात्रा में जाने के समय अथवा इसी प्रकार के अन्यान्य अवसरों पर भिन्न-भिन्न प्रकार के विधान करते हैं। परन्तु भिन्न-भिन्न प्रकार के ये असंख्य विधान जिन्हें कि लोग करते हैं, व्यर्थ और निरर्थक हैं। इन विधानों का कोई फल नहीं होता, जो लोग इन विधानों को छोड़ कर इनके विपरीत धर्म कार्य करते हैं, वे बहुत ही श्रेष्ठ हैं। गुलामों और नौकरों पर यथोचित ध्यान रखना और सम्बन्धियों तथा शिक्षकों का सत्कार करना प्रशंसनीय है। इन कामों को तथा इसी प्रकार के अन्य भलाई के कार्यों को ही मैं धर्म कार्य कहता हूँ। पिता, पुत्र, भाई अथवा स्वामी को कहना चाहिए कि, ये ही कार्य प्रशंसनीय हैं। जहाँ तक अभीष्ट सिद्धि न हो जाय तब तक इन सब कार्यों को करना उचित है। यह कहा जाता है कि, दान देना प्रशंसनीय कार्य है, पर और दान इतने प्रशंसनीय नहीं है जितना कि, धर्मदान। इस लिये मित्र, सम्बन्धी, और संगी को यह सम्मति देना चाहिए कि, अमुक-अमुक अवस्थाओं में अमुक-अमुक कार्य प्रशंसनीय है। यज्ञ में विश्वास रखना चाहिए कि इस प्रकार के आचरण से स्वर्ग मिलता है।

(६)

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् इस के अतिरिक्त और किसी प्रकार की कीर्त्ति अथवा यश को पूर्ण नहीं समझता कि उसकी प्रजा वर्त्तमान में अथवा भविष्य में उसके धर्म को माने और उसके अनुसार कार्य करे। इसी एक मात्र यश को देवताओं का प्रियदर्शी सम्राट् चाहता है। प्रियदर्शी सम्राट् के सब उद्योग आगामी जीवन में मिलनेवाले सुखों तथा जीवन मरण के बन्धनों से मुक्त होने के लिए हैं। क्योंकि जीवन-मरण का दुख ही सब से बड़ा दुःख है। लेकिन इस दुःख से छुटकारा पाना छोटे और बड़े दोनों ही के लिए कठिन है। तब तक कठिन है जब तक कि, वे अपने को सब वस्तुओं से अलग करने का दृढ़ उद्योग न करेंगे। खास कर बड़े लोगों के लिए इसका उद्योग करना बड़ा ही कठिन है।

(१०)

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी समाट् कहते हैं :—धर्म की मित्रता के समान मित्रता, धर्म की भिक्षा के समान भिक्षा, धर्म्म के सम्बन्ध के समान सम्बन्ध और धर्म के दान के बराबर दान दुनिया में कोई नहीं है। इसलिए क्रीत दास और साधारण भृत्यों के प्रति सदय व्यवहार, माता पिता की शुश्रूषा, मित्र, परिचित और जाति का सम्मान, ब्राह्मण और श्रमण लोगों को दान, प्राणियों के प्रति अहिंसाभाव, आदि सत्कार्यों को सम्पन्न करते रहना चाहिए। सुतरां पिता, पुत्र, भ्राता, मित्र, परिचित और जाति के लोगों को यह उपदेश देते रहना चाहिए कि, ये कार्य्य सत्कार्य्य हैं—

ये मनुष्य के कर्तव्य हैं। जो लोग हमेशा इस प्रकार का आचरण अथवा धर्म्मदान किया करते हैं वे इस लोक में पूजित एवं परलोक में अनन्य सुख भोगी होते हैं।

(११)

देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् सब धर्म के लोगों का—क्या संन्यासी और क्या गृहस्थ—उचित सत्कार करता है। वह उन्हें भिक्षा और दूसरे प्रकार के दान देकर सन्तुष्ट करता है। लेकिन प्रियदर्शी सम्राट् इस प्रकार के दानों को उनके धर्म चरणों की उन्नति के सम्मुख कुछ भी नहीं समझता। यद्यपि यह सत्य है कि, भिन्न-भिन्न धर्मों में भिन्न-भिन्न प्रकार के पुण्य समझे जाते हैं तथापि उन सबका आधार एक ही है। वह आधार सुशीलता और सम्भाषण में शान्ति होना है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह कभी अपने धर्म की व्यर्थ प्रशंसा और दूसरों के धर्म की निन्दा न करे। किसी भी व्यक्ति का यह कर्तव्य नहीं है कि वह दूसरों के धर्म को बिना कारण हलका समझे। इसके विपरीत सब लोगों का यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि दूसरे धर्मों का भी सब अवसरों पर उचित सत्कार करें। इस प्रकार का यत्न करने से मनुष्य दूसरों की सेवा करते हुए भी अपने धर्म की उन्नति कर सकता है। इसके विरुद्ध कार्य करने से मनुष्य न तो अपनी ही भलाई कर सकता है न दूसरों की ही। इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति अपने धर्म की वृद्धि करने के लिए दूसरे धर्मों की निन्दा करता है वह अपने ही हाथों अपने धर्म पर कुठाराघात करता है। सहयोग ही सबसे उत्तम वस्तु है। इसी के कारण सब लोग एक दूसरे के मतों को सहन करते हुए प्रेम-पूर्वक समाज में रह सकते हैं। देवताओं के प्रियदर्शी की यह इच्छा है कि सब लोगों को इस ढङ्ग की शिक्षा दी जाय जिससे कि, उनके सिद्धान्त शुद्ध हों। सब धर्म के लोगों को यह बतला देना चाहिए कि देवताओं का प्रियदर्शी सम्राट् दान और बाहरी विधानों की अपेक्षा वास्तविक धर्माचरण की उन्नति और सब धर्मों के पारस्परिक प्रेम को अधिक महत्त्व देता है। इसी उद्देश्य से धर्म का प्रबंध करने वाले कर्मचारी, निरीक्षक और अन्यान्य कर्मचारी लोग काम करते हैं। इसी का फल मेरे धर्म की उन्नति और धार्मिक दृष्टि से उसका प्रचार है।

(१२)

कलिंग देश जिसे देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा अशोक ने अभिषेक के आठवें वर्ष में जीता है, बहुत विशाल है। इस विजय में डेढ़ लाख व्यक्ति बन्दी बनाए गये हैं, एक लाख आहत हुए हैं तथा इससे कितने ही अधिक मारे गये हैं। इतनी हत्याओं के उपरान्त कलिङ्ग देश विजय हुआ है। इसी क्षण से देव प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् का धर्मपालन, धर्मानुराग और उसके धर्मानुशास्ति बहुत वृद्धिगत हुई है। कलिंग विजय करने पर देव प्रिय प्रियदर्शी सम्राट को बहुत पश्चाताप हुआ है। क्योंकि, अविजित देश को विजय करते समय हत्या, मृत्यु और बन्दी बनाना अवश्यम्भावी होता है। देवप्रिय प्रियदर्शी सम्राट को ये हत्याएँ अतिशय गुरुतर और कष्टकर मालूम होती हैं। सभी देशों में ब्राह्मण, श्रमण, संन्यासी और गृहस्थ लोग रहते हैं। देश विजय करते समय इन लोगों पर भी कठोरता होती है। उनसे उनके प्रियजनों का वियोग हो जाता है यहाँ तक कि उनकी मृत्यु भी हो जाती है। इसलिए उन्हें घोर क्लेश उठाना पड़ता है। मैं, जो कि, देवताओं का प्रिय हूँ, इस प्रकार की कठोरताओं का अनुभव करता और उन पर पश्चाताप करता हूँ। कोई ऐसा देश नहीं जहाँ पर ब्राह्मण और श्रमण न बसते हों और कोई ऐसा स्थान नहीं जहाँ वे लोग किसी न किसी धर्म को न मानते हों। और कलिंग देश के अन्तर्गत जितने लोग आहत हुए हैं, बन्दी हुए हैं, अथवा जितने लोगों ने प्राण-त्याग किया है, उनके लिए देवताओं के प्रियदर्शी सम्राट् को बहुत अनुताप हो रहा है।

देवताओं का प्रियदर्शी सब प्राणियों की रक्षा, जीवन के सत्कार, शान्ति और दया का उत्सुक हृदय से अभिलाषी है। इसी को देवताओं का प्रियदर्शी वास्तविक धर्म-विजय समझता है। अपने साम्राज्य तथा उसके सीमावर्त्ती प्रदेशों में इसी प्रकार को धर्म-विजय सम्राट् देखना चाहता है। उसके पड़ोसियों में यवनों का राजा एण्टीओकस, एण्टीओकस के उपरान्त चार राजा लोग—टोलेमी, एण्टीगोनस,

मेगेसी और सिकन्दर, दक्षिण में ताम्रपर्णी नदी तक चोल और पाण्डव लोग और विस्मवसी यूनानियों और कम्बोजों में नाभक और नाभपन्ति लोग, भोज और पेतेनिक लोग, आंध्र और पुलिन्द लोग—सर्वत्र देवताओं के प्रियदर्शी की धार्मिक शिक्षाओं के अनुकूल है। जहाँ-जहाँ देवताओं के प्रियदर्शी के दूत भेजे गये, वहाँ वहाँ के लोगों ने उन धार्मिक शिक्षाओं को बड़े ही चाव से सुना जो प्रियदर्शी सम्राट् की ओर से भेजी गई थीं। वे सानन्द उन धार्मिक शिक्षाओं से सहमत हो गये।

इस प्रकार यह विजय चारों ओर फैलाई गई है। मुझे इससे अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ है। वास्तव में धार्मिक विजय में इसी प्रकार का सुख होता है। यह आनन्द यद्यपि अलभ्य है तथापि देवताओं का प्रियदर्शी सम्राट् उस आनन्द को बहुत अधिक समझता है जो कि अगले जन्म में मिलने वाला है। इसी उद्देश्य से यह धार्मिक शिलालेख खुदवाया गया है कि हमारे पुत्र और पौत्र यह न सोचें कि किसी नवीन विजय की आवश्यकता है। वे यह न विचारें कि तलवार से विजय करना "विजय" कहलाने के योग्य है। वे उसमें नाश और कठोरता के अतिरिक्त कुछ भी न देखें। वे धर्म की विजय को छोड़ कर और किसी प्रकार की विजय को सच्ची न समझें। ऐसी विजय का फल इस लोक और परलोक दोनों जगह मिलता है।

(१३)

ये गिरिलिपियाँ देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् ने खुदवाई हैं। ये कुछ तो संक्षेप में, कुछ साधारण विस्तार में और कुछ अधिक विस्तार में हैं। अभी तक ये एक दूसरे से सम्बद्ध नहीं हैं। क्योंकि मेरा राज्य बहुत विशाल है। मैंने बहुत-सी बातें खुदवाई हैं और बहुत सी अभी और खुदवाऊँगा। कुछ बातों में पुनरावृत्ति भी आगई है, क्योंकि मैं उन बातों पर विशेष जोर देना चाहता हूँ। प्रतिलिपि में दोष भी हो सकते हैं कि कोई कोई वाक्य कट गया हो, पर यह सब खोदनेवाजे कारीगर का काम है।

उपरोक्त चौदह सूचनाएं अशोक की प्रसिद्ध धर्मलिपियाँ हैं, जिनके द्वारा उसने अपने साम्राज्य में उपरोक्त महत्व-पूर्ण बातों का प्रचार किया।

उपरोक्त चौदह गिरिलिपियों के अतिरिक्त अशोक ने समय-समय पर अन्य सूचनाएँ भी खुदवाई थीं। उनमें से एक सूचना 'धौली" में दो "जोगड़" में एक खण्ड शिलालिपि सिद्धपुर में, एक सूचना सहसराम में, एक रूपनाथ में, एक बैराट् (दिल्ली के दक्षिण पश्चिम) में और तीन शिलालेख मैसूर में मिले हैं। इनके सिवा गुफाओं के शिलालेख अलग हैं। यद्यपि इन सब शिलालेखों का अनुवाद देना यहाँ पर आवश्यक है, पर इससे ग्रन्थ का कलेवर बहुत बढ़ जाने का डर है, इन सब शिलालेखों को दिया जाय तो एक स्वतंत्र ग्रन्थ बन सकता है। उपरोक्त चौदह धर्मलिपियाँ बहुत आवश्यक थीं, इसलिए उनका अनुवाद ऊपर दे दिया गया है। शेष आठ स्तम्भ लिपियां भी बहुत आवश्यक समझी जाती हैं अतः उनका अनुवाद नीचे दे दिया जाता है।

पहली स्तम्भ लिपि

(१)

देवताओं के प्रियदर्शी सम्राट् कहते हैं—अपने राज्याभिषेक के छब्बीसवें वर्ष में मैंने यह सूचना खुदवाई है :—प्रकान्त धर्मानुराग, विशेष आत्म-परीक्षा, पूर्ण आज्ञापालन, प्रगाढ़ अध्यवसाय, और धर्मभय के बिना मेरे कर्मचारियों को ऐहिक, और पारलौकिक सुख मिलना कठिन है। मेरे उपदेश के कारण उन लोगों में स्वतः धर्म के प्रति आदर और अनुराग बढ़ रहा है। मेरे कर्मचारी गण क्या उच्च श्रेणी के, क्या मध्यम श्रेणी के और क्या निम्न श्रेणी के सभी मेरे उपदेश के अनुसार कार्य करते हैं, और भविष्य में करेंगे। चञ्चल मति लोगों में धर्मानुराग बढ़ाने की व्यवस्था भी वे लोग करते हैं।

उसी प्रकार सीमाप्रान्त के मन्त्रिगण (अन्त महामात्र) भी धर्म-प्रचार करते हैं। इस उपाय के द्वारा मेरे उद्देश्य-धर्मानुसार पालन, धर्मानुसार शासन, धर्मानुसार उन्नति और धर्मानुसार रक्षा—अनायास ही सिद्ध होते हैं।

(२)

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् कहते हैं :—धर्म उत्तम है पर यह पूछा जा सकता है कि धर्म है क्या पदार्थ? धर्म थोड़ी से थोड़ी बुराई और अधिक से अधिक

भलाई करने में है। धर्म दया, दान, सत्य और पवित्र जीवन में है। इसलिए मैंने मनुष्यों, चौपायों, पक्षियों और जल जन्तुओं के निमित्त सब प्रकार के दान दिये हैं। मैंने उनके हित के लिए बहुत से कार्य किये हैं। यहां तक कि उनके पीने के लिए जल का भी प्रबन्ध किया है। मैंने इस उद्देश्य से इस सूचना को खुदवाई है कि जिससे लोग उसके अनुसार चलें और सत्य पथ को ग्रहण करें। यह कार्य बहुत ही उत्तम और प्रशंसनीय है।

(३)

देवताओं के प्रियदर्शी सम्राट् कहते हैं—मनुष्य केवल अपने अच्छे कामों को देखता है और कहता है कि मैंने अमुक उत्तम कार्य किया। पर वह कभी अपने बुरे कामों को नहीं देखता, वह कभी यह नहीं कहता कि मैंने अमुख पाप किया। यद्यपि यह सत्य है कि इस प्रकार की जाँच दुःखप्रद है तथापि यह आवश्यक है कि अपने मन में यह प्रश्न किया जाय और यह निश्चय कर लिया जाय कि दुष्टता, निर्दयता, क्रोध, अभिमान तथा इसी प्रकार के दूसरे दुष्कृत्य पाप हैं। सावधानी के साथ अपना आत्म-निरीक्षण करते रहना आवश्यक है। हृदय के अन्दर हमेशा इस प्रकार की भावनाएँ रखना चाहिए कि मैं कभी दूसरों से ईर्षा न करूँगा अथवा उनकी निन्दा न करूँगा। इस प्रकार का कार्य मेरे लिए इहलोक और परलोक दोनों स्थानों में लाभप्रद होगा।

(४)

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् कहते हैं—अपने राज्याभिषेक के सोलहवें वर्ष में मैंने यह सूचना खुदवाई है। मैंने अपने लाखों प्रजा-गणों के लिए रज्जुकों को नियुक्त किया है। रज्जुकों को दण्ड देने का अधिकर मैंने स्वयं अपने हाथ में रक्खा है जिससे कि वे पूरी दृढ़ता के साथ मेरे राज्य के लोगों की भलाई और उन्नति करें। प्रजा के सुखों और दुखों की वे बराबर जाँच करते रहते हैं और धर्मयुतों के साथ रह कर वे मेरे राज्य के लोगों को शिक्षा देते हैं। जिससे कि, लोग इहलोक में सुख और भविष्यत् में मुक्ति प्राप्त कर सकें। रज्जुक लोग मेरी आज्ञा का पालन करते हैं। पुरुष लोग भी मेरी इच्छा और आज्ञाओं का पालन करते हैं और मेरे उपदेशों का प्रचार करते हैं जिसमें रज्जुक लोग सन्तोषजनक कार्य करें। जिस प्रकार कोई मनुष्य अपने बच्चे को किसी सचेत दाई के हाथ में सौंप कर निश्चिन्त रहता है और सोचता है कि मेरा बच्चा सचेत दाई के पास है, उसी भाँति मैंने भी अपनी प्रजा के लिए रज्जुकों को नियुक्त किया है और जिसमें वे दृढ़ता और रक्षा के साथ बिना किसी चिन्ता के अपना कार्य करें, मैंने उनको अभियुक्त करने और दण्ड देने का अधिकार स्वयं अपने हाथ में रक्खा है। अभियुक्त बनाने और दण्ड देने में समान दृष्टि से काम लेना आवश्यक है। इसलिए आज की तिथि से यह नियम किया जाता है कि जिन कैदियों का न्याय हो जाय और जिन्हें फाँसी की सजा का दण्ड मिले, उन्हें तीन दिन की अवधि दी जाय और उनको सूचना दे दी जाय कि वे तीन दिन तक जीवित रहेंगे न इससे अधिक और न इससे कम। इस बीच में वे परलोक साधन के लिए जितना दान-पुण्य करना चाहें कर लें। मेरी इच्छा है कि कारागार में भी उन्हें भविष्यत् का निश्चय दिलाया जाय और उसके साथ मेरी यह भी दृढ़ इच्छा है कि मैं प्रजा के अन्तर्गत इन्द्रिय दमन और दानशीलता के भाव देखूँ।

(५)

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् कहते हैं—अपने राज्याभिषेक के छब्बीसवें वर्ष के उपरान्त मैंने निम्नलिखित जानवरों के मारे जाने का निषेध किया है—तोता, मैना, अरुण, चक्रवाक, हंस, नन्दिमुख, गैरन, चमगीदड़, अम्बक, पिल्लिक, दद्धि, अनस्थिक मछली, वेदवेयक, गङ्गा नदी के पुप्पुत, मंकुज, कफतसयक, पमनसस, सिमल, संदक ओकपिण्ड, पलसत, श्वेत कपोत, ग्राम कपोत और सब चौपाये जो किसी काम नहीं आते और खाये भी नहीं जाते। बकरी, भेड़ और शूकरी जब गर्भवती हों, अथवा दूध देती हों, या उनका बच्चा छः मास का न हो गया हो, तब तक न मारी जाँय। लोगों के खाने के लिए मुर्गी को खिला पिला कर मोटी न बनाई जाय। जीते हुए जानवरों को न जलाया जाय। निरर्थक ढङ्ग से अथवा हिंसा के प्रयोजन से जङ्गल न जलाए जाँय। एक जानवर को दूसरा जीवित प्राणी न खिलाया जाय। चातुर्मास की प्रत्येक

पूर्णिमा को, पौष मास की पुष्य नक्षत्र युक्त पूर्णिमा को, चतुर्दशी, अमावस्या और प्रतिपदा को, और वर्ष के उपोसथ दिन में मछलियाँ मारी और बेची न जाँय। प्रत्येक अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या अथवा पूर्णिमा को पुष्य और पुनर्वसु नक्षत्रों से युक्त दिनों में, अथवा चातुर्मास के प्रत्येक उपोसथ दिन में कहीं भी साँड़, भैंसा, बकरा, सुअर अथवा किसी भी वध किये जाने वाले जानवर का वध न किया जाय। पुष्य और पुनर्वसु नक्षत्र में चातुर्मास की प्रत्येक पूर्णिमा और अमावस्या को और चातुर्मास के शुक्ल पक्ष में, घोड़े और बैल को दागना न चाहिए। अपने राज्याभिषेक के छब्बीसवें वर्ष में पचीसवीं बार मैंने बन्दियों को कारागार से मुक्त किया है।

(६)

देवप्रिय प्रियदर्शी राजा कहते हैं:—अपने राज्याभिषेक के बारहवें वर्ष में प्रजा के लाभ और सुख के लिए मैंने सर्वप्रथम सूचनाएँ खुदवाईं। मैं यह समझ कर प्रसन्न हूँ कि लोग इससे लाभ उठावेंगे एवं धर्म में अनेक प्रकार से उन्नति करेंगे। इस प्रकार ये सूचनाएँ लोगों के लाभ और सुख का कारण होंगी। मैंने ऐसे उपाय किये हैं कि जिनसे मेरी दूरवर्त्ती और समीपवर्त्ती प्रजा के एवं मेरे सम्बन्धियों के सुख की वृद्धि होगी। इसी कारण मैं स्वयं अपने सब कर्मचारियों पर देखभाल रखता हूँ। सब पन्थ के लोग मुझसे अनेक प्रकार के दान पाते हैं, परन्तु मैं उनके धर्म-परिवर्त्तन को बहुत अधिक आवश्यक समझता हूँ। यह सूचना मैंने अपने राज्याभिषेक के छब्बीसवें वर्ष में खुदवाई है।

(७)

देवताओं के प्रिय राजा प्रियदर्शी कहते हैं—प्राचीन काल में जो राजा लोग राज्य करते थे वे चाहते थे कि मनुष्य धर्म में उन्नति करे, परन्तु उनकी इच्छानुसार मनुष्यों ने धर्म में उन्नति नहीं की।

तब देवताओं के प्रियदर्शी सम्राट् ने कहा—मैंने सोचा कि प्राचीन समय के राजा लोग यह सोचा करते थे कि किस प्रकार प्रजा-गण आशानुरूप धर्म-वृद्धि कर सकते हैं, पर उनकी इच्छानुसार वे धर्मोन्नति लाभ न कर सके। तब किन उपायों से प्रजा-गण को धर्मोन्नति में प्रवृत्त करवाया जाय? किन उपायों से उन्हें धर्म पालन में प्रवृत्त किया जाय? किन उपायों से उनके हृदय में धर्म वृद्धि कर सकता है?

इस विषय में देवप्रिय प्रियदर्शी राजा इस प्रकार कहते हैं—मैंने धर्म-सम्बन्धी उपदेशों को प्रकाशित करने और धार्मिक शिक्षा देने का निश्चय किया है। जिसमें मनुष्य इनको सुन कर सत्य पथ को ग्रहण करें और अपनी उन्नति करें।

मैंने धार्मिक शिक्षाओं को प्रकाशित किया है और धर्मके विषय में अनेक उपदेश दिये हैं जिसमें धर्म की बहुत शीघ्र उन्नति हो। मैंने प्रजा को धर्म-शिक्षा देने के लिए बहुत से कर्मचारी नियुक्त किये हैं, वे सब कर्मचारी अपने-अपने कर्त्तव्य-पालन में दत्तचित्त हैं। हजारों मनुष्यों पर मैंने रज्जुकों को नियुक्त किया है और आज्ञा दी है कि धर्मयुतों को सहायता दें।

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् ने कहा—बड़ी-बड़ी सड़कों पर मैंने न्यग्रोध के वृक्ष लगवाएँ हैं जिसमें कि वे मनुष्यों और पशुओं को छाया दें मैंने आम के बगीचे लगवाए हैं मैंने आधे-आधे कोस पर कुएँ खुदवाए हैं और अनेक स्थानों पर मनुष्यों और पशुओं के लिए धर्मशालाएँ बनवाई हैं। परन्तु मेरे लिए यथार्थ प्रसन्नता की बात यह है कि पहले के राजा लोगों ने अनेक अच्छे कार्यों से लोगों के सुख का प्रबन्ध किया है परन्तु लोगों को धर्म पथ पर चलाने के एक मात्र उद्देश्य से मैं सब कार्य करता हूँ।

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट ने कहा—मैंने धर्म महामात्रों को नियत किया है जिसमें कि वे सब प्रकार के धर्म प्रचार के कार्य में यत्न करें। सब धर्म के लोगों में, सन्यासियों में और गृहस्थों में वे धर्म प्रचार करें। पुजारियों ब्राह्मणों, सन्यासियों और निर्ग्रन्थ लोगों का ध्यान भी मेरे हृदय में रहा है। और उन सब लोगों में मेरे कर्मचारी कार्य कर रहे हैं। महामात्र लोग अपने समाज में कार्य करते हैं और धर्म के प्रबन्धकर्ता लोग प्रायः सब धर्मों में कार्य करते हैं।

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट ने कहा कि ये कर्मचारी तथा दूसरे कार्यकर्ता मेरे हथियार हैं। वे मेरे तथा

रानियों के दिये हुए दान का वितरण करते हैं। मैं यह भी जानता हूँ कि वे यहाँ तथा दूसरे प्रान्तों में मेरे लड़कों के दिये हुए दान को धर्म-कार्यों के साधन तथा धर्म-वृद्धि के कार्यों में बाँटते हैं। इस प्रकार संसार में धर्म-कार्य अधिक होते हैं और धर्म के साधन जैसे दया और दान, सत्य और पवित्रता, उपकार और भलाई की वृद्धि होती है।

देवताओं के प्रिय राजा प्रियदर्शी कहते हैं:—मेरे किये हुए भलाई के अनेक कार्यों को उदाहरण स्वरूप समझकर लोगों ने सम्बन्धियों और गुरू की आज्ञा-पालन में, वृद्धों पर दयाभाव रखने में, ब्राह्मणों और श्रामणों का सत्कार करने में, गरीब, दुखियों, नौकरों तथा गुलामों का आदर करने में उन्नति की है।

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् कहते हैं:—मनुष्यों में धर्म की उन्नति दो प्रकार से हो सकती है। (१) स्थिर नियमों के द्वारा (२) उन लोगों के हृदयों में धार्मिक नियमों को उत्तेजित करने के द्वारा। दोनों प्रकार के मार्गों में कठोर नियमों का रखना उचित नहीं है। केवल हृदय को धर्म की ओर प्रवाहित करने से ही लोगों में धार्मिक भावों का विकास होता है। यद्यपि दृढ़ नियमों के द्वारा पशुवधनिषेध आदि उत्तम कार्यों के प्रचारित करने से भी धर्मवृद्धि हो सकती है, पर धर्म की वास्तविक उन्नति तो जनता के हृदयों के धार्मिक भावनाओं का सञ्चार करने से ही हो सकती है। इसी उद्देश्य से मैंने यह लेख प्रकाशित किया है कि वह मेरे पुत्रों और पौत्रों के समय तक स्थिर रहे और तब तक स्थिर रहे जब तक कि गगन-मण्डल में सूर्य और चन्द्रमा उदय और अस्त होते रहें। क्योंकि मेरी इन शिक्षाओं पर चलने से मनुष्य दोनों लोकों में सुख प्राप्त करता है। मैंने यह सूचना अपने राज्याभिषेक के सत्ताइसवें वर्ष में खुदवाई है। देवताओं के प्रियदर्शी सम्राट् कहते हैं जहाँ कहीं यह सूचना स्तम्भों पर है, वहाँ पर चिरकाल तक स्थिर रहे।

अशफ़ाउल्ला

भारतीय क्रान्तिकारी दल के काकोरी षड्यन्त्र केस के एक अभियुक्त जिन्हें १६ दिसम्बर १६२७ को फैजाबाद जेल में फांसी की सजा दी गई।

अशोक मेहता

कांग्रेस में समाजवादी विचारधारा के एक प्रसिद्ध प्रवर्त्तक और वर्त्तमान में प्रजा समाजवादी दल के अध्यक्ष। सन् १६३४ में कांग्रेस संगठन के अन्तर्गत भी अशोक मेहता, श्री जयप्रकाश नारायण, श्री अच्युत् पटवर्धन इत्यादि लोगों के प्रयत्नों से कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना हुई थी। यह दल कांग्रेस के अन्तर्गत होते हुए भी गाँधीवादी नहीं था और अवसर पड़ने पर हिंसात्मक उपायों का अवलंबन करने का विरोधी भी नहीं था। सन् १६४२ की जन-क्रान्ति में इस दल के लोगों ने बहुत कुछ काम किया।

अशोक मेहता एक उच्च श्रेणी के विचारक, राजनीतिज्ञ और अर्थ शास्त्री हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् कांग्रेस की समाजवादी नीति का यथोचित विकास होते न देखकर इन्होंने आचार्य कृपालानी की अध्यक्षता में एक प्रजासमाजवादी दल का संगठन किया। जब आचार्य कृपलानी कुछ विशेष कारणों से इस दल से अलग हो गए तब इस दल की बागडोर अशोक मेहता ने सँभाली और अब भी वे उसका संचालन कर रहे हैं।

अस्त्राखानी राजवंश

मध्यएशिया के जिस प्रदेश को आजकल उजवेकिस्तान कहा जाता है उसमें और उसके आसपास के विशाल क्षेत्र पर तथा आधुनिक रूस के बहुत बड़े भाग पर सुनहरी कबीले का विशाल साम्राज्य तेरहवीं शताब्दी से पन्द्रहवीं शताब्दी तक बहुत वैभव पूर्ण स्थिति में रहा। इस सुनहले कबीले में "उजवेक" नामक एक अत्यन्त प्रतापी खान हुआ। उसी के नाम पर उसके साम्राज्य का एक बड़ा भाग उजवेकिस्तान कहलाता है।

सोलहवीं शताब्दी के अन्त तक सुनहरी कबीले का यह विशाल साम्राज्य क्षीण होते-होते एकदम समाप्त हो गया और इसकी राजधानी सरायबरका भी ध्वस्त हो गई।

इन्हीं दिनों सुनहरी कबीले की एक शाखा की राजधानी वोल्गा नदी और कस्पियन सागर के संगम के नजदीक "अस्त्राखान" नामक शहर में थी। इस राजवंश में

"बाकी मुहम्मद" नामक एक बहादुर प्रतापी सरदार हुआ। इसने सन् १५६६ से १६०५ तक शासन किया इसी सरदार ने "अस्त्राखानी" राजवंश की नींव डाली। बाकी मुहम्मद ने हिसार के पहाड़ी इलाके को जीत कर अपने राज्य को बलख तक बढ़ाकर भारतीय मुगल साम्राज्य की सीमा से अपनी सीमा को मिला दी। खुरासान और अन्तर्वेद पहले ही इसके राज्य में थे।

अस्त्राखानी राजवंश में सैय्यद इमामकुली बड़ा न्याय प्रिय, कलाप्रिय और साहित्य-प्रेमी शासक हुआ। इसने सन् १६०८ से १६४२ तक शासन कियां। इमाम-कुली का दीर्घकालीन शासन अन्तर्वेद प्रान्त की उन्नति और स्मृद्धि का समय था। उसकी राजधानी बुखारा इस समय धन, जन और कला के सौन्दर्य्य से फल-फूल रही थी इमाम कुली का पड़ोसी ईरान का सुप्रसिद्ध सम्राट् उस समय शाह अब्बास था जो अत्यन्त प्रतापी शासक होने पर भी अस्त्राखानियों से हार चुका था।

इमामकुली ने अपने इकलौते पुत्र इस्कन्दर को ताशकन्द का गवर्नर बनाकर भेजा मगर ताशकन्द वालों ने बगावत करके उसको मार डाला। अपने इकलौते पुत्र की हत्या से इमाम कुली को महान् दुःख और क्रोध हुआ उसने अपने भाई बलख के गवर्नर नादिर को बुलाकर भारी सेना के साथ ताशकन्द पर हमला कर दिया और क्रोध में आग बबूला होकर प्रतिज्ञा की कि जब तक ताश-कन्दियों का खून मेरे घोड़े की रिकाब को न छूलेगा तबतक कत्लेआम बन्द न करूँगा। अत्यन्त निर्दयतापूर्वक ताश-कन्द वालों का कत्ले आम किया गया अन्त में एक हौज में मानव रक्त भरवाकर इमाम कुली अपने घोड़े समेत उस हौज में उतरा और जब वह रक्त उसके रिकाब तक पहुँचा तब कत्ले आम बन्द किया गया। इमाम कुली साहित्य और कविता का बड़ा प्रेमी था उसके दरबार में नखली और "तुराबी" नामक दो प्रसिद्ध कवि थे।

इमाम कुली के बाद उसका भाई नादिर अस्त्राखानी राज्य का शासक हुआ। यह मुगल सम्राट् शाहजहाँ का समकालीन था। इसने सन् १६४२ से १६४७ तक शासन किया। इसके समय में शाहजहाँ की फौज ने इसके राज्य के बलख तथा वक्षु नदी और हिन्दू कोट के बीच के सारे प्रदेश पर अधिकार कर लिया था।

नादिर मुहम्मद के पश्चात् अस्त्राखानी राजवंश में सैय्यद अब्दुल अजीज (१६४७-१६८०) सैय्यद सुभान कुली (१६८०-१७०२) उबैदुल्ला अबुल फैज (१७१७-१७४७) और सैय्यद उबैदुल्ला द्वितीय शासक हुए।

सैय्यद अबुल फैज ने दिल्ली के प्रसिद्ध लुटेरे नादिर-शाह के साथ अपनी लड़की की शादी की थी।

इसके बाद अफगान सरदारों ने शक्तिशाली होकर अस्त्राखानी राजवंश का खातमा कर दिया। अफगानी राजवंश में अहमदशाह दुर्रानी का नाम भारतवर्ष में बहुत मशहूर है जिसने पानीपत में मराठों की विशाल फौज को हराया था।

अब्दुल अजीज सैय्यद

अस्त्राखानी राजवंश का एक शासक जिसने सन् १६४७ से १६८० तक ख्वारेज्म अन्तर्वेद इत्यादि प्रान्तों पर शासन किया।

असीरियन संस्कृति (असुर-संस्कृति)

एशिया की एक प्राचीनतम संस्कृति जिसका विकास आर्य संस्कृति के साथ-साथ हुआ था और अनुमानतः जिसे भारत के पौराणिक साहित्य में "असुर संस्कृति" के नाम से सम्बोधित किया गया है।

मध्यएशिया के अन्तर्गत अत्यन्त प्राचीनकाल में अशरया असीरिया का साम्राज्य बहुत विशाल क्षेत्र में अर्थात् मिस्र से ईरान तक फैला हुआ था और एक विशेष और सुसंगठित संस्कृति का यहाँ पर उदय हुआ था।

ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि प्राचीन असी-रियन संस्कृति का प्राचीन आर्यसंस्कृति के साथ काफी संघर्ष हुआ था। भारतीय पुराणों के अन्तर्गत जो देवासुर संग्राम का प्रसिद्ध विवेचन आता है उसके लिये कई विद्वानों का यह मत है कि यह युद्ध आर्यों और असीरियनों के मध्य में होना चाहिये।

असीरियन संस्कृति को भारतीय पौराणिक परम्परा में असुर संस्कृति के नाम से उद्घोषित किया गया है। इस असुर संस्कृति का मुख्य आचार्य शुक्राचार्य को माना गया

है। ऐसा मालूम होता है कि वैज्ञानिक शोध-खोज की परम्परा में असुर लोग आर्य लोगों से बहुत आगे बढ़े हुए थे और इन्हीं वैज्ञानिक अनुसन्धानों के बल पर उन्होंने कई बार आर्य लोगों को पराजित किया था। शुक्राचार्य के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वे मृतसंजीवनी विद्या के जानकार थे। इसलिये संग्राम में जितने असुर मारे जाते थे उन्हें वे अपनी विद्या के प्रभाव से पुनर्जीवित कर लेते थे। इस प्रकार असुरों की शक्ति का ह्रास नहीं होने पाता था। मृत संजीवनी विद्या आर्यों के पास न होने के कारण आर्य लोग हमेशा घाटे में रहते थे।

तब आर्य लोगों ने मन्त्रणा करके बृहस्पति के पुत्र कच को, जो कि एक तेजस्वी और प्रतिभाशाली युवक था। मृत संजीवनी विद्या का ज्ञान प्राप्त करने के लिये शुक्राचार्य की सेवा में भेजा। कच ने शुक्राचार्य की सेवा में पहुँच कर उनका शिष्य बनने की प्रार्थना की। शुक्राचार्य ने उस युवक को तेजस्वी और होनहार समझ कर अपना शिष्य बना लिया।

यह बात असुरों के राजा वृष पर्वा को बहुत बुरी लगी। उसको अनुभव हुआ कि अगर शुक्राचार्य ने मृत संजीवनी विद्या आर्य युवक कच को प्रदान कर दी तो असुर लोगों की स्थिति बहुत कमजोर हो जायगी। उसने शुक्राचार्य से प्रार्थना की कि यह युवक आर्य लोगों का भेजा हुआ आपके पास मृत संजीवनी विद्या को ग्रहण करने आया है। आप इसे यह विद्या कदापि न दें नहीं तो असुर जाति का बड़ा अहित होगा।

शुक्राचार्य ने जवाब में कहा कि विद्या पर देश, काल और जाति का कोई बन्धन नहीं है। जो योग्य और पात्र होता है उसको विद्या दी जाती है। कच एक योग्य और पात्र है। इसीलिये मैंने उसको अपना शिष्य बनाया है।

इस पर वृषपर्वा ने दूसरे कौशल से काम लिया। उसने चाहा कि शुक्राचार्य की कन्या देवयानी, जो उस समय अत्यन्त सुन्दरी और तरुण थी, के प्रेम में यदि कच फँस जाय और वह असुर संस्कृति को ग्रहण कर ले तो यह विपत्ति दूर हो सकती है और उसने चतुराई पूर्वक ऐसी व्यवस्था की कि कच और देवयानी को अधिक से अधिक एकान्त में रहने का मौका मिले। इस प्रयोग से देवयानी कच पर आसक्त भी हो गई। मगर कच हमेशा उसे गुरू-पुत्री समझ कर उसके साथ बहन की तरह व्यवहार करता रहा।

इस घटना से यह अनुमान भी किया जा सकता है कि उस समय असुर संस्कृति में यौनसदाचार या सेक्स की मर्यादाएँ उतनी कठोर नहीं थी जितनी आर्य-संस्कृति में थीं।

जब वृषपर्वा को अपनी इस चाल में सफलता नहीं हुई तो उसने अपने गुप्तचरों के द्वारा कच को मरवा डाला और उसकी राख को मदिरा में मिला कर शुक्राचार्य को पिला दिया। जब देवयानी को यह पता चला तो कच के लिये वह रुदन करने लगी। जब शुक्राचार्य ने अपनी लड़की का यह हाल देखा और अपने दिव्य ज्ञान से यह देखा कि कच का शरीर वृषपर्वा के षड़यन्त्र से उन्हीं के पेट में पहुँच गया है तो वे बड़े चिन्तित हुए। तब उन्होंने अपने पेट में कच के शरीर को जीवित करके वहीं पर उसे संजीवनी विद्या दी और कहा कि अब तू मेरा पेट फाड़ कर बाहर निकल। पेट फाड़ने से मेरी मृत्यु हो जावेगी। तब तू अपनी संजीवनी विद्या से मुझे जीवित कर लेना। वैसा ही हुआ। कच ने शुक्राचार्य के पेट से निकल कर फिर उनको जीवित कर लिया। शुक्राचार्य क्रुद्ध होकर वृषपर्वा के राज्य को छोड़ कर काम्भोज में आ गये जो आर्य देश और असुर देश की सीमा पर बसा हुआ था। उस समय वहाँ पर ययाति नामक राजा राज्य करता था। उसी के साथ देवयानी का विवाह हुआ।

उपरोक्त पौराणिक कथाएँ कई प्रकार की अतिशयोक्तियों और अलंकारों से भरी होने के कारण इनमें से वास्तविक तथ्यों को एकत्रित करना कठिन है। फिर भी इतना तथ्य जरूर निकाला जा सकता है कि भारतीय पुराणों में जिसे असुर संस्कृति कहा गया है वह अशर संस्कृति का ही अपभ्रंश था। अशर लोग विज्ञान और चिकित्सा सम्बन्धी विद्या में आर्य लोगों से आगे बढ़े हुए थे। मगर भेदनीति में आर्य लोग उनसे आगे थे और उन लोगों पर आर्यों ने जो भी विजय प्राप्त की वह भेद नीति के बल पर ही की।

फिर इन दोनों संस्कृतियों का समन्वय हुआ जिसमें बहुत से तत्व आर्यों ने असुरों से प्राप्त किये और बहुत से असुरों आर्यों ने से प्राप्त किये।

राजनीति के क्षेत्र में भी असुर लोग बहुत आगे बढ़े हुए थे। उनके प्रधान पुरुष शुक्राचार्य राजनीति के महान पण्डित थे। हजारों बरस बीत जाने पर भी उनकी लिखी हुई "शुक्र राजनीति" नामक पुस्तक आज भी प्रमाण रूप मानी जाती है और राजनीति के विद्यार्थियों के लिये भारतीय राजनीति का दर्शन कराने के लिये वह प्रकाश का काम देती है।

अश्क

हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार उपेन्द्रनाथ अश्क !

श्री उपेन्द्रनाथ अश्क उर्दू और हिन्दी के कथाकारों और नाटककारों में पहली पंक्ति के कलाकार हैं। कहानी, नाटक, उपन्यास, कविता, आलोचना, संस्मरण, हास्य, व्यंग अर्थात् साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में उन्होंने सफलता पूर्वक लिखा है और पूरी लगन, परिश्रम और योग्यता से अपनी कृतियों को बनाया और संवारा है। उपन्यास के क्षेत्र में उन्होंने "गिरती दीवार" नामक उपन्यास लिखकर हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में एक नवीन मार्ग का निर्देश किया है।

अश्क ने मध्यम वर्ग के और निचले दर्जे के लोगों की समस्याओं को समझने, परखने और उनका हमदर्दी के साथ चित्रण करने में काफी दक्षता प्राप्त की है। पेंचदार लेखन शैली में वे विश्वास नहीं करते बल्कि सीधी, सरल और बहती हुई भाषा ही उनकी कलम से प्रवाहित होती है।

असंगाचार्य

बौद्ध धर्म की महायान शाखा का धुरन्धर विद्वान असंगाचार्य जिसका समय ३७५ ई० से ४५६ ई० के बीच किसी समय है ! आचार्य असंग का जन्म पुरुषपुर (पेशावर) में एक ब्राह्मण कुल में हुआ था। इसका गौत्र कोशिक था। बौद्ध साहित्य में इसका बहुत ऊँचा स्थान है। आचार्य असंग और इसके भाई वसुबन्धु पहिले बौद्ध धर्म की सर्वास्तिवाद शाखा के अनुयायी थे किन्तु उनका विशेष झुकाव सौत्रान्तिक मतवाद की ओर था। पीछे से आचार्य असंग ने महायान धर्म को स्वीकार कर लिया। आचार्य असंग आचार्य मैत्रेय नाथ का शिष्य था। मैत्रेय नाथ योगाचार मत के प्रणेता था।

आचार्य असंग महायान सम्प्रदाय में विज्ञानवाद का प्रथम आचार्य हैं। उसके गुरु मैत्रेय नाथ इस सिद्धान्त के प्रतिष्ठाता थे। "महायान सूत्रालंकार" इन गुरु-शिष्यों की सम्मिलित कृति है। मूल भाग मैत्रेय नाथ का और टीका भाग आर्य असंग का कहा जाता है। इसलिये इसमें सन्देह नहीं कि विज्ञानवाद का सबसे प्रधान ग्रन्थ महायान सूत्रालंकार है। असंग का दर्शन समन्वयात्मक है। इसमें सौत्रान्तिकों के क्षणिक वाद और सर्वास्तिवादियों के पुद्गल-नैरात्म्य और नागार्जुन की शून्यता का प्रतिपादन है किन्तु असंग इस समन्वय को पारमार्थिक विज्ञानवाद की परिधि में सम्पादित करना चाहता है। वस्तुतः असंग का दर्शन विज्ञान वादी अद्वयवाद है जिसमें द्रव्य का अभाव है। कहना न होगा कि यह उसका एक नवीन सिद्धान्त है !

अर्ल आफ मार (Eral of Mar)

स्कॉटलैण्ड के उत्तरी भाग का शासक अर्ल आफ मार। जिसने इंगलैण्ड की रानी एन की मृत्यु के पश्चात् इङ्गलैण्ड की गद्दी के उत्तराधिकारी हनोवर के जार्ज के विरुद्ध जेम्स एडवर्ड के पक्ष में जेकोबाइट लोगों की बगावत का नेतृत्व किया।

सन् १७१४ में जब इंग्लैण्ड की रानी का देहान्त हो गया तब पार्लमेण्ट के व्हिग दल ने हनोवर के जार्ज को इंग्लैण्ड की राजगद्दी का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया।

मगर स्काटलैण्ड के लोग इंग्लैण्ड की राजगद्दी के लिए स्टुअर्ट घराने के अधिकार को मानते थे। इसलिये इन लोगों ने स्टुअर्ट घराने के जेम्स एडवर्ड को गद्दी पर बिठाने के लिये षडयन्त्र करना प्रारम्भ किया। फ्रान्स के राजा चौदहवें लुई ने उनकी सहायता की। इंग्लैण्ड के

टोरी दल का मन्त्री बोलिंग ब्रुक भी फ्रान्स में जाकर इस षड़यन्त्र में शामिल हो गया।

अन्त में स्कॉटलैण्ड के उत्तरीभाग में अर्ल आफ मार के नेतृत्व में और इंग्लैण्ड के उत्तरी भाग में लॉर्ड डरवेन्ट वाटर और फार्स्टर के नेतृत्व में जेकोबाइट लोगों ने बगावत कर दी। जेकोबाइट लोगों को यह आशा थी कि फ्रान्स से इस मामले में सहायता मिलेगी मगर उन्हीं दिनों चौदहवें लुई का देहान्त हो जाने से फ्रान्स से सहायता न मिल सकी। जेकोबाइट लोगों की बगावत दबा दी गई। अर्ल आफ मार जेम्स एडवर्ड के साथ वापस फ्रान्स चला गया और जिन लोगों ने बगावत में भाग लिया था उन्हें फाँसी दे दी गई।

अर्शक (Arsakes)

मध्य एशिया में पार्थव साम्राज्य का संस्थापक।

खुरासान और कैस्पियन सागर का दक्षिण पूर्ववर्त्ती प्रदेश पार्थव कहलाता है। यह एक सूखा और बन्जर प्रदेश है। ईसा के पूर्व तीसरी शताब्दी में इस पर सेल्यूकस के उत्तराधिकारी ग्रीक लोगों का शासन था। मगर ई० सन से २४८ वर्ष पूर्व में इस प्रदेश के लोगों ने अपने नेता अर्शक के नेतृत्व में ग्रीक शासन के विरुद्ध बगावत का झण्डा खड़ा कर दिया और पार्थव प्रदेश को उस साम्राज्य से अलग कर एक नये पार्थव साम्राज्य की नींव डाली।

अस्किलस

ग्रीक साहित्य में ट्रेजिडी नाटकों का प्रथम प्रवर्त्तक। इस नाटककार ने अपनी सूझ बूझ और लेखन सामर्थ्य से तत्कालीन ग्रीक साहित्य को ट्रेजिडी की अद्भुत देन दी। उसने प्राचीन पौराणिक कथाओं और वीरगाथाओं को नया रूप देकर नाटकों की रचना की। अस्किलस ने अपने नाटकों में कोरस के प्राधान्य को कम कर नाटकीय प्रसंगों का विशेष विकास किया। उस समय के नाटकों को ट्रिलोजी कहते थे जिनमें तीन-तीन प्लाटों का एक साथ उपयोग किया जाता था। बाद में "ट्रिलोजी" एक ही प्लॉट का उपयोग करने लगे। अस्किलस ने अपने पात्रों को वीर काव्यों की सरलता दी। उनके कार्य्य अधिकतर एक ही भावावेग से संचालित होते हैं। इसका समय ईस्वी पूर्व ५२५ से ४५५।

असहयोग-क्रान्ति

समग्र मानवीय इतिहास में, राजनैतिक स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए अहिंसा के मूलभूत आदर्श पर सञ्चालित की जाने वाली सर्वप्रथम क्रान्ति, जिसका प्रारंभ सन् १९१९ में हुआ और जिसका सफल अन्त सन् १९४७ में हो गया। इसके पूर्व दक्षिण अफ्रीका में एक छोटी सत्याग्रह की लड़ाई महात्मा गांधी लड़ चुके थे।

मानवीय इतिहास में शोषित और प्रताड़ित मानव-समाज के द्वारा अत्याचारी और निरंकुश शासकों के विरुद्ध अनेक क्रान्तियाँ हुई हैं, मगर ये सब क्रान्तियाँ तलवार और हिंसा के बल पर हुई हैं।

एक निरंकुश और अपरिमित सत्ताधारी साम्राज्य के खिलाफ बिना शस्त्र और बिना हिंसा के क्रान्ति को उत्पन्न करने का पहला उदाहरण भारतवर्ष ने महात्मा गान्धी के नेतृत्व में असहयोग-क्रान्ति के द्वारा मानवीय इतिहास में पेश किया है। अहिंसा का उपयोग और उसकी उपयोगिता भारत के इतिहास में कोई नई चीज नहीं है। भगवान महावीर और भगवान बुद्ध के समान शान्ति के महान साधकों ने आज से २५ सौ वर्ष पहले समग्र मानव-जाति को अहिंसा और सत्य का व्यापक सन्देश दिया था। मगर उनकी अहिंसा का यह सन्देश मनुष्य की साधना और उसकी आत्मशुद्धि के लिये दिया गया था। किसी भी राजनैतिक लक्ष्य की प्राप्ति के लिये अहिंसा के प्रयोग करने का न तो उन्होंने विचार किया था और न उनका कोई इस प्रकार का उद्देश्य था।

उनकी अहिंसा व्यक्तिगत रूप से प्राणिमात्र का विकास और आत्मशुद्धि के मकसद को प्राप्त करने के लिए उद्बोधित की गई थी। लेकिन महात्मा गान्धी ने इस अहिंसा को सामूहिक रूप से संगठित करके संसार की सबसे बड़ी साम्राज्यवादी ताकत के खिलाफ क्रान्ति का बिगुल बजा कर सारे संसार को चकित कर दिया।

स्वयं भारतवर्ष के बड़े-बड़े नेता भी इस नवीन प्रयोग को देखकर आश्चर्यचकित रहे। जो बात दुनियाँ में आज तक कहीं नहीं हुई थी, उसकी सफलता के सम्बन्ध में सन्देह का होना स्वाभाविक ही था। वे आँखें मल-मल कर बार-बार देखते थे कि क्या हो रहा है? मगर जिस प्रकार एक जादूगर अपने अनुयायियों पर मोहिनी डाल कर उन्हें बरबस अपनी ओर खींचे लिये जाता है, उसी प्रकार महात्मा गान्धी की दृढ़ संकल्प शक्ति के पीछे-पीछे यहाँ के समस्त नेतागण और सारी जनता मंत्रमुग्ध की तरह मौत का कफन अपने सर पर लपेट कर चली जा रही थी।

संसार के महान् राजनीतिज्ञ चकित थे, ब्रिटिश साम्राज्यवाद चकित था, भारत के नेता चकित थे, मानव-जाति का इतिहास चकित था, मगर इन सबकी कोई चिन्ता न करके साबरमती का वह पतला-दुबला सन्त अपने पूर्ण आत्मविश्वास और अपनी महान् संकल्प शक्ति के साथ आगे बढ़ रहा था। अहिंसा के ऊपर उसका अटल विश्वास था। अहिंसा को वह राजनीतिक साधन के रूप में नहीं, मगर मानवीय धर्म की तरह उपयोग करना चाहता था।

मगर हिन्दुस्तान की जनता और अधिकांश नेताओं ने इस अहिंसा को मानवीय धर्म के रूप में नहीं, प्रत्युत एक राजनैतिक साधन के रूप में अपनाया जिसके परिणाम-स्वरूप समय-समय पर जो विस्फोट हुए उनसे इस सन्त को बड़ा कष्ट पहुँचा और ऐसे अवसर पर बिना किसी हीले-हवाले के अपनी पराजय स्वीकार कर आन्दोलन को वापस खींच लिया अथवा लंबे-लंबे अनशन करके सामूहिक रूप से की गई गलतियों का प्रायश्चित किया।

इस अहिंसात्मक क्रान्ति के बीच, इसकी पूर्ति के लिए उन्होंने अनशन के सिद्धान्तों का नवीनीकरण किया। अपनी आत्मशुद्धि के लिए अनशन करने की प्रथा भारतवर्ष में नवीन नहीं है मगर महात्मा गान्धी ने जिस रूप से इसका प्रयोग किया, वह प्रयोग बिलकुल नवीन था। और इस प्रयोग के द्वारा उन्होंने कई बार अनशन करके बड़े-बड़े मसलों पर विजय पाई पर साथ ही उन्होंने बार-बार इस बात की चेतावनी दी कि हर व्यक्ति को हर मसले के लिये अनशन का प्रयोग करना बड़ी ही खतरनाक चीज है। अनशन का प्रयोग केवल आत्मशुद्धि के लिए ही होना चाहिये।

क्रान्ति का प्रारम्भ

प्रथम महायुद्ध समाप्त हुआ। प्रथम महायुद्ध में भारतीय सेनाओं ने अपना जो बहादुरी पूर्ण भाग अदा किया था, उसकी अंग्रेज सेना-नायकों ने भी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। इस युद्ध के समय में महात्मा गान्धी ने खुले रूप से हिन्दुस्तान की जनता को ब्रिटिश साम्राज्य की मदद करने के लिये प्रेरित किया था। ब्रिटिश साम्राज्य ने भी विजय के उपरान्त भारतीय जनता को स्वशासन देने के सम्बन्ध में बड़े-बड़े वादे किये थे।

ऐसी हालत में यह स्वाभाविक था कि भारतीय जनता और नेता विजय के उपरांत ब्रिटिश सरकार के द्वारा किसी मनोवांछित तोहफे की प्रतीक्षा करें, मगर सन् १६१६ में वह तोहफा ब्रिटिश साम्राज्य ने 'रौलेट एक्ट' के रूप में भेजा। यह बिल भारतीय स्वाधीनता के ऊपर एक बहुत बड़ा कुठाराघात था।

इस बिल में जो धाराएँ थीं, उनके अनुसार पुलिस और सरकार को राजकीय अपराधियों के विरुद्ध अपरिमित अधिकार दिये गये थे जिसके अनुसार किसी भी व्यक्ति को, सन्देह होने पर वह गिरफ्तार कर सकती थी। बिना मुकद्दमा चलाये सीधे जेल में डाल सकती थी या उस पर गुप्त अदालत में मुकद्दमा चला सकती थी।

इस बिल के विरोध में भारतवर्ष का प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक दल और प्रत्येक समुदाय अपनी आवाजों को बुलन्द करने लगा। महात्मा गान्धी उस समय बीमार थे, लेकिन उस हालत में भी इस बिल के काले स्वरूप को देखकर वे विचलित हो गये।

'अपने नियम के अनुसार उन्होंने तत्कालीन वायसराय लार्ड चेम्सफोर्ड को एक बड़ी शिष्टतापूर्ण अपील और चेतावनी भेजी, पर जब उन्होंने देखा कि सारे भारत के द्वारा एक स्वर से इस बिल का विरोध होने पर भी ब्रिटिश सरकार उसे कानून का रूप देने को तुली हुई है तो उन्होंने एक सत्याग्रह-सभा का संगठन किया और उसमें कुछ चुने

हुए लोगों को उसमें भरती किया जो कानून को भंग करके जेल जाने के लिये तैयार थे। इसके बाद उन्होंने आदेश दिया कि जिस दिन यह 'रौलेट बिल' कानून बन जाय उससे आगे के पहले रविवार को सारे भारत में शोक-दिवस मनाया जाय, हड़तालें की जायँ और सर्वत्र सार्वजनिक सभाएँ की जायँ।

६ अप्रैल सन् १९१९ के दिन सारे देश में हर नगर और गाँव में सत्याग्रह दिवस मनाया गया।

इस दिन की सफलता के सम्बन्ध में पं० जवाहरलाल लिखते हैं :—

"अपने ढंग का यह पहला ही अखिल भारतीय प्रदर्शन था जो अद्भुत रूप से प्रभावशाली रहा और जिसमें हर तरह के लोगों और जातियों ने भाग लिया। सारा भारतवर्ष और संसार इसकी सफलता पर आश्चर्य-चकित हो गया। हम शहरों के कुछ गिने-चुने लोगों के पास पहुंच पाते थे, पर हवा में एक नया उत्साह भरा हुआ था और किसी तरह यह सन्देश हमारे देश के दूर से-दूर तक के गावों में जा पहुँचा। पहली बार देहात के लोगों और शहरी मजदूरों ने सार्वजनिक पैमाने पर इस प्रदर्शन में भाग लिया।"

पंजाब का हत्याकाण्ड

छः अप्रैल के पश्चात् सारे देश में घटनाओं का क्रम तेजी से बढ़ने लगा। १० अप्रैल को अमृतसर में डा० किचलू और डा० सत्यपाल की गिरफ्तारी पर लोगों ने भारी प्रदर्शन किया। इस प्रदर्शन पर पुलिस ने गोली चला दी जिसमें कई व्यक्ति हताहत हुए, इससे उत्तेजित हो भीड़ ने बैंकों में बैठे हुए पाँच-छः निर्दोष अंग्रेजों को मारकर बैंकों में आग लगा दी। इस पर पंजाब में फौजी शासन लागू कर दिया गया। जिसके परिणाम स्वरूप पंजाब का शेष भारत से एक तरह सम्बन्ध विच्छेद हो गया।

१३ अप्रैल को अमृतसर के जलियान वाला बाग में एक सभा हो रही थी। हजारों आदमी उसमें जमा थे। उसमें से निकलने का एक ही रास्ता था। अंग्रेज सेनाधिकारी जनरल डायर ने बिना किसी प्रकार की सूचना दिये उसे घेर लिया और घिरी हुई भीड़ पर लगातार गोली वर्षा करने का आदेश दिया। इस निहत्थी भीड़ पर सेना ने तब तक गोलियाँ चलाईं जब तक उनकी गोलियाँ समाप्त नहीं हो गई। हजारों व्यक्ति, स्त्री-पुरुष और बच्चे इस गोली वर्षा में मारे गये, घायल हुए। इसके सिवाय पंजाब में अनेक स्थानों पर और भी अनेक शर्मनाक घटनाएँ अँग्रेजी शासन के द्वारा हुईं।

इसी समय से अमृतसर, जलियान वाला और पंजाब यहाँ के राष्ट्रीय इतिहास के प्रतीक बन गये और ६ अप्रैल से १३ अप्रैल तक का सप्ताह राष्ट्रीय सप्ताह बन गया। इसके अगले साल कांग्रेस ने अपनी लड़ाई प्रारम्भ कर दी, गांधी जी का अहिंसात्मक असहयोग का कार्य-क्रम स्वीकार कर लिया गया। इस संघर्ष की मूलभूत बुनियाद अहिंसा पर रक्खी गई तथा विदेशी कपड़ों का बहिष्कार, स्कूल, कालेज और विधान सभाओं का बहिष्कार इत्यादि प्रोग्राम इसमें रक्खे गये।

इस सारे कार्य्य-क्रम के पीछे गाँधी जी का विशिष्ट व्यक्तित्व ही आधार शिला का काम दे रहा था, उनका आत्म-विश्वास अडिग और दुर्दमनीय था। इस महान् आत्म-विश्वास ने अगर देश की कल्पना शक्ति को जगा दिया और उसके अन्तःकरण में आशा का प्रकाश भर दिया तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं।

इसी समय दिसम्बर १९२१ में प्रिन्स ऑफ वेल्स का भारत में आगमन हुआ और कांग्रेस ने उनका बहिष्कार किया। इस पर देश में हजारों गिरफ्तारियाँ हुईं, गांधीजी को छोड़कर देश के सभी बड़े-बड़े नेता पकड़ कर जेलों में ठूँस दिये गये। अहमदाबाद कांग्रेस के मनोनीत अध्यक्ष सी० आर० दास भी जेल भेज दिये गये और अत्यन्त उत्तेजनात्मक स्थिति के बीच (अहमदाबाद की कांग्रेस) हुई।

अहमदाबाद कांग्रेस

कांग्रेस के अब तक के सारे इतिहास में अहमदाबाद कांग्रेस पहली कांग्रेस थी जिसका दृश्य अद्भुत, निराला और जनता के जोश से सराबोर था। जनता के सभी नेता जेलों में बन्द थे, पंजाब के हत्याकाण्ड की भीषण दुर्घटना हो चुकी थी, सरकार का दमन-चक्र तेजी से चल रहा था

मगर ये सब घटनाएँ जनता के जोश और उत्साह को घटाने के बजाय तेजी से बढ़ा रही थीं। अहमदाबाद कांग्रेस में जन-समाज के अन्तर्गत भावनापूर्ण उत्साह और एकनिष्ठ लगन का जो दृश्य देखने को मिला वह अभूतपूर्व था। सी० आर० दास के बदले हकीम अजमल खां अध्यक्ष बनाए गये।

चौरी-चौरा कांड

अहमदाबाद कांग्रेस के पश्चात् तुरन्त ही गोरखपुर जिले के चौरी चौरा नामक स्थान पर एक भयङ्कर दुर्घटना हो गई। किसानों की एक भीड़ और पुलिस के बीच में संघर्ष हो गया जिसमें वहाँ के किसानों ने वहाँ की पुलिस चौकी को पुलिसमैनों सहित जला दिया।

इस घटना से महात्मा गांधी के हृदय को गहरी चोट पहुँची, इसी प्रकार की कुछ और भी घटनाएँ हो चुकी थीं इससे उन्हें विश्वास हो गया कि आन्दोलन अव्यवस्थित और हिंसा पूर्ण होता जा रहा है। इसलिए उन्होंने तुरन्त आन्दोलन को वापस खींच लेने का सुझाव दिया और उनके सुझाव पर कांग्रेस ने आन्दोलन को स्थगित कर दिया।

इस स्थगन आदेश से सभी कांग्रेस नेताओं और जनता में एक भयङ्कर निराशा और असन्तोष व्याप्त हो गया मगर महात्मा गांधी अपनी धुन के पक्के थे, वे सभी जगह समझौता पसन्द करने वाले व्यक्ति थे मगर हिंसा और अहिंसा इन दोनों के बीच किसी भी प्रकार का समझौता उन्हें पसन्द नहीं था, ऐसे अवसर पर अंगद का पैर रोप देने की महान् शक्ति उनमें थी। ऐसे समय में नफे और नुकसान या राजनीति और कूटनीति की वे कभी परवा नहीं करते थे। उनका दृष्टिकोण आईने की तरह साफ था, किसी तरह की लुकी-छुपी राजनीति उनके पास नहीं थी।

इस प्रकार चौरी-चौरा काण्ड के साथ ही असहयोग आन्दोलन का पहला दौर समाप्त हो गया और देश में करीब आठ वर्ष तक छोटे-बड़े आन्दोलन, वैधानिक लड़ाइयाँ और साम्प्रदायिक समस्याएँ चलती रहीं।

नमक सत्याग्रह

इसके पश्चात् असहयोग क्रान्ति का दूसरा जबर्दस्त दौर सन् १९३० में नमक सत्याग्रह के रूप में चला। समुद्र तट पर नमक कानून को तोड़ने के लिए महात्मा गांधी की सुप्रसिद्ध दाण्डी यात्रा हुई। गांधीजी की यह पैदल यात्रा ऐतिहासिक थी। इस यात्रा ने भी सारे देश में फिर से एक नया जीवन फूँक दिया। यह गांधीजी के ही व्यक्तित्व का प्रभाव था कि नमक कानून के समान नगण्य कानून को इतना महत्व दे दिया गया कि सारा देश एक ही साँस में बावला हो गया। चारो ओर नमक कानून तोड़े जाने लगे। हजारों गिरफ्तारियाँ होने लगीं, जितने आदमी पकड़े जाते थे उससे अधिक फिर मैदान में आकर खड़े हो जाते थे। दुनिया के सारे देश-विदेश और ब्रिटिश सरकार हैरानी के साथ विश्व के इस महान् जादूगर का तमाशा देख रही थी।

अन्त में सन् १९३१ में हैरान होकर लार्ड अरविन ने गांधी जी के साथ एक विराम समझौता किया और उसी वर्ष स्थायी समझौते के लिए एक गोलमेज कांफ्रेंस का लन्दन में आयोजन किया। गांधी जी लन्दन में इस सभा में सम्मिलित हुए मगर वहाँ से असफल होकर वापस आ गये।

उसके बाद असहयोग क्रान्ति का तीसरा और सबसे अन्तिम दौर सन् १९४२ में आया जबकि बम्बई की बैठक में महात्मा गांधी ने Quit India भारत छोड़ो आन्दोलन की घोषणा की।

सन् ४२ के आन्दोलन का इतिहास एक पूरा इतिहास है जिसे इस जगह अंकित करना असम्भव है। मगर इस आन्दोलन में जनता की महान् कुरबानी और सत्ता के द्वारा भयङ्कर दमन के जो नजारे आये वे इतिहास में अमर रहेंगे। नेता सब जेल में थे। नेतृत्वविहीन जनता से भूलें भी हुईं, हिंसा काण्ड भी हुए और भयङ्कर दमन भी हुए मगर एक बात जरूर थी कि अपनी आजादी के लिए हर प्रकार की कुरबानी देने को जनता तैयार थी।

इस आन्दोलन की समाप्ति के बाद युद्ध में विजय प्राप्त करने पर इंग्लैण्ड की मजदूर सरकार ने देश को आजादी देने की घोषणा की। यह असहयोग क्रान्ति की शानदार विजय थी। उसके बाद जो भी देशविभाजन की या दूसरी दुर्घटनाएँ हुईं वे हमारी आन्तरिक कमजोरी या

साम्प्रदायिक प्रवृत्तियों का परिणाम थीं, असहयोग या अहिंसात्मक क्रान्ति से उसका कोई सम्बन्ध नहीं था।

कई लोग यह कहते हैं कि देश को आजादी का मिलना असहयोग क्रान्ति का फल नहीं है। उस समय अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति ही ऐसी हो गयी थी कि अंग्रेज सरकार को मजबूरन सब उपनिवेशों को स्वतन्त्र करना पड़ा। अन्यथा बर्मा, लंका, इण्डोनेसिया, दक्षिण अफ्रीका के कई देश जिन्होंने कोई अहिंसात्मक क्रान्ति नहीं की थी वे किस प्रकार स्वाधीन हो गये।

इस प्रकार के तर्कों का जवाब देने में कोई सार नहीं है। जिन लोगों ने भारत के सन् १९२० से १९४५ तक के इतिहास का मनन किया है वे भली प्रकार जानते हैं कि इस देश के जन-जागरण और स्वाधीनता प्राप्ति के इतिहास में अहिसात्मक क्रान्ति का कितना महत्त्व है।

अहमद मिथात

उन्नीसवीं सदी का तुर्की साहित्य का एक प्रभावशाली कवि। अहमद मिथात तुर्की के क्रान्तिकारी कवियों में से एक था। मगर इसने सुलतान से समझौता कर लिया था जिससे इसकी कृतियाँ जप्त नहीं की गई और उसकी बीसियों कृतियाँ आम जनता में चलती रहीं और उदीयमान लेखक उनसे प्रेरणा पाते रहे।

अहमद शाह बहमनी

हिन्दुस्तान के दक्षिण प्रदेश में बहमनी राज्य का एक प्रसिद्ध शासक! निजाम हैदराबाद के आसपास के क्षेत्र में सन् १३४७ ई० में बहमनी राज्य की स्थापना हसन नाम के बीर योद्धा के द्वारा हुई थी। उसने गुलबर्गा को अपनी राजधानी बनाया। इसी राजवंश में सन् १४२२ में फिरोज शाह का पुत्र अहमद शाह गद्दी पर बैठा। अहमद शाह ने विजय नगर के साथ की लड़ाई में करीब बीस हजार पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों की हत्या कर डाली। सन् १४२४ में उसने वारंगल के राजा को पराजित किया और उसके प्रदेश का बहुत बड़ा भाग अपने राज्य में मिला लिया। उसने मालवा के मुस्लिम शासक को भी हराया और आस-पास के राज्यों पर विजय करके भयंकर रक्तपात किया और बहुत सा लूट का माल प्राप्त किया। उसने बली की उपाधि धारण की तथा विजय-यात्रा से वापस आकर बीदर नामक शहर की स्थापना की जो आगे चल कर बहमनी राज्य की राजधानी हो गया।

अहमद शाह

सन् १८५७ की सैनिक क्रान्ति में दिन रात अलख जगाने वाले मौलवी अहमद शाह।

मौलवी अहमद शाह उत्तर प्रदेश के उन ताल्लुकेदारों में से एक थे जिनका सब कुछ अंग्रेजों ने छीन लिया था। १८५७ की सैनिक क्रान्ति के इतिहास में उनका नाम सदैव अमर रहेगा। अवध का राज्य जब से अंग्रेजों ने हड़प लिया तब से अहमदशाह ने देश और धर्म की सेवा में अपना सब कुछ लगा दिया था। वे मौलवी बने और क्रान्ति-धर्म का प्रचार करने को हिन्दुस्तान भर में घूमने को निकले। जहाँ-जहाँ यह राष्ट्रीय सन्त पहुँचा जनता में जबरदस्त जागरण जाग उठा। उन्होंने आगरे में भी एक गुप्त क्रान्तिकारी संस्था की स्थापना की और लखनऊ में भी ब्रिटिश राज्य को उलट देने का खुला प्रचार किया।

अवध की जनता इस व्यक्ति को क्रान्ति का पैगम्बर समझती थी और इसका बड़ा मान करती थी। यह देख कर अंग्रेजों ने इस जनप्रिय नेता को पकड़ कर राजद्रोह के अपराध में फाँसी की सजा दी।

जिस समय इस फकीर को फैजाबाद में फाँसी की टिकटी पर ले जाया जा रहा था उसी समय फैजाबाद में क्रान्ति का अम्बार भड़क उठा और विद्रोही सैनिकों के एक जत्थे ने आकर मौलवी अहमद शाह को छुड़ा लिया और उनको पकड़नेवाले अंग्रेजों को गिरफ्तार कर लिया। मौलवी अहमद शाह तब फैजाबाद के क्रान्तिदल के नेता बने और इन्होंने सब अंग्रेजों को फैजाबाद से सही सलामत निकल जाने का आदेश दिया। मगर जब ये अंग्रेज नदी पार हो रहे थे तब सत्रहवीं पल्टन के सिहाहियों ने इनकी किश्तियों पर हमला कर दिया और बहुत से अंग्रेजों को मार डाला। कमिश्नर गोल्डने, लेफ्टिनेंट थामस रिची, एडवर्डस इत्यादि

अंग्रेज इसमें मारे गये। इसके बाद जब लखनऊ का पतन हो गया और रुहेलखण्ड तथा अवध में क्रान्तिकारियों का एक भी संगठन केन्द्र नहीं बचा तब मौलवी अहमद शाह ने अंग्रेजों के खिलाफ छापामार युद्ध की योजना बनाई और लखनऊ से उनतीस मील दूर बारी में अपना पड़ाव डाला। मौलवी के मुकाबले में अंग्रेजों का प्रसिद्ध सेनापति होप ग्रेएट अपने तीन हजार सैनिक और भारी तोपखाने को लेकर आया। होपग्रेएट से मुकाबला करने के लिये मौलवी ने जो योजना बनाई थी वह उसके सैनिकों की अनुशासनहीनता से भङ्ग हो गई।

इसके बाद शाहजहाँ पुर में मौलवी अहमद शाह ने एक बड़ी साहसी योजना अंग्रेजों के सेनापति जनरल कैम्पबेल को धोखा देने के लिये बनाई और कैम्पबेल शाहजहाँ पुर को छोड़कर बरेली की तरफ आगे निकल गया। मगर भाग्य ने वहाँ भी उसका साथ नहीं दिया और देश द्रोही खुफियों ने उसकी सारी योजना कर्नल हेल को बता दी। उसके बाद मौलवी अहमदशाह फिर वापस अवध में आये और वे अपना संगठन करना चाहते थे मगर पोवेन के राजा जगन्नाथ सिंह के विश्वासघात से मौलवी अहमदशाह मारे गये। राजा जगन्नाथ सिंह मौलवी के सिर को काटकर उसे एक कपड़े में लपेट कर वहाँ से तेरह मील दूर शाहजहाँ पुर की ब्रिटिश छावनी में ले गया और वहाँ के ब्रिटिश सेनापति को यह तोहफा भेंट किया। ब्रिटिश सेनापति ने राजा जगन्नाथ सिंह को इस करतूत पर पचास हजार रुपये का परितोषिक दिया।

१८५७ की सैनिक क्रान्ति का इतिहास लेखक इण्डियन म्यूटिनी खण्ड ४ पृष्ठ ३८१ पर मौलवी अहमदशाह के लिये लिखता है —

“मौलवी अहमदशाह एक असाधारण व्यक्ति था। विद्रोह के काल में उसके सैनिक नेतृत्व की योग्यता का परिचय कई अवसरों में मिला। इस व्यक्ति ने सर कैम्प बेल को रण के मैदान में दो बार शिकस्त दी। अपनी मातृभूमि की स्वाधीनता के लिये योजना पूर्वक लड़ने वाला मौलवी अहमदशाह निःसन्देह सच्चा देशभक्त था। उसने अपनी तलवारकशी किसी की अकारण हत्या से नहीं रंगी। वह वीरता सभ्यता और साहस के साथ लड़ाई के मैदान में उन विदेशियों से लड़ा जिन्होंने उसके देश की स्वाधीनता का हरण कर लिया था। संसार के सभी राष्ट्रों के सच्चे बीर उसकी स्मृति का सम्मान करें ऐसी उसकी योग्यता थी।”

अहमदाबाद

भारत वर्ष का एक प्रसिद्ध औद्योगिक नगर, गुजरात प्रान्त की राजधानी।

अहमदाबाद का पुराना नाम कर्णावती था। सबसे पहले इस नगर को चालुक्य राजवंश के राजा कर्ण ने सन् १०६४ से १०९४ को बीच बसाया और अपने ही नाम पर उसने इसका नाम कर्णावती रक्खा। उसके बाद जब गुजरात पर मुसलमानों के आक्रमण हुए तब सुलतान अहमदशाह ने इसका विस्तार कर इसका नाम अहमदाबाद रखा। इस शहर में बड़ी-बड़ी इमारतें बनीं और ३०० वर्ष तक अर्थात् पन्द्रहवीं से अठारहवीं सदी तक यह नगर दुनिया के सबसे सुन्दर शहरों में एक गिना जाता था। इस शहर की सुप्रसिद्ध जामामसजिद की स्थापत्यकला राणकपुर के सुप्रसिद्ध जैन मन्दिर की स्थापत्य कला से बहुत मिलती हुई है।

आधुनिक युग में भी अहमदाबाद शहर ने बड़ा महत्व ग्रहण कर रक्खा है। अभी तक यह गुजरात की राजधानी है और समस्त भारत के अन्तर्गत तीसरे नम्बर का औद्योगिक केन्द्र है। कपड़ा उद्योग का तो यह भारत में सबसे बड़ा या दूसरे नम्बर का केन्द्र है। यहाँ पर कपड़ा बनाने की सवा सौ से अधिक टैक्सटाइल्स मिलें हैं। अहमदाबाद से थोड़ी ही दूर पर साबरमती नदी बहती है जिसके तट पर महात्मा गाँधी का पवित्र और प्रेरक आश्रम कई वर्षों तक रहा। भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन की सारी प्रेरणाएं यहीं से देश में प्रसारित होती थीं।

अहमदाबाद कांग्रेस

सन् १९२१ में असहयोग आन्दोलन के समय में अहमदाबाद में होने वाला अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का महान अधिवेशन।

सन् १९२१ में जिस समय महात्मा गाँधी का असहयोग आन्दोलन अपनी चरम सीमा और विकास पर था और ब्रिटिश गवर्नमेण्ट का दमन-चक्र पूरी तेजी के साथ चल रहा था और हजारों सत्याग्रही जेलों में बन्द किये जा रहे थे, प्रिन्स ऑफ वेल्स के आगमन का बहिष्कार किया जा चुका था, उसी संक्रमण काल के बीच अहमदाबाद में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ था।

इस अधिवेशन के मनोनीत सभापति बंगाल के प्रसिद्ध नेता देशबन्धु चित्तरंजन दास थे। मगर ब्रिटिश शासन ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया था इसलिये उनके जेल चले जाने पर देहली के प्रसिद्ध हकीम अजमल खाँ ने इस अधिवेशन के अध्यक्ष का पद ग्रहण किया था।

इस अधिवेशन में जनता का जैसा उत्साह देखा गया वह कांग्रेस के इतिहास में अद्वितीय और अपूर्व था। जनता के जोश का मानों समुद्र उमड़ रहा था। लोग स्वराज्य की भावनाओं से ओत-प्रोत हो रहे थे। इस अधिवेशन में सारे देश को व्यक्तिगत और सामूहिक सत्याग्रह के लिये आह्वान किया गया था। देश के हरेक स्त्री और पुरुष से यह अपील की गई थी कि वे नेशनल वालेण्टियर कैम्प में भर्त्ती हों और सत्याग्रह संग्राम को अपनी पूरी शक्ति से चलावें। इस अधिवेशन ने महात्मा गाँधी को सत्याग्रह-संग्राम का संचालक नियुक्त किया और उनके हाथ में इसकी सारी बागडोर सौंप दी।

इस अधिवेशन में मौलाना हसरत मोहानी ने एक प्रस्ताव इस आशय का रखा कि भारतीय कांग्रेस का अन्तिम लक्ष्य पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त भारतीय गणतन्त्र रखा जाय। मगर महात्मा गाँधी ने यह कह कर इस प्रस्ताव का विरोध किया कि इस प्रस्ताव में जिम्मेदारी का बिल्कुल अभाव है। उनके विरोध के कारण यह प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

वास्तविक बात यह थी कि बम्बई में प्रिन्स ऑफ वेल्स के आगमन के समय जो उपद्रव और हिंसा काण्ड हो गये थे उनसे महात्मा गाँधी को बड़ा सदमा पहुँचा था। इस लिये लोगों की बढ़ती हुई उमंगों के बावजूद भी उन्होंने अहमदाबाद काँग्रेस में ज्यादा सख्त कदम उठाना मुनासिब नहीं समझा।

अलहसन-अलबसरी

इस्लाम मजहब के सिद्धान्तों का निष्णात विद्वान। जिसकी मृत्यु सन् ७२८ में हुई।

अलहसन-अलबसरी के प्रवचन इस्लामी सिद्धान्तों के ही प्रतीक नहीं, अरबी गद्य के भी उत्तम नमूने हैं। इसी कारण इसलाम के अनेक फिरके उसे अपने धर्म नेता मानने लग गये थे। इस्लाम के सम्बन्ध में उसकी व्याख्याएँ बहुत आदर से देखी जाती थीं। फिर भी उस युग में लेखन शक्ति का विकास न होने से सारा कार्य मौखिक ही होता था।

अहमद सामानी प्रथम

ईरान के सुप्रसिद्ध सामानी साम्राज्य का संस्थापक

अब्बासी खलीफा के मेर्व के गवर्नर असद ने सासानी वीर बहराम चौबीन के वंशज "सामान" को सहायता देकर उसे फिर से सामान का शासक बना दिया। अपने इस्लामी मददगार के प्रति कृतज्ञता दिखलाते हुए उसने जरथुस्टी धर्म को छोड़ कर इस्लाम धर्म को ग्रहण कर लिया और अपने मददगार के नाम पर अपने पुत्र का नाम भी "असद" रक्खा। असद के चारों पुत्रों ने खलीफा हारूं-अल-रशीद की बहुत सेवा की, इससे खुश होकर खलीफा ने चारों भाइयों को एक-एक नगर का शासक बना दिया। यही चारों भाई स्वतंत्र सामानी राजवंश के स्थापक हैं।

इन चारों भाइयों में से एक अहमद सामानी था इसको फर्गाना का शासक बनाया गया था। इसका समय सन् ८१७ ई० है।

अहमद सामानी द्वितीय

(९०७-९१४)

अहमद सामानी द्वितीय सामानी साम्राज्य के प्रसिद्ध शासक इस्माइल सामानी का पुत्र था। इसको अपने पिता द्वारा स्थापित एक विस्तृत और सुव्यवस्थित साम्राज्य प्राप्त हुआ था। मगर अपनी धार्मिक कट्टरता के कारण यह बहुत जल्दी जनता में अप्रिय हो गया। धार्मिक कट्टरता के मद में आकर इसने अपने राज्य की राजभाषा जो अभी तक फारसी चली आ रही थी बदल कर अरबी कर दिया।

इसी समय ईरान के पश्चिमी भाग पर दैलमी वंश का अधिकार हो गया और यह वंश धीरे-धीरे ईरान के भीतर अपना विस्तार करने लगा। इस प्रकार अपने सात वर्ष के शासन काल में इसने अपने साम्राज्य को बढ़ाने के बजाय घटाया। अन्त में सन् ९१४ यह अपने ही गुलामों के द्वारा मारा गया।

अहमद शाह दुर्रानी

अफगानिस्तान का शाह, नादिरशाह का उत्तराधिकारी जिसने भारतवर्ष पर दो बार हमला किया। दूसरा हमला बहुत ही भयंकर था जो सन् १७६१ में हुआ। इस हमले में पानीपत के मैदान में अहमद शाह दुर्रानी और मराठों की फौज में भयंकर युद्ध हुआ जिसमें मराठों की भारी फौज को दुर्रानी की फौजों ने बुरी तरह से हरा दिया। इसी युद्ध में मराठों के भाग्य का अन्तिम फैसला हो गया और अखिल भारतीय विशाल साम्राज्य स्थापित करने का उनका स्वप्न चूर-चूर हो गया। इस जीत के कारण अहमद शाह दुर्रानी सारे उत्तरी भारत का मालिक बन बैठा। उसे रोकने वाली अब कोई दूसरी शक्ति हिन्दुस्तान में न थी मगर अपनी फौजों में विद्रोह की भावना उत्पन्न हो जाने से वह यहाँ स्थायी रूप से शासन न कर सका और उसे वापस अफगानिस्तान लौट जाना पड़ा।

अहमद शाह

गुजरात का सुप्रसिद्ध सुल्तान जिसने सन् १४१४ से १४४१ तक गुजरात पर राज्य किया।

सन् १२९७ में जब अलाउद्दीन खिलजी ने गुजरात पर विजय प्राप्त कर ली तब से यह प्रान्त मुस्लिम शासकों के अधीन हो गया। सन् १४०१ में वहाँ के शासक जफर खाँ ने दिल्ली की अधीनता से मुक्त होकर अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी मगर सन् १४१४ में उसके पोते अहमद शाह ने उसे जहर देकर मार डाला और स्वयं गुजरात की गद्दी पर बैठ गया। गद्दी पर बैठते ही उसने प्राचीन नगर आसावल के निकट साबरमती नदी के बायें किनारे पर अहमदाबाद नामक प्रसिद्ध नगर बसाया। इस शहर को उसने बड़ी-बड़ी सुन्दर इमारतों से सुसज्जित किया और बहुत से व्यापारियों तथा कारीगरों को वहाँ बसने के लिये बुलाया। उसने हिन्दुओं के बहुत से मन्दिरों को ध्वस्त किया और हिन्दुओं को इस्लाम स्वीकार करने के लिये मजबूर किया। सन् १४१४ में गिरनार पर आक्रमण कर के उसने वहाँ के राजा को हरा कर अपने अधीन कर लिया। उसने मालवे पर भी बहुत बड़ा आक्रमण किया और माण्डू पर घेरा डाल दिया।

मगर सेना में बीमारी चल जाने के कारण उसको सफलता न मिली और वापस अहमदाबाद लौटना पड़ा। सन् १४४१ में उसकी मृत्यु हो गई।

अहमदनगर

दक्षिण भारत का एक प्रसिद्ध नगर जो अकबर के समय में मशहूर मुसलमान मल्का चाँद बीबी के शासन में था। चाँदबीबी एक बड़ी बहादुर, साहसी और योग्य शासिका थी। अकबर की फौजों ने जब अहमदनगर पर हमला किया उस समय चाँद बीबी ने अकबर की फौजों से बड़ी बहादुरी से लोहा लिया। मुगल सेना पर उसकी बहादुरी का इतना असर पड़ा कि उसने चाँद बीबी की अनुकूल शर्तों पर उससे सन्धि कर ली। मगर कुछ समय पश्चात् उसी के असन्तुष्ट सैनिकों ने उसकी हत्या कर डाली।

अठारह सौ सत्तावन

ब्रिटिश सल्तनत के विरुद्ध भारतवर्ष में होने वाली एक विशाल क्रान्ति, जो सन् १८५७ में घटित हुई।

सन् १८५७ की क्रान्ति भारतीय इतिहास की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना है। इस क्रान्ति ने उस समय में अंग्रेजों के बढ़ते हुए साम्राज्यवाद के प्रति भारतीय जनता के हृदय में तीव्र घृणा, विद्रोही सैनिकों की अनुशासनहीनता और राजा रजवाड़ों के बीच बढ़ती हुई फूट तथा दिल्ली के सिंहासन पर स्थित बादशाह बहादुर शाह की विचित्र निष्क्रियता के जैसे ज्वलन्त उदाहरण इतिहास में अंकित किये उसके साथ ही साथ झांसी की प्रसिद्ध रानी लक्ष्मीबाई की अपूर्व वीरता और देशभक्ति, तात्याटोपे के समान राजनीतिज्ञ की राजनीति, कूटनीति और युद्ध संचालन कला के उदाहरण, मौलवी अहमद शाह के समान सर पर कफन लपेटे हुए फकीर की बहादुरी, अजीमुल्ला खां की राजनीति और कुंवर सिंह की अपूर्व बहादुरी के उदाहरण भी इतिहास में कायम कर दिये।

क्रान्ति के मूल कारण

सन् १८५७ की क्रान्ति के मूल कारण अंग्रेजी सरकार की साम्राज्य विस्तार नीति के कारण शनैः लोगों के दिलों में पैदा हो रहे थे मगर लार्ड डलहौसी के गवर्नर जनरल बनकर आने के पश्चात् उसने जैसी नीति का यहाँ पर अवलम्बन किया उसने इस गुप्त रूप से जलने वाली आग को भड़काने में बहुत सहायता की। उसने सतारा के राजा अप्पा साहब की मृत्यु के पश्चात् सतारा राज्य को ब्रिटिश शासन में मिला लिया। नागपुर के भोंसले की मृत्यु के पश्चात् उसके राज्य को भी शासन में मिलाकर उनके हाथी, घोड़ों को सरे बाजार नीलाम करवा दिया और बाद में अवध के नवाब वाजिद अली शाह को पदच्युत करके उस अवध के राज्य को साम्राज्य में मिला लिया जिसने लगातार ७० वर्षों से ब्रिटिश शासन के साथ ईमानदारी से सहयोग किया था।

अवध के राज्य को खतम करने का असर इसलिए और अधिक हुआ कि बंगाल की सेना में उस समय इसी प्रान्त के लोग अधिक थे। इन लोगों ने बड़ी वफादारी से कम्पनी की सेवा की थी और देश के विभिन्न क्षेत्रों में कम्पनी का प्रभुत्व बढ़ाने में उनका बड़ा हाथ था। इनलोगों ने अचानक यह अनुभव किया कि, उनकी सेवा और बलिदान के द्वारा कम्पनी ने जो प्रभुत्व स्थापित किया है उसी ने उनके अपने राज को समाप्त कर दिया है। निस्सन्देह १८५६ में जब अवध को हस्तगत किया गया तभी से आम सैनिकों में और खास तौर पर बंगाल सेना के सैनिकों में विद्रोह की भावनाएँ पैदा हुईं।

इधर नवम्बर सन् १८५३ में झांसी के शासक गंगाधर राव की मृत्यु हो जाने पर ब्रिटिश सरकार ने उसकी रानी इतिहास प्रसिद्ध लक्ष्मीबाई के साथ भी इसी प्रकार का व्यवहार किया, मृत्यु के एक दिन पहले गंगाधर राव के द्वारा लिये हुए दत्तक पुत्र दामोदर राव को अस्वीकृत कर कम्पनी ने झांसी को भी अपने राज्य में मिला लिया।

इसी प्रकार की घटना कानपुर के पास बिठूर घराने के सम्बन्ध में भी हुई। बाजीराव पेशवा द्वितीय अंग्रेजों का कट्टर विरोधी था, सन् १८१७ में उसने अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह किया था, मगर इसमें उसे सफलता नहीं मिली और अंग्रेजों ने उसे उसके राज्य से हटाकर कानपुर के समीप बिठूर में बसा दिया। उसे एक जागीर दे दी गई और आठ लाख रुपये वार्षिक की पेंशन कर दी गई। सन् १८५१ में बाजीराव द्वितीय की मृत्यु हो गई। उसके पश्चात् उसके दत्तक पुत्र धोंडू पंत नाना को अंग्रेज सरकार ने उसका उत्तराधिकारी तो मान लिया मगर बाजीराव को दी जानेवाली आठ लाख रुपये वार्षिक की पेंशन को व्यक्तिगत पेंशन कहकर बन्द कर दी। तथा बिठूर की जागीर में भी नाना साहब के जीवन पर्यन्त ही उनका हित रक्खा गया। इसके सिवा राज्य की सरकारी मुहर भी उनसे छीन ली गई और उनका दर्जा भी घटा दिया गया।

नाना ने तब अपना केस अपने प्रसिद्ध वकील अजीमुल्ला खां के द्वारा इंग्लैण्ड भेजा। अजीमुल्ला खां एक अद्भुत और गम्भीर राजनीतिज्ञ था। लेकिन उसे भी इंग्लैण्ड में कोई सफलता नहीं मिली और ऐसा कहा जाता है कि इसी से क्षुब्ध होकर उसने वहीं पर रंगोजी बापू के

साथ मिलकर विद्रोह की योजना बनाई और वहां से वह कुस्तुंतनिया होते हुए भारत लौट आया।

इस प्रकार कई राजनैतिक और धार्मिक कारणों से इस क्रान्ति की पृष्ठभूमि का निर्माण होता गया।

क्रान्ति का प्रारम्भ

सन् १८५६ में भारत में ब्रिटिश सरकार ने सेना के लिए नई इन्फीलु रायफलों के उपयोग करने का आदेश दिया। इन रायफलों के लिए जो कारतूस आते थे उनपर एक तरह का ग्रीज लगा रहता था। भारत की सेनाओं के लिए इन कारतूसों का निर्माण कलकत्ता, दमदम और मेरठ में भी होने लगा।

एक दिन दमदम में एक सैनिक ने एक ब्राह्मण सैनिक को बतलाया कि उक्त ग्रीज में एक अत्यन्त आपत्ति जनक पशुकी चर्बी मिली हुई रहती है। यह खबर आग की तरह चारों ओर फैल गई और सिपाहियों में आतङ्क छा गया। अंग्रेज अफसरों को भी यह बात तुरन्त मालूम हो गई।

इस पर सिपाहियों ने सन् १८५७ में वैधानिक ढङ्ग से अधिकारियों के सम्मुख अपनी चिंता प्रकट की। सरकार ने भी इस सम्बन्ध में बहुत जल्दी निर्णय कर लिया। बैरकपुर के कमाण्डर जनरल हियरसेने ने सुझाव दिया कि सैनिकों को उनकी मरजी के अनुसार दूसरी तरह का ग्रीज इन कारतूसों पर लगाने की इजाजत दे दी जाय। मगर इस प्रकार के आदेशों का प्रसार करने में देरी लगती गई और असन्तोष बढ़ता गया। इसी समय एक अफ़वाह यह भी फैली कि सैनिकों के खाने के आटे में हड्डी का चूरा और पीने के पानी में भी अपवित्र चीजें मिलाई जाती हैं।

इन घटनाओं से लोग अत्यधिक संदिग्ध हो गये बैरक पुर और उसके आस पास के इलाकों में आग लगा देनेकी कई घटनाएँ हुईं। उसके बाद २६ फरवरी को बहराम पुर में उन्नीसवीं रेजिमेंट ने विद्रोह कर दिया।

मङ्गल पाण्डे

इसी समय क्रान्ति के इस इतिहास में "मङ्गल पाण्डे" नामक एक महत्व पूर्ण व्यक्तित्व का उदय होता है। यह एक ब्राह्मण नौजवान था और ३४ वीं पलटन में एक सिपाही था। यह इस सारे घटनाचक्र को नजदीकी से अध्ययन कर रहा था और सेना के लोगों में भी उसने अपने विचारों का प्रचार प्रारम्भ किया। मंगल पाण्डे ने इसी बीच कुछ अंग्रेज अफसरों पर भी हमला किया। इस अपराध में कोर्ट मार्शल कर उसे फांसी पर लटका दिया गया और उन्नसवीं रेजिमेंट के हथियार छीन कर उसके सिपाहियों को निकाल दिया गया।

ये निकाले हुए सिपाही उत्तरभारत के दूर-दूर बिखरे गाँवों में गाय के मांस और सुअर के मांस लगे कारतूसों की कहानी सुनाने तथा जनता में राजद्रोह की आवाज फैलाने लगे। उसके बाद ४ मई को मंगल पाण्डे वाली चौंतसवीं पलटन भी भंग कर दी गई और उसके सैनिक भी उत्तर प्रदेश में आकर धुंआधार प्रचार करने लगे।

इधर मेरठ की छावनी में भी सेना में इन कारतूसों के खिलाफ़ उत्तेजना फैली और उनमें से कई लोगों ने कारतूस लेने से इन्कार कर दिया। इस अपराध में उन पर मुकदमा चला और उनमें से प्रत्येक को दस-दस साल की सख्त सजा दी गई।

होम्स ने लिखा है कि "नौ मई को सवेरे आकाश में आँधी और तूफान के सूचक काले बादल मण्डरा रहे थे सूर्य का कहीं पता नहीं था। ऐसे समय में अपराधियों का अपमानित स्थिति में प्रदर्शन करने के लिए पूरी ब्रिगेड को बुलाया गया। कैदियों की वर्दियाँ उतरवा कर लुहारों से उनको हथकड़ियों और बेड़ियों से जकड़वा दिया गया। मगर कोई उपद्रव नहीं हुआ और भय तथा आतङ्क के वातावरण के बीच सारा काम सम्पन्न हुआ।

१० मई

दस मई को प्रातःकाल से ही मेरठ में एक ओर तो यह खबरें फैलना शुरू हुई कि सेना के सिपाही सशस्त्र विद्रोह प्रारम्भ करने वाले हैं और दूसरी ओर यह अफ़वाह थी कि सरकार सभी भारतीय सैनिकों से हथियार रखवा लेगी और उनके लिए २००० बेड़ियाँ तैयार हो चुकी हैं।

शाम को पाँच बजे अचानक तूफान उठा। एक बबर्ची ने यह खबर उड़ाई कि हिन्दुस्तानी फौजों से शस्त्र छीनने के लिए तोपचियों और बन्दूकधारी सैनिकों के इकट्ठे हो रहे हैं।

इस खबर को सुनते ही सारी फौज में विद्रोह के भाव पैदा हो गये। तीसरी रिसालदार सेना के सैनिकों ने जेलखाने में पहुँच कर अपने साथियों को मुक्त कर दिया। २० वीं पलटन परेड के मैदान में आकर शस्त्रागार में घुस गई। शहर की दुकानें बन्द हो गईं। गुण्डों के उत्पात शुरू हो गये और चार घण्टे के बाद आस पास के देहातों से गूजर लोग भी इकट्ठे होकर शहर में आ घुसे।

इसके पश्चात् शहर में अग्निकाण्ड, लूटपाट, हत्या का सिलसिला जारी हो गया। एक नये रंगरूट ने कर्नल फिनिस को गोली चला कर मार डाला। सारी रात लूटपाट आगजनी की घटनाएँ हुईं। मगर इस रात की सबसे अधिक बर्बरतापूर्ण और करुणाजनक घटना श्रीमती चैम्बर्स नामक अंग्रेज महिला की हत्या के द्वारा सम्पन्न हुई। श्रीमती चैम्बर्स के पति ड्यूटी पर बाहर गये हुए थे। वह गर्भवती थी और बंगले पर अकेली थी। इस युवती महिला को एक कसाई ने आकर बकरे की तरह काट दिया। बाद में इस कसाई को प्राण दण्ड मिला। श्रीमती चैम्बर्स की पाशविक हत्या से जितना क्षोभ यूरोपियनों में फैला उतना किसी दूसरी घटना से नहीं फैला।

एक ही रात में मेरठ का कितना विध्वंस हो गया था इसका वर्णन करते हुए श्रीमती ग्रेटहेड लिखती हैं कि— "दिन की रोशनी में साफ २ दिखलाई दे रहा था कि विनाश की लीला कितनी पूर्ण थी। सब तरफ विध्वंस के चिह्न दिखलाई पड़ रहे थे। हमारा घर जो कभी शान से चमकता था अब राख का ढेर हो गया था।" रेवरेण्ड टी० टी० स्मिथ ने लिखा कि मि० रोटन और मैंने दूसरे दिन अपने तीस साथियों को दफनाया और भी कितने ही मृतक बचे हुए हैं जिनके शव अभी नहीं लाये जा सके थे।

दिल्ली

११ मई १८५७ को सवेरे पता चला कि मेरठ के विद्रोही सिपाही यमुना पर नावों का पुल बना कर दिल्ली आ रहे हैं।

इसके पहले मेरठ के विद्रोह का दिल्ली वालों को बिलकुल पता नहीं था। सब काम बदस्तूर चल रहे थे। दिल्ली की छावनी शहर से कुछ मील दूर राजपुर गाँव में थी। ब्रिगेडियर ग्रेव्ज को कुछ देर बाद ही विद्रोह का पता चला। ५४ वीं पलटन कर्नल रिप्ले के साथ कश्मीरी गेट तक गई लेकिन कमाण्डर के कत्ल हो जाने और अफसरों के गोली से उड़ा दिये जाने पर भी उसने लड़ने से इन्कार कर दिया। इससे दिल्ली शहर के भाग्य का निर्णय हो गया। ७४ वीं पलटन के मेजर एबट स्थिति पर काबू नहीं पा सके। मुख्य रक्षक दल तीसरे पहर तक डटा रहा मगर शाम को अड़तीसवीं पलटन के द्वारा जब उसके अफसर गोली से मार दिये गये तब शेष अंग्रेज अफसरों को अपनी स्त्रियों को लेकर भागना पड़ा।

शहर में यूरोपीय या भारतीय एक भी ईसाई जीता न बचा। एक-एक ईसाई को ढूँढ़ कर मौत के घाट उतार दिया गया। बैंक लूट लिया गया और उसके मैनेजर को परिवार सहीत कत्ल कर दिया गया। एक स्थानीय समाचार पत्र के कार्यालय पर धावा मार कर उसके सब कम्पोजीटरों को कत्ल कर दिया गया। किशन गढ़ राजा के महल में बहुत से अंग्रेज स्त्री पुरुष छिपा कर रक्खे गये थे। विद्रोहियों को पता लगाने पर उस महल पर धावा मार कर एक एक स्त्री पुरुष को कत्ल कर दिया गया।

विनाश की इस भयङ्कर वेला में भी अंग्रेजी शस्त्रागार के रक्षकों ने बड़ी बीरता से काम लिया। नौ अंग्रेज उसकी रक्षा पर नियुक्त थे। लेफ्टिनेंट विलोबी शस्त्रागार की रक्षा के लिए जो भी प्रयत्न कर सकते थे उन्होंने किया, मगर जब उन्होंने देख लिया कि अब शस्त्रागार की रक्षा नहीं हो सकती तो उसे उड़ा देने का फैसला किया। बाहर भीड़ उग्र रूप धारण कर रही थी। शस्त्रागार पर हमला करने के लिए बाहर से सीढ़ियाँ लगाई जाने लगीं। इतने ही में एक प्रलयकारी धमाके के साथ शस्त्रागार उड़ा दिया गया। तीन अंग्रेज वहीं पर मर गये। शेष ने किसी प्रकार भाग कर जान बचाई।

अगले कुछ सप्ताहों के लिए सिपाहियों को स्वतंत्र छोड़ दिया गया। इस समय मुगल बादशाह बहादुर शाह की स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो रही थी। उसे सिपाहियों के लिए खाने पीने की व्यवस्था और शहर में शान्ति

स्थापित करनी थी। बादशाह ने यत्न भी बहुत किया, सिपाहियों को समझाया, अपनी गद्दी छोड़ देने की धमकी दी, लेकिन कोई नतीजा नहीं निकला। एक कमजोर आदमी सफल बादशाह नहीं हो सकता और मुगलों का यह बुझता हुआ चिराग क्रान्तिकारियों का नेतृत्व करने के लिए पैदा नहीं हुआ था।

जैसे-जैसे मई का महीना बीतता जाता था बादशाह के सामने नई-नई मुसीबतें आती जाती थीं। सिपाहियों को किसी प्रकार सन्देह हो गया कि बेगम जीनत महल अंग्रेजों से मिली हुई हैं। इससे सिपाहियों ने फिर लूट मार मचाना शुरू कर दी। सिपाहियों को खाना देने के लिए खजाने में पैसा नहीं था। इससे सिपाहियों ने हैदराबाद के एक रईस को लूट लिया और भी जिन-जिन धनियों पर अंग्रेजों के मित्र होने का सन्देह था उन्हें लूटना शुरू किया।

विद्रोह की आग अचानक फूट निकलने के कारण अंग्रेजी सरकार ने पहले से कोई तैयारी नहीं रक्खी थी। इससे विद्रोहियों को १२ मई से ८ जून तक का लम्बा समय मिल गया था इस समय में वे चाहते तो अपना पूरा संगठन कर सकते थे। मगर उनमें न तो कोई योग्य नेता था न उनके सामने कोई संगठित योजना थी। बहादुरशाह और उसके लड़के एकदम अयोग्य और हीन वीर्य थे। उस समय अगर शाही खानदान में एक भी तेजस्वी व्यक्ति होता तो आज इस क्रान्ति का इतिहास दूसरी ही तरह से लिखा जाता।

जून में विद्रोही सेना में फूट पड़ गई और व्यापारी वर्ग भी सेना के विरुद्ध हो गया।

उस समय अंग्रेजी साम्राज्य के प्रधान सेनापति जनरल एन्सन थे। उन्हें जब विद्रोह की खबर मिली तो उस समय उन्होंने पूरे धीरज के साथ काम लिया। वे जानते थे कि इस समय सारे भारत का साम्राज्य दाव पर लगा हुआ है, थोड़ी सी असावधानी से भी वह हाथ से जा सकता है। इस समय पटियाला, करनाल और जींद के राजाओं ने तथा सिख रेजिमेण्ट और गोरखा रेजिमेंट ने अंग्रेजों का साथ दिया।

२७ मई को जनरल एन्सन की हैजे से मृत्यु हो गई और उनकी जगह जनरल हेनरी बर्नार्ड ने मैदानी सेना की कमान सम्हाली। इनकी निश्चित योजना के अनुसार मेरठ के सैनिकों का दस्ता बागपत में इनसे आ मिला। छोटी बड़ी लड़ाइयों में विद्रोहियों को पराजित करते हुए ८ जून को दिल्ली से पाँच मील दूर बादली की सराय में विद्रोहियों से इस सेना की मुठभेड़ हुई। विद्रोही हार गये और उनकी २६ तोपें अंगरेजी सेना के हाथ लगी।

रोटन ने एक स्थान पर लिखा है कि 'जिस शत्रु से हमारा पाला पड़ा था, उसमें अगर जरा भी सूझ-बूझ होती और वह हमारे सैनिक कैम्प के आगे और पीछे पूरी शक्ति के साथ हमला करता तो अंगरेज सैनिक चाहे वे कितने ही बहादुर क्यों न थे थकान और मौसिम से समुचित रक्षा न होने के कारण जरूर हार जाते।

इसके बाद अंग्रेजी फौजों और विद्रोही फौजों में रोज ही तोपों की भयङ्कर लड़ाई जमकर होने लगी। विद्रोही लोग अपेक्षाकृत अच्छे निशाने बाज और जमकर लड़ने वाले थे।

१६ जून को अंग्रेजी सेना के कैम्प के पिछले भाग को भारी खतरा हो गया। एक बार तो यह मालूम होने लगा कि मजार पर लगा हुआ तोपखाना अब गया तब गया। ब्रिगेडियर होपग्राण्ट घायल हो गये। दिन छिपने तक हार-जीत का निर्णय नहीं होने पाया, मगर विद्रोही सिपाहियों के दिमाग में इतनी बात भी नहीं आई कि अगर वे वहाँ जमे रहेंगे तो पंजाब से आने वाली शत्रु सेना इस सेना से नहीं मिल सकेगी मगर वहाँ जमे रहने के बजाय वे रातों रात वहाँ से खिसक गये, और अंग्रेजी सेना की एक बड़ी हार होते-होते ईश्वरीय ढङ्ग से ही बच गई।

२२ तारीख को विद्रोहियों ने फिर एक भारी हमला किया और जान की बाजी लगाकर लड़े। मेजर रीड ने लिखा है कि विद्रोही जितनी बहादुरी से लड़े शायद ही कोई उतनी बहादुरी से लड़ सकता था। एक बार तो मुझे लगने लगा कि अब हम अवश्य हार जाएँगे मगर भाग्य हमारे साथ था और उसने हमें जिताया।

२४ तारीख तक अंग्रेजी सेना को पंजाब से कुमुक पहुँच गई और नेविल चेम्बरलेन भी वहाँ आ पहुँचे।

उधर से विद्रोही सेना को भी बरेली से कुमुक पहुँच गई और बख्त खाँ नामक एक कुशल अनुभवी और वृद्ध सेनापति भी आया और उसने अपनी सेवाएँ बादशाह बहादुरशाह को अर्पित कर दीं।

५ जुलाई को अंग्रेजों के सेनपति बर्नार्ड की भी हैजे से मृत्यु हो गई, मगर दिल्ली के दरबार में यह खबर पहुँची कि अंग्रेजी सेना के प्रधान सेनापति ने घबराकर आत्महत्या कर ली है। बर्नार्ड की जगह रीड को दिल्ली की सेना कमाण्डर बनाया गया। जनरल रीड अत्यन्त कमजोर, अशक्त और आलसी व्यक्ति था।

१४ जुलाई को एक और भारी लड़ाई हुई जिसमें ब्रिगेडियर चेम्बरलेन को गोली लगने से वे घायल हो गये और जनरल रीड ने इस्तीफा दे दिया।

इधर बादशाह बहादुरशाह की सबसे प्रिय बेगम जीनत महल अपने लड़के जंवाबख्त को दिल्ली के तख्त पर बिठाने के लिए अंग्रेजों से साँठ-गाँठ कर रही थी, उधर एक दिन विद्रोहियों के तोपखाने में आग लग कर विस्फोट हो गया जिसका सन्देह विद्रोहियों ने हकीम अहसानउल्ला पर किया।

७ अगस्त को जाँन निकल्सन अंग्रेजी शिविर में आ गये और उन्होंने फिर से दिल्ली पर अचानक आक्रमण कर के एक दम कब्जा करने की योजना बनाई।

११ अगस्त को सवेरे अंगरेजी तोपखाने ने दिल्ली की दीवारों पर गोला बारी की। १३ तारीख को दीवार में दो दरारें पड़ गईं। इन दरारों में से होकर शहर के भीतर फौजें घुस सकती थीं। अब जाँन निकल्सन को अपनी सेनाओं को चार भागों में विभक्त कर चारों दिशाओं से दिल्ली पर हमला करना था।

चारों ओर से हमला हुआ मगर विद्रोहियों के भयङ्कर मुकाबिले में मेजर जेकाब और कर्नल निकल्सन धराशायी हो गये और भी अंग्रेजी सेना के सैकड़ों सैनिक मारे गये और इन दो सेनाओं को काबुली दरवाजे तक वापस आना पड़ा। मगर तीसरे दस्ते ने लेफ्टिनैण्ट सलकेंट और होम के नेतृत्व में पूर्ण विजय प्राप्त कर अपना लक्ष्य पूरा कर लिया।

१६ अगस्त को शस्त्रागार पर अधिकार कर लिया गया। २० तारीख को महल और उससे मिले हुए सलीम गढ़ दुर्ग में अंग्रेजों ने प्रवेश किया।

इस प्रकार दिल्ली पर अंग्रेजों का अधिकार हुआ और उसी दिन लाल किले में भारी उत्सव मनाया गया।

जनरल हडसन

२१ सितम्बर को बादशाह बहादुर शाह ने हडसन के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। अगले दिन हडसन घोड़े पर सवार होकर हुमायुँ के मकबरे में पहुँचा और वहाँ पर छिपे हुए शाहजादा मिर्जा मुगल, मिर्जा खिजरसुलतान और अबूबकर को एक बैलगाड़ी में बिठाकर पकड़ लाया जब ये लोग दिल्ली गेट के पास पहुँचे तो इन शाहजादों के कपड़े उतरवाकर वहीं पर उसने उन्हें गोलियों से भून डाला। इसके बाद बादशाही परिवार के २१ शाहजादों को और फांसी दी गई। बादशाह रंगून निर्वासित कर दिया गया, वहीं उसकी जीवन लीला समाप्त हुई।

इसके बाद ही दिल्ली में सेना ने आमतौर से लूटमार और हत्या काण्ड शुरू कर दिया और कितने ही लोगों को फांसी पर लटका दिया।

कानपुर

मई महीने में कानपुर में शान्ति रही। तरह-तरह की अफवाहें फैल कर सारे वातावरण में सन्देह उत्पन्न करती थीं। फिर भी ४ जून से पहले वहाँ खुले विद्रोह का सूत्रपात नहीं हुआ। वहाँ के अंग्रेज सेनापति सर ह्यू-हीलर ने कानपुर में अपनी सेना की कमी देख कर वहाँ का खजाना और शस्त्रागार नाना साहब धुन्धुपन्त के जिम्मे कर दिया था।

मगर अजीमुल्ला के विलायत से वापस लौटने के बाद उसने अंगरेजों के विरुद्ध नाना साहब के कान भरना शुरू किये और उनका विश्वासपात्र सरदार तातिया टोपे भी उन्हें अंगरेजों के खिलाफ करने का प्रयत्न कर रहा था। इससे उनके मन में भी विद्रोह की भावना पैदा हो रही थी। ऐसा कहा जाता है कि दो जून को शाम के समय नाना साहब, अजीमुल्ला और अपने भाई बलराम के साथ गंगा के किनारे गये। वहाँ उनके गुप्तचरों ने सूबेदार

टीका सिंह और दूसरे षड्यन्त्रकारियों को उनसे मिलाया। गंगा की धारा में नाव के अन्दर उनके बीच में कुछ सलाह हुई और चार जून को विद्रोह भड़क उठा।

चार जून की आधी रात को रिसाले के द्वारा विद्रोह का सूत्रपात होते ही पैदल सेना ने भी विद्रोह कर दिया और सब मिल कर खजाने को लूटने चले। सिपाहियों के दो दल नवाबगंज पहुँचे तो नाना साहब के नौकरों ने उनका स्वागत किया। ३५ नम्बर सेना के कुछ सैनिक खजाने की रक्षा कर रहे थे, उन्होंने पूरी शक्ति से खजाने रक्षा का प्रयत्न किया मगर वे ज्यादा नहीं टिक सके विद्रोहियों ने खजाना लूटा, जेलखानें से कैदियों को मुक्त कर दिया और कचहरी तथा दफ्तर भी जला दिये गये। सारा रुपया हाथी और बैल गाड़ियों पर लाद कर विद्रोही दिल्ली की ओर चल दिये, मगर नाना साहब और अजीमुल्ला के समझाने पर सब लौट कर फिर कानपुर आ गये और सब सिपाहियों ने तथा अजीमुल्ला ने नानासाहब के विद्रोह का नायक बना दिया। सिपाहियों ने उन्हें अपना राजा कह कर सम्बोधित किया और इसी राजा के नाम पर सब काम होने लगे। सूबेदार टीकासिंह रिसाले के सेनापति बनाए गये।

६ जून शनिवार को प्रातःकाल नाना साहब ने अंग्रेज सेनापति को पत्र लिखा कि वे अब उन पर हमला करनेवाले हैं। इस खबर से बुड्ढा सेनापति बहुत घबरा गया। फिर भी उसने चारों ओर घिरी हुई मिट्टी की दीवार पर तोपें लगा कर पन्द्रह २ कदम पर एक आदमी खड़ा कर दिया।

सायंकाल होते-होते आक्रमण शुरू हुआ। सिपाहियों की तोपों से गोले निकल-निकल कर अंग्रेजों के निवास स्थान पर गिरने लगे।

६ जून से लेकर २६ जून तक लगातार विद्रोहियों ने अंग्रेज बस्ती पर गोले बरसाये। इस हमले से अंग्रेजों की दुर्दशा का ठिकाना नहीं रहा। इस समय में अंग्रेजों ने जो कष्ट भोगे वैसे किसी भी संग्राम में किसी जाति ने न भोगे होंगे! उनकी स्त्रियों और बच्चों के कष्ट की सीमा नहीं थीं। फिर भी इस समय इन मुट्ठी भर अंग्रेजों ने जिस वीरता और साहस का परिचय दिया, अपने जीवन को तुच्छ समझ कर स्त्रियों और बच्चों की रक्षा के लिए जो दुःसाध्य कार्य किये, अपने सेनापति की आज्ञा का जिस प्रकार पालन किया वह इतिहास में अमर है।

दिन पर दिन बीतने लगे, अंग्रेजों की शक्ति बहुत क्षीण हो गई। कलक्टर हिलर्सडन बरामदे में खड़े होकर नाना साहब से सुलह की बातचीत करना चाहते थे इतने ही में एक गोला आकर उनको लगा और वे वहीं ढेर हो गये। थोड़ी ही देर में एक गोले से रक्षक दीवाल आकर उनकी स्त्री पर गिरी और वह भी वहीं दब कर मर गई। सेनापति व्हीलर का पुत्र लेफ्टिनेण्ट व्हीलर घायल होकर खाट पर पड़ा था। उसके पास उसके माता-पिता और बहनें बैठी थीं, एक गोला वहाँ आकर गिरा और सेनापति के घायल पुत्र का सिर उड़ गया। इधर उस घिरे हुए क्षेत्र में अन्न न पहुँचने से सब अंग्रेज स्त्री-बच्चे भूख से मरने लगे।

इसी बीच एक पत्र अजीमुल्लाखाँ ने बिना दस्तखत का अंग्रेज सेनापति को भेजा कि यदि वे आत्म-समर्पण कर देंगे तो उन्हें सुरक्षा पूर्वक इलाहाबाद भेज दिया जावेगा। दूसरे दिन अंग्रेज प्रतिनिधि नानासाहब और ज्वालाप्रसाद से एक स्थान पर मिले। तय हुआ कि अंग्रेज अपना स्थान, तोपें, बन्दूकें, रुपया सब यहीं छोड़ देंगे। वे केवल एक-एक बन्दूक और एक-एक कारतूस ले सकेंगे। नानासाहब उन्हें निरापद गंगा तट पर ले जा कर नावों पर बिठा देंगे। खाने के लिए उन्हें आटा भी देंगे। आज रात को उन्हें यह स्थान खाली करना होगा। मगर अंग्रेजों ने रात को स्थान खाली करना स्वीकार नहीं किया।

२७ जून को प्रातःकाल ४५० अंग्रेज स्त्री, पुरुष और बच्चे सतीचौर नामक घाट पर पहुँच कर नावों में बैठ गये। इसी समय एकाएक बिगुल बज उठा और देखते देखते अंग्रेजों पर गोलियों की बौछार शुरू हो गई। कुछ तोपें भी किनारे पर लगा दी गई थीं। इनसे गोले निकल कर उन असहाय लोगों पर गिरने लगे। जो डर से पानी में कूद गये उन्हें रिसाले के सवारों ने पानी में कूद कर काट डाला। गंगा का पवित्र जल निर्दोष स्त्री, बच्चों के खून से लाल हो गया। एक आया एक बच्चे को गोद से चिपटाये किनारे आ गई। सिपाही ने बच्चा माँगा, आया ने देने से इन्कार किया तो तलवार के एक झटके से

आया को काट कर दूसरे झटके से उसने बच्चे को काट डाला।

यह एक ऐसी भयानक और लोमहर्षक घटना थी जिसका इतिहास ने कभी समर्थन नहीं किया और जो गदर के इतिहास में विद्रोहियों के लिए एक भयङ्कर कलंक स्वरूप है।

कर्नल नील

जिस समय कानपुर में अंग्रेजों के ऊपर भयङ्कर विपत्ति उमड़ रही थी उस समय कर्नल नील इलाहाबाद में विद्रोह को दबाने में व्यस्त था। ६ जून को बनारस से चल कर ११ जून को वह इलाहाबाद पहुँचा। वहाँ पहुँचने के बाद उसने इलाहाबाद के विद्रोह को दबाया।

उसके बाद उसने कानपुर जाने की तैयारी की। उसने रास्ते के गाँवों को जलाने और विद्रोहियों को खतम करने के लिए अपने दल भेजे। इन लोगों ने सब तरह के विद्रोहियों के साथ-साथ उन लोगों को भी बिना सोचे समझे फाँसी पर लटका दिया जो निरपराधी थे। खुले आम गाँवों को जलाया और लूटा गया। विद्रोह के इतिहास में कर्नल नील का नाम अपनी बर्बरता के लिए मशहूर है। इस कारण सब किसान और मजदूर गाँवों को छोड़ कर भाग गये और नील की सेना को मजदूर और गाड़ियाँ मिलना असम्भव हो गया। ३० जून को हैवलाक इलाहाबाद आया और उसने वहाँ की कमान सम्हाल ली।

उसके बाद १२ जुलाई को हैवलाक का नानासाहब की सेनाओं से युद्ध हुआ। जिसमें नानासाहब की हार हुई।

बीबीघर का हत्या काण्ड

जब विद्रोही सेना को यह विश्वास हो गया कि अब कानपुर की रक्षा असम्भव है। तब उन्होंने घाट हत्या काण्ड से बचे हुए अंग्रेज स्त्री, बच्चों और आदमियों को जो उस समय बीबी घर नामक इमारत में थे उन सब को काट कर एक कुँएँ में डाल दिया। जब हैवलाक की सेनाएँ कानपुर में पहुँची तो उन औरतों और बच्चों की लाशें उसी कुँएँ में पड़ी हुई थीं और बीबीघर का फर्श खून से गीला हो रहा था।

इसके बाद कर्नल नील ने फांसी की सजा पाये हुए सब व्यक्तियों को बीबी घर में भेज कर उन्हें वह जमा हुआ खून चाटने को मजबूर किया।

झांसी

तारीख ६ जून को झांसी में विद्रोह की चिनगारी लगी, और बारहवीं पल्टन ने खुला विद्रोह कर दिया। उस समय कैप्टन अलेक्जेण्डर स्कीन वहां के पोलिटिकिल एजन्ट थे और कैप्टन गोर्डन झाँसी के डिप्टी सुपरिन्टेण्डेण्ट पोलिस थे।

विद्रोह होते ही सेना ने सब अंग्रेज अफसरों, सैनिकों और क्लर्कों को उनके परिवार सहित मार डाला। इस कार्य के लिए यहां पर जोखन बाग का हत्याकाण्ड गदर के इतिहास में बहुत मशहूर है।

लक्ष्मीबाई

रानी लक्ष्मीबाई का उस समय तक विद्रोहियों या विद्रोह में किसी प्रकार का सहयोग नहीं था रानी ने लिखा है कि—

झांसी स्थित सरकारी फौजों ने अपनी विश्वासहीनता, क्रूरता और हिंसा से समस्त यूरोपियन असैनिक, सैनिक अफसरों, क्लर्कों और उनके स्त्री-बच्चों को मार डाला है और चूंकि रानी के पास तोपों की कमी थी और सिपाही भी उसके पास सौ से अधिक नहीं थे इस कारण वह उनकी कुछ सहायता नहीं कर सकी। इसका उसे भारी खेद है। बाद में विद्रोहियों ने उसके (रानी) और उसके नौकरों के साथ अत्यन्त हिंसात्मक व्यवहार किया उसके पास का सारा धन उन्होंने ले लिया और कहा कि, चूंकि रानी को रियासत का उत्तराधिकार है।

इसलिए उसे यहाँ का प्रबन्ध भी करना चाहिए जब कि हम दिल्ली जा रहे हैं। यदि उसने किसी प्रकार उनकी प्रार्थना को पूरी करने में आनाकानी की तो उसका महल तोपों से उड़ा दिया जावेगा।

इससे पता चलता है कि झांसी में अंग्रेजों की जो नृशंस हत्याएँ हुईं उनमें रानी लक्ष्मीबाई का कोई हाथ नहीं था। विद्रोह के साथ उसकी शुरू में कोई सहानुभूति भी नहीं थी मगर विद्रोहियों की चपेट से बचने के लिए, अपने जीवन और सम्मान को बचाने के लिए उसे

जायदाद और नगद के रूप में बहुत धन देना पड़ा और विद्रोहियों के आदेश को मानना पड़ा। यह जानकर कि जिले में कोई भी ब्रिटिश अफसर नहीं बचा है रानी ने जनता की भलाई से प्रेरित होकर जिले के सब अधिकारियों को ऐसे परवाने भेजे कि वे सब लोग अपना कार्य नियमानुसार करते रहें।

इसी समय ओरछा का दीवान नत्थे खां ने और दतिया राज्य ने रानी के जिले पर आक्रमण किया। रानी ने अंग्रेजों से सहायता की प्रार्थना की। उसने सर राबर्ट हैमिल्टन को १ जनवरी १८५८ को एक पत्र लिखा तथा और भी कई अधिकारियों को पत्र लिखे मगर अंग्रेज टाल-मटोल करते रहे और उसे शीघ्र ही पता लग गया कि उसके किले का घेरा विद्रोही सैनिकों द्वारा नहीं बल्कि ब्रिटिश समर्थित बुन्देलों के द्वारा डाला जा रहा है।

तब ओरछा और दतिया से निपट ने के लिए उसने अपनी फौज तैयार की, गोला बारूद ढलवाये। वह एक अदम्य साहस और महान् उत्साह वाली वीरांगना थी। वह ओरछा और दतिया के द्वारा अपना अपमान सहन नहीं कर सकती थी। फलस्वरूप उसकी नई सेना ने उसके शत्रुओं को मऊ रानी पुर और बरवा सागर में हराया।

इसी समय से रानी विद्रोहियों के साथ हो गई या उनमें फंस गई। उसकी नई सेना में बहुत से विद्रोही भी भरती हो गये थे। इधर उसे अंग्रेजों की नीयत का भी कुछ पता लग गया था, इसलिए उसने अपनी सैनिक तैयारी को जारी रक्खा था।

इसी समय सर ह्यू रोज झांसी के लिए चल पड़ा था और उसका इरादा रानी को अच्छा नहीं मालूम पड़ रहा था। इसलिए अपने सम्मान की रक्षा के लिए उसने लड़ने का ही निश्चय किया। फिर चाहे उसका सभी कुछ नष्ट क्यों न हो जाय।

सर ह्यूरोज ने सागर को जीतकर २२ मार्च १८५८ को झांसी पर घेरा डाल दिया, इसी समय ३१ मार्च को तांतिया टोपे २०००० हजार सेना के साथ झांसी की मदद पर आ रहा था, मगर सर ह्यूरोज ने मार्ग ही में उसे रोक कर उसकी सेनाओं को तीतर बीतर कर दिया।

तात्या के परास्त होते ही सर ह्यू रोज ने अपना सारा ध्यान झाँसी को परास्त करने में लगाया। रानी बड़े उत्साह से मुकाबिला कर रही थी। तात्या के परास्त होने की खबर ने भी उसके मनोबल को कम नहीं किया। अन्त में तीन अप्रैल को अंग्रेजी सेना ने भी झाँसी के किले पर भारी आक्रमण किया। जबाब में रानी की ओर से भी अंग्रेजी सेना पर भारी गोलाबारी की गई। आक्रमणकारियों पर उन्होंने सभी प्रकार के अस्त्र फेंके।

मगर अन्त में किले का दरवाजा टूट गया। अब गली-गली, घर-घर और कमरे कमरे में भयानक युद्ध प्रारम्भ हुआ। न तो किसी ने किसी से शरण मांगी और न दी गई। भारी युद्ध और वीरता पूर्ण दृश्यों के प्रदर्शन के बाद अन्त में किला अंग्रेजों के अधिकार में आ गया। उसके बाद झाँसी में लूट मार हत्याकाण्ड और प्रतिहिंसा का जो भयङ्कर ताण्डव हुआ वह अवर्णनीय है।

मगर स्वाभिमानिनी रानी लक्ष्मीबाई अंग्रेजों के हाथ में पड़कर अपराधी के रूप में अंग्रेजों के सामने पेश नहीं हुई। वह अपने दत्तक पुत्र को लेकर पुरुष के वेष में वहाँ से निकल गई। वफादार अफगान रक्षकों का एक दल उसके साथ था।

रानी रातो रात २१ मील आगे निकल गई। मगर इसी बीच में अंग्रेजी सेना में रानी के निकल जाने की खबर सुनकर कैप्टन फोर्ब्स और लेफ्टिनेंट डौकर ने कुछ सेना अपने साथ लेकर रानी का पीछा करना प्रारम्भ किया। रानी के ४० शरीर रक्षक सेना को कुछ समय रोककर—वहीं मारे गये मगर रानी को निकल जाने का अवसर मिल गया।

रानी लक्ष्मी बाई वहाँ से निकल कर कालपी तांतिया टोपे और दूसरे विद्रोही सरदारों के पास पहुंच गई। मगर सर ह्यू रोजने कालपी को जीतकर उन्हें वहाँ से बाहर करा दिया।

तब ये सब लोग सारी सेना के साथ ग्वालियर पहुंचे, इनके ग्वालियर पहुंचने पर सिंधिया वहाँ से भाग गया और बिना रक्तपात के इन्होंने ग्वालियर के किले पर अधिकार कर दिया मगर यह अधिकार बहुत क्षण स्थायी रहा

और ह्यूरोज ने २० जून को ग्वालियर पर आक्रमण कर उसे जीत लिया।

इसी बीच १७ जून को झाँसी की रानी वीरांगना लक्ष्मीबाई की युद्धक्षेत्र में गोली लगने से मृत्यु हो गई।

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ने युद्ध क्षेत्र में एक वीरांगना कीं भाँति मृत्यु अंगीकार की। अंग्रेज अधिकारियों ने झाँसी के गदर की सम्पूर्ण जिम्मेदार लक्ष्मीबाई को ठहराया है मगर अंग्रेजों ने जो परिस्थितियाँ पैदाकर दी थीं उनमें रानी के लिए इसके सिवा दूसरा मार्ग ही शेष नहीं रह गया था। कुछ भी हो रानी लक्ष्मीबाई के शत्रुओं ने उसकी जो निन्दा की है उसके स्थान पर उसके देश वासियों ने उसके प्रति जो अगाध श्रद्धा प्रकट की है उसने उसके गौरव को बहुत ऊँचे स्थान पर पहुँचा दिया और वह हर प्रकार से निर्दोष सिद्ध हुई है।

अवध और लखनऊ

तीस मई की रात को नौ बजे लखनऊ के निकट मुरिआँव छावनी की सेनाने विद्रोह प्रारम्भ कर वहाँ की अंग्रेज रेजिमेण्ट पर सशस्त्र हमला किया। जिसमें कुछ लोग मारे गये।

२८ जून को विद्रोही दस्ते लखनऊ से २० मील दूर नवाब गंज में पहुँच गये। इनका मुकाबिला करने के लिए तत्कालीन चीफ कमिश्नर सर हेनरी लारेन्स ने फौज की टुकड़ी को भेजा। लेकिन चिनहाट के क्षेत्र में उसकी फौजें बुरी तरह पराजित हुईं। सिर्फ एक दिन की लड़ाई में ३ अफसरों और ११६ सैनिकों को छोड़कर सारी सेना काट डाली गई।

विद्रोही सेना ने इसी समय लखनऊ पर घेरा डाल दिया। चारों ओर आतंक का साम्राज्य छाया हुआ था। अंग्रेज स्त्री और बच्चे जनरल गबिन्स के निवास स्थान पर छिपे हुए थे। खाद्य सामग्री की कमी होने से सब लोगों का राशन आधा कर दिया गया था।

लखनऊ का घेरा

घेरा पड़ने के बाद लखनऊ का सम्बन्ध बाहरी दुनिया से कट गया था। इसलिए अंग्रेजों को [illegible] बनाना पड़ा। मेजर गाल को वेष बदलकर इलाहाबाद भेजा गया मगर वह पहचान लिया गया और मार डाला गया।

और कोई उपाय न देखकर सर हेनरी लॉरेंस ने मच्छी भवन खाली करने का आदेश दिया। रात को एक बजे तक मच्छी भवन के सारे सैनिक निकाल दिये गये। मगर इस ऊहापोह में सर हेनरी लॉरेन्स बुरी तरह घायल हुआ। दूसरे दिन सर हेनरी लारेन्स के कमरे में एक गोला फटा और उसी में वह मरणासन्न स्थिति में पहुँच गया। उसके बाद वह कुछ घण्टे ही जिया मगर उस समय का भी उसने दुरुपयोग नहीं किया और लड़ाई की सारी व्यवस्था के आदेश देता रहा।

३ जुलाई को न्याय कमिश्नर एम० सी० अमन्न के सिर में गोली लगी और वह खतम हो गया। हेनरी लॉरेन्स की जगह पर नियुक्त चीफ कमिश्नर बैंक्स भी २१ जुलाई को गोली खाकर मर गया।

घेरे के भीतर चारों ओर लोग धड़ाधड़ मरने लगे। प्रतिदिन औसतन १५ से बीस तक यूरोपियन गोलियों के शिकार होते थे। चारों तरफ मरे हुए जानवरों और सड़ी हुई लाशों से घोर दुर्गन्ध छा रही थी।

अब विद्रोही लोगों ने घेरे को तोड़ कर भीतर घुसने का प्रयत्न किया। पहला आक्रमण २० जुलाई को किया गया। विद्रोहियों की गोलाबारी लगातार हो रही थी, फिर भी दिन भर की लड़ाई में वे भीतर घुसने में सफल नहीं हुए।

२२ जुलाई को अंग्रेजों का गुप्तचर अंगद खबर लेकर आया कि जनरल हैवलाक ने नाना साहब पर विजय प्राप्त करके कानपुर जीत लिया है और जल्दी यहाँ सहायता आनेवाली है।

जुलाई के अन्त तक अस्पताल की स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गई। हर जगह खून और कृमियों से लथपथ अफसर और सैनिक खाटों पर पड़े कराहते थे! परिचारकों की कमी होने से उनका कोई प्रबन्ध नहीं होने पाता था! कॉलरो [illegible] गन्दगी को और बढ़ा रहा था।

जनरल हैवलाक

इसी समय जनरल हैवलाक ने अपनी सेना के एक भाग को अवध की तरफ रवाना किया। उन्नाव में विद्रोहियों ने उससे भयंकर लड़ाई की, वहाँ से वह किसी तरह आगे बढ़ा तो बशीरतगंज में फिर विद्रोहियों से उसका मुकाबिला हुआ। विजय उसने वहाँ भी पाई मगर उसकी सेना के बहुत आदमी मारे गये। इससे निराश होकर जनरल हैवलाक को वापस पीछे हटना पड़ा।

३ अगस्त को हैवलाक को एक छोटी-सी सेना की सहायता प्राप्त हुई। उससे वह फिर लखनऊ की तरफ बढ़ा। विद्रोही स्थान-स्थान पर मुकाबिला कर रहे थे। हैवलाक को फिर लौट कर वापस कानपुर आना पड़ा। कानपुर आकर उसने बिठूर की लड़ाई १६ अगस्त को लड़ी और उसमें विजय पाई।

इधर लखनऊ का घेरा दिन पर दिन तीव्र होता जा रहा था ग्यारह अगस्त को रेजिडेन्सी का एक भाग धराशायी हो गया और उसमें कई आदमी दब गये।

विद्रोहियों में फैजाबाद के मौलवी अहमदशाह का नाम बड़ा प्रभावशाली था। वह भी इस समय लखनऊ में विद्रोही सेना के साथ था।

सारा अगस्त का महीना इसी घेरे के स्थिति में बीता और घिरे हुए व्यक्तियों की दुर्दशा में किसी प्रकार की कसर न रही।

सितम्बर का महीना अंग्रेजों के लिए बड़ा शुभ प्रारम्भ हुआ, फिर भी विपत्तियों का दौर कम नहीं हुआ था। १४ सितम्बर को प्रतिरक्षा के सबसे साहसी अधिकारी फुल्टन के सिर में गोली लगी और वह वहीं मर गया।

इसी समय जनरल उटरम को एक आवश्यक बुलावा भेज कर ईरान से बुलाया गया और जनरल हैवलाक की मदद पर सेना के साथ भेज दिया गया। २३ सितम्बर को अंग्रेजी सेना लखनऊ के नजदीक आलम बाग पहुँच गई। २५ और २६ सितम्बर को विद्रोहियों ने उनसे कड़ा मुकाबिला किया, जिसमें अंग्रेजी सेना के ५०४ जवान और ३१ अफसर मारे गये।

इन्हीं मृतकों में जनरल नील भी था जो अपने लोमहर्षक अत्याचारों के लिए इतिहास में मशहूर है। आलम बाग पहुँच जाने पर भी अंग्रेजी सेना विद्रोहियों का घेरा तोड़ने में सफल नहीं हुई तथा और सैनिक सहायता की प्रतीक्षा करने लगी।

इसी समय जनरल कैम्पबेल की अधीनता में और सेना १३ सितम्बर को आलमबाग में जा पहुँची। १६ तारीख को उसने सिकन्दराबाग पर चढ़ाई की और १७ तारीख को घेरा तोड़कर उन्होंने घिरे हुए लोगों की रक्षा कर ली। मगर इसके तुरन्त बाद ही जनरल हैवलाक मृत्यु शैय्या पर पड़ गया और २४ सितम्बर को उस की मृत्यु हो गई। उसको अंग्रेज सरकार से "नाइट कमाण्डर ऑफ दी आर्डर" की पदवी मिली थी। इंग्लैण्ड की महारानी ने भरी कामन्स सभा में उसकी प्रशंसा की और उसको १००० पौण्ड वार्षिक की वृत्ति इनायत की।

इसके बाद सर केम्पबैल ने फतेहगढ़ और मैनपुरी के विद्रोह को दबाया और ग्राण्ड ट्रंक रोड जो कई दिनों से बन्द पड़ी थी फिर खोल दिया।

मौलवी अहमदशाह और बेगम हजरतमहल यद्यपि सुरक्षा पूर्वक बचकर निकल गये थे मगर उनकी शक्ति क्षीण हो चुकी थी। चारों ओर विद्रोहियों की आशाएँ खतम हो चुकी थीं और अंग्रेजी फौजों का दबदबा बढ़ गया था। विजय के बाद अंग्रेजी सेना के द्वारा लूट, मार, हत्या और फाँसी के जो दृश्य सब दूर घटित हुए वे अवध क्षेत्र में भी उसी भयङ्करता के साथ घटित हुए।

बिहार

बिहार में विद्रोह का आरम्भ २४ जुलाई से प्रारम्भ हुआ और दानापुर की दसवीं रेजीमेंट और चालीसवीं रेजिमेंट ने विद्रोह का झण्डा ऊँचा किया। उस समय दानापुर की सैनिक कमान जनरल लायड के अधीन थी। विद्रोही सेनाएँ जल मार्ग से आरा की ओर बढ़ने लगीं। लायड के जहाजों ने पीछा करके विद्रोहियों की कुछ नावें डुबोयीं मगर उससे विद्रोहियों का अधिक नुकसान नहीं हुआ और वे आरा बाबू कुँवर सिंह के नेतृत्व में पहुँच गये। लायड ने अंग्रेज सेना की एक टुकड़ी उनका दमन करने को भेजी मगर विद्रोहियों ने बाबू कुँवरसिंह के नेतृत्व में इस टुकड़ी पर छिप कर हमला किया। जिस में सब से पहले जहाज के कप्तान जनरल डनबर की मृत्यु हुई।

४०० आदमियों का यह सारा दस्ता समाप्त हो गया। केवल ५० आदमी बचे जो अत्यन्त घायल अवस्था में वापस पटना पहुँचे।

बाबू कुँअर सिंह

बिहार के विद्रोह का नेतृत्व करने वाला बाबू कुँवरसिंह उस समय यद्यपि ७० वर्ष का था मगर उसमें गजब की होशियारी, बहादुरी और संगठन शक्ति थी। जिला शाहाबाद में बाबू कुँवरसिंह की बहुत बड़ी जमींदारी थी, जिससे करीब तीन लाख रुपये वार्षिक की आमदनी होती थी। मगर पढ़ा लिखा न होने के कारण उसके मुनीम गुमाश्ते उसको बहुत धोखा देते थे और वह बराबर कर्जदार बना रहता था। सन् १८५७ में उसपर १३ लाख का कर्ज हो गया था और उसकी जमींदारी खतरे में पड़ रही थी। ऐसे ही समय विद्रोह का प्रारम्भ हुआ।

कुँवर सिंह के प्रमुख सहायकों में उसका भाई अमरसिंह, उसका भतीजा ऋतुभंजन सिंह, उसका तहसीलदार हरिकिशन सिंह, और उसके मित्र निशान सिंह, दिलावर खाँ और सरनाम सिंह थे।

सिपाहियों ने सरकारी खजाना लूट लिया, कैदियों को छोड़ दिया और शहर पर घेरा डाल दिया। कुँवरसिंह के पास पुरानी तोपें थीं मगर गोला बारूद बहुत कम था। इसलिए पिटे हुए लोहे के गोले और दरवाजों के हैण्डिल काम में लिये गए।

इस घेरे की स्थिति में सिक्ख सैनिकों और उनके जमादार हुकुम सिंह ने अंगरेजों की भारी मदद की और उन्हें मौत के मुँह में जाने से बचाया।

विन्सेएट आयर

इसी समय अंग्रेज सेनानायक विन्सेएट आयर इलाहाबाद जा रहा था। २८ जुलाई को वह बक्सर पहुँचा वहाँ उसे मालूम हुआ कि बागियों की एक बड़ी सेना आने वाली है। बक्सर से वह आरा की तरफ गया। रास्ते में विद्रोहियों ने मुकाबिला किया मगर उनकी बन्दूकें अंग्रेजी तोपों का मुकाबिला नहीं कर सकीं। बीबीगंज के पास कुँवर सिंह ने फिर मुकाबिला किया। एक बार उसको अपनी विजय का आभास हुआ मगर संगीनों की लड़ाई में उसके सैनिकों ने मैदान छोड़ दिया और इसके पश्चात् २ अगस्त को घेरा तोड़कर आरा शहर को मुक्त कर दिया गया।

आरा से कुँवर सिंह जगदीशपुर अपने पैतृक किले में चला गया। जनरल आयर ने वहाँ उसका पीछा किया। भयङ्कर लड़ाई हुई मगर जीत अंगरेजों की हुई। कुँवर सिंह के सब के सब सैनिक मारे गये और जितने घायल थे सब फाँसी पर लटका दिये गये। जगदीशपुर का महल, वहाँ का मन्दिर और इमारतें जमींदोज कर दी गई।

मगर कुँवर सिंह इस हार से बिलकुल निराश नहीं हुआ। बिहार में अपनी स्थिति ठीक न देख यह उत्तर प्रदेश में आ गया और फरवरी १८५८ तक कई जगह छोटी मोटी लड़ाइयाँ लड़ता रहा। मार्च १८५८ में वह आजमगढ़ से २० मील दूर अतरौली गाँव पर टूट पड़ा। कर्नल मिलमेन ने उसका मुकाबिला किया मगर उसे मैदान छोड़कर भागना पड़ा और कुँवर सिंह ने आजमगढ़ पर कब्जा कर लिया। मिलमेन की सहायता के लिए गाजीपुर से कर्नल डेम्स दौड़ा मगर उसकी सेना को भी कुँवर सिंह ने खदेड़ दिया। तब इलाहाबाद से लार्ड मार्ककर तथा सर एडवर्ड लुगार्ड को भेजा गया। इनके संयुक्त मोर्चे के सामने कुँवर सिंह को भागना पड़ा।

कुँवरसिंह फिर अपने नष्ट-भ्रष्ट स्थान की ओर चला। रास्ते में ली ग्राएडकी सेना ने उसपर आक्रमण किया मगर इस बुड्ढे शेर ने अपनी अन्तिम अवस्था में भी प्रत्याक्रमण कर २३ अप्रैल को ली ग्राएड की सेना को भारी पराजय दी और २४ अप्रैल को एक विजेता के रूप में उसकी मृत्यु हो गई।

कुँवर सिंह के पश्चात् उसके भाई अमरसिंह ने बड़ी बहादुरी के साथ अंग्रेजों का मुकाबिला किया और गुरिल्ला लड़ाई में करीब ६ महीने तक उनको छकाता रहा। उसके बाद जंगलों में ऐसा गायब हुआ कि किसी को उसका पता न लगा।

इस प्रकार सन् १८५७ का यह महान् विद्रोह संगठन के अभाव, युद्ध कला की कमजोरी और उचित नेतृत्व की कमी के कारण बुरी तरह से असफल हुआ।

अंजुमन-ए-तरक्की-ए उर्दू

उर्दू भाषा, साहित्य और कविताओं को बढ़ावा देने वाली एक संस्था जिसकी स्थापना सन् १९११ में निजाम हैदराबाद में हुई।

अंजुमन तरक्किए उर्दू की स्थापना मौलवी अब्दुल हक बी० ए० के प्रयत्न से हैदराबाद में सन् १९११ में हुई और वही उसके ऑनरेरी सेक्रेटरी बनाये गये। मौलवी अब्दुल हक उस समय उसमानिया विश्वविद्यालय में उर्दू के प्रोफेसर थे। उर्दू साहित्य के विकास में मौलवी अब्दुल हक और उनकी संस्था ने काफी महत्व पूर्ण भाग अदा किया। अंजुमन की तरफ से उर्दू भाषा में अस्सी से अधिक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। जिनमें प्राचीन कवियों की रचनाओं को उत्कृष्ट कोटि के सम्पादन के साथ प्रकाशित किया गया है। उर्दू का कोष भी इस संस्था के द्वारा सम्पादित किया गया है।

देश के विभाजन के पश्चात् अंजुमन का दफ्तर हैदराबाद से दिल्ली चला आया। तब इसका रूप विशेष रूप से राजनैतिक होगया और देश विभाजन के समय इसकी हिन्दुस्तानी और पाकिस्तानी दो शाखाएँ हो गईं, इसकी भारतीय शाखा का दफ्तर इस समय अलीगढ़ में है। यह अंजुमन सदा मुसलिम साम्प्रदायिकता और मुसलिम लीग का समर्थन तथा कांग्रेस का विरोध करती रही। इसके दो सामयिक पत्र "हमारी जबान" अलीगढ़ से और "उर्दू अदब" लखनऊ से निकलते हैं।

अभिनव-गुप्ता

तंत्र शास्त्र, दर्शनशास्त्र तथा साहित्य के एक सुप्रसिद्ध आचार्य। जो कश्मीर के निवासी थे और जिनका समय सन् ९५० ई० के करीब है।

आचार्य अभिनव गुप्ता, आचार्य आनन्दवर्द्धन की परम्परा में माने जाते हैं। जालन्धर के आचार्य शम्भूनाथ से इन्होंने कौलिक मत के सिद्धान्तों और उपासना तत्व का अध्ययन किया था।

अभिनव गुप्ता ने तंत्र शास्त्र, साहित्य और दर्शन शास्त्र पर ४० से अधिक मौलिक ग्रन्थों की रचना की। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ तन्त्रालोक, तंत्र-विज्ञान के एक वृहद् कोष की तरह है। जिसमें तंत्रशास्त्र के सिद्धान्त तथा प्रक्रियाओं का विस्तार से विवेचन किया गया है। यह २७ अध्यायों में विभक्त है।

दर्शन शास्त्र सम्बन्धी रचनाओं में अभिनव गुप्त की भगवद्गीतार्थ संग्रह, परमार्थसार, ईश्वर प्रत्यभिज्ञ-विमर्शिणी आदि रचनाएँ बड़ी विद्वता पूर्ण मानी जाती हैं। इनके नाट्यशास्त्र सम्बन्धी "अभिनव-भारती" ग्रन्थ में भरत के नाट्यशास्त्र की पाण्डित्यपूर्ण व्याख्या है।

कई विद्वानों का मत है कि महाभाष्य के रचयिता पातंजलि को व्याकरण के इतिहास में, तथा वाचस्पति मिश्र को अद्वैत वेदान्त के इतिहास में जो गौरव प्राप्त है वही गौरव अभिनव गुप्त को तंत्र शास्त्र और अलंकारशास्त्र के इतिहास में प्राप्त है।

अकाली

सिक्खों के छठे गुरु हरगोविन्द सिंह द्वारा स्थापित सिक्ख जाति का एक विशेष सम्प्रदाय।

गुरु हरगोविन्द सिंह ने अमृत सर के स्वर्ण मन्दिर के सम्मुख एक गुम्बजदार बड़े भवन में अकाल-तख्त की स्थापना की थी। इस सम्प्रदाय का सदस्य वही व्यक्ति हो सकता था जो त्याग और वैराग्य की भावना को रखता हुआ अकाल-तख्त का पूर्ण अनुयायी हो।

उस समय मुगल सम्राटों की सिक्ख जाति पर बड़ी क्रूर निगाह रहती थी। इस क्रूर निगाह से जनता की रक्षा करने के लिए इस भवन में गुप्त मंत्रणाएँ होती रहती थीं और इन्हीं मंत्रणाओं के आधार पर "गुरुमतां" अर्थात् गुरु के आदेश निकला करते थे, और बाहरी दुनिया में उन आदेशों का पालन होता था। इस प्रकार धार्मिक संस्था होते हुए भी आत्म-रक्षा के लिए अकाल-तख्त ने राजनीतिक रूप ग्रहण कर लिया था और ये लोग अपने धर्म और सम्प्रदाय की रक्षा के लिए हमेशा सिर देने को तैयार रहते थे।

कुछ समय पश्चात् अकाली दल दो शाखाओं में विभक्त हो गया। एक शाखा गुरु गोविन्द सिंह के नेतृत्व

में खालसा पंथ के नाम से प्रसिद्ध हुई जिसकी स्थापना सन् १६९९ में हुई और दूसरी शाखा सरदार मान सिंह के नेतृत्व में निहंग दल के नाम से प्रकाश में आई। निहंग दल के लोग त्याग वृत्ति के सन्यासियों की तरह रहते थे। ये विवाह नहीं करते थे। इन लोगों के जत्थे बने हुए रहते थे और प्रत्येक जत्थे पर एक जत्थेदार रहा करता था। बहादुर ये इतने होते थे कि प्रत्येक अकाली अपने को सवालाख के बराबर समझता था। महाराजा रणजीत सिंह के समय में अकाली दल चरम उरूज पर था। इस दल में चुने हुए और बहादुर सिपाही होते थे जो मुसलमानी फौजों का डटकर मुकाबिला करते थे। इसी दल की सहायता से महाराजा रणजीत सिंह ने अफगानिस्तान तक अपने राज्य का विस्तार कर लिया था।

कालान्तर में दूसरी धर्म संस्थाओं की तरह अकाली गुरुद्वारों और धर्मशालाओं में भी अवांछित तत्वों के भर जाने से अनाचार और दुराचार की घटनाएँ होने लगीं, तब इन धर्म संस्थाओं से दुराचार को दूर करने के लिए तथा ऐसे दुराचारी महन्तों को हटाने के लिए, अकाली युवकों ने एक सेना तैयार की। इस सेना ने कई स्थानों के गुरुद्वारों पर कब्जा कर लिया। कहीं-कहीं पर इन्हें भमङ्कर यातना और कष्ट भी उठाना पड़ा मगर अन्त में इनके प्रयत्न से सन् १९२५ में सारे गुरुद्वारे "शिरोमणि गुरु द्वारा कमेटी" के अन्तर्गत आ गये।

स्वाधीनता प्राप्ति के कुछ वर्षों बाद अकाली लोगों ने मास्टर तारा सिंह के नेतृत्व में पृथक् पंजाबी सूबे की मांग की। इस पंजाबी सूबा आन्दोलन ने कुछ समय तक पंजाब में बड़ा जोर पकड़ा। हजारों गिरफ्तारियां हुईं, मास्टर तारासिंह के अनशन भी हुए, मगर पंजाबी हिन्दुओं के विरोध और भारत सरकार की विभाजन के विरुद्ध दृढ़ नीति के कारण यह आन्दोलन पूर्णतः असफल होगया।

अनुराधापुर

लंका का एक प्रसिद्ध, प्राचीन और बड़ा नगर। जिसकी स्थापना ईसा से करीब ५०० वर्ष पूर्व हुई। पहले यह लंका की राजधानी था। अशोक के पुत्र महेन्द्र ने बुद्धगया से बोधि वृक्ष की शाखा ले जाकर वहीं पर स्थापित की थी। कहा जाता है कि वह अभी तक बोधि वृक्ष के नाम से वहाँ कायम है।

अनहिलवाड़

गुजरात के सोलंकी राजवंश की राजधानी जिसे मूल राज सोलंकी ने बसाया। यहीं पर सोमनाथ का प्रसिद्ध शिव मन्दिर था जिसे महमूद गजनवी ने सन् १०२५ में तोड़ दिया। उसके बाद भी सोलंकी चालुक्यों ने वापस लौट कर अनहिलवाड़ में काफी समय तक राज्य किया। उनके पश्चात् बवेला राजवंश ने सोलंकियों को पराजित कर यहाँ अपनी राजधानी बनाई। तेरहवीं सदी में अलाउद्दीन खिलजी ने इसे अपने साम्राज्य में मिला लिया।

अबुल-फिदा

सीरिया का प्रसिद्ध इतिहासकार जिसका जन्म दमिश्क में सन् १२७३ में हुआ।

अबुल-फिदा काहिरा के मामलूक सुलतान की सेवा में था। सुलतान उसकी योग्यता से बहुत खुश था। उसने उसको "अल-मलिक अल-मुअय्यिद" की उपाधि और सुलतान पद से विभूषित किया। अबुल-फिदा सुधरे हुए विचारों और साहित्यिक रुचि का व्यक्ति था। उसकी अनेक कृतियों में इस समय सिर्फ दो "मुख्तसर तारीख इल-बशर" नामक ऐतिहासिक और तकवीम-इल-बुलदान नामक गणित की पुस्तकें उपलब्ध हैं।

अर्ध मागधी

बौद्ध और जैन काल में मगध प्रान्त की एक भाषा। जैन धर्म के महान् तीर्थंकर भगवान् महावीर ने अपनी देशना इसी भाषा में की थी।

अर्ध मागधी प्राकृत भाषा की ही एक शाखा है। हेमचन्द्राचार्य्य ने इसे "आर्ष-प्राकृत" भाषा कहा है। जैन परम्परा के अनुसार समवशरण में तीर्थंकर महावीर के मुख से उनकी देशना अर्द्धमागधी में ही उच्चारित होती थी। जिसे सब प्राणी समझ लेते थे। आगे चल कर भगवान् महावीर के शिष्यों ने भी उनके उप-

देशों का संग्रह अर्द्धमागधी ही में किया जो आगम कहलाये। आवश्यकतानुसार समय-समय पर इन जैन आगमों में तीन बार संशोधन हुए। अन्तिम संशोधन महावीर निर्वाण संवत् १००० के करीब वल्लभी (गुजरात) में देवर्धिगण क्षमाक्षमण की अध्यक्षता में हुआ। इस समय सारे आगमों को फिर से संशोधित किया गया। समय समय पर होनेवाले संशोधनों से विषय और भाषा की दृष्टि से कुछ परिवर्तन हुए। इसी से येआगम श्वेताम्बर परम्परा के द्वारा ही मान्य माने जाते हैं। दिगम्बरी के परपम्रा के अनुसार असली आगम लुप्त हो चुके हैं।

अलवर

भारतवर्ष के राजस्थान प्रान्त का मुख्य नगर, स्वाधीनता के पहले एक देशी राज्य की राजधानी।

राजपूत वीर प्रताप सिंह ने सन् १७४० के करीब अलवर राज्य की स्थापना की थी। प्रताप सिंह के दत्तक पुत्र बख्तावर सिंह ने इस नगर की बहुत उन्नति की।

अलवर के दर्शनीय स्थानों में राजा बन्नी सिंह का महल, तारंग सुलतान की दरगाह तथा राजा बख्तावर सिंह का स्मृति स्तम्भ उल्लेखनीय है।

अलीगढ़

उत्तर रेलवे की देहली हवड़ा लाइन पर बसा हुआ उत्तरप्रदेश का मशहूर शहर और जिला।

अलीगढ़ का इतिहास बहुत पुराना है। इसका पुराना नाम कोयल था। सन् ११६४ में कुतुबुद्दीन ने इस नगर पर अधिकार किया। उसके पश्चात् अठारहवीं शताब्दी के मध्यकाल में इस नगर पर जाटों ने अधिकार कर इसका नाम रामगढ़ रक्खा। कुछ समय पश्चात् नजफ़ खाँ नामक एक मुसलमान सरदार ने इसका नाम अलीगढ़ रक्खा।

अलीगढ़ मुस्लिम संस्कृति का भारतवर्ष में शायद सबसे बड़ा केन्द्र है। सुप्रसिद्ध मुस्लिम विश्वविद्यालय भी यहीं पर स्थापित है जिसकी स्थापना में सर सैय्यद अहमद ने बहुत परिश्रम किया था। औद्योगिक दृष्टि से अलीगढ़ तालों के व्यवसाय का भारत में बहुत बड़ा केन्द्र है।

अवधी-भाषा और साहित्य

हिन्दी भाषा के परिवार की एक भाषा जो उत्तर प्रदेश के अवध-प्रान्त में बोली जाती है।

महा कवि तुलसीदास ने अपना सुप्रसिद्ध भक्ति काव्य रामचरितमानस अवधी भाषा में लिखकर इस भाषा को अमर कर दिया है। वैसे रामचरित मानस की भाषा पर संस्कृत का बहुत अधिक प्रभाव है। फिर भी सारा ग्रन्थ अवधी भाषा से प्रभावित हिन्दी में लिखा होने से इस ग्रन्थ का श्रेय अवधी भाषा को ही मिलता है।

इसके अतिरिक्त संत कवि मलूक दास, मलिक मुहम्मद जायसी का पद्मावत तथा खानखाना अब्दुर्रहीम के कुछ काव्य भी अवधी भाषा में लिखे गये हैं। अवधी की आधुनिक काव्य-परम्परा में प्रतापनारायण मिश्र का नाम उल्लेखनीय है।

अष्टाध्यायी

भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध व्याकरणाचार्य्य पाणिनी का संसार प्रसिद्ध व्याकरण ग्रन्थ। जिनका समय ईस्वी सन् से पूर्व पाँचवीं शताब्दी का माना जाता है।

पाणिनी संस्कृत व्याकरण के महान् आचार्य माने जाते हैं। इनके "अष्टाध्यायी" नामक प्रसिद्ध व्याकरण की गणना छः वेदांगों में होती है। इसमें ३६८१ सूत्र और प्रारम्भ में वर्ण समाम्नाय के १४ प्रत्याहार सूत्र हैं।

अष्टाध्यायी में संस्कृत और वैदिक संस्कृत के संगठन और उसके सौष्ठव के सम्बन्ध में व्याकरण सम्बन्धी पूर्ण विचार किया गया है।

असुर नजीर पाल

असीरियन या असुर जाति का एक सुप्रसिद्ध राजा। जिसका समय ईसा से ८८४ वर्ष पूर्व से ८५६ वर्ष पूर्व तक माना जाता है।

असुर नजीर पाल संसार के प्रसिद्ध साम्राज्य-विजेताओं में से एक गिनाजाता है। इसने सबसे पहले अपने पूर्व और उत्तर के देशों पर आक्रमण कर दक्षिण आरमेनिया से सिलीशिया तक अपनी विजय का झण्डा गाड़ दिया। इसके पश्चात् हमात, सीरिया, लेबनान और फ़िनिक नगरों

को जीतता वह दमिश्क पहुँचा, वहाँ के राजा ने भी उसके प्रताप को देखकर आत्म-समर्पण कर दिया ।

असुर नजीर पाल एक उत्कृष्ट सैन्य संगठनकर्त्ता और युद्ध कला में पारंगत था । उसने उस समय की प्रथा के अनुसार अपनी सेना को यान्त्रिक पद्धति से सज्जित किया था।

भारतीय पुराणों में जो क्रूर और अत्याचारी भस्मासुर, बाणासुर, इत्यादि असुरों के नाम आते हैं कहा जाता है कि उनमें से कइयों का उद्गम असुर नजीर पाल से हैं।

असुर नजीर पाल बड़े दुष्ट स्वभाव का क्रूर पुरुष था । विजित हुई प्रजा को भयङ्कर यंत्रणा देकर मारना, स्त्री और बच्चों की हत्या आदि के लिए यह बहुत बदनाम था ।

अनवर

महाकवि जौक की परम्परा में उर्दू भाषा के एक प्रसिद्ध कवि ।

उर्दू के महाकवि जौक की शिष्य-परंपरा में सैकड़ों कवि थे, पर उनमें दाग, आजाद, जफर, जहीद और अनवर विशेष उल्लेखनीय हैं। जहीर और अनवर दोनों सगे भाई थे। कवि अनवर पहले जौक के शिष्य हुए और जौक की मृत्यु के पश्चात् ये महाकवि गालिब से मार्ग दर्शन लेने लगे ।

सन् १८५७ की क्रान्ति के १० वर्ष पश्चात् इन्होंने दिल्ली में एक शायर-गोष्ठी आरम्भ की। जिसमें दाग, जहीर, हाली, सालिक, अजीज इत्यादि कवि एकत्रित होते थे ।

अनवर ने जौक, गालिब तथा मोमिन तीनों ही की शैली को ग्रहण करके उर्दू की एक नवीन शैली का निर्माण किया था।

५७ की क्रान्ति के समय में दिल्ली में बहुत कष्ट पाकर अनवर जयपुर चले गये थे। वहीं ३८ वर्ष की उम्र में उनकी मृत्यु हो गई ।

अनीस

मीर बबरअली अनीस, जिनका जन्म सन् १८०२ ई० में फैजाबाद में हुआ था। ये उर्दू के एक प्रसिद्ध कवि थे।

कवि अनीस मर्सिये के एक प्रसिद्ध कवि थे। इनके लिखे हुए मर्सियों के ६ खंड प्रकाशित हो चुके हैं और बहुत से अभी अप्रकाशित पड़े हुए हैं। गजलों का भी उन्होंने एक दीवान लिखा था।

अनीस ने उर्दू भाषा को परिमार्जित करने का बहुत बड़ा प्रयत्न किया। इनकी शब्द योजना बड़ी सरल और प्रसाद गुण से पूर्ण होती थी। कविता का प्रवाह ऐसा सुन्दर होता था कि पढ़ने में कहीं भी रुकावट नहीं पड़ती थी। उर्दू-साहित्य के इतिहास में इनका स्थान बहुत ऊँचा है और कई लोग इनकी तुलना फिरदौसी और होमर के साथ करते हैं। इनकी कविता का नमूना—

देखना कल ठोकरें खाते फिरेंगे इनके साथ
आज नक्वत से जमीं पर जो कदम रखते नहीं।
जो सखी हैं माजे-दुनियाँ से है खाली उनके हाथ,
अहले दौलत जो हैं वह दस्ते करम रखते नहीं।
अनीस दम का भरोसा नहीं टहर जाओ—
चिराग लेके कहां सामने हवा के चलें।

अपओकी

खित्तन राजवंश का संस्थापक। समय सन् ९०७ से ९२६ तक।

खेताई चीन का एक प्रसिद्ध राजवंश था। जिसने चाऊ वंश के रूप में सन् ९६० से ११२६ तक शासन किया।

मगर खित्तनों के कुछ कबीलों ने चीन से स्वतन्त्र हो आपस में एकता स्थापित कर अपने संघ का नाम स्यांग-लो-को-मूली रक्खा। ये आठ कबीले थे, जिनके अलग-अलग मुखिया हुआ करते थे। ये सब मुखिया मिलकर अपना एक सरदार चुन लेते थे और उसी सरदार के अधीन रहकर काम करते थे।

दसवीं सदी के आरम्भ में जब कि थांग वंश का स्थान शादो तुर्कवंश ने लिया उस समय खित्तनों के इन आठ कबीलों का सरदार अपओकी था। अपओकी एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। चीन के व्यवस्थित शासन को देखकर उसे भी एक राज्य-स्थापन करने की कल्पना सूझी। उसने एक नगर बसाकर वहाँ अपनी राजधानी कायम की, और धोखे से कबीलों के सब सरदारों को मरवा कर स्वयं राजा बन बैठा। अपओकी बहुत शक्तिशाली शासक और सेनापति था।

अपओकी ने उस समय के सबसे शक्तिशाली कबीले बोत्सकाई पर आक्रमण किया और उसकी राजधानी फ्यूचिंग पर अधिकार कर उसका नाम "पूर्वांतान" रखकर अपने पुत्र ताइ-चुंग को वहाँ का राजा बना दिया।

अपओकी के समय में ही किसी चीनी कारीगर ने चीनी संकेत लिपि और चित्रलिपि को मिला-जुलाकर एक नवीन चीनी लिपि का आविष्कार किया था। शासन स्थापित करने के पहले अपओकी का कबीला सालिंग नदी पर चरवाही करता था। जो कि मंचूरिया और मंगोलिया की सीमा पर बहती थी। वहीं पर उसने अपनी राजधानी "भुजंग" का निर्माण किया था।

अमीना बेगम

नवाब अलीवर्दी खाँ की लड़की और सिराजुद्दौला की माता!

प्लासी के युद्ध में सिराजुद्दौला हार कर जब गिरफ्तार हो गया तब मीरजाफर के पुत्र मीरन ने सिराजुद्दौला के गुलाम, मुहम्मद खाँ के द्वारा सिराजुद्दौला का सिर कटवा दिया। मगर वह इतने ही से सन्तुष्ट नहीं हुआ। वह मृत नवाब के शरीर के टुकड़े-टुकड़े करवा कर उन टुकड़ों को हाथी की पीठ पर लदवा कर सारे नगर की प्रदक्षिणा करते हुए अमीना बेगम के मकान के ऊपर ले गया और उसकी माँ के सामने उसके लड़के के जिस्म के टुकड़े डाल दिये। अभागी अमीना बेगम इस भयङ्कर दृश्य को देखकर छाती पीट-पीटकर रोने लगी और बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ी। इस हृदय द्रावक और करुणाजनक दृश्य को देखकर सैकड़ों आदमी रोने लगे। उसके बाद मीरन ने अमीना बेगम, घसीटी बेगम, सिराजुद्दौला की स्त्री लुतफुन्निसा बेगम, उसकी कन्या तथा और दूसरी सत्तर स्त्रियों को नदी में डुबोकर मार डाला।

अम्बिका चक्रवर्ती

सुप्रसिद्ध चटगाँव शस्त्रागार–डकैती के अभियुक्त। १८ अप्रैल सन् १६३० ई० को बंगाल के चटगाँव नगर में करीब सत्तर नौजवानों ने मिल कर वहाँ के सारे शस्त्रागार को लूट लिया। इस डकैती के नेता सूर्य सेन, अम्बिका चक्रवर्ती, अनन्त सिंह, गणेश घोष इत्यादि व्यक्ति थे। इस डकैती के अभियुक्तों में से करीब पन्द्रह अभियुक्त सामने लड़ाई में मारे गये और बहुत से लोग पकड़े गये। पकड़े जाने वालों में से अम्बिका चक्रवर्ती भी थे जिन्हें ट्रिब्युनल अदालत ने कालेपानी की सजा दी।

अपोलोनियस

रोम साम्राज्य के रोड्ज स्थान का रहने वाला वक्तृत्व कला का विशेषज्ञ। जिसने अपने यहाँ राजनीति और वक्तृत्व कला की शिक्षा देने के लिए एक स्कूल खोल रक्खा था।

रोम का मशहूर वक्ता और गद्यलेखक सिसरो और जूलियस सीजर दोनों ने अपोलोनियस के विद्यालय में शिक्षा ग्रहण की थी। सीजर में कुशल वक्ता और राजनीतिज्ञ बनने की स्वाभाविक कामना थी। इसी कामना के बल पर इन विषयों में उसने शीघ्र ही असीम योग्यता प्राप्त कर ली।

अर्जुन

देहली से निकलने वाला हिन्दी भाषा का एक दैनिक पत्र जो सन् १९२३ से निकल रहा है।

हिन्दी के प्रसिद्ध सम्पादक श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति ने प्रारम्भ में अर्जुन को राष्ट्रीय भावनाओं के प्रतीक के रूप में निकाला था। समय २ पर इन्द्रजी के गम्भीर, विचारपूर्ण और संतुलित लेखों से यह अलंकृत होता रहता था। हिन्दी के दैनिक पत्रों में इसकी अच्छी प्रतिष्ठा थी।

इसके बाद कुछ समय पूर्व इसका मैनेजमेंट जनसंघ के समर्थक लोगों ने खरीद लिया। इसके पश्चात् छपाई, सफाई और गेटअप की दृष्टि से इसका स्तर पहले से नीचा हो गया। पर इसके सम्पादकीय लेख जो श्री नरेन्द्र के द्वारा लिखे जाते हैं तथा वे लेख जो आर्यसमाज के पुराने सेवक महाशय कृष्ण के द्वारा लिखे जाते हैं एक खास विचारधारा के समर्थक होते हुए भी, प्रांजल भाषा, प्रौढ़-भाव और संतुलित विचारधारा के कारण उच्चश्रेणी के होते हैं। इसके सम्पादकीय लेखों की भाषा पर पंजाबी का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ता है।

अघोर-सम्प्रदाय

ऐसा अनुमान किया जाता है कि अघोर सम्प्रदाय की स्थापना सुप्रसिद्ध तंत्रशास्त्री गुरु गोरखनाथ के द्वारा की गई और जिसका विशेष प्रचार बाबा मोतीनाथ ने किया।

अघोर पंथ या औघड़ पंथ तान्त्रिक साधना की ही एक शाखा है। इस पंथ के सन्यासी मनुष्य की घृणा प्रवृत्ति पर विजय पाने के लिए ऐसे सब काम करते हैं जिसे साधारण लोग अत्यन्त घृणित समझते हैं। मदिरा का पान करना, मनुष्य की मृतक देह की साधना करना, मुर्दे का माँस खाना, उसकी खोपड़ी में मदिरापान करना तथा घिनौनी वस्तुओं का व्यवहार भी ये लोग करते हैं।

विलियम क्रुक नामक अंग्रेज विद्वान ने अघोर-सम्प्रदाय की उत्पत्ति का मुख्य स्थान राजपूताने के आबू पर्वत को बतलाया है। वहीं से इस मत का प्रचार नैपाल, गुजरात तथा ईरान तक फैला। इसके अनुयायियों में हिन्दू, मुसलमान सभी जातियों के लोग हैं।

अघोर पंथ की तीन शाखाएँ हैं औघड़-पंथ, सरभंगी-पंथ और घूरे-पंथ। इन शाखाओं में औघड़ शाखा के अन्तर्गत बाबा कालूराम औघड़ का नाम विशेष प्रसिद्ध है। इन्हीं के शिष्य बनारस के बाबा किनाराम हुए। जिन्होंने इस सम्प्रदाय का बहुत प्रचार किया, ये "कृमि-कुण्ड" नामक स्थान पर रहते थे।

औघड़ सम्प्रदाय में बाबा किनाराम का नाम बहुत प्रसिद्ध है इन्होंने अपने मत का प्रचार करने के लिए रामगढ़, देवल, हरिहरपुर तथा कृमि-कुण्ड पर चार मठों की स्थापना की। इन्होंने अपने मत का प्रचार करने के लिए "विवेकसार" नामक ग्रन्थ की रचना की। जो कि इस पंथ का एक प्रमुख ग्रन्थ है।

इस सम्प्रदाय के अनुयायी अपना सम्बन्ध गुरु दत्तात्रय के साथ जोड़ते हैं—जिनकी उत्पत्ति मद-कलश के साथ होना बतलाई जाती है। औघड़ पंथ के साधु अपने सिर पर जटा, गले में स्फटिक की माला, कमर में घाघरा, एक हाथ में त्रिशूल और दूसरे में मनुष्य की खोपड़ी रखते हैं। इनकी आकृति बड़ी भयङ्कर होती है।

अघोर पंथ की दूसरी सरभंगी शाखा का प्रचार बिहार के चम्पारन जिले में अधिक पाया जाता है। इस शाखा के आचार्य्यों में बाबा भिनकराम, बाबा बालखण्डी, बाबा टेकमनराम इत्यादि के नाम उल्लेखनीय है।

अलहम्ब्रा

स्पेन के ग्रेनेडा नामक स्थान पर मध्यकालीन मुसलमानी साम्राज्य के द्वारा बनाया हुआ एक राजभवन। जो तत्कालीन भवन-निर्माण-कला और स्थापत्य-कला का एक उच्च आदर्श उपस्थित करता है। समय ई० सन् १३३४—१३९१।

चौदहवीं शताब्दी के अन्त में मोहम्मद पंचम नामक सुलतान ने डारो नदी के किनारे पर एक विशाल दुर्ग का निर्माण करवाया था। इसी दुर्ग में "अलहम्ब्रा आल्ता" के नाम से यह सुन्दर राजभवन लाल ईंटों से बनाया गया है। दीवारों के ऊपर ऊँचे-ऊँचे गुम्बज बने हुए हैं। इसकी दीवालों की रँगाई में गाढ़े और भड़कीले रंगों का उपयोग किया हुआ है। इन रंगों के ऊपर जब सूर्य्य की बाल-किरणें अपना प्रतिबिम्ब डालती हैं, तब इस महल का दृश्य बड़ा लुभावना हो जाता है।

इसी महल में अल-ब्रोको नामक एक सुन्दर सरोवर बना हुआ है, तरह-तरह की मछलियाँ इस सरोवर के सौन्दर्य्य को बढ़ाती रहती हैं। एक तरफ एवांजादोरेज नाम से एक मेहमान भवन बना हुआ है, जिसमें ३० वर्गफुट ऊँचा एक सिंहासन बना हुआ है और जिसका गुम्बज ५० फुट ऊँचा है। दूसरी तरफ के आँगन में एक बहुत ऊँचा फव्वारा सिंह के मुँह से छूटता रहता है।

इस प्रकार मुसलमानी भवन निर्माण-कला का यह सुन्दर नमूना आज भी संसार के दर्शकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता है। हालां कि समय के भीषण प्रहारों से इस दुर्ग की दीवारें नष्ट-भ्रष्ट हो चुकी हैं।

अम्बिका प्रसाद वाजपेयी

हिन्दी भाषा के एक सुप्रसिद्ध पत्रकार। जो कई वर्षों तक कलकत्ते से निकलने वाले भारत-मित्र दैनिक के और उसके पश्चात् "स्वतंत्र" दैनिक के सम्पादक रहे। भारतीय पत्रकार क्षेत्र में ये एक माने हुए पत्रकार हैं। इन्होंने कई पुस्तकें भी लिखी हैं।

अन्सार

हजरत मुहम्मद के मक्का से भाग कर मदीना जाने पर जिन लोगों ने तहेदिल से उनकी मदद की वे "अन्सार" या मददगार कहलाये। मुसलमानों में अन्सारों का दर्जा आज भी प्रतिष्ठा का दर्जा माना जाता है।

अमीर खुसरो

फारसी और उर्दू का एक महान् कवि। अमीर खुसरो का जन्म एटा जिले के पटियाली ग्राम में सन् १२५५ ई० में हुआ था। यह जन्मजात कवि की प्रतिभा लेकर पैदा हुआ था। १२ वर्ष की अवस्था से ही इसने कविता लिखना प्रारम्भ किया था। यह निजामुद्दीन औलिया का शिष्य बना। खुसरो ने अपने युग में कई उत्थान और पतन देखें। इसके जीवन में दिल्ली के सिंहासन पर ११ सुल्तान बैठे। इसने अपनी आँखों के सामने गुलाम राजवंश का उत्थान देखा। फारसी साहित्य के इतिहास में अमीर खुसरों का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। इस साहित्य में इन्हें तूतिये हिन्द की पदवी से विभूषित किया गया था।

ऐसा कहा जाता है कि उर्दू भाषा में कविता करनेवालों में अमीर खुसरो सबसे पहला कवि था। अमीर खुसरो सर्वतोमुखी प्रतिभा का व्यक्ति था। वह कवि, भाषाशास्त्री, गायक और विद्वान् सभी कुछ था। कवि की हैसियत से वह फारसी भाषा के श्रेष्ठतम कवियों—शेखसादी, फिरदौसी, अनवरी, हाफिज की कोटि का था। उसकी लिखी हुई रचनाओं में पाँच दीवान, पाँच मसनवियाँ, पाँच ऐतिहासिक कविताएँ और तीन गद्य कृतियाँ उपलब्ध हैं।

अमीर अली

भारत के भूतपूर्व न्यायाधीश। जिन्होंने सर आगा खाँ के सहयोग से लन्दन से एक पत्र मुस्तफा कमाल पाशा को लिखा। इन दोनों व्यक्तियों ने अपने आपको भारत के मुसलमानों का प्रतिनिधि बतलाते हुए कमाल पाशा द्वारा खलीफा के साथ किये हुए दुर्व्यवहार का विरोध किया और अनुरोध किया कि खलीफा की प्रतिष्ठा को कायम रक्खा जाय और उसके साथ अच्छा व्यवहार किया जाय।

उन्होंने इस पत्र की प्रतिलिपियाँ इस्तम्बूल के कुछ अखबारों को भी भेजीं। दुर्भाग्यवश वह पत्र कमालपाशा के पास पहुँचने के पहले पत्रों में प्रकाशित हो गया। इसका कमाल पाशा ने तुरन्त फायदा उठाया। उसने यह प्रकट किया कि तुर्की लोगों में फूट डालने की यह एक और अंग्रेजी चाल है। आगा खाँ और अमीर अली अंग्रेजों के एजेण्ट हैं इत्यादि। इस्तम्बूल के जिन पत्रों ने इस पत्र को छापा था उन्हें देशद्रोही करार देकर कठोर दण्ड दिये गये और खिलाफत को खतम करने का बिल नेशनल असेम्बली में पास करवा कर एक ऐसी संस्था का हमेशा के लिए खात्मा कर दिया जिसने इतिहास में बड़े प्रभाव शाली पार्ट अदा किये थे।

अमोघ वर्ष प्रथम

कन्नौज का राष्ट्रकूट वंशीय राजा। राजा गोविन्द राज का पुत्र। यह करीब ई० सन् ८१५ में गोविन्द राज की मृत्यु के बाद गद्दी पर बैठा था।

राष्ट्रकूट वंश की कन्नौज शाखा ने दक्षिण में राजा दन्तिवर्मा के नेतृत्व में सन् ५६३ में अपना एक राज्य कायम किया था। इसी से दक्षिण के उस भाग का नाम महाराष्ट्र पड़ा। इस वंश का राज्य करीब चार शताब्दियों तक रहा। इस अवधि में १६ राष्ट्रकूट राजा दक्षिण में हुए।

इसी दन्ति वर्मा की ग्यारहवीं पुश्त में "अमोघ वर्ष" नामक राजा हुआ। जो करीब ई० सन् ८१५ में अपने पिता गोविन्दराज की मृत्यु के बाद गद्दी पर बैठा।

अमोघ वर्ष बड़ा प्रतापी, वीर और विद्वान राजा था! छोटी उमर में ही यह राज्य सिंहासन पर बैठा था। इसने

अपनी राजधानी मान्यखेट जो इस समय निजाम स्टेट में मालाखेड़ के नाम से प्रसिद्ध है बनाई थी। इसने करीब ६२ वर्ष राज्य किया। यह राजा स्वयं बड़ा विद्वान और विद्वानों का आदर करने वाला था। जैन धर्म का उपासक होने के कारण जैन विद्वानों और साधुओं का भी यह बड़ा सम्मान करता था।

इस अमोघ वर्ष प्रथम के समय में अरब के सौदागर सुलेमान ने "सिल्सिलु तवारीख" नामक एक ग्रन्थ ई० सन् ८५२ में लिखा था। इसमें सुलेमान ने बलहरा (उस समय के मुसलमान इतिहासकारों ने इन लोगों को वल्लभराज का वंशज होने से "बलहरा" नाम से लिखा है) का वर्णन करते हुए लिखा है—

"बलहरा का भारत में सबसे बड़ा साम्राज्य है। इनके दूत दूसरे राजाओं के यहाँ बड़ा आदर पाते हैं। ये महाराजा अरब वालों की तरह बड़े दानी हैं। इनके पास विपुल धन तथा हाथी, घोड़े और ऊँटों की सेना है। इनका राज्य दक्षिण कोकण से चीन तक फैला हुआ है। अरब वालों की तरह ये अपनी फौज को समय पर तनखा देते हैं। बलहरा किसी का खास नाम नहीं है पर इनका खानदानी खिताब है जैसा कि ईरान के बादशाहों का खानदानी खिताब खुसरो है। हिन्दुस्तान में और कोई राज्य चोरों से इतना सुरक्षित नहीं है जितना यह राज्य है।"

कुछ इतिहासकारों के मत से अमोघ वर्ष शिलाहार वंश का था और कन्नौज के राष्ट्रकूटों का माण्डलिक था। उसने जैन यतियों को कुछ दान दिये थे। जिनके सम्बन्ध का एक शिलालेख कन्हेरी (कृष्णागिरि) की एक गुफा में शालिवाहन शक ७६५ अर्थात् ई० सन् ८४३ का खुदा हुआ मिला है।

अब्दुल्ला शेख

कश्मीर का प्रसिद्ध नेता शेख अब्दुल्ला जिसने असहयोग क्रान्ति के समय में गाँधी जी का पूरा साथ दिया। काश्मीर में नेशनल कान्फ्रेन्स की स्थापना कर उसका नेतृत्व किया। मगर भारत को स्वाधीनता मिलने के पश्चात् जिसके दिमाग में भारत विरोधी भावनाएँ पैदा हुई। कश्मीर के भारत में विलय का वह विरोधी हो गया। वह या तो कश्मीर को एक स्वतंत्र स्टेट के रूप में रखकर वहाँ का शासक बनना चाहता था और यदि यह न हो सके तो कश्मीर को पाकिस्तान में विलय करने का समर्थक हो गया।

अपनी राज-विद्रोही प्रवृत्तियों के कारण कश्मीर सरकार ने उसे नजरबन्द कर दिया। कुछ समय बाद इस आशा से छोड़ा कि शायद उसकी वृत्तियाँ कुछ रास्ते पर आ जायँ। मगर शेख अब्दुल्ला छूटने के बाद भारत सरकार के विरुद्ध और बौखलाने लगा। तब उसे फिर से गिरफ्तार किया गया और अब उस पर कश्मीर सरकार को उलटने के अभियोग पर अदालत में केस चल रहा है।

अशीकागा शोगनशाही

जापान में शोगन लोगों की एक प्रसिद्ध शाखा जिसने सन् १३१८ से १५५३ तक जापानी सम्राट् की आड़ में जापान का शासन किया।

जापानी सम्राट् की अधीनता में काम करने वाले बड़े-बड़े सामन्तों और जमीदारों में से जो अपने साथ सैनिक शक्ति भी रखते थे, ईसा की दसवीं सदी में एक नया वर्ग पैदा हुआ जो दाइम्यो कहलाता था। दाइम्यो लोग अपनी-अपनी सैनिक टुकड़ियों की मदद से धीरे-धीरे शक्तिशाली होते गये। इन्हीं दाइम्यो में आगे चलकर "योरीतोमो" नामक एक बड़ा प्रतापी पुरुष हुआ यह जापान के प्रसिद्ध मिनामोतो घराने का था। इसी को तत्कालीन जापान सम्राट् ने "ताई-शोगन" या महान सेनापति की उपाधि दी। तभी से शोगन शब्द ने जापान के राजनैतिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर लिया। करीब एक हजार वर्ष तक जापान की वास्तविक सत्ता इन्हीं "शोगन" लोगों के हाथ में रही।

सन् १३१८ में "अशीकागा" नामक एक प्रसिद्ध शोगन हुआ। इसकी स्थापित की हुई "अशीकागा शोगन शाही" सन् १३१८ से १५५३ तक अर्थात् २३५ वर्षों तक जापान पर शासन करती रही।

अहमद शौकी

अरबी भाषा का प्रसिद्ध नाटककार। जिसने "मसरा क्लियोपेट्रा" "मजनूं लैला" "अली-बेअल-कबीर" इत्यादि अनेक नाटक लिखकर आधुनिक अरबी के नाट्य-साहित्य में एक नवीन युग का प्रादुर्भाव कर दिया। समय सन् १९२४।

शौकी की रचनाएँ राष्ट्रीय पृष्ठभूमि पर निर्मित हैं उसने मिस्र के नाटकीय रंगमंच को एक नया जीवन प्रदान कर दिया। पद्य की दिशा में उसने छन्द और तुक को केवल साधन मान कर, उनकी प्राचीन सीमाओं को तोड़ दिया, जिससे उसकी कविताएँ पहाड़ी निर्झर की तरह स्वच्छन्द गति से बहने लगीं। गद्य के क्षेत्र में भी उसने भाषा को सरल और प्रवाही बना कर उसे एक नया रूप दिया। जिससे भाषा की कृत्रिमता और उसका बोझिलपन दूर हो गया।

अहिल्या बाई होलकर

होलकर वंश की इतिहास प्रसिद्ध रानी। मल्हार राव होलकर की पुत्रवधू, खण्डेराव की पत्नी, आनन्द राव शिन्दे की पुत्री, मालीराव होलकर की माता (जन्म सन् १७२५ मृत्यु सन् १७९५)

भारत वर्ष के मध्यकालीन इतिहास में, एक राज्यकर्त्री नारी के रूप में, एक धर्मपरायण महिला के रूप में और एक प्रजावत्सल शासिका के रूप में अहिल्या बाई का नाम बहुत प्रसिद्ध है।

अहिल्या बाई का जन्म सन् १७२५ में मालवा प्रान्त के एक छोटे गाँव में आनन्द राव शिंदे के यहाँ हुआ था। इनका विवाह इन्दौर के होलकर राजवंश के संस्थापक मल्हारराव होलकर के पुत्र खण्डेराव से हुआ था। मगर खण्डेराव का देहान्त छोटी उमर में हो जाने से और मालीराव के अयोग्य होने से राज्य-शासन की बागडोर स्वयं अहिल्या बाई को सम्हालनी पड़ी।

जिस समय अहिल्या बाई ने राज्य-शासन की बागडोर अपने हाथ में ली उस समय भारत की राजनैतिक अवस्था बड़ी डाँवाडोल हो रही थी। एक ओर औरंगजेब की गलत राजनीति से मुगल साम्राज्य का सूर्य अस्ताचल की ओर जा रहा था, दूसरी ओर अंग्रेजी शासन का भी प्रारम्भ काल होने से उसकी व्यवस्था ठीक से जम नहीं पाई थी। चारों तरफ अराजकता के दृश्य, अशान्ति और खून खराबी के नजारे तथा ठगों और पिण्डारियों की लूट-मार से जनता त्रस्त हो रही थी।

ऐसे भीषण अशान्ति के समय में एक विधवा महिला के द्वारा शान्ति-पूर्वक राज्य-शासन का चलाना बिलकुल सम्भव नहीं था मगर अहिल्याबाई ने ईश्वर पर अटल विश्वास रख कर उस असम्भव को भी सम्भव कर दिखाया। यही कारण है कि भारतीय नारियों के इतिहास में अहिल्या बाई का नाम एक धार्मिक नारी और एक राज्यकर्त्री के रूप में अमर अक्षरों में लिखा रहेगा।

एक राज्य-शासिका के रूप में अहिल्या बाई ने होलकर वंश की नींव को जमा कर मजबूत कर दिया। अधिक पढ़ी लिखी न होने पर भी स्वयम्भू ज्ञान से प्रति दिन वह सारा राज्य-कार्य स्वयं देखती थी। प्रजा को क्या-क्या कष्ट हैं उन्हें समझ कर दूर करने का तत्काल आदेश देती थी। उसकी तरफ से दीन, दुःखी और गरीबों को प्रतिदिन खाने को अन्न और जाड़े में वस्त्र बाँटे जाते थे।

अहिल्याबाई का मन्त्री गंगाधर राव सारे राज्य-शासन को अपने हाथ में रखने का इच्छुक था। उसके कहने से पेशवा के चाचा राघोबा दादा ने अहिल्या बाई के राज्य पर आक्रमण कर दिया। अहिल्याबाई ने एक स्त्रियों की फौज तैयार की और खुद उसकी सेनापति बन राघोबा से मुकाबिला करने चली। राघोबा स्त्रियों की फौज को सामने देख कर घबरा गया और लज्जित होकर वापस चला गया।

अहिल्या बाई ने अपने सारे कोष पर तुलसी दल चढ़ा कर उसे कृष्णार्पण कर दिया था। उस खजाने को वह जनता के हित के लिए और धार्मिक कार्यों में खर्च करती थी। हिन्दुस्तान के प्रायः सभी तीर्थ क्षेत्रों में जैसे बनारस, प्रयाग, हरिद्वार, रामेश्वरम्, पण्ढरपुर, महेश्वर, पुष्कर इत्यादि अनेक स्थानों की पवित्र नदियों पर उसने बड़े-बड़े घाट, धर्मशालाएँ, स्कूल और अन्य क्षेत्र बनाये थे, जो आज भी उसकी अमरकीर्ति का डंका बजा रहे हैं। बनारस

का अहिल्या बाई घाट अत्यन्त प्रसिद्ध घाट है जो सुप्रसिद्ध दशाश्वमेध घाट से जुड़ा हुआ है।

जिन लोगों का विश्वास है कि धर्म और राजनीति दोनों चीजें साथ-साथ नहीं चल सकतीं। अहिल्याबाई का जीवन उनके लिए इतिहास का एक ज्वलन्त उदाहरण है जो यह सिद्ध करता है कि धर्म परायण राजाओं या रानियों में राज्य विस्तार की उत्कट लालसा चाहे न रहती हो मगर उनके राज्य में प्रजा सुखी, सन्तुष्ट और नैतिक धरातल से युक्त रहती है। उनकी प्रजा में कष्ट, अशान्ति और आतंक का राज्य अपेक्षाकृत बहुत कम होता है।

अहिल्या बाई के शासनकाल में ही इन्दौर नगर ने बड़ी तरक्की की और वह मालवे का एक प्रसिद्ध नगर हो गया। अपने राज्य के महेश्वर नामक नगर को जो नर्मदा नदी के किनारे बसा है उसने अनेक घाटों और छत्रियों से सुसज्जित कर अत्यन्त दर्शनीय बना दिया। वहाँ पर अहिल्याबाई की स्मृति में एक सुन्दर छत्री भी बनी हुई है।

अक्षयकुमार दत्त

बंगाल के एक प्रसिद्ध दार्शनिक, विचारक और उग्र राजनैतिक नेता जिनका जन्म सन् १८२० में और मृत्यु सन् १८८६ में हुई।

अक्षय कुमार दत्त बंगाली के प्रसिद्ध लेखक और विचारक थे। राजा राममोहन राय की विचारप्रणाली का इनके विचारों पर गहरा असर पड़ा था।

अक्षयकुमार दत्त ने बंगाल की तत्कालीन तत्वबोधिनी नामक पत्रिका का सन् १८४३ ई० से सन् १८५५ ई० तक बड़ी योग्यता से सम्पादन और संचालन किया। उक्त पत्रिका में उन्होंने भारतीय राष्ट्र के उत्थान के लिये और गरीब किसानों के लिये बड़ी जोरदार आवाज उठाई। महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री ने उनके "भारतवर्षीय उपासक सम्प्रदाय" नामक ग्रन्थ के दूसरे भाग की भूमिका में लिखा है कि अक्षय कुमार दत्त पहले लेखक थे जिन्होंने बंगाली युवकों को पाश्चात्य दृष्टिबिन्दु और मनोवृत्ति का परिचय कराया। वे नवीन बंगाल के प्रथम नैतिक आचार्य थे।

अज्ञेय

हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध उपन्यासकार सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन "अज्ञेय"।

स्व० प्रेमचन्द के पश्चात् हिन्दी के उपन्यास क्षेत्र में जो दूसरा दौर चला उसका प्रतिनिधित्व करने वाले कुछ प्रख्यात उपन्यासकारों में श्री "अज्ञेय" भी एक हैं। इनके उपन्यासों ने हिन्दी उपन्यास क्षेत्र को एक नया मोड़ दिया। इनकी अनेक रचनाओं में "विपथगा" "भग्नदूत" "विश्व-प्रिया" "वातायन" इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

अज्ञेयवाद

ई० पू० छठी शताब्दी में "सञ्जय वेलट्ठिपुत्त' द्वारा स्थापित "अज्ञेयवाद" का सिद्धान्त।

ई० पू० की छठीं शताब्दी संसार में धर्म-क्रान्तियों की और नवीन विचार परम्पराओं को जन्म देने वाली शताब्दी थी।

इसी शताब्दी में भारतवर्ष में "सञ्जय वेलट्ठिपुत्त" नामक एक तत्वदर्शी हुआ। इसने "अज्ञेयवाद" नामक सिद्धान्त को जन्म दिया। "सामञ्ञ फल सुत्त" नामक बौद्ध ग्रन्थ में उसका विवेचन करते हुए लिखा है—

"महाराज, यदि तुम मुझसे प्रश्न करोगे कि जीव की कोई भावी अवस्था है? तो मैं यही उत्तर दूंगा कि जब मैं उस अवस्था का अनुभव कर सकूँगा तभी उसके विषय में कुछ कह सकूँगा। यदि तुम पूछोगे कि क्या इसी भव में सब कुछ नष्ट हो जाता है? तो भी मैं यह कहूँगा कि यह मेरा विषय नहीं है, इसी प्रकार मृत्यु के पश्चात् तथागत की स्थिति रहती है या नहीं? रहती है? यह भी नहीं, नहीं रहती है यह भी नहीं। इस प्रकार तमाम प्रश्नों का वह ऐसा ही उत्तर देता था।"

इस प्रकार अज्ञेयवाद किसी भी वस्तु के अस्तित्व या नास्तित्व के सम्बन्ध में कोई निर्णयात्मक उत्तर नहीं देता। वह हर वस्तु को अज्ञेय मानता है।

डॉ० हर्मन जेकोबी का कथन है कि सञ्जय के इसी अज्ञेयवाद के विरुद्ध महावीर ने अपने प्रसिद्ध सप्तभंगी न्याय की दृष्टि की थी। संजय के अज्ञेयवाद और जैनियों के स्याद्वाद में सबसे बड़ा और महत्व का अन्तर यही है कि जहाँ संजय

किसी भी वस्तु के स्वरूप का निर्णय करने में संशयवाद का आश्रय लेता है वहाँ स्याद्वाद बिलकुल निश्चयात्मक ढंग से वस्तु के अनेकान्त स्वरूप को प्रतिपादित करता है।

यूरोपीय दर्शनपरम्परा में जर्मन दार्शनिक कैण्ट, फ्रेंच दार्शनिक काम्ट, हर्बर्ट स्पेन्सर इत्यादि विद्वान अज्ञेयवाद के समर्थक माने जाते हैं।

अलेरिक

प्राचीन जर्मनी में बसने वाली गाथ जाति की पश्चिमी शाखा का एक इतिहास प्रसिद्ध सरदार, जिसका समय सन् ३७१ ई० से ४१० ई० तक माना जाता है।

अलेरिक प्रारम्भ में रोमन सम्राट् की सेना का एक सेनापति था। उसके साहस और शौर्य को देखकर उसकी सेना ने एकबार उसे अपना राजा घोषित कर दिया। तभी से उसका साहस बढ़ गया और स्वतंत्र होकर उसने अपना सैनिक अभियान प्रारम्भ कर दिया। पहले उसने पूर्वी रोम साम्राज्य को तहस नहस कर डाला फिर ग्रीस पर विजय प्राप्त कर वह एपिरस पर चढ़ दौड़ा। रोम के सम्राट् ने घबरा कर “इलिरिकम” का राज्य उसे दे दिया।

सन् ४०८ में आलेरिक ने इटालीपर विजय प्राप्त करते हुए रोम नगर पर घेरा डाल दिया। इस घेरे से रोम के सम्राट् और वहाँ की जनता त्रस्त हो गई और उसे अटूट धनराशि, सोना, चांदी और एक काफी बड़ा भूखण्ड देकर वहाँ से बिदा किया। मगर दूसरे ही साल उसने फिर रोम पर आक्रमण कर दिया। इस बार उसके दबाव में आकर रोम की सिनेट ने रोम साम्राज्य के दो विभाग कर दिये और एक विभाग की सत्ता एक ग्रीक सरदार को दे दी। तभी से रोम का साम्राज्य पूर्वी और पश्चिमी ऐसे दो भागों में बँट गया।

इसके बाद अलेरिक ने अफ्रीका पर अपना अभियान प्रारम्भ किया। मगर रास्ते में तूफान आ जाने से उसका जहाजी बेड़ा नष्ट होगया और वह भी बीमार होकर मर मया।

अलफ्रेड थियेट्रिकल कम्पनी

भारत वर्ष में आधुनिक ढङ्ग की नाटक कम्पनी जिसकी स्थापना सन् १९०६ के करीब पारसी अभिनेता कावसजी ने की थी।

पारसी ढंग की सबसे पहली नाटक कम्पनी सन् १८३० में बम्बई के कुछ पारसी लोगों ने “ओरिजिनल थियेट्रिकल कम्पनी” के नाम से खोली, इसके प्रोप्राइटर सेठ पेस्टनजी फ्रामजी थे। इस कम्पनी के दो प्रसिद्ध नाटक लेखक महमूदमियाँ “रौनक” बनारसी तथा हुसेनीमियाँ “जरीफ” थे।

इसके पश्चात् सन् १८७७ में खुरशेदजी बाली वाला तथा कवास जी ने विक्टोरिया नाटक कम्पनी की स्थापना दिल्ली में की। खुर्शेद जी बालीवाला हास्यरस के बड़े मंजे हुए अभिनेता थे। इस कम्पनी के नाटक लेखक विनायक प्रसाद “तालिब” बनारसी थे।

बाली वाला की मृत्यु पर यह कम्पनी टूट गई और कावसजी ने “अल्फ्रेड नाटक कम्पनी” की स्थापना की। कावसजी करुणा पूर्ण अभिनय में पारङ्गत थे। सन् १९१४ में कावसजी की मृत्यु हो गई और इसके चार पांच बरस-बाद यह कम्पनी भी टूट गई।

इस कम्पनी के नाटक लेखक सैयद मेंहदी हसन “अहसान” और श्री नारायणप्रसाद “बेताब” थे। सैयद मेंहदी हसन ने शेक्सपीयर के “मर्चेण्ट आफ वेनिस” का अनुवाद किया था। तथा गुलनार-फिरोज, चन्द्रावली आदि कई मौलिक नाटक भी लिखे थे।

श्री नारायणप्रसाद बेताब काश्मीरी ब्राह्मण थे। इन्होंने कृष्ण सुदामा, गोरखधन्धा, पत्नी प्रताप, रामायण, महाभारत इत्यादि कई नाटकों की रचना की थी। ये बम्बई से “शेक्सपीयर” नामक एक पत्र भी निकालते थे।

अरोड़ा

भारत वर्ष में बसने वाली एक जाति, जिसका मूल उत्पत्ति स्थान सिंध प्रदेश के “अरोड” नामक स्थान में माना जाता है। इस जाति के लोग अपना गोत्र कश्यप मानते हैं।

सिंध के राजा 'दाहिर'' जो आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में सिंध पर राज्य करते थे अरोड़वंशी थे। सन् ७१२ में मुसलमान आक्रमणकारी मुहम्मद बिन कासिम ने राजा दाहिर को हरा कर सिंध को लूट लिया तब अरोडा जाति के लोग सिंध को छोड़कर देश के भिन्न-भिन्न भागों में फैल गये। जो सिंध के आसपास ही बस गये वे "दाहिरे", जो उत्तर में जाकर बसे वे उत्तराधी और जो दक्षिण में गये वे दक्षिणे कहलाने लगे।

उसके बाद भिन्न-भिन्न शहरों और व्यवसायों के नाम से इनमें बहुत से अल्ल पैदा हो गये। जिनकी संख्या ८०० तक मानी जाती है।

अर्ल

इंग्लैण्ड में उच्च श्रेणी के सरदार लोगों को दिया जाने वाला एक पद जो प्राप्त होने के बाद वंश परम्परागत रूप में चलता था।

इंग्लैण्ड में इस पद का प्रारम्भ सम्भवतः ११४० ई० से होता है जब कि जेफ्री० डे० मेडविल को सब से पहले इसेक्स का अर्ल बनाया गया। उसके पश्चात् सन् १३३७ में और भी कई लोग अर्ल बनाये गये और उन्हें जागीरें भी दी गईं। सन् १३८३ से यह पद वंश परम्परागत न रख कर केवल पिता और पुत्र तक सीमित कर दिया गया। अर्थात् पिता को मिले हुए अर्ल पद का उपयोग उसके पुत्र तक ही हो सकता था, आगे नहीं। बाद में यह पद साधारण लोगो को भी दिया जाने लगा।

अगासी

स्विट्झर लैंड का रहने वाला एक सुप्रसिद्ध प्रकृतिवादी भू शास्त्री जिसका जन्म सन् १८०७ में हुआ और मृत्यु १८७३ में हुई।

रोडोल्फ अगासी एक अत्यन्त सूक्ष्मदर्शी और प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति था। इनकी रुचि प्रारम्भ से ही प्राणिशास्त्र के अध्ययन की ओर थी। इन्होंने जूरिक, हाइडल बर्ग और म्यूनिख की युनिवर्सिटियों में शिक्षा ग्रहण की। हाइडल बर्ग से इन्हें "डाक्टर ऑफ फिलासफी'' की और म्यूनिख से "डॉक्टर ऑफ मेडिसन'' की उपाधि मिली।

सन् १८४६ में प्रो० अगासी ने बोस्टन के लोवल इन्स्टीट्यूट में कई भाषण दिये। इन भाषणों ने इनकी कीर्ति को चारों तरफ फैला दिया। सन् १८४८ में ये हावर्ड विश्वविद्यालय में प्राणिशास्त्र के प्रोफेसर हो गये। इनका लिखा हुआ सब से प्रसिद्ध ग्रन्थ "रिसर्च सु ले प्वांसो फोसिल'' पांच भागों में प्रकाशित हुआ। यह प्राणिशास्त्र का एक महान् ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के सिवाय भी इनके अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए।

अलंकार-शास्त्र

संस्कृत साहित्य में भाषा और काव्य को सज्जित और अलंकृत करने के लिए निर्मित किया हुआ एक विशिष्ट शास्त्र।

छन्द शास्त्र (पिंगल) ही की तरह अलंकार शास्त्र भी साहित्य और कविता को सुसज्जित करने वाला एक शास्त्र है जिसने संस्कृत साहित्य में बहुत महत्व प्राप्त किया है और इस साहित्य के बड़े से बड़े कवियों ने भी इस शास्त्र के विधान को अपनी कृतियों में स्वीकार किया है।

इस शास्त्र के प्रधान आचार्यों में नाट्य शास्त्र के आचार्य भरत मुनि, दण्डी, उद्भट, रुद्रट इत्यादि आचार्य उल्लेखनीय हैं।

अलंकार शास्त्र संस्कृत साहित्य में बहुत प्राचीन काल से काव्य की समीक्षा और कवियों का पथ प्रदर्शन करता आया है।

अलंकार शास्त्र में काव्य के अन्तरंग और बहिरंग दोनों को सुन्दर बनाने के लिए शब्दालंकार और अर्थालंकार दो प्रकार के अलंकारों की व्यवस्था दी गई है। शब्दालंकार से अनुप्रास इत्यादि के द्वारा काव्य के बहिरंग को सजाया जाता है और अर्थालंकार से उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अन्योक्ति, रूपक इत्यादि के द्वारा काव्य के अन्तरंग को प्रभावशाली बनाया जाता है।

इन अलंकारों के अतिरिक्त, काव्य और नाटकों के लिए संस्कृत अलंकार शास्त्र में कई प्रकार के विधान भी बनाये गये हैं। इस अलंकार शास्त्र का एक विधान यह

भी है कि काव्य या नाटक का जो नायक हो वह सब गुणों से अलंकृत और दोष रहित होना चाहिए। नाटक या काव्य का विषय महत होना चाहिए और उसका अन्त सुखान्त होना चाहिए।

अलंकार शास्त्र के इस नियम को मानने के कारण ही हम देखते हैं कि संस्कृत साहित्य के सारे इतिहास में एक भी ट्रेजिडी या दुःखान्त काव्य या नाटक देखने को नहीं मिलेगा। कोई भी ऐसा नाटक या काव्य देखने को नहीं मिलेगा जिसका नायक राजा या कोई महान् व्यक्ति न हो, तथा जिसका विषय महान न हो।

इसका कारण बताते हुए बंगाल के प्रसिद्ध नाटककार द्विजेन्द्र लाल राय लिखते हैं कि—

"इसका कारण यह है कि पूर्व भूखण्ड के कविगण धर्म की महिमा से महिमान्वित थे। उनकी दृष्टि में धर्म का ही महत्व सब से बढ़ कर था। यह बात नहीं कि वे क्षमता के मोह में बिलकुल पड़ते ही नहीं थे। किन्तु वे चरित्र को क्षमता के नीचे स्थान देना पसन्द नहीं करते थे। नाटक और काव्य के नायकों को महान् बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उन राजाओं को जो नायक बनाये जायँ सर्व गुणसम्पन्न होना चाहिए और जब नायक पुण्यात्मा और सर्व गुण सम्पन्न हो तो उसका अन्त भी सुख पूर्ण होना चाहिए। पुण्य की जय और पाप की पराजय दिखानी ही होगी। वरना अधर्म की जीत दिखाने से लोगों के अधार्मिक होने की सम्भावना रहती है।

मगर पाश्चात्य कवि और नाटककारों ने इस प्रकार के नियमों को कोई महत्व नहीं दिया। महाकवि शेक्सपियर भी इस प्रकार के नियमों को मानकर नहीं चले। उनके सर्वोत्कृष्ट नाटकों के विषय अवश्य महान हैं लेकिन उनके नायकों में कहीं भी सर्व गुणसम्पन्नता नहीं पाई जाती। उनके नायकों में किंग लियर एक पागल व्यक्ति है, मैकबेथ नमकहराम है, एण्टोनी कामुक है, जूलियस-सीजर घमण्डी और आथेलो इतना शंका शील है कि बिना प्रमाण के ही अपनी सती स्त्री की हत्या कर डालता है।

किन्तु शेक्सपीयर ने इन सब नायकों के पार्श्ववर्ती नायकों में ऐसे उच्च चरित्र का समावेश किया है कि जिन्होंने उनके नायकों के चारों ओर एक ज्योति फैलाकर उन नाटकों को उज्वल बना दिया है और यही कारण है कि उनके अधिकांश नाटक ट्रेजिडी होते हुए भी संसार के साहित्य में एक अमूल्य निधि हैं।

शेक्सपियर के पार्श्ववर्ती लेखकों ने इस प्रकार के नियमों को और भी नहीं माना है।

एक जमाने में अलंकार शास्त्र की तरह इंग्लैड में भी Poetic Justice (काव्य-न्याय) नाम की एक साहित्यिक नीति थी, किन्तु उससे साहित्य का समुचित विकास होते न देख कर अंगरेजी लेखकों ने एक प्रकार से उसे त्याग ही दिया, क्योंकि उससे मनुष्य-जीवन का एक पहलू साहित्य में अप्रकट रह जाता है जिसकी पाठकों को अपनी समझ से कल्पना कर लेना पड़ती है।

साहित्य के विकास के मार्ग में अधिकाधिक कट्टर नियमों या बंधनों से उसके सर्वतोमुखी विकास में कुछ रुकावटें अवश्य आ जाती हैं। इस प्रकार के कट्टर या कड़े नियमों से दो प्रकार के दोष उत्पन्न हो जाते हैं एक तो यह कि प्रायः सभी नाटक एक सांचे में ढले हुए से रहते हैं दूसरे चरित्र चित्रण में खींचतान होजाने से अस्वाभाविकता या अति मानुषिकता आ जाती है।

फिर भी इस बात को मानने में कोई सन्देह नहीं कि संस्कृत अलंकार शास्त्र की छाया में रह कर भी यहाँ के महा कवियों ने जिस महान् साहित्य का निर्माण किया वह आज भी संसार के साहित्यक क्षेत्र में अपनी प्रतिष्ठा को उसी गौरव के साथ बनाये हुए है।

आ

आइजन होवर

गत महायुद्ध में मित्र राष्ट्रीय सेनाओं का सर्वोच्च कमाण्डर उसके पश्चात् अमेरिका का राष्ट्रपति। ड्वाइट डी० आइजन होवर जिनका जन्म १४ अक्टूबर १८६० को हुआ।

अमेरिका के नवीन इतिहास में राष्ट्रपति आइजन होवर का नाम भी काफी महत्वपूर्ण है। जिस समय द्वितीय महायुद्ध में मित्र राष्ट्रीय सेनाओं की हार पर हार हो रही थी। एक तरफ से जर्मनी और दूसरी तरफ से जापान उनको दबाते हुए चले आ रहे थे उसी समय जनरल आइजन होवर मित्र राष्ट्रीय सैनिक कमान के प्रधान सेनापति दिसम्बर १९४३ में बनाये गये। बाद में इन्होंने अमेरिकन सरकार को सलाह देकर जापान के नागासाकी और हिरोसिमा शहर पर परमाणु बम गिरवाकर सारे युद्ध की हार को जीत में बदल दिया था। इसके अतिरिक्त और स्थानों पर भी अपने युद्ध संचालन की चतुराई इन्होंने प्रदर्शित की थी। उधर रूसी मोरचे पर रूस ने भी जर्मनी को बुरी तरह से खदेड़ दिया था।

जनरल आइजन होवर की इन्हीं सफल कारगुजारियों से मुग्ध होकर अमेरिकन जनता ने प्रेसिडेण्ट ट्रूमेन के पश्चात् सन् १९५३ से ६१ तक आइजन होवर को प्रेसिडेण्ट चुना।

जनरल आइजन होवर का राष्ट्रपति काल भिन्न-भिन्न प्रकार की अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं से भरपूर रहा और इस समय में मानवीय इतिहास अत्यन्त टेढ़े-मेढ़े रास्तों से आगे बढ़ाता रहा।

आइजन होवर का विदेश मंत्री श्री जॉन डलेस एक कट्टर साम्राज्यवादी, अनुदार, कम्यूनिज्म विरोधी और दृढ़प्रतिज्ञ व्यक्ति था। समझौते की भावना को वह पसन्द नहीं करता था। भारत वर्ष की तटस्थता और निर्दलीय नीति को भी वह पसन्द नहीं करता था। इसलिए जब तक वह जीवित रहा भारतीय नीति की आलोचना करता रहा तथा प्रेसिडेण्ट को भी भारत के विरुद्ध भड़काता रहा। एक बार उसने पुर्तगाल के सालाजार के साथ एक संयुक्त विज्ञप्ति निकाल कर गोवा को पुर्तगाल साम्राज्य का अविभाज्य अंग बतलाया था।

जनरल आइजन होवर के समय में विएटनाम और लाओस की समस्या ने भी बहुत जोर पकड़ा। इस सम्बन्ध में भी जनरल आइजन होवर की नीति अधिक सफल नहीं रही और अन्त में इस सम्बन्ध में एक कमीशन बैठाकर पार्थट लाओ, राजकीय पार्टी में समझौता हुआ।

इन्हीं के शासनकाल में कांगो में जनक्रान्ति हुई और जनरल लुलुम्बा ने वहाँ से बेलजियम को हटा कर स्वतन्त्र सरकार की स्थापना की।

इस सम्बन्ध में अमेरिका और पश्चिमी देशों ने दुहरी नीति से काम लेना प्रारम्भ किया, ऊपर से तो ये स्वतंत्र सरकार का समर्थन करते थे और भीतर ही भीतर बेलजियम और जनरल शोम्बे को भड़का कर वहाँ पर विद्रोह की ज्वाला पैदा करते थे। इसी दरमियान वहाँ पर जनरल लुलुम्बा की हत्या कर दी गई। यह हत्या किसने की और इस षड़यंत्र में कौन लोग शामिल थे इसका ठीक पता तो नहीं लगा मगर इसमें अमरिका और पश्चिमी देशों की बड़ी बदनामी हुई और कम्युनिस्ट देशों ने तो खुल्लम खुल्ला इसका आरोप पश्चिमी देशों पर लगाना प्रारम्भ किया।

राष्ट्रसंघ ने कांगो की व्यवस्था, शान्ति स्थापना के लिए अपने अध्यक्ष श्री हैमरशील्ड को भेजा था, हैमरशील्ड के सहायक भारत के श्री राजेश्वर दयाल थे। इन लोगों ने कांगो में शान्ति स्थापित करने के लिए बहुत प्रयत्न किया मगर कहा जाता है कि पश्चिमी देशों की कूट नीति के कारण इन लोगों को सफलता नहीं मिली और अन्त में बेचारे हैमरशील्ड का भी वहीं पर बलिदान हो गया। जिस हवाईजहाज पर वे जा रहे थे उसमें दुर्घटना हो गई, वह गिर पड़ा और हैमर शील्ड की मृत्यु हो गई। कहा जाता है कि इस काण्ड के पीछे भी कोई षड्यंत्र था और यह घटना आकस्मिक नहीं प्रत्युत किसी सुसंगठित योजना का परिणाम थी।

विश्व में शांति स्थापन, निरस्त्रीकरण तथा जर्मनी सम्बन्धी समस्या का हल करने के लिए पेरिस में एक सम्मे-

लन हुआ था जिसमें प्रेसिडेण्ट आइजन होवर, मैकमिलन, खुश्चेव और प्रेसीडेण्ट डी-गाल चारों शामिल थे। ठीक इसी समय शायद अमेरिका का एक जासूसी विमान रूस ने मार गिराया जिससे रूस में बहुत क्षोभ फैल गया इस कारण इस सम्मेलन में खुश्चेव ने ऐसा रुख अपनाया जिसे इन सब लोगों ने अत्यन्त अपमान पूर्ण समझा और सम्मेलन भंग हो गया।

आइजन होवर और खुश्चेव दोनों ने इस बात की कोशिश की कि अमेरिका और रूस के बीच का तनाव कम हो जाय। इस तनाव को कम करवाने का पं० जवाहर लाल नेहरू ने भी बहुत प्रयत्न किया, मगर दिन २ की घटनाओं और अन्तर्राष्ट्रिय परिस्थितियों से पारस्परिक अविश्वास इतना बढ़ा हुआ था कि समझौते की सभी चेष्टाएं विफल हो गई और तनाव बढ़ता गया।

अमेरिका में अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का हल करने के लिए राष्ट्रसंघ की एक उच्चस्तरीय बैठक हुई थी। जिसमें प्रायः सभी देशों से वहाँ के शासक इस बैठक में शामिल होने को आये थे। रूस से खुश्चेव और भारत से पं० जवाहरलाल नेहरू भी इस सम्मेलन में आये थे। खुश्चेव ने हैमरशील्ड को हटाने और राष्ट्रसंघ में तीन अधिकारी रखने का प्रस्ताव किया जो नामंजूर हुआ और भी पारस्परिक मतभेद इतना तीव्र हुआ कि जिससे उत्तेजित होकर खुश्चेव ने जूता उठाकर टेबिल पर पीटना प्रारम्भ किया।

मतलब यह कि इच्छा करते हुए भी अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को कम करने में आइजन होवर को सफलता नहीं मिली।

भारतवर्ष और अमेरिका के सम्बन्ध भी जब तक जॉन डलेस विदेश मंत्री रहा, साधारण स्तर पर ही रहे। डलेस ने भारत की अपेक्षा पाकिस्तान का ज्यादा समर्थन किया और उसको सैनिक सामग्री बराबर मिलती रही।

मगर डलेस की मृत्यु के बाद पं० जवाहरलाल नेहरू के अमेरिका जाने पर और प्रेसिडेण्ट आइजन होवर की भारत यात्रा पर दोनों देशों की पारस्परिक भावनाओं में बहुत सुधार हुआ।

जनरल आइजन होवर की भारत यात्रा भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण प्रसङ्ग है। स्वाधीनता के पश्चात् इस गणतंत्र ने अभी तक तीन बड़े-बड़े स्वागत प्रोग्रामों का आयोजन किया था। पहला रूस के प्रधान मंत्री बुलगानिन और खुश्चेव के आगमन के समय, दूसरा अमेरिका के प्रेसिडेण्ट आइजन होवर के समय और तीसरा इंगलैण्ड की साम्राज्ञी एलिजाबेथ के समय। तीनों स्वागत भव्य थे, जनता की अनोखी भावनाएं तीनों स्वागतों में साकार हुईं। मगर कहना पड़ेगा कि प्रेसिडेण्ट आइजन होवर के स्वागत के समान अनोखा दृश्य दिल्ली ने पहली बार देखा था। उस स्वागत की यादगार न तो आइजन होवर भूलेंगे न भारत भूलेगा।

इसके पश्चात् आइजन होवर जब तक राष्ट्रपति रहे भारत के प्रति उनकी नीति अत्यन्त सौहार्द्रपूर्ण रही।

जापान के अन्तर्गत भी आइजन होवर की नीति प्रायः असफल रही। उन्हीं के समय में जापान में बड़े-बड़े विद्रोह हुए। आइजन होवर के समर्थकों को वहाँ की सरकार से निकाल दिया गया और परिस्थिति इतनी विकृत हो गई कि प्रेसिडेण्ट को अपनी जापान यात्रा स्थगित करनी पड़ी।

वैसे व्यक्तिगत रूप से आइजन होवर एक योग्य, दूरदर्शी, बुद्धिमान, सैनिक होते हुए भी मीठे स्वभाव के सभ्य व्यक्ति हैं। मगर इनके शासन में संसार की अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ इतनी उलझनपूर्ण बनी रहीं कि पूरा प्रयत्न करने पर भी सफलता उन्हें नहीं मिली।

आइज़क न्यूटन

संसार का एक महान् वैज्ञानिक। गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त का अन्वेषणकर्ता।

सर आइज़क न्यूटन का जन्म सन् १६४२ में लिंकनशायर के एक गाँव में हुआ था। बचपन से ही न्यूटन को गणित के सवाल हल करने और छोटे-छोटे यन्त्र बनाने का बड़ा शौक था। उसने अपने घर की छत पर एक छोटी-सी हवा की चक्की बनाई थी। वह उसी को अपने खिलौने के काम में लिया करता था। मगर जब हवा न चलती थी तो उसका खेल बन्द हो जाता था। इस बाधा को दूर करने के लिये उसने उसमें एक छोटा-सा ऐसा पहिया लगाया जो चूहे के पैरों से घूम सके। उसी पहिये के पास उसने एक चूहादानी रखी और चूहादानी के चूहे से उस

पहिये का सम्बन्ध जोड़ दिया। जब चूहा घूमता था तो चक्की भी चलती थी। इसी प्रकार उसने पानी से चलनेवाली एक बड़ी घड़ी भी बनाई और कुछ धूप-घड़ियों का भी निर्माण किया।

जब न्यूटन इक्कीस वर्ष का था और एक दिन बगीचे में घूम रहा था उस समय उसने सेव के वृक्ष पर से एक फल को गिरते हुए देखा। उसे तत्काल विचार आया कि यह फल नीचे ही क्यों गिरता है? ऊपर क्यों नहीं उड़ जाता और इसी विचार में से उसने गुरुत्वाकर्षण के उस महान् सिद्धान्त की खोज की जिसके आधार पर यह सारा विश्व टिका हुआ है। अन्त में उसने निश्चय किया कि पृथ्वी के ही आकर्षण से चन्द्रमा अनन्त आकाश में उड़ कर नहीं चला जाता और पृथ्वी भी सीधी रेखा में न चल कर सूर्य के केन्द्रीय आकर्षण से घूमती रहती है। यह आकर्षण सारे भौतिक संसार में व्याप्त है। इसका प्रभाव वस्तुओं के गुरुत्व और उनकी दूरी पर निर्भर करता है। अधिक भारी चीज कम भारी चीज को आकर्षित करती है और वस्तुएँ जितनी दूर होती हैं उतना ही उनका आकर्षण कम होता जाता है। इस सिद्धान्त से उसने ग्रहों के घूमने की व्याख्या भी की।

न्यूटन की खोज का क्षेत्र बहुत विस्तृत था। वह संसार के अत्यन्त प्रतिभाशाली पुरुषों में गिना जाता है। प्रकाश के सम्बन्ध में भी उसने बड़े महत्वपूर्ण अनुसन्धान किये। सूर्य का प्रकाश सात रंगों का मिश्रण है इस बात की खोज भी उसी ने पहले-पहल की थी।

यद्यपि न्यूटन की गवेषणाएँ बड़ी महत्वपूर्ण थीं और संसार ने उसको बहुत मान दिया फिर भी वह अपने ज्ञान के सम्बन्ध में कभी अहंकार की बात न सोचता था। उसने एक स्थान पर लिखा है—

"मैं नहीं जानता कि मेरे परिश्रम के सम्बन्ध में संसार का क्या विचार होगा लेकिन मैं स्वंय तो यह समझता हूँ कि मैं केवल एक बच्चे की भाँति संसार समुद्र के तट पर खेलता रहा हूँ। कभी एक अधिक साफ़ पत्थर मिल गया, कभी एक अधिक रंग बिरंगी कौड़ी मिल गई किन्तु सत्य का अनन्त समुद्र मेरी थाह से बाहर रहा।"

आइख मेन

नाजी जर्मनी का एक प्रसिद्ध अधिकारी, हिटलर का प्रिय-पात्र जिसने हिटलर के आदेश से हजारों यहूदियों को मौत के घाट उतार दिया। द्वितीय महायुद्ध के कई वर्षों बाद यह इजराइल के द्वारा पकड़ा गया और इसे मौत की सजा दी गई।

आइवन महान

मास्को का ग्रेण्ड ड्यूक जो सन् १४८० ई० के लगभग हुआ।

जिस समय आइवन ड्यूक हुआ उस समय मंगोलों के प्रसिद्ध खान कुबलाई खाँ की मृत्यु हो चुकी थी और रूस के पश्चिमी क्षेत्र उजबेकिस्तान इत्यादि में सुवर्ण कबीले के खानों का शासन था। सुवर्ण कबीले के ये खान अपने चारों तरफ़ के क्षेत्र में हमेशा आक्रमण और लूटमार करते रहते थे। रूस के अमीरों ने भी कुबलाई खान की मृत्यु के बाद करीब २०० वर्षों तक सुवर्ण कबीले वालों को खिराज दिया। मगर पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में जब कि सुवर्ण कबीले का साम्राज्य कमजोर पड़ रहा था रूसी अमीरों के नेता आइवन महान ने उनको खिराज देने से इन्कार कर दिया। इसी समय से आइवन महान् की मातहती में रूसी साम्राज्य का प्रारम्भ हुआ।

आइसलैण्ड

उत्तरी अटलांटिक में आर्कटिक वृत्त के निकट एक द्वीप; क्षेत्रफल—३९,७५८ वर्गमील; जनसंख्या १,६६,००० (१९५८), राजधानी—रेकजाविक; भाषा—आइस लैंडिक; धर्म—इभान जेलिकल लुदरन; सिक्का—क्रोन; राष्ट्रपति—असगीर असगीरसन (१९५६); प्रधान मन्त्री—ओलाफ़र थार्स (१९५६ से); शासन स्वरूप—गणतंत्र।

मुख्य नगर—अफुरेरि, अफ़नर्फजोरौ, कोपा भौगर।

दुनिया के ज्वालामुखी वाले देशों में इस देश का स्थान अग्रगण्य है। यहाँ की जमीन ऊँची-नीची तथा बंजर है। यहाँ का मुख्य व्यवसाय मछली पकड़ना और उसका

निर्यात करना है। यह १६४४ ई० में डेनमार्क से स्वतंत्र हुआ। यहाँ की पार्लमेण्ट के दो सदन हैं। राष्ट्रपति का चुनाव चार वर्षों के लिये होता है। आइसलैण्ड के पास उसकी अपनी कोई सेना नहीं है परन्तु यह उत्तर अटलांटिक संधि-संगठन का सदस्य है। सन् १६५१ ई० की संधि के अनुसार संयुक्त राज्य अमेरिका इस देश पर अपनी स्थल, वायु तथा जल-सेना रखता है। जून में यहाँ की पार्लमेण्ट का नवीन निर्वाचन हुआ।

आर्क राइट (Ark Wright)

इंग्लैण्ड का प्रसिद्ध इन्जीनियर जिसने सन् १७६६ में सूत कातने की मशीनों का आविष्कार किया।

आइरिन

रोम के पूर्वी साम्राज्य की साम्राज्ञी। जो सम्राट् शार्लमेन के समय में कुस्तुनतुनिया की गद्दी पर बैठी थी। आइरिन ऐसी स्त्री थी जिसने साम्राज्ञी बनने के लिये खुद अपने ही लड़के की हत्या कर डाली थी। वह शार्लमेन के शासन को पसन्द नहीं करती थी। इसीलिये पोप ने शार्लमेन के सिर पर सम्राट का ताज पहना कर कुस्तुनतुनिया से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया।

आइनस

जापान देश के मूल आदिम निवासी।

जापान के मूल आदिम निवासियों को आइनस कहते हैं। ये लोग गोरे होते हैं और इनके बदन पर बाल बहुत होते हैं। साधारण जापानियों से ये बिल्कुल भिन्न प्रकार के होते हैं। जापान के मौजूदा निवासी मंगोलियन जाति के हैं। इनके पूर्वज कोरिया या चोजेन से आये थे। आजकल आइनस लोग जापान के उत्तरी हिस्से में रहते हैं।

आउटरम

सन् १८५७ के विद्रोह में लखनऊ के ऊपर विद्रोहियों के घेरे के समय घिरी हुई अंग्रेजी-सेना का सम्बल।

सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य-युद्ध में जिस समय अंग्रेजी फौजों को विद्रोही सैनिकों ने लखनऊ में घेर लिया उस घेरे की स्थिति के समय अंग्रेजों के साहस और सहनशक्ति का एक उज्ज्वल उदाहरण अंग्रेज जनरल आउटरम और हेवलॉक ने उपस्थित किया था।

आक्टर लोनी

बादशाह शाहआलम के समम में दिल्ली का रेजिडेण्ट और ईस्टइण्डिया कम्पनी की सेनाओं का सेनापति। जिस समय ईस्टइण्डिया कम्पनी की सेनाओं ने नैपाल पर हमला किया उस समय आक्टर लोनी लुधियाना मोर्चे का सेनापति था।

ऑक्स

इंग्लैण्ड में आठवें हेनरी के शासनकाल में धर्ममठों के तोड़ देने पर होने वाले विद्रोह का नेता लॉर्ड ऑक्स!

हेनरी अष्टम् के समय में इंग्लैण्ड के अन्दर लगभग छः सौ गिरजाघर थे। इन मठों के अन्दर बहुत से योगी और योगनियाँ रहा करते थे और इन मठों के पास बड़ी तादाद में स्थावर और जंगम सम्पत्ति भी रहती थी। मगर धीरे-धीरे इन मठों में रहने वाले साधु और साध्वियों का आचरण गिरने लगा और वे आरामतलब होकर विलासी जीवन व्यतीत करने लगे। इसलिये इन धर्मकेन्द्रों की जाँच करने के लिये अष्टम हेनरी ने एक कमीशन नियुक्त किया। इस कमीशन ने धर्म-मठों के विरुद्ध अपनी रिपोर्ट दी। इस पर अष्टम् हेनरी ने सन् १५३६ में पार्लमेण्ट से इन धर्ममठों को तोड़ देने का एक कानून पास करवाया और सन् १५३६ से १५३६ तक इंग्लैण्ड के सब धर्म मठों को बन्द कर उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली।

इन धर्म मठों के बन्द कर दिये जाने से उनमें रहने वाले साधु और महन्तों ने जनता में इस कानून के खिलाफ बड़ा प्रचार किया। इस प्रचार से करीब तीस हजार आदमी इन मठों के पक्ष में हो गये। इनका नेता लार्ड ऑक्स था। उसने इस बगावत को एक धार्मिक यात्रा (Pilgrimage of Grace) बतलाया। इन लोगों ने

अपने झण्डे पर बाइबिल के वाक्य और क्रॉस के पवित्र चिन्ह लगा रखे थे। यह सारा जुलूस लन्दन की तरफ रवाना हुआ। राजा हेनरी को जब इसका समाचार मिला तो उसने इसका दमन करने के लिये एक सेना भेजी और उस जुलूस के नेता लॉर्ड ऑक्स तथा उसके कुछ साथियों को पकड़ कर फाँसी पर लटका दिया!

ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी

इंग्लैण्ड का संसार प्रसिद्ध विद्यापीठ।

ऑक्सफोर्ड विश्व विद्यालय की स्थापना इंग्लैण्ड में द्वितीय हेनरी के शासन काल में हुई। इंग्लैण्ड के छात्रों तथा शिक्षकों ने पेरिस के विश्वविद्यालयों से असन्तुष्ट होकर इसकी स्थापना की थी।

आगे जाकर इस विश्वविद्यालय की दुनिया में बहुत कीर्ति हुई और आज भी यह विश्वविद्यालय संसार के सर्वप्रमुख ज्ञानपीठों में से एक माना जाता है!

आकलैण्ड

भारतवर्ष में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का गवर्नर जनरल जिसने १८३६ से ४२ तक शासन किया।

आकलैण्ड के शासन काल में अफगानिस्तान की घटनाओं का बड़ा महत्व है। उस समय अफगानिस्तान का अमीर दोस्त मुहम्मद था।

उस समय अफगानिस्तान की स्थिति बहुत खराब हो रही थी। एक तरफ से पंजाब के राजा रणजीत सिंह अफगानिस्तान की सीमाओं में अपने राज्य का विस्तार कर रहे थे। उन्होंने अफगानों पर आक्रमण करके पेशावर छीन लिया। दूसरी तरफ अब्दाली वंश का सरदार शाहशुजा अपने खोये हुए राज्य की प्राप्ति के लिये दोस्त मुहम्मद के विरुद्ध षड्यन्त्र कर रहा था। इन्हीं सब कारणों से घबरा कर दोस्त मुहम्मद अंग्रेजों से सन्धि करना चाहता था मगर लार्ड आकलैण्ड ने उसकी सन्धि की प्रार्थना पर कोई ध्यान नहीं दिया क्योंकि वह दोस्त मुहम्मद के लिये रणजीत सिंह से शत्रुता करना नहीं चाहता था तथा रूस और ईरान के विरुद्ध वह अफगानिस्तान के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप भी नहीं करना चाहता था।

तब मजबूर होकर दोस्त मुहम्मद ने रूस के साथ सन्धि कर ली और रूस ने अपना राजदूत काबुल में भेज दिया।

इससे नाराज होकर आकलैण्ड ने नवम्बर १८३८ में सर जान कीन के सेनापतित्व में अफगानिस्तान पर आक्रमण कर दिया। अंग्रेजी सेनाएं बोलन दर्रे को पार करती हुईं २६ मार्च १८३९ को क्वेटा पहुँची। ७ अगस्त १८३९ को वे काबुल में प्रविष्ट हुईं। दोस्त मुहम्मद चार दिन पहले ही वहाँ से भाग गया था। नवम्बर महीने में उसे गिरफ्तार करके कलकत्ता भेज दिया गया और शाह शुजा को अफगानिस्तान का अमीर बना दिया गया।

मगर शाहशुजा वहाँ पर इतना बदनाम था कि उसका शासन दिन प्रति-दिन असन्तोष को बढ़ा रहा था। शीघ्र ही यह असन्तोष पराकाष्ठा पर पहुँच गया। जिसके परिणामस्वरूप कुछ अफगानों ने अंग्रेज राजदूत बर्न्स को मार डाला। चारों ओर विद्रोह की आग भड़क उठी। दोस्त मुहम्मद के पुत्र मुहम्मद अकबर खाँ ने इसका नेतृत्व किया। २३ नवम्बर १८४१ को अफगानों ने बमरू नामक स्थान पर अंग्रेजी सेना को बुरी तरह से परास्त किया। तब भयभीत होकर अंग्रेज सेनापति मेकनाटन ने मुहम्मद अकबर खाँ के साथ एक अपमानजनक सन्धि की जिसके अनुसार मेकनाटन ने अफगानिस्तान से अपनी सारी सेनाएं हटा लेने तथा दोस्त मुहम्मद तथा दूसरे बन्दी अफगानों को मुक्त कर देने का वचन दिया। शाह शुजा को गद्दी से हटा दिया गया। इसके बदले में अफगानों ने वचन दिया कि वे अंग्रेजी सेनाओं को सरदारों के रक्षण में सीमा पार करा देंगे मगर इसी बीच जनरल मेकनाटन की हत्या कर दी गई और १ जनवरी १८४२ को अंग्रेजों ने अपने अस्त्र-शस्त्र अफगानों के सामने रख दिये। ६ जनवरी को सोलह हजार खदेड़ी हुई अंग्रेज सेना पराजित और अपमानित होकर अपने भाग्य को रोती हुई वापस लौटी। मगर रास्ते में अफगानों ने इस निहत्थी सेना पर हमला करके सारी सेना को काट डाला। केवल एक डॉक्टर ब्राइडन नामक व्यक्ति इस भीषण हत्याकाण्ड की करुण कहानी को सुनाने के लिये जीवित लौटा। इस हत्याकाण्ड का कारण यह

बतलाया जाता है कि जब अंग्रेजी सेनाओं ने अफगानिस्तान को खाली करने का वचन दे दिया तब काबुल की सेनाएं तो देश को छोड़ कर चल दीं मगर कन्धार, गजनी और जलालाबाद की सेनाओं ने वहाँ से लौटने से इन्कार कर दिया । अंग्रेजों के इसी विश्वासघात से क्रुद्ध होकर अफगानों ने यह हत्याकाण्ड किया ।

इस प्रकार लॉर्ड आकलैण्ड की मूर्खतापूर्ण नीति से अंग्रेजी सेना को ऐसा भयंकर अपमान, पराजय और हत्याकाण्ड देखने को मिला जो शायद सारे अंग्रेजी साम्राज्य के इतिहास में उसे देखने को न मिला होगा ।

आक्सफोर्ड

इंग्लैण्ड की रानी एन के समय में उसके मन्त्रिमण्डल में टोरी दल का मन्त्री ।

रानी एन की मृत्यु के पश्चात् इंग्लैण्ड की राजगद्दी का सवाल उपस्थित होने पर इंग्लैण्ड में दो दल हो गये । सन् १७०१ के एक्ट आफ सेटलमेण्ट के अनुसार पहले जेम्स की नतिनी सोफिया के पुत्र हूनोवर के जार्ज को यह गद्दी मिलना चाहिये थी परन्तु बहुत दूर का सम्बन्धी होने से एक पार्टी उसे इंग्लैण्ड का राजा बनाना नहीं चाहती थी । वह दूसरे जेम्स के पुत्र जेम्स एडवर्ड को इंग्लैण्ड की गद्दी पर बिठाना चाहती थी । इस दूसरे दल में इंग्लैण्ड का तत्कालीन प्रधानमंत्री बोलिंग ब्रुक और आक्सफोर्ड शामिल थे । ये लोग एक्ट आफ सेटलमेण्ट को रद्द कराने की कोशिश कर रहे थे मगर उसके पहले ही सन् १७१४ में रानी एन की मृत्यु हो गई, तब पार्लियामेण्ट के "ह्विग" दल ने एक्ट आफ सेटलमेण्ट के अनुसार जार्ज को इंग्लैण्ड का राजा घोषित कर दिया । यह देखकर बोलिंग ब्रुक इंग्लैण्ड से भाग गया और आफ्सफोर्ड, जो टोरी दल का एक लोक-प्रिय सदस्य था, जेल में डाल दिया गया ।

मगर फिर भी इंग्लैण्ड में शान्ति नहीं हुई । जगह-जगह पर जार्ज के विरोध में दंगे और विद्रोह होने लगे । इन विद्रोहों में जेकोबाइट लोगों का विद्रोह इंग्लैण्ड के इतिहास में प्रसिद्ध है ।

ऑगस्टस सीजर

महान् विजेता जूलियस सीजर का उत्तराधिकारी, रोम के विशाल साम्राज्य का शासक (इम्परेटर समय ई० सन् पूर्व ३१ से ईस्वी सन् १४ तक ।

जूलियस सीजर की हत्या के पश्चात् उसके आदेश के अनुसार "आक्टेवियन" को रोम साम्राज्य का उत्तराधिकारी बनाया गया । मगर उस समय रोम की शासन-व्यवस्था बड़ी छिन्न-भिन्न हो रही थी और जूलियस सीजर का मित्र अण्टोनियस तथा सेनापति लेपिडस तीनों व्यक्ति सत्ता को हथियाने का प्रयत्न कर रहे थे । तत्कालीन महान वक्ता और राजनीतिज्ञ सिसरो आक्टेवियन के पक्ष में था । अन्त में ई० सन् पूर्व ४३ में इन तीनों के बीच में राज्य का बटवारा हुआ । जिसमें ऑक्टेवियन को सिसली, सरर्डानिया और अफ्रीका के प्रान्तों का राज्यसूत्र मिला ।

आगे जाकर क्लिओपेट्रा के प्रेम में पड़कर अण्टोनियस ने अपनी शक्ति कमजोर कर ली और ई० सन् पूर्व ३१ में एक सामुद्रिक युद्ध में ऑक्टेवियन ने अण्टोनियस को पूर्ण रूप से पराजित कर दिया । जिससे वह और क्लिओपेट्रा आत्म-हत्या करके मर गये । लेपिडस इससे पूर्व ही समाप्त हो चुका था ।

इस प्रकार अपने दोनों प्रतिद्वन्दियों को समाप्त कर ईस्वी सन् से ३१ वर्ष पहले आक्टेवियन ऑगस्टस सीजर के नाम से गद्दी पर बैठा और ई० सन् १४ तक उसने शासन किया । गद्दी पर बैठते समय लोगों ने उसे सम्राट् बनाना चाहा मगर उसने सम्राट बनने से इन्कार किया और इम्परेटर बना । इसी इम्परेटर शब्द से आगे जाकर अंग्रेजी के एम्परर (Emperor) शब्द की व्युत्पत्ति हुई ।

ऑगस्टस ने रोमन गणतंत्र का बाहरी ढाँचा ज्यों का त्यों रक्खा । वहाँ की सेनेट भी ज्यों की त्यों बनी रही मगर उसने सेनेट का इतना विश्वास प्राप्त कर लिया कि स्वयं सेनेट ने अपने सारे अधिकार सम्राट् को सौंप दिये । सारा ढाँचा लोकतंत्र का रहते हुए भी होता वही था जो सीजर चाहता था । उसका शासन नियंत्रित दीखते हुए भी अनियंत्रित था ।

सेना पर सम्पूर्ण स्वत्व स्थापित करके ऑगस्टस ने उसकी संख्या बढ़ाकर २,२५,००० कर दी । सब प्रान्तों में उच्चतम शासकों के स्थान पर उसने अपने विश्वसनीय

लोगों को भेजा। बड़े-बड़े राज्याधिकारियों को संगठित कर उसने उनकी एक कौन्सिल बनाई। इस कौन्सिल को सीनेट के सब अधिकार दे दिये गये।

इस प्रकार ऑगस्टस सीजर ने अपनी संगठन कुशलता से सारे रोम साम्राज्य में शासन व्यवस्था का नवीन संगठन कर, एक नागरिकता, एक कानून और एक राजस्व-पद्धति चलाई और सारी अराजकता को समाप्त कर एक सुदृढ़ केन्द्रीय सरकार की स्थापना की। उसने रोमन साम्राज्य की सीमाओं को स्थिर कर उनकी सुरक्षा की ऐसी मजबूत व्यवस्था की कि उसकी मृत्यु के बाद भी वह व्यवस्था लगभग पाँच सदियों तक रोम की रक्षा करती रही।

ऑगस्टस ने पोलिस का प्रबन्ध भी उत्तम किया था। उसके पहले राजमार्गों पर दिन-दहाड़े यात्री लूट लिये जाते थे और लूटने वाले बेदाग छूट जाया करते थे। इस अव्यवस्था को उसने दूर किया। उसने सारे रोम शहर को १४ वार्डों में बाँट दिया। प्रत्येक वार्ड में पहरे के लिए सिपाही और न्यायाधीश अलग-अलग नियुक्त थे।

रोम में व्यभिचार की मात्रा भी बहुत बढ़ गई थी, उसको कम करने के लिए उसने कड़े नियम बनाये। व्यभिचार कम करने के लिए उसने विवाह प्रथा को बहुत उत्तेजना दिया। उसने एक कानून बनाया था जिसके अनुसार एक निश्चित आयु के पश्चात् अविवाहित रहने वाले व्यक्ति को दण्ड दिया जाता था।

रोम इतिहास का स्वर्णयुग

ऑगस्टस का युग रोम साम्राज्य के इतिहास में सबसे अधिक समृद्धि का युग था। राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सभी दृष्टियों से रोम इस समय इतिहास के स्वर्ण-युग में से गुजर रहा था।

ऑगस्टस सीजर स्वयं एक विद्वान और साहित्य प्रेमी व्यक्ति था। कविता से उसे बड़ा प्रेम था। उसका दरबार हमेशा बड़े-बड़े प्रसिद्ध कवियों से भरा रहता था। महाकवि वर्जिल, होरेस और ओव्हिड़ जैसे कवि उसके दरबार की शोभा को बढ़ाते थे। काव्य-शैली, भाषा-सौष्ठव और अलंकार सज्जा से युक्त काव्यों की रचना में ऑगस्टस का युग बहुत आगे बढ़ा हुआ था मगर मनुष्य की अन्तरात्मा की अनुभूति का उस समय के काव्यों में बहुत कम दर्शन होता है।

ऑगस्टस युग में रोम के अन्दर लैटिन साहित्य का भी बहुत विकास हुआ। ऑगस्टस के पहले रोम के अन्तर्गत ऐसा कोई लैटिन साहित्य नहीं था। जिसकी तुलना यूनानी साहित्य से की जा सके मगर ऑगस्टस युग में इस साहित्य की बहुत वृद्धि हुई।

रोम का महान वक्ता और यूरोप के आधुनिक गद्य का जन्मदाता सिसरो (Cicero) भी ऑगस्टस का सम-कालीन था। ऑगस्टस के उत्तराधिकार के समय उसने ऑगस्टस की मदद की थी इसी अपराध में अण्टोनियस ने उसे मरवा डाला था।

भवन-निर्माण कला

ऑगस्टस का युग रोम में भवन-निर्माण कला और स्थापत्य-कला के विकास का सर्वप्रधान युग है। इस कला के विकास ने सारे रोम का नक्शा ही बदल दिया। इसी समय में रोम के सब बड़े-बड़े नगर, सड़कों, पुलों, स्नानागारों और राजप्रासादों से सुसज्जित हो गये।

हम्माम या स्नानागारों के निर्माण में रोमन कारीगरों ने उस युग में बड़ी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया था। इनके बनाये स्नानागारों में गर्म और ठण्डे जल का प्रबन्ध रहता था। वहाँ कसरत करने का स्थान और पुस्तकालय भी रहता था। एक-एक स्नानागार में एक साथ १५०० व्यक्ति स्नान कर सकते थे।

स्वयं ऑगस्टस ने पेलेटाईन की पहाड़ी पर एक सुन्दर और भव्य राजप्रासाद का निर्माण किया और अप्पोलो देवी के एक सुन्दर मन्दिर की स्थापना की। उसने सेनेट के लिए एक नवीन इमारत और सीजर के लिए मन्दिर का निर्माण करवाया। रोम में उसने एक विशाल नाट्य-शाला बनवाई।

इन सारी इमारतों और भव्य साज-सज्जा के कारण रोम उस समय की दुनिया का सर्वश्रेष्ठ नगर बन गया। इतिहासकार रशफोर्थ ने लिखा है कि—

यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि रोम उस समय

सारे संसार में पहला महाननगर था जो स्थापत्य-कला और भवन-निर्माण-कला के द्वारा सुसज्जित किया हुआ था।"

स्वयं ऑगस्टस ने कहा था कि मैंने रोम को ईंट का बना हुआ पाया था मगर अब मैं इसे संगमरमर का बनाकर छोड़ रहा हूँ।

साम्राज्य-विस्तार

आगस्टस सीजर के समय में रोम के साम्राज्य का सबसे अधिक विस्तार हुआ था। आज तक रोम के किसी शासक को इतने बड़े साम्राज्य पर हुकूमत करने का अवसर नहीं मिला था। यूरोप के पश्चिमी और दक्षिणी भाग के सब राष्ट्र रोम के अधीन थे। इंग्लैण्ड, फ्रान्स, स्पेन, जर्मनी का कुछ भाग, इटली के सब राज्य, यूनान, टर्की का सारा प्रदेश, एशिया माइनर के आस-पास का सब प्रदेश और अफ्रिका का उत्तरी भाग रोम साम्राज्य के अधिकार में था।

आगस्टस सीजर की मृत्यु ७७ वर्ष की अवस्था में सन् १४ ईस्वी में हुई।

यह कितने आश्चर्य की बात है कि जिस प्रजातंत्र के सिद्धान्त की रक्षा के लिए जूलियस सीजर के समान महान् विजेता की हत्या कर दी गई। उसी रोम ने तथा रोम की सेनेट ने अपनी मरजी से प्रजातंत्र के सारे सिद्धान्तों को आगस्टस के कदमों पर चढ़ा दिया, उसे अनियंत्रित शासक बना दिया और उसी अनियंत्रित शासक के शासन में रोम ने इतनी उन्नति की जितनी उसके पहले और बाद में कभी नहीं हुई।

आगरकर

महाराष्ट्र के एक प्रसिद्ध सामाजिक और राजनैतिक नेता तथा प्रारम्भ में लोकमान्य तिलक के सहयोगी गोपाल गणेश आगरकर।

महाराष्ट्र में राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र में प्रमुखता से भाग लेने वाले लोगों में गोपाल गणेश आगरकर का नाम भी प्रमुख है। प्रारम्भ में ये लोकमान्य तिलक के सहयोगी थे मगर पीछे से कुछ विषयों में इन दोनों के मतभेद हो गया। लोकमान्य तिलक विशुद्ध भारतीय संस्कृति के पक्ष में थे मगर आगरकर भारतीय संस्कृति के समर्थक होते हुए भी पाश्चात्य संस्कृति के विरोधी नहीं थे। उनका विचार था कि पाश्चात्य संस्कृति में रहे हुए सुन्दर तत्वों को भारतीय संस्कृति में ग्रहण करके उसे समृद्ध बनाया जाय।

ई० सन् १८८८ तक वे लोकमान्य तिलक के केसरी नामक पत्र के सम्पादक थे। उस समय उन्होंने प्रगतिशील राष्ट्रीयता और समाज-सुधार के लिये जोरदार आवाज उठाई थी। सन् १८८८ में उन्होंने 'सुधारक' नाम का दूसरा पत्र प्रकाशित किया। इस पत्र के द्वारा उन्होंने स्त्री-पुरुषों की समानता, स्त्रियों की उच्च-शिक्षा, प्रेम-विवाह, विधवा-विवाह, अछूतोद्धार आदि विषयों पर जोरदार आवाज उठाई।

श्री आर० जी० प्रधान अपने "इण्डियन स्ट्रगल फॉर स्वराज" (Indian Struggle for Swaraj) नामक ग्रन्थ में लिखते हैं —

"दूसरे प्रान्तों की अपेक्षा सामाजिक सुधार में अगर महाराष्ट्र ने अधिक प्रगति की थी तो उसका कारण आगरकर के लेख थे। श्री आगरकर भारतवर्ष के राष्ट्रीय आन्दोलन में बुद्धिवादी प्रगतिशील तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करते।

आगस्ट केण्ट

एक सुप्रसिद्ध फ्रेंच दर्शनशास्त्री जिसका समय सन् १७६८ से १८५७ तक है।

केण्ट आदर्शवादी विचारधारा का प्रवर्त्तक था! उसके विचार से उस समय पुराने धर्म दर्शन और धार्मिक कट्टरवादिता का समय निकल चुका था। मगर वह यह भी अनुभव करता था कि समाज को किसी न किसी धर्म और नैतिक अवलम्बन की निश्चित रूप से आवश्यकता है।

इसलिये उसने अपने धर्म का नाम "रिलीज़न आफ ह्यूमेनिटी" या मानव-धर्म रखा और उस धर्म का मूल सिद्धान्त निषेधात्मक या नेगेटिव न रख कर विधेयात्मक या पॉजिटिव थ्योरी रखा। उसके विचार से समाज का कल्याण प्रेम, व्यवस्था, नीति इत्यादि पॉजिटिव सिद्धान्तों से हो सकता है। इस विषय पर उसने "पॉजिटिविज्म"

नामक ग्रन्थ की रचना भी की। उसके सिद्धान्त में कोई अलौकिक बात न थी। उसका आधार विज्ञान था।" "पाजिटि-विज्म" की इस विचारधारा के पीछे भी मानव जाति के कल्याण की कल्पना थी। योरप में चलने वाली विचारधाराओं के ऊपर इस दार्शनिक की विचारधारा का भी काफी प्रभाव पड़ा।

आगम-साहित्य

जैन और बौद्ध धर्म के मूल ग्रन्थों को आगम कहते हैं। जिस प्रकार वैदिक संस्कृति के मूलग्रन्थों को वेद कहते हैं उसी प्रकार श्रमण संस्कृति के मूल ग्रन्थों को आगम कहते हैं।

बौद्ध आगम शुरु-शुरु में "धर्म" और "विनय" इन दो भागों में विभक्त थे। "धर्म आगम सूत्रान्त है।" जिसमें बुद्ध के उपदेशों का संग्रह है। "विनय" में भिक्षुओं इत्यादि के नियम तथा आचारशास्त्र का वर्णन है। उसके बाद ऐसा मालूम होता है कि "त्रिपिटक" की गणना भी आगम साहित्य में की जाने लगी। त्रिपिटक शब्द भी प्राचीन है। इसके अतिरिक्त बौद्ध आगम साहित्य में "मातृका" नामक पिटक का भी उल्लेख पाया जाता है। बौद्ध धर्म की प्रथम संगीति के विवरण में मातृका का भी उल्लेख मिलता है। "दिव्यावदान" में "सूत्रस्य विनयस्य मातृका" शब्द पाये जाते हैं। इससे पता चलता है कि मातृका में विनय के विषयों की विस्तृत तालिका है और इसी को परिवर्द्धित कर विनय-आगम की रचना हुई है।

विनय मातृका में पिंडपात, चीवर, शयनासन आदि के नियमों की तालिका थी। पालि-विनय में प्राचीन मातृका का स्थान "खन्धक" ने लिया। इसको दो भागों में विभक्त किया गया "महावग्ग और "चुल्लवग्ग"। किन्तु हैमवतों के विनय में मातृका सुरक्षित है। इसी प्रकार एक धर्म-मातृका रही होगी। सूत्रान्तों की संख्या बहुत थी। उनके विषय विविध थे। उनके संक्षिप्त विवरण की आवश्यकता थी, जिसमें देशना का सार संक्षेप में मालूम हो जाय। यह एक प्रकार की अनुक्रमणिका थी। इसका नमूना 'संगीति-सुत्रन्त" है जो "दीर्घ निकाय" में है। "सर्वास्तिवाद" के अभिधर्म [illegible] वर्णन है। में "संगीतिपर्याय" के नाम से यह मातृका पाई जाती है। इसी धर्म मातृका की वृद्धि होने से "अभिधर्मपिटक" की रचना हुई। सूत्र-पिटक के पाँच निकाय या आगम हैं। किन्तु सर्वास्तिवाद में चार आगम ही सुरक्षित हैं।

जैन-आगम

जैन धर्म के अन्तर्गत आगम-सूत्रों के बारह विभाग किये गये हैं जिन्हें द्वादशांग या बारह अंग कहा जाता है।

भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् उनके गणधर आचार्य्य सुधर्मा ने उनकी वाणी को संग्रह करके इन बारह अंगों में ग्रथित किया। इन बारह आगमों के नाम इस प्रकार हैं—

(१) आचारंग—इस आगम में जैन आचारशास्त्र-का विशद रूप में विनेचन है। श्रमण निग्रन्थों का सुप्रशस्त आचार, गोचर (भिक्षा लेने की विधि) स्वाध्याय में नियोग, भाषा समिति, व्रत, नियम, तप, उपधान इत्यादि का वर्णन है।

(२) सूत्रकृतांग—इस आगम में जैन तत्व ज्ञान जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष सात तत्त्व, छः द्रव्य, कर्म सिद्धान्त, तथा अन्य मत-मतान्तरों के सिद्धांतों की समीक्षा है!

(३) स्थानांग—इस आगम में, कालसिद्धान्त-उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी इत्यादि-क्षेत्र सिद्धान्त (भूगोल) तथा स्वसमय और परसमय का वर्णन है।

(४) समवायांग—इसमें स्वसिद्धान्त, परसिद्धान्त, स्वापर सिद्धान्त, इत्यादि का विवेचन है।

(५) व्याख्या प्रज्ञप्ति (भगवती सूत्र)—जैन आगमों में यह आगम सबसे बड़ा और विस्तृत है। यह आगम प्रश्नोत्तर के रूप में है जिसमें गणधरों के द्वारा पूछे गये प्रश्नों पर तीर्थकर द्वारा की गई विस्तृत विवेचना है। जैन धर्म के प्रायः सभी मूल सिद्धान्तों पर इसमें प्रकाश डाला गया है।

(६) ज्ञाताधर्म कथा—यह जैन धर्म का पौराणिक आगम है। इसमें जैन इतिहास में हुए बड़े-बड़े राजपुरुषों, तपस्वियों, त्यागियों तथा श्रद्धालु भक्तों की कथाओं का

(७) उपासक दशा—यह भी जैन साहित्य का कथा-वार्त्ता परिपूर्ण आगम है।

(८) अन्तकृत दशा—इस अंग में तीर्थंकरों की जीवनियाँ, धर्माचार्यों की धर्म कथाएँ, परलोक की सिद्धि, क्षमा, आर्जव, मार्दव, ब्रह्मचर्य, सत्रह प्रकार के संयम, समिति, गुप्ति इत्यादि यौगिक क्रियाएँ, ध्यान का स्वरूप इत्यादि जैन साहित्य के महत्वपूर्ण तत्वों का विवेचन है।

(९) अनुत्तरोपपातिक – यह भी पुराण कथाओं के सम्बन्ध का जैन आगम है।

(१०) प्रश्न व्याकरण—इस आगम में नाग कुमार और सुवर्ण कुमार के साथ हुए दिव्य संवादों का वर्णन है।

(११) विपाकश्रुत—जैन धर्म के इस आगम में दुष्कृत कर्म और सुकृत कर्म के फल विपाक का विवेचन है।

(१२) दृष्टिवाद—यह आगम इस समय लुप्त हो गया है। इसके पाँच विभाग थे जिनके नाम (१) परिकर्म (२) सूत्र (३) पूर्वगत (४) अनुयोग और (५) चूलिका थे।

यह आगम आजकल अप्राप्य हैं।

महावीर निर्वाण के पश्चात् ई० सन् से ३५७ वर्ष पूर्व आचार्य भद्रबाहु हुए। ये सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के समकालीन थे। आचार्य भद्रबाहु जैन सिद्धान्त के महान् विद्वान् और चौदह पूर्वधर थे। इन्होंने पहले के आधार पर आवश्यक सूत्र, दश वैकालिक सूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र, सूत्रकृतांग, आचारांग, दशा दशकंध, कल्प, व्यवहार, सूर्य प्रज्ञप्ति और ऋषि भाविकों पर निरुक्तियों की रचना की। ये निरुक्तियाँ भी जैन आगमों की तरह महत्वपूर्ण हैं।

आचार्य सुधर्मा के द्वारा संग्रहीत सभी आगम और भद्रबाहु के द्वारा रचित सभी निरुक्तियाँ मूल प्राकृत भाषा में हैं।

आग्रिपिना

रोम के बादशाह क्लाडियस की चौथी स्त्री। सम्राट नीरो की माता।

आग्रिपिना रोम के बादशाह क्लाडियस की चौथी पत्नी थी। यह बड़ी षड्यन्त्रकारिणी और दुष्ट स्वभाव की थी। इसको अपने पहले पति से "नीरो" नामक पुत्र था जिसका साम्राज्य पर कोई हक नहीं पहुंचता था। मगर इसने अनेक छल प्रपञ्च करके साम्राज्य के असली उत्तराधिकारी "ब्रिटानकस" को वंचित कर "नीरो" को उत्तराधिकारी बना दिया और इसी सिलसिले में सन् १६८ में अपने पति "क्लाडियस" को भी विष देकर मरवा डाला।

यही नीरो आगे चलकर रोम का बादशाह हुआ और इसने अपनी पत्नी और माता दोनों को मरवा डाला।

आंग्ल-जापानी सन्धि

सन् १९०२ में इंग्लैण्ड और जापान के बीच में हुई एक सुरक्षा सन्धि जिसका मूल उद्देश्य किसी भी राष्ट्र के द्वारा जापान या इंग्लैण्ड को दबाने का प्रयत्न किया जायगा तो दोनों देश एक दूसरे की सहायता करेंगे।

आग्जबर्ग संघ

सन् १६८८ में जब इंग्लैण्ड की राजगद्दी पर विलियम तीसरा और उसकी स्त्री मेरी आसीन थे उस समय फ्रांस के विरोध में उसने स्पेन और जर्मनी की रियासतों के साथ मिल कर फ्रांस के विरुद्ध एक संघ स्थापित किया जिसको आग्जबर्ग संघ कहते हैं।

सन् १६८९ से १६९७ तक अर्थात् आठ वर्ष तक आग्जबर्ग संघ के साथ फ्रांस की लड़ाई चलती रही। इंग्लैण्ड के भूतपूर्व राजा जेम्स द्वितीय को फिर से इंग्लैण्ड की गद्दी पर बिठाने और फ्रांस की सीमा उत्तर में राइन नदी तक करके नीदरलैण्ड और हॉलैण्ड को अपने अधिकार में कर लेने के उद्देश्य से फ्रांस के राजा यह लड़ाई लड़ रहे थे। जब आयरलैण्ड में बगावत हुई तब फ्रांस के चौदहवें लुई ने बागियों की सहायता के लिये सेना भेजी। इसी प्रकार ब्रिटिश जल-सेना को नष्ट करने के लिये उसने टारवाइल नामक सेनापति की अध्यक्षता में फ्रेंच जल-सेना को रखा। मगर विलियम तृतीय की चतुराई से और इंग्लैण्ड की जल-सेना के सेनापति एडमिरल रसेल की सावधानी से लुई की सब योजना नष्ट-भ्रष्ट हो गई। सन् १६९२ में फ्रांस के किनारे लाहोग नामक स्थान पर अंग्रेजी जल-

सेना ने फ्रेंच जल-सेना को हरा दिया और इंग्लिश खाड़ी तथा समुद्र पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। इस विजय से इंग्लैण्ड समुद्री हमले के भय से मुक्त हो गया।

आगा खाँ

मुसलमानों में "आगाखानी" नामक एक विशेष शाखा के धर्मगुरु "आगा खाँ"।

मुसलमान समाज में "आगाखानी" नामक विशेष सम्प्रदाय है। इस सम्प्रदाय के अनुयायी अधिकतर बम्बई में रहते हैं।

आगाखानी सम्प्रदाय की स्थापना के सम्बन्ध में कहा जाता है आगा खाँ नामक किसी धर्मगुरु ने इस सम्प्रदाय की स्थापना की थी और उसके पश्चात् वंशानुगत प्रथा से उसके उत्तराधिकारी "आगा खाँ" के नाम से ही प्रसिद्ध हुए।

सर आगा खाँ भी इसी सम्प्रदाय के धर्मगुरु थे। भारत सरकार ने इन्हें सर की उपाधि से विभूषित किया था। सर आगा खाँ धर्मगुरु होने के साथ-साथ भारतीय राजनीति में मुसलिम साम्प्रदायिकता और मुसलमानों के सार्वजनिक हितों के सम्बन्ध में भी दिलचस्पी रखते थे।

इनके अनुयायियों ने जब ये पचास वर्ष के हुए तब इनकी स्वर्ण जयन्ती मनाई थी और इन्हें सोने से तौला गया था जब ये साठ वर्ष के हुए तब इनकी डायमण्ड जुबिली मनाई गई और हीरों से तौले गये थे।

आचुगी

निजाम राज्यान्तर्गत येलबुर्ग के शिन्दे राजवंश का एक सरदार आचुगी जो उत्तर चालुक्य राजवंश की अधीनता में येलबुर्ग का एक शक्ति सम्पन्न माण्डलिक था।

बम्बई गजेटियर जिल्द एक भाग दो में येलबुर्ग के शिन्दे वंश पर टिप्पणी दी हुई है। उससे मालूम होता है कि ये शिन्दे मराठे थे और कनाड़ी भाषा-भाषी प्रान्त पर इनका अधिकार था। बीजापुर जिले के बदामी से इनका प्रदेश शुरू होता था जिसमें धारवाड़ के बागलकोट और नेरल का समावेश भी होता था। येलबुर्ग के ये शिन्दे भी नागवंशी थे और ग्वालियर का वर्तमान सेंधिया वंश भी कदाचित उन्हीं का प्रतिनिधि और नागवंशी हैं।

उत्तर चालुक्यों की अधीनता में येलबुर्ग के ये शिन्दे अत्यन्त शक्तिसम्पन्न माण्डलिक थे। इनका पहला और प्रसिद्ध राजा अचुगी था। इसके दो पुत्र थे जिनके नाम बम्ब और सूर्य थे। इनका उल्लेख सन् १०७६ के शिलालेख में हुआ है।

आचुगी के लेख में वर्णन है कि उसने गोवा और कोकण को अपने अधीन कर लिया था।

बम्ब का पुत्र द्वितीय आचुगी विक्रमादित्य का पराक्रमी सेनापति था। उसने एक होयसल राजा का पराभव किया था। ई० सन् ११२२ के लेख में इसका उल्लेख पाया जाता है।

आचारंग सूत्र

जैन सिद्धान्तों का मशहूर आगम।

इस जैन आगम में जैन आचार शास्त्र का विस्तृत विवेचन किया गया है। आचारंग सूत्र के दो मुख्य विभाग हैं जिनको श्रुत-स्कन्ध कहते हैं। पहले श्रुत-स्कन्ध में नौ अध्ययन हैं—

(१) शस्त्रपरिज्ञा (२) लोक-विजय (३) शीतोष्णीय (४) सम्यक्त्व (५) लोकसा (६) छूत कर्म (७) महापरिज्ञा (८) मोक्ष और (९) उपधान।

शस्त्र परिज्ञा में संसार में जितने प्रकार के स्थावर-जंगम प्राणी हैं उनकी हिंसा करने से कर्मबन्ध होता है, इसकी विवेचना है। दूसरे लोक-विजय में लौकिक सम्बन्धों पर विजय प्राप्त करके काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि कषायों का त्याग करके जीवन को संयमित बनाने का उपदेश है।

तीसरे शीतोष्णीय अध्ययन में धूप, गर्मी, सर्दी इत्यादि प्राकृतिक वेदनाओं को बिना किसी ग्लानि के सहन करने तथा आत्मा और शरीर को सहनशील बनाने का उपदेश है।

चौथे सम्यक्त्व में हृदय को श्रद्धा मूलक बना कर उसमें सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र से शुद्धीकरण करने की योजना है।

पाँचवें लोकसार अध्ययन में मुनियों के स्वरूप का विवेचन है।

छठें अध्ययन में धूत कर्म से मुक्ति के उपाय बतलाये गये हैं।

सातवें महापरिज्ञा अध्ययन में तपस्या करते हुए मुनियों पर यदि कोई संकट आवे तो उसे बिना विचलित हुए शान्ति के साथ किस प्रकार सहन करना इसकी व्यवस्था थी। यह अध्ययन आजकल विच्छिन्न हो गया है।

आठवाँ अध्ययन मोक्ष का है। जिसमें सब कर्मों से मुक्त होने पर जीव को कैवल्य की प्राप्ति होकर किस प्रकार संसार के बन्धनों से छुटकारा मिलता है इसका विवेचन है।

नौवें उपधान अध्ययन में उपरोक्त आठ अध्ययनों का जो अर्थ है वह किस प्रकार भगवान महावीर ने अपने जीवन में ग्रहण किया इसका विवेचन है।

आचारंग के दूसरे श्रुत स्कन्ध में सोलह अध्ययन हैं जिनमें मुनियों के धर्म का विस्तृत रूप से विवेचन किया गया है। मुनियों के खाने, पीने, सोने, चलने, बोलने, वस्त्र, पात्र इत्यादि सभी विषयों पर जो मर्यादाएँ जैन धर्म में बतलाई गई हैं उनका विवेचन है।

'आज'

हिन्दी का एक सुप्रसिद्ध दैनिक पत्र। जो सन् १९२० में काशी के सुप्रसिद्ध देशभक्त और हिन्दी प्रेमी रईस बा० शिवप्रसाद गुप्त की रहनुमाई में निकलना प्रारंभ हुआ।

वैसे तो हिन्दी-भाषा में दैनिक पत्रों का प्रारम्भ बहुत पहले से हो चुका था, मगर सुव्यवस्थित सम्पादन-कला, उच्चकोटि के विचार और सन्तुलित लेखनशैली के प्रतीक के रूप में 'आज' शायद हिन्दी का पहला दैनिक पत्र था। इस समय स्थानापन्न संपादक एवं प्रबन्ध संचालक श्री शिवप्रसाद गुप्त के नाती श्री सत्येन्द्रकुमार गुप्त हैं।

शुरू-शुरू में 'आज' के प्रधान सम्पादक बा० श्रीप्रकाश (बम्बई के वर्तमान गवर्नर) थे। इनके पश्चात् श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर इस पत्र के सम्पादक हुए। कहना न होगा कि पराड़कर जी और 'आज' का सम्बन्ध हमेशा अन्योन्याश्रित रहा। पराड़करजीने हिन्दी के क्षेत्र में आज के द्वारा सम्पादन कला (पत्रकारिता) का उच्च उदाहरण पेश किया। प्राञ्जल भाषा, उच्च श्रेणी की सुसंगत तर्कशैली और सन्तुलित विचार-धारा के द्वारा उन्होंने 'आज' को उत्कृष्ट दैनिक पत्रों की श्रेणी में ला दिया।

भारतीय स्वाधीनता-युद्ध के समय में अत्यन्त उत्तेजना पूर्ण वातावरण में भी उनकी लेखनी ने कभी अपने संयम को नहीं छोड़ा और किसी गैरजिम्मेदारी पूर्ण लेख या वक्तव्य के लिए 'आज' पत्र को कभी बदनामी नहीं उठानी पड़ी। उस समय गवर्नमेंट के विभागों में भी 'आज' की बड़ी प्रतिष्ठा थी।

पराड़कर जी एक उत्कृष्ट श्रेणी के देशभक्त होते हुए भी उच्चकोटि के सम्पादक थे। पत्रकार-कला के क्षेत्र में उन्होंने पार्टी पालिटिक्स (दलगत राजनीति) को कभी आश्रय नहीं दिया। समय-समय पर उन्होंने अपनी विचार-प्रणाली के अनुसार ईमानदारी पूर्वक सरकार की, नेताओं की, काँग्रेस की और अन्यान्य सभी पार्टियों की आलोचना की।

जिस प्रकार पराड़कर जी ने अपनी पत्रकार-कला के बल पर 'आज' को हिन्दी-भाषा का प्रथम दैनिक बना दिया, उसी प्रकार 'आज' ने भी उनकी कीर्ति को भारतीय पत्रकार-कला के इतिहास में अमर कर दिया।

पराड़कर जी की मृत्यु के पश्चात् 'आज' अब भी उसी आकार-प्रकार और शान-शौकत से निकल रहा है। उसके सञ्चालक पूर्ण परिश्रम और अध्यवसाय के साथ उसका सञ्चालन कर रहे हैं। फिर भी यह बात तो निश्चित रूप से कही जा सकती है कि आज का 'आज' पराड़करजी का 'आज' नहीं है।

आजम हुमायूँ

शेरशाह के पुत्र बादशाह सलीम शाह के समय में पंजाब का सूबेदार। जिसने सलीम शाह सूर के खिलाफ पंजाब में विद्रोह कर दिया लेकिन शाही फौज ने अम्बाला में उसे परास्त कर दिया। अन्त में वह कश्मीर भाग गया और वहाँ पहाड़ियों के हाथ से मारा गया।

आजीवक सम्प्रदाय

श्रमण संस्कृति की एक शाखा ।

आजीवक सम्प्रदाय के संस्थापक गौसाल भगवान महावीर और बुद्ध के समकालीन थे । जैन परम्परा के अनुसार इनका नाम मंखलीपुत्र गौशाला था और ये भगवान महावीर के साथ उनके शिष्य के रूप में विचरण करते थे ।

कुछ समय पश्चात् भगवान महावीर के कर्म सिद्धान्त से इनका मतभेद हो गया और ये नियति वाद के समर्थक हो गये । नियतिवाद के अनुसार इनकी मान्यता थी कि जो होना होता है वह होकर रहता है । मनुष्य कर्म भी विवशता से करता है और फल भोग में भी वह स्वतन्त्र नहीं है इनका सम्प्रदाय आजीवक सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हो गया और इनके जीवन काल में ही इनके अनुयायियों की संख्या ग्यारह लाख हो गई । गौसाल के मतानुसार सब सत्त्व (जीव) अवश हैं, अवीर्य हैं उनमें न पुरुष पराक्रम है न बल है । उनके मतानुसार बाल और पण्डित सब सत्व संसरण कर दुख का अन्त करते हैं । इसे संसार शुद्धि कहते हैं । गौसाल और उनके अनुयायी अचेलक रहते थे, पंचाग्नि तपते थे और कठोर तपस्या करते थे ।

बुद्ध लोग आजीवकों को सबसे बुरा समझते थे । तापस होने के कारण समाज में इनका आदर था । लोग निमित्त, शकुन आदि का फल इनसे पूछते थे । सम्राट अशोक और उसके पौत्र दशरथ के ग्रन्थों में आजीविकों का उल्लेख पाया जाता है ।

आजाद हिन्द फौज

द्वितीया महायुद्ध के समय भारत को आजाद करने के लिये सुप्रसिद्ध भारतीय नेता सुभाष चन्द्र बोस के द्वारा निर्मित आजाद हिन्द फौज ।

द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ में श्री सुभाष चन्द्र बोस जो कलकत्ते में अपने ही मकान में नजरबन्द की तरह रह रहे थे किसी प्रकार वेश बदल कर, अंग्रेजी शासन की आँखों में धूल झोंक कर जर्मनी पहुँच गये ।

जर्मनी में हर हिटलर ने उनका अच्छा स्वागत किया और उन्हें "फ्यूहरर ऑफ इण्डिया" का पद दिया ।

जर्मनी में श्री सुभाष बोस ने आजाद हिन्द फौज की स्थापना की और उसका मुख्य केन्द्र ड्रेसडन में रखा । जर्मनी ने महायुद्ध में जिन भारतीय सैनिकों को कैद किया था उन्हीं को सुभाष चन्द्र बोस ने आजाद हिन्द फौज में भर्त्ती किया । उन्होंने अपनी फौज को कांग्रेस का तिरंगा ध्वज दिया जिसके नीचे के कोने में एक सिंह की मूर्ति भी अंकित थी । उन लोगों को सैनिकों की विशेष पोशाक भी दी गई । उन्हें मासिक वेतन भी दिया जाता था । उसी समय आजाद हिन्द रेडियो का भी निर्माण हुआ ।

जर्मनी में आजाद हिन्द फौज की प्रगति को व्यवस्थित कर सुभाष चन्द्र बोस श्री रासबिहारी बोस के निमन्त्रण पर जापान गये । नेता जी के पहुँचने के पहले ही श्री रास बिहारी बोस वहाँ पर भारतीय स्वातन्त्र्य संघ की स्थापना कर चुके थे और इस संघ में आजाद हिन्द सेना के निर्माण पर भी विचार हो रहा था । जापानियों के द्वारा पकड़े गये कैप्टन मोहन सिंह ने आजाद हिन्द सेना के सैनिकों को फौजी तालीम देने का भार ग्रहण किया ।

उन दिनों मलाया में जापानी साम्राज्य का विस्तार हो रहा था । जापान की टकसालों में वहाँ के नोट तेजी के साथ छप रहे थे । दैनिक व्यवहार में आने वाली चीजों के भाव प्रतिदिन मँहगे होते जा रहे थे । प्रजा के सिर पर सर्वनाश के बादल छा रहे थे । ऐसे समय में भारतीय स्वातन्त्र्य संघ ने भारतीयों की रक्षा का भार ग्रहण कर लिया । आजाद हिन्द सेना में अब तक पचास हजार से भी अधिक सैनिक प्रविष्ट हो चुके थे । उन्हें फौजी ट्रेनिंग देने के लिये ट्रेनिंग कैम्पों का निर्माण कर दिया गया था । ऐसा ही एक कैम्प पिनांग में भी था ।

यह सारी तैय्यारी भारतवर्ष को आजाद करने के लिये हो रही थी । मगर जापानी लोग इसका उपयोग अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिये करना चाहते थे । उनकी यह इच्छा एक जापानी अधिकारी "इवाकुरोकीकान" के द्वारा भारतीय स्वातन्त्र्य संघ को मालूम हुई और इसके परिणामस्वरूप जापानी अधिकारियों और भारतीय स्वातन्त्र्य संघ के के कार्यकर्त्ताओं के बीच वैमनस्य की भावनाएँ बढ़ने लगीं । इसके परिणाम स्वरूप कैप्टन मोहन सिंह ने आजाद हिन्द फौज को कुछ समय के लिए भंग कर दिया । ऐसी परिस्थिति में सन् १९४३ के अप्रैल में पूर्वीय एशिया के भारतीयों की दूसरी परिषद् सिंगापुर में हुई जिसमें श्री

रासबिहारी ने घोषणा की कि शीघ्र ही श्री सुभाषचन्द्र बोस उनके स्थान पर आजाद हिन्द फौज की बागडोर सम्हालने मलाया आ रहे हैं।

श्री सुभाष चन्द्र बोस ने ४ जुलाई १९४३ को भारतीय स्वातन्त्र्य संघ के अध्यक्ष पद को ग्रहण किया और जापान के प्रति अविश्वास और भारतीयों के सिर पर छाये हुए भय की भावनाओं के बीच में उन्होंने इस संग्राम का सफलता पूर्वक संचालन किया।

उस समय तक ब्रिटिश साम्राज्य के बरमा तथा सिंगापुर का पतन हो चुका था। फिर भी ब्रिटिश साम्राज्य-वाद ने भारत के प्रति अपनी नीति में कोई परिवर्तन नहीं किया था।

सुभाषचन्द्र बोस के आ जाने से भारतीय सैनिकों में अद्‌भुत उत्साह का संचार हो गया। कैप्टन मोहन सिंह के द्वारा तोड़ी गई आजाद हिन्द फौज का पुनर्निमाण किया गया। भारतीय युवक सैनिकों के झुण्ड के झुण्ड उसमें भर्त्ती होने के लिये आने लगे। जिनको सुसंगठित करने के लिये एक आजाद हिन्द सरकार बनाने की व्यवस्था की गई।

५ जुलाई १९४३ के दिन आजाद हिन्द की अस्थायी सरकार की स्थापना की गई थी। सुभाषचंद्रबोस उसके प्रधान मन्त्री, अध्यक्ष और युद्ध संचालन तथा विदेश नीति के संचालक बने। श्रीमती लक्ष्मी स्वामीनाथन स्त्री-विभाग की अध्यक्षा हुई तथा श्री ए० एम० अय्यर के जिम्मे प्रचार और प्रकाशन विभाग, कर्नल एम० सी० चटर्जी के जिम्मे अर्थ विभाग तथा लेफ्टिनेंट कर्नल अजीज अहमद, ले० कर्नल आई० एम० एस० भगत, ले० कर्नल जे० के० भोंसले, ले० कर्नल गुलजार सिंह, ले० कर्नल एम० जेड कियानी, ले० कर्नल लोकनाथन, ले० कर्नल शाहनवाज— ये सब सशस्त्र दलों के प्रतिनिधि थे। श्री ए० एन० सरकार आजाद हिन्द सरकार के कानून मन्त्री बनाये गये। श्री करीमगनी, श्री दीनानाथ दास, श्री डी० एम० खान, सरदार ईश्वर सिंह आदि इसके सलाहकार नियुक्त हुए।

आजाद हिन्द सरकार का निर्माण करने के पश्चात् सर्वप्रथम श्री सुभाष चन्द्र बोस ने इस प्रकार शपथ ग्रहण की—

"मैं सदैव भारत सरकार का नम्र सेवक रहूँगा और भारत के सैंतीस करोड़ भाइयों की स्वतन्त्रता के लिये लड़ता रहूँगा। इसको मैं हमेशा अपना परम पवित्र कर्तव्य समझूंगा। भारत की स्वतन्त्रता प्राप्त होने के पश्चात् भी मैं उसकी रक्षा के लिये अपना अन्तिम रक्त बिन्दु तक अर्पण करने के लिये हमेशा तत्पर रहूँगा।"

उसके पश्चात् प्रधान मण्डल के दूसरे सदस्यों ने इस प्रकार शपथ ग्रहण की—

"मैं ईश्वर की शपथ लेकर यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि भारत और भारत के सैंतीस करोड़ निवासियों की स्वाधीनता के लिये अपने नेता सुभाष चन्द्र बोस का पूर्ण आज्ञाकारी रहूंगा और भारत की आजादी के लिये सदैव अपने जीवन का बलिदान करने को तैयार रहूँगा।"

आजाद हिन्द फौज के द्वारा युद्ध की व्यवस्था करने के लिये कैप्टन शाहनवाज, कैप्टन गुरुबख्श सिंह ढिल्लन और कैप्टन सहगल के समान योग्य सेनापति सुभाषचंद्रबोस के साथ थे। आजाद हिन्द फौज की भिन्न-भिन्न रेजीमेण्टों के नाम भी भारत वर्ष के विभिन्न नेताओं के नाम पर रखे गये थे। इन रेजीमेण्टो में सुभाष ब्रिगेड में तीन हजार दो सौ सैनिक थे और इसके कमाण्डर शाहनवाज थे। दूसरी गाँधी ब्रिगेड में अट्ठाइस सौ सैनिक थे और इसके कमाण्डर कर्नल कियानी थे। तीसरी आजाद ब्रिगेड में अट्ठाइस सौ सैनिक थे और इसके कमाण्डर कर्नल गुलजार सिंह थे। चौथी नेहरू ब्रिगेड में तीन हजार सैनिक थे और इसके कमाण्डर श्री गुरुबख्श सिंह ढिल्लन थे।

एक रेजीमेण्ट महिलाओं की भी बनाई गई थी जिसका नाम रानी झांसी रेजीमेण्ट रखा गया। इसकी कमाण्डर डॉ० लक्ष्मी स्वामीनाथन नियुक्त की गई थीं। इस महिला रेजीमेण्ट ने मौलमीन के मोर्चे पर सत्रह घण्टे तक शत्रु से लगातार युद्ध किया था और शत्रु के दाँत खट्टे कर दिये थे।

सन् १९४४ में आजाद हिन्द सरकार का मुख्य केन्द्र सिंगापुर से हटा कर रंगून ले आया गया था और यहीं से भारत वर्ष पर आक्रमण करने की योजना बनाई गई थी। जिस दिन भारत पर आक्रमण करने के लिये आजाद हिन्द फौज अग्रसर हो रही थी उस समय पचास हजार के

लगभग शिक्षित सैनिक और पन्द्रह सौ अफसर कूच की तैयारी में थे।

१८ मार्च सन् १९४४ को आजाद हिन्द फौज ने भारत की सीमा में प्रवेश करके कोहिमा एवं मणिपुर में प्रवेश किया। मणिपुर पर आक्रमण करने वाली पहली टुकड़ी के सेनानायक श्री शाहनवाज थे। इस सेना ने कोहिमा और मोराई पर अधिकार करके इम्फाल पर घेरा डाल दिया। इसकी योजना वर्षा के पहले ही इम्फाल पर अधिकार कर लेने की थी। मगर इनके पास शस्त्रों की कमी थी, बारूद और गोलों का भण्डार भी समाप्त हो रहा था। खाद्य-सामग्री और वायुयानों की भी इनके पास बहुत कमी थी। इसके विपरीत ब्रिटिश सेना हर प्रकार की सुविधाओं और अस्त्र-शस्त्रों से लैस थी। फिर भी देश की आजादी के लिये लड़ने वाले इन वीरों ने उस समय शत्रु को पीछे हटने के लिये विवश किया।

इन्हीं सब भयङ्कर कठिनाइयों के बीच में से आजाद हिन्द सेना गुजर रही थी कि इसी समय जापानी सहायता प्राप्त हो गई। जापानी सेना जापानी सेनापति की अधीनता में लड़ाई लड़ रही थी। दोनों सेनाएँ पालेल के हवाई अड्डे के समीप पहुँची। इनकी योजना रात्रि में आक्रमण करने की थी। मगर आजाद हिन्द सेना के सैनिकों ने अनेक दिनों से कुछ खाया नहीं था वे केवल घास के ऊपर जी रहे थे। जापानी नायक से उन्होंने अनाज माँगा किन्तु उसने इन्कार कर दिया और कहा कि सामने वायुयान केन्द्र में अनाज के भण्डार भरे हैं, वहाँ से लूट कर ले आओ।

फल स्वरूप सेना ने हवाई अड्डे पर आक्रमण करके उस पर कब्जा कर लिया और अनाज के भण्डार पर अधिकार कर लिया मगर वह उसका उपभोग नहीं कर सकी, भागी हुई अंग्रेजी फौज को तुरन्त सहायता प्राप्त हो गई और उसने तुरन्त प्रत्याक्रमण कर आजाद सेना को दो मील पीछे ढकेल दिया।

इसी समय वर्षा प्रारम्भ हो गई और सारी परिस्थितियाँ आजाद हिन्द सेना के प्रतिकूल हो गई। इसी समय कोहिमा इम्फाल मार्ग भी आजाद सेना के हाथ से छीन लिया गया।

जब आजाद हिन्द सेना इम्फाल से हट गई। तो पीछे से जापानियों को भी भागना पड़ा और ब्रिटेन की चौदहवीं सेना तेजी से आगे बढ़ने लगी। फलस्वरूप आजाद सेना आक्रमण छोड़ कर रक्षा युद्ध की तैयारी करने लगी, क्योंकि बर्मा के हाथ से निकल जाने का भय उत्पन्न हो गया था और अमेरिकन सेनापति जनरल मैकआर्थर हथौड़े की सी चोटें कर रहा था।

इसी बीच आजाद हिन्द सेना की गांधी और नेहरू ब्रिगेड को भारी हानि पहुँची। इनके सैनिक एक-एक इंच जमीन के लिए जांनिसारी कर रहे थे मगर ब्रिटिश सेना की संख्या और साधनों के आगे वे नहीं ठहर सके और लड़ते हुए मारे गये। इधर जापानी सेना भी रंगून छोड़ने की तैयारी कर रही थी फल स्वरुप २४ अप्रैल १९४५ को आजाद हिन्द सेना ने रंगून छोड़ दिया।

आजाद हिन्द सेना ने १९४४ में पहला आक्रमण कर ग्रीष्म ऋतु में भयङ्कर युद्ध कर अंग्रेजी फौज को पराजित किया था जिसके परिणाम स्वरूप दक्षिण में उखराल डूगवे के बीच की सारी रेलवे लाइन उसके अधिकार में आ गई थी। मणिपुर की राजधानी इम्फाल के निकट आजाद हिन्द सेना ने बहुत सी चौकियाँ स्थापित की थी और वहाँ कैप्टन शाहनवाज ने तिरंगा झण्डा फहराया था। दूसरा आक्रमण मार्च १९४५ में किया गया उस समय आजाद हिन्द सेना की पाँचवी गुरिल्ला फौज को कैप्टन शाहनवाज और कैप्टन सहगल के नेतृत्व में व्यवस्थित सेना के रूप में बदल दिया।

इसके बाद मौसिम की खराबी, जापानी सेना की कमजोरी और अंग्रेजी सेना को भारी सहायता मिल जाने से जीत की बाजी हार में बदल गई। आजाद हिन्द सरकार का दफ्तर रंगून से हटकर बैंकाक चला गया और रंगून के सैनिकों ने आत्म-समर्पण कर दिया और वे लोग बन्दी बना लिये गये।

इसके पश्चात् दिल्ली के लाल किले में कर्नल शाहनवाज, ढिल्लन और सहगल पर ब्रिटिश सरकार ने सुप्रसिद्ध केस चलाया।

५ नवम्बर १९४५ को इस मुकदमे की पहली पेशी हुई। अभियुक्तों के बचाव के लिए कांग्रेस कार्य-समिति ने

भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध धाराशास्त्री भूलाभाई देसाई को चुना और उनकी अध्यक्षता में भारत के प्रमुख धाराशास्त्रियों की एक समिति बनाई। पं० जवाहरलाल नेहरू भी इन धाराशास्त्रियों में थे। २२ वर्ष पहले उन्होंने बैरिस्टरी का त्याग कर दिया था मगर इस अवसर पर वे पुनः इस वेष में दिखलाई दिये।

मुगल सम्राट् बहादुरशाह के अभियोग के बाद लाल किले में चलने वाला यह पहला अभियोग था।

इन तीनों सेनापतियों के बचाव के लिए श्रीभूलाभाई देसाई ने जो शानदार बहस की और जो अद्भुत प्रमाण पेश किये, वे भारतीय कानून के इतिहास में स्मारक स्वरूप रहेंगे अन्त में देश के सारे लोकमत का प्रभाव देखकर जनवरी सन् १९४६ में भारत सरकार ने तीनों सेनापतियों को मुक्त कर दिया।

आँटोह्वान गेयरिक

जर्मनी के प्रसिद्ध भौतिक विज्ञान शास्त्री, वकील तथा सिनेटर। जिनका जन्म सन् १६०२ में और मृत्यु सन् १६८६ में हुई।

आँटोह्वान गेयरिक का जन्म जर्मनी के मेग्डेबर्ग नगर में हुआ था। सन् १६३१ में जब टिली (Tilly) ने मेग्डेबर्ग पर घेरा डाला तब इन्होंने नगर रक्षक के रूप में नगर की रक्षा का भार लिया था। अपने नगर को वैभवशाली बनाने का इन्हें हमेशा ध्यान रहता था इसी कारण ये सन् १६४६ में नगर पिता के रूप में नियुक्त किये गये।

आवश्यक वैज्ञानिक ज्ञान न होते हुए भी इन्हें वैज्ञानिक अनुसंधानों का बड़ा शौक था। हरएक अनुसन्धान के पीछे ये हाथ धोकर पड़ जाते और जब तक सफलता न मिलती उसका पीछा नहीं छोड़ते थे। गेलिलिओ, पास्कल और टारी सेली के अनुसन्धानों ने उन्हें पहला शून्य उत्पन्न करने के लिए प्रेरित किया और उन्होंने पहले वायुयान का आविष्कार किया।

सन् १६५४ में उन्होंने सम्राट् फर्डिनेंड तृतीय के सामने यह साबित करने के लिए कि हवा में वजन है और वह दबाव डालती है मेग्डेबर्ग में अर्ध गोलों वाला अपना मशहूर प्रयोग किया। ऐसा कहा जाता है कि गोलों की हवा निकाल देने पर दोनों चिपके हुए अर्धगोलों को अलग-अलग करने के लिए चौबीस-चौबीस घोड़ों की दो टोलियाँ लगी थीं। गेयरिक के पम्प का प्रयोग बॉयल ने अपने प्रयोग को साबित करने के लिए किया।

गेयरिक ने और भी आविष्कार किये इन्होंने सबसे पहले विद्युत विकर्षण की खोज की और एक संघर्षण मशीन की भी रचना की जिसे लेबनीज ने पहले-पहल बिजली की चिनगारी पैदा करने के उपयोग में लिया। अपने ज्योतिष विज्ञान के अध्ययन से इन्होंने उल्का या पुच्छल तारे (Comets) के नियत काल पर वापस आने की भविष्यवाणी की। कहा जाता है समुद्र में आने वाले तूफान का ज्ञान पहले से प्राप्त करने के लिए इन्होंने पानी के वायु भारमापक का प्रयोजन किया।

आटीला

हूण जाति का एक मशहूर सेनानायक जिसने सन् ४५१ ई० में पश्चिमी योरप की गालजाति (आधुनिक फ्रेन्च) पर आक्रमण किया। मगर रोमन और जर्मन लोगों के साथ की लड़ाई में यह हार गया। इस हार के बाद यह इटाली पर हमला करने के लिये तैय्यार हुआ मगर रोमन चर्च के पोप लिओ की प्रार्थना पर उसने रोम पर चढ़ाई करना रोक दिया।

आटीला के नेतृत्व में हूण लोग बड़े ताकतवर हो गये थे। ये लोग खानाबदोश थे और डेन्यूब नदी के पूर्व की तरफ और पूर्वी रोमन साम्राज्य के उत्तर-पश्चिम में बस गये थे। कास्टेन्टीनोपल के सम्राट और वहाँ की सरकार पर इनका आतंक हमेशा छाया रहता था। आटीला उनको धमकियाँ दिखाकर बड़ी-बड़ी रकमें वसूल किया करता था। पूर्वी साम्राज्य को तहस-नहस करने के बाद उसने पश्चिमी योरप पर आक्रमण किया और दक्षिणी फ्रान्स के बहुत से नगर बर्बाद कर दिये।

तब फ्रेंक और गाथ लोगों ने रोम की शाही फौजों के साथ मिलकर ट्राय के प्रसिद्ध युद्ध में आटीला को जबरदस्त हार दी इस लड़ाई में करीब डेढ़ लाख आदमी मारे गये।

आदर्शवाद (Idealism)

राज्य के सम्बन्ध में एक आदर्श और आध्यात्मिक विचारधारा, जिसका विकास प्राचीन युग में अफलातून और अरस्तू की विचार धाराओं में तथा भारतीय राजनीति की विचार धाराओं में हुआ और आधुनिक युग में रूसो, कैण्ट, कौलोरिच इत्यादि विचारकों ने इसका विकास किया।

आदर्शवाद राजनीति विज्ञान के अन्तर्गत एक गम्भीर और जटिल विचारधारा है। इसके विचारकों ने एक सुन्दर और आदर्श राज्य की कल्पना में सुन्दर स्वप्नलोक का निर्माण किया है किन्तु वासना और विकारों से भरी हुई मानव प्रकृति सुन्दर और अदर्श समझते हुए भी इस कल्पना को साकार रूप में ग्रहण नहीं कर सकी है।

इसके मूल सिद्धान्त इस प्रकार हैं—

आदर्शवाद राज्य के व्यवहारिक रूप का अध्ययन न कर उसे एक पूर्ण एवं आदर्श-संस्था के रूप में देखता है। आदर्शवाद इस वात पर विश्वास करता है कि राज्य का आधार शक्ति-सिद्धान्त, विकास-सिद्धान्त अथवा इकरार-सिद्धान्त नहीं है। इस सिद्धान्त का विश्वास है कि मनुष्य के व्यक्तित्व और उसके मस्तिष्क की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये राज्य का जन्म हुआ है।

इस विचारधारा का बीज अफलातून की रिपब्लिक, अरस्तू की पालिटिक्स और शुक्र की राजनीति में अन्तर्निहित है। आधुनिक काल में सुप्रसिद्ध विचारक रूसो आदर्शवाद की विचारधारा का जन्मदाता माना जाता है। उसने अपनी "सोशल कॉन्ट्रेक्ट" नामक प्रसिद्ध पुस्तक में राज्य को एक आदर्श नैतिक संस्था माना है जो व्यक्ति की सामान्य इच्छा पर आधारित है। उसका सामान्य इच्छा का सिद्धान्त जर्मन दार्शनिक इमेन्युअल कांट के द्वारा अपनाया गया और उसने इस सामान्य इच्छा (General Will) के सिद्धान्त के आधार पर अपने आदर्शवादी सिद्धान्त को जन्म दिया। वास्तव में कॉण्ट ही पहला व्यक्ति है जिसने आदर्शवाद के सिद्धान्त को शास्त्रीय रूप दिया।

जर्मनी से आदर्शवाद का सिद्धान्त इंग्लैण्ड पहुँचा और वहाँ पर बोसांके ग्रीन और ब्रेडले ने इसको अपनाया।

कॉण्ट अफलातून के विचारों और कार्य-पद्धति में विश्वास करता था। उसकी विचारधारा पर रूसो और मान्टेस्क्यु का अच्छा प्रभाव पड़ा था। कॉन्ट का कथन है कि राज्य मनुष्य की स्वतन्त्रता और नैतिकता के लिये आवश्यक साधन है। उसके मतानुसार सर्वोच्च सत्ता व्यक्तियों में निहित है और व्यक्ति की इच्छा ही विधानों का मूल स्रोत है। व्यक्ति स्वयं साध्य है परन्तु व्यक्ति की इच्छा तभी कल्याणकारी होती है जब वह समाज के हित की दृष्टि से व्यक्त की गई हो। ऐसी ही इच्छाओं को प्रेरित करने तथा स्वार्थपूर्ण इच्छाओं का दमन करने के लिए राज्य की उत्पत्ति हुई है। काण्ट व्यक्तिगत अधिकारों तथा कर्तव्यों पर बहुत बल देता है। सामाजिक और राजकीय क्रान्ति के वह बहुत विरुद्ध है। फ्रान्स की राज्यक्रान्ति का उसकी मनःस्थिति पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। क्रान्ति की आलोचना करते हुए उसने लिखा है कि "क्रान्ति मनुष्य के नैतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये आवश्यक अवसरों को समाप्त कर देती है तथा क्रान्ति करना घोरतम अपराध है।" इस प्रकार राज्य को वह सर्वशक्तिमान और दैवी संस्था समझता था और उसका विश्वास था कि राज्य की आज्ञाओ का पालन करना मनुष्य का नैतिक कर्तव्य है। काण्ट के मतानुसार युद्ध वांछनीय नहीं हैं। युद्ध को बन्द करके विश्व की शान्ति के लिये राज्य को अपना जीवन अर्पण कर देना चाहिये।

हिगेल

आदर्शवाद का दूसरा प्रसिद्ध विचारक हिगेल था। हिगेल राज्य को स्थायी, आवश्यक और मनुष्य की आत्मा का सार कह कर पुकारता है। राज्य की आज्ञाओं का पालन करके ही व्यक्ति को स्वतन्त्रता प्राप्त हो सकती है। कानून तथा आध्यात्मिक नैतिकता की सहायता से ही मनुष्य अपनी स्वतन्त्रता को प्रकट कर सकता है।

हिगेल के मत से राज्य के बिना स्वतन्त्रता का कुछ भी महत्व नहीं है और व्यक्ति के वास्तविक उद्देश्यों की प्राप्ति और उसका नैतिक विकास तभी संभव हो सकता है जब कि वह राज्य का सदस्य बन कर अपने को राज्य के अर्पण कर दे तथा असंशय भाव से राज्य के आदेशों का पालन करे।

काण्ट की तरह हीगेल युद्ध का विरोधी नहीं था। वह युद्ध को आवश्यक और अवश्यम्भावी समझता था। युद्ध को अवश्यंभावी सिद्ध करने में उसने यह प्रमाण दिया है कि मनुष्य की विचारधाराओं में परिवर्तन होता रहता है और एक विचार का स्थान उसका विरोधी दूसरा स्थान ले लेता है। इन विचारों के संघर्ष में युद्ध अवश्यंभावी हो जाता है। इसके अतिरिक्त आन्तरिक विद्रोह और भ्रष्टाचार को सामाप्त करके युद्ध राज्य को शक्तिशाली बना देता है। राज्य में सदैव शान्ति रहने से अकर्मण्यता आ जाती है। इस अकर्मण्यता को भी युद्ध दूर कर देता है।

हीगेल के अतिरिक्त आदर्शवादी विचारधाराओं में टी० एच० ग्रीन, बोसांके और ब्रेडले इस विचार धारा के प्रमुख विचारक माने जाते हैं।

आदर्शवादी सिद्धान्त की आलोचना

आधुनिक युग की विचार धाराओं में हीगेल के सिद्धान्त की कटु आलोचना की जाती है। राजनीति शास्त्र के लगभग सभी लेखक हीगेल के राज्य के निरंकुशवाद के सिद्धान्त, अन्ध विश्वास पूर्वक राज्य की आज्ञा पालन करने के विचार का प्रबल विरोध करते हैं। हीगेल के इन विचारों का भी तिरस्कार किया जाता है कि राज्य स्वयं ही एक साध्य है, एक सर्वोत्तम संस्था और ईश्वर की देन है जिसके अधिकार और उद्देश्य नागरिकों के अधिकार और उद्देश्यों से भिन्न हैं।

आदित्य प्रथम

दक्षिण के तंजावर और त्रिचनापल्ली जिले का चोल वंशीय राजा विजयालय का पुत्र आदित्य प्रथम जो सन् ८७५ के लगभग हुआ। इसने पल्लव वंशीय राजा अपराजित वर्मन को हराकर तोण्ड मण्डल को अपने राज्य में मिला लिया और पल्लव राजवंश का अन्त कर दिया। पश्चिमी गंगवंश के राजा को हरा कर उससे तलकाण्ड और कोंगु देश छीन लिया। इसका साम्राज्य उत्तर में मद्रास तथा दक्षिण में कावेरी तक पहुँच गया था। यह राजा शैव धर्म का उपासक था और इसने कई शिव मन्दिरों का निर्माण किया।

आदिल खाँ फारूकी

खान देश का अन्तिम और प्रसिद्ध शासक आदिल खाँ फारुकी जिसने सन् १४५७ से १५०३ तक खान देश पर शासन किया। जिसने अपने राज्य की आर्थिक समृद्धि को बहुत बढ़ाया। इसके समय में बुरहानपुर को हिन्दुस्तान के सुन्दरतम नगरों में से एक माना जाता था। आदिल शाह ने असीर गढ़ के किले की किलेबन्दी को पूरा किया। इसके समय में सोने, चाँदी के सलमे सितारे और रेशम व मखमल पर जर्दोजी के काम ने बहुत उन्नति की।

आदम मिकीवक्स

पौलेण्ड का सबसे महान् रोमाण्टिक कवि जिसका समय सन् १७८८ से १८५६ तक है। इस महान् कवि ने अपने काव्यों में सम सामयिक क्रान्तियों का बड़ा सजीव वर्णन किया है। सन् १८२२ और २३ में उसने अपनी कविताओं को दो खण्डों में प्रकाशित किया। सन् १८३४ में उसने अपनी सर्वोत्कृष्ट रचना "पानताद्युज" प्रकाशित की जिसमें उसने नैपोलियन के पूर्ववर्ती पौलैण्ड का राजनैतिक और सामाजिक दृष्टि से चित्रण किया है यह कृति एक राष्ट्रीय वीर काव्य के रूप में पौलेण्ड की परिचायक है।

आन्ध्र-सातवाहन

भारतवर्ष के दक्षिण में गोदावरी और कृष्णा नदियों के बीच में बसा हुआ तैलगू भाषा-भाषी प्रान्त जिसके अन्तर्गत निजाम स्टेट का अधिकांश भाग, मद्रास प्रान्त का कुछ भाग तथा उड़ीसा प्रान्त के दक्षिण का कुछ भाग सम्मिलित है। आन्ध्र प्रदेश का इतिहास सातवाहन आंध्र नामक जाति के इतिहास से प्रारम्भ होता है। यह सातवाहन आंध्र कुल ब्राह्मण जाति का था। इस कुल का पहला राजा ई० सन् से लगभग २४० वर्ष पूर्व शिशुक नाम से हुआ और इसने अपने कुल का राज्य पूर्वी और पश्चिमी समुद्रों के बीच फैलाया।

मगर इस कुल का सबसे प्रतापी राजा गौतमीपुत्र शातकर्णी दक्षिण भारत का बड़ा प्रतापी राजा था। शक-जाति के राजाओं ने इसके पूर्वजों से जो राज्य छीन लिये

थे उनको वापस इसने सन् ११६ ई० के लगभग जीत लिया। उसकी राजमाता गौतमी बालश्री का एक शिलालेख नासिक की एक गुफा में खुदा हुआ है जिसमें लिखा है कि—

गौतमीपुत्र शातकर्णी ने क्षत्रियों के दर्प को चूर-चूर कर दिया और शक, यवन, पल्लव तथा क्षहरातों का नाश कर वर्णाश्रम धर्म और सातवाहन कुल के गौरव की फिर से प्रतिष्ठा की है। उसने मालवा, गुजरात, सौराष्ट्र, उत्तर कोंकण, नासिक, मध्य-भारत और विदर्भ को जीत कर अपने साम्राज्य में मिला लिया। अपने राज्य के अट्ठारहवें वर्ष में नासिक के पास पाण्डुलेण नमा की एक गुफा खुदवाई और अपने शासन के चौबीसवें वर्ष में एक लेख खुदवाया। गौतमी पुत्र के पश्चात् वासिष्ठी पुत्र श्री पुडुमावी इस वंश की गद्दी पर बैठा और उसके पश्चात् शिवश्री नामक एक राजा हुआ। इसके बाद यज्ञश्री शातकर्णी इस वंश का प्रतापी राजा हुआ जिसका समय सन् १६६ से १६६ ई० तक माना जाता है। इसके भी कई लेख उपलब्ध हुए हैं।

यज्ञश्री शादकर्णी के बाद सातवाहन वंश दुर्बल हो गया फिर भी इस वंश ने करीब चार शताब्दियों तक राज्य किया।

आनन्द मन्दिर

बर्मा की प्राचीन राजधानी पगान में सबसे बढ़िया इमारत आनन्द मन्दिर की थी जिसे दुनिया भर में बौद्ध स्थापत्य कला का खूबसूरत नमूना गिना जाता है।

आनन्दमठ

बंगाल के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार बंकिमचन्द्र चटर्जी के द्वारा लिखा हुआ एक राजनैतिक उपन्यास जो सन् १७७४ के सन्यासी विद्रोह की घटनाओं पर आधारित है। इस उपन्यास में सशस्त्र सन्यासियों ने जंगल में रह कर अनेक कष्ट उठा कर किस प्रकार ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकारियों से खुलकर मुठभेड़ की इसका बड़ा सजीव चित्रण किया गया है।

हमारे देश का सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय गान "बन्दे-मातरम्" भी सबसे पहले इसी उपन्यास के अन्तर्गत लिखा गया था जिसने बाद में समस्त देश के राष्ट्रीय गान का महत्व प्राप्त किया।

आगे जाकर बंगाल के क्रान्तिकारियों ने अपने संगठन और प्रचार में इस उपन्यास के मार्ग दर्शन से बड़ा लाभ उठाया। कई वर्षों तक अंग्रेजी सरकार ने इस उपन्यास को जब्त कर रखा था।

आनन्द भवन

इलाहाबाद में पं० मोतीलाल नेहरू का सुप्रसिद्ध निवासस्थान आनन्द भवन। जिसको उन्होंने भारती स्वाधीनता युद्ध की प्रेरक कांग्रेस संस्था को दान कर दिया और जो भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में एक प्रेरक स्मृति की तरह अभिव्यंजित हो गया।

आनन्द-घन

जैन धर्म के उपासक एक प्रसिद्ध संत और कवि। इनका पूर्व नाम लाभविजय था। इनके जीवन के अन्तिम दिन राजस्थान के मेड़ता नामक स्थान पर व्यतीत हुए थे। इनकी रचनाओं में "आनन्दघन-चौबीसी" और "आनन्दघन बहोत्तरी" अभी उपलब्ध हैं। इनका समय विक्रम की सत्रहवीं सदी के अन्तिम चरण में माना जाता है। इनकी आध्यात्मिक प्रेरणा का मूलस्रोत बहुत व्यापक और उदार भावनाओं से प्रेरित था।

आनन्द वर्द्धन

संस्कृत में ध्वनि सम्प्रदाय को जन्मदाता जो सन् ८५५ के करीब हुआ। आनन्द वर्द्धन काश्मीर की पण्डित परम्परा में बहुत प्रसिद्ध हैं। यह कश्मीर के राजा अवन्ति वर्मन के समकालीन था। इसकी रचनाओं में "ध्वन्य लोकवृत्ति" अर्जुन चरित तथा विषय बाण उल्लेखनीय है।

आनन्द प्रकाश जैन

हिन्दी भाषा के एक उदीयमान उपन्यासकार। जिन्होंने ऐतिहासिक उपन्यासों की श्रृंखला में एक परम्परा कायम की है इनका ऐतिहासिक उपन्यास कठपुतली के धागे बड़ा लोकप्रिय हुआ है।

आनन्द पाल

हिन्दू शाही नामक ब्राह्मण कुल के राजा जयपाल का पुत्र । जिसका शासन भारत के उत्तर पश्चिमी क्षेत्र में सन् १००५ के आसपास था ।

सुप्रसिद्ध गुप्तवंश के शासन काल में जब कुशानवंश को इस देश से निकाल दिया तब वे लोग भारत के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र में काबुल के आसपास बस गये और दैवपुत्र शाही-शाहानुशाही के नाम से वहाँ राज करने लगे । सातवीं सदी से नौवीं सदी तक लगभग दो सौ वर्ष उन्होंने वहाँ राज्य किया । उसके बाद उनके एक ब्राह्मण मंत्री कल्लर ने इस राजवंश को खतम कर "हिन्दूशाही" के नाम से एक नवीन राजवंश की स्थापना की । राजा जयपाल और उसका पुत्र आनन्द पाल इसी वंश के वंशज थे ।

राजा जयपाल के समय में गजनी का सितारा बुलन्द हो रहा था । गजनी के सुबक्त गीन ने और उसके बाद महमूद गजनवी ने राजा जयपाल पर आक्रमण कर उसे दो बार भारी पराजय दी । तब निराश होकर जयपाल अपने पुत्र आनन्द पाल को राज्य देकर अग्नि में जलकर मर गया ।

आनन्द पाल को भी महमूद ने शान्ति से नहीं बैठने दिया तब आनन्द पाल ने अपनी सहायता के लिए भारतवर्ष के बहुत से राजाओं को बुला भेजा । भारतवर्ष के कई राजाओं ने मिलकर देश के इस महान् शत्रु का एक बार संयुक्त शक्ति से मुकाबिला करने का निश्चय किया ।

इस युद्ध का वर्णन करते हुए मुसलमान इतिहासकार फरिश्ता लिखता है कि—

महमूद ने हिजरी सन् ३९९ (ई० सन् १००८) में अपनी सेना एकत्र की और भारत पर आक्रमण कर के आनन्द पाल का नाश करने का निश्चय किया । सुलतान के पिछले आक्रमण के समय आनन्द पाल ने बड़ी उद्दण्डता दिखलाई थी । आनन्द पाल ने भारत के दूसरे राजाओं से सहायता माँगी । सहायता का निमंत्रण पाकर उज्जयिनी, ग्वालियर, कालंजर, कन्नौज, दिल्ली और अजमेर के राजाओं ने एक ऐसी विशाल सेना तैय्यार की कि जितनी आज तक कभी नहीं हुई थी, आन्द पाल ने स्वयं सेनापति का पद ग्रहण किया और महमूद पर आक्रमण किया । दोनों सेनाओं की भेंट पेशावर में हुई । वे आमने-सामने पड़ाव डालकर ठहर गईं । लगभग चालीस दिन तक किसी पक्ष ने युद्ध प्रारम्भ नहीं किया ।

बाद में असभ्य गक्खरों ने हिन्दुओं की ओर से एकाएक मुसलमानों की छावनी पर आक्रमण कर दिया और थोड़े ही समय में पाँच दस हजार मुसलमानों को काट डाला । युद्ध आरम्भ हुआ, दोनों ओर की सेनाएँ एक दूसरे से भिड़ गई । गक्खरों का जोश देख कर उस दिन के लिये युद्ध रोकने की इच्छा से सुलतान युद्ध क्षेत्र से बाहर निकल आया मगर दैवयोग से उसी समय आनन्द पाल के हाथी को एक बाण आकर लगा और वह हाथी घबराकर पीछे भागने लगा । इस घटना को भागने की सूचना समझ कर सारी सेना भी भागने लगी और हिन्दुओं की जीत हार में बदल गई । अब्दुल्लाताई ने भागती हुई सेना का पीछा किया और ८००० हिन्दुओं के सिर काट डाले ।

इस प्रकार इस युद्ध में हिन्दुओं के भाग्य का फैसला हो गया । आनन्द पाल की मृत्यु सन् १०१४ में हो गई ।

आनन्दी बाई

पेशवा राघोबा की पत्नी—

सन् १७६१ में पेशवा बालाजी बाजीराव की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र माधोराव पेशवा की गद्दी पर बैठा परन्तु उसके नाबालिग होने से राज कार्य उसका चाचा राघोबा चलाता रहा, परन्तु जब माधोराव बालिग हुआ तो उसने अपने शासन कार्य की सहायता के लिये नाना फड़नवीस को नियुक्त किया । इससे राघोबा बहुत नाराज हुआ और उसकी स्त्री आनन्दी बाई ने राघोबा को पेशवा के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिये उत्साहित किया । तब राघोबा ने निजाम को पूना पर आक्रमण करने के लिये उकसाया । यह देख पर पेशवा ने राघोबा से फिर सन्धि कर ली और वह उसके प्रभाव में आ गया ।

लेकिन आनन्दी बाई बड़ी षड्यन्त्रकारिणी स्त्री थी । उसके षड्यन्त्रों से फिर झगड़ा पैदा हुआ । सन् १७७२ में माधोराव पेशवा मर गया । उसके बाद उसका भाई

नारायण राव पेशवा हुआ परन्तु कुछ समय के बाद वह भी मार डाला गया। ऐसा कहा जाता है कि यह हत्या भी आनन्दी बाई के ही षड्यन्त्रों का परिणाम थी।

आबू—पर्वत

भारत वर्ष के दक्षिण पश्चिम में अहमदाबाद अजमेर रेलवे लाइन के बीच में सुप्रसिद्ध आबू पर्वत श्रेणियां फैली हुई हैं। इस पर्वत की सब से ऊँची चोटी पाँच हजार फीट तक ऊँची है।

आबू का पर्वत उसके ऊपर बने हुए अनेक सुन्दर और कलापूर्ण जैन मन्दिरों के कारण जैनियों का महान् तीर्थ स्थान तो है ही, मगर स्थापत्यकला और पुरातत्व के प्रेमियों के लिए भी यह किसी तीर्थस्थान से कम नहीं है। क्योंकि आबू के जैन मन्दिर क्या कला के उच्च आदर्श की दृष्टि से, क्या स्थान की रमणीयता की दृष्टि से और क्या प्राचीन ऐतिहासिक दृष्टि से न केवल भारतवर्ष में प्रत्युत सारे विश्व में अपना एक प्रमुख स्थान रखते हैं। स्थापत्य कला के उच्च आदर्श की दृष्टि से तो शायद सारे भारत वर्ष में एक ताजमहल को छोड़कर और कोई दूसरा स्थान नहीं, जो इनकी तुलना कर सके।

आबू पर बने हुए जैन मन्दिरों में विमलवसिह नामक आदिनाथ का मन्दिर और लूणावसाही नामक नेमिनाथ का मन्दिर कारीगरी, स्थापत्यकला और पच्चीकारी की दृष्टि से अनुपम है।

विमलवसिह आदिनाथ मन्दिर—यह मन्दिर दण्ड-नायक विमलशाह के द्वारा बनाया हुआ है। इस मन्दिर का निर्माण विक्रम संवत् २८८ में हुआ मगर बाद में विक्रम की बारहीं तेरहवीं सदी में इस का पुनर्निर्माण और विस्तार हुआ जिसके सम्बन्ध में कई शिलालेख मन्दिर में लगे हुए हैं।

लूणावसाहि नेमिनाथ मन्दिर—उपरोक्त आदिनाथ मन्दिर के पास ही सुप्रसिद्ध लूणावसाहि नेमिनाथ का मन्दिर बना हुआ है। इस मन्दिर का निर्माण अणहिलपुर पट्टन के निवासी अश्वराज के पुत्र वस्तुपाल और उनके भाई तेजपाल ने करवाया। ये दोनों भाई पोरवाल जैन जाति के थे और गुजरात के धोलका प्रदेश के सोलंकी राणा वीरधावल के मंत्री थे। इस मन्दिर का निर्माण करोड़ों रुपयों की लागत से विक्रम संवत् १२८७ में किया गया।

भारतीय शिल्पकला के विशेषज्ञ श्री फर्ग्युसन अपनी "पिक्चर्स इलस्ट्रेशन्स आफ एन्शेन्ट आर्किटेक्चर इन इण्डिया" नामक पुस्तक में लिखते हैं "कि इस मन्दिर में जो कि संगमर्मर का बना हुआ है अत्यन्त परिश्रम सहन करने वाली हिन्दुओं की टाँकी से फीते जैसी बारीकी के साथ ऐसी मनोहर आकृतियाँ बनाई गई हैं कि अत्यन्त कोशिश करने पर भी उनकी नकल कागज पर बनाने में मैं समर्थ नहीं हो सका।"

यहाँ के गुम्बज की कारीगरी के विषय में कर्नल टॉड लिखते हैं कि इसका चित्र तैयार करने में अत्यन्त कुशल चित्रकार की कलम को भी महान परिश्रम करना पड़ता है।

कर्नल टॉड के विलायत पहुँच जाने के पश्चात् मिसेज विलियम हण्टर बेब नाम की एक अंग्रेज महिला ने वस्तुपाल तेजपाल मन्दिर के गुम्बज का अपना तैयार किया हुआ चित्र कर्नल टॉड को दिया। उस चित्र को देख कर उन्हें इतना हर्ष हुआ कि उन्होंने अपनी "ट्रेवलर्स इन वेस्टर्न इण्डिया" नामक पुस्तक उसी महिला को समर्पित कर दी और उससे कहा कि तुम आबू नहीं गई हो प्रत्युत् आबू को ही यहाँ ले आई हो!

आमूर की घाटी

रूस और चीन के बीच में पड़ने वाली आमूर नदी की घाटी जहाँ पर रूस और चीन की पहली लड़ाई हुई।

इस लड़ाई में रूस की हार हुई और सन् १६८९ में चीन और रूस के बीच में नरचिन्स्क की सन्धि हुई जिसमें दोनों देशों की सीमाएँ तय की गई और व्यापार सम्बन्धी समझौता हुआ। यूरोप के एक देश के साथ चीन वालों की यह पहली सन्धि थी। इस सन्धि से रूस का आगे बढ़ना तो रुक गया मगर कारखानों के उद्योग में उसकी बड़ी तरक्की हुई। इस सन्धि से रूस और चीन के राजनैतिक सम्बन्ध मजबूत हो गये।

इस समय रूस का शासक पीटर महान् था!

आयर

बिहार में सन् १८५७ में दानापुर के नजदीक वीर सेनानी कुँवर सिंह का मुकाबला करने वाला अंग्रेज सेनापति मेजर आयर।

दानापुर के ऊपर कुँवर सिंह की सेनाओं का जब घेरा पड़ा और अंग्रेजी सेनाओं को भारी हार खानी पड़ी तब मेजर आयर अंग्रेजों की हार का बदला लेने के लिये आरा पर चढ़ाई करने चला। जब कुँवर सिंह के सैनिक २९ और ३० जुलाई को जनरल डनबार को हराकर लौट रहे थे तब उन्हें पता लगा कि आयर की फौजें आरा की तरफ जा रही हैं। तब उस वृद्ध सेनापति ने तुरन्त अपनी सेना की व्यूह रचना की। बुढ़ापे और जवानी की इस मुठभेड़ में बुड्ढे कुँवर सिंह ने ही विजय पाई। तब आयर ने तोपों को धड़धड़ाना शुरू किया मगर कुँवर सिंह की सेना आग उगलती हुई तोपों के बिल्कुल नजदीक पहुँच गई। वे उन पर अधिकार करने ही वाली थी कि जनरल आयर ने सब ओर से निराश होकर अपनी फौज को संगीनों से हमला करने की इजाजत दी। गोरे सैनिक संगीने ले लेकर क्रान्तिकारियों पर बेतहाशा टूट पड़े और उन्होंने संगीनों के बल से क्रान्तिकारियों को जंगल में खदेड़ कर आरा पर अधिकार कर लिया।

आयर कूट (Eyre Coot)

लार्ड हेस्टिंग्ज के समय में मद्रास की अंग्रेजी सेना का मशहूर सेनापति आयर कूट।

सन् १७८० में हैदर अली ने कर्नाटक पर हमला करके अर्काट को घेर लिया। अंग्रेजों ने अर्काट की रक्षा के लिये सर हैक्टर मुनरो और कर्नल बेली को दो तरफ से उसे दबाने के लिये भेजा मगर हैदरअली ने इन सेनाओं को घेर कर बुरी तरह से हरा दिया और अर्काट पर अधिकार कर लिया।

तब लार्ड हेस्टिंग्ज ने आयरकूट नामक कुशल सेनापति को युद्ध के लिये भेजा। आयरकूट बड़ा युद्ध-कुशल सेनापति था। दक्षिण में फ्रांसीसियों के साथ कई लड़ाइयों में उसको सफलता मिल चुकी थी। वाण्डवाश के प्रसिद्ध युद्ध में सफलता प्राप्त करके वह बहुत प्रसिद्ध हो गया था। आयरकूट ने सेना का संगठन करके चिदम्बरम पर हमला किया मगर इस लड़ाई में हैदरअली ने उसे बड़ी शिकस्त दी। इसके बाद हैदर अली ने पोर्टोनोवो नामक स्थान पर आयरकूट की सेना पर हमला किया। बड़ी भयंकर लड़ाई हुई लेकिन इसमें आयरकूट की विजय हुई। हैदर अली के दस हजार सैनिक काम आये और उसे बड़ी भारी क्षति उठाना पड़ी!

आयुर्वेद

भारतीय चिकित्सा विज्ञान का महान् शास्त्र। जिसने अत्यन्त प्राचीन काल में, मनुष्य के स्वास्थ्य, आयु, शरीर और रोगों की चिकित्सा के सम्बन्ध में अत्यन्त सूक्ष्म और वैज्ञानिक विवेचना की।

भारतीय परम्परा के अनुसार इस देश में आयुर्वेदशास्त्र की स्थापना करनेवाले मूल पुरुष अश्विनीकुमार नामक दो भाई माने जाते हैं। जिन्होंने महर्षिच्यवन को अत्यन्त वृद्धावस्था में सुकन्या नामक राजकन्या से विवाह करने के कारण पुनर्यौवन प्रदान किया था।

अश्विनी कुमारों के पश्चात् आयुर्वेद विज्ञान में प्राण संचार करके महान् चमत्कार पैदा करने वाले आचार्य महर्षि धन्वन्तरि माने जाते हैं। जिनके नाम का स्मरण प्रत्येक भारतीय चिकित्सक अपना काम प्रारम्भ करने के पहले करता है।

धन्वन्तरि के पश्चात् आयुर्वेदीय चिकित्सा विज्ञान में महर्षि सुश्रुत, महर्षि चरक और महर्षि वाग्भट्ट का नाम आता है। जिनके लिखे हुए सुश्रुत संहिता, चरक संहिता और अष्टाङ्ग हृदय नामक ग्रन्थ कई शताब्दियां बीत जाने पर भी आज तक भारतीय चिकित्सकों के लिए पथ प्रदर्शन का काम करते हैं। अरब स्थान के खलीफाओं के समय इन ग्रन्थों के अरबी अनुवाद हुए और इन्होंने अरबी चिकित्सकों का भी पथ प्रदर्शन किया।

सिद्धान्त

आयुर्वेद सिद्धान्त की मूलभित्ति त्रिदोष और त्रिगुणात्मक सिद्धान्त पर खड़ी की गई है। मानव-शरीर को आयुर्वेद विज्ञान ने वात, पित्त और कफ इन तीन दोषों की

समष्टि बतलाया है और मानव-मन को सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों की समष्टि बतलाया है। शरीर और मन की इन प्रकृतियों का समन्वय करते हुए आयुर्वेद शास्त्र बतलाता है कि सत्त्व गुण प्रधान मानसवाले मानव के शरीर में कफ प्रकृति प्रधान रहती है। रजोगुण प्रधान मानसवाले मानव के शरीर में पित्त प्रकृति की प्रधानता रहती है और तमोगुण प्रधान मानसवाले मानव शरीर में वात प्रकृति शासन करती है।

मनुष्य के शरीर और मन में जब तक ये त्रिदोष और त्रिगुणात्मक प्रवृत्तियाँ संतुलित रूप में रहती हैं तब तक उस पर किसी भी व्याधि का आक्रमण नहीं हो सकता। उसके रक्त में जीवनी शक्ति (Vitelity) और रोग निवारक शक्ति (Immunity) संतुलित मात्रा में रहती है और रोगोत्पादक जन्तु उसमें प्रवेश करते ही मर जाते हैं।

मगर जब शरीर के इन त्रिदोषों का सन्तुलन नष्ट हो जाता है तब शरीर के रक्त में रोगोत्पादक जन्तु अपनी जड़ जमा लेते हैं वहीं से व्याधि का प्रारम्भ हो जाता है। त्रिदोषों का यह सन्तुलन मिथ्या आहार, विहार, अत्यधिक भोग लालसा, शरीर की शक्ति से अधिक परिश्रम करना इत्यादि कारणों से बिगड़ता है। इसलिए आयुर्वेद के आचार्य मानव-जाति को पहले यह सलाह देते हैं कि रोग उत्पन्न करके उसका इलाज करने की अपेक्षा बुद्धिमानी इसी में है कि शरीर में रोग उत्पन्न ही न होने दिया जाय।

इसके लिए उन्होंने लम्बी चौड़ी व्याख्याओं के द्वारा मनुष्य की सारी दिनचर्य्या, आहार-विहार, स्नान, शौच्य, शयन, कामलिप्सा इत्यादि सारी बातों का बारीकी से विवेचना करने वाला एक शास्त्र बना दिया है। उनका कहना है कि नियमित जीवन व्यतीत करनेवाले मनुष्य रोगों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

रोगों का विवेचन करते हुए आयुर्वेद शास्त्रियों ने रोगों के तीन भेद किये हैं। (१) अधि भौतिक (२) आधिदैविक और (३) आध्यात्मिक।

आधि भौतिक रोग शरीर की विकृति से पैदा होते हैं, आधि दैविक रोग देवताओं या प्रेतों के कोप से पैदा होते हैं और आध्यात्मिक विकृतियाँ मन और आत्मा की विकृति से पैदा होती हैं।

आधिभौतिक रोगों के निवारण के लिए चिकित्सा शास्त्र, आधिदैविक रोगों की निवृत्ति के लिए तंत्रशास्त्र और आध्यात्मिक रोगों की निवृत्ति के लिए योग शास्त्र का विधान बतलाया गया है।

आधि भौतिक रोगों की निवृत्ति के लिए जिस औषधि-विज्ञान की रचना की गई है उसके भी दो भेद किये गये हैं।

(१) वनस्पति सम्बन्धी औषधियाँ जिसमें जंगलों में पैदा होने वाली वनस्पतियों, विष, उपविषों इत्यादि के मेल से उनके गुण धर्मानुसार औषधियों का निर्माण किया जाता है।

(२) रस रसादिक सम्बन्धी औषधियाँ जिसमें पारद, सुवर्ण, ताम्र, लोह, अभ्रक, मोती इत्यादि खनिज और अवानस्पतिक द्रव्यों से औषधियों का निर्माण किया जाता है।

वानस्पतिक औषधियों को भी साधारणतयः दो विभाग हैं। एक जीवनीशक्ति (Vitelity) वर्द्धक और दूसरी रोग निवारक शक्ति (Immunity) वर्द्धक।

आयुर्वेद का कथन है कि इस संसार में जीवनी शक्ति वर्द्धक द्रव्यों में आँवले के बराबर और रोग निवारक शक्ति वर्द्धक औषधियों में हरड़ के बराबर दूसरी कोई वस्तु नहीं है। आँवला शीत वीर्य और हरड़ उष्णवीर्य होने से उनका समन्वय करने के लिए एक तीसरा द्रव्य बहेड़ा और मिलाया जाता है। इस प्रकार "त्रिफला" का यह योग आयुर्वेद विज्ञान ने मानव शरीर को स्वस्थ रखने और किसी भी रोग कीटाणु के आक्रमण को रोकने की शक्ति पैदा करने के लिए सर्वोत्कृष्ट बतलाया है मगर साथ ही कहा है कि ये तीनों द्रव्य उत्तम जाति के और हिमालय पहाड़ पर पके हुए हों तभी अपना अभीष्ट गुण बतलाते हैं।

इनके सिवा आयुर्वेद के निघण्टु शास्त्र में और भी सैकड़ों वनस्पतियों के गुणधर्म का बारीकी से विवेचन किया है।

वनस्पति शास्त्र की ही तरह रस-शास्त्र पर तो इस विज्ञान में और भी गम्भीर सूक्ष्म और विवेचना की गई है।

खास कर "पारद" को मानवीय शरीर की चिकित्सा में उपयोग लेने के सम्बन्ध में जितनी बारीक खोज भारतीय चिकित्सा-विज्ञान ने की है उतनी आज तक संसार में कहीं नहीं हुई यह कहने में जरा भी अतिशयोक्ति नहीं होगी।

पारद को अष्टादश संस्कारों से संस्कारित करना, उसके अन्दर सोने को पचा लेने की शक्ति पैदा करना, उस सोने को पचाये हुए पारद से, चन्द्रोदय, मकरध्वज, इत्यादि रोग और वृद्धावस्था पर विजय प्राप्त करनेवाली महान् औषधियों का निर्माण करना, इत्यादि कला से सारे संसार में केवल भारत के चिकित्सक ही परिचित थे। आज भी यद्यपि अष्टादश संस्कारों को जानने वाला कोई वैद्य भारत में नहीं है फिर भी आठ संस्कारों से संस्कारित पारद से निर्मित औषधियाँ भी समय आने पर अपना असर बतलाती हैं और आज के इस प्रतिस्पर्द्धा पूर्ण युग में आयुर्वेद किसी रूप में यदि जीवित है तो अपने इसी रसशास्त्र की वजह से।

पारद के साथ विष-विज्ञान के ऊपर भी आयुर्वेद की खोजें अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। संखिया, वत्सनाग, कुचला, भिलामा इत्यादि प्रभावशाली औषधियों का आज भी आयुर्वेद के चिकित्सक निर्भीकतापूर्वक व्यवहार करते हैं और उनसे हजारों रोगियों को लाभ पहुँचता है।

पुनर्यौवन की प्राप्ति के सम्बन्ध में भी किसी युग में आयुर्वेद के महर्षियों ने साँगोपाँग खोज की थी, उन्होंने अपने शास्त्रों में उसका पूर्ण विवेचन भी किया है पर यह कहने में कोई संकोच नहीं कि इस समय इस विधिविधान का पूर्ण जानकार शायद कोई नहीं है और पुनर्यौवन का प्रश्नवाचकचिह्न अभी ज्यों का त्यों खड़ा है।

समन्वय

फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान ने इस समय जितनी तेजी के साथ प्रगति की है उसके सामने सभी चिकित्सा पद्धतियों की गति मन्द पड़ गई है। इस सचाई को मानने के बावजूद यह भी मानना ही पड़ेगा कि इस चिकित्सा विज्ञान की नींव अधिकतर नेगेटिव थिओरी पर रक्खी गई है। पाजेटिव सिद्धान्त के रूप में सिर्फ "विटामिन" सिद्धान्त की खोज ही इसका अवलम्ब है। रोग का आक्रमण हो और उसके कीटाणुओं को तुरन्त नष्ट कर दिया जाय यह विशुद्ध नेगेटिव सिद्धान्त है और उसी के बल पर पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान अपनी एण्टीबायोटिक औषधियों और इंजेक्शनों के बल पर विजय प्राप्त करता जा रहा है। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि यह औषधि-विज्ञान का चरम सिद्धान्त नहीं हो सकता। चरम सिद्धान्त तो पाजेटिव या रचनात्मक ही होगा जिसमें मानव का शरीर इतनी शक्ति प्राप्त करेगा जिस पर रोग के कीटाणु आक्रमण ही न कर सकें। इस विषय के मूलभूत-तत्व आयुर्वेद सिद्धान्त में मिल सकते हैं। इस प्रकार पाजेटिव और नेगेटिव दोनों प्रकार की चिकित्साओं के मूल भूत तत्वों को ग्रहण करके उनका समन्वय किया जायगा उसी दिन मानव जाति का वास्तविक कल्याण होगा।

आर्क-विशप

ईसाई धर्म के अधिकार सम्पन्न धर्माधिकारी। जिनका दर्जा सबसे बडे धर्माधिकारी पोप से नीचे होता था। आर्क विशप वे लोग कहलाते थे जिनका अधिकार अपनी संस्था की सीमा के बाहर तक होता था। जो अपने प्रान्त के समग्र विशपों पर कुछ न कुछ अधिकार रखते थे। आर्क विशप का एक मुख्य अधिकार यह भी था कि वह अपने प्रान्त के सभी विशपों को प्रान्तीय सभा में बुलाता था। विशप के द्वारा निर्णय किये हुए अभियोगों की अपील इसके यहाँ होती थी। विशप से आर्क विशप का दर्जा बड़ा होता था।

आर्य-संस्कृति

आर्य लोगों की महान् सभ्यता, जिसका विकास सिंधु और गंगा के मध्यवर्ती क्षेत्र में हुआ।

इतिहास के प्राचीनतम काल में वैसे तो भिन्न-भिन्न देशों और जातियों में अनेक प्रकार की संस्कृतियों का उदय और अस्त हुआ। मगर अखिल मानवीय संस्कृति के दृष्टिकोण से इन सब संस्कृतियों को दो बड़े-बड़े विभागों में विभाजित किया जाता है (१) सेमेटिक संस्कृति (२) आर्य संस्कृति।

सेमेटिक संस्कृति का विकास यूरोप, अरब, रूस, अमेरिका तथा मध्य एशिया के कुछ विभागों में हुआ महान् ईसाई धर्म और महान् इसलाम धर्म का उदय सेमेटिक संस्कृति में हुआ, जब कि आर्य-संस्कृति का पौधा प्रधान रूपसे भारत के अन्तर्गत फूला फला और इसकी शाखाएं बौद्ध धर्म के रूप में चीन, जापान, बरमा, सीलोन, जावा, सुमात्रा, कम्बोड़िया इत्यादि देशों में फैली। कहने को जर्मन लोग भी अपने आपको आर्य संस्कृति में बतलाते हैं और उनका पूजनीय चिन्ह भी आर्य लोगों की तरह स्वस्तिक का ही है, वहाँ का साहित्य भी संस्कृत भाषा के साहित्य से भरा पुरा है फिर भी भूमि और देश का परिवर्तन होने से भारतीय आर्य संस्कृति में और जर्मन आर्य संस्कृति में बहुत मौलिक भेद हैं और 'यूरोप के धरातल पर बसे हुए होने से आर्य-संस्कृति की अपेक्षा जर्मन लोग सेमेटिक संस्कृति के ही अधिक निकट हैं।

आर्य संस्कृति के पूर्व भारतीय संस्कृतियाँ

इतिहासकारों का कहना है कि आर्य लोगों के भारतवर्ष में आने के पूर्व इस देश में एक अत्यन्त विकसित, सुव्यवस्थित और समृद्ध संस्कृति का अस्तित्व था। यह संस्कृति द्राविड़-संस्कृति के नाम से प्रसिद्ध थी। मोहनजोदड़ो और हरिअपा की खुदाई में इस संस्कृति के अवशेष मिले हैं। उनसे मालूम होता है कि पांच हजार बरस से भी बहुत पुराने समय से इस देश में एक समृद्ध संस्कृति का अस्तित्व था। लोग मकान बनाने, रूई से कपड़ा बनाने तथा जीवन के अन्दर उपयोग में आने वाली और भी कई कलाओं के जानकार थे।

उसके बाद जब आर्य जाति ने इस देश में प्रवेश किया तब वह भी अपने साथ एक व्यवस्थित सभ्यता के तत्वों को लाई। पहले कुछ समय तक दोनों सभ्यताओं में छोटे बड़े संघर्ष हुए। जिनका थोड़ा बहुत वर्णन वेदों की ऋचाओं में मिलता है। फिर उसके बाद दोनों सभ्यताओं में धीरे-धीरे समझौता हो गया। प्राचीन संस्कृति के कुछ तत्व आर्यों ने ग्रहण किये और आर्य-संस्कृति के कुछ तत्व प्राचीन लोगों ने ग्रहण किये और दोनों सभ्यताओं का करीब-करीब एकीकरण हो गया। भाषाओं का भेद जरूर बना रहा। द्राविड़ संस्कृति की भाषाएं तामील, तैलगू, कन्नड़ और मलयालम थीं जब की आर्य संस्कृति की प्रधान भाषाएँ संस्कृत, प्राकृत्त, पाली, मागधी और उनकी शाखाएं थीं।

कालान्तर में ईसा से करीब एक हजार वर्ष पूर्व से छः सौ वर्ष पूर्व के बीच आर्य संस्कृति की दो शाखाएं हो गई। एक ब्राह्मण संस्कृति और दूसरी श्रमण संस्कृति।

ब्राह्मण संस्कृति वैदिक संस्कृति के नाम से भी प्रसिद्ध है। इस सभ्यता के अनुयायी वेदों को अपौरुषेय प्राचीनतम ग्रन्थ मानते थे और उन्हीं के अनुसार यज्ञ, याज्ञादिक कर्म करते थे, समाज में छुआ छूत को मानते थे तथा समाज में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के दर्जे को हीन समझते थे।

यज्ञ याज्ञादिक में होने वाली हिंसा और छुआछूत से उत्पन्न असन्तोष की प्रति क्रिया के रूप में ही एक प्रकार से श्रमण संस्कृति का उदय हुआ ऐसा कई इतिहासकारों का विश्वास है। श्रमण संस्कृति की शाखाओं में बौद्ध, जैन और आजीवक ये तीन शाखाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं।

यह स्वीकार करने में किसी को भी हिचक नहीं हो सकती कि आर्य संस्कृति के विधायकों ने जीवन और संसार की तमाम समस्याओं और रहस्यों पर अत्यन्त मौलिक खोजें की, जीवन के हरएक क्षेत्र में इस संस्कृति ने कुछ ऐसे मौलिक तत्वों की स्थापना की जो संसार में दूसरी किसी भी जगह में नहीं पाये जाते।

राजनैतिक क्षेत्र, सामाजिक क्षेत्र, धार्मिक क्षेत्र साहित्यिक क्षेत्र और कला के क्षेत्र में इस सभ्यता ने ऐसे अमूल्य रत्न संसार को भेंट किये जो इतिहास में अन्यत्र बहुत कम दिखलाई पड़ते हैं।

राजनैतिक क्षेत्र में आर्य-संस्कात

राजनीति के क्षेत्र में आर्य-संस्कृति ने दूसरी सभ्यताओं की तरह एकतंत्री शासन का ही समर्थन किया है हालांकि उसके इतिहास के प्रारम्भ में और मध्य में कई छोटे बड़े गणतंत्रों का भी अस्तित्व पाया जाता है।

मगर इस एकतंत्री शासन की भी कई मर्यादाएँ थीं महान् राजनीति पारङ्गत शुक्र ने अपनी राजनीति में राज

के कर्तव्य, उसके ज्ञान, उसके व्यक्तित्व इत्यादि प्रत्येक बात के लिए जो मान-दण्ड निश्चित किया है वह अत्यन्त आश्चर्यजनक है, उस कसौटी पर कसे जाने के बाद राजा के उच्छृंखल और अनियन्त्रित होने का भय नहीं रहता। उसके बाद भी राज्य-सिंहासन पर यद्यपि क्षत्रिय राजा लोग ही बैठते थे मगर उनपर पूरा नियंत्रण बन में निवास करने वाले सर्वस्व त्यागी ब्राह्मणों या ऋषियों का होता था। वे लोग समय आने पर राजा को आदेश देते थे और राजा को नत-मस्तक होकर उसे स्वीकार करना पड़ता था अगर वह ऐसा नहीं करता था तो प्रजा उसे हटा देती थी।

राज्य संस्था पर धर्म-संस्था के नियंत्रण का यह उदाहरण हमें ईसाई और इस्लाम संस्कृति में भी देखने को मिलता है मगर उनमें बहुत बड़ा मौलिक अन्तर भी है। ईसाई धर्म की धर्म-संस्था रोमन-चर्च के पोप राज्य-संस्था पर नियंत्रण करते-करते वैभव, विलास और भोग में इतने निमग्न हो गये कि समय आने पर राज्य-संस्था ने उनके विधान को मानने से इन्कार कर दिया और दोनों संस्थाओं के बीच प्रत्यक्ष संघर्ष प्रारम्भ हो गया। इस्लाम के धर्माधिकारी खलीफा तो खुलेआम राजकीय वैभव में सराबोर होकर आपस में भयङ्कर रूप से लड़ने लगे थे।

मगर आर्य-संस्कृति में धर्म-संस्था के संचालक प्रायः वैभव विलास से दूर जंगलों में ही जीवन व्यतीत करते थे। हमारे अधिकांश धर्मशास्त्रों, चिकित्सा शास्त्रों और राजनीति के ग्रन्थों का निर्माण प्रायः जंगलों में ही हुआ है। कौटिल्य के समान महान् राजनीतिज्ञ और साम्राज्य निर्माता बस्ती में रहते हुए भी एक कुटिया में रह कर सन्यासी का जीवन व्यतीत करते थे, इतने बड़े साम्राज्य का निर्माण कर देने पर और राजनीति शास्त्र पर इतना अमर ग्रन्थ लिख देने पर भी राज्य-वैभव या विलास-मन्दिरों ने उन्हें कभी अपनी ओर आकर्षित नहीं किया और यही कारण है राज्य-संस्था पर धर्म संस्था का नियंत्रण होने पर भी इस संस्कृति के इतिहास में राज्य-संस्था और धर्म-संस्था के बीच कभी कोई भयानक संघर्ष नहीं हुआ।

आर्य संकृति की दूसरी मौलिक विशेषता यह है कि आर्य-लोगों ने अपने राजनैतिक और सामाजिक ढाँचे की नींव भोग पर नहीं बल्कि त्याग के ऊपर रक्खी। वैसे राजाओं और जन समाज के लिए उच्चतर वैभव विलास की हमारे यहाँ कभी मनाई नहीं रही, न उन वैभव विलासों को कभी बुरा समझा गया मगर ये वैभव विलास संस्कृति के मूलभूत तत्वों में कभी शामिल नहीं किये गये और इसी से दूसरे देशों की तरह साम्राज्य-विस्तार की लोलुप आकांक्षा से यहाँ के राजा लोग अधिक विचलित नहीं हुए। वैसे इस देश में राजनैतिक एकता स्थापित करने के लिए, सारे देश को एक ही साम्राज्य की छाया में लाने के लिए कई महत्वाकांक्षी सम्राटों ने प्रयास किया और उसमें सफलता भी पाई मगर प्रजा की लूट मार, अनावश्यक खून खराबी, निर्दोष नागरिकों के हत्या-काण्ड आदि के बीभत्स उदाहरण इस संस्कृति के इतिहास में देखने को बहुत कम मिलेंगे जब कि सेमेटिक संस्कृतियों के इतिहास इस प्रकार की क्रूर, अमानवीय और वीभत्स घटनाओं से भरे पड़े हैं।

विदेशों में अपने साम्राज्य विस्तार के लिए बड़े-बड़े युद्ध करना, मानव संहार करना, अन्य विचार धाराओं के लोगों पर जबर्दस्ती अपने धर्म और सभ्यता को थोपना ये उदाहरण भी सारे संसार की अपेक्षा आर्य संस्कृति के इतिहास में बहुत कम मिलेंगे। यह सत्य है कि जावा, सुमात्रा, कम्बोडिया, इण्डोनेशिया वगैरह देशों में कई महत्वाकांक्षी भारतीय राजाओं ने अपने उपनिवेश कायम किये थे मगर इन उपनिवेशों की स्थापना में उन्होंने कोई बड़े-बड़े युद्ध किये हों, अनावश्यक मानव-संहार किया हो ऐसे उल्लेख इतिहास में बहुत कम दिखलाई पड़ते हैं।

कुछ लोग इस चीज को आर्य सभ्यता की निष्क्रियता, प्रमादीपन कह कर मजाक उड़ाते हैं और कहते हैं कि इसी कमजोरी से इस सभ्यता ने हजारों बरस दूसरे लोगों की गुलामी सहन की।

मगर वास्तव में देखा जाय तो गुलामी के कारण आर्य सभ्यता की राजनैतिक पृष्ठभूमि की अपेक्षा सामाजिक पृष्ठभूमि में अधिक मिलेगें। साम्राज्य-विस्तार की अधिक लालसा का न होना, युद्ध-लिप्सा का अधिक जागृत न होना, लूटमार और हत्याकाण्ड की प्रवृत्ति का न होना और आत्मरक्षा के लिए पूर्ण सजग रहना इत्यादि चीजें उच्चतर राजनीति में कभी कायरता या निष्क्रियता की द्योतक नहीं मानी जातीं और इनके परिणाम इतिहास में कभी घातक

नहीं होते हैं। इतिहास के घातक परिणाम मानव-स्वभाव की दूसरी कमजोरियों में छिपे रहते है।

यही कारण है कि आर्य राजनीति के इतिहास में रामचन्द्र, मान्धाता, रघु, चन्द्रगुप्त मौर्य, देवानाम प्रिय अशोक, समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य और हर्ष वर्द्धन के समान महान् नरेशों का नाम मिलता है। जिनका शासन, जिनकी प्रजावत्सलता महान् साम्राज्य के स्वामी होने पर भी जिनका धर्म प्रेम और त्याग वृत्ति संसार के इतिहास में कहीं देखने को नहीं मिलती। विदेशी साहित्य के महान् लेखकों ने जिनकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है और आज प्रजातन्त्र के इस महान् युग में भी जिनकी कीर्त्ति-चन्द्रिका पर कोई कलंक नहीं लग पाता। आगे जाकर महान् सम्राट् अकबर का नाम भी इन महान् सम्राटों की सूचि में इसलिए आता है कि उसने भी आर्य-संस्कृति के कई मूलभूत तत्वों से समझौता कर लिया था और इन तत्वों को अपने जीवन में उतार लिया था।

सामाजिक क्षेत्र में आर्य संस्कृति

सामाजिक क्षेत्र में भी आर्य-जाति ने कुछ मौलिक और मूलभूत तत्वों का निरूपण किया। मनुष्य स्वभाव और प्रकृति के अनुसार उसने सारे समाज को गुण कर्मानुसार चार भागों में विभक्त कर दिया। ज्ञान, धर्म और व्यवस्था का निर्माण करने वाले ब्राह्मण जिनका सम्मान और प्रतिष्ठा समाज में सबसे अधिक थी मगर जो वैभव, विलास और भोग से दूर रहते थे (२) राज्य शासन और युद्ध कला का नियंत्रण करने वाले क्षत्रिय, जिन्हें भोग विलास की एक मर्यादा के अन्दर छूट थी मगर जिन्हें ब्राह्मण व्यवस्थापकों के नियन्त्रण में रहकर प्रजा पालन का काम करना पड़ता था। (३) वैश्य जो समाज में कृषि-व्यवसाय और उत्पादन के दूसरे कार्यों पर नियन्त्रण करते थे और चौथे (४) शूद्र जिन्हें समाज की सेवा पर निर्भर रहना पड़ता था।

ग्रीस के महान् तत्ववेत्ता प्लेटो ने भी अपने "रिपब्लिक" नामक ग्रन्थ में समाज के गुण कर्मानुसार तीन भेद किये हैं। जिनमें समाज में ज्ञान-विज्ञान का योग क्षेम करने वाला तेजस्वी वर्ग, राज्य शासन का संचालक वर्ग और समाज में उत्पादन और आर्थिक सम्पन्नता का योग क्षेम करने वाला वर्ग ऐसे तीनों वर्ग के लोग हैं।

वर्ण पद्धति की तरह आश्रम पद्धति भी आर्य-विद्वानों की मौलिक सूझ थी जिसके अनुसार मनुष्य जीवन की सौ वर्ष की आयु मान कर उसे चार भागों में विभक्त कर दिया गया था। जिसमें (१) ब्रह्मचर्याश्रम जो जन्म से लेकर पच्चीस वर्ष की आयु तक सीमित था इसमें मनुष्य को नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की साधना के साथ गुरु के आश्रम में जाकर ज्ञान, विज्ञान और आचरण की शिक्षा लेनी पड़ती थी (२) गृहस्थाश्रम जिसमें अपने अनुकूल रूप गुणों वाली कन्या से विवाह कर, संसार का उपलब्ध भोग-विलास भोगकर, समाज के प्रति अपने वर्ण के अनुसार अपने दायित्व का योगक्षेम कर, उत्तम और वैधानिक सन्तानें समाज को अर्पण करने का विधान था यह आश्रम २५ से ५० की आयु तक रहता था। (३) वानप्रस्थाश्रम ५० से ७५ वर्ष की आयु तक मर्यादित था। इस आश्रम में मनुष्य ने ज्ञान, विज्ञान और सामाजिक अनुभव से जो कुछ अर्जन किया है उसका योग क्षेम समाज में करने का विधान था। और चौथा सन्यासाश्रम जिसमें ईश्वराधन कर वह अगले जीवन के लिए कुछ संग्रह करता था।

विवाह-संस्था

वैवाहिक प्रणाली के सम्बन्ध में आर्य विद्वानों ने बहुत सूक्ष्म विवेचना की है। इस क्षेत्र में उन्होंने आठ प्रकार की विवाह प्रणालियों का विवेचना किया है जिसमें ब्राह्म विवाह और गान्धर्व विवाह इन दो पद्धतियों ने यहाँ के समाज में विशेष महत्त्व ग्रहण किया। ब्राह्म विवाह की पद्धति में अपने गौत्र और माता के गौत्र को छोड़कर अपनी जाति तथा वर्ण में स्वस्थ युवक स्वस्थ युवती के बीच शास्त्रोक्त पद्धति से विवाह बन्धन का विधान है और गान्धर्व पद्धति में पहले परिचय और प्रेमानुभूति हो जाने के पश्चात् अग्नि को साक्षी करके युवक-युवती के विवाह बन्धन में आने की योजना है। स्वयम्बर प्रथा भी हमारे समाज शास्त्र में बहुत महत्वपूर्ण मानी गई थी।

यौन-सदाचार के ऊपर आर्य सभ्यता में बहुत बल दिया गया है और सिद्धान्त के रूप में वह पुरुष और स्त्री दोनों के लिए है।

देखने में उपरोक्त समाज व्यवस्था एक तर्क सम्मत और विज्ञान-सम्मत रूप में दिखलाई पड़ती है। मगर व्यवहार रूप में इसका जैसा आचरण इतिहास में हुआ वह यहाँ के समाज के लिए बहुत महँगा पड़ा और उसके बड़े बड़े दुष्परिणाम इस देश को उठाना पड़े और इसी की वजह से हमारा सामाजिक संगठन इतना कमजोर पड़ गया कि यह देश बाहरी आततायियों से अपनी रक्षा न कर सका और हजार बरसों के लिए बाहरी आक्रमणकारियों की गुलामी के लोह पंजे में फँस गया।

वर्णाश्रम प्रथा का मूल सिद्धान्त गुण कर्म के अनुसार समाज का चार भागों में विभाजन था जैसे बतलाया है कि—

जन्मना जायते शूद्र, संस्कारोपि द्विज उच्यते।
वेदपाठी भवेद् विप्रा, ब्रह्मजानेति ब्राह्मणा ॥

मगर व्यवहारिक क्षेत्र में गुणकर्म की जगह जन्म ही इन वर्णों के विभाजन का प्रधान आधार बन गया। जिसकी वजह से एक शूद्र प्रवृत्ति वाला मनुष्य ब्राह्मण के घर में जन्म लेले तो वह भी ब्राह्मण माना जाता था और महान् तपस्वी, विशुद्ध ब्रह्म आचरण से युक्त शूद्रक का सिर, रामचन्द्र के समान न्यायप्रिय राजा के द्वारा भी इसलिए काट दिया जाता था कि उसने केवल शूद्र के घर में जन्म लेकर शास्त्र ज्ञान प्राप्त कर तपस्या की थी जिससे एक ब्राह्मण का पुत्र असमय में मर गया था। जन्मना जाति प्रथा के कारण समाज में शूद्रत्व और छुआछूत के समान भयङ्कर रोगों का जन्म हुआ। शूद्रों और सेवा भावी अछूतों के लिए ऐसे कड़े कड़े विधान बनाये गये जो शायद गुलामी की प्रथा से भी अधिक कठोर थे। इन लोगों के लिए शास्त्रों का पठन-पाठन बिलकुल मना था, इनकी बस्ती उच्च वर्गीय बस्ती से बहुत दूर बसाई जाती थी और जब बस्ती में आते तो घण्टी बजाते हुए आना पड़ता था। वर्णाश्रम की आड़ में समाज हजारों छोटी-छोटी जातियों में बँट गया। ये जातियाँ एक दूसरी से अपने को उच्च और दूसरी को हीन समझने लगीं।

इन भेद भावों की वजह से समाज और देश की सारी सुरक्षा का भार राजा पर छोड़ कर जनता इस तरफ से निश्चिन्त हो गई।

यौन-सदाचार की कठोरता केवल नारी को भुगतना पड़ी, पुरुष उससे बिलकुल मुक्त हो गया। पुरुष एक साथ दो-चार स्त्रियाँ कर ले, जर्जर बुढ़ापे में अपनी पौत्री की उमर की लड़की से विवाह कर ले, उससे उसकी सामाजिक या धार्मिक प्रतिष्ठा में कोई कमी नहीं आती थी, मगर स्त्री यदि पहली रात विवाह करे और दूसरी रात उसका पति मर जाय तो उसे सारे जीवन अनन्त वैधव्य की आग में सुलगना पड़ता था। उसके लिए कोई दूसरी व्यवस्था न थी या तो वह अपने पति की लाश के साथ जबर्दस्ती जिन्दा जला दी जाती या अनन्त वैधव्य के रूप में अनन्त नरक की यातनाओं को सहन करती।

इन अनैतिक और एक पक्षीय विधानों के कारण हमारे समाज का आधा भाग नारी जाति के रूप में और चौथाई भाग शूद्र और अछूतों के रूप में जड़ और बेकार हो गया। जो शेष रहा वह भी हजारों जातियों में बँटकर शक्ति हीन हो गया। ब्राह्मण लोग कर्मकाण्ड और यज्ञ याज्ञादिक में डूब गये। क्षत्रिय विलास, वैभव और सत्ता के मद में निर्वीर्य हो गए। वैश्यों की स्थिति भी खराब हो गई। परिणाम यह हुआ कि हमारा सामाजिक संगठन बहुत कमजोर हो गया और बाहरी आक्रमणों से मुकाबिला करने की हमारी शक्ति नष्ट हो गई।

युद्धकला

वैसे व्यक्तिगत वीरता, शौर्य और शस्त्र चालन के तेजस्वी और अलौकिक उदाहरण आर्य सभ्यता के इतिहास में बहुत मिलते हैं मगर सैनिक अनुशासन और व्यवस्थित संगठन तथा उत्तम जाति के शास्त्रों को बनाने की क्रिया महाभारत के युद्ध के पश्चात् हमारे देश में दिन-प्रतिदिन कमजोर होती गई। युद्ध करते करते अगर एक सेनापति या राजा मारा जाता या भाग खड़ा होता तो उसके पीछे सारी सेना भाग खड़ी होती थी। फिर चाहे तुरन्त ही विजय भी क्यों न आने वाली होती। आर्य जाति की युद्धकला की इस कमजोरी ने कई स्थानों पर जीत को हार में बदल दी और उसके परिणाम इतिहास में बहुत घातक हुए।

इस प्रकार आर्य-संस्कृति के विधान की सामाजिक भेद-भाव पूर्ण दुर्बलता और युद्ध नीति में अनुशासन की कमी यही चीजें हमारी स्वाधीनता पर गुलामी का पर्दा डालने में कारणी भूत हुईं।

आर्य-संस्कृति का धार्मिक क्षेत्र

आर्य-संस्कृति के विधायक आर्य संस्कृति का मूल उद्‌गम वेदों से मानते हैं और वेदों को वे अपौरूषेय मानते हैं। वेदों में चार वेद हैं, ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद और सामवेद। इनमें ऋग्वेद सबसे प्राचीन और अथर्ववेद सबसे बाद का माना जाता है वेदों में ऋचाएँ और मंत्र हैं जिन में भिन्न-भिन्न देवताओं की स्तुति की गई हैं। प्रधान देवता ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीन माने जाते हैं। ब्रह्मा सृष्टि के सृजन कर्त्ता, विष्णु उसका पालन करने वाले और महेश उसका संहार करने वाले हैं। कई विद्वानों का यह मत है कि आर्य सभ्यता के मूल देवता ब्रह्मा और विष्णु दो थे तीसरे महादेव को इस सभ्यता ने द्राविड़ी सभ्यता से लिया। द्राविड़ी सभ्यता में शंकर, महादेव या रुद्र का बहुत प्रधान स्थान है।

आर्य संस्कृति में ज्ञान की देवी सरस्वती को, वैभव की देवी लक्ष्मी को और शक्ति और शौर्य की देवी दुर्गा को माना है। वर्षा के देवता वरुण, धन-धान्य और फसल के देवता इन्द्र और पराक्रम के देवता हनुमान माने गये हैं। सरस्वती का वाहन हंस, लक्ष्मी का उल्लू और दुर्गा का शेर माना गया है।

आर्य-धर्म शास्त्रों में संसार की उत्पत्ति पाँच महाभूतों (पृथ्वी, जल, नभ, अग्नि और हवा) से मानी गई है। ये पंच महाभूत प्रकृति की पाँच महा शक्तियाँ हैं और पुरुष या आत्मा इनसे बिलकुल अलग है! पंच महाभूतों से निर्मित शरीर में आत्मा का प्रवेश होने पर उसमें चेतना और जीवन आ जाता है और उसके निकल जाने पर वह फिर जड़ हो जाता है।

आत्मा या जीव अपने कर्मों के अनुसार अनेक प्रकार के प्राणियों की योनियों में भ्रमण करता है। सुख, दुःख उठाता है। फिर जब सुयोग से सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है, या भक्ति का मार्ग मालूम हो जाता है तब वह जीवन्मुक्त हो अनन्त ज्योति में मिल जाता है।

जीवन के तत्व चिंतन के सम्बन्ध में जितना सूक्ष्म विवेचन आर्य-सभ्यता के ग्रन्थों में, उपनिषदों में, दर्शन शास्त्रों में और श्रीमद्‌भावद्‌गीता में मिलेगा, संसार की किसी सभ्यता और किसी साहित्य में इतना सूक्ष्म विवेचन नहीं मिलेगा।

आर्य-संस्कृति का साहित्य

समय की भयङ्कर चोटों को सहन करते हुए अत्यन्त क्रूर विदेशी आक्रान्ताओं के पैरों तले रौंदे जाने, जलाये जाने और दीमगों का आहार बन जाने के बाद भी आर्य-सभ्यता का जो महान् साहित्य आज हमें उपलब्ध है उसको देखकर केवल हम ही नहीं सारा विदेशी संसार भी वाह-वाह कर उठता है। उस अन्धकार युग में जब सारा विश्व मानव कबीलों के रूप में एक स्थान से दूसरे स्थान पर मारा मारा फिरता था, सिंधु और गंगा नदी की घाटियों में जिस साहित्य का निर्माण हुआ वह सारे संसार में बेजोड़ है। क्या धर्म का क्षेत्र, क्या समाज का क्षेत्र, क्या काव्य का क्षेत्र, क्या दर्शन का क्षेत्र और क्या विज्ञान का क्षेत्र सभी क्षेत्रों में उत्कृष्ट दर्जे के साहित्य का निर्माण यदि कहीं हुआ तो वह आर्य सभ्यता के प्राङ्गण में। हम जानते हैं कि चीन में, यूनान में, मिस्र में, असीरिया में, ईरान में तथा कुछ अन्य क्षेत्रों में भी सभ्यताओं का और साहित्य का भारी विकास हुआ था। मगर जीवन के तत्व, और संसार के अध्ययन का साहित्य में जो क्रम आर्य सभ्यता ने अपनाया था उसकी जोड़ संसार में कहीं भी नहीं हैं।

वैसे कहने को आर्य-सभ्यता का यदि एक ही प्रतीक हम संसार को बतलाना चाहें तो "श्रीमद्‌भगवद्‌गीता" को लेकर बतला सकते हैं। इस एक ही ग्रन्थ में जीवन के और संसार के सारे मूल भूत तत्वों का निचोड़ बतला दिया गया है। इतने संक्षेप में—इतने थोड़े शब्दों में जीवन की सारी उलझी हुई समस्याओं का जवाब जितने अधिकारिक ढङ्ग से इस ग्रन्थ में मिल जाता है उतना संसार में अन्यत्र कहाँ सुलभ है। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता आर्य सभ्यता की संसार के सामने एक ऐसी चुनौती है जिसको कोई भी दूसरी सभ्यता स्वीकार करने में हिचकिचाएगी।

उसके बाद दर्शन ग्रन्थों में उपनिषद् और सांख्य योग, वैशेषिक, मीमांसा, न्याय और योग दर्शनों का नम्बर आता है जो संसार के अन्तर्तत्त्व का दर्शन कराने में उत्कृष्ट कोटि का साहित्य है। दर्शन शास्त्र पर इतनी सूक्ष्म विवेचना

प्राचीन युग में तो कौन कहे आधुनिक युग में भी भारत को छोड़कर अन्य देशों में नहीं हुई।

महान् योगी आद्य शंकराचार्य का अद्वैत दर्शन भी दर्शन शास्त्र के क्षेत्र में एक खुली चुनौती थी। जिसने भारत की चारों दिशाओं में एक आध्यात्मिक तहलका मचा दिया था और जिनकी दिग्विजय की स्मृति में अभी तक भारत की चारों सीमाओं पर उनके मठ बने हुए हैं।

काव्य के क्षेत्र में रामायण, महाभारत, भागवत और रघुवंश क्या काव्य कला की दृष्टि से क्या चरित्र-चित्रण की दृष्टि से क्या सुन्दर छन्दों और प्राञ्जल भाषा की दृष्टि से संसार में कहीं अपनी उपमा पा सकते हैं। आज पाश्चात्य संस्कृति का युग है और जीवन के हरएक क्षेत्र में उसकी छाप पड़ी हुई है, इसीलिए वाल्मीकि के साथ होमर का और व्यास के साथ मिल्टन का नाम लिया जाता है मगर मानवीय स्वभाव की गहराइयों का, काव्य के सौन्दर्य और भाषा के प्रवाह की जिस दिन निष्पक्ष आलोचना होगी उस दिन वाल्मीकि और व्यास का कोई प्रतिद्वन्दी संसार में ढूँढ़े नहीं मिलेगा।

नाटक के क्षेत्र में महा कवि कालिदास के "अभिज्ञान शाकुन्तल" के सम्बन्ध में कुछ कहना सूर्य को दीपक दिखाना है, जिसको पढ़ते-पढ़ते जर्मनी का महान् कवि गेटे नाच उठा था और एक पूरा का पूरा पद्य उसके स्तोत्र में उसने बनाया था। भवभूति का उत्तररामचरित्र भी यहाँ के नाट्य साहित्य के जीवित उदाहरण हैं?

गद्य के क्षेत्र में भारवि का किरातार्जुनीय, बाणभट्ट का कादम्बरी तथा इसी प्रकार के दूसरे गद्य ग्रन्थ उच्च कोटि की साहित्यिक पराम्परा के हैं।

आर्य संस्कृति और विज्ञान

धर्म, दर्शन और साहित्य ही की तरह जीवनोपयोगी विज्ञान के क्षेत्र में भी आर्य-विद्वानों की खोजें बहुत उत्कृष्ट श्रेणी की हैं। हालांकि आज का विज्ञान युग उनसे बहुत आगे बढ़ गया है।

शरीर-शास्त्र और चिकित्सा शास्त्र के क्षेत्र में आर्य-साहित्य में गहरी विवेचना हुई है। आयुर्वेद के महान् द्रष्टा महर्षि सुश्रुत ने अपनी सुश्रुत संहिता में शरीर के भिन्न-भिन्न अवयवों की स्थिति और उनकी क्रिया शक्ति का बड़ा सूक्ष्म विवेचन किया है यद्यपि आधुनिक युग की निर्णयात्मक खोजों के बाद उनका महत्व बहुत कम हो गया है मगर उस युग के लिए तो वे महत्वपूर्ण थी ही।

आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली की त्रिदोषात्मक खोज आज विज्ञान के इस महान् युग में भी अपना अस्तित्व बनाये रख रही है। मनुष्य का शरीर वात, पित्त, कफ इन तीन तत्वों का समूह है और उसका मन सत्व, रज और तम इन तीन गुणों की सृष्टि है। इन तीनों चीजों में किसी एक के भी कुपित हो जाने पर शरीर में तथा मन में रोग की सृष्टि होती है और उस रोग का शमन तभी होता है जब उस कुपित दोष को शान्त करने वाली औषधि का प्रयोग किया जाय। इसी सिद्धान्त की नींव पर आयुर्वेद का निर्माण हुआ है।

आयुर्वेद के साहित्य में चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, अष्टांग हृदय वाग्भट्ट इत्यादि ग्रन्थ आज के इस युग में भी प्रमाण भूत माने जाते हैं और भारतवर्ष में छोटे छोटे कस्बों और देहातों में हजारों वैद्य इन्हीं के आधार पर चिकित्सा करते हैं।

ज्योतिष और गणित के क्षेत्र में भी आर्य सभ्यता के अन्वेषण कम महत्व के नहीं है। अङ्क प्रणाली में शून्य का आविष्कार पहले पहल भारतवर्ष में हुआ। शून्य के आविष्कार ने गणित शास्त्र की कितनी उलझनों को कम कर दिया यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। अङ्क-प्रणाली का भी आविष्कार यहीं पर हुआ। यहाँ से वह अरब में गयी। अरब में अब्बासी खलीफा अल-मामून के समय में उसका अरबी अनुवाद किया गया और वहाँ से सारे यूरोप में फैली। लीलावती का बीजगणित आज संसार के अलजबरा का आधार है।

ज्योतिषशास्त्र में सूर्य की गति, चान्द्रमास की गणना, तीन वर्ष में सूर्य की गति से समन्वय करने के लिए अधिक मास का विधान, नौ ही नक्षत्रों की गति का ज्ञान, ग्रहणों का पूर्वज्ञान तथा ग्रहों का मनुष्य जीवन पर पड़ने वाला प्रभाव सभी विषयों पर यहाँ अधिकारिक खोजें हुईं और जहाँ तक गणित ज्योतिष का सम्बन्ध है आज भी भारतवर्ष किसी से पीछे नहीं है।

संगीत कला में छः राग और छत्तीस रागीनियों की खोज, सात प्रकार के स्वरों का विवेचन, वाद्यकला में सारङ्गी, सितार, वीणा इत्यादि तार वाद्यों का निर्माण, नृत्यकला में कत्थकाली नृत्य भरत नाट्यम् इत्यादि नृत्यों का शास्त्रीय विवेचन इस देश में बहुत गहराई के साथ हुआ।

स्थापत्य कला, भवन निर्माण कला, चित्रकला इत्यादि में भी इस महान् सभ्यता ने महान् प्रगति की थी।

आर्य समाज

भारत वर्ष में धार्मिक और सामाजिक क्रान्ति पैदा करके राजनैतिक जागरण पैदा करने वाली महान संस्था, जिसकी स्थापना स्वामी दयानन्द ने की।

भारतीय जनता, हजार बरसों की लगातार गुलामी से पदाक्रान्त हो, सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक सभी दृष्टियों से पथ भ्रष्ट हो चुकी थी उसी समय स्वामी दयानन्द इस देश में अवतीर्ण हुए।

स्वामी दयानन्द का जन्म सन् १८२४ में सौराष्ट्र में मोरवी राज्य के टंकारा नामक ग्राम में हुआ। इनके पिता का नाम करसनलाल त्रिवेदी था।

इक्कीस वर्ष की आयु में सन् १८४५ में स्वामी दयानन्द गृहस्थी के जाल से मुक्त हो सत्य की खोज में निकल पड़े। सत्य की खोज में १५ वर्ष तक लगातार सारे देश का भ्रमण करने के बाद वे सन् १८६० में मथुरा में स्वामी विरजानन्द के पास पहुँचे। वहाँ सब प्रकार के शास्त्रीय ज्ञान का अध्ययन कर गुरु की आज्ञा से सन् १८६३ ई० में ये कर्म क्षेत्र में निकल गये।

यह वह समय था जब चारों ओर से आर्य-धर्म और आर्य-संस्कृति पर हमले हो रहे थे। एक ओर इसलाम और दूसरी ओर ईसाई मत के हमलों से हिन्दू संस्कृति जीर्ण-शीर्ण हो रही थी। शान्त किन्तु गहरे और पेंचदार उपायों से ईसाई मत भारत के धार्मिक दुर्ग में प्रवेश कर रहा था।

इसी सारी दुर्गति को देखकर स्वामी दयानन्द ने मूर्ति पूजा, हिन्दू समाज़ की रूढ़ियों, पुराण-पंथी पोपलीला इत्यादि प्रथाओं के विरुद्ध जिहाद प्रारम्भ कर दिया। वेदों का आधार लेकर उन्होंने वेदों का गलत अर्थ करनेवालों को ललकार दी। बड़े-बड़े शास्त्रार्थ कर धुरन्धर पण्डितों को मंच पर परास्त किया। इसके साथ ही उन्होंने ईसाई मत और इसलाम का भी धुवाँधार खण्डन करना प्रारम्भ किया।

आर्य समाज की स्थापना

इस प्रकार प्रचार कार्य करते हुए सन् १८७४ के अक्टूबर मास में स्वामी दयानन्द ने बम्बई में पहले पहल आर्य समाज का नामकरण किया और सन् १८७५ में चिरगाँव में नियमपूर्वक इस संस्था की स्थापना हुई और इसके सदस्यों के लिए २८ नियमों का विधान तैयार हुआ।

आर्य समाज में मूल ग्रन्थ वेदों को ही माना गया था मगर वेदों की सही टीका उस समय उपलब्ध नहीं थी। इस लिए आर्य-समाज के सिद्धान्तों का ज्ञान कराने के लिए स्वामी दयानन्द ने "सत्यार्थ- प्रकाश" नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की।

संसार में जिस चीज की वास्तविक आवश्यकता होती है उसका प्रचार भी बहुत शीघ्र होता है। स्वामी दयानन्द ने हिन्दू जाति के असली रोग को समझ लिया था और आर्य समाज उसी रोग को दूर करने वाला संगठन था। इसलिए इस संस्था का प्रचार सारे देश में बहुत तेजी से होने लगा। देश के करीब-करीब सभी पठित और शिक्षित लोग इस संस्था से सहानुभूति रखने लगे।

बम्बई, युक्तप्रान्त और पंजाब में आर्यसमाज की शीघ्रही स्थापना हो गई। इसके सभासदों की संख्या हजारों तक पहुँच गई।

उत्तरी भारत में तो आर्य समाज की स्थिति बहुत तेजी से बढ़ने लगी। स्वामीजी ने गौरक्षा के लिए बहुत जोरदार आवाज उठाई, इससे भी लोगों की सहानुभूति उनकी ओर बढ़ गई।

हिन्दू पण्डित मूर्तियों और पुराणों के बोझ से दबे हुए होनेके कारण अपनी पीठ भी सीधी नहीं कर पाते थे। आर्य समाज ने जहाँ एक ओर हिन्दू जाति की पीठ पर से मूर्ति और पुराण का बोझा हटाकर उसे हलका कर दिया

वहां दूसरी ओर पादरियों और मोलवियों के आघातों को रोकने के लिए तर्क की ढाल खड़ी कर दी। पादरी और मौलवी इस आकस्मिक आक्रमण से झुंझला उठे। स्वामी दयानन्द ने स्थिति को पहचान कर घर में सुधार करना और आक्रमण करनेवाले पर प्रत्याक्रमण करना प्रारम्भ किया। यह स्थिति खतरे से भरी हुई थी इस कारण धर्म के सेनापति को युद्ध के नियमों के अनुसार कठोर अनुशासन का प्रयोग करना पड़ा।

सामाजिक क्रान्ति

धार्मिक क्रान्ति के साथ ही साथ स्वामी दयानन्द तथा आर्य-समाज ने सामाजिक सुधार की ओर ध्यान दिया। उन्होंने देखा कि हिन्दू समाज में "अष्टवर्षे भवेद् गौरी" इत्यादि दकियानूसी सिद्धान्तों के आधार पर छोटे-छोटे दुधमुँह लड़के और लड़कियों का विवाह कर दिया जाता है, साठ-साठ वर्ष के बुड्ढे आठ आठ वर्ष की बालिकाओं को विवाह ले जाते हैं और उन बुड्ढों के मर-जाने पर उन बालिकाओं को जीवन भर वैधव्य का अभिशाप भुगतना पड़ता है। इसके अतिरिक्त निरक्षरता और अशिक्षा के कारण भी जनता का विकास बहुत रुक रहा है। स्त्रियों को परदे में रखने से उनका विकास नहीं हो पाता। इस कारण आर्य समाज ने शिक्षा का प्रचार, विधवा विवाह का समर्थन, बाल वृद्ध विवाह का विरोध, परदा प्रथाका विरोध और बलात्कार की जाने वाली सती प्रथा का विरोध जोरदार ढंग से करना प्रारम्भ किया।

स्वामी दयानन्द और आर्य समाज ने हिन्दू जनता की आँखों में उँगली डाल कर उसकी वास्तविक कमजोरियों की तरफ ध्यान आकर्षित किया। जाति प्रथा की नींव पर भी स्वामी दयानन्द ने करारा आघात किया। इस प्रकार आर्य समाज ने हिन्दू जाति में अपने दोषों की अनुभूति करके सुधार की इच्छा को जन्म दिया। परिणाम यह हुआ कि १६ वीं शताब्दी के अन्त तक भारत के बहुत बड़े भाग में क्रियात्मक रूप में सुधार की भावना जल प्रवाह की तरह बहने लगी। इस बात में किसी को भी सन्देह नहीं है कि आर्य-समाज को भारत के बहुत बड़े भाग में समाज सुधार के सम्बन्ध में मानसिक क्रान्ति पैदा करने में भारी सफलता मिली।

परदा प्रथा और आर्य-समाज

उन्नीसवीं सदी के मध्य भाग तक इस देशमें स्त्रियों की स्थिति बड़ी शोचनीय थी। स्त्रियों को शिक्षा देना पाप समझा जाता था और परदे के भयंकर नियन्त्रण में उन्हें रहना पड़ता था। इस प्रकार हमारे समाज की महिला-शक्ति निर्जीव हो रही थी।

आर्य-समाज ने इस प्रथा पर करारा आघात करना प्रारम्भ किया। सभी सामाजिक जलसों में इस संस्था के सदस्यों ने महिलाओं की उपस्थिति आवश्यक कर दी। पहले चिक की आड़ में महिलाएँ बैठने लगीं मगर बाद में स्वयं महिलाओं ने इस प्रथा को अपमानजनक समझ चिकों को हटा दिया और खुले मैदान में बैठने लगीं।

महिलाओं की शिक्षा के लिए भी आर्य समाज ने पर्याप्त ध्यान दिया। सबसे पहले जालन्धर में कन्या महाविद्यालय की आर्य समाज ने स्थापना की। उसके पश्चात् देहरादून के एक प्रसिद्ध आर्य-समाजी बाबू ज्योतिस्वरूप ने अपनी धर्मपत्नी के नाम पर महादेवी कन्या पाठशाला की स्थापना की। इस संस्था ने उत्तर प्रदेश में वही काम किया जो पंजाब में जालन्धर कन्या विद्यालय ने किया था अब तो यह संस्था एक विशाल गर्ल्स कालेज के रूप में विस्तृत हो गई है। इन महान् संस्थाओं के अतिरिक्त छोटी-छोटी कन्या पाठशालाएँ तो सैकड़ों की तादाद में बन गईं।

अन्तर्जातीय विवाह

जातिप्रथा का उन्मूलन करने के लिए अन्तर्जातीय विवाहों का प्रचलन भी आर्य समाज ने करना प्रारम्भ किया।

सबसे पहले लाला मुंशीराम (बाद में स्वामी श्रद्धानन्द) ने जालन्धर के अपने मकान में सुमित्रा देवी नामक एक लड़की का जो कि ईसाई मिशन से अलग होकर आर्य-समाज की शरण में आई थी—गुरुदत्त नामक एक सदाचारी, स्वस्थ और आर्य-समाजी डॉक्टर से विवाह करवा दिया। सुमित्रा ब्राह्मणी थी और गुरुदत्त अब्राह्मण था।

दूसरी बार उन्होंने स्वयं अपनी लड़की अमृत कला का विवाह अन्य जातीय युवक डॉ० सुखदेव से कर दिया। इस विवाह पर भी काफी शोर मचा मगर सारे देश के आर्य समाजियों ने इसका समर्थन किया और अब तो अन्तर्जातीय विवाह एक साधारण चीज हो गई है मगर इसका प्रारम्भ कितने भयंकर विरोध के बीच आर्य-समाज के साहसी युवकों ने किया यही ध्यान देने की बात है।

विधवा-विवाह

इसी प्रकार विधवा-विवाह के क्षेत्र में भी आर्य समाज ने बड़ी दृढ़तापूर्वक कदम उठाये। बिजनौर के श्री शंकर दत्त श्रोत्रिय का नाम इस सम्बन्ध में विशेष उल्लेखनीय है। ये बिजनौर जिले के श्रोत्रिय वंश के अगुआ थे और इन्होंने अपनी पत्नी के मरने पर स्वयं एक विधवा से विवाह किया तथा और भी कई विधवा विवाह करवाये। इसी प्रकार बम्बई और संयुक्त प्रान्त में भी कई विधवा विवाह हुए और धीरे-धीरे समाज में यह प्रथा चालू होने लगी।

शिक्षा-प्रचार

कन्याओं की शिक्षा के साथ ही साथ आर्य समाज ने पुरुषों की शिक्षा के सम्बन्ध में भी ठोस कदम उठाये। सबसे पहले स्वामी दयानन्द की मृत्यु के पश्चात् उनकी स्मृति में लाहौर में दयानन्द एंग्लोवैदिक कॉलेज की स्थापना हुई।

इसके बाद प्राचीन गुरुकुल पद्धति के आधार पर महात्मा मुंशीराम ने दिन रात परिश्रम करके कांगड़ी में एक विशाल गुरुकुल की स्थापना की। सन् १९०२ के फरवरी मास में हरिद्वार के निकट कांगड़ी नामक स्थान में गंगा तट के घने जंगल को साफ करके कुछ छप्पर तैयार किये गये और ४ मार्च १९०२ के दिन महात्मा मुंशीराम गुजरानवाला से २४ ब्रह्मचारियों को कांगड़ी ले गये और उन थोड़े से फूस के छप्परों और २४ ब्रह्मचारियों के साथ गुरुकुल कांगड़ी का सूत्रपात हुआ जो आज इतने विशाल रूप में विद्यमान है और जहाँ से निकले हुए अनेकों विद्यालंकार साहित्य और देश की सेवाएँ कर रहे हैं।

इसके बाद वृन्दावन में एक विशाल गुरुकुल की स्थापना राजा महेन्द्रप्रताप के द्वारा दी हुई भूमि में की गई।

इसी प्रकार आर्य समाज ने शिक्षा प्रचार के लिए और भी कई गुरुकुलों की स्थापना की। जिनकी संख्या देश के विभिन्न स्थानों में करीब २७ थीं।

कन्याओं के लिए भी देहली में एक विशाल इन्द्रप्रस्थ कन्या गुरुकुल की स्थापना की जिसके लिए दिल्ली के लाला रग्घूमल लोहिया ने एक लाख रुपया दान किया। इसी प्रकार हाथरस में भी एक कन्या गुरुकुल की स्थापना की गई।

इसी प्रकार लाहौर, अजमेर, बनारस, कानपुर इत्यादि अनेक स्थानों पर डी० ए० बी० कॉलेजों की स्थापना हुई।

मतलब यह कि शिक्षा के क्षेत्र में आर्य-समाज की देन सारे देश में अत्यन्त बहुमूल्य है।

आर्य समाज की विभूतियाँ

आर्य-समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द का परिचय ऊपर दिया जा चुका है। उनके पश्चात् जिन लोगों ने इस संस्था को अपने त्याग और तपस्या से सिंचन किया और उसके पीछे अपना बलिदान भी कर दिया उनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं।

पं० लेखराम

पं० लेखराम का जन्म सन् १८५८ में पंजाब के झेलम जिले में हुआ था। २२ वर्ष की उम्र में ये आर्य-समाज में प्रविष्ट हुए। उस समय पंजाब में गुलामअहमद कादियानी के द्वारा स्थापित किये हुए इस्लाम के अहमदिया सम्प्रदाय का बड़ा जोर था। पं० लेखराम अहमदिया सम्प्रदाय के लोगों से बहुत बहस मुबाहिसा किया करते थे, इसके परिणामस्वरूप उन्हें अपनी पुलिस की नौकरी से भी इस्तीफा देना पड़ा।

इसके बाद पं० लेखराम लाहौर आये। यहाँ आपने अहमदिया सम्प्रदाय के विरुद्ध "नुसखाखत अहमदियान" नामक पुस्तक लिखी। आपकी संजीदगी, साहस और योग्यता को देख कर आर्य प्रतिनिधि सभा ने आपको महर्षि दयानन्द का एक प्रामाणिक जीवन-चरित्र लिखने का

भार सौंपा, जिसे दो वर्ष तक सारे भारत में भ्रमण कर आपने तैयार किया।

आपके अहमदिया सम्प्रदाय तथा इस्लाम विरोधी प्रवचनों के कारण मुसलमान आप पर रुष्ट हो रहे थे। अन्त में छः मार्च सन् १८९७ को एक मुसलमान आततायी ने आपकी छुरा भोंक कर हत्या कर डाली। इस प्रकार पं० लेखराम आर्य-समाज के प्रचार में होनेवाले पहले शहीद थे।

इसी प्रकार स्वामी ईश्वरानन्द, ब्रह्मचारी नित्यानन्द, स्वामी विश्वेशरानन्द, स्वामी दर्शनानन्द इत्यादि विभूतियों ने भी आर्य-समाज का देश और विदेश में प्रचार करने में अपना जीवन दे दिया और सारे भारत वर्ष तथा विदेशों में आर्य-समाज की प्रतिष्ठा कायम कर दी।

स्वामी श्रद्धानन्द

आर्य-समाज के कार्य कलापों और उसके बलिदानों की कहानी अधूरी रह जायगी अगर उसके अन्दर स्वामी श्रद्धानन्द की महान् सेवाओं और उनके बलिदान की कहानी का समावेश न होगा।

स्वामी श्रद्धानन्द का गृहस्थाश्रम का नाम लाला मुंशीराम था। इनका जन्म सन् १८५६ में पंजाब के जालन्धर जिले में हुआ था। सन् १८८७ में वकालत की परीक्षा पास कर लाला मुंशीराम आर्य-समाज में सम्मिलित हो गये। सन् १८९२ से १८९५ तक ये बराबर आर्य-प्रतिनिधि सभा के सभापति निर्वाचित होते रहे।

गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना लाला मुंशीराम के जीवन का सबसे बड़ा, महान् और रचनात्मक कार्य था। इसकी स्थापना के लिए सारे भारत की यात्रा कर आपने द्रव्य एकत्रित किया था।

सन् १९०० में इनकी सेवाओं के उपलक्ष में लाहौर आर्य-समाज ने इनका एक जुलूस निकाला, अभिनन्दनपत्र समर्पित किया और "महात्मा" की उपाधि प्रदान की।

सन् १९२० में जब महात्मा गांधी का अहिंसात्मक आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। उस समय स्वामी श्रद्धानन्द ने भी उसमें जोर-शोर से भाग लिया। ६ अप्रैल को होनेवाले महात्मा गांधी के सत्याग्रह की सूचना दिल्ली में गलती से एक सप्ताह पूर्व मिल गई। उस समय दिल्ली में जोश का समुद्र उमड़ रहा था। एक ओर हजारों की भीड़ महात्मा गांधी की जय के नारे लगा रही थी दूसरी ओर पुलिस संगीनें तान कर खड़ी थी। स्वामी श्रद्धानन्द जुलूस का नेतृत्व कर रहे थे। वे छाती खोल कर पुलिस संगीनों के सामने जाकर खड़े हो गये और शान से जेल में चले गये।

उसके बाद १९२३ २४ में जब हिन्दू और मुसलिम साम्प्रदायिकता ने बहुत जोर पकड़ा, मद्रास में मोपलाओं ने भयंकर विद्रोह किया, मलाबार में दंगे हुए और देहली में भी सन् १९२४ की ईद के अवसर पर एक भयंकर दङ्गा हुआ।

मुसलमानों ने हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन करने के लिए "तबलीग" बना रक्खी थी। कांग्रेस मुसलमानों का सौहार्द्र प्राप्त करने के लिए यह सब सहन कर रही थी। मगर स्वामी श्रद्धानन्द और आर्य-समाज यह सब सहन करने को तैयार न थे इसलिए उन्होंने भी तेजी से शुद्धि आन्दोलन प्रारम्भकर मुसलमानों को हिन्दू बनाना शुरू किया। इसका महात्मा गाँधी और काँग्रेसी क्षेत्रों ने बड़ा विरोध किया।

इसी समय करांची से "असगरी" बेगम नामक एक मुसलिम महिला ने अपने दो बच्चों के साथ देहली में आकर आर्य-धर्म की दीक्षा लेली। उसके बाद करांची से उसके पिता और पति आये उन्होंने शान्ति देवी (असगरी) को फिर मुसलमान होने के लिए कहा मगर वह राजी नहीं हुई तब उन्होंने स्वामी श्रद्धानन्द और आर्य समाज के कुछ वरिष्ठ सदस्यों पर औरत भगाने का मामला दायर कर दिया। बड़े-बड़े बैरिस्टर इस मामले में आये और छः महीने बाद सब आरोपी बेदाग छूट गये।

इन घटनाओं से मुसलमानों में क्षोभ और उत्तेजना फैल रही थी। लोगों ने स्वामीजी की रक्षा के लिए कुछ पहरेदार नियुक्त करने को कहा, मगर स्वामीजी ने बिलकुल इन्कार कर दिया।

२३ दिसम्बर १९२६ को जब स्वामी श्रद्धानन्द निमोनिया से ग्रसित हो बिस्तर पर पड़े थे, एक मुसलमान आततायी वहाँ पर घुस आया और उसने पिस्तौल से गोली मारकर स्वामीजी के प्राण ले लिए।

इस घटना से सारे भारत वर्ष में तहलका मच गया और स्वामी श्रद्धानन्द का यह वीरोचित बलिदान भारतीय इतिहास में अमर हो गया।

आर्य समाज ने भारतवर्ष के राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में जो क्रान्ति पैदा की, उससे आगे होने वाले स्वाधीनता आन्दोलन के उपयुक्त यहाँ की भूमि तैयार हुई। हमारी सामाजिक और धार्मिक रूढ़िवाद की बुराइयों को जड़ से समझने वाला पहला व्यक्ति "महर्षि दयानन्द" था जिसने उस अविकसित काल में, भयङ्कर विरोधों के बीच, अपने अनुपम साहस, महान विद्वत्ता, और आदर्श-देशभक्ति की भावनाओं से जो "अमर-दीप" जलाया वह हजारों तूफानों और लाखों विरोधों के बीच भी अखण्ड ज्योति से जलता रहा। और उसी दीपक के प्रकाश में आगे होने वाले महान् नेताओं ने अपनी लड़ाइयाँ जारी रक्खी और उस अमर दीप को स्वातन्त्र्य-ज्योति के रूप में परिवर्तित कर दिया।

आर्गेनन

होमियोपैथी के आचार्य, जर्मनी के डा० हानिमेन द्वारा लिखित होमियोपैथी चिकित्सा का मूल सिद्धान्त ग्रन्थ।

होमियोपैथी के आविष्कारक डॉ० हानिमेन ने मानवीय-चिकित्सा शास्त्र में एक नवीन और मौलिक सिद्धान्त को जन्म दिया। उनकी चिकित्सा को लक्षण चिकित्सा (Symptom treatment) कहते हैं। जिस द्रव्य को बड़ी मात्रा में देने से मानव-शरीर में जो विकार उत्पन्न होते हैं उसी पदार्थ का यदि सूक्ष्म मात्रा में उपयोग किया जाय तो वे विकार दूर हो जाते हैं।

जैसे आर्सेनिक (संखिया) के खाने से मानव शरीर में दस्त, उलटी, ऐंठन और प्यास पैदा होती है ऐसे ही लक्षण यदि मानव-शरीर में हैजा, ज्वर या अन्य किसी रोग में हो तो आर्सेनिक की तैयार की हुई मात्रा देने से मिट जाते हैं।

ज्यों-ज्यों दवा की मात्रा कम होती जाती है त्यों-त्यों होमियोपैथी औषधियों की शक्ति बढ़ती जाती है। इसकी शक्ति सम्पन्न औषधियों की मात्रा भी सात-आठ दिन में एक बार दी जाती है। थोड़े ही समय में इस चिकित्सा पद्धति में सारे संसार में अपना खासा स्थान बना लिया है।

इन्हीं सब सिद्धान्तों का सूक्ष्म वर्णन डॉ० हानिमेन ने आर्गेनन में किया है।

आयशा

हजरत मोहम्मद पैगम्बर की युवती पत्नी आयशा।

हजरत मोहम्मद पैगम्बर की छोटी और युवती पत्नी आयशा थी। ८ जून सन् ६३२ को जब पैगम्बर की मृत्यु होने वाली थी उस समय उनके जीवन का अन्तिम दृश्य बड़ा ही करुणापूर्ण था।

पैगम्बर के अशक्त और निर्जीव शरीर को अपनी भुजाओं में लपेटे हुए आयशा इस प्रकार खुदा से पार्थना कर रही थी—

"हे ईश्वर! तू मनुष्य की बात सुनता है मेरे स्वामी के रोग को दूर कर क्योंकि तू बड़ा चिकित्सक है तेरे अतिरिक्त अन्य उपचार करने वाली कोई शक्ति नहीं और तेरे उपचारों के सामने कोई रोग ठहर नहीं सकता।"

परन्तु उनकी दशा में किसी प्रकार का सुधार नहीं हुआ और उसी दिन उन्होंने इस संसार को हमेशा के लिये छोड़ दिया।

आयरलैण्ड

ब्रिटिश आइल्स में स्थित एक देश जो कुछ समय पूर्व ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत था लेकिन इस समय पूर्ण स्वाधीन है।

आयरलैण्ड के मूल निवासी कैल्ट जाति के लोग थे और इनकी सभ्यता गैलिक सभ्यता कहलाती थी। पुराने जमाने में ये लोग भी कबीलों के रूप में रहते थे। मगर जब ईसाई धर्म प्रचारक वहाँ पहुँचे और उन्होंने इन्हें रोमन केथोलिक धर्म में दीक्षित किया तो इन लोगों में भी सभ्यता का वातावरण पैदा हुआ।

नार्मन लोगों ने ग्यारहवीं सदी के अन्तर्गत विजेता विलियम के नेतृत्व में इंग्लैंण्ड को जीत लिया। उसके करीब एक सदी पश्चात् सन् ११६६ में इन्हीं लोगों ने आयरलैण्ड पर हमला करके वहाँ की गैलिक सभ्यता को करारी चोट पहुँचाई।

आयरलैण्ड वासियों और अंग्रेजों के बीच में सभ्यता का भेद और जाति का भेद तो था ही धर्म का भेद भी खड़ा हो गया। अंग्रेज लोग प्रोटेस्टेण्ट थे और आयर निवासी रोमन कैथोलिक धर्म के अनुयायी। जाति, धर्म और सभ्यता के इन मौलिक भेदों के कारण अंग्रेजों और आयरलैण्ड वासियों के बीच में बहुत ही कटुता के भाव पैदा हो गये थे जिसके कारण आयरलैण्ड में अंग्रेजों के विरुद्ध एक के बाद दूसरी बगावत होती रहती थी और आयरलैण्ड के लोग इंगलैण्ड के शत्रु फ्रान्स और स्पेन को मदद किया करते थे।

अन्त में रानी एलिजाबेथ के समय में, सोलहवीं सदी में इंग्लैण्ड ने आयरलैण्ड वासियों की कमर तोड़ने के लिये आयरलैण्ड के अलस्टर प्रान्त के छः जिलों में आयर लोगों की सब जमीनें जब्त करके इंग्लैण्ड और स्कॉटलैण्ड के वासियों को दे दी और वहाँ पर अंग्रेज लोगों की स्थायी बस्ती को बसा दिया। सन् १६४१ में जब इंग्लैण्ड के राजा चार्ल्स प्रथम और पार्लियामेण्ट के बीच गृह-युद्ध प्रारम्भ हुआ उस समय आयरलैण्ड में भी रोमन कैथोलिक बादशाह के पक्ष में और प्रोटेस्टेण्ट पार्लियामेण्ट के खिलाफ एक बहुत बड़ा विद्रोह खड़ा हो गया जिसमें आयरवासियों ने प्रोटेस्टेण्ट इंग्लैण्ड वासियों की बेरहमी पूर्वक हत्याएँ कीं। बाद में क्रामवेलकी सेनाओं ने बड़ी निर्दयता के साथ आयर वासियों से इसका बदला लिया और उन्हें मौत के घाट उतारा।

सन् १६८८ में आयरलैण्ड के अन्दर फिर बड़ा विद्रोह हुआ। कैथोलिक आयरलैण्डवासियों ने अलस्टर के प्रोटेस्टेण्ट नगर, और लन्दन डेरी को घेर लिया। अंग्रेजों ने बड़ी वीरता से इस घेरे में भूखों मरते हुए चार महीने तक अपनी रक्षा की।

इसका बदला लेने के लिये सन् १६९० में लिमरिक नगर में अंग्रेजों ने आयर निवासियों को घेर लिया। इस घेरे में आयरवासियों का नेता पैट्रिक सार्स फील्ड था जिसने बड़ी बहादुरी के साथ अपने बलशाली शत्रु से लिमरिक की रक्षा की। सार्स फील्ड की बहादुरी के गीत आज भी गैलिक भाषा में आयरलैण्ड में गाये जाते हैं।

इसके एक सदी बाद सन् १७९८ में वुल्फ टोन के नेतृत्व में आयरलैण्ड में फिर विद्रोह भड़क उठा मगर इस बार यह विद्रोह रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्टों का धार्मिक युद्ध न था बल्कि एक राष्ट्रीय विद्रोह था जिसमें दोनों ही धर्मों के लोग सम्मिलित थे। इस विद्रोह को भी अंग्रेज सरकार ने कुचल दिया और वुल्फ टोन को देश-द्रोह के अपराध में फाँसी पर लटका दिया!

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में इन सशस्त्र विद्रोहों के कारण जनता और सरकार दोनों परेशान हो चुके थे उस समय जब ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के मताधिकार का विस्तार हुआ तो बहुत से राष्ट्रवादी आयरिश लोग लन्दन की कॉमन सभा के सदस्य चुने गये। इन सदस्यों में स्टुअर्ट पारवेल नामक एक आयरिश नेता भी पार्लमेण्ट का सदस्य हो गया। उसने कॉमन सभा में आयरिश होम रूल की जबर्दस्त आवाज उठाई। उस समय इंग्लैण्ड का प्रधान मन्त्री ग्लेडस्टन उदार दल वादी था।

सन् १८८६ में इंग्लैण्ड की कॉमन सभा में आयरलैण्ड होमरूल बिल पेश किया गया मगर इसका पार्लियामेण्ट में बड़े जोर से विरोध हुआ जिसका परिणाम यह हुआ कि होम रूल बिल भी पार्लियामेण्ट में गिर गया और साथ ही ग्लेडस्टन का भी पतन हो गया। सन् १८९३ में ग्लेडस्टन फिर इंग्लैण्ड का प्रधान मन्त्री बना। उसने फिर कॉमन सभा में आयरलैण्ड का होम रूल बिल पेश किया। इस बार वह कॉमन सभा से पास भी हो गया मगर लार्ड सभा में जाकर वह फिर गिर गया।

अन्त में बहुत झगड़े और ऊहा-पोह के बाद सन् १९१४ में आयरलैण्ड होम रूल बिल पास हो गया। मगर तब तक आयरलैण्ड की जनता की माँग होम रूल से बहुत आगे बढ़ चुकी थी और उन्होंने स्पष्ट घोषणा कर दी कि वे इंग्लैण्ड के दिये हुए होम रूल को स्वीकार नहीं करेंगे।

इसके लिये आयरलैण्ड में दो सैनिक संगठनों की स्थापना हुई। एक सैनिक संगठन अलस्टर वालों का था

जिसमें अंग्रेज लोग शामिल थे और दूसरा सैनिक संगठन आयरलैण्ड के निवासियों का था जो अलस्टर के सैनिक संगठन के विरुद्ध लड़ने के लिये तैयार किया गया था मगर इसी बीच पहला विश्वव्यापी युद्ध प्रारम्भ हो गया।

महायुद्ध के समाप्त होने के पश्चात् सन् १९१९ में आयरिश गणतन्त्र की घोषणा कर दी गई और अपनी विधान सभा का नाम 'डेल आयरिसन" रखा। डेल आयरियन ने अपना अध्यक्ष "डी वेलेरा" को और उपाध्यक्ष "ग्रीफिथ" को बनाया। ये दोनों व्यक्ति उस समय अंग्रेजों की जेल में थे।

इसके बाद शिनफेन पार्टी ने अंग्रेजी साम्राज्य के खिलाफ एक नये ढंग का संघर्ष प्रारम्भ किया। उसने ब्रिटिश संस्थाओं का बहिष्कार करके अपनी संस्थाएँ स्थापित कर दी। ब्रिटिश अदालतों की जगह अपनी अदालते स्थापित कर दीं। जेलों में कैदियों ने भूख हड़ताले प्रारम्भ कर दीं। इनमें सबसे बड़ी भूख हड़ताल "टैरेन्स मेकस्विनी" की हुई जिसने ७५ दिन तक लगातार भूख हड़ताल करके अपने प्राणों को छोड़ दिया। आयरलैण्ड के इतिहास में इस व्यक्ति का नाम अमर हो गया।

शिनफेन विद्रोह का मुख्य नेता और संगठनकर्त्ता माइकेल कॉलिन्स कहा जाता है। इसके संगठन ने ब्रिटिश शक्ति को बहुत कमजोर कर दिया तब आयरलैण्ड में लड़ने के लिये एक विशेष ब्रिटिश फौजी दल भर्ती किया गया। सन् १९१९ से १९२१ तक यह आंग्ल-आयरिश युद्ध चला।

सन् १९२१ में लन्दन में अंग्रेज सरकार और आयरिश गणतन्त्र के बीच में एक अस्थायी समझौता हुआ। मगर इस समझौते के फलस्वरूप आयरलैण्ड के शिनफेन दल में भारी मतभेद पैदा हो गया। शिनफेन दल का संगठनकर्ता माइकेल कालिन्स और उसके अनुयायी समझौते के पक्ष में थे मगर डेल आयरियन के अध्यक्ष डी वेलेरा तथा उसके साथी इस समझौते के बिल्कुल विरुद्ध थे। एक तरफ गणराज्यवादियों ने माइकेल कालिन्स को गोली से उड़ा दिया दूसरी तरफ "साओर स्टाट आयरियन" के पक्षपातियों ने कई गणराज्यवादियों को गोलियों से मार दिया।

सन् १९३२ के चुनाव में डी वेलेरा को साओर-स्टाट आयरियन के चुनाव में बहुमत प्राप्त हो गया और उसने उस पार्लियामेण्ट में बादशाह के प्रति वफादारी की शपथ लेने से इन्कार कर दिया और ब्रिटिश सरकार को यह भी सूचित कर दिया कि आयरलैण्ड के किसान जमीनों के मुआवजे की आगामी किश्तें अब अदा नहीं करेंगे। तब इसके बदले में इंग्लैण्ड ने अपने यहाँ आनेवाले आयरिश माल पर बड़ी-बड़ी चुंगियाँ लगा कर आयरलैण्ड के विरुद्ध एक आर्थिक युद्ध शुरू कर दिया। इसके बदले में आयरिश सरकार ने भी ब्रिटिश माल पर भारी-भारी चुंगियाँ लगा दीं। इसके बाद सन् १९३८ में दोनों देशों के बीच चलने वाला यह आर्थिक युद्ध एक आपसी समझौते के द्वारा खत्म कर दिया गया। यह समझौता भी आयरिश गणराज्य के लिये काफी फायदेमन्द रहा।

इस प्रकार भयंकर संघर्षों के बीच में से गुजरता हुआ इतिहास की अनेक काली घाटियों को पार करता हुआ यह देश ब्रिटिश साम्राज्यवाद के कठोर जुए से अपने आपको आजाद करने में समर्थ हुआ।

आयस् प्रथम (Ayes)

सिन्ध और पंजाब के शक राजाओं का वंशज। इसका समय अनुमानतः ई० सन् ७३ माना जाता है।

शक राजा आयस् राजा माउस (Maues) का उत्तराधिकारी था। राजा माउस ने भारतवर्ष की उत्तरी पश्चिमी सीमा पर भारी विजय प्राप्त की थी। तक्षशिला के ताम्र-पत्र में उसे महाराज के नाम से सम्बोधित किया गया है।

माउस के बाद आयस् प्रथम पश्चिमी शक कुल का राजा हुआ। माउस के राज्य को उसने पूरा-पूरा अपने अधिकार में रखा और उसकी सीमाओं को कुछ बढ़ाया। उसने अपने नाम के सिक्के भी प्रसारित किये।

आर्थर ग्रिफिथ

आयरलैण्ड का एक नौजवान नेता जिसने आयरलैण्ड की आजादी की लड़ाई में "शिनफेन" नामक एक नवीन विचारधारा का प्रचार किया। शिनफेन की विचारधारा आयरलैण्ड के नौजवानों में धीरे-धीरे फैलने लगी। इन विचारों की वजह से आयरलैण्ड में क्रान्ति की ज्वालाएँ एकदम नहीं भड़कने पाईं।

आल्हा चारण

राजस्थान के प्रसिद्ध वीर राठौर वंशी राव-चूण्डा के दरबार का एक प्रसिद्ध चारण।

राव चूण्डा जब केवल छः वर्ष का बालक था तब उसके पिता बीरम का देहान्त हो गया था तब इसकी माता इसकी रक्षा के लिये इसको लेकर शेरगढ़ परगने के कालाउ नामक गाँव में आल्हा चारण के घर शरण लेकर रही थी और इसका भेद चारण को भी नहीं दिया। राव चूण्डा आल्हा चारण के बछड़ों को चराने के लिये जंगल में ले जाया करता था। उस समय राठौर सरदारों और मुसलमानों के बीच दिन प्रतिदिन लड़ाइयाँ होती रहती थीं। आगे जाकर चूण्डा अपनी बहादुरी से बड़ा प्रतापी निकला और इसका जोधपुर के समीप मण्डोर नामक स्थान पर एक अच्छा राज्य स्थापित हो गया। तब एक दिन आल्हा चारण इससे मिलने के लिये आया। उस समय चूण्डा के द्वारपालों ने उसे भीतर जाने से रोक दिया। तब आल्हा चरण ने महल के नीचे से ही एक दोहा बनाकर जोर से सुनाया।

"चूण्डा नहीं आवे चीत काचर काला ऊतणा
भूप भयो भयभीत मण्डोवर रे मालिए"

अर्थात् चूण्डा को कालाऊ की कचहरियाँ या नहीं आती हैं क्योंकि अब तो वह मण्डोर के राजमहल में बैठ कर बहुत वेपरवाह हो गया है।

तब चूण्डा ने आल्हा चारण को बड़े आदर के साथ भीतर बुलाया और उसको भाण्डू नामक एक गाँव जागीर में दे दिया जो अब तक उसके वंशजों के पास है।

आल्हा खण्ड

हिन्दी भाषा में लिखा हुआ वीर रस का एक सुप्रसिद्ध काव्य जिसका पाठ बरसात के दिनों में उत्तर प्रदेश के घर-घर में होता है।

आल्हा खण्ड हिन्दी भाषा में वीर रस का सुप्रसिद्ध काव्य है। इसमें महोबा के रहने वाले आल्हा और ऊदल नाम का पराक्रमी भाइयों के द्वारा लड़ी हुई अनेक लड़ाइयों को बड़ी वीरता पूर्ण भाषा में वर्णन है।

आल्हा खण्ड ने हिन्दी साहित्य की वीर रस परम्परा में एक नवीन शैली को जन्म दिया। इस की भाषा का प्रवाह ऐसा जोशीला और विचित्र ढङ्ग का है कि पढ़ते-पढ़ते और सुनते-सुनते लोगों में एक अपूर्व जोश का संचार हो जाता है। और कई जगह तो सुनते-सुनते लोग जोश में आकर आपस में लाठी मार कर बैठते हैं।

छन्द का नमूना—

स्वस्ति श्रीनारायण लिखि के, वीरशाह को लिखा जुहार,
नाम चन्देले को जगजाने जिससे हार गई तलवार।
किया सामना कोई ना हमसे, सबकी ढिल कर दिया कमान,
कैसा राजा वैरीगढ़ का क्या बल लेकर पहुँचा आन।
कोट अठासी बावन सूबे, जब कोई रहा लड़ैया नाय,
खाण्डा फेंक दिया सागर में, सबने किया मित्रता आय।

आरी ओस्टो

पन्द्रहवीं सदी का प्रसिद्ध इटालियन प्रबन्ध काव्य रचयिता। जिसके सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "ओर लाण्डो फूरियो सो" ने तत्कालीन इटालियन साहित्य में बहुत प्रसिद्धि पाई और आगे करीब दो शताब्दी तक के इटालियन लेखकों ने उसकी शैली का अनुकरण किया इसका पूरा नाम लोडोविको आरीओस्टो था और इसका समय सन् १४७४ से १५३२ तक था।

आलम खान

सन् १९१७–१८ की बोल शेविक क्रान्ति के समय बुखारा का अमीर जिसने मार्च १९१८ में जदीद नामक सुधारक तुर्कीदल के लोगों का कत्लेआम किया।

तुर्की के अन्तर्गत जिस समय नवीन तुर्क दल ने अनवर पाशा के नेतृत्व में आन्दोलन प्रारम्भ किया उसी की नकल

पर मध्यएशिया के मुसलमानों में "जदीद" नामक आन्दोलन का जन्म हुआ। यह "जदीद" आन्दोलन मुल्ला लोगों की प्रवृत्तियों के खिलाफ उत्पन्न हुआ था। बुखारा के अमीर आलमखान ने पहले तो उनसे समझौता कर लिया। मगर बाद में मुल्लाओं के प्रभाव में आकर उसने जदीदों पर भयङ्कर अत्याचार करना प्रारम्भ किया, कइयों की उसने मौत के घाट उतार दिये और कइयों को जेल बन्द कर दिया।

मगर करीब छः महीने के बाद बोल्शोविक लोगों ने बुखारा पर आक्रमण कर आलम खाँ को वहाँ से भगा दिया जिसके फलस्वरूप उसे अफगानिस्तान में जाकर शरण लेनी पड़ी।

आलम खाँ

महम्मद गौरी के वंशज और फिरोज तुगलक के जागीरदार मालवे के शासक दिलावर खाँ का पुत्र जो हुशंग शाह की उपाधि धारण कर सन् १४०५ में मालवे की गद्दी पर बैठा और सन् १४३४ तक शासन किया।

आलम खाँ ने अपनी राजधानी माण्डू को बनाया और उसे बहुत सी सुन्दर इमारतों से सजाया। मालवा की धन्य-धान्य पूर्ण स्थिति तथा उसकी शस्य श्यामला भूमि कारण दिल्ली, जौनपुर तथा गुजरात के शासकों की निगाह हमेशा उसके ऊपर रहती थी। इसलिये आलम खाँ को हमेशा इन लोगों के साथ लड़ाई के लिये तैय्यार रहना पड़ता था। गुजरात के साथ एक युद्ध में आलम खाँ की पराजय हुई और वह कैद कर लिया गया मगर फिर वहाँ से छूट गया।

आर्क ड्यूक फ्रान्सिसफर्डीनण्ड

आस्ट्रिया की राजगद्दी का उत्तराधिकारी जिसकी २८ जून १९१४ को हत्या कर दी गई। इसी घटना ने प्रथम महायुद्ध का सूत्रपात किया।

हैप्सबर्ग वंश का आर्क ड्यूक फ्रान्सिस फर्डीनण्ड आस्ट्रिया की राजगद्दी का उत्तराधिकारी था। वह बलकान देश में बोसनिया की राजधानी "सिराजीवो" की यात्रा को गया था। जब आर्क ड्यूक अपनी पत्नी के साथ खुली गाड़ी में बैठ कर सिराजीवो के बजार में घूम रहा था तब उस पर गोलियाँ चलाई गईं जिससे आर्क ड्यूक और उसकी पत्नी दोनों मारे गये। इन हत्याओं से आस्ट्रिया की सरकार और जनता दोनों उत्तेजित हो गये और उन्होंने सर्विया की सरकार पर यह इल्जाम लगाया कि इन हत्याओं की जिम्मेदारी उसके ऊपर है। इसके लिये एक जाँच कमेटी बैठाई गई। उसकी रिपोर्ट से मालूम हुआ कि यद्यपि सर्विया की सरकार इन हत्याओं के लिये जिम्मेदार नहीं है मगर हत्या के लिये जो तैयारियाँ की गई थीं उनसे यह बिल्कुल अनजान भी नहीं थी।

कुछ भी हो आस्ट्रिया को और जर्मनी को इन हत्याओं से युद्ध के लिये एक बहाना मिल गया और २८ जुलाई सन् १९१४ को आस्ट्रिया ने सर्विया के विरुद्ध और १ अगस्त १९१४ को जर्मनी ने फ्रान्स और रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और इन हत्याओं की घटना ने सारी दुनिया के लिये युद्ध का महा अभिशाप पैदा कर दिया।

आर्थर लुण्ड क्विस्त
(Arthur Lund Kvist)

बीसवीं सदी में स्वीडन का एक प्रभावशाली लेखक और कवि जिसका जन्म सन् १९०६ में हुआ। इसने अपनी कविताओं में उत्साह पूर्वक अकृत्रिम जीवन के आनन्द की प्रशंसा की है नैराश्य का उनमें कहीं नाम भी नहीं है।

आर्किमिडेस (Archimedes)

यूनान के सिसली जिले के सायरा क्यूज नामक नगर का सुप्रसिद्ध गणित शास्त्री जिसका समय ईस्वी सन् पूर्व २८७ से २१२ तक है।

आर्किमिडेस का जन्म सिसली प्रान्त के सायराक्यूज नामक नगर में हुआ था। इनके पिता भी गणित और ज्योतिष शास्त्र के विद्वान थे। आर्किमिडेस उस युग के प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता और गणितशास्त्री थे। एक बार सायरा क्यूज के शासक (Hero) ने अपने लिए सोने का एक मुकुट बनवाया। जब मुकुट बन कर आया तो

उसका सोना असली है या नहीं इसकी जाँच करने के लिए वह आर्कमिडीस को दिया गया। मुकुट को तोड़ा जा नहीं सकता था तब उसकी जाँच कैसे हो, यही सवाल आर्कमिडीस को बेचैन कर रहा था। एक दिन जब वे पानी की नांद् में नहा रहे थे तो उन्होंने पानी हटने के कारण अपने वजन में कमी महसूस की उसी समय उन्हें यह ध्यान में आया कि वजन की यह कमी हटे हुए पानी के बराबर है। इस सिद्धान्त का उपयोग कर उन्होंने ताज का आयतन निकाल लिया और फिर उसका घनत्व निकाल लिया, उस घनत्व की तुलना असली सोने का घनत्व निकालकर कर ली और परिणाम हीरो को बतला दिया। कहा जाता है कि नांद में नहाते समय जब उन्हें इस अनुसन्धान का पता लगा तो वे नांद से कूद कर नंगे ही गली में "यूरेका" "यूरेका" (अर्थात् मैंने ढूंढ निकाला है) कहते हुए नाचने लगे।

मशीन, यंत्र विज्ञान और गणित विज्ञान के अनुसन्धानों में इनका नाम प्रसिद्ध है। घिरनी, आर्क मीडियन पेंच, जल प्रेरित और दबी हवा की मशीने इन्हीं का आविष्कार है। इन्होंने मोटे काँच (Concave miror) के द्वारा सूर्य की किरणों को एक केन्द्र बिन्दु पर इकट्ठा करके सबसे पहले अग्नि पैदा की। उछाल के सिद्धान्त और तैरती हुई वस्तुओं पर किये हुए अपने प्रयोग के सिवा इन्होंने यह भी सिद्ध किया कि वृत्त की परिधि कैसे निकाली जाती है। इन्होंने गणित के Conic Section की भी प्रगति की। Infinity की धारणा का श्रेय भी इन्हीं को है।

आर्डियल

प्राचीन पश्चिमी योरप की सभ्यता में अपराधी के अपराध की जाँच का एक तरीका आर्डियल कहलाता था। इस तरीके में अपराधी का हाथ जलते हुए गर्म पानी में रखा जाता था। तीन दिन तक उसके हाथ पर गर्म पानी का कोई प्रभाव न पड़ता था तो वह निर्दोष समझा जाता था। कभी उसे गर्म-गर्म लोहे पर चलने को कहा जाता था और यदि उसके पैर में छाले नहीं पड़ते थे तो वह निर्दोष समझा जाता था। आर्डियल का यह तरीका पुरानी जर्मन जातियों में, जो उस समय गाथ जाति के नाम से प्रसिद्ध थी, सातवीं और आठवीं सदी में प्रचलित था।

आरासन तीर्थ

जैन धर्मावलम्बियों का एक प्रसिद्ध तीर्थस्थान जो आबू पर्वत से थोड़ी दूरी पर कुम्भारिया गाँव के समीप है।

इस तीर्थ में जैनियों के पाँच बहुत सुन्दर एवं प्राचीन मन्दिर बने हुए हैं। सभी मन्दिर सफेद आरस पत्थर के बने हुए हैं। उस समय इस स्थान पर आरस पत्थर की अच्छी खदानें थीं। सारे गुजरात में मूर्ति निर्माण के लिये यहाँ से पत्थर जाता था। इस तीर्थ स्थान में जैन मन्दिरों के समूह में सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण मन्दिर श्री नेमीनाथ का है। इस मन्दिर का शिखर तारंगा के जैन मन्दिर जैसा है। इसकी परसाल के एक स्तम्भ पर के लेख से पता चलता है कि संवत् १२५३ में आसपाल नामक किसी व्यक्ति ने इसे बनाया था। इस मन्दिर के पट्टनायक नेमीनाथ की प्रतिमा के नीचे एक शिलालेख है जिससे पता चलता है कि संवत् १६७५ के माघ सुदी चौथ शनिवार के दिन ओसवाल जाति के बोहरा गोत्रीय राजपाल ने श्री नेमीनाथ के मन्दिर में नेमीनाथ का बिम्ब स्थापित किया जिसकी प्रतिष्ठा हीरविजय सूरी परम्परा के श्री विजयदेव सूरी ने करवाई।

नेमीनाथ देवालय के पूर्व की ओर तीर्थङ्कर महावीर का मन्दिर बना हुआ है। यह मन्दिर भी बड़ा सुन्दर बना हुआ है। इसके मूलनायक महावीर की मूर्ति पर सन् १६१८ का एक लेख पाया जाता है मगर प्रतिमा की बैठक पुरानी है और उस पर ई० सन् १०६१ का लेख पाया जाता है।

उपरोक्त दोनों मन्दिरों के अतिरिक्त पार्श्वनाथ, शान्तिनाथ और सम्भवनाथ के तीन मन्दिर बने हुए हैं। इनके ऊपर जो लेख पाये जाते हैं वे संवत् ११३८ और संवत् ११४६ के हैं।

ऑरेन्ज राजवंश

नीदरलैण्ड की महान् क्रान्ति का नेतृत्व करने वाले विलियम दि साइलेण्ट का वंश। इस वंश में आगे जाकर सौ वर्ष बाद विलियम द्वितीय पैदा हुआ। विलियम द्वितीय की शादी इंग्लैण्ड के राजघराने की मेरी से हुई थी। जेम्स द्वितीय के इंग्लैण्ड से भाग जाने के पश्चात् सन् १६८८ में विलियम और मेरी इंग्लैण्ड के संयुक्त शासक बना दिये गये।

आर्डिनेन्स

ऐसे कानून जो समय-समय पर सरकार के द्वारा किसी आन्दोलन को दबाने या जनता का दमन करने के लिये निकाले जाते हैं।

आरनाल्ड

इटली के ब्रेसिया का रहनेवाला प्रसिद्ध धर्मोपदेशक जो अत्यन्त लोकप्रिय और लगनशील था। जो पादरियों की विलासिता और भ्रष्टाचार के विरुद्ध प्रचार करता था। सन् ११५५ में चर्च के आदेश से उसे पकड़ कर फाँसी पर लटका दिया गया और उसकी राख को टाइबर नदी में फिकवा दिया गया। मरते दम तक यह व्यक्ति दृढ़ एवं शान्त था।

ऑर्थर वेलेजली

सन् १८०३ में दक्षिण की अंग्रेजी सेना का सेनापति!

पेशवा बाजीराव द्वितीय ने दिसम्बर १८०२ में अंग्रेजों के साथ बेसीन की प्रसिद्ध सन्धि की। इस सन्धि के द्वारा पेशवा पूर्ण रूप से अंग्रेजों के अधीन हो गया। पेशवा मराठों का सरदार एवं मुगल सम्राट् का वकील-उल-मुतलक था। १३ मई सन् १८०३ को आर्थर वेलेजली की संरक्षता में पेशवा पूना में प्रविष्ठ हुआ। उसके आने का समाचार सुन कर जसवन्त राव होल्कर पूना को छोड़कर मालवा चला गया।

बेसीन की सन्धि से सिन्धिया और भोंसले दोनों बहुत नाराज थे और स्वंय पेशवा भी भीतर ही भीतर इस सन्धि से नाराज था। सारी बातों को जान कर आर्थर वेलेजली ने सिंधिया और भोंसले के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इस युद्ध में अंग्रेजों की स्थिति बड़ी दृढ़ थी। सन् १८०३ ई० में अंग्रेज मराठा युद्ध प्रारम्भ हुआ। आर्थर वेलेजली ने अहमद नगर पर आक्रमण किया और उस पर अधिकार कर लिया। सितम्बर में असाई के युद्ध में फिर उसने सिन्धिया और भोंसले की सम्मिलित सेनाओं को पराजित किया। नवम्बर में अरगांव के युद्ध में फिर उसने भोंसले को शिकस्त दी और दिसम्बर में ग्वालीगढ़ के दुर्ग पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। लाचार होकर भोंसले ने आत्म-समर्पण कर दिया।

आर्मेडा

स्पेन का संसार प्रसिद्ध मशहूर जहाजी बेड़ा। इस बेड़े में १३० जहाज, आठ हजार नाविक, बीस हजार समुद्री सैनिक, दो हजार तोपें, तथा छह मास के लिए पर्याप्त गोला बारूद और खाद्य सामग्री संचित थी।

स्पेन का यह अजेय जहाजी बेड़ा था। इस बेड़े का कप्तान ड्यूक ऑफ मेडीना सिडोनिया था।

स्पेन इन दिनों यूरोप का सब से बलवान राष्ट्र था। सन् १५८० में स्पेन और पुर्तगाल के राज सिंहासन मिल-जाने के कारण स्पेन के राजा फिलिप द्वितीय की शक्ति बहुत बढ़ गई थी।

स्पेन में रोमन कैथोलिक धर्म की प्रधानता होने से और इंग्लैण्ड में प्रोटेस्टेण्ट धर्म की प्रधानता होने से दोनों देशों के सम्बन्ध अच्छे नहीं थे और स्पेन इंग्लैण्ड पर हमला करने का अवसर ढूंढ़ रहा था मगर इंग्लैण्ड पर उस समय रानी एलिजाबेथ का सुदृढ़ शासन होने से उसकी हिम्मत नहीं पड़ रही थी।

मगर इधर इंग्लैण्ड का शासन स्पेन के विरुद्ध नीदरलैण्ड के विद्रोह की खुले आम मदद कर रहा था और उसके समुद्री साहसिक स्पेनी जहाजों पर लूटमार करते रहते थे। इस काम में रानी की भी उनको शह थी।

इससे विक्षुब्ध हो अन्त में स्पेनी सरकार ने अपने जहाजी बेड़े आर्मेडा को इंग्लैण्ड पर आक्रमण करने का आदेश दिया मगर स्पेन वाले अभी अपने बेड़े को केडिच बन्दरगाह पर तैयार ही कर रहे थे कि एक दिन इंग्लैण्ड का साहसी डाकू सर फेडरिक उसमें जा घुसा और उस बेड़े के कई जहाजों में आग लगा कर भाग आया और इंग्लैण्ड की रानी एलिजावेथ से आकर कहा कि "मैं स्पेन के राजा की दाढ़ी में आग लगा आया हूँ" तब से यह वाक्य इंग्लैण्ड के नागरिकों का एक मुहाविरा बन गया।

फिर भी स्पेन ने हिम्मत नहीं हारी और उसने फिर से तैयारी कर इग्लैण्ड पर आक्रमण किया मगर मार्ग में समुद्री तूफान ने उसे अस्त-व्यस्त कर दिया। इधर अंग्रेजी बेड़े में बेड़े के प्रधान कप्तान लार्ड हावर्ड के अतिरिक्त, ड्रेक हाकिंस, वाल्टर रैले इत्यादि सुप्रसिद्ध जहाजी विशेषज्ञ थे।

परिणाम स्वरूप स्पेन का मशहूर "आर्मेडा" पूर्णतः पराजित होकर नष्ट-भ्रष्ट हो गया और समुद्री शक्ति में स्पेन का प्रभुत्व नष्ट होकर, इंग्लैण्ड का स्वामित्व स्थापित हो गया।

इस विजय के उपलक्ष्य में रानी एलिजावेथ ने और सारे इंग्लैण्ड ने बहुत भारी जलसा मनाया।

ऑर्डर इन कौन्सिल

सन् १८०७ में इंग्लैण्ड की पार्लियामेण्ट के द्वारा निकाली हुई एक घोषणा। जिसके अनुसार यूरोप के तटस्थ राष्ट्र जो अपना माल नैपोलियन के अधीनस्थ देशों को भेजते हैं उन्हें चाहिये कि वे अपना सारा माल इंग्लैण्ड के बन्दरगाह पर भेजा करें। यदि कोई राष्ट्र अपना माल इंग्लैण्ड के बन्दर पर नहीं भेजेगा तो उसका सारा माल जब्त कर लिया जायेगा।

इंग्लैण्ड की यह घोषणा "आर्डर इन कौन्सिल" के नाम से प्रसिद्ध है। यह घोषणा नैपोलियन की उस घोषणा के प्रतिकार में थी जो उसने सन् १८०६ में बर्लिन डिग्री (Berlin decree) के नाम से निकाली थी और जिसके अनुसार फ्रेंच सरकार के अधीन सब देशों को यह आदेश दिया गया था कि वे इंग्लैण्ड अथवा उसके उपनिवेशों के साथ कोई व्यापार न करें।

आर्थर वेलेजली

इंग्लैण्ड की सेना का सुप्रसिद्ध सेनापति जिसने वाटर लू के इतिहास प्रसिद्ध संग्राम में नैपोलियन महान् को भारी पराजय दी और जो बाद में ड्यूक आफ वेलिंगटन के नाम से मशहूर हुआ।

आर्थर वेलेजली का जन्म सन् १७६६ ई० में हुआ था। सन् १७८७ में केवल अठारह वर्ष की उम्र में इसने सैनिक नौकरी कर ली। सबसे पहले यह भारतवर्ष में भेजा गया जहाँ इसने कई छोटी-बड़ी लड़ाइयों में अपना पराक्रम प्रदर्शित किया। सन् १८०५ में यह भारत से वापस गया और इसके पश्चात फ्रेन्च सेना के विरुद्ध लड़ने के लिये स्पेन भेजा गया। वहाँ इसने कितनी ही लड़ाइयों में फ्रेन्च सेना को पराजित किया और सन् १८१४ में इसने स्पेन के क्षेत्र से फ्रेन्च सेना को बाहर निकाल दिया। सन् १८०६ में टेलेवरा के युद्ध में इसने जो वीरता प्रदर्शित की थी उसके उपलक्ष्य में उसे "ड्यूक आफ वेलिंगटन" की उपाधि दी गई थी। सन् १८१५ में वाटर लू की प्रसिद्ध रणभूमि में इसने महान विजेता नैपोलियन महान को पराजित किया। जिसके कारण इसका नाम सारे संसार में प्रसिद्ध हो गया।

सन् १८२८ से सन् १८३० तक यह इंग्लैण्ड का प्रधान मन्त्री बनाया गया। पुराने रूढ़िगत विचारों का होने के कारण इस कार्य में इसे विशेष सफलता नहीं मिली और दो वर्ष के पश्चात् उसे यह पद छोड़ना पड़ा। सन् १८४२ ई० से मृत्यु-पर्यन्त वह इंग्लैण्ड का प्रधान सेनापति बना रहा। सन् १८५२ में त्रियासी वर्ष की उम्र में इसकी मृत्यु हो गई।

ऑलिवर-ट्विस्ट

अंग्रेजी के प्रसिद्ध उपन्यास लेखक चार्ल्स डिकेन्स का लिखा हुआ प्रसिद्ध उपन्यास जो सन् १८३८ में लिखा गया। इस उपन्यास में सफल लेखक ने तत्कालीन समाज की हृदय हीनता का मर्मस्पर्शी चित्र खींच कर उसके

खिलाफ आवाज उठाई है। उपन्यास में हास्य रस के ऊपर करुणा की छाया स्पष्ट रूप से झलकती है।

ऑलिवर क्रामवेल

ऑलीवर क्रामवेल इंलैण्ड की पार्लियामेण्ट का एक महान् नेता, जिसने इंग्लैण्ड में "आयर्न बॉडी" नामक एक नई सेना का संगठन किया।

ऑलीवर क्रामवेल का नाम इंग्लैण्ड के इतिहास में एक चमकते हुए नक्षत्र की तरह प्रकाशमान है। उस समय इंग्लैण्ड की गद्दी पर जेम्स प्रथम का पुत्र चार्ल्स प्रथम गद्दी पर बैठा था। यह वह समय था जब सम्राट और पार्लियामेण्ट के अधिकारों के विषय में बड़ा मतभेद चल रहा था। सन् १६२८ ई० में पार्लमेण्ट से इंग्लैण्ड के बादशाह चार्ल्स प्रथम को 'पिटीशन ऑफ राइट्स' के नाम से एक अधिकार याचिका दी जो इंग्लैण्ड के इतिहास में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण खरीता है। इस याचिका में बतलाया गया था कि इंग्लैण्ड का बादशाह एक स्वेच्छाचारी शासक नहीं है। वह गैरकानूनी तौर पर न तो प्रजा पर टैक्स लगा सकता है और न उसे गिरफ्तार करवा सकता है।

जब उसको यह खरीता दिया गया तो चार्ल्स ने सारी पार्लियामेण्ट को तोड़ दिया और एक स्वेच्छाचारी की तरह शासन करने लगा। लेकिन कुछ ही वर्षों के बाद उसे रुपये की इतनी तंगी महसूस हुई कि उसे दूसरी पार्लियामेण्ट बनानी पड़ी। पार्लमेण्ट के बिना बादशाह ने जो कुछ किया था उससे नई पार्लियामेण्ट उससे लड़ाई मोल लेने का मौका ही ताक रही थी। जिसके फलस्वरू सन् १६४२ में इंग्लैण्ड में गृह-युद्ध शुरू हो गया जिसमें एक तरफ तो बादशाह इंग्लैण्ड के बहुत से अमीर उमराव और फौज का एक बड़ा हिस्सा था और दूसरी तरफ पार्लमेण्ट, लन्दन के धनी व्यापारी और लन्दन के नागरिक थे। कई वर्षों तक यह लड़ाई खिंचती रही। अन्त में पार्लियामेण्ट की तरफ से इंग्लैण्ड का महान नेता ऑलीवर क्राम्वेल उठ खड़ा हुआ! वह बड़ा जबरदस्त संगठन कर्त्ता, कड़ा अनुशासन रखने वाला और अपने उद्देश्य में अटल विश्वास रखने वाला व्यक्ति था। क्राम्वेल ने एक नई सेना का संगठन किया जिसके सैनिकों का नाम 'आयर्न साइड्स' (लौह-शरीर) रखा गया! क्रामवेल की सेना ने बादशाह की घुड़ सवार फौज का मुकाबला किया अन्त में क्रामवेल की जीत हुई और इंग्लैण्ड का बादशाह पार्लमेण्ट का कैदी हो गया।

पार्लमेण्ट के बहुत से मेम्बर अब भी बादशाह से समझौता करना चाहते थे लेकिन क्रामवेल की नई सेना इस बात को सुनना भी पसन्द नहीं करती थी और इस सेना के एक अफसर कर्नल प्राइड ने बेधड़क पार्लमेण्ट भवन में घुस कर ऐसे मेम्बरों को निकाल बाहर किया। इस घटना को 'प्राइडस पर्ज' यानी प्राइड की सफाई कहा जाता है।

पार्लमेण्ट के बचे हुए मेम्बरों ने जिन को रम्प पार्लमेण्ट का नाम दिया गया था लार्ड सभा के विरोध करने पर भी बादशाह पर मुकदमा चलाने का फैसला कर लिया और उसे जालिम, देश-द्रोही, हत्यारा और देश का शत्रु घोषित कर के मौत की सजा दे दी। सन् १६४७ ई० में इंग्लैण्ड के उस बादशाह का, जो शासन करने में अपने दैवी अधिकार की बात करता था, लन्दन के ह्वाइट हाल में सिर उड़ा दिया गया!

इस घटना से योरप के बादशाहों, सीजरों, राजाओं और छोटे-मोटे शाहों के दिल दहल गये। अगर वश चलता तो इनमें से अनेक इंग्लैण्ड पर हमला कर के उसे कुचल डालते मगर इग्लैण्ड की बागडोर उन दिनों किसी निकम्मे बादशाह के हाथों में नहीं थी। इतिहास में पहली बार इग्लैण्ड में गणराज्य की स्थापना हुई थी और उसकी रक्षा करने के लिये क्रामवेल और उसकी सेना तैयार थी। क्रामवेल 'लार्ड प्रोटेक्टर' यानी रक्षक स्वामी कहलाता था। उसके कुशल शासन में इंग्लैण्ड की ताकत बढ़ने लगी और उसके जहाजी बेड़ों ने हॉलैण्ड, फ्रान्स और स्पेन के बेड़ों को मार भगाया। पहली ही बार इंग्लैण्ड योरप की प्रधान समुद्री शक्ति बन गया।

लेकिन इंग्लैण्ड का यह गणराज्य ज्यादा दिन नहीं टिका। चार्ल्स प्रथम की मौत के ११ वर्ष बाद सन् १६५८ में क्रामवेल की मृत्यु हो गई और उसके दो वर्ष बाद इंग्लैण्ड के गणराज्य का भी अन्त हो गया।

आबरू

उर्दू के प्रसिद्ध कवि शाह "मुबारक" जिनका जन्म सन् १७०० के करीब और मृत्यु १७५० में हुई। ये देहली के रहनेवाले थे।

आबरू उर्दू के प्रसिद्ध कवि और अन्य कवियों के पथ प्रदर्शक थे। इनकी बनाई हुई एक मसनवी का नाम "मुअज्जजे आकाइशी माशूक" है। इनका बनाया हुआ एक दीवान भी था। मगर समय की गर्दिश में नष्ट हो गया। इनकी कविताओं के नमूने—

गर यह है मुसकिराना तो किस तरह जिएँगे
तुमको तो यह हँसी है पर है मरन हमारा
आया है सुबह नींद से उठ रसमसा हुआ
जामा गले में रात का फूलों बसा हुआ।

आश्व लायन सूत्र

बौद्ध धर्म का एक सूत्र ग्रन्थ जिसमें भगवान बुद्ध ने आश्वलायन ब्राह्मण माणवक के प्रश्नों का उत्तर दिया है।

आश्व-लायन प्रश्न करता है कि हे गौतम! ब्राह्मण ऐसा कहते हैं कि ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है अन्य वर्ण हीन हैं। ब्राह्मण ही शुद्ध होते हैं अब्राह्मण नहीं। ब्राह्मण ही ब्रह्मा के औरस पुत्र हैं और उनके मुख से उत्पन्न हुए हैं। आप इस विषय में क्या कहते हैं।

गौतम उत्तर देते हैं कि हे आश्व-लायन! ब्राह्मणों को क्या बल है जो वे ऐसा कहते हैं कि ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण हैं, अन्य हीन वर्ण हैं। क्या मानते हो कि केवल ब्राह्मण ही सावध्य या पाप से प्रतिविरत होकर स्वर्ग में उत्पन्न होते हैं क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नहीं? क्या तुम मानते हो कि ब्राह्मण ही मैत्र चित्त की भावना में समर्थ होते हैं? क्या ब्राह्मण ही नदी में स्नान करके शरीर के मल को धो सकते हैं दूसरे वर्ण नहीं? यदि कोई क्षत्रिय कुमार किसी ब्राह्मण कन्या के साथ सहवास करे और उसके पुत्र उत्पन्न हो तो वह पुत्र पिता के भी सदृश्य और माता के भी सदृश्य है। उसे क्षत्रिय भी कहना चाहिये और ब्राह्मण भी कहना चाहिये! हे आश्व लायन! यदि ब्राह्मण कुमार क्षत्रिय कन्या के साथ सहवास करे और उसके पुत्र पैदा हो तो क्या उसे क्षत्रिय और ब्राह्मण दोनों न कहेंगे?

"हाँ कहेंगे गौतम!"

"हे आश्व लायन मैं चारों वर्णों को शुद्ध मानता हूँ। जातिवाद की भावना ठीक नहीं है।"

आस्टरलिज का युद्ध

जिस समय फ्रान्स में नैपोलियन का प्रताप छाया हुआ था उस समय इंग्लैण्ड के विलियम पिट (छोटा) ने आस्ट्रिया, रूस और स्वीडेन को मिला कर नैपोलियन के विरुद्ध सन् १८०५ में एक संघ बनाया।

ज्यों ही नैपोलियन को मालूम हुआ कि फ्रान्स के विरुद्ध संघ कायम हुआ है त्योंही उसने बहुत सी सेना लेकर आस्ट्रिया पर हमला कर दिया और वियेना के पास आस्टरलिज के मैदान में रूस और आस्ट्रिया की सेनाओं को बुरी तरह से पराजित कर दिया! इस पराजय से रूस की सेना भाग निकली और जर्मनी के बहुत से प्रदेश पर नैपोलियन का अधिकार हो गया और आस्ट्रिया के सम्राट् दूसरे फ्रान्सिस को जर्मन-सम्राट् का पद, जो बहुत समय से उसके वंश में चला आ रहा था, छोड़ना पड़ा। अब वह केवल आस्ट्रिया का सम्राट् रह गया।

आशाधर

दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के एक बहुत बड़े विद्वान और पण्डित जिन्होंने न्याय, व्याकरण इत्यादि अनेक विषयों पर अपनी महान रचनायें कीं।

पण्डित आशाधर का जन्म ई० सन् ११८० के करीब माना जाता है। ये जैन बवेरवाल जाति के वंशज थे। इनके पिता का नाम सल्लक्षण, माता का श्री रत्नी, पत्नी का सरस्वती और पुत्र का नाम छाहड़ था!

पण्डित आशाधर का जैन धर्म का अध्ययन बहुत विशाल था। उनके ग्रन्थों से पता चलता है कि अपने समय के तमाम उपलब्ध जैन साहित्य का उन्होंने अध्ययन किया था! पण्डित आशाधर स्वयं एक गृहस्थ थे मगर उन्होंने अपने समय के कई मुनियों, भट्टारकों और विद्वानों को जैन धर्म की शिक्षा दी थी। उनकी विद्वत्ता से प्रभावित

होकर लोग उन्हें "नय विश्व चक्षु" "कलि कालीदास" "प्रज्ञा-पुञ्ज" इत्यादि पदवियों से सम्बोधित करते थे।

पण्डित आशाधर प्रारम्भ में माण्डल गढ़ (मेवाड़) के रहने वाले थे। शाहबुद्दीन गौरी के आक्रमणों से त्रस्त होकर चरित्र की रक्षा के लिये वे मालवा की राजधानी धारा नगरी में बहुत से लोगों के साथ आकर बस गये थे।

उस समय धारा नगरी ज्ञान और कला का केन्द्र बनी हुई थी। वहाँ पर उन दिनों राजा भोज, विन्ध्य वर्मा, अर्जुन वर्मा जैसे विद्वान और विद्वानों का सम्मान करने वाले राजा एक के बाद एक हो रहे थे।

पण्डित आशाधर का पाण्डित्य केवल जैन शास्त्रों तक ही सीमित न था। दूसरे शास्त्रों में भी उनकी अबाध गति थी। इसी कारण अष्टांग हृदय, काव्यलंकार, अमरकोप जैसे ग्रन्थों पर टीका लिखने में वे प्रवृत्त हुए।

जिस समय पण्डित आशाधर धारा नगरी में आये उस समय वहाँ के राजा विन्ध्य वर्मा थे। पण्डित आशाधर ने अपनी प्रशस्ति में इसका स्पष्ट उल्लेख किया है। विन्ध्य वर्मा बड़े वीर और विद्या-रसिक थे। विन्ध्य वर्मा के बाद उनकी प्रशस्ति में अर्जुन वर्मा का नाम आता है जो बड़ा विद्वान, कवि और गान-विद्या में निपुण था। अमरू शतक पर इसकी रस-संजीवनी नामक टीका बहुत प्रसिद्ध है। पण्डित आशाधर इसी के राज्य काल में धारा से हट कर नालछा में जाकर रहे थे।

पण्डित आशाधर की बीस से अधिक संस्कृत रचनाओं का अभी तक पता लगा है जिनमें से "प्रमेय-रत्नाकर", "ज्ञान-दीपिका" "अध्यात्म रहस्य" "आराधना सार टीका" "अमर कोप टीका" "काव्यालंकार टीका" "अष्टांग हृदय टीका" "रत्न त्रय विधान" इत्यादि ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं।

आसफजाह

औरंगजेब के समय में दक्षिण का सूबेदार आसफजाह जिसने दक्षिण में एक नवीन रियासत की स्थापना की जो हैदराबाद कहलाती है। हैदराबाद के निजाम इसी आसफशाही वंशज हैं।

आजुर्दा

मौलवी मुफ्ती सदरुद्दीन खाँ "आजुर्दा" उर्दू जबान के एक विद्वान साहित्यकार, प्रसिद्ध मुसलिम नेता सर सैयद अहमद के उस्ताद। जन्म सन् १७८७, मृत्यु सन १८६८

मौलवी सदरुद्दीन खाँ "आजुरदा" उर्दू के एक लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान और कवि थे। यह रामपुर तथा भोपाल के नवाबों के शिक्षक भी रहे थे। सर सैय्यद अहमद भी इनके शागिर्दों में थे। इन्होंने उर्दू भाषा में एक दीवान और तजकिरा लिखा है।

आसबर्ग

आल्प्स पहाड़ के उस पार इटाली का एक नगर। इस नगर के कानोसा महल में सन् १०७६ में जर्मनी के राजा चतुर्थ हेनरी और रोमन चर्च के पोप सप्तम ग्रेगरी के बीच में पैदा हुए झगड़े का निर्णय किया गया।

उस काल में पोप की सत्ता सर्वोपरि मानी जाति थी मगर हेनरी चतुर्थ ने कुछ राजकीय मद में आकर पोप की सार्वभौम सत्ता को चुनौती दे दी और एक पत्र में लिखा कि—"ईश्वर से प्राप्त हमारे राज्याधिकार के प्रति आँख उठाते हुए तुझे कुछ भी शंका न हुई और तू हम से हमारा राज्याधिकार छीन लेने की धमकी देता है। मानों यह राज्य तूने हमको दिया है। मैं हेनरी राजा होकर अपने तमाम विशपों के साथ तुझे आज्ञा देता हूँ कि तू अपने पद से उतर जा और सारे समाज की घृणा प्राप्त करे।"

मगर पोप ग्रेगरी का व्यक्तित्व बड़ा महान् था और उसने अधिकांश विशपों और हेनरी से असन्तुष्ट लोगों का समर्थन प्राप्त कर हेनरी को गद्दी से उतारने का आदेश दे दिया।

तब हेनरी बहुत घबराया। उसके विरुद्ध निर्णय देने के लिए आसबर्ग में एक बड़ी भारी सभा बुलाई गई जिसमें हेनरी को पोप से क्षमा याचना करने का एक मौका और दिया गया। पोप सप्तम ग्रेगरी बड़ी शान के साथ आसबर्ग के प्रसिद्ध कानोजा प्रासाद में आकर ठहरे। पोप का आगमन सुन हेनरी भी भयङ्कर जाड़े में आल्प्स

पहाड़ को पार कर वहाँ पहुँचा और प्रासाद के सामने अत्यन्त विनीत भाव से हाथ जोड़कर खड़ा हुआ। वह नंगे पैर, मोटे कपड़े पहने हुए, तपस्वी की तरह तीन दिन तक बराबर प्रासाद के बन्द फाटक पर जाता रहा, मगर पोप ने उसको अपने पास नहीं आने दिया। अन्त में बहुत अनुनय विनय करने पर पोप ने हेनरी के सब अपराधों को क्षमा कर दिया।

आग्ज वर्ग की लड़ाई

जर्मनी के महान् सम्राट् "ओटो" ने सन् ९५५ में आग्जबर्ग के निकट एक भारी युद्ध में हंगेरियन लोगों को हरा कर उन्हें जर्मनी से बाहर भगा दिया। यह लड़ाई इतिहास में आग्ज वर्ग की लड़ाई के नाम से प्रसिद्ध है।

आस्ट्रेलिया

संसार के अन्तर्गत आस्ट्रेलिया ही एक ऐसा महाद्वीप मिलेगा जो पूर्ण रूप से विषुवत् रेखा के दक्षिण में स्थित है। आस्ट्रेलिया का समुद्र तट बहुत कम कटा फटा है और वहाँ केवल थोड़े से ही अच्छे बन्दरगाह हैं यही कारण है कि आस्ट्रेलिया के भीतरी भागों का पता लगाने में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इस देश के उत्तर की ओर कारपेण्ट्रिया की खाड़ी और दक्षिण में ग्रेट आस्ट्रेलियन बाइट नाम की खाड़ी है। इसके उत्तर पूर्व की ओर तट के समीप एक विलक्षण मूंगे की दीवार पाई जाती है जो ग्रेट बेरियर रीफ के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी लम्बाई करीब एक हजार मील है।

प्राकृतिक दृष्टि से आस्ट्रेलिया महाद्वीप को तीन प्राकृतिक भागों में बाँटा जा सकता है (१) पूर्वीय पर्वत (२) मध्यवर्ती मैदान (३) पश्चिमी पठार।

आस्ट्रेलिया के पूरब की ओर उत्तर से दक्षिण तक समानान्तर पहाड़ों का एक क्रम चला गया है जिसे "ग्रेट डिवाइडिंग रेञ्ज" कहते हैं।

मध्यवर्ती मैदान उत्तर से दक्षिण तक महाद्वीप के मध्य भाग में फैला हुआ है। इस मैदान का तीसरा भाग अत्यन्त उपयोगी और घना बसा हुआ है। इसी भाग में आस्ट्रेलिया की प्रसिद्ध नदी मरे अपनी सहायक नदी डार्लिङ्ग के साथ पूर्वीय पहाड़ों से निकल कर मैदान को उपजाऊ बनाती है। मध्यवर्ती मैदान का सर्वोत्तम और अत्यन्त उपजाऊ भाग यही है जो रीवेरिना के नाम से प्रसिद्ध है। रीवेरिना में मरे की अनेक सहायक नदियाँ बहती हैं। मरे नदी की लम्बाई करीब सोलह सौ मील है और यह कोसीयस्को पहाड़ से निकलती है।

आस्ट्रेलिया का पश्चिमी पठार भी आबादी के योग्य नहीं है। केवल इसके दक्षिणी पश्चिमी हिस्से में जाड़ों में वर्षा होने के कारण घनी बस्ती बसी हुई है। इस प्रदेश में बहने वाली स्वान नामक नदी बड़ी उपयोगी है। इस प्रदेश में सोने की खानें होने से जलवायु की भीषणता और पानी की असुविधा होते हुए भी लोग जा बसे हैं।

आस्ट्रेलिया का क्षेत्रफल बहुत विस्तृत होने पर भी प्राकृतिक असुविधाओं के कारण यहाँ की आबादी बहुत कम है। यहाँ की सारी आबादी केवल ६७ लाख है जो विशेष रूप से रूम सागरीय प्रदेश और पूर्वी तट पर बसी हुई है!

आस्ट्रेलिया के नगर

आस्ट्रेलिया में छः बड़े शहर हैं जिनके नाम ब्रिस्बेन, न्यूकैसिल, सिडनी, मेलबोर्न, एडलेड और पर्थ हैं। आस्ट्रेलिया के आधे से अधिक लोग इन छः नगरों में रहते हैं।

आस्ट्रेलिया के निवासियों का सबसे महत्वपूर्ण व्यवसाय भेड़ों का पालना है। इस महाद्वीप में अंग्रेजों के आने के पहले एक भेड़ का भी निशान नहीं था। सन् १७८८ में यहाँ केवल उनतीस भेड़ें, सात गायें, और सात घोड़े लाये गये थे। बढ़ते २ अब इनकी संख्या करोड़ों तक पहुंच गई है और अकेले न्यू साउथ वेल्स में पाँच करोड़ भेड़ें पाई जाती हैं। गायों और घोड़ों की संख्या में भी आश्चर्यजनक रूप से वृद्धि हुई है! न्यू साउथ वेल्स के घोड़े पुष्ट और सुन्दर होते हैं वे वेलर्स के नाम से प्रसिद्ध हैं।

आस्ट्रेलिया की सबसे बड़ी और मुख्य पैदावार भेड़ों की ऊन है। यहाँ की एक भेड़ हिन्दुस्तान की भेड़ से पाँच गुना ऊन देती है। यह ऊन क्वालिटी में भी बहुत ऊँची होती है।

ऊन के अतिरिक्त खनिज सम्पत्ति भी आस्ट्रेलिया में काफी पाई जाती है। यहाँ सोना, चाँदी, कोयला, सीसा

और ताँबे की खदानें हैं। सोने की प्रधान खदानें न्यू साउथ वेल्स में बाथर्स्ट, विक्टोरिया में बालाराट और बेरिडगो और वेस्टर्न आस्ट्रेलिया में कालगूर्ली और कूलगार्डी नामक स्थानों में पाई जाती है। कोयला आस्ट्रेलिया के प्रायः सभी देशों में निकाला जाता है। कोयले के व्यापार के कारण न्यू कैसिल के बन्दरगाह ने बहुत उन्नति की है। चाँदी, जस्ता और सीसा न्यू साउथ वेल्स के ब्रोकेन हिल नामक पहाड़ी भागों से निकाला जाता है। टीन की खदानें क्वीन्स लैण्ड और तस्मानिया में पाई जाती हैं।

शासन की सुविधा की दृष्टि से आस्ट्रेलिया को आठ भागों में विभक्त कर कर दिया गया है (१) क्वीन्स लैण्ड जिसकी राजधानी ब्रिसबेन है। (२) न्यू साउथ वेल्स जिसकी राजधानी सिडनी है। (३) विक्टोरिया जिसकी राजधानी मेलबोर्न है। (४) साउथ आस्ट्रेलिया जिसकी राजधानी एडेलेड है। (५) वेस्टर्न आस्ट्रेलिया जिसकी राजधानी पर्थ है। (६) सेण्ट्रल आस्ट्रेलिया जिसकी राजधानी एलिस स्प्रिन्ग्ज है। (७) नार्थ आस्ट्रेलिया जिसकी राजधानी डार्विन है और (८) तस्मानिया द्वीप जिसकी राजधानी होबार्ट है।

इतिहास

आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड के दोनों प्रदेशों को डच लोगों ने सत्रहवीं शताब्दी में खोज निकाला था पर इन लोगों ने वहाँ पर अपने उपनिवेश नहीं बसाये थे। इसके बाद कैप्टन कुक नामक एक अंग्रेज मल्लाह ने इस प्रदेश को सन् १७७० ई० में खोज निकाला और घोषणा की कि यह प्रदेश अंग्रेजों का है।

सन् १७७६ ई० में कैप्टन कुक ने इस महाद्वीप की तीसरी यात्रा की और सेण्डविच द्वीपों को ढूँढ़ निकाला परन्तु वहाँ के लोगों ने उसे मार डाला।

इस देश का पता लग जाने पर भी बहुत दूर होने के कारण किसी ने भी इसमें उपनिवेश बसाने का विचार नहीं किया पर इंग्लैण्ड ने अपने निर्वासित कैदियों को भेजने के लिए आस्ट्रेलिया महाद्वीप को उपयुक्त समझा और सन् १७८८ में सबसे पहले कैदियों से भरा हुआ एक जहाज वहाँ न्यू साउथवेल्स के जेक्सन बन्दर पर भेजा और वहाँ एक छोटे से उपनिवेश की स्थापना हुई। आस्ट्रेलिया की भूमि उपजाऊ थी और वहाँ की आबहवा भेड़ें पालने के लिए बहुत अनुकूल थी, इसलिए जो कैदी वहाँ भेजे गये थे वे तो वहाँ बस ही गये, दूसरे भी बहुत से लोग वहाँ आकर बसने लगे। जमीन की तो वहाँ कमी थी ही नहीं। शुरू-शुरू में तो वहाँ बसनेवालों को जमीन मुफ्त में ही मिल जाती थी।

मगर सन् १८२९ में वेकफील्ड नामक एक विद्वान ने उपनिवेश-सिद्धान्त पर एक ग्रन्थ प्रकाशित किया। उसमें उपनिवेशों में मुफ्त जमीन वितरण का विरोध किया तथा नये उपनिवेश बसाने के सम्बन्ध में कई मौलिक और महत्वपूर्ण सिद्धातों की विवेचना की। इस ग्रन्थ का इंग्लैंड के उपनिवेश मन्त्री और वहाँ की जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ा और इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर लण्डन में कई संस्थाएँ स्थापित हुई और नये-नये उपनिवेश स्थापित होने के प्रयत्न होने लगे। जिसके परिणामस्वरूप न्यू साउथवेल्स की तरह विक्टोरिया, क्वीन्सलैण्ड, पश्चिमी आस्ट्रेलिया, टेस्मानियाँ, दक्षिणी आस्ट्रेलिया इत्यादि उपनिवेश धीरे-धीरे स्थापित हो गये।

सन् १८५१ में आस्ट्रेलिया के न्यू साउथवेल्स और विक्टोरिया उपनिवेशों में सोने की खदानों का पता चला, जिससे वहाँ का आकर्षण और भी बढ़ गया और बड़े-बड़े कारखानेदार इंजीनियर तथा मजदूर वहाँ जाकर बसने लगे। इसके साथ ही कोयला, चाँदी, ताँबा और सीसे की खदानों का भी पता लगा और वहाँ की जनसंख्या शीघ्रता से बढ़ने लगी।

इसके बाद सन् १९०१ में इंग्लैण्ड की पार्लियामेण्ट ने एक कानून बना कर आस्ट्रेलिया के सब उपनिवेशों का एक संघ बना दिया और उसका नाम ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत 'कॉमन वेल्थ ऑफ आस्ट्रेलिया'' रक्खा गया। आस्ट्रेलिया की राजधानी केनेबरा (Canberra) रक्खी गई।

आरज़ू

उर्दू और फारसी के प्रसिद्ध कवि सिराजुद्दीन अलीखाँ "आरज़ू" जो आगरे के रहने वाले थे और जिनका देहान्त सन् १७५६ में हुआ।

आरज़ू उर्दू और फारसी साहित्य के एक प्रसिद्ध कवि काव्य मर्मज्ञ, और उर्दू साहित्य के अनेक कवियों के उस्ताद थे। फारसी भाषा के भी ये बहुत नामांकित कवि थे। इनके फारसी दीवान में ३०००० शैर हैं। सिकन्दरनामा, और सादी की "गुलिस्तां" पर इन्होंने टीकाएँ भी लिखी हैं। अपनी पुस्तक "तम्बीहुल गाफिलीन" में इन्होंने फारसी के सुप्रसिद्ध कवि मुहम्मद अली "हर्जा" के दीवान की कड़ी आलोचना की है। यह पुरी पुस्तक ही "हर्जा" के दीवान की भूलें निकालने में लिखी गई है। इनके ग्रन्थ "ममउल-नफायस" में फारसी तथा उर्दू के कवियों का वर्णन किया गया है। इनकी कविताओं के नमूने—

मैखाने आज जाकर, शीशे तमाम तोड़े
जाहिद ने आज अपने दिल के फफोले फोड़े।
तुफ़ ज़ुल्फ़ में लटक न रहे दिल तो क्या करे
बेकार है अटक न रहे तो दिल क्या करे॥

आस्क्विथ (Asquith)

सम्राट् सप्तम एडवर्ड के समय में इंग्लैण्ड का प्रधान मंत्री जिसका कार्यकाल सन् १९०८ से १९१६ तक है।

श्री आस्क्विथ लिबरल दल के सदस्य थे। इनके नेतृत्व में लिबरल मन्त्रिमण्डल ने मजदूरों के हित के लिये कई कानून, बनाये जिनमें (१) मजदूरों की क्षतिपूर्ति का कानून, जिसके अनुसार कारखाने या मिल में काम करते हुए किसी मजदूर की मृत्यु हो जाया या उसका अंग-भंग हो जाय तो उसकी क्षति पूर्ति के लिये एक निश्चित रकम देने की व्यवस्था की गई।

(२) वृद्धावस्था की पेंशन का कानून इसके अनुसार वृद्धावस्था में मजदूर को पाँच शिलिंग प्रति सप्ताह वृद्धावस्था की पेंशन के रूप में देने की व्यवस्था की गई।

(३) शान्ति पूर्वक पिकेटिंग करना कानूनोचित माना गया।

(४) लेबर एक्सचेंज एक्ट-मजदूरों को काम देने के लिये और मिलों के मालिकों को मजदूर देने के लिए एक आफिस खोला गया।

प्रधान मंत्री आस्क्विफ के समय में इंग्लैण्ड की जल सेना और स्थल सेना के सम्बन्ध में बहुत सुधार किये गये। यह निश्चय किया गया कि ब्रिटेन की जल सेना इतनी बड़ी होनी चाहिये जो किन्हीं भी दो विशाल राष्ट्रों की जल सेना के बराबर हो। सुदूर स्थानों में तुरन्त सेना भेजने के लिये एक लाख चालीस हजार एक्सपीडिश्नरी फोर्स (Expeditionary force) रखा जाना निश्चित हुआ। इसी प्रकार देश की रक्षा के लिये टेरिटोरियल फोर्स का निर्माण किया गया और एक सुदृढ़ वायु सेना का भी निर्माण करने का निश्चय हुआ।

प्रधान मंत्री आस्क्विथ के समय में सन् १९११ में लॉर्ड सभा के अधिकारों को कम करने वाला "पार्लमेण्ट एक्ट" पास किया गया जिससे लॉर्ड सभा के अधिकारों में बहुत कमी हो गई!

आस्क्विथ के प्रधान मंत्रित्व काल में ही यूरोप में विश्व व्यापी प्रथम महायुद्ध का प्रारम्भ हुआ। मिस्टर आस्क्विथ के साथ पार्लमेण्ट के मंत्री सर एडवर्ड रे थे। इन मंत्रियों ने युद्ध को सफल करने के लिये बहुत प्रयत्न किया। इन्होंने अर्ल हेग को ब्रिटिश सेना का प्रधान सेनापति और लॉर्ड किचनर को युद्ध विभाग का सेक्रेटरी नियुक्त किया। इसी प्रकार एडमिरल बेटी को ब्रिटिश जल सेना का प्रधान सेनापति और जेलिको को उसका सहायक नियुक्त किया। सन् १९१६ के जनवरी मास में युद्ध के लिये अनिवार्य सैनिक नौकरी का कानून पास किया गया। इस महायुद्ध में इंग्लैण्ड और ब्रिटिश साम्राज्य के करीब अस्सी लाख सैनिक सम्मिलित हुए थे। इसके अतिरिक्त लाखों आदमी युद्ध की सामग्री बनाने में लगे हुए थे।

फिर भी ऐसा दिखलाई दे रहा था कि मिस्टर आस्क्विथ युद्ध का संचालन करने में सफल नहीं हो रहे हैं। तब उन्होंने सन् १९१६ में प्रधान मंत्री पद से इस्तीफा दे दिया और उनके स्थान पर लॉयड जार्ज प्रधान मंत्री चुने गये।

आयना-ए-अकबरी

अकबर के समकालीन तथा उसके प्रसिद्ध दरबारी महान विद्वान अबुलफजल के द्वारा लिखा हुआ एक महान् ऐतिहासिक ग्रन्थ।

आयना ए-अकबरी में अबुल फजल ने मुगल साम्राज्य का इतिहास, विशेष कर सम्राट अकबर के जीवन और शासन का इतिहास बड़े ही सुन्दर ढंग से लिखा है। उस समय के इतिहास के लिए यह पुस्तक प्रामाणिक मानी जाती है।

आसफ खाँ

आसफ खाँ, एतमादौला का पुत्र, नूरजहाँ का भाई और शाहजहाँ की प्रसिद्ध बेगम मुमताज महल का पिता।

सम्राट् जहाँगीर के दरबार में आसफ खाँ का बड़ा सम्मान और प्रभाव था। जहाँगीर के द्वारा लड़ी गई कई लड़ाइयों में उसने सेनापति का काम किया था। जहाँगीर की मृत्यु हो जाने के बाद नूरजहाँ ने उसके दामाद शहरयार को जहाँगीर का उत्तराधिकारी बनाने की बहुत कोशिश की मगर आसफ खाँ शाहजादा खुर्रम को सम्राट् की गद्दी का उत्तराधिकारी बनाने के पक्ष में था। नूरजहाँ और उसकी पुत्री ने शहरयार को सिंहासन पर बिठाने के लिये प्राण पण से चेष्टा की लेकिन आसफ खाँ ने शहरयार के प्रयत्नों को विफल करने में अपनी पूरी शक्ति लगा दी। वह एक बड़ी सेना के साथ लाहौर की ओर बढ़ा और वहाँ के किले पर घेरा डाल दिया। शहरयार गिरफ्तार कर लिया गया और उसकी आँखें फोड़ दी गईं। शाहजादा खुर्रम के दूसरे सब विरोधियों को भी आसफ खाँ ने खतम कर दिया। इसके बाद शाहजादा खुर्रम शाहजहाँ के नाम से ६ फरवरी १६२८ को गद्दी नशीन हुआ। उसने आसफ खाँ को उसकी सेवाओं के बदले में यमीनुद्दौला (राज्य का दाहिना हाथ) की उपाधि दी और पचास लाख वार्षिक आय की जागीर इनायत की। वफादारी के साथ उन्नति करते हुए वह साम्राज्य का प्रधान वजीर हो गया और उसका मनसब नौ हजार जाद और नौ हजार सवार का कर दिया गया। आसफ खाँ की सन् १६४१ में लाहौर में मृत्यु हुई। मृत्यु के समय उसने सम्राट् को अपने घर पर बुला कर अपने जीवन की अर्जित सारी विशाल सम्पत्ति, जो करीब दो करोड़ पचास लाख रुपये की थी, सम्राट् को भेंट कर दी। सम्राट् ने उसमें से बीस लाख रुपये उसकी सन्तानों को देकर बाकी सारी सम्पत्ति शाही खजाने में मिला ली।

आसाम

भारतवर्ष की पूर्वी सीमा पर स्थित एक प्रान्त जिसे इस समय आसाम कहते हैं और प्राचीन काल में जो कामरूप के नाम से प्रसिद्ध था।

आज के आसाम से प्राचीन कामरूप का आकार बड़ा था। इसमें पूर्वी और उत्तरी बंगाल का कुछ भाग तथा भूटान भी शामिल था। इसकी राजधानी गौहाटी उस समय प्राग्ज्योतिष पुर के नाम से प्रसिद्ध थी।

सम्राट समुद्र गुप्त के समय में कामरूप की गणना सीमान्त के करदाता राज्यों में होती थी।

मन्दसौर के स्तम्भ लेख में मालवा के राजा यशोधर्मन के प्रति ब्रह्मपुत्र के राजाओं के आत्म समर्पण का उल्लेख पाया जाता है। इसी प्रकार अपसात के एक शिला लेख में मालवा के राजा महासेन गुप्त के द्वारा कामरूप के राजा सुस्थित बर्मन को हराने का उल्लेख है। इस सुस्थित वर्मन का पुत्र भास्कर वर्मन कामरूप के प्रसिद्ध राजाओं में से एक है।

भास्कर वर्मन का समय ईसा की सातवीं सदी के आरम्भ में किसी समय माना जाता है। मालवा के राजाओं से कामरूप के राजाओं का हमेशा बैर रहता था। भास्कर वर्मन के समय में मालवा का राजा देवगुप्त था। देवगुप्त ने जब अपनी सुरक्षा के लिये कर्ण सुवर्ण के राजा शशाङ्क से मित्रता कर ली तो भास्कर वर्मन ने अपनी सुरक्षा के लिये कन्नौज के राजा हर्षवर्द्धन से सन्धि की। सम्राट हर्ष वर्धन की मृत्यु के पश्चात् जब उसका साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया तो उस गड़बड़ी के बीच भास्कर वर्मन ने कर्ण सुवर्ण को अपने राज्य में मिला लिया। भास्कर वर्मन ब्राह्मण धर्म का अनुयायी था। सन् ६४३ में चीनी यात्री ह्वेनसांग उसके यहाँ गया था और भास्कर वर्मन ने उसे अपने एक मित्र की तरह रखा था।

भास्कर वर्मन के पश्चात् आसाम के इतिहास का कोई सिलसिलेवार पता नहीं लगता। बंगाल के पाल राजाओं ने अपनी सेनाएँ भेजकर कामरूप पर अधिकार कर लिया था और बाद में कुमारपाल का मंत्री वैद्य देव वहाँ का शासक हो गया था। तेरहवीं सदी के आरम्भ में शान जाति की अहोम नामक शाखा ने कामरूप पर अधिकार कर लिया और उसी के नाम पर इस देश का नाम आसाम पड़ा। मुसलमान राजाओं ने तेरहवीं सदी से सत्रहवीं सदी तक आसाम को जीतने का प्रयत्न किया मगर वे इसमें सफल नहीं हुए। मोहम्मद इब्न-बख्तियार और मीर-जुमला दोनों की सेनाएँ उस बीहड़ प्रान्त में जाकर नष्ट हो गई। सन् १८१५ में अंग्रेजी सरकार ने आसाम पर अधिकार कर लिया।

आसाम की उपज और व्यापार

आसाम ब्रह्मपुत्र के समान विशाल और भयंकर नदी के किनारे पर बसा हुआ देश है। अंग्रेजी शासन में आने के पूर्व इस देश में बेंतों और बाँसों के बड़े-बड़े घने जंगल छाये हुए थे और यहाँ के लोग बड़ी दरिद्र अवस्था में इन जंगलों में अपना जीवन यापन करते थे। अंग्रेजी सत्ता के जमने के पश्चात् इस देश की कृषि योग्य भूमि की सफाई हुई और यहाँ की भूमि चाय, और जूट की खेती के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुई। जिसके परिणाम स्वरूप कई बड़ी-बड़ी अंग्रेज कम्पनियों ने यहाँ पर चाय के बगीचे लगाना शुरू किये और राजस्थान के दूरवर्त्ती क्षेत्र से हजारों व्यवसायियों ने आकर वहाँ पर अपना व्यवसाय जमाया। आज सारे आसाम में सैकड़ों—हजारों चाय के बगीचे बने हुए हैं। जिनमें से अधिकतर अंग्रेज कम्पनियों के अधिकार में तथा कुछ राजस्थान और बंगाल के व्यापारियों के अधिकार में हैं। प्रतिवर्ष लाखों रुपये की चाय इस प्रान्त में उत्पन्न होती है और कलकत्ता होती हुई संसार के विभिन्न देशों में जाती है।

भाषाएँ और निवासी

आसाम के मूल निवासियों में आसामी लोग, बंगाली और राजस्थानी प्रधान हैं। यहाँ की आदिम जातियों में नागा जाति बहुत लड़ाकू और प्रसिद्ध है। भारत को स्वाधीनता मिलने के पश्चात् यहाँ की नागा जाति के लोगों ने अपना एक स्वतन्त्र नागालैण्ड बनाने का आन्दोलन जोरदार रूप से प्रारम्भ कर रखा है। इन विद्रोही नागाओं का नेता "फिजो" नामक एक व्यक्ति है जो इस आन्दोलन का संचालन कर रहा है। नागा जाति के लोग विशेष कर ईसाई मिशनरियों के प्रभाव में हैं जो नागा क्षेत्र में ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिये बनी हुई हैं। नागा जाति का यह आन्दोलन गत दस वर्षों से बड़े हिंसात्मक रूप में चल रहा है। क्रुद्ध नागाओं ने बहुत से लोगों की हत्या कर डाली और बहुतों का अपहरण करके ले गये। इस उपद्रव का दमन करने के लिये भारत सरकार को अपने कुछ फौजी दस्ते वहाँ पर रखने पड़े हैं, फिर भी स्थिति अभी तक पूरी तरह काबू में नही आ पाई है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् आसाम में राज्य भाषा के सम्बन्ध में आसामियों और बंगालियों के संघर्ष ने भी बहुत उग्ररूप धारण किया। वैसे इस प्रान्त में आसामी, बंगाली और हिन्दी तीनों भाषाएँ बोली जाती हैं मगर जब राजभाषा बनाने का प्रश्न उपस्थित हुआ तो आसामी और बंगाली के समर्थकों के बीच में भयंकर दंगे, हत्याएँ और लूटमार प्रारम्भ हो गई और कुछ समय तक अराजकता की स्थिति पैदा हो गई। बहुत से बंगाली आसाम छोड़-छोड़ कर शरणार्थियों के रूप में कलकत्ता और बंगाल चले गये। उच्च नेताओं के प्रयत्न से यद्यपि वहाँ पर शान्ति स्थापित हो गई, फिर भी भीतरी तनाव बना हुआ है।

आसाम के प्रमुख शहर

आसाम की राजधानी गोहाटी है। गर्मियों में यह शिलांग चली जाती है। इसके अतिरिक्त यहाँ के प्रमुख शहरों में डिब्रूगढ़, तिनसुखिया, तेजपुर, जोराहाट, सिलहट इत्यादि उल्लेखनीय हैं। शिलाँग यहाँ का सुप्रसिद्ध हिल-स्टेशन है जो हिमालय में बहुत रमणीक स्थान पर बसा हुआ है।

तन्त्र विद्या

प्राचीनकाल में कामरूप देश अपनी तन्त्र विद्या के लिये बहुत प्रसिद्ध रहा है। कामरूप देश की कमक्षा देवी सारे भारत वर्ष में तन्त्र विद्या की एक महान प्रतीक मानी जाती हैं। बौद्ध, हिन्दू और मुसलमान तीनों सम्प्रदायों के

तान्त्रिक इस प्रांत में हुए हैं। प्रसिद्ध हिन्दू तांत्रिक मछिन्द्रनाथ और गोरखनाथ भी सिद्धि प्राप्त करने के लिये इस देश में गये थे, ऐसी जनश्रुति है। प्रसिद्ध मुसलमान तांत्रिक अजमाल जोगी या इस्माइल जोगी ने भी इसी प्रान्त में अपनी सिद्धियाँ प्राप्त की थीं, ऐसा कहा जाता है। भारत वर्ष की प्राचीन जनश्रुतियों में कामरूप देश को जादू-टोनों का देश कहा गया है और भिन्न-भिन्न प्रकार की आश्चर्यजनक किंवदन्तियाँ इस प्रान्त के सम्बन्ध में प्रचलित हैं। कुमारी पूजा का रूप इस समय भी इस देश में किसी न किसी रूप में प्रचलित है।

आहवमल्ल सोमेश्वर

कल्याण के चालुक्य वंश का प्रसिद्ध राजा जो सन् १०४२ में गद्दी पर बैठा। इसने कल्याणी नामक नया नगर (वर्तमान निजाम राज्य में बेदर के समीप) बसा कर उसे अपनी राजधानी बनाया। इसका विरुद "त्रैलोक्य मल्ल" था। इसके पिता का नाम जयसिंह द्वितीय था।

बिल्हण कवि के विक्रमांदेव चरित से मालूम होता है कि सोमेश्वर एक बड़ी सेना के साथ अपनी राजधानी से निकला और मध्य भारत के चन्देलों और कच्छपघातों को हराता हुआ गंगा-यमुना के दुआबे की ओर बढ़ा। कन्नौज का राजा डर कर वहाँ से भाग गया। इसके बाद उसने लक्ष्मीकर्ण कलचुरी को परास्त किया। इसी बीच उसके पुत्र विक्रमादित्य ने मिथिला, मगध, अंग-बंग इत्यादि देशों को जीत लिया। सन् १०६८ में सोमेश्वर बीमार हुआ और उस बीमारी से घबरा कर उसने तुङ्गभद्रा नदी में जल समाधि ले ली।

आगरा

भारत वर्ष का एक श्रेष्ठ, ऐतिहासिक और प्राचीन नगर।

आगरा नगर उत्तरी भारत में यमुना नदी के दाहिने तट पर व्रजभूमि खण्ड के अन्दर बसा हुआ है।

इस नगर के प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में कोई सुदृढ़ प्रमाण प्राप्त नहीं होता। कुछ लोग इसे राजा अग्रसेन के द्वारा बसाया हुआ बतलाते हैं, मगर अग्रसेन की स्थिति और समय के सम्बन्ध में इतिहास में कोई विश्वसनीय प्रमाण नहीं मिलता।

आगरे का गौरवपूर्ण इतिहास मुगल साम्राज्य के समय से प्रारम्भ होता है। सन् १५६६ में सम्राट् अकबर ने आगरा नगर का पुनर्निर्माण किया। अकबर के समय में आगरा नगर ने धन, वैभव और सुन्दरता में बहुत उन्नति की।

अबुलफजल अपने आयना-ए-अकबरी ग्रन्थ में लिखता है कि "आगरा एक बड़ा नगर है जिसकी जलवायु बहुत स्वास्थ्यप्रद है। यमुना नदी इसके साथ पाँच कोस तक बहती है, जिसके दोनों तरफ मकान और उद्यान बने हुए हैं सम्राट् ने यहाँ पर लाल पत्थर का एक किला बनाया है, इसमें लाल पत्थर के ५०० भवन बंगाल, गुजरात आदि के ढंग के बने हुए हैं। चित्रकारों ने उन्हें सुन्दर चित्रकला से सज्जित किया है।"

सम्राट् जहाँगीर के समय में भी आगरा नगर शिल्पकलायुक्त सुन्दर भवनों से सजा हुआ एक रौनकदार नगर था। जहाँगीर ने सिकन्दरा में अपने पिता का एक अद्भुत स्मारक बनवाया। इसके अलावा उसने यहाँ अनेक उद्यानों और प्रासादों का निर्माण करवाया। नूरजहाँ ने भी अपने पिता एत-माद्-दौला का यहाँ पर भव्य स्मारक बनवाया।

उसके पश्चात् सम्राट् शाहजहाँ के समय में तो इस नगर का उत्कर्ष चरम सीमा पर पहुँच गया। इसने दिल्ली को छोड़ कर आगरा में अपनी राजधानी कायम की। आगरे के गौरव को बढ़ाने वाला उसका सबसे बड़ा कार्य अपनी बेगम मुमताज महल की स्मृति में निर्मित की हुई "ताज महल" नामक भव्य इमारत है। जो सारे संसार में अपने ढंग की एक ही इमारत है।

ताजमहल

इस महान् इमारत को बनवाने के लिए बादशाह ने देश-देशान्तरों के निपुण कारीगरों से इस इमारत के डिजाइन बनवा कर मंगवाये। ताजमहल का नमूना किस कलाकार का बनाया हुआ है इस पर इतिहासकारों में भिन्न-भिन्न मत हैं। यूरोप के ऐतिहासिकों का कथन है

कि इटाली के प्रसिद्ध कलाकार "जरनिमो वेरोनियो" अथवा फ्रांस के कलाकार आस्टिन-डी-बोरडक्स ने ताजमहल की रूपरेखा का डिजाइन बनाया। मगर भारतीय इतिहासकारों के मत से यह नमूना शीराज के एक निपुण कलाकार का बनाया हुआ है।

इस नमूने पर आगरा में राजा मानसिंह के उद्यान में इस संसार प्रसिद्ध मकबरे का बनना प्रारम्भ हुआ। इस मकबरे को बनाने में भिन्न-भिन्न देशों के जिन चतुर शिल्पकारों ने भाग लिया उनमें से कुछ नाम इस प्रकार हैं—

(१) मुहम्मद ईसा अफनदी—यह तुर्किस्तान का रहनेवाला शिल्पकार था इसने इसका नकशा तथा ढाँचा बनाया।

(२) सत्तार खाँ—तुर्किस्तान का रहनेवाला कारीगर, इसने इस इमारत में सुन्दर लेख लिखने का काम किया।

(३) महम्मदशरीफ—समरकन्द का रहनेवाला चित्रकार।

(४) चिरंजीलाल—दिल्ली का रहनेवाला कारीगर इसने इस इमारत में जड़ाऊ कार्य बनाया।

(५) बलदेवदास—मुलतान का रहनेवाला फूल बनानेवाला कारीगर।

(६) मन्नूलाल—लाहौर का रहनेवाला पच्चीकारी का कारीगर।

(७) बशरतअली—दिल्ली का रहनेवाला पच्चीकार।

(८) भगवानदास—मुलतान का रहनेवाला पच्चीकार।

(९) मुहम्मद युसुफ खाँ—दिल्ली का रहनेवाला पच्चीकार, इत्यादि।

कुल १८ वर्ष ६ माह तक इस इमारत को बनाने में २०००० मजदूरों ने प्रति दिन काम किया। इन मजदूरों की बस्ती से अलग शहर का निर्माण हो गया जिसको मुमताजाबाद कहते थे। इस नगर में अनेक मुहल्ले मुख्य कारीगरों के नाम पर बसाये गये थे।

ऐसा अनुमान है कि इस इमारत पर उस युग में करीब १,८४,६५,१६६ रुपये खर्च हुए थे।

मुमताज महल के सौन्दर्य और शाहजहाँ की दिव्य भावनाओं के अनुरूप यह मकबरा भी सौन्दर्य में अनुपम तथा अद्वितीय बन कर तैयार हुआ।

कई शताब्दियाँ बीत गईं, देश में कई साम्राज्यों का उत्थान और पतन हो गया, मगर शाहजहाँ के द्वारा निर्मित यह महान् कलाकृति समय के परिवर्तनों का उपहास करती हुई आज भी शाहजहाँ और मुमताज महल को अमर बनाये हुए सारे संसार का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रही है।

आगरा के अन्य दर्शनीय स्थान

आगरा किला—आगरे का प्रसिद्ध किला संसार के श्रेष्ठ दुर्गों में से एक है।

सम्राट् अकबर ने आगरा को अपनी राजधानी निश्चित करने के पश्चात् सन् १५६५ से इस दुर्ग को बनवाना प्रारम्भ किया जो ८ वर्ष ६ महीने में बन कर तैयार हुआ। इस किले को बनाने तथा कारीगरों पर निरीक्षण करने का भार सुप्रसिद्ध शिल्पशास्त्री कासिम खाँ को सौंपा गया था।

इस किले के अन्दर उत्तर पश्चिम की ओर बना हुआ दिल्ली दरवाजा सब दर्वाजों में सुन्दर है। दक्षिण की ओर अमरसिंह दरवाजा है, जिसे बादशाह शाहजहाँ ने नागौर के प्रसिद्ध वीर अमरसिंह राठौर की स्मृति में बनाया था। इसके अतिरिक्त किले में जहाँगीर महल, जहाँगीर हौज, अकबरी महल, शाहजहाका महल, खास महल, शीश महल, दीवाने खास, अंगूरी बाग, मीनामसजिद, नगीना मसजिद, मीनाबाजार, मोती मसजिद इत्यादि अत्यन्त दर्शनीय वस्तुएँ और इमारतें बनी हुई हैं।

अंग्रेजी साम्राज्य के समय में भी आगरा नगर का सौन्दर्य ज्यों का त्यों बना रहा। यह शहर सेण्ट्रल और वेस्टर्न दोनों रेलवे लाइनों का जंक्शन है। इस शहर में जूतों और दरियों का व्यापार बड़े पैमाने पर होता है।

आतिश

उर्दू साहित्य के एक सुप्रसिद्ध कवि और साहित्यकार। ये लखनऊ के रहने वाले थे।

कवि आतिश सीधी, सादी बोल-चाल की बहती हुई भाषा में कविता करते थे। फिर भी इनका भाषा सौष्ठव, और कवित्व शक्ति किसी से कम नहीं थी, इन्होंने आशिक-

माशूक तथा साकी और पैमाने सम्बन्धी उर्दू परम्परा का अपनी कविता में अनुगमन नहीं किया। फिर भी इनकी कविता में निर्झर की धारा की तरह एक प्रवाह है — गति है और इसी चीज ने उर्दू साहित्य के इतिहास में इनका नाम अमर कर दिया है।

इन्हीं के समय में उर्दू साहित्य में "नासिख" नामक कवि का भी बड़ा नाम था और आतिश के साथ उनकी प्रतिद्वन्दिता चलती थी। नासिख कठिन और उलझी हुई भाषा में अलंकृत कविता के रचयिता थे जब कि आतिश सीधी और सुलझी हुई भाषा में प्रवाह पूर्ण कविता के प्रतीक थे। गालिब के समान् उत्कृष्ट श्रेणी के कवि आतिश की कविता को ज्यादा पसन्द करते थे। इनकी रचनाओं में एक दीवान और एक कविता संग्रह है।

कविता के नमूने—

आलम को लूट खाया है, एक पेट के लिए
इस गार में गई हैं, हजारों ही गारतें।
तिरछी नजर से तायरे दिल हो चुका शिकार
जब तीर कज पड़ेगा, उड़ेगा निशाना क्या।
पेशगी दिल को जो देले, वह इसे तहसीले,
सारी सरकारों से है, इश्क की सरकार जुदा।

आसफुद्दौला "आसफ"

अवध के नवाब आसफुद्दौला का पूरा वर्णन हम अवध के प्रकरण में कर चुके हैं, यह भी हम लिख आये हैं कि इन्हें कविता करने का शौक था। इनका एक दीवान है जिसमें गजलें, रुबाइयाँ और एक मसनवी है।

कविता के नमूने—

गुजरते हैं सौ सौ ख्याल अपने दिल में
किसी का जो नक्शये कदम देखते हैं।
या डर मुझे तेरा है कि मैं कुछ नहीं कहता
या हौसला मेरा है कि मैं कुछ नहीं कहता।

आपियस क्लाडियस

ई० सन् पूर्व ५६६ में रोम के पैट्रिशियन लोगों का नेता।

ई० सन् पूर्व की छठी शताब्दी में रोम के अन्तर्गत पैट्रिशियन और प्लेबियन लोगों के बीच बड़े संघर्ष होते रहते थे। पैट्रिशियन लोग, राजवर्गीय एवं सरदारों को कहते थे और प्लैबियन लोगों में अधिकांश किसान और मजदूर होते थे। पैट्रीशियन लोगों को प्रतिवर्ष दो कौन्सल-(राज्य चलाने वाले अधिकारी) चुनने का अधिकार था यह अधिकार प्लैबियन लोगों को नहीं था। लड़ाई में लड़ने का काम प्लैबियन करते थे और उसमें जो लूट का माल मिलता था उसे पैट्रीशियन आपस में बांट लेते थे। इसी से रोमन प्रजातंत्र में इन दोनों वर्गों का संघर्ष काफी समय तक चलता रहा।

आपियस क्लाडियस पैट्रीशियन लोगों का नेता था। वह रोम का शासन करने वाली विधान निर्माणी समिति का भी सदस्य था। यह प्लेबियन लोगों का दिली शत्रु, दुराग्रही और बड़ा चालाक था। वह अनेक यत्नों के द्वारा शासक समिति में अपने सदस्य चुनवा कर रोम का राज्य प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगा।

इसी समय सबैन और एक्वियन लोगों से युद्ध करने के लिए रोम से दो सेनाएं भेजी गई थीं। इनमें एक का सेनापति ल्यूशियस वर्जीनियस था। इसकी लड़की वर्जीनिया बहुत सुन्दर थी। आपियस क्लाडियस उससे विवाह करना चाहता था, मगर उसके पहले ही ल्यूशियस इसीलियस नामक व्यक्ति से उसका सम्बन्ध पक्का हो चुका था। आपियस क्लाडियस ने कई षड्यंत्र कर उस लड़की को प्राप्त करने का प्रयत्न किया मगर इसी समय ल्यूशियस वर्जीनियस न्यायालय में पहुँच गया और लड़की की रक्षा होते न देख उसकी छाती में छुरी भोंक दी और आपियस क्लाडियस को छुरी दिखाकर कह दिया कि इस हत्या की सारी जिम्मेदारी तुम्हारे सिरपर है। यह कहकर वह अपनी सेना में वापस चल गया और लोकमत खिलाफ हो जाने से क्लाडियस को वहां से भागना पड़ा।

अन्त में रोमराष्ट्र को पैट्रीशियन और प्लेबियन लोगों के संघर्ष से बचाने के लिए हार्टेंशन्स डिक्टेटर चुना गया। उसने प्लेबियन और पैट्रीशियन लोगों के झगड़े को हमेशा के लिए मिटा दिये। उसने पैट्रीशियन और प्लेबियन लोगों की साधारण सभा स्थापित की और गरीब प्लेबियन लोगों को दी जाने वाली जमीनका विधान स्वीकार करा लिया तथा पैट्रीशियन लोगों के अधिकार बहुत कम करवा दिये।

आंकस मार्शियस

रोम राज्य का राजा जिसका समय ईसा से ७५५ से ७३१ वर्ष पूर्व तक है।

रोम के तत्कलीन राजा टूलियस की मृत्यु के कुछ समय पश्चात् आंकस मर्शियस गद्दी पर बैठा। यह बड़ा ईश्वर भक्त व्यक्ति था। इसको ईश्वर भजन में लीन देखकर लैटिन लोगों ने उसके राज्य में लूट मचा दी, तब आंकस मार्शियस ने मैड्यूलिया की लड़ाई में उन्हें हरा कर उनसे बहुत से गांव छीन लिये और उन गाँवों के निवासियों को रोम नगर की आवेण्टाइन पहाड़ियों पर लाकर बसा दिया। लैटिन लोगों से जीती हुई जमीन को इसने रोमन लोगोंमें बांट दिया। इस राजा ने रोम में कई भव्य इमारतों का निर्माण करवाया और रोम नगर के एक पहाड़ की तलहटी में एक विशाल जेल खाना बनवाया। यही रोम राज्य का सबसे पहला जेल खाना था।

इस राजा ने टाइबर नदी के मुख के पास ओस्टिया नामक स्थान पर एक नया नगर बसाया और नदी के उस पर जानिक्यूलम पहाड़ पर एक मजबूत किले का निर्माण करवाया। ई० सन् से ७३१ वर्ष पूर्व इसकी मृत्यु होगई।

ऑप्टिमेंट

प्राचीन रोमन राज्य में धनी लोगों का वर्ग जो ऑप्टिमेंट कहलाता था।

ईसा पूर्व की छठीं शताब्दी में रोमन राज्य में पैट्रीशियन और प्लेबियन नामक दो वर्ग थे। पैट्रीशियन लोग अधिकतर सरदार और राजवर्गीय होते थे और प्लेबियन लोग किसान और मजदूर। इन दोनों वर्गों में काफी संघर्ष होता रहा, मगर ई० पूर्व ४०० में यह संघर्ष खतम हो गया मगर इसके साथ ही वहाँ के समाज में ऑप्टिमेंट (धनवान्) और "ऑब्सिक्यूरी" (गरीब) ये दो दल बन गये तथा धनवान् गरीबों को कष्ट देने लगे।

आम्यूलियस

रोमनगर की स्थापना के पूर्व आलबालोंगा नामक शहर का राजा। रोमन दन्तकथाओं के अनुसार आम्यूलियस के बड़े भाई की लड़की के लड़के राम्यूलस और रीमस ने रोम नगर की स्थापना की थी।

रोम की वह दन्त कथा इस प्रकार है

"टाईबर और ओनियो नदी के संगम पर आलबा लोंगा नामक एक शहर था। उसका राजा आम्यूलियस बड़े दुष्ट स्वभाव का था। वह अपने बड़े भाई और उसके लड़कों को मारकर गद्दी पर बैठा था। सिर्फ एक कुँवारी लड़की उस परिवार में बच गई थी। वह चाहता था कि लड़की जीवनभर कुँवारी रहे और उसको सन्तान न हो। मगर रोमन परम्परा के अनुसार किसी ईश्वरीय शक्ति से उस लड़की को दो तेजस्वी पुत्र प्राप्त हुए। जिनके नाम राम्यूलस और रीमस थे। राजा ने लड़की समेत दोनों बच्चों को टाइबर नदी में बहा दिया, मगर किसी प्रकार वे फास्टुलस नामक गुवाले के हाथ लग गये, जिसने उन्हें पालपोसकर बड़ा किया। अन्त में एक लड़ाई में राजा आम्यूलियस इन्हीं लड़कों के हाथ से मारा गया। आम्यूलियस का राज्य इनके हाथ लगा, मगर उस पहाड़ी प्रान्त से ममता हो जाने के कारण राम्यूलस ने वहीं एक अच्छा स्थान देखकर एक नगर बसाया जो उसी के नाम पर रोम के नाम से मशहूर हुआ। यह घटना ईसा से ८६७ वर्ष पूर्व हुई मानी जाती हे।

आण्टिओकस

एशिया माइनर का राजा जिसका समय ईस्वी सन् से पूर्व ३०० वर्ष के लगभग है।

जिस समय ग्रीस के राजा पाँचवें फिलिप की रोम के

साथ लड़ाई हो रही थी उस समय एशिया माइनर तथा सीरिया का राजा आण्टिओकस था पाँचवें फिलिप ने आण्टिओकस से सुलह कर ली थी इससे डरकर मिश्र के तत्कालीन राजा टॉलमी एपिफानीजने रोम से सहायता माँगी थी। इसपर फिलिप और रोम की सेनाओं में ३ दिन तक भयङ्कर लड़ाई हुई जिसमें फिलिप की हार हुई और इस्वी सन् से २५३ वर्ष पूर्व दोनों दलों में संधि हो गई।

फिलिप से संधि हो जाने के पश्चात् रोम को एशिया माइनर के राजा आण्टिओकस से लड़ना पड़ा। थर्मापोली की घाटी में दोनों सेनाओं के बीच भारी युद्ध हुआ। इस लड़ाई में आण्टिओकस के ५३ हजार सैनिक मारे गये। आण्टिओकस की हार हुई और उसने टॉरस पहाड़ के पश्चिम का प्रदेश रोम को देकर संधि कर ली।

आस्ट्रिया

पश्चिमी यूरोप में जर्मनी की सीमा और स्लाव देशों की सीमा से लगा हुआ एक देश। जिसका क्षेत्रफल ३२, ३७५ वर्ग मील, आबादी सत्तर लाख, भाषा जर्मन, और धर्म रोमन कैथोलिक है। इसकी राजधानी विएना है जिसकी आबादी १७,७६,६०६ है। इन्सब्रक, साल्ज वर्ग और ग्राभ्ज़ यहाँ के प्रसिद्ध नगर हैं।

पश्चिमी यूरोप में गाथ जाति के जर्मन राष्ट्र का जब तक राष्ट्र के रूप में संगठन नहीं हुआ था तब तक आस्ट्रिया और प्रशिया दोनों प्रबल शक्तियों के रूप में एक दूसरे की प्रतिद्वन्दिता करते रहते थे। उस समय आस्ट्रिया हैप्स वर्ग राज वंश के द्वारा शासित होता था।

जब सम्राट् पंचम चार्ल्स गद्दी पर बैठा तब उसने हैप्स वर्ग शासन का जर्मनी का कुछ भाग तथा आस्ट्रिया अपने भाई फर्डिनण्ड को दे दिया और स्पेन, बर्गण्डी तथा इटाली का राज्य अपने अधीन रक्खा था।

इसके पश्चात् फर्डिनण्ड का विवाह बोहीमिया तथा हंगरी राज्य की उत्तराधिकारिणी के साथ हो जाने से आस्ट्रियन राज्य की सीमा का और भी विस्तार हो गया था मगर हंगरी पर मुसलमानों का कब्जा होने से यह प्रदेश आस्ट्रिया के अधिकार में उस समय नहीं आया। सन् १६६३ में मुसलमानों की एक भारी सेना ने आस्ट्रिया की राजधानी विएना पर घेरा डाला, पर पोलैण्ड ने ठीक समय पर सहायता पहुँचा कर आस्ट्रिया को इस आकास्मिक विपत्ति से बचा लिया। इसी समय से यूरोप में मुसलमानों की स्थिति कमजोर होती गई और हैप्सवर्ग वंश के शासकों ने सन् १६६६ में हंगरी, और ट्रान्सल वेनिया के समग्र प्रदेश पर वापस अपना अधिकार जमा लिया।

सन् १७४० में हैप्सवर्ग वंश के शासक चार्ल्स छठे की मृत्यु हो गई। मृत्यु के पहिले ही अपने उत्तराधिकारी की जगह अपनी पुत्री मेरिआ-थेरेसा को नियुक्त करवाने के लिए इसने इंग्लैण्ड, हॉलेण्ड तथा प्रशिया को रजामन्द कर लिया था मगर फ्रान्स, स्पेन तथा बवेरिया इसके विरुद्ध थे पर अन्त में इंग्लैण्ड के प्रयत्न से मेरिआ थेरिसा को आस्ट्रिया की गद्दी प्राप्त हुई।

सप्तवर्षीय युद्ध

मेरिआ थेरिसा बड़ी साहसी और बहादुर शासिका थी। इसके राज्य का साइलेशिया प्रान्त प्रशिया के राजा फ्रेडरिक द्वितीय ने हड़प लिया था इसलिए वह उससे बड़ी घृणा करती थी। उसने बड़ी चतुराई से फ्रेडरिक का पतन करने के लिए फ्रान्स, रूस, स्वीडन तथा सैक्सनी को मिलाया और इन सबकी सम्मिलित सेनाओं ने प्रशिया के विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ कर दिया। यह युद्ध सप्तवर्षीय युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है।

मगर प्रशिया के राजा फ्रेडरिक द्वितीय ने भी बड़ी बहादुरी और साहस के साथ इन सब देशों का मुकाबिला किया और इसीसे उसे इतिहास ने फ्रेडरिक महान् (फ्रेडरिक दी ग्रेट) का सम्मान दिया। सिकन्दर के समय से नैपोलियन तक जितने महान् बीर हुए थे फ्रेडरिक ने अपने को भी उसी कोटि में सम्मिलित कर दिया। इन सब राष्ट्रों के एक हो जाने की बात मालूम होते ही उसने बिना प्रतीक्षा किये हुए 'सैक्सनी'' पर अधिकार कर लिया और बोहीमिया की ओर अपनी सेनाओं को बढ़ाकर राजधानी प्रेग पर भी अधिकार कर लिया। सन् १७५७ में उसने जर्मनी और फ्रान्स की सेनाओं को रासवच के युद्ध में परास्त किया और उसके एक महीने के बाद ब्रेसला के युद्ध में उसने आस्ट्रियन सेना को तीतर बीतर कर दिया। इसी समय स्वीडन और रूस इस युद्ध से पृथक हो गये और

फ्रेडरिक का सामना करने वाला कोई नहीं रहा। इस पर मेरिआथेरिसा को एक बार फिर अपने प्रबल शत्रु से युद्ध बन्द करना पड़ा।

कम्पो-फ़र्मिया की प्रसिद्ध संधि

उसके पश्चात् सन् १७९४ से आस्ट्रिया नैपोलियन बोना पार्ट के चक्कर में आया। मई सन् १७९६ में उसने आस्ट्रिया की सेना को हराया जिसके परिणाम स्वरूप कम्पो-फर्मिया की प्रसिद्ध संधि हुई इस संधि के अनुसार आस्ट्रिया ने नैदर लैण्ड्स का प्रदेश फ्रान्स को दे दिया और राइन नदी के बायें तट का अधिकांश भाग फ्रान्स को दिलाने का गुप्त वचन दिया। इसके बदले में उसे वेनिस प्रजातंत्र का कुछ भाग और वेनिस शहर मिला।

विएना कांग्रेस

नैपोलियन का पतन हो जाने के पश्चात् १ नवम्बर १८१४ को इतिहास प्रसिद्ध विएना की कांग्रेस का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। इसमें नैपोलियन को हराने वाले सभी राष्ट्र सम्मिलित थे। इस कांग्रेस ने हालैण्ड पर ऑरेंज वंश का शासन नियमित रूप से मान लिया और आस्ट्रिया का नैदरलैण्ड प्रान्त हालैण्ड को दिला दिया। इसके बदले में आस्ट्रिया को इटाली के विनीशिया और मिलान मिल गये। इसी कांग्रेस ने वारसा की ग्रैण्ड डची रूस को देकर उसे पौलेण्ड के राज्य में परिवर्तन करने का अधिकार दे दिया। इसी समय के पश्चात् जर्मन राष्ट्र का एक संगठित राष्ट्र के रूप में उदय हुआ और उस पर आस्ट्रिया का प्रभाव कम होता गया और प्रशिया का प्रभाव बढ़ने लगा।

मैटरनिच

इसी समय आस्ट्रिया का सचिव मेटरनिच एक अनुदार दलीय नेता के रूप में यूरोप के मंच पर प्रकट होता है। जर्मनी में उस समय प्रबल रूप से राष्ट्रीय भावनाओं का जागरण हो रहा था उसे यह कुचल देना चाहता था। जर्मनी को पंगु बनाए रखने के लिए यह अपनी पूरी शक्ति लगा रहा था। सन् १८१५ से लेकर १८४८ तक मैटरनिच के नेतृत्व में यूरोप का अनुदार दल उन लोगों का सफल विरोध करता रहा जो शासन के कार्यों में प्रजा को ज्यादा से ज्यादा अधिकार दिलाने के पक्ष में थे।

मगर समय मैटरनिच के पक्ष में नहीं था। स्वयं विएना की जनता ने प्राचीन शासन पद्धति के विरुद्ध बगावत कर दी और मैटरनिच को वहाँ से भागना पड़ा और इसी वर्ष सन् १८४८ में आस्ट्रिया के सम्राट् को हंगरी और बोहीमिया राज्य को वैध शासन व्यवस्था देने की स्वीकृति देनी पड़ी।

मैटरनिच के पतन की खबर सुनते ही मिलन नगर वालों ने अपने यहाँ से आस्ट्रिया की सेना को निकाल बाहर किया, वेनिस वालों ने भी आस्ट्रियनों को निकाल कर प्रजा तंत्र की स्थापना की और लम्बार्डी को आस्ट्रिया ने स्वयं खाली कर दिया। इस प्रकार इटाली में आस्ट्रियन साम्राज्य का खात्मा हो गया।

इटाली के इस विद्रोह के कारण आस्ट्रिया के लिए जर्मन क्रान्ति को रोकना असम्भव हो गया। आस्ट्रिया की इस सर्वतोमुखी कठिनाई में जर्मन राष्ट्र संघ को संघटित होने का अवसर मिल गया। प्रशिया ने भी आस्ट्रिया के इशारे पर नाचने की नीति बदल कर जर्मन राष्ट्र का नेतृत्व करने का संकल्प किया।

सन् १८४८ के नवम्बर में विएना में प्रजातंत्र वादी-दल एकाएक उठ खड़ा हुआ और उसने युद्ध सचिव की हत्या कर सम्राट् को वहाँ से भगा दिया मगर इसी समय प्रेग के बलवे को दबाने वाले सेनापति ने विएना पर घेरा डाल कर उसे आत्मसमर्पण करने को मजबूर किया। और आस्ट्रिया के सम्राट् ने इसी समय अपने राज्याधिकार अपने तरुण भतीजे फ्रेंसिस जोजेफ प्रथम को प्रदान कर दिये। जिसने ६८ वर्ष तक शासन किया। इस प्रकार सन् १८४८ की क्रान्ति बिलकुल विफल हो गई और आस्ट्रिया पर फिर से सम्राट् का मजबूत शासन प्रारम्भ हो गया।

सन् १८६५ में आस्ट्रिया ने पुरानी मैटरनिच पद्धति को फिर से जारी की मगर उसकी यह विजय क्षणिक और अन्तिम विजय थी। नैपोलियन तृतीय ने सर्डिनिया के राजा को यह वचन दिया कि अगर वह आस्ट्रिया के साथ युद्ध करे तो फ्रान्स उस की सहायता करेगा।

सन् १८७३ में विक्टर इमैन्युएल ने आस्ट्रिया के साथ युद्ध घोषणा कर दी। पीडमाण्ड वालों की सहायता के

लिए फ्रान्स की फौजें पहुँच गईं और माजेएटा तथा सालफेरिनो नामक दो स्थानों पर उन्होंने आस्ट्रियन सेना को बुरी तरह पराजित किया ।

प्रिन्स विस्मार्क

इसी समय प्रशिया के रंगमंच पर संसार का महान् राजनीतिज्ञ "विस्मार्क" प्रकट होता है। यह प्रशिया के राजा विलियम प्रथम के मंत्री के रूप में सन् १८७६ में आता है। विस्मार्क ने आस्ट्रिया को नीचा दिखाने और प्रशिया की शक्ति बढ़ाने की एक व्यवस्थित योजना तैयार की।

आस्ट्रिया को संघ से पृथक् करने के लिए विस्मार्क ने "श्लेजविग हालस्टाइन" की समस्या को उठाया। श्लेजविग और हालस्टाइन दोनों प्रान्तों में बहुमत जर्मनों का होने पर भी ये डेनमार्क के अधीन थे।

विस्मार्क ने पहले पहल श्लेजविग और हालस्टाइन को डेनमार्क के पंजे से मुक्त करने के लिए आस्ट्रिया का सहयोग लिया और डेनमार्क से लड़ाई करके ये दोनों प्रान्त हस्तगत कर लिये। बाद में नैपोलियन तृतीय और इटाली से साँठ-गाँठ करके सन् १८८० में आस्ट्रिया के साथ युद्ध घोषणा कर दी और साडोवा नामक स्थान पर आस्ट्रिया को बुरी तरह से पराजित कर दिया। इस प्रकार यूरोप के राजनैतिक मंच से आस्ट्रिया का प्रभाव समाप्त हो गया।

प्रथम महायुद्ध

इसके पश्चात् सन् १९१४ में आस्ट्रिया और हंगरी के युवराज फ्रेंसिस फर्डिनण्ड की उनकी पत्नी सहित बोस्नियों में हत्या हो जाने के कारण जर्मनी को युद्ध आरम्भ करने का अवसर मिल गया। इस युद्ध में आस्ट्रिया ने जर्मनी का साथ दिया मगर सन् १९१८ में मित्र राष्ट्रों ने जर्मनी को भयङ्कर रूप से पराजित करदिया और इसके साथ ही आस्ट्रिया और हंगरी के भाग्य का भी फैसला हो गया।

हैप्सबर्ग राजवंश का कई शताब्दियों से आस्ट्रिया का शासन कर रहा था, समाप्त हो गया। आस्ट्रिया और हंगरी के सम्मिलित साम्राज्य को टुकड़े-टुकड़े कर दिया गया। जेकोस्लाविया, हंगरी और युगोस्लाविया स्वतंत्र राष्ट्र घोषित कर दिये गये। देश की मुद्रा स्थिति खराब हो जाने से चारों ओर विद्रोह लूट मार और अशान्ति छा गई।

सन् १९३२ में आस्ट्रियन प्रजातंत्र का चान्सलर डा० डोलुफस को बनाया गया, जिसने आस्ट्रिया में अर्द्ध तानाशाही शासन चलाया। मगर सन् १९३४ में डॉ० डोलुफस की हत्या हो गई। इसी समय जर्मनी के रंग-मंच पर एडोल्फ हिटलर का उदय हो रहा था।

इसके पश्चात् आस्ट्रिया ने भी हिटलर के नाजी आन्दोलन का साथ दिया, जिसके परिणामस्वरूप दूसरा महायुद्ध प्रारम्भ हुआ। इस युद्ध में भी जर्मनी की भारी पराजय हुई। आस्ट्रिया को फिर एक महान् विपत्ति-काल में से गुजरना पड़ा और किसी समय में यूरोप का यह प्रभावशाली देश अब बहुत ही साधारण स्थिति में अपना समय काट रहा है।

१९५५ के प्रारम्भ में सोवियत संघ ने आस्ट्रिया के साथ समझौता स्थापित करने में एक अकल्पित कदम उठाया, जब कि उसने आस्ट्रिया से अपनी सभी फौजें वापस ले लीं। साथ ही साथ उन्होंने मित्रता और पारस्परिक सहयोग का समझौता स्थापित किया और आस्ट्रिया ने दो शक्तिशाली गुटों के बीच सर्वदा निरपेक्ष रहने का निर्णय किया। आस्ट्रिया को अपनी स्वतन्त्रता के लिए सोवियत संघ को काफी मूल्य अदा करना पड़ा।

इस समय आस्ट्रिया में पीपल्स पार्टी और सोशलिस्ट पार्टी नामक २ राजनैतिक पार्टियाँ हैं। पीपल्स पार्टी सन् १९५६ के चुनाव में सबसे बड़ी पार्टी थी।

शिक्षा

शिक्षा के क्षेत्र में आस्ट्रिया छोटा देश होते हुए भी बहुत आगे बढ़ा हुआ है। सन् १९५९-६० में वहाँ ५,३४० इलेमेण्टरी और १९० सेकण्डरी स्कूल चल रहे थे जिसमें ८,६०००० और ६८००० विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। इस देश में तीन यूनिवर्सिटियाँ हैं। एक विएना में, दूसरी ग्राफ में और तीसरी इन्सब्रक में। टैकनीकल शिक्षा और टीचर्स ट्रेनिंग के लिए भी वहाँ कई कॉलेज हैं।

विएना में आँख का एक अस्पताल बना हुआ है जो सारे संसार में नेत्र-चिकित्सा के लिए मशहूर है।

आस्ट्रिया ने कई अन्तर्राष्ट्रीय कीर्ति के वैज्ञानिक और विद्वान भी पैदा किये हैं। एण्ड्रीज होफर, फ्रीड, संसार प्रसिद्ध चिकित्सक (Physicion) और मनो-विश्लेषण (Psycho-Analyst) के आचार्य हैं। जिन्होंने "इण्टर प्रीटेशन आफड्रीम्स" नामक महत्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की है। इसी प्रकार मोझार्ट, हेडेन (Hayden) इत्यादि वैज्ञानिकों ने अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में काफी ख्याति प्राप्त की है।

आस्ट्रियन साहित्य

प्रारम्भिक युग में आस्ट्रिया का साहित्य जर्मनी और स्पेन के साहित्य से प्रभावित रहा। मध्य युग में इस देश के अन्तर्गत वाल्टेयर फॉनडेयर, फोगलवीट, नीथार्ट इत्यादि कवियों ने अपनी प्रतिभा से आस्ट्रियन साहित्य को अलंकृत किया।

लेकिन आस्ट्रियन साहित्य का सबसे प्रभावशाली युग उन्नीसवीं सदी के मध्य से प्रारम्भ होता है। इसी समय में वहाँ पर महाकवि श्लेगेन और उनके भाई ने "फारम्येर्ज" आन्दोलन का सूत्रपात किया। स्टल्जहामर, लेनाफ, नैस्ट्राय, बानर्न फेल्ड इत्यादि इस युग के प्रसिद्ध साहित्यकार थे।

इस युग के पश्चात् "ग्रिलपार्जर" नामक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त महान् साहित्यकार का आविर्भाव हुआ और इसके कुछ ही समय पश्चात् महान् लेखक हेयरमान हार का आविर्भाव हुआ जिन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में आस्ट्रियन साहित्य की गरिमा को चार चाँद लगा दिये।

इसके पश्चात् संसार के अन्य देशों की तरह आस्ट्रियन साहित्य की प्रगति में भी क्रान्तिकारी विकास हुआ। अलबर्ट ऐंह्रेंस्टीन, फ्रेड्रिक श्वेफोग्ल, कार्ल शासलाइटनर, ट्राक्ल इत्यादि साहित्यकारों ने अभिव्यक्तिवादी क्षेत्र में तथा आर्थर श्नित्जलर, जैकब वासरमन इत्यादि उपन्यासकारों ने स्वाभाविकतावादी क्षेत्र में आस्ट्रियन साहित्य की कीर्ति को बहुत बढ़ाया।

बीसवीं सदी के प्रारम्भ में स्वाभाविकतावाद की जगह प्रगतिवादी आन्दोलन "केलयार्ड" के नाम से उठा। इस वाद का प्रसिद्ध लेखक रोडाल्फ हांस बार्टश नामक उपन्यासकार था। ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र में इरविन कोलबनहेयर तथा एमिल लूका ने उत्कृष्ट कोटि के उपन्यासों की रचना की।

इसी प्रकार नाटक साहित्य के क्षेत्र में कालशून हेअर वर्टहाइमर, मूलर, साइग फ्राइड, इत्यादि नाटककारों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

आसनसोल

पश्चिमी बंगाल के बर्द्धमान जिले में स्थित बंगाल का एक प्रसिद्ध औद्योगिक केन्द्र।

पूर्व रेलवे की मेनलाइन, ग्राण्ड कार्ड लाइन तथा आसनसोल खड्गपुर लाइनों को सम्मिलित करने वाला यह एक बहुत बडा जंक्शन है। कोयला, इस्पात और रासायनिक उद्योगों के विशाल उद्योग क्षेत्रों के बीच में बसा होने के कारण भारतवर्ष में इसकी स्थिति एक प्रमुख औद्योगिक केन्द्र की तरह है।

आल्फांसों

स्पेन के राजा, आल्फान्सो इंग्लैण्ड के हेनरी, एडवर्ड, जार्ज इत्यादि नामों की तरह स्पेन के राजाओं का एक परम्परागत नाम की तरह है, आल्फोन्सा प्रथम, आल्फान्सो तृतीय इस प्रकार स्पेन के सजाओं का नाम रक्खा जाता था। स्पेन में कुल १३ राजा आल्फोन्सा के नाम से गद्दीपर बैठे।

आल्फान्सो प्रथम ने सन् ७३६ से ७५७ तक राज्य किया। इसने गैलिसिया, बारडूलिया, लेबना इत्यादि स्थानों को जीत कर अपने साम्राज्य का विस्तार किया।

सबसे अन्तिम राजा आल्फान्सो तेरहवाँ हुआ। इसका जन्म सन् १८८६ में हुआ। सन् १६०२ में इसे राज्याधिकार प्राप्त हुए। प्रथम महायुद्ध में स्पेन को तटस्थ रखने के कारण यह लोकप्रिय हुआ। मगर उसके पश्चात् स्पेन पर भयङ्कर अर्थ संकट आ जाने के कारण इस की स्थिति डाँवाडोल हो गई जिसके परिणाम स्वरूप सन् १६३१ में इसको स्पेन की राजगद्दी छोड़ना पड़ी। इसकी मृत्यु सन् १६४१ में रोम में हुई।

आर्लिंग्टन

इंग्लैण्ड की पार्लमेंट और राजा के बीच में होनेवाले गृह युद्ध के समय में राज पक्ष का एक राजनीतिज्ञ जिसका समय सन् १६१८ से १६८५ तक है।

क्रामवेल के समय में इंगलैण्ड की पार्लमेंट और राजा के बीच जो संघर्ष हुआ था उसमें आर्लिंग्टन ने राजा का पक्ष लिया था और जब पार्लमेंट ने ह्वाइट हाउस में राजा का सर उड़ा दिया तब आर्लिंग्टन राज परिवार के साथ इंग्लैण्ड छोड़ कर बाहर चला गया था।

उसके बाद चार्ल्स द्वितीय के राज्यारोहण के पश्चात् आर्लिंगटन इंग्लैंण्ड का वित्त-सचिव हुआ। प्रधान मन्त्री क्लेयरेंडन के मन्त्रिमण्डल का पतन होकर जब वहाँ केव मन्त्रिमण्डल बना तब यह इंग्लैण्ड का विदेश मन्त्री ब। मगर उसके प्रबल शत्रु बकिंघम ने जब पार्लमेण्ट में पर मुकदमा चलाया तब उसने अपने पद से इस्तीफा दिया।

आर्य-भट्ट

आर्य भटीय नामक महान् ज्योतिष ग्रन्थ के रचयिता आचार्य आर्यभट्ट जो भारतीय ज्योतिषशास्त्र के धुरन्धर विद्वान् थे।

आचार्य आर्य भट्ट पटना जिले के कुसुमपुर नामक स्थान के निवासी थे। भारतीय ज्योतिष के स्वयंभू नामक सिद्धान्त के आधार पर पूर्ण विचार मंथन के पश्चात् इन्होंने "आर्य भटीय" ग्रंथ की रचना की। इस ग्रन्थ की रचना पद्धति अत्यन्त वैज्ञानिक और भाषा प्राञ्जल है।

इनके ग्रन्थ आर्य भटीय का उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत में अधिक प्रचार हुआ। दक्षिण भारत में इन्हीं के ग्रन्थ के आधार पर बने हुए पंचाग आज भी वहाँ के वैष्णव सम्प्रदाय को मान्य हैं।

आर्य भट्टीय ग्रन्थ कुल ४ खण्ड और १२१ श्लोकों में पूर्ण हुआ है। इसके चार खण्डों के नाम गीतिका पाद, गणितपाद, कालक्रियापाद और गोलपाद है।

आर्यभटीय का अंगरेजी अनुवाद डबल्यू० ई० क्लार्क ने किया जो शिकागो से प्रकाशित हुआ है और एक अनुवाद श्री प्रबोधचन्द्र सेन का कलकत्ते से प्रकाशित हुआ है।

आर्यभट्ट द्वितीय

भारतीय गणित और ज्योतिष शास्त्र के महान् विद्वान् जिनका जन्म ई० सन् ९५० के आस-पास माना जाता है।

ज्योतिष सिद्धान्त का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "महा सिद्धान्त" आचार्य आर्यभट्ट द्वितीय की रचना है। इस ग्रन्थ में सूर्य-सिद्धान्त, गणित के प्रश्न, क्षेत्र फल, खगोल, स्वर्गादि-लोक, भूगो ग्रहों की गति इत्यादि विषयों पर गम्भीर विवेचना गई है।

आर्थर चेस्टर-लेन

यूनाइटेड स्टेट्स अमेरिका के इक्कीसवें प्रेसिडेण्ट इनका कार्यकाल सन् १८८१ से १८८५ तक है।

आर्थर चेस्टर लेन अमेरिका में डिमाक्रेटिक (प्रजातंत्रीय) दल का प्रतिनिधित्व करते थे। अमरीका के गृहयुद्ध में इन्होंने अपनी सैनिक सेवाएँ अर्पित की थीं। जब अमेरिका में प्रेसिडेण्ट गारफील्ड की हत्या हो गई और देश में भय का वातावरण छा गया तब इन्होंने अमेरिका के प्रेसीडेण्ट पद को ग्रहण कर जनता के अन्दर छाये हुए भय को अपने भाषणों और कार्यशैली के द्वारा दूर कर दिया।

आर्कलायूस

यहूदी धर्म के प्रसिद्ध राजा हेरोद महान् का उत्तराधिकारी, जूदा राज्य का शासक जिसका समय ई० सन् के आरम्भ से कुछ पहले का है। यह आगस्टस सीजर का समकालीन था।

हैरोद महान् ने पहले एण्टीपस नामक अपने दूसरे पुत्र को उत्तराधिकारी बनाया था मगर बाद में अपनी दूसरी वसीयत में उसने अपना उत्तराधिकारी आर्कलायूस को बनाया। रोम के सम्राट ऑगस्टस सीजर का समर्थन भी इसी को था।

आर्कलायूस बड़ा अत्याचारी और निरंकुश शासक था। प्रजा इससे खुश नहीं थी अन्त में ई० सन् ७ में यहूदी धर्म के कुछ आदेशों का उल्लंघन करने के अपराध में यह गद्दी से उतार दिया गया।

आर्कलायूस

यूनान के एक दार्शनिक जो महात्मा सुकरात के गुरु माने जाते हैं इनका समय ईसा पूर्व की पाँचवी शताब्दी है।

आर्कलायूस एक प्रकृतिवादी दार्शनिक थे। इनके मत के अनुसार सृष्टि के आद्यतत्व से शीत उष्ण की उत्पत्ति होती है और उसी से सारे प्रजनन का विकास होता है। यूनान में ये अन्तिम प्रकृतिवादी दार्शनिक थे। इनके बाद सुकरात के समय से आदर्शवादी दर्शन का प्रारम्भ हुआ।

आदि पुराण

दिगम्बर जैन साहित्य का एक सुप्रसिद्ध पौराणिक ग्रन्थ। जिसकी रचना सुप्रसिद्ध जैनाचार्य जिनसेन ने की और आगे चल कर उनके शिष्य गुणभद्राचार्य ने उसे पूर्ण किया। आचार्य जिनसेन का समय ई० सन् ८४८ के लगभग माना जाता है।

आदि पुराण ग्रन्थ में जैन परम्परा से मान्य तिरसठ शलाका महा पुरुषों के जीवन चरित्र का काव्यमय भाषा में वर्णन् किया गया है। जैन परम्परा तिरसठ महा पुरुषों में चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्त्ती, नौ बलभद्र, नौ नारायण और नौ प्रतिनारायणों का समावेश करती है।

आचार्य जिनसेन ने आदि पुराण के प्रथम भाग को ४८ पर्व और १२००० श्लोकों में पूर्ण किया है। इस ग्रन्थ के ४२ पर्व पूर्ण होने पर ही उनका देहान्त होगया। इसलिए इसके शेष अंश को उनके शिष्य गुणभद्राचार्य्य ने पूर्ण किया। इस प्रथम खण्ड में जैनियों के प्रथम तीर्थ कर ऋषभनाथ की जीवनी लिखी गई है। इस ग्रन्थ का उत्तरार्द्ध या दूसरा भाग उत्तर पुराण के नाम से प्रसिद्ध है।

आरा

भारत वर्ष में बिहार प्रान्त का एक प्रसिद्ध नगर। जिसका इतिहास बहुत पुराना है।

कहा जाता है कि पाण्डवों ने अपना एक वर्ष का अज्ञात वास यहीं पर बिताया था। मसार ग्राम में प्राप्त जैन शिला लेखों में जिस आराम नगर का नाम आया है वह "आरा" ही का सूचक है।

सन् १८५७ के विद्रोह के समय में भी बाबू कुँवरसिंह के कारण इस नगर ने बड़ी प्रसिद्ध प्राप्त की।

आपेलीज

मकदूनिया का रहने वाला सिकन्दर का समकालीन एक प्रसिद्ध चित्रकार। उसके द्वारा बनाये गये अनेक चित्रों की प्रशंसा ग्रीस के प्राचीन ग्रन्थों में पाई जाती है।

आना (रूस की सम्राज्ञी)

रूस के जार पीटर द्वितीय के पश्चात रूसी सिंहासन की उत्तराधिकारिणी जारीना आना (१७३०-४०)

पीटर द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् कुछ समय तक रूस का शासन सूत्र वहां की प्रिवी कौन्सिल के हाथ में रहा। उसके पश्चात् कुछ प्रभावशाली लोगों के समर्थन से पीटर प्रथम के भाई जार इवान की पुत्री आना को वहाँ का सिंहासन प्राप्त हुआ। आना की शादी एक जर्मन राजवंशीय युवक के साथ हुई थी।

सम्राज्ञी आना राजनैतिक उलझनों और षड्यंत्रों से दूर रह कर मौज, शौक और विलास वासना का जीवन बिताना पसन्द करती थी। इस ने राज्य सम्बन्धी सारे अधिकार अपने दरबारियों को दे दिये थे। उसके दरबारियों ने राजकीय क्षेत्र में सब जर्मन लोगों को भरना प्रारम्भ किया। जिससे रूसी लोग नाराज रहते थे। आना के शासन काल में तुर्की और रूस की लड़ाई हुई जिसमें रूस ने टर्की को कई जगह हराया। बाद में १७३९ में हुई संधि के अनुसार रूस को काला सागर तक दनिये नदी के दोनों तट मिल गये।

आनन्द

भगवान् बुद्ध के अत्यन्त प्रिय और निकटवर्त्ती शिष्य, जो हमेशा उनकी निजी सेवाओं में तल्लीन रहते थे। शास्त्रों के सम्बन्ध में गहरा ज्ञान और तीव्र स्मरण शक्ति के कारण वे सारे भिक्षु संघ में अग्रगण्य माने जाते थे। भगवान् बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् उन्होंने अर्हतपद प्राप्त किया।

आनाक्सा गोरस

एक सुप्रसिद्ध-यूनानी दार्शनिक जो ई० सन् से ५०० वर्ष पूर्व एशिया माइनर के एक नगर में पैदा हुआ लेकिन बाद में यूनान में आ गया।

जिस समय यूनान में सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ पैरेक्लीज उत्कर्ष पर था उसी समय अनाक्सा गोरस भी पैरेक्लीज की मित्रता में अपनी ज्ञान-गरिमा का विकास कर रहा था। उसने यूनान में प्रचलित देववाद की भावना का खण्डन कर भौतिक दृष्टिकोण का समर्थन किया। उसके सिद्धान्त अनेक्जामिनस, इम्पेडीक्लीज इत्यादि अणुवादियों से प्रभावित थे। उसके इन भौतिकवादी सिद्धान्तों को यूनानी जनता ने पसन्द नहीं किया और उसपर अधर्म और असत्य का आरोप लगाकर एथेन्स से निकाल दिया।

विषय-सूची नं० १

(अकारादि क्रम से)

[इ–ई]

नाम	पृष्ठ संख्या
इकबाल (उर्दू फारसी के कवि)	३२३
इंक्वीजीशन (ईसाई धर्म की अदालत)	३२४
इक्वियन (रोम की एक जाति)	३२७
इगबर्ट (इंग्लैण्ड)	३२७
इगनेशियस (ईसाई पादरी)	३२८
इंग्लैंड	३२८
इङ्गलैंड के इतिहास की प्रमुख घटनाएं	३५२
इजराइल (यहूदी राष्ट्र)	३५४
इजावेला (स्पेन की महारानी)	३५५
इजियन-संस्कृति	३५५
इजेकियल (यहूदी धर्मनेता)	३५७
इटपल्ली राघवन पिल्ला (मलयालम कवि)	३५७
इटली (यूरोप का देश)	३५८
इटालियन-साहित्य	३६३
इण्डिका मेगास्थनीज	३६५
इण्टर प्राइज (अमेरिकन जहाज)	३६७
इण्टर ल्यूड (अंग्रेजी की छोटी नाटिकाएं)	३६८
इट्रूस्कन (प्राचीन रोम के समीप की एक जाति)	३६८
इडविन (इंग्लैण्ड)	३६९
इडरिड (इङ्गलैंड)	३६९
इण्डियन नेशनल कांग्रेस	३६९
इण्डियन एसोसियेशन	३८५
इण्डियन रोड्स कांग्रेस	३८५
इण्डोनेशिया	३८६
इण्डोचाइना	३८८
इण्डिया हेरल्ड (अंग्रेजी समाचार-पत्र)	३९०
इण्डिया गजट (अंग्रेजी-पत्र)	३९०
इंग्लिश मैन (अंग्रेजी दैनिक)	३९०
इण्डियन मिरर (अंग्रेजी दैनिक)	३९०
इण्डियन डेलीन्यूज (अंग्रेजी पत्र)	३९१
इण्डिपेंडेण्ट (अंग्रेजी पत्र)	३९१
इताकागी (जापानी-नेता)	३९१
इत्सिग (चीनी यात्री)	३९१
इण्डियन एक्सप्रेस (अंग्रेजी दैनिक)	३९१
इतिहास-शास्त्र	३९२
इतो (जापानी प्रिंस)	३९४
इजूमो फूदौकी (जापानी भूगोल)	३९५
इथिल फ्लीडा (इङ्गलैंड)	३९५
इथलिस्टन (इङ्गलैंड)	३९६
इथिलबर्ट (इङ्गलैंड)	३९६
इदरसी (अरब का भूगोलशास्त्री)	३९६
इन्द्रभूति गौतम (भगवान महावीर के गणधर)	३९६
इन्द्राणी रहमान (भारतीय नृत्यकार)	३९७
इन्दुलेखा (मलयालम-उपन्यास)	३९७
इन्द्रप्रस्थ (प्राचीन दिल्ली)	३९८
इनकमटैक्स (आयकर)	३९८
इन्क्रूमा (घाना के प्रधान मन्त्री)	३९८
इनोलेइनो (फिनलैंड का कवि)	३९९
इनुकाई (जापानी प्रधान मन्त्री)	३९९
इन्नोसेंट तृतीय (रोमन-पोप)	३९९
इन्दिरागांधी	४२५
इन्दौर (मध्यप्रदेश का नगर)	४००
इन्द्र विद्यावाचस्पति (पत्र-कार)	४०२
इन्दु (हिन्दी मासिक-पत्र)	४०२
इनियस (लेटिन-साहित्यकार)	४०३
इब्नसीना (बुखारा का हकीम)	४०३
इब्सन हेनरिक (नार्वे का नाटककार)	४०३
इब्रानी-साहित्य	४०४

नाम	पृष्ठ संख्या
इब्न-अब्द-ऊल-हाकम	४०६
इब्न-अरबी (सूफी विद्वान)	४०६
इब्न-फजलान (मुसलिम यात्री)	४०६
इब्न-बतूता (अरब का यात्री)	४०६
इब्न-मसर्राह (सूफी मतवादी)	४०७
इब्राहिम अलफजारी (अरबी गणितज्ञ)	४०७
इब्न-खलदून (अरबी-इतिहासकार)	४०७
इब्राहीम लोदी (लोदी वंशीय सुलतान)	४०७
इब्राहिम आदिलशाह द्वितीय	४०७
इब्राहिम कुतुबशाह	४०८
इब्राहिम निजामशाह	४०८
इब्राहिम शाह शरकी	४०८
इमानुएल-बेन-सोलोमन (इटली का कवि)	४०८
इमानुएल-गीबेल (जर्मन कवि)	४०८
इमर्सन (अमेरिका का विचारक)	४०८
इञ्जील (बाइबिल का एक अंग)	४०९
इम्परेटर	४०९
इब्राहिम द्वितीय तमगाच-खान (मध्य-एशिया)	४०९
इमानुएल विक्टर द्वितीय	४१०
इम्फाल (मणिपुर की राजधानी)	४११
इयासु (जापान)	४११
इराकी (ईरानी कवि)	४११
इरयीमन तम्पी (मलयालम-कवि)	४११
इराटोस्थनीज (खगोल-शास्त्री)	४१२
इरविंग वाशिंगटन (अमेरिकन लेखक)	४१२
इरैसिसट्रेटस (शरीर-शास्त्री)	४१३
इरास्मस (ह्यूमेनिस्ट नेता)	४१३
इरा रेमसेन (वैज्ञानिक)	४१३
इरियन (उपनिवेश)	४१४
इन्दुलाल याज्ञिक (गुजराती-पत्रकार)	४१४
इलाचन्द्र जोशी (उपन्यासकार)	४१४
इलाहाबाद	४१४
इलियड (महाकाव्य)	४१६
इलियट (अंग्रेज कवि)	४१७
इलियट जार्ज (अंग्रेजी उपन्यास-लेखिका)	४१७

नाम	पृष्ठ संख्या
इलबर्ट बिल	४१८
इलवां-अल-सफा	४१८
इलफ्रिक (ईसाई धर्माचार्य)	४१८
इवां तुर्गनेव (रूसी-उपन्यासकार)	४१८
इवां गुन्दुलिक (युगोस्लाव कवि)	४१९
इवां एड्रेविच-क्रिलोव	४१९
इवान प्रथम (मास्को का शासक)	४१९
इवान तृतीय (रूसी शासक)	४१९
इवान ग्रोजनी चतुर्थ (रूस का पहला जार	४२०
इवान पावलोव (रूसी वैज्ञानिक)	४२२
इवारा सैकाकू (जापान)	४२२
इंशा (उर्दू-कवि)	४२३
इशी-लार्सिंग समझौता	४२३
इस्मत इनोनू (तुर्की-राष्ट्रपति)	४२४
इस्माइल सामानी (ईरान)	४२४
इन्स्टिट्यूशन ऑफ इन्जीनियर्स	४२५
इस्पात-उद्योग	४२६
इस्फहान (ईरान)	४२८
इस्माइल सर मिर्जा	४२८
इस्लाम-संस्कृति	४२८
इस्माइलिया सम्प्रदाय	४३३
इसिदोर (विश्वकोष-रचयिता)	४३४
इसियस (यूनान)	४३४
इसोक्रेटीज (यूनान)	४३५
इच्छाराम देसाई (गुजराती-पत्रकार)	४३५
इमाम	४३५
ईक्वेडर (अमेरिका)	४३६
ईक्वीटीज (प्राचीन रोम)	४३६
ईगर (रूस)	४३६
ईराक	४३७
ईरान	४३८
ईरानी-साहित्य (फारसी-साहित्य) रूदागी, फिरदौसी, निजामी, शेखसादी, उमरखैय्याम, हाफिज, जामी, अमीर खुसरो इत्यादि ।	४४६
इलियास होव (सिलाई मशीन-निर्माता)	४५१

नाम	पृष्ठ संख्या
ईलियानुस टैक्टिस (यूनान)	४५१
ईवाल्ड जोहान्स (डेनमार्क-कवि)	४५२
ईशोपनिषद् (धर्म-ग्रन्थ)	४५२
ईशदेव (जयपुर)	४५२
ईश्वरी सिंह (जयपुर)	४५२
ईश्वरकृष्ण (दार्शनिक)	४५२
ईश्वरचन्द्र गुप्त (बंगाली कवि)	४५३
ईश्वरचन्द्र विद्यासागर	४५३
ईश्वरदास (कवि)	४५४
ईस्ट इण्डिया कम्पनी	४५५
ईस्ट इण्डिया कॉटन एसोसियेशन	४७१
ईस्टर (त्यौहार)	४७२
ईसाप (कहानीकार)	४७२
ईसा मसीह	४७३
ईसाई-धर्म	४७४

[उ–ऊ]

नाम	पृष्ठ संख्या
उकबा बिन-नफीर (अरब-सेनापति)	४८७
उक्समल नगर	४८७
उच्चल (काश्मीर)	४८७
उचित-वक्ता (हिन्दी-पत्र)	४८८
उडा (मेवाड़)	४८८
उज्जैन	४८८
उजबक खान	४९१
उजबेकिस्तान	४९२
उटकमण्ड (पहाड़ी स्थान)	४९३
उड़ीसा (भारतीय राज्य)	४९३
उड़िया-साहित्य	४९६
उण्णायि वारियर (मलयालम-कवि)	४९७
उण्णीच्ची-चरितम्	४९८
उण्णुनीलि-सन्देश	४९८
उत्तर प्रदेश	४९८
उत्तर रामचरित्र (नाटक)	५०५
उत्तर मीमांसा	५०८
उत्तर पुराण (जैन पुराण)	५०८
उत्तराध्ययन सूत्र (जैनसूत्र)	५०९
उत्पलाचार्य्य (दार्शनिक)	५०९
उत्पलापीड (काश्मीर)	५०९
उदयन मेहता (गुजरात)	५१०
उदयप्रभ सूरि (जैनाचार्य्य)	५१०
उदयन वासवदत्ता (कौशाम्बी)	५११
उदयनाचार्य्य (दार्शनिक)	५१२
उदय सिंह (मेवाड़)	५१२
उदयनाथ त्रिवेदी "कवीन्द्र"	५१२
उदयपुर (मेवाड़)	५१३
उदयशंकर भट्ट (हिन्दी-कवि)	५१३
उदन्त मार्तण्ड (हिन्दी-पत्र)	५१३
उदयादित्य (मालवा)	५१४
उदायी (मगध-सम्राट्)	५१४
उदासी सम्प्रदाय	५१५
उद्योतकर (दार्शनिक)	५१५
उद्योतन सूरि (जैनाचार्य्य)	५१५
उदय शंकर (नृत्यकार)	५१६
उदय नारायण तिवारी	५१६
उदयामती (गुजरात)	५१६
उदयवराह (जैन-मन्दिर)	५१७
उदयगिरि (उड़ीसा)	५१७
उदयरत्न (जैन कवि)	५१७
उनसरी (अरबी विद्वान)	५१७
उन्नतनगर (सौराष्ट्र)	५१७
उन्नाव (उत्तर प्रदेश)	५१८
उपनिषद्	५१८
उपनिवेशवाद	५१९
उपन्यास-साहित्य	५२१
अंग्रेजी, संस्कृत, फ्रेंच, अमेरिकन रूसी, चीनी, बंगाली, हिन्दी, गुजराती, मलयालम आदि के उपन्यासकार ।	
उप्टन सिनक्लेयर	५३१
उपमिति-भवप्रपञ्च-कथा	५३१
उन्मत्तावन्त	५३१
उपयोगितावाद	५३२
उपेन्द्रभंज (उड़िया-कवि)	५३२

नाम पृष्ठ संख्या
उपेन्द्रनाथ दास (बंगाल) ५३३
उबैदुल्ला शैबानी (मध्य एशिया) ५३३
उमर खैय्याम (फारसी-कवि) ५३४
उमास्वाति वाचक (जैनाचार्य्य) ५३६
उमापति धर ५३७
उमरशेख मिरजा ५३७
उमर-अल-मकसूस ५३७
उमाजी-नायक ५३८
उमेशचन्द्र बनर्जी (कांग्रेस-अध्यक्ष) ५३८
उम्मेद सिंह (१) कोटा ५३८
उम्मेद सिंह (२) कोटा ५३९
उम्मेद सिंह (३) बून्दी ५३९
उमैया-खलीफा ५३९
उर्दू-भाषा और साहित्य ५४३
अमीर खुसरो, वली, दर्द, मीर, सौदा, मोमिन, जौक, गालिब, नजीर, अमीर मीनाई, दाग, हाली, इकबाल, चकबस्त इत्यादि कवि ।
उरगपुर (दक्षिण में एक नगर) ५५९
उर्फी शीराजी (शीराज का कवि) ५६०
उरस का मेला (अजमेर) ५६०
उलुगबेग (तैमूरलंग का पोता) ५६०
उल्लूर-एस० परमेश्वरैया ५६१
उषवदत्त ५६१
उसमान खलीफा ५६१
उसमानअली पातशाह ५६२
उसमानिया युनिवर्सिटी (हैदराबाद) ५६२
ऊडरफ (अमेरिकन मिस्त्री) ५६३
ऊमर खलीफा ५६३

[ऋ]

ऋग्वेद (प्रथम वेद) ५६४
ऋतु-संहार (काव्य) ५६५
ऋतु-विलास (मलयालम-काव्य) ५६५

[ए–ऐ]

एऊ-क्रतिदोस (मध्य एशिया) ५६६
नाम पृष्ठ संख्या
एउथुदिम (ग्रीक बैक्टेरियन राजा) ५६६
एकनाथ (दक्षिण भारत के सन्त) ५६७
एकहार्ट जोहानेस (जर्मन-दार्शनिक) ५६८
एकलेसिया (एथेन्स की जनसभा) ५६९
एकातेरिना प्रथम (रूस की सम्राज्ञी) ५७०
एकातेरिना द्वितीय ,, ५७०
एक्विनस टॉमस यूरोप का ईसाई सन्त और दार्शनिक । ५७२
एक्स-रे (पारदर्शक किरण) ५७६
एङ्गलर हाइनरिख (जर्मन-वनस्पति-शास्त्री) ५७७
एजवर्थ मेरिया (आयरलैंड की उपन्यास-लेखिका) ५७७
एजिडियस रोमेनस (यूरोप का विचारक) ५७७
एजेसिलास (स्पार्टा-लेसीडोमन का राजा) ५७८
एटली (ग्रेट ब्रिटेन) ५८०
एडमंड बर्क (इग्लैंड का राजनीतिज्ञ) ५८१
एडवर्ड (इंग्लैंड का राजा) ५८४
एडवर्ड कन्फेसर ,, ५८४
एडवर्ड प्रथम (इंगलैंड का राजा) ५८४
,, द्वितीय ,, ५८५
,, तृतीय ,, ५८५
,, चतुर्थ ,, ५८६
,, षष्ठ ,, ५८६
,, सप्तम ,, ५८६
,, अष्टम ,, ५८७
एडवर्ड जेनर (चेचक-टीके का आविष्कारक) ५८७
एडवर्ड लिटन (अंग्रेज उपन्यासकार) ५८८
एडवर्ड गिबन (अंग्रेज इतिहासकार) ५८८
एडवर्ड फिट्जरलैंड (अंग्रेज कवि) ५८८
एडम्स जॉन (अमेरिका के द्वितीय राष्ट्रपति) ५८८
एडमंड स्पेंसर (अंग्रेज कवि) ५८८
एन्ड्रू मारवेल ,, ५८९
एन्टवर्प (वेलजियम) ५८९
एडम्स जॉन क्विसी (अमेरिकन राष्ट्रपति) ५८९
एडम्स जॉन काउच (इंगलैंड का ज्योतिषी) ५८९
एडिसन जोसेफ (अंग्रेजी-गद्यकार) ५९०
एडीसन (महान आविष्कारक) ५९०

नाम	पृष्ठ संख्या
एन्ड्रूज सी० एफ०	५९१
एडगर-एलेन-पो (अमेरिकन साहित्य-निर्माता)	५९२
एडिनबरा (स्कॉटलैंड की राजधानी)	५९२
एन्डर्सन कार्ल डेविड (अमेरिका का भौतिक वैज्ञानिक)	५९३
एडम गोट लाव (डेनमार्क)	५९३
एन्डर्सन हान्स क्रिश्चियन (डेनमार्क)	५९३
एन्ड्रू कार्नेगी (अमेरिकन-उद्योगपति)	५९३
एन्ड्रोसोव (रूसी चिकित्सक)	५९७
एथेन्स (यूनान)	५९८
एन (इंग्लैंड की महारानी)	६०२
एन रेडक्लिफ (उपन्यास-लेखिका)	६०३
एन्थनी ट्रोलोप	६०३
एनी बीसेंट	६०३
एनीयुस क्विटस	६०७
एग्नेसी मेरिया (गणितकार, इटली)	६०७
एपीरस	६०७
एपीक्युरियस	६०७
एफेबस	६०८
एमिली ब्रोन्टे	६०८
एम्पायर स्टेट बिल्डिंग	६०८
एपेलोडोरस	६०९
एवेयर (जर्मन राष्ट्रपति)	६०९
एमडेन (विध्वंसक जर्मन जहाज)	६०९
एमडन	६१०
एमहर्स्ट (भारत का गवर्नर जनरल)	६१०
एलिनबरा (,, ,,)	६१०
एलिकपोल (वैज्ञानिक)	६१०
एलिजाबेथ (रूससम्राज्ञी)	६११
एलिजाबेथ प्रथम (इंग्लैएड)	६११
एलिजाबेथ द्वितीय (,,)	६१४
एलिजाबेथ वेरेट	६१४
एल्फ्रेड बर्नहार्ड नोबल (डायनामाइट आविष्कर्ता)	६१४
एलेक्जेएडर-फ्लेमिंग (पेनिसिलिन आविष्कर्ता)	६१५
एलेक्भेएडर ड्यूमा	६१५
एवरेस्ट	६१६

पुस्तक मिलने के पते

देहली—राजकमल प्रकाशन देहली

अजमेर—हिन्दी साहित्य मन्दिर ब्रह्मपुरी अजमेर

इन्दौर—तुलसी साहित्य सदन खजूरी बाजार इन्दौर-सिटी

बीकानेर—नवयुग ग्रन्थ कुटीर बीकानेर (राजस्थान)

जयपुर—[illegible] जयपुर

विषय-सूची नं० २

(विषयानुक्रम से)

देश और नगर

नाम	पृष्ठ संख्या
इंग्लैएड	३२८
इंग्लैएड के इतिहास की प्रमुख घटनायें	३५३
इजराइल (यहूदी-राष्ट्र)	३५४
इटाली	३५७
इएडोनेशिया	३८६
इएडो-चायना	३८८
इन्द्रप्रस्त	३९६
इन्दौर (म० प्र० का शहर)	४००
इम्फाल (मणिपुर)	४११
इरियन (इएडोनेशिया)	४१४
इलाहाबाद	४१४
इस्फहान (ईरान)	४२८
ईक्वेडर (द० अमेरिका)	४३६
ईराक	४३७
ईरान	४३८
उक्समल नगर	४८७
उज्जैन	४८८
उजबेकिस्तान (म० एशिया)	४९२
उटक मएड (पहाड़ी स्टेशन)	४९३
उड़ीसा (भारतीय राज्य)	४९३
उत्तर प्रदेश	४९८
उदयपुर (मेवाड़)	५१३
उन्नत नगर (सौराष्ट्र)	५१७
उन्नाव (उ० प्र०)	५१८
उरगपुर	५५९
एन्टवर्प (बेलजियम)	५८९
एडिनबरा	५९२
एथेन्स	५९८
एपीरस	६०७

राजा; राजवंश और राज्याधिकारी

नाम	पृष्ठ संख्या
इगबर्ट (इंग्लैंड)	३२७
इजाबेला (स्पेन)	३५५
इडविन (इंग्लैंड)	३६९
इडरिड (इंग्लैंड)	३६९
इथिल फ्लीडा (इंग्लैंड)	३९५
इथलिस्टन (इंग्लैंड)	३९६
इथिल बर्ट (इंग्लैंड)	३९६
इन्क्रूमा (घाना)	३९८
इनुकाई (जापान)	३९९
इब्राहीम लोदी	४०७
इब्राहीम आदिल शाह (द्वितीय)	४०७
इब्राहीम कुतुब शाह	४०८
इब्राहीम निजाम शाह	४०८
इब्राहीम शाह शरकी (जौनपुर)	४०८
इब्राहीम द्वितीय (म० एशिया)	४०९
इमानुएल विक्टर (इटली)	४१०
इवान प्रथम (मास्को)	४१९
इवान तृतीय (रूस)	४१९
इवान ग्रोजनी चतुर्थ (रूस)	४२०
इस्मत इनोनू (टर्की)	४२४
इस्माइल सामानी (ईरान)	४२४
इस्माइल सर मिरजा	४२८
ईगर (रूस)	४३६
ईशदेव (जयपुर)	४५२
ईश्वरी सिंह (जयपुर)	४५२
ईस्ट इरिडया कम्पनी	४५५
उकबा-बिन-नफीर	४८७

नाम	पृष्ठ संख्या
उडा (मेवाड़)	४८८
उजबक खान (म० एशिया)	४९१
उत्पलापीड़ (कश्मीर)	५०९
उदयन मेहता (गुजरात)	५१०
उदय सिंह (मेवाड)	५१२
उदयादित्य (मालवा)	५१४
उदयन-वासवदत्ता	५११
उदय सिंह (मेवाड़)	५१२
उदायी (मगध)	५१४
उदयामती (गुजरात)	५१६
उन्मत्तावन्त (कश्मीर)	५३१
उबैदुल्ला शैबानी (म० एशिया)	५३३
उमर शेख मिरजा	५३७
उम्मैद सिह (कोटा)	५३८
उम्मैद सिंह (कोटा)	५३९
उम्मैद सिंह (बून्दी)	५३९
उम्मैय्या-खलीफा	५३९
उलुगवेग (तैमूर का पोता)	५६०
उषवदत्त	५६१
उसमान खलीफा	५६१
उस्मानअली पातशाह	५६२
ऊमर खलीफा	५६३
एउक्रतिदोस (मध्य एशिया)	५६६
एउथुदिम (ग्रीक-बाख्तरी राजा)	५६६
एकातारिना प्रथम (रूस-सम्राज्ञी)	५७०
एकातारिना द्वितीय ,,	५७०
एजेसिलास (स्पार्टा का राजा)	५७८
एटली (ग्रेट ब्रिटेन)	५८०
एडवर्ड (इंग्लैएड)	५८४
एडवर्ड कन्फेसर	५८४
एडवर्ड प्रथम	५८४
एडवर्ड द्वितीय	५८५
एडवर्ड तृतीय	५८५
एडवर्ड चतुर्थ	५८६
एडवर्ड षष्ठ	५८८

नाम	पृष्ठ संख्या
एडवर्ड सप्तम	५८६
एडवर्ड अष्टम	५८७
एडम्स जॉन (अमेरिकन राष्ट्रपति)	५८८
एडम्स जॉन क्विंसी (अमे० राष्ट्र०)	५८९
एलिनबरा (गवर्नर जनरल)	६१०
एमहर्स्ट (,,)	६१०
एबेयर (जर्मनी)	६०९
एलिजाबेथ (रूस-सम्राज्ञी)	६११
एलिजाबेथ प्रथम (इंगलैएड)	६११
एलिजाबेथ द्वितीय	६१४

साहित्य

इटालियन-साहित्य—दांते, पेट्रार्क, बोकाचो, अन्टोनियो पूसी, लोरेंजो, मेकियावेली इत्यादि। ३६३

इब्रानी-साहित्य—एजरा, सदिया-बिन-जोसेफ, अब्राहम-इब्न-एजरा, इमानुएल-बेन सोलोमन, लुज्जाटो इत्यादि। ४०४

ईरानी (फारसी-साहित्य)—रूदागी, फिर्दौसी, निजामी, शेखसादी, उमर खय्याम, हाफिज, जामी, अमीर खुसरो इत्यादि। ४४६

उड़िया-साहित्य—उपेन्द्रभञ्ज, पञ्चसखा इत्यादि। ४६६

उर्दू-साहित्य—मीर, सौदा, जौक, गालिब, नजीर, इकबाल इत्यादि। ५४३

उपन्यास-साहित्य—अंग्रेजी, संस्कृत, फ्रेंच, अमेरिकन, रूसी, चीनी, बङ्गाली, हिन्दी, गुजराती, मलयालम-आदि के उपन्यासकार। ५२१

साहित्यकार

इकबाल (कवि)	३२३
इटपल्ली राघवन (मलयालम कवि)	३५७
इंडिका मेगास्थनीज	३६५
इएटर ल्यूड (अंग्रेजी नाटिकाएं)	३६८
इत्सिंग (चीनी यात्री)	३९१

नाम	पृष्ठ संख्या
इजूमो फुदौकी (जापानी भूगोल)	३९५
इदरसी (अरब भूगोलशास्त्री)	३९६
इन्दुलेखा (मलयालम उपन्यास)	३९७
इनोलेइनो (फिनलैण्ड का कवि)	३९९
इनियस (लैटिन साहित्यकार)	४०३
इब्नसीना (बुखारा)	४०३
इब्सनहेनरिक (नार्वे नाट्यकार)	४०३
इब्न-अब्द-अल-हाकम	४०६
इब्न-अरबी	४०९
इब्न-फजलान (मुसलिम यात्री)	४०६
इब्न-बतूता (मुसलिम यात्री)	४०६
इब्न-मसर्राह	४०७
इब्न-खलदून (अरबी इतिहासकार)	४०७
इमानुएल-बेन-सोलोमन (इटली)	४०८
इमानुएल गीबेल (जर्मन कवि)	४०८
इमर्सन (अमेरिका)	४०८
ईराकी (ईरान का कवि)	४११
इरयीमनतम्पी (मलयालम)	४११
इरविंग वाशिंगटन (अमेरिका)	४१२
इरास्मस (ह्यूमेनिस्ट)	४१३
इन्दुलाल याज्ञिक (गुजराती)	४१४
इलाचन्द्र जोशी (उपन्यासकार)	४१४
इलियड (होमर का महाकाव्य)	४१६
इलियट (अंग्रेज कवि)	४१७
इलियट जार्ज (अंग्रेज उपन्यास-लेखिका)	४१७
इलवां-अल-सफा	४१८
इवां-तुर्गनेव (रूस)	४१८
इवां-गुन्दुलिक (युगोस्लाव)	४१९
इवां-ऐड्रेबिल-क्रीलोव	४१९
इवारा सैकाकू (जापान)	४२२
इंशा (उर्दू-कवि)	४२३
इसिदोर (विश्वकोष-रचयिता)	४३४
इसियस (यूनान)	४३४
इसोक्रेटीज (यूनान)	४३५
इच्छाराम देसाई (गुजरात)	४३५
ईवाल्ड जोहान्स (डेन कवि)	४५२
ईश्वरचन्द्र गुप्त (बंगाल)	४५३
ईश्वरचन्द्र विद्यासागर	४५३
ईश्वरदास (प्राचीन कवि)	४५४
ईसाप (कहानीकार)	४७२
उण्णायी वारियर (मलयालम)	४९७
उण्णीयच्ची चरितम्	४९८
उण्णुनोलि-सन्देश	४९८
उत्तर रामचरित्र	५०५
उदयनाथ त्रिवेदी "कवीन्द्र"	५१२
उदय शंकर भट्ट	५१३
उदय नारायण तिवारी	५१६
उदयरत्न (जैन कवि)	५१७
उनसरी (अरबी विद्वान)	५१७
उप्टन सिनक्लेयर	५३१
उपेन्द्रभंज (उड़िया कवि)	५३२
उपेन्द्रनाथ दास (बंगाल)	५३३
उमर खैय्याम (फारसी कवि)	५३४
उमापति धर	५३७
'उर्फी' शीराजी (फारसी कवि)	५६०
उलूर-एस० परमेश्वरैया	५६१
ऋतु-संहार	५६५
ऋतु-विलास	५६५
एजवर्थ मेरिया	५७७
एडवर्ड लिटन	५८८
एडवर्ड गिवन	५८८
एडवर्ड फिट्जरलैण्ड	५८८
एडमंड स्पेंसर	५८८
एन्ड्रू मारवेल	५८९.
एडिसन जोजेफ	५९०
एडम गोटलाव (डेनमार्क)	५९३
एन्डर्सन-हान्स-क्रिश्चियन	५९३
एन-रेडक्लिफ (उपन्यास ले०)	६०३
एमिलि ब्रोण्टे	६०८
एनियस क्रिटस	६०७

धर्मग्रन्थ और धर्माचार्य

नाम	पृष्ठ-संख्या
इग्नेशियस (ईसाई पादरी)	३२८
इजेकियल (यहूदी-धर्मनेता)	३५७
इन्द्रभूति गौतम (जैनगणधर)	३६६
इन्नोसेंट तृतीय (रोमन पोप)	३६६
इञ्जील	४०६
इस्लाम-संस्कृति	४२८
इस्माइलिया सम्प्रदाय	४३३
ईशोपनिषद्	४५२
ईश्वरकृष्ण (दार्शनिक)	४५२
ईसा मसीह	४७३
ईसाई-धर्म	४७४
उत्तर मीमांसा	५०८
उत्तर-पुराण (जैनपुराण)	५०८
उत्तराध्ययन सूत्र (जैन)	५०६
उत्पलाचार्य (दार्शनिक)	५०६
उदयप्रभ सूरि (जैनाचार्य)	५१०
उदयनाचार्य (दार्शनिक)	५१२
उदासी सम्प्रदाय	५१५
उद्योतकर (दार्शनिक)	५१५
उद्योतन सूरि (जैनाचार्य)	५१५
उपनिषद्	५१८
उपमिति भव-प्रपञ्चकथा	५३१
उमास्वाति वाचक (जैनाचार्य)	५३६
ऋग्वेद	५६४
एकनाथ (संत)	५६७
एकहार्ट जोहानेस	५६८
एक्विनस टॉमस (ईसाई सन्त)	५७२

विज्ञान और वैज्ञानिक

नाम	पृष्ठ-संख्या
इदरसी	३६६
इब्राहिम अलफजारी (अरबी गणितज्ञ)	४०७
इराटोस्थनीज (खगोल शास्त्री)	४१२
इरेसिस्ट्रेटस (शरीर शास्त्री)	४१३
इरा रेमसेन (सेकरीन आविष्कर्ता)	[illegible]
इवान पावलोव (रूसी वैज्ञानिक)	४२२
इलियास होव (सिलाई-मशीन निर्माता)	४५१
ऊडरफ (अमेरिका)	५६३
एक्स-रे	५७६
एङ्गलर हाइनरिख (जर्मन वनस्पति शास्त्री)	५७७
एडवर्ड जेनर (चेचक-टीका-आविष्कारक)	५८७
एडीसन (महान् आविष्कारक ग्रामोफोन आदि)	५६०
एरलिक पोल (जर्मन वैज्ञानिक)	६१०
एपेलो डोरस	६०६
एल्फ्रेड वर्न हार्ड नोवल (डायनामाइट-आविष्कर्त्ता)	६१४
एलेक्भ्रेण्डर फ्लेमिंग (पेनिसिलिन-आविष्कर्त्ता)	६१५
एण्डरसन कार्ल-डेविड	५६३
एण्ड्रोसोव (रूसी चिकित्सक)	५६७
एडम्स जॉन काउच	५८६
एग्नेसी मेरिया	६०७

राजनीतिज्ञ और क्रांतिकारी

नाम	पृष्ठ-संख्या
इण्डियन नेशनल कांग्रेस	३६६
इण्डियन एसोसिएशन	३८५
इताकागी (जापान)	३६१
इतो (जापान)	३६४
इंदिरा गांधी	४२५
इस्माइल सर मिरजा	४२८
उमेशचन्द्र बनर्जी	५३८
एडमण्ड बर्क	५८१
एनी बीसेण्ट	६०३

पत्र-पत्रिकाएँ और पत्रकार

नाम	पृष्ठ-संख्या
इङ्गलैण्ड की पत्र-पत्रिकाएं	३५१
इण्डिया हेरल्ड	३६०
इण्डिया गजट	३६०
इंगलिशमैन	३६०
इण्डियन मिरर	३६०
इण्डियन डेली न्यूज	३६१
[illegible]	३६१

नाम	पृष्ठ संख्या
इण्डियन एक्सप्रेस	३९१
इन्द्र विद्यावाचस्पति	४०२
इन्दु	४०२
इच्छाराम देसाई	४३५
इन्दुलाल याज्ञिक	४१४
उचितवक्ता	४८८
उदन्त मार्त्तण्ड	५१३

उद्योग और उद्योगपति

नाम	पृष्ठ संख्या
इस्पात उद्योग	४२६
ईस्टइण्डिया काटन एसोसियेशन	४७१
एण्ड्रू कार्नेगी	५९३

प्रकीर्णक

नाम	पृष्ठ संख्या
इंक्वीजीशन (ईसाई-धर्म की अदालत)	३२४
इक्वियन (रोमा की एक जाति)	३२७
इज्जियन-संकृति	३५५
इन्टर प्राइज (अमेरिकन जहाज)	३६७
इट्रूस्कन (प्राचीन रोम की एक जाति)	३६८
इतिहास-शास्त्र	३९२
इन्द्राणी रहमान (नृत्यकलाकार)	३९७
उदयशंकर (नृत्यकार)	५१६
उदयवराह (जैन-मन्दिर)	५१७
उस्मानियाँ युनिवर्सिटी	५६२
एक्लेसिया (एथेन्स की जनसभा)	६६९
एपीक्युरियस (यूनानी तत्ववेत्ता)	६०७
एवरेस्ट माउंट	६१६
एवरेस्ट आवरोहण	६१६

दूसरे खंड के विशेष आकर्षण

इस खण्ड में इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ के करीब ४०० नामों का विवेचन है जिनमें कुछ मुख्य नाम—

इंग्लैण्ड - अनेकों टेढ़ी-मेढ़ी पगडण्डियों और ऊंची-नीची घाटियों में से गुजरता हुआ इंग्लैण्ड का लहरदार इतिहास मनोरंजन, अध्ययन और मनन की काफ़ी सामग्री पाठक के सामने उपस्थित करता है। राज सत्ता की पथरीली चट्टान पर साइमन डी-माण्ट फ़ोर्ड द्वारा पार्लमेंट के लोकतंत्रीय पौधे की स्थापना और बाद में एक सम्राट् के सिर का बलिदान लेकर उस पौधे का पनपना एक आश्चर्यजनक कहानी है। बाद में यूरोप की इस पिछड़ी हुई जाति के द्वारा संसार के विशाल भाग पर अभूतपूर्व साम्राज्य की स्थापना इतिहास की एक हैरत अंगेज घटना है। अलफ्रेड महान्, एडवर्ड प्रथम, क्रामवेल, एलिजावेथ, विक्टोरिया इत्यादि महान् हस्तियां इस इतिहास के प्रकाश स्तम्भ हैं।

ईरान—गुलाब के बगीचों और बुलबुल के अविराम गीतों से गूंजती हुई महान् प्रकृति की गोद में से ईरान में प्राचीन युग के अन्तर्गत एक महान् संस्कृति का जन्म हुआ था। उस संस्कृति का मनोहर इतिहास किस पाठक का मनोरंजन नहीं करेगा। सायरस महान्, दारा महान्, नौशेरवां, अब्बास महान् इत्यादि अनेकों प्रतापी और उदार चेता सम्राटों के व्यक्तित्व ने इस इतिहास को प्रकाशित कर रखा है।

उत्तर प्रदेश—जिस देश में महान् आर्य्य संस्कृति के पौधे का विकास हुआ, जिस देश में "रामराज्य" के समान आदर्श राज्यपद्धति का जन्म हुआ, जिस भूमि को मान्धाता, रघु, हरिश्चन्द्र, रामचन्द्र, दुष्यन्त और भरत के समान महान् व्यक्तियों ने धन्य किया। जिस भूमि में वाल्मीकि और व्यास ने अपनी अमर वीणा की झंकार से संसार के साहित्य को पल्लवित किया। जिस भूमि में दुष्यन्त और शकुन्तला की महान् प्रेम लीलाएं अभिनीत हुई उस भूमि का गौरवपूर्ण इतिहास पढ़ते हुए कौन ऐसा पाठक होगा जिसका मस्तक गौरव से उन्नत न हो जावेगा।

उड़ीसा—जैन धर्म के ख्यातनामा सम्राट् खारवेल ने अपनी महान् वीरता और धर्मनिष्ठा से जिस भूमि को गौरवान्वित किया। महान् दिग्विजयी सम्राट् चोड़गंग ने जिस पवित्र क्षेत्र में महान् जगन्नाथ मन्दिर की स्थापना की, सु-प्रसिद्ध केशरी राजाओं ने जहां भुवनेश्वर के समान विशाल मन्दिरों की स्थापना की उस उड़ीसा प्रान्त का इतिहास भी कम महत्वपूर्ण नहीं है।

इसी प्रकार इटली, इजराइल, इण्डोनेशिया, इण्डोचाइना, उज्जैन, इन्दौर इत्यादि कितने ही देशों और नगरों का गौरवपूर्ण इतिहास इस खण्ड में संकलित है।

साहित्य

ईरानी (फ़ारसी) साहित्य—जिस वाटिका में अनेकों महान् कवियों ने अपनी क्यारियां बनाकर उन क्यारियों को भिन्न-भिन्न प्रकार के रंग बिरंगे और खुशबूदार फूलों से सुशोभित किया। जिस वाटिका में शेख सादी की गुलिस्तां और बोस्तां ने अपनी एक नवीन दुनिया कायम की, जिस वाटिका में हाफिज की बुलबुल ने अपने अमर गीत गाये और ऊमर खैयाम की

रुबाइयों ने जिस वाटिका में ऐसा मैखाना कायम किया जिसकी नशीली हवा ने सारे संसार को मस्त कर दिया उस फारसी साहित्य की रूपरेखा अवश्य हो पाठकों के लिए आकर्षक साबित होगी ।

इटालियन साहित्य—महा कवि दांते, पेट्रार्क और बोकाचो के समान अमर साहित्यकारों की कहानी ।

उर्दू साहित्य—ईरान की बुलबुल और भारत की कोकिला ने अपने स्वर में स्वर मिलाकर जिस एक नवीन भाषा और साहित्य की सृष्टि की उसकी कहानी किसके दिल को नहीं लुभावेगी जिस साहित्य में मीर और सौदा ने, जौक और गालिब ने, दाग और मीनाई ने, इकबाल और हाली ने अपनी भाव तरंगों से एक नया प्राण फूंका उस साहित्य की कहानी प्रत्येक साहित्य रसिक की रस भावना को चरितार्थ करेगी ।

उपन्यास साहित्य—संसार के विभिन्न देशों में उपन्यास साहित्य के विकास की क्रमबद्ध कहानी । संस्कृत, अंग्रेजी, अमेरिकन, फ्रेन्च, रूसी, चीनी, बंगाली, हिन्दी, गुजराती, मलयालम इत्यादि भाषाओं के प्रसिद्ध उपन्यासकारों का संक्षिप्त परिचय ।

इसी प्रकार इस क्षेत्र में ईलियड (महाकाव्य) उत्तर रामचरित्र इत्यादि काव्यों का विवेचन तथा संसार के अन्य प्रसिद्ध साहित्यकारों का मनोरंजक वर्णन संकलित हैं ।

धर्म और धर्मग्रन्थ

इस्लाम संस्कृति—इस्लाम संस्कृति की स्थापना और उसके विकास की आश्चर्यजनक कहानी, इस संस्कृति के महान् विजेताओं की विजय यात्रा और संस्कृति के मूलभूत तत्वों का संक्षिप्त विवेचन ।

ईसाई धर्म और संस्कृति—महात्मा ईसा के द्वारा स्थापित ईसाई धर्म और संस्कृति की संक्षिप्त कहानी, रोमनचर्च के अभ्युत्थान के आश्चर्यजनक इतिहास की अनूठी कहानी । रोमन चर्च के खिलाफ बगावत करनेवाले जॉन विक्लिफ़, कैलविन, ज्विंगली और मार्टिन लूथर के दिलचस्प कार्य्यों का विवेचन ।

वैदिक धर्म—ऋग्वेद, उपनिषद, और ईश्वर कृष्ण, उत्पलाचार्य्य, उद्योतकर आदि कई प्रकाण्ड दर्शन शास्त्रियों का परिचय—

जैन धर्म—इन्द्र भूति गौतम, उत्तर पुराण, उत्तराध्ययन सूत्र, उपमिति भव-प्रपंच कथा, आचार्य उमा स्वाति, आचार्य उद्योतन सूरि का परिचय और उदयन मेहता के द्वारा शत्रुञ्जय तीर्थ की स्थापना का मनोरंजक वर्णन ।

विज्ञान

विज्ञान के क्षेत्र में पेनिसिलिन के आविष्कर्ता एलक्फ़ेएडर फ्लेमिंग, चेचक के टीके के आविष्कर्ता एडवर्ड जेनर, ग्रामोफोन और विद्युत सम्बन्धी सैकड़ों आविष्कारों के कर्त्ता महान् वैज्ञानिक एडिसन, नेपच्यून गृह के आविष्कर्ता एडम्स जॉन काउच, सिक्स हण्डरेट सिक्स नामक उपदंश टीके के आविष्कर्ता एलिकपोल, पाजीट्रान के आविष्कर्ता एण्डर्सन काल डेविड, डायनामाइट आविष्कर्ता अलफ्रेड नोबल, सेकरीन नामक मीठे द्रव्य के आविष्कर्ता इरा रेमसेन, एक्स-रे के आविष्कर्ता राएटजन इत्यादि अनेकों वैज्ञानिकों का परिचय पाठकों के लिए ज्ञानवर्द्धक और मनोरंजक होगा ।

एवरेस्ट आरोहण की रोमांचकारी कहानी

इसके अतिरिक्त धनकुबेर कार्नेगी की जीवन-कथा, इण्डियन नेशनल कांग्रेस के स्वाधीनता युद्ध, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लोमहर्षक कारनामों का क्रमबद्ध विवेचन भी इस खण्ड में देखने को मिलेगा ।

प्रकाश—स्तम्भ !

इस ग्रन्थ की रचना में, जिन महान् ग्रन्थकारों और विद्वानों की रचनाओं ने प्रकाश–स्तम्भ की तरह हमारे मार्ग को प्रकाशित किया है, उनके प्रति हम अपनी नम्र-श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं। उन रचनाओं की संक्षिप्त सूची नीचे दी जा रही है। पूरी और विस्तृत सूची ग्रन्थ के अन्तिम भाग में दी जायगी।

हिन्दी

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा और डा० भगवत् शरण उपाध्याय (काशी नागरी प्रचारिणी)	हिन्दी-विश्व-कोष (भाग १—२)
श्री नगेन्द्र नाथ वसु	हिन्दी-विश्व-कोष (२२ भाग तक)
महापंडित राहुल सांकृत्यायन	मध्य-एशिया का इतिहास (भाग १—२) और अकबर
डा० भगवत् शरण उपाध्याय	विश्व-साहित्य की रूप-रेखा, प्राचीन भारत का इतिहास
रा० ब० पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा	राजपूताने का इतिहास (८ भाग)
डा० सत्यकेतु विद्यालंकार	एशिया का आधुनिक इतिहास, यूरोप का आधुनिक इतिहास
श्री गंगा प्रसाद एम० ए०	अंग्रेज जाति का इतिहास
श्री शिवचन्द्र कपूर एम० ए०	इंगलैण्ड का इतिहास
बरवे और चतुर्वेदी	इंगलैण्ड का इतिहास
श्री पट्टाभि सीतारामैय्या	कांग्रेस का इतिहास
श्री ज्योति प्रसाद सूद एम० ए०	राजनैतिक विचारों का इतिहास (भाग १—२)
श्री आचार्य नरेन्द्र देव	बौद्ध-दर्शन
श्री सुख-सम्पत्ति राय भंडारी	भारत के स्वातंत्र्य-संग्राम का इतिहास, भारत के देशी राज्य
श्री बिश्वेश्वर नाथ रेऊ	भारत के प्राचीन राजवंश (भाग १—२—३)
आचार्य्य पं० रामचन्द्र शुक्ल	हिन्दी-साहित्य का इतिहास
श्री पं० बलदेव उपाध्याय	संस्कृत-साहित्य का इतिहास
श्री ब्रजरत्न दास	उर्दू-साहित्य का इतिहास
श्री अयोध्या प्रसाद गौयलीय	शेर और शायरी
पं० द्वारका प्रसाद चतुर्वेदी	भारतीय-चरिताम्बुधि

डॉ० सत्येन्द्र एम० ए०, पी० एच० डी०, डी-लिट्०	बंगला-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास
के० भास्करन् नायर	मलयालम-साहित्य का इतिहास
श्री सुरेन्द्रनाथ बिसारिया	आधुनिक राजनैतिक विचार-धाराएं
श्री परशुराम चतुर्वेदी	सन्त-काव्य, उत्तर भारत की सन्त परंपरा
डॉ० प्रभात कुमार भट्टाचार्य	प्रतिनिधि राजनैतिक विचारक
श्री देवीप्रसाद मुंसिफ	मारवाड़ राज्य का इतिहास
श्री जयचन्द्र विद्यालंकार	भारतीय इतिहास की रूपरेखा
श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य	हिन्दू-भारत का अन्त
पं० रामनरेश त्रिपाठी	कविता-कौमुदी (५ भाग)
श्री गुलाबराय एम० ए०	विज्ञान-विनोद
श्री गुरुनाथ शर्मा	मिस्र की राष्ट्रीय प्रगति
श्री रामदास गौड़ एम० ए०	हिन्दुत्व
श्री 'इन्द्र' विद्या वाचस्पति	आर्य-समाज का इतिहास
श्री पं० अम्बिका प्रसाद वाजपेयी	समाचार-पत्रों का इतिहास
श्री शंकर राव जोशी	रोम-साम्राज्य
प्लूटार्क, अनुवादक श्री मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव	ग्रीस और रोम के महापुरुष
डॉ० प्राणनाथ विद्यालंकार	इंग्लैण्ड का इतिहास
एल० मुकुर्जी	यूरोप का इतिहास
श्री सुरेन्द्रनाथ सेन	अठारह सौ सत्तावन
श्री पी० बी० बापट	बौद्धधर्म के २५०० वर्ष
श्री रामनारायण दूगड़	मुणोत नेणसी की ख्यात
महाराज कुमार डा० रघुबीर सिंह	मालवा में युगान्तर
श्री रामदत्त सांकृत्य	मेगास्थनीज का पालीब्रोथ
श्री सुरेश्वर प्रसाद एम० ए०	विश्व-सभ्यता का इतिहास
श्री शान्तिकुमार गोखुरू एम० एस० सी०	सरल सामान्य विज्ञान
श्री आचार्य्य रामचन्द्र शुक्ल	मेगास्थनीज-इण्डिका
श्री नाथूराम प्रेमी	जैन-साहित्य और इतिहास
श्री अशर्फी मिश्र बी० ए०	धनकुबेर कार्नेगी
श्री गोपाल नारायण बहुरा एम० ए०	रास-माला
श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी	विश्व-साहित्य
श्री सत्यदेव विद्यालंकार	हमारे राष्ट्रपति
श्री द्विजेन्द्रलाल राय	कालिदास और भवभूति
श्री कामता प्रसाद जैन	संक्षिप्त जैन इतिहास
पं० रामकर्ण	मारवाड़ का मूल इतिहास
श्री सुखसम्पत्ति राय भंडारी	जगद्गुरु भारत वर्ष

श्री सुन्दरलाल	भारत में अंग्रेजी-राज्य
श्री हरिवंश राय 'बच्चन'	उमर ख्याम की रुबाइयां
श्री चन्द्रराज भंडारी	समाज-विज्ञान, भगवान महावीर, भारत के हिन्दू-सम्राट, भारत का औद्योगिक विकास और अग्रवाल-जाति का इतिहास

साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान' और साप्ताहिक 'धर्मयुग' के करीब ३०० प्राचीन अंक।

गुजराती—

श्री मोहनलाल दुलीचन्द	जैन-साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास
श्री रतीलाल नायक	विज्ञान-कथा
श्री कृष्णलाल मोहनलाल जवेरी	गुजराती-साहित्यना मार्ग-सूचक स्तंभो
श्री दुर्गाशंकर केवलराम शास्त्री	आयुर्वेदनो इतिहास
श्री मुनि विद्या विजय	म्हारी कच्छ-यात्रा

English

H. G. Wells	Out line of History
K. M. Pannikar	A survey of Indian History
Moreland	India from Akabar to Aurangzeb
Homes	History of Indian Mutiny
K. M. Pannikar	The future of South East Asia
Roy-Chaudhari	Political history of Ancient India
Bhandarkar	Early History of Daccan Asoka
E. G. Browne	Literary History of Persia
H. H. Howarth	History of Mangol
L. A. Mills	The New World of South East Asia
Chaldea	The Story of the Nations
John Macy	The Story of the World's Literature
Nawrice W. Ph-d.	A Story of Indian Literature
Hays C. J. H.	A History of Modern Europe
A. Bersidale Keith	A History of Sanskrit Literature
Sarkar & Srivastava	The World Year-Book

विश्व इतिहास कोष—प्रथम भाग १ पर

कुछ महत्वपूर्ण सम्मतियाँ

महान भारतीय राष्ट्र के भूतपूर्व राष्ट्रपति, महान विचारक और तत्वचिन्तक

डॉ० राजेन्द्रप्रसाद

की सम्मति—तारीख २८–१०–६२

श्री चन्द्रराज भण्डारी ने अपनी पुस्तक "विश्व-इतिहास-कोष" के प्रथम खण्ड के कुछ अंश को पढ़कर मुझे सुनाया। लेखक ने बहुत परिश्रम करके विश्व-इतिहास में बिखरे सभी क्षेत्र के प्रमुख देशों, नगरों, विषयों और व्यक्तियों का एक स्थान पर संकलन कर तथ्य-पूर्ण विवेचन किया है। पुस्तक की भाषा सरल और सरस है।

हिन्दी साहित्य में इस अभाव को पूरा करके श्री भण्डारी ने सराहनीय काम किया है इसलिये वे बधाई के पात्र हैं।

इस प्रयास में लेखक को मेरी शुभ कामनायें हैं।

भारतीय संस्कृति के पारदर्शी तत्वचिन्तक विद्वान

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल

की सम्मति—ता० १४–१०–६२

श्री चन्द्रराज भण्डारी हिन्दी के पुराने और प्रसिद्ध साहित्य-सेवी हैं। उन्होंने "बनौषधि चन्द्रोदय" नामक भारतीय वनस्पतियों का विश्व-कोष आज से लगभग बीस वर्ष पूर्व प्रकाशित किया था।

उसी संग्रहात्मक प्रतिभा और परिश्रम का सदुपयोग करते हुए अब आपने "विश्व इतिहास-कोष" नामक महान् ग्रन्थ का लेखन प्रारम्भ किया है।

इस ग्रन्थ का प्रथम खण्ड मेरे सामने है। इसे देखकर मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हुई है।

इस भाग में लगभग ५५० ऐतिहासिक व्यक्तियों, देशों और संस्थाओं के परिचय अकारादि क्रम से बहुत ही लोकग्राह्य सरल शैली में दिये गये हैं। भारतवर्ष और विश्व के अनेक देशों के महापुरुषों का परिचय एक ही स्थान में पाठकों के लिये इस कोष में सुलभ है। राजनीति, धर्म, दर्शन-साहित्य और कला इन सभी क्षेत्रों में जिन व्यक्तियों ने कोई उल्लेखनीय कार्य किये हैं और जिनके परिश्रम से मानव-जाति का इतिहास समृद्ध बना है उनका यह सुलभ परिचय हिन्दी संसार के लिये विशेष उपयोगी होगा ऐसी आशा है। मैं ऐसे ज्ञान-वर्द्धक आयोजन की हृदय से सफलता चाहता हूँ।

विशेषतः शिक्षण संस्थाओं में ऐसे ग्रन्थ का व्यापक प्रचार लाभप्रद होगा।

भारतीय राष्ट्र के उपराष्ट्रपति, महान विद्वान माननीय

डॉ० जाकिरहुसैन

की सम्मति—तारीख ४–६–६२

Dear Shri Bhandari,

I thank you for your letter of the 22nd August and the copy of the first Volume of the "Encyclopedia of World History" in Hindi edited by you.

A book like this is undoubtedly of considerable Value to the general Hindi Reading Public and I Congratulate you on this laudable attempt.

विश्व-इतिहास-कोष

Encyclopedia of World History

[द्वितीय खण्ड]

ज्ञान-मन्दिर—प्रकाशन

विश्व-इतिहास-कोष

द्वितीय खंड

(अकारादि क्रम से)

[इ]

इकबाल

उर्दू और फारसी के महाकवि डा० सर मुहम्मद इकबाल। दर्शन और कानून के उद्भट विद्वान, मुसलिम राजनीति के एक चतुर खिलाड़ी, जिनका जन्म सन् १८७६ में स्यालकोट (पंजाब) में हुआ।

सर मुहम्मद इकबाल ने भारतवर्ष के मुसलिम समाज में एक अद्भुत व्यक्तित्व और प्रभाव प्राप्त किया था। वे सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी थे। काव्य, साहित्य, दर्शन-शास्त्र और राजनीति में उनकी गति धाराप्रवाही थी।

सन् १९०५ में सर मुहम्मद इकबाल उच्च शिक्षा प्राप्त करने यूरोप गये। वहां पर ईरानी दर्शन शास्त्र पर एक निबन्ध लिखकर उन्होंने पी० एच० डी० की डिग्री प्राप्त की साथ ही बैरिस्टर की डिग्री भी प्राप्त कर ली। वहाँ से वापस आकर सर इकबाल लाहौर में बैरिस्टरी करने लगे।

यहीं से सर इकबाल का जीवन दो अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग तरह से विकसित होता है। एक विकास उनका साहित्यिक क्षेत्र में होता है और दूसरा राजनीति के क्षेत्र में।

साहित्यिक विकास

इकबाल को कविता का शौक बचपन ही से था। इस लिए ज्ञान वृद्धि के साथ इनकी काव्य-शक्ति का भी बराबर विकास होता रहा। ये जो कुछ भी लिखते थे उसमें इनके गहन अध्ययन की छाया रहती थी। फारसी और उर्दू दोनों ही भाषाओं पर इनका अबाध अधिकार था। इनकी फारसी रचना "असरारे खुदी" सन् १९१५ में प्रकाशित हुई। इससे फारसी साहित्य में इन का नाम हो गया। उसके बाद "रमूजे बेखुदी" नामक काव्य ने भी इनकी कीर्ति को बढ़ाया।

सर इकबाल की कविता में ओज, प्रवाह, विषय की गहराई, भाषा का सौष्ठव इत्यादि सभी चीजें प्रचुर मात्रा में रहती थीं।

सर इकबाल उर्दू भाषा के भी माने हुए कवि माने जाते हैं। इनकी उर्दू कविताओं का संग्रह "बाँगेदरा" के नाम से प्रकाशित हुआ और भी उर्दू फारसी में इनके बहुत से काव्य और कविता संग्रह प्रकाशित हुए।

राजनैतिक जीवन

मगर राजनीति के क्षेत्र में सर इकबाल के जीवन ने दूसरा मोड़ लिया। पहले वे भारतीय राष्ट्रीयता के उपासक थे और उस समय की उनकी कविताओं में भारतीय-राष्ट्रीयता की स्पष्ट छाप दिखलाई देती है। उनका "सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा" गीत बहुत समय तक राष्ट्रीय गान के रूप में गाया जाता था।

मगर यूरोपीय यात्रा से वापस आते समय वे "पान इस्लामिक" या संसार के मुसलमानों के एक विशाल संगठन की भावनाओं को साथ लेकर आये। यहीं से सर मुहम्मद इकबाल का जीवन एक दम पलटा खाता है और वे भारतीय राष्ट्र को छोड़ कर विश्वव्यापी इस्लामी संगठन के पक्षपाती हो गये जिससे उनके सोचने का दृष्टिकोण ही

एक दम बदल जाता है और पान इस्लामिक की दृष्टि से वे भारतवर्ष के मुस्लिम बहुल इलाके को पाकिस्तान के स्वतंत्र देश के रूप में निर्माण करने के आन्दोलन में शरीक हो जाते हैं।

कई लोगों का ख्याल है कि "पाकिस्तान" का नाम और उसकी योजना सर मुहम्मद इकबाल के दिमाग की ही उपज है, मगर आगे जाकर यह भी पता लगता है कि यह योजना अंग्रेज राजनीतिज्ञों की सलाह से एक मुसलमान लेखक ने पहले से ही लन्दन में तैयार कर ली थी।

जो भी हो पाकिस्तान की योजना में सर इकबाल ने मि० जिन्ना का बड़ा प्रभावशाली साथ दिया। सर इकबाल ने सारे मुसलिम भारत को इस दिशा में सोचने के लिए मजबूर कर दिया। समग्र मुस्लिम इतिहास ने आज तक कभी भी धार्मिक भावनाओं के आगे राष्ट्रीय भावनाओं को अधिक महत्व नहीं दिया। इस घटना चक्र में भी इतिहास की पुनरावृत्ति हुई और भारत की सारी मुसलिम जनता मुसलिम लीग के प्लेट-फार्म पर चली गई केवल कुछ मुठी भर इस्लामी नेता भारतीय-राष्ट्रीयता के प्लेट फार्म पर रह गये।

इस संघर्ष में एक ओर कांग्रेस के राष्ट्रवादी लोग थे जो किसी भी प्रकार अखण्ड भारत के टुकड़े नहीं होने देना चाहते थे और दूसरी ओर मुसलिम लीग की साम्प्रदायिक विचारधारा थी जो प्रत्येक मूल्य पर भारत का अङ्ग-भङ्ग कर उस पर स्वतंत्र मुसलिम राज्य की स्थापना करना चाहती थी और अंग्रेजी राजसत्ता इस मामले में उसका अप्रत्यक्ष समर्थन कर रही थी।

इस सारे घटना-चक्र में सबसे अधिक वेदना जिस व्यक्ति को हो रही थी, वह महात्मा गांधी थे। इस महान व्यक्ति को देश के अंग भंग की कल्पना से ही इतनी गहरी वेदना होती थी जैसे स्वयं उनका अंग भंग हो रहा हो। उन्होंने अपनी पूरी शक्ति से इस समस्या को आपस में सुलझाने का प्रयत्न किया, इसके लिए वे दो बार मि० जिन्ना को समझाने के लिए उनके घर गये। अंग्रेज राजनीतिज्ञों को भी उन्होंने बहुत समझाया मगर सब प्रयत्नों के बावजूद कोई भी परिणाम नहीं निकला। भारतीय राजनीतिज्ञों को झुकना पड़ा और पाकिस्तान का निर्माण हो गया जो हमेशा के लिए भारतीय राष्ट्र के सामने ऐसा प्रश्नवाचक चिह्न बन कर उपस्थित हो गया जिसका समाधान खोजने पर भी नहीं मिल रहा है।

सर इकबाल उन लोगों में से एक प्रधान व्यक्ति थे। जिन्होंने भारतीय राष्ट्र के टुकड़े कराने में प्रभावशाली योग दिया और पाकिस्तान का निर्माण करवाया।

इकबाल की कविता के नमूने—

नया शिवाला

सच कह दूं ऐ बरहमन गर तू बुरा न माने।
तेरे सनम कदों के बुत हो गए पुराने।
अपनों से बैर रखना तूने बुतों से सीखा।
जंगो जदल सिखाया वाएज को भी खुदा ने।
तंग आकर मैंने आखिर देरोहरम को छोड़ा।
वाएज का वाज छोड़ा छोड़े तेरे फसाने।
पत्थर की मूरतो में समझा है तू खुदा है।
खाके वतन का मुझको हर जर्रा देवता है।
आ गैरियत के परदे एक बार फिर उठादें।
बिछड़ों को फिर मिला दें नक्शे दुई मिटा दें।
सूनी पड़ी हुई है मुद्दत से दिल की बस्ती।
आ इक नया शिवाला इस देश में बना दें।
दुनिया के तीर्थों से ऊँचा हो अपना तीरथ।
दामाने आसमां से उसका कलस मिला दें।
हर सुबह उठके गाएँ मंतर को मीठे-मीठे।
सारे पुजारियों को मय पीत की पिला दें।

इंक्विजीशन

ईसाई धर्म की एक धर्म अदालत जिसके अन्दर नास्तिकता और धर्म के प्रति अविश्वास रखने वालों के अपराध के फैसले किये जाते थे। इस अदालत में न्यायाधीशों के स्थान पर धर्मपिता पादरी लोग बैठा करते थे।

सबसे प्रथम इंक्विजीशन की स्थापना स्पेन और उसकी दूसरी रियासतों में हुई। इसके पहले भी रोमन कैथोलिक पोपों ने ईसाई धर्म पर अविश्वास करने वाले लोगों को

दण्ड देना प्रारम्भ कर दिया था, परन्तु आरम्भ में वे दण्ड राजाज्ञा से ही होते थे। चर्च का उनमें कोई हाथ नहीं रहता था।

सबसे पहले पोप इन्नोसेण्ट प्रथम ने धर्मदण्ड में हस्तक्षेप किया। उसके बाद पोप ग्रेगरी नवम ने इस विधान में और अभिवृद्धि की और पादरियों की एक अदालत स्थापित की। इस प्रकार तेरहवीं सदी में रोम के पवित्र चर्च ने इंक्विजीशन की स्थापना कर दी, जो शीघ्र ही सारे यूरोप में फैल गई।

इंग्लैंड में भी एडवर्ड द्वितीय के शासन-काल में चौदहवीं सदी के प्रारम्भ में इंक्विजीशन की स्थापना हुई। इंक्विजीशन का यन्त्रणा-गृह पोप ने सबसे पहले इंग्लैंड में ही स्थापित किया। उसके बाद यह भी सारे यूरोप में फैल गया।

इंक्विजीशन अदालत के मुकद्दमें बड़े विचित्र ढंग के होते थे। थोड़ा-सा सन्देह होते ही, अभियुक्त को गुप्त रीति से गिरफ्तार किया जाता था। मामले की सुनवाई इकतरफा ढंग से होती थी, जो गुप्त रखी जाती थी। अभियुक्त को गवाहों के नाम नहीं बताये जाते थे, न उसे जिरह करने का अधिकार होता था। अपराधी के विरुद्ध गवाही देने से कोई व्यक्ति इन्कार नहीं कर सकता था। इन्कार करने पर गवाह भी खुद अपराधी बन जाता था।

सजाएँ रविवार के दिन चर्च में खुले आम सुनाई जाती थीं। ये सजाएँ भिन्न-भिन्न होती थीं। जैसे फाँसी, जिन्दा जलाया जाना, कोड़े मारना इत्यादि। प्राणदण्ड पाये हुए अपराधियों को दण्ड भुगताने के लिये राज्य सरकार के हाथों में सौंप दिया जाता था, क्योंकि चर्च रक्त को नहीं छूता था।

अभियुक्तों को प्रायः आधी रात के समय गिरफ्तार किया जाता था। यदि गिरफ्तारी के समय अभियुक्त कुछ शोर मचाता तो उसके मुँह में एक यन्त्र ठूँस दिया जाता था। यह यन्त्र मुँह में जाकर खुलता था और पीड़ित का मुँह खुला-का-खुला रह जाता था। अगर अभियुक्त अपने अपराध को स्वीकृत नहीं करता था तो उसे यन्त्रणागृह में भेज दिया जाता था। यन्त्रणागृह में बहुत से पीड़ा दायक यन्त्र रक्खे जाते थे।

इंक्विजीशन का यंत्रणागृह

अभियुक्तों को यंत्रणा देने के लिए यंत्रणागृह बनाये गये थे। इस यंत्रणागृह के लिए कई प्रकार के यंत्र भी तैयार किए गये थे। इन यंत्रों में 'रैक' 'कालर ऑफ टार्चर' और 'स्कैवेंजर्स रोटर, नामक यंत्र बहुत मशहूर थे। इन यंत्रों में अपराधी को, फिर वह नवयुवक, वृद्ध या कोमलांगी युवती ही क्यों न हो, नंगा करके फँसा दिया जाता था और इन्हीं के द्वारा उन्हें भीषण यंत्रणा दी जाती थी।

'रैक' अभियुक्तों के अंगों को खींचने का एक यंत्र था। इस यंत्र के द्वारा अभियुक्त की उँगलियाँ, हाथ, पैर तथा और अंग खींचे जाते थे। कभी इस खिंचाव में आकर ये अंग उखड़ भी जाते थे। इससे मनुष्य को भीषण यंत्रणा होती थी।

'कालर ऑफ टार्चर' एक दूसरा भीषण यंत्र था। इसमें एक कॉलर रहता था, जिसमें सैकड़ों सुइयाँ लगी रहती थीं। यह कॉलर अविश्वासियों के गले में लगाया जाता था, जिससे वे अपनी गर्दन इधर-उधर नहीं हिला सकते थे। इधर-उधर हिलाते ही वे सुइयाँ उन्हें चुभ जाती थीं।

"स्कैवेंजर रोटर" एक कैंची की तरह होता था। इसमें अपराधी के हाथ-पैर और सिर को कसने के अलग-अलग खाँचे बने होते थे। इस यंत्र में अपराधी के हाथ-पाँव और सिर फँसा कर कस दिये जाते थे, जिससे कि वह जैसे का तैसा जड़ वस्तु की तरह कस जाता था। बिलकुल हिल डुल नहीं सकता था।

इन भीषण यंत्रणाओं से दुखी होकर बहुत अपराधी और बहुत से निरपराधी भी अपराधों को स्वीकार कर लेते थे। जो लोग अपराध स्वीकार कर लेते थे, उन्हें पहले गला दबा कर मार डाला जाता था और फिर उनका शव आग में फेंक दिया जाता था। मगर जो अपराधी अन्तिम समय तक अपने विचारों पर दृढ़ रहते थे, उन्हें 'स्टेक' सें बाँधकर जीता जलाया जाता था।

इंक्विजीशन से सजा पाये हुए मनुष्य एक-एक करके नहीं जलाये जाते थे बल्कि बहुत से इकट्ठे हो जाने पर एक साथ जला दिये जाते थे। जो दिन इनको जलाने के लिए निश्चित होता था, उस दिन एक बड़ा जलूस निकाला

जाता था। यह जूलूस "ओटोडाफ़ें" का जलूस कहा जाता था। उस दिन सब लोग त्यौहार मनाते थे। स्वयं बादशाह भी इस अवसर पर ठाटबाट से उपस्थित होते थे। निश्चित समय पर सब कैदी कैदखाने से बाहर निकाले जाते थे। सब कैदियों के बदन पर एक पीले रंग का अँगरखा रहा करता था। इन अँगरखों पर भूत-प्रेतादि के वीभत्स चित्र बने रहते थे। उनके सिर पर एक त्रिकोणाकार बहुत ऊँची टोपी लगी रहती थी। नियत स्थान पर पहुँच जाने पर सब अपराधियों की जिह्वाएँ कस कर बाँध दी जाती थीं और फिर नाना प्रकार के व्यंजनों से भरे थाल उनके आगे लाये जाते थे और उन्हें जठराग्नि शान्त करने के लिए कहा जाता था। इसके पश्चात् पादरी का भाषण होता था। उसके बाद जल्लाद उनको स्टेक से बाँध कर नीचे आग लगा देते थे। आग ऐसे ढंग से लगाई जाती थी, जिससे कि वे एक साथ न मर सकें बल्कि धीरे-धीरे भयंकर यंत्रणा पाते हुए मृत्यु को प्राप्त हों। जब ये लोग यंत्रणा से चीखते-चिल्लाते थे, उस समय हजारों दर्शक तालियां पीट-पीट कर हँसते थे।

अपने पहले ही वर्ष में इस अदालत ने केवल एक ही प्रान्त में दो हजार यहूदियों को स्टेक से बाँध कर जिन्दा जला दिया। 'लौंटी' नामक लेखक का कथन है कि अकेले टौर्कीतेड़ा नामक राजा ने १८ वर्ष के अपने राज्य काल में एक लाख चौदह हजार चार सौ कुटुम्बों का सर्वनाश किया। इसके अतिरिक्त पञ्चम चार्ल्स के राजत्व-काल में एक लाख से अधिक अविश्वासियों को दण्ड दिया गया। इस प्रकार कहा जाता है कि लाखों व्यक्तियों के प्राण इन धर्म अदालतों ने लिए।

जिस समय इंग्लैण्ड में एडवर्ड षष्ठ के पश्चात् रोमन कैथोलिक मतानुयायी मेरी ट्यूडर इंग्लैण्ड की रानी बनी, तो उसने गद्दी पर बैठते ही रोमन कैथोलिक धर्म के कट्टर शत्रु प्रोटेस्टेण्ट धर्मानुयायी केण्टरबरी के आर्कबिशप टॉमस क्रेमनर, उसके साथी बिशप रिडले और लेटीमर तथा रौलेण्ड टेलर को जिन्दा जलाने का दण्ड दिया। इसका वर्णन करते हुए एक लेखक ने लिखा है—

"पवित्र रविवार के दिन ज्योंही अर्द्धरात्रि व्यतीत हुई और सेण्टजॉन के घण्टे ने बारह पर चोट की, एक शोक पूर्ण जुलूस धीमी गति से हार्वरगेट के अन्धकार पूर्ण दालान से चला। सबसे आगे चार प्रधान रक्षक दो-दो की कतार में निकले, जो काले रेशम का चोंगा पहने हुए थे। इनके हाथ में बड़े-बड़े सफेद 'क्रॉस' थे। इसके बाद बारह पादरी इसी अनुक्रम से काली पोशाक पहने हुए निकले। प्रत्येक के हाथ में जलती हुई मोमबत्तियाँ थीं। इनके सिर पर चौड़े छज्जे की टोपियाँ थीं। इनके पीछे पादरी का सहायक नंगे सिर सफेद चोंगा पहने आया, जिसके वस्त्र पर सामने की ओर लाल क्रॉस बना था। इनके पीछे एक बुड्ढा पादरी सिर पर टोपी पहने था। इसके बाद दो साधु स्तोत्र पढ़ते हुए और करुण गीत गाते हुए चल रहे थे। उनके पीछे चार साधु थे, जो जरीदार काम के एक चन्दोवे के चारों छोर पकड़े हुए थे। उस चन्दोवे के नीचे प्रधान धर्माचार्य चल रहा था, जिसका चोंगा गहरे लाल रंग का और पोशाक सफेद थी। इसके बाद तेज फर्से वालों की एक लम्बी कतार थी और उसके बाद वे तीन अभागे कैदी थे, जो किसी समय चर्च के महान धर्माचार्य रह चुके थे।

ज्योंही जुलूस रोमन चर्च के पास पहुँचा, 'ओटोडाफे' का विशाल जुलूस भी उसमें आकर मिल गया। ओटोडाफे अपराधियों का सामूहिक भीषण प्रदर्शन था, जिसे एक धार्मिक समारोह का रूप दिया गया था। प्रत्येक कैदी के साथ इंक्विजीशन का एक एक आदमी चल रहा था और जिन्हें आग में जलाया जाना था उनके साथ एक-एक जिसूइट साधु चल रहा था।

बधस्थल एक विस्तृत मैदान को घेरकर बनाया गया था, जिसमें एक साथ ही दो-तीन हजार आदमियों को जलाया जा सकता था। जो अपराधी जीते जलाये जाने वाले थे, उन्हें जंजीरों से कस कर बधयूपों से कस कर जीवित ही बाँध दिया गया। इसके बाद एक भारी शोर उठा और दर्शकों की भीड़ ने चिल्ला कर कहा—"कुत्तों की डाढ़ी में आग लगाओ।" सैकड़ों लोग जलती हुई मशालें लेकर दौड़ पड़े और उन बँधे हुए अपराधियों की दाढ़ियों को झुलसा दिया और उनके चेहरे पर तब तक मशालें लगाये रहे, जब तक कि उनके मुँह झुलस कर काले स्याह न पड़ गये। अन्त में यूप के चारों ओर इकट्ठे किये

हुए ईंधन में आग लगा दी, परन्तु बध-यूप के साथ जंजीरों से बंधे हुए पीड़ित जन आग की लपटों से इतने ऊँचे रखे गये थे कि आग की लपटें उनके आधे शरीर तक ही पहुँच पाती थीं। इस प्रकार वे जलाये नहीं जा रहे थे, धीमे-धीमे भूने जा रहे थे। पीड़ितों के वेदना-पूर्ण चीत्कार से सारा वातावरण गूँज रहा था। हजारों की संख्या में सभी आयु के स्त्री-पुरुष इस आर्त्तनाद को सुनते और प्रसन्न हो रहे थे।

मगर उन तीन बड़े कैदियों की अग्नि-शय्याएँ अलग ही बनाई गईं थीं।

सबसे पहले टामस क्रेमनर को लिया गया। वह चर्च ऑफ इंग्लैण्ड का मुख्य और प्रतिष्ठित पादरी था। वह विद्वान, सुधारक और दृढ़ प्रकृति का प्रौढ़ पुरुष था। रोमन चर्च के एक पादरी ने उसके निकट आकर कहा कि "अब भी समय है अपने विचार बदल लो और अपने जीवन की रक्षा कर लो। पवित्र पिता पोप तुम पर कृपालु हैं उन्होंने मुझे तुम्हारे पास भेजा है।" इस पर क्रेमनर ने उसे पीछे धकेल दिया और कहा—"दूर हो जाओ, पोप के भेड़ियों, मुझ से दूर रहो। तुम प्रभु ईसा के नाम और धर्म पर कलंक रूप हो।"

पादरी के वहाँ से हटते ही क्रेमनर ने अपने चारों ओर उपस्थित भीड़ को सम्बोधन करके कुछ कहना चाहा। इस पर बोनर की आज्ञा से तुरन्त उसके मुँह में बर्छी घुसेड़ दी गई। उसके बाद बुल्किट और मोगर नामक दो जल्लादों ने क्रेमनर को पकड़ कर नंगा किया। वे उसे घसीट कर बध-यूप के निकट ले गये और बधयूप के साथ उसे जन्जीरों से कस दिया। इसी समय नाइटगाल ने मशाल लेकर उसके नीचे के ईंधन में आग लगा दी। आग धीरे-धीरे जल रही थी और वह जलाया नहीं भूना जा रहा था। इसके बाद उसके साथी लिटमर और रिडले को भी उसी प्रकार भयङ्कर यन्त्रणा पूर्वक जला दिया।

इसी प्रकार सारे यूरोप में इंक्विजीशन की अदालतों के द्वारा हजारों आदमियों को फाँसी दी गई, हजारों जीते जलाये गये, हजारों के यन्त्रणागृह में यन्त्रों के द्वारा अंग भंग किये गये, लाखों आदमियों को जेल की सजा दी गई। अकेले स्पेन में ३२३९२ आदमी इंक्विजीशन अदालत के द्वारा सन् १४८१ से १८०८ तक जीते जलाये गये और एक लाख से अधिक कैद किये गये तथा इन सभी की सम्पत्ति जब्त करके चर्च में मिला ली गई।

इक्वियन

ईसा के पूर्व सातवीं शताब्दी में रोम के समीप बसने वाली एक जाति, जिसका रोमवालों से संघर्ष होता रहता था।

ईसा से ५७२ वर्ष पूर्व इक्वियन लोगों ने रोम पर चढ़ाई की। रोमन सेना उसका सामना करने के लिए भेजी गई मगर इक्वियन लोगों ने उसे हराकर चारों ओर से घेर लिया। उस घिरी हुई सेना की रक्षा के लिए रोम वासियों ने किंटीटस सिन्सीनेटस नामक एक किसान को अपना डिक्टेटर चुना। उसने सब रोमन लोगों को पाँच दिन का भोजन और शस्त्रास्त्र लेकर तैयार रहने की आज्ञा दी। सेना तैयार होते ही सिन्सीनेटस ने रात के समय अचानक इक्वियन लोगों पर हमला कर दिया और उन को बुरी तरह हरा दिया।

इसी प्रकार और भी कई बार इक्वियन लोगों से रोम का संघर्ष हुआ मगर विजय रोम की ही हुई।

इगबर्ट

आठवीं सदी के अन्त और नौवीं सदी के प्रारम्भ में ब्रिटेन के वेसेक्स प्रान्त का राजा।

इगबर्ट एक बहादुर और प्रतापी राजा था। इसने मर्सिया, नार्थम्ब्रिया और एसेक्स के राजाओं को हरा कर सारे इंग्लैंड पर अपना वास्तविक राज्य स्थापित कर लिया।

मगर इन्हीं दिनों इंग्लैंड पर डेन जाति के आक्रमण होने लगे और इगबर्ट तथा उसके पुत्र के अनेक उपाय करने पर भी डेन लोगों का इंग्लैंड में आना नहीं रुका और वे वहाँ स्थायी रूप से बस गये। तब इगबर्ट के पौत्र इतिहास प्रसिद्ध राजा अल्फ्रेड महान् ने सन् ८७९

में डेन लोगों से एक सन्धि कर इंग्लैंड को दो भागों में बाँट दिया । इस सन्धि के अनुसार दक्षिण और पश्चिम का भाग अल्फ्रेड के आधीन रहा और शेष इंग्लैंड डेन लोगों के अधिकार में चला गया ।

इगनेशियस

स्पेन का निवासी जीसुइट संघ का संस्थापक जिसने क्रिश्चियन चर्च का एक नया संघ स्थापित किया और उसका नाम 'सोसायटी आफ जीसस' रखा । इस सोसायटी के सदस्य जीसुइट कहलाये । यह जीसस संघ एक अद्भुत संगठन था । रोमन चर्च और पोप की सेवा के लिये पूरा समय देने वाले व्यक्तियों को तैयार करना इसका उद्देश्य था । इस संघ ने यूरोप में चर्च के आदर्श को ऊँचा उठा दिया ।

इगनेशियस सोलहवीं सदी में करीब-करीब उन्हीं दिनों में हुआ था जब यूरोप में रोमन चर्च के विरुद्ध प्रसिद्ध सुधारक मार्टिन लूथर का प्रभाव बढ़ रहा था ।

इंग्लैण्ड

यूरोप के पश्चिमी हिस्से में चारों तरफ जल से घिरा हुआ देश । जिसके पूर्व में यूरोप, पश्चिम में अमेरिका महाद्वीप, उत्तर में बाल्टिक सागर और दक्षिण में भूमध्य-सागर का दरवाजा जिब्राल्टर है ।

ग्रेट ब्रिटेन के दक्षिणी भाग को इंग्लैण्ड कहते हैं । इंग्लैण्ड के साथ स्कॉटलैण्ड और वेल्स के संयुक्त राज्य का नाम ग्रेट ब्रिटेन है । इसकी राजधानी लन्दन में है । इसके प्रसिद्ध शहरों में बर्किंघम, लिवरपूल, ब्रिस्टोल, ग्लासगो, एडिनबर्ग, मैंनचेस्टर, आक्सफोर्ड, कैंब्रिज इत्यादि उल्लेखनीय हैं ।

इंग्लैण्ड का इतिहास सारे संसार के इतिहास में अपना एक सर्वाधिक विशिष्ट स्थान रखता है । क्षेत्रफल और जन-संख्या की दृष्टि से यह एक बहुत ही छोटा देश है । जिसका विस्तार भारतवर्ष के उत्तर प्रदेश से अधिक नहीं है । प्राचीन इतिहास की दृष्टि से भी इसका कोई महत्व नहीं है । जिस समय रोम, स्पेन, फ्रान्स इत्यादि देश वैभव के शिखर पर पहुँचे हुए थे, उस समय यह टापू असभ्य और जंगली लोगों का आवास बना हुआ था ।

इंग्लैंण्ड के वास्तविक विकास का इतिहास पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण से प्रारम्भ होता है जिसे रेनेसां (Reniassance) या पुनर्जागरण का युग कहते हैं । पन्द्रहवीं शताब्दी से बीसवीं सदी तक के केवल चार-पाँच सौ वर्षों में इस देश के लोगों ने संसार के रंग-मंच पर अपने जो महान् पार्ट अदा किये, वे समग्र संसार के इतिहास में अपनी जोड़ नहीं रखते । इन चार-पाँच शताब्दियों में इस छोटे से देश के निवासियों ने अपने सब उन्नत पड़ोसियों को पीछे छोड़ कर सारे संसार में अपना ऐसा विशाल-साम्राज्य स्थापित किया जो सारे मानवीय इतिहास में इससे पहले कभी नहीं बना था । ऐसा साम्राज्य जिसमें सूर्य्य कभी अस्त नहीं होता था । सारा अमेरिका महाद्वीप, अफ्रीका महाद्वीप का एक बड़ा भाग, भारतवर्ष, सीलोन, बर्मा, मिस्र, सिंगापुर इत्यादि तो इस साम्राज्य में पूर्ण रूप से थे ही, मगर चीन, ईराक, अरब इत्यादि देश जो पूर्ण रूप से साम्राज्य में नहीं थे, वे भी इसके पूर्ण प्रभाव क्षेत्र में थे । इन देशों के अन्दर भी अंग्रेजों की सलाह और उनकी इच्छा के अनुसार ही शासन होता था ।

अपनी विद्या, बुद्धि, सैनिक साहस और राजनीतिज्ञता के बल पर इतना बड़ा साम्राज्य स्थापित कर उसका सैकड़ों वर्ष तक उपभोग कर जब इस देश के राजनीतिज्ञों ने अनुभव किया कि अब साम्राज्यवाद का युग समाप्त हो गया है और अब साम्राज्य को बनाये रखना इज्जत और लाभ का काम नहीं है तो उस उपनिवेशवाद को समाप्त करने में भी इस जाति ने संसार का नेतृत्व किया विलम्ब नहीं किया । जिस विशाल साम्राज्य को उसके पूर्वजों ने अपने खून को बहाकर बड़ी कठिनाई से सैकड़ों बरसों में निर्माण किया था, साम्राज्य में होने वाले बड़े-बड़े विद्रोहों और क्रान्तियों का जिन्होंने अपनी जान पर खेल कर बड़ी कुशलता से दमन किया था. उसी विशाल साम्राज्य को छोड़ देने में भी उन्होंने देर न की । उसके लिए किसी तरह का पश्चाताप भी नहीं किया । बिना एक बूँद खून बहाये इस जाति ने सारे साम्राज्य को उसके वास्तविक अधिकारियों को सिपुर्द कर दिया ।

इन घटनाओं से यह नहीं समझना चाहिए कि अंग्रेज जाति ने किसी त्याग या उदारता की भावना से प्रेरित होकर इतने बड़े साम्राज्य का त्याग किया। असल बात यह है कि अंग्रेज जाति प्रारम्भ से ही यथार्थवादी दृष्टिकोण की उपासक रही है। अंग्रेज राजनीतिज्ञों ने जब अच्छी तरह समझ लिया कि अब विस्तृत साम्राज्य को गुलामी में बनाये रखना किसी भी तरह सम्भव नहीं है तो उन्होंने साहस पूर्वक साम्राज्यवाद का अन्त करने में भी अपना पहला कदम उठाया।

दूसरी तरफ दुनिया में मशीन युग के प्रादुर्भाव के पश्चात् जिस एक नवीन भौतिक संस्कृति का जन्म हुआ, जिस संस्कृति ने संसार में छाई हुई धार्मिक संकीर्णताओं के ताने-बाने बिखेर कर विशुद्ध भौतिकवाद की दृष्टि से मनुष्य को सोचना-समझना सिखाया, उस संस्कृति का संसार में प्रचार करने के कार्य में भी अंग्रेज जाति सबसे आगे रही। सोलहवीं शताब्दी तक अर्थात् मेरी ट्यूडर के शासन-काल तक जिस जाति ने धार्मिक मतभेद रखने वाले रौलेण्ड-टेलर, लेटीमर, रिडले और क्रेनमर के समान लोगों को केवल प्रोटेस्टेण्ट मत के अनुयायी होने के कारण जीवित जला देने के समान नृशंस कार्य्य किये, वही जाति, कुछ ही समय के पश्चात् धार्मिक क्षेत्र में उदारता का संदेश लेकर संसार के सम्मुख आई और जहाँ-जहाँ भी उसने अपना साम्राज्य स्थापित किया, वहाँ राजनैतिक दृष्टि से चाहे कितने ही अत्याचार किये हों मगर धार्मिक दृष्टिकोण से किसी भी विधर्मी की स्वाधीनता पर उसने कभी हाथ नहीं डाला।

साम्राज्य-विस्तार के साथ-साथ इस जाति ने अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी साहित्य के विकास में भी एक अभूतपूर्व क्रान्ति पैदा कर दी। अंग्रेजी साहित्य और अंग्रेजी भाषा के विकास ने एलिजाबेथ युग से ही जो विद्युत्गति प्राप्त की वह आज तक कहीं भी नहीं रुकी। इसी जाति ने साहित्य के क्षेत्र में महाकवि शेक्सपीयर, टैनीसन, वर्ड्सवर्थ इत्यादि महान् व्यक्तियों को पैदा किया। (अंग्रेजी साहित्य का पूरा वर्णन पहले भाग में अंग्रेजी साहित्य नाम के अन्तर्गत देखें) इसी प्रकार विज्ञान और मशीन के क्षेत्र में भी इस जाति के अन्तर्गत बड़े-बड़े नामांकित व्यक्ति पैदा हुए।

वैसे यूरोपीय भाषाओं में फ्रेञ्च भाषा का साहित्य आज भी सबसे उन्नत माना जाता है। फ्रेञ्च भाषा का इतिहास भी अंग्रेजी भाषा से बहुत पुराना है, उसका उद्गम भी लैटिन भाषा से है पर संसार के अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में आज जो महत्व अंग्रेजी को प्राप्त हो गया है वह संसार की किसी भी दूसरी भाषा को प्राप्त नहीं है। संसार के हर एक देश में आपको अंग्रेजी जानने वाले मिल जावेंगे और यदि आपका अंग्रेजी भाषा पर पूर्ण अधिकार है तो संसार के किसी भी क्षेत्र में भाषा-विषयक आपकी गाड़ी नहीं रुकेगी।

जिन-जिन देशों में इस जाति ने अपना साम्राज्य कायम किया उन सभी देशों में इस जाति के विद्वानों ने ज्ञान की खोज की धूम मचा दी। क्या इतिहास, क्या पुरातत्व, क्या वनस्पतिशास्त्र और क्या विज्ञान—सभी क्षेत्रों में अंग्रेजी शासन काल में अभूत पूर्व खोजें हुईं। अंग्रेजी शासन काल में ही मोहन जोदड़ो और हरप्पा की प्रसिद्ध खुदाइयाँ हुईं, इसी शासनकाल में सर विलियम जोन्स ने मेगास्थनीज के यात्रा विवरण का अंग्रेजी अनुवाद कर मौर्य साम्राज्य के इतिहास पर प्रकाश डाला, इसी शासन काल में रॉक्सबर्ग ने भारतीय वनस्पतियों पर महत्वपूर्ण अनुसन्धान किये।

ज्ञान की पिपासा अंग्रेजों का एक मनोवैज्ञानिक गुण है। इसी पिपासा ने इस जाति में महान साहित्यकार, महान् राजनीतिज्ञ और महान् वैज्ञानिकों की एक के बाद दूसरी परम्पराएँ कायम कीं।

इस प्रकार इंग्लैण्ड का इतिहास इस महान् सत्य का प्रतिपादन करता है कि अपने प्राचीन इतिहास के गौरव पर जीने वाली जातियों की अपेक्षा जीवन-संग्राम में वे जातियाँ आगे बढ़ जाती हैं जो अपने नवीन इतिहास का निर्माण करती हैं। अंग्रेज जाति का प्राचीन इतिहास कुछ भी नहीं है। आज से चार सौ बरस पहले तक यह जाति संसार की पिछड़ी हुई जातियों में गिनी जाती थी, मगर इन चार सौ बरसों में इस जाति ने संसार के अन्दर जिस विराट् इतिहास का, जिस विराट् सभ्यता का, जिस विराट् साम्राज्य का, जिस विराट् साहित्य का निर्माण किया—वह संसार के इतिहास में वेजोड़ है।

अब हम संक्षेप में इस देश और इस जाति के इतिहास का क्रमबद्ध विवेचन करते हैं।

प्राचीन इतिहास

इंगलैंड यूरोप महाद्वीप के पश्चिम में कुछ द्वीपों का एक समूह है जिसके तीन मुख्य भाग हैं—(१) इंग्लैएड (२) स्कॉटलैंड और (३) वेल्स। ये सब मिलकर ग्रेट ब्रिटेन कहलाते हैं।

दो हजार वर्षों से कुछ अधिक पूर्व, पूर्व की ओर से केल्ट नामक जाति के लोगों ने इस देश के आदि निवासियों को भगाकर अपना शासन जमाया। केल्ट जाति की गोइडल (Goidel) नामक शाखा पहले आई और बाद में इसी जाति की ब्रिटन नामक शाखा ने प्रवेश कर गोइडल जाति को यहाँ से उत्तर-पूर्व की ओर भगा दिया। आयर्लैंड और स्कॉटलैंड के हाइलैंड प्रान्त के निवासी इन्हीं गोइडलों की सन्तान हैं। वेल्स के निवासी ब्रिटन जाति की सन्तान हैं।

केल्ट जाति के लोग रथ चलाने की विद्या में बड़े निपुण होते थे। युद्ध क्षेत्र के अन्तर्गत भी ये रथों का प्रयोग करते थे। इनके पुरोहितों को ड्रूड (Druids) कहते थे। ये पुरोहित जंगलों में रहते थे और अपने अनुयायियों को धर्म तथा सदाचार की शिक्षा दिया करते थे।

रोम का शासन

उन दिनों रोम का साम्राज्य सारे संसार में पूर्ण जाहोजलाली पर था। उसके बादशाह जूलियस सीजर का प्रताप चारों दिशाओं में फैल रहा था। उसने फ्रांस और बेल्जियम को विजय करके ईस्वी सन् पूर्व ६० में बहुत से युद्ध पोत और ३०००० पैदल सेना के साथ इंग्लैंड पर आक्रमण कर दिया। ब्रिटन लोगों ने बड़ी वीरता से उसका मुकाबिला किया। उन्होंने कैसबालन नामक व्यक्ति को अपना मुखिया बनाकर सीजर की सेनाओं पर हमला किया पर रोमन लोगों के आगे उनकी न चली और जूलियस सीजर ने उन पर विजय प्राप्त कर कैसबालन से संधि कर ली।

इसके कई वर्षों बाद ई० सन् ४३ में क्लोडियस रोम का सम्राट् हुआ। इसने फिर ब्रिटेन पर चढ़ाई की और दस वर्षों में उसने सारे दक्षिणी भाग पर अधिकार कर लिया। उस समय कैसबालन का वंशज कैरेडॉक (Caradcc) वेल्स का राजा था। उसने एक बड़ी सेना लेकर रोम की सेना पर आक्रमण किया पर रोम की शक्तिशाली सेना के सामने उसकी सेना नहीं ठहर सकी और रोम की सेना ने उसे हराकर कैरेडक की पुत्री और रानी को कैद कर लिया।

इसके पश्चात् पूर्व की ओर नार्फक, सफक और इसेक्स प्रान्त में रोम का राज्य स्थापित हो गया। और इस राज्य की राजधानी कोलचेस्टर (Colchester) में बनाई गई। ई० सन् ६८ तक रोम के सेनापतियों ने इस देश के उत्तरी भाग पर भी अधिकार कर लिया।

पश्चिमी प्रदेशों में रोमन लोग इस प्रकार जब एक के बाद दूसरी विजय प्राप्त कर रहे थे, उसी समय पूर्वी प्रदेशों में केल्ट जाति की एक शाखा आइसनी जाति की रानी बोडेशिया ने कुछ सेना लेकर रोमन राजधानी कोलचेस्टर पर आक्रमण किया और उसे नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। बोडेशिया बड़ी बहादुर वीरांगना थी, मगर रोम की संगठित शक्ति के मुकाबिले उसका बस नहीं चला और अन्त में जहर खाकर उसने अपना जीवन समाप्त किया।

इस प्रकार धीरे-धीरे सारा इंगलैंड रोमन साम्राज्य के अन्तर्गत आ गया। रोमन लोगों ने नारविच (Norwich) में एक बड़ा भारी किला बनाया और सन् १२२ में सम्राट हैड्रीयन के समय में न्यूकासल से लेकर कार्लाइल तक और सन् १४२ में क्लाइड नदी से फोर्थ नदी तक एक मजबूत दीवार बनाई। इस प्रकार इंगलैंड पर रोमन साम्राज्य का पंजा मजबूती से जम गया। यह राज्य करीब ३५० वर्षों तक चला।

रोमन साम्राज्य ने अपने शासन-काल में इंगलैंड का काया-पलट कर दिया। उस समय इंगलैंड पर रोमन सभ्यता का जो प्रभाव पड़ा उसके चिह्न अभी तक इंगलैंड में दृष्टिगोचर होते हैं। इंगलैंड में चारों ओर रोमन लोगों ने सड़कें बना डालीं, जगह-जगह पर किले बनाये गये। चीस्टर, ग्लोस्टर इत्यादि कई सैनिक नगरों की स्थापना हुई। लन्दन आदि व्यापारिक नगरों का निर्माण हुआ, नदियों पर पुल बनाये गये। जंगल काट कर भूमि को साफ करके उन्हें खेती के योग्य बनाया गया, बाग बगीचे लगाये गये।

उन दिनों इंगलैंड की पैदावार इतनी बढ़ गई कि समस्त उत्तरी देशों को अन्न वहाँ से जाने लगा।

केंट, डीन तथा मध्य देश में लोहे की खदानें प्रारम्भ की गईं, टीन, सीसे तथा नमक की खदानें भी अस्तित्व में आईं। टैम्स तथा मेंडवे नदियों के किनारे पर मिट्टी के बर्तन बनाना प्रारम्भ हुए। ब्रिटिश लोगों ने जहाज बनाने का भी काम प्रारम्भ किया। जहाजों के बनते ही विदेशी व्यापार एक दम चमक उठा। इन जहाजों के द्वारा लोग अन्न, धातुएँ, मोती, घोड़े, कुत्ते, दास इत्यादि दूसरे देशों को ले जाने लगे तथा बदले में रेशम, सोना तथा जवाहिरात बाहर से अपने देश में लाने लगे।

रोमन अधिकारियो ने अपने रहने के लिए उत्तम उत्तम मकान बनवाये। सुन्दर मन्दिरों और न्यायालयों का निर्माण किया और इंग्लैंड को एक समृद्ध देश बना दिया।

रोमन लोगों का यह शासन सन ४१० ई० तक रहा उसके पश्चात् स्वयं रोम में वहाँ के साम्राज्य की अधोगति हो जाने से इंग्लैंड से भी इन लोगों ने अपना शासन हटा लिया।

आंग्ल जाति का शासन

रोमन लोगों का शासन हटते ही ब्रिटेन अरक्षित हो गया। उस पर स्कॉट और पिक्ट जाति के लोगों के आक्रमण शुरू हो गये और उनके साथ ही इंगलैण्ड के पूर्व में जर्मन सागर के इस पार एल्ब नदी के मुहाने पर बसी हुई आंग्ल, सैक्सन तथा जूट जाति के लोगों ने भी इंगलैंड पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। सन ४४६ में हैंजिस्ट (Hengist) और होर्सा (Horsa) नामक दो भाइयों के नेतृत्व में जूट जाति के लोग थेनिट टापू में उतरे और शीघ्र ही कैण्ट प्रदेश में बस गये। दक्षिणी इंगलैण्ड के अन्य भागों पर सैक्सन जाति के लोगों ने चढ़ाई की और पूर्व में एसेक्स, पश्चिम में वैसेक्स और दक्षिण में सैसेक्स नामक तीन राज्यों की स्थापना हुई।

तीसरी एङ्गल जाति ने उत्तरी, मध्य और पूर्वी इंग्लैण्ड पर अधिकार कर लिया। हम्बर नदी के उत्तर में नार्थम्ब्रिया की रियासत थी। पूर्वी राज्य ईस्ट एङ्गलिया कहलाता था और मध्यवर्ती प्रदेश मार्सिया कहा जाता था।

जूट, सेक्सन, और एङ्गल ये तीनों जातियाँ ही मिलकर इंगलिश जाति के नाम से प्रसिद्ध हैं और इन्हीं के नाम पर इस देश का नाम इंग्लैण्ड पड़ा।

इंग्लिश जातियों ने यहाँ के मूल निवासी ब्रिटनों को मार-मार कर भगाना प्रारम्भ किया।

इंग्लिश लोग लम्बे और मजबूत होते थे। इनके केश सुनहले और आँखें नीली होती थीं। धनाढ्य व्यक्ति भुजाओं में सोने चाँदी के कड़े और बाजूबन्द भी पहनते थे। ये लोग अनेक देवों की उपासना करते थे। इनके सबसे प्रसिद्ध देवता का नाम वोडेन (Woden) था। राजा लोग अपने को इसी देवता की सन्तान समझते थे। बिजली का देवता थार (Thor) युद्ध का देवता ट्यू (Tiw) और प्रेम की देवी फ्रेया (Fraya) मानी जाती थी।

एङ्गल, सेक्सन और जूट लोगों का शासन होने पर इंग्लैंड से ईसाई धर्म तिरोहित हो गया। सिर्फ आयरलैंड और वेल्स में इस धर्म के अनुयायी बचे रहे। मगर सन् ५६८ में अगस्टाइन के नेतृत्व में ४० ईसाई पादरियों का एक दल इंग्लैंड में आया। उस समय कैण्ट प्रांत का राजा इथिलबर्ट था। उसकी रानी बर्था ईसाई मतावलम्बी थी। इन पादरियों ने फिर से इंग्लैंड में ईसाई धर्म का प्रचार किया।

इस समय सारा इंग्लैंड सात छोटे-छोटे राज्यों में बंटा हुआ था। इनमें कैण्ट, मर्सिया, वेसेक्स और नार्थम्ब्रिया प्रधान थे। ये सब छोटे-छोटे राजा हमेशा परस्पर लड़ा करते थे।

मगर वैसेक्स के राजा इगबर्ट ने सन् ८०८ से लेकर ८२७ तक मर्सिया, ऐसेक्स और नार्थम्ब्रिया को पराजित कर अपने राज्य में मिला लिया।

इसी समय डेन और नार्मन जाति के लोगों ने इंगलैण्ड पर आक्रमण करना प्रारम्भ किया। राजा इगबर्ट ने इनको रोकने का बहुत प्रयत्न किया, मगर उसे सफलता नहीं हुई और डेन और नार्मन जाति के लोग इस देश पर हावी हो गये।

इगबर्ट के पोते राजा अल्फ्रेड महान् ने बड़ी बहादुरी से इस जाति का मुकाबिला किया। सात वर्ष तक वह इनसे लड़ता रहा मगर उसे भी सफलता न मिली। अन्त में सन् ८७८ में वेडमोर (Wedmore) की सन्धि में उसने इंग्लैण्ड का उत्तरी भाग डेन लोगों को दे दिया और दक्षिणी भाग अपने पास रक्खा।

अल्फ्रेड महान्

अल्फ्रेड इंग्लैण्ड के प्राचीनकाल के राजाओं में महान् राजा माना जाता है। इसने इंग्लैण्ड को गिरती हुई अवस्था से बचा लिया। उसने कई वर्षों तक डेन लोगों से बड़ी बहादुरी के साथ मोर्चा लिया और साथ ही अपने राज्य की शक्ति को भी बढ़ाता रहा। सबसे पहले उसने जहाजों का एक मजबूत बेड़ा तैयार कर अपनी जल-शक्ति को बढ़ाया। उसने अपनी प्रजा के नवयुवकों के लिए सेना में भरती होना अनिवार्य कर दिया।

सैनिक तैयारी के साथ उसने देश की शिक्षा-व्यवस्था में भी बहुत सुधार किया। विदेशों से कई बड़े-बड़े विद्वानों को बुला कर उनको उसने गिरजों के पुरोहित और स्कूलों के शिक्षक बनाये। उसने अपने समय का एक विस्तृत इतिहास और धर्म-शास्त्र का ग्रन्थ भी तैयार करवाया। इन्हीं सब बातों के कारण इंगलैण्ड के इतिहास में वह एक महान् राजा माना जाता है।

अल्फ्रेड के बाद उसके पुत्र एडवर्ड और उसके बाद उसके पुत्र एथिलस्टन ने भी अपने राज्य विस्तार का काम जारी रक्खा। एथिलस्टन के भाई ईडरिड ने सारा देश डेन लोगों से ले लिया।

मगर इसके पश्चात् आगे चलकर इस वंश में एथिलरेड (Ethelred) नाम का एक कमजोर राजा हुआ था जिसको इतिहास अनरेडी एथिलरेड (Unready) के नाम से सम्बोधित करता है। इस राजा की कमजोरी से देश फिर कमजोर हो गया और सन् १०१६ में डेन जाति के प्रसिद्ध राजा कैन्यूट ने सारे इंग्लैंड पर अधिकार कर लिया।

मगर कैन्यूट की मृत्यु के कुछ वर्षों पश्चात् फिर वैसेक्स की अंग्रेज जाति का राजा एडवर्ड कन्फैसर गद्दी पर बैठा और इंग्लैंड का उत्तरी भाग भी डेन लोगों के हाथ से छीन लिया गया।

सन् १०६६ में नार्मन जाति के राजा विलियम ने इंग्लैंड पर विजय प्राप्त कर वहाँ के राजा को भारी पराजय दी और वहाँ पर नारमन जाति का राज्य स्थापित हुआ। यह राज्य इंग्लैंड में करीब सौ वर्ष तक रहा।

इसके पश्चात् नार्मन राजा हेनरी प्रथम के कोई सन्तान न होने से उसका नाती हेनरी द्वितीय इंग्लैंड का राजा बना जो अंजोवंश का था और नार्मन जाति का राज्य खतम होकर अंजोराजवंश का राज्य प्रारम्भ हुआ।

अंजो राजवंश

अंजो राजवंश में (१) हेनरी द्वितीय (२) रिचर्ड प्रथम (३) जॉन प्रथम (४) हेनरी तृतीय (५) एडवर्ड प्रथम (६) एडवर्ड द्वितीय (७) एडवर्ड तृतीय और (८) रिचर्ड द्वितीय ऐसे आठ शासक हुए और सन् ११५४ से १३८२ तक २२८ वर्ष इस वंश ने इंग्लैंड पर राज्य किया। अन्तिम राजा रिचर्ड द्वितीय का पार्लमेंट से मतभेद हो जाने पर वह जेल में डाल दिया गया और वहीं उसकी मृत्यु हुई। अंजो राजवंश का पूरा वर्णन इस ग्रन्थ के प्रथम खंड में अंजो राजवंश शीर्षक के साथ देखें।

मेग्ना-चार्टा और पार्लमेंट

अंजो राजवंश का तीसरा राजा "जॉन प्रथम" बड़ा अत्याचारी और दुष्ट था। इसके अत्याचारों से तंग आकर इंग्लैंड के जागीरदार, धर्माधिकारी और जनता—सब संगठित हो गये और कैण्टर बरी के बड़े पादरी स्टीफेन लैंगटन (Stephen Langton) को अपना नेता बनाकर वे जॉन के अत्याचारों का विरोध करने लगे। सन् १२१५ में उन्होंने मेग्नाचार्टा (Magna Charta) के नाम से एक स्वतंत्रता पत्र तैयार किया जिसमें यह सिद्धान्त स्वीकार किया गया कि कोई भी राजा बिना राज्यसभा की स्वीकृति के कोई नया कर न लगा सकेगा और न न्यायालय से निर्णय हुए बिना किसी व्यक्ति को जेल में रख सकेगा।

यह "मेग्ना चार्टा" पत्रक इंगलैंड के इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यहीं से इंग्लैंड में वैधानिक सरकार की स्थापना का सूत्रपात होता है, यहीं से राजा के अधिकारों की मर्यादा कायम होती है और यहीं से धीरे-

धीरे इंग्लैंड की राज्य सभा पार्लमेंट का रूप धारण कर दिन प्रतिदिन शक्तिशाली होने लगती है।

अंजो वंश के राजा हेनरी तृतीय ने फिर निरंकुश शासन प्रारम्भ करके राज्य सभा की उपेक्षा प्रारम्भ की। तब जनता ने साइमन-डी-माण्डफोर्ट को अपना नेता बनाया। साइमन ने राजा हेनरी को हटाकर उसे और उसके पुत्र एडवर्ड को गिरफ्तार कर लिया और राष्ट्र का ऋण चुकाने के लिए इंग्लैंड की ग्रेट कौंसिल की बैठक बुलाई। इस वेठक में प्रत्येक जिले और प्रत्येक नगर से जनता के दो-दो प्रतिनिधि बुलाये गये। इसी दिन से ग्रेट कौन्सिल का नाम 'पार्लमेंट' रक्खा गया जिसने आगे जाकर सारे इंग्लैंड के इतिहास का निर्माण किया। इसीलिए साइमन-डी माण्डफोर्ट को इंग्लैंड के इतिहास में "फादर ऑफ दी पार्लमेंट' कहा जाता है।

शतवर्षीय युद्ध

अंजो राजवंश के राजा एडवर्ड तृतीय के समय में इंग्लैंड का फ्रांस के साथ एक लम्बा युद्ध प्रारम्भ हुआ जो धीरे-धीरे करीब सौ वर्ष तक चला। इस सौ वर्षीय युद्ध में दो बार क्रेसी और पोयटिअर्स की लड़ाइयों में इंग्लैंड की बहुत बड़ी जीत और दो बार बहुत बड़ी हार हुई। सन् १४१५ में एगिन कोर्ट की लड़ाई में इंग्लैंड की भारी विजय हुई। हेनरी षष्ठ के समय में फ्रांस की सुप्रसिद्ध महिला जोन ऑफ आर्क को अंग्रेजों ने पकड़ कर जीवित जला दिया।

अंजो राजवंश के काल में ही सन् १३४६ में इंग्लैंड में ब्लेक डेथ नामक महामारी (Black Death) अत्यंत भयंकरता से फैली जिसमें गाँव के गाँव उजाड़ हो गये। इस महामारी की वजह से मजदूरों की संख्या बहुत कम हो गई। जिसके परिणाम स्वरूप मजदूरी की दर बढ़ाने की माँग मंजूर न होने पर उन्होंने एक बड़ा संगठित विद्रोह किया जो इंग्लैंड के इतिहास में पीसेएट रीह्वोल्ट (Peasant Revolt) कहलाता है।

इसी अंजो राजवंश के समय में एशिया माइनर में तुर्कों से ईसाइयों के पवित्र धर्म युद्ध—जिन्हें क्रूसेड कहते हैं—हुए, जिनमें इंग्लैंड के राजघंश और ईसाइयों ने भी भाग लिया था। क्रूसेड का विस्तृत वर्णन "क्रूसेड" शब्द में अगले भाग में देखें।

अंजो राजवंश के अन्तिम राजा रिचर्ड द्वितीय के समय में इंग्लैंड में जॉन विक्लिफ नामक एक इतिहास प्रसिद्ध धर्म सुधारक हुआ। इसने रोमनचर्च की संस्था के दोषों को सबसे पहले जनता पर प्रकाशित किया। उसने बाइबिल का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया। विक्लिफ के अनुयायी लोलार्ड्स (Lollards) कहलाते थे। मगर विक्लिफ का प्रयत्न उस समय की समाज स्थिति में सफल नहीं हुआ और उसके एक दो अनुमायी जीवित जला दिये गये। रिचर्ड द्वितीय को पार्लमेण्ट से झगड़ा हो जाने के कारण जेल में डाल दिया गया, वहीं उसकी मृत्यु हुई और उसके साथ ही अंजो राजवंश का अन्त हो गया। रिचर्ड द्वितीय ने सन् १३७७ से १३९९ तक २२ वर्ष राज्य किया।

गुलाबों का युद्ध

अंजो राजवंश का अन्त हो जाने पर इंग्लैंड के सिंहासन के लिए एडवर्ड तृतीय के पुत्रों के उत्तराधिकारियों में बड़ी लड़ाई चली। यह लड़ाई इंग्लैंड के इतिहास में "गुलाबों का युद्ध" (War of the Roses) के नाम से प्रसिद्ध है। इंग्लैंड की पन्द्रहवीं सदी का सारा इतिहास इन झगड़े बखेड़ों से भरा हुआ है। एक तरफ एडवर्ड तृतीय के उत्तराधिकारी लंकास्टर वंश के लोग और दूसरी तरफ एडवर्ड तृतीय के दूसरे और चौथे पुत्रों से सम्बन्ध रखने वाले यार्क वंश के लोग राज्य पर अपना-अपना दावा बतलाते थे। लंकास्टर वालों का निशान लाल गुलाब और यार्क वालों का निशान सफेद गुलाब था। इसलिए इन दोनों वंशों के पारस्परिक युद्ध को गुलाबों का युद्ध कहते हैं।

सन् १३९९ में इंग्लैंड की पार्लमेंट ने लंकास्टर वंश के प्रथम राजा हेनरी चतुर्थ को इंग्लैंड की गद्दी पर बिठाया। तब से सन् १४६७ तक इस वंश ने इंग्लैंड पर राज्य किया उसके पश्चात् सन् १४६७ से १४८३ तक यार्क वंश ने इंग्लैंड पर राज्य किया।

ट्यूडर राजवंश

यार्क वंश के राजा एडवर्ड चतुर्थ की सन् १४८३ में मृत्यु हुई और उसके स्थान पर उसका १३ वर्ष का नाबालिग पुत्र एडवर्ड पंचम के नाम से गद्दी पर बैठा और

उसका चाचा रिचर्ड उसका संरक्षक बना। मगर कुछ ही समय बाद रिचर्ड के दिल में बेईमानी आई और उसने एडवर्ड पंचम को गद्दी से उतार कर कुछ समय बाद मरवा डाला और स्वयं रिचर्ड (Richard) तृतीय के नाम से राजा बन बैठा।

मगर कुछ ही समय पश्चात् ट्यूडर वंश के हेनरी ट्यूडर ने कुछ सेना इकट्ठी कर रिचर्ड पर चढ़ाई कर दी और बड़ी घमासान लड़ाई के पश्चात् रिचर्ड तृतीय को मार कर इंग्लैण्ड की गद्दी पर हेनरी सप्तम के नाम से बैठा। हेनरी ट्यूडर का रिश्ता लंकास्टर वंश के साथ था और यार्क वंश की उत्तराधिकारिणी एडवर्ड चतुर्थ की कन्या एलिजाबेथ से विवाह करने का वचन देकर उसने यार्क वंश की सहानुभूति भी प्राप्त कर ली थी। इस ट्यूडर राजवंश का काल इंग्लैण्ड के इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण है। इसमें इंग्लैण्ड में कई धर्म सुधार हुए, भूमि पतियों की मनमानी का दमन हुआ, अर्न्तदेशीय राज विवाह प्रारम्भ हुए और सुदृढ़ परराष्ट्र नीति का निर्माण हुआ। इसी शासन के काल में समुद्र मार्गों से नये-नये देशों की खोज हुई, उपनिवेश बने, युद्ध कला में सुधार और हुए छापे की मशीन का निर्माण हुआ।

हेनरी सप्तम

१—हेनरी सप्तम का राज्यकाल सन् १४८५ से १५०६ तक रहा। उसने अपने राज्य काल में भूमिपतियों की शक्ति कम करने के लिए एक कानून (Statute of Livery) बनाया। जिसके द्वारा भूमि पतियों को अपनी निज की सेना रखने की मनाई कर दी गई। इससे पहले ये भूमिपति अपनी निज की सेना रखते थे। इन भूमि पतियों के लिए उसने "कोर्ट ऑफ स्टार चेम्बर" नामक (Court of Star Chamber) एक नवीन न्यायालय की स्थापना की। उसमें उच्च श्रेणी के सात न्यायाधीश बैठते थे और भूमिपतियों का प्रभाव वहाँ बिलकुल नहीं पड़ता था।

इसके अलावा राजकोष को धन से भरा पूरा रखने के लिए भी हेनरी सप्तम ने कई तरीके अपनाये। उसने धनिक लोगों से राजकोष के लिए दान के रूप में सहायता लेने की एक प्रथा निकाली। इस प्रथा का नाम बेनेव्होलेंस (Benevolence) रक्खा गया। इस प्रकार की प्रथाओं के द्वारा उसने अपने लिए और अपने उत्तराधिकारियों के लिए राजकोष में इतना धन संचय कर लिया कि पार्लियामेंट से कोई सहायता लेने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी। इस प्रकार ट्यूडर शासन में पार्लमेंट अपने आप कमजोर हो गई।

हेनरी सप्तम ने अपनी परराष्ट्र नीति को बहुत उदार बनाया। इस नीति को सफल करने के लिए उसने राजवंश में अन्तर्राष्ट्रीय विवाह शुरू किये। उसने अपने पुत्र आर्थर का विवाह स्पेन की राजकुमारी कैथेराइन से किया और आर्थर के मरने पर उसी कैथेराइन का विवाह अपने छोटे पुत्र से कर दिया। इसी प्रकार स्कॉटलैण्ड से अपने सम्बन्ध सुधारने के लिए अपनी पुत्री मार्गरेट का विवाह स्कॉटलैण्ड के राजा जेम्स चतुर्थ से कर दिया। इसी विवाह के दूरवर्त्ती परिणाम हुए। इसके फलस्वरूप आगे जाकर इंग्लैण्ड और स्कॉटलैण्ड के राज्य एक ही साम्राज्य के अंग हो गये।

हेनरी अष्टम

सन् १५०६ में हेनरी सप्तम की मृत्यु हो जाने पर उसका छोटा पुत्र हेनरी अष्टम के नाम से इंग्लैण्ड की गद्दी पर बैठा। यह राजा बड़ा सुन्दर, शौकीन तबियत वाला और प्रजा का बड़ा प्रेम-पात्र था। गद्दी पर बैठते ही इसने अपने पिता के वफादार दो मंत्री एम्पसन और डडले को मरवा डाला और वूल्जे (Wolsey) नामक एक विद्वान पादरी को अपना प्रधान मंत्री बनाया। वूल्जे पहला अंग्रेज राजनीतिज्ञ था जिसने यूरोप में शक्ति संतुलन (Balance of Power) के सिद्धान्त का सूत्र पात किया। उस समय यूरोप में स्पेन और फ्रांस दो देश बड़े शक्तिशाली थे। इन दोनों में से जिसके साथ इंग्लैण्ड हो जाता उसी का पलड़ा भारी हो जाता था। इसलिए दोनों ही देश इंग्लैण्ड की सहायता के इच्छुक रहते थे और इस प्रकार यूरोपीय राजनीति में इंग्लैण्ड का दबदबा बैठ गया।

इसी समय हेनरी अष्टम का प्रेम एनी बोलन (Anne Boylen) नामक एक सुन्दर नव युवती से हो गया और उससे विवाह करने के लिए उसने पहली पत्नी कैथेराइन को तलाक देना चाहा, मगर इसके लिए पोप की आज्ञा लेना आवश्यक था। इसलिए वूल्जे को उसने पोप की आज्ञा लेने का भार सौंपा, मगर वूल्जे के प्रयत्न के बाव-

जूद पोप ने इस तरह का फतवा देने से इन्कार किया। वूल्जे की इस असफलता से नाराज होकर हेनरी ने वूल्जे को सब पदों से हटा दिया और उसे बुरी तरह तंग करने लगा। इसी झमेले में वूल्जे की मृत्यु हो गई।

तब हेनरी ने पार्लमेंट से कुछ कानून पास करवाकर पोप के अधिकार को ही इंग्लैंड में खतम करवा दिया और कैण्टर बरी के बड़े पादरी से व्यवस्था लेकर कैथेराइन का परित्याग कर एनी बोलन से विवाह कर लिया।

इसके पश्चात् हेनरी ने इंगलैंड में ईसाई धर्म के मठों को (Monasteries)—जिनमें बहुत से ईसाई साधु और साध्वियाँ रहा करते थे मगर जो समय पाकर अनैतिकता में डूब गये थे—तोड़कर उनकी सम्पति और जायदादों को जप्त कर लिया। इन मठों की रक्षा करने के लिए इंग्लैण्ड में एक बड़ा धार्मिक आन्दोलन भी उठा मगर उसे निर्दयता पूर्वक दबा दिया गया। वूल्जे के पश्चात् हेनरी ने टामस मोर और उसके बाद टॉमसक्रामवेल को अपना प्रधान मन्त्री बनाया मगर थोड़े-थोड़े समय बाद उनसे भी नाराज होकर उसने उनपर राजद्रोह का अपराध लगाकर मरवा डाला। सन १५४७ में हेनरी अष्टम की मृत्यु हो गई।

एडवर्ड षष्ठ

हेनरी अष्टम के पश्चात् उसकी तीसरी पत्नी जेन साइमर के गर्भ से उत्पन्न पुत्र एडवर्ड षष्ठ के नाम से गद्दी पर बैठा। उस समय उसकी उम्र केवल दस वर्ष की थी। इस लिए उसका मामा एडवर्ड साइमर, ड्यूक आफ समर सेट बनकर उसका संरक्षक हो गया।

ड्यूक आफ समरसेट ने धर्म सुधार आन्दोलन में विशेष रूप से भाग लिया। उसने इंगलैंड के धर्म को पूर्णतः प्रोटेस्टेण्ट बनाने का प्रयत्न किया मगर इससे जनता में बड़ा रोष उत्पन्न हुआ। दो एक स्थानों पर विद्रोह भी हो गये। एक विद्रोह को शान्त करने में वह असमर्थ रहा, इससे राजा ने उसे अपने पद से हटा दिया और राजद्रोह का अभियोग लगाकर मरवा डाला।

एडवर्ड षष्ठ का सोलह वर्ष की अवस्था में क्षयरोग से देहान्त हो गया। उसके पश्चात् उसकी छोटी बहिन जेनग्रे इंगलैंड की गद्दी पर बैठी मगर वह केवल नौ दिन राज्य कर पाई बाद में मेरी के सहायकों ने उसे गद्दी से हटा दिया। उसके बाद एडवर्ड षष्ठ की बड़ी बहन कैथराइन की पुत्री मेरी सिंहासन पर बैठी।

मेरी ट्यूडर

सन् १५५३ में एडवर्ड षष्ठ की मृत्यु के बाद रानी मेरी ट्यूडर गद्दी पर बैठी। रानी मेरी कट्टर रोमन कैथोलिक धर्म की मानने वाली थी और इंग्लैंड के चर्च पर छाये हुए प्रोटेस्टेंट रंग को मिटाकर उसे विशुद्ध कैथोलिक बना देना चाहती थी। इसी कारण उसने स्पेन के सम्राट फिलिप द्वितीय से विवाह करने की इच्छा प्रकट की मगर इंगलैण्ड की जनता इस सम्बन्ध को बिलकुल पसन्द नहीं करती थी। इस कारण वॉट (Wyatt) के नेतृत्व में मेरी के इस निश्चय के खिलाफ एक विद्रोह भी हुआ पर उसे दबा दिया गया और रानी ने अपनी छोटी बहिन एलिजाबेथ को टॉवर में कैद कर दिया। पार्लमेंट को अन्त में मेरी के इस विवाह की स्वीकृति देनी पड़ी।

इसके बाद रानी मेरी ने अंग्रेजी चर्च को फिर से पोप के अधीन कर दिया, सब प्रोटेस्टण्ट लोगों को कैथोलिक धर्म अंगीकार करने के लिए कहा और जिन लोगों ने कैथोलिक धर्म को अंगीकार नहीं किया उन्हें इंक्वीजीशन अदालत के द्वारा जीवित जलाये जाने की सजा दिलाई। करीब ३०० प्रोटेस्टेंट लोग जीवित जलाये गये। इनमें रौलेंण्ड टेलर (Rowland Taylor), लैटिमर (Latimer), रिडले (Ridly) और क्रेन्मर के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

मेरी के इन कुकार्यों से जनता उससे बहुत नाराज हो गई। उधर स्पेन के राजा फिलिप ने कुरूप होने की वजह से मेरी की तलाक दे दी। तीसरी ओर फ्रांस की लड़ाई में उसकी हार हुई और कैले बन्दर उसके हाथ से निकल गया। इन सब घटनाओं के कारण उसका अन्तिम जीवन बड़ा दुःखपूर्ण रहा और सन् १५५८ में उसकी मृत्यु हो गई।

महरानी एलिजाबेथ (१५५८–१६०४)

ट्यूडर वंश की महारानी एलिजाबेथ के समय में इंग्लैण्ड का इतिहास एक नई करवट लेता है और नया जीवन प्राप्त करता है। वैसे ट्यूडर शासन के प्रारम्भ ही से शान्तिपूर्ण व्यवस्था, शिक्षा, साहित्य और विज्ञान की

उन्नति, तथा धार्मिक अन्ध श्रद्धा के विरुद्ध जिहाद का प्रारम्भ हो चुका था, लोगों का दृष्टिकोण विशाल होने लग गया था मगर महारानी एलिजावेथ के राज्यकाल में सर्वांगीण विकास का यह क्रम अपनी परिपक्व अवस्था में पहुँच गया। अब इंग्लैण्ड की प्रतिष्ठा केवल यूरोप में ही नहीं सारे विश्व में जमने जा रही थी। यह वह समय था जब अंग्रेज जाति का भाग्य-सूर्य्य, मन्द मन्द मुस्कुरा रहा था, उसको सफलता पर सफलता मिलती जा रही थी और यह सफलता एक मुखी नहीं सर्वाङ्गमुखी थी।

रानी एलिजावेथ ने ४६ वर्ष के दीर्घकाल तक इंग्लैण्ड के सिंहासन पर राज्य किया। महारानी एलिजावेथ शासन की जन्मजात प्रतिमा से सम्पन्न थी। वह अत्यन्त बुद्धिमती, अनुशासनप्रिय, धर्मनिरपेक्ष, गर्वीली और और दृढ संकल्प शक्तिवाली तेजस्वी महिला थी। व्यक्तिगत स्वाधीनता और शौर्य की रक्षा के लिए उसने विवाह करके किसी मर्द के सामने झुकना पसन्द नहीं किया। इसका यह मतलब नहीं कि नारी सुलभ चंचलता या यौवन की मादकता से वह वंचित थी मगर इन सब चीजों की पूर्ति के लिए विवाह की आवश्यकता को उसने कभी महसूस नहीं किया अपनी माता एनी बोलेन की तरह उसे भी सज धज और श्रृंगार का बहुत शौक था।

महारानी एलिजावेथ के शासन के काल में देश में अनुकूल और प्रतिकूल अनेक घटनाएँ घटीं, मगर इन संघर्षों की तीव्रता ने उसकी सूझ और बुद्धि को कभी कुंठित नहीं किया। कठिन से कठिन समय में समस्याओं को सुलझाने की उसमें असीम योग्यता थी। यही कारण है कि उस समय के पूर्ण शक्तिसम्पन्न राज्य स्पेन के विशाल जहाजी वेड़े आर्मेडा के आक्रमण को उसने इस कुशलता के साथ विफल किया कि सारा संसार चकित रह गया।

एलिजावेथ के शासन काल की प्रधान घटनाएँ इस प्रकार हैं।

(१) समुद्र यात्रा के द्वारा संसार के नये नये देशों की खोज और उनमें अंग्रेज उपनिवेशों का प्रारम्भ।

(२) स्पेन और इंगलैण्ड का युद्ध, आर्मेडा की पराजय।

(३) भोग-विलास की वृद्धि।

(४) साहित्य और कला की उन्नति।

समुद्रीशक्ति का विकास

एलिजावेथ शासन के पहले तक यूरोप में स्पेन और पुर्तगाल वाले ही समुद्र की बड़ी यात्राएँ करते थे। पन्द्रहवीं सदी का प्रसिद्ध यात्री कोलम्बस स्पेन के खर्च से समुद्र यात्रा पर गया था, वास्कोडिगामा पुर्तगाल का निवासी था। स्पेन और पुर्तगाल के झगड़े को मिटाने के लिए पोप ने अजोर्स समझौते के अनुसार अजोर्स के पूर्वीय क्षेत्र को पुर्तगाल को तथा पश्चिमी हिस्से को स्पेन की तरफ बाँट दिया था। इस समझौते के अनुसार अमेरिका महाद्वीप स्पेन के हिस्से में तथा भारत, चीन, जापान इत्यादि पूर्वी मुल्क पुर्तगाल के हिस्से में आये। इन दोनों शक्तियों के ऊपर कोई तीसरी शक्ति भी हावी हो सकती है इसका ज्ञान उस समय किसी को नहीं था।

मगर एलिजावेथ ने अपनी समुद्री शक्ति बढ़ाने और सामुद्रिक उपनिवेशों की खोज में बड़ी दिलचस्पी ली और इस कार्य्य में उसे वाल्टर रैले, हाकिन्स और ड्रेक जैसे सहयोगी भी मिल गये। वाल्टर रैले ने अमेरिका में पहला अंग्रेजी उपनिवेश स्थापित किया और उसका नाम "वर्जीनिया" रक्खा। ड्रेक पहला अंग्रेज था जिसने पैसफिक महासागर को पार किया और कठिन समुद्रयात्रा में तीन वर्ष तक चक्कर लगाता रहा और फिर बहुत-सा धन लेकर इंग्लैण्ड लौट आया। सारे भूमण्डल की समुद्र यात्रा करने के उपलक्ष्य में उसे रानी ने नाईट (Knight) की उपाधि प्रदान की।

स्पेन और इंग्लैण्ड का युद्ध—आर्मेडा की पराजय

सन् १५८० में स्पेन और पुर्त्तगाल दोनों के सिंहासन एक ही राजा के अधिकार में आजाने से राजा फिलिप द्वितीय की शक्ति बहुत बढ़ गई। फिलिप ने अपने शक्ति मद में आकर इंगलैण्ड के कैथोलिक लोगों को रानी एलिजावेथ के खिलाफ भड़काना प्रारम्भ किया। एलिजावेथ ने भी इसका बदला लेने के लिए स्पेन के खिलाफ चलने वाले नैदरलैण्ड के प्रोटेस्टेण्टों के स्वतन्त्र प्रजातन्त्र आन्दोलन को सहायता पहुँचाई। उसने राबर्ट डडले और अर्ल आफ लीसेस्टर को नैदरलैण्ड वासियों की सहायता पर भेजा।

दूसरी ओर रानी एलिजाबेथ ने समुद्र में लूटमार करने वाले वाल्टर रैले, ड्रेक, हाकिन्स इत्यादि साहसिक लोगों को स्पेन के जहाजों को लूट लेने के लिए उत्तेजित किया। इन समुद्री लुटेरों ने स्पेन के जहाजों को लूटना अपना पेशा बना लिया।

इससे क्रुद्ध होकर स्पेन के राजा फिलिप ने आर्मेडा नामक एक विशाल जहाजी बेड़े के द्वारा इंग्लैंण्ड पर आक्रमण कर दिया (विशेष वर्णन "आर्मेडा" शब्द में पहले भाग के अन्दर देखें) मगर लार्ड हावर्ड नामक एक अंग्रेज के नेतृत्व में वाल्टररैले, ड्रेक और हाकिन्स के साहस पूर्ण मुकाबिले से और समुद्री हवा के अंग्रेजों के पक्ष में बहने से अंग्रेजी जल सेना ने आर्मेडा को भयङ्कर पराजय दी। बहुत से जहाजों में आग लगा दी और बहुत से भागते हुए डूब गए। बहुत ही थोड़े जहाज स्पेन पहुँच सके।

इस भारी विजय के उपलक्ष्य में इंग्लैण्ड में भारी जलसा मनाया गया। इस विजय से सारे यूरोप में इंग्लैण्ड की जलशक्ति का दब-दबा बैठ गया और स्पेन का घमण्ड चूर-चूर हो गया।

साहित्य और कला की उन्नति

महारानी एलिजाबेथ के शासन काल में इंग्लैण्ड के व्यापार की बहुत वृद्धि हुई। देश में धन की प्रचुरता होने से लोगों का रहन-सहन भी ऊँचा होने लगा। लण्डन शहर में और देश के दूसरे शहरों में बड़ी-बड़ी भव्य इमारतों का निर्माण होने लगा। जिससे देश की रौनक बहुत बढ़ गई।

देश में साहित्य और कला का भी द्रुतगति से विकास हुआ। (विशेष वर्णन "अंग्रेजी साहित्य" नाम के साथ पहले भाग में देखें) विश्व का महान् प्रतिभाशाली नाटक कार "शेक्सपीयर" एलिजाबेथ युग की देन है। इसके अतिरिक्त इंगलैण्ड में रंगमंच का रचयिता टॉमसकीड, प्रसिद्ध नाटककार क्रिस्टोफर मार्लो, प्रसिद्ध गद्यलेखक फ्रांसिस बेकन, कविता जगत का महान् कवि एडमण्ड स्पेन्सर भी इसी युग में पैदा हुए। जिन्होंने अंग्रेजी साहित्य में एक नवीन चेतना का सञ्चार कर दिया।

सन् १६०३ में महारानी एलिजाबेथ का देहान्त हुआ और उसके साथ ही ट्यूडरवंश की सत्ता इंगलैण्ड में समाप्त हो गई। ट्यूडर राज वंश में तीन-चार शासक बड़े प्रभावशाली और प्रजाप्रिय हुए। यद्यपि वे पूर्णरूप से स्वेच्छाचारी थे और पार्लमेंट को इन राजाओं ने अपनी चतुराई से अत्यन्त शक्तिहीन कर दिया था मगर बुद्धिमानी पूर्ण शासन और राष्ट्र की शक्ति और विकास में पूरी दिलचस्पी लेने के कारण जनता के ये बड़े प्रियपात्र हो गये थे। इंगलैण्ड के पुनर्जागरण और उत्थान में इस राजवंश का बड़ा सहयोग रहा।

स्टुअर्ट राजवंश

एलिजाबेथ की मृत्यु के पश्चात् हेनरी अष्टम की बड़ी बहन मार्गरेट का परपोता स्कांटलैण्ड का स्टुअर्ट राजा जेम्स इंगलैण्ड की गद्दी पर भी "जेम्स प्रथम" के नाम से बैठा। इस राजा के इंगलैण्ड की गद्दी पर आ जाने से इंगलैण्ड और स्काटलैण्ड के सिंहासन मिलकर एक हो गये और इन दोनों देशों के बीच चलने वाली परम्परा गत शत्रुता भी समाप्त हो गई। इन दोनों देशों के झण्डे भी मिला दिये गये और सम्मिलित झण्डे का नाम भी यूनियन जैक रक्खा गया। तब से आज तक ये दोनों देश एक ही शासन के अधीन रह रहे हैं और स्कांटलैण्ड इंगलैण्ड का एक भाग हो गया है।

स्टुअर्ट राजवंश के समय में भी इंगलैण्ड के इतिहास में बड़ी महत्वपूर्ण घटनाएँ हुई। ऐसी घटनाएँ जिन्होंने इंगलैण्ड के इतिहास की धारा बदलती।

इन घटनाओं में राजा और पार्लमेंट का झगड़ा, पार्लमेंट द्वारा चार्ल्स प्रथम को मृत्यु दण्ड देना, क्रामवेल का उदय, चार्ल्स की मृत्यु के पश्चात प्रजातन्त्र के नाम पर क्रामवेल द्वारा सैनिक तन्त्र की स्थापना, क्रामवेल के पश्चात् प्रजातन्त्र की पूर्ण असफलता और उसके पश्चात् फिर से राजा की स्थापना अपना बड़ा महत्व रखती हैं।

राजा जेम्स प्रथम

राजा जेम्स प्रथम का राज्य काल सन् १६०३ से १६२५ तक है। जिस समय जेम्स गद्दी पर बैठा उस समय यूरोप में रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्ट रियासतों के बीच एक तीस वर्षीय युद्ध चल रहा था। इस युद्ध में राजा

जेम्स का दामाद बोहीमिया का राजा फ्रेडरिक भी शामिल था। आस्ट्रिया की सेना ने राजा फ्रेडरिक को बुरी तरह हरा दिया। इंगलैण्ड की प्रोटेस्टेण्ट जनता इससे बड़ी दुखी हुई और उसने फ्रेडरिक की मदद करने के लिए राजा से प्रार्थना की, मगर जेम्स ने फ्रेडरिक की कोई मदद नहीं की। उसकी परराष्ट्र नीति दोनों दलों से मित्रता करके यूरोप में शान्ति स्थापना करने की थी। इस उद्देश्य की सफलता के लिए उसने अपने लड़के चार्ल्स का विवाह स्पेन की कैथोलिक राजकन्या इन्फेण्टा से करना चाहा। मगर स्पेन वाले अपनी कन्या प्रोटेस्टेंटों को देना पसन्द नहीं करते थे उन्होंने जेम्स की माँग को अपमान पूर्वक ठुकरा दिया। इससे क्रुद्ध होकर उसने फ्रेडरिक की मदद के लिए सेना भेजी मगर वह सेना कुछ भी नहीं कर सकी। इसी बीच जेम्स प्रथम की मृत्यु हो गई।

चार्ल्स प्रथम

चार्ल्स प्रथम का राज्य काल सन् १६२५ से १६४९ तक है। यह अपने पिता जेम्स की मृत्यु के पश्चात् इंगलैण्ड की राजगद्दी पर बैठा। इसका विवाह फ्रांस के राजा की बहन हेनरीटा मेरिया (Henrietta Maria) से हुआ। यह रानी कट्टर कैथोलिक थी। इसने अपने प्रभाव से चार्ल्स प्रथम का झुकाव भी कैथोलिक मत की ओर कर लिया था। यह भी एक कारण था जिसकी वजह से चार्ल्स इंगलैण्ड की प्रोटेस्टेण्ट जनता में लोकप्रिय न हो सका।

चार्ल्स प्रथम के राज्यकाल की सबसे मशहूर घटना जिसने इंगलैण्ड के इतिहास में नवीन युग का प्रारम्भ किया राजा और पार्लमेंट के बीच का तूफानी संघर्ष है। राजा चार्ल्स ने शासकीय खर्च चलाने के लिए धन की स्वीकृति देने के लिए दो बार पार्लमेंट की बैठकें बुलाईं, मगर पार्लमेंट ने धन देने से इन्कार कर दिया।

जब तीसरी बार सन् १६२८ में उसने पार्लमेंट की बैठक बुलाई उस समय पार्लमेंट की लोकसभा ने अपने नेता इलियट (Elliot) नामक व्यक्ति के नेतृत्व में एक अत्यन्त महत्व का खलीता प्रस्ताव के रूप में पेश किया जो इंगलैण्ड के इतिहास में "मेग्नाचार्टा" के पश्चात् दूसरे स्वतन्त्रता पत्र के रूप में :—

पिटीशन ऑफ राइट
(Petition of Right)

के नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रस्ताव की मुख्य धाराएँ इस प्रकार थीं।

१—बिना पार्लमेंट की स्वीकृति के राजा देश पर किसी प्रकार का कर नहीं लगा सकता और न ऋण या भेंट के लिए किसी को बाध्य कर सकता है।

२—न्यायालय में अपराध का नियमानुसार निर्णय हुए बिना राजा किसी को भी जेल नहीं भेज सकता।

३—गृहस्थ लोगों के यहाँ उनकी मरजी के बिना सैनिकों को नहीं ठहराया जा सकता।

४—शांति के समय किसी भी नागरिक पर फौजी अदालत में अभियोग नहीं चलाया जा सकता।

राजा को पार्लमेंट के दबाव से मजबूरन इस खलीते पर दस्तखत करना पड़े और उसी समय से इस खलीते की सब धाराएँ राज नियम के रूप में बन गईं।

मगर इसके बाद चार्ल्स ने ग्यारह वर्ष तक पार्लमेंट का अधिवेशन नहीं बुलाया और मनमाने ढङ्ग से शासन किया। इस निरंकुश शासन में उसे टामस वेण्टवर्थ (Thomas Wentworth) नामक व्यक्ति से बड़ी मदद मिली।

मे-फ्लावर जहाज

इन्हीं दिनों चार्ल्स ने कैण्टरबरी के प्रधान पादरी लॉड (Laud) की सलाह से प्यूरिटन नामक धर्म सुधारक लोगों पर धार्मिक न्यायालय के द्वारा बड़े बड़े अत्याचार किये। इसी समय में बहुसंख्यक प्यूरिटिन लोग इन अत्याचारों से तङ्ग आकर इंग्लैंड छोड़कर मे-फ्लावर जहाज के द्वारा अमेरिका के अज्ञात प्रदेश में चले गये और वहाँ जाकर उन्होंने अपने उपनिवेश स्थापित किये। इसका पूरा वर्णन "अमरीका" नाम के अन्तर्गत प्रथम भाग में देखें।

लांग पार्लमेंट (Long parliment)

सन् १६४० में धन की कमी पड़ जाने से चार्ल्स प्रथम ने पार्लमेंट का अधिवेश बुलाया। इस अधिवेशन में लोकसभा का नेता पिम (Pym) नामक व्यक्ति था। इस पार्लमेंट ने सबसे पहले "स्टैफर्ड" और "लॉड" नामक

राजमंत्रियों पर देशद्रोह का अभियोग लगाकर मृत्यु दण्ड दिया। इंग्लैण्ड में स्थापित धार्मिक न्यायालय (High commission court) और हेनरी सप्तम के द्वारा स्थापित स्टार चेम्बर (Star chamber) को समाप्त कर दिया।

इसी अधिवेशन में पिम और रैम्पडन के नेतृत्व में राजा के विरुद्ध महान विरोध पत्र (The grand remonstrance) पेश किया गया, इसमें चार्ल्स के समस्त अत्याचारों का उल्लेख किया गया और इस बात पर जोर दिया गया कि लोकसभा के विश्वासपात्र व्यक्ति ही राजमंत्री बनाये जाँय।

इन सारी बातों के परिणामस्वरूप तथा धर्म सुधार के प्रश्न पर पार्लमेंट में दो दल हो जाने के कारण राजा और पार्लमेंट के बीच खुली लड़ाई चल निकली। हाईचर्च पार्टी ने राजा का पक्ष लिया और प्यूरीटिन दलवालों ने पार्लमेंट के पक्ष में राजा से युद्ध किया।

आलिवर क्रामवेल

इसी समय इंग्लैण्ड के राजनैतिक मंच पर आलिवर क्रामवेल अवतीर्ण होता है। यह बड़ा साहसी और बहादुर व्यक्ति था। इसके सैनिक आयरन् साइड्स या लोह पुरुष कहलाते थे। इसने एक नवीन सेना न्यू मॉडल आर्मी (The New model Army) के नाम से संगठित की।

राजा चार्ल्स को मृत्यु दण्ड

इस नई सेना ने राजा को पहली बार नेजबाई नामक स्थान पर और दूसरी बार स्काटलैण्ड वालों के साथ परास्त कर पकड़ लिया और उस पर देशद्रोह के अपराध में अभियोग चलाया। पार्लमेंट के जो सदस्य उसे सजा देने के पक्ष में थे सिर्फ उन्हीं को सेना ने पार्लमेंट भवन में जाने दिया। तुरन्त ही सिर्फ ८० मेम्बरों की इस रम्प (Rump) पार्लमेंट ने एक न्याय समिति बनाकर ब्रेडशा को उसका प्रधान बनाया। इस समिति ने राजा को मौत की सजा सुनाई और ३० जनवरी १६४९ को अपने ही राजभवन के सामने इंग्लैण्ड के इस प्रतापी राजा को मौत की सजा दी गयी।

राजा की मृत्यु के पश्चात् स्कॉटलैण्ड वालों ने तथा आयरलैण्ड वालों ने चार्ल्स प्रथम के पुत्र चार्ल्स द्वितीय को अपना राजा मानकर प्रजातंत्र के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। तब क्रामवेल ने एक मजबूत सेना लेकर आयरलैण्ड और स्कॉटलैण्ड को अलग-अलग लड़ाइयों में परास्त किया।

मगर इसके बाद रम्प पार्लमेंट शासन करने में असफल रही और जनता में उसको बहुत बदनामी हो गई। तब क्रामवेल ने सन् १६५३ के अप्रैल मास में कुछ सैनिकों के साथ सभा भवन में जाकर सब सदस्यों को वहाँ से निकाल दिया।

अभी तक इंग्लैण्ड में प्रजातंत्र की भावनाएँ पूरी तरह परिपक्व नहीं हो पाई थीं। यही कारण था जिससे पार्लमेंट क्रामवेल के हाथ की कठपुतली हो गई। प्रजातन्त्र के संरक्षक के रूप में वह एक शक्तिशाली डिक्टेटर हो गया और पार्लमेंट के साथ उसका भी उसी प्रकार झगड़ा चलने लगा जिस प्रकार स्टुअर्ट राजाओं का पार्लमेंट के साथ चला था। जहाँ भी पार्लमेंट के साथ उसका मतभेद होता था वह पार्लमेंट को दबा देता था। सितम्बर सन् १६५४ में पार्लमेंट का एक चुनाव कराया गया मगर उसके मेम्बरों का निर्वाचन क्रामवेल को पसन्द नहीं आया, इस लिए चार महीने बाद ही उस पार्लमेंट को उसने भंग कर दिया गया। फिर १६५६ में एक और पार्लमेंट हुई क्रामवेल ने उसके भी १०० सदस्यों को निकाल दिया।

अन्त में पार्लमेंट का एक ऐसा अधिवेशन हुआ जिसके सब सदस्य क्रामवेल के समर्थक थे। इस अधिवेशन में दी हम्बल एडवाइस एण्ड पिटीशन (The Humble Advice and Petetion) या नम्र सलाह रूप में एक नई शासन प्रणाली का मसविदा तैयार कर उसे क्रामवेल के सामने पेश किया।

इस मसविदे में क्रामवेल को राजा बनाने और अपना उत्तराधिकारी चुनने का अधिकार दिया गया और दूसरे प्रस्ताव में लोकसभा के साथ एक लार्ड सभा भी बनाने का अनुरोध किया गया था, मगर अपने विरोधियों की संख्या अधिक देख क्रामवेल ने राजा बनने से इन्कार कर दिया। मगर शासन का सारा कार्य राजा से भी अधिक शक्ति सम्पन्न होकर उसने किया।

क्रामवेल ने इंग्लैण्ड की शक्ति को बढ़ाने और विदेशों में उसका गौरव बढ़ाने का बहुत प्रयत्न किया। उसने हॉलैण्ड के साथ और स्पेन के साथ युद्ध में विजय प्राप्त कर इंग्लैण्ड की जल शक्ति को बहुत बढ़ाया। जिससे इंग्लैण्ड का विदेशी व्यापार बहुत बढ़ा। सन् १६५७ में उसने फ्रांस के साथ सन्धि कर ली। स्पेन की लड़ाई में विजय होने से स्पेन का जमैका टापू इंग्लैण्ड मिल गया और सन् १६५८ में डंकर्क भी इंग्लैण्ड को मिल गया इस प्रकार उसकी विदेशी नीति बहुत सफल रही।

सम्पूर्ण शक्ति सम्पन्न निरंकुश डिक्टेटर होने पर भी क्रामवेल का नाम इंग्लैण्ड के इतिहास में अमर है। क्रामवेल की मृत्यु सन् १६५८ में हुई।

फिर भी जिस सैनिक शासन की स्थापना उसने इंग्लैण्ड में कर रक्खी थी उससे तो वहाँ की जनता का विरोध ही था, वह अनुभव करने लगी थी कि सैनिक शासन से तो राज्य शासन ही बेहतर है। इन भावनाओं का परिणाम यह हुआ कि क्रामवेल के मरते ही उसका- बनाया हुआ सारा ढाँचा बिखर गया और इंग्लैण्ड की जनता ने त्रस्त होकर सन् १६६० में नई पार्लमेंट बना कर प्रथम चार्ल्स के पुत्र को द्वितीय चार्ल्स के नाम से इंग्लैण्ड के सिहासन पर बैठा दिया। इस प्रकार ग्यारह वर्ष के पश्चात् फिर राजतन्त्र का पुनरुत्थान हुआ।

राजतंत्र का पुनः प्रारम्भ

राजतन्त्र की पुनः स्थापना होते ही गत ग्यारह वर्षों की सारी कार्रवाई रद्द कर दी गई। तीन पलटनें रखकर शेष सारी सेना विसर्जित कर दी गई, जिस न्यायालय ने चार्ल्स प्रथम का शिरच्छेद करने का आदेश दिया था उसके सब सदस्यों को प्राण-दण्ड दिया गया। सबसे घृणित बात यह हुई कि सभापति ब्रेडशा और क्रामवेल की लाशों को कब्र से निकाल कर फाँसी पर लटकाया गया। मानवीय प्रतिहिंसा के उग्र से उग्र और पतित रूप का यह अत्यन्त वीभत्स उदाहरण था।

नई पार्लमेंट में केवल राजपक्ष के कैवेलियर लोग ही लिये गये। चार्ल्स द्वितीय के समय की प्रधान घटनाओं में हालैण्ड के साथ इंग्लैण्ड का युद्ध महत्त्वपूर्ण है। इस युद्ध में इंग्लैण्ड को अमेरिका में हालैण्ड का उपनिवेश न्यूएम्सटरडम मिला, जो बाद में न्यूयार्क के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

चार्ल्स द्वितीय के शासन की दूसरी महत्व पूर्ण घटना इंग्लैण्ड की फ्रान्स के साथ डोवर की गुप्त सन्धि थी। जिसके अनुसार हालैण्ड को जीतकर उसे आपस में बाँट लेने की योजना इन लोगों ने बनाई थी।

डोवर की इस सन्धि के परिणाम स्वरूप चार्ल्स ने हालैण्ड के जहाजों पर आक्रमण कर दिया। जिससे तीसरा डचयुद्ध प्रारम्भ हो गया। मगर इस लड़ाई में उधर तो डचलोगों ने अपूर्व वीरता का प्रदर्शन किया इधर इंग्लैण्ड की जनता ने राजा का साथ नहीं दिया। जिसके फलस्वरूप चार्ल्स द्वितीय को डच लोगों से संधि करनी पड़ी।

चार्ल्स की कामुकता, विषय लोलुपता और षड्यंत्र-मूलक बुद्धि से इंगलैण्ड वाले बड़े असन्तुष्ट थे। उसका दरबार व्यभिचार के लिए सारे यूरोप में प्रसिद्ध था, पर साहित्य और कला का वह बड़ा प्रेमी था। वह अस्थिर बुद्धि और दुर्बल हृदय का शासक था। भीतर से पक्का कैथोलिक होते हुए भी जनता के डर से वह अपने को कैथोलिक घोषित नहीं करता था। मरते समय ही उसने अपने आपको कैथोलिक घोषित करने का साहस किया।

चार्ल्स द्वितीय के समय में ही इंगलैण्ड की पार्लमेंट ने सन् १६७९ में हैबियस कार्पस ऐक्ट नामक प्रसिद्ध ऐक्ट को पास किया। इस ऐक्ट की गणना भी इंग्लैण्ड के सुप्रसिद्ध स्वतंत्रता पत्रकों में होती है।

चार्ल्स द्वितीय के समय में इंग्लैण्ड पर दो भारी प्राकृतिक प्रकोप हुए। सन् १६५५ में इंग्लैण्ड पर प्लेग की महामारी का भारी प्रकोप हुआ और लाखों आदमी इसके शिकार हो गये। इसके साल भर बाद लन्दन नगर में एक भारी आग लगी जिसके प्रकोप से ४०० गलियाँ ३०० गिरजे और १३००० घर जल कर भस्म हो गये।

इसी राजा के समय में पार्लमेंट के अन्तर्गत व्हिग और टोरी नामक दो दल बन गये जो तब से आज तक बराबर चले आते हैं।

चार्ल्स द्वितीय की मृत्यु सन् १६८५ में हो गई।

जेम्स-द्वितीय

चार्ल्स द्वितीय के पश्चात् उसका छोटा भाई ड्यूक-ऑफ-यार्क द्वितीय जेम्स के नाम से गद्दी पर बैठा। इसके

विरुद्ध चार्ल्स द्वितीय के दोगले पुत्र मोनमथ ने विद्रोह किया मगर वह अत्यन्त निष्ठुरता के साथ दबा दिया गया।

जेम्स द्वितीय का शासन काल भी रोमन कैथलिक और प्रोटेस्टेएट लोगों के संघर्ष से भरा हुआ रहा। राजा कैथोलिक सम्प्रदाय का था और उसने प्रोटेस्टेएट लोगों के साथ हर प्रकार के अत्याचार करना आरम्भ किया। अन्त में प्रजा ने दुःखी होकर उसके दामाद विलियम आरेंज को देश और चर्च की रक्षा के लिए आमंत्रित किया विलियम थोड़ी सी सेना के साथ इंग्लैएड पहुँचा। उस समय जेम्स द्वितीय के खिलाफ सारे इंगलैंड का वातावरण भयंकर हो रहा था। यह देख कर जेम्स राजगद्दी छोड़ कर फ्रान्स भाग गया और इंग्लैएड की राजगद्दी पर वहाँ की जनता ने बड़ी खुशी के साथ विलियम और उसकी पत्नी मेरी का राज्याभिषेक किया।

बिल ऑफ राईट्स

(Bill of Rights)

इंग्लैएड के इतिहास में यह अद्भुत परिवर्तन गौरवपूर्ण राजक्रान्ति (The Glorious Revolution) के नाम से प्रसिद्ध है। जिसमें सारा राज्य परिवर्तन हो गया मगर खून की एक बूंद भी न बही।

इसी समय इंगलैएड की पार्लमेंट ने बिल-ऑफ राइट्स (Bill of Rights) को कानून के रूप में स्वीकृत किया। जो अंग्रेजी शासन के इतिहास में तीसरे स्वतंत्रता पत्र (Third Great Charter of Liberty) के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें भी राजा के अधिकारों को मर्यादित और पार्लमेंट के अधिकारों को विस्तृत किया गया है।

इस गौरवपूर्ण राज्यक्रान्ति से इंग्लैएड के इतिहास में राजा और पार्लमेंट के बीच चलने वाले दीर्घकालीन झगड़े का हमेशा के लिए अन्त हो गया जो चारों स्टुअर्ट राजाओं के समय में बराबर चलता रहा था।

राजा विलियम और रानी मेरी

विलियम को राजगद्दी मिलते ही स्कॉटलैएड और आयरलैएड में उसके विरुद्ध तथा जेम्स द्वितीय के पक्ष में विद्रोह हुए मगर विलियम की सेना ने स्कॉटलैएड की पहाड़ी सेना को किलिक्रेन्की के युद्ध में और आयरलैंड की सेना को बोयन में बुरी तरह परास्त कर दिया।

विलियम एक साहसी; वीर तथा राजनीतिज्ञ व्यक्ति था। उसने यूरोप में शक्ति सन्तुलन बनाये रखने, फ्रान्स की शक्ति का पलड़ा भारी न होने देने का पूरा प्रयत्न किया। सन् १६८९ से १६९५ तक उसने नीदर-लैएड के लिए फ्रांस वालों से और सन् १७०२ से १७१३ तक स्पेन के उत्तराधिकार के लिए युद्ध किया। स्पेन का राजा चार्ल्स द्वितीय जब मृत्यु के समीप पहुँच गया तब उसने अपनी वसीयत में अपना उत्तराधिकारी अपने बहनोई फ्रान्स के राजा चौदहवें लुई के पोते फिलिप को बना दिया।

इस घटना से सारे योरप के राजनैतिक क्षेत्र में एक भूकम्प आ गया। चौदहवें लुई का फ्रेञ्च साम्राज्य वैसे ही बहुत बड़ा था और यदि उसमें स्पेन का साम्राज्य भी मिल जाता तो सारे यूरोप का शक्ति संतुलन फ्रान्स के हाथ में चला जाता।

विलियम ने इस योजना को विफल करने के लिए यूरोप के कई राज्यों का एक संघ बनाया। इस संघ का उद्देश्य यह था कि स्पेनिश साम्राज्य में कुछ बँटवारा करके आस्ट्रिया के राजकुमार चार्ल्स को स्पेन का सिंहासन दिलाया जाय क्योंकि यह राजकुमार भी फिलिप की तरह स्पेन का भानजा था।

इस प्रकार स्पेन के उत्तराधिकार का युद्ध प्रारम्भ हुआ मगर इसी बीच विलियम की मृत्यु हो गई और उसकी छोटी साली ऐन गद्दी पर बैठी।

स्पेन की लड़ाई में इंग्लैएड की सेना का सेनापति डयूक ऑफ मार्लबरो बड़ा कुशल सेनापति था। ब्लेन हेम (Blen heim) के प्रसिद्ध युद्ध में फ्रेंच सेना को हराकर उसने भारी विजय प्राप्त की और आस्ट्रिया को एक भारी संकट में पड़ने से उसने बचा लिया। स्थल की लड़ाई में अभी तक फ्रांसीसी सेना को इतनी बुरी तरह से किसी ने परास्त नहीं किया था।

इन्हीं दिनों अंग्रेजों की जल सेना ने रूक (Rook) और शोवेल (Schovell) के नेतृत्व में जाकर समुद्र में "जिब्राल्टर" के प्रसिद्ध मुहाने पर अधिकार कर लिया और यह रूस का फाटक अंग्रेजों के हाथ में आ गया।

यूट्रेक्ट की संधि

इसी समय सन् १७१३ में इंग्लैण्ड की पार्लमेंट में ह्विग दल का मंत्रिमण्डल समाप्त होकर टोरी दल का मंत्रिमण्डल स्थापित हुआ। यह दल शुरू से ही यूरोपीय लड़ाइयों में शामिल होने का विरोधी था। अतः सत्ता पर आते ही इस दल ने मार्लबरो को पदच्युत करके सन् १७१३ में यूट्रेक्ट की सन्धि कर ली। इस सन्धि में इंग्लैण्ड को जिब्राल्टर तथा अमेरिका में नवास्कोटिया और न्यूफाउण्डलैण्ड नामक उपनिवेश मिल गये। स्पेनिश साम्राज्य का इटाली वाला भाग तथा नीदरलैण्ड आस्ट्रिया के सम्राट चार्ल्स को दे दिये गये और स्पेन तथा स्पेन के अमेरिकन उपनिवेशों का राजा "फिलीप" को मान लिया गया, मगर यह निर्णय कर लिया गया कि स्पेन तथा फ्रांस को संयुक्त कभी न किया जाय। जिससे यूरोप का शक्ति संतुलन कायम रहे।

रानी एन के राज्यकाल की दूसरी महत्वपूर्ण घटना स्कॉटलैण्ड और इंग्लैण्ड की पार्लमेंट का संयुक्त होना है। जेम्स प्रथम के समय में स्कॉटलैण्ड और इंग्लैण्ड के राज सिंहासन तो एक हो गये थे मगर अभी तक दोनों देशों की पार्लमेंट अलग अलग थीं। सन् १७०७ में दोनों देशों की पार्लमेंट को मिलाकर एक कर दिया गया। इस नवीन पार्लमेंट की लार्ड सभा में स्कॉटलैण्ड के १६ प्रतिनिधि और लोकसभा में ४५ प्रतिनिधि निश्चित किये गये और सारे संयुक्त राज्य का नाम 'ग्रेट ब्रिटेन' रक्खा गया।

सन् १७१४ में रानीएन की मृत्यु के साथ ही इंग्लैण्ड में स्टुअर्ट राजवंश का शासन समाप्त हुआ और इंग्लैण्ड की राजगद्दी पर हनोवर राजवंश का अधिकार हुआ।

स्टुअर्ट काल में इंग्लैंड के उपनिवेशों का अमेरिका में स्थापित होना प्रारम्भ हुआ। भारतवर्ष में इन लोगों की व्यापारिक कोठियाँ बनना प्रारम्भ हुईं। चार्ल्स द्वितीय को पुर्तगाल की राजकुमारी से विवाह करने के उपलक्ष में बम्बई का बन्दरगाह दहेज के रूप में मिला। इसी शासन में इंग्लैंड की जलशक्ति का एक संगठित रूप बन कर उसका विस्तार हुआ। कई बड़ी-बड़ी लड़ाइयों में विजय पाने से इंग्लैण्ड की प्रतिष्ठा बढ़ी, जनतंत्र की भावनाओं का विकास हुआ। जिसके फलस्वरूप पार्लमेंट की शक्ति बहुत बढ़ गई। साहित्य और विज्ञान में भी काफी उन्नति हुई।

हनोवर राजवंश—जार्ज प्रथम और द्वितीय

रानी ऐन की मृत्यु के पश्चात् प्रथम जेम्स की नातिनी सोफिया का पुत्र जार्ज इंगलैण्ड की राजगद्दी पर बिठाया गया।

जार्ज का पिता अर्नेस्ट आगस्टस (Ernest Augustus) जर्मनी के हनोवर प्रान्त का इलेक्टर था। इसी से यह वंश हनोवर राजवंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

जिस समय जार्ज गद्दी पर बैठा उस समय उसकी अवस्था ५४ वर्ष की थी। जार्ज जर्मन सभ्यता के वातावरण में पला था। वह अंग्रेजी भाषा नहीं जानता था इसलिए न अंग्रेजी भाषा से उसे दिलचस्पी थी न अंग्रेज लोगों से उसे दिलचस्पी थी। इसके शासनकाल की प्रधान घटना साउथ सी कम्पनी का दिवालिया होना था। यह कम्पनी अमरीका में इंगलैण्ड का व्यवसाय बढ़ाने के लिए स्थापित हुई थी मगर अन्त में कुछ लोगों की बेईमानी से दिवालिया हो गई और लोगों की लाखों पौण्ड की सम्पत्ति उस कम्पनी में डूब गई। इस समय इंगलैण्ड का प्रधान मन्त्री कर्बट वालपोल था। उसने बड़ी चतुराई से कम्पनी के संचालकों को गिरफ्तार कर कम्पनी की करीब बीस लाख पौंड की जायदाद शेअर होल्डरों में बाँट दी। इस कार्य से वालपोल का उस समय बड़ा नाम हुआ।

वालपोल इंग्लैण्ड का पहला प्रधान मंत्री था। अभीतक राजा लोग ही मंत्रिमण्डल के प्रधान होते थे मगर जेम्स प्रथम ने प्रधान मंत्री का पद वालपोल को दे दिया। वालपोल की खास नीति यह थी कि विदेशों से युद्ध न हो, देश में शान्ति रहे और व्यापार तथा उद्योग का विकास हो। यह पूरे बाईस वर्षों तक इंग्लैण्ड का प्रधान मंत्री रहा। उसके समय में इंगलैण्ड लड़ाई-झगड़ों से प्रायः मुक्त रहा और उसके व्यापार-वाणिज्य की बहुत तरक्की हुई, मगर अन्त में एक ऐसा अवसर आया जब इंग्लैण्ड की जनता स्पेन के विरुद्ध बहुत उत्तेजित हो गई और उसने स्पेन से युद्ध छेड़ दिया। इसी युद्धकाल (सन् १७४२) में वालपोल के मंत्रिमण्डल का पतन हो गया।

विलियम पिट

बालपोल मंत्रिमंडल के पतन के पश्चात् जार्ज द्वितीय के समय में इंग्लैण्ड के राजनैतिक मञ्च पर "विलियम पिट" नामक एक और प्रसिद्ध पुरुष का आविर्भाव हुआ। यह वह समय था जब कि अमेरिका, भारतवर्ष इत्यादि दूरवर्ती प्रदेशों में अपने उपनिवेश बढ़ाने के लिए इंगलैण्ड और फ्रान्स में बड़ा संघर्ष हो रहा था। यह संघर्ष लगातार सात वर्षों तक (Seven Year War) चलता रहा। इस युद्ध में अंग्रेजों को बड़े-बड़े सङ्कटों का सामना करना पड़ा। इस सङ्कट-काल में विलियम पिट ने अपने साहस और राजनैतिक योग्यता से इंगलैण्ड की रक्षा की।

इस युद्ध के सञ्चालन में विलियम पिट ने बड़ी दूरदर्शिता से काम लिया। उसने प्रशिया के राजा फ्रेडरिक को सेना और धन की सहायता देकर फ्रान्स के विरुद्ध युद्ध में फँसा दिया, जिससे फ्रांस इसी युद्ध में लगा रहे और उपनिवेशों में अधिक सेना न भेज सके। वह कहा करता था कि "हम कैनेडा को जर्मनी में एल्ब नदी के तट पर जीतेगें।" अन्त में किसी प्रकार कैनेडा पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया और सन् १७६३ में पेरिस की मशहूर सन्धि हुई। इस सन्धि के अनुसार कैनेडा और उत्तरी अमेरिका के तमाम फ्रान्सीसी उपनिवेशों पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। स्पेन का उपनिवेश फ्लोरिडा भी अंग्रेजों के अधिकार में चला गया और सन् १७५७ में लार्ड क्लाइव के नेतृत्व में 'प्लासी की लड़ाई' जीत लेने के कारण भारतवर्ष में भी अंग्रेजी राज्य की जड़ जम गई।

यह सारा समय अंग्रेज जाति के महान् सौभाग्य का और फ्रांस तथा स्पेन के लिए महान् दुर्भाग्य का था।

सन् १७६० में जार्ज द्वितीय की मृत्यु हो गई और उसकी जगह उसका पोता जार्ज तृतीय राजगद्दी पर बैठा।

जार्ज तृतीय

जार्ज तृतीय ने पूरे ६० वर्ष तक राज्य किया। इसके शासनकाल में इंगलैण्ड के इतिहास में बड़ी-बड़ी घटनाएँ हुईं। इन घटनाओं में निम्नलिखित घटनायें प्रमुख हैं।

(१) अमेरिकन स्वतन्त्रता का युद्ध (२) फ्रान्स की राज्यक्रान्ति और (३) नैपोलियन के युद्ध।

अमेरिकन स्वतन्त्रता का युद्ध

जार्ज तृतीय ने ह्विग पार्टी के मन्त्रिमण्डल को हटाकर टोरी दल का मन्त्रिमण्डल बनाया। जिसका प्रधान मंत्री लार्ड नार्थ (Lord North) था।

अमेरिका के लिए ब्रिटेन का फ्रान्स के साथ जो 'सप्तवार्षिक युद्ध' चला, उसमें इंगलैण्ड को बहुत बड़ी धनराशि व्यय करनी पड़ी थी। इस धन का एक विशेष हिस्सा अमेरिकन उपनिवेशों से भी वसूल करना चाहिए, इस उद्देश्य से लार्ड नार्थ ने पार्लमेंट में स्टॉम्प एक्ट पास करवाया जिसके अनुसार अमेरिका वालों को कानूनी दस्तावेजों पर स्टाँम्प लगाना आवश्यक हो गया। इसी प्रकार पार्लमेंट ने अमेरिका जाने वाली "चाय" और कुछ अन्य वस्तुओं पर भी टैक्स लगा दिया।

इन टैक्सों के लगते ही अमेरिका में असन्तोष की ज्वाला भभक उठी। उन लोगों का कहना था कि जब इंगलैण्ड की पार्लियामेंट में अमेरिका का कोई प्रतिनिधित्व नहीं है तो उसे अमेरिका पर टैक्स लगाने का भी कोई अधिकार नहीं है। अमेरिकन जनता के नेता और सेनापति इतिहास-प्रसिद्ध जार्ज वाशिंगटन तथा पूर्वीय तट के सब उपनिवेशों के प्रतिनिधियों ने फिलाडेलफिया नामक नगर में एकत्रित हो कर घोषणा कर दी कि अब अमेरिकन उपनिवेश स्वतन्त्र हैं, वे जार्ज तृतीय के अधीन नहीं हैं। यह स्वतन्त्रता की घोषणा (Declaration of Independence) ४ जुलाई सन् १७७६ को की गई और इसी दिन से 'संयुक्त अमेरिका राज्य' सिद्धान्त रूप से अस्तित्व में आया। इसके पश्चात् ही इंग्लैण्ड और अमेरिका की सेनाओं में युद्ध प्रारम्भ हो गया।

यह स्वतंत्रता युद्ध करीब आठ वर्षों तक चला, जिसका पूरा वर्णन इस ग्रन्थ के पहले भाग में "अमेरिका" के प्रकरण में दिया गया है।

इस युद्ध में अंग्रेजी सेनाओं की पराजय हुई, जिसके परिणाम स्वरूप सन् १७८३ में 'वार्सेलीज' की मशहूर सन्धि हुई जिसमें इंगलैण्ड को अमेरिका के पूर्वीय तट के उपनिवेशों की स्वतन्त्रता स्वीकार कर लेनी पड़ी।

फ्रांस की राज्य क्रान्ति

इसी समय फ्रांस में इतिहास प्रसिद्ध राज्य-क्रान्ति भड़क उठी, जिसने सारे संसार का ध्यान अपनी ओर आकर्षित

किया। कहने को तो यह फ्रांस के अत्याचारी लुई शासकों के विरुद्ध जनता की लड़ाई थी, मगर आगे चलकर इसके नेताओं ने इसको इतना वीभत्स रूप दे दिया और हत्या, खून-खराबी और कत्लेआम का ऐसा रोमांचकारी दृश्य उपस्थित कर दिया कि सारे यूरोप में उसका आतङ्क छा गया।

शुरू-शुरू में इंग्लैण्ड की जनता की और खास करके ह्विग पार्टी की इस क्रान्ति से सहानुभूति रही मगर जब प्रति दिन होने वाले वहाँ के हत्या-काण्डों की खबरें इंग्लैण्ड वालों को मिलने लगीं तो वे लोग थर्रा उठे और फ्रांस के राज्य-विप्लवकारियों के प्रति घृणा व्यक्त करने लगे। सुप्रसिद्ध लेखक एडमण्ड बर्क ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "रिफ्लेक्शन ऑन दी फ्रेञ्च रेवोल्यूशन" में फ्रांस की घटनाओं का वास्तविक चित्रण किया।

नैपोलियन का उत्थान

फ्रांस की राज्य-क्रान्ति की भूमि में से डिक्टेटर शाही का पौधा 'नैपोलियन' के रूप में विकसित हो रहा था। यह एक अत्यन्त साहसी, मेधावी, महत्वाकांक्षी और आग में कूद पड़ने वाला युवक था। सेना के एक छोटे से पद से बढ़ते-बढ़ते वह फ्रांस के प्रजातन्त्र का सर्वश्रेष्ठ सैनिक अफसर माना जाने लगा। वह एक भारी सेना लेकर रवाना हुआ और सबसे पहले उसने इटली के आस्ट्रियन शासकों को निकाल कर इटली पर कब्जा किया। उसके बाद रूम सागर में माल्टा को विजय कर मिस्र पहुँचा और मिस्र पर विजय प्राप्त कर ली। वहाँ से वह फारस और अफगानिस्तान होता हुआ हिन्दुस्तान पहुँचना चाहता था।

नैपोलियन की इस अद्भुत कार्यवाही को देखकर इंग्लैण्ड की सरकार हक्की-बक्की हो गई, मगर शीघ्र ही उसने प्रसिद्ध जहाजी कमाण्डर एडमिरल नेलसन के नेतृत्व में एक जहाजी बेड़ा भेजा। एडमिरल नेलसन ने फ्रांस के जहाजी बेड़े को भारी पराजय दी। इस पराजय ने नैपोलियन के सारे मन्सूबे पर पानी फेर दिया और वह वापस फ्रांस को लौट आया।

इसके पश्चात् इंग्लैण्ड और नैपोलियन के बीच कई लड़ाइयाँ हुईं। ज़ल-युद्ध में अंग्रेज फ्रांस वालों को टक्कर लगाते थे और स्थल-युद्ध में अंग्रेजों से नैपोलियन जीतता था।

मगर अन्त में सन् १८५१ में 'वाटरलू' के मैदान में अंग्रेजों की सेना ने ड्यूक ऑफ वेलिंगटन के नेतृत्व में नैपोलियन को भारी पराजय दी और उसे कैद कर 'सेण्टहेलेना' भेज दिया।

इस प्रकार एक महान शक्तिशाली, पराक्रमी और महान् डिक्टेटर नैपोलियन का अन्त हुआ। इस विजय का सारा श्रेय अंग्रेजी सेना के सेनापति "वेलिंगटन" को है जिसका और 'नेलसन' का नाम अंग्रेज जाति को इस महान् संकट से बचाने के लिए इतिहास में अमर हो गया, मगर इन सारे संकटों के कारण इंग्लैण्ड की आर्थिक स्थिति बड़ी दयनीय हो गई।

सन् १८२० में जार्ज तृतीय की मृत्यु हो गई।

तीसरे जार्ज के पश्चात् चौथा जार्ज और उसके बाद सन् १८३० में चौथा विलियम गद्दी पर बैठा।

औद्योगिक क्रान्ति

इससे कुछ समय पूर्व ही अर्थात् अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध ही से इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति का प्रारम्भ होता है। कपड़े बनाने की मशीनों का आविष्कार हो जाने से इङ्गलैण्ड के पूँजीपतियों ने तेजी के साथ इन कारखानों की स्थापना में अपनी पूँजी लगाना शुरू की। देश में सैकड़ों पुतली-घर बन गये और जो इङ्गलैण्ड अभी तक खेती पर जीवन-निर्वाह करता था, वह अब उद्योग और व्यवसाय का केन्द्र हो गया। सन् १७८५ में जेम्स वॉट के द्वारा भाप के इञ्जिन का आविष्कार हो जाने से इस क्रान्ति में पूरा वेग आ गया।

मशीन क्रान्ति के कारण, पूँजी, मजदूरी और जमीन की जो समस्याएँ पैदा हुईं, उनका सामना भी इङ्गलैण्ड को पहले करना पड़ा। पूँजीपतियों के द्वारा शोषण की नीति और मजदूरों की संघशक्ति का निर्माण हो जाने से इनका संघर्ष जोर पकड़ता गया। कार्ल मार्क्स ने जर्मन होते हुए भी अपनी सारी योजना का निर्माण इङ्गलैण्ड में बैठ कर ही किया था। इस प्रकार इतिहास में इङ्गलैण्ड, व्यवसायिक क्रान्ति के एक नेता के रूप में माना जाता है।

उन्नीसवीं सदी में जॉर्ज स्टीफ़ेन्सन ने रेलगाड़ी और पटरी पर चलने योग्य इञ्जिन का आविष्कार किया।

इधर इंग्लैण्ड औद्योगिक क्रान्ति के कारण धन-धान्य से सम्पन्न हो रहा था, दूसरी ओर संसार में उसके साम्राज्य का क्षेत्र भी बढ़ता चला जा रहा था। अमेरिकन उपनिवेशों के निकल जाने पर भी भारतवर्ष में उसका साम्राज्य पूरी तरह जम गया था और अफ्रीका तथा आस्ट्रेलिया, कनाडा इत्यादि पर भी उसका अधिकार था।

इस प्रकार क्या उद्योग, क्या साम्राज्य, क्या विज्ञान, क्या साहित्य, सभी क्षेत्रों में यह जाति पूर्ण जाहो जलाली पर आने लग गई थी। इसी समय इंग्लैण्ड के राज-सिंहासन पर महारानी विक्टोरिया का आविर्भाव होता है।

विक्टोरिया काल और महारानी विक्टोरिया

विलियम चतुर्थ के कोई सन्तान न होने से उसकी भतीजी महारानी विक्टोरिया सन् १८३७ में इंग्लैण्ड के राजनैतिक रंगमंच पर आई।

संसार की नारी-जाति के इतिहास में एक सम्राज्ञी के नाते और एक कुशल शासक के रूप में महारानी विक्टोरिया की तरह कोई भी दूसरी स्त्री राजनैतिक रंगमंच पर नहीं आई।

महारानी विक्टोरिया बड़ी भाग्यवान स्त्री थी। उसका शासन लगातार चौंसठ वर्ष तक इंग्लैण्ड में चला। उसके शासनकाल में इंग्लैण्ड चरम उत्कर्ष की सीमा पर जा पहुँचा। अंग्रेज जाति की सर्वांगीण उन्नति के लिए महारानी विक्टोरिया का समय इंग्लैण्ड के इतिहास में हमेशा याद किया जावेगा जिसके साम्राज्य में कभी सूर्य्य अस्त नहीं होता था। साहित्य, कला, विज्ञान, कविता, पुरातत्व इत्यादि जीवन के हर एक क्षेत्र में अंग्रेज जाति संसार के अन्दर एक नया रेकार्ड स्थापित करने लगी थी।

सन् १८५७ में महारानी विक्टोरिया ने भारत की सम्राज्ञी का विरुद भी ग्रहण किया। महारानी विक्टोरिया का विवाह जर्मनी की रियासत कॉबर्ग के राजकुमार प्रिन्स अलबर्ट के साथ हुआ था मगर वैवाहिक जीवन में सिर्फ बीस वर्ष जीवित रहकर इस राजकुमार का देहान्त हो गया।

महारानी विक्टोरिया के शासनकाल में यह विशेषता रही कि उसके मंत्रिमण्डल में प्रधान मंत्री के रूप में एक के बाद एक बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ आते रहे। इन प्रधान मंत्रियों में (१) राबर्ट पील (२) लार्ड पामर्स्टन (३) डिजरायले और (४) ग्लेडस्टन इन चार के नाम उल्लेखनीय हैं इन चारों ने ही देश-विदेशों में अंग्रेजी साम्राज्य की नींव मजबूत करने में महारानी विक्टोरिया को बड़ी मदद दी।

सर राबर्ट पील टोरी दल का नेता था, मगर उसने इस दल के संकीर्ण राजनैतिक विचारों को उदार बनाने का बड़ा प्रयत्न किया। राबर्ट पील ने ही टोरी दल का नाम बदल कर कन्जरवेटिव दल रक्खा।

सन् १८५५ में इंग्लैण्ड का प्रधान मंत्री पामर्स्टन बना। इस समय रूस और टर्की के बीच इतिहास-प्रसिद्ध क्रीमियन लड़ाई चल रही थी, रूस चाहता था कि टर्की के अधिकार में जेरूसलेम इत्यादि जितने ईसाइयों के धार्मिक क्षेत्र हैं, वे स्वतंत्र कर दिये जाँय। लार्ड पामर्स्टन ने इस प्रश्न को धार्मिक दृष्टि से नहीं, प्रत्युत राजनैतिक दृष्टि से देखा। उसका खयाल था कि टर्की का पतन हो जाने से रूस को एशिया में खुल कर खेलने का साफ मैदान मिल जायगा और अंग्रेजों का एशियायी साम्राज्य खतरे में पड़ जायगा, इसलिए वह प्रत्येक स्थिति में टर्की को जीवित रखना चाहता था, इसीसे क्रीमिया की लड़ाई में उसने टर्की का साथ देकर रूस को पराजित कर दिया।

पामर्स्टन के समय में ही भारतवर्ष में सन् १८५७ की मशहूर क्रांति हुई। इस कठिन टाइम में भी पामर्स्टन ने अपनी राजनैतिक कुशलता से भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की रक्षा की।

पामर्स्टन के पश्चात् इंग्लैण्ड की राजनीति में एक महान् राजनीतिज्ञ की तरह ग्लेडस्टन का नाम आता है जो चार बार इंग्लैण्ड का प्रधान मंत्री बना। सन् १८६८ में इसके पहले मंत्रित्व-काल में इंग्लैण्ड में एज्यूकेशन एक्ट पास हुआ, जिससे वहाँ के शिक्षा-विभाग में क्रांतिकारी सुधार हुए। इसका पहला मंत्रि काल सन् १८७४ तक रहा।

ग्लेडस्टन के बाद सन् १८७४ में डिजरायले इंग्लैण्ड का प्रधान मंत्री बना। इसने मिस्र के शासक इस्माइल पाशा से 'स्वेज नहर कम्पनी' के सारे हिस्से सस्ते भाव में

खरीद लिए। उसके पश्चात् भी मिस्र पर इंग्लैण्ड का ऋण बाकी रह गया, उस ऋण की वसूली के लिए मिस्र की अर्थव्यवस्था की देख-रेख करने का अधिकार भी ले लिया। इस प्रकार डिजरायले ने मिस्र पर अंग्रेजों का फौलादी पंजा मजबूती से कस दिया।

डिजरायले के मंत्रित्वकाल की सबसे महत्वपूर्ण घटना बालकन का युद्ध है, जिसमें उसने एक कांफ्रेन्स के द्वारा रूमानिया, सर्विया और माण्टीनिग्रो के बालकन राष्ट्रों को टर्की के साम्रज्य से निकालकर स्वाधीन राष्ट्र घोषित कर दिया, जिससे टर्की तो कमजोर पड़ गया मगर रूस का कोई लाभ नहीं हुआ।

डिजरायले के बाद फिर ग्लेडस्टन प्रधान मंत्री हुआ। उसने आयर्लैंड को स्वतंत्रता देने का बिल पार्लमेंट में रक्खा, मगर इस प्रश्न पर उसके दल में फूट पड़ गई और उसे सफलता नहीं मिली।

इस प्रकार ६४ वर्ष तक लगातार गौरवपूर्ण शासन कर सन् १६०१ में महारानी विक्टोरिया का देहान्त हो गया।

सप्तम एडवर्ड

महारानी विक्टोरिया के पश्चात् उनका पुत्र सप्तम एडवर्ड के नाम से ६० वर्ष की उम्र में सन् १६०१ में गद्दी पर बैठा।

सप्तम एडवर्ड अत्यन्त शान्तिप्रिय और सुलझे हुए मस्तिष्क का नरेश था, इसलिए इतिहास इसे "एडवर्ड दी पीसमेकर" (शान्ति का निर्माता एडवर्ड) के नाम से सम्बोधित करता है।

इसके समय में खूब दूर तक ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ें मजबूती से जम चुकी थीं और शान्तिपूर्वक साम्राज्य का संचालन हो रहा था, ज्ञान और विज्ञान की उन्नति हो रही थी। केवल एक दो बार लड़ाई का मौका आया। फ्रांस और इङ्गलैण्ड के मतभेद चल रहे थे, मगर स्वयं एडवर्ड ने पेरिस जाकर उन मतभेदों को शान्त किया। सन् १६०७ में उसने रूस के साथ भी समझौता कर लिया जिससे उधर भी युद्ध का खतरा टल गया। सन् १६१० में सप्तम एडवर्ड का देहान्त हो गया। उसके स्थान पर उसका दूसरा लड़का जार्ज पंचम के नाम से गद्दी पर बैठा।

सम्राट् पंचम जार्ज

सम्राट् पंचम जार्ज के शासनकाल की सबसे महत्वपूर्ण घटना यूरोप का प्रथम महायुद्ध है।

यूरोपीय महायुद्ध

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में जर्मनी में प्रिन्स बिस्मार्क नामक महान् राजनीतिज्ञ हुआ। संसार के राजनैतिक क्षेत्र में उसकी तुलना महान् कौटिल्य से की जाती है। इसने छोटी-छोटी रियासतों में बटे हुए जर्मन साम्राज्य को अद्भुत रूप से संगठित कर एक विराट् साम्राज्य का निर्माण करने का प्रयत्न, प्रशिया के राजा की सहायता से किया।

सन् १८७१ में प्रशिया के राजा ने दक्षिणी जर्मनी की समस्त रियासतों का एकीकरण कर "दी जर्मन एम्पायर" की स्थापना की और स्वयं "जर्मन सम्राट् कैसर" की उपाधि ग्रहण की। उसका प्रधान मंत्री प्रिन्स बिस्मार्क बना। बिस्मार्क की बुद्धिमता से यह नवप्रसूत जर्मन राष्ट्र तेजी से सर्वतोमुखी उन्नति करने लगा और उन्नति के प्रत्येक कदम पर उसकी महत्वाकांक्षा, विश्व का सबसे शक्तिशाली साम्राज्य बनने की ओर बढ़ती गई।

बढ़ते हुए जर्मन राष्ट्र की यह असीम महत्वाकांक्षा ही प्रथम विश्वव्यापी महायुद्ध का कारण बनी और अन्त में २८ जून सन् १६१४ को युद्ध का ज्वालामुखी भभक उठा। महायुद्ध का पूरा वर्णन 'महायुद्ध' शब्द के अन्दर आगामी भागों में देखें। इस युद्ध में इङ्गलैण्ड को भी शामिल होना पड़ा। इस युद्ध के शुरू-शुरू में तो जर्मनी का सितारा बड़ा तेज रहा। उसका आक्रमण तेजी से हुआ और उसकी पनडुब्बियों ने इंग्लैण्ड के कई जहाजों को डुबो दिया। इङ्गलैण्ड वाले इससे घबरा उठे। उस समय इंग्लैण्ड की पार्लमेंट में प्रधान मंत्री एस्क्विथ का मंत्रिमण्डल काम कर रहा था, मगर सन् १९१६ तक जब युद्ध में उसको सफलता नहीं मिली तो उसने इस्तीफा दे दिया और उसकी जगह लायड जार्ज प्रधानमंत्री हुए। लायड जार्ज ने तुरन्त सभी मित्र राष्ट्रों की अलग-अलग फौजी कमानों को एक में मिलाकर फ्रांस के प्रधान सेनापति 'जनरल फ़ाश' को सब सेनाओं की संगठित कमान का सेनापति बना दिया।

इधर अमेरिका भी युद्ध में कूद पड़ा और अन्त में ब्रिटेन और मित्र-राष्ट्रों की विजय में यह युद्ध समाप्त हुआ और वर्साई की सन्धि में सारे यूरोप का नक्शा बदल दिया गया।

जार्ज पंचम का स्वर्गवास सन् १९३६ में हुआ। सम्राट् पंचम जार्ज ने अपने हनोवर वंश का नाम बदलकर "विंडसर वंश" कर दिया।

अष्टम एडवर्ड

सम्राट् पञ्चम जार्ज के पश्चात् इंग्लैण्ड के राजसिंहासन पर उसका बड़ा लड़का अष्टम एडवर्ड के नाम से गद्दी पर बैठा।

जनवरी १९३६ ई० में पिता की मृत्यु पर वह सिंहासनासीन हुआ, किन्तु इसी समय उसका मिसेज सिम्सन नामक एक ऐसी युवती के साथ प्रेम हो गया, जिसके साथ इंगलैण्ड के विधान के अनुसार वह शादी नहीं कर सकता था। जब यह वैधानिक समस्या उपस्थित हुई तो उसने अपने हृदय की आवाज के अनुसार मिसेज सिम्सन की प्रेम-वेदी पर अपने साम्राज्य को बलिदान कर दिया और इंग्लैण्ड का राजसिंहासन छोड़ अपनी प्रेमिका से शादी कर ली।

जार्ज षष्ठ

अष्टम एडवर्ड के सिंहासन त्याग के पश्चात् उसका भाई जार्ज छठा के नाम से इंग्लैण्ड के सिंहासन पर आसीन हुआ।

द्वितीय विश्वमहायुद्ध

जार्ज छठा के समय की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना, द्वितीय महायुद्ध का प्रारम्भ होना है, जिसने कुछ समय के लिये इंगलैण्ड के विशाल साम्राज्य की गहरी जड़ों को भी हिला कर रख दिया था।

प्रथम महायुद्ध में पराजित जर्मनी ने बहुत ही शीघ्र 'हिटलर' के समान दृढ़ संकल्पी नेता को प्राप्त कर लिया। जिसने थोड़े ही समय में मृतप्राय जर्मनी में संजीवनी शक्ति फूँक दी। उसने अपने देश को वैज्ञानिक रूप से समृद्ध कर सैनिक रूप से इतना संगठित कर लिया—जल, स्थल और आकाश तीनों ही क्षेत्रों में अपनी शक्ति को इतना बढ़ा लिया कि—सारे संसार की सैनि[illegible] पड़ने लगी। वह सारे संसार पर जर्मन साम्राज्य का झण्डा फहराने की महत्वाकांक्षाओं का शिकार हो गया।

शक्ति के मद में मुसोलिनी को अपना साथी बना कर उसने वर्साई की सन्धि को तोड़-मरोड़ कर जर्मन-साम्राज्य की सीमाओं को बढ़ाना शुरू कर दिया। प्रजातन्त्रीय देश उसकी इस गति से चौकन्ने हो गये, मगर फिर भी मानसिक सन्तुलन को न खोकर इंग्लैण्ड के प्रधान मन्त्री मि० चेम्बरलेन उसके यहाँ दो-दो बार समझाने गये।

मगर किसी प्रकार से वह युद्ध रोका नहीं जा सका। वह आरम्भ हुआ और जर्मनी की राक्षसी शक्ति बेल्जियम और फ्रांस को कुचलती हुई, इंग्लिश चैनल के किनारे आ पहुँची। डंकर्क के मैदान में जर्मन सेनाओं ने अंग्रेजी सेनाओं का, जिस बुरी तरह से नाश किया, उसकी उपमा इङ्गलैण्ड के इतिहास में कहीं नहीं है।

यह समय इङ्गलैण्ड के इतिहास में सबसे अधिक सङ्कट का था। ऊपर से जर्मन वायुयान लन्दन पर दिन-रात गोले बरसाते थे। सारे लन्दन की बड़ी-बड़ी इमारतें चकनाचूर होकर मलबे के रूप में परिवर्त्तित हो गई थीं। वह समय अंग्रेज-जाति के चरित्र और उसके राष्ट्रप्रेम की कठिन परीक्षा का था।

मगर अंग्रेज-जाति का चरित्र इस महान् संकट की घड़ी में भी स्थिर रहा। उसका मनोबल डिगमिगाने के बजाय बड़ी मजबूती के साथ जमा रहा और उसने तत्काल मि० चर्चिल के समान महान राजनीतिज्ञ को यह 'काँटों का ताज' पहना दिया।

चर्चिल ने अत्यन्त बुद्धिमानी के साथ युद्ध का सञ्चालन किया। उसने अमेरिका को अपने साथ मिलाया। इधर हिटलर की दुर्बुद्धि ने उसको रूस के ऊपर आक्रमण करने को प्रेरित किया। इन दोनों घटनाओं से युद्ध का पासा एकदम पलट गया। रूस के मोर्चे पर उसको मुँह की खानी पड़ी। परमाणु बम से जापान का पतन हुआ और जीत प्रजातन्त्रीय शक्तियों की हुई।

चर्चिल की वैधानिक पराजय

युद्ध समाप्त होते ही इङ्गलैण्ड की पार्लियामेंट के [illegible] खड़े हुए, मगर सारे संसार

ने बड़े आश्चर्य के साथ देखा कि इङ्गलैण्ड की जनता ने चर्चिल को करारी हार दी। जिस चर्चिल ने अपनी राजनैतिक सूझ-बूझ से एक महान भयानक सङ्कट से इङ्गलैण्ड के राष्ट्र की रक्षा की, युद्ध समाप्त होते ही उसी चर्चिल को वहाँ की जनता ने अलग करने में विलम्ब नहीं किया। इसका कारण यह था कि चर्चिल राजनीतिज्ञ और चतुर होते हुए भी साम्राज्यवादी शक्तियों का प्रतीक था और इङ्गलैंड की जनता दो-दो लम्बे युद्धों के कारण साम्राज्यवाद से बिल्कुल ऊब गई थी।

मजदूर दल की विजय

नये चुनाव में मजदूर दल की विजय हुई और मि० एटली प्रधान मन्त्री की तरह इंगलैण्ड के रंग-मंच पर आया।

अंग्रेज राजनीतिज्ञ समझ चुके थे कि इस नवीन और आने वाले युग में विस्तृत साम्राज्य का रखना नफे के बदले नुकसान का कारण हो सकता है। सारे उपनिवेशों में जो साम्राज्य-विरोधी भावनाएँ फैली हुई हैं, उन्हें केवल सेना के बल पर दबाये रखना सम्भव नहीं है।

इसलिए उन्होंने अपना सबसे पहला साहस-पूर्ण कदम उपनिवेशों को आजादी देने के सम्बन्ध में उठाया और भारतवर्ष के समान ब्रिटिश-साम्राज्य के प्रधान अंग को, १५ अगस्त १९४७ ई० को आजाद घोषित कर दिया। इसी प्रकार सीलोन, बर्मा, मिस्र इत्यादि अनेकों उपनिवेश भी आजाद कर दिये गये।

ये घटनाएँ अंग्रेज जाति के इतिहास में और संसार के इतिहास में हमेशा गौरवपूर्ण समझी जावेंगी।

जिन लोगों ने ब्रिटिश साम्राज्य के समान इतने विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी, वे भी इतिहास में महान कहे जायँगे, मगर जिन्होंने इतने बड़े साम्राज्य का इतनी आसानी से विसर्जन कर दिया, उनकी महानता की तुलना नहीं हो सकती।

महारानी एलिजाबेथ द्वितीय

सन् १९५३ में जार्ज छठे के बाद उनकी पुत्री, एलिजाबेथ द्वितीय के नाम से इंग्लैण्ड के सिंहासन पर आई। दूसरे महायुद्ध के बाद इंग्लैण्ड की राजनीति विश्वव्यापी कम्युनिज्म की बाढ़ को रोकने के प्रयत्न में लगी हुई है। इसके लिए इंग्लैंड, अमेरिका और फ्रांस ने अपना एक संगठन बना लिया है और इस संगठन में विश्व के अनेक राष्ट्रों को सम्मिलित कर रहे हैं। बीच में मिस्र सरकार के द्वारा 'स्वेज नहर' बन्द कर देने के कारण इंग्लैण्ड और फ्रांस ने मिल कर मिस्र पर आक्रमण किया था, मगर उसमें इन दोनों राष्ट्रों को बहुत नीचा देखना पड़ा।

इस प्रकार अपनी मन्थर गति से संसार के रंग-मञ्च पर बड़े-बड़े संघर्षों में से गुजरता हुआ अपनी साहित्यिक, राजनैतिक और वैज्ञानिक गरिमा को अक्षुण्ण रखे हुए इंग्लैण्ड का इतिहास आगे बढ़ रहा है।

इंग्लैण्ड की शासन पद्धति

इंग्लैण्ड की जनता में प्रजातंत्रीय भावनाओं और राजा के अधिकारों को मर्यादित करने की भावनाओं का कितनी तेजी के साथ विकास हुआ यह पहले बताया जा चुका है। इन्हीं भावनाओं की उग्रता का प्रदर्शन रिचर्ड द्वितीय को जेल में डालना, चार्ल्स प्रथम को मृत्युदण्ड देना और द्वितीय जेम्स के निर्वासन के समान इतिहास की महान् घटनाओं में पाया जाता है।

फिर भी क्रामवेल के शासन के पश्चात् इंग्लैंड की जनता यह महसूस करने लगी कि, चाहे नाममात्र की शक्तियों के साथ ही हो, मगर शासन चलाने के लिए एक राजा का उसके आसन पर होना जरूरी है, और यह राजा जनता की भावनाओं का मूर्तिमान प्रतीक हो। इसी भावना से प्रेरित होकर इंग्लैंड की जनता ने क्रामवेल के पश्चात् फिर राजा द्वितीय चार्ल्स को गद्दी पर बैठाया और फिर कभी इस पद को नहीं उठाया। यही कारण है कि शक्तियों में अत्यन्त मर्यादित होने पर भी इंग्लैंड का राजा जनता की हृदयस्थली में अत्यन्त आदर और भावना का पात्र है। इसी कारण इंग्लैंड का शासन मर्यादित राजतंत्र (Limited monarchy) कहलाता है।

यह शासन तीन संस्थाओं पर आश्रित है। (१) राजा (२) हाउस ऑफ कामन्स (लोक सभा), (३) हाउस ऑफ लार्ड्स (राज्य सभा)

राजा—राजा का पद वंशपरम्परागत है अर्थात् राजा का बड़ा लड़का राज्य का उत्तराधिकारी होता है। लड़का न होने पर लड़की को राज्य का उत्तराधिकारी मिलता है।

इंग्लैंड का राजा एक ऐसा राजा है जो कहने के लिए तो सारे अधिकारों का मालिक है मगर पार्लमेंट के द्वारा उसके उन अधिकारों पर काफी नियंत्रण रहता है। राजा के अधिकार क्षेत्र में सेनाओं को भंग कर देना, विधान-सभा को भंग कर देना, अपराधियों के अपराधों को क्षमा कर देना, किसी देश से युद्ध की घोषणा कर देना इत्यादि अनेक बातें हैं, मगर राजा और प्रजा दोनों समझते हैं कि बिना प्रजा की अनुमति के ऐसे कार्य नहीं हुआ करते। इसलिए राजा का पद अत्यन्त भावनापूर्ण होने पर भी अत्यन्त मर्यादित है।

(२) हाउस ऑफ लार्ड्स—इंग्लैंड के उच्चवंशीय लोग जो राजा के द्वारा "लार्ड" पदवी से विभूषित किये जाते हैं लार्ड सभा के सदस्य होते हैं। इसके सदस्यों की संख्या घटती-बढ़ती रहती है। मत देने वाले सदस्यों की संख्या ७२० होती है।

(३) हाउस ऑफ कॉमन्स में देश के प्रतिनिधि रहते हैं। लार्ड, न्यायाधीश, इंग्लिश चर्च के पादरी, स्कॉटिश चर्च के मिनिस्टर, रोमन कैथोलिक पादरी, राज-कर्मचारी या ऐसे नाबालिग लोग जिनकी उम्र २१ वर्ष से कम है, या ऐसे लोग जो पागल हैं या जिनका दीवाला निकल चुका है या जो सजायाफ्ता है इन चुनावों में उम्मीदवार नहीं हो सकते। शेष सब लोगों में से बालिग मताधिकार के आधार पर चुनाव होते हैं। इस सभा के प्रतिनिधियों की संख्या भी घटती-बढ़ती रहती है।

ये प्रतिनिधि पाँच वर्ष के लिए चुने जाते हैं परन्तु राजा को अधिकार है कि यदि किसी विषय में प्रजा की सम्मति और प्रतिनिधि सभा की सम्मति में उसे मत-भेद या विरोध नजर आवे तो वह प्रतिनिधि सभा को भंग कर प्रजा से अपने नवीन प्रतिनिधि चुनने का अनुरोध कर सकता है।

जो भी नियम या कानून पास करना होता है वह पहले हाउस ऑफ कॉमन्स में पेश होता है, वहाँ से मंजूर होकर वह हाउस ऑफ लार्ड्स में जाता है और दोनों स्थानों से मंजूर होने पर उस पर अन्तिम स्वीकृति राजा की होती है। यदि किसी नियम को हाउस ऑफ कॉमन्स लगातार तीन बार स्वीकार कर देती है, तो लार्ड सभा के अस्वीकार करने पर भी राजा की स्वीकृति से वह पास हो जाता है। बजट या कर सम्बन्धी प्रस्ताव प्रतिनिधि सभा में स्वीकृत होकर लार्ड सभा में जाते हैं और यदि एक महीने के अन्दर राज्य सभा उसकी स्वीकृति नहीं देती तो वे राजा की स्वीकृति से पास हो जाते हैं।

ये दोनों हाउस शासन कार्य का सञ्चालन करने के लिए एक मंत्रिमण्डल का निर्माण करते हैं। जिस पार्टी का लोक-सभा में बहुमत होता है वही पार्टी अपने बहुमत से मंत्रिमण्डल का निर्माण करती है जिसमें प्रायः २१ सदस्य होते हैं।

प्रधान मंत्री इस मंत्रिमंडल का नेता होता है। जिस दल का लोक-सभा में बहुमत होता है उसी की सलाह से उसी दल में से किसी व्यक्ति को राजा प्रधान मंत्री चुनता है। यह प्रधान मंत्री राजा की स्वीकृति से अपनी केबिनेट के मंत्रियों का चुनाव करता है। इंग्लैंड के शासन में वहाँ का प्रधान मंत्री पूर्णशक्ति सम्पन्न अधिकारी होता है। वह प्रत्येक बात में राजा को परामर्श देता है। नये लार्ड भी उसी की सम्मति से बनाये जाते हैं, देश के गुप्त और गम्भीर कार्य उसी के द्वारा सम्पन्न होते हैं। परन्तु इतनी भारी शक्ति होने पर भी प्रधान मंत्री स्वेच्छाचारी न हो जाय इसलिए यह व्यवस्था रक्खी गई है कि प्रधान मंत्री का चुनाव करने का अधिकार राजा को दिया गया है मगर प्रधान मंत्री को जवाबदार लोक-सभा के प्रति बनाया गया है। यदि लोक-सभा उसके कार्यों से असंतुष्ट हो और विग्रह बढ़ जाय तो उसे अपने साथियों सहित इस्तीफा देना पड़ता है और राजा दूसरे प्रधान मंत्री को चुनता है।

इस प्रकार इंग्लैंड के शासन की सफलता का रहस्य इसी में है कि वहाँ शासन की समस्त संस्थाएँ एक दूसरी से इस प्रकार गुंथी हुई हैं कि एक के बिना दूसरी का कार्य चल नहीं सकता और एक दूसरी को मर्यादा से बाहर भी नहीं जाने देती। राजा, लार्ड सभा, लोक-सभा तथा मंत्रि-मण्डल एक बड़ी शृंखला की कड़िया हैं जो एक दूसरी से जुड़ी हुई हैं और एक दूसरे के सहारे ठहरी हुई हैं उनमें से किसी को मुख्य और किसी को गौण नहीं कहा जा सकता।

इंग्लैण्ड के समाचारपत्र

ब्रिटेन में पहले दैनिक समाचारपत्र को निकले हुए ढाई सौ वर्ष से अधिक हो चुके हैं और इसके पहले कोई डेढ़ सौ वर्षों तक समाचार पर्चियाँ निकला करती थीं। कभी कदास निकलने वाली ये पर्चियाँ बहुधा हाथ से लिखी जाया करती थीं। इन्हीं के जरिये थोड़े बहुत लोगों को थोड़ी बहुत खबरें प्राप्त हो जाया करती थीं।

ब्रिटेन में छपायी का काम पन्द्रहवीं शताब्दि की समाप्ति से पहले शुरू हुआ था; लेकिन छपायी की आजादी के लिये एक लम्बा संघर्ष आवश्यक हुआ था। इस संघर्ष को कई यशस्वी समर्थक मिले थे। अंग्रेजी के अमर कवि, जान मिल्टन; विश्वप्रसिद्ध उपन्यास राबिन्सन क्रूसो, के लेखक डैनियल डिफो; तथा निबन्धकार ले हण्ट—इनके नाम भुलाये नहीं जा सकते।

समाचार प्रकाशन के लिये लाइसेन्स लेना जरूरी बनानेवाला कानून, जिसका उपयोग कड़ाई के साथ इसलिये किया जाता था ताकि सरकार पर बट्टा लगाने योग्य कोई खबर छपने न पाये, समाचार प्रकाशन के रास्ते में पहला रोड़ा था। सन् १६९५ में यह कानून उठा लिया गया और इसके सात वर्ष बाद सन् १७०२ में पहला समाचारपत्र निकला।

समाचार प्रकाशन पर टैक्स और अपमानसूचक बातें छापने पर रोक लगानेवाले कानून के रूप में दो रुकावटें इस मार्ग में अभी भी बाकी थीं। किसी पर यदि अपमानसूचक बात लिखने का मुकदमा दायर किया जाता तो इसके बारे में फैसले का पूरा अधिकार जज को होता था। और स्वयं ये जज प्रायः सरकारी आदमी होते थे, इसलिए उनके द्वारा उन लोगों को, जो सरकार के बारे में अप्रिय चीजें छापते, कारावास या जुर्मानों के रूप में कड़ी सजा दी जाती थी। स्वतन्त्रता के एक वीर समर्थक, जान वाइक्स, ने इसके विरुद्ध शानदार लड़ाई लड़ी।

१७९२ में पास हुए कानून ने अपमानसूचक शब्द छापने के आरोपों पर विचार के लिये जूरी द्वारा न्याय की पद्धति चालू की थी। समाचार प्रकाशन की आजादी पर टैक्स रूपी अड़चन अभी हटायी नहीं गयी थी। इसकी वजह से अखबार इतने मँहगे होते थे कि उन्हें खरीदने की ताकत बहुत कम लोगों में थी।

"समाचारपत्र की आजादी ब्रिटेनवासी का जन्मसिद्ध अधिकार है" समाचारपत्रों की आजादी के दबंग समर्थक, जान वाइक्स की राय यह थी। "वाइक्स और आजादी" इन नारों को दोहराते हुए प्रशंसकों की भीड़ जान वाइक्स के पास, जहाँ कहीं वे जाते, इकट्ठी हो जाती थी। समाचार पत्रों पर लगे ये टैक्स सन् १८६१ में पूरी तौर पर उठा लिये गये।

उन्नीसवीं शताब्दी के दूसरे भाग में ब्रिटेन में रेलों का चलन बढ़ा; १८७६ में शिक्षा अनिवार्य बनायी गयी। इस प्रकार पढ़ने-लिखने योग्य जनता तैयार हुई। समाचार पत्रों की उन्नति के मार्ग में अब कोई बाधा नहीं रह गयी थी। आधुनिक समाचार-पत्र की शुरुआत होने में कोई कसर नहीं थी।

प्रेस और कानून

वैयक्तिक स्वतन्त्रता की भाँति ब्रिटेन में प्रेस स्वाधीनता भी है। प्रकाशनों को समाचार के रूप में दर्ज कराने आदि के नियम के अतिरिक्त, खास तौर पर समाचारपत्रों के लिये कानून इस देश में नहीं है। अदालतों में सुने जानेवाले घरेलू या निजी मामलों की सूचना प्रकाशित नहीं की जाती, और न बाल अदालतों की कार्यवाहियाँ छापी जा सकती हैं, विचाराधीन मामलों पर ऐसी कोई बात नहीं छापी जा सकतीं जिसका असर मुकदमे के फैसले पर पड़ सकता है। इस कानून का उल्लंघन अदालत का अपमान माना जाता है।

स्थानीय शासन के अधिकारी यदि चाहें तो प्रेस के प्रतिनिधियों को अपनी सभाओं में आने से रोक सकते हैं, पर वास्तव में ऐसा किया नहीं जाता। कापीराइट नियम का तथा किसी धर्म के खिलाफ कुछ लिखने, या किसी के लिये मानहानिकारक शब्द लिखने पर रोक लगानेवाले कानून का पालन करना भी समाचारपत्रों के लिये जरूरी है। समाचारपत्र के खिलाफ कोई भी व्यक्ति कानूनी कार्यवाही कर सकता है यदि वह समझता है कि उसकी मानहानि करानेवाली बात उसमें छपी है। यदि उसका आरोप उचित माना जाता है तो लेखक के अलावा

उस पत्र के सम्पादक, स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक और वितरक—सबको उत्तरदायी माना जा सकता है

समाचारपत्रों का स्वामित्व

शुरू-शुरू में निकलनेवाले समाचारपत्र व्यक्तिगत स्वामित्व को होते थे और कुछेक प्रान्तीय पत्रों पर यह बात आज भी लागू होती है। किन्तु ढेर के ढेर पाठकों के लिये समाचारपत्र जब निकलने लगे तो इसका अर्थ यह हुआ कि इनका खर्च उठाना अकेले आदमियों के लिये सम्भव नहीं रह सका। तभी से समाचारपत्र का प्रकाशन एक व्यवसाय के रूप में सामने आने लगा और बड़े-बड़े समाचारपत्र ज्वाइण्टस्टॉक कम्पनियों के द्वारा निकाले जाने लगे।

राष्ट्रीय दैनिकों की सम्मतियाँ आमतौर पर उनके मालिक की सम्मतियाँ मानी जाती हैं। किन्तु इन समाचार पत्र-स्वामियों में ऐसा – जिसके लिये राजनीति मुख्य कार्यक्षेत्र हो—कोई नहीं है। अतः किसी पार्टी की रीति-नीति का पालन इनके लिये अनिवार्य नहीं है।

ब्रिटेन के समाचार-पत्रों के लिये पुरानी रीति या परम्परा, एक महत्वपूर्ण चीज होती है। सम्बन्धित पार्टी की नीति तथा समाचारपत्र के स्वामी की राय से भिन्न राय जाहिर करने की प्रेरणा किन्हीं प्रश्नों पर उस पत्र की परम्परा दिला सकती है।

ब्रिटेन के राष्ट्रीय दैनिकों की इस सूची में इनकी ग्राहक संख्यायें जनवरी-जून १९६१ से सम्बन्ध रखती हैं।

बढ़िया कोटि के पत्र	ग्राहक संख्या	राजनैतिक झुकाव
लन्दन टाइम्स	२,६०,०९९	निर्दलीय
डेली टेलिग्राफ	१२,५०,७२०	कंजर्वेटिव
मैंचेस्टर गार्जियन	२,३४,५३९	लिबरल
लोकप्रिय पत्र		
डेली एक्सप्रेस	४३,१३,०६३	इंडिपेंडेंट कंजर्वेटिव
डेली मेल	२६,८७,१५०	कंजर्वेटिव
डेली हेरल्ड	१४,१८,५००	लेबर (आधिकारिक)
डेली वर्कर	५७,६०८	साम्यवादी (,,)
सचित्र		
डेली मिरर	४५,६३,२६२	लेफ्ट आव सेन्टर

कुछेक विशेष पत्र हैं जो खास विषयों से अधिक संबंध रखते हैं, और इसलिए कि इनके पाठक देशभर में हैं राष्ट्रीय कहे जा सकते हैं। इनके उदाहरण हैं फिनैन्शल टाइम्स (ग्राहक संख्या १,३१,६३१) तथा स्पोर्टिङ्ग लाइफ (५५,३३९)। लन्दन के अलावा ब्रिटेन के अन्य स्थानों से निकलनेवाले लगभग तीस प्रातःकालीन पत्र राष्ट्रीय महत्व की खबरों को यथोचित स्थान तो देते ही हैं, उन स्थानों की खबरों को भी अधिक स्थान दिया करते हैं जहाँ इनके पाठक ज्यादातर रहते हैं।

प्रेस कौंसिल

रायल कमीशन की सिफारिश पर पत्रों की स्वाधीनता की रक्षा के लिए तथा पत्रकारिता के क्षेत्र में जनता के प्रति दायित्व और जनसेवा की भावनाओं को बढ़ावा देने के लिए १९५३ में एक जनरल कौंसिल बनायी गयी थी। समाचारपत्रों ने मिलकर यह कौंसिल अपनी इच्छा से बनायी थी। सम्पादकीय और प्रबन्ध विभागों के प्रतिनिधि इसके सदस्य होते हैं। निजी मामलों में समाचारपत्रों द्वारा हस्तक्षेप, पुलिस द्वारा समाचारपत्र वालों के काम में छेड़-छाड़; गलत पायी गयी खबरों के सम्बन्ध में भूल सुधार प्रकाशित करने में समाचारपत्रों की आनाकानी और समाचारपत्र तथा नागरिक की स्वाधीनता सम्बन्धी नियमों के उल्लंघन के ऐसे ही मामलों पर यह कौंसिल विचार करती है।

सुबह के प्रकाशन

देश के प्रति एक हजार निवासियों के पीछे दैनिक पत्रों की ५७१ प्रतियाँ ब्रिटेन में हर रोज बिकती हैं। इसी आधार से तुलना की जाने पर यह संख्या संयुक्त राज्य अमेरिका से २३६ अधिक बैठती है। दैनिकों की पाठक संख्या के मामले में भी ब्रिटेन सबसे आगे है। अमेरिका के न्यूयार्क डेजी न्यूज (रविवासरीय संस्करण) की बिक्री वहाँ सबसे अधिक है। यह संख्या ३२,५०,००० है, जबकि ब्रिटेन के रविवासरीय पत्र, न्यूज आव द वर्ल्ड, की पाठक संख्या ६५,००,००० है। इसके तीन मुख्य कारण हैं: ब्रिटेन छोटा देश है, और यहाँ की आबादी घनी है। यहाँ की यातायात की व्यवस्था बहुत विकसित है; और राष्ट्रीय पत्रों के लिए छापेखाने तथा बाँटने के दफ्तर

लन्दन में तो हैं ही, इंग्लैण्ड के उत्तर में तथा स्काटलैण्ड में भी हैं।

समाचार प्राप्ति के दो साधन

समाचार एजेंसियाँ तथा समाचारपत्रों के सम्वाददाता इन दो साधनों से समाचार प्राप्त किये जाते हैं। ब्रिटेन में ऐसी कई एजेंसियाँ हैं; कुछ आम खबरों से सम्बन्ध रखती हैं; और किन्हीं खास प्रकार की खबरों में कुछ एजेंसियों ने विशेषता प्राप्त कर ली हैं। देश की खबरों के लिए प्रेस एसोसिएशन और विदेश की खबरों के लिए रायटर सबसे अधिक प्रतिष्ठित है। रायटर पर ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैण्ड के पत्रों का स्वामित्व है।

ब्रिटेन के अधिकतर सरकारी विभागों के लिए पब्लिक रिलेशन्स आफिसर्स या प्रेस आफिसर्स नियुक्त किये जाते हैं, जो अपने विभाग के द्वारा में जनता और समाचारपत्रों को सूचना प्राप्त कराने में सहायता पहुँचाते हैं। प्रेस सम्मेलनों का प्रबन्ध ये करते हैं, जहाँ मंत्री या विभाग के बड़े अधिकारी, पत्रकारों के सामने भाषण देते हैं, और उपस्थित पत्रकारों के सवाल का जवाब देते हैं।

सम्वाददाताओं और सम्पादकों को सरकारी वक्तव्य की प्रतियाँ दी जाती हैं। बहुत सारी सूचना जो अन्यथा इतनी आसानी से प्राप्त नहीं हो सकती इस प्रकार उन्हें सुलभ हो जाती है। इनका उपयोग करना जरूरी नहीं है। विभिन्न विभागों के इन जन सम्पर्क अधिकारियों और प्रेस अधिकारियों में से लगभग सभी स्थायी कर्मचारी होते हैं और सरकार बदल जाने पर भी ये अपने स्थान पर बने रहते हैं।

सायंकालीन पत्र

शाम को निकलने वाले, लन्दन के दो पत्र हैं ईविनिंग न्यूज (पढ़नेवालों की संख्या १५,४५,९६३) और इविनिंग स्टैण्डर्ड (६,५९,४६९)। क्रमशः डेलीमेल और डेली एक्सप्रेस के स्वामी ही इनके स्वामी हैं, और इनकी राजनैतिक रीति-नीति भी वही है। राजधानी में या उसके आस-पास बसने वाले ही, अधिकतर इन पत्रों के पाठक होते हैं। अपने पाठकों का मनोरंजन करने के अतिरिक्त ताजी से ताजी सूचना भी ये दोपहर से लेकर शाम को छः बजे तक प्रकाशित होने वाले अनेक संस्करणों के रूप में पाठकों को दिया करते हैं।

लन्दन के बाहर से प्रकाशित होने वाले और शाम को छपने वाले पत्रों की संख्या लगभग सत्तर है। स्थानीय दिलचस्पी की कई खबरें इनमें छपती हैं और जिस नगर से इनका प्रकाशन होता है, उसके आस-पास बसने वाले पाठक इन्हें खरीदते हैं। ऐसे नगर भी कई हैं, जहाँ से एक ही पत्र के कई संस्करण निकलते हैं।

रविवासरीय पत्र

लन्दन से निकलनेवाले रविवासरीय पत्रों की संख्या आठ है; एक का अलग संस्करण स्काटलैंड से निकलता है। इनमें से दो (आब्ज़र्वर तथा सण्डे टाइम्स) उच्चकोटि के पत्र माने जाते हैं, जिनमें प्रकाशित लेख, पुस्तक समीक्षा, नाटकादि की खूब लोकप्रियता है। शेष आठ लोकप्रिय पत्र हैं, और इनमें से दो सचित्र हैं। इनकी पाठक संख्या राष्ट्र व्यापी है।

ब्रिटेन के अन्य स्थानों के पाँच रविवारीय पत्रों में से दो स्काटलैंड से निकलते हैं। यद्यपि ये उन्हीं मशीनों का उपयोग करते हैं जिनपर दैनिक छपते हैं, पर दैनिक पत्रों के रविवारीय संस्करण ये नहीं हैं। सबके अपने सम्पादकीय विभाग हैं; अपने-अपने सम्वाददाता हैं और अपनी-अपनी विशेषतायें भी हैं।

साप्ताहिक पत्र

सुबह छपनेवाले दैनिकों में से कुछेक साप्ताहिकों में उनके दैनिक संस्करणों में प्रकाशित समाचारादि का सार-संक्षेप दिया जाता है। इंग्लैंड के लोगों को जो ब्रिटेन के बाहर हैं भेजने के लिए ये मुख्य तौर पर प्रकाशित किये जाते हैं। ५ हजार से लेकर ५०,००० तक की पाठक संख्या वाले एक हजार से अधिक उपनगरीय और प्रान्तीय पत्र भी हैं, कोई तो किसी एक व्यक्ति का अखबार है, जो छपाई का काम करनेवाली उसी स्थान की किसी फर्म द्वारा निकाला जाता है। इन्हें स्थानीय पत्र कहते हैं, और उस स्थान में रहने वालों के लिये दिलचस्पी रखनेवाली खबरें इनमें अधिकतर प्रकाशित हुआ करती है। जन्म मृत्यु, विवाहादि की खबरें भी इन पत्रों में पढ़ने को मिला करती हैं।

इंग्लैण्ड के इतिहास की प्रमुख घटनाएँ

अलफ्रेड महान् द्वारा देश की शक्ति का वर्द्धन	सन् ८७८
मेग्नाचार्टा (Magna Caarta) नामक महान् स्वतंत्रता पत्र की घोषणा	सन् १२१५
गुलाबों का युद्ध	सन् १४८३
मेरी ट्यूडर के द्वारा प्रोटेंस्टट लोगों को जीवित जलाया जाना	सन् १५५४
समुद्र यात्रा द्वारा नवीन देशों की खोज	सोलहवीं सदी
स्पेन के आर्मेडा नामक विशाल जहाजी बेड़े को हराना	सन् १५८०
शेक्सपियर का आविर्भाव	१५८७
पिटीशन ऑफ रॉइट (द्वितीय स्वतंत्रता पत्रक)	सन् १६२८
ऑलिवर क्रामवेल का उदय	सन् १६४२–
चार्ल्स प्रथम को मृत्यु दण्ड	सन् १६४९
राजतंत्र का पुनः प्रारंभ	सन् १६६०
बिल ऑफ राइट्स (Bill of Rights) तीसरास्वतंत्रता पत्रक	सन् १६७९
यूट्रेक्स की संधि	सन् १७१३
इंग्लैण्ड और स्कॉटलैण्ड का संयुक्त राज्य	१७०७
महान कवि मिल्टन के "पैरेडाइज लॉस्ट" का प्रकाशन	१६६७
मेफ्लावर जहाज द्वारा पिलिग्रिम फ़ादर्स का इंग्लैंड छोड़कर अमेरिका चले जाना	१६२०
आइजकन्यूटन के प्रिन्सिपिया (Principia) नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ का प्रकाशन	१६८७

सप्तवर्षीय युद्ध (The seven years War)	१७५६–१७६३
जेकोबाइट विद्रोह	१७१५
अमेरिकन स्वतंत्रता का युद्ध	१७७५–८३
वर्सैल्स की संधि	१७८३
फ्रान्स की राज्य क्रांति	१७८९–९३
वाटरलू की लड़ाई	१८१५
सरजेम्स वॉट के द्वारा भाप के इंजिन का आविष्कार	१७८५
हारग्रीब्ज के द्वारा सूत कातने की मशीन का आविष्कार	१७६४
औद्योगिक क्रांति	१९वीं सदी का प्रथम चरण
स्टीफेन्सन द्वारा रेलगाड़ी का आविष्कार	१८३०
विद्युत शक्ति का आविष्कार	१८३०
अलेक्झेंडर बेल द्वारा टेलीफोन का आविष्कार	१८७३
टेलीग्राफ की पहली लाइन की स्थापना	१८४४
पार्लमेंट सुधार का पहला नियम	१८३२
,, ,, दूसरा ,,	१८६७
,, , तीसरा ,,	१९११
भारतवर्ष का सैनिक विद्रोह	१८५७
मिस्र पर ब्रिटेन का आधिपत्य	१८८२
प्रथम महायुद्ध	१९१४– १९१८
वर्साई की संधि	१९१९
द्वितीय महायुद्ध	१९३८–४५
उपनिवेशों को स्वाधीनता प्रदान	१९४७

इजराइल

दक्षिण पश्चिमी एशिया में यहूदी लोगों का एक स्वतंत्र राष्ट्र। इसकी पूर्वी सीमा पर जोर्डन, उत्तर में लेबनान, दक्षिण में अकाबा की खाड़ी तथा दक्षिण पश्चिम में मिस्र का देश है।

संसार के इतिहास में इजराइल या यहूदी जाति का इतिहास भयङ्कर संघर्षों, रक्तपात और कत्लेआम की घटनाओं से भरा हुआ है। इस जाति को संसार की अन्य जातियों या धर्मों से कोई विशेष सहानुभूति प्राप्त नहीं हुई। थोड़ी संख्या में होने के कारण हमेशा विदेशी लोगों के भयङ्कर आक्रमणों का यह जाति शिकार होती रही।

यहूदी धर्म के संस्थापक हजरत अब्राहम माने जाते हैं। जो यहूदी धर्म के पहले पैगम्बर हैं। इनका समय ईस्वी सन् से २००० वर्ष पूर्व माना जाता है। दूसरा नाम हजरत मूसा का आता है जिन्होंने सदाचार के दस नियमों का विधान बनाया। हजरत मूसा ने सारे संसार में बिखरी हुई यहूदी जाति को 'फिलीस्तीन' में लाकर बसाया और उसे एक देश का रूप देकर उसका नाम "इजराइल" रखा था।

हजरत मूसा के पश्चात् यहूदी जाति के इतिहास में जो नाम एक तेजस्वी नक्षत्र की तरह प्रकाशमान हो रहा है, वह दाउद के पुत्र सुलेमान का है। सुलेमान ने इजराइल की उन्नति में अपना अत्यन्त महत्वपूर्ण पार्ट अदा किया। सबसे पहले उसने इजरायल की जल-शक्ति या जहाजी वेड़े का विस्तार किया। जिससे समुद्र मार्ग से देश-देशान्तरों के साथ इजराइल के बहुत बड़े पैमाने पर व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो गये। इससे इजराइल की काफी व्यवसायिक उन्नति हुई। इसके साथ ही राष्ट्र की आन्तरिक दृढ़ता के लिए उसने इब्रानी भाषा को राष्ट्रभाषा बनाई। सुलेमान की मृत्यु ईस्वी सन् पूर्व ९३७ में हुई। अपने ३७ वर्ष के शासन में सुलेमान ने जो वैभव और कीर्ति इजरायल को प्रदान की, वह शायद उसके बाद फिर कभी इस देश को प्राप्त नहीं हुई।

उसके बाद इजराइल हमेशा बाहरी आक्रमणों का शिकार रहा और वहाँ की जनता विदेशियों के पैरों तले कुचलती रही। सन् ५५० ई० पू० में यह प्रदेश स्थायी रूप से ईरान के अखामनी साम्राज्य के अन्दर आ गया। ईरानी साम्राज्य के अन्दर यहूदी जाति को शान्त पूर्वक रहने और उन्नति करने का अवसर मिला। इसके कई वर्षों पश्चात् अर्थात् ईस्वी सन् पूर्व ४४४ में इनके धार्मिक सिद्धान्तों का संग्रह करके कुछ विद्वानों ने उसे एक धर्म ग्रन्थ का रूप दिया गया। इस धर्म ग्रन्थ का नाम "तौरेत" रक्खा गया। यह पुस्तक यहूदी धर्म में वेद की भाँति पूजनीय मानी जाती है।

इसके पश्चात् इजरायल पर सिकन्दर का आक्रमण हुआ। उसके बाद करीब दो सौ वर्षों तक यह ग्रीक सत्ता के हाथ में रहा।

सन् १३५ ई० में रोम के सम्राट हाड्रियान का जेरूसलेम के यहूदियों पर कोप हुआ और उन्होंने वहाँ के एक-एक यहूदी को पकड़ कर कत्ल करवा दिया। वहाँ के सब बड़े विशाल मकानों और धर्म स्थानों को जमींदोज करके हलों के जरिये सारी भूमि को समतल करके अपने नाम से एक नया नगर बसा दिया और उसमें यहूदियों को आने की सख्त मनाई कर दी। घृणा, प्रतिहिंसा और रोमांचकारी अत्याचार के ऐसे उदाहरण इतिहास में बहुत कम मिलेगें जिसमें मनुष्यों से ही नहीं बल्कि जड़ सांस्कृतिक चिह्नों पर भी ऐसा जुल्म किया गया हो।

छठवीं सदी में इस्लाम के सुप्रसिद्ध खलीफा हजरत उमर ने इजरायल पर हमला करके उसे रोम के पंजे से छुड़ाकर अपने शासन में मिला लिया। अरबों की यह सत्ता इस देश पर ग्यारहवीं सदी के अन्त तक कायम रही।

इसके पश्चात् ईसा की इस पवित्रभूमि को प्राप्त करने के लिए ईसाइयों ने अरबों से सन् ११४७ से १२०४ तक क्रूसेड की इतिहास प्रसिद्ध लड़ाइयाँ लड़ीं। उसके बाद चौदहवीं शताब्दी में प्रसिद्ध आक्रमणकारी हलाकू ने और उसके बाद में तैमूर लंग ने इसे अपने पैरों तले रौंदा।

प्रथम युद्ध के बाद सन् १९१७ में यह प्रदेश अंगरेजों के हाथ में आया और उन्होंने दूसरे मित्र-राष्ट्रों की राय से इसे यहूदियों का धर्म-देश बना दिया। दूसरे महायुद्ध के पश्चात् अंग्रेजों और अमेरिका ने मिलकर "इजरायल" नामक एक स्वतंत्र राष्ट्र की स्थापना कर दी।

यद्यपि ब्रिटेन और अमेरिका ने संसार के नक्शे में इजराइल नामक स्वतंत्र राष्ट्र की स्थापना कर दी पर उनका यह कार्य अरब-राष्ट्रों को बिलकुल पसन्द नहीं है, इजराइल के साथ इन अरब-राष्ट्रों का विद्वेष बराबर बना हुआ है और इसी लिए अरब राष्ट्रों का एक संगठन बनाया जा रहा है। मगर मित्र-राष्ट्र मध्य एशिया में शक्ति संतुलन बनाए रखने के लिए इजरायल को पूरा संरक्षण दे रहे हैं और इसी से यह राष्ट्र धीरे-धीरे अपने पैरों के बल खड़ा होने के योग्य बन रहा है।

इजाबेला

पन्द्रहवीं सदी के अन्त और सोलहवीं सदी के प्रारम्भ में स्पेन की महारानी, जिसके समय में यूरोप के स्पेन देश की गौरवपूर्ण उन्नति हुई।

यूरोप के अन्तर्गत स्पेन एक ऐसा देश था जिस पर दसवीं शताब्दी के पहले से ही मुसलमानी साम्राज्य स्थापित हो गया था और इसी कारण स्पेन के इतिहास का विकास ईसाई यूरोप के इतिहास की अपेक्षा स्वतंत्र रूप से हुआ। दसवीं शताब्दी में जब कि सारा यूरोप अन्धकार में डूबा हुआ था, स्पेन की अरब सभ्यता उन्नति के शिखर पर पहुँची हुई थी। उस समय सारे यूरोप में 'कारडोवा' के समान भव्यनगर कहीं भी नहीं था, शिक्षा के लिए इस नगर में विश्वविद्यालय था। ३०० सार्वजनिक स्नानागार, ३००० मसजिदें और ऊँचे-ऊँचे सैकड़ों 'प्रासाद' बने हुए थे।

मगर इसके साथ ही उत्तरी स्पेन के पहाड़ी क्षेत्रों में कुछ ईसाई राज्य भी बचे हुए थे। सन् ९९३ तक कैस्टील, ऐरेगान, नेवार इत्यादि कई राज्यों का जन्म हो चुका था। और ये राज्य धीरे-धीरे क्रमशः अपनी सीमाएँ बढ़ाते जाते थे।

इजाबेला इसी केस्टील नामक राज्य की रानी थी। और ऐरेगान का युवराज फर्डिनण्ड था। सन् १४६९ में केस्टील की रानी इजाबेला का ऐरेगान के युवराज फर्डिनण्ड से विवाह हो गया और इस विवाह के परिणाम, यूरोप के इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण हुए। इस ने सारे यूरोप में स्पेन का एक महत्वपूर्ण स्थान बना दिया।

स्पेन के उल्लेखनीय शासकों में रानी इजाबेला का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। रानी इजाबेला बड़ी चतुर, महत्वाकांक्षी और सफल शासिका थी। इसने अपने देश स्पेन का ऐसे मजबूत हाथों से निर्माण किया कि वह अगले सौ वर्षों तक यूरोप का सबसे अधिक बलशाली राज्य बना रहा।

रानी इजाबेला के द्वारा किया हुआ सबसे महत्वपूर्ण कार्य समुद्रयात्रा के द्वारा अमेरिका इत्यादि नये-नये देशों की खोज का था। मूर लोगों के अधिपत्य का सम्पूर्ण विनाश कर सारे प्रायद्वीप पर अपना एक छत्र शासन स्थापित कर लेने के तुरन्त पश्चात् रानी इजाबेला ने कोलम्बस को सहायता देकर समुद्रयात्रा पर भेजा। कोलम्बस ने अपनी यात्रा में अमेरिका को ढूँढ निकाला। वह अमेरिका से अटूट धनराशि का प्रवाह स्पेन में लाने लगा। सोलहवीं शताब्दी में अमेरिका से आने वाले धन ने स्पेन को अत्यन्त उन्नतिशील देश बना दिया।

इन सब बातों के बावजूद इस काल में स्पेन में ईसाइयों के द्वारा गैर ईसाई यहूदियों और मूरों के साथ बड़े भयंकर अत्याचार होने लगे। इजाबेला ने स्पेन में इतिहास प्रसिद्ध बदनाम "इंक्विजीशन" नामक धार्मिक अदालतों की फिर से स्थापना की। इन अदालतों द्वारा हजारों मनुष्य जिन पर विधर्मी और नास्तिक होने का अभियोग चलाया जाता था, जिन्दे जला दिये जाते थे। इस प्रकार धीरे-धीरे सारे मूर स्पेन से निकाल दिये गये। ये लोग स्पेन में प्रथम श्रेणी के परिश्रमी और योग्य व्यवसायी थे। इसका परिणाम यह हुआ कि सोलहवीं शताब्दी में स्पेन को महान् प्रतापी राष्ट्र होने का जो गौरव प्राप्त हुआ था, वह एक शताब्दी से अधिक न ठहर सका। संन् १५०२ में रानी इजाबेला की मृत्यु हो गई।

इजियन संस्कृति

होमर के महाकाव्य 'ईलियड' में वर्णित सुप्रसिद्ध ट्राय नगर तथा क्रीट और उसके निकटवर्ती द्वीपों में प्राचीन युग में निर्मित एक सुसंगठित संस्कृति, जिसका समय ईसा

पूर्व ३००० वर्ष से लेकर ईसा पूर्व २००० वर्ष तक माना जाता है।

उन्नीसवीं और बीसवीं सदी विश्व-मानव के लिए खोज और अनुसन्धान का युग है। मनुष्य की तीव्र जिज्ञासा और उसकी महती ज्ञान-पिपासा ने इस सदी में जैसे साकार रूप ग्रहण कर लिया है। जीवन के हरएक क्षेत्र में खोज का जो निरन्तर प्रयास चल रहा है, उससे मानव को प्रतिदिन ऐसी-ऐसी अद्भुत चीजें प्राप्त हो रही है, जिनका उसे अनुमान भी न था।

पुरातत्व के क्षेत्र में भी मनुष्य की खोज प्रवृत्ति बहुत गहराई में घुसती चली जा रही है। जिस समय भारतवर्ष में मनुष्य की खोज प्रवृत्ति ने मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई का पता लगाया, मानवीय इतिहास में एक नया काया-पलट हो गया। बहुत-सी पुरानी निश्चित की हुई, इतिहास सम्बन्धी धारणाएँ खतम हो गईं और कई नवीन धारणाओं का जन्म हो गया। इसी प्रकार रूस के पुरातत्व विभागों के द्वारा अल्ताई पर्वतों की खुदाई में शक-संस्कृति की ऐसी महत्वपूर्ण वस्तुओं का पता लगा, जिनसे प्राचीनता सम्बन्धी, मिस्र के अवशेष भी फीके पड़ गये।

मनुष्य की इसी खोज प्रवृत्ति ने जर्मनी के रहने वाले हाइनरिख श्लीमान नामक व्यक्ति को ट्राय नगर की खोज करने को मजबूर कर दिया। हाइनरिख का जन्म जर्मनी के एक छोटे से गाँव न्येबुकोउ में एक गरीब परिवार में हुआ था। उसका पिता श्लीमान कथा-कहानियों का बड़ा शौकीन था और वह 'होमर' के इलियड काव्य की कहानियाँ बड़े प्रेम से अपने लड़के को सुनाया करता था। कहानी सुनते-सुनते एक दिन हाइनरिख ने पूछा—"फादर, अगर ट्राय की दीवार इतनी चौड़ी और मजबूत थी कि शत्रुओं की मजबूत चोटों के बावजूद बरसों तक उसका पतन नहीं हुआ तो उसके कुछ हिस्से तो अभी भी हमें खोज करने पर मिल सकते हैं।"

बस, यह भावना उसके हृदय में घर कर गई, सो कर गई। उसके बाद कई वर्षों तक वह गरीबी के जंजाल में फँसकर इधर-उधर नौकरी करता रहा। उसके बाद उसने "नील" का व्यापार प्रारम्भ किया और उसमें बहुत धन उपार्जित किया। धन-प्राप्ति के बाद वह अपने हृदय में संजोये हुए सपने को चरितार्थ करने के लिए सन् १८७० में काफी लवाजमें के साथ एशिया माइनर के "हिंसारलिक" नामक स्थान पर आया और "ट्राय" नगर की खोज के लिए खुदाई आरम्भ कर दी। बहुत लम्बे परिश्रम के बाद उसका सपना सत्य हुआ और एक दिन उसे साढ़े तीन हजार वर्षों से दबी हुई ट्राय नगरी के अवशेषों का दर्शन हुआ। उसने अपनी कल्पना में जिस समृद्धिशाली ट्राय नगरी का चित्र बना रक्खा था, यह नगरी उससे भी अधिक वैभवपूर्ण और शानदार निकली।

इसके बाद हाइनरिख श्लीमान ने इजियन समुद्र को पार करके ग्रीस में आकर प्रागैतिहासिक माइकिनी और सिरिन्स नगरियों की खोज के लिए खुदाई प्रारम्भ करके इजियन सभ्यता के केन्द्र—इन नगरियों के अवशेष ढूँढ निकाले। पाँच हजार वर्ष पूर्व यही इजियन सभ्यता ग्रीस और एशिया माइनर के मध्यवर्ती क्षेत्रों में फैली हुई थी। इन्हीं द्वीपों में सबसे बड़े द्वीप क्रीट और एशिया माइनर के उपकूल में स्थित ट्राय नगरी में, इस सभ्यता का चरम विकास हुआ था। अभी तक मानवीय इतिहास में जिन महान् संस्कृतियों का पता लग चुका है, यह संस्कृति उनसे भिन्न और प्राचीन थी। इजियन सागर के द्वीपों में इसका विकास होने के कारण इसका नाम इजियन संस्कृति रक्खा गया।

इस खुदाई में प्रागग्रीक युग के स्थापत्य के नमूने, संगमर्मर और हाथी दाँत की कलापूर्ण चीजें, सोने और चाँदी के मनोहर आभूषण, नक्काशीदार प्याले, दीवारों और बर्त्तनों पर अलभ्य चित्रकारी और नक्शे पाये गये हैं। इन अवशेषों से उस समय की सामाजिक स्थिति पर भी प्रकाश पड़ता है। मालूम होता है कि उस सभ्यता में स्त्री को भी पुरुष की तरह पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी। राज-दरबार के उत्सवों और आमोद-प्रमोद में वे पुरुषों ही की तरह आजादी से भाग लेती थीं।

इस युग में क्रीट में मिनोस वंश राजा राज्य करते थे। और क्रीट के उत्तरी तट पर बसे हुए कनोसस नगर में उनकी राजधानी थी। अपनी जाहो जलाली के समय में इन राजाओं ने क्रीट और उसके आसपास के सब द्वीपों पर

अधिकार कर लिया था। होमर के महाकाव्य इलियड में वर्णित ट्राय नगर मिनोई राजवंश का एक उपनिवेश था।

अन्त में इस शान्तिपूर्ण सभ्यता पर उत्तर से इण्डो-यूरोपीय ग्रीक जाति के लोगों का हमला हुआ और इन दुर्द्धर्ष लोगों के आक्रमण से यह संस्कृति हमेशा के लिए जमीन के गर्भ में समा गई। जिसके अवशेषों का उद्धार कर मानवीय इतिहास में एक नवीन अध्याय जोड़ने का श्रेय हाइनरिख श्लीमान को है।

इन अवशेषों में जिन बड़े-बड़े भवनों के खण्डहर, सोने, चाँदी के आभूषण और अन्य वस्तुओं का पता लगा है, उनसे मालूम होता है कि ईसा के पूर्व करीब तीन हजार वर्ष पूर्व, इस क्षेत्र में जिसमें क्रीट भी शामिल है, एक महान् संस्कृति का उदय हुआ था, जिसे मिनोई इजियायी सभ्यता कहा जाता है।

इस युग के राजा मिनोस कहलाते थे और क्रीट के उत्तरी तट पर बसे कनोसस में उनकी राजधानी थी। मिनोई काल की जाहो जलाली के समय में मिनोस राजाओं ने प्रायः सारे क्रीट और आस पास के द्वीपों पर अधिकार कर लिया। इस सभ्यता के अन्तर्गत भवन-निर्माण-कला, मिट्टी के तरह-तरह के बर्तन, टोंटीदार सुराहियाँ, पत्थर के बर्तन, धातुओं की चीजें, इत्यादि का निर्माण मनुष्य के ज्ञान की सीमा में आ गया था और मनुष्य आराम के साथ अपना सामाजिक जीवन व्यतीत करता था। उस समय के बने हुए भित्तिचित्र बड़े महत्वपूर्ण हैं। उनसे भास होता है कि दरबार के आमोद-प्रमोद में स्त्रियाँ उसी आजादी से भाग लेती थीं जिस आजादी से पुरुष लेते थे।

होमर के महाकाव्य इलियड में जिस ट्राय नगर पर घेरा डाला गया था, वह इसी मिनोई राजवंश का एक उपनिवेश था।

इजेकियल

यहूदी जाति के धर्मनेता जो ईसा से पूर्व छठी शताब्दी में अवतीर्ण हुए।

उस समय बैबिलोनियन साम्राज्य बड़े उत्कर्ष पर था और इसकी गृद्ध-दृष्टि हमेशा जेरूसलेम और इजराइल पर रहा करती थी। ईसा से ५९८ वर्ष पूर्व बेबिलोनियन सेनाओं ने जेरूसलेम पर आक्रमण करके उसे तहस-नहस कर दिया और हजारों यहूदियों को कैद करके बाबुल में पहुँचा दिया। इजेकियल भी इन्हीं बन्दियों में थे और इसी निर्वासित अवस्था में उन्होंने अपना शेष जीवन बिताया।

इन्होंने "इजेकियल" नामक धर्मग्रन्थ की रचना की जो आज भी यहूदी लोगों का पूज्य ग्रन्थ माना जाता है।

इटपल्ली-राघवन-पिल्ला

मलयालम भाषा में दुःखान्त काव्य का एक प्रसिद्ध कवि, जिसका जन्म सन् १९०९ में और मृत्यु सन् १९३६ ई० में हुई।

इटपल्ली-राघवन-पिल्ला का जन्म एक गरीब घर में हुआ था। बाल्य-काल में इसको कई प्रकार के कष्ट उठाने पड़े, मगर संयोग वश एक सम्पन्न परिवार की महिला के प्रति उसका मन अनुरक्त हो गया। किन्तु कई कारणों से उसके साथ उसका विवाह-सम्बन्ध न हो सका, इससे निराश होकर सन् १९३६ में उसने आत्महत्या कर ली।

राघवन-पिल्ला की भाषा और कविता में ओज और माधुर्य भरे हुए रहते थे यद्यपि उसकी कविताएँ दुःख-पूर्ण वातावरण का अधिक निर्देश करती थीं। उसकी 'काट्टारिंटे करचिल्लू' (वन से बहने वाली नदी का विलाप) और 'मणि नादम्' (घंटा निनाद) आदि कविता-संग्रह विशेष प्रसिद्ध हैं। आदर्शपूर्ण जीवन बिताने के लिए कठोर परिश्रम करने पर भी पराजित होने वाले व्यक्ति की निराशा भरी मनोवृत्ति का प्रतिबिम्ब उसकी कविताओं में पाया जाता है।

इटली

यूरोप का एक देश जहाँ से प्राचीन इतिहास में प्रसिद्ध रोमन साम्राज्य का विकास हुआ। यूरोप के दक्षिण में स्थित तीन बड़े प्रायद्वीपों में बीच का प्रायद्वीप जो भूमध्यसागर के मध्य में स्थित है। इसकी आबादी चार लाख नब्बे हजार (१९५०) है। इसके प्रसिद्ध शहर रोम, जिनेवा, नेपल्स, मिलान इत्यादि हैं।

यूरोप के सुप्रसिद्ध रोम साम्राज्य की बुनियाद इटाली के प्रसिद्ध शहर रोम में ही रखी गई थी।

प्राचीन रोमन लोग, जिन्होंने यूनानी नगर-राज्यों को जीतकर रोमन साम्राज्य की नींव रखी, वे संभवतः आर्य जाति की एक शाखा के वंशज थे। ईसा के लगभग ८०० वर्ष पूर्व रोमन लोग टाइबर नदी के पास की पहाड़ियों पर अपनी कुछ बस्तियाँ बसाए हुए थे। धीरे-धीरे ये बस्तियाँ या नगरराज्य बढ़ते-बढ़ते इटली भर में फैल गये। इसकी सीमा सिसली के सामने वाले दक्षिण सिरे पर मेसीना तक पहुँच गई और इटली का ज्यादातर हिस्सा उसके अधिकार में आ गया। (रोम साम्राज्य का सिलसिलेवार इतिहास "रोम" नाम के अन्तर्गत आगे के भाग में दिया जावेगा।)

रोमन साम्राज्य की स्थापना होने के पूर्व रोम के इस राज्य का शासन, गणराज्य के शासन से मिलता-जुलता था। शासन का काम 'सिनेट' नामक एक संस्था करती थी जिसके सदस्य कुलीनवर्ग के अमीर लोग ही हुआ करते थे। उस समय रोम में गुलामी की प्रथा बड़े जोर-शोर से चालू थी। गुलामों की बिक्री के लिये बड़ी-बड़ी मण्डियाँ बनी हुई थीं।

जूलियस सीजर के पहले रोम के इस प्रजातांत्रिक इतिहास में पैट्रीशियन और प्लेबियन लोगों के अधिकारों का संघर्ष सबसे अधिक महत्व रखता है। रोम के पुराने राजवंशी और सम्पन्न नागरिक जिन्हें राजकार्यों में भाग लेने का पूरा अधिकार था, "पैट्रीशियन" कहलाते थे और बाहर से आकर बसाने वाले नवीन मनुष्य, मजदूर, निर्धन इत्यादि लोग, जिन्हें राजकार्यों में भाग लेने का कोई अधिकार न था 'प्लेबियन' कहलाते थे। आस-पास के देशों से जब लड़ाई का काम पड़ता था तब ये प्लेबियन सैनिक अपने राष्ट्र की, शत्रुओं से रक्षा करते थे और जब लूट के माल का बटवारा होता तो सब पैट्रीशियन लोग उसे बाँटकर खा जाते थे। प्लेबियन लोगों को कुछ भी नहीं मिलता था।

प्लेबियन और पैट्रीशियन लोगों का यह संघर्ष कई सदियों तक चलता रहा, जिसका सिलसिलेवार वर्णन "रोम" शब्द के साथ दिया जावेगा।

प्यूनिक युद्ध

जिस समय रोम की सत्ता इटली में बढ़ रही थी, उस समय उत्तरी अफ्रीका में फिनिशियन लोगों के वंशज कार्थेज नगर के निवासी कार्थेज लोगों की ताकत बढ़ रही थी। कार्थेज लोग समुद्री ताकत और जहाज चलाने की कला में बड़े प्रवीण थे। रोम और कार्थेज की दोनों शक्तियों के बीच में केवल भूमध्य सागर का एक तंग भाग पड़ता था जो उन दोनों के संघर्ष को रोकने में असमर्थ था। परिणामस्वरूप दोनों की बढ़ती हुई नवीन शक्तियाँ रोम और कार्थेज आपस में टकराईं और इनमें तीन बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ हुईं जो इतिहास में 'प्यूनिक' युद्ध के नाम से मशहूर हैं।

इन लड़ाइयों में पहली लड़ाई ई० सन् पूर्व २६४ में, दूसरी ई० सन् पूर्व २१६ में और तीसरी लड़ाई ई० सन् पूर्व करीब १५० में हुई जिसमें रोमन शक्ति ने कार्थेज शक्ति को बिल्कुल मटियामेट कर दिया और कार्थेज नगर, जो भूमध्यसागर की रानी कहलाता था, बिल्कुल जमींदोज कर दिया गया। कार्थेज पर विजय प्रात करने के बाद रोम की शक्ति तेजी से बढ़ने लगी। स्पेन भी उसके अधिकार में आ चुका था, मगर राज्य की शक्ति के विस्तार के साथ-साथ वहाँ की सीनेट का शासन कमजोर पड़ने लगा, आन्तरिक विद्रोह बढ़ने लगे, सेनायें शासन पर हावी होने लगीं और रोमन सेना के प्रसिद्ध सेनापति जूलियस सीजर और पाम्पी दोनों प्रतिद्वन्दियों के रूप में मैदान में आ गये। अन्त में सीजर ने पाम्पी को हरा दिया और वह रोमन गणतन्त्र का प्रमुख नेता बन गया। सीजर ने गाल (आधुनिक फ्रान्स) और ब्रिटेन को भी जीत कर रोम साम्राज्य में मिला दिया। इस भारी विजय से मदोन्मत्त होकर उसने रोमन साम्राज्य का ताज सिर पर रख कर सम्राट् बनने की कोशिश की। यह बात ब्रूटस को सहन न हुई जो कि गणतन्त्र का पक्षपाती था। ब्रूटस ने उत्तेजित होकर सीनेट भवन, जो कि उस समय फोरम कहलाता था, की सीढ़ियों पर जूलियस सीजर को छुरा भोंक कर मार दिया। यह घटना ई० सन् पूर्व ४४ में हुई।

मगर जूलियस सीजर की हत्या रोम में आने वाले साम्राज्यवाद से उसकी रक्षा न कर सकी और सीजर का

पोष्य पुत्र आक्टेवियस सीज़र की हत्या का ब्याज सहित बदला लेकर आगस्टस सीजर के नाम से रोम की गद्दी पर बैठा और तब से 'सीजर' शब्द का अर्थ ही सम्राट हो गया।

आगस्टस सीजर के समय में रोम या इटाली का साम्राज्य पश्चिम में स्पेन और गाल (फ्रांस) तक, पूर्व में यूनान और एशिया कोचक तक फैला हुआ था। उत्तरी अफ्रीका में मिस्र रोम का रक्षित राज्य समझा जाता था। कार्थेज और भूमध्य सागरीय देशों के कुछ दूसरे हिस्से भी रोमन साम्राज्य के अधीन थे।

आगस्टस सीजर के बाद लगभग तीन सौ वर्षों तक उसके वंशज रोम साम्राज्य का शासन करते रहे, मगर इस दीर्घकालीन अवधि में बढ़े हुए ऐश्वर्य और भोग-विलास के कारण, रोमन जनता का जीवन ऐय्याशी में डूबने लगा और साम्राज्य की जड़ें क्रमशः कमजोर होती गईं।

यह स्थिति देखकर ई० सन् ३२६ में रोम के तत्कालीन सम्राट कान्स्टेण्टाइन ने रोम से बहुत दूर दर्रे दानियाल के किनारे पर एशिया और यूरोप की मिली हुई सरहद पर 'कान्स्टेण्टीनोपल' नामक एक नया शहर बसाया और रोम साम्राज्य की राजधानी को वह रोम से बहुत दूर इस नगर में ले आया। मगर राजधानी के इस परिवर्तन से एक दिक्कत यह खड़ी हो गई कि इस राजधानी में बैठ कर सुदूरवर्ती पश्चिमीय साम्राज्य पर शासन करना कठिन हो गया। फलस्वरूप रोम साम्राज्य की दो राजधानियाँ बनानी पड़ीं और दोनों राजधानियों के सम्राट अलग-अलग बनने लगे। इस प्रकार रोमन साम्राज्य दो भागों में विभक्त हो गया और रोम का पश्चिमी साम्राज्य बाहरी बर्बर जातियों के आक्रमणों से दिन पर दिन क्षीण होने लगा।

इसी बीच पश्चिमी रोमन साम्राज्य में धीरे-धीरे एक दूसरी शक्ति उदय होकर उसे अपनी छाया में ले रही थी। यह शक्ति रोमन कैथोलिक चर्च की शक्ति थी। कैथोलिक गिर्जे के धर्माचार्य पहले 'विशप' कहलाते थे, मगर अन्य गिर्जों के विशपों से जब उनका रुतबा बढ़ा तो वे 'पोप' कहलाने लगे।

सन् ३७८ ई० में गाथ नामक जर्मन जाति के लोगों से, जो कि हूणों के आक्रमण के डर से रोम साम्राज्य में आकर बस गई थी, रोमन सेनाओं का झगड़ा हुआ और उसके फलस्वरूप एड्रियानोपुल की भयंकर लड़ाई हुई जिसमें गाथ लोगों ने रोमन सेनाओं को करारी हार दी और रोम के सम्राट वालेन्स को पराजित करके मार डाला! कुछ दिनों के पश्चात् आलेरिक नामक एक जर्मन सरदार ने सेना एकत्र कर इटली पर धावा किया और सन् ४११ में रोम पर अधिकार कर लिया, मगर उसने रोम की सभ्यता से प्रभावित होकर शहर या गिर्जे को किसी प्रकार का नुकसान नहीं पहुँचाया।

सन् ४७६ में ओडेसर नामक एक जर्मन सरदार ने रोम पर हमला करके वहाँ के सम्राट् को निकाल दिया और पश्चिमी सम्राट् के राजदण्ड और छत्र इत्यादि को लेकर उसने 'कुस्तुन्तुनिया' के पूर्वीय सम्राट् के पास भेज दिये! इस औडेसर को गाथ जाति के सरदार थियोडोरिक ने जीत लिया और उसे मार डाला। थियोडोरिक ने पश्चिमी रोम में सम्राट की तरह ही शासन किया, मगर उसने अपने आपको सम्राट् घोषित नहीं किया। अपने सिक्कों पर उसने पूर्वीय सम्राट् की मूर्ति ही बनवाई। सन् ५२६ में इसका देहान्त हुआ।

इस समय रोम का पश्चिमी साम्राज्य कई टुकड़ों में विभक्त हो गया। फ्राङ्क नामक प्रसिद्ध जाति ने गाल पर अपना राज्य जमा कर उसको फ्रान्स का नाम दिया। पूर्वीय गाथ जाति के लोग इटली पर शासन कर रहे थे। पश्चिमी गाथ जाति के लोग पहले से ही स्पेन में शासन कर रहे थे और वाण्डाल जाति के लोग उत्तरी अफ्रीका में पहुँच गये थे। इसी समय, जिस समय कि फ्राङ्क जाति अपनी शक्ति को बढ़ा रही थी, चर्च की शक्ति का विस्तार हो रहा था। शुरू-शुरू में रोमन चर्च की स्थापना ईसा मसीह के प्रधान शिष्य 'सेण्ट पीटर' की स्मृति में एक विशुद्ध धार्मिक संस्था के रूप में हुई थी लेकिन आगे जाकर इस संस्था ने राजनैतिक रूप भी धारण कर लिया और सम्राटों को बनाने और बिगाड़ने में पोप लोगों का प्रधान रूप से हाथ रहने लगा और अन्त में रोम साम्राज्य की विदेशी

आक्रमणों से रक्षा करने और यूनानी चर्च के उपासक पूर्वीय रोम साम्राज्य से नाता तोड़ देने के लिये, रोमन चर्च के तत्कालीन पोप लियो तृतीय ने, फ्राङ्क जाति के महान विजेता शार्लमेन के सिर पर रोमन साम्राज्य का ताज रखकर, रोमन साम्राज्य का सम्राट घोषित कर दिया।

सेण्ट पीटर के गिर्जाघर में हुई इस घटना का सारे यूरोप के इतिहास पर बड़ा प्रभाव पड़ा। अब जो साम्राज्य स्थापित हुआ, वह यद्यपि नवीन था तथापि आगस्टस के ही बनाये हुए रोमन साम्राज्य का परम्परागत साम्राज्य समझा जाने लगा। इस घटना से एक ओर जहाँ शार्लमेन को अपरिमित सत्ता मिल गई, वहाँ दूसरी ओर रोमन चर्च के पोप की शक्ति भी अनियन्त्रित हो गई। इसके बाद रोम का यह साम्राज्य धर्म शक्ति और राज-शक्ति या सम्राट और पोप इनकी प्रतिद्वन्दिता का एक अखाड़ा सा बन गया। पोप की गद्दी पर ग्रेगरी महान, बोनीफेस, अलेक्झेण्डर पोप, इन्नोसेण्ट इत्यादि कई महान व्यक्ति आसीन हुए।

पुनर्जागरण युग

पन्द्रहवीं शताब्दी के लगभग इटली में एक नवयुग का उदय हुआ, जिसे पुनर्जागरण युग कहते हैं। इस जमाने में इटली यूरोपियन सभ्यता का केन्द्र बना हुआ था। इसके नगर विशेष कर फ्लोरेन्स, वेनिस, मिलॉन इत्यादि इतने समृद्ध तथा उन्नत हो रहे थे कि जिसका आल्प्स पर्वत के दूसरे तरफ रहने वालों को खयाल भी न था। उस समय प्राचीन यूनान की भाँति इटली के नगरों में भी छोटे-छोटे राज्य थे। इनका अपने ढंग का जीवन तथा अपने ही ढंग का प्रबन्ध था। ये छोटे-छोटे राज्य आपस में लड़ते भी रहते थे। फ्लोरेन्स के प्रसिद्ध कूटनीतिज्ञ मेकियावेली ने उस समय के तत्कालीन शासकों के लिए प्रिन्स नामक एक छोटा सा राजनीति विषयक ग्रन्थ लिखा था जिसके पढ़ने से उस समय के स्वेच्छाचारी और क्रूर राजाओं की शासन-प्रणाली का पूरा पता चलता है।

फिर भी इस अशान्ति के समय में भी इटली का फ्लोरेन्स नगर सभी कलाओं का केन्द्र था। इटली निवासियों के सूक्ष्म तथा मर्मस्पर्शी भावों का प्रतिबिम्ब फ्लोरेन्स निवासियों में सार रूप से वर्तमान था। सम्पूर्ण इटली देश साहित्य, कला, कानून तथा विज्ञान में फ्लोरेन्स की प्रधानता को मानता था।

इसी युग में इटली में नये-नये विद्यापीठों की स्थापना हुई तथा अल्बर्टस, मैगनस, टामस, आइक्विनस तथा रोजर बेकन के समान बड़े-बड़े विद्वानों ने धर्म, विज्ञान और दर्शन पर बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखे।

इसी युग के कुछ पहले इटली ने "दान्ते" और 'पैट्रार्क' के समान महान कवियों को पैदा किया।

इसी युग में 'ह्यूमेनिस्ट' नामक साहित्यिकों की एक प्रणाली का इटली में जन्म हुआ। ह्यूमेनिस्टों ने शिक्षा के आदर्श में लैटिन तथा ग्रीक साहित्य को प्रधानता देकर नवीन विचारधारा का प्रारम्भ किया, इन्होंने वहाँ के विद्यालयों में लैटिन और ग्रीक साहित्य के अध्ययन को प्रधान स्थान दिया।

सन् १४६६ में इटली में छापेखाने की कला का पहले-पहल प्रचार हुआ। इस छापे के अक्षर प्रचीन रोम के शिलालेखों के अक्षरों के सदृश थे। इटली वालों ने एक विशेष प्रकार के टाइप, जो टेढ़े होते थे निकाले। ऐसे टाइपों को आजकल "इटालिक टाइप" कहा जाता है। भवन-निर्माण कला का भी इस सदी में काफी विकास हुआ। उस समय के लोग ऊँची महराबों और पत्थर की नक्काशी का उपयोग विशेष रूप से करते थे।

मूर्तिकला के अन्दर भी पीसा नगर के प्रसिद्ध मूर्तिकार "निकोला" ने काफी ख्याति प्राप्त की। चौदहवीं शताब्दी में इटली के विख्यात चित्रकार "जोटो" ने चित्रकला के विकास में बहुत उत्साह दिखलाया, इससे इस कला में बड़ी शीघ्रता से विशेष उन्नति हुई।

चौदहवीं शताब्दी से इटली के साहित्य और कला में जो उन्नति हुई, वह सोलहवीं शताब्दी में अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी। पन्द्रहवीं शताब्दी में फ्लोरेन्स नगर कला और व्यवसाय का केन्द्र था। फ्लोरेन्स नगर के गिर्जे का काँसे का बना हुआ द्वार, जिसे गिवर्टी ने सन् १४५० में तैयार किया था, नवयुग के शिल्प के उत्कृष्ट उदाहरणों में से है। प्रसिद्ध शिल्पशास्त्री माइकेल अंजेलो ने इस द्वार को स्वर्ग के द्वार की उपमा दी है।

इसी युग में रोम में पोप द्वितीय जूलियस तथा लिओ दशम ने बड़े प्रयत्न से उस समय के बड़े चित्रकारों और शिल्पियों को एकत्रित करके सेएटपीटर के महान् चर्च की सजावट तथा उस गिर्जे के गुम्बद को बनाने का प्रयत्न प्रारम्भ किया। इसका निर्माण कार्य सन् १५०६ ई० में प्रारम्भ हुआ। यह कार्य उस समय के प्रसिद्ध कारीगर "रॉफेल" और "माइकेल अन्जेलो" के निरीक्षण में प्रारम्भ हुआ और सारी सोलहवीं सदी और सत्रहवीं सदी के कुछ भाग तक चलता रहा। यह भवन क्रॉस के आकार का है और इसके गुम्बद का व्यास १३८ फुट है। क्रिश्चियन धर्म-मन्दिरों में यह सबसे अधिक विशाल है।

छापे की कला के आविष्कार के साथ ही इटली के लोगों ने समुद्र-यात्रा के अन्तर्गत भी विशेष उन्नति करना प्रारम्भ किया। इसके पहले इटली के निवासी, दक्षिणी यूरोप, उत्तरी अफ्रीका तथा पश्चिमी एशिया के अतिरिक्त दूसरे संसार के सम्बन्ध में बहुत कम जानते थे।

महाकवि दान्ते के समय में वेनिस के पोलो नामक दो व्यापारी चीन देश में गये थे। सन् १२६५ में दूसरी यात्रा के अन्तर्गत उनके साथ उनका लड़का मार्को-पोलो भी गया था बीस वर्ष तक भ्रमण करके सन् १३१५ वह वापस आया उसने अपनी यात्रा का जो वर्णन लिखा है, वह अत्यन्त आश्चर्य जनक है। उसने स्वर्णद्वीप, जियाएड (जापान) तथा मसाले उत्पन्न करने वाले द्वीप मलक्का का जो वर्णन लिखा, उसने यूरोप वालों को बहुत आकृष्ट और उत्साहित किया।

हम ऊपर लिख आये हैं कि साहित्य और कला के क्षेत्र में अत्यन्त विकसित होने पर भी राजनैतिक दृष्टि से इटली छोटे-छोटे राज्यों में बँटा हुआ था और ये छोटे-छोटे राज्य आपस में लड़ा करते थे। नेपोलियन महान् के आक्रमण के समय जब इटली उसके अधिकार में चला गया तो उसने सारे इटली को एक संयुक्त रूप दे दिया। मगर नेपोलियन के बाद फिर उसकी हालत बहुत खराब हो गई और सन् १८१५ में वियेना की कॉंग्रेस में विजयी राष्ट्रों ने इस देश के टुकड़े-टुकड़े करके आपस में बाँट लिये। आस्ट्रिया ने वेनिस और उसके आस-पास का बड़ा प्रान्त अपने अधिकार में कर लिया। पोप ने रोम और उसके आस पास की रियासतों को पोप का राज्य बना लिया। नेपल्स और दक्षिणी इटली को मिला कर एक बोरबा राजा के अधिकार में दे दिया। इस प्रकार देश के खण्ड-खण्ड हो गये और इन छोटे-छोटे शासकों ने जनता पर बड़े-बड़े अत्याचार करना शुरू किये।

इन अत्याचारों की प्रतिक्रिया जनता में बड़ी तेजी से हुई और जनता के अन्दर से इतिहास-प्रसिद्ध "ग्विसेप मेजिनी" नामक एक तेजस्वी और क्रान्तिकारी युवक प्रकट हुआ। जिसने सन् १८३० में "यंग इटली" नामक एक संगठन किया। जिसका उद्देश्य सारे इटली देश में एक गणतन्त्र-राज्य की स्थापना करना था। इस कार्य के लिये उसे वर्षों तक बड़े-बड़े कष्ट उठाने पड़े। सन् १८४८ ई० में मेजिनी ने रोम जाकर वहाँ के पोप को निकाल दिया और तीन आदमियों की एक समिति बना कर इटालियन गणराज्य की घोषणा कर दी। इस गणराज्य पर चारो तरफ से आस्ट्रिया, फ्रान्स और नेपल्स के द्वारा हमले होने लगे, मगर इसी समय रोम के गणराज्य की तरफ से लड़ने वाला महान् सेनापति 'गेरिबाल्डी' आगे आया। उसने अपने स्वंयसेवकों की सहायता से आस्ट्रिया और फ्रान्स को कुछ समय तक आगे न बढ़ने दिया, मगर अंत में फ्रान्स की संगठित शक्ति के सम्मुख रोमन गणतन्त्र की हार हुई और फ्रान्स वालों ने पोप को फिर से लाकर रोम की गद्दी पर बिठा दिया।

मगर मेजिनी और गेरिबाल्डी इन विपरीत घटनाओं से निराश नहीं हुए। वे अपना प्रचार और प्रयत्न पूरी तेजी के साथ आगे बढ़ाते रहे। हालाँकि दोनों के लक्ष्य और आदर्शों में अन्तर था। मेजिनी एक विचारक और राजनीतिज्ञ श्रेणी का व्यक्ति था जबकि गेरिबाल्डी एक सैनिक प्रवृत्ति का और गुरिल्ला युद्ध का विशेषज्ञ था। मगर इटाली की आजादी की लगन में दोनों का लक्ष्य समान था। इसी समय पीडमाएट के राजा विक्टर इमामुएल का प्रधानमन्त्री 'काबूर' भी मेजिनी की इस लड़ाई में शामिल हुआ मगर इसका उद्देश्य इन दोनों से बिल्कुल भिन्न था। वह इटली में गणतन्त्र की जगह अपने राजा इमानुएल को इटली का बादशाह बनाना चाहता था।

सन् १८५९ में जब कावूर के षड्यंत्र से फ्रांस और आस्ट्रिया दोनों देश आपस में लड़ रहे थे, गेरिबाल्डी ने अपने एक हजार सैनिकों के साथ बिना किसी से सलाह लिये, नेपल्स और सिसली पर फौजी आक्रमण कर दिया। यद्यपि दुश्मनों की संख्या गेरिबाल्डी के स्वयं सेवकों से अधिक थी, मगर गेरिबाल्डी के सैनिकों की संगठन कुशलता और जनता की सद्भावना से उन्हे एक के बाद दूसरी विजय प्राप्त होती गई। गेरिबाल्डी की कीर्ति चारों तरफ फैल गई और उसके नाम के जादू से आकर्षित होकर हजारों स्वयंसेवक उसके झण्डे के नीचे आ गये।

अन्त में गेरिबाल्डी के सैनिक साहस और वीरत्व तथा मेजिनी के आदर्शवाद और राजनीतिज्ञता तथा कावूर की कूटनीतिज्ञता से सन् १८६१ ई० में इटली का राष्ट्र विदेशी शासन से मुक्त हो गया और पीडमाण्ट का राजा विक्टर इमामुएल इटली का बादशाह बना दिया गया।

मगर इससे मेजिनी के गणतन्त्र का स्वप्न पूरा न हुआ, फिर भी इतना अवश्य है कि विक्टर इमामुएल का राज्य एक वैधानिक राज्य था।

इतने पर भी इटली का नाम यूरोप के आधुनिक इतिहास में विशेष आगे नहीं रहा। यूरोप की दूसरी शक्तियाँ इंग्लैंड, जर्मनी, फ्रान्स, आस्ट्रिया उससे बहुत आगे बढ़ गये और इटली दूसरी श्रेणी की शक्तियों में हो गया।

प्रथम महायुद्ध के शुरू होने के पूर्व इटली भयंकर आर्थिक संकट में फँसा था। सन् १९११-१२ में तुर्की के साथ उसका युद्ध हुआ और उस युद्ध की जीत के फलस्वरूप अफ्रीका के त्रिपोली उपनिवेश पर उसका अधिकार हो गया, मगर फिर भी उसकी अन्तरंग स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ। सन् १९१४ में जब कि महायुद्ध शुरू हुआ, पहले इटली जर्मन ग्रूप के साथ रहा, मगर फ्रांस के द्वारा कुछ अधिक प्रलोभन दिये जाने पर वह जर्मन ग्रूप से निकल कर एंग्लो-फ्रान्स ग्रूप में शामिल हो गया।

प्रथम महायुद्ध में मित्र-राष्ट्रों की विजय हो गई, मगर फिर भी इटली की हालत में कोई सुधार नहीं हुआ। उसकी अर्थ-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो रही थी। मजदूरों में असन्तोष फैल रहा था जिसके परिणाम स्वरूप सन् १९२० में धातु का काम करने वाले पाँच लाख मजदूरों ने "काम रोको" हड़ताल कर दी और उन कारखानों पर अधिकार करके उन्हें समाजवादी ढंग पर चलाने का प्रयत्न किया। उस समय इटली में समाजवादी दल का बहुत जोर था। मजदूर दलों के सिवाय कई नगर-पालिकाओं की बागडोर भी उसके हाथ में थी।

इसी समय 'बेनीतो मुसोलिनी' नामक व्यक्ति ने फासिस्ट दल की स्थापना करके बेकार लोगों को इस दल में भर्ती करना शुरू किया और उसके दल ने श्रमजीवी आन्दोलन को दबाना शुरू कर दिया। इटली की नियमित सेना भी 'फासिस्ट' लोगों की तरफ बहुत झुकी हुई थी और उसके सेनापतियों को मुसोलिनी ने अपनी तरफ मिला लिया था।

अन्त में सन् १९२२ ई० में नियमित सेना के सेनापतियों द्वारा संचालित इन फासिस्ट दस्तों ने रोम पर चढ़ाई कर दी। उसकी शक्ति को देखकर इटली के बादशाह ने मुसोलिनी को अपना प्रधानमंत्री बना दिया। जिसके फलस्वरूप मुसोलिनी इटली का पूर्ण सत्ताधारी निरंकुश शासक बन गया और इटली के परराष्ट्र-विभाग, गृह-विभाग, उपनिवेश-विभाग, युद्ध-विभाग, श्रम विभाग इत्यादि सारे विभागों का वह मालिक बन बैठा। बादशाह और पार्लिमेंट शक्तिविहीन हो गये। विरोध करने वाले असंख्य लोगों को उसने जेल में डाल दिया और निर्वासित कर दिया।

इन्हीं दिनों जर्मनी में 'हिटलर' का 'नाजीवाद' प्रकट हो रहा था और स्पेन में जनरल 'फ्रांको' का उदय हो रहा था। ये तीनों तानाशाह मिलकर सारे संसार पर विजय प्राप्त करने के स्वप्न देख रहे थे और अपनी शक्तियों का अनियन्त्रित विस्तार कर रहे थे। जिसके परिणाम स्वरूप दूसरे महायुद्ध की प्रचण्ड विभीषिका शुरू हुई और उसमें हिटलर और मुसोलिनी का बुरी तरह से पतन हुआ।

महायुद्ध के समय इटली ने जो आशाएँ बाँध रखी थी, वे पूरी नहीं हुई। इस युद्ध में भी यह एक बोगस राष्ट्र साबित हुआ और अन्त में जर्मनी के साथ-साथ इसका भी बुरी तरह से पतन हुआ। सन् १९४८ में नये विधान के अनुसार इटली ने राजतंत्र को समाप्त कर अपने यहाँ गणतंत्र की घोषणा कर दी।

इटालियन साहित्य

इटली देश का साहित्य, जिसको महाकवि दान्ते और पेट्रार्क के समान साहित्यकारों ने अपनी महान् प्रतिभा से सम्पन्न किया।

समस्त विश्व-साहित्य में नवीनता, प्रौढ़ता और मधुर अभिव्यक्ति के लिए इटालियन साहित्य भी अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

जिस समय इंग्लैण्ड और फ्रान्स 'शतवर्षीय युद्ध' में फँस कर पारस्परिक कलह में अपनी शक्तियों का विसर्जन कर रहे थे और जर्मनी के छोटे छोटे राज्य बिना नेता के अपने प्रश्नों को हल कर रहे थे, उस समय इटली यूरोप की सभ्यता, साहित्य और कला का केन्द्र बना हुआ था। पन्द्रहवीं सदी के मध्य से सोलहवीं सदी के मध्य तक यहाँ के साहित्य में विलक्षण प्रगति हुई, उसके कारण यह युग रेनेसान्स या पुनर्जागरण युग कहलाता है।

तेरहवीं सदी में फ्लोरेन्स नगर इटली में साहित्य, कला और काव्य का केन्द्र बना हुआ था। तेरहवीं सदी के मध्य से चौदहवीं सदी के मध्य तक यह नगर अपने पूरे उरूज पर रहा। इसी युग में अर्थात् सन् १२६५ और १३२१ ई० के बीच महाकवि दांते ने अवतीर्ण हो कर इटालियन साहित्य के गौरव को बढ़ाया। दांते की महान प्रतिभा, देश और काल के आघातों की उपेक्षा करती हुई समस्त विश्व-साहित्य को आलोकित कर रही है। दांते की कल्पना को प्रेरणा देने में उसकी प्रेमिका बेआत्रीचे का विशेष हाथ रहा। समकालीन संस्कृति और सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर रची हुई रचनाओं से उसने इटालियन साहित्य को एक नया मोड़ दे दिया। उसकी रची हुई रचनाओं में 'वीता नोआ,' अपने आदर्शवादी प्रेम विषयक गीतों के लिए बहुत प्रसिद्ध है। इस काव्य ग्रन्थ में संगीत, आश्चर्य, कल्पना इत्यादि सभी विषयों का समन्वय है। उसके अन्य ग्रन्थों में 'कोमेदिआ' एक ऐतिहासिक महाकाव्य है। दाँते ने अपने जीवन में इतिहास, धर्म और दर्शन का जो कुछ ज्ञान प्राप्त किया था, वह सब इस ग्रन्थ में उसने उँड़ेल दिया है। यह काव्य समग्र संसार के काव्य-जगत् में एक उच्च-शिखर की तरह जगमगा रहा है। इसलिए इस कृति की महानता को प्रदर्शित करने के लिए इस काव्य के पीछे 'दीवीना' (महान) नाम जोड़ दिया गया है। 'दीवीना कोमेदिया' आज भी इटालियन साहित्य में प्रकाश-स्तंभ का काम कर रहा है।

फ्रांचेस्को पेट्रार्क

महाकवि दाँते के पश्चात् इटालियन साहित्य को उच्चता के शिखर पर पहुँचाने वाला महाकवि पेट्रार्क हुआ। इसका समय सन् १३०४ से १३७५ ई० तक है। इसने इटालियन साहित्य के अन्दर पुरानी शैली को हटा कर यथार्थ अनुभूति पर अवलंबित सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को अपनी कविता में स्थान दिया। पेट्रार्क ने लैटिन साहित्य का गंभीर अध्ययन किया था। इस महाकवि को भी अपने काव्य की प्रेरणा 'लाउरा' नामक अपनी प्रेमिका से मिलती थी। उसका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'काँजो-निएरे' उसके प्रेम का इतिहास कहा जाता है। उसके अन्य काव्यों में 'रीमे', 'त्रियोंफी' इत्यादि काव्य बहुत प्रसिद्ध हैं। उसकी भाषा बहती हुई, अलंकृत और आधुनिकता से ओत-प्रोत मालूम होती है। उसकी रचनाओं में एक सतर्क कलाकार के दर्शन होते हैं।

बोकाचो

महाकवि पेट्रार्क के साथ ही इटालियन साहित्य को सम्पन्न करने वाला महान साहित्यकार 'बोकाचो' माना जाता है। यद्यपि इसने पद्य-रचनाएँ भी की हैं, पर इसकी प्रसिद्धि एक गद्यकार की तरह ही अधिक हुई है। यद्यपि आज के युग में उसका गद्य कुछ बोझिल और अस्वाभाविक सा लगता है, पर इटाली में उसके सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'देकामेरोन' (१० दिन) की बड़ी ख्याति हुई और पिछली सदियों में संसार की कई भाषाओं में उसके अनुवाद होते रहे। इटालियन-गद्य में उसकी यह कृति असाधारण और महान मानी जाती है। इस ग्रन्थ में सौ कहानियाँ हैं जो १० दिनों में कही गई हैं। फ्लोरेंस नगर में भयंकर महामारी के कारण भागकर वहाँ की सात नवयुवतियाँ और तीन युवक एक खण्डहर में जाकर ठहरते हैं और वहीं पर इन कहानियों को कहते-सुनते हैं। ये

कहानियाँ बड़े ही कलात्मक ढंग से एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। बोक्काचो की अन्य कृतियों में 'फीलोकोलो' (प्रेम-कथा) 'फीलोस्त्रातो' 'तेसेईदा' इत्यादि रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। लेटिन भाषा में भी इसने कई कृतियाँ लिखी हैं। ऐतिहासिक क्षेत्र में यह इटालियन भाषा का पहला इतिहास-लेखक माना जाता है।

सन् १३४८ में इटाली के अन्दर भयंकर प्लेग की बीमारी चली। उससे इटालियन-साहित्य को बड़ा धक्का पहुँचा। इस समय के कवियों में 'अएटोनिओ पूसी' का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। उसकी कृतियों में 'नोइए' 'गिस मिरांते' 'सेटी लोकिओ' इत्यादि रचनाएँ प्रसिद्ध हैं।

ह्यूमेनिस्ट विचारधारा

यद्यपि पेट्रार्क के समय से ही इटली के उच्चस्तरीय विद्वानों का लक्ष्य ग्रीक और रोमन साहित्य के अध्ययन को ओर अधिक था। स्वयं पेट्रार्क भी ग्रीक और लैटिन के साहित्य से बहुत अधिक प्रभावित था, फिर भी पेट्रार्क की मृत्यु के पश्चात् तो इटालियन विद्वानों का झुकाव ग्रीक और लैटिन साहित्य की ओर और भी अधिक हो गया। ऐसे लोगों के लिए 'ह्यूमेनिस्ट' नामक विशेष शब्द का उपयोग किया जाने लगा।

साहित्य के अन्तर्गत 'ह्यूमेनिस्ट' लोगों का प्रभाव बढ़ जाने से, ग्रीक और लैटिन साहित्य के अनुकरण पर क्लासिकल और उच्चस्तरीय साहित्य की रचना की ओर विद्वानों का ध्यान गया और वे जनसाधारण तथा इटालियन जनभाषा से क्रमशः अलग पड़ने लग गये। भाषा और साहित्य सम्बन्धी यह विवाद, जिसमें एक ओर ह्यूमेनिस्ट वर्ग था और दूसरी ओर इटाली की लोकभाषा का वर्ग था, इटालियन साहित्य में करीब तीन सौ वर्षों तक चलता रहा। जिस प्रकार आज से कुछ वर्षों पहले भारतवर्ष में संस्कृत के विद्वान हिन्दी को उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे, उसी प्रकार उन दिनों इटाली में ग्रीक और लैटिन के विद्वान इटालियन भाषा को उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे।

भाषा सम्बन्धी इस विवाद के कारण बहुत से प्रसिद्ध लेखक लैटिन और टस्करी भाषा की ओर मुड़ गये। इस प्रवृत्ति ने लैटिन साहित्य के निर्माण की ओर लोगों को आकृष्ट किया। 'फ्रांचेस्को फीलेल्फो' इस प्रणाली का प्रतिनिधि कहा जा सकता है। "पियेट्रो बेम्बो" भी इसी प्रणाली का एक प्रभावशाली व्यक्तित्व था।

फ्लोरेंस नगर के मेडिची वंश का तत्कालीन शासक "लोरेञ्जो" भी इस समय का एक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व था, जिसने साहित्य और राजनीति दोनों ही क्षेत्रों में नाम कमाया। उसने स्वयं बहुत सी रचनाएँ कीं और दूसरे साहित्यकारों को भी संरक्षण दिया।

सोलहवीं सदी में राजनैतिक दृष्टि से यद्यपि इटली का पतन हुआ और उसकी स्वाधीनता चली गई, मगर साहित्य की दृष्टि से यह शताब्दी इटली में पुनर्जागरण की शताब्दी मानी जाती है।

इस युग में अनेकों विद्वान ग्रीक और लैटिन साहित्य का अनुसन्धान करने में तथा रचनाएँ करने में लगे हुए थे। "लोडोविको आर्सओस्टो" की सुप्रसिद्ध रचना "ओरलाएडो फुरिओसो" नामक काव्य इस युग का प्रतिनिधित्व करता है। इस प्रबन्ध-काव्य से उसकी इतनी ख्याति हुई कि अगली दो शताब्दियों तक के लेखक उसका अनुकरण करते रहे।

इसी प्रकार राजनीति के क्षेत्र में इस युग में मैकियाविली (१४६६-१५२७) का नाम बहुत प्रसिद्ध है। उसकी लिखी हुई "प्रिंचीपे" (Prince) तथा दिस्कोर्सी नामक रचनाएँ कूटनीति और राजनीति की प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। जिन्होंने संसार के राजनैतिक साहित्य में अपना हमेशा के लिए महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है।

इसी प्रकार इतिहास लेखकों के अन्तर्गत उस युग के साहित्यकारों में "फ्राञ्चेस्को-गुइसियाडिनी" (Francesco-Guicciadini) का नाम प्रसिद्ध है। इसका समय सन् १४६३ से १५४० तक है। इसकी लिखी हुई "स्टोरिया द इटालिया" में इटाली के पुनर्जागरणकाल की विचारधारा का अध्ययनपूर्ण विवेचन है।

इस प्रकार पुनर्जागरण की इस शताब्दी में इटालियन साहित्य का सर्वांगीण विकास हुआ।

१७ वीं सदी का समय इटालियन-साहित्य के लिए दुर्भाग्यपूर्ण समय रहा। इसमें भाषा और भाव दोनों ही दृष्टियों से कुरुचिपूर्ण साहित्य का अधिक उत्पादन हुआ। इस कुरुचि को मिटा कर साहित्य में सुरुचि और सम्पन्नता पैदा करने के लिए कुछ विद्वानों ने सन् १६६० में 'आर्केडिया एकेडेमी' के नाम से एक साहित्यिक संस्था की स्थापना की। यह एकेडेमी तत्कालीन इटली की एक प्रभावशाली संस्था बन गई। इस एकेडेमी के लेखकों ने भाषा को अलंकार और परम्परा के बोझों से मुक्त करके साहित्य में एक सुरुचिपूर्ण नवजीवन का सञ्चार किया।

१८ वीं सदी का अन्त होने तक इटालियन साहित्य, पर फ्रेंच बुद्धिवादी विचारधारा, जिसे 'इल्युमिज्म' कहते हैं—का बड़ा प्रभाव पड़ा। मगर फ्रेंच शब्दों,महावरों और वाक्यरचना का अन्धानुकरण होने के कारण इटालियन भाषा के स्वच्छन्द विकास पर इसका बड़ा बुरा असर पड़ा।

१६ वीं सदी के प्रारम्भ में, जिस समय इटली का प्रसिद्ध नेता 'ग्वीसेप मेजिनी' इटली की जनता में राजनैतिक चेतना फूँक रहा था, उस समय इटालियन साहित्य में भी राष्ट्रीय चेतना की भावनाओं का संचार हुआ। 'जीउस्टी' (Giuseppe Giusti) की कविताओं ने जनता में देश-प्रेम की ज्योति जगा दी। इसी सदी में इटालियन साहित्य में यथार्थवादी आन्दोलन का प्रचलन हुआ। इस आंदोलन के प्रवर्तक 'अल्फ्रेड ओरियानी' 'और लुईजी कापुआना' थे। ओरियानी का 'जेलेसी' उपन्यास, इस दिशा का प्रतीक था।

बीसवीं सदी में इटली के अन्दर मुसोलिनी के नेतृत्व में 'फासिस्ट' विचारधारा का धीरे-धीरे विकास होने लगा। उस स्थिति का अध्ययन करके 'बेनेडेट्टा क्रोचे' ने 'स्टेटिका' नामक ग्रन्थ के द्वारा इटालियन साहित्य का मार्ग-दर्शन किया। यह ग्रंथ सन् १६०२ से १६४३ तक इटालियन दर्शन और साहित्य का प्रकाशस्तंभ बना रहा। इतिहास, दर्शन और साहित्य—सभी क्षेत्रों में उसके सिद्धांत अत्यन्त महत्वपूर्ण समझे जाते हैं।

इस प्रकार उत्थान और पतन की अनेक घाटियों में से निकलता हुआ इटालियन साहित्य अपनी प्रगति कर रहा है।

इंडिका (Taa-Indika)

मेगास्थनीज के द्वारा लिखा हुआ भारत-यात्रा का वर्णन।

मेगास्थनीज 'सिल्यूकस'का राजदूत बनकर सम्राट् चन्द्रगुप्त की सभा में ५ वर्ष तक रहा था। इसी समय में उसने टा-इंडिका के नाम से भारतवर्ष का सुप्रसिद्ध विवरण लिखा। यही विवरण इस समय मौर्य साम्राज्य और तत्कालीन भारत के इतिहास की आधार-शिला माना जाता है। दुर्भाग्यवश यह पुस्तक पूरे रूप में प्राप्य नहीं है। उसके कुछ अंश प्लाइनी (Pliny), स्ट्रेबो (Strabo) इरैटोस्तनीज (Eratosthenes) इत्यादि यूनानी तथा रोमन लेखकों ने अपने-अपने ग्रंथों में उद्धृत किये हैं।

इन्हीं बिखरे हुए उद्धरणों को एकत्रित करके डा० स्वानबैक ने उन्हें संग्रह के रूप में प्रकाशित किया जो 'मेगास्थनीज इंडिका' के नाम से प्रसिद्ध है।

इसी के आधार पर सर विलियम्स जौन्स ने मौर्य-साम्राज्य के इतिहास पर प्रकाश डाला है।

मेगास्थनीज के वर्णन में तत्कालीन सम्राट् का नाम सैण्ड्राकोटस (Sandrakottos), उसकी राजधानी पालीब्रोथा और वहाँ के जनपद का नाम प्रेसियायी लिखा है।

मेगास्थनीज लिखता है—"कि प्रेसियायी शक्ति और प्रताप में समस्त दूसरे राजाओं से बढ़े-चढ़े हैं। उनकी राजधानी पालीब्रोथा में है जो एक बहुत बड़ा और धनाढ्य नगर है। यहाँ पर इरन्नावोआस और गंगा की धारा मिलती है। यह नगर ८० स्टेडिया की लम्बाई और १५ स्टेडिया की चौड़ाई में बसा हुआ है, एक खाई उसको चारो ओर से घेरे हुए है। जो छः सौ क्यूबिटचौड़ी और ३० क्युबिट गहरी है। इसके चारो ओर काठ की मजबूत दीवार बनाई गई है, जो ५७० बुर्जों से मंडित है और उसमें ६४ फाटक लगे हुए हैं। इसका राजा अपने अधिकार में ६ लाख पैदल, ३० हजार सवार और ६० हजार हाथी रखता है, जिससे उसकी शक्ति और सम्पत्ति का कुछ अनुमान किया जा सकता है।"

"इसके पश्चात् कुछ अन्तर्भाग में 'मोनेडीज' (Mon-edes) और 'सुवारी' (Suari) जाति के लोग रहते हैं, जिनके देश में मेलियस पर्वत है······मेनीज नदी

पालीब्रोथ से होकर मेथोरा (Methora) और केरीसोबोरा नगरों के बीच गंगा में गिरती है।……इंडस प्रेसियायी की सीमा को घेरे हुए है जिसकी पर्वतस्थली पर बौनों का निवास है।"

"इंडस जो वहाँ के निवासियों के द्वारा सिंडस कही जाती है, काकेशस पर्वत की उस शाखा से जो पेरोपेमीसस कहलाती है, निकल कर बहती है। इसमें १६ नदियाँ मिलती हैं। यह एक अत्यन्त बड़ा टापू बनाती है।"

सर विलियम जौन्स ने मेगास्थनीज के सैंड्राकोटस को चन्द्रगुप्त मौर्य, पालीब्रोथा को पाटलीपुत्र, प्रेसियायी जनपद को मगध, और इरन्नाबोआस नदी को सोन मानकर मौर्य-साम्राज्य की कल्पना कर डाली है। उन्होंने मलेवुस पहाड़ को पारसनाथ पहाड़ माना है और उसके आस-पास के प्रदेश को मोनेडेसों तथा सुवारियों की निवास-भूमि सिद्ध किया है और इसी पृष्ठभूमि में मौर्य-साम्राज्य के इतिहास की रूपरेखा बनाई है।

मगर मेगास्थनीज के सम्बन्ध में आजकल के इतिहासकारों में एक ऐसी विचारधारा प्रचलित हुई है, जो कुछ मजबूत प्रमाणों के आधार पर सर विलियम जौन्स के द्वारा निकाले हुए तथ्यों को गलत साबित करती है। इस विचारधारा की मुख्यतः दलीलें इस प्रकार हैं—

१—मेगास्थनीज के कथनानुसार सिकन्दर के आक्रमण के समय, पालीब्रोथ में सैंड्रोकोटस राजा था। यदि पालिब्रोथ को पाटलिपुत्र और सैण्ड्रोकोट्स को चन्द्रगुप्त मानते हैं तो उपरोक्त सारे तथ्य गलत हो जाते हैं क्योंकि सिकन्दर के आक्रमण के समय चन्द्रगुप्त मौर्य्य सिंहासन पर बैठा ही नहीं था। उस समय मगध के सिंहासन पर महानन्द आसीन था।

२—मेगास्थनीज लिखता है कि जोमेनीज (जमुना) नदी पालिब्रोथ से होकर मेथोरा (मथुरा) और केरिसोबोरा नगरों के बीच गंगा में गिरती है। ऐसी स्थिति में जब कि जमुना नदी का पाटलिपुत्र से कोई सम्बन्ध नहीं है पालिब्रोथ पाटलिपुत्र कैसे माना जा सकता है।

३—मेगास्थनीज ने लिखा है कि पालिब्रोथ चारों ओर काठ की दीवार से घिरा हुआ है और वहाँ के मकान मिट्टी और ईंटों से बने हुए हैं। मगर पाटलिपुत्र या उसके आस-पास, इतिहास के किसी भी काल में काठ की दीवारें बनाने का उल्लेख नहीं पाया जाता। इससे पालिब्रोथ और पाटलिपुत्र को एक मानना इतिहास-संगत नहीं हो सकता।

४—सर विलियम जोन्स ने "इरन्नाबोआस" नदी को सोन नदी मान कर भी भूल की है, क्योंकि मेगास्थनीज ने सोनस नदी का अलग उल्लेख किया है।

५—मेगास्थनीज ने स्पष्ट लिखा है कि प्रेसिआई की सीमाएँ सिंधु नदी के तट से मिलती थीं, मगर मगध देश की सीमा कभी भी सिंधु तट से मिलती दिखाई नहीं दीं।

६—मेगास्थनीज ने अपने वर्णन में कहीं भी चाणक्य या कौटिल्य का वर्णन नहीं किया है जो कि उस समय का एक सर्वप्रधान पुरुष था। अगर मेगास्थनीज चन्द्रगुप्त के दरबार में होता तो उसके ग्रन्थ में चाणक्य का वर्णन जरूर आता।

उपरोक्त दलीलों के साथ और कई दलीलों के आधार पर इतिहास की यह विचारधारा मेगास्थनीज के आधार पर सर विलियम जोन्स के निकाले हुए तथ्यों को गलत मान कर नीचे लिखे तथ्य प्रस्तुत करती है।

१—मेगास्थनीज द्वारा वर्णित सेण्ड्रेकोट्स चन्द्रगुप्त मौर्य्य नहीं, बल्कि भारत के उत्तर पश्चिम में स्थित मलय देश के राजा पर्वतेश्वर का पुत्र "चन्द्रकेतु" है। सेण्ड्रेकोट्स शब्द "चन्द्रगुप्त" की अपेक्षा "चन्द्रकेतु" शब्द से अधिक मिलता हुआ है। सिकन्दर के समय से इसका समय भी मेल खाता है। इसका दूसरा नाम मलयकेतु भी था, उस समय यह उत्तर पश्चिमी भारत का एक प्रबल शासक बन गया था।

एराइन लिखता है कि मेगास्थनीज सेण्ड्रेकोट्स की राजसभा में रहता था। वह इण्डस का सबसे बड़ा राजा था। मेगास्थनीज पौरोस (पोरस) की राजसभा में भी रहता था। पोरस सेण्ड्रेकोट्स से भी बड़ा था। इससे पता चलता है कि सेण्ड्रेकोट्स पोरस की अपेक्षा कुछ कम शक्तिशाली था, वह चन्द्रगुप्त कैसे हो सकता है—

मुद्राराक्षसकार विशाखदत्त के अनुसार उस समय पर्वतेश्वर और उसके पुत्र मलयकेतु (चन्द्रकेतु) की

शक्ति और प्रभाव, सारे मध्य पंजाब और राजस्थान पर पूरी तरह छाया हुआ था। उसके प्रभाव के कारण ही मालव-राजपुत्र लोहिताक्ष, कुलूत का चित्रवर्मा, मलय का सिंहनाद, कश्मीर का पुष्कराक्ष इत्यादि अनेक राजाओं की सेनाएँ चन्द्रगुप्त मौर्य की सहायता पर मगध पर आक्रमण करने के लिए सम्मिलित होकर गई थीं और उन्होंने नन्द-साम्राज्य का विनाश कर चन्द्रगुप्त मौर्य को गद्दी पर बैठाया था। चाणक्य के षड्यंत्र से विषकन्या द्वारा पर्वतेश्वर का अन्त होने पर, ये सब सेनाएँ मलयकेतु या चन्द्रकेतु के नेतृत्व में ही वापस लौटी थीं।

पालिब्रोथा

अब दूसरा प्रश्न "पालिब्रोथा" का उत्पन्न होता है जिसका अनुमान सर विलियम जोन्स ने "पाटलिपुत्र" से लगाया है, मगर मेगस्थनीज के पाटलिपुत्र को "पालिब्रोथा" सिद्ध करने में उन्हें बहुत खींचातान करनी पड़ी है।

फिर भी जैसी संगति बैठना चाहिए, बैठ नहीं सकी है। इस पद्धति का कहना है कि असल बात यह है कि मेगास्थनीज ने जिस 'पालीब्रोथ' का प्रयोग किया है, वह शब्द महाभारतकाल से चले आने वाले "पारिभद्र" देश के लिए उपयोग में लिया गया है। महाभारत के 'पारिभद्र' और मेगास्थनीज के 'पालीब्रोथ' की स्थिति में कोई विशेष अन्तर नहीं है। महाभारत में पारिभद्र की राजधानी भद्रावती पुराकालीन विशाल शाल्वायन की राजधानी थी, जिसके एक ओर काली सिन्धु नदी बहती थी और वहाँ महाभारत-प्रसिद्ध सिन्धु-पुलिन्दक जनपद बसे हुए थे। दृषद्वती के किनारे पर बसा भाद्रेय जनपद योधेयों और पाञ्चालों का पड़ोसी था। जैन वाङ्मय के अनुसार भद्रकों का राज्य यमुना के पश्चिम और बसा हुआ था।

इसी प्रकार की और भी कई दलीलों के साथ यह विचार-धारा सर विलियम जौन्स की विचार-धारा के विरुद्ध इस बात पर विचार करने के लिए बल देती है कि मेगास्थनीज के द्वारा वर्णित सैंड्रेकोटस मौर्य-सम्राट चन्द्रगुप्त नहीं, अपितु पारिभद्र का राजा चन्द्रकेतु था। मेगास्थनीज के द्वारा बतलाई हुई पालीब्रोथ पाटलिपुत्र नहीं, प्रत्युत् प्रेसियायी प्रान्त में स्थापित भद्रावती है, जो पारिभद्र के नाम से प्रसिद्ध थी।

चन्द्रकेतु का शासन उत्तर-पश्चिम के एक व्यापक क्षेत्र में फैला हुआ था। इसकी सीमाएँ एक तरफ सिन्धु को और दूसरी तरफ यमुना को छूती थीं। इसी चन्द्रकेतु ने मुद्राराक्षस के अनुसार ५ म्लेच्छ राजाओं की सेना के साथ चन्द्रगुप्त मौर्य को मदद करके नन्दवंश के राज्य को नष्ट किया और चन्द्रगुप्त को सम्राट् बनाया था।

मगर अभी तक ये सब दलीलें एक प्रश्नवाचक चिह्न के रूप में उपस्थित हैं। इनके मान्य होने पर तो मौर्य साम्राज्य के इतिहास का खाका ही बदल जायगा, मगर जब तक इन दलीलों पर सर्वसम्मति से कोई निर्णय नहीं होता है तब तक तो विलियम जोन्स की दलीलें ही इतिहास की आधारभूत दलीलें मानी जाएँगी।

इण्टर प्राइज

अमेरिका द्वारा निर्मित अणुशक्ति द्वारा सञ्चालित पानी में तैरती हुआ विशाल जहाजों की श्रेणी।

हाल ही में कुछ समय पूर्व अमेरिका ने एक विशालकाय जहाज "इण्टर प्राइज" का उद्घाटन किया। इण्टर प्राइज के नाम से अमेरिका अब तक सात लड़ाकू जहाज बना चुका है, यह आठवाँ है। इस जहाज के निर्माण में ढाई सौ करोड़ रुपया या पचास करोड़ डालर खर्च हुआ है। अभी तक यह संसार का सबसे शक्तिशाली जहाज है। इसका वजन ८५३५० टन का है। इंग्लैण्ड के व्यापारी जहाज "क्वीन मेरी" और "क्वीन एलिजाबेथ" ने संसार में बहुत प्रसिद्ध प्राप्त की है मगर इसने उन दोनों को भी पीछे छोड़ दिया है।

इण्टर प्राइज की लम्बाई ११०१ फीट और चौड़ाई २५२ फीट है। जब उसका परीक्षण किया गया तो वह ३५ समुद्री मील की गति से दौड़ा जो आश्चर्य जनक है। उस समय इस जहाज के दोनों ओर तेज चाल में प्रसिद्ध कई छोटे-छोटे जहाज भी दौड़ रहे थे मगर इण्टर-प्राइज ने उन सबको पीछे रख दिया।

इस विराट् जहाज में ४६०० व्यक्तियों के रहने का स्थान है। इनमें से १५०० व्यक्ति जहाज का सञ्चालन करते हैं। और ३१०० व्यक्तियों में उच्च अधिकारी तथा खलासी रहते हैं। इण्टर प्राइज को चलाने के लिए आठ अणुभट्ठियाँ हैं जो इतनी शक्ति पैदा कर सकती हैं जिससे यह जहाज बिना दूसरी बार ईंधन लिए सारी पृथ्वी के २७ चक्कर लगा सकता है।

इतने बड़े जहाज को समुद्र में कैसे उतारा जाय यह भी एक समस्या थी। साधारण जहाज चिकनी पटरियों पर फिसला कर समुद्र में उतारा जाता है मगर इण्टर-प्राइज जैसे भारी जहाज के लिए यह सम्भव नहीं था। इसलिए जिस गोदी में उसका निर्माण किया गया उसी में गहरा पानी भर कर इसे उतारा गया।

तेज हवाई उड़ान में १६०० मील प्रति घण्टे का रिकार्ड कायम करने वाले हवाई जहाज तथा दूसरे कई हवाई जहाज इण्टर प्राइज के काफिले में शामिल हैं। ६८० मील की गति से उड़ान करने वाले हवाई जहाजों के तीन काफिले हाइड्रोजन बमों के साथ इण्टर प्राइज पर हमेशा उड़ान के लिए तैयार रहते हैं। हवाई जहाजों को जहाज पर से हवा में उछालने के लिए चार यन्त्र लगाए गये हैं। ये यन्त्र इतने शक्ति सम्पन्न हैं कि विशाल काय "केडिलेक" कार को डेढ़ मील ऊँचे उछाल सकते हैं।

इण्टर प्राइज हर पन्द्रह सेकण्ड में एक हवाई जहाज को उड़ाने की शक्ति रखता है।

यह जहाज किरणोत्सर्गी रज से सुरक्षित है। दरवाजे खिड़कियाँ इस तरह बन्द किये जा सकते हैं कि रज भीतर न जा सके!

इण्टर ल्यूड

संक्षिप्त और छोटी नाटिकाओं का अंग्रेजी नाम। सोलहवीं शताब्दी से पहले तक अंग्रेजी साहित्य में इस प्रकार की छोटी-छोटी नाटिकाओं का प्रचार था। ये इण्टर ल्यूड उस समय की जनता के लिए मनोरंजन का एक प्रधान साधन बन गई थीं। खासकर ट्यूडर राजवंश के शासन काल में सामन्त परिवारों में इनका बहुत प्रचार हो गया था। हेनरी मैडवल की लिखी हुई "फुलगिन्स एण्ड लुकरी" और हैवुड द्वारा लिखित "दी प्ले ऑफ दी वैदर" इत्यादि नाटिकाएँ उस समय के जन समाज में बहुत प्रिय हो गई थी। अंग्रेजी साहित्य के नाटकों के विकास में ये इण्टरल्यूड अपना खास महत्व रखती हैं। एक तरह से अंग्रेजी नाटक साहित्य की इन्हें प्रारम्भिक आधार शिलाएँ कहा जा सकता है।

इटरुस्कन

प्राचीनकाल में रोम नगर के समीप बसनेवाली एक शक्तिशाली जाति। ईसा के पूर्व सातवीं सदी में इस जाति के लोग बड़े बलवान थे और रोम के साथ इनका हमेशा संघर्ष होता रहता था।

इटरुस्कन राष्ट्र एक सुधरा हुआ राष्ट्र था। कला-कौशल और व्यापार में इसने काफी उन्नति कर ली थी। इसके पास बहुत से जहाज भी थे। उस समय भू मध्य सागर पर इटरुस्कन और कार्थेज वालों का ही अधिकार था। इस कारण कार्थेज वालों से भी इन लोगों की हमेशा लड़ाइयाँ होती रहती थीं। इनकी राजधानी "वी" नगर में थी। एक बार रोमन लोगों को इस जाति ने हरा दिया था। इन्होंने रोमन लोगों के हथियार भी छीन लिए, जिससे फिर वे ऊँचा सिर न कर सकें, मगर रोमन लोगों ने संगठित हो आरीसिया के मैदान में इटरुस्कन लोगों को हरा दिया।

ईसा से ५८८ वर्ष पूर्व ग्रीक लोगों ने इटरुस्कन जाति को हरा दिया, इसी समय इटली के उत्तर में रहने वाली गाल जाति ने भी इस देश पर हमला किया और दक्षिण की ओर से रोम की सेना ने भी इटरुस्कन की राजधानी "वी" को घेर लिया। मगर "वी" नगर का कोट इतना मजबूत था कि वह रोम वालों से नहीं टूट सका। कई बरसों तक रोम की सेना इस नगर पर घेरा डाले पड़ी रही, मगर किले को नहीं तोड़ सकी। अन्त में शीघ्र विजय प्राप्त करने के लिए रोम के लोगों ने "मार्कस फ्युरियस कामिलस" को अपना डिक्टेटर चुना।

क्यामिलस ने दीवार तोड़ना कठिन समझकर नगर के नीचे से सुरंग खोदना प्रारम्भ की और इस सुरंग के द्वारा कुछ लोगों को शहर भेजकर किले का फाटक खुलवा दिया। फाटक खुलते ही "वी" नगर का देखते-देखते पतन हो गया और वह जलाकर खाक कर दिया गया।

इस विजय से रोम नगर में बड़ा आनन्द मनाया गया और क्यामिलस को दिग्विजयी समझकर उसका जूलूस चार घोड़ों के रथ पर निकाला गया।

इडविन

सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ब्रिटेन के नार्थम्ब्रिया प्रान्त का राजा, जो सन् ६३३ में मर्सिया के राजा पेंडा के द्वारा हीथफील्ड के युद्ध में मारा गया।

उन दिनों सारा ब्रिटेन—नार्थम्ब्रिया, वेसेक्स, मर्सिया और केण्ट—इन चार विभागों में बंटा हुआ था। कैण्ट का राजवंश ईसाई धर्म ग्रहण कर चुका था। उस समय केण्ट का राजा ईथलबर्ट का पुत्र था। उसके एक बहन थी, नार्थम्ब्रिया के राजा इडविन ने कैण्ट के राजा की बहन से स्वयं शादी करने का प्रस्ताव कैण्ट भेजा। इस पर कैण्ट के राजा ने कहा कि ईसाई धर्म नहीं मानने वाले को हम अपनी बहन नहीं देंगे, तब इडविन ने इस बात का विश्वास दिलाया कि रानी के धर्म में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया जावेगा और उसे अपने साथ ईसाई पुरोहित लाने का भी अधिकार रहेगा। इस शर्त्त पर विवाह हो गया और ऑगस्टाइन का शिष्य पोलीनस रानी के साथ नार्थम्ब्रिया गया।

जब इडविन को राजकन्या हुई तो पोलीनस ने ईसाई धर्म की विधि से उसका संस्कार किया और राजा से भी वैसा ही करने को कहा। तब राजा ने कहा कि मैं पश्चिम के सेक्सन लोगों से लड़ने जा रहा हूँ, अगर इस लड़ाई में मेरी जीत हो गई तो मैं ईसाई धर्म ग्रहण कर लूँगा। दैवयोग से उस लड़ाई में इडविन की जीत हो गई और वह ईसाई हो गया।

सन् ६३३ में मर्सिया के राजा पेण्डा ने इडविन को हीथफील्ड की लड़ाई में मार डाला। इससे नार्थम्ब्रिया से फिर ईसाई धर्म के पैर उखड़ गये मगर बाद में वहाँ के राजा ओस्वाल्ड ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया और सन् ६५५ तक सारा इंग्लैण्ड ईसाई हो गया।

इडरिड

इंग्लैंड के राजा एथिलस्टन का भाई, जिसकी मृत्यु सन् ६८५ में हुई।

एथिलस्टन की मृत्यु के पश्चात् उसके भाई एडमण्ड और इडरिड ने सारे इंग्लैंड को डेन लोगों के हाथ से छुड़ा लिया। सन् ६५० तक सारा खोया हुआ देश अंग्रेजों के हाथ में आ गया।

इन्हीं दिनों डेन लोगों के अधिक सम्पर्क के कारण डेनों और अंग्रेजों के बीच विवाह-सम्बन्ध चालू हो जाने से इन दोनों जातियों में रक्त का मिश्रण और प्रेम-भाव भी बढ़ रहा था। डेन लोगों ने इंग्लैंड की वैभव सम्बन्धी और व्यवसायिक उन्नति में बहुत योग दिया और उनकी वजह से इंग्लैंड एक सम्पन्न राष्ट्र बन गया था।

इडरिड के समय में इस कारण लड़ाई की भावनाएँ कम होकर इंग्लैण्ड में आन्तरिक उन्नति की भावनाएँ उत्पन्न हो रही थीं, राज्य भी व्यवस्था पूर्वक चल रहा था और इंग्लैण्ड धीरे-धीरे एक राष्ट्रीयता के वैभव को प्राप्त करने लगा था।

इण्डियन नेशनल कांग्रेस

भारतवर्ष की सबसे बड़ी राष्ट्रीय संस्था, जिसने भारतीय जनता के राजनैतिक और सामाजिक स्तर को ऊँचा उठाकर, स्वाधीनता के लिए ब्रिटिश-साम्राज्य से एक गहरी टक्कर ली और अन्त में १५ अगस्त सन् १९४७ ई० को पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त कर ली। कांग्रेस की स्थापना सन् १८८५ में हुई।

अठारह सौ सत्तावन के सैनिक विद्रोह के दुर्भाग्य-पूर्ण अन्त के पश्चात् भारतीय राष्ट्र में एक असीम निराशा और

उदासीनता का वातावरण पैदा हो गया। लोगों को इस बात का विश्वास हो गया कि अब अंग्रेजी राज्य से टक्कर ले कर विजय प्राप्त करना किसी प्रकार सम्भव नहीं है और किसी भी प्रकार के विद्रोह की कामना करना, अब मूर्खता पूर्ण है।

दूसरी तरफ सम्राज्ञी विक्टोरिया की घोषणा ने लोगों को यह भी विश्वास दिला दिया कि उनकी धार्मिक भावनाओं, सामाजिक उन्नति और शिक्षा की व्यवस्था में सरकार पूर्णतः सहयोग करेगी।

इस प्रकार शान्ति और सुव्यवस्था की इन ठण्डी थपकियों में भारत की जनता उसी प्रकार गर्क हो गई जिस प्रकार एक अफीमची अफीम के नशे में गर्क होकर लहरें लेता हुआ आनन्द का अनुभव करता है। यहाँ का सार्वजनिक जीवन भंग हो चुका था। लोग यह समझने लग गये थे कि भारत में अंग्रेजी राज्य 'ईश्वर की एक देन' है। और सारा राष्ट्र अंग्रेजी राज्य की छत्र-छाया में अपने दैनिक कार्य शान्तिपूर्वक करने लग गया था।

फिर भी अंग्रेजी राज्य का कानून अंग्रेजों और भारतीयों के बीच से विभिन्नता की दीवार को नहीं मिटा सका था, शासक और शासितों के संघर्ष समय-समय पर होते रहते थे, जिसमें भारतीयों को हर समय बड़ा अपमान सहन करना पड़ता था। पोलिस के अत्याचार भी अत्यन्त असह्य हो रहे थे।

ये सब चीजें भारतवासियों के अतिरिक्त कई विचारशील अंग्रेजों को भी वेदना पहुँचाती थीं। वे समझते थे कि जनता के साथ यदि उचित व्यवहार नहीं हुआ तो विद्रोह के बीज फिर पनप सकते हैं। ऐसे विचार-शील लोगों में सुप्रसिद्ध अंग्रेज ए० ओ० ह्यूम भी एक थे। उन्होंने सर आकलैण्ड कोलविन को एक पत्र लिखकर उसमें भारतीय शासन की अव्यवस्थाओं का उल्लेख किया और इस बात की भी चेतावनी दी कि यदि सरकार ने इस ओर ध्यान नहीं दिया तो विद्रोह की आग फिर भड़क सकती है। सन् १८८० के प्रारम्भ के समय इसी प्रकार के आसार नजर आने लगे थे।

सर विलियम वेडरबर्न ने लिखा है कि—"एक ओर तो ये अशुभ और प्रतिगामी कानून जिनके द्वारा समाचार-पत्रों की, सभाएँ करने की, म्यूनिसिपैलिटीयों की और विश्वविद्यालयों की स्वाधीनता पर प्रतिबन्ध लगाये गये, दूसरी ओर पुलिस का भयंकर दमन—इन कारणों से लार्डलिटन के समय कोई भयंकर विस्फोट होने ही वाला था कि मि० ह्यूम को ठीक मौके पर सूझी और उन्होंने इस काम में हाथ डाला।"

इसी समय मि० ह्यूम को अचानक कहीं से सात ऐसी जिल्दें प्राप्त हुईं जिनमें भिन्न-भिन्न प्रान्तों के अन्दर बगावत की भावनाएँ फैलने का वर्णन था। भिन्न-भिन्न धर्माचार्यों और महन्तों का उनके शिष्यों के साथ जो पत्र-व्यवहार हुआ था, उसके आधार पर ये रिपोर्टें तैयार की गई थीं।

इस सारे वातावरण को देखकर मि० ह्यूम के दिमाग में यह खयाल आया कि यदि भारतवासियों की एक राष्ट्रीय सभा स्थापित करके उसी के द्वारा सरकार का ध्यान इस पक्षपात पूर्ण अव्यवस्था की ओर आकर्षित किया जाय तो विशेष अच्छा रहेगा।

इसी भावना से प्रेरित हो मि० ह्यूम ने १ मार्च सन् १८८३ को कलकत्ता विश्वविद्यालय के ग्रेजुएटों के नाम एक पत्र लिखा, यह पत्र भारतीय राष्ट्रीयता के इतिहास में एक ऐतिहासिक पत्र था। इसका अन्तिम भाग इस प्रकार है—

"देश के विचारशील नेता भी या तो सब के सब ऐसे निर्बल जीव हैं, या अपनी स्वार्थ-साधना में वे ऐसे निमग्न हैं कि अपने देश के लिए कोई भी साहसपूर्ण काम नहीं कर सकते, तब कहना ही होगा कि वे सही और वाजिब तौर पर ही दबाकर रक्खे गये हैं और पददलित किये गये हैं। क्योंकि वे इससे ज्यादा अच्छे व्यवहार के योग्य ही नहीं हैं। प्रत्येक राष्ट्र ठीक-ठीक वैसी ही सरकार प्राप्त कर लेता है जिसके वह योग्य होता है। यदि आपके समान जो देश के चुनिंदा लोग हैं और जो ऊँची शिक्षा प्राप्त हैं, वे भी यदि अपने सुखचैन और स्वार्थों को छोड़कर अधिकाधिक स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए लड़ने का निश्चय नहीं कर सकते तो उस हालत में यह मानना ही होगा कि हम, जो कि आपके मित्र हैं, गलती पर हैं और जो हमारे विरोधी

हैं, उनका कहना ही सही है। तब मानना होगा कि वाइसराय लार्ड रिपन की आपके हित के सम्बन्ध में जो उच्च आकांक्षाएँ हैं, वे निष्फल होंगी। तब यह भी मानना होगा कि उन्नति की तमाम आशाएँ अब नष्ट समझना चाहिए और यदि यही बात सच है तो फिर न तो आपको इस बात पर मुँह ही बनाना चाहिए और न शिकायत ही करना चाहिए कि हम जंजीरों में जकड़ दिये गये हैं और हमारे साथ गुलामों जैसा व्यवहार किया जाता है।"

"जो मनुष्य होते हैं वे जानते हैं कि काम कैसे करना चाहिए। इसलिए आगे से आप इस बात की शिकायत मत करना। आपकी बनिस्बत अंग्रेजों को बड़े-बड़े ओहदों पर क्यों रक्खा जाता है क्योंकि आपमें वह सार्वजनिक सेवा का भाव नहीं है जो सार्वजनिक हित के सामने व्यक्तिगत ऐशो-आराम को नगण्य बना देता है। देशभक्ति का वह भाव नहीं है जिस भाव ने अंग्रेजों को वैसा बना दिया है जैसे वे आज हैं।

"जिस दिन आप इस चिरन्तन सत्य को समझ लेंगे कि बलिदान और निःस्वार्थ-भावना ही सुख और स्वातंत्र्य के अचूक पथ-प्रदर्शक हैं, उसी दिन आपकी प्रगति का मार्ग खुल जावेगा।"

इसके पहले ही सन् १८७६ में सुरेन्द्र नाथ बनर्जी के नेतृत्व में बंगाल में इण्डियन एसोसिएशन नामक प्रान्तीय संस्था की स्थापना हो चुकी थी और सन् १८८४ में कलकत्ते के अलबर्ट हॉल में एक राजनैतिक परिषद् की आयोजना हुई जिसमें सर सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने एक अखिल भारतीय राजनैतिक संस्था की आवश्यकता पर बल दिया। इसके दूसरे ही वर्ष कलकत्ते में अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् की स्थापना हुई।

इसी वर्ष अर्थात् सन् १८८५ में मि० ह्यूम शिमला में तत्कालीन वाईसराय लार्ड डफरिन से मिले और उन्होंने उनके सामने एक ऐसे अखिल भारतीय संगठन की योजना पेश की जिसमें भारत के हर एक प्रान्त के शिक्षित और राजनैतिक पुरुष वर्ष भर में एक बार, एक प्लेट फार्म पर इकट्ठे हों और सामाजिक विषयों पर चर्चा कर लिया करें। जिस प्रान्त में यह सभा हो, वहीं का गवर्नर उसका सभापति बना करे।

लार्ड डफरिन ने मि० ह्यूम की योजना को बड़े ध्यान से सुना, सुनकर उन्होंने कहा कि मेरी समझ में यह तजवीज कि प्रान्त का गवर्नर उसका सभापति, उपयोगी नहीं होगी। क्योंकि उसके सामने लोग अपने विचार दिल खोलकर जाहिर नहीं कर सकेंगे। इसलिए ऐसी दशा में यही अच्छा होगा कि यहाँ के राजनीतिज्ञ प्रतिवर्ष अपने सम्मेलन किया करें और सरकार को बताया करें कि शासन में क्या-क्या त्रुटियाँ हैं और उन्हें किस प्रकार दूर किया जा सकता है।

मार्च १८८५ में यह तय हुआ कि बड़े दिनों की छुट्टियों में देश के सब प्रतिनिधियों की एक सभा की जाय। इस सभा के लिए एक गश्ती चिट्ठी जारी की गई।

कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन

२८ दिसम्बर १८८५ को दिन के बारह बजे बम्बई में गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कालेज के भवन में इण्डियन नेशनल कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में मि० ह्यूम, उमेशचन्द्र बनर्जी, नरेन्द्रनाथ सेन कलकत्ता, वामन सदाशिव आपटे और गोपालगणेश आगरकर पूना, दादाभाई नौरोजी, काशीनाथ त्र्यंबक तेलंग, फिरोजशाह मेहता, दिनशाएदलजी वाचा, नारायण गणेशचन्दावरकर, एस० सुब्रह्मण्य ऐयर, जी० सुब्रह्मण्य ऐयर, एम० वीर राघवाचार्य, इत्यादि देश के अनेक गणमान्य नेता अनेक पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक और कुछ सरकारी अधिकारी भी सम्मिलित थे।

इस प्रथम अधिवेशन के सभापति बंगाल के श्री उमेशचन्द्र बनर्जी बनाये गये। श्रीमती एनीबीसेण्ट ने इस अधिवेशन का वर्णन करते हुए लिखा है कि "वह एक बड़ा गम्भीर और ऐतिहासिक क्षण था। जिसमें मातृभूमि के द्वारा सम्मानित अनेकों व्यक्तियों में प्रथम पुरुष ने प्रथम राष्ट्रीय महासभा में अध्यक्ष का आसन ग्रहण किया।"

कांग्रेस की गुरुता की ओर प्रतिनिधियों का ध्यान दिलाते हुए, अध्यक्ष ने कांग्रेस का उद्देश्य इस तरह बतलाया।

(१) साम्राज्य के भिन्न-भिन्न भागों में देश-हित के लिए लगन से काम करने वाले लोगों का संगठन करना और पारस्परिक मित्रता बढ़ाना।

(२) समस्त देश-प्रेमियों के अन्दर वंश, धर्म और प्रान्त सम्बन्धी संकीर्ण संस्कारों को मिटाना तथा राष्ट्रीय ऐक्य की उन भावनाओं का परिवर्धन करना, जो लार्ड रिपन के चिरस्मरणीय शासन काल में उद्भूत हुई।

(३) आवश्यक और महत्वपूर्ण सामाजिक प्रश्नों पर चर्चा करके उनके सम्बन्ध में शिक्षित लोगों की जो परिपक्व सम्मतियाँ प्राप्त हों, उनका उपयोग करना। उन तरीकों और दिशाओं का निर्णय करना, जिनके द्वारा भारत के राज-नीतिज्ञ देश-हित के कार्य कर सकें।

इस प्रथम अधिवेशन में कुल ९ प्रस्ताव पास हुए। पहले प्रस्ताव के द्वारा भारत के शासन-कार्य की जाँच करने के लिए एक 'रॉयल कमीशन' बैठाने की माँग की गई।

दूसरे प्रस्ताव के द्वारा 'इण्डिया कौंसिल' को तोड़ देने की राय दी गई।

तीसरे प्रस्ताव के द्वारा 'व्यवस्थापिका सभाओं' में नामजद सदस्यों के बजाय चुने हुए सदस्यों को रखने की और प्रश्न पूछने का अधिकार देने की सिफारिश की गई।

सातवें प्रस्ताव में अपर बर्मा को भारत में मिला लेने की तजवीज का विरोध किया गया।

इसी प्रकार और भी कुछ प्रस्ताव पास हुए।

यहाँ यह बात ध्यान में रखना आवश्यक है कि अपनी स्थापना के बाद कांग्रेस का यह अखिल भारतीय संगठन विकास के अनेक परिवर्तनों में से होकर निकला है। सबसे पहले अंग्रेज सरकार की न्याय-प्रियता पर विश्वास रखते हुए, वैध और नम्र आन्दोलन के द्वारा आवश्यक शासन-सुधार के लिए, सरकार से प्रार्थना करना, यही इसका प्रधान उद्देश्य था।

सन् १८८५ से १९०५ तक कांग्रेस इसी प्रकार प्रार्थना-सभा की तरह काम करती रही। सन् १८९६ के अधिवेशन में कांग्रेस के अध्यक्ष-पद से मुहम्मद रहीमतुल्ला सयानी ने असंदिग्ध रूप से कहा था कि अंग्रेज कौम से बढ़कर ज्यादा ईमानदार और ज्यादा मजबूत कौम इस सूरज के तले कहीं नहीं है।

सन् १८९८ की मद्रास कांग्रेस में अध्यक्ष के पद से श्री आनन्द मोहन वसु ने जोर देकर कहा था कि भारतवर्ष का शिक्षित वर्ग इंग्लैण्ड का दोस्त है, दुश्मन नहीं। इंग्लैण्ड के सामने जो महान कार्य है, उसमें भी हम उसके स्वाभाविक मित्र और सहायक हैं।

सन् १९११ में जब 'शाही घोषणा' के द्वारा वंग-भंग रद्द कर दिया गया, तब श्री अम्बिकाचरण मजूमदार ने कहा था कि ब्रिटिश ताज के प्रति श्रद्धाभक्ति से भरा प्रत्येक हृदय आज एक तान से धड़क रहा है, वह ब्रिटिश राजनीतिज्ञता के प्रति कृतज्ञता और नवीन विश्वास से परिपूर्ण हो रहा है।

मतलब यह कि अपने जन्म के प्रारंभिक २० वर्षों तक कांग्रेस अंग्रेजी राज्य के प्रति पूर्ण वफादार रहते हुए शासन सुधार की माँगें करती रही। स्वयं सरकार को भी कांग्रेसी नेताओं की वफादारी में कोई सन्देह नहीं था और जब-जब हिन्दुस्तानियों को ऊँचे पद व स्थान देने का अवसर आता था, तब वे पद कांग्रेस के नेताओं में से चुनकर ही उन्हें दिये जाते थे। सर सुब्रह्मण्य ऐय्यर, श्री वी० कृष्ण स्वामी ऐय्यर, सर शंकर नायर, श्री रमेशन, श्री टी० वी० शेषगिरि ऐय्यर, श्री पी० आर० सुन्दरम् ऐय्यर—कांग्रेस के ये छहों नेता मदरास हाईकोर्ट के जज बनाये गये थे और इनमें से दो तो कार्यकारिणी कौंसिल के सदस्य भी बनाये गये थे। बम्बई में श्री बदरुद्दीन तैय्यबजी और नारायण चन्दावरकर, जो क्रमशः सन् १८९७ की मदरास कांग्रेस और १९०० की लाहौर कांग्रेस के सभापति हुए थे, बम्बई हाईकोर्ट के जज बनाये गये। कलकत्ते में श्री ए० चौधरी, जिन्होंने 'वंग-भंग' के विरुद्ध होने वाले आन्दोलनों में प्रमुख भाग लिया था, लगभग उसी समय कलकत्ता हाईकोर्ट के जज बना दिये गये।

युक्तप्रान्त में सर तेजबहादुर सप्रू जैसे प्रभावशाली व्यक्ति को भारत सरकार का ला मेंबर बनाया गया। विहार के सैयद हसन इमाम, पटना हाईकोर्ट के जज बन गये और सच्चिदानन्द सिंह को विहार की कार्य-कारिणी कौंसिल का सदस्य बना दिया गया।

इस प्रकार सन् १६०५ के पहले तक कांग्रेस ब्रिटिश सरकार में विश्वास रखते हुए वैध उपायों के द्वारा शासन-सुधार प्राप्त करने वाली एक संस्था थी। इसके नेता सर सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, दादा भाई नौरोजी, गोपाल कृष्ण गोखले, दीनशा वाचा, जी० सुब्रह्मण्य ऐय्यर, काशीनाथ त्र्यम्बक तैलंग, उमेशचन्द्र बनर्जी, बदरुद्दीन तैय्यब जी इत्यादि व्यक्ति थे।

लेकिन इन्हीं दिनों सौभाग्य या दुर्भाग्य से लार्ड कर्जन ब्रिटिश शासन का प्रतिनिधि होकर वाइसराय के रूप में सन् १८६६ में भारत में आया। उसने आने के साथ ही भारतीय लोगों के चरित्र की निन्दा करते हुए बतलाया कि भारतीयों का वातावरण, परम्परा से मिले हुए उनके संस्कार और उनके पालन-पोषण का ढंग ही ऐसा है जिससे कि वे ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत किसी उच्च पद की जिम्मेदारी संभालने के योग्य नहीं हैं।

आते ही उसने कलकत्ता कारपोरेशन के अधिकारियों में कमी की। सरकारी गुप्त समितियों का कानून बनाया। विश्वविद्यालयों को सरकारी नियंत्रण में ले लिया और अंत में बंगाल के दो टुकड़े करके उसने सारे देश में एक तूफान खड़ा कर दिया।

लार्ड रिपन के समान उदार वाइसराय की मीठी थपकियों से, भारत जिस मोह-निद्रा में अभिभूत हो गया था, लार्ड कर्जन ने अंकुश की नोक लगाकर उसे एकदम जगा दिया।

सन् १६०० से १६०६ तक के समय का भारतीय इतिहास बहुत नाजुक दौर में से गुजर रहा था। एक तरफ राष्ट्र में आत्म-गौरव और जागृति की लहर अधिकाधिक फैल रही थी और दूसरी ओर सरकार की दमन-नीति भी उत्तरोत्तर कठोर और नंगी शक्ल में सामने आ रही थी।

इन सब घटनाओं से जनता में एक व्यापक और प्रभावशाली आन्दोलन उत्पन्न हुआ। स्थान-स्थान पर हड़तालें, जुलूस, सभा तथा प्रदर्शन किये जाते थे और सरकार धड़ाधड़ गिरफ्तारियाँ कर रही थी। सम्पूर्ण भारत ने बंगाल के सवाल को अपना सवाल बना लिया। इसी समय सन् १६०६ की कलकत्ता कांग्रेस में उसके अध्यक्ष दादाभाई नौरोजी ने सबसे पहले 'स्वराज्य' शब्द का प्रयोग किया। इस शब्द के प्रयोग ने अंगरेज लोगों की रोष-ज्वाला को और भी प्रचण्ड कर दिया।

बा० विपिनचन्द्र पाल १६०३–४ से ही अपने साप्ताहिक पत्र 'न्यू इण्डिया' के द्वारा राष्ट्रीय जागृति का प्रशंसनीय और शानदार काम कर रहे थे। वे अब सम्पूर्ण देश में घूम-घूम कर राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय शिक्षा और नवचैतन्य का जोर-शोर से प्रचार करने लगे।

सन् १६०७ में राष्ट्र ने केवल प्रस्ताव पास करना छोड़कर विदेशी कपड़ों का बहिष्कार, स्वदेशी और राष्ट्रीय शिक्षा के क्रियात्मक प्रस्तावों पर भी अमल किया।

बहिष्कार का झण्डा सबसे पहले ७ अगस्त को फहराया गया। कई सालों तक यह दिन हरसाल उतने ही जोश और खरोश के साथ मनाया जाता रहा, जितने जोश से १६ अक्टूबर को वंग-भंग का विरोधात्मक दिन मनाया जाता था।

इसी समय बंगाल के दो व्यक्तियों ने भारतीय इतिहास के रंगमंच पर आकर बहुत महत्त्वपूर्ण भाग लिया। इनमें से पहले विपिनचन्द्र पाल और दूसरे अरविन्द घोष थे, जो वर्षों तक भारत के राजनैतिक आकाश में उज्ज्वल सितारे की तरह चमकते रहे।

इन्हीं दिनों बंगाल और महाराष्ट्र में कुछ क्रान्तिकारी संगठनों की स्थापना भी हुई, जिन्होंने आतंकवादी तरीकों से ब्रिटिश सरकार का विरोध करना प्रारम्भ किया। 'अलीपुर षडयंत्र केस' में श्री अरविन्द घोष भी पकड़ लिये गये। उन पर हत्या और राजद्रोह के भयंकर आरोप लगाये गये, मगर उस समय के प्रमुख और तरुण वकील देशबन्धु चित्तरंजन दास की तर्कपूर्ण पैरवी से वे उस केस से छूट गये। अरविन्द घोष 'वन्दे मातरम्' नामक अंग्रेजी पत्र का सम्पादन करते थे। अंग्रेजी भाषा पर उनका अद्भुत अधिकार था और उनके लेखों में लोकमत को उत्तेजित करने की भारी शक्ति थी। बंगाल के राजनैतिक जागरण में वे वहाँ के एक प्रभावशाली नेता थे।

नरम और गरम दल का प्रादुर्भाव

हम ऊपर लिख आये हैं कि अभी तक कांग्रेस की सारी गति-विधि नम्र निवेदन के द्वारा अंग्रेज सरकार से शासन-सुधार माँगते रहने की रही थी, मगर अंग्रेज अधिकारियों की मनमानी और हम लोगों की बेबसी को देख कर कुछ ऐसे तत्व भी थे, जिनका खून खौल जाता था और अपने देश के लिए कुछ कर डालने की भावना उनके अन्दर जोर पकड़ रही थी।

ऐसे लोगों में 'लोकमान्य तिलक' का नाम सबसे आगे था। वे सन् १८९६ से ही कांग्रेस को इस बात के लिए प्रेरित कर रहे थे कि कोई कड़ा कदम उठाया जाय, मगर अंग्रेजी सरकार का रोब और दबदबा उस समय ऐसा छाया हुआ था कि लोगों को कुछ कहने की हिम्मत नहीं पड़ती थी, मगर लोकमान्य तिलक को उनकी वीरोचित भावनाएँ बराबर प्रेरणा दे रही थीं, उन्होंने महाराष्ट्र में 'शिवाजी जयन्ती' का उत्सव बड़े समारोह से मनाना प्रारम्भ किया और इसी सिलसिले में उन्हें सरकार ने सन् १८९७ में अठारह महीने की सजा देकर जेल भेज दिया, मगर कुछ प्रभावशाली लोगों के निवेदन पर साल भर में ही उन्हें छोड़ दिया गया।

लेकिन इन घटनाओं ने तिलक के अन्दर जाग्रत-ज्योति को और भी प्रखर कर दिया और उन्होंने कांग्रेस के अन्दर अपना एक 'गरम दल' स्थापित करने का प्रयत्न किया।

सूरत कांग्रेस

सन् १९०७ में सूरत की कांग्रेस के अन्तर्गत यह मतभेद बड़े उग्ररूप से सामने आया। कांग्रेस २७ दिसम्बर को दिन में २॥ बजे शुरू हुई और डॉ॰ रासबिहारी घोष का नाम सभापति-पद के लिए प्रस्तावित किया गया, मगर उसी समय सभा में इतना शोर-गुल हुआ कि अधिवेशन दूसरे दिन के लिए मुल्तवी हो गया। इस कांग्रेस में १६०० प्रतिनिधि आये थे।

दूसरे दिन लोकमान्य तिलक ने कुछ भाषण करने के लिए सभापति के पास स्लिप भेजी, मगर सभापति ने उन्हें बोलने की इजाजत नहीं दी। इस पर सारी सभा में भारी शोर-गुल हुआ और किसी ने एक जूता उठाकर फेंका, जो सुरेन्द्रनाथ बनर्जी से टकराता हुआ, फिरोज शाह मेहता को लगा। उसके बाद तो मानों लड़ाई ही शुरू हो गई। लोग कुरसियाँ उठा-उठा कर फेंकने लगे और आपस में डण्डे चलने लगे।

मगर इसका नतीजा कुछ भी नहीं हुआ। 'नरम दल' वालों का उस समय इतना बहुमत था कि गरम दलवालों की एक न चली और नरम दलवालों ने कांग्रेस का ऐसा विधान बना लिया, जिसमें गरम दलवाले घुस ही न सकें।

इसके कुछ समय पश्चात् लोकमान्य तिलक छः साल के लिए जेल चले गये और कांग्रेस पर नरम दलवालों का ही अधिकार रहा।

होमरूल लीग की स्थापना

सन् १९१५ में कांग्रेस के इतिहास ने एक नई करवट ली। इस समय दो बड़े व्यक्तित्व देश के राजनैतिक मञ्च पर एक साथ प्रकट हुए। सन् १९१४ के जून में लोकमान्य तिलक मण्डाले जेल से छूट कर आ गये और दूसरी ओर सुप्रसिद्ध अंग्रेज महिला श्रीमती एनीबीसेण्ट भी थियासोफिकल सोसायटी के धार्मिक क्षेत्र को छोड़कर भारत के राजनैतिक आन्दोलन में कूद पड़ीं। श्रीमती एनीबीसेण्ट अपने साथ नये विचार, नई योग्यता, नये साधन, नया दृष्टिकोण और संगठन का एक बिलकुल नया ढङ्ग लेकर कांग्रेस में प्रविष्ट हुईं। उनका व्यक्तित्व पहले ही से सारे संसार में प्रसिद्ध हो चुका था। पूर्व और पश्चिम के देशों में उनके हजारों अनुयायी थे। इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि अपने पीछे इतने प्रबल भक्तों, अनुयायियों और अथक कार्य-शक्ति के होते हुए, उन्होंने भारतीय राजनीति को एक नया जीवन प्रदान किया।

इसी समय श्रीमती एनीबीसेण्ट ने नरम और गरम दल तथा तिलक और गोखले को मिलाने का एक और प्रयत्न किया, मगर लोकमान्य तिलक की उग्रनीति से गोखले तथा नरम दल के अन्य नेता सशंकित थे। इसलिए उन्होंने कांग्रेस में तिलक को मिलाना पसन्द नहीं किया।

इस पर सन् १९१६ में लोकमान्य तिलक ने अपनी स्वतंत्र संस्था "होमरूल लीग" के नाम से स्थापित की।

इसमें उनको जोसेफ बैप्टिस्टा के रूप में, एक बहुत ही उत्तम सहयोगी मिल गये और उन्हींके सभापतित्व में पूना में, उनके दल के लोगों की एक परिषद् हुई, जिसमें एक हजार प्रतिनिधि सम्मिलित हुए और जनता को "होमरूल" का एक नया नारा, युद्ध-घोष के रूप में मिल गया।

इसके छह मास के पश्चात् श्रीमती एनी बीसेण्ट ने भी अपनी 'होमरूल-लीग' स्थापित की।

लोकमान्य की होमरूल लीग ने कांग्रेस के 'क्रीड' को स्वीकार किया। इस समय उनकी आयु साठ वर्ष की हो गई और जनता ने इस जयन्ती के उपलक्ष में उन्हें एक लाख रुपये की थैली भेंट की। इस रुपये को लोकमान्य ने राष्ट्र-कार्य के लिए अर्पित कर दिया, मगर इसी समय से लोकमान्य का स्वास्थ्य खराब रहने लगा और वे भारत में अधिक प्रचार-कार्य नहीं कर सके।

इसी समय श्रीमती एनी बीसेण्ट ने "न्यू-इण्डिया" नामक एक दैनिक पत्र और "कामन वील" नामक एक साप्ताहिक पत्र निकाल कर अपने 'होमरूल' आन्दोलन का प्रारम्भ किया। होमरूल की आवाज को उन्होंने बुलन्द बना दिया, इसके लिए देश के एक छोर से दूसरे छोर तक उन्होंने तूफान मचा दिया। उन्होंने अपनी होमरूल लीग की शाखा लन्दन में भी स्थापित कर तेजी से काम प्रारम्भ किया।

साम्प्रदायिक प्रश्न

इण्डियन नेशनल कांग्रेस के इतिहास में हिन्दू मुसलिम साम्प्रदायिकता के प्रश्न ने शुरू से ही अवरोध डालना प्रारम्भ किया और यह अवरोध अन्त तक कायम रहा। कांग्रेस ने ज्योंही धीरे-धीरे थोड़ा राजनैतिक रूप ग्रहण करना प्रारम्भ किया त्योंही अंग्रेज अधिकारियों के कान खड़े हो गये और उन्होंने इसके प्रतिकार में मुसलमानों को कांग्रेस के विरुद्ध भड़काना प्रारम्भ किया। सन् १८८८ में जब सर ऑकलैण्ड कॉलविन संयुक्त प्रान्त के लेफ्टिनेंट गवर्नर थे, उस समय यह दिखाने की कोशिश की गई थी कि मुसलमान काग्रेस के विरोधी हैं।

वास्तव में लार्ड मिण्टो के जमाने में मुसलमानों के पृथक प्रतिनिधित्व के प्रश्न ने जोर पकड़ा।

मिण्टो की शासन-सुधार-योजना में मुसलमानों के लिए अलग निर्वाचन-संघ की योजना रक्खी गई थी, परन्तु साथ ही संयुक्त निर्वाचन में भी राय देने का उनका हक ज्यों का त्यों कायम रक्खा गया था। सबसे मजेदार बात यह थी कि मताधिकार की कसौटी भी हिन्दू और मुसलमानों के लिए अलग-अलग रक्खी गई थी। ३००० रुपये साल की आमदनी वाला एक मुसलमान मतदाता हो सकता था, मगर किसी भी गैर-मुसलिम के लिए आमदनी की यह मर्यादा तीन लाख रक्खी गई थी। मुसलमान ग्रेजुएट को मतदाता बनने के लिए यह काफी था कि उसे 'ग्रेजुएट' हुए तीन साल हो गये हों, परन्तु गैर-मुसलिम के लिए यही अवधि तीस साल की रक्खी गई थी। इस प्रकार पक्षपात करके अंग्रेज अधिकारी मुसलमानों की पृथकतावादी मनोवृत्ति को बराबर उभाड़ते रहे।

लखनऊ कांग्रेस

अंत में सन् १९१६ की लखनऊ-कांग्रेस में कांग्रेस और मुसलिम-लीग दोनों ने मिलकर साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के प्रश्न को हल करके अपनी स्वीकृति की मुहर लगा दी। इस निर्णय के अनुसार मुसलमानों को पंजाब में ५० प्रतिशत, बंगाल में ४० प्रतिशत, संयुक्त प्रान्त में ३० प्रतिशत, बिहार में २५ प्रतिशत, मध्यप्रदेश में १५ प्रतिशत, मद्रास में १५ प्रतिशत और बम्बई में एक तिहाई प्रतिनिधित्व दिया गया। यही हिन्दू-मुसलमानों की वह सम्मिलित योजना थी, जो बाद में 'मांटफोर्ड रिपोर्ट' में ज्यों की त्यों जोड़ दी गई।

मांटेगू-चेम्सफोर्ड योजना

सन् १९१८ में मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड शासन-सुधार योजना प्रकाशित हुई। यह ब्रिटिश राजनीतिज्ञों द्वारा तैयार किये गये राजनैतिक लेखों के समान भारत को स्वशासन देने के सम्बन्ध में एक बयान था, जिसमें साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में लखनऊ कांग्रेस की योजना को ज्यों का त्यों मान लिया गया था। इसमें सुधारों के मार्ग में आने वाली रुकावटों का स्पष्ट शब्दों में वर्णन किया गया था, फिर भी इस बात पर जोर दिया गया था कि सुधार अवश्य मिलने चाहिएँ।

इस रिपोर्ट पर विचार करने के लिए २२ अगस्त १९१८ को बम्बई में कांग्रेस का अधिवेशन बुलाया गया। सर हसनइमाम इस अधिवेशन के अध्यक्ष और विट्ठल भाई पटेल स्वागताध्यक्ष थे। इस कांग्रेस में ३८४५ प्रतिनिधि आये थे। सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, दिनशा वाचा, भूपेन्द्र नाथ बसु इत्यादि नरम दल के लोग इसमें नहीं आये थे। चार दिनों के वाद-विवाद के पश्चात् कांग्रेस ने इस रिपोर्ट की विस्तार पूर्वक आलोचना करते हुए इससे असहमति घोषित कर दी और यह घोषणा की, कि भारत अवश्य ही उत्तरदायी-शासन के योग्य है तथा मांट-फोर्ड रिपोर्ट में इसके खिलाफ जो बात कही है, उसका विरोध किया।

रौलेट एक्ट

११ नवम्बर १९१८ को अस्थायी-संधि के बाद महायुद्ध का अन्त हुआ। इस युद्ध में मित्र राष्ट्रों को पूर्ण सफलता मिली और प्रेसिडेण्ट विलसन, मि० लॉयड जार्ज और अन्य राजनीतिज्ञों ने आत्म-निर्णय के सिद्धान्त की घोषणा कर दी। इसी समय पंडित मदनमोहन मालवीय की अध्यक्षता में देहली में कांग्रेस का ३३ वाँ अधिवेशन हुआ, मगर इस अधिवेशन गतिविधि से देश को संतोष नहीं हुआ।

इतने ही में फरवरी १९१९ में भारतीय राष्ट्रीयता के क्षेत्र में बम विस्फोट करने वाले 'रौलेट-एक्ट' ने अपना दर्शन दे दिया। इस बिल को बनाने के लिए करीब साल भर पहले सरकार ने सर सिडनी रौलेट की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की थी, जिसके सदस्य कुमार स्वामी शास्त्री और प्रभासचन्द्र मित्र भी थे। भारतवर्ष में उस समय किस प्रकार और किस हद तक क्रान्तिकारी आन्दोलन और षड्यंत्र फैले हुए हैं और उनका मुकाबिला करने में क्या दिक्कतें पेश आती हैं, उनकी छानबीन करके यदि किसी कानून को बनाने की जरूरत हो तो उसकी रिपोर्ट यह कमेटी सरकार को पेश करे। कमेटी ने जाँच करके अपनी रिपोर्ट सरकार के पास भेज दी थी।

६ फरवरी १९१९ को विलियम वीन्सेन्ट ने बड़ी कौंसिल में दोनों रौलेट बिलों को पेश किया। एक बिल का उद्देश्य था भारत-रक्षा कानून के समाप्त होने पर देश में जो स्थिति पैदा हो, उसका मुकाबिला करना। इस बिल की धाराओं के अनुसार क्रान्तिकारियों के मुकदमे तीन जजों की एक अदालत में तुरन्त निर्णय के लिए पेश करना, इस अदालत के फैसले पर कोई अपील न होना, राजद्रोह के अपराधी की तुरन्त जमानत तलब करना, उसे किसी स्थान विशेष में रहने से या किसी विशिष्ट कार्य्य के करने से रोक दिया जाना या गिरफ्तार करके जेल में बन्द कर दिया जाना — इत्यादि ऐसी धाराएँ थीं जिन्हें कोई जागृत जाति सहन नहीं कर सकती थी।

इनमें से पहला बिल मार्च १९१९ में पास हो गया और दूसरा वापस ले लिया गया।

महात्मा गांधी का प्रवेश

इसी समय महात्मा गांधी ने एक अत्यन्त प्रभावशाली शक्ति के रूप में कांग्रेस के रंगमंच पर प्रवेश किया।

वे अपने साथ एक नया सिद्धान्त, एक नयी स्फूर्ति और एक ऐसी नवीन योजना लेकर आये, जिसका राजनैतिक क्षेत्र में समग्र मानवीय इतिहास में गांधीजी के पहले कभी प्रयोग नहीं हुआ था। यह सिद्धान्त सत्य, अहिंसा और नम्र सक्रिय प्रतिरोध का था। उन्होंने घोषणा कर दी कि यदि सरकार ने रौलेट-कमीशन की सिफारिशों को बिल का रूप दे दिया तो वह सत्याग्रह की लड़ाई छेड़ देंगे। इसके लिए महात्मा गांधी ने सारे देश का दौरा किया और सारे देश में उनका बड़ी धूमधाम से स्वागत हुआ।

१८ मार्च १९१९ को उन्होंने रौलेट बिल के सम्बन्ध में एक प्रतिज्ञा-पत्र प्रकाशित करवाया, वह इस प्रकार है।

"सच्चे हृदय से मेरा यह मत है कि रौलेट-कमेटी द्वारा प्रस्तुत इण्डियन-क्रिमिनल लॉ-अमेण्डमेण्ट बिल नं० १ और क्रिमिनल लॉ इमरजेंसी-पॉवर बिल नं० २ अन्यायपूर्ण है और न्याय तथा स्वाधीनता के सिद्धान्तों के घातक हैं इनसे व्यक्ति के उन मौलिक अधिकारों का हनन होता है, जिन पर भारत और स्वयं राज्य की रक्षा निर्भर है। अतः हम शपथ-पूर्वक प्रतिज्ञा करते हैं कि यदि इन बिलों को कानून का रूप दिया गया तो जब तक इन्हें वापस न लिया जावेगा तब तक हम इन तथा अन्य कानूनों को भी, जिन्हें कि इसके बाद नियुक्त की जाने वाली कमेटी उचित सम-

झेगी, मानने से नम्रतापूर्वक इन्कार कर देंगे। हम इस बात की भी प्रतिज्ञा करते हैं कि इस युद्ध में हम ईमानदारी के साथ सत्य और अहिंसा का पालन करेंगे और किसी के जान-माल को नुकसान नहीं पहुँचावेंगे।"

महात्मा गांधी ने उपवास के साथ आन्दोलन का श्रीगणेश किया। ३० मार्च १९१९ का दिन हड़ताल, ईश्वर प्रार्थना, प्रायश्चित तथा सार्वजनिक सभाएँ करने के लिए निश्चित किया गया, मगर बाद में यह तारीख बदलकर ६ अप्रैल कर दी गयी, परन्तु इस परिवर्तन की सूचना ठीक समय पर दिल्ली नहीं पहुँची। इसलिये वहाँ ३०मार्च को ही स्वामी श्रद्धानन्द के नेतृत्व में जुलूस निकला और हड़ताल हुई। एक गोरे सिपाही ने स्वामी श्रद्धानन्द को गोली मारने की धमकी दी तो स्वामी जी छाती खोलकर उसके सामने खड़े हो गये और उन्होंने कहा—"लो, मारो गोली।" इससे गोरा सैनिक लज्जित हो गया, मगर उसी दिन देहली रेलवे स्टेशन पर उपद्रव हो जाने से गोली चलाई गई और कई आदमी मारे गये तथा घायल हो गये।

गांधी जी की घोषणा होते ही सारे देश में एक ऐसी बिजली की लहर दौड़ गई जैसी इससे पहले कभी नहीं दौड़ी थी। मगर जनता के लिए गांधीजी का यह आन्दोलन एकदम नया था, वह इसके मूलभूत सिद्धान्तों को ठीक से समझ नहीं सकी और उत्साह तथा जोश में देश के कई भागों में हिंसात्मक उपद्रव प्रारम्भ हो गये, जिसमें पंजाब सबसे आगे था।

पंजाब का शासक उस समय माइकेल ओडवायर था वह आन्दोलन को सख्ती के साथ दमन करने पर तुला हुआ था। अप्रैल की दस तारीख को सबेरे ही अमृतसर के जिला मजिस्ट्रेट ने डॉ० किचालू और सत्यपाल को पकड़ लिया। इस घटना से सारे अमृतसर में सनसनी फैल गई और लोगों का एक जुलूस जिला मजिस्ट्रेट के यहाँ इस बात का पता लगाने के लिए चला। रास्ते में सेना के सिपाहियों ने उसे रोक लिया और गोली चला दी।

इसके बाद तो सारे अमृतसर में जगह-जगह उपद्रव प्रारम्भ हो गये। नेशनल बैंक की इमारत को आग लगा दी और उसके गोरे मैनेजर को मार डाला। कुल मिलाकर भीड़ ने ५ अंग्रेजों को मार डाला और रेलवे गोदाम तथा कई सरकारी इमारतों को जला दिया।

इन घटनाओं से सरकार एकदम क्षुब्ध हो गई और उसी दिन अर्थात् १० अप्रैल को ही स्थानीय अधिकारियों ने शहर को सेना के अधिकार में दे दिया।

फिर तो वहाँ विनाश का ताण्डव नृत्य मच गया। सेना का प्रधान अधिकारी जनरल डायर था।

पंजाब हत्याकाण्ड

१३ अप्रैल को वर्ष प्रतिपदा का दिन था। इस दिन अमृतसर के जलियानवाला बाग में एक सार्वजनिक सभा करने की घोषणा की गई और वहाँ एक भारी सभा हुई। अमृतसर के बीच में जलियानवाला बाग एक खुला हुआ स्थान है, जो चारों ओर मकानों से घिरा हुआ है। इसमें घुसने और निकलने का सिर्फ एक ही फाटक है जो बहुत छोटा है।

बाग में जब करीब बीस हजार आदमी इकट्ठे हो गये तब जनरल डायर ने उसमें प्रवेश किया। उसके पीछे १०० सशस्त्र भारतीय सिपाही और पचास गोरे सिपाही थे। जिस समय ये लोग घुसे उस समय हंसराज नामक एक व्यक्ति भाषण कर रहा था। स्वयं जनरल डायर के बयान के अनुसार उसने लोगों को तीतर-बीतर होने के लिए तीन मिनट का समय दिया और तीन मिनिट पूरे होने से पहले ही गोलियाँ चलाना प्रारम्भ कर दिया। गोलियाँ तब तक चलती रहीं जब तक कारतूस खतम नहीं हो गये। कुल सोलह सौ फायर किये गये जिनसे सरकारी रिपोर्ट के अनुसार ४०० व्यक्ति मारे गये और दो हजार के करीब घायल हुए। अमृतसर में बिजली और पानी का कनेक्शन तोड़ दिया गया। जिससे रोशनी और पानी के अभाव में त्राहि-त्राहि मच गई।

गुजरानवाला और कुसूर में भी बहुत भयंकर खून खराबी हुई। वहाँ पर कर्नल ओब्रायन नामक सैनिक अफसर था उसने यह हुक्म जारी किया था कि कोई भी हिन्दुस्तानी किसी अंग्रेज को देखे तो उसे सलाम करे, अगर सवारी में जा रहा हो या घोड़े पर हो तो नीचे उतर कर उसे

सलाम बजाना चाहिए। इस हुक्म का पालन न करने वाले लोगों के सार्वजनिक क्षेत्रों में कोड़े लगाये गये। इस प्रकार और भी अनेक भयानक अत्याचार हुए।

इसी प्रकार की दुर्घटनाएँ अहमदाबाद, कलकत्ता इत्यादि देश के दूसरे स्थानों पर भी हुईं।

उत्साह और जोश तो सारे देश में बहुत पैदा हुआ मगर उसकी गति गलत दिशा में हो गई यह देखकर महात्मा गांधी को बड़ा धक्का लगा, उन्होंने उसी समय अपनी गलती मंजूर करते हुए कहा—

"मैंने हिमालय के समान भारी भूल की है, जिसकी वजह से शरारती लोगों को, जो कि सच्चे सत्याग्रही नहीं थे, उत्पात करने का मौका मिल गया। अतः एक तरफ तो उन्होंने सत्याग्रह आन्दोलन को वापस ले लिया और दूसरी तरफ घोषणा की कि मैं शान्ति स्थापन के कार्य में हर तरह सरकार की मदद करने को तैयार हूँ।"

इसी वर्ष अर्थात् सन् १९१९ में कांग्रेस का अधिवेशन अमृतसर में हुआ। यह कांग्रेस भिन्न-भिन्न विचारधाराओं के संघर्ष का एक अखाड़ा बन गई। इस कांग्रेस में देश के राजनैतिक रंगमंच पर एक और विशिष्ट प्रतिभा श्री चित्तरंजनदास के रूप में प्रकट हुई। शासन सुधार के बारे में जो प्रस्ताव अमृतसर कांग्रेस में रक्खा गया था उसका मसविदा देशबन्धु दास का ही बनाया हुआ था।

गांधी जी और मालवीयजी उस समय चाहते थे कि सरकार लोगों के साथ जितना सहयोग करना चाहे, उतना ही सहयोग करने की नीति पर सुधारों को कार्यान्वित किया जाय, मगर देशबन्धु दास और उनके साथी उग्रनीति के समर्थक थे।

इसके सिवा गांधीजी कांग्रेस में ऐसा प्रस्ताव लाना चाहते थे कि पंजाब और गुजरात में जो मारकाट लोगों की तरफ से हुई है, उसकी निन्दा की जाय। लेकिन उस समय लोगों की भावनाएँ इतनी उग्र हो रही थीं कि गांधीजी का यह प्रस्ताव विषय-समिति में पास न हो सका। तब उन्होंने अत्यन्त नम्रता, मगर दृढ़ता के साथ, यदि कांग्रेस इस दृष्टिबिन्दु को [illegible] अपनाये तो कांग्रेस में रहने में अपनी असमर्थता प्रकट की।

अन्त में दोनों प्रस्ताव थोड़ी-बहुत खींच-तान और भाषा सम्बन्धी फेरबदल के साथ गांधीजी की इच्छा के माफिक पास हो गये।

खिलाफत का प्रश्न

इसी समय भारत की मुसलिम जनता में खिलाफत-आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ। प्रथम महायुद्ध में टर्की, जर्मनी की तरफ से लड़ा था। इसलिए लड़ाई के बाद उसका थ्रेस प्रान्त यूनान को दे दिया गया और उसके एशियायी प्रदेशों को ब्रिटेन और फ्रान्स ने आपस में बाँट लिये। मुसलमान चाहते थे कि जजीरतुल अरब, मेसोपेटोमियाँ, अरबिस्तान, सीरिया, फिलीस्तीन इत्यादि मुसलमानों के सारे पवित्र स्थान हमेशा तुर्की के 'खलीफा' के अधिकार में रहना चाहिए।

मगर ब्रिटेन की सरकार ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। वाइसराय ने अपने सन्देश में भारतीय मुसलमानों को सांत्वना देते हुए कहा कि "सन्धि की शर्तों से भारत के मुसलमानों के दिलों को अवश्य ठेस पहुँचेगी, मगर इसके साथ ही उनसे कहा गया कि वे अपने तुर्की सहधर्मियों के इस दुर्भाग्य को धैर्य और सन्तोष के साथ सहन करें।"

इस सन्देश के प्रकाशित होते ही खिलाफत-कमेटी की बैठक बम्बई में हुई। महात्मा गांधी भी इस आन्दोलन में मुसलमान जनता का पूरा साथ देने को तैयार थे; इसके लिए उन्होंने असहयोग का कार्यक्रम प्रस्तावित कर दिया। २८ मई १९२० को खिलाफत कमेटी ने इस कार्यक्रम को स्वीकार कर लिया।

'असहयोग' की इस योजना का बाकायदा प्रारम्भ १ अगस्त १९२० को हुआ।

इसके पश्चात् ही कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन कलकत्ता में अत्यन्त जोश-खरोश के साथ हुआ। गांधी जी के असहयोग का प्रस्ताव ८८४ के विरुद्ध १८८६ प्रतिनिधियों के मतों से पास हुआ। इस कार्यक्रम में सरकारी उपाधियों और अवैतनिक पदों को छोड़ना, स्कूल व कॉलेजों का बहिष्कार, नवीन कौन्सिलों के चुनाव का बहिष्कार, विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार आदि कई प्रोग्राम शामिल थे।

नागपुर कांग्रेस

असहयोग के इस प्रस्ताव पर अन्तिम स्वीकृति नागपुर कांग्रेस में मिलना थी, इसलिए कांग्रेस के इस अधिवेशन में सारा देश उमड़ पड़ा। कहा जाता है कि जितने प्रतिनिधि नागपुर कांग्रेस में आये थे, उतने उसके पहले की या उसके बाद की, किसी कांग्रेस के अधिवेशन में नहीं आये। कुल प्रतिनिधियों की संख्या १४५८२ थी।

इस प्रस्ताव का विरोध करने के लिए देशबन्धु दास अपने साथ प्रतिनिधियों की एक पूरी ट्रेन भर कर लाये थे। महाराष्ट्र का विरोध भी बहुत तगड़ा था। कर्नल वेजवुड, श्री बैनरपुर इत्यादि व्यक्तियों ने अपनी सारी शक्ति इस प्रस्ताव का विरोध करने में लगा दी।

मगर इन सब विरोधों के बावजूद असहयोग का प्रस्ताव फिर दोहराया गया और उसमें कांग्रेस का ध्येय इस तरह बदल डाला कि उसमें ब्रिटिश सम्बन्ध और वैध आन्दोलन, जिसमें कांग्रेस अभी तक विश्वास करती थी, उसका कोई उल्लेख ही नहीं रहा।

अधिवेशन में गांधीजी के व्यक्तित्व की विजय हुई। विपिनचन्द्रपाल, मालवीय जी, मि० जिन्ना, सी० आर० दास, लाला लाजपतराय इत्यादि के समान पुराने और तपे हुए लोग देखते के देखते रह गये और अन्त में ऐसी परिस्थिति आ गई कि स्वयं देशबन्धु दास ने कांग्रेस के मंच पर 'असहयोग का प्रस्ताव' पेश किया और लाला लाजपत राय ने उसका समर्थन किया।

अहमदाबाद कांग्रेस

कांग्रेस में गांधीजी के आगमन और नागपुर कांग्रेस के साथ ही भारत के इतिहास में एक नया युग पैदा होता है। निर्बल क्रोध और आग्रह पूर्वक प्रार्थनाओं का स्थान, अपने अधिकारों की वाजिब माँग ने ले लिया था। सरकार की खुल्लमखुल्ला आलोचना करते हुए तथा अपने अधिकारों की माँग करते हुए लोगों को जो भय लगा करता था, उसको महात्मा गांधी की निर्भीकता ने बिलकुल दूर कर दिया था। लोगों के व्याख्यानों और चर्चाओं में अब प्रार्थना का नहीं, प्रत्युत लड़ाई के भावों का जागरण हो रहा था और यह जागरण शहरों की सीमाओं को लाँघकर तेजी से गाँवों में फैल रहा था।

अगले साल सन् १९२१ ई० में कांग्रेस-अधिवेशन अहमदाबाद में हुआ। नागपुर-कांग्रेस और अहमदाबाद-कांग्रेस के बीच के समय में देश में कई घटनाएँ तेजी के साथ हो चुकी थीं। दक्षिण भारत में मोपला मुसलमानों का सशस्त्र विद्रोह हो चुका था। अलीबन्धु गिरफ्तार किये जा चुके थे। १७ नवम्बर को बम्बई में प्रिन्स ऑफ वेल्स के आगमन और बहिष्कार के समय एक भीषण उपद्रव हो चुका था।

ऐसे अनोखे वातावरण में अहमदाबाद-कांग्रेस का श्री गणेश हुआ। कांग्रेस के मनोनीत सभापति देशबन्धु दास गिरफ्तार किये जा चुके थे और उनके स्थानापन्न सभापति हकीम अजमल खाँ बने थे। चारो तरफ दमन का दौर-दौरा था।

लोगों का उत्साह दर्शनीय था, वे कुछ कर गुजरने की भावनाओं से ओतप्रेत थे।

चौरीचौरा काण्ड

मगर गवर्नमेंट के जबर्दस्त दमन से त्रस्त होकर स्थान-स्थान पर लोगों की हिंसात्मक भावनाएँ भड़क उठीं। १७ नवम्बर १९२१ को बम्बई में हिसात्मक उपद्रव हो चुके थे। ५ फरवरी १९२२ को गोरखपुर के निकट चौरीचौरा नामक स्थान पर कांग्रेस के जूलूस ने २१ पोलिस के सिपाहियों और १ थानेदार को थाने की बिल्डिंग में बन्द कर उस बिल्डिंग में आग लगा दी और उन्हें जिन्दा जला दिया। उधर मद्रास में भी बम्बई की तरह हिंसात्मक उपद्रव प्रारम्भ हो गये, जिसमें ५३ आदमी मरे और चार सौ घायल हुए।

इन घटनाओं से दुःखी होकर कांग्रेस कार्य्य-समिति ने गांधीजी की सलाह से सामूहिक-सत्याग्रह का प्रोग्राम बन्द कर दिया और चर्खा कातना, राष्ट्रीय विद्यालय खोलना, मद्य-निषेध करना इत्यादि रचनात्मक प्रोग्राम बनाया।

इस घटना से सारे देश में एक मृतक-शान्ति छा गई, लोगों के मनसूबे खतम हो गये, जेलों में देशबन्धुदास, और मोतीलाल नेहरू जैसे नेता गांधीजी के इस निर्णय से

तिलमिला उठे मगर गांधी जी का निर्णय अडिग था और उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ ।

देश की इस कमजोर मनः स्थिति का पता लगते ही सरकार ने गांधी जी को गिरफ्तार कर लिया और उन पर केस चलाकर उन्हें छः साल की सजा दे दी ।

इस केस को चलाते समय गांधी जी ने कोर्ट के सम्मुख जो बयान दिया था, वह एक ऐतिहासिक बयान था उसका कुछ अंश इस प्रकार है—

“मैं एक राजद्रोही हूँ, मैं जानता हूँ कि मैं आग के साथ खेल रहा हूँ और यदि मुझे छोड़ दिया जाय तो मैंने जो कुछ किया है, वही फिर करूँगा । यदि मैं ऐसा न करूँ तो अपना फर्ज अदा नहीं करूँगा । मैं जानता हूँ कि कभी-कभी मेरे देशवासियों ने पागलपन से भरे काम किये हैं और ऐसे कार्य्यों की जबाबदारी मेरे पर ही है । इसलिए यहाँ जो मैं खड़ा हूँ सो कोई मामूली सजा सुनने के लिए नहीं, बल्कि कड़ी से कड़ी सजा पाने के लिए । मैं दया की प्रार्थना नहीं करता । मैं तो ऐसे काम के लिए जो कानून की निगाह में जान-बूझकर किया गया अपराध है, पर मेरे दृष्टिकोण से एक नागरिक का सबसे बड़ा कर्तव्य है, बड़ी से बड़ी सजा चाहता हूँ ।”

“विचारक महोदय ! आपके आगे दो ही मार्ग हैं या तो आप अपने पद को छोड़ दें या यदि आप समझते हैं कि जिस शासन-व्यवस्था और जिस कानून के व्यवहार में आप सहायता दे रहे हैं, वह मंगलदायक है तो फिर मुझे बड़े से बड़ा दण्ड दें !”

गाँधीजी के जेल में जाते ही सारे देश में एक निराशा-पूर्ण वातावरण छा गया । इसी वातावरण में गया की कांग्रेस हुई । इस कांग्रेस में कौन्सिलों में प्रवेश करना या नहीं करना इस प्रश्न पर दो दल हो गये । कांग्रेस ने कौन्सिल का प्रवेश नामंजूर कर दिया तो, कौन्सिल वादियों ने स्वराज्य पार्टी का निर्माण कर लिया, जिसमें देश बन्धु दास, पं० मोतीलाल नेहरू, विट्ठल भाई पटेल इत्यादि प्रभावशाली लोग सम्मिलित हो गये ।

उधर टर्की में कमाल पाशा ने स्वयं खिलाफत का अन्त कर दिया, जिससे भारतवर्ष की खिलाफत आन्दोलन एकदम ठण्ढा हो गया, खिलाफत आन्दोलन के ठण्डा होते ही देश के अनेक भागों में हिन्दू मुसलमानों के जोरदार दंगे प्रारम्भ हो गये । १९२२ में मुलतान में हिन्दू-मुसलमानों में दंगा हुआ । १९२३ में मुहर्रम पर बंगाल और पंजाब में भयंकर दंगे हुए ।

५ फरवरी १९२४ को गांधीजी को अपेण्डीसाइटिस की बीमारी के कारण छोड़ दिया गया । मगर छूट जाने पर भी उन्हें संतोष और विश्रान्ति नहीं मिली । कांग्रेस की फूट और साम्प्रदायिक दंगों ने उन्हें अशान्त बना रक्खा था । इधर हिन्दू और मुसलमानों का तनाव प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था और मि० जिन्ना का प्रभाव मुसलमानों में व्याप्त हो रहा था । इस बीच अनेक घटनाओं के होते रहने पर भी आन्दोलन ने विशेष जोर नहीं पकड़ा ।

लाहौर कांग्रेस

सन् १९२९ में लाहौर की ऐतिहासिक कांग्रेस हुई जिसके अध्यक्ष पं० जवाहरलाल नेहरू थे । इस कांग्रेस में होमरुल, स्वराज्य, शासन सुधार इत्यादि सारे शब्द उड़ाकर पूर्ण स्वाधीनता का लक्ष्य घोषित किया गया । २६ जनवरी को रावी नदी के किनारे लाहौर में पूर्ण स्वाधीनता का लक्ष्य घोषित किया गया । जिसकी जयन्ती आज भी हरसाल मनाई जाती है ।

नमक सत्याग्रह

सन् १९३० में देश में फिर जोश और उत्साह की एक लहर आई । महात्मा गाँधी ने वाइसराय को एक लम्बा पत्र लिखकर उसके पश्चात् ११ मार्च १९३० को नमक सत्याग्रह की घोषणा कर दी और १२ मार्च १९३० को अपने ७९ साथियों के साथ अहमदाबाद से २०० मील दूर दाण्डी की पैदल यात्रा को निकल पड़े जहाँ समुद्र तट पर पहुँचकर सत्याग्रह का आरम्भ करना था ।

कूच के समय ही गाँधीजी ने घोषित कर दिया था कि “स्वराज्य नहीं मिला तो या तो रास्ते में मर जाऊँगा, या आश्रम के बाहर रहूंगा । नमक कर नहीं उठा सका तो आश्रम में लौटने का भी इरादा नहीं है ।”

नमक सत्याग्रह के साथ ही फिर एक बार जैसे जादू की डण्डा सारे देश पर घूम गया । सारे देश में एक प्रबल

जागृति की लहर दौड़ गई। हजारों आदमी सत्याग्रह करके जेल जाने लगे।

५ अप्रैल को प्रातःकाल २४ दिन में गाँधीजी दाण्डी पहुँचे और प्रार्थना करके विधिवत् नमक कानून को भंग किया।

६ अप्रैल से सारे देश में एक छोर से दूसरे छोर तक एक ज्वालामुखी भड़क उठा। बड़े २ शहरों में लाखों की उपस्थिति में बड़ी-बड़ी सभाएँ हुईं। पेशावर में सेना की गोलियों से कई आदमी मारे गये।

इसके बाद गाँधीजी ने धारासना और छरसाडा के नमक भण्डारों पर धावा करने की सूचना वाइसराय को दी। इस सूचना के पहुँचते ही ५ मई की तारीख प्रारम्भ होते ही महात्मा गाँधी रात को एक बजे गिरफ्तार कर के यरवदा जेल भेज दिये गये।

इस बार गाँधीजी की गिरफ्तारी से न केवल भारत में प्रत्युत् सारे संसार के लोकमत में एक तहलका सा मच गया। अमेरिका के १०२ प्रभावशाली पादरियों ने इंगलैंड के प्रधान मन्त्री को लम्बा तार भेजकर भारतवर्ष से समझौता करने की अपील की, मगर ऐसे समय में सरकार अपनी प्रतिष्ठा के लिए अड़ी रही और सारे देश में दमन का भयंकर दौर-दौरा चालू हो गया।

गुजरात में तो यह दमन इतने जोर शोर से चालू हुआ कि उससे तंग आकर वहाँ के करीब ८०००० किसान अंग्रेजी राज्य की सीमाओं को छोड़कर देशी राज्यों की सीमा में चले गये, मगर आन्दोलन की तीव्रता में कोई अन्तर नहीं आया।

इसी बीच मध्यस्थ लोग सरकार से समझौता वार्त्ता भी चला रहे थे। लन्दन में पहली गोलमेज कान्फ्रेन्स भी हो रही थी। इन सब परिस्थितियों से प्रेरित होकर २६ जनवरी सन् १६३१ को सरकार ने महात्मा गांधी तथा और सारे सत्याग्रही कैदियों को छोड़ दिया। उसके तुरन्त बाद महात्मा गांधी लार्ड इरविन से मिले जिसके फलस्वरूप जो समझौता हुआ वह "गांधी-इरविन समझौते" के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें सरकार ने गांधीजी को संतुष्ट करने योग्य एक वातावरण तैयार कर दिया और गांधीजी ने उसे स्वीकार कर सत्याग्रह बन्द कर दिया।

इसके बाद करांची में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इन्हीं दिनों पंजाब सरकार ने सरदार भगत सिंह, राज गुरु और सुखदेव को फांसी पर चढ़ाया और इन्हीं दिनों कानपुर के हिन्दू मुसलिम दंगे में श्रीगणेश शंकर विद्यार्थी की हत्या हुई। इसी शोकपूर्ण वातावरण में करांची कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इसके कुछ समय पश्चात् लन्दन की दूसरी गोलमेज परिषद् में कांग्रेस का प्रतिनिधित्व करने के लिए सितम्बर १६३१ में महात्मा गांधी को भेजा गया, मगर गोलमेज परिषद की कार्यवाही से गांधीजी बिलकुल असन्तुष्ट रहे, कोई समझौता नहीं हो सका। परिषद असफल हुई और अन्त में गांधीजी ने सभापति को धन्यवाद देते हुए कहा—

"अब हमें अलग-अलग रास्तों पर जाना होगा। मनुष्य स्वभाव का गौरव तो इसी में है कि हम जीवन में आने वाली आँधियों से टक्कर लें। मैं नहीं जानता कि मेरा रास्ता क्या होगा, लेकिन इसकी मुझे चिन्ता नहीं है।"

गाँधीजी वहाँ से वापस लौटे, मगर उनके भारत पहुँचने के पहले ही सरकार ने युक्त प्रान्त, बंगाल, सीमा प्रान्त इत्यादि कई स्थानों पर आर्डिनेंस निकाल कर बहुत से लोगों को गिरफ्तार कर लिया था जिनमें पं० जवाहर लाल नेहरू और पुरुषोत्तम दास टण्डन भी थे।

गाँधीजी ने यहाँ पहुँचते ही यहाँ की स्थिति को देख कर वाइसराय लार्ड वेलिंगटन से पत्र व्यवहार किया मगर कोई परिणाम नहीं निकला। वाइसराय ने बड़ी सख्ती से उनके उत्तर दिये और अन्त में ४ जनवरी १६३२ को सवेरे महात्मा गांधी और सरदार पटेल को भी गिरफ्तार कर लिया और प्रान्तीय तथा जिला कांग्रेस कमेटियों, आश्रमों और दूसरी राष्ट्रीय संस्थाओं को गैर कानूनी घोषित कर दिया। चारों तरफ आतंक और सर्वनाश का बोलबाला हो गया।

इसी समय भारत सरकार ने असेम्बली के निर्वाचनों में हरिजन लोगों के पृथक् निर्वाचन की घोषणा कर दी।

आमरण अनशन और पूना पैक्ट

जेल में महात्मा गांधी को जब यह मालूम हुआ तो उन्होंने सरकार को तुरन्त नोटिस दे दिया कि यदि सरकार

दलित जातियों के लिए पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था को बन्द नहीं करेगी तो मैं २० अप्रैल १९३२ से आमरण अनशन करूँगा, मगर सरकार ने महात्मा गांधी की सलाह को मंजूर नहीं किया और गांधीजी ने २० अप्रैल से अपना इतिहास प्रसिद्ध अनशन चालू कर दिया।

इसके पहले ही महात्मा गांधी के निश्चय से सारे देश में खलबली मच चुकी थी और देश के तमाम बड़े-बड़े नेता और अछूत नेता पूना में इस समस्या को सुलझाने के लिए एकत्र हो चुके थे। यहीं पर सुप्रसिद्ध पूना पैक्ट पास हुआ जिसमें हरिजनों के लिए सरकार के पृथक् निर्वाचन प्रस्ताव में जितनी सीटें रक्खी गईं थी उनसे भी अधिक सीटें इस पैक्ट में रख दीं और दोनों पक्ष के नेताओं ने अपनी स्वीकृति की सूचना सरकार को दे दी। सरकार ने भी इस पैक्ट को मान लिया और पृथक् निर्वाचन को रद्द कर दिया।

तब २६ जनवरी को महात्मा गाँधी ने अपना उपवास तोड़ा। इसके बाद ८ मई १९३३ से गांधीजी ने आत्मशुद्धि के लिए फिर से २१ दिन का उपवास शुरू किया। इस उपवास से सारा देश आशंकित हो उठा, क्योंकि गांधीजी का स्वास्थ्य ऐसा नहीं था कि वे इतने लम्बे अनशन को सहन कर लें। सरकार ने भी इस खतरे को उठाना हितकर न समझ कर उन्हें रिहा कर दिया तब दूर प्रार्थनाएँ होने लगीं। प्रतिदिन डॉक्टर लोग अत्यन्त चिन्ता से उनकी शुश्रुषा करते हुए रिपोर्ट निकालने लगे। सब लोगों का ऐसा चिंतापूर्ण वातावरण देखकर एक दिन गांधीजी ने हँसते हुए कहा कि आप लोग चिंतित न हों, "मैं इस उपवास से मरूँगा नहीं" और सचमुच यही हुआ। महान् इच्छा-शक्ति की विजय हुई। उपवास के इक्कीस दिन पूरे कर तपे हुए सोने की भांति प्रसन्न बदन से महात्मा गांधी लोगों के सम्मुख आये।

इसके बाद और भी एक दो बार गांधीजी की गिरफ्तारी और अनशन के अवसर आये। मगर जनता के अन्दर सरकार की कठोर नीति के कारण एक प्रकार का निराशा पूर्ण वातावरण छा गया था।

सन् बयालीस

इतने ही में सन् १९३९ में दूसरा विश्व युद्ध आरंभ हो गया। और सन् १९४२ में कांग्रेस ने बम्बई में 'Quit India' 'भारत छोड़ो का सिद्धान्त पास कर दिया।

इस प्रस्ताव के पास होते ही एकदम सारे भारतवर्ष में तमाम छोटे से बड़े कांग्रेस नेताओं को सरकार ने पकड़ कर बन्द कर दिया। मार्ग दर्शकों के न रहने से जनता ने भी अन्धाधुन्ध उपद्रव किये। जगह-जगह अराजकता के दृश्य उपस्थित हो गये। सरकार की सेना ने भी इस समय ऐसा भयंकर दमन किया जितना शायद १८५७ में भी न किया होगा।

इसके बाद सन् १९४६ तक युद्ध काल में देश के अन्दर एक मृतक शान्ति छाई रही, हिन्दू-मुसलमानों के मतभेद बढ़ते गये और लोगों का ध्यान युद्ध की ओर लगा रहा।

पूर्ण स्वाधीनता की प्राप्ति

द्वितीय महायुद्ध पश्चिमी प्रदेशों की विजय में समाप्त हुआ। इंग्लैण्ड में नये चुनावों में चर्चिल की तथा उसकी पार्टी की हार हुई। मजदूर पार्टी की सरकार बनी। मि० एटली प्रधान मंत्री बने और उन्होंने सबसे पहले उपनिवेशों की आजादी का प्रश्न हाथ में लिया।

यहाँ की साम्प्रदायिक समस्याओं की जाँच करने के लिए उन्होंने भूतपूर्व वाइसराय लार्ड वेवेल को भेजा। लार्ड वेवेल ने हिन्दू मुसलमान दोनों में समझौता कराने का प्रयत्न किया मगर मुसलमान अपनी पाकिस्तान की माँग से टस से मस न हुए। इसी बीच कलकत्ते के मुख्य मंत्री सुहरावर्दी ने डॉयरेक्ट एक्शन डे मानने की घोषणा की। इस दिन कलकत्ते में हिन्दू-मुसलमानों का भयंकर दंगा हुआ।

महात्मा गांधी को इन घटनाओं से और सारे देश के विभाजन से बड़ी वेदना हो रही थी। उन्होंने अन्त तक विभाजन के प्रश्न को स्वीकार नहीं किया मगर जब चारों तरफ से निराशा पूर्ण वातावरण हो गया और अन्य नेता लोग उन पर विभाजन कर लेने पर जोर देने लगे तब अत्यन्त दुःखी हृदय से उन्होंने भी उसे स्वीकार किया।

भारतवर्ष के दो खण्ड हुए, पाकिस्तान का निर्माण हुआ और १५ अगस्त सन् १९४७ के दिन ब्रिटिश सरकार

ने भारतीय कांग्रेस को पूर्ण स्वाधीनता हस्तान्तरित कर दी।

वह एक अत्यन्त शुभ दिन था जिस दिन इस विशाल देश को एक हजार बरसों की गुलामी के पश्चात् पूर्ण स्वाधीनता के दर्शन हुए।

मगर विभाजन के कारण हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दोनों ही देशों में भयंकर साम्प्रदायिक दंगे हुए। पाकिस्तान में तो इन्होंने अत्यन्त घृणित रूप धारण कर लिया जिसकी वजह से लाखों हिन्दुओं को वहाँ से निष्क्रमण करना पड़ा। नोआखाली में भी भयंकर हत्याकाण्ड हुए।

इन घटनाओं से दुखित होकर महात्मा गांधी पैदल यात्रा पर नोआखाली में निकल पड़े। वहाँ से वापस आने के बाद भी उनके चित्त को शांति नहीं थी। वे अपने आपको एक अजीब उलझन में अनुभव करते थे और ईश्वर से मार्ग दर्शन की प्रार्थना करते थे। इतने में नाथूराम गोडसे नामक एक व्यक्ति ने ३० जनवरी १९४८ को प्रार्थना सभा से निकलते समय गोली मार कर उनकी हत्या कर दी। सारे देश में शोक की धाराएँ छा गई। और इतिहास ने उनका नाम भी ईसा और सुकरात की तरह मानव-हित में होने वाले शहीदों के साथ लिख लिया।

आजादी के बाद

आजादी प्राप्त होते ही देश के सामने सबसे महत्व का प्रश्न देशी राजाओं के सम्बन्ध में उठा मगर सरदार पटेल ने इस प्रश्न को इतनी कुशलता से निपटाया कि सब लोग आश्चर्य चकित हो गये। हैदराबाद में कासिम रिजवी ने तथा जूनागढ़ के नवाब ने कुछ गड़बड़ी की तो उन्हें सख्ती के साथ दबा दिया गया। कश्मीर में भी कबाइलियों की मदद से पाकिस्तान ने भयंकर आक्रमण कर दिया उसको भी वीरता से निपट लिया गया, मगर उस झड़प में कश्मीर का एक हिस्सा चल गया।

सन् १९५१ में भारत का विधान बनकर तैयार हो गया और १९५२ में चुनाव हुए। पहले, दूसरे और तीसरे चुनावों में कांग्रेस की विजय हुई। यद्यपि पहली से दूसरी और दूसरी से तीसरी विजय कमजोर थी। इस प्रकार १६ बरसों से बराबर इस देश पर कांग्रेस का शासन चल रहा है।

महात्मा गांधी ने स्वाधीनता के बाद कांग्रेस को भंग कर लोक सेवा संघ के रूप में परिणित करने की इच्छा प्रकट की थी मगर दूसरे नेताओं ने इसे नहीं माना और कांग्रेस को बाकायदा चालू रक्खा।

स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, प्रथम प्रधानमंत्री पं० जवाहर लाल नेहरू और प्रथम उप-प्रधान मंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल हुए।

स्वतंत्र भारत की सरकार ने अन्तरंग नीति में समाजवाद का और विदेश नीति में किसी ग्रूप में शामिल न होकर तटस्थ रूप में रहने का लक्ष्य अंगीकार किया है। ये दोनों ही नीतियाँ अभी परीक्षण की कसौटी पर हैं। इसी बीच चीन ने आक्रमण करके एक कठिन समस्या पैदा कर दी है जिससे अनेक लोगों के विश्वास डिग गये हैं। इन सारी नीतियों के आगे क्या परिणाम होंगे इस पर अभी कुछ लिखना जल्दबाजी होगा। भविष्य के इतिहासकार ही इस पर अपना निर्णय करेंगे।

सन् १८८५ से १९३५ तक के कांग्रेस अध्यक्षों की सूची—

संख्या	सन्	अध्यक्ष	स्थान
१	१८८५	श्री उमेश चन्द्र बनर्जी	बम्बई
२	१८८६	” दादा भाई नौरोजी	कलकत्ता
३	१८८७	” बदरुद्दीन तैय्यबजी	मद्रास
४	१८८८	” जार्ज यूल	इलाहाबाद
५	१८८९	” सर विलियम वेडर वर्न	बम्बई
६	१८९०	” फिरोज शाह मेहता	कलकत्ता
७	१८९१	” पी० आनन्द चार्लू	नागपूर
८	१८९२	” उमेश चन्द्र बनर्जी	इलाहाबाद

९	१८९३	श्री दादा भाई नौरोजी	लाहौर
१०	१८९४	” अलफ्रेड वेब	मद्रास
११	१८९५	सर सुरेन्द्र नाथ बनर्जी	पूना
१२	१८९६	मुहम्मद रहीमतुल्ला सयानी	कलकत्ता
१३	१८९७	श्री सी० शंकरन नायर	अमरावती
१४	१८९८	” आनन्द मोहन बोस	मद्रास
१५	१८९९	” रमेश चन्द्र दत्त	लखनऊ
१६	१९००	” नारायण गणेश चन्दावरकर	लाहौर
१७	१९०१	” दनिशा रादलजी वाचा	कलकत्ता
१८	१९०२	” सुरेन्द्र नाथ बनर्जी	अहमदाबाद
१९	१९०३	” लाल मोहन घोष	मद्रास
२०	१९०४	सर हेनरी कॉटन	बम्बई
२१	१९०५	श्री गोपाल कृष्ण गोखले	काशी
२२	१९०६	” दादा भाई नौरोजी	कलकत्ता
२३	१९०७	” रासबिहारी घोष	सूरत
२४	१९०८	डा० रासबिहारी घोष	मद्रास
२५	१९०९	पं० मदन मोहन मालवीय	लाहौर
२६	१९१०	सर विलियम वेडर वर्न	इलाहाबाद
२७	१९११	पं० विशननारायण दूबे	कलकत्ता
२८	१९१२	श्री रंगनाथ नरसिंह मुधोलकर	बांकीपुर
२९	१९१३	नबाब सैय्यद मोहम्मद	करांची
३०	१९१४	श्री भूपेन्द्र नाथ वसू	मद्रास
३१	१९१५	सर एस० पी० सिन्हा	बम्बई
३२	१९१६	श्री अम्बिकाचरण मजूमदार	लखनऊ
३३	१९१७	श्रीमती एनी बीसेण्ट	कलकत्ता
३४	१९१८	पं० मदन मोहन मालवीय	देहली
३५	१९१९	पं० मोतीलाल नेहरू	अमृतसर
३६	१९२०	श्री लाला लाजपत राय	कलकत्ता
३७	१९२१	च० विजय राघवाचार्य	नागपूर
३८	१९२२	हकीम अजमल खाँ	अहमदाबाद
३९	१९२३	देशबन्धु सी० आर० दास	गया
४०	१९२४	मौलाना अबुल कलाम आजाद	देहली
४१	१९२५	मौलाना मुहम्मद अली	कोकोनाड़ा
४२	१९२६	महात्मा गाँधी	बेलगाँव
४३	१९२७	श्रीमती सरोजिनी नायडू	कानपूर

४४	१९२८	श्री श्रीनिवास आयंगर	गौहाटी
४५	१९२९	,, मुख्तार अहमद अन्सारी	मद्रास
४६	१९३०	पं० मोतीलाल नेहरू	कलकत्ता
४७	१९३१	पं० जवाहर लाल नेहरू	लाहौर
४८	१९३२	सरदार बल्लभ भाई पटेल	करांची
४९	१९३३	सेठ रणछोड़ लाल अमृतलाल	देहली
५०	१९३४	श्री० जे० एम० सेन गुप्ता	कलकत्ता
५१	१९३५	डा० राजेन्द्र प्रसाद	बम्बई
५२	१९३६	पं० जवाहर लाल नेहरू	लखनऊ
५३	१९३७	,, ,, ,,	फैजपुर
५४	१९३८	श्री सुभाषचन्द्र बोष	हरिपुरा
५५	१९३९	,, ,, ,,	त्रिपुरा
५६	१९४०	मौलाना अबुलकलाम आजाद	रामगढ़
५७	१९४१	आचार्य जे० बी० कृपलानी	मेरठ
५८	१९४२	डा० पट्टाभी सीतारमैया	जयपुर
५९	१९४३	श्री पुरुषोत्तम दास टंडन,	नासिक
६०	१९४४	पं० जवाहरलाल नेहरू,	नयी दिल्ली

इण्डियन एसोसिएशन

बंगाल में सन् १८७६ में बंगाल के तत्कालीन सुप्रसिद्ध नेता सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के द्वारा स्थापित की हुई राष्ट्रीय संस्था।

कांग्रेस की स्थापना के पूर्व ही भारत के शिक्षित व्यक्तियों के दिल में अंग्रेजी साम्राज्य के प्रति विरक्ति और भारत में शासन सुधार की भावनाएँ जाग्रत हो चुकी थीं। यद्यपि इन भावनाओं ने अभी अखिल भारतीय रूप धारण नहीं किया था पर देश में सार्वजनिक जीवन की बुनियाद डालने में इनसे बड़ा योग मिला।

सर सुरेन्द्र नाथ बनर्जी भी उन लोगों में से एक हैं जिन्होंने इस देश में सार्वजनिक जीवन की बुनियाद डाली। इसी प्रेरणा से प्रेरित हो सन् १८७६ में कलकत्ते में उन्होंने इण्डियन एसोसिएशन की स्थापना की। इस संस्था के पहले मंत्री आनन्द मोहन बसु बने।

जिन प्रान्तीय संगठनों की नींव पर कांग्रेस के अखिल भारतीय संगठन का जन्म हुआ उसमें सर सुरेन्द्र नाथ बनर्जी द्वारा स्थापित 'इण्डियन एसोसिएशन' भी एक थी।

इण्डियन रोड्स कांग्रेस

सड़कों के निर्माण और उनकी व्यवस्था तथा विज्ञान और कला की उन्नति के लिए स्थापित एक संस्था, जिसकी स्थापना दिसम्बर सन् १९३४ में हुई।

भारतवर्ष के समान विशाल देश में सड़कों की समस्या अपने-आप में एक विशेष महत्व रखती है क्योंकि इस विशाल देश में हजारों मील की सड़कें बनी हुई हैं और अभी बहुत सी बनने को बाकी हैं। इसी आवश्यकता को समझ कर इस संस्था की सन् १९३४ ई० में स्थापना की गयी।

सन् १९५८ में इस कांग्रेस के करीब १६ सौ सदस्य थे, जिनमें इंग्लैण्ड, आयरलैण्ड, पाकिस्तान, लंका, वर्मा, कैनेडा आदि कई देशों के निवासी सम्मिलित हैं।

इस कांग्रेस का प्रतिवर्ष एक अधिवेशन होता है। अभी तक के अधिवेशनों में इस कांग्रेस ने करीब ढाई सौ ऐसे निबन्धों पर विचार किया, जो भारतीय सड़कों की उन्नति से सम्बन्ध रखते हैं।

इस कांग्रेस का आफिस जामनगर हाउस, शाहजहाँ रोड, नई दिल्ली में स्थित है और इसका प्रबन्ध 'इंडियन रोड्स' कांग्रेस के एक सेक्रेटरी के हाथ में है। भारत-सरकार के सड़क-विकास सम्बन्धी इंजीनियर इसके स्थायी कोषाध्यक्ष हैं। इस कांग्रेस के द्वारा एक मासिक और एक त्रैमासिक प्रकाशन नियमित रूप से चलता है। इसके अतिरिक्त सड़कों से सम्बन्ध रखने वाले बुलेटिन्स भी समय-समय पर प्रकाशित किये जाते हैं।

इण्डोनेशिया

दक्षिणी पूर्वी एशिया में फिलिपाइन के दक्षिण और मलाया के दक्षिण पूर्व में जो बहुत से द्वीप पूर्व से पश्चिम तक फैले हुए हैं, उनमें से एक बड़े समूह को जो हॉलैण्ड के अधिकार में था, इण्डोनेशिया कहा जाता है। पहले ये द्वीप ईस्टइण्डीज के नाम से प्रसिद्ध थे। ईस्टइण्डीज के इन द्वीपों में सुमात्रा, जावा, बाली, सीएम्बावा, फ्लोरेस, तिमोर, बागकां, बोर्निया, सेलेबस, मलक्का, न्यूगायना और पापुआ प्रमुख है। इन द्वीपों में से तिमोर का बड़ा भाग पहले पुर्तगाल के अधीन था और उत्तरी बोर्नियो पर ब्रिटेन का प्रभाव था। शेष सब द्वीप हॉलैण्ड के अधिकार में थे जहाँ पर इस समय इण्डोनेशियन रिपब्लिक स्थापित है।

इण्डोनेशिया का क्षेत्रफल ५,७५,८९७ वर्गमील और जनसंख्या आठ करोड़ पचास लाख है। इण्डोनेशिया की राजधानी जकार्ता है। यहाँ के रहनेवालों में विशेष संख्या मुसलमानों की है अल्पसंख्या में बौद्ध, क्रिश्चियन और ब्राह्मण भी रहते हैं।

इण्डोनेशिया के प्रसिद्ध शहरों में जकार्ता, सुरवाया बाडूंग, (जहाँ पर एशिया अफ्रीका का सुप्रसिद्ध बाडुंग सम्मेलन हुआ था) सेमेरांग, सुराकार्ता इत्यादि उल्लेखनीय है।

प्राचीन इतिहास

इण्डोनेशिया का प्राचीन इतिहास भारत के इतिहास से बहुत कुछ सम्बद्ध है। जावा का प्राचीन नाम "यवद्वीप" था। ईसा की दूसरी सदी में यहाँ का राजा देव वर्मन था जिसने चीन सम्राट् के दरबार में अपना राजदूत भेजा था। ईसा की चौथी शताब्दी में यहाँ पर "श्री विजय" नामक भारतीय उपनिवेश की स्थापना हो चुकी थी। श्री विजय में कई प्रतापी राजा हुए जिन्होंने सम्पूर्ण इण्डोनेशिया और मलाया को जीतकर अपने आधीन कर लिया था। संस्कृत भाषा में लिखे हुए कई शिलालेख यहाँ पर उपलब्ध हैं। इसी समय बोर्नियो में भी भारतीय उपनिवेशों की स्थापना हो चुकी थी। बोर्नियो में भी ईसा की चौथी शताब्दी के चार शिलालेख मिले हैं जिनमें राजा अश्ववर्मन के पुत्र देववर्मन के द्वारा किये हुए दानों और यज्ञों का वर्णन है। इससे मालूम होता है कि इण्डोनेशिया के सब उपनिवेश उस समय विशुद्ध रूप में भारतीय थे।

इन उपनिवेशों में उस समय प्रधान रूप से पौराणिक हिन्दू धर्म का प्रचार था मगर कश्मीर के राजपुत्र गुण वर्मन ने यहाँ आकर बौद्ध धर्म का भी प्रचार किया। इस राजकुमार की वाणी में इतना प्रभाव था कि उससे प्रभावित हो इण्डोनेशिया के बहुत से द्वीपों ने बौद्धधर्म अंगीकार कर लिया। उसकी प्रभावशाली प्रतिभा को देखकर चीन के सम्राट् ने भी उसे अपने दरबार में आमंत्रित किया था।

इसके पश्चात् पन्द्रहवीं सदी में इन द्वीपों में इस्लाम का प्रवेश हुआ। उस समय यहाँ के पौराणिक और बौद्ध धर्मों का बहुत ह्रास हो चुका था। राजा लोग निर्बल हो चुके थे। इस्लाम का प्रवेश धूमधाम और नवीन ताजगी के साथ हुआ था इसलिए यहाँ के अधिकांश निवासियों ने इस नवीन धर्म को ग्रहण कर लिया। केवल बाली

द्वीप ही ऐसा रह गया जहाँ की जनता ने इस्लाम को ग्रहण नहीं किया।

पोर्तुगीजों का प्रवेश

इण्डोनेशिया के द्वीप अपनी मसालों की पैदावार के लिए बहुत प्रसिद्ध थे और यहाँ के मसालों की यूरोप के बाजार में बड़ी क़ीमत थी। इससे योरप के व्यापारी यहाँ से इन मसालों को ले जाकर यूरोप के बाजारों में वेचकर मनमाना धन कमाते थे।

मसाले के इसी व्यापार के लोभ से सोलहवीं सदी में सबसे पहले पोर्तुगीज लोगों ने यहाँ प्रवेश करना प्रारम्भ किया।

सन् १५११ में पोर्तुगीज लोगों ने मलक्का और मलक्का के जलडमरू मध्य पर कब्जा कर उसे एक दुर्ग के रूप में परिवर्तित कर दिया और उसे अपने सामुद्रिक व्यापार का प्रधान केन्द्र बनाया।

इसके कुछ वर्षों बाद हालैण्ड वालों ने इण्डोनेशिया में अपने पैर फैलाना शुरू किये। सन् १६४१ में इन लोगों ने पोर्तुगीजों से मलक्का को जीत लिया। इससे हालैण्ड वालों की शक्ति बहुत बढ़ गई। हालैण्ड वालों ने अंग्रेजों की नकल पर इण्डोनेशिया में ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना की।

१८ वीं सदी के अन्तिम भाग में फ्रांस की क्रांतिकारी सेनाओं ने हालैण्ड को जीत कर वहाँ एक नई क्रांतिकारी सरकार की स्थापना की। इण्डोनेशिया का शासन भी इसी सरकार के हाथ में आया। उसके बाद १८११ से १८१६ तक इन द्वीपों पर ब्रिटेन का प्रभुत्व रहा।

सन् १८१६ में वियेना की इतिहास प्रसिद्ध कांग्रेस में यह द्वीप हालैंड को वापस सिपुर्द किये गये। हालैंड का शासन मजबूती से कायम हो जाने के पश्चात् वहाँ के शासन ने इंडोनेशिया के लोगों का शोषण करना प्रारंभ किया। इसके लिए उन्होंने 'कल्चर सिस्टम' नामक कानून को प्रचलित किया, जिससे इंडोनेशियाई किसानों की दशा बहुत खराब हो गई।

कल्चर सिस्टम के अनुसार किसानों को मालगुजारी के रूप में सरकार के लिए अपनी जमीन के एक निश्चित हिस्से में ईख और कॉफी की फसल बोनी पड़ती थी और यह सारी फसल मालगुजारी के रूप में सरकार ले लेती थी। इसमें किसान का जो समय और परिश्रम लगता था उसका कोई मुआवजा उसे नहीं मिलता था।

१६ वीं सदी के अन्त तक यह कल्चर सिस्टम चलती रही, मगर इंडोनेशियाई लोगों के आन्दोलन तथा हालैंड के कुछ विचारक लोगों के प्रयत्न से इस कानून का वहाँ के शासन ने अन्त किया।

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् सारे संसार के जन-समाज में स्वतंत्रता की जिस दिव्य भावना का उदय हुआ, उससे इंडोनेशिया का जन-समाज भी बचा हुआ नहीं रहा। वहाँ भी स्वाधीनता के आन्दोलन प्रारम्भ हो गये।

इंडोनेशिया में उदय होती हुई स्वतंत्रता की भावनाओं को देखकर सन् १६१६ में हालैंड की सरकार ने 'फोल्क्स राड' नामक पार्लियामेंट की स्थापना की, मगर इसके बावजूद भी स्वतंत्रता का आन्दोलन बढ़ता रहा। हालैंड की सरकार भी समय-समय पर शासन-सुधार देती रही और सन् १६४१ तक यह स्थिति पैदा हो गई कि इंडोनेशियन सिविल सर्विस में ८४ प्रतिशत संख्या इंडोनेशियनों की हो गई, मगर इससे इंडोनेशिया की स्वतंत्रता की भावना शान्त नहीं हुई और जब जापानी सेनाओं ने इण्डोनेशिया पर आक्रमण करके उसके कुछ हिस्सों पर अधिकार किया तब इण्डोनेशिया ने जापान का साथ दिया। इसके फलस्वरूप जापान के सहयोग से वहाँ पर डॉ० सुकर्णो के नेतृत्व में इण्डोनेशियन रिपब्लिक की स्थापना कर दी गई। अन्त में सन् १६४५ में द्वितीय महायुद्ध के बीच जापान के आत्म-समर्पण करते ही डा० सुकार्णो के नेतृत्व में इंडोनेशियन रिपब्लिक ने देश पर अधिकार कर लिया और हॉलैण्ड के साथ उसका संघर्ष शुरू हो गया।

कुछ दिनों के कठिन संघर्ष के पश्चात् डच सरकार ने भी इस रिपब्लिक को मान्यता दे दी और उसका नाम नेदरलैंड-इंडोनेशियन यूनियन रखा। २१ दिसम्बर सन् १६४६ को यह घोषित कर दिया गया।

उसके पश्चात् डा० सुकार्णो के नेतृत्व में इंडोनेशिया ने अपना स्वतंत्र शासन चलाना प्रारम्भ किया, मगर उस समय इंडोनेशिया में कई शक्तिशाली तत्व ऐसे थे, जो इस

नई व्यवस्था को पसन्द नहीं करते थे और इसके खिलाफ विद्रोह करने की तैयारी करते थे। इनमें से दारुल-इस्लाम नामक आन्दोलन बहुत जोरदार रूप में उठा था, मगर डा० सुकार्णो ने जनता में अपनी लोकप्रियता के कारण बड़ी सफलता के साथ इन घरेलू झगड़ों को शान्त किया और वहाँ पर एक मजबूत सरकार की स्थापना की। एशिया और अफ्रीका के नवोदित स्वतंत्रता प्राप्त राष्ट्रों का संगठन करने के लिए डा० सुकार्णो ने काफी प्रयत्न किया और इंडोनेशिया में ही उस ऐतिहासिक एशियन अफ्रीकन देशों में 'बाडुंग-सम्मेलन' का अधिवेशन हुआ।

उसके बाद इण्डोनेशिया में धीरे-धीरे कम्युनिस्ट पार्टी का प्रभाव बढ़ने लगा और डा० सुकार्णो भी इसी पार्टी के प्रभाव में आते गये और जब भारत पर चीन ने वहशियाना हमला किया, उस समय इण्डोनेशिया का रुख कम्युनिस्ट प्रभावित होने की वजह से भारत की अपेक्षा चीन की ओर ही अधिक झुका रहा।

इण्डोनेशिया का विधान

इण्डोनेशिया रिपब्लिक के विधान का मसविदा संसार के दूसरे प्रजातंत्रीय विधानों से मिलता-जुलता है, जिसमें सर्वोच्च सत्ता गवर्नमेंट के हाथ में ही रखी गई है और यह गवर्नमेंट, रिप्रेजेंटेटिव एसेंबली और सिनेट के द्वारा निर्मित होती है।

इस रिपब्लिक का प्रेसिडेंट तमाम लड़ाकू सैनिक शक्ति का सर्वोच्च कमांडर होता है मगर वह भी पीपुल्स एसेंबली और सीनेट के सम्मिलित सेशन से अनुमति लिए बिना किसी भी देश से युद्ध की घोषणा नहीं कर सकता।

इसके मिनिस्टर गवर्नमेंट की सारी पालिसी को कार्य रूप में परिणित करने के लिए पार्लियामेंट के प्रति उत्तर-दायी होते हैं।

इस विधान के दूसरे अंश भी इसी प्रकार अन्य प्रजातंत्रीय विधानों से मिलते-जुलते हैं।

इण्डोनेशिया की परराष्ट्र-नीति हिन्दुस्तान की परराष्ट्र-नीति की तरह किसी भी ग्रूप में सिम्मलित होने की नहीं है। फिर भी उसका झुकाव कम्युनिस्ट राष्ट्रों की तरफ है। उसकी परराष्ट्र-नीति का लक्ष्य विश्व-शांति और युद्ध की विभीषिका से संसार की रक्षा करना है। एशिया और अफ्रीका का सहयोग उसकी परराष्ट्रनीति का प्रधान लक्ष्य है।

इण्डोनेशिया की मुख्य पैदावार में रबर, सिनकोना, शक्कर, चावल, मूँगफली, सोयाबीन, चाय, काफी, तम्बाकू, कोका और जैतून का तेल प्रमुख है। इसकी खनिज सम्पदा में मेंगेनीज, सोना, चाँदी, निकल, कोयला और चन्दन की लकड़ी अधिकतर पैदा होती है।

इंडोचाइना

दक्षिणी-पूर्वी एशिया के कोने पर बसा हुआ एक देश, जिसे वियेटनाम (Viet-Nam) भी कहते हैं। इसका क्षेत्रफल २ लाख ८६ हजार वर्गमील और जन-संख्या २ करोड़ ७० लाख है। इसकी राजधानी हनोई है।

इस समय इसका शासन उत्तरी वियतनाम और दक्षिणी वियतनाम के दो भागों में विभक्त है और दो सरकारों द्वारा चलाया जा रहा है। एक सरकार कम्युनिस्ट समर्थक और दूसरी पश्चिमीय शक्तियों की समर्थक है।

इण्डोचाइना राज्य के ५ मुख्य भाग हैं, जिनके नाम, तोनकीन, अनाम, कोचिन चाइना, कम्बोडिया और लाओस हैं।

इण्डोचाइना का प्राचीन इतिहास चीन और वहाँ के स्थानीय राजाओं के संघर्ष से भरा पड़ा है। यदि चीन का सम्राट बलवान होता था तो अपनी शक्ति के बल से इन राजाओं को अपने अधीन कर लेता था और यदि राजा लोग बलवान हो जाते थे तो वे सम्राट् को धता बताकर स्वतन्त्र हो जाते थे।

इण्डोनेशिया में भारतीय संस्कृति का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। इसका वर्णन अनाम और अंगकोर के वर्णन के साथ इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में किया गया है।

ईसा की दूसरी शताब्दी के करीब अनाम के दक्षिण भाग में चम्पा नामक भारतीय उपनिवेश राज्य की सत्ता थी। श्रीनगर और उसके उत्तराधिकारी चम्पा के राजा भारतीय थे। इन राजाओं में भद्र वर्मन का नाम बहुत प्रसिद्ध है।

चम्पा के पश्चिम में कम्बोडिया का राज्य था। ईसा की चौथी शताब्दी में कौंडिन्य नामक एक भारतीय ब्राह्मण ने वहाँ भारतीयों का एक राज्य स्थापित किया था। चीनी लोगों ने इसे फूनान के नाम से लिखा है। यहाँ के राजा रुद्र वर्मन और उसकी माता कुल प्रभावती के द्वारा खुदाये हुए शिलालेख यहाँ पर पाये जाते हैं।

सातवीं सदी में कम्बुज देश का राजा ईशान वर्मा था। इसने सन्यासियों के निवास करने के लिए कम्बुज में बहुत से आश्रम बनवाए।

नौवीं सदी में कम्बुज का राजा यशो वर्मा था। उसने अपने नाम से यशोधरपुर नामक नगर बसाया था। बारहवीं सदी के पूर्वार्ध में कम्बुज का राजा सूर्य वर्मा द्वितीय था। उसने एक विशाल विष्णु-मन्दिर का निर्माण कराया था।

बौद्ध धर्म के प्रचार से यहाँ के पौराणिक धर्म को बड़ा धक्का लगा और जनता में पौराणिक धर्म की जगह बौद्ध धर्म को मान्यता मिल गई।

यूरोपियनों का प्रवेश

इण्डोचायना भी दक्षिण-पूर्वी एशिया के दूसरे देशों की तरह यूरोपीय जातियों के प्रभाव में आया। सबसे पहले फ्रेंच पादरियों ने इस क्षेत्र में आकर ईसाई-धर्म का प्रचार करना प्रारम्भ किया और धीरे-धीरे वे राजनीति के अन्दर भी अपनी टांग अड़ाने लगे।

इस प्रकार धीरे-धीरे बढ़ते-बढ़ते सन् १८६२ में इंडोचाइना में फ्रांस के प्रभुत्व का सूत्रपात हुआ। १८८३ में अनाम और १८९३ में लाओस प्रदेश पर भी फ्रांस ने अपना अधिकार स्थापित कर लिया। इस प्रकार समस्त इण्डोचायना पर फ्रांस का अधिकार हो गया।

१९१४–१८ के प्रथम महायुद्ध के बाद संसार में बहने वाली स्वतन्त्रता की लहर इण्डोचाइना में भी पहुँची और वहाँ स्वाधीनता के आन्दोलन प्रारम्भ हुए।

दूसरा महायुद्ध दक्षिण-पूर्वी एशियायी देशों के लिए स्वतंत्रता का शुभ सन्देश लेकर आया था। इण्डोचाइना, मलाया, इण्डोनेशिया, बर्मा आदि कई देश जो एक लम्बे समय से पाश्चात्य-साम्राज्यवाद के शिकार हो रहे थे, अब जापान की विनयों के कारण, उन्हें स्वतंत्र होने का अवसर प्राप्त हुआ। इन देशों में कुछ समय के लिए जापान ने अपना सैनिक शासन स्थापित किया। उसके बाद वहाँ ऐसी राष्ट्रीय सरकारें कायम हुई जो पाश्चात्य-देशों के विरुद्ध जापान के साथ सहयोग करने के लिए तैयार थीं।

जब जापान का एकाएक पतन हो गया और इण्डोचायना पुनः पाश्चात्य-सेनाओं के अधिकार में आ गया, उस समय इन देशों के राष्ट्रवादी तत्वों ने पश्चिमी साम्राज्यवाद का मुकाबिला करने के लिए, असाधारण तत्परता प्रदर्शित की। तत्काल इन लोगों ने इण्डो-चाइना की राष्ट्रीय स्वतंत्रता की घोषणा कर दी और 'विएटमीन्ह' के नाम से अपनी स्वतंत्र सरकार का संगठन कर लिया। इस सरकार का नेता हो-ची-मिन्ह था जो कट्टर राष्ट्रवादी होने के साथ-साथ कम्युनिस्ट भी था।

हो-ची-मिन्ह के नेतृत्व में 'विएट नाम रिपब्लिक' की स्थापना होते ही २५ अगस्त १९४५ को अनाम के सम्राट् बाओदायी ने सम्राट्-पद का परित्याग कर दिया और २ सितम्बर १९४५ को विएट-नाम रिपब्लिक का शासन सम्पूर्ण अनाम पर नियमित रूप से कायम हो गया।

हनोई-समझौता

६ मार्च १९४६ को फ्रांस की सरकार ने विएटनाम की सरकार के साथ 'हनोई समझौते' के नाम से एक समझौता किया, जिसमें फ्रांस सरकार ने यह स्वीकार किया कि विएटनाम रिपब्लिक की स्थिति एक स्वतंत्र राज्य की है और उसे अपनी पृथक् सरकार, पृथक् पार्लियामेंट और पृथक् सेना रखने का अधिकार है। लेकिन विएटनाम रिपब्लिक 'इण्डो-चाइनीज फेडरेशन' के अन्तर्गत रहेगी और इण्डो-चाइनीज फेडरेशन 'फ्रेंच यूनियन' का अंग बन कर रहेगी।

मगर यह समझौता कुछ मतभेदों के कारण अधिक समय तक न चल सका और दिसम्बर १९४६ में विएटनाम रिपब्लिक के साथ फ्रांस की लड़ाई चालू हो गई। खुले मैदान में फ्रांस की सेनाओं के साथ लड़ना, विएटनामी सेनाओं के लिए सम्भव नहीं था, इसलिये हो-ची-मिन्ह ने 'गुरिल्ला-युद्ध नीति' का आश्रय लेकर फ्रेञ्च-सेनाओं की स्थिति को बड़ा कठिन बना दिया।

मार्च १९४९ में फ्रांस के राष्ट्रपति श्री ऑरयोल ने एक सन्धि करके इण्डो-चाइना का शासन अनाम के भू० पू० राजा बाओदायी को सुपुर्द कर दिया और एक लाख से भी अधिक सैनिक बाओदायी की मदद के लिए इण्डो-चाइना भेज दिये। परिणाम यह हुआ कि हो-ची-मिन्ह और बाओदायी की सेनाओं में बाकायदा लड़ाई चालू हो गई। रूस, कम्युनिस्ट चीन आदि कम्युनिस्ट देशों ने हो-ची-मिन्ह की सरकार को इण्डो-चाइना की वैध सरकार के रूप में स्वीकृत किया और अमेरिका, फ्रांस, ब्रिटेन आदि देशों ने बाओदायी की सरकार को मान्यता दी।

इस प्रकार देश के उत्तरी विएट नाम और दक्षिणी विएट नाम के नाम से दो विभाग हो गये और दोनों में दो सरकारें कायम हो गईं। उत्तरी विएट नाम कम्युनिस्ट समर्थित सरकार के और दक्षिणी विएट नाम पश्चिम समर्थित सरकार के अन्दर आ गया। इन दोनों सरकारों का संघर्ष अभी तक बड़े तीव्र रूप में चल रहा है और कभी-कभी तो यह संघर्ष इतना तीव्र हो जाता है कि इससे विश्व-युद्ध छिड़ने का भय पैदा हो जाता है।

इण्डिया हेरल्ड

अठारहवीं सदी के अन्त में कलकत्ते से निकलने वाला एक अंग्रेजी समाचार-पत्र।

इण्डिया हेरल्ड सन् १७९५ की दो अप्रैल को कलकत्ते से निकलना प्रारम्भ हुआ। इसका सम्पादक हम्फीज नामक एक अंग्रेजी पत्रकार था। समाचार पत्रों को प्रारम्भ करने के लिए उस समय सरकार से लायसेन्स लेना पड़ता था। हम्फीज ने भी इजाजत के लिए सरकार को आवेदन पत्र दिया, पर जब नहीं मिला तो बिना इजाजत के ही उसने पत्र निकालना प्रारम्भ कर दिया। इस पर सरकार बहुत क्रुद्ध हुई और उसने उस पर शासन और प्रिन्स ऑफ वेल्स के सम्बन्ध में अपमानजनक लेख प्रकाशित करने का आरोप लगाकर जहाज पर चढ़ा कर इंग्लैण्ड भेज दिया। अंग्रेज सम्पादकों को ब्रिटिश सरकार उस समय यही सजा देती थी।

इण्डिया गजट

नवम्बर सन् १७८० से प्रकाशित होने वाला कलकत्ते का एक अंग्रेजी समाचार पत्र जिसे टी० बी० स्कॉट एण्ड कम्पनी प्रकाशित करती थी और जो सप्ताह में दो या तीन बार निकलता था। बाद में इस पत्र का संचालनभार द्वारका नाथ ठाकुर ने खरीद लिया।

इंग्लिश मैन

लार्ड हेस्टिंग्स के समय में जार्ज प्रिचर्ड के सम्पादन में "जॉनबुल" नामक एक दैनिक प्रकाशित होता था जो हिन्दुस्तानियों के प्रति अंग्रेज सरकार की उदार नीति की व्यंग पूर्ण भाषा में आलोचना करता था। आगे जाकर इसी पत्र का नाम बदलकर इंग्लिश मैन हो गया और इसके सम्पादक ए० जे० फ्रेजर क्लेयर बने। क्लेयर के पश्चात् सर रोपर लेथ ब्रीज इंग्लिश मेन के सम्पादक बने। ये विशुद्ध साम्राज्यवादी भावना के व्यक्ति थे। उस समय ब्रिटिश हितों और बंगाल चेम्बर ऑफ कॉमर्स का यह पत्र पूरा समर्थक था, मगर ज्यों-ज्यों देश में राजनैतिक जागृति होने लगी त्यों-त्यों इस पत्र की स्थिति बिगड़ने लगी और सन् १९३० के लगभग कुछ पहले स्टेट्स मैन ने इसे खरीद कर अपने में मिला लिया।

इण्डियन मिरर

कलकत्ते से बाबू नरेन्द्र नाथ सेन के सम्पादन में निकलने वाला अंग्रेजी दैनिक-पत्र।

इण्डियन मिरर ब्राह्म समाज और समाज सुधार के विचारों का प्रबल पृष्ठ पोषक था। सन् १८६५ के आस-पास इसका प्रकाशन प्रारम्भ हुआ था। ब्रह्म समाज के नेता बाबू केशवचन्द सेन का पूर्ण समर्थन इसे प्राप्त था इसी समय सुरेन्द्र नाथ बनर्जी का बंगाली भी निकलता था जो हिन्दू भावनाओं का समर्थक था। इन दोनों पत्रों के बीच में विचारों का संघर्ष होता रहता था।

इण्डियन डेली न्यूज

बैरिस्टर ग्राहम नामक अंग्रेज पत्रकार के सम्पादन में कलकत्ते से निकलने वाला समाचार पत्र, जिसे बाद में राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए देशबन्धु दास ने खरीद कर "फार्वर्ड" के नाम से निकाला।

इण्डिपेण्डेण्ट

इलाहाबाद से पं० मोतीलाल नेहरू के संरक्षण में निकलने वाला राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रवर्त्तक प्रसिद्ध अंग्रेजी पत्र।

इलाहाबाद में उस समय सी० वाई० चिन्तामणी का लीडर नामक पत्र गवर्नमेंट से सहयोग की नरम नीति का समर्थक था, पं० मोतीलाल नेहरू को उसकी नरम नीति पसन्द नहीं थी इसलिए उन्होंने उसके मुकाबले में इण्डिपेण्डेण्ट पत्र निकाला। भारत में सत्याग्रह आन्दोलन के समय में इस पत्र ने बहुत कार्य किया। इसके पहले सम्पादक बाबू विपिनचन्द्र पाल, दूसरे सैय्यद हुसैन और तीसरे तथा अन्तिम रंगा अय्यर थे।

इताकागी

जापान के जिऊ-तो नाम के प्रथम राजनैतिक दल का संस्थापक, जिसका जन्म सन् १८३७ में और मृत्यु १९१९ में हुई।

इताकागी द्वारा स्थापित 'जिऊ-तो' नामक राजनैतिक संगठन ने जापान में संसदीय शासन के प्रचलन में बहुत परिश्रम किया। इताकागी ने अपना सारा जीवन इस दल को सुसंगठित करने में लगा दिया। इन्होंने जनता को प्रजातन्त्र की शिक्षा देने के लिए स्कूलों की स्थापना की। ये स्कूल जनता में बड़े लोकप्रिय हुए।

इत्सिंग

चीन का सुप्रसिद्ध यात्री जिसने सन् ६७१ से ६९५ तक पचीस वर्ष में ३० देशों की यात्रा की।

हुएन-सांग अथवा युआन-चांग की भारत-यात्रा के पश्चात् सन् ६७३ के करीब इत्सिंग ने भारत की यात्रा की। उसकी यात्रा आते और जाते दोनों ही समुद्री मार्गों से हुई। इत्सिंग केवल तेरह वर्ष की अवस्था में ही बौद्ध-भिक्षु-संघ में दीक्षा ग्रहण करने प्रविष्ट हो गया था।

इत्सिंग ने 'नालन्दा-विश्व-विद्यालय' में दस वर्ष तक रह कर बौद्ध-धर्म का गम्भीर अध्ययन किया। इसके पश्चात् चार वर्ष तक श्री विजय में रहकर उसने संस्कृत-भाषा का अध्ययन किया। सुमात्रा, जावा, मलाया इत्यादि और भी कुछ देशों की उसने यात्रा की। भारतवर्ष से यह करीब ४०० ग्रन्थों को अपने साथ चीन ले गया। इनमें से ५६ ग्रन्थों का उसने स्वयं चीनी-भाषा में अनुवाद किया। सन् ६९५ में वह चीन वापस लौटा जहाँ पर वहाँ के सम्राट् और नागरिकों ने उसका भव्य सत्कार किया।

इत्सिंग का यात्रा-विवरण ह्वेनसांग के यात्रा-विवरण की तरह वैज्ञानिक लेखन-शैली और विविधताओं से पूर्ण तो नहीं है, पर उसमें मानवीयतापूर्ण भावुकता का आधिक्य है।

इत्सिंग ने लिखा है कि कोरिया के भी कई भिक्षुओं ने मध्यएशिया तथा समुद्री मार्गों से भारत-यात्रा का प्रयत्न किया था, मगर मार्ग की कठिनाइयों के कारण वे या तो मार्ग में ही या भारत पहुँच कर मर गये और अपने देश को वापस नहीं पहुँच सके।

इण्डियन एक्सप्रेस

भारतवर्ष का एक सुप्रसिद्ध अंग्रेजी दैनिक पत्र जो नई दिल्ली, बम्बई, मदुराई, विजयवाड़ा और चित्तूर से एक साथ प्रकाशित होता है और जिसकी सम्मिलित ग्राहक संख्या भारतवर्ष के सभी दैनिक पत्रों से अधिक है ऐसा पत्र के लेख से मालूम होता है।

मद्रास के श्री रामनाथ गोएनका जो मूलतः राजस्थान के निवासी हैं भारतीय पत्रकार कला में व्यवसायिक दृष्टि से चरम सफलता प्राप्त करने वाले प्रथम व्यक्ति हैं। पत्रकार क्षेत्र में प्रवेश कर इन्होंने अनेक पत्र निकाले और इन पत्रों की क्या सम्पादन कला की दृष्टि से क्या प्रबन्ध की दृष्टि से और क्या विज्ञापन की दृष्टि से ऐसी व्यवस्था की जिससे बहुत शीघ्र इस क्षेत्र में इन पत्रों ने अपना स्थान बना लिया और थोड़े ही समय में श्री गोएनका ने इन पत्रों के द्वारा लाखों रुपये उपार्जन कर लिए। देहली

में मथुरा रोड पर लाखों रुपये की लागत से बनी "एक्सप्रेस बिल्डिंग" देहली की दर्शनीय इमारतों में से एक है।

इण्डियन एक्सप्रेस भी श्री गोएनका द्वारा संचालित एक अंग्रेजी दैनिक है जो इस समय नई दिल्ली, बम्बई, मदुराई, विजयवाड़ा और चित्तूर इन पाँच स्थानों से एक साथ प्रकाशित होता है। इसके एडिटर इन-चीफ श्री फ्रेन्क मॉरीस (Frank Moraes) नामक अंग्रेज हैं। भारतवर्ष पत्रकारिता के क्षेत्र में "इण्डियन एक्सप्रेस" अपना प्रधान स्थान रखता है।

इतिहास

मानव समाज में स्थापित राजसंस्था, समाज संस्था, धर्मसंस्था तथा अन्य संस्थाओं के उत्थान, पतन तथा क्रमागत विकास का वैज्ञानिक रूप से विवेचन करने वाला एक महान् शास्त्र।

इतिहास मनुष्य के भूतकाल का मंथन करके उसके प्रकाश में मानव समाज को वर्तमान और भविष्य का निर्माण करने की प्रेरणा देता है। वह बतलाता है कि मनुष्य की सुख सुविधा और कल्याण के लिए निर्मित की गई राजसंस्था, धर्मसंस्था तथा समाज संस्था ने अब तक क्या-क्या रूप धारण किये हैं, उन रूपों से मानव-समाज को अब तक क्या-क्या सुख और दुःख उठाना पड़ा है, उनमें अभी तक क्या क्या त्रुटियाँ रही हैं और उन त्रुटियों का निवारण करके उनके वर्तमान और भावी रूप का निर्माण किस प्रकार किया जा सकता है। जिससे मनुष्य जाति को भूत काल में उठाये हुए दुःख आगे न उठाना पड़े।

इतिहास वह त्रिवेणी है जिसमें राजनीति शास्त्र, समाज शास्त्र और धर्मशास्त्र की महानदियाँ अलग-अलग दिशाओं से बहकर आती हुई एकाकार हो जाती हैं।

राजसंस्था

इतिहास भूतकाल का शव परीक्षण (Post Martem करके हमें बतलाता है कि राजसंस्था, कबायली तंत्र, सैनिक तंत्र आततायी तंत्र (Tyranny) निरंकुश राजतंत्र, प्रजापालक राजतंत्र और तानाशाही तंत्रों के बीच में से गुजरती हुई किस प्रकार इस समय प्रजातंत्र (Democracy) के समीप पहुँची है। इन तरह-तरह के तंत्रों में से गुजरते हुए उसने क्या क्या सुख-दुःख उठाये हैं ? इन तंत्रों में उसने रामराज्य, अशोक महान्, आगस्टस सीजर, शार्लमेन, चन्द्रगुप्त द्वितीय, अकबर महान् इत्यादि महान् शासकों के शांतिपूर्ण युग भी देखे हैं और चंगेज खाँ, हलाकू, तैमूरलंग, महम्मद गजनवी इत्यादि आततायियों के भयंकर आक्रमणों से भयंकर त्रास भी पाया है और इन सब सुख दुःखों को झेलते हुए आज उसने प्रजातंत्र के युग में प्रवेश किया है। इतिहास हमें यह भी बतलाता है कि किस प्रकार क्रामवेल के द्वारा स्थापित प्रजातंत्र सैनिकतंत्र में बदल गया और इंग्लैण्ड को फिर से राजा को स्थापित करने के लिए बाध्य होना पड़ा तथा किस प्रकार द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् कई देशों में नवजात प्रजातंत्र नष्ट होकर सैनिकतंत्र की स्थापना हुई। इतिहास हमें यह विचार करने का अवसर देता है कि यद्यपि राजसंस्था की बहुत-सी कमजोरियों का हल प्रजातंत्र की इस योजना में मानव समाज के बौद्धिक विभाग ने करने का प्रयत्न किया है फिर भी अनन्तकाल से चलने वाला प्रश्नवाचक चिह्न (?) क्या इसमें से निकल गया है ? क्या प्रजातंत्र की अपनी समस्याएँ नहीं हैं और यदि उन समस्याओं का हल करने में मनुष्य असफल रहा तो क्या फिर उसे उसी अंधकार युग में प्रवेश करना पड़ेगा ?

इतिहास बतलाता है कि नवीन युग में मनुष्य के बौद्धिक विकास से विज्ञान के क्षेत्र में अभूतपूर्व उन्नति हुई है और उसे प्रकृति के खजाने की अनन्त शक्ति प्राप्त हुई है यह सच है, मगर साथ ही वह यह भी बतलाता है कि अहंकारी मानव को जब-जब अनियन्त्रित शक्ति मिली है तब-तब उसने उसका उपयोग सृजन की अपेक्षा विनाश की ओर अधिक किया है। वह पूछता है कि क्या कोई मनुष्य स्वभाव में ऐसा परिवर्तन होने की गारण्टी दे सकता है जिससे यह विश्वास किया जा सके कि ऐसी घटनाएँ भविष्य में नहीं होंगी। अगर मनुष्य की अहङ्कार प्रवृत्ति ने और विश्व सत्ता की दुर्दमनीय लालसा ने संघर्ष

की कोई चिनगारी पैदा कर दी तो क्या हालत होगी। वह यह भी प्रश्न करता है कि विज्ञान की इन शक्तियों से बेजानकार मानव का नैतिक धरातल ऊँचा था या आज के इस शक्ति सम्पन्न मानव का नैतिक धरातल ऊँचा है।

धर्मसंस्था

इतिहास बतलाता है कि बहुदेववाद, अनेक दैववाद, एकेश्वरवाद तथा आर्य, क्रिश्चियन, बौद्ध और इसलाम धर्मों के बीच से निकलकर आनेवाली धर्मसंस्था ने अब तक मानव जाति का क्या उपकार किया है और उसे क्या-क्या दुःख पहुँचाये हैं। वह हमारे सामने मध्ययुग में क्रिश्चियानिटी के समान महान् धर्म के प्रतिनिधियों के द्वारा स्थापित इन्क्वीजीशन अदालत का मर्मवेधी चित्र पेश करता है जिसकी वेदी पर धर्म सुधार के बहाने लाखों आदमियों के निर्दयतापूर्वक प्राण लिये गये। वह महम्मूद गजनवी और तैमूरलंग का उदाहरण पेश करता है, जिन्होंने धर्म प्रचार के नाम पर तथा कुफ्र का नाश करने के नाम पर अपने आक्रमणों से अनेकों बार कई देशों की भयङ्कर लूट की और लाखों आदमियों का नर-संहार किया।

मगर इसके साथ ही इतिहास धर्मसंस्था के चित्र का दूसरा पहलू भी हमारे सामने पेश करता है जिसमे विश्व की महान् प्रतिभाओं ने जंगलों में बैठकर इसी धर्म संस्था की छाँह में जीवन और संसार की महान समस्याओं का समाधान ढूँढा था। बाल्मीकि और व्यास, राम और कृष्ण, महावीर और बुद्ध, कन्फ्यूशस और जरथोस्ट, ईसा और सुकरात, कपिल और कणाद इत्यादि के सैकड़ों उदाहरण वह गिनाता है।

इतिहास यह भी बतलाता है कि वर्तमान युग क्रमशः धर्म संस्था का बहिष्कार करता हुआ धर्म निरपेक्ष और धर्म-रहित समाज की स्थापना करने का प्रयास कर रहा है मगर वह प्रश्न करता है कि "धर्म-रहित" समाज क्या एकदम निरापद है ? क्या धर्मसंस्था और उसके नैतिक धरातल के बिना मनुष्य का सामाजिक जीवन सुरक्षित रह सकेगा ?

समाज-संस्था

इतिहास कहता है कि मनुष्य की समाज-संस्था वर्णाश्रम, जाति-पाँति, छूआ-छूत, दासप्रथा, कुलीनवाद और पूँजीवाद की घाटियों के बीच में से निकलती हुई चली आ रही है। निम्न वर्ग के लोगों ने इस संस्था की चक्की में पिसकर अछूत और दास प्रथा के रूप में भयंकर अत्याचारों को सहन किया है। इतिहास ऐसे अत्याचारों के दिल दहलाने वाले उदाहरण पेश करता है। साथ ही वह यह भी बतलाता है कि इसी व्यवस्था में संसार को अन्दर ऐसे युग भी आये हैं जिसमें सारी प्रजा ने बड़ी शान्ति के साथ जीवन के सुखों का उपभोग किया है।

इस अव्यवस्था का अन्त करने के लिए आज का मानव उन पुरानी सभी व्यवस्थाओं को नष्ट कर समाजवाद और साम्यवाद की नवीन पद्धतियों से अपने समाज का संगठन करना चाहता है। इतिहास यह पूछ सकता है कि क्या इन नवीन पद्धतियों की कोई समस्याएँ नहीं हैं, मनुष्य के अन्दर प्रकृति-प्रदन्त रहनेवाली बौद्धिक और शारीरिक विषमता पर क्या यह समानता की प्रवृत्ति विजय पा सकेगी ?

इत्यादि, जीवन के अन्तर्गत आनेवाली हर समस्या पर भूतकाल के प्रकाश में वह विवेचन करता है। इसलिए मानव जीवन की सफलता और शान्ति के लिए इतिहास शास्त्र का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

मानव-समाज में इतिहास शास्त्र का विकास अनेक सोपानों में हुआ है। प्रारम्भ में भिन्न-भिन्न अनेक देशों में वहाँ पर होने वाले बीर लोगों की स्मृति में बीर-गाथा के रूप में यह तैयार किया जाता था जिसमें कालक्रम का कोई ध्यान नहीं रक्खा जाता था। उसके बाद यह कहानियों के रूप में और उसके साथ ही पुराणों के रूप में तैयार होने लगा।

इन पुराणों में मानव समाज की तत्कालीन स्थिति, राजाओं की वंशपरम्परा के सिल-सिलेवार नाम, उनके राजकार्यों का वर्णन, उस समय की समाज नीति और धर्म संस्था का वर्णन और उनके स्मारक इत्यादि अनेक बातें व्यवस्थित रूप में मिलती हैं। मगर चूँकि, इन ग्रन्थों में घटनाओं के काल क्रम का कोई ज्ञान नहीं है दूसरे इनकी विवेचनाओं में मूल वस्तु के साथ अलंकारों को अत्यधिक रूप से जोड़ दिया गया है। इसलिए आजकल के

इतिहास की परिभाषा में उनकी गणना नहीं की जाती। आधुनिक इतिहास की परिभाषा में कालक्रम का ज्ञान होना उसकी स्थिति का अनिवार्य अङ्ग माना जाता है।

अभी तक व्यवस्थित रूप से संसार में इतिहास लिखने की प्रणाली को जारी करनेवाला यूनान का प्रसिद्ध लेखक "हेरोडोटस" माना जाता है। इसको The father of history (इतिहास का पिता) कहा जाता है। इसका समय ईसा से ४८५ वर्ष पूर्व से लेकर ४२५ वर्ष ई० पूर्व तक है। हैरोडोटस ने दूर-दूर के देशों की यात्रा की और उन देशों से ऐतिहासिक सामग्री को संकलन कर उसे इतिहास के रूप में वर्णन किया है, यद्यपि उसके वर्णन में भी सुनी सुनाई बहुत सी कल्पनामूलक कहानियों का समावेश है। थ्यूसीडाइडीज और जेनोफेन भी उस युग के प्रसिद्ध इतिहासकार थे। यूनानी भाषा में इतिहास को हिस्तरी कहते हैं और उसी से अंग्रेजी का हिस्ट्री शब्द बना है।

कुछ लोगों का ऐसा भी अनुमान है कि इतिहास लिखने की प्रथा चीन में इससे भी पहले प्रारम्भ हो गई थी और हान साम्राज्य के समय में या कन्फ्यूशस युग में तो इसका काफी विकास हो गया था। चीनी भाषा में इतिहास को शू-चिंग कहते हैं। प्राचीन काल में इस विषय का सबसे प्रतिभाशाली इतिहासकार सौ-मा-चेन हुआ जिसने शीच-ही नामक विशद ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखा जो १३० अध्यायों में विभक्त चीन का इतिहास है। इस लेखक का समय ईस्वी सन् पूर्व १४५ से ६७ ई० पू० तक है।

भारतवर्ष में वैसे तो इतिहास लिखने की प्रथा बहुत समय से है मगर वैज्ञानिक ढंग से काल परम्परा के साथ इतिहास लिखने वाला पहला इतिहासकार कल्हण कवि माना जाता है। जिसने राजतरंगिणी नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की जिसमें काश्मीर के इतिहास का विधिवत् उल्लेख किया गया है।

इतिहास लिखने की परम्पराओं में भी कई परिवर्तन होते रहे हैं। पहले कथा कहानी की ही इसमें प्रधानता रहती थी, उसके बाद सन् संवत के साथ राज्यों में होने वाली घटनाओं और परिवर्तनों का उल्लेख होता था। पर जब संसार में पुरातत्व की खुदाइयाँ होकर नई-नई चीजें, शिलालेख, खण्डहर, पुरानी शिल्पकला और अन्य कई प्रकार की चीजें प्राप्त होने लगीं तो इस शास्त्र का क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया और राज परिवर्तन के साथ-साथ समाज-संस्था, धर्म-संस्था, प्राचीन संस्कृति, साहित्य, कला इत्यादि सभी इतिहास के क्षेत्र में आने लगे और आज के युग में तो इस शास्त्र का क्षेत्र बहुत ही व्यापक हो गया है।

संसार में एक देश से दूसरे देश की यात्रा करने वाले यात्रियों के यात्रा वर्णनों से भी इतिहास के विकास में बड़ी सहायता मिलती है।

इतिहास का क्षेत्र इतना व्यापक हो जाने पर भी प्राचीन घटनाओं या सभ्यताओं के बारे में कोई निर्भ्रान्त बात कहने में वह पूर्णतः समर्थ नहीं है। उस काल के सम्बन्ध में लगाये हुए बहुत से अनुमान थोड़े ही समय में गलत साबित हो जाते हैं जबकि पुरातत्व की खुदाई कोई नवीन वस्तु लाकर उसके सामने पेश करती है। मोहन-जोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई के पश्चात् बहुत से ऐतिहासिक विश्वासों में एकदम परिवर्तन हो गया।

इतिहास की मर्यादा यद्यपि देश और काल के ऊपर है और इतिहासकार का धर्म यही है कि वह देशकाल के ऊपर रहकर घटनाओं की समीक्षा करे, मगर अधिकांश इतिहासकार देश और काल के प्रभाव से बच नहीं पाते और जिस देश में व जिस समाज में वे रहते हैं उसके प्रति पक्षपात की गन्ध उनकी विवेचनाओं में आ ही जाती हैं।

इस प्रकार मानवीय साहित्य में इतिहास शास्त्र मनुष्य की ज्ञानवृद्धि के साथ क्रमशः अपना क्षेत्र विस्तृत करता हुआ मानव जाति के लिए दिशा सूचक यंत्र का काम कर रहा है।

इतो

जापान का सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ प्रिन्स इतो, जिसने जापान का प्रथम संविधान तैय्यार किया और बाद में सन् १८६२ में जापान का प्रधानमंत्री बना। जापान में शोगुन सरकार को खतम कर सम्राट् की सरकार की पुनः स्थापना में इस राजनीतिज्ञ का प्रधान हाथ था।

जिस समय जापान में प्रिन्स इतो का आविर्भाव हुआ, उस समय जापान नई सभ्यता के प्रकाश से बिलकुल वंचित था। वहाँ के निवासियों को विदेश जाने की मनाही थी और जो विदेश जाता था, उसे वापिस लौटने पर प्राण-दण्ड दिया जाता था। जापान की युद्ध-कला और सभ्यता इस कूप-मण्डूकता की वजह से बहुत पिछड़ गई थी।

नया शासन-विधान

प्रिन्स इतो जापान के नवीन शासन विधान का प्रधान निर्माता है। सन् १८८२ में जापान-सम्राट् ने पश्चिमीय देशों के शासन-विधानों का और वहाँ की युद्ध-कला का अध्ययन करने के लिए उसे यूरोप भेजा। वहाँ जाकर उसने सब प्रकार के विधानों का अध्ययन किया। फ्रान्स और अमेरिका के रिपब्लिक विधानों ने उसके चित्त को प्रभावित नहीं किया। इंगलैण्ड का मर्यादित राजतंत्र भी उसे नहीं जँचा। वह राजवंश का अधिकार-प्रिय व्यक्ति था। उसने प्रशिया के विधान को बड़ा पसन्द किया जो जापान में सुगमता से लागू किया जा सकता था।

सन् १८८३ में वह जापान लौटकर आया और उसकी अध्यक्षता में सरकार ने संविधान निर्माण का एक अलग विभाग स्थापित कर दिया। जहाँ पर प्रिन्स इतो ने जापान का नया संविधान तैय्यार किया, जो सन् १८८९ से जापान में लागू कर दिया गया। इस संविधान की रचना में तीन तत्व प्रधान रक्खे गये—(१) सम्राट् (२) लोकसभा (३) राज्यसभा।

इस विधान में लॉर्ड-सभा और लोक-सभा की व्यवस्था में तो प्रजातंत्रीय विधानों से विशेष अन्तर नहीं था, पर सम्राट् के अधिकार इसमें अपरिमित रक्खे गये थे, उसकी स्थिति अत्यन्त पवित्र अनुल्लंघनीय मानी गई थी। युद्ध की घोषणा, संधिविग्रह के सम्पूर्ण अधिकार, मंत्रि-मण्डल के निर्वाचन की सर्वोच्च-सत्ता उसे प्राप्त थी और इस विधान में मंत्री लोग पार्लियामेंट के प्रति नहीं प्रत्युत सम्राट् के प्रति उत्तरदायी माने गये थे।

सन् १८९४ में चीन-जापान युद्ध प्रारम्भ हुआ, तब जापान का प्रधानमंत्री प्रिन्स इतो था। इतो ने इस बात का प्रयत्न किया कि इस संकट-काल के समय में जापान के सब राजनैतिक दल एक हो जायँ और उसने सब दलों का आह्वान किया जापान के सब दलों ने देशभक्ति की प्रेरणा से बस आपसी मतभेदों को भूलकर इतो का दिल से साथ दिया।

पर युद्ध समाप्त होते ही पार्लमेंट में 'इतो' का विरोध बहुत प्रबल हो गया और उसे प्रधानमंत्री पद से त्यागपत्र देना पड़ा। सन् १८९७ में उसे फिर प्रधानमंत्री बनाया गया, मगर पार्लमेंट में केन्सेइकाई (संविधानवादी) दल का बहुमत होने से उसे फिर इस्तीफा देना पड़ा। पर उसके बाद दूसरा मंत्रि-मण्डल भी शासन में सफल नहीं हुआ और सन् १९०० में इतो ने फिर अपने मंत्रि-मण्डल का निर्माण किया। इस बार इतो ने पार्लमेंट के बहुसंख्यक सदस्यों का सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न किया और "सैयुकाई" के नाम से एक नवीन दल की स्थापना की। प्रिन्स इतो के वैयक्तिक प्रभाव के कारण 'केन्सेइकाई दल' के लोग तथा दूसरे भी अनेक सदस्य सैयुकाई दल में शामिल हो गये। मगर इतो यह चाहता था कि मंत्रिमण्डल अपनी स्थिति के लिए पार्लमेंट पर निर्भर न रहे। उसने घोषणा की कि संविधान के अनुसार मंत्रियों को नियुक्त करने का अधिकार सम्राट् के हाथों में है और मंत्री लोग तब तक अपने पद पर रह सकते हैं, जब तक कि सम्राट् उन्हें वहाँ से न हटा दें।

इतो की इस घोषणा से प्रजातंत्रवादी पार्टियाँ उससे असन्तुष्ट हो गईं और १९०१ में उसे फिर त्यागपत्र देना पड़ा।

सन् १९०५ में प्रिन्स इतो कोरिया का रेजीडेण्ट जनरल बनाया गया और सन् १९०९ में कोरिया के किसी गुप्त संगठन के द्वारा उसकी हत्या कर दी गई।

इज़ूमो फूदोकी

जापान का सबसे पहला भौगोलिक ग्रन्थ, जिसका संग्रह 'इज़ूमोनोओमी हिरोशिमा' नामक जापानी लेखक ने सन् ७३३ में किया।

इथिल फ्लीडा

इंग्लैंड के प्रसिद्ध राजा अल्फ्रेड की पुत्री जो मर्सिया के राजा को ब्याही थी मगर राजा के मरने पर जो वैधव्य अवस्था में राज्य का शासन कर रही थी।

सन् ६०१ में अल्फ्रेड महान् की मृत्यु हो गई और उसकी जगह उसका पुत्र एडवर्ड गद्दी पर बैठा। उस समय आधा इंग्लैंड डेन लोगों के अधिकार में था। एडवर्ड ने गद्दी पर बैठते ही अपने राज्य को बढ़ाना प्रारम्भ किया। उसकी विधवा बहिन इथिल फ्लीडा ने जो कि एक शक्तिशाली रानी थी एडवर्ड को इस काम में बड़ी मदद दी। उसकी सहायता से एडवर्ड ने कई स्थान डेन लोगों से जीतकर अपनी शक्ति को बहुत बढ़ा लिया। इथिल फ्लीडा की मृत्यु होने पर मर्सिया का आधा भाग भी एडवर्ड को मिल गया।

इथिलस्टन

इंग्लैंड के सुप्रसिद्ध नरेश अल्फ्रेड महान् के पुत्र एडवर्ड का लड़का जो सन् ६२५ में गद्दी पर बैठा।

इथलस्टेन ने अपने दादा अल्फ्रेड द्वारा प्रारम्भ किये हुए देशोद्धार के कार्य को चालू रक्खा। उसने अपनी बहन (किसी-किसी ग्रन्थ में पुत्री का उल्लेख है) का विवाह नार्थम्ब्रिया के डेन राजा के साथ कर दिया। डेन राजा की मृत्यु हो जाने पर उसने नार्थम्ब्रिया को अपने राज्य में मिला लिया।

एथिलस्टन बड़ा राजनीतिज्ञ था। उसने पहले-पहल यूरोप के अन्य देशों से इंग्लैंड के राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित किये तथा यूरोप के राजकुलों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर चारों तरफ अपनी रिश्तेदारी कायम की। मगर स्वयं जीवन भर अविवाहित रहा इसलिए उसको कोई सन्तान नहीं हुई।

इथिलबर्ट

ईसा की छठवीं शताब्दी में ब्रिटेन के कैण्ट प्रदेश का राजा इथिल बर्ट।

छठवीं शताब्दी के अन्त में अर्थात् सन् ५६७–६८ के करीब जब पोप ग्रेगरी के आदेश से अगस्टाइन नामक ईसाई सन्त अपने ४० साथियों के साथ ब्रिटेन में ईसाई-धर्म का प्रचार करने के लिए थेनिट टापू में उतरा, उस समय केण्ट का राजा इथिल बर्ट था। इथिल बर्ट की रानी बर्था पहले ही ईसाई-धर्म को अंगीकार कर चुकी थी। इसलिए राजा इथिल बर्ट को जब ईसाई-प्रचारकों के उतरने की खबर मिली तो उसने उनका बड़ा स्वागत किया।

अगस्टाइन ने इथिल बर्ट को ईसाई धर्म का उपदेश दिया। पहले तो उसने अपने पूर्वजों के धर्म को छोड़ने से इन्कार किया मगर कुछ समय उपरान्त उसने ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया। इस राजा के समय में इंग्लैण्ड में ईसाई धर्म का काफी प्रचार हुआ।

इदरिसी

अरब देश का प्रसिद्ध भूगोल-शास्त्री अब्दुल्ला इब्न इदरिसी, जिसका जन्म सन् १०६६ में और मृत्यु सन् ११५४ में हुई।

इदरिसी सिसली के राजा रॉजर द्वितीय के दरबार में भूगोल-शास्त्री था। इसका लिखा हुआ "अलरोजरी" नामक भूगोल का ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ में इदरिसी ने जिन-जिन देशों का भ्रमण किया था, उनका भौगोलिक विवेचन किया है। इस भूगोल का फ्रेंच अनुवाद पेरिस की ज्याग्रफिकल सोसायटी ने प्रकाशित किया है।

इन्द्रभूति गौतम

भगवान् महावीर की सभा (समवशरण) में उनके घोषित सिद्धान्तों की व्याख्या करने वाले प्रथम गणधर, जो ईसा से पूर्व छठीं शताब्दी में भगवान् महावीर के समकालीन थे।

जैन-परम्परा के अनुसार इन्द्रभूति गौतम ब्राह्मण कुलोत्पन्न वैदिक धर्म के महान् व्याख्याता थे। जिस समय भगवान् महावीर को कैवल्य-प्राप्ति हुई और उनकी देशना (उपदेश) होने वाली थी, उस समय इन्द्रभूति गौतम अपने ग्यारह विद्वानों के साथ अपापा नगरी के सोमिल नामक एक सम्पन्न ब्राह्मण के घर पर एक बड़े यज्ञ को सम्पन्न करा रहे थे।

जब भगवान् महावीर की प्रथम 'देशना' सुनने के लिए हजारों आदमी उधर जाने लगे तब इन्द्रभूति गौतम

को बड़ा आश्चर्य हुआ। पूछने पर जब उनको मालूम हुआ तो वे शास्त्रार्थ करने के निमित्त महावीर के सभा-मण्डप में गये। वहाँ पर जीव और कर्म के सिद्धान्त पर काफी समय तक उनका शास्त्रार्थ हुआ और अन्त में भगवान् महावीर के तर्कों को युक्ति-युक्त समझ कर उन्होंने भगवान महावीर से जैन-धर्म की दीक्षा ग्रहण कर ली और वे उनके प्रथम गणधर हुए। उसके पश्चात् "अग्निभूति, वायुभूति, सुधर्मा इत्यादि शेष दस पण्डितों ने भी भगवान महावीर से दीक्षा ग्रहण कर ली और वे ही उनकी सभा के ग्यारह गणधर हुए।

भगवान् महावीर के सामने और उनके पश्चात् भी इन गणधरों ने भगवान् महावीर के सिद्धान्तों की व्याख्या कर जैन-सिद्धान्त के बारह अङ्गों का निर्माण किया। इन सभी अङ्गों पर विशाल सूत्रों की रचना हुई।

इन्द्रभूति गौतम भगवान महावीर के अत्यन्त प्रिय-पात्र थे और महावीर के ऊपर उनका कुछ ममता-भाव भी था। इस ममताभाव के कारण उनको कैवल्य की प्राप्ति होने में विलम्ब हो रहा था। यहाँ तक कि उनके दस साथियों को कैवल्य की प्राप्ति हो जाने पर भी उनको नहीं हो पाई।

तब एक बार उन्होंने दुःखी होकर भगवान महावीर से प्रश्न किया—"भगवन्! कौन सा पाप, कौन सी कमी अभी तक मेरी कैवल्य-प्राप्ति में बाधक हो रही है?" तब महावीर ने कहा कि "हे गौतम! मेरे ऊपर जो तेरा ममत्व-भाव बना हुआ है, वही तेरी कैवल्य-प्राप्ति में बाधक हो रहा है और मेरे निर्वाण के पश्चात् ही तुझे कैवल्य-प्राप्ति होगी।

भगवान महावीर के निर्वाण के तुरन्त बाद ही इन्द्रभूति गौतम को कैवल्य-प्राप्ति हुई, ऐसा जैन-परम्परा का विश्वास है।

इन्द्राणी रहमान

भारतवर्ष की एक सुप्रसिद्ध नृत्यकार, जिनका जन्म सन् १९३० में हुआ।

इन्द्राणी रहमान भारतवर्ष के शास्त्रीय नृत्यों की सुप्रसिद्ध नृत्यकार हैं। इनकी माता रागिनी देवी अमेरिकन महिला थीं। भारतीय नृत्यों से आकर्षित हो वे यहाँ के नृत्य सीखने भारत में आई और यहीं पर एक भारतीय से उन्होंने विवाह कर लिया।

माता के नृत्यकला में पारङ्गत होने से इन्द्राणी रहमान को बचपन से ही नृत्य का शौक पैदा हो गया और सिर्फ पाँच बरस की उमर में इन्होंने रंगमंच पर जाकर सबसे पहले अपने नृत्य का अभिनय किया तो रसिकजन इस बालिका की कला को देखकर वाह-वाह कर उठे।

आगे जाकर इन्द्राणी रहमान ने अपनी कला में और भी अधिकाधिक उन्नति की। सन् १९६० में वे शिकागो के अन्तर्राष्ट्रीय मेले में अपनी पार्टी के साथ भारतीय नृत्यों का प्रदर्शन करने गयी थीं। इस पार्टी में इनके साथ कुचिपुडि-नृत्य के कलाकार कोरड नरसिंह राव, उड़ीसा शैली के कलाकार देवप्रसाद दास, बांसुरी वादक श्रीनिवास मूर्ति इत्यादि कई और कलाकार भी थे। इस मेले में इस पार्टी ने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का अर्जन किया।

इन्दुलेखा

मलयालम-साहित्य का एक प्रसिद्ध उपन्यास, जिसके लेखक 'चन्तू मेनोन' नामक मलयालम लेखक हैं।

इन्दुलेखा में लेखक ने अपने समाज तथा नंपूतिरी-समाज की गिरती हुई अवस्था का प्रभावशाली चरित्र-चित्रण किया है। नंपूतिरी लोग जमींदार थे। जमींदारी के दूषित फलों का चित्र, साथ ही जमीदारों के आश्रित लोगों के अधःपतन का इसमें अच्छा प्रदर्शन किया गया है। लेखक अंग्रेजी का बड़ा पंडित था और उस भाषा के उपन्यासों का अध्ययन करके उसी ढंग पर यहाँ के वातावरण का चित्र, उसने "इन्दुलेखा" में सफलतापूर्वक अंकित किया है। इस नवीन कृति के द्वारा अपने समाज को सुधारने में चन्तुमेनोन ने अच्छी सफलता पाई है। मलयालम-साहित्य के उपन्यास-क्षेत्र में इस उपन्यास का उच्च स्थान है।

इन्द्रप्रस्थ

आधुनिक देहली और कुतुबमीनार के बीच में अवस्थित एक प्राचीन नगर जिसमें आर्य परम्परा के अनुसार कौरवों और पाण्डवों की राजधानी थी।

भारत के प्राचीन साहित्य में इन्द्रप्रस्थ नगर का बड़ा महत्व माना गया है। वर्तमान दिल्ली के क्षेत्र में ही यह नगर बसा था। अब इसका सामान्य ध्वंसावशेष बचा है।

कहा जाता है कि पृथ्वीराज चौहान के समय में यहाँ पर एक किला बना हुआ था। जिसके लिए चन्द बरदायी इस प्रकार लिखा है।—

गढं इन्द्रपत्यं सहायं सुकज्जै—
उभै दीन जुट्टे करै यग्ग धज्जै।

आज भी दिल्ली में हुमायूँ का किला नामक एक प्राचीन दुर्ग दिखाई देता है। उसे कोई-कोई 'इन्दरपत' कहते हैं।

महाभारत में इन्द्रप्रस्थ का वर्णन करते हुए लिखा है कि द्रौपदी को स्वयम्बर में जीतकर जब पाण्डव अपनी राजधानी हस्तिनापुर में आने लगे तब धृतराष्ट्र ने विदुर के द्वारा युधिष्ठिर के पास यह प्रस्ताव भेजा कि वह इन्द्रवन या खाण्डव-वन को साफ करके वहीं अपनी राजधानी की स्थापना करें। युधिष्ठिर ने उनके इस प्रस्ताव को स्वीकार कर खाण्डव-वन को जलाकर यह नगर बसाया। असुर-जाति के "मय" नामक शिल्पकार ने १४ महीने तक परिश्रम करके इस नगर का निर्माण किया और राज-भवन में संगमरमर और चूने के द्वारा ऐसे सुन्दर स्थानों का निर्माण किया, जहाँ जल में थल का और थल में जल का भ्रम होता था।

ऐसा रूप सम्पन्न राजगृह न तो स्वर्ग में था और न भूलोक पर ही। महाराज युधिष्ठिर ने अपने राजसूय-यज्ञ का आयोजन इसी सुन्दर विशाल नगर में किया यह नगर दिल्ली से २ मील दक्षिण उस स्थान पर अवस्थित था, जहाँ पर इस समय हुमायूँ का पुराना किला खड़ा हुआ है।

इनकम टैक्स

मनुष्य की आमदनी के ऊपर लगाया जाने वाला राज-कर, इसे इनकम टैक्स या 'आय-कर' कहा जाता है।

बहुत से इतिहासकारों की राय में इनकम-टैक्स का सबसे पहला श्रीगणेश इंग्लैण्ड में लन्दन नगर के अन्तर्गत सन् १६६० में किया गया। उस समय लन्दन में सफाई वगैरह का खर्च इतना बढ़ गया था कि वहाँ की पार्लमेंट को इनकम टैक्स लागू करना पड़ा। उन दिनों गरीब से गरीब व्यक्ति को भी यह टैक्स भरना पड़ता था। यह टैक्स प्रति पौण्ड आमदनी पर चार पेंस के हिसाब से लिया जाता था। लन्दन का यह पहला इनकम टैक्स कुछ अरसे बाद उठा लिया गया, मगर सन् १७६६ में इंग्लैंड के प्रधान मंत्री विलियम पिट ने इसे फिर जारी किया। क्योंकि उस समय नैपोलियन के साथ लड़ी जाने वाली लड़ाइयों में बड़े धन की आवश्यकता पड़ रही थी। यह टैक्स ६० पौण्ड से अधिक मासिक आय वाले व्यक्तियों तक ही सीमित था। तभी से यह टैक्स इंग्लैण्ड में समयानुसार होने वाले परिवर्तनों में परिवर्तित होता हुआ इनकम-टैक्स के रूप में चला आ रहा है।

भारतवर्ष में प्रथम विश्व-युद्ध के दिनों में इनकम टैक्स लगाया गया। अंग्रेजी राज्य के समय यह टैक्स अंग्रेजी राज्य के बड़े-बड़े शहरों में बड़े-बड़े लोगों पर ही था। देशी राज्यों की प्रजा भी अधिकांश रूप से इससे मुक्त थी, मगर अब तो यह कर शहरों और देहातों सहित सारे भारत में एक ही रूप में लगा हुआ है।

आमदनी की बढ़ती के अनुसार इनकम टैक्स की दरें बढ़ती जाती हैं। इन दरों का विवरण उसके चार्ट से लग जाता है।

इन्क्रूमा

अफ्रीका के नव स्वाधीनता प्राप्त राष्ट्र घाना के प्रधान मंत्री डा० क्वामे इन्क्रूमा।

डा० इन्क्रूमा का जन्म सन् १६१० में हुआ। अमेरिका और इंग्लैंड में जाकर उन्होंने अर्थशास्त्र, समाज शास्त्र तथा कानून की शिक्षा पायी। सन् १६४५ से सन् १६४७ तक वे पश्चिमी अफ्रीकी राष्ट्रीय सचिवालय के प्रधान मंत्री रहे, जिसका उद्देश्य संयुक्त अफ्रीका राज्य की स्थापना कायम की। उसके पश्चात् उन्होंने 'कन्वेन्शन पीपुल्स पार्टी'

नामक एक संस्था की स्थापना की। इस पार्टी के द्वारा १९५१ के चुनाव में उन्होंने घाना की पार्लामेंट में २८ में से २५ स्थान प्राप्त किये।

अफ्रीकी देशों के बीच सहयोग स्थापित करने के लिए इन्क्रूमा बहुत कार्य किया। मार्च सन् १९५८ में घाना की राजधानी 'आक्रा' में उन्होंने एक परिषद् का आयोजन किया। जिसमें १९ देशों ने सम्मिलित होकर सहारा के दक्षिणवर्ती अफ्रीका के पारस्परिक सहयोग का एक संगठन स्थापित किया। उसके बाद वहीं पर उन्होंने स्वतंत्र अफ्रीकी राष्ट्रों के सम्मेलन का उद्घाटन किया, जिसमें इन देशों की समान समस्याओं पर विचार-विनिमय किया गया।

दिसम्बर १९५७ में डा० इन्क्रूमा ने काहिरा विश्वविद्यालय की एक छात्रा फातिमा हेलन रिट्ज्क से विवाह किया।

घाना के स्वतंत्र होने के बाद प्रधान मंत्री इन्क्रूमा ने वहाँ के कृषि, उद्योग और यातायात के विकास पर बहुत ध्यान दिया और एक पंचवर्षीय योजना भी आयोजित की।

इनो-लेइनो

फिनलैंड का एक सुप्रसिद्ध कवि, जिसका जन्म सन् १८७८ में और मृत्यु सन् १९२६ में हुई।

'इनो लेइनो' ने ३० वर्ष तक अपनी काव्य-रचना की और इस क्षेत्र में अपनी सभी पूर्वकालीन कवियों से वह आगे बढ़ गया। उसकी रचनाओं में 'हेलगासूक्ता' विशेष प्रसिद्ध है। उसने दूसरी भाषाओं की सुन्दर कृतियों को भी अपनी भाषा में अनुवाद किया।

इनुकाई

सन् १९३२ में जापान का प्रधान मंत्री। सेयुकाई दल का नेता।

सन् १९३२ में जापान में सेयुकाई-दल का बहुमत था और उसका नेता इनुकाई वहाँ का प्रधान मंत्री था। इन दिनों जापान में इस बात पर संघर्ष शुरू हो चुका था कि सरकार का संचालन राजनैतिक दलों के हाथ में रहे या सैनिक नेताओं के हाथ मे रहे। जर्मनी और इटली की तरह जापान में भी इन दिनों किसी रूप में फैसिस्ट भावनाओं का उदय हो रहा था और वहाँ के महात्वाकांक्षी लोगों में भी साम्राज्य-विस्तार की भावनाएँ प्रबल हो रही थीं। इसलिए सब दूर सैनिक-शासन स्थापित करने की भावनाएँ जोर पकड़ रही थीं। १९३१ में जापान की क्वांतुङ्ग-सेना ने मंचूरिया पर आधिपत्य स्थापित करना प्रारम्भ कर दिया था। जब यह मामला जापान के मंत्रिमण्डल में विचारार्थ पेश किया गया तो प्रधान मंत्री इनुकाई ने कहा कि जापान की आर्थिक दशा ऐसी नहीं है कि मंचूरिया या चीन में किसी बड़े युद्ध का सूत्रपात किया जा सके।

इनुकाई की इस युद्ध विरोधी भावना से वहाँ के राष्ट्रवादी बिगड़ उठे और उन्होंने प्रधान मंत्री इनुकाई और सेयुकाई दल के और कई प्रधान व्यक्तियों की हत्या कर डाली।

इन्नोसेंट तृतीय

ईसाई धर्म में रोमन चर्च का एक अत्यन्त प्रभाव पोप जो बारहवीं सदी के अन्त में हुआ।

उस समय होहेन्स्टाफेन वंश का जर्मनी का राजा छठा हेनरी मर चुका था और उसका छोटा लड़का द्वितीय फ्रेडरिक के नाम से जर्मनी की गद्दी पर आने वाला था। इसी समय पोप की गद्दी पर इन्नोसेंट तृतीय का आविर्भाव हुआ जो प्रायः बीस वर्ष तक पश्चिमीय यूरोप की राजनैतिक अवस्था का अधिपति रहा। कुछ समय के लिए इस धर्माधिकारी का राजनैतिक अधिकार शार्लमेन और नैपोलियन के अधिकार से भी बढ़ गया था।

छठें हेनरी के मरते ही जर्मनी की अवस्था फिर से डांवाडोल हो गई। द्वितीय फ्रेडरिक का चाचा फिलिप पहले तो अपने भतीजे का अभिभावक बनकर रहना चाहता था मगर ऐसा होने के पहले ही वह रोम का सम्राट चुन लिया गया और उसने सब अधिकार अपने हाथ में ले लिये। दूसरी ओर कोलोन के आर्क विशप ने एक

सभा करके गेल्फ वंश के सिंह हेनरी के लड़के ओटो ब्राञ्जविक को सम्राट बना दिया।

इसका परिणाम यह हुआ कि गेल्फ और होहेन स्टाफेन वंश का पुराना झगड़ा फिर शुरू हो गया और दोनों 'सम्राटों' ने पोप इन्नोसेन्ट तृतीय से सहायता माँगी। इन्नोसेंट होहेन्स्टाफेन वंश को फिर से सम्राट पद पर प्रतिष्ठित करने के पक्ष में नहीं था और गेल्फ वंश का ओटो-ब्राञ्जविक पोप के लिए अपना सर्वस्व त्याग करने को तैयार था। इसलिए उसने फिलिप का सम्राट पद रद्द करके ओटो-ब्राञ्जविक को दे दिया। ओटो ने इस पर कृतज्ञता प्रकाश करते हुए लिखा कि 'मेरा राजपद धूल में मिल गया होता यदि आपने स्वयं हमें नियुक्त न किया होता।"

दूसरे वर्ष ओटो सम्राट पद पर आरूढ़ होने के लिए रोम गया। लेकिन उसी समय उसकी पोप से शत्रुता हो गई। क्योंकि वह अपने को इटली का भी सम्राट कहने लगा और पोप यह नहीं चाहता था।

ओटो से शत्रुता होने पर उसे गद्दी से उतार कर पोप इन्नोसेंट ने छठें हेनरी के पुत्र फेडरिक द्वितीय को सन् १२१२ ई० में राजा बना दिया। जब फ्रेडरिक राजा बन गया तो उसने इन्नोसेंट के प्रति की हुई सब प्रतिज्ञाओं का पालन किया।

राज्य-प्रबन्ध में लगे रहने पर भी पोप इन्नोसेंट दूसरे कार्यों को खासकर इंगलैण्ड को किसी प्रकार नहीं भूला था। सन् १२०५ ईस्वी में केण्टरबरी चर्च के महन्तों ने इंगलैंड के राजा की अनुमति लिये बिना अपने एबट को अपना आर्क विशप बना लिया और उसकी स्वीकृति के लिए पोप के पास अपना दूत भेजा। उधर इंगलैंड के राजा जॉन ने अपने कोषाध्यक्ष को आर्क विशप बनाने के लिए पोप के पास सन्देश भेजा।

इन्नोसेंट ने इन दोनों को निकाल दिया और "स्टीफेन लैंगटन" नामक विद्वान पुरुष को कैन्टर बरी का आर्क-विशप बनाने का फतवा दे दिया।

इस पर क्रुद्ध होकर राजा जॉन ने कैण्टरबरी के समस्त महन्तों को राज्य से निकाल दिया। इसके जवाब में पोप इन्नोसेंट ने इण्टर्डिक्ट (निषेधाज्ञा) देकर समस्त गिरजों को बन्द कर दिये और राजा जॉन को धमकी दी कि यदि तुम हमारी इच्छानुसार काम नहीं करोगे तो तुम्हें निकाल कर फ्रान्स के राजा फिलिप ऑगस्टस को इंग्लैंड की गद्दी पर बैठा देंगे। राजा जॉन ने यह भी देखा कि इंग्लैंड को जीतने के लिए फ्रांस का राजा सेना एकत्रित कर रहा है तो उसने सन् १२१३ में पोप का आधिपत्य मान लिया। यहाँ तक कि उसने इंग्लैंड का राज्य ही द्वितीय इन्नोसेंट को सौंप दिया और स्वयं उसका प्रतिनिधि बन कर काम करने लगा।

इस प्रकार इन्नोसेण्ट तृतीय उस समय समस्त पश्चिमी यूरोप में सर्वप्रभुता सम्पन्न व्यक्ति था। सम्राट् द्वितीय फ्रेडरिक उसकी रक्षा में था, इंग्लैंड का राजा उसका सामन्त था। यूरोपीय राज्यों के शासन प्रबन्ध में हस्तक्षेप करने के अधिकार उसने केवल घोषित ही नहीं किये उनका पूरी तरह प्रयोग भी किया।

सन् १२१५ में उसने अपने प्रासाद में एक राष्ट्रीय सभा बुलाई जो चतुर्थ लैटरन की सभा कहलाती है। इसमें हजारों धर्माधिकारी और राज्य-सामन्त उपस्थित हुये थे। इसी सभा ने सम्राट् फ्रेडरिक की नियुक्ति और ओटो ब्रेंज विक के पदच्युत करने के आदेश पर अपनी स्वीकृति प्रदान की थी। सन् १२१६ में इस महान् प्रतापी धर्माधिकारी की मृत्यु हुई।

इन्दौर

मध्यप्रदेश का एक सुप्रसिद्ध औद्योगिक नगर। स्वाधीनता के पहले यह नगर होलकर राजवंश की राजधानी थी। होलकर-वंश के संस्थापक महाराजा मल्हार राव होलकर को पेशवा ने सन् १७३२ ई० में मालवे के मुगल सूबेदार को हटाने के उपलक्ष में प्रदान कर दिया था।

उस समय यह शहर छोटे गाँव के रूप में था। महाराजा मल्हार राव के पश्चात् इन्दौर की राजगद्दी पर एक महान धार्मिक प्रतिभा के रूप में देवी अहिल्या बाई का आगमन हुआ था। (अहिल्या बाई का पूरा परिचय इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में देखिये।)

तुकोजी राव प्रथम

अहिल्या बाई के स्वर्गवास के पश्चात् उनके सेनापति तुकोजी राव प्रथम, इन्दौर की राजगद्दी पर बैठे। तुकोजी राव प्रथम भी बड़े बहादुर और युद्ध-कला में दक्ष थे। उन्होंने अपनी सेना में यूरोपीय युद्ध कला का प्रारम्भ किया।

सन् १७६७ में पेशवा ने रूहेलों को दण्ड देने के लिए जो सेना भेजी थी, उसमें सिन्धिया के साथ-साथ तुकोजी राव होलकर ने भी बड़ा भाग लिया था। इसी प्रकार उन्होंने कई और भी लड़ाइयाँ लड़ी थीं।

यशवन्त राव होलकर

तुकोजी राव प्रथम के बाद यशवन्त राव इन्दौर की गद्दी पर बैठे। यशवन्त राव होलकर के दिल में अंग्रेजों के प्रति अत्यन्त घृणा थी और वे उन लोगों में से थे, जो अंग्रेजी-राज्य की जड़ को जमने नहीं देना चाहते थे। इनकी बहादुरी से सारे महाराष्ट्र में सिंधिया और भोंसले की अपेक्षा भी इनका अधिक नाम हो गया। दिल्ली के मुगल सम्राट् ने भी इनके रोब में आकर इन्हें राज-राजेश्वर आलीजाह बहादुर की पदवी प्रदान की। अंग्रेज लोग भी अब इन्हींको अपना प्रधान प्रतिद्वन्दी समझने लगे।

शुरू-शुरू में तो अंग्रेजों ने इनसे छेड़-छाड़ करना उचित नहीं समझा, पर अन्त में कुछ ऐसे प्रश्न उपस्थित हो गये, जिनसे इनके साथ लड़ाई करने के लिए उनको विवश होना पड़ा।

सन् १८०४ में अंग्रेजों ने होलकर के खिलाफ लड़ाई छेड़ने का निश्चय किया। इस समय यशवन्त राव जयपुर राज्य में थे। अंग्रेजों ने कूटनीति के द्वारा सिंधिया को यह आश्वासन देकर अपनी ओर मिला लिया कि अगर यशवन्तराव आत्म-समर्पण कर देगा तो उसे ब्रिटिश के आश्रय में कुछ जागीर देकर सारा होलकर-राज्य आपको दे दिया जायगा। इस प्रलोभन में आकर सिंधिया यशवन्त राव को छोड़कर अंग्रेजों की ओर जा मिला।

ईसवी सन् १८०४–५ में यशवन्त राव और अंग्रेजों के बीच कई लड़ाइयाँ हुईं। कमाण्डर लूकान की अधीनस्थ अंग्रेजी-सेना को यशवन्त राव ने करारी हार दी। उसके बाद मुकन्दरा के पास कर्नल मानसून की फौजें, जिनमें जयपुर, कोटा और सिंधिया की फौजें भी शामिल थीं, यशवंत राव के सामने बुरी तरह हारकर बेतहाशा भागीं। मानसून की फौजों का होलकर की फौजों ने पीछा किया और उनकी बुरी दशा कर डाली। मानसून के सैकड़ों सैनिक मारे गये और उनका माल-असबाब भी छीन लिया गया। इस विजय से यशवंत राव की सैनिक-कीर्ति बहुत बढ़ गई और भारतीय राजा-महाराजाओं पर उनका रोब-दबदबा बहुत ज्यादा छा गया।

अब यशवंत राव ने महाराजा रणजीत सिंह, भोंसला, पेशवा, सिंधिया आदि कई राजाओं को, मिलकर अंग्रेजों के खिलाफ खड़े होने के लिये लिखा। शुरू-शुरू में तो होलकर के इस अनुरोध को सबने स्वीकार कर लिया, पर इसी समय अंग्रेजों ने अपना राजनैतिक-हथकंडा सिंधिया के ऊपर फेंका। सिंधिया को ग्वालियर और गोहद के किले, १० लाख रुपये नकद और होलकर-राज्य के कुछ अंश देने का प्रलोभन देकर अंग्रेजों ने उन्हें अपनी ओर मिला लिया।

इसके बाद पारस्परिक फूट से यशवंत राव की शक्ति कमजोर पड़ती गई और सन् १८११ में भानपुरा स्थान पर उनका देहान्त हो गया। यहाँ पर उनकी एक छतरी बनी हुई है।

यशवन्त राव के पश्चात् मल्हार राव द्वितीय, हरिराव, खण्डेराव और उनके पश्चात् तुकोजी राव द्वितीय सन् १८४४ में इन्दौर की गद्दी पर आये।

तुकोजी राव द्वितीय

होलकर-राजवंश में महाराजा तुकोजी राव द्वितीय एक प्रतिभाशाली और लोकप्रिय नरेश हो गये हैं। इनके समय में इन्दौर-राज्य ने सभी दृष्टियों से बहुत तरक्की की थी। शान्ति और सुशासन की वजह से राज्य के व्यापार, खेती और उद्योग-धन्धों में बहुत उन्नति हुई, जिससे राज्य की आमदनी बढ़ कर २२ लाख से ८५ लाख हो गई और जन-संख्या भी बढ़कर दुगुनी हो गई। इन्होंने ही सबसे पहले इन्दौर में 'स्टेट् मिल' के नाम से एक टैक्सटाइल मिल की स्थापना कर इन्दौर के औद्योगिक विकास का श्रीगणेश किया।

महाराजा तुकोजी राव द्वितीय के पश्चात् शिवाजी राव, तुकोजी राव तृतीय और यशवन्त राव द्वितीय इन्दौर की गद्दी पर आये।

महाराजा तुकोजी राव तृतीय के समय में बम्बई के सुप्रसिद्ध व्यवसायी 'बावला का हत्या-काण्ड' हुआ। इस सिलसिले में सन् १९२६ में महाराजा सर तुकोजी राव को इन्दौर की गद्दी छोड़नी पड़ी और उनकी जगह उनके पुत्र यशवन्त राव द्वितीय गद्दी पर आये। इन्हींके समय में भारत को स्वाधीनता प्राप्त हुई और महाराजा को 'प्रीवी पर्स' देकर इन्दौर का शासन मध्य प्रदेश-गवर्नमेंट ने अपने हाथ में ले लिया।

सन् १९६१ में महाराजा यशवन्तराव द्वितीय का देहान्त हो गया और उनकी जगह उनकी कन्या ऊषा राजे अधिकारिणी हुई।

इन्दौर का औद्योगिक विकास

होलकर-राज्य के शासन-काल में इन्दौर नगर की औद्योगिक दृष्टि से बहुत उन्नति हुई। यहाँ के राजाओं का शासन ब्रिटिश भारत के शासन की तरह सुसंगठित और कसा हुआ शासन था। इस शासन में जनता को अपनी उन्नति करने की सभी सुविधाएँ प्राप्त थीं। इसलिए अपनी शैक्षणिक और औद्योगिक उन्नति में यह राज्य मध्यप्रदेश की सभी रियासतों से आगे रहा।

यहाँ की औद्योगिक उन्नति में प्रसिद्ध व्यवसायी सर सेठ हुकुमचन्द का भी बहुत बड़ा हाथ रहा। उनकी बनाई हुई विशाल इमारतों और धर्म-संस्थाओं से यह शहर अब भी जगमगा रहा है।

स्टेट मिल की स्थापना के बाद सेठ हुकुमचन्द ने बाहर के कई उद्योग-पतियों को बुलाकर उन्हें वहाँ पर कपड़ा-मिलें स्थापित करने की प्रेरणा दी और स्वयं भी तीन कपड़ा-मिलों की स्थापना की। इस प्रकार इन्दौर में उस जमाने में कपड़े की ९ मिलें स्थापित हो गई थीं, जिस जमाने में सारा भारत अपने औद्योगिक विकास की पहली मंजिल पर था।

स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद राजधानी इन्दौर से हटा दी गई। फिर भी इस नगर की शोभा और समृद्धि में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आया। औद्योगिक और शैक्षणिक दृष्टि से आज भी यह सारे मध्यप्रदेश का प्रमुख केन्द्र है, जहाँ पर इंजिनियरिंग कालेज, मेडिकल कालेज, होलकर कालेज, क्रिश्चियन कालेज, गुजराती कालेज इत्यादि अनेकों कालेज और हायर सेकेण्डरी स्कूल विद्यमान हैं।

इन्द्र विद्यावाचस्पति

हिन्दी-भाषा के सुप्रसिद्ध पत्रकार महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) के पुत्र, आर्य-समाज के एक मशहूर कार्यकर्त्ता।

हिन्दी-पत्रकारिता के इतिहास में 'इन्द्र' विद्यावाचस्पति अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखते थे। यों तो पत्रकारिता का आरंभ इन्होंने 'दैनिक विजय' नाम का एक पत्र निकाल कर किया था, लेकिन उन्हें विशेष ख्याति दैनिक 'अर्जुन' से प्राप्त हुई। अर्जुन राष्ट्रीय विचारधारा का पत्र था और इसलिए अंग्रेज सरकार का हमेशा कोप-भाजन रहता था। एकबार उससे ५ हजार रुपये की नकद जमानत ली गयी। बहुत कोशिश और झगड़े के पश्चात् अर्जुन को यह ५ हजार रुपये की राशि वापस मिल गई, तभी से अर्जुन के साथ 'वीर' शब्द का तमगा लगाया गया और तभी से अर्जुन 'वीर अर्जुन' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

दिल्ली के तत्कालीन सम्पादकों में पं० इन्द्र ही एक ऐसे थे, जिनकी कलम प्रत्येक विषय पर अबाध-गति से चलती थी।

उनके लेख और उनके व्यंग्य कालम वीणा की झनकार गहरी चोट करने वाले होते थे। कांग्रेस के नेता होते हुए भी पं० इन्द्र पत्रकारिता की दृष्टि से उसकी कड़ी से कड़ी आलोचना करने में नहीं चूकते थे।

हिन्दी-सम्पादन-कला के इतिहास में पं० इन्द्र का स्थान प्रथम श्रेणी के पत्रकारों में था।

इन्दु

काशी से प्रकाशित होने वाला एक सचित्र मासिक पत्र, जो सन् १९०८ ई० से काशी से निकलने लगा था।

काशी के सुप्रसिद्ध कवि और लेखक श्री जयशंकर 'प्रसाद' ने 'सरस्वती' मासिक पत्रिका की स्पर्धा में इस पत्र

का प्रारंभ किया था। अपनी सुरुचि पूर्ण शैली, भाषा और लेखों के चयन के कारण उस समय के हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में इसने अच्छा स्थान प्राप्त कर लिया था।

एक साल तक श्री अम्बिका प्रसाद गुप्त के सम्पादन में यह काशी से प्रकाशित होता रहा। उसके बाद सन् १९१० में यह इन्दौर चला गया। तब इसके सम्पादक श्री सीता राम दिनकर जटार हुए। सन् १९१८ तक यह इन्दौर से ही निकलता रहा। इसके प्रकाशक श्री सूरज मल जैन थे।

इनियस

लेटिन भाषा का महान् साहित्यकार जिसका जन्म ई० पू० २३९ में और मृत्यु ईसवी सन् पूर्व १६९ में हुई।

'क्विटस इनियस' लेटिन साहित्य का जनक माना जाता है। वह एक सम्भ्रान्त कुल का व्यक्ति था। उसका लिखा हुआ 'एनाल्स' नामक महाकाव्य १८ सर्ग और ६०० पद्यों में विभक्त है। राष्ट्रीय दृष्टिकोण से यह काव्य लिखा गया है। यह काव्य महाकवि होमर की वीर-छन्द की परम्परा में लिखा गया है। इसमें होमर षटपदीय छन्दों का व्यवहार किया गया है।

इनियस ने लैटिन भाषा में व्यंग्य और नीति पूरक प्रबन्ध काव्य के लिखने की परिपाटी भी प्रचलित की।

इब्न सीना

बुखारा शहर का बहुत प्रसिद्ध अरबी चिकित्सक जो एशिया और यूरोप दोनों में ही बहुत प्रसिद्ध था। इसका वर्णन पहले भाग में "अविचेन्ना" के प्रकरण में देखें।

इब्सन हेनरिक (Henrik Ibson)

नार्वे का संसार प्रसिद्ध नाटककार हेनरिक इब्सन जिसका जन्म सन् १८२८ में और मृत्यु सन् १९०६ में हुई।

जिस प्रकार संस्कृत साहित्य में शेक्सपीयर और फारसी साहित्य में शेखसादी बेजोड़ और अमर हो गये उसी प्रकार नार्वे के साहित्य में हेनरिक इब्सन ने भी अपनी महान् रचनाओं से अमरता प्राप्त कर ली है। हेनरिक इब्सन संसार के उन कलाकारों में से एक हैं जिन्होंने देश और काल से ऊपर उठकर विश्व साहित्य में अपना नाम अमर कर दिया।

इब्सन के लिखे हुए "पियर-गिग्ट" नाटक ने यूरोप और अमेरिका के नाटक गृहों को अपनी सफलता से चमका दिया है। रंगमंच की सफलता के साथ साहित्य क्षेत्र में भी उसका काफी महत्व है। मानव स्वभाव का यथार्थ चरित्र-चित्रण और कवित्वपूर्ण कल्पना की दृष्टि से सारे नार्वेजियन साहित्य में यह अपनी तुलना नहीं रखता।

पियर गिग्ट में अनोखी सफलता प्राप्त करने के बाद उसने यथार्थवादी नाटकों के क्षेत्र में कविता का बहिष्कार करके एक नवीन शैली का सूत्रपात किया। इन नाटकों में इब्सन ने पुरानी रूढ़ियों और परम्पराओं के विरुद्ध जोरदार आवाज उठाई। इसके लिखे हुए "ए डाल्स हाउस" और "गोस्ट्स" नामक नाटकों ने परम्परावादी समाज में बड़ी हलचल मचा दी और सब लोगों ने इनकी निंदा करना प्रारम्भ किया। ए डाल्स हाउस में इब्सन ने नारी स्वतंत्रता और वैज्ञानिक जागृति का समर्थन किया है। अपनी आलोचनाओं से क्षुब्ध होकर इबसन ने "एनिमीज ऑफ पीपुल्स" की रचना की। इस नाटक में विचार शून्य लेकिन संगठित बहुमत की तीव्र निंदा की गई है।

इस प्रकार सन् १८७७ से १८९९ तक इब्सन ने बारह नाटकों की रचना की। इन नाटकों ने इब्सन को विश्व साहित्य में अमर कर दिया। इब्सन का अन्तिम नाटक "ह्वेन वी डेड अवेकेन" सन् १८९९ में प्रकाशित हुआ। यह नाटक भी इब्सन के अनुयायियों में बहुत लोक प्रिय हुआ।

इब्सन ने अपने नाटकों में समाज सम्बन्धी ऐसी गहन समस्याओं पर विचार किया जो पहले के किसी नाटककार ने नहीं किया था। उसके द्वारा व्यक्ति और समाज, तथ्य और भ्रम, सत्य और असत्य आदर्श की विरोधी भावना पर व्यक्त किये गये विचार ही विश्व साहित्य को उसकी अनोखी देन है।

इब्रानी साहित्य

इब्रानी यहूदी जाति की भाषा का नाम है जिसे हिब्रू भी कहते हैं। प्राचीन इब्रानी साहित्य में अक्सर यहूदी धर्म ग्रन्थों और परम्पराओं का समावेश पाया जाता है।

अन्य भाषाओं की तरह इब्रानी साहित्य का भी लिखित रूप बहुत बाद में अस्तित्व में आया। पहले के लोग इस भाषा का साहित्य मौखिक रूप से याद रखते थे और गुरु शिष्य परम्परा के अनुसार इसका प्रचार होता रहता था। इस मौखिक साहित्य के बहुत से उदाहरण यहूदियों के धर्मग्रन्थ बाइबिल-ओल्डटेस्टामेंट में मिलते हैं।

बाईबिल का ओल्ड टेस्टामेंट ही यहूदियों का प्रामाणिक धर्म ग्रन्थ है। प्रसिद्ध यहूदी धर्माचार्य एजरा तथा उसके साथियों ने ईसा से पूर्व पाँचवीं शताब्दी में ओल्ड टेस्टामेंट के एक अंश को "पेण्टा ट्यूक" के नाम से संग्रह किया। इस पेण्टाट्यूक में यहूदी धर्म के अन्य धर्माचार्यों के उपदेश भी संगृहीत है। पेण्टाट्यूक को यहूदी लोग अपना पवित्र शास्त्र और कानून संहिता के रूप में मानते हैं।

इसी पेण्टाट्यूक की व्याख्या और उसकी टीका के रूप में इब्रानी के अनेक विचारकों ने अपने जो विचार प्रदर्शित किये वे "मिदरश" के नाम से यहूदी साहित्य में प्रसिद्ध हुए। इन मिदरशों के निर्माण में रब्बी इसमाइल, रब्बी सीमान, रब्बी अकीबा इत्यादि यहूदी साधुओं और विद्वानों ने बहुत बड़ा योग दिया। इन मिदरिशों में हजरत मूसा के उपदेशों की व्यवहारिक तथा उपदेशात्मक व्याख्याएँ हैं।

ईसाई धर्म के प्रारम्भ के पश्चात् जिन यहूदियों ने ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया उन्हें "रब्बी" कहा जाता था। इन रब्बी लोगों ने भी एक विस्तृत साहित्य की रचना की, जिसमें पेण्टाट्यूक की व्याख्या और टीका के रूप में इन विचारकों ने अपने विचार प्रकट किये। इनके विचारों के संग्रह को "मिश्ना" कहते हैं। इसे ईसा की दूसरी शताब्दी में यहूदा हनसी ने संगृहीत किया। इसी मिश्ना की व्याख्या को तालमुद कहते हैं यह तालमुद भी ओल्ड टेल्टामेंट के पश्चात् यहूदियों का पवित्र ग्रन्थ है। तालमुद में बाइबिल और उसके पैगम्बरों से सम्बन्धित इलहामी प्रसंगों का उल्लेख है। तालमुद धर्म ग्रन्थ में भी अन्य धर्म ग्रन्थों की तरह देशकाल के अनुसार अन्तर आ गया है। जेरूसलेम के विद्वानों ने ईसा की तीसरी चौथी शताब्दी में जिस तालमुद की रचना की उससे बेबिलोनिया के विद्वानों द्वारा चौथी पाँचवीं सदी में रचे हुए तालमुद में बड़ा अन्तर है। जिस तरह कि बौद्ध धर्म के सम्बन्ध में महायान और हीनयानों के बीच है।

मध्य काल

मध्यकाल में अन्य देशों की तरह यहूदी देश पर भी इस्लामी सभ्यता का प्रभाव पड़ा और इन लोगों के सहयोग से इब्रानी साहित्य में विकास की एक बड़ी लहर आई।

इस लहर का प्रथम नक्षत्र सदिया-बेन-जोसेफ के (Sadia Ben Joseph) नाम से इब्रानी साहित्य में प्रकट हुआ। इसका दूसरा नाम सादिया-गेओफ़ भी था। यह ईश्वर-प्रदत्त बहुमुखी प्रतिभा का धनी था। उसने इब्रानी भाषा का कोष और व्याकरण तैयार करके इस भाषा में एक नई जान फूँक दी। इसकी रचनाओं में "सिद्दूर" "एमुनोथ वे-डेओथ" नामक ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हैं। सिद्दूर में प्रार्थनाओं का संग्रह है और एमुनोथ वे-डेओथ" ईश्वर सम्बन्धी सिद्धान्तों पर दार्शनिक दृष्टिकोण उपस्थित करने वाला यहूदी धर्म में पहला ग्रन्थ था। मूलतः यह अरबी भाषा में लिखा गया था। इस प्रकार इस महान् विचारक ने यहूदी साहित्य में दार्शनिक विचार शृंखला को पैदा किया।

इस्लामी शासन और अरबी विचार धारा से प्रभावित होने के कारण इस काल के यहूदी भी अपनी रचनाएँ अरबी में करने लग गये थे। इनमें से जूदा हलेवी का "कुसारी" नामक ग्रन्थ काफी प्रसिद्ध हुआ।

स्पेन के अन्तर्गत भी मूर शासन के अन्तर्गत इब्रानी साहित्य को फलने-फूलने का काफी अवसर मिला। इस काल में इब्रानी भाषा के महाकवि सोलोमन का नाम सब से अधिक चमकता है। इसने अपनी कविताओं में करुणा और वेदना की एक बहुत ही मधुर धारा को प्रवाहित

किया। सोलोमन का जन्म सन् १०२० में और मृत्यु १०५१ में हुई।

दूसरा महान् कवि जूड़ा हालेवी हुआ। यह इब्रानी भाषा और शैली का जादूगर माना जाता है। उसने धर्म, कर्म, विवाह, शादी, प्रेम अर्थात् जीवन की प्रत्येक समस्याओं पर कविता लिखी। उसकी भाषा में ओज और माधुर्य भरा रहता था।

इस युग की एक महान् विभूति अब्राहम-इब्न-एजरा के नाम से इब्रानी साहित्य में प्रकट हुई। इसका जन्म सन् १०९२ में और मृत्यु सन् ११६५ में हुई। इब्न-एजरा इब्रानी भाषा का गहरा पण्डित था। ज्योतिष, गणित, विज्ञान, दर्शन इत्यादि सभी गम्भीर विषयों में उसकी सर्वतोमुखी प्रतिभा अपना दखल जमाये हुए थी। बाइबिल और पेण्टाट्यूक पर किया हुआ उसका भाष्य बड़ा लोकप्रिय हुआ। दर्शन, विज्ञान, इत्यादि अनेक विषयों पर उसने पुस्तकें लिखी।

मैमोनीदेस इस युग का एक महान् प्रतिभाशाली विद्वान था। उसने अरस्तू की रचनाओं के अरबी अनुवाद का अध्ययन करने के पश्चात् समाजशास्त्र का वैज्ञानिक विश्लेषण किया। उसकी विचार प्रणाली अत्यन्त तर्क संगत होती थी। "मिश्नेटोरा" नामक ग्रन्थ के द्वारा उसने तालमुद को व्यवस्थित रूप प्रदान किया। इसके ग्रन्थ उस समय के समाज में अत्यन्त लोकप्रिय हुए।

मध्यकाल के अन्दर इटाली में भी इब्रानी साहित्य का काफी विकास हुआ। इनमें इमानुएल बैन सोलोमन का नाम विशेष प्रसिद्ध है। उमर खैय्याम की तरह इस कवि ने भी नारी और मदिरा पर अपनी कविताएँ लिखीं। इसकी कविताओं का संग्रह "माहबरोथ इमानुएल" के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके अतिरिक्त इस युग में और भी कई कवि हुए। उसके पश्चात् चौदहवीं शताब्दी से सत्रहवीं सदी तक इब्रानी साहित्य का भविष्य ईसाइयों के भयङ्कर अत्याचारों और मारकाटों के कारण अन्धकार में रहा।

नवीन-युग

इब्रानी साहित्य के वर्तमान नवीन युग का प्रवर्तक लुज्जाटो है। लुज्जाटो की नाट्य रचनाओं में ओज और माधुर्य भरा हुआ है। इसका जन्म सन् १७०७ में और मृत्यु सन् १७४७ में हुई। इसकी रचनाओं में इसके तीन नाटक बहुत प्रसिद्ध हैं। इनके नाम "मआसे शिमशोन" "मिगडालओज" और "ला-येशरिम थेहिल्लाह" है।

इन्हीं दिनों अर्थात् अठारहवीं सदी के मध्य में इब्रानी साहित्य के लेखकों में एक प्रगतिशील आन्दोलन चला जिसका नाम "हस्कला" था। इस आन्दोलन का नेतृत्व मेण्डेलसोन नामक प्रसिद्ध व्यक्ति ने किया। मेण्डेलसोन का जन्म सन् १७२९ में और मृत्यु सन् १७८६ में हुई। यह एक उदार दृष्टिकोण का लेखक था। हस्कला से प्रकाशित होने वाले "मिश्रस्फिम" नामक पत्र का यह सम्पादक था।

इब्रानी साहित्य में उपन्यासों का आरम्भ अब्राहममापू नामक लेखक ने किया। इसका जन्म सन् १८०८ में और मृत्यु १८६७ में हुई। इसकी रचनाओं में "अहावाथ-जायन" "अश्माथ सोमरोन" इत्यादि उपन्यास उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार अब्राहम ए० कोवनेर ने इब्रानी साहित्य में समालोचना की नींव डाली।

एलिएजेरबन यहूदा ने इब्रानी भाषा का विश्वकोष सन् १९२३ में दस खण्डों में प्रकाशित कर इब्रानी साहित्य को खूब आगे बढ़ाया। इसी प्रकार जेरूसलेम के इब्रानी विश्वविद्यालय की ओर से भी इब्रानी के एक बड़े विश्व-कोष का सम्पादन सन् १९५० से प्रारम्भ हुआ है।

सन् १८६६ में "हा योम" के नाम से पहला यहूदी दैनिक पत्र "कान्तोर" के सम्पादन में निकला। कान्तोर का सहायक प्रसिद्ध पत्रकार डेविडफिशमेन था। इसने इब्रानी साहित्य को यूरोपीय साँचे में ढालने का प्रयत्न किया।

इन्हीं दिनों आइजक लोएव नामक एक प्रसिद्ध कहानीकार इब्रानी साहित्य में हुआ। इसकी रचनाओं का जनता ने बड़े प्रेम से स्वागत किया। गद्य और पद्य दोनों में उसकी कलम का जादू दृष्टिगोचर होता था।

इस नवीन युग में इब्रानी साहित्य में भिन्न-भिन्न धाराओं का सृजन हुआ। भिन्न-भिन्न प्रतिभाशाली लेखकों, कवियों, विचारकों और तत्वचिंतकों ने इस साहित्य को समृद्ध बनाने में अपना योगदान दिया। इसीके फलस्वरूप आज की इब्रानी साहित्य-प्रतिभा, विद्वता

और कला का भण्डार माना जाता है और समूचे विश्व साहित्य की यह एक महत्वपूर्ण कड़ी मानी जाती है।

इब्न-अब्द-अल-हाकम

अरबी साहित्य का एक सुप्रसिद्ध इतिहासकार जिसने मिस्र, उत्तर अफ्रीका और स्पेन पर इस्लाम की विजय का इतिहास 'फतूह-मिस्र' के नाम से लिखा, जो इस विषय का प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। इसकी मृत्यु सन् ८७० में हुई।

इब्न-अरबी

इस्लाम के रहस्यवादी सम्प्रदाय का एक प्रसिद्ध सूफी विद्वान्।

इब्न अरबी स्पेन का रहने वाला था। इसका जन्म सन् ११६५ में और मृत्यु १२४० में हुई। यह सुप्रसिद्ध वक्ता और लेखक भी था। इसकी रचनाओं में 'अल-फतूहात' और 'अल-मकीहात' नामक ग्रन्थ उत्तम माने जाते हैं।

इब्न-फजलान

एक मुसलमान यात्री, जिसने सन् ६२२ ई० में 'बोल्गा' नदी के किनारे-किनारे के नगरों की यात्रा की थी। उस समय रूस का एक सुसंगठित राष्ट्र के रूप में निर्माण नहीं हुआ था। रूसी लोगों के पूर्वज उस समय छोटे छोटे 'राजूलों' के रूप में शासन करते थे।

इब्न-फजलान ने रूसों के बारे में अपने यात्रा-विवरण में लिखा है—

"मैंने रूसों को उस समय देखा जब कि वे अपनी व्यावसायिक सामग्री को लेकर बोल्गा (इतिल) नदी के किनारे आये थे। मैंने उनके जैसे सर्वांग पूर्ण आदमी कहीं नहीं देखे। वे खजूर के वृक्ष की तरह सीधे और लाल वर्ण के होते हैं। वह न तो कुर्ता पहनते हैं न पाजामा, बल्कि उनमें से पुरुष एक तरह का चोंगा जैसा कपड़ा पहनता हैं, जिसे एक बगल से डालकर अपनी दूसरी बाँह खुली रखता था। हरेक आदमी अपनी तलवार छुरे और कटार को नहीं छोड़ता था। इनकी तलवार लम्बी तथा लहरदार होती है। पैर से कन्धे तक उनके शरीर पर हरे वृक्षों, मूर्तियों तथा दूसरी चीजों के गोदने गुदे हुए रहते हैं।

उनकी प्रत्येक स्त्री के नितम्ब के पास पति की सम्पत्ति के अनुसार लोहे, ताँबे, चाँदी या सोने की डिबिया लटकती रहती है। वह अपने कण्ठ में सोने या चाँदी की मालाएँ पहनती हैं। हर एक पुरुष जब १० हजार दिरहम का सौदा कर लेता है तो अपनी स्त्री के लिए एक माला खरीद देता है।

अल्लाह के सृष्टि करने के समय से ही ये लोग गन्दे हैं। पाखाना पेशाब के समय सफाई नहीं करते, बिलकुल जंगली गदहों के जैसे। वे अपने नगर से आकर बोल्गा नदी के किनारे बने हुए लकड़ी के घरों में ठहरते हैं। प्रत्येक के पास एक मोढ़ा होता है, जिसके ऊपर वह बैठता है। हर एक के पास अपनी सुन्दरी दासी होती है।

मरने के बाद ये मृतक की लाश को जलाते हैं। मृतक के साथ उसकी एक कोई सुन्दरी दासी भी जला दी जाती है।

इब्न-फजलान ने अपने यात्रा-वर्णन में और भी बहुत सी बातों का मार्मिक उल्लेख किया है।

इब्न-बतूता

अरब देश का प्रसिद्ध यात्री जो मुहम्मद तुगलक के जमाने में सन् १३४० के करीब भारत की यात्रा पर आया था।

इब्न बतूता एक विद्वान और जिज्ञासु व्यक्ति था। भ्रमण करने का उसे बहुत शौक था। चौदहवीं शताब्दी के प्रथम चरण में वह भारत की यात्रा पर आया। उस समय यहाँ तुगलक राजवंश का शासन था और मुहम्मद तुगलक सम्राट् के पद पर आसीन था। सम्राट ने इब्न बतूता को चीन में अपना राजदूत बनाकर भेजा। वह जमीन के रास्ते कई प्रदेशों में घूमता हुआ चीन गया। मगर वहाँ के सम्राट के दरबार में न जा सका। उसके पश्चात् उसने पश्चिमी एशिया, उत्तरी अफ्रीका इत्यादि क्षेत्रों की यात्रा

कर कुल ७५००० मील की यात्रा का रेकार्ड स्थापित किया और बड़ी सुन्दरता से अपना यात्रा विवरण तैयार करके सम्राट को सुनाया। यह यात्रा विवरण पेरिस के पुस्तकालय में अभी भी सुरक्षित है।

इब्न-मसर्राह

सूफ़ी मत में इसराकी (प्रकाशपूर्ण) शाखा का संस्थापक जिसका जन्म सन् ८८७ में और मृत्यु सन् ६३१ में हुई।

इब्न-मसर्राह स्पेन के सुप्रसिद्ध कार्डोवा नगर का रहने वाला था। सूफ़ीमत के अन्तर्गत उसने इसराकी शाखा की स्थापना की। इसकी विवेचना से उस समय के बहुत से विद्वान और प्रतिभाशाली लोग भी प्रभावित हुए। जिनमें एलेक्झेंडर हेल्स, डुंसस्कोर्ट्स, रोजर इत्यादि विद्वानों के नाम उल्लेखनीय हैं। दाँते की सुप्रसिद्ध रचना 'डिवाइन कॉमेडी' पर भी उसके विचारों का प्रभाव पाया जाता है।

इब्राहिम अल-फजारी

एक सुप्रसिद्ध अरबी लेखक, जिसने गणित और ज्योतिष के एक भारतीय संस्कृत-ग्रन्थ का अरबी अनुवाद करके अल-सिन्द-हिन्द के नाम से प्रस्तुत किया।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन से अरबी गणित और ज्योतिष के क्षेत्र में एक नई विचारधारा का जन्म हुआ। भारतीय अंकों का उल्लेख भी पहले-पहल इसी ग्रन्थ के द्वारा हुआ और यहीं से यह अंक माला अल-ख्वारेजमी के द्वारा यूरोपीय देशों में प्रचारित हुई।

इब्न-खलदून

ईसा की १४ वीं शताब्दी के अन्त में अरबी साहित्य का प्रसिद्ध इतिहासकार और दार्शनिक। जिसने राजनीति-शास्त्र और इतिहास पर प्रामाणिक ग्रन्थों की रचना की।

इब्राहीम लोदी

लोदी-खानदान का एक सुलतान, सिकन्दर लोदी का बेटा, समय सन् १५१७ से १५२६ तक।

तवारीख-इ-दाऊदी के अनुसार इब्राहीम लोदी अपने वंश के अन्य लोदियों की भाँति चालबाज न था। वह बहादुर, नेक और प्रजा-पालक शासक था।

लोदी खानदान के सुलतान अपने को पठान या अफगान मानते थे। सुलतान बहलोल लोदी (१४५०-१४८६ ई०) ने लगातार २६ वर्ष तक लड़ाई करके जौनपुर राज्य जीत लिया। दिल्ली रियासत इस समय में पंजाब से लेकर बनारस तक फैल गयी। उसके पुत्र सिकन्दर लोदी ने (१४८६-१५१७ ई०) बिहार को भी जीत लिया। वह बड़ा स्थायी शासक था। उसके समय में देश सुखी और सम्पन्न था। इब्राहीम लोदी इसी सिकन्दर का बेटा था।

इब्राहीम लोदी अपने सरदारों की शक्ति घटाना चाहता था। इसलिये वे उससे बहुत बिगड़ गये और सारे राज्य में हलचल मच गई। मौका पाकर पंजाब के सूबेदार दौलत खाँ ने मुगल सरदार बाबर के यहाँ हिन्दुस्तान पर चढ़ाई करने का सन्देश भेजा। बाबर जब विजय करता हुआ लाहौर तक पहुँच गया, तब दौलत को अपनी गलती मालूम हुई और बाबर के खिलाफ लड़ने लगा, पर बाबर को रोक न सका।

अन्त में पानीपत की पहली लड़ाई में मुगल सरदार बाबर ने इब्राहिम लोदी को सन् १५२६ ई० में हरा दिया और लोदी वंश को समाप्त कर उसने हिन्दुस्तान में 'मुगल-साम्राज्य' की नींव डाली।

चूँकि अफगान सरदार इब्राहीम लोदी से नाराज रहते थे, इसलिए उन्होंने उसे युद्ध में कोई मदद न दी और यही इब्राहीम की हार का प्रधान कारण हुआ। यहीं से मुगल-साम्राज्य का बीजारोपण हो गया।

इब्राहिम आदिल शाह द्वितीय

बीजापुर का राजा, जो सन् १५८० में गद्दी पर बैठा। जिस समय इब्राहिम आदिल शाह द्वितीय गद्दी पर बैठा, उस समय इसकी उम्र ९ वर्ष की थी। इसकी नाबालिगी

में चाँदबीबी सुल्ताना ने रक्षक की भाँति इसके राज्य का कार्य चलाया। सन् १६२६ में इब्राहिम आदिलशाह की मृत्यु हुई। इसकी स्मृति में 'इब्राहिम का रौजा' नामक एक बड़ी सुन्दर इमारत बीजापुर में बनी हुई है, जिसकी दीवार पर कुरान की आयतें अरबी भाषा में खुदी हुई हैं।

इब्राहीम कुतुब शाह

गोलकुण्डा के राजा कुली कुतुबशाह का पुत्र।

कुली कुतुबशाह के भाई जमशेद कुतुबशाह की मृत्यु पर उसके पुत्र सुभान कुली को राजा बनाया गया। उस समय सुभान की उम्र १२ वर्ष की थी, इसलिए उसे अयोग्य समझ कर सब लोगों ने इब्राहिम कुतुबशाह को गोलकुंडा का राजा बनाया। सन् १५५० ई० में इसको गोलकुंडा का राजपद मिला। इसने दूसरे मुसलमान राजाओं से मिल कर विजयानगरम् के महाराजा रामराज पर आक्रमण कर उसको मार डाला और उसके राज्य को आपस में बाँट लिया।

१५८१ में इसकी मृत्यु हो गई।

इब्राहिम निजाम शाह

अहमद नगर का राजा। बुरहान निजाम का पुत्र, जो १५९५ ई० के अप्रैल मास में गद्दी पर बैठा, मगर चार मास ही राज्य करने के पश्चात्-इब्राहिम आदिलशाह के साथ की लड़ाई में यह मारा गया।

इब्राहिम शाह शरकी

उत्तर प्रदेश में जौनपुर का एक नवाब, जो सन् १४०२ में अपने भाई मुबारिक शाह के मरने के बाद गद्दी पर बैठा। अराजकता का युग होने पर भी इसके समय में साहित्य की बड़ी उन्नति हुई। इसके समय में जौनपुर सारे भारत में विद्या का एक आकर्षक केन्द्र बन गया था।

सन् १४४० ई० में इसकी मृत्यु हो गई।

इमानुएल बेन-सोलोमन

इटली में इब्रानी साहित्य का प्रसिद्ध कवि और लेखक। समय १२६५—१३३०

इमानुएल की कविताएँ विनोद और व्यंग्य से परिपूर्ण और लौकिक विषयों से सम्बन्धित हैं। सुरा और सुन्दरी पर भी उसने अपने युग के अनुसार चटपटी कविताएँ की हैं। उसकी रचनाओं का संग्रह 'माहबरोथ इमानुएल' के नाम से किया गया है।

बाइबिल पर भी उसने एक टीका लिखी थी।

इमानुएल-गीबेल

जर्मनी के म्युनिख नगर का एक प्रसिद्ध लीरिककार, जो १९ वीं सदी के मध्य में हुआ।

सन् १८४८ में जर्मनी के अन्दर 'लीरिक' के क्षेत्र में एक नवीन विचारधारा का प्रचार हुआ और 'कला-कला के लिए' यह नारा वहाँ के लीरिककारों में बुलन्द हुआ। इमानुएल गीबेल उस दल का नेता था। किसी विशेष उद्देश्य की सिद्धि के लिए साहित्य की रचना करने का वह विरोधी था। ग्रीक-साहित्य के 'पेरीक्लीज-युग' को वह आदर्श मानता था। बवेरिया की राजधानी में राजा मैक्समीलियन द्वितीय के दरबार में इमानुएल की बड़ी प्रतिष्ठा थी।

इमर्सन

(Ralph Waldo Emerson)

अमेरिका का महान् तत्व-चिंतक, विचारक और ग्रन्थकार राल्फ वाल्डो एमर्सन जिसका जन्म सन् १८०३ में और मृत्यु १८८२ में हुई।

एमर्सन संसार के उन विचारकों में से एक है जिसने अपने गम्भीर चिन्तन से सारे संसार के विचारकों को प्रभावित किया। वह स्वयं भी हेनरी डेविड थोरो नामक विचारक की विचारधारा से प्रभावित था।

एमर्सन की रचनाओं में "नेचर" "दी अमेरिकन स्कालर", "दि डिवीनिटी स्कूल एड्रेस" इत्यादि रचनाएँ

बहुत प्रसिद्ध हैं। "नेचर" नामक ग्रन्थ में इस लेखक ने थोथी ईसाईयत और अमरीकी भौतिकवाद की कड़ी आलोचना की है। इस महान् लेखक ने मानव-समाज के उस उज्ज्वल भविष्य की ओर संकेत किया है जब उसकी आन्तरिक विशिष्टता इस संसार को स्वर्ग बना देगी।

रचनाओं के अतिरिक्त समय-समय पर भिन्न-भिन्न संस्थाओं में दिये हुए उसके व्याख्यान भी अमेरिकन साहित्य के अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग हैं। सन् १८३७ में हावर्ड विश्वविद्यालय में इसने इंग्लैण्ड की साहित्यिक दासता के विरुद्ध अमरीकी साहित्य के स्वतंत्र अस्तित्व की घोषणा की। १८३८ में इसने रूढ़िवादी ईसाई धर्म और उसमें प्रतिपादित ईसा के ईश्वरत्व की कड़ी आलोचना की। इस भाषण में इमर्सन ने अपने अध्यात्म-दर्शन का सार भी बतलाया।

इमर्सन एक प्रकृतिवादी तत्वचिंतक था तथा वैयक्तिक आध्यात्मिक स्वतंत्रता में विश्वास रखता था। इस दिशा में उसने पैसिव रेजिटेन्स के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। महात्मा गांधी की विचारधारा भी इमर्सन से बहुत प्रभावित थी और उन्होंने पैसिव रेजिटेन्स के सिद्धान्त का ही अपने सत्याग्रह शब्द में प्रयोग और प्रचार किया।

इमर्सन भारतवर्ष की आध्यात्मिक विचारधारा से बहुत प्रभावित था। गीता, उपनिषद् और प्राच्य दर्शनशास्त्र का उसने गम्भीर अध्ययन किया था। उसकी "ब्रह्म" नामक सन् १८५७ में प्रकाशित कविता में तथा अन्य रचनाओं में भारतीय विचारधारा की छाप स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है।

इमर्सन की सारी विचारधारा और उसके आध्यात्मिक चिंतन का केन्द्रबिन्दु उसी के द्वारा निर्मित "ओवर सोल" शब्द है, जो एक विश्वव्यापी तथ्य है और यह सारा संसार उसी "एक" का अंशमात्र है।

इमर्सन की अन्य कृतियों में "लाइफ विदाउट प्रिन्सिपल" "दी मेनहुड्स" ' केपकाड" "लाइफ इन दी उड्स" इत्यादि प्रसिद्ध हैं।

इञ्जील

ईसाई धर्म के परम पवित्र ग्रन्थ बाइबिल के एक अङ्ग को इञ्जील कहते हैं।

(विशेष वर्णन ईसा के प्रकरण में देखिये।)

इम्परेटर

सम्राट् की पदवी का पुराना नाम जिसे शुरू में ऑगस्टस सीजर ने ग्रहण किया। इसी शब्द से अंग्रेजी के 'एम्परर' शब्द की उत्पत्ति हुई।

इब्राहीम द्वितीय तमगाच खान

मध्यएशिया के अन्तर्वेद में कराखानी राजवंश का एक नेता जिसका समय सन् १०५६ से १०६८ तक है।

ईरान में सुप्रसिद्ध सामानी राजवंश का अन्त हो जाने पर मध्यएशिया में काराखानी-वंश का जोर बढ़ा। इब्राहीम तमगाचखान इसी वंश का शासक था। यह बड़ी धार्मिक वृत्ति का और फकीरी जीवन व्यतीत करने वाला खान था। अपने खर्च के लिए यह राजकीय खजाने से पैसा नहीं लेता था और न मुसलमान साधुओं की राय लिए बिना कोई टैक्स लगाता था। अली वंशज अबू-शुजा नामक एक फकीर ने उसे कह दिया कि "तुम सुलतान होने लायक नहीं हो" इस पर उसने अपने महल का दरवाजा बन्द कर राज्य सिंहासन छोड़ना चाहा। लोगों ने बहुत समझा-बुझा कर उसे रोका।

सलजुकी लोगों की अपेक्षा काराखानी अधिक सभ्य और सुसंस्कृत थे। इब्राहीम तमगाच खान ने सबसे पहले देश में शान्ति स्थापित करने का प्रयत्न किया। उस समय वहाँ चोरियाँ बहुत होती थीं। खान ने सब चोरों को एकबार घरों में से ढूँढ़-ढूँढ़ कर पकड़वा मँगाया और ३०० चोरों को फाँसी दे दी। तब से उसके राज्य में चोरियाँ बहुत कम हो गयीं।

इब्राहीम मुल्ला और मौलवियों को भी उनकी प्रजा विरोधी कार्यवाहियों के लिए कड़ा दण्ड देता था। समरकन्द के एक मशहूर मुसलमान इमाम अबुल कासिम को उसने

इसीलिए कत्ल करवा दिया। इतने पर भी जनता मुल्लाओं के साथ न रह कर खान के साथ रही। क्योंकि वह प्रजा-पालन का बड़ा खयाल रखता था।

इमानुएल द्वितीय

पहले इटली के सार्डीनिया प्रान्त और पौडमीएट का राजा और बाद में समस्त इटली राज्य का राजा विक्टर इमानुएल।

राजा इमानुएल का आविर्भाव इटली के अन्दर ऐसे समय में हुआ जबकि इटली एक महान् क्रान्ति के बीच में से गुजर रहा था। सन् १८४८ की क्रान्ति असफल हो चुकी थी, हजारों देशभक्त कैद में पड़े सड़ रहे थे और सैकड़ों तलवार के घाट उतार दिये गये थे।

इटली का रिपब्लिकन दल जिसका नेता ग्वीसेप मेजिनी था। वह सब राजवंश और राजगद्दियों का अन्त करके सारे इटली में रिपब्लिकन शासन की स्थापना करना चाहता था। दूसरा दल पोप के नेतृत्व में इटली की बिखरी हुई शक्तियों को एकत्रित करके संगठित करना चाहता था।

मगर इटली का भविष्य इन दोनों दलों के हाथ में नहीं था। वह एक तीसरे दल के हाथ में था जो सार्डीनिया के राजा विक्टर इमानुएल द्वितीय के नेतृत्व में सम्पूर्ण इटली राष्ट्र को संगठित करना चाहता था। सार्डीनिया का यह नवयुवक राजा बहुत प्रतिभाशाली, उन्नत विचारों का तथा साहसी था।

इमानुएल को समर्थन देने वाले इस दल का नेता काबूर था जो पीडमौएट का रहने वाला था। वह राजा रहित रिपब्लिक दल की स्थिति पर विश्वास नहीं करता था। वह इंग्लैण्ड की शासन-व्यवस्था का समर्थक था। उसके मत से राजा होना आवश्यक था मगर उसकी शक्तियों पर पार्लमेंट और व्यवस्थापक सभा का नियंत्रण होना चाहिए।

सन् १८५२ में काबूर राजा इमानुएल का प्रधान मंत्री बना। उसने उस समय के नेता मेजिनी और गैरीवाल्डी से बात करके पौडमीएट के राजा के द्वारा अपने देश का उद्धार करने को राजी कर लिया और फिर फ्रांस के राजा नैपोलियन तृतीय को मिलाकर उससे सैनिक सहायता प्राप्त करने का वचन ले लिया।

परिणामस्वरूप सन् १८५६ में आस्ट्रिया का पौडमीएट के साथ युद्ध प्रारम्भ हो गया। युद्ध प्रारंभ होते ही नैपोलियन तृतीय की सेनाएँ भी पौडमीएट पर पहुँच गईं। उस समय सारे इटली के नौजवानों में राष्ट्रीयता और देशभक्ति के भावों का प्रवाह दौड़ गया। यूरोप के अन्य देशों की सहानुभूति पौडमीएट के साथ थी।

लड़ाई केवल दो महीने चली। मेजएटा और साल्फेरिना की लड़ाइयों में आस्ट्रियन सेनाएँ बड़ी बुरी तरह पराजित हुईं।

इमानुएल द्वितीय ने बड़ी धूमधाम के साथ लोम्बार्डी की राजधानी मिलन में प्रवेश किया। टस्कनी, परमा और मोडेना के हाप्स बुर्ग वंशी राजाओं को राज्यच्युत किया गया। पोप राज्य के उत्तर प्रदेशीय लोगों ने पोप के अधीन रहने से इन्कार किया और वे पौडामीएट राज्य में सम्मिलित होने की माँग करने लगे।

इस प्रकार इटली की शक्ति को तेजी से बढ़ती देख नैपोलियन तृतीय डर गया और वह इस युद्ध से अलग होकर आस्ट्रिया से सन्धि करने को तैयार हो गया। इस घटना के फलस्वरूप युद्ध का तख्ता पलट गया और पौडामीएट को भी आस्ट्रिया के साथ ज्यूरिख की सन्धि करने के लिए बाध्य होना पड़ा। इस सन्धि में यद्यपि लोम्बार्डी का प्रदेश, परमा, मोडेन तथा टस्कनी इमानुएल को मिल गया पर वेनेटिया, नीस और सेवाय के प्रदेश उसे नहीं मिल सके।

पर उसके बाद गैरीवाल्डी ने अपने राष्ट्रीय स्वयंसेवकों की सहायता से नेपल्स, सिसली इत्यादि इटली के दक्षिणी हिस्सों पर भी कब्जा कर लिया। इस प्रकार रोम और वेनेटिया इन दो स्थानों को छोड़ कर सारा इटली एकता के सूत्र में बँध गया और १७ मार्च १८६१ को विक्टर इमानुएल द्वितीय इटली का राजा घोषित किया गया। इसी वर्ष काबूर का देहान्त हो गया। सन् १८६६ में वेनेटिया भी इमानुएल के अधिकार में आ गया और सन् १८७० में जब फ्रांस और प्रशिया का युद्ध शुरू हुआ

तब एक इटालियन सेना ने रोम पर आक्रमण कर दिया। पोप भाग कर एक महल में छिप गया और रोम भी इटली के अधिकार में आ गया। सन् १८७१ में इटली राष्ट्र की राजधानी रोम में स्थापित हुई। पार्लमेंट का उद्घाटन करते हुए विक्टर इमानुएल ने कहा कि "हमारी राष्ट्रीय एकता स्थापित हो गई है अब हमारा काम राष्ट्र को महान् तथा समृद्ध बनाना है।"

इम्फ़ाल

भारतवर्ष की उत्तर पूर्वी सीमा पर बसा हुआ एक नगर जो मनीपुर-राज्य की राजधानी है।

रेलवे स्टेशन डीमापुर (मनीपुर रोड) से १३४ मील के तङ्ग पहाड़ी रास्ते को तय करने के पश्चात् इम्फाल में पहुँचा जाता है। पहले यह रियासत एक राजा के अधीन थी, पर अब भारत सरकार के नार्थ ईस्ट फ्रण्टियर के प्रशासन में आ गई है।

भारत की सीमा पर दुर्गम पहाड़ी क्षेत्रों में स्थित होने के कारण सामरिक दृष्टि से इस क्षेत्र का बड़ा महत्व है। द्वितीय महायुद्ध के समय नेताजी सुभास बोस की 'आजाद हिन्द-सेना' ने इसी मार्ग से होकर भारतवर्ष में प्रवेश किया था। १८ मार्च सन् १९४४ को आजाद हिन्द फौज ने भारत की सीमा में प्रवेश कर कोहिमा और मोराई पर अधिकार करके इम्फ़ाल पर घेरा डाल दिया था। यद्यपि बाद में अंग्रेजों की भारी संगठन-शक्ति के कारण आजाद हिन्द सेना को पराजित होना पड़ा पर उस समय से इम्फ़ाल का महत्व सैनिक दृष्टिकोण से बड़ा प्रसिद्ध हो गया।

इम्फ़ाल के आस-पास ही प्रसिद्ध उपद्रवकारी नागाओं का वह क्षेत्र है जहाँ पर भारत गवर्नमेंट ने 'नागा लैण्ड' की स्थापना की है। फिर भी नागाओं के उपद्रव अभी तक चालू हैं।

इस क्षेत्र में बनने वाला मणीपुरी कपड़ा कलापूर्ण कारीगरी के कारण भारत में सब दूर और विदेशों में भी कई स्थानों पर निर्यात होता है। यह नगर भारत के अन्य भागों तथा बर्मा के साथ पक्की सड़क और वायु-मार्ग से जुड़ा हुआ है।

इयासु

जापान में तोकुगावा शोगुन शाही की सत्ता को स्थापित करने वाला पराक्रमी नेता इयासु जो सन् १६०३ में विद्यमान था।

उन दिनों "शोगुन" (प्रधानमंत्री) का पद जापान में बड़ा महत्वपूर्ण हो गया था और सम्राट् की आड़ में यही लोग वास्तविक शासन करते थे। शोगुन का पद प्राप्त करने के लिए भिन्न-भिन्न सामन्त-कुलों में कड़े संघर्ष चलते रहते थे। सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में तोकुगावा वंश के पराक्रमी व्यक्ति "इयासु" ने दूसरे सब प्रतिद्वन्दियों को परास्त कर तोकुगावा वंश को शोगुन के गौरवमय पद पर प्रतिष्ठित किया। यह तोकुगावा शोगुन शाही सन् १६०३ से १८६७ तक अर्थात् ढाई सौ वर्ष से अधिक समय तक जापान में चलती रही।

इराकी

ईरानी-साहित्य में सूफी दृष्टिकोण से कविता करने वाला प्रसिद्ध कवि, जो ईसा की १३ वीं शताब्दी के मध्य में हुआ।

इराकी के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'लमाआत' में रहस्यवादी प्रेम का वर्णन है। इराकी अपने रहस्यवादी प्रणय में 'सूरदास' और 'मीराबाई' की तरह काफी शृंगारिक हो गया है। सूफियों में इसके 'गुलशने राज' नामक ग्रन्थ का बड़ा मान है।

इराकी के लमाआत ग्रन्थ का भाष्य अरबी के सुप्रसिद्ध कवि जामी ने 'अशी-अतुल लमाआत' के नाम से गद्य में किया है।

इरयीमन तम्पी

मलयालम साहित्य के प्रसिद्ध गीतकार, जिनका जन्म सन् १७८३ में और मृत्यु सन् १८५६ में हुई।

इरयीमन तम्पी प्रसिद्ध गीतकार और संगीत-शास्त्र के गम्भीर पण्डित थे। यह मलयालम भाषा में 'कथकली' साहित्य के प्रसिद्ध कवि थे। उन्होंने सैकड़ों सरस गीत

रचकर साहित्य की बड़ी सेवा की। उनकी बनाई हुई बच्चों की एक लोरी केरल प्रान्त का बच्चा-बच्चा जानता है। उसे गाकर लोग आनन्द-सागर में डुबकियाँ लगाते हैं। इसी एक रचना से वह कवि-तिलक बन गये। उनके और भी कई गीत लोकप्रिय हैं, जो शृंगार-रस प्रधान हैं। सरल, अर्थयुक्त, लयपूर्ण और सुकोमल गीतों की रचना में वे मलयालम साहित्य में बेजोड़ हैं। उनकी रचनाओं से कथकली साहित्य में उमंग, चैतन्य और स्फूर्ति पैदा हो गई। उनकी रचनाओं में 'कीचक बधम्' 'उत्तरा-स्वयम्बरम्' 'दत्तयागम्' इत्यादि प्रसिद्ध हैं। इसमें उत्तरा-स्वयंवरम् के गीत अत्यन्त उत्कृष्ट हैं।

इराटोस्थनीज

लीबिया का रहने वाला एक महान् खगोल-शास्त्री और वैज्ञानिक जिसका समय ईस्वी सन् पूर्व २७६ से १९६ तक है।

इराटोस्थनीज आधुनिक लीबिया के साइरन नामक नगर के रहने वाले थे। इनका जन्म ईस्वी सन् पूर्व २७६ में हुआ था। ये अपने समय के प्रमुख वैज्ञानिक, कवि और साहित्यकार थे। इनके लिखे हुए ग्रन्थों में इस समय केवल "कैटस्टरिमी" नामक रचना उपलब्ध है। इस ग्रन्थ में खगोलशास्त्र से सम्बन्ध रखने वाले नक्षत्रों इत्यादि की विस्तृत तालिका और उनका परिचय दिया गया है। इसी ग्रन्थ के कारण आधुनिक युग में उन्हें एक खगोलशास्त्री और गणितज्ञ के रूप में स्वीकार किया जाता है।

इराटोस्थनीज की सबसे महत्वपूर्ण खोज पृथ्वी की—जिसे उस समय गोल माना जाने लगा था—परिधि की गणना करना है।

मिस्र के दक्षिणी नगर साइरन में निवास करते हुए इराटोस्थनीज ने एक नवीन तथ्य की खोज की। उन्होंने २२ जून को जब कि सूर्य भूमध्य रेखा पर रहता है, देखा कि साइरन के एक कुएँ में सूर्य की किरणें कुएँ की जगत की परछाँई किये बिना सीधे कुँएँ की तली तक पहुँच रही है। इस तथ्य से उन्होंने यह परिणाम निकाला कि यह कुँआ कर्क-राशि के अयन वृत्त में है, जहाँ सूर्य अपनी शीत कालीन और वसन्त कालीन प्रगति बन्द कर दक्षिणी यात्रा प्रारम्भ करता है।

सिकन्दरिया और साइरन दोनों ही नगर एक ही देशान्तर रेखा की उत्तरी और दक्षिणी पंक्ति पर अवस्थित हैं। २२ जून को सबसे बड़े दिन पर जब कि साइरन के कुँए में जगत की परछांई नहीं पड़ती थी तब उसी समय सिकन्दरिया के कुँए में जो वहाँ से पाँच सौ मील उत्तर में परछाँई पड़ती थी।

इराटोस्थनीज ने इस परछाँई को नाप कर हिसाब लगाया कि साइरन और सिकन्दरिया की दूरी ७ अंशों का प्रतिनिधित्व करती है। इस पर उन्होंने २ नगरों की दूरी ५०० मील का ५० से गुणा कर पृथ्वी की पूरी परिधि २५००० मील है—इस तथ्य की घोषणा की।

आधुनिक खोजों में पृथ्वी की परिधि २४९०२ मील साबित हुई है। ऐसी स्थिति में इराटोस्थनीज की यह गणना असली तथ्य के कितनी नजदीक पहुँच गई थी, यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

इराटोस्थनीज ने ऐतिहासिक घटनाओं की वैज्ञानिक गणना का कार्य भी किया था। उन्होंने ट्राय की विजय के वर्ष से ऐतिहासिक घटनाओं के पूर्वापर क्रम का निर्धारण किया था।

इराटोस्थनीज सिकन्दरिया के तत्कालीन विशाल पुस्तकालय के अध्यक्ष थे। अपने समय में यह पुस्तकालय सारे संसार में ज्ञान का एक महान् केन्द्र माना जाता था।

आँखों की रोशनी क्रमशः कम होती देख अन्धे हो जाने के भय से इस महान् वैज्ञानिक ने अन्न-जल छोड़ कर अपने प्राणों का त्याग किया था।

इरविंग वाशिंगटन

अमेरिका का एक सुप्रसिद्ध लेखक वाशिंगटन इरविंग जिसका समय सन् १७८३ से १८५९ तक है।

वाशिंगटन इरविंग अमेरिका के ऐसे लेखकों में से एक था जिसकी इंगलैंड में बहुत अधिक प्रशंसा हुई। इसकी कृतियों में लेखन के साथ २ हास्य और विनोद का काफी

समावेश रहता था। इसकी कृतियों में "ब्रेस ब्रिजहाल" "दी अलहम्ब्रा" "श्रोलिवर गोल्ड स्मिथ" श्रौर "वाशिंगटन" (जीवनी) नामक पुस्तकें बहुत प्रसिद्ध हैं।

इरैसिसट्रेटस (Erasistratus)

शरीर-क्रिया-विज्ञान (Physiology) का प्रथम आचार्य जिसका जन्म यूनान में हुआ।

शरीर-क्रिया-विज्ञान का शास्त्रीय ढंग पर विवेचन करने वाला प्रथम व्यक्ति इरैसिसट्रेटस माना जाता है। पाश्चात्य जगत में इसे 'फॉदर ऑफ फिजियालौजी' कहा जाता है।

इरास्मस

पन्द्रहवीं शताब्दी में यूरोप के ह्यूमेनिस्ट आंदोलन का प्रमुख नेता।

यूरोप में मार्टिन लूथर के प्रोटेस्टेंट आन्दोलन के पूर्व उसकी आधारशिला के रूप में कुछ ऐसे संगठन बन गये थे जो धर्माध्यक्षों, पादरियों श्रौर महन्तों की बुराइयों की आलोचना करते थे। इनमें सबसे प्रधान संगठन ह्यूमेनिस्टों का था।

'इरास्मस' ह्यूमेनिस्टों का प्रमुख नेता था। वाल्टेयर के अतिरिक्त किसी भी यूरोपीय विद्वान ने अपने जीवन-काल में इतना अधिक यश उपार्जन नहीं किया जितना इरास्मस को प्राप्त हुआ। यद्यपि उसका जन्म सेटर्ड में हुआ था तथापि वह डच नहीं कहा जाता था। वह दुनिया भर का निवासी था। इंगलैण्ड, फ्रान्स, इटली, स्पेन सभी उसे अपना मानते थे।

सन् १५५५ से १५६३ तक वह इंगलैंण्ड में रहा श्रौर इस अर्से में उसने वहाँ के गण्यमान्य विद्वानों से काफी घनिष्ठता प्राप्त कर ली। "यूटोपिया" नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ के लेखक सर टॉमस मूर श्रौर सेण्टपाल के पत्रों के व्याख्याता जॉन कालेट से उसकी काफी घनिष्ठता थी। इंगलैंड में रह कर उसने बाइबिल के न्यू टेस्टामेंट का शुद्ध संस्करण अपनी व्याख्या के साथ प्रकाशित किया। न्यू टेस्टामेंट की प्रस्तावना में उसने लिखा है कि—

"समस्त ईसाई स्त्री-पुरुषों को बाइबिल तथा सेण्ट पाल के पत्रों को पढ़ना चाहिए। किसान अपने खेत में, कारीगर अपनी दुकान में श्रौर यात्री अपने मार्ग में अपना समय बाइबिल पढ़ने में बितावें।"

इरास्मस का कथन था कि धर्मसंस्था लापरवाह हो गई है श्रौर धर्मशास्त्रियों के जटिलवाद में पड़कर ईसामसीह के सरल सिद्धान्त लुप्त हो गये हैं। अपनी प्रेज ऑफ फॉली (Praise of folly) नामक पुस्तक में उसने महन्तों श्रौर धर्मशास्त्रियों तथा कर्मकाण्डियों की कठोर आलोचना की है।

शुरू-शुरू में अपने उद्देश्य में इस सुधारवादी विचारक को काफी सफलता मिली। मगर आगे जाकर कुछ लोग उसके खिलाफ हो गये श्रौर उसका अन्तिम जीवन बड़े कष्ट में बीता।

इरा रेमसेन

सेकरीन नामक मीठे द्रव्य का आविष्कार करने वाला सुप्रसिद्ध रसायन-शास्त्री इरा रेमसेन।

सन् १८७६ में प्रसिद्ध अमेरिकन रसायनशास्त्री इरा 'रेमसेन' श्रौर उनके शिष्य फालवर्ग ने सेकरीन नामक एक ऐसे मीठे तत्व का आकस्मिक ढङ्ग से आविष्कार कर डाला जो शक्कर से ५५० गुना अधिक मीठा होता है।

उस समय ये दोनों रसायन-शास्त्री आर्थो-टोल्यूइन साल्फोनिक अम्ल से आर्थो सल्फो बेंजोइक अम्ल बनाने का प्रयत्न कर रहे थे। एक दिन प्रयोग करने के पश्चात् जब वे दोनों चाय पी रहे थे तो उन्हें पीने में वह चाय बहुत अधिक मीठी श्रौर अजीब स्वाद की लगी। उनकी अंगुलियाँ भी उन्हें चाटने पर बहुत मीठी लगीं, जिससे उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उसकी जाँच करने पर मालूम हुआ कि यह मिठास "अर्थो—सल्फो बेंजोइक" की वजह से ही हुआ था। इसके फलस्वरूप उसी समय 'सेकरिन' के आविष्कार की नींव पड़ी।

इरियन

दक्षिण पूर्वी एशिया में हॉलैण्ड का एक उपनिवेश, जो इण्डोनेशिया से सम्बद्ध है। इसका क्षेत्रफल १,६१००० वर्ग मील और जन संख्या नौ लाख है। इसका दूसरा नाम पश्चिमी न्यूगिनी भी है।

डच-सरकार ने इंडोनेशिया को स्वतंत्र करने के बाद भी इरियन को अपने ही कब्जे में रखा। तब इंडोनेशिया की स्वतन्त्र सरकार ने इण्डोनेशिया के अन्य भागों की तरह पश्चिमी इरियन पर भी अपना दावा पेश किया। मगर डच-सरकार ने यह कह कर उस दावे से इनकार किया कि पश्चिमी इरियन इंडोनेशिया से अलग एक स्वतंत्र इकाई है। यहाँ के निवासी 'पापुआ' जाति के लोग इण्डोनेशियन लोगों से भिन्न हैं और वे स्वयं स्वतन्त्रता की आकांक्षा रखते हैं।

इस प्रकार डच-सरकार और इंडोनेशियन सरकार के बीच एक जोरदार तनातनी बढ़ती गई और भारत में 'गोवा मुक्ति-अभियान' के २४ घण्टे बाद इंडोनेशिया के राष्ट्रपति सुकार्णो ने 'पश्चिमी इरियन-मुक्ति अभियान' का आदेश दे दिया। सोवियट रूस और जेकोस्लाविया ने इंडोनेशिया को भारी मात्रा में शस्त्र भी पहुँचाना प्रारम्भ कर दिया।

तब राष्ट्र-संघ के महामन्त्री की अपील और अमेरिका के प्रयास से दोनों पक्ष वार्ता के लिए तैयार हुए। सन् १९६२ में समझौता हो गया। जिसके अनुसार पश्चिमी इरियन का प्रशासन १ अक्टूबर १९६२ से १ मई १९६३ तक राष्ट्र-संघ के नियंत्रण में रहा और १ मई सन् १९६३ ई० को वह इंडोनेशियन सरकार को इस शर्त पर सौंप दिया गया कि सन् १९६९ में आत्म-निर्णय के लिए वहाँ पर जनमत-संग्रह किया जाय और उसके परिणाम के अनुसार ही वहाँ की भावी व्यवस्था की जाय।

इन्दुलाल याज्ञिक

गुजरात के एक प्रसिद्ध राजनैतिक कार्यकर्त्ता, सम्पादक और साहित्यकार।

इन्दुलाल याज्ञिक पहले गांधीजी के "नवजीवन और सत्य" नामक मासिक पत्र जो पीछे जाकर साप्ताहिक हो गया था, का सम्पादन करते थे। इन्होंने इस पत्र के द्वारा गुजराती गद्य में एक नवीन सरल शैली का प्रारम्भ किया। इस शैली ने अर्वाचीन गुजराती गद्य के विकास में बड़ा महत्वपूर्ण योग दिया।

इनकी रचना "कुमारनां स्त्री रत्नों" में इन्होंने भारतीय नारीत्व के छः स्वाभविक चित्रणों का चित्रण किया है। इन चित्रों में आधुनिक ढंग की शिक्षा पाई हुई छः कुमारिकाओं और महिलाओं का, पौराणिक परम्परा का आधार लिये बिना, ऐसा चित्रण किया है जो हमारे सामाजिक ढाँचे में आसानी के साथ फिट हो गया है और आधुनिक शिक्षा उनके मार्ग में बिलकुल बाधक नहीं हुई है।

इन्दुलाल याज्ञिक हमेशा कांग्रेस और महात्मा जी के अनुयायी रहे, मगर आजादी के बाद बम्बई को गुजरात प्रान्त से अलग करते समय उनका कांग्रेस से मतभेद हो गया और उन्होंने कांग्रेस से अलग होकर उसके विरुद्ध अहमदाबाद में एक प्रभावशाली आन्दोलन का संचालन किया था।

इलाचन्द्र जोशी

हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार जिनका जन्म सन् १९०२ में अल्मोड़ा में हुआ।

पं० इलाचन्द्रजोशी हिन्दी-साहित्य के मँजे हुए उपन्यास कारोंमें से एक हैं। इनके उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण, गम्भीर अध्ययन और भाषा की प्रौढ़ता स्पष्ट रूप से झलकती है। इनकी रचनाओं में घृणामयी, सन्यासी, चार उपन्यास इत्यादि रचनाएँ प्रसिद्ध हैं।

इलाहाबाद

भारत की पवित्र और प्राचीन महानगरियों में से एक नगरी प्रयाग का मुसलमानी काल में बदला हुआ नाम इलाहाबाद।

प्रयाग का महत्व और इतिहास बहुत पुराना है और उसका वर्णन हम "प्रयाग" नाम के अन्तर्गत आगे के भागों में करेंगे। इस स्थान पर हम इस नगरी का वहीं से वर्णन करेंगे, जहाँ से इसका इलाहाबाद नाम प्रारम्भ हुआ।

इलाहाबाद का नामकरण सम्राट् अकबर के द्वारा किया हुआ है। उनको इस स्थान से अधिक दिलचस्पी थी और उन्होंने सन् १५८३ में गंगा, यमुना और सरस्वती के पवित्र संगम-तट पर एक बढ़िया किला बनवाया और उस किले के साथ-साथ इस क्षेत्र का नाम भी प्रयाग के बदले इलाहाबाद रक्खा गया। अंग्रेजी सरकार ने भी अपने शासन में इसे इलाहाबाद के नाम से स्वीकार किया। तब से यह क्षेत्र इलाहाबाद के ही नाम से प्रसिद्ध हुआ। अबुल फजल के मतानुसार प्राचीन काल में इस शहर का नाम "प्रयाग" था। बादशाह अकबर ने इसका नाम इलाहाबाद रक्खा और १५८३ में वहाँ पर पत्थर का एक किला बनवाया।

सम्राट् अकबर ने अपने प्रसिद्ध दरबारी राजा मानसिंह (जयपूर) को जब वे इलाहाबाद में आये थे, प्रयाग का वह भाग बख्शीस में दिया था, जहाँ आजकल कटरा की घनी बस्ती तथा म्योर कालेज आबाद है।

सन् १६६५ में फ्रांसीसी यात्री ट्विनियर इलाहाबाद आया था उसने इस शहर तथा किले के भीतर की अनेक सुन्दर इमारतों का उल्लेख किया है।

लगभग अठारहवीं सदी के प्रारम्भ तक यह शहर मुगल गवर्नरों के आधीन रहा। उसके बाद सम्राट् फर्रुखसियर ने छबीलाराम नामक ब्राह्मण को यहाँ का गवर्नर नियुक्त किया।

छबीला राम के भतीजे गिरिधर ने अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए साम्राज्य से विद्रोह कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप यह स्थान गिरिधर के हाथ से निकल कर सैय्यद हुसेन की गवर्नरी में आया। इसके पश्चात् दो चार मुगल गवर्नर और हुए और बाद में यह सूबा अवध के नबाब वजीर के अधिकार में चला गया।

सन् १७६५ में इलाहाबाद में एक संधि हुई। इस संधि के अनुसार इलाहाबाद और कड़ा नवाब वजीर से लेकर अंग्रेजों ने बादशाह शाह आलम को दे दिये। मगर जब शाह आलम अंग्रेजों की शर्त न मानकर महादजी सिंधिया के निमंत्रण पर देहली चला गया तो अंग्रेजों ने उसकी छब्बीस लाख की पेंशन भी बन्द कर दी और इलाहाबाद तथा कड़ा के परगने पचास लाख रुपये में नवाब शुजाउद्दौला के हाथ बेच दिये। लेकिन सन् १८०१ में नवाब सआदत अलीखां ने लखनऊ की संधि के अनुसार अंग्रेजों को इलाहाबाद का किला फिर से दे दिया।

लार्ड वेलेस्ली के समय में इलाहाबाद और उसके आस पास के जिले स्थायी रूप से अंग्रेजों के हाथ में आ गये क्योंकि नवाब लोग अंग्रेजों का रुपया अदा नहीं कर सके थे।

अंग्रेजों के अधिकार में आने के बाद लार्ड लेक ने इलाहाबाद में सन् १८०३-४ में अपनी शक्ति संगठित करके उससे उत्तर भारत के कई शहरों पर आक्रमण कर उन्हें अंग्रेजी राज्य में मिला लिया। उधर लेफ्टिनेंट कर्नल पॉवेल ने बुन्देलखण्ड पर आक्रमण कर उसके अधिकांश भाग पर ब्रिटिश अधिकार स्थापित कर लिया। सन् १८१६ में लखनऊ की संधि के अनुसार हण्डिया का परगना भी इलाहाबाद में मिल गया और सन् १८२५ में इलाहाबाद की सीमा स्थायी रूप से निर्धारित कर दी गयी।

सन् १८५७ में सिपाही-क्रान्ति के समय इलाहाबाद क्रान्ति का एक मुख्य केन्द्र स्थान था। १८५७ की ६ जून को खजाने को लूट लेने के पश्चात् बहुत से अंग्रेजों को मार कर विद्रोहियों के सरदार मौलवी लियाकत अली ने दिल्ली पति को अपना राजा घोषित करके खुशरूबाग में अपना दरबार लगाया और स्वयं वहाँ का गवर्नर बना। ५ दिन के बाद मद्रास से एक बड़ी सेना लेकर कर्नल नील ने निर्दयता पूर्वक बदला चुकाते हुए वापस शासन प्राप्त किया और वर्तमान कोतवाली के निकट नीम के वृक्ष पर सैकड़ों विद्रोहियों को फाँसी पर लटका दिया। लियाकत अली फरार हो गये, मगर सन् १८७२ में फिर पकड़े गये और उन्हें आजीवन देश निकाले की सजा दी गई।

सन् १८५८ में वाइसराय लार्ड कैनिंग ने इलाहाबाद और उत्तर पश्चिमी सूबों की सीमा का निर्धारण कर

दिया और सरकार के प्रधान कार्यालय को आगरा से हटा कर इलाहाबाद में स्थापित कर दिया। उन्होंने एक बड़ा दरबार करके उसमें महारानी विक्टोरिया का 'घोषणा-पत्र' पढ़ा, वह स्थान मिण्टोपार्क के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

सन् १८८८ में इलाहाबाद में अखिल भारतीय कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। भारत के राजनैतिक और साहित्यिक क्षेत्र में इलाहाबाद का योग अत्यन्त महत्वपूर्ण है। पं० मदन मोहन मालवीय, पं० मोतीलाल नेहरू, सर तेज बहादुर सप्रू, सर सुन्दर लाल, बाबू पुरुषोत्तम दास टण्डन, पं० जवाहरलाल नेहरू, लालबहादुर शास्त्री, डा० कैलाश नाथ काट्जू इत्यादि देश के अनेक महान् व्यक्तिओं ने यहीं विकास पाकर सारे देश के राजनैतिक क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण भाग अदा किया।

साहित्य के क्षेत्र में भी पं० बालकृष्ण भट्ट, पं० श्रीधर पाठक, महाकवि निराला, महादेवी वर्मा, पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी इत्यादि अनेक महारथियों ने भगवती सरस्वती के मन्दिर में यहीं से अपनी श्रद्धा के सुमन अर्पित किये हैं।

इस प्रकार प्राचीन काल से प्रयाग की यह नगरी इलाहाबाद का नाम धारण कर के भी अपने महत्व को अक्षुण्ण रक्खे हुए है।

इलियड

महाकवि होमर रचित लैटिन भाषा का महान् काव्य, जिसकी कथा इस प्रकार है।

"अर्गेसि नगर के राजा अगमेमनोन के भाई की पत्नी उस युग की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी "हेलेन" को 'ट्रायनगर का राजकुमार' राजमहल से अपहरण करके समुद्र पार के अपने देश में ले गया। इससे राजा अगमेमनोन बड़ा क्रुद्ध और दुःखी हो गया। उसने हेलेन को वापस लाने और दुश्मन से बदला लेने के लिए ग्यारह वर्ष तक अपनी सैनिक शक्ति का संगठन किया और उसके पश्चात् उसने अपनी जल-सेना के द्वारा ट्राय पर आक्रमण कर दिया। संसार का सर्वश्रेष्ठ वीर मार्मिडिअनों का युवराज एचिलस भी राजा के साथ था। उसके डर से ट्राय की सेना नगर के किले से बाहर आकर एचिअनों का मुकाबिला न कर सकी, लेकिन एचिअन लोग भी अत्यन्त कोशिश करने पर भी किले में प्रवेश न कर सके। घेरा कई वर्षों तक चलता रहा मगर घेरे के नौवें वर्ष में राजा से एचिलस का झगड़ा हो जाने से एचिलस युद्ध से अलग हो गया। यह मालूम होते ही ट्राय के टोर्जन लोग निर्भय होकर किले से बाहर निकल आये और वीर शिरोमणि हेक्टर की सहायता से उन्होंने एचिअन लोगों को भगा कर वापस जहाजों पर चढ़ा दिया।

यह देखकर एचिलस को बहुत दया आयी और उसने अपने मित्र पेट्रोक्लोस को अपनी सेना के साथ ट्रोजनों को खदेड़ने के लिये भेजा। पेट्रोक्लोस ने ट्रोजनों को भगा तो दिया मगर लड़ाई में मारा गया। अपने मित्र की मृत्यु से क्रुद्ध होकर एचिलस ने तुरन्त राजा से सलाह करके ट्रोजन लोगों पर भयंकर आक्रमण किया और उनके सर्वोपरि वीर हेक्टर को मार डाला।

हेक्टर के पिता प्रियम ने एचिलस को बहुत-सी बहुमूल्य भेंट देकर हैक्टर की लाश को प्राप्त किया और उसका दाह-संस्कार किया। उसके बाद एचिलस ने फिर ट्रोजनों पर आक्रमण किया। इस लड़ाई में दैव-योजना के अनुसार अलेक्जेण्डर्स ने एचिलस को मार डाला। एचिलस के मरते ही उसकी सेना की कमर टूट गई और उसे जीत की कोई आशा नहीं रही। इस पर परम राजनीतिज्ञ ओडिसिअस ने एक योजना बनाई। उसने एक बहुत ही सुन्दर विशालकाय लकड़ी का घोड़ा बनाकर नगर के द्वार पर खड़ा कर दिया और सारी सेना को वापिस हटने का आदेश दे दिया। ट्रोजन लोगों ने काफी समय तक कोई हलचल न देख किले का दरवाजा खोल उस घोड़े को अन्दर ले लिया और दरवाजा बन्द कर दिया। घोड़े के अन्दर आते ही उसके पेट में छिपे हुये ओडिसिअस, एओस इत्यादि वीरों ने निकल कर किले का दरवाजा खोल दिया। दरवाजा खुलते ही एचिअन सेना किले में घुस गई और उसने एक-एक ट्रोजन को बीन-बीन कर मार डाला और बीस वर्ष के पश्चात् पुनः हेलेन को प्राप्त किया।

होमर का आविर्भाव ईसा से पूर्व ६वीं सदी में माना जाता है। उसकी भाषाओं 'इवोलिक' और 'आयोनिक'

बोलियों का मिश्रण है जो वीर-काव्य के लिये बड़ी सशक्त है। उसके चरित्र-चित्रण बड़े सजीव, प्रशस्त और रोमांचकारी हैं। इसका विवेचन करते हुए विश्व-साहित्य की रूप-रेखा नामक ग्रन्थ में डा० भगवतशरण उपाध्याय लिखते हैं—

"इलियड" के पात्रों का होमर ने बड़ा तेजस्वी और खुला रूप अंकित किया है। उसके वर्णन में रेखाएँ नहीं, तत्क्षण की उभरी आकृतियाँ हैं—स्पष्ट, और सबल, कर्मठ। परन्तु उसके चरित्रों में अन्तर है। ग्रीक पक्ष के अनेक चरित्र लोकोत्तर हैं। किसी की माता देवी है—किसी का पिता, देवता। परन्तु 'हैक्टर' का वर्णन अद्भुत मानवीय है। 'एचीलीज' देवोपम है। हैक्टर सर्वथा मनुष्य। हैक्टर मानव होकर भी देवोत्तर एचोलीज से कहीं अधिक हमारी सहानुभूति का पात्र हो उठता है और वह अपनी मृत्यु के कारण नहीं, बल्कि अपनी लोकचेतना, स्वदेशप्रेम तथा पराक्रम के कारण। एचीलिज स्वयं कम पराक्रमी नहीं है, परन्तु वह अर्द्धदेव है और देवता का पराक्रम जन्मसिद्ध होने से महत्व नहीं रखता! खतरे में साहस के साथ जान को झोंक देना मनुष्य की ही अकृत्रिम विशेषता है और हैक्टर उसी का प्रतीक है। होमर के देवता भी प्राचीन कृतियों की तरह मानवीय आचरण करते हैं। मानवीय आवेशों से भरे हुए हैं। क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष आदि के शिकार हैं। इलियड एक अद्भुत कृति है। वीर काव्य-जगत् की यह पहली रचना ई० पू० ८ वीं ९ वीं सदी में रचो गई।"

"होमर के काव्यों की सफलता इसी से प्रकट है कि उसकी कविता के गायकों की एक जाति ही बन गई, जिसे 'होमरीडी' कहते थे। इन लोगों का काम इजियन-सागर के द्वीपों और ग्रीस की यूरोपियन भूमि पर उन्हें गाते फिरना था। इस प्रकार इन काव्यों का प्रचार पहले गा-गा कर ही हुआ। बाद में छठीं सदी ईस्वी सन् पूर्व या उसके भी बाद ये पहली बार लिखे गये।"

अभी कुछ समय पूर्व तक होमर का इलियड काव्य और ट्राय नगर का घेरा काल्पनिक कथानक माने जाते थे, मगर जर्मनी के 'हाइनरिख श्लीमान' नामक व्यक्ति ने सन् १८७० में इजियन-सभ्यता के केन्द्र की खुदाई करवा कर ट्राय नगर के अवशेषों का पता लगा लिया और अब ट्राय नगर का घेरा एक काल्पनिक नहीं, प्रत्युत् ऐतिहासिक तथ्य माना जाता है और इस युद्ध का समय साधारणतः ११८४ ई० सन् पूर्व माना जाता है।

इलियट (Eliot)

बीसवीं सदी का एक महान् अंग्रेज कवि जिसका जन्म सन् १८८८ में हुआ और जिसका पूरा नाम "थामस स्टेरन इलियट (Thomas Stearn Eliot) था। सन् १९४८ में इसको 'नोबल प्राइज' नामक प्रसिद्ध अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हुआ।

इलियट ने अंग्रेजी साहित्य में गद्य, पद्य और आलोचना तीनों रूपों में अपनी रचनाएँ पेश की हैं। सन् १९१७ में उसकी कविताओं का संग्रह "प्रूफरॉक" के नाम से प्रकाशित हुआ। इन कविताओं में इंगलैंड की तत्कालीन समाज-व्यवस्था पर हास्य और व्यंग के रूप में काफी तानेकशी की गई हैं। इसकी अन्य कृतियों में "दी वेस्ट लैण्ड" और "मर्डर इन दी कैथेड्रल" विशेष प्रसिद्ध हैं। "दी वेस्ट लैण्ड" में उसने प्रथम महायुद्ध के बाद के इंगलैंड के जीवन को प्रतिबिम्बित किया है—और बतलाया है कि आज की सभ्यता का न तो कोई भविष्य है और न उसमें किसी आदर्श, निष्ठा या विश्वास का समावेश है। उसकी विचार-धारा में स्वच्छन्दता, निरंकुशता और उत्तेजना की भावनाएँ अधिक होने से समाज में वह प्रिय नहीं हो सकी।

इलियट जार्ज

अंग्रेजी साहित्य की एक प्रसिद्ध उपन्यास-लेखिका, जिसका जन्म सन् १८१९ में और मृत्यु १८८० में हुई।

इस लेखिका का असली नाम मेरी-एन-इवेन्स (Mari-an Evans) था। मगर यह जार्ज इलियट के पुरुष नाम से कविता करती थी। उन्नीसवीं सदी के नारी-उपन्यासकारों में वह सबसे अधिक सफल लेखिका थी।

इलियट जार्ज की रचनाओं में "ऐडम बीड" "दी मिल आन दी फ्लौस" "साइलस माइनर" "रोमोला" "मिडिलमार्च" इत्यादि रचनाएँ विशेष प्रसिद्ध हैं। इनमें से

"ऐडम बीड" "दी मिल ऑन दी फ्लौस" और "साइलस माइनर" ये तीन रचनाएँ ग्राम्य-जीवन का सुन्दर चित्रण करने में काफी सफल हुई हैं। "मिडिल मार्च" इनका सर्वोत्तम उपन्यास है। इस उपन्यास में समाज के वास्तविक जीवन का प्रतिबिम्ब दर्पण की तरह स्पष्ट हो गया है। उन्नीसवीं शताब्दी के अंग्रेज उपन्यासकारों में जार्ज इलियट का नाम एक गौरवपूर्ण स्थान रखता है।

इलबर्ट बिल

भारतवर्ष में लार्ड रिपन के समय में तत्कालीन लॉ मेम्बर इलबर्ट के द्वारा सन् १८८३ में उपस्थित किया गया एक बिल।

इस बिल के उपस्थित होने के पहले भारतीय मजिस्ट्रेट को यह अधिकार नहीं था कि वे किसी अंग्रेज या अमेरिकन अपराधी के विरुद्ध मुकद्दमा चला सकें। इलबर्ट बिल में भारतीय मजिस्ट्रेटों पर लगे हुए इस प्रतिबन्ध को हटा लेने का विधान था।

जब भारतवर्ष में रहने वाले अंग्रेजों को यह बात मालूम हुई तो वे बड़े क्रोधित हुए और कुछ लोगों ने तो गवर्नमेंट हाउस के सन्तरियों को मिलाकर वायसराय को जहाज पर बैठा कर इंग्लैण्ड भेज देने का एक षड्यंत्र रच डाला। इस षड्यन्त्र में कलकत्ते के कई लोगों का हाथ था। जिन्होंने यह संकल्प कर लिया था कि यदि सरकार ने इस बिल को आगे बढ़ाया तो वे इस षड्यन्त्र को सफल बनाकर छोड़ेंगे। परिणाम यह हुआ कि असली बिल उसी साल करीब-करीब लौटा दिया गया। उसकी जगह केवल यह सिद्धान्त भर मान लिया गया कि सिर्फ जिला मजिस्ट्रेट और जज को ही ऐसा अधिकार रहेगा।

इलवाँ अल-सफा

ईसा की १० वीं शताब्दी में बसरा और बगदाद में स्थापित विश्व-कोष कारों की एक सभा।

विश्व-कोष की रचना के लिए यह सभा स्थानीय विद्वानों के द्वारा स्थापित की गयी थी। इसी की सेवाओं से इन स्थानों पर विश्व-कोष, शब्द-कोश और जीवन-चरित्रों का कार्य करीब ५ सदियों तक होता रहा।

इलफ्रिक

डेन आक्रमण के समय में इंगलैण्ड का एक धर्मगुरु जिसने सबसे पहले लैटिन-इंगलिश का शब्द-कोष तैयार किया। इसने सबसे पहले बाइबिल के उपदेशों को अपनी कर्ण-मधुर शैली में अंग्रेजी भाषा में वहाँ की जनता तक पहुँचाया।

इवां तुर्गनेव

१९ वीं सदी में रूसी-साहित्य का संसार-प्रसिद्ध महान् साहित्यकार, जिसका जन्म सन् १८१८ में और मृत्यु सन् १८८३ में हुई।

चरित्र-चित्रण और उपन्यास-लेखन में समूचे विश्व-साहित्य में, जिन इनी-गिनी प्रतिभाओं ने महान् ख्याति प्राप्त की है, उनमें तुर्गनेव भी अपना एक प्रमुख स्थान रखता है।

तुर्गनेव ने रूसी गद्य-साहित्य के क्षेत्र में वही महान कार्य किया है जो पद्य के क्षेत्र में "पुश्किन" ने किया था। उसकी शैली में पुश्किन के समान ही सरलता और स्वच्छता के दर्शन होते हैं। उसका चरित्र-चित्रण, विशुद्ध यथार्थ-वाद पर अवलंबित है, जिसमें स्थान-स्थान पर कलाकार की सुरुचि और उसके गम्भीर अध्ययन की झाँकी देखने को मिलती है। उसकी रचनाओं में देहातों के सजीव चित्र और किसान-जीवन के यथार्थ चित्रण की बहुलता है। 'एक शिकारी के पत्र' नामक उपन्यास में उसने जमींदारों के शिकंजे में फँसे हुए किसानों के जीवन का बड़ा ही करुण चित्र खींचा है। 'अमीरों का घोंसला' और 'रूदिन' नामक उपन्यासों में उसने सन् १८४० और १८६० के बीच के रूस के सामाजिक जीवन का चरित्र-चित्रण किया है। तुर्गनेव किसानों की मुक्ति चाहता था और अर्द्धदासता के उच्छेद को अवश्यंभावी बनाने में उसकी लेखनी ने काम किया था।

तुर्गनेव प्रगतिवादी दृष्टिकोण का एक महान कलाकार था।

इवाँ गुन्दूलिक (Ivan Gundlic)

युगोस्लाव साहित्य का एक सुप्रसिद्ध कवि इवाँ गुन्दूलिक, जिसका जन्म सन् १५८८ और मृत्यु सन् १६३८ में हुई।

इवाँ गुन्दूलिक क्लासिकल शैली का कवि था। इसकी सर्वोत्कृष्ट रचना 'ओसमान' नामक महाकाव्य है, जो बीस सर्गों में समाप्त हुआ है। ओसमान दुब्रोवनिक साहित्य की सुन्दरतम कृतियों में हैं। इस महाकाव्य में तुर्कों के अत्याचार का सजीव भाषा में वर्णन किया गया है। काव्य में पोलैंड के युवराज ओसमान के विरुद्ध उस ऐतिहासिक संघर्ष का वर्णन है, जिसका अन्त १६२१ के चेकिम के युद्ध में हुआ।

इवान ऐंड्रेविच क्रीलोव

रूस में पुश्किन युग का राष्ट्रीय कवि 'इवानऐंड्रेविचक्रीलोव' जिसका जन्म सन् १७६८ में और मृत्यु सन् १८४४ में हुई।

सन् १८०५ से उसने नैतिक कहानियाँ लिखना शुरू की और जीवन भर लिखता रहा। विशेष करके उसने 'ला-फोन्तेन' और 'इसप' की कहानियों से प्रेरणा प्राप्त की। मगर उनको अपने रूप में ऐसा रंग दिया कि मूल को पहचाना नहीं जा सकता।

क्रीलोव की रचनाओं का सबसे बड़ा गुण उसकी सुगम, सरल और प्रवाहपूर्ण भाषा है, जिसको कम पढ़ा लिखा व्यक्ति भी आसानी से समझ सकता है। इसीलिए उसकी सफलता भी अधिक व्यापक है। उसकी शैली मंजी हुई है और जीवन को यथार्थवाद की कसौटी पर वह कसकर देखता है। इसलिए यह कवि रूसी जनता में बड़ा लोकप्रिय हुआ।

इवान प्रथम

रूस में मास्को की रियासत का महाराजुल जिसका राज्यकाल सन् १३२५ से १३४१ तक था।

तेरहवीं शताब्दी में मास्को एक छोटी-सी रियासत थी जिसमें मास्को नगर के साथ दो छोटे कस्बे शामिल थे।

इवान प्रथम सन् १३२५ में मास्को की इस रियासत का महाराजुल बना। उसका खजाना रुपये पैसों से भरपूर था, इसलिए वह इवान खलीता (पैसों का थैला) के नाम से प्रसिद्ध था। वह बड़ा चतुर और कुशल शासक था। मास्को की शक्ति बढ़ाने के लिए वह हमेशा प्रयत्नशील रहता था। उसने प्रयत्न करके धर्मगुरु पीटर की गद्दी को ब्लाडीमिर नगर से लाकर मास्को में स्थापित करवा दी। तब से मास्को रूस के सबसे बड़े धर्माचार्य की राजधानी बन गया, जिससे मास्को की शक्ति और वैभव बढ़ने में बड़ी मदद मिली।

उस समय मंगोल का खान बड़ा प्रतापी था और इवान खलीता उसका पूर्ण कृपापात्र था। इवान ने खान के द्वारा त्वेर के महाराजुल को मरवा कर स्वयं महाराजुल की पदवी ग्रहण की। इसके पश्चात् मरते समय तक वह मास्को रियासत का विस्तार करने में लगा रहा जिसके परिणाम स्वरूप उसकी मृत्यु के समय मास्को रियासत का काफी विस्तार हो गया था और वह साम्राज्य का रूप ग्रहण करने लगी थी।

इवान तृतीय

उत्तर पूर्वी रूस का एक सफल शासक जिसका राज्यकाल सन् १४७२ से १५०५ ई० तक है।

इवान प्रथम के द्वारा स्थापित की हुई मास्को की राज्य-शक्ति इवान-तृतीय के समय में स्पष्ट रूप से एक साम्राज्य के रूप में दिखाई देने लगी। इवान-तृतीय ने सारे उत्तर पूर्वी रूस का एक सुसंगठित राज्य बना लिया। नवोगोरद की पड़ोसी रियासत अभी तक अपने को स्वतंत्र समझती थी। इसलिए इवान तृतीय ने एक बड़ी सेना लेकर उस पर आक्रमण किया और उसे पराजित कर नगर को स्वतंत्र छोड़ शेष सारी रियासत को अपने राज्य में मिला

लिया। मेर्व को भी अपने राज्य में मिलाकर उसने अपनी सीमा यूराल प्रदेश तक बढ़ा ली।

इसके बाद इवान तृतीय ने उस समय के प्रसिद्ध और शक्तिशाली संगठन सुनहले कबीले की तरफ दृष्टि डाली। पहले मास्को राज्य सुनहले कबीले को टैक्स देता था मगर कबीले की कमजोरी देखकर इवान ने उसे टैक्स देना बन्द कर दिया। तब सुनहले कबीले के खान अहमद ने इवान पर आक्रमण किया। लेकिन इस आक्रमण में खान इवान को बिना पराजित किये ही वह वापस लौट गया और इसके साथ ही २०० बरसों से रूसियों पर चला आने वाला मंगोलों का शासन हमेशा के लिए समाप्त हो गया।

इस समय पूर्वी योरोप में तुर्की का राज्य बड़ा समृद्ध और शक्तिशाली हो रहा था। इवान ने पहले दूसरे छोटे-छोटे राज्यों को जीतने के लिए तुर्की से समझौता कर लिया। वह पहला यूरोपीय राजा था, जिसने सन् १४९२ में तुर्की के अस्तित्व को स्वीकार किया। उसके साथ ही उसने बाल्टिक तट पर उधर से होने वाले खतरे से रक्षा करने के लिए इवान-गोरद नामक एक मजबूत किला बनवाया। बाल्टिक की ओर बढ़ने का रूस का यह पहला कदम था। पूरब में कज़ाक के खान को भी इवान ने अपने अधिकार में ले लिया।

इस प्रकार धीरे-धीरे इवान तृतीय ने मास्को को एक अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति के रूप में बदल दिया। एक ओर उसने शासन, सेना और खजाने का केन्द्रीकरण किया। दूसरी ओर सैनिक हथियार और युद्धकला के विकास में भी बहुत वृद्धि की। इवान ने पश्चिमी यूरोप से कारीगरों को बुलवा कर तोपें ढलवाकर विशाल रूसी तोपखाने का निर्माण करवाया। उसके द्वारा स्थापित रूसी तोपखाना ही तब से दुनिया का सबसे शक्तिशाली तोपखाना बन गया, जिसे सोवियट काल में भी रूस ने अक्षुण्ण रक्खा। हिटलर की सेनाओं को भगाने में इस तोपखाने का काफी भाग रहा।

राजनैतिक शक्ति के साथ-साथ मास्को व्यापारिक स्थिति में भी बहुत आगे बढ़ गया। इसी समय इवान तृतीय ने ग्रीक-राजकुमारी सोफिया पालेओलेगस से विवाह किया और इस विवाह के बाद वह अपने को ग्रीक-सम्राटों का सीधा उत्तराधिकारी मानने लगा।

इसके बाद उसने अपनी राजधानी को राजसी ढंग से सजाना प्रारम्भ किया। उसके पहले मास्को के सब घर और राजमहल भी लकड़ी के होते थे। अब उसने पत्थर के मकान बनवाने के लिए लोगों को उत्साहित किया। उसने विदेशी शिल्प-शास्त्रियों को बुलाकर कई नवीन इमारतों का निर्माण करवाया।

इवान ओजनी चतुर्थ

(रूस का पहला जार)

मास्को का 'महाराजुल' जिसने रूस के इतिहास में सबसे पहले 'जार' की उपाधि ग्रहण की। इसका समय सन् १५३८ से १५८४ तक है।

इवान चतुर्थ के शासन के समय उत्तर पूर्वी रूस एक साम्राज्य के रूप में संगठित हो चुका था। इसलिए इवान चतुर्थ को अपने साम्राज्य के विस्तार के लिए आसपास के कबीलों से निपटना था। उस समय मध्य वोल्गा के ऊपर 'कज़ान' नामक एक महत्वपूर्ण नगर था, जो एक खान के अधीन था।

सन् १५५१ की वसन्तऋतु में इवान ने वोल्गा के पहाड़ी किनारे पर 'स्वीयाजस्क' नामक नगर बसाया जो कि कज़ान के बिल्कुल सामने पड़ता था। उसके बाद रूसियों ने १॥ लाख सेना और शक्तिशाली तोपखाने के साथ कज़ान नगर को घेर लिया और सन् १५५२ में नगर पर अधिकार कर लिया।

कज़ान की विजय के बाद बाशकिरों के कबीलों ने भी 'जार' की अधीनता स्वीकार कर ली। सन् १५५६ ई० में अस्त्राखान का मशहूर नगर रूसी सेनाओं ने जीत लिया, जिससे सारी वोल्गानदी रूस के अधिकार में आ गई। कॉस्पियन के तट पर बसा हुआ अस्त्राखान नगर अब मध्य-एशिया और ईरान के साथ होने वाले व्यापार का प्रधान केन्द्र बन गया।

कास्पियन तट को लेने के बाद जार इवान की दृष्टि बाल्टिक समुद्र पर पड़ी। जहाँ पर अधिकार हो जाने से रूस का पश्चिमी यूरोप के देशों से सीधा सम्बन्ध हो जाता था। सन् १५५८ में बाल्टिक तट पर 'लिवोनिया' के

विरुद्ध रूस ने युद्ध छेड़ दिया। कितने ही महीनों की लड़ाई के बाद लिवोनियाँ का महत्वपूर्ण बन्दरगाह 'रीगा' और 'यूरीयेफ' नगर रूसियों के हाथ में चला गया और सन् १५६१ में सारा लिवोनियाँ रूस के अधिकार में आ गया।

इस प्रकार जार इवान को बाहरी शत्रुओं के मुकाबले में लगातार सफलताएँ मिलती गईं, मगर उसके घरेलू शत्रु अभी तक सर उठाते जा रहे थे। ये शत्रु बायर-जाति के लोग थे। इस जाति के लोगों ने इवान की माता 'येलेना' को जहर देकर मार दिया था और इवान से भी ये बराबर शत्रुता रखते चले आ रहे थे। इवान इस तरह के घरेलू झगड़ों को पसन्द नहीं करता था। इसलिए सन् १५६५ में एक दिन वह अपने विश्वासपात्र शरीर-रक्षकों के साथ 'मास्को' को छोड़ कर एक दूसरे गाँव में चला गया। इस गाँव का नाम 'अलेक्झेंड्रोवा-स्लाओदोवा' था। वहाँ से उसने मुख्य धर्माधिकारी को एक पत्र लिखा, जिसमें बायरों के विश्वासघात की घटनाओं को बतलाते हुए, उसने सिंहासन छोड़ने की घोषणा की। इस घोषणा से मास्को में खलबली मच गई और वहाँ के कई नागरिक, पादरी और कितने ही बायरों ने जार के पास आकर उससे मास्को वापस चलने की प्रार्थना की।

इवान उस प्रार्थना को स्वीकार कर पुनः मास्को लौट आया। वहाँ पर विश्वासघाती बायरों को दण्ड देकर उसने 'जेम्स्की सबोर' नामक राष्ट्रीय सभा की बैठक बुलाई और उस बैठक में उसने अपने साम्राज्य को दो भागों में विभक्त किया। (१) जेम्स चिना, जिसका शासन बायरों की दूमा (विधान-सभा) जार के अधीन रह कर करती थी। (२) ओप्रेचनीना जो सीधे जार के अधीन थी। ओप्रेचनीना वाले भाग में राज्य के सबसे अच्छे तथा केन्द्रीय प्रदेश थे, जिनका सैनिक और आर्थिक महत्व सबसे ज्यादा था। ओप्रेचनीना का काम बायर-सामन्तों की शक्ति को कमजोर करना और छोटे-छोटे भूमिपति सरदारों का एक नया वर्ग तैयार करना था। इसकी राजधानी अलेक्झेंड्रोवा-स्लोवोदोवा में थी, जहाँ पर जार अपने को अधिक सुरक्षित समझता था।

साइबेरिया पर अधिकार

जार इवान के शासन की सबसे महत्वपूर्ण घटना रूस का साइबेरिया के ऊपर अधिकार करना है। साइबेरिया की बहुमूल्य 'समूरी' छालें, उस समय, सोना, जवाहिर के दामों पर बिकती थीं और अपना विशेष आकर्षण रखती थीं। इसलिए बहुत से साहसी रूसी शिकारी 'यूराल' की ओर जा बसे थे। इन्हीं में 'नवोगोरद' से आया हुआ, 'स्ट्रोगोनफ' नामक एक व्यापारिक परिवार भी था। इस परिवार के एक व्यक्ति 'लूकस' ने मास्को के महाराजुल, वासली द्वितीय को कजान के 'खान' की कैद से छुड़ाने में पैसे की सहायता दी थी। इसके बदले में इस परिवार को कुछ नमक की खानों की इजारदारी और कामानदी के पास वाले प्रदेश में 'चूसोवया' के तट पर एक किला बनाने का अधिकार मिला था।

इसी परिवार के 'माखिम स्ट्रोगोनफ' ने कजाक सरदार 'येरमक' को साइबेरिया के खान के विरुद्ध लड़ने के लिए नौकर रख लिया। इसी येरमक ने सन् १५७८ में साइबेरिया के खान के विरुद्ध अभियान प्रारम्भ किया और सन् १५८२ ई० तक उसने साइबेरिया पर, जिसको पहले सिबिर कहते थे, अधिकार कर लिया।

सिबिर-नगर साइबेरिया की कीमती समूर-छालों के व्यापार का एक बड़ा केन्द्र था। इस पर अधिकार हो जाने से जार इवान की बड़ी कीर्ति हुई।

लेकिन जार इवान का अन्तिम समय विजय की जगह पराजय में बदल गया। सन् १५७९ से १५८२ तक उसे पोलैंड और स्वीडन से लड़ना पड़ा और इसमें उसको जगह-जगह हार खानी पड़ी, जिसमें बाल्टिक तट का लिवोनियाँ उसके हाथ से निकल गया और स्वीडन के साथ भी उसे समझौता करना पड़ा।

जार इवान रूस के दूरदर्शी, कुशल शासकों में से एक था। जिसने रूस के विशाल साम्राज्य का निर्माण किया। वह एक निरंकुश शासक था और निरंकुशता को राजा का आवश्यक अधिकार समझता था। उसका कहना था कि राजशक्ति भगवान की ओर से मिली हुई वस्तु है। जार की आज्ञा का उल्लंघन करना महापाप है। जार की

सभी प्रजा उसकी सेवक है। उसको अपनी प्रजा को क्षमा करने तथा मारने का अधिकार है। जार की शक्ति को सीमित करना घोर अपराध है; क्योंकि इसके कारण देश की प्रतिरक्षा खतरे में पड़ जाती है।

जार इवान ने रूस की आर्थिक और सैनिक शक्ति को बहुत मजबूत बनाया। उसने रूस में एक धर्म, एक नाप-तौल, और एक भूमिनाप स्थापित कर रूस की एकता को सुदृढ़ किया।

इन सब बातों के बावजूद जार इवान चतुर्थ बड़ा क्रूर और निर्दयी था। इसीलिए रूस के इतिहास में उसके नाम के साथ 'ग्रोजनी' (क्रूर) शब्द लगा दिया गया है। जिस समय उस पर सनक सवार होती थी, उस समय वह आपे से बाहर हो जाता था। एकबार क्रोधान्ध होकर उसने अपने लड़के राजकुमार इवान को डण्डे से इतना पीटा कि वह मर गया।

फिर भी इवान चतुर्थ का शासन रूस के इतिहास में बड़ा महत्व रखता है। देश को शक्तिशाली और एकताबद्ध करने में उसकी सेवाओं को आज भी बड़े आदर के साथ याद किया जाता है।

इवान पावलोव

रूस का एक सुप्रसिद्ध शरीर-शास्त्री और मनोवैज्ञानिक जिसे सन् १६०४ में औषधि सम्बन्धी 'नोवेल पुरस्कार' प्राप्त हुआ।

इवान पावलोव का जन्म सन् १८५१ में और मृत्यु सन् १९३६ में हुई। इस वैज्ञानिक का विश्वास था कि जीवन में हमारी जो भी आदतें पड़ जातीं हैं वे सब परिस्थिति-जन्य प्रतिबिम्बों (कण्डीशण्ड रिफ्लेक्सेस) का परिणाम होती हैं। यहाँ तक कि चिन्तन-प्रक्रिया के साथ भी यही बात है। सर्वप्रथम उन्होंने ही इस बात की खोज की और "परिस्थिति-जन्य प्रतिबिम्ब" की परिभाषा की।

इवान पावलोव के विचार शरीर-क्रिया-शास्त्र पर आधारित है, इसलिए बहुत से मनोवैज्ञानिक मानवस्वभाव को समझने के लिए 'सिगमंड फ्रायड' की अपेक्षा पावलोव के विचारों को अधिक तर्कपूर्ण मानते हैं। लेकिन कई वैज्ञानिक यह मानते हैं कि रूसी और आस्ट्रिया के विद्वानों में सैद्धान्तिक मतभेद नहीं है।

मनुष्य अथवा पशु विशेष प्रकार की योजनाओं से किस ढङ्ग का व्यवहार करते हैं, इसी अध्ययन पर "परिस्थिति-जन्य प्रतिबिम्ब" की धारणा बनाई गई है। पावलोव ने यह प्रमाणित किया कि घोड़े को चलाते समय चाबुक मारने से उसके अन्दर जो क्रिया होती है, खाली चाबुक फटकारने से भी वही क्रिया हो जाती है। घोड़ा जब चाबुक फटकारने की आवाज सुनता है तो उसे ध्यान होता है जैसे वास्तव में उसको चाबुक लगा हो और वह अपनी चाल बढ़ा देता है। यह एक "परिस्थिति-जन्य प्रभाव" है।

पावलोव ने अनेक प्रयोग करके इस बात की खोज की कि भोजन को दिखाने या उसकी गन्ध मात्र से ही कुत्तों के मुँह से लार बहने लगती है। उन्होंने देखा कि भोजन के स्थान पर कोई इसकी उत्तेजना देने से भी कुत्तों के मुँह से लार निकलने लगती है। पावलोव जब भी कुत्तों को भोजन देते तो एक बिजली की घण्टी बजा देते और जब अनेक बार ऐसा किया गया तो फिर भोजन न देने पर भी केवल घण्टी बजाने से ही कुत्तों के मुँह से लार निकलने लगी। इन्हीं सब प्रयोगों के आधार पर ही उन्होंने "कण्डीशण्ड रिफ्लेक्सेस" के सिद्धान्त का आविष्कार किया।

इसके अतिरिक्त पावलोव ने पाचन-शक्ति, दिमाग की क्रियाशीलता और रक्त-सञ्चालन के सम्बन्ध में अनेक खोजें कर अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की, जिसके फलस्वरूप सन् १९०४ में उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय नोवेल प्राइज प्राप्त हुआ।

इवारा सैकाकू

जापान का सत्रहवीं सदी का एक उपन्यासकार जिसने अपने उपन्यासों में यौन-आनन्द का चित्रण अत्यन्त अमर्यादित मात्रा में किया। इस कारण उसकी कई रचनाएँ जापानी सेन्सर की भी शिकार हुईं। यद्यपि उसके यथार्थ

वाद में इधर फिर रुचि दिखाई जाने लगी है। इसकी प्रसिद्ध कृतियों में (१) कोशोकू इचिदाई ओतोको (एक कामुक का जीवन) (२) कोशोकू इतिदाई ओन्ना (३) कोशोकू गोनिन ओन्ना इत्यादि प्रसिद्ध हैं।

इंशा

उर्दू के महाकवि सैयद इंशा उल्लाह खाँ "इंशा" जो पहले दिल्ली के बादशाह शाह-आलम के दरबार में और उसके पश्चात् लखनऊ में नवाब सआदत अली खाँ के मुसाहिब होकर रहे।

महाकवि इंशा के पिता का नाम माशा-अल्लाह खाँ "मसदर" था। दिल्ली के मुगल दरबार में ये हकीमी का काम करते थे। दिल्ली की बरबादी के दिन आने पर ये मुर्शिदाबाद चले गये, वहीं पर "इंशा" का जन्म हुआ।

इंशा में ईश्वर-प्रदत्त कवित्वशक्ति का स्वाभाविक बीज विद्यमान था। इसलिए कविता के क्षेत्र में इन्होंने बिना किसी उस्ताद की सहायता के स्वयं अपना विकास किया। अवध के नवाब सआदत अली खाँ इनकी खुश-मिजाजी और हँसी-चुटकलों से बड़े खुश रहते थे और हमेशा इन्हें अपने साथ रखते थे। मगर अपने नवाबी स्वभाव के कारण एक बार नवाब साहब इनसे रुष्ट हो गये और इनका पद, वेतन सब छीनकर इन्हें दरबार से बाहर कर दिया। तभी से इनके दुर्भाग्य का प्रारम्भ हुआ और इसी दुर्भाग्य पूर्ण अवस्था में सन् १८१७ ई० में इनका देहान्त हो गया।

"इंशा" की कृतियों में "कुलियात" "दरियाए-लताफत" और "रानी केतकी की कहानी" विशेष प्रसिद्ध हैं। कुलियात में उर्दू का दीवान, उर्दू और फारसी के कसीदे, मसनवी, शिकारनामा, खटमल, मच्छर इत्यादि पर हास्य पूर्ण व्यङ्ग इत्यादि चीजों का एक अजीबो-गरीब संग्रह है।

दरियाए-लताफत उर्दू-भाषा का व्याकरण है जिसका पूर्वार्द्ध इंशा का बनाया हुआ है।

इसमें तत्कालीन भाषाओं के जो नमूने दिये गये हैं, वे भाषा विज्ञान के लिए बड़े महत्त्व के हैं।

रानी केतकी की कहानी 'ठेठ हिन्दी' में लिखा हुआ एक काव्य ग्रन्थ है जो सरल भाषा में लिखा गया है।

"इंशा" की कविताओं में हास्यरस तथा व्यङ्ग की मात्रा बहुत अधिक होती थी। उनकी बात-चीत और कविता को सुनकर श्रोता हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते थे। व्याकरण के समान रूखे विषय के ग्रन्थ दरियाए-लताफत में भी उन्होंने विनोदप्रियता को नहीं छोड़ा है। वे एक प्रतिभा सम्पन्न शायर, भाषाशास्त्री और अरबी-फारसी के अच्छे विद्वान थे। इसी से बहुत से विद्वान इन्हें उर्दू-साहित्य का 'अमीर खुसरो' भी कहते हैं। इंशा की कविता के नमूने—

लिपट कर कृष्णजी से राधिका हँसकर लगीं कहने
मिला है चाँद से ये लो, अन्धेरे मास का जोड़ा।

× × ×

मैं की सुराही ऐसी ला, बर्फ में लगाकर
जिसके धुँए से साकी, होवे दिमाग ठण्डा।

× × ×

बर्फ चश्मक जन है साकी, अब है आया हुआ
जामे मैं दे, तू किधर, जाता मचलता है हुआ।

इशी-लासिंग समझौता

सन् १९१७ में अमेरिका और जापान के बीच सम्पन्न हुआ एक समझौता।

सन् १९१७ में प्रथम महायुद्ध के समय रूस में बोलशेविक क्रान्ति हो जाने से रूस युद्ध से अलग हो गया। इससे जर्मनी ने पूर्वी मोरचे की सारी सेनाएँ पश्चिमी मोर्चे पर झोंक दी। दूसरी ओर समुद्र में भी उसकी पनडुब्बियाँ ब्रिटेन के जहाजों को धड़ा-धड़ डुबो रही थीं। चारों ओर से ब्रिटेन संकट में आ गया था।

ऐसी स्थिति में ब्रिटेन और फ्रांस जापान के जहाजी बेड़े की मदद लेना चाहते थे। अतः उन्होंने जापान से एक गुप्त संधि करके जापान के जहाजी बेड़े की सहायता इस शर्त पर ली कि युद्ध की समाप्ति पर जब संधि-परिषद् होगी उसमें वे शान्तुंग प्रान्त पर जापान के विशेषाधिकारों का समर्थन करेंगे।

इसी समय अमेरिका भी युद्ध में शामिल हो गया और उसने भी जापान से एक संधि की, जो लासिंग-इशी समझौते के नाम से प्रसिद्ध है। इस संधि में अमेरिका ने भी चीन में जापान के विशेषाधिकारों का समर्थन किया। लेकिन यह स्पष्ट नहीं किया कि वे अधिकार क्या रूप धारण करेंगे और किस हद तक अमेरिका उनका समर्थन करेगा।

इस समझौते पर जापान की ओर से श्री ईशी ने और अमेरिका की ओर से श्री लासिंग ने हस्ताक्षर किये। इस समझौते के कारण चीन में जापान द्वारा साम्राज्य-विस्तार करने के मार्ग में अमेरिका की जो बाधा थी, वह भी दूर हो गई।

इस्मत इनोनु

मुस्तफ़ा कमालपाशा के समय में उसका सबसे बड़ा सहायक और कमालपाशा की मृत्यु के पश्चात् टर्की का राष्ट्रपति इस्मत इनोनु। जिसका जन्म सन् १८८३ में हुआ था।

सन् १९३७ से १९५० तक इस्मत इनोनु टर्की का राष्ट्रपति रहा और उसने वे सब तानाशाही अधिकार अपने पास सुरक्षित रक्खे जिनका उपयोग सर्वशक्ति-सम्पन्न कमालपाशा करता था। कमालपाशा ही की तरह इस्मत इनोनु का प्रभाव भी सारे राष्ट्र पर छा गया। सन् १९५० तक व टर्की का राष्ट्रपति और रिपब्लिकन दल के नेता के रूप में दोनों काम करता रहा।

सन् १९५० में टर्की का शासन रिपब्लिकन पार्टी के हाथ से निकलकर डेमाक्रेटिक पार्टी के हाथ में आ गया जो सन् १९६० तक इसी पार्टी के हाथ में रहा। मगर यह पार्टी दिन-दिन जनता में अप्रिय होती गई और बढ़ते हुए असन्तोष के फलस्वरूप एक बड़ी जन-क्रांति वहाँ हुई जिसमें वहाँ के मंत्रियों और डेमाक्रेटिक पार्टी के मुख्य नेताओं को पकड़ लिया गया और फौजी अदालत में मुकदमा चलाकर बहुतों को फाँसी पर लटका दिया गया।

इसके बाद नवीन व्यवस्था में चुनाव हुए और उसके नेता ७८ वर्षीय इस्मत इनोनु बनाये गये। सन् १९६१ में टर्की का नया संविधान अंगीकृत किया गया और इस्मत इनोनु प्रधान मंत्री बनाये गये। जुलाई १९६२ में इस्मत इनोनु ने सैनिक केन्द्रों का दौरा किया और निवेदन किया कि सैनिक अधिकारी राजनीति से तटस्थ रहें। इनोनु ने टर्की के उद्योगपतियों, व्यापारियों और श्रम-संगठनों से बातचीत कर टर्की के लिए प्रथम पंचवर्षीय योजना का निर्माण बनाकर उसका कार्यान्वय प्रारम्भ कर दिया है।

इस्माइल सामानी

(८९२—९०७)

इरान में सामानी-राजवंश का एक प्रसिद्ध शासक।

अहमद सामानी प्रथम का पुत्र इस्माइल सामानी हुआ। इसको इसके बड़े भाई नस्र ने बुखारा का शासक बना कर भेजा। उस समय राजनैतिक अशान्ति और लूट-मार के कारण बुखारा की हालत बहुत अस्त-व्यस्त हो रही थी। इस्माइल ने बड़ी तत्परता और बहादुरी से इस सारी अव्यवस्था पर विजय पाई, डाकुओं और गुण्डों का उसने बड़ी बेरहमी से दमन किया और बुखारा में सुव्यवस्थित शासन स्थापित किया। इसके बड़े भाई नस्र ने कुछ लोगों के बहकाने में आकर इस पर हमला भी किया मगर फिर बीच बचाव होकर दोनों भाई शान्ति से रहने लगे।

उसके बाद इस्माइल बुखारा का अमीर बना और अपने बड़े भाई नस्र के मरने पर वह अन्तर्वेद और ख्वारेजम का भी स्वामी बन गया। उसके बाद सफ्फ़ारी वंश के बलख के शासक आम्र् को हराकर, गिरफ्तार कर उसने खलीफा के पास भेज दिया। इससे खुश होकर खलीफा ने इस्माइल सामानी को खुरासान, तुर्किस्तान, अन्तर्वेद, सिंध-हिन्द और जुरजान का वली (गवर्नर) बना दिया। इस्माइल सामानी का शासन अपनी प्रजा के लिए बड़ा शान्तिपूर्ण और न्यायपूरित था। उसके शासन के अन्तिम चार सालों में बुखारा नगर बहुत वैभवशाली हो गया था। यद्यपि बुखारा इससे पहले ही एक मुसलिम-केन्द्र का रूप ले चुका था मगर बुखारा को "बुखारा शरीफ" बना कर उसे इसलाम-संस्कृति और ज्ञान-विज्ञान का महान् केन्द्र बनाना इस्माइल सामानी का ही काम था। बुखारा ने पूरब का बगदाद बन कर अनेक शताब्दियों तक केवल मध्यएशिया का ही नहीं, सारे पूर्वी इस्लामिक जगत् के एक तीर्थस्थान,

का रूप लिया। बड़े से बड़े धर्मशास्त्री, कवि और दार्शनिक यहाँ पैदा हुए। यहाँ के इतिहासकारों ने भूतकालिक और वर्तमानकालिक इतिहास पर सुन्दर ग्रन्थ लिखे। बुखारा उस समय एक ऐसे राज्य की राजधानी था जिसमें मेर्व, नशापोर, तेहरान, आमूल, हिरात, बलख और मुलतान जैसे महान् नगर थे। इस्माइल सामानी की मृत्यु सन् ६०७ में हुई।

इन्दिरा गान्धी

भारत के प्रधान मन्त्री पं० जवाहिरलाल नेहरू की पुत्री। संसद सदस्य स्वर्गीय श्री फीरोज गान्धी की पत्नी, जिनका जन्म सन् १६१७ में हुआ था।

आधुनिक युग की भारतीय नारियों में इन्दिरा गान्धी का नाम एक प्रकाशमान नक्षत्र की भाँति चमक रहा है।

श्रीमती इन्दिरा गांधी की माता श्रीमती कमला नेहरू का देहान्त उनकी छोटी उमर में ही हो गया। इसलिए इनका विशेष विकास अपने पिता पं० जवाहरलाल नेहरू की छाया में ही हुआ। इसलिए पं० नेहरू के बहुत से गुणों की छाया इनके जीवन में परिलक्षित हो रही है।

पं० जवाहरलाल नेहरू के साथ श्रीमती इन्दिरा गान्धी ने कई बार विश्व के भिन्न-भिन्न देशों की यात्रा की, जिसके परिणामस्वरूप आज की दुनिया के सभी जाने-पहचाने महान व्यक्तियों से श्रीमती इन्दिरा का व्यक्तिगत सम्पर्क रहा है। विश्व के विभिन्न देशों के प्रतिनिधियों से उन्होंने नजदीक से बातें की और संसार के अन्तर्राष्ट्रीय तथा राजनैतिक पहलुओं को एक सार्वजनिक दृष्टिकोण से आँका। इन्होंने अपने ४५ साल के जीवन के लम्बे अनुभव में विश्व-राजनीति की गतिविधियों का काफी ज्ञान प्राप्त किया। दुनियाँ की वर्तमान समस्याओं से भारत की आन्तरिक परिस्थितियों का तुलनात्मक अध्ययन करने में उन्होंने अच्छी सफलता प्राप्त की।

सन् १६५६ में वे इंडियन नेशनल काँग्रेस की अध्यक्षा चुनी गईं। काँग्रेस की अध्यक्षा के रूप में इन्दिरा गान्धी चौथी महिला अध्यक्ष थीं और अपनी पूर्व महिला अध्यक्षाओं में, तीनों से उम्र में बहुत छोटी थीं।

काँग्रेस की अध्यक्षा बनने के साथ ही श्रीमती इन्दिरा गान्धी ने काँग्रेस के सामने आर्थिक स्वतंत्रता का कार्यक्रम रखा और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सक्रिय कदम उठाने की घोषणा की। (१) राष्ट्र की पैदावार बढ़ाई जायगी (२) पैदावार का ठीक ढंग से बँटवारा किया जायगा और हर व्यक्ति को अपने पूरे विकास का अवसर दिया जायगा।

श्रीमती इन्दिरा गान्धी के पहले श्रीमती एनी बीसेंट (सन् १६१७) श्रीमती सरोजिनी नायडू (सन् १६२७) और श्रीमती नीलीसेन गुप्ता (सन् १६३४) कांग्रेस की अध्यक्षा चुनी गई थीं।

काँग्रेस के सिवाय भारतीय महिलाओं की उन्नति के लिए और भी कई संगठनों में श्रीमती इन्दिरा गान्धी बड़ी दिलचस्पी से भाग लेती है।

इंस्टीट्यूशन ऑफ इंजीनियर्स, इंडिया

भारतवर्ष में इंजिनियरिंग विज्ञान का विकास करने के लिए स्थापित एक प्रामाणिक संस्था, जिसकी स्थापना १३ सितम्बर सन् १६२० को मद्रास में हुई।

सन् १६२१ की २३ फरवरी को इस संस्था का उद्घाटन भारतवर्ष के तत्कालीन वाइसराय लार्ड चेम्सफोर्ड ने कलकत्ते में किया।

इस संस्था का मुख्य उद्देश्य इंजिनियरिंग विज्ञान के सामान्य विकास को क्रियान्वित करना और इस संस्था से सम्बन्धित व्यक्तियों और सदस्यों को इंजिनियरिंग सम्बन्धी विषयों पर विचारों के आदान-प्रदान करने की सुविधा देना रखा गया।

उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए इस संस्था ने एक त्रैमासिक जर्नल और बुलेटिन निकालना प्रारम्भ किया और सन् १६२८ से इस संस्था ने अपने ऐसोशियेट मेम्बरशिप के लिए परीक्षाएँ लेना भी प्रारम्भ किया। इन परीक्षाओं का स्तर सरकार ने इंजिनियरिंग कालेजों की बी० ई० की डिग्री के बराबर माना?

सन् १६३० में तत्कालीन वाइसराय लार्ड इरविन ने कलकत्ते के गोखले रोड पर इसके निजी भवन का उद्घाटन

किया। सन् १९४५ में कलकत्ते में इस संस्था ने अपनी 'रजत जयन्ती' मनाई।

इस संस्था की शाखाओं का विस्तार करीब-करीब समस्त भारतवर्ष के प्रमुख नगरों में हो चुका है। मैसूर हैदराबाद, लन्दन, पंजाब, बम्बई, बिहार, मध्यप्रदेश, ट्रावंकोर इत्यादि अनेक स्थानों पर इसके केन्द्र स्थापित हो चुके हैं।

भारतवर्ष के इंजिनियरिंग-विज्ञान के विकास में इस संस्था का सहयोग बहुत महत्व पूर्ण रहा है।

इस्पात लोहा

लोहा और उससे तैय्यार किया हुआ इस्पात एक मूल धातु है, जिसको भिन्न-भिन्न रूप में तैयार करके तकूवे से लेकर तोप तक और सूई से लेकर जहाज तक कोई भी वस्तु बनाई जा सकती है।

इस वस्तु का प्रयोग बहुत प्राचीन समय से संसार में चला आ रहा है, मगर आधुनिक मशीन युग में तो इस उद्योग का बहुत भारी विकास हुआ है। इस्पात का उद्योग एक ऐसा उद्योग है, जिसके बिना शस्त्रास्त्रों और मशीनों के इस युग में मनुष्य का एक क्षण भी काम नहीं चल सकता। इसीलिए इस उद्योग की गणना बुनियादी उद्योगों में की जाती है।

भारतवर्ष में लोहे का उद्योग

भारतवर्ष में लोहे का उद्योग बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। ईसवी सन् से १५० वर्ष पहले से बंगाल बिहार और उड़ीसा के प्रदेशों में इस उद्योग का काफी विकास हो गया था। उस समय के मन्दिरों में जो प्राचीन चित्रकारियाँ मिलती हैं, उनको देखने से मालूम होता है कि उस समय के लोग लोहे के औजारों-तलवार, बरछी, धनुषबाण, परशु, ढाल इत्यादि चीजों से परिचित थे और ये चीजें यहाँ पर प्रचुर प्रमाण में बनती थीं।

उड़ीसा प्रदेश के भुवनेश्वर और कनारक के मन्दिरों में, जिनका निर्माण ९वीं सदी के अन्त में हुआ माना जाता है, लोहे के ऐसे विशाल स्तम्भ मिलते हैं, जो आज भी अपने अतीत गौरव की स्मृति दिला रहे हैं। कनारक के मन्दिर के प्रवेश-द्वार के पास ही ११॥ इंच मोटा और २३ फीट ऊँचा एक लोहे का स्तंभ लगा हुआ है, जो सूचित करता है कि उस समय भी भारतवर्ष के लोग लोहे के गुण धर्म, उसको गलाने और ढालने की क्रिया से पूरी तरह वाकिफ थे और यह देश लोहे के उद्योग में सराहनीय उन्नति कर चुका था। इसी समय की बनी हुई बचउली नामक विशालकाय तोप नवाब मुर्शिदाबाद के इमाम बाड़े में रखी हुई है।

इसी प्रकार लोहे के बड़े-बड़े स्तंभ और स्थूलकाय तोपें और जगह भी देखने को मिलती हैं।

मुसलमानी शासन के आरंभ के साथ ही साथ लोहे के उद्योग-धन्धों में भी कई उलट-फेर हुए। मुसलमानों के साथ जो कारीगर इस प्रान्त में आये, उन्होंने अपने ढंग से शस्त्रास्त्रों का निर्माण करना प्रारंभ किया। पटना, मुंगेर, ढाका, मुर्शिदाबाद, बर्दवान इत्यादि स्थानों में बनने वाले सभी हथियारों पर फारस और अरब कारीगरी की पूरी छाप बैठ गई। मुसलमान शासक हथियारों के बड़े प्रेमी हुआ करते थे। इसलिए वे हथियारों का निर्माण स्वयं वैयक्तिक देख-रेख में करवाते थे। सम्राट् अकबर, एक सबल शासक होते हुए भी हथियारों का चतुर कारीगर था। यही कारण था कि यूरोप तक के कारीगर सम्राट् अकबर का शस्त्रागार देखने के लिए उत्सुक रहते थे। १५ वीं और १६ वीं शताब्दी के बीच में इस प्रान्त के लोहे के उद्योग में उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ। जहाँ पहले लोहे की बन्दूकें बनती थीं, वहाँ अब भारी-से-भारी तोपें भी ढाली जाने लगीं। मुर्शिदाबाद की 'जहाज पोश' नामक तोप, सन् १६३० में वहाँ के जनार्दन नामक कारीगर ने बनाई थी। इसकी लम्बाई १७ फीट और वजन २१२ मन है।

वर्तमान काल

भारतवर्ष में आधुनिक ढंग से लोहे के उद्योग का प्रारंभ 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' के समय में सन् १८२४ से प्रारंभ होता है। सन् १८३० ई० में अर्काट जिले के अन्दर और सन् १८७५ ई० में आसनसोल के समीप 'बंगाल-आयर्न ऐंड स्टील कम्पनी' की स्थापना हुई।

बड़े कारखानों को चलाने के लिए कच्चे माल की बहुत अधिक आवश्यकता होती है। आधुनिक उद्योग का प्रचार करने के लिए जब खदानों की खोज की गई तो बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रान्त और मयूरभंज के क्षेत्रों में विशाल खदानें उपलब्ध हुईं।

इसके बाद लोहे के उद्योग में बम्बई के सेठ जमशेदजी नसरवान जी टाटा ने अपना क्रान्तिकारी कदम उठाया और बी० एन० रेलवे के आधुनिक टाटानगर स्टेशन के पास साकची नामक ग्राम में २७ अगस्त सन् १९०७ को 'टाटा आयर्न ऐंड स्टील कम्पनी' की स्थापना की।

यह कारखाना बहुत ही विशाल पाये के ऊपर स्थापित किया गया। इस कारखाने में आधुनिक विज्ञान की नई-से-नई मैशीनें लगाई गईं। इस कारखाने में सब प्रकार का रेलवे और इमारतों के प्रयोग में आनेवाला लोहे का सामान तैयार होता है और करीब १३ लाख टन इस्पात का उत्पादन यह वर्ष भर में करता है।

सार्वजनिक क्षेत्र में इस्पात का उद्योग

स्वाधीनता प्राप्त होने के पश्चात् भारत की सरकार ने लोहे के उद्योग की उपयोगिता देखकर सार्वजनिक क्षेत्र में इसके तीन नवीन कारखाने रूस, जर्मनी और इंग्लैण्ड के सहयोग से 'भिलाई' 'रूरकेला' और 'दुर्गापुर' के अन्दर स्थापित किये हैं। इनमें से भिलाई प्रोजेक्ट ने अपना पूरा उत्पादन प्रारम्भ कर दिया है और शेष दोनों कारखाने भी बहुत शीघ्र अपना पूरा उत्पादन शुरू करने लग जायेंगे। इन तीनों कारखानों की उत्पादन क्षमता दस-दस लाख टन प्रति वर्ष की रक्खी गई है।

अमेरिका में इस्पात-उद्योग

सन् १८६५ ई० में गृह-युद्ध की समाप्ति के पश्चात, अमेरिकन राष्ट्र ने आधारभूत बुनियादी उद्योग इस्पात की उन्नति में अपनी पूरी शक्ति लगा दी। अमेरिका के इस्पात-उद्योग के विकास में वहाँ के प्रसिद्ध उद्योगपति एण्ड्रू कार्नेगी का सबसे बड़ा हाथ रहा। सन् १८७५ ई० में उसने मनांग हीला नदी के तीर पर, जो इस्पात की फैक्टरी स्थापित की, वह सारे देश में सबसे बड़ी थी। कई दृष्टियों से कार्नेगी की कहानी, यूनाइटेड स्टेट्स अमेरिका के बड़े उद्योग का इतिहास है। सन् १८७५ से सन् १९०१ तक लोहे के व्यवसाय पर कार्नेगी की प्रभुता रही, मगर सन् १९०१ में लोहे के सब कारखानों को मिलाकर एक नया संगठन बनाया गया, जिसका नाम 'यूनाइटेड् स्टेट्स् स्टील कार्पोरेशन' रखा गया। लोहे के उद्योग की सारी बागडोर इसी कार्पोरेशन के हाथ में आ गई। तब से वहाँ इस उद्योग की बराबर उन्नति हो रही है और आज अमेरिका संसार में सबसे अधिक इस्पात उत्पन्न करनेवाला देश बन गया है। इस देश के इस्पात का वार्षिक उत्पादन करीब साढ़े ग्यारह करोड़ टन है।

फौलाद-उद्योग में 'ओपियन हर्थ' नामक एक नवीन प्रणाली का अविष्कार हो जाने से अमेरिका के फौलाद-उद्योग को अपना विकास करने में बहुत मदद मिली। इस नई प्रणाली के द्वारा उत्कृष्ट श्रेणी का फौलाद बनाने में उस समय केवल ३५ डॉलर प्रति टन व्यय पड़ने लगा जब कि पुरानी पद्धति के द्वारा इस्पात बनाने में प्रति टन ३०० डॉलर खर्च बैठता था।

रूस में इस्पात-उद्योग

प्राचीन काल में दूसरे देशों की तरह रूस के आस-पास बसने वाली जातियाँ भी तीर, तलवार, छुरे इत्यादि लड़ने-भिड़ने के आवश्यक शस्त्र बना लिया करती थीं, मगर संगठित रूप से लोहे के एक विशाल तोपखाने का निर्माण रूस के शासक इवान तृतीय ने किया। उसने पश्चिमी यूरोप से कारीगरों को बुलाकर एक विशाल तोपखाने का निर्माण करवाया। उसके द्वारा निर्मित रूसी तोपखाना उस समय और उसके बाद भी संसार का सबसे बड़ा तोपखाना माना जाता था।

उसके बाद जब यूरोप में मशीन-युग का विकास हुआ तो रूस के अन्दर भी औद्योगिक विकास की लहर पहुँची। सन् १९०० से १९१० के बीच में इस्पात उद्योग के कारखाने खुलने लगे।

बोल्शेविक क्रान्ति होने के पश्चात् रूस में इस्पात के उद्योग का बड़ी तेज़ी से विकास हुआ और आज तो शायद इस्पात उद्योग करने वाले देशों में उसका दूसरा नम्बर है। इस समय रूस में इस्पात का वार्षिक उत्पादन साढ़े चार करोड़ टन के लगभग है।

इसी प्रकार चीन, जापान, इंगलैण्ड, यूरोप इत्यादि देशों

में भी मशीन-उद्योग के पश्चात् इस्पात-उद्योग की अभूतपूर्व क्रान्ति हुई और आज यह उद्योग सारे औद्योगिक क्षेत्र में प्रथम श्रेणी का उद्योग माना जाता है।

इस्फ़हान

ईरान देश की प्राचीन राजधानी और प्राचीन इरानी सभ्यता का प्रधान केन्द्र, जो समुद्र तट से ५२७० फीट की ऊँचाई पर बसा हुआ है।

इस्फ़हान शहर ईरान में प्राचीन सभ्यता का एक केन्द्र था। प्राचीन युग में इस शहर की कीर्ति बहुत दूर-दूर तक फैली हुई थी। इसके ऐतिहासिक दर्शनीय स्थानों में 'हश्त-बहिश्त' (८ स्वर्ग) और 'चेहल सितून' प्रसिद्ध हैं। इन स्थानों में प्राचीन ईरानी संस्कृति और वास्तु-कला का परिचय मिलता है। प्राचीन काल में इस्फहान की शराब सारी दुनिया में प्रसिद्ध थी।

इस्माइल सर मिर्जा

भारत के सुप्रसिद्ध राज्य-व्यवस्थापक जो पहले मैसूर स्टेट के और बाद में जयपुर स्टेट के दीवान रहे।

सर मिर्जा इस्माइल का जन्म सन् १८८३ ई० में हुआ। सर मिर्जा इस्माइल भारतवर्ष के उन लोगों में थे, जिन्होंने अपनी शासकीय कुशलता में भारत के देशी राज्यों में अच्छी कीर्ति उपार्जित की। सर अकबर हैदरी (हैदराबाद), सर प्रभाशंकर पट्टनी (भावनगर), सर मिर्जा इस्माइल (मैसूर), सर सिरेमल बापना (इन्दौर) इत्यादि व्यक्तियों का नाम भारतीय रियासतों के इतिहास में बड़े गौरव से स्मरण किया जाता है।

सर मिर्जा इस्माइल सन् १९०८ में मैसूर स्टेट के दीवान नियुक्त हुए। उनके दीवान होने के बाद मैसूर स्टेट ने तीव्र गति से सर्वतोमुखी उन्नति की। शिक्षा के क्षेत्र में मैसूर स्टेट उस समय हिन्दुस्तान की देशी रियासतों में सबसे आगे बढ़ी हुई स्टेट थी। यहाँ का विश्वविद्यालय बहुत सुप्रसिद्ध था।

इसी प्रकार वहाँ राजकीय क्षेत्र में धारा सभा और प्रतिनिधि सभा के अधिकार भी व्यापक और विस्तृत किये गये। मतलब यह कि सर मिर्जा इस्माइल की दीवानगी में मैसूर राज्य की सर्वांगीण उन्नति हुई और वहाँ पर सर मिर्जा इस्माइल को अच्छी प्रसिद्धि मिली।

शासन में एक कुशल अनुभवी होने के साथ-साथ सर मिर्जा इस्माइल ऊँचे दर्जे के शिक्षा-शास्त्री भी थे। कितने ही दिनों तक वे बम्बई विश्वविद्यालय के वाइ-चाँसलर भी रहे और उनके दीक्षान्त भाषण तो प्रायः भारत की सभी युनिवर्सिटियों में होते रहते थे।

भारत के राजनैतिक क्षेत्र में भी अपनी राजनैतिक योग्यता के कारण सर मिर्जा इस्माइल ने अच्छा स्थान प्राप्त किया था। लन्दन में होने वाली दोनों 'राउण्ड टेबुल कान्फ्रेंसों' में वे यहाँ से प्रतिनिधि बनकर गये थे।

सबसे बाद सर मिर्जा इस्माइल जयपुर राज्य के दीवान बने। जयपुर रियासत उस समय एक पिछड़ी हुई रियासत थी। उसको आगे लाने में उन्होंने काफी प्रयत्न किया।

सन् १९५६ ई० में उनका देहान्त हुआ।

इस्लाम-संस्कृति

ईसा की छठीं सदी के अन्त में और सातवीं सदी के प्रारम्भ में मध्य एशिया में अरब देश के अन्तर्गत, हजरत मुहम्मद पैगम्बर के द्वारा स्थापित एक विराट् और विशाल संस्कृति।

इस्लाम संस्कृति का उदय समस्त मानवीय इतिहास में एक युगान्तरकारी घटना है। वह एक बादल की तरह अरब की भूमि से उठी—शान्त वर्षा के बादल की तरह नहीं, प्रत्युत कड़कते-चमकते और आँधी तूफान के साथ चलते हुये बादल की तरह और देखते-देखते सारे मध्य-एशिया में फैल गई। ईरान, अफगानिस्तान, मिस्र, मेसोपोटामिया इत्यादि देशों को अपने झंडे के नीचे लेती हुई, वह स्पेन तक जा पहुँची। भारतवर्ष के समान विशाल देश में भी उसका प्रबल झोंका आया।

इस संस्कृति के मूल प्रवर्तक हजरत मुहम्मद पैगम्बर थे। इनका जन्म सन् ५७० में मक्का के एक कुरेश-वंश में हुआ था। इस्लाम की मान्यता के अनुसार ४० वर्ष की

उम्र में इन्हें 'खुदायी इलहाम' (ईश्वरीय प्रेरणा) हुआ और उसीके अनुसार ईसवी सन् ६२२ की १६ जुलाई को उन्होंने इस्लाम की घोषणा की और स्वयं उसके पैगम्बर बने। यह दिन इस्लाम इतिहास में बहुत पवित्र माना जाता है और उसी दिन से मुसलमानों के हिजरी सन् का प्रारम्भ होता।

उस समय आस-पास के प्रदेशों में सब दूर मूर्तिपूजा और बहुदेववाद की धार्मिक प्रथाएँ प्रचलित थीं। हजरत पैगम्बर ने मूर्तिपूजा का कट्टर विरोध किया और इस्लाम में उसे 'कुफ्र' के नाम से सम्बोधित किया। कुफ्र का अनुकरण करने वालों को 'काफिर' की संज्ञा दी गई।

इस नवीन सभ्यता की रचना में पैगम्बर ने कुछ मूलभूत सिद्धान्त रखे थे, जो विशुद्ध रचनात्मक (पॉजेटिव) नीति के आधार पर आधारित थे। इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर उन्होंने इस्लाम का दरवाजा गरीब-अमीर, देशी-विदेशी, छूत-अछूत, दास-अर्थदास, स्त्री-पुरुष सबके लिये समान रूप से खोल दिया। इस्लाम के झंडे के नीचे आने के बाद प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह किसी वर्ण-जाति या देश का क्यों न हो, भाई-चारे के क्षेत्र में आ जाता था और उस जगह आते ही भेद-भाव के सब पुराने बन्धनों को तोड़कर इस्लाम की एकता के सूत्र में वह बँध जाता था। ऊँचे से ऊँचा नवाब भी इस्लाम के एक छोटे मजदूर के साथ एक थाली में खाने से इनकार नहीं कर सकता था।

उस समय अरब के निवासी छोटे-बड़े घुमन्तू कबीलों के रूप में रहकर 'खानाबदोश' जीवन व्यतीत करते थे और आपस में लड़ते रहते थे। सैनिक शक्ति और साहस उनमें बहुत था, लेकिन संगठित रूप से रहने की आदत उनमें बिल्कुल न थी।

इस्लाम के भाई-चारे का सन्देश पाते ही ये लोग धड़ाधड़ इस्लाम के झंडे के नीचे आने लगे और 'कलमा' पढ़कर अपने को सच्चा मुसलमान अनुभव करने लगे। फूट और दलबन्दी के स्थान पर उनमें एकता की भावनाओं का उद्गम होने लगा।

हजरत पैगम्बर ने उनकी छिपी हुई शक्तियों को समझा और उन सबों को सैनिक-शिक्षा देकर इस्लाम की एक मजबूत सेना तैयार करना प्रारम्भ किया। इस प्रकार इस्लाम, संस्कृति, धार्मिक, राजनैतिक और सैनिक—इन तीनों तत्वों की सम्मिश्रण हो गयी।

सैनिक शिक्षा, संगठन और इस्लाम का झण्डा मिलते ही इनमें से बहुत से उत्साही सैनिकों का उत्साह चमक उठा और वे अपनी-अपनी सेनाओं को लेकर 'कुफ्र' का नाश करने के लिये 'जिहाद' या धर्म-युद्ध के लिए निकल पड़े और देखते देखते केवल पौन शताब्दी में सिन्धु-तट से स्पेन तक और सिरदरिया से नील नदी तक एक विशाल 'इस्लामी साम्राज्य' की स्थापना हो गई। जहाँ जहाँ पर ये विजेता गये, उन्होंने वहाँ के सिर्फ राजनैतिक संगठन को ही नष्ट नहीं किया, बल्कि वहाँ के धर्म और संस्कृति के प्रतीकों को भी नष्ट-भ्रष्ट करके धर्मस्थानों और मूर्तियों को भी समाप्त कर दिया और इस्लाम की स्थापना कर दी।

इस्लाम का विस्तार

हजरत मुहम्मद के समय में तथा उनके पश्चात् खलीफाओं के समय में इस्लाम का बहुत विस्तार हुआ। खलीफा 'अबूबकर' के समय में सेनापति 'हालिद' ने सारे सीरिया और मेसोपोटामिया राज्य को खिलाफत में मिला लिया। खलीफा 'उमर' के प्रधान सेनापति 'अमरू-बिन-लेस' ने सारे मिस्र राज्य को 'अरब-साम्राज्य' के अधीन कर दिया। 'सैयद-बिन-आबी बक्श' ने सन् ६३५ में ओडेशिया के युद्ध में सन् ६३७ में जलूला के रणक्षेत्र में और सन् ६४२ में नेहबन्द के रणक्षेत्र में ईरानी सेनाओं को परास्त कर ईरान पर इस्लाम की सत्ता स्थापित की। खलीफा उस्मान के समय में, सन् ६४५ ई० में 'साइप्रस' द्वीप पर भी इस्लाम का झंडा फहराया गया।

उमैया खिलाफत के समय में 'खिलाफत' की राजधानी दमिश्क में चली गई। यहाँ से इन्होंने समुद्र पार करके स्पेन के ऊपर इस्लामी-सत्ता कायम की। सन् ६८८ में 'जिब्राल्टर' जल प्रणाली तक सारे उत्तरी अफ्रीका पर इस्लामी राज्य स्थापित हो गया।

खलीफा प्रथम वालिद के समय में सन् ७०५ से सन् ७१४ तक अरब-साम्राज्य का बहुत विस्तार हुआ। खलीफा वलीद के समय में खुरासान के गवर्नर 'कुतेब' ने मध्यएशिया में अरब-शासन और इस्लाम की मजबूत नींव डालने में

बड़ा योग दिया। इसने चार बार अपने आस-पास के क्षेत्रों में दिग्विजय करके हजारों लोगों को मारा, देवस्थानों को बरबाद किया, मूर्तियों को तोड़ा और बड़ी-बड़ी लूटें कीं। उसके लिए लिखा गया है कि कुतेब जैसे इस्लाम के प्रचारक शायद कहीं और हुए हों। 'बुखारा' के चारों अभियानों में वह वहाँ के नागरिकों को उनका धर्म छुड़ाकर जबर्दस्ती मुसलमान बनने के लिए उन्हें बाध्य करता रहा। सन् ७१२ ई० में 'समरकन्द' के अग्नि-मन्दिर को गिराकर उसके स्थान पर कुतेब ने एक 'जुमा-मस्जिद' बनवाई। बुखारा के भी कई धर्म-स्थानों को गिराकर वहाँ पर उसने कई मस्जिदें बनवाईं, जो अब भी इन शहरों की पुरानी मस्जिदों में हैं।

सन् ७११ ईसवी की २८ जुलाई को अफ्रीका के अरब सेनापति 'तारीख बिन-जियात' ने समुद्र को पार कर स्पेन राज्य में प्रवेश किया। जिस जगह उसने समुद्र को पार किया था, उस स्थान का नाम उसी के नाम पर 'जैब्रेल तारीख' पड़ा, जो आगे जाकर 'जिब्राल्टर' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

सन् ७१४ में इस्लाम के सेनापतियों ने एशिया और यूरप में एक समुद्र से दूसरे समुद्र-पर्यन्त अपनी विजय-पताका फहरायी। पश्चिम में 'अटलांटिक महासागर', उत्तर में पेरीनीस पर्वतमाला, दक्षिण में सहारा मरुभूमि तक विस्तृत उत्तर अफ्रीका, इजिप्ट और अबीसीनिया राज्य और पूर्व में एशिया महाद्वीप के समग्र 'सिनाई' प्रायद्वीप, फिलस्तीन, सीरिया, एशिया माईनर, मेसोपोटामिया, ईरान, काबुल और सिन्धुनदी के पश्चिम दिग्वर्ती प्रदेश, इस्लामी धर्म में दीक्षित होकर मुसलमानी साम्राज्य के अंग बन गये थे।

इसके पश्चात् मुसलमान विजेताओं का ध्यान हिन्दुस्तान की तरफ गया। सबसे पहले मुहम्मद-बिन-कासिम ने और उसके बाद मुहम्मद गजनवी ने कई बार आक्रमण करके हिन्दुस्तान में बड़ी-बड़ी लूटें कीं। सन् १००८ में उसने भारत पर आक्रमण कर राजा अनंगपाल को पराजित किया।

इसवी सन् १०१८ में उसने मथुरा की सुप्रसिद्ध लूट की। मथुरा के अलौकिक वैभव और महमूद को मिली हुई अपार सम्पत्ति का इतिहासकार 'उतबी' ने इस प्रकार वर्णन किया है—

"मथुरा में मूर्तियों के एक हजार मन्दिर थे, जो किलों की तरह बने थे। शहर के बीचो-बीच एक सबसे ऊँचा मन्दिर था। यदि ऐसी कोई इमारत बनाने का विचार करे तो उसे १ हजार दीनारों (सोने के सिक्कों) की एक लाख थैलियाँ खर्च करनी पड़ेंगी और कुशल कारीगरों की सहायता से भी ऐसी इमारत दो सौ वर्षों में भी तैयार नहीं हो सकेगी। मूर्तियों के जो ढेर मिले, उनमें शुद्ध सोने की पाँच हाथ ऊँची पाँच मूर्तियाँ थीं। इनमें से एक मूर्ति पर एक रत्न जड़ा था, जिसका मूल्य ५० हजार दीनार से कम नहीं था। एक मूर्ति पर चार सौ "मिस्काल" वजन का एक नीलम जड़ा था। चाँदी की मूर्तियाँ तो इतनी थीं कि उनको तौलने वाले थक गये।"

सोमनाथ की लूट तो इस लूट से भी बड़ी थी। मुहम्मद गजनी के बाद मुहम्मद गोरी ने इस देश में इस्लामी-साम्राज्य का सूत्रपात कर दिया।

इस प्रकार इस्लामी-सभ्यता का प्रचार बहुत थोड़े समय में विश्व के एक बड़े भाग पर हो गया, मगर इतिहास से यह बात स्पष्ट प्रकट होती है कि इस संस्कृति का विश्वव्यापी प्रचार तलवार की छाँह में हुआ, प्रेम और मुहब्बत की छाँह में नहीं।

धर्म-संस्था

इस्लाम की बुनियाद सबसे पहले धर्म सिद्धान्त के ऊपर स्थापित हुई। मुसलमान और इस्लाम ये दोनों शब्द अरबी भाषा के "सलम" धातु से बने हैं। इसका अर्थ विपत्ति रहित मुक्ति सुख को देना है। मुसलिम और इमान शब्द से मुसलमान शब्द बना जो ईमान और पवित्रता का सूचक है। अरब में पहले अनेक देववाद और मूर्तिपूजा का बहुत प्रचार था। इस्लाम ने अपने धर्म का मूल आधार 'एकेश्वरवाद' को बनाया। एक अल्लाह और उसके पैगम्बर के सिवाय किसी भी अन्य देवी-देवता को मानना या मूर्तिपूजा करना—इन चीजों को उसने 'कुफ्र' करार दिया।

इस्लाम संस्कृति की प्रमुख विशेषता उसका कट्टर

एकेश्वरवाद है। यह समस्त मुसलमानों के लिये 'कलमा' में इस प्रकार बतलाया गया है—

"अल्लाह के अतिरिक्त कोई दूसरा देवता नहीं है और मुहम्मद उसके पैगम्बर हैं।"

'कुफ्र' के विरुद्ध 'जिहाद' करना प्रत्येक मुसलमान का फर्ज माना गया है। कुछ लोगों का यह मत है कि स्वयं मुहम्मद साहब और कुरान स्पष्टत: धार्मिक स्वतन्त्रता के पक्षपाती थे और वे जबरन किसी व्यक्ति पर अपने धर्म को थोपने के खिलाफ थे। जैसा कि मौलाना अबुल कलाम आजाद अपने 'तर्जुमानुल कुरान' में लिखते हैं कि—

"गैर-मुस्लिम जातियों के लिए क्या बर्ताव रखा जाय, इसके लिए पैगम्बर के विचार बड़े साफ थे। उनके मतानुसार तुम्हारे लिए तुम्हारा विश्वास (दीन) और मेरे लिए मेरी आस्था। कुरान स्पष्टतः धार्मिक स्वतंत्रता में विश्वास करती है। आगे की सदियों में मुसलमान विजेताओं ने विधर्मियों पर जो अत्याचार किये, उसके लिए पैगम्बर और कुरान कदापि उत्तरदायी नहीं हैं।"

सम्भव है, मौलाना आजाद का कथन ठीक हो और पैगम्बर तथा कुरान उन घटनाओं के लिए उत्तरदायी न हों। पर आगे का इतिहास स्पष्ट रूप से बतला रहा है कि आगे की सदियों में मुसलमान विजेताओं ने संसार में जो तहलका मचाया था—वह 'कुफ्र' के विरुद्ध 'जिहाद' और इस्लाम के प्रचार के नारे के साथ ही मचाया था और ऐसे विजेताओं की, अरबी-इतिहास कारों ने 'गाजी' कह कर प्रशंसा ही की है।

ऐसी स्थिति में धार्मिक स्वाधीनता के सिद्धान्त के साथ इस्लाम की दिग्विजय के ऐतिहासिक तथ्यों की तुक मिलाना बहुत कठिन होता है।

समाज-संस्था

हजरत पैगम्बर की समाज-संगठन के सम्बन्ध की सूझ, बड़ी अद्भुत थी। इस्लाम-संस्कृति में मनुष्य और मनुष्य के बीच में विभेद डालने वाली सामाजिक दीवारों को तोड़ने का पूरा प्रयत्न किया गया है। मनुष्य चाहे जिस देश का हो, चाहे जिस जाति का हो, चाहे जिस वर्ग का हो, गरीब हो या अमीर—इस्लाम के झण्डे के नीचे आते ही मुसलमान हो जाता है और वह संसार के किसी भी मुसलमान के साथ, नवाबों और जागीरदारों की एक थाल में बैठ कर भोजन कर सकता है। इसी प्रकार के कुछ और भी नियम इस संस्कृति में ऐसे रक्खे गये हैं जिनके कारण इस्लामी समाज में भिन्नता की प्रकृति की जगह एकीकरण की प्रकृति का ज्यादा विकास हुआ और उनमें भ्रातृभाव की भावनाओं का ज्यादा प्रचार हुआ।

इस्लाम के झण्डे के नीचे आते ही हरएक इन्सान को कुछ आवश्यक नैतिक नियमों का पालन करना पड़ता है। इन नैतिक नियमों के संग्रह को इस्लाम की भाषा में 'शरह' कहते हैं। हर एक मुसलमान के लिए शरह के इन नियमों का पालन करना अनिवार्य्य माना जाता था। शराब नहीं पीना, सूद नहीं लेना, पाक और साफ रहना, दिन में पाँच बार खुदा की इबादत करना, रमजान के के महीने में रोजा रखना, अल्लाह और पैगम्बर के सिवाय किसी अन्य देवता को नहीं मानता आदि सैकड़ों धाराएँ इस्लामी शरह में हैं जिसका पूर्ण रूप से पालन करने पर मुसलमान का धर्म और ईमान कायम रहता है।

विवाह के सम्बन्ध में 'इस्लामी शरह' गोत्र-भेद को नहीं मानती। वह दूध-भेद को मानती है। यदि लड़के और लड़की ने एक ही माँ का या धाय का दूध पिया हो तो उनके बीच में शादी नहीं हो सकती। दूध का भेद होने पर मामा या काका की लड़की से शादी हो सकती है।

इस्लामी शरह पुरुष के लिये एक से अधिक पत्नी रखने का विरोध नहीं करती। मगर इतना जरूर कहती है कि तुम अपनी सुविधा के अनुसार दो, तीन या चार स्त्रियों से विवाह कर सकते हो किन्तु, यदि तुम्हें यह मालूम हो कि तुम उन सबके साथ समान व्यवहार नहीं कर सकते तो फिर एक ही विवाह से सन्तुष्ट रहो।

स्त्रियों के सम्बन्ध में इस्लाम की नीति अपेक्षाकृत अधिक उदार रही है। हजरत मुहम्मद ने लड़कियों को जीवित गाड़ देने और मूता-प्रथा का बड़ा विरोध किया है।

इस्लाम में बलिग लड़की को इच्छानुसार अपना पति चुनने का अधिकार दिया गया है। हजरत आयशा लिखत हैं कि "एक बार एक युवा स्त्री ने पैगम्बर से शिकायत की कि मेरे पिता ने मेरी इच्छा के विरुद्ध मेरा विवाह मेरे चचेरे भाई से कर दिया है।"

यह सुनकर पैगम्बर ने उसके पिता को बुलाकर उसके सामने उस लड़की से कहा कि "यदि तू चाहे तो अब भी तेरा बन्धन टूट सकता है।" उस लड़की ने उत्तर दिया "अय खुदा के पैगम्बर ! अब तो जो कुछ हो गया वही रहने दिया जाय मगर मैं सब स्त्रियों को यह बतला देना चाहती हूँ कि एक बालिग लड़की के विवाह में पिता को जबर्दस्ती करने का कोई अधिकार नहीं है। (कुरान सूराचार—२२)

राज संस्था

इस्लाम संस्कृति के अन्दर प्रारंभ में धर्म-नेता और राजनेता दोनों शक्तियों को एक रूप देकर 'खलीफा' का नाम दिया गया। खलीफा इस्लाम के धर्म गुरु भी होते थे और राज्य के अधिकारी भी होते थे।

इस्लाम का विस्तृत साम्राज्य बहुत समय तक इन्हीं खलीफाओं के हाथ में रहा। इन खलीफाओं में हारूँ-अल-रशीद, अल-मामून इत्यादि कई खलीफा ऐसे हुए, जिनके समय में ज्ञान, विज्ञान और कला की बहुत उन्नति हुई। अरबी साहित्य का अधिकतर ज्ञान भंडार इन अरबी खलीफाओं के समय में ही निर्मित हुआ।

मगर धर्म-संस्था के साथ राज-संस्था के जुड़ जाने से राज संस्था की जो बुराइयाँ हैं, वे इस्लाम के इतिहास में भी प्रकट हुई। सत्ता और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए हर एक प्रभावशाली व्यक्ति खलीफा के पद पर आने का प्रयत्न करने लगा। जिससे आपस में संघर्ष होने लगे। इसी संघर्ष में उमैया वंश के खलीफा 'म्याविया' के पुत्र 'यजीद' ने 'कर्बला' के मैदान में सुप्रसिद्ध धर्म-नेता इमाम हुसैन को उनके साथियों के साथ भूख और प्यास से तड़पा-तड़पा कर मारा। इस्लाम के इतिहास की यह महा भयंकर दुर्घटना १३ सौ वर्ष बीत जाने पर भी अभी तक हर एक मुसलमान के हृदय में ताजी बनी हुई है और इस दुर्घटना की स्मृति में वर्ष में एक दिन सारे संसार के मुसलमान आँसू बहाते हैं।

जब खलीफा के पद से उमैया वंश को समाप्त करके अब्बाशी-वंश सत्ता पर आया, तब उसने उमैया वंश से इस घटना का बदला व्याज समेत चुकाया। अब्बासी वंश के खलीफा ने उमैया वंश के एक-एक व्यक्ति को पकड़ कर कत्ल करवा दिया। यहाँ तक कि जो लोग मर चुके थे उनकी लाशों को कब्र में से निकलवा-निकलवा कर उनकी दुर्गति करवाई। मानवीय प्रतिहिंसा के ऐसे भयंकर नमूने संसार के इतिहास में क्वचित ही देखने को मिलते हैं।

इसी प्रकार राजसत्ता के लोभ में और भी बहुत सी आपसी लड़ाइयाँ, हत्याएँ और खून खराबियाँ हुई, जिनका उल्लेख इस्लाम के इतिहास में देखने को मिलता है।

राज-संस्था और धर्म-संस्था के एकीकरण के परिणामों को देख कर कालान्तर में राजा और धर्म गुरु अलग-अलग भी होने लगे। मुसलमान विजेताओं ने विजय प्राप्त करके कई देशों में अपने राज्य स्थापित किये और स्वयं वहाँ के राजा बने। फिर भी हर जगह की राज-संस्था पर धर्म-संस्था का अंकुश बराबर बना रहा। ये राजा लोग भी धर्म नेता मौलवियों के 'फतवों' से बँधे रहते थे और शासन कार्य में सलाह देने और न्यायालयों में न्याय करने के लिए धर्म गुरु मौलवियों को रखते थे।

इस्लाम की राजसंस्था के इतिहास में खलीफा-हारूँ-अल रशीद, खलीफा अल-मामून, खलीफा ऊमर, ईरान का सामानी राजवंश तथा भारत में सम्राट् अकबर, सम्राट् जहाँगीर और सम्राट् शाहजहाँ के राज्यकाल प्रशंसा-सूचक माने जाते हैं।

साहित्य और कला

इस्लाम-संस्कृति के इतिहास में साहित्य और कला की उन्नति उसका एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग है। जहाँ-जहाँ भी मुसलमान विजेताओं ने अपने शासन स्थापित किये, शान्ति स्थापित होने के बाद साहित्य और कला की उन्नति पर उन्होंने पूरा-पूरा ध्यान दिया।

अरबी और फारसी का विशाल साहित्य भंडार इस्लाम के साहित्य-प्रेम का आज भी जीता-जागता उदहरण पेश कर रहा है। वैसे इस्लाम के पहले भी इन देशों में साहित्य का उत्पादन आरम्भ हो चुका था, फिर भी उसका वास्तविक विकास इस्लाम की छाया में हुआ यह मानने में किसी को आपत्ति नहीं हो सकती।

गणित, ज्योषित, इतिहास, पुराण, राजनीति, चिकित्सा इत्यादि सभी विषयों में मुसलमान साहित्यकारों ने अपनी मेधा का उपयोग किया। जहाँ-जहाँ से उन्हें ज्ञान के सूत्र

प्राप्त हुए, वहीं से उन्हें प्राप्त कर उनका अरबी भाषा में अनुवाद कराया। यहाँ तक कि उस समय से एक हजार वर्ष पहले लिखे हुए ग्रीक भाषा के 'अफलातून' और 'अरस्तू' के ग्रन्थों को, जो कि उस समय लुप्त हो चुके थे, अरब लोगों ने ही खोज करवा कर उनका अरबी भाषा में अनुवाद करवाया। इन्हीं अरबी अनुवादों के द्वारा प्रकाश की ये किरणें यूरोप में पहुँची, जिन्हें देखकर वहाँ के लोग चकित हो गये।

भारतीय चिकित्सा, ज्योतिष और गणित के ग्रन्थों का भी इन खलीफाओं ने अरबी भाषा में अनुवाद करवाया। भारतीय अंकों की प्रणाली और गणित ज्योतिष की पुस्तकों का अनुवाद 'इब्राहीम-अल-फजारी' ने अरबी भाषा के अन्दर 'अल-सिन्द-हिन्द' के नाम से प्रस्तुत किया। इस ग्रन्थ ने अरब-ज्योतिष के अध्ययन में क्रांति उत्पन्न कर दी। इसी में पहले-पहल भारतीय अंकों का उल्लेख हुआ और इन अंकों की संज्ञा 'हिन्दसा' के नाम से प्रसिद्ध हुई। इसी आधार से उठकर यह अंक-माला 'अल-ख्वारिजमी' के ग्रन्थों द्वारा यूरोप के देशों में प्रचलित हुई। 'अल-सिन्द-हिन्द का प्रकाशन, संसार के सारे देशों के पूर्वकालिक इतिहास में युग-प्रवर्तक माना जाता है।

इसी प्रकार चरक और सुश्रुत तथा पञ्च-तन्त्र के अनुवाद भी अरबी भाषा में हुए।

खलीफा अल-मामून ने सन् ८३० में बैत-अल-हिक्मा नामक ऐकेडेमी की बगदाद में स्थापना कर अरब-जगत् में पहली शोध-संस्था और अध्ययन पीठ का प्रारम्भ किया। इस प्रसिद्ध शोध-संस्था ने अपने विशाल पुस्तकालय और वेध-शाला के कारण भी सारे संसार का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। इस संस्था के पहले इतने विशाल पाये पर निर्मित ऐसी किसी संस्था का उल्लेख प्राचीन जगत् में नहीं पाया जाता। ज्योतिष के सम्बन्ध में जितना कार्य पहले हो चुका था उसकी इस संस्था में छानबीन की गई, और भी इस दिशा में कई असाधारण कार्य यहाँ पर हुये। इसी प्रकार की एक संस्था ईसा से तीन सौ बरस पहले सिकन्दरिया में स्थापित हुई थी मगर वह इससे छोटी थी।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि साहित्य कला और ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में इस्लाम संस्कृति ने जो योग दिया वह अत्यन्त महत्वपूर्ण था जिसकी वजह से उस क्षेत्र में जामी, गजाली, रूदागी, फ़िरदौसी, हाफिज और शेखसादी के समान कई कवि, साहित्यकार और विद्वान ऐसे पैदा हुए जिन्होंने संसार में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त थी।

इस प्रकार कई शताब्दियों तक संसार में भारी हड़कम्प मचाकर, विपुल ऐश्वर्य और सत्ता का उपभोग करने के पश्चात् संसार में प्रचलित उत्थान और पतन के नियमानुसार इस सभ्यता का पतन काल भी आया। विजेताओं के द्वारा संसार भर में स्थापित बड़े-बड़े साम्राज्य ध्वंस होकर छोटे-छोटे राज्यों के रूप में बदल गये, और कहीं-कहीं तो छोटे-छोटे राज्य भी न रहे। फिर भी धर्म संस्था के रूप में इस विराट सभ्यता ने जिस वस्तु का निर्माण किया था वह आज भी कायम है। आज भी इस्लाम धर्म संस्था के पचास करोड़ से अधिक अनुयायी संसार में फैले हुए हैं जो इस्लाम के नाम पर सब कुछ करने को तैयार है। आज भी उनको "इस्लाम" का नाम जितना आकर्षित करता है उतनी कोई दूसरी वस्तु नहीं करती।

इस्माइलिया सम्प्रदाय

इसलाम मजहब के अन्तर्गत शिया सम्प्रदाय की एक शाखा। जिसके प्रधान धर्मगुरू हिज़ हाइनेस आगा खाँ हजरत मुहम्मद पैगम्बर की पुत्री फातिमा और दामाद खलीफा अली के सीधे वंशधर हैं। वर्तमान आगा खाँ इस सम्प्रदाय के ४६ वें इमाम हैं।

हिज हाईनेस आगा खाँ को इस्माइलिया मुसलमानों के इमाम का पद प्राप्त है और शियासम्प्रदाय और विशेष कर इस्माइलिया समाज उन्हें उसी नजर से देखता जिस नजर से कोई हिन्दू अपने अवतार को देखता है।

वर्त्तमान आगा खाँ के दादा सुलतान मुहम्मदशाह आगा तृतीय थे और उनके दादा ईरान में एक सूबे के शासक थे। ईरान के शाह से उनकी कुछ अनबन हो जाने से वे भारतवर्ष में आगये। ब्रिटिश सरकार ने उनका बड़ा

मान किया उन्हें अनेक उपाधियों और सम्मानों से अलंकृत किया, साथ ही उनकी पेंशन भी बाँध दी।

प्रथम आगा खाँ की सन् १८८१ में और द्वितीय आगाखाँ की सन् १८८५ में मृत्यु हो गई। इनके पश्चात् हिज हाइनेस मुहम्मद आगाखाँ तृतीय इमाम की गद्दी पर आये।

आगा खाँ तृतीय अत्यन्त मेधावी, विचक्षण बुद्धि और रईस मिजाज के व्यक्ति थे। वर्तमान शताब्दी के दूसरे और तीसरे दशक में इस्लामी राजनीति में उन्होंने पूरा भाग लिया और समस्त संसार के मुसलमानों का पान इस्लामिक संघ बनाने के प्रयत्न में पूरा सहयोग दिया।

कमाल पाशा के नेतृत्व में जब तुर्कीराष्ट्र का पुनरुत्थान हुआ और कमाल पाशा तुर्की की खिलाफत को समाप्त करने पर उतारू होने लगे, उस समय भारत के भूतपूर्व जस्टिस अमीरअली और सर आगाखाँ तृतीय ने लन्दन से कमाल पाशा को एक पत्र लिखा था। जिसमें खिलाफत के साथ किये हुए दुर्व्यवहार का विरोध किया था। संयोग से यह पत्र कमाल पाशा के पास पहुँचने के पहले ही अखबारों में प्रकाशित हो गया। जिसका कमाल पाशा ने तुरन्त फायदा उठाया और उसने प्रकट किया कि तुर्की लोगों में फूट डालने की यह अंग्रेजी चाल है। इस्तम्बूल के जिन पत्रों ने इस पत्र को छापा था उन्हें देशद्रोही कह कर कमालपाशा कठोर दण्ड दिये और खिलाफत को समाप्त करने का बिल नेशनल असेम्बली में पास करवा कर एक ऐसी संस्था को हमेंशा के लिए समाप्त कर दिया जिसने इसलाम के इतिहास में बड़े-बड़े प्रभावशाली पार्ट अदा किये थे।

हिज हाइनेस आगाखाँ तृतीय ने लन्दन में होने वाले गोल मेज सम्मेलन में भी प्रतिनिधित्व किया था। जेनेवा के अन्तर्राष्ट्रीय निशस्त्रीकरण सम्मेलन में भी उन्होंने भारत का प्रतिनिधित्व किया था।

सर आगाखाँ तृतीय विपुल सम्पत्ति के स्वामी और घुड़-दौड़ के बड़े शौकीन थे। उनके पास कितनी सम्पत्ति है इसका अनुमान कोई नहीं लगा सकता। कहा जाता है कि उनके इस्माइली अनुयायी अपनी आय का दो प्रतिशत और खोजा अनुयायी दस प्रतिशत इनको भेंट करते हैं। इस भेंट का अनुमान लगाने के लिए यह जानना भी आवश्यक है कि विश्व में आगाखाँ के अनुयायियों की संख्या चार से पाँच करोड़ तक हैं और इनमें से अधिकांश धनी और व्यापारी वर्ग के लोग हैं।

सर आगाखाँ तृतीय को उनके अनुयायियों ने उनकी स्वर्णजयन्ती के अवसर पर सोने से और हीरक जयन्ती के अवसर पर हीरों से तोला था। हीरक जयन्ती के अवसर पर उनका वजन तीन मन था।

आगाखाँ का रत्नभण्डार संसार में उच्च कोटिका रत्नभण्डार माना जाता है और ऐसा कहा जाता है कि उसमें ८० करोड़ रुपये मूल्य के केवल लाल हैं। संसार के विभिन्न भागों में सर आगाखाँ के विशाल महल बने हुए हैं जिनके बारे में एक पत्रकार का अनुमान है कि उनमें लगभग कई हजार नौकर जीविका पा रहे हैं।

अपनी इस सम्पत्ति के एक अंश का उपयोग आगाखाँ अपने अनुयायियों की उन्नति के लिए करते रहते हैं और यह एक ऐसी प्रथा है जो हमेंशा चलती रहेगी।

सर आगाखाँ तृतीय की मृत्यु के उपरान्त उनके पौत्र इस्माइलिया के ४६ वें इमाम करीम आगाखाँ चतुर्थ मार्च सन् १९५८ में आगाखाँ चतुर्थ के नाम से गद्दी पर आये।

इसिदोर

लैटिन भाषा में विश्व कोष का प्रसिद्ध रचयिता जिसका जन्म सन् ५७० में और मृत्यु सन् ६३६ में हुई।

इसिदोर एक ईसाई साधु था उसने 'एतिमालोगी' नामक एक वृहद् विश्व कोष की रचना की जो कई सदियों तक लैटिन भाषा में ज्ञान कोष का काम करता रहा।

इसियस

प्राचीन यूनान में अदालती कानून का विद्वान। सुप्रसिद्ध वक्ता डेमास्थनीज का गुरु। समय ई० स० पूर्व ४२० से ई० पू० ३५० तक।

अदालती और कानूनी बहस को भाषण के रूप में लिखना यह इसियस का व्यवसाय था। कानून की जटिल

से जटिल गुत्थियों को अपने भाषण में स्पष्ट से स्पष्ट रूप में लिख देना इसकी बुद्धि का चमत्कार था। अपनी व्याख्याओं में वह भावनाओं को उभाड़ने के बजाय अकाट्य दलीलों का प्रयोग अधिक करता था।

उसने ऐसे करीब ५० भाषण लिखे। जिनमें से दस अभी उपलब्ध हैं। इन भाषणों में उसका बौद्धिक प्रभाव स्पष्ट रूप से झलकता है।

इसोक्रेटीज

प्राचीन यूनान का महान् वक्ता और गद्य लेखक जिसका जन्म ईस्वी सन् पूर्व ४३६ में और मृत्यु ई० सन् पूर्व ३३८ में हुई।

प्राचीन यूनान में ईसा से छठी सदी पूर्व से गद्य लेखन का प्रारम्भ होता है। गद्य लेखन की पद्धति पहले आयोनिया में प्रारम्भ हुई और वहाँ से वह एथेन्स में पहुँची। गद्य लेखन के साथ ही वक्तृत्व कला का भी बहुत विकास हुआ। सुकरात, प्लेटो, इसोक्रेटिज, डेमास्थनीज इत्यादि महान् पुरुष अपने गद्य लेखन और वक्तृता के द्वारा ही साहित्य में अमर हुए। एथेन्स की "ओरेटरी" ग्रीक साहित्य और वक्तृत्व कला के साहित्य में अमर हो गई।

इसोक्रेटीज का नाम एथेन्स के शिक्षकों और भाषण-लेखकों में बहुत प्रसिद्ध है। इसोक्रेटीज की सामाजिक और राजनैतिक विचारधारा अत्यन्त संतुलित और प्रगतिशील थी। समाज का सर्वांगीण विकास उसके विचारों का आदर्श था। इसोक्रेटीज की रचनाओं में "एण्टि डोसिस", "पानोजिरिकस" एवागोरस" "फिलिपास" इत्यादि ग्रन्थ विशेष प्रसिद्ध हैं। उनकी रचनाओं के प्रधान विषय शिक्षा विज्ञान, राजनीति और ग्रीक संस्कृति से सम्बन्ध रखते हैं।

इच्छाराम देसाई

उन्नीसवीं सदी के अन्त में गुजराती साहित्य के एक लेखक और "गुजराती" नामक सुप्रसिद्ध पत्र के संचालक।

इच्छा राम देसाई गुजराती भाषा के उन साहित्यकारों में हैं। जिन्होंने गुजराती भाषा के अभ्युत्थान में बड़ा योग दिया। गुजराती के सुप्रसिद्ध और प्राचीन पत्र "गुजराती" के ये संचालक थे। इनके संचालन में "गुजराती" पत्र ने बड़ी उन्नति की।

इच्छाराम देसाई के लिखे हुए कई उपन्यासों ने गुजराती भाषा के उपन्यास भण्डार को समृद्ध किया। सन् १८८९ में इनका "गंगा एक गुर्जर वार्ता" नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में हिन्दू कौटुम्बिक जीवन में स्त्रियों पर होने वाले अत्याचारों और उनकी दुर्दशा का चित्रण करके, उसके विरुद्ध आवाज उठायी गई है। उन्होंने तत्कालीन भाट और चारणों के पास से कथाओं का संग्रह करके "भाट चारणनी वार्ता" के नाम से प्रकाशित किया।

इमाम

इस्लाम के धर्मगुरु और स्तुति-पाठ करने वाले विशिष्ट पुरुषों को इमाम कहा जाता है। मुसलमानों का शिया सम्प्रदाय पैगम्बर के दामाद अली और उनके वंशधरों को इमाम के पूज्य नाम से सम्बोधित करता है। इस सम्प्रदाय की परम्परा के अनुसार कुल मिलाकर बारह इमाम हुए हैं जिनके नाम (१) अली (२) हसन (३) हुसैन (४) जैन-उल-आबिदीन (५) मुहम्मद बाकिर (६) जफर सादिक (७) मूसा काजिम (८) मुहम्मद तकी (९) अलीनका (१०) हुसैन अस्करी (११) मेहन्दी (१२) अली मूसारजा है।

इमाम मेहन्दी के विषय में लोगों का खयाल है कि वे जन्म ले लेने पर भी कहीं छिपे हुए हैं। सम्राट् अकबर के समय शेख अल्लाई ने और हाल ही कुछ समय पूर्व मध्य-एशिया में एक व्यक्ति ने मेहन्दी होने का दावा किया था।

सुन्नी सम्प्रदाय का मत शिया सम्प्रदाय से भिन्न है। उनके मतानुसार (१) हनीफ (२) मलिक (३) शफी और (४) इनबल ये चार इमाम हुए हैं।

ईक्वेडर

दक्षिण-पश्चिम अमेरिका का एक देश, जिसके उत्तर में कोलम्बिया, पूर्व तथा दक्षिण में पेरू तथा पश्चिम में प्रशान्त महासागर स्थित है। इसका क्षेत्रफल १ लाख ५ हजार ७४८ वर्गमील और जनसंख्या ५ लाख ७७ हजार है इसकी राजधानी कुइटो में है। इसके निवासियों की भाषा स्पेनिश और धर्म रोमन कैथोलिक है। इसकी पार्लमेंट को 'कांग्रेसो' कहते हैं, जिसमें अपर हाउस और लोअर चेम्बर दोनों मिले हुए रहते हैं। अपर हाउस को वहाँ 'सेनेडो' और लोअर चेम्बर को 'केमेरा डीपुटेडस' कहते हैं।

इक्वेडर का यह प्रदेश प्राचीन काल में इनका इंडियन्स की बस्ती था। इस प्रदेश के राजा "इनका" दैवी अंश सम्पन्न माने जाते थे। १६वीं सदी में स्पेप के विजेता 'पिजारो' ने इनका के राज्य को खतम कर दिया और उसे स्पेन के साम्राज्य में मिला लिया। इक्वेडर के पूर्व में 'पेरू' उस समय सभ्यता का एक बड़ा केन्द्र था। पेरू सभ्यता के बहुत से अवशेष मैक्सिको के संग्रहालय में अभी भी देखे जा सकते हैं, जिनमें एक सुन्दर कलापूर्ण सभ्यता की परम्परा के दर्शन होते हैं।

इस समय दक्षिणी अमेरिका का यह प्रान्त अपने 'पेट्रोलियम' की उत्पत्ति के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ के पेट्रोलियम का वार्षिक उत्पादन २९ लाख ६७ हजार वेरल है। इसके अतिरिक्त यहाँ पर लोहा, ताँबा, सोना, चाँदी, गन्धक इत्यादि भी पैदा होते हैं। यहाँ से निर्यात होने वाली चीजों में काफी, रबर की चीजें, कोको, चावल इत्यादि प्रधान हैं।

यहाँ की सरकार सन् १९४५ के विधान के अनुसार सेनेडो और लोअर चेम्बर के सहयोग से बनती है। राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति ४ वर्षों के लिए निर्वाचित किये जाते हैं।

ईक्विटीज

प्राचीन रोमन-प्रजातंत्र में प्रभावशाली एक राजनैतिक दल।

'ईक्विटीज' प्राचीन रोमन-प्रजातंत्र में सेना के घुड़सवार-दल को कहते थे। शक्तिशाली अंग होने की वजह से सारे प्रजातंत्र में इस सेना का बोल-बाला रहता था और राजवंशीय तथा श्रीमन्त लोगों के नवयुवक बड़े उत्साह से इस सेना में भरती होते थे। इस वर्ग में पेट्रीशियन लोग विशेष रूप से होते थे।

प्रजातंत्र का अन्त होने और रोमन-साम्राज्य का विस्तार होने पर इस दल के लोग घुड़सवार-सेना को छोड़ कर रोम के संभ्रान्त और समृद्ध नागरिक बन गये। धीरे-धीरे इनका दल रोमन-सभ्यता में बहुत प्रभावशाली हो गया। जो लोग ४ लाख रोमन मुद्राओं के स्वामी होते थे, वे इस दल में सम्मिलित हो सकते थे। एक समय में समूचे साम्राज्य की राजशक्ति और अर्थशक्ति की बागडोर इक्विटीज दल के हाथ में आ गई थी। प्रान्तों के गवर्नर सीनेटर और इन्हीं के इशारों पर बनाये जाते थे। सम्राटों के उत्थान-पतन में भी इनका गहरा हाथ रहता था।

ईगर

प्राचीन रूस के 'कीयेफ' प्रान्त का 'महाराजुल' जिसका समय सन् ९११ से ९४५ तक है।

ईगर रूसी जारों के पूर्व पुरुषों में हुआ इसने अपनी सेना को मजबूत कर कितने ही राजुलों पर आक्रमण करके उन्हें अधीनता स्वीकार करने के लिए मजबूर किया। सन् ९४१ में ईगर ने 'विजिन्तीन' के विरुद्ध एक भारी सामुद्रिक आक्रमण किया। उसने कॉन्स्टैंटिनोपुल की कई बस्तियों को ध्वस्त किया, लेकिन अन्त में 'यूनान' के जहाजी बेड़े ने उसको बुरी तरह से परास्त किया।

ईगर तथा कीयेफ के दूसरे राजुल दूसरों के धन को लूटना और पुरुष स्त्रियों को पकड़कर उन्हें दास बनाना अपने वैध-शासन का एक अंग मानते थे। इन लोगों ने अभी ईसाई-धर्म अंगीकार नहीं किया था। ईगर के शासन-

काल में ही प्रसिद्ध मुसलमान यात्री इब्न-फजलान ने बोल्गा नदी के किनारों के नगरों की यात्रा की थी। उसने उस समय के रूसियों के जीवन पर बड़ा सुन्दर प्रकाश डाला है।

ईगर का व्यवहार कर वसूल करने के सम्बन्ध में अपनी प्रजा के साथ बहुत कठोर होता था और इस कठोर व्यवहार के कारण कई बार देहाती-प्रजा उसके खिलाफ विद्रोह कर बैठती थी।

ऐसे ही एक विद्रोह में ३१ अगस्त सन् ६४५ के दिन 'ईगर' अपने सभी साथियों सहित मार डाला गया।

ईराक

दक्षिण पश्चिमी एशिया का एक स्वतन्त्र राज्य। जिसमें मेसोपोटेमिया का उपजाऊ प्रदेश और उत्तर पूर्व का पर्वतीय भाग जिसे कुर्दिस्तान कहते हैं तथा दक्षिण पश्चिम के कुछ मरुस्थली हिस्से शामिल हैं।

सुमेरियन, बेबिलोनियन और असीरियन, संसार की इन तीन महान् प्राचीन सभ्यताओं की उत्पत्ति ईराक की ऐतिहासिक भूमि में हुई है। इंजील में वर्णित संसार के आदिम पुरुष आदम और हौवा के विचरण का स्थान ईदन का बाग इसी प्रदेश में स्थित था।

ईसा से करीब चार हजार वर्ष पूर्व ईराक में सुमेरियन संस्कृति का विकास हुआ था। इतिहास के ज्ञातव्य काल में ईराक की सबसे प्राचीन संस्कृति यही थी। सुमेरियन संस्कृति का प्रधान केन्द्र 'उर' नामक नगर था। कहा जाता है कि सुमेरियन संस्कृति की बहुत सी बातें मोहनजोदड़ो की प्राचीन संस्कृति से मिलती-जुलती है।

ईसा से २१७० वर्ष पूर्व सुमेरियन राज्य के तीसरे राजकुल के अन्त के साथ ही सुमेरियन संस्कृति का भी अन्त हो गया, और बाबुल के राजवंशों ने यहाँ पर अपना साम्राज्य स्थापित कर बैबिलोनियन संस्कृति को जन्म दिया। बैबिलोनियन राजवंश में सम्राट हम्मुरावी नामक एक प्रसिद्ध शासक हुआ। इसके शासन-काल में इस क्षेत्र के ज्ञान विज्ञान की काफी उन्नति हुई। सम्राट रम्मुरावी ने उस प्राचीन काल में अपने राज्य का विधान बनाकर एक स्तम्भ खुदवा दिया जो आज संसार का सबसे प्राचीन विधान माना जाता है।

हम्मुरावी के विधान से मालूम होता है कि उस समय समाज में धनी, मध्यम और दास तीन वर्ग थे। इन तीनों वर्गों के नागरिक अधिकार अलग-अलग थे और इनके दण्ड विधान भी अलग-अलग थे। स्त्रियों की स्थिति पुरुषों की अधीनता में थी। पर पुरुष के अधीन होते हुए भी वे स्वतंत्र रूप से अपनी सम्पत्ति रख सकती थीं, जायदाद खरीद और बेच सकती थीं, न्यायालय में बहस कर सकती थीं तथा आवश्यकता पड़ने पर विवाह विच्छेद भी कर सकती थीं। पिता की सम्पत्ति पर पुत्र और पुत्री दोनों का अधिकार रहता था। स्त्रियाँ पढ़ लिखकर लिपिक (Scribe) का पेशा अङ्गीकार कर सकती थीं। मन्दिर की पुजारिनें और देव-दासियाँ बन सकती थीं। बड़े और धनी लोग एक से अधिक विवाह भी कर सकते थे। विवाह में उस समय दहेज की प्रथा भी प्रचलित थी। विवाह में इकरारनामे का लिखित प्रयोग होता था।

हम्मुरावी के विधान में व्यभिचारिणी स्त्री को प्राण दण्ड की सजा देने की व्यवस्था है। अपने कर्ज के बदले में अपनी स्त्री और बच्चों को एक निश्चित समय के लिए महाजन के यहाँ गिरवी रख देने की अमानवीय प्रथा भी उस समय प्रचलित थी। फिर भी बेबिलोनियन संस्कृति में स्त्रियों की स्थिति अपेक्षाकृत काफी अच्छी थी।

ईसा से १००० वर्ष पूर्व तक इस क्षेत्र में बेबिलोनियन संस्कृति का बोलबाला रहा। इस संस्कृति की समाप्ति के पश्चात् इस प्रदेश पर असीरियन या असुर लोगों का आधिपत्य हुआ। असीरियन संस्कृति बेबोलियन संस्कृति की अपेक्षा निम्न-कोटि की थी। इस शासन में स्त्रियों और दासों की स्थिति बहुत हीन अवस्था में पहुँच गई। स्त्रियों को चहार दीवारों के अन्दर परदे में रहना पड़ता था। उन्हें कहीं आने-जाने की स्वाधीनता नहीं थी। पति खुले आम अनेक रखेलियाँ रख सकता था। असीरियन समाज में सेक्स सम्बन्धी कठोर बन्धन नहीं थे। वेश्यावृत्ति समाज में अनिवार्य मानी जाती थी। सरकार की ओर से वेश्यावृत्ति अपनाने वाली स्त्रियों को परवाने दिये जाते थे।

करीब चार शताब्दियों तक इस प्रदेश पर असुर सम्राटों का शासन रहा। इसके बाद कुछ समय तक इस प्रदेश पर चैल्डियन राजवंश की सत्ता रही। इन लोगों ने एक बार फिर इस प्रदेश को राजनीति और संस्कृति का केन्द्र बना दिया। इन लोगों के समय में निर्मित किया हुआ वहाँ का आकाशी-उद्यान संसार के सात आश्चर्यों में एक गिना जाता है।

कुछ ही समय पश्चात् अर्थात् ईसा से करीब ६०० वर्ष पूर्व ईरान में शक्तिशाली "अखामनी" सत्ता का उदय हुआ और इस सत्ता के प्रतापी सम्राटों ने अनेक देश और प्रदेशों के साथ-साथ ईराक को भी अपने साम्राज्य में मिला लिया। उसके पश्चात् सिकन्दर महान ने आक्रमण करके अखामनी साम्राज्य का ध्वंस कर डाला तब ईराक भी ग्रीक लोगों की सत्ता में चला गया। उसके बाद ज्यों-ज्यों ईरान में राज संज्ञाएँ बदलती गईं त्यों-त्यों ईराक में भी बदलती रहीं और यह प्रदेश ईरानी साम्राज्य का एक भाग बना रहा।

सातवीं सदी में इस्लाम की प्रभावशाली लहर ईराक और ईरान में भी पहुँची। यहाँ की अधिकांश जनता ने इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया और यहाँ की सल्तनत भी खलीफाओं के हाथ में चली गई। खलीफाओं के शासन में इस प्रदेश की बहुत उन्नति हुई। बगदाद तो उस समय —खलीफा हारूंरशीद के समय में—सारे संसार में कला और संस्कृति का एक महान् केन्द्र माना जाने लगा। कूफा और बसरा के नवीन नगर भी अत्यन्त उन्नतिशील हो गये, इसलामी खलीफा हजरत अली ने कूफा को अपनी राजधानी बनाया।

मगर तेरहवीं शताब्दी के मध्य भाग में हलाकू के प्रचण्ड आक्रमण ने खलीफा के शासन को समाप्त कर दिया और सभ्यता के महान् केन्द्र बगदाद को तहस-नहस कर डाला।

उसके बाद ईराक का इतिहास फिर अन्धकार में पड़ गया। मंगोलों, तातारियों, इरानियों इत्यादि के पैरों-तले बराबर कुचली जाती रही। सन् १८३१ में यह प्रदेश टर्की के साम्राज्य में स्थायी रूप से मिला लिया गया जो बराबर प्रथम महायुद्ध के पहले तक बना रहा।

प्रथम महायुद्ध में टर्की की हार हो जाने पर यह क्षेत्र अंग्रेजों के प्रभावक्षेत्र में आ गया और उन्होंने मोरसुल, बगदाद एवं बसरा इन तीन प्रान्तों को मिलाकर सन् १६१६ की वर्साई संधि के अनुसार ईराकी को स्वतंत्र देश का रूप दे दिया। अमीर फैजल को वहाँ का शासक बना दिया। सन् १६३२ में अंग्रेजों के प्रभाव से यह देश मुक्त हो गया और राष्ट्रसंघ का सदस्य बना लिया गया।

जुलाई १६५८ में अब्दुल कासिम नामक एक सेनापति के नेतृत्व में ईराक में एक बड़ी क्रांति हुई। जिसमें ईराक के शाह फैजल को जान से मार दिया गया और देश का शासन अब्दुल कासिम ने हाथों में ले लिया। हाथ में शासन आते ही अब्दुलकासिम ने सीटो संधि या बगदाद पैक्ट से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया और उसका स्पष्ट झुकाव कम्यूनिस्ट देशों की तरफ हो गया।

मगर अब्दुल कासिम का यह रवैया वहाँ की जनता को और मिस्र के शासक जनरल नासिर को पसन्द नहीं था। इसके फलस्वरूप सन् १६६२ के अन्त में वहाँ एक और क्रान्ति हुई। जिसमें अब्दुल कासिम मार दिया गया और इराक का शासन उसके एक साथी के हाथ में आ गया।

इस प्रकार अनेक प्रकार के घटना चक्रों में से गुजरता हुआ इस देश का इतिहास तरह-तरह के रंग बदल रहा है।

ईराक अपनी खनिज सम्पति के लिए बहुत प्रसिद्ध है यहाँ पर मोसल और अब्रादान में बड़े-बड़े तैल कूप हैं जिनसे बहुत बड़ी मात्रा में तैल प्राप्त होता है यह ईराक की ऐसी राष्ट्रीय सम्पति है जिसका उसे गर्व है।

ईरान

मध्य एशिया का एक प्राचीन और सुप्रसिद्ध देश जो सारी दुनिया के प्राचीन संस्कृति सम्पन्न देशों में अपना खास स्थान रखता है। भू-मध्य सागर से लेकर भारत की सीमा तक आये हुए तीन स्वतंत्र राज्यों में ईरान अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

भौगोलिक स्थिति

ईरान की भौगोलिक स्थिति में प्रकृति के द्वारा प्रदत्त अनेक विविधताओं का सम्मिश्रण है। एक ओर पहाड़ी

और वीरान प्रदेशों का भयङ्कर दृश्य है। दूसरी तरफ मैदानों में आये हुए विशाल खेतों की हरियाली और मधुरिमा इस देश की रमणीकता को बढ़ा रही है। तीसरी ओर जन-मानव-विहीन विस्तृत रेगिस्तान गर्मी की दुपहरियों में तप्त लोहे की भाँति तपा करता है। ईरान के उत्तर में करीब १८००० फीट ऊँचा अलबुर्ज पर्वत स्थित है जो हमेशा बर्फ से ढका रहता है।

लेकिन ईरान के कवियों ने गुलाब के बगीचों के रूप में जिस भूमि को अपने काव्यों में अमर बनाया है, वह ईरान के दक्षिण भाग में स्थित प्रकृति की महान् लीलाभूमि है। ईरान के इस स्वप्न-राज्य में छोटे-छोटे सुन्दर गाँव बसे हुए हैं, हरियाली-घास से छाये हुए बड़े-बड़े विशाल मैदान हैं, बुलबुल के अविराम गीतों से गूँजती हुई बड़ी-बड़ी अँगूर की झाड़िया हैं। गुलाब के फूलों के विशाल वनों की खुशबू से यहाँ की भूमि हमेशा सुगन्धित रहती है।

प्राकृतिक विचित्रता की इस गोद में ईरान के अन्तर्गत जिस संस्कृति का सृजन हुआ, वह भी साहित्य, काव्य, और कला-सृष्टि के क्षेत्र में इतनी ही विचित्र और इतनी ही समृद्ध है। पारसी भाषा की भावभीनी स्वच्छन्द गति और माधुर्यमयी शैली ने वहाँ के महान् कवियों की प्रतिभा के साथ मिलकर मानव-साहित्य को एक प्रकार का अपूर्व दान दिया है। इस भाषा के द्वारा ईरान की पुरानी, ऐश्वर्य सम्पन्न एक विशाल संस्कृति ने अपना रूप प्रकट किया। भारतवर्ष से लेकर सुदूरवर्ती स्पेन के किनारे तक के सब देशों के आचार-विचार, ज्ञान, विज्ञान, स्थापत्य और शिल्प तथा ललित कलाओं पर, ईरान की असाधारण प्रतिभा ने अपनी गहरी छाप लगाई। आधुनिक जगत् में सेरेसैनिक कला (Saracenic School of Art) नाम की जो स्थापत्य-कला प्रसिद्ध है वह ईरान की शिल्प-प्रतिभा की सृष्टि है और इसका विस्तार ईरान से मिस्र और स्पेन तक हुआ था।

ईरान की लड़ाकू और प्रतिभाशाली प्रजा मुसलमानी धर्म के उदय से पूर्व 'जरथोस्टी' धर्म का पालन करती थी। ईसा से करीब छः सौ वर्ष पूर्व जरथोस्ट ने इस धर्म की स्थापना की थी और उसके उपदेशों और सिद्धान्तों का संग्रह "अवेस्ता" नामक धर्मग्रन्थ में किया गया और यही जेन्द अवेस्ता ईरान का पूज्य धर्मग्रन्थ था।

मगर ईसा की सातवीं सदी में जब इस्लाम का जबर्दस्त प्रवाह सारे संसार में तेजी के साथ फैलने लगा तब ईरान भी इस तूफान से अपनी रक्षा नहीं कर सका और वहाँ की सारी जनता और राजकीय क्षेत्र ने इसलाम को अङ्गीकार कर लिया। जो लोग बच गये उन्हें देश छोड़कर भारतवर्ष में आना पड़ा जो अभी तक पारसी नाम से प्रसिद्ध हैं और जरथोस्टी-धर्म के अनुयायी हैं।

पुरातन काल में ईरान पूर्व और पश्चिम के बीच चलने वाले व्यापार का केन्द्र था और उस समय सारे संसार के व्यापारिक क्षेत्र में ईरान का खास स्थान था। भारतवर्ष की मलमल की तरह ईरान के गलीचे, इस्पहान की शराब और रेशम सारे संसार के व्यापारिक बाजारों में ऊँची प्रतिष्ठा प्राप्त किये हुए थे।

मगर ये सब बातें भूतकाल की हो गई हैं। वर्तमान समय के ईरान की स्थिति बहुत साधारण है। समय के भीषण प्रहारों ने वहाँ के वैभव और संस्कृति को चूर-चूर कर दिया है। समय के कितने प्रबल आघात समय-समय पर इस देश को सहन करने पड़े, इसका वर्णन आगे किया जा रहा है।

प्राचीन इतिहास

ईरान का प्राचीन इतिहास ईसा से पूर्व छठीं शताब्दी से आरम्भ होता है। इसके पूर्व इस देश पर मद्र (Medea) जाति का राज्य था। अखामनी साम्राज्य के संस्थापक साइरस (Cyrus the Great) महान ने ईसा से ५५६ वर्ष पूर्व इस मद्र जाति के साम्राज्य को विजयकर अखामनी साम्राज्य की स्थापना की। 'अखामनी' नाम अखामन नामक एक कबीले के सरदार के नाम पर रक्खा गया था। सम्राट साइरस ने मद्र जाति के विशाल साम्राज्य और असीरिया, बेबिलोनिया इत्यादि राज्यों को जीतकर भारतवर्ष की सीमा से लेकर भूमध्य सागर तक अपने राज्य का विस्तार किया।

इसी सायरस महान—जिसने इतने बड़े ईरानी साम्राज्य

की स्थापना की—की समाधिपर जो अभिलेख खुदा हुआ था उसका अनुवाद इस प्रकार है—

"ऐ राहगीर! चाहे तुम किसी देश और जाति के हो, यह जान लो कि मैं फारसी साम्राज्य का संस्थापक साइरस हूँ। मेरे शरीर के ऊपर जो जमीन का छोटा सा टुकड़ा है मुझे उसी के नीचे पड़ा रहने दो।"

साइरस महान् के पश्चात् उसका उत्तराधिकारी काम्बेसिस (Cambyses) हुआ। काम्बेसिस के समय में सारे साम्राज्य में बड़े-बड़े विद्रोह प्रारम्भ हो गये जिससे परेशान हो कर उसने आत्महत्या करली।

दारा महान्

काम्बेसिस के बाद दारा महान् (Darius the Great) अखामनी—साम्राज्य का महान् प्रतापी सम्राट् हुआ। इसने ई० सन् पूर्व ५२१ से ४८५ तक राज्य किया। इसने अपने राज्य का बहुत विस्तार किया। ई० सन् पूर्व ५१२ में इसके राज्य की सीमाएँ उत्तर में कालासागर, काकेशस, कास्पियन और चीन की सीमा तक फैला हुआ शक-जाति का प्रदेश, पूर्व में सप्तसिंधु, पश्चिम में भूमध्य सागर और मिस्र की पश्चिमी सीमा तक, तथा दक्षिण में अरब और सहारा के रेगिस्तान तक थी। एशिया और अफ्रीका में अपने साम्राज्य का विस्तार कर इसने यूरोप में यूनान पर आक्रमण किया; मगर इस कार्य में उसे मनचाही सफलता नहीं मिली। सम्राट् दारा के बहिस्तून और नक्शये रुस्तम दो शिला लेख इस समय उपलब्ध हैं। इन शिला लेखों की भाषा संस्कृत से मिलती हुई है। इन शिला लेखों में दारा के लिए "आर्याणां आर्य्यः" और "क्षत्रियाणां क्षत्रियः" शब्दों का प्रयोग किया गया है इससे मालूम होता है कि ये लोग आर्य्य जाति के ही वंशज थे।

सम्राट् दारा विश्व का पहला शासक था जिसने राजा की मूर्ति के साथ अपने सिक्के चलाए। उस के बाद ग्रीक राजाओं और भारतीय नरेशों ने भी इस प्रकार के सिक्के चलाये। इस सम्राट् की शासन-व्यवस्था इतनी उत्कृष्ट थी कि कई बातों में सिकन्दर और उसके उत्तराधिकारियों ने उसका अनुसरण किया। सम्राट् दारा के बनाये हुए राजपथ उसकी राजधानी पार्सिपोलस से मकदूनियाँ, मिश्र, भारत और मध्यएशिया तक फैले हुए थे। सड़कों पर हर पन्द्रह मील पर धर्मशालाएँ बनी हुई थीं जिनमें मुसाफिरों के ठहरने की व्यवस्था थी।

सम्राट् दारा के बाद सम्राट् क्षयार्श (Xersces) हुआ। यह ईस्वी सन् पूर्व ४८५ में गद्दी पर बैठा और ई० स० पूर्व ४६६ तक अर्थात् १९ वर्ष इसने राज्य किया। इसने १२०० जहाज और तेइस लाख सेना के साथ यूनान पर आक्रमण किया। उस समय तक इतनी बड़ी सेना संसार के किसी भी युद्ध में शामिल नहीं हुई थी। इसी लड़ाई में थर्मापोली की घाटी संसार के इतिहास में प्रसिद्ध हो गई जिसमें लिओनिडास नामक ग्रीक सैनिक के नेतृत्व में थोड़े से ग्रीक सैनिकों ने अपने प्राणों के मूल्य पर उस घाटी में जाने से उस विशाल सेना को रोक लिया। मगर ईरानी सेना इस कठिनाई को देखकर दूसरे रास्ते से एथेन्स में घुस गई और उस पर अपना अधिकार कर लिया। मगर आगे जाकर सलीमा द्वीप के जलयुद्ध में एक दिन में यूनानी जहाजों ने ईरान के २०० जहाजों को डुबो दिया। इससे निराश होकर ईरानी सेना वापस लौट आई। सम्राट् क्षयार्श ई० स० पूर्व ४६६ में अपने एक शरीर रक्षक के द्वारा मारा गया।

क्षयार्श के पश्चात् अखामनी-साम्राज्य में आठ बादशाह और हुए जिनके नाम अर्तक्षत्र प्रथम (ई० पू० ४६६ से ४२५) क्षयार्श द्वितीय (ई० पू० ४२५-४२४) दारा द्वितीय (ई० पू० ४२४–४०५) अर्तक्षत्र द्वितीय (ई० पू० ४०५ से ३५९) अर्तक्षत्र तृतीय (ई० पू० ३५९–३३३) दारा तृतीय (ई० पू० ३३३-३३०) है।

अन्तिम सम्राट् दारा तृतीय पर मकदूनिया के महान् सिकन्दर का भारी आक्रमण हुआ, जिसने अखामनी साम्राज्य को छिन्न भिन्न कर दिया। (पूरा वर्णन प्रथम भाग में अलेक्ज़ेण्डर महान् के विवरण में देखें)

ग्रीक बाख्तरी साम्राज्य

'अलेक्ज़ेण्डर महान्' की विजय और उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके सेनापतियों में कई वर्षों तक बड़ी लड़ाइयाँ हुईं। अन्त में ई० स० से ३१२ वर्ष पूर्व ईरान का राज्य 'सेल्यूकस' के हाथ में आया। सेल्यूकस ने टाइग्रीस नदी के तीर पर सेल्यूसिया नगर बसा कर वहाँ अपनी

राजधानी स्थापित की। इस शासन में सारे ईरान में अत्यन्त अव्यवस्था और अराजकता फैल गई। इस अव्यवस्था के परिणामस्वरूप ईरान में एक नवीन शक्ति का उदय हुआ जिसे पार्थियन राजवंश कहते हैं।

पार्थियन राजवंश

पार्थियन वंश के इतिहास-प्रसिद्ध वीर मिथ्रिडेटस ने ग्रीक बाख्तरी राजा डिमेट्रियस तृतीय को हराकर ईरानी साम्राज्य पर कब्जा कर लिया। यह पार्थियन-सत्ता ईरान पर लगभग ४०० वर्षों तक चली। इस वंश का अन्तिम राजा आर्टबेनस ई० सन् २१३ में गद्दी पर बैठा। इसने रोम के साम्राट् के साथ २ बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ लड़ीं और रोमन लोगों को पराजित किया। मगर इसी के शासन-काल में ईरानी लोगों ने पार्थियन-सत्ता के विरुद्ध एक भारी विद्रोह किया। इस विद्रोह में पार्थियन -साम्राज्य का अन्त हो गया और ईरानी सम्राज्य की सत्ता सासानी वंश के हाथ में आ गई।

सासानी साम्राज्य

सासानी-साम्राज्य की स्थापना आर्कमीनियन वंश के 'अर्देशिर' नामक एक बहादुर व्यक्ति ने की और वही इस वंश का प्रथम शासक बनाया गया। इसने ई० सन् २२७ से २४० तक शासन किया। इसके शासन-काल में ईरान ने फिरसे जरथोस्टी-धर्म और संस्कृति को ग्रहण किया। जरथोस्टी धर्म के व्याख्याता लगभग चालीस हजार मागी (Magi) पुरोहित राजधानी पार्सिपोलस में एकत्र हो कर इस नवीन अभ्युत्थान को प्रेरणा देने लगे। इन्हीं मागियों में से चुने हुए सात मागियों की एक प्रतिनिधि-सभा बनाई गई, जिसका नेता आर्दाविराफ (Arda Viraf) था। इसी 'आर्दाविराफ' ने सम्राट् अर्देशिर की आज्ञा से जरथोस्टी धर्म के बिखरे हुए वचनों को एकत्रकर सुप्रसिद्ध झेन्द-अवेस्ता ग्रन्थ का संकलन किया।

सासानी-साम्राज्य के बादशाह शापुर प्रथम ने रोम के सम्राट् वेलेरियन को लड़ाई में अपनी फौज सहित आत्मसमर्पण करने के लिए बाध्य किया था। रोमन सम्राट जूलियन को भी हराकर सासानी-वंश ने बहुत ख्याति प्राप्त कर ली थी।

सासानी राजवंश के कुल २८ सम्राटों ने सन् २२७ से सन् ६५१ तक राज्य किया इनमें सम्राट् नौशेरवाँ सबसे अधिक प्रसिद्ध बहादुर और लोकप्रिय हुआ। इसका समय सन् ५३१ से ५७९ तक था।

सासानी शासन-काल में ईरान की समृद्धि पूरे उरुज पर पहुँच गयी थी। शिक्षा, शिल्प, व्यापार, साहित्यकला इत्यादि प्रत्येक क्षेत्र में ईरान ने बड़ी उन्नति की थी।

मगर चार शताब्दी तक शासन करने के पश्चात् इस साम्राज्य की अवनति के दिन आये और इस्लामी विजेताओं के प्रचण्ड प्रहारों से यह साम्राज्य चूर्ण-विचूर्ण हो गया और थोड़े ही समय में समूचा ईरान इस्लामी झण्डे के नीचे आ गया। जिन लोगों ने इस्लाम को ग्रहण नहीं किया, उन्हें भाग कर भारतवर्ष में आना पड़ा।

उस समय सासानी साम्राज्य का अंतिम बादशाह यज्दगर्द तृतीय राज्य कर रहा था। इसी काल में अर्थात् सन् ६३५ के लगभग अरब-सेनापति इब्न-वाकास ने ईरानी सेना को केडेशिया के रणक्षेत्र में एक करारी पराजय दी और उसके बाद सन् ६३७ में साठ हजार की एक बड़ी सेना के साथ फिर ईरान पर चढ़ आया। इस हमले को ईरानी सेना बरदाश्त नहीं कर सकी और 'यज्दगर्द' को राजधानी छोड़ कर भागना पड़ा। दस बरस तक यह प्रतापी सम्राट् इस्लाम की प्रचण्ड टक्कर में पड़कर इधर-उधर भागता रहा और अन्त में अपने एक नौकर के हाथों मारा गया।

इसके पश्चात् तीन-चार शताब्दी तक ईरान अरबी खलीफाओं के अधिकार में रहा। आठवीं सदी के मध्य भाग में खलीफा की राजधानी टेसिफोन से हटाकर बगदाद में लाई गयी। बगदाद में ही सुप्रसिद्ध खलीफा हारूँ-अल-रशीद हुआ जिसके दरबार के वैभव और विलास की कहानियाँ संसार में प्रसिद्ध हैं। इस काल में ईरानी साहित्य और कला की बहुत उन्नति हुई। इसके बाद क्रमशः खलीफाओं के शासन में शिथिलता आने लगी वे नाम के बादशाह रह गये और ईरान में सामानी-वंश की सत्ता प्रबल हो उठी। सामानी राजवंश में इस्माइल, लमलिक, नूह आदि शासक प्रसिद्ध हुए। ग्यारहवीं सदी के प्रारम्भ में गजनी के सुलतान [illegible] की सत्ता ईरान में प्रबल हो गयी। मगर ग्यारहवीं

सदी के मध्य भाग में अर्थात् सन् १०३६ में सल्जुकी तुर्क तुगरलवेग गजनी नेता मसऊद को पराजित कर युद्धक्षेत्र में ही सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। तुगरलवेग की मृत्यु के पश्चात् अल्पअरस्लन ने इस साम्राज्य का विस्तार किया। इसने निजामुल्मुल्क नामक प्रसिद्ध व्यक्ति को अपना वजीर बनाया। निजामुल्मुल्क बड़ा राजनीतिज्ञ, विद्वान और न्यायप्रिय व्यक्ति था।

सामानी और सेलजुक-युग अर्थात् ईस्वी सन् की दसवीं, ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी—ईरानी-साहित्य के विकास की स्वर्ण-शताब्दियाँ कही जा सकती हैं। सूफी सम्प्रदाय के कवियों की प्रेम-रस से भरी हुई मधुर कविताएँ इस युग की खास देन है। रूदागी, फिरदौसी, जलालुद्दीन रूमी, गज्जाली इत्यादि महान् कवियों की अपूर्व काव्य-सृष्टि, हाफिज की प्रेमरस से सराबोर बनी हुई गजलें, उमर खैय्याम की मादक रूबाइयाँ इसी युग की देन हैं जो समस्त मानवीय साहित्य की सनातन सम्पत्ति हैं।

चंगेज खाँ का आक्रमण

सेलजुक-शासन के अन्तिम समय में बारहवीं सदी के अन्तिम भाग में रहस्यमय पूर्व प्रदेश से तूफानी बादल की तरह एक बवण्डर उठा और उसने ईरान को घेर लिया। प्रचण्ड विजेता चंगेज खाँ और उसके बाद हलाकू अधिनायकता में मंगोल जाति के प्रबल आक्रमण ईरान पर हुए। इन आक्रमणों ने ईरान और बगदाद की सुन्दर भूमि को रौंद कर श्मशान सा बना दिया। बगदाद का विशाल पुस्तकालय जला कर भस्म कर दिया गया। उसके बाद सन् १३८७ में प्रसिद्ध विजेता 'तैमूरलंग' ने एक तूफान की तरह पैदा होकर ईरान पर कब्जा कर लिया। इस प्रकार करीब डेढ़ सौ वर्षों तक ईरान का इतिहास आक्रामक लोगों के भयङ्कर तूफानों के बीच गुजरता रहा।

सोफी-वंश

आर्देविल के प्रसिद्ध शिया पुरोहित शेख सैफुस के वंशधर इस्माइल नामक सरदार ने सन् १४९८ से सन् १५०० तक सारे ईरान पर कब्जा कर सोफी-वंश का शासन कायम किया। इस वंश में चौथे सम्राट् शाह अब्बास का नाम ईरान के इतिहास में बड़ा गौरवपूर्ण समझा जाता है। शाह अब्बास सन् १५८६ में गद्दी पर बैठा। इसके ४२ वर्ष के शासन में ईरान सभ्यता और वैभव के ऊँचे शिखर पर पहुँच गया। शाह अब्बास की गणना, इतिहास आज भी ईरान के सर्वश्रेष्ठ बादशाह की तरह करता है। उसकी राजधानी 'इस्फहान' उस समय की दुनिया में एक गौरवपूर्ण नगरी मानी जाती थी। यूरोप के भिन्न-भिन्न देशों के राजदूत इस बादशाह के दरबार में आकर तरह-तरह की भेंटों से उसका सम्मान करते थे।

शाह अब्बास की मृत्यु के पश्चात् सोफी-वंश का शासन यद्यपि सौ वर्ष और चला, पर बाद में उसके मुकाबिले का कोई व्यक्ति उसमें पैदा नहीं हुआ। सोफी-वंश के अन्तिम शासक हुसैन शाह को एक अफगान सरदार मुहम्मद ने हराकर फिर ईरान में अव्यवस्था पैदा कर दी। मगर कुछ ही वर्षों में महान् विजेता 'नादिर शाह' ने शक्ति-सम्पन्न होकर सन् १७३० में अफगानों को ईरान से निकाल दिया। उसके बाद इस 'आततायी' ने हिन्दुस्तान के मुगल सम्राट को भी हराया और यहाँ से करोड़ों रुपयों की दौलत लूट कर ले गया। मगर अन्त में सन् १७४७ में इस अभिमानी सरदार को कत्ल कर दिया गया और उसका जमाया हुआ विशाल साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया।

नादिर शाह की मृत्यु के पश्चात् करीब ५० वर्षों तक ईरान में छोटे-बड़े परिवर्तनों के साथ अव्यवस्था और अराजकता की स्थिति रही। उसके बाद सन् १७९८ में आगा महम्मद नामक काजर-वंश के एक खोजा ने फिर से वहाँ व्यवस्था कायम की। जॉर्जिया को जीत कर उसने तिफलिस और एरिवान भी अपने अधिकार में ले लिये। मगर तीन ही वर्ष के पश्चात उसकी हत्या कर दी गई और उसके स्थान पर 'फतेह अली' शाह ईरान की गद्दी पर आया।

फतेहअली शाह

फतेहअलीशाह के जमाने में ही ईरान विदेशी शक्तियों की राजनैतिक प्रतियोगिता का अखाड़ा बन गया। इसकी भौगोलिक स्थिति के कारण विदेशी लोगों की निगाह में दिन-दिन इसका महत्व बढ़ने लगा।

सबसे पहले फ्रान्स के 'नैपोलियन' की दृष्टि इस देश पर पड़ी। भारतवर्ष पर हमला करने के लिए वह ईरान और अफगानिस्तान दोनों का उपयोग करना चाहता था।

उस समय भारत का गवर्नर जनरल लार्ड वेलेसली था। वह भी बड़े ध्यान से ईरान में फ्रान्स और रूस की गतिविधि को देख रहा था। उसने सन् १८०० में कैप्टन 'मालकम' को ईरान भेजा। इसके प्रयत्न से ईरान और भारतवर्ष में एक संधि हुई, जिसके अनुसार ईरान में फ्रेञ्च षड्यंत्र पर पाबन्दी लगाई गई और ईरान ने अंग्रेजों के साथ मित्रता के सम्बन्ध स्थापित कर लिये। पर सन् १८०४ में यह संधि रद्द करके ईरान ने रूस और फ्रान्स से मित्रता कर ली। सन् १८१४ में फिर रूस और फ्रान्स के साथ की हुई सब संधियों को रद्द कर ईरान ने अंग्रेजों से नई संधि कर ली।

इधर रशिया अपनी फौजी ताकत के बल पर धीरे-धीरे ईरान के भागों पर कब्जा करता चला जा रहा था। अन्त में उससे हारते-हारते सन् १८२८ में ईरान ने रूस के साथ तुर्कमेन चाइनीज के नाम से एक संधि की इस संधि में अत्यन्त अपमान पूर्ण शर्तें मंजूर कर उसे जार्जिया, एरिवान, नाकचिवान इत्यादि प्रदेश रूस को देना पड़े और तीस लाख पौण्ड नुकसानी भरने की शर्त भी उसे माननी पड़ी।

इसके पश्चात् ईरान में रशिया का पंजा बड़ी मजबूती से जम गया और ईरान की आन्तरिक और बाह्य राजनीति में वह सर्वोच्चसत्ता भोगने लगा। अंग्रेज और फ्रेञ्च उसकी दया के भिखारी बनकर वहाँ रहने लगे।

महम्मद शाह

ईरान के फतेहअली शाह की मृत्यु सन् १८३४ में हो गयी और उसकी जगह महम्मद शाह ईरान की गद्दी पर बैठा। इसने चारों तरफ फैली हुई अराजकता को दबा कर 'हिरात' नगर पर घेरा डाला, मगर हिरात का अजेय किला उससे नहीं जीता जा सका और उसे निराशापूर्ण स्थित में वापस लौट आना पड़ा। सन् १८४८ में उसकी मृत्यु हो गयी।

नासिरुद्दीन शाह

महम्मद शाह के बाद उसका पुत्र नासिरुद्दीन १६ वर्ष की उम्र में गद्दी पर बैठा। इसी के जमाने में इतिहास-प्रसिद्ध बाबी-विद्रोह ने तहलका मचा दिया।

बाबी-विद्रोह

ईरान में उस समय बाबी-सम्प्रदाय बहुत उरूज पर था। बाबी सम्प्रदाय सैयद अलीमहम्मद के द्वारा स्थापित किया हुआ, एक नवीन सम्प्रदाय था। सैय्यद अलीमहम्मद ने घोषणा की थी कि 'पैगम्बर मुहम्मद का युग समाप्त हो गया है और अब मैं स्वयं नवयुग के धर्म का प्रवर्तक हूँ।' तत्कालीन शासन ने उसे कैद करके गोली से उड़ा दिया। सैय्यद अलीमहम्मद मारा गया, मगर बाबी सम्प्रदाय का अन्त नहीं हुआ। अलीमुहम्मद के पश्चात् "इबाहा" नामक व्यक्ति बाबियों का धर्मगुरु बना।

इन्हीं बाबी लोगों ने नासिरुद्दीन शाह के शासन में एक भारी विद्रोह का सूत्रपात किया, जिससे सारे ईरान में अशान्ति फैल गई। इन लोगों ने वहाँ के बड़े दीवान तकीखाँ का खून कर डाला और शाह नासिरुद्दीन की हत्या का भी प्रयत्न किया, मगर उसमें सफलता नहीं मिली उसके बाद बाबी आन्दोलन को अत्यन्त निष्ठुरतापूर्वक दबा दिया गया और बहुत से बाबी नेताओं की हत्या कर दी गई। बाबी सम्प्रदाय के द्वारा किये हुए आत्म-त्याग और वीरता-पूर्ण कार्यों से ईरानी जनता की सहानुभूति इन लोगों की तरफ हो गई और शाह जनता में अप्रिय हो गया।

नासिरुद्दीन शाह के राज्य-काल के चौथे हिस्से में ईरानी सेना ने 'हिरात' पर चढ़ाई कर उसे जीत लिया और उसे ईरान में मिला लिया। इससे अंग्रेजों को बहुत बुरा लगा और उन्होंने ईरान की खाड़ी के 'बुशायर' बन्दरगाह पर अपनी सेना उतार कर मोहामेरा और आहाज—इन दो स्थानों पर कब्जा कर लिया। सन् १८७५ में अंग्रेजों की ईरान से एक संधि हुई, जिसके अनुसार ईरान ने अफगानिस्तान को एक स्वतंत्र देश-स्वीकार कर लिया और वहाँ से अपनी सेनाएँ वापस बुला लीं।

नासिरुद्दीन के समय में मध्य एशिया में रूस की घुसपैठ बहुत तेजी से होने लगी। सन् १८६५ में उसने खोकन्द और ताशकन्द पर कब्जा करके वहाँ पर 'तुर्कस्तान' नामक नया प्रान्त बनाया। उसके बाद उसने १८६८ में प्रसिद्ध शहर समरकन्द और १८७३ में खीवा को जीत लिया। इस प्रकार मध्य एशिया के सर्व महत्वपूर्ण स्थान एक के बाद एक रशिया के अधिकार में आ गये।

क़ाकेशस जीतने के बाद केवल पच्चीस वर्षों में मध्य एशिया को रौंदता हुआ, रशिया अफ़गानिस्तान की सीमा पर आ पहुँचा।

अंग्रेज लोग भी इस समय चुप नहीं थे। इन्होंने भी नासिरुद्दीन के शासन-काल में अपने लिए कई सुविधाएँ प्राप्त कर ली थीं। अंग्रेजों को ईरान में एक बैंक (Imperial Bank of Persia) खोलकर नोट छापने की तथा 'कारून' नदी में व्यापारिक जहाज चलाने की इजाजत शाह ने दे दी।

इस प्रकार एक तरफ़ रूस और दूसरी तरफ़ अंग्रेज— इस प्रकार इन दो पाटों के बीच ईरान की स्वतन्त्रता बुरी तरह पिसने लगी।

सन् १८९६ में शाह नासिरुद्दीन एक अज्ञात व्यक्ति की गोली से मारा गया।

मुजफ्फ़र शाह

नासिरुद्दीन के पश्चात् मुजफ्फ़रशाह ईरान का शाह बना। इसके समय में ईरान में जुल्म और अराजकता का दौर-दौरा बहुत प्रचण्ड हो गया और जनता के असन्तोष ने उग्र रूप धारण कर लिया। सन् १९०७ में मुजफ्फ़रशाह का देहान्त हुआ और उसकी जगह मुहम्मद अली शाह की गद्दी पर बैठा।

सैय्यद जमालुद्दीन

ईरान में छाये हुए इस असन्तोष की ज्वाला में से जो चिनगारियाँ पैदा हुईं, उसमें एक बड़ी चिनगारी के रूप में सैय्यद जमालुद्दीन प्रकट हुआ। सैय्यद जमालुद्दीन का जन्म सन् १८३८ में हमदान में हुआ था। इसका मस्तिष्क प्रारंभ से क्रान्तिकारी भावनाओं का उद्गम-स्थान था। इसकी प्रतिभा को देखकर शाह नासिरुद्दीन ने इसे अपने प्रधान-मण्डल में रख लिया था। मगर इसने उस स्थान पर रह कर भी जनता में नवयुग की भावनाओं को फैलाना शुरू किया जिसके परिणामस्वरूप टर्की, भारत और मिस्र से निर्वासित किया हुआ यह क्रांतिकारी ईरान से भी निर्वासित कर दिया गया।

वहाँ से इंग्लैण्ड में आकर इसने "कानून" के नाम से एक क्रान्तिकारी पत्र प्रकाशित करना प्रारम्भ किया। इस पत्र के द्वारा छिपे-छिपे क्रांति की लहरें टर्की और ईरान में पहुँचने लगीं।

माल्कम खाँ

ईरान की तत्कालीन जागृति में सैय्यद जमालुद्दीन के बाद दूसरा स्थान माल्कम खाँ का आता है। ईरान के क्रांतिकारी इतिहास में माल्कम खाँ का नाम अपना विशेष स्थान रखता है। माल्कम खाँ पहले एक जादूगर के रूप में प्रसिद्ध था। ईरान में इसने "फ़ारामूसखाना" (House of forgetfulness) नामक तंत्र-मंत्र की एक गुप्त संस्था स्थापित की। इस संस्था के द्वारा वह जनता में क्रांति की भावनाएँ पैदा करने लगा। यह देखकर ईरान के शाह ने उसे लंडन में ईरान का राजदूत नियुक्त करके भेज दिया।

यहाँ पर कानून नामक पत्र के सम्पादन और प्रकाशन में वह जमालुद्दीन का सहयोगी बन गया।

इन्हीं दिनों मुजफ्फ़र शाह ने अपने दामाद आइन-उ-दौला को अपना प्रधान मंत्री बनाया। आइन-उ-दौला अत्यन्त स्वार्थी नीच और अत्याचारी व्यक्ति था, इसने और भी भयंकर रूप से ईरानी जनता का शोषण और उस पर अत्याचार करना प्रारम्भ किया।

एक तरफ़ ईरानी जनता शाह के अत्याचारों से शोषित और त्रसित हो रही थी, दूसरी तरफ़ रूस और इंग्लैण्ड वहाँ की कमज़ोरी का लाभ उठा कर इस हरे-भरे देश को अपने शिकंजे में फ़ांसने का प्रयत्न कर रहे थे। ३१ अगस्त १९०७ के दिन 'सेंट पीटर्स बर्ग' में इंग्लैंड और रूस के बीच एंग्लो रशियन सन्धि के एक पैक्ट पर हस्ताक्षर हुए। इस सन्धि के अनुसार इस्पहान और यज्द से अफ़गान सीमा तक का सारा उत्तरी ईरान रूस का प्रभाव क्षेत्र बन गया और बन्दर अब्बास और करमान से अफ़गानिस्तान तक सारा दक्षिणी ईरान इंग्लैंड के प्रभाव-क्षेत्र में माना गया। रूस ने अफ़गानिस्तान और तिब्बत पर अंग्रेजी प्रभाव को स्वीकार करा लिया और उसके बदले में अंग्रेजों ने ईरान के बहुत बड़े भाग पर रूस के प्रभाव को स्वीकार कर लिया।

इस सन्धि से भी ईरान में बड़ी उत्तेजना फैली और इन सब बातों का परिणाम १९०९ की ईरानी-क्रांति के रूप में प्रकट हुआ।

१६०६ की क्रान्ति

इस प्रसिद्ध क्रांति में क्रांतिकारियों का नेतृत्व शिपादार-इ-आजम वली खाँ और इफ्राइम नामक आर्मेनियन सरदार कर रहे थे। सन् १६०६ के मई मास में अपनी सेनाओं के साथ तेहरान पर हमला करने की इस्पहान के साहसी नेता सरदार आसाद ने घोषणा की। दूसरी तरफ से उत्तर दिशा के क्रांतिकारी, काजविन-तेहरान मार्ग पर तेहरान से ४० मील दूरी पर आकर रुक गये। तीसरी ओर पश्चिम दिशा से बख्तियारी लोग भी अन्य क्रांतिकारियों से मिलने, तेहरान से २५ मील पश्चिम दिशा में आकर रुक गये।

सरकारी कज्जाक-सेना का नेतृत्व पोरिब्रिनोजेफ नामक सेनापति कर रहा था। एक रात्रि को अचानक मालूम हुआ कि सरदार शिपादार कज्जाक-सेना के बीच में से होकर चुपचाप तेहरान की तरफ बढ़ गया है। तेहरान में दोनों पक्षों के बीच में भयंकर लड़ाई हुई, मगर अन्त में मैदान क्रांतिकारियों के हाथ में रहा। ईरान के शाह मुहम्मद अली और उनकी महारानी ने रशियन राजदूत के मकान में अपने प्राण बचाने के लिए आश्रय लिया। बाद में बीस हजार पौण्ड की वृत्ति देकर उसे ईरान से बाहर कर दिया गया।

इसके पश्चात् नई व्यवस्था में सरदार शिपादार ईरान का युद्धमंत्री, सरदार आसाद गृहमंत्री और इफ्रायम पोलिस का अधिकारी बना। इसके पश्चात् उसी रात को एक विशेष बैठक में शाह महम्मद अली को पदच्युत करके उसके स्थान पर उसके पुत्र सुलतान अहमद को ईरान का शाह बनाया गया।

इसके तुरन्त बाद ईरान में मजलिस पार्लमेंट के सदस्यों का जनतंत्र-पद्धति के आधार पर चुनाव हुआ और शाह सुलतान अहमद के संरक्षण में मर्यादित राजतंत्र की स्थापना हुई और विधान का निर्माण हुआ।

मर्यादित राजतंत्र की स्थापना के बाद जनता में जागरण की एक लहर जरूर आई, नये-नये पत्र तथा पत्रिकाएँ निकलने लगीं। इन पत्र-पत्रिकाओं में इरानी-नौ, मजलिस, शार्क, वाजीब इत्यादि पत्रों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

फिर भी ईरान की मूलभूत समस्याओं का अन्त अभी तक नहीं हुआ। पाँच-छः वर्ष की इस भारी उथल-पुथल और शाह लोगों की मौज-मजेदारी में ईरान का खजाना खाली हो चुका था। उधर रूस और अंग्रेजों के दाँत इस नव-विकसित पौधे में दिन-दिन अधिक गहराई से गड़ रहे थे।

मजलिस की स्थापना होते ही रूस ने ईरान के साथ की हुई पुरानी संधियों को रद्द कर दिया और चारों ओर सारे देश में तरह-तरह के षड्यंत्र कर विद्रोह पैदा करना प्रारम्भ कर दिया।

इधर अंग्रेजों ने भी इरानी मजलिस को अंतिम नोटिस दिया कि दक्षिणी ईरान में फैली हुई अराजकता को दबाने के लिए अंग्रेजी फौज को सत्ता दी जाय और उसका सारा खर्च ईरान की सरकार उठावे।

इन्हीं सारी गड़बड़ियों के बीच प्रथम यूरोपीय महा-युद्ध से पहले ईरान की हालत अत्यन्त दुर्बल और नाजुक हो गई। अंग्रेजों और रशियनों का शिकञ्जा वहाँ दिन-प्रतिदिन अधिक कसता गया।

प्रथम महायुद्ध के समय ईरान एक तरफ से जर्मन और तुर्की सेनाओं के द्वारा और दूसरी तरफ से रूसी और अंग्रेजी सेनाओं से कुचला जाता रहा।

इसके कुछ समय पश्चात् सन् १६१७ में रूस में महान् बोलशेविक क्रान्ति हुई। 'जार' के तख्त को उलटकर बोलशेविक सरकार की स्थापना हुई और उसने तुरन्त ईरान से अपनी सेनाएँ हटा लीं।

रूस की सेनाएँ हटते ही ईरान में अंग्रेजों का निर्द्वन्द्व वर्चस्व कायम हो गया।

सन् १६१६ में अंग्रेजों ने एक एंग्लो-पार्शियन-एग्रीमेंट ईरान पर लादा। इस इकरारनामे से ईरान की स्वतंत्र सत्ता सिर्फ नाम मात्र की रह गई और सारे राजनैतिक अधिकार अंग्रेजों के हाथ में चले गये।

इन सारी घटनाओं से ईरान की जनता क्षुब्ध हो रही थी। असन्तोष की ज्वाला अत्यन्त तेजी से भभक रही थी, मगर किसी योग्य नेता के अभाव में ये सारी शक्तियाँ व्यर्थ जा रही थीं। इसी समय इस ज्वाला की चिनगारी रूप रजाखाँ नामक एक महान् पराक्रमी व्यक्ति प्रकट होता है।

रजा खाँ

एक अत्यन्त गरीब घर में छोटे से ग्राम में पैदा होकर रजा खाँ ने ईरान के आधुनिक इतिहास में अपना नाम अमर कर दिया। रजा खाँ का जन्म सन् १८७७ में उत्तरी ईरान के पहाड़ी प्रदेश के एक छोटे से ग्राम में हुआ था। गरीबी के कारण केवल पन्द्रह वर्ष की अवस्था में यह कज्जाक-सेना में एक मामूली सैनिक की तरह भरती हो गया। इसी समय से ईरान के अन्तर्गत जो लगातार उथल-पुथल हो रही थी, उसे यह बड़े ध्यान से देख रहा था। सन् १९२० में जब एंग्लो-पर्शियन पेक्ट को ईरान के मंत्रिमण्डल ने स्वीकार कर लिया, तब सारे ईरान में प्रचण्ड असन्तोष की ज्वाला धधक उठी। दूरदर्शी रजा-खाँ ने इस अवसर का उपयोग करने का निश्चय किया। इसी समय तेहरान में डॉ० जियाउद्दीन अपनी 'शार्क' पत्रिका के द्वारा उग्र प्रचार कर रहा था।

सन् १९२१ की फरवरी में रजा खाँ की कज्जाक-सेना तेहरान के दरवाजे पर पहुँच गई और अचानक आक्रमण करके वहाँ के शाह के अमले को गिरफ्तार कर लिया और "सरदार-इ-शिया" की पदवी के साथ रजाखाँ ने सारी सत्ता अपने हाथ में ले ली और शार्क-पत्रिका के सम्पादक डॉ० जियाउद्दीन को प्रधान मंत्री बना दिया और एंग्लो-पर्शियन पेक्ट को रद्द कर दिया।

सत्ता हाथ में लेने के बाद रजाशाह ने सारे देश में फैली हुई बगावतों और डकैतों का दमन किया, राज्य में शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित की।

ईरानी जनता रजाखाँ के कारनामों पर मुग्ध हो गई। जिसके परिणामस्वरूप सन् १९२५ के अक्टूबर मास में राष्ट्रीय मजलिस ने ईरान के शाह सुलतान अहमद को पद-च्युत कर रजाखाँ को 'ईरान के शाह' के आसन पर बिठा दिया। ईरान के इतिहास में यह अभूतपूर्व घटना थी।

शाह के आसन पर आसीन हो रजा खाँ ने ईरान की शान्ति और सुरक्षा के लिए दो लाख आधुनिक शस्त्र-सज्जाओं से सज्जित सेना का संगठन किया। उसने अपनी हवाई शक्ति बढ़ाने के लिए देश के कई नवयुवकों को ट्रेनिंग के लिए फ्रान्स भेजा और हवाई शक्ति बढ़ाने का पूर्ण प्रयास किया। सन् १९२७ में उसने अनिवार्य सैनिक-शिक्षा का क़ानून बनाया जिसके अनुसार २१ से ४० वर्ष तक के प्रत्येक व्यक्ति के लिए २ साल तक सेना में भरती होकर फौजी तालीम लेना अनिवार्य कर दिया गया। इसी प्रकार सामाजिक सुधारों में भी उसने अनेक कार्य्य किये, नारी जाति को शिक्षा और विकास का पूर्ण अवसर दिया गया।

रजाशाह पहलवी

रजा खाँ के पश्चात् उसका पुत्र रजाशाह पहलवी ईरान की गद्दी पर आया। ईरान के रेगिस्तानी प्रान्त में तैल का विशाल भण्डार है जिस पर यूरोप की साम्राज्यवादी शक्तियों ने अपना पंजा जकड़ रक्खा था। ईरानी जनता इन विदेशियों के पंजे से इस तैल भण्डार को मुक्त करना चाहती है। इसी सिलसिले में कुछ समय पूर्व ईरान के प्रधान मंत्री मुसादिक की हत्या हुई।

सन् १९५८ में ईरान के शाह रजाशाह पहलवी ने अपनी दूसरी बेगम सुन्दरी सुरैया को इसलिए तलाक दे दिया कि राजवंश के लिए उसने कोई पुत्र प्रदान नहीं किया। इसके पहले वह अपनी पहली बेगम मिस्र की राजकुमारी को भी इसी अपराध पर तलाक दे चुका था।

दिसम्बर १९५९ में उसने फराहदीबा नामक एक इक्कीस वर्षीय सुन्दरी से अपना तीसरा विवाह किया।

ईरानी (फारसी) साहित्य

राजकीय वैभव की तरह ईरान के साहित्यिक वैभव ने भी अपना एक महान् इतिहास का निर्माण किया है। ईरान के विद्वानों और तत्वचिंतकों ने फारसी भाषा में अपने महान् साहित्य का निर्माण किया है। फारसी के पहले पहलवी और अवेस्ती भाषा में भी साहित्य का निर्माण हुआ है पर वह अधिकतर धर्म-ग्रन्थों तक ही परिमित था। अवेस्ती भाषा वैदिक संस्कृत से बहुत मिलती हुई थी।

फारसी भाषा अरबी लिपि में लिखी जाती है और इसके साहित्य का विशेष विकास ईरान में इस्लाम धर्म के प्रवेश के पश्चात् ही हुआ।

रूदागी

फारसी भाषा में कविता करने वाले महान् कवियों में समय की दृष्टि से पहला नाम "रूदागी" का आता है इसका

समय ईस्वीसन् ६०० के आसपास माना जाता है। रूदागी क्लासिकल वर्ग का कवि था। यह तत्कालीन सामानी नरेश नस्र-इब्न-अहमद के दरबार का दरबारी था। इसने तीन ऐतिहासिक काव्य लिखे।

जिस समय रूदागी का आविर्भाव हुआ, उस समय ईरान में राजकीय स्थिरता और शान्ति स्थापित थी और लोगों की रुचि जीवन के आनन्द और मौजमजे की तरफ ढल रही थी। प्रकृति के सौन्दर्य, नारी, मदिरा और संगीत की तरफ उनकी भावनायें दौड़ने लगी थीं और इस्लाम के धार्मिक अनुशासन से दबाये जाने पर भी ये भावनाएँ उभड़ रही थीं। कवि रूदागी भी इस बहती हुई हवा से अपने को बचा नहीं सका और उसकी कविताएँ धार्मिक अनुशासन की दीवारों को तोड़ कर अनन्त की ओर बह चलीं।

रूदागी के साथ ही कवि दकीकी का नाम तो आता है उसने अपनी कविताओं में संसार की चार नियामतों का विवेचन किया है उसने वे चार नियामतें रस भरे लाल ओंठ, सारंगी का नाद, जरथोस्ट के वचन और मदिरा को बतलाई है। फिरदौसी का सुप्रसिद्ध महाकाव्य "शाहनामा" का लिखना दकीकी ने ही प्रारम्भ किया था। मगर एक हजार शेर लिख चुकने पर एक दिन उसके किसी गुलाम ने उसे मार डाला।

फिरदौसी

दकीकी के बाद "फिरदौसी" की अमर लेखनी ने फारसी साहित्य का अमर कर दिया।

ग्यारहवीं सदी में प्रसिद्ध मुसलमान विजेता महमूद गजनवी के दरबार मे कवियों, लेखकों और विद्वानों का जमघट सा लगा हुआ था। फिरदौसी भी इन्हीं विद्वानों में से था उसने ३५ वर्ष परिश्रम करके अपने महाकाव्य "शाहनामा" को पूरा किया। ऐसा कहा जाता है कि जब वह अत्यन्त उत्साह के साथ भारी पुरस्कार की आशा से उस ग्रन्थ को भेंट करने महमूद गजनवी के दरबार में ले गया तो न मालूम क्यों महमूद गजनवी ने उस समय उसमें दिलचस्पी नहीं बतलाई, और न कुछ इनाम ही दिया। इस अपमान का फिरदौसी पर इतना भयंकर आघात पड़ा कि उसकी मृत्यु हो गयी। पीछे से जाकर महमूद गजनवी को भी अफसोस हुआ और उसने अशर्फियों की कुछ थैलियाँ अपने साथियों के साथ फिरदौसी के पास भेजी, मगर जिस समय वे थैलियाँ लेकर पहुँचे उस समय इस महान् कवि का शव कब्र में दफनाया जा रहा था। इस प्रकार इस महान् कवि का ऐसा करुण अन्त हुआ।

फिरदौसी के शाहनामे में प्राचीन युग के ईरानी पराक्रम का सजीव भाषा में वर्णन किया गया है इसमें पचास राजाओं की कीर्ति गाथा अत्यन्त भावपूर्ण, वीरोचित और प्रभावपूर्ण भाषा में वर्णित की गयी है। काव्य की धारा पहाड़ी निर्झर के समान कलकल नाद करती हुई बहती हैं। इन वीरों की गाथाओं में "सोहराब और रुस्तम" की लोक कथाओं में प्रचलित वीरतापूर्ण लड़ाई का भी उल्लेख है। प्राचीन काल के ईरानी पराक्रम का वर्णन होने से यह महाकाव्य ईरान की एक राष्ट्रीय रचना मानी जाती है। फिरदौसी की दूसरी कृत्ति "युसुफ और जुलेखा" थी जिसमें इन दोनों के रोमांस का वर्णन है।

सूफीवादी विचारधारा

इसी समय फारसी साहित्य में "सूफी" विचारधारा का उदय हुआ और उसने फारसी साहित्य को एक नया मोड़ दे दिया। ईरान के लोग इसलाम की धार्मिक कट्टरता को पूरी तरह जज्ब नहीं कर पाये थे और उनके कलापूर्ण मस्तिष्क इस कट्टरता से निकल कर जीवन का यथार्थ आनन्द उठाने की ओर झुकते जा रहे थे। इन्हीं भावनाओं ने सूफीवाद की प्रवृत्तियों को जन्म दिया।

सूफीवाद का दर्शन भारत के वेदान्त दर्शन से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। सूफीवाद के कवियों ने "रूबाई" छन्द का बहुत अधिक प्रयोग किया।

सूफीवादी सम्प्रदाय में अल-फराबी का नाम बहुत प्रसिद्ध है, यह सत्तर भाषाओं का विद्वान था। तुर्की, फारसी, अरबी, इब्रानी, यूनानी इत्यादि अनेक भाषाओं से उसे काम पड़ा था। फराबी की रहन-सहन सूफी फकीरों की तरह थी। यूनान के प्रसिद्ध तत्ववेत्ता अरस्तू के ग्रन्थों का अल-फराबी ने अरबी में ऐसा सुन्दर अनुवाद किया है कि यूरोप के विद्वानों ने उसे "दूसरा अरस्तू" माना है।

सन् ६५० में इस महान् विद्वान का निधन हुआ और सूफी परम्परा के अनुसार उसकी सब अन्तिम क्रियाएँ की गईं।

सूफी विचारधारा के लोगों का प्रधान नारा "अनलहक" (सोऽहं) था। इसी नारे को रखते हुए, सौन्दर्य, मदिरा इत्यादि सभी विषयों पर सूफी सन्त कविता करते थे, और मजहबी कर्मकाण्ड का पर खूब व्यङ्ग करते थे। इसीसे इस्लामी कर्मकाण्ड वाले इनको पसन्द नहीं करते थे। इसीसे मन्सूर के समान मस्त सूफी को "अनलहक" का नारा लगाने पर प्राणदण्ड दिया गया। सूफीवाद के महान् कवियों में जलालद्दीन रूमी, इब्न अबुल खैर, शम्सतबरेज, मनसूर, अल-गजाली इत्यादि सूफी बहुत प्रसिद्ध हुए।

उमर खैय्याम

इसी युग में अर्थात् बारहवीं शताब्दी में फारसी साहित्य ने संसार प्रसिद्ध महान् कवि उमर खैय्याम को पैदा किया। उमर खैय्याम उन लोगों में प्रधान है जिन्होंने धार्मिक कट्टरता और कर्मकाण्ड के विरुद्ध आवाज उठाई, परलोक के खिलाफ जिहाद किया और वर्तमान की स्तुति की। उमर खैय्याम को कल पर विश्वास नहीं था वह केवल आज पर विश्वास करता था। नारी, मदिरा और सौन्दर्य के सम्बन्ध की हुई उसकी रूबाइयाँ न केवल फारसी साहित्य को प्रत्युत समग्र विश्व-साहित्य को आलोकित कर रही है। संसार की सब भाषाओं में उनके अनुवाद हो चुके हैं। जिनमें फिट्जरलैण्ड के द्वारा किया हुआ अंग्रेजी अनुवाद सबसे श्रेष्ठ माना जाता है कई बातों में वह भूल से भी अच्छा समझा जाता है।

निजामी

फारसी साहित्य में लैला-मजनूं और शीरी-फरहाद के जोड़ों को अमर कर देने वाला और समग्र संसार में इन दोनों प्रेमी-युगल की प्रेम कहानियों की धूम मचा देने वाला महाकवि "निजामी" भी किसी से पीछे नहीं है। इसका समय सन् ११४१ के करीब माना जाता है। प्रेम-कथाओं का चित्रण करने में इसको महान् सफलता मिली और ईरानी समाज में यह बहुत लोकप्रिय हुआ।

शेखसादी

तेरहवीं सदी के प्रारम्भ में दुर्दान्त आक्रमणकारी चंगेज खाँ और उसके बाद हलाकू खाँ ने ईरान की भूमि को अपने पैरों के नीचे बड़ी बुरी तरह से कुचल डाला। हलाकू खाँ ने सन् १२५८ में बगदाद का सत्यानाश कर अब्बासी खिलाफत का अन्त कर डाला। अब्बासी वंश के बाद वहाँ मंगोल वंश का राज्य कायम हुआ और इसके साथ ही ईरान की राजभाषा अरबी की जगह फारसी हो गई।

इसी उखाड़ पछाड़ के समय में शीराज नगर ने महान् कवि शेखसदी को पैदा किया। शेखसादी का समय बारहवीं सदी के अन्तिम चरण से तेरहवीं सदी के तीसरे चरण के आसपास माना जाता है। इसके दो ग्रन्थ गुलिस्तां और बोस्तां फारसी साहित्य की अमरकृत्तियाँ हैं। जिनमें शेखसादी ने मानव-जीवन के सब रहस्यों को उंडेल दिया है। उसकी नीति विषयक विवेचना पाठक को उस दिव्य प्रकाश की झाँकी बतलाते हैं जिसके सहारे चलकर वह इस लोक और परलोक दोनों को सफलतापूर्वक पार कर सकता है। शेखसादी विश्वख्याति का महान् कलाकार है। जिसने जीवन के महान् रहस्यों को समझने में सफलता पाई।

हाफिज

सादी के पश्चात् फारसी साहित्य में हाफिज का नाम बहुत प्रसिद्ध है। इसका पूरा नाम शमसुद्दीन मुहम्मद हाजिफ था। इसकी मृत्यु सन् १३८९ के करीब हुई। हाफिज ने भी फारसी कवियों की परम्परा के अनुसार शराब, प्रेम और प्राकृतिक सौन्दर्य पर कविताएँ कीं। विचारों की गहराई, कल्पना की उड़ान और भाषा के प्रवाह में हाफिज अपने पूर्ववर्ती कवियों से बढ़ गया है। हाफिज सूफी कवि शृंखला की अन्तिम कड़ी है। प्रेम और मदिरा की शृंगारिक कविताएँ भी उसने सूफीवाद या रहस्यवाद के सिद्धान्तों के प्रकाश में की हैं। इसीलिए पाठक उसकी प्रत्येक रसपूर्ण कविता में अनन्त रहस्य का दर्शन करता है और इसी से उस समय के लोग उसे "लीसानुल गैब" या अप्रत्यक्ष का संदेश की उपाधि से सम्बोधित करते

थे। हाफिज की कविताओं का संग्रह "साकीनाम" के नाम से प्रसिद्ध हैं।

जामी

हाफिज के बाद फारसी-साहित्य को अमर करने वाले साहित्यकारों में "जामी" का नाम आता है, जिसका पूरा नाम "नुरुद्दीन अब्दुल रहमान जामी" है। इसका जन्म सन् १४१४ में खुरासान के 'जामी' नामक गाँव में हुआ। ईरान के सबसे प्रसिद्ध कवियों के सप्तर्षि-मंडल में जामी भी एक नक्षत्र की तरह जगमगाता है। गद्य और पद्य दोनों क्षेत्रों में उसकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है। लिरिक कविता में उसने तीन 'दीवान' लिखे हैं। उसका "हफ्त नौरंग" काव्य फारसी-साहित्य में कल्पना-शक्ति और नीतिमत्ता का एक मौलिक और सुन्दर चित्र उपस्थित करता है। 'नफहातुल-उन्स' उसके द्वारा लिखा हुआ सूफी सन्तों के चरित्र का एक कोष है। सादी की गुलिस्तां के जोड़ पर उसने बहारिस्तान नामक एक सुन्दर फारसी-काव्य की रचना की जो उसकी रचनाओं में सबसे लोकप्रिय हुई।

अली-शेर-नवाई

जामी के साथ ही महाकवि नवाई का नाम भी आता है। यद्यपि नवाई वस्तुतः तुर्की-भाषा का महाकवि था। फारसी में उसकी रचनाएँ कम हैं, फिर भी उसने फारसी के कवि जामी और निजामी से बहुत प्रेरणा प्राप्त की थी। निजामी के ही अनुकरण पर उसने लैला-मजनू और शीरीं-फरहाद की प्रेम कहानियों को तुर्की-भाषा में लिखा है। तुर्की-भाषा में तो वह प्रथम श्रेणी का कवि है। फारसी-भाषा में उसने "फानी" के उपनाम से कविताएँ की हैं।

कवि होने के साथ नवाई बहुत बड़ा जमींदार भी था। विद्वानों और कलाकारों के संरक्षण के लिए उसका दरबार हमेशा खुला रहता था। एशिया का प्रसिद्ध चित्रकार कमालुद्दीन बहेजाद ने नवाई के ही संरक्षण में अपनी चित्रकला का विकास किया था। जिसको लोग "नजाकते कलम बेनजीर" और "सूरते हालात मुसव्विर" के नाम से पुकारते थे।

जामी के पश्चात् फारसी साहित्य में कवि तो अनेक हुए, मगर ऐसे कवि बहुत कम हुए, जो विश्व-साहित्य के क्षेत्र में अंकन किये जा सकें। इन कवियों में "हातिमी" "आसफी", "हिलाली", "शानी", "जुआली", "फय्याज" इत्यादि कवियों के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें से तेहरान के "शानी" को ईरान के शाह अब्बास महान् ने उसके बराबर सोना तौल कर उसकी कृतियों पर पुरस्कार के रूप में दिया था।

इन्हीं दिनों कानून के क्षेत्र में बहाउद्दीन शिया नामक लेखक ने 'जाम-ए-अब्बासी' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की और अब्बास द्वितीय के दीवान ताहिर वहीद ने तारीख-ए-शाह अब्बासे-शानी नामक ग्रंथ लिखकर इतिहास के क्षेत्र में अच्छा नाम कमाया।

भारतवर्ष में फारसी-साहित्य

भारतवर्ष में भी इस्लामी-सल्तनत के साथ फारसी-साहित्य का काफी सृजन हुआ।

अमीर खुसरो

भारतवर्ष के फारसी-साहित्यकारों में सबसे पहला प्रसिद्ध नाम 'अमीर खुसरो' का लिया जाता है। इसका जन्म सन् १२५५ में एटा जिले के पटियाली ग्राम में हुआ था। यह निजामुद्दीन औलिया का शिष्य था। अमीर खुसरो सर्वतोमुखी प्रतिभा का व्यक्ति था। वह कवि, भाषाशास्त्री, गायक और विद्वान सब कुछ था। कवि की हैसियत से वह फारसी-भाषा के श्रेष्ठतम कवियों—शेखसादी और हाफिज-की कोटि का था। उसकी रचनाओं में पाँच दीवान, पाँच मसनवियाँ, पाँच ऐतिहासिक कविताएँ और तीन गद्य कृतियाँ हैं।

सम्राट् अकबर के समय में भी फारसी-साहित्य में कई विशिष्ट रचनाएँ हुईं। सम्राट् ने हितोपदेश, पंचतंत्र, तारीख-ए-कश्मीर, महाभारत, रामायण इत्यादि ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद करवाया। उसके दरबार में अबुल फजल, बदायूनी, फैजी, शेख मुबारक इत्यादि अनेक प्रसिद्ध विद्वान थे, जिन्होंने फारसी-साहित्य में महान् रचनाएँ कीं।

आधुनिक नवीन युग की छाया में फारसी-साहित्य ने भी एक नवीन दिशा को ग्रहण कर लिया है। उस पर भी पश्चिमी सभ्यता की छाप नजर आने लगी है।

आधुनिक फारसी-कवियों में मशवाद, आसिफ, सैय्यद अशरफ, भारतवर्ष के डा० महम्मद इकबाल इत्यादि कवियों के नाम उल्लेखनीय हैं।

ईरानी चित्रकला

साहित्य की ही तरह चित्रकला के क्षेत्र में भी ईरान ने अपनी कलम के जौहर दिखलाये हैं। ईरान के बने हुए कालीन और गलीचे अपनी मनोहर चित्रकारी के लिए सारे संसार में प्रसिद्ध हैं।

प्राचीनकाल में ईरानी चित्रकला का सम्बन्ध "मनीखी" धर्म से था, पर इस धर्म के संस्थापक "मनि" जो एक प्रसिद्ध चित्रकार भी थे, ईस्वी सन् २९० में मार डाले गये और उनके बनाये हुए चित्र भी जला दिये गये।

ईरानी चित्रकला का वास्तविक विकास इस्लाम के ईरान में प्रविष्ट होने के पश्चात् अब्बासी खलीफाओं के युग से प्रारम्भ होता है। भिन्न-भिन्न विषयों पर लिखे हुए ज्योतिष, चिकित्सा और ऐतिहासिक ग्रन्थों को सचित्र बनाने के प्रयत्न में इस चित्रकला का विकास हुआ। इस प्रकार की पुस्तकें अधिकतर बारहवीं सदी में चित्रित की गईं।

चौदहवीं सदी के मंगोल-युग में फारसी-साहित्य के साथ-साथ ईरानी चित्रकला का भी बहुत विकास हुआ।

इसके पश्चात् पन्द्रहवीं सदी में तैमूर के पुत्र शाहरुख की मृत्यु के पश्चात् हिरात के सुलतान हुसैन इब्न-बैकरो के समय में उनके दीवान अली-शेर-नवाई के संरक्षण में ईरानी चित्रकला ने बड़ी उन्नति की। इसी समय में अली-शेर-नवाई के संरक्षण में एशिया के सुप्रसिद्ध चित्रकार कमालुद्दीन बेहजाद ने अपनी महान् चित्रकला से ईरानी-कला को सम्पन्न किया। उसे लोग "नजाकते कलम वेनजीर" और "सूरते हालात मुसब्बिर" की पदवियों से अलंकृत करते थे। इन दिनों में हिरात की शैली सारे ईरान में मशहूर हो गई थी और अली-शेर-नवाई के संरक्षण में अनेक चित्रकार इकट्ठे हो गये थे।

इसके पश्चात् सफावी-युग में ईरान की चित्रकला ने राष्ट्रीय रूप ग्रहण किया। इस युग के चित्रकारों में मीर सय्यद अली, मीरक और सुलतान मुहम्मद के नाम उल्लेखनीय हैं।

ईरान के इतिहास की प्रसिद्ध घटनाएँ

घटना	सन्
साइरस महान के द्वारा ईरान साम्राज्य की स्थापना	ई० सन् पूर्व ५५९
दारा प्रथम महान का सम्राट होना	ई० सन् पूर्व ५२१
सम्राट् क्षयार्श द्वारा थर्मापोली की प्रसिद्ध लड़ाई	ई० सन् पूर्व ४८१
अलेक्झेंडर महान् द्वारा ईरान पर आक्रमण	ई० सन् पूर्व ३३०
राजा मिथ्रीडेटस के द्वारा पार्थियन साम्राज्य की स्थापना	ई० सन् पूर्व १७४
अर्देशर के द्वारा सासानी-राजवंश की स्थापना	सन् २२७ ई०
आर्दाविराफ (Ardaviraf) के द्वारा जेन्द-अवैस्तां का संकलन	सन् २३२ ई०
सासानी सम्राट् नौशेरवाँ का राजगद्दी पर आना	सन् ५३१ ई०
सासानी सम्राट् यज्दगिर्द की पराजय	सन् ६४२ ई०
खलीफा हारूँ-अलरशीद का बगदाद की गद्दी पर आना	सन् ७८६ ई०
सेल्जुक सम्राट् तुगरलबेग का रणक्षेत्र में सिंहासन पर बैठना	सन् १०३६ ई०
महाकवि रूदागी का आविर्भाव	सन् ९१४ ई०
महाकवि फिरदौसी के द्वारा शाहनामा का निर्माण	११वीं सदी का मध्य
महाकवि उमर-खय्याम का आविर्भाव	११वीं सदी का उत्तरार्द्ध
प्रसिद्ध साहित्यकार जलालुद्दीन रूमी का आविर्भाव	सन् १२०७ ई०
महात्मा अल-गजाली का आविर्भाव	१२वीं सदी का पूर्वार्द्ध

घटना	सन्
चंगेज खाँ का आक्रमण	सन् १२२९ ई०
मंगोल सरदार हुलाकू का गद्दी पर बैठना	सन् १२५६ ई०
अब्बासी-खिलाफत का अन्त	सन् १२५८ ई०
महाकवि शेखसादी द्वारा गुलिस्ताँ का निर्माण	१३वीं सदी का मध्य
फारसी के महाकवि हाफिज का आविर्भाव	१४वीं सदी का मध्य
महाकवि जामी का आविर्भाव	सन् १४१४ ई०
सोफी-वंश के अब्बास महान का ईरान की गद्दी पर आना	सन् १५८६ ई०
नादिर शाह का आविर्भाव	सन् १७३६ ई०
बाबी-आन्दोलन का विकास	सन् १८५० ई०
तुर्कोमेन-चाइनीज सन्धि	सन् १८२८ ई०
सन् १९०९ की प्रसिद्ध क्रांति	सन् १९०९ ई०
एंग्लो पर्शियन एग्रीमेंट	सन् १९१९ ई०
रजा खाँ का उदय और सन् १९२५ की प्रसिद्ध क्रांति	सन् १९२५ ई०

ईलियास होव

सिलाई की मशीन के आविष्कर्त्ता इलियास होव, जिनका जन्म सन् १८१९ में मेसाचूसेट्स में और मृत्यु सन् १८६७ में हुई।

आज से करीब एक सदी पूर्व कपड़ों की सिलाई हाथ से की जाती थी, जिसमें समय और परिश्रम बहुत लगता था। ईलियास होव ने सिलाई की मशीन का आविष्कार कर सीनेवाले लोगों के लिए बहुत सुविधा कर दी।

'ईलियास होव' का जन्म एक अत्यन्त निर्धन-परिवार में हुआ था और वे जन्म से लंगड़े थे। निर्धनता के अनेक कष्ट उठाने के बाद वे हावर्ड-कालेज की प्रयोगशालाओं के उपकरण बनाने वाले आरी डेविस के साथ बोस्टन चले गये। डेविस के साथ काम करते हुए उन्होंने अपनी यांत्रिक प्रतिभा और सूझबूझ का परिचय दिया।

एक दिन होव ने अपने मालिक को यह कहते हुए सुना कि "आज संसार को ऐसी मशीन की जरूरत है जो सिलाई कर सके।" होव को यह बात लग गई और उन्होंने सिलाई की मशीन का आविष्कार करने के लिए नौकरी छोड़ दी।

महीनों के परीक्षण के बाद उन्हें मालूम हुआ कि यंत्र की सुई की आँख, हाथ की सुई की तरह पिछले सिरे पर न रखते हुए उसके अग्र-बिन्दु पर रखना ठीक होगा और एक चक्र द्वारा उसमें धागा जोड़ना ठीक रहेगा।

मशीन के निर्माण में कामयाब हो जाने पर उन्होंने उसको 'पेटेण्ट' करवाया। इस आविष्कार की महिमा का मूल्यांकन उस समय के उद्योगपति नहीं समझ सके। होव ने एक ड्रेस बनाने वाले को पाँच तेज कारीगरों से अपनी मशीन का मुकाबिला करने की चुनौती दी और उसमें उनकी मशीन ने आसानी से विजय प्राप्त कर ली।

इसके बाद होव इंग्लैंड गये और वहाँ १२५० पौंड में अपनी मशीन के इंग्लैण्ड में बिकने के अधिकार बेच दिये। अमेरिका लौटने पर उन्होंने देखा कि उनकी मशीन की धड़ाधड़ नकल की जा रही है। इस पर उन्होंने मुकदमेबाजी शुरू की और सन् १८५४ में पेटेण्ट के स्वामित्व के कारण उनकी विजय हुई। मृत्यु से पूर्व ईलियास होव की मशीन की 'रायल्टी' से प्रति सप्ताह हजारों डॉलर की आमदनी होने लगी।

ईलियानुस-टैक्टिकुस

यूनानी युद्धकला का एक विद्वान, जो ईस्वी सन् की दूसरी सदी में हुआ।

इलियानुस रोम का रहने वाला था। उसने युद्ध-विद्या के सिद्धान्त पर "टैक्टिक थिओरीया" नामक एक प्रसिद्ध ग्रंथ लिखा जो रोम के सम्राट हाड्रियन को समर्पित किया गया है। इसमें युद्ध कला के उन सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है जो सिकन्दर महान् और उसके उत्तराधिकारियों ने व्यवहार में लिये थे। इस ग्रंथ का अनुवाद अरबी में भी हुआ और अरबी युद्धकला पर भी इसका असर पड़ा।

ईवाल्ड जोहान्स

(Johannes Ewald)

डेनमार्क का एक प्रसिद्ध कवि जिसका जन्म सन् १७४३ में और मृत्यु सन् १७८१ में हुई।

ईवाल्ड जोहान्स का जन्म कोपेनहेगन में हुआ था। सन् १७६६ में ईवाल्ड ने फ्रेडरिक पंचम की मृत्यु पर एक अत्यन्त मर्मवेधी मर्सिया लिखा जो बहुत लोकप्रिय हुआ। "वाल्डर की मृत्यु" नामक रचना ने उसकी ख्याति को सारे यूरोप में प्रसारित कर दिया। उसकी अन्य रचनाओं में "आदम ओगइवा" "फिशकेर्नें" इत्यादि रचनाएँ मशहूर हैं। फिशकेर्नें के द्वारा उसने डेनमार्क का राष्ट्रीय गीत प्रस्तुत किया।

असफल प्रणय और निर्धनता के कारण वह अक्सर चुपचाप इधर-उधर फिरता रहता था। अन्त में क्षयरोग से उसकी मृत्यु हुई।

ईशोपनिषद्

ईशोपनिषद् भारतवर्ष में प्रणीत महान् उपनिषद्-ग्रन्थों में सर्वप्रथम मानी जाती है। यह शुक्ल यजुर्वेद की मन्त्र-संहिता का चालीसवाँ अध्याय है। इस उपनिषद् में केवल १८ मंत्र हैं जिन्हें वेदान्त का निचोड़ माना जाता है। इसलिए छोटी होने पर भी यह उपनिषद् सभी उपनिषदों में श्रेष्ठ मानी जाती है।

(विशेष वर्णन "उपनिषद्" शब्द के अन्तर्गत देखें)

ईशदेव

जयपुर-राज्य के इतिहास में आमेर-राज्य के संस्थापक मूल पुरुष।

ईशदेव देवानीक के पुत्र और आमेर-राजवंश के मूल संस्थापक थे। इनका समय ईसा की दसवीं सदी में माना जाता है। ये कछवाहा वंश के क्षत्रिय थे। इनके संबंध में भिन्न-भिन्न इतिहासकारों में बड़ा मतभेद है।

ईश्वरी सिंह

जयपुर के राजा सवाई जयसिंह (द्वितीय) के ज्येष्ठ पुत्र, जिनका समय सन् १७१० के करीब है।

सवाई जयसिंह द्वितीय के पश्चात् उनके बड़े पुत्र ईश्वरी सिंह जयपुर की गद्दी पर बैठे। पाँच वर्ष तक ईश्वरी सिंह ने शान्ति पूर्वक राज्य किया। पर उसके बाद एक झगड़ा खड़ा हो गया। स्वर्गीय महाराज सवाई जयसिंह ने मेवाड़ की राजकुमारी से इस शर्त पर विवाह किया था कि उसके गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होगा तो वह आमेर की गद्दी का अधिकारी होगा।

मेवाड़ की राजकुमारी के गर्भ से माधवसिंह नामक एक पुत्र का जन्म हुआ था। अतएव वह जयपुर की राजगद्दी पर अपना हक बतलाने लगा। मेवाड़ के राणा ने उसका पक्ष लेकर ईश्वरी सिंह को लिख भेजा कि—"आप राजगद्दी माधव सिंह को दे दें।"

इस पर ईश्वरीसिंह ने मराठा सेनापति आपाजी की सहायता से राणा के साथ युद्ध-घोषणा कर दी। मेवाड़ के राणा की मदद पर कोटा और बूँदी के राजा भी आ गये। राजमहल नामक स्थान पर भयंकर लड़ाई हुई और मराठा-सेना की सहायता से ईश्वरीसिंह ने मेवाड़ के राणा को करारी पराजय दी।

इसके बाद ईश्वरी सिंह ने कोटा और बूँदी के राज्यों पर भी मराठा-सेना की सहायता से चढ़ाई कर पराजित कर दिया।

तब मेवाड़ के राणा जगत सिंह ने यशवन्त राव होलकर की सहायता लेकर ईश्वरी सिंह के खिलाफ युद्ध की घोषणा की। होलकर के सामने विजय प्राप्त करना असम्भव जान कर ईश्वरी सिंह ने विषपान करके अपने प्राण दे दिये और जयपुर की गद्दी पर माधव सिंह बैठ गया।

ईश्वरकृष्ण

सांख्य-कारिका के रचयिता, सुप्रसिद्ध दर्शनशास्त्री ईश्वरकृष्ण, जिनका समय ईसा की तीसरी शताब्दी के मध्य में माना जाता है।

कुछ लोगों के मतानुसार इनका समय ईसा की ५वीं शताब्दी में था।

सांख्य-कारिका सांख्य-दर्शन के ऊपर विवेचनात्मक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक दुःखों के निराकरण के उपायों की खोज की गई है। इनके इस ग्रन्थ का अनुवाद चीनी भाषा में भी सन् ५५७ से सन् ५८६ ईसवी के मध्य में किया गया।

सांख्य-कारिका की टीका विज्ञान-भिक्षु ने आर्य-भाष्य के नाम से और नारायण नामक लेखक ने सांख्य-चन्द्रिका के नाम से की है।

ईश्वरचन्द्र गुप्त

बँगला-साहित्य में १९वीं सदी के कवि और पत्रकार, जिनका जन्म सन् १८१२ में और मृत्यु १८५८ में हुई।

ईश्वर गुप्त बँगला-साहित्य में पुरानी और नयी चेतनाओं के सन्धिस्थल थे। इनके काव्य की प्रवृत्तियाँ प्राचीन शैली की पोषक थीं। अतः इन्हे बँगला की प्राचीन परम्परा का अन्तिम कवि कहा जा सकता है। इन्हीं के समय में और इन्हीं के उद्योग से बँगला में पत्रकार-कला का प्रारम्भ हुआ।

सम्पादन-कला के क्षेत्र में इनका महत्व कवि की अपेक्षा अधिक है। बंकिमचन्द्र जैसी नई प्रतिभाओं को प्रोत्साहन देकर बँगला-साहित्य में नवीन युग लाने का आरम्भिक जोरदार प्रयत्न इन्होंने ही किया।

ईश्वर गुप्त को, एक प्रकार से बँगला-भाषा का 'भारतेन्दु' कह सकते हैं। इन्होंने प्राचीन कवियों की जीवनियाँ लिखकर बँगला-भाषा में जीवनी-साहित्य का भी शुभारम्भ किया।

सन् १८३१ में ईश्वरचन्द्र गुप्त का यशस्वी पत्र 'संवाद-प्रभाकर' प्रकाशित हुआ। ईश्वरचन्द्र गुप्त आरम्भिक युग के एक सफल तथा प्रतिभाशाली सम्पादक थे। वस्तुतः इन्हीं को बँगला-पत्रकारिता का आदि पुरुष मानना चाहिये। ईश्वर चन्द्र के 'प्रभाकर' पत्र ने आधुनिक युग के अनेक युग-निर्माताओं का निर्माण किया। रंगलाल वन्द्योपाध्याय, अक्षय कुमार दत्त, दीनबन्धु मित्र और महान् उपन्यासकार बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने भी इससे प्रकाश ग्रहण किया।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

बंगाल के सुप्रसिद्ध समाज-सुधारक, शिक्षा-प्रचारक और उदारचेता महान् व्यक्ति ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, जिनका जन्म सन् १८२० में और मृत्यु सन् १८९१ में हुई।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर बंगाल के उन नामांकित पुरुषों में हैं, जिन्होंने अपनी सेवाओं और उदारताओं से बंगाल के इतिहास में अमर कीर्ति प्राप्त की।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का जन्म मेदिनीपुर जिले के वीरसिंह नामक गाँव में एक अत्यन्त निर्धन परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम ठाकुर दास वन्द्योपाध्याय था। ९ वर्ष की अवस्था में पैसा न होने से ईश्वरचन्द्र ने अपने पिता के साथ पैदल ही कलकत्ते की यात्रा की और वहाँ जाकर संस्कृत-कालेज में पढ़ाई प्रारम्भ की। तीव्रबुद्धि और गम्भीर गवेषणा के प्रभाव से इन्होंने कुछ ही वर्षों में संस्कृत-साहित्य का पारदर्शी ज्ञान प्राप्त कर लिया। इसी संस्कृत कालेज से इन्हें 'विद्यासागर' की उपाधि प्राप्त हुई।

सन् १८४१ ई० के दिसम्बर मास में इन्होंने 'फोर्ट विलियम-कालेज' में मुख्य पंडित के स्थान पर काम करना प्रारंभ किया। फोर्ट विलियम कालेज में रहते समय कैप्टन मार्शल ने इनको अंग्रेजी पढ़ने को कहा, तब से इन्होंने अंग्रेज पढ़ना भी प्रारम्भ कर दिया। उस समय सिविलियनों को पढ़ाने के लिए हिन्दी-भाषा की भी आवश्यकता पड़ती थी। इसलिये विद्यासागर ने हिन्दी-भाषा का भी ज्ञान प्राप्त कर लिया।

शिक्षा-प्रचार और समाज-सुधार के क्षेत्र में विद्यासागर की प्रारम्भ से ही रुचि थी। सन् १८५३ ई० में अपनी जन्मभूमि वीरसिंह ग्राम में निर्धन छात्र-छात्राओं के लिए विद्यासागर ने एक निःशुल्क विद्यालय की स्थापना की, जिसमें रात्रि में विद्यार्थियों को शिक्षा देने की व्यवस्था की गई थी।

समाज-सुधार के क्षेत्र में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने हिन्दू-विधवाओं की भयंकर दुर्दशा देखकर 'विधवा-विवाह'

का जोरदार समर्थन किया। उन्होंने शास्त्रीय प्रमाणों से अकाट्य दलीलें देकर विधवा-विवाह को शास्त्र-सम्मत सिद्ध करने का प्रबल प्रयत्न किया।

यह वह युग था, जब विधवा-विवाह का नाम सुनते ही लोग कानों पर हाथ रख कर 'त्राहि माम्' कर उठते थे। ऐसे युग में ऐसी प्रथा के समर्थन के विरुद्ध समाज में भयंकर प्रतिक्रिया का होना स्वाभाविक था। उसी प्रबल विरोध का विद्यासागर को सामना करना पड़ा, मगर इसकी चिन्ता न करते हुए इस महान् व्यक्ति ने विधवा-विवाह के सम्बन्ध में अपनी जोरदार आवाज उठाई और प्रयत्न करके कई विधवाओं के विवाह भी करवा दिये। स्वयं अपने पुत्र का विवाह भी उन्होंने एक विधवा के साथ कराया।

बहु-विवाह की प्रथा भी उस समय बंगाली-समाज में बहुत फैली हुई थी। इस कुप्रथा को रोकने का भी विद्यासागर ने प्राणपण से प्रयत्न किया। बहु-विवाह के विरोध में उन्होंने दो ग्रन्थों का निर्माण भी किया और सरकार से इस विषय का कानून बनाने की भी चेष्टा की।

सन् १८५८ में विद्यासागर ने अपने निज के तत्वावधान में निजी व्यय से 'मैट्रोपोलेटिन' नामक अंग्रेजी कालेज की स्थापना की। उस समय तक लोगों का यह विश्वास था कि बंगाली लोग अंग्रेजी-कालेज चलाने की क्षमता नहीं रखते, मगर इस कालेज के द्वारा उन्होंने इस अपवाद को झूठा सिद्ध कर दिखलाया और इस कालेज को सफलता पूर्वक चलाया।

संस्कृत-कालेज में अभी तक केवल ब्राह्मण और वैश्य दोनों ही विद्याध्ययन के लिए प्रविष्ट हो सकते थे। किन्तु विद्यासागर ने प्रयत्न करके इस कालेज को समस्त हिन्दुओं के लिए खुलवा दिया।

समाज-सुधार और शिक्षा-विकास के क्षेत्र में तो विद्यासागर की कीर्ति अमर है ही, मगर दीन-दुखियों के दुःख से दुखी होकर और विधवाओं के आर्तनाद से त्रसित होकर जो कुछ भी द्रव्य उनके पास आता, इनकी सेवा में अर्पण कर देते थे। उनकी परोपकारिता और दानशीलता को बंगाल के सब लोग जानते हैं। दरिद्र विधवाओं और विद्यार्थियों को प्रतिमास गुप्त रूप से ये एक बड़ी रकम भेजा करते थे।

सन् १८६५ के भयंकर दुर्भिक्ष के समय इन्होंने अपने गाँव वीरसिंह में हजारों आदमियों को अन्न और वस्त्र की सहायताएँ पहुँचाई थीं। इन्हीं कारणों से बंगाल की जनता में ये 'दयासागर' के नाम से प्रसिद्ध थे।

बंगाली-साहित्य के क्षेत्र में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की देन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इनके समय तक बंगाली गद्य बहुत कठिन शैली में लिखा जाता था। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने बंगाली-भाषा को परिमार्जित कर उसे अत्यन्त सरल और सुगम बनाया। उन्होंने कुल ५२ पुस्तकों की रचना की। जिनमें १७ संस्कृत में ५ अंग्रेजी में और ३० बंगला में थीं। उनकी बंगला और संस्कृत की पुस्तकों में 'वैताल पञ्च विंशति' 'शकुन्तला' 'सीतार वनवास' 'बंगालेर-इतिहास', 'आख्यान-मञ्जरी' 'भ्रान्ति-विलास' और 'व्याकरण-कौमुदी' उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार दरिद्रनारायण की सेवा में अपने समस्त जीवन को अर्पित कर इस महापुरुष ने बंगाल के इतिहास में अपना नाम अमर कर दिया।

सन् १८९१ के जुलाई मास में इस महान् पुरुष का देहावसान हुआ।

ईश्वरदास

अवधी-भाषा का कवि जो सिकन्दर लोदी के समय में सन् १५५० के करीब में हुआ।

ईश्वरदास ने दोहे और चौपाइयों में "सत्यवती-कथा" नाम से एक काल्पनिक कथा-काव्य के रूप में लिखी है।

पुस्तक में प्रत्येक पाँच-पाँच चौपाइयों पर एक दोहा है। इस प्रकार ५८ दोहों में यह पुस्तक समाप्त हुई है।

ईश्वरदास ने पुस्तक के अन्त में रचना-काल का इस प्रकार उल्लेख किया है—

"भादौं मास पाख उजियारा,
तिथि नौमी औ मंगलवारा।
नषत अश्विनी मेष के चंदा,
पंच जना सो सदा अनन्दा॥
जोगिनी पुर दिल्ली बड़ थाना,
साह सिकन्दर बड़ सुलताना।

कंठ वैठ कर सुर-सुत्ती, विद्या गनपति दीन्ह।
ता दिन कथा आरंभ यह इसरदास कवि कीन्ह॥"

ईस्ट-इण्डिया कम्पनी

भारतवर्ष के अन्दर व्यापार करने के लिए लन्दन में में स्थापित 'ईस्ट इंडिया कम्पनी'। जो ३१ दिसम्बर सन् १६०० के दिन इंग्लैंड की सुप्रसिद्ध महारानी एलिजावेथ के फरमान से 'दि गवर्नर एंड मर्चेंट्स, ऑफ लन्दन, ट्रेडिंग टू दी ईस्ट इंडीज' के नाम से स्थापित हुई।

भारतवर्ष में ईस्ट इंडिया कम्पनी का इतिहास, विशाल अंग्रेजी साम्राज्य की पूर्व परम्परा के रूप में प्रारम्भ हुआ और अन्त में साम्राज्य के रूप में परिणित हो गया।

१५ वीं और १६ वीं शताब्दी में समुद्र-पर्यटकों के द्वारा संसार के विभिन्न देशों का पता लगा और पता लगाने वाली जातियों ने इन देशों को अपने अधिकार में लेना प्रारम्भ किया।

सन् १४९८ में 'वास्को डिगामा' ने यूरोप से 'केप आफ गुडहोप' के रास्ते से भारत का समुद्री-मार्ग खोज निकाला। तभी से इस विशाल देश में अपना-अपना व्यापार स्थापित करने के लिए पुर्तगाल, हालैंड, इंग्लैंड और फ्रांस-ये चारों देश उतावले होने लगे और इनकी आपसी प्रतिस्पर्धा शुरू हुई।

भारतवर्ष में ईस्ट इंडिया कम्पनी का वास्तविक इतिहास उस समय से प्रारम्भ होता है, जिस समय 'सर टामसरो' ने भारत आकर सम्राट जहांगीर के दरबार से सन् १६१३ की ६ फरवरी को कम्पनी के लिए भारत में व्यापार करने की सनद ली और सूरत, आगरा, अहमदाबाद तथा भड़ौंच में अपने केन्द्र स्थापित किये। अधिकतर केन्द्र समुद्र के किनारों पर थे, जिनकी सुरक्षा के लिए मजबूत किलेबन्दी की गई। सन् १६११ में मूसलीपट्टम में सन् १६२१ में बालासोर में, सन् १६३९ में मद्रास में, सन् १६५१ में हुगली में, सन् १६६९ में बम्बई में तथा सन् १६९८ में कलकत्ते में अंग्रेजी व्यवसायी केन्द्रों की स्थापना हुई। बम्बई, कलकत्ता और मद्रास के केन्द्र कम्पनी के राजनैतिक और शक्ति-केन्द्र भी थे।

ईस्ट इंडिया कम्पनी में जिन लोगों के शेयर थे, उनमें से अधिकतर लोग सामुद्रिक लूट-पाट करने वाले (सोसाइटी ऑफ एडवांचरर्स) थे। जो धन कमाने के उपायों में सच-झूठ, ईमानदारी-वेईमानी अथवा न्याय-अन्याय का ख्याल नहीं रखते थे। कम्पनी के डाइरेक्टरों ने शुरू में ही इस बात का फैसला कर लिया था कि हम किसी जिम्मेदारी की जगह किसी शरीफ आदमी को नियुक्त नहीं करेंगे।

इस तरह के लोगों से संगठित हुई कम्पनी कभी शान्ति के साथ कोई काम करेगी, ऐसा सम्भव नहीं था। फलस्वरूप इन लोगों ने सूरत और बंगाल में जगह-जगह झगड़े करना प्रारम्भ किये। बंगाल का नवाब शाइस्ता खाँ तो इन्हें नीच, झगड़ालू और जूआचोरों की कम्पनी कहा करता था।

थोड़े ही दिनों में कम्पनी के अत्याचार इतने बढ़ गये कि उनकी शिकायत औरंगजेब के कानों तक पहुँची। औरंगजेब ने फौरन हुक्म जारी कर दिया कि इन लोगों की कोठियाँ जब्त कर ली जायँ और इन्हें मारकर हिन्दुस्तान से बाहर निकाल दिया जाय। इस आदेश से सूरत, विशाखापट्टन आदि कई स्थानों की अंग्रेजी कोठियाँ जब्त कर ली गईं और वहाँ से अंग्रेजों को निकाल बाहर कर दिया गया। बम्बई को भी घेर लिया गया, किन्तु अंग्रेज काफी चालाक थे! वे फौरन औरंगजेब के कदमों पर गिर पड़े और कान पकड़ कर अपनी पिछली खताओं के लिए माफी चाही। आइन्दा के लिए नेकचलनी का वादा किया और मुगल सम्राट् से जाँ-बक्शी की प्रार्थना की। औरंगजेब ने उदारता में आकर उन्हें माफ कर दिया और सूरत आदि की कोठियाँ उन्हें वापस दे दीं।

सन् १६९९ में औरंगजेब ने उन्हें कई नई कोठियाँ कायम करने और सुरक्षा के लिए किलेबन्दी करने की इजाजत दे दी।

इसी समय में औरंगजेब के पौत्र अजीमशाह ने बंगाल के सूबेदार की हैसियत से हुगली के नदी ऊपर 'छूतानाटी' 'कलकत्ता' और 'गोविन्दपुर' नाम के तीन गाँव बतौर जागीर के कम्पनी को दे दिये। जिसके फलस्वरूप 'फोर्ट विलियम' किले की बुनियाद डाली गई। जिस समय यह किला बनाया जा रहा था, उस समय सम्राट् औरंग-

जेब को सलाह दी गई कि इस किलेबन्दी को रोका जावे। इसके जवाब में औरंगजेब ने कहा—

"मैं इन चीजों में क्यों दखल दूँ। सम्भव है, आस-पास के देशी लोग ही इन 'फिरंगियों' से झगड़े करते हों। ये गरीब लोग इतनी दूर से आये हैं और अपनी रोजी के लिए इतनी मिहनत करते हैं, मैं उन्हें क्यों रोकूं।"

औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल-साम्राज्य का पाया तेजी के साथ कमजोर होने लगा और इस कमजोरी का लाभ उठा कर अंग्रेजों ने अपने व्यापार का खूब विस्तार किया।

मगर इसी समय भरतवर्ष में एक दूसरी विदेशी शक्ति का भी उत्थान हो रहा था। इस शक्ति ने बहुत समय तक इस देश में अंग्रेजी शक्ति के साथ प्रतिस्पर्धा की। यह शक्ति फ्रेंच लोगों की थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के मुकाबले में एक फ्रेंच ईस्ट इण्डिया कम्पनी सन् १६६४ ई० में कायम हुई और इस कंपनी ने सन् १६६८ में सूरत, १६६६ में मछली पट्टम और सन् १६७४ में पांडुचेरी में अपनी कोठियां बनाई। उस समय पांडुचेरी में फ्रेंच कम्पनी का प्रतिनिधि 'डूमास' नामक व्यक्ति था। इसने कर्नाटक के नबाब दोस्त अली खाँ को मराठों के विरुद्ध सहायता देकर उसकी इजाजत से पांडुचेरी में किलेबन्दी कर ली और किले में ११०० यूरोपियन और ५ हजार हिन्दुस्तानियों की सेना जमा करली।

सन् १७४१ में डूमास की जगह 'डुप्ले' फ्रांसीसी कम्पनी का प्रतिनिधि होकर पांडिचेरी आया।

डूप्ले एक अत्यन्त चतुर सेनापति था। वह पहला यूरोपियन था, जिसके मन में भारत के अन्दर यूरोपियन साम्राज्य कायम करने की आकांक्षा हुई। उसने देखा कि भारत के विविध राजा लोग आपस में ईर्ष्या और द्वेष रखकर आपस में लड़ते रहते हैं। इसलिए इनमें से कभी एक और कभी दूसरे का पक्ष लेकर विजय पा लेना कठिन नहीं है। उसे असली प्रतिस्पर्धा अंग्रेजों से नजर आई और उसने अंग्रेजों से संघर्ष करने का निश्चय किया। यूरोप के अन्दर भी उस समय फ्रांस और इंग्लैण्ड के अन्दर युद्ध चल रहा था, इसलिए डूप्ले को अवसर भी मिल गया। कर्नाटक में करीब सौ साल से मद्रास की बस्ती अंग्रेजों के अधिकार में थी। डूप्ले ने कर्नाटक के नवाब से यह वादा करके कि अंग्रेजों को मद्रास से निकाल कर यह नगर आपके हवाले कर दूँगा, लेफ्टिनेंट 'लाबरडोन' के नेतृत्व में कुछ जल सेना, मद्रास-विजय के लिए भेजी। लाबरडोन ने मद्रास जीत लिया। लेकिन ४ हजार पौंड नकद लेकर फिर अंग्रेजों के हवाले कर दिया। जब नबाब कर्नाटक को यह मालूम हुआ तो उसने डूप्ले के ऊपर हमला कर दिया।

४ नवम्बर सन् १७४६ को डूप्ले की सेना और नवाब कर्नाटक की सेनाओं में संग्राम हुआ। इस लड़ाई में तोपखाने के बल से डूप्ले ने नवाब के ऊपर विजय प्राप्त कर ली। यह पहली लड़ाई थी जिसमें किसी विदेशी शक्ति ने किसी भारतीय शक्ति के विरुद्ध विजय प्राप्त की।

अब नबाब कर्नाटक और अंग्रेज दोनों डूप्ले के खिलाफ एक हो गये। सन् १७४८ ई० में अंग्रेजों ने पांडिचेरी पर हमला किया, मगर इस बार भी डूप्ले की सेना ने अंग्रेजों को हरा दिया, इसी समय डूप्ले के दुर्भाग्य से यूरोप के अन्दर इंग्लैण्ड और फ्रांस में सन्धि हो गई। इसमें एक शर्त यह तय हुई कि मदरास फिर से अंग्रेजों को दे दिया जाय। इससे डूप्ले को बड़ी निराशा हुई मगर फिर भी उसका हौसला नहीं टूटा और उसने अंग्रेज कम्पनी के साथ अपनी प्रतिस्पर्धा बराबर जारी रखी।

उस समय क्लाइव अंग्रेजी-सेना का एक युवा सेनपति था मगर उसकी राजनैतिक गतिविधियाँ दृष्टिगोचर होने लग गई थीं।

सन् १७४८ से १७५४ तक 'निजाम' की गद्दी के लिए उसके दूसरे लड़के नाजिरजंग और पोते मुजफ्फर जंग में झगड़ा शुरू हुआ। दूसरी तरफ कर्नाटक के नवाब 'अनवरुद्दीन' को गद्दी से उतार कर 'चन्दासाहब' कर्नाटक का नवाब बनना चाहता था। तीसरी ओर तंजौर के राजा 'साहूजी' को गद्दी से उतार कर उसका एक दूसरा हकदार प्रताप सिंह तंजौर का राज्य लेना चाहता था। इन तीनों शाही घरानों की आपसी फूट का लाभ अंग्रेज, फ्रांसीसी और मराठे तीनों ही उठाने की कोशिश कर रहे थे।

चन्दा साहब ने तंजोर के राजा साहूजी को गद्दी से उतार कर उस पर अपना कब्जा कर लिया। तब मराठों ने

तंजोर पर चढ़ाई करके चन्दा साहब को कैद कर लिया और प्रताप सिंह को वहाँ की गद्दी पर बैठा दिया। अंग्रेजों ने साहूजी को फिर से गद्दी पर बैठाने के लिए मदद करना स्वीकार किया, मगर जब लड़ाई के मोर्चे पर पहुँच कर अंग्रेजों ने देखा कि प्रताप सिंह का पक्ष अधिक मजबूत है तो ऐन मौके पर साहूजी को छोड़कर वे प्रताप सिंह की ओर जा मिले। प्रताप सिंह तंजौर का राजा बन गया और साहूजी को सदा के लिए पेंशन कर दी गई। उधर डूप्ले ने ३ अगस्त सन् १७४९ को 'आमूर' की लड़ाई में अनवरुद्दीन को समाप्त कर चन्दा साहब को कर्नाटक का नवाब बना दिया। यह डूप्ले की दूसरी राजनैतिक विजय थी।

अब डूप्ले ने अंग्रेजों के पक्षपाती प्रताप सिंह को तंजोर की गद्दी से हटाने के लिए दक्खिन के सूबेदार को ही बदल देना चाहा। उसने नाजिर जंग के खिलाफ मुजफ्फर जंग से मिलकर चन्दा साहब की मदद से तंजोर पर चढ़ाई करवा दी। मगर उसे इस लड़ाई में सफलता नहीं मिली और मुजफ्फरजंग कैद कर लिया गया। तब डूप्ले ने अपने गुप्त अनुचरों के द्वारा सूबेदार नाजिर जंग को कत्ल करवा दिया और एक बार फिर से मुजफ्फर जंग को दक्खिन का सूबेदार और चन्दा साहब को कर्नाटक का नवाब बना दिया, किन्तु त्रिचनापल्ली का मजबूत किला अभी तक मुहम्मदअली के हाथों था, जो अंग्रेजों का पक्षपाती था। त्रिचनापल्ली पर ही वह जबर्दस्त संग्राम हुआ, जिसमें दक्षिण के ये तीनों राजवंश और अंग्रेज तथा फ्रेंच-सबकी किस्मत का फैसला हो गया।

त्रिचनापल्ली ही वह चट्टान मानी जाती है, जिससे टकराकर डूप्ले की आकांक्षाएँ चूर-चूर हो गईं। इस लड़ाई में चन्दा साहब और डूप्ले की सेनाएँ एक ओर थीं और दूसरी ओर मुहम्मद अली के साथ अंग्रेजों की सेनाएँ थीं। एक फ्रांसीसी सेना यूरोप से डूप्ले की सहायता के लिए भेजी गई, किन्तु वह मार्ग में ही कहीं डूबकर खतम हो गई। इस लड़ाई में डूप्ले की भारी हार हुई और इसके साथ ही फ्रांस की सरकार ने डूप्ले को वापस बुला लिया। जहाँ पर इस देश भक्त राजनीतिज्ञ बड़ा करुण-अन्त हुआ। साथ ही फ्रांसीसियों ने अंग्रेजों से प्रतिरोध करना छोड़ दिया।

सन् १७६९ ई० में फ्रांसीसी कम्पनी तोड़ दी गई और इस प्रकार अंग्रेजों के विरुद्ध फ्रेंच प्रतिस्पर्धा का करीब-करीब अन्त हो गया।

प्लासी का युद्ध और लार्ड क्लाइव

उधर कलकत्ते के क्षेत्र में भी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राजनैतिक दाव-पेंच चालू थे, जिनका परिणाम शीघ्र ही 'प्लासी के युद्ध' के रूप में प्रकट हुआ। ईस्ट इंडिया कम्पनी के इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण घटना प्लासी का युद्ध है। जिसने इस कम्पनी के इतिहास को एक नया मोड़ दे दिया और व्यापार के लिए आई हुई अंग्रेज जाति ने साम्राज्य स्थापना के क्षेत्र में कदम रक्खा।

१० अप्रैल सन् १७५६ को बंगाल के लोकप्रिय और प्रसिद्ध नवाब अली वर्दी खाँ की मृत्यु हुई। मरते समय उसने गद्दी के उत्तराधिकारी अपने नाती सिराजुद्दौला को बुलाकर कहा कि —

"मुल्क के अन्दर यूरोपियन कौमों की ताकत पर नजर रखना। यदि खुदा थोड़ी सी मेरी उमर बढ़ा देता तो मैं तुम्हें इस डर से भी आजाद कर देता। मगर अब तो बेटा! यह काम तुम्हीं को करना होगा। इन लोगों की कूटनीति से तुम्हें हमेशा सावधान रहना होगा। इन तीनों यूरोपियन कौमों से एक साथ निपटने की कोशिश मत करना। इस समय अंग्रेजों की ताकत बढ़ रही है......पहले उन्हीं को जेर करना। इन्हें जेर कर लोगे तो बाकी की दो कौमें तुम्हें अधिक कष्ट न देंगी। अंगरेजों को किले बनाने या फौज रखने की इजाजत मत देना। यदि तुमने यह गलती की तो मुल्क तुम्हारे हाथ से निकल जावेगा।"

सिराजुद्दौला ने अपने नाना की इस नसीहत पर पूरा ध्यान रक्खा, मगर उद्धत स्वभाव और उच्छृंखल जवानी के वश में होकर उसने अपने घर में ही अनेकों दुश्मन पैदा कर लिए। शासन पर आते ही उसने अंग्रेजों और फ्रांसीसियों को किलेबन्दी करने और फौज रखने की मनाई कर दी। लेकिन अंग्रेज उसकी अन्तरंग कमजोरी को समझ गये थे, इसलिए उन्होंने उसके आदेश पर कोई ध्यान नहीं दिया।

तब सिराजुद्दौला ने क्रोध में आकर १७५६ के जून महीने में अंगरेजों पर चढ़ाई कर दी। रविवार २० जून के दिन विजयी सिराजुद्दौला ने कलकत्ते की अंगरेजी कोठी में प्रवेश किया और सारे अंगरेजों को कैद कर लिया और बाद में सब अंग्रेजों को कलकत्ते से बाहर निकाल दिया।

इस घटना का वर्णन करते हुए हालवेल ने कम्पनी के डायरेक्टरों के नाम अपने ३० नवम्बर १७५६ के पत्र में लिखा था।

"इतनी घातक और शोक-जनक आपत्ति बाबा आदम के समय से लेकर आजतक किसी भी कौम या उपनिवेश के इतिहास में नहीं आई होगी।"

इसी समय अंगरेज इतिहासकारों के मतानुसार सिराजउद्दौला ने १४६ अंग्रेज कैदियों को पकड़ कर २० जून की रात को एक 'काल कोठरी' में ठूँस दिया। जिसके परिणामस्वरूप जून की उस भीषण गरमी में एक ही रात में १२३ आदमी तड़प-तड़प कर मर गये और सिर्फ २३ व्यक्ति अर्द्ध मृतक अवस्था में जीवित निकले। भारतीय इतिहासकार काल-कोठरी की इस घटना की सत्यता में सन्देह करते हैं।

कलकत्ते से हटकर अंग्रेजों ने बंगाल की खाड़ी के ऊपर फल्ता नामक स्थान पर मुकाम किया और करीब छः महीने वहीं पर जमे रहे। इस बीच अपने गुप्तचरों को भेजकर, झूठे-सच्चे प्रलोभन देकर उन्होंने भेद नीति से सिराजउद्दौला के विश्वास पात्र लोगों को फोड़ना शुरू किया, जिनमें सिराजुद्दौला का विश्वास पात्र प्रधान सेनापति मीरजाफर प्रमुख था।

कलकत्ते से अंगरेजों को निकाले जाने की खबर जब मद्रास पहुँची तो वहाँ से ८०० अंगरेज और १३०० हिन्दुस्तानी सैनिकों का दस्ता रवाना किया गया। जिसमें जल सेना का अधिकार एडमिरल वाट्सन को और स्थल सेना का क्लाइव को दिया गया।

मगर अंगरेजों की असली शक्ति सैनिक शक्ति पर नहीं भेद-नीति पर अवलम्बित थी। नवाब के घर में ही उसके विरुद्ध सैकड़ों विरोधी खड़े हो गये थे, इन्हीं के बल पर बिना किसी खास लड़ाई के अंगरेजों ने कलकत्ते पर वापस अधिकार कर लिया। सिराजुद्दौला को भी इस विश्वासघात का पता लग गया था। चारों तरफ दुश्मनों को देखकर उसकी अकल काम नहीं कर रही थी। ऐसी स्थिति में मजबूर होकर उसे अंग्रेजों से "अलीनगर की संधि" अपमानपूर्ण शर्तों के साथ करनी पड़ी।

पर अंगरेजों को तो खून का चसका लग गया था। उन्होंने उस संधि की परवा न कर अपना षड्यंत्र चालू रक्खा, चार जून १७५७ तक क्लाइव, वाट्सन, वाट्स और मीरजाफर के बीच सारा षड्यंत्र तय हो चुका था। इसी दिन आधी रात को एक जनानी पालकी में बैठकर वाट्सन चुपचाप मीरजाफर के महल में पहुँचा और चुपचाप एक गुप्त संधि पत्र पर मीरजाफर के हस्ताक्षर करवाये, जिसमें १३ शर्त्तें थीं। इन शर्त्तों का सार इस प्रकार था—

जितने अधिकार सिराजुद्दौला ने अंगरेजों को दे रक्खे हैं मीरजाफर के सूबेदार बनने पर वे सब कायम रक्खे जाँय। मीरजाफर और अंगरेज दोनों में से जब किसी को तीसरे शत्रु से लड़ाई करना पड़े तो वे एक दूसरे की मदद करें। फ्रान्सीसियों की तमाम कोठियाँ अंगरेजों के हवाले कर दी जाँय और फ्रान्सीसियों को कलकत्ते से निकाल दिया जाय। कलकत्ते की तबाही के हरजाने और लड़ाई के खर्च के लिए मीरजाफर कम्पनी को एक करोड़ रुपया दे। इसके अलावा कलकत्ते के अंगरेज बाशिंदों को ५० लाख, हिन्दू बाशिंदों को बीस लाख और अन्य बाशिंदों को ७ लाख रुपया अलग से नुकसानी के दे। मसनद पर बैठने के तीस दिन के अन्दर नवाब इन शर्त्तों को पूरा करे।

इस प्रकार मीरजाफर ने इस संधि पर दस्तखत करके अपने हाथ कलम करवा दिये और भारतवर्ष में अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना का रास्ता खुला कर दिया। एक विश्वासघाती अपने थोड़े से नीच स्वार्थ के लिए किस प्रकार सारे देश की स्वतंत्रता को बेच देता है—इसका यह एक अत्यन्त घृणास्पद उदाहरण था।

इसी के फलस्वरूप २० जून १७५७ को मुर्शिदाबाद से बीस मील दूर प्लासी के मैदान में नवाब और अंग्रेजों की दोनों सेनाओं में युद्ध प्रारम्भ हुआ। प्रधान सेनापति मीरजाफर के अलावा सिराजुद्दौला की सेना में तीन सेनापति

और थे। (१) यारलुत्फ खाँ, (२) राजा दुर्लभराम और (३) मीरमदन। ४५००० सेना मीरजाफर, यारलुत्फ खाँ और राजा दुर्लभराम के अधीन थी और १२ हजार सेना मीरमदन के अधिकार में थी।

लड़ाई प्रारम्भ होते ही सिराजुद्दौला को मीरजाफर के विश्वासघात का पता चल गया। उसने मीरजाफर को बुला कर अपनी लाज बचाने के लिए उसके पैरों पर अपनी पगड़ी रख दी। पर कोई नतीजा नहीं निकला और मीरजाफर, राजा दुर्लभराम और यारलुत्फ खाँ—तीनों सेनापति अपनी ४५००० सेना के साथ अंग्रेजों के साथ जाकर मिल गये। थोड़ी देर बाद सिराजुद्दौला का वफादार सेनापति मीरमदन भी मारा गया। जितनी देर वह जिन्दा रहा, उसने अपनी १२००० सेना के साथ तीनों विश्वासघाती सेनाओं का मुकाबिला किया। मगर उसके मरते ही पासा पलट गया और सिराजुद्दौला को हाथी पर सवार होकर मुर्शिदाबाद की तरफ भागना पड़ा। आगे जाकर राजमहल नामक स्थान पर सिराजुद्दौला पकड़ा गया और २ जुलाई सन् १७५७ की रात को मीरजाफर के पुत्र 'मीरन' के आदेश से उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े किये गये और उन टुकड़ों को हाथीपर लाद कर सारे मुर्शिदाबादा में घुमाया गया और अन्त में सिराजुद्दौला की माता अमीना बेगम के सामने उनको फैला दिया गया। वह एक अत्यन्त करुणाजनक दृश्य था।

मीरजाफर

सिराजुद्दौला के बाद मीरजाफर बंगाल का नवाब हुआ। दरबारी लोग मीरजाफर को 'कर्नल क्लाइव का गदहा' कहा करते थे। उस समय मुर्शिदाबाद का शहर बड़ा वैभव सम्पन्न था। क्लाइव ने उसका वर्णन करते हुए एक जगह लिखा है—

"मुर्शिदाबाद का शहर उतना ही लंबा-चौड़ा, आबाद और धनवान है, जितना कि लन्दन शहर। फर्क इतना ही है कि लन्दन के धनाढ्य से धनाढ्य पुरुष के पास जितनी सम्पत्ति हो सकती है उससे बेइन्तहा ज्यादा सम्पत्ति मुर्शिदाबाद में अनेकों के पास है।"

मीरजाफर को गद्दी नशीन करने के बाद क्लाइव ने मुर्शिदाबाद की लूट शुरू की। अंग्रेज इतिहास-लेखक और्म लिखता है—

"६ जुलाई सन् १७५७ ई० तक अंग्रेज कमेटी के पास केवल चाँदी के सिक्कों की संख्या ७२ लाख ७१ हजार ६६६ तक पहुँच गई थी। यह खजाना ७०० सन्दूकों में भर कर सौ किश्तियों पर लादा गया। सैनिकों की निगरानी में ये किश्तियाँ नदिया गई और वहाँ से जंगी जहाजों में लद कर विजय का झंडा फहराते हुए आगे बढ़ी। इसके पहले कभी भी अंग्रेज कौम को इतना अधिक नगद धन किसी लड़ाई में नहीं मिला था।" बँटवारे के समय छोटे-से छोटे अंग्रेज को कम से कम ४५ हजार रुपये मिले।

गद्दी पर बैठते ही मीरजाफर ने क्लाइव की सलाह से हिन्दू नरेशों को हटाकर उनकी जगह मुसलमानों को नियुक्त करना प्रारम्भ किया। एक ओर तो क्लाइव मीरजाफर को हिन्दू-राजाओं के खिलाफ भड़काता था, दूसरी ओर लड़ाई के मौके पर मध्यस्थ बनकर फैसला भी करा देता था। इस प्रकार मीरजाफर दिन पर दिन अप्रिय होता गया और क्लाइव का बर्चस्व बढ़ता गया।

जिन हिन्दू-राजाओं पर मीरजाफर ने आक्रमण करना चाहा, उनमें बिहार का राजा रामनारायण, उड़ीसा का राजा रामरम सिंह, पूर्णियाँ का राजा युगल सिंह और सिराजुद्दौला के खिलाफ षडयंत्र में मीरजाफर का प्रमुख साथी राजा-दुर्लभराम भी सम्मिलित था।

इसी समय क्लाइव को समस्त भारतवर्ष में अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना की कल्पना आई और ७ जनवरी सन् १७५९ को इंग्लैण्ड के प्रधान मंत्री विलियम पिट को उसने एक पत्र इस प्रकार लिखा—

"अंग्रेजी फौज की कामयाबी के जरिये एक महान् क्रान्ति इस देश में की जा चुकी है। उस क्रान्ति के बाद एक सन्धि की गई है, जिससे कंपनी को बड़े जबर्दस्त फायदे हुए हैं। मुझे मालूम है कि इन सब बातों की तरफ अंग्रेज जाति का ध्यान आकर्षित हो चुका है। किन्तु मौका मिलने पर अभी बहुत कुछ किया जा सकता है.....दो साल की मिहनत और तजुर्बे से मैंने इस देश की हुकूमत के विषय

में और यहाँ के लोगों के स्वभाव के विषय में जो परिपक्व ज्ञान प्राप्त किया है, उससे मैं साहस के साथ कह सकता हूँ कि इस तरह का मौका जल्दी ही आने वाला है, क्योंकि मौजूदा नवाब······बूढ़ा है और उसका नौजवान लड़का इतना जालिम और निकम्मा है और अंग्रेजों का इतना खुला दुश्मन है कि इस नवाब के बाद उसे मसनद पर बैठने देना खतरनाक होगा। केवल २ हजार अंग्रेजों की छोटी सी सेना हमें दोनों की ओर से बे-खटके कर देगी और इनमें से कोई यदि हमारे साथ झगड़ा करने की हिम्मत करेगा तो इस सेना के द्वारा हुकूमत की बागडोर हम अपने हाथों में ले सकेंगे।"

"हिन्दुस्तान के लोगों को अपने राजाओं के प्रति किसी तरह का प्रेम नहीं है। इसलिये इस काम के करने में हमें ज्यादा कठिनाई नहीं होगी।"

"पर इतना जरूर है कि बिना अंग्रेज जाति की सहायता के अकेली कंपनी इतने बड़े राज्य की व्यवस्था नहीं रख सकती।······ विचारणीय बात यह है कि यह तमाम नक्शा बिना अपनी मातृभूमि पर खर्च का बोझ डाले पूरा किया जा सकता है। जब कि अमरीका में अपना राज्य कायम करने के लिए इंग्लैण्ड को भारी खर्च उठाना पड़ा था। अंग्रेजों की एक छोटी सी सेना इस काम के लिए काफी होगी, क्योंकि हम चाहे जब, चाहें जितने काले सिपाही यहीं जमा कर सकते हैं।"

सन् १७६० में क्लाइव अस्वस्थ होकर इंग्लैण्ड चला गया।

गद्दी पर बैठते ही मीरजाफर के चारों ओर कठिनाइयाँ खड़ी हो गईं। उसका खजाना खाली हो गया। उसकी आमदनी भी बहुत कम हो गई। हिन्दू राजाओं के खिलाफ साजिश करने से हिन्दू-मुसाहिब भी उसके विरुद्ध हो गये। अंग्रेजों का विरोध करने के कारण उसके पुत्र की भी हत्या कर दी गई। उसकी ऐसी दशा देखकर बंगाल की कौंसिल ने उसे गद्दी से उतार दिया और उसके दामाद 'मीर कासिम' को नवाब बना दिया। इसके बदले में कम्पनी ने मीर कासिम से बर्दवान, मिदनापुर और चटगाँव के जिले तथा दो लाख पौंड रुपए लिए।

मीर कासिम

मीरजाफर और मीरकासिम में बड़ा अन्तर था। मीरजाफर एक अयोग्य, निर्बल, दगाबाज और भीरु था। इसके विपरीत मीरकासिम योग्य, दूरदर्शी और शासक की हैसियत से बड़ा प्रवीण था। उसकी कुशलता की प्रायः सभी इतिहास लेखकों ने प्रशंसा की है। इतिहास लेखक कर्नल मालेसन ने लिखा है कि "मीरकासिम अत्यन्त योग्य और व्यवहार कुशल मनुष्य था। वह अपने इरादों पर लोहे की तरह दृढ़ रहता था। हर बात को ठीक-ठीक समझ कर उसका तुरन्त फैसला करता था। उसके विचार उदार थे···उसका दिमाग साफ था और उसका चरित्र मजबूत था।"

मीरकासिम ने मसनद पर बैठते ही बंगाल की हालत को सुधारने की जी तोड़ कोशिश की और उसमें उसे काफी सफलता भी मिली। सन् १७६२ तक उसने फौज की तमाम पिछली तनखाहों को अदा कर दिया और अंग्रेज कम्पनी की भी एक एक पाई अदा कर दी। आगे के शासन का उसने ऐसा प्रबन्ध किया जिससे शासन की आमदनी खर्च से अधिक बढ़ गई।

यह बात जरूर है कि उसे अंगरेजों पर शुरू से ही विश्वास नहीं था और उसकी अन्तरंग अभिलाषा देश से इन लोगों के पैर उखाड़ देने की थी। फिर भी उनको दिये हुए सारे वचनों का उसने पूरा-पूरा पालन किया।

रात-दिन अंग्रेजों की निगाह से बचने के लिए वह अपनी राजधानी मुर्शिदाबाद से उठाकर मुंगेर ले आया। मुंगेर की उसने बड़ी मजबूत किलेबन्दी की। वहाँ पर तोपें ढालने का एक नया कारखाना कायम किया जिसमें बढ़िया किस्म की तोपें ढाली जाती थीं। करीब चालीस हजार फौज भी उसने वहाँ जमा कर ली।

उसकी इस तैय्यारी को देखकर अंगरेज चौकन्ना हो गये और उन्होंने फिर से उसे गद्दी से उतार कर मीरजाफर को गद्दी पर लाने की साजिश प्रारम्भ कर दी।

उस समय एक जगह से दूसरी जगह आने जानेवाले माल पर सरकारी चुङ्गी लगा करती थीं। देहली के सम्राट ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की दरख्वास्त पर विदेशों से आने वाले और जाने वाले माल पर चुंगी माफ कर रक्खी थी।

मगर अंग्रेज व्यापारियों ने इस आदेश का दुरुपयोग कर देश में एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त को ले जाने वाले माल पर भी चुंगी देना बन्द कर दिया। जिस माल पर शी व्यापारियों को चुंगी देनी पड़ती थी उस माल को वे बिना चुंगी दिये ही ले जाते थे। इससे देशी व्यापारियों का व्यापार एक दम ठप हो गया था और सरकारी चुङ्गी की आमदनी भी बन्द हो गई थी।

इस पर मीर कासिम ने कई बार कम्पनी को सूचना दी कि वह अंग्रेज व्यापारियों की इस धींगा-धींगी को बन्द करे, मगर उसकी चेतावनी का कोई प्रभाव नहीं हुआ। तब उसने लाचार होकर सब लोगों के लिए चुङ्गी खुली कर दी और चुङ्गी के सब नाकों को उठा लिये।

इस घटना से देशी व्यापारियों का व्यापार चमक उठा और अंग्रेज व्यापारियों का व्यापार ठप हो गया। इससे कम्पनी के अधिकारी बहुत नाराज हुए और उन्होंने मीर कासिम को गद्दी से उतारने का प्रयत्न तेजी से प्रारम्भ किया। १४ अप्रैल सन् १७६३ को उन्होंने अपनी सेना को तैयार होने की आज्ञा दी और पटने में कम्पनी के एजेण्ट एलिस को लिख दिया कि तुम आज्ञा पाते ही पटना पर कब्जा करने के लिए तैयार रहो। कम्पनी की काफ़ी सेना पहले ही पटना पहुँच चुकी थी। और बहुत सी हथियारों से भरी हुई किश्तियाँ कलकत्ते से पटने की ओर जा रही थीं मगर मीरकासिम ने फौरन उन किश्तियों को रोक दिया।

२४ जून की रात को 'एलिस' ने अचानक पटने पर हमला करके शहर पर कब्जा कर लिया। तब मीर क़ासिम ने भी गुस्से में आकर पटना सेना भेजी और फिर से नगर को विजय कर लिया और एलिस तथा उसके दो सौ साथियों को क़ैदकर १ जुलाई की रात को मुंगेर भेज दिया। इस लड़ाई में कम्पनी के ३०० अंगरेज और २५०० भारतीय सैनिक मारे गये।

२८ जून को मीर कासिम ने गवर्नर बन्सीटार्ट और और उसकी कौन्सिल को यह पत्र लिखा—

“× × × रात को डाकू की तरह मि० एलिस ने पटने के किले पर हमला किया, वहाँ के बाजार और नगर को लूटा·········चूँकि आप लोगों ने बेईमानी और जुल्म के साथ शहर को रौंद डाला है और कई लाख का माल लूट लिया है। इसलिए अब इन्साफ़ यह है कि कम्पनी गरीबों का यह का नुकसान भर दे।··· आप ईसाई लोग भी बड़े विचित्र दोस्त निकले। आपने संधि की। उस पर ईसा मसीह के नाम पर कसम खाई, इस शर्त पर कि आपकी सेना सदा मेरा साथ देगी। आपने अपनी सेना के खर्च के लिए मुझसे इलाका लिया और उस सेना का उपयोग आप मेरे ही नाश के लिए कर रहे हैं······इसके अलावा कई साल से अंग्रेज गुमास्तों ने मेरी निजामत के अन्दर जो-जो जुल्म और ज्यादतियाँ की हैं—जो बड़ी-बड़ी रकमें लोगों से जबरदस्ती वसूल की हैं··· ···मुनासिब और इन्साफ़ यह है कि कम्पनी इस समय उन सबका हरजाना दे। आपको सिर्फ़ इतनी ही तकलीफ़ करने की जरूरत है कि जिस तरह से वर्द्धमान और दूसरे इलाके आपने मुझसे लिए थे, उसी तरह मुझ पर इनायत करके ये मुझे वापस कर दें।”

जिस दिन यह पत्र कलकत्ता पहुँचा उसी दिन कम्पनी ने मीर कासिम के विरुद्ध युद्ध घोषणा कर मीरजाफर को फिर से बंगाल का नवाब घोषित कर दिया। मीर कासिम के पास सेना की शक्ति अंग्रेजों की शक्ति से बहुत अधिक थी। मगर हमेशा की भाँति इस बार भी अंग्रेजों की भेद नीति ने समय पर काम दिया। मीर कासिम ने अपनी सेना में बहुत से ईसाई अफ़सरों को सेना के बड़े-बड़े ओहदों पर नियुक्त कर रक्खा था। अंग्रेजों के जनरल मेजर एडम्स ने उन सबसे गुप्त पत्र व्यवहार कर उन्हें फोड़ लिया। उदवा नाला नामक स्थान पर जब दोनों फौजों में लड़ाई चालू हुई तो ये सब लोग नवाब की सेना से निकल कर अंग्रेजों की फौज में जा मिले नतीजा यह हुआ कि मीर कासिम की जीत भयानक हार में बदल गई और एक रात में उसके पन्द्रह हजार सैनिक काम आये। मीर कासिम की करीब चार सौ बढ़िया तोपें इस लड़ाई में अंग्रेजों के हाथ लगीं। उसके बाद मुंगेर और अजीमाबाद के किले भी वहाँ के विश्वासघातक किलेदारों ने रिश्वत ले लेकर बिना लड़ाई के अंग्रेजों के सिपुर्द कर दिये।

बक्सर की लड़ाई

उसके बाद मीरकासिम ने दिल्ली के बादशाह और नवाब शुजाउद्दौला की सहायता से बक्सर के मैदान में इतिहास प्रसिद्ध लड़ाई लड़ी। मगर इस लड़ाई में भी अंग्रेजों के बहकावे में आकर बादशाह शाह आलम ढीला पड़ गया और लड़ाई का मैदान फिर अंग्रेजों के हाथ आया। मीरकासिम को भागना पड़ा और नवाबी फिर मीरजाफर के गले में आई।

सन् १७६५ में दूसरी बार क्लाइव 'फोर्ट विलियम' का गवर्नर नियुक्त होकर कलकत्ते आया। यहाँ आने पर उसे पता चला कि मीर जाफर की मृत्यु हो चुकी है और स्पेंसर तथा उसके साथियों ने २० लाख रुपये नकद रिश्वत लेकर नजमुद्दौला को बंगाल का नवाब बना दिया है।

क्लाइव ने आते ही सम्राट् शाह आलम से बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी का अधिकार प्राप्त कर लिया और कुछ ही दिन पहले की शुजा-उद्दौला के साथ की हुई सन्धि को रद्द करके उससे एक नई सन्धि मंजूर करा ली, जिसमें इलाहाबाद और कड़ा—दोनों स्थान कम्पनी ने अपने कब्जे में कर लिए।

वारन हेस्टिंग्स

सन् १७७२ में वारन हेस्टिंग्स फोर्ट विलियम किले का गवर्नर नियुक्त हुआ।

उस समय सम्राट् शाहआलम को, ईस्टइंडिया कम्पनी, बंगाल, बिहार, उड़ीसा की दीवानी के बदले में २६ लाख रुपये साल 'खिराज' के रूप में भेजती थी। वारन हेस्टिंग्स ने आते ही उसे एक दम बन्द कर दिया। इसके बाद वारन हेस्टिंग्स ने, चाहे ईमानदारी से हो या बेईमानी से किसी भी प्रकार धन बटोरने का निश्चय किया। सन् १७७३ में उसने शुजाउद्दौला से ४० लाख रुपये नगद और युद्ध का सारा खर्च देने की शर्तपर रुहेलखण्ड की रुहेला जाति पर आक्रमण कर दिया और रुहेलों का नाश कर शुजा-उद्दौला से ४० लाख रुपये कम्पनी के लिए और २ लाख अपनी जेब के लिए वसूल किये।

वारन हेस्टिंग्स के इस काम से खुश होकर कम्पनी ने उसको कम्पनी के समूचे भारतीय राज्य का गवर्नर-जेनरल नियुक्त किया।

महाराज नन्दकुमार को फाँसी

वारन हेस्टिंग्स के द्वारा किये हुए काले कारनामों और जाल-साजियों की घटनाओं में महाराज नन्दकुमार को दी हुई फाँसी एक प्रमुख घटना है।

महाराज नन्दकुमार और हेस्टिंग्स का झगड़ा काफी दिनों से चल रहा था। नन्दकुमार ने एक लंबी अर्जी लिखकर 'कलकत्ते की कौंसिल' के सामने पेश की। जिसमें उसने वारन-हेस्टिंग्स पर बंगाल के रईसों और जमींदारों से रिश्वतें लेने, जबर्दस्ती धन वसूल करने, मुर्शिदाबाद के नवाब की माँ मुन्नी बेगम से रकमें वसूल करने, लोगों को धोखा देने इत्यादि के अनेक इल्जाम, ठोस प्रमाणों के साथ लगाये थे। मगर वारन हेस्टिंग्स का कुछ भी नहीं बिगड़ा उसने यह कहकर कि यह केस सुनने का कौन्सिल को अधिकार ही नहीं है अपना बचाव कर लिया। इसके विपरीत हेस्टिंग्स ने नन्दकुमार के ऊपर जालसाजी और जाली दस्तखत का इल्जाम लगाकर 'सुप्रीम कोर्ट' में मामला दायर कर दिया।

इस समय सुप्रीम कोर्ट का जज 'एलीजा इम्पे' वारन-हेस्टिंगस का बचपन का दोस्त था। उसने झूठे और बे बुनियाद गवाहों के आधार पर नन्दकुमार को फाँसी की सजा सुना कर ५ अगस्त सन् १७७६ के दिन महाराज नन्दकुमार को फाँसी पर चढ़ा दिया।

चेतसिंह का विद्रोह

सन् १७७६ में अवध के नवाब ने बनारस का इलाका कंपनी के नाम कर दिया। उस समय बनारस का महाराज बलवन्त सिंह बड़ा अच्छा शासक था, मगर कंपनी ने अपनी ओर से एक नई सनद जारी कर बलवन्त सिंह के पुत्र चेतसिंह को पिता के तमाम अधिकार दे दिये और महाराज चेतसिंह को ५ लाख रुपये सालाना खर्च पर अपने यहाँ तीन पल्टनें रखने का हुक्म दिया। दो साल के बाद एक घुड़सवार पल्टन और रखने का आदेश मिला। इस पर चेतसिंह ने यह भारी खर्च वहन करने से इनकार कर दिया। तब वारन हेस्टिंग्स ने अपनी सेना के साथ बनारस पहुँच कर रेजीडेंट को आज्ञा दी कि चेतसिंह को कैद कर लिया जाय। यह देखकर बनारस की प्रजा कंपनी की सेना पर टूट पड़ी और तमाम अंग्रेज सैनिकों

को कत्ल कर डाला। तब हेस्टिंग्स ने एक बड़ी सेना बनारस पर हमला करने के लिए भेजी और चेतसिंह को खिडकी के रास्ते गंगा में कूद कर भागना पड़ा। बाद में अंग्रेजी सेना ने बनारस में खूब लूट मचायी।

अवध की बेगमों पर अत्याचार

वारन हेस्टिंग्स की भूख बनारस की लूट से भी शान्त नहीं हुई। तब उसकी निगाह अवध की बेगमों के पास सञ्चित अटूट खजाने पर पड़ी। इस कार्य में उसने नवाब आसफ-उ-द्दौला को अपनी तरफ मिलाया और बेगमों पर यह इल्जाम लगाया गया कि उन्होंने अंग्रेजों के खिलाफ चेतसिंह के साथ साजिश की है। नन्दकुमार को फाँसी देने वाला कलकत्ता सुप्रीम कोर्ट का जस्टिस एलीजा इम्पे यहाँ भी वारन हेस्टिंग्स की मदद पर आ गया। उसने अवध की बेगमों पर लगाये गये इल्जामों को सही घोषित कर दिया। तुरन्त फैजाबाद के महलों को अंग्रेजी सेना ने घेर लिया और बेगमों को तब तक खाना पीना नहीं दिया गया, जब तक कि उन्होंने सारा खजाना अंग्रेजी सेना के जिम्मे न कर दिया। इस लूट के माल की कीमत १ करोड़ २० लाख रुपये आँकी जाती है।

उधर दक्षिण में भी मराठों के साथ हेस्टिंग्स के दाँव-पेंच चल रहे थे और मैसूर में 'हैदर अली' के रूप में एक नवीन शक्ति का उदय हो रहा था, जो अंग्रेजों के लिए खतरनाक साबित हो रही थी। सन् १७७८ में अमेरिका में इंग्लैंड और फ्रांस के बीच लड़ाई शुरू हो गई, जिसके परिणामस्वरूप भारत में भी अंग्रेजों और फ्रासीसियों में लड़ाई होने लगी। अंग्रेजों ने फ्रासीसियों के माही और पांडिचेरी नगरों पर अधिकार कर लिया। इस घटना से मैसूर का शासक हैदरअली बड़ा क्रुद्ध हुआ। उसने सन् १७८० में एक बड़ी सेना लेकर कर्नाटक पर आक्रमण कर कर्नाटक की राजधानी 'अर्काट' पर कब्जा कर लिया और कर्नल बेरी' को मार डाला। तब वारन हेस्टिंग्स ने एक सेना के साथ सर आयरकूट को बंगाल से भेजा। सर आयरकूट ने हैदरअली को पराजित किया और १७८२ ई० में 'सालबाई' की सन्धि की गई।

दिसम्बर सन् १७८२ में हैदरअली की मृत्यु हो गई, मगर उसके बाद उसके लड़के 'टीपू' ने लड़ाई को और भी जोर शोर से जारी रखी। फलस्वरूप मार्च सन् १७८४ में 'मंगलोर' की सन्धि हो गई।

इस प्रकार वारेन हेस्टिंग्स ने गवर्नर-जनरली के अपने १० वर्ष के समय में, सब दूर भयंकर अत्याचार किये और लूट-मार मचायी।

इन अत्याचारों की संगीन शिकायतें इंग्लैण्ड की पार्लमेंट के मेम्बरों के पास पहुँची। तब पार्लमेंट में वारन-हेस्टिंग्स पर रिश्वत खोरी और अन्य अनेक अपराधों के विषय में मुकदमा चलाया गया। इसी मुकदमें में सुप्रसिद्ध विद्वान और वक्ता 'एडमंड बर्क' ने अपने अमर भाषणों के द्वारा तेजस्वी भाषा में वारन हेस्टिंग्स के अत्याचारों का चित्र खींचा, जिन्हें सुन कर सुनने वालों के कलेजे दहल गये।

यह मुकदमा सात साल तक चला, मगर अन्त में ब्रिटिश पार्लमेंट ने उसे सब इल्जामों से यह कह कर बरी कर दिया कि उसने जो कुछ भी किया इंग्लैण्ड राष्ट्र के हित में किया।

विलियम पिट का इण्डिया-एक्ट

इन दिनों इंग्लैंड की पार्लमेंट के मेम्बर हिन्दुस्तान के मामलों में बड़ी दिलचस्पी लेने लगे थे और शासन-प्रबन्ध में सुधार करना चाहते थे। रेग्यूलेटिंग ऐक्ट की बुराइयाँ उन्हें स्पष्ट रूप से दिखलाई देने लगी थीं। इसके फलस्वरूप सन् १७८४ में विलियम पिट का इण्डिया एक्ट पास हुआ, जिससे कम्पनी की नीति और शासन विधान में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। कम्पनी के दीवानी और फौजी मामलों का निरीक्षण करने के लिए एक "बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल" बनाया गया। इस बोर्ड में छः मेम्बर रक्खे गये। एक गुप्त समिति नियुक्त की गई जिसका काम डाइरेक्टरों को बिना खबर दिये बोर्ड की मुख्य आज्ञाओं को हिन्दुस्तान भेजना था। गवर्नर-जनरल की कौन्सिल के मेम्बरों की संख्या ३ निश्चित कर दी गई। बम्बई और मद्रास के अहाते बङ्गाल के आधीन कर दिये गये। गवर्नर-जनरल और उसकी कौन्सिल को आदेश दिया गया कि डाइरेक्टरों के कोर्ट से अनुमति लिये बिना वे राजाओं से युद्ध अथवा संधि न करें।

लार्ड कार्नवालिस

वारन हेस्टिंग्ज के बाद कुछ समय तक "मेकपुर्सन" गवर्नर जनरल रहा और उसके बाद लार्ड कार्नवालिस सन् १७८६ में गवर्नर जनरल होकर आया जो कम्पनी के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटक था। वह एक अनुभवी, उदार और अपेक्षाकृत न्यायप्रिय व्यक्ति था।

लार्ड कार्नवालिस के शासन-काल की सबसे महत्वपूर्ण घटना बंगाल में "इस्तमरारी बन्दोबस्त" का होना है। इस बन्दोबस्त के द्वारा जमीन की लगान जो पहले हमेशा घट बढ़ रहती थी वे हमेशा के लिये निश्चित कर दी गई। इस बन्दोबस्त से सरकार, जमींदार और प्रजा—तीनों की स्थिति पर प्रभाव पड़ा। सरकार को इससे काफी नुकसान उठाना पड़ा, क्योंकि भविष्य में जमीनों की कीमतें बढ़ जाने पर भी वह लगान नहीं बढ़ा सकती थी। मगर इस बन्दोबस्त से समय-समय पर मालगुजारी नियत करने और वसूल करने के झंझट से उसे फुरसत मिल गई। जमींदारों को इससे बड़ा लाभ हुआ। उनकी हालत पहले से बहुत अच्छी हो गई। वे ब्रिटीश सरकार के पक्के राजभक्त हो गये और भारत में बंगाल का प्रांत सबसे अधिक उन्नतिशील और समृद्ध बन गया, मगर किसानों को इससे विशेष लाभ नहीं हुआ। जमींदारों के अत्याचार उन पर बदस्तूर जारी रहे। इन अत्याचारों को कम करने के लिए सन् १८५६ ई० में 'बंगाल टेनैन्सी एक्ट' पास किया गया।

इसी प्रकार लार्ड कार्नवालिस ने यहाँ की अदालतों का संगठन यूरोपीय ढंग पर किया और यूरोपीय लोग ही उनमें जज नियुक्त किये गये।

कार्नवालिस चाहता था कि वह 'पिट' के इंडिया-एक्ट की नीति पर चले, परन्तु परिस्थितियों ने उसके लिए ऐसा करना असम्भव कर दिया। क्योंकि उस समय दक्षिण का टीपू सुल्तान अंग्रेजी-राज्य को नष्ट करने के लिए पूरा प्रयत्न कर रहा था। इस कार्य में सहायता पाने के लिये सन् १७८७ में उसने टर्की और फ्रांस को अपने राजदूत भेजे थे। अंग्रेजों के विरुद्ध वह उनसे सैनिक सहायता चाहता था।

इसके दो वर्ष बाद उसने ट्रावंकोर के राजा पर भी हमला कर दिया, जो कि अंग्रेजों का मित्र था। कार्नवालिस को यह सहन नहीं हुआ और उसने सन् १७९० में निजाम और पेशवा के साथ मिलकर टीपू के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और स्वयं सेनापति बनकर लड़ाई के मैदान में गया। उसने बंगलोर को जीत लिया तथा रंगपट्टम की ओर बढ़ा। तब टीपू सुल्तान ने सन्धि की और अपने राज्य का एक बड़ा भाग, जिसकी सालाना आमदनी एक करोड़ रुपया थी तथा तीन करोड़ रुपया नकद हर्जाने के रूप में देने का वादा किया और अपने दो लड़कों को बन्धक रूप में दे दिया। टीपू से मिले हुए हर्जाने को निजाम, पेशवा और कार्नवालिस ने बाँट लिये।

सन् १७९३ में लार्ड कार्नवालिस वापस लौट गया।

लार्ड वेलेजली

लार्ड कार्नवालिस के बाद सन् १७९३ से सन् १७९८ तक सर जानशोर गवर्नर जनरल के पद पर रहा। उसके बाद सन् १७०८ में लार्ड वेलेजली गवर्नर-जनरल नियुक्त होकर आया। यह बड़ा साहसी और सम्राज्यवादी विचार-धारा का व्यक्ति था। जिस समय में वह यहाँ आया, उस समय इंग्लैंड नैपोलियन महान् के साथ जीवन-मरण के संघर्ष में लगा हुआ था। इन परिस्थितियों में उसके लिए तटस्थ रहना संभव नहीं था। इसलिए उसने सभी भारतीय शक्तियों को नष्ट करके सारे भारत में एकछत्र अंग्रेजी शासन कायम करने का निश्चय किया। उसने एक के बाद दूसरे राजा को पराजित किया।

उस समय टीपू सुल्तान भारत से अंग्रेजों को निकालने के लिए बाहरी देशों से सम्पर्क बनाए हुये था। लार्ड वेलेजली ने उसको पूरी तरह अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार करने के लिए कहा और टीपू सुल्तान के टाल-मटूल करने पर उसने टीपू के विरुद्ध तुरन्त युद्ध की घोषणा कर दी। सेनापति लार्ड 'हेरिस' ने निजाम की सेना की सहायता से टीपू सुल्तान पर आक्रमण कर दिया। इस लड़ाई में टीपू भी अपने साथियों के विश्वासघात से हारा और बहादुरी पूर्वक लड़ते हुए मारा गया।

इसके बाद लार्ड वेलेजली ने देशी राजाओं के साथ सहायक सन्धियाँ करना शुरू किया। इस सन्धि के

नियमानुसार सन्धि करने वाले राजा को अनिवार्य रूप से अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार करनी पड़ती थी। वह किसी विदेशी शक्ति के साथ युद्ध और सन्धि नहीं कर सकता था। उसे अपने यहाँ एक निश्चित संख्या में अंग्रेजी-सेना रखनी पड़ती थी और उसका खर्चा उसे देना पड़ता था।

इन सन्धियों की बदौलत अब अंग्रेजों की स्थिति बहुत दृढ़ हो गयी। उनके पास एक विशाल सुशिक्षित सेना तैयार हो गई, जिसके लिये उन्हें एक पैसा भी खर्च नहीं करना पड़ता था। लार्ड वेलेजली ने बड़ी सख्ती के साथ देशी-राजाओं को सहायक-सन्धि करने के लिये मजबूर किया।

लार्ड वेलेजली ने तंजोर, सूरत और कर्नाटक को उनके आपसी झगड़ों से लाभ उठाकर, अंग्रेजी-राज्य में मिला लिया। उसने अवध के नवाब पर दबाव डालकर रुहेलखण्ड और गोरखपुर के जिले भी अंग्रेजी-राज्य में मिला लिये।

उसने बेसिन की सन्धि के द्वारा पेशवा को सहायक-सन्धि के जाल में फाँस लिया। इसी प्रकार सन् १८०३ ईसवी में सिन्धिया और भोंसला की संयुक्त सेना को 'असाई' के मैदान में हरा कर अहमदनगर पर कब्जा कर लिया और उसके बाद असीरगढ़ और बुरहानपुर के किले पर अधिकार करने का प्रयत्न किया। लाचार सिंधिया को सन्धि का प्रस्ताव करना पड़ा।

नवम्बर सन् १८०३ में भोंसला को पराजित कर अंग्रेजों ने ग्वालीगढ़ के किले पर अधिकार कर लिया। भोंसले के साथ देवगाँव की सन्धि हुई, जिसमें अंग्रेजों को कटक प्रांत और बरार का वह हिस्सा, जो भोंसले के आधीन था, मिल गया।

सिन्धिया के साथ की अर्जुनगाँव की सन्धि में सिन्धिया ने दिल्ली, आगरा और जमुना नदी के दक्षिण का प्रदेश अंग्रेजों को दिया।

उधर उत्तरी भारत में जेनरल 'लेक' ने अलीगढ़ को जीत लिया और मुगल-सम्राट् की रक्षा का भार उसने अपने ऊपर ले लिया और सम्राट् को ६० हजार रुपये वार्षिक पेंशन देना स्वीकार किया।

सिर्फ यशवंतराव होलकर अंग्रेजों के विरोध में अभी तक खड़ा हुआ था। सन् १८०५ में कर्नल 'मानसून' की अध्यक्षता में अंग्रेजी फौज ने यशवंतराव पर आक्रमण किया, किन्तु यशवंतराव की फौज ने कर्नल मानसून की फौज को बुरी तरह परास्त किया।

सन् १८०५ में लार्ड वेलेजली भरतपुर की भीषण पराजय के कारण वापस बुला लिया गया। इस प्रकार अपने ७ वर्ष के शासन में लार्ड वेलेजली ने हिन्दुस्तान के बहुत बड़े भाग को लाल रंग में रंग दिया और अंग्रेजी-साम्राज्य की जड़ों को बहुत गहराई में पहुँचा दिया।

लार्ड वेलेजली की जगह पर थोड़े दिनों के लिए लार्ड कार्नवालिस दूसरी बार भारत में गवर्नर-जनरल हो कर आया। उसने आते ही सिन्धिया और होलकर के साथ सन्धि कर ली, मगर कुछ ही समय बाद गाजीपुर में उसका देहान्त हो गया।

कार्नवालिस के बाद सर जार्ज बार्लो भारतवर्ष का गवर्नर-जनरल नियुक्त हुआ। इसके समय में, सन् १८०६ में वेलोर का सिपाही-विद्रोह हुआ। उसने सिपाहियों को एक नई तरह की पगड़ी बाँधने और माथे पर तिलक न लगाने की आज्ञा दी थी। सिपाहियों ने इस चीज को अपने धर्म में हस्तक्षेप समझ कर विद्रोह कर दिया। उन्होंने किले पर कब्जा कर लिया और बहुत से अंग्रेज सिपाहियों को मार डाला। तब अर्काट से एक फौज बुला कर उस विद्रोह को शान्त किया गया।

लार्ड मिंटो

सन् १८०७ में लार्ड मिंटो गवर्नर-जनरल बन कर आया। उस समय सारे देश में बड़ी अशान्ति और अराजकता फैली हुई थी। झुंड के झुंड डाकू, ठग और पिंडारी स्वतंत्रता पूर्वक घूमते हुए लूट मार करते थे। बुदेलखंड में पूर्णरूप से अराजकता छाई हुई थी और छोटे-छोटे सरदार आपस में लड़ते-झगड़ते थे। लार्ड मिंटो ने डाकुओं और लुटेरों का सख्ती के साथ दमन करके और सरदारों के झगड़ों को परस्पर में निपटा करके देश में शान्ति स्थापित की।

सिक्ख शक्ति का उदय

उस समय पंजाब में सिक्ख-शक्ति का बड़ी तेजी से विकास हो रहा था। अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण के बाद 'खालसा' (सिक्ख-संघ) ने सन् १७६४ में लाहौर को जीत लिया था और झेलम से लेकर जमुना नदी तक सारे देश पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था।

खालसा अनेक मिसलों में विभक्त था। हरएक 'मिसल' का एक नेता होता था। उसके पास कुछ भूमि और सेना का एक दल होता था। इन मिसलों में १२ मिसलें बहुत प्रसिद्ध थीं। महाराज रणजीतसिंह का दादा 'चरत सिंह' 'सुखेर कुचिया' मिसल का नेता था। सन् १७९२ में चरतसिंह के पुत्र 'महासिंह' की मृत्यु के पश्चात रणजीतसिंह उसके उत्तराधिकारी हुए। रणजीतसिंह बड़े योग्य और महत्वाकांक्षी व्यक्ति थे। कुछ ही वर्षों में उन्होंने अपना एक राज्य बना लिया और खालसा के सभी मिसलों को एक सूत्र में बाँध कर एक सुदृढ़ सिक्ख-राज्य स्थापित करने की चेष्टा की।

लार्ड मिंटो ने सर 'चार्ल्स मेट काफ' के द्वारा महाराज रणजीत सिंह से सन् १८०९ में 'अमृतसर की सन्धि' पर हस्ताक्षर करवाये, जिसमें सतलज के इस पार के जिलों को उसने छोड़ दिया। इस प्रकार ब्रिटिश सरकार और रणजीत सिंह के बीच में एक स्थायी सन्धि हो गई।

लार्ड मिंटो को इस बात का अभिमान था कि उसने बिना हथियार उठाये सारी अराजकता को दबा दिया।

सन् १८१३ में लार्ड मिंटो वापस इंग्लैंड गया और उसके स्थान पर लार्ड हेस्टिंग्स गवर्नर-जनरल बन कर भारत में आया।

लार्ड हेस्टिंग्स

लार्ड हेस्टिंग्स को आते ही नैपाल के राजा से मुठभेड़ करनी पड़ी। नैपाल का पहाड़ी देश अवध और बंगाल की उत्तरी सीमा पर अवस्थित है। इस देश के रहने वाले गोरखा लोग सम्पूर्ण तराई-प्रदेश को अपना ही समझते थे। उन्होंने शोराज और बुटवल के जिलों पर कब्जा कर लिया, इसलिए अंग्रेज सरकार ने उनके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

गोरखा-युद्ध

अंग्रेजी सेना का सेनापति जनरल 'आक्टरलोनी' था। इस पहाड़ी क्षेत्र की लड़ाई में अंग्रेजी सेना को भयंकर कठिनाइयों और पराजयों का सामना करना पड़ा। इस लड़ाई में उनका एक सेनापति जनरल 'जिलेस्पी' बुरी तरह से हार कर मारा गया और भी कई सेनापति पराजित हुए। नाहन के राजा अमरसिंह थापा ने बड़ी बहादुरी से जनरल जिलेप्सी का मुकाबला किया और उसको मार दिया, मगर कर्नल आक्टर लोनी पश्चिमी मोर्चे पर डँटा रहा और गोरखों की राजधानी पर हमला करने के लिए आगे बढ़ा। इतने में सन्धि की बात शुरू हो गई और सन् १८१६ में की गई 'सिग़ौली की सन्धि' के अनुसार गोरखों ने तराई का प्रदेश छोड़ दिया। कुमायूँ और गढ़वाल के जिले अंग्रेजों को दे दिये। इस प्रकार प्रकृति का वह रमणीय क्षेत्र, जहाँ आजकल 'शिमला' स्थित है, अंग्रेजों के अधिकार में आ गया। नेपाल के राजा ने काठमांडू में अंग्रेज सरकार का एक 'रेजीडेंट' भी रखना स्वीकार कर लिया।

पिंडारियों का दमन

उस समय राजस्थान और मध्य प्रदेश में पिंडारियों के उपद्रव बहुत अधिक बढ़ गये थे। सभी जातियों के बदमाश, गुंडे और लुटेरे उनके साथ हो गये थे। ये लोग बड़ी-बड़ी रकमें लेकर एक राजा की सहायता कर दूसरे से लड़ाई करते थे। अमीर खाँ, वासिल मुहम्मद, चीतू और करीम खाँ, उनके मुख्य नेता थे।

लार्ड हेस्टिंग्स ने पिंडारियों का दमन करने के लिए १ लाख १३ हजार सिपाहियों की एक विशाल सेना संगठित की और उन्हें चार भागों में विभक्त करके चारों तरफ से पिंडारियों को घेर लिया। बहुतों का पीछा किया गया और वे मार डाले गये। सन् १८१८ के अन्त तक पिंडारी-दल बिल्कुल तितर-बितर और नष्ट कर दिया गया।

अमीर खाँ ने अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार कर ली। इसलिए उसे टोंक का राज्य दे दिया गया। जो अभी तक उसके [illegible] के पास था।

इसी समय सन् १८१७ के अन्त में मराठा-संघ का अंग्रेजी सत्ता से संघर्ष हुआ। पेशवा अपने प्राणों पर खेलकर बहुत वीरता के साथ लड़ा, परन्तु अन्त में उसने सर जान मालकम के हाथों में आत्म-समर्पण कर दिया और मालकम ने उसे ८० हजार रुपये सालाना की पेंशन देकर कानपुर के पास बिठूर में रहने का आदेश दिया।

इसी प्रकार सिन्धिया, गायकवाड़ और होलकर ने भी अंग्रेजों की संरक्षकता स्वीकर कर ली। परिणामस्वरूप पंजाब, कश्मीर और सिन्ध को छोड़कर सारे भारतवर्ष में अंग्रेजी-साम्राज्य की स्थापना हो गई।

सन् १८२३ में लार्ड हेस्टिंग्स वापस लौट गया और उसकी जगह पर लार्ड 'एमहर्स्ट' गवर्नर जनरल बनकर आया।

इस समय बर्मा के अन्दर 'अलोम्प्रा' नामक महत्वाकांक्षी सरदार के उत्तराधिकारी अपने राज्य का विस्तार करने में लगे हुए थे। १८१३ ई० में बर्मा के राजा ने मनीपुर पर कब्जा कर लिया। सन् १८२२में उसने आसाम को जीत लिया और सन् १८२३ में चटगाँव के निकटवर्ती शाहपुरी टापू पर आक्रमण कर दिया। इन सब घटनाओं से परेशान होकर अंग्रेजों ने २४ फरवरी सन् १८२४ को बर्मा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

अंग्रेजी सेना समुद्र के मार्ग से सर आर्चीबाल्ड कैम्पके सेनापतित्व में रवाना हुई और रंगून पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया। उसके बाद आसाम, अराकान और टेनासिरम को भी जीत लिया। फरवरी सन् १८२६ में वर्मा और अंग्रेजों के बीच में सन्धि हो गई। इसके अनुसार वर्मा के राजा ने अंग्रेजों को अराकान और टेनासिरम को देना स्वीकार किया और आसाम तथा कछार से भी अपना अधिकार हटा लिया।

इसके बाद भरतपुर के किले को जीतकर सन् १८२६ में लार्ड एमहर्स्ट इंग्लैंड लौट गया और उसकी जगह पर लार्ड विलियम बेंटिक गवर्नर जनरल होकर आ गया।

लार्ड विलियम बेंटिक

लार्ड विलियम बैंटिक के समय में देश में अपेक्षाकृत शान्ति की स्थापना हो चुकी थी। इसलिए उसने भारतवर्ष में सामाजिक और शिक्षा सम्बन्धी सुधारों को करना प्रारम्भ किया।

उस समय भारतवर्ष में 'सती-प्रथा' के समान भयंकर और अमानुषिक प्रथा प्रचलित थी, जिसमें पति की मृत्यु के पश्चात्, उसकी लाश के साथ उसकी पत्नी को जबर्दस्ती जिन्दा जला दिया जाता था। प्रसिद्ध समाज-सुधारक राजा राम मोहन राय इस प्रथा का अन्त करने के लिए बंगाल में लोक-मत का संगठन कर रहे थे। लार्ड बेंटिक ने राजा राम मोहन राय की प्रेरणा से १४ दिसम्बर सन् १८२६ को एक कानून पास करके सती-प्रथा को गैरकानूनी घोषित कर दिया और इस कार्य में सहायक होना—कत्ल के बराबर अपराध ठहराया गया। इस प्रकार भारतवर्ष से एक भयंकर सामाजिक प्रथा के अन्त करने का श्रेय लार्ड बेंटिक को प्राप्त हुआ।

शिक्षा के क्षेत्र में भी लार्ड बेंटिक ने काफी प्रयत्न किया। इनके समय में कलकत्ता, शिवरामपुर इत्यादि कई स्थानों पर नई-नई शिक्षा संस्थाएं खोली गईं।

हिन्दुस्तान में प्रचलित ठगी-प्रथा को रोकने और ठगों के गिरोहों का नाश करने के लिए मेजर 'स्लीमेन' की अध्यक्षता में एक विभाग खोला गया, जिसने थोड़े समय में ठगों के गिरोहों का नाशकर शान्ति की स्थापना की।

लार्ड बेंटिक ने सन् १८३५ में अपने पद से इस्तीफा दे दिया। उसकी जगह कुछ समय के लिए सर चार्ल्स मेटकाफ गवर्नर जनरल हुआ। इसने अपने पद पर आते ही भारतीय समाचार-पत्रों को स्वतंत्रता दे दी। उसका मत था कि प्रेस की स्वतंत्रता पर जो बन्धन लगाये गये हैं, वे अंगरेज जाति और अंगरेज शासन की मर्यादा के विरुद्ध हैं। चार्ल्स मेटकाफ के पश्चात् लार्ड ऑकलैण्ड गवर्नर जनरल होकर सन् १८३६ में आया।

लार्ड ऑकलैण्ड

लार्ड ऑकलैण्ड के समय की सबसे प्रधान घटना अफगानिस्तान के मामले में अंगरेज सरकार का हस्तक्षेप करना था। इस मामले में अंगरेजों की प्रतिष्ठा को भी काफी धक्का पहुँचा और इनके १६००० सैनिक बड़ी बुरी तरह से मारे गये।

उस समय अफ़गानिस्तान में बड़ी गड़बड़ी मची हुई थी। अब्दाली वंश के अमीर शाहशुजा को गद्दी से हटाकर दोस्त मुहम्मद वहाँ का 'अमीर' बन गया था। दोस्त मुहम्मद बड़ा लोकप्रिय व्यक्ति था, जब कि शाहशुजा बिलकुल निकम्मा था। दोस्त मुहम्मद की दोस्ती के लिए अंगरेज भी लालायित थे और रूस वाले की उससे मित्रता बनाए रखना चाहते थे। दोस्त महम्मद चाहता था कि अंगरेज यदि रणजीतसिंह से पेशावर उसे दिलादें तो वह अंग्रेजों से संधि करले, मगर अंगरेज रणजीत सिंह से बिगाड़ करना नहीं चाहते थे। इसलिए दोस्त मुहम्मद से संधि न हो सकी।

परिणाम यह हुआ कि लार्ड ऑकलैण्ड ने शाहशुजा को फिर से अफ़गानिस्तान का अमीर बनाना चाहा और उसके लिए युद्ध की घोषणा करदी। अंगरेजी-सेना ने सिंध के रास्ते से अफ़गानिस्तान में प्रवेश किया और शाह शुजा को काबुल की गद्दी पर बिठा दिया। लेकिन ब्रिटिश सेना की करतूतों से अफ़गान एकदम बिगड़ उठे और सारे देश में गड़बड़ी मच गई। ब्रिटिश राजदूत अलेक्जेण्डर बर्न्स को मार डाला गया और जब अंगरेजी सेना सन् १८४२ में वहां से वापस लौटी तो अफ़गानों ने पीछे से उसपर हमला कर दिया और एक-एक अंगरेज को बीन-बीन कर मार डाला। इस भयंकर दुर्घटना में सोलह हजार सेनिक कुत्ते की मौत मारे गये। केवल डॉ० ब्राइडन नामक एक व्यक्ति इस भीषण दुर्घटना की कहानी सुनाने के लिए जीता-बचा। अफ़गानिस्तान में शाहशुजा को भी मार डाला गया और दोस्त मुहम्मद फिर से वहाँ का अमीर बनाया गया।

इस प्रकार लार्ड ऑकलैण्ड की गलत नीति के परिणाम स्वरूप अंगरेजों को एक भयङ्कर पराजय का मुख देखना पड़ा जिसके फलस्वरूप ऑकलैण्ड तुरन्त वापस बुला लिये गये।

ऑकलैण्ड के पश्चात् लार्ड एलिनबरा गवर्नर जनरल होकर आये। उस समय सिंध प्रान्त में अमीर लोग छोटे-छोटे टुकड़ों में शासन करते थे। एलिनबरा ने इन अमीरों के साथ छेड़-छाड़ करके सिंध को अंगरेजी राज्य में मिला लिया। सन् १८४४ में एलिनबरा वापस गये और उनकी जगह लार्डहार्डिंज गवर्नर जनरल होकर आये।

उस समय महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु (१८३९) में हो चुकी थी और उनकी मृत्यु के पश्चात् किसी बलवान व्यक्तित्व के न रहने से सारे पंजाब में अशान्ति मची हुई थी। सन् १८४३ में रणजीत सिंह का लड़का शेरसिंह मार डाला गया और उसकी जगह रणजीतहिं के अवैध पुत्र दिलीप सिंह को गद्दी पर बिठाया गया। वैध सन्तान न होने से अंगरेजों ने दिलीप सिंह को स्वीकार नहीं किया जिसके फलस्वरूप सन् १८४५ में सिक्खों के साथ अंगरेजों का युद्ध चल पड़ा।

यह लड़ाई भी अंगरेजों के लिए बहुत महँगी पड़ी और एक दो जगह उन्हें करारी मात भी खानी पड़ी, पर अन्त में सन् १८४६ में एक संधि हुई जिसके अनुसार दिलीप सिंह को महाराज स्वीकार किया गया। खालसा की सैनिक शक्ति घटायी गई, सर हेनरी लारेंस को वहाँ का रेजीडेण्ट बनाया गया। सिक्खों से जालन्धर का दोआबा और डेढ़ करोड़ रुपया दण्ड में वसूल किया गया। सिक्खों के पास इतना रुपया न होने से उन्होंने एक करोड़ रुपये में 'कश्मीर स्टेट' को गुलाब सिंह के हाथ बेच दिया।

मगर इससे भी पंजाब में शान्ति नहीं हुई और सन् १८४८ में अंगरेजों के साथ सिक्खों की दूसरी लड़ाई हुई। इस लड़ाई में भी एकाधिक हारजीत के पश्चात् अन्तिम विजय अंग्रेजों की हुई। जिसके परिणाम स्वरूप दिलीपसिंह को गद्दी से उतारकर ५० हजार पौड सालाना की पेंशन देकर इंगलैण्ड भेज दिया गया और पंजाब का विशाल प्रान्त अंग्रेजी-राज्य में मिला लिया गया।

सन् १८४८ में लार्ड हार्डिञ्ज वापस लौट गया और उसकी जगह लार्ड डलहौजी गवर्नर जनरल होकर आया जो ईस्ट इण्डिया कम्पनी का आखिरी गवर्नर जनरल था।

लार्ड डलहौजी

लार्ड डलहौजी कट्टर साम्राज्यवादी विचारधारा का व्यक्ति था। छोटे-छोटे राज्यों के अस्तित्व को वह समाज के लिए खतरनाक समझता था। उनके अस्तित्व को कायम रखने में वह कोई लाभ नहीं समझता था। उसका दृढ़-विश्वास

था कि ब्रिटिश राज्य लोगों के लिए लाभकारी है, चाहे उसे कोई पसन्द करे या न करे।

उसने भारत के देशी राज्यों को तीन श्रेणी में विभक्त किया। (१) स्वतंत्र राज्य जिनमें भारत सरकार राजा की मृत्यु के बाद उपयुक्त उत्तराधिकारी को गद्दी पर बिठाती थी।

(२) वे राज्य जिन्होंने मुगल-सम्राट या पेशवा के स्थान में अङ्गरेजों की अधीनता स्वीकार की थी।

(३) अधीनस्थ राज्य जिन्हें ब्रिटिश सरकार ने बनाया था या जीतकर प्राप्त किया था।

पहली दो प्रकार की रियासतों को तो उसने 'दत्तक' लेने का अधिकार दे दिया, मगर तीसरी श्रेणी की रियासतों को दत्तक लेने का अधिकार नहीं दिया गया और कहा गया कि यदि ऐसी रियासतों में किसी ऐसे राजा की मृत्यु हो जाय जिसके पुत्र न हो तो वह राज्य अंग्रेजी राज्य में मिला लिया जाय।

इस नियम के अनुसार उसने सतारा राज्य, नागपूर, जैतपुर इत्यादि कई छोटे-छोटे राज्यों को उनके राजाओं के मरने पर अङ्गरेजी राज्य में मिला लिया। सन् १८५६ में बाजीराव पेशवा द्वितीय की मृत्यु हो जाने पर उनकी आठ लाख की पेंशन बन्द कर दी और उनके दत्तक-पुत्र धोंधु पंत को (जो पीछे जाकर सन् सत्तावन के गदर में नाना साहब के नाम से प्रसिद्ध हुआ) स्वीकार नहीं किया गया।

अवध के शासन पर उस समय नवाब वाजिद अली शासन कर रहे थे। उनकी रंगरेलियों और ऐशो-आराम की कहानियाँ सब दूर फैल रही थीं। शासन-व्यवस्था बिलकुल खराब हो रही थी। लखनऊ के रेजिडेण्ट कर्नल स्लीमेन ने अपनी रिपोर्ट में लिखा कि—"नवाब भोग-विलास में डूबा रहता है और नर्तकियों, मसखरों और हिजड़ों से घिरा रहता है।"

तब डलहौजी ने अवध के नवाबों के साथ सन् १८३७ में की हुई संधि को रद्द कर दिया, जिसमें अङ्गरेजों ने अवध के नवाबों की सुरक्षा का वचन दे रक्खा था। अङ्गरेजी राज्य के प्रति समय-समय पर बतलाई हुई नवाबों की वफादारी और दोस्ती को भी वह भूल गया और सन् १८५६ में अवध को पूरा का पूरा प्रान्त अंग्रेजी राज्य में मिला लिया।

लार्ड डलहौजी के समय में शासन के अन्दर अनेक सुधार किये गये। लार्ड डलहौजी के समय में ही भारत में पहली रेलगाड़ी चली और टेलीग्राफ की लाइन प्रारम्भ हुई। उसने भारत के विभिन्न भागों को एक सूत्र में बाँधने का प्रयत्न किया। सेना की शक्ति को भी उसने बढ़ाया तथा सिक्खों और गोरखों की एक पल्टन बनाई। उसने डाक-व्यवस्था के द्वारा दो पैसे में एक पत्र भारत के किसी भी कोने में भेजने की व्यवस्था की, जो लोगों के लिए बड़ी हितकर साबित हुई। देशी भाषा की शिक्षा को उसने प्रोत्साहन दिया और सिफारिश की कि टामसन की प्रणाली सारे पश्चिमोत्तर प्रान्त में प्रचलित की जाय।

लेकिन डलहौजी के द्वारा छोटे राज्यों और अवध के समान बड़े राज्यों पर किये हुए दुर्व्यवहार ने जनता के अन्दर असन्तोष की भयंकर चिनगारी पैदा कर दी जिसके परिणामस्वरूप १८५७ का भयंकर विस्फोट (गदर) हुआ जिसमें अंग्रेजी राज्य की नींव भी हिल गई। (गदर का पूरा विवरण "अठारहसौ सत्तावन" नाम के साथ प्रथम भाग में देखें)

मगर भाग्य ने अंग्रेजों का साथ दिया। गदर दबा दिया गया, साथ ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन भी समाप्त हो गया और महारानी विक्टोरिया ने एक तेजस्वी और उदार घोषणा के साथ भारत का शासन अपने हाथ में ले लिया।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सम्पूर्ण इतिहास पर एक गहरी नजर डालने से इतिहास के कई महत्वपूर्ण तथ्यों का पता लगता है।

(१) जिस समय ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कदम यहाँ पर पड़े, उस समय सारा भारत एक भयंकर संक्रमण-काल में से गुजर रहा था। मुगलों और मराठों के पारस्परिक संघर्ष से जनता दिन-दिन कुचली जा रही थी। शांति और सुव्यवस्था का बिल्कुल नाम न था। राजा लोगों के बीच में आपसी राग-द्वेष इतना अधिक बढ़ गया था और सत्ता के स्वार्थ इतने घने हो गये थे कि हर एक राजा अपने छोटे से स्वार्थ के लिए सारे देश की आजादी को बेच देने के

लिए तैयार था। हर एक व्यक्ति अपने प्रतिस्पर्द्धी को हराने के लिए इन विदेशियों की मदद लेने के लिए तैयार था। देश का नैतिक बल एक दम समाप्त हो चुका था लोग बड़े परेशान थे कि किस प्रकार इस अव्यवस्था से उन्हें छुटकारा मिले।

(२) अंग्रेज कम्पनी के लोगों ने यहाँ के लोगों की हालत देखी। वे लोग धूर्त्त होते हुए भी बुद्धिमान थे। लुटेरे होते हुए भी राजनीतिज्ञ थे। वे अपने देश के लिए कुछ कर दिखाने को इस देश में आये थे। उन्होंने समझ लिया कि इस देश में धूर्त्तता और बुद्धि के बल से जितना लाभ उठाया जा सकता है, उतना तलवार के बल से नहीं उठाया जा सकता। हालाँ कि तलवार का बल भी रहना बहुत आवश्यक है। इसलिए भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी और ब्रिटिश साम्राज्यवाद का इतिहास धूर्त्तता और बुद्धिवाद का इतिहास है, तलवारवाद का नहीं। तलवारवाद में तलवार का सहारा ही सबसे प्रधान होता है। उसमें छल कपट नहीं होता, जैसा कि मुसलमानी साम्राज्य की स्थापना के समय देखा गया। मगर बुद्धिवाद में तलवार की अपेक्षा छल, कपट और राजनीति की महत्ता अधिक रहती है यही चीज अंग्रेजी साम्राज्यवाद की जड़ में प्रधान थी।

सिराजुद्दौला की ५०,००० सेना के सामने अंग्रेजों की छोटी-सी सेना और मीरकासिम की ४०,००० सेना के सामने २००० अंगरेजी फौज की विजय, तलवारवाद की नहीं प्रत्युत बुद्धिवाद की विजय थी।

इसी बुद्धिवाद के प्रकाश में कम्पनी के लोगों ने यह भी सोचा कि राजा, नवाबों और बड़े लोगों के साथ चाहे जितने छलछिद्र, षड्यंत्र और जालसाजी की जाय तो कोई हर्ज नहीं मगर साधारण जनता को जहाँ तक बने इस में न घसीटा जाय। इसलिए जहाँ भी उनका वर्चस्व हुआ उन्होंने जनता की शान्ति, सुरक्षा और व्यवस्था की तरफ सबसे पहले ध्यान दिया। मराठा और मुसलमान नवाबों के अत्याचारों से प्रतिदिन त्रास पाने वाली जनता ने कम्पनी के शासन में शांति और सुव्यवस्था के दर्शन किये।

राजाओं के बीच तथा अंग्रेजों के बीच प्रतिदिन युद्ध चलते रहने पर भी अंगरेजी अमलदारी की जनता के ऊपर उसका असर कम होता था। इन कारणों से साधारण जनता देशी शासकों की अपेक्षा अंगरेजी-शासन की ओर आकर्षित होने लगी थी।

थोड़ीसी शान्ति स्थापित होते ही अंगरेजी राज्य ने सामाजिक सुधार और शिक्षा सम्बन्धी प्रश्नों को भी हाथ में ले लिया। इसीलिए उस समय के सबसे बड़े बंगाल के नेता राजा राममोहन राय ने जो यह कहा था कि—"अंगरेजी राज्य भारत को ईश्वर की देन है" तो उनका यह कहना निराधार नहीं था, समय की परिस्थिति पर आधारित था।

अंगरेजी सत्ता ने ही इस देश से बलात्कार सती-प्रथा के समान अमानुषिक प्रथा को उठाया, अंगरेजी सत्ता ने हो देश में डाकुओं की लूटपाट, पिण्डारियों के आक्रमण और ठगों के उपद्रवों को शान्त करके जनता को राहत पहुँचाई। इसी सत्ता ने सर 'विलियम जोन्स' और 'मेकाले' के समान इतिहासकार तथा भाषाशास्त्री और राक्सबर्ग के समान बनस्पति-शास्त्री के द्वारा इस देश के इतिहास, साहित्य और बनस्पतियों की खोज करवाने का काम प्रारम्भ किया। इससे यदि जनता को सन्तोष हो और उसके पीड़ित मन को कुछ अश्वासन मिले तो इसमें कोई आश्चर्य्य नहीं है।

इसलिए यदि भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के मूल कारणों को खोजना हो तो उसके मूलसूत्र अंगरेज-जाति के इतिहास में कम और पथ-भ्रष्ट उन राजाओं के इतिहास में अधिक मिलेंगे, जिन्होंने इस देश में अराजकता और अव्यवस्था का एक भीषण रूप बना रक्खा था और सारी जनता को त्रसित कर रक्खा था।

मगर कम्पनी के इतिहास में यह बात साफ नजर आती है कि किस प्रकार बुद्धिवादी क्षेत्र की एक जाति धन और शासन के लिए, इन्सानियत के निम्न से निम्न क्षेत्र में उतरने को तैयार हो जाती है। छल, कपट, दगाबाजी, जालसाजी इन सब चीजों का इन बुद्धिवादियों ने मानों शत प्रतिशत ठेका ले रखा था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी का इतिहास शुरू से आखिर तक छल, कपट, दगाबाजी और जालसाजी का ऐसा इतिहास है जो शायद सारे मानव-इतिहास में बेजोड़ है।

ऐसा इतिहास उसी क्षेत्र में सफल हो सकता है जिस क्षेत्र में मानवता का नाश हो गया हो, नैतिकता का

दीवाला निकल गया हो और भाग्य से ऐसा ही क्षेत्र इस कम्पनी के हाथ में आया। अगर भारतीय राजाओं में किसी भी अंश में देश का प्रेम होता तो आज ईस्ट इण्डिया कम्पनी का इतिहास भी दूसरी ही तरह लिखा जाता।

ईस्ट इण्डिया कॉटन एसोसिएशन

बम्बई में रूई के व्यापार का नियमन करनेवाली एक प्रभावशाली संस्था जिसकी स्थापना सन् १६२२ में हुई।

समग्र एशिया में बम्बई रूई के व्यापार का सबसे बड़ा केन्द्र है। रूई के आयात-निर्यात और औद्योगिक खपत सभी दृष्टियों से बम्बई एक प्रमुख स्थान है।

'ईस्ट इण्डिया कॉटन एसोसिएशन' रूई के हाजिर एवं वायदे के सारे व्यवसाय का नियमन, संचालन और व्यवस्था करती है।

एसोसिएशन की स्थापना के पहले बम्बई में रूई का व्यापार बहुत ही अव्यवस्थित रूप से चलता था। आये दिन ख्याले और कबाड़े होते रहते थे। इस अव्यवस्था को मिटाने के लिए सरकार ने स्पेशल बिल पास करके सन् १६२२ में इस संस्था की स्थापना करवाई। तब से अभी तक यह संस्था रूई के व्यापार का सफलता के साथ नियंत्रण कर रही है।

ईस्ट इंडिया कॉटन एसोसिएशन का संचालन बोर्ड ऑफ डॉयरेक्टर्स करता है। इस बोर्ड में (१) मिल मालिक (२) खरीददार वर्ग (३) विक्रेता वर्ग और (४) दलाल वर्ग के प्रतिनिधि रहते हैं। इण्डियन सेण्ट्रल कॉटन कमेटी और भारत-सरकार द्वारा नियुक्त प्रतिनिधि भी बोर्ड में रहते हैं। प्रेसिडेण्ट और वाइस प्रेसिडेण्ड सहित कुल डायरेक्टर्स की संख्या २४ होती है।

इस संस्था को सबसे पहले सर पुरुषोत्तम दास ठाकुर दास के समान अनुभवी और योग्य प्रेसिडेण्ट को प्राप्त करने का गौरव प्राप्त है। इनके तत्वावधान में इस संस्था को अपना विकास करने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ था। इस समय (१६६३) में इसके अध्यक्ष प्रसिद्ध उद्योगपति श्री मदनमोहन रुइया हैं।

बीस हजार रुपया डिपाजिट करके कार्ड लेने वाले व्यवसायी इसके प्रामाणिक सदस्य बनते हैं। ऐसे सदस्यों की संख्या ३१ अगस्त सन् १६६२ को ५४१ थी।

एसोसिएशन की ओर से एक 'क्लीयरिंग हाउस' बना हुआ है, जिसका प्रमुख काम मेम्बरों के परस्पर किये गये सौदों के नफे-नुकसान का भुगतान कराने का रहता है। पहले रूई के व्यापार में क्लीयरिंग की प्रथा नहीं थी। बारह-बारह महीने तक सौदे चलते रहते थे और उनका भुगतान वायदे के खतम होने पर ही होता था। यह प्रथा बड़ी दोषपूर्ण थी और व्यापारी उसका अनुचित लाभ उठाते थे। इस अन्धा-धुन्धी पूर्ण प्रथा को रोकने के लिए क्लीयरिंग की प्रथा प्रारम्भ की गई।

क्लियरिंग प्रथा के अनुसार हर पन्द्रहवें दिन एक भाव निश्चित करके नफे नुकसान की भुगतान कर दी जाती थी। १ सितम्बर १६४० से यह अवधि कम करके एक सप्ताह की कर दी गई। अब हर शुक्रवार को क्लीयरींग के भाव निश्चित होकर मंगलवार तक नफे-नुकसान की भुगतान हो जाती है।

हाजिर रूई के व्यापार का संचालन तो यह संस्था करती ही है मगर वायदे के व्यापार में क्रेडिट और भुगतान का जो स्टेण्डर्ड इस एसोसिएशन ने कायम किया है वह दूसरे बाजारों में कम ही देखने को मिलता है। कितनी ही घटा-बढ़ी हो, आसमानी-सुलतानी कुछ भी कारण बने, लाखों करोड़ों का नफा-नुकसान हो, फिर भी बाजार अपनी चाल पर नियमित रूप से चलता रहता है।

हाजिर का व्यापार शिवरी में होता है, जहाँ १६ लाख रुपये की लागत से एसोसिएशन की विशाल बिल्डिंग बनी हुई है जिसमें बड़े-बड़े गोडा-उन और ट्रेडिंग हाल बने हुए हैं।

वायदे के व्यापार के लिए सन् १६३८ में एसोसिएशन ने ३८ लाख रुपये की लागत से एक भव्य और विशाल बिल्डिंग कालबादेवी रोड पर बनाई है जो एशिया की दर्शनीय इमारतों में से एक है।

ईस्टर

ईसा मसीह के स्वर्गारोहण की स्मृति में मनाया जाने वाला ईसाई-समाज का एक सुप्रसिद्ध त्यौहार, जो अप्रैल मास में आता है।

ईस्टर का यह त्योहार ईसाई, ग्रीक-रोमन और यहूदी इन तीनों का एक विशिष्ट त्यौहार है, जो वसन्त ऋतु के प्रारम्भ में पड़ता है। जिस प्रकार हिन्दू लोग वसन्त-ऋतु के त्यौहार होली को बड़ी धूम-धाम, राग-रंग और मौज-मस्ती के साथ मनाते हैं, उसी प्रकार ईसाई लोग भी इस त्यौहार को बड़ी मौज-मस्ती से मनाते हैं। जिस प्रकार होली के राग-रंग में मनुष्य को बेवकूफ बनाने की प्रथा है, उसी प्रकार इन लोगों में अप्रैल में 'एप्रिल फूल' बनाने की प्रथा है।

ईसाइयों की परम्परा के अनुसार ईसा मसीह सूली पर चढ़ा देने पर भी मरकर जी उठे थे। उनका यह पुनर्जीवन उसी समय हुआ था, जिस समय यहूदी इस त्यौहार के दिन 'जेरूसलेम' में अपना पेसाख मना रहे थे। इसी कारण 'पेसाख' ईस्टर शब्द का पर्यायवाची बन गया है और पूर्व-पश्चिम के समस्त ईसाई परिवार ईस्टर का यह त्यौहार बड़े उत्साह से मनाते हैं और इसका महत्व भी 'क्रिसमिस' के समान ही माना जाता है।

ग्रीक लोग इस त्यौहार को २१ मार्च को मनाया करते थे। यहूदी लोग अपने साल के प्रथम महीने 'निसान' में इसे मनाते हैं। ये अपने त्यौहार को पेसाख कहते हैं।

ईसाप

यूनान का संसार-प्रसिद्ध कहानीकार, जिसकी कहानियाँ सारे संसार में प्रत्येक वर्ग, प्रत्येक काल और प्रत्येक देश में बड़े चाव से पढ़ी जाती हैं। ईसाप के सम्बन्ध में निम्नलिखित किंवदन्ती प्रचलित है—

ईसा से करीब छः सौ वर्ष पहले यूनान के एक गुलाम घराने में 'ईसाप' का जन्म हुआ। उस समय यूनान में गुलामों की स्थिति अत्यन्त बदतर थी। उन लोगों को मनुष्य न समझकर पशु समझा जाता था और पशुओं की बिक्री के लिए जैसे हाट और बाजार लगा करते हैं, उसी प्रकार गुलामों की खरीद-बिक्री के लिए भी वहाँ पर हाट और बाजार लगा करते थे।

गुलाम होने के साथ ही ईसाप में एक बुराई यह भी थी कि वह अत्यन्त बदसूरत था। इसलिए सब उसे बड़ी घृणा और उपेक्षा की दृष्टि से देखा करते थे।

एक बार गुलामों का एक व्यापारी कई गुलामों के साथ ईसाप को भी बेचने के लिए समोस के बाजार में लाया। उसके सब गुलाम बिक गये मगर बदसूरती और दुर्बलता के कारण ईसाप को किसी ने नहीं खरीदा।

संयोगवश इसी समय यूनान का प्रसिद्ध दार्शनिक 'जान्थुस' भी एक गुलाम की तलाश में वहाँ आ गया। ईसाप की बदसूरती के बावजूद उसकी बात करने की क्षमता को देखकर उसने उसे खरीद लिया।

कुछ ही दिनों में ईसाप ने अपने बुद्धि-कौशल से जान्थुस और उसकी पत्नी की कृपा प्राप्त कर ली और वहाँ आराम से रहने लगा। एक बार जान्थुस को संकेताक्षरों में लिखा हुआ एक गोपनीय, किन्तु महत्वपूर्ण कागज मिला मगर वह उसका मतलब नहीं समझ सका। ईसाप ने अपने को गुलामी से मुक्त करने की शर्त करके जान्थुस को उस कागज का मतलब समझा दिया, जिससे जान्थुस को एक बड़ा खजाना प्राप्त हो गया। फिर भी उसने ईसाप को गुलामी से मुक्त नहीं किया।

एक बार समोस के राजा के दरबार के आसपास एक सफेद चील ने आकर कई चक्कर लगाए और फिर अपनी चोंच में दबाई हुई एक अँगूठी एक गुलाम की गोद में गिराकर वह उड़ गई। इस घटना को एक बड़ा अपशकुन समझ राजा और दरबारी बहुत घबड़ा गये। उस समय राज्य में सबसे समझदार व्यक्ति जान्थुस समझा जाता था। राजा ने उसे बुलाकर उस घटना का मतलब समझाने को कहा और मतलब न बतलाने पर प्राणदण्ड देने की धमकी दी।

जान्थुस ने घबराकर ईसाप से सारी बात कही। ईसाप ने उसे कहा—"घबराओ मत, मुझे राजदरबार में ले चलो, मैं वहीं पर इसका मतलब बतला दूँगा।"

जान्थुस उसे राज दरबार में ले गया। ईसाप ने सबसे पहले अपने आपको गुलामी से मुक्त करने को कहा और उसके बाद में उस घटना का अर्थ बतलाने का वादा किया। राजा ने उसे गुलामी से मुक्त कर दिया। तब उसने बतलाया कि "दरबार के ऊपर उड़ती हुई चील का आशय यह है कि तुम्हारे राज्य पर कोई बड़े राजा का आक्रमण होने वाला है और गुलाम की गोद में अंगूठी डालने का आशय यह है कि अगर तुमने सावधानी नहीं रक्खी तो सब गुलाम हो जाओगे।"

कुछ ही दिनों के पश्चात् लीडिया के राजा क्रूसस ने समोस पर आक्रमण करने की घोषणा कर दी। इस विपत्ति से बचने के लिए समोस के राजा ने ईसाप को ही अपना प्रतिनिधि बनाकर लीडिया के दरबार में संधि के लिये भेजा। ईसाप ने अपनी चतुराईपूर्ण बातों से राजा को मोहित कर लिया। जिसके परिणामस्वरूप उसने समोस से सन्धि कर ली।

समोस लौटने पर "ईसाप" का राजदरबार में भारी स्वागत हुआ तथा उसकी एक मूर्त्ति बनाकर दरबार में लगाई गई।

मगर ईसाप अपनी खरी और स्पष्ट विचारधारा के कारण वहाँ लोकप्रिय न रह सका। बहुत से दरबारी उसके दुश्मन हो गये और उन्होंने राजमहल की एक मूल्यवान सुराही की चोरी का आरोप लगाकर ईसाप को राज-दरबार में पेश कर दिया और उसके खिलाफ इतने मजबूत प्रमाण पेश किये कि राजा भी उसकी रक्षा नहीं कर सका और उसे पहाड़ पर से ढकेल कर मार डालने की सजा दी। इस प्रकार संसार के इस महान् कहानीकार का करुण अन्त हुआ।

ईसाप की कहानियाँ छोटी-छोटी मगर अत्यन्त बुद्धिमानीपूर्ण और सारगर्भित होती हैं। सारे संसार की भाषाओं में उनके अनुवाद हो चुके हैं और सब दूर वे बड़े चाव से पढ़ी जाती हैं। इन कहानियों के दो संग्रह फ्रांस और जर्मनी में मूल ग्रीक रूप में प्रकाशित हुए हैं। इनमें से पेरिस से प्रकाशित एमिली शाम्ब्री संस्करण में ३५८ कहानियाँ हैं और टायब्नर की ग्रीक ग्रन्थमाला से प्रकाशित संस्करण में ४२६ कहानियों का संग्रह है।

ईसा मसीह

संसार के सुप्रसिद्ध धर्म नेता 'जीसुफ क्राइस्ट' जो ईसाई धर्म या 'क्रिश्चियानिटी' के जन्मदाता थे। जिन्होंने मनुष्य की आसुरी और राक्षसी प्रवृत्तियों के खिलाफ जोरदार आवाज उठाकर मानवता और सदाचार के प्रति सारे संसार का ध्यान आकृष्ट किया और इसी महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपने जीवन का बलिदान कर दिया था।

ईसा मसीह की माता मरियम गैलीलिया प्रान्त के नाजरेथ ग्राम की रहने वाली थी। मरियम की सगाई दाऊद वंश के युसूफ नामक व्यक्ति से हुई थी। विवाह के पहले कुमारी अवस्था में ही मरियम ईश्वरीय प्रभाव से गर्भवती हो गई थी फिर भी ईश्वरीय संकेत पाकर युसूफ ने मरियम को पत्नी रूप से ग्रहण किया। इसके बाद युसूफ यहूदिया प्रान्त के बेथेलहेम ग्राम में जाकर बस गये वहीं पर ईस्वी सन् पूर्व ४ में महात्मा ईसा का जन्म हुआ।

उनके माता-पिता यहूदी थे इसलिए उनका धर्म भी यहूदी था। यहूदी धर्म की कट्टरता, धर्माधिकारियों का स्वार्थपूर्ण आचरण तथा ईश्वर को सन्तुष्ट करने के लिए पशुओं का बलिदान आदि बातें ईसा को अच्छी नहीं लगती थीं और वे धर्म के सम्बन्ध में हमेशा विचार किया करते थे।

जब ईसा ३० वर्ष के हुए तो उन्हें एक इलहाम (ईश्वरीय प्रेरणा) हुआ। उन्हें एक प्रकाश नजर आने लगा और उन्हें अनुभव होने लगा कि —"मुझे ईश्वर ने सच्चे धर्म की स्थापना करने के लिए अपना दूत बनाकर भेजा है, जिससे मै सच्चे धर्म की स्थापना कर सकूँ।"

तब उन्होंने ई० सन् २७ में उस समय के धर्म गुरु 'बैप्टिस्ट जोहन' के पास जर्दन नदी के तीर पर जाकर धर्म की दीक्षा ली।

उसके पश्चात् उन्होंने जनता के सामने अपनी आवाज पहुँचाना प्रारम्भ की। वे कहते थे कि—"ईश्वर एक है। वह सब प्राणियों को प्रेम करता है। जो व्यक्ति जैसे पाप-पुण्य करता है, उसी के अनुसार वह उनका न्याय करता है। सब लोग उसी की सन्तान हैं। इसलिये सबको प्रेम पूर्वक हिल-मिल कर रहना चाहिये। दुखी लोगों

की सहायता करनी चाहिये। अपना आचरण शुद्ध और पवित्र रखना चाहिये। अपने से यदि कोई पाप या दुष्कर्म हो जाय तो उसके लिए पश्चाताप करना चाहिये और फिर ऐसा पापाचार न हो इसका ध्यान रखना चाहिये। मूर्तिपूजा मनुष्य के पाखण्ड का एक नमूना है। इसमें बिल्कुल विश्वास न करना चाहिये। इत्यादि।

इसके बाद महात्मा ईसा 'जेरूसलेम' गये और वहाँ जनता को उपदेश देने लगे। उनके उपदेशों को सुनकर कितने ही यहूदी उनके शिष्य हो गये। इनमें १२ शिष्य जिनको अपोसल (Apostle) कहते हैं, प्रधान थे।

ईसा की इस बढ़ती हुई महत्ता को देखकर प्राचीन यहूदी धर्म प्रचारकों के पैरों के तले से जमीन खिसकने लगी। उन्होंने 'कायापास' (Caiaphas) नामक व्यक्ति के नेतृत्व में महात्मा ईसा को समाप्त कर देने का संकल्प किया और क्रोधित होकर महात्मा ईसा के लिए पाखंडी और नास्तिक होने का 'फतवा' दे दिया।

उस समय पेलिस्टाइन 'रोमन-साम्राज्य' का एक अङ्ग था। रोमन-साम्राज्य उस समय मूर्तिपूजक धर्म का अनुयायी था। रोम साम्राज्य की तरफ से वहाँ का गवर्नर 'पांटियस पाइलेट' नामक व्यक्ति था। यहूदी-धर्म-प्रचारकों ने रोमन अधिकारियों के सामने नास्तिकता के मामले में ईसा को पेश किया।

मजहबी मामलों में, उस समय रोमन लोग ज्यादा असहनशील नहीं थे। इस साम्राज्य में सब तरह के मजहबों को बर्दाश्त किया जाता था। इसलिए जब रोमन गवर्नर पांटियस पाइलट के सामने ईसा की नास्तिकता का मामला पेश हुआ तो इस मामले के मजहबी पहलू पर ध्यान न देकर उसने ईसा को छोड़ दिया। तब दूसरी बार इन धर्माधिकारियों ने ईसा पर एक राजनैतिक विद्रोही और एक समाज विद्रोही का जुर्म लगाकर मुकदमा चलाया और इस आरोप में उन्हें सूली (क्रास) पर लटकाने की सजा दी गई और 'गोलगोथा' नामक स्थान पर इनको सूली पर लटका दिया गया। इस कठिन समय में उनके बहुत से शिष्यों ने भी उन्हें छोड़ दिया और इस बात से स्पष्ट इन्कार कर दिया कि वे उनके गुरू थे।

सूली पर लटकते समय भी महात्मा ईसा ने इन अज्ञानियों के लिए ईश्वर से क्षमा माँगते हुए कहा था कि—"हे ईश्वर! इन अज्ञानियों को क्षमा करना। यह स्वयं नहीं जानते कि यह क्या करने जा रहे हैं!" 'बाइबिल' के अन्दर जिस हृदयग्राही भाषा में ईसा की मृत्यु की करुण कहानी अंकित की गई है, उसे पढ़कर पढ़ने वाले का दिल पसीज जाता है।

मगर ईसा के अन्त से ईसाई-धर्म का अन्त नहीं हुआ। वह हवा की ठंडी लहर की तरह समस्त मानव-समाज में अपने दिव्य सन्देश का प्रचार करता गया और करोड़ों लोगों के मन में उसने ईसा के नाम के प्रति अत्यन्त श्रद्धा पैदा कर दी।

ईसाई धर्म

महात्मा ईसा की मृत्यु के पश्चात् उनके अपोसलों (शिष्यों) ने ईसाई-धर्म का प्रचार करना प्रारम्भ किया। 'सेंट पाल' नामक एक सुप्रसिद्ध सन्त ने ईसाई धर्म के सिद्धान्तों का खूब प्रचार किया। वह एक योग्य अनुभवी और विद्वान पुरुष था। उसने ईसाई धर्म की जड़ों को मजबूती से जमा दिया। उसकी बात को सुनकर सैकड़ों लोग ईसाई धर्म में दीक्षित हुए।

सबसे पहले जेरूसलेम नगर में ईसाई समिति की स्थापना हुई और यहाँ पर सबसे पहले ईसाई गिर्जे का निर्माण हुआ। इसीलिए ईसाई जेरूसलेम को अपने समाज की जननी और सबसे बड़ा तीर्थस्थान समझते हैं।

यहूदियों और ईसाइयों का संघर्ष अब भी जारी था और यहूदी लोग नवोदित ईसाई धर्म पर मनमाने अत्याचार कर रहे थे। अनेक कष्ट और अनेक दुःख सहन करके ईसा के प्रधान शिष्यों ने जेरूसलेम, एंटीओक, स्मर्ना, एथेंस, रोम और ऐलेक्झेंड्रिया नगर में गिर्जों का निर्माण करवाया।

लेकिन जैसे-जैसे समाज में ईसाइयों का प्रभाव बढ़ने लगा, वे दूसरे धर्मों के कट्टर विरोधी हो गये। उन्होंने दूसरे धर्मों की निन्दा करना भी शुरू कर दिया। रोमन सम्राट के आगे सिर झुकाने से भी उन्होंने इन्कार कर

दिया। इससे रोमन साम्राज्य और ईसाई धर्म के बीच में एक प्रकार का संघर्ष चालू हो गया जिसके परिणाम स्वरूप ईसाई लोग सताये जाने लगे। उनकी जायदादें जप्त की जाने लगीं और उन्हें शेरों के पींजड़े में छोड़ा जाने लगा।

सेंट पीटर

महात्मा ईसा के शिष्यों में सेंटपीटर एक अत्यन्त प्रसिद्ध सन्त हो गये हैं। ईसाई धर्म की जड़ों को मजबूत करने में इनका अत्यन्त महत्वपूर्ण योग था। इन्हीं की स्मृति में रोम के अन्दर ईसाइयों का संसार प्रसिद्ध गिर्जाघर बना हुआ है। जहाँ पर ईसाई रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय के धर्मगुरुओं (पोप) की प्रसिद्ध गद्दी स्थापित की गयी।

ईसा मसीह के भक्तों में पीटर का स्थान श्रेष्ठ था। इंजील में ईसामसीह ने स्वयं कहा है कि "हे पीटर सुनो, तुम पीटर हो। तुम वह चट्टान हो, तुम वह अचल पर्वत हो जिस पर हम अपने चर्च की स्थापना करेंगे। नरक का भय इस चर्च को भयभीत नहीं कर सकता। मैं तुम्हें स्वर्ग की कुंजी देता हूँ। तुम जिन्हें संसार में मुक्त करोगे वे स्वर्ग में भी मुक्त रहेंगे और तुम जिन्हें संसार में बन्धन में डालोगे तो वे परलोक में भी बन्दी रहेंगे।"

सेंट अगस्टाइन

आगे जाकर ईसाई धर्म के इतिहास में प्रमुख रूप में सेंट अगस्टाइन का नाम आता है, जो एक महान विचारक, विद्वान, सन्त और रोमन चर्च का पादिर था। इसका जन्म सन् ३५४ में हुआ।

जिस समय सेंट अगस्टाइन कार्य-क्षेत्र में आया, उस समय रोम साम्राज्य एक भयंकर संक्रमण काल में से गुजर रहा था। हूणों के प्रबल आक्रमण से उस समय यह संसार प्रसिद्ध साम्राज्य तहस-नहस हो रहा था।

रोम में उस समय ईसाई धर्म का प्रवेश हुए बहुत दिन नहीं बीते थे। वहाँ के पुरातन मूर्ति पूजक लोग रोम के इस महाविनाश को देखकर इसकी सारी जिम्मेदारी ईसाई धर्म पर थोपने लगे। उनके मत से पुरानी धर्म-परम्परा को छोड़कर इस नवीन धर्म को अपनाने के कारण ही ईश्वर ने रोम को इस सर्वनाश की भट्टी में झोंक दिया। इस ईश्वरीय विपत्ति के कारण ईसाई-धर्म के बारे में जन-समाज के अन्तर्गत एक विद्रोह की भावना बलवती होती जा रही थी।

इसके अतिरिक्त उस समय ईसाई चर्च की आन्तरिक स्थिति भी बहुत खराब हो रही थी। आलरियस (Alrius) और अथानासियस (Athanasius) के पारस्परिक गम्भीर मतभेदोंने ईसाई चर्च की स्थिति को कमजोर बना रक्खा था।

ऐसी परिस्थितियों पर नियंत्रण करने के लिये सेण्ट अगस्टाइन ने बड़े साहस और दृढ़ता से काम लिया। उसने सिटी ऑफगॉड (City of God) नामक महान् ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ का उस समय रोम में बहुत प्रचार हुआ और उसके अध्ययन ने पुराने विश्वासों की दीवारों को ढहा दिया। उसने इतिहास-दर्शन (Philosophy of Histary) पर भी एक नवीन विचार पद्धति से विचार किया सिद्ध किया कि मानव-इतिहास मनुष्य की शैतान प्रवृत्ति और दैवी प्रकृति के बीच होने वाले निरन्तर संघर्ष की कहानी है। मनुष्य की शैतान प्रवृत्ति अर्थात् सांसारिक राज्य अस्थायी और नाशवान् है जब कि दैवी प्रवृत्ति या ईश्वरीय राज्य स्थायी और अमर है।

अगस्टाइन का ईश्वरीय राज्य एक विश्वव्यापी राज्य है। जिसके अन्दर जाति, वर्ग, रंग तथा राज्य के भेद की चिंता किये बिना प्रत्येक मानव केवल मानव होने के नाते प्रवेश कर सकता है। जब मनुष्य के ऊपर प्रभु की दया बरसती है तभी उसमें इस महान् राज्य का सदस्य बनने की प्रेरणा उत्पन्न होती है। (विशेष वर्णन अगस्टाइन नाम के साथ पहले भाग में देखें)

कहना न होगा कि सेण्ट अगस्टाइन की विचार धारा का तत्कालीन यूरोपीय समाज पर और आगे आने वाले विचारकों पर काफी प्रभाव पड़ा। उसके दृढ़ व्यक्तित्व और कुशल मस्तिष्क ने ईसाई धर्म की जड़ों को मजबूत करने में बड़ा सहयोग दिया।

इन्हीं दिनों रोम के प्रसिद्ध सम्राट् "कान्स्टेण्टाइन" ने भी ईसाई धर्म से प्रभावित हो इस धर्म की दीक्षा ले ली और तभी से यह धर्म रोम का राज्य धर्म बन गया

रोमन चर्च की उन्नति

अगस्टाइन के बाद ईसाई धर्म तेजी के साथ बढ़ने

लगा और उसके साथ ही रोमन चर्च की शक्ति भी तेजी के साथ बढ़ने लगी।

मगर साथ ही रोमन साम्राज्य की स्थिति बाहर से होने वाले आक्रमणों के कारण छिन्न भिन्न होने लगी और चारों ओर अराजकता फैलने लगी। ऐसी स्थिति में चर्च के के अधिकारियों ने निर्णय किया कि ऐसी अशान्त परिस्थिति में धर्म-राष्ट्र की अब अलग स्थापना की जाना चाहिए जिसके क्षेत्र में बाहर की कोई भी राजशक्ति बाधा न डाल सके।

रोमनचर्च के विशप ने (जो बाद में पोप प्रथम गेलेशियस नाम से प्रसिद्ध हुआ) धर्म और राज्य का संबंध इस प्रकार बतलाया है "ईश्वर ने संसार में अधिकार की दो तलवारें दी हैं। एक राज्य शक्ति के हाथ में, दूसरी धर्म शक्ति के हाथ में। धर्म शक्ति का अधिकार राज शक्ति के अधिकार से अधिक है। क्योंकि धर्म गुरु ईश्वर के सामने सम्राटों के कार्य्यों का भी उत्तरदायी है। जब धर्म और राज्य में सैद्धान्तिक झगड़ा होतो धर्म का पक्ष ही प्रमाणभूत माना जावेगा।"

अब सवाल यह पैदा हुआ कि चर्च अपनी धर्म संस्था के ही कार्य्य करे या राज्य के कार्य्यों में भी वह हस्तक्षेप करे। इस सवाल का निर्णय उस समय की परिस्थिति में करना बड़ा कठिन था। क्योंकि रोमन सम्राज्य के छिन्न भिन्न हो जाने के पश्चात् किसी नवीन राष्ट्र का निर्माण नहीं हो पाया था। छोटे-छोटे राजा और सरदार आपस में लड़ते थे और चारों ओर अराजकता-सी छाई हुई थी। न शान्ति स्थापना के लिए व्यवस्थित न्यायालय थे न पढ़ने के लिए स्कूल।

ऐसे समय में यूरोपीय जनता का एकमात्र आश्रय चर्च था जिसने धर्म के नाम से थोड़ी बहुत मान मर्यादा बना रक्खी थी। इस कारण कुछ भय दिखाकर, कुछ दण्ड देकर, इहलोक और परलोक दोनों के नाम से किसी-किसी तरह धर्माध्यक्ष लोग लोगों को लड़ने से रोकते थे। एक दूसरे की प्रतिज्ञा का पालन कराते थे। विवाह आदि के कार्य्यों में लोगों को नीति बद्ध रखते थे। विधवा और अनाथों की रक्षा करते थे, शिक्षा हीनों को शिक्षा और आतुर जनों को भोजन देते थे। इन्हीं कारणों से जनता चर्च का बड़ा बड़ा सम्मान करती थी। इस प्रकार ईसा की पाँचवी शताब्दी तक चर्च ने एक विशुद्ध शक्ति शाली धर्म संस्था के रूप में जनता की सेवा की और ईसाई धर्म का विस्तार किया।

मगर जब सन् ४४४ में लियो नामक विशप रोमन चर्च की गद्दी पर बैठे, तब से चर्च के अन्दर राजनीति ने प्रवेश करना प्रारम्भ किया और तभी से रोमन चर्च की शक्ति और वैभव एक साथ बढ़ने लगे। सन् ४४५ में रोम के सम्राट तृतीय वेलेण्टीनियन ने यह आज्ञा दी कि "रोम का चर्च सर्वोपरि समझा जाय और पश्चिमीय यूरोप के सारे विशप रोम की आज्ञाओं का पालन करें।

ग्रेगरी महान्

सन् ५९० में रोम के धर्म पीठ पर ग्रेगरी महान् बैठे। ग्रेगरी महान् एक धनी पिता के पुत्र थे। मगर इनकी वृत्तियाँ त्यागपूर्ण थीं गद्दी पर आते ही एकाएक इनके मन में विचार आया कि चर्च के इतने धन तथा अधिकार से हम अभिमानी हो जावेंगे। यह विचार आते ही इन्होंने रोमन चर्च के खजाने का सारा धन धर्मशालाओं के बनाने में लगा दिया।

जिस समय ग्रेगरी पोप बनाये गये, उस समय प्राचीन रोम का रूप बहुत बदल गया था। देवताओं के मन्दिरों के स्थान पर सब दूर गिरजे बन गये थे। सेण्टपाल और सेण्ट पीटर की समाधियाँ लोगों के लिए तीर्थस्थान बन गई थी। ग्रेगरी ने अपने लिए ईश्वर के दासानुदास की पदवी ग्रहण की।

ग्रेगरी महान् रोमन चर्च के इतिहास में बड़ा प्रसिद्ध पोप हुआ। एक तो यह बड़ा भारी लेखक था। दूसरे बड़ा निपुण नीतिज्ञ भी था। इसके जो लिखित पत्र इस समय पाये जाते हैं, उनसे इसकी दूरदर्शिता का पता चलता है। ग्रेगरी महान् को सदा इस बात की चिन्ता रहती थी कि सच्चरित्र पुरुष ही विशप (धर्मगुरु) बनाये जाँय।

ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए ग्रेगरी महान् ने देश-देशान्तरों में अपने उपदेशको को भेजा। इंग्लैंड, जर्मनी, फ्रांस आदि देशों में क्रिश्चियन धर्म को फैलाने

और सबको पोप के अधिकार में लेने के लिए उसने सफल प्रयत्न किया।

ग्रेगरी महान् सन्यासी था और सन्यासी के रूप में ही उसने इतनी बड़ी सफलता प्राप्त की।

इस समय ईसाई धर्म के प्रचार के लिए दो वर्ग एक साथ काम कर रहे थे। एक वर्ग सन्यासियों का था और दूसरा पादरियों का।

मध्ययुग में ईसाई-धर्म के सन्यासियों का प्रताप और प्रभाव बहुत बढ़ गया था। ईसाई धर्म के बड़े-बड़े नेता और विद्वान इन सन्यासियों में से ही निकले थे। बीड, बोनी फेस, अबिलार्ड, टॉमस एक्वीनास, रोजर बेकन, रूथर, इरास्मस इत्यादि सभी प्रतिभाशाली व्यक्ति सन्यासी थे। इन लोगों के रहने के लिए स्थान-स्थान पर बहुत सी धर्मशालाएँ बनी हुई थीं।

इन सन्यासियों का प्रभाव इस बात से बहुत अधिक पड़ा कि उन्होंने पुरानी लेटिन भाषा की पुस्तकों को जीवित रखा। लगभग १६ हजार लेखक इस कार्य में लगे हुए थे। इन्होंने पुस्तकें लिखकर और पुरानी पुस्तकों की लिपि बनाकर मृतप्राय भाषा को जीवित रखा।

ये सन्यासी लोग धर्मशालाओं में रहकर क्रिश्चियन-धर्म का प्रचार करते थे। ये लोग देश-देशान्तरों में घूमकर और धर्म का उपदेश देकर क्रिस्तानधर्म का प्रचार करते थे। आगे चलकर रोम के चर्च का जो इतना महत्व बढ़ा, वह इन्हीं लोगों की वजह से बढ़ा। इन्होंने ही जर्मन जातियों को भी क्रिस्तान बनाया।

ग्रेगरी महान के समय में ही उसने ४० सन्यासियों के एक दल को इंगलैण्ड में धर्म प्रचार के लिये भेजा। इन सन्यासियों का नेता आगस्टिन था। इसने इंगलैंड जाकर बड़ी सफलता के साथ वहाँ ईसाई धर्म का प्रचार किया।

सेंट बोनीफेस

दूसरे प्रसिद्ध सन्यासी सेंट 'बोनीफेस' थे जो जर्मन-जातियों में धर्म-प्रचार के लिए भेजे गये थे। बोनी-फेस पोप के अनन्य भक्त थे और इन्होंने पोप का अधिकार बढ़ाने में बड़ी सहायता दी।

उस समय समाज में जो भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय फैले थे, उन सब को एक करके बोनीफेस ने पोप के अधिकार में ले आये और कई स्थानों पर अपने धर्म पीठ स्थापित किये।

चर्च का राजनीति में प्रवेश

वैसे तो रोमन-चर्च का राजनीति में प्रभाव पहले से ही हो गया था, मगर इसका वास्तविक स्वरूप तब नजर आया जब सन् ८०० में जर्मनी का प्रसिद्ध राजा 'शार्लमेन' पोप तृतीय लीयो और उसके शत्रुओं के बीच में समझौता कराने के लिए रोम गया था। झगड़े का समझौता हो जाने पर पोप ने सेण्ट पीटर के गिर्जाघर में एक बड़ा भारी महोत्सव किया। इस उत्सव में जब शार्लमेन हाथ जोड़े खड़ा था, उसी समय पोप लीयो ने रोमन सम्राट का मुकुट उसके शिर पर रख दिया और चारों ओर से रोम-सम्राट की जय की ध्वनि होने लगी। इस प्रकार देखते-देखते पोप ने शार्लमेन को राजा से सम्राट् बना दिया।

इस घटना ने योरप के इतिहास पर बड़ा प्रभाव डाला और चर्च का राजनीति पर पूरा अधिकार हो गया।

मगर धर्म-संस्था के द्वारा राजसंस्था में इस प्रकार हस्तक्षेप करने के आगामी परिणाम अच्छे नहीं हुए। इसके परिणामस्वरूप कई सदियों तक धर्म संस्था और राज संस्था के बीच संघर्ष चलते रहे और धर्मसंस्था भी अपने कर्तव्य से विमुख हो राजसत्ता की बुराइयों से घिर गई। इसका पहला उदाहरण पोप ग्रेगरी सप्तम के समय में नजर आया।

पोप ग्रेगरी सप्तम

ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य में पोप ग्रेगरी सप्तम भी चर्च के इतिहास में एक प्रसिद्ध पोप हुआ। इसने अपने 'डिक्टेटस' नामक घोषणा-पत्र में बतलाया कि—"पोप के पद की समता नहीं है। वह संसार भर में एक ही विशप है, जो चाहे जिस विशप को निकालने और रखने का अधिकार रखता है। केवल पोप ही एक ऐसा व्यक्ति है, जिसके पैर तमाम राजे-महाराजे छूते हैं। वह बादशाह को गद्दी से उतार सकता है और उसकी बे-इन्साफी को रोक सकता है। रोमन-चर्च ने न तो कभी भूल की है और न कभी कर सकता है।" इत्यादि।

पोप के पद पर आते ही ग्रेगरी ने सारे यूरोप के देशों में अपने दूत भेजे, जिनके द्वारा राजाओं को कहलाया कि बुरे रास्तो को छोड़ दीजिये और मेरे अनुशासन को मानिये। उसने फ्रांस के राजा को कहला भेजा कि

साइमनी का कार्य छोड़ दो नहीं तो तुम राज्य से अलग कर दिये जाओगे और तुम्हारी प्रजा का सम्बन्ध तुमसे तोड़ दिया जायगा ।

उस समय जर्मनी का राजा हेनरी चतुर्थ था । उसके और पोप के बीच किसी मामले में कुछ झगड़ा हो गया, जिसमें उसने पोप की आज्ञाओं का उल्लंघन करना शुरू किया । तब ग्रेगरी ने सन् १७०५ में अपने तीन दूतों को पत्र देकर उसके पास भेजा और सूचना दी कि तुम्हारे अपराध ऐसे कठोर, दारुण तथा जघन्य हो गये हैं कि तुम्हें क्यों नहीं राज्य से निकाला जाय ?

इस सन्देश से गुस्से में आकर राजा हेनरी ने पोप को लिखा कि—"ईश्वर से प्राप्त इस राज्याधिकार के विरुद्ध आँख उठाते हुए तुझे जरा सी भी आशंका न हुई । तिसपर हमसे यह अधिकार छीन लेने की धमकी देता है, मानो यह राज्य तूने ही हमको दिया है । मैं हेनरी राजा होकर अपने तमाम विशपों के साथ तुझे यह आज्ञा देता हूँ कि तू अपने पद से उतर जा और सारी जाति का घृणा-पात्र बन ।"

इसके जवाब में ग्रेगरी ने तुरन्त बड़ी दृढ़ता के साथ जवाब दिया कि—"माननीय महात्मा पीटर ! आप के प्रतिनिधि के रूप में ईश्वर ने जो अधिकार मुझे दिया है उसके सहारे से, गिर्जों के यश और प्रतिष्ठा की रक्षा लिए मैं बादशाह हेनरी के पुत्र राजा हेनरी से जर्मनी और इटली के समस्त राज्यों का अधिकार छीनता हूँ, जो आप के गिर्जे के खिलाफ बड़ी उद्दण्डता से खड़ा हुआ है । मैं तमाम ईसाइयों को, जो इसके संसर्ग में हैं, इससे अलग करता हूँ और आज्ञा देता हूँ कि इसे कोई भी राजा न माने ।"

पोप का आदेश होते ही जर्मनी के राजा चौथे हेनरी का साथ सब लोगों ने छोड़ दिया और कह दिया कि जब तक वह पोप से सुलह न करले राजकार्यों में हाथ न लगावे ।

इसका फैसला करने के लिए पोप ग्रेगरी 'आसबर्ग' आये और 'कनोसा' के राजमहल में ठहरे । उनका आगमन सुनकर राजा हेनरी चतुर्थ महल के सामने हाथ जोड़कर विनीत भाव से खड़ा हुआ । वह नंगे पैर, मोटे कपड़े पहने हुए, तपस्वी के वेष में तीन दिन तक बराबर महल के फाटक पर चक्कर लगाता रहा । परन्तु इतने पर भी पोप ने उसे अपने पास नहीं बुलाया । चौथे दिन बड़ी सिफारिश के बाद उसे बुलाया गया । बहुत क्षमा-प्रार्थना करने के पश्चात् पोप ने हेनरी को क्षमा किया ।

इस घटना से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि मध्य युग में पश्चिमी यूरोप के अन्दर राजाओं के ऊपर धर्मगुरू पोप किस प्रकार हावी हो गये थे ।

इसी प्रकार की एक घटना पोप 'इन्नोसेंट' तृतीय के समय में घटी ।

पोप इन्नोसेंट तृतीय

पोप इन्नोसेंट तृतीय भी रोमन चर्च के इतिहास में बड़ा प्रभावशाली व्यक्ति हुआ । इसने भी गेल्फ वंश के 'ओटो ब्रांजविक' और 'होहेंस्टाफेन' वंश के 'फ्रेडरिक, द्वितीय के बीच के झगड़े में अपना कैसा पार्ट अदा किया और इंगलैंड के राजा 'जॉन' को किस प्रकार नीचा दिखाया, इसका वर्णन इसी भाग में इन्नोसेंट के प्रकरण में देखिये !

क्रूसेड का धर्मयुद्ध

ईसाई-धर्म के इतिहास में मध्ययुग की सबसे महत्वपूर्ण घटना 'क्रूसेड' की धर्म लड़ाइयाँ हैं, जो १२वीं और १३ वीं शताब्दी के बीच ईसाइयों और मुसलमानों में लगातार होती रहीं ।

महम्मद पैगम्बर के थोड़े दिन पश्चात् अरब लोगों ने सीरिया पर आक्रमण करके ईसाइयों के पवित्र तीर्थ 'जेरूसलेम' पर कब्जा कर लिया । फिर भी उन्होंने ईसाइयों की धार्मिक क्रियाओं के अन्दर और उनके वहाँ आने-जाने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया । ११वीं शताब्दी में जब सेलजुक तुर्कों ने इस स्थान पर कब्जा कर लिया तो उन्होंने यात्रियों को सताना भी शुरू किया । इस पर पूर्वी रोमन सम्राट 'अलेक्सीयस' ने इन लोगों का दमन करने के लिए रोमन-चर्च के पोप 'अर्बन द्वितीय' से सहायता माँगी । अर्बन द्वितीय ने सन् १०६५ में फ्रांस के क्लेमांट नामक स्थान पर एक सभा बुलाकर 'क्रूसेड' के धर्म युद्धों की घोषणा की ।

इसके पश्चात् धर्म योद्धा किस प्रकार 'क्रूसेड' की इन धर्म-लड़ाइयों में गये, उनकी कहानियाँ बड़ी विचित्रताओं

से भरी हुई हैं, जिनका वर्णन 'क्रूसेड' शब्द के अन्दर आगे के भाग में किया जायगा।

ईसाई धर्म-संस्था का विधान

ईसाई-धर्म-संस्था या रोमन-चर्च की शक्ति मध्य युग में आकर अर्थात् बारहवीं-तेरहवीं सदी में और भी व्यापक हो गई।

आज के जमाने में जिस प्रकार मनुष्य को राज्य-संस्था से किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध रखना पड़ता है उसी प्रकार उस युग में प्रत्येक मनुष्य का धर्म-संस्था के साथ अनिवार्य्य सम्बन्ध रहता था। यद्यपि कोई मनुष्य धर्म-संस्था में उत्पन्न नहीं होता था तथापि कार्यारंभ के प्रथम ही उसका बैप्टिस्मा (धर्म-दीक्षा) कर दिया जाता था। ईसाई धर्म समस्त पश्चिमी यूरोप का एक मात्र धर्म हो गया था और उसका विरोध करना परमेश्वर से विरोध करना समझा जाता था और ऐसे विरोधी को जीवित जला दिया जाता था।

मध्य युग की ईसाई धर्म-संस्थाएँ केवल अध्यात्मिक जीवन का विकास करने वाली धर्म संस्थाएँ ही नहीं रह गई थीं प्रत्युत राजकीय क्षेत्र में भी उनके अधिकार असीम रूप से बढ़े हुए थे। इनके पास अपने न्यायालय थे, अपने बन्दी-गृह थे। ये अपने आदेशों से राजा और सम्राटों को भी कायल कर सकती थीं।

पोप

पोप इन धर्म-संस्थाओं का सर्वशक्तिमान और सर्वेश्वर था। वह अपने को सम्पूर्ण आध्यात्मिक तथा सदाचार सम्बन्धी अधिकारों का अधिपति समझता था। धर्म की कोई भी संस्था चाहे वह कितनी ही बड़ी क्यों न हो, उसकी इच्छा के प्रतिकूल कोई भी नियम नहीं बना सकती थी क्योंकि उसके अनुमोदन के बिना कोई भी नियम प्रमाणित नहीं समझा जाता था।

पोप केवल मुख्य नियम निर्माता ही नहीं था किन्तु वह मुख्य शासक भी था। सम्पूर्ण पश्चिमीय यूरोप अन्ततोगत्वा केवल एक ही सर्वोच्च शासक के अधिकार में था और वह रोम का पोप था। कोई भी नवीन नियुक्त किया हुआ आर्क विशप पोप के आधिपत्य की शपथ उठाये और उससे "पालियम" (लायसेन्स) प्राप्त किये बिना अपने किसी अधिकार का उपयोग नहीं कर सकता था।

चर्च का प्रबन्ध और आश्रितों का भरण-पोषण करने के लिए पोप को बहुत बड़ी आमदनी की आवश्यकता पड़ती थी। इसके लिए धर्म-संस्था के कई प्रकार के टैक्स जनता पर लगे हुए थे। इन टैक्सों को और भक्त लोगों के द्वारा दी हुई भेंटों से चर्च को बेशुमार आमदनी होती थी।

आर्क विशप

ईसाई धर्म-संस्था में पोप के बाद धर्म-गुरुओं में दूसरा स्थान 'आर्क विशप' का होता था। आर्क विशप वे विशप कहलाते थे जो प्रान्त के समग्र विशपों पर अपना वर्चस्व रखते थे। वे लोग अपने प्रान्त के समस्त विशपों को प्रान्तीय सभा में बुलाते थे और विशप के द्वारा किये हुए फैसले पर अपील सुनते थे।

विशप

विशप ईसाई धर्म-संस्था का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग था। ये लोग "अपोसलों" के उत्तराधिकारी माने जाते थे और श्रद्धालु भक्त इनमें ईश्वरीय शक्ति होने का विश्वास करते थे। प्रत्येक विशप की अपनी-अपनी एक संस्था होती थी जिन्हें "कैथेड्रल" कहते थे।

नये पादरी नियुक्त करने और पुराने पादरियों को पदच्युत करने का अधिकार केवल विशप को ही था। वही केवल धर्म संस्थाओं का निर्माण और राजाओं का अभिषेक कर सकता था। विशप का अपना एक न्यायालय होता था जिसमें वह अनेक प्रकार के अभियोगों का निर्णय करता था।

राजा के सभासदों में उसका पद सबसे उत्कृष्ट माना जाता था। मतलब यह कि मध्य-युग की ईसाई धर्म-संस्थाओं में "विशपों" के अधिकार बहुत विस्तृत थे।

चर्च का सबसे छोटा अंग पेरिश कहलाता था और इसका अधिकारी "पादरी" होता था। जो पेरिश के गिरजों में प्रार्थना करवाता था और अपने अनुयायियों का बैप्टिस्मा, विवाह और अन्तिम संस्कार करवाता था।

पादरियों को बहुत से सांसारिक विषयों से अलग रक्खा जाता था। उच्च पद वाले विशप, पादरी, डीकन, आदि को विवाह करने की मनाई थी। वे इस प्रकार गृहस्थी के झगड़े तथा दूसरी चिन्ताओं से मुक्त रहते थे।

ईसाई धर्म में प्रवेश करते समय कुछ निश्चित संस्कार आवश्यक थे। यद्यपि चर्च का यह विश्वास था कि मनुष्य की समस्त संस्कार-पद्धतियाँ ईसा मसीह ने ही प्रचलित की हैं फिर भी बारहवीं शताब्दी के मध्य तक ईसाई संस्कार-विधि को लेखबद्ध रूप में एक निश्चित रूप नहीं मिला था।

सन् ११६४ में पीटर लम्बार्ड नामक एक धर्म-शिक्षक ने क्रिस्तान-संस्कार विधि का एक संक्षिप्त ग्रन्थ सेण्ट अगस्टाइन के लेखों के आधार पर तैय्यार किया।

इस ग्रन्थ के मतानुसार "संस्कार" शब्द में केवल सात विषयों का समावेश होता है (१), बौप्टिस्मा (दीक्षा), (२) अनुमति, (३) अनुलेप, (४) विवाह, (५) तप, (६) नियोग और (७) भगवद्भोग। इन्हीं संस्कारों से सब धर्म-कार्य प्रारम्भ हो कर वृद्धि पाते हैं और यदि नष्ट हो गये हैं तो फिरसे पैदा होते हैं। मुक्ति के लिए ये संस्कार अति अवश्यक हैं। इनके बिना मुक्ति नहीं हो सकती।

बैप्टिस्मा—ईसाई-धर्म का सबसे पहला और पवित्र संस्कार है। इसी संस्कार के द्वारा आदम को स्वर्ग से गिरने पर उसके पापों का नाश हुआ था। पवित्र तैल को तथा विलेपन को सुशीलता का परिचायक मानकर अनुमति संस्कार के समय लड़के तथा लड़कियों को मस्तक पर लेपन किया जाता है जिससे कि वे ईश्वर का नाम सदा स्मरण रख सकें। यदि कोई धर्मावलम्बी बीमार हो जाता था तो पादरी भगवान का नाम लेकर उसके शरीर पर तैल या चन्दन का लेप करके इस अनुलेपन-संस्कार के द्वारा उसके पापों का नाश करते थे।

अन्य धर्मों की तरह ईसाई-धर्म में भी "विवाह" एक पवित्र संस्कार माना गया है और इस कार्य्य को भी पादरी ही सम्पन्न कराते हैं। जब एक सम्बन्ध स्थिर या नियमबद्ध हो जाता है तो उसे फिर नहीं तोड़ा जा सकता।

बैप्टिस्मा से पाप-वासना कम तो हो जाती है मगर वह एक दम नष्ट नहीं होती। यदि कोई ईसाई इस पाप-वासना से कोई दुष्कर्म कर बैठे तो तप के संस्कार द्वारा उसको परमेश्वर से एक बार फिर क्षमा मिल जाती है। यह तप संस्कार उपवास करना, प्रार्थना करना, तीर्थयात्रा करना, अपने को विषय सुख और विलास से अलग रखना इत्यादि अनेक रूपों से किया जाता है।

नियोग के संस्कार से पादरी को, पापियों को क्षमा प्रदान करने का अधिकार मिल जाता है। नियोग-संस्कार के समय विशप पादरी से कहता है कि "तुममें परमेश्वर की पवित्र आत्मा का निवास हो। जिसके अपराध तुम क्षमा करोगे, वे क्षमा हो जावेंगे और जिनके पापों को तुम स्थायी रक्खोगे, वे स्थायी रहेंगे।"

इस प्रकार पादरी को गृहस्थ लोगों के पापों का दण्ड देने और उन्हें क्षमा करने का पूरा अधिकार मिला हुआ था। इस कार्य्य के लिए पापियों से बहुत सा द्रव्य लेकर भी वे उन्हें क्षमा कर दिया करते थे।

संशोधनवाद और नास्तिकता का उदय

धर्म-संस्था के इतने व्यापक और विस्तीर्ण अधिकार मिल जाने से, उसके अन्दर भी मानव-मनोविकारों का तेजी से विकास होना प्रारम्भ हुआ।

मध्य युग के यात्रियों के वर्णन में, पोप के लिखे हुए पत्रों में तथा अन्य ऐतिहासिक सूत्रों से यह बात स्पष्ट मालूम होती है कि उस समय के धर्माधिकारियों में स्वार्थपरता और दुश्चरित्रता सर्वत्र फैल गई थी। पादरियों के अन्याय, उनके प्रलोभन तथा धर्म-कार्य्यों के प्रति उनकी अवहेलना से साधारण जनता में भी उनकी निन्दा होती रहती थी।

धर्माधिकारियों के इस पतन के प्रतिकूल समाज में उसकी प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक था। यह प्रतिक्रिया दो प्रकार के तत्वों से तत्कालीन समाज में पैदा हुई। एक को हम संशोधनवादी कह सकते हैं और दूसरे को क्रान्तिकारी। संशोधनवादी लोग रोमन-चर्च को पूरी तरह मानते हुए भी उसमें घुसी हुई बुराइयों को निकाल कर उसे शुद्ध रूप देना चाहते थे। मगर क्रान्तिकारी लोग ईसाई-धर्म में पूर्ण श्रद्धालु होते हुए भी चर्च की सत्ता को मानने से इन्कार करते थे। संशोधनवादियों में सेण्ट फ्रांसिस, और डोमेनिक का नाम बहुत प्रसिद्ध है और क्रान्तिकारियों में "वाल्डो जॉन विक्लिफ" "जॉन हस" "मर्टिन लूथर", "केल्विन" इत्यादि लोगों के नाम विशेष प्रसिद्ध हैं। रोमन-चर्च में विश्वास न करने वाले लोगों को ही उस समय नास्तिक माना जाता था और ऐसे लोगों को पकड़ कर उनका अभियोग धर्म-अदालतों (इन्क्वीजीशन्स) में चला कर उन्हें जीता जला देने के समान कठोर दण्ड दिये जाते थे।

सेण्ट फ्रांसिस

सेण्ट फ्रांसिस का जन्म सन् ११६२ में इटली के असीसी नामक एक छोटे ग्राम में हुआ था। शुरू शुरू में इनका जीवन बड़े वैभव और विलास के वातावरण में बीता। मगर बीस वर्ष की अवस्था में एक बीमारी से मुक्त होने के बाद सन् १२०६ में जब वे किसी गिरजे में प्रार्थना सुन रहे थे तो पादरी ने उनकी ओर झुक कर इस प्रकार कहा—"और जब तू यह शिक्षा बाहर देने के लिए निकलता है कि स्वर्ग-राज्य अब मिलने ही वाला है तो अपनी गांठ में न सोना, न चांदी और न पीतल ही रख। अपनी यात्रा के लिए कपड़े भी मत ले। अपने साथ कोट, जूता तथा डण्डा भी न ले, क्योंकि श्रमी को भोजन कहीं भी मिल ही जावेगा।"

सेण्ट फ्रांसिस को आभास हुआ कि स्वयं ईसा मसीह ही उनको यह आदेश दे रहे हैं। उसी समय उन्होंने अपने दण्ड, वस्त्र तथा जूतों को फेंक दिया और अपोसलों के निर्धारित मार्ग पर चलना निश्चित किया।

सेण्ट फ्रांसिस के अनुयायी प्रसन्न चित्त, संसार के भार से मुक्त और अपने को ईश्वर का दास कहते हुए नंगे पैर, धनहीन, रूखा-सूखा खाकर सारे इटली में घूम-घूम कर बाइबिल की शिक्षा देते थे।

इसी स्थिति में सेण्ट फ्रान्सिस पोप इन्नोसेंट तृतीय के दरबार में भी गये। पोप इन्नोसेण्ट इनसे बड़ा प्रभावित हुआ और उसने उनको रोमन चर्च के अध्यात्मिक अधिकार प्रदान किये।

सेण्ट फ्रान्सिस के अनुयायी जर्मनी, फ्रान्स, हंगरी, स्पेन इत्यादि सब दूर फैल गये। सेण्ट फ्रान्सिस ने इन प्रचारकों के लिए जो नियम बनाये थे उनमें बतलाया गया था कि—"सम्प्रदाय के लोग अपने लिए कुछ भी न लें, वे किसी नियमित स्थान में हमेशा न रहें, वे यात्रियों के समान परिव्राजक बनकर निर्धन तथा विनीत दशा में परमेश्वर की सेवा करें और भिक्षा से अपना जीवन निर्वाह कर"—

चर्च और धर्माधिकारियों के जीवन को त्यागपूर्ण बनाने के लिए भी सेण्ट फ्रान्सिस ने बहुत प्रयत्न किया। ईसाई-धर्म के प्रचार और चर्च के संशोधन में सेण्ट फ्रांसिस की सेवाएँ अत्यन्त बहुमूल्य और अमर हैं।

सेण्ट डोमेनिक

शिक्षक सम्प्रदाय के संस्थापक सेण्ट डोमेनिक एक गिरजे के अध्यक्ष थे। सन् १२०८ में वे अपने बिशप के साथ नास्तिकता के विरुद्ध जिहाद करने के लिए दक्षिणी फ्रान्स के अल्बि नगर में गये थे जो नास्तिकता का केन्द्र था। वहाँ नास्तिकता का प्रचार देखकर इन्हें बड़ा दुःख हुआ। पोप तृतीय इन्नोसेंट ने इनको भी धर्म प्रचार का प्रमाण पत्र दिया और इन्होंने अपने सोलह अनुयायियों को देश विदेश में धर्म-प्रचार के लिए भेजा। सन् १२२१ में डोमेनिक का सम्प्रदाय पूर्ण रूप से स्थित हुआ और पश्चिमीय यूरोप में उनके करीब ६० गिरजे स्थापित हो गये। डोमीनियन सम्प्रदाय के लोग गर्मी की धूप और जाड़े की शीत की परवाह न कर सारे यूरोप में पैदल घूमते हुए ईसाई-धर्म का प्रचार करते फिरते थे। वे धन को नहीं छूते थे और भिक्षावृत्ति से अपना गुजारा करते थे।

डोमीनियन लोग "शिक्षक" के नाम से प्रसिद्ध थे। धर्म-शास्त्र की इन्हें पूरी और गहरी शिक्षा दी जाती थी।

इन लोगों की सफलता देखकर पोप ने इन लोगों को अधिक अधिकार देना प्रारम्भ किया। धीरे धीरे इन भिक्षुकों को बिशपों के अधिकार से हटा दिया गया और अन्त में उनको अपने लिए स्वयं नियम निर्माण करने, प्रार्थना पढ़ने और शिक्षा देने का अधिकार भी दे दिया।

इस सम्प्रदाय में बड़े-बड़े विद्वान, तत्त्व चिन्तक और ग्रन्थ लेखक पैदा हुए। टॉमस अॉक्विनस जैसे विद्वान, सबन रोला जैसे सुधारक, फ्रेअञ्जलिको तथा फ्रा-बार्टो-लोमियो के समान कलाकुशल तथा रोजर बेकन के समान वैज्ञानिक लोग इस संस्था के सदस्य थे। तेरहवीं शताब्दी के यूरोप में इस संस्था के अतिरिक्त भलाई करने वाली कोई भी संस्था ऐसी जाग्रत अवस्था में न थी।

मगर पोप के द्वारा प्राप्त अधिकारों से इन संस्थाओं में भी सत्ता और धन का प्रलोभन घुस गया और सन् १२५७ में जब बोनावेण्टरा फ्रांसिस धर्मसंस्था का अध्यक्ष हुआ तो उसने लिखा कि इन त्यागपूर्ण सम्प्रदायों में लोभ, आलस्य तथा अन्य बुराइयों के घुसजाने से लोग इनसे घृणा करने लग गये हैं। ये लोग भिक्षा माँगने के इतने आदी हो

गये हैं कि यात्रियों को ठगों से भी अधिक दुःख देते हैं। इन्हीं बातों के परिणाम स्वरूप आगे के समय ने जान विक्लिफ, जॉन हस और मर्टिनलूथर को पैदा किया।

इसी समय सन् १३०६ में फ्रांस के राजा 'फिलिप' ने बोर्डो के आर्क विशप को इस शर्त पर पोप की गद्दी पर विठाया कि वह अपनी राजधानी फ्रांस में रखे। इस पोप का नाम पञ्चम 'क्लेमेंट' रखा गया। उसने अपनी गद्दी जीवन भर फ्रांस में ही रखी। उसके उत्तराधिकारी ने अपना निवास-स्थान फ्रांस के राज्य की सीमा के बाहर अविग्नान नामक नगर में बनाया। वहाँ पर उसने एक भारी महल बनाया। ६० बर्ष तक इस महल में रोमन-चर्च के पोप की गद्दी रही। सन् १३०५ से १३७७ ई० तक का समय रोमन-चर्च के इतिहास में 'बेबीलोनीयन कारावास' के नाम से प्रसिद्ध है। इतने समय तक पोप रोम से निर्वासित रहा। इस समय में ईसाई धर्म-संस्था की बड़ी निन्दा हुई और उसके परिणाम-स्वरूप सन् १३७३ में दो पोप एक साथ चुने गये। रोम की जनता ने 'अर्बन षष्ट' के नाम से अपना पोप चुना और फ्रांस की जनता ने 'सप्तम क्लेमेंट' के नाम से एक अन्य व्यक्ति को 'अविग्नान' में पोप की गद्दी पर विठा दिया।

इस प्रकार महान वैभवशाली रोमनचर्च आपसी कलह और झगड़ों का प्रधान केन्द्र बन गया। इन झगड़ों को देख कर जनता के अन्दर चर्च के प्रति बड़ी विरक्ति और घृणा के भाव पैदा होने लगे।

जॉन विक्लिफ

इन भावनाओं को सबसे पहले मूर्त रूप देने वाला ऑक्सफोर्ड का धर्मोपदेशक 'जॉन विक्लिफ' था। जॉन-विक्लिफ का जन्म सन् १३२० ई० में हुआ। इस धर्मोपदेशक ने पोप और रोमन-चर्च की कड़ी आलोचना करना प्रारंभ की। उसने उपदेशकों की एक संस्था स्थापित की। ये उपदेशक घूम-घूम कर पोप के खिलाफ प्रचार करने लगे।

जॉन विक्लिफ ने बाइबिल का अनुवाद सरल अंग्रेजी भाषा में किया और धार्मिक विषयों पर बहुत सी पुस्तकें अंग्रेजी में लिखीं। अंग्रेजी-भाषा में गद्य का जन्मदाता वही माना जाता है। जॉन विक्लिफ के अनुयायी 'लोलार्ड' कहलाते थे। उसके सिद्धान्त बाद में 'ओपन एयर प्रीचर्स' द्वारा खूब फैले। लूथर ने भी बाद में इन सिद्धान्तों को अपनाया। विक्लिफ के प्रचार से परेशान होकर पोप ने उसके विरुद्ध घोषणा निकाली और इंग्लैण्ड में भी उसके खिलाफ कई झूठे-सच्चे अभियोग लगाये गये, जिसके परिणाम-स्वरूप उसके बहुत से साथी उसको छोड़ कर चले गये और उसके प्रयत्नों को प्रत्यक्ष सफलता नहीं मिली, मगर हवा में उसने क्रान्ति के जिन बीजों का रोपण कर दिया था, वे नष्ट नहीं हुए और उनके परिणाम डेढ़ सौ वर्षों के बाद 'मार्टिन लूथर' के रूप में रोमन चर्च के खिलाफ प्रकट हुए।

इंक्वीजीशीन अदालत

रोमन-चर्च ने अपने खिलाफ बढ़ती हुई नास्तिकता की भावनाओं को दमन करने के लिए 'इंक्वीजीशन' नामक अदालतों के द्वारा नास्तिकों को दण्ड देने और उनको जीते जी जला देने का कार्य प्रारंभ किया। इन अदालतों में नास्तिकता का सन्देह होते ही लोगों को पकड़कर बन्द कर दिया जाता था। उन्हें तरह-तरह की अमानुषिक यंत्रणाएँ दी जाती थीं और अन्त में जीते-जी जला दिया जाता था। इन धर्म-अदालतों का पूरा वर्णन 'इंक्वीजीशन' नाम के अन्तर्गत इसी भाग में किया गया है।

मार्टिन लूथर और प्रोटेस्टएट क्रान्ति

रोमन-चर्च के द्वारा प्रचलित भयंकर अत्याचारों और धर्म-अदालतों के द्वारा किये जाने वाले नृशंस कार्यों के प्रतिकूल जनता में जो भावनाएँ घनीभूत हो रही थीं, उनका विस्फोट मार्टिन लूथर के रूप में प्रकट हुआ।

मार्टिन लूथर का जन्म सन् १८८३ में जर्ममी के एक ग्राम में हुआ। १८ वर्ष की अवस्था में वह जर्मनी के सब से बड़े विद्यापीठ 'एर-फर्ट' में दाखिल हुआ। यहाँ पर उसका बहुत से 'ह्यूमैनिस्ट' लोगों से परिचय हुआ।

सन् १५०५ ई० में मार्टिन लूथर ने ईसाई-धर्म की दीक्षा ली। उसने देखा कि पोप के प्रतिनिधि जहाँ तक हो सकता है, द्रव्य एकत्र करने की चिन्ता में पड़े रहते हैं और इसी कारण वे प्रत्येक मनुष्य को अपने पापों की क्षमा के लिए और परगेटरी (वैतरणी) में पड़े हुए

उनके पूर्वजों के पापों का नाश करने के लिए क्षमा-दान माँगने की प्रेरणा करते रहते थे, और इस क्षमा-दान के लिए बड़ी-बड़ी दक्षिणाएँ माँगते थे। इसी प्रकार और भी कई प्रकार की बुराइयों का चर्च के अनुशासन में उसे दर्शन हुआ इसलिए उसके भाव रोमन-चर्च के प्रति विद्रोही-रूप धारण करने लगे।

लूथर के इस प्रकार विद्रोही हो जाने पर समाज के दूसरे पोप-विद्रोही और सुधारक उसके मित्र बनने लगे।

मार्टिन लूथर की तरह अभी तक किसी व्यक्ति ने खुल्लम-खुल्ला रोमन-चर्च के प्रतिकूल इस प्रकार अकेले आन्दोलन नहीं मचाया था। जिस भाँति कोई मनुष्य अपने बराबरी के प्रतिद्वन्दी का सामना करता है, उसी भाँति 'विटिनवर्ग' के अध्यापक मार्टिन लूथर ने पोप तथा सम्राट् की शक्ति का प्रतिरोध बराबरी में किया था। उसने पोप 'दशम लियो' के आज्ञापत्र, धर्म-संस्था के नियम तथा एक ऐसी पुस्तक को, जिससे वह बहुत घृणा करता था—अग्नि में जला दिया। इस पवित्र तथा धार्मिक होली को देखने के लिए उसने अपने समस्त छात्रों को निमंत्रित किया था। धर्म-संस्था के पुराने भवन को ढा देने की जितनी अधिक वासना मार्टिन लूथर के हृदय में जाग्रत हुई थी, वैसी पहले कभी नहीं देखी गई।

इस परिस्थिति को देखकर पोप लियो के प्रतिनिधि अलेक्जेंडर ने कहा था कि "मैं जर्मन जाति के इतिहास को भली-भाँति जानता हूँ। उसकी पूर्व समय की नास्तिकता और कलह को भी जानता हूँ, लेकिन ऐसी विकट अवस्था कभी भी पैदा नहीं हुई। इस स्थिति के आगे चतुर्थ हेनरी तथा सप्तम ग्रेगरी के कलह तुच्छ प्रतीत होते हैं। ये पागल कुत्ते अब विद्या और शास्त्र से सुसम्पन्न हो गये हैं। वे अब मूर्ख नहीं रह गये हैं। जर्मनी के ६ भाग तो लूथर का समर्थन कर रहे हैं और १०वाँ भाग भी रोम की सत्ता का अन्त ही किया चाहता है।"

मार्टिन लूथर चाहता था कि मठों की संख्या दशमांश कर देनी चाहिए और जो लोग उनमें निवास करने के प्राप्त लाभों से सन्तुष्ट न हों, उनको उससे सम्बन्ध तोड़ने के लिए स्वतंत्रता होनी चाहिए। यह चाहता था कि गिर्जे को बन्दीगृह की तरह न बनाकर उनको व्यथित आत्माओं के लिए शान्ति तथा विश्राम का स्थान बनाना चाहिए। उसका मत था कि नागरिकों की तरह पादरियों को भी विवाह करना चाहिए और कुटुम्बी बनकर रहना चाहिए।

लूथर की इस क्रान्ति से क्षुब्ध होकर जर्मनी के सम्राट 'चार्ल्स' ने वर्म नामक स्थान में मार्टिन लूथर को बुलाया और उससे पूछा गया कि क्या जर्मन तथा लेटिन भाषा में लिखित किताबों का यह संग्रह तुम्हारा ही लिखा हुआ है और यदि लिखा हुआ है तो क्या तुम अपने मत को बदलने के लिए तैयार हो? मार्टिन लूथर ने इसके उत्तर में बयान देते हुए कहा कि—

"यदि मैं पोप के प्रतिकूल कहे हुए वचनों को लौटाऊँगा तो पोप के दुराचारों की केवल बढ़ती ही होगी और उसे नये नये माल हड़पने का मौका मिलेगा। मैं पोप और सभा की मंत्रणा मानने को प्रस्तुत नहीं हूँ। क्योंकि दोनों ने भूल की है और स्वयं भी अपने मन्तव्यों के प्रतिकूल कार्य किया है। मेरे विचार केवल ईश्वर के सहारे हैं।"

मार्टिन लूथर के इस स्पष्ट कथन से सम्राट् ने मार्टिन लूथर को 'आउट-ला' घोषित करने का आदेश दिया। आउट-ला उस समय ऐसी व्यवस्था का नाम था, जिससे कोई भी व्यक्ति समाज में कानून के द्वारा जो सुरक्षा पाता है—वह समाप्त हो जाती है और कोई भी व्यक्ति उसे मारे-पीटे या गालियाँ दे तो कानून उसके विरोध में कुछ भी नहीं कर सकता।

इस प्रकार आउट-ला घोषित हो जाने के कारण मार्टिन लूथर को कई वर्षों तक गुप्तवास में रहना पड़ा।

मगर जर्मन-जनता के अन्दर चर्च के प्रति जो दुर्भावनाएँ जाग्रत हो चुकी थीं, वे दिन-दिन बढ़ती ही गईं। इन भावनाओं को रोकने के लिए सन् १५२६ में जर्मनी के सम्राट् ने 'स्पेयर' में फिर सभा को निमंत्रित किया और उसमें घोषणा की कि नये दल के विश्वासी राजाओं को भी रोमन कैथोलिक प्रथाओं का अनुसरण करना पड़ेगा।

इस आज्ञा का जर्मनी में बड़ा विरोध हुआ और १४ स्वतंत्र नगरों के राजाओं ने एक विरोध-पत्र पर हस्ताक्षर करके सम्राट् के पास भेजा। जिन लोगों ने इस पर हस्ताक्षर किये थे, वे लोग 'प्रोटेस्टेंट' कहलाये, क्योंकि उन्होंने प्रोटेस्ट (विरोध) किया था। आगे जाकर यही प्रोटेस्टेंट नाम ईसाई धर्म की एक महत्वपूर्ण कड़ी बन गया।

इस सारी स्थिति को देखकर सम्राट् ने सन् १५३० में आक्सबर्ग में जर्मन जनता की एक सभा की। इस सभा में 'मेलांखटन' नामक विद्वान व्यक्ति ने प्रोटेस्टेंट विचार-धारा पर एक व्याख्या लिखी, जो 'आक्सबर्ग कन्फेन्शन' नाम से प्रसिद्ध है।

आक्सबर्ग की सभा के बाद सिर्फ ५० वर्ष के अन्दर प्रोटेस्टेंट धर्म की लहर सारे यूरोप में फैल गई और इंग्लैंड, स्वीट्जरलैंड, फ्रांस तथा हालैंड में करीब एक शताब्दी तक रोमन-कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट लोगों का भयंकर और रक्तपातपूर्ण संघर्ष जारी रहा और रोमनचर्च के लाख प्रयत्न करने पर भी मार्टिन लूथर के द्वारा प्रचारित की हुई इस महान क्रान्ति ने ईसाई धर्म के अन्दर स्थायी रूप धारण कर लिया।

ज्विंगली

मार्टिन लूथर की तरह स्विट्जरलैंड में रोमनचर्च के विद्रोहियों का नेता 'ज्विंगली' था। वह मार्टिन लूथर से एक वर्ष छोटा था। ज्विगली एक किसान का लड़का था।

सन् १५१६ में उसे 'जूरिच' के एक बड़े गिर्जे में उपदेशक का पद मिला। चर्च की शोचनीय स्थिति को देखकर उसने भी मार्टिन लूथर की तरह चर्च की कड़ी आलोचना करनी प्रारम्भ की। पोप तथा उसके दूतों की घोर निन्दा करते हुए उसने कहा कि—"इनकी टोपियों तथा लबादों का लाल रंग कैसा उचित है। यदि हम इन कपड़ों को हिलाएँ तो इनमें से अशर्फियाँ बरसती हैं और यदि हम इन्हें निचोड़े तो इनमें से हमारे भाइयों, बेटों तथा अन्य सम्बन्धियों के रक्त की धार बह निकलती है।"

ज्विगली को दबाने के लिए भी चर्च के समर्थकों ने बहुत प्रयत्न किया, पर जूरिच की सभा ने उसके मत का समर्थन किया। ज्विगली ने पादरियों के अविवाहित रहने तथा उपवास करने की प्रथा का विरोध किया। उसने करीब ६७ प्रतिबन्धों में अपना पूरा मत प्रदर्शित किया। ज्विगली का खण्डन करने के लिए कोई भी खड़ा नहीं हुआ। इस कारण नगर की सभा ने उसके मन्तव्यों को स्वीकार कर रोमन-कैथोलिक चर्च से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया।

सन् १५३१ में एक लड़ाई में ज्विगली मारा गया।

कैलविन और प्रेस बिटेरियन संस्था

जर्मनी में जिस तरह मार्टिन लूथर और स्विट्जरलैंड में ज्विगली रोमनचर्च के खिलाफ अपनी आवाज को बुलन्द कर रहे थे, उसी प्रकार उस समय इंग्लैंड में कैलविन रोमन-चर्च के खिलाफ अपने सिद्धान्तों का प्रचार कर रहा था। कैलविन 'प्रेस बिटीरियन' सम्प्रदाय का जन्मदाता तथा उसका संस्थापक था। इसका जन्म सन् १५०९ में फ्रांस में हुआ था। उस समय फ्रांस देश में लूथर के मत का प्रचार हो रहा था। कैलविन पर भी इस मत का प्रभाव पड़ा और वह फ्रांस से भाग कर कुछ समय तक 'बासॅल' में रहा।

कैलविन की लिखी हुई 'इन्स्टीट्यूट-ऑफ क्रिश्चियानिटी' नामक पुस्तक ने प्रोटेस्टेंट धर्म के विस्तार में बड़ा महत्वपूर्ण भाग अदा किया। प्रोटेस्टेंट-धर्म की पुस्तकों में इस किताब का बड़ा महत्व है। ईसाई-धर्म की प्रोटेस्टेंट शाखा की यह प्रथम शास्त्रीय पुस्तक मानी जाती है। इस पुस्तक में चर्च तथा पोप की अप्रामाणिकता एवं बाइबिल की पूर्ण प्रामाणिकता बतलाई गई है। कैलविन का मस्तिष्क प्रतिभाशाली था और उसकी लेखन-शैली अत्यन्त प्रौढ़ थी। तर्कशास्त्र की किसी भी पुस्तक में फ्रेंच भाषा का इतना अच्छा कभी उपयोग नहीं हुआ था जितना कि कैलविन की पुस्तक के फ्रेंच अनुवाद में हुआ। फ्रांस तथा स्काटलैंड में लूथर के नहीं, प्रत्युत कैलविन के ही प्रोटेस्टेंट मत का विशेष प्रचार हुआ।

इग्नेशियस लायला और जीसूइट-सम्प्रदाय

रोमन-चर्च के खिलाफ चारों ओर से पैदा हुए विद्रोह को दमन करने में जब रोमन-चर्च को सफलता नहीं हुई,

तब चर्च के पक्षपातियों ने चर्च की मूलभूत नीतियों में सुधार कर चर्च को लोकप्रिय बनाने के उद्देश्य से जर्मनी और इटली की सीमा के बीच में 'ट्रेंट' नामक नगर में सन् १५४५ ई० में एक सभा बुलाई। इस सभा ने रोमन कैथोलिक धर्म-संस्था के नियम तथा पद्धति के लिए एक नवीन तथा दृढ़ आधार बनाया। इतिहास की दृष्टि से इस सभा के मन्तव्य विशेष उपयोगी थे। उन्हें हम रोमन-कैथोलिक धर्म-संस्था के मत का सच्चा और पूरा वर्णन कह सकते हैं।

सभा की इस बैठक में स्पेन का निवासी 'इग्नेशियस लायला' नामक एक व्यक्ति भी था जो पोप के अधिकारों में किसी भी प्रकार की न्यूनता करने का विरोधी था। इसी व्यक्ति ने ईसाई-धर्म में जीसूइट नामक सम्प्रदाय की स्थापना की, जो आगे जाकर ईसाई-धर्म की सबसे शक्तिशाली संस्था बन गई।

सन् १५४८ में इग्नेशियस लायला ने अपने अनुयायियों को पेरिस बुलाकर अपने सम्प्रदाय का कार्य प्रारंभ किया।

आदर्श उपस्थित करके लोगों में दया तथा ईश्वर भक्ति का संचार करना ही इस संस्था का उद्देश्य था। इसके सदस्यों को दरिद्रता और त्याग का जीवन बिताना पड़ता था। इस संस्था के सदस्य नगरों में जाकर लोगों को उपदेश देते थे। पाप की स्वीकृति के बयान सुनते थे और भक्ति के लिए लोगों को उत्साहित करते थे।

दो शताब्दी तक इस संस्था का कार्य तेजी से बढ़ता रहा। जिसके परिणामस्वरूप जीसूइट संस्था के उपदेशक बहुत शीघ्र केवल यूरोप में ही नहीं, प्रत्युत समस्त संसार में फैल गये। इग्नेशियस लायला के प्राचीन साथियों में 'फ्रेंसिस भेवियर' नामक धर्माधिकारी बड़ा प्रसिद्ध था, जिसने भारत, मलाया तथा जापान की यात्रा कर वहाँ ईसाई धर्म का प्रचार किया। इसी प्रकार ब्राझील, फ्लोरिडा, मैक्सिको तथा पेरू के समान सुदूरवर्ती मूर्तिपूजक देशों में भी जीसूइट सम्प्रदाय के लोग धर्म प्रचार के लिए पहुँच गये।

इस प्रकार ईसाई-धर्म के प्रचार में जीसूइट सम्प्रदाय के लोगों ने बहुत महत्वपूर्ण भोग-दान किया।

मगर आगे जाकर और संस्थाओं की तरह इस संस्था में भी दुष्ट और स्वार्थी लोगों का प्रवेश हुआ। अन्य प्राचीन संस्थाओं ही की तरह इस संस्था की भी चारों ओर बदनामी होने लगी। कैथोलिक लोगों का भी विश्वास इस पर से हट गया। और सन् १७७३ में पोप के आदेश से यह संस्था उठा दी गई। सन् १८१४ में इसकी फिर से स्थापना हुई।

इस प्रकार और भी कई लोगों ने ईसाई धर्म के प्रचार में तथा रोमन चर्च के पक्ष और विपक्ष में स्थान-स्थान पर आन्दोलन किये। मगर इन सब चीजों के बावजूद ईसाई-धर्म का प्रचार सारे संसार में चलता रहा।

मशीन युग में ईसाई-धर्म

१८ वीं शताब्दी में मशीनों के आविष्कार से सारे संसार में एक विराट औद्योगिक क्रान्ति का जन्म हुआ। विज्ञान की उन्नति ने मनुष्य के धार्मिक अन्धविश्वासों की दीवारों को ढा दिया। हजारों वर्षों से धार्मिक अन्धविश्वासों की बेड़ियों में जकड़ा हुआ मनुष्य आजादी की खुली हवा में साँस लेने लगा। इस परिस्थिति का ईसाई-धर्म पर भी बड़ा प्रभाव पड़ा। रोमन-चर्च की अपरिमित और असीम सत्ताएँ समाप्त हो गईं। धर्माचार्यों के अत्याचार और शोषण-वृत्ति भी समाप्त हो गई, पर ईसाई-धर्म-संस्था का प्रचारकार्य उसी प्रकार चलता रहा जिसके फलस्वरूप सारे संसार में आज भी ईसाई-धर्म-मतावलम्बियों की संख्या बहुत अधिक है।

ईसाई मिश्नरी (धर्म-संस्था)

मानवीय इतिहास में महात्मा ईसा का आविर्भाव और ईसाई-धर्म की स्थापना—एक युगान्तरकारी घटना है। ईसाई-धर्म की मूलभूत बुनियाद त्याग, सेवा, समानता और भ्रातृभाव पर रक्खी गई है। इस धर्म ने अपने धर्म को अन्य धर्मावलम्बियों पर तलवार के बल से थोपने का प्रयत्न नहीं किया। अकाल, भूखमरी और बीमारी से पीड़ित लोगों की सेवा कर उन्हें प्रेम के साथ ईसामसीह के उपदेशों को सुनाकर प्रचार मशीनरी के द्वारा इस धर्म ने अपना प्रचार किया।

ईसाई-धर्म-प्रचारकों ने मिश्नरियों के रूप में संसार के कोने-कोने में पहुँच कर जहाँ भी उनको गरीबी दिखलाई दी, भूखमरी दिखलाई दी और अशिक्षा दिखलाई दी वहीं पर उन्होंने अपने केन्द्र स्थापित कर भूखों को भोजन, अशिक्षितों को शिक्षा और बीमारों के लिये औषधि-वितरण की व्यवस्था की। संसार के भिन्न-भिन्न देशों में, पहाड़ी प्रदेशों में, सामुद्रिक द्वीपों में, स्थान-स्थान पर ईसाई-मिश्नरियों के हजारों स्कूल और अस्पताल दिन-रात चलते रहते हैं। जहाँ पर सेवा भावी प्रचारक और प्रचारिकाएँ दरिद्रनारायण की चिरन्तन सेवा में अपने जीवन को उत्सर्ग किये रहते हैं।

ईसाई-धर्म-संस्था इन्हीं सेवा-भावी प्रचारकों के जरिये संसार के भूखे, अपाहिज और पिछड़े हुए लोगों के बीच में ईसामसीह के उपदेशों का शान्तिपूर्वक प्रचार करती रहती हैं। ईसाई-राज्यों की राज-संस्थाऐं और जनता इन मिश्नरियों को करोड़ों रुपयों की सहायता पहुँचाती रहती हैं। समग्र संसार में जितना प्रचार और दरिद्रनारायण की जितनी सेवा ईसाई मिश्नरियों के द्वारा हो रही है, उसकी तुलना संसार की दूसरी किसी धर्म-संस्था से नहीं हो सकती और यही कारण है कि आज समस्त मानव-जाति के लगभग ३५ प्रतिशत लोग ईसाई हैं। देशों के हिसाब से यूरोप के अन्दर ७८ प्रतिशत, अमेरिका में ८३ प्रतिशत, अफ्रीका में १४ प्रतिशत तथा एशिया में ३ प्रतिशत ईसाई हैं।

ईसाई धर्म की इस व्यापक उन्नति के मूल कारणों पर विचार करने से निम्नलिखित तथ्य दृष्टिगोचर होते हैं —

(१) ईसाई-धर्म की मूल-भित्ति सेवा और समानता के सिद्धान्त पर डाली गई थी। मनुष्य मनुष्य के बीच में विभेद पैदा करने वाले, जातिभेद, वर्गभेद, रंगभेद, देश-भेद इत्यादि सभी प्रकार के भेदों की दीवारों को तोड़कर विशुद्ध रचनात्मक (Possetive) सिद्धान्तों पर इस धर्म की बुनियाद डाली गई। संसार के किसी भी देश का, किसी भी जाति का मनुष्य मसीह के झण्डे के नीचे आने के बाद समानता का अधिकारी हो जाता है। इस सिद्धान्त ने लोगों को इस धर्म की तरफ बहुत आकृष्ट किया।

(२) ईसामसीह के बाद सेंटपीटर, सेंटपाल, सेंट-अगस्टाइन इत्यादि कई सन्त, ईसाई-धर्म में ऐसे उत्पन्न हुए जिन्होंने अपनी त्याग-वृत्ति कष्ट सहन और विद्वता के द्वारा इस धर्म की जड़ को जमाने में अत्यन्त महत्वपूर्ण योग दिया। विद्रोह और अराजकता के उस युग में इस नवीन धर्म को समाज में जीवित रख कर बढ़ाने का श्रेय उन्हीं महात्माओं की कठिन तपश्चर्या को है।

(३) रोमन-चर्च की स्थापना और उसकी शक्ति के बढ़ने के साथ-साथ ईसाई-धर्म का जो सर्वव्यापी प्रचार हुआ, वह भी इतिहास में एक महत्व की वस्तु है। रोमन-चर्च में कई पोप इतने विद्वान, शक्तिशाली और तेजस्वी हुए जिनके द्वारा सारे यूरोप और विदेशों में इस धर्म का बहुत बड़ा प्रचार हुआ। रोमन-चर्च ने हजारों उपदेशकों को देश-विदेश में भेजकर इस धर्म का व्यापक रूप से प्रचार किया।

(४) ईसाई-धर्म के प्रचार में इस धर्म के सन्यासी वर्ग का भी बहुत गहरा हाथ रहा। सादा जीवन और उच्च विचार ईसाई सन्यासी-संस्था का मुख्य लक्ष्य था। इन सन्यासियों में बड़े-बड़े विद्वान, कवि, इतिहासकार और धर्मशास्त्री हुए जिन्होंने अपनी महान सेवाओं से इस धर्म को फूलने फलने का अवसर दिया।

(५) इस धर्म के प्रचार का सबसे महत्वपूर्ण अंग ईसाई-मिश्नरी और प्रचार संस्था है, जिसका विवेचन हम ऊपर कर चुके हैं।

(६) वैभव और सत्ता के तत्वों का किसी सेवा भावी संस्था में घुस जाने से उस संस्था का किस प्रकार भयङ्कर अधः पतन हो जाता है, इस ऐतिहासिक सत्य की परिणति रोमनचर्च के इतिहास में स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ती है। अपने आरम्भिक काल में जिस प्रकार इस संस्था ने ईसाई धर्म की रक्षा की, उसी प्रकार अपने पतन काल में धर्म के नाम पर नास्तिकता का नाश करने के बहाने इसने लाखों आदमियों के प्राण अत्यन्त निर्दयता पूर्वक ले लिये।

बाइबिल

ईसाई धर्म और सभ्यता का मूल स्रोत बाइबिल नामक ग्रन्थ है। हिन्दुओं के वेद और मुसलमानों के

क़ुरान ही की तरह ईसाई धर्म का यह सबसे पूज्य ग्रन्थ है। इसी ग्रन्थ से ईसाई धर्म और संस्कृति के मूल तत्वों का उद्गम हुआ है।

ईसामसीह के आविर्भाव के पूर्व भी बाइबिल विद्यमान थी और यह यहूदियों का पूज्य धर्म-ग्रन्थ थी। इस पुराने बाइबिल को ईसामसीह के आविर्भाव के पश्चात् 'ओल्ड-टेस्टामेंट' के नाम से कहा जाने लगा। इसी ग्रन्थ में मसीह के पृथ्वी पर अवतीर्ण होने की सूचना दी गई है।

ईसामसीह के पश्चात् उनके उपदेश और ईसाई धर्म के सिद्धान्तों का जिसमें विवेचन किया गया वह बाइबिल न्यू टेस्टामेंट या इंजील के नाम से प्रसिद्ध है। इस पवित्र ग्रन्थ में सृष्टि की उत्पत्ति, मसीह का अवतरित होना, ईसाई मत के मूल सिद्धान्त और मनुष्य के व्यक्तिगत, सामाजिक और संस्कार सम्बन्धी सब कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है।

[उ]

उकबा-बिन-नफीर

अरब स्थान में उमैया-वंश के खलीफा म्वाविया का सेनापति उकबा-बिन-नफीर जो सन् ६७० के करीब हुआ।

इस्लाम के प्रचार के इतिहास में मुसलमान सेनापति उकबा का नाम बहुत प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि मिस्र के केरवान (कैरो) नगर की स्थापना उसी ने की थी। उकबा इस्लाम की दिग्विजय करता हुआ उत्तरी अफ्रीको को पार करता हुआ, अटलांटिक महासागर तक अर्थात् आधुनिक मोरक्को के पश्चिमी किनारे तक पहुँच गया था। समुद्र की रुकावट सामने आ जाने से उसे बड़ी निराशा हुई और वह अपने घोड़े को समुद्र में जितनी दूर वह जा सकता था, ले गया। फिर उसने अल्लाह के सामने अफसोस जाहिर किया कि अब उस दिशा में कोई देश नहीं रहा जिसे अल्लाह के नाम पर वह फतह करता।

उक्समल नगर

मध्य अमरीका की प्राचीन सभ्यता में बसाया हुआ एक नगर जिसकी स्थापना ई० सन् ६६० के करीब हुई।

प्राचीन युग में अमरीका के अन्दर सभ्यता के तीन खास केन्द्र थे—मैक्सिको, मध्य अमेरिका और पेरू। सभ्यता के इन क्षेत्रों में कई राज्य और कई भाषाएँ थीं। इन भाषाओं में काफी साहित्य भी था। शासन सुसंगठित और मजबूत था।

उक्समल नगर की नींव सन् ६६० के करीब डाली गई। कहा जाता है कि थोड़े ही समय में यह नगर बहुत बढ़कर एशिया के समृद्ध नगरों की टक्कर का हो गया था।

उच्चल

कश्मीर का एक राजा। राजतरंगिणी के अनुसार राजा हर्षदेव के पश्चात् राजा 'उच्चल' कश्मीर की गद्दी पर बैठा था। इसके राज्यारोहण के समय में कश्मीर का राज्य-प्रबन्ध बहुत अस्त व्यस्त हो रहा था। राज्याधिकारी आपस में बुरी तरह लड़ते रहते थे। राजा उच्चल ने इन लोगों में से किसी को उच्च पद देकर, किसी को दूसरे के द्वारा अपमानित करवाकर, किसी को आपस में लड़ाकर चतुराई से शासन-प्रबन्ध को ठीक किया। इस राजा ने दस वर्ष चार महीना और एक दिन कश्मीर पर राज्य किया।

उचित-वक्ता

कलकत्ते से प्रकाशित होने वाला हिन्दी का एक प्रसिद्ध समाचार-पत्र जो सन् १८८० में प्रकाशित हुआ।

उन दिनों हिन्दी की प्रारम्भिक पत्रकार-कला के युग में पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र का नाम उल्लेखनीय था। हिन्दी के सुप्रसिद्ध पत्र "भारत-मित्र" और "सार सुधानिधि" के प्रकाशन में भी इनका मूल्यवान सहयोग था।

"उचित-वक्ता" उस समय का एक तेजस्वी और प्रभावशाली पत्र था। इस पत्र में भारतेन्दु 'हरिश्चन्द्र' के भी लेख निकलते रहते थे। स्वयं दुर्गाप्रसाद मिश्र भी उस युग के एक ओजस्वी लेखक थे। उनके लेख तथा हास्य-विनोद कालम में, दिल्लगी की फुलझड़ियाँ और छेड़छाड़ के पटाखे, व्यंग और तानाकशी में किसी को भी नहीं छोड़ते थे।

पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र के कश्मीर चले जाने पर यह पत्र भी थोड़े समय बाद बन्द हो गया।

उडा

मेवाड़ के सुप्रसिद्ध महाराणा कुम्भा का पुत्र। टॉड राजस्थान के अनुसार राणा कुम्भा का पुत्र "उडा" बड़ा दुष्ट और पितृघाती था। इस दुष्ट पुत्र ने अपने पिता के दीर्घ-जीवन को सहन न कर राज्य-प्राप्ति के लोभ में सन् १४६६ में अपने पिता महाराणा कुम्भा की हत्या कर डाली। इसी ने दिल्ली के बादशाह को अपनी कन्या भी दे दी। फिर भी यह अधिक समय तक राज्य न कर पाया और बिजली के गिरने से इसकी मृत्यु हो गई।

उज्जैन

भारतवर्ष में मध्यप्रदेश प्रान्त के अन्तर्गत एक अत्यन्त प्राचीन और गौरवशाली धर्म-नगरी।

उज्जैन को प्राचीन काल में 'अवन्तिका' और उसके बाद 'उज्जयिनी' कहते थे। भारत की पुराण-परम्परा में समस्त भारतवर्ष में जो अत्यन्त पवित्र सप्त महानगरियाँ बतलाई गई हैं, उनमें अवन्तिका भी एक है।

हिन्दू, जैन और बौद्ध—तीनों ही धर्मों के पुराणों और धर्म-ग्रन्थों में अवन्ती और उज्जयिनी का नाम कई स्थानों पर आता है।

मगर ऐतिहासिक युग में इसका इतिहास ईसा से पूर्व छठी सदी से भगवान् महावीर और बुद्ध के समय से मिलता है। जब राजा चण्डप्रद्योत नामक एक महान् पराक्रमी राजा यहाँ पर राज्य करता था। उस समय अवन्ति भारत वर्ष में स्थापित सोलह महा जनपदों में से एक था।

चण्डप्रद्योत के पहले इस महा जनपद में वीतिहोत्र-वंश का राज्य था। उस वंश का नाश कर चण्डप्रद्योत के पिता पुनिक ने अपने लड़के चण्डप्रद्योत को गद्दी पर बैठाया। चण्डप्रद्योत मगध के राजा बिम्बसार और वैशाली के राजा प्रसेनजित का समकालीन था और उन्हीं की भाँति महत्वाकांक्षी, वीर, साहसी और दुर्दान्त (चण्ड) था।

जैन-परम्परा के अनुसार उस समय कौशाम्बी में शतानिक नामक राजा राज्य करते थे। शतानिक की रानी मृगावती अत्यन्त रूपवती थी। उसके रूप की कथा को सुनकर चण्डप्रद्योत विक्षिप्त सा हो गया और उसने राजा शतानिक को लिखा कि वह रानी मृगावती को प्रद्योत के रनवास में भेज दे क्योंकि ऐसे अनुपम रत्न को रखने का अधिकार उस जैसे साधारण राजा को नहीं है।

इस पर चण्डप्रद्योत और शतानिक से युद्ध हुआ, जिसमें शतानिक मारा गया। अब मृगावती पर बड़ी विपत्ति आ गई, उसकी गोद में राज्य का उत्तराधिकारी बालक "उदयन" केवल दो साल का था। तब मृगावती ने राजा प्रद्योत को धोखा देने के लिए कहा कि अब तो मैं आपकी हो ही चुकी हूँ, मगर मेरी गोद में दो बरस का छोटा बालक है और बाहरी शत्रुओं का इस राजधानी को बड़ा भय है। इसलिए पहले आप मेरी नगरी के चारों ओर ईंटों का एक मजबूत किला बनवा दें। राजा प्रद्योत ने उसके चकमें में आकर हाथों-हाथ एक मजबूत किला बनवा दिया। मृगावती ने तुरन्त किले के फाटक बन्द करवा कर दीवारों पर अपने सैनिकों को बिठा दिया और चण्डप्रद्योत गुस्से में दाँत पीसता हुआ वापस गया।

इसी शतानिक के पुत्र इतिहास-प्रसिद्ध कौशाम्बी-नरेश उदयन ने चण्डप्रद्योत की कन्या वासवदत्ता का अपहरण किया था, जिसके कथानक पर संस्कृत में 'स्वप्न वासवदत्ता' नामक प्रसिद्ध नाटक की रचना की गई है। इसका पूरा वर्णन "उदयन" नाम के साथ देखें।

उस समय अवन्ति, कौशल और मगध—इन तीनों शक्ति-शाली राज्यों में प्रतिस्पर्द्धा चलती थी। अवन्ति की राजधानी उज्जयिनी उस समय एक बड़े महत्व की नगरी थी। पश्चिमी समुद्र के बन्दरगाहों और उत्तर भारत के बीच जो व्यापार होता था, उसका रास्ता उज्जयिनी से होकर ही जाता था। उज्जयिनी से पश्चिमी देश पंजाब के काफ़िले मथुरा की तरफ़ चले जाते और पूर्वी मध्य देश तथा मगध के काफ़िले कौशाम्बी की तरफ़ जाते थे।

चण्डप्रद्योत की मृत्यु ईस्वी सन् पूर्व ५४५ में हुई। उसके पश्चात् उसका पुत्र 'पालक" राजगद्दी पर बैठा। पालक ने २४ वर्ष तक राज्य किया। राजा पालक बड़ा प्रजा-पीड़क और अत्याचारी राजा था। इसने अपने भाई गोपाल दारक को कैद कर रक्खा था। उज्जैन की जनता ने पालक के अत्याचारों से तङ्ग आकर उसे गद्दी से उतार दिया और गोपाल दारक को जेल से छुड़ाकर अवन्ती की राजगद्दी पर बिठाया। कहा जाता है कि गोपाल दारक का दूसरा नाम विशाखयूप भी था और वह इतिहास में इसी नाम से प्रसिद्ध है। "विशाखयूप" ने पचास वर्ष तक राज्य किया।

उधर मगध राज्य में अजातशत्रु के पुत्र राजा दर्शक का पुत्र उदायी सिंहासन पर बैठा। उदायी एक महत्वाकांक्षी और साहसी राजा था। उसने अपने शासन के दूसरे ही वर्ष में अवन्ती के राजा विशाखयूप को हराकर अपने अधीन कर लिया। विशाखयूप की मृत्यु के बाद अवन्ती का राज्य सीधे मगध-साम्राज्य का अङ्ग हो गया।

अवन्ती का मगध-साम्राज्य में विलीनीकरण, उस समय के इतिहास की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है। इस घटना से पूर्वी समुद्र से लेकर पश्चिमी समुद्र तक मगध का एकछत्र सम्राज्य हो गया। बाद में बहुत लम्बे समय तक उज्जयिनी मगध-साम्राज्य के अन्तर्गत ही रही।

मौर्य्य-साम्राज्य के काल में जब अशोक युवराज के रूप में था तब वह उज्जैन में गवर्नर बनाकर भेजा गया था।

इसके पश्चात् गुप्त-साम्राज्य में सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के समय में फिर से इस नगरी का उत्कर्ष अपनी चरम सीमा पर पहुँचा है।

विक्रमादित्य के सम्बन्ध में इतिहासकारों के अन्दर बहुत सा मतभेद चलता रहा है। कुछ लोगों का विश्वास है कि ईसवी सन् से ५७ वर्ष पूर्व उज्जैन में वीर विक्रमादित्य के नाम से एक अत्यन्त प्रसिद्ध न्यायी और उदार राजा का आविर्भाव हुआ। कालिदास, वररुचि, वराह मिहिर इत्यादि बड़े-बड़े धुरन्धर ६ विद्वान् उसकी सभा में नवरत्न कहे जाते थे। यहाँ की लोक-कथाओं में वीर विक्रमादित्य के नाम से जो तरह-तरह की कहानियाँ प्रचलित हैं, वे इसी विक्रमादित्य के सम्बन्ध में हैं। इसी विक्रमादित्य ने शक-आक्रमणकारियों को परास्त करके अपने नाम से विक्रम–संवत् चलाया था, जो अभी तक बाकायदा चला आता है।

मगर बहुत से इतिहासकार इस विक्रमादित्य के अस्तित्व को मंजूर नहीं करते। उनका कहना है कि गुप्त साम्राज्य के सुप्रसिद्ध सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय ने दिग्विजय करके विक्रमादित्य का 'विरुद' धारण किया था। पाटलिपुत्र के साथ उसने उज्जयिनी को भी अपनी दूसरी राजधानी बनायी थी। कालिदास इत्यादि नवरत्न उसी की सभा में रहते थे और लोक-कथाओं में प्रचलित विचित्र कहानियाँ इसी के सम्बन्ध में कही गई थीं।

चन्द्रगुप्त के समय में यहाँ पर मालव-संवत् के नाम से एक संवत् चलता था जो ईसवी सन् से ५७ वर्ष पहले प्रारंभ होता था। इसी मालव-संवत् का नाम बदलकर उसने अपने नाम से विक्रम-संवत् कर दिया।

उपरोक्त दलीलों में से दूसरी दलील को अर्थात् चन्द्रगुप्त द्वितीय के विक्रमादित्य होने को इतिहास के अधिकांश विद्वान् ज्यादा संभव मानते हैं। फिर भी इनके विपक्ष में और पहली दलील के पक्ष में जो लोग प्रमाण देते हैं, उनका कथन है कि—

"ऐतिहासिक खोज से ईसवी सन् पूर्व प्रथम शताब्दी में शकों को परास्त करने वाले और विद्वानों को विपुल

दान देने वाले 'उज्जयिनीनरेश' राजा विक्रमादित्य के अस्तित्व का पता चलता है। प्रथम शताब्दी में रचित गाथा—सप्तशती नामक ग्रन्थ में विक्रमादित्य नामक एक प्रतापी तथा उदार शासक का हाल दिया हुआ है। जैन-ग्रन्थों से भी इस बात को पर्याप्त समर्थन मिलता है। मेरुतुंगाचार्य-विरचित "पद्यावली" नामक ग्रन्थ से पता चलता है कि उज्जयिनी के राजा गर्दभिल्ल के पुत्र विक्रमादित्य ने शक लोगों से उज्जयिनी का राज्य वापस जीत लिया था। यह घटना महावीर-निर्वाण के ४७०वें वर्ष में हुई थी। महावीर-निर्वाण का संवत् ईसवी सन् से ५२७ वर्ष पूर्व पड़ता है। इन ५२७ में से ४७० वर्ष को निकाल देने से ईसवीं सन् पूर्व ५७ का वर्ष आता है, जो विक्रमादित्य का ठीक समय है। इसकी पुष्टि 'प्रबन्धकोष' तथा 'शत्रुञ्जय-माहात्म्य' से भी होती है।"

दूसरी दलील यह दी जाती है कि बौद्ध कवि अश्वघोष, जो ईसवी सन् से पूर्व पहली शताब्दी में हुआ, उसकी रचनाओं के साथ कालिदास की रचनाओं में अत्यन्त साम्य पाया जाता है। कथानक की सृष्टि, वर्णन की शैली, अलंकारों का प्रयोग, छन्दों का चुनाव इत्यादि अनेक विषयों में कालिदास का प्रभाव अश्वघोष के ऊपर पड़ा। 'बुद्ध-चरित' में अश्वघोष ने कालिदास के बहुत से श्लोकों का अनुसरण किया है। इससे पता चलता है कि कालिदास का समय अश्वघोष से कुछ प्राचीन होना चाहिए।

जो भी हो यह निश्चय है कि विक्रमादित्य के नाम से उज्जैन का बहुत घनिष्ट सम्बन्ध रहा है और इसी महान नृपति के प्रताप से इस नगरी ने अत्यन्त गौरव प्राप्त किया।

गुप्त-साम्राज्य के पश्चात् 'धारानगरी' में परमार राजाओं का शासन स्थापित होने पर उज्जैन और धारानगरी ने एकबार फिर से महत्व ग्रहण किया। फिर से यह नगरी साहित्य, कला, विद्या और संस्कृति का केन्द्र बन गई।

परमार-वंश में राजा मुञ्ज, राजा भोज इत्यादि कई विद्याप्रेमी नरेश हुए, जिन्होंने अनेकों ग्रन्थ लिखकर तथा विद्वानों और कवियों को आश्रय देकर भारतीय साहित्य को समृद्ध किया।

उज्जयिनी का साहित्य गौरव उसके राजनैतिक वैभव की तरह ही अत्यन्त दीप्तिमान है। महाकवि कालिदास के समान संसार-प्रसिद्ध कवि और नाटककार, वराह मिहिर के समान ज्योतिष के महान विद्वान इत्यादि अनेकानेक महान विद्वानों को उत्पन्न करने का श्रेय इस नगरी को प्राप्त है।

साहित्यिक और राजनैतिक गौरव की तरह इस नगरी का धार्मिक गौरव भी एक सुदीर्घ समय से चला आ रहा है—

क्षिप्रानदी के तट पर बसे होने और महाकाल के क्रीड़ानिकेतन होने की वजह से समस्त भारतवर्ष की हिन्दू-जनता का यह एक आकर्षण-केन्द्र है। सिंह-राशि के ऊपर सूर्य के आने पर हर बारहवें वर्ष में यहाँ पर सिंहस्थ का एक बड़ा भारी मेला लगता है, जिसमें सारे भारतवर्ष के यात्री इकट्ठे हो कर क्षिप्रा में स्नान करके महाकाल को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

महाकाल का मन्दिर उज्जयिनी का सबसे बड़ा आकर्षण है। इस शिवलिंग के कारण उज्जयिनी को पीठस्थान कहते हैं। इस मन्दिर में दिन-रात घृत का दीपक जलता रहता है। पुरातन काल में इस मन्दिर का वैभव और सजावट अत्यन्त दर्शनीय थी।

फरिश्ता नामक मुसलमानी-इतिहास-लेखक लिखता है कि—"यह मन्दिर सोमनाथ-मन्दिर के समतुल्य है। इसके बड़े-बड़े स्तम्भ मणि-माणिक्य से जड़े हुए हैं। गर्भगृह के बीच एक मामूली दीपक जला देने से उसकी रोशनी जब उन स्तम्भों के ऊपर पड़ती है तो सारा मन्दिर सूर्यलोक की तरह चमकने लगता है।"

मुसलमानी राजा अल्तमश ने इस मन्दिर में जड़े हुए तमाम हीरे-माणिकों को लूटकर इस मन्दिर को भारी-क्षति पहुँचाई थी। उसके बाद 'रामचन्द्र बापू' नामक एक सरदार ने पुनः इस मन्दिर का निर्माण करवाया।

उज्जयिनी में केदारेश्वर नामक एक और शिव-मन्दिर है। इसका भी बड़ा महत्व है।

इस नगर में सैकड़ों भैरव की मूर्तियाँ और मन्दिर विद्यमान हैं। क्षिप्रा के दक्षिणी किनारे पर भैरव-गढ़ है,

जिसमें एक बड़ा देवालय है। इस देवालय में काल भैरव की एक मूर्ति प्रतिष्ठित है। यह मूर्ति बहुत प्राचीन है। यहाँ के लोगों का विश्वास है कि काल भैरव ही उज्जयिनी की रक्षा करते हैं।

उज्जयिनी में 'कालीयदी' नामक एक जल-प्रसाद देखने योग्य है। पहले इस स्थान पर भी विष्णु का मन्दिर था। 'मीरात-सिकन्दरी' नामक मुसलमानी इतिहासकार के मत से इस जल-प्रसाद को नसीरुद्दीन ने बनवाया था, मगर देखने से ऐसा मालूम पड़ता है कि यह प्रसाद अधिक प्राचीन है। कालिदास ने अपने ऋतु-संहार में जिस जलयंत्र-मन्दिर का उल्लेख किया है, सम्भवतः वह यही जल-प्रसाद है। ऐसा कहा जाता है कि कालिदास ने यहीं पर बैठकर 'ऋतु-संहार' काव्य की रचना की थी। इससे पहले इस स्थान का नाम ब्रह्मकुण्ड कहा जाता था।

नगर के एक ओर राजा भर्तृहरि की एक गुफा बनी हुई है। कहा जाता है कि संसार-त्याग के बाद भर्तृहरि ने यहीं आकर तपस्या की थी।

नगर से दक्षिण-पूर्व 'जोग शहीद' नामक एक टेकरी है। कहा जाता है कि इसी टेकरी के नीचे राजा विक्रमादित्य का ३२ पुतलियों वाला सिंहासन रखा हुआ है।

राजा जयसिंह के द्वारा बनाया हुआ मान-मन्दिर (आब्जर्वेटरी) भी उज्जैन की दर्शनीय वस्तु है।

आधुनिक समय में मध्यप्रदेश सरकार के अधीन उज्जैन अपने जिले का एक प्रमुख नगर है। प्राचीन नगरी और विद्या का प्रसिद्ध केन्द्र होने के कारण मध्य प्रदेश सरकार का ध्यान इस नगर की ओर गया है। यहाँ पर विक्रम युनिवर्सिटी नाम से एक विश्व-विद्यालय की स्थापना की गई है। महाकवि कालिदास की स्मृति में एक स्मारक बनाने की भी योजना चल रही है।

औद्योगिक दृष्टि से भी यह नगर अच्छी स्थिति में है। यहाँ पर तीन-चार कपड़े की मिलें बनी हुई हैं। मध्य प्रदेश का उद्योग-विभाग इस नगर की औद्योगिक उन्नति के लिए प्रयत्नशील है।

साहित्यिक और ज्योतिष के क्षेत्र में भी उज्जैन नगर मध्य प्रदेश में अपना निजी अस्तित्व रखता है। श्री सूर्य नारायण व्यास यहाँ के सुप्रसिद्ध ज्योतिषी और साहित्यकार हैं। माधव कालेज के प्रिंसिपल श्री शिवमङ्गल सिंह 'सुमन' हिन्दी के माने हुए कवियों में से एक हैं। श्री प्रभाकर माचवे भी भारतवर्ष के लब्ध प्रतिष्ठ लेखकों में अपना एक स्थान रखते हैं।

उजबक खान

मध्य युग के अन्तर्गत, मध्य एशिया में सुनहरी कबीले का एक मशहूर सरदार, जिसने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की और जिसके नाम के ऊपर 'उजबक' जाति का नामकरण हुआ।

ईसा की १३वीं शताब्दी में मध्य एशिया के अन्तर्गत सुनहरी कबीले का बड़ा बोलबाला था। यह जाति तुर्कों की ही एक शाखा थी। इस कबीले ने बड़े-बड़े आक्रमण करके बाश्किर, बोल्गा, सक्सिन, मास्को, कीयेफ इत्यादि मध्य एशिया के एक विशाल क्षेत्र को जीतकर सन् १२३८ से १२४० ई० तक यूरोप की भूमि में भी धूमधाम मचाई और बहुत से प्रदेश विजय कर लिए। इसी कबीले का ६वाँ शासक 'उजबक खान' हुआ; जिसका समय सन् १३१३ से १३४२ ई० तक है।

सन् १३२३ में उजबक ने अपनी सेना के साथ यूरोप के लिथुवानियाँ प्रान्त पर आक्रमण किया। यह समय कुस्तुन्तुनियाँ के विजन्तीन-सम्राटों के लिए बड़े संकट का समय था। सुनहरी कबीले वालों को प्रसन्न रखने के लिए सम्राट और सरदारों ने उसे अपनी सुन्दर कन्याएँ भेंट कीं। फिर भी वे अपनी जान नहीं बचा पाये। १३२४ ई० में मंगोल, एड्रिनोपुल पर १ लाख २० हजार सेना के साथ चढ़ आये और ४० दिन तक 'थ्रेस' प्रदेश को खूब लूटा। बहुत-सी सम्पत्ति और दास-दासियों को भारी संख्या में बन्दी कर वे वापस लौट आये।

उजबक खान के समय में ही सुनहरी कबीले के लोगों ने सामूहिक रूप से इस्लाम को ग्रहण किया।

उजबक का शासन-काल सुनहरी-कबीले के इतिहास में समृद्धि की चरम सीमा का है। उजबक ने अपने समय

में शान्ति और व्यवस्था को इतनी अच्छी तरह से कायम किया था कि पूर्व, पश्चिम, उत्तर दक्षिण—चारों तरफ से उसके राज्य में व्यापारियों का ताँता लगा रहता था। उसकी सेना भी बड़ी जबर्दस्त थी। लेकिन उससे भी अधिक वह कूट-नीति और भेद-नीति से काम लेता था।

इस्लाम के साथ उसकी बहुत बड़ी सहानुभूति थी। सन् १३१४ में उसने खलीफा नासिर को एक पत्र लिखा था। जिसमें लिखा था कि—"मेरे राज्य में अब सिर्फ मुसलमान हैं। गद्दी पर बैठते ही मैंने उत्तरी कबीलों को कह दिया कि या तो इस्लाम स्वीकार करो या लड़ाई लो! जिन्होंने स्वीकार नहीं किया, उन्हें मैंने लड़कर अधीनता स्वीकार करने के लिए मजबूर किया।"

उजबक खान का पताप इतना बढ़ा हुआ था कि मास्को और कियेफ़ के राजुल और महाराजुल जो आगे जाकर रूस के प्रतापी 'जार' हुए, उजबक की कृपा के भिखारी रहते थे और उसके दरबार में हाजिरी दिया करते थे।

प्रसिद्ध यात्री इब्न बतूता ने उजबक खान के सम्बन्ध में लिखा है—

'खान की राजधानी (सराय) एक चलती-फिरती नगरी है, जिसमें सड़कें हैं, मस्जिदें हैं, भोजनगृह हैं, जिनका धुवाँ चलते-फिरते समय ऊपर उठता रहता है। उजबक सारी दुनिया के ७ बड़े राजाओं में से एक है। प्रत्येक शुक्रवार को नमाज के बाद खान एक सुनहले चंदवे के नीचे सोने-चाँदी और कीमती जवाहरातों से जड़े हुए सिंहासन पर बैठता है। उसके बाजू में दोनों तरफ उसकी दो-दो बीबियाँ बैठती हैं। सिंहासन के सामने उसके दो बड़े पुत्र खड़े होते हैं। खान के सामने उसकी लड़कियाँ बैठती हैं। खान की बीबियाँ बिल्कुल पर्दा नहीं करतीं। उनका बड़ा सम्मान किया जाता है। उनमें प्रत्येक का अलग-अलग महल होता है जिनमें उनके अलग-अलग सेवक और अनुचर रहते हैं।"

उजबक ने ग्रीक राजा 'एंड्रोनिकस' की लड़की 'बेईलून खातून' से ब्याह किया था। इस ब्याह को रूस के महा संघराज 'थेओग्नोनोस' ने कास्टैंटिनोपुल जाकर स्वयं करवाया था।

उजबक खान ने अपने नाम के सिक्के भी चलाये थे। इन सिक्कों पर 'महम्मद उजबक खान' 'उजबक खान आदिल' इत्यादि नाम लिखे हुए मिलते हैं।

३० साल राज्य करने के बाद सन् १३४२ में उजबक खान की मृत्यु हुई।

उजबेकिस्तान

वर्तमान उजबेकिस्तान में खोकन्द, खीवा (ख्वारेजम) और बुखारा की रियासतों का भाग सम्मिलित है जिनमें बुखारा का तो सारा ही भाग उजवेकिस्तान में है। सुनहरी कबीले का शासन खतम होने के पश्चात् यह प्रान्त रूसी शासन में चला गया था। सुनहरी कबीले के उजबक खान के नाम पर ही इस प्रान्त का नाम 'उजवेकिस्तान' और इसमें बसने वाली जाति का नाम 'उजवेक' पड़ा।

उजवेकिस्तान का क्षेत्रफल १ लाख ८८ हजार वर्ग मील तथा यहाँ की आबादी ६२ लाख के करीब है। उजवेकिस्तान की राजधानी 'ताशकन्द' में है तथा समरकन्द और बुखारा जैसे इतिहास-प्रसिद्ध नगर भी उजवेकिस्तान में ही पड़ते हैं।

उजवेकिस्तान में बोल्शेविक क्रान्ति

सन् १९१७ में जब रूस के अन्दर बोल्शेविक क्रान्ति का प्रारम्भ हुआ, तब उसकी लहर उजवेकिस्तान में भी पहुँची। क्योंकि यह प्रान्त भी रूसी शासन का ही एक अंग था।

प्रारम्भ में मार्च सन् १९१७ ई० से उजबेक-राष्ट्रीयतावादी वर्ग ने शूरा-इस्लामिया नामक पार्टी की स्थापना की। इसी प्रकार वहाँ के मुल्लाओं और उल्माओं ने भी एक पार्टी खड़ी की, जिसके पोषक बड़े-बड़े जमींदार और सामन्त थे।

इस समय तक यहाँ पर बोल्शेविकों का अधिक प्रभाव नहीं था, मगर जब यहाँ के लोगों को मालूम हुआ कि रूस में बोल्शेविक प्रगति किस प्रकार हो रही है तो यहाँ के लोगों में भी बोल्शेविकों का प्रभाव तेजी से बढ़ने लगा और 'बाबुश्किन' नामक व्यक्ति के नेतृत्व में खोकन्द में बोल्शेविकों की एक मजबूत पार्टी संगठित हो गई।

ताशकन्द एशिया का सबसे बड़ा औद्योगिक केन्द्र था। यहाँ के कारखानों में रूसी मजदूर बड़ी संख्या में काम करते थे। सन् १६१६ में यहाँ पर बोल्शेविक पार्टी की दूसरी कांग्रेस हुई और उसके बाद ही मध्य एशिया में बोल्शेविकों का प्रभाव बड़ी तेजी से बढ़ने लगा और उसके पश्चात् खोकन्द, समरकन्द इत्यादि सभी स्थानों पर बोल्शेविक क्रान्ति की ज्वालाएँ फैलीं और यह सारा प्रान्त 'सोवियट रूस' का एक प्रभावशाली अंग बन गया।

उटकमंड

दक्षिण भारत का एक अत्यन्त रमणीक और सुन्दर पहाड़ी स्टेशन, जो मदरास-प्रान्त में समुद्री सतह से ७२३० फीट की ऊँचाई पर बसा हुआ है। यहाँ की जन-संख्या सन् १६५१ में ४१३७० थी।

यह नगर चारों ओर से सात हजार फीट तक ऊँची पहाड़ियों से घिरा हुआ है। यहाँ की कृत्रिम झील अत्यन्त दर्शनीय हैं। 'सिनकोना' नामक वनस्पति का राजकीय उत्पादन केन्द्र यहीं पर है। इसके आसपास की भूमि में सिनकोना, चाय, कहवा और युक्लिप्टस के बहुत से बगीचे हैं। यहाँ का 'लारेंस मेमोरियल' स्कूल बहुत प्रसिद्ध है। इस स्कूल की स्थापना सन् १८५८ ई० में की गई थी। दक्षिण भारत का मुख्य टी० बी० सिनाटोरियम भी यहाँ पर बना हुआ है। यहाँ का वनस्पति-उद्यान दर्शनीय वस्तु है।

उड़ीसा

भारत के दक्षिण पूर्वी क्षेत्र में बसा हुआ एक प्रान्त। इसके उत्तर में बिहार, दक्षिण में आन्ध्र, पूर्व में पश्चिमी बंगाल और पश्चिम में मध्य प्रदेश है। इसका क्षेत्रफल ६०१३६ वर्गमील और जनसंख्या सन् १६५१की जनगणना के अनुसार १,४६,४५,६४६ है। उड़ीसा की पुरानी राजधानी कटक और नई राजधानी भुवनेश्वर है। राज्य की भाषा उड़िया है।

उड़ीसा का प्राचीन नाम 'कलिंग' देश था। 'प्लाइनी' के समय में इस देश के तीन भाग माने जाते थे और इसीलिए इसको 'त्रिकलिंग' भी कहा जाता था। (विजगापट्टम गजेटियर, पृष्ठ २६)। यह निश्चित करना कठिन है कि कलिंग के ये तीन भाग कौन-कौन से थे। सम्भवतः वे इस प्रकार होंगे। (१) मुख्य कलिंग अर्थात् पूर्व किनारे पर के वर्तमान गंजम, विजगापट्टम और गोदावरी के जिले, (२) आन्ध्र अर्थात् पूर्वी घाट के ऊपर का प्रदेश और (३) उड़ीसा-महानदी के उत्तर का प्रदेश।

उड़ीसा का इतिहास बहुत प्राचीन समय से प्रारम्भ होता है। सम्राट अशोक के समय में कलिंग एक बहुत शक्तिशाली राज्य था, जिसको जीतने में सम्राट अशोक के समान पराक्रमी नरेश को भी बहुत जोर आया था और युद्ध में लाखों आदमियों का नर-संहार हुआ था। उस नर-संहार को देखकर सम्राट् अशोक के समान देवताओं के 'प्रियदर्शी सम्राट्' को अत्यन्त वेदना हुई थी और उसके बाद उन्होंने हमेशा के लिए युद्ध करना बन्द कर दिया था।

सम्राट् खारवेल

मौर्य-सम्राज्य का प्रभाव घटने के पश्चात् कलिंग देश का शासन जैन-धर्मावलम्बी राजाओं के हाथ में आया। इन राजाओं में सम्राट् खारवेल का नाम बहुत प्रसिद्ध है। इसका समय ईसवी सन् पूर्व २०७ से ईसवी सन् पूर्व १६० तक माना जाता है।

उस समय कलिंग देश की राजधानी 'तोसली' नामक स्थान में थी, जिसको कलिंगनगरी नाम से भी कहा गया है।

सम्राट 'खारवेल' एक अत्यन्त साहसी, महत्वाकाँक्षी और उदार प्रवृत्तियों का शासक था। उसका हाथी-गुफा वाला शिलालेख बड़े महत्व का है। यह करीब १५ फीट १ इञ्च लम्बा, ५॥ फीट चौड़ा और १७ पंक्तियों में विभक्त है। इसकी भाषा ऐसी प्राकृत है जो अपभ्रंश, प्राकृत, अर्धमागधी और पाली से मिलती-जुलती है। इसकी लिपि उत्तरी ब्राह्मी है। इस लेख से तथा अन्य जैन परम्पराओं से पता चलता है कि खारवेल ने सातवाहनवंशीय राजा सातकर्णी प्रथम के ऊपर आक्रमण करके इसके राज्य के बहुत से हिस्से पर अधिकार कर लिया था। उसके बाद उसने दूसरा आक्रमण राष्ट्रकूट और भोजक क्षत्रियों पर किया था। उसका तीसरा आक्रमण मगध

देश पर हुआ था। उस समय मगध में सुंग-वंशीय राजा 'पुष्यमित्र' था और उसने 'अश्वमेध-यज्ञ' करके 'चक्रवर्ती पद प्राप्त किया था।

इसी प्रकार इस प्रसिद्ध राजा ने और भी कई आक्रमण करके अपने साम्राज्य का काफी विस्तार कर लिया था। सम्राट खारवेल जैन धर्मावलम्बी था, फिर भी वैदिक विधान के अनुसार उसका 'राज्याभिषेक' हुआ था और उसने 'राजसूय' यज्ञ भी किया था। जैन-धर्म की प्रभावना के लिए सम्राट् खारवेल ने अनेकों मन्दिर और विहार बनवाये थे। उनमें चारो ओर से जैन श्रमण और विद्वान् एकत्रित हो करके ज्ञान-चर्चा किया करते थे।

इसी प्रकार उसने जैन-धर्म के बहुत से ऐसे सूत्रों का उद्धार करवाया, जो उस समय लुप्त हो चुके थे। उसने जैन-मुनियों के एक संघ के द्वारा ही इन शास्त्रों का पुनरुद्धार करवाया था।

जैन-वंश के बाद कलिंग देश में 'गुह-वंश' का अभ्युदन हुआ। सिंहल के 'दाठा वंश' नामक पाली-ग्रन्थ में कलिंगाधिप 'शिव गुह' का नाम मिलता है। इस प्राचीन ग्रन्थ की परम्परा के अनुसार 'शाक्य बुद्ध' के निर्वाण पर 'क्षेम' नामक उनके एक शिष्य ने बुद्ध की चिता से उनका पवित्र दाँत उठाकर कलिंग के राजा ब्रह्मदत्त को लाकर दिया था। राजा ब्रह्मदत्त ने अपनी राजधानी में एक सुन्दर मन्दिर बनाकर उसमें उस पवित्र दाँत को रखा। इसी दाँत के कारण कलिंग की राजधानी का नाम 'दन्तपुर' हुआ।

सन् ३७० से ३६० ई० के बीच में शिवगुह दन्तपुर के सिंहासन पर बैठे। ब्राह्मणों के अत्यन्त भक्त होने के कारण उन्होंने दाँत की पूजा करना छोड़ दिया था। मगर कुछ नैसर्गिक घटनाओं से वे फिर उस दाँत के कट्टर भक्त हो गये थे। शिवगुह के युद्ध में मारे जाने के पश्चात् उनके दामाद उज्जयिनी के राजकुमार दन्तकुमार ने राजकन्या के साथ छद्मवेश में वह दाँत उठाकर सिंहलद्वीप की यात्रा की और वहीं पर उस दाँत की स्थापना कर दी।

केसरी-राजवंश

मगध में गुप्त-साम्राज्य की स्थापना होने के बाद कलिंग भी उस साम्राज्य का एक अंग बन गया। गुप्त-साम्राज्य के पश्चात् इसका शासन चन्द्रवंशीय केशरी-राजवंश के हाथों में आया। केशरी-राजवंश शिव का उपासक था। इसलिए इस राजवंश के समय में उड़ीसा में नाना स्थानों पर शिव-मन्दिरों का निर्माण हुआ। इन्होंने अशोक के द्वारा प्रचलित की गई बुद्ध-पूजा के बदले में शिव-पूजा प्रचलित की। कटक-गजेटियर में इन केसरी राजाओं के दो शिलालेखों का उद्धरण किया गया है, जो केशरी-वंश के राजा उद्योत-केशरी के सम्बन्ध में लिखे हुए हैं। एक शिलालेख तो खण्डगिरि की पहाड़ियों की किसी गुफा में मिला है और दूसरा भुवनेश्वर वाले 'ब्रह्मेश्वर' के मन्दिर में। केशरी-राजाओं में ललातेन्दु केशरी नामक एक बड़ा प्रतापी राजा हुआ, जिसने ६वीं सदी में भुवनेश्वर में सुप्रसिद्ध शिव-मन्दिर का निर्माण करवाया।

इन केशरी राजाओं ने भुवनेश्वर में जो अनेक देवालय बनवाये उनका भी विस्तृत वर्णन इस गजेटियर में दिया गया है। यह देवालय तत्कालीन उत्कृष्ट शिल्पकला तथा केसरी राजाओं के ऐश्वर्य का साक्षी है।

केशरी राजाओं के पश्चात् कलिंग देश में एक नये राजवंश का उदय हुआ, जो गंग-राजवंश के नाम से प्रसिद्ध है। इस राजवंश का संस्थापक 'वज्रहस्त' नामक राजा माना जाता है। वज्रहस्त का पुत्र राजराज चोल-वंश के प्रसिद्ध राजा राजेन्द्र की कन्या 'रूप सुन्दरी' का पति था। राजराज के पुत्र अनन्त वर्मन को गंग और चोल-वंश के मेल से उत्पन्न होने के कारण 'चोड़-गंग' कहते थे।

चोड़-गंग

अनन्त वर्मन इस चोड़-गंग-वंश में सबसे प्रतापी राजा हुआ। इस राजा के समय के कई शिलालेख प्राप्त हुए हैं, जिसमें ईसवी सन् १०८१ का लेख बहुत विस्तृत है।

अनन्तवर्मन के राज्याभिषेक का समय सन् १०७८ दिया गया है। उसका एक ताम्रलेख भी 'बंगाल रायल एशियाटिक सोसायटी' जिल्द ६५ भाग १ पृष्ठ २४० पर छपा है। इस लेख में चोड़-गंग के द्वारा उड़ीसा तथा उत्कल को जीतने का तथा अपने राज्य में शामिल करने का उल्लेख किया गया है। उस लेख में लिखा है कि

'इस उत्कल रूपी समुद्र का मन्थन करने पर उसे भूमि, द्रव्य, एक हजार हाथी और दस हजार घोड़े प्राप्त हुए।'

इससे पता चलता है कि चोड़-गंग के द्वारा ही उड़ीसा के केसरी-वंश का अन्त हुआ।

जगन्नाथ-मन्दिर की स्थापना

इस लेख से यह भी पता चलता है कि भारत-प्रसिद्ध 'जगन्नाथ' का विशाल मन्दिर चोड़-गंग ने ही बनवाया था। लेख के २८ वें श्लोक में लिखा है कि—

"समस्त संसार का उत्पत्तिकर्त्ता और संसार भर में व्याप्त जगन्नाथ इस सुन्दर मन्दिर में आकर रहने लगा और लक्ष्मी भी रत्नाकर के घर को छोड़कर यहाँ पर आकर आनन्दपूर्वक रहने लगी।"

इस लेख में चोड़-गंग के लिए परमवैष्णव शब्द लिखा गया है। इससे मालूम होता है कि इस समय इस कुल का आराध्य देवता 'शिव' की जगह 'विष्णु' हो गया था और राजा अपने को परम वैष्णव कहने लग गये थे। इस लेख के अनुसार चोड़-गंग ने करीब ७० वर्ष तक राज्य किया। उसके बाद उसका पुत्र 'कामार्णव' गद्दी पर बैठा। कामार्णव के बाद 'राघव' उसके बाद 'राजराज द्वितीय, उसके बाद सन् ११६२ में भीमदेव राजा हुआ। अनंग भीमदेव के बाद उसका पुत्र 'राजराज' गद्दी पर आया। इसके बाद नरसिंह देव प्रथम गद्दी पर बैठे, जिनके समय में १३ वीं शताब्दी में कोणार्क के विश्व-विख्यात सूर्य-मन्दिर का निर्माण हुआ, जिसकी शिल्पकला आज भी दर्शकों को बरबस अपनी ओर खींचती है। सन् १४५२ ई० तक इस चोड़-गंग वंश का शासन चलता रहा।

सन् १४५२ में कपिल नामक एक सूर्य-वंशी पुरुष 'कपिलेन्द्र देव' की उपाधि धारण कर उड़ीसा का राजा बना जिसने सेतुबन्ध रामेश्वर तक अपना अधिकार फैलाया। इसी वंश में प्रतापरुद्र नामक भी एक राजा हुआ। सन् १५५२ तक कपिल-वंश का शासन चला। उसके बाद मुकुन्द देव राजा हुआ।

काला पहाड़ का आक्रमण

मुकुन्द देव के पुत्र ओड़िया गोविन्द जब राजा थे, तब बंगाल के प्रसिद्ध आक्रमणकारी 'काला पहाड़' का भयंकर आक्रमण जगन्नाथपुरी पर हुआ। राजा गोविन्द जगन्नाथ देव की मूर्ति को उठाकर गढ़पार कूदकर भाग गये। उसके बाद रामचन्द्र देव नामक राजा ने जगन्नाथ देव की अवशिष्ट मूर्ति पुनः पुरी में स्थापित कराई। उसके बाद सन् १५७६ में उड़ीसा का यह राज्य सम्राट् अकबर के शासन में आया। उन्होंने मासूमखान काबुली को उड़ीसे का गवर्नर बनाकर भेजा, पर उसने पठानों के साथ मिल कर विद्रोह कर दिया, तब कुतुलखान नामक एक पठान उड़ीसा की गद्दी पर आया।

सन् १५६० ई० में सम्राट् अकबर के सेनापति और बंगाल-बिहार के गवर्नर—राजा मानसिंह ने उड़ीसा पर आक्रमण किया, मगर कुतुलखान ने मानसिंह की सेनाओं को बुरी तरह से हराया और मानसिंह के पुत्र जगतसिंह को गिरफ्तार करके 'विष्णुपुर' पर अधिकार कर लिया। उसके बाद-कुतुलखान के मरने पर उड़ीसा स्थायीरूप से अकबर के अधिकार में आ गया। सिर्फ राजमहेन्द्री का हिस्सा स्वाधीन रहा।

सन् १७२५ में महम्मद तकी खान उड़ीसे के सहकारी शासनकर्त्ता बन कर आये। उनके समय में राजा रामचन्द्र देव ने विद्रोह का झंडा उठाया। काफी लड़ाई के बाद वे हार गये और कटक में कैद किये गये। मुसलमानों के भय से पण्डे जगन्नाथदेव की मूर्ति को लेकर भाग गये।

इसके बाद नवाब मुर्शिदकुली खान उड़ीसा के सहकारी शासन-कर्त्ता बने। उन्होंने आकर देखा कि जगन्नाथदेव की मूर्ति के न होने से यात्री लोगों का आना एकदम बन्द हो गया है और उनसे होने वाली आमदनी भी रुक गई है। तब उन्होंने पण्डों से कह-सुन-कर मूर्ति को वापिस मन्दिर में प्रतिष्ठित करवायी।

सन् १७४१-४२ में उड़ीसा मराठों के आक्रमण का शिकार हुआ। मुर्शिदकुली के दीवान मीरहबीब ने षड्यंत्र करके मराठों को उड़ीसा बुलाया था।

सन् १७४५ में रघुजी भोंसले ने उड़ीसा पर अधिकार कर लिया और मीरहबीब को अपना प्रतिनिधि बनाकर रघुजी वापस देश चले गये।

मराठों में शिवभट्ट शास्त्री उड़ीसा के पहले गवनर हुए। सन् १७५६ से १८०३ तक उन्होंने उड़ीसे पर शासन चलाया। मराठों के अत्याचारों से तंग होकर वहाँ की प्रजा 'त्राहि माम्' कर उठी और उसने अंग्रेजों से सहायता माँगी।

सन् १८०३ की १४ वीं अक्टूबर को केवल एक दिन की लड़ाई में अंग्रेजों ने मराठों को वहाँ से भगा दिया और वहाँ पर शान्ति स्थापित कर सुव्यवस्था की घोषणा की।

अंग्रेजों के द्वारा विजित होने के बाद यह प्रान्त बिहार के साथ मिलाकर 'बिहार और उड़ीसा' के नाम से इसका नामकरण किया गया, मगर उड़ीसा के निवासी अपनी प्राचीन संस्कृति और भाषा के आधार पर उड़ीसा को एक स्वतंत्र इकाई के रूप में देखना चाहते थे, इसके फलस्वरूप १ अप्रैल सन् १९३६ को उड़ीसा एक स्वतंत्र प्रान्त के रूप में बना दिया गया।

भारतवर्ष को आजादी प्राप्त होने के पश्चात् इस प्रान्त में २४ देशी रियासतों को मिलाकर एक नये उड़ीसा-राज्य का संगठन किया गया जो इस समय १३ जिलों में विभक्त है।

उड़िया-साहित्य

उड़िया-भाषा आर्य, द्रविड़, सन्थाली और मुंडारी भाषा के सम्मिश्रण से बनी हुई, एक स्वतंत्र भाषा है जो उड़ीसा प्रान्त में बोली जाती है।

प्रत्येक भाषा के साहित्य की तरह उड़िया-भाषा का भी अपना एक साहित्य है, हालाँकि वह बहुत समृद्ध नहीं है।

उड़िया-भाषा के साहित्य का इतिहास ११ वीं सदी के मध्य से प्रारम्भ होता है, जिसके लिए कहा जाता है कि गंग देश के प्रथम राजा चोड़गंग देव ने सन् १०४२ ई० में 'मादला पाञ्जी' नामक ग्रन्थ का लिखना प्रारम्भ किया था। मादला पाञ्जी की हस्तलिखित प्रति जगन्नाथ मन्दिर में सुरक्षित है। इस ग्रन्थ में उड़ीसा के राजवंश और जगन्नाथ मंदिर का इतिहास लिखा हुआ है।

इसके पश्चात् उड़ीसा के प्रथम जातीय कवि और उड़ीसा-साहित्य के आदिकाल के प्रतिनिधि 'सारलादास' नाम आता है, जिनका समय १४ वीं शताब्दी के मध्य में समझा जाता है। इनकी रचनाओं में 'महाभारत' 'चण्डी पुराण' और 'विलंका रामायण' उपलब्ध हैं।

मध्य युग में पंच सखाओं ने उड़िया-साहित्य को समृद्ध किया। इन पंच सखाओं के नाम बलराम दास, जगन्नाथ दास, यशोवन्त दास, अनन्त दास और अच्युतानन्द दास हैं। इन पंच सखाओं ने पुरी के जगन्नाथ की उपासना और भक्ति-साहित्य पर बहुत से ग्रन्थों की रचना की, जिनमें कुछ तो छप चुके हैं और कुछ छपना बाकी है।

इसी प्रकार शिशु शंकर दास की 'ऊषाभिलाष' कवि कैश्वर दास की 'कपट केलि' दिवाकर दास का जगन्नाथ चरितामृत, हरिहर दास का चन्दावली-विलास, देवदुर्लभ दास की 'रहस्य-मञ्जरी' और प्रताप राय की शशि सेना नामक कृतियाँ भी उड़िया साहित्य में निर्मित हुईं।

भक्ति-काव्य के साथ साथ रीति-काव्य और शृंगार-रस प्रधान कविताओं का भी मध्यकाल या १७वीं शताब्दी में अच्छा विकास हुआ। रीति-युग के श्रेष्ठ कवियों में 'उपेन्द्र-भञ्ज का नाम सबसे आगे है। इन्हीं के नाम पर उड़िया साहित्य में रीति-युग को 'भञ्ज युग' भी कहते हैं। उपेन्द्र-भञ्ज' का जन्म सन् १६८५ में और मृत्यु सन् १७२५ में हुई। इनकी कविताओं में भाषा का प्रवाह शब्दों की विलक्षणता, ओज-प्रसाद और माधुर्य इत्यादि गुणों का समावेश पाया जाता है। इनकी कृतियों में 'वैदेही का विकास' 'सुभद्रा-परिणय' 'व्रजलीला' 'लावण्यवती' 'कोटि' 'ब्रह्माण्ड-सुन्दरी' 'रसिक हारावती' आदि अनेक काव्य-ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। रीति काल के समक्ष लक्षणों का विकास होने के साथ-साथ जिनको आजकल की भाषा में अश्लीलता कहा जाता है, उसकी झलक भी कहीं-कहीं इनके काव्यों में देखने को मिलती है।

उपेन्द्र-भञ्ज के पश्चात् उड़िया-भाषा के साहित्य में सच्चिदानन्द कवि सूर, भक्त चरणदास, गोपाल कृष्ण [illegible], [illegible] [illegible], भीम भोई इत्यादि के नाम प्रसिद्ध हैं। भीम भोई आदिवासी जाति के जन्मान्ध

और निरक्षर कवि थे, लेकिन उनके रचे हुए 'स्तुति-चितामणि' और 'ब्रह्म निरूपण-गीता' के भजन आज भी उड़ीसा के अन्दर बड़े प्रेम और आदर के साथ गाये जाते हैं।

आधुनिक युग के प्रधान कवि 'राधानाथ राय' माने जाते हैं। कई लोग इस युग को इन्हीं के नाम पर 'राधानाथ युग' भी कहते हैं। इनके लिखे हुए काव्यों में 'पार्वती' 'नन्दिकेश्वरी' 'ययाति-केशरी' इत्यादि ऐतिहासिक काव्य प्रसिद्ध हैं। मेघदूत, वेणी-संहार और तुलसी-पद्यावली का अनुवाद भी इन्होंने किया था।

उपन्यासों के क्षेत्र में उड़िया भाषा के अन्तर्गत 'फकीर मोहन' का नाम बहुत प्रसिद्ध है। लछमा, मामू, छमाण आठ गुंठ, प्रायश्चित्त इत्यादि उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। काव्य-ग्रन्थों में उनकी लिखी हुई उत्कल-भ्रमण, पुष्पमाला आदि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। रामायण और महाभारत का पद्यानुवाद भी इन्होंने किया है।

नाट्य-कला के क्षेत्र में इस युग के प्रधान नाटककार 'रामशंकर राय' माने जाते हैं। इनकी कृतियों में काञ्चि-कावेरी, वनमाला, कंस-वध इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

राधानाथ युग के पश्चात् उड़िया-साहित्य में गोपबन्धु दास, नीलकण्ठ दास, गोदावरीश मिश्र, पद्मचरण पट्टनायक, कुन्तला कुमारी सांवत और लक्ष्मीकान्त महापात्र इस युग के प्रधान कवि और साहित्यकार हैं। गोपबन्धु दास की रचनाओं में धर्मपद, बन्दीर आत्मकथा इत्यादि रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। लक्ष्मीकान्त महापात्र हास्य-रस के लेखक हैं। कुन्तला कुमारी सांवत छायावाद की कवियित्री हैं। मायाधर मानसिंह उड़िया-साहित्य में रोमांटिक रचनाओं के लेखक हैं। इनकी रचनाओं में 'धूप' 'हेम-पुष्प' 'हेंम-शस्य' इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

प्रगतिवाद के आधुनिक युग में सच्चिदानन्द राउत राय का नाम सबसे आगे आता है। 'पल्ली-चित्र,' 'पाण्डुलिपि' आदि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। इस युग के लेखकों में नित्यानन्द महापात्र, राधामोहन गंडनायक, कान्हू-चरण महान्ति इत्यादि लेखक प्रसिद्ध हैं।

उण्णायि वारियर

मलयालम-साहित्य में कत्थकली-साहित्य का महान् कलाकार उण्णायि वारियर।

मलयालम-साहित्य के कत्थकली-धारा के कवियों में उण्णायि वारियर का अद्वितीय स्थान है। मलयालम-साहित्य के श्रेष्ठतम कवियों में इनकी गणना है। केरल की साहित्यिक फुलवारी में इनकी रचना कभी न मुरझाने वाली ऐसी पुष्पलता है, जो अपनी सुगन्ध से चारों दिशाओं को हमेशा सुरभित रखती है।

उण्णायि वारियर का जन्म १७वीं सदी के अन्त में या १८वीं सदी के प्रारंभ में त्रिशिव पेरूर-नगरी के समीप हुआ था। 'ऊटल माणिक्कम्' नामक मन्दिर में वे कार्य-कर्त्ता थे। अपना अधिक समय उन्होंने त्रावंकोर की राजधानी में मार्तण्ड वर्मा और धर्मराजा के आश्रय में बिताया था।

उण्णायि वारियर की सर्वोत्तम कृति उनकी 'नल-चरितम्' नामक रचना है। एक करुणापूर्ण कथा को चुनकर उसमें स्थान स्थान पर लोगों के हृदय में तरह-तरह के भाव जगाते हुए जीवन के सभी पहलुओं पर इन्होंने अपनी इस कृति में प्रकाश डाला है। मर्मस्पर्शी घटनाओं का चित्रण चुने हुए शब्दों के द्वारा करने की कला पर इनका अबाध अधिकार था। नये-नये शब्दों का प्रयोग करने में ये बड़े सिद्धहस्त थे।

नल दमयन्ती का मिलन, इस कार्य में हंस का भाग, नव दम्पति का साज-शृंगार, वन गमन, दमयन्ती से नल का बिछुड़ना आदि सभी प्रसंगों का विवेचन सजीव और करुणापूर्ण भाषा में करने में इस कवि ने अत्यन्त सफलता प्राप्त की है।

नल-चरितम् के अतिरिक्त 'राम-पञ्चशती' और 'गिरिजा-कल्याण' नामक रचनाएँ भी उण्णायि वारियर की मानी जाती हैं, मगर इन रचनाओं के सम्बन्ध में कुछ मत-भिन्नता है और कुछ लोग ऐसे भी हैं जो इन रचनाओं को उण्णायि वारियर की नहीं मानते।

उण्णीयच्ची-चरितम्

मलयालम-साहित्य का सबसे पहला चम्पू (गद्य-पद्यमय) ग्रन्थ। विद्वानों के मतानुसार इसका निर्माण सन् १३४६ के आस-पास किसी समय हुआ, मगर इसके रचयिता के नाम का पता नहीं चलता।

इस चम्पू-ग्रन्थ का कथानक इस प्रकार है—

मलावार प्रदेश में कोट्टायम नामक एक नगर है। वहाँ इस कथानक की नायिका उण्णीयच्चि जन्म लेती है। जब वह सयानी हुई तो उसका अपूर्व सौन्दर्य देखकर एक गन्धर्व उस पर अनुरक्त हो जाता है। इतने ही कथानक पर यह रचना की गई है। इसमें कई मन्दिरों, वैद्यों तथा ज्योतिषशास्त्र के पंडितों का वर्णन किया गया है तथा इन पंडितों की लोकव्यवहार-शून्यता की हँसी उड़ाने का कवि ने सफल प्रयास किया है।

उण्णूनीलि-सन्देश

संस्कृत-साहित्य के 'मेघदूत' के समान केरल-साहित्य की एक अनूठी रचना, जिसका रचना-काल १४वीं शताब्दी में माना जाता है।

कथासार—इस कृति का नायक अपनी प्रिया के साथ महल में सो रहा था। आधी रात के समय एक यक्षिणी उसके महल में आती है और नायक को लेकर दक्षिण दिशा की ओर चली जाती है। नायक उससे छुटकारा पाने के लिए ईश्वर की प्रार्थना करता है। तब यक्षिणी उसे छोड़ देती है। वह जिस जगह पर छोड़ जाती है, वह स्थान उस देश की राजधानी 'तिरुवनन्तपुरम्' है। वहीं पर उसे पद्मनाभ-मन्दिर से गीत तथा घंटे की ध्वनि सुनाई पड़ती है। वहाँ जाने पर उसे उसका बाल्य-दोस्त कोल्लम-राज्य का राजकुमार मिलता है। उसे वह अपना सन्देश-वाहक बनाकर अपनी धर्मपत्नी के पास भेजता है। सन्देश देकर प्रिया के देश जाने का रास्ता बता देता है।

इस काव्य में रास्ते के नगरों, वहाँ के निवासियों, सुन्दरियों, झीलों तथा फुलवारियों का चित्र अनूठी शैली में खींचा गया है। मलयालम-साहित्य के विद्वानों का निर्विवाद मत है कि 'उण्णुनीलि-सन्देश' मलयालम-साहित्य की एक अमूल्य सम्पत्ति है।

उण्णुनीलि-सन्देश पर मलयालम-साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् कुञ्जन पिल्ला ने एक समीक्षात्मक ग्रन्थ भी लिखा है।

उत्तर प्रदेश

गणतंत्र भारत का एक विशाल राज्य, जिसके उत्तर में नैपाल और तिब्बत, पूर्व में बिहार, पश्चिम में हिमाचल-प्रदेश, पंजाब और दिल्ली तथा दक्षिण में मध्यप्रदेश है। इसका कुल क्षेत्रफल १ लाख १३ हजार ४०६ वर्गमील है। जनसंख्या ७ करोड़ ३६ लाख ५० हजार है। जनसंख्या की दृष्टि से समस्त भारत के राज्यों में यह सबसे बड़ा है। इस राज्य का नाम सन् १९५० में संयुक्त प्रान्त से बदल कर उत्तर प्रदेश कर दिया गया।

प्रागैतिहासिक युग

उत्तर प्रदेश के कई भागों का इतिहास बहुत प्राचीन है। आर्य संस्कृति का मूल विकास 'आर्यावर्त' नामक जिस क्षेत्र में हुआ, उस क्षेत्र का बहुत-सा भाग उत्तर प्रान्त में सम्मिलित है। इसी क्षेत्र के तपोवनों में आर्य्य संस्कृति के अधिकांश महान् साहित्य का निर्माण हुआ। आर्य संस्कृति के अनेक राजवंशों का क्रीड़ा-स्थल भी यह प्रान्त ही रहा है। अयोध्या, हरिद्वार, ऋषिकेश, मथुरा, वृन्दावन, प्रयाग, काशी, नैमिषारण्य इत्यादि अनेकों धार्मिक क्षेत्र और आर्य संस्कृति के मूल उद्गम-स्थान उत्तरप्रदेश में ही सम्मिलित हैं।

इसी प्रदेश में आर्य सभ्यता के कई प्रतापी राजवंशों का उदय और अस्त हुआ।

इक्ष्वाकु वंश

इन राजवंशों में इक्ष्वाकु का सूर्यवंश बहुत प्रसिद्ध है। राजा इक्ष्वाकु वैवस्वत मनु के सबसे बड़े पुत्र थे। मनु ने जब अपने राज्य को अपने सब बेटों में बाँट दिया तो बड़े पुत्र इक्ष्वाकु को मध्य देश का राज्य मिला, जिसकी राजधानी अयोध्या थी। इन्हीं इक्ष्वाकु के वंश में १६ वीं पीढ़ी में सम्राट मान्धाता सम्राट तथा इस युग का सबसे बड़ा राजा हुआ। उसने 'दिग्विजय' कर अड़ोस-पड़ोस

के राज्यों पर अधिकार प्राप्त किया। 'सम्राट' शब्द का उपयोग सबसे पहले उसी के लिए किया गया। जहाँ से सूर्य उगता और जहाँ जाकर डूबता है, वह समूचा 'यौनाश्व' मान्धाता का क्षेत्र कहलाता था। मान्धाता का विवाह यादव-वंश के शशविन्दु नामक प्रतापी राजा की पुत्री 'विन्दुमती' से हुआ था।

मान्धाता ने पौरवों का देश, कन्नौज का राज्य और पंजाब की सीमा पर द्रुह्यु-वंश के राजा 'अंगार' को हराकर उसके राज्य को भी जीत लिया था। मान्धाता के पुत्र 'पुरुकुत्स' की रानी का नाम 'नर्मदा था' और उसी के नाम से रेवा नदी 'नर्मदा' कहलाने लगी। नर्मदा नदी के बीच एक टापू पर पुरुकुत्स के भाई 'मुचकुन्द' ने एक नगरी बसाई थी। वह क्षेत्र आज भी मान्धाता के नाम से प्रसिद्ध है।

पुरुकुत्स के बाद अयोध्या के राज्य की अवनति होने लगी और इस क्षेत्र पर हैहय राजवंश के लोगों के आक्रमण होने लगे जो मान्धता की १९ वीं पीढ़ी में होने वाले राजा सगर के समय तक जारी रहे।

हैहय-वंश में राजा 'कृतवीर्य' का पुत्र कार्तवीर्य अर्जुन बड़ा पराक्रमी राजा हुआ। उस समय नर्मदा के प्रदेशों में रहने वाले भार्गव ब्राह्मण कार्त्तवीर्य के पुरोहित थे। किन्तु कार्त्तवीर्य ने उनके साथ कुछ बुरा व्यवहार किया, जिससे वे भागकर मध्यदेश के कान्यकुब्ज नामक स्थान में आये और उनके मुखिया और्व ऋषि ने कन्नौज के राजा 'गाधि' की कन्या 'सत्यवती' से विवाह किया। इन्हीं का पुत्र जमदग्नि हुआ। 'जमदग्नि' का विवाह अयोध्या के राजवंश की एक कुमारी 'रेणुका' से हुआ। उनके पुत्रों में सबसे छोटे पुत्र का नाम 'राम' था, जो जामदग्न्य-परशुराम के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हुआ। क्योंकि वह एक प्रसिद्ध योद्धा था और उसका मुख्य शस्त्र 'परशु' था। परशुराम ने कार्तवीर्य अर्जुन से बदला लेने के लिए अयोध्या और कान्यकुब्ज के राजाओं की सहायता से उस पर आक्रमण किया और कार्त्तवीर्य अर्जुन का बध कर डाला।

इसी समय सूर्यवंश में अयोध्या के राजा सत्यव्रत के पुत्र संसार-प्रसिद्ध राजा 'सत्य हरिश्चन्द्र' हुए, जिनका विवाह शिविवंश की राजकन्या 'शैव्या' से हुआ, जिनके सत्यव्रत का कथानक भारतवर्ष का बच्चा-बच्चा जानता है।

राजा सगर

मान्धाता की उन्नीसवीं पीढ़ी में अयोध्या का राजा 'सगर' बड़ा प्रतापी हुआ। उसने हैहय-राजवंश की सत्ता को समाप्त कर विदर्भ पर चढ़ाई कर वहां की राजकन्या 'केशिनी' से विवाह किया। सगर की गिनती चक्रवर्ती राजाओं में है और इसीके समय में सतयुग का अन्त और त्रेता युग का प्रारम्भ माना जाता है।

राजा भागीरथ, दिलीप और रघु

राजा सगर के पश्चात् उसका पुत्र अंशुमान् सूर्यवंश का राजा हुआ। अंशुमान का पौत्र प्रसिद्ध चक्रवर्ती सम्राट 'भागीरथ' हुआ जिसके सम्बन्ध में आर्य्य परम्परा में कहा गया है कि वह गंगा को स्वर्ग से उतार कर लाया। उसी के नाम पर गंगा "भागीरथी" भी कहलाती है।

भागीरथ के पश्चात् अयोध्या का राज्य बहुत कमजोर हो गया जिसे आगे जाकर राजा दिलीप' ने पुनः समृद्ध किया। राजा दिलीप सम्भवतः भागीरथ की चौदहवीं पीढ़ी में हुए थे।

दिलीप का पोता चक्रवर्ती सम्राट् "रघु" हुआ जिसके नाम पर यह राजवंश "रघुवंश" के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

रघु के पुत्र का नाम "अज" था जिसका विवाह 'इन्दुमती' के साथ हुआ था। अज के पुत्र "दशरथ" और दशरथ के पुत्र संसार प्रसिद्ध राजा 'रामचन्द्र' हुए। इनसे कुछ समय पूर्व ही अयोध्या "कौशल" देश के नाम से प्रसिद्ध हो गयी थी।

रामराज्य

रामचन्द्र ने बानर और ऋक्ष जाति के राजाओं के सहयोग से लंका पर आक्रमण करके रक्ष-संस्कृति के राजा रावण का नाश किया और दक्षिण भारत में भी अपने राज्य का विस्तार किया। रामचन्द्र के समान प्रजा-वत्सल राजा संसार के इतिहास में बहुत कम हुए। हजारों वर्ष बीत जाने पर भी आज "रामराज्य" का नाम जिस मधुर कल्पना को जन्म देता है, उसके सामने संसार की राज्य कल्पना का ऊँचे से ऊँचा रूप भी फीका पड़ जाता है।

इसी वंश में आगे चलकर कुश, हिरण्यनाभ, बृहद्बल इत्यादि अनेक राजा और हुए।

ऐलवंश या चन्द्रवंश

सूर्यवंश के राजा इक्ष्वाकु के समय के लगभग ही मध्यदेश में एक और प्रतापी राज्य था जिसका राजा पुरुरवा ऐल था और उसकी राजधानी "प्रतिष्ठान" में थी। यह स्थान इस समय प्रयाग के सामने भूसी के पास "पीहन" के नाम से एक छोटे गाँव के रूप में अभी भी विद्यमान है।

आर्य्य परम्परा के अनुसार "पुरुरवा" का विवाह "उर्वशी" नामक अप्सरा से हुआ था और इनका वंश ऐलवंश या चन्द्रवंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

ऐलवंश ने शीघ्र ही बहुत प्रगति की और दूर-दूर के प्रदेशों में अपने राज्य स्थापित किये। पुरुरवा के एक पुत्र ने गंगातट पर ऊपर की ओर कान्यकुब्ज (कन्नौज) में एक नवीन राज्य की स्थापना की। प्रतिष्ठान वाले मुख्य वंश में पुरुरवा की चौथी पुश्त में ययाति नामक राजा बड़ा प्रतापी हुआ। उसने प्रतिष्ठान के पश्चिम, दक्षिण और दक्षिण पूर्व के देशों को जीतकर उत्तर पश्चिम में सरस्वती तक के सब देशों को अपने अधीन किया। आर्यावर्त के इतिहास में यह सबसे पहला चक्रवर्ती राजा था।

ययाति के पाँच पुत्र थे जिसमें प्रतिष्ठान का राज्य सबसे छोटे पुत्र 'पुरु' को मिला। इसी पुरु के नाम पर इसका वंश "पौरव" के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

ययाति के एक भाई ने गंगा के नीचे किनारे पर वाराणसी में एक नया राज्य स्थापित किया जो बाद में उसके वंशज राजा 'काश' के नाम पर काशीराज्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

हैहयवंश के आक्रमण से कन्नौज का राज्य समाप्त हो चुका था और 'पौरव' लोगों की प्राचीन राजधानी प्रतिष्ठान वत्सभूमि में सम्मिलित हो चुकी थी जो 'काशीराज्य' का एक भाग थी।

दुष्यन्त और शकुन्तला

इसी पौरववंश में राजा "दुष्यन्त" नामक एक प्रतापी राजा हुआ जिसने नष्टप्राय पौरव सत्ता को फिर से स्थापित किया। उसका राज्य अब गंगा और जमुना कांठे के उत्तरी भाग में था। कई लोगों के मत से उसकी राजधानी वही थी जो आगे चलकर 'हस्तिनापुर' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

राजा दुष्यन्त एक बार शिकार खेलते-खेलते भाग्य के अधीन हो कण्व मुनि के आश्रम में पहुँच गया। वहीं पर उसको शकुन्तला का दर्शन और उसके साथ प्रेम हुआ। इसी कथानक को लेकर महाकवि कालिदास ने अपने सुप्रसिद्ध "अभिज्ञान-शाकुन्तल" (पूरा परिचय "अभिज्ञान शाकुन्तल" नाम के अन्तर्गत इस कोष के प्रथम भाग में देखें), नामक नाटक की रचना की, जो आज समग्र विश्व साहित्य को संस्कृत साहित्य की अमूल्य देन है।

इसी राजा दुष्यन्त को शकुन्तला के गर्भ से महान् पराक्रमी "भरत" नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। राजा भरत अत्यन्त प्रतापी और प्रसिद्ध राजा था। सरस्वती से गंगा तक और गंगा के पूरब पार अयोध्याराज्य की सीमा तक सब प्रदेश भरत के राज्य में सम्मिलित हो गये। यह चक्रवर्ती, सम्राट और आर्य्यावर्त्त का सार्वभौम अधिपति कहलाता था। भरत के वंशज 'भारत' कहलाये और आगामी दो युगों तक भारतों की अनेक शाखाएँ उत्तर भारत पर राज्य करती रहीं।

कई लोगों के मतानुसार इसी 'भरत' के नाम पर इस देश का नाम "भारत" पड़ा। मगर कई इतिहासकारों के मत से ऋषभदेव के पुत्र भरत चक्रवर्ती के नाम पर इस देश का नाम भारत पड़ा।

इसी वंश में आगे चलकर हस्ती, अजामीढ़, संवरण कुरु और कौरव-पाण्डव वंश के राजा हुए।

ऐतिहासिक युग

ऐतिहासिक युग में बौद्ध काल के अन्तर्गत प्रसिद्ध सोलह महा जनपदों में काशी, कौशल, वत्स, पांचाल और चेदि जनपद का कुछ भाग भी उत्तर प्रदेश के अन्तर्गत था।

काशी महाजनपद की राजधानी वाराणसी उस समय समूचे भारत में सबसे समृद्ध नगरी थी। कौशल-देश की राजधानी श्रावस्ती एक बहुत प्राचीन नगरी थी जिसके

अवशेष गोण्डा और बहराइच जिलों की सीमा पर सहेठ-महेठ के गाँवों के नाम से अब भी विद्यमान हैं। साकेत (अयोध्या) की हैसियत भी श्रावस्ती से कम नहीं थी।

महाभारत के पश्चात् उपनिषदों के युग में ही काशी का राज्य अपनी सामरिक शक्ति के कारण बहुत प्रसिद्ध हो गया था। समृद्धि में भी उसका मुकाबिला कोई दूसरा राज्य नहीं कर पाता था।

वत्सदेश काशी के पश्चिम में स्थित था। उसकी राजधानी कौशाम्बी जमना के किनारे पर प्रयाग के समीप स्थित थी और उस समय की बड़ी समृद्ध नगरियों में गिनी जाती थी। वह व्यापार और युद्ध के राजपथों को काबू करने वाले अच्छे नाके पर थी। इस नगरी के अवशेष इलाहाबाद के पास 'कोसम' नामक ग्राम के रूप में अभी विद्यमान है।

पाञ्चाल जनपद कौशल और वत्स के पश्चिम और चेदि के उत्तर में लगा हुआ था। उत्तर पांचाल में आधुनिक रुहेलखण्ड और दक्षिणी पांचाल में फर्रुखाबाद, कन्नौज और कानपुर के क्षेत्र शामिल थे।

उत्तर प्रदेश के इन जनपदों में कई प्रसिद्ध राजवंशों ने राज्य किया। इन जनपदों में हमेशा पारस्परिक संघर्ष चलते रहते थे।

वत्स जनपद में भारत-वंश का राज्य बहुत समय तक चलता रहा। ईसा से पूर्व छठी शताब्दी में इस देश में 'उदयन' नामक बड़ा प्रतापी राजा हुआ जो राजा शतानिक का पुत्र था। उदयन संगीत, कला और सम्मोहन-विद्या का बड़ा जानकार था राजा उदयन को अवन्ती के राजा 'चण्डप्रद्योत' ने अपनी पुत्री वासवदत्ता को संगीत और कला की शिक्षा देने के लिए कौशलपूर्वक बन्दीकर बुलाया था। वहीं पर वासवदत्ता से उसका प्रेम हो गया और वह उसे हरण कर अपने राज्य में ले आया था।

इस प्रकार कौशल, मगध और अवन्ति-इन तीन बड़े महाजनपदों में हमेशा प्रतिस्पर्द्धा चलती रहती थी।

ईसा से पूर्व सातवीं सदी के मध्य में कौशल जनपद और काशी जनपद में लगातार संघर्ष होते रहे। अन्त में ईसा से करीब ६२५ वर्ष पूर्व कौशल जनपद के एक विजयी राजा "महाकौशल" ने काशी को अन्तिम रूप से जीतकर अपने साम्राज्य में मिला लिया। महाकौशल का पुत्र प्रसेनजित भी बड़ा प्रसिद्ध हुआ।

इनके कुछ समय पश्चात् मगध के राजा अजातशत्रु के पौत्र 'उदायी' के समय में इनमें से बहुत से जनपद समाप्त होकर मगध साम्राज्य में विलीन हो गये और जनपदों के स्थान पर भारतवर्ष में साम्राज्यवाद के युग का प्रारंभ हुआ।

साम्राज्यवाद के युग में हमेशा मगध-साम्राज्य की प्रधानता रही और उत्तर प्रदेश भी इसी साम्राज्य का एक अंग बना रहा।

सम्राट् हर्षवर्द्धन

इसके पश्चात् उत्तर प्रदेश का इतिहास उस समय फिर से अपने गौरवपूर्ण रूप में प्रकट होता है, जब हर्षवर्द्धन के समान प्रतापी राजा कन्नौज के सिंहासन पर आता है। इस काल में उत्तर प्रदेश का सारा वैभव कन्नौज में आकर केन्द्रित हो जाता है।

हर्षवर्द्धन सन् ६०६ में कन्नौज की गद्दी पर बैठे। और इसी वर्ष से उन्होंने हर्ष-संवत् के नाम से अपना एक संवत् चलाया। वे एक महत्वाकांक्षी और धर्मात्मा नरेश थे। गद्दी पर बैठते ही इन्होंने आसपास के छोटे-छोटे राजाओं को जीत कर साम्राज्य को एक सूत्र में बाँधना प्रारम्भ किया। सबसे पहले उनकी लड़ाई गौड़ के राजा शशांक से हुई। उसको जीतकर उसका राज्य उन्होंने अपने राज्य में मिला लिया। उसके बाद वल्लभी को जीता। वल्लभी के राजा दूसरे ध्रुवसेन ने भड़ौंच के राजा से सहायता माँगी, पर अन्त में दोनों को हर्षवर्द्धन की आधीनता स्वीकार करनी पड़ी। इसके बाद बंगाल की खाड़ी के पास के क्षेत्र को जीता गया, आसाम के राजाओं ने भी हर्षवर्द्धन का आधिपत्य स्वीकार किया।

मगर दक्षिण में चालुक्य वंश के सम्राट् द्वितीय पुलकेशिन से हर्ष को करारी हार खानी पड़ी। उसी समय से नर्मदा हर्ष के राज्य की दक्षिणी सीमा स्थिर हुई।

हर्षवर्द्धन के पास ५००० हाथी २०००० सवार और ५०००० पैदल सैनिकों का विशाल सैन्यबल था।

चीन का प्रसिद्ध यात्री ह्वेनसांग हर्षवर्द्धन के समय में ही भारत में आया था। उसके वर्णन से मालूम होता है कि हर्षवर्द्धन के समय में शासन सुव्यवस्थित था, प्रजा में शांति थी तथा विद्वानों का आदर होता था।

हर्षवर्द्धन ने प्रयाग के अन्दर त्रिवेणी के तट पर प्रति पाँचवे वर्ष एक धार्मिक मेला डालना प्रारम्भ किया था जिसमें वे बहुत दान करते थे। उनके राज्य के तीसवें वर्ष में छठी दफे जब मेला पड़ा था, उस समय ह्वेनसांग भी मेले में हर्षवर्द्धन के साथ था। इस मेले में हर्षवर्द्धन ने राजकीय विभाग की आवश्यक सम्पत्ति को रखकर शेष निज की और राज्य की सारी सम्पत्ति को दान कर दिया। यहाँ तक कि अपने पहनने का वस्त्र भी अपनी बहन से-भिक्षा में लेकर पहना।

हर्षवर्द्धन बौद्ध-धर्मावलम्बी थे और ऐसा कहा जाता है कि इनके द्वारा अन्य धर्म वालों पर कुछ ज्यादतियाँ भी होती थीं, मगर सर्वसाधारण प्रजा में इनका शासन सुशासन ही माना जाता था।

हर्षवर्द्धन की मृत्यु सन् ६४८ में हो गयी। उनके पश्चात् ही उनका विस्तृत साम्राज्य बिखर गया।

कन्नौज में इसके कई वर्षों पश्चात् प्रतिहारों का राज्य अस्तित्व में आता है। प्रतिहार-राजवंश में वत्स-राज नामक सम्राट् बहुत प्रतापी हुआ, जिसका शासन काल सन् ७७५ के करीब माना जाता है। जैनाचार्य उद्योतन सूरि ने अपने कुवलय-माला नामक ग्रन्थ में लिखा है कि—"जांबालिपुर (जालोर) में प्रतिहार सम्राट् वत्सराज राज करता था। उसने गौड़ बंगाल मालव वगैरह दूर-दूर के बड़े प्रदेश दिग्विजय कर उत्तर भारत के काव्यकुब्ज नगर में अपनी राजधानी स्थापित की थी। इन्हीं प्रतिहारों के समय में आगे जाकर सन् १०१८ में प्रसिद्ध-आक्रमण-कारी महमूद गजनवी का आक्रमण कन्नौज पर होता है। उस समय कन्नौज में प्रतिहार-राजवंश का राजा राज्यपाल राज्य करता था और कन्नौज उत्तरी भारत की एक वैभव पूर्ण नगरी थी। महमूद के डर से राजा राज्यपाल वहाँ से भाग गया और महमूद ने कन्नौज को खूब लूटा।

प्रतिहार-वंश की समाप्ति के पश्चात् कन्नौज का राज्य चोदि के है हय-वंशीय राजा 'गांगेय' के अधिकार-क्षेत्र में आया। यह बड़ा प्रतापी राजा था। प्रतिहारों के राजवंश को निर्मूल कर इसने अपने राज्य का बहुत विस्तार किया। उसने प्राच्य चालुक्यों से कलिंग और तेलंगाणा भी जीत लिया। बनारस भी इसी की राज्य-सीमा में था। इसने भी सम्भवतः विक्रमादित्य की उपाधि ग्रहण की थी। गांगेय के पश्चात् उसका लड़का 'कर्ण' गद्दी पर बैठा। यह गांगेय से भी अधिक पराक्रमी और प्रसिद्ध राजा हुआ। इसकी स्त्री अवेल्लदेवी हूण-राजकन्या थी। राजा कर्ण ने चोल, पाण्ड्य, मुरल, अंग, बंग, कलिंग इत्यादि अनेक देशों को जीतकर एक विस्तृत साम्राज्य की स्थापना की थी।

कर्ण ने सम्भवतः १०४० से १०८० तक शासन किया। कर्ण की मृत्यु के पश्चात् गहड़वाल वंश के राजा चन्द्र ने कन्नौज पर अधिकार कर गहड़वाल राठौर, राज-वंश की स्थापना की।

राजा चन्द्र के समय के कई शिलालेख अभी उपलब्ध हैं। इन शिलालेखों में कहा गया है कि चन्द्र ने नरपति, गजपति और त्रिशंकुपति को जीतकर पांचाल के राजा को पराजित किया। इसमें पांचाल देश से अभिप्राय कन्नौज के राज्य से ही है। राजा चन्द्र का समय सन् ०८० के बाद माना जाता है।

राजा चन्द्र के पश्चात् कन्नौज के गहड़वाल-वंश में उसके पौत्र गोविन्द चन्द्र का नाम आता है। गोविन्दचन्द्र ने सन् १११४ से ११५५ तक राज्य किया। बनारस के पास एक स्थान पर २१ ताम्रलेख इकट्ठे मिले थे। इनमें १४ गोविन्द चन्द्र के थे। कुल मिलाकर गोविन्द-चन्द्र के ४० दानपत्र मिले हैं। जिन्हें कीलहार्न ने एपि० इं० ४ में छापा है।

अत्यन्त प्रतापी राजा होने के साथ साथ गोविन्दचन्द्र स्वयं भी बड़ा विद्वान था। गाहड़वालों के लेखों में उसके नाम के पीछे "विविध-विचार-विद्यावाच्स्पाति" विशेषण लगाये गये हैं।

गोविन्दच्चन्द्र के पश्चात् विजयचन्द्र, और विजयचन्द्र के पश्चात् गहड़वाल के प्रसिद्ध राजा जयचन्द्र का नाम आता है जिसने अजमेर के चौहान राजा पृथ्वीराज के

खिलाफ अपनी प्रतिस्पर्द्धी को चरितार्थ करने के लिए मुहम्मद गोरी को आमंत्रित कर सारे देश की स्वतंत्रता को मुसलमानों के हाथ बेच दी और अन्त में उसी मुहम्मद गोरी से लड़ता हुआ उसका हाथी और वह गंगा में डूब कर मर गये ।

इसके बाद उत्तरप्रदेश की यह पवित्र भूमि मुसलमान आक्रमणकारियों का अखाड़ा बन गई । बाद में यह प्रान्त दिल्ली के मुसलमान-सम्राटों की अधीनता में रहा और उनके भेजे हुए सूबेदार लोग यहाँ पर शासन करते रहे । इनमें से कोई-कोई सूबेदार विद्रोही होकर स्वतंत्र शासक भी हो जाते थे ।

इसके बाद औरंगजेब के बाद से अंग्रेजी राज्य के प्रारम्भ तक अवध के नवाबों का शासन उत्तर प्रदेश में बड़ा दिलचस्प रहा, जिनका वर्णन "अवध" नाम के अन्तर्गत इस ग्रन्थ के पहले भाग में किया गया है ।

लार्ड डलहौजी ने अवध के अन्तिम नवाब वाजिद अली शाह को पदच्युत करके सारे प्रान्त को ब्रिटिश शासन में मिला लिया । ब्रिटिश-शासन के अन्तर्गत यह प्रान्त "संयुक्त प्रान्त, आगरा और अवध" के नाम से प्रसिद्ध रहा ।

ब्रिटिश-शासन का अन्त होने पर स्वाधीन भारत में यह प्रदेश अपनी पुरानी क्षेत्रीय सीमा के अन्तर्गत स्थित आगरा और अवध के संयुक्त प्रान्त, रामपुर, टेहरी गढ़वाल और बनारस की देशी रियासतों तथा अन्य राज्यों के छोटे-छोटे टुकड़ों को मिला कर बनाया गया है । इस प्रकार पहले के संयुक्त प्रान्त आगरा अवध की तुलना में यह प्रान्त बहुत बड़ा हो गया है । यह सारा प्रान्त ५२ जिलों में विभक्त है ।

स्वाधीन भारत का अंग होने के पश्चात् इसका औद्योगिक विकास बड़ी तेजी से हुआ । यहाँ के प्रधान उद्योगों में चीनी, चमड़ा, काँच, रसायनिक उद्योग, एल्यूमिनियम, सिमेण्ट, कागज इत्यादि प्रधान हैं । कानपुर इस प्रान्त का सबसे बड़ा औद्योगिक केन्द्र है । शक्कर का उद्योग इस प्रान्त का सबसे बड़ा उद्योग है ।

मशीन युग के साथ-साथ उत्तर प्रदेश का हस्त-उद्योग भी बहुत बढ़ा-चढ़ा है । बनारस की जरी और रेशम की साड़ियाँ, मिर्जापुर तथा मुरादाबाद के पीतल और कलई के बर्त्तन, आगरे की दरियाँ, लखनऊ का चिकन, अलीगढ़ के ताले, बरेली एवं सहारनपुर का फर्नीचर और फिरोजाबाद की चूड़ियाँ बहुत प्रसिद्ध है ।

शिक्षा का विकास

उत्तर प्रदेश शिक्षा के विस्तार का एक विशाल केन्द्र है । इस प्रान्त में इलाहाबाद, बनारस, लखनऊ, अलीगढ़, आगरा, रुड़की एवं गोरखपुर में सात बड़े विश्व विद्यालय चल रहे हैं । मेरठ और कानपुर में भी विश्व-विद्यालय स्थापित करने के प्रयास चालू हैं बनारस, रुड़की और प्रयाग में इञ्जीनियरिंग कालेज और बनारस, लखनऊ तथा कानपुर में मेडिकल कालेज चालू हैं । देहरादून में 'सर्वे ऑफ इण्डिया' तथा 'फारेस्ट रीसर्च इन्स्टीट्यूट', लखनऊ में 'सेण्ट्रल ड्रग रीसर्च इन्स्टीट्यूट' और राष्ट्रीय वनस्पति-उद्यान और कानपुर में शूगर टेकनालोजिकल इन्स्टीट्यूट स्थापित हैं । कई प्रकार के हस्त-उद्योगों की शिक्षा देने का भी इस प्रान्त में सरकार की ओर से प्रबन्ध किया गया है ।

उत्तरप्रदेश का धार्मिक और साहित्यिक विकास

आर्य्यावर्त्त की इस पवित्र भूमि पर जिस समय रघुवंश के समान प्रतापी राजवंश के राजा धर्मानुमोदित न्याय-प्रिय शासन से जनता में सुख शान्ति का योग क्षेम-कर राजतंत्रीय शासन-व्यवस्था के इतिहास में एक नवीन अध्याय को जोड़ रहे थे । उस समय हमारे धर्म-नेता तपोवनों में बैठकर जीवन के चरम रहस्यों की खोज में तल्लीन हो रहे थे । उनके तपोवन प्रतिदिन वेदों की ऋचाओं से गूँजते रहते थे । उपनिषद्, दर्शनशास्त्र, ब्राह्मण ग्रंथ, स्मृतियाँ—इन सारे महान् साहित्य की रचना इन्हीं तपोवनों में हुई थीं । जिसकी जोड़ का साहित्य, समग्र संसार के साहित्य में चिराग लेकर ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलेगा । अनेकों बड़े-बड़े ऋषि-मुनि जिनके नामों से हमारा साहित्य भरा पड़ा है, जीवन के मूलभूत तत्वों—हम कहाँ से आये हैं, कहाँ जायँगे, संसार क्या है, जीवन और कर्म का क्या संबंध है—पर दिनरात चिंतन करके साहित्य का सृजन करते

रहते थे। यद्यपि कालक्रम के अनुसार उनका ठीक से विभाजन नहीं किया जा सकता है।

महर्षि वाल्मीकि संस्कृत-साहित्य के आदिकवि माने जाते हैं जिन्होंने रामायण की श्लोकबद्ध रचना की। आज भी समग्र विश्व-साहित्य में आर्य्य देश की यह महान् कृति प्रकाशपुञ्ज की तरह दीप्तिमान हो रही है।

उत्तर प्रदेश में नैमिषारण्य इस प्रकार के तत्वचिंतकों का एक प्रधान केन्द्र रहा है। कहा जाता है कि महर्षि वेदव्यास ने इसी अरण्य के तपोवन में बैठकर महाभारत, श्रीमद्भागवत और श्रीमद्भगवद्गीता के समान महान् ग्रंथों की रचना की थी।

नैमिषरण्य में और भी अनेक ऋषियों ने जीवन के सत्य को ढूँढ़ने की प्रक्रिया में बहुत से साहित्य का सृजन किया।

मध्यकाल में हिन्दी काव्य का विकास होने पर भी इस भूमि में अनेकों महाकवियों ने अवतीर्ण होकर साहित्य में महान् योग दिया।

इनमें सबसे पहला नाम महाकवि तुलसीदास का आता है।

महाकवि तुलसीदास का जन्म विक्रम संवत् १५८९ में और देहान्त संवत् १६८० में हुआ। अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ रामचरित-मानस में इस महान् कवि ने भक्ति, ज्ञान और कर्म की जो अविरल धारा बहाई है, वह समग्र संसार के साहित्य में बेजोड़ है। रामचरित के सहारे इस सरस्वती के वरदपुत्र ने मानव-जीवन और संसार की गहन से गहन उलझी हुई गुत्थियों को सुलझा कर सरल और सीधी भाषा में ऐसे स्पष्ट रूप में रख दिया है जिसे देखकर आश्चर्य होता है। देश की हिन्दी भाषी जनता में झोपड़ी से लेकर महलों तक और जंगली गाँवों से लेकर शहरों तक जितने प्रेम से तुलसीदास के रामचरित-मानस का पाठ होता है उतना दूसरे ग्रंथ का नहीं।

महात्मा कबीरदास भी उत्तर प्रदेश की भूमि में ही अवतीर्ण हुए थे। इनका जन्मकाल विक्रम संवत् १४५६ की जेठ सुदी पूर्णिमा को माना जाता है।

जनसाधारण की भाषा में महात्मा कबीर ने अपने सिद्धान्तों को जनता के सामने रक्खा। इनकी साखियों में वेदान्त का सारतत्व, हिन्दू और मुसलमानों को मिलाने का प्रयत्न, संसार की अनित्यता, हृदय की शुद्धि, प्रेम साधना की कठिनता, माया की प्रबलता, मूर्ति-पूजा और तीर्थाटन आदि की असारता आदि चीजों पर बड़ी सजीव भाषा में वर्णन किया गया है।

महाकवि सूरदास की प्रतिभा का विकास भी उत्तर प्रदेश में ही हुआ जिनके कृष्ण-भक्ति से सम्बन्ध रखने वाले पद हिन्दीसाहित्य में अमर हैं।

मध्ययुग में और भी अनेक कवि उत्तर प्रदेश की इस भूमि में हुए, जिनका वर्णन उनके नामों के साथ यथास्थान किया जावेगा।

आधुनिक युग में भी उत्तर प्रदेश की भूमि ने हिन्दी के साहित्य-सृजन में जो महत्वपूर्ण योग दिया है, उसका मूल्यांकन नहीं हो सकता।

आधुनिक हिन्दी गद्य के परिष्कर्त्ता भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र इसी क्षेत्र में पैदा हुए थे जिन्होंने हिन्दी-गद्य साहित्य के इतिहास में एक युगान्तर कर दिया। काशी-नागरी-प्रचारणी सभा के संस्थापक और अनेक हिन्दी-पुस्तकों लेखक बाबू श्यामसुन्दर दास भी इसी प्रान्त के थे, जिन्होंने हिन्दीभाषा के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया। इसी प्रकार सरस्वती के सम्पादक पं० महावीर-प्रसाद द्विवेदी की लेखनी का विकास भी इसी भूमि में हुआ। जयशङ्करप्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' तथा और भी अनेकानेक प्रतिष्ठित लेखकों, कवियों और समालोचकों को उत्पन्न करने में उत्तर प्रदेश की साहित्यिक भूमि बहुत उर्वरा रही है।

सार्वजनिक क्षेत्र में आधुनिक युग में उत्तर प्रदेश की भूमि में महामना पं० मदनमोहन मालवीय का नाम सबसे पहले आता है। जिनके हृदय में अपने देश के प्रति, अपने धर्म के प्रति, अपनी संस्कृति के प्रति निस्वार्थ प्रेम कूट-कूटकर भरा हुआ था। अपने देशवासियों की अशिक्षा और हीन अवस्था पर जिनके हृदय में हमेशा करुणा की एक धार बहती रहती थी, जिन्होंने अपने जीवन का उत्सर्ग करके बनारस में हिन्दू-विश्वविद्यालय के समान

एक महान् संस्था को जन्म देकर उसे देश की एक सर्वश्रेष्ठ संस्था बना दिया। किसी भी एक व्यक्ति के प्रयत्न से और उसके उत्सर्ग से इतनी विशाल संस्था का स्थापित किया जाना देश के इतिहास में एक आश्चर्यजनक और महत्वपूर्ण घटना है।

इसी प्रकार राजनीति के क्षेत्र में पं० मोतीलाल नेहरू, पं० जवाहरलाल नेहरू, बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन, डा० कैलाशनाथ काटजू इत्यादि महानुभावों ने देश की आजादी के लिए महात्मा गांधी के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर त्याग और बलिदान के जो दृश्य दिखलाये, वह किसी भी देश के इतिहास को गौरवान्वित कर सकते हैं।

इस प्रकार उत्तर प्रदेश की यह भूमि आर्य्य सभ्यता के आदिकाल से एक गौरवमयी भूमि रही है, जिसने क्या राज्य के क्षेत्र में, क्या धर्म के क्षेत्र में और क्या साहित्य के क्षेत्र में सभी दूर एक नया जीवन और एक नया आदर्श कायम किया है। गंगा और यमुना की पवित्र जलधाराएं जिस क्षेत्र की भूमि को हमेशा पवित्र करती रही हैं और हिमालय की विशाल पवित्र शृंखलाएँ जिस भूमि का मुकुट बनकर उसे शोभायमान कर रही हैं।

उत्तर रामचरित्र

समग्र विश्व-साहित्य में करुणा और त्याग की निर्मल कल्लोलिनी प्रवाहित करने वाला, संस्कृत-भाषा के एक महान् कवि भवभूति का काव्य नाटक।

उत्तर रामचरित्र, रामचन्द्र के लंका-विजय के पश्चात् अयोध्या के राज्य सिंहासन पर आसीन होने के बाद की घटनाओं पर लिखा गया, एक सुन्दर नाटक है, जिसमें बहती हुई करुणा-रस की महान् धारा पाठक के रोम-रोम को द्रवित कर देती है।

सीता के साथ राम का वियोग और उसके बाद फिर उनका मिलन—यही दो इस नाटक की प्रधान घटनाएँ हैं। महाकवि भवभूति ने अपने नाटक में इस उपाख्यान को इस तरह सजाया है—

पहला अंक—अंन्तःपुर में सीता और राम बैठे हैं। अष्टावक्र मुनि का प्रवेश। उनके आगे प्रजारञ्जन के लिए जानकी तक को त्याग देने की राम की प्रतिज्ञा। चित्रपट देखते-देखते सीता का तपोवन देखने की इच्छा प्रकट करना। दुर्मुख नाम के जासूस का प्रवेश और सीता के सम्बन्ध में लोकापवाद की सूचना। राम का सीता को त्याग देने का संकल्प।

दूसरा अंक—राम का 'पञ्चवटी' नामक वन में प्रवेश और शूद्रक राजा का शिर काट डालना। राम का जनस्थान की सैर करना।

तीसरा अंक—वासन्ती, तपसा और छाया सीता के सामने राम का विलाप। वनवास के अन्त में प्रसव वेदना से पीड़ित होकर सीता का गंगा में कूदना। पृथ्वी तथा गंगा के द्वारा सीता को पाताल में ले जाकर रखना तथा लव और कुश को महर्षि के हाथों में सुपुर्द करना।

चौथा अंक—जनक, अरुन्धती और कौशल्या का विलाप। लव के साथ उनका परिचय।

पाँचवाँ अंक—लव और चन्द्रकेतु का युद्ध।

छठा अंक—लव, कुश और चन्द्रकेतु के साथ राम की भेंट और कुश के मुख से रामायण की गाथा सुनना।

सातवाँ अंक—राम का सीता-निर्वासन का अभिनय देखते-देखते मूर्छित हो जाना। गंगा और पृथ्वी का सीता को लेकर प्रकट होना। राम और सीता का पुनर्मिलन।

उत्तर रामचरित्र को पढ़ने से पता चलता है कि महाकवि भवभूति मानवीय धरती पर चलने वाले प्रकृतवादी (रीयालिस्टिक) कवि नहीं हैं, वे आदर्श और कल्पना के स्वप्नलोक में विचरण करके शान्त और करुणा की अविरल धारा बहाने वाले महान् कवि हैं। वे भोग की भूमि पर विचरण करने वाले पार्थिव भावनाओं के कवि नहीं, प्रत्युत त्याग और बलिदान के धरातल पर समस्त संसार के वैभव को लुटा देने वाले महाकवि हैं। संसार में क्या हो रहा है यह बतलाने वाले वास्तविकतावादी कवियों में भवभूतिका स्थान नहीं है, प्रत्युत संसार में क्या होना चाहिए, उसी आदर्श का निर्माण करने वाले कवियों में भवभूति श्रेष्ठ हैं। राजा-प्रजा के लिए, स्त्री पुरुष के लिए, अमीर गरीब के लिए अपने सर्वस्व का

त्याग करे तभी संसार में कल्याण की, दैवी सम्पद् की, स्थापना हो सकती है—यही भवभूति का स्वप्न था।

उनका नायक राजा रामचन्द्र एक आदर्श राजा है जो प्रजा की खुशी के लिए, उसके हित के लिए, उसके कल्याण के लिए हमेशा सर्वस्व लुटाने को तैय्यार रहता है। अष्टावक्र ऋषि के सामने प्रतिज्ञा करता हुआ वह कहता है।

स्नेहं दयां तथा सौख्यं, यदि वा जानकी मपि ।
आराधनाय लोकस्य, मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥

प्रजारंजन के लिए, स्नेह, दया, सुख यहाँ तक कि यदि जानकी तक को भी छोड़ना पड़े तो मुझे व्यथा नहीं होगी।

प्रजारंजन के लिए जानकी का त्याग करते समय वे यह नहीं देखते कि निरपराधिनी जानकी के साथ यह कैसा अन्याय और अविचार है। जो कठिन अग्नि-परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर अपनी निरपराधिता को साबित कर चुकी है, जिसने जीवन भर उनके विश्वास की रक्षा की है, उस सीता के साथ यह कैसा अन्याय हो रहा है। वे सिर्फ एक विचार करते हैं राजा को प्रजा के लिए बलिदान करना चाहिए। जानकी का क्या उनका स्वयं का बलिदान भी यदि प्रजा माँगती तो वे करने को तैयार थे।

सीता के त्याग से रामचन्द्र को कितनी गम्भीर वेदना हुई, इस घटना से उनका आगे का जीवन कैसा करुणा पूर्ण हो गया, इसकी झांकी नाटक में आगे स्थान-स्थान पर देखने को मिलती है।

सीता

उत्तर रामचरित्र की नायिका "सीता" एक ऐसी नारी है जो पति को ही अपने जीवन का अन्तिम लक्ष्य समझती हैं। पति के लिए अपने सर्वस्व का त्याग करने में उसे रत्ती भर संकोच नहीं है। यह देखना उसका काम नहीं कि उसके पति ने उसके साथ क्या न्याय किया है या क्या अन्याय किया है। वह इस बात पर विचार नहीं करना चाहती कि उस निरपराधिनी और पति के ऊपर अगाध विश्वास रखने वाली स्त्री का अकारण निर्वासन करके उसके पति ने उसके साथ क्या अन्याय किया है।

तीसरे अङ्क में जब जनस्थान में रामचन्द्र सीता की पूर्व स्मृति से अभिभूत होकर मूर्छित होकर गिर पड़ते हैं, तब छायामूर्ति के रूप में उपस्थित सीता कहती हैं—

"हा धिक्, हा धिक् मां मन्दभागिनीं व्याहृत्य, अमीलन्नेत्र नीलोत्पलः मूर्च्छित एव आर्य्यपुत्रः हा कथं-धरणीपृष्ठे निरुत्साह निःसहं विपर्यस्तः। भगवत तमसे परित्रायस्य, परित्रायस्य जीवय आर्य्यपुत्रम्।

(हा, धिक्कार है, हा धिक्कार है! आर्य्यपुत्र, मुझ अभागिनी का नाम लेकर, नील-कमल-तुल्य नयन मूंदकर, मूर्च्छित और निरुत्साह होकर पृथ्वी पर विपर्यस्तभाव से पड़े हुए हैं। भगवती तमसा, रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए! आर्य्यपुत्र को सचेत कीजिए" इसके बाद सचेत होने पर जब रामचंद्र कहते हैं—

"न खलु वत्सलया सीता देव्या अभ्युपपन्नोस्मि",

(स्नेहमयी सीतादेवी ने ही क्या मुझे आश्वासन दिया है) तो सीता कहती हैं।

"हा धिक्! हा धिक्! किमितिमां आर्यपुत्रो मार्गिष्यति"

(हा! मुझे धिक्कार है! आर्य्यपुत्र क्या मुझे ही खोज रहे हैं) फिर कहती है—*एवमस्मि मन्दभागिनी पुनरप्यायास कारिणी आर्य्यपुत्रस्य*। मैं ऐसी अभागिनी हूँ कि फिर भी आर्य्यपुत्र के क्लेश का कारण हुई।)

सब जगह एक ही भावना दृष्टिगोचर होती है "आर्य्य पुत्र मेरे लिए कष्ट पाते हैं, आर्य्यपुत्र इतने दिनों में मुझे भूल क्यों नहीं गये? सकल मंगल—मूलाधार राम मुझ तुच्छ नारी के लिए बारंबार प्राण—संशय को प्रकट हो रहे हैं। सब दूर केवल आर्य्यपुत्र का ख्याल है—अपने सुख-दुःख तथा अपने प्रति किये गये अन्याय—अविचार का लेशमात्र भी इस महान् नारी को खयाल नहीं है।

बंगाल के महान् नाटककार द्विजेन्द्र लाल राय लिखते हैं—

"यह प्रेम क्या जगत में है? स्वामी के कल्याण में, सब प्राणियों के कल्याण में आत्म—बलिदान करनेवाला प्रेम क्या इस जगत में है? अगर है तो धन्य हो भवभूति! तुमने ही पहले पहल उसे पहचाना है। अगर नहीं है तो भी धन्य हो भवभूति! तुमने ही पहले पहल उसकी कल्पना की है, जिस प्रेम में अपमान में अभिमान नहीं है, निष्ठुरता

में ह्रास नहीं है, अवस्थाओं में विपर्यय नहीं है, जो प्रेम आप ही अपने रंग में सराबोर है उस प्रेम का आविष्कार हजार वर्ष पहले इस भारत भूमि में एक कवि ने किया फिर कहता हूँ "धन्य हो भवभूमि"।

तीसरे अङ्क में भवभूति के द्वारा की हुई "छायासीता" की कल्पना पर लिखते हुए—द्विजेन्द्रलाल राय लिखते हैं—

"मुझे तो स्मरण नहीं आता कि मैंने और किसी काव्य में कभी ऐसे मधुर रूपक की कल्पना पढ़ी हो। कल्पना कैसी करुण है, चित्र कैसा हृदयग्राही है! राम फिर उसी पंचवटी वन में आये हैं जहाँ उन्होंने शुरू जवानी में प्रथम प्रणय के मजे लूटे थे। वे उन्हीं वन पथों, उन्हीं शिलाखण्डों, उन्हीं कुञ्जवनों और उसी गोदावरी को देख रहे हैं। वनपथ घास से ढँक जाने के कारण अस्पष्ट हो गये हैं, कुञ्जवन और भी घने हो गये हैं, गोदावरी अपने स्थान से कुछ हट गई है। सब वही है, केवल सीता नहीं है। किन्तु सीता की स्मृति है, राम उसे पकड़ना चाहते हैं, मगर पकड़ नहीं पाते। उसी घड़ी वह मूर्ति शून्य में विलीन हो जाती है। सीता का कण्ठस्वर और स्पर्श अनुभव करते-करते ही मानो खो जाता है। यह स्वप्न, यह मृगतृष्णा, यह असह्ययंत्रणा, यह मर्मवेधी विरह व्यथा इस जगत में शायद ही और कोई कवि कल्पना के द्वारा दिखा सका हो?"

सीता की छायामूर्ति की कल्पना भवभूति की उत्कृष्ट कल्पना का चरम उदाहरण है। वह छायामूर्ति केवल मात्र राम की कल्पना नहीं है। भगवती तमसा उसे स्पष्ट देख रही है, उसके कण्ठस्वर को सब सुन रहे हैं। रामचन्द्र के मूर्च्छित होने पर सीता के पश्चाताप को सब सुन रहे हैं। सिर्फ रामचन्द्र उसे नहीं देख पाते हैं—

द्विजेन्द्रलाल राय लिखते हैं—"मुझे जान पड़ता है कि भवभूति ने पहले तो कवित्व के हिसाब से काल्पनिक सीता की कल्पना की थी, पीछे जब वे उस कल्पना को मूर्तिमती बनाने लगे, विषय को सजाने लगे, तब सत्य-सीता को ही छायामूर्ति के रूप में वहाँ ले आये। अच्छा ही किया! इस वास्तव और अवास्तव को मिलाकर जिस इन्द्रजाल की सृष्टि की है, वह जगत् भर के साहित्य में अतुलनीय है।"

उत्तर रामचरित्र नाटक का सातवाँ अङ्क करुण-रस की धारा बहाने में सबसे अधिक समर्थ सिद्ध हुआ है।

इस अङ्क में राम, लक्ष्मण और पुरवासी लोग बाल्मीकि-रचित "सीता-निर्वासन" नाटक का अभिनय देख रहे हैं। उस अभिनय में लक्ष्मण सीता को वन में छोड़ आये। उसके बाद की घटनाओं को राम आँखों से आँसू बहाते हुए देख रहे हैं। सीता जब रसातल में प्रवेश कर जाती है, तब—

"हा देवि! दण्डकारण्य-वास-प्रिय-सखि! चारित्र देवते! लोकान्तरं गताऽसि", हाय देवी, दण्डकवन में निवास के समय की प्रिय सखि! देवताओं के से पवित्र चरित्रवाली, तुम दूसरे लोक में चली गई!" कहकर रामचन्द्र मूर्छित हो गये।

यह देखकर लक्ष्मण ने घबरा कर कहा—

"भगवन् बाल्मीके, परित्रायस्व, परित्रायस्व! एषः किं ते काव्यार्थः?" भगवान् बाल्मीकि! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए, आपके इस काव्य का क्या अर्थ है?

इसी समय नेपथ्य में आकाशवाणी होती है—

"भो भो सजङ्गम स्थावराः प्राणभृतो मर्त्यामर्त्यः पश्यत भगवता वाल्मीकिनानुज्ञातं पवित्रमाश्चर्य्यम्।"

हे चराचर और मनुष्य-देवयोनि-प्राणियो! भगवन् बाल्मीकि की आज्ञा से अनुष्ठित इस आश्चर्य घटना को देखो।

लक्ष्मण ने देखा—

"मन्थादिव क्षुभ्यति गाङ्गमम्भो,
व्याप्तञ्च देवर्षिभिरन्तरिक्षम्।
आश्चर्य्यमार्या सह देवताभ्या,
गंगा महीभ्यां सलिलादुदेति।"

जैसे कोई मथ रहा हो, इस तरह गंगा का जल क्षोभ को प्राप्त हो रहा है, सारा अन्तरिक्ष देवों और ऋषियों से भर गया है। कैसा आश्चार्य है! आर्य्या जानकी, गंगा और पृथ्वी इन दो देवियों के साथ जल से ऊपर आ रही है।

फिर आकाशवाणी होती है—

अरुन्धति जगद्वन्द्ये, गंगापृथ्व्यौ भजस्व नौ।
अर्पितेयं तवभ्यासे सीता पुण्यव्रता वधूः ॥

हे जगत् भर की पूजनीया अरुन्धती देवी! हम गंगा और पृथ्वी दोनों उपस्थित हैं और पवित्र चरित्रवाली पतिव्रता वधू सीता को तुम्हें अर्पित करती हैं।

लक्ष्मण ने कहा—"आश्चर्य्यमाश्चर्य्यम्, आर्य, पश्य, पश्य (आश्चर्य्य है, आश्चर्य है! आर्य्य, देखिए)

मगर तब तक रामचन्द्र मूर्छित ही थे। तब स्वयं सीता ने आकर अपने स्पर्श से रामचन्द्र को सचेत किया। अरुन्धती ने गंगा और पृथ्वी से रामचन्द्र का परिचय करवाया, तब राम ने हाथ जोड़ कर उनसे पूछा—

"कथं कृतमहापराधो भगवतीभ्यामनुकम्पितः"

(इतना बड़ा अपराध करने पर भी मैं भगवतियों की अनुकम्पा कैसे प्राप्त कर सका?)

इसके बाद अरुन्धती ने वहाँ पर एकत्र हुई प्रजामण्डली को पुकार कर और सुनाकर कहा—

'हे पुरवासी और जनपदवासी लोगों! इन सीता देवी को प्रशंसापूर्वक शुद्ध चरित्रवाली कहकर भगवती गंगा और पृथ्वी ने मुझ अरुन्धती को सौंप दिया है। इसके पहले भगवान् अग्निदेव ने निर्णय कर दिया था कि इनका चरित्र परम विशुद्ध है······अब महाराज रामचन्द्र इनको ग्रहण करते हैं—इस विषय में तुम लोगों की क्या सम्मति है? तुम इसका अनुमोदन करते हो या नहीं?"

लक्ष्मण ने कहा—"आर्या अरुन्धती ने यों कहकर अपवाद लगानेवाली प्रजामण्डली की भर्त्सना की है। सब प्राणी-समूह आर्या जानकी को प्रणाम करते हैं, लोकपाल और सप्तर्षिगण फूलों की वर्षा करते हैं।"

राम ने अरुन्धती की आज्ञा से सीता को ग्रहण किया। लव और कुश का प्रवेश हुआ, अभ्यर्थना, आलिंगन और आशीर्वाद के पश्चात् यवनिका-पतन हुआ।

पाताल-प्रवेश के पश्चात् राम और सीता का पुनर्मिलन वाल्मिकि तथा अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं है। भवभूति ने अपने कल्पना-कौशल से नाटक को सुखान्त बनाने के लिए सम्भवतः पुनर्मिलन की इस घटना की कल्पना की है।

नारी-रूप के वर्णन में कालिदास और भवभूति के बीच सीमारेखा खींचते हुए द्विजेन्द्रलाल राय लिखते हैं:—"नारी-रूप के वर्णन में भवभूति की अपनी एक विशेषता है। कालिदास तथा अन्य बहुत से कवियों के नारी सौन्दर्य-वर्णन में लालसा का भाव भरा हुआ है, किन्तु भवभूति का नारी रूप-वर्णन सब दूर पहाड़ी झरनों के समान निर्मल और पवित्र है। कालिदास रमणी के बाहरी रूप में ही मस्त हैं पर भवभूति की दृष्टि स्त्री के अन्तःकरण के सौन्दर्य पर है। नारी यदि "तुङ्गस्तनी" "श्रोणीभारादलसगमना" और "बिम्बाधरा" हुई तो बस, कालिदास को और कुछ न चाहिए। अपने काव्यों में स्थान-स्थान पर रमणी के अङ्गों का वर्णन करने में कालिदास को बड़ा ही आनन्द आता है, किन्तु भवभूति की दृष्टि में नारी "गेहे लक्ष्मी" हैं। उसके वचन 'कर्णमृतानि' हैं, उसका स्पर्श "संजीवनौषधिरस" स्नेहार्द्र शीतल है। उसका आलिंगन "सुखमिति वा दुःखमिति का है। कालिदास का रूप-वर्णन प्रकाश अवश्य है, मगर वह दीपक का रक्त वर्ण प्रकाश है। भवभूति का वर्णन उज्ज्वल चांदनी का प्रकाश है। कालिदास जब पृथ्वी पर चलते हैं उस समय भवभूति मानों उनसे बहुत ऊपर आकाश में विचरण करते हैं।"

उत्तर मीमांसा

महर्षि बादरायण व्यास के द्वारा रचित 'ब्रह्मसूत्र' नामक ग्रन्थ का दूसरा नाम। इसका पूरा वर्णन ब्रह्मसूत्र नाम के अन्तर्गत अगले भागों में देखिये।

उत्तर पुराण

दिगम्बर जैन-साहित्य का एक सुप्रसिद्ध पुराण-ग्रन्थ, जिसकी रचना सुप्रसिद्ध जैनाचार्य जिनसेनाचार्य के शिष्य गुणभद्राचार्य ने ९ वीं शताब्दी के चौथे चरण में की।

उत्तरपुराण महापुराण का उत्तरार्द्ध भाग है। इसमें करीब १० हजार श्लोकों में जैन-धर्म के सुप्रसिद्ध २३ तीर्थंकर (आदिनाथ को छोड़कर) १२ चक्रवर्ती, ९ नारायण, ९ बलभद्र और ९ प्रतिनारायण का सुन्दर पद्यबद्ध काव्यभाषा में

विवेचन किया गया है। यद्यपि दिगम्बर-जैन साहित्य के आदि पुराण ग्रन्थ से दिस्तार में यह छोटा है, पर कला की दृष्टि से यह ग्रन्थ काफी महत्वपूर्ण है।

सन् ८९८ ईसवीं में गुणभद्राचार्य के शिष्य आचार्य लोकसेन के तत्वाधान में इस ग्रन्थ का पूजा महोत्सव सम्पन्न किया गया।

आचार्य गुणभद्र जैन-साहित्य के धुरन्धर विद्वान और संस्कृतकाव्य के पारदर्शी कलाकार थे। वे अत्यन्त विनीत स्वभाव के और गुरु के प्रति पुनीत श्रद्धा रखने वाले आचार्य थे। उत्तरपुराण की कथाओं में जीवन्धर की कथा बहुत प्रसिद्ध है, जिसके आधार पर आगामी संस्कृत और तामिल के कवियों ने अपने कई काव्यों की रचना की है।

उत्तराध्ययन-सूत्र

श्वेताम्बर-जैन-साहित्य के ४ मूलसूत्रों में तीसरा मूल सूत्र 'उत्तराध्ययन-सूत्र' है।

श्वेताम्बर-जैन-साहित्य में मूलसूत्र ग्रंथों में उत्तराध्ययन-सूत्र का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह पूरा सूत्र अत्यन्त आनन्ददायक और ज्ञान का भण्डार है। इसमें ३६ अध्ययन हैं जिनका क्रम इस प्रकार है—

१–विनय-धर्म, २–परिषह-विनय, ३–चतुरंगीय-परिषह, ४–प्रमादाप्रमाद, ५–अकाम-मरण, ६–क्षुल्लक-निर्ग्रन्थीय, ७–औभ्रंय, ८–कापिलीय, ९–नमी प्रव्रज्या, १०–द्रुमपत्र, ११–बहुश्रुत-पूजा, १२–तपः समृद्धि, १३–चित्र संभूतीय, १४–ईशुकारीय, १५–सभिक्षुक, १६–ब्रह्मचर्य गुप्ति, १७–पापश्रमणीय, १८–संयतीय, १९–मृगापुत्रीय, २०–महा-निर्ग्रन्थीय, २१–समुद्रपालीय, २२–रथ नेमीय, २३–केशि-गौतमीय, २४–प्रवचन-माता, २५–यज्ञीय, २६–सामाचारीय, २७–खलुङ्कीय, २८–मोक्षमार्ग, २९–सम्यक्त्व-पराक्रम, ३०–तपोमार्ग, ३१–चरण-विधि, ३२–प्रमादस्थान, ३३–कर्म प्रकृति, ३४–लेश्या, ३५–अनागार मार्ग और ३६–जीवाजीव विभक्ति।

इन ३६ अध्ययनों का वर्णन करते हुए उनको अनेक दृष्टान्तों के द्वारा समझाया गया है। कहा जाता है कि श्री वर्धमान (महावीर) प्रभु ने अपने निर्वाण के समय १६ पहर की देशना (उपदेश) दी थी। इस देशना में श्री वर्धमान ने ५५ अध्ययन पुण्यफल विपाक पर और ५५ अध्ययन पाप-फल विपाक पर कहे थे। उसके पश्चात् विना पूछे हुए उत्तराध्ययन के ३६ अध्ययनों पर प्रकाश डाला था। इसीसे इनको 'अपृष्ट व्याकरण' कहा जाता है।

आचार्य भद्रबाहु उत्तराध्ययन-सूत्र पर की हुई 'निरुक्ति' में बतलाते हैं कि इसके ३६ अध्ययनों में कुछ निज-भाषित, कुछ प्रत्यक् बुद्ध संवाद रूप और कुछ दृष्टिवाद अंगों में से ग्रहण किये गये हैं।

उत्तराध्ययन सूत्र की तुलना बौद्ध-साहित्य के 'सूत्त-निपात' नामक सूत्र से की जा सकती है।

उत्पलाचार्य

संस्कृत-साहित्य के एक सुप्रसिद्ध दार्शनिक, जिनका समय ९ वीं सदी के अन्त में माना जाता है।

उत्पलाचार्य के पिता सोमानन्द काश्मीर-शैवमत की प्रत्यभिज्ञा-शाखा के प्रवर्तक थे।

उत्पलाचार्य ने अपने ईश्वर-प्रत्यभिज्ञा-कारिका नामक ग्रन्थ के द्वारा प्रत्यभिज्ञा-मत के समर्थन और अन्य मतों के खण्डन में अनेक तर्कों का प्रयोग करके दार्शनिकों की उच्चकोटि में अपना स्थान बना लिया था। इनकी रचनाओं में 'स्तोत्रावली' 'सिद्धित्रय' 'शिवदृष्टि-व्याख्या' 'ईश्वर-प्रत्यभिज्ञा—कारिका' इत्यादि रचनाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं।

ईश्वर-प्रत्यभिज्ञा-कारिका पर प्रसिद्ध लेखक अभिनव गुप्त ने 'विमर्षिणी' और 'विवृत्ति-विमर्षिणी' नामक अत्यन्त प्रसिद्ध टीकाएँ लिखी हैं। उत्पला चार्य के पुत्र लक्ष्मणपुत्र अभिनव गुप्त के गुरु थे।

उत्पलापीड़

कश्मीर के राजा अजितापीड़ के पुत्र। जिन्हें सुख वर्मा ने अनंगापीड़ को कश्मीर की गद्दी से उतारकर इनको कश्मीर का राजा बनाया था। इन्हीं के समय में पुनः उत्पलवंशियों का अधिकार कश्मीर में फैलने लगा

कुछ समय बाद शूर नामक मंत्री ने उत्पलापीड़ को राज्य से हटा दिया। इन्होंने तीन वर्ष तक राज्य किया।

उदयन मेहता

गुजरात के प्रसिद्ध जैन राजा कुमारपाल का मंत्री और प्रसिद्ध जैन-तीर्थ शत्रुञ्जय के विशाल मन्दिर का निर्माता। जो सन् ११४५ में राजा कुमारपाल का मंत्री था।

जिस समय कुमारपाल को राज्य प्राप्त नहीं हुआ था और वह बेकसी की हालत में इधर-उधर घूम रहा था, उस कष्टप्रद स्थिति में वह खंभात पहुँचा और वहाँ भोजन माँगने के लिए उदयन मेहता के घर गया। यहाँ पर उदयन मेहता ने उसकी धन एवं आवश्यक वस्तुओं से बड़ी सहायता की। इससे कुमारपाल बहुत प्रसन्न हुआ और सन् ११४३ में जब वह गद्दी पर बैठा तो तुरन्त उसने उदयन मेहता को अपना प्रधान मंत्री बनाया और उसके पुत्र बाहड़ को महामात्य नियुक्त किया।

एक बार कुमारपाल ने सौराष्ट्र के समर राजा को पकड़ने के लिए अपने मंत्री उदयन को सेनापति बनाकर भेजा। उदयन अपनी सेना के साथ रवाना होकर आगे बढ़ा और 'पालीताना' पहुँचकर उसने भक्तिभावपूर्वक श्री ऋषभदेव का पूजन और 'चैत्यवन्दना' की। पूजन करते समय उसने देखा कि दीपमाला में से एक दीया उठाकर एक चूहा ले गया और लकड़ी से बने हुए उस मन्दिर के एक भाग में जाकर बैठ गया। रक्षकों ने यद्यपि उस चूहे से दीवट छुड़ा लिया, पर मंत्री की समाधि भंग हो गई। उदयन ने अपने मन में सोचा कि यह जीर्ण लकड़ी का मन्दिर खतरे में है। इसलिए उसने उसी समय इस मन्दिर को पाषाण का बनवाने का संकल्प किया और जब तक यह कार्य पूरा न हो जाय, तब तक ब्रह्मचर्य से रहने, एक बार भोजन करने, जमीन पर सोने और ताम्बूल न खाने का नियम कर लिया।

इसके बाद राजा समर को लड़ाई में हराकर उसे मारकर, उसके पुत्र को गद्दी पर बिठाकर जब वह वापस लौटा तब शरीर में बहुत से घाव लग जाने से वह मूर्छित हो गया था। मरते समय 'श्री गिरनार-तीर्थ' पर नई सीढ़ियाँ बनाने और 'शत्रुञ्जय-तीर्थ' पर पाषाणमय मन्दिर बनाने का भार अपने पुत्र बाहड़ पर छोड़ कर वह मर गया।

बाहड़ ने अपने पिता की आज्ञानुसार गिरनार पर जाकर सुगम पगडंडी का रास्ता बनवाकर सीढ़ियाँ बनवाई और इसमें ६३ लाख रुपया खर्च किया। फिर कपर्दी मंत्री को अपना काम सौंपकर ४ हजार सवारों सहित शत्रुञ्जय की तलहटी में जाकर डेरा डाला। वहाँ पर दूसरे व्यापारी भी इस तीर्थ के जीर्णोद्धार में अपना भाग अदा करने के लिए धन ले-लेकर आये और बाहड़ मंत्री से प्रार्थना की कि—"यद्यपि आप अकेले ही इस तीर्थ का उद्धार करने में समर्थ हैं तथापि इस महापुण्य में हमें भी सम्मिलित कर कृतार्थ करें।" यह कहकर उन्होंने उसके सामने सोने का ढेर लगा दिया। शुभ मुहूर्त देखकर मंत्री ने जीर्ण काष्ठमय प्रासाद को उतरवा दिया। नींव में विधिपूर्वक वास्तु मूर्ति पधराकर शिला से ढँकवादी और फिर दो वर्ष में पाषाणचैत्य बनवाकर तैयार करवा दिया।

इसके बाद उसने हेमचन्द्राचार्य तथा संघ को बुलाकर—विक्रम संवत् १२११ में शनिवार के दिन सोने के दण्डकलश और ध्वजा चढ़ाकर प्रतिष्ठा की तथा देव पूजा के निमित्त २४ गाँव और २४ बाग दान में दिये। तलहटी में अपने नाम पर बाहड़पुर नगर बसाया और वहाँ पर 'श्री पारसनाथ' की प्रतिमा से अलंकृत 'त्रिभुवनपाल' विहार बनवाया। कुछ लोगों के मत से इस सारे कार्य में बाहड़ ने २ करोड़ ९७ लाख 'दम्म' खर्च किये थे, मगर मेरुतुंगाचार्य के मतानुसार इस कार्य में १ करोड़ ६० लाख दम्म खर्च हुए।

उदयप्रभ सूरि

एक प्रसिद्ध जैनाचार्य जो आबू मन्दिरों के निर्माता गुजरात के प्रसिद्ध सेठ वस्तुपाल के कुलगुरु विजयसेन सूरि के पट्टशिष्य थे और अवस्था में वस्तुपाल से छोटे थे। इनकी मुख्य कृति 'धर्माभ्युदय' महाकाव्य अपर नाम 'संघपति-चरित्र' है, जिसमें संघपाल की यात्रा का वर्णन

है। इस रचना की एक प्रति खंभात के जैन भंडार में सुरक्षित है, जो स्वयं वस्तुपाल की हस्तलिपि में हस्तलिखित है। इनका समय ईसवी सन् १२०० के आस-पास माना जाता है।

उदयन-वासवदत्ता

भगवान् बुद्ध के समय में कौशाम्बी का सुप्रसिद्ध राजा 'उदयन' जो संगीतकला और ललितकलाओं का बड़ा मर्मज्ञ था और जिसका समय ईसा से पूर्व छठी शताब्दी के मध्य में माना जाता है। यह चन्द्रवंशी राजा शतानीक का पुत्र था।

उसी समय अवन्ति के सुप्रसिद्ध राजा चण्डप्रद्योत की अंगारवती रानी से उत्पन्न 'वासवदत्ता' नामक अत्यन्त सुन्दरी कन्या थी। राजा चण्डप्रद्योत उसे संगीतकला तथा ललित कलाओं की शिक्षा देना चाहता था। और उस कला का दक्ष उस समय वत्सराज 'उदयन' के सिवा कोई दूसरा दृष्टिगोचर नहीं होता था।

जैन-परंपरा के अनुसार राजा चण्डप्रद्योत ने उदयन को कई कौशलों से हरण करवा कर मँगवा लिया और कारागार में बन्द करवा दिया। फिर उसने उससे कहा कि—'मेरे एक आँख वाली एक लड़की है, उसे यदि तुम संगीत कला और वीणा वादन में निपुण कर दो तो तुम्हें कारागार से छुट्टी मिल सकती है। लेकिन मेरी कन्या एकाक्षी है, इसलिए तुम कभी उसकी तरफ न देखना। क्योंकि तुम्हारे देखने से वह अत्यन्त लज्जित होगी।" उधर उसने वासवदत्ता से कहा कि—"तेरे लिए गन्धर्व-विद्या-विशारद एक गुरु बुलवाया है। वह तुझे संगीत-शास्त्र की शिक्षा देगा, पर वह कुष्ठी है, इसलिए तू कभी उसके सामने मत देखना।"

कन्या ने पिता की बात को स्वीकार किया और वत्सराज उदयन ने उसे शिक्षा देना प्रारंभ किया। प्रद्योतराजा के किये हुए कौशल से कुछ दिनों तक उन दोनों ने एक दूसरे को नहीं देखा, पर एक दिन वासवदत्ता को उदयन के देखने की इच्छा हुई, जिससे वह जानबूझ कर हतबुद्धि सी हो गई। यह देखकर उदयन ने क्रोध में आकर कहा कि—"अरी एकाक्षी! पढ़ने में ध्यान न देकर तू क्यों गन्धर्व-विद्या का नाश कर रही है।" इस तिरस्कार से क्रोधित हो उसने वत्सराज से कहा कि—"अरे कुष्ठी! अपनी ओर न देखकर तू मुझे एकाक्षी कहता है।"

यह सुनकर वत्सराज को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने सोचा कि जैसा मैं कुष्ठी हूँ, वैसी ही यह एकाक्षी होगी। प्रद्योतराजा ने यह सब जाल किसी विशेष उद्देश्य-सिद्धि के लिए बनाया है। यह सोचकर उसने वासवदत्ता को देखने की इच्छा से बीच का परदा हटा दिया।

बादलों से मुक्त होकर शरद् पूर्णिमा का चन्द्रमा जिस प्रकार अपनी कला का विस्तार करता है, उसी प्रकार परदे से मुक्त होकर चन्द्रकला की तरह वासवदत्ता उदयन को देखने में आई। इधर वासवदत्ता ने भी नेत्र भर कर साक्षात् कामदेव के समान सुन्दर वत्सराज उदयन को देखा। देखते ही दोनों ने एक दूसरे पर अपने को उत्सर्ग कर दिया।

एक दिन अवसर देखकर वत्सराज उदयन अपने मंत्री की सहायता से वासवदत्ता का हरण कर उसको हथिनी पर बैठा कर उज्जयिनी से निकल भागा। चण्डप्रद्योत ने उसे पकड़ने का बहुत यत्न किया, मगर सफलता न मिली और उदयन सकुशल अपनी राजधानी में पहुँच गया।

वासवदत्ता-हरण का यह दृश्य ईसा से दूसरी सदी पूर्व की शुंग-कालीन मिट्टी की ईंटों पर खुदा हुआ मिला है। एक ऐसी ईंट काशी-विश्व-विद्यालय के भारती-कला-भवन में भी सुरक्षित है।

महाकवि 'भास' ने अपने स्वप्न-वासवदत्ता और 'प्रतिज्ञा यौगन्धरायण' दोनों नाटकों में अपने कथानक का नायक राजा उदयन को ही बनाया है।

जैन और बौद्ध ग्रन्थों के अतिरिक्त और भी कई ऐसे ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं, जिनसे उदयन की ऐतिहासिकता सिद्ध होती है।

उदयनाचार्य

न्याय और वैशेषिक दर्शन के प्रसिद्ध व्याख्याता, जिनका समय सन् ९८४ के आसपास माना जाता है।

उदयनाचार्य मिथिला के 'करीयोन' नामक ग्राम के निवासी थे, जहाँ इनके वंशज अभी भी मौजूद हैं। अक्षपाद गौतम की न्याय-परंपरा के ये प्रौढ़ व्याख्याता माने जाते थे। इनके बनाये हुए ग्रन्थों में 'किरणावली' 'न्याय कुसुमाञ्जलि' 'आत्मतत्व-विवेक' 'न्याय-परिशिष्ट' और 'न्याय-वार्त्तिक-तात्पर्य परिशुद्धि' नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

नैयायिक श्रीधर ने उदयन की किरणावली को देखकर सन् ९९१ में प्रशस्तपाद भाष्य पर न्याय-कन्दली नामक टीका की रचना की।

उदयनाचार्य ने बौद्ध-धर्म के खिलाफ आन्दोलन उठाकर उसको बड़ा धक्का पहुँचाया। ऐसा कहा जाता है कि सम्राट् हर्षवर्द्धन के पिता प्रभाकरवर्द्धन के साथ उनका शास्त्रार्थ हुआ था। मगर यह बात इसलिए संभव नहीं मानी जा सकती कि प्रभाकरवर्द्धन का समय इनके बहुत पश्चात् करीब ११ वीं शताब्दी के अन्त में पड़ता है।

उदयसिंह

मेवाड़ के सुप्रसिद्ध राणाप्रताप सिंह के पिता राणा-उदय सिंह जिनका समय सन् १५४२ से १५७२ तक है।

राणा उदयसिंह राणा साँगा के छोटे पुत्र थे। राणा साँगा की मृत्यु के पश्चात् उनके दो पुत्र राणा रत्नसिंह और राणा विक्रमजीत मेवाड़ की गद्दी पर बैठे। विक्रमजीत के व्यवहार से असन्तुष्ट होकर मंत्रियों ने उसे राज्यच्युत करके वनवीर सिंह नामक एक व्यक्ति को 'चित्तौड़' की गद्दी पर बैठाया। उस समय राणा साँगा के कनिष्ट पुत्र उदयसिंह की उम्र ६ वर्ष की थी। वनवीर सिंह ने यह समझकर कि बालिग होने पर उदयसिंह को गद्दी पर बैठाया जायगा—उसने उदयसिंह की हत्या करने का निश्चय कर लिया।

उस समय उदयसिंह का पालन-पोषण पन्ना धाय नामक एक स्त्री कर रही थी जो मेवाड़ के इतिहास में अपने आत्म त्याग की वजह से 'पन्नाधाय' के नाम से बहुत प्रसिद्ध है।

उदयसिंह की हत्या करने के लिए एक दिन वनवीर सिंह तलवार लेकर महल में पहुँचा। पन्ना धाय को जब यह बात मालूम हुई तो उसने उदयसिंह को छिपाकर उसकी जगह अपने पुत्र को रख दिया और संकेत से बता दिया कि उदयसिंह वही है। वनवीर सिंह ने उसी को उदयसिंह समझकर अपनी तलवार से काट डाला।

उसके बाद पन्ना धाय उदयसिंह को लेकर आश्रय के लिए मेवाड़ के सभी सरदारों के यहाँ गई, मगर वनवीर सिंह के डर से किसी ने आश्रय देना स्वीकार नहीं किया, तब पन्ना धाय अकेली उदयसिंह को लेकर पहाड़ों को लाँघकर कमलमीर के सामन्त आशासिंह के आश्रय में गई। आशासिंह जैन धर्मावलम्बी थे। इन्होंने इन दोनों की रक्षा करने की प्रतिज्ञा की।

उसके बाद यह बात चारों ओर फैल गई तब उदयपुर के मंत्रियों ने वनवीर को निकालकर उदयसिंह को मेवाड़ की गद्दी पर सन् १५४२ में बैठाया।

कुछ वर्षों के पश्चात् अकबर बादशाह के आक्रमण मेवाड़ पर होने लगे। कुछ समय तक तो उदयसिंह अकबर की सेनाओं से लड़े, मगर फिर चित्तौड़ से भागकर अरवली की उपत्यिकाओं में उन्होंने 'उदयपुर' नामक नगर बसाया और वहीं अपनी राजधानी स्थापित की। तब से अभी तक मेवाड़ की राजधानी उदयपुर ही चली आ रही है।

सन् १५७२ में उदयसिंह का स्वर्गवास हुआ।

उदयनाथ त्रिवेदी 'कवीन्द्र'

अमेठी के राजा हिम्मतसिंह के दरबारी कवि, जो सन् १७२० में विद्यमान थे।

उदयनाथ त्रिवेदी पं० कालिदास त्रिवेदी के पुत्र थे। ये वानपुरा-दुआब के निवासी थे और अमेठी के राजा हिम्मतसिंह के दरबारी कवि थे। राजा द्वारा इन्हें 'कवीन्द्र' की अपाधि मिली थी। यह उपाधि इन्हें 'रस-चन्द्रोदय' नामक ग्रन्थ निर्माण करने पर प्राप्त हुई थी। इस ग्रन्थ की रचना सन् १७४७ में की गई थी।

उदयपुर

राजपूताने की इतिहास-प्रसिद्ध रियासत और मेवाड़ की राजधानी, जिसे मेवाड़ के राणा उदयसिंह ने १६वीं शताब्दी में बसाया था। इसके उत्तर में अजमेर, दक्षिण में डूँगरपुर और बाँसवाड़ा, पूर्व में कोटा और बूँदी और पश्चिम में अरवली पर्वत है।

यह नगर अरवली पर्वत की उपत्यकाओं में प्रतिष्ठित होने से इसका प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त सुन्दर और परम मनोरम है। यह नगर राजस्थान की उस पवित्र भूमि मेवाड़ में अवस्थित है, जहाँ का इतिहास स्वतंत्रता के लिए अपने सर्वस्व की आहुति देने वाले महावीरों की कीर्ति-गाथाओं से भरा हुआ है, जिनका पूरा वर्णन 'मेवाड़' नाम के साथ में इस ग्रन्थ के अगले भागों में दिया जायगा।

उदयपुर के अन्तर्गत बहुत सी कृत्रिम और प्राकृतिक झीलें और बगीचें बने हुए हैं। इनमें 'फतेह-सागर' और 'पिछोला' नामक जलाशय बहुत सुन्दर हैं। पिछोला नामक जलाशय के बीच में 'युग मन्दिर युग-विलास' नामक महाराणा का अत्यन्त सुन्दर महल बना हुआ है, जिसे देखने के लिए दूर-दूर से लोग आते रहते हैं। इसके अतिरिक्त पहाड़ी अर्ध शिखर पर नाना प्रकार के मूल्यवान प्रस्तरों से निर्मित महाराज का महल 'युवराज गृह' 'सरदार-भवन' और 'जगन्नाथ मन्दिर' दर्शनीय हैं। बगीचों में 'सहेलियों की बाड़ी' नामक उद्यान बहुत सुन्दर बना हुआ है।

यहाँ की शिक्षा-संस्थाओं में डा० मोहनसिंह मेहता और उनके साथियों के प्रयत्न से स्थापित विद्या-भवन नामक संस्था सारे भारतवर्ष की शिक्षा-संस्थाओं में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। बहुत छोटे पाये से प्रारम्भ हुई इस संस्था ने अब बड़ा विशाल रूप धारण कर लिया।

महिलाओं की शिक्षा के लिए पं० दयाशंकर श्रोत्रिय के प्रयत्नों से स्थापित महिला-मण्डल नामक संस्था अपने कार्य को सुचारु रूप से कर रही है।

स्वतंत्र भारत में 'वृहद् राजस्थान' का निर्माण होने के पश्चात् उदयपुर अब राजस्थान के एक जिले के रूप में परिवर्तित हो गया। इस पुण्यभूमि की महत्ता को समझ कर राजस्थान के वर्तमान प्रधान मंत्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया ने इस नगर को शिक्षा का सबसे बड़ा केन्द्र बना दिया है। इस नगर में इञ्जीनियरिंग, एग्रीकल्चर इत्यादि भिन्न-भिन्न विषयों के अनेक कालेजों की स्थापना कर दी गयी है।

राजस्थान-साहित्य 'एकाडेमी' का प्रधान आफिस भी इसी नगर में स्थित है, जिसके अध्यक्ष पं० जनार्दन राय नागर पुराने मँजे हुए साहित्यकार और राजनैतिक कार्यकर्त्ता हैं।

उदयशंकर भट्ट

हिन्दी के एक प्रसिद्ध लेखक, जिनका जन्म सन् १८६७ में इटावा में हुआ। इनके रचे हुए काव्यों में 'तक्ष-शिला' 'राका' 'मानसी' इत्यादि काव्य प्रसिद्ध हैं, मगर इनकी कला का पूर्ण विकास पौराणिक नाटकों में दिखाई पड़ता है। पौराणिक क्षेत्र के भीतर उनके पात्र जीवन की रहस्यमयी विषमता से घिरे हुए नजर आते हैं। ऐसी विषमताएँ, जो वर्तमान समाज को क्षुब्ध करती रहती हैं। इनके नाटकों में 'अम्बा' 'मत्स्यगन्धा' 'विश्वामित्र' और 'सगर-विजय' प्रसिद्ध हैं। ऐतिहासिक नाटकों में 'विक्रमादित्य' और 'सिन्धु-पतन' उल्लेखनीय हैं।

उदन्त-मार्तण्ड

हिन्दी का एक समाचार-पत्र, जिसका प्रकाशन कानपुर के पं० युगल किशोर ने सन् १८२६ में कलकत्ते से प्रारम्भ किया।

अभी तक ऐसा माना जाता है कि 'उदन्त मार्तण्ड' हिन्दी का सबसे पहला समाचार है, जो प्रति मंगलवार को कलकत्ते से प्रकाशित होता था। इसके पहले अंक की लम्बाई २० अंगुल और चौड़ाई १३ अंगुल थी।

इसके एक अंक में लिखा था—

'यह उदन्त-मार्तण्ड अब पहले-पहल हिन्दुस्तानियों के हित के हेत, जो आज तक किसी ने नहीं चलाया, पर अंग्रेजी व फारसी व बंगले में जो समाचार का कागज छपता

है, उसका सुख उन बोलियों के जानने वो पढ़ने वालों को ही होता हैं। इससे सत्य समाचार हिन्दुस्तानी लोग देखकर आप पढ़ वो समझ लेयँ वो पराई अपेक्षा न करें वो अपने भाषे की उपज न छोड़ें। इसलिए'''श्रीमान् गवर्नर जेनरल बहादुर की आयस से ऐसे साहस में चित्त लगाय के एक प्रकार से नया ठाट ठाटा। जो कोई प्रशस्त लोग खबर के कागज के लेने की इच्छा करें तो अमड़ातला की ३७ अंक मार्तण्ड छापाघर में अपना नाम वो ठिकाना भेजने ही से सतवारे के सतवारे यहाँ के रहने वाले घर बैठे वो बाहर रहने वाले डाक पर कागज पाया करेंगे।'

करीब डेढ़ वर्ष चलने के पश्चात् यह पत्र आर्थिक कठिनाई के कारण बन्द हो गया।

उदयादित्य

मालवा का एक परमार राजा जो राजा भोज के पुत्र जयसिंह के पश्चात् मालवे की गद्दी पर बैठा। इसका समय लगभग सन् १०५६ है।

उदयादित्य के राज्यारूढ़ होने पर राजा भोज के पश्चात् मालवे का वैभव जो हल्का पड़ने लग गया था, वह फिर से स्थिर हो गया। उदयादित्य एक शक्तिशाली राजा था और उसमें अपने पूर्वजों की तरह विद्याभिरुचि भी थी। अपने नाम पर उसने 'उदयपुर' नामक एक नगर भी बसाया था और वहाँ उसने एक अत्यन्त भव्य शिवालय बनवाया। नागपुर और उदयपुर की प्रशस्ति से स्पष्ट मालूम होता है कि उसने मालवे का उद्धार अपने स्वतंत्र पराक्रम से किया था और किसी विदेशी शक्ति की सहायता नही ली थी।

उदयपुर के शिवालय के इतना ऊँचा शिखर, भारतवर्ष में किसी देवालय का नहीं है। इस मन्दिर के बनाने में चूना या मसाला नाम को भी नहीं लगाया गया था। उसमें पत्थर काट कर इस सफाई से लगाये हैं कि वे मजबूती से जुड़ गये हैं। इस देवालय में परमार-राजाओं के कई शिलालेख हैं। इन शिलालेखों में दो शिलालेख बहुत पुराने हैं जो स्वयं उदयादित्य के हैं। इससे ज्ञात होता है कि देवालय के निर्माण का काम सन् १०५९ से प्रारंभ हुआ और सन् १०८० में समाप्त हुआ।

उदयादित्य ने सन् १०५६ से १०८१ तक राज्य किया।

उदायी

प्राचीन मगध का प्रतापी सम्राट्, राजा अजातशत्रु का पोता और राजा दर्शक का पुत्र, जिसका राज्यकाल ई० सन् पूर्व ४८३ से ४६७ तक अनुमान किया जाता है।

सम्राट् उदायी शिशुनाग-वंश का एक अत्यन्त प्रतापी सम्राट् था। अपने राज्यकाल के दूसरे ही वर्ष में इसने संभवतः अवन्ति के राजा विशाखयूप को जीतकर अपने अधीन कर लिया। १० वर्ष के पश्चात् विशाखयूप की मृत्यु होने पर सम्राट् उदायी ने उज्जयिनी को सीधे मगध-साम्राज्य में मिला लिया, मगर दोनों के शासन को उसने अलग-अलग रखा। अवन्ति का मगध-साम्राज्य में सम्मिलित होना इस युग की सबसे बड़ी घटना थी, जिसके परिणामस्वरूप पूर्वी समुद्र से पश्चिमी समुद्र तक मगध का एकच्छत्र साम्राज्य हो गया और केन्द्रीय भारत में कोई दूसरा उसका प्रतिद्वन्द्वी नहीं रहा।

सम्राट् उदायी ने पाटलीपुत्र नामक नगर को बसाकर मगध-साम्राज्य की राजधानी को राजगृही से हटाकर इस नवीन नगरी में स्थापित कर दिया। पाटलीपुत्र नगर की स्थापना सम्राट् उदायी ने गंगा और सोन के ठीक संगम पर की थी। पाटलीपुत्र आधुनिक पटना का प्राचीन नाम है, पर सोन की धारा अब आठ मील पश्चिम में खिसक गई है जिससे पटना अब सोन और गंगा के ठीक संगम पर नहीं रहा है।

बिम्बसार के समय से मगध का जो साम्राज्य संगठित होना प्रारंभ हुआ था, वह एक शताब्दी की कशमकश के बाद अब सम्पूर्ण हुआ। बिम्बसार के समय तक अंग देश जीता जा चुका था। अजातशत्रु ने कौशल का पराभव किया, अवन्ति का मुकाबला किया और वृजी-संघ को अपने राज्य में मिलाया। अन्त में उदायी ने अवन्ति को जीतकर इस साम्राज्य को केन्द्रीय-भारत में सबसे शक्तिशाली साम्राज्य बना दिया!

उदासी-सम्प्रदाय

भारतवर्ष में नानकशाही सन्यासियों का एक सम्प्रदाय।

ऐसा कहा जाता है कि गुरु नानकदेव के पुत्र श्रीचन्द्र नामक एक साधु हुए जिन्होंने इस सम्प्रदाय को विशेष रूप से संगठित किया। इनकी १६ वीं पीढ़ी में 'वनखंडी' नामक एक प्रसिद्ध साधु हुए, जिन्होंने सन् १८२३ ईस्वी में सिन्ध के अन्तर्गत 'साधुबेला' नामक तीर्थ की स्थापना की। तब से यह तीर्थ इस सम्प्रदाय का प्रधान केन्द्र बन गया। बाद में सिन्ध के पाकिस्तान में चले जाने से वनखंडी की चौथी पीढ़ी में वर्तमान साधु गणेशदास ने सन् १९४९ में इसे काशी के भदैनी मुहल्ले में स्थापित किया।

इस सम्प्रदाय के अनुयायी विशेषकर सिन्ध और पंजाब में पाये जाते हैं। हरिद्वार, काशी और वृन्दावन में भी इसके अनुयायी मिलते हैं। उज्जैन और नासिक में भी उदासियों के अखाड़े स्थापित हैं।

उदासी सम्प्रदाय की ४ शाखाएँ प्रधान हैं। (१) फूल साहिबवाली बहादुरपुर की शाखा (२) बाबा हसन की चरनकौल की शाखा (३) अलमस्त साहब की नैनीताल की शाखा और (४) गोविन्द साहब की शिकारपुरवाली शाखा।

विलियम 'कुक' के मतानुसार पूर्वी भारत के अन्तर्गत इसकी ३७० गद्दियों का होना बतलाया गया है।

उदासियों के अखाड़ों को 'धुनी' कहा जाता है। इनकी परम्परा के अनुसार काबुल के किसी केन्द्र में अब भी ऐसी धुनी जल रही है जिसे स्वयं 'श्रीचन्द्र' ने प्रज्वलित किया था।

उदासी लोग सिक्खों के आदिग्रन्थ को पूज्य मानते हैं और घंटा-घड़ियाल बजाकर उसकी पूजा करते हैं। इस सम्प्रदाय में कुछ लोग 'नागा' हुआ करते हैं, जिनके नामों के आगे 'दास' या 'शरण' की उपाधि लगी रहती है और कुछ लोग परमहंस होते हैं जिनके नाम के आगे 'आनन्द' शब्द लगा रहता है। नागा लोगों के पहनावे का वस्त्र बहुत कम रहता है। वे अपने शरीर पर भस्म का अधिक प्रयोग किया करते हैं। परमहंस का पहनावा गेरुवे वस्त्र का होता है और उनका सिर मुँडा हुआ रहता है। इस सम्प्रदाय के अनुयायियों में स्त्री संन्यासिनियों की संख्या बहुत कम होती है।

उद्योतकर

न्याय-दर्शन के एक विद्वान आचार्य जिनका समय ईस्वी सन् ६३५ के लगभग माना जाता है।

गौतम के न्याय-दर्शन पर वात्स्यायन का जो भाष्य था, उसकी आलोचना बौद्ध-दार्शनिक 'दिङ्‌नाग' ने अपने 'प्रमाण-समुच्चय' ग्रन्थ में की थी। दार्शनिक उद्योतकर ने वात्स्यायन–भाष्य पर व्याख्या लिखकर न्यायशास्त्र की दृष्टि से बौद्ध मत का खण्डन किया। इनकी व्याख्या पर वाचस्पति मिश्र ने 'तात्पर्य टीका' नामक व्याख्या-ग्रंथ का निर्माण किया।

उद्योतन सूरि

कुवलय माला-कथा नामक प्रसिद्ध जैन-ग्रंथ के रचयिता श्री उद्योतन सूरि, जिनका समय सन् ७७७ के लगभग माना जाता है।

श्री उद्योतन सूरि ने अपने ग्रन्थ में अपना परिचय देते हुए लिखा है कि—"उन्होंने 'ह्री-देवी' के दर्शन के प्रताप से इस कथा की रचना की। उनके सिद्धान्त-गुरु वीरभद्र नामक आचार्य थे और युक्तिशास्त्र सिखाने वाले गुरु हरिभद्र थे। इस कथा की रचना करते समय उन्होंने अपना नाम 'दाक्षिण्यांक सूरि' रख लिया था।"

उद्योतन सूरि की 'कुवलय-माला' नामक प्रसिद्ध कथा प्राकृतभाषा में एक अमूल्य रत्न के समान है। इसकी रचना-शैली 'बाण' की 'कादम्बरी' या 'त्रिविक्रम' की 'दमयन्ती कथा' की तरह है। इसकी भाषा अत्यन्त मनोरम और कल्पना चमत्कारपूर्ण है। प्राकृत-भाषा के विद्यार्थियों के लिए तो यह एक अनुपम ग्रन्थ है। इस कथा में कवि ने कौतुक और विनोद के वशीभूत होकर मुख्य प्राकृत भाषा के

अतिरिक्त अपभ्रंश और पैशाची-भाषा में भी कितने ही वर्णन किये हैं, जिनकी उपयोगिता, भाषाशास्त्र की दृष्टि से बहुत अधिक है। अपभ्रंश-भाषा में लिखे हुए इतने प्राचीन वर्णन अभी तक अन्यत्र कहीं भी प्राप्त नहीं होते।

इस कथा की रचना कवि ने 'जाबालिपुर' नामक स्थान पर 'आदिनाथ' भगवान के मन्दिर में की थी। यह जाबालिपुर आजकल 'जालौर' के नाम से प्रसिद्ध है जो जोधपुर के दक्षिण में राजस्थान का एक जिला है। उस समय यह एक नगर के रूप में था।

उस समय की राजनैतिक स्थिति का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि—"उस समय प्रतिहार-राजवंश का महान् सम्राट् वत्सराज अपने पराक्रम से उत्तर भारत के कान्यकुब्ज-साम्राज्य का स्वामी बन गया। प्रतिहार-वंश की मूल जन्मभूमि गुजरात थी। इस राजवंश का विशेष प्रभाव बढ़ाने वाला सम्राट वत्सराज था। गुजरात के भीनमाल स्थान से उत्पन्न हुआ और कन्नौज में उत्कर्ष के शिखर पर पहुँचा हुआ गुर्जर-प्रतिहार वंश असल में गुर्जरों का प्रतिनिधिरूप था। वत्सराज की राजधानी पहले जाबालिपुर (जालोर) में थी। वहाँ से वत्सराज के पुत्र 'नागभट्ट' ने हमेशा के लिए राजधानी को हटाकर कन्नौज में स्थापित की और गौड़, बंगाल, मालव इत्यादि दूर-दूर के बड़े प्रदेशों को विजय कर 'उत्तरापथ' में एक महान् साम्राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया।

इससे पता लगता है कि प्रतिहार-वंश का यह वत्सराज वही होना चाहिए जिसने कन्नौज के राजा 'इन्द्रायुध' को परास्त कर कन्नौज में अपना राज्य स्थापित किया।

उदयशंकर

भारतवर्ष में नृत्य-शास्त्र के एक पारंगत कलाकार, जिन्होंने आधुनिक युग में भारतीय नृत्यकला को नवजीवन प्रदान कर अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति को प्राप्त किया, जिससे सारे संसार का ध्यान भारतीय-नृत्यकला की ओर आकर्षित हुआ।

उदयनारायण तिवारी

हिन्दी-साहित्य के एक प्रसिद्ध लेखक, जिनका जन्म सन् १६०५ में बलिया जिले के पीपरपाँती नामक ग्राम में हुआ।

डा० उदयनारायण तिवारी ने भोजपुरी-साहित्य पर अनुसन्धनात्मक (खोजपूर्ण) निबन्ध प्रस्तुत कर डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। इनके खोजपूर्ण निबंधों की प्रशंसा सर जार्ज ग्रियर्सन के समान विदेशी विद्वानों ने भी की। इनकी रचनाओं में कवितावली, रामायण की भूमिका, रासपञ्चाध्यायी, भ्रमरगीत, वीरकाव्य-संग्रह, कहानी-कुञ्ज इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

उदयामती

गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव प्रथम की पत्नी और राजा कर्ण सोलंकी की माता, जिनका समय सन् १०२२ से १०७२ तक समझा जाता है।

राजा कर्ण का विवाह चन्द्रपुर के राजा जयकेशी की पुत्री 'मीनल देवी' से हुआ था, मगर विवाह करने के बाद राजा कर्णराज ने अधिक रूपवती न होने के कारण मीनल देवी से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखा। मीनल देवी अपने पति के ऐसे व्यवहार से बहुत दुखी हुई और उसने अपनी दासियों सहित चिता में जलकर प्राण-त्याग करने का विचार किया। कर्ण की माता उदयामती ने भी अपनी पुत्रवधू के दुःख से दुखी होकर आग में जलकर प्राणत्याग करने की धमकी दी। कर्ण की प्रजा ने भी राजा की इस क्रूरता और पातकीपन की खुले रूप में निन्दा की, मगर राजा कर्ण टस-से-मस नहीं हुआ।

वह 'नमुञ्जला' नामक एक अत्यन्त सुन्दरी नटी पर आसक्त था। उसने उससे एकान्त में मिलने का संकेत किया। यह बात जब उसके मंत्री 'मुञ्जाल' को मालूम हुई तो उसने किसी प्रकार उस नटी के स्थान पर मीनल देवी को पहुँचाने का प्रबन्ध कर दिया। कर्णराज जाल में फँस गया और रानी उसी दिन उससे सगर्भा हुई। रानी ने उसके युक्ति के साथ एक अँगूठी की निशानी इसलिए ले

ली थी कि राजा आगे चलकर इस बात को अस्वीकार न कर सके।

मीनल देवी के इसी गर्भ से गुजरात का प्रतापी राजा सिद्धराज जयसिंह पैदा हुआ, जिसकी वीरतापूर्ण कहानियों से सारे गुजरात का इतिहास जगमगा रहा है।

उदयवराह

गुजरात के कर्णावती नगर का एक जैन-मन्दिर जिसका निर्माण सोलंकी राजा सिद्धराज जयसिंह के मंत्री उदयन ने कराया था। इसमें जैन-सम्प्रदाय के २४ भूतकालीन, २४ वर्तमान और २४ भविष्यत् के तीर्थंकरों की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं।

उदयगिरि

उड़ीसा प्रान्त के पुरी जिले का एक पर्वत, जो बुद्ध-कालीन-प्राचीन गुफाओं के लिए बहुत प्रसिद्ध है।

इन गुफाओं में रानी हंसपुर, गणेश, स्वर्गपुरी, भजन, जया, विजया, अनन्त, हस्ती, पवन और व्याघ्र–गुफाएँ प्रधान हैं। इन सब गुफाओं में पर्वतों को काट काटकर संन्यासियों के निवासस्थान बनाये गये हैं। यद्यपि इन गुफाओं की स्थिति आजकल बहुत खराब हो गई है और ये व्याघ्र-भालुओं का निवासस्थान बन चुकी हैं, पर प्राचीन काल में इन सब गुफाओं में बौद्ध भिक्षु रहा करते थे। इनमें से कई गुफाएँ 'सघाराम' के नाम से प्रसिद्ध थीं।

इन्हें देखने के लिए सातवीं शताब्दी में चीनी परिव्राजक ह्वेनसांग भी आया था। उसने पुष्पगिरि-संघाराम नामक, जिस संघाराम की बात लिखी है, वह इन्हीं गुफाओं में से एक रहा होगा।

इन गुफाओं का समय ईसवी सन् से पूर्व तीन सौ वर्ष माना जाता है।

उदयरत्न

गुजराती-साहित्य का एक प्रसिद्ध जैन-कवि, जिसका समय सन् १७१२ है।

कवि उदयरत्न की 'शीलनी नौवाड़' नामक रचना गुजराती-साहित्य में प्रसिद्ध है।

उनसरी

सुप्रसिद्ध विजेता महम्मद गजनवी की सभा का एक अरबी विद्वान जिसका पूरा नाम अब्बुल कासिम 'उनसरी' था। इसकी मृत्यु सन् १०४० के आसपास हुई।

अब्बुल कासिम उनसरी अब्बुल फरह संजरी के शागिर्द थे। ये अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान थे। गजनी विद्यालय के समग्र विद्यार्थी और चार सौ कवि तथा विद्वान् इन्हें अपना गुरु मानते थे। सुल्तान महमूद की वीरता पर इन्होंने एक काव्य की रचना की। ये अनेक भाषाओं के जानकार थे।

उन्नतनगर

सौराष्ट्र प्रान्त के जूनागढ़–राज्य का एक प्राचीन नगर जिसका वर्तमान नाम उन दिलवर है।

प्राचीनकाल में यह नगर अत्यन्त पवित्र स्थान समझा जाता था। स्कन्दपुराण के प्रभासखण्ड में लिखा है कि देवाधिदेव महादेव के आदेश से विश्वकर्मा ने ऋषितोया नाम की नदी के तट पर यह नगर बसाया था। यह ब्राह्मणों के वास के लिए ही निर्मित हुआ था। उस समय यहाँ 'स्थलकेश्वर' नामक एक जाग्रत शिवलिंग था।

मुसलमानों के आने से पूर्व इस नगर में 'उनेवाल' नामक ब्राह्मण-सम्प्रदाय रहता था।

एक समय उन ब्राह्मणों में से किसी ने बेजलाबाजी नामक किसी सामन्त की नवपरिणीता स्त्री का अपमान कर दिया। इससे क्रुद्ध होकर बेजलबाजी ने उन्नतनगर पर आक्रमण कर दिया और वहाँ के अधिकांश ब्राह्मणों की हत्या कर डाली। ब्रह्महत्या होने से यह पुण्यभूमि पापमयी समझी गई और सब ब्राह्मण इस स्थान को छोड़कर दिलवरनगर में जाकर बसे। तभी से यह स्थान उनादिश्वर नाम से प्रसिद्ध हुआ।

गुजराती सुल्तान के राजत्वकाल में यह नगर बहुत प्रसिद्ध हो गया था।

उन्नाव

उत्तरप्रदेश का एक जिला, जिसका मुख्य शहर उन्नाव कानपुर और लखनऊ के बीच अवस्थित है।

ऐसा कहा जाता है कि मुसलमानों के आक्रमण के पहले यहाँ पर विष्णुराज नामक कोई राजा राज्य करता था। एक समय जबकि उसके राजपुत्र का विवाह था, उसी समय सैय्यद बहाउद्दीन नामक एक मुसलमान ने धोखे से हमला करके इस स्थान पर कब्जा कर लिया। तब से यह स्थान मुसलमानों की अमलदारी में आ गया।

उन्नाव के सम्बन्ध में एक किम्बदन्ती इस प्रकार है—"कोई १३ सौ वर्ष पहले बंगराज के अधीन गजसिंह नामक चौहान सिपाही ने इस स्थान को साफ करवा कर यहाँ पर 'सरायगड़ा' के नाम से एक गाँव बसाया, किन्तु थोड़े दिन बाद वह इसे छोड़कर चला गया। उसके बाद कन्नौज के राजा अजयपाल ने इस स्थान पर अपना अधिकार जमाया। उसने खांड़ेसिंह नाम के एक व्यक्ति को यहाँ का शासनकर्त्ता बना कर भेजा। कुछ दिनों के बाद उनवन्तसिंह नामक एक व्यक्ति खांड़ेसिंह को मारकर यहाँ का राजा बन बैठा। उसने अपने नाम के ऊपर सरायगड़ा का नाम बदलकर उन्नाव नाम रखा। १४५० ई० में उसके वंशज राजा अमरावत सिंह के समय सैय्यद लोगों ने दगाबाजी से इस नगर को अपने हाथ में कर लिया।'

सन् १८५७ के गदर के समय में यह शहर फिर से आगे आया। सिपाही-विद्रोह में उन्नाव के कितने ही लोगों ने क्रान्तिकारियों का साथ दिया। जनवार के राजा यशोसिंह ने कई अंग्रजों को पकड़-पकड़ कर नानासाहब के पास भेजा। तब अंग्रेज सेनापति 'हावलाक' ने उनके विरुद्ध सेना भेजी। इस लड़ाई में यशोसिंह मारे गये।

गदर के समाप्त होने पर अंग्रेजों ने यहाँ के राजपुत्र को फाँसी पर चढ़ा दिया और उन्नाव को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया।

उपनिषद्

भारतीय अध्यात्म-विद्या की खोज में ऋषि-मुनियों के द्वारा किये हुए प्रयत्नों का महान् साहित्य उपनिषद्।

ब्रह्मविद्या और संसार तथा लोक-परलोक के ज्ञान को प्रतिपादित करना उपनिषदों का प्रधान ध्येय रहा है। उपनिषद् भारतीय अध्यात्मशास्त्र के ऐसे देदीप्यमान रत्न हैं, जिनकी प्रभा काल के भीषण प्रहारों से भी कभी मलीन नहीं होती। थोड़े शब्दों के अन्तर्गत, सूत्ररूप में जीवन के जटिल रहस्यों की जितनी गहन समीक्षा उपनिषदों में की गई है, उतनी भगवद्गीता को छोड़ कर और स्थानों पर कम ही देखने को मिलेगी।

यमराज से वर माँगते हुए 'नचिकेता' पूछता है—"हे यमराज! मनुष्य के मर जाने पर शरीरस्थ चेतन-जीवात्मा व परमात्मा को कुछ लोग नित्य और कुछ लोग नाशवान मानते हैं—इस प्रकार का संशय जो संसार में है, उसकी निवृत्ति के लिए मैं आपके समान महान् गुरु से यह तीसरा वर माँगता हूँ। कृपाकर मुझे समझाइये कि मृत्यु के पश्चात् आत्मा की क्या स्थिति होती है?"

इसी प्रश्न के ऊपर यमराज की जो व्याख्या है, वही कठोपनिषद् में बतलायी गई है।

इसी प्रकार अन्य उपनिषदों में भी भारतीय महर्षियों ने अपने ज्ञानचक्षुओं से जिन अध्यात्मिक तत्वों का साक्षात्कार किया था, उनका विवेचन उपनिषदों में किया गया है।

उपनिषदों की संख्या मुक्तिकोपनिषद में १०८ बतलायी गई है। इनमें से १० उपनिषदें ऋग्वेद से सम्बद्ध हैं, १६ शुक्ल यजुर्वेद से, ३२ कृष्ण यजुर्वेद से, १६ सामवेद से और ३१ अथर्ववेद से। इनके सिवाय और भी उपनिषद् हैं, पर इन सब में ११ उपनिषद् बहुत प्रसिद्ध हैं, जिनके नाम १ ईश, २ केन, ३ कठ, ४ प्रश्न, ५ मुण्डक, ६ माण्डूक्य, ७ तैत्तिरीय, ८ ऐतरेय, ९ छान्दोग्य, १० बृहदारण्यक और ११ श्वेताश्वतर हैं।

वेदान्त के कई प्रसिद्ध आचार्यों ने अपने मत को पुष्ट करने के लिए समय-समय पर इन उपनिषदों पर भाष्यों की रचना की है।

उपनिषदों के रचना-काल के विषय में भी विद्वानों के अन्दर बड़ा मतभेद है, पर इतना तो निश्चित ही है कि प्रधान उपनिषदों की रचना बुद्ध के आविर्भाव से बहुत पहले हो चुकी थी। छान्दोग्य तथा बृहदारण्यक सब उपनिषदों से अधिक महत्वपूर्ण तथा प्राचीन माने जाते हैं।

उपनिषद वास्तव में वह आध्यात्मिक-सरोवर है, जिससे भिन्न-भिन्न ज्ञान सरिताएँ निकल कर मनुष्य जाति के इहलौकिक और पारलौकिक कल्याण के लिए हमेशा प्रवाहित होती रहती हैं। हिन्दू-दर्शनशास्त्र की प्रस्थानत्रयी के अन्तर्गत उपनिषद को ही प्रथम प्रस्थान के रूप में ग्रहण किया गया है।

द्वितीय प्रस्थान श्रीमद्भगवद्गीता है, जिसको भगवान कृष्ण ने अर्जुन के लिए उपनिषदों के तत्वों का मन्थन करके सारभूत रूप में प्रस्तुत किया था।

तृतीय प्रस्थान बादरायण व्यास के द्वारा रचित ब्रह्मसूत्र है, जिसमें विरोधी प्रतीत होने वाले उपनिषद् के वाक्यों का समन्वय और अभिप्राय दिखलाया गया है। इस प्रकार गीता और ब्रह्मसूत्र—उपनिषदों पर ही आश्रित हैं। अतः उपनिषद् ही भारतीय दर्शन-शास्त्र के मूल स्रोत हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।

उपनिषद् कोई एक शताब्दी की रचना न होकर अनेक शताब्दियों के आध्यात्मिक चिन्तन के परिणाम हैं। अतः उनमें परस्पर विरोधी सिद्धान्तों का मिलना स्वाभाविक है। फिर भी उनका चरम लक्ष्य एक ही है और वह इस परिवर्तनशील जगत् के मूल में विद्यमान रहने वाले शाश्वत पदार्थ को ढूँढ़ निकालना है।

विदेशों में उपनिषदों का प्रभाव

भारतीय दर्शन-शास्त्र के इन दिव्य ग्रन्थों ने अपनी गंभीर विवेचना से विदेशी विद्वानों को भी बहुत प्रभावित किया है। १७वीं शताब्दी में दाराशिकोह ने चुने हुए ५० उपनिषद-ग्रन्थों का फारसी-भाषा में अनुवाद किया था। इसी अनुवाद का लैटिन-भाषा में अनुवाद फ्रेंच विद्वान 'आँके-त्वील-दुपेरा' ने किया था। यह अनुवाद टूटा-फूटा और अधूरा था, परन्तु इसी को पढ़ कर जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक 'शोपेनहार' ने कहा था कि—"उपनिषद् मानव-मस्तिष्क की सबसे ऊँची एवं पूर्ण रचना है और मेरे जीवन में इन ग्रन्थों से वास्तविक शान्ति प्राप्त हुई है।"

इसीलिए यह विद्वान अपने ३ गुरुओं में प्लेटो और कैंट के साथ उपनिषदों को भी स्थान देता है। उसके पश्चात् तो पाश्चात्य-जगत के विद्वान उपनिषदों के प्रति बहुत अधिक आकर्षित हुए और अब तो शायद ही कोई ऐसी सभ्य-भाषा होगी जिसमें उपनिषदों का अनुवाद न मिलता हो।

उपनिवेशवाद

किसी भी शक्तिशाली राष्ट्र के द्वारा अन्य देशों पर विजय प्राप्त करके अपनी राजनैतिक प्रभुता स्थापित करने के लिए अथवा व्यापारिक विस्तार करने के लिए जो बस्तियाँ आबाद की जाती हैं, उन्हें आधुनिक युग की भाषा में 'उपनिवेश' कहते हैं।

औपनिवेशिक बस्तियों की स्थापना का इतिहास बहुत प्राचीन समय से चला आता है। प्राचीन-काल में रोम-साम्राज्य ने ब्रिटेन फ्रांस आदि दूर-दूर के अनेक देशों में अपने उपनिवेशों की स्थापना की थी। इसी प्रकार फिनीशिया के लोगों ने भी समुद्र-मार्ग से टायर, हिप्पो, ट्यूनिस और अफ्रिका में अपने उपनिवेश स्थापित किये थे।

इजियायी सभ्यता के प्रमुख केन्द्र 'क्रीट' के मिनोस राजाओं ने क्रीट के आसपास के सब द्वीपों में अपने उपनिवेश स्थापित किये थे। महाकवि होमर-द्वारा वर्णित ट्राय नगर भी मिनोई-राजवंश का एक उपनिवेश था।

इन्हीं दिनों कार्थेज के निवासियों ने राजकीय सत्ता स्थापित करने के लिए अफ्रिका, सिसली, स्पेन इत्यादि अनेक स्थानों पर अपने उपनिवेश स्थापित किये हुए थे।

भारतवर्ष के राजाओं ने भी समय-समय पर जावा, सुमात्रा, अनाम तथा इण्डोचाइना के अन्य स्थानों पर

अपने कई उपनिवेश स्थापित किये थे और वहाँ पर कई शताब्दियों तक राज्य करके अपनी सभ्यता और अपने धर्म का विस्तार किया था।

१४ वीं शताब्दी से उपनिवेशों का इतिहास व्यवस्थित रूप से स्पेन और पुर्तगाल के द्वारा प्रारम्भ हुआ। स्पेन और पुर्तगाल के जहाजियों ने १५ वीं शताब्दी से समुद्र-मार्ग के द्वारा विश्व के अनेक स्थानों का पता लगाना शुरू किया। सन् १४९३ में रोमन-चर्च के पोप ने एक फतवा निकाल कर अजोर्स नामक स्थान के पश्चिम ३ सौ मील के फासले पर उत्तर से दक्षिण तक समुद्र में एक काल्पनिक रेखा खींच दी और इस रेखा के पूर्व में जितने गैर ईसाई मुल्क मिले, उन पर पुर्तगाल का और पश्चिम में मिले हुए मुल्क पर स्पेन का अधिकार घोषित कर दिया। इस घोषणा के अनुसार अमेरिका महाद्वीप स्पेन के हिस्से में और इण्डोनेशिया, इण्डोचाइना, भारत, चीन, अफ्रिका आदि मुल्क पुर्तगाल के हिस्से में आये।

इस फैसले के अनुसार ईसा की १६ वीं सदी से अमेरिका में स्पेनी लोगों ने प्रवेश करना प्रारम्भ किया। मैक्सिको में हर्नेन कोर्ट ने अपने घोड़ों और बन्दूकों के बल से प्राचीन अजटेक-साम्राज्य को छिन्न भिन्न कर दिया और पेरू में 'पिजारो' नामक स्पेन यात्री ने 'इनका' नाम राज्य को नष्ट कर अपना उपनिवेश स्थापित किया।

दूसरी तरफ पुर्तगालवालों ने ब्राझील, भारत के पश्चिमी समुद्र-तट और मसाले वाले पूर्व द्वीप समूह में अपने उपनिवेश कायम किये।

इनकी बढ़ती को देखकर फ्रांस, इंग्लैण्ड और हालैण्ड के लोगों ने भी उत्तरी अमेरिका, पश्चिमी द्वीप-समूह, दक्षिण-पूर्वी एशिया, अफ्रिका तथा भारत में अपने व्यापारिक केन्द्रों की स्थापना की।

इन उपनिवेशों की स्थापना के लिए इन सब देशों में बड़ी प्रतिस्पर्धा और लड़ाइयाँ चलती रहीं और एक देश के लोग दूसरे देश वालों को इन उपनिवेशों से निकालने की कोशिश करते रहे।

इन उपनिवेशवादियों में सबसे अधिक भाग्यशाली इङ्गलैण्ड का राष्ट्र रहा, जिसने भारत और अमेरिका में अपने सब प्रतिद्वन्दियों को परास्त कर एक-छत्र शासन की स्थापना की। हालाँकि कुछ दिनों के पश्चात् उसके अमेरिका के उपनिवेश स्वतंत्रता की लड़ाई लड़कर उसके शासन से बाहर हो गये। फिर भी आस्ट्रेलिया, कनाडा, भारतवर्ष अफ्रिका इत्यादि अनेक स्थानों पर उसके साम्राज्य में इतने अधिक उपनिवेश हो गये कि एक समय ऐसा आया जबकि उसके साम्राज्य में सूर्य कभी अस्त नहीं होता था।

इङ्गलैंड के पश्चात् फ्रांस, हालैंड और पुर्तगाल के उपनिवेश भी संसार के विभिन्न भागों में फैले हुये थे।

मानवीय इतिहास में उपनिवेशवाद का इतिहास क्रूरता, जालसाजी और धोखाधड़ी का एक वीभत्स इतिहास है, जिसमें सभ्य और सबल कही जाने वाली गोरी जातियों ने काली जातियों पर उनकी कमजोरी, अज्ञान और फूट-परस्ती का लाभ उठाकर अमानवीय अत्याचार किये।

उपनिवेशवाद औद्योगिक क्रान्ति और मशीन-युग का एक अवश्यंभावी परिणाम था जिसमें पश्चिम के राष्ट्रों ने अपने कारखानों में बने हुये माल को खपाने के लिए और उद्योगपतियों को मालामाल करने के लिए संसार में नये-नये बाजारों को ढूँढ़ने का प्रयत्न चालू किया। यही पूँजीवाद आगे चलकर अपनी शक्ति और संगठन के बल से साम्राज्यवाद के रूप में परिणित हो गया और मुट्ठीभर लोग करोड़ों-अरबों लोगों के रक्त का शोषण कर अपने को समृद्ध बनाने लगे।

इसी समृद्धिकाल के बीच इन उपनिवेशवादी राष्ट्रों के अनुकरण पर जर्मनी ने भी अपने उपनिवेशवाद का प्रसार करने का संकल्प किया, जिसको इङ्गलैंड और फ्रांस के लोग सहन नहीं कर सके और जिसके परिणामस्वरूप २५ वर्ष की मर्यादा में यूरोप की भूमि ने दो महान् भयंकर युद्धों की विभीषिका को सहन किया। इन युद्धों में जर्मनी का तो सर्वनाश हो ही गया, मगर विजेता-राष्ट्र भी अपने विशाल साम्राज्यों की संचित की हुई विशाल निधि को सुरक्षित रखने में असमर्थ हो गये।

२० वीं सदी के मध्यकाल का इतिहास 'उपनिवेशवाद' के लिए मौत का परवाना लेकर आ पहुँचा। सदियों से साम्राज्यवाद के फौलादी शिकंजे में फँसी हुई शोषित,

पीड़ित और त्रसित जनता में एक नवीन जागृति और चेतना की लहर दौड़ गई। यह लहर अत्यन्त शक्तिशाली और दुर्दमनीय थी। सताया हुआ मानव अपनी पूर्ण-शक्ति के साथ स्वाधीनता के लिए झुँझला उठा था और इतिहास को चुनौती दे रहा था। इस चुनौती को सबसे पहले इङ्गलैंड के राष्ट्र ने समझा और बड़ी बुद्धिमानी के साथ किसी गहरे झमेले में न पड़कर उसने भारत, बर्मा और सीलोन को अपने पंजे से मुक्त कर दिया। इससे तो सारे संसार के उपनिवेशों में हलचल मच गयी और एक के बाद दूसरे उपनिवेश तेजी के साथ कहीं शान्ति-पूर्ण क्रान्ति के द्वारा और कहीं रक्तपातपूर्ण क्रान्ति के द्वारा अपनी आजादी को प्राप्त करने लगे।

सन् १९४६ से सन् १९६३ ई० तक संसार के अधिकांश उपनिवेशों ने अपनी गुलामी की बेड़ियों को तोड़ दिया और दक्षिण अफ्रिका आदि के जो थोड़े उपनिवेश बच गये हैं, वे भी बहुत तेजी के साथ अपनी गुलामी की बेड़ियों को तोड़ने का प्रयत्न कर रहे हैं और उनकी सफलता के निश्चित होने में कोई भी सन्देह नहीं है।

इस प्रकार इस उपनिवेशवाद का यह भयंकर भूत जो कई शताब्दियों से मानवीय इतिहास के ऊपर हावी हो रहा था, अपना बोरिया-बिस्तर बाँधकर बेतहाशा भागता हुआ नजर आ रहा है और सारे संसार की जनता आनन्द के साथ तालियाँ बजा-बजाकर इस पलायन के दृश्य को देख रही है।

उपन्यास-साहित्य

मानवीय जीवन और समाज के चित्र को कहानी द्वारा कुछ यथार्थ और कुछ कल्पना के मिश्रण से गद्य-साहित्य में चित्रित की हुई रचना को साधारणतः आधुनिक भाषा में उपन्यास कहा जाता है।

उपन्यास की कला का विकास मानवीय साहित्य के अन्तर्गत अनेक किश्तों में, अनेक परिवर्तनों के साथ हुआ है और इसी विकास का परिणाम आधुनिक उपन्यास-साहित्य के रूप में विद्यमान है।

सभ्यता के आदिम काल से ही मानव समाज के अन्तर्गत वीर-गाथाओं के रूप में कहानियाँ कहने की प्रथा प्रचलित थी, जिसमें घर की बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ और पुरुष बच्चों के मनोरंजन और ज्ञान की वृद्धि के लिए तरह-तरह की आश्चर्यजनक कहानियाँ कहा करते थे।

इन कहानियों और वीर गाथाओं का साहित्यिक रूप पहले काव्य के रूप में और उसके बाद गद्य के रूप में प्रसूत हुआ। गद्य साहित्य के अन्दर दिये गये इस कहानियों के रूप में ही आधुनिक उपन्यास का बीज विद्यमान था।

शुरू-शुरू में इन कहानियों और उपन्यासों की रचना समाज के जीवन को उन्नत बनाने और मनुष्य का मनोरंजन करने के निमित्त हुई थी। इन प्राचीन कहानियों और कथानकों को देखने से मालूम होता है कि इनमें मानव समाज की .वास्तविक और यथार्थवादी घटनाओं का समावेश बहुत कम किया जाता था। प्रायः आदर्शवादी आश्चर्यजनक और अति मानवतावादी घटनाओं का वर्णन इनमें अधिक रहता था।

आगे जाकर पश्चिमी देशों के उपन्यासकारों ने यथार्थवादी और समाज तथा मनुष्य के सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विकास के चित्रण को उपन्यास-लेखन का प्रमुख अङ्ग बनाया और उन्हीं के अनुकरण पर संसार के अन्य देशों के उपन्यासकारों ने भी इसी ध्येय को अपनाया। फिर भी इन उपन्यासों में समाज के उच्चस्तरीय नायकों का ही बाहुल्य रहता है। ये उपन्यास सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक इत्यादि कई प्रकार के होते हैं।

लेकिन मानवीय इतिहास में समाजवादी धारा का प्राबल्य होने के पश्चात् समाजवादी देशों के उपन्यासकारों ने समाज के शोषित, पीड़ित और त्रसित लोगों के जीवन का यथार्थ चित्रण करने में ही अपनी कला की सार्थकता समझी। उनके उपन्यासों के नायक राजमहलों में रहने वाले लोग नहीं, बल्कि समाज की उपेक्षित बस्तियों में रहने वाले गरीब और दुखी मजदूर और किसान होते थे।

इस विचारधारा को प्रगतिवादी विचारधारा कहा जाता है। आधुनिक युग में इस विचारधारा ने संसार में कुछ

अधिक महत्व ग्रहण कर रखा है। अब हम अत्यन्त संक्षेप में भिन्न-भिन्न देशों के उपन्यास-साहित्य के विकास का वर्णन थोड़े में कर रहे हैं।

संस्कृत-साहित्य में उपन्यास

भारतवर्ष के संस्कृत साहित्य में उपन्यास साहित्य का प्रारम्भ महाकवि बाणभट्ट से माना जाता है। बाणभट्ट का समय ईसा से ७ वीं सदी में सम्राट हर्षवर्द्धन के काल में होना सिद्ध है। 'कादम्बरी' बाणभट्ट की सर्वोत्कृष्ट रचना है। इस महान उपन्यास में पात्रों और स्थानों का चित्रण करने में कवि ने अपनी कलम तोड़ दी है। उनके पात्र इतनी सजीवता के साथ चित्रित किये गये हैं कि उनको पढ़ते-पढ़ते उनकी वास्तविक मूर्ति हमारे नेत्रों के सम्मुख उपस्थित हो जाती है।

शुभ्रवसना तपस्विनी महाश्वेता और कमनीय कलेवरा कादम्बरी कवि की तूलिका से चित्रित हो संसार के साहित्य में अमर हो गई। पात्रों के चरित्र-चित्रण के साथ ही कादम्बरी का प्रकृति-चित्रण भी बड़ा ही सुन्दर और सजीव हुआ है। एक ओर कवि ने प्रकृति के सुन्दर, मनोरम और नयनाभिराम चित्र को चित्रित करने में जहाँ अपनी कला का सुन्दर प्रदर्शन किया है, वहाँ दूसरी ओर विन्ध्याटवी के भयंकर रूप का चित्रण करने में भी वह बहुत सफल हुआ है।

यद्यपि कादम्बरी के वर्णन, हर स्थान पर अत्यन्त लम्बे और मूलकथा को शिथिल कर देने वाले हो गये हैं और घटनाक्रम में दिलचस्पी रखने वाले पाठक उनको पढ़ते-पढ़ते ऊब भी जाते हैं, पर कला के पारखी और कला की दृष्टि से कादम्बरी का अध्ययन करने वाले पाठकों को उनमें अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता है।

सच्चाई यह है कि अलंकार तथा रस के मधुर मिलन में, भाषा तथा भाव के सम्पर्क में, कल्पना और चरित्र-के अनुरूप संगठन में कादम्बरी संस्कृत-गद्य-साहित्य में अद्वितीय है। कादम्बरी एक ऐसी मीठी मदिरा है जो रसिक-हृदयों को मस्त कर देती है। कहा गया है—

कादम्बरी रसभरेण समस्त एव।
मत्तो न किञ्चिदपि चेतयते जनोऽयम्।

बाणभट्ट के पश्चात् दण्डी के दशकुमार-चरित को संस्कृत के गद्य-साहित्य में उपन्यास के रूप में लिया जा सकता है। महाकवि दण्डी का समय ७ वीं सदी का अन्तिम भाग माना जाता है। 'दशकुमार-चरित' की भाषा प्रवाहपूर्ण, मँजी हुई और मुहावरेदार है। दण्डी ने अपनी भाषा को अलंकारों के बोझ से अधिक बोझिल बनाने का प्रयत्न नहीं किया। उनके वर्णन में घटना क्रम के अन्दर शिथिलता पैदा नहीं होती। वह स्वाभाविक रूप से आगे बढ़ता है। उनका कथानक कौतुक और विस्मयजनक घटनाओं के बीच में से बढ़ता हुआ तत्कालीन समाज की मनोरम झाँकी पाठकों के आगे पेश करता है। राजनीति का प्रचुर वर्णन, कामशास्त्रों के गूढ़ तत्वों का प्रकटीकरण और चौर्यशास्त्र की विचित्र एवं अद्भुत बातें भी इस गद्य-काव्य में पढ़ने वालों का मनोरंजन करती है।

इसके बाद संस्कृत के गद्य-साहित्य में कहानियों के रूप में 'पञ्चतन्त्र' का नाम आता है जो विश्व-साहित्य को संस्कृत-साहित्य की एक महान् देन है। पञ्चतंत्र में ५ तंत्र हैं। १ मित्र भेद, २ मित्र लाभ, ३ सन्धि-विग्रह, ४ लब्ध प्रणाश और ५ अपरिक्षित कारक—प्रत्येक तंत्र में मुख्य कथा एक ही है। लेकिन उसको पुष्ट करने के लिए कहानी में से कहानी निकलती रहती है। पञ्चतंत्र के अनुवाद प्राचीनकाल से पहलवी, सीरियन, अरबी इत्यादि भाषाओं में हुए हैं और अब तो संसार की सभी सभ्य भाषाओं में इसके अनुवाद हो चुके हैं।

इसी प्रकार संस्कृत-साहित्य में और भी अनेक गद्य और चम्पूकाव्यों के लेखक हुए, जिन्होंने भिन्न-भिन्न कथाओं के ऊपर गद्य-काव्य लिखकर संस्कृत के उपन्यास-साहित्य को समृद्ध बनाया।

चीनी-साहित्य में उपन्यास

चीन के अन्दर उपन्यास-कला का प्रारंभ ट-आंग-वंश के समय से प्रारंभ होता है। इस वंश का समय सन् ६१८ से ९०६ तक माना जाता है। महान् चीनी सम्राट ताई-त्सुंग के युग में चीनी साहित्य और कला को बहुत प्रोत्साहन मिला। इसका समय सन् ६२७ से

६६४ तक था। यह संसार का महान् उदारचेता सम्राट् था। इसके समय में यू-आङ्-चिन नामक लेखक ने सुई-यिंग-इंग की कहानी और पो-हि-संग-ची एन नामक रचना की। इन रचनाओं को उपन्यास-साहित्य के अन्दर लिया जा सकता है। उस काल के प्रधान उपन्यासों में साँन-पिओ-ची तीन राज्यों की कहानी और सुई-पू-चुवान मनुष्य मात्र भाई हैं—इन उपन्यासों की भाषा सरल थी और उनका उद्देश्य लोक-कल्याण था। उपन्यास और कहानियों को उस समय चीनी साहित्य में हेय समझा जाता था। इससे ऐसी कइ रचनाओं पर लेखकों ने अपने तक नही दिये।

आधुनिक युग के चीनी उपन्यासकारों में लूसिन का नाम बहुत प्रसिद्ध है। इसका जन्म १८८१ में हुआ था वह चीनी साहित्य का मैक्सिम गोर्की माना जाता है। इसने "कला के लिए कला" इस दृष्टिकोण को छोड़कर "जीवन के लिए कला" के दृष्टिकोण को अपनाया। दूसरा प्रसिद्ध उपन्यासकार मो-जो है। इसने दस सुन्दर उपन्यासों की रचना की है। मो-जो वर्त्तमान चीन के महान् ग्रन्थकारों में है इसका जन्म १८९२ ई० में हुआ। इसी प्रकार माओ-तुन, श.ओ त्जून्नान, कांगचाओ इत्यादि उपन्यासकार भी आधुनिक चीनी साहित्य में उल्लेखनीय है।

फ्रेंच-साहित्य में उपन्यास

फ्रेंच-साहित्य में कथा और उपन्यास-साहित्य के अन्तर्गत जीन-डी-ला-फौनटेन (Jean-De-La-Fontaine) का नाम सबसे पहले लिया जाता है जिसने सन् १६६८ से १६९४ के बीच फ्रेंच कथा-साहित्य में एक नवीन युग का प्रादुर्भाव किया। उसने १२ खंडों में अनेक काल्पनिक कहानियाँ लिखीं। उसकी कहानियों का अनुवाद अनेक यूरोपीय भाषाओं में हुआ और योरोप के अनेक लेखकों ने अपनी कहानियों में उनका अनुकरण किया।

१८ वीं सदी में फ्रेंच साहित्य के अन्दर कथा की साधारण-स्थिति से उठकर उपन्यास की परम्परा प्रारंभ हुई। डर्फ़ (D'urfe) और स्कुडेरी (Scudery) ने उपन्यासों का लिखना प्रारंभ किया। यद्यपि ये उपन्यास घटना-प्रधान ही थे और इनमें चरित्र-चित्रण और घटनाओं के विकास पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था।

विक्टर ह्यूगो

वास्तविक फ्रेंच उपन्यास-साहित्य का वास्तविक विकास सन् १८३१ से प्रारंभ होता है जब फ्रेंच-साहित्य के क्षेत्र में प्रसिद्ध उपन्यासकार 'विक्टर ह्यूगो' का प्रादुर्भाव होता है। उनके ले-मिजरेबुल (अभागा) लाफिंग मैन (अनोखा) और नोट्रेडेम-डि पेरिस (Natredame-De-Paris) नामक उपन्यासों ने प्रकाशित होकर फ्रेंच-साहित्य में एक क्रान्ति कर दी।

विक्टर ह्यूगो ने एक उपन्यासकार के रूप में अभूतपूर्व प्रतिभा पाई थी। वे विश्व-साहित्य के महान् उपन्यासकार थे। इनके उपन्यासों में पात्रों का चरित्र-चित्रण समसामयिक समाज का दृश्यांकन अत्यन्त प्रभावशाली भाषा में हुआ है।

ह्यूगो के बाद फ्रेंच-उपन्यास-साहित्य में 'बाल्झाक' (Honore-de-Balzac) का नाम बहुत प्रसिद्ध है। इस महान् लेखक ने फ्रेंच-साहित्य में ऐसे उपन्यासों की परम्परा बाँध दी, जिसमें फ्रेंच जनता का और प्रान्तों का जीवन सिनेमा चित्रों की तरह प्रत्यक्ष हो उठा। उसकी रचना 'ला-कामेडी इमैन' ने सारी फ्रेंच-जनता को चुम्बक की तरह अपनी ओर खींच लिया। इसने और भी कई उपन्यास लिखे जिसमें 'ओल्ड गोरी ओट', 'युजिनीग्रान्द' इत्यादि प्रसिद्ध हैं। इसकी रचनाए सन् १८२९ से १८५० तक प्रकाशित हुईं।

बाल्झाक के पश्चात् फ्रेंच-उपन्यास-साहित्य में 'एमिली झोला' का नाम भी प्रसिद्ध है जिसने समाज के उपेक्षित और घृणित अङ्गों को अपने चित्रण का माध्यम बनाया।

२० वीं सदी में 'रोमाँ रोला' नामक प्रसिद्ध उपन्यासकार ने फ्रेंच-साहित्य को अपनी रचनाओं से समृद्ध किया। उनकी रचना 'जाँ क्रिस्तोफ' बहुत प्रसिद्ध हुई। यह कृति पश्चिमी सामाजिक जीवन की एक सफल समालोचना है।

'अनातोल फ्रांस' फ्रेंच-साहित्य में १९ वीं सदी के अन्त का एक सफल उपन्यासकार था जिसके प्रसिद्ध उपन्यास 'थाया' ने फ्रेंच-साहित्य को एक अमूल्य देन दी है। उसके और भी अनेक उपन्यास हैं जो विचार-शैली की दृष्टि से अत्यन्त सफल कहे जा सकते हैं।

अंग्रेजी-साहित्य में उपन्यास

अंग्रेजी-साहित्य में उपन्यास-साहित्य का वास्तविक प्रारंभ सन् १७१९ से होता है जबकि डेनियल-डी-फो (Danial-De-Foe) का 'राबिन्सन क्रूसो' उपन्यास प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में लेखक की कल्पना, यात्रा के अनुभव और यथार्थवाद ने मिलकर जो चीज प्रस्तुत की, उसने अंग्रेजी साहित्य में अत्यन्त महत्व ग्रहण कर लिया। इस उपन्यास का अंग्रेजी-साहित्य में बड़ा आदर हुआ और संसार की अनेक भाषाओं में इसके अनुवाद हुए।

डी-फ़ो के बाद 'लारेंस स्टेर्न (Lawrence Sterne) का 'लाइफ एंड ओपीनियन ऑफ ट्रिस्ट्रम शैंडी' नामक उपन्यास सन् १७५९ में प्रकाशित हुआ, जिसने अंग्रेजी साहित्य में काफी लोक-प्रियता प्राप्त की। इसके साथ ही 'आलिवर गोल्ड-स्मिथ' का 'विकर ऑफ वेक फील्ड' नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ जो करुणारस, हास्य और चरित्र-चित्रण—सभी बातों में गोल्डस्मिथ की असाधारण कलाकारिता को प्रदर्शित करता है।

१९ सदी में अंग्रेजी-साहित्य के अन्दर सर 'वाल्टर स्कॉट' का आविर्भाव हुआ, जिन्होंने अंग्रेजी-साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यास-परंपरा को जन्म दिया। अध्ययन की गहराई और सुरुचि में 'सर वाल्टर स्कॉट' अद्वितीय थे। उन्होंने जिस परंपरा का आरंभ किया, उसने परवर्ती उपन्यासकारों को बहुत ही प्रभावित किया। फ्रांस, रूस और अमेरिका में भी सर वाल्टर स्कॉट के उपन्यासों की बहुत कद्र हुई।

१९ वीं सदी के प्रारंभ में 'चार्ल्स डिकेन्स' अंग्रेजी-साहित्य में सबसे बड़ा उपन्यासकार हुआ। उसके उपन्यासों में तत्कालीन समाज व्यवस्था के प्रति उसकी विद्रोह भावनाएं स्पष्ट रूप से झलकती हैं। चरित्र-चित्रण के अन्तर्गत स्वाभाविकता उसका प्राण है। उसके 'ओलिवर ट्विस्ट' 'निकोलस निकलवी' 'मार्टिन चूजलविट' 'क्रिसमस बुक्स' इत्यादि उपन्यास अंग्रेजी-साहित्य में बड़े लोकप्रिय हुए हैं।

'एडवर्ड लिटन' भी अंग्रेजी-साहित्य में सर्वतोमुखी प्रतिभा का उपन्यासकार हुआ। स्कॉट की भाँति उसने भी ऐतिहासिक उपन्यासों को लिखकर अच्छी कीर्ति सम्पादित की।

'टामस हार्डी' भी अंग्रेजी-साहित्य के प्रसिद्ध उपन्यासकारों में से एक है। यह प्रारब्धवादी था और उसके उपन्यासों में दुर्भाग्य के शिकार मानवों के प्रति उसकी गहरी सहानुभूति सजीव हो उठी। कथा-वस्तु और चरित्र-चित्रण का भी वह एक सुन्दर शिल्पकार है। ग्रामीण जीवन का प्रतिबिम्ब उसके उपन्यासों में बड़ी सुन्दरता से अंकित हुआ है। अंग्रेजी-साहित्य में इस उपन्यासकार का अपना विशिष्ट स्थान है।

१९ वीं सदी के अन्त में एच० जी० वेल्स ने अंग्रेजी साहित्य में उपन्यास और कहानी लेखन के क्षेत्र में एक युगान्तर उपस्थित कर दिया। वह अत्यन्त ऊँचे दर्जे का वैज्ञानिक, इतिहासकार, निबन्धकार और उपन्यास-लेखक था। उसकी सर्वतोमुखी प्रतिमा वैज्ञानिक आधार पर निर्मित थी। उसने अपने युग को अपनी प्रतिभा से अनेक क्षेत्रों में प्रभावित किया। उसके उपन्यासों ने, उसके ऐतिहासिक ग्रन्थों ने और उसके वैज्ञानिक विचारों ने अंग्रेजी साहित्य को अत्यन्त समृद्ध बनाया।

२० वीं सदी के उपन्यासकारों में 'ह्यु वालपोल' 'जे० वी० प्रिस्टले' 'वी० एच० लारेन्स' 'अल्डुस हक्सले' 'जेम्स ज्वायस' इत्यादि उपन्यासकारों के नाम अंग्रेजी-साहित्य में उल्लेखनीय हैं।

अमेरिकन साहित्य में उपन्यास

इङ्गलैंड की ही भांति अमेरिका में भी अंग्रेजी-उपन्यास साहित्य का काफी विकास हुआ। वहां के उपन्यास-साहित्य में 'विलियम डीन-हावेल्स' का नाम काफी प्रसिद्ध है। हावेल्स का जन्म सन् १८३७ में और मृत्यु सन् १९२० में हुई। अपनी रचनाओं में उसने सामाजिक न्याय का यथार्थवादी चित्र प्रदर्शित किया। उसका

दृष्टिकोण टॉल्सटाय के दृष्टिकोण से मिलता-जुलता था। 'दि लेदर उड गाड' उपन्यासों में उसकी सर्वोत्तम रचना मानी जाती है।

'मार्कट्वेन' का नाम न केवल अमेरिकन-साहित्य में, बल्कि समस्त यूरोपीय साहित्य में अत्यन्त लोकप्रिय है। उसकी रचनाओं में 'टॉमसॉअर' 'लाइफ ऑन दि मिसीसीपी' इत्यादि रचनाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं।

अमेरिका की सुप्रसिद्ध लेखिका 'हेरियर-बीचर-स्टो' द्वारा लिखित 'अंकल-टाम्स-केबिन' नामक उपन्यास ने अमेरिका में गुलामी प्रथा के विरुद्ध एक प्रबल आन्दोलन को जन्म दिया। सन् १८५२ में इस उपन्यास का प्रकाशन हुआ। इस पुस्तक का प्रकाशन अमेरिकन साहित्य के इतिहास की एक अत्यन्त आश्चर्य जनक घटना है। एक ही वर्ष में इसकी ३ लाख प्रतियाँ बिकीं और पावर से चलने वाले आठ प्रेसों को इसकी मांग पूरी करने के लिए दिन-रात काम करना पड़ा। संसार की अनेक प्रधान भाषा में इसके अनुवाद हुए।

'अर्नेस्ट-हैमिंग्वे' अमेरिका के सुन्दर उपन्यासकारों में हैं। उनकी लेखन-शैली अद्‌भुत है। उनके 'फेअरवेल टु आर्म्स' और 'फ़र हूम दि बेलटाल्स' नामक दोनों उपन्यास संसार के आधुनिक साहित्य में अपना विशिष्ठ स्थान रखते हैं। इस लेखक का जन्म सन् १८६८ में हुआ।

'उप्टन सिंक्लेअर' ने अपनी अद्‌भुत योग्यता और क्षमता से औद्योगिक जीवन को चित्रित करने वाले ६ उपन्यासों से अमेरिकन साहित्य को समृद्ध किया।

नोवेल-प्राइज प्राप्त उपन्यासकार सिन्क्लेअर लेविस भी अमेरिकन-उपन्यास-साहित्य का एक महास्रष्टा था, जिसकी रचनाओं में 'बेबिठ' 'ऐरोस्मिथ' 'डाउस वर्थ' इत्यादि रचनाएँ प्रसिद्ध हैं।

यथार्थवादी प्रकृतिवाद की कला में 'जॉन स्टीनबैक' का स्थान बहुत प्रसिद्ध है। उसकी कुछ कृतियों का संसार के आलचकों ने बड़ा आदर किया है।

रूसी-साहित्य में उपन्यास

रूसी-साहित्य के अन्तर्गत उपन्यास साहित्य का वास्तविक विकास १६वीं सदी में अलेक्जेंडर प्रथम के राज्यारोहण से प्रारंभ हुआ। यह युग 'पुश्किन-युग' कहलाता है। इसी युग में महाकवि पुश्किन ने अवतीर्ण होकर सारे रूसी साहित्य को आलोकित कर दिया। कविता के साथ-साथ पुश्किन ने उपन्यास क्षेत्र में भी अपना कमाल दिखलाया। उसके 'ओनेगिन' उपन्यास ने रूसी-साहित्य में युगान्तर उपस्थित कर दिया। कई आलोचकों की राय में इस उपन्यास की जोड़ का रूसी-साहित्य में कोई दूसारा उपन्यास नहीं है। इसका चरित्र नायक 'यूजिन ओनोगिन' तत्कालीन रूसी-समाज का प्रतिबिम्ब है। अपने पिता के मरने पर चचा की जायदाद पाकर 'ओनेगिन' देहात में जाता है और वहाँ पर 'तातियाना' नामक युवती से उसका प्रेम हो जाता है। तातियाना का चरित्र-चित्रण करने में पुश्किन ने अपनी कलम को तोड़ दिया हैं। तातियाना रूसी नारी की प्रतीक है। कहा जाता है कि उसके समान यथार्थ चरित्र-चित्रण, टॉल्सटाय और तुर्गनेव की कला भी नहीं कर सकी। तातियाना अपना प्रेम प्रकट करने के लिए उसको एक पत्र लिखती है। इस पत्र के लिए आलोचकों का कहना है कि संसार के काव्य-क्षेत्र में ऐसी सरल और हृदय ग्राही आत्माभिव्यक्ति खोजने से भी नहीं मिलेगी।

ओनेगिन तातियाना के प्रेम को अस्वीकार कर देता है। तातियाना उसका कुछ इन्तजार करने के बाद एक दूसरे धनी से व्याह कर लेती है। ओनेगिन को जब यह मालूम पड़ता है तो वह उसकी ओर अत्यन्त आतुरता से आकृष्ट होता है। मगर तातियाना अपने पति को धोखा देने से स्पष्ट इनकार कर देती है। काव्य के रूप में लिखा हुआ पुश्किन का यह उपन्यास रूसी-साहित्य की अमूल्य निधि है।

तुर्गनेव

अपनी कृतियों से रूसी-उपन्यासों को विश्व-साहित्य में अमर कर देने वाला महान कलाकार 'तुर्गनेव' था। उसके उपन्यासों ने रूसी-गद्य के क्षेत्र में वही कमाल करके दिखलाया जो पद्य के क्षेत्र में पुश्किन ने किया था। उसके 'अमीरों का घोंसला' और 'रूदिन' नामक उपन्यासों ने रूसी-साहित्य को योरोपीय धरातल पर लाकर कर दिया।

टाल्सटाय

तुर्गनेव के ही युग में रूसी-साहित्य ने दो अत्यन्त महान विश्व-साहित्य के कलाकारों को पैदा किया, जिनमें पहले टॉल्सटाय और दूसरा 'दास्त्वा-ए-वस्की था। टॉल्सटाय ने धर्म और जीवन के क्षेत्र में वैयक्तिक क्रान्ति की।

सन् १८६५ में उसने 'युद्ध और शान्ति' के ऊपर एक उपन्यास लिखा। इस उपन्यास के नायक 'पीयर बेजुखोव' और नायिका 'नताशा' के चरित्र-चित्रण में टॉल्सटाय ने मानव-सौन्दर्य को जिस कलात्मक रूप में प्रदर्शित किया है, वह उपन्यासों की दुनियाँ में बेजोड़ है।

टाल्सटाय का दूसरा उपन्यास 'अनाकेरेनिना' है। इस उपन्यास में इस महान कलाकार ने रूस और सेंट पीटर्सबर्ग के उच्च वर्गीय समसामयिक जीवन का एक सजीव, जीता जागता, वास्तविक और अनूठा चित्र अंकित किया है। अद्भुत कलाकारिता के साथ 'व्रोन्सकी' के प्रति 'अना' के प्रेम का उद्घाटन और विकास होता है। अत्यन्त घात-प्रतिघात के साथ कहानी का प्रत्येक दृश्य और प्रत्येक घटना स्वाभाविक तरीके से आगे बढ़ती है मगर अन्त तक कहीं भी शिथिलता या अत्यधिक विस्तार का अनुभव नहीं होता।

रूसी उपन्यास-साहित्य में टॉल्सटाय के बाद 'दास्त्वा-एवस्की' का नाम अत्यन्त महान समझा जाता है। टॉल्सटाय समाज के स्वस्थ अङ्ग का सबल चित्रकार है। जबकि दास्त्वा-एस्की अपराधियों, पागलों, दरिद्रों और भूख से पीड़ित लोगों का चित्रकार था। गरीबी ने उसको दर-दर की ठोकरें खाने को मजबूर कर दिया था। उसकी पहली पुस्तक, उसका पहला उपन्यास 'कंगाल' सन् १८४६ में निकला और सन् १८६३ में उसका 'अपराध और दण्ड' नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ जिसने उसकी ख्याति को चारों ओर फैला दिया। इसके बाद उसका 'मूर्ख' और उसके बाद 'भूत' नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ। इन उपन्यासों ने उसकी कीर्ति को रूसी साहित्य में अमर कर दिया और सन् १८८१ में जब उसकी मृत्यु हुई तो उसकी अर्थी के साथ असंख्य नर-नारियों की भीड़ ने इकट्ठा होकर इस महान साहित्यकार को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।

२० वीं सदी में रूसी साहित्य ने दो और महान् कलाकारों को पैदा किया जो अपनी रचनाओं से विश्व-साहित्य में अमर हो गये। इन दो कलाकारों में पहला 'एँटोन चेखोव' और दूसरा 'मैक्सिम गोर्की' था।

एँटोन चेखोव ने तुर्गनेव की पुरानी परंपरा में अपने उपन्यास तैयार किये। इन उपन्यासों में उसने रूस के अन्धकार-युग को प्रकाशित किया।

मैक्सिम गोर्की

मैक्सिम गोर्की कला का एक नया सन्देश लेकर आया। एक नई दुनिया को अपने उपन्यासों में उसने चित्रित किया, जिसकी अभी तक किसी ने कल्पना न की थी। जीवन के प्रति उसके नायकों का रुख उसके पूर्ववर्ती उपन्यासकारों से बिल्कुल भिन्न था। जीवन के वातावरण का अमिट चित्रण करने में गोर्की ने एक नवीन पद्धति का अनुकरण किया। रूसी गद्य-साहित्य के अन्दर उसने एक नवीन हवा बहा दी। गोर्की सक्रिय कल्पना के साथ यथार्थ का निरूपण करता है जिसमें कल्पना और वास्तविकता-दोनों एक साथ अपना भाग अदा करती हैं।

इस युग में 'मेरेज्कोवस्की' के उपन्यासों ने भी रूसी साहित्य में धूम मचाई। उसकी 'ट्रिलोजी' का यूरोप की प्रायः सभी भाषाओं में अनुवाद हुआ।

बोल्शेविक क्रान्ति के पश्चात् रूसी साहित्य में 'प्रोलेटारियन' उपन्यासों की रचना विशेष रूप से होने लगी। ऐसे उपन्यासकारों में 'सेरा-फिमो-विच' 'अलेक्झेंडर-फेदयेव' 'निखेल-शोलोकाव' 'इल्मा' एहरेन उर्ग, 'ऊन्ना-कोरा-वेवा' (महिला) इत्यादि उपन्यासकारों के नाम उलेखनीय हैं।

बंगला-साहित्य में उपन्यास

आधुनिक भारतीय भाषाओं में बंगला भाषा का साहित्य, उपन्यासों के क्षेत्र में सबसे आगे बढ़ा हुआ है-यह कहने में अतिशयोक्ति न होगी। वैसे लोक-कथाओं के रूप में अन्य भाषाओं की तरह ही बंगला-भाषा में भी उपन्यास के बीज पहले से मौजद थे, पर वास्तविक उपन्यास के रूप में पहला उपन्यास सम्भवतः सन् १८५८ में प्यारा-चाँद मित्र उर्फ 'टेकचाँद' का लिखा हुआ

'अलालेर घरेर दुलाल' के नाम से प्रकाशित हुआ। कुछ विद्वानों ने तो इसे मोलियर और फील्डिंग की रचनाओं के समकक्ष मान लिया। इस उपन्यास की शैली का प्रभाव प्रसिद्ध उपन्यासकार बंकिमचन्द्र चटर्जी की शैली पर भी पड़ा था।

बंकिमचन्द्र चटर्जी

पर बंगला-साहित्य में आधुनिक उपन्यास-युग को प्रवर्तन करने का श्रेय बंकिमचन्द्र चटर्जी को ही है। उनका पहला उपन्यास 'दुर्गेश-नन्दिनी' सन् १८६५ में प्रकाशित हुआ। वस्तुतः उपन्यास की पूरी परिभाषा की दृष्टि से बंगला का प्रथम उपन्यास दुर्गेश-नन्दिनी ही है। बंगला साहित्य के इतिहास में दुर्गेश-नन्दिनी का प्रकाशन एक चमत्कार पूर्ण घटना थी। इस उपन्यास के प्रकाशन के पश्चात् बंगाली-साहित्य के ऊपर बंकिम बाबू मानों छा गये। उपन्यास के जिस विकास की चोटी पर बंकिम बाबू के प्रयत्न प्रतिष्ठित हैं, वहाँ तक पहुँचने की कोई सीढ़ी भी नहीं। सिद्ध उपन्यासकार की भाँति बंकिम की लेखनी ने बंगला-साहित्य को समृद्ध किया। उन्होंने ऐतिहासिक सामाजिक और राजनैतिक-तीनों प्रकार के उपन्यासों की रचना की। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में 'दुर्गेश'नन्दिनी', 'कपाल-कुण्डला', 'मृणालिनी', 'चन्द्रशेखर' और 'राजसिंह' राजनैतिक उपन्यासों में 'आनन्द-मठ' और 'देवी चौधरानी' और सामाजिक उपन्यासों में 'विष-वृक्ष' और 'कृष्णकान्तेर विल' उल्लेखनीय हैं।

बंकिमचन्द्र के पश्चात् ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र में रमेशचन्द्र दत्त और राखालदास वन्द्योपाध्याय ने बंगला-साहित्य के गौरव को बढ़ाया। रमेशचन्द्र दत्त के 'बंग-विजेता', 'माधवी-कंकण', 'राजपूत-जीवन-सन्ध्या' तथा 'महाराष्ट्र-जीवन-प्रभात' बंगला-साहित्य में बहुत लोक-प्रिय हुए।

राखालदास वन्द्योपाध्याय ने बंगला-साहित्य के ऐतिहासिक उपन्यासों में युगान्तर कर दिया। यह इतिहास के प्रकाण्ड पंडित और प्राचीन इतिहास की कड़ियों को जोड़ने में बड़े सिद्धहस्त थे। इनके उपन्यासों ने प्राचीन इतिहास को सजीव-रूप में पाठकों के समक्ष उपस्थित कर दिया। इनके 'शशांक' 'करुणा' और 'ध्रुवा' नामक उपन्यासों ने गुप्त-साम्राज्य के इतिहास को मूर्त्तिमान चित्रण की तरह प्रकाशित कर दिया। इनके अन्य उपन्यासों में 'धर्मपाल', 'मयूष' और 'असीम' भी उल्लेखनीय हैं। बंकिमचन्द्र और शरच्चन्द्र के बीच के उपन्यासकारों में प्रभात कुमार और जलधर का नाम भी बंगला उपन्यास क्षेत्र में बहुत प्रसिद्ध है। प्रभात कुमार के रमा सुन्दरी, नवीन सन्यासी, रत्नदीप इत्यादि तथा जलधर के विशुदादा, किशोर, अभागी इत्यादि रचनाएँ प्रसिद्ध हैं।

शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

मगर बंगला-साहित्य के सामाजिक उपन्यास के क्षेत्र में शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय ने प्रकट हो कर बंगला-साहित्य को अमर जीवन प्रदान कर दिया।

शरच्चन्द्र में एक मौलिक प्रतिभा थी। उनके विचार मौलिक थे। उनके सोचने का तरीका मौलिक था। आज से ४० वर्ष पहले उन्होंने अपने उपन्यास 'श्रीकान्त' में जिस राज्यलक्ष्मी का, 'पथेर दावी' में जिस भारती का और 'शेष प्रश्न' में जिस कमल का चरित्र अङ्कित किया है, वह न केवल भारतीय साहित्य में, प्रत्युत समग्र विश्व-साहित्य में अपने ढंग का अनूठा है। नारी-चरित्रों के अङ्कन में शरच्चन्द्र अद्वितीय हैं, अनूठे हैं। इस क्षेत्र में उनकी कोई प्रतिद्वन्द्विता नहीं।

शरच्चन्द्र ने बंगला-उपन्यास-क्षेत्र का पलड़ा पलट दिया। कथा-वैचित्र्य और घटना-वैचित्र के स्थान पर चरित्रगत वैचित्र्य उभर आया और रोमांचक घटनाओं का स्थान सामान्य जीवन की आकस्मिक वाह्य घटनाओं और मानसिक उत्तेजन ने ले लिया। इतना ही नहीं, पारस्परिक विरोध के अन्तर में से प्रेम के उदय की एक नई प्रणाली का प्रचलन इन्होंने किया। शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय वस्तुतः उपन्यास के क्षेत्र में बंगला-साहित्य में ऐसे छा गये, जैसे काव्य के क्षेत्र में रवीन्द्र छा गये थे।

शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय के पश्चात् या उनके साथ-साथ जिन लोगों ने बंगला उपन्यास-साहित्य को परिपुष्ट किया, उनमें 'विभूति-भूषण भट्ट', 'मनोमोहन चट्टोपाध्याय', 'सुरेन्द्रनाथ मजमदार' 'अनुरूपा देवी' 'इन्दिरा', 'शैलबाला घोषजाया' 'सुरेन्द्र मोहन भट्टाचार्य' इत्यादि उपन्यासकारों के नाम उल्लेखनीय हैं।

विश्व-कवि रविन्द्रनाथ टैगोर का नाम यद्यपि इस संसार में एक महान् कवि, दार्शनिक और विचारक की तरह ही प्रसिद्ध है, पर उन्होने बंगला-साहित्य में कई उपन्यासों का भी निर्माण किया, जिनमें 'गोरा', 'चोखेर वाली', 'आश्चर्य घटना' इत्यादि उपन्यास उल्लेखनीय हैं।

सन् १९२२ में 'नरेशचन्द्र सेन ने 'पापेर छाप' और सन् १९३० में 'रूपेर अभिशाप' प्रकाशित कर यौन-सम्बन्धी नग्न-चित्रणों की परम्परा बंगाली-साहित्य में प्रारंभ की। यौन भावाश्रित अपराधी मनोवृत्ति का चित्रण पहले-पहल इन्हीं उपन्यासों में हुआ।

कुछ भी हो, बंगला के जिस उपन्यास-साहित्य को शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय और बंकिमचन्द्र के समान महान कलाकार प्राप्त हुए, वह साहित्य अवश्य ही भाग्यशाली कहा जा सकता है।

हिन्दी में उपन्यास-साहित्य

हिन्दी भाषा में उपन्यास-साहित्य का प्रारंभ बंगाली-उपन्यासों के अनुवादों और जासूसी तथा तिलस्मी उपन्यासों की रचनाओं से प्रारंभ होता है। एक ओर बंकिमचन्द्र, रमेशचन्द्र दत्त, चण्डीचरण सेन, शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय रवीन्द्र बाबू इत्यादि के उपन्यासों का अनुवाद करने में पं० रूपनारायण पाण्डेय, पं० ईश्वरी प्रसाद शर्मा, बाबू गोपाल राम गहमरी इत्यादि लोगों ने तत्परता दिखलाई। दूसरी ओर तिलस्मी उपन्यासों के क्षेत्र में बाबू देवकी नन्दन खत्री ने बोलचाल की उर्दू मिश्रित हिन्दी-भाषा में अपनी रचनाएँ प्रकाशित कर हिन्दी-साहित्य में एक तहलका मचा दिया। इन उपन्यासों का प्रधान लक्ष्य आश्चर्यजनक घटनाओं का चित्रण करके पाठकों की विस्मयकारक मनोवृत्ति को भड़काना था। इन उपन्यासों में रस-सञ्चार, भाव विभूति तथा चरित्र-चित्रण का कोई नाम नहीं था। इस लिए ये साहित्यिक कोटि में नहीं रखे जा सकते, पर हिन्दी-साहित्य के इतिहास में बाबू देवकीनन्दन का स्मरण इस बात के लिए सदा बना रहेगा कि इनकी रचनाओं ने जितने पाठक हिन्दी-साहित्य में उत्पन्न किये, उतने महाकवि तुलसीदास की रामायण को छोड़कर किसी दूसरे ग्रन्थकार की रचना ने नहीं किये। चन्द्रकान्ता पढ़ने के लिए न जाने कितने उर्दूजीवी लोगों ने हिन्दी-भाषा का ज्ञान प्राप्त किया।

हिन्दी-साहित्य में उपन्यासों का ढेर लगा देने वाले दूसरे मौलिक उपन्यासकार पं० किशोरीलाल गोस्वामी थे, जिनका जन्म सन् १८६५ में और मृत्यु सन् १९३२ ई० में हुई।

किशोरीलाल गोस्वामी ने सन् १८९८ में 'उपन्यास' नामक एक मासिक पत्र भी निकाला था। उनके लिखे हुए करीब ६५ छोटे बड़े उपन्यास प्रकाशित हुए। अतः साहित्यिक दृष्टिकोण से सबसे पहले उपन्यासकार यही माने जायेंगे।

प्रेमचन्द

मगर हिन्दी के उपन्यास-साहित्य को, अपने मौलिक उपन्यासों से, चमत्कृत कर के हिन्दी-साहित्य के औपन्यासिक क्षेत्र को, अमर कर देने वाले कलाकार प्रेमचंद हुए। प्रेमचंद का नाम हिन्दी के औपन्यासिक क्षेत्र में उसी प्रकार स्थिर है, जिस प्रकार बंगाल में बंकिमचंद्र चटर्जी का। समाज के निम्न और मध्यम श्रेणी के गृहस्थों का चित्रण करने में प्रेमचन्द बेजोड़ हैं। उनके पात्रों में ऐसे स्वाभाविक ढाँचे की व्यक्तिगत विशिष्टताएँ मिलेंगी, जो समाज के अन्दर रात-दिन रहने वाले व्यक्तियों में मिलती हैं। जिस प्रकार अपने पात्रों के चरित्र-चित्रण में प्रेमचन्द यथार्थवादी और स्वाभाविक हैं, उसी प्रकार उनकी भाषा भी अत्यन्त स्वाभाविक, सरल और प्रभाहपूर्ण है। उनकी रचनाओं में 'सेवासदन' 'प्रेमाश्रम' 'गबन' 'गोदान' 'रंगभूमि' इत्यादि रचनाएँ उच्चकोटि की मानी जाती हैं।

प्रेमचन्द के साथ ही हिन्दी के औपन्यासिक क्षेत्र में आचार्य चतुर सेन शास्त्री का नाम भी बहुत प्रसिद्ध है। इन्होंने ऐतिहासिक और सामाजिक सभी विषयों पर उपन्यासों की रचना की। भाषा का प्रवाह और चरित्र-चित्रण की वास्तविकता में शास्त्री जी हिन्दी साहित्य के माने हुए लेखक थे। इनके ऐतिहासिक उपन्यासों में 'जय सोमनाथ' 'सोना और खून' 'वयं रक्ष्यामः' इत्यादि प्रसिद्ध हैं।

श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', श्री भगवती प्रसाद वाजपेयी, श्री जैनेन्द्र कुमार इत्यादि उपन्यासकारों ने भी

भारत के सामाजिक जीवन के स्वाभाविक और सुन्दर चित्रणों के द्वारा हिन्दी साहित्य के औपन्यासिकक्षेत्र को समृद्ध किया। हिन्दी के उपन्यासक्षेत्र में ये चोटी के उपन्यासकार थे।

श्री भगवतीचरण वर्मा का नाम भी हिन्दी के औपन्यासिक क्षेत्र में उल्लेखनीप है। उपन्यास तो इनके कई हैं पर जिस एक उपन्यास ने हिन्दी-साहित्य में इनकी स्थिति को दृढ़ कर दिया है—वह 'चित्रलेखा' है। यह उपन्यास फ्रांस के प्रसिद्ध लेखक अनाटोल फ्रांस के 'थाया' नामक उपन्यास के अनुकरण पर लिखा गया है, मगर चित्रलेखा और बीजगुप्त का चरित्र-चित्रण इतना सुन्दर और भावपूर्ण हुआ है कि कई स्थानों पर अनाटोल फ्रांस की चित्रकारी से भी यह आगे बढ़ गया है।

ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र में श्री वृन्दावन लाल वर्मा का नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है। गुजराती के उपन्यास-साहित्य को जिस प्रकार श्री कन्हैयालाल मुंशी की रचनाओं ने तथा बंगला के उपन्यास–साहित्य को जिस प्रकार राखाल दास वन्दोपाध्याय की रचनाओं ने समृद्ध किया है, उसी प्रकार हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास–साहित्य को श्री वृन्दावन लाल की रचनाओं ने समृद्ध किया है। इनके उपन्यास अधिकतर बुन्देलखण्ड की ऐतिहासिक घटनाओं पर ही आधारित हैं। इन उपन्यासों में 'गढ़ कुण्डार' 'विराटा की पद्मिनी' 'मृगनयनी' इत्यादि अनेकों उपन्यास बड़ी सफलता के साथ लिखे गये हैं। श्री आनंद प्रकाश जैन ने भी 'कठपुतली के धागे' इत्यादि मुसलमान कालीन ऐतिहासिक रचनाओं का काम सफलता के साथ प्रारंभ किया है।

श्री जैनेन्द्र कुमार, श्री अज्ञेय, श्री यशपाल जैन, अमृत लाल नागर आदि उन उपन्यास कारों में हैं जिन्होंने हिन्दी के औपन्यासिक क्षेत्र में, नवीन युग की, एक नवीन विचार-धारा की स्थापना की।

भारत की प्राचीन संस्कृति पर उपन्यास लिखने वालों में श्री गुरुदत्त का नाम भी उल्लेखनीय है।

श्री अनन्त गोपाल शेवड़े हिन्दी के विशिष्ट उपन्यास-कारों में हैं। समाजवादी आंदोलन के साथ हिन्दी के औपन्यासिक और कहानी–कला के क्षेत्र में भी प्रगतिवाद की धारा चल निकली है। हिन्दी–साहित्य के कई नवीन और सफल लेखक इस प्रकार के उपन्यास और कहानियों के द्वारा हिन्दी साहित्य को भरपूर बना रहे हैं। इन लेखकों में श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क', श्री किशन चन्दर, अमृता प्रीतम, श्री राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी इत्यदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

गुजराती-साहित्य में उपन्यास

गुजराती-उपन्यास-साहित्य में सबसे पहले राय बहादुर नन्दशंकर तूलजाशंकर का नाम 'गुजराती-उपन्यास-साहित्य के पिता' की तरह माना जाता है। इनका एक ही उपन्यास 'कर्ण घेलो' सन् १८६८ में प्रकाशित हुआ। इसी पुस्तक को लिखकर ये गुजराती के औपन्यासिक-साहित्य में प्रसिद्ध हुए।

'कर्ण–घेलो' एक ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसमें गुजरात के अंतिम हिन्दू राजा 'कर्ण' के जीवन की घटना चित्रित है और अलाउद्दीन खिलजी के द्वारा उसके पराजित होने की करुण कथा भी इसमें बतलाई गई है।

इसके बाद राय साहब महीपति राम के दो ऐतिहासिक उपन्यास 'वनराज चावड़ो' और 'सिद्धराज जयसिंह' सन् १८८१ में प्रकाशित हुए। मगर ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र में प्रबल क्रांति सुप्रसिद्ध लेखक कन्हैयालाल मणिकलाल मुन्शी के द्वारा हुई।

कन्हैयालाल मणिक लाल मुन्शी

सन् १९११ में श्री मुन्शी की कुछ छोटी–छोटी ऐतिहासिक कहानियाँ प्रकाशित होने लगीं। मगर उनकी प्रतिभा का वास्तविक प्रकाश गुजराती संसार को उस समय मिला जब सन् १९१६ में 'पाटणनी प्रभुता' नामक उनका उपन्यास प्रकाशित हुआ। उसके पश्चात तो कन्हैया लाल मुन्शी का व्यक्तित्व सारे गुजराती साहित्य पर छा गया और उनके एक के बाद एक अनेक ऐतिहासिक उपन्यास धारा प्रवाही रूप से प्रकट होने लगे।

सन् १९१८ में उनका 'गुजरात नो नाथ' सन् १९२० में 'पृथ्वी–वल्लभ' और उसके पश्चात् 'जय सोमनाथ', 'स्वप्न द्रष्टा' 'भगवान परशुराम' इत्यादि उपन्यास प्रकाश में आये। कन्हैयालाल मुन्शी ने गुजरात के १०वीं से लेकर १३वीं शताब्दी तक के इतिहास को अपनी तूलिका से अनेक रंग भरकर गुजराती जनता के सामने प्रस्तुत किया। इनके

द्वारा चित्रित 'मीनल देवी' और 'मुन्जाल मन्त्री' गुजराती साहित्य में अमर हो गये।

सरस्वती चन्द्र

गुजराती औपन्यासिक साहित्य में 'सरस्वती चन्द्र' नामक उपन्यास का प्रकाशन एक महान घटना है। इसके लेखक श्री गोवर्धन राम त्रिपाठी ने सन् १८८७ से सन् १६०१ तक १४ साल लगातार परिश्रम करके इस विशाल ग्रन्थ के ४ भागों का सृजन किया। किसी एक अमूल्य हीरे को जिस प्रकार भिन्न–भिन्न बाजुओं से देखने पर उसमें भिन्न–भिन्न प्रकार की चमक दिखलाई देती है, उसी प्रकार 'सरस्वती चन्द्र' को भी भिन्न–भिन्न दृष्टि विन्दुओं से देखने पर उसमें भिन्न–भिन्न प्रकाश दिखाई पड़ते हैं।

एक पुजारी की टूटी–फूटी झोपड़ी से लेकर राजा रजवाड़े और श्री मन्तों के कलापूर्ण सजे हुए दीवानखाने, आधुनिक शिक्षा पाये हुए युवकों के आदर्श के साथ पुराने समय के मुनीम और गुमास्तों का व्यवहार, कुमुद–सुन्दरी के सामन आधुनिक युग की युवती के आदर्श के साथ खलकनन्दा के समान पतित मार्ग पर उतरी हुई स्त्री का चित्रण—इन सब भिन्न २ और सूक्ष्म–से–सूक्ष्म चित्रों के बीच में उतरने पर भी ग्रन्थ लेखक अपने दृष्टि–बिंदु से एक इंच भी इधर-–उधर नहीं हटता है। अपने समय के जीवन में दृष्टिगोचर होने वाले प्रसंगों का चित्रण और सामाजिक जीवन की एक निश्चित दिशा में पहुँचने का प्रयत्न, ग्रन्थ-कर्त्ता की महान आकांक्षा थी।

इस पुस्तक का चरित्र–चित्रण इतनी सूक्ष्म घटनाओं से भरपूर, पाण्डित्य से भरा हुआ, संस्कृत-अवतरणों से बोझिल बना हुआ तथा बुद्धिमानी पूर्ण कहावतों और शिक्षापूर्ण बातों से इतना सुसज्जित है कि इसका सार निकालना संभव नहीं। गुजराती–साहित्य में समय के इतने परिवर्तनों के बावजूद इस ग्रन्थ का अस्तित्व निराला है।

सरस्वतीचन्द्र का प्रथम भाग प्रकाशित होते ही यह ग्रन्थ गुजराती–साहित्य में इतना लोकप्रिय हुआ और इसका इतना अधिक प्रचार हुआ कि आगे गुजराती में जो भी उपन्यास प्रकाशित हुए, उन पर इस ग्रन्थ की छाप स्पष्ट रूप से नजर आती है।

रमणलाल देसाई

त्रिपाठी और मुन्शी के साथ-साथ सामाजिक उपन्यासों के क्षेत्र में रमणलाल देसाई का नाम गुजराती–साहित्य में एक प्रकाश–स्तंभ की तरह दृष्टिगोचर होता है। इस क्षेत्र में इनकी ज्वलन्त सफलता के कारण गुजराती-साहित्य में इन्हें "युग मूर्ति वार्ताकार" नाम से सम्बोधित किया जाता है। इनकी प्रसिद्ध रचना 'ग्रामलक्ष्मी कौन ?' ४ भागों में समाप्त हुई है। इसमें ग्रामीण जीवन का बड़ा मर्मस्पर्शी चित्र खींचा गया है। इसके सृजन में लेखक की गंभीर विचार-शक्ति स्पष्ट रूप से झलकती है। राजकीय, नैतिक, आर्थिक और व्यावहारिक विषयों पर लेखक का दर्शन और चिन्तन पाठक को बड़ा आनन्द देता है। बहुत थोड़े शब्दों में अर्थ गाम्भीर्य से परिपूर्ण सूत्रों में विवेचन किया गया है। इनका एक उपन्यास 'दिव्यचक्षु' नाम से भी प्रकाशित हुआ है। इनकी और भी कई रचनाओं ने गुजराती साहित्य को समृद्ध किया है।

इसी प्रकार और भी कई लेखकों ने जिनमें पारसी लेखक भी शामिल हैं और कुछ खोजा–लेखक भी हैं, गुजराती साहित्य को समृद्ध किया है। मौलिक उपन्यासों के अतिरिक्त देश और विदेश की विभिन्न भाषाओं से उत्तम उपन्यासों के अनुवाद भी गुजराती में बहुत हुए हैं।

इस प्रकार गुजराती का उपन्यास–साहित्य आज एक समृद्ध साहित्य में गिना जा सकता है।

मलयालम-साहित्य में उपन्यास

मलयालम–भाषा में उपन्यास–साहित्य का प्रारंभ सन् १८८७ में 'अप्पु नेटुंडडाटी' नामक लेखक ने 'कुन्त-लता' नामक उपन्यास लिखकर किया। उसके पश्चात् 'चन्तुमेनोन' नामक लेखक ने इन्दुलेखा और शारदा उपन्यास की रचना करके मलयालम उपन्यास–साहित्य में दिशा सूचक यन्त्र का काम किया।

चन्तुमेनोन का जन्म सन् १८४६ में और मृत्यु सन् १८६६ में हुई। सामाजिक उपन्यासों के लिखने में चन्तु-मेनोन ने मलयालम-साहित्य में अच्छी कीर्ति सम्पादित की।

ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र में सी० बी० रामन पिल्ला ने मलयालम–साहित्य के अन्दर अद्वितीय स्थान

प्राप्त किया। मार्तण्ड वर्मा, धर्मराज और रामराज-बहादुर इनके ३ विख्यात ऐतिहासिक उपन्यास हैं। कहा जाता है कि अँग्रेजी भाषा में स्कॉट, फ्रेंच भाषा में अलेक्जेंडर डूमा, बंगला में बंकिमचन्द्र, मराठी में हरिनारायण आपटे और गुजराती में कन्हैयालाल मुंशी को जो स्थान प्राप्त है, वही स्थान मलयालम-साहित्य में सी० वी० रामन पिल्ला का समझा जाता है।

इसी प्रकार श्री के० एम० पपरिणकर ने भी मलयालम में ५ उपन्यासों की, ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर रचना की है। इन उपन्यासों में 'केरल सिंह' नामक उपन्यास श्रेष्ठ माना जाता है।

इसके अतिरिक्त वर्तमान काल के मलयालम-उपन्यासकारों में तकशी शिवशंकर पिल्वला, केशवदेव बेकम-बशीर, एस० के० पोट्टकाट्ट इत्यादि लेखक और उल्लेखनीय हैं।

उप्टन सिन्क्लेअर

(Upton Sinclair)

अमेरिकन उपन्यास-साहित्य का एक सुप्रसिद्ध उपन्यासकार, जिसका जन्म सन् १८७८ में हुआ।

उप्टन सिन्क्लेअर औद्योगिक क्षेत्र और फैक्टरियों के यथार्थ जीवन को चित्रित करने वाला एक सफल कलाकार था। इसके 'दि जंगल', 'किंग कोल', 'दि गज स्टेप', 'आइल', 'बोस्टन', 'दि फ्लयर किंग' आदि उपन्यासों में अमेरिका के औद्योगिक क्षेत्रों के जीवन की सुन्दर आलोचना की है।

प्रथम महायुद्ध और द्वितीय महायुद्ध के मध्यवर्ती जीवन पर ९ उपन्यासों की सीरीज के रूप में उप्टन ने समस्त विश्व-साहित्य को एक अमूल्य देन दी है।

उपमितिभव-प्रपञ्च-कथा

सुप्रसिद्ध जैनाचार्य सिद्धर्षि सूरि द्वारा रचित एक महान् रूपक ग्रन्थ, उपमिति-भव-प्रपञ्च-कथा, जिसकी रचना ईसवी सन् ९०५ में हुई।

उपमिति-भव-प्रपञ्च-कथा एक रूपक कथानक के रूप में सारे जैन-दर्शन शास्त्र का मन्थन है। समस्त भारतीय साहित्य में ही इसको पहला रूपक ग्रन्थ कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी।

जर्मनी के सुप्रसिद्ध डा० हर्मन जैकोबी इस ग्रन्थ की अंग्रेजी-प्रस्तावना में लिखते हैं कि "I did find some thing still more imporatant the great literary value of the U. Katha and the faet that it is the first allegorical work in Indian literature."

इस ग्रन्थ में निष्पुण्यक नामक भिखारी के चरित्र के रूपक में संसारी जीव को सत्य धर्म प्राप्त होने के समय से सम्पूर्ण संसार त्याग करने तक किस प्रकार धीरे-धीरे उँचे चढ़ना पड़ता है, इसका वर्णन किया गया है। फिर बाद में उन्होंने बतलाया है कि यह निष्पुण्यक भिखारी दूसरा कोई नहीं बल्कि सत्य धर्म प्राप्त करने के पहले स्वयं मेरा ही जीव था।

इस ग्रन्थ के रचयिता ने इस कथा का वर्णन सर्व साधारण को लागू पड़ जाय-इस प्रकार से करने का प्रयत्न किया है। दूसरे संस्कृत-ग्रन्थ कर्त्ताओं की अपेक्षा मनुष्य की आन्तरिक वृत्तिओं का इतिहास सिद्धर्षि की इस कृत्ति में विशेष रूप से मिलता है। ज्यों-ज्यों पाठक इस पुस्तक को पढ़ता जाता है, त्यों-त्यों उसे मनुष्य के आन्तरिक जगत का और पाप-पुण्य के परिणामों का स्पष्ट दर्शन होता जाता है।

इसलिए भारत में धर्म और नीति के ग्रन्थों को लिखने वाले ग्रन्थकारों में सिद्धर्षि सूरि का स्थान प्रथम श्रेणी में माना जाता है।

इस रूपक-कथा का निर्माण "भिनमाल" नामक नगर के बड़े जैन-मन्दिर में किया गया और दुर्ग स्वामी की "गणा" नामक शिष्या ने इस ग्रन्थ की पहली प्रति लिखी।

उन्मत्तावंत्त

कश्मीर के उत्पल वंशीय पार्थ राजा का पुत्र जिसका समय सन् ९३७ से ९३९ तक समझा जाता है।

कश्मीर की राज्य-परम्परा में जिन क्रूर और दुष्ट राजाओं का नाम आता है, उनमें उन्मत्तावन्त प्रमुख है। महाकवि कल्हण ने अपनी 'राज-तरंगिणी' में इसकी क्रूरता की कहानियों का विस्तार से वर्णन किया है। लिखा है—"तुज्जिन और चन्द्रापीड़" जैसे भाग्यशाली राजाओं ने बड़े यत्न से जिस प्रजा का पालन किया था, इस दुष्ट राजा ने उसका सत्यानाश कर डाला। हूण राजा मिहिर-गुल की तरह इस राजा को भी क्रूरता के काम करने में बड़ा आनंद आता था। गर्भवती स्त्रियों के गर्भ के बच्चों को मार डालना इत्यादि वीभत्स कार्यों में उसे बड़ा आनन्द मिलता था। इसके राज्य-काल के पहिले से ही कश्मीर की आन्तरिक दशा अधिकारियों के षड़यंत्रों और बेइमानियों से छिन्न भिन्न हो चुकी थी। इस दशा को देखकर तथा अपने पुत्र के दुष्कृत्यों से विरक्त होकर उसका पिता पार्थ 'जयेन्द्र-विहार' नामक महल में एकान्त-वास करने लगा। मगर वहाँ पर भी उन्मत्तावन्त ने अपने पिता को नहीं छोड़ा और उसने अपने पिता तथा सभी भाइयों की हत्या कर डाली।

दो वर्ष तक अपना क्रूर शासन करके इस क्रूर कर्मा को भी अपने शासन से हाथ धोना पड़ा और कश्मीर का राज्य इसके अवैध पुत्र सूर वर्मन के हाथ में चला गया।

उपयोगितावाद

उपयोगिता के मूलभूत सिद्धान्तों पर समाज की नैतिक, आर्थिक और राजनैतिक धाराओं पर विचार करनेवाली एक आधुनिक विचार-धारा जिसके पुरस्कर्ता 'बैंथम' और 'जान स्टुअर्टमिल' समझे जाते हैं।

उपयोगितावादी-विचारधारा का विश्वास है कि समाज में हर वस्तु का मूल्यांकन उपयोगिता के आधार पर होना चाहिये। जो वस्तु व्यक्ति और समाज की सुख-वृद्धि में सहायक हो या उसके दुःख निवारण में, उसकी क्षुधा-शान्ति का निरुपण करने में उपयोगी हो, उसी को ग्रहण करना चाहिये, हरेक तत्व के जाँच की कसौटी उसकी उपयोगिता पर आधारित होनी चाहिए। मनुष्य की जो भावनाएँ या जो सिद्धान्त उपयोगिता पर आधारित नहीं हैं, वे गलत हैं।

उपयोगिता-वाद की विचारधारा को ग्रहण करने पर संसार की वे सभी विचार-धाराएँ निरर्थक हो जाती हैं जो त्याग, बलिदान, निरासक्ति और शालीनता के ऊपर आधारित थी और जिन भावनाओं के ऊपर संसार में इतने भव्य और महान कार्य हुए हैं। जिन्होंने मानवीय इतिहास को गौरवान्वित किया है और जिसने यह सिद्ध किया है कि संसार में किसी समय आनंद भी तुच्छ और दुःख भी महान हो सकता है।

इसीलिए इस विचारधारा के आलोचक यह कह कर इसकी आलोचना करते हैं कि यह सिद्धान्त सुन्दरता, शालीनता एवं विशिष्टता की उपेक्षा कर केवल उपयोगिता और लौकिक स्वार्थ को ही महत्व देता है। इसलिए सामाजिक रूप से यह पूर्णतः ग्राह्य नहीं हो सकता।

फिर भी इस विचार-धारा के पुरस्कर्ताओं ने यूरोप के तथा अन्य देशों के विचारों को भी प्रभावित किया। आदर्श के क्षेत्र में पूर्णतः सफल न होने पर भी व्यवहार के क्षेत्र में इस धारा के पुरस्कर्ता बैन्थम ने काफी प्रयत्न किया। जेलों के सुधार में, न्याय-व्यवहार को सरल करने में अमानुषिक-परिणामहीन दण्ड व्यवस्था को हटाने में बैन्थम ने बहुत सहायता दी। जब उसे निश्चय हो गया कि संसदीय सुधार के बिना वैधानिक सुधार असंभव है, तब वह उस ओर आकर्षित हुआ।

उपेन्द्र भञ्ज

उड़िया-साहित्य के महान कवि, जिनका समय सन् १६८५ से १७२५ तक है।

उपेन्द्रभञ्ज के पिता का नाम नीलकण्ठ था। ऐसा कहा जाता है कि नयागढ़ नामक स्थान में, जहाँ इनके पिता का अन्तिम जीवन व्यतीत हुआ था, ओड़गाँव के मंदिर में उपेन्द्रभञ्ज ने अपनी साधना के द्वारा वहाँ के देवता 'श्रीरघुनाथजी' को प्रसन्न किया था और उन्हीं के प्रसाद से उन्हें कवित्वशक्ति प्राप्त हुई थी। उन्होंने संस्कृत भाषा में न्याय, वेदांत, दर्शन, साहित्य, व्याकरण और अलंकार शास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया था।

उपेन्द्रभञ्ज रीति-युग के कवि थे। इनके काव्यों में 'लावण्यवती' 'कोटि-ब्रह्माण्ड-सुन्दरी' और 'वैदेहीश-विलास' विशेष प्रसिद्ध हैं। वैसे उनकी कुल रचनाओं की संख्या ५० के करीब है।

उड़िया-साहित्य में उपेन्द्रभञ्ज का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। संस्कृतज्ञ पंडितों के साथ प्रतियोगिता में उतर कर उन्होंने बहुत से अलंकारिक काव्यों की रचना की। धर्म और साहित्य के बीच एक सीमा-रेखा खींच कर उन्होंने धर्म को साहित्य से हमेशा अलग रखा।

उपेन्द्रभञ्ज शब्द रचना के बड़े जादूगर थे। उनके सबसे बड़े काव्य-'वैदेहीश-विलास' में प्रत्येक पंक्ति का प्रारंभ 'व' अक्षर से ही होता है। अवनारस-तरङ्ग नामक समूचे काव्य में उन्होंने कहीं भी मात्रा का प्रयोग नहीं किया है। संगीत-शास्त्र पर भी उन्होंने 'चौपदी-भूषण' 'चौपदी-चन्द्र' इत्यादि कई ग्रन्थ लिखे हैं जो उड़ीसा की जनता में लोकप्रिय हैं।

उपेन्द्रनाथ दास

बंगला-साहित्य के एक नाटककार और निर्देशक, जो गिरीशचन्द्र घोष के समकालीन थे। इनका 'शरत् सरोजिनी' नामक नाटक और 'गजदानन्द' नामक परिहास-नाटक बंगाली समाज में बड़े लोक-प्रिय हुए।

गजदानन्द नाटक की रचना उस समय हुई जब सन् १८७६ में सप्तम एडवर्ड प्रिंस ऑफ वेल्स के रूप में बंगाल में आये और वहाँ के एक प्रतिष्ठित रईस जगदानन्द मुकुर्जी के घर पर उनके जनानखाने की स्त्रियों के द्वारा भी उनका स्वागत सत्कार किया गया। इससे बंगाली समाज में तहलका मच गया। पत्रों में जगदानन्द पर बहुत व्यंग्य किये गए और इसी घटना पर उपेन्द्रनाथ ने 'गजदानन्द' नाटक की रचना की।

यह नाटक 'सरोजिनी' नाटक के साथ सन् १८७६ में खेला गया। गजदानन्द के इस खेल ने जगदानन्द को समाज में मुख दिखाने लायक नहीं रखा। तब सरकार ने एक 'आर्डिनेन्स' निकाल कर इस नाटक का अभिनय रोका। बंगला के रंगमञ्च पर सरकार का यह सबसे पहला प्रहार था।

उबैदुल्ला शैबानी

मध्य एशिया में शैबानी वंश का एक प्रसिद्ध राजा जिसका समय सन् १५३२ से १५४० तक था।

मध्य एशिया में सन् १५०० से १५९९ तक शैबानी वंश के शासकों का बड़ा प्राबल्य रहा। यह राजवंश उजबक जाति के राजवंश की एक शाखा थी। इस वंश का पहला शासक महमूद शैबानी था। उबैदुल्ला इस वंश का चौथा शासक था।

शैबानी राजवंश इस्लाम के सुन्नी संप्रदाय का अनुयायी था और ईरान का शाह इस्माइल शिया धर्म का अनुयायी था। सुन्नी लोग उन दिनों शियाओं को काफिरों से भी बदतर समझते थे और इनके आपस में बड़े जोरदार संघर्ष होते रहते थे।

जिस समय उबैदुल्ला ने शासन नहीं सम्हाला था और वह राजपुत्र की हैसियत से था, उसी समय सन् १५१७ में समरकन्द में बाबर तैमूर के सिंहासन पर बैठा था। इसी बाबर ने आगे जाकर भारतवर्ष में विशाल मुगल साम्राज्य की नीव डाली।

बाबर की ईरान के शाह इस्माइल से बड़ी मित्रता थी। शैबानियों के साथ की लड़ाई में शाह इस्माइल ने बाबर को मदद दी थी और उसे समरकन्द में तैमूर के तख्त पर बैठाने के लिए भी भारी सेना की मदद भेजी थी। इसी सेना की सहायता से बाबर ने उबैदुल्ला शेबानी को हराकर सारे 'अन्तरवेंद' पर अधिकार कर लिया था।

लेकिन शाह की मदद बाबर के लिए बहुत मँहगी पड़ी। उसने अंतर्वेद में इस्माइल शाह के नाम का 'खुतबा' पढ़वाया। एक शिया बादशाह के नाम का खुतबा पढे जाते देखकर अन्तर्वेद के सुन्नी कैसे खुश हो सकते थे। खासकर जब बाबर ने खुद ईरानी पोशाक धारण की और अपनी सेना को भी वैसा करने का आदेश दिया। इससे सुन्नियों का कोप भड़क उठा और जगह-जगह पर विद्रोह होने

लगे। यह मौका देखकर उबैदुल्ला बुखारा की ओर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ा। कुलमल्लिक स्थान पर बाबर का उबैदुल्ला की फौजों के साथ संघर्ष हुआ। बाबर की सेना में ४० हजार सैनिक थे। जबकि उबैदुल्ला की सेना में केवल ३ हजार उजबक सैनिक थे। मगर यह एक चमत्कार पूर्ण घटना थी कि उबैदुल्ला की उजबक सेना ने बाबर की सेना को बड़ी बुरी तरह से हराया।

तब शाह इस्माइल ने बाबर की मदद पर ६० हजार सैनिक भेजे। इस सेना ने उजबक सेनापति को हराकर खोजारा और करशी को लूटा और वहाँ के १५ हजार नागरिकों को एक साथ कत्ल कर डाला।

इसके बाद उबैदुल्ला की ईरान के शाह के साथ कई छोटी-बड़ी लड़ाइयाँ हुईं। अन्त में उसने ईरान के शाह का मुकाबला करने के लिए डेढ़ लाख सेना एकत्रित की और दक्षिण की ओर बढ़ा। ईरानी सेना में यद्यपि ५० हजार ही आदमी थे, मगर वे बड़े तजुर्बेकार, अनुशासन-सम्पन्न और तोपों तथा बन्दूकों के नवीन हथियारों से सुसज्जित थे। ईरान का शाह 'तहमास्य' स्वयं सेना का नेतृत्व कर रहा था।

इस भयंकर युद्ध में तोपों और बन्दूकों के सामने उबैदुल्ला के सैनिक घास-मूली की तरह कटने लगे और उजबक सेना को भयंकर पराजय का मुँह देखना पड़ा।

सन् १५३२ में उबैदुल्ला शैबानी वंश के खान की गद्दी पर बैठा। उसने फिर खुरासान में लूट-मार करना प्रारम्भ किया और शिया लोगों पर बहुत अत्याचार करने प्रारम्भ किये। शाह तहमास्य जब उसका मुकाबला करने के लिए आया तो बन्दूकों के डर के मारे उबैदुल्ला भाग निकला।

इस प्रकार सामने की लड़ाई को छोड़कर उबैदुल्ला ने शाह को तंग करने और शिया लोगों के खिलाफ जिहाद करने के लिए लुक-छिप कर आक्रमण करना आरम्भ किया।

सन् १५४० में उबैदुल्ला की मृत्यु हो गई। इतिहासकार 'हैदर' उबैदुल्ला के लिए लिखता है—

'पिछले सौ सालों में उबैदुल्ला जैसा कोई बादशाह नहीं हुआ। वह बड़ा ही नम्र, सदाचारी, न्याय-परायण और वीर पुरुष था। उसने अपने हाथ से कुरान की कई प्रतियाँ लिखीं। तुर्की, अरबी और फारसी का वह कवि तथा संगीतज्ञ था। उसके समय की राजधानी बुखारा हुसेन मिर्जा के 'हिरात' की याद दिलाती है।

उमर खैय्याम

ईरान देश में फारसी साहित्य के सुप्रसिद्ध हालाप्याला वादी महान् कवि उमर खैयाम। जिनकी मदभरी रुबाइयों ने विश्व-साहित्य में अपना गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। इनका जन्म ग्यारहवीं सदी के मध्य में और मृत्यु बारहवीं सदी के तीसरे दशक में हुई।

उमर खैयाम का पूरा नाम गयासुद्दीन अबुलफतह उमर इब्नइब्राहिम उमर खैयामी था।

उमर खैयाम अपने समय के प्रसिद्ध गणित शास्त्री और ज्योतिषी थे। अपने ज्योतिष ज्ञान के आधार पर इन्होंने सुलतान मलिक शाह के पंचांग का संशोधन किया था। जिसके फलस्वरूप तारीखे मलिकशाही, जलाली संवत् या सलजुक संवत् का प्रारंभ हुआ। कविता या रुबाइयों की रचना ये अपने निजी शौक के लिए करते थे।

उमर खैयाम की रुबाइयों तथा कविताओं का पूर्ण संग्रह अभी तक उपलब्ध नहीं है। सबसे पुराने संग्रह में २५० रुबाइयाँ संग्रहित की गई हैं।

यूरोप में इन रुबाइयों का प्रचार उन्नीसवीं सदी के मध्य में हुआ। ऑक्सफोर्ड के एक पुस्तकालय में प्रोफेसर कोवेल को एक फारसी पाण्डुलिपि मिली जिसमें उमर खैयाम की १५८ रुबाइयों का संग्रह था। एक दूसरी पाण्डुलिपि उन्होंने एशियायिक सोसायटी से प्राप्त की जिसमें ५१६ रुबाइयाँ थीं। उन्होंने अपने मित्र फारसी के विद्वान फ्रिट्जरलैण्ड को ये पाण्डुलिपियाँ अनुवाद के लिये दे दीं।

फ्रिट्जरलैण्ड के द्वारा किया हुआ अनुवाद संसार में उमर खैयाम का सबसे सुन्दर अनुवाद माना जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि अनुवाद करते समय अनुवादक भावावेश में इतना तल्लीन हो गया कि उसने उन

कविताओं की सारी सौंदर्य सृष्टि को अपने अनुवाद में हूबहू उतार दिया।

इसके पश्चात् तो अंग्रेजी साहित्य में धड़ाधड़ उमर खैयाम के सुन्दर और सचित्र अनुवाद प्रकाशित होने लगे। फिर भी कोई लेखक अभी तक फ़िट्जरलैण्ड के अनुवाद के मुकाबले में सुन्दर अनुवाद प्रस्तुत न कर सका।

हिन्दी में उमर खैयाम के अभी तक दस पन्द्रह अनुवाद छप चुके हैं। ये अनुवाद फ़िट्जरलैण्ड के अंग्रेजी अनुवाद को लेकर ही किये गये हैं। एक अनुवाद मूल फारसी से किया गया है। एक अनुवाद हिंदी काव्य के उमर खैय्याम मधुशाला और मधुबाला के लेखक श्री हरिवंश राय 'बच्चन' ने भी किया है जो हिंदी काव्य-जगत् में विशेष लोकप्रिय हुआ है!

उमर खैयाम की रुबाइयात पर अपने विचार प्रकट करते हुए कवि बच्चन लिखते हैं कि—

'उच्चश्रेणी के काव्यों में यह विशेषता होती है कि उनकी कविता तो सुन्दर होती ही है मगर साथ ही वह पाठक को ऐसी दृष्टि प्रदान करती है जिससे वह उसके सौंदर्य को समझ सके। उमर खैयाम की रुबाइयों में भी यह गुण प्रचुर मात्रा में है। पहली पंक्ति से ही वह पाठक को अपने वातावरण में उठा ले जाती है। आप अपनी दुनिया भूल जाते हैं और उमर खैयाम की दुनिया में चले जाते हैं। फिर वह अपनी दुनिया के स्थूल, असाधारण, रंगीन और अर्थ गर्भित दृश्य और रूपकों को किसी सिद्धहस्त जादूगर की सफाई और तेजी के साथ आप के सामने ला ला कर रखने लगता है। साथ ही उनपर जिन भावों और विचारों का आरोप करता है उनमें ऐसी उद्बोधिनी शक्ति रहती है कि पाठक को ऐसा मालूम होने लगता है कि वे केवल उमर खैयाम के भाव और विचारों को ही नहीं बता रहा है आप के हृदय और मस्तिष्क का भी प्रतिनिधित्व करता है।'

उमर खैयाम एक स्वतन्त्र विचार के कवि थे। सौंदर्य के उपासक थे, मस्ती के उपासक थे, आनन्द के उपासक थे। आचार शास्त्र की बाधायें उनके काव्य-प्रवाह को नहीं रोक पाती थीं। मजहबी संकीर्णता, कट्टरता, तथा कठमुल्लापन के वे बड़े विरोधी थे। साथ ही सूफी सन्तों और कवियों के सिद्धान्तों से भी उनकी नहीं पटती थी। उनकी रुबाइयों में मदिरा की मस्ती, सौंदर्य की अनुभूति और मनुष्य की अतृप्त तृष्णा और अनन्त वासना के चित्रण के साथ जीवन की गम्भीर समस्याओं के लिए एक नया दृष्टिकोण भी है।

उमर खैय्याम धर्म-शास्त्रियों, समाज-शास्त्रियों और आचार शास्त्र के आचार्यों द्वारा बनाये हुए विधान की परवाह नहीं करता। एक गगन विहारी पक्षी की तरह विस्तृत काव्य क्षेत्र में वह स्वच्छन्दता पूर्वक एक के बाद दूसरी उड़ाने भरता है। हर जगह वह सौंदर्य के दर्शन करता है, संगीत की मधुर ध्वनि सुनता है और दिव्याङ्गना साकी के द्वारा दिये हुए सुवासित मदिरा के जामों का आस्वादन करता है।

कल क्या होगा, इसकी वह परवाह नहीं करता वह आज को अधिक से अधिक सुन्दर बनाना चाहता है। वह कहता है—

पिलाकर प्यारी! मदिरा आज, नशे में इतना करदो चूर।
भविष्यत् के भयजावें भाग, भूत के दारुण दुःख हों दूर।
प्रिये लेना मत कल का नाम, नहीं कल पर मुझको विश्वास।
अरे, कल दूर एक क्षण बाद काल का मैं हो सकता ग्रास।

(प्रसिद्ध कवि बचन का अनुवाद)

वह धर्म शास्त्रों में बनाये हुए अप्रत्यक्ष स्वर्ग पर विश्वास नहीं करता! वह इसी दुनिया में अपनी जन्नत का निर्माण करता है और उसे उपभोग करने की सलाह देता है।

अरे अब जो भी कुछ है शेष, भोग वह सकते हम स्वच्छन्द।
राख में मिलजाने के पूर्व न क्यों करलें जी भर आनन्द।
गड़ेंगे जब हम होकर राख, राख में तब फिर कहाँ बसन्त।
कहाँ स्वरकार, सुरा, संगीत कहाँ इस सूनेपन का अन्त।

(कविवर बचन द्वारा अनुवादित)

वह अपने मंजिले मकसूद पर पहुँचना चाहता है, मगर ऐसे रास्ते से जिस रास्ते पर फूल खिले हुए हों, अप्सराएँ नृत्य कर रही हों, और जाम ढलक रहे हों।

ऊमर खैयाम न सूफी है, न धर्मवादी, वह एक ऐसा मयूर है जो हमेशा विस्तृत गगन में नाचता रहता है और जिसके बगीचे में हमेशा बसन्त छाया रहता है।

अरे, वे सुन्दरतम वे श्रेष्ठ, जिन्हें हम करते इतना प्यार,
क्रूर, कटु काल कर्म के हाय, होगये कितने शीघ्र शिकार।
न पी, पाये वे प्याले चार, गया उनका जीवन मधु सूख,
चले करने विश्राम अनन्त, लिए निज अरमानों की धूल।

उमास्वाति वाचक

एक सुप्रसिद्ध जैनाचार्य, जिन्होंने समग्र जैन-तत्वज्ञान का मन्थन कर 'तत्वार्थाधिगम् सूत्र' नामक महान् सूत्र की रचना की।

वैदिक धर्म में श्री भगवद्गीता का जो स्थान प्राप्त है, वही स्थान जैन-धर्म के अन्दर उमास्वाति-रचित 'तत्वार्थाधिगम्' सूत्र का है। इस महान् ग्रन्थ को श्वेताम्बर और दिगम्बर—दोनों सम्प्रदाय अत्यन्त श्रद्धा पूर्वक मानते हैं।

उमास्वाति का जन्म 'न्यग्रोधिका' नामक ग्राम में हुआ था। उनकी माता का नाम 'वात्सी' और पिता का नाम 'स्वाति' था। उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना 'कुसुमपुर' ('पाटलिपुत्र') में की। इनके गुरु का नाम मुनि 'घोषनन्दी' था।

उमास्वाति किस काल में हुए? यह सन्देहास्पद है। कुछ लोगों के मत से इनका समय वीर-संवत् ३७६ अथवा इसवी सन् से पूर्व १५१ वर्ष होना चाहिए। मगर सतीशचन्द्र विद्याभूषण की खोज के अनुसार उमास्वाति का समय इसवी सन् १ से लेकर ८५ के बीच किसी समय होना चाहिये।

जिस समय उमास्वाति का आविर्भाव हुआ, उस समय के उपलब्ध जैन-साहित्य का अवलोकन करने से मालूम होता है कि उमास्वाति के पूर्व जैन—दर्शन में तर्क शास्त्र सम्बन्धी किसी स्वतंत्र सिद्धान्त का प्रचलन नहीं था। उनके पहले तर्क-शास्त्र और प्रमाण सम्बन्धी बातें केवल आगम-ग्रन्थों में ही अस्पष्ट रूप से संकलित थीं। उस समय का युग तर्क-प्रधान न होकर आगम-प्रधान था। उमास्वाति ने ही सब से पहले 'तत्वार्थाधिगम् सूत्र' की रचना करके समस्त जैन-तत्वों को एक स्थान पर एकत्रित किया और उन्होने इस बात की आवश्यकता बतलाई कि इसमें संगृहीत तत्वों को अर्थ, प्रमाण और नय (Philosophy of stand points) के द्वारा निश्चित करना चाहिए। (प्रमाण नयेरधिगमाः) कहा जाता है कि उनके पश्चात् ही जैन-शास्त्र के धुरन्धर विद्वान् 'सिद्धसेन दिवाकर' ने सबसे पहले 'न्यायावतार' नामक तर्क-प्रकरण की संस्कृत में रचना करके जैन-तर्क-शास्त्र की बुनियाद स्थिर की। मगर कुछ इतिहास-कार उमास्वाति का समय सिद्धसेन के पश्चात् मानते हैं।

उमास्वाति के इस तत्वार्थाधिगम-सूत्र में १० अध्याय हैं। पहले अध्याय में सम्यक् दर्शन—ज्ञान—चरित्र—रत्नत्रय को मोक्षमार्ग का साधन रूप बतलाकर (सम्यक् दर्शन—ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्गः) उनकी प्राप्ति के साधनरूप ७ तत्व ४ निक्षेप, प्रमाण, नय, निर्देश और अनुयोग-द्वार बताकर ज्ञान अज्ञान और नय के स्वरूप का वर्णन किया है।

दूसरे अध्याय में अध्यवसाय, उसके भेद और लक्षण, इन्द्रिय—गति—योनि, शरीर और आयु का स्पष्टीकरण किया गया है।

तीसरे अध्याय में नरक—भूमि, वहाँ के जीवों की दशा और मनुष्य क्षेत्र तथा तिर्यञ्च प्राणियों का विवेचन किया गया है।

चौथे में देवलोक की स्थिति तथा जुदे-जुदे देवों की आयुष्य का वर्णन है।

पांचवें अध्याय में अजीव या जड़ वस्तुओं का वर्णन उनके भेद-द्रव्य की व्याख्या, लक्षण आदि का विवेचन किया गया है।

छठे अध्याय में मन-वचन काया के विकार से किस प्रकार कर्मों का आश्रव (आगमन) होकर वह जीव को जकड़ लेते हैं—इसका विवेचन किया गया है। जीव के साथ कर्मों का मेल होने को 'आश्रव' कहा जाता है।

सातवें अध्याय में मुनियों के ५ महाव्रत और उनकी भावना और गृहस्थों के १२ अणुव्रत और उनके अतिचारों का स्पष्टीकरण करके गृहस्थ और मुनि धर्म को समझाया है।

आठवें अध्याय में बन्ध-तत्व का विवेचन है। ८ कर्म और उनकी कर्म-प्रवृत्तियों का तथा उनके विपाक और प्रदेश-बन्ध की चर्चा की गई है।

नवें अध्याय में ३ गुप्ती, ५ समिति, १० प्रकार का त्याग-धर्म, १२ भावना और २२ परिषहों का विवेचन करने के पश्चात् बतलाया गया है कि इनके द्वारा किस प्रकार संवर (कर्मों की रोक) और निर्जरा (कर्मों का क्षय)— इन दों तत्वों का प्रारम्भ होता है। इस अध्याय में ५ प्रकार के चरित्र और १२ प्रकार के तप का स्वरूप बतला कर ५ प्रकार के निर्ग्रन्थ का वर्णन किया गया है।

दसवें अध्याय में मोक्ष-तत्व का सूक्ष्म विवेचन किया गया है।

इस तत्वार्थ-सूत्र पर कालान्तर में अनेक दिगम्बर और श्वेताम्बर आचार्यों ने बीसों टीकाओं की रचना की है। इससे मालूम पड़ता है कि यह ग्रन्थ जैन-साहित्य में कितना महत्वपूर्ण है।

तत्वार्थ-सूत्र के अतिरिक्त उमास्वति ने करीब ५ सौ प्रकरणों की और रचना की। इनमें से 'प्रशंरति' 'श्रावक प्रज्ञप्ति' 'पूजा-प्रकरण' 'समास-प्रकरण' 'क्षेत्र-विचार' इत्यादि रचनाएँ इस समय उपलब्ध हैं।

उमास्वाति प्रकरणों की रचना करने में अद्वितीय थे। और वे एक उत्कृष्ट संग्रहकर्त्ता भी थे।

उमापतिधर

१२ वीं शताब्दी में बंगाल के सेन-वंशीय राजाओं के समय में एक प्रसिद्ध कवि उमापतिधर।

गीत-गोविन्दकार श्री जयदेव ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'गीत गोविंद' में उमापतिधर का बड़े आदर के साथ उल्लेख किया। इससे अनुमान होता है कि उमापतिधर जयदेव कवि के समकालीन थे।

जयदेव बंगाल के राजा लक्ष्मण-सेन के समकालीन थे, यह बात निश्चित् हो चुकी है और यह भी निश्चित् हो चुका है कि राजा लक्ष्मण सेन का समय सन् ११११ में था। अतएव उमापतिधर का समय १२ वीं शताब्दी के प्रारम्भ या उसके मध्य में मानना संगत होगा।

श्रीमद्भागवत की भावार्थ-दीपिका टीका पर जो वैष्णव-तोषिणी टीका लिखी गई है, उसमें लिखा है कि 'श्री जयदेवसहचरेण महाराजलक्ष्मणसेनमंत्रिवरेणोमापतिधरेण' इससे भी विदित होता है कि उमापतिधर नामक कवि सेन-वंशी राजा बल्लाल सेन के पुत्र लक्ष्मण सेन के मंत्री थे।

उमापतिधर का रचा हुआ कोई स्वतंत्र ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध नहीं है, पर इनके रचे हुये और शिला पर खुदे हुये ३६ श्लोक 'रायल एशियाटिक सोसायटी' में रखे हुये हैं।

उमर शेख मिर्जा

तैमूरलंग के लड़के मीरान शाह का प्रपौत्र और दिल्ली के बादशाह बाबर का पिता।

उमर शेख मिर्जा का जन्म सन् १४५६ में 'समरकन्द' में हुआ था। इन्होंने अपने पिता के जीते जी मध्यएशिया के अन्दिजान और फरगान प्रांत पर शासन किया था।

सन् १४९४ ई० में जब यह मंच पर खड़े हो उड़ते हुए कबूतर देख रहा था। उसी समय मंच टूट गया और इसकी मृत्यु हो गई। मृत्यु के समय इसकी उमर ३९ वर्ष की थी। इसका पुत्र बाबर इसकी जगह सिंहासन पर बैठा।

उमर-अल-मकसूस

उमैया-वंश के खलीफा मुआविया द्वितीय का गुरु, जिसका समय सन् ६६८ ई० है।

खलीफा मुआविया द्वितीय ने अपने पिता के मरने पर इससे पूछा कि हम 'खिलाफत' लें या नहीं। इसने कहा कि यदि आप मुसलमानों पर न्यायपूर्वक शासन कर सकें तो खिलाफत लेलें और यदि न कर सकें तो छोड़ दें।

उक्त खलीफा ने ६ सप्ताह तक राज्य चलाने बाद अपने को अयोग्य पाया और खिलाफत को छोड़कर एक एकांत कोठरी में घुस गया जहाँ उसकी मृत्यु हुई। उमैया वंश के लोग इस घटना से उमर-अल-मकसूस पर बहुत चिढ़े उन्होंने समझा कि इन्हीं के कहने से उमैया ने राज्य छोड़ा है और इनको जिन्दा ही जमीन में दफन कर दिया।

उमाजी नायक

बम्बई प्रांत में थाना जिले का एक मशहूर विद्रोही मराठा सरदार, जिसका समय १८२७ के आस-पास है। अंग्रेज इतिहासकारों ने इसे डाकू सरदार लिखा है।

उमाजी नायक ने १८२७ ई० में ३०० आदमी और घोड़े लेकर पूने से सह्याद्रि पहाड़ को पार किया और पनवेल से ६ कोस पूर्व परवल पर्वत के नीचे डेरा डाल दिया। वहाँ इसने घोषणा की कि—'सब किसान अंग्रेज गवर्नमेंट की तरह हमको भूमि का लगान दें। जो नहीं देगा, उसके घरमें आग लगा दी जायगी। १० दिसम्बर को २०० डाकुओं ने मिलकर मुरवाड़ के सरकारी खजाने को लूटा और रक्षक-सैन्य को मारापीटा।

सन् १८२८ और १८३० में उमाजी नायक के उपद्रव और भी बढ़ गये किंतु बाद में कैप्टेन मार्किंटस ने बड़ी मुस्तैदी के साथ सन् १८३४ तक यह सारी अशांति मिटा दी।

उमेशचन्द्र बनर्जी

इण्डियन-नेशनल-कांग्रेस के प्रथम सभापति, जो सन् १८८५ में बंबई के अंतर्गत हुई थी।

२८ दिसम्बर सन् १८८५ को दिन के १२ बजे बंबई के गोकुलदास-तेजपाल-संस्कृत-कालेज के भवन में 'इंडियन नेशनल-कांग्रेज' का पहला ऐतिहासिक अधिवेशन हुआ। मि० ह्यूम ने श्री उमेशचन्द्र बनर्जी के सभापतित्व का प्रस्ताव उपस्थित किया और श्री एस० सुब्रह्मण्य ऐय्यर और श्री काशीनाथ त्र्यम्बक तैलंग ने उस प्रस्ताव का समर्थन किया। वह एक बड़ा गंभीर और ऐतिहासिक क्षण था, जिसमें मातृभूमि के द्वारा सम्मानित अनेक पुरुषों में प्रथम पुरुष ने प्रथम राष्ट्रीय महासभा के प्रथम स्थान को ग्रहण किया।

कांग्रेस की गुरुता की ओर प्रतिनिधियों का ध्यान दिलाते हुए अध्यक्ष महोदय ने कांग्रेस का उद्देश्य इस प्रकार बतलाया,।

(क) साम्राज्य के भिन्न-भिन्न भागों में देश-हित के लिए लगन से काम करने वाले लोगों के बीच में सम्पर्क और घनिष्ठता बढ़ाना।

(ख) समस्त देश-प्रेमियों के अन्दर प्रत्यक्ष मैत्री-व्यवहार के द्वारा वंश, धर्म, और प्रान्त सम्बन्धी भिन्नता के संस्कारों को मिटाना और राष्ट्रीय ऐक्य की तमाम उन भावनाओं का जो लार्ड 'रिपन' के चिरस्मरणीय शासनकाल में पैदा हुई, उनका पोषण और परिवर्द्धन करना।

(ग) महत्वपूर्ण और आवश्यक सामाजिक प्रश्नों पर भारत के शिक्षित लोगों में अच्छी तरह से चर्चा होने के बाद, जो परिपक्व सम्मतियाँ प्राप्त हों, उनका प्रामाणिक संग्रह करना।

(घ) उन तरीकों और दिशाओं का निर्णय करना, जिनके द्वारा भारत के राजनीतिज्ञ देश-हित के कार्य कर सकें।

इसके पश्चात् सन् २८-१२-१८६२ ई० को इलाहाबाद में होने वाले कांग्रेस के आठवें अधिवेशन की अध्यक्षता भी श्री उमेशचन्द्र बनर्जी ने की थी।

उम्मेद सिंह (१)

कोटे के एक नरेश, जिनको सन् १८२७ ई० में राज्याधिकार प्राप्त हुए। इनका दीवान जालिमसिंह बड़ा अधिकार प्रिय और प्रतिभाशाली व्यक्ति था। ४५ वर्ष तक उसने बड़ी सफलता के साथ कोटा का राज्य-कारबार चलाया। इसके शासनकाल में किसी की हिम्मत नहीं थी कि कोटे की तरफ उँगली उठा सके।

क्रान्ति के ऐसे समय में जब कि सारे राजपूताने में लूट-खसूट के कारण 'त्राहि-त्राहि' मच रही थी, कोटा अपनी पूर्ण उन्नति के शिखर पर आरूढ़ था। जालिम सिंह ने बूँदी वालों से 'इन्द्रगढ़' 'बलवान' और 'अन्तर्दह' नामक परगने छीन लिए। जालिम सिंह की नीति हर कार्यों में अंग्रेजों का साथ देने की थी और इसी के कारण अंग्रेज सरकार की कोटा राज्य पर बड़ी निगाह रहती थी और इसीसे होल्कर सरकार से मिले हुए झालावाड़ आदि के ४ परगने ब्रिटिश सरकार ने जालिम सिंह को जागीर की तरह से प्रदान किये।

आगे जाकर कोटा के महारावों से जब जालिम सिंह की अनबन हुई तो ब्रिटिश सरकार ने ये चार परगने जालिम सिंह को देकर कोटे की रियासत से ई० सन् १८३८ में झालावाड़ के हिस्से को अलग कर दिया, तभी से झालावाड़ की रियासत स्वतंत्र रूप से अस्तित्व में आई।

उम्मेद सिंह (२)

कोटा के सुप्रसिद्ध महाराव, जिनका जन्म सन् १८७३ में हुआ और सन् १८८९ में जिनको राज्य-शासन के अधिकार प्राप्त हुए।

महाराव उम्मेद सिंह कोटा के इतिहास में एक बड़े लोकप्रिय नरेश रहे। इनके समय में कोटा राज्य की सर्वतोमुखी उन्नति हुई और यहाँ के शिक्षा-विभाग और कृषि-विभाग ने बड़ी तरक्की की।

उम्मेद सिंह (३)

बूँदी के राजा, बुद्धसिंह के बड़े पुत्र। इनके छोटे भाई का नाम दीपसिंह था।

बुद्धसिंह का देहान्त होने पर जयपुर के राजा जयसिंह की सम्मति से उदयपुर के महाराणा ने इनके राज्य को अपने राज्य में मिला लिया। ऐसी स्थिति में इन असहाय बालकों ने कोटे के राजा दुर्जनसाल के यहाँ आश्रय लिया।

सन् १७४४ में जयपुर के राजा जयसिंह का देहान्त हो गया और उनकी जगह पर ईश्वर सिंह गद्दी पर बैठे। यह अवसर देखकर उम्मेद सिंह ने कोटे के राजा और हाड़ा लोगों की सहायता से बून्दी पर आक्रमण कर दिया, ईश्वरी सिंह की सेना भी लड़ने के लिए गई, मगर उसमें ईश्वरी सिंह की पराजय हुई। तब ईश्वरी सिंह ने एक बड़ी सेना इनके विरोध में भेजी। हाड़ा लोग इस सेना से भी बड़ी वीरता के साथ लड़े, मगर अन्त में इनकी पराजय हुई। तब तीसरी बार उम्मेद सिंह ने फिर अपनी सेना को एकत्रित करके होल्कर की मदद से सन् १८०६ में बूँदी पर अधिकार कर वहाँ पर फिर से अपना राज्य स्थापित किया।

उमैया खलीफा

इस्लाम के खलीफा अली की मृत्यु के पश्चात् खलीफा की गद्दी पर आसीन होने वाला उमैयावंश, जिसका समय सन् ६६१ से ७४९ ई० तक है।

हजरत अली की मृत्यु के पश्चात् उनके बड़े बेटे हसन के उत्तराधिकारी होने की पूरी आशा थी। क्योंकि मदीने का शासक मुआविया मदीने में लोकप्रिय नहीं था। पैगम्बर का नाती होने के कारण लोगों का आकर्षण भी हसन के प्रति अधिक था, मगर मुआविया ने चतुराई से हसन की बीवी, जो ईरान के सासानी शाहंशाह 'यज्दगर्द' की लड़की थी, उसको अपनी तरफ मिलाकर उसके द्वारा हसन को जहर दिलवा दिया, जिससे हसन की मृत्यु हो गई और मुआविया स्वयं खलीफा बन बैठा।

मुआविया ने ही खलीफा पद लेकर उमैया-वंश की नींव रखी। इस वंश में कुल १३ खलीफा हुए, जिनके नाम इस प्रकार हैं—

१—मुआविया मेरवानाप्रथम, (६६१ से ६८० ई०) २—यजीद प्रथम (६८० से ६८३ ई०) ३—मुआविया द्वितीय (६८३) ४—अब्दुल मलिक (६८३ से ७०५ ई०) ५—वली प्रथम (७०५ से ७१४ ई०) ६—सुलेमान (७१४ से ७१७ ई०) ७—उमर द्वितीय (७१७ से ७२० ई०) ८—यजीद द्वितीय (७२० से ७२३ ई०) ९—हिशाम (७२३ से ७४२ ई०) १०—वली द्वितीय (७४२) ११—यजीद तृतीय १२—इब्राहीम और १३—मेरवान द्वितीय (७४९ ई० तक)।

मुआविया प्रथम

जिस समय मुआविया इस्लाम का खलीफा बना, उस समय तक पूर्वी ईरान पर अरबों का अधिकार व्यवस्थित रूप से जमने नहीं पाया था। इसलिए उधर के गवर्नर बराबर बदलते रहते थे।

उस समय मध्य एशिया के गैरमुस्लिम शासक बड़े बहादुर और राजपूतों की तरह मौत को ललकारने वाले होते थे। युद्ध उनके लिए एक खेल था, किन्तु उनमें भी राजपूतों की तरह एकता नहीं थी। आपसी शत्रुता के कारण वे एक-दूसरे के विरुद्ध अरबों की सहायता करते

रहते थे। इसी फूट का लाभ मुसलमान विजेताओं को मिला।

रोम और ईरान के जीते हुए इलाकों में जिस तरह इन गैर मुस्लिम लोगों ने भीषण संघर्ष किया, उससे अरबों को यह विश्वास नहीं था कि गैर–मुस्लिम भी उनके वाफादार हो सकते हैं। इसीसे खलीफा उमर ने यह विधान बनाया था कि मोमिन (नव मुसलिम) को छोड़ कर किसी को हथियार रखने का अधिकार नहीं है।

गैर-मुस्लिमों के इस भयंकर विद्रोह का कारण यह था कि अरब विजेता किसी देश को केवल राजनैतिक तौर पर ही परतन्त्र नहीं करना चाहते थे, बल्कि वे वहाँ के धर्म और संस्कृति को भी निर्मूल कर देना चाहते थे। इसलिए यूनानियों, शकों, तुर्कों की तरह अरबी मुसलमानों को प्राचीन धर्म और संस्कृति के साथ किसी प्रकार का समझौता करने की गुंजाइश नहीं थी। इसीलिए पूर्वी ईरान में अरबों की विजय हो जाने पर भी वहाँ का विद्रोह दमन करने में खलीफा को काफी समय लगा।

बुखारा की शासिका 'खातून' ने बहुत समय तक मुसलमान आक्रमणकारियों का मुकाबला किया, मगर अन्त में कोई ठोस सहायता न मिलने पर उसे भी मुसलमान आक्रमणकारियों के सामने झुकना पड़ा और 'बुखारा' तथा 'समरकन्द' पर खलीफा का अधिकार हो गया।

खलीफा यजीद

मुआविया की मृत्यु के पश्चात् उसका लड़का यजीद खलीफा हुआ।

मुआविया का बेटा यह वही यजीद है, जिसने 'कूफा' का राज्यपाल रहते समय 'कर्बला' के मैदान में 'इमाम हुसेन' और उनके साथियों की निर्मम हत्या कराई थी।

इसके समय में 'सल्म' नामक 'खुरासान' के गवर्नर ने बुखारा के ऊपर तेजी से आक्रमण करके उसको विजय किया।

इसके पश्चात् चौथे खलीफा अब्दुल मलिक के समय में मध्य एशिया में अरबों को आगे बढ़ने में बहुत सफलता मिली।

खलीफा वलीद

मगर इस्लाम की विजय का असली डंका, पाँचवे खलीफा वलीद के समय में 'मेर्व' के वली कुतैब ने बजाया। इस्लाम के इतिहास में कुतैब एक भारी विजेता था। मध्य एशिया में अरब शासन और इस्लाम की दृढ़ नींव डालने में सबसे अधिक हाथ कुतैब का था। इसके पहले के वलियों (गवर्नरों) का प्रधान लक्ष्य केवल लूटमार करना और 'चौथ' को उगाहना था। यद्यपि बहुत वर्षों से अरब खुरासान के स्वामी थे और मेर्व उनके वली की राजधानी थी, किन्तु 'वक्षू' नदी के उस पार उनका शासन नाम मात्र का था। वक्षू और सिर दरिया के बीच की भूमि पर इस्लाम का झंडा गाड़ने वाला कुतैब था। उसने यहाँ से 'जरथुस्ट' और बौद्ध-धर्मों को मिटा कर इस्लाम को स्थापित किया और सैनिकों को 'जिहाद' के लिये उत्तेजित किया।

इसके बाद कुतैब खुरासान का राज्यपाल हो गया और उसने दिग्विजय पर दिग्विजय करना प्रारम्भ किया। सन् ७१४ में खलीफा वलीद की मृत्यु हुई और उसके बाद सुलेमान खलीफा की गद्दी पर आया।

खलीफा सुलेमान की कुतैब के साथ शत्रुता हो गई और उसने खलीफा के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। मगर जब सेना के लोगों को यह मालूम हुआ कि इस्लाम का खलीफा कुतैब के विरुद्ध है तो वे भी कुतैब के एकदम खिलाफ हो गये और उन्होंने कुतैब के महल को घेर लिया। जिस सेना के बल पर कुतैब ने इतनी बड़ी-बड़ी दिग्विजय प्राप्त की थी और विधर्मियों के ऊपर अत्यन्त निर्दयता पूर्ण अत्याचार किये थे, वही सेना उसकी जान की गाहक हो गई और उसने उसकी बोटी-बोटी काट डाली।

इस तरह ४६ साल की उम्र में धर्म के नाम पर नृशंसता करने में अद्वितीय कुतैब को उसका परिणाम भुगतना पड़ा।

कुतैब के बाद 'यजीद' खुरासान का गवर्नर होकर आया। उसने सन् ७१६ ई० में कास्पिअन सागर के पश्चिम जुरजान और तवारिस्तान पर आक्रमण किया। जुरजान

के लोगों ने अपनी स्वतंत्रता, धर्म और संस्कृति के दुश्मनों का कड़ा प्रतिरोध किया। इस पर यजीद ने शपथ ली कि मैं तब तक अपनी तलवार को म्यान में नहीं रखूँगा, जब तक कि इतना खून न बह जाय जिससे आँटे की चक्की चल सके और उससे पिसे आँटे की रोटी मैं न खालूँ। भगवान जाने उसकी शपथ पूरी हुई या न हुई, मगर इससे यह पता चलता है कि अत्याचार करने की शक्ति उसकी कितनी तीव्र थी। सन् ७१७ में खलीफा सुलेमान की मृत्यु हुई।

खलीफा सुलेमान के पश्चात् खलीफा उमर द्वितीय खलीफा की गद्दी पर आया। निष्पक्ष इतिहासकारों का मत है कि उमैया-वंश के सब खलीफाओं में यह सबसे सज्जन और सदाचारी था। धर्मान्धता के नाम पर होने वाले अत्याचारों के यह खिलाफ था। इसने हुक्म दिया कि सभी जाति के मुसलमानों को अरबी मुसलमानों के बराबर माना जाय। जिन लोगों ने इस्लाम स्वीकार कर लिया है, उन्हें खतना कराने के लिए मजबूर न किया जाय। दूसरे धर्मवालों के गिरजे, सिनागोज और मन्दिर न तोड़े जायँ, लेकिन उन्हें नये मन्दिर बनाने की इजाजत न दी जाय।

खलीफा उमर द्वितीय की मृत्यु के बाद खलीफा यजीद द्वितीय और उसके बाद खलीफा हिशाम खिलाफत की गद्दी पर आया।

शिया और सुन्नी

खलीफा हिशाम के समय में मुसलमानों के अन्दर सिया और सुन्नी के भेदों ने बड़ा जोर पकड़ लिया। खिलाफत के लिए पैगम्बर मुहम्मद के हाशिम वंश और दूसरे वंशों में जो झगड़ा खड़ा हुआ था और जिसमें खलीफा अली और उनके पुत्र हसन और हुसेन का बलिदान हुआ था, वही विरोध अब जोर पकड़ गया और जो लोग उमैया वंश से सम्बन्ध नहीं रखते थे, उनकी भी सहानुभूति धीरे-धीरे विरोधियों के साथ होती गई।

मगर हाशिम वंश के पक्षपातियों में भी सभी एक मत नहीं थे। कुछ हजरत मुहम्मद की पुत्री 'फातिमा' और दामाद 'अली' की संतान को ही मुहम्मद का असली उत्तराधिकारी मानते थे और कुछ लोग मुहम्मद के चचा 'अब्बास' की संतानों को भी खिलाफत का अधिकारी मानते थे। जो अली की संतानों को ही 'खिलाफत' का अधिकारी समझते थे, वे ही लोग 'सिया' कहलाये।

खुरासान में सिया-आंदोलन का आरंभ खलीफा हिशाम के समय में ही हुआ और यह आंदोलन इतनी तेजी से बढ़ा कि उसी के बल पर उमैया वंश का नाश हो गया। फिर भी खिलाफत अली के वंश में न आकर अब्बासी वंश के हाथ में चली गई।

सिया लोगों का कहना था कि पैगम्बर के उत्तराधिकारी होने का अधिकार उनकी पुत्री फातिमा और अली की संतान को है। आगे चलकर इस सम्प्रदाय ने इस्लाम के अन्तर्गत दार्शनिक मतभेदों में भी हाथ बँटाया। इब्न-सबा नामक एक व्यक्ति ने जो कि यहूदी से मुसलमान हुआ था, इन दार्शनिक मतभेदों का नेतृत्व किया। वह पैगम्बर के दामाद अली में भारी श्रद्धा रखता था। इसलिए लोगों को यह कहने का मौका मिला कि इब्न-सबा के सिद्धान्त हजरत अली के ही सिद्धान्त थे।

इब्न-सबा की परंपरा आगे बढ़ती गई और इस्लाम में सिया और खारजी जैसे सम्प्रदाय पैदा हुए। अन्त में सिया लोगों ने अरबों और ईरानियों में सदियों चले आते द्वन्द से फायदा उठाने में इतनी सफलता प्राप्त की कि १५ वीं शताब्दी में ईरान ने सिया-मत को अपना राजधर्म घोषित कर दिया।

सुन्नियों में आगे चल कर जो मतभेद हुए उनके कारण उनके चार सम्प्रदाय हो गये। १—कूफा (मेसोपोटेमिया) के रहने वाले अबू हनीफ़ा (७६७ ई०) के अनुयायी 'हनफी' कहे जाते हैं, जिनकी संख्या भारत और पाकिस्तान में अधिक है २—मदीना-निवासी इमाम मल्लिक (७१५ से ७९५ ई०) के अनुयायी 'मालिकी' कहे जाते हैं। मोरक्को और मुसलिम स्पेन में इनकी संख्या अधिक थी। इमाम मालिक ने कुरान के अतिरिक्त पैगम्बर के वचन 'हदीस' को धर्म-निर्णय के लिए बहुत आवश्यक बतलाया, जिसके कारण हदीसों के जमा करने का काम शुरू हुआ। ३—इमाम-शाफ-ई (७६७ से ८२० ई०) के अनुयायी 'शाफ-ई' कहे जाते हैं। ये पैगम्बर के आचरण (सुन्नत) को सर्वाधिक अनुकरणीय मानते हैं। ४—चौथा सम्प्रदाय इमाम अहमद-इब्न-

हम्बल' के अनुयायियों का है जो 'हम्बली' कहलाते हैं। जो अल्लाह को साकार मानते हैं। धर्म के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय के लिए कुरान, सुन्नत, कयास (अनुमान या दृष्टान्त) द्वारा किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के अतिरिक्त चौथे प्रमाण 'इज्माअ' (बहुमत) को भी आवश्यक मानते हैं।

अबू-मुस्लिम

इसी समय अबू मुसलिम नामक एक व्यक्ति, जो इस्फाहान का रहने वाला था, एक तीर्थ-यात्री-दल के साथ 'मक्का' गया। यह एक २० वर्ष का नवयुवक था। उसी समय मक्का में अब्बासी वंश का मुहम्मद अब्बासी भी आया हुआ था।

अबू-मुसलिम को देखकर मुहम्मद अब्बासी ने तुरन्त उसे अपने पक्ष में कर लिया और भविष्यवाणी की कि यही तरुण अब्बासी-राज्य की स्थापना करेगा।

मुहम्मद अब्बासी ने अबू-मुसलिम को ईराक में अपना प्रचार करने को भेजा। वह जानता था कि अब अरबों का नहीं ईरानियों का पलड़ा भारी होने जा रहा है। अबू-मुसलिम दो साल (७४२ से ७४४ ई०) अपने गुरु की ओर से ईरान में प्रचार करता रहा। वह अच्छा वक्ता, संगठन करने में निपुण और ईरानी होने के कारण ईरानियों का विश्वास-पात्र था।

उस समय भीतर-ही-भीतर लोग उमैया-वंश के शासन से असन्तुष्ट हो रहे थे। उमैया-वंश का झंडा सफेद था। शीयों ने अपने झंडे के लिये काला रंग अपनाया था। अबू-मुसलिम ने देखा कि यही अच्छा मौका है, उसने अपना काला झंडा फहरा दिया। चारों तरफ से 'गाजी' लोग अबू-मुसलिम के झंडे के नीचे आने लगे।

७४७ ई० में अबू-मुसलिम ने अपनी विजयिनी सेना को लेकर सारे 'खुरासान' और 'सोग्द' की राजधानी 'मेर्व' में प्रवेश किया और जुमे की नमाज पर उमैया खलीफा की जगह अब्बासी-खलीफा के नाम से 'खुतबा' पढ़ने का हुक्म दिया।

उमैया-खलीफा ने अपनी सारी सेना के साथ इस्फहान के पास मोर्चा लिया, मगर अबू-मुसलिम के सेनापति 'कहतबा' ने सन् ७४९ में खलीफा की सेना को हराकर 'नहावन्द' का किला भी ले लिया और सन् ७५० ई० में मेसोपोटैमिया की लड़ाई में अन्तिम फैसला हुआ, जहाँ उमैया-वंश का अन्तिम खलीफा 'मेरवान' द्वितीय मारा गया।

मगर अब 'अब्बासी-वंश' और खलीफा अली के वंश के बीच में संघर्ष शुरू हुआ। शारिक नामक एक व्यक्ति अली का पक्षपाती था और अबू-अब्बास को नहीं चाहता था। इसने एक नया अरब-संगठन कायम किया। इस संगठन में थोड़े ही समय के अन्दर ३० हजार आदमी अली के नाम पर इस झंडे के नीचे चले आये। बुखारा और ख्वारेजम के अरब-सरदारों और नागरिकों ने शारिक का साथ दिया मगर शारिक ने अपने प्रोग्राम में समानता को स्थान दे कर सम्पत्ति शाली वर्ग को अपने विरुद्ध कर लिया था। अबू मुसलिम ने शारिक के विद्रोह को दबाने के लिये सेनापति 'जियाद' को पूरी शक्ति के साथ भेजा। जियाद ने बड़ी क्रूरता से विद्रोहियों को दबाया। बुखारा नगर में आग लगा दी गई। विद्रोहियों को पकड़ कर शहर के दरवाजों पर लटका दिया गया।

समरकन्द में भी इसी प्रकार से विद्रोहियों का दमन किया गया। उमैया-वंश का खातमा हुआ। अली के वंशजों का स्वप्न भंग हुआ और खलीफा की गद्दी पर अब्बासी-वंश का पहला खलीफा 'सफ्फाह' खलीफा की गद्दी पर आसीन हुआ।

खलीफा घोषित होने के साथ ही 'कूफा' में अबुल-अब्बास ने उमैया-वंश के सर्वथा उच्छेद करने का हुक्म दिया। ये लोग 'कर्वला के शहीदों' को भूल नहीं सकते थे। सफ्फाह के चचा 'दाऊद' ने मक्का में, 'अब्दुल्ला' ने फिलीस्तीन में और 'अबू-मुसलिम' ने खुरासान में एक-एक उमैया को चुन-चुन कर कत्ल किया। हाशिमी खानदान ने उमैया खानदान को उच्छिन्न करके ही संतोष नहीं लिया बल्कि उमैया खलीफाओं की कब्रों को खुदवा कर उनके मुरदों के कंकालों को चूर-चूर कर के हवा में उड़ा दिया। उमैया के पक्षपातियों ने चीन के सम्राट् 'स्वेन-चुङ्ग' की सहायता से बुखारा, सोग्द और फरगाना में जबर्दस्त

विद्रोह किये, लेकिन समरकन्द के शासक जियाद ने इस विद्रोह को बड़ी क्रूरता से दबा दिया।

इस प्रकार उमैया-वंश के शासन का प्रारम्भ और अवसान हुआ।

उर्दू-भाषा और साहित्य

भारतवर्ष की एक प्रसिद्ध भाषा, जिसका जन्म मुसलमान आक्रमणकारियों के भारत में प्रवेश होने के पश्चात् हिन्दी और उर्दू के सहयोग से हुआ।

तुर्की भाषा में 'उर्दू' शब्द का प्रयोग सैनिक-छावनी के लिये किया जाता है। मुसलमानों की सैनिक-छावनियों में बहुत से भारतीय भी आते-जाते रहते थे और उनके पारस्परिक सम्पर्क से एक-दूसरे को समझने के लिये आपस में शब्दों का आदान-प्रदान होता रहता था। इसी आदान-प्रदान से इन सैनिक-छावनियों में हिन्दी भाषा और फारसी के सहयोग से एक नवीन भाषा का जन्म हो रहा था। इन्हीं सैनिक-छावनियों के नाम पर इस सैनिक-भाषा का नाम भी उर्दू पड़ा।

उर्दू भाषा की उत्पत्ति आपसी व्यवहार और बोलचाल के लिये हुई थी और ११ वीं शताब्दी से १५ वीं शताब्दी तक वह केवल इसी काम में आती रही। मुसलमानों को हिन्दी शब्दों का ज्ञान कराने के लिये 'खुसरो' नामक विद्वान ने 'खालिक बारी' नामक कोष तैयार किया था। जिसकी हजारों प्रतिलिपियाँ गाँव-गाँव में बँटवाई गई थी और यह कहावत प्रसिद्ध हो गई थी कि—

"इकलख ऊँट, सवालाख गाड़ी। तिस पर लादी खालिक बारी इस कोष में पंजाबी, हिन्दी तथा ब्रजभाषा के शब्दों के लिये अरबी और फारसी के पर्य्याय दिये हुये हैं।

खालिक-बारी-कोष के रचयिता—खुसरो को कई लोग अमीर खुसरों ही मानते है, जब कि कई लोगों के मत से यह अमीर खुसरो से भिन्न कोई दूसरा ही खुसरो है।

उर्दू-भाषा जब तक देवन नागरी लिपि में लिखी जाती रही और उसकी वाक्य रचना हिन्दी-व्याकरण पर आधारित रही तब तक हिन्दी के साथ उसका कोई बुनियादी अंतर नहीं हुआ। मगर जब वह फारसी लिपि में लिखी जाने लगी और फारसी-व्याकरण के अनुसार उसका संगठन होने लगा, तब उसका एक स्वतंत्र रूप स्थापित हुआ।

स्वतंत्र भाषा के रूप में उर्दू की स्थापना कब हुई और उसका साहित्यिक रूप कब से आरम्भ हुआ—इस विषय में भी बड़ा मतभेद है। कुछ लोगों के मत से ईसा की १२ वीं शताब्दी में 'मसऊद' नामक कवि ने 'रेखता' में एक कविताओं का संग्रह तैयार किया और १३ वीं शताब्दी के अन्त में फारसी के महाकवि अमीर खुसरो ने फारसी मिश्रित हिन्दी में कविताएँ कीं। तभी से बहुत से लोग उर्दू भाषा के साहित्यिक रूप का प्रारम्भ मानते हैं।

मगर दूसरी विचारधारा के लोगों का कहना है कि मसऊद और अमीर खुसरो की कविताओं की रचनाएँ हिन्दी छन्दः शास्त्र के अनुसार हिन्दी भाषा में की गई हैं। केवल फारसी के कुछ शब्दों का समावेश हो जाने के कारण इन रचनाओं को उर्दू-साहित्य का प्रारम्भ मानना गलत चीज है। ये रचनाएँ तो हिन्दी-साहित्य की हैं। वास्तविक उर्दू का प्रारम्भ तभी माना जा सकता है, जब फारसी छन्द-शास्त्र के अनुसार फारसी लिपि में इस साहित्य कीरचना की गयी हो और यह समय ईसा की १६ वीं शताब्दी के अन्त में प्रारम्भ होता है, जबकि गोलकुण्डा के सुल्तान मुहम्मद अली कुतुबशाह ने फारसी छन्दः शास्त्र के अनुसार उर्दू-भाषा में कविता करना प्रारंभ किया।

उर्दू के पूर्वरूप

अपना साहित्यिक रूप प्राप्त करने के पूर्व, हिन्दू और मुसलमानों के पारस्परिक व्यवहार की यह भाषा कई नामों में से होकर इस रूप में आई है। पहले-पहल मुसलमानी शासक इस भाषा को 'हिन्दुई' के नाम से सम्बोधित करते थे। उसके बाद इस भाषा का नाम 'रेखता' रक्खा गया। रेखता का अर्थ 'मिली जुली' या 'गिरी-पड़ी' होता है और फ़ारसी में एक गजल का नाम भी रेखता है यह शब्द इस भाषा को तब मिला जब कविता या गजलों के लिए इस भाषा का प्रयोग होने लगा और चूंकि इसकी साहित्यिक अवस्था का प्रारंभ दक्षिण में हुआ इसलिए इसका नाम 'दक्खिनी' भी कहलाया।

अंग्रेज लोगों के भारत में आने पर उन लोगों ने इस भाषा को 'इंडोस्तानी' कहना प्रारंभ किया और इसी शब्द से 'हिन्दोस्तानी' का रूपान्तर हुआ।

उर्दू के प्रारंभिक रूप में पञ्जाबी का प्रभाव सबसे अधिक दिखाई पड़ता है। १५ वीं और १६ वीं सदी में दक्षिण के जिन कवियों और लेखकों ने उर्दू में अपनी रचनाएँ कीं, उन रचनाओं में पञ्जाबी का असर पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है।

१७ वीं और १८ वीं शताब्दी में व्रज भाषा का गहरा प्रभाव उर्दू पर पड़ा और बड़े-बड़े विद्वान कविता में 'ग्वालिअरी' भाषा को अधिक शुद्ध मानने लगे।

मगर इसी समय उर्दू पर मुसलमान लोग अपना विशेष अधिकार समझने लगे। उनके धर्म-ग्रन्थ और रीति-रस्म सम्बन्धी ग्रन्थ भी इसी भाषा में तैयार हुए और इसी मजहबी जोश में आकर कुछ मुसलमान विद्वान और कवियों ने उर्दू को एक नया-रूप देने के लिए उसमें से भारतीय भाषा के शब्दों को निकाल कर फारसी और अरबी के शब्दों को भरना प्रारंभ किया। दक्षिण में भारतीय भाषाओं के शब्दों से युक्त जिस उर्दू का प्रयोग किया जाता था, उसे उत्तर भारत के लोग हीन समझने लगे और दिल्ली में उद्‌भूत उस उर्दू-भाषा को उच्च माना जाने लगा जो फ़ारसी शब्दों और फारसी संस्कृति की झलक से ओतप्रोत थी। संस्कृत और हिन्दी के शब्दों का बहिष्कार धीरे-धीरे होता गया, जिसके परिणामस्वरूप २० वीं शताब्दी का आरंभ होते-होते केवल कुछ प्रत्यय और क्रियाएँ ही हिन्दी की बच गईं और केवल उन्हीं से ही उर्दू और फारसी की भिन्नता मालूम होती है।

उर्दू शायरी का परिचय

हिन्दी साहित्य ही की तरह उर्दू शायरी में भी अनेक प्रकार के छन्दों का व्यवहार होता है जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं।

(१) गजल—उर्दू पद्य का प्रारम्भ पहले गजल से हुआ। फिर धीरे-धीरे कसीदे, मसनवी, मर्सिया, नज्म, सानेट और आजाद नज़्में लिखी जाने लगीं।

गजल का अर्थ है वह कविता जिसमें वस्ल (मिलाप) फिराक (विरह) इश्क (प्रेम) इश्तयाक (चाहत) हसरत (कामना) और यास (निराशा) का वर्णन हो। उर्दू गजल में १६ लहरें (छन्द) होती हैं।

(२) मतला—मतला गजल के प्रारम्भक शेर को कहते हैं। इसके दोनों मिसरे काफ़िया और रदीफ से संयुक्त होते हैं। जैसे,

कमर बाँधे हुए चलने को यां सब यार बैठे हैं।
बहुत आगे गये बाकी जो वह तैय्यार बैठे हैं।

यह मतला का उदाहरण है।

(३) शेर—शेर में भी दो मिसरे होते हैं। पहले मिसरे में काफिया और रदीफ न होकर केवल दूसरे मिसरे में होते हैं।

(४) कसीदा—कसीदा उर्दू का एक छन्द है जिसमें १५ से अधिक चरण होते हैं। जन्मगाँठ, विजयोत्सव तथा खुशी के अवसर पर जो प्रशंसात्मक कविता कही जाती है उसे कसीदा कहते हैं। उर्दू-साहित्य में 'कसीदा' के प्रवर्त्तक महाकवि "सौदा" माने जाते हैं। ये कसीदों के बादशाह कहे जाते थे।

(५) मसनवी—उस कविता को कहते हैं, जिनमें दो चरण एक साथ रहते हैं और दोनों चरणों का तुक मिलाया जाता है। प्रेमकथाओं को लिखने में अक्सर मसनवियों का प्रयोग होता है। उर्दू में मीर गुलाम हसन "हसन" की मसनवियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। इनकी मसनवियों में 'सिहरुल बयान' सबसे अधिक प्रसिद्ध है जिसमें शाहजादा "बेनजीर" और शाहजादी "बद्रेमुनीर की प्रेम कथाओं" का वर्णन है।

(६) मर्सिया—दुःख, निराशा, करुणा और रंजो-गम का वर्णन जिस कविता में किया जाता है, उसे उर्दू-साहित्य में "मर्सिया" कहते हैं। करबला के मैदान में हजरत इमाम हुसैन की वीरतापूर्ण शहादत पर जो कविताएँ लिखी गईं, उन्हीं से "मर्सिया" शब्द का नामकरण हुआ।

(७) नातिया—किसी भी ग्रन्थ के मंगलाचरण के रूप में जो कविता लिखी जाती है और जिसमें अपने इष्ट का स्मरण किया जाता है, उसे "नातिया" कहा जाता है।

(८) तसव्वुफ—सूफ़ी-कवियों ने अपने सिद्धान्तों का प्रचार जिस लहजे में किया उसे तसव्वुफ कहते हैं, तसव्वुफ का अर्थ है सब कामनाओं से रहित होना और सब वस्तुओं में ईश्वर का अस्तित्व समझना। सूफ़ी दिव्य प्रेम के उपासक होते थे। इन्हें न कुफ्र से मतलब था न ईमान से। क्योंकि ये दोनों को ढोंग समझते थे। सूफ़ी का ध्येय सत्य की खोज, प्रेम और संसार से वैराग्य था। ईश्वर उसका माशूक, भक्ति उसकी शराब और जिस जगह ईश्वर से साक्षात्कार हो, वही उसका मयखाना था। मजहबी विश्वास के प्रति विद्रोह और मजहबी लोगों के प्रति उपहास की भावना यह सब उर्दू शायरी को सूफ़ी सिद्धान्त की देन है।

(९) रुबाई—गजल के दो शेरों में एक ही भाव आवे और पहले दूसरे तथा चौथे चरणों के तुकान्त मिलते हों तो उसे रुबाई कहते हैं। रुबाई की बहरें गजलों से जुदा होती हैं। फारसी-साहित्य में रुबाइयों का बादशाह "उमर खैय्याम" माना जाता है।

उर्दू का साहित्यिक विकास

उर्दू भाषा के साहित्यिक विकास पर ध्यान देने से पता लगता है कि शुरू-शुरू में इस भाषा की कविताओं की रचना हिन्दी छन्दः शास्त्र के अनुसार होने लगी। उस समय इसमें पहला नाम ख्वाजा 'मसऊद' लाहौरी का आता है, जिन्होंने सन् ११६६ में अपना काव्य संग्रह एकत्रित किया था, मगर वह इस समय उपलब्ध नहीं है।

अमीर खुसरो

इनके पश्चात् सबसे प्रसिद्ध नाम 'अमीर खुसरो' का आता है, जो भारतवर्ष में उर्दू और फारसी के प्राचीनतम कवि माने जाते हैं। अमीर खुसरो का जन्म एटा जिले के पटियाली ग्राम में सन् १२५५ ई० में हुआ था। अमीर खुसरो 'निजामुद्दीन औलिया' के शिष्य थे। उन्होंने अपनी आँखों से गुलाम-वंश का पतन, खिलजी-वंश का उत्थान और पतन और तुगलक-वंश का उत्थान देखा था। इनके समय में दिल्ली के सिंहासन पर ११ सुल्तान बैठे, जिनमें ७ की इन्होंने सेवा की थी।

फारसी-साहित्य के इतिहास में इन्हें 'तूतिये-हिन्द' की पदवी से बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त है। उर्दू में कविता लिखने वालों में ये प्रथम है। इन्होंने जो पहली उर्दू गजल लिखी वह दो भाषाओं का मेल थी। इस गजल में एक मिसरा फारसी का और एक उर्दू का था। इनकी फारसी कृतियों को छोड़कर जो दूसरी रचनाएँ हैं, वे साहित्यिक उर्दू की अपेक्षा हिन्दी के अधिक नजदीक हैं। इसीलिए कई लोग इनको फारसी के अतिरिक्त हिन्दी का कवि मानते हैं, उर्दू का नहीं। इनकी गजल के कुछ शेरों का नमूना इस प्रकार है :—

जे हाल मिस्कीं मकुन तगाफुल—
दुराय नैना बताय बतियाँ।
कि तावे हिज्रां न दारम् एजां-
न लेहु काहे लगाय छतियाँ।

चकवा चकवी दोय जने, इन मत मारो कोय,
यह मारे करतार के रैन बिछोवा होय
गोरी सोवे सेज पर मुख पर डाले केस
चल खुसरो घर आपने रैन भई चहुदेस
खुसरो रैन सुहाग की, जागी पीके संग
तन मेरो मन पीऊ को, दोउ भये इक संग।

अमीर खुसरो के बाद सैय्यद 'गेसू दराज' का नाम आता है जिनकी मृत्यु सन् १४२१ में हुई। इन्होंने निशातुल-इश्क का अनुवाद उर्दू में 'मेराजुल आशकीन' के नाम से किया है। इनकी अन्य रचनाओं में से 'चक्कीनामा' 'तिलावतुल वजूद' 'मेराजनामा, इत्यादि रचनाएँ प्राप्त हो चुकी हैं। इन सबमें सूफ़ी-विचार प्रकट किये गये हैं।

गेसू दराज दिल्ली के निवासी थे, परन्तु उनका ज्यादा समय दक्षिण में बीता था। इसी कारण उनकी भाषा को दक्खिनी उर्दू कहा जाता है।

दक्खिनी उर्दू-साहित्य

कहने को चाहे अमीर खुसरो और गेसू दराज को उर्दू का आदिकवि कह लें पर वास्तविक साहित्यिक उर्दू का पहला विकास-केन्द्र दक्षिण भारत के गोलकुण्डा नामक स्थान को ही माना जाता है। जहाँ के सुलतान मुहम्मद कुली कुतुबशाह ने दक्खिनी शैली की उर्दू में अपना "दीवान" लिखा। इस दीवान की भूमिका से मालूम

होता है कि इन्होंने सब मिलाकर कोई ५०००० शेर लिखे थे। इस दीवान की भाषा में दक्खिनी शब्दों की भरमार है और शेरों में फारसी के अनुकरण पर हाला और प्याला का जिक्र बराबर दिखलाई देता है। एक दो उदाहरण इस प्रकार हैं—

कुफर रीति क्या हौर इसलाम रीत,
हर एक रीत में इश्क का राज है
उनीदी मुज नैन तुजयाद सेती,
कहो तुम नयन में हैं कांकी खुमारी।
सम्पूरन है तुम जोत सों सब जगत,
नहीं खाली है नूरते कोई शे।
तुम्हारा मया होना मुंज चूक ऊपर,
कि मैं बाली हूँ और नांदा बिचारी।

मुहम्मद कुली कुतुबशाह के पश्चात् दक्खिनी उर्दू के क्षेत्र में अब्दुल्ला कुतुबशाह, इब्न निशाती, गवासी, मौलाना वजही, तहसीनुद्दान, सुलतान इब्राहीम आदिल शाह द्वितीय, हाशिमी इत्यादि कवियों ने अनेक दीवान और मसनवियों का निर्माण किया।

वली

मगर उर्दू साहित्य को एक स्थिर रूप देने और उसमें मधुर काव्यधारा बहाने का काम मुहम्मदअली कुतुबशाह के सौ वर्ष बाद महाकवि "वली" ने किया। जिनका नाम उर्दू साहित्य की अमर हस्तियों में है। इनका पूरा नाम महम्मद शफीउद्दीन "वली" था। इनका जन्म सन् १६६८ में औरंगाबाद में हुआ था। इन्होंने रेख्तां भाषा में एक दीवान तैय्यार किया और सन् १८२२ में दिल्ली की यात्रा की। दिल्ली में उस समय सम्राट मुहम्मद शाह "रंगीले" का युग था। दिल्ली का दरबार राजनीतिज्ञों और सेनाधिकारियों की जगह कवियों और गवैय्यों का अखाड़ा बन रहा था। मुहम्मदशाह "रंगीला" और दिल्ली के दूसरे शायर "वली" के दीवान को देखकर दीवाने हो गये और इनके दीवान को वहाँ बड़ी प्रसिद्धि मिली इस दीवान को देखकर अभी तक दिल्ली के जो शायर फारसी में कविता करते थे वे भी 'रेखतां' में कविता करने लगे।

महाकवि वली सूफी विचारधारा के थे। इनकी रचनाएँ भाषा और काव्य की दृष्टि से बड़ी मनोहर हैं। प्रकृति निरीक्षण की बहार भी इन कविताओं में बहुत हैं। जैसे—

बागे अरम से बेहतर मोहन तेरी गली है–
साकिन तेरी गली का हर आन में वली है।

× × ×

फकीरों से न हो बैरंग, लाला फस्ले होली है,
तेरा जामा गुलाबी है तो मेरा खिरका भगवा है।
न पूछो यह बगूलः है मेरा हम तौल सहरा में,
या कब्रे हजरते मजनूं है डांवाडोल सहरा में,
बियाबां के गुलों से बूए रंगे दर्द आती है।
अरी बुलबुल चमन से दिल उठा आ बोल सहरा में।

दिल्ली का उर्दू-साहित्य

उर्दू साहित्य का प्रारम्भ चाहे दक्खिन से हुआ हो मगर इसका पूर्ण विकास दिल्ली और लखनऊ के केन्द्रों में हुआ। सम्राट औरंगजेब के पश्चात् दिल्ली का शाही दरबार राजनीति और शासकों के विज्ञ व्यक्तियों से खाली होकर राग-रंग और ऐशो-आराम का अखाड़ा हो गया। राजनीति से शून्य मनमौजी सम्राट रंगीले ने तलवार और राजनीति को मराठों, रुहेलों, तथा अंग्रेजों को सौंप कर कविता करने के लिए लेखनी पकड़ ली। ऐसे वातावरण में उर्दू-कविता को फलने-फूलने का खूब अवसर मिला। आरम्भिक काल के कवियों ने जिस वाटिका की नर्सरी में साहित्य के छोटे-छोटे पौधे तैयार किये थे, उन पौधों को इस काल के कवियों ने अलग-अलग क्यारियों में लगाकर उर्दू-साहित्य की वाटिका को रंग-बिरंगे लता-कुञ्जों से सुसज्जित कर दिया। इस वाटिका में भारत की कोयल और पपीहों के साथ-साथ फारस की बुलबुलें भी हजार दास्तां चहचहाने लगीं।

दिल्ली केन्द्र के आरम्भिक काल में सिराजुद्दीन आरजू, मुबारक आबरू, शरफुद्दीन मजमून, जहूरुद्दीन हातिम, मजहर, तांबा, एकरंग इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं।

आरजू की रचना—

मैखाने आज जाकर शीशे तमाम तोड़े।
जाहिदने आज अपने दिल के फफोले फोड़े॥
तुझ जुल्फ में लटक न रहे, दिल तो क्या करे।
बेकार है अटक न रहे, दिल तो क्या करे॥

आवरू की रचना—

आया है सुबह नींद से, उठ रसमसा हुआ।
जामा गले में रात का, फूलों बसा हुआ॥
गर यह है मुस्किराना तो किस तरह जियेंगे।
तुमको तो यह हँसी है, पर है मरन हमारा॥

मजमून की रचना—

चला किश्ती में आगे से, जो वह महबूब जाता है।
कभी आँखें भर आती हैं, कभी जी डूब जाता है॥
नही हैं ओंठ तेरे पान से सुर्ख,
हुआ है खून मेरा आके लबरेज।

हातिम की रचना—

आवे-हयात जाके किसू ने पिया तो क्या?
मानिन्द खिजर जग में अकेला जिया तो क्या।

मजहर की रचना—

तोबा: की है हमने औ धूमें मचाती हैं बहार।
हाय, कुछ चलता नहीं क्या मुफ्त जाती है बहार॥
कोई लेवे दिल अपने की खबर, या दिलबर अपने की।
किसी का यार आशिक जब कहीं हो, क्या कयामत है॥

ताँबा की रचना—

बहुत चाहा कि आवे यार, या इस दिल को सब्र आवे।
न यार आया न सब्र आया, किया जी में निदान अपना॥
मुझे आता है रोना ऐसी तनहाई पै, ऐ ताँबा।
न यार अपना, न दिल अपना, न मन अपना, न जान अपना॥

दिल्ली-साहित्य-केन्द्र का मध्यकाल

दिल्ली-साहित्य-केन्द्र के आरम्भिक काल में जिन कवियों ने उर्दू-साहित्य का बीजारोपण किया था, उसका पूरा विकास मध्यकाल में अर्थात् सन् १७४३ से १८४३ तक हुआ। इस काल के महान कवियों में ४ नाम प्रकाश स्तम्भों की तरह उर्दू-साहित्य में जगमगा रहे हैं। इनका नाम १. मीर २. सौदा ३. दर्द और ४. मीर हसन था।

इन कवियों ने फारसी-भाषा के आधार पर उर्दू-भाषा को सँवारने और परिमार्जित करने में बहुत परिश्रम किया। यह काल उर्दू काव्य-कौशल की टकसाल के समान था, जिससे निकली हुई रचनाएँ आगे के परवर्ती कवियों के लिए आदर्श बन कर सिद्ध हुईं। मीरहसन की 'मस्नवी' सौदा के 'कसीदे' मीर तकी की 'गजलें' समय की चोटों की परवाह न करते हुए आज भी उर्दू के साहित्य को उसी प्रकार प्रकाशमान कर रही हैं।

ख्वाजा मीरमियां 'दर्द'

ख्वाजा मीरमियां 'दर्द' का जन्म सन् १७२१ ई० में हुआ। २८ वर्ष की अवस्था में अपने पिता की इच्छानुसार यह दरवेश बन गये और ३९ वर्ष की अवस्था में यह सूफी-मत के मुर्शिद बन गये। यह स्वयं सूफी-मत के विद्वान् थे। इससे इनका मान बहुत बढ़ गया और इनके हजारों शिष्य हो गये। उर्दू-साहित्य के इतिहास में इनका स्थान 'मीर' 'सौदा' और 'मजहर' के समान माना जाता है। इनकी रचनाओं में 'इसरारुस्सलवात' 'वारदाते-दर्द' 'नालए-दर्द' 'शमाए-महफिल' 'सईफ-ए-वारदात' इत्यादि रचनाएँ फारसी-भाषा में हैं। उर्दू में केवल इनका एक दीवान है। वह भी बहुत बड़ा नहीं है। मगर उसकी रचना महावरेदार भाषा में उच्च भावों के साथ की गई है और सूफी-विचार तथा इश्क-हकीकी का उसमें वर्णन किया गया है।

दर्द की रचना—

क्या फर्क दागो-गुल में, गर गुल में बू न हो।
किस काम का वह दिल है, कि जिस दिल में तू न हो॥
न वह नालो की शोरिश है, न वह आहों की है धूनी।
हुआ क्या "दर्द" को प्यारे, गली क्यों आज है सूनी॥
शेख काबा होके पहुँचा, हम कनिश्ते दिल में हो।
दर्द-मंजिल एक थी, टुक राह का ही फेर था॥
हम तुझ से किस हवश की फलक की जुस्तजू करें।
दिल ही नहीं रहा है जो कुछ आरजू करें।

मिर्जा मुहम्मद रफीअ "सौदा"

महाकवि 'सौदा' का जन्म सन् १७१३ ई० में दिल्ली के अन्दर हुआ था। यह शाह 'हातिम' के शिष्य थे। सन् १७७१ में यह दिल्ली से लखनऊ चले गये। नवाब आसफ-उद्दौला ने इन्हें ६ हजार वार्षिक की पेंशन तथा मलिकुश्शोअरा' की पदवी प्रदान की। नवाब आसफ-उद्दौला इनकी बड़ी प्रतिष्ठा करते थे और इनकी रचनाओं

को बड़े प्रेम से सुनते थे सन् १७८१ में लखनऊ के अन्दर इनका देहान्त हुआ।

महाकवि सौदा उर्दू भाषा में 'कसीदों' के पहले कवि थे। इनके कसीदों की सुन्दरता ने बड़े-बड़े फारसी-कसीदाकारों की रोशनी को मन्द कर दिया। रेखता-भाषा में इनका 'दीवान' इनकी कविताओं का सबसे बड़ा खजाना है। जिसमें गजल, रुबाई–पहेली, तर्जीबन्द, मुखम्मस इत्यादि सब कुछ है। इसके अतिरिक्त इन्होंने २४ मस्नवियों की रचना की है जिनमें बहुत-सी पद्य-बद्ध कहानियाँ हैं।

सौदा एक उच्चकोटि के कवि थे और उनको यह कवित्वक शक्ति ईश्वर-प्रदत्त प्राप्त हुई थी। उर्दू के कविता-क्षेत्र में 'कसीदे' इन्हीं ने प्रारंभ किये और ऐसे कसीदे लिखे कि समालोचक लोग इन्हें 'कसीदे का बादशाह' कहने लगे। उर्दू के प्रायः सभी उच्चस्तरीय समालोचकों ने इनकी प्रशंसा करते हुए इनकी उर्दू के प्रथम श्रेणी के कवियों में गणना की है। इनकी रचना—

काबू में हूँ अब तेरे, गो अब जिया तो फिर क्या,
खंजर तले किसी ने, टुक दम लिया तो फिर क्या।
'सौदा' हुए जब आशिक, क्या पाय आबरू का,
सुनता है ऐ दीवाने, जब दिल दिया तो फिर क्या।
माँगा जो मैंने दिल को, तो कहा बस यही एक दिल,
ऐसे तो मेरे कूचे में कितने हैं, उठा ला।

× × ×

गर हो शराबो–खिल्वतो, माशूक रूबरू—
जाहिद तुझे कसम है, जो तू हो तो क्या करे।
मेरी आँखों में तू रहता है, मुझको क्यों रुलाता है,
समझकर देखलो, अपना कोई भी घर डुबाता है।
अब के भी दिन बहार के, यों ही चले गये—
फिर-फिर गुल आ चुके, पर सजन, तुम चले गये।

मीर गुलामहसन 'हसन'

मीर गुलाम हसन 'हसन' भी फारसी और रेखता के मशहूर कवि थे। मीर, दर्द और सौदा की शैली पर इन्होंने अपनी कविताएँ कीं। नवाब आसफ-उद्दौला के समय में यह लखनऊ आये और वहीं इनका सन् १७८१ में देहान्त हुआ।

इनकी रचनाओं में एक दीवान है, जिसमें करीब ७ हजार शेरों का संग्रह है। मगर इनकी विशेष प्रसिद्धि इनकी मस्नवियों से हुई, जिनमें 'सिहरुल बयान' सबसे प्रसिद्ध मस्नवी है। इस मस्नवी में शाहजादा 'बेनजीर' और शाहजादी 'बद्रे मुनीर' की प्रेम-कथा का वर्णन है। इस मसनवी की सीधी सादी और भावपूर्ण वर्णन-शैली ने इनका स्थान उर्दू-साहित्य में दृढ़ कर दिया है।

मीर तकी 'मीर'

फारसी-साहित्य में शेखसादी, फिरदौसी आदि महाकवियों को जो उच्च स्थान प्राप्त है उर्दू-साहित्य में वही स्थान "मीर" और "सौदा" को प्राप्त है।

"मीर" का जन्म सन् १७१० के आसपास आगरा में हुआ था और दिल्ली की स्थिति खराब होने पर ये भी दूसरे कवियों की तरह सन् १७८० के करीब लखनऊ में नवाब आसफुद्दौला के दरबार में पहुँच गये थे। नवाब ने दूसरे कवियों की तरह इनका भी वेतन बाँध दिया था जो इन्हें जीवन भर मिलता रहा। करीब सौ वर्ष की आयु में सन् १८१० में इनका देहान्त हुआ।

'मीर' ने रेख्तां में करीब छः दीवान तथा बहुत सी मसनवियाँ और कसीदों की रचना की। इनका "अजगर-नामा" 'शोलए' इश्क, 'जोशे इश्क' इत्यादि रचनाएँ भी प्रसिद्ध हैं।

महाकवि "मीर" की प्रतिभा का पूरा दर्शन उनकी गजलों में होता है। इन गजलों में "प्रसाद" "ओज" "माधुर्य" इत्यादि कविता के सभी गुणों का दर्शन होता है। इनके कुछ शेर तो इतने अच्छे बने कि वे सुभाषितों की भाँति लोगों के जबान पर छा गये थे। भाषा की सफाई तथा महाविरों का सुन्दर प्रयोग "मीर" की अपनी विशेषता है।

एक मुसलमान समालोचक ने सौदा और मीर की तुलना करते हुए लिखा है कि—'सौदौ जहाँ एक महान आशावादी कवि थे और उनके प्रत्येक काव्य में हँसी–खुशी और संसार के उज्वलतम रूप का प्रतिबिम्ब झलकता है वहाँ मीर की कविता में निराशा, दुःख, वेदना और करुणा

की धारा प्रवाहित होती है। गजलों में जहाँ ठण्डी आहों, विरह–वेदना, असफल प्यार और करुणा के दृश्य आते हैं, वहाँ मीर का काव्य बेजोड़ है, मगर कसीदों का बादशाह "सौदा" को ही माना जायगा। प्रतिभा का विकास दोनों ही कवियों में ला-जवाब हुआ है। मगर दोनों के क्षेत्र अलग-अलग हैं। 'सौदा' ने जहाँ गुलदस्ता सजाया था वहाँ "मीर" ने माला पिरोई है। दुःख–वेदना और करुणारस के प्रवाह में मीर ने जो सफलता पाई है वह सौदा को नसीब नहीं है और आशापूर्ण जगत्, विनोद और व्यंग के चित्रण में सौदा को जो सफलता मिली है मीर उससे बहुत दूर हैं। सौदा की कविता रोते हुए को हँसा देती है जबकि मीर का हास्यरस भी एकान्तपूर्ण और डरावना होता है। सौदा आशावादी हैं मीर निराशावादी। मीर में गम्भीरता है, वेदना है करुणा है। सौदा में शोखी है, चपलता है और सजावट है। दोनों महाकवि हैं। मगर अपने-अपने क्षेत्र के अलग-अलग।

रचना

काबे जाने से नहीं कुछ शेख मुझको इतना शौक,
चाल वह कि बतला कि मैं दिल में किसी के घर करूँ।
इब्तिदाये इश्क है रोता है क्या,
आगे-आगे देखिये होता है क्या
क्या आग की चिनगारियाँ सीने में भरी हैं।
जो आँसू मेरी आँख से गिरता है शरर है।
शाने पे रक्खा हार जो फूलों का तो लचके
क्या साथ नजाकत के रगे गुलसी कमर है।
अब्र उठा था काबे से और झूक पड़ा मैखाने पर
बादः कशों का झुरमुट है गा शीशा और पैमाने पर-

मीर के पश्चात् दिल्ली साहित्य–केन्द्र में सैय्यद इंशा अलाह खाँ "इंशा" (पूरा प्रथम भाग में "इंशा" शब्द के अन्तर्गत देखें) शेख कलन्दर बख्श "गुरअत", शेख गुलाम मुसहिफी, बादशाह शाहआलम द्वितीय 'आफताब' सम्राट बहादुरशाह "जफर" इत्यादि कवियों के नाम बहुत उल्लेखनीय हैं।

दिल्ली साहित्य केन्द्र-का उत्तर काल

दिल्ली साहित्य–केन्द्र का उत्तरकाल उन्नीसवीं सदी के मध्यकाल से प्रारम्भ होता है, इस काल के महान् कवियों में मोमिन, गालिब, जौक और जफर का नाम सारे उर्दू साहित्य में प्रकाशमान है।

मोमिन

हकीम मोहम्मद मोमिन खाँ "मोमिन" का जन्म सन् १८०० में और मृत्यु सन् १८५१ में हुई। ये देहली के निवासी थे।

मोमिन रंगीन स्वभावी, हँसमुख, सौन्दर्योपासक और वजहदार तबियत के थे। उनके कलाम में दार्शनिकता का पुट नहीं मिलेगा। उनका अपना लिखने का ढंग भी जुदा था। उनके कलाम में नाजुक खयली और भावों की तराश खूब है। वे आशिकाना रंग के माहिर उस्ताद समझे जाते हैं। उर्दू साहित्य के प्रसिद्ध आलोचक अल्लामा नियाज फतहपुरी ने मोमिन के लिए लिखते हुए कहा था कि—अगर मेरे सामने उर्दू के तमाम शुअरा (शायर) मुतकद्दमीन (प्राचीन) और मुताखरीन (आधुनिक) कलाम रखकर बाइसत सयाने मीर (मीर को छोड़कर) मुझको सिर्फ एक दीवान हासिल करने की इजाजत दी जाय तो मैं बिना तकल्लुफ के कह दूँगा कि मुझे, कुलियाते मोमिन देदो, बाकी सब उठा ले जाओ।

रचना—

हँसते जो देखते हैं किसी को किसी से हम
मुँह देख-देख रोते हैं किस बेकसी से हम
खुशीन हो क्यों कर मुझे कजा के आने की
खबर है लाश पै उस बेवफा के आने की
छोड़ बुतखाने को मोमिन सिजदा काबे में न कर
खाक में जालिम न यू कदरे जबींसाइ मिला!

जौक

उर्दू के महाकवि शेख इब्राहीम जौक का जन्म सन् १७८० में दिल्ली में हुआ। शेख जौक कीचड़ में कमल की तरह उत्पन्न हुए। कमल ही की तरह विकसित हुए, कमल ही की तरह बादशाह ने इन्हें अपने सिर पर चढ़ाया और कमल ही की तरह उनका सौरभ सब दूर फैला।

शेख जौक एक गरीब सिपाही के पुत्र थे। अपनी प्रतिभा के बल पर अनेक विघ्न बाधाओं को रौंदते हुए इन्होंने शाही दरबार में प्रवेश पाया और सम्राट बहादुर शाह के कविता गुरु के आसन पर जा बैठे।

आसन तो बहुत बड़ा था मगर वेतन पहले कुल चार रुपया और बाद में ३०) मासिक मिलता था। अपने बादशाह की कविता सम्बन्धी छोटी छोटी फरमाइशें पूरी करने में इनका बहुत सा समय चला जाता था। इसीसे परेशान होकर इन्होंने यह शेर कहा था—

"जौक" मुरत्तिब क्यों के हो दीवां, शिकवये फुरसत किससे करें
बांधे गले में हमने अपने आप "जफर" के झगड़े हैं।

"जौक" कसीदों तथा गजल लिखने में उस्ताद थे। इनका अध्ययन काफी विस्तृत था। इतिहास तथा सूफी धर्म के ग्रन्थों का ये खूब मनन करते थे। भाषा सौष्ठव, माधुर्य तथा ओज पूर्ण कसीदों को लिखने में जौक बहुत आगे बढ़े हुए थे।

रचना—

किसी बेकस को ऐ बेदादगर मारा तो क्या मारा
जो आपी मर रहा हो उसको गर मारा तो क्या मारा
बड़े मूँजी को मारा नफ्से अम्मारा को गर मारा
निहंगों, अजदहा और शेर नर मारा तो क्या मारा
न मारा आप को जो खाक हो अक्सीर बन जाता
अगर पारे को ऐ अक्सीरगर मारा तो क्या मारा
तुफंगों तीर तो जाहिर न था कुछ पास कातिल के
इलाही फिर जो दिल पर ताक कर मारा तो क्या मारा

× × ×

गुल भला कुछ तो बहारें ऐ सबां दिखला गये
हसरत उन गुञ्चों पर है जो बिना खिले मुरझा गये

गालिब

मिर्जा असदुल्ला खाँ गालिब का जन्म सन् १७६६ ई० में आगरे में हुआ था। मिर्जा गालिब उर्दू शायरी में अपनी सानी नहीं रखते। उनका जिक्र छिड़ने पर उर्दू साहित्यकों का सिर विनय से झुक जाता है, हुस्न। इश्क, साकी और शराब के उस युग में वे दार्शनिक और तत्त्ववेत्ता बने रहे। गुलो बुलबुल के अफसाने में गालिब ने मानवीय जीवन के विभिन्न पहलुओं का जिक्र किस खूबी के साथ किया है कि देखकर दन्द होने लगता है। कहना पड़ता है कि गालिब, गालिब हैं उनका प्रत्येक शब्द मोतियों से तौलने के काबिल हैं।

मिर्जागालिब की शायरी पर जितनी टीका, भाष्य और तुलनात्मक समालोचनायें हुई हैं उतनी उर्दू संसार में और किसी कवि पर नहीं हुई। गालिब एक मत से सर्वश्रेष्ठ कवि माने गये हैं। गालिब ने फारसी में अधिक लिखा। उर्दू में उनका एक छोटा सा दीवान है जिसमें १८०० शेर हैं मगर वह छोटा सा दीवान भी किसी कबाड़िये की दुकान न होकर एक जौहरी की वह छोटी-सी दुकान है जहां पर प्रत्येक चीज हीरा और मोती के रूप में मिलती है।

गालिब को जीवन भर आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा मगर ऐसे कठिन समय में भी उन्होंने अपने आत्म-सम्मान को कभी नहीं खोया।

रहिए अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो
हम सखुन कोई न हो हम जुबां कोई न हो
बे दरो दीवार सा इक घर बनाना चाहिए
कोई हम साया न हो और पासबां कोई न हो
पड़िए अगर बीमार तो कोई न हो तीमारदार
और अगर मर जाइए तो नोहाख्वां कोई न हो,
इश्क से तबियत ने जीस्त का मजा पाया
दर्द की दवा पाई दर्द बे दवा पाया
यह न थी हमारी किस्मत कि विसाले यार होता
यदि और जीते रहते तो यही इन्तिजार होता।

इसी युग के अन्य कवियों में "जहीर" "अनवर" "शेफ्ता" तसकीन, नसीम, आजुर्दा, मजरूह इत्यादि के नाम प्रसिद्ध हैं।

लखनऊ साहित्य केन्द्र

जब दिल्ली की राजनैतिक स्थिति खराब होने लगी तो वहाँ के बहुत से शायर लखनऊ के नवाबों की पनाह में लखनऊ में आ गये। अवध के नवाब भी शायरी और शायरों के बड़े प्रेमी थे और उनके कारण लखनऊ भी उर्दू भाषा का एक बड़ा साहित्यिक केन्द्र हो गया।

लखनऊ साहित्य केन्द्र के कवियों में शेख इमाम बख्श "नासिख"} (मृत्यु १८३८) "मुहम्मद रजा वर्क" शेख इमदाद अली बह्र, मीर अली औसत "रश्क" इस्माइल हुसैन "मुनीर" "मिर्जा मेहन्दी हसन "आबाद" हैदरअली "आतिश" नवाब सैय्यद मुहम्मद खाँ "रिन्द" वजीर अली "सबा" नवाब असफुद्दौला "आसफ" नवाब सआदत अली खाँ, नवाब गाजीउद्दीन हैदर और नवाब वाजिदअली शाह के नाम बहुत प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त "मर्सिया" या शोक पूर्ण काव्यों के लिखने में "जमीर' "खलीक" "अनीस और दबीर के नाम उल्लेखनीय हैं।

नजीर

दिल्ली और लखनऊ के साहित्य केन्द्रों के अतिरिक्त भारत के और भी कई स्थानों पर उर्दू साहित्य के बड़े-बड़े प्रतीभाशाली शायर हुए। इन्हीं में वली मुहम्मद 'नजीर' भी एक प्रसिद्ध शायर थे। नजीर का जन्म सन् १७४० के करीब दिल्ली में हुआ और सन् १८३० में आगरे में इनका देहान्त हुआ।

उर्दू साहित्य में उस समय जो साम्प्रदायिकता की भावनाएँ पैदा हो गई थीं और उसका सम्बन्ध हिन्दी से हटाकर फारसी से और हिन्दुस्तान से हटाकर फारस से जोड़ने का जो प्रयत्न किया जा रहा था उससे महाकवि नजीर एकदम दूर थे। उनमें इन भावनाओं का लेश भी नहीं था। काव्य में उनकी सूझ निराली थी। उन्होंने किसी का अनुकरण नहीं किया, जो कुछ लिखा मौलिक लिखा। कविता में उन्होंने हिन्दू मुसलमान का कोई भेद नहीं किया। वे मोहर्रम के उपलक्ष्य में रोये भी और होली पर डफ़ भी बजाया, उन्होंने शबरात पर महताबियां छोड़ी तो दीवाली पर दीप भी संजोए। नबी, रसूल, वली, पीर और पैगम्बर के लिए जी भरकर लिखा तो कृष्ण, महादेव, नरसी, मेरां और नानक पर भी श्रद्धांजली चढ़ाई, जवानों और बूढ़ों को नसीहत देने बैठे तो लोग आश्चर्य में आ गये मानों कुरान, हदीस, वेद, गीता उपनिषद पुराण सब घोलकर पी जाने वाला कोई सिद्ध पुरुष बोल रहा है। बच्चों के लिए लिखने बैठे तो स्वयं बच्चे बन गये और तरबूज, ककड़ी, पतंगबाजी, बुलबुलों की लड़ाई सभी पर लिख डाला।

महाकवि नजीर शब्दों के जादूगर थे उनकी उपमाएँ कमाल की होती थीं। आगरे की ककड़ियों की तुलना शीरी की सर्द निगाहों और लैला की उँगलियों से करना उन्हीं का काम था।

मजनूं की सर्द आहें या लैला की उँगलिया हैं।
फरहाद की निगाहें या शीरी की फसलियाँ है॥
आगरे की ककड़ियाँ हैं।

नजीर की रचना—

होली

जब फागुन रंग झमकते हों, तब देख बहारें होली की।
और डफ के शोर खड़कते हों, तब देख बहारें होली की॥
परियों के रंग दमकते हों, तब देख बहारें होली की।
खुम-शीशे-जाम झलकते हों, तब देख बहारें होली की॥
महबूब नशे में झुकते हों, तब देख बहारें होली की।
हो नाच रंगीली परियों का, बैठे हों गुलरू रंग भरे—
कुछ भीनी तालें होली की, कुछ नाज अदा के रंग भरे।
दिल भूले देख बहारों को, और कानों में आहंग भरे॥
कुछ तबले खड़कें रंग भरे, कुछ ऐश के दम मुँह चंग भरे।
कुछ घुँघरू ताल झनकते हों, तब देख बहारें होली की॥
औ एक तरफ दिल लेने को, महबूब गवैयों के लड़के—
हर आन घड़ी गत भरते हों, कुछ घटबढ़ के कुछ बढ़बढ़ के—
कुछ नाज जतावें लड़ लड़ के, कुछ होली गावें अड़-अड़ के।
कुछ लब शोख, कमर पतली, कुछ हाथ चले कुछ तन फड़के—
कुछ काफिर नैन मटकते हों, तब देख बहारें होली की।
यह सब सामान मोहैया हो औ बाग खिला हो फूलों का॥
हर आन शराबें ढलती हों, औ टट्ट हो रंग के डूबों का—
इस ऐश मजे के आलम में, एक गोल खड़ा महबूबों का॥
कपड़े पर रंग छिड़कते हों, तब देख बहारें होली की।
गुलजार खिले हों परियों के, औ मजलिस की तैयारी हो॥
कपड़ों पर रंग के छीटों से, खुश रंग अजब गुलकारी हो—
मुँह लाल गुलाबी आँखें हों, औ हाथों में पिचकारी हो॥
उस रंग भरी पिचकारी को, अँगिया पर तक कर मारी हो।
सीनों से रंग ढलकते हों, तब देख बहारें होली की॥

भेद फकीरी

है आशिक और माशूक जहाँ, वहाँ शाह वजीरी है बाबा।
[illegible] दर्द असीरी है बाबा॥

दिन-रात बहारें चुहलें हैं और पेश सफ़ीरी है बाबा।
जो आशिक हुए सो जाने हैं यह भेद फ़क़ीरी है बाबा
हर आन हँसी, हर आन खुशी, हर वक्त अमीरी है बाबा ॥
जब आशिक मस्त फकीर हुए, तब क्या दिलगीरी है बाबा।
कुछ जुल्म नहीं, कुछ जोर नहीं, कुछ दाद नहीं, फरियाद नहीं
कुछ कैद नहीं, कुछ बन्द नहीं, कुछ जब्र नहीं, आजाद नहीं।
शार्गिद नहीं, उस्ताद नहीं, वीरान नहीं, आबाद नहीं ॥
हैं जितनी बातें दुनिया की सब भूल गये, कुछ याद नहीं—
हर आन हँसी० !

जिस सिम्त नजर कर देखे हैं, उस दिलवर की फुलवारी है।
कहीं सब्जी की हरियाली है, कहीं फूलों की गुलक्यारी है।
दिन-रात मगन खुश बैठे हैं, और आस उसी की भारी है।
बस, आपही वह दातारी है, और आप ही वह भंडारी है।
हम चाकर जिसके हुस्न के हैं, वह दिलवर सबसे आला है।
उसने ही हमको जी बख्शा, उसने ही हमको पाला है।
दिल अपना भोला भाला है, और इश्क बड़ा मतवाला है।
क्या कहिये अब 'नजीर' आगे, अब कौन समझाने वाला है।
हरआन हँसी०।

अमीर मीनाई

मुंशी अमीर अहमद 'अमीर मीनाई' का जन्म सन् १८२६ में लखनऊ के अन्दर हुआ। बचपन से ही इनको शेरो-शायरी का शौक था। सन् १८५७ के गदर के बाद लखनऊ के उजड़ने पर ये नवाब रामपुर के निमंत्रण पर रामपुर चले गये और वहाँ ४४ वर्षों तक नवाब के काव्य गुरु बनकर रहे।

अमीर मीनाई की शायरी सरल और आकर्षक है। उनकी भाषा मुहाविरेदार और प्रभाव युक्त है। कल्पना की उड़ान भी खूब है। उनका जीवन धार्मिक, सरल और शुद्ध था। मिर्जा 'दाग' के वे समकालीन थे और दोनों एक दूसरे के प्रतिद्वन्दी थे। दोनों ही अपने जमाने के बहुत बड़े गज्जाल थे। दोनों ने रामपुर और हैदराबाद में इज्जत पायी। एक लखनवी जबान में माहिर थे तो दूसरे को देहलवी जबान में कमाल हासिल था। शायरी के मैदान में दोनों ने खूब कमाल दिखलाया मगर एक दूसरे पर चोट नहीं की।

अमीर मीनाई की रचना—

खबरदार ऐ मुसाफिर ! खौफ की जा राहे हस्ती है—
ठगों का बैठका है, जाबजा चोरों की बस्ती है।
'अमीर' उस रास्ते से जो गुजरते हैं, वो लुटते हैं—
मुहल्ला वह हसीनों का, या कज्जाकों की बस्ती है।

× × ×

जो निगाह की थी जालिम, तो फिर आँख क्यों चुराई—
वही तीर क्यों न मारा, जो जिगर के पार होता।

× × ×

मस्जिद में बुलाता है हमें, जाहिदे-नाफहम—
होता जो अगर होश तो, मयखाने न जाते।

× × ×

दीदारे यार का न उठेगा मजा अमीर।
जब तक दुई का परदा उठाया न जायगा।

'दाग'

नवाब मिर्जा 'दाग' का जन्म सन् १८३१ में और मृत्यु १६०५ में हुई।

दाग गजलों के प्रसिद्ध शायर थे और ये सब गजलें शोखी और शरारत से भरी हुई रहती थीं। यह पहले रामपुर नवाब के यहाँ रहे और सन् १८८० में हैदराबाद गये। तीन वर्ष के बाद वहाँ के निजाम ने इन्हें अपना मुसाहिब बनाया और फिर कविता-गुरु के पद पर प्रतिष्ठित किया। और "जहाँ उस्ताद" बुलबुले-हिन्दोस्ताना नाजिम यार-जंग, दबीरुद्दौला और फसीहउल-मुल्क की ५ प्रतिष्ठित पदवियों से विभूषित किया। इनकी तनख्वाह साढ़े चार सौ से शुरु होकर डेढ़ हजार तक गयी।

सन् १६०५ में जब उनकी मृत्यु हुई तो सारे भारत में उर्दू साहित्यिकों में कोहराम मच गया। इनके शिष्य डा० सर इकबाल ने अपने उस्ताद की मृत्यु पर 'नोहा' लिखा जिसका एक शेर इस प्रकार है—

हूबहू खींचेगा लेकिन इश्क की तस्वीर कौन !
उठ गया नाविक फिगन, मारेगा दिल पर तीर कौन।

दाग के ४ दीवान प्रकाशित हो चुके हैं, जिनके नाम गुलजारे-दाग, आफताबे-दाग, महताबे-दाग और यादगारे दाग हैं। वैसे तो सारे भारतवर्ष में 'दाग' के शिष्यों और

शिष्यों के शिष्यों का जाल सा भरा हुआ था, मगर उनके प्रधान शिष्यों में हैदराबाद के निजाम महबूब अली खाँ 'आसफ', डा० सर महमूद इकबाल, नवाब सायल देहलवी, बेखुद देहलवी, आगा शायर देहलवी, नसीम भरतपुरी, जिगर मुरादाबादी इत्यादि प्रसिद्ध कवि में प्रधान थे।

'दाग' की रचनाएँ—

आइना तस्वीर का, तेरी न लेकर रख दिया—
बोसा लेने के लिए काबे में पत्थर रख दिया।
जिन्दगी में पास से, दम भर न होते थे जुदा—
कब्र में तनहा मुझे यारों ने करके रख दिया।

× × ×

मयखाने के करीब थी, मस्जिद, भले को 'दाग'—
हर शख्स पूछता था कि हजरत, इधर कहाँ?

× × ×

गम से कहीं निजात मिले, चैन पायें हम!
दिल खून में नहाये, तो गंगा नहायें हम।

× × ×

ऐ फलक! दे हमको पूरा गम तो खाने के लिए—
वह भी हिस्सा कर दिया, सारे जमाने के लिए।

× × ×

मर गये तो मर गये, हम इश्क में नासेह को क्या!
मौत आने के लिए, है जान जाने के लिए।

उर्दू-साहित्य का वर्तमानकाल

सन् १८५७ के गदर के पश्चात् बादशाही और नवाबी के भंग हो जाने पर उर्दू के कवियों के लिए कोई खास आश्रय स्थान नहीं रहा, मगर अँग्रेजी-राज्य और अँग्रेजी भाषा का प्रचार होने के साथ-साथ उर्दू के साहित्य ने एक नवीन दिशा को ग्रहण किया।

मौलाना अल्ताफ हुसेन 'हाली' डा० महम्मद हुसेन 'आजाद' सर सैय्यद अहमद इत्यादि लोग इस विकास के अग्रणी थे। इस काल में प्राचीनकाल की कविता के संकुचित क्षेत्र को, आशिक-माशूक तथा विरह के रोने-गाने को कम करके अन्य विषयों में भी उर्दू साहित्य का क्षेत्र बढ़ाया गया। अतिशयोक्ति तथा अनर्गल और असंभव बातों के बदले स्वाभाविक और यथार्थवादी वर्णन को विशेषता दी जाने लगी।

मुहम्मद हुसेन 'आजाद'

नवयुग के इन प्रवर्त्तकों में मौलाना मुहम्मद हुसेन 'आजाद' का नाम सबसे पहले आता है। इनका जन्म सन् १८२९ में और मृत्यु सन् १९१० में हुई। मौल्वी मुहम्मद हुसेन 'आजाद' को उर्दू-साहित्य में वही स्थान प्राप्त है, जो हिन्दी-साहित्य में भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्र को प्राप्त है।

तारीखे-अदब-उर्दू के लेखक का कथन है कि—"उर्दू जबान पर 'आजाद' के बहुत बड़े एहसान हैं। उर्दू-शायरी में इस रंग का बानी (संस्थापक) और उसमें एक नई रूह फूँकने वाला अगर कोई फिलहकीकत कहा जा सकता है तो वह मुहम्मद हुसेन 'आजाद' है।"

सन् १८५७ के विद्रोह के पश्चात् दिल्ली छोड़ने पर कुछ दिन इधर-उधर भटकने के बाद एक हिन्दू-मित्र की सहायता से लाहौर के एक कालेज में 'आजाद' प्रोफेसर हो गये। १५ अगस्त सन् १८६७ को उन्होंने लाहौर में उर्दू-साहित्य की तरक्की के लिए 'अंजुमने-उर्दू' नाम की एक संस्था स्थापित की। इस संस्था का उद्देश्य उर्दू-कविताओं में से व्यर्थ की अतिशयोक्ति और उपमाओं को निकाल कर बाहर करना तथा मुशायरों में से समस्या-पूर्त्ति की प्रथा को उठा देना और उसके बदले में नैतिक धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक तथा प्राकृतिक सौन्दर्य आदि को लिखवाने की परिपाटी डालना निश्चित किया गया।

मौलवी 'आजाद' पद्य की अपेक्षा गद्य को अधिक तर्जीह देते थे। यही कारण है कि उन्होंने अपनी अधिक शक्ति गद्य के विकास में खर्च की और उसमें 'आबे-हयात' 'नैरंगे खयाल' 'सुखुन-दाने फारस' 'दरबारे-अकबरी' और 'निगारिस्तान' जैसी अपनी रचनाएँ भेंट कीं।

सन् १८९९ में उनकी शायरी का संकलन 'नज्मे-आजाद' के नाम से प्रकाशित हुआ। सन् १८८९ में

उनको पागलपन की बीमारी हो गई और २१ वर्ष तक इस बीमारी का कष्ट भोगने के बाद सन् १८१० में इनकी मृत्यु हो गई।

'आजाद' की रचना–

इस दिले पुरदाग सा, गुलशन में एक लाल: तो हो।
पर यह गुल ऐसा है कोई, देखने वाला तो हो॥
पूछता हालत है क्या, मेरे दिले नाशाद की।
आह की हिम्मत नहीं, ताकत नहीं फरियाद की॥

मौलाना अल्ताफ हुसेन 'हाली'

उर्दू–शायरी की काया-पलट करके उसको आधुनिक युग के अनुकूल नया जामा पहनाने वाले कलाकारों में मौलाना अल्ताफ हुसेन 'हाली' का नाम सबसे प्रमुख है। इनका जन्म सन् १८३७ में पानीपत में, और मृत्यु सन् १९१६ में हुई।

मौ० हाली 'मिर्जा गालिब' के शिष्य थे, मगर जीवन के दृष्टिकोण में इन दोनों गुरु-शिष्यों के बीच में जमीन-आसमान का अन्तर था। गालिब पहले शायर थे और उसके बाद मुसलमान। हाली पहले मुसलमान थे, फिर उसके बाद शायर। गालिब नमाज और रोजे के बन्धन में नहीं थे, सामाजिक रीति-रिवाजों से वह हमेशा दूर भागते रहते थे। इस्लामी वसूल के खिलाफ उन्होंने जिन्दगी भर शराब पी, जो भी लिखा सार्वजनिक दृष्टिकोण को लेकर लिखा और एक शायर के नाते लिखा। इसलिए उनके कलाम में कहीं भी साम्प्रदायिकता की बू नहीं आई। उन्होंने हिन्दू-मुसलमान सबको समान समझा।

'हाली' कट्टर मुसलमान थे। रोजे और नमाज के पूरे पाबन्द थे। जिन्दगी भर उन्होंने शराब को छूवा तक नहीं। मुसलमानों का उत्थान करने में उन्होंने अपनी सारी जिन्दगी बिता दी और एक कौम के सपूत को जो करना चाहिए, वह सब किया कौम की दयनीय स्थिति देखकर हाली से इश्क के तराने नहीं गाये गये, । बाग को लुटेरों से घिरा हुआ देख बुलबुल नगमा भूल कर छाती फाड़कर चीख उठी और फिर उसने वह विप्लव-गान गाया कि बागवाँ तो जागे ही, गुलचीं और सैय्याद भी सकते में आ गये।

अर्जुन को रणक्षेत्र में मोहतन्द्रा से जगाने में जो कार्य गीता ने किया था, वही कार्य मुसलमानों को जगाने में 'मुसद्दसे हाली' ने किया। यद्यपि काव्य की दृष्टि से 'हाली ऊँचे कवियों की श्रेणी में नहीं आते हैं। फिर भी क्रांति का चिराग लेकर उन्होंने जिस नवीन मार्ग को खोज निकाला, उससे उनका नाम रोशन हो गया।

हाली के कई ग्रन्थों का भिन्न-भिन्न भाषाओं में अनुवाद हुआ है। 'मनाजाते बेवा' का तो १० भाषाओं में अनुवाद हुआ, जिसमें संस्कृत भी शामिल है। इनकी रूबाइयों का अनुवाद अंग्रेजी में भी छप चुका है। इनके ग्रन्थ कई विश्वविद्यालयों में पढ़ाये जाते हैं। सन् १९०४ में गवर्नमेंट ने इन्हें 'शम्सुल-उल्मा' की पदवी से विभूषित किया।

हाली की रचना—

वह कौमें जो सब राहें, तय कर चुकी हैं,
जखीरे हर एक जिन्स, के भर चुकी हैं।
हर इक बोझ बार अपने सर धर चुकी हैं,
हुईं तब हैं जिन्दा कि जब मर चुकी हैं।
इसी तरह राहे तलब में है पोया,
बहुत दूर अभी उनको जाना है गोया।
किसी वक्त जी भर के सोते नहीं वह,
कभी सैर मेहनत से होते नहीं वह।
बजाअत को अपनी डुबोते नहीं वह,
कोई लमहा बेकार खोते नहीं वह।
न चलने से थकते, न उकताते हैं वह,
बहुत बढ़ गये और बढ़े जाते हैं वह।

मगर हम कि अब तक जहाँ थे वहीं हैं,
जमादात की तरह बारे जमीं हैं।
जहाँ में हैं ऐसे कि गोया नहीं हैं,
जमाने से कुछ ऐसे फारिग नशीं हैं।
कि गोया जरूरी था जो काम करना,
वो सब कर चुके, एक बाकी है मरना।

जो गिरते हैं गिरकर सँभल जाते हैं वह,
पड़े जद तो बचकर निकल जाते हैं वह–
हर एक साँचे में जाके ढल जाते हैं वह,
जहाँ रंग बदला, बदल जाते हैं वह–

हर इक वक्त का मक़तजी जानते हैं,
जमाने का तेवर वह पहचानते हैं।

मशक्कत को, मेहनत को, जो आर समझे
हुनर और पेशे को, जो ख्वार समझे
तिजारत को खेती को, दुश्वार समझे
फिरंगी के पैसे को, मुर्दार समझे

तन आसानियाँ चाहे और आबरू भी-
वह कौम आज डूबेगी, गर कल न डूबी।

शायरों के लिए—

वो शेर वो कसायद का नापाक दफ्तर
अफ़ूनतमें संडास से जो है बदतर।
जमीं जिससे है, जलजले में बराबर
मलिक जिससे शरमाते हैं आसमाँ पर।
हुआ इल्मों-दी जिससे नाराज सारा
वो इल्मों में इल्मे-अदब है हमारा।
बुरा शेर कहने की गर कुछ सजा है
अबस झूट बकना अगर नारवाँ है,
तो वह महकमा जिसका काजी खुदा है
मुकर्रर जहाँ नेको-बद की सजा है,
जहन्नुम को भरदेगें शायर हमारे।
गुनहगार वाँ छूट जायेंगे सारे-

अकबर

सैय्यद अकबर हुसैन "अकबर" इलाहाबादी का जन्म सन् ८४८ में इलाहाबाद जिले के एक गाँव में हुआ और उनकी मृत्यु सन् १९२१ में हुई।

उर्दू-साहित्य के अन्तर्गत व्यंग और हास्यरस के कवियों में 'अकबर' इलाहाबादी का पहला स्थान है। हास्य और व्यंग के अन्दर ही उन्होंने राजनीति, समाजनीति और सारे ज्ञान को उण्डेल दिया है।

रचनाएँ—

जो देखी हिस्ट्री इस बात पर कामिल यकीं आया
उसे जीना नहीं आया, जिसे मरना नहीं आया।
पुरानी रोशनी में ओ, नई में फर्क इतना है
उसे किश्ती नहीं मिलती, इसे साहिल नहीं मिलता!

× × ×

तालीम लड़कियों की जरूरी तो है मगर,
खातूने खाना हों वे, सभा की परी न हों।
जो इल्मों मुत्तकी हों, जो हों उनके मुन्तजिम
उस्ताद अच्छे हों मगर उस्ताद जी न हों!

× × ×

हम ऐसी कुल किताबें काबिले-जब्ती समझते हैं
कि जिनको पढ़के लड़के बापको खब्ती समझते हैं।
खुदा की राह में बेशर्त्त करते थे सफर पहले
मगर अब पूछते हैं रेलवे इसमें कहाँ तक है?
मय भी होटल में पियो, चन्दा भी दो मसजिद में
शेख भी खुश रहे, शैतान भी बेजार न हो!

इकबाल

डॉ० सर शेख मुहम्मद इकबाल का जन्म सन् १८७५ में स्यालकोट पंजाब में हुआ (पूरा परिचय "इकबाल" नाम में देखें)।

आजाद और हाली की शायरी में जो सचाई और सादगी थी, इकबाल ने उसमें कल्पना, भाव और भाषा के ऐसे रंग भरे कि जिसने उर्दू-साहित्य को निराला कर दिया। अपनी कविता में प्रकृति-वर्णन और दार्शनिकता के भावों को गूँथकर उन्होंने जो गुलदस्ता तैयार किया वह उर्दू-साहित्य में अपूर्व है।

इकबाल ने अपनी शायरी से अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर ली थी। उनकी शायरी पर जर्मन सरकार ने उन्हें "डॉक्टरेट" की और भारत-सरकार ने "सर" की उपाधि प्रदान की थी।

इकबाल की शायरी के तीन दौर हैं। पहला दौर विलायत जाने के पूर्व सन् १८९९ से १९०५ तक था, जब वे पूर्ण रूप से भारतीय और राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत थे। दूसरा दौर १९०५ से १९०८ तक था, जब वे विलायत में थे और तीसरा दौर १९०८ से १९३७ तक था, जब वे एक भारतीय के स्थान पर कट्टर मुसलमान के रूप में पूर्ण साम्प्रदायिक भावनाओं से ओतप्रोत हो गये थे।

रचनाएँ (पहला दौर)

यूनानियों को जिसने हैरान कर दिया था
सारे जहाँ को जिसने इल्मोहुनर दिया था

मिट्टी को जिसकी हक ने जर का असर दिया था
तुर्कों का जिसने दामन हीरों से भर दिया था
मेरा वतन वही है, मेरा वतन वही है !

मजहब नहीं सिखाता, आपस में वैर करना
हिन्दी हैं हम और वतन है, हिन्दोस्तां हमारा ।

(दूसरा दौर)

गुजर गया अब वह दौर साकी कि छुपके पीते थे पीने वाले
बनेगा सारा जहान मयखाना, हरकोई बादहख्वार होगा।

(तीसरा दौर)

चीनो अरब हमारा हिन्दोस्तां हमारा
मुस्लिम हैं हम वतन है सारा जहाँ हमारा
तेगों के साये में हम पल कर बड़े हुए हैं
खंजर हिलाल का है कौमी निशान हमारा
हमामी कबूतर का भूखा नहीं मैं
कि है जिन्दगो बाज की जाहिदाना
झपटना, पलटना, पलटकर झपटना
लहू गर्म रखने का इक है वहाना

इकबाल के समान राष्ट्रीय कवि को इस प्रकार साम्प्रदायिकता में बदलते देखकर उनके कई साथियों को बड़ा दुःख हुआ। इसके लिए आनन्दनारायण मुल्ला ने यह शेर कहा—

हिन्दी होनेपर नाज जिसे कल तक था, हिजाजी बन बैठा।
अपनी महफिल का रिंद पुराना, आज नमाजी बनबैठा।

'चकबस्त

पं० ब्रजनारायण 'चकबस्त' का जन्म सन् १८८२ में फैजाबाद में हुआ। इनको बचपन से ही शायरी करने का शौक लग गया था और इनकी कविता का सारा झुकाव राष्ट्रीयता और देश की आजादी की ओर लगा। उनकी कविता के ऊपर एक उर्दू-समालोचक ने लिखा है कि 'चकबस्त' की जबान निहायत साफ, शुस्ता और शीरी हैं। कलाम में लखनऊ का रंग है, मगर बेहतरीन किस्म आले दर्जे की एक खास खुसूसियत यह भी है कि मुनासिब हिंदी अलफाज कलाम में मिलाकर कलाम को शीरीन और असर को दुगुना कर देते हैं।

'चकबस्त' की रचनाएँ--

भँवर में कौम का बेड़ा है, हिन्दियो ! होशियार,
अँधेरी रात है, काली घटा है और मझधार।
अगर पड़े रहे गफलत की नींद में शरसार,
तो जेरे मौजे फना होगा आबरू का मजार।
मिटेगी कौम यह बेड़ा तमाम डूबेगा,
जहाँ में भीम और अर्जुन का नाम डूबेगा।

अगर दिलों में नहीं अब भी जोश गैरत का,
तो पढ़ दो फातिहा कौमी वकारो इज्जत का।
वफा को फूँक दो, मातम करो मुहब्बत का,
जनाजा लेके चलो, कौमी दीनो मिल्लत का।
निशान मिटा दो उमंगों का और इरादों का,
लहू में गर्क सफीना करो मुरादों का,
जो दब के बैठ रहे, सर उठाओगे फिर क्या,
उदूए कौम को नीचा दिखाओगे फिर क्या।
रहेगा कौल यही उनसे उनकी माओं का,
लहू रगों में तुम्हारी है बेहयाओं का।
मिटा जो नाम तो दौलत की जुस्तजू क्या है,
निसार हो न वतन पर तो आबरू क्या है।
लगा दे आग न दिल में तो आरजू क्या है,
न जोश खाय जो गैरत से वह लहू क्या है।
फिदा वतन पै जो हो, आदमी दिलेर है वो,
जो यह नहीं तो फकत हड्डियों का ढेर है वो।

'जोश'

मौलाना शब्बीर हुसेन 'जोश' का जन्म लखनऊ के मलीहाबाद कस्बे में सन् १८९४ ई० में हुआ। जोश फारसी तथा अरबी-भाषा के विद्वान हैं। ९ वर्ष की उम्र से ही इन्होंने गजलें कहना प्रारम्भ किया था। उनके कलाम में वह सचाई है जो उनकी दार्शनिकता को उभारती है। प्राकृतिक सौंदर्य, प्रेम, देशभक्ति और शृंगार-रस के ऊपर भी इन्होंने कविताएँ की हैं।

'जोश' की रचनाएँ—

इबादत करते हैं जो लोंग, जन्नत की तमन्ना में,
इबादत तो नहीं है, इक तरह की वह तिजारत है।
जो डर कर नारे दोजख से खुदा का नाम लेते हैं,
इबादत क्या वह खाली बुजादिलाना एक खिदमत है।

मगर जब शुक्रे नेमत में, जबीं झुकती है बन्दे की,
वो सच्ची बन्दगी है, इक शरीफाना अताअत है।
कुचल दे हसरतों को, बेनियाजे मुद्दआ होजा,
खुदी को झाड़दे दामन से, मर्दे बाखुदा होजा।
उठा लेती हैं लहरें, तहनशीं होता है जब कोई,
उभरना है तो गरके मौजिए बहरेफना होजा।

इसी प्रकार मुंशी नौबत राय सक्सेना 'नजर', पं० ब्रजमोहन दत्तात्रेय 'कैफी', शेख आशिक हुसेन 'सीमाब' अकराबादी, मिर्जा मुहम्मद हाफी 'अजीज', अहसान-बिन दानिश 'एहसान', महाराज बहादुर 'बर्क', 'हफीज' जालंधरी 'सागर' निजामी, 'अख्तर' शीरानी, पं० बालमुकुन्द 'अर्श', फैज अहमद 'फैज', इसरारुल हक 'मजाज', 'साहिल' लुधियानवी, जाकिर हुसेन 'साकिर' रघुपति सहाय 'फिराक', इत्यादि शायरों ने भी अपनी अमूल्य देनों से उर्दू-साहित्य को समृद्ध बनाया।

उर्दू में गद्य-साहित्य का विकास

संसार की सब भाषाओं की तरह उर्दू में भी काव्य का विकास होने के पश्चात् गद्य का विकास होना प्रारंभ हुआ। सन् १७३२ ई० में उत्तरी भारत में फजली की 'देह-मजलिस' नामक पहली गद्य-पुस्तक निकली जो फारसी के आधार पर लिखी गई थी। इसका महत्व अधिक इसलिए है कि यह उर्दू की सबसे पहली पुस्तक थी। इसके अतिरिक्त इसमें कोई और विशेषता नहीं थी।

डा० गिलक्राइस्ट

मगर वास्तव में उर्दू-गद्य के पिता डा० गिलक्राइस्ट माने जाते हैं जो सन् १८०० में कलकत्ता में फोर्ट विलियम कालेज के खुलने पर वहाँ के प्रिन्सिपल होकर इंग्लैंड से आये थे। लार्ड वेलेस्ली ने हिन्दी और उर्दू की पाठ्य पुस्तकों की रचना का कुल भार इन्हें सौंप दिया। इस कार्य्य को इन्होंने बड़ी खूबी से सम्पन्न किया। इनके नामपर कलकत्ते में 'गिलक्राइस्ट एजुकेशन ट्रस्ट" नामक संस्था की स्थापना हुई। इन्होंने अपने सहयोगियों की सहायता से उर्दू गद्य को एक निश्चित स्वरूप देने का सफल प्रयत्न किया। इनकी रचनाओं में हिन्दुस्तानी भाषा विज्ञान, हिन्दुस्तानी व्याकरण तथा अंगरेजी हिन्दुस्तानी कोष प्रधान हैं।

डॉ० गिलक्राइस्ट के मुंशी मीर अम्मन ने अमीर खुसरो कृत चहार दरवेश का उर्दू अनुवाद कर उसका नाम 'बागोबहार' रक्खा। मीर अम्मन ने इसका अनुवाद सरल और मुहावरेदार उर्दू गद्य में किया।

मीर शेरअली जाफरी "अफसोस" भी फोर्ट विलियम कालेज में मुंशी थे। इन्होंने शेखसादी की गुलिस्तां का "बागे उर्दू" नाम से अनुवाद किया जो सन् १८०२ में प्रकाशित हुआ। सन् १८०५ में इन्होंने मि० हैरिंगटन की आज्ञा से "आराइशे महफिल" नामक एक ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखा।

इसी प्रकार डा० गिलक्राइस्ट की प्रेरणा से मीर बहादुर अली हुसैन ने "मीरहसन" की मसनवी "सेहरुल बयान" का गद्य रूपान्तर किया तथा हैदरबख्श हैदरी ने "तोता-कहानी" और हातिमताई का उर्दू गद्य में अनुवाद किया।

लाहौर के मुंशी निहालचन्द ने भी डा० गिलक्राइस्ट की प्रेरणा पर "मजहबे इश्क" नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया।

इसी प्रकार डा० गिलक्राइस्ट और फोर्ट विलियम कालेज के सहयोग से और भी कई लोगों ने उर्दू-गद्य के प्रारंभिक विकास में अपना योग प्रदान किया। इसके साथ ही दिल्ली में वहाबी मत के प्रसिद्ध विद्वान अब्दुल कादिर ने उर्दू भाषा में 'कुरान' का दूसरा अनुवाद 'मौजअल-कुरान' के नाम से किया। यह अनुवाद इतना उत्तम हुआ और इसकी भाषा इतनी सुगम और महाविरेदार रही कि कई अन्य अनुवादों के हो जाने के पश्चात् भी इसकी लोकप्रियता में कमी न आई।

इसके पश्चात् लखनऊ के सबसे अधिक प्रसिद्ध उर्दू के गद्य-लेखक मिर्जा रज्जब अली 'सरूर' हुए। इनका मुख्य ग्रन्थ 'फिसाने-अजायब' है जो फारसी की विशिष्ट कथा के अनुकूल एक तिलस्मी कहानी है।

इसके अतिरिक्त 'गुल्जारे-सरूर', 'शबिस्ताने सरूर' इत्यादि रचनाएँ इन्होंने काशी के महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह के आश्रय में रह कर कीं।

सन् [illegible] ई० में [illegible] में इनका देहान्त हुआ।

उर्दू-साहित्य के गद्य के इतिहास में इनका नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है।

सर सैय्यद अहमद खां

मगर उर्दू के गद्य-साहित्य में नया जीवन फूँकने वाले और उसे उरूज की चोटी पर पहुँचाने वाले महान व्यक्ति सर सैय्यद अहमद थे।

सर सैय्यद अहमद का जन्म सन् १८१७ में दिल्ली के अन्दर हुआ था। शुरू से ही सर सैय्यद अहमद अत्यन्त प्रतिभाशाली, तीक्ष्ण बुद्धि और गंभीर मस्तिष्क, के व्यक्ति थे। ब्रिटिश गवर्नमेंट की नौकरी में क्रमशः बढ़ते-बढ़ते सन् १८५५ में यह बिजनौर के सब जज हुए। सन् ५७ के गदर के समय में ये बिजनौर में ही थे। गदर के समय इन्होंने अँग्रेजी सरकार की बड़ी सहायता की। इसके उपलक्ष में इनको पुरस्कार में खिलअत, मोती की माला, तलवार इत्यादि के साथ जीवन भर के लिए २००) की मासिक वृत्ति मिली।

सन् १८५८ में इन्होंने विद्रोह के मूल कारणों पर 'अस्बाबे-बगावते-हिन्द' नामक पुस्तक लिखी, जिसका अँग्रेजी अनुवाद सर आकलैंड कालविन तथा मि० ग्राहम ने सन् १८७३ में किया।

सन् १८६४ में यह अलीगढ़ गये और वहाँ पर एक समिति की स्थापना की, जिसका उद्देश्य अँग्रेजी से उर्दू-भाषा में पुस्तकों का अनुवाद करना था। अलीगढ़ से इन्होंने एक पत्र भी प्रकाशित किया और कुछ दिनों तक इसके सम्पादक भी रहे।

सन् १८६६ में ये इंग्लैंड गये। वहाँ इनका अच्छा सत्कार हुआ और सी० एस० आई० की पदवी प्राप्त हुई। सन् १८७० में विलायत से वापस लौटकर इन्होंने 'सोशल रिफार्मर' (तहजीबुल एखलाक) नामक पत्र निकाला, जिसमें धर्म सुधार सम्बन्धी लेख प्रकाशित होने लगे। इससे बहुत से मुसलमान धर्माधिकारी इनके विरुद्ध हो गये और इन्हें 'शैतानों का सेनापति' कहने लगे। इन्हें मार डालने की भी धमकी दी गई, मगर यह अपने पथ से विचलित न हुए।

सन् १८७५ में अलीगढ़ में 'मुस्लिम कालेज' की स्थापना हुई और इसके बाद इनका सारा जीवन इसी संस्था की सेवा में बीता। सन् १८८८ में इनको गवर्नमेंट से के० सी० एस० आई० की उपाधि मिली।

उर्दू-साहित्य के इतिहास में सर सैय्यद अहमद का नाम एक प्रकाश-स्तंभ की तरह जगमगा रहा है। इनके मधुर स्वभाव ने तत्कालीन कई विद्वानों और कवियों को आकर्षित करके उनकी सेवाओं को साहित्य के उत्थान में लगा दिया। इनमें नवाब मुहसिनुल-मुल्क, चिराग अली, नजीर अहमद, जकाउल्ला और मौलाना 'हाली' प्रधान थे।

सर सैय्यद अहमद की रचनाओं में 'अस्बाबे बगावते हिन्द', 'बिजनौर का इतिहास', 'आसार' 'उस्सनादीद' इत्यादि रचनाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं। सन् १८५५ में इन्होंने 'आईने-अकबरी' तथा 'तारीखे-फिरोज-शाही' का सम्पादन किया। इनका सबसे बड़ा ग्रन्थ 'तफसीरुल कुरान' है। इसकी ७ जिल्दें लिखी जा चुकी थीं, फिर भी यह अपूर्ण ही रहा। सर सैय्यद अहमद की लेखन-शैली बड़ी सरल, सुगम और प्रभावशाली थी। इनकी लेखन-शैली का परवर्ती लेखकों पर बड़ा प्रभाव पड़ा।

सर सैय्यद अहमद की प्रेरणा से मुहसिनुल-मुल्क, मीर मेंहदी अली, विकारूल-मुल्क नवाब मुश्ताक हुसेन, मौलवी चिराग अली इत्यादि महान् लेखकों ने भी अपनी रचनाओं से उर्दू-साहित्य को बहुत समृद्ध किया।

इनके पश्चात् उर्दू-साहित्य के गद्य के इतिहास में दो प्रकाशपूर्ण नक्षत्रों की तरह प्रोफेसर मोहम्मद हुसेन 'आजाद' और मौलाना 'हाली' का नाम चमकता है, जिनका परिचय हम इसी लेख में पहले दे चुके हैं।

इसके पश्चात् शमशुल-उल्मा नजीर अहमद ने करीब तीन दर्जन पुस्तकें लिखकर उर्दू-साहित्य के विकास में अपना महत्वपूर्ण योग प्रदान किया। १९ वीं सदी के उत्तरार्द्ध के यह प्रसिद्ध लेखक थे।

सर सैय्यद अहमद के साथी मौलाना शिबली नोबानी ने इस्लाम के इतिहास का गवेषणापूर्ण अनुसन्धान किया और कई ऐतिहासिक ग्रन्थों का निर्माण किया। साहित्यिक रचनाओं में 'शेरुल-अजम' इनकी प्रसिद्ध रचना है, जो पाँच भागों में विभाजित है और जो इनकी विद्वता, गवेषणा और मनन-शीलता का स्मृति-स्तंभ

है। इनमें सारे फारसी-साहित्य की आलोचना है, जो सुगम उर्दू में लिखी गई है।

इसी प्रकार सैय्यद सुलेमान नदवी, मौलवी मुहम्मद जकाउल्ला, गुलाम इमाम शहीद, मनोहरलाल जुत्सी, गयाराम निगम इत्यादि कई लेखकों ने अपनी रचनाओं से उर्दू के गद्य-साहित्य को समृद्ध किया।

उर्दू की पत्र-पत्रिकाएँ

उर्दू-भाषा का सबसे पहला अखबार 'मिरातुल अखबार' के नाम से सन् १८२१ में राजा राममोहन राय के प्रबन्ध में निकलना प्रारंभ हुआ।

सन् १८३८ ई० में दिल्ली से 'देहली-उर्दू अखबार' के नाम से उत्तरी भारत का पहला उर्दू अखबार निकला, जिसके सम्पादक सैय्यद बाकर हुसेन थे। यह साहित्यिक पत्र था। सन् १८३७ ई० में सर सैय्यद अहमद ने भी दिल्ली से 'सैय्यदुल-अखबार' नाम से एक साप्ताहिक पत्र निकाला जो १३ वर्ष तक चला।

सन् १८५० ई० में लाहौर से 'कोहेनूर' नामक साप्ताहिक पत्र निकला, जिसके मालिक हरसुख राय भटनागर थे। उर्दू का एक मात्र अखबार होने से देशी-राज्यों में इसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। मुंशी नवलकिशोर शुरू-शुरू में इसी के आफिस में काम करते थे।

सन् १८५६ ई० में मुंशी नवलकिशोर ने लखनऊ से 'अवध अखबार' प्रकाशित किया। पं० रामनाथ 'शरशार' के सम्पादक होने से इसका प्रचार अत्यधिक बढ़ा।

सन् १८७७ में लखनऊ से हास्य-रस का सुप्रसिद्ध पत्र 'अवध पंच' निकला, जो उर्दू में हास्य-रस का पहला पत्र था। इसके सम्पादक मुन्शी सज्जाद हुसेन स्वयं भी हास्य रस के सजीव रूप थे। इनकी भाषा टकसाली उर्दू थी। धर्मान्धता का इनमें नाम तक न था। इसके लेखों में स्वतंत्रतापूर्वक विचार प्रकट किये जाते थे।

सन् १८८३ में लखनऊ से 'हिन्दुस्तानी' नामक साप्ताहिक पत्र निकला। इसके सम्पादक गंगाप्रसाद वर्मा थे। इस पत्र में सामयिक राजनैतिक विषयों पर भी लेख लिखे जाते थे। इनके साथ-साथ ही [illegible] हिन्द' अलीगढ़ से 'इंस्टीट्यूट गजट' और 'तहजीबुल एखलाक' नामक पत्र भी प्रकाशित होने लगे।

सन् १८८७ ई० में महबूब आलम ने 'पैसा' नामक अखबार का प्रकाशन प्रारंभ किया। इस पत्र का खूब प्रचार हुआ, जिससे यह दैनिक भी हो गया और इसके दफ्तर से कुछ मासिक पत्र भी निकलने लगे।

मासिक पत्रों में भी उर्दू के कई मासिक पत्र निकले, मगर वे दीर्घजीवी नहीं हुए। फिर भी इनमें सर सैय्यद अहमद का 'तहजीबुल-एखलाक' लाहौर से निकलने वाला मौ० अब्दुल कादिर का 'मखजन', हैदराबाद से निकलने वाला 'अफसाना' मुन्शी दयानारायण निगम का 'जमाना', इत्यादि मासिक पत्रों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। लखनऊ के नवलकिशोर प्रेस ने भी उर्दू-साहित्य की जो सेवा की, वह उर्दू-साहित्य के इतिहास में कम महत्वपूर्ण नहीं है।

उरगपुर

भारतवर्ष के दक्षिणी अञ्चल में त्रिचनापल्ली के पास स्थित एक प्राचीन नगर जो इस समय 'उरय्यूर' के नाम से प्रसिद्ध है।

उरगपुर प्राचीन काल में पाण्ड्य-साम्राज्य की राजधानी थी। कालिदास ने इन्दुमती के स्वयंवर में एक पाण्ड्य राजा का उल्लेख किया है और उसमें उसकी राजधानी 'उरगपुर' बतलाई है। इस राजधानी को और उसके साथ-साथ पाण्ड्यों की सत्ता को भी करिकाल चोल ने ई० सन् सौ के लगभग नष्ट कर दिया, तब से कई सदियों तक पाण्ड्य राजा चोलों के माण्डलिक बनकर रहे। इसका उल्लेख 'प्लाइनी' ने भी किया है। इससे मालूम होता है कि कालिदास प्लाइनी के पहले ईसा के पूर्व पहली सदी में हुआ था। क्योंकि उसने पाण्ड्यों की राजधानी 'मदुरा' का उल्लेख न कर उरगपुर का उल्लेख किया है।

११वीं सदी के आरम्भ में चोल-राजा राजराज ने दक्षिण भारत में अपना साम्राज्य कायम किया और उसकी तीन राजधानियों में उरगपुर भी एक राजधानी थी।

उर्फी शीराजी

शीराज का निवासी एक प्रसिद्ध कवि जो सन् १५८५ में फतेहपुर सीकरी में आया और अकबर के प्रसिद्ध दरबारी 'फैजी' की सेवा में रहने लगा। उसके पश्चात सन् १५८६ में वह कवियों के प्रसिद्ध आश्रयदाता महाकवि 'रहीम' खानखाना के दरबार में शामिल हो गया। इसके पश्चात अकबर के दरबार में उसको दरबारी-कवि का स्थान मिल गया।

शीराजी फारसी-भाषा के कसीदों और गजलों का उस्ताद था। उसकी जोरदार भाषा और नवीन उपमाओं की रचना ने फारसी-भाषा में एक नवीन धारा को प्रवाहित किया। गंभीर दार्शनिक विचारों को काव्य-पूर्ण मधुर भाषा में अभिव्यक्त करना, उसकी खास विशेषता थी और इसी विशेषता ने उसको लोकप्रिय बना दिया था। उसकी रचनाओं के संग्रह में २६ कसीदे, २७० गजलें, ३२० शेर और ३८० रुबाइयाँ संगृहित हैं।

केवल २६ वर्ष की उम्र में सन् १५६१ में इस उदीयमान कवि की मृत्यु हो गई।

उरस का मेला

ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती की स्मृति में अजमेर में लगने वाला मुसलमानों का एक विशाल मेला।

'ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती' के स्मारक में अजमेर के अन्तर्गत एक बहुत बड़ी दरगाह बनी हुई है जो विश्व के समस्त सुन्नी मुसलमानों का एक महान् आकर्षण-केन्द्र है।

ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती इस्लाम के अन्तर्गत एक बहुत पहुँचे हुए फकीर थे और यह विश्वास किया जाता है कि भारतवर्ष में इस्लाम की जड़ जमाने में उन्हीं का प्रधान हाथ था। इसीलिए इनके नाम के प्रति मुसलमानों की अगाध श्रद्धा है और उनकी स्मृति में जब यह मेला लगता है, तब सारे हिंदुस्तान के मुसलमानों की भावनाएँ उमड़ पड़ती हैं। इस अवसर पर देश के कोने-कोने से लाखों मुसलमान यहाँ पर उपस्थित होकर ख्वाजा के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं और अपने तथा अपने बच्चों के लिए दुआ मांगते।

उलुगबेग

महान विजेता 'तैमूर' का पोता और सम्राट शाहरुख का पुत्र, जिसका शासन-काल सन् १४४७ से १४४६ तक है।

'उलुगबेग' ने अपने पिता के राजत्व-काल में ४१ वर्ष (सन् १४०६ से ४७) तक मध्य एशिया में समरकन्द के गवर्नर की तरह 'अन्तर्वेद' का शासन किया। उलुगबेग को ज्योतिष और गणित के विकास में बड़ी दिलचस्पी थी। तारों और ग्रहों के ठीक–ठीक वेध के लिए उसने एक बहुत बड़ी वेधशाला समरकन्द के पास कोहक नदी के ऊपर सन् १४२६ में बनवाई थी। इसके दरबार में वेधशाला के विद्वान काजी गयासुद्दीन, मोहिउद्दीन काशानी और यहूदी सलाउद्दीन रहते थे। यहीं पर सन् १४३७ में ज्योतिष की एक महत्वपूर्ण सारिणी तैयार की गई। यह सारिणी पूर्वी देशों में बनी हुई सभी ग्रह–सारिणियों से अधिक पूर्ण और शुद्ध थी। इसका पहला संस्करण प्रोफेसर ग्रीप्स ने १७वीं शताब्दी के मध्यकाल में आक्सफोर्ड में छपवाया था। डा० टामस हाइड ने सन् १६६५ ई० में इसका लैटिन अनुवाद प्रकाशित कराया।

उलुगबेग के बनाये हुए महल, मस्जिद, मदरसे वास्तु--कला के अत्यन्त सुन्दर नमूने हैं। जिस प्रकार उसके पिता ने 'हिरात' को भव्य बनाया, उसी प्रकार उलुगबेग ने समरकन्द को अपने समय का सबसे अधिक सांस्कृतिक केन्द्र बना दिया। उसके महलों को सजाने के लिए चीन के सुन्दर चित्रकार और कलाकारों ने आकर वर्षों तक काम किये। उसका दरबार उस समय के साहित्यकारों और कवियों से भरा-पूरा रहता था।

शाहरुख की मृत्यु के पश्चात सन् १४४७ में वह समरकन्द को छोड़कर हिरात में अपने पिता की गद्दी पर बैठा। उलुगबेग बड़े कोमल स्वभाव का आदमी था। कला और विज्ञान के पीछे वह दीवाना था, मगर उसमें सैनिक और राजनैतिक योग्यता बिल्कुल न थी और इसीसे वह २ वर्ष से अधिक शासन न कर सका।

पहले तो उजबक-जाति के लोगों ने समरकन्द पर आक्रमण करके उसके सब कला-केन्द्रों को नष्ट कर दिया। उसके

बाद उसके लड़के अब्दुल लतीफ ने उसकी हत्या करवा दी और खुद गद्दी पर बैठ गया।

उल्लूर–एस० परमेश्वरैया

मलयालम-साहित्य के एक सुप्रसिद्ध विद्वान और कवि जिनका जन्म सन् १८७७ में और मृत्यु सन् १९४९ में हुई।

केरल के साहित्यिक लोगों का विश्वास है कि केरली–साहित्य के तीन स्तम्भ १ आशान, २ वल्लतोल और ३ उल्लूर हैं। इनका जन्म केरल में तिरुवनन्तपुरम् के समीप उल्लूर नामक कस्बे में हुआ था। वे केरल वर्मा के आज्ञाकारी शिष्य थे। अपने कालेजी जीवन से ही इन्होंने कविताएँ बनाकर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित करवाना प्रारम्भ कर दिया था। सुभद्रा–शतकम्, स्यमन्तकं–मणिप्रवालम्, इत्यादि इनकी उस समय की रचनाएँ हैं, मगर इनके सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ उमा–केरलम् और मंगल–मञ्जरी नामक काव्य हैं।

इसके अतिरिक्त राम-चरित और कण्णश्श रामायणम् पर भी बहुत सी बातें वे लोगों के सामने लाये और उनकी भूमिकाएँ भी स्वयं लिखीं जो केरली-साहित्य की महान रचनाएँ समझी जाती हैं।

शुरू-शुरू में उल्लूर शब्दालंकारों, अर्थालंकारों और शाब्दिक मायाजाल में पड़कर अपनी कविताओं की रचना करते रहे, मगर उसके बाद ज्यों-ज्यों उनकी आयु बढ़ने लगी त्यों-त्यों उनकी रचनाओं में गम्भीरता का प्रवेश होने लगा। उनके अन्य काव्यों में 'कबीर दास' नामक काव्य में कबीर साहब का और 'विचार-धारा' नामक काव्य में एक हरिजन-बालिका का चित्रण बड़े सुन्दर ढंग से किया गया है।

अपने जीवन के अन्तिम काल में उन्होंने मलयालम-भाषा के साहित्य पर एक वृहत् ग्रन्थ की रचना की, जिसका प्रकाशन केरल-विश्व-विद्यालय ने किया। मलयालम-साहित्य का इस प्रकार गवेषणात्मक और प्रामाणिक इतिहास अब तक कोई भी नहीं लिख सका था।

एक प्रतिभा-सम्पन्न कवि और विद्वान गवेषक के रूप में मलयालम-साहित्य में उल्लूर एस० परमेश्वरैया का नाम बहुत ऊँचे स्थान पर है।

उषवदत्त

शक क्षहरात-राजवंश के दूसरे नरेश नहपान की पुत्री दक्षमित्रा का पति। जिसका दूसरा नाक ऋषभदत्त भी था। इसका समय ईसा की पहली या दूसरी शताब्दी के करीब माना जाता है।

उषवदत्त के कई शिलालेख नासिक और पूना के आस-पास प्राप्त हुए हैं जिनसे पता चलता है कि उस काल में मालवा के राजाओं के आक्रमण महाराष्ट्र पर हो रहे थे और उत्तमभद्र उन्हें रोकने का प्रयत्न कर रहे थे। राजा नहपान ने उत्तमभद्रों की सहायता के लिए उषवदत्त को भेजा था जिसमें उषवदत्त ने विजय प्राप्त कर सम्राट नहपान का आधिपत्य आधुनिक अजमेर तक फैला दिया था। अजमेर के पुष्कर क्षेत्र में उषवदत्त ने अनेक दान भी किये थे।

उसमान खलीफा

इस्लाम के तीसरे खलीफा, जो उमर के पश्चात् खिलाफत की गद्दी पर आये। जिनका शासन-काल सन् ६४४ से ६५२ तक था।

खलीफा उसमान ने उमैय्यावंशी शासक म्वाविया को सीरिया का शासक बनाकर दमिश्क भेजा था। उसके पूर्व दमिश्क रोमन-क्षत्रप की राजधानी थी और वहाँ का शासन रोमन, कानन के अनुसार होता था। रोमन-सामन्त-शाही और अरब कबीलाशाही शासन-पद्धतियों में एकदम भिन्नता थी। रोमन लोग शासन करते-करते आराम और विलास पसन्द हो गये थे। वहाँ की समाज-व्यवस्था ने एक निश्चित रूप ग्रहण कर लिया था। अरब कबीलाशाही सीधा-सादा और चलता-फिरता जीवन पसन्द करती थी। म्वाविया ने समझ लिया कि यहाँ के सामन्तशाही ढाँचे को कबीलाशाही ढाँचे में किसी प्रकार बदला नहीं जा सकता था। अतः उसने दमिश्क में रोमन-सामन्तशाही ढाँचे

को ज्यों का त्यों रहने दिया और स्वयं भी राजसी ठाठ से रहने लगा।

मगर पैगम्बर के दामाद और उनके कट्टर अनुयायी 'हजरत अली' को यह बात बहुत बुरी लगी। वे चाहते थे कि हमारी सल्तनत चाहे रोम पर हो चाहे ईरान पर, वह अरबी कबीलों की सादगी और समानता की भावना को कभी न छोड़े। इस सैद्धान्तिक विवाद पर अली और म्वाविया में स्थायी वैमनस्य हो गया, जिसके परिणाम, इस्लाम के परवर्ती इतिहास में बड़े भयंकर रूप से घटित हुए।

खलीफा उसमान के समय में खुरासान और तुर्कों के राज्य पर भी अरबों ने प्रहार किया। सन् ६५२ में अबदुल्ला नामक सेनापति ने ख्वारेज्म को हराया। इसी समय बलख के लोगों ने भी खलीफा की अधीनता स्वीकार कर ली। उसमान के शासन-काल में इस्लाम का रहा—सहा आदर्शवाद भी समाप्त हो चला था। उसमान ने अपने परिवार के धन-वैभव को बहुत बढ़ाया, जिससे अरबों में भीतर ही भीतर आपसी द्वेष और ईर्षा बढ़ने लगी जिसके फलस्वरूप इस तीसरे खलीफा को भी कत्ल कर दिया गया।

उसमानअली पातशाह

सुप्रसिद्ध रियासत हैदराबाद के निजाम मीर महबूब अलीखाँ 'असफ' के पुत्र उसमान अलीखाँ जिनका जन्म सन् १८८६ में और गद्दी-नशीनी सन् १९११ में हुई।

निजाम उसमान अली पातशाह हैदराबाद स्टेट के अन्तिम शासक हैं। ये बड़े विद्याप्रेमी, साहित्यसेवी और कट्टर मुसलमान मनोवृत्ति के शासक रहे। इनके समय में हैदराबाद स्टेट की शिक्षा सम्बन्धी और साहित्यिक उन्नति बहुत हुई। २२ सितम्बर सन् १९१८ को सुप्रसिद्ध उसमानिया युनिवर्सिटी की स्थापना इन्हीं के नाम पर की गयी। उर्दू-भाषा के विकास में इन्होंने पूरी तरह से हाथ बटाया। प्रथम यूरोपीय महायुद्ध में ब्रिटिश गवर्नमेंट को ६० लाख रुपये का चन्दा देकर इन्होंने अपनी राजभक्ति का परिचय दिया था। द्वितीय महायुद्ध में भी इन्होंने सरकार की भरपूर मदद की।

कट्टर मुसलमान होने के कारण निजाम का आर्य्य समाज पर स्वाभाविक कोप रहता था। एक बार कुछ ऐसी घटना हो गई, जिससे सारे हिन्दुस्तान का आर्य्यसमाज भड़क उठा और बाहर से निजाम स्टेट में सत्याग्रह करने के लिए हजारों सत्याग्री आने लगे। इस सत्याग्रह से सारे निजाम राज्य में खलबली मच गई। अन्त में आर्य्य समाज के अनुकूल शर्तों पर निजाम को आर्य्यसमाज से संधि करनी पड़ी।

अंग्रेजी राज्य के द्वारा भारत को स्वाधीनता प्रदान करने के साथ ही हैदराबाद मुस्लिम-षड़यन्त्रों का अड्डा हो गया और यहाँ के मुसलमान निजाम के तत्वावधान में इस सुयोग के अन्दर सारे भारत पर मुसलमानी-साम्राज्य की स्थापना के स्वप्न देखने लगे। 'कासिम रिजवी' नामक एक महत्वाकांक्षी सरदार के नेतृत्व में "रजाकार लीग" नामक संस्था की स्थापना हुई। इन रजाकारों ने थोड़े दिन तक हैदराबाद में बड़े आतङ्क का प्रदर्शन किया। उस समय के कासिम रिजवी के बयान ऐसे मालूम पड़ते थे मानों वह ईसा की बारहवीं सदी के अन्दर बोल रहा है। सरदार पटेल कुछ दिनों तक यह तमाशा देखते रहे, उसके बाद उन्होंने हैदराबाद में पोलिस-कार्य्यवाही करने का आदेश दिया। चार ही दिन की कार्य्यवाही में सारा पासा पलट गया। बिना किसी खास लड़ाई के कासिम रिजवी गिरफ्तार कर लिया गया और निजाम ने आत्मसमर्पण कर स्वाधीन भारत में अपनी रियासत का विलीनीकरण स्वीकार कर लिया।

उसमानिया युनिवर्सिटी

हैदराबाद में निजाम स्टेट द्वारा स्थापित भारत वर्ष का एक प्रसिद्ध विश्वविद्यालय जिसकी स्थापना सन् १९१८ में हुई।

२२ सितम्बर सन् १९१८ के फर्मान के अनुसार हैदराबाद में 'उसमानिया यूनिवर्सिटी' की स्थापना हुई, इस युनिवर्सिटी की यह विशेषता रही कि इसमें प्रत्येक विषय की शिक्षा उर्दू के माध्यम से दी जाती है। हालां कि अंग्रेजी की शिक्षा भी अनिवार्य थी। इस युनिवर्सिटी

के साथ एक कालेज है जिसे उसमानिया युनिवर्सिटी कालेज कहते हैं। तत्कालीन भारत-सरकार ने इस विश्व विद्यालय की परीक्षाओं तथा डिगरियों को मान्यता प्रदान कर दी थी।

पाठ्यग्रन्थों के अभाव की पूर्ति के लिए इस विश्व-विद्यालय में एक अनुवाद-समिति कायम की गई जिसमें एक प्रसिद्ध विद्वान के सम्पादकत्व में आठ अनुवादक काम करते थे। पांच वर्षों में इस समिति ने एफ० ए० और बी० ए० की परीक्षाओं के योग्य पाठ्यग्रन्थों का उर्दू में संग्रह कर डाला। प्राचीन तथा वर्तमान, प्राच्य तथा प्रतीच्य इतिहास, गणित, विज्ञान, दर्शन आदि सभी विषयों पर पुस्तकें तैय्यार की गईं। इस समिति ने २०० के करीब पाठ्यग्रन्थों की उर्दू में रचना की।

निजाम स्टेट का भारत में विलयन होने के पश्चात् इस विश्व विद्यालय का रूपान्तर हो गया। अब यह केवल उर्दू का ही केन्द्र न रहकर समस्त प्रान्तीय भाषाओं का केन्द्र हो गया!

[ऊ]

ऊडरफ (टी० टी० ऊडरफ)

अमेरिका के पेंसिलवेनियाँ क्षेत्र का एक मशहूर मिस्त्री, जिसका समय सन् १८५६ के आस-पास है।

टी० टी० ऊडरफ ने सबसे पहले अमेरिका में रेल-गाड़ियों में सोने की सुविधा के लिए 'स्लीपिंग-कोच' गाड़ियों का आविष्कार किया। अमेरिका के सुप्रसिद्ध उद्योगपति कार्नेगी का भी इसमें सहयोग था जो उस समय पेंसिलवेनियाँ रेलवे में सर्विस कर रहे थे।

ऊमर खलीफा

इस्लाम के दूसरे प्रसिद्ध खलीफा, जिनका समय सन् ६४२ से ६४४ तक है।

पैगम्बर के धर्म और शासन को आगे बढ़ाने में हजरत ऊमर का काफी हाथ था। इसलिए पैगम्बर की अत्यन्त प्रियपुत्री 'फातिमा' के पति हजरत अली को फिर भी खिलाफत से वंचित कर ऊमर को 'खलीफा' बनाया गया।

खलीफा ऊमर के समय में इस्लाम एक विशुद्ध धार्मिक संस्था के रूप में न रह कर विश्व-विजयी सैनिक-संगठन के रूप में बदल चुका था। राजधानी 'मदीना' में जिधर देखो उधर ईरानी, तुर्क और रोमन-गुलाम बड़ी संख्या में दिखाई पड़ते थे। अब इस्लाम, पैगम्बर के जमाने का इस्लाम नहीं था जब कि इस्लाम स्वीकार करते ही आदमी सामाजिक समानता का अधिकारी माना जाता था। अरबी मुसलमानों और नव मुसलिमों के बीच में भेद-भाव की दीवारें अब अधिक गहरी होती जा रही थीं।

हजरत ऊमर केवल दो साल तक ही खिलाफत के शासक रहे। इसी समय में इन्होंने सीरिया, फीनिशिया और जेरूसलेम पर इस्लाम की विजय का डंका बजाया इनके सेनापतियों ने मिस्र और ईरान पर धावा मार कर इस्लाम धर्म का प्रचार किया। कहा जाता है कि सिकन्दरिया का संसार-प्रसिद्ध पुस्तकालय इन्हीं के समय में विध्वस्त किया गया। नील और लाल सागर के बीच की नहर इन्हीं के समय में फिर से खोली गई।

सन् ६४४ में एक ईरानी-गुलाम ने अपने परिवार और अपनी जाति पर किये गये अत्याचार का बदला लेने के लिए ऊमर को मार डाला। इसकी बड़ी जबर्दस्त प्रतिक्रिया हुई। अरबों ने ईरानी-जाति से इसका बड़ा भयंकर बदला लिया और ईरान से जरथोस्टी-धर्म को नष्ट करने का संकल्प कर लिया।

ऋग्वेद

वैदिक सभ्यता का सबसे आदि और पूज्य-ग्रन्थ। आर्य्य सभ्यता के मूल स्तम्भ चार वेदों में सबसे प्रथम और प्राचीन। जिसको हिन्दू परम्परा मनुष्य कृत न मान कर अपौरुषेय मानती है।

वेद हिन्दू संस्कृति के मूलाधार हैं। ऋग्वेद इन चारों वेदों में प्राचीनतम है। ऋग्वेद एक ग्रन्थ न होकर एक विशालतम ग्रन्थ समूह है। भाषा तथा अर्थ की दृष्टि से समस्त वैदिक साहित्य में यह अनुपम माना जाता है। इसके दो प्रकार के विभाग उपलब्ध होते हैं।

१—अष्टक, अध्याय और सूक्त

२—मण्डल, अनुवाक और सूक्त

पूरा ऋग्वेद आठ भागों में विभक्त है जिन्हें अष्टक कहते हैं। हर एक अष्टक में आठ अध्याय हैं। इस प्रकार ऋग्वेद में आठ अष्टक और चौंसठ अध्याय हैं।

दूसरे विभाग में समस्त ऋग्वेद दस खण्डों में विभक्त है, जिन्हें मण्डल कहते हैं। मण्डल में संगृहीत मंत्र समूह को सूक्त कहते हैं। इन सूक्तों के खण्ड को ऋचाएँ कहते हैं। ऋग्वेद में सूक्तों की संख्या खिल सूक्तों को मिलाकर १०२८ है तथा मंत्रों की संख्या १०५८० है।

ऋग्वेद के ऋषिगण भिन्न-भिन्न कुटुम्बों में सम्बद्ध हैं। एक कुल के ऋषियों के द्वारा दृष्ट मंत्रों का संग्रह एक मण्डल में किया गया है।

प्रथम मण्डल और दशम मण्डल में भिन्न-भिन्न कुटुम्बों के ऋषियों के मंत्रों का संग्रह है। लेकिन दूसरे से लेकर सप्तम मण्डल तक एकही कुटुम्ब के ऋषियों द्वारा दृष्ट मंत्रों का संकलन है। इन ऋषियों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं। (१) गृत्समद (२) विश्वामित्र (३) वामदेव (४) अत्रि (५) भारद्वाज और (६) वसिष्ठ। छहों ऋषि दूसरे तीसरे, चौथे, पांचवें, छठें और सातवें मण्डल से सम्बद्ध हैं। आठवें मण्डल में कण्ववंश और अङ्गिरा गौत्र के ऋषियों के मंत्र हैं। नवम मण्डल में सोम विषयक मंत्रों का ही संकलन है। सोम का मतलब है पवमान अर्थात् पवित्र करने वाला। सोम विषयक होने ही से इस मण्डल का नाम पवमान मण्डल रक्खा गया है। दशम मण्डल के मंत्र नाना ऋषि कुलों से सम्बद्ध हैं इसमें केवल देवताओं की स्तुति नहीं है बल्कि अन्य विषयों का भी समावेश है। ऋग्वेद के दूसरे मण्डल से लेकर सातवें मण्डल तक का अंश सबसे प्राचीन माना जाता है और दशम मण्डल सब से आर्वाचीन माना जाता है।

श्रीमद्भागवत में लिखा है कि महर्षि वेदव्यास ने वेदों के विभाग कर ऋग्वेद अपने शिष्य पैल को प्रदान किया था। पैल ने ऋग्वेद को दो भागों में विभक्त करके अपने शिष्य इन्द्रप्रमिति और वास्कलि को दिया। वास्कलि ने अपनी पढ़ी संहिता को चार भागों में बांटा और उन चार भागों को अपने चार शिष्यों को दे दिया। इन्द्रप्रमिति ने अपनी संहिता को अपने पुत्र माण्डुकेय को पढ़ाया। माण्डुकेय ने उस संहिता को अपने पुत्र शाकल्य को पढ़ाया। शाकल्य ने और पांच संहिताओं का संकलन कर अपने मुद्गल, गालव, वात्स्य, शालीम और शिशिर नामक पांच शिष्यों को पढ़ाया। इस प्रकार ऋग्वेद अनेक शाखाओं में विभक्त हुआ।

शौनक मुनि ने अपने चरणव्यूह नामक ग्रन्थ में लिखा है कि ऋग्वेद के आठ भेद या स्थान हैं उनके नाम (१) चर्चा (२) श्रावक–चर्चक (३) श्रवणीय (४) पार (५) क्रमपाठ (६) क्रमजटा (७) क्रमरथ और (८) क्रमदण्ड हैं। ऋग्वेद की पाँच शाखाएँ हैं जिनके नाम (१) आश्वलायनी (२) सांख्यायनी (३) शाकल्या (४) वास्कल्या और (५) माण्डका है। इसी प्रकार उसके मंडल, अध्याय और सूक्तों का भी वहाँ वर्णन किया गया है। चरणव्यूह के मत से ऋग्वेद के अनेक अध्याय इस समय प्राप्त नहीं होते।

इस प्रकार चरणव्यूह में बतलाई हुई पाँच शाखाओं में

से एक सिर्फ "शाकल" शाखा इस समय उपलब्ध है। शेष का पता नहीं चलता। आज इसका पता लगाना बड़ा कठिन है कि प्राचीन काल में ऋग्वेद का क्या आकार था।

इस समय ऋग्वेद की सिर्फ शाकल या शौनक ऋषि की शाखा उपलब्ध है जिसमें १०२८ सूक्त और १०५८० मंत्र हैं।

ऋग्वैदिक आर्यों के देवता प्राकृतिक शक्तियों के मूर्त रूप थे। इन देवताओं में द्यौस, वरुण, मित्र, सूर्य, सवित्, पूषिन, इन्द्र, रुद्र, मरुत, पर्जन्य, पृथ्वी, अग्नि, सोम इत्यादि प्रमुख थे। ये सब देवता प्रकृति की भिन्न-भिन्न महाशक्तियों के प्रतीक थे और सांसारिक कष्टों से बचाने, विरोधियों का नाश करने, धरती को शस्य-श्यामल बनाने इत्यादि अनेकानेक बातों के लिए मंत्रों द्वारा स्थान-स्थान पर इनकी स्तुति की गई है।

ऋग्वेद के सूक्त छन्दोंबद्ध मंत्रों में हैं। प्रत्येक मंत्र में साधारणतः चार पद हैं। छन्दों में विशेषतः त्रिष्टुभ, 'गायत्री' और "जगती" का उपयोग हुआ है। ऋग्वेद की भाषा प्राचीनतम आर्यों की साहित्यक भाषा है। जिसका अन्तिम रूप क्लॉसिकल संस्कृत में विकसित हुआ। पाणिनी ने जिसका व्याकरण निर्माण कर उसे निश्चित रूप दिया। सरल और मनोहर भाषा में ऋग्वेद के सूक्त अत्यन्त मार्मिक हैं। ऊषा के रूप में गाये गये छन्द प्राचीन साहित्य में अनुपम हैं। इन्द्र वाले मंत्र शक्ति के परिचायक हैं और वरुण सम्बन्धी मंत्र शालीनता से ओत-प्रोत हैं। दसवें मण्डल में एक अत्यन्त मनोरम सूक्त" जुआरी" का है। जिसके अन्दर हृदय स्पर्शी गायन में द्यूत सम्मोहक आकर्षण का करुण वर्णन किया गया है। मृत्यु सम्बन्धी मंत्र अत्यन्त गम्भीर और रहस्यपूर्ण है। इन ऋग्वैदिक मंत्रों की रक्षा के लिए ऋषियों ने "पद" "क्रम" "जटा" धन आदि पाठों का निर्माण किया। ऋग्वेद के दशवें मण्डल में ही वह प्रसिद्ध 'पुरुष सूक्त" है जिसमें पहली बार वर्णव्यवस्था के उदय का उल्लेख हुआ है।

विश्व साहित्य की रूपरेखा

सामवेद में भी ७५ ऋचाओं को छोड़कर शेष सब मंत्र "ऋग्वेद" के हैं।

ऋग्वेद का समय

ऋग्वेद की ऋचाएँ सब एक ही समय में नहीं लिखी गयीं। भिन्न-भिन्न समयों में इनकी रचना हुई। फिर भी साधारणतया इसका रचना काल मैक्स मूलर ने ईस्वी सन् से २००० वर्ष पहले से लेकर ई० सन् से १४०० वर्ष पूर्व तक बतलाया है मगर लोकमान्य तिलक ने ज्योतिष और गणित के प्रबल तर्कों के आधार पर मैक्स मूलर का खंडन करते हुए ऋग्वेद के अधिकांश सूक्तों की रचना का काल ईसा से पाँच हजार से छः हजार वर्ष पूर्व तक सिद्ध किया है।

ऋतु संहार

महाकवि कालिदास द्वारा रचित उनकी पहली काव्य-रचना, जिसके सम्बन्ध में कई विद्वानों की यह राय है कि यह रचना कालिदास की नहीं है। क्योंकि इसकी भाषा, भाव और उपमाओं से कालिदास की अन्य रचनाओं का मेल नहीं खाता।

मगर कुछ लोगों की राय है कि कालिदास ने अपनी प्रारंभिक अवस्था में इसी काव्य से अपनी काव्य-कला का प्रारम्भ किया। यह काव्य ६ सर्गों में विभक्त है। कवि ने अपनी प्रिया को सम्बोधित करते हुए इन छः सर्गों में ग्रीष्म से आरंभ कर वसन्त ऋतु तक छहों ऋतुओं का बड़ा स्वाभाविक, अकृत्रिम और सरल भाषा में वर्णन किया है।

ऋतु-संहार का सबसे पहला सम्पादन सन् १७९२ में सर विलियम जोन्स ने किया था। सन् १८४० में पी० फानवेबन के द्वारा ऋतु-संहार का एक लैटिन और जर्मन-पद्यानुवाद सहित संस्करण प्रकाशित किया गया। निर्णय-सागर प्रेस से भी संस्कृत टीका के साथ इसका संस्करण प्रकाशित हुआ था।

ऋतु-विलास

मलयालम-भाषा में 'वल्लतोल नारायण' मेनोन के द्वारा लिखा हुआ 'ऋतु-विलासम्' नामक काव्य जो कालिदास के संस्कृत-ऋतु संहार के आधार पर रचा गया।

एउक्रतिदोस

मध्य एशिया में ग्रीक सेल्युक वंश का एक सरदार जो पीछे जाकर शासक हो गया। इसका शासनकाल ईसवी पूर्व १६६ से लेकर ई० पू० १५६ तक है।

उस समय ग्रीक बैक्ट्रेरियन-वंश के सम्राट दिमित्रि और सेल्युकीय वंश के राजा ऐंटीओक चतुर्थ के बीच में प्रतिद्वन्द्विता चल रही थी। ऐंटीओक एउक्रतिदोस का फुफेरा भाई था। ऐंटिओक चतुर्थ ने एउक्रतिदोस के जिम्मे दिमित्रि के राज्य को जीतने का भार सौंपा और स्वयं पश्चिम में विजय के लिए प्रस्थान किया। १६७ ई० पूर्व में एउक्रतिदोस ने सीस्तान, बलोचिस्तान, हिरात और बैक्ट्रिया के प्रदेश जीत लिए। उस समय दिमित्रि तक्षशिला में था। इस समाचार को सुनते ही, वह अपनी सेना लेकर बैक्ट्रिया की ओर चला। मगर रास्ते में हिन्दूकुश के पास वह एक लड़ाई में मारा गया।

अब एउक्रतिदोस का कोई प्रतिद्वन्दी नहीं रहा। उसकी शक्ति इतनी बढ़ गई थी कि ऐंटीओक चतुर्थ भी अब उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता था। इसलिए १६६ ई० पूर्व में एउक्रतिदोस ने अपने आपको वसीलेउस मेग्लोस (महाराधिराज) की पदवी से घोषित किया। उसने बैक्ट्रेरिया के पास अपने नाम की एक नगरी बसाई। इसके समय के जो चाँदी के सिक्के मिले हैं, उस सिक्के की एक तरफ हैट पहने हुए एउक्रतिदोस का चेहरा है और दूसरी ओर दौड़ते हुए घोड़े पर हाथ में लम्बे भाले लिए दो सवारों की मूर्तियाँ हैं। इसके ऊपर की ओर अर्ध गोलाकार पाँति में लिखा है 'वसीलेउस् मेग्लोस्' और नीचे 'एउक्रतिदोस'।

महाराजाधिराज घोषित करने के पश्चात् ई० सन् पूर्व १६५ में एउक्रतिद ने भारत की ओर अभियान किया। हिन्दूकुश पार करके वह पहले कपिशा पहुँचा। जहाँ दिमित्रि के पुत्र अगथोकल से उसकी मुठभेड़ हुई। अगथोकल युद्ध में मारा गया और कपिशा एउक्रतिदोस के हाथ में आई।

उसके बाद उसने गान्धार को जीता। उस युद्ध में वहाँ का राजा अपोलोदोत मारा गया। उसका प्रान्त सिन्ध भी उसने जीत लिया। लेकिन झेलम से जहाँ मिनान्डर की सीमा शुरु होती थी, वहाँ मिनान्डर ने उसे आगे बढ़ने नहीं दिया।

इसके बाद एउक्रतिद को पता लगा कि पार्थियन राजा मिथ्रदात ने उसके राज्य पर हमला करके हिरात नदी के पश्चिमी भाग को छीन लिया है। यह खबर सुनकर एउक्रतिद भारत छोड़कर अपने राज्य की तरफ रवाना हुआ जहाँ ई० सन् पूर्व १५६ में मिथ्रदात के साथ लड़ाई करते हुए मारा गया।

एउथुदिम

मध्य एशिया में ग्रीक बैक्टेरियन वंश का एक राजा जिसका समय ई० पूर्व २२५ से १८६ तक है।

सिकन्दर महान् की मृत्यु के पश्चात् उसका मध्य एशिया का साम्राज्य सेल्यूकस इत्यादि उसके सेनापतियों में बँट गया। मगर सेल्यूकस के पश्चात् उसके पुत्र एएटीओक प्रथम और उसके पौत्र एएटीओक द्वितीय के समय में यह शासन कमजोर हो गया। जिसका फायदा उठाकर बैक्ट्रिया के गवर्नर दिवोदोत ने ग्रीक- बैक्ट्रियन राजवंश की स्थापना की।

दिवोदोत बैक्ट्रिया का गवर्नर होने के साथ-साथ एएटीओक द्वितीय का दामाद भी था और दिवोदोत की पुत्री 'एउथुदिम' को ब्याही थी।

दिवोदात प्रथम के पश्चात् उसका पुत्र द्वितीय दिवोदात राज्य को ठीक तरह से नहीं सम्हाल सका। उसका बहनोई एउथुदिम उसका भारी प्रतिद्वन्दी था। अन्त में उसने दिवोदात द्वितीय को मार डाला और स्वयं राज्य का शासक बन बैठा।

एउथुदिम और उसके पुत्र दिमित्रि का शासनकाल ग्रीक बैक्ट्रियन राजवंश के बड़े वैभव का समय था। उसके साम्राज्य में आधुनिक ताजिकिस्तान, उजबेकिस्तान, तुर्कमानिस्तान, अफगानिस्तान, सीस्तान इत्यादि के बहुत से हिस्से सम्मलित थे।

उसके बाद एउथुदिम ने अपनी सेना और कोष को बढ़ाकर अपने राज्य को शक्तिशाली बनाने का प्रयास किया। उत्तर में उसकी सीमा सोग्द और फरगाना तक थी। फरगाना की उपत्यका खेती और फलों की उत्पत्ति के लिए बहुत प्रसिद्ध थीं। लेकिन इससे भी अधिक उसकी समृद्धि का कारण चीन को जाने वाला रेशम-पथ था जो कि इसके भीतर से गुजरता था।

उस समय बैक्ट्रिया (बाह्लीक देश) आज की तरह मरु-कान्तार जैसा देश नहीं था। अपनी उर्वरता के कारण इसे पोलितिमेतस (बहु मूल्यवान) कहा जाता था। अपनी हजारों नहरों के कारण इसका नाम सहस्त्रभुज और हजारों नगरों के कारण इसका नाम सहस्त्रनगर भी पड़ गया था। इस राज्य के अन्दर बदक्शा में पद्मराग-मणि की खदानें, खुरासान में फिरोजे की खदानें और यमगान में वैडूर्य-मणि जैसी मूल्यवान खदानें थीं। इन सब कारणों से एउथुदिम का राज्य अत्यन्त सम्पत्तिशाली और वैभवपूर्ण हो गया था।

ग्रीक बैक्ट्रेरियन राजाओं के सिक्के सोने के नहीं, बल्कि बड़े ही सुन्दर चाँदी के होते थे। मुद्रा में सुन्दर रूप अंकित करना एउथुदिम के समय में जिस उच्च कोटि पर पहुँचा था, वह फिर नहीं पहुँच सका।

एउथुदिम मेंडर नदी के तट पर मेग्नेशिया नगरी के युद्ध में ई० सन् १८९ में मारा गया। उसकी मृत्यु के कुछ पहले ऐंटीओक तृतीय ने उसे कई बार पराजित किया और उसके साम्राज्य के बहुत से हिस्सों को कब्जे में कर लिया, पर अन्त में इन दोनों के बीच में सन्धि हो गई और ऐंटीओक तृतीय ने एउथुदिम के पुत्र दिमित्रि को अपनी कन्या देने का वचन दिया।

एकनाथ

दक्षिण भारत के एक सुप्रसिद्ध सन्त, अनेक धर्मग्रंथों के रचयिता, जिनका जन्म सन् १५३३ ई० में पेठण नामक स्थान पर हुआ और मृत्यु सन् १५९९ में हुई।

एकनाथ सुप्रसिद्ध भक्त भानुदास के प्रपौत्र और सूर्यनारायण के पुत्र थे। इनका जन्म मूल नक्षत्र में हुआ था। इसलिए ऐसा कहा जाता है कि इनके जनमते ही इनके पिता का देहान्त हो गया और कुछ समय पश्चात् इनकी माता का भी देहान्त हो गया। इसलिए इनके लालन-पालन का भार इनके पितामह चक्रपाणि के ऊपर पड़ा।

एकनाथ बचपन से ही बड़े श्रद्धालु और भगवद् भक्त थे। यह १२ वर्ष की अवस्था से ही किसी सद्गुरु की तलाश में थे।

उस समय देवगढ़ के हाकिम जनार्दन स्वामी की ब्रह्मनिष्ठा, विद्वत्ता और सदाचार की सब दूर बड़ी प्रशंसा थी। एकनाथ भी किसी ईश्वरी प्रेरणा से प्रेरित होकर बिना किसी के कहे-सुने देवगढ़ चले गये और सन् १५४५ में जनार्दन स्वामी के शिष्य बन गये। ६ वर्ष तक वे गुरु के पास रहे और वहाँ पर उन्होंने ज्ञानेश्वरी, अमृतानुभव और श्रीमद्भागवत आदि सद्ग्रन्थों का अध्ययन किया, जिससे उनकी आत्मा बहुत जागृत हुई।

कहा जाता है कि इसके कुछ ही दिनों के बाद एकनाथ को 'दत्तात्रेय' भगवान् का साक्षात्कार हुआ। इसके पश्चात् कुछ दिनों के लिए वे गुरु की आज्ञा से शूल-भंजन पर्वत पर तपस्या करने चले गये। तपस्या के पश्चात् वे सन्त-समागम और भागवत-धर्म का प्रचार करने के लिए तीर्थ-यात्रा पर निकले और वहाँ से वापस लौटकर अपनी जन्मभूमि पेठण में आकर इन्होंने गुरु की आज्ञा से अपना विवाह किया। इनकी धर्मपत्नी गिरिजाबाई भी बड़ी धर्म-परायणा स्त्री थीं।

सन्त एकनाथ के जीवन की कुछ घटनाएँ ऐसी हैं जो उनकी उदार भावनाओं और विशाल विचार-धारा का परिचय देती हैं।

(१) एक समय सन्त एकनाथ के घर पर उनके पिता का श्राद्ध था। जब रसोई तैयार हो गई तो ये ब्राह्मणों

की प्रतीक्षा में द्वार पर खड़े हुए थे। इसी समय एक तरफ से अछूत जाति के ४—५ महार उधर से निकले, वहाँ पर मिठाई की सुगन्धि को पाकर वे कहने लगे —'कैसी बढ़िया सुगन्ध आ रही है, भूख न हो तो भी भूख लग जाय, पर ऐसा भोजन हम लोगों के भाग्य में कहां ?'

यह सुनकर एकनाथ ने तुरन्त उन महारों को बुलाकर अच्छी तरह भोजन करवा दिया और जो बचा, वह भी उनको दे दिया। ब्राह्मणों के लिए फिर से दूसरी रसोई बनाई गई। मगर जब निमन्त्रित ब्राह्मणों को यह बात मालूम हुई तो वे बड़े क्रोधित हुए और एक नाथ को फटकार कर कहा कि—"तुम्हारे जैसे पतित के यहाँ हम लोग भोजन नहीं करेंगे।" एकनाथ ने उन्हें विनय सहित समझाया कि यह रसोई ब्राह्मणों के लिए दोबारा बनाई गई है। आप लोग भोजन कीजिए, मगर ब्राह्मण नहीं रुके और चले गये। तब लाचार होकर यथा विधि श्राद्ध का संकल्प करके उन्होंने पितरों का तर्पण किया। एक नाथ के भक्तों का विश्वास है कि उस समय स्वर्ग से स्वयं पितरों ने प्रकट होकर उस श्राद्धान्न को ग्रहण किया।

(२) काशी की यात्रा करके सन्त एकनाथ जब प्रयाग का गंगाजल काँवड़ में लेकर रामेश्वर जा रहे थे, तब एक रेतीले मैदान में एक गदहा मारे प्यास के छटपटा रहा था। एकनाथ ने तुरन्त अपने काँवड़ से गंगा जल लेकर के उसके मुँह में डाला। गदहा चंगा होकर वहाँ से चला गया। एकनाथ के साथी प्रयाग के गंगाजल का ऐसा दुरुपयोग देखकर बड़े दुखी हुए। तब एकनाथ ने हँसते हुए उनसे कहा कि – मित्रो ! जीवन भर से बराबर सुन रहे हो कि भगवान घट-घट के वासी हैं और फिर भी ऐसे नादान बनते हो—ऐसा ज्ञान किस काम का ? काँवड़ का जल जो गधे ने पिया, वह सीधे श्री रामेश्वरजी पर चढ़ गया।' महाकवि मोरोपन्त ने सन्त एकनाथ के इस कृत्य को लक्ष विप्र भोजन के समान पुण्य प्रद बतलाया है।

(३) पेठण में एक वेश्या थी। वह बड़ी सुन्दर और कला में पारंगत थी, कभी-कभी वह एकनाथ के कीर्तन में जाया करती थी। एक बार एकनाथ ने भागवत का पिंगलाख्यान कहा। उसे सुनकर उस वेश्या को वैराग्य हो गया और अपने कृत्यों पर उसे बहुत पश्चात्ताप हुआ। एक दिन जब एकनाथ गोदावरी से स्नान कर उसी रास्ते से आ रहे थे, तब उसने उनसे अत्यन्त विनीत भाव से कहा—महाराज ! क्या इस पापिन का घर भी आप के चरणों से पवित्र हो सकता है।' एकनाथ ने सुनते ही स्वाभाविक रूप से हँसकर कहा कि इसमें कौन सी दुर्लभ बात है। यह कह कर उन्होंने उस वेश्या के घर में प्रवेश किया, उसे राम कृष्ण हरि का मन्त्र दिया और अनुतापों के द्वारा सब पापों को नष्ट करने की विधि बतलाई और उस वेश्या को पाप कर्मों से मुक्त कर दिया।

एकनाथ के जीवन की इस घटना को सुनकर सहज ही में बुद्ध और अम्बपालिका की घटना स्मृति-पट पर अंकित हो जाती है।

प्रवृत्ति और निवृत्ति का जैसा अनूठा समन्वय सन्त एक नाथ के जीवन में दिखलाई देता है, उतना बहुत कम सन्तों के जीवन में दिखलाई पड़ेगा। एकनाथ जितने ऊँचे दर्जे के सन्त थे उतने ही ऊँचे दर्जे के कवि और साहित्यकार भी थे। इनकी टक्कर का बहुमुखी, सर्जनशील, प्रतिभा का कवि महाराष्ट्र में इनसे पहले कोई पैदा नहीं हुआ। इन्होंने मराठी भाषा के माध्यम से जनता को जागृत करने का प्रयत्न किया।

एकनाथ की रचनाओं में भागवत, भावार्थ-रामायण, रुक्मिणी स्वयंबर, चतुःश्लोकी भागवत, पौराणिक आख्यान और सन्त-चरित्र इत्यादि उल्लेखनीय हैं। भागवत इनकी सर्वोत्कृष्ट रचना है, जिसका सम्मान काशी के पण्डितों ने भी किया है। ये प्रथम मराठी कवि थे, जिन्होंने लोक भाषा में रामायण पर बृहद् ग्रन्थ की रचना की। लोकरञ्जन करते हुए लोकजागरण करना इनका मुख्य-ध्येय था जिसमें इन्हें बहुत बड़ी सफलता मिली। इसीलिए इन्हें महाराष्ट्र में युग-प्रवर्तक कवि कहा जाता है।

एकहार्ट जोहानेस

सुप्रसिद्ध जर्मन रहस्यवादी दार्शनिक, जिसका जन्म १३वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में, जर्मनी के 'होचहीम' नगर में हुआ।

एकहार्ट यूनानी दार्शनिक अरस्तू और एक्वीनस के दार्शनिक सिद्धान्तों का पोषक था। ईश्वर के सम्बन्ध में उसने गंभीर अध्ययन किया था। उसके मतानुसार ईश्वर की सत्ता सर्वव्यापी है और उस सत्ता के सिवाय दूसरी किसी भी वस्तु का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जा सकता। संसार के प्रत्येक प्राणी का अस्तित्व ईश्वर की सत्ता पर ही अवलम्बित है। ईश्वर सर्व शक्तिमान है और उसमें किसी गुण या विशेषता की कल्पना करना गलत है, क्योंकि इस प्रकार की कल्पना से उसकी सर्व शक्तिमत्ता सीमाबद्ध हो जाती है।

ईश्वरीय सत्ता की सबसे बड़ी अभिव्यक्ति मानव-प्राणी में हुई है जो सृष्टि का उच्चतम प्राणी है। हालांकि उसकी सत्ता सृष्टि के प्रत्येक जीव में व्याप्त है। मानव-प्राणी का अन्तिम लक्ष्य परब्रह्म ईश्वर से एकता प्राप्त करना है, वह तभी सम्भव है जब आत्मज्ञान के द्वारा मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप को और ईश्वर के अस्तित्व को समझ ले।

एकहार्ट की उपरोक्त विचार-धारा भारतीय तत्वज्ञान से इतनी मिलती-जुलती है कि ऐसा मालुम होता है कि इस प्रसिद्ध दार्शनिक के ऊपर अरस्तू के साथ-साथ भारतीय तत्वज्ञान की भी छाप पूरी तरह से पड़ी थी।

एकलेसिया (Ecclesia)

प्राचीन काल में एथेन्स की प्रजातांत्रिक सरकार के दो प्रमुख अंग थे। एकलेसिया और बाउल (Boule)। एकलेसिया जनता की सभा का नाम था और प्रभुसत्ता अधिकांश इसी संस्था के हाथ में थी।

एकलेसिया के कार्य शासन-कर्त्ताओं के प्रबन्ध की जाँच करना, खाद्य तथा सुरक्षा के विषयों पर विचार करना देश-द्रोह के अपराधों तथा जप्त की गयी सम्पत्ति का विवरण सुनना इत्यादि विषयों से सम्बन्ध रखते थे।

एकलेसिया के अधिवेशन में विचार किये जाने वाले कार्य-क्रमों की सूची 'बाउल' नामक संस्था तैयार करती थी। इस तैयार की हुई सूची पर ही एकलेसिया विचार कर सकती थी पर बाउल द्वारा तैयार की गयी कार्यक्रम की सूची के विषयों को मंजूर करने, ना मंजूर करने या संशोधित करने का सम्पूर्ण अधिकार एकलेसिया को था। एकलेसिया का सदस्य १८ वर्ष से अधिक उम्र का एथेन्स का प्रत्येक नागरिक होता था।

उन दिनों एथेन्स की जनता १० भिन्न-भिन्न वर्गों में विभक्त थी। इन दसों वर्गों में से प्रत्येक वर्ग अपने ५०-५० सदस्य चुनता था और एक वर्ग के ५० सदस्य एक वर्ष के दसवें भाग तक काम करते थे। इसलिए इन्हें 'पेट्रानीज' कहा जाता था। ये पेट्रानीज ही शेष ९ वर्गों में से प्रत्येक वर्ग से एक सदस्य लेकर उनके साथ बैठकर परिषद का कार्य करते थे। पेट्रानीज का अध्यक्ष इन्हीं ५० सदस्यों में लाटरी के द्वारा केवल एक दिन के लिये चुना जाता था। यही सभा का भी अध्यक्ष होता था। सभा का अधिवेशन प्रातःकाल पौ फटने के समय सार्वजनिक चौराहे पर या बाजार में प्रारंभ होता था। कार्य आरम्भ होने से पहले एक वेदी पर सूअर की बलि देकर तथा उसके रक्त से मण्डप की परिधि खींचकर ईश्वर से विघ्न-बाधाओं को दूर करने की प्रार्थना की जाती थी। ये सब उपचार होने के पश्चात सभा का अध्यक्ष राजदूत को सभा की कार्य सूची के सम्बन्ध में परिषद की रिपोर्ट पढ़ने का आदेश देता था। रिपोर्ट पढ़ी जाने के बाद अध्यक्ष इस बात पर सदस्यों के मत लेता था कि रिपोर्ट को पूरी तरह से स्वीकार कर ली जाय या उस पर वाद-विवाद हो। मतदान हाथ उठाकर होता था। इस मत संग्रह को 'प्रोकीरोतोनियाँ' कहते थे। उसके बाद बहस आरम्भ होती थी। प्रत्येक सदस्य को अपने विचार प्रकट करने, बहस आरंभ करने तथा संशोधन उपस्थित करने का अधिकार प्राप्त था। मगर इस अधिकार का दुरुपयोग करने पर कठोर दण्ड निर्धारित था और सभी अवैध प्रस्ताव 'पीट्रानीज' के द्वारा रद्द कर दिये जाते थे। बहस के अन्त में हाथ उठाकर मतदान लिए जाते थे। मतदान का निर्णय अध्यक्ष करता था। जिन अधिवेशनों में किसी खास व्यक्ति के ऊपर लगाये गये आरोपों पर विचार करना होता था, वहाँ पर गुप्त मतदान की व्यवस्था थी। सामान्य बैठकों में एकलेसिया को वैदेशिक नीति सम्बन्धी अधिकार प्राप्त थे जिनमें शान्ति और युद्ध के प्रश्नों पर निर्णय तथा राजदूतों की

नियुक्ति तथा बर्खास्तगी एवं जल तथा स्थल-सेना के सभी अधिकार इसके हाथ में थे।

एकातेरिना प्रथम (रूस की साम्राज्ञी)

रूस के प्रसिद्ध जार पटिर दी ग्रेट की पत्नी और पीटर के पश्चात् रूस की साम्राज्ञी जिसका शासनकाल सन् १७२५ से सन् १७२७ तक है।

पीटर महान अपनी मृत्यु के समय यह निश्चय नहीं कर सका कि शासन का उत्तराधिकारी किसे बनाया जाय। वह अपने मृत युवराज अलेक्सी के पुत्र को राज्याधिकारी के योग्य नहीं समझता था और अपनी पत्नी एकातेरिना को भी सिंहासन की उत्तराधिकारिणी बनाने में अनाकानी कर रहा था। एलिजाबेथ और अन्ना नाम की अपनी लड़कियों को अधिकार देने के बारे में भी वह अन्तिम निश्चय नहीं कर पाया था कि उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु पर दरबारियों के एक प्रभावशाली वर्ग ने उसकी पत्नी एकातेरिना को रूस के सिंहासन पर बिठा दिया।

एकातेरिना प्रथम में शासन करने की क्षमता नहीं थी। अपने दो वर्ष के शासन में वह दरबारियों के हाथ में खेलती रही।

उसके राज्यकाल की प्रधान घटना रूसी दूत मण्डल का सावा नामक एक राजपुरुष की अधीनता में चीन की राजधानी पेकिंग भेजा जाना था। यह दूत मण्डल सन् १७२७ में भेजा गया। इस दूत मण्डल को अब तक भेजे गये सभी दूत मण्डलों से अधिक सफलता प्राप्त हुई। सावा ने २७ अगस्त १७२७ को चीन सरकार के द्वारा जिस संधि पर दस्तखत कराने में सफलता पाई वह संधि करीब १२५ आगामी वर्षों तक मान्य रही। इसी संधि पत्र के द्वारा रूस और चीन की सीमा पूर्व में क्याख्ता से ऐगून नदी के मुहाने तक और पश्चिम में क्याख्ता से सुईयांत पर्वत माला के एक डांडे शाबिनादावेग तक निर्धारित की गई। पेकिंग में एक स्थायी राजदूतावास की स्थापना की गई और उसमें रूसी लोगों को अपने धर्म के अनुसार पूजा-पाठ करने की स्वाधीनता मिल गई।

सन् १७२७ में एकातेरिना प्रथम की मृत्यु हो गई।

एकातेरिना द्वितीय (रूस की साम्राज्ञी)

रूस के जार पीटर तृतीय की पत्नी, जो अपने नालायक पति को मरवा कर रूस के सिंहासन पर बैठी। इसका समय सन् १७६२ से सन् १७९६ तक था।

पीटर तृतीय एक अयोग्य, आलसी और अकर्मण्य शासक था। उसकी पत्नी उसकी आदतों को देखकर समझ गई थी कि वह रूस के सिंहासन को खोकर रहेगा। इसलिए पीटर के खिलाफ रूसी अधिकारियों का जो दल षड़यंत्र कर रहा था उसमें वह स्वयं शामिल हो गई। गारद के अफसर ओरलोफ ब्रदर्स उस षड़यंत्र के मुखिया थे। २८ जून १७६२ को बड़े सवेरे उन्होंने एकातेरिना को पीटर वर्ग में लाकर साम्राज्ञी घोषित कर दिया। पीटर तृतीय ने सिंहासन से इस्तीफा दे दिया मगर थोड़े ही दिनों बाद वह मार डाला गया।

एकातेरिना द्वितीय एक कुशल शासन संचालिका थी। जिस समय वह गद्दी पर बैठी उस समय राज्य की व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो रही थी। खजाना खाली था। मरम्मत न होने से जंगी जहाज और किले खराब हो रहे थे। जनता और कारखाने के मजदूरों में बड़ा असन्तोष छाया हुआ था।

एकातेरिना ने धीरे-धीरे इस असन्तोष को दूर करने का प्रयत्न किया। वह हवा के रूख को पहचानने वाली स्त्री थी। पश्चिम में जिन नवीन विचारों की धारा बह रही थी और जिस साहित्य का निर्माण हो रहा था उसका वह बड़ी अभिरुचि से अध्ययन करती थी। यूरोप के प्रसिद्ध विचारक वाल्टेअर, माण्टेस्क्यू और अन्य फ्रेञ्च विचारकों के साथ उसका पत्र व्यवहार था जो अपनी सशक्त विचारधारा के द्वारा सामन्तवादी व्यवस्था पर प्रहार कर रहे थे।

एकेतारिना द्वितीय राजकाज में सीधा भाग लेती थी वह स्वयं अपने हाथ से नवीन कानूनों और राजाज्ञाओं का मसविदा बनाती थी। साहित्य में उसकी दिलचस्पी थी और वह स्वयं एक पत्रिका निकालती थी। एकेतारिना का शासन सामन्तों और अमीरों के लिए रूसी इतिहास में सुनहरा समय था।

शासन पर आते ही एकेतारिना को अनेक राजनैतिक समस्याओं का सामना करना पड़ा। फ्रांस और आस्ट्रिया रूस की बढ़ती हुई शक्ति को बड़ी चिन्ता की नजर से देखते थे। पोलैण्ड उस समय बड़ा निर्बल हो रहा था और प्रत्येक राष्ट्र उसको निगलने का प्रयत्न कर रहा था। एकातेरिना भी सावधान थी उसने मांग की कि पोलैण्ड में ग्रीक चर्च के अनुयायियों तथा प्रोटेस्टेण्टों को रोमन कैथोलिकों के बराबर अधिकार दिया जाय। पोलैण्ड ने जब इस मांग को अस्वीकार कर दी तो रूस ने अपनी सेनाएँ पोलैण्ड में भेज दीं। लाचार हो पोलैण्ड की सरकार को रूस की मांग मंजूर करनी पड़ी। इसी समय एकातेरिना ने पोलैण्ड को करीब-करीब अपने संरक्षण में ले लिया। यह देख कर आस्ट्रिया और प्रशिया को बड़ी चिंता हुई। अन्त में रूस, आस्ट्रिया और प्रशिया ने एक समझौता करके पोलैण्ड को आपस में बांट लिया। सन् १७७३ में इस प्रकार पोलैण्ड का पहला बंटवारा हुआ जो प्रथम महायुद्ध के पहले तक चलता रहा।

टर्की के साथ पहला युद्ध

फ्रान्स के बहकावे में आकर टर्की के सुलतान ने सन् १७६८ में रूसी राज-दूत को बुलाकर कहा कि रूस अपनी सेना पोलैण्ड से हटा ले। रूस के इन्कार करने पर रूसी राजदूत को जेल में बन्द कर दिया। इधर क्रीमिया के खान ने भी तुर्की सुलतान के इशारे पर सन् १७६९ में दक्षिण रूस की सीमाओं पर लूट मार शुरू कर दी।

तब रूस का प्रसिद्ध प्रधान सेनापति रोम्यान्त्सेफ एक बड़ी सेना लेकर दक्षिण की तरफ बढ़ा। प्रसिद्ध सेनापति सुआरोफ भी उसका सहायक था। सुआरोफ सभी काल के रूसी सेनापतियों का शिरोमणि माना जाता था। रूसी सेनापति को पता लगा कि लारगा नदी के समीप ही ८०००० तुर्क सेना छावनी डाले पड़ी हुई है। रूसी सेना में उस समय केवल ३०००० सिपाही थे। लेकिन सेनापति ने अचानक आक्रमण करके तुर्की सेना को परास्त कर दिया। इसके दो सप्ताह बाद एक ओर से अस्सी हजार तातारों की सेना ने और दूसरी ओर डेढ़ लाख तुर्क सेना ने रूसी सेना को बुरी तरह घेर लिया। रूसी सेना इस महा प्रलय को देखकर घबड़ाने लगी उस समय सेनापति रूम्यान्त्सेफ का धैर्य देखने काबिल था। उसने ललकार कर सेना में जोश भरा और रूसियों की उस छोटी सी सेना ने उन दोनों सेनाओं को पराजित कर उस भूमि पर कब्जा कर लिया। इस अत्यन्त वीरता पूर्ण काम के लिए जनरल रूम्यान्त्सेफ़ को "जा-दुनाइस्की" की पदवी प्राप्त हुई। स्थल पर इस तरह सफलता प्राप्तकरके जल में भी रूसी बेड़े ने सारे तुर्की बेड़े को नष्ट कर दिया और सन् १७७१ में सारे क्रीमिया प्रायद्वीप पर अधिकार कर लिया।

किसान विद्रोह

इसी समय पुगानेफ नामक एक भूत-पूर्व सैनिक अधिकारी ने अपने आपको पीटर तृतीय कहते हुए सन् १७७३ ई० में अपनी एक सेना का संगठन करना प्रारम्भ किया। हजारों किसान उसकी सेना में भरती होने लगे। पहले वह अपनी सेना को लेकर ओरेन बर्ग की ओर गया और गैरीसन को अधिकार में कर उसने किले पर अधिकार कर लिया। उसके बाद उसने ओरेनबुर्ग नगर पर घेरा डाल दिया जो छः महीने तक चलता रहा। इस समय उसकी सेना में और भी बहुत से किसान और मजदूर आ कर भरती हो गये। धीरे-धीरे यह विद्रोह एक किसान युद्ध के रूप में बदल गया। पुगानेफ ने अपनी सेना में भिन्न-भिन्न वर्ग के लोगों की अलग २ पल्टनें संगठित करलीं, फिर भी इन लोगों के पास अस्त्र, शस्त्र और सैनिक अनुशासन की बहुत कमी थी। पूगानेफ अपनी घोषणाएँ पीटरतृतीय के नाम से निकालता था।

कई लड़ाइयों में हार-जीत होने के बाद अन्त में रूस की सुशिक्षित सेना ने पूगानेफ द्वारा संगठित विशाल विद्रोह को छिन्न-भिन्न कर दिया और कज्जाक सेना पूगानेफ को हाथ पैर बांध कर एक लकड़ी के पिंजड़े में बन्द कर मास्को ले आईं जहाँ सन् १७७५ में उसे फांसी दे दी गई।

टर्की से दूसरा युद्ध

क्रिमिया के लोग धर्म और जाति से तुर्कों के सम्बन्धी थे। इसलिए क्रिमिया पर रूस के अधिकार को सहन करना तुर्की के लिए असम्भव था और फ्रांस उसे बराबर रूस के विरुद्ध भड़का रहा था। एकातेरिना भी आस्ट्रिया के साथ

संधि कर युद्ध तैयारी कर रही थी। सन् १७८७ में तुर्की ने रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इस युद्ध में रूस के सेनापति जनरल सुआरोफ ने स्थान-स्थान पर बड़ी वीरता से तुर्की सेना को हराया। अन्त में सन् १७९० में रूसी सेना ने डैन्यूब के मुहाने पर तुर्की के मजबूत किले "इस्माइल" को घेर लिया। यहाँ पर बड़ी विकट लड़ाई हुई पर अन्त में रूसी सेना ने इस्माइल पर अधिकार कर लिया। जिस समय स्थल युद्ध में जनरल सुआरोफ विजय पर विजय प्राप्त कर रहा था उस समय जनरल उशाकोफ के नेतृत्व में रूस की जल सेना भी तुर्की के जंगी बेड़े पर विजय प्राप्त कर रही थी। इस प्रकार दोनों तरफ से तुर्की पर गहरी मार पड़ रही थी। अन्त में सन् १७९१ में तुर्की ने कास्सी की सन्धि की जिसमें क्रिमिया पर रूस का अधिकार स्वीकार किया गया और दक्षिणी बुग तथा दनियेस्तर के बीच की भूमि भी रूस को दे दी गई। इस संधि से काला सागर के समग्र उत्तरी तट पर रूस का अधिकार हो गया।

विदेश नीति—एकातेरिना का शासन काल रूसी साम्राज्य के भारी विस्तार का शासनकाल था। इस काल में साम्राज्य का विस्तार बहुत अधिक हुआ। फ्रांस और टर्की के साथ रूस की हमेशा नोक-झोंक होती रही। स्वीडन से भी उसके सम्बन्ध अच्छे नहीं रहे। चीन से भी इन दिनों रूस के सम्बन्ध बिगड़ गये थे। मगर एकातेरिना ने अपना दूत मण्डल भेजकर चीन के साथ में संधि की कुछ शर्तें और जोड़कर चीन से अपने सम्बन्ध सुधार लिए।

एकातेरिना के समय में ही यूरोप में फ्रांस की प्रसिद्ध राज्य-क्रांति हुई। इस क्रांति के विरोध में एकातेरिना बड़ी मजबूती से जमी रही। उसने दृढ़ता के साथ घोषित किया कि मैं कभीं भी चमारों (मजदूरों) का शासन न होने दूँगी। मगर यह कैसा विचित्र संयोग था कि आगे जाकर उसी एकातेरिना की गद्दी पर आने वाला रूस का सबसे शक्तिशाली शासक स्टेलिन चमार का ही लड़का था। फ्रांस के लुई सोलहवें को जब मृत्यु दण्ड दिया गया तो सबसे पहले एकातेरिना ने फ्रांस से अपने सम्बन्ध विच्छेद किया। फ्रांस में रहने वाले सभी रूसियों को बुला लिया और क्रांति के समर्थक फ्रांसीसियों को रूस से निकाल दिया।

एकातेरिना के समय में रूस में शिक्षा, साहित्य और विज्ञान की बहुत उन्नति हुई। इसी समय में रूस के पहले वैज्ञानिक "लोमोनोसोफ" का अन्तिम समय व्यतीत हुआ। यह रूस का पहला और महान वैज्ञानिक था जो एक मछुवे के घर में पैदा हुआ था और हलकी जाति का होने से बड़ी कठिनाई से शिक्षा प्राप्त कर पाया था। इसके द्वारा रसायनशास्त्र और भौतिकशास्त्र में किये गये कई आविष्कारों का लाभ परवर्ती पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने उठाया। उसने कई प्रयोग करके रंगीन काँच बनाने की पद्धति का आविष्कार किया। लोमोनोसोफने ध्रुवी सागर से होकर पूर्वीय एशिया को अभियान भेजने का नक्शा तैय्यार किया था।

लोमोनोसोफ की प्रतिभा के बारे में महाकवि "पुश्किन" ने लिखा है कि—"अपने असाधारण बुद्धिबल के साथ असाधारण इच्छा शक्ति को रखते हुए लोमोनोसोफ ने विद्या की सभी शाखाओं का अवगाहन किया। उसमें ज्ञान की असाधारण पिपासा थी। वह इतिहासकार, साहित्यकार यंत्रशास्त्री, रसायनशास्त्री, धातुशास्त्री, चित्रकार और कवि था।"

इसी युग में रूस में सुमारो कोफ (१७१८–१७७७) देनिस फोनविजन (१७४५–१७९२) देर्झाविन (१७४३–१८१६) और करमजिन (१७६५–१८२६) इत्यादि साहित्यकारों ने पैदा होकर रूसी साहित्य को समृद्ध किया।

इस प्रकार १४ वर्ष तक विशाल देश रूस का सफल शासन करने के बाद सन् १७९६ में रूस की इस प्रसिद्ध साम्राज्ञी का देहान्त हुआ।

एक्विनस टॉमस (सेण्ट टॉमस एक्विनस)

मध्यकाल में यूरोप का एक महान् सेण्ट, दार्शनिक, राजनीतिज्ञ और तत्वचिन्तक जिसका जन्म सन् १२२७ में और मृत्यु सन् १२७४ में हुई।

टॉमस एक्विनस, अल्बर्ट महान् का शिष्य और यूनान के महान् दार्शनिक अरिस्टोटल का धुरन्धर व्याख्याता था। उसने अरस्तू के सिद्धान्तों के साथ क्रिश्चियानिटी के सिद्धांतों का समन्वय करने में आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की। यह कार्य उसने एक ऐसी दर्शनधारा की रचना करके

किया जिसमें विज्ञान, दर्शन, धर्मशास्त्र और विश्व तथा ईश्वर एक ही सूत्र में ग्रंथित हो गये।

उसने अपनी इस नवीन विचारधारा की सिद्धि के लिए सुम्मा थिओलाजिका (Summa Theologica) नामक महान् ग्रन्थ की रचना की जो तीन भागों में समाप्त हुआ और जिसमें करीब दस लाख शब्द हैं। यह ग्रंथ उन विचार तरङ्गों की महान् सरिता है जिसमें प्लेटो और अरिस्टोटल की दर्शनधाराओं के साथ रोमन कानून, क्रिश्चियानिटी के सिद्धान्त और पोप तथा प्रसिद्ध धर्मशास्त्रियों की भिन्न-भिन्न विचारधाराओं का एक ही स्थान पर संगम हुआ है। यह ग्रन्थ सिर्फ राजनीति का ग्रन्थ ही नहीं है। प्रत्युत इसमें समस्त जीवन के दर्शनपर विचार किया गया है। जिसमें राजसंस्था, धर्मसंस्था, कानून इन सब चीजों का और इन चीजों के पारस्परिक सम्बन्धों का विवेचन किया है।

टॉमस एक्विनस अरस्तू के सिद्धान्तों का महान् व्याख्याता होने पर भी उसका अन्ध-अनुयायी नहीं है। जहाँ वह उसमें किसी चीज की कमी देखता है तुरन्त उसका विवेचन करता है। अरस्तू अपने तत्वज्ञान में दर्शनशास्त्र को ज्ञान का सर्वोच्च शिखर मानता है और विवेक को उसका सर्वोत्कृष्ट साधन समझता है, वहाँ एक्विनस उससे एक मंजिल और ऊपर चढ़ता है। दर्शन और विज्ञान दोनों को पूरी तरह स्वीकार करते हुए भी वह उनके ऊपर धर्म के तत्व की और स्थापना करता है जिसका आधार विवेक नहीं श्रद्धा और अन्तर्ज्ञान है। वह कहता है कि विज्ञान तथा दर्शन जिस प्रणाली का प्रारम्भ करते हैं उसकी चरम सिद्धि धर्मशास्त्र के द्वारा होती है। विवेक की पूर्ण सिद्धि श्रद्धा है। ये दोनों साथ मिलकर ज्ञान मन्दिर का निर्माण करते हैं मगर कहीं भी वे एक दूसरे से नहीं टकराते।

अरस्तू मनुष्य की बुद्धि को ही उसका सर्वोच्च तत्व मानता है मगर टॉमस के मतानुसार मनुष्य का सर्वोच्च भाग उसकी बुद्धि नहीं आत्मा है। ईश्वर का ज्ञान या आत्मा की मुक्ति बुद्धि के द्वारा प्राप्त नहीं की जा सकती। अरस्तू के दर्शन में मुक्ति, श्रद्धा तथा अनुकम्पा के तत्वों को कोई स्थान नहीं है क्योंकि बुद्धि या मस्तिष्क से भिन्न किसी भी तत्व के अस्तित्व पर उसने चिंतन किया हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। मगर एक्विनस ने अरस्तू के सब तत्वों को मान्यता देते हुए भी यह कहा कि "उसकी दृष्टि अनुकम्पा के उस जगत् तक न जा सकी जो प्राकृतिक जगत् से परे है।"

राज्य की स्थिति के सम्बन्ध में भी वह अरस्तू के तर्कों को अस्वीकार नहीं करता। वह राज्य के सम्बन्ध में ईसाई धर्म की इस विचारधारा का कायल नहीं है कि समाज में राज्यसंस्था का जन्म पाप और मनुष्य के अधः पतन के कारण हुआ है। अरस्तू के सिद्धान्त का समर्थन करते हुए राज्य-संस्था को वह समाज के एक स्वाभाविक विकास का परिणाम समझता है। अरस्तू के इस सिद्धान्त का भी वह समर्थन करता है कि राज्य, समाज कल्याण का एक विधेयात्मक अंग है और उसका उद्देश्य नागरिकों के लिए उत्कृष्ट जीवन की व्यवस्था करना है, मगर टॉमस की विचारधारा में राज्य को जिस उत्कृष्ट जीवन की रचना करना है वह धार्मिक सिद्धान्त के प्रकाश में होना चाहिए। सांसारिक सुख के ऊपर एक श्रेष्ठ तथा उच्चतर पारलौकिक लक्ष्य की स्थापना होना चाहिए। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए किसी धर्म संस्थान या चर्च की अनिवार्य आवश्यकता होती है जो ऐसे जीवन की प्राप्ति के लिए आवश्यक मार्ग-दर्शन कर सके।

एक पूर्ण मानव समाज की रचना के लिए उसके दो मजबूत पाये होने चाहिए। लौकिक उन्नति के लिए राजसंस्था और पारलौकिक उन्नति के लिए धर्मसंस्था। इन दोनों में से दूसरी का नियंत्रण पहली संस्था पर होना चाहिए।

टॉमस एक्विनस के इस सिद्धान्त को समझने के लिए यह ध्यान में रखना चाहिए कि वह उस युग में पैदा हुआ था जब कि यूरोप में रोमन चर्च और राज्यसंस्था के बीच जोरदार संघर्ष चल रहा था और ये दोनों संस्थाएँ अपनी-अपनी सर्वोपरिता सिद्ध करने के लिए जोरदार टक्करें ले रही थीं। पोप जोरदार होता था तो वह राजा को दबा देता था जैसा कि सप्तम ग्रेगरी और तृतीय इन्नो-

सेंट के समय में हुआ था और यदि राजा जोरदार होता था तो पोप को दबना पड़ता था। यह संघर्ष करीब पाँच शताब्दियों तक यूरोप में बराबर चलता रहा।

इसी संघर्ष के सम्बन्ध में उस समय के कई तत्व-चिंतकों ने राज्य-संस्था और धर्म संस्था के पारस्परिक सम्बन्धों पर अपने विचार प्रकट किये थे। टॉमस एक्विनस भी ऐसे ही तत्व-चिन्तकों में से एक था जिसने राज्य संस्था की अपेक्षा धर्म संस्था के महत्व को स्वीकार किया था। फिर भी वह उस समय में प्रचलित इस धारणा का समर्थक नहीं था कि सम्राट अपना अधिकार पोप से प्राप्त करता है यद्यपि वह पोप के "प्लेनीच्यूडो पोटस्टेटिस" के सिद्धान्त का समर्थन करता है और यह मानता है कुछ स्थितियाँ ऐसी हो सकती हैं जिनमें पोप सम्राट को पदच्युत कर सकता है। फिर भी वह पोप को राज्य के ऊपर प्रत्यक्ष नियन्त्रण देने के पक्ष में नहीं है। वह चर्च के सर्व मान्य आध्यात्मिक अधिकारों को कानूनी प्रभुता का रूप नहीं देना चाहता। निरे लौकिक विषयों में वह राज्य संस्था के नियन्त्रण का ही समर्थक है। वह यह भी स्वीकार करता है कि एक सुखी लौकिक जीवन का आधार आर्थिक सुव्यवस्था पर स्थित है इस लिए राज्य को विवश होकर आर्थिक क्षेत्र में प्रवेश करना पड़ता है। राज्य का कर्त्तव्य व्यापार को नियन्त्रित करना, और उचित मजदूरी और मूल्य निर्धारित करना और समाज में ऐसी स्थिति उत्पन्न करना है जिससे नागरिक नैतिक और बौद्धिक रूप से श्रेष्ठ मनुष्य बन सके।

इस प्रकार सेण्ट टॉमस एक्विनस ने अपनी विचारधारा में, अरस्तू की विचारधारा का धड़ लेकर उस पर पोप या धर्म संस्था की श्रेष्ठता का सिर जोड़कर एक नई आकृति का निर्माण कर दिया। वह अरस्तू के प्राकृतिक दर्शन को स्वीकार करता है मगर साथ ही कहता है कि प्राकृतिक जगत ही सम्पूर्ण जगत नहीं है उसके ऊपर एक और अनुकम्पा का जगत है जिसमें मानव के कल्याण के लिए ईश्वर की अनुकम्पा प्रवाहित होती रहती है। उसका कथन है कि इसी प्रकार आचार शास्त्र के सम्बन्ध में भी अरस्तू ने मनुष्य को अपने प्राकृतिक लक्ष्य और आनन्द प्राप्ति का ठीक मार्ग-दर्शन किया है मगर इस क्षेत्र में भी वह ईसाई धर्म द्वारा प्रतिपादित इस सत्य को नहीं देख पाया कि मनुष्य का एक अति प्राकृतिक लक्ष्य भी है जो कि पारलौकिक आनन्द और मोक्ष को प्राप्त करना है। वास्तव में इहलौकिक आनन्द का उद्देश्य इसी लक्ष्य के अधीन होना चाहिए। इस प्रकार सभी दूर उसने अरस्तू के सिद्धान्तों पर ईसाई धर्म के सिद्धान्तों को निरूपण करने का प्रयत्न किया है।

समाज की सुव्यवस्था के लिए कौन-सी राज्य पद्धति कल्याणकारी हो सकती है इस पर भी अरस्तू से उसका मतभेद है। अरस्तू के द्वारा किये हुए राज्यों के वर्गीकरण जैसे राज्यतन्त्र, कुलीनतन्त्र, प्रजातन्त्र इत्यादि के उत्कृष्ट तथा निकृष्ट रूपों के निरुपण में वह अरस्तू को मान्य करता है परन्तु जहाँ अरस्तू समाज कल्याण के लिए पोलिटी अथवा मध्य वर्ग तन्त्र को राज्य का सर्वश्रेष्ठ और व्यवहारिक रूप मानता है वहाँ टॉमस एक्विनस "राजतन्त्र" का पक्षपाती है। उसका मत है कि अन्य प्रकार के राज्यों की अपेक्षा राजतन्त्र में उद्देश्य की एकता अधिक रहती है और वह समाज की एकता को कायम रख सकता है। अरस्तू की इस आपत्ति का वह कायल है कि एक व्यक्ति के हाथों में शक्ति केन्द्रीभूत होने से आततायी तन्त्र का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। परन्तु जनतन्त्र के परिणामस्वरूप पैदा होने वाले नागरिक कलह तथा अव्यवस्था की अपेक्षा वह आततायी तन्त्र का खतरा उठाना अधिक पसन्द करता है। इसके अतिरिक्त उसका यह भी विचार है कि शक्ति एक ट्रस्ट है और राजा ट्रस्ट की शर्तों का पालन करता है या नहीं इस बात की निर्णायक जनता है। इसलिए राजतन्त्र के भ्रष्ट होकर आततायी तन्त्र में बदलने की शंका कम हो जाती है।

टामस एक्वीनस की कानून-सम्बन्धी विचारधारा

टामस की विचारधारा में संसार का संगठन एक 'पिरामिड' की तरह है, जिसके शिखर पर ईश्वर विराजमान है। इसकी प्रत्येक चीज, चाहे वह कितनी ही क्षुद्र क्यों न हो, एक उद्देश्य की पूर्ति करने के लिए है और वह उद्देश्य है—सम्पूर्ण की पूर्णता। कोई भी वस्तु उस सम्पूर्ण से अलग नहीं है। इसलिए मानवी कानून को उसी प्रणाली का एक अंग होना चाहिए जिसके द्वारा ईश्वर संसार के ऊपर शासन करता है।

विश्वव्यापी सत्य का एक अंग होने के नाते मानवीय क़ानून का भी विवेक सम्मत होना आवश्यक है।

टामस ने अपनी योजना में कानून के ४ भेद किये हैं। १—शाश्वतकानून २—प्राकृतिक कानून ३—दैवी कानून और ४—मानवीय कानून।

(१) शाश्वत कानून—यह कानून है जिसके अनुसार ईश्वर ने ब्रह्माण्ड की सृष्टि की है और जिसके द्वारा वह उसको कायम रखता है। संसार की जड़ और चेतन सारी सृष्टि इस कानून के अनुसार चलती है। मनुष्य की सीमित बुद्धि इस कानून को पूर्णरूप से समझने में असफल है। फिर भी ईश्वर इस कानून का कुछ आभास प्राकृतिक कानून के रूप में मनुष्य को देता है, ताकि मनुष्य उसका अनुकरण कर सृष्टि के साथ अपना समन्वय कर सके।

(२) प्राकृतिक कानून—शाश्वत कानून का आभास जो ईश्वर ने मनुष्य को दिया है, उसके आधार पर उत्तम कार्यों को अपनाने और अशुभ कार्यों से बचने की मनुष्य को प्रेरणा मिलती है। इस प्रेरणा को नैसर्गिक कानून कहते हैं। यह नैसर्गिक कानून मानव-जीवन के लक्ष्य और मानव-संस्थाओं के माप को निर्धारित करता है। मगर जीवन के लक्ष्य पर पहुँचने के लिए जिन साधनों की आवश्यकता होती है, उन साधनों का निर्धारण यह नहीं करता।

(३) दैवी कानून—नैसर्गिक कानून के द्वारा जिन आधारभूत सिद्धान्तों पर मनुष्य अपने जीवन का लक्ष्य स्थिर करता है, उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये जिन साधनों की आवश्यकता होती है, उन साधनों का मार्ग-दर्शन दैवी तथा मानवीय कानून करते हैं। दैवी कानून के द्वारा मनुष्य को ईश्वर के वे आदेश आते हैं, जिनको मनुष्य अपनी अन्त-बुद्धि के द्वारा प्राप्त करता है। यह कानून मानव-बुद्धि की खोज नहीं, बल्कि उसको मिला हुआ ईश्वर-प्रदत्त उपहार है। यह कानून जीवन के आध्यात्मिक पक्ष को ही विशेष रूप से निर्धारित करता है। विभिन्न देशों, समयों और जातियों में यह कानून भिन्न-भिन्न रूप से प्रदर्शित होता है। जब कि नैसर्गिक कानून मानव-मात्र के लिए एक है।

(४) मानवीय कानून—मनुष्य की बुद्धि के द्वारा निर्मित एक विधेयात्मक कानून है। दैवी कानून और नैसर्गिक कानून के जो मूलभूत तत्व मनुष्य को प्राप्त होते हैं, उनको अपने चिन्तन और अध्ययन के द्वारा समाज के अनुकूल विस्तृत करके उसकी रूपरेखा का निर्धारण किया जाता है। इन मानवीय कानूनों में कोई ऐसी बात न होनी चाहिये, जो मनुष्य के विवेक और बुद्धि के विरुद्ध हो। इन कानूनों को दैवी और नैसर्गिक कानूनों के सिद्धान्तों से विपरीत नहीं होना चाहिये। न्याय-पूर्ण और धर्म निहित कानून ही नागरिकों के लिए मान्य होना चाहिए। मानवीय कानूनों को धर्म निहित होने के लिये उनकी रचना नैसर्गिक आधार-शिला पर होनी चाहिए। यदि कोई कानून नैसर्गिक कानून के अनुसार नहीं है तो नागरिक उसकी अवज्ञा कर सकता है और ऐसा करने में उसे दण्ड न मिलना चाहिए। मानवीय कानून समाज के संरक्षक राजा द्वारा लागू किया जाता है। परन्तु कानून बनाने में राजा मनमानी नहीं कर सकता उसे कुछ सीमाओं के अन्दर रह कर यह कार्य करना पड़ता है और यह ध्यान रखना पड़ता है कि मानवीय कानूनों में कोई बात बुद्धि और विवेक के विरुद्ध न हो। इसके अतिरिक्त कानून बनाने का राजा का अधिकार केवल लौकिक विषयों तक ही सीमित होना चाहिये। आध्यात्मिक विषयों पर कानून बनाने का अधिकार राजा को न होना चाहिये। मानवीय कानून उस क्षेत्र से अलग रखा गया है, जो दैवी कानून की परिधि के अन्तर्गत है।

टॉमस एकिनस और गुलामी की प्रथा

टामस मानव-समाज को लक्ष्य और उद्देश्य की एक ऐसी व्यवस्था समझता था जिसमें निकृष्ट उत्कृष्ट की सेवा करता है और उत्कृष्ट-निकृष्ट का मार्ग-दर्शन करता है। कई पुराने तत्व चिन्तकों के सदृश टामस भी दासता को पाप का दैविक दण्ड समझता है और उसे उचित और स्वाभाविक मानता है और अरस्तू और अगस्टाइन की भाँति वह भी इस प्रथा का समर्थक है।

सेंट टामस एकिनस की विचारधारा का मूल्यांकन करते समय यह ध्यान में रखना होगा कि वह स्वामी वर्ग का एक व्यक्ति था और उस युग में एक महान् विचारक होते हुए भी ईसाई धर्म की मान्यताओं

से अत्यन्त प्रभावित था। अपनी विचारधारा का निर्धारण करते समय, अरस्तू के ग्रन्थों की व्याख्या करते समय, राजनैतिक चिन्तन करते समय, पोप के अधिकारों का निर्णय करते समय अर्थात् जीवन के हरेक क्षण में ये मान्यताएँ उसके सम्मुख रही थीं और इन मान्यताओं के प्रभाव से कभी भी वह अपने को अलग नहीं कर सका। इन्हीं मान्यताओं के कारण वह हमेशा पोप का समर्थन रहा। इन्हीं मान्यताओं के प्रकाश में उसने अरस्तू के पालिटिक्स और सेंट अगस्टाइन के उपदेशों में जो समन्वय स्थापित किया, वह समन्वय मानवीय इतिहास में उसकी एक महान देन है। उसी के द्वारा यूरोप में अरस्तू के विधान-वाद का प्रचार हुआ। फिर भी इतना कहा जा सकता है कि यदि उसकी बुद्धि रोमन चर्च की मान्यताओं से इतनी अधिक प्रभावित न होती तो संभव है मानव-समाज को उसकी विचारधारा से जो कुछ प्राप्त हुआ है, उससे कहीं कुछ अधिक प्राप्त होता।

एक्स-रे

ऐसी पारदर्शक (Opaque) किरणें जो कई पदार्थों के अन्दर प्रवेश करके उनके भीतर का चित्र प्रस्तुत कर देती हैं। ऐसी किरणों से चिकित्सा में जो यंत्र तैयार किया जाता है उसे एक्स-रे मशीन कहते हैं। एक्स-रे का आविष्कार सन् १८९५ में जर्मनी के वैज्ञानिक विलियम कोनराड रंटजन ने किया।

बिजली के चिकित्सा सम्बन्धी प्रयोगों में एक्स रे का बड़ा महत्व है। इन किरणों का आविष्कार हो जाने से सर्जरी अब अंधे की टटोल नहीं रही। गले या पेट के भीतर कील या पैसा अटक जाय, शरीर के अन्दर कहीं फोड़ा या केन्सर हो जाय या कहीं की हड्डी टूट जाय तो उसके स्थान को निश्चित करने में डाक्टरों को अब अनुमान का आधार लेने की जरूरत नहीं पड़ती। झट से एक्स-रे मशीन के सामने खड़ा करके रोगी के शरीर के भीतरी हिस्से का फोटो लिया जा सकता है। जिसमें हर चीज स्पष्ट दिखलाई देती है।

इन पारदर्शक एक्स-किरणों की खोज जर्मनी के राण्टजन नामक एक वैज्ञानिक ने की। इस वैज्ञानिक के नाम पर ही इन किरणों को राण्टजन-रे भी कहते हैं। राण्टजन एकबार कांच की नलिका में अपने प्रयोग कर रहा था। उसको अनुभव हुआ कि वायु का दबाव बहुत कम होने पर काँच की नली में से जो किरणें आती हैं उनसे बैरियम प्लेटिनो साइनाइड्स नामक रासायनिक पदार्थ के स्फटिक प्रकाश देने लगते हैं और साथ ही नलिका के नजदीक काले कागज में लिपटी हुई फोटो की प्लेट रख दी जाय तो उस काले कागज का भेदन करके उस प्लेट पर प्रकाश के धब्बे पड़ते हैं। मामूली तौर से काले कागज में लिपटी हुई फोटो प्लेट पर प्रकाश की किरणों का असर नहीं होता। इसलिए राण्टजन ने यह निर्णय किया कि इस फोटो प्लेट पर कोई न दिखाई देने वाली किरणें असर कर रही हैं और इन किरणों में ऐसी शक्ति है जो ये काले आवरण को भेदन कर अन्दर की प्लेट पर असर डाल सकती हैं। उसने यह भी निश्चय कर लिया कि ये किरणें अल्ट्रा वायलेट किरणें नहीं हो सकतीं। उसे यह भी मालूम पड़ा कि ये किरणें काँच की नली में से आ रही हैं। परन्तु इन किरणों के विषय में कोई जानकारी न होने से उसने इनका नाम एक्स-रे रक्खा।

एक्स-रेज अत्यन्त भेदन शक्तिवाली होती हैं। ये अल्यूमिनियम के पत्तर में से पार हो सकती हैं। लेकिन सीसे (Laid) की पतली चद्दर के भेदन की शक्ति इनमें नहीं होती, इसलिए एक्स किरणों की प्रयोगशाला के साधन सीसे के बनाये जाते हैं। ये किरणें लकड़ी, मांस, कागज, चमड़ा आदि चीजों को भेदकर सरलता से उनके पार हो सकती हैं, पर हड्डी, हीरा, वगैरह कठिन पदार्थों में से पार नहीं हो सकतीं। शरीर के भीतर के रोगों का फोटो इन किरणों के द्वारा लिया जाता है।

ये किरणें किसी भी प्रकार का विद्युत भार वहन नहीं कर सकतीं। ये किरणें हवा को विद्युतभार वाली बनाती हैं। इन किरणों पर चुम्बकीय क्षेत्र का असर नहीं पड़ता। ये किरणें जब धातुओं पर पड़ती हैं तब उनमें से इलेक्ट्रॉन निकलते हैं।

राएटजन के द्वारा एक्स-रे का आविष्कार होते ही सम्पूर्ण वैज्ञानिक विश्व का ध्यान एक्स-रे की ओर आकृष्ट हुआ। अपारदर्शी ठोस पदार्थों में से पार होने का एक्स-रे का गुणधर्म अत्यन्त महत्वपूर्ण था और इस गुणधर्म का उपयोग विज्ञान के अनेक विभागों में हो सकता था इस कारण संसार की अनेक प्रयोगशालाओं में इन किरणों पर विशेष अध्ययन होने लगा।

एङ्गलर हाइनरिख

जर्मनी का एक वनस्पति शास्त्री डॉ० एङ्गलर हाइनरिख जिसका जन्म सन् १८४४ में और मृत्यु सन् १९३० में हुई।

एङ्गलक हाइनरिख एक प्रसिद्ध वनस्पति शास्त्री थे। फिलासफी में डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् ये म्यूनिख की वानस्पतिक संस्था के संरक्षक नियुक्त हुए। वहाँ पर इन्हें वनस्पति शास्त्र का विशेष अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ। उसके पश्चात् बर्लिन वानस्पतिक उद्यान के ये संचालक नियुक्त हुए जहाँ पर सन् १९२१ तक इन्होंने काम किया। इस क्षेत्र में विशेष ज्ञान प्राप्त करने के लिए इन्होंने संसार का भ्रमण भी किया। वनस्पति विज्ञान के क्षेत्र में इनकी खोजें और रचनाएं बहुमूल्य साबित हुईं।

एजवर्थ-मेरिया

आयरलैंड की एक प्रसिद्ध उपन्यास लेखिका। जिसका जन्म सन् १७६७ में और मृत्यु सन् १८४९ में हुई।

एजवर्थ मेरिया के प्रसिद्ध उपन्यास "कासिलरेकरेट" और "बीलिडा" के प्रकाशन ने आयरलैंड के सामान्य नागरिक जीवन को काफी प्रभावित किया। इनके पात्रों के सजीव चित्रण में लेखिका को काफी सफलता मिली है। सर वाल्टर स्कॉट के समान प्रसिद्ध उपन्यासकारों ने मेरिया की लेखन शैली की बड़ी प्रशंसा की है। मेरिया का 'पेरेएट्स असिस्टेंएट' नामक ग्रन्थ भी बहुत प्रसिद्ध है जो छः भागों में प्रकाशित हुआ है।

एजिडियस रोमेनस

(Egidius Romanus)

यूरोप में मध्यकाल का एक प्रसिद्ध विचारक जो तेरहवीं सदी के अन्त में हुआ।

एजिडियस रोमन चर्च और पोप के कट्टर समर्थकों में से एक था। उस समय का यूरोपीय इतिहास राजसंस्था और धर्मसंस्था या राजा और पोप के संघर्षों से भरा हुआ है। पोप की शक्ति अनियंत्रित थी और कुछ स्वाभिमानी राजा उसकी शक्ति को किसी रूप में नियंत्रित करना चाहते थे।

यही संघर्ष उस समय सारे यूरोप के इतिहास को प्रभावित कर रहा था और बड़े-बड़े विचारक, तत्वचिन्तक और लेखक इसी विषय पर अपनी रचनाएँ करते थे। एक्विनस टामस का परिचय ऊपर दिया जा चुका है जिन्होंने अपनी संसार प्रसिद्ध रचना "सुम्मा थिओलाजिका" में पोप के अधिकारों का खुला समर्थन किया है।

एजिडियस रोमेनेस, एक्विनस से भी पोप का समर्थन करने में बहुत आगे है। इसकी पुस्तक "दी पोटस्टेट एक्लेजियास्टिका" (De Potestate Ecclesiastica) सन् १३०१ में प्रकाशित हुई। इस ग्रन्थ में धर्मशास्त्र तथा दर्शनशास्त्र के आधार पर पोप की प्रभुता का स्पष्ट शब्दों में समर्थन किया है। इस ग्रन्थकार के सिवा दूसरे किसी भी लेखक ने इतने स्पष्ट शब्दों में पोप का समर्थन नहीं किया। एजिडियस ने तो स्पष्ट शब्दों में पोप को समस्त विश्व के आध्यात्मिक तथा लौकिक समस्त विषयों का सर्वोच्च स्वामी माना है और समस्त राजाओं को उसके अधीन माना है।

उसने बतलाया है कि, ईश्वर की अनुकम्पा केवल चर्च के द्वारा ही प्राप्त की जाती है और चर्च की सब शक्तियाँ आवश्यक रूप से पोप की हैं और किसी की नहीं। पोप चर्च का उच्चतम अधिकारी है इसलिए उसे सर्वोच्च शक्ति प्राप्त है। पोप की सर्वोच्च और अनुपम शक्तियाँ उसके पद के कारण हैं, वे उसके व्यक्तिगत चरित्र के ऊपर निर्भर नहीं करतीं।

इस प्रकार एजिडियस ने व्यक्तिगत चरित्र के बन्धनों से भी पोप को मुक्त कर दिया है।

स्पष्ट दिखाई देता है कि एजिडियस के समान पोप के कट्टर और अन्ध अनुयायियों के समर्थन के कारण ही रोमन चर्च की स्थिति अत्यन्त अनियन्त्रित और स्वेच्छाचारी हो गई। उन दिनों पोप लोगों ने अपनी स्वेच्छाचारिता से यूरोपीय इतिहास में जो दृश्य उपस्थित किये उनके कारण धीरे-धीरे रोमन चर्च और पोप के प्रति लोगों में विरक्ति और घृणा के भाव बढ़ने लगे और जिनकी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप यूरोप के समाज में "जॉन विक्लिफ", "ज्विंगली" "मार्टिन लूथर" "केल्विन" इत्यादि महान् शक्तियों का उदय हुआ जिन्होंने अपनी महान् प्रतिभा से पोप के तख्ते को पलट दिया। क्रिया जितनी होती है प्रतिक्रिया उससे भी बलवती होती है।

एजेसिलास

प्राचीन स्पार्टा के लेसी डोमनराज्य का प्रसिद्ध राजा, जिसका समय ईसवी सन् पूर्व ४४० से ३६० तक है।

लेसी डोमीनियन लोगों के राजा आर्कीडेमस के दो पुत्र थे। एजिस और एजेसिलास। आर्कीडेमस की मृत्यु के पश्चात् राज्य का उत्तराधिकारी 'एजिस' हुआ, मगर कुछ समय के पश्चात् उसकी भी मृत्यु हो गई। एजिस को कोई जायज सन्तान न होने की वजह से राजगद्दी का उत्तराधिकारी 'एजेसिलास' हुआ। एजेसिलास लँगड़ा था और लँगड़े आदमी को स्पार्टा की गद्दी पर बिठाना निषिद्ध था।

एजेसिलास के गद्दी पर बैठने के समय डिओपिथीज नामक एक ज्योतिषी ने देववाणी का हवाला देते हुए उसके गद्दी पर बैठने का विरोध किया। उसने निम्नलिखित देववाणी का हवाला दिया—

"हे महान स्पार्टा देश! तुममें स्वयं चाहे कोई कमी न हो, पर इस बात का ख्याल रखना कि कोई लँगड़ा शासक तुम्हारा अधिपति न बनने पावे, नहीं तो तुम अचानक बड़ी विपत्ति में फँस जाओगे और तुम्हें घोर युद्ध का सामना करना पड़ेगा।"

मगर चूँकि लँगड़ा होने के अतिरिक्त एजेसिलास में राज्य शासन के योग्य सभी गुण विद्यमान थे। वह बड़ा परिश्रमी, नीतिज्ञ और हँसमुख स्वभाव का था। स्पार्टा के नागरिक उसे चाहते भी थे और भाग्य उसके अनुकूल भी था। इसलिए वह राजा घोषित कर दिया गया।

उस समय एफ़र और एल्डर नाम के अधिकारी स्पार्टा में राजाओं की शक्ति का नियन्त्रण करने के लिये रखे जाते थे। इन लोगों का राजाओं से प्रायः हमेशा झगड़ा चलता रहता था। एजेसिलास ने प्रतिद्वन्दिता मिटाने के लिये एफर और एल्डर लोगों को चतुराई के साथ अपने वश में कर लिया और इस प्रकार राज्य के आन्तरिक झगड़ों से वह मुक्त हो गया। उस समय ईरान देश के अन्तर्गत सम्राट-ज़्यार्थ द्वितीय का शासन था और ईरान के साथ ग्रीस के झगड़े हमेशा की तरह बराबर चलते रहते थे।

एजेसिलास के गद्दी पर बैठने के कुछ ही समय पश्चात् एशिया से खबर आई कि ईरान का राजा बड़े जोरों से जल-युद्ध की तैयारी कर रहा है और वह स्पार्टन लोगों के हाथ से समुद्र का आधिपत्य छीन लेना चाहता है। तब एजेसिलास ने भी अपनी सैनिक तैयारी करके ईरान की सेनाओं के तरफ चलना प्रारम्भ किया। उसने कई स्थानों पर ईरान के सामन्तों की सेनाओं को पराजित किया। एक साल भर तक लगातार वह लड़ाइयों में फँसा रहा, मगर इसी समय अपने देश में विद्रोह हो जाने का समाचार सुन कर उसे वापस लौटना पड़ा। इसके बाद उसने आसपास के कई छोटे बड़े राज्यों पर कब्जा कर लिया।

थीब्ज और अथेंज के शासकों ने भी स्पार्टा के विरुद्ध लड़ाई छेड़ रखी थी। उस समय थीब्ज लोगों का नेता 'ईपामिनानडस' नामक व्यक्ति था जो उस समय अपने दार्शनिक विचारों और विद्वत्ता के कारण बहुत प्रसिद्ध था। मगर इसके साथ ही वह कुशल सेनानायक भी था। वह थीबन जाति का राजदूत बनकर सन्धि की इच्छा से स्पार्टा में एजेसिलास के पास में आया। मगर एजेसिलास ने उसका बड़ा अपमान किया और गुस्से में आकर थीब्ज देश के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

ईपामिनानडस ने भी इस चैलेंज को स्वीकार कर लिया। फलस्वरूप ल्यूक्ट्रा के मैदान में थीबन और लेसी-

डोमीनियन सेनाओं के बीच में बड़ी भयंकर लड़ाई हुई। इस लड़ाई में लेसीडोमीनियन लोगों की बड़ी बुरी तरह पराजय हुई और एक हजार स्पार्टन लोग इस लड़ाई में मारे गये।

इस पराजय के बाद एजेसिलास की प्रतिष्ठा दिन-पर-दिन कम होती गई और लोगों के मन में यह आशंका होने लगी कि एक भले-चंगे आदमी को अपना राजा न बना कर इस लँगड़े एजेसिलास को राजा बनाया, इसी से देवी ने हमारे ऊपर यह आपत्ति डाली है। फिर भी सब लोग एजेसिलास की प्रसिद्धि और उसकी योग्यता के इतने कायल थे कि मन में शंका उठने पर भी उन्होंने अपने को एजेसिलास के हाथ में सौंप दिया।

एजेसिलास के सम्मुख इस समय सबसे बड़ी कठिनाई उन भगोड़ों के सम्बन्ध में थी जो युद्धभूमि से प्राण बचाकर भाग आये थे। इनकी संख्या इतनी ज्यादा थी और इनमें कितने ही ऐसे प्रभाव शाली व्यक्ति भी थे कि जिनको कानून के अनुसार दण्ड देना आसान काम न था।

इस अपराध के सम्बन्ध में स्पार्टा का कानून बहुत सख्त था। रणभूमि से भागने वाले लोग इस कानून के अनुसार सब प्रकार के सम्मानों से वञ्चित किये जाते थे। उनके साथ विवाह सम्बन्ध करना भी बुरा समझा जाता था। रास्ते में चलने वाले प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार था कि यदि वह चाहे तो भेंट होने पर इन भगोड़ों को खूब पीटे। इसके लिए कानून की कोई मनाई न थी। इसके अतिरिक्त इस कानून के अनुसार ऐसे लोगों को बिना नहाये धोये और फटे-पुराने कपड़े पहन कर ही बाहर निकलने की इजाजत थी। वे अपनी आधी दाढ़ी ही बनवा सकते थे। आधी उन्हें वैसी ही रखनी पड़ती थी।

इस कठोर कानून के साथ उन अपराधियों का अनुशासन करना खतरे से खाली न था। खास कर ऐसे समय में जब कि राज्य को अधिक से अधिक सैनिकों की आवश्यकता थी। एजेसिलास ने ऐसे कठिन समय में कानून में कोई परिवर्तन नहीं किया। उसने जनता के सम्मुख घोषणा की कि सिर्फ आज दिन भर के लिए यह कानून स्थगित किया जाता है। कल से यह फिर चालू कर दिया जायगा। इस विलक्षण उपाय के द्वारा उसने कानून को भी विनष्ट होने से बचा लिया और नागरिकों की बदनामी भी न होने दी।

इस कलंक को धोने के लिए उसने तुरन्त आर्केडिया प्रान्त पर हमला कर दिया और बड़ी सतर्कता के साथ प्रत्यक्ष युद्ध का अवसर बचाते हुए उसने मेंटीनियन लोगों के एक छोटे से गांव पर अधिकार कर लिया और स्पार्टन-सैनिकों पर लगे हुए उस कलंक को धो डाला।

मगर थीबन लोगों ने उसका पीछा नहीं छोड़ा और ईपामिनानडस ने ४० हजार सैनिकों के साथ लेकोनियाँ पर आक्रमण कर दिया और बिना किसी विरोध के यूरोटस नदी तक, बल्कि स्पार्टा के बिल्कुल पास तक उस पवित्र भूमि को जला डाला और लूट लिया जिसका अब तक किसी शत्रु ने स्पर्श तक नहीं किया था।

एजेसिलास नहीं चाहता था कि मेरे आदमी इस इस तूफान का सामना करके तबाह हों, इसी से उसने शत्रु का प्रतिरोध नहीं किया। केवल नगर के मुख्य-मुख्य भागों की रक्षा का प्रबन्ध कर दिया। थीबन लोग उसकी भर्त्सना कर रहे थे और चिल्ला-चिल्ला कर कह रहे थे कि तुमने ही इस युद्ध की आग-प्रज्ज्वलित की है एवं अपने देश-वासियों पर यह आपत्ति बुलाई है। अब तुम में हिम्मत हो तो आओ और अपने देश की रक्षा करो।

बाहर तो यह हालत थी और नगर के अन्दर भी विद्रोह हो रहे थे। स्वयं उसको भी अपने विगत वैभाव को याद करके बड़ी ग्लानि हो रही थी। उसे दिखाई दे रहा था कि जब वह सिहासनासीन हुआ था, तब स्पार्टा कितनी उन्नति के शिखर पर था और उसकी शक्ति कितनी बढ़ी हुई थी मगर आज उसके जीते जी ही स्पार्टा की यह दुर्दशा हो रही है।

मगर ऐसे समय में भाग्य ने उसकी सहायता की जब शत्रु की सेना ने नगर पर आक्रमण करने के उद्देश्य से यूरोटस नदी को पार करने का इरादा किया। उसी समय अधिक वर्फ के गिरने के कारण नदी में भयंकर बाढ़ आ गई और थीबन सेना की हिम्मत उसे पार करने की न हुई। सिर्फ ईपामिनाअडस ने कुछ बहादुर सिपाहियों के साथ नदी को पार किया और नगर में प्रवेश कर उसने बहुत कोशिश की कि एजेसिलास बाहर निकल कर युद्ध

करे मगर उसका प्रयत्न व्यर्थ हुआ और देश को वीरान करते हुए वह वापस लौट गया।

इसके पश्चात् अपनी सारी बुद्धि और साहस का प्रयोग करके भी एजेसिलास स्पार्टा की प्राचीन कीर्ति को न लौटा सका और न उसे पुन: गौरव के शिखर पर चढ़ा सका। लंगड़े शासक के सम्बन्ध में ज्योतिषी की भविष्यवाणी सही निकली।

लाइकरगस ने स्पार्टा के लिए जिस व्यवस्था का निर्माण किया था, वह शान्ति, एकता और नागरिकों के सात्विक जीवन के उपयुक्त थी। स्पार्टन लोगों का पतन तभी हुआ जब उन्होंने विदेशों पर आधिपत्य स्थापित करना और अनियंत्रित भाव से राज्य करना प्रारंभ किया।

ईपामिनानडस ने जब मेसिनी प्रान्त को पुनः स्वतंत्र कर दिया और भगे हुए नागरिकों को फिर से वहाँ बसने के लिए आमंत्रित किया, तब स्पार्टन लोग मन मसोस कर यह सब देखते रहे। क्योंकि उनमें इतनी शक्ति नहीं थी कि वे थीबन लोगों का मुकाबला करते। एजेसिलास स्पार्टन लोगों की दृष्टि में बहुत गिर गया था। क्योंकि मेसिनी प्रान्त जो स्पार्टा के ही बराबर था और सारे ग्रीस में सब से अधिक उपजाऊ था एजेसिलास के शासन-काल में ही स्पार्टा के आधिपत्य से निकल गया।

इसके पश्चात् ईपामिनानडस ने बड़े कौशल से स्पार्टा पर अधिकार करने की योजना भी बनाई थी, पर एजिसिलास की सतर्कता से वह किसी प्रकार वह बच गया।

इसके कुछ दिन पश्चात् ईपामिनानडस की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के बाद फिर चारों ओर शान्ति स्थापित हो गई। लेकिन एजेसिलास का स्पार्टा का वह साम्राज्य करीब-करीब नष्ट हो चुका था जो उसके राज्यारोहण के समय प्राप्त हुआ था।

८० वर्ष की अवस्था में अफ्रीका के उत्तरी तट की मरुभूमि में एजेसिलास का देहान्त हुआ। लेसीडोमन में उसने ४१ वर्ष तक राज्य किया। इसमें से ३० वर्ष तक तो समूचे ग्रीस में वह सबसे बड़ा और सबसे शक्तिशाली राजा माना जाता था। आस-पास के राज्यों पर अधिकार करके अपने साम्राज्य का उसने बहुत विस्तार कर लिया था। यूक्ट्रा की लड़ाई के पहले सारा ग्रीस उसे अपना अद्वितीय सेनापति समझता था। उसके शव को स्पार्टा की प्रथा के अनुसार लेसीडीमन में लाकर राजकीय सम्मान के साथ दफनाया गया।

एटली

क्लीमेंट एटली, ग्रेट ब्रिटेन के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री, मजदूर दल के नेता और राजनितिज्ञ, जिनका जन्म सन् १८८३ में हुआ।

क्लीमेंट एटली का ग्रेट ब्रिटेन के राजनैतिक इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है और विश्व के इतिहास में भी उनको इस बात का गौरव प्राप्त है कि द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् सत्ता के हाथ में आते ही उन्होंने संसार से उस उपनिवेशवाद को समाप्त कर देने का संकल्प किया, जो पाँच शताब्दियों से संसार के एक बहुत बड़े मानव-समूह को अपने फौलादी पंजे में कसे हुए था।

क्लीमेंट एटली का जन्म सन् १८८३ ई० में हुआ और सन् १६०५ में उन्होंने बैरिस्टरी की परीक्षा पास की। सन् १६०७ में वे इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी के सदस्य हो गये। पहले महायुद्ध में उन्होंने फ्रांस के निकट मेजर की हैसियत से कई लड़ाइयाँ लड़ीं। सन् १६२२ में लेबर पार्टी के टिकिट से वे 'पार्लियामेंट' के सदस्य चुने गये। सन् १६३१ के चुनाव में जब मजदूर दल की सरकार बनी तब वे युद्ध-विभाग के उपसचिव बनाये गये। द्वितीय महायुद्ध के समय 'चर्चिल' के मंत्रिमण्डल में मि० एटली भी मंत्री थे।

युद्ध के समाप्त होने पर इंग्लैण्ड में जब नये चुनाव हुए तो उन चुनावों के परिणामों में समस्त संसार ने बड़े आश्चर्य के साथ देखा कि द्वितीय महायुद्ध के महान् विजेता और ग्रेट ब्रिटेन के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ चर्चिल को इंग्लैण्ड की जनता ने चारों खाने चित्त कर दिया और मजदूर-गवर्नमेंट को विजयी घोषित कर दिया। मजदूर दल के नेता मि० एटली ब्रिटेन सरकार के प्रधानमंत्री हुए। प्रधानमंत्री के होने के साथ ही उन्होंने मानवीय स्वाधीनता के लक्ष्य को सम्मुख रखकर उपनिवेशवाद के कलंक को मिटाने का मजबूत कदम उठाया और भारतवर्ष, वर्मा तथा

सीलोन के समान ब्रिटिश-साम्राज्य के महान उपनिवेशों को पूर्ण स्वाधीन घोषित करने का साहसपूर्ण कदम उठाया।

एटली के इस साहसपूर्ण कदम से समस्त संसार के उपनिवेशवादी राष्ट्रों और उपनिवेशों में तूफान की सी स्थिति पैदा हो गई। उपनिवेशों की जनता में जागृति की महान लहर आई और कहीं शान्ति से और कहीं क्रान्ति से शोषित और त्रसित जनता ने अपनी आजादी प्राप्त की। मि० एटली के इस साहसपूर्ण कदम के अनुकरण से थोड़े ही समय में संसार के अधिकांश उपनिवेशों ने अपनी स्वतंत्रता प्राप्त कर ली और जो थोड़े बहुत उपनिवेश बच गये हैं, वे भी इस पथ पर तेजी के साथ अग्रसर हो रहे हैं।

संसार से उपनिवेशवाद का कलंक धोने में जिन लोगों ने राजशक्ति की ओर से सक्रिय और साहसपूर्ण कदम उठाया, उनमें मि० एटली का नाम पहला और महत्वपूर्ण है।

एडमंड बर्क (Edmund Burke)

इंग्लैण्ड का एक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ, महान वक्ता और लेखक, जिसका जन्म सन् १७२६ ई० में आयरलैण्ड की राजधानी 'डब्लिन' में हुआ।

डब्लिन कालेज की शिक्षा समाप्त कर लेने पर 'एडमंड बर्क' के पिता ने उसको कानून की डिग्री प्राप्त करने के लिए लन्दन भेजा, मगर कानून की पढ़ाई में बर्क का चित्त नहीं लगा और उसका ध्यान ग्रन्थ लेखन और पत्रकारिता की ओर लगा। उसने अपना पहला ग्रन्थ 'विण्डिकेशन ऑफ नेचुरल सोसायटी', (Vindication of Natural Society) को बिना अपना नाम दिये ही प्रकाशित करवाया। सन् १७५६ में बर्क आयरलैंण्ड के मंत्री श्री 'हैमिल्टन' का प्राइवेट सेक्रेटरी बन कर डब्लिन गया। वहाँ उसने छः वर्ष तक काम किया। यहाँ पर उसे शासन कार्य का काफी व्यावहारिक ज्ञान हो गया।

सन् १७६५ के पश्चात् वह इंगलैण्ड के प्रधान मंत्री श्री 'राकिंघम' का प्राइवेट सेक्रेटरी बन गया। इसके बाद ही उसका 'हाउस ऑफ कामन्स' में प्रवेश हुआ और यहीं से उसका राजनीतिक जीवन में प्रवेश हुआ। इंग्लैण्ड की 'ह्विग-पार्टी' का वह एक प्रमुख सदस्य और नेता था। उसका पहला भाषण इंग्लैण्ड की पार्लियामेंट में अमेरिकन मामलों के ऊपर हुआ। यह भाषण इतना तर्कपूर्ण, प्रभावशाली और युक्तियुक्त था और इससे बर्क को ऐसी ख्याति प्राप्त हुई, जो अब तक या इससे पहले किसी वक्ता को नहीं हुई थी।

एडमण्ड बर्क के राजनैतिक जीवन में इंग्लैण्ड के इतिहास में ३-४ अत्यन्त महत्वपूर्ण और युगान्तरकारी घटनाएँ हुईं। इन घटनाओं पर एडमण्ड बर्क ने जो विचार प्रदर्शित किये, उसने उसके राजनैतिक जीवन को अत्यन्त प्रकाश पूर्ण बना दिया।

उस समय इंग्लैंड के सिंहासन पर जार्ज तृतीय शासन कर रहा था और वह अपने प्रभाव को बढ़ाने तथा पार्लियामेंट की शक्ति को सीमित करने के लिए दोहरे मंत्रिमण्डल की पद्धति को जारी करना चाहता था। जिससे एक गुट राजा के व्यक्तिगत आदेशों के अनुसार जनता की सामान्य भावना के विरुद्ध होते हुए भी राजा और मंत्रियों की अनुमति के बिना ही शासन कर सकता था। इसके लिये ब्रिटेन के संविधान में परिवर्तन करना जरूरी था। एडमंडबर्क इसके विरुद्ध था। उसका कहना था कि जनता की स्वतन्त्रता तथा भलाई पार्लियामेंट के सदस्यों की सचरित्रता तथा सतर्कता के ऊपर निर्भर करती है। पार्लियामेंटरी सरकार के विधान की प्रक्रिया को बदलना सम्पूर्ण समाज के लिए एक अत्यन्त महत्वपूर्ण और बुनियादी बात का विरोध करना है। इसके लिए उसने 'थाट्स ऑन दी काजेज ऑफ प्रेजेण्ट डिस कान्टेण्ट्स' (Thoushts on the causes of present discontents) नामक ग्रन्थ की रचना थी जो सन् १७७० में प्रकाशित हुआ। उसमें उसने एक स्थान पर लिखा है—"हमारा विधान एक ऐसे सूक्ष्म सन्तुलन, एक ऐसी नाजुक स्थिति में उपस्थित है, जिसके चारों ओर फिसलनी चट्टानें और गहन समुद्र भरा हुआ है। इस संविधान को यदि हम एक तरफ अधिक झुकने के खतरे से बचाने की कोशिश करते हैं तो उसके दूसरी ओर झुकने का खतरा उत्पन्न हो जाता है। ब्रिटेन की जटिल शासन-व्यवस्था के समान

शासन-व्यवस्था में कोई मौलिक परिवर्तन करना ऐसी कठिनाइयों से भरा हुआ है कि जिसमें कोई विचार-शील व्यक्ति उसका निर्णय करने को, कोई दूरदर्शी व्यक्ति उसे क्रियान्वित करने को और कोई ईमानदार व्यक्ति उसका वचन देने को एकदम तैयार नहीं हो सकता।"

बर्क के राजनैतिक जीवन के समय इंग्लैंड के इतिहास में दूसरी महत्वपूर्ण घटना इंग्लैंड के विरुद्ध अमेरिकन जनता का विद्रोह था। उस समय प्रधान मंत्री लार्ड 'नार्थ' के सामने अमेरिका की समस्या सबसे ज्यादा संकटपूर्ण थी। एडमंड बर्क ने इसके सम्बन्ध में 'स्पीच ऑन कांसिलेशन विथ अमेरिका' (Speech on conciliation with America) नामक रचना सन् १७७५ में प्रकाशित की। इसमें उसने अमेरिका के प्रति ब्रिटेन की अनुदार-नीति का विरोध किया। एक प्रभुता सम्पन्न राष्ट्र होने के नाते ब्रिटिश पार्लियामेंट का उपनिवेशों के ऊपर कर लगाने के अधिकार का तो बर्क ने विरोध नहीं किया, पर जिन परिस्थितियों में ये कर लगाये गये हैं, उसकी उसने निन्दा की। उसने कहा—"सवाल यह नहीं है कि तुम्हें कर लगाकर उपनिवेशों की प्रजा को पीड़ित करने का अधिकार है या नहीं, बल्कि मुख्य सवाल यह है कि वहाँ की प्रजा को सुखी बनाने का तुम्हारा कर्तव्य है या नहीं। सवाल यह नहीं है कि कानून के अनुसार हम क्या कर सकते हैं। बल्कि सवाल यह है कि इंसानियत, न्याय और विवेक के अनुसार हमें क्या करना चाहिए। राजनीति में बुद्धिमत्ता को उदारता के साथ चलना चाहिए। एक महान साम्राज्य और एक संकीर्ण हृदय साथ-साथ नहीं चल सकते। उसने यह भी कहा कि दमन-नीति का अवश्यंभावी परिणाम यह होगा कि उपनिवेश साम्राज्य के हाथ से निकल जायंगे।।''

इस प्रकार बर्क ने इंग्लैंड की पार्लियामेंट से न्याय, मानवता तथा शान्ति की रक्षा के लिये अमेरिकन उपनिवेशों की ओर से १२ वर्ष तक संघर्ष किया।

इसी प्रकार भारतवर्ष में किये गये वारन हेस्टिंग्स, के अत्याचारों के विरुद्ध उसने सन् १७८८ से १७९५ तक लगातार ७ वर्ष जोरदार संघर्ष किया। वारन हेस्टिंग्स के द्वारा किस निर्दयता के साथ भारतवासियों पर अत्याचार किये गये और कितनी बेरहमी से मान्य-सन्धियों को भंग किया गया, उसका वर्णन बर्क ने ऐसी भावपूर्ण, प्रभावशाली, जोरदार शब्दों में किया कि पार्लियामेंट के सदस्य चकित हो गये।

इन सब विषयों के निर्णय में एडमंड बर्क ने मानवता, न्याय और उदारता की नीव पर ही अपनी विचारधारा की सृष्टि की थी।

बर्क के राजनैतिक जीवन की तीसरी महत्वपूर्ण घटना फ्रांस की राज्यक्रान्ति थी। इस क्रान्ति पर उसने 'रिफ्लेक्शन्स ऑन दि रिवोल्यूशन इन फ्रांस' (Reflections on the Revolution in France) नामक ग्रन्थ की रचना की जो फ्रांस की राज्यक्रान्ति के दूसरे वर्ष सन् १७९० में प्रकाशित हुआ।

फ्रांस की राज्यक्रान्ति के सम्बन्ध में एडमंड बर्क के विचार नपे-तुले और शृंखलाबद्ध होने पर भी अपनी ह्विग-पार्टी के साथियों से बिल्कुल भिन्न थे और यह भिन्नता इतनी जोरदार थी कि उसके लिए उसे अपनी पार्टी को छोड़कर अपने विरोधी 'टोरी दल' में सम्मिलित होना पड़ा।

जिस लक्ष्य को सामने रखकर फ्रांस की राज्यक्रान्ति आरंभ हुई उस लक्ष्य का बर्क पूर्णतः समर्थक था, मगर लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वहाँ के लोगों ने जिन साधनों का—हिंसा और गुण्डागर्दी के जिन उपायों का सहारा लिया, उनके बर्क एक दम खिलाफ था। उसने देखा कि फ्रांस की राज्यक्रान्ति ने राज्य तथा समाज के मूलभूत आधार को ही संकट में डाल दिया और भूत तथा वर्तमान में एक दरार पैदा कर दी, जिसके परिणाम स्वरूप स्वयं फ्रेंच-राष्ट्र का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया। उस स्थिति का अपने ग्रन्थ में बर्क ने जो विश्लेषण किया, वह उसकी दूरदर्शिता, राजनैतिक सूझ बूझ और व्यवहार कुशलता का परिचायक था। हालांकि बहुत से प्रगतिशील कहलाने वाले लोगों ने उसकी इस विचारधारा को असन्तुलित, रूढ़िवादी और अनुत्तरदायी बतलाया। फिर भी उसकी भविष्यवाणी शत-प्रतिशत सही निकली। क्रांति का आरम्भ होने के पहले ही, जबकि राजा सिंहासन पर आरूढ़ था और क्रांति का आतंक आरम्भ नहीं हुआ था,

उसने गणतंत्र, अराजकता, युद्ध तथा अन्त में तानाशाही की भविष्यवाणी कर दी थी।

फ्रांस की राज्यक्रांति के सम्बन्ध में मतभेद हो जाने के कारण उसने अपनी ह्विग-पार्टी और अपने पुराने मित्रों से तुरन्त सम्बन्ध विच्छेद कर लेने में जरा भी हिचकिचाहट नहीं की। उसका विश्वास था कि यदि कोई पार्टी या कोई मित्रता राष्ट्र के कल्याण के विरुद्ध जाती हुई दिखलाई दे तो उससे सम्बन्ध रखने में कोई तथ्य नहीं। राष्ट्र का कल्याण मुख्य उद्देश्य है पार्टी और अन्य वस्तुएँ सिर्फ साधन मात्र हैं।

एडमंड बर्क को बहुत से प्रगतिगामी लोग, रूढ़िवादी और पुरानी लकीर का फकीर कहते हैं। क्योंकि उसकी राजनीति और राज्य सम्बन्धी विचार उन लोगों के विचारों से मेल नहीं खाते थे। उसका विश्वास था कि समाज में राज्य तथा राज्य संस्थानों की उत्पत्ति क्रमागत विकास का परिणाम है जिसे व्यक्तिगत रूप से जानना या समझना बहुत कठिन है। इन संस्थाओं का निर्माण किसी एक समय या किसी एक व्यक्ति-समूह के द्वारा नहीं किया गया। बल्कि भिन्न-भिन्न समयों में अनेकानेक महान मस्तिष्कों के परिश्रम से इनके अस्तित्व का निर्माण हुआ। जो भी व्यक्ति इन संस्थाओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन करके इन भावनाओं और आदतों को नष्ट करना चाहते हैं वे भारी भूल करते हैं। कोई भी नवीन संस्था सुचारु रूप से कार्य न कर सकेगी, यदि उसमें ऐसी ही आदतें तथा भावनायें उत्पन्न करने की सामर्थ्य न हो।

बर्क परिवर्तन का विरोधी नहीं था। परन्तु वह जोशीली और अविवेक पूर्ण भावनाओं के आधार पर क्रान्तिकारी परिवर्तन करने का विरोधी था। हरेक परिवर्तन को सन्तुलन कायम रखते हुए विवेक के साथ करने का वह पक्षपाती था। वह भावनाओं के प्रवाह में बहने वाला नहीं था। उसकी मान्यता थी कि राज्य तथा समाज का विकास सावयविक रूप से हुआ है। वह मनुष्य की कृत्रिम रचना नहीं है। वह चाहता था कि शासन के विषयों की जटिलता का हल निर्विकल्प बुद्धि से नहीं हो सकता। इसलिए एक राजनीतिज्ञ को निर्विकल्प बुद्धि का भक्त होने की अपेक्षा चतुर, व्यवहार कुशल और इतिहास का पारदर्शी विद्वान होना ज्यादा आवश्यक है।

धर्म के सम्बन्ध में भी एडमंड बर्क के विचार बिल्कुल स्पष्ट थे। उसका विचार था कि बिना धर्म-भावना के कोई भी व्यक्ति एक अच्छा नागरिक नहीं हो सकता। प्रत्येक समाज और सरकार को वह विश्व की ईश्वरीय नैतिक व्यवस्था का एक अंग समझता था। इसी कारण उसका धार्मिक दृष्टिकोण उपयोगिता-वादियों के दृष्टिकोण से बिल्कुल भिन्न था।

एडमंड बर्क को समाजवाद तथा लोकतंत्री सिद्धान्तों में अधिक विश्वास नहीं था। उसके मतानुसार प्रभुता-सम्पन्न जनता के ऊपर कोई नियंत्रण नहीं लगाया जा सकता। जन साधारण द्वारा किये गये अपराधों के लिए किसी को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। जन साधारण भी किसी समय उतना ही अत्याचारी और दमनकारी हो सकता है, जितना कि राजा या विशिष्ट वर्ग। सरकार का सर्वोत्तम रूप वह कुलीन तंत्र को मानता था। और राजतंत्र पर उसे इसलिए विश्वास था कि उसकी परंपरा, भक्ति, सदाचार और बुद्धिमत्ता की नींव पर रहती है।

अपने 'अपील फ्राम दी न्यू, टु दी ओल्ड ह्विग्स' नामक पुस्तक में वह लिखता है कि यदि हमारी यह इच्छा है कि मनुष्य समाज शान्त और सुखी रहे तो हमको उसे एक ऐसे अनुशासन में रखना होगा जिसका सञ्चालन बुद्धिजीवी और उदार भावनाओं के लोग करते होंगे। उस सञ्चालन में धनी लोग गरीबों की सहायता, और ज्ञानी लोग अज्ञानियों को ज्ञान प्रदान करेंगे और उनकी रक्षा करेंगे।

एडमंड बर्क का विश्लेषण करते हुए 'लॉस्की' नामक विद्वान ने लिखा है कि—"यह सब कुछ होते हुए भी इंग्लैण्ड के राजकीय विचारों के इतिहास में 'बर्क' का अस्तित्व एक महान और प्रतिभापूर्ण अस्तित्व है। उसमें 'हॉब्स' की तर्क शैली 'ह्यूम' की गंभीर अवलोकन शक्ति तथा 'ग्रीन' की नैतिक आदर्शप्रियता के न होते हुए भी उसमें इन सब महान् गुणों का एक बड़ा भाग पाया जाता है। अपने समय की राजनैतिक विचार-धारा को उसने एक ऐसी नवीन दिशा, भावना तथा उसकी जटिलता का

पूर्ण ज्ञान प्रदान किया जो किसी भी राजनीतिज्ञ में नहीं पाया जाता।

सन् १७६७ में इस महान् राजनीतिज्ञ का देहान्त हुआ।

एडवर्ड

इंग्लैंड के सुप्रसिद्ध राजा 'अल्फ्रेड महान' का लड़का जिसने सन् ६०१ से सन् ६२५ ई० तक राज्य किया। उस समय आधा इंग्लैण्ड डेन लोगों के आधीन था।

एडवर्ड ने गद्दी पर बैठते ही अपने राज्य का विस्तार करना प्रारम्भ किया। एडवर्ड की बहिन एथिलफ्लीडा, जो मर्सिया के राजा को ब्याही थी और अब वैधव्य की दशा में थी, बड़ी बलवती स्त्री थी। उसकी सहायता से एडवर्ड ने बहुत जल्दी चीस्टर और कई स्थान डेन लोगों से ले लिए और जब एथिलफ्लीडा मर गई तो मर्सिया का आधा भाग भी एडवर्ड को मिल गया। इससे एडवर्ड बहुत शक्तिशाली हो गया।

एडवर्ड कन्फेसर

इंग्लैण्ड के राजा इथिलरेड-अनरेडी का पुत्र, एडवर्ड कन्फेसर जिसने सन् १०४२ से १०६३ ई० तक राज्य किया।

एडवर्ड का पालन-पोषण नारमण्डी में हुआ था। इसलिए कई अंशों में नारमन लोगों का प्रभाव इसके हृदय पर जमा हुआ था। अंग्रेजों से इसको कुछ घृणा सी थी। इसीसे राज्य के उच्चपद नारमन लोगों को ही दिये जाते थे। कैंटरबरी का लार्ड पादरी भी एक नारमन को ही बनाया गया था। राजसभा में अंग्रेजी-भाषा की जगह फ्रेंच-भाषा बोली जाती थी। इन सब बातों को देखकर अंग्रेज लोग इससे बहुत नाराज रहा करते थे। फलस्वरुप वेसेक्स के राजा 'गोडविन' ने कुछ संगठन करके नारमन लोगों को राज्य से निकाल दिया और एडवर्ड केवल नाम मात्र का राजा रह गया।

एडवर्ड कन्फेसर के जीवन का सब से महत्वपूर्ण कार्य 'वेस्ट मिनिस्टर' के गिर्जे का निर्माण है। यह गिर्जाघर लन्दन का एक प्रसिद्ध गिर्जा है। इसकी नींव एडवर्ड कन्फेसर ने डाली थी।

एडवर्ड प्रथम

इंग्लैण्ड के अंजो-राजवंश के हेनरी तृतीय का पुत्र एडवर्ड प्रथम, जिसका शासन-काल सन् १२७२ से १३०७ तक है।

एडवर्ड सर्वांग सुन्दर और लम्बा वीर पुरुष था। अपने पिता की मृत्यु के समय वह सूली के अन्तिम युद्ध के समय जेरूसलेम में था। वहाँ से उसे इंग्लैण्ड पहुँचते-पहुँचते दो वर्ष लग गये। जिस समय वह और उसकी पत्नी 'एलीनर' लन्दन में पहुँचे तो उनका बड़े आदर से सत्कार किया गया। निःसन्देह 'एडवर्ड प्रथम' इंग्लैण्ड के मध्यकालीन राजाओं में सर्वश्रेष्ठ था।

शासन पर आते ही उसने प्रजा के हितकारी कार्यों को करना प्रारम्भ किया। वह बहुत बुद्धिमान था। उसने विदेशियों को कभी उच्च पदाधिकारी नहीं बनाया। उसने प्रजा के साथ कभी ऐसी प्रतिज्ञा नहीं की जिसका वह पालन न कर सके।

सन् १२६५ ई० में उसने इंग्लैंड में पार्लमेंट की स्थापना की और उसके 'हाउस आफ लार्ड्स' और 'हाउस आफ कामन्स' नाम के दो विभाग कायम किए। एडवर्ड ने प्रतिज्ञा कर ली थी कि बिना कामन्स सभा की स्वीकृति के किसी प्रकार का कर नहीं लगाया जायगा। उसके इस कार्य से कामन्स सभा का झुकाव उसकी ओर हो गया था और उसकी शक्ति बहुत बढ़ गई थी।

इसी समय रोमन-चर्च के पोप ने यह आज्ञा दी कि कोई पादरी राजाओं को कोई कर न दे। एडवर्ड ने इस पर बड़ी बुद्धिमत्ता से काम लिया और कह दिया कि तुम यदि कर नहीं देना चाहते हो तो हम भी अपने न्यायालयों में तुम्हारे मुकद्दमे न करेंगे। इस पर पादरी कानून से अरक्षित हो गये और मजबूर होकर उन्होंने कर देना स्वीकार किया।

एडवर्ड प्रथम ने वेल्स के राज्य को जीतकर अपने अधीन कर लिया। उसने अपने पुत्र राजकुमार एडवर्ड

को 'प्रिन्स ऑफ वेल्स' की पदवी से विभूषित किया। तब से इंग्लैंड नरेश का सबसे बड़ा पुत्र 'प्रिन्स ऑफ वेल्स' कहलाता है।

स्काटलैंड के राजा एलेक्झेंडर तीसरे की मृत्यु पर वहाँ की राजगद्दी के लिए 'जान बेलियल' और 'राबर्ट-ब्रूस' के बीच में झगड़ा पड़ा। स्काटलैंड वालों ने एडवर्ड प्रथम को फैसला करने के लिए बुलाया। एडवर्ड ने इस शर्त पर फैसला करना स्वीकार किया कि स्काटलैंड इंग्लैंड के बादशाह का आधिपत्य स्वीकार कर ले। स्काटलैंड के मंजूर करने पर एडवर्ड प्रथम ने जान बेलियल को स्काटलैंड के राजा बनाने की व्यवस्था दे दी। एडवर्ड ने यह भी माँग की कि स्काटलैंड के फैसलों के विरुद्ध इंग्लैंड में अपील हुआ करे। इस पर स्काटलैंड वाले बहुत बिगड़ गये और जान बेलियल को अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ने को मजबूर कर दिया। अंग्रेजों ने बेलियल को परास्त करके गद्दी से उतार दिया और अंग्रेजी शासक नियुक्त कर दिया।

एडवर्ड स्काटलैंड से वह पत्थर भी उठा लाया जिसे भाग्य-शिला (Stone of destiny) के नाम से पुकारते हैं। स्काटलैंड के राजाओं का अभिषेक इसी पत्थर पर हुआ करता था। एडवर्ड प्रथम के समय से यह पत्थर लन्दन के वेस्ट मिनिस्टर गिर्जे में रखा हुआ है। इंग्लैंड के राजाओं का अभिषेक इसी पत्थर पर हुआ करता है। स्काटलैंडवालों का विश्वास है कि यह पत्थर जहाँ जायेगा, वहीं स्काटलैंड का भाग्य भी जायगा।

३०० वर्ष पीछे इंग्लैंड का राजा ही स्काटलैंड का सम्राट् हो गया और इस प्रकार स्काटलैंड वालों का यह विचार सत्य निकला।

एडवर्ड के द्वारा स्काटलैंड पर अधिकार कर लेने से वहाँ के लोगों में इंग्लैंड के प्रति विद्रोह की भावनाएँ फूट पड़ीं। पहले विलियम वॉलेस नामक व्यक्ति ने और उसके बाद राबर्ट ब्रूस ने विद्रोह का झण्डा खड़ा किया यद्यपि ये दोनों विद्रोह निर्दयतापूर्वक दबा दिये गये पर इसी विजय का कार्य पूरा करने के लिए एडवर्ड प्रथम गया तो रास्ते ही में उसकी सन् १३०७ में मृत्यु हो गई।

एडवर्ड द्वितीय

पहले एडवर्ड की मृत्यु पर उसका लड़का एडवर्ड द्वितीय के नाम से इंग्लैंड की गद्दी पर बैठा। इसका शासन काल सन् १३०७ से १३२७ तक था। इसे अपने ऐशो-आराम और विषय-वासना से फुरसत नहीं थी। शासन-कार्य में इसकी कोई दिलचस्पी नहीं थी। परिणाम यह हुआ कि स्काटलैंड के राबर्ट ब्रूस ने अपनी शक्ति बढ़ाकर अंग्रेजों की सेनाओं को बैनकबर्न की लड़ाई में पूरी तरह हराकर स्काटलैंड को स्वातंत्र कर दिया इसके बाद फिर अंग्रेज स्काटलैंड को न ले सके। एडवर्ड द्वितीय की इस अयोग्यता को देखकर उसे गद्दी से उतार दिया गया और उसकी जगह उसका पुत्र एडवर्ड तृतीय के नाम से इंग्लैंड की गद्दी पर बैठा।

एडवर्ड तृतीय

तृतीय एडवर्ड सन् १३२७ में गद्दी पर बैठा और १३७७ तक अर्थात् ५० वर्ष तक इसने राज्य किया।

तृतीय एडवर्ड के शासनकाल की प्रधान घटनाएँ फ्रांस के साथ शतवर्षीय युद्ध और जॉन विक्लिफ के द्वारा रोमन चर्च के खिलाफ चलाया हुआ आन्दोलन था।

शतवर्षीय युद्ध का कारण यह था कि फ्रांस नरेश चौथे फिलिप की लड़की इजाबेला एडवर्ड तृतीय की माता थी। जब चौथे फिलिप की मृत्यु के पश्चात् उसके तीनों लड़के भी निःसंतान मर गये तो फ्रान्स की गद्दी का हक एडवर्ड तृतीय को आता था। पर फ्रांस वाले किसी अंग्रेजी सम्राट को अपना राजा बनाना नहीं चाहते थे। इसीलिए उन्होंने उसी वंश के एक और व्यक्ति को छठे फिलिप के नाम से फ्रांस की गद्दी पर बैठा दिया, लड़ाई का मुख्य कारण यही था और वैसे भी इंग्लैण्ड वाले फ्रांस वालों से चिढ़े हुये थे। फ्रांस फ्लेण्डर्स पर अधिकार करना चाहता था। जो कि अंग्रेजों का प्रधान व्यापारिक केन्द्र था। यह युद्ध सन् १३३८ से १३७७ तक और सन् १४१५ से १४५३ तक चला।

पहला सामुद्रिक युद्ध बेलजियम के स्लूज नामक स्थान पर हुआ जिसमें इंग्लैण्ड की भारी विजय हुई। इस युद्ध में

३०००० फ्रांसीसी मारे या डुबो दिए गये। सन् १३४६ में क्रेसी के युद्ध में भी अंग्रेजों की विजय हुई। थोड़े दिनों पश्चात् पेरिस का कैले बन्दर भी अंग्रेजों ने ले लिया। पोइटिमर्स की लड़ाई में तृतीय एडवर्ड के पुत्र ब्लैक प्रिन्स का नाम उसकी बहादुरी के कारण चमक उठा। उसने फ्रांस के राजा जौन को गिरफ्तार कर लिया। सन् १३६० में इंग्लैण्ड और फ्रांस के बीच ब्रिटनी में संधि हो गई। इस संधि के अनुसार गैस्कनी, पोइटू और कैले बन्दर अंग्रेजों के हाथ लगे और एडवर्ड ने फ्रांस की गद्दी पर से अपना अधिकार छोड़ दिया। मगर यह संधि ज्यादा समय तक नहीं चली और फिर लड़ाई चालू हो गई इस बार इंग्लैंड के द्वारा जीते हुये फ्रांस के सभी प्रान्त अंग्रेजों के हाथों से निकल गयेऔर केवल बोर्डो और कैले उनके अधिकार में रह गये।

इसी समय यूरोप की धार्मिक अवस्था भी बहुत खराब हो गई थी। गिरजों के अधिकारी मनमानी करने लगे पाप के क्षमा पत्र (Indulgences) पोप की ओर से रुपयों के मूल्य पर बिकने लगे। यह स्थितिदेखकर जानविक्लिफ नामक पादरी ने धर्म सुधार का बीड़ा उठाया। उसने एक संस्था स्थापित कर पोप की इस मनमानी के विरुद्ध जोरदार आवाज उठाई। यद्यपि उसे अपने कार्य में अधिक सफलता नहीं मिली पर उसने लोगों के लिए पोप के विरुद्ध आन्दोलन करने का मार्ग खोल दिया। उसकी मृत्यु सन् १३८४ में हुई।

एडवर्ड चतुर्थ

इंग्लैण्ड के इतिहास में सुप्रसिद्ध गुलाबों के युद्ध के पश्चात् यार्क वंश के रिचर्ड यार्क का पुत्र एडवर्ड चतुर्थ के नाम से गद्दी पर बैठा। इसी साल चतुर्थ एडवर्ड ने टौटन (Towton) नामक स्थान पर लंकास्टर वालों को हमेशा के लिए हरा दिया। हेनरी षष्ठ की मुख्य रानी ऐन ने इसके बाद भी बहुत प्रयत्न किया मगर अन्त में उसे देश छोड़ कर भागना पड़ा और हेनरी षष्ठ को कैदखाने में डाल दिया गया जहाँ पर उसकी मृत्यु हुई। सन् १४८३ तक एडवर्ड चतुर्थ ने राज्य किया। उसकी मृत्यु पर उसका नाबालिग लड़का एडवर्ड पंचम के नाम से गद्दी पर बैठा मगर उसके संरक्षक चौथे एडवर्ड के भाई रिचर्ड ग्लौस्टर ने उसे मरवा डाला और स्वयं रिचर्ड तृतीय के नाम से इंग्लैण्ड की गद्दी पर बैठ गया।

एडवर्ड षष्ठ

(१५४७—१५५३)

अष्टम हेनरी की मृत्यु के पश्चात् छठा एडवर्ड इंग्लैण्ड की गद्दी पर बैठा। नाबालिग होने की वजह से शासन प्रबन्ध का काम उसका मामा समरसेट करता था। समरसेट ने अपने शासन में इंग्लैण्ड के अन्दर बड़ी मनमानी मचाई। जिससे इंग्लैंड की जनता में बड़ा क्षोभ हुआ, और उसे पदत्याग करना पड़ा।

छठा एडवर्ड हमेशा बीमार रहता था, राजकार्य करने की उसमें क्षमता नहीं थी। अन्त में सन् १५५३ में उसकी मृत्यु हो गई।

एडवर्ड सप्तम

(सन् १९०१-१९१०)

इंग्लैण्ड की महारानी विक्टोरिया की मृत्यु के पश्चात् उनके बड़े पुत्र एडवर्ड सप्तम के नाम से गद्दी पर बैठे। सम्राट सप्तम एडवर्ड बड़े परिश्रमी, चतुर और शान्तिप्रिय थे। इसीलिए इंग्लैण्ड के इतिहास में ये "एडवर्ड दी पीसमेकर' के नाम से प्रसिद्ध हैं। सप्तम एडवर्ड का विवाह डेन राजकुमारी अलेक्झेण्ड्रा के साथ हुआ। इनका शासन काल प्रारम्भ होते ही लार्ड किचनर के प्रयत्नों से अफ्रीका में बोअर युद्ध की समाप्ति हो गई और सन् १९०२ में बोअर लोगों ने इन्हें अपना सम्राट् स्वीकार कर लिया।

सप्तम एडवर्ड के राज्य काल में ही प्रथम महायुद्ध की तैयारियां प्रारम्भ हो चुकी थीं। इंग्लैण्ड और जर्मनी का वैमनस्य बढ़ रहा था। जर्मनी ने अधिक मात्रा में लड़ाकू जहाज बनाना आरम्भ कर दिये थे तथा आस्ट्रिया

और इटली के साथ मिलकर उसने अपना एक संघ बना लिया था। लाचार इंग्लैण्ड को भी अपने पुराने दुश्मन फ्रांस और रूस के साथ समझौता करना पड़ा। सन् १९०४ में उसने फ्रांस के साथ और सन् १९०७ में रूस के साथ इंग्लैंड के समझौते हुए।

इसके सिवाय सप्तम एडवर्ड के राजत्वकाल में मजदूरों की दशा सुधारने, शिक्षा विधान में सुधार करने, वृद्धावस्था में पैंशन देने इत्यादि अनेक प्रकार के कानूनों का निर्माण हुआ।

सप्तम एडवर्ड स्वयं शान्तिप्रिय थे और उनका शासन काल भी सारे साम्राज्य में शान्ति के साथ ही बीता। हालांकि युद्ध के बादल गड़गड़ाने लग गये थे। सन् १९१० में इनकी मृत्यु हुई।

एडवर्ड अष्टम

इंग्लैण्ड के सम्राट जार्ज पंचम के पुत्र जो सन् १९३६ में इंग्लैण्ड की गद्दी पर बैठे।

एडवर्ड अष्टम की शिक्षा तथा सामरिक शिक्षा समुचित रूप से सम्पन्न हुई। प्रथम महायुद्ध में उन्होंने युद्ध सम्बन्धी विशेष अनुभव प्राप्त किया। सन् १९१९ से १९२५ तक उन्होंने संसार के विभिन्न देशों की यात्राएँ कीं। इससे उनका सम्मान बहुत बढ़ गया।

सन् १९३६ में वे गद्दी पर बैठे मगर कुछ समय पश्चात् उनके सामने एक जटिल वैधानिक प्रश्न उपस्थित हो गया। मिसेज सिमसन नामक एक अंग्रेज युवती से उनका प्रेम हो गया और वे उससे विवाह करना चाहते थे, मगर इंग्लैण्ड के राजवंशीय विधान के अनुसार वे ऐसा विवाह नहीं कर सकते थे। अब उनके सामने प्रश्न यह था कि यदि सम्राट की गद्दी पर रहते हैं तो यह विवाह नहीं हो सकता और यदि विवाह करते हैं तो सम्राट की गद्दी नहीं रह सकती। अष्टम एडवर्ड ने अपने प्रेम की वेदी पर सम्राट पद का बलिदान कर दिया और मिसेज सिमसन से विवाह कर विण्डसर के ड्यूक बन गये।

एडवर्ड जेनर

माता (चेचक) के टीके का आविष्कारक सुप्रसिद्ध अंग्रेज डॉक्टर। जिसका जन्म सन् १७४९ में और मृत्यु सन् १८२३ में हुई।

एडवर्ड जेनर का जन्म इंग्लैण्ड के ग्लाड सेंस्टर शायर नामक स्थान पर हुआ था। पौधों और पक्षियों के अध्ययन में उनकी विशेष रुचि थी।

एडवर्ड जेनर जब २६ वर्ष के थे तब उन्होंने यह अनुभव किया कि छुतही गायों को दुहने के कारण जिन ग्वालिनों के हाथ में चेचक निकल आती है वे फिर कभी सारे शरीर में चेचक से आक्रान्त नहीं होती। उन्होंने यह भी सिद्ध कर दिया कि गायों की चेचक, मनुष्यों की चेचक और घोड़े की ब्रीज ये एक ही तरह की बीमारियां हैं।

कई वर्षों पश्चात् सन् १७९६ में उन्होंने पूरे साहस के साथ प्रयोग के रूप में जेम्स फिप्स नामक बच्चे पर अपने प्रसिद्ध टीके का प्रयोग किया। जेम्स उस समय आठ वर्ष का था। उसके माता-पिता को एडवर्ड जेनर पर इतना विश्वास था कि उन्होंने एक ग्वालिन के हाथ के फफोले के स्राव का टीका उस बच्चे को लगाने की अनुमति दे दी दो मास के पश्चात् वह बचा चेचक के स्राव से तो ग्रसित हुआ मगर उसे चेचक नहीं निकली।

सन् १७९८ में जेनर ने अपने आविष्कार को प्रकाशित कर दिया, इस टीके के प्रचार से सारे इंग्लैण्ड में बड़ा हो हल्ला मचा। शुरू-शुरू में कई टीके गलत लग जाने से बहुत से लोगों का नुकसान भी हुआ मगर धीरे-धीरे सन् १८०५ में एडवर्ड जेनर के टीके के प्रभाव से चेचक से मरने वालों की संख्या आधी रह गई। इसके पश्चात् तो सारे संसार में इस टीके का प्रचार हो गया।

एडवर्ड जेनर इस टीके के मूल आविष्कारक नहीं थे। उनसे पहले सन् १७१८ में मेरी वर्टली माण्टेग्यू ने भी चेचक के स्राव से टीका लगाने की पद्धति का आविष्कार किया था मगर उसे सफलता नहीं मिली और उसके प्रयोग से कई जानें चली गईं।

एडवर्ड लिटन

(Edward Lyton)

अंग्रेजी साहित्य में लोमहर्षक और ऐतिहासिक उपन्यासों का प्रसिद्ध लेखक जिसका जन्म सन् १८०३ में और मृत्यु १८७३ में हुई।

एडवर्ड लिटन के उपन्यासों में 'दी लास्ट डेज आफ पाम्पेयी" "रिएन्जी" "दी कमिंगरेस" इत्यादि उपन्यास बहुत प्रसिद्ध हैं।

एडवर्ड गिबन

(Edward Gibbon)

अठारहवीं सदी में अंग्रेजी साहित्य का प्रसिद्ध इतिहास लेखक जिसका जन्म सन् १७३७ में और मृत्यु १७९४ में हुई।

एडवर्ड गिबन का लिखा हुआ "फाल आफ दी रोमन एम्पायर" अंग्रेजी साहित्य के ऐतिहासिक क्षेत्र में बहुत प्रसिद्ध हुआ। एडवर्ड गिबन की रचनाओं ने उस समय के साहित्य को बहुत प्रभावित किया। उसकी लिखी हुई आत्मकथा या ओटोबायग्राफी ने अंग्रेजी गद्य शैली को एक नवीन मोड़ दिया।

एडवर्ड फिट्जरलैण्ड

उन्नीसवीं सदी का एक अंग्रेज कवि जिसने 'उमरखैयाम' की ७५ रुबाइयों का अंग्रेजी में काव्य-बद्ध अनुवाद कर अमर ख्याति प्राप्त की। इसका जन्म सन् १८०९ में और मृत्यु १८८३ में हुई।

इन रुबाइयों के अनुवाद में उसे अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई। उसके अनुवाद में वह भावुकता, तल्लीनता और ओज पाया जाता है कि अनुवाद होते हुए भी साहित्य जगत् में वह धन्य हो गया। इस अनुवाद के सम्बन्ध में अधिकारी लोगों की राय है कि वह मूल से भी अधिक सुन्दर बन गया है।

एडम्स-जॉन

अमेरिका के द्वितीय राष्ट्रपति जिनका जन्म सन् १७३५ में और मृत्यु सन् १८२६ में हुई।

एडम्स जॉन संविधान के विशेषज्ञ थे अमेरिकन संविधान की रचना में इनका भी महत्वपूर्ण सहयोग था। ये अमेरिका के सुप्रसिद्ध टामस जेफर सन् और अलेक्जेण्डर हैमिल्टन के साथी थे मगर बाद में गम्भीर मतभेद हो जाने से परस्पर विरोधी हो गये।

इंग्लैंड के द्वारा अमेरिका में जारी किये हुए "स्टॉम्प-एक्ट" का ह्विग दल के नेता के रूप में उन्होंने कड़े शब्दों में प्रतिवाद किया।

एडम्स सन् १७९६ में संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के राष्ट्रपति चुने गये, मगर कुछ तो उस समय की जटिल और विलक्षण राजनीतिक परिस्थिति के कारण और कुछ अपनी दुराग्रहपूर्ण प्रवृत्ति के कारण यह अपनी पार्टी के संगठन को स्थिर न रख सके। हैमिल्टन के साथ इनका विरोध हो गया। जिसके कारण इनका राष्ट्रपतिकाल अधिक कीर्तिपूर्ण न रहा।

इसी की प्रतिक्रिया स्वरूप सन् १८०० में जब यह दुबारा राष्ट्रपति पद के लिए खड़े हुए तो उस समय के प्रसिद्ध नेता 'टामस जैफरसन' के मुकाबले में इनको करारी हार खानी पड़ी।

सन् १८२६ में इनका देहान्त हुआ।

एडमंड स्पेंसर

अंग्रेजी-भाषा का युगान्तरकारी कवि, जिसका जन्म सन् १५५२ में और मृत्यु सन् १५९९ में हुई।

एडमंड स्पेंसर उस समय में हुआ, जिस समय को अंग्रेजी-साहित्य में 'रेनेसांस' या पुनर्जागरण का युग कहते हैं। यह अधिकतर आयर्लैंड के लिसेस्टर के 'अर्ल' के संरक्षण में रहा। उसकी कविताओं में माधुर्य, ओज और प्रसाद तीनों गुणों की धाराएँ अविरल रूप से बहती हैं। उसकी कविताएँ क्लासिकल पृष्ठभूमि पर निर्मित की गई हैं और

यद्यपि आज के युग में इस तरह की पृष्ठभूमि अपना महत्व खो चुकी है, फिर भी 'स्पेंसर' की काव्य-अभिव्यञ्जना, शब्द, माधुर्य और कल्पना की उड़ान आज के पाठक को भी प्रभावित करती हैं।

एडमंड स्पेंसर की रचनाओं में 'दि शेपर्डस कैलेण्डर' और 'दि फेयरी क्वीन' बहुत प्रसिद्ध हैं। फेयरी क्वीन की नायिका तो उसने स्वयं रानी एलिजाबेथ को बनाया है। फेयरी क्वीन ने स्पेंसर के परवर्ती अंग्रेज कवियों को काफी प्रभावित किया।

एण्ड्रू मारवेल

अंग्रेजी-भाषा का एक प्रसिद्ध कवि जिसका जन्म सन् १६५१ में और मृत्यु सन् १६७८ में हुई।

ऐंड्रू मारवेल ने अपनी रचनाओं में क्रामवेल और चार्लस द्वितीय के समय के इंग्लैण्ड का सुन्दर भाषा में वर्णन किया है। प्युरिटन होने के कारण उसकी कविताओं में व्यंग और तानेशाजी का विशेष समावेश पाया जाता है।

एण्टवर्प

पश्चिमी यूरोप के बेलजियम राज्य की राजधानी।

एन्टवर्प नगर की स्थापना ईसा की ८वीं शताब्दी के करीब हुई थी। यहाँ के निवासी उस समय गेनब्रीरियन कहलाते थे। १४वीं शताब्दी का बना हुआ 'नैट्रोडेम' नामक गिर्जाघर एन्टवर्प का सबसे प्रसिद्ध दर्शनीय स्थान है। यह गाथिक स्थापत्य-कला का उत्तम नमूना है। इसमें एक विशाल मीनार बनी हुई है, जिसकी ऊँचाई ४ सौ फीट है। गिर्जे के इस विशाल भवन का क्षेत्रफल ७० हजार वर्ग फीट है। इस भवन में प्रसिद्ध चित्रकार 'रूबेंज' की चित्रकला देखने के योग्य है।

आधुनिक एन्टवर्प यूरोप के अत्यन्त सुन्दर और विकसित नगरों में से एक है। यह नगर चारों ओर विशाल दुर्गों से घिरा हुआ है और व्यापारिक दृष्टि से इसका महत्व बहुत अधिक है।

एडम्स जॉन क्विंसी

अमेरिका के द्वितीय राष्ट्रपति एडम्स जान के पुत्र 'एडम्स जॉन क्विंसी' जिनका जन्म सन् १७६७ ई० में और मृत्यु सन् १८४८ में हुई।

सन् १८१७ में जब 'जेम्स मनरो' संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के राष्ट्रपति निर्वाचित हुए तब 'जानक्विंसी' उनके राजमंत्री बने।

अमेरिका के सुप्रसिद्ध 'मनरो-सिद्धान्त' के स्थापक 'एडम्स क्विंसी' ही थे, वह सिद्धान्त उन्हीं का बनाया हुआ था, जो 'मनरो-सिद्धान्त' के नाम से अमेरिका में प्रसिद्ध हुआ। इसकी वजह से इनकी कीर्ति अमेरिका में बहुत बढ़ गई और मनरो के बाद जब अमेरिका के राष्ट्रपति का चुनाव हुआ तो एडम्स जॉन क्विंसी अमेरिका के राष्ट्रपति चुने गये। जो इस पद पर सन् १८२५ से १८२६ तक रहे। सन् १८२६ में वे इस पद से अलग हुए।

एडम्स जॉन क्विंसी का राष्ट्रपति काल अधिक प्रकाश पूर्ण नहीं रहा। ऐंड्रू जेक्सन के साथ उनकी प्रतिद्वन्द्विता ने बहुत हल्का रूप ग्रहण कर लिया था।

पर उसके बाद सन् १८३१ से गुलामों के अधिकारों के लिए ये लड़ते रहे और उसमें इन्हें काफी सफलता भी मिली।

एडम्स जॉन काउच

इंग्लैंड का एक प्रसिद्ध ज्योतिषी, जिसका जन्म सन् १८१६ में और मृत्यु सन् १८६२ में हुई।

'एडम्स काउच' ने आकाशीय 'यूरेनस' नामक ग्रह के सम्बन्ध में कुछ नवीन अनुसन्धान किये। उसको पता लगा कि यूरेनस से भी अधिक ऊँचाई पर एक दूसरा प्रभावशाली ग्रह है, जिसके प्रबल आकर्षण से यूरेनस नामक ग्रह कभी-कभी अपने मार्ग से विचलित हो जाता है।

सन् १८४५ में उसने इस नवीन ग्रह की स्थिति के सम्बन्ध में अपने अनुसन्धान तैयार करके कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी में भेजे। मगर उसके दुर्भाग्यवश इसी समय

फ्रांस के लेवेरियर नामक ज्योतिषी ने भी इसी ग्रह पर अपना अनुसन्धान करके जर्मन ज्योतिषी गेले के पास खोज करने के लिए भेज दिया और इस खोज के परिणाम-स्वरूप इस ग्रह का नाम 'लिवेरियर' रख दिया गया, मगर पीछे जाकर इंग्लैंड के ज्योतिषियों के प्रयत्न से इसका नाम बदलकर 'नेपच्यून' रखा गया और इस खोज का श्रेय एडम्स और लेवेरियर दोनों को मिला।

इसके बाद भी एडम्स ने कैम्ब्रिज-वेध शाला में ग्रहों के सम्बन्ध में और भी कई महत्वपूर्ण खोजें कीं।

एडिसन जोसेफ
(Joseph Addison)

अंग्रेजी भाषा का प्रसिद्ध गद्य-लेखक, निबन्धकार और समालोचक और पत्रकार, जिसका जन्म सन् १६७२ में और मृत्यु सन् १७१९ में हुई।

एडिसन जोजेफ ने अंग्रेजी-साहित्य में निबन्ध-लेखन का एक नवीन स्तर कायम किया। सन् १७११ से प्रारम्भ होने वाली अपनी 'स्पेक्टेटर" नामक पत्रिका में प्रकाशित होने वाले इनके लेखों ने अंग्रेजी साम्राज्य में बड़ी लोकप्रियता प्राप्त की और इन्हीं के बल पर इन्होंने काफी धन और यश कमाया, हालांकि यह पत्रिका केवल साल-डेढ़-साल ही चली। इसके बाद इनका ध्यान रंगमञ्च की ओर भी गया। जहाँ पर इनके लिखे हुए "कैटो" नामक ट्रेजिडी का सफल अभिनय हुआ।

एडीसन जोजेफ का वैवाहिक जीवन अत्यन्त दुःखमय रहा तथा शराब के अत्यधिक व्यसन ने इनके स्वास्थ्य को जर्जर कर दिया। फलस्वरूप सन् १७१९ में इनकी बड़ी दुर्भाग्य-पूर्ण स्थिति में मृत्यु हो गई।

एडीसन (टामस एल्वा एडीसन)

संसार का महान वैज्ञानिक और आविष्कारक, जिसका जन्म सन् १८४७ की ११ फरवरी को अमेरिका के 'मिलान' नामक नगर में हुआ।

इनके पिता का नाम सेमुअल एडीसन और माता का नाम लेंसी इलियट था। एडीसन का स्वास्थ्य बचपन से खराब रहता था, इसलिये वे स्कूल नहीं भेजे गये। इस कारण उन्हें जो कुछ शिक्षा मिली, वह घर पर ही माता के द्वारा मिली। घर पर ही पुस्तकें पढ़-पढ़ कर उन्होंने स्वतन्त्र रूप से विचार करने की शक्ति प्राप्त करली। उन्होंने बिना गणितशास्त्र के ज्ञान के ही, अपने धैर्य और परिश्रम से सैकड़ों आविष्कार कर लिए। शास्त्रीय ज्ञान की अपेक्षा वह प्रयोगात्मक व्यावहारिक ज्ञान को अधिक महत्व देते थे।

एडीसन ने १० वर्ष की अवस्था में ही रसायनशास्त्र का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। शिल्प-कला के बारे में वे जो कुछ भी पढ़ते उसे वे अपने प्रयोगों के द्वारा क्रियात्मक रूप देकर अनुभव प्राप्त करने का प्रयत्न करते रहते थे। यही कारण है कि इस छोटी-सी अवस्था में ही इन्होंने अपने घर पर एक छोटी सी प्रयोगशाला खोल ली थी।

एडीसन रेल में समाचार-पत्र बेंचा करते थे और इसी आमदनी से अपनी प्रयोगशाला का खर्च चलाते थे। पत्र-विक्रेता की स्थिति से सन्तुष्ट न रह कर इन्होंने गार्ड के डिब्बे से एक निजी समाचार-पत्र निकालना प्रारम्भ किया। इस पत्र का आदि से लेकर अन्त तक सारा कार्य अकेले एडीसन को ही करना पड़ता था। इसी डिब्बे में एडीसन ने एक प्रयोग-शाला भी स्थापित कर ली थी।

एक दिन कुछ प्रयोग करते समय रेल के तख्ते पर किसी विस्फोटक द्रव्य के गिर जाने से डिब्बे में आग लग गई। गार्ड ने आकर उनको दो तमाचे लगाये और प्रयोग-शाला की शीशियों को बाहर फेंक दिया। फल यह हुआ कि उनकी प्रयोगशाला भी नष्ट हो गई और थप्पड़ लगने से वे एक कान से बहरे भी हो गये, पर वे इस घटना से विचलित न हुए, बल्कि अपना काम करते रहे।

इसके बाद उन्होंने अपने इंजिन ड्राइवर मित्रों से इंजिन की मैशीनरी का ज्ञान प्राप्त किया और तार-घर में जाकर तार का काम भी सीखा।

इसके पश्चात् न्यूयार्क की 'गोल्ड इण्डीकेटर कम्पनी' में उनकी सर्विस लग गई। एक दिन वहाँ की मशीन में कुछ खराबी हो गई, जिसे वहाँ के इञ्जिनियर ठीक नहीं कर सके। एडीसन ने अपने कौशल-पूर्ण दिमाग से उस मशीन को ठीक कर कम्पनी के मालिक पर अपनी धाक जमा ली।

इसके बाद उन्होंने कम्पनी के कार्य में सुविधा उत्पन्न करने वाले कई आविष्कार किये। इन आविष्कारों से प्रसन्न होकर कम्पनी के मालिक ने युवक एडीसन से उन आविष्कारों का मूल्य मागने को कहा। एडीसन उन आविष्कारों का मूल्य ३ हजार डालर माँगना चाहते थे, मगर उन्हें यह रकम माँगने का साहस नहीं हुआ और मालिक से कह दिया कि वह जो कुछ मुनासिब समझें, दे दें। कम्पनी के मालिक ने पूछा——क्या ४० हजार डालर काफी होंगे? एडीसन अपनी इस आकस्मिक समृद्धि से चकित होकर बड़ी खुशी से घर लौटे।

एडीसन ने टेलिग्राम के काम में बहुत सी इजादें कीं। एक ही तार पर कई सम्वाद भेजने की विधि उन्होंने निकाली। बिजली की रोशनी के लिये छोटे-छोटे लैम्पों का इजाद करने में उन्होंने दिन-रात एक कर दिया। लड़ाई के दिनों में उन्होंने युद्ध-सामग्री सम्बन्धी आविष्कार कर देश की बड़ी सेवा की।

मगर 'ग्रामोफोन' के आविष्कार ने एडीसन को संसार में बहुत प्रसिद्ध कर दिया। सन् १८७७ में उन्होंने ग्रामोफोन का आविष्कार किया। इस आविष्कार को देखकर एडीसन के सहकारी लोगों के हर्ष का पारावार न रहा। वे लोग उनके चारों ओर मण्डल बांध कर नाचने लगे, पर एडीसन ने जब तक इस मशीन को उत्तमता की चरम सीमा तक नहीं पहुँचा दिया, तब तक उन्होंने साँस नहीं ली।

इस यन्त्र का आविष्कार 'टेलीफोन' से ही हुआ था। टेलीफोन के किसी यंत्र को एडीसन एक सूई की सहायता से सुधार रहे थे, सहसा उससे कुछ शब्द उत्पन्न हुआ। उससे एडीसन ने यह तथ्य निकाला कि सूई के कंपनों से किसी पत्तर में कम्पन उत्पन्न कर के शब्द उत्पन्न किया जा सकता है। सन् १९१० में अनेक सुधारों के बाद ग्रामोफोन को वर्त्तमान रूप मिला।

२१ अक्टूबर सन् १८७९ ई० को एडीसन ने ४० घंटे से अधिक समय तक बिजली से जलने वाला 'निर्वात-वल्ब' विश्व को भेंट किया। १८८३ में उन्होंने एडीसन-प्रभाव की खोज की जो कालान्तर में वर्तमान 'रेडियो' वल्व का जन्मदाता सिद्ध हुआ। अगले १० वर्षों में एडीसन ने प्रकाश, उष्मा और शक्ति के लिए विद्युत के उत्पादन और तीन तारों वाली वितरण प्रणाली के साधनों और विधियों पर प्रयोग किये। भूमि के नीचे 'केबुल' के लिए विद्युत के तार को रबड़ और कपड़े में लपेटने की पद्धति को ढूँढ़ी। डायनुमा और मोटरों में सुधार किये। सन् १८९१ ई० में इन्होंने 'चलचित्र' कैमरे को 'पेटेन्ट' कराया एवं इन चित्रों को प्रदर्शित करने के लिए 'इनैटोस्कोप' का आविष्कार किया। मेनलो पार्क वेस्ट-आरेंज के कारखानों में एडीसन ने ५० वर्ष के अथक परिश्रम से १०३३ आविष्कारों को पेटेन्ट कराया। इसके उपलक्ष में 'पनामा-पैसेफिक प्रदर्शिनी, ने २१ अक्टूबर सन् १९१५ ई० को एडीसन-दिवस का आयोजन कर के विश्व-कल्याण के लिए सबसे अधिक आविष्कारों के आविष्कर्त्ता इस महान वैज्ञानिक को सम्मानित किया।

१८ अक्टूबर सन् १९३१ ई० को विश्व के इस महान् वैज्ञानिक ने इस संसार से बिदा ली।

एण्ड्रूज (सी० एफ०)

एक सेवाभावी ईसाई सन्त, साहित्यकार जिनका जन्म सन् १८७१ में इंग्लैंड के एक निर्धन-परिवार में हुआ था और जिनके जीवन का अधिकांश समय भारत की सेवा में बीता था।

श्री एण्ड्रूज ने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा प्राप्त कर एक ईसाई सन्त की तरह मानव-सेवा का मार्ग ग्रहण कर लिया था। उनकें जीवन का अधिकांश समय भारत ही में व्यतीत हुआ। सन् १९०४ में पहली बार वे भारत आये थे और उसके बाद उनके जीवन के करीब ३६ वर्ष इसी देश की सेवा में व्यतीत हुए।

सन् १९१३ में जब महात्मा गांधी ने दक्षिण अफ्रीका में जाकर सत्याग्रह-संग्राम का प्रारम्भ किया था, उस समय श्री एण्ड्रूज ने स्वयं अफ्रीका पहुँच कर 'जनरल स्मट्स' के साथ समझौता कराने में महात्मा गांधी की पूरी सहायता की। सन् १९१२ में उन्होंने पहले पहल भारत की स्वाधीनता के लिये अपनी आवाज बुलन्द की। पराधीन भारत की साहित्यिक और सांस्कृतिक चेतना को उन्होंने संसार के सामने प्रसारित किया था।

शर्तबन्दी गुलामी की दीर्घ कालीन प्रथा को मिटाने का अधिकांश श्रेय उन्हीं को था। इस दिशा में यद्यपि महात्मा गांधी और माननीय गोखले ने भी बहुत प्रयत्न किया था, किन्तु सी० एफ० एण्ड्रूज का योगदान इस क्षेत्र में बहुत मूल्यवान माना जाता है। इस प्रथा में हमारे देश के सैकड़ों हजारों आदमियों को अंगरेज-भूमिपति बहका-बहका कर मारीशस, ब्रिटिश गायना, फिजी, ट्रिनीडाड इत्यादि उपनिवेशों में भेज दिया करते थे और उनके साथ अत्यन्त अमानुषिक व्यवहार किया जाता था।

सी० एफ० एण्ड्रूज वास्तव में एक ईसाई सन्त की तरह थे। इनके समकालीन व्यक्ति इन्हें प्रभु ईसा का सच्चा शिष्य मानते थे। भारत के ईसाई इन्हें ईश्वरीय दूत मानते थे। उन्होंने अपना सारा जीवन दीन हीन और पीड़ितों की सेवा में ही लगाया था। मानवतावादी दृष्टिकोण से ही वे दरिद्र लोगों की सेवा करते थे।

साहित्यिक और सामाजिक क्षेत्र में श्री 'एण्ड्रूज' की सेवायें बहुमूल्य थीं। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ के शांति-निकेतन में कई सालों तक उन्होंने अंग्रेजी पढ़ाने का कार्य किया था। अपनी कलम के द्वारा उन्होंने रवीन्द्र नाथ की रचनाओं का विदेशों में काफी प्रचार किया। उनके द्वारा लिखी हुई दर्जनों रचनाओं ने साहित्य को समृद्ध किया। उनके सैकड़ों लेख संसार भर के पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते थे। उनका राजनैतिक क्षेत्र में आना एक संयोग की बात थी। उनका वास्तविक क्षेत्र तो नैतिक और आध्यात्मिक ही था। उनकी वाणी में ईसाई-मत के उसूलों की कोई दुहाई ही नहीं रहती थी बल्कि उनका मानवतावादी दृष्टिकोण मुखरित होता था। महात्मा गांधी ने उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि देते हुये कहा था—

"जबतक अंग्रेज जाति में एक भी एण्ड्रूज विद्यमान है हम अंग्रेज से घृणा नहीं कर सकते।"

एडगर-एलेन-पोयें (Edgar Allan poe)

अमेरिका का एक प्रसिद्ध साहित्य-निर्माता, जिसका जन्म सन् १८०९ में और मृत्यु सन् १८४९ में हुई।

एडगर-एलेन-पो के पिता, एक प्रसिद्ध अभिनेता और माता अभिनेत्री थीं। इसकी शिक्षा इंग्लैंड में हुई थी और एक पत्रकार के रूप में पहले-पहल यह साहित्य के क्षेत्र में आया था। साहित्यिक क्षेत्र के अन्तर्गत इसने सैद्धान्तिक और प्रयोगात्मक—दोनों ही क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया।

'रोमांस' और 'बुद्धिवाद' दोनों का सामञ्जस्य करके उसने 'यूरेका' के नाम से एक गद्य-पद्यात्मक शैली का साहित्य में सृजन किया। उसकी गद्य और पद्य की इन कृतियों ने यूरोपियन साहित्य को काफी प्रभावित किया।

एडिनबरा

स्कॉटलैंड की राजधानी।

एडिनबरा स्कॉटलैंड की राजधानी और एक मशहूर शहर है। स्कॉटलैंड का इतिहास एक बड़ा जटिल इतिहास है। जिस समय आँग्ल तथा सेक्सन जाति के लोग ब्रिटेन में आये। उस समय फोर्थ के मुहाने के उत्तर के पहाड़ी प्रदेश में 'पिक्ट' नामक जाति के लोग बसे थे। पश्चिमी तट पर एक छोटा सा राज्य, आइरिश केल्ट लोगों का था जो स्कॉट कहलाते थे।

१०वीं सदी के आरम्भ में पिक्ट लोगों ने स्कॉट लोगों को अपना शासक मान लिया और तभी से इतिहास लेखकों ने हाईलैंड नामक प्रदेश को स्कॉटलैंड लिखना प्रारम्भ कर दिया था।

स्कॉटलैंड के इतिहास में यह एक बड़े महत्व की घटना थी कि उसके राजा लोग हाईलैंड में न रहकर लोलैंड में रहे और उन्होंने अपनी राजधानी दुर्भेद्य, दुर्गान्वित एडिनबरा को नियत किया। विजयी विलियम के सिंहासन पर बैठते ही अनेक ब्रिटेनवासी तथा असन्तुष्ट नार्मन अमीर लोग भी इंग्लैंड की सीमा को पार कर लोलैंड में आकर बसे। इन्होंने अपने बड़े-बड़े कुटुम्ब स्थापित किये। इन कुटुम्बों वेलियल तथा ब्रूस के कुटुम्ब अत्यन्त प्रसिद्ध है। जिन्होंने बाद को स्कॉटलैंड की स्वतन्त्रता के लिए बड़े-बड़े युद्ध किये।

एण्डर्सन-कार्ल-डेविड

अमेरिका के एक प्रसिद्ध भौतिक वैज्ञानिक, जिनका जन्म सन् १६०५ में न्यूयार्क में हुआ।

सन् १६२७ से इन्होंने अन्तरिक्ष किरणों के बारे में अपने अनुसन्धान प्रारम्भ किये सन् १६३२ में अनेक अनुसन्धानों के बाद वे इस निर्णय पर पहुँचे कि अन्तरिक्ष किरणों की 'उर्जा' जब पदार्थ में परिणित होती है तो एक 'इलेक्ट्रान' के साथ उतनी ही घन विद्युत मात्रावाला दूसरा कण भी उत्पन्न होता है, जिसे इन्होंने 'पाजिट्रान' का नाम दिया।

पाजिट्रान का भार ठीक इलेक्ट्रान के भार के बराबर होता है। पाजिट्रान की इस खोज के उपलक्ष में सन् १६३६ में इनको भौतिक विज्ञान का 'नोबुल' पुरस्कार प्रदान किया गया।

एडम-गोटलाव

डेनमार्क का प्रसिद्ध साहित्यकार, जिसका जन्म सन् १७७६ में और मृत्यु सन् १८५० में हुई।

डेनमार्क के साहित्य में एडम-गोटलाव की स्थिति शेक्सपियर के समान मानी जाती है। ६ वर्ष की आयु से ही उसने अपनी काव्य-शक्ति का परिचय देना प्रारंभ किया। किसी भी स्कूल से उसने बाकायदे शिक्षा नहीं ग्रहण की। परन्तु निजी तौर से उसने प्राचीन और नवीन साहित्य का गंभीरता से अध्ययन किया।

इसके पश्चात् इसकी अनेक रचनाएँ प्रकाशित हुईं, जिनसे डेनमार्क का साहित्य आलोकित हो उठा। इन कृतियों में अलादीन नामक कृति बहुत प्रसिद्ध हुई।

एण्डर्सन-हान्स-क्रिश्चियन

डेनमार्क का एक प्रसिद्ध बाल साहित्यकार, जिसका जन्म सन् १८०५ और मृत्यु सन् १८७५ में हुई।

डेनमार्क के साहित्य में एण्डर्सन-हान्स-क्रिश्चियन की कहानी बड़ी आश्चर्य-जनक है। बचपन से ही इसमें काव्य-प्रतिभा का विकास हो रहा था। शुरू-शुरू में कठपुतलियों के ऊपर रचना करके इसने अपनी कल्पना-शक्ति का परिचय दिया।

इसके पश्चात् इसकी इच्छा गायक बनने की हुई और वह इस इच्छा से कोपेनहेगेन आया। इसके बाद गायक बनने की अभिलाषा को छोड़कर इसने 'रायल-थियेटर' में नृत्य सीखना आरंभ किया। सन् १८२६ ई० में इसकी पहली कृति 'फॉडराइज' प्रकाशित हुई, मगर उसकी बड़ी कड़ी आलोचना हुई जिसकी वजह से यह इटली चला गया।

वहाँ से वापस लौटने पर इसकी कृति 'इम्फ्रोवाई-जेटोरेन' प्रकाशित हुई जिसमें इसको अच्छी सफलता मिली।

इसके बाद इसने क्रिसमिस के अवसर पर परियों की कहानियाँ लिखना प्रारंभ किया। इन कहानियों से उसकी ख्याति सारे यूरोप में हो गई।

विश्व के बाल-साहित्य में इस लेखक का सबसे पहला स्थान है। विश्व की लगभग सभी भाषाओं में इसकी परियों की कहानियों के अनुवाद हो चुके हैं। इसकी अन्य रचनाओं में 'फाड-राइज' 'केवल्स' 'दी इम्फ्रोवाइ-जेटोरेन' 'ए पिक्चर बुक विदाउट पिक्चर्स' 'टुबी और नाट टुबी' इत्यादि रचनाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं।

एण्ड्रू कार्नेगी

अमेरिका का प्रसिद्ध धनकुबेर और उद्योगपति, जिसका जन्म सन् १८३५ में स्कॉटलैंड के डनूफर्लिन नामक स्थान में हुआ था।

एण्ड्रू कार्नेगी का पिता विलियम कार्नेगी जुलाहे का काम करता था। कार्नेगी का नाना टामस मारीसन अपने समय का एक प्रसिद्ध पत्रकार और वक्ता था। वह 'प्रीकर्सर' नामक एक पत्र भी निकालता था।

भाप की शक्ति का आविष्कार हो जाने पर कार्नेगी के पिता का हाथ करघे का व्यवसाय एकदम ठप हो गया और कार्नेगी का परिवार भयंकर आर्थिक संकट में फँस गया।

तब कार्नेगी के पिता ने अमेरिका जाने का निश्चय किया और अपना सब सामान २० पौण्ड में नीलाम करके कुछ धन लेकर 'विस्कासेट' नामक जहाज पर सवार होकर यह परिवार अमेरिका पहुँचा।

वहाँ पर कार्नेगी के पिता ने टेबुल क्लाथ बुनने का और उसकी माता ने जूतों की मरम्मत करने का काम शुरू किया, मगर इससे उनका खर्च चलने में बड़ी कठिनाई होती थी। तब कार्नेगी ने स्कॉटलैंड निवासी मि० ब्लेक स्टॉक के कपड़े के कारखाने में काम करना प्रारंभ किया। सुबह से शाम तक कड़ा परिश्रम करने पर उसे एक सप्ताह में १ डालर २० सेंट मजदूरी मिलती थी।

उसके बाद सन् १८५० ई० में कार्नेगी ने पीटसवर्ग के तार-घर में तार बाँटने की नौकरी कर ली। तार बाँटने के काम से उसका परिचय उस नगर के कई प्रसिद्ध पुरुषों से हो गया। एक वर्ष तक काम करने के बाद कार्नेगी ने तार उतारने और भेजने का काम भी सीख लिया। फिर वह शीघ्र ही सहायक-तार बाबू की नौकरी पर लग गया और उसे २५ डालर मासिक वेतन मिलने लगा।

१६ वर्ष की अवस्था में कार्नेगी ने तार घर की नौकरी छोड़कर रेलवे में नौकरी कर ली। यहाँ पर भी कार्नेगी ने अपनी बुद्धिमत्ता से अपने आफिसर मि० स्कॉट को बहुत खुश कर लिया और एक वर्ष बाद ही जब मि० स्कॉट दो सप्ताह की छुट्टी लेकर घर गये तो अपना काम कार्नेगी को सिपुर्द कर गये।

इसके बाद मि० स्कॉट के सहयोग से कार्नेगी ने एक कम्पनी के ५ सौ डालर के शेयर खरीद कर पहले-पहल व्यवसाय के क्षेत्र में प्रवेश किया। उन दिनों कम्पनियाँ मासिक 'डिविडेण्ट' बाँटा करती थीं। एक दिन कार्नेगी को अपने शेयरों के डिविडेण्ड के रूप में १० डालर का 'चेक' प्राप्त हुआ। कार्नेगी ने अपने आत्म-चरित में लिखा है कि— "मैं उस चेक को जीवनपर्यन्त नहीं भूलूँगा। पूँजी के व्यवसाय में लगाने पर वही पहली बार मुझे नफे के रूप में मिला था। यह डालर मेरे पसीने की कमाई के नहीं थे। मैंने मन में सोचा कि यह मुर्गी तो सोने का अंडा देती है।"

इसके बाद रेलवे की सर्विस में कार्नेगी ने मि० स्कॉट के संरक्षण में बहुत तरक्की की। उन्हीं दिनों 'उडरफ' नामक मिस्त्री ने रात्रि भ्रमण करते समय मुसाफिरों के लिए सोने की सुविधा के लिए 'स्लीपिंग-कोच' गाड़ी का आविष्कार किया था। इस गाड़ी का डिजाइन उसने कार्नेगी को बतलाया और कार्नेगी ने उसको दो गाड़ियाँ बनाने का कंट्राक्ट रेलवे कम्पनी से दिलवाया। इस व्यवसाय में उसने आठवाँ हिस्सा कार्नेगी का भी रखा। सोने वाली गाड़ियों की आगे जाकर बड़ी कदर हुई और कार्नेगी को भी इसमें अच्छा लाभ हुआ।

सन् १८५६ ई० में कार्नेगी के आफिसर मि० स्कॉट रेलवे-कम्पनी के वाइस-प्रेसिडेण्ट बना दिये गये जिसके लिए उन्हें फिलाडेल्फिया जाना पड़ा। उस समय कार्नेगी की अवस्था २४ वर्ष की थी। मि० स्कॉट ने कार्नेगी के लिए रेलवे के पीटसवर्ग-विभाग का सुपरिंटेडेण्ट बनाने की सिफारिश कर दी। सन् १८५६ ई० की पहली दिसम्बर को कार्नेगी पीटसवर्ग के सुपरिंटेंडेण्ट नियुक्त कर दिये गये।

सन् १८६१ ई० में गुलामी की प्रथा के सम्बन्ध में उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका में भयंकर गृह युद्ध छिड़ गया। मि० स्कॉट उस समय युद्ध के सहायक-मंत्री नियुक्त किये गये। उन्होंने अपनी सहायता के लिए एण्ड्रू कार्नेगी को बुला भेजा। उस समय बाल्टीमोर होकर जाती हुई 'यूनियन' की सेना पर आक्रमण शुरू हो गया था और बाल्टीमोर तथा अनापोलिस जंक्शन के बीच की रेलवे लाइन काट दी जाने से वाशिंगटन नगर से सम्बन्ध विच्छेद हो गया था। कार्नेगी के जिम्मे इसी लाइन की मरम्मत का काम सौंपा गया था। इस काम को कार्नेगी ने बड़ी तत्परता के साथ पूरा किया। इस कार्य से प्रेसिडेण्ट 'लिंकन' के साथ कार्नेगी का सीधा सम्पर्क हुआ। प्रेसिडेण्ट लिंकन इनकी डेस्क के निकट आकर बैठते थे और तार के द्वारा युद्ध की जो खबरें आती थीं, उन्हें बड़े ध्यान से सुनते थे।

गृह-युद्ध के समय लोहे के भाव बहुत तेज हो गये थे। फिर भी लोग सामान नहीं जुटा सकते थे। नये रेल-पथों के अभाव में अमेरिकन रेलवे की बड़ी दुर्दशा हो रही थी। इस अभाव का अनुभव करके कार्नेगी ने सन् १८६४ ई० में

पीटसवर्ग में रेल–पटरी बनाने का एक कारखाना खोला। इसके साथ ही मि० मिलर के साझे में इन्होंने रेल के डिब्बे बनाने का कारखाना पीटसवर्ग में ही खोल दिया।

इस कम्पनी को इतनी सफलता हुई कि सन् १९०६ में इस कम्पनी के एक सौ डालर के हिस्से का दाम ३ हजार डालर हो गया।

सन् १८६२ ई० में रेलवे के लिए लोहे के पुल बनाने के लिए कार्नेगी के प्रयत्न से 'पाइपर कम्पनी' की स्थापना हुई। सन् १८६३ ई० में यह कम्पनी 'स्टोन ब्रिज कम्पनी' में मिला दी गई, जहाँ पर लोहे के बड़े–बड़े पुल अधिक संख्या में तैयार होने लगे।

इसके बाद तो कार्नेगी का भाग्य सर्वतोमुखी रूप से चमक उठा। उन्होंने कई बड़े–बड़े पुलों का ठेका लेकर उनको बड़ी सफलता के साथ बनाया और उसके बाद ही कार्नेगी ने लोहे के कारबार में प्रवेश किया।

लोहे का कारबार

कारनेगी ने टॉमस मिलर, हेनरी फिप्स, और एण्ड्रू क्लोमन के साथ शुरू २ में लोहे की एक छोटी सी मिल की स्थापना की। सन् १८६७ में इस कारखाने के साथ और एक दूसरा कारखाना मिलाकर उसका नाम यूनियन आयर्न मिल रक्खा गया।

सन् १८६८ में कार्नेगी का ध्यान पेन्सिल वेनिया के तैल कूपों की तरफ आकर्षित हुआ। उन्होंने चालीस हजार डालर में वहाँ के तैलकूपों को खरीद लिया। इस उद्योग में उनको एक वर्ष में दस लाख डालर का लाभ हुआ और तैलकूपों का मूल्य पचास लाख डालर हो गया। इसके पहले ही सन् १८६५ में वे रेलवे कम्पनी की नौकरी से त्याग पत्र दे चुके थे।

गृह युद्ध की समाप्ति पर अमेरिकन सरकार ने देशी लोहे के उद्योग को उत्तेजना देने के लिए विदेशों से आने वाले लोहे के तैयार माल पर २८ प्रतिशत आयात कर लगा दिया। इससे भी कार्नेगी के व्यवसाय को बड़ा लाभ हुआ। इसके पश्चात् इन्होंने प्रसिद्ध औद्योगिक नगर 'न्यूयार्क' में अपना बड़ा आफिस खोल दिया और वहीं पर रहने लगे।

न्यूमार्क में उस समय सट्टे का व्यवसाय बड़े जोर शोर से चलता था। इनका आफिस खुलने पर इनको भी सट्टे बाजी के लिए लोगों ने घेरना शुरू किया मगर कार्नेगी अपने सिद्धान्त पर इतने दृढ़ थे कि उन्होंने जीवन भर शेअरों की सट्टेबाजी में हाथ नहीं डाला इस विषय में उनका कहना था कि—

'जो लोग किसी वस्तु के उत्पादन में संलग्न हैं उन्हें भूल से भी फाटकेबाजी का नाम न लेना चाहिए। उद्योग की सफलता के लिए शान्त मन की आवश्यकता है। फाटकेबाज लोगों का मन भावों के चढ़ाव-उतार पर क्षण-क्षण में चंचल होता रहता है। फाटकेबाजों को अभाव में भाव और भाव में अभाव दिखाई पड़ता है। वस्तुओं का यथार्थ ज्ञान उन्हें नहीं होने पाता। पर्वत को वे राई की तरह और राई को पर्वत की तरह देखते हैं। फिर शान्त और गम्भीर विचार वे कैसे कर सकते हैं। फाटकेबाजी से वस्तुओं के मूल्य में व्यर्थ की वृद्धि होती है। अर्थशास्त्र की दृष्टि से इससे कुछ भी उत्पादन नहीं होता।'

इसके बाद कार्नेगी को मिसीसीपी नदी पर पुल बनाने का तथा और भी कई बड़े–बड़े कण्ट्राक्ट मिले। जिनसे इन्हें लाखों डालर का लाभ हुआ।

इसी समय सन् १८६८ में कार्नेगी ने अपने जीवन का एक कार्यक्रम निश्चित कर कुछ आदर्श निश्चित किये। इस कार्यक्रम के सम्बन्ध में उनकी डायरी इस प्रकार है—

"सेण्ट निकोलस होटल न्यूयार्क दिसम्बर १८६८ ई०। अभी मैं तैंतीस वर्ष का ही हूँ पर मेरी आय ५०००० डालर सालाना की हो चुकी है। अब मैं दो वर्षों तक केवल वही काम करूँगा जिससे मेरी यह आय निश्चित हो जाय। इसके बाद मैं अधिक धन कमाने का प्रयत्न नहीं करूँगा। खर्च के बाद आमदनी को अच्छे कार्यों में व्यय किया करूँगा। सदैव के लिए व्यवसाय से हाथ खींच लूँगा। केवल दूसरों को व्यवसाय क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने में सहायता करता रहूँगा।"

'मनुष्य के सामने कुछ आदर्श रहना चाहिए। केवल धन उपार्जन करना सबसे निकृष्ट आदर्श है। इसमें मानव जीवन की शक्तियों का जैसा अपव्यय होता है वैसा किसी

में नहीं होता। मैं जिस आदर्श को सामने रक्खूँगा उसमें प्राणपण से लग जाऊँगा। अतएव आदर्श स्थिर करते समय मुझे ऐसी बातों पर ध्यान रखना होगा जिससे मेरा चरित्र उन्नत हो। यदि मैं बहुत अधिक दिनों तक धनोपार्जन के पीछे विह्वल बना रहूँगा तो मेरा सुधार असम्भव हो जावेगा।'

सन् १८७० में कार्नेगी ने इस्पात के विशाल कारखाने की स्थापना की। इस कार्य्य में इन्हें इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध व्यवसायी मि० ह्वाइट हॉल से बड़ी सहायता मिली। इस्पात के कारखाने को सुचारू रूप से चलाने के लिए कच्चे माल की अनिवार्य आवश्यकता होती है। इसलिए उन्होंने बहुत-सी लोहे की खानों को खरीद लिया। लोहे के स्थान पर इस्पात का व्यवहार प्रारम्भ हो जाने से कार्नेगी की कम्पनी को बड़ा लाभ हुआ। उन्होंने आस-पास के कई और लोहे के कारखानों को खरीद कर "कारनेगी ब्रदर्स एण्ड को०" के नाम से एक विशाल कम्पनी का सूत्रपात किया।

इस कम्पनी में सन् १८८८ में कारनेगी ने दो करोड़ डालर की पूँजी लगाई थी सन् १८६७ में वह पूँजी चार करोड़ पचास लाख डालर की हो गई। सन् १८८८ में इस कम्पनी में ६ लाख टन वार्षिक इस्पात का उत्पादन होता था सन् १८६७ में वही उत्पादन बढ़कर बीस लाख टन वार्षिक हो गया!

कार्नेगी महसूस करते थे कि इस औद्योगिक उन्नति में सबसे प्रधान हाथ मजदूरों का है। इसलिए मजदूरों के साथ उन्होंने हमेशा भाई-चारे का सम्बन्ध रक्खा और उनकी मागों को हमेशा सहृदयता के साथ मंजूर करते रहे। इसलिए उनके कारखानों में मजदूर-हड़तालों की नौबत बहुत कम आई।

कार्नेगी-कम्पनी के इतिहास में शायद पहली और अन्तिम बार एक भीषण हड़ताल हुई। उस समय कारनेगी अपनी पत्नी के साथ स्काटलैण्ड की यात्रा पर गये हुए थे। इसी से यह हड़ताल होने की नौबत आई। मगर उस समय अमेरिका में सर्वसाधारण लोगों की यह धारणा हो गई थी कि कार्नेगी अमेरिका में ही हैं और वे अनुचित रूप से मजदूरों को दबाना चाहते हैं। चारों ओर लोगों ने उनको बदनाम करना प्रारम्भ किया। पर कुछ दिनों के बाद वास्तविक स्थिति का पता लगने पर यह बदनामी दूर हो गई। मजदूरों को बिना किसी शर्त के हड़ताल तोड़ना पड़ा।

अब कार्नेगी ने धन कमाना बन्द कर उसका सदुपयोग करने की तरफ ध्यान दिया। उन्होंने अपनी कम्पनी को बेच दिया। सार्वजनिक कामों के लिए उनके द्वारा खर्च किये गये धन की मोटी-मोटी रकमें इस प्रकार हैं।

१—मिल के मजदूरों पर आने वाली आकस्मिक विपत्ति के समय उनकी सहायता के लिए चालीस लाख डालर देकर एक फण्ड की स्थापना की और दस लाख डालर मजदूरों के लिए विभिन्न क्षेत्रों में पुस्तकालय स्थापित करने के लिए दिये।

२—२८ जनवरी १६०२ को वाशिंगटन नगर में सुप्रसिद्ध कार्नेगी इन्स्टीट्यूशन की स्थापना हुई। इसके लिए कार्नेगी ने २ करोड़ ५० लाख डालर दिये। २८ अप्रैल १६०४ को प्रेसिडेण्ट रूजवेल्ट के प्रयत्न से अमेरिका की व्यवस्थापिका सभा ने एक कानून बनाकर इस संस्था की स्थिति को अचल बना दिया। इस संस्था के अध्यक्ष अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वानों में से चुने जाते हैं। साहित्य, विज्ञान, कला-कौशल तथा अन्य विभागों में अन्वेषण और अनुसन्धान की गति को बढ़ाना इस संस्था का मुख्य उद्देश्य है इसी संस्था की ओर से केलिफोर्निया के विलसन पर्वत के ऊपर ५८८६ फीट की ऊँचाई पर एक विशालकाय वेधशाला की स्थापना की गई है। इस वेधशाला के द्वारा अकाशीय ग्रहों की खोज के सम्बन्ध में समय-समय पर बड़े आश्चर्यजनक अन्वेषण हुए हैं।

३—पचास लाख डालर की सहायता देकर कारनेगी ने एक वीर-सहायक कोष की स्थापना की। इस कोष से उन वीरों को पुरस्कार दिया जाता है जो अपने जीवन को संकट में डाल विपत्तिग्रस्त मनुष्यों का उद्धार करते हैं या किसी दुर्घटना से आहत व्यक्ति के परिवार को सहायता दी जाती है। इस कोष की शाखाएँ, इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी इटली, बेल्जियम इत्यादि अनेक देशों में खोल दी गई थीं।

४—नीग्रो लोगों के उद्धारक बुकर-टी-वाशिंगटन टस्कजी विद्यालय को कारनेगी ने साठ लाख डालर देकर उसकी स्थिति को मजबूत कर दिया।

५—साठ लाख डालर की लागत से इन्होंने अमेरिका के समस्त गिरजाघरों को ७६८९ वाद्ययंत्र भेंट दिये। क्योंकि उनका विश्वास था कि संगीत से लोगों का मन शान्त और प्रसन्न रहता है।

६—सन् १९१० में अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति का उद्योग करने के लिए एक करोड़ डालर का दान देकर "कारनेगी इण्डोमेण्ट फौर इण्टर नेशनल पीस" नामक संस्था की स्थापना की।

७—पन्द्रह लाख डालर देकर अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की स्थापना के लिए "हेग" में कारनेगी ने एक शान्ति मन्दिर का निर्माण करवाया।

कारनेगी के इन सार्वजनिक कार्यों से प्रभावित होकर फ्रेञ्च गवर्नमेंट ने इन्हें "नाइट कमाण्डर ऑफ दी लेजियन ऑफ ऑनर" (Knight commander of the Legion of Honor) की उपाधि प्रदान की। इंग्लैण्ड और डेनमार्क की सरकारों ने भी अपने राष्ट्र की सर्वोच्च उपाधियों से इन्हें विभूषित किया।

२२ अप्रैल सन् १८८७ को कारनेगी ने ५२ वर्ष की उमर में २८ वर्षीय मिस ह्विटफिल्ड से विवाह किया। इतनी प्रौढ़ आयु में विवाह करने पर भी उनका दाम्पत्य जीवन अत्यन्त सुख पूर्ण व्यतीत हुआ। अपनी पत्नी के लिए श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए स्वयं कारनेगी ने एक स्थान पर लिखा है।

"मेरी माता और भाई के वियोग के कुछ समय पश्चात् ही मिसेस कारनेगी ने जीवन संगिनी बन मेरे जीवन को बिलकुल बदल दिया। मेरा जीवन उनके संसर्ग से इतना आनन्द-पूर्ण हो गया है कि उसके बिना जीने की मैं कल्पना ही नहीं कर सकता। इन बीस वर्षों के सम्पर्क से उनकी पवित्रता, साधुता और बुद्धिमत्ता की गहराई का मुझे पूरा पता लग गया है। वह दिन रात लोगों के हित के साधन के लिए व्यग्र रहती हैं। इन बीस वर्षों में वही मेरे जीवन का आधार रही है।"

सन् १९१९ में कारनेगी का ८४ वर्ष की उम्र में देहान्त हुआ।

दीनहीन परिवार में पैदा होकर, एक जुलाहे का लड़का चपरासी की एक छोटी सी नौकरी से जीवन का प्रारम्भ का अपनी अखण्ड कर्मशीलता, दीर्घअध्यवसाय ईमानदारी और उच्च चरित्र के द्वारा किस प्रकार "कारनेगी" बन जाता है यह एक ऐसा तथ्य है जो इतिहास के लिए प्रेरणा दायक हो सकता है।

एण्ड्रोसोव

रूस निवासी एक प्रसिद्ध चिकित्सक प्रो॰ एण्ड्रोसोव। जिन्होने सर्जरी के क्षेत्र में कई प्रकार के नवीन यन्त्रों का आविष्कार करके शल्य–क्रिया को अत्यन्त सरल और सुविधाजनक बना दिया है।

डा॰ एन्ड्रोसोव का जन्म सन् १९०७ में रूस में हुआ। उनके बनाये हुए यन्त्रों से आपरेशन क्रिया अत्यन्त सरल हो गई है। इन यन्त्रों की सहायता से फेफड़ों का आपरेशन जो मामूली तौर से चार–पाँच घण्टे का समय लेता है केवल बीस पच्चीस मिनिट में सम्पन्न किया जा सकता है। सन् १९६३ तक रूस में ये १८० से ऊपर पेचीदे आपरेशन इन यन्त्रों की सहायता से सफलतापूर्वक सम्पन्न कर चुके हैं।

इन यन्त्रों को डा॰ एन्ड्रोसोव ने इञ्जीनियर स्मरनोव की सहायता से तैयार किया है। इन यन्त्रों को चिकित्सा-क्षेत्र में 'स्पुतनिक' के नाम से पुकारा जाता है। अमरीका और कनाडा में भी रूसी विधि के अनुसार ये यन्त्र तैयार किये जा रहे हैं।

भारतवर्ष में भी डा॰ आन्द्रोसोव ने सन् १९६३ के फरवरी मास में देहली के अन्दर अपने यन्त्रों की सफलता का प्रदर्शन किया। केवल एक घण्टे में उन्होंने एक कुत्ते के शरीर में सात आपरेशन करके दिखलाये। उनका यह प्रदर्शन यहाँ के चिकित्सा-क्षेत्र में अत्यन्त चमत्कारिक माना गया है।

एथेन्स

ग्रीस देश की राजधानी और यूरोप का एक अत्यन्त प्राचीन सांस्कृतिक नगर, जहाँ से यूनान देश की प्राचीन महान् संस्कृति का जन्म हुआ।

एथेन्स नगर का नामकरण यूनानियों की पूज्य देवी 'अथीना' के नाम पर हुआ ऐसा माना जाता है।

एथेन्स का वास्तविक और क्रमबद्ध इतिहास ईस्वी सन् से ५०० वर्ष पूर्व से प्रारम्भ होता है जबकि ईरान के तत्कालीन सम्राट् ज्यार्श ने बड़ीभारी सेना के साथ ईरान पर दो बार (ई० पू० ४९० और ई० पू० ४७९ में) आक्रमण किया था। इसी समय थरमापोली की प्रसिद्ध घाटी ने मातृ भूमि के लिए जूझने वाले यूनानी वीरों को अमर कर दिया था।

इसी समय से एथेन्स के इतिहास का स्वर्णयुग प्रारम्भ होता है, और थेमिस्टोक्लीज के नेतृत्व में एथेन्स के अन्तर्गत साम्राज्यवादी युग का प्रारम्भ होता है और इसका पूरा विकास 'पैरेक्लीज' के युग में होता है।

पैरेक्लीज का नाम एथेन्स के इतिहास में एक तेजस्वी नक्षत्र की तरह जगमगाता है। उसके नेतृत्व ने एथेन्स के वैभव को उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया। उसके युग में एथेन्स ने सर्वतोमुखी उन्नति का जो युग देखा वह अत्यन्त लुभावना था। व्यापार का उत्कर्ष उन्नति की अन्तिम मंजिल पर था और साहित्य दर्शन, ज्ञान, विज्ञान सभी क्षेत्रों में चतुर्मुखी उन्नति हो रही थी।

अरस्तू ने उस समय की स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है कि 'लोग ईरानी युद्धों के पश्चात् सफलता और आत्म गौरव के अभिमान से भरे हुए उन्नति की घुड़दौड़ में तेजी से बढ़ रहे थे। एथेन्स उन्नति तथा संस्कृति का एक महान् केन्द्र बन गया था जिसकी ओर दूर और नजदीक के सभी विद्वान तथा महत्वाकांक्षी व्यक्ति आकृष्ट हो रहे थे। जिनमें 'सोफिस्ट' लोग प्रधान थे।

इस युग में एथेन्स के अन्तर्गत साम्राज्यवादी वैभव के साथ-साथ जनतन्त्र की भावनाओं का भी बड़ी तेजी से विकास हुआ। सारे नगर राज्यों में एथेन्स के नगर राज्य में ही जनतन्त्र का सबसे उच्चतम रूप पाया जाता था। एथेन्स के सार्वजनिक जीवन का भी इस युग में अर्थात् ईसासे करीब ४५० वर्ष ईस्वी बहुत विकास हुआ।

परन्तु इसी समय एथेन्स के इतिहास ने एक जोरदार ठोकर खाई, एथेन्स और स्पार्टा के बीच में एक भयंकर युद्ध छिड़ा और उसमें एथेन्स की करारी हार हुई। इस पतन-काल में एथेन्स का जन-तन्त्र ऐसे लोगों के हाथ में चला गया जो जन-तन्त्र को स्वार्थ-सिद्धि तथा शक्ति हथियाने का एक यंत्रमात्र समझते थे। इस प्रकार एथेन्स के जन-तन्त्र ने आततायी-तन्त्र का रूप ग्रहण कर लिया।

इसी काल में (Thirty tarrants) तीस अत्याचारियों का शासन-काल आया, जिसने महान् कर्तव्य-परायण, कर्मठ, दार्शनिक और विद्वान् 'सुकरात' को केवल इसलिए मृत्यु का दण्ड दे दिया कि उसने उनकी ऐसी आज्ञाओं को मानने से इन्कार कर दिया, जिन्हें वह गैर-कानूनी और अन्याय पूर्ण समझता था।

सोफ़िस्ट विचारधारा

इसी युग में एथेन्स के अन्दर सोफिस्ट विचार-धारा का प्रादुर्भाव हुआ। जिसने दीर्घकाल तक एथेन्स और आस-पास के लोगों को प्रभावित किया। सोफिस्ट लोग एथेन्स के अन्दर शिक्षकों के रूप में बाहर से आये थे। जो लोग उनसे शिक्षा लेना चाहते थे, उनको वे पढ़ाकर शिक्षित करते थे।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि सोफिस्ट विचारधारा ने यूनान के राजनैतिक विकास में अपना प्रभावशाली पार्ट अदा किया। इन लोगों ने तत्कालीन समाज में प्रचलित ऐसी नैतिक धारणाओं, मान्यताओं, रूढ़ियों तथा परंपराओं का जोरदार विरोध किया जिन्हें युक्ति और तर्क के द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सकता था। विलियम ड्यूरेंट नामक एक अंग्रेज-लेखक लिखता है कि "सोफिस्ट लोगों ने व्याकरण तथा न्याय-शास्त्र का आविष्कार किया। उन्होंने द्वन्द्ववाद (Dialectic) का विकास किया, बहस के बहुत से रूपों का विश्लेषण किया और लोगों के भ्रमात्मक बातों को पकड़ने और स्वयं उनको प्रयोग करने की कला सिखाई।"

सोफिस्ट लोगों की सबसे महत्वपूर्ण देन 'मानवतावाद' का सिद्धान्त है। वे मनुष्य को ही मानव-विचार और अध्ययन का मुख्य केन्द्र मानते थे और इसी मानवतावाद के सिद्धान्त का निरूपण करने में आचार-शास्त्र, राजनीति शास्त्र, दर्शनशास्त्र, भाषण तथा वक्तृत्व-कला-ऐसी सब विद्याओं का प्रयोग करते थे। मानव-अध्ययन को विचार का केन्द्र बनाने का श्रेय यूनान के इतिहास में सोफिस्ट-विचारधारा को ही प्राप्त है।

सोफिस्ट-विचार-धारा निरपेक्ष सत्य के समान किसी चीज के अस्तित्व को संसार में स्वीकार नहीं करती। वे लोग हमेशा सापेक्ष सत्य के सिद्धान्त को स्वीकार करते थे। उनके मत से ऐसा कोई सिद्धान्त, कोई धारणा, कोई विचार और कोई नियम मानवीय ज्ञान में नहीं हो सकता जो प्रत्येक देश, काल और सभी स्थिति में सर्व-मान्य हो! न्याय का कोई ऐसा निरपेक्ष और निरापद सिद्धान्त इस जगत में नहीं हो सकता जो हर जगह और हर काल में लागू हो सके। सोफिस्ट लोगों की यह विचार-धारा भारतवर्ष में प्रचलित जैनधर्म के सिद्धान्त 'स्याद्वाद' या 'सापेक्षवाद' से किसी अंश में मिलती जुलती थी।

सोफिस्ट लोगों की इस विचारधारा ने राज्य के स्वरूप, कानून के स्वरूप और उसकी मान्यता के बारे में, यूनान में जितनी भी प्राचीन और परंपरागत धारणाएँ उन सब में एक उथल-पुथल-सी मचा दी।

सोफिस्ट-विचार-धारा के अनुसार राज्य एक कृत्रिम वस्तु है, जिसे मनुष्य ने प्राकृतिक नियम के विरुद्ध एक लक्ष्य की पूर्ति के लिये बनाया। एक राज्य जिस काम का निषेध करता है, दूसरा उसी को करने का आदेश देता है। ऐसे कानूनों को न तो हम दैवाज्ञा मान सकते हैं और न किसी निरपेक्ष न्याय-सिद्धान्त की अभिव्यञ्जना ही उसे कह सकते हैं।

इस सोफिस्ट विचार-धारा ने मनुष्य की चिन्तन-शक्ति के विकास का मार्ग खोल दिया और उसके फलस्वरूप हम एथेन्स के इतिहास में सुकरात, अफलातून, अरस्तू, डिमास्तनीज, एपीक्युरियस इत्यादि महान् तत्ववेत्ताओं को अवतीर्ण होते हुए देखते हैं। जिन्होंने अपने तत्व-चिन्तन से न केवल एथेन्स को, न केवल यूनान को, न केवल यूरोप को, बल्कि सारे विश्व को प्रकाशित किया।

सुकरात

सुकरात के सम्बन्ध में यह कहावत है कि वह दर्शन-शास्त्र को स्वर्ग से उतार कर भूतल पर ले आया। सुकरात का जन्म ईसवी सन् से ४६६ वर्ष पूर्व और मृत्यु ईसवी सन् से ३९९ वर्ष पूर्व हुई। सुकरात उन महान् विभूतियों में प्रथम था जिन्होंने एथेन्स के इतिहास को अत्यन्त गौरवान्वित किया।

एथेन्स के निवासी सुकरात को भी सोफिस्ट विचार-धारा का दार्शनिक मानते थे। क्योंकि उसमें भी विलक्षण तर्कना-शक्ति, शब्दों में चमत्कार उत्पन्न करने की प्रतिभा और वाक् चातुर्य उत्तम कोटि का था। उसकी तर्क-शक्ति बड़ी विलक्षण थी। फिर भी सोफिस्ट लोगों के मूल सिद्धांतों से सुकरात के सिद्धान्तों में कई स्थानों पर मौलिक मत-भेद थे।

सुकरात के मतानुसार धर्म और सत्य के दो रूप होते हैं। एक सापेक्ष दूसरा निरपेक्ष। सापेक्ष धर्म और सत्य का आधार व्यक्तिगत मत और विश्वास है। जिस प्रकार मनुष्य के मत और विश्वास में परिवर्तन होता है, उसी प्रकार सापेक्षिक धर्म और सत्य में भी संशोधन और परिवर्तन होता रहता है। बदली हुई परिस्थितियों में यह भी बदल जाते हैं। इसके विपरीत निरपेक्ष धर्म और सत्य का आधार मानव की शाश्वत बुद्धि है जो हमेशा एक रस और एक रूप रहती है।

राजनैतिक विचारों के सम्बन्ध में सुकरात ऐसे प्रजातंत्र के विरुद्ध था, जो प्रत्येक व्यक्ति को शासन-पद के योग्य समझता है। पासा फेंक कर या लाटरी डाल कर अधिकारियों के छाँटने की प्रथा का भी वह विरोधी था। क्योंकि ऐसा करने से ज्ञानी और मूर्ख सब बराबर हो जाते हैं और शासन के लिए जिस योग्य व्यक्ति की आवश्यकता होती है, उसका निर्वाचित होना कठिन हो जाता है। वह योग्य, बुद्धिमान और दैवीसम्पद् युक्त मनुष्यों के द्वारा राज्य-सञ्चालन का पक्षपाती था जिसका समर्थन आगे [illegible] अफलातून ने अपने 'रिपब्लिक' नामक

ग्रन्थ में विस्तार के साथ किया है। (सुकरात का पूरा वर्णन 'सुकरात' नाम के साथ इस ग्रन्थ के अगले भागों में देखिये।)

सुकरात के समय में एथेन्स के अन्दर ३० अत्याचारियों का शासन था। प्रजातंत्र के नाम पर वहाँ आततायी-तंत्र का बोलबाला हो रहा था। ऐसे अत्याचारी लोग सुकरात की स्वतंत्रता और निर्भीक विचारधारा को कैसे सहन कर सकते थे। नतीजा यह निकला कि कुछ झूठे अभियोग लगाकर इस महान् तत्ववेत्ता और दार्शनिक को उन लोगों ने मृत्युदण्ड दे दिया और इस प्रकार एथेन्स का इतिहास इस महान् पुरुष की हत्या से कलंकित हो गया।

सुकरात के शिष्य महान तत्ववेत्ता अफलातून और अफलातून के शिष्य महान् तत्ववेत्ता अरस्तू हुए जिन्होंने राजनीतिशास्त्र, आचार शास्त्र, समाज शास्त्र और दर्शन शास्त्र को मन्थन करके अपने रिपब्लिक (अफलातून) और पॉलिटिक्स (अरस्तू) नामक महान् ग्रन्थों की रचना की। इन ग्रन्थों में इन महान् दार्शनिकों ने जिन महान् सिद्धान्तों को निरूपण किया, वे हजारों वर्ष बीत जाने पर भी, आज भी संसार के राजनीतिज्ञों का मार्ग-प्रदर्शन कर रहे हैं। अफलातून और अरस्तू की राजनीति का अध्ययन किए बिना आज के युग में भी कोई व्यक्ति राजनीति का पारंगत नहीं माना जा सकता। (इन दोनों महान् राजनीतिज्ञों का परिचय अफलातून और अरस्तू नामों के अन्तर्गत इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में देखिये।)

इसके पश्चात् मकदूनिया के राजा फिलिप और उसके पुत्र सिकन्दर महान् के द्वारा यूनान के नगर राज्यों का पराजय होने पर वहाँ की राजनैतिक विचार-धारा ने एक नया मोड़ लिया और उसके परिणाम-स्वरूप अफलातून और अरस्तू के द्वारा प्रतिपादित 'नगर राज्य' का सिद्धान्त धीमा पड़ गया। क्योंकि नगर-राज्य अत्यन्त छोटा होने के कारण बाहरी आक्रमणों से अपनी रक्षा नहीं कर सकता था। नगर–राज्य का समय मानो बीत चुका था। किसी भी प्रकार के सुधार से उसे समय की आवश्यकताओं के अनुसार नहीं ढाला जा सकता था। इसके लिए एक अधिक व्यापक और अधिक संगठित राजनैतिक इकाई की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी।

इसी समय एथेन्स में 'एपीक्युरियस' का प्रादुर्भाव हुआ। एपीक्युरियस के सिद्धांत 'एपीक्युरियनिज्म' के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन सिद्धान्तों का प्रवर्तन ईस्वी सन् से ३०६ वर्ष पूर्व एपीक्युरियस ने किया था। एपीक्युरियस के सिद्धान्तों का सार यह है कि—"जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य अधिकतम सुख और आनन्द की प्राप्ति करना है। मनुष्य को जहाँ तक हो सके सार्वजनिक जीवन की दुश्चिन्ताओं से बचना चाहिए। क्योंकि समाज का आधार स्वहित है सामाजिकता और सहयोग की भावना नहीं। मनुष्य तत्वतः एक स्वार्थी प्राणी है और उसमें कोई सामाजिक प्रवृत्तियाँ नहीं हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपना हित–साधन करना चाहता है। दूसरों के हितों से उसका प्रायः संघर्ष होता रहता है और उसी संघर्ष से बचने के लिए कानून की आवश्यकता होती है।"

एथेन्स के नागरिक जीवन में वेश्याओं की स्थिति

ईसा से पूर्व पाँचवीं और चौथी शताब्दी में एथेन्स के नागरिक जीवन में वैश्याओं की स्थिति बड़ी श्रेष्ठ बन गई थी। मानवीय इतिहास में कभी और किसी समय वेश्याओं को इतना सम्मान नसीब नहीं हुआ जितना यूनान में उन दिनों वैश्याओं को प्राप्त हो गया था।

इन वेश्याओं का आदर्श 'एफ्रोदिते' देवी जूपिटर की कन्या और प्रेम की देवी (Goddess of Love) मानी जाती थी। कामदेव (Cupid) उसका लड़का समझा जाता था। यूनान की वेश्याएँ अनुपम सुन्दरी होती थीं। इसलिए लोग इन्हें एफ्रोदिते देवी का रूप समझकर इनका आदर करते थे। उन दिनों एथेन्स में 'फ्राइन' नामक बेश्या, एफ्रोदिते की प्रतिनिधि समझी जाती थी।

फ्राइन पर एथेन्स नगर के युवकों को चरित्र भ्रष्ट करने का मुकद्दमा जब एथेन्स के न्यायालय में चला, उस समय फ्राइन के वकील ने न्यायाधीश के सामने कोई दलील न देकर सिर्फ उसका घूँघट उलट दिया। घूँघट के हटते ही उसकी सुन्दरता अदालत में छिटक गई। न्यायाधीश भी उसकी सुन्दरता को देखकर चकरा गये और उसे बिना किसी प्रमाण के ही छोड़ दिया।

उस काल में बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ, कवि और लेखक इन वेश्याओं के सम्पर्क में रहते थे। समाज की इस अवस्था को देखकर कई प्रवीण और ऐश्वर्य्याकांक्षिणी स्त्रियों ने इस मार्ग को ग्रहण कर लिया था इन वैश्याओं के कारण विवाह एक तुच्छ और जलील चीज समझी जाने लगी थी।

आदर और प्रतिष्ठा के इस वातावरण में इन वेश्याओं ने सौंदर्य के साथ-साथ अपनी ज्ञान-प्रतिभा को बढ़ाना भी प्रारम्भ किया।

'एसपेसिस' नामक वेश्या उन दिनों सौंदर्य और विद्वता में प्रथम मानी जाती थी। यूनान के तत्कालीन शासक और लेखक 'पैरेक्लीज' से उसका उत्कट प्रेम था। पैरेक्लीज की कई रचनाओं में भी उसका हाथ बतलाया जाता है।

महात्मा सुकरात ने भी अपनी रचना में 'दिओतिमा' नामक वेश्या के प्रति कृतज्ञता प्रकट की है।

तत्ववेत्ता एपीक्यूरियस के विद्यालय में भी बहुत सी वाराङ्गनाएँ ज्ञान प्राप्त करने के लिए जाती थीं। जिनमें 'लियोतियन' नामक वेश्या के साथ उसकी बहुत घनिष्टता थी। एथेन्स के इतिहास में वेश्याओं का यह अध्याय ऐसा है जो संसार के इतिहास में कहीं भी न मिलेगा।

एथेन्स का शासन-प्रबन्ध

एक्लेशिया और बाउल नामक दो संस्थाओं के द्वारा एथेन्स का शासन-प्रबन्ध होता था। एक्लेशिया जनता की संस्था का नाम था और इसके सदस्य १८ वर्ष के ऊपर उम्र के एथेन्सवासी सभी नागरिक (दासों को छोड़कर) होते थे। यह सभा सभी कर्मचारियों की नियुक्ति पदच्युति, जल और थल सेना की व्यवस्था विदेश-नीति का संचालन इत्यादि सारे महत्वपूर्ण कार्यों को करती थी। (एक्लेशिया का पूरा वर्णन इसी भाग में एक्लेशिया के नाम के साथ देखें।)

दास-प्रथा

ऊपर हम एथेन्स में प्रवर्तित महान् संस्कृति और उस संस्कृति का निरूपण करने वाले महान् तत्त्व-चिन्तकों का विवेचन कर चुके हैं। मगर इसके साथ ही यह भी एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि संस्कृति के इस उन्नत युग में भी एथेन्स में दास-प्रथा का बड़ा जोर था और मानवतावादी सभी तत्त्व-चिन्तकों ने अपने ग्रन्थों में इस प्रथा का समर्थन किया है।

बल्कि यहाँ तक कहा जाता है कि एथेन्स के राजनैतिक जीवन का आधार ही दास-प्रथा थी। यह दास-प्रथा यूनानी सभ्यता का एक प्रधान अंग मानी जाती थी। प्रत्येक नगर में काफी बड़ी संख्या में दास रहते थे। उन्हें कोई राजनैतिक और नागरिक अधिकार प्राप्त न थे और वे नागरिकता की परिधि से बाहर समझे जाते थे। मानवता का समर्थन करने वाले तत्त्व-चिन्तक इस महान् अमानुषिक दास-प्रथा का कैसे समर्थन करते होंगे, यह आज के युग में समझ पाना भी बड़ा कठिन है, मगर यह एक वास्तविक ऐतिहासिक तथ्य है जिससे इनकार नहीं किया जा सकता।

एथेन्स नगर में ४० हजार नागरिकों के साथ ८० हजार दास रहते थे। इसीसे पता चलता है कि वहाँ दास-प्रथा कितने भयंकर रूप में थी।

रोमन आक्रमण

स्पार्टा के साथ एथेन्स की लड़ाइयाँ ३० वर्ष तक चलती रहीं। इन लड़ाइयों ने एथेन्स की शक्ति को बहुत क्षीण कर दिया। उसके पश्चात् संसार-प्रसिद्ध रोमन-साम्राज्य के आक्रमण ने एथेन्स को रोमन साम्राज्य का एक छोटा सा अंग बना दिया। मगर रोम के सम्राटों को भी एथेन्स की संस्कृति ने बहुत प्रभावित किया। उन्होंने वहाँ की संस्कृति को नष्ट न कर उसे और भी वैभवपूर्ण बनाया। एथेन्स में कई भवनों का निर्माण किया और एथेन्स के तत्व-वेत्ताओं को अपना गुरु बनाकर रोम के विद्वानों ने अपनी ज्ञान-पिपासा को शान्त किया।

रोमन काल में समय का ज्ञान प्राप्त करने के लिए एथेन्स में एक वायु-मन्दिर बनाया गया था। जिसमें जलघड़ी इत्यादि कई यन्त्र लगे हुए थे। रोमन-सम्राट् हेड्रियन ने भी एथेन्स का नव-निर्माण किया था और एक पुस्तकालय भी बनवाया था।

मगर एथेन्स के लिए सबसे बुरा और भयंकर समय तब आया, जब तुर्क-जाति के लोगों ने कुस्तुन्तुनियाँ को जीत कर यूनान पर भी अपना अधिकार कर लिया। यह

समय १५वीं शताब्दी के मध्य से १८वीं शताब्दी के अन्त तक रहा। इस युग में तुर्क-आक्रमणकारियों ने एथेन्स के सुन्दर भवनों और मूर्तियों को तोड़ डाला और उसमें से बहुतों को मस्जिद और हरम के रूप में परिवर्तित कर दिया।

जगत्प्रसिद्ध मूर्तिकार फीडियस के द्वारा निर्मित एथेन्स की मन्दिर-मणि 'पार्थेनन' बारूद का गोदाम बना और एक दिन बारूद में विस्फोट हो जाने से उसकी छत उड़ गई। इतने तूफानों से गुजरने के बाद भी एथेन्स में जो कुछ बच गया है, उसे देखकर आज भी संसार के यात्री यूनानी कला के लिए दाँतों तले उँगली दबाते हैं।

तुर्कों की पराजय के पश्चात् एथेन्स में आधुनिक युग का प्रारंभ हुआ। नगर पुनः शीघ्रता से बढ़ने लगा और सन् १९३८ में इसकी जनसंख्या पुनः चार लाख हो गई। इस समय यह प्राचीन नगरी पुनः उन्नति के पथ पर आरूढ़ है। यहाँ पर एकेडेमी, विश्व-विद्यालय राष्ट्रीय पुस्तकालय, संग्रहालय इत्यादि अनेक भवनों का निर्माण हो चुका है और प्राचीन संस्कृति का यह महान् केन्द्र फिर से पुनर्जीवन को प्राप्त कर रहा है।

एन (इङ्गलैण्ड की महारानी)

इंग्लैण्ड की महारानी जिसका शासन-काल सन् १७०२ से सन् १७१४ तक रहा।

सन् १६८८ में इंग्लैण्ड के अन्तर्गत एक अत्यन्त महत्व-पूर्ण मगर बिना रक्तपात की क्रान्ति हुई। इस क्रान्ति में इंग्लैण्ड की जनता ने अपने राजा जेम्स तृतीय को, उसकी अयोग्यता और स्वेच्छाचारिता के कारण गद्दी से उतार कर, उसकी जगह उसके दामाद विलियम आरेञ्ज और उसकी पत्नी मेरी को संयुक्त रूप से इंग्लैण्ड की राजगद्दी पर बिठा दिया। उसी समय इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध स्वतंत्रता-पत्रक (डिक्लेरेशन ऑफ राइट्स)की घोषणा की गई जिससे इंग्लैण्ड की पार्लियामेंट के अधिकारों में और विस्तार हो गया। इस क्रान्ति का दूसरा महत्वपूर्ण परिणाम प्रोटेस्टन्ट धर्म की अन्तिम विजय थी। जिसके अनुसार यह तय किया गया कि अब इंग्लैण्ड की गद्दी का अधिकारी प्रोटेस्टन्ट मतावलम्बी ही होगा। सन् १७०२ में घोड़े पर से गिर जाने के कारण विलियम तृतीय की मृत्यु हो गई और उसके स्थान पर उसकी साली एन इंग्लैण्ड की गद्दी पर बैठी।

महारानी ऐन में अंग्रेज-जाति के सभी खानदानी गुण विद्यमान थे, इस कारण इंग्लैण्ड की जनता में वह बहुत लोकप्रिय हो गयी।

इसके पूर्व सन् १७०० में स्पेन के नरेश द्वितीय चार्ल्स की मृत्यु हुई और मृत्यु के पहले वह अपने समूचे स्पेन के राज्य का उत्तराधिकारी अपने नाती और फ्रान्स के लुई के पोते फिलिप को घोषित कर गया। इस घटना से इंग्लैण्ड को बड़ी चिन्ता हुई क्योंकि यदि फिलिप स्पेन और फ्रांस दोनों के विस्तृत साम्राज्य का एकाधिकारी हो जाता है तो सारे यूरोप का शक्ति संतुलन बिगड़ जाता है और फ्रांस और स्पेन की सम्मिलित शक्ति सारे यूरोप को रौंद डालने में समर्थ हो सकती है। विलियम तृतीय इस चीज को सहन नहीं कर सकता था इसलिए उसने स्पेन का आधा साम्राज्य स्पेन के राजा के दूसरे नाती आस्ट्रिया के राजकुमार को दिलाने के लिए आस्ट्रिया और जर्मनी के सहयोग से युद्ध की तैयारी प्रारम्भ कर दी।

जिस लड़ाई की तैयारी तृतीय विलियम ने बड़ी उत्सुकता और मजबूती के साथ की थी, वह लड़ाई रानी एन के समय में प्रारम्भ हुई। इस लड़ाई में ब्रिटिश, डच और जर्मन सेना का संयुक्त और प्रधान सेनापति 'मार्लबरो' (Marlbarough) को बनाया गया। मार्लबरो का नाम संसार के प्रधान विजेता और सेनाध्यक्षों में गिना जाता है।

सन् १७०४ में मार्लबरो ने एकाएक राइन नदी को पार करके आस्ट्रिया की सेना की सहायता से डैन्यूब नदी के तीर पर ब्लैनहिम नामक स्थान पर फ्रांस की सेना को बुरी तरह पराजित कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि जर्मनी भर से फ्रांस वाले भगा दिये गये। सन् १७०६ में उसने रैमीलीज में फ्रांस वालों को फिर से पराजय दी। इससे मार्लबरो की बड़ी कीर्ति हुई। इधर इंग्लैण्ड के जहाजी बेड़े के अध्यक्ष सर जार्ज 'रूक' ने जिब्राल्टर पर अधिकार कर लिया तब से अभीतक जिब्राल्टर अंग्रेजों के अधिकार में चला आता है।

मार्लबरो ने सन् १७०८ में ओडोनार्डे के मैदान में और सन् १७०९ में मालप्लेका के मैदान में फ्रांस वालों को फिर हराया ।

मगर मार्लबरो की वजह से ह्विगपार्टी के बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर रानी ने उसे अपने पद से हटा दिया और उसके पश्चात् जो पार्लमेंट निर्वाचित हुई, उसमें टोरी दल का बहुमत हो गया ।

टोरी-दल ने अधिकार पर आते ही फ्रांस से संधि कर ली। जो 'यूट्रेक्ट की संधि' के नाम से मशहूर है। इस संधि के अनुसार जिब्राल्टर, माइनोर्का, नोवास्कोशिया और न्यूफाउण्डलैण्ड अंग्रेजों को मिले। उन्हें स्पेन के उपनिवेशों में व्यापार करने के अधिकार भी प्राप्त हुए। फिलिप स्पेन का राजा बना रहा मगर स्पेन और फ्रांस के राज्य मिल नहीं सके ।

रानी ऐन के समय में ही स्काटलैण्ड से भी एक झगड़ा खड़ा हुआ। स्कॉटलैण्ड और इंग्लैण्ड की राजगद्दी एक होने पर भी वहाँ की पार्लमेंटें अलग अलग थीं। स्काटलैण्ड वालों को इंग्लैण्ड में व्यापार करने की सुविधा नहीं थी। उनके माल पर टैक्स भी बहुत अधिक था, इसलिए स्काटलैण्ड वालों ने कहा कि हम अपनी गद्दी, ऐन को नहीं देंगे। अपना दूसरा राजा चुनेंगे। इंग्लैण्ड वालों ने घबराकर स्काटलैण्ड को व्यापार की पूरी स्वाधीनता दे दी। जिसके परिणामस्वरूप सन् १७०७ में यूनियन ऐक्ट, पास हुआ जिसके अनुसार इंग्लैण्ड और स्काटलैण्ड की पार्लमेंटें एक कर दी गई ।

महारानी ऐन के समय में ही इंग्लैण्ड की सामुद्रिक शक्ति यूरोप में सर्वश्रेष्ठ हो गई। हॉलैण्ड और फ्रांस की जलशक्ति कमजोर पड़ जाने से इस क्षेत्र में इंग्लैण्ड का कोई प्रतिद्वन्दी न रहा ।

सन् १७१४ में महारानी ऐन की मृत्यु हो गई ।

एन रेडक्लिफ़

(Mrs. Ann Redcliffe)

अठारहवीं सदी की मशहूर उपन्यास-लेखिका मिसेस एन० रेडक्लिफ़ जिसका जन्म १७६४ में और मृत्यु सन् १८२३ में हुई ।

मिसेज रेडक्लिफ़ लोम-हर्षक और षड्यन्त्र तथा रहस्य-पूर्ण भय का संचार करने वाले गौथिक उपन्यासों की लेखिका थी! इसके उपन्यासों में "दी मिस्ट्रीज ऑफ उडोल्फो" ने काफी प्रसिद्धि प्राप्त की। इस लेखिका की निसर्गप्रिय काव्य-परम्परा ने अंग्रेजी-साहित्य के बड़े-बड़े लेखकों को भी प्रभावित किया ।

एन्थनी ट्रोलोप

(Anthony Trollope)

उन्नीसवीं सदी का प्रसिद्ध अंग्रेज उपन्यासकार जिसका जन्म सन् १८१५ में और मृत्यु सन् १८८२ में हुई ।

एन्थनी ट्रोलोप के उपन्यासों में "दी वार्डेन", और "बारचेस्टर टावर्स" नामक उपन्यास प्रसिद्ध हैं ।

एनी बीसेण्ट

विश्व में थियोसोफिस्ट-सिद्धान्तों का प्रचार करने वाली तथा भारत के राजनैतिक क्षेत्र में साम्राज्यवादी अत्याचारों के खिलाफ आवाज उठाने वाली संसार–प्रसिद्ध आइरिश-महिला एनी बीसेण्ट, जिनका जन्म सन् १८४७ की पहली अक्टूबर को हुआ ।

एनी बीसेण्ट के पिता का नाम विलियम–पेनउड था और ये इंग्लैण्ड में चिकित्सा–विज्ञान की प्रैक्टिस करते थे। एनी बीसेण्ट के बाल्य-काल का नाम 'मिस उड' था। इनकी शिक्षा मिस मेरियट के निरीक्षण में हुई। मिस मेरियट की प्रशंसा करते हुए एनी बीसेण्ट ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है कि—"मैं शब्दों के द्वारा नहीं कह सकती कि मैं उनकी कितनी ऋणी हूँ। केवल ज्ञान ही के लिए नहीं, किन्तु उस प्रेम के लिए जिसके कारण मैं अभी तक सर्वदा अध्ययन में रत रहती हूँ।"

सन् १८६७ में 'मिस उड' का विवाह मि० बेसेण्ट नामक एक छोटे पादरी के साथ हुआ। इस विवाह से श्रीमती एनी बीसेण्ट को एक पुत्र और एक कन्या हुई, पर इनका विवाहित जीवन सुख और शान्ति–पूर्ण नहीं रहा, जिसके फलस्वरूप सन् १८७३ में इनका आपस में तलाक हो गया ।

उसके बाद एनी वीसेण्ट की आर्थिक स्थिति बहुत कमजोर हो गई। इसी समय एनी वीसेण्ट का 'चार्ल्स ब्रेडलाफ, के साथ परिचय हुआ जो कि उस समय 'नेशनल सेक्युलर–सोसोयटी' के प्रेसिडेण्ट थे। एनी वीसेण्ट के जीवन पर चार्ल्स ब्रेडलाफ का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा।

इस सम्बन्ध में वह अपनी आत्मकथा में लिखती हैं कि—"सच्ची मित्रता के कारण मि० ब्रेडलाफ की मैं कितनी ऋणी हूँ, यह बतलाना मेरी शक्ति के बाहर है। उनकी बुद्धिमत्ता की बहुत सी बातें मुझे स्मरण हैं। वे मेरे कट्टर और मधुर समालोचक थे। मेरी वक्तृत्व–शक्ति की भयंकर-सुगमता से जो दुस्सह परिणाम हो सकते थे, उससे उन्होंने मुझे बचाया। जब मैं अनायास उपलब्ध प्रशंसा से मदान्ध होने लगी, तब मेरे दोषों से उन्होंने मुझे सावधान किया। निस्सार विवादों के प्रति उनकी ललकार ने तथा उनके गंभीर विचार ने मेरा बड़ा उपकार किया है और मेरी पुस्तक में जो सार विषय है, वह उन्हीं की कृपा का फल है।"

जीवन के कठोर संघर्ष और कटु अनुभवों ने एनी वीसेण्ट को घोर नास्तिक बना दिया। मि० ब्रेडलाफ और एनी वीसेण्ट के द्वारा इंग्लैण्ड में प्रचारित नास्तिकता के सिद्धान्तों का यह परिणाम निकला कि वहाँ की जनता, जो कुछ समय पहले, नास्तिकता के प्रति अत्यन्त असहिष्णु थी–वह अब बहुत कुछ सहिष्णु हो गई। आज नास्तिक–मत के प्रति इंग्लैण्ड में जो सहनशीलता पैदा हो गई है, वह अधिकतर इन्हीं लोगों के परिश्रम का फल है।

इन्हीं दिनों से एनी वीसेण्ट ने व्याख्यानों के द्वारा और पत्र–पत्रिकाओं में लेख लिखकर अपने विचारों का प्रचार करना प्रारंभ किया। इनके व्याख्यानों से प्राचीन धर्माधिकारियों में बड़ा क्षोभ फैला और उन्होंने एनी वीसेण्ट के सम्बन्ध में बहुतसा सच्चा–झूठा प्रचार किया।

सन् १८७७ में इन्होंने 'नौलटन पैम्फलेट' (The Knowlton Pamphlet) नामक एक पुस्तिका प्रकाशित की, जिसके लिए बड़ा हल्ला मचा और इनपर इस पुस्तिका के लिए मुकदमा चलाया गया। यद्यपि इस मुकदमें में यह छूट गई, पर इसमें उनको बड़ी परेशानी उठानी पड़ी।

थियोसोफिकल सोसायटी में प्रवेश

एनीवीसेंट सन् १८८१ की १० मई को एच० पी० ब्लॉडवस्की द्वारा स्थापित 'थियोसोफिकल सोसायटी' या ब्रह्म-विद्या-प्रचारिणी सभा की सदस्या हुई और जीवनभर इस संस्था की इन्होंने दिल खोल कर सेवा की। अपनी अद्भुत कार्यशीलता से इस महान नारी ने सारे संसार में घूम घूम कर इस सोसायटी की शाखाएँ स्थापित करवाई। संसार भर में योग और ब्रह्मविद्या का ज्ञान प्रसारित किया। अपने सैकड़ों व्याख्यानों में उन्होंने इस विद्या के रहस्यों को समझाने का प्रयत्न किया।

नास्तिकता के वातावरण में से निकली हुई एक नारी के द्वारा ब्रह्म विद्या का इस प्रकार प्रचार करना संसार की एक आश्चर्यजनक घटना है।

एनीविसेण्ट ने ब्रह्म विद्या या थियोसोफिकल सिद्धान्त के ऊपर अनेकों पुस्तकें लिखीं। इनमें से एक पुस्तक का नाम 'एँशेन्ट विज्डम' (Ancient Wisdom) है। इसमें ब्रह्मविद्या विषयक सिद्धान्तों का सारांश है।

इनकी दूसरी रचना 'स्टडी इन कान्शसनेस', (Study in Consciousness) नामक पुस्तक अध्यात्मशास्त्र का अच्छा परिचय कराने वाली है। इस पुस्तक में चैतन्य, निष्ठा, वासना और चित्तविकार के विकास का क्रमबद्ध विवेचन किया गया है।

इनकी तीसरी रचना 'थियोसोफी ऐंड दी न्यु साइकालोजी' नामक पुस्तक भी इस विषय में एनी वीसेण्ट की महान् देन है। अपनी रचनाओं के अतिरिक्त एनी वीसेण्ट ने और भी कई बड़े-बड़े थियोसोफिस्ट विद्वानों की रचनाओं का सोसायटी की तरफ से प्रकाशन किया तथा स्थान-स्थान से कई पत्र–पत्रिकाएँ निकालीं।

हिन्दू–धर्म के सम्बन्ध में भी एनी बीसेण्ट के हृदय में बड़ी श्रद्धा और आदर था। महाभारत के ऊपर उन्होंने 'दि स्टोरी ऑफ दी ग्रेट वार' नामक ग्रन्थ की रचना की जो सब दूर बड़ा लोकप्रिय हुआ।

इनकी दूसरी लोकप्रिय पुस्तक 'आदर्श राजा रामचन्द्र' (Ram Chandra the ideal King) है। जिसमें बनारस सेण्ट्रल हिन्दू–कालेज में उनके दिये हुए व्याख्यानों का संग्रह है।

श्रीमद्भगवदगीता का अंग्रेजी–अनुवाद भी एनी-बीसेण्ट ने कर के अत्यन्त स्वल्प मूल्य के ऊपर उसका प्रचार किया।

इस प्रकार थियोसोफिकल सोसायटी का विश्वव्यापी प्रचार करके उन्होंने संसार में सोसायटी को अमर कर दिया और उसके साथ वह स्वयं भी अमर हो गईं। भारतवर्ष में इस सोसायटी की कई शाखाएँ हैं। शिक्षा–प्रचार के लिए इस सोसायटी की ओर से कई कालेज भी चल रहे हैं और बहुत से उपयोगी साहित्य का प्रकाशन भी होता है।

सन् १९०७ में ये अखिल विश्व-थियोसोफिकल सोसायटी की अध्यक्षा बन गईं।

भारतीय राजनीति में प्रवेश

वैसे तो मि० ब्रेडलाफ के समय से ही एनी बीसेण्ट का सारा जीवन गरीबों और भारतवासियों की सेवा में ही व्यतीत हुआ, लेकिन इंडियन नेशनल कांग्रेस में वह सबसे पहले सन् १९१४ में प्रविष्ट हुईं। उस समय कांग्रेस के नेतागण ब्रिटिश सरकार से प्रार्थना की नीति पर पुरस्कार के रूप में कुछ अधिकार प्राप्त करते रहने का प्रयत्न करते रहते थे।

जब प्रथम महायुद्ध में जर्मन-सेना के आक्रमणों का जिस अद्भुत वीरता, धैर्य और सहनशीलता के साथ सफलतापूर्वक मुकाबला किया, उससे एशिया और यूरोप के देशों में भारत-वासियों की खासी धाक बैठ गई। भारतीय फौजों द्वारा की गई युद्ध में सेवाओं की इस सहायता का भारतीय मस्तिष्क पर जो असर पड़ा, वह यह था कि कुछ भारतवासियों के हृदय में तो अंग्रेज सरकार के द्वारा इन सेवाओं के बदले में पुरस्कार-रूप कुछ अधिकार प्राप्त करने की भावना जाग्रत हुई और कुछ के हृदय में अधिकारों की भावना जाग्रत हो गई।

सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी पहले दल के लोगों में से थे और श्रीमती एनी बीसेण्ट दूसरे दल के लोगों में थीं।

इस सम्बन्ध में बोलते हुए एक बार एनीबीसेण्ट ने कहा था—

'भारत की राजभक्ति के लिए पुरस्कार देने की बात कही गई थी, लेकिन भारत अपने पुत्रों के रक्त और पुत्रियों के गर्वपूर्ण आँसुओं के साथ कोई सौदेबाजी या मोल-तौल करना पसन्द नहीं करता। वह तो एक राष्ट्र की हैसियत से न्याय पाने के अधिकार का दावा करता है, जो कि साम्राज्य के अन्तर्गत सारे लोगों को प्राप्त है। युद्ध के पहले भी भारत ने इसी की माँग की थी। लड़ाई के दिनों में भी उसने इसे ही माँगा था और युद्ध के बाद भी वह इसे ही माँगेगा, लेकिन पुरस्कार के रूप में नहीं, वह इसे अपने अधिकार के रूप में चाहता है। इसमें भूल नहीं करना चाहिये।'

श्रीमती एनी बीसेण्ट जब अपने थियोसोफी के क्षेत्र से राजनीति के मैदान में कूदीं तब उन्होंने अपने साथ नये विचार, नई योग्यता, नवीन साधना, नया दृष्टिकोण और संगठन का एक बिल्कुल ही नूतन ढंग लेकर कांग्रेस-क्षेत्र में पदार्पण किया। उनका व्यक्तित्व तो पहले से ही सारे जगत में महान् था। पूर्व और पश्चिम के देशों में नये और पुराने गोलार्द्ध में लाखों की संख्या में उनके भक्त और अनुयायी थे। इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि अपने पीछे इतने प्रबल भक्तों, अनुयायियों और अथक कार्य–शक्ति के होते हुए, उन्होंने भारतीय राजनीति को एक नवीन राजनैतिक जीवन प्रदान किया।

उस समय कांग्रेस में नरम और गरम दल वालों का तीव्र संघर्ष चल रहा था। श्रीमती बीसेण्ट ने दोनों दलों को एक प्लेटफार्म पर लाने का बहुत प्रयत्न किया, मगर उसमें उन्हें सफलता नहीं हुई।

तब लोकमान्य तिलक ने कांग्रेस से पृथक् २३ अप्रैल सन् १९१६ को 'होमरूल लीग' की स्थापना कर उसमें कांग्रेस के विधान को स्वीकार किया, मगर लोकमान्य का स्वास्थ्य अच्छा नहीं था और वे भारत में विस्तृत प्रचार कार्य नहीं कर सकते थे।

ठीक ऐसे ही नाजुक समय में श्रीमती एनी बीसेण्ट धार्मिक क्षेत्र छोड़ राजनीति के क्षेत्र में उतर पड़ीं। उन्होंने अपनी सारी शक्तियाँ 'होमरूल' के पीछे लगा दीं। इसके प्रचार के लिये उन्होंने 'न्यु इंडिया' नामक दैनिक पत्र और उसके बाद 'कामन ह्वील' नाम से एक साप्ताहिक पत्र निकाला। 'होमरूल' की आवाज को सर्वप्रिय बनाने

में उनका नंबर पहला है। इसके लिए सारे देश में एक छोर से दूसरे छोर तक उन्होंने तूफान मचा दिया।

कांग्रेस का कार्य जिस मन्दगति से चल रहा था, उससे श्रीमती बीसेण्ट को सन्तोष नहीं था। वह एक तेज तर्रार और जीती-जागती संस्था चाहती थीं। इसके लिए मद्रास के गोखले-हाल में १ सितम्बर सन् १९१६ को श्रीमती एनी बीसेण्ट की 'होमरूल लीग' की स्थापना हुई। इस संस्था ने सन् १९१७ तक धड़ाके से श्रीमती बीसेण्ट के द्वारा निर्धारित प्रणाली पर काम किया। वह तीन वर्ष के लिए इस संस्था की अध्यक्षा चुनी गई थीं।

होमरूल की आवाज देश के सुदूर स्थानों तक पहुँच गई और सर्वत्र होमरूल लीगों की स्थापना हो गई थी। श्रीमती बीसेण्ट के हाथों में प्रेस की शक्ति खूब ही बढ़ी। यद्यपि 'प्रेस एक्ट' के अनुसार दमचक्र भी खूब ही चला। उनके न्यूइंडिया और कामनवील नामक पत्रों की २० हजार की जमानतें जब्त कर ली गईं।

एक ओर यह हो रहा था, दूसरी ओर होमरूल का ख्याल जंगल की आग की तरह सारे देश में फैल रहा था। स्त्रियाँ भी उसमें बड़े जोर शोर से भाग लेने लगीं।

सन् १९१७ में कलकत्ता-कांग्रेस के सभापति-पद से दिये गये भाषण में श्रीमती बीसेण्ट ने कहा था कि—"स्त्रियों के इस आन्दोलन में बहुत बड़ी संख्या में भाग लेने, सहायता करने, कष्ट सहने और त्याग करने के कारण 'लीग' की शक्ति दसगुनी बढ़ गई थी। हमारी लीग के सबसे अच्छे रँगरूट और सबसे अच्छे रँगरूट बनाने वाली स्त्रियाँ ही थीं।

दक्षिण के विराट मन्दिरों और पवित्र तीर्थ-स्थानों में 'होमरूल' के लिए की जाने वाली प्रार्थनाओं के कारण होमरूल धर्म के साथ एकाकार हो गया है। वहाँ से वह देहात के मन्दिरों में भी फैल रहा है और साधु-सन्यासी तक उसका प्रचार कर रहे हैं।"

इसके फलस्वरूप १५ जून सन् १९१७ को श्रीमती एनी बीसेण्ट, अरेण्डेल और वाडिया को ब्रिटिश सरकार ने नजरबन्द कर दिया। मगर इससे होमरूल के आन्दोलन में और भी तेजी आ गई। मि० जिन्ना भी उसमें सम्मिलित हो गये। पंढ़रीनाथ काशीनाथ तैलंग न्यू इंडिया के सम्पादक बनकर मदरास पहुँच गये और होमरूल आन्दोलन विद्यु त-गति से दिन-दूना रात-चौगुना चारों ओर फैलने लगा।

मगर इसी समय इंग्लैण्ड के मंत्रिमण्डल की ओर से भारत-सचिव मि० मान्टेग्यू ने एक घोषणा की, जिसमें ब्रिटिश-नीति का अन्तिम ध्येय भारत को 'उत्तरदायित्व पूर्ण शासन' देना बताया गया और श्रीमती बीसेण्ट तथा उनके सहयोगियों को मुक्त कर दिया गया।

इसके बाद श्रीमती एनी बीसेण्ट का रुख परिवर्तित हो गया। 'मान्टेगू-चेम्सफोर्ड घोषणा' के खिलाफ कांग्रेस के बहुत से नेताओं ने विरोध प्रकट किया, वहाँ एनी बीसेण्ट ने इस घोषणा का समर्थन किया और कहा कि हमें मि० मान्टेगू का साथ देना चाहिये।

उसके बाद सन् १९१७ में कलकत्ता कांग्रेस की सभानेत्री के पद से उन्होंने जो भाषण दिया, वह भारत के स्वशासन पर लिखा हुआ, एक सुन्दर निबन्ध है।

उसके बाद सन् १९१८ के पहले पाँच महीनों में श्रीमती बीसेण्ट ने कांग्रेस के अध्यक्षपद से अथक परिश्रम किया। उसके बाद जन सन् १९१८ में सुप्रसिद्ध मान्टेगू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट प्रकाशित हुई। इस रिपोर्ट से कांग्रेस वालों में बड़ा तीव्र मतभेद पैदा हूआ। बहुत से लोग अपने-अपने ढंग से इसकी आलोचना करने लगे। श्रीमती एनी बीसेन्ट भी इस समय इस बात को महसूस करने लगीं कि उनकी विचारधारा का मेल न तो सरकार के साथ ही खाता है न जनता के साथ ही। सरकार उनकी उग्रता को पसन्द नहीं करती थी और जनता उनके पिछड़ेपन से नाखुश थी। सितम्बर सन् १९१८ को होने वाली बंबई-कांग्रेस में उनका अच्छा प्रभाव था, मगर सितम्बर सन् १९१९ को होनेवाली दिल्ली की कांग्रेस में वे बहुत पिछड़ गईं और इसके बाद धीरे-धीरे उनका प्रभाव क्षीण होता चला गया और वे राजनैतिक क्षेत्र से करीब-करीब रिटायर्ड हो गईं।

एनियुस क्विंटस

लेटिन-भाषा का एक कवि, जिसका जन्म ई० सन् पूर्व २३९ में और मृत्यु ई० सन् पूर्व १६९ में हुई।

एनियुस क्विंटस लेटिन–साहित्य का जनक माना जाता है। वह ग्रीक और लेटिन दोनों ही भाषाओं का पण्डित माना जाता था। उसने अपने वीर काव्य 'एनाल्स' की रचना राष्ट्रीय भावनाओं के आधार पर की। उसने अपना यह काव्य १८ सर्गों और ६ सौ पद्यों में रचा। प्राचीन मान्यता के अनुसार उसकी और भी रचनाएँ थीं, जिसमें २२ दुःखान्त नाटकों, २ सुखान्त नाटकों और १ ऐतिहासिक नाटक के उद्धरण मिलते हैं। पर उसके परवर्ती कवियों पर उसकी रचनाओं का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। लेटिन भाषा का आदिकवि होने के कारण सिसरो, और क्विंटीनियन जैसे महान लेखकों ने भी उसके प्रति अपनी श्रद्धाञ्जली दी है।

एग्नेसी मेरिया

इटली देश की, गणित-शास्त्र की विदुषी एक प्रसिद्ध महिला, जिसका जन्म सन् १७१८ में और मृत्यु सन् १७९९ में हुई।

एग्नेसी मेरिया १४ वर्ष की उम्र से ही दर्शन-शास्त्र और गणित पर मौलिक रूप से अध्ययन करने लग गई थी। २० वर्ष की आयु में उसने संसार छोड़ दिया और एकान्त में गणित का अध्ययन करने लगी।

ऐसी किम्वदन्ती है कि एक बार एग्नेसी गणित के एक समीकरण पर विचार करते-करते सो गई। रात्रि में निद्रावस्था में ही उसने कागज पर इस समीकरण के निरूपित वक्र को अंकित कर लिया। प्रातःकाल उसे बड़ा आश्चर्य हुआ, जब उसने अपने गणित के हल को कागज पर लिखा हुआ देखा।

एग्नेसी की प्रधान रचना उसका लिखा हुआ इन्स्टीट्यूजिरोनी, एनालिटिका, युजोडेला, जिवोवेंट इटालियाना है जो दो भागों में प्रकाशित हुआ है।

सन् १७५२ ई० में १४ वें पोप वेनेडिक्ट ने मिलन के विश्वविद्यालय में अपने स्थान पर एग्नेसी की नियुक्ति की।

एग्नेसी का देहान्त सन् १७९९ में हुआ।

एपीरस

उत्तरी यूनान का एक प्राचीन जिला, जो इस समय अल्वेनिया राज्य का दक्षिणी हिस्सा है। एपीरस का इतिहास यूनान के प्राचीन इतिहास से मिला हुआ है।

ई० सन् पूर्व की ४ थी शताब्दी में एपीरस की राज कुमारी ओलम्पिया का विवाह मकदूनिया के राजा फिलिप द्वितीय से हुआ था। यही ओलम्पिआ सिकन्दर महान की माता थीं।

एपीरस में ई० सन् पूर्व की ३ री शताब्दी में 'अलेकझेण्डर' नामक एक राजा हुआ, जिसने मकदूनिया के राजा 'एंटीवोनस' को पराजित किया था। अलेक्झेंडर और ऐटीवोनस—ये दोनों राजा उस समय हुए जिस समय भारत में महान प्रतापी सम्राट् 'अशोक' का साम्राज्य चल रहा था।

एपीक्युरियस

प्राचीन यूनान में एपीक्युरियनिज्म-सिद्धान्त का पुरस्कर्ता। इसका जन्म ई० सन् पूर्व ३४२ में तथा मृत्यु ई० सन् पूर्व २७१ में हुई।

एपीक्युरियस-सिद्धान्त का प्रारंभ एपीक्युरियस ने ई० सन् पूर्व ३०६ में एथेन्स नगर के अन्तर्गत किया था। इस सिद्धान्त को एरिस्टीपस (Aristipus) द्वारा स्थापित 'साइरेनिसज्म' का ही एक विकसित रूप कहा जा सकता है।

एपीक्युरियस ने ई० सन् पूर्व ३०६ में एथेन्स नगर के अन्दर अपना विद्यालय स्थापित किया। इस विद्यालय की खास विशेषता यह थी कि इसमें उसने दासों और स्त्रियों का प्रवेश भी प्रारंभ कर दिया, जो कि उस समय की यूनानी-परंपरा के विरुद्ध था। इस विद्यालय के विद्यालयों में कई वारंगनाएँ भी थीं जिनमें से 'लियोंतियन' नामक वीरंगना के साथ उसकी अधिक घनिष्ठता थी।

एपीक्युरियस लगभग ३६ वर्षों तक एथेन्स में रहा। उसकी शिष्य-मण्डली उसको देवता के समान पूज्य समझती थी।

एपीक्युरियस के सिद्धान्त का प्रधान लक्ष्य विशुद्ध भौतिकवादी था। जीवन के अन्दर आनन्द की प्राप्ति उसका प्रधान ध्येय था। दुःख और चिन्ता के अभाव को वह सुख समझता था। सामाजिक जीवन से अधिक-से-अधिक स्वतंत्र रहकर ही यह सुख प्राप्त किया जा सकता है—ऐसा उसका विश्वास था। उसका कथन था कि मनुष्य को जहाँ तक हो सके, सार्वजनिक जीवन की दुश्चिन्ताओं से बचना चाहिये।

उसके सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य तत्वत: एक स्वार्थी प्राणी है और उसमें कोई सामाजिक प्रवृत्तियाँ नहीं हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपना हित–साधन करना चाहता है, जिसका दूसरों के हितों से प्राय:संघर्ष रहता है। इस संघर्ष को मिटाने के लिए ही मनुष्य आपस में मिलकर समझौता कर लेते हैं कि वे आपस में एक दूसरे को हानि नहीं पहुँचायेंगे। इसी समझौते में से राज्य की उत्पत्ति होती है। अतएव राज्य का आधार समयानुकूल आवश्यकता है, मानव-स्वभाव नहीं।

एपीक्युरियस को इस बात में कोई दिलचस्पी न थी कि राज्य की कौन सी पद्धति समाज के लिए हितकर हो सकती है। फिर भी वह राजतंत्र का अधिक पक्षपाती था।

एपीक्युरियस इन्द्रिय–सुख को ही प्रधान सुख मानता था। अप्रत्यक्ष सुख की कल्पना को वह भ्रान्ति समझता था। देवताओं और प्राचीन परंपराओं के ऊपर भी उसका विश्वास नहीं था। ईश्वर और धर्म का भी वह मनुष्य-जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं मानता था। उसका कहना था कि सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक सभी बाधाओं से ऊपर उठकर जीवन का आनन्द उठाना चाहिए। अपने मौज-मजों में किसी प्रकार की कमी न आने देना चाहिए। अपने सारे कामों का लक्ष्य उसी ओर रखना चाहिए। फिर भी जीवन के हरेक क्षेत्र में अति नहीं होना चाहिये। मर्यादा-हीन जीवन में दुःख उठाना पड़ता है।

एफेबस

प्राचीन यूनान में तरुण नवयुवकों के सैनिक-संगठन का नाम, जिसका प्रारंभ ईसवी सन् पूर्व ३३९ के करीब हुआ, माना जाता है।

उन दिनों एथेन्स में १८ वर्ष की अवस्था के पश्चात् प्रत्येक नवयुवक को प्रारंभिक सैनिक–शिक्षा अनिवार्य रूप से ग्रहण करनी पड़ती थी। ऐसे नवयुवकों को 'एफेबस' कहा जाता था। एक वर्ष तक कठोर अनुशासन में इन नवयुवकों को सैनिक–शिक्षण ग्रहण करना पड़ता था। उसके बाद एक वर्ष तक उन्हें दुर्ग–रक्षण आदि का व्यावहारिक ज्ञान दिया जाता था। सैनिक–शिक्षा की समाप्ति के पश्चात् प्रत्येक नवयुवक को एक भाला और एक ढाल प्रदान की जाती थी और शपथ दी जाती थी कि वह इन शस्त्रों की लाज को जन्म भर निभायेगा।

एमिली ब्रोण्टे

(Emily Bronte)

उन्नीसवीं सदी के अंग्रेजी-साहित्य में मौलिक उपन्यासों का सृजन करने वाली एक अंग्रेज–लेखिका जिसका जन्म सन् १८१८ में और मृत्यु सन् १८४८ में हुई।

एमिली ब्रोण्टे की एक बहन चारलोटे ब्रोण्टे और थी। अंग्रेजी–साहित्य में मौलिक उपन्यासों के रचने में इन दोनों बहनों ने काफी नाम कमाया। एमिलि ब्रोण्टे का 'वुदरिंग हाइट्स' नामक उपन्यास बहुत प्रसिद्ध है।

एम्पायर स्टेट बिल्डिंग

अमेरिका में मनुष्य के हाथों से बनी हुई संसार की सबसे ऊँची इमारत। इस इमारत में १०२ मंजिले हैं और इसकी ऊँचाई टेलीविजन के स्तम्भों को मिलाकर १४८२ फुट है जो कुतुबमीनार की ऊँचाई से छगुनी अधिक ऊँची है।

आधुनिक वस्तु-कला के इस आश्चर्य को देखने के लिए संसार के सब भागों से लाखों व्यक्ति आते हैं—जिनसे लगभग दस लाख डालर की वार्षिक आय होती है।

इस इमारत को खड़ा करने के लिए जो ढाँचा तैयार किया गया, उसमें ६०००० टन इस्पात लगा। इसके बरामदों और कमरों में जो संगमरमर लगा है, उसकी पूर्ति के लिए फ्रान्स, इटली, बेलजियम और जर्मनी की कई खानें एक वर्ष तक अपना सारा संगमरमर न्यूयार्क को भेजती रहीं। इस इमारत में टेलीविजन सौर बिजली के जो तार लगाये गये हैं, उनकी कुल लम्बाई ३२०० मील है। पानी के लिए जो नल फिट किये गये हैं उनकी लम्बाई ५० मील है। सारी मंजिलों में जो सीढ़ियाँ लगी हुई हैं उनकी संख्या १८९० है। लेकिन ऊपर नीचे आने जाने के लिए बिजली के लिफ्ट भी लगे हुए हैं, इन लिफ्टों की संख्या ७२ है। इमारत के कमरों को छोड़कर सार्वजनिक रोशनी के लिए सारी इमारत में ३००० बल्ब लगे हुए हैं।

सन् १९४९–५० के लगभग एक हवाई जहाज इस इमारत से टकरा गया। टक्कर के जोर से विमान का एक इंजिन निकल कर ऊपर की मंजिल के एक दरवाजे में घुस गया और दूसरे दरवाजे से निकल गया। इस दुर्घटना में १४ व्यक्ति मरे, मगर इमारत को कोई नुकसान नहीं हुआ। यहाँ तक कि इससे केवल ७ मंजिल ऊपर पुस्तक पढ़ते हुए एक लड़के को इस दुर्घटना का ज्ञान भी नहीं हुआ।

अब तक इस इमारत पर लगभग पाँच सौ बार कड़कती हुई बिजली गिरी मगर इसको कोई नुकसान नहीं पहुँचा।

इस इमारत पर सात लाख पौण्ड की लागत से २२२ फुट ऊँचा टेलिवीजन का एक मीनार कई कम्पनियों ने मिलकर स्थापित किया है जो ऊँचाई में १७ मंजिल की इमारत के बराबर और घेरे में आठ वर्ग फुट है।

इस इमारत के ऊपर जो रोशनियाँ रात में चमकती हैं वे हवाई जहाज पर ३०० मील दूरी से और साधारण मनुष्य को ८० मील दूर से दिखलाई पड़ती हैं।

अमेरिका के कुशल इंजीनियरों ने इस विशाल बिल्डिंग को न्यूयार्क के एक ऐसे घने मुहल्ले में, जहाँ पर प्रति दिन ४० हजार गाड़ियाँ और दो लाख पैदल व्यक्ति गुजरते हैं—रास्ते या कारोबार में किसी भी प्रकार की स्थायी या अस्थायी बाधा डाले बिना १ अक्तूबर १९२९ को प्रारम्भ कर १ मई १९३१ को सम्पूर्ण कर दिया।

एपेलोडोरस (Appolodorus)

प्राचीन यूनान का प्रसिद्ध चित्रकार जिसने सबसे पहले चित्रों में शेडिंग करने की प्रथा चलाई। उसकी चित्रकला का उत्कृष्ट नमूना 'पूजा में लीन पुरोहित' नामक चित्र में मिलता है।

एबेयर

जर्मन-गणराज्य का पहला राष्ट्रपति, जो प्रथम महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात् ९ नवम्बर १९१८ को जर्मन-गणराज्य की घोषणा पर अस्थायी समाजवादी सरकार का चांसलर बनाया गया।

उस समय जर्मन-राष्ट्र की स्थिति बड़ी अस्त-व्यस्त हो रही थी और जगह-जगह विद्रोह और उपद्रव हो रहे थे। दिसम्बर और जनवरी में होने वाले उपद्रवों को 'एबेयर' ने साहस-पूर्वक कुचल दिया, जिसके परिणामस्वरूप जर्मन-'रीखस्टाग' ने सन् १९२५ में एबेयर को दूसरी बार जर्मन-गणराज्य का राष्ट्रपति चुन लिया।

मगर भीतर ही भीतर एबेयर के खिलाफ षडयन्त्र और साजिशें चल रही थीं। लोगों को यह पसन्द नहीं था कि एक मोची का लड़का, जिसको किसी भी प्रकार की उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं है, जर्मन-राष्ट्र का राष्टपति बने। उसके विरोधियों ने उस पर विश्वासघात इत्यादि के भयंकर आरोप लगाए, इससे एबेयर के दिल पर बड़ा सदमा पहुँचा और इसी सदमे में सन् १९२५ में ही उसकी मृत्यु हो गई।

एमडेन

जर्मनी का एक लड़ाकू जहाज, जिसने सन् १९१४ के प्रथम महायुद्ध में मित्र-राष्ट्रों के अनेक जहाज डुबोकर भयंकर आतंक मचा दिया था। इसी 'एमडेन' जहाज ने उस समय मदरास पर भी गोलाबारी की थी।

एमडन

पश्चिमी जर्मनी का एक प्रसिद्ध नगर और बन्दरगाह ।

इस बन्दरगाह में बड़े-बड़े जहाजों को लंगर डाल कर ठहरने की बड़ी सुन्दर व्यवस्था है। पश्चिमी जर्मनी में यह तीसरे नम्बर का बन्दरगाह है। इस नगर में १६वीं शताब्दी का बना हुआ टाऊन-हाल जर्मनी की सुन्दरतम बनी हुई इमारतों में से एक है।

एमहर्स्ट

ईस्ट इंडिया कम्पनी के समय में भारत का गवर्नर जनरल जो सन् १८२३ में भारतवर्ष में आया।

लार्ड एमहर्स्ट के समय के शासन की प्रधान घटना बर्मा के साथ अंग्रेज सरकार की लड़ाई थी। २४ फरवरी सन् १८२४ को बर्मा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की गई। अंग्रेजी-सेना सर आर्चीवाल्ड कैम्पवेल के नेतृत्व में समुद्री मार्ग से रवाना हुई और उसने रंगून पर अधिकार कर लिया। इसके बाद कैम्पवेल ने अराकान, टेनासिरम् और आसाम पर भी कब्जा कर लिया।

सन् १८२५ में वह जल और थल दोनों मार्गों से इरावदी नदी की ओर बढ़ा। बर्मा का राजा पराजित हुआ और उसका सेनापति बुन्देला लड़ाई में मारा गया। तीन सप्ताह बाद लोअर बर्मा की राजधानी प्रोम पर भी अंग्रेजों का अधिकार हो गया। उसके बाद फरवरी सन् १८२६ में 'याण्डबू' की सन्धि हो गई। इस सन्धि के अनुसार बर्मा के राजा ने अराकान और टेनासरिम के परगने अंग्रेजों को दे दिये और कछार तथा आसाम पर से अपना अधिकार हटा लिया।

लार्ड एमहर्स्ट सन् १८२८ में वापस लौट गया।

एलिनबरा

ईस्ट इंडिया कम्पनी के समय में भारत का गवर्नर जनलर, जो सन् १८४२ में भारतवर्ष में आया।

लार्ड आकलैण्ड की भद्दी नीति के कारण अफगानिस्तान में अंग्रेजों की जो करारी पराजय हुई, उससे असन्तुष्ट होकर कम्पनी के डॉयरेक्टरों ने लार्ड आकलैण्ड को वापस बुला लिया गया और उसकी जगह पर एलिनबरा गवर्नर जनरल होकर आया।

उस समय गजनी में कर्नल पामर की बड़ी दुर्दशा हो रही थी। इससे घबरा कर एलिनबरा ने अंग्रेजी सेनाओं को अफगानिस्तान से वापस आने का आदेश दिया। इतने में वहाँ के अमीर शाह शुजा को अफगानों ने मार डाला, जिससे एलिनबरा की नीति की चारों ओर निन्दा होने लगी। तब एलिनबरा ने जनरल पोलक और जनरल नॉट को काबुल और गजनी होते हुए वापस अफगानिस्तान जाने को लिखा।

इन दोनों सेनापतियों ने काबुल पहुँचकर उस बाजार को ध्वस्त कर दिया, जहाँ पर मैंगनाटन की लाश डाली गई थी।

उसके बाद ये सेनाएँ बड़ी धूमधाम से गजनी से सोमनाथ का फाटक लेकर आईं। यह फाटक आगरे लाया गया, पर देखने पर मालूम हुआ कि न तो यह सन्दल का है, न सोमनाथ का।

इसके बाद एलिनबरा ने सिन्ध के अमीरों को सन् १८४३ में 'मियानी' के युद्ध में पराजित कर सिन्ध को अंग्रेजी-राज्य में मिला लिया।

इसके पश्चात् उसने महराजपुर नामक स्थान पर मराठों को पराजित कर ग्वालियर-राज्य का प्रबन्ध एक कौंसिल के हाथों में सौंप दिया।

सन् १८४४ में एलिनबरा वापस बुला लिया गया।

एर्लिक पोल

जर्मनी का मशहूर डाक्टर और वैज्ञानिक जिसने उपदंश-रोग की चिकित्सा पर विजय पाने के लिए 'सिक्स हंडरेड सिक्स' (६०६) नामक प्रसिद्ध टीके का आविष्कार किया।

'एर्लिक पोल' का जन्म सन् १८५४ में और मृत्यु सन् १९१६ में हुई। यह यहूदी जाति का वैज्ञानिक था और चिकित्सा–शास्त्र के अनुसन्धानों के लिए बड़ी-से-बड़ी जोखिम उठाने को तैयार रहता था। सिर्फ ३४ वर्ष की तरुण अवस्था में क्षय रोगों के कीटाणुओं पर अनुसन्धान

करने के लिए इसने अपने शरीर में क्षय–कीटाणुओं को प्रविष्ट कर लिया और क्षय–रोग से ग्रसित हो गया ।

सन् १८९६ में इस वैज्ञानिक ने अपनी एक प्रयोग-शाला स्थापित की और मनुष्य की रोग–निवारक–शक्ति या 'इम्युनिटी पावर' पर इसने अनुसन्धान किये ।

सन् १९०६ में एर्लिक पोल ने उपदंश–रोग पर अपने सुप्रसिद्ध अनुसन्धान का निर्माण किया और उसका नाम 'सिक्स हंड्रेड सिक्स' रखा ।

इस आविष्कार के द्वारा संसार में हजारों उपदंश ग्रस्त रोगियों ने इस महाभयंकर व्याधि से छुटकारा पाकर राहत की साँस ली । यही औषधि आगे चलकर 'साल्वार्सन' और उसके बाद 'बेयर २०५' के नाम से प्रसिद्ध हुई ।

एलिजाबेथ (रूस सम्राज्ञी)

रूस के सुप्रसिद्ध 'जार' पीटर महान् की पुत्री, जो सन् १७४१ में रूस की राजगद्दी पर बैठी ।

एलिजाबेथ के शासन–काल में रूसी–सामन्तों का प्रभाव बहुत अधिक बढ़ गया था और भूमिपतियों के फायदे के लिए कई नये नियम और कानून बनाये गये ।

एलिजाबेथ को अपने आनन्द और मौज के सिवाय किसी काम से कोई वास्ता नहीं था । उसके यहाँ नाच–गान और शराब की मजलिसें लगातार होती थीं । इसने अपना विवाह नहीं किया, लेकिन एक यूक्रेनी कज्जाक–'एलेक्सी राजू मोवस्की' इसका हमेशा कृपापात्र बना रहा । यह बड़ा शौकीन था और कहा जाता है कि जब यह मरा तब इसके संग्रह में १५ हजार भिन्न–भिन्न प्रकार की पोशाकें निकलीं ।

एलिजाबेथ ने अपना उत्तराधिकारी अपने भतीजे 'कार्ल पीटर उलरिच' को बनाया जो उसकी छोटी बहिन अन्ना का लड़का था । सम्राज्ञी एलिजाबेथ ने उसका विवाह जर्मन–राजकुमारी 'सोफिया अनहाल्ट' के साथ कर दिया जो कि आगे चलकर रूस के इतिहास में 'एकातेरिना' द्वितीय के नाम से प्रसिद्ध हुई ।

सम्राज्ञी एलिजाबेथ के समय में रूसी आस्ट्रियाई सेना ने पर्शिया की सेना को सन् १७५७ में बुरी तरह से पराजित किया और सन् १७६० में कुछ समय के लिए बर्लिन पर भी अधिकार कर लिया ।

सम्राज्ञी एलिजाबेथ के समय में रूस का साहित्यिक और कलात्मक विकास भी काफी हुआ । इसी समय में इटालियन शिल्पकार 'रास्ट्रेरेली' के निरीक्षण में मास्को का सुप्रसिद्ध 'शीत–प्रसाद' (विंटर पैलेस) बनाया गया । इसी के समय में मास्को–विश्व–विद्यालय की स्थापना हुई और रूसी–रंगमञ्च का विकास हुआ ।

एलिजाबेथ प्रथम (इंग्लैण्ड की महारानी)

इंग्लैण्ड के ट्यूडर राजवंश की इतिहास-प्रसिद्ध महारानी एलिजाबेथ । जिसने अपने प्रबल व्यक्तित्व और बुद्धिमानी से इंग्लैण्ड के इतिहास में एक नवीनयुग का सूत्रपात किया ।

महारानी एलिजाबेथ सन् १५५८ में इंग्लैण्ड के राज-सिंहासन पर बैठी । यह इंग्लैण्ड के राजा आठवें हेनरी की दूसरी पत्नी एनीबोलेन की पुत्री थी ।

एलिजाबेथ की पूर्ववर्ती रानी मेरी ट्यूडर ने एलिजाबेथ को कारागृह में डाल रक्खा था । अपने राज्याभिषेक का समाचार एलिजाबेथ को कारागृह के अन्दर ही मिला था ।

राज्यसिंहासन पर आते ही एलिजाबेथ को कई विकट समस्याओं का सामना करना पड़ा । अभी-अभी इंग्लैण्ड मेरीट्यूडर के शासन से बाहर निकला था जिसने अपनी कट्टर धार्मिकता की वेदी पर अनेकों प्रोटेस्टेन्ट लोगों को जीवित जला दिया था ।

एलिजाबेथ प्रोटेस्टेण्ट-माता की संतान होने से स्वभावतः प्रोटेस्टण्ट थी, मगर अपनी राजनैतिक सूझ-बूझ के कारण उसने धार्मिक कट्टरता को महत्व न देकर हर एक वस्तु का मूल्यांकन राष्ट्रीय हित की दृष्टि से किया । प्रोटेस्टेन्ट होने पर भी उसने रोमन कैथोलिकों पर किसी प्रकार का अत्याचार नहीं किया । उसने राष्ट्रीय एकता की नींव पर ही धर्म की आधारशिला रखना उचित समझा और इसी दृष्टिकोण को सम्मुख रखकर सन् १५५० में उसने ऐक्ट आफ सुपरमेसी पास कराया जिसके अनुसार वह शुद्ध एंग्लिकिन चर्च की अधिष्ठात्री बनायी गयी ।

इसके अतिरिक्त छठे एडवर्ड के समय की प्रार्थना-पुस्तक में कुछ संशोधन करके ऐक्ट आफ यूनीफार्मेटी के द्वारा उस पुस्तक के सिवाय किसी अन्य पुस्तक का प्रयोग सार्वजनिक गिरिजाघरों में करने की मनाही कर दी। साथ ही एडवर्ड षष्ठ के द्वारा निर्मित ४२ धाराओं वाले राज नियम (The 42 Articales of Religion) में से तीन आपत्तिजनक धाराएँ निकाल कर उसे फिर से लागू कर दिया।

मगर एलिजाबेथ के इस कार्य से कट्टरपंथी धर्मनेता अत्यन्त क्षुब्ध हो गये और ड्यूक आफ नाफार्थ के नेतृत्व में वहाँ की रोमन कैथोलिक जनता ने विद्रोह कर दिया। इस विद्रोह को "उत्तरी विद्रोह" कहा जाता है। इन विद्रोहियों ने गिरजाघरों पर धावा कर दिया, प्रार्थना-पुस्तकों को फाड़ डाला और कैथोलिक पद्धति के अनुसार प्रार्थना करना प्रारंभ कर दिया। एलिजाबेथ ने सेना भेजकर तुरन्त इस विद्रोह का दमन कर दिया और बहुत से विद्रोहियों को प्राणदण्ड की सजा दे दी।

इस विद्रोह के दूसरे ही वर्ष रोमन चर्च के पोप ने घोषणा की कि एलिजाबेथ को धर्मच्युत किया जाता है और उसे गद्दी से उतारा जाता है। ऐसा करने में पोप का यह अभिप्राय था कि सब रोमन कैथोलिक शासक और प्रजा एलिजाबेथ को गद्दी से उतारने में सहायता दे।

लेकिन पोप की इस घोषणा का कोई असर नहीं हुआ। क्योंकि इस समय तक प्रोटेस्टेण्ट धर्म बहुत अधिक फैल चुका था और इंग्लैण्ड, स्काटलैण्ड, नीदरलैण्ड, स्वीडन, नार्वे, डेनमार्क, जर्मनी, हंगरी, स्विटजरलैण्ड प्रोटेस्टेण्ट हो चुके थे। केवल फ्रान्स और स्पेन के शक्तिशाली राष्ट्र रोमन कैथोलिक थे मगर वे भी अपने घरेलू झगड़ों में ऐसे उलझे हुए थे कि उन्हें बाहर ध्यान देने का अवकाश ही नहीं था।

इसी समय 'जोन जिकार्ड' नामक एक कैथोलिक प्रचारक ने इंग्लैण्ड की जनता में रानी एलिजाबेथ के विरुद्ध बगावत के भाव भरना प्रारम्भ किये और रोमन कैथोलिक लोगों को अपने धर्म पर दृढ़ रहने का उपदेश देने लगा। इसमें उसे काफी हद तक सफलता भी मिली। यह देखकर एलिजाबेथ घबरा गई क्योंकि वह जानती थी कि पोप का आधिपत्य होते ही वह मार डाली जावेगी। अतः उसने रोमन कैथोलिकों के विरुद्ध कई कड़े कानन पास किये। जिकार्ड को कैद करके उसकी कलाइयाँ बाँध कर लोहे की शलाकाओं से इसलिए लटका दिया गया कि वह अपने साथियों के नाम बतला दे। मगर उसने नहीं बतलाये और एक दिन अपने मित्रों की सहायता से कैदखाने से निकल भागा। इस पर बहुत से अन्य रोमन कैथोलिकों को फाँसी दे दी गई।

इस दमन से कैथोलिक और भी बिगड़ उठे। उन्होंने महारानी एलिजाबेथ को मारने के और भी कई षडयन्त्र किये। मगर भाग्य ने हर जगह एलिजाबेथ का साथ दिया सब षड़यन्त्रकारी पकड़ लिये गये और उनके नेताओं को मृत्यु दण्ड दिया गया।

ये सारे षड़यन्त्र मेरी स्काट—जो कि उन दिनों इंग्लैण्ड की जेल में बन्द थी—को इंग्लैण्ड की राजगद्दी पर बिठाने के लिए हो रहे थे। इसलिए लोगों का यह विश्वास हो गया कि जब तक मेरी स्काट जीवित रहेगी एलिजाबेथ का प्राण संकट नहीं टलेगा। अन्त में उस पर अभियोग चलाया गया, उसे प्राण दण्ड की सजा हुई और सन् १५८७ में उसका सिर काट लिया गया। इस प्रकार धर्मक्षेत्र की विपत्ति से तो किसी प्रकार एलिजाबेथ ने मुक्ति पाई।

स्कॉटलैण्ड की समस्या

इंग्लैण्ड के इतिहास में स्कॉटलैण्ड की समस्या बहुत समय से एक सिरदर्द की तरह रहती आई थी। एलिजाबेथ के समय में भी स्कॉटलैण्ड की समस्या ने उसे बड़ा परेशान किया।

स्कॉटलैण्ड और फ्रान्स की महारानी मेरी स्टुअर्ट इंग्लैण्ड के सिंहासन पर भी अपना दावा पेश कर रही थी। क्योंकि वह सप्तम हेनरी की लड़की मारग्रेट की पोती थी। एलिजाबेथ को वह सिंहासन की अधिकारिणी नहीं समझती थी। क्योंकि रोमन कैथोलिक मत के अनुसार एनीबोलेन का अष्टमहेनरी से विवाह नाजायज और अधर्म युक्त था। मेरी कट्टर कैथोलिक थी और वह फ्रान्स, स्काटलैण्ड और इंग्लैण्ड—तीनों देशों से प्रोटेस्टेण्ट धर्म को समूल नष्ट कर रोमन कैथोलिक [illegible] देना चाहती थी।

मगर मेरी के असाधारण रूप और उसके हीन चरित्र से कुछ ऐसी घटनाएँ हो गईं जिसने उसके प्रभाव को एकदम नष्ट कर दिया। अपने पति फ्रान्स के राजा फ्रांसिस द्वितीय की मृत्यु हो जाने पर वह स्काटलैण्ड लौट आई और यहाँ आकर उसने अपने चचेरे भाई डार्नले से विवाह कर लिया जिससे उसे एक पुत्र हुआ। मगर कुछ समय पश्चात् वह 'अर्ल आफ बाथवेल' पर अनुरक्त हो गई और डार्नले से छुटकारा पाने का उपाय सोचने लगी। थोड़े ही दिनों बाद एडिनबरा से कुछ दूर कर्कफील्ड नामक स्थान पर डार्नले का मकान किसी ने बारूद से उड़ा दिया और उसकी लाश लोगों को बाहर के बाग में पड़ी हुई मिली। उसके कुछ समय बाद मेरी ने बॉथवेल से शादी कर ली।

इससे लोगों को पक्का विश्वास हो गया कि डार्नले की हत्या मेरी और बाथवेल की साजिश से हुई है। स्कॉटलैण्ड के लोग प्रेस बेटिरियन होने के कारण मेरी से पहले से ही चिढ़े हुए थे। इसलिए उन्होंने तुरन्त उसे राजच्युत कर दिया। मेरी भाग कर इंग्लैण्ड आई मगर एलिजाबेथ ने उसे एक दुर्ग में कैदी की तरह रख दिया।

यहाँ जेल के भीतर से ही मेरी ने अपने रोमन कैथोलिक लोगों की सहायता से एलिजाबेथ के विरुद्ध अनेक षड्यन्त्र करवाये जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है मगर उनमें उसे सफलता नहीं हुई और अन्त में कानून की आज्ञा के द्वारा उसको मृत्युदण्ड दिया गया।

इस प्रकार इस दूसरी विपत्ति पर भी एलिजाबेथ के भाग्य ने विजय पाई।

स्पेन के साथ युद्ध

सन् १५८० में स्पेन और पुर्तगाल के सिंहासन मिल जाने के कारण स्पेन की शक्ति बहुत बढ़ गई थी। स्पेन का राजा 'फिलिप' बहुत दिनों से इंग्लैण्ड के सिंहासन पर अपने दाँत गड़ाए बैठा था। मेरी ट्यूडर के साथ उसने विवाह ही इसलिए किया था। मेरी के मर जाने पर उसने एलिजाबेथ से भी विवाह का प्रस्ताव किया। मगर एलिजाबेथ के इन्कार कर देने पर उसने स्काटलैण्ड की मेरी स्टुअर्ट पर निगाह डाली। कहा जाता है कि मेरी स्टुअर्ट ने फिलिप को लिख दिया था कि यदि तुम मुझे कैद से मुक्त करके इंग्लैण्ड की गद्दी पर बैठा दो तो मैं तुमसे विवाह कर लूँगी। पोप की एलिजाबेथ विरोधी घोषणा भी उसके लिए बड़ी सहायक थी। इतने पर भी मेरी के जीतेजी वह कुछ नहीं कर सका।

मेरी के मरते ही फ्रान्स वाले भी स्पेन की मदद पर आ गये। स्पेन ने इंग्लैण्ड पर आक्रमण करने के लिए 'आर्मेडा' नामक विशाल जहाजी बेड़ा तैयार करवाया।

इधर एलिजाबेथ ने सर फ्रांसिस ड्रेक, सर वाल्टर रेले, हाकिन्स इत्यादि सामुद्रिक डाकुओं की मदद से स्पेन के जहाजों को डुबोना और परेशान करना प्रारंभ किया।

सन् १५८८ के जुलाई मास में आर्मेडा का विशाल जहाजी बेड़ा, जिसमें १३० जहाज और हजारों सैनिक थे, इंग्लिश चैनल में प्रकट हुआ। फिलिप ने घोषणा की कि हमारे आक्रमण का उद्देश्य सिर्फ कैथोलिक मत की रक्षा करना है। उसे उम्मीद थी कि इस घोषणा से इंग्लैण्ड के किनारे पर पहुँचते ही सारे रोमन कैथोलिक अंग्रेज हमसे आ मिलेंगे। ऐसी विकट परिस्थिति में एलिजाबेथ ने बड़े धैर्य और बुद्धिमत्ता से काम लिया। उसने अपने जहाजी बेड़े का सर्वोच्च आफिसर लार्ड 'हावर्ड' नामक एक रोमन कैथोलिक को बनाया। इससे इस लड़ाई ने धार्मिक की जगह राष्ट्रीय रूप ग्रहण कर लिया।

आर्मेडा ने इंग्लिश चैनल में पहुँचते ही लड़ाई प्रारंभ कर दी। ७ और ८ अगस्त को भयंकर लड़ाई हुई। ऐसे समय में प्रकृति ने 'इंग्लिश चैनल' में ऐसा भयंकर तूफान पैदा किया, जो अंग्रेजों के पक्ष में और स्पेन के विरुद्ध पड़ता था। परिणाम यह हुआ कि आर्मेडा की बुरी तरह पराजय हुई। उसके बहुत से जहाज नष्ट हो गये और बहुत से स्काटलैंड की ओर भाग गये।

आर्मेडा के नष्ट होने पर स्पेन ने और कई बार इंग्लैंड पर आक्रमण करने का प्रयत्न किया, मगर एलिजाबेथ के भाग्य ने हमेशा उसका साथ दिया और वह हमेशा विजयी हुई और इसी समय से एक बलवान राष्ट्र के रूप में इंग्लैण्ड की नींव पड़ी। इसी समय से धार्मिक मतभेदों को भुलाकर लोग राष्ट्रीय दृष्टिकोण से अपने देश के जीवनरक्षण का विचार करने लगे।

एलिजाबेथ के समय में देश की सर्वाङ्गीण उन्नति हुई। इसी समय इंग्लैण्ड की जल-शक्ति की मजबूत नींव पड़ी और थोड़े ही दिनों में इंग्लैण्ड की जल शक्ति विश्व की समस्त जल-शक्तियों में एक प्रबलतम जल-शक्ति मानी जाने लगी।

अभी तक यूरोप में पुर्त्तगाल और स्पेन वाले ही समुद्र की बड़ी-बड़ी यात्राएँ किया करते थे, मगर अब अंग्रेज-समुद्र-यात्रियों ने भी बड़ी-बड़ी यात्राएँ शुरू कीं। इनमें से वाल्टर रेले, हाकिन्स और सर फ्रान्सिस ड्रेक के नाम बहुत प्रसिद्ध हैं।

एलिजाबेथ का काल साहित्यिक उन्नति के लिए भी बहुत प्रसिद्ध हैं। महाकवि एडमंड स्पेंसर, मार्लो, जान्सन, शेक्सपिअर के समान साहित्यिक तथा धुरन्धर कलाकार भी इसी एलिजाबेथ के समय में पैदा हुए। बेकन, सिडनी, कैंडिन आदि विद्वान भी इंग्लैण्ड को इसी युग की देन हैं।

संक्षिप्त में एलिजाबेथ के युग को इंग्लैण्ड के इतिहास में स्वर्णयुग कहा जा सकता है।

एलिजाबेथ द्वितीय

इंग्लैण्ड की वर्तमान महारानी, जो जार्ज षष्ठ की मृत्यु के बाद सन् १९५३ में इंग्लैण्ड के राज-सिंहासन पर आसीन हुईं।

इंग्लैण्ड की राजगद्दी पर आने वाली यह छठी महिला-शासिका हैं। महारानी एलिजाबेथ का जन्म २१ अप्रैल सन् १९२६ ई० को इंग्लैण्ड की राजधानी लन्दन में हुआ। उस समय किसी को यह आशा न थी कि यह लड़की कभी इंग्लैण्ड की गद्दी पर बैठेगी। क्योंकि उस समय युवराज (प्रिन्स आफ वेल्स) उसके पिता के बड़े भाई थे। परन्तु २० जनवरी सन् १९३६ को एडवर्ड अष्टम के राजगद्दी त्याग देने से ब्रिटेन का इतिहास और एलिजाबेथ का भाग्य बदल गया और अपने पिता जार्ज षष्ठ के राजा बनने पर ११ वर्षीय एलिजाबेथ युवराज्ञी बन गई।

सन् १९४७ ई० में एलिजाबेथ का विवाह फिलिप माउंटबेटन के साथ हुआ। विवाह के एक दिन पहले माउंटबेटन को 'एडिनबरा का ड्यूक' बना दिया गया।

महारानी एलिजाबेथ के समय में इंग्लैण्ड की राजनीति विश्व-व्यापी कम्युनिज्म की बाढ़ को रोकने में लगी हुई हैं। इसके लिए इंग्लैण्ड, फ्रांस और अमेरिका ने अपना एक संगठन बना लिया है और इस संगठन में विश्व के अनेक राष्ट्रों को भी सम्मिलित कर रहे हैं। बीच में मिस्र-सरकार के द्वारा 'स्वेज नहर' बन्द कर देने के कारण इंग्लैण्ड और फ्रांस ने मिलकर मिस्र पर हमला किया था। मगर इसमें उन्हें बहुत नीचा देखना पड़ा।

पिछले ८-१० वर्षों में रानी एलिजाबेथ द्वितीय ने ब्रिटिश-ताज और राष्ट्र-मंडल की अध्यक्षा के रूप में अपने उत्तरदायित्वपूर्ण कर्तव्य को अत्यन्त सुन्दर ढंग से निभाया है। उनके शासन-काल में घाना और नाइजीरिया के अफ्रीकी राष्ट्रों को स्वतंत्रता मिली और राष्ट्र-मण्डल में पहलीबार काले अफ्रीका को प्रतिनिधित्व मिला।

एलिजाबेथ बरेट

(Elizabeth Barrett)

उन्नीसवीं सदी में अंग्रेजी-साहित्य की काव्य-तारिका। अंग्रेजी के महाकवि ब्राउनिंग की प्रेमिका जिसका जन्म सन् १८०६ में और मृत्यु १८६१ में हुई।

उन्नीसवीं सदी के अंग्रेजी काव्य-साहित्य में एलिजाबेथ बेरेट का एक विशिष्ट स्थान है। महाकवि ब्राउनिंग से सम्बन्धित होने के कारण भी इनकी काव्य-प्रतिभा का काफी विकास हुआ पर उनसे परिचय होने के पहले भी यह काव्य-क्षेत्र में काफी चमक चुकी थीं और इसी चीज के कारण इन्हें महाकवि ब्राउनिंग के सम्पर्क में आने का अवसर मिला।

एल्फ्रेड बर्नहार्ड नोबल

डॉइना माइट नामक भयङ्कर विस्फोटक द्रव्य के आविष्कर्ता एल्फ्रेड नोबल।

'डॉइना माइट' का आविष्कार कितने आकस्मिक और आश्चर्यजनक ढंग से हुआ, इसकी कहानी भी वैज्ञानिक

इतिहास में एक अनोखी घटना है। अल्फ्रेड नोबल नाइट्रोग्लिसरिन नामक विस्फोटक द्रव को पैक बन्द करके कहीं बाहर भेज रहे थे। उन्होंने इस पात्र का मुँह भुरभुरी मिट्टी से बन्द कर दिया। इस पात्र में दरार होने के कारण वह भुरभुरी मिट्टी नाइट्रोग्लिसरीन में मिल गई। अचानक बड़े जोर से विस्फोट हुआ और उस पात्र के टुकड़े-टुकड़े हो गये। बस इसी सिद्धान्त पर अल्फ्रेड नोबल ने नाइट्रोग्लिसरीन और भुरभुरी मिट्टी के मिश्रण से डाइनामाइट का आविष्कार किया, जो आज संसार में प्रथम श्रेणी के विस्फोटक द्रव्य के रूप में उपयोग में लिया जाता है। अल्फ्रेड बर्नहार्ड नोबल डायनामाइट के आविष्कर्ता होने के साथ ही साथ उदारचेता महान् पुरुष भी थे। उन्हें उस व्यक्ति के रूप में सदा स्मरण किया जावेगा जिसने शान्तिपूर्ण प्रयासों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार देने की प्रथा प्रारम्भ की। ये सफल वैज्ञानिक होने के साथ ही कविता, कहानी और उपन्यास लेखक भी थे। उनके द्वारा घोषित अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार “नोबल-प्राइज” के नाम से प्रति वर्ष दिये जाते हैं।

एलेक्जेण्डर-फ्लेमिंग

सुप्रसिद्ध एण्टी-बायोटिक औषधि ‘पेनिसिलिन’ का आविष्कारक अलेक्झेण्डर फ्लेमिंग जिसके पेनिसिलिन के आविष्कार ने सारे एलोपैथिक चिकित्सा-विज्ञान को एक नवजीवन और नवीन रूप दे दिया।

पेनिसिलिन का आविष्कार भी विचित्र और आकस्मिक संयोगों में एकाएक हुआ। अलेक्झेण्डर फ्लेमिंग अपनी प्रयोगशाला में एक सूक्ष्मदर्शक यंत्र के द्वारा बैक्ट्रियल कल्चर या जीवाणु-संवर्द्धन के प्लेट को देख रहे थे। इस प्लेट पर कुछ विषैले कीटाणु पाले जा रहे थे। इस प्लेट पर किसी संयोग से फफुन्द लग गयी। तब उनके सहायक ने कहा कि यह प्लेट खराब हो गई है, क्योंकि इस पर फफुन्द लग गई है। मगर जब अलेक्झेण्डर फ्लेमिंग ने ध्यान से उस प्लेट को देखा तो उन्हें यह देखकर आश्चर्य्य हुआ कि उस फफुन्द से वे सब जहरीले कीटाणु नष्ट हो गये हैं। आश्चर्य के साथ यह जानकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता भी हुई कि उस फफुन्द में विषैले कीटाणुओं को नष्ट करने की भारी क्षमता है और उसी आधार-शिला पर उन्होंने पेनिसिलिन नामक प्रसिद्ध एण्टी-बायोटिक औषधि का आविष्कार कर डाला जो आज सारे एलोपैथिक चिकित्सा-विज्ञान की आधारभूत मूलवस्तु हो गई है।

एलेक्झेण्डर ड्यूमा

फ्रांस का एक सुप्रसिद्ध उपन्यास लेखक, जिसका जन्म सन् १८०२ की १४ जुलाई को हुआ।

एलेक्झेण्डर ड्यूमा के जीवन की कहानी बड़ी विचित्र है। वैसे तो ये फ्रेंच थे मगर इनकी दादी के नीग्रो जाति की होने से इनका रूप-रंग एकदम काला, भद्दा और हब्शियों के समान था।

पढ़ने-लिखने का इन्हें बिलकुल शौक नहीं था। स्कूल जाने में हमेशा बहानेबाजी करते रहे। किसी प्रकार एक पादरी ने इन्हें पढ़ा-लिखाकर शिक्षित किया।

एकदिन इनकी माँ ने इनको पादरी बन जाने के लिए कहा, इस बात से इन्हें बड़ा डर लगा और ये घर से भाग गये और एक वकील के यहाँ जाकर नौकरी कर ली।

उसी समय से इनकी रुचि साहित्य की ओर लगी और इन्होंने उपन्यास लिखना प्रारम्भ किया।

इस क्षेत्र में इनकी कला ने खूब उड़ानें भरीं और इनकी रचनाएँ फ्रांस के साहित्य में शीघ्रता से लोकप्रिय होने लगीं और साहित्य के क्षेत्र में यह “उपन्यासों के जादूगर” नाम से प्रसिद्ध हो गये।

उपन्यासों का चरित्र-चित्रण करने में इनकी लेखनी कहीं रुकती नहीं थी, धाराप्रवाही रूप से बढ़ती जाती थी। इससे इनकी रचनाएँ एक के बाद एक शीघ्रता से प्रकाशित होने लगीं। वे कहते थे कि “उपन्यास-लेखन मेरे लिए उतना ही सहज है जितना आम के वृक्ष के लिए फल देना” और इस बात को सिद्ध करने के लिए उन्होंने एक वर्ष में साठ उपन्यास लिख डाले।

एकबार फ्रांस के सम्राट् अलेक्झेण्डर तृतीय ने ड्यूमा से पूछा कि “मि० ड्यूमा अब तक तुमने कितनी पुस्तकें

लिखी हैं ?" तो उन्होंने उत्तर दिया "यही श्रीमान् कोई बारह सौ।"

ड्यूमा के इस कथन पर कोई विश्वास नहीं कर सकता। एक लेखक के द्वारा अपने जीवन में बारह सौ पुस्तकें लिखना कदापि सम्भव नहीं हो सकता। लेकिन असल बात यह समझी जाती है कि ड्यूमा स्वयं तो जो कुछ लिखते थे लिखते ही थे, मगर अपने सहयोगियों को भी कथा-प्लाट देकर वे रचनाएँ करवाते थे और वे रचनाएँ भी उन्हींके नाम से छपती थीं। आगस्ट मार्क नामक उनके सहयोगी का इस सम्बन्ध में अधिक नाम लिया जाता है। एकबार इसी प्रकार की किसी रचना में कोई आपत्तिजनक भूल रह गई। उस भूल पर जब उनका ध्यान आकर्षित किया गया तो उन्हें खुद आश्चर्य्य हुआ। उन्होंने कहा मैंने तो यह पुस्तक अभी तक देखी भी नहीं है। शायद आगस्टस ने ही यह मूर्खता की है। मैं उसकी जरूर खबर लूँगा।

ड्यूमा के एक साथ छः-छः भिन्न-भिन्न कथानक के उपन्यास भिन्न-भिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते थे और उन सबको वह बराबर सामग्री भेजते रहते थे। इतने पर भी उनके यात्रा सम्बन्धी तथा रोमान्स के कार्य्य बराबर चलते रहते थे।

ड्यूमा का चरित्र अत्यन्त गिरा हुआ था। चलती हुई लड़कियों से छेड़छाड़ करने में उन्हें बड़ा आनन्द आता था। कहा जाता है कि अपनी चरित्र-विषयक इस दुर्बलता के कारण ७० बार तो वे मरते-मरते बचे और करीब २०० बार जेल जाने से बचे। उनका कहना था कि मैं करीब ५०० बच्चों का पिता हूँ। अपनी इसी कमजोरी के कारण इतने ग्रन्थों को लिखने पर भी उन्हें जिन्दगी भर फटेहाल रहना पड़ा।

अलेक्जेण्डर ड्यूमा की ढेर सारी रचनाओं में उनका "थ्री मसकेटियर्स" नामक उपन्यास विश्व-साहित्य की अमर कृतियों में माना जाता है।

एवरेस्ट

गिरिराज हिमालय का सबसे ऊँचा शिखर, जिसका प्राचीन नाम गौरीशंकर था और जिसकी ऊँचाई २९००२ फीट है।

गौरीशंकर शिखर को पहले तिब्बती भाषा में 'चोमोलुंग्मा' नाम से पहचाना जाता था। 'चोमोलुंग्मा' शब्द का अर्थ 'पृथ्वीमैया' होता है।

पर सन् १८५० में जब इसकी सर्वे की गई उस समय सर्वे करने वाली टुकड़ी के अधिकारी सर जार्ज एवरेस्ट के नाम पर हिमालय के इस सर्वोच्च शिखर का नाम माउण्ट एवरेस्ट रक्खा गया।

पर वास्तव में इस शिखर का सबसे पहला शोधक राधानाथ सिकादार नामक एक गरीब ब्राह्मण था। यह ब्राह्मण कलकत्ते में रहता था और सर जार्ज एवरेस्ट के हाथ के नीचे सर्वेयर की नौकरी करता था। राधानाथ ने ही पहले पहल इस शिखर की खोज की। उस समय एवरेस्ट तो यहाँ हाजिर भी नहीं थे वे रिटायर्ड होकर विलायत चले गये थे और उनके स्थान पर सर एण्ड्रयू वो अफसर होकर आ गये थे। इन्हीं के आग्रह से राधानाथ के द्वारा खोजे हुए इस शिखर का नाम भूतपूर्व अधिकारी एवरेस्ट के नाम पर रक्खा गया।

एवरेस्ट आरोहण

अंग्रेज जाति की जिज्ञासा वृत्ति इतिहास में हमेशा अत्यन्त प्रबल रही है। इस जिज्ञासा वृत्ति को तृप्त करने के लिए इस जाति के लोगों ने हमेशा जान को खतरे में डालने वाली बड़ी से बड़ी जोखिमें उठाई हैं।

एवरेस्ट शिखर का आरोहण भी इस जाति की जिज्ञासा वृत्ति का एक ज्वलन्त उदाहरण है और इस सर्वोच्च शिखर के ऊपर पहुँचने में इन लोगों ने कितनी भयङ्कर परिस्थितियों का सामना किया कितनों ने अपनी जानें गँवाई, कितने उस बरफ में गल गये मगर अन्त में किस प्रकार मंजिले मकसूद पर पहुँच कर अपना झण्डा गाड़ा इसकी एक बड़ी लम्बी और दिलचस्प कहानी है।

सन् १९२१ में सबसे पहले एवरेस्ट आरोहण का काम प्रारम्भ किया गया। इस पहली टुकड़ी के नेता इंग्लैण्ड के

कर्नल हावर्ड वेरी नामक व्यक्ति की इस टुकड़ी ने पूरी ताकत लगा कर २२८६० फुट तक की ऊँचाई की मंजिल पार की मगर उसके बाद वातावरण ऐसा बिगड़ा कि इन्हें मजबूरन वापस लौटना पड़ा। इस आरोहण में डा० कैलास नामक एक आरोहका की मृत्यु हो गई।

इसके बाद नार्टन और मेलरी की अध्यक्षता में सन् १९२२ में दूसरा आरोहण प्रारम्भ हुआ। इस टुकड़ी का पहला पड़ाव १६५०० फुट की ऊँचाई पर और चौथा पड़ाव २१००० फुट की ऊँचाई पर पड़ा। पर उसके बाद स्थिति बहुत विषम हो गई।

कड़कड़ाती सरदी और बरफ की भयानक विषमता का सामना करना था, पैर अकड़ रहे थे, उनमें घाव पड़ गये थे, शरीर की शक्ति भी विद्रोह कर रही थी फिर भी नार्टन और मेलरी आगे बढ़ते रहे। वे २६६८५ फुट की ऊँचाई तक पहुँच गये पर उसी समय बरफ पिघलने लगा और उसकी नदी बहने लगी तब उन्हें लाचार वापस लौटना पड़ा।

इसके बाद जनरल ब्रूस के नेतृत्व में एक टुकड़ी इस मार्ग पर अग्रसर हुई। २७३०० फुट तक का आरोहण तो इसने सफलता पूर्वक कर लिया मगर आगे हवामान बिगड़ जाने से इन्हें वापस लौटना पड़ा। फिर एकबार इस टुकड़ी में से कुछ लोग आगे बढ़े मगर इन्हें बरफ के तूफानों का सामना करना पड़ा। बड़ी कठिनाई से छः में से दो व्यक्ति जीवित लौटे। तब निरुपाय हो जनरल ब्रूस को आरोहण रोकना पड़ा।

सन् १९२४ में जनरल ब्रूस ने फिर दूसरी बार अपना प्रयास प्रारम्भ किया। पहले के अनुभव के आधार पर इस बार सब साधन जुटाये गये। आरोहकों में उत्साह भी खूब था मगर आगे जाकर नेता के मर जाने से इस टुकड़ी को भी वापस लौटना पड़ा।

इसके बाद 'नार्टन' और 'समरवेल' ने यात्रा प्रारम्भ की। २८२०० फुट की ऊँचाई तक जा पहुँचे, एवरेस्ट की चोटी सामने ही नजर आ रही थी पर उसी समय पैरों ने धोखा दिया और बरफ के प्रकाश से नार्टन की आँखें चली गई। अन्धे नार्टन को बड़ी कठिनाई से समरवेल को सहारा देता हुआ वापस लाया और आरोहण अधूरा ही रहा।

उसके पश्चात् मेलरी और इरविन ने आरोहण की तैयारी की। इनके साहस को सफलता मिल जावेगी ऐसी सबको आशा थी। नीचे खड़े हुए लोगों ने २८२०० फुट की ऊँचाई पर इन्हें देखा भी, मगर इसके बाद इनका क्या हुआ यह आज तक किसी को पता नहीं लग सका!

इसके बाद सन् १९२५ से १९५० तक एवरेस्ट आरोहण के करीब दस प्रयत्न और हुए, मगर पूरी सफलता किसी को नहीं मिली।

अन्त में सन् १९५३ आया।

इस वर्ष की मई मास की २९ तारीख को कर्नल जॉनहंट नामक अंग्रेज की टुकड़ी ने एवरेस्ट आरोहण में पहली बार सम्पूर्ण विजय प्राप्त की।

इस टुकड़ी के साथ रहने वालों में से नैपाल के निवासी शेरपा तेना सिंह और एडमण्ड हिलरी नामक न्यूजी लैण्ड के निवासी को एवरेस्ट के ऊपर पहली बार पैर रखने का श्रेय प्राप्त हुआ।

तेना सिंह इसके पहले भी सन् १९३५ से लेकर १९५० तक छः बार भिन्न,भिन्न टुकड़ियों के साथ एवरेस्ट आरोहण के प्रयत्न में सम्मिलित हो चुका था। उसे इस विषय का गहरा अनुभव भी हो गया था मगर जिस समय यह टुकड़ी आरोहण प्रारम्भ करने वाली थी उस समय तेना सिंह पटना के अस्पताल में बीमारी हालत में पड़ा हुआ था। उस समय उसकी जाने की इच्छा नहीं थी। मगर हिमालय क्लब की सेक्रेटरी श्रीमती हैण्डरसन के विशेष दबाव पर वह इस टुकड़ी में जाने को तैयार हुआ।

१९५३ के मार्च मास में अपने बीस शेरपा साथियों के साथ तेना सिंह इस टुकड़ी में शामिल हुआ। काठमांडू के सामने से इस टुकड़ी ने चढ़ना प्रारम्भ किया। बीच में एक स्थान पर एक महीने का पड़ाव डाला गया। जिससे ऊपर आने वाली कम आक्सिजन वाली हवा को सहन करने की आदत डाली जा सके।

अप्रैल की इक्कीस तारीख के पहले पड़ाव के पश्चात् चार पड़ाव तक यह आरोहण बिना कठिनाई के पार हुआ। चौथा पड़ाव २२००० फुट की ऊँचाई पर था खुराक में चाकलेट, बिस्कुट, शक्कर और नीम्बू का रस लेते हुए यह

पार्टी तेजी से दक्षिण की ओर बढ़ने लगी। इस पार्टी को दस-दस की टुकड़ियों में विभाजित कर व्यवस्थित चढ़ाई की सारी जबाबदारी तेना सिंह को सौंप दी गई।

२७,६०० फुट की ऊँचाई पर तेना सिंह की सलाह से नौवा पड़ाव डाला गया। वहाँ पर तम्बू खड़े करने में तेना सिंह और हिलेरी को कठिन परिश्रम करना पड़ा। तम्बू पूरे तैयार भी नहीं हुए थे कि हवा के तेज झपाटे ने उन्हें झकझोर डाला। बड़ी कठिनाई से उन लोगों ने तम्बूओं को उड़ने से बचाया।

सबेरा होने पर प्राण वायु की नलियाँ भर कर हाथ में कुदाली लेकर, कमर में रस्सी बाँध कर तेना सिंह और हिलेरी की यह जोड़ी आगे बढ़ी, पीछे के साथी तो पिछले पड़ाव में अभी आरामही कर रहे थे। अब इन दोनों को मंजिल सामने दिखाई दे रही थी लेकिन आगे का चढ़ाव अत्यन्त विषम और कठिन था। लगभग छाती के बराबर ऊँची बरफ की चढ़ाई पर मजबूती से पाँव जमा कर चढ़ना अत्यन्त खतरे से भरा हुआ था। एक पैर भी चूक जाय या फिसल जाय तो सीधे दस हजार फीट नीची गहरी खाई उनको निगल जाने को तैयार बैठी थी।

इसी समय आक्सिजन के ट्यूब खराब हो गये और सामने ही डेढ़ सौ फुट का ऊँचा एक डरावना बरफ का शिला खण्ड मार्ग में आ गया। इस समय तेना सिंह और हिलेरी का साहस दर्शनीय था। उन्होंने साहस न छोड़कर किसी प्रकार आगे बढ़ना चालू रक्खा। कभी तेना सिंह और कभी हिलेरी आगे हो जाता मगर ५० फुट से ज्यादा अन्तर इन्होंने अपने बीच में नहीं पड़ने दिया।

अन्त में ये दोनों साहसी वीर एवरेस्ट की चोटी पर पहुँच गये। बरसों की साधना सफल हुई। इसके बाद उन्होंने वहाँ पर कई झण्डे लगाये और महान् हिमालय को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।

विषय-सूची नं० १

(अकारादि क्रम से)

[ए–ऐ]

नाम	पृष्ठ
एशिया महाद्वीप	६३७
भारत	६३८
चीन	६३९
मध्य एशिया	६४२
ईरान	६४३
जापान	६४५
दक्षिण-पूर्वी एशिया	६४८
ऐईमीज (प्राचीन मिश्र का राजा)	६५१
ऐकेगारे (स्पेन का साहित्यकार)	६५१
ऐक्रापालिस (प्राचीन यूनान का मन्दिर)	६५१
ऐकेडेमी (अनुसन्धान संस्था)	६३०
ऐगोर सिंकोरस्की (वैज्ञानिक)	६५३
ऐङ्गल्स (कम्यूनिज्म का संस्थापक)	६५४
ऐंग्रेजा ऑगस्ट (फ्रांस का चित्रकार)	६५४
ऐंग्लिकन चर्च ईसाई सम्प्रदाय)	६५४
ऐजीना देवी (प्राचीन यूनान)	६५५
ऐजर्ज (फ्रांस का एक नगर)	६५६
ऐण्टियम (प्राचीन रोम का नगर)	६५६
ऐजामारा (पूर्वी अफ्रीका)	६५६
ऐटा (भारतीय नगर)	६५६
ऐदद निरारी (प्राचीन असीरिया)	६५७
ऐनू-शी-काउ (बौद्ध संन्यासी)	६५७
ऐन फील्ड (इंगलैंड का नगर)	६५७
एर्नाकुलम (केरल प्रान्त का नगर)	६५७
ऐपीरस (प्राचीन यूनान)	६५७
ऐपोलोडोरस (रोम का मूर्तिकार)	६५७
ऐमिल सिलाम्पा (फिनलैण्ड)	६५७
ऐड्रियम (रोम की कला)	६५८
ऐण्टोनियस (रोम)	६५८
ऐन्तु (देवपत्नी)	६५८
ऐतरेय ब्राह्मण	६५९
ऐतिहासिक भौतिकवाद	६५९
ऐग्मेट रावर (आयर्लैण्ड)	६५९
ऐम्सटर्डम (हालैंड का नगर)	६६०
ऐरीजोना (अमेरिका)	६६०
ऐलीजा-एम्पी (जज)	६६०
ऐलक्विन (शिक्षाशास्त्री)	६६०
ऐलतेरस (तुर्क सरदार)	६६०
ऐलगिन (गवर्नर जनरल)	६६१
ऐलाम (प्राचीन नगर)	६६१
ऐलिजाबेथ विलिंगटन (गायिका)	६६२
ऐलिजाबेथ टेलर (अभिनेत्री)	६६२
ऐलिस हेनरी हैवलॉक	६६२
एलिफ़ण्टा गुफाएँ	६६३
ऐलसटन वाशिंगटन (चित्रकार)	६६३
ऐलोपैथी (पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति)	६६३
ऐलोरा गुफा मन्दिर	६६७
ऐलसेस लॉरेन (जर्मनी)	६६९
ऐल्यूमीनियम (धातु)	६६९
ऐसस (ईरान)	६७०
ऐर्सादन सिरपोल (असीरिया)	६७०
ऐसैनी (यहूदी सम्प्रदाय)	६७०
ऐस्कि (टर्की)	६७१
ऐस्टेर (यहूदी सुन्दरी)	६७१
ऐस्टे राजवंश (इटाली)	६७१
ऐस्सेना (हूण कबीला)	६७१
ऐलाबामा (अमेरिका)	६७२
ऐस्टेट्स जनरल (फ्रांस)	६७२

नाम पृष्ठ संख्या

[ओ-औ]

नाम	पृष्ठ संख्या
ओकलैंड (अमेरिका)	६७३
ओकाम्पो विक्टोरिया	६७३
ओंकार—मान्धाता (तीर्थ)	६७४
ओंकारनाथ ठाकुर (संगीतकार)	६७५
ओकूनी (जापानी नर्तकी)	६७६
ओखा बन्दरगाह	६७६
ओगोताई (चीन)	६७७
ओटो महान् (जर्मनी)	६७८
ओटोब्राउन्शविक (जर्मनी)	६७८
ओटो (इटाली)	६७९
ओटावा (कनाडा राजधानी)	६७९
ओडो (फ्रांस)	६७९
ओडेसर (जर्मनी)	६७९
ओथेलो (शेक्सपीयर)	६८०
ओदेनाथस (ईरान)	६८२
ओनेगिन (रूसी उपन्यास)	६८२
ओपेरा (नाट्यगृह)	६८३
ओबू सिम्पवेल , मिश्र गुफामन्दिर)	६८४
ओमहोतेप (प्राचीन मिश्र)	६८४
ओमेनहोतेप (,,)	६८४
ओमिताभ सम्प्रदाय (बौद्ध)	६८५
ओम्प्रकाश शर्मा (लेखक)	६८५
ओम्बड्समेन	६८५
ओमेलू (बेबीलोनियन सभ्यता)	६८५
ओरगाना (मंगोल सुन्दरी)	६८५
ओरछा (बुन्देलखण्ड)	६८६
ओरीडस (ईरान)	६८७
ओमेंनाका मन्दिर (प्राचीन मिश्र)	६८७
ओरई (बेबीलोनियन स०)	६८७
ऑर्थरबेरी (अमेरिकन डाकू)	६८८
ओरीजेन (ईसाई धर्माचार्य)	६८८
ओलिव ब्राञ्च पिटीशन	६८९
ओलेग (मध्य एशिया)	६८९
ओलेम्पिक खेल	६८९
ओविडियस (प्राचीन रोम)	६९०
ओवेन राबर्ट (कार्लमार्क्स का साथी)	६९१
ओसाका (जापान)	६९१
ओस्लो (नार्वे)	६९२
ओस्टवाल्ड (वैज्ञानिक)	६९२
ओसवाल (जाति)	६९२
ओसारहद्दो (असीरिया)	६९४
औदीत्य (ब्राह्मणों की शाखा)	६९४
औद्योगिक क्रांति	६९४
औद्योगिक सभ्यता	६९५
औरंगजेब (मुगल सम्राट्)	७०२
औरंगाबाद	७०८

[क-का]

नाम	पृष्ठ संख्या
कङ्क (बंगला साहित्य)	७०८
कछवाहा राजवंश (भारत)	७०९
कच्छ (भारतीय प्रान्त)	७१०
कजाक (रूसी जाति)	७१२
कजाकिस्तान	७१३
कञ्जर (भारतीय खानाबदोश)	७१४
कञ्चनलता सब्बरवाल (लेखिका)	७१४
कटोच (राजवंश)	७१४
कटक (उड़ीसा)	७१५
कटनी (मध्यप्रदेश)	७१५
कटांगा (अफ्रीका)	७१५
कठपुतली (खेल)	७१६
कठउपनिषद्	७१८
कथकली नृत्य	७१९
कणाद मुनि	७२१
कदम्ब राजवंश (भारत)	७२२
कन्फ्यूशस (चीनी दार्शनिक)	७२४
कनिष्क (सम्राट्)	७२६
कन्नमवार (बम्बई)	७२८
कनिंघम (इतिहासकार)	७२८
कन्नड़ भाषा और साहित्य	७२९
कन्नौज	७३१
मोखरी राजवंश	७३१

नाम	पृष्ठ
वर्द्धन राजवंश	७३२
आयुध राजवंश	७३२
प्रतिहार राजवंश	७३३
गाहड़वाल राजवंश	७३४
कन्सीलियर आन्दोलन (यूरोप)	७३५
कन्हेरी गुफ़ा (बम्बई)	७३७
कन्हैयालाल मुंशी	७३८
कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	७३९
कन्हैयालाल सहल	७३९
कन्हाईलाल दत्त (क्रांतिकारी)	७३९
कन्याकुमारी (भारत)	७४०
कन्दहार (अफ़गानिस्तान)	७४०
कपिल मुनि	७४०
कपिलवस्तु	७४१
कपिलदेव द्विवेदी	७४२
कबीर	७४२
कबीरपंथ	७४६
कमलापति त्रिपाठी	७४७
कमलारत्नम् (लेखिका)	७४८
कमालनामिक (तुर्की का कवि)	७४८
कमाल पाशा	७४८
कमलाकान्त विद्यालंकार	७५२
कमलाकर भट्ट (संस्कृत लेखक)	७५२
कमेनियस (जर्मन शिक्षा-शास्त्री)	७५२
कम्बोडिया	७५४
कम्यून	७५६
कम्यूनिस्ट मेनिफेस्टो	७५७
करणी देवी (बीकानेर)	७६२
करतार सिंह (क्रांतिकारी)	७६४
करनाल	७६५
करमशाह के चित्र (ईरान)	७६५
करनूल (आंध्रप्रदेश)	७६५
करांची (पाकिस्तान)	७६६
कराखानी राजवंश (मध्य एशिया)	७६६
करामाती पंथ	७६७
कराखिताई राजवंश (म० ए०)	७६७
करौली (राजस्थान)	७६८
कर्कोटक राजवंश (कश्मीर)	७६८
कर्जन (वाइसराय)	७७१
कर्ण सोलंकी (गुजरात का राजा)	७७२
कर्णावती	७७३
कर्ण सुन्दरी	७७३
कर्ण—चेदिराज (नरेश)	७७३
कर्ण – बघेला (गुजरात का राजा)	७७४
कर्ण सिंह राणा (मेवाड़)	७७५
कर्नाटक	७७५
पांड्य राजवंश	७७५
चोल राजवंश	७७६
पल्लव राजवंश	७७७
विजयनगर साम्राज्य	७७७
कर्बला (इस्लामी तीर्थ)	७७९
कर्म सिद्धांत	७७९
करोल (यूरोप का सामूहिक नृत्य)	७८३
कर्वे (आचार्य कर्वे)	७८३
कलकत्ता (भारतीय नगर)	७८४
कलचुरी राजवंश (भारतीय राजवंश)	७८७
कलेण्डर	७८९
कलश राज (कश्मीर का राजा)	७९१
कल्हण कवि (कश्मीर का कवि)	७९१
कलाख (प्राचीन असीरिया)	७९२
कलाल (जाति)	७९२
कल्याणी (भारतीय नगर)	७९२
कलिंग	७९३
करेन्स्की (रूस)	७९५
कल्याण (मासिक पत्र)	७९६
कल्प-सूत्र (जैन सूत्र)	७९७
कविता-साहित्य	७९७
संस्कृत काव्य	७९७
प्राकृत काव्य	७९९
अकादी काव्य	८००
यूनानी काव्य	८०१

नाम	पृष्ठ
चीनी काव्य	८०१
लैटिन काव्य	८०२
फ्रेंच काव्य	८०३
अंग्रेजी काव्य	८०४
जर्मन काव्य	८०६
फारसी काव्य	८०६
उर्दू काव्य	८०७
हिन्दी काव्य	८०८
बंगला काव्य	८१०
गुजराती काव्य	८१२
कविवाल्ला गीत (बंगला गीत)	८१४
कश्मीर	८१५
गोनन्द राजवंश	८१५
कर्कोटक राजवंश	८१६
उत्पल राजवंश	८१६
गुप्त राजवंश	८१८
लोहर राजवंश	८१९
मुसलमानी शासन	८२२
डोगरा राजवंश	८२३
आधुनिक कश्मीर	८२४
कश्मीर का साहित्यिक वैभव	८२६
कस्तूर बा गांधी	८२८
कत्सूरा (जापानी प्रधान मन्त्री)	८२९
कमलापति सिंहानिया ' उद्योगपति)	८२९
कहानी साहित्य	८२९
काउनिट्फ़ — राण्टवर्ग	८३४
काकातीय राजवंश	८३४
काकातोमी (जापान)	८३५
काकेशस (रूस)	८३५
कागज	८३६
कांग्रेस इण्डियन नेशनल	८३९
कांग्रेस अमेरिकन	८३९
कांगड़ा	८३९
कांगड़ी-गुरुकुल	८४०
कांग-ही (चीनी सम्राट्)	८४२

नाम	पृष्ठ
कांगो (दक्षिणी अफ्रीका)	८४२
काच	८४३
काञ्चीपुरम् (कर्नाटक)	८४४
काङ्काडेंट (फ्रान्स)	८४५
काजी (इस्लामी धर्म गुरु)	८४५
काजी अहमद	८४६
काजी अजीम खाँ (आगरा)	८४६
काटजू कैलासनाथ	८४६
काटूलस वेलेरियस (लैटिन कवि)	८४७
काण्ट-डी-निकालो (इटाली)	८४७
काण्ट (जर्मन दार्शनिक)	८४८
काण्टोर जार्ज (जर्मन गणितज्ञ)	८५२
काठमांडू (नैपाल)	८५२
काठियावाड़	८५२
कांडला बन्दरगाह	८५३
काणे (आचार्य काणे)	८५३
कात्यायन वररुचि	८५४
कातो (लैटिन गद्यकार)	८५४
कातेना (इटाली)	८५४
कादम्बरी (संस्कृत गद्य काव्य)	८५५
कादूर्सा (इटालियन चित्रकार)	८६०
कादीस (स्पेन का नगर)	८६०
कानपुर (भारतीय नगर)	८६०
कापालिक (सम्प्रदाय)	८६१
कापिजापीटर (रूसी वैज्ञानिक)	८६१
काफी	८६१
काफ़ूरमलिक	८६२
काबुल (अफगानिस्तान)	८६३
कावेट विलियम (अंग्रेज लेखक)	८६३
कामता प्रसाद जैन	६२७
काम सूत्र	८६४
काम-विज्ञान	८६६
कामरूप	८७०
कामाख्या देवी	८७१
कामरान मिरजा	८७१
[illegible]	८७२

नाम	पृष्ठ संख्या
कामराज	८७२
कामा भीकाजी (क्रान्ति कारिणी महिला)	८७३
कामाकुरा शोगनशाही	८७४
कामायनी (काव्य)	८७४
काम्तार साहित्य	८७६
कामो-नो-चोयेई (जापानी कवि)	८७६
कारडोवा (स्पेन का नगर)	८८१
कान्स्टेण्टाइन (रोम सम्राट)	८८२
कार्डिनल (ईसाई धर्माचार्य)	८८२
कार्थेज (प्राचीन नगर)	८८२
क्राफर्ड लौंग (वैज्ञानिक)	८८३
कार्ल-बर्नहार्ड (कहानीकार)	८८३
कार्नेलपियर (फ्रेंच नाटककार)	८८३
काराम्जिन (रूसी इतिहासकार)	८८४
कार्टर (अंग्रेज लेखक)	८८५
कार्पेण्टर	६२८
कार्ल स्पिट्लर	८८६
कार्ल मार्क्स	८८६
कार्ल तावस्तस्त्येना	८८८
कार्ल फेल्ट (स्वीडन)	८८६
कार्वर वाशिंगटन	८८६
कार्डूसी जिओसुए (इटाली)	८६०
कारावज्जो	८६०
कार्नवालिस (वाइसराय)	८६१
कार्ली गुफा	८६१
कारनेगी (धन कुबेर)	८६२
कारलाइल (अंग्रेज दार्शनिक)	८६२
कालविन (फ्रेंच दार्शनिक)	८६२
कालिंजर (किला)	८६४
कालहस्ती (तीर्थ)	८६५
काला पहाड़ (इस्लामी सेनापति)	८६५
कालिदास (महाकवि)	८६६
कालिकाचार्य्य (जैनाचार्य्य)	६००
कालिनिन (रूस)	६००
काल्डर (इङ्गलैण्ड)	६०१
कालेलकर काका	६०१
कालेवाला	६०२
क्लाइव राबर्ट (गवर्नर जनरल)	६०२
कालूराम जैनाचार्य्य	६०४
काशी	६०५
पुराणों में काशी	६०६
बौद्ध साहित्य में काशी	६०७
गुप्त साम्राज्य में काशी	६०८
मुसलमानी आक्रमण	६०८
वारेन हेस्टिंग्ज का शासन	६११
काशी के मन्दिर	६१३
काशी के घाट और अखाड़े	६१३
काशी के सन्त महात्मा	६१४
काशी के पर्व और त्योहार	६१८
काशी की शिक्षा संस्थाएँ	६२०
काशी की विचित्रताएँ	६२१
काशी प्रसाद जायसवाल	६२५
काशीराम दास	६२५
कास्त्रो	६२५
काहिरा	६२६
परिशिष्ट	
कालीमेकस	६२७
कॉलेन्स विलियम	६२८
क्लाउडिओमोण्टेवर्की	६२८
कार्लोपोर्टा	६२८
कामेडिआडोल आर्टे	६२६
कांग-यू-वेई	६२६
कार्ल-ऑगस्ट	६२६

विषय–सूची २

देश, नगर और प्रान्त

नाम	पृष्ठ संख्या	नाम	पृष्ठ संख्या
एशिया महाद्वीप	६३७	कच्छ	७१०
भारत	६३८	कज़ाकिस्तान	७१२
चीन	६३९	कटक (उड़ीसा)	७१५
कोरिया	६३९	कटनी (मध्य-प्रदेश)	७१५
मध्य-एशिया	६४२	कटांगा (अफ्रीका)	७१५
ईरान	६४३	कन्नौज	७३१
जापान	६४४	मौखरीराजवंश	७३२
दक्षिण पूर्वी एशिया	६५८	वर्द्धन राजवंश	७३२
ऐंजर्ज (फ्रान्स)	६५५	आयुधराजवंश	७३३
ऐक्टियम (प्राचीनरोम)	६५६	प्रतिहार राजवंश	७३४
ऐजामारा (पूर्वी अफ्रीका)	६५६	गाहड़ वाल राजवंश	७३६
ऐटा (उत्तर प्रदेश)	६५६	कन्याकुमारी	७४०
ऐनफ़ील्ड (इंग्लैण्ड)	६५७	कन्दहार (अफ़गानिस्तान)	७४०
ऐर्नाकुलम (केरल)	६५७	कपिल वस्तु	७४०
ऐपीरस (प्रा-यूनान)	६५७	कपूरथला	७४२
ऐम्सटर्डम (हॉलैण्ड)	६६०	कम्बोड़िया	७५४
ऐरीज़ाना (अमेरिका)	६६०	करनाल	७६५
ऐल्बर फ़ील्ड (जर्मनी)	६६०	करनूल (आन्ध्रप्रदेश)	७६५
ऐलाम (मध्यएशिया)	६६१	करांची	७६६
ऐल्सेस लॉरेन (जर्मनी)	६६९	करौली (राजस्थान)	७६८
ऐसस (ईरान)	६७०	कर्णावती	७७३
ऐस्कि टर्की)	६७१	कर्नाटक	७७५
ऐलाबामा (अमेरिका)	६७२	पाण्ड्यराजवंश	७७५
ओकलैण्ड (अमेरिका)	६७३	चोल राजवंश	७७६
ओखा बन्दरगाह	६७६	पल्लव राजवंश	७७७
ओटावा (कनाडा)	६७९	विजयनगर साम्राज्य	७७८
ओरछा (विन्ध्यप्रदेश)	६८७	कलकत्ता	७८४
ओसाका (जापान)	६९१	कलाख	७९२
ओस्लो (नारवे)	६९१	कल्याणी (प्राचीन नगर)	७९२
औरंगाबाद	७०८	कलिंग	७९२

नाम	पृष्ठ संख्या
काकेशस (रूस)	८३५
कांगडा	८३६
कश्मीर	८१५
गोनन्द राजवंश	८१५
कर्कोटक राजवंश	८१७
उत्पल राजवंश	८१७
गुप्त राजवंश	८१८
लोहर राजवंश	८१९
मुसलमानी शासन	८२२
डोगरा राजवंश	८२३
काञ्ची	८४२
काञ्चीपुरम्	८४४
काठमाण्डू	८५२
काठियावाड़	८५२
काण्डला बन्दरगाह	८५३
कादीस (स्पेन)	८६०
कानपूर	८६०
काबुल	८६३
कारडोवा	८८१
कार्थेज	८८२
कामरूप	८७०
काशी	९०५
पुराणों में काशी	९०६
बौद्ध साहित्य में काशी	९०७
गुप्त साम्राज्य में काशी	९०८
मुसलमानी काल	९०८
वारेन होस्टिंज का शासन	९११
काशी के मन्दिर	९१३
काशी के घाट अखाड़े	९१३
काशी के सन्त महात्मा	९१४
काशी की विचित्रताएं	९२१
काशी की शिक्षा-संस्थाएं	९२०
काहिरा	९२६

सम्राट्, राजा, राजवंश और शासक

नाम	पृष्ठ संख्या
ऐईमीज (प्राचीन मिश्र)	६५१
ऐदद निरारी (असीरिया)	६५७
ऐमरी लियोपोल्ड	६५९
ऐलतेरस (तुर्क सरदार)	६६०
ऐलगिन (गवर्नर जनरल)	६६१
ऐसीडन सिरेपोल (असीरिया)	६७०
ऐस्टेर (ईरानी सम्राज्ञी)	६७१
ऐस्टे राजवंश (इटाली)	६७१
ऐस्सेना (तुर्क कबीला)	६७१
ओगोताई (मंगोल)	६७७
ओटो महान् (जर्मनी)	६७८
ओटोब्राञ्जविक (जर्मनी)	६७८
ओडो (फ्रान्स)	६७९
ओडेसर (रोम)	६७९
ओदेनाथस	६८२
ओमहोतप (मिश्र)	६८४
ओमेन होतेप (मिश्र)	६८४
ओरगाना (मंगोल)	६८५
ओरीडस (ईरान)	६८७
ओलेग (रूस)	६८९
ओसारहद्दो (असीरिया)	६९४
औरंगजेब	७०२
कछवाहा राजवंश	७०९
कटोच राजवंश	७१४
कदम्ब राजवंश	७२२
कनिष्क-सम्राट्	७२६
कमाल पाशा	७४८
कमलापति त्रिपाठी	७४७
कराखानी राजवंश	७६६
कराखिताई राजवंश	७६७
कर्कोटक-राजवंश	७६९
कर्जन (वाइसराय)	७७१
कर्णसोलंकी (गुजरात)	७७२
कर्ण चेदिराज	७७३
कर्ण बघेला (गुजरात)	७७४
कर्णसिंह (मेवाड़)	७७५
कलचुरी राजवंश	७८७

नाम	पृष्ठ संख्या
कलश-राज (कश्मीर)	७९१
काकातोमी (जापान)	८३५
काकुस्थ वर्मन (भारत)	८३५
काङ्ग-ही (चीनी सम्राट्)	८४२
काटजू कैलासनाथ	८४६
काफूर मलिक	८६२
कार्नवालिस (गवर्नर जनरल)	८९१
काला पहाड़	८९५
कान्स्टेण्टाइन (रोम)	८८२
कामरान मिरजा	८७१
काम बख्श	८७२
कामाकुरा शोगन शाही	८७४
क्लाइव राबर्ट	९०२
कास्ट्रो (क्यूबा)	९२५

साहित्य और साहित्यकार

नाम	पृष्ठ संख्या
ऐकेगारे (स्पेनी साहित्यकार)	६५१
ऐकेडेमी (अनुसन्धान संस्था)	९२९
ऐमिल सिलाम्पा (फिनलैण्ड)	६५७
ऐलक्विन (शिक्षा शास्त्री)	६६०
ओकाम्पो विक्टोरिया	६७३
ओथेलो (शेक्सपियर)	६८०
ओनेगिन (रूस)	६८२
ओमप्रकाश शर्मा	६८५
ओविडियस (रोम)	६९०
कङ्क (बंगला)	७०८
कञ्चनलता सब्बरवाल	७१४
कन्नड़ भाषा और साहित्य	७२८
कन्हैया लाल मा० मुंशी	७३८
कन्हैयालाल मिश्र "प्रभाकर"	७३९
कन्हैयालाल सहल	७४०
कपिलदेव द्विवेदी	७४२
कबीर	७४२
कमलापति त्रिपाठी	७४७
कमला रत्नम्	७४८
कमाल नामिक (तुर्कीकवि)	७४८
कमलाकांत विद्यालंकार (बंगला)	७५२
कमलाकर भट्ट (संस्कृत)	७५०
कर्ण सुन्दरी (नाटक)	७७३
कर्वे	७८३
कल्हण-कवि	७९१
कल्याण (मासिक पत्र)	७९६
कविता-साहित्य	७९७
संस्कृत काव्य	७९७
प्राकृत काव्य	७९९
अक्कादी काव्य	८००
यूनानी काव्य	८०१
चीनी काव्य	८०२
लैटिन काव्य	८०२
फ्रेञ्चकाव्य	८०३
अंग्रेजी काव्य	८०४
जर्मन काव्य	८०६
फारसी काव्य	८०७
उर्दू काव्य	८०८
हिन्दी काव्य	८०८
बंगला काव्य	८१०
गुजराती काव्य	८१२
कविवाल्ला गीत	८१४
कश्मीर का साहित्यिक वैभव	८२६
कहानी साहित्य	८२९
विदेशी कहानी साहित्य	८३०
आधुनिक कहानी साहित्य	८३१
बंगला कहानी	८३१
हिन्दी कहानी	८३२
कालेलकर काका	९०१
काल्डर (इंग्लैंड)	९०१
काले वाला (फिनलैण्ड)	९०२
काशीप्रसाद जायसवाल	९२५
काशीराम दास	९२५
कॉलिन्स विलियम	९२७

नाम	पृष्ठ संख्या
कार्लो पोर्टा	९२७
काली मेकस	९२७
कांग-यू वेई	९२८
कार्ल ऑगस्ट	९२९
काटुलस वेलेरियस (लैटिन कवि)	८४७
काण्ट-डी-निकालो	८४७
काणे वामन पाण्डुरंग	८५३
कात्यायन वररुचि	८५४
कातो (लैटिन गद्यकार)	८५४
कादम्बरी (संस्कृत गद्य काव्य)	८५४
काबेट विलियम	८६३
कान्तार साहित्य	८७९
कालि दास	८९६
कामी-नो-चौयेई (जापान)	८७९
कार्ल-बर्नहार्ड (डेनमार्क)	८८३
कार्नेल-पियर (फ्रान्स)	८८३
काराम्जिन (रूस)	८८४
कार्टर-हावर्ड (इंग्लैण्ड)	८८४
कार्ल-ए-गैलेरूप	८८५
कार्ल-स्पिट्लर	८८६
कार्ल मार्क्स	८८६
कार्डूसी-जिओसुए	८९०
कामायनी	८७४

कलाकार और कलाकृतियां

नाम	पृष्ठ संख्या
ऐक्रापोलिस (प्राचीन यूनान)	६५१
ऐंग्रेजाऑगस्ट (चित्रकार)	६५४
ऐजीना मन्दिर (प्राचीन-यूनान)	६५५
ऐपोलोडोरस (रोम)	६५७
ऐड्रियम (रोम)	६५८
ऐलिजाबेथ विलिंगटन (गायिका)	६६२
ऐलिजाबेथ-टेलर (अभिनेत्री)	६६२
ऐलिफ़ण्टा-गुफाएं	६६३
ऐलस्टन वाशिंगटन (चित्रकार)	६६३
ऐलोरा गुफाएं	६६७
ओंकार नाथ ठाकुर (संगीत)	६७५
ओकूनी (जापान)	६७६
ओटो (चित्रकार)	६७९
ओपेरा	६८३
ओबू सिम्पवेल (मिश्र)	६८४
ओर्मेना का मन्दिर (मिश्र)	६८७
कठपुतली	७१६
कथकली नृत्य	७१९
करमशाह के चित्र	७६५
करोले (फ्रेञ्चनृत्य)	७८३
कातेना (चित्रकार)	८५४
कादूसी (चित्रकार)	८६०
कार्ली-गुफा	८९१
कालिंजर	८९४
कारावज्जो (चित्रकार)	८९०

धर्म और धर्माचार्य

नाम	पृष्ठ संख्या
ऐंग्लिकन चर्च	६५४
ऐनु-शी-काउ (बौद्ध)	६५७
ऐसेनी (यहूदी संत)	६७०
ओङ्कार मान्धाता	६७४
ओमिताभ सम्प्रदाय	६८५
ओरीजेन (ईसाई धर्माचार्य)	६८८
कबीर	७४२
कबीर पंथ	७४६
करणी देवी (बीकानेर)	७६२
करामाती पंथ	७६७
कर्बला	७७९
कल्प-सूत्र (जैन सूत्र)	७९७
काजी	८४५
कापालिक	८६१
काल हस्ती (तीर्थ)	८९५
कार्डिनल	८८२
कामाख्या देवी	८७१
कालिका चार्य	९००
कालूराम जैनाचार्य	९०४

विज्ञान और वैज्ञानिक

नाम	पृष्ठ संख्या
ऐगोर सिंकोरस्की (हैलीकोप्टर)	६५३
ऐलकिन (शिक्षा शास्त्री)	६६०
ऐलिस हैनरी हैवलाक (काम शास्त्र)	६६२
ऐलोपैथी (पाश्चात्याचिकित्सा)	६६३
ऐल्यूमीनियम (धातु)	६६९
ओस्टवाल्ड	६९२
कमेनियस (शिक्षा शास्त्री)	७५२
कर्वे (शिक्षा शास्त्री)	७८३
कागज	८३६
काच	८४३
कापिजा पीटर (रूस)	८६१
कामसूत्र	८६४
काम-विज्ञान	८६६
क्राफर्डलौंग (क्लोरोफार्म)	८८३
कार्लजुंग	८९५
कार्वर वाशिंगटन	८७०

दर्शनशास्त्र और दार्शनिक

नाम	पृष्ठ संख्या
ऐतरेय ब्राह्मण	६५९
ऐतिहासिक भौतिक वाद	६५९
कठ उपनिषद्	७१८
कणाद	७२१
कनफ्यूशस (चीन)	७२४
कपिल मुनि	७४०
कबीर	७४२
कम्यूनिज्म	७५७
कर्म-सिद्धान्त	७७९
काण्ट-इमानुएल	८४७
कार्वे वामन पाण्डुरंग	८५३
कारलाइल टामस	८९२
कालविन	८९२
कार्ल-मार्क्स	८८६
कालेलकर काका	९०१

क्रान्ति और क्रान्तिकारी

नाम	पृष्ठ संख्या
ऐङ्गल्स (कम्यूनिस्ट)	६५४
ऐम्मेट राबर (आयर्लैण्ड)	६५९
ओलिव ब्राञ्च पिटीशन	६८९
ओवेन-राबर्ट	६९१
औद्योगिक क्रान्ति	६९४
कन्हाई लाल दत्त	७३९
कमालपाशा (तुर्की)	७४८
कम्यून (फ्रान्स)	७५६
कम्यूनिस्ट मेनिफ़ेस्टो	७५७
कर्तारसिंह	७६४
कांग्रेस इण्डियन नेशनल	८३९
कांग्रेस अमेरिकन	८३९
कार्ल-मार्क्स	८८६

उद्योग और उद्योगपति

नाम	पृष्ठ संख्या
ऐल्यूमीनियम	६६९
कागज	८३६
काच	८४३
काफी	८६६
कमलापति सिंहानिया	८२९
कार्नेगी एण्ड्रू	८९२

राजनीति और राजनीतिज्ञ

नाम	पृष्ठ संख्या
ऐग्टाल काइडस (स्पार्टा)	६५६
ऐलीजा एम्पी (जज)	६६०
ऐस्टेट्स् जनरल (फ्रान्स)	६७२
ओम्बड्स् मेन	६८५
ओमेलू (वेचीलोन)	६८५
ओरई (वेचीलोन)	६८७
कन्नमवार (बम्बई)	७२८
कमलापति त्रिपाठी	७४७
करेन्स्की (रूस)	७९५
कस्तूरबा गांधी	८२८
कत्सूरा (जापानी प्रधान मंत्री)	८२८
कांग्रेस इण्डियन नेशनल	८३९

नाम पृष्ठ संख्या
कांग्रेस अमेरिकन ८३९
काटजू कैलासनाथ ८४६
काबेटविलियम ८६३
कामराज ८७२
कालिनिन (रूस) ९००

प्रकीर्णक

ऐएटोनियम (रोम) ६५८
ऐन्तु [देवयानी) ६५८
आॅर्थरबेरी (डाकू) ६८८
ओलेम्पिक खेल ६८९

नाम पृष्ठ संख्या
औसवाल (जाति) ६९८
औदीच्य (जाति) ६९४
औद्योगिक सभ्यता ६९९
कजाक (रूस) ७१२
कञ्जर (जाति) ७१४
कबीला (मानव-समूह) ७४६
कलेएडर ७९०
कलाल ७९२
काङ्गड़ी गुरुकुल ८४०
काङ्कार्डेट ८४५
कायस्थ ८७९

प्रकाश—स्तम्भ !

स ग्रन्थ की रचना में, जिन महान् ग्रन्थाकारों और विद्वानों की रचनाओं ने प्रकाश—स्तम्भ की तरह हमारे मार्ग को प्रकाशित किया है, उनके प्रति हम अपनी नम्र-श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं। उन रचनाओं की संक्षिप्त सूची नीचे दी जा रही है। पूरी और विस्तृत सूची ग्रन्थ के अन्तिम भाग में दी जायगी।

हिन्दी

डॉ धीरेन्द्र वर्मा और डा० भगवत् शरण उपाध्याय (काशी नागरी प्रचारिणी)	हिन्दी-विश्व कोष (भाग १–२)
श्री नगेन्द्र नाथ वसु	हिन्दी-विश्व कोष (भाग ३–४)
महापंडित राहुल सांकृत्यायन	मध्य-एशिया का इतिहास (भाग १–२) और अकबर
डा० भगवत् शरण बपाध्याय	विश्व-साहित्य की रूप रेखा, प्राचीन भारत का इतिहास
रा० ब० पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा	राजपूताने का इतिहास (८ भाग)
डा० सत्यकेतु विद्यालंकार	एशिया का आधुनिक इतिहास, यूरोप का आधुनिक इतिहास
श्री गंगा प्रसाद एम० ए०	अंग्रेज जाति का इतिहास
श्री शिवचन्द्र कपूर एम० ए०	इंगलैण्ड का इतिहास
ब्रवे और चतुर्वेदी	इंगलैण्ड का इतिहास
श्री पट्टाभि सीतारामैय्या	कांग्रेस का इतिहास
श्री ज्योति प्रसाद सूद एम० ए०	राजनैतिक विचारों का इतिहास (भाग १–२)
श्री आचार्य नरेन्द्र देव	बौद्ध-दर्शन
डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन	भारतीय इतिहास एक दृष्टि
महाकवि कल्हण अनुवादक—पं० रामतेज शास्त्री	राजतरंगिणी
महाकवि बाण भट्ट अनुवादक- पं० रामतेजशास्त्री	कादम्बरी
डॉ० मोतीचन्द्र	काशी का इतिहास
श्री जय शङ्कर प्रसाद	कामायनी
वात्स्यायन मुनि अनुवादक—कविराज रामसुशील शास्त्री	काम सूत्र
श्री चिरंजीलाल पाराशर	विश्व-सभ्यता का विकास
बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्	चतुर्दश भाषा निबन्धावली
डॉ० जदुनाथ सरकार	औरंगजेब
श्री मन्मथ नाथ गुप्त	सेक्स से सुख और जीवन

फ्रेडरिक ऐङ्गल्स	ड्यूहरिंग मत खण्डन
कार्ल मार्क्स	कम्यूनिस्ट मेनि फेस्टो
आर० एस० श्रीवास्तव एम० ए०	संसार के प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री
श्री सुख सम्पत्ति राय भंडारी	भारत के स्वातंत्र्य-संग्राम का इतिहास, भारत के देशी राज्य
श्री बिश्वेश्वर नाथ रेऊ	भारत के प्राचीन राजवंश (भाग १–२–३)
आचार्य्य पं० रामचन्द्र शुक्ल	हिन्दी-साहित्य का इतिहास
श्री पं० बलदेव उपाध्याय	संस्कृत-साहित्य का इतिहास
श्री ब्रजरत्न दास	उर्दू-साहित्य का इतिहास
श्री अयोध्या प्रसाद गोयलीय	शेर और शायरी
पं० द्वारका प्रसाद चतुर्वेदी	भारतीय-चरिताम्बुधि
डॉ० सत्येन्द्र एम० ए०, पी० एच० डी०, डी-लिट्०	बंगला-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास
के० भास्करन् नायर	मलयालम-साहित्य का इतिहास
श्री सुरेन्द्रनाथ बिसारिया	आधुनिक राजनैतिक विचार-धाराएँ
श्री परशुराम चतुर्वेदी	सन्त-काव्य, उत्तर भारत की सन्त परंपरा
डॉ प्रभात कुमार भट्टाचार्य	प्रतिनिधि राजनैतिक विचारक
श्री देवीप्रसाद मुंसिफ	मारवाड़ राज्य का इतिहास
श्री जयचन्द्र विद्यालंकार	भारतीय इतिहास की रूपरेखा
श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य	हिन्दू-भारत का अन्त
पं० रामनरेश त्रिपाठी	कविता-कौमुदी (५ भाग)
श्री गुलाबराय एम० ए०	विज्ञान-विनोद
श्री गुरुनाथ शर्मा	मिस्र की राष्ट्रीय प्रगति
श्री रामदास गौड़ एम० ए०	हिन्दुत्व
श्री 'इन्द्र' विद्या वाचस्पति	आर्य-समाज का इतिहास
श्री पं० अम्बिका प्रसाद वाजपेयी	समाचार-पत्रों का इतिहास
श्री शंकर राव जोशी	रोम-साम्राज्य
प्लूटार्क, अनुवादक श्री मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव	ग्रीस और रोम के महापुरुष
डॉ प्राणनाथ विद्यालंकार	इंग्लैण्ड का इतिहास
एल० मुकुर्जी	यूरोप का इतिहास
श्री सुरेन्द्रनाथ सेन	अठारह सौ सत्तावन
श्री पी० बी० बापट	बौद्ध धर्म के २५०० वर्ष
श्री रामनारायण दूगड़	मुणोत नेणसी की ख्यात
महाराज कुमार डा० रघुबीर सिंह	मालवा में युगान्तर
श्री रामदत्त सांकृत्य	मेगास्थवीज का पालीब्रोथ
श्री सुरेश्वर प्रसाद एम० ए०	विश्व-सभ्यता का इतिहास
श्री शान्तिकुमार गोखुरू एम० एस० सी०	सरल सामान्य विज्ञान

श्री आचार्य्य रामचन्द्र शुक्ल	मेगास्थनीज-इण्डिका
श्री नाथूराम प्रेमी	जैन साहित्य का इतिहास
श्री अशर्फी मिश्र बी० ए०	धनकुबेर कार्नेगी
श्री गोपाल नारायण बहुरा एम० ए०	रास-माला
श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी	विश्व-साहित्य
श्री सत्यदेव विद्यालंकार	हमारे राष्ट्रपति
श्री द्विजेन्द्रलाल राय	कालिदास और भवभूति
श्री कामता प्रसाद जैन	संक्षिप्त जैन इतिहास
पं० रामकर्ण	मारवाड़ का मूल इतिहास
श्री सुखसम्पत्ति राय भंडारी	जगद्गुरु भारत वर्ष
श्री सुन्दरलाल	भारत में अँग्रेजी-राज्य
श्री हरिवंश राय 'बच्चन'	उमर ख्याम की रुबाइयाँ
श्री चन्द्रराज भंडारी	समाज-विज्ञान, भगवान महावीर, भारत के हिन्दू-सम्राट, भारत का औद्योगिक विकास और अग्रवाल-जाति का इतिहास

साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान' और साप्ताहिक 'धर्मयुग' के करीब ३०० प्राचीन अंक ।

गुजराती—

श्री मोहनलाल दलीचन्द	जैन-साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास
श्री रतीलाल नायक	विज्ञान-कथा
श्री कृष्णलाल मोहनलाल जवेरी	गुजराती-साहित्यना मार्ग-सूचक स्तंभो
श्री दुर्गाशंकर केवलराम शास्त्री	आयुर्वेदनो इतिहास
श्री मुनि विद्या विजय	म्हारी कच्छ-यात्रा

English

H. G. Wells	Out line of History
K. M. Pannikar	A survey of Indian History
Moreland	India from Akabar to Aurangzeb
Homes	History of Indian Mutiny
K. M. Pannikar	The future of South East Asia
Roy Chaudhari	Political history of Ancient India
Bhandarkar	Early History of Daccan Asoka
E. G. Browne	Literary History of Persia
H. H. Howarth	History of Mangol
L. A. Mills	The New World of South East Asia
Chaldea	The Story of the Nations
John Macy	The Story of the World's Literature
Nawrice W. Ph.d.	A Story of Indian Literature
Hays C. J. H.	A History of Modern Europe
A. Bersidale Keith	A History of Sanskrit Literature
Sarkar & Srivastava	The World Year-Book

विश्व-इतिहास-कोष

Encyclopedia of World History

[तृतीय खण्ड]

ज्ञान-मन्दिर—प्रकाशन

विश्व-इतिहास-कोष

तृतीय खंड

(अकारादि क्रम से)

एशिया महाद्वीप

संसार का सबसे बड़ा महाद्वीप। इस महाद्वीप के उत्तर में उत्तरी महासागर, पूर्व में प्रशान्त महासागर, दक्षिण में हिन्द महासागर और पश्चिम में यूरोप, कृष्णसागर और भूमध्य सागर है। इसका कुल क्षेत्रफल १,८५,२३,५२२ वर्गमील है जो सारे संसार की भूमि का १/३ है और जनसंख्या १, ४०,०००,०००० है जो सारे संसार की आबादी से आधी है।

इस महाद्वीप में चीन, जापान, कोरिया (सूदूर पूर्वी एशिया) हिन्दुस्तान, तिब्बत, लंका (दक्षिणी एशिया) ईरान, अफगानिस्तान, अरबस्तान, ईराक और रूसी साम्राज्य का एशियायी भाग (मध्य एशिया) तथा वर्मा इण्डोनेशिया, इन्डोचाइना, मलेशिया, (दक्षिण पूर्वी एशिया) इत्यादि देश सम्मिलित है।

एशिया का नामकरण

प्राचीन ग्रीक इतिहासकार हेरोडोट्स के मतानुसार 'प्रमिथियस' नामक देवता की पत्नी का नाम 'एसिया' था, यह एसिया टेथिस की कन्या थी, ग्रीक परम्परा के अनुसार इसी "एसिया" नामक देवी के नाम पर एसिया का नामकरण हुआ। मगर इतिहास कार "लिडीयन" के मतानुसार कोटिस (Cotys) के पुत्र "एसियास" के नाम पर एशिया का नामकरण हुआ। कुछ इतिहासकारों के मतसे 'एशिया' शब्द का अर्थ सूर्य और एशियन शब्द का अर्थ सूर्यलोकवासी या पूर्वी दिशा के रहने वाले लोग है।

ऐतिहासिक गौरव

विशाल एशिया महाद्वीप समग्र संसार में एक महान और प्राचीन महाद्वीप है। संसार भर के युगपरिवर्त्तक, नूतन संस्कृति-संस्थापक और अवतारी आठ महापुरुष—राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, कनफ्यूशस और जरथोस्ट—इसी पवित्र भूमि में अवतरित हुए हैं।

संसार की प्राचीनतम और महान् संस्कृतियों की स्थापना भी इसी महाद्वीप में हुई और यहीं से सारे संसार में उनका प्रचार हुआ। इन सभ्यताओं में महान् भारतीय सभ्यता, चीन की सभ्यता, ईरान की सभ्यता, मेसोपेटोमियाँ की सभ्यताएँ और ईसाई तथा इस्लाम-सभ्यता का प्रमुख स्थान है।

सम्पूर्ण एशिया के इतिहास को समझने के लिए ऐतिहासिक दृष्टि से इसके चार विभाग किये जा सकते हैं। दक्षिणी एशिया जिसमें भारत, लङ्का और नेपाल शामिल है। सुदूर पूर्वी एशिया जिसमें चीन, जापान और कोरिया शामिल है। मध्य एशिया जिसमें ईरान, अरब, मेसोपोटेमियाँ, अफगानिस्तान तथा रूस का एशियायी भाग सम्मिलित है और दक्षिण पूर्वी एशिया जिसमें इण्डोनेशिया, इण्डोचायना मलेशिया इत्यादि प्रदेश सम्मिलित है। इन सबका अत्यन्त संक्षिप्त इतिहास इस प्रकार है।

भारतवर्ष और भारतीय सभ्यता

एशिया के समग्र इतिहास में भारतीय सभ्यता के के विकास की गौरवपूर्ण कहानी एक ऐसे सुनहले अध्याय की तरह है, जिसकी जोड़ मिलना कठिन है।

आज से हजारों बरस पहले—करीब दस हजार बरस पहले इस देश में एक ऐसी महान् संस्कृति की स्थापना हुई थी जो प्राचीनता और गौरव-दोनों ही दृष्टियों से सम्पन्न थी। जिसने मानव जीवन और मानव स्वभाव के हर एक पहलू पर विचार करके कुछ सिद्धांत निश्चित किये थे और उन्हीं सिद्धान्तों पर आधारित एक सुदृढ़ समाज-व्यवस्था का व्यवहारिक रूप से निर्माण किया था। ऐसी समाज व्यवस्था जो एक लम्बे समय तक निर्बाध रूप से इस देश में चलती रही।

जीवन के प्रत्येक पहलू पर इस सभ्यता में निर्णयात्मक विचार किया गया था और इसीलिए इस सभ्यता ने ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में कपिल, कणाद तथा गौतम के समान तत्त्वज्ञानी, सामाजिक विधान के निर्माण में मनु के समान महान् विधानशास्त्री, चिकित्सा के क्षेत्र में चरक और सुश्रुत के समान चिकित्साशास्त्री, साहित्य के क्षेत्र में वाल्मीकि, व्यास, कालिदास और भवभूति के समान महान् विभूतियाँ, राज्य के क्षेत्र में राम, कृष्ण, अशोक और गुप्त सम्राटों के समान महान् लोकप्रिय नरेश, कामशास्त्र के क्षेत्र में वात्स्यायन के समान वैज्ञानिक, राजनीति के क्षेत्र में शुक्र और कौटिल्य के समान महान् विभूतियाँ प्रदान कीं।

भारतीय इतिहास की एक महान घटना

वैसे तो भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास सम्पन्न और महान् घटनाओं से भरा पड़ा है मगर ईसा की ६ शताब्दी पूर्व इस देश ने एक महान घटना के फलस्वरूप एक ऐसी विभूति को उत्पन्न किया जिसने सारे एशिया महाद्वीप को अपनी ओर आकर्षित कर लिया, यह विभूति महात्मा बुद्ध की थी।

इस महान् विभूति ने अपने राज्यवैभव को लात मार कर और सुन्दर पत्नी और पुत्र को छोड़कर मनुष्य-जाति के कल्याण का मार्ग ढूँढ़ निकालने के लिए कठोर तपस्या का मार्ग अङ्गीकार किया था। इस तपस्या के फलस्वरूप उन्हें 'बोधिसत्व' की प्राप्ति हुई और उसके पश्चात् उन्होंने अपना उपदेश प्रारम्भ किया।

उनका उपदेश बसन्त ऋतु की शीतल बयार की तरह मानव आत्मा को सान्त्वना और ठण्डक पहुँचाने वाला था। उसमें शान्ति थी, उसमें शीतलता थी, उसमें जीवन-रस था और उसमें वह चीज भी थी जिसे मनुष्य चाहता था।

हजारों लाखों व्यक्ति उनकी सान्त्वना से सुखी हो उनके झण्डे के नीचे आने लगे और चारों ओर "बुद्धं शरणं गच्छामि" "संघं शरणं गच्छामि" "धम्मं शरणं गच्छामि" के नारे वातावरण में फैलने लगे।

उनके हजारों उत्साही और विद्वान भिक्षुक विदेशों में अपने धर्म का प्रचार करने निकल पड़े। चीन, बरमा, सीलोन और मध्य एशिया के कितने ही स्थानों में बौद्ध-धर्म वहाँ का जन-धर्म बन गया। इस समय भी संसार में करीब पचास करोड़ व्यक्ति अपने को बौद्धधर्म का अनुयायी कहते हैं।

बौद्धधर्म के साथ ही साथ बौद्ध-संस्कृति का भी प्रादुर्भाव हुआ। साहित्य के क्षेत्र में, चित्रकला के क्षेत्र में, मूर्तिकला के क्षेत्र में, भवन-निर्माण कला के क्षेत्र में इस सभ्यता ने कई ऐसे नये-नये सृजन किये, जिनका मूल्यांकन नहीं हो सकता।

भारतीय इतिहास की अन्य गौरवपूर्ण घटनाओं में सम्राट अशोक और सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय के द्वारा स्थापित विशाल साम्राज्यों में समस्त जनता की बाहोजलाली, शासन की सुन्दर और कम खर्चीली व्यवस्था तथा नैतिक मूल्यों पर स्थापित की हुई समाज और राज्य-व्यवस्था अत्यन्त आश्चर्यजनक थीं। इन राज्यों के समय में मनुष्य के सामाजिक जीवन का, साहित्य का, कला का और वैभव का जितना विकास हुआ था, उतना मानव-इतिहास के किसी दूसरे कोने में चिराग लेकर ढूँढ़ने पर शायद कहीं मिल जाय।

भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना उत्तरी पश्चिमी सीमा से शक, कुशान और हूण लोगों के आक्रमण और उसके बाद इन जातियों के द्वारा भारतीय सभ्यता

में घुल मिल कर यहाँ की परम्पराओं को अपना लेना है। इससे मालूम होता है कि उस समय तक भारतीय सभ्यता में दूसरी सभ्यताओं को पचा लेने की शक्ति थी।

इसके बाद भारतवर्ष के इतिहास में इसलाम का आक्रमण एक ऐसी युगान्तरकारी घटना है जिसने वहाँ के सारे इतिहास को एक नया मोड़ दे दिया। इसलाम के प्रसिद्ध आक्रमण कारियों ने भारतवर्ष पर आक्रमण करके सैकड़ों मन्दिरों और पूजास्थानों को तोड़-फोड़ दिया। लाखों व्यक्तियों को इसलाम में दीक्षित किया। बड़े-बड़े साम्राज्य स्थापित किये और इस बात का प्रयत्न किया कि भारत की प्राचीन संस्कृति समाप्त होकर मध्य-एशिया की तरह यह देश भी इसलाम के रंग में रँग जाय। मगर यहाँ की सभ्यता में अनेक खराबियों के घुस जाने पर भी कुछ मौलिक तत्व ऐसे थे जिनकी वजह से इस प्रबल तूफ़ान में भी यह अमर दीप बुझा नहीं, ऊपर से क्षत-विक्षत हो जाने पर भी इसकी नींवें हिलीं नहीं।

अन्त में मुगल-साम्राज्य के समय में शासक वर्ग यह महसूस करने लगा कि राज्य और समाज दोनों के कल्याण के लिए इन दोनों सभ्यताओं का संघर्ष बन्द कर दोनों को फूलने-फलने का अवसर दिया जाय।

इसी सिद्धान्त पर मुगल-साम्राज्य पाँच पुश्तों तक इस देश पर शान्ति पूर्वक शासन करता रहा। उसके पश्चात् सम्राट् औररंगजेब ने फिर इस मर्यादा को तोड़कर हिन्दू-समाज को नष्ट करने का प्रयत्न किया, मगर इस प्रयत्न में उसके देखते ही देखते मुगल-साम्राज्य का मजबूत किला खिसकने लगा और ऐसा खिसका कि फिर कोई शक्ति उसे सम्हाल नहीं सकी।

मुगल-साम्राज्य के पतन के साथ-साथ मरहठा-साम्राज्य की स्थापना के प्रयत्न होने लगे, मगर आपस की फूट के कारण उसमें सफलता नहीं मिली। चारों तरफ लूट-खसोट और अराजकता के दृश्य उत्पन्न होने लगे, जिसका लाभ अंग्रेजों ने पूरी तरह से उठाया और धीरे-धीरे यह सारा देश अंग्रेजी-साम्राज्य में विलीन हो गया।

डेढ़ सौ बरस तक सुव्यवस्थित शासन करने के पश्चात् देश के आन्दोलनों और उपनिवेशवाद के विरुद्ध प्रसार की बदलती हुई परिस्थितियों से मजबूर होकर सन् १९४७ ई० की पन्द्रह अगस्त को अंग्रेजों ने भारतीय स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। तब से स्वाधीन भारत कांग्रेसी-शासन के अन्तर्गत अपनी शासन-व्यवस्था चला रहा है।

चीन और चीनी सभ्यता

चीन और चीन की सभ्यता का इतिहास भी बहुत पुराना है। ईसा से करीब तीन हजार वर्ष पहले चीन के लोग सांस्कृतिक क्षेत्र में उस समय की दुनिया से काफी आगे बढ़े हुए थे। ये लोग खेती करना जानते थे। भवन-निर्माण कला में भी ये आगे बढ़े हुए थे। उनका समाज उन्नत समाज माना जाता था।

सबसे पहले ईसा से करीब २००० वर्ष पहले "याओ" नामक एक पराक्रमी पुरुष चीन में पैदा हुआ जिसने पहले पहल अपने को 'सम्राट' कहना प्रारम्भ किया। इसके पश्चात् "हिस्या" नामक एक राजवंश का चीन पर अधिकार हुआ। हिस्यावंश का अन्तिम राजा बड़ा जालिम था इसलिए उसको गद्दी से हटाकर शैंग नामक एक दूसरे राजवंश ने चीन का शासन सम्हाला। यह राजवंश ६५० वर्षों तक राज्य करता रहा।

शैंग राजवंश के पश्चात् "चाऊ" नाम के एक नये राजवंश का शासन कायम हुआ। इस राजवंश का शासन ८३७ वर्ष तक चलता रहा। इसी राजवंश के समय में चीनी साम्राज्य की नींव बहुत मजबूत हुई और इसी राजवंश के समय में चीन के अन्तर्गत महान दार्शनिक और धर्मनेता कन्फ्यूशस और लाओत्से का आविर्भाव हुआ, जिन्होंने अपने महान विचारों के द्वारा चीनी समाज और संस्कृति में नवीन प्राणों का संचार कर दिया। चीन के इतिहास में कन्फ्यूशस का आविर्भाव एक महान् घटना है।

कोरिया देश की स्थापना

चाऊ राजवंश के द्वारा शैंग राजवंश को समाप्त कर दिये जाने पर शैंग राजवंश का "कि-त्जे" नामक एक राज पुरुष अपने पाँच हजार अनुयायियों के साथ चीन देश को हमेशा के लिए छोड़कर चल निकला और पूर्व दिशा में जाकर उसने कोरिया या चीसेन नामक देश को बसाया।

चोसेन का अर्थ 'उगते हुए सूर्य का देश' होता है। इस प्रकार ईसा से ग्यारह सौ वर्ष पूर्व इसी "कि-त्जे" के द्वारा कोरिया देश का इतिहास प्रारम्भ हुआ। कि-त्जे के साथ ही इस देश में चीनी कलाकौशल, भवन निर्माण कला, कृषि और रेशम की कारीगरी भी आ गई। कि-त्जे के वंश ने कोरिया पर करीब नौ सौ वर्षों तक शासन किया।

ईसा से २५५ वर्ष पहले चिन राजवंश ने चाऊ राजवंश को हटाकर अपना शासन स्थापित किया। इस राजवंश में सम्राट शीह-ह्वांग-टी नामक एक बड़ा जालिम सम्राट हुआ। जो यह चाहता था कि लोग प्राचीन इतिहास को भूलकर उसी को संसार का पहला सम्राट मानें। उसने एक फरमान जारी किया कि तमाम ऐसी पुस्तकें जिनमें प्राचीन इतिहास का वर्णन हो और कन्फ्यूशस की सब रचनाएँ जलाकर राख कर दी जायँ। उसने सारे साहित्य को जलाकर उसके पढ़ने वालों को जिन्दा दफन करवा दिया। फिर भी कन्फ्यूशस के कुछ भक्तों ने उसके साहित्य को छिपाकर रख दिया जो आगे जाकर काम आया।

इसी शासक ने चीन के आसपास की संसार प्रसिद्ध दीवाल को बनाने का काम प्रारम्भ किया।

चिन राजवंश ने केवल ५० वर्ष तक शासन किया। उसके पश्चात् चीन का शासन हान राजवंश के हाथ में आया। इस राजवंश ने करीब ४०० वर्ष तक राज्य किया। इस राजवंश का छठा शासक "वू-ती" बड़ा प्रतापी हुआ। उसके समय में चीन के शासन का बहुत विस्तार हुआ। पूर्व में कोरिया से पश्चिम में कैस्पियन सागर तक चीनी शासन का बोल बाला था और मध्य-एशिया के सब देश चीन को अपना प्रमुख शासक मानते थे।

हान राजवंश के समय में ही चीन में बौद्धधर्म का प्रवेश हुआ। बौद्धधर्म के साथ ही साथ भारतीय कला का प्रभाव भी चीन में पहुंचा। इसी राजवंश के राज्यकाल में लकड़ी के ठप्पों से छपाई की कला का आविष्कार हुआ। इसी शासन में चीन के अन्तर्गत सरकारी नौकरी प्राप्त करने के लिए परीक्षा की प्रणाली भी प्रारम्भ हुई।

ईसा की तीसरी शताब्दी में हानवंश की सत्ता समाप्त हो गई और चीनी साम्राज्य तीन हिस्सों में विभक्त हो गया, मगर सन् ६१८ में सम्राट काओ-त्सू ने तांग राजवंश का शासन स्थापित कर सारे चीनी सम्राज्य को एक कर दिया। यह सम्राट बड़ा प्रतापी था और इसने अपने साम्राज्य की सीमाएँ दक्षिण में अनाम और कम्बोडिया तक तथा पश्चिम में ईरान और कैस्पियन सागर तक विस्तृत करलीं।

तांग राजवंश के समय में चीन में बौद्धधर्म का बहुत प्रचार हुआ। भारत से हजारों बौद्धभिक्षु धर्मप्रचार के उद्देश्य से वहाँ पर गये। इसी राजवंश के समय में इसलाम ने भी चीन में प्रवेश किया और सम्राट ने उनको कैण्टन में एक मसजिद बनाने की आज्ञा प्रदान की। यह मसजिद अभी भी कैण्टन में विद्यमान है और संसार की सबसे पुरानी मसजिदों में गिनी जाती है। यह हजरत महम्मूद साहब के जीवनकाल में ही बनाई गई थी। ईसाइयों के नेस्टोरियन सम्प्रदाय ने भी इसी राजवंश के समय चीन में प्रवेश किया था।

तांग-राजवंश का शासन तीन सौ वर्ष तक रहा। यह तीन सौ वर्ष चीन के इतिहास में एक महान युग की तरह माने जाते हैं, जब चीन की संस्कृति अत्यन्त उच्चस्तर पर पहुँच गई थी और जनता भी बहुत खुशहाल थी। कागज बनाने की कला, छापने की कला, जनगणना की मर्दुमशुमारी, भवन-निर्माणकला, बारूद का निर्माण आदि अनेक बातें जो पश्चिम को कई शताब्दियों के बाद मालूम हुईं—चीन में इस समय प्रचलित हो चुकी थी।

भारत के साथ चीन के सांस्कृतिक सम्बन्ध बौद्धधर्म के द्वारा बहुत तेजी से बढ़ते जा रहे थे। भारत से पहुँचने वाले भारतीय कलाकार और बौद्धधर्म के विचारों का चीन के सांस्कृतिक जीवन पर बहुत असर पड़ा। भारत से पहुँचने वाली इन विचार-धाराओं ने चीन के मानसिक, धार्मिक और कला-सम्बन्धी जीवन को एक नई स्फूर्ति और प्रेरणा प्रदान की।

लेकिन आगे चलकर तांग-राजवंश के शासक विलासी और ऐय्याश हो गये और सन् ६०७ ई० में यह राजवंश खतम हो गया और उसकी जगह सन् ६६० ई० में शुंग-राजवंश का शासन प्रारंभ हुआ। ११वीं सदी में वांग-आन-शीह नामक एक प्रधान मंत्री बड़ा प्रसिद्ध हुआ

जिसने गरीबों के ऊपर से करों का बोझ हटाकर धनवानों पर इनकम-टैक्स लगा दिया। इस प्रकार ११वीं सदी में चीन में उस इनकम टैक्स का प्रादुर्भाव हो गया था जिसे आजकल के लोग बिल्कुल आधुनिक समझते हैं।

शुंग-राजवंश के समय में चीन पर उत्तर की ओर से खित्तन नामक जंगली कौमों के आक्रमण प्रारंभ हो गये जिनसे निपटने के लिए शुंग-राजवंश ने सुनहरे तातारी लोगों की मदद माँगी। इन लोगों ने आकर खित्तन लोगों को तो भगा दिया, मगर ये स्वयं चीन के मालिक बन बैठे और शुंग-राजवंश को दक्षिण में हटा दिया।

इसके पश्चात् मंगोल लोगों के आक्रमण ने शुंग-वंश और सुनहरे तातारी लोगों के शासन को समाप्त कर दिया। सन् १२५२ ई० में मंगू खाँ ने 'खान महान्' का खिताब ग्रहण किया और उसने कुबलाई खाँ को चीन का गवर्नर नियुक्त किया। यही कुबलाई खाँ आगे जाकर सन् १२६६ ई० में 'खान महान्' बना और उसने पेकिंग में अपनी राजधानी स्थापित की।

कुबलाई खाँ ने युवान राजवंश की स्थापना की। उसने टांकिंग, अनाम और बर्मा को अपने राज्य में मिला लिया।

सन् १३६८ ई० में हाँग-ऊ नामक एक विद्रोही नेता ने युवान राजवंश के खिलाफ विद्रोह करके उसे समाप्त कर दिया और मिंग—राजवंश की स्थापना की। मिंग राजवंश सन् १३६८ से १६४४ ई० तक चला। चीन के तमाम राजवंशों में यह राजवंश सबसे ज्यादा चीनी नमूने का कहा जासकता है। इस युग में चीनी लोगों को अपनी प्रतिभा के विकास का पूरा मौका मिला इसी युग में सड़कों, नहरों, जलमार्गों और तालाबों की हालत सुधारी गई। टैक्सों का बोझ कम करके किसानों को राहत पहुँचाई गई। इसी युग में चीनी सरकार ने कागज के नोट चलाये। इसी युग में शानदार इमारतें बनी, सुन्दर चित्रकारी का विकास हुआ, लकड़ी, हाथी दाँत और हरे पत्थर पर नक्काशी का बारीक काम प्रारम्भ हुआ।

इसी युग में सन् १५१६ ई० में अल्बुकर्क नामक पोर्तुगीज के नेतृत्व में पहला पुर्तगाली जहाज चीन के कैंटन नगर में पहुँचा। इस जहाज में कई ईसाई धर्म-प्रचारक भी थे। इनमें सेंट फ्रांसिस झेविअर का नाम बहुत प्रसिद्ध है।

१७ वीं सदी में मंचू लोगों के आक्रमण ने मिंग-राजवंश को खतम कर दिया और मंचू राजवंश का का शासन प्रारम्भ हुआ।

इस राजवंश का दूसरा सम्राट कांग–ही था। इस सम्राट ने सन् १६६१ से सन् १७२२ ई० तक राज्य किया। यह सम्राट कन्फ्यूशस का पक्का अनुयायी था और संस्कृति, कला तथा साहित्य का बड़ा प्रेमी था। उसने चीनी भाषा का एक बड़ा कोष तैयार करवाया जिसमें ४० हजार से ज्यादा शब्द चिन्ह थे। उसने एक बड़ा भारी सचित्र विश्व कोष भी तैयार करवाया, जो सौ जिल्दों में पूरा होने वाला एक अद्भुत ग्रन्थ है। उसने सारे चीनी साहित्य के निचोड़ का भी एक विश्व-कोष तैय्यार करवाया। उसके ये कार्य विश्व-साहित्य की दृष्टि से अमर कार्य कहे जा सकते हैं।

इसी सम्राट के समय में विदेशी लोगों ने चीन में प्रवेश करना शुरू किया। प्रारम्भ में सम्राट ने विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन देने के लिए चीन के सारे बन्दरगाह इन लोगों के लिए खोल दिये, मगर जब इन विदेशियों की बदमाशी का उसे पता लगा तो वह चौंक पड़ा और उसने तत्काल विदेशियों की साजिशों से साम्राज्य को बचाने के लिए उनके व्यापार पर और ईसाई धर्म के प्रचार पर प्रतिबन्ध लगा दिये।

मगर इसके बाद चीन का इतिहास क्रमशः अन्धकार के गर्त में गिरना प्रारम्भ होता है। पश्चिम की साम्राज्य वादी शक्तियाँ चीन में धीरे-धीरे अपना पैर जमाना शुरू करती हैं। चीनी लोग इनके प्रभाव में आकर अफीम खाने के आदी बन जाते हैं। ब्रिटेन जबर्दस्ती चीन के ऊपर अफीम का व्यवसाय लादने में सफल होता है और प्राचीन इतिहास का यह महान देश नष्ट-भ्रष्ट होने लगता है। अन्त में सन् १८६४ ई० में डाक्टर सनयाटसेन के नेतृत्व में चीन-पुनरुद्धार-समिति की स्थापना होती है और यह समिति विदेशियों के द्वारा की गई अन्यायपूर्ण सन्धियों का विरोध करती है। सन् १९११ में इसका नाम बदल कर कुओ मिन-तांग या जनता का राष्ट्रीय दल रखा जाता है। इस आन्दोलन के

परिणाम-स्वरूप १२ फरवरी सन् १९१२ ई० को मंचू-सम्राट् को गद्दी छोड़नी पड़ी और चीन में प्रजातंत्र की स्थापना हुई। मगर युवान-शी-काई नामक चीन के एक प्रान्त के गवर्नर ने नवीन प्रजातन्त्र को कुचलने का बहुत प्रयत्न किया। डा० सनयात सेन ने उसके विरोध को मिटाने के लिए, उसे चीनी प्रजातंत्र का राष्ट्रपति भी बना दिया, मगर युवान तो पार्लियामेंट को बरख्वास्त करके स्वयं सम्राट बनने की फिक्र में था। तब सनायत सेन को दक्षिण के कैण्टन नगर में एक नई प्रतिपक्षी सरकार स्थापित करनी पड़ी। प्रथम महायुद्ध के समय में चीन में नानकिंग और कैण्टन की दो सरकारें काम कर रही थीं।

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् ही चीन में कम्युनिस्ट शक्तियों का जोर बढ़ा और उन्होंने चांग-काई-शेक की प्रजातंत्रीय सरकार को हराकर फारमोसा में भगा दिया। और माओ-त्से-तुङ्ग के नेतृत्व में वहाँ पर कम्युनिस्ट सरकार की स्थापना हुई।

कम्युनिस्ट सरकार के प्रधान मंत्री चाऊ-एन-लाई ने भारत को दम दिलासा देकर तिब्बत की स्वतंत्रता को खतम कर उसे चीनी साम्राज्य में मिला लिया और भारत पर भी एक आक्रमण करके हिमालय की उपत्यका में उसकी कई हजार वर्गमील भूमि पर कब्जा कर लिया।

इधर रूसी कम्यूनिज्म और चीनी कम्यूनिज्म के बीच भी कई गम्भीर मतभेद पैदा हो गये हैं और अन्तर्राष्ट्रीय कम्यूनिज्म में एक खतरनाक खाई पैदा हो गई है जो क्रमशः बढ़ती जाती है।

मध्य-एशिया

मैसोपेटोमियाँ की सभ्यताएँ

जिस प्रकार गंगा और सिंधु की उपत्यकाओं में हजारों बरस पहले वेदमंत्रों के साथ भारतीय सभ्यता का गुञ्जन हो रहा था उसी प्रकार मध्य एशिया की दजला और फ़रात नदियों की उपत्यका में मेसोपेटोमियाँ या आधुनिक ईराक में ईसा से करीब चार हजार वर्ष पूर्व सुमेरियन संस्कृति फल फूल रही थी। सुमेरियन संस्कृति का प्रधान केन्द्र "उर" नामक नगर में था जो उस समय का एक प्रसिद्ध नगर था। इस संस्कृति पर मोहन-जोदड़ों में पाई जाने वाली भारतीय संस्कृति का बड़ा प्रभाव पड़ा था। कई बातों में मोहन-जोदड़ों का अनुकरण सुमेरियन संस्कृत में पाये जाने वाली पुरातत्वीय सामग्री में पाया जाता है।

ईसा के २१७० वर्ष पहले सुमेरियन संस्कृति के तीसरे राजवंश के अन्त के साथ ही सुमेरियन संस्कृति का अन्त हो गया, और बेबीलोनिया के राजवंश ने यहाँ पर अपना शासन स्थापित कर बेबीलोनियन संस्कृति की स्थापना की। बेबीलोनियन राजवंश में "हम्मुराबी" नामक एक अत्यन्त प्रतापी सम्राट हुआ जो साहित्य और कला तथा कानन का बड़ा शौकीन था। इसके शासनकाल में इस क्षेत्र की की सर्वाङ्गीण उन्नति हुई। उस अत्यन्त प्राचीन काल में सम्राट् हम्मुराबी ने राज्य का एक विधान बनवा कर एक स्तम्भ पर खुदवा दिया जो आज संसार का सबसे पहला और प्राचीन विधान माना जाता है। इस विधान में समाज में स्त्रियों की स्थिति की जो व्याख्या की गई है वह दूसरी सभ्यताओं की अपेक्षा बहुत उदार है।

ईसा से एक हजार वर्ष पूर्व तक इस क्षेत्र में बेबिलोनियन संस्कृति का बोलबाला रहा। इसके बाद असीरियन राजवंश ने इस सभ्यता को समाप्त कर "असुर" संस्कृति की स्थापना की। इस राजवंश में "असुर बनिपाल" नामक एक बड़ा कटोर, निर्दयी और साहसी शासक हुआ। ऐसा मालूम पड़ता है कि असुर संस्कृति के साथ आर्य्य संस्कृति के भी कई संघर्ष हुए जिनका विवरण पुराणों में दिखलाई देता है। सुमेरियन, बेबिलोनियन और असुर संस्कृति का समकालीन बहुत सा साहित्य क्यूनीफार्म लिपि में ईंटों पर खुदा हुआ प्राप्त हुआ है।

असुर संस्कृति चार सौ वर्षों तक इस क्षेत्र पर छाई रही, उसके बाद कुछ समय तक इस क्षेत्र पर चैल्डियन राज्यवंश की सत्ता रही। इन लोगों ने एक बार फिर इस प्रदेश को राजनीति और सभ्यता का क्षेत्र बना दिया। इन लोगों के समय का बनाया हुआ आकाशी-उद्यान संसार के सात आश्चर्यों में एक माना जाता है।

इसके पश्चात् ईसा से छः सौ वर्ष पूर्व यह क्षेत्र ईरान

के इतिहास प्रसिद्ध अखामनी-साम्राज्य में मिला लिया गया और यहाँ पर ईरानी सभ्यता का प्रभाव छा गया।

ईसा की छठी शताब्दी में इसलाम के उदय के साथ ही एशिया में जो भारी परिवर्तन हुए, उससे यह प्रदेश भी न बच सका और यहाँ के सब निवासियों ने इस्लाम ग्रहण किया।

इस्लामी खलीफाओं के समय में इस प्रदेश का 'बगदाद' शहर सारे संसार में सभ्यता और संस्कृति का एक प्रसिद्ध केन्द्र बन गया। खलीफा हारूं-अल रशीद के समय में बगदाद अपने पूर्ण वैभव पर था। संसार भर के साहित्यकार, कवि, कलाकार हारूं-अल-रशीद के दरबार में सम्मान पाते थे। वैभव और विलास की नदियाँ इस नगर में बहती थीं। उसके पश्चात् प्रसिद्ध आक्रमणकारी हलाकू के आक्रमण से यह सारा शहर एकदम नष्ट-भ्रष्ट हो गया।

ईरान और ईरानी संस्कृति

मध्य एशिया के देश ईरान में भी प्राचीन युग में एक महान् सभ्यता का जन्म हुआ था। इतिहास में एक समय ऐसा आया जिसमें ईरानी सभ्यता और साम्राज्य पूर्ण उन्नति के शिखर पर पहुँचे हुए सारी मानवजाति की एक विकसित परम्परा का सन्देश देते थे।

ईसा के पूर्व छठी या सातवीं शताब्दी में महात्मा "जरथोस्ट" ईरान की भूमि पर अवतरित हुए। इन्होंने जरथोस्टी धर्म की स्थापना कर मानव-जाति को एक नवीन धर्मप्रेरणा दी। इनके द्वारा निर्मित "अवेस्ता" इनके मजहब का पूजनीय ग्रन्थ है। "झेन्द-अवेस्ता" के बहुत से मंत्रों से अथर्ववेद के मन्त्रों की ध्वनियाँ मिलती है। इससे मालूम होता है कि जरथोस्ट के विचारों पर सम्भवतः वेदसाहित्य का कुछ प्रभाव पड़ा हो।

इन्हीं दिनों अर्थात् ईसा से ५५६ वर्ष पूर्व अखामनी कबीले के "साइरस महान्" नामकएक व्यक्ति ने असीरिया, बेबीलोनिया इत्यादि प्रदेशों को जीतकर एक विशाल ईरानी साम्राज्य की स्थापना की।

इसी अखामनी राजवंश में दारा महान् नामका सम्राट बड़ा प्रतापी हुआ। इसने ई० पू० ५२१ से ४८५ तक राज्य किया। ई० पू० ५१२ में दारा के साम्राज्य की सीमाएँ उत्तर में कालासागर, काकेशस, कास्पीयन सागर तथा चीन तक, पूर्व में सप्त सिंधु, पश्चिम में भूमध्य सागर और मिश्र की पश्चिमी सीमा तक तथा दक्षिण में अरब और सहारा के रेगिस्तान तक थी। सम्राट दारा संसार का पहला शासक था जिसने राजा की मूर्ति के साथ अपने सिक्के चलाये। इस सम्राट की शासन व्यवस्था बहुत उत्कृष्ट थी।

दारा के पश्चात् इसी वंश के दारा तृतीय को अलेक्जेण्डर महान् ने हराकर अखामनी साम्राज्य को खतम कर ग्रीक बाख्तरी साम्राज्य की नींव डाली।

ग्रीक बाख्तरी साम्राज्य के पश्चात् पार्थियन राजवंश के शासन में भी ईरान ने बहुत उन्नति की। यह साम्राज्य ४०० बरस तक चला। इस की समाप्ति अर्दशिर नामक एक पराक्रमी व्यक्ति ने की और इतिहास प्रसिद्ध सासानी साम्राज्य की नींव डाली। सासानी राजवंश के २८ सम्राटों ने सन् २२७ से सन् ६५१ तक राज्य किया। इनमें सम्राट नौशेरवाँ बड़ा पराक्रमी, प्रजाप्रिय और महान् सम्राट हुआ। इसका समय सन् ५३१ से ५७६ तक था। इसके पश्चात् ईरान में भी इस्लाम की लहर पहुँच गई (ईरान के इतिहास का पूरा वर्णन इसी ग्रन्थ में दूसरे खण्ड में "ईरान" नाम में देखें।)

एशिया के इतिहास की दो महान घटनाएँ

ईस्वी सन् के प्रारम्भ से लेकर ईसा की छठी शताब्दी के बीच एशिया के इतिहास में दो ऐसी महान् घटनाएँ हुईं जिन्होने सारे संसार के इतिहास को प्रभावित किया। जिन्होंने मनुष्यजाति की प्राचीन परम्परा के तख्ते को एकदम उलटकर एक नवीन परम्परा, नवीन विश्वास और नवीन प्रवृत्तियों को जन्म दिया। जिन्होंने मनुष्यजाति के आचार और विचार दोनों में जबर्दस्त क्रान्ति की लहर पैदा कर दी, ऐसी लहर जिसने संसार के कोने-कोने को प्रभावित किया।

महात्मा ईसा का आविर्भाव

इनमें से पहली घटना पैलेस्टाइन के बैथलहेम नामक स्थान में ई० सन् पूर्व ४ में महात्मा ईसा का आविर्भाव था। ३० वर्ष की अवस्था में महात्मा ईसा जेरूसलेम

गये और वहीं से उन्होंने अपने को ईश्वर का पैगम्बर होने की घोषणा की। (पूरा वर्णन दूसरे खण्ड में "ईसा मसीह" नाम के साथ देखें)

यद्यपि महात्मा ईसा के जीवन काल में ईसाई धर्म का अधिक प्रचार नहीं हुआ मगर आगे चलकर इसने एक विश्व व्यापी धर्म का रूप धारण कर लिया और इसका अधिक प्रचार यूरोप में होकर वहाँ से यह सारे संसार में फैल गया। इस नवीन धर्म ने यहूदी धर्मविश्वासों के खिलाफ एक क्रांति खडी करदी और नई मान्यताओं और नवीन विश्वासों को जन्म दिया। इन विश्वासों ने मनुष्य और मनुष्य के बीच भेदभाव की दीवारो को तोड़कर विशुद्ध सेवा और समता के रचनात्मक सिद्धान्तों का प्रचार किया।

यद्यपि आगे चलकर ईसाई धर्मसंस्थाने अपने विरुद्ध विचार रखनेवाले तथाकथित नास्तिक लोगों पर बड़े भयंकर और बर्बर अत्याचार किये। मगर इन अत्याचारों के खिलाफ अपनी आवाज बुलन्द करनेवाले शक्तिशाली व्यक्ति भी इस धर्म में पैदा हुए और उन्होंने बड़े साहस के साथ भयंकर अत्याचारों को सहन करके भी इन अत्याचारों का प्रतिकार किया।

यद्यपि महात्मा ईसा का जन्म एशियायी भूखण्ड में हुआ था, पर इस क्षेत्र में इस धर्म का अधिक प्रचार न हो सका। इसीलिए ईसाई धर्म माननेवालों की संख्या जहाँ यूरोप में ७८ प्रतिशत, अमेरिका में ८३ प्रतिशत और अफ्रीका में १८ प्रतिशत हैं वहाँ एशिया में सिर्फ ३ प्रतिशत है।

इस्लाम का उदय

मध्य एशिया के इतिहास की दूसरी महत्व पूर्ण घटना अरबस्तान में इस्लाम का उदय और उसका अत्यन्त तीव्रगामी गति से अधिकांश एशिया, मिश्र और यूरोप के कुछ हिस्से में फैल जाना हैं।

ई० सन् ५७० में मक्का के एक कुरेश वंश में हजरत मुहम्मद पैगम्बर का जन्म हुआ। ४० वर्ष की उम्र में उन्हें ईश्वरीय इलहाम हुआ और ईस्वी सन् ६२२ की १६ जुलाई को उन्होंने इस्लाम की घोषणा की और स्वयं उसके पैगम्बर बने,उसी दिनसे मुसलमानों का हिजरी सन शुरू होता है।

इस्लाम की स्थापना में हजरत पैगम्बर ने कुछ मूल भूत रचनात्मक (पाजेटिव) सिद्धान्त रक्खे जिससे उनका यह मजहब अत्यन्त शीघ्र वहाँ के क्षेत्र में लोकप्रिय हो गया। इन्हीं सिद्धांतों के आधार पर उन्होंने इस्लाम का दरवाजा गरीब, अमीर, स्त्री, पुरुष, छूत, अछूत, देशी, विदेशी सबके लिए समानरूप से खोल दिया जिसके परिणाम स्वरूप हजारों नवयुवक तेजी के साथ इस्लाम के झण्डे के नीचे आने लगे।

जो लोग इस्लाम ग्रहण कर रहे थे उनमें अधिकांश लोग सैनिक वर्ग के थे और इस कारण इस संस्कृति ने तुरन्त सैनिक रूप ग्रहण कर लिया और सैकड़ों सैनिक अपनी सेनाओं के साथ तलवार के बल पर कुफ्र (यह शब्द मूर्त्तिपूजा और नास्तिकता के लिए प्रयुक्त होता है) का नाश करने निकल पड़े। आनन फानन में इन संगठित सैनिकों ने मध्य एशिया में कुफ्र की मर्यादा में आनेवाले सभी प्राचीन धर्म स्थानों, और सांस्कृतिक स्मृतियों को नष्ट कर सभी लोगों को इस्लाम में दीक्षित कर लिया। मेसोपेटोमियाँ की सभ्यताएँ उसके एक ही झोंके में नष्ट हो गई, ईरान की सभ्यता भी चूर २ हो गई, भारतीय सभ्यता पर भी इस्लाम का हमला हुआ, राजकीय दृष्टि से यहाँ पर उनका साम्राज्य भी स्थापित हो गया मगर सांस्कृतिक रूप से वे इस देश की सभ्यता पर विजय नहीं पा सके, अन्त में दोनों सभ्यताएँ इस देश में साथ साथ समझौते के साथ चलती रही।

दूसरी सभ्यताओं पर प्रहार करने के पश्चात् इस्लाम ने एक नवीन संस्कृति की स्थापना की। बड़े-बड़े खलीफों, राजाओं, साहित्यकारों और कवियों ने इस संस्कृति को सम्पन्न बनाने की कोशिश की। इसके फलस्वरूप अरबी और फारसी के विद्वानों ने विश्व-साहित्य के निर्माण में अपना महत्व पूर्ण योगदान दिया। भारतवर्ष से अङ्क शास्त्र का ज्ञान ग्रहण करके यूरोप को इस विषय का ज्ञान अरब लोगों ने ही दिया। प्लेटो और अरिस्टोटल के लुप्त ग्रन्थोंका उद्धार भी अरब विद्वानों के द्वारा ही हुआ। कला के क्षेत्र में ताज महल और उसी की तरह मध्य एशिया में अनेक कलात्मक कृतियाँ तथा स्पेन में कारडोवा के समान नगर का निर्माण किया। कई बड़े-बड़े बादशाह भी इसलाम के [illegible] और लोक प्रिय हुए।

अठारहवीं सदी में मध्य एशिया पर भी यूरोपीय विदेशी शक्तियों की काली छाया पड़ी और धीरे-धीरे यह सारा क्षेत्र रूस, इङ्गलैण्ड आदि विदेशी शक्तियों के प्रभाव में आ गया।

जापान

एशिया के समग्र इतिहास में जापान का इतिहास अपने ढंग का निराला और अद्भुत इतिहास है। यह देश एशिया के सुदूर पूर्वी कोने में ऐसे स्थान में बसा हुआ है, जहाँ पर एशिया में या संसार में होने वाली घटनाओं का कोई असर नहीं पड़ता। फिर भी अपना होश सँभालने के बाद इस छोटे से देश ने बहुत थोड़े समय में आश्चर्यजनक उन्नति की। अपनी सैनिक शक्ति को सुदृढ़ करके रूस और चीन के समान विशाल देशों को पछाड़ दिया और व्यापारिक क्षेत्र में अपने यहाँ के बने हुए सामानों से सारे संसार के बाजारों को पाट दिया। ये घटनाएँ इतिहास की मामूली घटनाएँ नहीं हैं। इन घटनाओं ने थोड़े समय में मानवीय इतिहास पर जापान के गौरव की छाप बिठा दी थी।

ऐसा समझा जाता है कि जापानियों के पूर्वज कोरिया से ही जापान में आये थे। जापानी लोग मंगोलियन जाति के हैं। इनके आने से पहले जापान में 'आईनस' नाम के आदिम जाति के लोग रहते थे।

ईसवी सन् दो सौ के करीब जिंगो नामक एक रानी जापान के यामातो राज्य की शासिका थी। यामातो जापान के उस असली हिस्से का नाम है, जहाँ पर ये प्रवासी आकर बसे थे।

बौद्ध धर्म के पहुँचने के पहले जापान का पुराना धर्म शिंटो था। शिंटो का अर्थ होता है—'देवताओं का मार्ग'। यह धर्म प्रकृति और पूर्वजों की पूजा का मेल जोल था। यह एक सैनिक जाति का धर्म था और देवताओं तथा उनके वंशजों के प्रति वफादारी ही इसका मूल मंत्र था। उसके बाद जापान में बौद्ध धर्म ने प्रवेश किया। सन् ५५२ में कोरिया के एक शासक ने बुद्ध की एक सोने की मूर्ति और बौद्धधर्म के कुछ प्रचारक जापान भेजे थे।

जापान का सम्राट 'मिकाडो' सर्वशक्तिमान, निरंकुश, अर्द्धदेवी और सूर्य का वंशज माना जाता है और शिंटो धर्म जनता को उसकी वफादारी का आदेश देता है। फिर भी सम्राट दूसरे बड़े खानदानों के हाथ की कठपुतली की तरह रहता था और राजवंश के उच्च खानदानों के हाथ में राज्य की असली शक्ति रहती थी।

जापान के इतिहास में सबसे पहले 'सोगा' खानदान के एक प्रभावशाली व्यक्ति शो-तुकू-तैशी ने सबसे पहले जापानी राज्य का नियंत्रण किया। इस व्यक्ति की गणना जापानी इतिहास के एक महापुरुष की तरह की जाती है। इसने जापान में एक ऐसी सरकार बनाने की कोशिश की जिसकी बुनियाद सिर्फ बल पर नहीं, बल्कि नैतिकता पर रखी गई हो। यह सन् ६ सौ ईसवी के लगभग की बात है।

सोगा-वंश के बाद 'फूजी वारा' वंश के हाथ में जापान की सत्ता आई। इस बंश के काकातोमी नामक पुरुष ने जापान के इतिहास में बड़ा नाम कमाया। इसने जापानी सरकार के संगठन में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन किये। जापानी इतिहास में इस वंश ने दो सौ वर्ष तक शासन किया। इस वंश के लोग जापान के सम्राट को अपने हाथ की कठपुतली बनाये रहे जिससे सम्राट बड़ा असन्तुष्ट रहता था। इसी के समय में जापान की राजधानी क्योटो में सन् ७९४ में स्थापित की गई जो बराबर ११ सौ वर्षों तक रही।

इसी युग में एक बार चीन के सम्राट ने जापानी शासक के पास एक राजदूत भेजा जिसमें जापान के राज्य को 'दाई-नी-पुंगकोक अर्थात् महान् सूर्योदय का राज्य कह कर सम्बोधित किया था। जापानी लोगों को यह नाम बहुत पसन्द आया और इसी के आधार पर उन्होंने अपने देश का नाम 'दाईनीपन' या सूर्योदय का देश रखा। इसी 'नीपन' शब्द से आधुनिक 'जापान' शब्द बना।

दो सौ वर्ष तक फूजीवारा-वंश के शासन के बाद जापान में 'दाईम्यो' नामक जमींदार लोगों ने अपनी छोटी-छोटी सेनाओं की मदद से बड़ी शक्ति प्राप्त कर ली और सन् ११५६ में फूजीवारा वंश को समाप्त करने के लिए इन लोगों ने सम्राट की बड़ी मदद की। इन्हीं दाईम्यों के एक वंश में योरीतोमा नामक एक अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्ति हुआ और इसने जापान की सारी शक्ति हथिया ली। सम्राट ने उसे सन् ११९२

में 'सी-ए-ताई-शोगुन' की उपाधि प्रदान की। यह उपाधि पुश्तैनी थी और इसके साथ शासन के पूरे अधिकार जुड़े हुए थे। अब जापान का असली शासक शोगुन ही होता था। इस प्रकार जापान में शोगुन-शाही कायम हुई जो ७ सौ वर्षों तक चलती रही। इन सात सौ वर्षों में कई वंश के शोगुन आये और उन्होंने शासन किया।

योरीतोमा ने राजधानी 'क्योटो' के विलासितापूर्ण जीवन से घबराकर कामाकुरा नामक स्थान में अपनी सैनिक राजधानी बनाई जो करीब डेढ़ सौ वर्षों तक रही। इस युग में जापान की सर्वतोमुखी उन्नति हुई।

कामाकुरा शोगुन शाही के बाद सन् १३१८ में अशीकागा शोगुन-शाही का शासन जापान में प्रारंभ हुआ जो २३५ वर्षों तक चलता रहा। इसी समय जापान में संघर्ष और गृहयुद्ध का दौर दौरा प्रारंभ हो गया और जापान में अशान्ति पैदा हो गई। इस अशान्ति को मिटाने में जापान के तीन आदमियों ने, जिनके नाम हिदेयोशी, तोकूगावा, और नोरबूनागा था। इनमें से 'हिदेयोशी' ने बड़ा काम किया और इन लोगों ने जापान को एक सूत्र में बाँध दिया। इनमें से दूसरा व्यक्ति "तोकूगावा आयेयासू" सन् १६०३ में जापान का 'शोगुन' बना और इस तरह 'तोकूगावा शोगुनशाही' नामक तीसरी शोगुनशाही जापान में कायम हुई जो ढाई सौ वर्षों तक चलती रही।

इसी बीच एशिया के अन्य देशों की तरह जापान में भी योरोप के लोगों का प्रवाह आना शुरू हुआ। ईसाई-धर्म का प्रचार भी यहाँ पर सन् १५४६ से 'सेंट फ्रांसिस जेवियर' ने करना प्रारंभ किया, मगर इन विदेशियों की चालाकी को जापानियों ने बहुत जल्दी महसूस कर लिया और सन् १५८७ में एक राजाज्ञा निकाल कर एलान किया गया कि जो ईसाई धर्मोपदेशक २० दिन के अन्दर जापान से बाहर न चला जायगा, उसे मौत की सजा दी जायगी, हालां कि यह आज्ञा विदेशी व्यापारियों के खिलाफ नहीं थी।

मगर इसके बाद विदेशियों से खतरा समझकर जापान ने अपनी पूरी दरवाजाबन्दी कर दी और इस दरवाजा बन्दी को इस खूबी के साथ निभाया कि अंग्रेज, स्पेन और पुर्तगाली व्यापारियों ने वहाँ पर जाना बन्द कर दिया। सन् १६३६ में इस दरवाजेबन्दी पर और भी मुहर लगा दी गई और जापान के लोगों की भी विदेश यात्रा एक दम से बन्द कर दी गई और जो जापानी विदेश में चले गये थे, उन्हें वापस आने से मना कर दिया गया। इस प्रकार दो सौ वर्षों से ज्यादा समय तक जापान का दुनिया से, यहाँ तक कि अपने पड़ोसी चीन और कोरिया से भी कोई सम्बन्ध नहीं रहा और इस बुद्धिमानी से जापान विदेशी साम्राज्यवादियों के उस खतरे से बिलकुल बच गया, जिसमें सारे एशिया के राष्ट्र बड़ी बुरी तरह से फँस चुके थे। सन् १८५३ में उसने अपने दरवाजे और खिड़कियों को खोला और तेजी के साथ यूरोपियन राष्ट्रों की घुड़दौड़ में शामिल हो गया और उन्हीं की राजनैतिक चालों से उन्हीं को मात दे दिया।

सन् १८५३ में एक अमेरिकन जहाजी बेड़ा अमेरीका के राष्ट्रपति का पत्र लेकर जापान आया। इसी समय जापान के लोगों ने पहले पहल भाफ से चलने वाले जहाजों को देखा। अमेरिका की प्रार्थना पर शोगुन ने जापान के दो बन्दरगाह खोलना मंजूर कर लिया। इससे जापान में शोगुन के के खिलाफ बड़ा असन्तोष फैल गया, और सन् १८६७ ई० में ७०० वर्षों से चली आने वाली शोगुन शाही का हमेशा के लिए अन्त हो गया।

इसी समय नये सम्राट ने अपने वास्तविक अधिकारों को फिर से प्राप्त किया। केवल १४ वर्ष की उम्र में "मुत्शी-हितो" नामक सम्राट जापान की गद्दी पर बैठा और सन् १९१२ ई० तक ४५ वर्ष इसने राज्य किया। जापान में यह युग 'मेयीजी' याने ज्ञानवान शासन का युग कहलाता है। ४५ वर्ष की इस पीढ़ी में जापान ने जिस तेजी से अपनी सामरिक और औद्योगिक उन्नति की, वह अभी तक के समग्र मानव-इतिहास में अभूतपूर्व थी। इसी युग में जापान एक महान औद्योगिक देश बन गया। उन्नति के सभी चिन्ह उसमें मौजूद थे। उद्योग-धन्धों में तो वह यूरोप के सभी देशों से आगे बढ़ गया। उसकी आबादी बड़ी तेजी से बढ़ने लगी। उसके जहाज दुनियाँ का चक्कर लगाने लगे। पुरानी सामन्ती दाईम्यो-प्रथा उठा दी गई। सम्राट की राजधानी क्योटो से उठाकर 'टोकियो' में लाई गई। एक नये शासन-विधान की घोषणा की गई। आधुनिक ढंग की जल और थल-सेना तैयार की

गई। शिक्षा, कानून, उद्योग इत्यादि प्रत्येक क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये गये। विदेशों से विशेषज्ञ बुलवाये गये। तथा जापानी विद्यार्थियों को वैज्ञानिक और औद्योगिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए विदेशों में भेजा गया।

इस प्रकार जापान तेजी के साथ आगे बढ़ने लगा। एक ओर उसका औद्योगिक उत्पादन आसमान की सीमा को छूने लगा। दूसरी ओर सुसंगठित स्थल और जल सेना की शक्ति से वह एक शक्तिशाली राष्ट्र बन गया। वहाँ की जन-संख्या बड़ी तेजी के साथ बढ़ने लगी। इस बढ़ती हुई जन-संख्या के लिए उसने अपने साम्राज्य को विस्तृत करने का इरादा किया और चीन तथा कोरिया पर उसने आक्रमण करने की योजना बनायी।

सन् १८८२ में जापान ने एक छोटे से बहाने को लेकर कोरिया पर हमला कर दिया और कोरिया को जापानी व्यापार के लिए अपना बन्दरगाह खोलना पड़ा। मगर जापान इतने से ही सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसकी साम्राज्य-लिप्सा ने उसको सन् १८९४ में चीन पर हमला करने को प्रेरित किया और अपनी सुसंगठित सेनाओं के बल पर उसने चीन को ऐसी करारी हार दी कि सारे संसार में तहलका मच गया।

इस विजय के फलस्वरूप मंचूरिया, पोर्ट-आर्थर, फॉरमूसा इत्यादि चीन के कई टापू जापान के हाथ आये और चीन के द्वारा कोरिया को स्वाधीन घोषित करना पड़ा।

इस विजय से जापान का हौसला बहुत बढ़ गया और उसने रूस के बढ़ते हुए प्रभाव को घटाने के लिए सन् १९०४ में रूस के विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दीं। जापान इसके लिए बिलकुल तैयार था। डेढ़ साल तक यह लड़ाई बड़े जोरों से चलती रही और सारा संसार जल और स्थल दोनों क्षेत्रों में, इस छोटे से राष्ट्र की गतिविधियों को बड़े आश्चर्य के साथ देखता रहा। रूस ने जापान को पराजित करने के लिए एक बहुत बड़ा जंगी जहाजों का बेड़ा लंबे समुद्री रास्ते से सुदूर पूर्व को भेजा। आधी दुनियाँ को पार करके जब यह जबर्दस्त बेड़ा जापान के समुद्र में पहुँचा तो वहाँ जापान और कोरिया के बीच के तंग समुद्री रास्ते में सारे बेड़े को जल-सेना नायक सहित जापानियों ने डुबो दिया। इस प्रकार इस युद्ध में भी जापान को भारी विजय मिली और सितम्बर सन् १९०५ में 'पोर्ट्स-माउथ' की सन्धि के साथ रूस जापान की लड़ाई का अन्त हुआ। इस सन्धि के अनुसार जापान को पोर्ट-आर्थर और लाओ-तुंग प्राय द्वीप फिर से मिल गये जो चीन के युद्ध के बाद उसे वापस करने पड़े थे। रूस ने जो रेल मार्ग मंचूरिया में बनाया था, उसका भी एक बड़ा हिस्सा जापान को मिल गया। इस प्रकार इस छोटे राष्ट्र की शक्ति दिन-प्रति-दिन बढ़ती गई और कोरिया तथा मंचूरिया में इसके पाँव मजबूती से जम गये। कुछ ही दिनों के बाद कोरिया पर कब्जा करके उसे जापानी सम्राज्य का एक हिस्सा बना लिया गया।

जब प्रथम महायुद्ध शुरू हुआ तो जापान तुरन्त मित्र-राष्ट्रों के साथ शामिल हो गया और उसने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी और इस अवधि में उसने चीन के अन्दर अपने कदम बढ़ाना शुरू किया। उसने क्याऊ-चाऊ पर कब्जा कर लिया और शांगतुंग प्रान्त की ओर बढ़ने लगा। जब चीन ने इसका विरोध किया तो जापान ने अपने-विरोध पत्र में चीन को दबाने के लिए अपनी २१ माँगें पेश कीं। इससे चीनी जनता में बड़ी हलचल मच गई।

युद्ध समाप्त होने के पश्चात् मित्र शक्तियों ने चीन का 'शानतुंग' प्रान्त जापान को दिलवा दिया, मगर इससे चीनी जनता में जापान के प्रति भयंकर विद्रोह उत्पन्न हो गया। परिणाम स्वरूप सन् १९२३ के वाशिंगटन सम्मेलन में जापान ने शानतुंग प्रान्त चीन को वापस देना मंजूर कर लिया।

मगर इसके बाद भी उसकी लालसा-वृत्ति कम न हुई और सन् १९३१ में मंचूरिया पर उसने खुल्लम खुल्ला आक्रमण-नीति को अपनाया और जनवरी सन् १९३२ में जापानी सेना शंघाई के निकट चीन की भूमि पर एकदम उतर पड़ी और वहाँ पर ऐसा वीभत्स हत्याकांड मचाया कि सारा संसार आतंकित हो गया। मगर इसी समय 'शंघाई' के क्षेत्र में उन्नीसवीं कूच-मार्ग-सेना के नाम से चीनियों की एक नवीन सेना प्रकट हुई, जिसने जापानियों के साथ ऐसा वीरतापूर्ण लोहा लिया कि जापानी आश्चर्य

चकित हो गये। यह १६वीं कूच मार्ग सेना इतिहास में प्रसिद्ध हो गई और उसने जापान के सारे मंसूबों पर पानी फेर दिया। अतः जापान को शंधाई से हटना पड़ा। तब जापान ने मंचूरिया की तरफ ज्यादा ध्यान दिया और वहाँ पर उसने 'मंचू-कूओं' नाम से एक कठपुतली सरकार कायम कर दी।

इसके पश्चात् सन् १६३२ ई० की पहली जनवरी के दिन जापानी सेना एका-एक चीन की असली भूमि पर जा उतरी और उसने 'शांग-हाइ-क्वान' नगर पर आक्रमण कर दिया।

इस अचानक आक्रमण से सारे संसार में खलबली मच गई। राष्ट्रसंघ में जापान के विरुद्ध एक प्रस्ताव किया गया। जापान ने इसकी बिल्कुल परवाह नहीं की। उसने राष्ट्रसंघ से इस्तीफा दे दिया और उसकी सेनाएँ 'पेईपिंग' की ओर बढ़ती गयीं। मई सन् १६३३ में जापानी सेना पेईपिंग के दरवाजे के पास पहुँच गई। तब चीन और जापान की ओर से विराम-सन्धि की घोषणा हुई। इस प्रकार जापान ने अपने पंजे चीन में मजबूती से जमा लिए।

दूसरे महा युद्ध के समय जापान जर्मनी का साथी हो गया और सन् १६४२ में मित्र-राष्ट्रों के विरुद्ध घोषणा करते ही उसकी सेनाओं ने आनन-फानन में बर्मा, सिंगापुर इंडोनेशिया और इंडोचाइना पर कब्जा कर लिया। उसकी, जलसेना ने हवाई द्वीप पर खड़े हुए अमेरिकन बेड़े को समूल नष्ट कर दिया। सिंगापुर में अंग्रेजों के सुप्रसिद्ध जहाज 'प्रिंस-आफ-वेल्स और उसी की बराबरी के एक दूसरे जहाज को डुबो दिया। जापान की इन आकस्मिक विजयों से युद्ध का भविष्य अत्यन्त खतरनाक हो गया। मगर इसी समय अमेरिका में 'परमाणु बम' का आविष्कार हुआ और उसका पहला प्रयोग जापान के 'नागासाकी' और 'हिरोशिमा' नामक शहरों पर किया गया। परमाणु बम के इन प्रहारों से ये दोनों शहर एकदम ध्वस्त हो गये। इनमें बसने वाले सारे नागरिक या तो मारे गये या लूले-लँगड़े हो गये। सारी जमीनें बंजर हो गयीं।

सर्वनाश की इस लीला को देख कर जापान के छक्के छूट गये। उसकी जीत हार में बदल गयी। उधर पश्चिमी रणक्षेत्र में जर्मनी की सेनाओं को रूस ने ढकेलना शुरू किया और इस प्रकार दूसरा महायुद्ध मित्र राष्ट्रों की विजय के रूप में समाप्त हुआ और इस छोटे से महाभिमानी राष्ट्र का गर्व दलित हुआ।

दक्षिण पूर्वी एशिया

इण्डोनेशिया, इण्डोचायना, इत्यादि देश दक्षिण पूर्वी एशिया के अन्तर्गत है।

जिस युग में चीन के अन्दर चीनी संस्कृतिका और मध्य-एशिया में ईरानी संस्कृति का पुरजोर विकास हो रहा था उस समय दक्षिण पूर्वी एशिया में भारतीय संस्कृति का बोलबाला हो रहा था। यद्यपि इसके पहले इस प्रदेश पर चीनी सभ्यता का प्रभुत्व था। कई भारतीय राजाओं ने वहाँ पर अपने उपनिवेश स्थापित कर अपना राज्य स्थापित किया था।

ईसा की दूसरी शताब्दी से पूर्व अनाम के दक्षिण में "चम्पा" नामक उपनिवेश की स्थापना हो चुकी थी और उसके राजा श्रीमार ने अनाम और तोंकिंग को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया था। राजा श्रीमार और उसके उत्तराधिकारी भारतीय थे और उनकी भाषा संस्कृत थी, इनके शिलालेख दक्षिणी अनाम में प्राप्त हुए हैं। चम्पा के राजाओं में भद्रवर्मन का नाम बहुत प्रसिद्ध है। इसने भद्रेश्वर शिवके एक विशाल मन्दिर का निर्माण करवाया जो कुछ ही समय में सारे दक्षिण पूर्वी एशिया में प्रसिद्ध हो गया था। ईसा की तीसरी सदी में अनाम में पाण्डुरंग नामक शहर बड़ा सुन्दर और उन्नति शील था। इसके दो सौ वर्षों बाद कम्बोज नामक विशालनगर का भी निर्माण हुआ।

नवीं सदी में कम्बोज के राजा जयवर्मन ने अनाम के तीनों राज्यों को मिलाकर एक छोटे साम्राज्य का सूत्रपात किया। इसने अपनी राजधानी के लिए अङ्कौर नामक सुन्दर और कला पूर्ण नगर का निर्माण प्रारम्भ किया जिसे उसके पुत्र यशोवर्मन ने पूरा किया।

अङ्कौर थाम का राजनगर सारे दक्षिण पूर्व में शानदार अङ्कौर के नाम से प्रसिद्ध था। इसकी आबादी दस लाख से ऊपर थी। इस शहर के पास ही "अङ्कौर-वट" का अद्भुत मन्दिर था जिसकी स्थापत्य कला बड़ी सुन्दर थी।

चौदहवीं सदी में अनाम के लोगों ने अपनी एक स्वतंत्र लिपि का आविष्कार किया जिसके अक्षर चीनी लिपि के अक्षरों से भिन्न थे। इसी लिपि में अनामी लेखकों ने अपने साहित्य का निर्माण किया। पहले इस क्षेत्र में शैव मत का प्रचार था उसके बाद बौद्ध प्रचारकों के प्रयत्न से यहाँ बौद्ध मत का प्राबल्य हो गया।

इसी प्रकार इण्डोनेशिया के जावाद्वीप में ईसा की दूसरी सदी में राजा देववर्मन राज्य करता था। ईसाकी चौथी शताब्दी में यहाँ पर श्री विजय नामक भारतीय उपनिवेश की स्थापना हो चुकी थी। श्री विजय में कई प्रतापी राजा हुए। जिन्होंने सारे इण्डोनेशिया और मलाया में अपने साम्राज्य की स्थापना की थी।

इन उपनिवेशों में उस समय प्रधान रूप से शैव धर्म का प्रचार था। मगर कश्मीर के राजपुत्र गुणवर्मन ने इस क्षेत्र में आकर बौद्ध धर्म का प्रचार किया। इस राजपुत्र की वाणी में इतना प्रभाव था कि उससे प्रभावित होकर दक्षिण पूर्व एशिया के बहुत से द्वीपों ने बौद्ध धर्म अङ्गीकार कर लिया। उसकी प्रतिभा को देखकर चीन के सम्राट ने भी उसको अपने दरबार में आमन्त्रित किया।

पन्द्रहवीं सदी में दक्षिण पूर्वी एशिया में इस्लाम का प्रवेश हुआ। उस समय यहाँ के पौराणिक और बौद्ध धर्मों का बहुत ह्रास हो चुका था। इस्लाम का प्रवेश बड़ी धूमधाम और ताजगी के साथ हुआ, इस लिए यहाँ के अधिकांश द्वीपों ने इस्लाम को ग्रहण कर लिया। केवल "बाली" द्वीप ही ऐसा बच गया जहाँ इस्लाम का प्रवेश न हो सका।

१७ वी सदी के प्रारम्भ में इंडोनेशिया में हालैंड वालों का प्रभुत्व हो गया और एशिया के अन्य देशों की तरह यह देश भी पश्चिमी शक्तियों के साम्राज्यवादी शोषण-क्षेत्र में आ गया।

इसी प्रकार इंडोचाइना फ्रांस के साम्राज्यवादी शासन में आ गया और इस क्षेत्रमें भी उस अन्धकार युग का प्रारम्भ हो गया जिसका प्रारम्भ जापान को छोड़कर समूचे एशिया में प्रारम्भ हो चुका था।

(आगे का पूरा इतिहास दूसरे खण्ड में इण्डोनेशिया और इण्डोचायना खण्ड के अन्तर्गत देखें।

एशिया में अन्धकार युग

मानवीय इतिहास के अन्तर्गत १६वीं शताब्दी अपना विशेष महत्व रखती है। इस शताब्दी के अन्तर्गत योरोप के अन्दर 'रेनैंसा' या पुनर्जागरण का युग प्रारंभ होता है, जिसके एक ही झोंके से सारा यूरोप अपनी मोह-निद्रा को छोड़कर जाग्रत हो उठता है। उसके आचार-विचार, रहन-सहन, साहित्य और कला तथा जीवन के हर एक क्षेत्र में तेजी के साथ क्रान्तिकारी परिवर्तन होता है। धर्म-संस्था के बन्धनों को तोड़कर आजादी के वातावरण में वह साँस लेने लगता है और उसकी क्रियाशक्ति तथा महत्वाकांक्षाएँ दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगती हैं।

योरोप के भिन्न-भिन्न देशों के जहाज अज्ञात दुनिया के स्थानों का पता लगाने के लिए चल पड़ते हैं। स्पेन, पुर्तगाल, फ्रेंच, डच और अंग्रेजों के जहाज अमेरिका, भारतवर्ष, दक्षिण पूर्वी एशिया और चीन के किनारों पर पहुँचकर व्यापार करने के बहाने से अपने साम्राज्यवादी पंजों को गड़ाने का प्रयत्न करते हैं।

इस प्रकार एक ओर जहाँ पश्चिम में पुनर्जागरण का सूर्य उदय होता है, वहाँ दूसरी ओर पूर्व अर्थात् एशिया का सूर्य अस्ताचल गामी होता है। हजारों बरस की लंबी संस्कृति, सत्ता और वैभव का उपयोग करते-करते यहाँ की जनता और यहाँ के शासक अकर्मण्य, आलसी, विलासी और ऐशो-आराम में तल्लीन हो जाते हैं। चीन का विशाल और शक्तिशाली देश अफीम के नशे में मस्त होकर अपने होश हवास खो बैठता है। भारतवर्ष का मुगल साम्राज्य—

'हो आध सेर कबाब मुझको, एक सेर शराब हो—
सल्तनत-नूरेजहाँ की खूब हो कि खराब हो'

के झोंके में आकर सर टामस रो को विदेशी व्यापार की स्थापना की इजाजत दे देता है।

मध्य एशिया के मुसलिम शासकों की भी ऐशो-आराम में लिप्त हो जाने से, ऐसी हालत हों जाती है।

उधर यूरोप में क्रमशः विज्ञान भी बड़ी तेजी से अपनी उन्नति करता है। धीरे-धीरे वहाँ मशीनों का आविष्कार होने लगता है और वहाँ की जल-शक्ति का विकास भी

तेजी से होता है और इसके बल पर ये पश्चिमी शक्तियाँ धीरे धीरे जापान को छोड़कर सारे एशिया, अफ्रिका और अमेरिका में अपने पंजे मजबूती से जमाने में सफल होती है।

एशिया के अन्तर्गत इसके पहले भी कई अन्धकार युग आ चुके हूँ। चंगेज खाँ का युग इसी अन्धकार युग का एक प्रतीक था। सन् १२१६ ई० में उसका भयंकर आक्रमण शुरू हुआ जो बड़े भारी बेलन की तरह शहरों और आदमियों को बेरहमी के साथ कुचलता हुआ चला आ रहा था। इस आक्रमण से ख्वारेजम का साम्राज्य धूल-धानो हो गया। बुखारा का बड़ा शहर जिसमें बहुत से महल और दस लाख से ज्यादा आबादी थी—जलाकर राख कर दिया गया। राजधानी 'समरकन्द' बरबाद कर दी गई। उसकी दस लाख की आबादी में से सिर्फ पचास हजार आदमी बचे। हिरात, बलख और दूसरे अनेक गुलजार शहर नष्ट कर दिये गये। लाखों आदमी मार डाले गये। जो संस्कृति चिन्ह, कलाएँ और दस्तकारियाँ वर्षों से मध्य एशिया में फूल-फल रही थीं, नष्ट कर दी गई। ईरान और मध्य एशिया में सभ्य जीवन का खातमा हो गया।

इसके पश्चात् दूसरा आक्रमण हलाकू का और तीसरा आक्रमण तैमूर लंग का हुआ। इन आक्रमणों में भी एशिया ने सर्वनाश की विभीषिका देखी।

फिर भी इन आक्रमणों के बाद उसकी जीवनी-शक्ति जागृत थी और उस जीवनी शक्ति के बल पर उसने इन गहरे घावों को भी भर लिया।

मगर १७वीं शताब्दी के साथ साथ जो महान अन्धकार युग एशिया के इस महाद्वीप पर छाया, उसने सबसे पहले यहाँ की जीवनी शक्ति को हरण कर लिया। विदेशी शक्तियों ने यहाँ की शक्तियों को आपस में लड़ा-भिड़ा कर समाप्त कर दिया। एक ओर अंग्रेजों ने भारतवर्ष, अफ्रिका और चीन में अपने पंजे जमाये, उधर मध्य एशिया में रूस तेजी से बढ़ता हुआ प्रशान्त महासागर तक और चीन तक तो पहुँच ही चुका था। अब वह मध्य एशिया की छोटी-छोटी रियासतों को कुचलता हुआ ठेठ अफगानिस्तान की सीमा तक आ गया था। दक्षिण-पूर्वी एशिया में फ्रेंच और डच शक्तियाँ अपने पैर फैलाती चली जा रही थीं। यूरोप निश्चित रूप से दुनिया के मालिक के रूप में प्रकट हो रहा था।

भारतवर्ष में औरंगजेब की कठोर नीति के कारण मुगल सत्ता क्षीण हो रही थी और मरहठा शक्ति का उदय हो रहा था। मगर अंग्रेज शक्ति ने इन दोनों शक्तियों को आपस में लड़ा कर क्रमशः अपनी सार्वभौम सत्ता को स्थापित करने में सफलता पाई।

इस प्रकार १७वीं सदी से १९वीं सदी के मध्य तक जापान को छोड़कर सारा एशिया विदेशी शक्तियों के पंजे में आ गया। चीन कहने को स्वतंत्र रहा मगर वास्तव में वह विदेशी शक्तियों की कठपुतली बन गया।

सिर्फ एशिया में जापान का छोटा-सा टुकड़ा ही ऐसा बचा जो इन विदेशी शक्तियों के पंजे में नहीं फँसा। उसने इन विदेशी शक्तियों को जब संसार में पाँव पसारते देखा तो सन् १६३४ में बुद्धिमानी पूर्वक अपने देश का दरवाजा समस्त विदेशियों के लिए बन्द कर दिया और ढाई सौ वर्षों तक उसने अपने आपको उसने बिल्कुल बन्द रखा। इस नीति के कारण वह उस महान् विपत्ति से बच गया जो एक बड़े अजगर की तरह सारे एशिया, अफ्रिका और अमेरिका को निगलने का प्रयत्न कर रही थी।

१९वीं सदी के मध्य में जापान ने अपना दरवाजा खोला और उसके साथ ही यूरोप के अनुकरण पर उसने अपनी भौतिक और यांत्रिक उन्नति करना प्रारंभ किया और बहुत थोड़े समय में उसने अपनी इतनी उन्नति कर ली कि २० सदी के प्रारम्भ में उसने रूस के समान महान देश को लड़ाई में पछाड़ दिया।

यद्यपि विदेशी शक्तियों ने इस महाद्वीप को मजबूती से अपने पंजे में कस लिया था, फिर भी इस महाद्वीप की जनता के मन में इन शक्तियों के प्रति जबर्दस्त घृणा के भाव विद्यमान थे और वह इनके पंजे से छूटने के लिए छटपटा रही थी। इसी के परिणाम स्वरूप जगह जगह इन शक्तियों के खिलाफ आन्दोलन प्रारंभ हुए और १९वीं सदी के अन्त तक चीन, भारत, दक्षिण-पश्चिमी एशिया और मध्य एशिया में इन लोगों के विरुद्ध विद्रोही संगठन स्थापित होने लगे। चीन में सनयात सेन के नेतृत्व में

कोमिंन-ताँग की स्थापना हुई। भारतवर्ष में 'इंडियन नेशनल कांग्रेस कायम की गई। दक्षिण-पूर्वी एशिया के इण्डोचाइना में 'हो-ची-मिन' के नेतृत्व में विद्रोही आन्दोलन का प्रारंभ हुआ। इसी प्रकार मध्य एशिया में भी विद्रोही आन्दोलन प्रारम्भ हुए।

अन्धकार युग का अन्त

दूसरे महायुद्ध के पश्चात् सारे संसार में स्वाधीनता की वायु का एक ऐसा झोंका आया जिसने साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद की इन भारी और मजबूत जंजीरों को जो अनेक सदियों से करोड़ों लोगों के गले में फँसी हुई थी एक ही झोंके में तोड़कर नष्ट कर दिया। देखते-देखते सारा एशिया महाद्वीप आजादी के वातावरण में साँस लेने लगा। चीन में कम्यूनिस्ट सरकार की स्थापना हुई—भारतवर्ष में कांग्रेस की सरकार बनी और इसी प्रकार समूचे एशिया में नवीन और स्वाधीन सरकारों की स्थापना हो गई।

ऐ

ऐईमीज (आईमीज)

प्राचीन मिश्र के अठारहवें राजवंश का संस्थापक राजा जिसका समय ईसा से १५५० वर्ष पूर्व माना जाता है।

आइमीज ने गद्दी पर बैठते ही न्यूबिया पर चढ़ाई करके उसे मिश्र में मिला लिया। इस राजा ने अपने राज्य में जमींदारों का दमन कर उनकी भूमि को राज्य में मिला लिया और सामन्त शाही प्रथा का अन्त कर दिया। इसके पश्चात् इसने पैलेस्टाइन और सीरिया पर आक्रमण किया और सारे देश में सैनिक-शिक्षा का प्रचार कर दिया इसके जमाने में मन्दिरों का निर्माण भी बहुत हुआ और पुजारियों के अधिकार भी बहुत बढ़े।

ऐके गारे (Jose Echegaray)

सन् १९०४ में नोवल पुरस्कार का अर्द्धांश प्राप्त करने वाला स्पेन का प्रसिद्ध साहित्यकार जिसका जन्म सन् १८२३ में हुआ।

ऐकेगारे शुरू-शुरू में गणित-शास्त्र और राजनीति में विशेष दिलचस्पी रखते थे। इसी कारण स्पेनी प्रजातंत्र के समय ये कृषि, शिल्प और वाणिज्य के मंत्री भी बनाये गये थे।

सन् १८७७ में इन्होंने मूर्खता और साधुता पर एक नाटक लिखा जिससे इनकी काफी प्रसिद्धि हुई और इस नाटक के अंग्रेजी तथा और भी एक दो भाषाओं में अनुवाद हुए। इसका एक अनुवाद "लायब्रेरी ऑफ़ दी वर्ल्डस बेस्ट लिटरेचर" ने भी प्रकाशित किया। इसके पश्चात् "ग्रेट गेलिवोटो" और "दी सन ऑफ़ डानज्जआन" नामक इनकी दो रचनाएँ सन् १८८१ और सन् १८९२ में प्रकाशित हुई। इस बीच इन्होंने "हेराल्ड दी नार्मन" तथा "लिसेण्डर दी बैंडिट" नामक दो ऐतिहासिक नाटक भी लिखे।

७२ वर्ष की अवस्था में सन् १९०४ में एकेगारे को नोवल प्राइज प्राप्त हुआ। जिस समय उन्हें यह पुरस्कार मिला स्वयं स्पेन सम्राट ने मेड्रिड में सभा करके अपने हाथ से उन्हें यह पुरस्कार प्रदान किया और उस समय के प्रसिद्ध स्पेनी साहित्यकार गालडोज, वैलेरा, पालायो इत्यादि ने जो कि पहले इनकी रचनाओं के कठोर आलोचक थे इनकी बड़ी प्रशंसा की। फ्रांस के लेखकों ने इनको दूसरा विक्टर-ह्यूगो बतलाया। सन् १९१६ की १४ सितम्बर को इस प्रसिद्ध साहित्यकार का देहांत हो गया।

ऐक्रापॉलिस

प्राचीन यूनान के एथेन्स नगर का एक गौरवपूर्ण स्थान। जहाँ के मन्दिर में यूनानी भवन-निर्माण-कला का पूर्ण उत्कर्ष देखने को मिलता है। इस प्रसिद्ध मन्दिर के निर्माण का समय पैरेक्लीज के शासन के समय के आसपास माना जाता है।

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक यूनान की यह प्राचीन कला सामग्री इतिहासकारों की निगाह से बची रही। इसी समय जेंटी के देवालय की कुछ ग्रीक मूर्तियों ने बवेरिया के नरेश का ध्यान आकर्षित किया जिन्हें खरीद कर उन्होने म्यूनिख में बने अपने संग्रहालय में रख दिया।

इसके पश्चात् कान्स्टेटिनोपल में ब्रिटेन के राजदूत लार्ड एल्गिन ने एक्रापॉलिस और पार्थेनन के द्वारपट्ट

के बीच की महत्वपूर्ण मूर्तियों को लेकर लन्दन के म्यूजियम में सुरक्षित रूप से रखवा दीं।

इन मूर्तियों के लन्दन पहुँचते ही समस्त यूरोप के पुरातत्ववेत्ताओं का ध्यान इधर आकर्षित हुआ और फ्रांस, जर्मनी, ब्रिटेन, अमेरिका इत्यादि कई देशों के पुरातत्ववेत्ताओं ने यूनान के भिन्न-भिन्न स्थानों पर पहुँच कर अपना शोधकार्य प्रारम्भ किया। इस शोधकार्य में प्राचीन यूनानी कला की अनेक आश्चर्यजनक वस्तुएँ प्राप्त हुईं। इनमें ग्रीस के प्राचीन मन्दिरों की कला अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

इन मन्दिरों की स्थापत्य कला में प्रमुख रूप से तीन प्रकार की शैलियाँ पाई जाती हैं जिन्हें (२) डोरिक शैली (२) आयोनिक शैली और (३) कोरियन्थन शैली कहा जाता है।

इनमें डोरिक शैली बहुत सादी और कठोर भावों से युक्त होती है इस शैली को विशेषकर ग्रीस के पश्चिमी और मध्यवर्त्ती भाग के लोगों ने अपनाई थी। ओलम्पिया, सिसली, डेल्फी और दक्षिणी इटली के मन्दिर स्थापत्य-कला की इसी शैली के अनुसार बने हुए हैं।

दूसरी आयोनिक शैली में अलंकार और सजावट की मात्रा अधिक होती थी। इस शैली का प्राधान्य इफीसस, सारीडस, सेमास, मिलीरस और हेलीकारनेसस के मन्दिरों में पाया जाता है।

तीसरी शैली कोरियन्थन में कोमल भावनाओं से पूर्ण सजावट और स्त्री-सुलभ रुचि का प्रदर्शन विशेष रूप से हुआ है।

ऐक्रापालिस और पार्थेनन के मन्दिरों में डोरियन और आयोनियन शैली का समिश्रण बड़े सुन्दर ढंग से हुआ है।

ऐक्रापालिस में एथेन्स का नागरिक गौरव अपनी उच्चता की चरम सीमा पर पहुँचा था। क्योंकि ऐक्रापालिस में अभिव्यक्ति की एक विशेष धारा की पूर्णता, प्राचीन जगत् की कला की अन्तिम पराकाष्ठा तथा यूनानी भावना की अभिव्यक्ति का एक विशेष मूर्त्त उदाहरण दिखलाई पड़ता है। इसी कारण मिश्री राजवंश की स्थापत्य कला की प्रशंसा करने वाले इतिहासकारों को भी यूनानी स्थापत्य कला का गौरव स्वीकार करना पड़ा।

ऐक्रापालिस के "प्रोपाइलिया" का अग्रतोरण प्राचीन यूनान के स्थापत्य सम्बन्धी गौरव का एक महान् स्मारक है। यह एक देवालय का तोरणद्वार है जिसमें पार्थेनन जैसे महत्वपूर्ण मन्दिर के द्वार की तरह ही दो स्तम्भपंक्तियों के बीच आने जाने का प्रधान मार्ग बना हुआ है।

ऐकेडेमी

उच्च ज्ञान-संशोधक और प्रचारक संस्था, जिसमें उच्च साहित्य के निर्माण और ज्ञान के पठन-पाठन की व्यवस्था रहती है।

सबसे पहली ऐकेडेमी' सम्भवतः ईसवी सन से ३८६ वर्ष पूर्व यूनान के एथेन्स नगर में महान तत्वज्ञानी "अफलातून" या 'प्लेटो' के द्वारा स्थापित की गई थी। इसमें अफलातून के रिपब्लिक (Republic) नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ में दी हुई उच्च शिक्षा की रूप-रेखा के अनुसार विद्यार्थियों को गणित, ज्योतिष, तर्क, न्याय, नीति और प्रशासन की शिक्षा दी जाती थी। प्लेटो के पश्चात् इसवी सन् पूर्व ३०६ में प्रसिद्ध तत्ववेत्ता 'एपीक्युरियस' ने भी इसी प्रकार की शिक्षा-संस्था कायम की थी। इस संस्था में एपीक्युरियन सिद्धान्तों की शिक्षा दी जाती थी। एपीक्युरियस ने इस संस्था में दासों और स्त्रियों का प्रवेश भी प्रारम्भ कर दिया था।

इसी तरह की ऐकेडेमी का रूप अब्बासी खलीफा अल-मामून के जमाने में बगदाद में बेतुल-अल-हिकमा नामक एक शोध केन्द्र की स्थापना में देखने को मिलता है जिसमें विदेशी साहित्य का अरबी भाषा में अनुवाद किया जाता था। इसी शोध केन्द्र में इब्राहिम–अल–फजरी नामक एक अरबी विद्वान ने भारतीय साहित्य के गणित–ज्योतिष के एक ग्रन्थ का अनुवाद "अल-सिन्द-हिन्द" के नाम से किया, जिससे अरब ज्योतिष के मूलभूत सिद्धान्तों में ही एक क्रान्ति हो गई। इस ग्रन्थ के द्वारा भारतीय अंक-प्रणाली का भी अरब लोगों को पहले-पहल ज्ञान हुआ और अरबों के द्वारा यह अंक प्रणाली संसार में फैली।

इसी प्रकार की एक ज्ञान-संस्था या ऐकेडेमी "इलवां-अल-सफा" के नाम से ईसा की १० वीं शताब्दी में [illegible] और [illegible] में एक विश्व-कोष, शब्द-कोष तथा

महान पुरुषों के जीवन-चरित्र तैयार करने के लिए वहाँ के विद्वानों ने स्थापित की थी। इस संस्था का कार्य करीब पाँच सदियों तक चलता रहा।

इसी प्रकार की एक ज्ञान-संस्था की स्थापना २८ जनवरी सन् १९०२ को अमेरिका के वाशिंगटन नगर में कार्नेगी इन्स्टीट्यूशन नाम से हुई। इसके लिए अमेरिकन धन-कुबेर कार्नेगी ने दो करोड़ पचास लाख डालर दिये थे। इस संस्था का अध्यक्ष अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वानों में से चुना जाता है। साहित्य, विज्ञान, कलाकौशल इत्यादि अनेक क्षेत्रों में अनुसन्धान और अन्वेषण की गति को बढ़ाना इस संस्था मूल उद्देश्य है। इसी संस्था की ओर से कैलीफोर्नियाँ के विल्सन पर्वत के ऊपर ५८८६ फीट की ऊँचाई पर एक विशाल वेध-शाला की स्थापना की गई है। इस वेध शाला के द्वारा आकाश के ग्रहों की खोज के सम्बन्ध में समय-समय पर कई महत्वपूर्ण अनुसन्धान हुए हैं।

इसी प्रकार और भी कुछ विद्या-प्रेमी नरेशों-सम्राटों के समय में इस प्रकार की ज्ञान-शोधक संस्थाओं की स्थापना हुई थी और अब तो यह शब्द सारे संसार में प्रचलित हो गया है और संसार के प्रायः सभी उन्नत देशों में ज्ञान-विज्ञान, दर्शन, इतिहास सभी प्रकार के क्षेत्रों में ज्ञान की खोज करने लिए भिन्न-भिन्न एकेडेमियों की स्थापना हो चुकी है।

ऐगोर सिकोरस्की

हैलीकोप्टर वायुयान के प्रथम निर्माता, ऐगोर सिकोरस्की जिनका जन्म सन् १८८९ में कीव में हुआ था।

प्रथम हैलीकोप्टर के निर्माता इगोर सिकोरस्की थे। अपने पहले परीक्षण में सिकोरस्की ने एक ऐसे यन्त्र का निर्माण किया था, जो भूमि से उड़ान करने में असमर्थ रहा। इस पर सिकोरस्की ने अपना ध्यान वायुयानों, (परम्परागत विमानों) के सुधार में लगा दिया। सिकोरस्की ने ही उस पहली मोटर का निर्माण किया था, जिसके सहारे लुई ब्लेरियो ने पहले वायुयान द्वारा इंगलिश चैनल को पार किया था।

अपने छठें विमान में ७० मील प्रति घंटे की चाल से उड़ान कर सिकोरस्की ने संसार के तत्कालीन तेज चाल के रिकार्ड को तोड़ डाला था। बाद में उन्होंने चार इंजनों वाला वायुयान बनाया। इसमें उन्होंने पहली बार चालक के लिए एक सुरक्षित कक्ष बनाया।

रूसी क्रांति के बाद सिकोरस्की संयुक्त राज्य अमेरिका चले गए। वहाँ पर उन्होंने जो पहला विमान बनाया, वह पहली ही उड़ान में ध्वस्त हो गया। सदा की तरह इन दुर्घटनाओं से अविचलित रहने वाले सिकोरस्की ने तब ४ इंजन के वायुयान बनाए। उनके द्वारा निर्मित वायुयानों में बैठ कर यात्रियों ने पहली बार समुद्रों को पार किया।

सन् १९३८ में अपने वित्तीय सहायकों को यह विश्वास दिला कर कि हैलीकोप्टर जैसे उड्डयन यन्त्र को बड़े हवाई अड्डों की जरूरत नहीं है, सिकोरस्की ने हैलीकोप्टर के निर्माण में अपनी शक्ति केंद्रित की। इस समय हैलीकोप्टर एक उपयोगी तथा सामान्य प्रयोग में आने वाला विमान है। इसके द्वारा जो व्यावसायिक और सैनिक कार्य सम्भव है, वे किसी भी दूसरे उड्डयन यन्त्र से सम्भव नहीं है।

समुद्र के विस्तीर्ण क्षेत्रों में मृत्यु से संघर्ष कर रहे हजारों उड़ाकों को उन्होंने जीवनदान दिया है। हैलीकोप्टर 'उड़ने वाले एम्बुलैंस' सिद्ध हुए हैं। उन्होंने दुर्गम युद्ध क्षेत्रों से हजारों घायलों को बचा कर अस्पतालों तक पहुँचाया है। संयुक्त राज्य अमेरिका और यूरोप के सभी बड़े हवाई अड्डों से नगरों के केन्द्रों तक यात्रियों को लाने-ले जाने का कार्य ये हैलीकोप्टर करते हैं। वे होटलों तथा दूसरे मकानों की उन छतों पर ठिकाना बना लेते हैं, जहाँ से दूसरा कोई भी वायुयान उतर या चढ़ नहीं सकता। इनके माध्यम से माल की ढुलाई तथा यात्रियों का आवागमन सुविधाजनक हो गया है।

इस समय हैलीकोप्टर २०० मील प्रति घंटे की चाल से उड़ सकते हैं और उनकी गति निरन्तर बढ़ती ही जाती है।

एङ्गल्स (फ्रेडरिक ऐंगल्स)

कम्युनिस्ट सिद्धान्त के चार प्रमुख व्याख्याताओं में से दूसरे नंबर का महान व्याख्याता, जिसका जन्म जर्मनी में हुआ था और जो जीवन भर 'कार्लमार्क्स' के कन्धे से कन्धा मिलाकर अपने सिद्धान्तों का प्रचार करता रहा।

कम्युनिस्ट सिद्धान्त के व्याख्याताओं में चार व्यक्ति सबसे महान् माने जाते हैं। (१) कार्ल-मार्क्स (२) फ्रेडरिक-ऐंगल्स (३) लेनिन और (४) प्लेखानोव। इन चारों व्याख्याताओं में फ्रेडरिक ऐंगल्स कार्ल-मार्क्स का दाहिना हाथ था। जीवन भर उसने कार्ल-मार्क्स के साथ रहकर अपने सिद्धान्तों के प्रचार का कार्य किया। सबसे पहले ऐंगल्स की मुलाकात कार्लमार्क्स के साथ पेरिस में हुई और तभी से दोनों गहरे दोस्त और साथी हो गये। उनका सहयोग इतना गहरा था कि जो पुस्तकें उन्होंने प्रकाशित कीं, उनमें से ज्यादातर दोनों की सम्मिलित लिखी हुई थीं।

सन् १८४८ में फ्रेडरिक ऐंगल्स और कार्लमार्क्स ने 'कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो' या साम्यवादी घोषणा-पत्र के नाम से एक सम्मिलित घोषणापत्र प्रकाशित किया, जो सारे संसार में प्रसिद्ध हो गया। जिसमें इन लोगों ने उन विचारों की विवेचना की जो फ्रांस की राज्यक्रान्ति और सन् १८४८ के विद्रोह की जड़ में थे। उन्होंने बतलाया कि वे विचार न तो वास्तविक परिस्थितियों के लिए काफी थे और न उनसे मेल खाते थे। उन्होंने उस समय की स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृभाव की लोकतंत्रवादी पुकारों की आलोचना की और यह दिखाया कि जनता के लिए इनसे कोई लाभ नहीं हो सकता। इस घोषणा-पत्र का अन्त इन शब्दों के साथ होता है—

"संसार के मजदूरों! एक हो जाओ। तुम्हें खोना कुछ नहीं है, सिवाय अपनी गुलामी की जंजीरों के और पाने को तुम्हारे लिए संसार पड़ा हुआ है।"

फ्रेडरिक ऐंगल्स ने उपनिवेशवादियों के द्वारा उपनिवेशों पर किये जाने वाले अत्याचारों का पर्दाफाश करने के लिए भी एक सुन्दर लेख-माला लिखी थी जिसमें उपनिवेशवाद के वर्तमान और भविष्य का सजीव भाषा में वर्णन किया गया है और भी उसके कई उपयोगी और कम्युनिस्ट सिद्धान्तों के प्रतिपादन करने वाले प्रकाशन हो चुके हैं।

ऐंग्रेजा ऑगस्ट

फ्रान्स का एक प्रसिद्ध चित्रकार, जिसका जन्म सन् १७८० में और मृत्यु सन् १८६७ में हुई।

ऐंग्रेजा एक जन्मजात कलाकार था। सोलह वर्ष की उम्र से ही उसमें चित्रकारी कला का विकास होने लगा और केवल इक्कीस वर्ष की उम्र में उसका वह प्रसिद्ध चित्र तैयार हो गया जिस पर उस समय का सर्वोच्च फ्रेंच पुरस्कार "ग्रां प्रीस" उसे प्राप्त हुआ। यह चित्र "एकीलीज के दरबार में आगामेम्नन का राजदूत" इस घटना पर आधारित था। यह एक विशिष्ट प्रतिभा का कलाकार था और इसी कारण वह फ्रेंच इन्स्टीट्यूट का सदस्य और रोम के "इकोल द फ्रांस" का निर्देशक बनाया गया। ८७ वर्ष की आयु में इस महान् कलाकार का देहान्त हुआ। इसकी कला-कृतियों में "जोन ऑफ आर्क" "ग्रेण्ड ओडालिक्स" इत्यादि कृतियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं।

ऐंग्लिकन-चर्च

ईसाई धर्म का एक महत्वपूर्ण सम्प्रदाय। जिसकी स्थापना इंग्लैण्ड में हुई और जो रोमनकैथोलिक और प्रोटेस्टण्ट इन दोनों शाखाओं के मध्यवर्ती सिद्धान्तों का अनुगमन करता है।

ईसा की सोलहवीं सदी में जब जर्मनी में मार्टिनलूथर ने प्रोटेस्टण्ट सम्प्रदाय की स्थापना की उस समय सभी दूर से उसका प्रबल विरोध और संघर्ष होने लगा।

उस समय इंग्लैण्ड की गद्दी पर हेनरी अष्टम आसीन था। उसने भी प्रोटेस्टण्ट धर्म के विरुद्ध एक पुस्तक लिखकर रोमन चर्च के पोप के ईश्वर-प्रदत्त अधिकारों का समर्थन किया। मगर जब हेनरी अष्टम ने अपनी पहली पत्नी कैथेराइन को तलाक देकर एनी बोलेन नामक दूसरी लड़की से विवाह करने की व्यवस्था पोप से माँगी और पोप ने वह व्यवस्था देने से इन्कार किया तो उसने पोप से

क्रुद्ध होकर इंग्लैण्ड की पार्लमेण्ट से "ऐक्ट ऑफ सुप्रीमेसी" सन् १५३१ में पास करवाकर इंग्लैण्ड चर्च पर से पोप के अधिकारों को करीब-करीब समाप्त कर दिया और कैण्टरबरी के एक बड़े पादरी से व्यवस्था लेकर एनी बोलेन से विवाह कर लिया तथा ईसाई मठों की (monasteries) सब सम्पत्ति को जब्तकर राजकीय खजाने में मिला लिया। तभी से रोमन कैथालिक चर्च से अलग होकर यह चर्च ऑफ इंग्लैण्ड के नाम से प्रसिद्ध हो गया और सत्रहवीं सदी से इसका नाम ऐंग्लिकन चर्च पड़ गया।

उसके पश्चात् महारानी एलिजाबेथ ने चर्च ऑफ इंग्लैण्ड को पूर्ण स्वतंत्र तथा राष्ट्रीय चर्च घोषित कर दिया। तब से इस चर्च पर प्रोटेस्टण्ट प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगा।

इसी समय अर्थात् सम्राज्ञी एलिजाबेथ के समय में ही ईसाई धर्म में प्यूरिटन शाखा का उदय हुआ। इस शाखा के लोग इंगलिश चर्च को प्रोटेस्टण्ट धर्म के और निकट लाना चाहते थे। प्यूरिटीन लोगों के प्रयत्नों से सन् १६४३ में पार्लमेंट ने विशप की पदवी को समाप्त कर दिया।

इसके कुछ समय पश्चात् सन् १७०१ में पार्लमेंट में एक्ट आफ सक्सेशन पास हुआ जिसके अनुसार इंग्लैण्ड के भावी राजाओं के लिए ऐंग्लिकन धर्म का अनुयायी होना अनिवार्य ठहराया गया।

ऐंग्लिकन सम्प्रदाय तीन प्रकार की विचारधारा के लोगों का समन्वय है। एक विचार धारा प्रोटेस्टेट सम्प्रदाय के सिद्धान्तों को अधिक महत्व देती है। इस विचार धारा वालों को एम्बेजेलिकल कहते हैं। इस विचारधारा के लोग धार्मिक संस्कार और पादरियों के प्रभाव को कम करने के पक्ष में है।

दूसरी विचारधारा रोमन कैथोलिक विचार धारा से प्रभावित है। इस विचारधारा के लोगों का यह प्रयत्न रहा कि ऐंग्लिकन विचारधारा रोमन कैथोलिक सिद्धान्त और पूजा पद्धति से दूर न जाने पावे। इस सम्प्रदाय के लोग सामूहिक रूप से रोमन कैथोलिक गिरजे में सन्मिलित होने का प्रयत्न करते रहते हैं वे लोग ऐंग्लिकन चर्च को रोमन चर्च की एक शाखा की ही तरह समझते हैं।

तीसरी विचारधारा लिबरल लोगों की है जो कैथोलिक और ऐम्वेजोलिकन सिद्धान्तों में समन्वय का प्रयत्न करते हैं।

आधुनिक युग के अनुकूल अपने सिद्धान्तों के कारण ऐङ्गलिकन धर्म केवल इंग्लैंड तक ही सीमित नहीं रहा। आयर्लैण्ड और स्कॉट लैण्ड में भी इसका प्रचार हुआ। तथा इंग्लैण्ड की ईसाई मिशनरियों के द्वारा संसार के अन्य देशों में भी इसका वहुत प्रचार हुआ। ईसाई मशीनरियों की एस० पी० सी० (सोसायटी फार प्रोमोटिंग क्रिश्चियन नौलेज) एस० पी० जी० (सोसायटी फार दि प्रोपेगेशन ऑफ दि गास्पेल) और सी० एम० एस० (चर्च मिशनरी सोसायटी) नामक संस्थाओं ने इस धर्म के प्रचार में बड़ा व्यापक भाग लिया।

इस समय, इंगलैण्ड, आंयलैण्ड, स्कॉट लैण्ड, अमेरिका, भारतवर्ष, लंका, पाकिस्तान, कनाडा, दक्षिण अफ्रीका इत्यादि देशों में इस सम्प्रदाय के लाखों अनुयायी रहते हैं। संसार भरमें करीब पाँच करोड़ व्यक्ति ऐंग्लिकन सम्प्रदाय के अनुयायी है।

ऐजीना देवी का मन्दिर

प्राचीन यूनान का एक सुप्रसिद्ध मन्दिर। इस मन्दिर में ग्रीस के कई देवी देवताओं की मूर्तियाँ थी। इन मूर्तियों में एजीना देवी की प्रतिमा का निर्माण प्राचीन यूनान के महान् कलाकार "फिडिआस" के निरीक्षण में हुआ था कहा जाता है कि इस मूर्ति की लम्बाई २६ फीट के लग भग थी और यह सारी मूर्ति हाथी दांत और सोने से बनाई गई थी। यह मूर्ति उस युगका महान आश्चर्य मानी जाती थी।

ऐंजर्ज

पश्चिमी फ्रान्स का एक नगर जो फ्रान्स के सुन्दर नगरों में गिना जाता है। प्राचीन काल में इस नगर का नाम "जूलियोमगस" था इसकी जनसंख्या १०२१४२ है। इस नगर में गिरजोंकी बहुलता है

ऐरिटयम

प्राचीन रोम साम्राज्य का एक नगर जो आजकल ऐंजिओ के नाम से प्रसिद्ध है। प्राचीन रोम के सम्राट् नीरो की यह जन्मभूमि है। प्राचीन काल में यह नगर शौकीन रोमनवासियों का लीला निकेतन था। उस समय इसमें बड़ी २ सुन्दर इमारतें और आमोद प्रमोद के स्थान बने हुए थे। मुसलमानों के आक्रमण से यह नगर नष्ट भ्रष्ट हो गया था।

ऐजमारा

उत्तर पूर्वी अफ्रीका के इरीट्रिया राज्य की राजधानी, जिसकी जनसंख्या सन् १९४४ में १,४०००० थी।

यह एक अत्यन्त प्राचीन नगर है। प्राचीन काल में यह अत्यन्त समृद्धिशाली था। सन् १९०० में इरीट्रिया की राजधानी मासावा से बदलकर एजमारा आ गई, तभी से इसकी प्रगति चालू है।

ऐटा

उत्तर प्रदेश का एक जिला तथा उस जिले का एक प्रधान नगर।

ऐटा जिला काली नदी की उपत्यका में बसा हुआ है। इसकी दक्षिणी सीमा पर गंगा नदी बहती हैं। इस जिले का इतिहास काफी पुराना है। पाँचवीं और सातवी सदी के चीनी यात्रियों ने भी अपनी यात्रा के वर्णन में इस क्षेत्र का उल्लेख किया हैं। ऐसा समझा जाता है कि छठी शताब्दी से दसवीं शताब्दी तक इस क्षेत्र पर अहीरों और भारों का राज्य रहा। फिर यह राजपूतों के अधिकार में आया।

१२वीं शताब्दी से यह नगर मुसलमानों के अधिकार में आ गया। सम्राट अकबर ने इसे अपने कन्नौज और बदायूँ के जिलों में मिलाया था। उसके बाद यह क्षेत्र लखनऊ के नवाब के अधिकार में रहा। नवाब ने सन् १८०१–२ में इसे अंग्रेजों के हाथ में सौंपा।

सन् १८५७ के विद्रोह के समय यह क्षेत्र विद्रोह का प्रमुख केन्द्र था। एटा के राजा धामड़ सिंह ने विद्रोह का साथ दिया। मगर १५ दिसम्बर को अंग्रेजों की फौज ने विद्रोहियों पर आक्रमण कर उन्हें कासगंज से भार भगाया।

सन् १८५६ ई० तक इस जिले का हेड क्वार्टर पटियाली ग्राम में था। इसी वर्ष यह हेड क्वार्टर वहां से उठा कर ऐटा नगर में लाया गया। इस जिले का प्रमुख व्यवसायिक केन्द्र कासगंज है।

ऐटा नगर में दिलसुख राय का मन्दिर बहुत ऊँचा और शानदार बना हुआ है। नगर से उत्तर में संग्राम सिंह चौहान का किला बना हुआ है। संग्राम सिंह के वंशज पहले राजा कहलाते थे और किले के आसपास शासन करते थे, किन्तु सिपाही विद्रोह के समय इस वंश के वंशज राजा धामड़ सिंह के विद्रोही हो जाने पर सरकार ने उनकी सारी मिल्कियत छीन ली और उन्हें वहाँ से निकाल दिया।

सन् १९५१ की मर्दुमशुमारी के अनुसार एटा जिले की जन-संख्या ११२४३५१ आर ऐटा नगर की जन-संख्या १८२१४ थी।

ऐण्टाल-काइडस

ई० सन् पूर्व ३९४ में स्पार्टा-संघ और ईरान के बीच में हुई सन्धि में स्पार्टा की ओर से दस्तखत करने वाला स्पार्टा का राजदूत।

ई० सन् पूर्व ३९४ में एथेन्स को परास्तकर स्पार्टा वालों ने ईरान से युद्ध प्रारम्भ किया ईरान के एक क्षत्रप फर्नाबिजाज ने स्पार्टा के जहाजी बेड़े को पूरी तरह से पराजित कर दिया। परिणाम स्वरूप स्पार्टा के राजदूत एण्टाल काइडस ने ईरान के सम्राट के साथ सूसा में एक संधि की। इस संधि में ईरान के सम्राट ने यूनान की घरेलू स्वतन्त्रता स्वीकार करली। स्पार्टा से लेयनस, इम्ब्रोस स्कीरोन्स लेकर उसने एथन्स वालों को दे दिये।

ऐदद निरारी

प्राचीन असीरियाका एक प्रतापी राजा जिसका समय ई० पू० ९११ से ई० पू० ८८४ तक माना जाता है।

असीरिया के प्रसिद्ध शासक डिगलक पिल्लेसर के दो शताब्दी पश्चात् यह शासक असीरिया में बड़ा प्रतापी हुई। असीरिया के पश्चिम में बसे हुए नगर राज्यों को जीतकर इसने अपने राग्य की सीमा का काफी विस्तार कर लिया। तथा अपने राज्य की व्यापार-व्यवस्था और समाज व्यवस्था में कई महत्व पूर्ण परिवर्तन करके उनमें सुधार किया।

ऐनू-शी-काउ (सीकाउ)

ईरान के पार्थिया वंश का राजकुमार, जिसने राजगद्दी छोड़कर बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण की। इसका समय १४८ ई० है।

एन्-शी-काउ ने बौद्ध धर्म की दीक्षा लेने के पश्चात् चीन जाकर श्वेत-बिहार में रहना प्रारम्भ किया। इस धर्म प्रचारक ने अपने जीवन के बीस बरस चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार करने में लगाये। पार्थिया के इस राजकुमार को ही विशेष रूप से चीन में बौद्धधर्म का संस्थापक माना जाता है! इसने ९५ बौद्ध ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया जिनमें से ५५ अभी भी उपलब्ध है।

ऐनफील्ड

इंग्लैंड के मिडिल सेक्स प्रदेश में बसा हुआ एक व्यापारिक नगर जो लन्दन से ९ मील उत्तर-पूर्व में बसा हुआ है।

ऐन-फील्ड में राइफल और बन्दूक बनाने का सरकारी कारखाना है। जहाँ पर समस्त ब्रिटिश सेनाओं के लिए राइफलें तैयार की जाती हूँ।

ऐर्नाकूलम

भारतीय गणराज्य में नवीन स्थापित केरल राज्य में ऐर्नाकूलम राज्य का प्रमुख नगर।

पहले यह कोचीन-राज्य की राजधानी थी। यह नगर इस समय बड़ा प्रगतिशील हो रहा है। यहाँ के प्रतिशत ४० निवासी उद्योग एवं व्यापार से, ४० प्रतिशत अन्य सेवाओं तथा विविध साधनों से तथा २० प्रतिशत खेती आदि से जीविकोपार्जन करते हैं। इस नगर का व्यापार प्रधानतया कोकण जाति एवं यहूदियों के हाथ में है। यहाँ की जनसंख्या सन् १९५१ में ६२२८३ थी।

ऐपीरस

प्राचीन यूनान का एक जिला जो आजकल अल्बेनिया के दक्षिणी भाग में अवस्थित है।

सिकन्दर महान की माता ओलम्पिया जो मकदूनियाँ के राजा फिलिप द्वितीय को ब्याही थी एपीरस की राजकुमारी थी। एपीरस का राजा ऐलेक्झेंडर भारत के सम्राट अशोक का समकालीन था।

यूनान के पतन के साथ ही एपीरस का भी पतन हो गया और वह रोम साम्राज्य का अंग बन गया।

ऐपोलोडोरस

रोम के सुप्रसिद्ध सम्राट "ट्राजान" के समय का एक प्रसिद्ध मूर्त्तिकार जो सम्राट ट्राजन के साथ उसकी युद्ध-यात्राओं में भी गया था।

'डेमस्कस के इस प्रसिद्ध कलाकार ने सम्राट ट्राजान की विजय यात्राओं के उपलक्ष्य में एक स्मारक स्तम्भ का निर्माण करवाया था। ट्राजान की वीरता का प्रदर्शन ही इस स्मारक का प्रधान उद्देश्य था। इस स्मारक में सम्राट ट्राजन की वीरता के अत्यन्त प्रभावशाली चित्र निर्मित किये गये थे।

ऐमिलसिलाम्पा

सन् १९३९ के नोबेल पुरस्कार-विजेता फिनलैण्ड के प्रसिद्ध उपन्यासकार एमिल-सिलाम्पा, जिनका जन्म सन् १८८८ में हुआ।

एमिल सिलाम्पा फिनलैण्ड के एक किसान के पुत्र थे। उनके उपन्यास पश्चिमी फिनलैण्ड के ग्राम्य-जीवन की पृष्ठभूमि पर ही आधारित हैं।

इनके उपन्यासों में "विनम्रदेन" (Meek Heritage) बचपन से निद्राग्रस्त (Fallen Asleep while Young) और मेन्स वे (Man's way) विशेष प्रसिद्ध हैं। इनका "दी मेडसीलजा" नामक उपन्यास भी बहुत प्रसिद्ध हुआ। इन उपन्यासों के अतिरिक्त इन्होंने कई निबन्ध और कहानियाँ भी लिखीं।

ऐड्रियम

रोमन साम्राज्य की प्राचीन "पाम्पीआई" नामक भवन निर्माणकला में बनाई जाने वाली छतदार कक्ष को "एड्रियम" कहा जाता था।

एड्रियम की छतदार कक्ष में आसमान की ओर एक खुला वातायन रहता था। जिसको "इम्पलूवियम" कहा जाता था। इसकी दीवारें काफी ऊँचाई तक संगमरमर से जड़ी हुई रहती थीं—इस प्रकार के एड्रियम रोम की "पाम्पिआई" शैली के अन्तर्गत बनाये जाते थे।

ऐण्टोनियस

रोम के प्रसिद्ध सम्राट हैड्रियान का कृपा पात्र मित्र जो अपनी सुन्दरता और सुघड़ता के कारण प्रसिद्ध था।

सम्राट हैड्रियान सुन्दर वस्तुओं का बड़ा प्रेमी था। स्थापत्यकला, मिट्टी के पात्र, घोड़ों और सुन्दर नवयुवकों की परख में वह बड़ा प्रवीण था। उसी ने एण्टोनियस नामक एक बिथाइनियन युवक को खोजकर अपने यहाँ रक्खा था। सम्राट ने आज्ञा दी थी कि यह सुन्दर नवयुवक अर्द्ध देवता के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया जाय। मगर कुछ ही समय बाद सम्राट का यह प्रियपात्र रहस्यमय ढङ्ग से नील नदी में डूबकर मर गया। हैड्रियन ने अपने इस युवा मित्र की स्मृति में मिश्र में एक नवीन नगर का निर्माण करने की आज्ञा दी। इस युवक की मूर्त्ति का निर्माण करने में वहाँ के मूर्त्तिकारों ने एक नवीन कलात्मक शैली का निर्माण किया। जो पुरातनकला की अन्तिम शैली कही जा सकती है। एण्टोनियस की प्रति मूर्त्तियाँ कई ढङ्ग से बनाई गयी है मगर इन सब मूर्तियों में पौरुष के साथ स्त्रैण विलासिता का मिश्रण दिखाई पड़ता है।

(विश्व सभ्यता का विकास)

ऐन्तु

बेबिलोनियन सभ्यता के मन्दिरों की देव पत्नियाँ जो "एन्तु" के नाम से परिचित थीं।

भारतवर्ष के दक्षिण के मन्दिरों की तरह प्राचीन बेबीलोनियन सभ्यता के मन्दिरों में भी देवदासियाँ और देव पत्नियाँ रक्खी जाती थीं। देवदासियों से देव पत्नियों का स्थान ऊँचा माना जाता था।

एन्तु कहलाने वाली ये देव पत्नियाँ बड़ी सुन्दर, प्रभावशाली और पूजनीय मानी जाती थीं। बेबीलोन के प्रसिद्ध शासक सारभन का जन्म एक देव पत्नी के गर्भ से ही हुआ था। देवपत्नी बनाने के लिए बड़े बड़े राजा और धनी लोग अपनी लड़कियों को देवता के अर्पण करने मंदिरों में लाते थे।

बेबीलोनियन संस्कृति के देवता एक पत्नीवादी नहीं माने जाते थे। इसलिए उनके एक मुख्य पत्नी और कई उप पत्नियाँ हुआ करती थीं। मुख्य पत्नी देव पत्नी और उपपत्नियां देवदासी कहलाती थीं। देवपत्नी अपनी पसन्दगी के किसी भी पुरुष से शादी कर सकती थीं, मगर उस शादी शुदा पुरुष से सन्तान उत्पन्न करना उनके लिए वर्जित था। इसलिए शादी के पहले ही उन्हें सन्तति निरोध की कुछ औषधियाँ खिला दी जाती थीं।

देवपत्नियों और देवदासियों की वजह से मन्दिरों में व्यभिचार का बाजार गर्म रहता था। धर्मकी ओट में बहुत सी वेश्याएँ और कुलटाएँ अपना धन्धा चलाया करती थीं और बहुत से सम्पन्न पुरुष इस कार्य के लिए बड़े-बड़े दान देते रहते थे।

ग्रीक इतिहासकार हेरेडोटस ने अपने इतिहास में लिखा है कि "प्रत्येक बेबिलोनियन स्त्री का यह पवित्र कर्त्तव्य माना जाता था कि वह एकबार "माइलिट्टा" के मन्दिर में जाकर किसी अपरिचित पुरुष से सहवास करे। बिना ऐसा किये वह मन्दिर से वापस नहीं आ सकती थी।

ऐतरेय ब्राह्मण

ऐतरेय ब्राह्मण ऋग्वेदीय ब्राह्मणों में सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इस ब्राह्मण में ज्योतिष्टोम, अग्निष्टोम, इष्टि, सोमयाग, अग्नियाग, अदितियाग, ऋग्विधि, यूप-प्रहरण-विधि, पुरोडाश-विधान इत्यादि अनेक विषयों का विवेचन किया गया है।

इस ग्रन्थ में कुल ४० अध्याय और २८५ कण्डिकाएँ हैं। यह ब्राह्मण हौत्र-कर्म से सम्बन्धित विषयों पर विशद विवेचन प्रस्तुत करता है।

यह ग्रन्थ 'रायल एशियाटिक सोसायटी' कलकत्ता के द्वारा सन् १८७३ में श्री राजेन्द्रलाल मित्र के द्वारा सम्पादित हो कर प्रकाशित हो चुका है। राजेन्द्रलाल मित्र के अनुमान से ब्राह्मण-ग्रन्थों का रचनाकाल ईसवी सन् से दो हजार वर्ष पूर्व होना चाहिए और इसके आरण्यक ईसा से १४ सदी पूर्व से लेकर ७ सदी पूर्व तक रचे हुए होना चाहिए।

विदेशी विद्वानों में डा० मार्टिन हाँग ने ऐतरेय ब्राह्मण का परिश्रम पूर्वक अध्ययन करके इसका सम्पादन किया है। उनके मत से ऐतरेय ब्राह्मण की रचना का काल ईसा से पूर्व तीन हजार वर्ष से लेकर दो हजार वर्ष तक होना चाहिए।

ऐतरेय आरण्यकम्—यह ऐतरेय ब्राह्मण का एक अंश है। यह ५ आरण्यकों में विभाजित है। प्रथम आरण्यक में ५ अध्याय, द्वितीय आरण्यक में ७ अध्याय, तीसरे में २ अध्याय, चौथे में १ अध्याय और पाँचवें आरण्यक में ३ अध्याय हैं। इन आरण्यकों में प्रथम तीन के रचयिता ऐतरेय और चतुर्थ के आश्वलायन और पञ्चम के रचयिता शौनक माने जाते हैं। ऐतरेय शाखा के प्रवर्तक महीदास ऐतरेय माने जाते हैं।

ऐतरेय आरण्यक के प्रथम आरण्यक में महाव्रत के हौत्र-कर्म का विवेचन, दूसरे में परम पुरुषार्थ साधक मार्गोपदेश, तीसरे में संहितोपासन-विधि, चौथे में महानाम्नी ऋचाकथन और अन्तिम आरण्यक में निष्कैवल्य-शास्त्र का वर्णन किया गया है।

ऐतिहासिक भौतिकवाद

कार्ल मार्क्स के द्वारा मानव-इतिहास का अध्ययन करने के पश्चात् निश्चित किया हुआ एक नूतन सिद्धांत जिसके आधार पर कम्युनिज्म या साम्यवाद और समाजवाद की विचारधाराओं का निर्माण हुआ। इसका विशेष विवेचन समाजवाद शब्द के अन्तर्गत आगामी भागों में किया जायगा।

ऐम्मेट-राबर

आयर्लैण्ड का प्रसिद्ध विद्रोही, जिसका जन्म सन् १७७८ में और मृत्यु सन १८०३ में हुई।

जिस समय ऐम्नेट-राबर का जन्म हुआ, उस समय आयर्लैण्ड में ब्रिटेन के खिलाफ विद्रोह की भावना जोर-शोर से चल रहीं थी। यह नवयुवक जो विश्व-विद्यालय का अत्यन्त मेधावीं छात्र था, देश-प्रेम की भावनाओं से प्रेरित होकर क्रान्तिकारी गुप्त संस्थाओं का सदस्य हो गया। गिरफ्तारी का वारंट निकलने पर वह भागकर फ्रांस चला गया और वहाँ पर 'युनाइटेड आयरिशमेन' नाम की गुप्त संस्था का संचालक बन गया। आयरलैंड में विद्रोह की तैयारी हो जाने पर विद्रोह का झंडा खड़ा करने के लिए यह डबलिन पहुँचा, मगर दुर्भाग्य से विद्रोह का भंडाफोड़ हो गया और उसको फाँसी दे दी गई।

ऐमरी-लियोपोल्ड

सन् १९४० और १९४५ के बीच इंग्लैंड की पार्लियामेंट में भारत-सचिव।

ऐमरी लियोपोल्ड का जन्म सन् १८७३ में भारत के गोरखपुर स्थान में हुआ था। शुरू-शुरू में यह 'लन्दन टाइम्स' नामक पत्र के सम्पादक बने और सन् १९११ में बर्मिंघम से पार्लियामेंट के मेंबर चुने गये। सन् १९४० में भारत और बर्मा के राज-सचिव बनाये गये।

ऐम्सटर्डम

हालैंड का एक प्रमुख नगर जिसकी जन-संख्या सन् १९५० में ८६३१७० थी। इस नगर के भीतर ४ नहरें समानान्तर रूप से बहती हैं। इन नहरों को काटने वाली छोटी-छोटी नहरें भी इस नगर को प्रत्येक दिशा में काटती हैं। इन नहरों के कटाव से यह नगर ९० विभागों में विभाजित हो गया है जिन पर तीन सौ पुल बने हुए हैं जिससे सारा नगर अत्यन्त सुन्दर और रमणीक दिखायी पड़ता है। यहाँ एक एक विशाल महल बना हुआ है जो १३६५९ खंभों पर खड़ा किया गया है और उस पर १८२ फीट ऊँची बुर्ज है। इस नगर का मध्य केन्द्र, चन्द्राकार नहर तथा वर्गाकार विशाल बाँध के बीच में है। यहीं पर १४वीं शताब्दी में ऐम्सटर्डम नगर बसा था।

ऐरी जोना

संयुक्त राज्य अमेरिका का एक प्रमुख राज्य जो मैक्सिको के उत्तर में बसा हुआ है।

इस राज्य में ताँबा, सीसा, जस्ता और सोने की खदानें हैं। ये खनिज द्रव्य इस राज्य के ग्लोब, जेरोम, मेटकाफ, विसवी इत्यादि जिलों में पाये जाते हैं।

सन् १८४६ की लड़ाई में यह मैक्सिको से छीन कर न्यु मैक्सिको राज्य में मिला दिया गया था। सोने की खान का पता लगने पर इसे अलग राज्य बनाने का आन्दोलन शुरू हुआ। उसके पश्चात् सन् १९१२ में यह संयुक्त राज्य अमेरिका का ४८ वाँ राज्य बना। इस राज्य की जनसंख्या सन् १९४० में पाँच लाख के करीब थी। इस राज्य की राजधानी फिनिक्स नगर में है।

ऐलीजा-एम्पी

वॉरेन-हेस्टिंग्स के जमाने में कलकत्ते के मुख्य न्यायाधीश सर ऐलीजा-एम्पी, जिन्होंने महाराज नन्दकुमार के मुकदमे में उनको फाँसी का आदेश दिया था तथा अवध की बेगमों के मुकदमे का भी इन्होंने फैसला दिया था, जिसके अनुसार उनकी सारी जायदाद छीन ली गई थी।

ऐल्बर-फील्ड

जर्मनी का एक प्रसिद्ध औद्योगिक नगर, जिसका आधुनिक नाम वुपरतल है।

यह नगर जर्मनी के कपड़ा-उद्योग का एक प्रसिद्ध केन्द्र है। यहाँ पर कागज, काँच, रबर, चमड़े के उद्योग और रंग बनाने के कारखाने बने हुए हैं। दूसरे महायुद्ध के समय बम वर्षा से यह नगर बहुत कुछ नष्ट-भ्रष्ट हो गया था मगर अब यह फिर अपनी पूर्वावस्था पर आ रहा है।

ऐलक्विन

मध्यकालीन युग में युरोप का एक प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री जिसका समय ई० सन् ७४२ से ८१४ तक माना जाता है।

ऐलक्विन उन दिनों में हुआ जब यूरोप में चार्ल्स महान् का शासन चल रहा था। चार्ल्स महान् शिक्षा का बड़ा प्रेमी था और उसने ऐलक्विन को अपना शिक्षा-सलाहकार नियुक्त कर दिया था। सन् ७८२ में चार्ल्स महान् ने उसे पैलेस-स्कूल का आचार्य बना दिया। इस स्कूल में राजघरानों के विद्यार्थी शिक्षा पाते थे।

ऐलक्विन यूरोप में मध्य युग का एक महत्वपूर्ण शिक्षाशास्त्री माना जाता हैं।

ऐलतेरेस

तुर्क जाति का एक सरदार, जिसका समय ६२२ ई० से ६९३ ई० तक है।

जिस समय एलतेरेस हुआ उस समय तुर्क जाति की दशा बहुत पतनावस्था को पहुँच गई थी। तोबा-वंश के अन्तिम खान हु-पेई का शासन नाममात्र को रह गया था। उस समय के अशेना वंशी खान के समय का एक शिलालेख मिलता है जिसमें तुर्कों की भर्त्सना की गई है. उसका अभिप्राय इस प्रकार है—

"ऐसा हो गया है हमारा जातीय-संघ और ऐसी दिखाई देती है हमारी शक्ति ! ओ तुर्की बेगों और जनता ! सुनो, तुम्हें ऊपर के आकाश ने क्यों नहीं दाब दिया, नीचे

की जमीन तुम्हारे लिए फूट क्यों नहीं गई। ओ तुर्क लोगों! किसने तुम्हारे शासन-क़ानून को नष्ट किया। तुमने स्वयं अपराध किया।……हे जनता! तू पूर्व गई, पश्चिम गई, जहाँ भी गई तेरा क्या भला हुआ? तेरा खून पानी की तरह बहा, तेरी हड्डियों से पहाड़ बन गये। तेरे सामन्त दास बन गये और तेरी कुलीन-स्त्रियाँ दासियाँ बन गईं और तेरी बेसमझी से मेरा चाचा मो-चो खाकान मारा गया"।

तुर्क जाति की ऐसी गिरी हुई हालत में एलतेरेस नामक व्यक्ति गू-दु-लु के नाम से खान बना। इसने अपनी बहादुरी और लूट मार से तुर्क जाति की गिरी हुई प्रतिष्ठा को बचा लिया। इसने खान बनते ही चारों तरफ लूट मार करना शुरू कर दिया। चीन की साम्राज्ञी "वू" ने इसका दमन करने के लिए १३००० सेना भेजी मगर एलतेरेस ने उसे हरा कर उसका सफाया कर दिया। पर कुछ समय बाद पश्चिमी तुर्कों की एक शाखा "तुरगिस" से लड़ते हुए यह मारा गया।

ऐलगिन

भारतवर्ष में ब्रिटिश-साम्राज्य के गवर्नर जेनरल, जिनका जन्म सन् १८११ में लन्दन नगर में और मृत्यु १८६३ ई० में हिमालय की एक धर्मशाला में हुई।

लार्ड ऐलगिन सन् १८४२ ई० में सबसे पहले जेमेका के गवर्नर बनकर गये। कहा जाता है कि वहाँ के लोग इनकी कार्य-दक्षता से बड़े खुश थे। इसके परिणाम-स्वरूप थोड़े दिनों के बाद लार्ड ऐलगिन को कनाड़ा का गवर्नर जनरल बनाया गया। इन्हीं के समय में सबसे पहले कनाड़ा में स्वायत्त-शासन-प्रणाली का पहला मसविदा तैयार हुआ। सन् १८५७ में 'चीन-साम्राज्य' के कैंटन नगर में अंग्रेजों और चीनियों के बीच, जो युद्ध छिड़ा हुआ था, उसमें कैंटन के अंग्रेजों की सहायता करने के लिए लार्ड ऐलगिन सेना-सहित सम्पूर्ण क्षमता-प्राप्त दूत की तरह चले, मगर रास्ते में ही इन्हें भारतवर्ष के सिपाही-विद्रोह का समाचार मिला। तब इन्होंने लार्ड कनिंघम की सहायता के लिए अपनी सेना भेज दी। सिपाही-विद्रोह मिटने पर लार्ड ऐलगिन चीन पहुँचे और चीनियों को ह कर 'तिनसिन' नामक स्थान पर चीन के साथ सन्धि की इस सन्धि के अनुसार अंग्रेजों को निर्विवाद चीन में वाणिज्य-व्यापार करने के अधिकार मिल गये।

सन् १८६१ में लार्ड ऐलगिन लार्ड कैनिंग के स्थान पर गवर्नर जेनरल बनकर भारतवर्ष आये और यहीं पर सन् १८६३ में उनकी मृत्यु हो गयी।

ऐलाम

प्राचीन मेसोपेटोमिया का एक नगरराज्य जो दजला नदी के पूर्वी भाग के ऊँचे पठारों पर फैला हुआ था।

ऐलाम नगर राज्य की राजधानी सूसा थी। यह राज्य ईसा से पूर्व बीसवीं शताब्दी से ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी तक बड़े उरूज पर था। इसमें प्रोटो-इलमाइट जाति के लोग बसते थे। इतिहासकारों के अनुसार सुमेरियन सभ्यता प्रोटो इलमाइट सभ्यता का ही विकसित रूप था।

कुछ इतिहासकार प्रोटो-इलमाइट शाखा को आर्य-जाति की ही एक शाखा मानते हैं। इन प्रोटो-इलमाइट राजाओं के समय के ईसा से पूर्व पन्द्रहवीं शताब्दी के कुछ संधि-पत्र बाघखोई (Baghakhoi) नामक स्थान पर प्राप्त हुए हैं। इन संधिपत्रों के प्रारम्भ में वरुण, इन्द्र, मित्र इत्यादि भारतीय देवताओं की वन्दना की गई है जिससे मालूम होता है ये लोग भारतीय आर्य्य थे। मत्स्य-पुराण इत्यादि पुराणों में भी इस देश का उल्लेख मिलता है और कहा जाता है कि मनु-पुत्री "इला" के नाम पर ही इस प्रान्त का नाम "इलाम" पड़ा।

ईस्वी सन् से ६४६ वर्ष पहले असीरियन सम्राट असुर-बनिपाल ने ऐलाम पर आक्रमण किया और ऐलाम की राजधानी 'सूसा' को खूब लूटपाट कर तहस-नहस कर दिया। वहाँ की भूमि में नमक डलवाकर उसमें हल चलवाकर कृषि के अयोग्य बना दिया। ऐलाम के राजा का सिर कटवाकर इसने अपनी राजधानी "निनवे" के सिंहद्वार पर लटका दिया और उसके सेनापति "दिनानू" का सिर काटकर अपने सामने उसकी खाल खिंचवाई और इस प्रकार "ऐलाम" नगरराज्य को हमेशा के लिए इतिहास के परदे से मिटा दिया।

ऐलिजाबेथ-विलिंगटन

इंग्लैण्ड की एक सुप्रसिद्ध गायिका, जिसका समय सन् १७६८ से १८१८ तक था।

एलिजाबेथ विलिंगटन एक मशहूर गायिका थी। उसके संगीत में एक अद्भुत आकर्षण था। मगर एक बार उसका यही मोहक संगीत उसके लिए महान् विपत्ति का कारण हो गया।

३० मई सन् १७९४ के दिन उसने इटली के नेपल्स नगर के एक रेस्टराँ में एक संगीत का कार्यक्रम किया। यह गीत अतिशय करुणारस से पूर्ण था और इसे स्वयं गायिका ने ही तैयार किया था।

दैवयोग से पन्द्रह दिन बाद ही विसूवियस ज्वालामुखी में भयङ्कर विस्फोट हुआ और वहाँ के लोगों ने इस विस्फोट का पूर्ण आरोप एलिजाबेथ विलिंगटन के करुणगीत पर लगाया। उत्तेजना इतनी बढ़ गई कि अगर एलिजाबेथ-विलिंगटन भाग नहीं जाती तो शायद मार डाली जाती।

ऐलिजाबेथ-टेलर

विश्वविख्यात क्लियोपेट्रा फिल्म की प्रधान अभिनेत्री एलिजाबेथ-टेलर, जिसका जन्म ७ फरवरी १९३२ को लन्दन में हुआ।

एलिजाबेथ-टेलर की गणना संसार की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरियों और अभिनेत्रियों में की जाती है। उसकी माँ एक फिल्म अभिनेत्री थी इसलिए टेलर का झुकाव भी इसी क्षेत्र की तरफ हुआ। आठ वर्ष की उम्र से ही उसने फिल्मों में प्रवेश पा लिया।

उसकी पहली प्रमुख भूमिका मैट्रो द्वारा निर्मित "लैसीकेम होम" नामक फिल्म में हुई। उसके पश्चात् "नेशनल वेलवेट" नामक फिल्म में वह बहुत आगे बढ़ गई। और "बटर फील्ड" में काम करने के बाद वर्ष की सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री के रूप में उसे "आस्कर पुरस्कार" प्राप्त हुआ।

इसके पश्चात् उसकी सर्वाधिक कीर्ति "क्लिओपेट्रा" और "बी० आई० पी०" नामक फिल्मों में हुई। इन दोनों फिल्मों में काम करने के लिए उसने हर एक से पचास-पचास लाख रुपये लिए। इतनी बड़ी रकम आज तक किसी भी अभिनेता या अभिनेत्री को एक फिल्म में काम करने के लिए नहीं मिली है।

टेलर के अभिनय के सम्बन्ध में प्रसिद्ध फिल्म निर्देशक एन्थनी एस्क्विथ का कथन है कि "वह सही माने में एक स्वाभाविक अभिनेत्री है और अभिनय करते वक्त काल्पनिक चरित्र को सजीवता प्रदान करती है और ऐसा लगता है जैसे उसके रोम-रोम में वह चरित्र रम गया हो।"

मगर उसका अभिनेत्री जीवन जितना सफल है उतना ही उसका प्रेम-जीवन असफल है।

एलिजाबेथ ने अभीतक अपने चार पति बनाये हैं और अब पाँचवां पति बनाने की तैयारी में है। उसके जीवन में "ए राउण्ड दी वर्ल्ड इन एट्टी डेज" का निर्माता "माइक टॉड" ही ऐसे पति के रूप में आया जिसने उसे पूर्ण सन्तोष प्रदान किया। मगर दैवयोग से "लकीलिज" की विमान-दुर्घटना में वह मारा गया। इस समय प्रसिद्ध अभिनेता "रिचर्ड बर्टन" से उसके रोमान्स की कथा बड़ी दिलचस्पी से पढ़ी जाती है।

एलिस हैनरी-हैवलाक

यूरोप के प्रसिद्ध समाजशास्त्री और यौन-विज्ञान के विद्वान जिनका जन्म सन् १८५९ में और मृत्यु सन् १९३९ में हुई।

इन्होंने चिकित्सा-विज्ञान की शिक्षा लन्दन के सेण्ट टॉमस अस्पताल से ग्रहण कर डिग्री प्राप्त की। इसके पश्चात् स्त्री और पुरुष के मनोविज्ञान और यौन सम्बन्धों पर अध्ययन करके इन्होंने "मैन एण्ड ऊमेन" और 'स्टडीज इन सायकालाजी ऑफ सेक्स" नामक दो रचनाएँ प्रकाशित कीं।

ये रचनाएँ प्रचलित लोक विश्वासों के विरुद्ध और क्रान्तिकारी थीं। इसलिए समाज के एक वर्ग में इनके विरुद्ध आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। फिर भी जानकार लोगों और विद्वानों ने इनकी रचनाओं का सम्मान किया।

इसके पश्चात् इन्होंने शरीर-शास्त्र, समाजशास्त्र, नीति-शास्त्र तथा योन-विज्ञान पर कई रचनाएँ लिखीं जो अत्यन्त महत्व पूर्ण मानी जाती है।

ऐलिफंटा

बम्बई बन्दरगाह का एक द्वीप जो बंबई से ६ मील की दूरी पर एक पर्वतीय उपत्यका में अवस्थित है। इसका जिला, थाना और तहसील पनवेल है।

पोर्तुगीज लोगों ने जहाज से उतरते समय इस स्थान पर १३ फीट २ इञ्च लंबा और ७ फीट ४ इञ्च ऊँचा एक पत्थर का हाथी देखकर इसका नाम 'एलीफेंटा' रख दिया। सन् १८६४ ई० में इस हाथी को उठाकर बंबई के विक्टोरिया गार्डेन में रख दिया गया।

अजण्टा और ऐलोरा की तरह ऐलिफंटा की गुफाएँ भी भारतीय कलाकृति के सुन्दर नमूने हैं। यहाँ का सुप्रसिद्ध गुफा-मंदिर लावा चट्टान को काटकर बनाया गया है। इस प्रधान मन्दिर में पहले २६ स्तंभ और ६ उपस्तंभ लगे हुए थे, जिनमें से ८ टूट गये। मन्दिर में स्थापित त्रिमूर्ति की भव्यमूर्ति अत्यन्त दर्शनीय है। कुछलोगों के मत से इसमें शंकर को ब्रह्मा, विष्णु और शिव के रूप में दिखाया गया है। इसकी ऊँचाई १७ फीट १० इञ्च है। मूर्ति के मस्तक ४-५ फीट लंबे और बड़े कलापूर्ण ढंग से बनाये गये हैं। इस त्रिमूर्ति के पास ही अर्द्धनारीश्वर की १६ फुट ऊँची मूर्ति है। इस मूर्ति की बाईं ओर विष्णु भगवान और दाहिनी ओर चतुर्मुख ब्रह्मा की मूर्ति बनी हुई हैं।

इसके साथ की दूसरी गुफा का द्वार उत्तर-पूर्व की ओर है। इसकी लंबाई ११० फीट है, जिसमें अष्टभुज शंकर की ताण्डव-नृत्य करती हुई मूर्ति सबसे विशाल है।

पोर्तुगीजों के आक्रमण के समय में यहाँ की बहुत सी मूर्तियाँ टूट-फूट गईं। फिर भी जो कुछ बची हैं, वह मध्य-पूर्व काल की गौरवपूर्ण मूर्तिकला का सुन्दर उदाहरण है।

लगभग ८वीं सदी में बनी हुई शिव की सर्वतोभद्रिका त्रिमूर्ति, मूर्तिकला की उत्कृष्ट कृति है। इस मूर्ति की एक ओर अघोर भैरव, संसार के संहारकर्ता के रूप में बतलाये गये हैं। दूसरी ओर पार्वती का सुन्दर चेहरा और दोनों के बीच में अत्यन्त सुन्दरता के साथ बनाया हुआ कल्याणकारी शंकर का मस्तक बना हुआ है।

एलस्टन वाशिंगटन

अमेरिका के एक प्रसिद्ध चित्रकार जिनका जन्म सन् १७७६ में और मृत्यु १८४३ में हुई।

एलस्टन धार्मिक कथाओं पर चित्र बनाने वाले चित्रकार थे। इनकी शैली वेनिस की शैली पर आधारित थीं इनके चित्रों में "सेण्ट पीटर की मुक्ति" "जेकोब का स्वप्न" इत्यादि कलाकृतियाँ प्रसिद्ध हैं। उस युग के ये सर्व श्रेष्ठ कलाकार माने जाते हैं।

ऐलोपैथी (पाश्चात्य-चिकित्सा-पद्धति)

पश्चिमीय चिकित्सा-प्रणालियों में एक सुनियोजित और वैज्ञानिक चिकित्सापद्धति, जिसका जन्मदाता प्राचीन यूनान का प्रसिद्ध विद्वान हिपोक्रेटस माना जाता है। यह पद्धति विशेषकर कीटाणु-सिद्धांत पर आधारित है।

इस पद्धति की स्थापना का मूलजनक हिपाक्रेटस माना जाता है, जिसने इस पद्धति के कुछ मूलभूत सिद्धान्तों की व्याख्या की। उसके पश्चात् ईसाई-धर्म के युग में यह पद्धति साधारण रूप से अपना काम करती रही।

मगर ईसा की सोलहवीं शताब्दी के पश्चात् समस्त यूरोप में रेनेंसा या पुनर्जागरण के युग का प्रारम्भ हुआ जिससे वहाँ एक अनोखा प्रकाश छा गया। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वैज्ञानिक आधारों पर नवीन-नवीन खोजें होने लगीं और हजारों वैज्ञानिक, लेबोरेटरियों में तरह तरह के अन्वेषण करने में जुट गये।

ऐलोपैथी चिकित्सा का क्षेत्र भी इस प्रकाश से वंचित नहीं रहा। अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में चिकित्सा के सैकड़ों विद्यार्थी इस क्षेत्र के अनुसन्धान में जुट गये जिनके परिणाम स्वरूप क्या सर्जरी और क्या चिकित्सा दोनों ही क्षेत्रों में दिन प्रति दिन नये नये अनुसंधान होने लगे।

मलेरिया पर विजय

सोलहवीं शताब्दी तक यूरोप में मलेरिया के बड़े-बड़े प्रकोप होते थे जिनसे हजारों मनुष्यों की जानें चली जाती थीं। मगर सन् १६३६ में लेडी सिन्कन ने पेरू में रहते हुए सिनकोना की छाल को मलेरिया नाशक औषधि के रूप में ढूँढ़ निकाला और उन्हीं के नाम से यह वनस्पति 'सिनकोना' के नाम पर प्रसिद्ध हुई।

सिनकोना और उससे निकाला हुआ 'कुनैन' नामक सत्व मलेरिया रोग पर इतने प्रभावशाली सिद्ध हुए कि सारे संसार में इसकी ख्याति फैल गयी और आज भी मलेरिया के कीटाणुओं को नष्ट करने में कुनैन सबसे ज्यादा प्रभावशाली मानी जाती है। इस प्रकार इस पद्धति ने कुनैन द्वारा मलेरिया पर विजय प्राप्त की।

चेचक पर विजय

अठारहवीं शताब्दी के अन्त में सन् १७६६ में एडवर्ड जेनर नामक वैज्ञानिक ने चेचक के टीके का सफल प्रयोग करके चेचक की भयङ्कर व्याधि पर विजय प्राप्त की जिसके फलस्वरूप हजारों लाखों की संख्या में मरने वाले चेचक के रोगियों की संख्या बहुत कम हो गयी है। यह टीका भी इतना लोकप्रिय हुआ कि इस समय संसार के एक छोर से दूसरे छोर तक उसका प्रचार है।

उपदंश पर विजय

जर्मनी के ऐर्लिक पोल नामक वैज्ञानिक ने, जिसका जन्म सन् १८५४ में हुआ था, सन् १६०६ में उपदंश की भयङ्कर व्याधि के लिए "सिक्स हण्डरेट सिक्स" नामक सुई का निर्माण किया जो आगे जाकर "साल्वार्सन" नाम से प्रसिद्ध हुआ।

उपदंश के इस टीके का निर्माण हो जाने से समूचे संसार में उपदंश से मरने और विकलांग हो जाने वाले हजारों लाखों मनुष्यों को बड़ी राहत और शान्ति मिली और इस रोग की दुरूहता कम हो गई और इसका प्रचार भी सारे संसार में हो गया।

निमोनिया पर विजय

कुछ वर्षों पूर्व निमोनिया या फुफ्फुस-प्रदाह भी एक अत्यन्त कष्टसाध्य व्याधि समझी जाती थी और इससे भी संसार में हजारों जानें जाती थीं। मगर सल्फा ड्रग्स के आविष्कार ने इस रोग पर भी विजय प्राप्त की।

कॉलेरा (विशूचिका)

कुछ ही समय पूर्व कॉलेरा से बचने के लिए भी एक टीके का आविष्कार हो गया है, जिसको लगवा लेने पर साल भर तक कॉलेरा के आक्रमण का भय नहीं रहता। कॉलेरा के आक्रमण के समय यह टीका भी प्रतिवर्ष लाखों व्यक्तियों को लगाया जाता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि इस बीमारी के फैलने पर प्रतिवर्ष जो लाखों मौतें हो जाती थीं, उनसे मनुष्य जाति की रक्षा हो गई है।

सुई चिकित्सा पद्धति

थोड़े वर्षों पहले तक रोग की चिकित्सा किसी भी औषधि को मुँह के द्वारा खिला कर ही की जाती थी। उसका परिणाम यह होता था कि औषधि का कुछ भाग पाचन-क्रिया-शक्ति के द्वारा नष्ट हो जाता था और औषधि को खून में पहुँचकर क्रिया करने में काफी समय भी लगता था। इंजेक्शन-प्रणाली का आविष्कार हो जाने से औषधियाँ इन्जेक्शन के द्वारा सीधी रक्त में पहुँचादी जाती हैं जिससे पाचन क्रिया प्रणाली या दूसरी बाधाओं का उन्हें सामना नहीं करना पड़ता और रक्त में पहुँचते ही वे सीधे रोग के केन्द्र पर आक्रमण कर उसे नेस्तनाबूद करने में शीघ्रता के साथ सफल होती हैं। इस पद्धति का आविष्कार हो जाने के कारण चिकित्साक्षेत्र में एक क्रांति हो गई और हर एक रोग पर शीघ्र काबू पाने में इस चिकित्सा-प्रणाली को महत्वपूर्ण सफलता मिल गई।

विटामीनों का आविष्कार

अब तक ऐलौपैथिक चिकित्सा-पद्धति विशेषकर नेगेटिव (निषेधात्मक) सिद्धान्तों पर ही चल रही थी। कीटाणु सिद्धान्तों के अनुसार जिस रोग के कीटाणुओं की शरीर में वृद्धि होती थी, उन कीटाणुओं के खिलाफ औषधि या इन्जेक्शन देकर रोगी को अच्छा कर दिया जाता था।

मगर विटामिनों के आविष्कार के द्वारा इस चिकित्सा-पद्धति में पाजेटिव (रचनात्मक) सिद्धान्तों का विशेष रूप से खुलासा हुआ।

१९वीं सदी के अन्त में हालैंड में आईक-मेन नामक एक डाक्टर हुआ, इसने 'बेरी-बेरी' नामक रोग के रोगियों पर प्रयोग करते हुए यह बतलाया कि खाद्य-पदार्थों में कुछ विशेष प्रकार के तत्वों का अभाव होने से यह रोग पैदा होता है। आईक-मेन ने देखा कि मैशीन से तैयार किये हुए पालिशदार चावलों का सेवन करने वाले मनुष्यों और मुर्गियों में बेरी-बेरी और लकवे का रोग हो जाता है। मगर उन्हीं मुर्गियों को जब हाथ के कुटे हुए चावल, जिनमें अंकुर और भूसी भी मिली हुई थी—खाने को दिये गये तो वे मुर्गियाँ रोग-मुक्त होकर स्वस्थ हो गयीं। इसका कारण आईक-मेन ने बतलाया कि मैशीन के कुटे हुए चावलों में 'विटामिन' नामक जीवन-तत्व नष्ट हो जाता है, जबकि हाथ के कुटे हुए चावलों में वह मौजूद रहता है।

विटामिन तत्व की इस नई खोज के उपलक्ष में डाक्टर आईक-मेन को सन् १९३० में 'नोबुल-प्राइज' प्राप्त हुआ।

इसके पश्चात् डाक्टर केसीमीर-फंक नामक एक पोलिश डाक्टर ने लन्दन की प्रयोगशाला में विटामिन-तत्व पर अनेक प्रकार की नवीन खोजें कीं। उन्होंने मुर्गियों को मशीन के चावल खिलाकर आईक-मेन के प्रयोगों को दुहराया और विटामिन के तत्वों से लकवा पीड़ित मुर्गियों को दुरुस्त करके लन्दन के डाक्टरों को अचम्भे में डाल दिया। डा० फंक की कल्पना बड़ी सजीव थी और उन्होंने अत्यन्त उत्साह के साथ इस बात को प्रतिपादित किया कि मनुष्य-शरीर में होने वाले अधिकांश रोग विटामिनों की कमी से होते हैं और अगर वह कमी पूरी कर दी जाय तो मनुष्य रोगमुक्त हो जाता है।

इस प्रकार विटामिन-सिद्धान्त के आविष्कार में आने के पश्चात् वैज्ञानिक डाक्टरों के द्वारा तरह-तरह के विटामिनों की खोज होने लगी। इन खोजों के परिणाम-स्वरूप पचीसों प्रकार के विटामिन डाक्टरों को प्राप्त हुए जिनमें (१) विटामिन ए, (२) विटामिन 'बी' बारह प्रकार के (१४) विटामिन सी, (१५) विटामिन डी, (१६) विटामिन ई, (१७) विटामिन एफ (१८) विटामिन जी, (१९) विटामिन एच, (२०) विटामिन आई (२१) विटामिन जे, (२२) विटामिन के, ।

एण्टी-बायोटिक औषधियों का निर्माण

मगर एलोपैथिक चिकित्सा पद्धति में सम्पूर्ण क्रान्ति और संसार में इसकी दिग्विजय की घोषणा बीसवीं सदी में एण्टी-बायोटिक औषधियों का आविष्कार होने के बाद हुई।

अलेक्जेण्डर फ्लेमिंग नामक एक वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला में सूक्ष्म यंत्र के द्वारा बैक्ट्रियल-कल्चर या जीवाणु संवर्द्धन के प्लेट को देख रहा था। इस प्लेट पर कुछ विषैले कीटाणु पाले जा रहे थे। संयोगवश इस प्लेट पर किसी कारण से फफून्द लग गई, फ्लेमिंग के सहायक ने उनको कहा कि यह प्लेट खराब हो गई है, मगर जब फ्लेमिंग ने ध्यान से उस प्लेट को देखा तो उन्हें यह देख कर आश्चर्य हुआ कि उस फफून्द से वे सब विषैले कीटाणु नष्ट हो गये हैं। उन्हें यह जान कर बड़ी खुशी हुई कि जिन विषैले कीटाणुओं की औषधि की वे खोज कर रहे थे, वह अचानक ही उन्हें मिल गई। इसी फफून्द से उन्होंने पेनिसिलिन का आविष्कार किया।

पेनिसिलीन के आविष्कार ने सम्पूर्ण ऐलोपैथिक चिकित्सा-जगत् में एक अभूतपूर्व क्रान्ति पैदा कर दी। अनेक ऐसे रोग जिन्हें अभी तक असाध्य समझा जाता था, चिकित्सा की परिधि में आ गये। रोगों को देखते-देखते तत्काल नष्ट कर देने की शक्ति भी पेनिसिलीन ने इस पद्धति को प्रदान की।

पेनिसिलीन के अनुकरण पर एण्टी-बायोटिक औषधियों के निर्माण में एक बाढ़ आ गई। क्लोरोमाइस्टीन के द्वारा टाइफाइड पर, स्टेप्टोमाइस्टीन के द्वारा क्षयरोग पर तथा और अनेकानेक रोगों पर कई प्रकार की एण्टी-बायोटिक औषधियों का निर्माण होने लगा।

मगर एण्टी-बायोटिक औषधियों की तीव्र प्रतिक्रिया और एलर्जी भी अनेक दुर्घटनाओं के बाद डाक्टरों की समझ में आईं, और वे अब महसूस करने लगे हैं कि एण्टी-बायोटिक औषधियाँ जितना लाभ पहुँचाती हैं उसके बराबर ही वे नुकसान भी पहुँचाती हैं।

फिर भी मौत के मुँह में घुसने वाले रोगी को मौत के या भयंकर बीमारी के पंजे से बचा लेने का गुण तो इसमें मानना ही पड़ेगा।

शरीर-विज्ञान और सर्जरी या शल्य-चिकित्सा के क्षेत्र में

ऐलोपैथिक चिकित्सा-विज्ञान ने उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में चिकित्सा के क्षेत्र में एक के बाद एक जैसी लम्बी-लम्बी छलांगें मारी हैं। सर्जरी के क्षेत्र में उससे भी ज्यादा तूफानी गति इस पद्धति की रही है।

शरीरविज्ञान (Anotomy) और शरीर-क्रिया-विज्ञान (Physiology) के सम्बन्ध में इस पद्धति के वैज्ञानिकों ने अत्यन्त सूक्ष्म अनुसन्धान किये हैं। ऐलोपैथिक चिकित्सा-पद्धति में शरीर-क्रिया-विज्ञान का पिता या मूल आचार्य इरेसिस्ट्रेटस (Erasistratus) नामक यूनानी विद्वान माना जाता है। पर चिकित्सा-पद्धति की तरह इस विज्ञान का भी तूफानी विकास उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में ही हुआ है।

शरीर-विज्ञान का पूर्ण ज्ञान प्राप्त होने पर ऑपरेशन के क्षेत्र में स्थान-स्थान पर इस पद्धति को पूर्ण सफलता मिली। अभी करीब चालीस-पचास वर्ष पहले ही पेट के अपेण्डिसाइटीज के ऑपरेशन में सौ में से अस्सी ऑपरेशन असफल हो जाया करते थे, मगर आज सौ में से पंचानवे ऑपरेशन सफलता के साथ कर दिये जाते हैं। इसी प्रकार पेट के दूसरे ऑपरेशन, क्षयरोग सम्बन्धी ऑपरेशन, पथरी के ऑपरेशन, हार्निया के आपरेशन, मस्तिष्क के आपरेशन—सभी क्षेत्रों में इस चिकित्सा-पद्धति ने आश्चर्यजनक प्रगति की है। यद्यपि मस्तिष्क और हृदय सम्बन्धित ऑपरेशन अभी भी खतरनाक समझे जाते हैं, पर जिस तेजी से इसकी प्रगति हो रही है उससे आशा है कि इस क्षेत्र में भी यह पद्धति बहुत शीघ्र विजय प्राप्त कर लेगी।

कैन्सर रोग के ऑपरेशन और चिकित्सा में अभी तक इस पद्धति को सफलता नहीं मिली है, मगर इस क्षेत्र में भी कैन्सर के हास्पिटल, ऑपरेशन के द्वारा रोगी की उम्र को तो किसी सीमा तक बढ़ा ही देते हैं। रूस और अमेरिका में कैन्सर रोग पर विजय प्राप्त करने के लिए बड़ी-बड़ी संस्थाएँ बनी हुई हैं जिनमें सैकड़ों प्रतिभाशाली डाक्टर इस रोग पर विजय प्राप्त करने के लिए धुआँधार प्रयत्न कर रहे हैं।

नेत्रों और दाँतों की सर्जरी

आँखों के आपरेशन के सम्बन्ध में भी इस चिकित्सा-पद्धति ने आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की है। इस सर्जरी के प्रभाव से हजारों-लाखों नेत्र-रोगियों को प्रतिवर्ष संसार में नवीन दृष्टि प्राप्त होती हैं। इस क्षेत्र में विएना (आस्ट्रिया) के नेत्र चिकित्साकों ने भी बड़ा नाम कमाया है। मोतीयाबिन्द, काचबिन्दु (Glucoma) इत्यादि नेत्रों के कई प्रकार के रोग—इस सर्जरी के द्वारा आराम किये जाते हैं। दाँतों के क्षेत्र में भी काफी प्रगति हो रही है।

निदान (Dignosis)

निदान या रोग-परीक्षा के क्षेत्र में इस चिकित्सा-पद्धति में आश्चर्यजनक यन्त्रों का आविष्कार हो चुका है। एक जमाना था जब डाक्टर खाली स्टेस्थस्कोप और थर्मामीटर की सहायता से रोग-परीक्षा करते थे।

अब मल, मूत्र, रक्त की परीक्षा के लिए कई तरह के यंत्रों का आविष्कार हो चुका है। शरीर के भीतरी भागों का निरीक्षण करने और उसके फोटो लेने के लिए सन् १८९५ में जर्मन वैज्ञानिक विलियम कोनराड-राएटजन ने 'एक्स-रे' मशीन का आविष्कार कर दिया। इस मशीन के आविष्कार से निदान-प्रणाली को एक नवीन जीवन मिल गया है।

इस मशीन की सहायता से शरीर के समस्त भीतरी भाग का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। किस जगह की हड्डी टूट गई है, पेट में किस स्थान पर फोड़ा या व्रण है फेफड़े के किस भाग में ट्यूबर-क्यूलोसिस सक्रिय हैं, मस्त में किस स्थान पर ट्यूमर है। इत्यादि हर बात की जानकार इस मशीन के द्वारा मिल जाती है। इसी प्रकार ब्लड-प्रेशर का अनुमान करने के लिए भी मशीन का निर्माण हो चुका है। मतलब यह कि निदान के क्षेत्र में प्रत्येक रोग का निदान करने के लिए कई छोटे और बड़े यंत्र-उपलब्ध हैं।

और यह कितने आश्चर्य की बात है कि उन्नति का यह सारा लेखा केवल एक या डेढ़ शताब्दी में तैयार हुआ है। इसके पहले यह चिकित्सा-पद्धति एक पिछड़ी हुई

पद्धति थी, मगर थोड़े ही समय में मलेरिया, चेचक, उपदंश, कालेरा, निमोनिया इत्यादि रोगों पर विजय प्राप्त कर, इनके द्वारा होनेवाली प्रतिवर्ष लाखों मौतों से इस पद्धति ने मनुष्य-जाति को बचा लिया है, जिससे मानव-समाज की औसत मृत्यु-संख्या बहुत कम हो गई है और उसके साथ ही आबादी की तेजी से बढ़ती होने लगी है। जिसके परिणाम-स्वरूप मनुष्य का ध्यान मृत्यु-संख्या की तरफ से हटकर आबादी की समस्यापर केन्द्रीभूत हो गया है और सब दूर परिवार-नियोजन की समस्या पर विचार हो रहा है।

ऐलोपैथी का सिद्धान्त

ऐलोपैथी चिकित्सा-पद्धति विशेषतः कीटाणु-सिद्धान्त पर आधारित है। इस पद्धति का विश्वास है कि अधिकांश रोग किसी विशेष प्रकार के कीटाणु पर आधारित रहते हैं और उस रोग के कीटाणु जब मानव रक्त में प्रवेश कर बढ़ने लगते हैं तब मनुष्य उस रोग से ग्रसित हो जाता है और उन कीटाणुओं को नष्ट करने वाली औषधि देने पर वह रोग विमुक्त हो जाता है।

इस पद्धति के डाक्टरों ने ऐसे कई प्रकार के रोगों के कीटाणुओं की खोज कर उनकी प्रक्रिया की जानकारी भी प्राप्त कर ली है।

मगर इसके साथ ही इस पद्धति ने इस सिद्धान्त को भी मान लिया है कि मनुष्य के रक्त में जीवनी शक्ति (Vitelity) और रोग निवारक शक्ति (Immunity) दो प्रकार की शक्तियाँ रहती हैं। पहली शक्ति पाजेटिव है और दूसरी नेगेटिव है। पहली शक्ति मानव-शरीर में ओज, कान्ति और बल पैदा करती है और दूसरी शक्ति रोग-कीटाणुओं के आक्रमण से उसकी रक्षा करती है।

जब तक मनुष्य-रक्त में ये दोनों शक्तियाँ क्रियाशील रहती हैं तब तक रोग-कीटाणु उसके रक्त में पहुँचते ही नष्ट हो जाते हैं। मगर जब मनुष्य के रक्त की रोग-निवारक शक्ति कमजोर हो जाती है, तब विटेलिटी के अच्छा रहने पर और स्वस्थ दिखलाई पड़ने पर भी मनुष्य रोगों का शिकार हो जाता है। इसी प्रकार कमजोर विटेलिटी वाला दुबला-पतला और कमजोर व्यक्ति भी अगर उसकी रोग-निवारक शक्ति बलिष्ठ हो तो रोगों के आक्रमण से बचा रहता है।

इन दोनों शक्तियों को सजग रखने के लिए मानव-रक्त में उचित प्रमाण में विटामिनों का रहना आवश्यक है। उसका खान-पान, रहन-सहन ऐसा होना चाहिए जिससे उसे शरीर-पोषण के लिए उचित मात्रा में विटामिन प्राप्त होते रहें।

अगर किसी विटामिन की कमी हो जाय तो औषधि के द्वारा या सुई के द्वारा उसे रक्त में पहुँचा कर उसकी पूर्ति कर लेना चाहिए।

इसी प्रकार के सिद्धान्तों के द्वारा यह चिकित्सा-पद्धति क्रमशः गतिवान हो रही है।

ऐलोरा

भारतवर्ष के महाराष्ट्र प्रान्त में औरंगाबाद जिले के अन्तर्गत औरंगाबाद शहर से १५ मील उत्तर-पश्चिम में ऐलोरा के सुप्रसिद्ध गुफा-मन्दिर अवस्थित हैं। इस स्थान पर पर्वतों को खोद-खोद कर बौद्ध, जैन और हिन्दू लोगों ने बड़े सुन्दर और आश्चर्यजनक गुफा-मन्दिरों का निर्माण किया है।

भारतवर्ष में और भी अनेक स्थानों पर गुफा-मन्दिर बने हुए हैं, किन्तु इन सब में 'एलोरा' के गुफा-मन्दिर ही अधिक विस्तृत और कलापूर्ण हैं। अर्धचन्द्राकार पर्वत की दक्षिणी भुजा पर बौद्ध-मन्दिर, उत्तरी भुजा पर इन्द्र-सभा और जैन-मन्दिर और मध्य स्थल पर हिन्दू देवी-देवताओं के मन्दिर बने हुए हैं।

ऐसा समझा जाता है कि दक्षिण भाग की गुफाएँ सबसे प्राचीन हैं। कुछ इतिहासकारों के अनुमान से इनका निर्माण सन् ३५० से लेकर ५५० ई० के बीच में होना सम्भव है। इस भाग को यहाँ के लोग 'ढेरावाड़ा' कहते हैं। इनमें से प्रथम गुफा एक बौद्ध-विहार है। इसमें ८ बड़े-बड़े घर बने हुए हैं। दूसरी गुफा नाट्य-मन्दिर की तरह है जो लोगों के उपासना करने का स्थान मालूम होता है। इसके बरामदे में बहुत-सी बौद्ध-मूर्तियाँ बनी हुई हैं। तीसरी गुफा इन दोनों गुफाओं से अधिक प्राचीन मालूम होती हैं। शेष ५ गुफाएँ बिलकुल खंडहर की तरह पड़ी हुई हैं, जिनमें से एक में विशाल लोकेश्वर की मूर्ति स्थापित है।

इन गुफाओं को लाँघ कर कुछ ऊपर चढ़ने से 'महारवाड़ा' नामक गुफा मिलती है, यह एक विस्तीर्ण बौद्ध-विहार है। यह गुफा प्रायः ११७ फीट गहरी और ५८॥ फीट चौड़ी है। इसका छज्जा २४ खंभों पर खड़ा हुआ है। इसके प्रवेश-द्वार पर ध्यानावस्था में पद्मासनीय बौद्ध-मूर्ति विराजमान है। इससे दक्षिण में दूसरा बौद्ध-मन्दिर है। इस मन्दिर के बाद अनेक विहार और जलाशय देख पड़ते हैं। इस गुफा से आगे कुछ ऊपर जाने पर विश्वकर्मा की प्रसिद्ध गुफा मिलती है। इसमें विश्वकर्मा रूपी बौद्ध-मूर्ति प्रतिष्ठित है। इस मूर्ति की पूजा के लिए कई स्थानों के मिस्त्री लोग यहाँ आया करते हैं। इस गुफा का निर्माण ईसा की छठीं शताब्दी में हुआ माना जाता है।

इस गुफा से आगे कुछ ऊपर द्वितल नामक एक गुफा है। पहले इसका एक तल दीख पड़ता था जो मिट्टी से भरा हुआ था। सन् १८७६ ई० में मिट्टी खोदते-खोदते इसका दूसरा तल निकल पड़ा। इस दूसरे तल में बुद्धदेव पद्मपाणि, वज्रपाणि, बोधि-सत्व तथा दूसरी अनेक मूर्तियाँ विद्यमान हैं।

इसके बाद त्रितल-गुहा दिखाई देती है जिसकी कारीगरी बहुत उच्च कोटि की है। इस गुफा में करीब ८ हाथ ऊँची बुद्ध-मूर्ति सिंहासन पर बैठी हुई है जिसे देखते ही ऐसा मालूम पड़ता है मानों पत्थर में भी प्राणों का सञ्चार हो गया हो। यह गुफा बौद्धों के महायान-सम्प्रदाय के द्वारा बनाई गई ज्ञात होती है।

पर्वत के मध्य स्थल पर त्रितल-गुफा के पास से हिन्दू-देवों के गुफा-मन्दिर आरंभ होते हैं। बौद्ध-निर्मित गुफाओं की तरह इन मन्दिरों में भी उत्कृष्ट शिल्प-नैपुण्य और असाधारण भास्कर्य-कला का परिचय मिलता है। इन गुफा-मन्दिरों में दशावतार, कैलाश, रामेश्वर, नीलकण्ठ, कुम्भारवाड़ा, जनवास और गोपी-मन्दिर की गुफाएँ प्रधान हैं।

दशावतार गुफा के चारों ओर प्रदक्षिणा बनी हुई है। मन्दिर के मध्य में महिष-मर्दिनी, हर-पार्वती, शिवताण्डव, रावण के द्वारा कैलाश उठाने का दृश्य, ऐरावत हाथी पर विराजित इन्द्राणी इत्यादि बड़ी सुन्दर मूर्तियाँ बनी हुई हैं।

ऐलोरा के 'कैलाश' या रंग-महल में वास्तु-कला का चरम-विकास दिखलाई पड़ता है। इसे देखने से मालूम पड़ता है कि प्राचीन भारत के शिल्पियों ने किस असाधारण क्षमता से कैलास का परिचय दिया है। इस निर्जन पहाड़ी स्थान के कैलास-भवन में पहुँचने पर साक्षात् महादेव के कैलास में पहुँचने जैसा आनन्द आता है। महादेव का यह दो मंजिला मन्दिर पर्वत की ठोस चट्टानों को काट कर बनाया गया है और ऐसा अनुमान किया जाता है कि प्रायः ३० लाख हाथ पत्थर उसमें से काट कर निकाल लिया गया है। कैलास के इस परिवेश में सारा ताजमहल अपने आँगन के सहित समा सकता है। प्राचीन शिल्पियों ने पतली सरिता की धारा को मोड़ कर कैलास के निकट कुछ ऐसे तरीके से घुमाया है कि उसका जल बूँद-बूँद करके १२ सदियों से शिवलिंग पर बराबर टपक रहा है। कैलास के इस मन्दिर में भैरव की मूर्ति पर आतंक की, पार्वती की मूर्ति पर स्नेहशीलता की और शिव के ताण्डव-नृत्य में रौद्र-रस की जो भावनाएं अंकित की गई हैं—वे अद्भुत हैं। प्राचीन भारतीय शिल्पकला का उत्कृष्ट नमूना इनमें देखने को मिलता है। इस कैलास-मन्दिर का निर्माण राठौर-नरेश दन्तिदुर्ग के द्वारा ईसा की ७वीं सदी में हुआ, माना जाता है।

कैलास के सिवा रामेश्वर, नीलकण्ठ, सीता की नहानी इत्यादि गुफाएँ भी अत्यन्त दर्शनीय हैं।

ऐलोरा पर्वत की उत्तर भुजा के मन्दिर का नाम पार्श्वनाथ है। यह जमीन से ४८० हाथ ऊँचा है। इसमें पार्श्वनाथ की ६॥ हाथ ऊँची दिगम्बर-मूर्ति ध्यानावस्थित स्थिति में विराजमान है।

पार्श्वनाथ-मन्दिर के दक्षिण में इन्द्रसभा है। यह तीन गुफाओं में विभक्त है। पहली ४० हाथ लंबी और २० हाथ चौड़ी है। इसमें १६ खंभे और १२ कड़ी हैं। प्राचीर के चारों ओर जैन देवी-देवों की मूर्तियाँ अंकित हैं। इनका शिल्प-कौशल भी अत्यन्त उत्कृष्ट है। दूसरी गुफा के मध्य में प्रकाण्ड-गर्भ-गृह बना हुआ है, जिसमें पार्श्वनाथ, महावीर इत्यादि जैन-तीर्थंकरों तथा जैन-देवियों की मूर्तियाँ बनी हुई हैं। तीसरी गुफा के गर्भ-गृह में सब दूर तीर्थंकरों और गणधरों की मूर्तियाँ बनी हुई हैं।

कुछ लोगों के मत से बुद्धपत्नी इला के नाम पर इन गुफाओं का नाम ऐलोरा या इलोरा हुआ और कुछ लोगों के मत से ईसा की दूसरी या तीसरी शताब्दी में एलिचपुर में 'इलू' नामक एक राजा राज्य करते थे, उन्होंने ही एक भयंकर व्याधि से मुक्त होने के उपलक्ष में इस पर्वत को खुदवाकर इनमें से कुछ गुफाओं का निर्माण करवाया और उन्हीं के नाम पर ये गुफाएँ 'ऐलोरा' या 'इलोरा' के नाम से मशहूर हुईं।

ऐलन्स्टन वाशिंगटन

अमेरिका का एक प्रसिद्ध चित्रकार, जिसका जन्म सन् १७७६ में और मृत्यु सन् १८४३ ई० में हुई।

ऐलन्स्टन प्रसिद्ध चित्रकार 'कोरेज्जो' के शिष्य थे। इनकी अधिकांश चित्रकला कृतियाँ बाइबिल की कथाओं के ऊपर आधारित हैं। इनकी शैली वेनिस की चित्र-कला से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। इनकी कलाकृतियों में देवदूत के द्वारा सेंटपीटर की मुक्ति, जेकोब का स्वप्न इत्यादि कृतियाँ विशेष प्रसिद्ध हैं।

ऐलसेस लॉरेन

जर्मनी का ५६ सौ वर्गमील का एक क्षेत्र, जिसकी पश्चिमी सीमा पर फ्रांस, पूर्वी सीमा पर बाडेन तथा दक्षिणी सीमा पर स्विटजरलैंड हैं। इस क्षेत्र में लोहा तथा कोयला बहुत अधिक पैदा पोता है जो औद्योगिक और सामरिक दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। यह क्षेत्र सैकड़ों वर्षों से यूरोपीय राजनीति में हमेशा झगड़े की जड़ रहा है। फ्रांस और जर्मनी के बीच इस क्षेत्र के लिए हमेशा प्रतिस्पर्धा चलती रही है और शक्ति-सन्तुलन के अनुसार कभी यह फ्रांस के अधिकार में और कभी जर्मनी के अधिकार में आता-जाता रहा है। इस क्षेत्र की जन-संख्या २० लाख से ऊपर है जिसमें ८० प्रतिशत जर्मन और शेष अन्य राष्ट्रीयता के लोग हैं।

ऐल्यूमीनियम

सफेद रंग की एक धातु, जो बर्तन बनाने, मकानों के निर्माण करने, हवाई जहाजों और मोटरों के निर्माण करने तथा बिजली के कंडक्टरों के बनाने में उपयोग में ली जाती है।

१८वीं शताब्दी के मध्यकाल तक इस धातु से लोगों का परिचय नहीं था। सन् १८५४ में डेविल (Deville) नामक वैज्ञानिक ने सोडियम और सोडियम क्लोराइड का प्रयोग करके ऐल्यूमिनियम धातु को थोड़ी मात्रा में तैयार की।

मगर इस धातु ने विशेष महत्व तब पकड़ा जब सन् १८८६ में अमेरिका में मार्टिन-हाल ने गले हुए क्रायोलाइट में ऐल्यूमीना घोलकर विद्युत-शक्ति के द्वारा ऐल्यूमीनियम धातु को पृथक किया। इसी वर्ष हेरो (Heroult) नामक वैज्ञानिक ने यूरोप में भी स्वतंत्र रूप से इसी प्रकार की धातु तैयार की। इन्हीं दोनों वैज्ञनिकों के द्वारा अनुसन्धान की हुई प्रणाली हाल-हेरो-प्रणाली के नाम से प्रसिद्ध है और इसी विधि से इस समय ऐल्यूमीनियम तैयार किया जाता है।

ऐल्यूमीनियम के अस्तित्व में आने के पश्चात् वजन में हल्की और कीमत में सस्ती होने के कारण इस धातु का प्रचार बड़ी तेजी से विश्वव्यापी हो गया। बर्तनों के सिवाय हवाई जहाजों, मोटरों, मकानों और बिजली के कंडक्टरों में भी इस धातु का बड़ी तेजी से उपयोग होने लगा। अकेले अमेरिका में सन् १९५८ में आवासी इमारतों के निर्माण में २,२३००० टन ऐल्यूमीनियम का उपयोग किया गया था। इसी सफेद, हल्की और चमकदार धातु से अमेरिकन लोग नावों पर मकान बनाते हैं जिसे वे 'बोटल्स' कहते हैं। नावों पर ये पूरे घर ऐल्यूमीनियम से बनाये जाते हैं और इनका उपयोग नदियों और झीलों पर तैरते हुए होटलों के समान होता है।

भारतवर्ष में भी ऐल्यूमीनियम के कई कारखाने हैं। सबसे बड़ा कारखाना उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले में 'रेहन्द बाँध' के नजदीक अमेरिका के प्रसिद्ध उद्योगपति कैसर और भारत के प्रसिद्ध उद्योगपति बिडला-ब्रदर्स के सहयोग से "हिन्दुस्तान ऐल्यूमीनियम कारपोरेशन लिमिटेड" के

नाम से खोला गया है। इस कारखाने की प्रारम्भिक उत्पादन-क्षमता ऐल्यूमीनियम के २० हजार टन इनगोट प्रतिवर्ष तैयार करने की है।

ऐल्यूमीनियम धातु तैयार करने के लिए दो खनिज पदार्थों की विशेषरूप से आवश्यकता होती है। एक बोक्साइट और दूसरा क्रायोलाइट। बोक्साइट खनिज पदार्थ की खानें अमरकण्टक की पहाड़ियों में तथा बालाघाट, जबलपुर, राँची, बेलगाम, कोल्हापुर इत्यादि जिलों में पायी जाती हैं। पहले यहाँ से प्राप्त होने वाला बोक्साइट भारत से ब्रिटेन को भेजा जाता था और वहाँ से उसका ऐल्यूमीनियम तैयार होकर आता था, मगर उसके बाद यहाँ पर भी ऐल्यूमीनियम के कारखाने आसनसोल तथा टाटानगर में खोले गये। मिर्जापुर का कारखाना स्थापित होने के पहले भारत में ऐल्यूमीनियम के सब कारखानों की उत्पादन-क्षमता १८ हजार टन वार्षिक थी जब कि यहाँ का खर्च ३० हजार टन वार्षिक था। इस प्रकार उस समय १२ हजार टन ऐल्यूमीनियम विदेशों से मँगाया जाता था।

ऐसस

ईरान का एक शहर जहाँ पर ईरानी सेना की सिकन्दर की सेना से दूसरी टक्कर हुई। दो मील चौड़ी एक घाटी में बसे हुए इस शहर के दक्षिण-पश्चिम में इस्कन्दरान की खाड़ी है, एक ओर पहाड़ है और दूसरी ओर नदी बहती है। सम्राट् दारा तृतीय ने छः लाख सेना लेकर सिकन्दर को दूसरी बार इस नदी पर रोका। छः लाख सेना के अलावा दारा के पास २० हजार सुरक्षित सेना भी थी।

सिकन्दर ने नदी की दाहिनी ओर पहुँच कर नदी पार करना प्रारम्भ किया। ईरानी सेना ने नदी पार करती हुई यूनानी सेना पर आक्रमण किया, लेकिन सिकन्दर की सेना नदी पार करने में सफल हो गई। नदी पार होते ही दारा बिना युद्ध के परिणाम की प्रतीक्षा किये ही भाग खड़ा हुआ, जिससे सेना की हिम्मत टूट गई। सिकन्दर की बढ़ती हुई सेना ने दमिश्क में आकर दारा की रानी, उसकी माता और उसकी दो लड़कियों को गिरफ्तार कर लिया। इसके कुछ दिनों पश्चात् दारा की पत्नी का सिकन्दर के पड़ाव में ही देहान्त हो गया। सिकन्दर ने सम्मान पूर्वक उसकी अन्त्येष्टि कर दी तथा उसकी एक लड़की को तो सम्मान पूर्वक वापस भेज दिया और बड़ी लड़की स्तेतीरा से शादी कर ली।

ऐसीदन सिरपोल

प्राचीन असीरिया का एक क्रूर राजा जिसका समय ई० पू० ८८४ से ई० पू० ८५९ तक माना जाता है।

यह राजा एददानिरारी का पुत्र था। इसने अपनी सैनिक शक्ति का पुनर्निर्माण कर कई नगर-राज्यों का नाश कर असीरिया की सीमा को अपने पिता से भी अधिक भूमध्य सागर तक बढ़ा लिया। यह राजा बड़ा क्रूर था, जिस राजा को जीतता था, उसकी आँखें सबसे पहले निकलवा लेता था और उसकी रानियों को भी लूट के माल के साथ ले जाता था।

ऐसैनी

यहूदी धर्म का एक साधु-सम्प्रदाय जिसकी स्थापना ईसा की दूसरी शताब्दी के लगभग हुई।

भारत के ऋषि मुनियों की तरह एसेनी-सम्प्रदाय के साधु भी पर्वतों, जंगलों और नदियों के किनारे अपने आश्रम या छोटी-छोटी बस्तियाँ बसा कर रहते थे। इस श्रेणी के साधु जीवन भर अविवाहित रहकर तपस्या करते रहते थे। इनकी तपस्या का रूप उग्र होता था। मांस, मदिरा और भोगोपभोग की वस्तुओं को छूना भी इनके लिए वर्जित रहता था, ये लोग अपना निजी पैसा भी नहीं रख सकते थे। जो भी पैसा आता उस पर जमात का सामूहिक अधिकार होता था और जमात के द्वारा ही इनके खाने, पीने और वस्त्र वगैरह की व्यवस्था होती थी।

'ऐसेनी' सूर्य्य की उपासना करते थे और वे ईश्वर की दिव्य ज्योति का प्रतिनिधि सूर्य्य को मानते थे। उपासना के समय हमेशा वे सूर्य्य की तरफ अपना मुँह रखते थे। सूर्य्योदय के समय वे समूहबद्ध इकटठे होकर सूर्य्य के सामने मुँह करके यहूदियों के प्रसिद्ध मंत्र "रोमा" का गान करते थे। अपने उच्च चरित्र और तत्त्वचिंतन के कारण वे आस-पास की दुनिया में बड़े आदर की दृष्टि से देखे जाते थे।

ईसाई-धर्म के प्रचार के साथ ही इस सम्प्रदाय का धीरे-धीरे अन्त हो गया।

एस्कि

टर्की का एक प्रसिद्ध शहर, जो प्राचीन काल से गंधक मिश्रित गरम जल के झरनों के कारण प्रसिद्ध है।

चर्म-रोगों के अनेक रोगी अति प्राचीनकाल से इन स्रोतों में स्नान करके रोगमुक्त होते आये हैं। जलवायु की शुद्धता के लिए भी यह नगर मशहूर है इसकी जनसंख्या ८०००० है।

ऐस्टेर

प्राचीन युग की एक यहूदी सुन्दरी, जिसका विवाह ईरान के सम्राट क्षयार्ष प्रथम के साथ हुआ था जिसका शासन-काल ई० पूर्व ४८५ से ४६६ तक था।

ईरान के सम्राट क्षयार्ष प्रथम ने एस्टेर की सुन्दरता पर मोहित हो अपनी पत्नी वास्ती को तलाक देकर एस्टेर से विवाह किया था। इस रमणी का यहूदी नाम "हदासाह" था।

बादशाह का वजीर हामान यहूदियों का बड़ा शत्रु था। एक बार उसने समस्त ईरानी सल्तनत में यहूदियों का वध करने की राजाज्ञा निकाल दी। इस पर एस्टेर ने सम्राट से कहा कि "मैं भी यहूदी हूँ क्या मेरा भी वध होगा" इस पर सम्राट् ने उस आज्ञा को रद्द करके 'हामान' को प्राणदण्ड दिया।

इस घटना की स्मृति में यहूदी लोग "पुरीम" नामक त्यौहार उसी तारीख को मनाते हैं जिस दिन यहूदियों के वध की राजाज्ञा रद्द की गई थी।

ऐस्टे राजवंश

इटली का एक प्रसिद्ध और प्राचीन राजवंश जिसका समय ईसा की चौदहवीं सदी से सोलहवीं सदी तक था।

इटली के पुनर्जागरण के इतिहास में ऐस्टे-राजवंश का बहुत प्रमुख स्थान है। करीब दो शताब्दियों तक इस राजवंश का सितारा अत्यन्त गौरवपूर्ण रहा। इस वंश का पहला राजा "ओबिट्सोइ" था जिसने मार्क्विस की उपाधि ग्रहण की।

इस वंश का प्रतापी राजा तीसरा निकोलस था जिसने कई दूसरे स्थानों पर विजय प्राप्त करके अपने राज्य की सीमाओं को बढ़ाया। इसका समय सन् १३८४ से १४४१ तक था। इसके पश्चात् बोर्सो नामक राजा इसकी गद्दी पर बैठा। यह राजा बड़ा विद्याप्रेमी, विद्वानों का आदर करने वाला और उदार था। अपने राज्य की औद्योगिक उन्नति में भी इसने बड़ा भाग लिया। इसका राज्यकाल सन् १४७१ तक रहा।

सन् १४७१ से १५०५ तक इस गद्दी का अधिकारी एरकोले प्रथम रहा। इस राजा का मंत्री महाकवि बोइआर्दो था। इसकी लड़की बीट्रिस ने इटली के पुनर्जागरण-युग में बहुत कीर्ति सम्पादित की।

अलफ्रान्सो प्रथम भी इसी वंश का था जो अपने कलाकौशल सम्बन्धी ज्ञान के कारण प्रसिद्ध था। इसका राज्यकाल सन् १५३४ तक रहा। उसके पश्चात् अलफ्रान्सो द्वितीय के समय में इस राजवंश का प्रभाव समाप्त हो गया।

ऐस्सेना

एक प्राचीन हूण कबीला जिससे चीनी-ग्रन्थों के अनुसार तुर्क जाति की उत्पत्ति हुई।

इस कबीले का एस्सेना नाम पड़ने का कारण सम्भवतः यह है कि इस कबीले के लोग लोहे के हथियार सान पर चढ़ाने का काम करते थे। अर्थात् ये मध्य-एशिया के लुहार थे। उस समय ये लोग अल्ताई पर्वत-श्रेणी के दक्षिणी भाग में रहते थे और नुकीली टोपी पहनते थे। इसी से इन्हें 'तुरुष्क' कहा जाता था तुरुष्क शब्द ही आगे जाकर "तुर्क" नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इस कबीले के सरदार तूमिन ने जो पहले अवार जाति के आधीन था—आवारों की शक्ति को निर्बल होते देख सन् ५४६ में अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया और 'इलखान' की उपाधि धारण कर राजा बन बैठा। इसी कबीले से तुर्क जाति की उत्पत्ति हुई।

ऐलाबामा

संयुक्त राज्य अमेरिका का एक दक्षिणी राज्य। इस राज्य की जनसंख्या ३१,३५००० है।

यह एक कृषिप्रधान राज्य है। यहाँ की प्रधान पैदावार कपास, गेहूँ, आलू, मटर और गन्ना है। औद्योगिक क्षेत्र में इस राज्य के अन्तर्गत सूती कपड़ा तथा इस्पात के उद्योग काफी प्रगति पर हैं। इस राज्य के प्रधान नगर बरमिंघम तथा मांटगोमरी हैं।

ऐस्टेट्स जनरल

फ्रांस में मध्ययुग की एक राज्य सभा जिसकी स्थापना आठवीं सदी में हुई थी और जिसका अधिवेशन १७५ वर्ष बाद फ्रांस की राज्यक्रान्ति के समय ५ मई सन् १७८६ को बुलाया गया था।

सन् १७८६ में जब कैलोन सोलहवें लुई का प्रधान मंत्री था उस समय राजवंश की अपार फजूलखर्ची से राज्य का खजाना खाली हो गया था और प्रति वर्ष बारह करोड़ रुपये का घाटा हो रहा था। राज्य पर करोड़ों रुपयों का कर्ज हो रहा था और नया कर्ज मिल नहीं रहा था। इस परिस्थिति पर काबू पाने के लिए सम्राट् ने स्वयं दो नये प्रकार के टैक्स जनता पर लगाने का निश्चय किया। हमेशा की तरह इन नये टैक्सों को दर्ज करने के लिए पेरिस के न्यायालय पार्लेमा में भेजा गया।

मगर न्यायालय ने इन टैक्सों को दर्ज करने से इन्कार करते हुए स्पष्ट रूप से कहा कि किसी भी नये "स्थिर टैक्स" को लगाने का अधिकार "एस्टेट्स जनरल" नामक जनता की सभा को ही है। दूसरे किसी को नहीं, इसलिए इन टैक्सों की स्वीकृति के लिए एस्टेट्स जनरल का अधिवेशन बुलाया जाय।

न्यायालय की इस धृष्टता को देखकर सम्राट् ने न्यायालय को बर्खास्त कर दिया और नये न्यायालय की स्थापना कर दी मगर अब परिस्थिति इतनी खराब हो गई थी कि सम्राट् का उस पर बस नहीं रहा। अन्त में उसे मजबूर होकर "एस्टेट्स जनरल" का अधिवेशन बुलाना पड़ा।

एस्टेटस जनरल का यह अधिवेशन ही फ्रांस की राजक्रान्ति का श्रीगणेश था। इसके पहले कोई नहीं जानता था कि एस्टेट्स जनरल क्या चीज है और उसकी स्थापना कब हुई थी। क्योंकि १७५ वर्षों से उसका कोई अधिवेशन नहीं बुलाया गया था। अन्त में जब खोज हुई तो पता लगा कि जिस समय फ्रांस में फ्यूडल या सामन्तवादी प्रथा चल रही थी, उस समय अर्थात् आठवीं-नौवीं शताब्दी से ही इस सभा की स्थापना हुई थी और समय-समय पर इसके अधिवेशन हुआ करते थे। इस सभा के तीन विभाग थे। पहला विभाग पादरियों का, दूसरा सामन्त और कुलीन लोगों का और तीसरा साधारण जनता का। तीनों श्रेणियों के सदस्यों की संख्या बराबर हुआ करती थी और एक विभाग का एक वोट समझा जाता था। किसी भी विषय का निर्णय बहुमत से होता था। कहना न होगा कि अक्सर उस समय की परिस्थिति के अनुसार पादरियों और कुलीन लोगों का एक मत होने से इस सभा के निर्णय प्रायः उन्हीं के पक्ष में हुआ करते थे।

मगर इस समय अर्थात् सन् १७८८ में जमाना बहुत बदल चुका था। लोगों की माँग थी कि पादरियों और कुलीन लोगों से हम लोगों की संख्या बहुत अधिक है। इसलिए हमारे वोट भी अधिक होना चाहिए। तब इस सभा में पुरोहित और कुलीन दोनों श्रेणियों के सम्मिलित प्रतिनिधियों की संख्या के बराबर साधारण जनता के भी ६०० प्रतिनिधि स्वीकृत किये गये, मगर फिर भी वास्तविक समस्या का हल नहीं हुआ। क्योंकि सदस्यों की संख्या बढ़ जाने पर भी हरएक सदन का एक ही वोट गिना जाता था और जिधर दो वोट पड़ जाते उधर ही निर्णय होता था। इस प्रकार पादरी और कुलीन लोगों के दो वोट के मुकाबिले जनता के सदन का एक ही वोट माना जाता था। इसके लिए भी जनता ने आन्दोलन किया मगर प्रधान मंत्री नैकर ने उसे स्वीकार नहीं किया।

इसके साथ ही जनता को यह भी अधिकार दिया गया कि पुराने रिवाज के अनुसार सरकार और शासन से उसे जो भी शिकायत हो, उसे लिखकर भेजे। ऐसी शिकायतों को फ्रेञ्च भाषा में काहिरस (Cahiers) कहा जाता था। उस समय के लोगों ने इस अवसर का पूर्ण लाभ उठाया जिसके परिणामस्वरूप पहुँचे हुए शिकायती

पत्रों में से ६०००० पत्र अभी भी सुरक्षित हैं जिन से उस समय की जनता की मनोभावनाओं का पता लगता है।

मगर एस्टेट्स जनरल का यह अधिवेशन भी सम्राट की सरकार और जनता के बीच की खाई को न पाट सका। वह प्रतिदिन चौड़ी होती गई और अन्त में उसका विस्फोट फ्रांस की भीषण राज्यक्रान्ति के रूप में हुआ जिसमें सम्राट्, सम्राज्ञी, हजारों राजवंश के कुलीन पुरुष और साधारण जनता का भी भयङ्कर प्राण नाश हुआ।

(ओ-औ)

ओकलैण्ड

संयुक्त राज्य अमेरिका के कैलिफोर्निया राज्य का एक नगर जहाँ की जनसंख्या चार लाख के करीब है। ओकवृक्षों का आधिक्य होने से इसका नाम ओकलैण्ड पड़ा।

ओकलैण्ड रेलवे, हवाई जहाज तथा जलयानों का एक बड़ा केन्द्र है। यह एक औद्योगिक नगर है। यहाँ पर मोटर, रासायनिक सामग्री, बिजली की मशीनें इत्यादि कई प्रकार के उद्योग चलते हैं। द्वितीय विश्व-युद्ध के पश्चात् इस नगर ने बहुत उन्नति की।

ओकाम्पो-विक्टोरिया*

महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर की उत्तर जीवन की प्रेमिका जो दक्षिण अमेरिका के अर्जेण्टाइना प्रान्त की निवासिनी थी। महाकवि ने बाद में इसका नाम "विजया-विक्टोरिया" रक्खा और अपना "पूरबी" नामक काव्य इसी प्रेमिका के नाम पर समर्पित किया।

ओकाम्पो विक्टोरिया का जन्म अर्जेण्टाइना के एक अभिजात-वंश में हुआ था। ओकाम्पो विक्टोरिया बहुत सुन्दर, विदुषी और कोमलहृदया थी। वह कई भाषाओं की जानकार थीं और स्पेनिश भाषा की एक प्रसिद्ध पत्रिका की सम्पादिका थीं।

रवीन्द्रनाथ के साथ उनका साक्षात्कार जैसा आकस्मिक था, वैसा ही रोमांचकर भी था। श्रीमती ओकाम्पो रवीन्द्रनाथ की काव्य-प्रतिभा से विशेषकर गीतांजलि-काव्य के फ्रेंच और स्पेनिश अनुवादों से अत्यन्त प्रभावित हुई थी और बिना देखे अनजाने ही उनका मन महाकवि के व्यक्तित्व के प्रति आकृष्ट हो गया था।

दैवयोग से सन् १६२४ में महाकवि रवीन्द्रनाथ स्वतंत्रता-प्राप्ति के शताब्दी समारोह के अवसर पर पेरू की सरकार के द्वारा आमन्त्रित किये गये और वे उसी उत्सव में सम्मिलित होने के लिए पेरू जा रहे थे। व्यवस्था इस प्रकार की गई थी कि Buonos Aircs (ब्यूनोस एरिक्स) बन्दरगाह पर उनका जहाज कुछ समय तक रुकेगा। यह सुनकर ओकाम्पो अत्यन्त आनन्दित हुई और उनकी हृदय-तंत्री के तार प्रेम के आवेग से झंकृत हो उठे।

सन् १६२४ की छः नवम्बर को रवीन्द्रनाथ का जहाज 'ब्यूनोस एरिक्स' बन्दरगाह पर पहुँचा और होनहार की लीला, रवीन्द्रनाथ वहीं पर अस्वस्थ पड़ गये और डाक्टरों ने उन्हें पेरू की यात्रा करने से मना कर दिया।

उसी समय श्रीमती ओकाम्पों ने वहाँ पर पहुँचकर कवि की सुरक्षा का सारा भार अपने ऊपर ले लिया और शहर से बाहर सानइसिड्रो नामक सुन्दर स्थान पर मिरालारिओ नामक शानदार महल में रवीन्द्रनाथ को ठहरा दिया। महल का निर्जन वातावरण कवि के स्वास्थ्य के लिए बहुत अनुकूल था। महल के चारों ओर रमणीय पुष्प-वाटिका थी। इस रम्य महल के मोहक वातावरण में ओकाम्पो की देखभाल, सेवा और मधुर वार्तालाप से कवि को सर्वाङ्गीण विश्राम मिला।

वृद्धावस्था की दहलीज पर पैर रख देने पर भी कवि का काव्यरस परिपूर्ण हृदय-इस अतुलनीय मानसी को पाकर एक बार फिर नवीन यौवनरस से भर उठा। जीवन की गोधूलि-बेला में इस प्रेममयी ने "शेष पुजारिणी" के रूप में उनके जीवन में प्रवेश किया तो कवि विस्मित नहीं हुए।

---

*श्रीमती लावण्य प्रभा राय के एक लेख के आधार पर।

विधाता का अनुपम आशीर्वाद समझकर कवि फिर एक बार यौवनरस से भरपूर हो उठे। उनका जीवनपात्र इस नारी के प्रेमदान से अमृतपूर्ण हो गया।

आयु की दृष्टि से महाकवि ओकाम्पो से काफी बड़े थे, परन्तु और सभी बातों में ये दोनों आत्माएँ समान धर्मी थीं। आयु की बाधा को ढकेल कर दोनों एक दूसरे के प्रेम सूत्र में बँध गये। कवि ने अपनी प्रेमिका का नाम "विजया विक्टेरिया" रक्खा और अपना पूरवी नामक काव्य उसको समर्पित किया।

ओंकार-मान्धाता

मध्य प्रदेश में नीमाड़ जिले के अन्तर्गत नर्मदा नदी का मध्यवर्ती एक द्वीप, जो बड़वाह स्टेशन से दस मील की दूरी पर पड़ता है। यहाँ पर भगवान् शङ्कर का ज्योतिर्मय रूप ओंकार के रूप में स्थित है।

ओङ्कार-लिंग बहुत प्राचीन है। शिवपुराण, पद्म-पुराण, लिंगपुराण इत्यादि कई पुराणों में इसका उल्लेख मिलता है।

शिवपुराण में इस लिंग की स्थापना का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "एकबार महर्षि नारद गोकर्णतीर्थ से विन्ध्य-पर्वत पर आये थे। विन्ध्य ने उनकी बड़ी भक्ति के साथ पूजा की। नारद ने प्रसन्न होकर कहा कि विन्ध्य तुम्हारे पास और तो सब कुछ है पर देवता का वास तुम्हारे पर नहीं है, मेरु पर्वत तुम्हारी अपेक्षा ज्यादा भाग्यवान् है क्योंकि उस पर देवताओं का वास है।"

यह सुनकर "विन्ध्य" को बड़ा दुःख हुआ और वह शिव की तपस्या करने उसी स्थान पर आया जहाँ इस समय ओंकार का मन्दिर बना हुआ है। वहाँ पर उसने मिट्टी की एक शिव की मूर्ति बनाई और छः महीने तक एकाग्र भाव से कठोर तपस्या की। इस पर शंकर प्रसन्न हुए और विन्ध्य से इच्छानुसार वर माँगने को कहा। विन्ध्य ने कहा "हे भगवान! आप अपने ज्योतिर्मय ओङ्कार रूप में मुझे दर्शन दें।" जब भगवान् शिव ने अपना ज्योतिर्मय ओंकाररूप धारण किया तो उसी समय देवों और ऋषियों ने वहाँ आकर उनका पूजन किया और उनसे उसी रूप में वहीं रहने की प्रार्थना की।

इस प्रकार भगवान् शंकर ओंकाररूप में वहाँ स्थापित हुए। उनका एक रूप ओंकाररूप में और दूसरा पार्थिव लिंग के रूप में विभक्त हुआ। ओंकारमूर्त्ति का नाम सदाशिव और पार्थिव लिंग का नाम अमरेश्वर है। आजकल द्वीप के मध्यभाग में ओंकार-लिंग का और नदी के दक्षिण भाग में अमरेश्वर का मन्दिर है। यहाँ के पुजारी ओंकार को आदिलिंग कहते हैं। रेवाखण्ड में भी ओंकार को आदिदेव बतलाया गया है।

तीर्थयात्री द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों के दर्शन करने की इच्छा से आकर पहले ओंकार-मान्धाता और पीछे शिव के पार्थिवलिंग अमरेश्वर के दर्शन करते हैं। पश्चिमी भारत के शास्त्रज्ञ पण्डित इसी ओङ्कार मूर्ति को ईश्वर का प्रकृत लिंग मानते हैं।

पौराणिक परम्परा के अनुसार राजा मान्धाता ने यहीं पर भगवान् ओंकारेश्वर से प्रार्थना कर "मान्धाता" का विरुद ग्रहण किया, पहले उनका नाम "वैदूर्य्य शैल" था।

इस मान्धाता-द्वीप में प्रायः सभी शिव मन्दिर हैं। मगर इससे थोड़ी दूर उत्तर नर्मदा के किनारे अनेक विष्णु और जैन-मन्दिर भी बने हुए हैं।

पहले यह स्थान भील राजाओं के अधिकार में था। उसके बाद यह चौहान राजाओं के अधिकार में आया। कहा जाता है कि इन चौहानों का आदिपुरुष "भारत सिंह" नामक एक राजा था। सन् ११६५ में उसने यहाँ के राजा नाथू भील को हराकर इस क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। बाद में नाथू भील की कन्या से उसने विवाह भी कर लिया। आज भी ओंकारेश्वर से थोड़ी दूर पहाड़ के उत्तर में कई प्राचीन मन्दिर नाथू भील के वंशधरों के अधीन है। आधुनिक काल में यह मन्दिर पहले इन्दौर-राज्य के अन्तर्गत था तथा अब मध्यप्रदेश में है।

ओंकारनाथ ठाकुर (*संगीत मार्तण्ड*)

भारतीय संगीत के एक सुप्रसिद्ध संगीतकार। इनका जन्म २४ जून सन् १८९७ ई० को बड़ौदा रियासत के जहाजग्राम नामक स्थान पर हुआ।

पंडित ओंकारनाथ के पितामह का नाम पं० महाशंकर ठाकुर था, जिन्होंने सन् १८५७ की आजादी की लड़ाई में नाना साहब पेशवा के साथ अग्रगण्य भाग लिया था और संकटकाल उपस्थित होने पर नाना साहब के परिवार को नैपाल पहुँचाने का भार भी उन्हीं को सौंपा गया था।

पं० ओंकारनाथ के पिता पं० गौरीशंकर ठाकुर शुरू-शुरू में बड़ौदा रियासत में २०० घुड़सवारों के सरदार रहे, मगर उसके बाद उनको योगाभ्यास की धुन लग गई और अन्त समय में गृहस्थी के ताने-बाने को तोड़कर परम योगी के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

पं० ओंकारनाथ की संगीत सम्बन्धी शिक्षा-दीक्षा भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध संगीत-साधक पं० विष्णुदिगम्बर पलुस्कर के संरक्षण में बंबई के 'गान्धर्व महाविद्यालय' में प्रारंभ हुई। अपनी रुचि के अनुकूल क्षेत्र मिल जाने के कारण उनकी संगीत-प्रतिभा का तेजी के साथ विकास होने लगा। उन्होंने अपनी सम्पूर्ण शक्ति से दिन भर में १८-१८ घंटे तक संगीत की अनवरत साधना की।

सन् १९१८ में जालन्धर के 'हरवल्लभ' के मेले में भारत के प्रसिद्ध संगीताचार्य पं० भास्करराव बखले के साथ चार दिन तक पं० ओंकारनाथ की संगीत-प्रतियोगिता चली। पं० ओंकारनाथ की साधना को देखकर स्वयं आचार्य 'बखले' बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि अब मैं तुम्हारे ऊपर बैठकर नहीं गाऊँगा।

सन् १९२२ में पं० ओंकरनाथ का, श्रीमती इन्दिरा भट्ट के साथ विवाह हुआ और उसके साथ ही उन्हें गृहस्थाश्रम की आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

नैपाल-यात्रा

उन दिनों महाराजा चन्द्र शमशेरजंग बहादुर राणा के राज्यकाल में नैपाल विविध प्रकार की कला-कृतियों का केन्द्र बना हुआ था। पं० ओंकारनाथ भी अपनी आर्थिक दशा के सुधारने के उद्देश्य से बड़ौदा के दीवान सर मनुभाई मेहता से नैपाल के राणा के नाम पर एक पत्र लेकर अनेक कठिनाइयों को झेलते हुए नैपाल जा पहुँचे। नैपाल के दरबार में पं० ओंकारनाथ ने अपनी संगीत-कला का जो अद्भुत प्रदर्शन किया, उससे सारा दरबार मंत्रमुग्ध हो गया और नैपाल के राणा ने प्रसन्न होकर ५ हजार रुपयों का एक मञ्च बनवा कर उस पर पं० ओंकारनाथ को बिठाकर वह धनराशि उनको प्रदान की।

सन् १९३० में भीम शमशेरजंग बहादुर राणा के यहाँ विवाहोत्सव का निमंत्रण पाकर पं० ओंकारनाथ ने दूसरी बार नैपाल की यात्रा की। इसी यात्रा के समय उनके गुरु पं० विष्णुदिगम्बर भी नैपाल आये हुए थे। इस यात्रा में नैपाल के दरबारी संगीतकार पं० बालाप्रसाद के साथ पं० ओंकारनाथ की जबर्दस्त प्रतियोगिता हुई! उसमें पं० ओंकारनाथ को पूर्ण विजयी घोषित किया गया और महाराजा ने स्वयं अपने हाथों से उनके गले में विजय-माला पहनायी।

योरोप-यात्रा

सन् १९३३ ई० में पं० ओंकार नाथ ने पहली बार योरोप-यात्रा करके इटली के फ्लोरेंस नगर में होने वाली 'इंटर नेशनल म्युजिक कान्फ्रेंस' में अत्यन्त सफलता के साथ भारतीय संगीत का प्रतिनिधित्व किया और अन्तर्राष्ट्रीय कला के क्षेत्र में सम्माननीय स्थान प्राप्त किया।

इटली के तत्कालीन कर्णधार मुसोलिनी के सामने भी पं० ओंकारनाथ का संगीत हुआ और उन्होंने इनके स्वर-चमत्कारों को सुनकर उन्हें स्वरलिपि में उतार लेने के लिए रोम की 'रायल एकेडेमी ऑफ म्युजिक' के प्रिंसिपल को आदेश दिया था।

इसके बाद जर्मनी, हालैंड, बेल्जियम, फ्रांस, स्विटजरलैंड और इंगलैंड सभी स्थानों पर भारतीय संगीत की उच्चता और महत्ता का इन्होंने प्रदर्शन किया।

योरोप से वापस लौटकर उन्होंने बंबई में 'संगीत-निकेतन' नामक एक विद्यालय की स्थापना की और समस्त भारतवर्ष में सालभर में करीब ४० हजार मील की यात्राएँ करके स्थान-स्थान पर भारतीय संगीत की प्रतिष्ठा स्थापित की।

सन् १६५० में पं० ओंकारनाथ ठाकुर काशी-हिन्दू विश्व-विद्यालय' में 'कला-संगीत-भारती' नामक संगीत-महाविद्यालय के अध्यक्ष बने। इस संस्था की स्थापना से उत्तर भारत के संगीत—क्षेत्र में एक नवीन अध्याय का प्रारंभ हुआ। क्योंकि किसी विश्व-विद्यालय में एक पूरे कालेज के रूप में संगीत की शिक्षा को स्थान मिलने का यह पहला अवसर था। संगीत में स्वतंत्र रूप से स्नातक तथा स्नातकोत्तर उपाधियों के लिए तथा अनुसन्धान-कार्यों के लिए इसके पूर्व किसी विश्व-विद्यालय में स्थान न था।

अपने इस शिक्षण-कार्य में पं० ओंकारनाथ को बहुत बड़ी सफलता मिली और उनके द्वारा शिक्षित किये हुए सैकड़ों स्नातक समस्त भारतवर्ष में आज प्राचीन भारतीय संगीत का प्रचार कर रहे हैं।

इसके पश्चात् भारत के आजाद होने पर इन्होंने सन् १६५२-५३ तथा ५४ में विदेशों की यात्राएँ की।

पं० ओंकारनाथ की संगीत-कला गुरु-परंपरा से ग्वालियर के भारतप्रसिद्ध संगीतकार खाँ साहब हद्दूहस्सू खाँ के घराने से संबन्ध रखती है। पं० ओंकारनाथ के दादागुरु पं० बालकृष्ण बूवा इस भारतविख्यात गायकी को महाप्रयास से महाराष्ट्र में लाने वाले पहले व्यक्ति थे। उनके शिष्य पं० विष्णुदिगम्बर से इस गायकी की शिक्षा पं० ओंकारनाथ ने प्राप्त की। ख्याल-गायकी ही इस परंपरा की विशेषता है। किन्तु स्वर की स्थिरता और लय की विविधता की साधना के लिए ध्रुवपद-अंग की शिक्षा भी इसमें आवश्यक मानी गई है।

पं० ओंकारनाथ मुख्यतः ख्याल-गायक होते हुए भी ध्रुवपद अंग और ठुमरी अंग का सफल प्रदर्शन कर सकते हैं। पं० विष्णुदिगम्बर ने भजन-गान की जो नई शास्त्रीय परंपरा चलाई थी, उसे ही आगे बढ़ाकर पं० ओंकारनाथ ने अपनी एक ऐसी व्यक्तिगत शैली का विकास किया जिसने उन्हें इस क्षेत्र में अद्वितीय बना दिया। उनके 'योगी मत जा, मत जा, मत जा' 'मैया मोरी, मैं नहिं माखन खायो' 'कन्हैया नाव करो मोरी पार' इत्यादि एक-एक भजन अकेले ही उनकी कीर्ति को अमर बना देने में पर्याप्त है। 'वन्दे मातरम्' ताल के अन्दर भी पं० ओंकारनाथ ने अपनी दिव्य स्वर-योजना के द्वारा नवीन ओज और प्रगाढ़ देशभक्ति की भावना को भरकर उसे द्विगुणित अमर बना दिया।

इस प्रकार पं० ओंकारनाथ ने अपने विचक्षण व्यक्तित्व के प्रभाव से भारतीय संगीतकला को एक नया मोड़ देने में पूर्ण सफलता प्राप्त की।

सन् १६५७ ई० में पं० ओंकारनाथ हिन्दू-विश्व-विद्यालय से रिटायर्ड (सेवा-निवृत्त) हुए और सन् १६६३ ई० को काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय के द्वारा उन्हें डाक्टरेट की ऑनरेरी उपाधि प्राप्त हुई।

पं० ओंकारनाथ ने भारतीय शास्त्रीय संगीत-विद्या के कई महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की। इन ग्रन्थों में 'संगीताञ्जलि' और 'प्रणव भारती' नामक दो ग्रन्थ विशेष प्रसिद्ध हैं। संगीताञ्जलि के अब तक ६ भाग प्रकाशित हो चुके हैं। कुल १० भागों में समाप्त होने की इसकी योजना है और प्रणव-भारती का पहला खण्ड प्रकाशित हो चुका है और दो खंड और भी प्रकाशित होने की आशा है।

ओकूनी

जापान के शिन्तो-मन्दिर की प्रसिद्ध नर्तकी जो काबुकी नामक ऐतिहासिक नाटकों में अभिनय करती थी। इसका पहिला अभिनय सन् १५६६ में क्योटो में हुआ था।

ओखा

भारतवर्ष के सौराष्ट्र प्रांत का एक बन्दरगाह और छोटा जिला, जिसके उत्तर में कच्छ की खाड़ी, पश्चिम में अरब समुद्र और पूर्व तथा दक्षिण में एक दलदली-क्षेत्र है जो इसे नवानगर से अलग करता है।

ओखा एक द्वीप की तरह है जिसका क्षेत्रफल २५० वर्ग मील है।

यह क्षेत्र पहले दूसरी शताब्दी से छठीं शताब्दी तक बघेरा राजपूतों—जिन्हें पहले काल कहते थे—के अधिकार में रहा। छठीं शताब्दी में चावड़ा राजपूतों ने इसे जीतकर बघेरों को यहां से निकाल दिया। चावड़ा-वंश का पहला राजा अक्षयसेन था। इसी वंश में आगे चलकर कनक-

सेन नामक जैन राजा हुआ जिसने कनकपुरी नामक नगरी बसाई जो बाद में बसाई के नाम से प्रसिद्ध हुई। यह नगरी पहले ओखा-मण्डल के व्यवसाय की केन्द्र थी। अब तो यह एक छोटे गाँव के रूप में है। कनकसेन के बनाये हुए कई जैन-मन्दिर अब खण्डहर की स्थिति में पड़े हुए हैं।

चावड़ों के पश्चात् यहाँ पर राठौर-वंशीय वेरावलजी का शासन प्रारम्भ हुआ। इस वंश की नौ पुश्तों ने करीब १२० वर्ष तक यहाँ राज्य किया। राज्य के साथ-साथ ये लोग यात्रियों के जहाजों को लूटने का भी काम करते थे। इससे अहमदाबाद के मुसलमान सुल्तान इनसे नाराज रहते थे। कई बार मुसलमानी फौजों से इनकी टक्कर भी हुई। राठौरों के पश्चात् इस क्षेत्र पर बघेलों का अधिकार हुआ।

इसके बाद अंगरेजों और बघेलों में टक्कर होती रही। सन् १८५७ के विद्रोह के समय भी बघेलों ने उपद्रव किया था। अन्त में सन् १८६७ ई० में मेजर रेनाल्ड्स ने अन्तिम बार उन्हें परास्त किया। इसके बाद इन लोगों ने कभी सिर नहीं उठाया।

सन् १९४२ में भारत के प्रसिद्ध उद्योगपति 'बिड़ला ब्रदर्स' ने ओखाबन्दर में 'हिन्दुस्तानमोटर्स'' के नाम से विलायत से आने वाले मोटर के पुरजों को जोड़ कर मोटरें तैयार करने की एक फैक्टरी खोली थी। मगर बाद में इस फैक्टरी का विस्तार कर मोटरों के प्रायः सभी पुर्जे यहीं तैयार करने के लिए उन्होंने कलकत्ता में एक विशाल प्रतिष्ठान चालू किया।

ओगोताई

सुप्रसिद्ध विजेता चंगेज खाँ का पुत्र, चीन में मंगोल राज्य का संस्थापक, जिसका समय सन् १२२९ से सन् १२४६ तक है।

चंगेज खाँ की मृत्यु के पश्चात् सन् १२२९ में नये 'खगान' (सरदार) को चुनने के लिए मंगोलों की 'कुरिलताई' नामक महापरिषद् की बैठक हुई और उसने सर्व-सम्मति से 'ओगोताई' को अपना 'खगान' चुन लिया।

उस समय चीन में 'किन' राजवंश का शासन चल रहा था। मगर मंगोलों के रात-दिन होने वाले आक्रमणों से यह साम्राज्य बहुत कमजोर हो गया था और इसके सम्राट् मंगोलों से सुलह करना चाहते थे, मगर मंगोल एक ही समय में दो सम्राट् मानने के खिलाफ थे। इसलिए उन्होंने किन-राजवंश पर आक्रमण करके सन् १२३४ ई० में इस वंश को खतम कर दिया।

उसके पश्चात् दक्षिणी चीन में सुंग-राजवंश का शासन चल रहा था। मंगोल लोग इस राजवंश को भी समाप्त करना चाहते थे। सन् १२३६ ई० में मंगोलों ने सुङ्ग-राज्य पर आक्रमण करके उनकी प्रधान नगरी 'सियांग चांग' पर अधिकार कर लिया।

सन् १२३६ ई० में अपनी राजधानी 'काराकोरम' में ओगोताई ने पहले पहल एक विशाल महल का निर्माण करवाया, जिसके निर्माण में बहुत परिश्रम किया गया। चीनी कलाकारों ने उसे मूर्तियों और चित्रों से अलंकृत किया। उसके चारों ओर बगीचे लगे हुए थे और चारों दिशाओं में चार बड़े-बड़े दरवाजे थे जिनमें से एक दरवाजा सम्राट् के लिए, दूसरा राजकुमारों के लिए, तीसरा रानियों के लिए और चौथा, साधारण जनता के लिए था।

अपने राज्य के ११ वें वर्ष में ओगोताई के सेनापति 'बातू' की सेना ने कियेफ़ नामक प्रसिद्ध नगर का संहार कर वहाँ की सारी कला को नष्ट कर दिया।

सन् १२४१ ई० में मंगोल-सेना यूरोप की ओर बढ़ती हुई जा रही थी। 'लिगनित्ज' नामक नगर के पास 'ड्यूक हेनरी द्वितीय' अपनी २० हजार सेना के साथ उनका मुकाबला करने के लिए तैयार था। ९ अप्रैल सन् १२४१ को यह लड़ाई हुई, जिसने यूरोप के भाग्य का फैसला कर दिया। मंगोल लोग इस लड़ाई में हार गये और उन्हें वापस आना पड़ा।

फिर भी ओगोताई के शासन-काल में मंगोल-साम्राज्य 'एड्रियाटिक समुद्र' और 'ओडेर नदी' के तट तक फैल चुका था।

११ दिसंबर सन् १२४६ में ओगोताई की मृत्यु हो गई।

ओटो महान्

जर्मनी का एक प्रतापी सम्राट् जिसका राज्यकाल सन् ९३६ से प्रारम्भ हुआ।

प्रतापी सम्राट् 'शार्लमेन महान्' की मृत्यु के पश्चात् उसका विस्तृत साम्राज्य पूर्वी (जर्मनी) और पश्चिमी (फ्रान्स) दो भागों में विभक्त हो गया। उसके पश्चात् जर्मनी-राज्य पर कोई प्रभावशाली राजा न होने से जर्मन-राज्य कई छोटी-छोटी डचियों, रियासतों में विभक्त हो गया।

सन् ९३६ में जर्मनी की गद्दी पर ओटो प्रथम आसीन हुआ। यूरोप के इतिहास में यह भी एक प्रतापी सम्राट् हुआ। यद्यपि इसने जर्मनी की भिन्न-भिन्न रियासतों (डचियों) को खतम नहीं किया पर उन सब रियासतों का अधिकारी अपने भाई-भतीजों को बना दिया। उसका भाई हेनरी बवेरिया का ड्यूक बन गया। दूसरा भाई कोलोन का ड्यूक बन गया। इस प्रकार चारों ओर होने वाले विद्रोह को उसने शान्त कर दिया।

जर्मनी की उत्तर पूर्वी सीमा पर बसने वाली स्लाव-जातियों ने अभी तक ईसाई-धर्म अंगीकार नहीं किया था और ये बराबर जर्मनी पर आक्रमण करती-रहती थीं। ओटो ने इन्हें युद्ध में भी परास्त किया और धर्म-केन्द्रों की स्थापना कर इन्हें ईसाई भी बनाया।

आग्जवर्ग की लड़ाई में ओटो ने हंगेरियन लोगों को परास्त किया और उन्हें जर्मनी की सीमा के बाहर मार भगाया। इसी समय बवेरिया-डची का एक अंश अलग बनाया गया। इसीसे आगे चलकर आस्ट्रियन-साम्राज्य की उत्पत्ति हुई।

जिस समय ओटो गद्दी पर बैठा, उस समय इटली और पोप की दशा बड़ी शोचनीय हो रही थी। उत्तर दिशा से सैनिक सरदार आकर समय-समय पर इटली के राजा बन बैठते थे। इसके साथ ही इटली पर मुसलमानों के आक्रमण भी प्रारम्भ हो गये थे जिससे चारों ओर अराजकता फैली हुई थी। यह दशा देख कर "ओटो" ने इटली के मामले में हस्तक्षेप करने का निश्चय किया और सन् ९५१ में वह इटली गया। वहाँ के किसी राजा की विधवा से उसने अपनी शादी की और वहां के विद्रोह का दमन किया जिससे यह इटली का राजा माना जाने लगा। हालांकि अभी तक इटली की गद्दी पर इसका बाकायदा राज्याभिषेक नहीं हुआ था।

दस वर्ष पश्चात् पोप ने शत्रुओं से रक्षा करने के लिए इसे फिर बुलाया। ओटो ने वहाँ जाकर सब शत्रुओं का दमन किया। इस बार अर्थात् सन् ९६२ में इटली की राज्यगद्दी पर इसका बाकायदा राज्याभिषेक हुआ।

यूरोप के तत्कालीन इतिहास में यह एक महान् घटना मानी जाती है। ओटो इतना प्रतापी और समर्थ था कि उसने इन सारी जिम्मेदारियों को बड़ी कुशलता के साथ निभाया, मगर आगे उसके उत्तराधिकारी इस भार को नहीं सँभाल सके और ओटो के थोड़े समय बाद ही इटली और पोप फिर से स्वतंत्र हो गये।

ओटो ब्राञ्जविक

तेरहवीं शताब्दी में जर्मनी का गेल्फ़ वंशीय सम्राट जिसको पोप इन्नोसेंट तृतीय ने सन् १२०१ सम्राट् की पदवी से विभूषित किया।

उन दिनों जर्मनी में होहेन्स्टाफेन और गेल्फ-वंश की बड़ी प्रतिस्पर्द्धा चलती थी।

संसार भर में अपने साम्राज्य की स्थापना का स्वप्न देखने वाला महत्वाकांक्षी, होहेन्स्टाफेन-वंश का राजा हेनरी षष्ठ जब केवल बत्तीस वर्ष की अवस्था में मर गया तो होहेन्स्टाफेन-वंश के उत्तराधिकारियों में फ्रेडरिक द्वितीय नामक सिर्फ एक बालक रह गया।

इधर गेल्फवंश का सिंह हेनरी का लड़का ओटो ब्राञ्जरिक भी सम्राट बनने का उम्मीदवार था। कोलोन के आर्क-विशप ने एक सभा करके ओटो ब्राञ्जविक को सम्राट् घोषित कर दिया। तब दोनों सम्राटों ने पोप इन्नोसेंट तृतीय से इस विवाद को हल करने में सहायता माँगी। पोप ने "ओटो ब्राञ्जविक" को ही सम्राट् स्वीकार कर लिया।

इसी समय जर्मनी में गृहयुद्ध छिड़ गया जो बहुत दिनों तक चलता रहा। इसी बीच ओटो-ब्राञ्जविक के सब समर्थक उसके विरुद्ध हो गये। पोप इन्नोसेंट भी उसके विरुद्ध हो गया। फलस्वरूप "ओटो ब्राञ्जविक" को गद्दी

छोड़नी पड़ी और सन् १२१२ में होहेन्स्टाफेन-वंश का फ्रेडरिक द्वितीय, पुनः जर्मनी की राजगद्दी पर आरूढ़ हुआ ।

ओटो

इटली का एक प्रसिद्ध इतिहासकार जो तेरहवीं शताब्दी में हुआ । इस इतिहासकार ने उस समय के जर्मन-सम्राट होहेन्स्टाफेन वंशीय फ्रेडरिक प्रथम की जीवनी ऐसे ढंग से लिखी जिसमें तत्कालीन संसार के इतिहास का विवरण बड़े मनोरंजक ढंग से मिलता है ।

इस ग्रन्थ से तेरहवीं शताब्दी के मध्यकालिक यूरोप की स्थिति का पूरा-पूरा पता चलता है ।

ओटावा

कनाडा देश की राजधानी और वहाँ का प्रसिद्ध नगर जो सन् १८५८ तक "बाइटाउन" के नाम से प्रसिद्ध था और उसी वर्ष कैनाडा की राजधानी चुने जाने से ओटावा-नदी के किनारे पर अवस्थित होने से इसका नाम "ओटावा" रक्खा गया । तब से इस नगर की रौनक दिन-दिन बढ़ती जा रही है ।

ओटावा नगर कैनाडा में रेलों का एक प्रमुख रेलवे जंक्शन है । कनाडा के बड़े-बड़े रेल-पथ जैसे कैनाडियन नेशनल रेलवे, कैनाडियन पैसेफिक रेलवे, न्यूयार्क सेण्ट्रल रेलवे की लाईनें यहीं से होकर गुजरती हैं । बिजली की शक्ति से चलने वाली रेलें भी इस नगर को अन्य कई महत्व पूर्ण केन्द्रों से जोड़ती हैं ।

ओटावा कागज और लकड़ी से सम्बन्धित उद्योगों का एक बड़ा केन्द्र है । राजधानी होने से कई बड़ी-बड़ी सरकारी इमारतों, पार्लमेंट हाउस, गिरजाघर तथा युनिवर्सिटी के भवनों से यह शहर सुशोभनीय है । इसकी जनसंख्या सन १९५१ में २०२०४५ थी ।

ओडो

ईस्वी सन् ८८८ में पाश्चिमी फ्रांक (फ्रांस) का राजा जिसको फ्राँक लोगों ने मोटे चार्ल्स को हटाकर पश्चिमी फ्रान्स की गद्दी पर बिठाया ।

'ओडो' पेरिस का काउण्ट और एक प्रभावशाली जमीदार था । यह बहुत पराक्रमी और बड़ी लम्बी-चौड़ी स्टेट का मलिक था । फिर भी दक्षिण में उसके शासन को कोई नहीं मानता था । उत्तर में भी उसे बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था । कुछ समय पश्चात् उसके विरोधियों ने उसको गद्दी से हटाकर गंजे चार्ल्स के पुत्र सीधे चार्ल्स को गद्दी पर बिठा दिया ।

इसके पश्चात् करीब सौ वर्ष तक चार्ल्स और ओडो के वंशधरों में गद्दी के लिए प्रतिस्पर्द्धा चलती रही ।

ओडेसर

ईसा की पाँचवीं शताब्दी में जर्मन (गाथ) सेना का एक सरदार जिसने सन् ४७६ में पश्चिमीय रोम के सम्राट को अपदस्थ करके वहाँ के राजदण्ड और छत्र को पूर्वीय रोम सम्राट् के पास कान्स्टेंटिनोवल भेज दिया ।

सन् ४७६ पश्चिमीय रोम साम्राज्य के पतन का वर्ष माना जाता है और इसी वर्ष से वहाँ पर मध्ययुग का प्रारम्भ माना जाता है । गाथ-जाति के सरदार ओडेसर ने रोम के पश्चिमीय सम्राट् को हराकर वहाँ के राजदण्ड, छत्र इत्यादि प्रतिनिधि-वस्तुओं को कुस्तुन्तनिया के पूर्वी रोम सम्राट के पास भेज दी और उनसे आज्ञा मांगी कि "मुझे अपना प्रतिनिधि समझकर राज कार्य करने की इजाजत प्रदान करें ।" वह जानता था कि नाममात्र के सम्राट बनाये रखने से सम्राट की आड़ में वह वास्तविक सत्ता का उपभोग आजादी से कर सकेगा । उसने अपने दूत इस पूर्वीय सम्राट के पास भेजकर कहलाया कि आप इतने तेजस्वी हैं कि साम्राज्य के दो विभाग करने की आवश्यकता नहीं है । आप अकेले इस विशाल साम्राज्य का शासन कर सकते हैं । पर यदि आप आज्ञा दें तो मैं आपके प्रतिनिधि की तरह पश्चिमी साम्राज्य की देख-रेख कर सकता हूँ ।

सम्राट ने ओडेसर को अपना प्रतिनिधि मान लिया, मगर कुछ ही समय पश्चात् पूर्वीय गाथ के सरदार थियोडेरिक ने अडेसर को हराकर मार डाला।

ओथेलो

महान् कवि शेक्सपीयर का एक सुप्रसिद्ध दुःखान्त नाटक जिसकी रचना उन्होंने सन् १६०१ से सन् १६०८ ई० के बीच में की थी।

'ओथेलो' की रचना का समय शेक्सपीयर के नाट्य-साहित्य के निर्माण-काल में तीसरा काल माना जाता है, जब कि उन्होंने अपने सुप्रसिद्ध दुःखान्त नाटकों की रचना की थी।

ओथेलो 'नाटक' के मुख्य पात्रों में ओथेलो और डेस्डेमोना प्रधान पात्र हैं। ओथेलो मूर-जाति का एक सेनानायक है जिसने कई रण-क्षेत्रों में साहस और बहादुरी के ज्वलन्त उदाहरण पेश किये। डेस्डेमोना ब्रेवैन्शियो नामक एक कुलीन राजपुरुष की अत्यन्त सुन्दरी लड़की है जो ओथेलो की बहादुरी की कहानियाँ सुनते-सुनते उस पर मोहित हो जाती है और अपने पिता के तीव्र विरोध के बावजूद उससे शादी कर लेती है।

सहायक पात्रों में केसियो नामक पात्र ओथेलोका लेफ्टिनैंट है। दूसरा पात्र रोडरियो नामक वेनिस का एक नागरिक है, जो डेस्डेमोना से बेहद प्रेम करता है। तीसरा पात्र इआगो नामक खल-नायक है जो सेना में ऐंशेन्ट के पद पर है। इसके अतिरिक्त इआगो की स्त्री एमीलिआ, कैसियों की रखेल 'वियाँका' भी समय-समय पर दृष्टिगोचर होती हैं।

घटना-क्रम का विकास इस प्रकार होता है—

पहला अंक—पहले अंक में डेस्डीमोना का प्रेमी रौडरिगो और इआगो मिलकर डेस्डेमोना के पिता ब्रेवेंशिओ को आधीरात में जाकर जोर-जोर से चिल्ला-चिल्लाकर जगाते हैं और कहते हैं कि आप की लड़की डेस्डेमोना सिर्फ एक माझी के साथ भागकर ओथेलो के पास चली गई है। इस पर ब्रेवेंशिओ अत्यन्त उत्तेजित हो उठता है और वह कुछ सैनिकों के साथ ओथेलो का पता लगाने के लिए जाता है और ओथेलो को लेकर वेनिस के ड्यूक के पास पहुँचता है और कहता है कि ओथेलो ने मेरी पुत्री को जादू-टोने से अपने वश में करके हरण कर लिया है।

ओथेलो इसके उत्तर में डेस्डेमोना को स्वयं पेश करता है। डेस्डेमोना निर्भीकता पूर्वक ओथेलो के साथ अपना प्रेम प्रकट करके उससे शादी करना स्वीकार करती है। डेस्डेमोना का पिता उसे हमेशा के लिए त्याग देता है। डेस्डेमोना अपने पति के साथ साइप्रस के युद्ध-मैदान में जाने की इजाजत चाहती है। ड्यूक उसे इजाजत दे देता है।

दूसरा अंक—दूसरे अंक में ओथेलो और डेस्डेमोना के बीच में विग्रह पैदा करने के लिए इयागो का षड्यंत्र शुरू होता है। डेस्डेमोना के दूसरे प्रेमी रोडरिगों के साथ मिलकर वह इस बात का षड्यंत्र करता है कि लेफ्टिनैंट कैसियो और डेस्डेमोना के बीच किसी भी कौशल से अनैतिक सम्बन्ध साबित करके ओथेलो के दिल में डेस्डेमोना के प्रति घृणा का भाव पैदा कर दिया जाय।

एक दिन रात के समय जबकि लेफ्टिनैंट कैसियो साइप्रस में रात को पहरे पर निकलता है। इआगो उसे जबर्दस्ती शराब पिलाकर मदहोश कर देता है। इस मदहोशी में इआगो के षड़यंत्र से लेफ्टिनैंट कैसियो रौंडरिगो पर आक्रमण करता है और उसे बचाने जब मोंटानो जाता है तब उस पर भी वार करता है। इसी समय ओथेलो आता है और इस सब घटना को देख कैसियों को लेफ्टिनैंट पद से अलग कर देता है। इआगे का पहला षड्यंत्र सफल हो जाता है।

तीसरा अंक—तीसरे अंक में इआगो कैसिओ को फिर से लेफ्टिनैंट का पद दिलाने के लिए डेस्डेमोना के पास प्रार्थना करने को भेजता है। डेस्डेमोना उसके चक्कर में आ जाती है और वह अपने पति के सामने कैसिओ को फिर से लेफ्टिनैंट बनाने की जोरदार सिफारिश करती है। इस घटनाक्रम में कैसियों के साथ उसकी घनिष्ठता कुछ बढ़ती है और इसका फायदा उठाकर इआगो बड़े कौशल के साथ ओथेलो के मन में डेस्डेमोना के प्रति सन्देह उत्पन्न करने का प्रयत्न करना प्रारंभ करता है। ओथेलो उसके चक्कर में आ जाता है। इसी समय इआगो अपनी पत्नी इमीलिआ से कह कर ओथेलो के द्वारा डेस्डेमोना

को प्रेमस्मृति में दिया हुआ रूमाल किसी कौशल से मँगवा-लेता है और उसे कैसिओ के कमरे में रखवा देता है।

वह रूमाल किसी भी प्रकार ओथेलो की नजर में आता है। इस प्रकार डेस्डेमोना के प्रति ओथेलो के सन्देह को वह पक्का कर देता है।

ओथेलो भयंकर ईर्ष्या के वश होकर डेस्डेमोना का अपमान करना प्रारंभ करता है।

चौथा अंक—चौथे अंक में रोडरिगो डेस्डेमोना के प्रति निराश होकर विपुल धन और जवाहरात की ठगी का आरोप इआगो पर लगाता है। तब इआगो कौशल के द्वारा रोडरिगो को कैसिओ से लड़ा देने का षड्यंत्र करता है जिससे एक ही निशाने में उसके दोनों शत्रु समाप्त हो जायँ।

पाँचवाँ अंक—पाँचवें अंक में जिस समय कैसिओ अपनी रखेल बियाँका के घर से खाना खाकर आता है, उस समय अँधेरे में रोडरिगो उसपर तलवार का वार करता है, मगर कैसिओ के शरीर पर कवच होने के कारण वह वार असफल हो जाता है। तब कैसियो दूसरा वार कर के रोडरिगो को मार डालता है। इसी बीच इआगो पीछे से आकर कैसिओ पर भयंकर वार करके उसकी टाँग को तोड़ देता है और भाग जाता है।

उसके बाद ओथेलो भयंकर ईर्ष्या के वश होकर डेस्डेमोना की शय्या के पास जाता है और क्रोध में उसपर व्यभिचार का आरोप लगाकर उसका गला घोंट देता है।

इसी समय इआगो की स्त्री इमीलिया वहाँ प्रवेश करती है और वह डेस्डेमोना की पवित्रता और विश्वास की गारंटी देती है और सारे भेद को खोल देती है।

इस पर ओथेलो भयंकर पश्चाताप की अग्नि में दग्ध होता हुआ बिस्तर पर गिर जाता है और बाद में इआगो को उसकी शैतानियत के लिए तलवार से घायल कर स्वयं भी आत्महत्या कर लेता है। इस प्रकार अत्यन्त दुःख और वेदना के वातावरण में नाटक समाप्त होता है।

सारे नाटक को देखने पर मालूम होता है कि शुरू से अन्त तक इस पर इआगो का व्यक्तित्व छाया हुआ दिखाई पड़ता है। इआगो को एक अत्यन्त कुटिल, विश्वासघाती, स्वार्थी और शैतान के रूप में अंकित किया गया है। इस चरित्र का वास्तविक चित्रण करने में शेक्सपीयर की कला का पूर्ण विकास हुआ है।

नाटक के प्रारंभ में वह अपने चरित्र का चित्रण करते हुए रोडरिगो से कहता है—

"तुमने बहुत से कर्तव्यरत सेवक देखे होंगे, जो अपने स्वामियों के लिए सिर्फ रोटी और वेतन के बदले में अपने जीवन को खपा देते हैं। गधे की तरह बुढ़ापे तक खटते हैं और अन्त में अशक्त हो जाने पर निकाल दिये जाते हैं। ऐसे ईमानदार नीच लोगों को तो कोड़े लगाने चाहिये। मगर कुछ नौकर ऐसे होते हैं जो कर्तव्यरत ईमानदार दिखलाई देने पर भी अपने स्वार्थ के पक्के होते हैं। सेवा का दिखावा करके मालिक को प्रसन्न रखकर अपना घर भरते हैं और मजा लूटते हैं। मैं भी उन्हीं में से एक हूँ। ईश्वर साक्षी है कि ओथेलो की सेवा मैं कर्तव्य और प्रेम के वश नहीं, अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए करता हूँ। अगर मैं इतना मूर्ख हो जाऊँ कि मेरे बाह्य व्यवहार से ही मेरे मन की बात का पता चल जाय तो मैं संसार में उपहास का पात्र हो जाऊँगा। जिसका भीतर और बाहर एक सरीखा होता है—उस मूर्ख के बराबर संसार में उपहास का पात्र कोई दूसरा नहीं।"

आगे चलकर जब रोडरिगो डेस्डेमोना के प्रति निराशा के भाव व्यक्त करता है और जीवन से निराश हो जाता है। तब इआगो कहता है—

"तुम्हारी इच्छाशक्ति की लगाम हट गई है और उन्मत्त वासना ही तुम में ऐसी निराशा का भाव उत्पन्न कर रही है। गंभीर बनो और आत्मसंयम रखो! डूब मरना कुत्ते और बिल्लियों का काम है। अपने बटवे को खूब धन से भरलो और मेरे साथ युद्ध के मैदान में चलो, वहाँ पर जरूर डेस्डेमोना तुम्हें मिलेगी और तुम उसका उपभोग करोगे।"

एक स्थान पर इआगो कहता है—

"कौन कहेगा कि यह सब करने के कारण मैं नीच हूँ, कुटिल हूँ, नरक का देवता हूँ। जब शैतान मनुष्य को भयानक पाप करने को प्रेरित करता है तब वह सदैव साधु-वेश धर कर उन्हें आकर्षित करता है। यही तो मैं भी

कर रहा हूँ। मेरी योजना यह है कि जब कैसिओ अपने पद पर पुनः नियुक्त की प्रार्थना लेकर डेस्डेमोना के पास जायगा और वह ओथेलो से उसके लिए जोरदार सिफारिश करेगी तब मैं ओथेलो के दिमाग में यह जहर भरूँगा कि डेस्डेमोना अपनी वासनाओं की तृप्ति के लिए ही कैसिओ को फिर से नियुक्त करवाना चाहती है। इस प्रकार मैं उसके पवित्र नाम पर बट्टा लगा दूँगा और उसकी पवित्रता में से ही ऐसा फन्दा पैदा कर दूँगा जिसमें सबके सब अपने आप फँस जायेंगे।"

जब ओथेलो का मन डेस्डेमोना की ओर से सशंकित होने लगता है, तब इआगो उसे कहता है—

"आह! मेरे प्रभु! हरी आँखों वाली राक्षसी ईर्ष्या से सावधान रहिये। यह उस व्यक्ति का उपहास करती है जो अपने मस्तिष्क को इसके सामने समर्पित कर देता है। यह उसकी वेदनाग्रस्त भावनाओं से निर्मम क्रीडा करती है। सन्देह से निरन्तर उसको जलाती रहती है जो अपनी पत्नी से बहुत प्रेम करता है, किन्तु फिर भी उस पर सन्देह करता है और फिर उसे अत्यन्त चाहता है।"

इसके बाद जब डेस्डेमोना की प्रेम-स्मृति का रूमाल इआगो के हाथ में पड़ जाता है, तब वह कहता है—

"मैं इस रूमाल को कैसियो के कमरे में छोड़ आऊँगा और जब ओथेलो उसे देखेगा तब उसकी ईर्ष्यालु प्रकृति भड़क उठेगी। ईर्ष्यालु प्रकृति के लोगों के लिए अत्यन्त साधारण बातें भी शास्त्र-प्रमाण बन जाती हैं। मेरे षड्यंत्र से ओथलो वैसे ही जल रहा है, यह रूमाल उसकी ईर्ष्या को गन्धक की भाँति सुलगा देगा।"

जब उस रूमाल की बात को सुनकर ओथेलो मूर्छित हो जाता है तब इआगो कहता है—

"आह! मेरी औषधि तू अपना काम कर। इसी प्रकार इन तुच्छ मूर्खों को घेरा जाता है और ऐसे ही अनेक योग्य पतिव्रता और निर्दोष स्त्रियों को दण्ड मिलता है।"

इस प्रकार अन्त तक यह शैतान इस नाटक में शिर उठाए हुए चलता है और अपने भयानक षड्यंत्रों से ओथेलो, डेस्डेमोना, रोडरिगो और कैसिऔ की मृत्यु का कारण बनता है।

शेक्सपीयर की महान् कृतियों में यह 'ओथेलो' अपना प्रमुख स्थान रखता है, जिसमें कलाकार की कला ने इआगो के समान मानवी शैतान की प्रवृत्तियों का बड़ा सजीव, सफल और बेजोड़ चरित्र-चित्रण किया है।

ओदेनाथस

रोम और ईरान के मध्यवर्ती रेगिस्तान में "पामीर" नामक एक नवीन राज्य का संस्थापक, जिसका समय ईस्वी सन् २३० के आस-पास है।

ओदेनाथस एक वीर और पराक्रमी व्यक्ति था। अपने साहस से इसने रोम और ईरान के बीच की मरुभूमि में "पामीर" नामक एक नवीन राज्य की स्थापना की थी। इसकी पत्नी "जैनोबिया" भी इसी की तरह साहसी और वीराङ्गना थी। सन् २३३ में ओदेनाथस ने फ़रात नदी को पार कर मेसोपोटामिया पर आक्रमण किया। मगर उसी समय एक सिपाही ने इसकी हत्या कर दी। इसकी मृत्यु के बाद भी दस वर्ष तक इसकी स्त्री जेनोबिया राज्य करती रही। उसने मिस्र पर धावा करके उसे अपने राज्य में मिला लिया। मगर कुछ ही समय पश्चात् रोमन-सम्राट ओरेलियन से इसकी लड़ाई छिड़ गई, इस लड़ाई में यह हार गई और रोमन सेनापति ने इसे सोने की जंजीरों में बाँध कर रोम भेज दिया।

ओनेगिन

रूस के महान् कवि और साहित्यकार पुश्किन द्वारा-रचित अमर उपन्यास, जिसने रूसी साहित्य में धूम मचा दी।

'ओनेगिन' उपन्यास का नायक यूजीन ओनेगिन है। यह सेण्ट पीटसबर्ग का रहने वाला एक साधारण स्थिति का व्यक्ति है। ओनेगिन कम शिक्षित होने पर भी आधुनिक युग का एक फैशनेबिल आदमी है जो लन्दन का सिला हुआ सूट पहनता है, जिसके कपड़े धुलने के लिए पेरिस की लाण्ड्रियों में जाते हैं, बोलचाल में जो रूसी की जगह फ्रेञ्च भाषा का इस्तेमाल करता है और जो उस समय के समाज का एक प्रतिबिम्ब है। पिता के मर जाने

पर अपने चाचा की सम्पत्ति का मालिक बन कर वह देहात में चला जाता है। वहाँ पर उसका एक ऐसे परिवार से परिचय होता है जिसमें "तातियाना" और "ओल्डा" नामक दो कुमारी कन्याएँ रहती हैं।

"तातियाना" बड़ी बहन है, वह रूसी नारी का प्रतीक है। वह 'ओनेगिन' से प्रेम करने लगती है। उस प्रेम को अभिव्यक्त करने में वह जिस भाषा का प्रयोग करती है, वह मानो किसी कविता के जादूगर की भाषा है। प्रणय, समर्पण, रोमान्स और करुणा के जीवित स्रोत जैसे उस प्रेम-प्रदर्शन में सहस्रमुखी धारा से बह रहे हैं। काव्य-मर्मज्ञों का कथन है कि संसार के साहित्य में ऐसी हृदयग्राही आत्माभिव्यक्ति शायद ही किसी दूसरी जगह उपलब्ध हो। मगर ओनेगिन उसकी प्रणय-प्रार्थना को ठुकरा देता है और छोटी बहन ओल्गा की तरफ आकृष्ट हो उसके प्रणयी को एक डुएल मारकर भाग जाता है।

प्रणय-निराश तातियाना तब सेण्ट पीटसबर्ग के एक धनी व्यक्ति से विवाह कर लेती है। थोड़े दिनों के बाद ओनेगिन फिर वहाँ आता है और तातियाना की ओर आकृष्ट होता है मगर तातियाना साफ कह देती है कि उसके प्रति आकृष्ट होते हुए भी अब वह कर्तव्यनिष्ठा की रक्षा के लिए अपने पति के साथ विश्वासघात नहीं कर सकती। इस प्रकार इस काव्यरूप में लिखे हुए हृदयग्राही उपन्यास का अन्त हो जाता है।

ओपेरा

एक प्रकार का संगीतपूर्ण नाटक, जिसका प्रारम्भ इटाली में ई० सन् १५९४ के आसपास हुआ। मगर प्राचीन काल में चीन के अन्तर्गत भी 'ओपेरा' कला का काफी विकास हुआ था। चीनी ओपेरा अनेक बातों में अपनी मौलिक विशेषता रखता था।

ओपेरा दृश्यकाव्य में पात्रों का सारा संवाद कविता की भाषा में संगीतमय रूप में होता है। इस संगीतपूर्ण दृश्यकाव्य का जन्म सबसे पहले इटली में हुआ। जब कि सबसे पहले सन् १५९४ ई० में वहाँ के फ्लोरेंस नामक नगर में "ला दान्फे" नामक ओपेरा का प्रदर्शन हुआ।

ओपेरा के प्लाट भी नाटकों की तरह धार्मिक कथा-वस्तु या वीरगाथाओं पर अवलम्बित रहा करते थे। इटली के साथ साथ फ्रान्स तथा जर्मनी के कलाकारों ने भी "ओपेरा" के प्रदर्शन में अपनी प्रतिभा का उपयोग किया। हालां कि इटालियन-कला में और इन देशों की कला में में कुछ भिन्नताएँ भी रहती थीं। इटालियन ओपेरा पाँच-अङ्कों में समाप्त होता था जब कि फ्रांस और जर्मनी के ओपेरा तीन अङ्कों में ही समाप्त हो जाते थे।

दूसरे गद्य नाटकों की तरह ओपेरा भी सुखान्त और (Comedy) और दुखान्त (Tragedy) दोनों प्रकार के हुआ करते थे। शृंगार, हास्य और वीर रस की इनमें काफी पुट हुआ करती थी।

ओपेरा में अभिनय का रंगमंच बड़ा भव्य, साज सज्जाओं से युक्त और आंखों में चकाचौंध पैदा करने वाला होता था। वेनिस और पेरिस के ओपेरा-हाऊस १८ वीं और उन्नीसवीं सदियों में अत्यन्त दर्शनीय माने जाते थे। इटली में फ्लोरेंस और वेनिस नगर अपने ओपेरा-हाऊसों के के लिए बहुत प्रसिद्ध थे। सन् १६३७ में वेनिस में सबसे पहले एक सार्वजनिक ओपेरा-हाउस की स्थापना हुई। इसके साथ ही वेनिस ओपेरा का यूरोप में सबसे बड़ा केन्द्र बन गया। दूर-दूर के लोग इन ओपेराओं को देखने के लिए वेनिस आते थे। कई सदियों तक इटली के कलाकारों का प्राधान्य सारे यूरोप के ओपेरा-हाउसों में रहा। वेनिस का संगीत, वहाँ की सजावट और वहाँ का अभिनय ही सारे यूरोप के ओपेरा-हाउसों में प्रमाणभूत माने जाते थे।

इटली के साथ ही, फ्रान्स, जर्मनी और आस्ट्रिया में भी इस प्रकार के नाटकों का प्रचलन काफी लोकप्रिय हुआ। हालांकि इन देशों में अधिक कलाकार इटालियन ही हुआ करते थे। फ्रान्स के ओपेरा-कलाकारों में "रोमियो" का नाम विशेष प्रसिद्ध है। जो फ्रेंच होते हुए भी एक माना हुआ संगीतज्ञ और कलाकार था।

जर्मनी में ग्लक नामक कलाकार को ओपेरा के प्रदर्शन में कई प्रकार के सुधार करने का श्रेय प्राप्त है। ओपेरा के कलात्मक क्षेत्र में 'मोजार्ट' का नाम भी बहुत प्रसिद्ध है। इसका जन्म सन् १७५७ में हुआ था। सन् १७८१ में इसने "इडोमेनिया" नामक ओपेरा की रचना की। ओपेरा के

इतिहास में मोजार्ट अमर है यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं हो सकती। जर्मन ओपेराकार बेवर और रिचर्ड वैग्नर के नाम भी ओपेरा क्षेत्र में अत्ययन्त महत्व पूर्ण माने जाते हैं। वैग्नर ने जब देखा कि उसके भावों को वहाँ के ओपेरा हाउस ठीक ठीक अभिनीत नहीं कर पाते हैं तो उसने वेरुथ नामक एक ग्राम में अपना निजी ओपेरा हाऊस खोला जो आगे चलकर बड़ा प्रसिद्ध हो गया। बेवर के "यूरो आँटे" और वैग्नर के "फिरिंग" नामक ओपेरा ने बहुत ख्याति प्राप्त की। इस समय सोवियट रूस और युगोस्लाविया में भी ओपेरा-नाट्यकला का काफी विकास हो रहा है। युगोस्लाविया के जाग्रेवनगर की प्रसिद्ध ओपेरा-गायिका मिरियाना राडेव ने अपनी कला से संसारव्यापी ख्याति प्राप्त कर ली है।

ओबू सिम्पवेल

मिस्र का प्राचीन गुफा-मन्दिर जिसे 'स्पिओज' कहते हैं। इस गुफा मन्दिर का निर्माण मिस्र के प्राचीन उन्नीसवें राजवंश के प्रसिद्ध राजा "रामसेज" द्वितीय ने नीग्रो-जातियों पर की गई विजय की स्मृति में करवाया था रामसेज द्वितीय का समय ईसा से १३०० वर्ष पूर्व से लेकर ईसा से १२०६ वर्ष पूर्व तक माना जाता है।

इस गुफामन्दिर के मुख्य द्वार पर साठ साठ फुट ऊँची दो मूर्तियां बनी हुई हैं जो एक एक चबूतरे पर स्थापित की हुई हैं "अमोन-रा" नामक देवता की पूजा करते हुए सम्राट् की उभरी हुई मूर्ति भी इस मन्दिर में बनी हुई है।

ओमहोतेय

मिस्र के प्रथम राजकुल में उत्पन्न जीसोर नामक राजा का राजमंत्री ओमहोतेप। जिसका समय ईसा से ३१५० वर्ष पूर्व माना जाता है।

राजा जीसोर वैद्यक, विज्ञान तथा स्थापत्य-कला का अच्छा जानकार था। इसलिए सारे मिश्र में वह बड़ा लोकप्रिय हो गया। इसी के राजकाल में मिश्र में चिकित्सा-प्रणाली का प्रचार हुआ और सम्भवतः मिश्र में पत्थर का पहला मकान भी इसी राजा के राज्यकाल में बना।

इस प्रसिद्ध राजा का मंत्री ओमहोतेप भी पत्थर कला का विशेषज्ञ था। उसी ने सुन्दर तराशदार पत्थर के खम्भों, उभरी हुई चित्रकारी और रंगीन मिट्टी की चीजें बनाने का आविष्कार किया।

जब राजा जीसोर मरा तो इसे सक्कर में दफनाया गया और इसकी कब्र पर सीढ़ीदार एक मकान बनाया गया। जिसे देखकर अगले राजाओं ने भी बड़े बड़े पिरामिड बनाना प्रारम्भ किये।

ओमेनहोतेप

मिस्र के अठारहवें राजवंश के राज्यकाल में ओमेनहोतेप नामक तीन राजा हुए। जिनका समय ईसा के पूर्व पन्द्रह शताब्दी में माना जाता है।

ओमेन होतेप प्रथम—इस राजा ने अपने राज्य की सीमाएँ मेसोपेटोमिया की फरात नदी के प्रदेश तक बढ़ा लीं।

ओमेनहोतेप तृतीय—मिश्र के अठारहवें राजवंश के राजा थटमीज का पौत्र। यह बड़ा बहादुर और साहसी राजा था। इसने सीरिया के विद्रोह को बुरी तरह दबा कर इतना दमन किया कि वे कई बरसों तक स्वतंत्रता का नाम न ले सके। इसने बेबीलोन के राजवंश से अपने वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये। इस राजा ने छत्तीस वर्ष तक राज्य किया।

ओमेन होतेप चतुर्थ—मिश्र के अठारहवें राजवंश में ओमेनहोतेप तृतीय की मृत्यु के पश्चात् ओमेन होतेप चतुर्थ गद्दी पर बैठा। इस राजा ने बड़े बड़े धार्मिक परिवर्तन किये। इसने अनेक देवी देवताओं की पूजा को बन्द कर केवल एक ईश्वर "आतौन" और एक देवता "राँ" (सूर्य्य) की पूजा का आदेश दिया। "आतौन" के सिवा सब देवताओं के मंदिरों का विध्वंस करवा दिया गया और मन्दिरों में अङ्कित किये हुए अपने पूर्वजों के नामों को भी मिटा दिया। थीबीजनगर की विलासिता से क्रुद्ध होकर इसने "आखेतातीन" नामक नगर बसाया और वहीं अपनी राजधानी कायम की।

पुजारियों के व्यभिचार, देवदासी-प्रथा और नर-बलि को बन्द करके इसने पुजारियों की सम्पत्ति को जब्त कर लिया। इन धार्मिक उधेड़बुनों के कारण प्रजा ने और पुजारियों ने इसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया जिसके परिणामस्वरूप केवल तीस वर्ष की उम्र में ही यह राजा राज्य छोड़कर संन्यासी हो गया।

ओमिताभ-सम्प्रदाय

बौद्धधर्म की एकशाखा जिसकी स्थापना ई० सन् ३१४ और ३२२ के बीच सुप्रसिद्ध चीनीबौद्ध भिक्षु "तउ-आना शिपत्र हुइ-दुवेन" ने चीन में स्थापित की थी।

ओम्प्रकाश शर्मा

हिन्दीभाषा में वैज्ञानिक विषयों के लेखक और सम्पादक जिनका जन्म सन् १६२४ में हुआ।

श्री ओम्प्रकाश शर्मा 'विज्ञान-प्रगति', 'सेनानी', 'सर्वोदय', 'डायजेस्ट', 'संस्कृति' इत्यादि कई पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक रह चुके हैं। इनकी रचनाओं में "मंगल-यात्रा" "अन्तिम-सत्य" तथा सर्वोदय-माला-सीरीज में लिखी ६५ पुस्तकें विशेष महत्वपूर्ण हैं। इनकी कुछ रचनाओं पर यूनेस्को के द्वारा तथा भारत सरकार और उत्तरप्रदेश सरकार के शिक्षा-विभाग द्वारा पुरस्कार मिल चुके हैं। इनका निवास दरियागंज-देहली में है।

ओम्बड्स-मेन

आधुनिक युग में प्रशासन में फैले हुए भ्रष्टाचार को रोकने के लिए स्थापित एक विशेष अधिकार सम्पन्न पदाधिकारी। इसके अधिकार प्रधान-मंत्री के बराबर माने जाते हैं।

'ओम्बड्स-मेन' के पद की स्थापना सबसे पहले स्वीडन में हुई। ओम्बड्स मेन किसी भी दल विशेष का न होकर बिलकुल निष्पक्ष व्यक्ति होता है और उसकी नियुक्ति सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा की जाती है। प्रशासन में होनेवाले भ्रष्टाचार के विरोध में जनता की शिकायतों को सुनना ओम्बड्समेन का काम होता है और इसके द्वारा किए हुए निर्णय करीब-करीब शत प्रतिशत सरकार द्वारा स्वीकार कर लिये जाते हैं। ओम्बड्स मेन का शासकीय दर्जा प्रधानमंत्री के बराबर माना जाता है।

स्वीडन के ही अनुकरण पर रूस इत्यादि अन्य देशों ने भी इस पद्धति को स्वीकार किया। ऐसा माना जाता है कि भ्रष्टाचार का नाश करने में ओम्बड्समेन की प्रणाली काफी सफल हुई है।

ओमेलू

प्राचीन बेबीलोनियन सभ्यता में समाज के लोगों की उच्च श्रेणी को 'ओमेलू' कहा जाता था।

जिस प्रकार भारतीय सभ्यता में ब्राह्मणवर्ग प्रथम श्रेणी का वर्ग माना जाता है, उसी प्रकार बेबिलोनियन सभ्यता में "ओमेलू" वर्ग माना जाता था। इस वर्ग में विशेष कर राज्य-परिवार के लोग, बुद्धिवर्गी लोग और धनी लोग सम्मिलित रहते थे।

ओमेलू लोगों का अपमान करने वाले या उनका अपराध करने वाले लोगों को कड़ा दण्ड दिया जाता था। इसी प्रकार ओमेलू लोग भी यदि कोई अपराध करते थे तो उन्हें भी कठोर दण्ड मिलता था।

ओरगाना

मंगोल-वंश के चंगेज खाँ के पौत्र 'मोतूगान' के लड़के 'कराहलाकू' की पत्नी 'ओरगाना' जिसका समय १३ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में था।

ओरगाना अपने सौन्दर्य, प्रताप और कोमलता में अपने समय की तीन अद्वितीय सुन्दर मंगोल-राजकुमारियों में से एक थी, जिनके बारे में कहा जाता था कि दुनिया का कोई चित्रकार उनके रूप को अपनी तूलिका से चित्रित नहीं कर सका।

अपने पति 'कराहलाकू' की मृत्यु के पश्चात् उसकी रानी ओरगाना ने उसकी राजगद्दी सँभाली। अपने वजीर हबश-हमीद और अपने पुत्र नासिरुद्दीन की सहायता से १० साल तक 'सतनद' और 'अन्तर्वेद' पर उसने शांतिपूर्ण

शासन किया। उसके बाद 'अलगू' नामक दूसरे सरदार ने उसके राज्य पर अधिकार कर उसे वहाँ से भगा दिया।

ओरगाना बौद्ध-धर्म की अनुयायिनी थी।

ओरछा

प्राचीन बुन्देलखण्ड की राजधानी। इतिहास प्रसिद्ध राजा छत्रसाल की वीरभूमि।

ओरछा का इतिहास काफी प्राचीनकाल से प्रारम्भ होता है। सम्राट हर्षवर्द्धन के पश्चात् यह स्थान 'चन्देल' राजपूतों के अधिकार में आया। काफी समय तक चन्देलों के अधिकार में रहने के बाद यह 'परिहार' राजपूतों के अधिकार में रहा। सन् १०४८ में 'गहरवार' राजपूत वंश के हेमकरण नामक सरदार ने पंचम बुन्देला-राजवंश की नींव डाली। इसके पश्चात् हेमकरण के वंशज सोहनलाल ने सन् १२३१ में झांसी से ३० मील उत्तरपूर्व गढ कुण्डार को अपनी राजधानी बनाया। इसी वंश में आगे चलकर राजा रुद्रप्रताप ने सन् १५३१ में ओरछा में राजमहल और दुर्ग का निर्माण प्रारम्भ किया। सन् १५३६ में ओरछा का राजमहल और किला बनकर तैयार हुआ और सन् १५५४ तक राजा भारतीचन्द्र ने ओरछा पर शासन किया।

भारतीचन्द के पश्चात् उनके पुत्र मधुकर शाह ओरछा के राजा हुए। इनकी पत्नी ने अयोध्या के सरयूतट की जमीन में से रामचन्द्र की मूर्ति प्राप्त कर उसे ओरछा में राजाराम का मन्दिर बनवा कर उसमें प्रतिष्ठित करवाई। आज भी ओरछा में 'राजाराम का मन्दिर' बहुत प्रसिद्ध है।

मधुकर शाह के पश्चात् ओरछा के इतिहास में वीरसिंह देव का नाम विशेष प्रसिद्ध है। वीरसिंहदेव एक बहादुर और साहसी राजा था। उसने अपने भाई इन्द्रजीत और प्रताप सिंह के साथ मिलकर मुगलों के बहुत से किले जीत लिये। विद्रोही शाहजादा सलीम का पक्ष लेकर उसने अकबर के एक प्रसिद्ध सेनापति को मार दिया। सन् १६०५ में शाहजादा सलीम ने बादशाह बनने पर वीरसिंह देव को ओरछा की गद्दी पर बिठाया। वीरसिंह ने पश्चिमी बुन्देलखण्ड और बघेलखण्ड तक अपने राज्य का विस्तार कर लिया। इसने ओरछा में बड़े-बड़े महल और मन्दिरों का निर्माण करवाया। चतुर्भुज का विशाल मन्दिर उसीका बनवाया हुआ है। ओरछा के फूल बाग और दतिया के नौ मंजिले प्राचीन महल का निर्माण भी उसीने करवाया। सन् १६२७ में इसकी मृत्यु हुई। राजा वीरसिंह देवकी राजनर्तकी 'राय प्रवीण' बहुत अच्छी गायिका और कवियित्री थी। इसका महल भी ओरछा में बना हुआ है।

वीरसिंह देव के पश्चात् उनके बड़े पुत्र जुझारसिंह गद्दी पर बैठे और छोटे पुत्र हरदौल प्रधान मंत्री हुए। जुझारसिंह की रानी हरदौल पर बड़ा स्नेह रखती थी। इससे राजा जुझारसिंह को अपनी रानी के सतीत्व पर सन्देह हो गया और उसने रानी से कहा कि यदि तुम पतिव्रता हो तो हरदौल को अपने हाथ से जहर पिलाओ। इस आज्ञा से रानी पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा, मगर हरदौल ने रानी के मान की रक्षा के लिए उसका विषमिश्रित भोजन हँसते-हँसते खा लिया, जिससे हरदौल की मृत्यु होगई, मगर इस घटना से हरदौल की कीर्ति अमर होगई। आज भी राजाराम के मन्दिर में 'हरदौल' के चबूतरे की देवी देवताओं की तरह पूजा होती है और जगह-जगह उनकी स्मृति में चबूतरे बने हुए हैं।

इस घटना से क्रुद्ध होकर मुगल-सम्राट् शाहजहाँ ने जुझारसिंह को सजा देने के लिए सेनापति महावत खां को भेजा। जुझारसिंह के भाई-भतीजे भी उसके विरुद्ध हो गये जिससे जुझारसिंह को राज्य छोड़कर भागना पड़ा और ओरछा का शासन सन् १६३४ में उसके भतीजे देवीसिंह के हाथ में आया।

'ओरछा' प्राचीननगर है और इसमें प्राचीन काल के अनेक प्रसिद्ध मन्दिर और महल बने हुए हैं। जिनमें राजाराम का मन्दिर, चतुर्भुज-मन्दिर, लक्ष्मी का मन्दिर, राजमहल, जहांगीर महल, फूल बाग इत्यादि स्थान अभी भी जीर्ण-शीर्ण हालत में उसकी गौरव गाथा बतला रहे हैं।

इसके पश्चात् ओरछा और बुन्देलखण्ड के इतिहास में चम्पतराय बुन्देले के चौथे पुत्र छत्रसाल का नाम बड़ा प्रसिद्ध है जिसका जन्म सन् १६५० में हुआ था। यह बड़ा बहादुर और साहसी व्यक्ति

था। इसने करीब आधी शताब्दी तक सम्राट् औरंगजेब की सेनाओं का सफलता पूर्वक मुकाबला किया और बुन्देलखण्ड में एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना कर उसकी राजधानी 'पन्ना' में बनाई।

ओरीडीस

प्राचीन ईरान का पार्थियन सम्राट जो अपने पिता फ्रांतिस तृतीय की हत्याकर गद्दी पर बैठा। इसका समय ई० पू० ६० से लेकर ई० पू० ३७ तक है।

ईरान के पार्थियन सम्राट फ्रांतिस की हत्या के पश्चात् पहले तो उसका लड़का मिश्रदत्त गद्दी पर बैठा मगर उसके अयोग्य होने के कारण जनता ने उसे हटाकर ओरीडीस को राजा बना दिया।

मगर सीरिया में रोमन-साम्राज्य के गवर्नर मार्क्स क्राइसिस को ओरीडीस का गद्दी पर बैठना पसन्द नहीं आया और उसने आर्मेनिया के राजा की सहायता से ओरीडीस पर आक्रमण कर दिया। आर्मेनिया की सेना को पहले हरा कर ओरीडीस ने वहाँ के शासक की बहन से शादी कर ली और वहाँ से निपट कर रोम-सेनापति क्राइसस के साथ ई० पू० सन् ५३ में कैरी नामक स्थान पर युद्ध किया। ओरीडीस की सेना का सेनापति "सुरैना" बड़ा युद्धसंचालक और बहादुर व्यक्ति था। इसने अपनी व्यूहरचना में रोमन-सेना को फँसा कर करारी हार दी और उसके सेनापति प्लैबियस को मार डाला।

उसके बाद सेनापति "सुरैना" ने संधि का पैगाम भेजकर क्राइसिस को अपने यहाँ बुलाया और वहीं उसका सिर काट लिया और फिर रोमन-सेना पर आक्रमण करके उसका सर्वनाश कर किया।

इस प्रकार बहादुर सुरैना ने रोमन-सेनापर विजय प्राप्त कर ली, मगर उसकी इस वीरता को देखकर पार्थियन सम्राट स्वयं डर गया कि कहीं यही राजा न बन जाय और उसने धोखे से सुरैना की हत्या करवा दी।

इसके बाद ओरीडीस ने सीरिया पर भी आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया। मगर ई० पू० सन् ३८ में मार्क एण्टोनी के सेनापतित्व में एक विशाल रोमन सेना ने सीरिया पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया। इस लड़ाई में पार्थिया का सेनापति पेकोरस और ओरीडीस का एक पुत्र मारा गया।

इसके पश्चात् ओरीडीस का लड़का फ्रांतिस चतुर्थ अपने पिता की हत्या कर गद्दी पर बैठा।

ओर्मेना का मन्दिर

मिस्र देश के प्राचीन युग का गौरवशाली मन्दिर जिसकी रचना का प्रारम्भ मिश्र के ग्यारहवें राजवंश के अधिष्ठाता रामसेज प्रथम ने किया और जिसके उत्तरार्द्ध की रचना सेती प्रथम तथा रामसेज द्वितीय ने पूर्ण की।

मिश्र के ग्यारहवें राजवंश का समय ईसा से २१६० वर्ष पूर्व से लेकर ईसा के २००० वर्ष पूर्व तक माना जाता है। इस राजवंश के प्रथम राजा नेमपत्र ने मिश्र की राजधानी मेंम्फीस से बदल कर थीब्रीज में स्थापित की।

थीब्रीज का यह युग मिश्र के प्राचीन इतिहास में गौरवशाली युग माना जाता है। इस युग में जितने मन्दिर बनाये गये, वे बड़े विशाल और उच्च कोटि की स्थापत्य-कला से परिपूर्ण थे। अर्मेना का मन्दिर भी ऐसा ही एक विशाल मन्दिर था। यूनान के प्राचीन इतिहासकार हैरोडोटस् और स्ट्रेबोने ने इन मन्दिरों की कलात्मक रचना की बड़ी प्रशंसा की है।

इसी प्रकार सैती-युग में बने हुए अबीदास के मन्दिरों की दीवारें जो खण्डहर के रूप में खड़ी है, अभी भी अपनी इस अनोखी मूर्तिकला के कारण दर्शकों का ध्यान बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेती हैं। अबीदास के एक मन्दिर की दीवार पर सेखमेत नामक देवता की पूजा करते हुए सम्राट सेती दिखाई देता है जिसे देखकर यह अनुमान करना कठिन होता है कि ये चित्र चार हजार वर्ष पुराने बने हुए हैं। समय के भीषण प्रहारों का उपहास करते हुए आज भी ये उस अमर कला का परिचय दे रहे हैं।

ओरइ

प्राचीन बेबिलोनियन सभ्यता का गुलाम वर्ग। जो लोग लड़ाई में पकड़े जाते थे, अपहरण किये जाते थे, या परम्परागत गुलाम-वंश के होते थे, उन सबको बेबीलोन में ओरइ कहा जाता था।

श्रोरइ लोगों पर उनके मालिकों का कब्जा उसी प्रकार रहता था जिस प्रकार गाय, बैल आदि पशुओं पर रहता है। मालिक उनसे घर का सारा काम काज करवाते, उनको सेना में भरती करवा कर लड़ाई में भेजते, मजदूरी करवाते, उनकी सारी आमदनी खुद खा जाते, उनकी स्त्रियों से अपनी विषय वासना को तृप्त करते और अधिक संख्या होजाने पर या स्वयं कर्जदार हो जाने पर उस कर्ज अदायगी में इन गुलामों को बेच भी सकते थे।

गुलामों के शरीर पर गोदना गोदकर निशान बना दिये जाते थे अथवा उन्हें मिट्टी की बनी हुई गुलामी की एक निशानी अपने साथ रखना पड़ती थी।

श्रोर्थरबेरी

अमेरिका का सुप्रसिद्ध जवाहिरातों का चोर, जो बीसवीं शताब्दी के करीब दूसरे तीसरे दशाब्द में अमेरिका के सम्पन्न व्यक्तियों में अपनी हीरे-जवाहिरात की चोरी के लिए प्रसिद्ध रहा। यह केवल जवाहिरातों का चोर ही नहीं, उनका योग्य पारिखी भी था। एक बार जहाँ पर वह चोरी के लिए गया उसे ५ मोतियों के हार एक सी चमक-दमक के मिले, जिनमें चार नकली और एक असली था। उसने अपनी सहज बुद्धि से असली को छाँट लिया और नकली को वहीं छोड़ दिया।

आर्थरबेरी में चोरी करने की घातक बुराई के बावजूद कुछ विशिष्ट गुण भी थे जिनकी वजह से अमेरिका के इतिहास में इसकी गणना साधारण कोटि के डाकुओं में नहीं की जाती। ऐसा कहा जाता है कि वह केवल जवाहिरात और उनके जेवरों की ही चोरी करता था। दूसरी चीजों को छोड़ देता था। जवाहिरात के जेवरों में भी अगर कोई प्रणयचिन्ह या प्रेमस्मृति में मिले हुए जेवर होते और प्रणयी उनको छोड़ देने की प्रार्थना करता तो उसे भी वह सम्मानपूर्वक सहर्ष छोड़ देता था फिर चाहे उसका मूल्य कितना ही अधिक क्यों न हो। उसने दो लाख रुपये के मूल्य के जेवर ऐसी प्रार्थनाओं पर छोड़ दिये थे।

एक बार इङ्गलैंड के सम्राट एडवर्ड अष्टम जो उस समय प्रिन्स ऑफ वेल्स के रूप में थे, आर्थरबेरी के चक्कर में बुरी तरह फँस गए थे। एक बड़ी पार्टी में उनकी प्रिंस से भेंट हुई और वहीं उसने अपने व्यवहार-कौशल से उनको बातों ही बातों में मुग्ध कर लिया और तुरन्त ही उनकी घनिष्ठता को प्राप्त कर लिया। मगर इसके कुछ दिनों बाद प्रिन्स ऑफवेल्स के महल से नौ लाख रुपये के जवाहरात चोरी हो गये। पुलिस ने एड़ी-चोटी का पसीना एक कर दिया पर वह उस चोरी का पता न लगा सकी। अगर आर्थरबेरी ने स्वयं इसका रहस्योद्घाटन न किया होता तो अभी वह रहस्य ही बनी रहती।

आर्थरबेरी को एक बार चोरी के अपराध में २५ वर्ष की सजा हुई थी मगर बीच ही में वह जेल तोड़कर भाग निकला, दूसरी बार फिर उसे १७ बरस की सजा हुई। जिसे भुगत कर अब वह शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहा है।

अपनी सफलता के युग में आर्थरबेरी की आमदनी २ लाख पौंड प्रतिवर्ष थी। मगर आज अपने रिटायर्ड लाइफ में उसके पास कुछ भी नहीं बचा है और भारी कर्जभार से वह लदा हुआ है।

ओरीजेन

ईसाई-धर्म का एक सुप्रसिद्ध धर्माचार्य जिसका जन्म सन् १८५ में और मृत्यु सन् २५४ में हुई।

ओरीजेन का जन्म अलेक्जेण्ड्रिया नगर के एक ईसाई परिवार में हुआ था। जब ओरिजेन के अवस्था केवल १७ वर्ष की थी उसी समय उसके पिता को ईसाई होने के अपराध में प्राणदण्ड दे दिया गया और उनके परिवार की सारी सम्पत्ति जब्त कर ली गई। संकटकाल में किसी प्रकार अध्यापन-कार्य्य से अपने परिवार का गुजारा करते हुए ओरीजेन बाइबिल का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन करने लगे। इसके पश्चात् बाइबिल का वैज्ञानिक अध्ययन कराने के लिए इन्होंने एक शिक्षा संस्था खोली, जिसने क्रमशः विश्वविद्यालय का रूप ग्रहण कर लिया। इस संस्था के माध्यम से इनकी कीर्ति समस्त ईसाई-जगत में फैल गई। इनके व्याख्यानों और ग्रन्थों का भी ईसाई-जगत् में बड़ा सम्मान हुआ। स्वयं रोम-सम्राट अलेक्जेण्डर सेवेरस की माता ने ईसाई-धर्म की जानकारी प्राप्त करने के लिए इन्हें आमंत्रित किया था।

सन् २४७ में रोम सम्राट् डेसियस ने ईसाई-धर्म के विरुद्ध बड़ा अभियान किया। इस अभियान में सन् २५० से ओरीजेन को भी जेल-यंत्रणाएँ सहन करनी पड़ीं और सन् २५४ में उनका स्वर्गवास हुआ।

ईसाई-धर्म की प्रारम्भिक शताब्दियों में ओरीजेन का नाम बड़ा आदरणीय माना जाता है। इनकी रचनाओं की संख्या हजारों में मानी जाती हैं। "पेरी अरखोन" नामक इनकी रचना बहुत प्रसिद्ध है जिसमें सबसे पहले ईसाई-धर्म के धार्मिक विश्वासों का वैज्ञानिक ढङ्ग से प्रतिपादन किया गया है।

ओलिव-ब्रान्च पिटीशन

अमेरिकन युद्ध शुरू होने के पहले अमेरिकन औपनिवेशिक कांग्रेस के छियालीस सदस्यों द्वारा इंग्लैण्ड के बादशाह की सेवा में भेजा जाने वाला शान्ति-पत्र।

ओलेग

मध्य एशिया में रूसी साम्राज्य का प्रथम संस्थापक, जिसका समय १०वीं सदी के प्रारंभ में सन् ६११ के करीब माना जाता है।

'ओलेग' वरंगी नामक जाति के सरदार रूरिक का पुत्र था। १० वीं शताब्दी के प्रारंभ में वह नवोगोरद के स्लाव जाति के लोगों पर शासन करता था मगर बाद में वह दूनिये पर उपत्यका पर चला गया और स्मोलेंस्क-क्रीविची को जीतकर उस पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार ओलेग नवोगोरद और कियेफ दोनों का स्वामी बन जाने के बाद दनियेपर वणिक-पथ का भी स्वामी हो गया। धीरे-धीरे उसने कितने ही छोटे-छोटे राजुलों को अपने अधीन कर अपने इस राज्य का नाम 'रूस' रख दिया और रूस का महाराजुल बन कर दूसरे राजुलों पर शासन करने लगा।

यह कहना कठिन है कि रूस किस भाषा का शब्द है। जो भी हो १०वीं सदी के आरंभ में बहुत से स्लाव कबीलों को, जो कि एक शासक के अधीन एकताबद्ध हुए थे, उनको 'यही नाम दिया गया और इतिहास में उन्हें 'कीएफ-रूस' कहा जाने लगा।

ओलेग का शासन काफी लंबा था। अपने ४० साल के शासन-काल में उसने रूस को एक विस्तृत राज्य बनाने का ऐतिहासिक काम पूरा किया। उसके काम का कितना महत्व है, यह इसी से मालूम होगा कि कार्लमार्क्स ने १८ वीं सदी में अपने 'गुप्त कूटनीति' नामक ग्रन्थ के ५वें अध्याय में ओलेग का वर्णन करते हुए लिखा है—

"रूस के प्राचीन नक्शे हमारे सामने उससे कहीं अधिक विशाल योरोपीय क्षेत्र को प्रदर्शित करते हैं, जिसका कि वह आज गर्व कर सकता है। ६वीं शताब्दी से ११वीं शताब्दी तक उसका लगातार बढ़ाव इसी बात की ओर संकेत करता है। हम ओलेग के समान साहसी, राजपुरुष को ८८ हजार आदमियों के साथ विजन्तीन (पूर्वी रोम) पर आक्रमण करके और कांस्टेंटिनोपल राजधानी के फाटक पर विजय-चिह्न के तौर पर अपनी ढाल स्थापित करते हुए और पूर्वी रोम साम्राज्य को सम्मानहीन सन्धि करने को मजबूर करते हुए देखते हैं।"

सन् ६५१ के करीब ओलेग की मृत्यु हुई।

ओलेम्पिक-खेल

प्राचीन यूनान के प्रसिद्ध नगर ओलेम्पिया से प्रारम्भ होने वाले ओलेम्पिक खेल। जिनका प्रारम्भ ई० स० पूर्व आठवीं शताब्दी से माना जाता है।

ईसा से पूर्व आठवीं सदी से लेकर ईसासे पूर्व चौथी सदी तक हर चौथे वर्ष ओलेम्पिया में तरह २ के खेलों का आयोजन किया जाता था। तभी से ये खेल "ओलेम्पिक" खेलों के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन खेलों में केवल यूनानी नागरिक ही भाग ले सकते थे और स्त्रियों के लिए इन खेलों में भाग लेने की सख्त मनाई थी।

ई० सन् ३६४ में जब यूनान रोम के अधीन हो गया, रोम के सम्राट "थियोडोसियस" ने इन खेलों को बन्द कर दिया।

इसके करीब पन्द्रह सौ वर्षों के पश्चात् फ्रांस के बैरन पियर-डी-कुबरटिन ने बड़ी लगन और मेहनत से सन् १८९६ में यूनान के एथेन्स नगर में फिर से ओलेम्पिक खेलों को नवीन साजसज्जा के साथ प्रारम्भ किया। क्रमशः धीरे-धीरे

इन खेलों ने अन्तर्राष्ट्रीय महत्व ग्रहण कर लिया और सारे संसार के अनेकों देशों के खिलाड़ियों ने इन खेलों में भाग लेना प्रारम्भ किया। पहले वर्ष अर्थात् सन् १८९६ में जहां केवल तेरह राष्ट्रों के २८५ खिलाड़ियों ने इसमें भाग लिया था वहाँ सन् १९५६ में ६७ राष्ट्रों के ३५३९ खिलाड़ी इन खेलों में मेलबोर्न में सम्मिलित हुए थे। जिनमें ३३ स्त्रियाँ थीं। खिलाड़ियों के अतिरिक्त दर्शकों की संख्या लाखों रहती है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि इन दिनों संसार में इन खेलों की लोकप्रियता कितनी बढ़ गई है। हरएक समाचार पत्र और रेडियो में इन खेलों के समाचार आवश्यक अंग के रूप में दिये जाते हैं।

ये सब खेल लगातार १६ दिन तक चलते हैं। इन खेलों में हॉकी, फुटबाल, क्रिकेट, लम्बी दौड़, ऊँची कूद, लम्बी कूद, हॉफ स्टेपकूद, पोलवाल्ट, गोलाफेंक, हथौड़ा-फेंक इत्यादि कई प्रकार के खेलों का आयोजन रहता है। सन् १९२४ से इन खेलों में बर्फ के खेलों को भी मिलाया गया है।

सन् १९३२ में लास एंजल्स में ओलेम्पिक खेलों की आयोजना में "ओलेम्पिक नगर" बनाना प्रारम्भ किया गया। इस नगर में सब खिलाड़ियों को एक ही स्थान पर ठहराने का प्रबन्ध किया जाता है। १९३६ में जब बर्लिन में इन खेलों का आयोजन किया गया तो ओलेम्पिया-नगर की स्मृतिरक्षा के लिए वहाँ से एक मशाल जलाकर बर्लिन के खेल मैदान में लाई गई और स्थापित की गई और यह खेलों की अवधि तक बराबर जलती रही। इन खेलों में सब खिलाड़ियों को मार्च करते हुए एक स्थान पर इकट्ठे होना पड़ता है। इस मार्च में अपने ऐतिहासिक गौरव के कारण यूनानी टीम सबसे आगे रहती है और उसके पीछे दूसरे देशों की टीमों का क्रमानुसार आयोजन होता है और सबके पीछे प्रबन्धक देश की टीम रहती है।

ओलेम्पिक खेलों के अन्तर्गत हॉकी के खेल में भारतवर्ष की हॉकी टीम सन् १९२८ से लेकर १९५६ तक बराबर विजयी होती रही।

ओविडियस

प्राचीन काल में रोम का सुप्रसिद्ध कवि जिसका समय ई० पू० ४३ से लेकर ई० सन् १७ तक माना जाता है।

यह युग ऑगस्टस सीजर का युग था जिसमें रोम का वैभव चरम उत्कर्ष पर जा पहुँचा था। साहित्य के पुरातन महारथी 'वर्जिल', 'होरेस', 'प्रोपर्टियस' तथा 'ओविडियस' इतिहास को उसी युग की देन है।

ओविडियस या ओविद लैटिन में एलेजी या मर्सिया लिखने वाला प्रसिद्ध कवि था। इसका जन्म सुल्मो नामक नगर में हुआ था। ई० सन् पूर्व १४ में इसकी पहली रचना "एमोरस" तैय्यार हुई। इसमें अपनी प्रेमिका कोरिन्ना के प्रति अपनी भावनाओं की पुष्पांञ्जलि कवि ने बड़ी हृदयग्राही भाषा में अर्पित की है। इस पहली रचना से ही इस कवि की ख्याति सारे रोम में फैल गई।

इसकी एक रचना "मेतामार फोसेज" में सृष्टि के प्रारम्भ से आगस्टस सीजर के युग तक सृष्टि का इतिहास पौराणिक अधिकार पर दिया हुआ है। यह १०००० छन्दों में है और इसमें इस महाकवि की मृदुल भावनाएं सर्वत्र झलकती हैं।

मगर उसका सबसे प्रसिद्ध काव्य "आर्स अमातोरिया" प्रणय की कला पर आधारित है। इस काव्य में कवि ने लिखा है कि "प्रेम की देवी वीनस ने कवि को प्रेम की कला का दीक्षागुरु नियुक्त किया है। उसी के आदेश से इस काव्य की रचना की जा रही है"। इस काव्य की उद्दाम और अश्लील भावनाओं से रोम का सम्राट् ऑगस्टस सीजर जो वहाँ की भोगलिप्त जनता का नैतिक सुधार करना चाहता था, बहुत क्रोधित हो गया और उसने इस कवि को देश निकाला दे दिया। देश निकाले की स्थिति में इसने अपनी पत्नी और पुत्री को जो पत्र लिखे वे "तिस्तिया" के नाम से संग्रहीत किये गये। इन पत्रों में वेदना और करुण रस की एक अविरल धारा बहती हुई दिखलाई देती है।

ओविद के काव्य और उसकी कविताओं पर अश्लीलता और उद्दाम वासना के प्रदर्शन का आरोप लगाया जाता है। ऐसी भी किम्वदन्ती है कि उसकी इन कविताओं से आकर्षित होकर सम्राट् ऑगस्टस की दौहित्री छोटी जूलिया

का इससे प्रेम हो गया था और इसी अपराध में कवि का भी निर्वासन हुआ और करीब-करीब इसी समय जूलिया को भी निर्वासन-दण्ड भोगना पड़ा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह कवि प्रेम और शृंगाररस का कवि था और इस प्रकार के काव्यों में अश्लीलता की झलक किसी मात्रा में आ ही जाती है। फिर अश्लीलता का मापदण्ड भी हर एक युग में अलग-अलग रहता है। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि प्राचीन काल के इस कवि की कविता में ओज है, माधुर्य है और निर्झर का प्रवाह भी है। कवि की अन्य रचनाओं में "हेरोइडेस" नामक प्रेम-पत्रों का संग्रह और "फ़ास्ती" का नाम भी उल्लेखनीय है।

ओवेन-राबर्ट

कार्लमार्क्स का अभिन्न साथी, "सोशलिज्म" शब्द का प्रथम पुरस्कर्त्ता, इंग्लैण्ड का उद्योगपति जिसका जन्म सन् १७७१ में और मृत्यु सन् १८५८ में हुई।

सबसे पहले सन् १७९० में 'ओवेन' मैन्चेस्टर की एक सूती मिल के प्रबन्धक नियुक्त किये गये। मिल में काम करने वाले मजदूरों की दुरावस्था और उद्योगपतियों द्वारा उनके शोषण की प्रक्रिया को देखकर उनके मन में मजदूरों के प्रति सहानुभूति की भावनाएँ उत्पन्न हुईं।

उसके पश्चात् जब वे न्यूलेनार्क मिल में साझीदार हो गये तब उन्हें अपने विचारों को क्रियात्मक रूप देने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने मजदूरों की सुख, सुविधा, उनके बच्चों की शिक्षा और चिकित्सा के लिए अपने मिल में पूर्ण सुविधाएँ उपलब्ध कीं। इतना होने पर भी व्यवसायिक दृष्टि से यह मिल दूसरी मिलों से अधिक समुन्नत रही। इस प्रकार ओवेन ने सबसे पहले औद्योगिक क्रान्ति से पीड़ित ब्रिटेन में सामाजिक न्याय और मनुष्यत्व की भावनाओं का एक व्यवहारिक आदर्श सामने रक्खा जिसकी उस युग को बड़ी आवश्यकता थी।

उन्हीं दिनों कम्यूनिज्म सिद्धान्त के पुरस्कर्त्ता महान् विचारक 'कार्लमार्क्स' लन्दन में बैठकर अपनी नवीन विचार-धारा का प्रचार कर रहे थे। ओवेन और मार्क्स का पारस्परिक विचार साम्य होने से दोनों का परिचय और घनिष्ठता शीघ्र ही हो गई और दोनों एक दूसरे के पूरक बन गये।

अपने विचारों का प्रतिपादन ओवेन ने अपने ग्रन्थ A View of Society (ए व्हयू आफ सोसायटी) तथा Principal of the formation of the Human Society नामक ग्रन्थों में किया है। ओवेन के मतानुसार सामाजिक कलह और अशान्ति का मूल कारण मशीनों के साथ मानवीय श्रम की प्रतियोगिता है। अतएव उसने एक ऐसी समाज-रचना की उपयोगिता बतलाई जिसमें मशीनों का प्रयोग मानव-कल्याण पर आधारित हो। ओवेन धर्मसंस्था की रूढिवादिता और उसके अनुयायियों के अन्ध विश्वास के बहुत खिलाफ था।

अपनी विचारधारा को क्रियात्मक रूप देने के लिए उन्होंने अमेरिका के इण्डियाना नामक स्थान पर एक छोटे से संस्थान की स्थापना अपने निजी व्यय से की जिसका नाम "न्यू-हारमनी" रक्खा गया। उनका विचार था कि संसार ऐसे छोटे-छोटे संस्थानों में विभाजित होकर शान्तिपूर्वक रह सकता है।

मगर उस समय की तत्कालीन परिस्थितियों और समाज-संगठन की विषमताओं के कारण उनकी योजनाएँ सफलता प्राप्त न कर सकीं। लेकिन आगे चलकर उसके सहयोगी कार्लमार्क्स के प्रयत्नों से संसार में जिस महान् क्रान्ति का आविर्भाव हुआ, उसका मूल्यांकन करते समय भी राबर्ट ओवेन की सेवाओं को नहीं भुलाया जा सकता।

ओसाका

जापान का एक प्रमुख औद्योगिक नगर. और रेलों का प्रमुख जंकशन।

ओसाका जापान का एक प्रमुख औद्योगिक नगर है। यह तीन तरफ पहाड़ों से घिरा हुआ है और इसके चौथी ओर ओसाका की खाड़ी है। सन् १९४० में इस नगर की आबादी बत्तीस लाख तक पहुँच गई थी। मगर दूसरे महायुद्ध की समाप्ति पर इसकी आबादी घट कर केवल १६ लाख रह गई।

ओस्लो

नार्वे देश की राजधानी और उस देश का सबसे बड़ा और सुन्दर नगर।

ओस्लो का प्राचीन नाम "क्रिस्तानिया" था जो नार्वे के राजा क्रिश्चियन चतुर्थ के नाम पर सन् १६२६ में रक्खा गया था। १९२५ में इसका नाम बदल कर "ओस्लो" रक्खा गया। यह नगर रेलों का बहुत बड़ा जंकशन है और एक बड़ा औद्योगिक केन्द्र भी है। यहाँ पर जहाज बनाने, भिन्न-भिन्न प्रकार के सूती, रेशमी, ऊनी कपड़े बनाने, एल्यूमिनियम तैयार करने, लोहा गलाने इत्यादि कई प्रकार के उद्योगों के कारखाने बने हुए हैं।

ओस्टवाल्ड

सन् १९०९ में रसायन-शास्त्र पर नोबेल पुरस्कार विजेता विलियम ओस्टवाल्ड, जिनका जन्म सन् १८५३ में और मृत्यु सन् १९३२ में हुई।

विलियम ओस्टवाल्ड लिपजिग कॉलेज में प्रोफेसर थे। भौतिक रसायनशास्त्र पर उन्होंने कई महत्वपूर्ण अनुसन्धान किये। इससे वैज्ञानिक क्षेत्र में उनकी अच्छी ख्याति हो गई। रसायनशास्त्र सम्बन्धी क्रियाओं की गति और संतुलन अर्थात् कैटालिसिस और इक्वीलिब्रियम पर अनुसन्धान करने पर उन्हें १९०९ का नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ।

ओसवाल

भारतवर्ष की, विशेषतया राजस्थान की एक प्रमुख जाति जिसकी उत्पत्ति राजस्थान की "ओसियाँ" नामक नगरी से मानी जाती है।

ओसवाल-जाति की उत्पत्ति कब और कैसे हुई इसका कोई निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं है। फिर भी इस जाति के भाट, भोजक और यतियों के पास जो सूत्र और किंवदन्तियाँ उपलब्ध हैं, वह इस प्रकार हैं—

१—विक्रम संवत् १३९३ में लिखे हुए, उपकेश-गच्छ चरित्र, नामक ग्रन्थ के अनुसार विक्रम संवत् से चार सौ वर्ष पूर्व ऊपलदेव नामक व्यक्ति ने उपकेशपुर या ओसियाँ नगरी की स्थापना कर वहाँ पर अपना राज्य स्थापित किया। इसी राजा ऊपलदेव को भगवान् पार्श्वनाथ के सातवें पट्टधर आचार्य रत्न प्रभसूरि ने जैनधर्म की दीक्षा देकर जैन बनाया। कहा जाता है कि राजा की कुलदेवी ओसियाँ ने भी इन आचार्य्य से जैनधर्म की दीक्षा ली और अपने मन्दिर में किसी प्रकार के बलिदान या हिंसा का निषेध कर दिया। तब से आज तक इस मन्दिर में वही परम्परा चल रही है। राजा के साथ ही उस नगरी के सब नागरिकों ने भी जैन धर्म की दीक्षा ली और वे सब "ओसवाल" नाम से प्रसिद्ध हुए।

२—ओसवालों के भाट और भोजकों के मतानुसार ओसवाल जाति की उत्पत्ति का घटनाक्रम बिलकुल उपरोक्त ढङ्ग का ही है। सिर्फ वे लोग ऊपलदेव, रत्नप्रभ सूरि और ओसियाँ नगर की स्थापना का समय विक्रम संवत् २२२ मानते हैं। घटनाएँ और किम्वदन्तियाँ ज्यों की त्यों हैं।

३—तीसरा मत आधुनिक इतिहासकारों का है। इस मत के लोग भी ओसियाँ नगरी का स्थापक ऊपलदेव परमार को ही मानते हैं, जो किसी कारणवश अपना देश छोड़कर मण्डोवर के पड़िहार राजा की शरण में आया था। मगर इस राजा के समय के सम्बन्ध में आधुनिक इतिहासकार प्राचीन किम्वदन्तियों को प्रामाणिक नहीं मानते। भीनमाल और आबू में मिले हुए शिलालेखों के आधार पर वे इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि आबू के परमारों का मूल पुरुष "धूमराज" माना जाता है मगर आबू के शिलालेख में परमारों का वंशवृक्ष "उत्पलराज" से शुरू किया जाता है। इस उत्पलराज या ऊपलदेव का समय विक्रम की दसवीं शताब्दी के मध्य में माना जाता है और वही समय ओसियाँ नगरी के बसने का और ओसवाल जाति की स्थापना का हो सकता है, मगर साथ ही यह प्रश्न भी विचारणीय होता है कि जैनाचार्य्य बप्पभट्ट सूरि जो कि आठवीं सदी में हुए थे उनके समय में ओसवालों के अठारह मूल गौत्रों की स्थापना हो चुकी थी और उन्होंने स्वयं भी कुछ गौत्रों की स्थापना की थी। इससे ओसवाल जाति की उत्पत्ति का समय विक्रम की आठवीं सदी से पहले का ही माना जा सकता है।

जो भी हो, मगर इतना निश्चित है कि आचार्य्य रत्नप्रभ सूरि ने राजा ऊपलदेव पर प्रभाव डालकर ओसियाँ नगरी में जितने भी नागरिक थे सबको जैनधर्म की दीक्षा देकर "ओसवाल" नाम से घोषित किया।

शुरू-शुरू में इस जाति के १८ मूल गौत्रों की स्थापना हुई जिनके नाम (१) तांतेड़ (२) बाफणा (३) करणावट (४) बलाहा (५) मोरख (६) कुलहट (७) विरहट (८) श्री श्रीमाल (९) श्रेष्ठि (१०) संचेती (११) आदित्य नाग (१२) भूरि (१३) भद्र (१४) चिचट (१५) कुम्हट (१६) डिडू (१७) कन्नौजिया (१८) लघुश्रेष्ठि।

इन अठारह गौत्रों के पश्चात् इनकी शाखाएँ और उपशाखाएँ भिन्न-भिन्न जैनाचार्यों ने स्थापित कीं। इन शाखा उपशाखाओं की संख्या १४८४ मानी जाती हैं।

आचार्य्य रत्नप्रभ सूरि के पश्चात् आगे के जैनाचार्यों ने भी लोगों को उपदेश दे देकर इस जाति के अन्दर मिलाना बड़े उत्साह से प्रारम्भ किया। इन आचार्यों में बप्पभट्टसूरि (संवत् ८००) राज कोठारी गौत्र के स्थापक, आचार्य्य नेमचन्द्र सूरि (संवत् ९५०) बरड़िया गौत्र के स्थापक, वर्द्धमान सूरि (संवत् १०४५) संचेती, लोढा और पींवाडा गौत्र के स्थापक जिनेश्वर सूरि (सं० १०६१) भणसाली और ढड्ढा गौत्र के स्थापक, अभयदेव सूरि (सं० १०७२) खेतसी, पगारिया और मेड़तवाल गौत्र के संस्थापक, मल्लधारी हेमचन्द्र सूरि सांकला, सुराणा, शियाल, सांड, सालेचा, पूनमियाँ इत्यादि गौत्रों के स्थापक जिनवल्लभ सूरि (संवत् ११४०) कांकरिया, चोपड़ा, बडेर, बांठिया, ललवानी, बरमेचा, हरकावत, मल्लावत, साह, सोलंकी इत्यादि गौत्रों के स्थापक, जिनदत्त सूरि (संवत् ११३२) धाड़ेवा, कोठारी, टांटिया, बुरड़, खीमसरा, कठोतिया, पूंगालिया, रांका, सेठिया, चोरड़िया, सावनसुखा, लूणिया, चण्डालिया, भड़गतिया इत्यादि अनेक गौत्रों के स्थापक, श्री जिन चन्द्र सुरि (संवत ११९७) अघारिया, छाजेड़, खजाञ्ची, सालेचा, दूगड़ सेखावत, आलेचा, पालेचा इत्यादि अनेक गौत्रों के स्थापक, जिन कुशल सूरि (सम्वत १३३०) बावेल, जड़िया, डागा इत्यादि २१ गौत्रों के स्थापक, इसी प्रकार १८ गोत्र के संस्थापक जिन चन्द्र सूरि, भण्डारी गोत्र के संस्थापक श्री भद्र सूरि (१४७८) गेलड़ा गोत्र के संस्थापक श्री जिन हंस सूरि (१५५२) इत्यादि आचार्यों के नाम उल्लेखनीय है।

इस जाति की संस्थापना के पश्चात् इस जाति के अनेक तेजस्वी लोगों ने राजनैतिक, व्यापारिक और धार्मिक सभी क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा का पूर्ण परिचय देना प्रारम्भ किया।

जोधपुर, उदयपुर, बीकानेर इत्यादि रियासतों के इतिहास को देखने से पता चलता है कि सोलहवीं शताब्दी से लेकर बीसवीं सदी के प्रथम दशाब्द तक इन रियासतों के शासन-संचालन में ओसवाल मुत्सद्दियों का काफी हाथ रहा है। जोधपुर स्टेट के इतिहास में साढ़े चार सौ वर्षों में करीब सौ दीवान ओसवाल रहे। जिनमें मुहणोत नेणसी, सिंघी इन्द्रराज, भण्डारी गंगाराम इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं। मेवाड़ के इतिहास में ओसवाल जाति के भामा शाह ने देशरक्षा के लिए अपनी लाखों रुपये की समस्त सम्पत्ति महाराणा प्रताप को भेंट कर अपना नाम अमर कर दिया। इसी प्रकार बीकानेर के इतिहास में कर्मचन्द बच्छावत का नाम भी अत्यन्त उल्लेखनीय है।

धार्मिक क्षेत्र में ओसवाल जाति के पुरुषों द्वारा बड़े-बड़े इतिहास प्रसिद्ध कार्य सम्पन्न हुए। इनमें पालीताना, जैसलमेर, राणापुर इत्यादि के मन्दिर बहुत प्रसिद्ध हैं।

व्यापारिक क्षेत्र में भी ओसवाल जाति के लोगों ने अपनी प्रतिभा का पूरा परिचय दिया। जिस समय देश में रेल, मोटर, तार, टेलीफोन इत्यादि संचार साधनों का बिलकुल अस्तित्व न था और रास्ते चोर डाकुओं से भरे रहते थे उस युग में भी इस जाति के लोगों ने आसाम, बंगाल, कलकत्ता, मुर्शिदाबाद, मद्रास, बम्बई इत्यादि सुदूरवर्त्ती क्षेत्रों में जाकर अपने व्यापार को चमकाया था और समस्त भारत के व्यापारिक क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया था।

इनमें जगत्सेठ माणिकचन्द्र का नाम इतिहास में बहुत प्रसिद्ध है। सेठ माणिकचन्द्र के पिता सेठ हीरानन्द राजस्थान में नागौर के रहने वाले एक मामूली गृहस्थ थे किसी यति से मुहूर्त लेकर के यात्रा को निकले और मुर्शिदा-

बाद में बस गये। यहीं पर इनके पुत्र जगत्सेठ माणिकचन्द्र हुए। जिनके अटूट वैभव का वर्णन करते हुए तत्कालीन मुसलमान इतिहास-लेखकों ने लिखा है कि जगत् सेठ के यहाँ इतना सोन-चाँदी और जवाहरात थे कि अगर वह चाहता तो गंगाजी के ऊपर सोने-चाँदी का पुल बना सकता था। मुसखरीन नामक ग्रन्थ में लिखा है कि उस समय सारे भारतवर्ष में जगत् सेठ के बराबर कोई दूसरा सेठ न था। बंगाल में चलने वाले सारे सिक्के जगत सेठ की टकसाल में ढलते थे बंगाल की राजनीति पर भी जगत्सेठ का बड़ा प्रभाव था।

इस समय भी ओसवाल जाति के लोग सारे भारतवर्ष में फैले हुए हैं। हालांकि व्यापारिक और औद्योगिक क्षेत्र में दूसरे महायुद्ध के पश्चात् इस जाति का प्रभाव कम पड़ गया है। फिर भी व्यावसायिक क्षेत्र में अभी भी इस जाति का काफी प्रभाव है।

ओसवाल जाति के लोग वैसे तो सारे भारत में है पर प्रान्तीयता की दृष्टि से वे मारवाड़ी, गुजराती और पंजाबी इन ३ भागों में विभक्त हैं। राजस्थानी और पंजाबी ओसवालों में प्रायः शादी-सम्बन्ध प्रचलित हैं। पर गुजरात और राजस्थान के ओसवालों में अभी शादी सम्बन्ध प्रचलित नहीं है।

धर्म की दृष्टि से ओसवाल प्रायः जैन-धर्म के अनुयायी हैं। फिर भी इस जाति के लोगों में हर व्यक्ति को इस बात की स्वतन्त्रता है कि वह भारतीय संस्कृति में प्रचलित किसी भी मत का अनुसरण कर सकता है। इससे उसकी जातीय प्रतिष्ठा या शादी विवाह में कोई अड़चन नहीं पड़ती। यही कारण है कि मध्ययुग में राज दरबार में रहने वाले ओसवाल मुत्सद्दियोंने राज्यधर्म या वैष्णव धर्म को ग्रहण कर लिया, उन लोगों के वंशज आज भी उसी धर्म का पालन कर रहे हैं। इसीलिए ओसवाल जाति में वैष्णव, रामसनेही, वल्लभ पंथी, जैन मन्दिर आम्नाय, जैन स्थानक वासी, जैन तेरापंथी इत्यादि सभी मतमतान्तरों के लोग पाये जाते हैं। इस समय सारे देश में ओसवालों की संख्या पाँच लाख से अधिक हैं।

ओसार-हद्दो

प्राचीन असीरिया का एक उदार और दयालु-शासक जिसका समय ई० पू० ६८१ से ई० पू० ६६६ तक माना जाता है।

ओसारहद्दो राजा सेन्नानिरिब का पुत्र था। यह उदार हृदय का दयालु शासक था। अधिकार प्राप्तिके साथ ही इसने अपने राज्य को व्यवस्थित कर बेबीलोनिया को स्वतन्त्र कर दिया। उस समय ऐलाम नगरराज्य में भीषण दुर्भिक्ष पड़ा हुआ था, इस राजा ने वहाँ के अकाल ग्रस्त लोगी को भरपूर सहायता देकर उनकी रक्षा की। इस प्रकार यह राजा उस युग में बड़ा लोक प्रिय हो गया था।

ई० पू० ६७१ में इसने मिश्र पर विजय प्राप्त कर मिश्र के नगर मेम्फ्रीस को अपनी औपनिवेशिक राजधानी बनाया। ई० पू० ६६६ में इसकी मृत्यु हो गई।

औदीच्य

गुजराती, ब्राह्मणों की एक शाखा।

औदीच्य ब्राह्मण ११ प्रकार के होते हैं। १—सिद्धपुरी, २—सिहोरी, ३—तोलकी, ४—कुनबिया, ५—मोचिया, ६—दर्जिया, ७—गन्धर्वी, ८—कोलिया, ९—मारवाड़ी, १०—कच्छी और ११—रागदिया।

यह जाति विशेष कर के कच्छ, गुजरात और खम्भात की खाड़ी के उपकूल में रहते हैं। इस जाति के अधिकांश लोग पुरोहिताई का काम करते हैं। आजकल के पढ़े-लिखे लोग सरकारी नौकरी और व्यवसाय भी करते हैं।

औद्योगिक-क्रांति और मशीन युग

अठारहवीं सदी में यूरोप के अन्दर होनेवाली एक महान् औद्योगिक क्रान्ति।

सम्पूर्ण विश्व-इतिहास में, अठारहवीं शताब्दी में यूरोप में मशीन युग का प्रारम्भ और उसके परिणामस्वरूप औद्योगिक क्रांति का विकास, सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना है, जिसने मानव-समाज के हजारों बरसों से चले आये ढांचे को, मनुष्य के सोचने समझने के तरीकों को और सैकड़ों वर्षों से चली आई उसकी सामाजिक और धार्मिक मान्यताओं को जड़मूल से परिवर्तित कर दिया।

मशीन की उत्पत्ति

मशीन की उत्पत्ति का इतिहास बड़ा रोचक और मनोरंजक है। कहा जाता है कि सोलहवीं सदी के अन्तर्गत किसी जर्मन मिस्त्री ने कपड़ा बुनने के लिए एक साधारण शीघ्रगामी करघे का निर्माण किया। इस पर डैन्जिङ्ग की नगर-सभा ने इस डर से कि इस आविष्कार से सैकड़ों कारीगर दर-दर के भिखारी बनजावेंगे उस मशीन को नष्ट कर दिया और उसके बनाने वाले मिस्त्री को पानी में डुबोकर मार डाला।

इससे पता चला है कि उस युग में लोगों के हृदय में मशीनों के प्रति सख्त नफरत के भाव थे क्योंकि उनका विश्वास था कि इस प्रकार की मशीनों के निर्माण से सैकड़ों कारीगरों के बेकार हो जाने का भय रहता है। इसी भावना के परिणामस्वरूप सत्रहवीं शताब्दी में जब इसी प्रकार की मशीन फिर प्रकट हुई तो उसके विरोध में सारे यूरोप में दंगे-फिसाद शुरू हो गये और मशीन तोड़ने वालों का एक संगठन तैयार हो गया। मशीन का उपयोग रोकने के लिए कई जगह कानून बनाये गये और कहीं-कहीं तो बीच बाजार में सबके सामने इसमें आग लगाई गई।

पर, इतने विरोधों के बावजूद मशीन का आगमन रुका नहीं और अनेक दंगे-फसादों के होते हुए भी इंग्लैण्ड में मशीनों की सत्ता स्थापित हो गई।

सन् १७८५ में जेम्सवाट ने भाप के इंजिन का सफलता पूर्वक आविष्कार कर लिया। इसके पहले ही सन् १७६४ में हारग्रीव्ज सूत कातने की मशीन का आविष्कार कर चुका था। इन दोनों आविष्कारों के सहयोग से इङ्गलैण्ड में सूत कातने और कपड़ा बुनने के बड़े-बड़े कारखानों का निर्माण होने लगा, और सन् १८०० तक इङ्गलैण्ड में कई बड़े-बड़े कारखाने दिखलाई देने लगे।

इसका परिणाम यह हुआ कि पहले जो मजदूर छोटे पैमाने पर उत्पादन करते थे, उनकी उत्पादन-प्रणाली इस मशीन-युग से एक दम कमजोर पड़ने लगी। मशीनों के द्वारा चीजें बनकर बाजार में इतनी सस्ती आती थी कि उस भाव में पुराने औजारों से घर पर बनाकर बेचना, उनके लिए सम्भव न था। परिणाम स्वरूप इस प्रतिस्पर्धा में उन्हें अपने छोटे-छोटे कारखाने बन्द करने पड़े और मजबूरन उनको उन बड़े-बड़े कारखानों में जाकर मजदूरी के लिए मोहताज होना पड़ा। उद्योग-पतियों ने उनको बहुत साधारण मजदूरी की दर पर काम करने के लिए रखना प्रारम्भ किया। इन मजदूरों से नाम मात्र की मजदूरी पर पन्द्रह-पन्द्रह घण्टे दमतोड़ काम लिया जाता था और मुनाफे की सारी रकम इन उद्योग-पतियों की जेब में चली जाती थी।

शोषण की जो प्रक्रिया पहले सामन्तवादी राजपुरुषों के द्वारा की जाती थी अब इन पूँजीवादी उद्योग-पतियों के द्वारा की जाने लगी। मशीनों की सहायता से एक आदमी २० या उससे भी अधिक आदमियों के बराबर उत्पादन कर लेता था, मगर उद्योगपति उसको एक आदमी की मजदूरी देकर बाकी उन्नीस आदमियों की मजदूरी स्वयं हड़प जाते थे।

इस प्रकार इस मशीन युग के प्रभाव का पहला असर पूँजी-पतियों और मजदूरों के बीच में धीरे-धीरे संघर्ष के रूप में पैदा हुआ।

मशीन-युग का दूसरा घातक परिणाम यह हुआ कि तेजी के साथ बढ़ते हुए उत्पादन को खपाने के लिए इन उत्पादक देशों को नई-नई मंडियों की आवश्यकता हुई और साथ ही इस माल को बनाने के लिए कच्चे माल की भी आवश्यकता पैदा हुई। इसके परिणाम-स्वरूप उपनिवेशवाद की जड़ें दिन-प्रतिदिन गहरी होने लगीं। इंगलैंड, फ्रांस इत्यादि देशों ने अपनी औद्योगिक स्थिति को मजबूत बनाये रखने के लिए इन उपनिवेशों को हर तरह से लूटना-खसोटना शुरू किया। अपने कारखानों के बने हुए मालों से इन उपनिवेशों के बाजारों को पाट कर वहाँ के हस्त-उद्योग और कारीगरी को इन लोगों ने नष्ट भ्रष्ट कर दिया।

वास्तव में अंग्रेज इन उपनिवेशवादियों में सबसे अधिक भाग्यशाली थे, जिनके सौभाग्य से मशीन-युग का पहला प्रारंभ भी उन्हीं के देश में हुआ जिससे इस युग का असली फायदा उन्होंने ही उठाया और फिर मंडी के रूप में उन्हें भारत के समान विशाल देश प्राप्त हो गया, जिससे उन्हें अपने उत्पादन को खपत करने की कोई चिन्ता न रही।

मगर इन सब बातों के बावजूद मशीन-युग के जो अनिवार्य्य परिणाम थे, उनसे कोई देश न बच सका। इस युग के परिणाम-स्वरूप जो महान् औद्योगिक क्रान्ति संसार में हुई, उसने सम्पूर्ण मानव-इतिहास की धारा को बदल दिया।

जिस समय फ्रांस में क्रांति की आँधी देश के एक छोर से दूसरे छोर तक चल रही थी, उसी समय इंगलैंड में एक अपेक्षाकृत अधिक शान्त, मगर महत्वपूर्ण क्रांति सम्पन्न हो रही थी। इसका वर्णन करते हुए फ्रेडरिक ऐंगल्स नामक समाजवाद का आचार्य एक स्थान पर लिखता है—

"इंग्लैंड में भाप से चलने वाली नई मशीनें उत्पादन को आधुनिक उद्योग में रूपान्तरित किए डाल रही हैं और इस प्रकार पूँजीवादी समाज के पूरे मूलाधार में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर रही हैं। इन मशीनों के फलस्वरूप, पहले अति मन्द गति से होने वाला उत्पादन तूफानी प्रगति में बदल गया है, जिसके परिणामस्वरूप समाज तेजी के साथ सम्पन्न पूँजीपति और सम्पत्ति-विहीन मजदूर—इन दो वर्गों में विभाजित होता चला जा रहा है। इस तूफानी उत्पादन-प्रणाली से भयंकर सामाजिक बुराइयाँ पैदा हो रही हैं। बड़े शहरों के सबसे गन्दे मुहल्लों में एक बेशुमार आबादी भेड़-बकरियों की तरह भर गई है। सभी परंपरागत नैतिक बन्धन, पितृ सत्तात्मक अधीनता, तथा पारिवारिक नाते-रिश्ते ढीले पड़ गये हैं। मजदूरों से, खासतौर से स्त्रियों और बच्चों से खौफनाक हद तक अत्यधिक श्रम कराया जाता है। सहसा बिल्कुल नई परिस्थितियों में लाकर पटक दिये जाने के फलस्वरूप मजदूर वर्ग का नैतिकबल—मनोबल एकदम टूट गया है।"

ऐसी स्थिति में इस क्रिया की प्रतिक्रिया होना अवश्यंभावी थी। नैतिक बल के टूट जाने पर भी मजदूरों के हृदय में अपनी असहाय अवस्था के प्रति असन्तोष और पूँजीपतियों की शोषण-क्रिया के खिलाफ घृणा के भाव तो बढ़ते ही जा रहे थे।

ऐसे ही समय में 'राबर्ट ओवेन' नामक २६ वर्ष का एक नवयुवक पैगम्बर की तरह मजदूरों के बीच प्रकट हुआ। यह स्वयं एक उद्योगपति था, परन्तु इसके स्वभाव में मजदूरों के प्रति हद दर्जे की सहानुभूति भरी हुई थी। सन् १८०० से सन् १८२६ ई० तक ओवेन स्काँटलैंड की न्यु-लैनार्क नामक एक बड़ी सूती मिल का मैनेजिंग पार्टनर था। इसने अपनी मिल का सञ्चालन मजदूरों के प्रति अधिक उदार दृष्टि रखते हुए अपनी स्वतंत्र बुद्धि से किया। इस कार्य में उसको इतनी बड़ी सफलता मिली कि वह सारे यूरोप में प्रसिद्ध हो गया। अपनी मिल की एक ऐसी आबादी को, जहाँ तरह-तरह के दुराचारी और भ्रष्ट लोग आकर रहने लग गये थे और जिनकी संख्या धीरे-धीरे २५०० तक पहुँच गई थी, राबर्ट-ओवेन ने एक ऐसी आदर्श बस्ती के रूप में बदल दिया, जिसमें शराबखोरी, पुलिस, मैजिस्ट्रेट, दान, गरीबों की सहायता के कानून जैसी चीजों को कोई जानता तक न था, और यह सब उसने केवल मनुष्यों को मनुष्योचित परिस्थितियों में रखकर और विशेषकर नई पीढ़ी का ध्यानपूर्वक लालन-पालन करके किया था।

जब कि दूसरे कारखानों में कारखानेदार मजदूरों से प्रतिदिन १३-१४ घण्टे काम लिया करते थे तब न्यूलेनार्क में प्रतिदिन १०॥ घण्टे काम लिया जाता था। इसके बावजूद भी इस मिल का मुनाफा दूसरी मिलों की अपेक्षा बहुत अधिक था। ओवेन का कथन था कि—

"२५ सौ व्यक्तियों की इस आबादी का काम करने वाला भाग समाज के लिए उतना वास्तविक धन पैदा कर देता है जितना धन पैदा करने के लिए मशीन-युग के पूर्व छः लाख की आबादी के काम करने वाले भाग की आवश्यकता होती। तब प्रश्न होता है कि २५ सौ व्यक्ति जितना धन खर्च करते हैं और ६ लाख व्यक्ति जितना धन खर्च करते, उनका अन्तर कहाँ चला गया। उत्तर स्पष्ट है कि वह कारखाने के मालिकों की जेबों में गया ३० लाख पौंड से अधिक असल मुनाफा उनकी लगाई हुई पूँजी पर इस्तेमाल होता था, जिस पर वास्तव में उनका कोई अधिकार नहीं है जिस पर वास्तविक अधिकार मजदूरों का है। इस नवीन विराट उत्पादक-शक्ति के अन्तर्गत ओवेन को समाज के पुनर्निर्माण का आधार मिल गया। उसका कहना था कि भविष्य में इस सारे उत्पादन को सामूहिक सम्पत्ति के रूप में सबकी भलाई के लिए काम

में लाया जायगा। इस प्रकार ओवेन ने 'साम्यवाद' शब्द का और उसकी प्रारम्भिक दिशा का सूत्रपात किया।

जब ओवेन साम्यवाद की दिशा में बढ़ा तो उसके पूरे जीवन में एक नवीन मोड़ आ गया। अब तक सब कारखानेदार और राजवंशीय तथा सम्मानित लोग ओवेन को एक परोपकारी, दानवीर और उदार व्यक्ति समझ कर जहाँ उसकी इज्जत और सम्मान करते थे, वहाँ उसकी साम्यवादी दलीलों को सुनकर उन सब के कान खड़े हो गये।

जब ओवेन ने कहा कि निजी सम्पत्ति, धर्म तथा विवाह का वर्तमान स्वरूप—ये तीन बड़ी रुकावटें समाज-सुधार का रास्ता रोके हुए हैं तो सारे समाज में उसके खिलाफ विरोध की आँधी खड़ी हो गई। उसको समाज से निर्वासित कर दिया गया। आर्थिक रूप से भी वह तबाह हो गया। तब उसने सीधे मजदूर-वर्ग से सम्बन्ध स्थापित किया और मजदूरों के हित के लिए काम करने लगा। इङ्गलैण्ड की तमाम ट्रेड-यूनियनों ने जिस पहली कांग्रेस में अपना एक महान् संयुक्त संघ बनाया था, उस कांग्रेस का ओवेन अध्यक्ष था।

फिर भी यह तो निश्चित है कि उस वातावरण में ओवेन की क्रांतिकारी विचारधारा को सफलता नहीं मिली, और उसे भयंकर असफलता का सामना करना पड़ा। फिर भी आगे जो क्रांति आने वाली थी, उसके लिए इस महान् व्यक्ति ने एक सुदृढ़ धरातल अवश्य तैयार कर दिया।

इसी समय एक प्रतिभाशाली और तेजस्वी व्यक्तित्व इस क्षेत्र में अवतीर्ण होता है। वह सारे संसार के लिए एक नवीन समाज व्यवस्था, जीवन के नये सिद्धान्त और मानवीय इतिहास का एक नवीन ढंग का अध्ययन लेकर, पुरानी समाज-व्यवस्था को चुनौती देता है। उसकी लेखनी में बल था, उसकी वाणी में तेज था, उसके अध्ययन में गम्भीरता थी।

यह व्यक्ति कार्लमार्क्स था। उसने समग्र मानवीय इतिहास का अध्ययन कर "ऐतिहासिक भौतिकवाद" के सिद्धांत का निरूपण किया। इसने बतलाया कि समग्र मानवीय इतिहास में समाज-रचना का आधार धर्म और दर्शनशास्त्र पर नहीं, बल्कि अर्थशास्त्र और उत्पादन तथा वितरण की प्रणाली पर आधारित रहता है।

उसने समाजवाद और साम्यवाद पर और भी पूरे सिद्धांतों का निरूपण कर, वर्तमान मशीन-युग में वितरण की जो अव्यवस्था फैल रही है और उत्पादन की सारी मलाई और सारभूत तत्व पूँजीपति निगल जाते हैं और सर्वहारा मजदूर वर्ग को कुछ नहीं मिलता, इस अव्यवस्था को दूर करने के लिए सन् १८४८ में एक कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो सारे संसार के मजदूर वर्ग के नाम पर प्रकाशित किया। जिसमें तीन बातों पर विशेष जोर दिया गया।

१—संसार का इतिहास हमेशा आर्थिक वर्गसंघर्ष का इतिहास रहा है। अभी तक प्रचलित सभी व्यवस्थाओं में एक वर्ग दूसरे वर्ग का शोषण करता रहा है। इसलिए इस संघर्ष को हमेशा के लिए मिटा देने के लिए यह आवश्यक है कि समाज में केवल एक ही वर्ग रहे और वह वर्ग मजदूरों का हो, दूसरे वर्गों को समाज से मिटा दिया जाय।

२—उत्पादन की सभी सामग्री पर प्रथम अवस्था में राज्य का स्वामित्व रहे, और समाज में राज्य की व्यवस्था समाप्त होने पर उस पर समाज का स्वामित्व रहे और वही सब लोगों के उसका वितरण करे।

३—व्यक्तिगत और निजी सम्पत्ति का बिलकुल खातमा कर दिया जाय।

४—संसार के सारे मजदूर आन्दोलन का रूप अन्तर्राष्ट्रीय होना चाहिए वह किसी भी राष्ट्रीयता की सीमा में बँधा हुआ न रहे। मजदूर संगठन की सभी शाखाएँ विश्वव्यापी और पारस्परिक भ्रातृ-भाव से परिपूर्ण होना चाहिए।

५—सामाजिक परिवर्तन का यह कार्य केवल क्रान्ति के द्वारा ही सम्पन्न हो सकता है, इसमें समझौतावाद की कोई गुञ्जाइश नहीं है।

मार्क्स के द्वारा उठाई हुई यह आवाज संसार के एक छोर से दूसरे छोर तक मजदूरों में प्रचारित हो गई, और ऐसा मालूम होने लगा कि इस आवाज से समस्त मानव-वर्ग जैसे एक जबर्दस्त करवट ले रहा है।

इस आवाज की शक्ति को देखकर सरकार और उद्योगपतियों के कान खड़े हो गये। यह बात वे बखूबी समझने लग गये थे कि इस औद्योगिक युग में उत्पादन और वितरण में मजदूरों के साथ भयङ्कर अन्याय हो रहा

है और यदि यह अन्याय दूर नहीं किया गया तो भविष्य उनके एक दम खिलाफ जावेगा।

तब इस वर्ग ने एक समझौतावादी रुख अंगीकार किया और मजदूरों के लिए अधिकाधिक सुविधाएँ देना प्रारम्भ किया और सरकार भी उनके हित में सुविधाजनक नये-नये कानून बनाने लगी। कई विचारशील और ख्याति-प्राप्त लेखकों और विद्वानों ने भी इस समझौतावाद के पक्ष में पूँजीपतियों और मजदूरों के बीच की खाई को पाटने के लिए लिखना और बोलना प्रारम्भ किया। मजदूरों के समझौतावादी संगठन भी बनाये जाने लगे जिनमें पहला संगठन I. L. O. (International Labour Organisation) सन् १९१९ में स्थापित किया गया। मजदूरों के दावों के भुगतान के लिए औद्योगिक न्यायालयों की, उनकी शिक्षा के लिए विद्यालयों की और चिकित्सा के लिए अस्पतालों को खोलने की योजनायें बनीं। इस क्षेत्र में इंगलैंड, अमेरिका, जर्मनी और जापान सबसे आगे थे।

मगर प्रथम महायुद्ध के समाप्त होते न होते कार्ल-मार्क्स की विचारधारा ने लेनिन के नेतृत्व में रूस के अन्दर एक महान् विजय प्राप्त कर ली। यह कितने आश्चर्य की बात है कि कार्लमार्क्स ने जीवन भर इङ्गलैंड और अमेरिका के जिस औद्योगिक क्षेत्र में काम किया वहाँ पर उनकी विचारधारा ने मूर्तरूप धारण नहीं किया और वहाँ जाकर वह मूर्त हुई जहाँ अभी तक औद्योगिक क्रांति का प्रथम चरण ही प्रारम्भ हुआ था।

बात यह थी कि जारशाही के अत्याचारों और युद्ध की विभीषिकाओं से रूस की जनता अत्यन्त त्रस्त हो रही थी और वहाँ का धरातल इस नवीन पौधे के फलने-फूलने के लिए ज्यादा अनुकूल था।

इस प्रकार प्रथम महायुद्ध के बाद क्रांतिवादी और समझौतावादी—इन दोनों विचारधाराओं की होड़ प्रारम्भ हो गई। इंगलैंड, अमेरिका, जापान तथा दूसरे कई औद्योगिक क्षेत्रों में समझौतावादी विचारधारा के और रूस में समाजवादी विचारधारा के प्रयोग बहुत तेजी से होने लगे। दोनों ही विचारधाराएँ एक दूसरे को परस्पर सन्देह और अविश्वास की दृष्टि से देखते हुए आगे बढ़ने लगीं।

दूसरे महायुद्ध में रूस के द्वारा जर्मनी को बुरी तरह पछाड़ दिये जाने के कारण रूस की शक्ति बहुत बढ़ गई। इङ्गलैंड और फ्रांस दूसरी श्रेणी के राष्ट्र हो गये और रूस तथा अमेरिका प्रथम श्रेणी के राष्ट्रों में आ गये। इसी समय संसार के जनसंख्या की दृष्टि से सबसे बड़े राष्ट्र चीन ने भी मार्क्सवाद को ग्रहण कर लिया जिससे कम्यूनिज्म की शक्ति बढ़ गई।

रूस और अमेरिका धुवाँधार गति से वैज्ञानिक उन्नति करने लगे। संसार को स्पष्ट मालूम होने लगा कि इस वैज्ञानिक होड़ में रूस अमेरिका को पीछे कर देगा। मगर कठिनाई यह थी कि केवल वैज्ञानिक उन्नति ही तो संसार में सब कुछ नहीं है। मनुष्य की और भी समस्याएँ हैं और वे सब समस्याएँ जब तक हल नहीं होतीं तब तक मनुष्य शान्तिपूर्वक नहीं रह सकता।

रूस की आन्तरिक समस्याएँ प्रखर वैज्ञानिक उन्नति के बावजूद भी बनी हुई थीं। अन्न तथा खाद्य वस्तुओं की समस्याएँ भी बढ़ने लगी थीं। उधर कई तरह की धमकियों और प्रचार के बावजूद भी प्रजातंत्रीय देश दबने को तैयार नहीं थे। रचना और विनाश दोनों ही क्षेत्र में वे पूर्ण सुसज्जित थे। जिसका प्रभावशाली प्रमाण रूस को क्यूबा के क्षेत्र में मिल गया।

इसी से अन्त में ऐसा मालूम होता है कि रूस के आधुनिक युग के नेता ख्रुश्चेव को भी यह अनुभव होने लगा कि, इस वर्तमान संसार में केवल क्रांति या संघर्ष के सिद्धान्तों पर जीवित नहीं रहा जा सकता। शान्ति के लिए आवश्यक है दोनों ही व्यवस्थाओं को फलने फूलने का अवसर मिलना चाहिए। जिस व्यवस्था में अधिक गुण होंगे मनुष्य-जाति स्वयं उसे ग्रहण कर लेगी।

इसी रचनात्मक और समझौतावादी नीति से वे रूस की रचनात्मक उन्नति कर रहे हैं और सभी समझौतावादी देशों से वे समझौते के लिए हाथ बढ़ा रहे हैं।

मगर इस समझौतावादी नीति के दूसरा साम्यवादी देश चीन बिलकुल विरुद्ध है, वह स्टालिन के मार्ग पर विशुद्ध क्रांति के द्वारा कम्युनिज्म के प्रचार का पक्षपाती है और इससे इन दोनों देशों के बीच में विस्फोटक मतभेद पैदा हो

गये हैं और अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिज्म के बीच एक गहरी दरार पड़ती दिखलाई देती है।

इस प्रकार एक शताब्दी से अधिक समय से जो औद्योगिक क्रांति पैदा हुई वह इन दोनों विचार धाराओं के बीच चक्कर लगा रही है। अभी तक वह निर्णायक स्थिति पर नहीं पहुँची है और कुछ समय पूर्व तक जो यह समझा जा रहा था कि यहाँ निर्णायक स्थिति कम्युनिज्म के पक्ष में ही जावेगी, यह अब विवाद ग्रस्त हो गया है। समझौतावादी शक्तियाँ पूरी तरह से निर्माण के क्षेत्र में लगी हुई हैं और खुश्चेव के समान महान् कम्युनिस्ट नेता का समझौता वादी होजाना भी इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना समझी जानी चाहिए।

औद्योगिक सभ्यता

मशीन युग के प्रारम्भ और औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप समस्त मानव-जाति में स्थापित एक नवीन सभ्यता, जो अठारहवीं सदी से इंग्लैण्ड में प्रारम्भ होकर समस्त विश्व में फैल गई।

मशीन युग के फलस्वरूप जिस औद्योगिक-क्रांति का प्रादुर्भाव हुआ उसने समाज के बाह्य कलेवर की अपेक्षा विश्व-मानव के मनोवैज्ञानिक स्तर पर अपना गहरा प्रभाव डाला। इस नवीन विचारधारा ने मनुष्य के अन्तर्जगत को बुरी तरह से झकझोर डाला और उसे पुरानी परम्पराओं के एकदम विरुद्ध बिलकुल मौलिक दृष्टि बिन्दु से चिन्तन करने को मजबूर कर दिया।

संसार के इतिहास और पुराणों में प्रतिष्ठित अब तक की तमाम सभ्यताएं धर्म और नैतिक सिद्धान्तों के आधार पर आधारित थीं। देश और काल के भेद से उनके व्यवहार और कार्य-प्रणालियों में भेद थे मगर धर्म और नीति के जिन मूलभूत तत्वों पर वे ठहरी हुई थीं वे प्रायः सब दूर एक समान थे। इन सभ्यताओं के अनुयायी ईश्वर और देवी देवताओं पर विश्वास करते थे। पुण्य और पाप के अच्छे और बुरे परिणामों को वे मान्यता देते थे। उनके सामाजिक और धार्मिक आचरणों की हर एक देश में नियमित संहिताएं बनी हुई थीं जिन्हें कहीं स्मृति और कहीं शरह कहा जाता था। मगर सिद्धान्त रूप में सब ठीक होने पर भी मनुष्य की स्वार्थ-प्रवृत्ति, इसमें बखेड़े भी डालती रहती थी।

चालाक और बुद्धिमान लोग धर्म की आड़ में अर्थ, वैभव और सत्ता का मनमाना उपयोग भी करते थे। बलवानों के द्वारा दुर्बलों पर अत्याचार भी होते थे। पुरुषों के के द्वारा स्त्रियाँ और उच्च वर्णों के द्वारा शूद्रों को बुरी तरह दबाया भी जाता था फिर भी इस प्रकार के आचरण या तो बुरे समझे जाते थे या इन आचरणों पर धर्म और नीति का ऐसा पालिश कर दिया जाता था जिनसे ऐसी बुराइयाँ भी धर्म का अङ्ग बन जाती थीं। प्रत्यक्ष में अर्थ, वैभव और सत्ता का दर्जा धर्म और नैतिक सिद्धान्तों के नीचे समझा जाता था और शास्त्रीय ग्रन्थों में मनुष्य की भोग प्रवृत्ति की खुलकर निन्दा की जाती थी। ब्राह्मणों, मौलवियों और पादरियों का राज्य और वैभव की शक्तियों पर प्रबल अंकुश रहता था।

कालान्तर में पश्चिमीय देशों में इन धर्मनेताओं की शक्ति बहुत अधिक बढ़ गई। राज्य और समाज इन लोगों के हाथ के खिलौने हो गये। अपनी महान् शक्ति, वैभव और ऐशोआराम को सुरक्षित रखने के लिए इन्होंने तरह-तरह के विधान बना डाले। अपने विरोधियों पर नास्तिकता के आरोप लगा कर उन्हें धर्म अदालतों के द्वारा नाना प्रकार के कष्ट देकर जिन्दा जला दिया जाना शुरू किया गया। रोमन-चर्च मध्य युग की एक सर्वशक्ति सम्पन्न संस्था बन गई। जिसके धार्मिक अत्याचारों से तंग आकर लोग त्राहि-त्राहि करने लगे।

इन प्राचीन सभ्यताओं में कुछ एशियायी देशों को छोड़कर सारे संसार में दास प्रथा का भी बहुत विकास हुआ। इस दास प्रथा के नाम पर दुर्बल मानवता पर इतिहास में जो भयंकर अत्याचार हुए उनका वर्णन करना कठिन है। सामन्तवाद, धर्म गुरुवाद और दास प्रथा इन प्राचीन सभ्यताओं के ऐसे अभिशाप थे जिनके परिणामों को हजारों वर्षों तक मानव जाति ने सहन किया और अब वह इनसे छुटकारा पाने के लिए छटपटा रही थी।

इतिहास की इसी पृष्ठभूमि पर सबसे पहले इंगलैंड में मशीनयुग का प्रारम्भ हुआ। इस युग के प्रारम्भ ने मनुष्य की सारी जीवन प्रणाली और ध्येयों में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया। धर्मसंस्था के प्रति मनुष्य के हृदय में

जो विद्रोह की भावना थी उसे इस नवीन युग ने मूर्त-स्वरूप दे दिया। जिसकी प्रतिक्रिया के स्वरूप सबसे महत्व-पूर्ण परिवर्तन इस युग ने यह किया कि धर्म और नीति की जिन आधार शिलाओं पर अब तक मानव सभ्यता ठहरी हुई थी उन मूल आधार शिलाओं को ही खतम कर इस नवीन सभ्यता की नींव विशुद्ध रूप से "अर्थ" की आधार शिला पर स्थापित की गई। इस युग के कई-विचारकों ने समग्र मानवीय इतिहास को एकमात्र आर्थिक संघर्ष का इतिहास सिद्ध करने का प्रयत्न किया। विज्ञान की दिन-दिन होने वाली उन्नति ने मनुष्य का ध्यान मजहबी कुचक्रों में फँसे हुए अध्यात्मवाद से निकाल कर विशुद्ध भौतिकवाद की तरफ प्रवृत्त कर दिया। विज्ञान के द्वारा दिन-प्रतिदिन अपनी सुख, सुविधाओं में होने वाली वृद्धि को देखकर मनुष्य की सारी श्रद्धा भौतिक विज्ञान में सिमट गई। ईश्वर, परलोक, धर्म गुरु और अध्यात्मवाद उसे उपहास की वस्तु नजर आने लगे।

इस सभ्यता ने धर्म संस्थाओं के जाल में फँसे हुये मानव-समाज की कुण्ठित बुद्धि को आजाद कर उसे स्वतंत्रता पूर्वक चिन्तन और मनन करने का अवसर दिया। मानव-समाज के भयंकर कलंक स्वरूप विश्व के एक बड़े भाग में फैले हुए दास-प्रथा के अभिशाप का देखते-देखते मूलोच्छेदन कर दिया। सामाजिक दुरावस्था और परदा प्रथा में जकड़ी हुई नारी जाति के बन्धन एक ही झटके में तोड़ उन्हें समाज में बराबरी से रहने का अवसर प्रदान किया। हजारों बरसों से चली आई सामन्ती प्रथा को धूल-धूसरित कर दिया। पूँजी के एकाधिकार को चुनौती देकर श्रम और श्रम जीवियों के जीवन को उन्नत बनाया।

रेल, तार, रेडियो, टेलिविजन, वायुयान इत्यादि अनेक प्रकार के साधनों द्वारा इसने सारी विशाल दुनिया को अत्यन्त समीप और छोटे दायरे में लाकर रख दिया जिससे दुनिया के एक कोने में होने वाली घटना का परिचय दस मिनिट में दुनिया के दूसरे कोने पर मिल जाता है। इससे मनुष्य का दृष्टिकोण प्रान्तीयता और राष्ट्रीयता से ऊपर उठकर अन्तर्राष्ट्रीयता के क्षेत्र में पहुँच गया।

युद्ध और संहार के क्षेत्र में भी विज्ञान ने मानव को ऐसी अद्भुत, शक्तिशाली वस्तुएँ प्रदान की हैं जो इतिहास के ज्ञात काल में पहले कभी उसे प्राप्त नहीं हुईं। जल, स्थल, वायु, और परमाणु के क्षेत्र में कई बड़े-बड़े देशों के पास अत्यन्त सुसंगठित और आधुनिक यंत्र सज्जा से सज्जित अत्यन्त शक्तिशाली सेनाएँ हैं और वे चाहें तो चार घण्टे में सारे विश्व में अनन्त विनाश का कुहराम मचा सकते हैं।

समानता, समाजवाद और साम्यवाद भी इस सभ्यता का लोकप्रिय नारा है। यह नारा यद्यपि समस्त संसार में अपना प्रभाव जमाने में पूर्णरूप से सफल नहीं हुआ। फिर भी बड़ी बड़ी क्रान्तियों के द्वारा इसने रूस और चीन के समान बड़े देशों को और दूसरे कई छोटे-छोटे देशों को अपने अपने प्रभाव क्षेत्र में ले ही लिया है।

शुरू-शुरू में इस युग का लाभ उठाकर कई यूरोपियन जातियों ने सारे संसार में अपने साम्राज्यवाद का जाल बिछाकर समस्त मानवजाति को करीब डेढ़ शताब्दी तक गुलामी की जंजीरों में कसकर रक्खा। मगर इस साम्राज्य वाद को नष्ट करनेवाले प्रभावशाली तत्व भी इसी सभ्यता को अन्तरंग में विद्यमान थे जो दूसरे महायुद्ध के पश्चात् एकाएक प्रकट हुए और उन्होंने एक ही झटके में सारे संसार में फैले हुए विशाल साम्राज्यवाद के तानेबाने बिखेर दिये।

इस प्रकार अपने डेढ़ सौ बरस के थोड़े से समय में इस नवीन सभ्यता ने जिस महान् इतिहास का निर्माण किया वह शायद मानवीय इतिहास के प्रारम्भ से अबतक कभी न हुआ होगा।

प्रश्नवाचक चिन्ह ?

इतना सब कुछ होने पर भी यह प्रश्नवाचक चिन्ह (?) अभी तक ज्यों का त्यों कायम है कि इतने महान् परिवर्तनों के बावजूद यह नवीन सभ्यता क्या विश्वव्यापी मानवीय समस्याओं को हल करने में समर्थ हुई है? क्या उसे मानव समाज में समष्टिगत दैवी सम्पद् का विकास करने में कोई महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। क्या मनुष्य की युद्ध लिप्सा और उसकी हिंसात्मक प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाने में इसने कोई विशेष योगदान दिया है और क्या वह समस्त विश्व मानव में व्यापक शान्ति स्थापित करने की गारण्टी कर सकता है?

अभीतक का इतिहास तो इन प्रश्नों का उत्तर नकारात्मक रूप में ही दे रहा है और इसका कारण यह है कि प्राचीन परम्परा की अनेक मूलभूत समस्याओं का सफलतापूर्वक हल कर लेने पर भी इस नवीन सभ्यता ने जो नवीन समस्याएँ मानव-समाज में उत्पन्न कर दी है उन नवीन समस्याओं का हल उसे खोजने पर भी नहीं मिल रहा है और ये नवीन समस्याएँ शायद उन प्राचीन समस्याओं से भी अधिक जटिल है।

सारी समाज व्यवस्था की नींव केवल आर्थिक आधार शिलापर खड़ी कर देने से विशुद्ध आर्थिक आधार से जो बुराइयाँ पैदा होनेवाली थीं उनका पैदा होना अवश्यम्भावी था। धर्म और नीति के जिन नैतिक आधारों पर प्राचीन व्यवस्था टिकी हुई है वे नैतिक आधार ही इस व्यवस्था में समाप्त होते जा रहे हैं और दूसरे कोई नैतिक आधार इसकी नीव में नहीं है। इन नैतिक आधारों से रहित होकर अर्थ व्यवस्था और भौतिकवाद से पैदा होनेवाली इन महान् छलनाओं में आज का मानव इस बुरी तरह फँस गया है कि जीवन की प्रत्येक समस्या का निर्णय वह केवल आर्थिक चश्मे से करता है। इसके परिणामस्वरूप वह त्याग की जगह भोग का, कर्तव्य के बदले अधिकारों का, सहयोग के बदले संघर्ष का और विश्वास की जगह सन्देह का अनुयायी बनता जा रहा है। मनुष्य की जिस अनुपम त्यागवृत्ति, कर्मनिष्ठा, सहयोग भावना और विश्वास के ऊपर सारे संसार की नीव ठहरी हुई है वे चीजें ही जब नष्ट होती जा रही हैं तब मानवता की नीव क्या केवल आर्थिक आधारों पर ठहर सकेगी? यह प्रश्न आज मानव जाति के सम्मुख उपस्थित हो चुका है।

विशुद्ध अर्थ व्यवस्था पर स्थापित समाज व्यवस्था के ये अवश्यम्भावी परिणाम है जो इस थोड़े से समय में ही मनुष्य के सम्मुख उपस्थित हो गये हैं। आज का मानव ईश्वर, परलोक, धर्म और नीति के बन्धनों से बिलकुल मुक्त हो गया है, इन चीजों को वह पूर्वजों की बेवकूफी के निशान समझने लगा है। इस समय उसका एक मात्र ध्येय विज्ञान से निर्मित सुखासुविधाओं को किसी भी मूल्य पर प्राप्त करके उनको उपभोग करने का हो रहा है। इन चीजों की प्राप्ति के लिए अगर उसकी आमदनी पर्याप्त नहीं है तो उनके लिए वह हर प्रकार की बेईमानी, धूर्त्तता और भ्रष्टाचार करने को तैयार है और यही कारण है कि संसार में दिन प्रति दिन चोरी, हत्या, भ्रष्टाचार आदि अनेक प्रकार के अपराधों की संख्या तेजी से बढ़ रही है।

प्राचीन धर्म-प्रधान सभ्यता का मनुष्य की स्वार्थ बुद्धि ने कितना ही दुरुपयोग किया हो मगर उसका मूलाधार मनुष्य की त्याग भावना पर ही आधारित था। व्यक्ति, कुटुम्ब, पड़ौसी, समाज, गाँव सभी एक दूसरे के लिए त्याग करने को प्रस्तुत रहते थे और इसी त्याग की भावना पर सारे समाज का योगक्षेम रहता था। वे संसार के विविध भोगों का भोग भी करते थे, उनके अपने स्वार्थ भी होते थे, उनमें संघर्ष भी होते थे मगर इन सबके नीचे त्याग, धर्म और नीति के जो आधार उन्हें थामे हुए करते थे उन्हीं आधारों पर वे अपना शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे।

त्याग की वह अमूल्य भावना इस युग में अत्यन्त कृश हो रही है। क्योंकि जिन आदर्शों के ऊपर मनुष्य त्याग करता था वे आदर्श ही समाप्त होते जा रहे हैं। पहले का मनुष्य धर्म के लिए त्याग करता था, ईश्वर के लिए त्याग करता था, समाज के परोपकार के लिए त्याग करता था, स्वतंत्रता के लिए त्याग करता था मगर इन चीजों पर से विश्वास उठ जाने पर अब ऐसा कोई आदर्श नहीं बचता जिसके ऊपर वह हँसते-हँसते अपना सर्वस्व बलिदान कर दे।

संसार के इतिहास में अपनी सन्तानों के लिए माता के त्याग के बराबर दूसरे किसी त्याग का उदाहरण नहीं मिलता मगर आज के युग में तो माताएँ भी अपनी जवानी चली जाने के डर से अपनी सन्तानों को अपने स्तन का दूध नहीं पिलातीं। ऊपर के दूध से उनका पालन करती हैं चाहे उससे उनकी सन्तान का स्वास्थ्य बने या बिगड़े। इसकी उन्हें परवाह नहीं रहती उन्हें अपनी जवानी की रक्षा की परवाह पहले होती है।

यही हाल कर्त्तव्य और अधिकारों के सम्बन्ध में है, आज का मानव अपने अधिकारों के प्रति जितना सजग है उतना ही अपने कर्त्तव्यों के प्रति उदासीन है वह अपनी सुख-सुविधाओं के लिए समाज से अधिक से अधिक लेना

चाहता है मगर उसके बदले में कम से कम मेहनत करना चाहता है।

इस सभ्यता में नारी समाज की स्थिति बड़ी विचित्र हो गई है। सभी प्रकार के सामाजिक बन्धनों से वे मुक्त हो गई है। ज्ञान और विज्ञान के सभी क्षेत्र उनके लिए खुले हुए हैं मगर इस आजाद वातावरण की नारी साज सज्जा, शृंगार प्रसाधन, वेशभूषा और केशकलाप को नये नये तरीकों से सजाकर, पुरुष की भोग्य-सामग्री बनने में ही अपनी चरम सफलता समझ रही है। उसके सामने जीवन के कोई गम्भीर आदर्श नहीं है। न वह आदर्श माता बनना चाहती है न आदर्श गृहिणी। असंयत भोग और विलास ही उसके जीवन का क्रम बन गया है।

प्राचीन सभ्यता का सादाजीवन और उच्चविचार (Simple Living & High thinking) का उपासक मनुष्य आज "खाओ पिओ और मौज करो" (Eat Drink & Bemarry) के सिद्धान्त का उपासक हो गया है। उसकी आवश्यकताएँ दिन-दिन बढ़ती जा रही है इन बढ़ती हुई आवश्यकताओं को आज-कल जीवन स्तर को ऊँचा उठाने का नाम दिया जाता है और इस स्टैंण्डर्ड ऑफ लाइफ को ऊँचा उठाने में मनुष्य को कितना भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी और पाप करना पड़ता है इसका कोई अन्त नहीं है ।

मतलब यह कि इस नवीन सभ्यता के उदय ने एक ओर जहाँ मनुष्य को एक संकीर्ण दृष्टिकोण से हटाकर एक विशाल और व्यापक दृष्टिकोण के सम्मुख उपस्थित कर दिया है, जहाँ उसने मनुष्य को सृष्टि के वैज्ञानिक रहस्यों को खोलकर प्राकृतिक शक्तियों के अनन्त भण्डार का दर्शन करा दिया है, जहाँ उसने चिकित्सा विज्ञान में अद्भुत खोजें करके मानव को स्वस्थरूप से जीने की सुविधाएँ प्रदान की हैं, जहाँ उसने हजारों लाखों विद्या के केन्द्र खोलकर मनुष्य की अनन्त ज्ञान पिपासा को तृप्त करने का प्रयत्न किया है और जहाँ उसने मानवता के मूल अधिकारों की घोषणाकर दुर्बल, प्रताड़ित और शोषित मानव-समाज का कल्याण किया है, वहाँ उसने समाज की मूलभूत व्यवस्था के धार्मिक और नैतिक आधारों को हटाकर उसे केवल आर्थिक आधारों पर स्थापित कर मानव की शैतान प्रवृत्ति को फलने-फूलने का पूरा अवसर दिया है। उसने मनुष्य की त्यागवृत्ति की उपेक्षाकर उसकी भोगवृति को भड़का देने का जो प्रयत्न किया है उससे संसार में एक ऐसी भयङ्कर अव्यवस्था पैदा हो गई है जिसका निराकरण मिलना कठिन हो जायगा। उसने मनुष्य की कर्तव्य भावना की उपेक्षा कर उसमें केवल अधिकारों की भावना पैदाकर समाज का महान् अकल्याण किया है, उसने सहयोग के स्थानपर संघर्ष की भावनाओं को महत्व देकर मनुष्य की युद्ध लिप्सा को अत्यन्त तीव्र कर दिया है जिससे केवल पचीस वर्षों में दो महायुद्ध हो चुके हैं और तीसरा भी समय-समय पर गड़-गड़ाता रहता है।

औरंगजेब

भारत का सुप्रसिद्ध मुगल-सम्राट, सम्राट् शाहजहाँ का तीसरा पुत्र और सातवीं सन्तान, जिसका जन्म २४ अक्टूबर सन् १६१८ को बम्बई राज्य के दोहद स्थान में हुआ और मृत्यु ३० फरवरी सन् १७०७ को अहमद नगर में हुई।

औरंगजेब की माता शाहजहाँ की प्रिय बेगम मुमताज-महल थी, जिसके स्मारक में आगरे में सुप्रसिद्ध 'ताजमहल' बना हुआ है।

बाल्यकाल से ही औरंगजेब बड़ा वीर और साहसी था। उसके साहस का पहला उदाहरण उस समय मिला जब २८ मई सन् १६३३ के दिन बादशाह शाहजहाँ ने आगरा के अन्तर्गत 'सुधाकर' और 'सूरत-सुन्दर' नामक दो हाथियों की लड़ाई का आयोजन किया था। १५ वर्ष का बालक औरंगजेब भी घोड़े पर बैठकर इस लड़ाई को देखने के लिए आया था। थोड़ी देर के पश्चात् 'सुधाकर' नामक हाथी ने अपने प्रतिद्वन्दी 'सूरत सुन्दर' को सामने न पाकर औरंगजेब पर हमला कर दिया, मगर औरंगजेब साहसपूर्वक अपने घोड़े को सँभाले हुए डटा रहा और उसने हाथी के सिर पर भाला फेंका। तब हाथी ने अपने बड़े दाँतों

की टक्कर मारकर औरंगजेब के घोड़े को धरती पर गिरा दिया, मगर औरंगजेब तुरन्त उठकर खड़ा हो गया और उसने खड़े-खड़े उस हाथी का सामना किया। तब तक उसके भाई शुजा और राजा जयसिंह ने वहाँ पहुँच कर उस हाथी को घायल किया और औरंगजेब की जान बची।

युवराज अवस्था और सूबेदारियाँ

१४ जुलाई सन् १६३४ को सम्राट् शाहजहाँ ने औरंगजेब को दक्षिण का सूबेदार बनाकर भेजा। औरंगजेब ने औरंगाबाद में अपनी राजधानी बना कर वहीं से ८ वर्ष तक इस सूबे का बड़ी योग्यता से शासन किया। उसके बाद वह गुजरात का सूबेदार बनाया गया। और सन् १६४५ में 'बलख' और 'बदख्शाँ' का सूबेदार और सेनापति बनाकर सीमाप्रान्त पर भेजा गया। बलख और बदख्शाँ के प्रांत 'हिन्दूकुश' पर्वत के उस पार काबुल के उत्तर में बुखारा-राज्य के आश्रित थे। वहाँ का सुल्तान नजर मुहम्मद खाँ एक कमजोर और अयोग्य शासक था, मगर उसका लड़का अब्दुल-अजीज खाँ एक योग्य तथा शूरवीर सेनापति था। बुखारा राज्य की रक्षा के लिए उसने उजबेक लोगों की सहायता से औरंगजेब की सेनाओं का बड़ी बहादुरी के साथ मुकाबला किया। औरंगजेब की सेना में खाने की सामग्री और पीने के पानी की कमी से बड़ी हाय-हाय मच रही थी, मगर इतने कष्ट और कठिनाइयों के बीच में भी औरंगजेब के धीरज, दृढ़ता और नियंत्रण ने फौज में किसी प्रकार की अव्यवस्था तथा शिथिलता न आने दी।

एक बार जब भयंकर युद्ध चल रहा था, उस समय भी नमाज का टाइम हो जाने पर औरंगजेब युद्ध-क्षेत्र के बीच में ही सब शस्त्रों को दूर फेंक कर चादर बिछाकर घुटने टेककर नमाज पढ़ने बैठ गया। उसका यह साहस देखकर उसके प्रतिद्वन्दी 'अब्दुल अजीज' के दिल में उसके प्रति अत्यन्त आदर और श्रद्धा की भावनाएँ पैदा हो गईं और उसने लड़ाई बन्द कर औरंगजेब से सुलह कर ली।

सन् १६५२ में जब औरंगजेब दूसरी बार दक्षिण का सूबेदार बनाकर भेजा गया, उस समय दक्षिण की आर्थिक स्थिति और किसानों की हालत बहुत खराब हो रही थी और मालगुजारी की वसूली बहुत कम हो रही थी। औरंगजेब ने यहाँ आते ही अपने दीवान मुर्शिदकुली खाँ के सहयोग से स्थायी मालगुजारी की व्यवस्था की। टोडरमल की सुप्रसिद्ध मालगुजारी की स्थायी व्यवस्था को दक्षिण में प्रचलित कर सुधार का आयोजन किया और किसानों को हर तरह की सुविधा देकर उन्हें बसाया। इस व्यवस्था से उसकी सूबेदारी दक्षिण में बहुत लोकप्रिय हो गई।

इसी सूबेदारी के समय में ही उसने बीजापुर और गोलकुण्डा के राज्यों पर सफल आक्रमण किये।

राजगद्दी के लिए भाइयों से संघर्ष

६ सितंबर सन् १६५७ को मुगल सम्राट् शाहजहाँ एकाएक बीमार पड़ गया। उसकी बड़ी इच्छा थी कि उसके बाद उसका बड़ा लड़का 'दारा' ही साम्राज्य का उत्तराधिकारी बने।

मगर शुजा, औरंगजेब और मुराद भी शाहजहाँ के पश्चात् बादशाह होने का स्वप्न देख रहे थे। शाहजहाँ की बीमारी की खबर सुनते ही शुजा ने बंगाल में और मुराद ने गुजरात में अपने को भारत का बादशाह घोषित कर दिया।

औरंगजेब भी पूरी तरह सावधान था। उसने शुरू-शुरू में मुराद से मिलकर दारा को परास्त करके मरवा डाला और उसके बाद ५ जून सन् १६५८ को उस ने मुराद को भोजन का निमंत्रण देकर उसे गहरी शराब में बदहवास करके गिरफ्तार कर लिया और ग्वालियर के किले में कैद करके भेज दिया, जहाँ ४ दिसम्बर सन् १६६१ को वह कत्ल कर दिया गया।

इसके बाद खजवाँ, साहबगंज और बंगाल की तीन लड़ाइयों में उसकी सेनाओं ने शुजा को परास्त किया। इससे परेशान होकर शुजा १२ मई सन् १६६० को भारतवर्ष छोड़कर अराकान भाग गया, जहाँ पर माघ-जाति के लोगों ने उसे कत्ल कर दिया। शाहजहाँ के विरोध करने पर उसने उसको भी कैदखाने में डाल दिया।

इस प्रकार अपने रास्ते की सब बाधाओं को दूर कर अपने शासन के दूसरे वर्ष १३ मई सन् १६५९ को औरंगजेब बड़ी धूम-धाम के साथ दिल्ली के सिंहासन पर बैठा और अपनी विजय के उपलक्ष्य में बहुत बड़ा जलसा किया।

इसके पश्चात् इस सम्राट् ने सन् १७०७ तक अर्थात् पूरे ५० वर्ष तक राज्य किया।

औरंगजेब का शासन

औरंगजेब का पूरा शासनकाल पूर्वार्ध और उत्तरार्ध—ऐसे दो भागों में विभाजित था।

पूर्वार्ध के २५ वर्ष उसके महान् वैभव और उत्कर्ष के वर्ष थे जो उसने दिल्ली और उत्तरी भारत में बिताये। इन वर्षों में उसने अपने साम्राज्य की नीति में कई मौलिक परिवर्तन किये। अनाज के यातायात की सुविधा के लिए अपने राज्यारोहण के दूसरे जलसे के बाद ही उसने अनाज पर लगने वाले 'पंडरी' और 'राहदारी' नामक टैक्सों को मुगल साम्राज्य के खालसा इलाकों में माफ कर दिये, जिससे अनाज की कीमतें बहुत कम हो गईं। इसी समय उसने शराब और नशीली चीजों के व्यवहार बन्द करने के फरमान निकाले।

बादशाह को चान्द्रवर्ष और सौर वर्ष की दो जन्म-तिथियों पर सोने और चाँदी से तौलने का रिवाज चला आ रहा था। औरंगजेब ने इस प्रथा को बन्द कर दिया और सन् १६७० ईसवी से उसने अपने जन्म-दिवस के अवसर पर होने वाले सारे उत्सवों का मनाना भी बन्द कर दिया।

इसके साथ ही उसने अपने साम्राज्य के विस्तार का सिलसिला जारी रखा और उत्तर-पश्चिमी सीमापर होनेवाले हमेशा के विद्रोहों को दबाया। सन् १६६१ में बंगाल के सूबेदार मीर-जुमला ने कूच बिहार और आसाम को जीतकर मुगल-साम्राज्य में मिला लिया। और सन् १६६५–६६ में नवाब शाइस्ता खाँ के लड़के उम्मेद खाँ ने अराकान प्रदेश पर जल और थल दोनों मार्ग से हमला कर चटगाँव पर कब्जा कर लिया।

इसके बाद उसने दक्षिण में गोलकुंडा और बीजापुर के राज्यों पर भी निगाह डाली और अन्त में कई हार-जीतों के बाद इन दोनों रियासतों को मुगल-साम्राज्य में मिला लिया।

इस प्रकार उसको चारोंओर अपने साम्राज्य का विस्तार करने में पूरी सफलता प्राप्त हुई।

इस्लाम का प्रचार

साम्राज्य-विस्तार के साथ-ही-साथ इस्लाम के प्रचार की तरफ भी उसका पूरा ध्यान रहा। यह प्रवृत्ति जन्म से ही उसके अन्दर थी। साम्राज्य-प्राप्ति के पहले ही हिन्दुओं से वह बड़ा द्वेष-भाव रखता था। सन् १६४४ में जब वह गुजरात का सूबेदार था, तब उसने अहमदाबाद में तत्काल ही बने हुए चिन्तामणि के हिन्दू-मन्दिर में गो-हत्या करवा कर उसे अपवित्र कर दिया और बाद में उस मन्दिर को मस्जिद में बदलवा दिया।

९ अप्रैल सन् १६६९ को उसने एक आम हुक्म निकाल कर घोषित किया कि काफिरों के सभी मन्दिर और मदरसे गिरा दिये जायँ और उनकी धार्मिक प्रथाओं को दबाया जाय। उसके इस आदेश का असर सोमनाथ के दूसरे मन्दिर, बनारस के विश्वनाथ-मन्दिर और मथुरा के केशवराय-मन्दिर पर भी पड़ा। जिन्हें समस्त भारत की हिन्दू-जनता बड़े आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखती थी। सन् १६८० ई० में उसने आमेर राज्य के भी सारे मन्दिर तुड़वा दिये। २ अप्रैल सन् १६७९ को औरंगजेब ने साम्राज्य के सब भागों में गैर मुसलिम लोगों पर फिर से 'जजिया' कर लगा दिया।

हिन्दुओं के साथ लगातार इस अपमानपूर्ण नीति के कारण, उनके धर्म-स्थानों पर होनेवाले अत्याचारों के कारण और साम्राज्य भर में हिन्दू और मुसलमानों के बीच बरती जानेवाली भेद-पूर्ण नीति के कारण हिन्दू-जनता में असन्तोष का बढ़ना स्वाभाविक था। इस असन्तोष का विस्फोट पञ्जाब में सिक्ख-शक्ति के उदय के रूप में और दक्षिण में मराठा-शक्ति के उदय के रूप में प्रकट हुआ। ऐसे और भी कई छोटे-मोटे विद्रोह हुए

जिनमें 'तिलपट' के जाट गोकुल के नेतृत्व में होनेवाला जाट-विद्रोह विशेष उल्लेखनीय था।

सिक्खों के गुरुगोविन्द सिंह का विद्रोह बहुत प्रबल और संगठित विद्रोह था। काफ़ी समय तक उन्होंने सम्राट् औरंगजेब को चैन न लेने दिया।

मराठा-शक्ति का उदय

मगर औरंगजेब के शासन को पस्त और ढीला करनेवाली सबसे बड़ी घटना दक्षिणी भारत में मराठा-शक्ति के उदय के रूप में हुई। इस शक्ति ने औरंगजेब के जीवन के अन्तिम वर्षों को अत्यन्त बेचैन कर दिया और स्वयं सम्राट को २५ वर्षों तक इस शक्ति का दमन करने के लिए दक्षिण में आकर रहना पड़ा। बड़ी-बड़ी मुसीबतें उठानी पड़ीं। साम्राज्य का खजाना खाली हो गया, मगर मराठा शक्ति का दमन न हो सका। आखिर यही शक्ति सारे मुगल-साम्राज्य को ले डूबी।

मराठा-शक्ति के प्रथम नेता छत्रपति शिवाजी का संघर्ष सन् १६६० ई० से प्रारंभ हुआ जो सन् १६८० तक कई हार-जीतों के बीच बराबर चलता रहा। इस संघर्ष को करते हुए शिवाजी ने दक्षिण में एक छोटे से साम्राज्य की स्थापना करली। इस साम्राज्य में नासिक, पूना, सतारा, कोल्हापुर इत्यादि परगनों के बहुत से हिस्से शामिल थे। मदरास प्रान्त के बेलारी परगने के सामने वाले तुङ्गभद्रा के तट पर फैले हुए कर्नाटक अथवा कन्नड़ देश के हिस्से भी शिवाजी के अधीन हो गये थे। सन् १६८० ई० छत्रपति शिवाजी का देहान्त हो गया।

शिवाजी की मृत्यु के पश्चात् मराठा शक्ति का दमन करने के लिए स्वयं सम्राट औरंगजेब सन् १६८१ में दक्षिण गया। ७-८ वर्ष के संघर्ष के पश्चात् उसने शिवाजी के पुत्र शंभू जी को पकड़कर मरवा डाला, मगर मराठा-शक्ति पर इस घटना का कोई दीर्घकालिन असर नहीं हुआ। सन् १६६० के बाद मराठों ने फिर शिर उठाया और उनके उपद्रव संगठित रूप से तेजी के साथ बढ़ने लगे। औरंगजेब के जीवन के अन्तिम वर्ष भयंकर पराजयों और असफलताओं के वर्ष रहे। उसे अपनी आँखों के सामने अपने साम्राज्य की ऊँची इमारत गिरती हुई नजर आने लगी। निरन्तर चलने वाले दक्षिण के इन युद्धों ने शाही खजाने को खाली कर दिया। दक्षिण भारत की चिनगारियाँ उत्तरी तथा मध्यभारत के भी कई स्थानों पर पहुँच गई और चारों ओर घोर अराजकता का दौर-दौरा हो गया।

लगभग २० वर्ष तक चलने वाले इस संघर्ष में मुगल-सेना के प्रतिवर्ष करीब एक लाख सैनिक और इतने ही हाथी घोड़े, बैल आदि भी मारे जाते थे। शाही पड़ाव में महामारी हमेशा बनी रहती थी।

इस प्रकार जब सारे साम्राज्य पर संकट की घटाएँ घिर रही थीं, उस समय औरंगजेब के लड़के मुहम्मद आजम, कामबख्श इत्यादि में साम्राज्य के उत्तराधिकार के लिए झगड़े शुरू हुए, तब औरंगजेब ने उनको समझा-बुझाकर, कामबख्श को हैदराबाद का और मुहम्मद आजम को मालवे का सूबेदार बना कर भेज दिया।

उसके बाद ही सम्राट को बुखार हो गया और २० फरवरी सन् १७०७ ई० शुक्रवार के प्रातःकाल सुबह की नमाज पढ़ने के बाद यह प्रतापी मुगल सम्राट इस संसार से बिदा हो गया।

औरंगजेब का परिवार

औरंगजेब की ४ पत्नियाँ थीं। पहली दिलरसबानू, जो फारस के शाह इस्माइल सफावी के छोटे पुत्र के प्रपौत्र शाहनवाज खाँ की पुत्री थी। यह शाहजादा अकबर की माता थी। दूसरी रहमत-उन्नीसा एक पहाड़ी राजा की लड़की थी। यह शाहजादा मोअज्जम और मुहम्मद सुल्तान की माता थी। तीसरी औरंगाबादी-महल थी और चौथी उदयपुरी-महल शाहजादा कामबख्श की मांथी और पहले दारा सिकोह के हरम में रहने वाली जार्जिया देश की दासी थी। अत्यन्त सुन्दर और शोख होने के कारण वृद्धावस्था तक सम्राट् पर इसका प्रभाव रहा।

इसके अतिरिक्त हीराबाई नामक स्त्री से भी—जो जैनाबादी नाम से प्रसिद्ध है—औरंगजेब का प्रेम था।

औरंगजेब की सन्तानों में ५ पुत्र और ५ पुत्रियाँ थे, जिनके नाम मुहम्मद आजम, मुहम्मद अकबर, मुहम्मद सुल्तान, मुहम्मद मुअज्जम और मुहम्मद काम-

बख्श थे। लड़कियों के नाम जेबुन्निसा, जीनत-उन्नीसा, जुबदत-उन्नीसा, बदरुन्निसा और मेहरुन्निसा था।

औरंगजेब का चरित्र और शासन

भारतवर्ष के इतिहास में औरंगजेब का शासनकाल कई दृष्टियों से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रसिद्ध इतिहासकार सर यदुनाथ सरकार लिखते हैं—

"अंग्रेजी साम्राज्य के स्थापित होने से पहले भारत में औरंगजेब का साम्राज्य जितना विस्तृत हो गया था, उतना इससे पहले कभी नहीं हुआ था। गजनी से लेकर चटगांव तक और कश्मीर से लेकर कर्नाटक तक यह सारा भारत महादेश एक ही शासक के आधीन था। इसलाम ने भारत में अपना आखिरी कदम इसी शासन-काल में बढ़ाया। विस्तार में अभूतपूर्व होते हुए भी इस विशाल साम्राज्य की राजनैतिक एकता अक्षुण्ण थी। इस साम्राज्य के विभिन्न प्रान्तों का प्रबन्ध छोटे राजाओं के हाथ में न रह कर सीधे बादशाह द्वारा नियुक्त अधिकारियों के द्वारा ही होता था। इस विशेषता के कारण औरंगजेब का भारतीय साम्राज्य अशोक, समुद्रगुप्त या हर्ष के साम्राज्य से अधिक विशाल और परिपूर्ण था।

मगर यह कितने बड़े आश्चर्य की बात है कि जिस बादशाह औरंगजेब के शासन के पूर्वार्ध में यह साम्राज्य इतना विस्तृत और संगठित हुआ, उसी औरंगजेब के शासन-काल के उत्तरार्ध में उसी सम्राट के द्वारा इसके पतन का बीज भी रख दिया गया और देखते ही देखते औरंगजेब के द्वारा बनाया हुआ यह विशाल साम्राज्य बालू के ढहे की तरह जड़-बुनियाद से ऐसा खिसकने लगा कि फिर किसी के सँभाले न सँभला। अधःपतन का यह विकराल दृश्य स्वयं सम्राट की आँखों के आगे अभिनीत होने लगा और वह शक्तिशाली सम्राट् इस महान पतन को बेबसी के साथ देखता रहा।

भारतीय इतिहास की यह एक ऐसी महान् घटना है, जिसने इतिहास के इन पृष्ठों को अत्यन्त महत्वपूर्ण बना दिया।

जहाँतक व्यक्तिगत चरित्र और राजनैतिक बुद्धि का सवाल है, वहाँतक औरंगजेब के व्यक्तित्व में किसी प्रकार की कमी नहीं दिखलाई देती। वह निर्दयी और क्रूर होने पर भी एक अत्यन्त संयमी, सादा जीवन व्यतीत करनेवाला, पढ़ा-लिखा विद्वान् और उत्कृष्ट राजनीति का जानकार था। वह बड़ी चतुराई और क्रूरता के साथ अपने तीन भाइयों को अपने रास्ते से हटाकर अपनी राजनैतिक बुद्धि से भारत का एक छत्र सम्राट् बन गया। उसने अपने मार्ग से अपने अन्य शत्रुओं को भी हटा दिये। भारत का विशाल साम्राज्य उसकी आज्ञाओं के आगे नतमस्तक था। उसके दृढ़ और सतर्क शासन के परिणामस्वरूप देश का धन और वैभव भी बढ़ रहा था। ऐसे सुदृढ़ साम्राज्य का इतना भयंकर पतन किस प्रकार हुआ, इतिहास के विद्यार्थी के लिए यह प्रश्न बड़ा महत्वपूर्ण है।

और इस प्रश्न का उत्तर औरंगजेब की धार्मिक नीति को टटोलने पर ही उसमें मिलता है। औरंगजेब ने अपने पूर्वजों के द्वारा ग्रहण की हुई उदार नीति को छोड़कर हिन्दुओं के विरुद्ध एक जबर्दस्त अभियान प्रारम्भ करके इस बात का फिर से बड़ा प्रयत्न किया कि हिन्दू धर्म और हिन्दू-सभ्यता का अन्त होकर यह सारा देश फिर से इसलाम के झंडे के नीचे आ जाय। उसने स्थान-स्थान पर बने हुए बहुत से मन्दिरों को आदेश देकर गिरवाया और पुराने मन्दिरों की मरम्मत करने और नये मन्दिरों के बनवाने की इजाजत देना भी बन्द कर दिया।

६ अप्रैल सन् १६६६ को उसने एक आम हुक्म दिया कि काफिरों के सब शिक्षालय और मन्दिर गिरा दिये जायँ और उनकी धार्मिक प्रथाओं को दबाया जाय। अब उसकी यह विनाशकारी कुदाल सोमनाथ के दूसरे मन्दिर, बनारस के विश्वनाथ-मन्दिर और मथुरा के केशवराय-मन्दिर के समान बड़े मन्दिरों पर भी पड़ी जिन्हें सारे भारत की समस्त हिन्दू जनता बड़े आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखती थी।

औरंगजेब की इस धर्म-नीति के कारण हिन्दुओं के अन्दर विद्रोह की प्रबल भावनाओं का उद्रेक हुआ। इन भावनाओ ने दक्षिण में मराठों के रूप में और उत्तर में सिक्खों के रूप में जबर्दस्त उग्र रूप धारण किया। इन्हीं मराठों के विद्रोह को दबाने के लिए अपने जीवन

के अन्तिम २५ वर्ष उसे दक्षिण में बिताने पड़े और उसी खानबदोश जीवन में उसका अन्त हुआ। फिर भी हजारों प्रयत्नों के बावजूद वह अपने विशाल साम्राज्य की रक्षा नहीं कर सका। उसके देखते-देखते मुगल साम्राज्य की जड़ें भीतर ही भीतर खोखली हो गईं, खजाना खाली हो गया—मुगल सेनाएँ जगह-जगह पर पराजित और अपमानित होने लगीं और देश में अलग-अलग खण्ड राज्य स्थापित होने लगे लगे।

उत्थान और पतन के इस घटना-चक्र में परिलक्षित होनेवाला औरंगजेब का जीवन इतिहास के हरएक विद्यार्थी के लिए बड़े अध्ययन की वस्तु है।

औरंगजेब का वसीयतनामा

हामिद-उद्दीन खान बहादुर कृत 'अहकाम-ई-आलम में औरंगजेब का किया हुआ एक वसीयत नामा दिया गया है—उसके कुछ अंश का अनुवाद इस प्रकार है :—

(१) अन्याय में डूबे हुए इस पापी की ओर से हसन की—परमात्मा उन्हें शान्ति प्रदान करें—पवित्र कब्र को (वहाँ चढ़ाये गये कपड़े से) ढाँक दें। क्योंकि पाप के सागर में डूबे हुओं के लिए दया और क्षमा के उस स्रोत का सहारा लेने के अतिरिक्त रक्षा का कोई दूसरा उपाय नहीं। इस पुण्य कार्य को पूरा करने के साधन मेरे पुत्र शाहजादा आजम के पास है। वे उनसे प्राप्त किये जायँ।

(२) मेरी सी हुई टोपियों की कीमत से जो आमदनी हुई, उसमें से बचे हुए चार रुपये और दो आने महालदार आलाबेग के पास जमा हैं, उनसे यह रकम लेकर इस रकम से इस असहाय प्राणी का कफन खरीदा जाय। कुरान की नकल के द्वारा कमाये गये तीन सौ पाँच रुपये मेरे व्यक्तिगत व्यय के लिए मेरे बटुवे में रखे हैं, उन्हें मेरी मृत्यु के दिन फकीरों में बाँट दिये जायँ।

(३) अन्य आवश्यक वस्तुएँ शाहजादे आलीजाह के कर्मचारी से ले लेना। क्योंकि मेरे पुत्रों में वही मेरा निकटतम उत्तराधिकारी है और दफनाने की क्रिया का सारा उत्तराधिकारी वही है।

(४) सच्चे मार्ग से बहककर दूर पथ-भ्रष्टों की घाटी में भटकने वाले इस पापी को खुले सिर गाड़ देना। क्योंकि जो कोई भी बरबाद पापी अल्लाह-ताला के सामने खुले सिर पहुँचता है, वह अवश्य ही उसकी दया का पात्र बन जाता है।

(५) मेरी अर्थी पर के कफन को खादी नामक सफेद मोटे कपड़े से ढकना। उस पर कोई तंबू खड़ा न किया जाय।

(६) मेरे उत्तराधिकारी के लिए यह उचित होगा कि साम्राज्य के जो सेवक मारवाड़ और दक्षिण के उजाड़ जंगलों में मारे-मारे फिरते रहे हैं, उनके प्रति दया और उदारतापूर्ण व्यवहार करे।

(७) राजनैतिक कामों के लिए या मुत्सुद्दी गिरी के लिए ईरानी लोग सबसे बढ़कर होते हैं। युद्धक्षेत्र से मुँह मोड़ने की भी इनकी आदत नहीं होती। ये लोग स्वामी की आज्ञा का उल्लंघन और विश्वासघात भी कभी नहीं करते, मगर ये लोग आदर के बड़े भूखे होते हैं। इसलिए इनका निरादर न हो—ऐसी चतुराई से तुम्हें सदा काम लेना चाहिए।

(८) तूरानी लोग सदैव से सैनिक ही रहे हैं—आक्रमण करने, धावा मारने, रात के समय छापा मारने और शत्रु को पकड़ने में वे बहुत चतुर होते हैं। युद्ध करते-करते पीछे हट जाने में भी वे कोई आशंका, निराशा या लज्जा का अनुभव नहीं करते। युद्ध में अपने स्थान से न हटकर अपना सिर कटवा देने की हिन्दुस्तानियों की घोर जड़ता से वे सैकड़ों कोस दूर हैं। इस जाति के प्रति तुम्हें हर तरह की कृपा दिखानी चाहिए।

(९) बारहा के सैय्यद पूज्य हैं। कुरान की आयत के अनुसार उनका आदर करने और उनके प्रति कृपा दिखाने में कभी ढिलाई मत करना। फिर भी बारहा के इन सय्यदों के साथ अपने व्यवहार में पूरी-पूरी सावधानी रखना। हृदय में उनके प्रति पूरा-पूरा प्रेम रखते हुए भी उन्हें कभी ऊँचा पद मत देना। क्योंकि एक बार शासन में पूर्ण शक्ति प्राप्त कर लेने के बाद हर एक को सम्राट् बनने की इच्छा होने लगती है।

(१०) जहाँ तक सम्भव हो, एक साम्राज्य के शासक को इधर-उधर घूमते रहने से कदापि घबराना न चाहिए। किसी एक ही स्थान पर उसे अधिक काल तक न ठहरना चाहिए। यद्यपि एक स्थान पर ठहरने से उसे ऊपरी तौर पर विश्राम मिलेगा, किन्तु वास्तव में हजारों आपदाएं उसके शिर पर आ पड़ेंगी।

(११) कभी अपने पुत्रों पर विश्वास न करो और न अपने जीवनकाल में उनके साथ घनिष्ठता का बर्त्ताव करो। क्योंकि यदि सम्राट् ने दारा शिकोह के साथ ऐसा बर्ताव न किया होता तो उसका वह दुःखदायी अन्त न होता। सदैव इस कहावत को ध्यान में रखो कि सम्राट् के शब्द हमेशा निष्फल ही रहते हैं।

(१२) साम्राज्य के सारे समाचारों की जानकारी रखना ही शासन का प्रधान आधार-स्तम्भ है। एक क्षण की असावधानी के फलस्वरूप बरसों तक पश्चात्ताप करना पड़ता है। मेरी ही लापरवाही से वह नराधम 'शिवा' निकल भागा और उसका नतीजा यह हुआ कि मुझे अपने जीवन के अन्त तक मराठों के विरुद्ध कड़ी मेहनत करनी पड़ी।

संख्याओं में बारह यह पवित्र संख्या है अतएव मैंने भी इसे १२ ही आदेशों में समाप्त किया है। यदि तुम इस शिक्षा को ग्रहण करोगे तो मैं तुम्हारी बुद्धि को प्यार करूँगा। यदि तुमने इसकी अवहेलना की तो अफसोस! सद-अफसोस!

औरंगाबाद

स्वाधीनता-प्राप्ति के पूर्व हैदराबाद (निजाम-स्टेट) का तथा इस समय महाराष्ट्र प्रान्त का एक प्रमुख नगर, जिसकी जनसंख्या ७० हजार से अधिक है।

औरंगाबाद सेंट्रल रेलवे के मनमाड़ स्टेशन से हैदराबाद को जाने वाली छोटी लाइन पर बसा हुआ एक प्रमुख नगर है। सन् १६१० में फतेहनगर के नाम से यह नगर बसाया गया था। उसके बाद जब शाहजादा औरंगजेब दक्षिण का सूबेदार होकर यहाँ आया तब उसने इसका नाम बदलकर 'औरंगाबाद' रख दिया और यहीं पर अपनी राजधानी बनाई।

औरंगाबाद के आसपास एलोरा और अजंटा के सुप्रसिद्ध गुफा-मन्दिर बने हुए हैं। इन गुफा-मन्दिरों की वजह से इस नगर की प्रसिद्धि भी बहुत अधिक है। इन गुफा-मन्दिरों को देखने के लिए आने वाले दूर-दूर के यात्री यहीं से होकर जाते हैं।

गुफा-मन्दिरों के अतिरिक्त औरंगजेब के द्वारा, उसकी पत्नी दिलरस बानू के स्मारक में, बनाया हुआ मकबरा जो दक्षिणी ताजमहल के नाम से प्रसिद्ध है—बड़ी दर्शनीय इमारत है।

औद्योगिक और शिक्षा सम्बन्धी गति-विधियों का भी यह एक अच्छा केन्द्र है। मराठा-वाड़ा युनिवर्सिटी का प्रधान कार्यालय भी इसी शहर में है।

(क)

कङ्क

बँगला-साहित्य में कालिका-मंगल के सबसे प्रथम लेखक जिनका समय १६वीं सदी के प्रारंभ में माना जाता है।

१६वीं शताब्दी में बंगाल के अन्दर 'कालिका-मंगल' स्तोत्रों को लिखने की प्रथा चल पड़ी थी। इस कालिका-मंगल की कथा कोई पौराणिक कथा नहीं, शुद्ध लौकिक प्रेम कथा है, जो बंगाल में १६वीं सदी में प्रचारित हो गई थी। यह कथा विद्या और सुन्दर की प्रेम-कथा के आधार पर निर्मित हुई है। सुन्दर, कालिका देवी की कृपा से एकान्त में विद्या से मिलता है—प्राणदण्ड से बच जाता है और विद्या को प्राप्त कर लेता है।

देवी की कृपा के ऐसे विविध रूप दिखा कर इन स्तोत्रों में कालिका के प्रति श्रद्धा उत्पन्न कराई गई है।

कालिका-मंगल के सबसे पहले लेखक 'कंक' माने जाते हैं। इनकी कालिका-मंगल की एक-दो प्रतियों का ही पता चला है। इन प्रतियों के उल्लेख से यह विदित होता है कि यह चैतन्य महाप्रभु के समकालीन थे। इनका

काव्य सरल और मधुर है। इसमें भक्ति-रस है, शृंगार-रस नहीं।

कंक के सम्बन्ध में एक किंवदन्ती यह भी प्रचलित है कि जन्म के समय ही ये माता-पिता से विहीन हो गये। दूसरा कोई कुटुम्बी न होने के कारण एक चाण्डाल-दम्पति ने इनको पाला। कुछ बड़े होने पर इनको गर्ग नामक ब्राह्मण के यहाँ रखवाली पर रखा गया। वहाँ गर्ग की पुत्री लीला से इनका प्रेम हो गया। गर्ग-दम्पति ने बहुत चाहा कि प्रायश्चित्त करवा कर कंक को पुनः ब्राह्मण-समाज में मिला लिया जाय, मगर समाज ने इनको स्वीकार नहीं किया।

कछवाहा-राजवंश

राजपूतों का एक प्रसिद्ध राजवंश जिसके वंशज जयपुर और अलवर रियासतों के शासक रहे।

कछवाहा-राजवंश की उत्पत्ति सूर्यवंशी महाराज रामचन्द्र के पुत्र "कुश" से मानी जाती है। महाराज कुश के पुत्र का नाम "कूर्म" अथवा कछवा था। इसी से यह वंश कछवाहा नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह वंश कच्छपघात, के नाम से भी इतिहास में जाना जाता है।

इस कच्छपघात या कछवाहा-वंश के कई मध्यकालीन शिलालेख इस समय उपलब्ध हैं। इनमें से दो लेख विशेष महत्वपूर्ण हैं। एक लेख ग्वालियर के किले में सास-बहू के मन्दिर में मिला था और दूसरा गवालियर से ७६ मील की दूरी पर दुभकुण्ड के जैन-देवालय में प्राप्त हुआ था।

इन लेखों से पता लगता है कि कछवाहों का राज्य शुरू में गवालियर-राज्य के "नरवर" नामक स्थान पर था। यह प्रान्त पुराणप्रसिद्ध राजा नल का "निषध" देश कहलाता था।

इस राजवंश में वज्रदामन नामक राजा हुआ। इसने कन्नौज के प्रतिहार राजा विजयपाल परिहार से गवालियर का किला छीन लिया। ई० सन् ९७७ के लगभग इसने अपना राज्य गवालियर में स्थापित कर लिया। इस लेख में उसे 'महाराजाधिराज' लिखा है, इसलिए वह स्वतंत्र रहा होगा मगर यह भी सम्भव है कि बाद में उसे बुन्देलखण्ड के चन्देलों का आधिपत्य स्वीकार करना पड़ा होगा। इसी से अलबेरूनी ने गवालियर और कालिंजर का किला चन्देलों के अधिकार में होने की बात लिखी है।

वज्रदामन का पुत्र मंगलराज हुआ। मंगलराज के छोटे पुत्र "सुमित्र" से ही जयपुर और अलवर के कछवाहों का राजवंश चला। गवालियर की गद्दी पर मंगलराजा के बाद उसका पुत्र कीर्तिराज बैठा। ऐसा कहा जाता है कि इसने मालवा के तत्कालीन इतिहास-प्रसिद्ध राजा 'भोज' को हराया। इसी के समय सन् १०२१ में मुहम्मद गजनवी ने गवालियर पर चढ़ाई की मगर कीर्तिराज ने ३० हाथी भेंट करके उससे सुलह कर ली और राज्य को विध्वंस होने से बचा लिया।

कीर्त्तिराज के बाद क्रम से मूलदेव, देवपाल, पद्मपाल और महीपाल गवालियर की गद्दी पर बैठे। मूलदेव का दूसरा नाम त्रैलोक्यमल्ल और देवपाल का दूसरा नाम अपराजित भी था।

गवालियर के किले में जो सास-बहू का सुन्दर मन्दिर बना हुआ है वह इसी देवपाल के पुत्र पद्मपाल ने बनवाना शुरू किया और उसके पुत्र महीपालने जिसका नाम भुवनैकमल्ल भी था इस मन्दिर को पूरा करवाया और सारा वृत्तान्त शिलालेख में खुदवाकर उसे मन्दिर में लगवाया। यह मन्दिर भगवान् विष्णु का है और सन् ११०८ में इसका निर्माण पूरा हुआ।

महीपाल के पश्चात् इस राजवंश में क्रमशः त्रिभुवन-पाल, (११०४ ई०) विजयपाल (११३३ ई०) शूरपाल (११५५ ई०) और उसके बाद उसका पुत्र अनङ्गपाल गद्दी पर बैठा।

इसके पश्चात् इस राजवंश में "सोलंखपाल" का नाम आता है। इसके समय में सन् ११९६ में शहाबुद्दीन गौरी ने घेरा डाला था। इसके बाद यह किला कुतुबुद्दीन ऐबक के हाथ में चला गया।

गवालियर गजेटियर में यह भी उल्लेख है कि सन् ११२९ में परिहारों ने कछवाहों से गवालियर का किला छीन लिया। यदि यह सच हो तो शहाबुद्दीन गोरी के

आक्रमण के समय यहाँ के राजा सोलंखपाल को परिहार होना चाहिए।

इन्हीं कछवाहों की एक शाखा ने अपना राज्य आमेर में (आधुनिक जयपुर) और एक शाखा ने अपना राज्य अलवर में स्थापित किया।

मंगलराज के पुत्र सुमित्र से जयपुर वाली शाखा चली। सुमित्र के बाद उसके वंश में क्रमशः मधुब्रह्म, कहान, देवानीक और ईश्वरीसिंह हुए। ईश्वरी सिंह के पुत्र सोढदेव हुए। सोढदेव के पुत्र दूलहराय का विवाह मोरन के चौहान राजा की कन्या से हुआ। अपने श्वसुर की सहायता से दूलहराय ने दौसा का प्रान्त बड़ गूजरों के हाथ से छीन लिया। दौसा के आस-पास का प्रान्त ढूंढार कहलाता है। इस प्रान्त में उस समय 'मीणा' और राजपूत सरदारों का अधिकार था दूलहराय ने इन सबको पराजित करके अपने राज्य का विस्तार किया।

दूलहराय के बाद "कांकिल" राजा हुआ। इसने आमेर का किला मीणा लोगों से छीनकर सन् १०३७ में अपने राज्य में मिला लिया और वहीं अपनी राजधानी स्थापित की।

कांकिल के उत्तराधिकारियों में "पंजुन" का नाम विशेष उल्लेखनीय है। यह पृथ्वीराज चौहान की सेना का सेनापति था। इसने, खैबर के दर्रे में शाहबुद्दीन गौरी को पहली बार बुरी तरह हराया और बाद में सन् ११९२ में पृथ्वीराज के साथ ही कन्नौज के रणक्षेत्र में मारा गया।

पंजुन की सातवीं पुश्त में उदयकरण हुआ। इसकी पाँचवीं पुश्त में पृथ्वीराज उसके बाद बिहारीमल उसके बाद भगवानदास और उसके बाद इतिहास-प्रसिद्ध मानसिंह हुए, जिन्होंने सम्राट् अकबर की दिग्विजय में शुरू से अन्त तक उसका पूरा-पूरा साथ दिया।

इसके बाद इस राजवंश में सवाई मिर्जा राजा जयसिंह बड़ा प्रतापी हुआ। इसीने भारतप्रसिद्ध सुन्दर जयपुर शहर का निर्माण करवा कर वहाँ अपनी राजधानी स्थापित की। इस नगर में नगरनिर्माण-कला का उच्च आदर्श प्रकट होता है। सारे भारतवर्ष में कलापूर्ण दृष्टि से यह नगर अपने ढङ्ग का एक ही है।

सवाई जयसिंह को ज्योतिषशास्त्र से बड़ा प्रेम था इन्होंने ग्रहों का वेध लेने के लिए दिल्ली, जयपुर, उज्जैन, बनारस, मदुरा इत्यादि अनेक स्थानों पर वेधशालाओं (observatories) का निर्माण करवाया।

सवाई जयसिंह के बाद इस राजवंश में ईश्वरीसिंह, माधोसिंह, पृथ्वीसिंह द्वितीय, प्रतापसिंह, जगत्सिंह, जयसिंह तृतीय, रामसिंह, माधोसिंह द्वितीय और मानसिंह द्वितीय जयपुर की गद्दी पर बैठे।

महाराज मानसिंह द्वितीय के समय में स्वतंत्र भारतीय प्रजातंत्र में देश की समस्त रियासतों के साथ जयपुर रियासत का भी विलीनीकरण हो गया। जयपुर ही की तरह इसी कछवाहा राजवंश के राजा सुमित्र के एक वंशज के द्वारा अलवर राजवंश की स्थापना हुई।

कच्छ

भारत के पश्चिमी समुद्र तटपर कच्छप के आकार का बसा हुआ एक प्रान्त, जिसके उत्तर पूर्व और आग्नेय कोण में विस्तृत दलदली मैदान तथा दक्षिण और नैऋत्य कोण में समुद्र-किनारा तथा पश्चिम और वायव्य कोण में दलदली मैदान और सिन्धु नदी की शाखा से घिरा हुआ कच्छप के आकार का एक छोटा सा प्रान्त भारतवर्ष में अपना विशेष अस्तित्व रखता है। चारो तरफ पानी और दलदली मैदान होने से इसका विस्तार अधिक नहीं होने पाया।

इस प्रदेश की लम्बाई डेढ़ सौ मील और चौड़ाई अधिक से अधिक पचास मील और कहीं-कहीं तो सिर्फ पन्द्रह मील है।

ऐसा कहा जाता है कि पहले कच्छ की भूमिका सम्बन्ध सिन्ध की भूमि के साथ था, मगर १८ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में एक बड़े भूकम्प की वजह से सिन्ध के साथ इसका सम्बन्ध टूट गया।

ऐतिहासिक परिचय

कच्छ का राजकीय इतिहास, आजकल जिसको इतिहास-काल कहा जाता है, उससे भी बहुत पहले से प्रारम्भ होता है। परम्पराओं के अनुसार कच्छ का इतिहास 'आदि

नारायण' नामक राजा के समय से प्रारम्भ होता है। आदिनारायण की चौथी पुश्त में चन्द्र नामक राजा हुआ, जिसने चन्द्र-वंश की स्थापना की। कच्छ के 'जाड़ेजा' शासक इसी चन्द्र-वंश की सन्तान थे। यह भी कहा जाता है कि आदिनारायण की ५४ वीं पीढ़ी में श्रीकृष्ण हुए और श्रीकृष्ण की ७९ वीं पीढ़ी में देवेन्द्र नामक राजा हुआ। देवेन्द्र का लड़का नरपत और नरपत का लड़का साम्पत हुआ। साम्पत के वंशज ही आजकल समा-क्षत्रिय के नाम से प्रसिद्ध हैं। समा की ९ वीं पीढ़ी में 'लाखयार भड़' नामक व्यक्ति हुआ जिसने सिन्ध में नगरटट्ठा नामक नगर बसाया।

लाखयारभड़ का पुत्र 'लाखाधुरारा' हुआ लाखा धुरारा के पुत्र मोड़ ने कच्छ में अपने राज्य की स्थापना की। यह भी कहा जाता है कि इस के बाद कुछ समय तक कच्छ पर परिहार राजपूतों का अधिकार रहा।

दूसरी ओर मोड़ के भाई उन्नड़ ने सिन्ध में अपने राज्य की स्थापना की। उन्नड़ के वंश में 'जाम जाड़व' नामक व्यक्ति हुआ, जिसके वंशज 'जाड़ेजा' कहलाये। इस जाड़ेजा-वंश के लाखा जाड़ेजा ने सिन्ध से आकर कच्छ पर कब्जा किया। उसी लाखा जाड़ेजा की सन्तानें अभी तक कच्छ की गद्दी की अधिकारिणी रहीं। लाखा जाड़ेजा की १० वीं पीढ़ी में राव खेंगार हुए, जिनके शासन में कच्छ को वैधानिक रूप से संगठित किया गया। इनका समय सन् १५९९ से प्रारम्भ होता है। खेंगार बड़े प्रतापी नरेश थे। इन्होंने सम्वत् १६०२ में अंजर १६०५ में भूज और सं० १६३६ में माण्डवी नगर बसाकर कच्छ के विस्तार और रौनक को बहुत बढ़ाया। बल्कि इतिहासकारों का तो यही मत है कि कच्छ का वास्तविक इतिहास 'राव खेंगार' प्रथम से शुरू होता है।

राव खेंगार ने 'महम्मद बेगड़ा' नामक मुसलमान सुलतान को सिंह के पंजे में से बचाकर सिंह को मार दिया। इससे मोहम्मद बेगड़ा बहुत प्रसन्न हुआ। उसकी मदद से राव खेंगार ने कच्छ में अपनी सत्ता का विस्तार किया।

राव खेंगार के बाद राव भारमल कच्छ की गद्दी पर आये। इनको बादशाह जहाँगीर ने अपना सिक्का स्वयं ढालने का अधिकार दिया था। भारमल के पुत्र प्रागमल और प्रागमल के पुत्र लखपत हुए। इनको बादशाह आलमगीर ने मिर्जा की और काबुल के अमीर महाराजाधिराज की पदवी प्रदान की। इसी प्रकार इस घराने में अंग्रेजी-राज्य के समय में भी बराबर राजकाज चलता रहा।

आधुनिक नरेशों में राव खेंगार तृतीय के पुत्र विजयराज का नाम उल्लेखनीय है।

कच्छ के प्रमुख नगर

अंजर—इस नगर को राव खेंगार प्रथम ने सं० १६०२ में बसाया था। अंजर के प्रसिद्ध स्थानों में कच्छ की प्रसिद्ध प्रेम कथा के नायक 'जेसल' और 'तोरल' की समाधि प्रसिद्ध है। इसके सिवाय माधव राय मोहन राय का मन्दिर, अजय पाल का स्थानक और अम्बजी तथा बहुचराजी का मन्दिर उसकी प्राचीनतम स्मृतियों के रूप में स्थित हैं। इसके अतिरिक्त इस नगर में वासुपूज्य तीर्थंकर का बहुत पुराना जैन-मन्दिर भी बना हुआ है।

माण्डवी—कच्छ के सभी शहरों में माण्डवी नगर बहुत प्रसिद्ध है। सं० १६३६ में राव खेंगार प्रथम ने रायपुर बन्दर बसाया था। वही आज मांडवी के नाम से प्रसिद्ध है। यह लगभग २५ हजार से अधिक आबादी का किलेबन्द शहर है।

भुज—कच्छ की राजधानी और उसका मुख्य शहर है। कच्छ के ४ किलेबन्द किये हुए शहरों में से यह भी एक है। इसकी स्थापना सं० १६०५ की मगसर शुदी छठ के दिन राव खेंगार प्रथम ने भुजंगनगर के नाम से की थी।

कच्छ के ऐतिहासिक स्थान

कच्छ के ऐतिहासिक स्थानों में पद्धरगढ़, छोटेश्वर महादेव, देवी आशापुरा, कन्थरनाथ का मन्दिर, कन्थकोट का किला, करुणदेव का मन्दिर, वासुपूज्य स्वामी का मन्दिर, भुवनेश्वर, घीरोधर इत्यादि स्थान बहुत प्रसिद्ध हैं।

कच्छ के विशिष्ट और ऐतिहासिक व्यक्तियों में जमादार फतेहमोहम्मद, मेघजी सेठ, सुन्दर जी सौदागर और पं० श्यामजी कृष्णवर्मा का नाम विशेष प्रसिद्ध है।

कज्जाक

रूस के अन्दर 'कजाकस्तान' नामक क्षेत्र में रहने वाली एक खानाबदोश जाति जो लड़ाई और युद्धकला में बहुत साहसी होती है।

कजाक-जाति भौगोलिक दृष्टि से रूस के साइबेरिया, किपचक भूमि, अलताई और सतनद के भिन्न-भिन्न भागों में बसती थी।

समझा जाता है कि मध्य पाषाणयुग में अर्थात् ईसा से चार हजार वर्ष पूर्व किसी समय 'फिनो द्रविड़' जाति रहती थी। जिसके अवशेष, भारत में द्रविड़ तथा सोवियट में कौमी-स्वायत्त-गणराज्य और स्टेनियाँ तथा फिनलैंड के लोगों के रूप में अब भी मौजूद है।

ईसा से २५०० वर्ष पूर्व किपचक-भूमि और अलताई में फिनो-द्रविड़-जाति का स्थान उन्हीं के भाई-बन्धु, शक, लोग ले लेते हैं। ईसा से पूर्व चौथी शताब्दी में कजाकिस्तान के पूर्वी भाग में 'हूण' लोग रहते थे। ईसा से पूर्व दूसरी शताब्दी में इन हूण लोगों ने शक लोगों पर आक्रमण करके उन शकों को नष्ट कर दिया। इसी समय से शकों की आर्य-शरीरावृत्ति का स्थान हूणों की मंगोलियत शरीरावृत्ति ने लेना प्रारंभ किया।

ईसा की पाँचवीं सदी के पूर्वार्ध में किपचक, सतनद और अलताई की भूमि में रहने वाले हूण-वंशज मंगोलाइत अपनी सामान ढोने वाली गाड़ियों के कारण 'कँगली' कहे जाते थे। यही कँगली-जाति के लोग उस प्रदेश में 'कज्जाक' 'किरगिज' और 'तुर्कमान' नाम से प्रसिद्ध हैं।

सोलहवीं सदी के अन्त में कजाक लोगों के परिवारों की संख्या दो लाख के करीब थी यह जाति इमाम अबू-हनीफ़ा के हनफ़ी इस्लाम धर्म को माननेवाली थी। इस जाति के पास हजारों ऊँट रहते थे और यह अपने तम्बुओं को गाड़ियों पर लेकर चलती थी। मुसलमान होने की वजह से इनका सम्बन्ध बुखारा से विशेष घनिष्ठ था। कजाकों के खानतवक्कल ने सन् १५९४ में रूस के जार फ्योदोर के पास अधीनता स्वीकार करने के लिए अपने दूत मास्को भेजे थे। सत्रहवीं सदी में कजाकों की शक्ति बहुत मजबूत थी। उस समय सतनद पर भी उनका अधिकार था और उनका केन्द्र तुर्किस्तान और ताशकन्द के नगर थे। इसी शताब्दी के अन्त में ख्वारेज्मा और बोल्गातट उनका प्रभुत्व फैल गया था मगर कुछ ही समय बाद इनके प्रतिद्वन्दी कल्मकों (जुंगरों) की शक्ति बढ़ी और इन्होंने कजाक की शक्ति को बहुत कमजोर कर दिया।

(मध्य एशिया का इतिहास)

२० वीं सदी के प्रारंभ तक कज्जाक लोग घुमन्तू कबीलों में रहने वाले पशुपाल थे। पहले इन्हें उजबेक या उजबेक-कजाक भी कहा जाता था। अरबी भाषा में 'कजाक' शब्द का अर्थ डाकू है, मगर तुर्क लोगों ने इस शब्द का इस्तेमाल 'साहसी' लोगों के लिए किया है।

कजाक-कबीलों को आज के कजाकिस्तान के भिन्न-भिन्न भागों में हम निम्न प्रकार से वितरित देखते हैं—

(१) महा ओर्दू—इसके उइसुन और सिखिम कबीले ताशकन्द के जिले में मिलते हैं। जानी, तेमिर, चीमिर और खित्तन नाम के कबीले जम्बुल में रहते हैं। सिरगिली, उस्ती, ओतकची, जलेर और चपराज नामक कबीले तुर्किस्तान के पास चू-उपत्यका में रहते हैं। कँजली लोगों का कबीला ताशकन्द के पास रहता है।

(२) मध्य-ओर्दू—इस ओर्दू का किपचक-कबीला ताशकन्द के पास रहता है। कुङ्गराद, अल्तीयता, ओक-तुनगुलू, अर्गुन और नैमन नामक कबीले ताशकन्द के पास रहते हैं।

कजाकस्तान

सोवियट गणराज्य में जो भूमि 'कजाकस्तान' के नाम से प्रसिद्ध है, उसमें साइबेरिया, किपचक-भूमि, अलताई और सतनद के बहुत से भाग शामिल हैं। इस क्षेत्र को कजाकस्तान गणराज्य का नाम अप्रैल सन् १९१६ ई० में दिया गया।

जिस समय रूस में जारशाही का साम्राज्य जाहो-जलाली पर था, उस समय जारशाही सरकार की बराबर कोशिश रहती थी कि खेती के लिए उपयोगी भूमि को कजाकों से छीन कर रूसियों को दे दी जाय। ९ नवंबर सन् १९०६ ई० को एक नया कानून बना कर कजाकों को उनकी भूमि से वञ्चित करने का भारी उपक्रम किया गया।

इस समय कजाक-जाति की सांस्कृतिक अवस्था बड़ी

हीन थी, उनमें निरक्षरता का अखण्ड राज्य था। इसी समय सन् १९०९ का यह अन्यायपूर्ण कानून जारी होने से गहरी नींद में सोये हुए कजाक लोग तिलमिला उठे। इसी समय रूस में १९०५-६ की प्रसिद्ध रूसी क्रान्ति भी प्रारंभ हो गई। इससे कजाकों के अन्दर भी कुछ चेतना जागृत हुई।

प्रथम विश्व-युद्ध में कजाकों के ऊपर और भी भयंकर संकट आया। भारी संख्या में उनके घोड़े और ऊँट लड़ाई के लिए छीन लिए गये और २५ जून सन् १९१६ ई० को 'जार निकोलाइ' द्वितीय ने एक राज्यादेश निकाल कर १९ से लगाकर ४३ वर्ष तक के सभी कजाक-पुरुषों को अनिवार्य रूप से सेना में भर्ती होने का आदेश दिया।

इन घटनाओं से कजाकजाति के अन्दर भीतर ही भीतर सुलगती हुई असन्तोष की आग एक विस्फोट में रूप में भड़क उठी और सत्तनद तथा तुर्गाई के जिलों में सब जगह बगावत फैल गई। सन् १९१६ के सितंबर में 'अमनगेल्दी-इमानोफ' नामक एक गरीब युवक के नेतृत्व में तुर्गाई में विद्रोह का प्रारंभ हुआ। इस युवक ने अपनी वीरता और सूझ-बूझ से विद्रोहियों का इतना अच्छा नेतृत्व किया कि 'जारशाही सरकार' बरसों तक उससे परेशान रही।

सन् १९१६ के अक्टूबर में कजाकों के हजारों-विद्रोही जत्थे जारशाही से टक्कर ले रहे थे। कभी-कभी इन जत्थों में १५०० तक आदमी शामिल हो जाते थे। इस विद्रोह को दबाने के लिए रूस की सरकार ने जेनरल 'लावरेंन्तेफ' के अधीन सैनिक अभियान भेजा, मगर विद्रोह दबाने की जगह उस साल के नवंबर महीने में सारे कजाकस्तान में फैल गया। इस विद्रोह ने गरीबों के विद्रोह का रूप धारण कर लिया। क्योंकि अमीर और धनी कजाक लोगों को इस विद्रोह से डर लगने लगा और वे इस विद्रोह को दबाने में जारशाही की पूरी मदद करने लगे।

इसके पश्चात् रूसी-सेना के प्रबल प्रहार के कारण अमनगेल्दी-इमानोफ को तुर्गाई से भागकर बतपक-करा के इलाके में शरण लेनी पड़ी। सन् १९१७ की जनवरी में उसने इस विद्रोह को भड़काने का पुनः प्रयत्न किया, मगर रूसी-सेना की करारी चोट के कारण उसको अपने साथियों सहित वहाँ से भी भागना पड़ा। विद्रोह का दमन करने में जारशाही ने बड़ी क्रूरता का परिचय दिया। सत्तनद के निवासियों में से तीन लाख स्त्री-पुरुष भागकर चीन के इलाके में चले गये। कितने ही गाँव के गाँव उजड़ गये और १९१६ की यह क्रान्ति बड़ी निर्ममता के साथ दबा दी गयी। मगर इस दबी हुई क्रान्ति में से जो चिनगारियाँ फूट रही थीं उन्होंने दो-ढाई वर्ष के बाद ही इतिहास-प्रसिद्ध अक्टूबर-क्रान्ति के साथ साथ जारशाही का जुआ अपने कन्धों से उतार कर फेंका। उनका नेता 'इमानोफ' भी समझ गया कि अब सभी गरीब और मजदूरों की भलाई 'बोल्शेविक' क्रान्ति का साथ देने में हैं। वह अन्त में बोल्शेविक-पार्टी में शामिल हो, क्रान्ति के लिए लड़ा और कजकस्तान के इतिहास में उसने अपना नाम अमर कर दिया।

इसके पश्चात् सन् १९१९ में बोल्शेविक-क्रान्ति का साथ देने के लिए 'कजाकस्तान' में भी कई बड़े-बड़े युवक-संगठनों की स्थापना हुई। १९१८ से १९१९ की समाप्ति तक कजाकस्तान में भीषण गृह-युद्ध होता रहा। क्रान्ति-विरोधी कजाक और रूसी-दोनों ही नवजात सोवियट-सरकार को उखाड़ फेंकने के लिए हर तरह की कोशिश कर रहे थे। सन् १९१९ में क्रान्ति-विरोधी जेनरल 'कोलचेक' के साथ क्रान्तिकारियों की अन्तिम लड़ाई हुई जिसमें क्रान्तिकारियों ने पूर्ण विजय प्राप्त की।

४ अप्रैल सन् १९१९ ई० को कजाकस्तान के सोवियटों की कांग्रेस हुई जिसमें 'किरगिज' लोगों के बारे में भी विचार किया गया। अभीतक किरगिज और कजाक दोनों एक ही गणराज्य में थे, मगर अब जातियों के आत्मनिर्णय के अनुसार किरगिजों को भी अपना स्वतन्त्र गणराज्य कायम करने का अवसर मिला।

इस प्रकार बोल्शेविक-क्रान्ति ने सोवियट-संघ के अन्तर्गत क्षेत्रफल में दूसरे नंबर के सबसे बड़े गणराज्य 'कजाकस्तान' की स्थापना की। कई पंचवर्षीय योजनाओं ने कजाकों के आर्थिक तथा सांस्कृतिक धरातल को बहुत ऊँचा कर दिया है। इरतिश-नदी के जल को ध्रुवीय समुद्र से हटाकर दक्षिण की ओर मोड़ने की जो विशाल योजना बनाई जा रही है, उसके कारण तो मनुष्य अपनी

महान् शक्ति का प्रयोग करके इस भूमि को एक दूसरा ही रूप देने जा रहा है।

कञ्जर

खानाबदोश, चोरी के धन्धे में निपुण प्रसिद्ध जाति जो विशेषकर मध्यप्रदेश, राजस्थान और उत्तरप्रदेश में फैली हुई है।

कंजर जाति सांसिया, साटिया, बनजारा, जोगी, सँपेरा इत्यादि घुमक्कड़ कबीलों की तरह कबीला बनाकर रहती है।

परंपराओं के अनुसार कंजर-जाति उनके पूजनीय मूलपुरुष 'मानगुरू की सन्तान' मानी जाती है। 'मान' अपनी पत्नी 'नथिया' कंजरनी के साथ जंगल में रहता था। यह भी कहा जाता है कि उसने तत्कालीन दिल्ली सुल्तान के दरबार में शाही पहलवान को कुश्ती में हराया था।

कंजर-जाति के अन्दर भी कई गोत्र और उपगोत्र पाये जाते हैं। इन गोत्रों में हिन्दू और मुसलमान—दोनों प्रकार के गोत्र पाये जाते हैं। इनके मुख्य देवता 'अलमुण्डी' और 'असपाल' माने जाते हैं। इनको प्रसन्न करने के लिए ये लोग बकरे और सुअर की बलि देते हैं। विवाह होने के पूर्व लड़कियों को 'यौन-स्वतन्त्रता' पर्याप्त मात्रा में रहती है। मगर विवाह के पश्चात् इस प्रकार के सम्बन्ध हेय समझे जाते हैं। कुछ कंजर-स्त्रियाँ भीख माँगने के साथ-साथ वेश्या-वृत्ति भी करती हैं। चोरी करने की कला में कंजर जाति अन्य सभी खानाबदोश जातियों की अपेक्षा अधिक चतुर होती हैं। सेंध मारना, वेष बदलना, कठिन से कठिन दीवारों पर चढ़ जाना इत्यादि अनेक प्रकार की कलाओं में यह जाति अपनी जोड़ नहीं रखती।

ब्रिटिश-शासन के टाइम में यहाँ की पुलिस ने इस कंजर-जाति की चौर्य-प्रवृत्ति को रोकने के लिए बहुत कोशिशें कीं, मगर पूरी सफलता फिर भी प्राप्त न हुई।

अब भारत-सरकार दूसरी खानाबदोश जातियों के साथ-साथ इस जाति के लोगों को भी खेती-बाड़ी, पशुपालन इत्यादि के स्थायी कामों में लगाने का प्रयत्न कर रही है जिससे इन लोगों की अपराध-वृत्ति का खातमा किया जा सके।

कंजर-जाति भी अब इस वास्तविकता को समझ गई है और धीरे-धीरे अपने अपराधी जीवन को छोड़कर वह रास्ते पर आने लगी है।

कञ्चनलता सब्बरवाल

“हिन्दी भाषा की एक प्रसिद्ध साहित्यकार जिन्होंने लखनऊ युनिवर्सिटी में डॉक्टर की उपाधि प्राप्त की। इनका जन्म सन् १९२८ में हुआ। महिला-विद्यालय लखनऊ की आचार्या हैं।

श्रीमती कंचनलता सब्बरवाल ने समाजशास्त्र, आचार-शास्त्र, गृहविज्ञान, बालमनोविज्ञान इत्यादि विषयों पर लिखा है। इनके उपन्यासों में मूक प्रश्न, संकल्प, मूक तपस्वी, अनजान रातें, तथा नाटकों में लक्ष्मीबाई, आदित्यसेन गुप्त; भीगी पलकें इत्यादि रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। इनकी “संकल्प” और “मूक तपस्वी” नामक रचनाओं पर 'सेकसरिया पुरस्कार' और उत्तरप्रदेश शिक्षा-विभाग से पुरस्कार मिल चुके हैं।

कटोच-राजवंश

चन्द्र-वंशी राजपूतों की एक शाखा, जो महाभारत के काल में 'त्रिवर्ग' देश अर्थात् पंजाब के जालन्धर और कोट काँगड़ा के क्षेत्र में राज्य करती थी।

महाभारत के युद्ध में जब सुशर्मा ने कौरवों की ओर से युद्ध किया था, तब से यह राज्य चला आ रहा है। यही कटोच-राजवंश का ज्ञात पूर्वज है। इसके वंश के सीधे वारिस महाराज सर जयचन्द जिला काँगड़ा के लम्बगाँव में रहते थे और पूर्व हिमालय के राजपूत लोगों पर इनका अच्छा प्रभाव था।

अभी तक यह निश्चय नहीं हो सका है कि मुहम्मद गजनवी के आक्रमण के समय यहाँ पर कौन सा राजा राज्य करता था। फिर भी इतना निश्चित है कि वह पंजाब के शाही राजा आनन्दपाल का माण्डलिक रहा होगा।

सन् १००९ में मुहम्मद गजनवी ने 'कोट काँगड़ा' के किले पर, जो कि उस समय अजेय समझा जाता था और जिसमें अटूट सम्पत्ति भरी हुई थी—आक्रमण किया।

इतिहासकार उतबी के अनुसार मुहम्मद की प्रचण्ड सेना को देखकर किले के दुर्ग-रक्षकों ने आत्मसमर्पण कर दिया।

उसके पश्चात् ई० सन् १०४० से ४४ ई० के बीच कटोच राजा इन्द्रचन्द्र ने दिल्ली के राजाओं की सहायता से फिर इस किले को जीत लिया। उसके बाद यह किला कभी कटोच-राजाओं के हाथ में और कभी मुसलमान-बादशाहों के हाथों में जाता-आता रहा।

इसके पश्चात् इस राजवंश में संसारचन्द्र प्रथम, घमंडचन्द्र, संसारचन्द्र द्वितीय, धर्मचन्द्र इत्यादि कई राजा हुए। राजा संसारचन्द्र ने ई० सन् १८०६ में यह किला राजा रणजीतसिंह को दे दिया। रणजीतसिंह के बाद यह किला अंग्रेजों के अधिकार में आया।

इस प्रकार कटोच-राजवंश के साथ इस किले का बहुत अधिक सम्बन्ध रहा।

कटक

उड़ीसा-राज्य का एक प्रधान नगर जो कलकत्ता-मद्रास रेलवे लाइन पर महानदी के किनारे पर बसा हुआ है और जिसकी जन-संख्या एक लाख से अधिक है।

कटक उड़ीसा में एक बहुत प्राचीन नगर है। कुछ लोगों के मत से ईसा की १०वीं शताब्दी में केशरी-वंश के किसी राजा के द्वारा इस नगर की स्थापना की गई थी मगर कुछ इतिहासकारों के मतानुसार 'कटक' का इतिहास इससे भी पुराना है। भवगुप्त नामक नरेश जिसने ६वीं सदी में राज्य किया था, उसके अनुशासन-पत्र में भी कटक का उल्लेख मिलता है। इससे पता चलता है कि उस समय भी कटक विद्यमान था।

उड़ीसा की लोकोक्तियों के अनुसार इस नगर की स्थापना राजा 'जनमेजय' ने नागयज्ञ के समय में की थी। कटक नगर से डेढ़ मील दूर पर 'कटक-चौद्वार' नामक एक ग्राम है। यह ग्राम किसी समय में बहुत ही समृद्धिशाली था। इसी प्राचीन नगर के पार्श्व पर 'कपालेश्वर' नामक दुर्ग है। उत्कलराज 'चोड़गंग' के समय में इस दुर्ग में एक बड़ा जलाशय खोदा गया था। अभी भी यह जलाशय चोड़गंग के पोखरे के नाम से प्रसिद्ध है। कटक नगर में १२वीं शताब्दी में राजा 'अनंग भीम' ने 'बड़बाटी' नामक एक किला बनावाया था। सन् १७५० ई० में अहमद शाह के शासन-काल में इस दुर्ग के उत्तर-पश्चिम में प्राचीरें बनाई गई थीं। आइने-अकबरी के मत से इस किले के अन्तर्गत राजा मुकुन्ददेव का नौ मंजिला मकान बना हुआ था, मगर अब तो वहाँ उसके निशान तक बाकी नहीं हैं। बड़बाटी का किला पुराने अवशेषों के रूप में महानदी के किनारे पर दिखलाई पड़ता है।

मुस्लिम-काल में कटक के अन्दर लालबाग नगर का निर्माण हुआ। कई सदियों तक यह लालबाग नगर भी राज्य की गति-विधियों का केन्द्र रहा। रेलवे लाइन के बन जाने पर कटक का विस्तार पूरब दिशा की तरफ बढ़ने लगा।

पहले यह नगर बहुत समय तक उड़ीसा की राजधानी रहा, मगर अब राजधानी भुवनेश्वर में चली जाने से इस शहर का राजनैतिक महत्व कम हो गया। फिर भी सांस्कृतिक और ऐतिहासिक दृष्टि से इसका महत्व ज्यों का त्यों है।

कटनी

इलहाबाद और जबलपुर के बीच सेंट्रल रेलवे की लाइन पर मध्यप्रदेश में बसा हुआ एक औद्योगिक नगर और जंकशन।

कटनी एक औद्योगिक नगर है। यहाँ पर चूना, सीमेंट इत्यादि के कई बड़े-बड़े कारखाने स्थापित हैं।

कटांगा

अफ्रीका के कांगो नामक प्रदेश के एलिजाबेथ विले के प्रान्त का एक जिला, जिसका क्षेत्रफल ४६४५६ वर्ग-मील है। इस जिले के दक्षिण-पश्चिम में उत्तरी रोडेशिया उत्तर-पश्चिम में टाँगानिका और पूरब में लवालाबा नामक इसी प्रदेश का एक जिला है।

यह सारा जिला 'कटांग' नामक पठार पर बसा हुआ है और इसी पठार से कांगो नामक प्रसिद्ध नदी निकल कर

'अटलांटिक' महासागर में गिरती है। यह जिला अपने खनिज पदार्थों के लिए सारे संसार में प्रसिद्ध है।

इस जिले तथा उत्तरी रोडेशिया के बीच में ताँबे की खदान का एक विस्तृत क्षेत्र लगा हुआ है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इस क्षेत्र में १२ करोड़ टन से भी अधिक ताँबे का भंडार भरा हुआ है। अभी यहाँ से प्रतिवर्ष २ लाख टन ताँबा निकाला जाता है।

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् जब कि अफ्रीका के अनेक उपनिवेशों को आजादी प्राप्त हुई, उस समय से कटांगा के इस जिले ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक महत्व ग्रहण कर लिया था। इसी सिलसिले में बेल्जियम के द्वारा शासित कांगो-प्रदेश ने भी अपनी गुलामी के बन्धन काट कर आजादी की करवट ली और स्वाधीन 'कांगो' के प्रधान मंत्री 'लुलुम्बा' बनाये गये।

उस समय कटांगा प्रदेश का शासक 'शोम्बे' नामक व्यक्ति था। ऐसा समझा जाता है कि यह व्यक्ति बेल्जियम वालों से मिला हुआ था। उत्तरी रोडेशिया भी इसकी मदद पर था। शोम्बे लुलुम्बा का शासन पसन्द नहीं करता था और वह कटांगा को एक स्वतंत्र प्रदेश के रूप में बनाना चाहता था। इसी सिलसिले में कांगो के अन्तर्गत भयंकर गृह-युद्ध का प्रारंभ हुआ जिसमें लुलुम्बा की हत्या कर दी गई। राष्ट्रसंघ कांगो के इस गृह युद्ध को जल्दी-से-जल्दी दबाना चाहता था। इसके लिए उसने कई राष्ट्रों से सैनिक सहायता भी माँगी। भारत से भी ६००० सेना इस गृहयुद्ध का दबाने के लिए गई थी।

राष्ट्रसंघ के महासचिव "डॉग हैमरशील्ड" भी इस समस्या के समाधन के लिए कांगो गये थे। मगर जब वे एक हवाई जहाज पर यात्रा करने वाले थे उस समय उस हवाई जहाज पर कुछ विस्फोटक पदार्थों को षड्यंत्र के द्वारा रखवा कर उनकी भी हत्या कर दी गई।

हैमरशील्ड की इस हत्या से सारे संसार में एक तहलका-सा मच गया मगर फिर भी बहुत समय तक शोम्बे अपनी मनमानी करता रहा। अन्त में राष्ट्रसंघ के साथ उसका एक समझौता हुआ और उसके बाद यहाँ पर शान्ति स्थापित हुई।

कठपुतली

लकड़ी से बनाई हुई पुतलियों को साज-शृंगार से सजाकर उनको तरह-तरह के नाटकीय पात्रों का रूप देकर रंगमंच पर अभिनीत किया जाने वाला, एक विशेष प्रकार का खेल, जो संसार के सभी सभ्य देशों में भिन्न-भिन्न रूप में खेला जाता है।

कठपुतली खेल का इतिहास बहुत पुराना है। ऐसा समझा जाता है कि कठपुतलियों के खेल की परंपरा में से ही आगे जाकर नाट्य-कला का विकास हुआ है।

सबसे पहले कठपुतली के खेलों का प्रारंभ संसार के किस देश में हुआ, यह विषय अभी विवादास्पद है। डॉ० पिशेल नामक विद्वान् के मत से कठपुतली के खेलों का मूल उत्पत्तिस्थान भारतवर्ष है। उनके मत से संस्कृत के नाटकों की उत्पत्ति कठपुतली के खेलों से ही हुई और यहीं से आगे जाकर वे सारे संसार में फैले।

कुछ विद्वानों के मतानुसार कठपुतली के खेलों का प्रारंभ योरोप में हुआ, जहाँ से वह चीन में और चीन से अमेरिका में पहुँचा।

ग्रीक-सभ्यता के अन्तर्गत ईसा से ३-४ शताब्दी पूर्व कठपुतलियों के खेल के संकेत मिलते हैं। भारतवर्ष के आदिग्रन्थ ऋग्वेद में भी कठपुतलियों के खेलों में अभिनीत होने वाले संवादों की तरह के कुछ उदाहरण पाये जाते हैं। पुरुरवा और उर्वशी, यम औरयमी, इन्द्र और शची इत्यादि के संवाद इसी प्रकार के खेलों की भूमिका प्रस्तुत करते हैं। संस्कृत के नाटकों के आरंभ में जिस सूत्रधार नामक पात्र का प्रयोग होता है, वह अवश्य ही शुरू शुरू में इन कठपुतलियों के खेल से सम्बन्धित रहा होगा। सूत्रधार सूत्र को पकड़ने वाले पात्र का नाम होता है और इसी सूत्र के द्वारा कठपुतलियों का संचालन किया जाता है। इसलिए आश्चर्य नहीं कि यदि यह 'सूत्रधार' शब्द कठपुतलियों के खेल से ही नाटक में पहुँचा हो।

जो कुछ भी हो, और कहीं से भी इस कला का प्रारंभ हुआ हो, मगर यह निश्चित है कि यह खेल भारतवर्ष की अपेक्षा योरोप और अमेरिका में भी अधिक लोकप्रिय हुआ।

योरोप में रोमन-साम्राज्य के काल में ही रोम के अन्तर्गत कठपुतलियों के लिए स्वतंत्र रंगमंच बनाये गये थे जो रोमन-साम्राज्य के पतन के पश्चात् भी कई सदियों तक चालू रहे। मध्यकाल के अन्तर्गत भी जब कि सब दूर रोमन-चर्च का बोलबाला था और विशेषकर धार्मिक नाटकों का ही अभिनय होता था, उस समय ये धार्मिक नाटक डोरियों के द्वारा सचालित कठपुतलियों के माध्यम से ही प्रचार किये जाते थे। इन कठपुतलियों को फ्रेंच भाषा में मारियानेट्स (Marionettes) कहते थे।

रेनेंसा या पुनर्जागरण के काल में कठपुतलियों का यह खेल फिर से लोकप्रिय हुआ और इन कठपुतलियों के खेल के लिए कथानक तैयार करने में बड़े-बड़े प्रसिद्ध लेखकों ने अपने जौहर बतलाये। इंगलैंड में कठपुतली-कला के लिए नाटक लिखने वाले बहुत से लेखक हुए। फ्रांस में कठपुतलियों के लिए स्थायी रंगमंच बनाये गये जिनमें कठपुतलियों के नाटक बड़ी सफलता के साथ खेले जाते हैं और उनमें दर्शकों की खासी भीड़ रहती है। जर्मनी के 'ड्रेसडन' नगर में कठपुतलियों का एक बड़ा म्युजियम (संग्रहालय) बना हुआ है और जैकोस्लाविया के प्राग-नगर में कठपुतलियों का प्रशिक्षण-केन्द्र भी है, जहाँ पर तीन वर्ष के कोर्स में कठपुतली-कला का प्रशिक्षण दिया जाता है।

अमेरिका में भी इस कठपुतली-कला का काफी विकास हुआ है और इस कला में वहाँ के बेयर्ड-दम्पति—बिल और कोरा—को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्ति हुई है। कलाकार बिल कठपुतली नचाने की कला में विश्व के सर्वश्रेष्ठ कलाकारों में माने जाते हैं और उनकी कठपुतलियों का तमाशा अमेरिका में 'टूडे' नामक प्रातःकालीन कार्यक्रम के अन्तर्गत टेलीवीजन पर प्रस्तुत किया जाता है। बिल ने कठपुतलियों के मास्टर 'टोनीसार्ग' के निर्देशन में पाँच वर्ष तक इस कला का प्रशिक्षण प्राप्त किया। उसके पश्चात् उनका परिचय 'ब्रॉडवे थियेटर' की युवा अभिनेत्री कोरा से हुआ। इस परिचय ने प्रेम का रूप धारण कर लिया जो आगे जाकर विवाह के रूप में परिणत हो गया।

बिल और कोरा के इस मिलन से कठपुतली-कला को अन्तर्गत एक नवीन जीवन का संचार हो गया जिसके परिणाम स्वरूप न्यूयार्क में ग्रीनविच ग्राम के मध्य एक छः मंजिली इमारत में 'फायर हार्समेन वर्कशाप' में लगभग एक हजार कठपुतलियाँ अपने संचालक के द्वारा जीवनदान की प्रतीक्षा करती रहती हैं। इन कठपुतलियों के द्वारा किये जाने वाले नाटकों में सबसे प्रसिद्ध नाटक 'डेवीजान्स लाकर' नाम का है। जिसमें समुद्र-जलपरी, समुद्री राक्षस इत्यादि अनेकों ऐसे कठिन दृश्य हैं, जिनका अभिनय स्टेज पर कठपुतलियों के द्वारा कराना अत्यन्त कठिन है मगर बेयर्ड-दम्पति ने इन कठिन अभिनयों को बड़ी सफलता के साथ प्रस्तुत किया है, जिसे देखकर दर्शकों को इतना आनन्द आता है कि वे अपने-आप को भूल जाते हैं। समुद्र के गर्भ में होने वाले समुद्री राक्षस तथा जलपरी के संवाद, प्रेतात्माओं तथा जलपरियों के समुद्रगर्भ में होने वाले नृत्य, अतलगर्भ में जलपरियों का ताल-स्वर सहित नर्तन-गायन, रंगमंच के परदे के साथ पात्रों की वेष-भूषा का सामञ्जस्य तथा डेवीजान्सलाकर की घटनाओं एवं पात्रों की विविध चेष्टाओं में यह समस्त ज्ञान मुखरित होता है।

सन् १९६२ में बेयर्ड-दम्पति १५० कठपुतलियों के साथ कठपुतलियों की जन्मभूमि भारतवर्ष में भी आये थे। भारत में तीन महीने तक इनके प्रोग्राम हुए। यद्यपि इन पुतलियों की भाषा अंग्रेजी थी और ये पश्चिमी जीवन की एक झाँकी प्रस्तुत करती थीं, फिर भी भारतीय दर्शक इनके क्रियाकलापों को देखकर मुग्ध हो गये।

जावा के अन्दर चमड़े से मढ़ी हुई रँगी हुई तथा अलंकृत पुतलियों के द्वारा 'रामायण' और 'महाभारत' की घटनाओं पर आधारित खेल दिखाये जाते हैं जो कई रातों तक चलते हैं। इनके संगीत-वाद्यों में मृदङ्ग प्रमुख होता है।

भारतवर्ष में कठपुतली के खेलों का प्रधान केन्द्र राजस्थान रहा है। राजस्थान के पेशेवर कठपुतली-चालक विशेष सम्पन्न न होने के कारण रंगमंच के अभाव में खुले स्थानों पर ही इनका अभिनय करते हैं, मगर सस्ता और सुलभ होने पर भी इन अभिनयों में कला का बहुमुखी प्रदर्शन होता है।

कठपुतलियों के प्रकार

कठपुतलियाँ प्रधान रूप से चार प्रकार की होती हैं।

एक प्रकार की कठपुतलियाँ रंगमंच पर डोरी के द्वारा संचालित की जाती हैं। नेपथ्य में बैठे हुए कठपुतली-चालक पतली-पतली काली-काली डोरियों के द्वारा इन कठपुतलियों का संचालन करते हैं और कठिन से कठिन दृश्य और सूक्ष्म से सूक्ष्म मनोभावनाओं का उनके द्वारा ऐसा स्वाभाविक प्रदर्शन करवाते हैं, जैसे सजीव प्रतिमाएँ ही काम कर रही हों।

दूसरे प्रकार की कठपुतलियाँ भीतर से खोखली होती हैं और उनको हाथों में पहन कर चलाया जाता है।

तीसरी तरह की कठपुतलियाँ डोरी के बजाय तीलियों से चलाई जाती हैं।

और चौथे प्रकार की कठपुतलियाँ कार्डबोर्ड से बनाई जाती हैं। ये छाया-नाटकों के काम में आती हैं। इनका नाच एक सफेद पर्दे के पीछे होता है जिन पर पीछे से प्रकाश डाला जाता है और कठपुतलियों की छाया परदे पर पड़ती है। यह खेल भी बड़ा दिलचस्प होता है और इनके संवाद कला की दृष्टि से उच्चकोटि के होते हैं। चुम्बक के द्वारा अपने आप चलने-फिरने और नाचनेवाली कठपुतलियाँ भी यूरोप में तैयार हो गई हैं।

कठ-उपनिषद्

कठोपनिषद् सारे उपनिषद्-साहित्य में बहुत प्रसिद्ध है। यह कृष्ण-यजुर्वेद की एक शाखा के अन्तर्गत है। इसमें नचिकेता और यम के सम्वाद के रूप में सृष्टि, ईश्वर और पुनर्जन्म के रहस्यमय तत्वों का बड़ा ही उपयोगी और विशद् वर्णन किया गया है। इसमें दो अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में तीन-तीन वल्लियाँ हैं।

कथानक में महर्षि अरुण के पुत्र उद्दालक ऋषि ने 'विश्वजित' नामक एक महान् यज्ञ करना प्रारंभ किया। इस यज्ञ में यज्ञ करने वाले को अपने सर्वस्व का दान करना पड़ता है। उद्दालक ऋषि के पुत्र का नाम नचिकेता था। इस यज्ञ में जो गौवें दान देने के लिए लाई गई थीं वे अत्यन्त बुड्ढी, मरियल और गर्भधारण करने में असमर्थ थीं।

बालक नचिकेता यह सब दृश्य देख रहा था। वह बड़ा बुद्धिमान और निर्मल अन्तःकरण का बालक था। इन गायों को देखकर वह सोचने लगा—"पिता जी ये कैसी गौवें यज्ञ की दक्षिणा में दे रहे हैं। अब न तो इनमें झुक कर जल पीने की शक्ति है और न घास चबाने के लिए मुख में दाँत ही रह गये हैं। ऐसी निरर्थक और मृत्यु के मुख में पहुँची हुई गायें, जिन ब्राह्मणों के घर जायँगी, उनको दुःख के सिवाय और क्या देंगी। इस प्रकार के दान से तो दाता को नीच योनि और नरक प्राप्त होता है। पिताजी इस दान से क्या सुख पायेंगे। उन्होंने अच्छी-अच्छी और उपयोगी गौवों को तो मेरे नाम पर रख लिया है और इन बुड्ढी तथा मरियल गायों को सर्वस्व दान के रूप में ब्राह्मणों को दे रहे हैं। फिर उनके सर्वस्व में तो मैं भी हूँ। मुझको इन्होंने दान में क्यों नहीं दिया। इसलिए पुत्र के नाते पिताजी को इस अनिष्टकारी परिणाम से बचाने के लिए मैं अपना बलिदान कर दूँगा। यही मेरा धर्म है।"

यह निश्चय करके उसने अपने पिता से कहा—"पिताजी! आपके सर्वस्व में मैं भी तो एक हूँ। आप मुझे किसको दान करते हैं?"

नचिकेता के इस प्रश्न का उसके पिता ने कोई जवाब नहीं दिया। तब दूसरी बार नचिकेता ने यही प्रश्न किया। फिर भी जवाब न मिलने पर जब नचिकेता ने तीसरी बार भी अपने पिता से वही प्रश्न किया तब ऋषि ने क्रोध में आकर कहा—"जा मैं तुझे यमराज को देता हूँ।"

पिता के इन वचनों को सुनकर नचिकेता ने उनसे यमराज के पास जाने की आज्ञा माँगी। नचिकेता की सत्यपरायणता को देखकर ऋषि ने उसे यमराज के पास भेज दिया। वहाँ जाने पर उसे मालूम हुआ कि यमराज कहीं बाहर गये हुए हैं। अतएव नचिकेता तीन दिन तक बिना अन्न-जल ग्रहण किये, उनके द्वार पर बैठा रहा। जब यमराज वापस आये तो उन्हें इस भूखे-ब्राह्मण बालक

को देखकर बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने तीन रात्रियों की भूख के बदले उसे तीन मनोवांछित वर माँगने को कहा—

नचिकेता ने पहला वर यह माँगा कि मेरे पिता जो क्रोध के वश में मुझे आपके पास भेज कर अशान्त और दुखी हो रहे हैं उनकी वह अशान्ति और दुःख दूर हो जाय और वह पहले की तरह मुझसे प्रेम करने लगें।

यमराज के 'तथास्तु' कहने पर नचिकेता ने दूसरा वर, स्वर्ग-लोक की प्राप्ति के लिए 'अग्नि-विद्या' के रहस्य की जानकारी का माँगा। यमराज ने 'तथास्तु' कहकर अग्निविद्या की महत्ता और गोपनीयता बतलाकर स्वर्गलोक की कारणरूप अग्निविद्या का रहस्य नचिकेता को बतलाया।

दो वरों की प्राप्ति हो जानेपर तीसरा वर माँगते हुए नचिकेता ने कहा—"भगवन्! मृत ममुष्यों के सम्बन्ध में एक बड़ा सन्देह फैला हुआ है। कुछ लोग तो कहते हैं कि मृत्यु के बाद भी आत्मा का अस्तिव रहता है और कुछ लोग कहते हैं कि नहीं रहता। इस विषय में आपका जो अनुभव हो, वह आप मुझे बतलाइये!"

नचिकेता के इस प्रश्न को सुनकर यमराज घबराये। उन्होंने कहा—"नचिकेता! यह आत्मतत्व अत्यन्त सूक्ष्म विषय है। इसका समझना सहज नहीं है। पहले देवताओं को भी इस विषय में सन्देह हुआ था। उनमें भी बहुत विचार-विनिमय हुआ, परन्तु वे भी इसे जान न पाये। अतएव तुम इस वर के बदले में कोई दूसरा वर माँग लो। प्रचुर धन-सम्पत्ति, दीर्घ जीवन, संसार का साम्राज्य या और अच्छी-से-अच्छी वस्तु तुम इसके बदले में माँग लो, मगर इस वर का हठ छोड़ दो!"

मगर नचिकेता अपने संकल्प पर दृढ़ रहा और संसार के सब भोगों की तुच्छता और अनित्यता को बतला कर 'ब्रह्मविद्या' की जानकारी प्राप्त करने के अपने निश्चय पर वह अटल रहा।

इसी 'ब्रह्मविद्या' की जो जानकारी यमराज ने नचिकेता को बतलाई वह इस उपनिषद् के दूसरे भाग में वर्णित की गई है। ब्रह्मविद्या का इतना सुन्दर, सरल और संक्षिप्त विवेचन अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलता।

कथकली नृत्य

एक सुप्रसिद्ध भारतीय नृत्य जिसका विकास भारत के केरल प्रान्त में हुआ।

कत्थकली नृत्य के सम्बन्ध में केरल में एक किंवदन्ती इस प्रकार प्रचलित है—

सत्रहवीं सदी में कालीकट में जमोरिन मानवेद नामक राजा राज्य करता था। एक दिन जमोरिन जब अपने महल में सो रहा था तो अचानक वंशी के मधुर स्वर से उसकी आँख खुल गई। उसको अनुभव हुआ कि एक दिव्य प्रकाश से उसका कमरा आलोकित है और स्वयं भगवान् कृष्ण वंशी बजाते हुए उसे दर्शन दे रहे हैं और उसे अपनी लीला करवाने का आदेश दे रहे हैं।

इस आदेश को पाकर दूसरे ही दिन जमोरिन ने कृष्णलीला का आयोजन किया। जगह-जगह से नृत्य और संगीत के कलाकारों को बुलाया गया। बड़े ठाट-बाट से उसके महल में सफलता पूर्वक लीला सम्पन्न हुई। इस लीला का नाम रक्खा गया "कृष्णाट्टम"

इस लीला की प्रशंसा जब ट्रावनकोर की कोट्टारकारा रियासत के राजा के पास पहुँची तो उसने भी अपने यहाँ इसी प्रकार रामचन्द्र के जीवन के आधार पर एक लीला तैय्यार करवाई। कोट्टारकारा का राजा स्वयं एक उत्कृष्ट कवि और कला-पारखी था।

रामायण के उन अंशों को जो रंगमंच पर खेले जा सकते थे चुनकर उनको संस्कृत निष्ठ मलयालम भाषा की कविता के रूप में बदला गया और फिर कर्नाटकी संगीत-पद्धति पर उन्हें कसा गया। इस लीला का नाम रक्खा गया "रामनाट्टम"

लोकप्रिय भाषा में लिखे जाने के कारण यह लीला बहुत लोकप्रिय हुई और दूर-दूर के लोग इसे देखने आये।

इसी रामनाट्टम से कत्थकली की पूर्व परम्परा का जन्म हुआ। इसके अतिरिक्त केरल में "कालीआट्टम" "देवाट्टम" 'कुरतिआट्टम', मोहिनीआट्टम इत्यादि और भी कई नृत्यनाट्य प्रचलित हैं।

कत्थकली का इस प्रकार प्रारम्भ होने पर इसे शास्त्रीय रूप दिया जाने लगा। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र तथा

नन्दिकेश्वर के 'अभिनय-दर्पण' नामक ग्रन्थों के आधार पर इसे शास्त्रीय रूप दिया गया।

कत्थकली की कथावस्तु

कत्थकली नृत्य की कथावस्तु प्रधानरूप से कृष्णचरित्र, नलचरित्र, उत्तरास्वयंवर, सुभद्राहरण, कीचकवध आदि अनेक प्रकार की पौराणिक कथाओं से तैय्यार की जाती है। मगर अब जब कि इस नृत्य ने अन्तर्राष्ट्रीय महत्व ग्रहण कर लिया है तो विदेशों में लोकप्रियता प्राप्त करने के लिए इसके कलाकारों ने लोक-जीवन और उसकी समस्याओं से सम्बन्धित कुछ आधुनिक कथावस्तु भी तैयार कर लिये हैं।

कत्थकली नृत्य का अभ्यास करने वाले विद्यार्थी को संस्कृत की पुराण-कथाएँ, संस्कृतमयी मलयालम-कविता और नाट्यशास्त्र का अभ्यास करना पड़ता है। कत्थकली का मुद्राकोष प्राचीन नाट्यशास्त्र के मुद्रालक्षणों से बहुत बढ़ गया है। विद्यार्थी को उन सब मुद्राओं का अभ्यास करना पड़ता है। गायकों के द्वारा कथावस्तु के चरण कविता में गाये जाते हैं। नर्तक उन चरणों के एक-एक शब्द को मुद्राओं में उतारता है।

कत्थकली के वाद्य

कत्थकली नृत्य के वाद्यों में "चेएडा" "मड्डुलम" "बीन" "बाँसुरी" और "मंजीर" प्रधान हैं।

चेएडा—कत्थकली नृत्य का मूल आधार "ताण्डव नृत्य" पर आधारित है। इसलिए इसमें वीर और रौद्ररस का वातावरण अधिक रहता है। इन रसों के अनुकूल वातावरण खड़ा कर देने की शक्ति "चेएडा" में बहुत अधिक रहती है। यह एक प्रकार का ढोल होता है जो वादक के गले में लटका रहता है। इसकी आवाज धरती को कम्पा देने वाली होती है। जिस प्रकार मारूबाजा सेना के सिपाहियों में जोश भर देता है उसी प्रकार "चेएडा" की आवाज नर्तक के मन में ओज और उसके पैरों में गति पैदा कर देती है। "चेएडा" नृत्य में मानों रौद्ररस की धारा बहा देता है। जिस समय कोई स्त्री पात्र अभिनय में आता है उस समय "चेएडा" बन्द कर दिया जाता है। वैसे कत्थकली के अभिनय में स्त्रियाँ कम ही आती हैं। स्त्रियों का पाट भी प्रायः पुरुष ही करते हैं।

मड्डुलम—यह मृदंग के आकार का वाद्य होता है। इसे हथेली तथा उँगलियों से बजाया जाता है। सूत की एक रस्सी से यह वादक की कमर में बँधा रहता है। इसका स्वर भी मृदंग की भाँति ही मधुर और कर्णप्रिय होता है। जब मड्डुलम और चेएडा दोनों जोर-जोर से बज उठते हैं तब प्रलय के समान दृश्य उत्पन्न हो जाता है। इन वाद्यों के साथ-साथ कभी-कभी बीन, बाँसुरी और मंजीर भी बजते हैं।

कत्थकली का प्रारम्भ अक्सर "तोड्यम्" नृत्य से होता है। यह एक प्रकार की नटेश्वर की प्रारम्भिक वन्दना होती है। इसमें वाद्य बड़ी मीठी आवाज में बजते हैं। और दो किशोर बालक लालित्यपूर्ण नृत्य करते हैं।

"तोड्यम" के बाद "पुरपट्ट" नृत्य का प्रारम्भ होता है। यह कत्थकली का परिचय-नृत्य होता है। इसके साथ गायक कथा के नायक के शौर्य्य, तेज और उदारता की प्रशंसा करता है। तब उसके नायक और नायिका मंच पर अवतीर्ण होते हैं।

कत्थकली की मुद्राएँ

कत्थकली-नृत्य में अभिनय के तीन प्रधान अङ्ग होते हैं।

(१) आहार्य्य (२) वाचिक और (३) आङ्गिक

(१) आहार्य्य—इस अङ्ग में नर्तक के बनाव, शृंगार, वेषभूषा और अलंकारों का समावेश होता है। नर्तक चाहे अभिनय की कला में दक्ष हो, ताल और लय को भी जानता हो मगर यदि उसका व्यक्तित्व और उसका शृंगार नायक की मर्यादा के अनुकूल न हो तो दर्शक आकर्षित नहीं हो सकते। इसलिए नर्तक और नर्तकी के व्यक्तित्व को सुन्दर और प्रभावशाली बनाने के लिए शृंगार और मेकअप की अनिवार्य्य आवश्यकता होती है।

(२) वाचिक—इस अंग में नायक के संवाद और गीत आते हैं। कत्थकली में यह कार्य्य गायकों की पृथक टोली सम्पन्न करती है। प्रवीण गायक, ढोल, मधु झंकार

करने वाले मंजीर, वीणा, मृदंग और किंकिणी-नृत्य के बहिर्प्राण माने जाते हैं।

(३) आंगिक—अंग, उपाङ्ग और प्रत्याङ्गों के द्वारा भावों का प्रदर्शन आंगिक अभिनय माना जाता है जो कत्थकली नृत्य का प्राण है।

इस आङ्गिक अभिनय और मुद्राओं का भरतमुनि के नाट्यशास्त्र और नन्दिकेश्वर के अभिनय दर्पण में विशद वर्णन किया गया है।

अभिनय दर्पण में मस्तक की सम, अधोमुख, आलोकित, कम्पित आदि नौ प्रकार की मुद्राएँ मानी गई हैं। भरत मुनि ने मस्तक की चौबीस मुद्राएँ बतलाई हैं। इसी प्रकार मन के विचारों को आँखों के द्वारा प्रदर्शित करने में आँखों की आठ मुद्राओं का उल्लेख है जिनमें "उग्र" "आलोकित" "प्रलोकित" "निमीलित" "विभ्रान्त" "लज्जित" "कुञ्चित" इत्यादि मुद्राएँ हैं। इसी प्रकार हाथों की ६४ हस्तमुद्रायें मानी गई हैं जिनमें चौबीस असंयुक्त (एक हाथ की) तेरह संयुक्त (दोनों हाथों की) और २७ सहायक मुद्राएँ हैं।

कत्थकली का नर्तक पैरों द्वारा भावना या रस-विशेष को प्रकट करने में अत्यन्त दक्ष रहता है। जिस समय नर्तक शृंगार भावना का प्रदर्शन करता है उस समय उसके नेत्रों से रस छलकता सा लगता है। जिस समय भय की भावनाओं को वह नेत्रों के द्वारा प्रकट करता है उस समय ऐसा मालूम होता है जैसे उसके पैरों में सर्प आ गया है। नेत्रों द्वारा भावों का यह प्रदर्शन अत्यन्त कष्ट साध्य है और इसकी साधना में विद्यार्थी को बरसों लग जाते हैं।

कत्थकली नृत्य की मुद्राओं का कोष बहुत विशाल है। समस्त देवता, विष्णु, शिव, प्राचीन भारत के प्रसिद्ध पुरुष, घटनाएं, नदियाँ, वृक्ष, पशु, पक्षी सभी का बोध इन मुद्राओं के द्वारा ही कराया जाता है। यदि नर्तक के दोनों हाथों की मुद्रा त्रिपताका हो तो समझना चाहिए कि उसका अभिप्राय विष्णु से है। यदि उसके एक हाथ की मुद्रा शिखर और दूसरे की मृगशीष हो तो उससे दम्पति का बोध होता है। सरस्वती के एक हाथ की मुद्रा अर्द्धचन्द्र और दूसरे हाथ की सूचि होती है।

कत्थकली का आरम्भ प्रायः शृंगार रस के दृश्यों से होता है। शुरू-शुरू में नायक, नायिका उपवन में विहार करते हुए दिखाई देते हैं। फिर धीरे-धीरे नाटक की गति बढ़ती है और इसका अन्त वीर या रौद्र रस में होता है। जिस समय रौद्र रस अपनी चरम सीमा पर पहुँचता है "चेण्डा" और "मण्डुलम" जोर से चीत्कार करने लगते हैं और सारे वातावरण में रौद्ररस भर जाता है। ऐसा लगता है मानों पृथ्वी काँप रही है और पात्रों के नेत्रों से अग्निवर्षा होने लगती है। स्त्रियाँ बच्चों को गोद से चिपका लेती हैं। चारों ओर भय का वातावरण छा जाता है।

केरल-कला-मण्डल

कत्थकली नृत्य को पूर्णतया शास्त्रीय रूप देने में और इस नृत्य के अनेक प्रसिद्ध कलाकारों को पैदा करने में मलयालम के महान् कवि बल्लतोल द्वारा स्थापित "केरल कलामण्डल" का प्रमुख स्थान है। इसी शिक्षण संस्था में कत्थकली नृत्य की प्रसिद्ध अधिष्ठात्री शान्ता देवी ने शिक्षा पाई। कत्थकली के आचार्यों में कुंजुकुरूप तेचुरमन पिल्लई, रेवन्तीमेनन, कवलप्पा, नारायणन नायर, गोपीनाथ, कुन्जन पन्निकर आदि के नाम प्रसिद्ध हैं।

कणाद

वैशेषिक दर्शन के रचयिता, परमाणु-सिद्धान्त के प्रथम पृष्ठपोषक भारतीय मुनि, जिनका समय अनुमानतः ईसा से पूर्व आठवीं सदी में माना जाता है।

कणाद मुनि के सम्बन्ध में कई प्रकार की किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं। एक किंवदन्ती यह है कि ये खेतों में बिखरे हुए अन्न के कणों को बीन-बीन कर उनसे अपनी क्षुधा शान्त करते थे। इससे इनका नाम "कणाद" पड़ा। दूसरी किंवदन्ती के अनुसार ये दिन भर तो विद्याध्ययन और लिखने-पढ़ने का काम करते थे और रात को उदर पूर्ति के लिए भिक्षावृत्ति पर निकलते थे इससे लोग इन्हें "उलूक" नाम से भी सम्बोधित करते थे।

कणाद वैशेषिक दर्शन के आदि प्रवर्तक हैं। इन्होंने अपने दर्शन में "विशेष" नामक एक विशिष्ट पदार्थ को स्वीकृत किया, इसी से इनके दर्शन का नाम "वैशेषिक दर्शन" पड़ा।

कणाद के मत से सृष्टि की उत्पत्ति में छह भावतत्त्व और एक अभावतत्त्व रहता है। छह भावतत्त्वों के नाम द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय है। इन भावतत्त्वों में द्रव्य नौ प्रकार का, गुण चौबीस प्रकार का, कर्म पाँच प्रकार का, सामान्य दो प्रकार का, समवाय और विशेष एक एक प्रकार का और अभाव चार प्रकार का होता है।

इनमें से सामान्य तत्त्व दो वस्तुओं में समानता और विशेष तत्त्व वस्तुओं को पृथकता प्रदान करता है। विशेष तत्त्व नित्य और अनन्त है। दो वस्तुओं के अन्दर रहने वाले नित्य सम्बन्ध को समवाय कहते हैं।

कणाद पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि में रहने वाले परमाणुओं के संयोग से ही सृष्टि की उत्पत्ति मानते हैं। उनका मत है कि परमाणु स्वयं शान्त और निष्क्रिय रहते हैं, लेकिन प्राणियों की भाग्यशृंखला या कर्मों से उनमें स्पन्दन होता है जिससे सृष्टि की उत्पत्ति होती है। अदृष्ट या कर्म ही प्राणियों के जन्म-मरण के चक्कर का मूल कारण है। इस अदृष्ट या कर्म का नाश होने पर ही प्राणी को मोक्ष की प्राप्ति होती है और वह संसार के बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

जिस परमाणु-सिद्धान्त का कणाद ने अपने दर्शनशास्त्र में सूत्ररूप में उल्लेख किया है, वही परमाणु-सिद्धान्त आजकल पाश्चात्य वैज्ञानिकों के अध्ययन का मूल केंद्र हो रहा है। इसी सिद्धान्त में से इन वैज्ञानिकों ने महान् भौतिक शक्तियों का अनुसन्धान कर लिया है।

परमाणु-सिद्धान्त का सूत्ररूप में अनुसन्धान करने का श्रेय यूनान के प्रसिद्ध विद्वान "डेमोक्रोटस" को दिया जाता है, जो ईसा से ४४० वर्ष पूर्व हुआ था। इसके पश्चात् एपीक्यूरियस ने भी परमाणु-सिद्धान्त पर विशेष विवेचन किया। मगर भारतवर्ष में तो इन सिद्धान्तों का विवेचन उससे भी बहुत पहले कणाद मुनि ने अपने वैशेषिक दर्शन में विशद रूप से किया है।

कणाद मुनि का वैशेषिक दर्शन ईश्वर को सृष्टि की उत्पत्ति में कारणभूत नहीं मानता। उनके दर्शन में ईश्वर का कहीं उल्लेख भी नहीं है। उनके मत से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इत्यादि पदार्थों के परमाणुओं के स्पन्दन से ही इस सृष्टि की उत्पत्ति होती है। जीवधारियों की कर्मशृंखला या अदृष्ट ही इन शान्त और निश्चेष्ट परमाणुओं को गति देता है और उसी गति से यह सृष्टि होती है।

आगे के टीकाकारों ने इसी अदृष्ट को ही ईश्वर की इच्छा मानकर ईश्वर का निरूपण किया है।

वैशेषिक पर श्रीधर की कन्दली टीका तथा उस टीका पर जैन विद्वान् राजशेखर की टीका विशेष प्रसिद्ध है।

कदम्ब-राजवंश

दक्षिण-भारत का एक प्राचीन और सुप्रसिद्ध राजवंश, जिसका शासन दक्षिण के वनवासी प्रदेश में ईसा की दूसरी शताब्दी के लगभग स्थापित हुआ था और जिसकी राजधानी 'करहाटक' या 'करहद' नामक नगर में थी।

कदम्ब-राज्यवंश का संस्थापक 'कदम्ब' नामक व्यक्ति आन्ध्र-शातवाहन राजाओं का माण्डलिक था। ईसा की दूसरी शताब्दी के मध्य में उसने वनवासी क्षेत्र में एक छोटे से राज्य की स्थापना की और 'करहद' नगर को अपनी राजधानी बनाया। कुछ लोगों के मत से इस वंश के पूजनीय वृक्ष 'कदम्ब' के नाम पर इस वंश का नाम कदम्ब राजवंश पड़ा।

कदम्ब-राजवंश के लोग अपने-आप को 'हारीत' ऋषि के वंशज और 'मानव्य-गोत्रीय' ब्राह्मण मानते हैं। इनके कुलदेवता का नाम मधुकेश्वर है।

इसी वंश में तीसरी सदी के अन्त में 'मयूर वर्म्मन' नामक एक प्रतापी राजा हुआ। इसने अपनी राजधानी करहद से बदल कर 'वैजयन्ती' या 'वनवासी' में स्थापित की। कहा जाता है कि इसने पल्लव, आभीर, पारियात्र, शकस्तान और मौखरी इत्यादि राजाओं को युद्ध में पराजित कर अपने राज्य का विस्तार किया।

इसकी चौथी पुश्त में 'काकुस्थ वर्म्मन' नामक राजा हुआ। इस राजा ने गंग, गुप्त और वकाटक-राजवंशों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करके उनसे मैत्री-सम्बन्ध स्थापित किया।

यह राजा चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का समकालीन था। काकुत्स्थ वर्म्मन का पुत्र 'शान्ति वर्म्मन' हुआ। इसने कदम्ब-राज्य के वनवासी, त्रिपर्वत और उच्छंगी नामक तीनों भागों को संगठित करके केन्द्रीय शासन की स्थापना की।

शान्ति वर्म्मन का पुत्र 'मृगेश वर्मन' हुआ। इसके समय में इसके चाचा 'कृष्ण वर्म्मन' प्रथम ने विद्रोह करके त्रिपर्वत प्रदेश पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार कदम्ब-राजवंश की दो शाखाएँ हो गई।

मृगेश वर्म्मन का पुत्र 'रवि वर्म्मन' हुआ। इसने कृष्ण-वर्म्मन के द्वारा स्थापित की गई दूसरी शाखा को हराकर सारे राज्य को एक कर लिया। रवि वर्म्मन एक प्रतापी और सुयोग्य नरेश था।

इसका पुत्र 'हरि वर्म्मन' हुआ जिसका समय ईसवी सन् ५२० से ५४० तक माना जाता है।

कदम्ब-राजाओं के समय में उनका राजधर्म शैव होने पर भी जैन-धर्म का बड़ा प्रभाव था। कई बड़े-बड़े जैनाचार्यों को इन राजाओं ने बहुत से दान दिये थे। राजा शान्ति वर्म्मन ने तो स्वयं अपनी द्वितीय राजधानी 'पलाशिका' में अपने पिता शान्ति वर्म्मन की स्मृति में एक भव्य जैन-मन्दिर का निर्माण करवाया था। इस राजा का 'हालमडी-अभिलेख' कन्नड़भाषा के सबसे प्राचीन अभिलेखों में से एक है।

इसके पश्चात् इस राजवंश का परिचय १०वीं, ११वीं और १२वीं शताब्दी में भी पाया जाता है। बंबई गजेटियर जिल्द १ भाग २ पृष्ठ ५५६-५६३ पर 'फ्लीट' ने इनका जो वर्णन दिया है, वह इस प्रकार है—

कदम्ब-राजवंश मराठा-कुल का प्राचीन राजवंश था। इसकी दो शाखाएँ थीं—एक धारवाड़ प्रदेश के हनगल प्रदेश में और दूसरी गोवा में राज्य करती थी।

कदम्ब-राजवंश का राजा द्वितीय कीर्तिबर्मन ई० सन् १०५८ में राज्य कर रहा था। यह सोमेश्वर चालुक्य और छठे विक्रमादित्य का सामन्त था। इसके पश्चात् इसका लड़का शान्ति बर्म्मन सन् १०८६ में छठे विक्रमादित्य के समय बनवासी और हनगाल-प्रदेश पर राज्य करता था। इसका पुत्र तैलप था। इसके कई शिलालेख हनगल तालुका में मिले हैं जो सन् १०६६ से ११२८ तक के हैं। इसको विष्णुबर्द्धन होयसल ने जीतकर अपने अधीन कर लिया था। इसके पुत्र मयूरबर्मन और मल्लिकार्जुन थे। ये सब राजा चालुक्य सम्राटों के मांडलिक थे।

इस कदम्बवंश की दूसरी शाखा गोवा में राज्य करती थी। इस शाखाने दक्षिण कोंकण के शिलाहार राजाओं से गोवा को जीतकर अपनी राजधानी बनाया था। इसके अतिरिक्त बेलगांव जिले के खानापुर तालुका के अन्तर्गत घाट पर के प्रदेश को भी इन्होंने जीत लिया था। यह प्रदेश उस समय "पलसिगे" के नाम से प्रसिद्ध था। यह राजवंश 'सप्तकोटिश्वर' नामक शिवलिंग का उपासक था और अपने लेखों में कलियुगी संवत् का उल्लेख करता था, शालिवाहन शक का नहीं। इसके लेख भी कनाड़ी भाषा में नहीं संस्कृत भाषा में लिखे हुए मिलते हैं। इनका लांछन सिंह और झण्डे पर वानर का चिन्ह रहता था। ये अपना गौत्र मानव्य और वंश हारीत ऋषि से मानते हैं।

इस कदम्बकुल की वंशावली "गुहल" नामक व्यक्ति से शुरू होती है। गुहल का पुत्र षष्ठदेव अर्थात् छट्ट था। इस राजा का एक शिलालेख ई० सन् १००७ का लिखा हुआ मिलता है। छट्ट का पुत्र जयकेशी अच्छा प्रतापी हुआ। गुडिकट्टि के एक शिलालेख में इसका विशद वर्णन दिया हुआ है। इसीने गोवा को जीतकर अपनी राजधानी बनाई। इसकी पुत्री मीनलदेवी का विवाह गुजरात के राजा कर्ण सोलंकी से हुआ था। इसका समय ई० सन् १०५२ को लग भग था।

जयकेशी के बाद राजा विजयादित्य राजा हुआ इसके पुत्र द्वितीय जयकेशी का विवाह चालुक्य नरेश विक्रमाङ्क की पुत्री से हुआ था। यह राजा अपने को कोंकण-चक्रवर्ती कहने लगा था और स्वाधीन होने की फिक्र में था। तब विक्रम के माण्डलिक प्रथम आचुगी ने चढ़ाई करके इसे पराजित कर दिया। इसके दो पुत्र थे पेमार्डी और विजयादित्य द्वितीय। पेमार्डी शिव का उपासक था और विजयादित्य विष्णु का। विजयादित्य बड़ा विद्वान् था इसके नाम को साथ "वाणिभूषण" की उपाधि का भी उल्लेख है। पेमार्डी की रानी सोमवंशोत्पन्न कमला देवी थी। इसने दो सुन्दर मन्दिर नारायण और लक्ष्मी के बनवाये थे। धारवाड़ जिले के सेगांव तालुका में वे विद्यमान हैं। पेमार्डी का समय ई० सन् ११४७ से प्रारम्भ माना जाता है। पेमार्डी ने अपने नाम के सिक्के भी ढलवाये थे। ई० सन् ११८२ में ढाली हुई इसकी एक स्वर्ण-मुद्रा भी प्राप्त हुई है।

विजयादित्य द्वितीय का पुत्र जयकेशी तृतीय हुआ। इसके सन् ११६६ और १२०१ के दो शिलालेख प्राप्त हुए हैं। इसका पुत्र त्रिभुवन मल्ल और उसका पुत्र षष्ठदेव द्वितीय हुआ जो ई० सन् १२४६ में गद्दी पर बैठा था।

इस वंश का अन्त किस प्रकार हुआ इसके सम्बन्ध में कोई मजबूत प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

कनफ्यूशस

चीन के महान् दार्शनिक और धर्मनेता जिनका जन्म ई० पू० ५५१ में और मृत्यु ई० पू० ४७८ में हुई।

कनफ्यूशस प्राचीन चीन के महान् धर्मनेता और दर्शन शास्त्री थे। इनका जन्म ई० पू० ५५१ में चीन के यू राज्य के गुफु नामक स्थान पर हुआ। उन्नीस वर्ष की उम्र में इनकी शादी हुई और २२ वर्ष की अवस्था में ये अपनी पत्नी को तलाक देकर धर्मसाधना और तत्व-चिंतन में लीन हो गये।

कनफ्यूशस ने अपने घर पर ही एक स्कूल खोला और बच्चों को शिक्षा देने लगे। धीरे-धीरे इनके स्कूल में विद्यार्थियों की संख्या ३००० तक पहुँच गई। इस विद्यालय में ऐसे विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने आते थे जो सदाचार और राजनैतिक विषयों की शिक्षा ग्रहण करना चाहते थे। ई० पू० ५१७ में कन्फ्यूशस अपने दो शिष्यों के साथ राजधानी में गये और वहाँ पर उन्होंने चीन के प्रसिद्ध समकालीन विचारक "लाओत्से" से भेंट की तथा वहाँ के पुस्तकालय के अनेक ग्रन्थों का और संगीतकला का अध्ययन किया।

ई० सन् पूर्व ५०१ में कन्फ्यूशस लू-राज्य के चुंग-तू प्रदेश के मुख्य न्यायाधीश बनाये गये। उनके इस पद पर आते ही वहाँ के लोगों में आशा और विश्वास की लहर दौड़ गई और अराजकता और अव्यवस्था का अन्त हो गया। उसके पश्चात् वे अपराध विभाग के मंत्री बनाये गए। वहाँ पर भी उन्होंने बड़ी सफलता पूर्वक कार्य्य किया जिससे राज्य में अपराधों की संख्या एक दम कम हो गई। शासन का कायापलट हो गया और भ्रष्टाचार तथा बेईमानी का अन्त हो गया। अराजकता और अपराधों में कमी आ जाने से लू-राज्य सर्वाङ्गीण उन्नति करने लगा और वह पड़ोस के सभी राज्यों से अधिक शक्तिशाली हो गया।

इस उन्नति से जलकर पड़ोस के सी-राज्य के शासक ने लू-राज्य के शासक का नैतिक पतन करने के लिए १००० अतीव सुन्दरी, तरुणी नर्तकियाँ और १२० घोड़े लू-राज्य के शासक के पास भेंट में भेजे। इन सुन्दर और मदभरी युवतियों को देखकर लू-राज्य का शासक अपना आपा खो बैठा और इन सुन्दरियों के साथ रास रचने में मशगूल हो गया। उसके इस दुराचरण का असर जनता पर भी पड़ा। यह देखकर कनफ्यूशस बहुत दुखी हो गये और वह नौकरी छोड़कर चले गये। तेरह वर्ष तक इधर-उधर भ्रमण करने के पश्चात् लू-राज्य के दूसरे शासक "गी" के पास, जो इनका शिष्य भी था, परामर्शदाता के रूप में नियुक्त हो गये और अपने जीवन के अन्तिम पाँच वर्ष इन्होंने वहीं व्यतीत किये और वहीं ई० पू० ४७८ में ७२ वर्ष की अवस्था में इनका देहान्त हुआ। इनके अनुयायिओं ने बड़ी धूम-धाम से उनके शव को दफनाया। उनके कई शिष्य तीन वर्ष तक उनकी समाधि के पास बैठे रहे और उनका सबसे प्रिय शिष्य ते-कुङ्ग तो छः वर्ष तक वहीं जमा रहा।

इस दार्शनिक का अपने जीवन-काल में जनता ने इतना सम्मान नहीं किया मगर मृत्यु के पश्चात् वही दार्शनिक वहाँ की जनता के हृदय का सम्राट् हो गया। कनफ्यूशस की मृत्यु के पश्चात् चीन की जनता ने अत्यन्त श्रद्धा के साथ कन्फ्यूशस के विचारों का संग्रह करके उसे एक धर्म का रूप दिया जो कन्फ्यूशस-धर्म कहलाया। आगे जाकर चीन में इसका बहुत प्रचार हुआ। लाखों व्यक्ति इसके अनुयायी हो गये और इसकी शिक्षा देने के लिए हजारों स्कूल खोले गये। दिन प्रति दिन इसके अनुयायियों की संख्या बढ़ती गई।

धार्मिक विचार-धारा

कन्फ्यूशस की विचारधारा के अनुसार भलाई और नैतिकता मनुष्य के लिए सबसे आवश्यक वस्तुएँ हैं। उनके मतानुसार आदर्श व्यक्ति वही है जिसमें दार्शनिक तथा

सन्यासी के गुणों का समन्वय हो। उनके मतानुसार सम्पूर्ण समाज का संगठन पाँच प्रकार के सम्बन्धों पर अवलम्बित है—

(१) राजा और प्रजा (२) पिता और पुत्र (३) पति और पत्नी (४) बड़े और छोटे भाई और (५) सम्बन्धी और इष्ट मित्र। इनमें से प्रथम चार वर्गों में एक वर्ग आदेश देने वाला और दूसरा उसका पालन करने वाला होता है। राजा आदेश देता है प्रजा उसका पालन करती है। पिता और पति आदेश देते हैं पुत्र और पत्नी उनका पालन करते हैं। मगर यदि आदेश देने वाला उच्छृङ्खल और स्वेच्छाचारी हो जाता है तो आदेश का पालन करने वाले भी विद्रोही हो जाते हैं और सारे समाज की व्यवस्था बिगड़ जाती है। सफल और अनुभवी शासक अपने चरित्र, उदारता और निरपेक्षिता का उदाहरण बतला कर जनता का सुधार कर सकता है और राज्य में दैवी सम्पद्, सुख और समृद्धि का योगक्षेम कर सकता है।

कन्फ्यूशस ने अपने आप में किसी दैवी-शक्ति या पैगम्बर-भावना का कभी दावा नहीं किया। देवी, देवता या भूतप्रेत सम्बन्धी विश्वासों का न तो उन्होंने कोई समर्थन किया न विरोध। उनका मत था कि प्रत्येक व्यक्ति यदि ईमानदारी और विवेक के साथ काम करता है तो समाज में शांति रहती है और देवी-देवता भी प्रसन्न रहते हैं। बुद्धि, साहस और सद्भावना ये तीन मनुष्य के आवश्यक गुण हैं। जब कोई भी निशानेबाज निशाना चूक जाता है तो वह उसके कारण की खोज करता है। उसी प्रकार किसी भी गलती के समय विवेकशील मानव भी अपनी त्रुटियों को देखता है। दूसरों को दोष नहीं देता।

राजनैतिक विचारधारा

कन्फ्यूशस के राजनैतिक विचार भी बहुत मँजे हुए और गम्भीर अध्ययन पर आधारित हैं। उनके विचारों को पढ़ते हुए कहीं-कहीं तो ऐसा मालूम होने लगता है मानों ढाई हजार वर्ष पहले का यह महर्षि आज ही के युग को सम्बोधन करके बोल रहा हो।

कन्फ्यूशस का कथन है कि किसी भी प्रणाली का राज्य हो, उसमें जनता की सार्वभौमिकता एक अनिवार्य सत्य की तरह होती है।

अपने शिष्य जे-कुंग के एक प्रश्न का उत्तर देते हुए कनफ्यूशस कहते हैं कि, सरकार की सफलता के लिए तीन चीजों की अनिवार्य आवश्यकता होती है (१) पर्याप्त खाद्य (२) पर्याप्त सैनिकबल और युद्ध-सामग्री और (३) जनता का विश्वास। इन तीन चीजों में से किसी एक की भी कमी होने से सरकार का अस्तित्व कठिन हो जाता हैं।

तब जे-कुंग ने पूछा कि इन तीनों वस्तुओं में से सबसे अधिक महत्वपूर्ण कौन सी वस्तु है? तो कनफ्यूशस ने कहा कि "जनता का विश्वास"। युद्ध सामग्री और खाद्य वस्तुओं की कमी में तो कुछ समय तक सरकार जिन्दा भी रह सकती है मगर जनता का विश्वास खोकर वह जीवित नहीं रह सकती।

अगर राज्य का मंत्री पूर्ण व्यवस्थापक और दार्शनिक प्रवृत्ति का होता है तो शासन का कार्य उत्तम तरीके से चलता है, समाज में अपराधों की कमी होती है, दरबार की विलासिता और फजूलखर्ची मिटती है। ऐसा मंत्री लोगों को कम दण्ड देगा और ऊँचनीच की भावनाओं को कम करेगा।

राज्य के शासक का कर्त्तव्य होता है कि वह समाज में अनाथ, अपाहिज, वृद्ध और विधवाओं के पालन की व्यवस्था करे, क्योंकि इनके पालन का भार राज्य के ऊपर है।

कनफ्यूशस की इस राजनैतिक विचार धारा के विरुद्ध वहाँ के सामन्तवादी लोगों ने एक "लीगेलिस्ट" नामक कानूनी सम्प्रदाय खड़ा किया। इन लोगों का मत था कि राज्य मनुष्य के विवेक की आधारशिला पर नहीं कानून की आधारशिला पर स्थापित होता है। कानून का शासन जनता पर अनिवार्य रूप से होना चाहिए और वह तब तक रहना चाहिए जब तक जनता इतनी समझदार नहीं होती कि अपना शासन आप कर सके।

इन दोनों विचारधाराओं में काफी समय तक ई० पू० २२१ से २११ तक प्रबल संघर्ष होता रहा। जिसमें कभी कन्फ्यूशस के अनुयायी जोर पकड़ लेते थे और कभी "लीगेलिस्ट" लोग।

मगर अन्त में चीन के सम्राट सी-हुआंग ने अपने मंत्री ली-सू के प्रभाव में आकर कन्फ्यूशस के सब ग्रन्थों को इकट्ठा करके जलवा दिया, मगर उसके कुछ अनुयायियों ने उसके ग्रन्थों को इधर-उधर छिपा दिया, जिससे वे बच गये।

इसके पश्चात् हानवंश का सम्राट वू-ती (ई० पू० १४० से ई० पू० ८७ तक) कन्फ्यूशस के मत का मानने वाला हुआ। इसने कन्फ्यूशस के सारे साहित्य की खोज करवा कर उसको फिर से व्यवस्थापूर्वक लिखवाया और शिक्षा के पाठ्य-क्रम में भी इन ग्रन्थों को रखवाया।

ईस्वी सन् ६५० में वांगवंश के सम्राट वा-ई-सुंग ने कन्फ्यूशस के धर्म को महत्व देकर सारे देश में कन्फ्यूशस के मन्दिर बनाने की आज्ञा दी। इस प्रकार करीब १२०० वर्ष तक चीन में कन्फ्यूशस-धर्म का काफी प्रभाव रहा और जापान के अन्दर भी बौद्धधर्म के साथ-साथ इस धर्म ने काफी प्रगति की।

कन्फ्यूशस की रचनाओं में पांच-चींग और चार-शू ये दो प्रकार की रचनाएँ विशेष प्रसिद्ध हैं। पांच-चीग के (१) ली-ची (२) इ-चिंग (३) शी-चिंग (४) चुन-चिङ्ग और (५) शू-चिंग ऐसे पांच खण्ड है। इन पांच खण्डों में धार्मिक विधिविधान, समाज व्यवस्था, चरित्र निर्माण, संसार की क्षण भंगुरता की व्याख्या तथा पांचवे खण्ड में सम्पूर्ण चीन के इतिहास का वर्णन है। चार-शू में दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन है इसके (१) लुन-यू (२) ता-सुए (३) चुंगयुंग और (४) मेंग-जू-शू ऐसे चार खण्ड हैं।

मृत्यु के समय इस महान् दार्शनिक के कहे हुए शब्दों का अर्थ इस प्रकार है—

बड़े से बड़ा पहाड़ भी टूटेगा
मजबूत से मजबूत लोहा भी टूटेगा
और बड़े से बड़ा बुद्धिमान पुरुष भी
मौत के आघात से फूल की तरह कुम्हला जायगा!

कनिष्क

(कुषाणवंशीय सम्राट)

भारतीय इतिहास में स्वर्णयुग की स्थापना करने वाला कुषाण-वंश का एक महान् सम्राट जिसका समय कुछ मतभेदों के साथ ई० सन् ७८ से १०६ तक माना जाता है।

कुषाण लोगों का कबीला शक-जाति के कबीलों में से ही एक था। भारत में प्रवेश करने से पूर्व पांच शक कबीले गान्धार और कपिशा के उत्तरी पहाड़ों में रहते थे। इनमें कुषाण कबीला भी एक था। इस कबीले का नेता "कुजुल" नामक एक व्यक्ति था जिसने सबसे पहले भारत की सीमाओं में प्रवेश किया। कुजुल का समय ई० सन् २५ से ५० तक माना जाता है।

कुजुल के भारत-प्रवेश के समय कपिशा पर ग्रीक राजा हरमेयस का शासन था। कुजुल ने इसको हराकर इसे अपना क्षत्रप या राज्य प्रतिनिधि बना लिया था। उस समय के वहाँ पाये जाने वाले सिक्कों पर कुजुल और हरमेयस दोनों के नाम हैं।

कुजुल के पश्चात् विमकदाफ़िस नामक व्यक्ति उसका उत्तराधिकारी हुआ और विमकदाफिस का उत्तराधिकारी कनिष्क को माना जाता है। मगर कई इतिहासकारों का इस वंशावली से काफी मतभेद है। उनके मत से विमकदाफिस का कनिष्क से कोई सम्बन्ध नहीं था और न वह उसकी गद्दी का उत्तराधिकारी हुआ।

गद्दी पर बैठते ही पहले तीन वर्षों में इस महान् सम्राट् ने पेशावर से लेकर पाटलिपुत्र तक सारे उत्तरी भारत पर विजय प्राप्त की और खरपल्लान तथा बनस्पर को उस प्रदेश में महाक्षत्रप और क्षत्रप के नाम से शासक नियुक्त किये।

इसके पश्चात् इसने मध्य एशिया के खोतान, कपिशा तथा और भी कई प्रान्तों पर अधिकार कर लिया। कश्मीर पर भी इस सम्राट ने विजय प्राप्त कर वहाँ पर कनिष्कपुर नामक नगर बसाया, जिसका उल्लेख 'कल्हण' की राजतरंगिणी में भी पाया जाता है। ख्वारेज्म की मरुभूमि में भी खुदाई के अन्दर कनिष्क के समय के नगर मिले हैं। इससे पता चलता है कि मध्य एशिया में भी कनिष्क के साम्राज्य का काफी विस्तार हो गया था।

कनिष्क के समय के शिलालेख, मथुरा, सांची, पेशावर, रावलपिण्डी, सारनाथ, कौशाम्बी इत्यादि अनेक स्थानों पर पाये गये हैं। इस सम्राट के कई मन सिक्के उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले में भी मिले हैं। सन् १९४९ में ख्वारेजम में रूसियों के द्वारा जो खुदाई की गई उसमें तीसरी शताब्दी के महत्वपूर्ण भित्तिचित्र और कुषाण कारीगरों के बनाये हुए शस्त्रास्त्रों का संग्रह भी मिला है। कनिष्क के सिक्के के आगे के हिस्से पर लम्बकोण नुकीली टोपी, घुटने तक जूता और भाला और अंकुश लिए कनिष्क की मूर्ति बनाई हुई है और ग्रीक लिपि में "वैसी लियोस वैसिलियोन शाओननो शाओ कनिष्को कुषाणो" ये शब्द अङ्कित हैं। इस सिक्के के पिछले के भाग पर ग्रीक देवी देवताओं की तस्वीरें तथा सूर्य के चित्र बनाये हुए हैं।

कनिष्क की राजधानी आधुनिक पेशावर—जो उस समय पुष्पपुर के नाम से प्रसिद्ध था—में थी। कनिष्क के समय में इस राजधानी का वैभव पाटलिपुत्र से भी अधिक हो गया था। क्योंकि सिक्यांग की पूर्वी सीमा से लेकर ईरान की सीमा तक का चीन का सारा रेशम पथ कनिष्क के कब्जे में था। फ़र्गाना और सोग्द के समरकन्द इत्यादि वैभवशाली नगर भी उसके हाथ में थे।

ऐसा अनुमान किया जाता है कि एक बार सम्राट कनिष्क ने चीन की एक सुन्दर राजकुमारी से विवाह करने का प्रस्ताव एक दूत के द्वारा चीन-सम्राट के पास भेजा था। इस प्रस्ताव से नाराज होकर हानवंश के सम्राट ने कनिष्क के दूत को जेल में डाल दिया। इस पर कनिष्क ने पामीर और हिमालय के मार्ग से सेना ले जाकर चीन पर आक्रमण कर दिया। पहली बार वह इस युद्ध में हार गया, पर दूसरी बार फिर पूरी शक्ति से आक्रमण कर उसने चीनी सेनाओं को परास्त कर दिया और चीन के कई राज्यों पर अधिकार कर लिया तथा कई चीनी राजकुमारों को पकड़कर बन्धक की तरह ले आया। उन राजकुमारों के रहने के लिए उसने कोहदामन में एक स्थान बनाया जिसका नाम शे-लोक-विहार रखा गया। प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएनसंग ने ईसा की सातवीं सदी में इस विहार को देखा था।

सम्राट कनिष्क ने देश की व्यापारिक उन्नति के लिए भी बहुत प्रयास किया। उस समय उत्तरी सीमा के चीन, ईरान, मिश्र इत्यादि देशों के साथ बड़े-बड़े व्यापारिक काफिलों के द्वारा व्यवसाय होता था। ये काफिले भारत का बना हुआ माल उन देशों में ले जाने का और उन देशों में बना हुआ माल यहां लाकर बेचने का व्यवसाय करते थे। पूर्वी और दक्षिणी देशों के साथ समुद्री जहाजों के द्वारा व्यापार होता था। इसी प्रकार स्थानीय व्यवसाय की उन्नति के लिए यहाँ की नदियों का उपयोग किया जाता था।

धार्मिक प्रवृत्ति

सम्राट् कनिष्क बौद्धधर्म के सर्वास्तिवाद-सम्प्रदाय का अनुयायी था। सम्राट् अशोक की तरह इसने भी बौद्ध धर्म के प्रचार में बड़ा महत्वपूर्ण भाग लिया। सुप्रसिद्ध बौद्ध कवि और साहित्यकार अश्वघोष को यह पाटलिपुत्र से अपने साथ ले गया। इसी प्रकार पार्श्व-वसुमित्र नामक एक और विद्वान् बौद्ध भिक्षु इसके साथ था। इन्हीं पार्श्व-वसुमित्र की अध्यक्षता में सम्राट ने एक विशाल बौद्ध संगीति काश्मीर की कुण्डल वन उपत्यका में बिठाई थी। इस संगीति में ५०० बौद्ध भिक्षुओं ने भाग लिया था। इस संगीति में सर्वास्तिवाद के अन्तिम मूलरूप के 'त्रिपिटक' के पाठ का निर्णय और संग्रह किया गया। इस प्रकार बौद्ध धर्म के विकास और प्रचार में सम्राट् कनिष्क ने बहुत महत्वपूर्ण भाग लिया।

बुद्धदेव की प्रथम मूर्त्ति का निर्माण भी सम्राट् कनिष्क के समय में ही हुआ। इस मूर्त्ति के चीवर के चुन्नट और केशविन्यास पर ग्रीक मूर्तिकला का प्रभाव दिखलाई देता है। इस काल में मथुरा की मूर्तिकला का भी काफी विकास हुआ और ग्रीक मूर्त्तिकला को गांधार भारतीय शैली में बदलने का काम भी इसी काल में हुआ।

कनिष्क के काल-निर्णय पर इतिहासकारों में बड़ा मतभेद है। कैनेडी इत्यादि इतिहासकार कनिष्क का समय ई० पू० ५८ मानते हैं जब से कि विक्रम संवत् का प्रारम्भ हुआ था। मार्शल, स्मिथ इत्यादि इतिहासकार इसका समय ईसा की दूसरी शताब्दी में मानते हैं। मगर विशेषकर डा० रैप्सन, टॉमस आदि इतिहासकारों का

समझा जाता है जो कनिष्क का समय ई० सन् ७८ से मानते हैं, जब कि उसने शक शालिवाहन संवत् का प्रारम्भ किया।

कन्नमवार

भारतीय स्वाधीनता संग्राम के एक प्रमुख कांग्रेसी नेता तथा बाद में महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री श्री मारुतिराव साम्बशिव कन्नमवार जिनका जन्म सन् १९०० में और मृत्यु सन् १९६३ में हुई।

श्री कन्नमवार का जन्म सन् १९०० में विदर्भ क्षेत्र के चांदा नाम का शहर में एक साधारण परिवार में हुआ था। इनका प्रारम्भिक जीवन बड़े आर्थिक संकट में से गुजरा। प्रारम्भ में वे नागपुर में अखबार बेचने वाले हॉकर का काम करते थे, मगर इस स्थिति में भी पत्रकार कला में उनकी काफी रुचि थी। इसके परिणाम रूप सन् १९३४ में ये "लोक सेवक" नामक एक पत्र के सम्पादक बनाए गये, और सन् १९४८ में "नव-सन्देश" नामक एक प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र इन्हीं के सम्पादन में नागपुर से निकलना प्रारम्भ हुआ।

श्री कन्नमवार प्रारम्भ से ही गांधीजी के चलाये हुए स्वाधीनता-संग्राम में अपना महत्वपूर्ण योग देते रहे। इस सिलसिले में इन्हें कई बार जेल यात्राएँ भी करनी पड़ी। मगर ये अपनी धुन के बड़े सच्चे और पक्के थे। इन सब कठिनाइयों और कष्टों से विचलित नहीं होते थे। सन् १९३९ से १९४८ तक ये प्रदेश कांग्रेस के महामंत्री और सन् १९४८ से १९५२ तक प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष रहे।

सन् १९५२ के चुनाव में कन्नमवार बहुत बड़े बहुमत से विजयी हुए और तत्कालीन मध्यप्रदेश—विदर्भ के शासन में स्वास्थ्य मंत्री बनाये गये। १९५७ के चुनाव में वे फिर विजयी हुए और महाराष्ट्र मंत्री मण्डल में फिर स्वास्थ्य मंत्री बनाये गये। २० नवम्बर १९६२ को महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री श्री चह्वाण के केन्द्र में चले जाने से ये महाराष्ट्र के मुख्य मंत्री बनाये गये।

इस प्रकार एक हॉकर के रूप में जीवन प्रारम्भ कर अपनी कर्मशीलता, देशभक्ति और जीवन के प्रति तटस्थ वृत्ति के प्रभाव से श्री कन्नमवार प्रान्तीय शासन के ऊँचे से ऊँचे पद पर पहुँच गये। एक बार उन्होंने स्वयं कहा कि—

"मैं खुद नहीं जानता कि एक बहुत छोटे क्षेत्र से जीवन प्रारम्भ कर कैसे एक के बाद दूसरी बढ़ती हुई जिम्मेदारियाँ मेरे पर आती गईं और कैसे मैं उन्हें सम्भालता गया। मैं इस पर गर्व नहीं करता। मैं समझता हूँ कि भगवान् मेरे निमित्त से ही प्रान्त का कुछ भला करना चाहता है।

कनिंघम

(ऐलेक्जेण्डर सर कनिंघम)

भारतीय इतिहास और पुरातत्व के एक सुप्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान, जिनका जन्म इङ्गलैण्ड में सन् १८१४ ई० में और मृत्यु सन् १८९३ में हुई।

सर कनिंघम शुरू-शुरू में अंग्रेजी सेना के एक अधिकारी के रूप में भारतवर्ष आये थे, मगर यहाँ आने पर यहाँ की प्राचीन पुरातत्व सम्बन्धी सामग्री की खोज का उन्हें शौक लग गया, और इस क्षेत्र में उन्होंने बड़ी दिलचस्पी से काम करना प्रारम्भ कर दिया। सन् १८७२ में भारतीय पुरातत्व विभाग में उन्होंने प्रवेश किया और कुछ ही समय में वे उत्तर प्रदेश पुरातत्व-विभाग के सर्वोच्च अधिकारी बनाये गये।

इस विभाग में काम करते हुए सर कनिंघम ने भारतीय प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध कई महत्वपूर्ण अनुसन्धान किये। इन अनुसन्धानों का वर्णन पुरातत्व सम्बन्धी रिपोर्टों के रूप में करीब तेईस खण्डों में प्रकाशित हुआ।

भारत के प्राचीन भूगोल पर इन्होंने "एनशेण्ट जागरफ़ी ऑफ इण्डिया" नामक ग्रंथ लिखा जो आज भी अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है। इसी प्रकार प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसंग के यात्रा विवरण में जिन स्थानों और शहरों के नाम आये हैं उन पर भी सर कनिंघम ने बड़े प्रामाणिक अनुसन्धान किये है।

भारत के प्राचीन इतिहास और पुरातत्व के सम्बन्ध में सर कनिंघम का शोधकार्य अभी तक बड़ा महत्वपूर्ण माना जाता है।

कन्नड़-भाषा और साहित्य

कन्नड़-भाषा पंच द्राविड़ भाषाओं के अन्तर्गत मानी जाती है। ये पंच द्राविड़ भाषाएँ—तामिल, तेलगू, कन्नड़ मलयालम तथा तूलू मानी जाती हैं। तूलू कन्नड़-भाषा की ही एक शाखा है जो दक्षिणी कर्नाटक में बोली जाती है। रामायण महाभारत काल में भी कन्नड़ बोलने का प्रयोग होता था, फिर भी कन्नड़ का लिखित रूप ईसा की चौथी शताब्दी के पूर्व प्राप्त नहीं होता।

कन्नड़-साहित्य

कन्नड़ साहित्य का प्राचीन इतिहास दो भागों में विभाजित है। उसका पहला और प्राचीन युग जैनधर्म के प्रभाव क्षेत्र में पूर्ण वैभव के साथ विकसित होता है और उसका दूसरा युग तब प्रारम्भ होता है जब उस देश में "वीर शैव" मत का प्रारम्भ होता है और सारा कन्नड़ साहित्य वीरशैव मत के गानों से गूँजने लगता है।

जैन परम्परा और कन्नड़ साहित्य

शुरू-शुरू में कन्नड़ साहित्य का विकास करने में जैन धर्म के तत्कालीन विद्वानों और आचार्यों ने बड़ा महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। जैन परम्परा का विश्वास है कि किसी धर्म का वास्तविक प्रचार तभी सम्भव हो सकता है जब कि उसका ज्ञान जनभाषा या बोलचाल की भाषा के अन्दर लोगों को समझाया जय। यही कारण है कि जिस समय देश में चारों तरफ संस्कृत का बोलबाला था उस समय भी जैन विद्वानों ने अपने महान् साहित्य की रचना जन समाज की भाषा प्राकृत में ही विशेष रूप से की।

ऐसा स्पष्ट मालूम होता है कि ईसा की दूसरी शताब्दी से ही दक्षिण भारत में जो-जो प्रसिद्ध राजवंश अस्तित्व में आये उनमें से अधिकांश राजवंशों के, अधिकांश नरेशों ने जैनधर्म और जैन विद्वानों को बहुत बड़ा संरक्षण प्रदान किया। इनमें से कई राजवंश ऐसे थे जिनका राज्य-धर्म शैव होने पर भी उन्होंने जैनधर्म को पूरा संरक्षण दिया। वे राजागण बड़ी समदर्शी भावनाओं से युक्त थे। काञ्ची के पल्लव राजवंश, वैजयन्ती के कदम्ब राजवंश, मदुरा के पाण्ड्य राजवंश, पेकर के गंग राजवंश, वातापी के पश्चिमी चालुक्य राजवंश इत्यादि अनेकानेक राजवंशों के राजाओं की छाया में इस साहित्य का निर्माण प्रारम्भ हुआ। उस काल के शिलालेखों, दानपत्रों इत्यादि से पता चलता है कि उस काल के दक्षिणी नरेशों ने अपने दानपत्रों के द्वारा जैन धर्मस्थानों, विद्वानों और आचार्य्यों को बड़े-बड़े दान देकर उन्हें सहायता पहुँचाई।

कन्नड़ साहित्य का प्रथम कवि "कवि परमेष्ठि" नामक एक जैन कवि माना जाता है जो सुप्रसिद्ध गंग नरेश अविनीत के समय में अर्थात् ई० सन् ४०० के आसपास हुआ। इसने संस्कृत कन्नड़ मिश्रित भाषा में "वागार्थ संग्रह" नाम से तिरसठशलाका महापुरुषों के जीवन पर एक महापुराण की रचना की।

गंगनरेश अविनीत का पुत्र दुर्विनीत हुआ। जिसका समय ई० सन् ४८२ माना जाता है। यह भी कन्नड़ भाषा का एक परिचित कवि और लेखक था।

ईसा की सातवीं सदी के प्रारम्भ में चालुक्य शासन काल में सुप्रसिद्ध जैनाचार्य्य अकलङ्कदेव हुए जो संस्कृत, प्राकृत और कन्नड़ भाषाओं के तथा जैन सिद्धान्तों के प्रकाण्ड पण्डित थे। इन्होंने कई महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की। ई० सन् ४५० के लगभग कदम्ब राजवंश के राजा शान्ति वर्मन ने सुप्रसिद्ध हाल्मार्ड का अभिलेख खुदवाया जो कन्नड़ भाषा का पहला अभिलेख माना जाता है।

आठवीं सदी में वेंगि के पूर्व चालुक्यों के शासनकाल में विजगापट्टम जिले की रामगिरि पहाड़ियों पर एक प्रसिद्ध जैन सांस्कृतिक-केन्द्र चल रहा था जिसके अधिष्ठाता श्री नन्दि नामक जैनाचार्य्य थे। इस सांस्कृतिक केन्द्र के द्वारा कई जैन गुफा मन्दिरों, जैनालयों और धार्मिक केन्द्रों का निर्माण और पुनरुद्धार हुआ। अनेकों जैन विद्वान् और कलाकार इस केन्द्र में रहते थे। इस केन्द्र से निकले हुए कई विद्वानों ने कन्नड़ साहित्य की बहुत श्रीवृद्धि की।

राष्ट्रकूट वंश के राजा दन्तिदुर्ग के वंशज ध्रुवराज के समय में वीरसेन नामक एक अत्यन्त प्रसिद्ध जैनाचार्य्य हुए। इन्होंने वटग्रामपुर में अपने ज्ञानकेन्द्र की स्थापना की थी। कन्नड़ साहित्य में जैनधर्म के 'श्रीधवल' नामक महान् और सुप्रसिद्ध ग्रंथ की रचना इन्होंने सन् ७८० में की।

ईसा की नवीं शताब्दी में मान्यखेट के राष्ट्रकूट राजा नृपतुङ्ग के समय में उसके दरबारी कवि श्रीविजय ने "कविराज मार्ग" नामक रस अलङ्कारों के ग्रन्थ की तीन अध्यायों में रचना की।

मगर कन्नड़ साहित्य के धाराप्रवाही विकास का युग दसवीं सदी के अन्त में प्रारम्भ होता है। इस युग को इस साहित्य में "जैन-युग" ही कहा जाता है। इस युग में सारे कर्नाटक में जैनाचार्य्यों का बोलबाला हो रहा था। इन जैनाचार्य्यों ने कन्नड़ साहित्य को सम्पन्न बनाने में बड़ा महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन आचार्य्यों में से प्रत्येक ने प्रायः एक २ धर्मकाव्य के साथ २ एक २ लौकिक काव्य की भी रचना की। इन जैनाचार्य्यों ने संस्कृत की "चम्पूकाव्य-शैली" को ग्रहण कर उसी ढङ्ग की चम्पूशैली कन्नड़ भाषा में भी चलाई। इनके धार्मिक काव्यों में शान्त, करुण और अद्भुत रस की धारा प्रवाहित होती थी और इनके लौकिक काव्य वीर और रौद्र रस से सराबोर रहते थे।

इन जैन कवियों में दसवीं सदी में "पम्प" "पौन्न" और "रन्न" (रत्नाकर) नामक तीन कवि विशेष प्रसिद्ध हुए जो "रत्नत्रयी" के नाम से प्रसिद्ध हैं। धार्मिक काव्यों में पम्प ने आदिपुराण की, पौन्न ने "शांतिपुराण" और जिनाक्षरमाला की और रन्न ने "अजितपुराण" की रचना की। पम्प का आदिपुराण "जिनसेनाचार्य्य" के "आदिपुराण" के आधार पर लिखा हुआ है। जिसमें प्रथम जैन तीर्थंकर "ऋषभनाथ" का जीवनचरित्र बतलाया गया है। लौकिक काव्यों में पम्प ने "विक्रमार्जुन विजय" और "पम्प भारत" की पौन्न ने "भुवनैक रामाभ्युदय" की और रन्न ने "भीमगदायुद्ध" नामक काव्य की रचना की। रन्न कवि को कल्याणी के चालुक्यवंशी राजा तैलप ने सन् ९९१ ई० में "कवि चक्रवर्त्ती" की उपाधि से विभूषित किया।

इसी काल में, नागवर्म नाम के कवि ने "कर्नाटक कादम्बरी" के नाम से बाणभट्ट की संस्कृत 'कादम्बरी' का सुन्दर अनुवाद प्रस्तुत किया तथा छन्दाम्बुधि नामक ग्रन्थ की रचना की। इन्हीं के साथ चन्द्रराज नामक कवि ने "मदन-तिलक" नामक कामशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ की और श्रीधराचार्य्य ने "जातक तिलक" नामक ज्योतिष ग्रन्थ की रचना की।

बारहवीं सदी में कन्नड़ साहित्य में नागचन्द्र नामक एक प्रसिद्ध जैन कवि हुए। इन्होंने "मल्लिनाथ पुराण" और "पम्परामायण" नामक दो काव्यों की रचना की।

संत बसवेश्वर

बारहवीं शताब्दी के अन्त में संत बसवेश्वर ने अवतीर्ण होकर कन्नड़ साहित्य में एक युगान्तर उत्पन्न कर दिया और कन्नड़ साहित्य की बहती हुई धारा को एक नया मोड़ दे दिया। उन्होंने वहाँ पर वीरशैव मत का प्रचार कर वहाँ के धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में बड़ा तहलका मचा दिया। बसवेश्वर की विचारधारा एक नवीन विचारधारा थी, जिसने परम्परा से चले आये वैदिक कर्मकाण्डों, मूर्तिपूजा, जातिपाँति, आदि प्रचलित विधि विधानों के विरुद्ध जोरदार आवाज उठाई और विशुद्ध आध्यात्मिक आधार पर स्थित प्रभु-भक्ति का जोरों से समर्थन किया। उन्होंने अपने साहित्य में परम्परागत संस्कृतनिष्ठ कन्नड़ भाषा का व्यवहार छोड़कर बोलचाल की कन्नड़ भाषा में अपने काव्यों का निर्माण प्रारम्भ किया।

दक्षिण के बसवेश्वर की तुलना उत्तर के कबीर साहब से की जा सकती है। इन दोनों धर्माचार्य्यों और कवियों के जीवन में बहुत कुछ समानता है। कबीर साहब की तरह बसवेश्वर भी कर्मकाण्ड, रूढ़िवाद, मूर्तिपूजा, जातिपाँति इत्यादि के खिलाफ थे। कबीर साहब की ही तरह वे आध्यात्मिक साधना को सर्वोपरि मानते थे। कबीर साहब ने अपने विचार जनता तक पहुँचाने के लिए सीधी सादी बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया, बसवेश्वर ने भी इसी मार्ग को उत्तम समझ कर ग्रहण किया। बसवेश्वर का साहित्य कन्नड़ भाषा में वचन-साहित्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

बारहवीं से तेरहवीं सदी के इस युग में वीरशैवों के इस भक्ति-साहित्य के साथ-साथ जैन कवियों के द्वारा जैन

साहित्य का भी निर्माण बराबर चल रहा था। इस युग के जैन कवियों में नेमिचन्द्र, मधुवर्मा, मल्लिकार्जुन, केशिराज, कुन्देन्दु मुनि इत्यादि के नाम उल्लेखनीय है।

इसके पश्चात् तेरहवीं सदी के अन्त और चौदहवीं सदी के प्रारम्भ से कन्नड़ साहित्य की धारा तीन भागों में विभक्त हो गई। एक भागवत-सम्प्रदाय, दूसरा भक्ति-सम्प्रदाय और तीसरा जैन-सम्प्रदाय।

इस काल में भागवत सम्प्रदाय के सबसे बड़े महान् कवि कुमार व्यास हुए। इनका समय चौदहवीं और पन्द्रहवीं सदी के बीच किसी समय माना जाता है। इन्होंने अपनी कन्नड़ भारत नामक रचना में महाभारत के प्रथम दस पर्वों की कथा को कन्नड़ कविता के रूप में अंकित किया है। इनका यह काव्य कन्नड़ जनता के अन्दर बहुत अधिक लोकप्रिय हुआ। कुमार व्यास के अनुकरण पर ही कुमार वाल्मीकि नामक कवि ने वाल्मीकि रामायण के आधार पर तोरवे रामायण नामक काव्य की अत्यन्त सरस और लोकप्रिय भाषा में रचना की। लक्ष्मीश नामक महा कवि ने लगभग इसी समय "जैमिनी भारत" नामक सुप्रसिद्ध काव्य की रचना कर कन्नड़ भाषा के साहित्य को अत्यन्त समृद्ध किया।

दूसरी तरफ भक्ति सम्प्रदाय के कवि भी इस युग में भक्तिप्रधान गीत, भजन और कीर्तनों की रचना कर कन्नड़ साहित्य में भक्ति रस की धारा बहा रहे थे और घर-घर में प्रभु भक्ति का सन्देश पहुँचा रहे थे। ये भक्त लोग कर्नाटक में 'हरिदास' के नाम से प्रसिद्ध थे। इस हरिदास समुदाय में जगन्नाथ दास, पुरन्दरदास, कनक दास इत्यादि कवि विशेष प्रसिद्ध हुए।

तीसरी ओर जैन कवि भी अपने क्षेत्र में अपनी सुन्दर रचनाओं से कन्नड़ साहित्य को समृद्ध कर रहे थे। इन कवियों में महाकवि रत्नाकर वरणी का नाम विशेष प्रसिद्ध है। भरत चक्रवर्त्ती और उनके भाई बाहुबली के महान् चरित्रों पर लिखा हुआ इनका 'भरतेश वैभव' नामक काव्य कन्नड़ साहित्य की अमूल्य निधि है। इनके पश्चात् उन्नीसवीं सदी में देवचन्द्र नामक जैन कवि ने "राम-कथावतार" नामक रामायण को बड़ी मधुर शैली में लिखा।

उन्नीसवीं सदी में ही 'वस अप्प' नामक कवि ने कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तल' का इतनी सजीव और मधुर कन्नड़ भाषा में अनुवाद किया कि वे वहां पर 'अभिनव कालिदास' के नाम से प्रसिद्ध हो गये।

उन्नीसवी सदी से ही अपने धर्म प्रचार के लिए ईसाई मशीनरियोंने भी अपना साहित्य कन्नड़ भाषा में छपाकर प्रचारित करना प्रारम्भ कर दिया। इससे कन्नड़ भाषा के गद्य साहित्य के विकास में मदद मिली। सन् १८२३ में बाइबिल का कन्नड़ अनुवाद प्रकाशित किया गया। वही शायद कन्नड़ भाषा का सब से पहला गद्य ग्रन्थ है। सन् १९०७ में नरसिंहाचार नामक विद्वान ने 'कर्नाटक कवि चरिते' नामक कन्नड़ साहित्य का एक सुव्यवस्थित इतिहास तीन भागों में प्रकाशित किया।

इसी प्रकार उपन्यासों के क्षेत्र में 'गुल्वाड़ि वेंकटराव' एस. एस. पुट्टण्णा, ए० एन० कृष्णराव, तथा कहानियों के क्षेत्र में "मास्ति वेंकाटेश अयंगार' का नाम विशेष रूप से प्रसिद्ध है!

कन्नड़ साहित्य की अभिवृद्धि में वहां से निकलने वाली पत्र पत्रिकाओं का भी भारी सहयोग रहा है। कन्नड़ भाषा में सबसे पहली पत्रिका सन् १८५६ में "कन्नड़ वार्त्तिक' के नाम से ईसाई मशीनरी के द्वारा निकाली गई। इसके पश्चात् हित बोधिनी, सुदर्शन, काव्य मंजरी, धनुर्धारी इत्यादि अनेक पत्र पत्रिकाओं का निकलना प्रारम्भ हुआ। इस पत्रकारिता के क्षेत्र में मैसूर के एम० वेंकट कृष्णय्याका नाम विशेष प्रसिद्ध है। दैनिक पत्रों में प्रजावाणी, जनवाणी, तामिल नाडू, नव भारत इत्यादि पत्र प्रधान है।

इस प्रकार कन्नड़ साहित्य ने भी भारत की दूसरी भाषाओं के साहित्य की तरह अपने निर्माण में सर्वतो मुखी उन्नति की है।

कन्नौज (कान्यकुब्ज)

भारत वर्ष की एक प्राचीन और ऐतिहासिक नगरी, जिसके पीछे भारत वर्ष के एक अत्यन्त गौरव पूर्ण युग का सुनहला इतिहास अङ्कित है। इस समय यह नगर कानपूर और आगरा के बीच की छोटी लाइन पर बसा हुआ है।

कन्नौज का पुराना नाम कान्यकुब्ज है। पौराणिक परम्पराओं के अनुसार प्राचीन काल में किसी चन्द्रवंशीय राजा की सौ कन्याएं वायु देवता के शाप से एक साथ कुब्जा हो गई थीं, उन्हीं के नाम पर इस नगर और जिले का नाम कन्याकुब्ज या कान्यकुब्ज पड़ा।

मौखरी राजवंश

कन्नौज का प्रारंभिक और स्वतंत्र इतिहास 'मौखरी-राजवंश' से सिलसिलेवार पाया जाता है। इसके पहले यह स्थान गुप्तसाम्राज्य का अङ्ग था, मौखरी राजवंश प्राचीन 'मागध-राजवंश' की एक शाखा थी। इस वंश के लोग 'गुप्त-सम्राटों' के करद सामन्तों के रूप में कन्नौज पर शासन करते थे।

ईसा की ६ ठी शताब्दी के प्रारंभ में 'आदित्य वर्म्मा' मौखरी कन्नौज का शासक था। इसके पुत्र ईश्वरवर्म्मा ने 'हूणों' के आक्रमण के समय कन्नौज-राज्य को एक स्वतंत्र राज्य घोषित कर दिया था।

ईश्वर वर्मा का पुत्र 'ईशान वर्म्मा' बड़ा प्रतापी हुआ, जिसका समय ईसवी सन् ५५० से ५७६ तक था। इसने अपने को महाराजाधिराज घोषित कर दिया और अपनी शक्ति का बहुत विस्तार कर लिया।

ईशान वर्म्मा के पुत्र शिववर्म्मा ने गुप्तसाम्राज्य के साथ अनेक लड़ाइयाँ करके गुप्त-नरेश दामोदरगुप्त की शक्ति को बहुत क्षीण कर दिया, जिसके परिणाम स्वरूप कन्नौज का मौखरी राज्य उत्तर भारत की सर्व प्रधान शक्ति बन गया।

शिव वर्म्मा के बाद 'अवन्ति वर्मा' और उसके बाद 'गृह-वर्म्मा' कन्नौज के राज्य सिंहासन पर आये। गृह-वर्मा का विवाह थानेश्वर के सुप्रसिद्ध राजा 'प्रभाकर वर्धन' की पुत्री 'राजश्री' के साथ हुआ था। लेकिन बंगाल के राजा 'शशांक' और मालवा के राजा 'देवगुप्त' ने कन्नौज पर चढ़ाई करके युद्ध में गृह वर्म्मा को मार डाला और राजश्री को गिरफ्तार कर लिया। तब गृहवर्म्मा के साले 'हर्ष वर्धन' ने इन शत्रुओं से बदला लेकर राजश्री का उद्धार किया और राजश्री के संरक्षक और प्रतिनिधि के रूप में कन्नौज का शासन भी संभाल लिया।

इस प्रकार मौखरी-राजवंश का अन्त होकर कन्नौज के सिंहासन पर हर्षवर्धन-वंश का प्रारंभ हुआ। हर्षवर्द्धन सन् ६०६ में कन्नौज की गद्दी पर बैठे।

सम्राट् हर्षवर्द्धन

कन्नौज के इतिहास का सबसे महत्त्वपूर्ण और सुवर्ण-युग सम्राट् हर्षवर्द्धन का काल माना जाता है। इस युग में कन्नौज का वैभव अपनी चरम सीमा पर जा पहुँचा था। सम्राट् हर्षवर्द्धन ने अपनी दिग्विजय में पूर्वी पंजाब, बंगाल का अधिकांश भाग, वल्लभी, भड़ौच, कच्छ, सूरत इत्यादि अनेक देशों को जीतकर अपने विस्तीर्ण साम्राज्य में मिला लिया था। चालुक्य सम्राट् पुलकेशी द्वितीय से हार जाने के कारण वे दक्षिण में अपने साम्राज्य का विस्तार नहीं कर पाये थे।

इस समय कन्नौज की शान और वैभव अभूतपूर्व हो गये थे। कन्नौज का साम्राज्य उत्तरभारत पंजाब और बंगाल तक विस्तीर्ण हो गया था। शासन में स्थिरता, उदारता और शांति थी। प्रजा के ऊपर करोंका भार बहुत कम था। पोलिस का प्रबन्ध बहुत सुधरा हुआ था। साहित्य और कला का बहुत तेजी से विकास हो रहा था। स्वयं हर्षवर्द्धन भी बड़े प्रतिभाशाली कवि और लेखक थे। बाणभट्ट सरीखे महान् कवि और हुएनसंग के समान विद्वान चीनी पर्यटक उनके दरबार में रहते थे। विद्या के प्रचार के लिए तक्षशिला, नालन्द, काशी और उज्जैन के विश्वविद्यालय गौरव के साथ चल रहे थे।

हर्ष के पश्चात् यशोवर्मा कान्यकुब्ज-साम्राज्य का शासक हुआ। इसके शासन में भी कन्नौज अपने पूर्ण वैभव पर था। उत्तर रामचरित्र के वर्मा महाकवि भवभूति इसके दरबार में थे।

आयुध-राजवंश

हर्ष वर्धन और यशो वर्मा के पश्चात् सन् ७६० ई० के लगभग कुछ समय के लिए कन्नौज पर आयुध-वंश का शासन हुआ। इस राजवंश में 'वज्रायुध' 'इन्द्रायुध' और 'चक्रायुध' नामक तीन राजा हुए, मगर यह राजवंश बहुत थोड़े समय तक शासन कर सका और गुजरात के प्रतिहार राजवंश ने कन्नौज पर आक्रमण कर इस राजवंश को समाप्त कर दिया और कन्नौज पर प्रतिहार-वंश का शासन प्रारंभ हो गया।

प्रतिहार-राजवंश

प्रतिहार राजवंश का मूल संस्थापक 'वत्सराज' (सन् ७७५-८००) नामक प्रतापी नरेश था। प्रारंभ में इसकी राजधानी, राजस्थान के 'भीनमाल' नामक स्थान पर थी और पूर्वी राजस्थान में इसका राज्य था। मगर इस प्रतापी नरेश ने अनेक राजाओं को पराजित कर कन्नौज पर अधिकार कर लिया और वहीं पर अपने साम्राज्य की दूसरी राजधानी स्थापित की।

गुप्त-वंश के पतन के बाद 'कन्नौज' ही भारत वर्ष की प्रधान राजधानी बन चला था और गुर्जर-प्रतिहारों के प्रयास से यह साम्राज्य उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गया था।

वत्सराज के समय में ही सुप्रसिद्ध जैनाचार्य उद्योतन सूरि हुए। उन्होंने सन् ७७८ ई० में अपने प्रसिद्ध काव्य ग्रन्थ 'कुवलय-माला' का निर्माण किया। इस ग्रन्थ में वत्सराज का भारत वर्ष के सब से प्रतापी राजा के रूप में उल्लेख किया गया है। इस ग्रन्थ से यह भी मालूम होता हैं कि वत्सराज जैन-धर्म और जैन साहित्य का बड़ा समर्थक था। उसके द्वारा 'ओसियाँ' 'श्रीमाल' इत्यादि स्थानों पर विशाल जैन मन्दिरों का निर्माण हुआ। इसी के समय में श्वेताम्बराचार्य उद्योतनसूरि ने अपने कुवलय-माला नामक काव्य की रचना राजस्थान के 'जालौर' नामक स्थान में की। इसी के समय में दिगम्बराचार्य जिनसेन ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'हरिवंश पुराण' की रचना मालवे के 'बदनावर' नामक स्थान में की। और इसी के समय में प्रसिद्ध जैनाचार्य हरिभद्र सूरि ने चित्तौड़ में जैन-साहित्य के अनेक ग्रन्थों की रचना की।

वत्सराज ने कन्नौज में एक भव्य जैनमन्दिर का निर्माण करवाया जिसमें भगवान महावीर की स्वर्ण मयी प्रतिमा स्थापित की गई।

वत्सराज का पुत्र 'नागभट्ट' द्वितीय हुआ, जिसे जैन-ग्रन्थों में 'आमराजा' के नाम से भी सम्बोधित किया गया है। इसका समय सन् ८०० से ८३६ तक था। यह राजा भी बड़ा प्रतापी और विजेता था। पालों और राष्ट्रकूटों के आक्रमण के कारण कन्नौज कुछ समय के लिए प्रतिहारों के हाथ से निकल गया था, मगर नागभट्ट द्वितीय ने चक्रायुध का अन्त करके सन् ८१३ में फिर कन्नौज पर स्थायी रूप से अधिकार कर उसे ही अपनी प्रधान राजधानी बनाया। इस राजा ने दिग्विजय करके भारत वर्ष के अनेक राजाओं को परास्त करके अपने साम्राज्य का बहुत विस्तार किया।

नागभट्ट द्वितीय के पश्चात् प्रतिहार-वंश में मिहिर भोज नामक अत्यन्त प्रतापी सम्राट् हुआ। इसने सन् ८३६ से सन् ८८५ तक करीब ५० वर्ष राज्य किया। इस राजा के समय में प्रतिहार-वंश का राज्य वैभव चरम उत्कर्ष को पहुँच गया था। पाल, राष्ट्रकूट, कलचुरी और कश्मीर के राजाओं से उसकी लड़ाइयाँ हमेशा चलती रहीं। मालवे को भी उसने विजय किया और बुन्देलखण्ड के चन्देलों और ग्वालियर के कछवाहो को जीतकर उसने अपने करद राज्य बना लिये। मिहिर भोज के समय के कई 'शिला-लेख और ताम्रपत्र प्राप्त हुए हैं।

मिहिरभोज का पुत्र 'महेन्द्रपाल' प्रथम हुआ। इसका शासन-काल सन् ८८५ से ९०८ तक था। संस्कृत के सुप्रसिद्ध महाकवि 'राज शेखर' ने इसी के समय में अपने 'कर्पूर मञ्जरी' 'काव्य-मीमांसा' इत्यादि अनेक काव्य ग्रन्थों की रचना की।

महेन्द्रपाल प्रथम के पश्चात उसका छोटा पुत्र 'महीपाल' राजा हुआ। इसने सन् ९१० से ९४० तक राज्य किया। सन् ९१५ ई० में प्रसिद्ध अरबयात्री अल-मसूदी ने इस राजा के वैभव और शक्ति का बड़ी प्रभाव शाली भाषा में वर्णन किया है।

मगर इसी राजा के समय में राष्ट्रकूट बंश के राजा "इन्द्र" तृतीय ने कन्नौज के ऊपर चढ़ाई करके उसका विनाश कर दिया और तभी से प्रतिहार-राजवंश का पतन प्रारंभ हो गया और मुहम्मद गजनबी के कन्नौज पर किये गये आक्रमण के पश्चात् तो यह राजवंश अत्यन्त-हीन अवस्था में हो गया।

मुहम्मद गजनवी का आक्रमण

कन्नौज पर जिस समय प्रतिहार राजवंश का राजा राज्यपाल राज्य करता था, उसी समय प्रसिद्ध आक्रमण-कारी महमूद गजनवी का सन् १०१६ में कन्नौज और

मथुरा पर सुप्रसिद्ध आक्रमण हुआ। प्रतिहार राज्यपाल, एक के बाद दूसरे राजा को जीतते और लूटते हुए, मुहम्मद की धुंआधार सेनाको आते देखकर घबरा गया और राज्य छोड़कर भाग खड़ा हुआ और बारी में जाकर आश्रय ग्रहण किया। महमूद की सेनाओं ने उसका पीछा किया मगर जब राज्यपाल का पता न लगा तब मुहम्मद ने गंगा-तीर पर बने हुए कन्नौज के सातों किलों को लूट लिया। मुहम्मद के साथ रहने वाले इतिहासकार उतबी के अनुसार उस समय कन्नौज में एक हजार मन्दिर बने हुए थे जिन्हें मुहम्मद ने खूब लूटा और तोड़ा फोड़ा।

इसके थोड़े ही समय पश्चात् महमूद ने एक बार और कन्नौज पर आक्रमण किया। इस आक्रमण का समय फरिश्ताने हिजरी सन् ४१२ बतलाया है और उतबी ने हिजरी सन् ४०० बतलाया है। इस आक्रमण में कहा जाता है कि राज्यपाल ने महमूद की अधीनता स्वीकार कर खिराज देना मंजूर कर लिया।

राज्यपाल के द्वारा इस प्रकार सुलतान के शरण में चले जाने से तत्कालीन चन्देल राजा गण्ड ने कलचुरी राजा की सहायता से कान्यकुब्ज पर आक्रमण कर वहाँ के राजा राज्यपाल को मार डाला। कान्यकुब्ज पर यह संयुक्त आक्रमण ग्वालियर के कच्छपघात राजा के नेतृत्व में हुआ था।

राज्यपाल के पश्चात् उसका पुत्र त्रिलोचनपाल कान्यकुब्ज का राजा हुआ।

गाहड़वाल राजवंश

प्रतिहार राजवंश की सत्ता कमजोर होने पर गाहड़वाल-राजवंश ने उसे नष्ट कर कन्नौज पर अपनी सत्ता स्थापित की। गाहड़वाल वंश राष्ट्रकूट वंश की ही एक शाखा थी।

गाहड़वाल राजवंश के शिलालेखों से मालूम होता है कि इस वंश के पहले प्रसिद्ध पुरुष गाहड़वाल महीपाल के पुत्र चन्द्र ने अपने बाहुबल से कान्यकुब्ज के राजा को हटाकर वहां का राज्य प्राप्त किया। इस लेख में यह भी लिखा है कि चन्द्र देवने अनेक राजाओं को परास्त कर अपने विस्तीर्ण साम्राज्य की स्थापना की। इसमें सन्देह नहीं कि कान्यकुब्ज नगर उस समय भारतवर्ष का रोम या बगदाद हो रहा था। जो राजा यहां पर शासन करता वह भारतवर्ष का सम्राट माना जाता था। इसलिए चन्द्रदेव ने कन्नौज के दुर्बल प्रतिहार राजाको आसानी से जीत लिया मगर साम्राज्य की स्थापना में उसे दूसरे अनेक राजाओं से युद्ध करना पड़ा होगा।

चन्द्रदेवने इन स्थानीय लड़ाइयों से अवकाश पाकर मुसलमान शासकों से टक्कर लेना प्रारम्भ की और उनके अत्याचार से लोगों को मुक्त किया। चन्द्रदेव का समय सन् १०८० के आसपास माना जाता है।

चन्द्रदेव के पश्चात् मदनपाल कन्नौज का राजा हुआ। मदनपाल के बाद गोविन्दचन्द इस वंश में बड़ा प्रतापी राजा हुआ।

गोविन्दचन्द के विषय में शिला लेखों में लिखा है। कि इसने अपने बाहु बल से साम्राज्य को ऐसा स्थिर कर दिया मानों रस्सों से जकड़ दिया हो। इसके जंगी हाथी तीनों ही दिशाओं में विचरण करते थे। इस राजा ने नरपति—हयपति—गजपति राज्यविजेता का विरुद्ध ग्रहण किया था। हयपति से सम्भवतः कन्नौज के प्रतिहार राजा का, गजपति से बंगाल राज्य और नरपति से चेदि के राज्य का मतलब होगा। इससे मालूम होता है कि राजा गोविन्दचन्द ने चारों दिशाओं में अपने साम्राज्य का विस्तार कर बंगाल, आन्ध्र और चेदि राज्यों की सीमाएं बहुत संकुचित कर दीं थीं। बनारस और उसके पास का पूर्वीय प्रदेश निश्चय रूप से उसके अधिकार में था। बनारस के आस पास के कई गांव उसने दान किये थे और ये सब दान पत्र बनारस से जारी किये गये थे। इससे यह भी प्रकट होता है कि कन्नौज के राजाओं की दूसरी राजधानी बनारस में थी। कई मुसलमान इतिहास कारों ने तो इनको बनारस का राजा कह कर ही लिखा है। गोविन्द चन्द्र ने सन् १११४ से ११५५ तक राज्य किया।

गोविन्दचन्द का पुत्र विजयचन्द हुआ। यह भी बड़ा पराक्रमी राजा था। इसके पुत्र जयचन्द के शिलालेखों में इसकी दिग्विजय का वर्णन किया गया है। इसने लाहौर के मुसलमान शासक को पराजय देकर वहां की जनता को उसके अत्याचारों से मुक्त किया। विजयचन्द का शासन काल सन् ११५५ से ११७० तक रहा।

विजयचन्द के पश्चात् उसका पुत्र जयचन्द्र सन् ११७० में कन्नौज को गद्दी पर आया।

इसी समय अजमेर में चौहान राजवंश का उदय हो रहा था और उस वंश के राजा विग्रहपाल ने दिल्ली को जीतकर संवत् ११६३ में अपना एक शिला लेख खुदवाया, जिसमें लिखा है कि 'विग्रहपाल ने हिमालय से लेकर विन्ध्य के बीच की समस्त भूमि को जीतकर आर्य्यावर्त्तको मलेच्छों के पंजे से मुक्त कर दिया।

इससे पता चलता है कि जयचन्द के समय में गाहड़वाल राजवंशका प्रताप कुछ मन्द पड़ गया था और उनके स्थान पर सम्राट् कहलाने का गौरव अजमेर के चौहानों को प्राप्त हो रहा था।

जयचन्द के काल में चौहान राजवंश की गद्दी पर पृथ्वीराज तृतीय आ गया था। जयचन्द और पृथ्वीराज के बीच शत्रुता हो गई और कहा जाता हैं कि पृथ्वीराज को दवाने के लिए जयचन्द ने शहाबुद्दीन मुहम्मदगोरी को बुलाया और अन्त में सन् ११९४ में स्वयं शाहबुद्दीन गोरी के साथ लड़ते हुए उसका हाथी गंगा में चला गया और वहीं वह डूबकर मर गया।

साहित्यिक गौरव

कन्नौज नगरी के इस वैभव काल में यहां पर साहित्य और संस्कृति का बड़ा विकास हुआ। सम्राट् हर्षवर्द्धन स्वयं एक कवि और साहित्यकार थे। उनकी राजसभा बाणभट्ट के समान महान् साहित्यकारों से सम्पन्न थी। बाणभट्ट की 'कादम्बरी' और 'हर्षचरित' तथा हर्षवर्द्धन रत्नावली तथा प्रिय दर्शिका इत्यादि काव्य उसी काल की देन हैं। यशोवर्माकी राज्यसभा को भवभूति और वाक्पति के समान महान् कवियोंने अलंकृत कर रक्खी थी। भवभूति का सुप्रसिद्ध 'उत्तर रामचरित्र' संस्कृतसाहित्य को उसी युग की देन है। प्रतिहार शासनकाल में राजशेखर और जैनाचार्य उद्योतन सूरि हुए। उद्योतनसूरि की 'कुवलय माला' संस्कृत साहित्य का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। गाहड़वाल युग में राजा गोविन्दचन्द स्वयं एक कवि और साहित्यकार था। गाहड़वाल वंशके लेखों में उसे 'विविध विचार-विद्यावाचस्पति' की पदवी से अलंकृत किया गया है। गोविन्दचन्द का सैन्य सचिव लक्ष्मीधर भी बड़ा विद्वान था। धर्मशास्त्र और व्यवहार विधि पर उसका लिखा हुआ 'व्यवहार कल्पद्रुम' नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध है। जयचन्द की राज्य सभा का प्रसिद्ध कवि 'श्रीहर्ष' भी उच्च कोटिका विद्वान था। नैषध-चरित्र जो संस्कृत के पंच महाकाव्यों में से एक माना जाता है उसी की रचना है।

साहित्य की ही तरह इस युग के कन्नौज में मूर्त्तिकला और भवन निर्माण कला का भी बहुत विकास हुआ था। इतिहास कार उतबी के अनुसार मुहम्मद गजनवी के आक्रमण के समय कन्नौज में १००० मन्दिर थे। हो सकता है कि यह संख्या कुछ अतिशयोक्ति पूर्ण हो, मगर यह निश्चित है कि मूर्त्तिकला और मन्दिर निर्माण कला उस समय बहुत विकास पर थी।

धार्मिक और व्यवहारिक शिक्षा का भी उस युग में बहुत प्रचार हुआ था। हुएन संग लिखता है कि हर्ष के राज्य में पांच वर्ष की अवस्था से बच्चों की शिक्षा प्रारम्भ होती थी और बारह वर्ष की अवस्था से उन्हें व्याकरण शिल्प, तर्क शास्त्र, कला, वैद्यक, दर्शन आदि पंच शास्त्रों की शिक्षा देना प्रारम्भ किया जाता था। उस काल में तक्षशिला, नालन्द, उज्जैन और काशी के विश्व विद्यालय प्रतिवर्ष हजारों छात्रों को योग्य बनाकर कर्म क्षेत्र में भेजते थे। हर्ष वर्द्धन के समय में 'कन्नौज' बौद्ध धर्म का भी एक महान् केन्द्र बना हुआ था, और यहां पर १०००० बौद्ध भिक्षुओं के आवास का प्रबन्ध था।

राजा जयचन्द के पश्चात् इस गौरव पूर्ण नगरी का स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त होता गया। पहले यह मुसलमान शासकों के अधिकार में और उसके बाद अंग्रेजी साम्राज्य में आई।

इस समय यह नगरी समस्त भारत वर्ष में अपने इत्र-उद्योग के लिए मशहूर है। इत्र का उद्योग यहां पर बड़े पैमाने पर होता है और यहां के इत्र समस्त भारत वर्ष के बाजारों में बड़ी प्रतिष्ठा के साथ बिकते हैं।

कन्सीलियर आन्दोलन

यूरोप में रोमनचर्च के पोप की अनियंत्रित सत्ता को नियंत्रित कराने वाला एक व्यापक आन्दोलन जो ईसा की तेरहवीं सदी के उत्तरार्द्ध से पन्द्रहवीं सदी के मध्य तक चलता रहा। यही समय यूरोप में मध्यकाल

के अन्त और पुनर्जागरण (Renaissance) युग का प्रारम्भ माना जाता है।

धर्माधिकारी पोप और राज्याधिकारी सम्राट् के बीच में सत्ता सम्बन्धी विवाद ग्यारहवीं सदी के मध्य या पोप ग्रेगरी सप्तम के समय से ही प्रारम्भ हो गये थे। और समस्त यूरोप के विचारक इस समस्या के निराकरण में उलझे हुए थे। कोई विचारक पोप की सार्वभौमिक सत्ता के पक्ष में अपने विचार प्रकट करता था कोई उसकी शक्तियों को नियंत्रित करने में समाज का कल्याण समझता था।

इसी विवाद को सुलझाने के लिए कन्सीलियर आन्दोलन का यूरोप में जन्म हुआ। जिसने सारे यूरोप की राजनीति पर अपना व्यापक प्रभाव डाला।

इस आन्दोलन के पूर्वार्द्ध के नेता जान आफ पेरिस (सन् १२६६ से १३०६) मार्सीलिओ आफ़ पेडुवा और विलियम आफ़ ओकम नामक विचारक थे, और उत्तराई के नेता 'गर्सन' 'पियरी डेली' तथा निकोलस आफ क्यूसा थे।

डिफेन्सर आफ़ पेसिस

सन् १३२४ में मार्सीलिओ ऑफ़ पेडुवा का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "डिफेन्सर आफ़ पेसिस' (Defensor of Pacis) प्रकाशित हुआ। यह ग्रन्थ सन् १३०० से लेकर १५०० तक प्रकाशित हुए दो युग परिवर्त्तनकारी ग्रन्थों में से एक है। यह ग्रन्थ यूरोप की मध्य कालीन विचार धारा की सब से महत्व पूर्ण कृति समझा जाता है।

इस ग्रन्थ में अरस्तू के राजनैतिक दर्शन के प्रकाश में राज्य की उत्पत्ति, उसका लक्ष्य, उसका उद्देश्य तथा कानून की विस्तृत रूप से विवेचना करने के पश्चात् राज्य के विभिन्न वर्गों के कर्त्तव्यों की आलोचना करते हुए धर्माधिकारियों के अधिकारों की भी विस्तृत व्याख्या की है। इस ग्रन्थ में धर्माधिकारियों की सार्व भौमिकता पर कड़ा प्रहार किया गया है। यह ग्रन्थ पोप की प्रभुता को समाज के लिए एक दम अवांछनीय समझता है। इसके मतानुसार पोप चर्च का सार्वभौम अधिकारी नहीं है बल्कि केवल उसका एक प्रशासकीय अधिकारी है। रोमन चर्च की स्थापना ईश्वर कृत नहीं बल्कि ऐतिहासिक शक्तियों की उपज है। अध्यात्मिक शक्ति के सम्बन्ध में पादरी, विशप तथा पोप सब समान हैं। धर्माकारियों को अपने भरण पोषण के लिए आवश्यक द्रव्य से अधिक द्रव्य अपने पास नहीं रखना चाहिए। चर्च की सम्पत्ति का स्वामी 'पोप' नहीं बरन् वे लोग हैं जिन्होंने वह सम्पत्ति चर्च को अर्पित की है।

पोप की शक्ति पर नियंत्रण रखने के लिए उसने एक परिषद् निर्माण करने की योजना भी रक्खी।

इस परिषद् के सिद्धान्त का प्रतिपादन आगे चलकर विलियम आफ़ ओकमने किया। इसने बतलाया कि ऐसी परिषद् का चुनाव अप्रत्यक्ष रूप से होना चाहिए। एक पेरिश (Parish) में रहने वाले समस्त ईसाइयों को डायोसीज (Diocese) के निर्वाचक मण्डल के लिए अपने प्रति निधि चुनना चाहिए। यह निर्वाचक मण्डल इस परिषद् के सदस्यों का चुनाव करेगा।

इस परिषद् को धर्म ग्रन्थों की व्याख्या करने, विवाद-ग्रस्त प्रश्नों का निर्णय करने और पोपको पदच्युत करने तक के व्यापक अधिकार होंना चाहिए।

शुरू-शुरू में पोप के पक्ष वाली विचार धारा के साथ इस विचार धारा का बड़ा प्रबल संघर्ष हुआ। 'डिफेन्सर पेसिस' के प्रकाशन पर चर्च ने प्रतिबन्ध लगा दिया और पोप क्लीमेंट छठेने उसके लेखक मार्सेलियों को निकृष्ट विधर्मी ठहरा कर उसे धर्म बहिष्कृत कर दिया।

मगर इन सब प्रतिबन्धों ने इस विचार धारा को बढाने में ही बल दिया और चर्च की सार्व भौमिकता के पुराने विचार को राष्ट्रवाद के नवीन विचार ने ललकारा और उसे परास्त कर दिया। चर्च की इस सर्व भौमिकता के अन्त के साथ ही यूरोप में मध्य काल का अन्त और पुनर्जागरण काल का प्रारम्भ हुआ।

विचार धाराओं में क्रान्ति हो जाने पर भी चौदहवीं शताब्दी के अन्त तक कान्सीलियर सिद्धान्तों का प्रचार सार्वजनिक आन्दोलन के रूप में नहीं बदल पाया।

कौन्सिल आफ़ कान्स्टेन्स

इस आन्दोलन को व्यापाक रूप जान गर्सन नामक विचारक के जोरदार लेखों से प्राप्त हुआ। जान गर्सन के

विचारों को समस्त यूरोप में व्यापक समर्थन प्राप्त हुआ। इसी विचारक ने चर्च की स्थिति को सुधारने के लिए एक नवीन परिषद बुलाने पर जोर दिया। इसी के फल स्वरूप इतिहास प्रसिद्ध 'कान्स्टेन्स की परिषद्' (The Council of Constance) बुलाई गई जिसकी कार्य वाही सन् १४१४ से १४१८ तक चलती रही। इस परिषद् में सारे यूरोप की लौकिक और धार्मिक शक्तियों के प्रति निधि उपस्थित थे। विद्वानों, पादरियों और राजाओं के प्रतिनिधि इसमें भाग ले रहे थे।

अत्यन्त लम्बे बहस मुबाहिसे के पश्चात् इस परिषद् ने सन् १४१५ में अपनी वह क्रान्तिकारी घोषणा प्रकाशित की जिसे यूरोप के इतिहास की सब से अधिक क्रान्तिकारी घोषणा समझा जाता है।

इस घोषणा के अनुसार 'साधारण परिषद्" को जोकि कैथोलिक चर्च का निर्माण और प्रति निधित्व करती है स्वयं प्रभु ईसा मसीह से शक्ति प्राप्त हुई है। जिसकी आज्ञा का पालन प्रत्येक व्यक्ति करने को बाध्य है चाहे वह पोप ही क्यों न हो।' इस प्रकार इस परिषद् ने पोप की सार्व भौम शक्ति को स्वयं ग्रहण करके इस सिद्धान्त को स्वीकार करालिया कि चर्च की प्रभुत्वपूर्ण समस्त शक्ति जनता और उसके प्रतिनिधि अङ्ग में मानी जाना चाहिए।

सन् १४१७ में इस परिषद् ने एक दूसरा आदेश जारी किया। जिसके अनुसार प्रति दसवें वर्ष इस परिषद् का नियमित रूप से अधिवेशन बुलाने का प्रस्ताव घोषित किया गया। इस अधिवेशन को रोकने, आगे बढ़ाने या इसके स्थान परिवर्त्तन का अधिकार पोप का नहीं रक्खा गया।

शुरू शुरू में सार्वभौम सत्ता का केन्द्र जनरल कौन्सिल को समझा जाता था जिसमें पोप और उसके प्रतिनिधि भी सम्मिलित रहते थे। मगर पोप जॉन तेइसवें के धर्म विरुद्ध आचरण के पश्चात् इस कौसिल ने यह घोषणा की कि चर्च की प्रभुसत्ता पोप सहित सम्पूर्ण कौन्सिल में नहीं प्रत्युत केवल उसके साधारण सदस्यों में है और पोप के सहमत नहीं होने पर भी यह कौन्सिल अपने निर्णय कर सकती है।

मगर कान्स्टेन्स परिषद् के ये निर्णय जनता में एक मनोवैज्ञानिक जागृति करने के सिवाय कुछ भी सफलता नहीं प्राप्त कर सके। पोप और उसके समर्थकों ने इस कौन्सिल के सदस्यों में भी फूट डाल कर अपनी सत्ता को बनाए रखने का प्रयत्न किया और इसमें उनको सफलता भी मिल गई।

कौंसिल आफ बेसल

कान्स्टेन्स कौन्सिल की असफलता के पश्चात् राजाओं तथा जनता के दबाव से पोप को एक और कौन्सिल बुलाना पड़ी। जो इतिहास में बेसल कौन्सिल के नाम से प्रसिद्ध है। यह कौन्सिल सन् १४३१ से आरम्भ हुई और किसी तरह आसन्न मृत्यु की हालत में १४४८ तक चलती रही।

जिस प्रकार कान्स्टेन्स की कौन्सिल का प्रधान प्रवक्ता जॉन गर्सन था उसी प्रकार बेसल की कौन्सिल का प्रमुख प्रवक्ता निकोलस ऑफ क्यूसा था।

मगर अन्त में यह भी चर्च में वैधानिक शासन लाने में असफल रही और पोप का स्वेच्छा चार चलता रहा।

इस प्रकार यूरोप का यह कन्सीलियर आन्दोलन चर्च के स्वेच्छा चार को मिटाने और उसमें एक वैधानिक शासन का सूत्रपात करने में व्यवहारिक रूप से तो असफल रहा मगर यूरोप की जनता के मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में इसने जो जागृति पैदा की उसने आगे चलकर यूरोप के इतिहास को एक नया मोड़ दे दिया।

इसी आन्दोलन के फल स्वरूप राज्य सम्बन्धी कई नवीन विचार, तथा निरंकुश शासन के स्थान पर वैधानिक शासन के लिए जनता के हृदय में तीव्र मनोभावनाएं पैदा हुई और इसके सिद्धान्तों का प्रचार निरंकुश राजतंत्र के खिलाफ प्रमुख शस्त्र बना।

कन्हेरी

बम्बई से लगभग २५ मील दूर सालसेट द्वीप पर पर्वत की चट्टान काट कर बौद्धों के हीनयान-सम्प्रदाय का बना हुआ दरी मन्दिर।

इस मन्दिर का निर्माण-काल दूसरी सदी के अन्त में माना जाता है। इस दरी-मन्दिर में पर्वत की चट्टानों को काट कर यह चैत्य-मन्दिर बनाया गया है। इस मन्दिर के आस-पास का प्राकृतिक सौन्दर्य बड़ा दर्शनीय और आकर्षक है। इस सारी गुफा की लम्बाई ८६ फुट, चौड़ाई ४० फुट और ऊँचाई ५० फुट है। इसके अन्दर ३४ स्तम्भ हैं। इसकी बाहरी दीवारों पर बुद्ध की मूर्तियाँ बनी हुई हैं। बुद्ध की एक मूर्ति की ऊँचाई २५ फुट है।

यद्यपि यह दरी-मन्दिर शुरू-शुरू में हीनयान-सम्प्रदाय के द्वारा बनाया गया था, मगर बाद में इस पर महायान-सम्प्रदाय का प्रभाव भी पड़ा, जो इसकी मूर्तियों के ऊपर परिलक्षित होता है।

कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी

गुजराती-साहित्य के सुप्रसिद्ध साहित्यकार, बंबई के प्रसिद्ध धाराशास्त्री तथा भारतीय राजनीति के विख्यात कार्यकर्ता कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, जिनका जन्म १९वीं सदी के अन्तिम दशक में हुआ।

कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी भारतीय साहित्य के चोटी के विद्वानों और प्रसिद्ध कलाकारों में अपना अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। भारतीय साहित्य और इतिहास के अनुसन्धान कार्य में इनकी सेवाएँ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

सन् १९११ में सबसे पहले एक कहानीकार के रूप में इन्होंने गुजराती साहित्य में प्रवेश किया। शुरू-शुरू में "घनश्याम" के नाम से इन्होंने कहानियाँ लिखना प्रारंभ किया। सन् १९१६ में "पाटणनी प्रभुता" नामक इनका ऐतिहासिक उपन्यास प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास के प्रकाशित होते ही सारे गुजराती-साहित्य में एक हलचल मच गई और इस उपन्यास का समस्त गुजराती-समाज ने बड़े उत्साह से स्वागत किया। इसके बाद इन्होंने स्वयं अपने नाम से ग्रन्थ लिखना प्रारंभ कर दिया।

इनकी दूसरी रचना "पृथिवी-वल्लभ" सन् १९२०-२१ में प्रकाशित हुई। उसके पश्चात् "जय सोमनाथ!" "स्वप्नद्रष्टा" "भगवान परशुराम" इत्यादि अनेक ऐतिहासिक और अर्द्ध ऐतिहासिक कृतियाँ इनकी प्रकाशित हुईं, जिनके कारण गुजराती के सर्वश्रेष्ठ लेखकों में इनकी गणना होने लगी।

अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में लेखक ने १० वीं, ११ वीं और १२ वीं शताब्दी के गुजरात के इतिहास का बड़ा सजीव चित्रण किया है। इनमें शासकों के द्वारा किये जाने वाले षड्यंत्रों का, जनता की मनोभावनाओं का और उस समय की राजनीति में प्रमुख रूप से भाग लेने वाले जैनाचार्यों की स्थिति का, बड़ा सूक्ष्म और मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। मुंजाल मेहता और मीनल देवी के राजनैतिक दाँव पेंचों का चरित्र-चित्रण करने में इस महान लेखक को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है।

अपनी इसी साहित्यिक अभिरुचि और अनुसन्धान-प्रियता को चरितार्थ करने के लिए इन्होंने बंबई में "भारतीय-विद्या-भवन" के नाम से एक प्रसिद्ध अनुसन्धान-संस्था की स्थापना की। इस संस्था ने भारतवर्ष के अनेकों उच्चकोटि के विद्वानों के सहयोग से अत्यन्त उत्तम साहित्य का प्रकाशन किया है।

साहित्यिक क्षेत्र की तरह ही राजनैतिक और कानून के क्षेत्र में भी मुंशी की सेवाएँ बहुत महत्वपूर्ण रही हैं। भारत के स्वाधीनता-संग्राम में भी इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। स्वाधीनता के पूर्व शुरू-शुरू में जब वह बंबई की मिनिस्ट्री में आये थे, उस समय बंबई में हिन्दू-मुसलिम समस्या ने बड़ा उग्र रूप धारण कर रखा था। इस समस्या को इन्होंने ऐसी बुद्धिमानी से निपटाया कि फिर यह बहुत काफी समय तक अपना सर न उठा सकी।

स्वाधीनता-प्राप्ति के पश्चात् देशी राज्यों के विलीनीकरण के प्रश्न पर हैदराबाद के निजाम टाल-मटूल कर रहे थे और कासिम रिजवी नामक रजाकार संगठन का नेता भारत सरकार और हिन्दुओं के खिलाफ जोरदार आन्दोलन कर रहा था। उस समय सरदार पटेल ने वहाँ की स्थिति को सँभालने के लिए कन्हैया लाल मुंशी को भेजा। वहाँ जाकर इन्होंने निजाम से मिलकर इस तरह का वातावरण तैयार किया कि चार दिन की पुलिस कार्यवाही में ही निजाम ने अपने स्टेट का भारत में विलीनीकरण मंजूर कर लिया और 'कासिम रिजवी' को वहाँ से भागना पड़ा।

उसके कुछ समय पश्चात् मुंशी उत्तरप्रदेश के गवर्नर बनाये गये। यहाँ पर भी इन्होंने अपना कार्य योग्यतापूर्वक किया।

बाद में कांग्रेस की नीति से मौलिक मतभेद हो जाने के कारण यह कांग्रेसी-शासन और संस्था से त्याग-पत्र देकर राजगोपालाचार्य द्वारा संस्थापित स्वतंत्र पार्टी में सम्मिलित हो गये।

कन्हैयालाल मिश्र "प्रभाकर"

हिन्दी के एक सुप्रसिद्ध साहित्यकार और पत्रकार, जिनका जन्म सन् १९०६ में देवबन्द-सहारनपुर में हुआ।

श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर हिन्दी-साहित्य के एक मँजे हुए लेखक और पत्रकार हैं। "विकास" "ज्ञानोदय" "नया जीवन" इत्यादि उच्चस्तरीय पत्रों के वे सफल सम्पादक रह चुके हैं। देश के प्रसिद्ध हिन्दी-पत्रों में इनकी गम्भीर और समसामयिक विषयों की रचनाएँ छपती रहती हैं। इनकी रचनाओं में "आकाश के तारे" "धरती के फूल", "माटी हो गई सोना" इत्यादि रचनाएँ महत्वपूर्ण हैं।

कन्हैयालाल सहल "डॉक्टर"

हिन्दीभाषा में राजस्थानी साहित्य के एक सुप्रसिद्ध साहित्यकार। जिन्होंने संस्कृत-साहित्य में "पी० एच० डी" की उपाधि प्राप्त की। इनका जन्म सन् १९११ में हुआ।

डॉक्टर कन्हैयालाल सहल "बिड़ला आर्ट्स कॉलेज" पिलानी में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं। राजस्थानी साहित्य के सम्बन्ध में डॉ० सहल के अनुसन्धान बड़े महत्वपूर्ण हैं। इस सम्बन्ध में इनकी "राजस्थान के सांस्कृतिक उपाख्यान" "राजस्थान की वीर कथाएँ" 'राजस्थान की लोक कथाएँ" "राजस्थानी कहावतें" "निहालदे सुलतान" इत्यादि रचनाएँ बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं।

राजस्थानी साहित्य के अतिरिक्त समालोचना साहित्य सम्बन्धी इनकी रचनाएँ भी उत्तम हैं। इन रचनाओं में "समीक्षाञ्जलि", "वादसमीक्षा" "कामायनीदर्शन" इत्यादि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं।

कन्हाईलाल दत्त

बंगाल के एक सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी, स्वदेश भक्त और साहसी नवयुवक, जिनका जन्म सन् १८८७ ई० में हुआ और मृत्यु सन् १९०८ में हुई।

कन्हाईलाल दत्त का नाम बंगाल के क्रान्तिकारियों के इतिहास में बहुत प्रसिद्ध है।

इनकी शिक्षा बी० ए० तक हुई थी। उस समय बंगाल अंग्रेजी साम्राज्य के खिलाफ क्रान्तिकारी भावनाओं का प्रधान केन्द्र बना हुआ था। अतः इनके हृदय में भी क्रान्ति की प्रगाढ़ भावनाएँ पैदा हुईं।

एक दिन यह नौकरी करने के बहाने घर से कलकत्ता के लिए रवाना हो गये और कलकत्ते के क्रान्तिकारी नवयुवकों के दल में गुप्तरूप से सम्मिलित हो गये।

विशेष कर्मठ और उत्साही होने के कारण यह अपने दल के प्रमुख कार्यकर्ता बन गये।

जिस समय सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी खुदीराम बोस ने बम काण्ड किया था, इसके सिलसिले में पुलिस ने इन्हें भी पकड़ कर जेल में भेज दिया।

जेल में इनको पता लगा कि इनकी गुप्त संस्था का नरेन्द्र स्वामी नामक सदस्य पुलिस का मुखबिर बन गया है और अदालत में क्रान्तिकारियों का भेद खोलनेवाला है। इससे क्रुद्ध होकर कन्हाई लाल दत्त ने अपने साथियों के साथ निश्चय किया कि इस विश्वासघाती-देशद्रोही को जरूर मौत की सजा देनी चाहिए।

योजना के अनुसार एक दिन इनका साथी सत्येन्द्र बुखार का बहाना कर जेल से अस्पताल में गया और कन्हाईलाल दत्त भी पेट दर्द का बहाना कर उस अस्पताल में पहुँच गये।

सत्येन्द्र की बीमारी का हाल सुनकर नरेन्द्र भी अपने दो अंगरक्षकों के साथ उसे देखने के लिए अस्पताल में गया। सत्येन्द्र ने बेहोशी का स्वांग रचकर नरेन्द्र पर गोली चला दी, मगर निशाना चूक गया। नरेन्द्र भाग निकला, मगर तब तक कन्हाईलाल दत्त ने निशाना साधकर उस पर गोली चला दी जिससे वह वहीं पर समाप्त हो गया।

इसके बाद दोनों व्यक्ति खड़े होकर गोलियाँ चलाने लगे। जिससे जेल कर्मचारी और अस्पताल के लोग बड़े भयभीत हो गये। अन्त में कारतूस खतम हो जाने पर उनको गिरफ्तार किया गया। उन पर नरेन्द्र स्वामी की हत्या का मुकद्दमा चलाया गया और १० नवम्बर सन् १९०९ ई० को कन्हाईलाल दत्त और उनके साथी सत्येन्द्र को फाँसी के तख्ते पर लटका दिया गया।

कन्याकुमारी

भारत वर्ष की दक्षिण दिशा के अन्तिम छोर पर स्थापित हिन्दुओं का एक पवित्र तीर्थ स्थान। यहीं से भारत की दक्षिणी सीमा समाप्त होकर हिन्द-महासागर प्रारम्भ हो जाता है :

यहाँ पर समुद्र-तट के समीप पश्चिमी घाट की अन्तिम नोक पर 'कन्याम्भल देवी' का मन्दिर बना हुआ है जो हिन्दुओं का पवित्र स्थान है।

कन्दहार

अफगानिस्तान का एक प्रान्त जिसको प्राचीन काल में 'गान्धार' देश कहते थे। इस प्रान्त की राजधानी कन्दहार शहर में है जो अफगानिस्तान का तीसरे नम्बर का प्रमुख शहर है।

कन्दहार शहर प्राचीन काल में भारतवर्ष की सीमाओं के अन्तर्गत माना जाता था। धृतराष्ट्र की पत्नी गान्धारी इसी देश की राजकन्या थी। सम्राट् अशोक और सम्राट् कनिष्क के समय में यह प्रान्त उनके साम्राज्य की उत्तर-पश्चिमी सीमा पर अवस्थित था।

उसके बाद यह प्रदेश अफगानों के हाथ चला गया और ११वीं शताब्दी में महम्मद गजनवी ने इसको अफगानों के हाथ से छीन लिया। तत्पश्चात् यह प्रांत चंगेज खाँ, तैमूर लंग, बाबर, अकबर, ईरान के शाह अब्बास इत्यादि अनेक शासकों के साम्राज्य का अंग बना रहा।

इस प्रान्त की राजधानी 'कन्दहार' अफगानिस्तान का एक सुन्दर नगर है, जिसके चारों तरफ २४ फुट चौड़ी और २७ फुट ऊँची दीवार बनी हुई है। कन्दहार से चमन होते हुए पाकिस्तान तक रेलवे मार्ग बना हुआ है। यहाँ के दर्शनीय स्थानों में अहमद शाह का मकबरा उल्लेखनीय है।

कपिल मुनि

संसार-प्रसिद्ध सांख्य-दर्शन के आदिप्रवर्तक कपिल मुनि, जिनके समय का अनुमान कुछ इतिहासकार ईसा से आठ शताब्दी पूर्व करते हैं।

कपिल मुनि भारतीय सभ्यता के प्रसिद्ध पुराण-पुरुष हैं। इतिहासकारों ने वहाँ तक पहुँचने का प्रयत्न किया है, पर अभी तक इस सम्बन्ध में वे किसी निश्चय पर नहीं पहुँच सके हैं। इसलिए इनके समय और जन्मस्थान के बारे में अभी तक कोई निश्चित मत स्थिर नहीं हो पाया है। कुछ लोग इनका जन्म बिहार के कपिलवस्तु नामक स्थान को मानते हैं और कुछ लोग अजमेर के समीप पुष्कर नामक स्थान के समीप किसी स्थान पर इनका जन्म मानते हैं। काल-निर्णय के सम्बन्ध में कुछ इतिहासकारों के मत से इनका समय ई० पू० आठवीं शताब्दी में होना चाहिए, पर हमारी पौराणिक परम्परा के अनुसार तो इनका समय कृष्ण और रामचन्द्र से भी पहले होना चाहिए। जब कि भागीरथ द्वारा गंगा नदी का अवतरण भी इस भूमि में नहीं हुआ था। कृष्ण का समय ही ईसा से तेरह सौ बरस पूर्व के करीब माना जाता है।

भारतीय पुराण-परम्परा के अनुसार 'कपिल' विष्णु के चौबीस अवतारों में से पाँचवें अवतार थे। इनकी माता देवहूति स्वायंभुव मनु की पुत्री थी और इनके पिता प्रजापति कर्दम ऋषि थे। कुछ स्थानों पर इनको अग्नि का अवतार और कुछ स्थानों पर इन्हें ब्रह्मा का मानस-पुत्र भी कहा गया है।

कपिल मुनि सुप्रसिद्ध "सांख्य-दर्शन" के प्रवर्त्तक थे। उल्लेख है कि अपनी माता देवहुति को मुक्ति दिलाने के लिए इन्होंने सांख्य-दर्शन का उपदेश दिया। बाद में इन्होंने—जिस स्थान पर इस समय गंगा सागर का तीर्थ अवस्थित है—समुद्र तट पर घोर तपश्चर्या की। इसी स्थान पर इन्होंने राजा सगर के साठ हजार पुत्रों को जो अश्वमेध

के "अश्व" की रक्षा करने आये थे, शाप देकर भस्म कर दिया। इन्हीं की प्रेरणा से भगीरथ गंगा को पृथ्वी पर लाये और उस गंगा का संगम सागर में उस स्थान पर हुआ जहाँ कपिल का आश्रम था और वह स्थान 'गंगासागर' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। हजारों बरस से हजारों हिन्दू इस तीर्थ का दर्शन करने प्रति वर्ष मकरसंक्रांति के अवसर पर जाते हैं।

कपिलमुनि के 'सांख्य-दर्शन' ने भारतवर्ष की तत्कालीन अध्यात्मिक विचार धारा में एक नवीन दृष्टिकोण उत्पन्न कर युगान्तर उपस्थित कर दिया। उन्होंने कर्मकाण्ड के विपरीत ज्ञान को विशेष महत्व देकर प्रचलित विचार परम्पराओं को एक नया मोड़ दे दिया। इसी कारण पुराणों में सम्भवतः उन्हें आदिसिद्ध भी कहा गया है।

सांख्य में प्रकृति और पुरुष—दो तत्व माने गये हैं। इनमें प्रकृति के चौबीस भेद और एक पुरुष इस प्रकार कुल पच्चीस तत्वों से सृष्टि की उत्पत्ति मानी गई है। प्रकृति का निर्माण सत्व, रज और तम—इन तीन गुणों से होता है। ये तीन गुण जब तक साम्यावस्था में रहते हैं तब तक प्रकृति शान्त रहती है मगर पुरुष के साहचर्य्य से जब इनमें वैषम्य उत्पन्न होता है तभी उस संघर्ष से सृष्टि की उत्पत्ति होती है। चेतनरूप पुरुष, जड़रूप प्रकृति के साथ अपने बन्धनों को सत्य समझ कर ही आवागमन के चक्कर में पड़ता है और अनन्त दुःखों को उठाता है। ये दुःख आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक तीन प्रकार के होते हैं। इन तीन प्रकार के दुःखों की अतिनिवृत्ति ही मोक्ष है। यह निवृत्ति विवेक-ज्ञान से होती है। जब आत्मा समझने लगता है कि वह प्रकृति के बन्धनों से स्वतन्त्र, चेतन स्वरूप स्वयं प्रकाशमान है तभी यह विवेक-ज्ञान पैदा होता है।

सांख्य-दर्शन ईश्वर में विश्वास नहीं करता। उसका "ईश्वरासिद्धेः" नामक सूत्र ईश्वर की सत्ता को स्पष्टरूप से इन्कार करता है। इसीलिए इस दर्शन का नाम निरीश्वर सांख्यदर्शन भी है। यद्यपि सांख्य-दर्शन के टीकाकार "विज्ञान भिक्षु" ने लिखा है कि सूत्रकार का तात्पर्य इससे केवल इतना ही है कि ईश्वर के न मानने पर भी विवेक साक्षात्कार के द्वारा मुक्ति होने में कोई बाधा नहीं होती। यदि ईश्वर का खण्डन करना सूत्रकार अभिप्राय होता तो वे "ईश्वरासिद्धेः" सूत्र न बनाकर 'ईश्वराभावात्' ऐसा सूत्र बनाते। फिर भी यह सूत्र इतना साफ है कि वाचस्पति मिश्र ने इसे निरीश्वरवादी दर्शन ही माना है।

प्रचलित सांख्य-प्रवचन में ६ अध्याय और ४५६ सूत्र हैं। पहले अध्याय में हेय, हेयहेतु, हान और हानहेतु का निरूपण किया गया है। प्रकृति और पुरुष का अविवेक या अभेद ज्ञान ही दुःख का हेतु है। दूसरे अध्याय में प्रकृति के सूक्ष्म कार्य, तीसरे अध्याय में प्रकृति के स्थूल कार्य, लिंग शरीर, स्थूल शरीर, अपर वैराग्य और पर वैराग्य का निरूपण किया गया है। चौथे अध्याय में शास्त्र प्रसिद्ध आख्यायिकाओं के द्वारा विवेक-ज्ञान के साधन का उपदेश दिया गया है। पाँचवें अध्याय में अपने विरोधी मतों का खण्डन किया गया है और छठें अध्याय में इस शास्त्र के मुख्य विषयों की व्याख्या और उपसंहार किया गया है।

कपिल मुनि के शिष्य आसुरि और आसुरि के शिष्य पंचशिख हुए। इन्होंने सांख्यादर्शन पर कई ग्रन्थ बनाये, मगर इस समय वे उपलब्ध नहीं हैं। इस समय सांख्य-दर्शन की उपलब्ध टीकाओं में ईश्वरकृष्ण की सांख्य-कारिका, गौड़पादाचार्य का सांख्यकारिकाभाष्य, वाचस्पति मिश्र की सांख्यतत्व कौमुदी और विज्ञान भिक्षु कृत सांख्य-भाष्य इस विषयक के प्रामाणिक ग्रन्थ माने जाते हैं।

कपिलवस्तु

शाक्य-वंशीय राजा शुद्धोदन के शाक्य-गणतन्त्र की राजधानी। भगवान् बुद्ध की जन्मभूमि। जो इस समय अतीत के गर्भ में चली गई है।

प्रसिद्ध इतिहासकार 'कनिंघम' के मतानुसार फैजाबाद से २५ मील उत्तर-पूर्व बस्ती जिले के अन्तर्गत—घाघरा और गंडक नदी का मध्यवर्ती स्थान ही कपिलवस्तु हो सकता है। आजकल सब लोग जिसे 'भुइलाताल' कहते हैं, वही वास्तव में कपिलवस्तु का स्थान होना चाहिये। यहीं पर बुद्ध की अस्थियों पर शाक्य लोगों के द्वारा निर्मित स्तूप पाया गया है।

पर दूसरे कुछ इतिहासकार नैपाल के 'तिलौरा कोट' नामक स्थान को कपिलवस्तु मानते हैं। यहाँ पर अशोक

का एक 'स्तम्भ-लेख' मिला है, जिसमें लिखा है—अशोक ने भगवान् बुद्ध के इस जन्मस्थान पर आकर पूजा की और यह स्तम्भ खड़ा किया।

चीनी यात्री 'फाहियान' और 'हूएनसंग' भी कपिलवस्तु का दर्शन करने के लिए यहाँ आये थे। फाहियान ने अपने यात्रा-वर्णन में 'कीआ-वो-लो-वे' के नाम से और हुएनसंग ने 'किपी-लो-फस्सेसी' के नाम से कपिलवस्तु का उल्लेख किया है। हुएनसंग के समय में इस क्षेत्र की स्थिति बहुत खराब हो गई थी। उसने लिखा है कि यह राज्य अत्यन्त वीरान अवस्था में पड़ा हुआ है, नगर का प्राचीन राजमहल खण्डहर हो रहा है। उसी के निकट हीनयान-मतावलम्बियों का एक 'संघाराम' था। राजमहल के बीच में शुद्धोदन राजा की एक पत्थर की मूर्ति बनी हुई थी। उससे थोड़ी दूर पर बुद्ध की माता मायादेवी का अन्तःपुर था और भी कुछ स्तूप इधर-उधर बने हुए थे।

कपिलदेव द्विवेदी "डॉक्टर"

हिन्दी और संस्कृत के एक साहित्यकार जिनका जन्म सन् १९१९ में गहमर (गाजीपुर) में हुआ।

डॉ० कपिलदेव को गुरुकुल-विश्वविद्यालय से "विद्या-भास्कर" की, प्रयाग विश्वविद्यालय से 'डॉक्टरेट' (संस्कृत) की और संस्कृत विश्वविद्यालय बनारस से व्याकरणाचार्य की उपाधियाँ प्राप्त हैं।

डॉ० कपिलदेव रूसी, जर्मन तथा फ्रेंच भाषा के भी जानकार हैं। इनकी साहित्यिक रचनाओं में "अर्थविज्ञान" "व्याकरणदर्शन" "संस्कृत साहित्य का इतिहास" "अनुवाद कौमुदी" "अभिज्ञान-शाकुन्तलम् नाटकम्" इत्यादि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं।

कपूरथला

अंग्रेजी-राज्य के समय में पञ्जाब प्रान्त की एक छोटी रियासत, जिसकी राजधानी कपूरथला नामक शहर में थी।

कपूरथला नामक नगर की स्थापना ११वीं सदी में जैसलमेर के राजपूत राजा 'राणा कपूर' के द्वारा की गई मानी जाती है। उसके बाद यह राज्य मुसलमानी अधिकार में चला गया।

सन् १७८० ई० में सरदार 'जस्सासिंह' ने इसे अपने अधिकार में कर लिया। उसके बाद इन्हीं के वंशज उसपर शासन करते रहे।

अंग्रेजी-राज्य के समाप्त होने पर इस रियासत (स्टेट) का पूर्वी पंजाब में विलीनीकरण हो गया।

कबीर

मध्यकालीन युग में भारतवर्ष के एक महान् सन्त, धर्म-संस्थापक, कवि तथा महान् विचारक जिनका जन्म विक्रम संवत् १४५६ में और मृत्यु वि० संवत् १५६६ में मानी जाती है।

कबीर जिस युग में पैदा हुए उस युग में दिल्ली पर लोदीवंश का शासन था। सिकन्दर लोदी इस वंश का शासक था। इस युग में मुसलमान शासकों के दिलों में हिन्दुओं के प्रति धर्म-द्वेष की तीव्र भावनाएँ धीरे-धीरे कम हो रही थीं और वे लोग इस चीज को महसूस करने लगे थे कि इस देश में तभी शान्ति स्थापित हो सकेगी जब हिन्दू और मुसलमान दोनों सभ्यताएँ अपने-अपने क्षेत्र में स्वतन्त्रतापूर्वक फूलने-फलने लगेंगी और दोनों सभ्यताओं में द्वेष की जगह प्रेम की भावनाओं का प्रसार होगा।

उस समय के साहित्य और काव्य में भी इन भावनाओं का क्रमागत प्रचार हो रहा था। सन्त नानक और सन्त कबीर इन्हीं भावनाओं के प्रभावशाली प्रतीक थे और इन दोनों महात्माओं ने अपने साहित्य के द्वारा हिन्दू और मुसलमानों के बीच में संकीर्ण साम्प्रदायिक भावनाओं पर आधारित दीवारों को तोड़ने का प्रयत्न किया।

सन्त कबीर का जन्म विक्रम संवत् १४५६ की जेठ सुदी पूर्णिमा को काशी में हुआ माना जाता है। इनके जन्म के सम्बन्ध में इनके अनुयायियों में कई चमत्कारपूर्ण किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। मगर सबसे अधिक मान्य किम्बदन्ती यह है कि एक ब्राह्मण की विधवा कन्या को स्वामी रामानन्द ने भूल से सन्तान होने का आशीर्वाद दे दिया। [illegible] आशीर्वाद से उसे गर्भ रह गया। जब बच्चा

पैदा हुआ तो वह उसे लहरतारा के तालाब के पास फेंक आई। वह बच्चा 'नीरू' नामक एक मुसलमान जुलाहे के हाथ लगा, जिसे उसने पालपोसकर बड़ा किया। यही बच्चा आगे चलकर 'कबीर' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

मुसलमान-घर में प्रतिपालित होनेपर भी कबीर के जन्मजात संस्कार हिन्दू थे। सत्य की खोज के लिए उनके हृदय में प्रारम्भ से ही लगन थी। अतः स्वामी रामानन्द का आशीर्वाद प्राप्त कर उन्हें अपना गुरु मानकर वे अपनी सत्य की जिज्ञासा को संतृप्त करने का प्रयत्न करने लगे।

इस मार्ग में उनके विद्रोहियों के द्वारा भयंकर बाधाएँ भी पहुँचाई जाने लगीं मगर वे दुर्दमनीय संकल्पशक्ति के साथ अपने मत का प्रतिपादन करने लगे। इनका विवाह "लोई" नामक एक जुलाहे की लड़की के साथ हुआ।

कबीरपंथ के मुसलमान अनुयायियों के मत से कबीर ने उस समय के सुप्रसिद्ध सूफीसन्त शेख तकी को अपना गुरु बनाया था और यही कारण है कि उनकी साखियों में स्थान-स्थान पर सूफी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

चाहे वे रामानन्द से प्रभावित हों, चाहे सूफी सन्तों से प्रभावित हों मगर इस सबके मन्थन के पश्चात् उन्होंने जिस सत्य का निरूपण किया, वह सर्वथा मौलिक और नये दृष्टिकोण से परिप्लावित था। इस सत्य के अनुसन्धान में उन्होंने किसी भी पूर्वाग्रह को स्वीकार नहीं किया। जो सिद्धान्त उनकी कसौटी पर खरा उतरा, वह चाहे पुराण का हो चाहे क़ुरान का, चाहे वेद का हो चाहे उपनिषद् का—उसे उन्होंने स्वीकार किया और जो खरा नहीं उतरा, वह चाहे कहीं का भी हो, उसकी स्पष्ट शब्दों में तीव्र आलोचना की।

कई आलोचक उन्हें भक्तिमार्ग का कवि मानते हैं और कई उन्हें ज्ञानमार्ग का अनुयायी बतलाते हैं मगर उनकी निगाह में ज्ञान और भक्ति दोनों ही एक दूसरे के पूरक थे। उनकी भक्ति ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित थी और उनका ज्ञान भक्ति की धारा और तन्मयता से ओतप्रोत था।

भक्ति की भावना से ओतप्रोत होकर जहाँ एक ओर वे अपने प्रियतम को निमन्त्रण देते हुए कहते हैं—

वाल्हा आव हमारे गेह रे, तुम बिन दुखिया देह रे
सब को कहे तुम्हारी नारी मोको यहै संदेह रे।
एक मेक ह्वै सेजन सोवे तबतक कैसो नेह रे
है कोई ऐसा परउपकारी हरि सूँ कहै सुनाई रे
ऐसे हाल कबीर भये हैं बिन देखे जिय जाय रे!

एक स्थान पर वे कहते हैं—

क्या जप, तप, क्या संजमा क्या तीरथ अरु ज्ञान
जो पै जुगुति न जानिए भाव भगति भगवान्

इसी प्रकार जब वे ज्ञान की चर्चा करते हैं तो कहते हैं—

संतों भाई, आई ज्ञान की आंधी
भ्रम की टाटी सबै उड़ाणी, माया रहै न बाँधी
हित चित की द्वै थूणी गिरानी मोह बलीण्डा टूटा
त्रिस्ना छांनि परी धर ऊपरि, कुबधि का भण्डा फूटा

इस प्रकार ज्ञान और भक्ति दोनों के तत्त्वों का समन्वय उनके सिद्धान्तों में हो गया था।

कबीर के मतानुसार ईश्वर या परमतत्व अगम, अकथ, अनुपम और अनिर्वचनीय है। यह संसार उसकी लीला है और उसकी माया विश्वविमोहिनी है जो अपने मोहक रूप से प्राणियों को भरमाये रहती है। इस प्रकार इनका यह "परमतत्व" वेदान्त के ब्रह्म जैसा प्रतीत होता हुआ भी केवल भावात्मक "सच्चिदानन्द" मात्र नहीं है। वह सबका नियामक है, सहृदय और दयालु है। जीवात्मा भरम-करम के कारण उसे अपने से भिन्न समझ लेता है और जन्मांतर के फेर में पड़ कर दुःख उठाता है।

इस "भरम-करम" से छुटकारा पाने के लिए उस परमतत्व को सर्वत्र अनुभव करना, उसके प्रति प्रेम और भक्ति का भाव रखते हुए मन की चंचलता को छोड़ कर सहज समाधि में लीन रहना ही वास्तविक उपाय है। इससे मनुष्य के अन्तर्गत संसार के सब प्राणियों के साथ आत्मीयता का बोध जाग्रत होता है और उससें अनायास ही निर्वैर, अनासक्ति, भगवद्भक्ति और विषय-वासनाओं के प्रति उदासीनता की भावनाएँ जाग्रत होती हैं।

कबीर के मतानुसार यह सारा संसार एक ही परमज्योति से उत्पन्न है। ऐसी स्थिति में प्राणी-प्राणी में भेदभाव को यहाँ कोई स्थान ही नहीं है। मानव-समाज में पाई जानेवाली ऊँच-नीच, छूत-अछूत, ब्राह्मण-शूद्र इत्यादि

भेदभाव को उत्पन्न करनेवाली सब भावनाएँ कृत्रिम हैं। मनुष्य की विकारात्मक बुद्धि से इन भावनाओं का जन्म होता है और इनके परिणामस्वरूप संसार में अशान्ति, अत्याचार और राक्षसी भावनाओं का दौर होता है। संसार का प्रत्येक प्राणी एक ही मिट्टी का बना हुआ है और उसको बनानेवाला भी एक है और वही सबके भीतर काठ के भीतर अग्नि की भाँति व्याप्त है।

इसी कारण कबीर साहब मूर्तिपूजा, कर्मकाण्ड, बाह्याडम्बर, व्रत, उपवास इत्यादि के बड़े खिलाफ थे। जगह-जगह पर उन्होंने इन बाह्याडम्बरों के खिलाफ कस कर चुटकियाँ ली हैं।

कबीर अहिंसावाद के कट्टर समर्थक थे। किसी भी प्राणी का हनन या उसे कष्ट पहुँचाना, उनकी दृष्टि में संसार का गर्हित पाप था। इसके लिए स्थान-स्थान पर उन्होंने हिंसा करनेवाले लोगों को कोसा है। एक स्थान पर उन्होंने कहा है—

दिन भर रोजा रहत है रात हनत है गाय
यह तो खून यह बन्दगी कैसे खुशी खुदाय।
अपनी देखि करत नहीं अहमक, कहत हमारे बड़न किया
उसका खून तुम्हारी गरदन जिन तुमको उपदेस दिया

ऐसा प्रतीत होता है कि सत्य की एक ज्वलन्त चिनगारी इस महापुरुष के अन्तरंग में प्रदीप्त हो रही थी। उसने जो कुछ कहा, जो कुछ समझा, जो कुछ अनुभव किया—वह सब इसी चिनगारी के प्रकाश में किया। उसने न वेदों को माना न उपनिषदों को माना और न सूफियों को माना। अपनी अन्तःप्रेरणा के प्रकाश में जो कुछ उसे सत्य दिखाई दिया, वह उसने बतला दिया। उनका वह सत्य अन्वेषण विशुद्ध मौलिक था। एक स्थान उन्होंने कहा है—

अब मैं पाइबो रे पाइबो ब्रह्म गियान
सहज समाधें सुख में रहिबो कोटिकलप बिसराम
गुरु कृपाल कृपा अब किन्हीं हिरदै कंवल बिगासा
भागा भ्रम दसौं दिसि सूझया, परम ज्योति प्रकासा

इससे पता चलता है कि जिस परमतत्त्व की साधना में वे तल्लीन थे उसका प्रकाश उन्हें प्राप्त हो गया था और उन्होंने जो कुछ भी कहा उसी प्रकाश से ग्रहण कर कहा किसी भी मत विशिष्ट से प्रभावित होकर नहीं। इसी परमतत्त्व के प्रकाश का ही प्रभाव था कि एक बिना पढ़ा-लिखा, जिसने मसि (स्याही) और कागज को छुआ तक नहीं, गरीब जुलाहे का लड़का संसार का श्रेष्ठ सन्त बन गया। जीवन की सब समस्याओं का उसने अपनी वाणियों के द्वारा समाधान किया और भारतीय ब्रह्मविद्या की शृंखला में उसने अपनी एक अत्यन्त महत्वपूर्ण और मौलिक कड़ी जोड़ दी।

कबीर की विवेचना करते हुए आचार्य्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं कि—

"जो ब्रह्म हिन्दुओं की विचारपद्धति में ज्ञानमार्ग का एक निरूपण था, उसी को कबीर ने सूफियों के ढर्रे पर उपासना और प्रेम का विषय बना लिया और उसकी प्राप्ति के लिए हठयोगियों की साधना का समर्थन किया। इस प्रकार उन्होंने भारतीय ब्रह्मवाद के साथ सूफियों के भावात्मक रहस्यवाद, हठयोगियों के साधनात्मक रहस्यवाद और वैष्णवों के अहिंसावाद और प्रपत्तिवाद का मेल करके अपने पन्थ को खड़ा किया। उनकी वाणी में ये सब अवयव रूप से लक्षित होते हैं।"

इसी सम्बन्ध में डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी अपनी "कबीर" नामक पुस्तक में उनका उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि—

"कबीर ने कभी कविता लिखने की प्रतिज्ञा नहीं की, परन्तु भाषा पर उनका जबर्दस्त अधिकार था और अरूप को मनोग्राही रूप देने की उनमें अद्‌भुत शक्ति थी। व्यङ्ग और चुटकी लेने में उनका कोई प्रतिद्वन्दी नहीं था। हिन्दी-साहित्य के हजार वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ। महिमा में इनके केवल एक ही प्रतिद्वन्दी हैं—तुलसीदास। परन्तु दोनों भक्तों के व्यक्तित्व में, उनके स्वभाव, संस्कार और दृष्टिकोण में बड़ा अन्तर था। मस्ती, फक्कड़ाना स्वभाव और सब कुछ को झाड़-फटकार कर चल देनेवाले तेज ने कबीर को हिन्दी साहित्य का एक अद्वितीय व्यक्ति बना दिया है। वैसे वे न तो काव्य, अलङ्कार और पिङ्गल के जानकार थे और न काव्यगत रूढ़ियों के वे कायल ही थे। उनकी छन्द-योजना और अलङ्कार-विधान किसी शास्त्रीय

आधार पर नहीं, बल्कि पूर्णरूप से स्वाभाविक और स्वःप्रेरित थे।"

"कबीर की वाणियों में ऐसी भी सामग्री है जो समाज-सुधार, सर्वधर्म समन्वय और हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के लिए उपयोगी है। परन्तु इन सब कार्यों को करना उनका प्रधान लक्ष्य नहीं था वे मूलतः भक्त थे और सत्य की खोज और उसका प्रचार ही उनका प्रधान लक्ष्य था। ये सब चीजें तो उपलक्ष्य की तरह उनकी वाणी से स्वभावतः प्रकट हुईं।"

"बाह्याचार और कर्मकाण्ड की निरर्थक पूजा और संस्कारों की विचारहीन गुलामी उन्हें पसन्द न थी। वे इनसे मुक्त मनुष्यता को ही प्रेम-भक्ति का पात्र मानते थे।"

कबीर का साहित्य

कबीर साहब विशेष पढ़े-लिखे नहीं थे एक स्थानपर उन्होंने स्वयं अपने लिए लिखा है—

मसि, कागज छूआ नहीं, कलम गही नहि हाथ।
चारिउ युग को महातम (कबीर) मुखहि जनाई बात॥

इससे पता लगता है कि कागज-कलम छुए बिना भी केवल मौखिक शक्ति से वे अपनी बात जनता को समझा देते थे और उनके शिष्यलोग उनकी वाणियों का संग्रह कर लेते थे।

ऐसा ही एक संग्रह उनके शिष्य धर्मदास ने उनके जीवनकाल में ही सन् १५६१ में किया ऐसा बताया जाता है।

कबीर की वाणियों के संग्रह को "बीजक" कहा जाता है। इसके अलावा साखी ग्रन्थों में तथा कबीर वचनावली में भी उनकी साखियों और वाणियों का संग्रह है। इस प्रकार कबीर के साहित्य में प्रधान रूप से "आदि ग्रन्थ" मूल बीजक" "कबीर ग्रन्थावली" "कबीर वचनावलि" तथा "सन्त कबीर की साखी" ये रचनाएँ मानी जाती हैं।

इनमें से मूल बीजक के संग्रह अपनी-अपनी टीकाओं के साथ कई लोगों ने प्रकाशित किये जिनमें कई स्थानों पर पाठान्तर भी है। बीजक के इन टीकाकारों में रीवाँ के महाराज विश्वनाथ सिंह, पूरनदास, प्रेमचन्द, अहमदशाह, काशीदास, विचारदास, लखनदास, राघवदास और हनुमानदास के संग्रह और टीकाएँ उल्लेखनीय हैं। कई लोग इनमें विचारदास के संग्रह और टीका को विशेष प्रमाणित और कई लोग रीवां-नरेश विश्वनाथ सिंह की टीका को अधिक प्रमाणिक मानते हैं।

अंग्रेजी भाषा में कबीर-साहित्य

कबीर साहब की वाणी और उनके सिद्धान्तों में कुछ ऐसे आकर्षक और मौलिक तत्व हैं कि उन्होंने हमारे देश के विद्वानों के साथ-साथ अंग्रेज विद्वानों को भी बहुत आकर्षित किया और उन्होंने कबीर-साहित्य पर अंग्रेजी में बड़े महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे। इसके साथ ही हमारे देश के भी कुछ विद्वानों ने 'कबीर की साखियों' का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद करके कबीर के महान् साहित्य को अन्तर्राष्ट्रीय रूप दिया।

सबसे पहले सन् १९०७ में कानपूर के एस० पी० जी० मिशन के पादरी एच० जी० वेस्टकोट ने "कबीर एण्ड कबीरपंथ" नामक ग्रन्थ छपाकर प्रकाशित किया। इसमें उन्होंने अनेक प्रकार के अनुसन्धान और विश्लेषण करके कबीर के सम्बन्ध में स्थिर किये हुए मत प्रकाशित किये हैं।

सन् १९१७ में अहमदशाह पादरी ने कबीर के 'बीजक' का अंग्रेजी में अनुवाद कर उसे प्रकाशित किया। इस अनुवाद की भूमिका में उन्होंने बतलाया है कि "कबीर का मुख्य उद्देश्य अपने सन्देश का प्रचार करना था—साहित्य रचना नहीं। फिर भी वे हिन्दी-साहित्य के पायोनियर (मूल प्रवर्तक) माने जाते हैं और नानक, सूरदास, तुलसीदास इत्यादि की कविताओं पर उनका काफी प्रभाव पड़ा है। धार्मिक सहिष्णुता तथा मानव-मात्र के प्रति भ्रातृभाव, उनकी प्रधान शिक्षा है। उनके धर्म का मूल प्रेम है। ईश्वर प्रेमस्वरूप है और उसकी इच्छा है कि सब उससे प्रेम करें।"

सन् १९१५ में बंगाल के महान् कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी कबीर की एक सौ चुनी हुई साखियों का अंग्रेजी में अनुवाद कर उसे "One hundred poems of Kabir" का नाम दिया। यह अनुवाद एवलिन अण्डर हिल की प्रस्तावना के साथ प्रकाशित हुआ और विदेशों में इसकी बड़ी ख्याति हुई।

एक पुस्तक "Kabir and his followers" नामक एफ० ई० के नामक विद्वान ने सन् १९३१ में तथा एक डॉ० मोहन सिंह ने 'Kabir and the Bhakti movement" नाम से सन् १९३४ में प्रकाशित की। इसी प्रकार डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने "The nirgun school of Hindi poetry, नाम से एक ग्रन्थ सन् १९३६ में तैयार किया।

इसी प्रकार क्षितिमोहन सेन ने कबीर के साहित्य का बंगला-भाषा में अनुवाद कर उसे चार खण्डों में प्रकाशित किया।

हिन्दीभाषा में भी पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय ने 'कबीर वचनावली' डॉ० रामकुमार वर्मा ने "सन्त कबीर" डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने "कबीर" तथा श्री पुरुषोत्तम लाल श्रीवास्तव ने "कबीर-साहित्य" नामक ग्रन्थ लिख कर कबीर के साहित्य, सिद्धान्त और उनकी जीवनी पर काफी महत्वपूर्ण प्रकाश डाला।

कबीर-पंथ

सन्त कबीर के द्वारा स्थापित एक सम्प्रदाय जो कबीर-पन्थ के नाम से प्रसिद्ध है।

सन्त कबीर के पश्चात् या उनके समय में ही उनके बहुत से अनुयायियों ने कबीर पंथ के नाम से एक सम्प्रदाय का संगठन कर लिया था। इसी कबीर पन्थ का प्रचार आगे जाकर उत्तर भारत, मध्यप्रदेश, राजस्थान, उड़ीसा इत्यादि प्रान्तों में हुआ।

कबीर पन्थ का प्रधान मठ बनारस के 'कबीरचौरा' नामक स्थान में है। इस पंथ में कबीर साहब के पश्चात् कई और सन्त हुए, जिन्होंने इस मत का प्रचार और पुष्टीकरण किया। इन सन्तों में श्रुत गोपालदास, भागोदास, नारायणदास, जीवनदास, जागूदास, कमाल, साहब दास, नित्यानन्द, कमलानन्द, पूरनदास, विचारदास इत्यादि उल्लेखनीय हैं। भारत वर्ष के कई स्थानों पर कबीर-पन्थ के महन्तों की गद्दियाँ बनी हुई हैं।

कबीर साहब के सिद्धान्तों के अनुसार कबीर-पन्थ के लोगों ने अपने साहित्य का संग्रह किया और अपनी एक आचार-संहिता का निर्माण किया।

कबीर-पन्थ के अनुयायियों की संख्या कई लाख मानी जाती है।

कबीला

प्राचीन युग में जब संसार में कहीं पाषाण-युग और कहीं धातु-युग के बीच मानव का विकास हो रहा था और खेती-बारी का पर्याप्त विकास नहीं हो पाया था, उस समय एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमने वाले खानाबदोश मनुष्यों के समूह को 'कबीला' कहा जाता था।

ये कबीले संगठित होकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते-रहते थे। इनका प्रधान व्यवसाय पशु-पालन और शिकार करना होता था। ये कबीले संगठित होकर आपस में एक दूसरे से लड़ते भी रहते थे और हारने वाले कबीले के पुरुषों और स्त्रियों को अपने दास-दासी बना लेते थे।

वैसे कबीला-प्रथा मनुष्य की आदिम अवस्था में प्रायः सभी देशों में प्रचलित थी, मगर इसका सब से ज्यादा विकास और सबसे ज्यादा स्थायित्व मध्य एशिया में दिखलाई पड़ता है। इस भू-भाग के इतिहास के अन्तर्गत हमें बड़े-बड़े शक्तिशाली कबीलों की स्थापना और उनके द्वारा बड़े-बड़े साम्राज्यों का संगठन देखने को मिलता है।

ईसा से पूर्व ६०० वर्ष से लेकर ईसा से पूर्व १७४ वर्ष तक मध्य-एशिया में 'शक' जाति के कबीलों का प्राधान्य हमें देखने को मिलता है। इन शक लोगों ने मध्य एशिया में अपने साम्राज्य की स्थापना की थी। अल्ताई पहाड़ की रूस पुरातत्त्व विभाग द्वारा हाल में हुई खुदाई में इन शक राजाओं के बड़े सुन्दर स्मारक मिले हैं। शकों के पश्चात् महापराक्रमी और बर्बर "हूण" कबीलों शक-जाति की प्रधानता को खतम कर अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया इन हूण-कबीलों ने अपनी शक्ति और बर्बरता से भारत वर्ष और युरोप में सर्वनाश का जो ताण्डव मचाया था वह इतिहास प्रसिद्ध है।

हूण-जाति के पतन के पश्चात मध्य एशिया में 'अवार' जाति और 'तुर्क' जाति के कबीले शक्तिशाली हुए।

इसके पश्चात् इस्लाम के उदय ने अरबस्तान के बहुत से कबीलों को इस्लाम में दीक्षित कर एक मजबूत संगठन स्थापित कर लिया।

१२वीं और १३वी शताब्दी में जो शक्तिशाली कबीले अस्तित्व में आये उनमें चंगेज खाँ का मंगोलियन कबीला चंगेज खाँ के पुत्र जू—छी का सुनहला कबीला—जिसने सन् १२२४ से १४०० ई० तक मध्य एशिया के काफी बड़े भाग पर शासन किया—और चंगेज खाँ के पोते 'ओरदा' के द्वारा स्थापित सफेद कबीला—जिसने सन् १२२४ से १४२५ तक शासन किया—विशेष प्रसिद्ध रहे। इन कबीलों ने दूसरे छोटे-बड़े कबीलों को हरा कर अपने विस्तृत साम्राज्य की स्थापना की। मंगोल कबीले के सरदार 'कुबलाई' खाँ ने चीन के साम्राज्य को हथियाकर काफी समय तक वहाँ पर राज्य किया।

इसी प्रकार 'रूरिक' नामक कबीले के एक सरदार ने रूस के विशाल साम्राज्य की नींव डाली।

इस प्रकार इन कबीलों ने सारे मध्य-एशिया में समय-समय पर अपने प्रभाव और शक्ति का विस्तार किया।

भारतवर्ष में भी बहुत सी जंगली जातियाँ कबीलों के रूप में रहती हुई आई हैं। इन जातियों में आसाम का नागा कबीला, कूकी-कबीला, गारो कबीला, बंगाल का सन्थाल कबीला, उड़ीसा का मुंडा कबीला तथा मध्य-प्रदेश और गुजरात के भीलों, सांसियों और कंजरों के कबीले विशेष प्रसिद्ध हैं। फिर भी यह देखने में आता है कि इन कबीलों ने मध्य-एशिया के सुसंगठित और शक्तिशाली कबीलों के समान कभी शक्ति प्राप्त नहीं की। इसका कारण यह है कि इस देश में सुसंगठित राज्य-व्यवस्था चालू रहने से इन लोगों को अराजकता पैदा करने का अवसर नहीं मिला जब कि मध्य एशिया के इतिहास का अधिकांश भाग अराजकता, आतंक, युद्ध और मारकाट की घटनाओं से भरा हुआ दिखलाई पड़ता है।

मध्य एशिया के शक, कुशाण और हूण कबीलों ने भारतवर्ष पर आक्रमण करके यहाँ पर अपनी राज्य-व्यवस्था कायम की थी। मगर ये लोग भारतीय संस्कृति से प्रभावित होकर उसमें ऐसे घुल-मिल गये और यहाँ की संस्कृति और सभ्यता को इस प्रकार से अंगीकार कर लिया कि वे वस्तुतः भारतीय ही हो गये। सम्राट् कनिष्क का शासन इसका एक मूर्त उदाहरण है जिसने भारतीय संस्कृति और बौद्ध धर्म के प्रचार का वही कार्य किया, जिसको उसके पूर्व सम्राट् अशोक कर गये थे।

कमलापति त्रिपाठी

उत्तरप्रदेश सरकार के गृहमंत्री, हिन्दी-साहित्य के प्रसिद्ध साहित्यकार और पत्रकार, जिनका जन्म सन् १६०५ में बनारस में हुआ।

श्री कमलापति त्रिपाठी की सेवाएँ राजनैतिक, साहित्यिक और पत्रकारिता के तीनों ही क्षेत्र में महत्वपूर्ण हैं।

पत्रकारिता के क्षेत्र में इन्होंने "आज" (दैनिक) संसार (दैनिक) युगधारा (मासिक) तथा आँधी (मासिक) के समान महत्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं का सफल सम्पादन किया।

साहित्यिक क्षेत्र में इनकी रचनाएँ "मौर्य्यकालीन भारत" "इस्लामी दुनिया का सरताज" "चीन और च्यांग" "पत्र और पत्रकार" "बापू और मानवता" "बन्दी की चेतना" उल्लेखनीय हैं। "बापू और मानवता" नामक ग्रन्थ पर इनको मंगलाप्रसाद पुरस्कार प्राप्त हुआ।

साहित्यिक और पत्रकारिता के क्षेत्र ही की तरह राजनैतिक और शासकीय क्षेत्र में भी इनकी गतिविधि बड़ा महत्व रखती है।

इनका राजनैतिक जीवन सन् १६२० के सत्याग्रह-आन्दोलन के साथ ही प्रारम्भ होता है। तब से लेकर सन् १६४२ तक इन्होंने बराबर देश की सक्रिय राजनीति में अपना महत्वपूर्ण भाग अदा किया।

सबसे पहले केवल सोलह वर्ष की अवस्था में सन् १६२१ के आन्दोलन में ये पकड़े गये और जेल में सजा काटी। उसके पश्चात् सन् ३०–३२ के नमक-सत्याग्रह आन्दोलन के समय में भी अपनी निर्भीकता के कारण ये जेल में गये। सन् ४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में भी अपने सक्रिय सहयोग के कारण ये ब्रिटिश सरकार

के कोपभाजन होकर जेल में गये जहाँ से सन् १९४५ में इनका छुटकारा हुआ।

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् ये संविधान परिषद् में सम्मिलित किये गये और उसके पश्चात् सन् १९५२ से बराबर उत्तरप्रदेश के शासन में अपना सक्रिय सहयोग दे रहे हैं। सन् १९५२ में पं० कमलापति त्रिपाठी उत्तर-प्रदेश के शासन में सिंचाई और सूचना-विभाग के मन्त्री हुए। सन् १९५७ के चुनाव में विजयी होकर नये मन्त्रि-मण्डल में ये गृह, शिक्षा, सूचना और हरिजन-कल्याण के मन्त्री बनाये गये। सन् १९६२ के चुनाव में फिर विजयी होकर ये उत्तरप्रदेश के वित्त-विभाग के मन्त्री बनाये गये।

श्री कमलापति त्रिपाठी साहित्यिक क्षेत्र ही की तरह राजनीति और शासन के क्षेत्र में भी यशस्वी रहे हैं।

कमलारत्नम्

संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी भाषा की विदुषी साहित्यकार जिनका जन्म सन् १९१४ में हुआ।

श्रीमती कमलारत्नम् भारत के राजदूत पी० रत्नम् की पत्नी हैं। इन्होंने लखनऊ-विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम० ए० की तथा लन्दन-विश्वविद्यालय से पी० डी० की उपाधि प्राप्त की। इनकी साहित्यिक रचनाओं में "सोवियट रूस में भारतीय भाषाओं का अध्ययन," "कालिदास और उनके समय की नारी-समस्या" "दिनकर और उनका काव्य" महत्वपूर्ण हैं। अंग्रेजी में भी इन्होंने "बुद्ध-चरितम्" और "बाल रामायण" की रचनाएँ की हैं। 'दिनकर' की कविताओं का अंगरेजी अनुवाद करने में भी ये प्रयत्नशील हैं।

कमाल नामिक

(Namik Kamal)

उन्नीसवीं सदी के मध्य में तुर्की का एक राष्ट्रीय और क्रान्तिकारी कवि।

जिन दिनों 'कमाल नामिक' तुर्की में हुआ उन दिनों फ्रान्स की राज्य-क्रान्ति की लहर तुर्की में भी पहुँच चुकी थी और तुर्की में भी राष्ट्रीयता और आजादी की भावनाएँ व्यापक रूप से प्रसारित हो रही थीं। कमाल नामिक इन्हीं भावनाओं का प्रतीक था। उसका "वतन" नामक नाटक बहुत प्रसिद्ध हुआ। जब वह इस्तम्बूल के थियेटर में खेला जा रहा था, उस समय तुर्की का सुलतान भी उसे देख रहा था। उस नाटक को देखते-देखते उसे बड़ा क्रोध आया और उसने थियेटर को बन्द करवा दिया। नाटक जब्त कर लिया गया और 'कमाल' को तुर्की से निर्वासित कर दिया गया। जब कमाल नामिक के नाटक और कविताएँ जब्त कर ली गईं तो कई वर्षों तक लोग उनको हाथों से लिख-लिख कर छिपे तौर पर प्रचारित करते रहे।

कमालपाशा

तुर्की का सुप्रसिद्ध राष्ट्रउद्धारक और नवीन तुर्की राष्ट्रका महान निर्माता अतातुर्क (तुर्की का राष्ट्रपिता) कमालपाशा! जिसका जन्म सन् १८८१ में सालोनिका नामक स्थान पर हुआ और जिसकी मृत्यु सन् १९३८ में हुई।

जिस समय कमालपाशा क्षेत्र में आया उस समय तुर्की की राजनैतिक स्थिति अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण हो रही थी। सन् १९१८ में प्रथम महायुद्ध के समय जर्मनी की पराजय के पहले ही तुर्की परस्त हो चुका था और उसने मित्रराष्ट्रों के साथ युद्धविराम सन्धि कर ली थी। सारा देश छिन्न-भिन्न हो चुका था और सरकार की सम्पूर्ण व्यवस्था टूट चुकी थी। इराक तथा अरबी देश तुर्की से बिलकुल अलग कर दिये गये थे और खास कुस्तुन्तुनिया पर भी मित्र-राष्ट्रों का कब्जा था और ब्रिटेन के जंगी जहाज इस शहर के किनारे समुद्र में लंगर डाले पड़े हुए थे। चारों तरफ अंग्रेज, फ्रेंच और इटालियन सैनिक नजर आते थे। तुर्की-किले ध्वंस किये जा रहे थे और बची खुची तुर्क-सेना से हथियार रखवाये जा रहे थे। नौजवान तुर्की नेता अनवरपाशा और तलाअत बेग अन्य देशों को भाग चुके थे। सुलतान की गद्दी पर कठपुतली सुलतान और खलीफा वहिउद्दीन बैठा हुआ था और 'तुर्की पार्लमेंट' भंग कर दी गई थी। इटली युद्ध, बालकन युद्ध और प्रथम महायुद्ध

इस प्रकार आठ वर्षों के लगातार युद्ध ने तुर्की की कमर तोड़ दी थी। सारा राष्ट्र और वहाँ की जनता बिलकुल बेदम हो चुके थे और अपने आपको बदनसीबी के हवाले छोड़ कर मित्र राष्ट्रों के किस्मत-तोड़ फैसले का इन्तजार कर रहे थे। इस प्रकार "यूरोप का यह रोगी" अपना आखिरी दम तोड़ चुका था।

इस नष्टभ्रष्ट राष्ट्र की राख के ढेर में से एक चिनगारी के रूप में कमालपाशा अवतीर्ण होता है। यह एक किसान का बेटा था। बचपन में अत्यन्त उद्दंड और उपद्रवी था फौजी स्कूल में भरती होकर इसने सैनिक शिक्षा ग्रहण कर ली। वहाँ से वह सबलेफ्टीनेंट का पद देकर कुस्तुन्तुनिया के कॉलेज में भेज दिया गया।

कुस्तुन्तनिया में कमालपाशा ने गुप्त रूप से "वतन" नामक एक विद्रोही दल का संगठन कर उसके द्वारा शस्त्रों का संग्रह करवा कर एशियाकोचक के अनातोलिया नामक स्थान पर इकट्ठा करना शुरू किया। अंग्रेज लोग कमालपाशा की चालों को बड़ी शङ्का की निगाह से देख रहे थे और सुलतान से शिकायत कर रहे थे। यह देखकर सुलतान ने दूर भेजने के इरादे से कमालपाशा को अनातोलिया की सेना का इन्सपेक्टर बना कर भेज दिया।

कमालपाशा को यह एक सुवर्ण अवसर प्राप्त हुआ क्योंकि उसका शस्त्रों का संग्रह अनातोलिया में ही था। वहाँ पर आकर उसने तेजी से अपना संगठन करना प्रारंभ किया और वहाँ के सैनिक अफसरों को अपनी तरफ मिलाने का प्रयत्न करने लगा। प्रति दिन होने वाली घटनाएँ भी इस महान् व्यक्ति के पक्ष में जा रही थीं।

इसी बीच एक महत्वपूर्ण घटना ने सारे घटनाचक्र को एक नया मोड़ दे दिया। सन् १९१९ में इटली की सरकार ने इंगलैंड से हुए किसी पुराने समझौते के आधार पर एशियाकोचक के स्मरणा नामक स्थान पर अपने सैनिक उतारना प्रारम्भ किया। यह बात अंग्रेजों और फ्रांस वालों को बिलकुल पसन्द नहीं आई। क्योंकि वे उस समय इटली को अधिक बढ़ावा नहीं देना चाहते थे।

तब इन्होंने यूनान के प्रधान मंत्री वेनिजेलोस और वहाँ के प्रमुख व्यवसायी "सर बेसिल जहारोफ" के साथ साठगाँठ करके स्मरणा पर यूनानी सैनिकों को उतर कर कब्जा करने की इजाजत दे दी ताकि वे इटालियन सैनिकों को न घुसने दें।

इस समझौते के अनुसार मई सन् १९१९ में यूनानी सैनिक अंग्रेजी, फ्रेंच और अमरीकी जहाजी बेड़े की सुरक्षा में स्मरणा के तट पर उतरे। इन सैनिकों ने वहाँ उतर कर वहाँ की जनता पर अमानुषिक अत्याचार करना प्रारम्भ किये। इससे तुर्की जनता के हृदय में क्रोध की भयंकर अग्नि प्रज्वलित हो उठी। तुर्की की सेना के अनेक वरिष्ठ अफसर जो अब तक कमालपाशा का साथ देने में हिचकिचा रहे थे वे भी अब इस आन्दोलन में शामिल हो गये।

सितम्बर १९१९ में अनातोलिया के "सिवास" नामक स्थान पर विरोधी आन्दोलन के चुने हुए प्रतिनिधियों की एक कांग्रेस हुई। इस कांग्रेस में विरोध के इस आन्दोलन को स्वीकृत कर लिया गया और कमालपाशा के नेतृत्व में एक कार्य्य-समिति बना दी गई और मित्र राष्ट्रों के साथ सुलह की न्यूनतम शर्त्तों का "एक राष्ट्रीय करार" स्वीकार किया गया जिसका आधार पूर्ण स्वतन्त्रता रक्खा गया।

इन घटनाओं का सुलतान पर भी असर पड़ा और उसने नये चुनाव करवाकर नवीन पार्लमेंट स्थापित करना स्वीकार किया। नये चुनावों में कमालपाशा के दल की भारी विजय हुई, और कमालपाशा दल के रऊफबेग नामक व्यक्ति के नेतृत्व में इस्तम्बूल में जनवरी १९२० के दिन नई पार्लमेंट का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। कमालपाशा इसमें नहीं गया।

इस पार्लमेंट ने पहली ही बैठक में उस "राष्ट्रीयकरार" को पास कर दिया, जिसका निर्माण सिवास कांग्रेस में किया गया था। इन गतिविधियों को देखकर अंग्रेज सरकार चौकन्नी हो गई, जिसके फलस्वरूप मार्च महीने में अंग्रेज सेनापति इस्तम्बोल (कुस्तुन्तनिया) नगर में घुस आया। उसने शहर पर कब्जा कर लिया, और रऊफबेग सहित पार्लमेण्ट के बहुत से डिप्टियों को गिरफ्तार कर माल्टा भेज दिया।

सारे तुर्की में फिर से उत्तेजना फैल गई। पार्लमेंट के भागे हुए डिप्टियों ने अंगोरा पहुँचकर पार्लमेंट की बैठक

की और इसे तुर्की की राष्ट्रीय धारा सभा घोषितकर अपने को तुर्की देश की सरकार घोषित कर दिया।

इधर तुर्की के सुलतान ने जो मुसलमानों का धर्मनेता भी था राष्ट्रीय और धार्मिक दोनों दृष्टियों से कमालपाशा को "बागी" घोषित कर दिया और घोषणा कर दी कि जो व्यक्ति कमालपाशा और उसके साथियों को हत्या कर देगा वह धार्मिक कर्म का पालन करेगा और लोक-परलोक दोनों में पुण्य का भागी होगा।

इस प्रकार धार्मिक और राजनैतिक दोनों दृष्टियों से कमालपाशा के विरुद्ध खलीफा सुलतान के द्वारा फतवा दे देने से कमाल की स्थिति बड़ी संकटापन्न हो गई। उसको तीन मोर्चों पर एक साथ अत्यन्त संघर्षमयी स्थिति का सामना करना पढ़ रहा था। घर के अन्दर उसको खलीफा के फतवे के कारण बड़ी मुसीबत का सामना करना पड़ रहा था। दूसरी तरफ विदेशी यूनानी हमलावरों की चढ़ाई का मुकाबला करना था। तीसरी तरफ सुल्तान तथा यूनानी हमलावरों की पीठ ठोंकनेवाली मित्र राष्ट्रों की शक्ति से उसका मुकाबला था।

इसी बीच अगस्त सन् १९२० में मित्र राष्ट्रों ने 'सेवर की सन्धि' के नाम से, जो सन्धिपत्र तैयार किया, उसमें एक स्वाधीन राष्ट्र की हैसियत से तुर्की को मौत की सजा सुना दी गई। इस सन्धिपत्र से सारे टर्की में विषाद का वातावरण छा गया और प्रार्थनाओं और हड़ताल के साथ राष्ट्रीय मातम का दिवस मनाया गया। फिर भी सुल्तान के प्रतिनिधियों ने सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। मगर कमालपाशा के राष्ट्रवादी दल ने उसे घृणा के साथ ठुकरा दिया। इससे जनता के दिल में इस दल के प्रति श्रद्धा की भावना पैदा हो गई और इसका बल दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा और सोवियट रूस ने भी हथियारों तथा धन से उसको मदद पहुँचाना प्रारंभ कर दिया।

सन् १९२१ की ग्रीष्मऋतु में यूनानियों ने राष्ट्रीय तुर्की की राजधानी 'अंगोरा' पर कब्जा करने का एक भारी प्रयत्न किया। सकरिया नदी के समीप तुर्की और यूनानी सेनाओं में तीन सप्ताह तक भयंकर युद्ध होता रहा। इस लड़ाई में यूनानियों के पैर उखड़ गये और वे पीछे हट गये।

इस विजय के फलस्वरूप धारा का रुख ही पलट गया। इस विजय से प्रभावित होकर फ्रांस और रूस ने अंगोरा की कमालपाशा सरकार से सन्धि कर ली और फ्रांस ने उसे मान्यता भी दे दी। इससे कमाल पाशा की सरकार को बहुत बड़ा नैतिक बल मिल गया।

सन् १९२२ के अगस्त महीने में तुर्की सेना ने पूरी सावधानी के साथ यूनानियों पर हमला बोल दिया और उनको तुर्की से निकाल बाहर किया। इसके बाद कमालपाशा ने अपनी सेनाओं को लेकर सुल्तान की राजधानी 'इस्तम्बूल' पर धावा बोल दिया। अंग्रेज सैनिकों ने इस सेना को रोकने का प्रयत्न किया और अन्त में एक ऐसी सन्धि मंजूर की गई, जिसमें कमाल पाशा की करीब-करीब सभी शर्तों को मंजूर कर लिया गया।

इसके बाद 'लोजान' में एक शान्ति-सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में कमाल पाशा के राष्ट्रीय करार में लिखित तमाम तुर्की माँगों को एक माँग को छोड़कर मंजूर कर लिया गया और जुलाई सन् १९२३ ई० में इस सन्धि पत्र पर दस्तखत कर दिये गये।

इसके कुछ समय पश्चात् यूनानी लोगों के प्रस्ताव पर तुर्की और यूनान के बीच में आबादी की अदला-बदली हुई। अनातोलिया में बाकी बचे हुए यूनानी यूनान भेज दिये गये और उनके बदले में यूनान में रहने वाले तुर्क बुला लिये गये। इस तरह १५ लाख व्यक्तियों की अदला-बदली हुई। इसके परिणामस्वरूप तुर्की और यूनानियों में हमेशा के होने वाले झगड़े बन्द हो गये। यूनानियों के निकल जाने से सारा तुर्की एक नस्लवाला देश बन गया और शायद सारे यूरोप और एशिया में तुर्की के समान एक नस्लवाला देश कोई दूसरा नहीं है।

सन् १९२३ में तुर्की-प्रजातन्त्र की बाकायदा घोषणा हो गई और उसकी राजधानी 'अंगोरा' में रखी गयी। उसका पहला राष्ट्रपति मुस्तफा कमालपाशा चुना गया।

नवीन तुर्की का निर्माण

सत्ता के हाथ में आते ही कमालपाशा ने तुर्की राष्ट्र का पश्चिमीकरण करना शुरू किया। सबसे पहले उसने खलीफा की धर्मसत्ता को नष्ट करने का निश्चय किया और उसका अवसर भी उसे जल्दी ही मिलगया। क्योंकि इसी

समय लन्दन से भारत के भूतपूर्व न्यायाधीश अमीर अली और मुसलमानों के नेता सर आगा खाँ ने भारत के करोड़ों मुसलमानों के प्रतिनिधित्व का दावा करते हुए एक संयुक्त पत्र कमालपाशा के पास भेजा। जिसमें खलीफा के साथ किये गये दुर्व्यवहार का विरोध किया गया और अनुरोध किया गया कि खलीफा की प्रतिष्ठा कायम रखी जाय और उसके साथ अच्छा व्यवहार किया जाय।

इसकी नकलें उन्होंने इस्तम्बूल के कुछ पत्रों को भी भेजी और तमाशा यह हुआ कि असली पत्र के अंगोरा पहुँचने से पहले ही उसकी नकलें अखबारों में प्रकाशित हो गई। इससे कमालपाशा को बड़ा क्रोध आया। उसने आगा खाँ को अंग्रेजों का एजेण्ट बता कर उनको जनता की निगाह में गिरा दिया और जिन अखबारों ने उस पत्र को छापा था, उनको कठोर दण्ड दिया गया।

इसके बाद उसने मार्च सन् १९२४ में 'खिलाफत' को समाप्त करने का बिल धारा-सभा में पेश कर दिया और वह उसी दिन पास भी कर दिया गया।

इस प्रकार कमालपाशा ने इतिहास के रंग मंच से एक ऐसी शक्तिशाली संस्था का अन्त कर दिया, जिसने कई शताब्दियों तक मध्य-एशिया के रंग-मंच पर कई महत्वपूर्ण अभिनय किये थे।

खिलाफत को समाप्त कर कमालपाशा ने तुर्की को धर्म-निरपेक्ष राज्य घोषित कर दिया।

इसके पश्चात् उसने तुर्की में लगाई जानेवाली 'फैज टोपी' के विरुद्ध कदम उठाया। यह टोपी किसी हद तक इस्लामी धर्म की प्रतीक बन गई थी। फैज टोपी को पहनना वहाँ पर फौजदारी जुर्म करार दे दिया गया।

दूसरे कदम में कमालपाशा ने तुर्की के तमाम मठों और धर्म स्थानों को बन्द कर दिया और उनकी सम्पत्ति राज्य के लिए जब्त कर ली गई। जो दरवेश इनमें रहते थे, उन्हें कह दिया गया कि वे अपनी जीविका के लिए मजदूरी करें। इस्लामी धर्म की शिक्षा देनेवाले तमाम मदरसों को बन्द करके उनके स्थान पर धर्मनिरपेक्ष स्कूल खोल दिये गये।

इसके साथ ही तुर्की के कानून में आमूल-चूल परिवर्तन कर दिया गया। अभी तक वहाँ पर इस्लामी शरीअत के अनुसार कानून की पाबन्दी होती थी। उसे बन्द कर उसकी जगह स्विट्जरलैंड का जाब्ता दीवानी, इटली का जाब्ता फौजदारी और जर्मनी का जाब्ता व्यापारी कानून पूरे के पूरे लागू कर दिये गये। इसके फलस्वरूप विवाह, उत्तराधिकार आदि पर लागू होनेवाले व्यक्तिगत कानून में पूरा परिवर्तन हो गया। बहु विवाह की प्रथा भी बन्द कर दी गई।

इसके पश्चात् कमालपाशा ने स्त्रियों की पर्दा-प्रथा और बुर्के के विरुद्ध जोरदार आदेश निकाले, जिसके परिणामस्वरूप सैकड़ों वर्षों से प्रचलित स्त्रियों का 'बुर्का' देखते-देखते गायब हो गया। पर्दे में पाली-पोसी हुई स्त्रियों की सारी पीढ़ी ने कुछ वर्षों में एक दम बदल कर वकील, अध्यापक, डाक्टर, न्यायाधीश और पुलिस का काम भी सम्भाल लिया।

उस समय तुर्की-भाषा अरबी लिपि में लिखी जाती थी। कमाल पाशा इस लिपि को बहुत कठिन समझता था, अतएव उसने सोवियट रूस के अनुकरण पर तुर्की भाषा को अरबी-लिपि की जगह लैटिन-लिपि में लिखी जाने के पक्ष में जोरदार कार्यवाही शुरू कर दी। दो वर्ष की शिक्षा के पश्चात् कानून के द्वारा एक तिथि निश्चित कर दी गई, जिसके बाद अरबी लिपि का उपयोग वर्जित कर दिया गया और उसके स्थान पर लैटिन-लिपि अनिवार्य कर कर दी गई। अखबार, किताबें वगैरह हर एक चीज लैटिन लिपि में निकालना जरूरी कर दिया गया।

अरबी और फारसी भाषा के जो शब्द लैटिन-लिपि में ठीक से नहीं लिखे जा सकते थे, ऐसे शब्दों को तुर्की शब्द-कोष से निकाल दिया गया और उनकी जगह पर विशुद्ध तुर्की शब्द रखे गये।

इस प्रकार इस इतिहास प्रसिद्ध अधिनायक ने युरोप के कष्टसाध्य रोगी तुर्की के समान पिछड़े हुए राष्ट्र को बहुत थोड़े समय में एक नवीन और उन्नतिशील राष्ट्र के रूप में बदल दिया और इसी से उसको नवीन तुर्की राष्ट्र का पिता या अतातुर्क कमाल के नाम से सम्बोन्धित किया जाता है।

सन् १९३८ में इस महान् क्रान्तिकारी पुरुष की मृत्यु हुई।

कमलाकान्त विद्यालंकार

बंगाल के एक प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता, जिनका जन्म १८वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ।

सन् १८०० ई० में कमलाकान्त विद्यालंकार 'रायल एशियाटिक सोसायटी' के पण्डित-पद के ऊपर प्रतिष्ठित थे। उस समय इस सोसायटी के अध्यक्ष 'प्रिन्सेप' नामक एक अंग्रेज विद्वान थे। प्राचीन शिलालेख, ताम्रपत्र और हस्ताक्षर इत्यादि को पढ़कर उनका अर्थ करने का काम पं० कमलाकान्त के जिम्मे था।

इस विषय में काम करते-करते इनका ज्ञान बहुत बढ़ गया था। इनकी योग्यता का पता तब लगा जब दिल्ली और इलाहाबाद के दो लौह-स्तम्भों पर प्राचीन लिपि में लिखे हुए लेखों को पढ़ने में 'सर विलियम जोन्स, कोलब्रुक, होरेन्स हेमेन, 'विल्सन' इत्यादि धुरन्धर पुरातत्वज्ञ भी असमर्थ रहे। तब कमलाकान्त ने देहली, साँची, गिरनार इत्यादि स्थानों के शिलालेखों की लिपि से मिलान कर-कर के उन लौह-स्तम्भों के एक-एक अक्षर का मतलब निकाल लिया।

सन् १८३७ ई० में उनका निकाला हुआ अर्थ मान्य किया गया, जिससे भारत के प्राचीन इतिहास पर एक नवीन प्रकाश पड़ा। मगर इस अन्वेषण का सारा यश मि० प्रिंसेफ को मिला और उनका नाम अमेरिका और यूरोप के अन्दर हो गया। फिर भी मि० प्रिंसेफ ने अपनी पुस्तक में कमलाकान्त को ही इसका यश दिया है।

कमलाकर भट्ट

संस्कृत के एक प्राचीन ग्रन्थकार, जिनका समय ईसा की १७ वीं सदी में था।

कमलाकर भट्ट संस्कृत-भाषा के एक बड़े विद्वान और ग्रन्थकार थे। सन् १६१६ ई० में इन्होंने 'निर्णय-सिन्धु' नामक ग्रन्थ की रचना की। इसके अतिरिक्त 'अग्नि-निर्णय, आचार-दीप, कर्म-विपाकरान इत्यादि पचासों ग्रन्थों की इन्होंने रचना की थी।

कमेनियस

जर्मनी का एक सुयसिद्ध शिक्षाशास्त्री और तत्वचिंतक जिसका जन्म सन् १५६२ में और मृत्यु सन् १६७० में हुई।

बचपन में ही माता पिता का देहान्त हो जाने से कमेनियस का लालन पालन बोहेमिया के चर्च के द्वारा किया गया। हेरबर्न के कॉलेज में कमेनियस ने उच्च शिक्षा प्राप्त की। वहाँ पर जे० एच० अल्स्टेड के सम्पर्क में रह कर उसने विज्ञान सम्बन्धी ज्ञान भी प्राप्त किया और बाद में उसी कॉलेज में अध्यापक नियुक्त हो गया।

सन् १६२१ से चालू होनेवाले तीस वर्षीय युद्ध में कमेनियस का सारा परिवार नष्ट हो गया। सन् १६४१ में उसे इंगलैंड के रीसर्च इन्स्टीट्यूट में शिक्षा सम्बन्धी शोध कार्यों के लिए बुलाया गया। सन् १६५० तक वहाँ काम करके वह रिटायर्ड हो गया और सन् १६७० में एम्सटरडम के निकट एक गाँव में उसकी मृत्यु हो गई।

कमेनियस के शिक्षा-विज्ञान सम्बन्धी अनुसंधान बड़े महत्वपूर्ण माने जाते हैं। कमेनियस ने देखा कि सामाजिक विषमता के दुर्धर्ष चक्र में सारा समाज बुरी तरह फँसा हुआ है। शिक्षा ही इस चक्र से उसका उद्धार कर सकती है। इस विषमता के विरुद्ध उसने अपने "ग्रेट डायोक्टिक' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि—

'शिक्षा केवल धनी और प्रभावशाली लोगों के लिए ही नहीं, वरन् गरीब अमीर, लड़के लड़की, भद्र अभद्र और महलों तथा झोपड़ियों, सबके लिए समान रूप से आवश्यक है"

इस प्रकार उसने सार्वलौकिक एवं सार्वभौमिक शिक्षा की विचारधारा को बल देकर शिक्षा की वैषम्यता को मिटा दिया।

कमेनियस ने देखा कि वर्त्तमान शिक्षालय बालक के लिए भय के स्थान बने हुए हैं। वे मस्तिष्क के कसाई घर बने हुए हैं। उसने उनमें महत्त्वपूर्ण परिवर्तन की योजना बनाते हुए बतलाया कि पाठशाला वह सार्वभौमिक स्थल है जिसके द्वारा प्रत्येक बालक को पारस्परिक मिलन एवं उन्मुक्त विकास का अवसर मिलता है। बालकरूपी

पौधे के विकास के लिए यह उर्वर-स्थल है। पाठशाला का आन्तरिक और वाह्यस्वरूप मनोहारी, आँखों के लिये आकर्षक, आनन्द दायक और भय से रहित होना चाहिए। (School should be pleasant place and attractive to the eyes—both within and without)

पाठ्यक्रम — कमेनियस ने स्कूलों के पाठ्यक्रम में कितने ही ऐसे सार्वभौमिक विषयों को स्थान दिया जिससे समाज के सर्वाङ्गीण विकास में सहायता मिल सके। उसने आयु के हिसाव से पाठ्यक्रम के चार स्तर स्थापित किये।

(१) पहला-स्तर—यह ६ वर्ष के बालकों के लिए बनाया गया। यह शिक्षा घर पर ही माता के द्वारा दी जानी चाहिए। इस समय इन्द्रिय प्रशिक्षण पर विशेष वल देना चाहिए।

(२) दूसरा स्तर—६ से १२ वर्ष तक के बालकों के लिए बनाया गया। इस स्तर में बालकों की कल्पना-शक्ति और स्मरण-शक्ति के विकास की पूर्ण व्यवस्था होनी चाहिए। इस काल में बालकों को गणित, इतिहास, भूगोल, कला, नीति और धर्म सम्बन्धी प्रारम्भिक शिक्षा को मातृ-भाषा के द्वारा पढ़ाया जाना चाहिए।

(३) तीसरा स्तर—१२ से १८ वर्ष तक के बालकों के लिए है। यह शिक्षा लेटिन विद्यालयों के द्वारा दी जानी चाहिए। इस काल में बालकों को मातृभाषा के अलावा अन्य भाषाओं का ज्ञान भी कराना चाहिए।

(४) चौथा स्तर —१८ से २४ वर्ष तक के युवकों के लिए है। यह काल विश्वविद्यालय की शिक्षा का काल है। प्रत्येक राज्य में एक विश्वविद्यालय होना चाहिए जिसमें विभिन्न विषयों का शोध कार्य किया जावे। इस शिक्षा के अन्दर योग्यतम छात्रों को ही प्रवेश देना चाहिए।

सह-शिक्षा

सह-शिक्षा के सम्बन्ध में कमेनियस का यह विचार था कि छात्रों और छात्राओं का बचपन से ही एक-दूसरे के साथ रहना मनोवैज्ञानिक है। यदि उनकी शिक्षा साथ-साथ नहीं होती तो वे एक दूसरे को भलीभाँति समझ नहीं सकेंगे। आगे चल कर साथ-साथ रहने के लिए पूर्ण तैयारी के लिए सह-शिक्षा नितान्त आवश्यक है।

पाठ्यक्रम की पाठ्य विधियों का विर्णन करते हुए कमेनियस ने चार प्रकार की पाठ्य विधियों का निर्देश किया है। (१) इन्द्रिय द्वारा ज्ञानार्जन करना, (२) प्रयोगों के द्वारा शिक्षा देना, (३) ज्ञान के विकास के हेतु भाषा का आश्रय लेना, (४) पिनसोफिक मेथड वैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण करना तथा तथा 'आर्विस पिक्टस' के द्वारा सहायक उपकरण के माध्यम से विश्व के समस्त विषयों का स्पष्ट तथा स्थूल ज्ञान देने का प्रयत्न करना।

शारीरिक शिक्षा पर बल देते हुए कमेनियस ने 'जिम्नाजियम' की स्थापना पर बहुत बल दिया है। उसने कहा है कि—"स्वस्थ बालक घर के लिए ईश्वर की दी हुई बहुमूल्य निधि है।"

शिक्षा-विज्ञान में कमेनियस की देन

कमेनियस की प्रशंसा करते हुए बटलर ने कहा है कि 'शिक्षा के क्षेत्र में कमेनियस का वही स्थान है जो विज्ञान के क्षेत्र में 'कोपरनिकस' या 'न्यूटन' का है।" इसी व्यक्ति ने सबसे पहले सार्वलौकिक शिक्षा का समर्थन किया। 'फ्री-बेल' के किंग्डर गार्टन में निहित भाव एवं विशेषताएँ कमेनियस की ही देन है। 'पेस्टालाजी' के आन्तरिक सिद्धान्त पर भी कमेनियस की ही छाप है। शालाओं में प्रेमपूर्ण वातावरण एवं मनोरंजन प्रधान शिक्षा की प्रेरणा देकर कमेनियस ने समाज का बड़ा उपकार किया। इसीलिए उसे १७ वीं सदी के 'शिक्षा-पथ-प्रदर्शक' की उपाधि प्रदान की गई।

कमेनियस की मृत्यु के पश्चात् उसके विचारों का यूरोपीय देशों में बहुत प्रचार हुआ। जर्मनी में सन् १८९१ में एक समिति का निर्माण हुआ, जिसमें उसके विचारों और कार्यों पर शोधकार्य प्रारम्भ किया गया। स्कूलों में दिया जाने वाला दण्ड विधान बन्द कर दिया गया। पाठ्य पुस्तकों में परिवर्तन किया गया। पढ़ाई के घंटे छोटे-छोटे निश्चित किए गये। धार्मिक शिक्षा के प्रचार पर बहुत बल दिया गया। अनिवार्य शिक्षा के लिए ५ वर्ष से १२ वर्ष तक की आयु निश्चित की गई और अब तक 'चर्च' के आधिपत्य में चलने वाली शिक्षा-व्यवस्था राज्य के आधि-

पत्य में आ गई, जिसकी वजह से शिक्षा में उत्तरदायित्व की भावना का सूत्रपात हुआ ।

कम्बोडिया (कम्बोज)

भारत वर्ष के दक्षिण-पूर्व में इण्डोचाइना द्वीप के अन्तर्गत सबसे प्राचीन भारतीय उपनिवेश, जिसको आज-कल 'कम्बोडिया' कहते हैं ।

प्राचीन इतिहास

प्राचीन परम्पराओं के अनुसार इस राज्य की स्थापना भगवान् शिव की प्रेरणा से कम्बु-स्वायंभुव ने की थी। इससे पहले वहाँ पर नाग-जाति के लोगों का शासन था। कम्बु ने नागराज की कन्या 'मीरां' से विवाह कर कम्बुज राजवंश की नींव डाली । आगे चल कर तीसरी शताब्दी के करीब इस वंश में श्रुत वर्मन नामक राजा हुआ, जिसने कम्बोज देश को 'फूनान' की अधीनता से मुक्त किया ।

इसके पश्चात् सन् ६२६ के करीब भव वर्मा नामक राजा ने 'ख्मेर' नामक एक नवीन राजवंश की स्थापना की और भवपुर नामक राजधानी की स्थापना की ।

भव वर्मा के पश्चात् उसका भाई महेन्द्र वर्मा और महेन्द्र वर्मा के पश्चात् उसका पुत्र ईशान वर्मा गद्दी पर बैठा ।

ईशान वर्मा अत्यन्त पराक्रमी और महत्वाकांक्षी शासक था । इसने अपने राज्य की सीमाओं को बहुत दूर तक बढ़ाया और कम्बोडिया तथा कोचीन चीन का सारा प्रदेश अपने राज्य में मिला लिया । इस राजा ने 'ईशानुपुर' नामक एक नई राजधानी का निर्माण करवाया । चम्पा के राजा जगद्धर्म के साथ ईशान वर्मा ने अपनी कन्या का विवाह किया था ।

ईशान वर्मा के पश्चात् भव वर्मा द्वितीय और जय वर्मा प्रथम इस राजवंश में हुए, मगर इनके समय में इस राज्य की स्थिति बहुत कमजोर हो गई और सन् ६७४ में जावा के राजा ने आक्रमण करके कम्बोज पर अधिकार कर लिया ।

८वीं सदी तक यह जावा के अधिकार में रहा, किन्तु सन् ८०२ में प्राचीन साम्राज्य के जयवर्मन द्वितीय ने कम्बोज पर आक्रमण करके कम्बोज को जावा से छीन लिया ।

जय वर्मन द्वितीय अपने समय का बड़ा प्रतापी और साहसी राजा था । शिला लेखों में इसको 'कम्बु-राजेन्द्र' और उसकी रानी को 'कम्बुज-राजलक्ष्मी' के नाम से सम्बोधित किया गया है । यह राजा 'हिरण्यदाम' नामक एक भारतीय ब्राह्मण का शिष्य था, और उसने हिरण्य दाम के द्वारा स्थापित देवराज-सम्प्रदाय को कम्बोज का राजधर्म बनाया था । इसी राजा ने 'अंगकौर' नामक सुप्रसिद्ध नगर का निर्माण प्रारंभ किया था ।

जय वर्मन द्वितीय के पश्चात् इन्द्रवर्मा कम्बोज की राजगद्दी पर आया । उसने बहुत से मन्दिर और तालाब बनवाये ।

इन्द्र वर्मा के पश्चात् सन् ८८६ में यशोवर्मा कम्बोज की राजगद्दी पर बैठा। इसने सन् ९०८ तक शासन किया। यशोवर्मा अपने समय का बड़ा विद्वान और साहित्य प्रेमी नरेश था । इसके समय में हिन्दू धर्म, साहित्य तथा कला की बड़ी प्रगति हुई । इसके समय के बहुत से शिला-लेख प्राप्त हुए हैं । उनसे मालूम होता है कि इसने 'यशोधरपुर' नामक राजधानी की स्थापना की थी। इसी राजा ने जय वर्मन द्वितीय के द्वारा आरम्भ किये गये 'अंगकौर' नगर का निर्माण पूरा किया। यह नगर अपनी कारीगरी और सुन्दरता की दृष्टि से सारे पूर्व में प्रसिद्ध हो गया था । इस शहर के पास ही 'अंगकोरवट' नामक एक सुन्दर और विशाल मन्दिर बनवाया गया था, जिसकी स्थापत्यकला दर्शनीय थी। अंगकोर-संस्कृति का स्वर्ण-युग इसी समय से प्रारम्भ होता है। कम्बोज का वैभव इस समय अपनी चरम सीमा पर था ।

यशोवर्मा के पश्चात् हर्ष वर्मा और ईशान वर्मा द्वितीय राजा हुए। सन् ९४४ ई० में इस वंश में राजेन्द्र वर्मा नामक राजा हुआ । इसने सन् ९६८ तक राज्य किया । इसके समय के कई संस्कृत-शिला लेख इस समय प्राप्त हैं ।

राजेन्द्र वर्मा के पश्चात् उसका पुत्र जय वर्मा तृतीय और उसके पश्चात् उदयादित्य वर्मा प्रथम राजा हुआ । उदयादित्य वर्मा ने सन् १००१ ई० तक शासन किया । इस काल में कम्बोज की सीमाएँ बहुत विस्तृत होकर चीन की दक्षिणी सीमाओं को छूने लगी थी। लाओस उसके

साम्राज्य में सम्मिलित हो गया था और उसके राजनैतिक प्रभाव में 'स्याम' और उत्तरी 'मलाया' भी आ गये थे।

इसके पश्चात् इस वंश में सूर्य वर्मा नामक राजा बड़ा प्रतापी हुआ। इसने सारे स्याम को जीत कर दक्षिणी वर्मा पर भी आक्रमण किया। यह राजा बड़ा विद्वान् और बौद्धमत का अवलम्बी होने पर भी बड़ा समदर्शी और उदारचेता था। इसके समय में कम्बोज के अन्दर गृहयुद्ध का प्रारम्भ हो गया था।

इसके बाद इस राजवंश में उदयादित्य वर्मा द्वितीय, हर्ष वर्मा तृतीय, उदयाकर वर्मा, धरणीधर वर्मा और सूर्य वर्मा द्वितीय नामक राजा हुए। सूर्यवर्मा द्वितीय के बाद जयवर्मा सप्तम इस वंश की राजगद्दी पर आया।

जयवर्मा सप्तम इस वंश में बड़ा प्रतापी राजा हुआ। इसने एक बहुत बड़ी सेना का संगठन किया। इसका राज्यभिषेक सन् ११८६ के लगभग हुआ था। जय वर्मा सप्तम की गणना कम्बोज के महान् नरेशों में होती है। इस के समय में कम्बोज का विस्तार अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था। इसके समय में कम्बोज में ७९८ मन्दिर, १०२ अस्पताल और १२१ धर्मशालाएँ बनी हुई थी। इस राजा के पश्चात् कम्बोज की समृद्धि बराबर क्षीण होती गई और पड़ोसी राज्य चम्पा और स्याम, शक्ति-शाली हो गये। इसके बाद कम्बोज का इतिहास अन्धकार में रहा और अन्त में सन् १८५४ ई० में कम्बोज के निर्बल राजा 'अंकडू-ओंग' ने इस राज्य को फ्रांस के हाथ में सौंप दिया।

सन् १९४९ तक यह राज्य फ्रांस के अधीन रहा। ८ नवम्बर सन् १९४९ को फ्रांस ने एक समझौते पर दस्तखत कर के कम्बोडिया की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार कर लिया लेकिन उसे 'फ्रेंच-यूनियन' के अन्तर्गत ही रखा। इसके लिए वहाँ के राजा 'नरोत्तम सिंहानूक' ने अपना राष्ट्रीय आन्दोलन चालू रखा। सन् १९५५ में कम्बोडिया पूर्ण स्वतन्त्र हो गया और उसके पहले प्रधान मंत्री नरोत्तम सिंहानूक बनाये गये।

कम्बोज का सांस्कृतिक महत्व

कम्बोज का प्राचीन इतिहास देखने से पता चलता है कि यह स्थान एक हजार वर्षों तक करीब-करीब भारतीय संस्कृति का केन्द्र रहा और यहाँ के प्रतापी नरेशों ने भारतीय संस्कृति को समृद्ध करने में काफी योग दिया। उनके बनाएँ हुए सांस्कृतिक नगर, मन्दिर और अन्य कीर्ति कलाएँ आज भी उस समय के वैभवपूर्ण समय की याद दिलाते हैं। उनके द्वारा स्थापित किया हुआ 'अंगकौर नगर' कला, संस्कृति और वैभव की दृष्टि से उस समय समस्त एशिया में एक प्रमुख नगर माना जाता था।

उनके द्वारा स्थापित 'अंगकोरवट' का मन्दिर उस समय सारे दक्षिणपूर्वी एशिया के धर्मप्रेमी लोगों का प्रमुख आकर्षण केन्द्र था। यह मन्दिर कोई एक मील के क्षेत्रफल में बना हुआ था। इसके चारों तरफ बनी हुई प्राचीरें १०८० × ११०० फीट की थीं, जिसके चारों ओर २३० फीट चौड़ी खाई बनी हुई थी। जिसके ऊपर मन्दिर में जाने के लिए बड़ा सुदृढ़ पुल बना हुआ है।

नैऋत्य कोण से मन्दिर में घुसने पर बाएँ हाथ पर भीष्म की 'शर-शय्या' का नयनाभिराम दृश्य सामने आता है। जिसके मध्य में भीष्म पितामह शर-शय्या पर लेटे हुए हैं। उनकी दोनों ओर मुकुट एवं किरीटधारी कौरव और पाण्डव दल के वीर खड़े हुए हैं। सैकड़ों वर्ष बीत जाने पर भी इन मूर्तियों को स्थापत्यकला में कोई खराबी नहीं आई है। दूर से देखने पर पत्थर में खोदी हुई ये मूर्तियाँ सजीव के समान दिखलाई पड़ती हैं।

मन्दिर के मध्य पश्चिमोत्तर में 'राम-रावण-युद्ध' के दृश्य और उत्तर पश्चिम भाग में 'देवासुर-संग्राम' के दृश्य बड़ी ही सुन्दरता से अंकित किये हुए हैं। यहाँ की मूर्तियों में सूर्य और चन्द्रदेव की ज्योतिर्मयी मूर्तियाँ बहुत सुन्दर बनी हुई हैं।

दक्षिण-पूर्व भाग में 'समुद्र-मन्थन का दृश्य बनाया गया है, जिसमें शिल्पकला, चित्रकला और स्थापत्यकला का ऐसा सुन्दर समन्वय किया गया है कि ऐसा मालूम होता है कि शायद समुद्र-मन्थन का ऐसा दृश्य अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं होगा।

दक्षिण-पूर्वी भाग के दूसरे मञ्च पर 'यमपुरी या नरक' के दृश्यों को दिखलाने वाली ३६ मूर्तियाँ खोदी हुई हैं।

इस मंच से थोड़ी दूर पश्चिम में एक दूसरे मंच पर कम्बोज के राजाओं और राज-परिवार वालों की मूर्त्तियाँ खुदी हुई हैं। ऐसा सुन्दर और आकर्षक दृश्य अन्यत्र देखने को मिलना कठिन है।

अंगकोर-वट नामक मन्दिर से दक्षिण पूर्व ११ मील की दूरी पर तीन और सुन्दर मन्दिर बने हुए हैं, जिनके नाम 'बकङ्ग' 'बकू' और 'लोलो' हैं। बकङ्ग का मन्दिर बहुत प्राचीन है। कम्बोज के राजा इन्द्रवर्मा ने 'हर-गौरी-पूजा' के लिए उक्त मन्दिर बनवाया था।

बकू नामक स्थान में पास ही पास ६ शिव-मन्दिर और ३ शक्ति-मन्दिर बने हुए हैं।

बकू से उत्तर कुछ दूरी पर लोलो नाम के स्थान में ४ देव-मन्दिर बने हुए हैं। यहाँ स्थान-स्थान पर बहुत से टूटे हुए स्तम्भ पड़े हुए हैं, जिससे मालूम होता है कि पहले यहाँ कोई विशाल देव-मन्दिर रहा होगा।

कम्बोज-राजा यशोवर्मा ने ईसवी सन् ८९३ के लगभग शिव एवं भवानी के सेवार्थ उक्त मन्दिर बनवाये थे—ऐसा वहाँ के शिलालेखों से मालूम पड़ता है।

उपरोक्त मन्दिरों के अतिरिक्त कम्बोडिया में और बहुत से मन्दिर बने हुए हैं, जिनमें बेत्रोन नगर का ब्रह्म मन्दिर शिल्प-नैपुण्य, स्थापत्यकला और चित्रकारी की दृष्टि से अत्यन्त श्रेष्ठ है। चतुर्मुख ब्रह्मा का ऐसा सुन्दर मन्दिर कम्बोज के सिवाय अन्य स्थानों पर कहीं देखने को नहीं मिलता।

बेत्रोन नगर से पूर्व दिशा में एक मील की दूरी पर 'पतन-ता-फ्रूम' नामक एक बहुत सुन्दर मन्दिर बना हुआ है, जिसका संस्कृत नाम ब्रह्म-पट्टन होता है। यह मन्दिर आजकल खण्डहर के रूप में पड़ा हुआ है।

हिन्दू-मन्दिरों की तरह ही यहाँ बौद्धों के स्मृति-स्थान भी देखने योग्य हैं।

इन सब स्मारकों से पता चलता है कि कम्बोज निवासियों के धर्म, संस्कृति, साहित्य और स्थापत्य-कला सभी चीजों पर भारतीय सभ्यता की अमिट छाप थी। एक हजार ईसवीं तक कम्बोज के अन्तर्गत वैष्णव धर्म और शैव-धर्म का बोलबाला रहा और यही धर्म यहाँ के राजधर्म रहे। उसके पश्चात् यहाँ पर बौद्ध-धर्म ने प्रवेश किया और यह वहाँ का राज-धर्म हो गया। इसके बाद यहाँ इस्लाम का प्रवेश हुआ।

यहाँ की भाषाओं में 'खम' और 'अनाम' की भाषाएँ प्रचलित हैं, पर अधिकांश में कम्बोज के लोग खमभाषा का प्रयोग करते हैं।

ख्मेर-राजवंश के शासनकाल में यहाँ पर एक नई लिपि का भी आविष्कार हुआ। यह लिपि दक्षिणी भारत की पल्लव और पूर्वी चालुक्य की लिपियों के मेल से बनी हुई है।

कम्बोज का आधुनिक नाम कम्बोडिया है जो सन् १९५५ में फ्रांसीसी आधिपत्य से मुक्त होकर स्वतंत्र हुआ है। इसका क्षेत्रफल १८१,७०० वर्गमील है। इसकी उत्तरी और पश्चिमी सीमा पर श्याम, पूर्वी सीमा पर दक्षिणी वियतनाम और दक्षिणी-पश्चिमी भाग में श्याम की खाड़ी का तट है।

इस प्रदेश की राजधानी 'मीकांग' और 'टोनलेसाप' नामक नदियों के संगम पर स्थित 'प्नामपेन' नामकनगर में है।

कम्यून

स्वायत्त-शासन प्राप्त गाँवों और शहरों के क्षेत्रीय संगठन, जिनको अपने-अपने क्षेत्र की व्यवस्था और शासन करने का केन्द्र से पूर्ण अधिकार प्राप्त रहता है। इस व्यवस्था में नगर का प्रत्येक नागरिक अपनी सारी सम्पत्ति 'कम्यून' को सौंप देता है और बदले में अपने सम्मानपूर्ण जीवनयापन के लिए सारी व्यवस्था कम्यून से प्राप्त करता है।

कम्यून की भावनाएँ प्राचीनकाल में भी कई देशों के अन्तर्गत विकसित हुई थी, मगर इन भावनाओं को व्यवस्थित रूप, फ्रांस की राज्यक्रान्ति के बाद विशेष रूप से प्राप्त हुआ।

पेरिस कम्यून

सन् १८७१ में पेरिस-कम्यून (Paris Commune) के आन्दोलन ने एक क्रांतिकारी रूप ग्रहण किया। उस समय फ्रांस की राजनैतिक स्थिति अत्यन्त डाँवाडोल हो रही थी। सन् १८७० में तीसरे नेपोलियन की भयंकर पराजय ने वहाँ की सरकार की अयोग्यता पूर्णरूप से साबित कर दी थी और पेरिस के मजदूरों में उस सरकार के प्रति घोर असंतोष छा गया था।

सितम्बर सन् १८७० में गणतंत्र की घोषणा के साथ 'गवर्नमेंट ऑफ नेशनल डिफेंस' की स्थापना की गई और इसके तुरन्त बाद ही जर्मन-सेना ने पेरिस पर घेरा डाल दिया। जब कई महीने तक यह घेरा चालू रहा तो पेरिस की जनता अत्यन्त व्याकुल हो गई और उसने नई सरकार के पास स्वायत्त-शासित-कम्यून की स्थापना का प्रस्ताव भेजा।

जनवरी सन् १८७१ में फ्रांस की 'गवर्नमेंट ऑफ नेशनल डिफेंस' ने जर्मन सेना के साथ एक अपमानपूर्ण युद्ध-विराम-सन्धि की और अपनी राजधानी पेरिस से हटाकर 'वर्साई' में स्थापित कर दी। इससे क्रुद्ध होकर पेरिस के मजदूरों की सेना की टुकड़ियों ने परस्पर मिल कर फरवरी सन् १८७१ में राष्ट्रीय संरक्षकों की एक केन्द्रिय समिति "कोमिति-द-लॉ गार्ड नातिओनाल" के नाम से स्थापित की।

'वर्साई' की सरकार ने इस समिति की शक्ति को कम करने के लिए १८ मार्च सन् १८७१ के दिन उनके शस्त्रास्त्र छीन लेने का आदेश सेना को दिया, मगर फ्रांस की सरकार के सैनिकों ने राष्ट्रीय संरक्षक सैनिकों पर वार करने से इनकार कर दिया। इससे सरकारी पक्ष बहुत कमजोर हो गया और इस संघर्ष में सरकारी पक्ष के बहुत से प्रमुख व्यक्ति मारे गये तथा बहुत से वहाँ से भाग गये और पेरिस नगर राष्ट्रीय संरक्षक समिति के हाथ में आसानी से आ गया। नगर के हाथ में आते ही इस समिति ने तुरन्त अपनी 'अन्तरिम' सरकार स्थापित की और २६ मार्च १८७१ को पेरिस कम्यून के ९० प्रतिनिधियों का चुनाव कर डाला। १६ अप्रैल सन् १८७१ को पेरिस-कम्यून ने एक घोषणा-पत्र प्रकाशित कर कम्यून के व्यापक अधिकारों की घोषणा की और नगर का नये ढंग से संगठन करना प्रारम्भ किया। मगर यह सारी व्यवस्था केवल ६४ दिन तक कायम रही।

२२ अक्टूबर सन् १८७१ के दिन वर्साई-सरकार की सेनाएँ पूरे संगठन के साथ पेरिस नगर में घुस पड़ीं और उन्होंने एक छोटी लड़ाई के बाद बहुत से कम्यून-सदस्यों को मार डाला और कम्यून की संसद को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

कम्यून के विध्वंस की यह घटना फ्रांस के इतिहास में एक दुःखदायी घटना मानी जाती है।

चीनी कम्यून

साम्यवाद की स्थापना के पश्चात् चीन ने भी ७ अगस्त सन् १९५८ को जनता के इन कम्यूनों के लिए अस्थायी विधान का एक प्रस्ताव पास किया। इस प्रस्ताव के अनुसार जनता को कम्यून समाज की एक मूलभूत 'इकाई' माना गया है। इन मूलभूत संगठनों में मजदूर लोग अपनी इच्छा से सम्मिलित हो सकते हैं। अपने क्षेत्र के समस्त औद्योगिक तथा कृषि-सम्बन्धी उत्पादन, व्यवसाय, वितरण तथा संस्कृति, शिक्षा और राजनैतिक कार्यों के प्रबन्ध करने के अधिकार कम्यूनों को दिये गये हैं। कम्यून के सदस्य बनने वाले व्यक्तियों को अपनी समस्त निजी सम्पत्ति तथा उत्पादन के समस्त साधन कम्यून को सौंप देने पड़ेंगे और उनके ऊपर जो कर्ज होगा उसके चुकाने की जवाबदारी कम्यून पर होगी और उनके खाने-पीने और रहने की व्यवस्था कम्यून के जिम्मे रहेगी। कम्यून को अपनी नागरिक सेना रखने का अधिकार होगा।

इन समस्त कम्यूनों का सबसे बड़ा प्रशासकीय संगठन एक कांग्रेस के रूप में रहेगा। इस कांग्रेस में जनता के सभी अंगों के प्रतिनिधि होंगे। यह कांग्रेस कम्यून के समस्त विषयों पर विचार करेगी और उस पर अपना महत्वपूर्ण निर्णय देगी और वे निर्णय सर्वमान्य होंगे।

कम्यूनिज्म और कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो

कार्लमार्क्स और फ्रेडरिक ऐंगल्स के द्वारा निर्मित एक नवीन समाज-व्यवस्था। जिसके अनुसार समाज में स्थापित भिन्न-भिन्न शोषक और शोषित वर्गों को मिटाकर, एक ही वर्ग स्थापित कर सब मनुष्यों को, समानरूप से जीने का सिद्धान्त स्वीकार किया गया है।

मार्च सन् १८४८ में कार्लमार्क्स ने उस इतिहास-प्रसिद्ध 'कम्यूनिस्ट-मैनिफेस्टो' की घोषणा की जो समस्त मानवीय इतिहास के गहन और दीर्घकालीन अध्ययन के पश्चात् तैयार किया गया था।

इस मैनिफेस्टो में (Manifesto) संक्षिप्त रूप से मानवीय इतिहास के उस सारे अध्ययन का निचोड़ देते

हुए बतलाया गया है कि मनुष्य अपने आदिकाल से ही जीविकोपार्जन के लिये संघर्ष करता रहा है। यह संघर्ष प्रकृति के साथ भी है और मनुष्य-मनुष्य के बीच में भी है। सारे मनुष्य-समाज का पिछला और मौजूदा इतिहास वर्ग-संघर्ष का एक इतिहास है। जिस वर्ग के हाथ में उत्पादन के साधन होते हैं, उसी का समाज में प्राधान्य रहता है। वह दूसरे वर्गों की मिहनत का अनुचित फायदा उठाता है और इस अनुचित लाभ उठाने के लिए वह राज्य के अन्दर भी अपनी पूर्ण शक्ति को रखता है।

मध्य-युग में समाज के अन्दर जागीरदार, जमींदार, राजा इत्यादि भूमि पर अपना वर्चस्व रखने वाले लोग ही समाज के शोषण का कार्य करते थे और किसानों, मजदूरों, दासों और अर्धदासों की मिहनत का अनुचित लाभ उठाते थे।

मगर मशीन-युग की स्थापना के बाद जब सब दूर कारखानों का बोलबाला हुआ और 'विश्व-बाजार' की स्थापना हुई तो यह सामन्ती-प्रथा क्रमशः समाप्त होने लगी और इसके स्थान पर कारखानों के मालिक पूँजीपति-वर्ग ने राज-सत्ता के सम्पूर्ण राजनैतिक अधिकारों को अपने हाथ में ले लिया। आधुनिक राज-सत्ता की 'पार्लमेंट' सम्पूर्ण पूँजीपति वर्ग के आम कारोबार को चलाने की एक प्रबन्ध-समिति के अलावा और कुछ नहीं है।

आगे चलकर मार्क्स इस मैनिफेस्टो में लिखते हैं कि—

"ऐतिहासिक दृष्टि से पूँजीपति वर्ग ने बहुत क्रान्तिकारी भूमिका अदा की है। जहाँ भी इस वर्ग ने शक्ति प्राप्त की वहाँ सामन्तवादी, पितृ-सत्तावादी तथा भावुकता के सभी सम्बन्धों का उसने अन्त कर दिया। स्वाभाविक रूप से ही उच्च कहलाने वाले लोगों से मनुष्य जिन नाना सामन्ती बन्धनों से बँधा हुआ था, उन सबको इस पूँजीपति वर्ग ने निष्ठुरता से तोड़ दिया। नग्न स्वार्थ के नकद पैसे-कौड़ी के हृदय-शून्य व्यवहार के सिवा मनुष्यों के बीच और कोई दूसरा सम्बन्ध उसने बाकी नहीं रहने दिया। ऊँची-से-ऊँची धार्मिक भावनाओं, वीरोचित उत्साह और भावुकता, सब पर उसने आना-पाई का मुलम्मा चढ़ा दिया। मनुष्य के गुणों को उसने बाजार की बिकाऊ चीज बना दिया। एक शब्द में धार्मिक और राजनैतिक पर्दों के पीछे छिपे हुए शोषण के स्थान पर उसने नंगे, निर्लज्ज, प्रत्यक्ष और पाशविक शोषण की स्थापना कर दी है।" आगे चलकर मार्क्स लिखते हैं—

"मुश्किल से अपनी एक शताब्दी के शासन-काल में ही पूँजीपति-वर्ग ने जितनी शक्तिशाली और प्रचण्ड उत्पादन-शक्तियों को खड़ा कर दिया है, उतनी पिछले तमाम युगों में मिलाकर भी नहीं विकसित हो पाई थी। प्राकृतिक शक्तियों पर मनुष्य का नियंत्रण, मशीनें, उद्योग-धन्धों और खेती बारी में रसायन-शास्त्र का प्रयोग, भाप से चलने वाले जहाजों और रेलों से यात्रा, बिजली के तार, खेतों के लिए बड़े-बड़े द्वीपों की सफाई, नहरों का निर्माण, पूरी की पूरी आबादी को, मानो जादू के जोर से जगह-जगह जमा कर देना इत्यादि। पिछली शताब्दियों में क्या इसकी कल्पना की जा सकती थी कि सामाजिक श्रम की गोद में ऐसी उत्पादक शक्तियाँ सोई हुई पड़ी हैं।"

"आज हमारे सामने ठीक इसी तरह की हलचल हो रही है। आधुनिक पूँजीवादी समाज ने उत्पादन और विनिमय के विशाल साधनों को जादू की तरह जन्म तो दे दिया है लेकिन उसकी व्यवस्था, उत्पादन-विनिमय और सम्पत्ति के इन साधनों को सँभाल नहीं पाती। वह ऐसे जादूगर के समान है जिसने अपने जादू के जोर से इन शक्तियों को भौतिक जगत् में बुला तो लिया है, लेकिन जो अब उनपर काबू रखने में असमर्थ है। जिसके परिणाम स्वरूप जिन हथियारों से पूँजीपति वर्ग ने सामान्तवाद का अन्त किया था, वे ही हथियार आज स्वयं उसके खिलाफ तन गये हैं और सर्वहारा वर्ग के मजदूर लोग इन्हीं हथियारों के द्वारा इस वर्ग का अन्त कर देंगे।"

मजदूर-वर्ग के क्रम-विकास का वर्णन करते हुए, मार्क्स लिखते हैं कि—

"सर्वहारा-वर्ग" विकास की अनेकों मंजिलों से गुजरता है। शुरू-शुरू में ये मजदूर इकेले-दुकेले ही झगड़ा करते हैं, दूसरी मंजिल में एक कारखाने के मजदूर मिलकर और उसके बाद शहर भर के एक उद्योग के सब मजदूर एक

साथ मिलकर, उस पूँजीपति से मोर्चा लेते हैं जो उनका सीधे-सीधे शोषण करता है।"

"मगर इस समय तक मजदूरों में एकता नहीं होती। देश भर में वे इधर-उधर बिखरे रहते हैं। आपसी होड़ के कारण वे कई टुकड़ों में बँटे रहते हैं। लेकिन उद्योग-धन्धों के विकास के साथ-साथ मजदूर-वर्ग के मजबूत और सुसंगठित संघ बननने लगते हैं जिन्हें ट्रेड-यूनियन (Trade Union) कहते हैं। इन मजदूर संघों और पूँजीपतियों के बीच की टक्कर दिनों-दिन दो वर्गों के बीच की टक्करों का रूप धारण करती जाती है। यातायात के आधुनिक साधन इन मजदूर-संगठनों को, अलग-अलग-जगहों के मजदूरों को, एक दूसरे के सम्पर्क में लाने में मदद पहुँचाते हैं। कभी-कभी आपसी प्रतिस्पर्धा के कारण ये मजदूर-संगठन टूट भी जाते हैं, मगर फिर दूनी शक्ति के साथ बनकर आगे आ जाते हैं।"

"इतिहास के अन्दर पहले के तमाम आन्दोलन अल्पमत या अल्पमत के फायदे के आन्दोलन रहे हैं, मगर मजदूर-वर्ग का यह आन्दोलन विशाल बहुमत के हित का स्वयं जागृत और स्वतन्त्र आन्दोलन है। मजदूर-वर्ग हमारे समाज का सबसे निचला स्तर है। सरकारी-समाज के तमाम ऊपरी सरंजाम को उलटे बिना वह हिल-डुल नहीं सकता और अपने को ऊपर नहीं उठा सकता।"

"इसलिए यह बिलकुल साफ हो जाता है कि अब पूँजीपति-वर्ग समाज का शासक-वर्ग बनने और जीवन-विधान को एक अनियंत्रित कानून के रूप में समाज के ऊपर लादने के अयोग्य है। इसलिये अब समाज पूँजीपति-वर्ग के शासन में नहीं रह सकता। दूसरे शब्दों में पूँजीपति वर्ग का जिन्दा रहना समाज के साथ-साथ नहीं चल सकता। इसलिए इस वर्ग के खिलाफ मजदूरों की सामूहिक क्रान्ति अनिवार्य हो चुकी है।"

मजदूर और कम्यूनिज्म

संसार के मजदूरों के साथ कम्यूनिज्म के क्या सम्बन्ध हैं—इसकी व्याख्या करते हुए मार्क्स इस 'घोषणा-पत्र' में लिखते हैं—

"कम्यूनिस्टों और दूसरे मजदूर-संगठनों में यह अन्तर है कि (१) विभिन्न देशों के मजदूरों के राष्ट्रीय संघर्षों में जातियों के तमाम भेद-भावों को छोड़कर कम्यूनिस्ट सम्पूर्ण मजदूर-वर्ग के सामान्य हितों को सामने लाते हैं और (२) पूँजीपति-वर्ग के खिलाफ मजदूर-वर्ग के संघर्ष को विकास की जिन मंजिलों में से होकर गुजरना होता है, उन सब में हमेशा और हर जगह- वे पूरे आन्दोलन के हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं।"

इसलिए कम्यूनिस्ट एक तरफ तो अमली तौर पर हर देश के मजदूर-वर्ग की पार्टियों का सबसे आगे बढ़ा हुआ और दृढ़ संकल्पी भाग होता है जो बाकी सब लोगों को भी आगे ढकेलता चलता है और दूसरी तरफ सैद्धान्तिक तौर पर मजदूर आन्दोलन की प्रगति के मार्ग को वैज्ञानिक दृष्टि से समझता है।"

कम्यूनिज्म और निजी सम्पत्ति

"कम्यूनिज्म की खास विशेषता यह नहीं है कि वह सम्पत्ति को आम तौर से खतम कर देना चाहता है, बल्कि यह है कि वह पूँजीवादी सम्पत्ति को खतम कर देना चाहता है। उसका ध्येय निजी सम्पत्ति को खतम कर देना है। क्योंकि पूँजीपति होना एक व्यक्तिगत हैसियत रखना नहीं, बल्कि उत्पादन के क्षेत्र में एक सामाजिक हैसियत रखना है। पूँजी एक सामाजिक उपज है और समाज के केवल अनेक सदस्यों के संयुक्त उद्योग से ही नहीं, बल्कि अन्त में समाज के सभी सदस्यों के मिले-जुले उद्योग से ही पैदा होती है। इस तरह पूँजी निजी सम्पत्ति न होकर एक सामाजिक सम्पत्ति है।"

इसलिए पूँजी को जब आम सम्पत्ति बना लिया जाता है, समाज के तमाम सदस्यों की सम्पत्ति का रूप दे दिया जाता है तो इससे वैयक्तिक सम्पत्ति को सामाजिक सम्पत्ति में नहीं बदला जाता उससे केवल सम्पत्ति का सामाजिक रूप बदल जाता है। उसका वर्गरूप मिट जाता है।

पूँजीवादी समाज में जीवित श्रम संचित श्रम को बढ़ाने का एक साधन है। कम्युनिस्ट समाज में संचित श्रम श्रमिकों के जीवन को सुखी, समृद्ध और व्यापक बनाने का साधन बनता है।

पूँजीवादी समाज में वर्तमान के ऊपर अतीत का शासन होता है। कम्युनिस्ट-समाज में अतीत के ऊपर वर्तमान का शासन होगा। पूँजीवादी समाज में पूँजी स्वतन्त्र है और उसका जुदा व्यक्तित्व है, लेकिन जीवित आदमी परतन्त्र है और उसका कोई व्यक्तित्व नहीं।

कम्युनिज्म में नारी की स्थिति

कम्यूनिज्म के आलोचक जो यह आरोप लगाते हैं कि कम्यूनिज्म के अन्दर स्त्री को पंचायती सम्पत्ति बना दिया जायगा इसका उत्तर देते हुए मार्क्स लिखते हैं कि--

"झूठ-मूठ यह कह कर कि कम्युनिस्ट औरतों को खुलेआम और कानूनन सामाजिक सम्पत्ति बना देंगे--हमारे पूँजीपति घोर सदाचारियों की तरह बड़ा रोष प्रकट करते हैं। लेकिन वास्तव में उनके इस रोष से अधिक हास्यास्पद दूसरी कोई चीज नहीं है। स्त्रियों को पंचायती सम्पत्ति बनाने की कम्युनिस्टों कोई जरूरत नहीं, वे तो लगभग सनातन काल से समाज की पंचायती सम्पत्ति रही हैं।"

"पूँजीवादी विवाह वास्तव में पंचायती पत्नियों की ही व्यवस्था है। कम्युनिज्म के खिलाफ अधिक से अधिक यह आरोप लगाया जा सकता है कि वे पंचायती पत्नीत्व की मौजूदा ढोंग पूर्ण और गुप्त प्रथा को खुला कानूनी रूप दे देना चाहते हैं। बाकी तो यह बात साफ है कि उत्पादन का जब वर्तमान तरीका बदल जायगा तब उस तरीके से पैदा होनेवाली स्त्रियों की पंचायती पत्नित्व की स्थिति भी मिट जायगी और छिपी तथा खुली हर प्रकार की वेश्यावृत्ति का भी अन्त हो जायगा।"

अन्त में मार्क्स कम्यूनिज्म क्रान्ति की रूपरेखा बतलाते हुए लिखते हैं कि—

"कम्यूनिज्म-क्रान्ति का पहला कदम मजदूर-वर्ग की हुकूमत कायम करना और जनवाद की लड़ाई में विजय प्राप्त करना है। अपनी शक्ति का इस्तेमाल करके मजदूर वर्ग पूँजीपति वर्ग के हाथ से सारी पूँजी और उत्पादन के तमाम साधनों को छीन कर मजदूर सरकार के हाथ में सौंप देगा और उत्पादन की कुल शक्तियों को बड़ी तेजी के साथ बढ़ाया जायेगा।"

"निस्सन्देह आरम्भ में यह काम एक जबर्दस्त रक्तपात पूर्ण क्रान्ति के बिना सफल नहीं होगा। संक्षेप में कम्युनिस्ट पद्धति मौजूदा सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था के खिलाफ हर क्रान्तिकारी आन्दोलन का हर स्थान पर समर्थन करती है।"

"अपने विचारों और उद्देश्यों को छिपाना कम्युनिस्ट पाप समझते हैं। वे खुले आम ऐलान करते हैं कि उनके उद्देश्यों की पूर्ति वर्तमान समाज व्यवस्था को क्रान्ति के द्वारा बलपूर्वक खतम करके ही हो सकती है। कम्युनिस्ट क्रान्ति के डर से शासक-वर्गों को काँपने दो। मजदूरों के पास खोने के लिये अपनी बेड़ियों के सिवा कुछ नहीं है। पाने के लिए उनके सामने सारी दुनियाँ है।"

दुनियाँ के मजदूरों! एक हो जाओ!

उपरोक्त कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो कार्ल-मार्क्स और फ्रेडरिक ऐंगल्स के दस्तखतों से प्रकाशित हुआ। इसी के साथ वैज्ञानिक रूप से कम्युनिस्ट सिद्धान्तों का श्री गणेश हुआ। इस मैनिफेस्टों की भिन्न-भिन्न भाषाओं में प्रकाशित लाखों प्रतियाँ सारे संसार में बँट गई और सारे संसार का ध्यान इस आन्दोलन की ओर आकृष्ट हो गया। सारे संसार में में मजदूरों के ट्रेड यूनियन बनने लगे। कई जगह मजदूरों के द्वारा बड़ी-बड़ी क्रान्तियाँ भी की गईं मगर प्रथम महायुद्ध तक ये क्रान्तियाँ सरकारों के द्वारा पूरी तरह से कुचल दी गईं।

रूस में कन्यूनिज्म

मगर अन्त में प्रथम महायुद्ध के समय रूस के अन्दर मोशिये लेनिन के नेतृत्व में सन् १९१७ में अक्टूबर क्रान्ति के नाम से जो महान् क्रान्ति हुई उसमें कम्यूनिस्ट-शक्तियों की भारी विजय हुई। सैकड़ों वर्षों से चली आने वाली जारशाही का खातमा हो गया और कम्यूनिज्म की जड़ें विश्व के धरातल में मजबूती के साथ जम गईं।

लेनिन की मृत्यु के पश्चात सोवियट सरकार के प्रधान मंत्री स्टेलिन हुए। स्टेलिन चुपचाप काम करनेवाले और अपने विरोधियों के प्रति अत्यन्त कड़ा रुख रखनेवाले थे। अपने विरोधियों को समाप्त करने में वे कोई आगा-पीछा नहीं सोचते थे। इस प्रकार की एक घटना का उल्लेख मास्को से निकलने वाली कम्यूनिस्ट मुखपत्रिका "प्रावदा" के ८ फरवरी सन् १९६४ के अङ्क में साम्यवादी दल की कांग्रेस के एक प्रतिनिधि "एल० शौम्यान" ने किया है। उन्होंने लिखा है कि—

"बोलशेविक कांग्रेस स्टालिन के कृत्यों से भयभीत रहा करती थी और वह स्टालिन को प्रधान मंत्री के पद से हटाना चाहती थी। तभी स्टेलिन को इस बात का पता चल गया और उसने उस कांग्रेस के १९६६ प्रतिनिधियों में से ११०८ की और केन्द्रीय समिति के १३९ प्रतिनिधियों में से ९८ की हत्या करवा दी। ख़ुश्चेव उस समय स्टालिन के खुशामदी सदस्यों में थे।"

इसी प्रकार अपने खास प्रतिद्वन्दी 'ट्रोटस्की' की हत्या करने में भी स्टालिन का हाथ समझा जाता है।

सब कुछ होने पर भी स्टालिन रूस की शक्ति बढ़ाने में प्रयत्नशील रहा और उसी के प्रयत्नों से जर्मनी के समान विकराल शत्रु पर उसकी सेनाओं ने विजय पाई। इस युद्ध में विजय हो जाने के बाद रूस संसार की दो महाशियों में से एक हो गया।

चीन में कम्यूनिज्म

रूस से प्रेरणा लेकर द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् चीन में भी एक जबर्दस्त, कम्यूनिस्ट-क्रान्ति हुई और उसने चाँग-काई-शेक की सरकार को वहाँ से भगाकर माओत्से-तुंग के नेतृत्व में कम्यूनिस्ट सरकार की स्थापना की, और भी कई छोटे-छोटे देशों ने इस सिद्धान्त को अपनाया और दूसरे महायुद्ध के पश्चात् करीब करीब आधी दुनियाँ के लोगों में कम्यूनिस्ट-सिद्धान्तों की स्थापना हो गई।

दूसरे महायुद्ध के कुछ समय पश्चात् सोवियट रूस ने वैज्ञानिक क्षेत्र में जो अभूतपूर्व उन्नति की उससे सारा संसार दंग रह गया।

कम्यूनिज्म-सिद्धान्त की तेजी से बढ़ती हुई इस स्थिति को देखकर, और उसकी वैज्ञानिक उन्नति को देखकर ऐसे देश जो इन सिद्धान्तों में विश्वास नहीं करते थे और सुधारवादी तरीकों के पक्षपाती थे, चौकन्ने हो गये। इन देशों का नेतृत्व अमेरिका और इंगलैंड मिलकर कर रहे हैं। वैज्ञानिक क्षेत्र में रूस की ही तरह अमेरिका का भी छलांग पर छलांग लगा रहा है। और इस प्रकार क्रान्तिकारी और सुधारवादी—दोनों ही प्रतिस्पर्धी क्षेत्र एक दूसरे की शक्तियों के रोकने और अपनी शक्तियों का विस्तार करने की चेष्टा में लगे हुए हैं।

इधर रूस के प्रधान मंत्री ख़ुश्चेव की विचारधारा में कुछ मौलिक परिवर्तन होने के संकेत स्पष्टरूप से नजर आ रहे हैं। वे स्टॉलिन की पद्धति के बड़े विरोधी हैं। उनकी विचारधारा क्रान्तिवादी सिद्धान्तों से दूर होकर किसी प्रकार सुधारवादी विचारधारा के पक्ष में झुकती हुई दृष्टिगोचर हो रही है।

रूस की इस विचारधारा से दुनियाँ का सबसे बड़ा कम्यूनिस्ट देश चीन क्षुब्ध हो उठा है और इस कारण सारा कम्यूनिस्ट संसार दो विभागों में विभक्त हो गया है। और रूस तथा चीन के बीच की खाई दिन पर दिन चौड़ी होती हुई दिखलाई दे रही है। आगे जाकर इसके क्या परिणाम होंगे, इसकी भविष्यवाणी अभी नहीं की जा सकती। फिर भी इतना कहा जा सकता है कि कम्यूनिस्ट आन्दोलन की यह फूट आगे जाकर खतरनाक साबित हो सकती है।

वैज्ञानिक क्षेत्र में काफी उन्नति कर लेने पर भी कम्यूनिस्ट देश अपने जन-समाज की सभी समस्याओं को हल करने में सफल हुए हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। इन देशों की लौह-दीवारों से छनकर बहुत ही कम समाचार संसार के सामने आने पाते हैं। वहाँ के लोगों को भी उस व्यवस्था के खिलाफ बोलने का कोई अधिकार नहीं है। फिर भी यह दिखलाई पड़ता है कि वे खाद्य-समस्या को तथा दूसरी समस्याओं को हल करने में सफल नहीं हैं और ऐसे मामलों में अमेरिका के परमुखापेक्षी हो रहे है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि कम्यूनिस्ट देशों का मजदूर अमेरिका के मजदूर से अधिक सुखी और सम्पन्न है। इससे पता चलता है कि कम्यूनिस्ट-आन्दोलन की गति को कुण्ठित करने में सुधारवादी देश सफल हो रहे हैं या यह कि इस आन्दोलन के अन्दर समय के साथ-साथ कुछ मूल भूत परिवर्तन करने की आवश्यकता है। स्वयं लेनिन ने एक बार कहा था—

"हम किसी भी अर्थ में मार्क्सवाद को ऐसी चीज नहीं समझते जो सम्पूर्ण है और जिसमें कोई दोष नहीं निकाला जा सकता। इसके विपरीत हमारा दृढ विश्वास है कि यह मत उस विज्ञान की केवल आधार शिला है, जिसको समाजवादियों को हर दिशा में उन्नति करनी

चाहिए, वर्ना वे जीवन की दौड़ में पीछे रह जायंगे। हमारे विचार में रूसी समाजवादियों के लिए मार्क्स की विचार-धारा का अध्ययन करना खास तौर पर जरूरी है। क्योंकि यह मत केवल व्यापक मार्गदर्शक विचारधारा हमें देता है जो उदाहरण के लिए फ्रांस से इंगलैंड में, जर्मनी से फ्रांस में और रूस से जर्मनी में अलग अलग ढंगों पर लागू की जा सकती है।"

संभव है इसी विचारधारा से प्रभावित होकर ख्रुश्चेव ने रूसी-कम्यूनिज्म में कुछ मौलिक परिवर्तन करने की सोचा हो। उनके इन परिवर्तनों से यह दिखलाई पड़ता है कि वे और उनका देश चीन से शायद दूर जा रहे हों। मगर दूसरी दुनियाँ के वे बहुत समीप आते जा रहे हों।

करणी देवी

बीकानेर राज्य की स्थापिका और अधिष्ठात्री देवी। जिसका विशाल मन्दिर बीकानेर के समीप देशनोक नामक कस्बे में बना हुआ है।

करणी एक चारण कन्या थी। जिसका जन्म ई० सन् १३८७ (वि० सं० १४४४) के आश्विन मास में नेहा चारण के यहाँ राजस्थान के "सुवाप" , फलौदी , नामक ग्राम में हुआ था।

करणी देवी के सम्बन्ध में अनेक चमत्कारपूर्ण घटनाएँ जिन्हें आज के युग में अति रंजित भी कहा जा सकता है चारण जाति की गाथाओं में पाई जाती हैं और इन गाथाओं में उन्हें अति मानवीय ईश्वरीय अंश से सम्पन्न माना गया है।

मगर इसमें सन्देह नहीं कि वह एक वीर, राजनीति-कुशल और परम ईश्वरभक्त महिला थी। करणी देवी का विवाह साठीका ग्राम के देपाजी चारण के साथ हुआ था। ऐसा कहा जाता है कि जब करणी देवी विवाह करके साठोका ग्राम में आई उस समय वहाँ पर बिच्छू बहुत अधिक होते थे। उसी दिन किसी को वहाँ पर बिच्छू ने काट खाया। करणी ने उसका जहर उतार कर घोषणा की कि आज ही से इस गाँव के सब बिच्छू लुप्त हो जावेंगे और भविष्य में कभी पैदा न होंगे तब से कहा जाता है कि साठीका गाँव में अभी तक बिच्छू पैदा नहीं होते।

जिस स्थान पर इस समय बीकानेर बसा हुआ है वह प्रान्त उन दिनों जाङ्गलू प्रान्त कहलाता था।

करणी देवी ने अपने गाँव साठीका से हट कर सन् १४१६ के वैशाख में आधुनिक बीकानेर से २४ मील दूर देशनोक नगर की स्थापना की।

उन दिनों यह प्रान्त कई छोटे-छोटे राज्यों में बँटा हुआ था। यहाँ के सरदार लोग दिल्ली के लोदी सम्राट् को एक निश्चित रकम खिराज स्वरूप देकर हमेशा जनता में लूट मार मचाया करते थे। चारों ओर अराजकता के भयङ्कर दृश्य छाये रहते थे। इस लूट मार से प्रजा इतनी तङ्ग थी कि लोग वर्ष भर में दस दिन भी चैन से नहीं बैठ पाते थे।

करणी देवी ने इस अराजकता को देखकर निश्चय किया कि इन सब छोटे-छोटे लुटेरे राज्यों का नाश कर जब तक एक बड़े राज्य की स्थापना नहीं की जावेगी तब तक यहाँ शान्ति स्थापित न होगी।

उन्हीं दिनों जोधपुर राज्य के संस्थापक जोधाजी का पुत्र बीका एक नवीन राज्य की स्थापना का संकल्प करके अपने काका कान्धल के साथ वहाँ पर आया और करणी देवी के दर्शन कर उनसे अपना संकल्प बतलाया। करणी देवी ने इस राठौड़ वंशीय तेजस्वी युवक को सब तरह से योग्य समझकर उसे आशीर्वाद दिया कि तुझे यहाँ पर अपना राज्य स्थापित करने में जरूर सफलता होगी।

उन दिनों पुंगल देश में भाटी राजपूतों का सरदार रावशेखा बड़ा प्रबल था और उसने करणी देवी से राखी बँधवाकर उनसे बहन का रिश्ता कायम कर लिया था। मगर राव शेखा हमेशा लूट-मार किया करता था जिससे करणीदेवी बहुत नाराज रहती थी।

अन्त में करणी देवी ने सोचा कि बीका के राज्य स्थापन के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा रावशेखा है अगर किसी प्रकार इन दोनों परिवारों को विवाह सूत्र में बाँध दिया जाय तो इन दोनों में प्रेम उत्पन्न हो सकता है। यह सोचकर करणी देवी ने रावशेखा को अपनी पुत्री रंगकुँवरि का विवाह बीका से करने का परामर्श दिया।

मगर रावशेखा ने एक आवारा युवक को अपनी लड़की देने से साफ इन्कार कर दिया और बड़ा नाराज हुआ।

फिर भी करणीदेवी ने अनेक प्रकार के कौशल से रावशेखा की पत्नी को समझा बुझा कर किसी प्रकार रावशेखा की पुत्री रंगकुँवरि का विवाह राजकुमार बीका के साथ करवा दिया और बीका के राज्य स्थापन में आनेवाली इस बाधा को दूर कर दिया। यह विवाह सन् १४८२ में में सम्पन्न हुआ।

राव बीका के राज्य स्थापन के मार्ग में इसके बाद भी छोटे-मोटे सरदारों द्वारा बड़ी-बड़ी बाधाएँ डाली गईं। जिन्हें करणी देवी ने अपनी बुद्धिमानी से विरोधियों में फूट डालकर दूर कर दिया और ऊदावत तथा जाटों के छोटे-छोटे राज्यों को समाप्त करवाकर बीका का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

इस प्रकार करणी देवी के आशीर्वाद और सूझ-बूझ से राजकुमार बीका सब बाधाओं को पारकर राज्य-स्थापन में सफल हुआ और सन् १४९२ की वैशाख शुक्ल २ को उसने बीकानेर नगर की स्थापना कर वहाँ पर दुर्ग बनवाया और अपने को वहाँ का राजा घोषित किया।

इस प्रकार करणी देवी की सूझ-बूझ और कृपा से जांगलू देश में बीकानेर राज्य की स्थापना हुई।

राजनैतिक सूझ-बूझ के अतिरिक्त करणी देवी में वीरता का भी अद्भुत शौर्य्य था। एक बार उदावत राठौरों के सरदार कालू पैथड़ और सूजा मोहिल ने करणी देवी की अनुपस्थिति में देशनोक पर आक्रमण कर दिया और करणी देवी की गायों को घेर कर उनके प्रिय सांड बछराज को तथा गुवाल दशरथ को मार डाला और गायें घेर कर आगे बढ़े।

यह बात मालूम होते ही करणी देवी को बड़ा क्रोध आया और साक्षात् चण्डी का रूप धारण कर उसने पीछा कर सूजा को ललकारा और क्रोध में एक ही वार ऐसा किया कि सूजा यमलोक जा पहुँचा। उसके बाद कालू पेथड़ का पीछा कर देशनोक से बारह कोस पर कालू पेथड़ को जा घेरा और उसे मारकर गायों को छुड़ाकर वापस ले आईं। जिस जगह कालू पेथड़ मारा गया वह स्थान इस समय "कालिया का डूंगर" के नाम से प्रसिद्ध है।

इस प्रकार इस महान् नारी ने एक साधारण गृहस्थ के घर में जन्म लेकर एक बड़े राज्य की स्थापना की, अराजकता को दूर किया और नर से नारायणत्व की प्राप्ति की। बीकानेर राज का राजवंश और वहाँ की जनता आज भी बड़ी श्रद्धा से इस महान् नारी को स्मरण करती है।

करणीदेवी का मन्दिर

करणी देवी के स्मारक में देशनोक में तीन स्थान बने हुए हैं जहाँ पर प्रतिवर्ष हजारों यात्री आकर अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं।

१—इसमें पहला स्थान करणी देवी का मन्दिर है। इसमें स्वयं करणी के हाथ से बनाया हुआ एक छोटा सा कोठा है जिसे गुम्मारा कहते हैं। इसका निर्माण स्वयं करणी देवी ने अपने हाथ से बड़े-बड़े पत्थरों को जमा कर किया था। इस गुम्मारे में जैसलमेर के बना खाती द्वारा निर्मित पीले संगमरमर की श्री करणीजी की मूर्ति स्थापित है।

इस गुम्भारे के ऊपर सन् १५३८ में बीकानेर के राव जैतसी ने कच्ची ईंटों का राम मन्दिर बनवाया जिसे मण्ड कहते हैं।

इसके पश्चात् उन्नीसवीं शताब्दी में महाराज सूरतसिंह ने यहाँ पर एक बड़ा गुम्बजदार मन्दिर बनवाया और उसके चारों ओर एक पक्का डण्डा बनाकर मन्दिर का सिंहद्वार बनवाया।

उसके बाद बीकानेर के महाराजा गंगासिंह ने इस सारे मन्दिर को संगमरमर का बनवा दिया और आज यह मन्दिर करणी देवी की एक विशाल और शानदार स्मृति के रूप में विद्यमान है।

इस मन्दिर की सबसे बड़ी विशेषता जो शायद संसार में अन्यत्र कहीं भी देखने को न मिलेगी, इसमें चूहों का निर्भीक विचरण और उनका प्राधान्य है। इन चूहों को काबा कहते हैं। इन चूहों की संख्या पाँच छः हजार से कम न होगी। जब बीकानेर राज्य में प्लेग फैला था तब भी इन चूहों की संख्या कम नहीं हुई थी। यात्रियों के शरीर पर ये चूहे बेधड़क चढ़ जाते हैं

और कई बार उनके सिर पर बैठ जाते हैं ये चूहे बड़े शुभ और पवित्र माने जाते हैं। जब बीकानेर नरेश मन्दिर में आते हैं तो इस बात का बड़ा खयाल रक्खा जाता है कि कोई चूहा उनके पैरों से छू न जाय। चूहा यहाँ पर बड़ा पवित्र माना जाता है, इनकी रक्षा के लिए बड़ा सख्त प्रबन्ध है, राज्य की ओर से इन चूहों के लिए प्रतिदिन दूध, लड्डू और बाजरा डालने का प्रबन्ध है। यात्री लोग चूहों के लिए लड्डू अपने साथ लाते हैं।

इस मन्दिर में चूहों को इतना महत्त्व किस प्रकार मिला इसका सन्तोष जनक कारण जिसे लिखा जा सके नहीं मिल सका।

(२) करनी जी का दूसरा स्मारक देशनोक से एक मील दूर पर बना है जिसे नेहडी कहते हैं यह बिलकुल जंगल में है। इस मन्दिर में भी करनी जी की मूर्त्ति स्थापित है, यहाँ पर एक धर्मशाला थी बनी हुई है।

(३) करणी देवी का तीसरा स्मारक तेमडा राय का मन्दिर है।

करतार सिंह

भारतीय क्रान्ति के इतिहास में अपनी महत्वपूर्ण आहुति देनेवाला अमर शहीद करतार सिंह, जिसे केवल १६ वर्ष की अवस्था में फाँसी के तख्ते पर लटकना पड़ा।

करतार सिंह का जन्म सन १८६६ में लुधियाना के सराबा नाम के ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम मंगल सिंह था। बचपन से ही बालक करतार सिंह का मन पढ़ने-लिखने में नहीं लगता था। स्कूल में लड़ना-झगड़ना, शोर मचाना यही इसका काम था। किसी तरह से हाई स्कूल की परीक्षा पास कर वह उड़ीसा के एक कालेज में दाखिल हुए। वहाँ पर देश में चलने वाले आन्दोलनों के साहित्य को पढ़कर करतार सिंह के हृदय में अंग्रेजी सल्तनत के खिलाफ विद्रोह की अग्नि भड़क उठी। पढ़ाई में उनका मन न लगा। तब वह दादा की अनुमति लेकर अमेरिका चले गये।

उन्हीं दिनों पंजाब के निर्वासित विद्रोही नेता सरदार भगवान सिंह भी अमेरिका जा पहुँचे। इन दोनों ने वहाँ पर मजदूर दल का संगठन किया। और करतार सिंह के सम्पादन में 'गदर' नामक पत्र निकाला जाने लगा। उसके बाद आर्थिक परिस्थितियों से मजबूर होकर कर्तार सिंह ने अमेरिका में एक जहाज कम्पनी में नौकरी कर ली तथा उसी के एक जहाज में जापान पहुँच गये। वहाँ से वह लंका होते हुए भारतवर्ष में आये।

उस समय प्रथम महायुद्ध का श्रीगणेश हो ही रहा था। देश में आते ही यह संगठन को मजबूत करने तथा अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोहाग्नि भड़काने में लग गये। पंजाब के दौरे पर आये हुए शचींद्रनाथ सान्याल से इन्होंने स्टेशन पर ही मुलाकात की। पूरा कार्यक्रम निर्धारित किया गया। सान्याल के लौटने पर वे अपने कार्यक्रम के अनुसार शस्त्र-संग्रह करने, फौजी छावनी के सिपाहियों को बागी बनाने तथा जनता को संगठित कर विद्रोह के लिए उकसाने में लग गये। इस कार्य की पूर्ति में अर्थाभाव के कारण डाके डालने की योजना पर भी अमल किया गया।

२१ फरवरी सन् १६१५ ई० का दिन सारे भारत से अंग्रेज सल्तनत को उखाड़ फेंकने का दिन निश्चय किया गया था। इसी के अन्तर्गत लाहौर में भी विप्लव की योजना बन चुकी थी। कर्तार सिंह ने लाहौर की फौजी छावनी की मेगजीन पर भी कब्जा करने की योजना बना ली थी। इसके लिए मेगजीन के एक पहरेदार ने चाबियों का गुच्छा देने का वादा कर लिया था। परन्तु दुर्भाग्यवश एक दिन पहले ही उस सिपाही का तबादला हो गया। किन्तु सरदार करतार सिंह ने हिम्मत न हारी तथा उत्तरप्र.देश के विप्लव के गढ़ों का दौरा कर इस संगठन की कमजोरियों को बड़े नजदीक से देखकर अपने संगठन के कार्य को तेज कर दिया।

मगर इसी समय एक देशद्रोही 'कृपाल सिंह' ने इस योजना का सारा भण्डाफोड़ कर दिया। तलाशियों तथा गिरफ्तारियों का सारे देश में ताँता लग गया। रास बिहारी और कर्तार सिंह इस दुर्घटना से परेशान होकर गिरफ्तारी से बचने का उपाय सोचने लगे। रासबिहारी बोस तो बनारस चले गये और कर्तार सिंह अपने दो साथियों सहित पश्चिम की ओर भारत की सीमा को लाँघ गये, परन्तु इस प्रकार भागने को कायरता समझ कर वह

फिर अपने देश में लौट आये और सरगोधा में उन्होंने विप्लव-कार्य को तेज कर दिया। यहीं पर वे पकड़े गये और जेल में डाल दिये गये। कुछ कैदियों के साथ मिलकर एक रात उन्होंने जेल के सींकचे काटकर भाग जाने की योजना बनाई। इस योजना के अन्तर्गत उसी रात को लाहौर की मेगजीन पर अधिकार कर विद्रोह का झंडा गाड़ना भी था।

परन्तु यह भेद भी खुल गया और इन सबों को बेड़ियाँ पहना दी गईं। तलाशी लेने पर कर्तार सिंह के कमरे में सींकचे तोड़ने के सारे औजार मिले।

मुकद्दमा शुरू हुआ। कर्तार सिंह को जज के सामने पेश किया गया। कर्तार सिंह ने निर्भीकतापूर्वक सारी बातें स्वीकार कर ली। जज ने कर्तारसिंह को अपने बयान पर पुनर्विचार करके अगले दिन दूसरा बयान देने को कहा। परन्तु कर्तारसिंह ने दूसरे दिन भी पहले का सा ही बयान दिया और जज से कहा—"इस बयान का परिणाम मुझे मालूम है और वह है—फाँसी या आजन्म कारावास। परन्तु मैं आजन्म कारावास के स्थान पर फाँसी को चूमना ही ज्यादा पसन्द करूँगा, जिससे कि मरकर मैं पुनः भारतभूमि में जन्म लूँ और बागी बनकर इसी मार्ग का अनुसरण करूँ। यदि दुर्भाग्यवश अगले जन्म में पुरुष न होकर स्त्री हुआ तो मैं अपनी कोख से बागी और वीर सन्तान पैदा करूँगा।'

जज को विवश होकर डेढ़ वर्ष तक मुकदमा खींचना पड़ा। कर्तारसिंह का बयान कानूनी शिकंजे में आ गया था। अतः उन्हें फाँसी की सजा का पैगाम मिला और यह बागी युवक फाँसी के फन्दे पर लटका दिया गया।

करनाल

पूर्वी पञ्जाब का एक जिला और नगर जिसको पुरानी परम्परा के अनुसार महाभारत के दानी राजा 'कर्ण' ने बसाया या।

उसके बाद इस जिले के पानीपत नगर का मैदान भारतीय इतिहास में लड़ाइयों के लिए बहुत प्रसिद्ध हुआ।

इसी क्षेत्र के अन्तर्गत सन् १५२६ ई० में बाबर ने इब्राहिम लोदी को हराया था। फिर सन् १५५६ ई० में अकबर ने शेरशाह को यहाँपर करारी पराजय दी।

सन् १७५६ ई० में इसी स्थान पर 'नादिर शाह' ने सम्राट् 'महम्मद शाह' की फौज को परास्त करके दिल्ली की लूट की थी।

सन् १७६१ ई० में अहमद शाह दुर्रानी के साथ यहाँ पर मराठों का निर्णायक युद्ध हुआ था। इस लड़ाई में मराठों का भाग्य-सूर्य हमेशा के लिए अस्त हो गया।

इसके बाद यह स्थान झींद के राजाओं, मराठों और लदवा के सिक्ख राजा गुरुदत्त सिंह के अधिकार में रहा। अन्त में सन् १८०५ ई० में यह अंग्रेजों के अधिकार में आ गया।

करमशाह के चित्र

ईरान के अन्तर्गत सासानी-शासन काल की चित्र-कला जो करमशाह, शापुर आदि स्थानों में आज भी किसी रूप में विद्यमान है।

करमशाह में पहाड़ काटकर मेहराबें बनाई गई हैं। बाहर एक अर्धचन्द्र का चित्र बना हुआ है। बराबर में विजय की पंखवाली मूर्तियाँ हैं। ये अलंकारों से युक्त हैं। दीवार के ऊपर के चित्र में सम्राट खुसरों को भाला लिए हुए दिखाया गया है। नीचे के भाग में सम्राट की आकृति है। मेहराब के दोनों ओर शिकार के चित्र हैं। साथ ही गाने-बजाने वालों के भी चित्र बने हुए हैं।

यह चित्र-कला ईसा की तीसरी सदी में ईरान के अन्दर प्रचलित थी।

करनूल

आन्ध्र प्रदेश का एक प्रसिद्ध जिला और नगर। इसके उत्तर में तुंगभद्रा और कृष्णा नदी, दक्षिण में कड़प्पा और बेलारी जिला, पूर्व में नेलूर तथा कृष्णा तथा पश्चिम में बेलारी जिला है।

करनूल शहर इस जिले का मुख्य प्रशासकीय केन्द्र

है। यह नगर तुंगभद्रा तथा हिन्द्री नदी के संगम पर बसा हुआ है। इस जिले की मुख्य भाषा तैलगू है।

इस जिले में कपड़ा बुनने का काम अधिक होता है। पहाड़ी स्थानों के नीचे से लोहा भी निकलता है।

कर्नूल वरंगल के प्राचीन तैलगू राज्य का विभाग था। उक्त राज्य के अधःपतन के पश्चात् यहाँ का राजा ईश्वर राव हुआ। उसके पुत्र नरसिंहराव को विजयनगर के महाराज ने गोद लिया था। जो विजयनगर के विशाल राज्य का स्वामी बना।

विजयनगर के राजा 'अच्युत देव' राय के समय में करनूल का किला बनाया गया। सन् १५३५ में तालीकोट की प्रसिद्ध लड़ाई में विजयनगर का पतन हो जाने के पश्चात् करनूल जिला बीजापुर राज्य में मिला लिया गया।

सन् १६५१ ई० में औरंगजेब ने बीजापुर को जीतकर 'खिजिर-खान' पठान को पुरस्कार में दे दिया था।

इसके बाद यह प्रान्त सन् १८०० ईसवी में अंग्रेजों के हाथ में आया। फिर भी यहाँ का शासन अंग्रेजों की मातहती में नवाब लोग ही करते रहे। ये नवाब लोग बीच-बीच में अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह भी कर देते थे। इसके परिणाम स्वरूप सन् १८५८ में यह जिला अंग्रेजी साम्राज्य का अंग बना लिया गया।

कराँची

सिन्धु नदी के तट पर स्थित पाकिस्तान का प्रसिद्ध बन्दरगाह। इसके उत्तर में शिकारपुर, पूर्व में सिन्ध हैदराबाद का जिला तथा सिन्धु नदी, पश्चिम में समुद्र तथा बलूचिस्तान और दक्षिण में कोरी नदी तथा समुद्र है।

कराँची नगर बहुत पुराना नहीं है। सन् १७५० ई० के पूर्व इस स्थान पर कोई नगर नहीं था। शाह बन्दर नामक सिन्ध के एक प्राचीन बन्दरगाह के पट जाने के कारण इस स्थान का महत्व बहुत बढ़ गया और धीरे-धीरे यह स्थान एक नगर और बन्दरगाह के रूप में परिणत हुआ।

सबसे पहले यह नगर तालपुर के 'मीर' लोगों के अधिकार में आया। इन लोगों ने इस बन्दरगाह पर 'मनोश' नामक एक दुर्ग भी बनाया।

सन् १८४३ ई० में यह नगर अंग्रेजों के हाथ में आया। उस समय इस नगर की जनसंख्या सिर्फ १४ हजार थी। इस नगर के उत्थान में 'सर चार्ल्स नेपिअर' नामक अंग्रेज का बहुत बड़ा हाथ रहा। उन्हीं की योजना से सन् १८५४ ई० में 'नेपिअर-मोल' का निर्माण हुआ और वर्तमान बन्दरगाह की रूपरेखा बनाई गई।

सन् १८६३-६४ के 'अमेरिकन सिविल-वार' के समय में रूई का भाव बहुत अधिक बढ़ जाने से इस नगर की सम्पत्ति में बहुत बड़ी वृद्धि हुई। सन् १८७८ ई० में सक्खर का बाँध बँध जाने से और रेलों का सम्बन्ध पंजाब से जुड़ जाने के बाद इस नगर की व्यापारिक उन्नति बहुत अधिक हुई।

सन् १९४७ ई० में इस देश का विभाजन होने के पश्चात् यह नगर पाकिस्तान में चला गया और विभाजन की परिस्थितियों के कारण यहाँ पर बहुत बड़ी संख्या में शरणार्थी पहुँचे, जिनके कारण यहाँ की जन-संख्या जो सन् १९४१ में तीन लाख साठ हजार थी, वह सन् १९५१ में दस लाख से ऊपर पहुँच गयी। नगर के अन्दर कई उपनगर बसाये जाने पर भी अभी तक इस जनसंख्या का सुनियोजित समाधान नहीं हो पाया है और बहुत से लोगों को सड़कों पर सोना पड़ता है।

कराखानी-राजवंश

मध्य एशिया के उत्तरापथ का एक मध्यकालीन राजवंश, जो उइगुर तुर्कवंश की एक शाखा थी। इसका समय सन् ९४० से ११२५ ई० तक रहा।

काराखानी लोग पहले खाना बदोशों के रूप में १०वीं सदी के अन्त तक मध्यएशिया के सप्तनद में ईली और सूनदियों की उपत्यकाओं में रहते थे। इनका पहला खान, जिसने इस्लाम ग्रहण कर लिया था, 'सातुक कराखान' था। इसी के नाम पर इस वंश का नाम कराखानी वंश पड़ा।

उस समय ईरान का सामानी-साम्राज्य निर्बल होकर अपनी अन्तिम साँसे ले रहा था। इसका लाभ उठाकर इस वंश के दूसरे खान 'बोगरा खान' प्रथम ने 'अन्तर्वेद' को जीत लिया। बोगरा खान के बाद इस वंश में

ईलिक नस्र (९९२–१०१२) तुगान खान (१०१२–१०१५) कादिर खान यूसुफ (१०१५–१०३२) अर्सलन सुलेमान (१०३२–१०५६) बोगरा खान द्वितीय १०५६–१०५९) तुगरलकरा खान यूसुफ (१०५९–१०७४) बोगरा खान तृतीय (१०७४–११०२) इत्यादि खान हुए। इन खानों में बोगरा खान प्रथम और कादिर खान यूसूफ विशेष उल्लेखनीय हैं इनके समय में इस साम्राज्य का काफी विस्तार हो गया था। कादिर खान के सिक्के काशगर में चलते थे। इन सिक्कों पर खलीफा कादिर और मलिकुल मस्रिक-नासिरुद्दौला (पूर्व स्वामी राज्य विजेता) कादिर खान यूसुफ का नाम मिलता है।

कराखानियों से पहले सतनद के तुर्क-प्रदेश में कोई मुसलमान-राजवंश नहीं हुआ था। अरब इतिहासकार 'इब्नुल-असीर' के अनुसार सन् ९६० ई० में दो लाख तुर्क तम्बुओं ने एक साथ इस्लाम-धर्म ग्रहण किया। इसमें कराखानी-वंश भी शामिल था।

करामाती पन्थ

अब्दुल्ला-बिन-मेमान नामक एक ईरानी उपदेशक के द्वारा स्थापित किया हुआ एक पन्थ जिसे 'करामाती पन्थ' कहते हैं।

यह मत इस्लाम के सातवें इमाम अली को अन्तिम इमाम मानता है। कयामत के समय में मृत पुरुष का पुनरुत्थान होता है - इस विश्वास को यह मत नहीं मानता यह अवतारों पर विश्वास करता है तथा ७ और १२ की संख्याओं को पवित्र मानता है।

इस के अनुयायी जब ईरान से भगा दिये गये तब ये भारत वर्ष में आकर बसे और यहाँ इनकी संख्या बढ़ने लगी। मुहम्मद गजनवी के समय में मुल्तान का राजा और उसकी बहुत-सी प्रजा करामाती-पन्थ की अनुयायी थी। महम्मद गजनवी ने आक्रमण करके इस पन्थ को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

कराखिताई-राजवंश

मध्य एशिया का चीन से सम्बन्धित एक राजवंश जिसने सन् ११२५ से सन् १२१८ ई० तक शासन किया।

कराखिताई-राजवंश चीन के सुप्रसिद्ध खित्तन राजवंश की एक शाखा थी, जिसने 'चाऊ-वंश' के नाम से सन् ९६०ई० से सन् ११२६ ई०तक चीन पर शासन किया था।

कराखिताई वंश का संस्थापक-'ऐलूदैशी' नामक व्यक्ति से खित्तन लोगों के साथ कुछ मतभेद हो जाने के कारण वह अपने दो सौ आदमियों के साथ 'श्वेत तातारों' की भूमि में चला गया। पुराने सम्बन्ध के कारण श्वेत तातारों ने उसकी मदद की। इतिहासकार 'जुवेनी' के मतानुसार कराखिताई लोग एलू के नेतृत्व में 'किरगिजों' की भूमि से होकर एमिल पहुँचे। वहाँ पर उन्होंने एक नगर बसाया।

इसके पश्चात् सन् ११४१ ई० में एलू ने समरकन्द से उत्तर कतवान की मरुभूमि में सुल्तान सिंजर को पूरी तरह से पराजित कर 'ख्वारेजम' पर अधिकार कर लिया। इसके पश्चात् 'अन्तर्वेद' पर आक्रमण करके कराखिताई लोगों ने वहाँ पर अधिकार कर लिया।

कर्मीना (उजबेकिस्तान) में एलू ने 'गुरखान' की पदवी धारण कर अपने को सम्राट् घोषित किया। इसी उपाधि के कारण कराखिताई-वंश को 'गुरखान-वंश' भी कहते हैं। गुरखान की उपाधि इतनी बड़ी समझी गई कि बाद में 'तैमूर' के समान विजेताओं ने भी इस उपाधि को ग्रहण किया।

कुछ इतिहासकार ऐलू को मानी धर्म का अनुयायी कहते हैं मगर कुछ लोगों के मत से वह बौद्ध-धर्म का अनुयायी था। 'एलू' की सेना बड़ी अनुशासनबद्ध थी। किसी नगर के जीतने पर कोई लूटपाट नहीं होने पाती थी। नगर पर अधिकार करते ही हर घर से एक दीनार 'युद्ध-कर' के रूप में वसूल कर ली जाती थी।

उस समय सतनद-कुलजा-सिर-दरिया के उत्तर-पूर्व वाले प्रदेश पर तथा अन्तर्वेद और पूर्वी तुर्किस्तान पर कराखिताइयों का शासन था।

सन् ११४३ ई० में एलूदेशी की मृत्यु हो गई। उसके पश्चात् इस वंश में 'येलू-यीले' (११४३) चेलूगु (११४३

से ११६२ तक) गुरखान (१२१०) कुचुलुक (१२१० से १२१८ तक) शासक हुए।

कुचुलुक में शासक और सैनिक के बहुत से गुण थे। लेकिन वह मुसलमानों का कट्टर विरोधी था। इसके कारण उसने सारे मध्य एशिया के मुसलमानों को अपना दुश्मन बना लिया। और इसीके कारण मुसलमान विजेताओं के आक्रमण से इस वंश का पतन हुआ।

करौली

भारतीय स्वतन्त्रता के पूर्व राजपूताने का एक छोटा सा देशी राज्य। इसके उत्तर और उत्तर-पूर्व में भरतपुर और धौलपुर, दक्षिण-पश्चिम में जयपुर और दक्षिण-पूर्व में चम्बल नदी हैं। चम्बल नदी ही इसे ग्वालियर से अलग करती है।

करौली का राजवंश अपने को कृष्ण का वंशधर यादव-वंशी बतलाता है। इस राज्य के मुख्य संस्थापक राजा 'धर्मपाल' माने जाते हैं। पहले यह वंश वृन्दावन के निकट व्रज धाम में निवास करता था। किसी समय बरसाने में भी इसका राज्य था।

सन् १०५३ ई० में बरसाने पर मुसलमानों का अधिकार हो जाने से इस वंश ने करौली में अपना राज्य जमाया।

इसके बाद सम्राट् अकबर ने इस राज्य को दिल्ली में मिला लिया।

उसके बाद मरहठों ने इस स्थान पर अधिकार कर यहाँ के राजा पर २५ हजार वार्षिक कर लगा दिया।

उसके बाद करौली का राज्य अंग्रेजों के आश्रय में आया। सन् १८५७ के विद्रोह के समय यहाँ के राजा मदनपाल ने कोटा के विद्रोहियों के विरुद्ध अपनी सेना भेजकर अंग्रेजों की मदद की थी। इससे प्रसन्न होकर अंग्रेजों ने उसको जी० सी० एस० आई० की उपाधि प्रदान की थी।

करौली नगर की स्थापना के सम्बन्ध में कहा जाता है कि सन् १३४८ में यहाँ के शासक अर्जुनदेव ने इसे बसाया था। और यहाँ पर 'कल्याणजी' का एक मन्दिर भी बनवाया था। इसी मन्दिर के नाम पर इस शहर का का नाम 'करौली' पड़ा।

सन् १९४७ के पहले तक इस राज्य पर यही राज वंश राज्य करता रहा। उसके पश्चात् विलीनीकरण के समय यह राज्य राजस्थान में मिला लिया गया।

कर्कोटक-राजवंश

कश्मीर का एक सुप्रसिद्ध राजवंश, जिसने ७वीं शताब्दी से लेकर ९वीं शताब्दी के मध्य तक कश्मीर पर राज्य किया।

राजतरंगिणी के अनुसार 'गोनन्द वंश' का पतन होने पर कश्मीर में 'कर्कोटक राजवंश' का शासन प्रारंभ हुआ। इस राजवंश का नाम 'नाग' कर्कोटक नामक एक व्यक्ति के नाम पर पड़ा था। मगर इसका प्रथम राजा 'दुर्लभ वर्धन' नाम का था, जिसने करीब ३६ वर्षों तक राज्य किया।

चीनी यात्री हुवेनसंग इसकी राज्यसभा में सन् ६३१ से सन् ६३३ तक रहा था। दुर्लभ वर्धन हर्षवर्द्धन का समकालीन था। हर्षवर्धन को उसने बुद्ध का दाँत दिया था, जिसे हर्षवर्धन ने कन्नौज के एक नवनिर्मित स्तूप में प्रतिष्ठित किया।

राजतरंगिणी के मतानुसार कर्कोटक वंश में कुल सत्रह राजा हुए। जिन्होंने कुल मिलकर दो सौ साठ वर्ष और छह महीने तक राज्य किया। इनमें से खास खास इस प्रकार थे।

(१) दुर्लभ वर्द्धन (प्रतापादित्य), (२) चन्द्रापीड़ (३) तारापीड़ (४) ललितादित्य (५) कुवलयापीड़ (६) वज्रापीड़ (७) पृथ्व्यापीड़ (८) संग्रामपीड़ (९) जयापीड़ (१०) ललितापीड़ (११) संग्रामपीड़ द्वितीय (१२) चिप्पट जयापीड़ (१३) अजितापीड़ (१४) अनंगापीड़ (१५) उत्पलापीड़।

इन राजाओं में चन्द्रापीड़, ललितादित्य और जयापीड़ नामक राजा बड़े तेजस्वी, वीर, प्रजापालक और विस्तृत साम्राज्य के स्वामी हुए और वज्रापीड़, पृथ्व्यापीड़, अनंगापीड़ इत्यादि राजा बड़े अधर्मी, अत्याचारी, दुराचारी और प्रजापीडक हुए।

चन्द्रापीड—कल्हण कवि लिखते हैं कि दुर्लभ वर्द्धन के पश्चात् चन्द्रापीड़ राजाओं का मुकुट मणि हुआ। उसके पहलेवाले राजाओं ने धर्म का केवल एक चरण सुरक्षित रखा था मगर इस पुण्यात्मा तथा यशस्वी राजा ने धर्म के तीन चरण और जोड़ कर उसे चतुष्पाद बना दिया।

चन्द्रापीड़ के न्याय का एक उदाहरण देते हुए कवि कल्हण लिखते हैं कि एक बार राज्य की ओर से भगवान् त्रिभुवन स्वामी का एक मन्दिर बन रहा था। उस मन्दिर की सीमा में एक चमार की झोपड़ी पड़ती थी। अधिकारी लोग उस चमार को पूरा मूल्य देकर वह झोपड़ी खरीदना चाहते थे मगर वह चमार किसी भी मूल्य पर उस झोपड़ी को छोड़ने को तैयार नहीं था। अन्त में उन अधिकारियों ने यह बात चन्द्रपीड़ को बतायी। यह सुनकर राजा उन अधिकारियों पर ही नाराज हुआ और कहा कि तुमने उस चमार की अनुमति लिये बिना वहाँ पर काम ही क्यों चालू किया। अब या तो मन्दिर निर्माण का काम बन्द कर दो या दूसरी जगह मन्दिर बनाना शुरू करो। पराई जमीन को छीनकर अपने यश को कौन कलंकित करेगा।

दूसरे दिन स्वयं चर्मकार राजा चन्द्रापीड़ के पास आया और उसने कहा कि महाराज! जिस प्रकार इन बड़े महलों से आपका स्वाभिमान है उसी प्रकार वह छोटी सी झोपड़ी भी मेरे स्वाभिमान का आधार है। मूल्य लेकर तो मैं किसी भी मूल्य पर उसे नहीं दे सकता मगर यदि आप मेरे घर आकर उस झोपड़ी की याचना करें तो शिष्टाचार के नाते मैं उसे जरूर दे सकता हूँ। ऐसा उत्तर सुनकर राजा चन्द्रापीड़ उस चमार के घर गया और धन देकर वह झोपड़ी लेली। और वहाँपर त्रिभुवन स्वामी का मन्दिर बनवाकर उसमें विष्णु भगवान् की स्थापना की।

इस प्रकार सिर्फ आठ वर्ष और आठ महीने राज्य कर चन्द्रापीड़ का स्वर्गवास हुआ। इस राजा चन्द्रापीड़ का शासनकाल यद्यपि बहुत छोटा था तथापि उसके बहुत से धार्मिक कृत्यों को देखकर सत्ययुग का स्मरण हो जाता है।

चन्द्रापीड़ के पश्चात् उसका छोटा भाई तारापीड गद्दी पर बैठा यह बड़ा प्रजापीड़क और गुरुद्रोही था केवल चार महीने छब्बीस दिन राज्य कर यह मर गया।

इसके बाद चन्द्रपीड का सबसे छोटा भाई महापराक्रमी ललितादित्य गद्दी पर बैठा।

ललितादित्य—कर्कोटक कुल का सबसे प्रतापी राजा 'ललितादित्य' मुक्तापीड़ हुआ। उसने सन् ७२४ से ७६० ई० तक राज्य किया। कल्हण के अनुसार उसने सन् ७३३ ई० में 'यशोवर्मा' को पराजित कर कन्नौज पर विजय प्राप्त की थी। पंजाब के कुछ भागों पर भी उसने अधिकार किया। मध्य एशिया के अन्तर्गत भी उसने अपने राज्य की सीमाएँ बढ़ाईं। तुखारिस्तान तथा दरिस्तान पर भी उसका अधिकार था। पूर्व दिशा में उसने तिब्बत पर आक्रमण करके वहाँ के निवासियों (भूतों) को पराजित किया। हिमालय को पार करके उसने बंगाल के राजा को पराजित किया। चीनी इतिहासकारों के अनुसार उस समय चीन और कश्मीर राज्य के बीच बड़े महत्व के सम्बन्ध थे। सन् ७१५ ई० में चीन-सम्राट ने 'ललितादित्य-मुक्तापीड' के पूर्ववर्ती राजा 'चन्द्रापीड' का राज्याभिषेक भी किया था।

ललितादित्य मुक्तापीड़ ने हविष्कपुर तथा दूसरे स्थानों पर कई बौद्ध विहारों का निर्माण कराया था। इसके अतिरिक्त उसने कई हिन्दू मन्दिरों का भी निर्माण कराया था।

कल्हण लिखते हैं कि—"देवराज इन्द्र के समान प्रभावशाली लिलितादित्य' मुक्तापीड़ ने अमरावती का परिहास करने वाले 'परिहासपुर' नगर को बसाया और उसमें 'परिहास केशव' नामक रजत-मूर्ति की स्थापना की। वराह-भगवान की स्वर्ण-कवच-धारिणी दिव्य प्रतिभा को भी उसने स्थापित किया। ५४ हाथ ऊँचा एक पाषाण-स्तम्भ बनवा कर उसके सिरे पर 'गरुड़' की दिव्य प्रतिभा को स्थापित किया। उस निरभिमानी राजा ने विशाल 'चैत्यों' और विशाल जिन मूर्तियों से युक्त 'राज-बिहार' का भी निर्माण करवाया। इसमें उस राजा ने ८४ हजार तोले स्वर्ण का उपयोग किया था। भगवान् बुद्ध की विशाल प्रतिभा को उसने ८४ हजार सेर काँसे से बनवाया था।'

इस प्रकार राजा ललितादित्य ने अपनी उदारता, वीरता, दानशीलता आदि सद्गुणों से इन्द्र को भी नीचा दिखा दिया।

इस प्रकार ३६ वर्ष ७ महीना और ११ दिन तक राज्य करके यह प्रतापी नरेश स्वर्गवासी हुआ।

ललितादित्य का पौत्र जयापीड 'विनयादित्य' भी बड़ा पराक्रमी और महत्वाकांक्षी राजा था। इसने सन् ७७६ से ८१० ई० तक राज्य किया। इसने कन्नौज के राजा 'वज्रायुध' और 'इन्द्रायुध' को परास्त करके अपदस्थ कर दिया था। 'कल्हण' के अनुसार उसने बंगाल और नैपाल के राजाओं को भी हराया था। जयापीड की राजसभा विद्वानों तथा साहित्यकारों से भरी हुई रहती थी। वामन, उद्भट तथा दामोदर गुप्त के समान विद्वान लोग उसकी राज्यसभा में रहते थे।

एक बार जयापीड़ अपनी सेना के साथ नैपाल राज्य पर आक्रमण करने के लिए गया था। मगर वहाँ एक नदी को पार करते समय राजा जयापीड़ की सारी सेना नदी के प्रवाह में बहकर डूब गई और जयापीड़ को नैपाल के राजा 'अर्मुर्डि' ने कैद करके एक भारी किले में बन्द कर दिया।

जब यह बात कश्मीर में उसके मंत्री देवशर्मा को मालूम हुई तो वह अपनी सेना सहित चलकर नैपाल आया और सेना को नदी के इस पार छोड़कर वह नैपाल के नरेश से मिला। उसने नैपाल-नरेश से मिलकर सन्धि की बातचीत की और जयापीड़ से मिलने की इजाजत माँगी। देवशर्मा अपने राजा से जेल में जाकर मिला। उसे वहाँ पर अपने राजा की दुर्दशा देखकर बड़ा दुःख हुआ। उसने राजा से कहा कि हे महाराज! यदि आप इस झरोखे से नीचे बहने वाली नदी के जल में कूदकर उसे पार कर जायँ तो उस पार आपको अपनी सारी सेना तैयार मिलेगी। राजा ने कहा कि यहाँ से नदी के जल में बिना मशक के सहारे कूदने से डूब जाने का भय है और अधिक ऊँचा होने के कारण सम्भव है, वहाँ जाते जाते मशक भी फट जाय।

तब मंत्री ने राजा से कहा कि राजन! आप थोड़ी देर के लिए किसी बहाने से यहाँ से बाहर चले जायँ। थोड़ी देर में जब यहाँ लौटेंगे तब आपको नदी में कूदने का सब सामान यहां तैयार मिलेगा। मंत्री की बात सुनकर राजा शौच्य के बहाने बाहर के शौच्यालय में चला गया। थोड़ी देर में जब वापस लौटकर आया तो उसने देखा कि मजबूत वस्त्रखण्ड से फाँसी लगाकर मंत्री मरा हुआ पड़ा है और उसके वस्त्र पर नाखून के द्वारा रक्त से यह वाक्य लिखा हुआ है—"राजन! मैं अभी मरकर आप के लिए फूली हुई हो करके भी न फूटने वाली मशक बन गया हूँ—अब आप मेरे ऊपर चढ़कर नदी पार कर जाइये। आपकी जाँघों को सहारा देने के लिए मैंने अपनी पगड़ी का पट्टा बनाकर कमर में बाँध दिया है उस पर पैर रखकर आप तुरन्त नदी में कूद जाइये।"

अपने स्वामी के लिए मंत्री का अद्भुत प्राण-विसर्जन देखकर राजा जयापीड़ का मन उसकी स्वामिभक्ति पर अभिभूत हो गया, मगर ज्यादा सोच-विचार करने का समय नहीं था। वह तुरन्त उस मृत शरीर के सहारे नदी में कूद पड़ा और तैर कर उस पार पहुँच गया। वहाँ अपनी तैयार सेना से मिलकर उसने तुरन्त आक्रमण कर दिया और राजा के समेत समस्त नैपाल देश को नष्ट कर डाला।

कल्हण के अनुसार जयापीड़ ने एक अगाध सरोवर को पटवा कर उस स्थान पर जयपुर नामक नगर बसाया। वहाँ ही एक बहुत बड़ा विहार बनवाकर उसमें उसने तीन बुद्ध मूर्तियाँ स्थापित की तथा उस नगर में 'जया देवी' का भी एक विशाल मन्दिर बनवाया।

इसके अतिरिक्त उस राजा ने दूर से बड़े-बड़े विद्वानों को बुलाकर अपनी राजसभा में रखा। उस समय कश्मीर के राज्य में राजा के पद की अपेक्षा भी विद्वानों का पद बहुत लोक प्रिय हो गया था। 'क्षीर स्वामी' नाम के एक प्रसिद्ध वैयाकरण को बुलाकर उसने स्वयं उनसे महाभाष्य का अध्ययन किया। उसके अन्न क्षेत्र का अधिकारी 'थक्कीय' भी बड़ा विद्वान था। 'कुट्टनी-मत' नामक कामशास्त्र-ग्रन्थ का रचयिता दामोदर गुप्त उसके यहाँ मुख्य मन्त्री का काम करता था। इसी तरह 'मनोरथ' 'शंखदत्त' 'चटक' तथा 'सन्धिमान' इत्यादि कवि भी उसके दरबार में थे।

मगर अपने उत्तर काल में यही राजा जयादित्य बड़ा दुष्ट और लोभी हो गया था। दिग्विजय के द्वारा दूसरे राज्यों को लूटने की अपेक्षा उसने अपनी प्रजा और किसानों को लूटना आरम्भ किया। अपने राज्य के अन्तिम तीन वर्षों में उसने अपनी गरीब प्रजा और ब्राह्मणों पर क्रूरतापूर्ण अत्याचार किये और अपने उज्वल जीवन को कालिमामय बनाकर ३१ वर्ष तक शासन करने के बाद मृत्यु को प्राप्त हुआ।

जयापीड का पुत्र ललितापीड बड़ा दुष्ट, कामी, गणिकाओं का प्रिय और दुश्चरित्र शासक था। यह राजा १२ वर्ष तक राज्य करके मर गया।

उसके बाद इस वंश में 'संग्रामपीड द्वितीय' 'चिप्पट जयापीड' 'अजितापीड' 'अनंगापीड़' और 'उत्पलापीड' राजा और हुए। किन्तु ये सब अयोग्य, दुर्बल और दुराचारी थे। इनके समय में सारी सत्ता कुटिल राज पुरुषों के हाथ में चली गई और ये सब राजा इनके हाथ की कठपुतली हो गये। इससे कर्कोटक वंश की शक्ति क्षीण हो गई और अन्त में सन् ८५५ ई० में इस वंश का पतन हो गया।

तब 'ललिता पीड़ द्वितीय के साले उत्पलक' नामक व्यक्ति के हाथ में कश्मीर के शासन का बागडोर गई और उसका वंश उत्पल वंश के नाम से मशहूर हुआ।

कर्जन (वायसराय)

अंग्रेजी-साम्राज्य में भारत का एक प्रसिद्ध वायसराय, जिसने सन् १८९९ ई० में यहाँ का शासन सँभाला।

लार्ड 'कर्जन' एक ओर जहाँ बहुत चुस्त, बुद्धिमान, परिश्रमी और शासन-कुशल था, वहाँ दूसरी ओर बड़ा जिद्दी, तानाशाह और भारतीय जनता के प्रति घृणा की भावना रखनेवाला था। अपने स्वेच्छाचारी शासन के कारण उसने भारतीय जनता के अन्तर्गत असन्तोष और विद्रोह की भावनाएँ परिपुष्ट कर दीं। फिर भी उसके शासनकाल की कई घटनाएँ ब्रिटिश-साम्राज्य के इतिहास में बड़ी महत्वपूर्ण मानी जाती हैं।

कर्जन की परराष्ट्रनीति

यहाँ आते ही सबसे पहले लार्ड कर्जन का ध्यान उत्तर-पश्चिमी-सीमा-प्रान्त की समस्या की ओर गया। ब्रिटिश-सरकार रूस की बढ़ती हुई शक्ति को सदा चिन्ता की दृष्टि से देखती रहती थी और अफ़गानिस्तान के 'अमीर' को हमेशा अपने प्रभाव-क्षेत्र में रखना चाहती थी।

लार्ड कर्जन ने उत्तरी-पश्चिमी-सीमा प्रदेश को शक्तिशाली बनाकर एक अलग प्रान्त का रूप दे दिया और उसका सीधा सम्बन्ध केन्द्रीय सरकार से जोड़ दिया।

इसके बाद उसने अफ़गानिस्तान के अमीर को स्वतंत्र शासक घोषित कर बादशाह की उपाधि से विभूषित किया। और उसकी आर्थिक सहायता पूर्ववत् चालू रखी। लार्ड कर्जन की यह व्यवस्था पूरी तरह सफल हुई और उसके बाद अफ़गानिस्तान से अंग्रेजों के सम्बन्ध अच्छे बन गये।

इसके साथ ही लार्ड कर्जन ने ईरान के प्रश्न को हल कर 'पर्शियन गल्फ' में अंग्रेजी प्रभुत्व स्थापित किया।

उसके शासन की सबसे महत्वपूर्ण घटना सन् १९०३ और सन् १९०४ में अंग्रेजी सेनाओं के द्वारा किया गया 'तिब्बत' का आक्रमण था। उन दिनों तिब्बत के निवासियों ने अंग्रेजी-राज्य के विरुद्ध सक्रिय विद्रोह करने का फैसला कर लिया था। उन्होंने अपने देश में रूसी-राजदूत का हृदय से स्वागत किया। उनके इस व्यवहार से लार्ड कर्जन बहुत नाराज हुआ और उसने अंग्रेजी सेनाओं को तिब्बत पर आक्रमण की आज्ञा दे दी। अंग्रेजी सेनाओं ने तिब्बत की राजधानी को चारों ओर से घेर लिया। तब वहाँ के शासक 'लामा' को बाध्य होकर एक ऐसे 'सन्धिपत्र' पर हस्ताक्षर करने पड़े, जिसके अनुसार युद्ध-क्षति पूर्ति के रूप में एक बड़ी धनराशि अंग्रेजों को दी गई और भविष्य में अंग्रेजों से मैत्री-सम्बन्ध रखने का वचन दिया। लेकिन उसका यह कार्य ब्रिटिश सरकार को पसन्द नहीं आया। क्योंकि इससे चीन की सरकर बहुत नाराज हुई और ब्रिटिश-सरकार चीन सरकार को नाराज नहीं करना चाहती थी।

लार्ड कर्जन की गृहनीति

लार्ड कर्जन के शासन की सबसे महत्वपूर्ण घटना जिसने भारतीय जनता के हृदय में स्थायी रूप से अंग्रेजी साम्राज्य के प्रति विद्रोह के बीज बो दिये—बंगाल का विभाजन था। उसने कुछ राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए, हमेशा से अखण्ड चले आये, बंगाल प्रान्त को 'पूर्वी बंगाल' और 'पश्चिमी बंगाल' ऐसे दो भागों में विभक्त कर दिया। इससे बंगाल की जनता में और उसके साथ सम्पूर्ण भारतीय जनता में तीव्र असन्तोष व्याप्त हो गया। बंगाल के नवयुवकों ने इसके खिलाफ गुप्त क्रान्तिकारी संगठन की स्थापना कर बहुत से अंग्रेज अफसरों को मार डाला।

अन्त में इन तीव्र भावनाओं को देख कर ब्रिटिश सरकार ने फिर से बंगाल को एक कर दिया। मगर इसपर भी विद्रोह की जो भावनाएँ पैदा हो चुकी थीं, ये शान्त न हो सकीं।

लार्ड कर्जन ने भारत की देशी रियासतों के आन्तरिक मामलों में भी अनुचित दखल देना प्रारम्भ किया। उसने निजाम हैदराबाद के 'बरार' का प्रश्न बरार को लेकर तय किया और बरार को मध्यप्रदेश में शामिल कर लिया तथा निजाम की सेना को भारतीय सेना में मिला लिया।

लार्ड कर्जन के सुधार

लार्ड कर्जन ने कृषि की व्यवस्था को उन्नत करने के लिए कई कानून पास किये जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं—

(१) सस्पेन्शन ऐंड रेमीशन रिजोल्यूशन (Suspension and Remission Resolution) पास करके जिला कलक्टरों को यह अधिकार दिया गया कि वे अकाल और अनावृष्टि के समय किसानों का लगान माफ कर सकते हैं।

(२) पञ्जाब में उसने लैंड-एलियन-ऐक्ट (Land Alian Act) पास कर पंजाब के गरीब किसानों को साहुकारों के पंजे से मुक्त किया।

(३) खेती को प्रोत्साहन देने के विचार से उसने क्रेडिट-कोआपरेटिव सोसायटियों (Credit-co operative Society) की स्थापना की। इन सोसायटियों के द्वारा किसान कम व्याज पर ऋण लेकर अपना काम चला सकता था।

(४) कृषि में नई खोजें करने के लिए उसने एक रिसर्च-इंस्टीच्यूट की स्थापना की। इससे कृषि की उन्नति में बड़ी सहायता मिली।

(५) प्राचीन इतिहास की खोज करने के लिए उसने स्वतंत्र रूप से पुरातत्व-विभाग या आर्कियालांजिकल डिपार्टमेंट की स्थापना की। इस विभाग के द्वारा भारत वर्ष के प्राचीन इतिहास की खोज करने का काफी प्रयत्न हुआ। इनमें सबसे महत्वपूर्ण खोज 'मोहन-जोदड़ो' और 'हड़प्पा' की खुदाई से हुई।

(६) उसने सिंचाई, पुलिस और स्वास्थ्य विभाग में भी कई आवश्यक, सुधार किये।

(७) सन १९०४ में उसने एक 'युनिवर्सिटी एक्ट' पास किया। इस एक्ट के द्वारा विश्व-विद्यालयों की स्वाधीनता का अपहरण किया गया और उनको एक प्रकार की राजकीय संस्था बना लिया गया। इस कानून का भारतीय विद्वानों की तरफ से प्रबल विरोध किया गया।

भारत के तात्कालिक प्रधान सेनापति लार्ड 'किचनर' के साथ तीव्र मतभेद हो जाने से लार्ड कर्जन अपने पद से त्याग-पत्र देकर इंगलैंड चला गया।

कर्ण सोलंकी

गुजरात में सोलंकी वंश का प्रसिद्ध राजा जिसका राज्यकाल ई० सन् १०७२ से १०९४ तक था। गुजरात के महान् प्रतापी राजा सिद्धराज जयसिंह का यह पिता था।

कर्णराज भीमदेव सोलंकी का पुत्र था। इसके राज्य-काल में गुजरात विदेशियों के आक्रमण से मुक्त रहा। इसलिए इस राजा ने आस-पास के जंगलों में बसी कोली और भील जाति को जीतकर अपने राज्य का विस्तार किया। ये जातियाँ उस समय कच्छ के छोटे रण के पूर्वीय भाग से साबरमती नदी तक फैली हुई थीं। इन जातियों के सरदार का नाम "आशा" था जो अपने नामपर बसाये हुए "आशावल" नामक ग्राम में रहता था। यह "आशावल" अहमदाबाद के निकट स्थित है। कर्ण-

राज ने सरदार आशा पर आक्रमण करके उसे हरा दिया और इस विजय के उपलद्य में कोचरदेव के मन्दिर का निर्माण करवाया। अहमदाबाद के पास नदी के किनारे पर एक स्थान अभी तक इसी नाम से प्रचलित है।

प्रबन्ध चिन्तामणि के कर्ता आचार्य मेरुतुंग के अनुसार उसी स्थान पर कर्णराज ने एक मन्दिर जयवन्ती देवी का, और दो मन्दिर कर्णेश्वर एवं कर्णमेरु प्रसाद के नाम से बनाये। उसने अपने नामपर "कर्णावती" नामक एक नगरी भी बसायी जो बाद में सम्भवतः अहमदाबाद के नाम से प्रसिद्ध हुई। उसने वहीं पर "कर्ण सागर" नामक एक सरोवर भी बनवाया।

गिरनार पर्वत पर बने हुए सुप्रसिद्ध नेमिनाथ के मन्दिर को भी इसी कर्णराज सोलंकी ने बनवाया था ऐसा कहा जाता है और इसीलिए इसे "कर्ण-विहार" भी कहते हैं।

कर्णराज का एक विवाह चन्द्रपुर नगर के कदम्ब वंशी राजा जयकेशी की पुत्री मीनल देवी के साथ हुआ था। मगर किसी कारणवश विवाह के पश्चात् ही वह मीनल देवी से रुष्ट हो गया और उसने उससे बोलना बन्द कर दिया। कई प्रकार के प्रयत्नों के बावजूद भी वह उसकी ओर आकर्षित नहीं हुआ। यह देखकर कि इस प्रकार राजा निःसन्तान रह जायगा, कर्णराज के इतिहास सुप्रसिद्ध मन्त्री मुञ्जाल मेहता ने एक चाल चली।

राजा कर्ण "नमुञ्जला" नामक एक सुन्दर नर्तकी पर आसक्त था। उससे वह छिपकर मिलता रहता था। जब यह बात "मुञ्जाल" मंत्री को मालूम हुई तो उसने एक बार राजा के द्वारा नमुञ्जला से भेंट के लिए निश्चित किए हुए स्थान पर "मीनलदेवी" को नमुञ्जला की वेषभूषा पहना कर उस स्थान पर भेज दिया। कर्णराज मंत्री के इस जाल में फँस गया और रानी उससे गर्भवती हो गई। रानी ने उससे चतुराई पूर्वक निशानी के रूप में एक अंगूठी भी ले ली, जिससे आगे जाकर राजा इस बात से इन्कार न कर सके।

इस प्रकार रानी मीनल देवी के गर्भ से गुजरात का महान् पराक्रमी नरेश "सिद्धराज जयसिंह" पैदा हुआ। कर्णराज की मृत्यु के पश्चात् जब तक सिद्धराज बालक रहा तब तक मीनल देवी ने, मुञ्जाल मेहता की सहायता से गुजरात पर जो चतुराई पूर्ण शासन किया उसके वर्णन में इस समय गुजराती भाषा में बहुत बड़ा साहित्य तैय्यार हो गया है।

कर्णावती

राजा कर्णराज सोलंकी द्वारा बसाई हुई गुजरात की प्रसिद्ध नगरी कर्णावती। जिसका नाम बाद में मुसलमान शासक "अहमदशाह" के नाम पर अहमदाबाद कर दिया गया।

कर्ण-सुन्दरी

कश्मीर के महान् कवि 'विल्हण" द्वारा गुजरात के राजा कर्ण सोलंकी के जीवन पर लिखा हुआ एक नाटक।

विल्हण नामक कवि कश्मीर का रहने वाला था। उस समय कश्मीर पर अनन्तदेव का पुत्र कलशदेव राज्य करता था। विल्हण ने अपने देश से निकल कर सारे भारत के प्रमुख-प्रमुख तीर्थों और नगरों की यात्रा की थी। जब वह दक्षिण में चालुक्य-वंश के प्रतापी नरेश त्रैलोक्य-पद्म की राजधानी कल्याणी में पहुँचा तो वहाँ के युवराज विक्रमांक देव ने उसका बहुत सत्कार किया। इसके उपलक्ष में उसने 'विक्रमाङ्कदेव चरित" नामक महाकाव्य की रचना की।

वहाँ से वह गुजरात आया। उस समय वहाँ कर्णसोलंकी राज्य कर रहा था। राजा अपनी रानी 'मीनल देवी' से रुष्ट था, तब मीनलदेवी ने जिस चतुराई से राजा का गर्भ धारण करके सिद्धराज जयसिंह को जन्म दिया, उसी कथानक को लेकर इस नाटक की रचना की गई है। इस नाटिका में पाँच अंक हैं।

कर्ण-चेदिराज

कलचुरी हैहय वंश का इतिहास प्रसिद्ध महान् पराक्रमी राजा। जिसका समय सन् १०३८ से १०८० तक था और जिसकी राजधानी जबलपुर से १० मील दूर त्रिपुर नामक

नगर में थी। यह नगर इस समय "तिवर" नामक एक छोटे गाँव के रूप में अवस्थित है।

राजा कर्ण त्रिपुर के 'गांगेय' नामक राजा का पुत्र था। यह राजवंश पुराणकालीन सहस्त्रबाहु नामक प्रसिद्ध राजा के हैहय-वंश में था।

राजा कर्ण बड़ा पराक्रमी साहसी और महत्वाकांक्षी नरेश था। इसकी सत्ता बनारस से आगे बिहार तक फैली हुई थी। बनारस में इसने कर्ण-भैरव नामक मन्दिर का निर्माण करवाया। चेदि के लेखों में इसे "त्रिकलिंगाधिपति" भी कहा गया है। इसे पता लगता है कि चोल राजाओं से इसने तेलंगाने का भी काफी हिस्सा जीत लिया था। अपनी राजधानी के नजदीक "कर्णावती" नामक एक नगर बसाकर इसने ब्राह्मणों को ब्रह्मोत्तर सम्पत्ति के रूप में दान कर दिया था। यह ग्राम इस समय "तिवर" के पास "कर्णवेल" के नाम से प्रसिद्ध है।

चेदि के शिलालेखों से मालूम होता है कि इस प्रतापी राजा ने चोल, पाण्डय, मुरल, अंग, बंग, कलिंग इत्यादि देशों पर अपनी विजयपताका फहराई। चम्पकारण्य को इसने विध्वस्त कर दिया। जायसवाल के मतानुसार यह चम्पकारण्य बिहार प्रान्त का चम्पारन जिला है। इन्हीं लेखों के अनुसार १२६ राजा उसकी सेवा में उपस्थित रहते थे। परमारों की नागपुर प्रशस्ति में लिखा है कि भोज की मृत्यु के पश्चात् उसने मालवा को भी ध्वस्त कर दिया और भोज के पुत्र को देश से बाहर भगा दिया। मगर चेदि के लेखों में इस बात का उल्लेख नहीं मिलता।

कर्णराज के सौ साल बाद का एक लेख और मिलता है जिसमें इसकी दिग्विजय का उल्लेख करते हुए लिखा है कि इस प्रतापी राजा ने दक्षिण में चोल और पाण्ड्य, पूर्व में हूण और गौड़, तथा उत्तर में गुर्जर और कीर देशों को विजय किया। इससे पता चलता है कि उत्तर में उसकी विजय हिमालय तक पहुँच गई थी। सम्भव है उत्तर में तुर्कों की अधीनता स्वीकार करनेवाले गुर्जर या प्रतिहार राजा पर चढ़ाई कर कर्णराज ने उसे जीत लिया हो और तुर्कों को देश से बाहर मार भगाया हो।

कर्ण की रानी 'अवेल्ल देवी' हूण राजकन्या थी। कर्णराज से इसको यशःकर्ण नामक पुत्र हुआ जो कर्ण के बाद राजा हुआ। यशःकर्ण की नाबालिग अवस्था में अवेल्लदेवी ने भी कई वर्षों तक राज्य किया। यह रानी भी बड़ी वीर और साहसी थी। इसने भी कई राज्यों को जीतकर अपने राज्य में मिलाया (पूरा वर्णन पहले खण्ड में "अवेल्ल देवी" नाम में देखें)।

इस प्रकार चेदिराज कर्ण ने अपने कलचुरी राजवंश के यश को सर्वोच्च शिखर पर पहुँचा दिया।

कर्ण बघेला

अणहिलवाड़ पट्टन (गुजरात) में बघेला-वंश का अन्तिम राजा जिसका राज्यकाल सन् १२९६ से १३०४ तक रहा।

गुजरात में सुप्रसिद्ध सोलंकी या चालुक्य वंश का सितारा भीमदेव द्वितीय की मृत्यु (सन् १२१५) हो जाने पर अस्त हो गया और कुछ समय की अराजकता के पश्चात् वहाँपर बघेला राजवंश के राज्य का प्रारम्भ हुआ। कर्णदेव बघेला इस राजवंश चौथा और अन्तिम नरेश था।

जिस समय कर्णदेव बघेला गद्दी पर आया ठीक उन्हीं दिनों दिल्ली में अपने चाचा गयासुद्दीन खिलजी की हत्या कर अलाउद्दीन खिलजी गद्दीपर बैठा। इस सम्राट् ने गद्दीपर बैठते ही चारों ओर दिग्विजय करने को ठानी और गुजरात विजय करने के लिए इसने अपने भाई अलफ़ खाँ और नुसरत खाँ जालेसरी की अधीनता में अपनी सेना भेजी।

यह भी किंवदन्ती है कि कर्णदेव बघेला ने अपने मन्त्री केशव को मरवा कर उसकी सुन्दरी स्त्री को अपने रनिवास में रख लिया, इसीसे दुःखी होकर केशव का भाई माधव दिल्ली जाकर कर्ण बघेला के विरुद्ध अलाउद्दीन की सेना को चढ़ा लाया।

इस विशाल मुगलवाहिनो को देखकर कर्णदेव के छक्के छूट गये और वह भाग खड़ा हुआ। इस भाग दौड़ में उसकी सबसे सुन्दर स्त्री कौलादेवी भी छूट गई और वह मुसलमानों के हाथ पड़ गई और सुलतान अलाउद्दीन के जनानखाने में पहुँचा दी गई। जो आगे जाकर सुलतान की सबसे प्रेमपात्री बेगम बनी। उसकी लड़की देवलदेवी

कर्णदेव के पास ही रह गई थी। जब दूसरी बार मलिक काफूर के सेनापतित्व में मुसलमानी सेना ने गुजरात पर हमला किया तब कर्ण बवेला से यह लड़की भी उसने छीन ली और अलाउद्दीन के शाहजादे खिजर खां की बेगम बना दी गयी।

इस प्रकार सन् १३०४ में इस अभागे और हतभाग्य राजा का अन्त हो गया।

कर्णसिंह

मेवाड़ के एक राणा जो महाराणा प्रताप के पौत्र और राणा अमर सिंह के बड़े पुत्र थे। सन् १६२१ में ये गद्दी पर बैठे। राणा कर्णसिंह के समय में मेवाड़ की स्थिति बड़ी खराब हो गई थी। मुगल साम्राज्य से लगातार लड़ते लड़ते उसकी शक्ति बहुत क्षीण हो गई थी और खजाना खाली हो गया था। सन् १६१३ में युवराज अवस्था में शाहजादा खुर्रम के साथ की लड़ाई में ये हार गये उसके बाद अमर सिंह की भी हार हुई तब सन्धि होने पर कर्णसिंह शाहजादा खुर्रम के साथ सम्राट जहाँगीर से मिलने अजमेर गये। सम्राट ने इनका बड़ा सत्कार किया और अपनी दाहिनी ओर बिठाया।

कर्ण के राजगद्दी पर आने के बाद मेवाड़ में शान्ति हो गई। इसके बाद इन्होंने अपनी राजधानी के नष्ट अंशों को फिर से बनवाया। सन् १६२६ में इनकी मृत्यु हो गई।

कर्नाटक

मदरास प्रान्त के पूर्वीघाट कुमारी अन्तरीप से उत्तर और कारो मण्डल तट के बीच का भाग 'कर्नाटक' कहलाता है। यह नाम अंग्रेजों का दिया हुआ है, इसका प्राचीन नाम 'कर्णाट-प्रदेश' था। आधुनिक कर्नाटक में बेलगाँव धारवाड़ बीजापुर और कोल्हापुर के जिले शामिल हैं।

प्राचीन कर्नाट-प्रदेश की सीमाओं का वर्णन करते हुए 'शक्ति-संगम-तंत्र' नामक संस्कृत-ग्रन्थ में लिखा है—

रामनाथं समारभ्य, श्री रंगातं किलेश्वरी।
कर्णाट-देशो देवेशि साम्र.ज्य-भोगदायकः।

अर्थात् रामनाथ से लेकर श्री रंग की सीमा तक कर्णाट देश है।

कर्नाट के राजवंशों के शिलालेखों से यह पता चलता है कि वर्तमान 'मैसूर' के उत्तरी भाग से बीजापुर के भू-भाग को कर्णाट कहते थे।

प्राचीन कर्नाट देश की सीमाएँ समय समय पर बदलती रही है। इस प्रदेश में प्राचीन काल में तीन राजधानियाँ थीं और तीनों राजधानियों में तीन वंशों का शासन चलता रहा। मदुरा पाण्डय राजवंश की, काञ्ची पल्लव राजवंश की और तंजोर चोलवंश की राजधानी थी। इनमें जब एक राजवंश प्रबल होता था तो उसकी सीमाएँ बढ़ जाती थीं और दूसरे राजवंश दब जाते थे। इस प्रकार यह कार्यक्रम कई शताब्दियों तक चलता रहा।

पाण्डय-राजवंश

प्राचीन काल के अन्तर्गत इस प्रदेश में बड़े-बड़े राजवंशों का अभ्युदय हुआ था। शुरू-शुरू में यह प्रदेश 'पाण्डय' और 'चोल' राजवंशों में बँटा हुआ था। पाण्डय-राज्य की राजधानी मदुरा-जिसको दक्षिण मथुरा भी कहते हैं—अत्यन्त प्राचीन नगरी है। ईसवी सन् के बहुत पहले से इस नगरी की स्थिति का पता लगता है। ईसवी सन् के प्रारम्भ के लगभग यहाँ का पाण्डय-राज्य अत्यन्त उन्नत अवस्था में था। रोम के सम्राटों तक से उसके राजनैतिक सम्बन्ध थे।

ईसवी सन् पूर्व २५ में तत्कालीन पाण्डय-नरेश ने रोम के सम्राट 'ऑगस्टस' के दरबार में एक जैन-श्रमण को अपना राजदूत बनाकर भेजा था। राजधानी मदुरा में ही सबसे पहले तामिल भाषा के संगम-साहित्य की स्थापना हुई थी। दूसरी सदी से छठी सदी तक पाण्डय-वंश की शक्ति यहुत क्षीण हो गई थी। छठी शताब्दी के अन्त में 'कदुङ्ग' नामक राजा ने पाण्डय-वंश की शक्ति का पुनरुद्धार किया।

कदुङ्ग के पश्चात् 'नेन्दु मारन' इस वंश में प्रतापी राजा हुआ। ९वीं शताब्दी में 'श्री मारन श्री वल्लभ' पाण्डय वंश का प्रसिद्ध राजा हुआ। इसका समय सन् ८३० से ८६२ तक था। इस राजा ने 'सिंहल' द्वीप पर भी आक्रमण किया था और पल्लव-नरेश 'दन्ति वर्मन' और 'नन्दि वर्मन' को हरा कर अपने राज्य का विस्तार किया था।

किन्तु उसके अन्तिम वर्षों में सिंहल के राजा 'सेन द्वितीय' ने तथा काञ्ची के 'नृपतुंग वर्मन' ने उस पर आक्रमण करके उसे बुरी तरह पराजित किया।

इसके बाद १३वीं शताब्दी में पाण्डय वंश ने फिर से शक्ति पकड़ी। इस काल में पाण्डय नरेश 'मारवर्मन कुल शेखर' बड़ा प्रतापी हुआ। इसका समय सन् १२६८ से १३१०ई० तक था। इस राजा ने सन् १२८४ई० 'लंका' पर भी विजय प्राप्त की थी। इसी के समय में 'मार्को पोलो' नामक इटली का प्रसिद्ध यात्री कर्नाटक आया था। उसने यहाँ का वर्णन लिखते हुए लिखा है कि "उस समय पाण्डय देश उन्नत अवस्था में था। इस देश में जैन धर्म का अच्छा प्रभाव था और बहुत से जैन मन्दिर बने हुए थे।"

सन् १३१० ई० में अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण ने मदुरा के पाण्डय राज्य का हमेशा के लिए अन्त कर दिया।

चोल राजवंश

ईस्वी सन् की प्रारम्भिक शताब्दियों में 'उरगपुर' का चोल-राजवंश अपनी उन्नत अवस्था में था। इसकी सीमाएँ कारो मण्डल के किनारे 'पद्दू कोटाई' तक फैली हुई थी, पर ईसा की तीसरी शताब्दी से पल्लव राजवंश का उदय हो जाने से चोल-राजवंश बहुत कमजोर पड़ गया।

ईसा की ९वीं सदी में तंजावर नगर में 'विजयालय' चोल नामक व्यक्ति ने चोल राज्य का पुनरुत्थान कर अपने वंश की पुनः स्थापना की। उसका उत्तराधिकारी 'आदित्य' चोल हुआ। इसने चोल वंश को पल्लवों की सत्ता से मुक्त कर शक्ति सम्पन्न बनाया।

इसके पश्चात् इस राजवंश में राजराजा चोल अत्यंत महान् नरेश हुआ। इसका सस्य सन् ९८५ से १०१६ तक रहा है। यह भारी विजेता था। इसने सम्पूर्ण तामिल देश, मदरास, कर्नाटक और लंका के बड़े भाग को भी विजय कर अपने साम्राज्य का काफी विस्तार किया। अन्त में उसने पश्चिमी चालुक्य-राजा 'सत्याश्रय' पर चढ़ाई कर उसको भी पूर्णरूप से पराजित कर दिया। इस समय उसकी सेना के सैनिकों की संख्या ९ लाख थी।

इस राजा ने तंजावर में राजेश्वर का एक विशाल मन्दिर बना कर दक्षिण देश में अपने नाम को अमर कर दिया। यह मन्दिर दक्षिण प्रदेश के सुप्रसिद्ध मन्दिरों में से एक है।

राजाराजा चोल का उत्तराधिकारी 'राजेन्द्र' चोल भी बड़ा प्रतापी हुआ। इसका समय सन् १०१६ से १०४२ तक था। इसने अपनी विजय वाहिनी को उत्तर में गंगा तट तक पहुँचा दिया और दक्षिण में समुद्र पार के देशों को भी विजय किया। इस विजय के उपलक्ष्य में उसने 'गंगैयकोंड' की पदवी धारण की और त्रिचनापल्ली के नजदीक 'गंगैयकोंड चोलपुरम्' नामक नगर बसाया। इसके समय में चोल साम्राज्य का वैभव अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था। प्रसिद्ध यात्री 'अल्बेरूनी' ने लिखा है कि 'प्रयाग से लेकर आग्नेय दिशा के समस्त प्रदेश, मदरास, मध्य प्रदेश और निजाम के राज्य का पूर्वी भाग चोलों के अधिकार में था।

राजेन्द्र चोल के पश्चात् उसका पुत्र 'राजाधिराज' गद्दी पर बैठा। यह बड़ा क्रूर था। ईसवीं सन् १०५३ में कोपम के युद्ध में यह मारा गया।

इसके पश्चात् इसका छोटा भाई 'राजेन्द्र देव' राजा हुआ। इसने सन् १०५३ से १०६२ तक राज्य किया।

उसके बाद उसका भाई 'वीर राजेन्द्र' राजा हुआ। इसने जैन धर्मावलम्बियों पर बहुत अत्याचार किया। सन् १०७० की लड़ाई में वह मारा गया।

इसके पश्चात् 'प्रथम राजेन्द्र' की लड़की का लड़का 'द्वितीय राजेन्द्र' राजा हुआ और इसने सन् १०७० से १११८ तक राज्य किया। इसी के समय में वैष्णव-मत के महान् आचार्य रामानुजाचार्य हुए। इस दूसरे राजेन्द्र ने 'कुलोटांग' की पदवी धारण की। इसवंश का अन्तिम महान् नरेश 'राजराजा तृतीय' हुआ। इसने सन् १२१६ से १२४८ तक राज्य किया।

इसके बाद पाण्डय-नरेश 'जटावर्म्मन सुन्दर', पाण्डय ने चोलवंश की सत्ता को समाप्त कर दिया।

उसके पश्चात् अलाउद्दीन के सेनापति 'मलिक काफूर' ने चोल और पाण्डय दोनों ही वंशों की सत्ता को सदा के लिए समाप्त कर दिया।

पल्लव राजवंश

कर्नाटक का तीसरा राजवंश पल्लव राजवंश था। इसकी राजधानी काञ्ची या काँजीवरम् में थीं।

इस वंश की स्थापना दूसरी सदी के उत्तरार्ध में हुई थी। यह प्रदेश उस काल में तोंडेय नाड कहलाता था। ऐसी किम्वदन्ती है कि कालिक वर्मन चोल के एक पुत्र के साथ मणिपल्लवम् द्वीप की 'नागराज-कन्या' का विवाह हुआ था। इस विवाह-सम्बन्ध से उत्पन्न 'चूट्ट पल्लव' नामक व्यक्ति पल्लव वंश का मूल संस्थापक था। आन्ध्र शातवाहन राजाओं के करद सामन्त के रूप में स्कन्द गुप्त नाग यहाँ का शासन करता था। चूट्ट पल्लव को इसी के उत्तराधिकार के रूप में इस प्रदेश का राज्य मिला था।

चुट्ट पल्लव का पुत्र 'वीरू कुरुच' पल्लव वंश का पहला उल्लेखनीय राजा था। मगर ये लोग आन्ध्र राजाओं के सामन्त के रूप में ही रह रहे थे। किन्तु तीसरी सदी में आन्ध्रों की शक्ति कमजोर पड़ने पर ये लोग स्वतन्त्र हो गये और आन्ध्र-साम्राज्य के कृष्णा नदी से लेकर अरब सागर तक के समस्त दक्षिणी भाग पर इन्होंने अधिकार कर लिया था।

इसके पश्चात् इस वंश में 'शिवस्कन्द वर्मन' 'सिंह वर्मन प्रथम 'बुद्ध वर्मन और उसके बाद कुमार विष्णु राजा हुआ। इसका समय सन् ३२५ से सन् ३५० तक था। सन् ५५० ईसवी तक पल्लव-वंश की चूट्ट पल्लव द्वारा स्थापित पहली शाखा और कुमार विष्णु द्वारा स्थापित दूसरी शाखा का अन्त हुआ और सन् ५५० के पश्चात् सिंहविष्णु पल्लव से पल्लवों की तीसरी शाखा का प्रारम्भ हुआ।

इसी शाखा के समय पल्लव-राज्य का चरम विकास हुआ। सिंह विष्णु के आश्रय में 'किरातार्जुनीय' के लेखक महाकवि भारवि ने अपने जीवन के कुछ अन्तिम वर्ष बिताये थे।

सिंह विष्णु का उत्तराधिकारी महेन्द्र वर्मन प्रथम हुआ। इसका समय सन् ६०० से ६३० ईसवी तक था। यह राजा जैन धर्म का अनुयायी। इस राजा ने कई जैन मन्दिर और 'सित्तन वासल' की गुफाएँ बनवाईं। सुदूर दक्षिण में 'पार्वतीय गुफा मन्दिरों का निर्माण करानेवाला यह पहला राजा था। इन मन्दिरों के निर्माण के कारण इसे "चैत्य कन्दर्प" की उपाधि मिली थी। बाद में किसी गुरु के उपदेश से यह शैव हो गया था। शैव होने के बाद इसने जैन लोगों पर अत्याचार भी किये।

महेन्द्र वर्मन के पश्चात् उसका उत्तराधिकारी 'नरसिंह वर्मन' प्रथम एक प्रतापी नरेश था। इसका समय सन् ६३० से सन् ६६८ तक था इसी के समय में चीनी यात्री 'हुएन संग' काञ्ची में आया था।

इसके पश्चात् महेन्द्र वर्म्मन द्वितीय, नरसिंह वर्मन द्वितीय और परमेश्वर वर्मन हुए। परमेश्वर वर्मन पल्लव वंशवाली तीसरी शाखा का अन्तिम नरेश था।

सन् ७५० में 'नन्दी वर्म्मन' पल्लव ने इस सिंहासन पर अधिकार करके पल्लव-वंश की चौथी शाखा का सूत्रपात किया। इसी राजा के समय में सुप्रसिद्ध वैष्णव सन्त 'अलवर' हुए। यह राजा भी उनका अनुयायी बना। इसी के शासन-काल में सन् ७८८ ई० में काञ्ची प्रदेश से बौद्धों निकाल कर लंका के 'कैंडी' प्रदेश में भेज दिया। इस राजा ने काञ्ची में विष्णु का एक बहुत बड़ा मन्दिर बनवाया।

इसके पश्चात् इसका पुत्र 'दन्ति वर्मन' उसके पश्चात् 'नन्दि वर्मन' तृतीय 'नृपतुंग' वर्म्मन और अपराजित नामक राजा हुए।

दसवीं शताब्दी में चोल-राजाओं के अभ्युत्थान ने पल्लव-वंश का अन्त कर दिया।

विजय नगर साम्राज्य

मलिक काफूर के सेनापतित्व में अलाउद्दीन की सेनाओं ने दक्षिण के कई प्रसिद्ध राजवंशों का अन्त कर दिया, किन्तु वह कर्नाटक के निवासियों की देशभक्ति और स्वातन्त्र्य प्रेम का अन्त नहीं कर सका। जिसके फलस्वरूप बहुत ही थोड़े समय में कर्नाटक में 'विजयनगर-साम्राज्य' के रूप में एक नवीन प्रेरणा और उत्साह के साथ एक हिन्दूराज्य उदय हुआ। मध्यकाल का विजयनगर-साम्राज्य भारतवर्ष के इतिहास की एक अत्युत्कृष्ट और दर्शनीय सृष्टि थी। जिन विषम परिस्थितियों के बीच विजयनगर-साम्राज्य की स्थापना निर्माण और विकास हुआ वे अत्यन्त कठिन और दुरूह थीं। फिर भी उन परिस्थितियों पर विजय प्राप्त कर इस साम्राज्य के संस्थापकों ने इतिहास में अपना नाम अमर कर दिया।

इस साम्राज्य के मूल संस्थापक संगम नामक एक छोटे सरदार के पाँच वीर पुत्र थे। ये पांचों भाई दक्षिण देश के भिन्न-भिन्न सामन्त-सरदारों को अपने नेतृत्व में संगठित कर उस क्षेत्र से मुसलमानों को निकाल बाहर करने में जुट गये।

सन् १३३६ ई० में तुंगभद्रा नदी के उत्तरी तट पर इन्होंने प्राचीन दुर्ग 'आनेगुंडी' के सामने विजयनगर शहर की नींव डाली। सन् १३४३ ई० में यह विशाल और सुन्दर नगर बनकर तैयार हुआ और सन् १३४६ ई० में 'स्वतन्त्र विजय नगर राज्य' की वहाँपर स्थापना हुई।

इस बीच भयंकर संघर्ष में तीन भाइयों की मृत्यु हो चुकी थी। सिर्फ दो भाई 'हरिहर राय' और 'बुक्काराय' जीवित थे। हरिहर राय बड़ा होने की वजह से इस राज्य का पहला अभिषिक्त नरेश हुआ। इसने सन् १३४६ से सन् १३६५ तक राज्य किया।

हरिहर प्रथम के बाद उसका छोटा भाई बुक्का राय राजा हुआ। इसने सन् १३६५ से सन् १३७७ तक राज्य किया। पूर्व और पश्चिमी घाटों के मध्यवर्ती प्रदेश पर बुक्का राय का एकाधिपत्य प्रभुत्व था।

बुक्का राय के पश्चात् उसका पुत्र 'हरिहर' द्वितीय गद्दी पर बैठा। इसका समय सन् १३७७ से सन् १४०४ तक था। इस राजा के समय में 'श्रवणबेल गोला' के प्रसिद्ध जैन-तीर्थ स्थान पर सन् १४०० ई० में एक भारी उत्सव सम्भवतया 'गोमटेश्वर' के महामस्तकाभिषेकका हुआ था जिसमें दूर-दूर के असंख्य यात्री सम्मिलित हुए थे।

इसके पश्चात् इस वंश में बुक्काराय द्वितीय' देवराय प्रथम और वीर-विजय नामक राजा हुए।

वीर-विजय का पुत्र 'देवराय' द्वितीय हुआ। इसका समय सन् १४१६ से सन् १४४३ तक था। सन् १४३१-३२ ई० में देवराय के एक सामन्त 'कार्कल' नरेश 'भैरव राय' के एक पुत्र 'वीर पाण्डय' ने कार्कल में लोक प्रसिद्ध बाहुबली की एक उत्तुंग मूर्ति प्रतिष्ठित कराई थी। उसके समारोह में देवराज स्वयं आये थे।

देवराय के पश्चात् संगम वंश की अवनति होने लगी। उसके उत्तराधिकारी मल्लिकार्जुन, विरुपाक्षराय और पदिया राय बहुत निर्बल शासक हुए। तब इनके प्रधान मंत्री "नरसिंह सालुव" ने सन् १४८६ में इस वंश के राजा 'पदियाराम' को गद्दी से उतार कर विजय नगर का राज्य हस्तगत कर लिया। इसका शासन सन् १४८६ से सन् १४९२ ई० तक रहा। इतने थोड़े समय में ही इसने दक्षिण के सम्पूर्ण तामिल देश को फिर से विजय करके विजयनगर-राज्य को समृद्ध बनाया। इसका शासन इतना अच्छा था कि यूरोप के यात्रियों ने कई स्थानों पर विजयनगर राज्य का उल्लेख 'नरसिंह का राज्य' कह कर किया है।

इसके पुत्र 'इम्मडी नरसिंह' ने भी सन् १४९२ से १५०५ ई० तक राज्य किया। मगर इसके बाद 'अरसनायक' नामक एक सामन्त ने इसकी हत्या कर डाली और स्वयं विजयनगर का राजा बन बैठा। मगर यह अधिक समय तक राज्य नहीं कर सका और एक वर्ष के भीतर ही 'नरसिंह भुजबल' इसे हटाकर विजय नगर का राजा हुआ।

इसके पश्चात् विजयनगर के मञ्च पर कृष्णदेव राय अवतीर्ण होते हैं। इनका समय सन् १५०९ से १५३० ई० तक था। विजय नगर के नरेशों में यह सबसे अधिक प्रसिद्ध, प्रतापी, शक्तिशाली और महान् था।

सन् १५२० ई० में इसने 'रायचूर' के प्रसिद्ध युद्ध में बीजापुर के सुल्तान इस्माइल आदिल शाह पर शानदार विजय प्राप्त करके बीजापुर पर भी अधिकार प्राप्त कर लिया। यह राजा अत्यन्त उदार, दयालु और सब धर्मों के प्रति समदर्शी था।

कृष्णदेव राय के पश्चात् इस वंश में 'अच्युत राय' और 'सदाशिव राय' राजा हुए। सदाशिवराय का मंत्री राम राजा सर्वशक्ति सम्पन्न था। सदाशिव राय के समय में सन् १५६४ ई० में विजयनगर का विनाश करने के लिए अहमदनगर बीजापुर, गोलकुंडा और बीदर के सुल्तान संगठित होकर अपनी सेनाओं के साथ चल पड़े। इस भयंकर संग्राम में में मुसलमान सेनाओं ने विजयनगर को सेनाओं को बुरी तरह से परास्त किया। इस लड़ाई में विजय नगर के एक लाख सैनिक मारे गये और राजधानी विजयनगर को मुसलमानों ने पाँच महीने तक इस बुरी तरह लूटा और ध्वंस किया कि देव-प्रतिमाओं की पवित्रता, शिल्पकृतियों की कलात्मकता, स्त्रियों का सतीत्व और वृद्धों की असहायता किसी की भी कोई रक्षा न हो सकी।

इसके पश्चात् भी १७वीं शताब्दी के अन्त तक लगभग सवा सौ वर्ष पर्यन्त 'रामराजा' के भागे हुए वंशज

चन्द्रगिरि को राजधानी बना कर विजयनगर राज्य के नाम पर उसकी परम्परा को चलाते रहे।

विजयनगर-साम्राज्य के पतन के पश्चात् १७वीं शताब्दी में यह प्रदेश तीन छोटे-छोटे हिन्दू-राज्यों में विभक्त हो गया, जिनकी राजधानियाँ मदुरा, तंजोर और काञ्ची में थी।

१७वीं शताब्दी के अन्त में औरंगजेब की सेनाओं ने इस प्रदेश पर हमले किये और जुल्फिकार अली को अर्काट का नवाब बनाया गया। उसके पश्चात् यह प्रदेश हैदर-अली, टीपू सुल्तान, मरहठे, फ्रांसीसी तथा अंग्रेजों के राजनैतिक संघर्ष का अखाड़ा बन गया। हैदर अली और टीपू सुल्तान ने अंग्रेजों के विरुद्ध ज्वलन्त शौर्य का प्रदर्शन किया। मगर आपस की फूट के कारण उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई और अन्त में यह प्रान्त अंग्रेजों के शासन में आ गया।

सन् १८०१ में एक सन्धि के अन्तर्गत यह राज्य निजाम को सौंप दिया गया, मगर सन् १८५३ में 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' ने इस प्रदेश पर अधिकार कर लिया।

कर्बला

मुसलमानों का एक प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान, हजरत अली के पुत्र 'इमाम हुसेन' के शहीद होने की जगह, जहाँ पर सन ६८० ई० में 'म्वाविया' के पुत्र 'यजीद' के साथ लड़ते हुए वे अपने ६६ साथियों के साथ शहीद हुए थे।

'कर्बला' आधुनिक 'ईराक' का एक नगर है, जो 'कूफा' से २४ मील उत्तर-पश्चिम, 'बगदाद' से ५० मील दक्षिण-पश्चिम तथा 'फरात' नदी से ६ मील पश्चिम में स्थित है।

कर्बला का तीर्थ-स्थान शुरू-शुरू में किसने बनाया, इसका निश्चित पता नहीं है, पर ऐसा मालूम होता है कि इमाम हुसेन के शहीद होने के पश्चात् उनके अनुयायियों ने यहाँ उनका 'स्मारक' बना दिया।

सन् ८५० ई० में खलीफा 'मुतवक्किल' ने इसे गिरवा देने की आज्ञा दी और इस पवित्र स्थान पर लोगों को जाने से भी रोका, जिससे 'शिया' मुसलमानों में बहुत असन्तोष और क्षोभ पैदा हुआ।

सन् ९७९ ई० में 'बुवहिद' सुल्तान अद्द्-उद्दौला ने इस स्थान पर एक सुन्दर तथा विशाल मकबरा बनाया, जिसका वर्णन इब्न-बतूता ने अपने यात्रा-वर्णन में किया है। उसने लिखा है कि—"समाधि का पवित्र अगला हिस्सा ठोस चाँदी का बना हुआ था। तीर्थ-यात्री लोग भवन में प्रवेश करते ही उसको चूमते थे। भवन के अन्तर्गत सोने और चाँदी के दीपकों से प्रकाश किया जाता था और द्वार पर रेशमी पर्दे पड़े रहते थे।"

कर्म-सिद्धांत

"जो जैसा करता है, वह वैसा भरता है। अच्छे कर्म का फल सुख और बुरे कर्म का फल दुःख होता है।" इस विचार पर आधारित एक प्रसिद्ध सिद्धान्त जिसका विकास भिन्न-भिन्न धर्मों और सभ्यताओं में भिन्न-भिन्न प्रकार से हुआ।

संसार के प्रायः सभी धर्म-संस्थापकों ने इस सत्य को स्वीकार किया है कि मनुष्य अच्छे या बुरे जैसे भी कर्म करता है—ईश्वर उसीके अनुसार उसको अच्छा या बुरा फल देता है।

ईसाई और इस्लाम धर्मों के अन्तर्गत इसके लिए 'कयामत' के तत्व का प्रतिपादन किया गया है। सृष्टि के अन्त में कयामत का दिन आता है और उस दिन संसार की सब मृत-आत्माएँ खुदावन्द करीम के सामने उपस्थित होती हैं और उनके किये हुए अच्छे और बुरे कर्मों के अनुसार, पुण्यात्माओं को जन्नत में और पापात्माओं को दोजख में भेज दिया जाता है।

ईरानी धर्म-ग्रन्थ 'अवेस्ताँ' के अनुसार मनुष्य जैसा कर्म करता है, उसी के अनुसार उसे फल मिलता है। इस ग्रन्थ में स्वर्ग-नरक की कल्पना भी की गई है। पारसियों की मृत्यु का देवता 'अस्तिविदाद' माना जाता है। पारसियों का विश्वास है कि मृत्यु-देवता के चंगुल से किसी मानव का बचना असंभव है। एक दिन सभी को मरना है। मरने के पश्चात् आत्मा को एक पुल पार करना पड़ता है। वहाँ से शुभ और अच्छे कर्म करने वाली महान आत्माएँ स्वर्ग में रखी जाती है। जहाँ पर सुन्दर

और युवती रमणियाँ उनका स्वागत करती हैं। पाप-कर्म करने वाली दुष्टात्माएँ नरक में जाती हैं। वहाँ वे अपने पापों का फल भोग लेने पर ही स्वर्ग आ सकती हैं। ऐसी आत्मा को १२ हजार वर्ष तक नरक में रहना पड़ता है। ऐसी दुष्ट आत्माओं के निस्तार के लिए 'जरथोस्ट' और उसके तीन पैगम्बर ३ हजार वर्ष की अवधि में पैदा होकर धर्म-प्रचार करेंगे। १२ हजार वर्ष के पश्चात् जब 'अहिंमन' (शैतान) की सब शक्तियाँ कुंठित हो जायँगी तब भगवान् 'अहुर्मज्द' सब आत्माओं का निर्णय करेंगे। उस समय अच्छे कर्म करने वाले व्यक्तियों की स्वर्ग में भगवान अहुर्मज्द से भेंट होगी और दुष्ट व्यक्तियों को नरक में सड़ना पड़ेगा।

मिस्र के प्राचीन लोग कर्म-सिद्धांत पर विश्वास नहीं करते थे। उनका विश्वास था कि स्वर्ग अच्छे कर्मों से नहीं, बल्कि मंत्र-तंत्रों के द्वारा देवताओं को खुश करने से मिलता है। मरने के बाद यदि शव को सुरक्षित रखा जाय तो एक निश्चित समय के बाद मृतक-मनुष्य सशरीर स्वर्ग जा सकता है। इसीलिए मिस्री राजाओं के शव मसाला लगाकर 'पिरामिडों' में सुरक्षित रखे जाते थे।

मेसोपोटेमिया की प्राचीन संस्कृति के लोग मृत्यु के बाद-जीवन की कल्पना करते थे और पाप का भी उनको ज्ञान था।

बेबीलोनियन संस्कृति के लोग परलोकवाद पर विश्वास नहीं करते थे। वे पृथ्वी पर मिलनेवाले आनन्द को ही स्वर्ग समझते थे। मृत्यु के पश्चात् उनकी यह धारणा थी कि मृतात्माओं को पृथ्वी के नीचे गहन अन्धकार में बँधे हुए हाथ-पैरों से पड़ा रहना पड़ता है। वहाँ वे दुखी आत्माएँ अपने परिवारवालों से श्राद्ध-सामग्री पाने की प्रतीक्षा करती रहती हैं। उस लोक की शासिका एक बड़ी भयानक देवी है जो करोड़ों वर्षों तक आत्मा को अन्धकार-लोक से बाहर नहीं आने देती। वास्तव में बेबीलोनवाले प्रत्यक्षरूप से मिलनेवाले सांसारिक सुखों में ही विश्वास करते थे। उनके परलोक की कल्पना अत्यन्त स्पष्ट है और उसमें कर्मवाद को कोई स्थान नहीं।

यूनानी सभ्यता के अन्तर्गत पुनर्जन्म के सिद्धान्त और कर्मवाद को स्वीकार किया गया है। यूनानी दार्शनिक पायथा गोरस ने लिखा है कि—"यदि पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वीकार न करके यह मान लिया जाय कि मनुष्य का जन्म एक ही बार होता है तो मनुष्य-समाज में नित्य उत्पन्न होनेवाली विषमताओं का कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता। अतः यह सत्य है कि 'आवागमन' का यह क्रम सर्वत्र व्याप्त है और कर्मों के अनुसार आत्माओं की दशा का भेद-भाव पुनर्जन्म का प्रबल प्रमाण है। शारीरिक तथा मानसिक कष्ट, मानसिक विकल्पों-कर्मों के फल ही प्रतीत होते हैं। क्योंकि आत्मा पर मानसिक संकल्पों और शारीरिक क्रियाओं के प्रभाव पड़ते रहते हैं।'

ईसाई-धर्म के सुप्रसिद्ध धर्माचार्य सेंट 'आगस्टाइन' ने ईश्वर का नगर (The city of God) नामक ग्रन्थ २२ भागों में लिखा है। इस ग्रन्थ में ४ अध्यायों के अन्तर्गत 'ईश्वरीय नगर' में मनुष्य को मिलनेवाले कर्म-फलों का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। इस वर्णन में कर्म-सिद्धान्तों का समर्थन पाया जाता है।

भारतीय सभ्यताओं के अन्तर्गत 'कर्म-सिद्धान्त' पर काफी गहराई से विचार किया गया है। वैदिक दर्शन में ईश्वर की शक्ति को सर्वोपरि मानते हुए भी यह माना गया है कि ईश्वर ने कर्म को ही संसार में प्रधान बनाकर रखा है। तुलसीदास जी के शब्दों में —

'कर्म प्रधान विश्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फल चाखा ॥"

यह माना गया है कि जीव अपने कर्म के अनुसार ही अच्छे या बुरे फलों का भोग करता है।

कर्म और उसके फल के सम्बन्ध की अभिव्यक्ति सार्वभौम नियम के रूप में सबसे पहले ऋग्वेद के ऋत-सिद्धान्त में पाई जाती है। ऋत समस्त विश्व में व्याप्त है तथा वह उसका सञ्चालन और नियंत्रण करता है। वह जगत् की नैतिक और भौतिक व्यवस्था का आधार है। देवता तथा मनुष्य—सभी इसका पालन करते हैं। बरुण ऋत का अधिनायक देवता है। यह बुरे कर्म करनेवाले को घोर अन्धकारपूर्ण नरक में और अच्छे कर्म करनेवाले को स्वर्ग में पहुँचाते हैं।

उपनिषद्-साहित्य के अन्तर्गत कर्म-सिद्धान्त की विशेष मीमांसा की गई है। बृहदारण्यक-उपनिषद् के

अनुसार मनुष्य का कर्म ही उसके साथ जाता है। छान्दोग्य-उपनिषद् के अनुसार अच्छे कर्म करनेवाले चरित्रवान व्यक्ति, देवता, मनुष्य इत्यादि उच्च योनियों में जन्म लेते हैं और दुष्कर्म करनेवाले निन्द्य चरित्रवाले व्यक्ति चाण्डाल, कुत्ता, सूअर आदि नीच योनियों में जन्म लेते हैं।

वेदान्त के अनुसार ईश्वर जीवों के कर्मानुसार ही उन्हें विभिन्न फल प्रदान करता है। इसमें उसका कोई पक्षपात नहीं होता।

बौद्ध-दर्शन के अनुसार प्राणियों के अन्तर्गत एक अत्यन्त सूक्ष्म और अदृश्य शक्ति कार्य करती रहती है जिसे 'अविज्ञप्ति रूप' कहते हैं। यही उनके द्वारा किये गये शुभ-अशुभ कर्मों का अच्छा या बुरा फल उत्पन्न करती रहती है।

जैन-धर्म के अन्तर्गत कर्म-सिद्धान्त की और भी सूक्ष्म विवेचना की गई है। कर्म-ग्रन्थों के ऊपर जैन-दर्शन में पूरा का पूरा साहित्य उपलब्ध है।

संसार के दूसरे धर्म-सिद्धान्तों से जैन-धर्म की मौलिक और महत्वपूर्ण विभिन्नता इस बात में है कि संसार के अधिकांश धर्म इस संसार की उत्पत्ति और विनाश को मानते हैं और ईश्वर को उसका रचयिता मानते हैं। मगर जैन-धर्म सृष्टि को अनादि और अनन्त मानता है। द्रव्य को वह अनादि, अकृत्रिम और अनन्त मानता है। उनका कभी नाश नहीं होता। हाँ, उनके पर्याय में हमेशा परिवर्तन होता रहता है। सृष्टि को अनादि मानने के कारण उसका कर्त्ता या रचयिता ईश्वर को मानने का प्रश्न ही नहीं उठता।

जैन-धर्मग्रन्थों में द्रव्य दो प्रकार के बतलाये गये हैं। १ चेतन २ जड़ या अजीव। 'अजीव' द्रव्य के पाँच प्रकार हैं। (१) पुद्गल (Matter) धर्म (Medium of Motion) (३) अधर्म (Medium of Rest) (४) काल (Time) और (५) आकाश (Space) इनमें से पुद्गल मूर्तिक और शेष अमूर्तिक हैं।

जीव और पुद्गल—इन दोनों द्रव्यों के अन्तर्गत वैभाविकी शक्ति नामक एक विशेष गुण होता है। इसके कारण इन दोनों में एक प्रकार का अशुद्ध परिणमन होता है। इसी परिणमन को कर्म-बन्धन कहते हैं।

इस प्रकार यह सिद्धान्त इस निश्चय पर पहुँचता है कि संसार का प्रत्येक जीव कर्मों के बन्धन में है। इसी कर्म श्रृंखला से सारे संसार का सञ्चालन होता है और इसीसे प्राणी आवगमन के चक्कर में पड़कर सुख और दुःख उठाता रहता है।

इसके पश्चात् जैन-दर्शन इस बात पर विचार करता है कि यह बन्धन किस प्रकार होता है और किन उपायों के द्वारा उससे स्वतंत्र होकर वह मोक्ष को प्राप्त करता है।

इन सब बातों को 'जैन-तत्वज्ञान' के अन्तर्गत ७ भागों में विभक्त कर दिया गया है जिनको 'सात तत्व' कहते हैं। अर्थात (१) जीव (२) अजीव (३) आश्रव (कर्म के साथ जीव का बन्धन होने का कारण) (४) बन्ध (५) संवर (जीव के साथ कर्म के बन्धनों को रोकने की अवस्था) (६) निर्जरा (उन बन्धनों को तोड़ने का उपाय) और (७) मोक्ष (उन सभी बन्धनों से आजाद हो जाना)।

जैन-सिद्धान्त कहता है कि संसारी जीव कर्म-बन्धन की अशुद्ध अवस्था में होते हैं। वे इच्छाओं के वशीभूत होकर मन और तीव्र कषाययुक्त अनेक क्रियाएँ करते रहते हैं और नाना प्रकार के कर्मों को सञ्चित करते रहते हैं। इन कर्मों के बन्धन में पड़कर जीव मृगतृष्णा की तरह संसार के अन्दर चक्कर लगाता हुआ अनेक दुःखों को भोगता है।

ये कर्म शुभ और अशुभ-दो प्रकार के होते हैं। शुभ परिणति से पुण्य बन्धन होता है जिससे सांसारिक और स्वर्ग सुख की प्राप्ति होती है और अशुभ परिणति से पाप-बन्धन होता है जिससे संसार में दुःख भोगना पड़ता है और नरक भी भोगना पड़ता है। एक तीसरी शुद्ध वैराग्य की परिणति भी होती है जिसमें जीव के पुण्य-पाप रूपी बन्धन हल्के होते-होते दूर हो जाते हैं और जीव में शुद्ध परम सच्चिदानन्द अवस्था का आविर्भाव होता है।

इन पुण्य-पाप रूपी बन्धनों के कारण ४ होते हैं। (१) मिथ्या श्रद्धा (२) हिंसा और इन्द्रिय तथा मन के विषयों में प्रवृत्ति (३) तीव्र और तीव्रतर तथा मन्द और मन्दतर भेदवाले क्रोध, मान, माया, लोभ, कषाय और (४) मन-वचन-काय नामक तीन योग यही कर्मों के आगमन के मुख्य कारण हैं।

इस प्रकार कर्मों का आगमन होता है। पुद्गल के अति सूक्ष्म परमाणु—उसकी अच्छी-बुरी परिणतियों के अनुसार जीव के साथ बँध जाते हैं। इन कर्मों के बन्धन ४ प्रकार के होते हैं। (१) प्रकृति-बन्धन (Quality of Karmic Matter) जिसके द्वारा कर्म-वर्गों में भिन्न-भिन्नप्रकार की शक्तियाँ पैदा होती हैं। (२) प्रदेश-बन्धन (Extent of Karmic Matter) जिसके अनुसार कर्म-वर्गों की सत्ता या उदय काल का प्रमाण होता है। (३) स्थितिबन्धन (Duration of Karmic matter) (४) अनुभाग बन्धन (Quantity of Intensity of Karmic Matter) जिसके अनुसार कर्म-वर्गों में फलदायक शक्ति होती है।

प्रकृति और प्रदेश बन्धन योगों के अनुसार होते हैं और स्थिति और अनुभाग-बन्धन कषायों के अनुसार होते हैं।

ये कर्म ८ प्रकार के होते हैं। (१) ज्ञानावरणीय—जो जीव की ज्ञानशक्ति को आच्छादित कर देता है। (२) दर्शनावरणीय—जो जीव की दर्शन-शक्ति को आच्छादित कर देता है—(३) मोहनीय—जो जीव को नाना प्रकार के माया-जाल में फँसाये रहता है (४) अन्तराय—जो किसी भी वांछित कार्य में अन्तराय पैदा करता है। (५) आयु—जो किसी एक नियत समय तक एक गति में जीव को स्थित रखता है। (६) नाम—जो शरीरादिक बनाता है। (७) गौत्र—जो जीवों की शुभाशुभ अवस्था का कारण होता है। और (८) वेदनीय – जो सुख-दुःख रूपी सामग्री का कारण होता है।

इस प्रकार अनादि सन्तान-क्रम से पूर्वबद्ध कर्मों के फल से, विकृत परिणामों को प्राप्त होकर जीव अपने ही अपराध से नवीन कर्मों का बन्धन प्रस्तुत करता है। और इसी बन्धन के फलस्वरूप वह अनादिकाल से इस संसार में पर्यटन करता है। मगर जब वह अपने कषायों पर विजय प्राप्त करने में और त्याग-तपस्या के द्वारा इन बन्धनों के रोकने का प्रयत्न करता है तब नवीन बन्धन का होना रुक जाता है। इस स्थिति को संवर कहते हैं उसके पश्चात् सञ्चित कर्म अपनी स्थिति पूरी करके समाप्त होने लगते हैं, उस स्थिति को निर्जरा कहते हैं। अब नवीन कर्मों का आश्रव नहीं होगा और पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा हो जायगी तब आत्मा सब कर्मों से पृथक् होकर शुद्ध और सच्चिदानन्द रूप हो जायगी इसी स्थिति को मोक्ष कहा गया है।

इन कर्मों से मुक्त होने के लिए और मोक्ष की प्राप्ति के लिए जैन-सिद्धान्त में "सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित्राणि मोक्ष-मार्ग" कहा गया है। अर्थात् सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र्य की प्राप्ति ही मोक्ष का मार्ग है। जितने-जितने अंशों में जीव शुद्ध श्रद्धा, शुद्ध ज्ञान और शुद्ध चरित्र प्राप्त करता है - हिंसा की भावना पर विजय प्राप्त करके समदर्शिता प्राप्त करता है—परिग्रह और भोग-वृत्तियों पर संयम प्राप्त करता है—क्रोध, मान, माया, लोभ की कषाय प्रवृत्तियों को नष्ट करता है, तब वह कर्म-बन्धन को रोककर मोक्ष मार्ग का पथिक बन जाता है।

अन्त में तपस्या के द्वारा धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान में लीन होकर वह मोक्ष को प्राप्त करता है।

चार्वाक-दर्शन कर्म-सिद्धान्त को बिल्कुल नहीं मानता। वह इस जीवन तक ही सृष्टि की सीमा को मानता है। पुनर्जन्म पर उसका विश्वास नहीं। इसीलिए संसार के सब सुखों का अधिक से अधिक उपभोग करने में ही वह जीवन की सफलता समझता है। चार्वाक ऋषि कहते हैं—

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणंकृत्वा घृतंपिवेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥

आधुनिक वैज्ञानिक युग के विचारकों ने जिनमें 'हैगल' और कार्लमार्क्स' प्रमुख हैं—इस-कर्म-सिद्धान्त की, ईश्वर की तथा लोक-परलोक और स्वर्ग-नरक की – बड़ी मखौल उड़ाई है।

मार्क्स के मतानुसार "कर्म-सिद्धान्त" की ये सब कल्पनाएँ उच्चवर्ग के सामन्ती लोगों और उनके पृष्ट-पोषक धर्माचार्यों के द्वारा गरीब जनता का शोषण करने के लिए बनाई गई है। गरीब और भूखी जनता को उनके पूर्व जन्मों के कर्मों के कारण यह गरीबी और भूख उठाना पड़ रही है और वे लोग अपने पूर्व जन्म के अच्छे कर्मों के कारण यह सब सुख-सम्पदा उठा रहे हैं—इस प्रकार की भ्रम-मूलक विचार-प्रणाली का निर्माण करके इन लोगों ने हजारों वर्षों तक अशिक्षित, गरीब और दुखी जनता को

भ्रम में रखा। अफीम के नशे की तरह धर्म का नशा पीकर गरीब जनता इन उच्च वर्गीय लोगों के अत्याचार की चक्कियों में शताब्दियों तक पिसती रही। अब समय आ गया है कि इस धर्म-संस्था के ताने-बाने बिखेर दिये जायँ और मानव-जाति को समानता के धरातल पर लाया जाय।

करोल

एक प्रकार का सामूहिक नृत्य-गान, जिसका उदय फ्राँस के अन्तर्गत 'करोले' (Carole) के नाम से हुआ।

१२ वीं सदी में 'करोले-नृत्य' के माध्यम से फ्रांस के गायकों ने मध्य कालीन यूरोप में लोक-जीवन को प्रभावित किया। यह नृत्य-गान हर प्रकार के सामूहिक उत्सव और सामूहिक भोजों के अवसर पर गरीबों और अमीरों के यहाँ होता था।

करोले में नृत्य-समूह का नायक संगीत की पंक्तियों को गाता था और बाकी के सब नृत्यकार एक दूसरे का हाथ पकड़कर चक्र-नृत्य करते हुए टेक या धुन की पंक्तियाँ गाते थे।

प्रकृति-पूजा के युग में इस प्रकार के नृत्यों में युवक और युवतियों के बीच में कुछ उछृङ्खल और असंयमित क्रीड़ाएँ भी होती थीं। १४ वीं सदी तक इस प्रकार के नृत्य-गान 'क्रिसमिस' के पर्व पर बहुत किये जाते थे।

१५ वीं सदी में ईसाई-धर्म के पादरियों ने इस अश्लीलता पूर्ण नृत्य पर धार्मिक रंग चढ़ाना प्रारंभ किया। उनके इस प्रयत्न से नृत्य-गान-पूर्ण 'करोल' में से नृत्य मुक्त "क्रिसमिस-करोल" का जन्म हुआ। इस क्रिसमिस-करोल के प्रवाह-पूर्ण छन्दों में धर्म के सूक्ष्म सिद्धान्तों को नाटकीय शैली और चित्रमयी भाषा में सजीव कर दिया गया।

कर्वे

फर्ग्यूसन-कालेज, पूना में गणित के प्रोफेसर, महिला-विद्यापीठ के संस्थापक और संचालक 'अन्नासाहब कर्वे' जिनका जन्म १८ अप्रैल सन् १८५८ को शेरवली ग्राम में हुआ।

अन्नासाहब कर्वे के पिता एक बहुत मामूली दर्जे के क्लर्क थे। वह सिर्फ २५) महीना पाते थे। ऐसी स्थिति में कर्वे की शिक्षा का उचित प्रबन्ध नहीं होने पाया। किसी प्रकार लड़खड़ाते हुए अपने पैरों के बल पर २६ साल की आयु में उन्होंने बम्बई-विश्व-विद्यालय से बी० ए० की परीक्षा पास की।

सन् १८९२ में वे 'दक्षिण एजूकेशन सोसायटी' के आजीवन सदस्य हो गये और सिर्फ ७५) मासिक पर उन्होंने अपना सारा जीवन शिक्षण-संस्थाओं को अर्पित कर दिया और स्वेच्छा से गरीबी स्वीकार की। इस गरीबी की हालत में भी उन्होंने रेगलर डा० परांजपे को अपने पास रखा और उनको शिक्षा पाने में सहायता दी।

भारत के कालेजों में फर्ग्यूसन-कालेज, पूना को इस बात का गौरव प्राप्त है कि उसके गणित-विभाग के ५ अध्यापकों (माननीय गोखले, लोकमान्य तिलक, श्री कर्वे, डा० परांजपे और प्रिंसिपल महाजनी) ने अखिल भारतीय कीर्ति और यश का सम्पादन किया।

अन्नासाहब कर्वे भारतीय विधवाओं की करुणाजनक स्थिति से अत्यन्त दुःखी थे और इसीसे वे विधवा विवाह के पृष्ठपोषक थे। अपनी इस विचार-पद्धति को क्रियात्मक रूप देने के लिए सबसे पहले उन्होंने स्वयं 'आनन्दी बाई' नाम की एक विधवा से सन् १८९३ ई० में अपना विवाह किया और विधवा-विवाह के कार्य में संलग्न हो गये।

विधवा-विवाह करने के कारण कर्वे का सामाजिक और जातीय बहिष्कार किया गया। यह बहिष्कार इतना प्रचण्ड था कि जब वह अपने गाँव में अपने भाई के यहाँ गये तो समाज के भय से उन्हें ढोरों के बाँधने की जगह पर ठहराया गया, मगर कर्वे इससे विचलित न हुए। बहिष्कार ने उनमें कटुता उत्पन्न नहीं की, इससे उनका विश्वास दृढ़ ही हुआ।

विधवा-विवाह का प्रचार करते हुए उन्हें शीघ्र ही मालूम हो गया कि विधवा-विवाह केवल एक सामाजिक प्रश्न नहीं है, इसका सम्बन्ध धार्मिक भावना से भी है। बिना ठोस कार्य किए हुए केवल प्रचार-कार्य से इसमें सफलता नहीं हो सकती। इसके लिए आवश्यकता है कि विधवाओं को प्रशिक्षित किया जाय और उन्हें अपनी स्थिति का ज्ञान कराया जाय।

इस उद्देश्य से उन्होंने 'हिंगण' नामक स्थान पर ५७ विधवाओं और १९ कुमारी लड़कियों के साथ एक विद्यालय की स्थापना की। यही विद्यालय सन् १९१६ में अपनी शाखा-प्रशाखाओं सहित विश्व-विद्यालय के रूप में परिणित हो गया।

बालिका-विद्यालय में भर्ती होने के लिए कन्याओं की कमी नहीं थी, मगर निर्धनता उनके मार्ग में बहुत बड़ी बाधा थी। इस बाधा को दूर करने के लिए उन्होंने एक नियम बनाया कि माता-पिता इस बात की प्रतिज्ञा करें कि वे अपनी कन्या का विवाह २० वर्ष की अवस्था से पहले न करेंगे। वे उनके कन्या-महाविद्यालय में रहेंगी और शिक्षा समाप्त होने पर अध्यापन-कार्य के द्वारा महाविद्यालय का कर्जा चुका देंगी।

इस नियम के कारण कन्या-महाविद्यालय में लड़कियों की संख्या बहुत बढ़ गई। जहाँ पहले कुछ झोपड़ियाँ थीं, वहाँ तीन लाख से अधिक रुपये की इमारतें खड़ी हो गई।

सन् १९१५ में काँग्रेस का अधिवेशन बंबई में हुआ था। कांग्रेस के पंडाल में ही समाज-सुधार-कान्फ्रेंस का अधिवेशन भी हुआ। उस समय कर्वेकी आयु ५८ वर्ष की थी और वे कुछ महीनों पश्चात् फर्गूसन-कालेज की सेवाओं से निवृत्त होने वाले थे। इसी समय महर्षि कर्वे ने घोषणा की कि वे जापानी-महिला-विश्व-विद्यालय के ढंग का 'महिला-विश्व-विद्यालय' स्थापित करेंगे और इस कार्य में वे सन् १९१६ ई० में जुट भी गये। इसी वर्ष महामना मालवीय जी के तत्वावधान में राजा, महाराजा और सरकार के सहयोग से काशी में 'हिन्दू-विश्वविद्यालय' की स्थापना हुई। परन्तु कर्वे ने अकेले ही इस कार्य को उठाया। फकीरी पकड़ी और भिक्षा का झोला लटकाया। निरन्तर १२ वर्षों तक वे 'विश्वविद्यालय' के चन्दे के लिए घूमते रहे। हरिद्वार से रामेश्वरम् और कलकत्ते से करांची तक उन्होंने अनेक यात्राएँ कीं। विश्वविद्यालय को दृढ़ और पूर्णतया आधुनिक बनाने के लिए उन्होंने यूरोप, अमेरिका, अफ्रिका, जापान और मलाया की यात्रा की। विश्वविद्यालज के लिए ७५ वर्ष की आयु तक बराबर चन्दा एकत्र करते रहे। अन्त में जब पूना के सेट नानजी ठाकरसी ने इस संस्था के लिए एक साथ १० लाख रुपये दिये, तब उनका भिक्षा-पर्यटन समाप्त हुआ।

इस विश्वविद्यालय में शिक्षा का माध्यम मातृभाषा के द्वारा देने का उपक्रम करके महर्षि कर्वे ने अपने असामान्य साहस का परिचय दिया। सन् १९१६ तक सरकारी स्कूलों में भी शिक्षा का माध्यम मातृभाषा नहीं थी। महामना मालवीय जी भी मातृभाषा को माध्यम बनाने का साहस नहीं कर सके। आज भी विश्वविद्यालयों की शिक्षा का माध्यम मातृभाषा नहीं है, किन्तु कर्वे ने महिला-विश्व विद्यालय की शिक्षा का माध्यम मातृभाषा को ही रखा। विश्वास और चरित्र की दृढ़ता और ध्येय एवं निष्ठा की इससे बढ़कर और क्या परख हो सकती है।

सन् १९४८ ई० में बम्बई सरकार ने इस महिला-विश्वविद्यालय को मान्यता प्रदान की।

इस प्रकार महर्षि कर्वे ने अत्यन्त विरोधी वातावरण में अपना कार्य प्रारम्भ कर स्नेहपूर्ण सेवा, मधुर वाणी, सहिष्णुता और सक्रिय कार्य से विरोधी समाज को अपने अनुकूल बनाया। समाज ने उन्हें 'महाराष्ट्र का महर्षि' कहकर उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। भारत-सरकार ने सन् १९५८ ई० में उन्हें 'भारत-रत्न' की सर्वोच्च उपाधि से सम्मानित किया।

सन् १९५९ ई० में महर्षि कर्वे ने अपनी आयु के सौ वर्ष पूरे किये। इसके उपलक्ष्य में उनकी शताब्दी के कई स्थानों पर उत्सव मनाये गये और भारत के डाक विभाग ने उनके डाक टिकिट निकाले।

इस प्रकार इस क्रियाशील महर्षि ने निस्पृह और निष्काम होकर समाज की सेवा में अपना सम्पूर्ण जीवन अर्पित कर दिया।

कलकत्ता

भारतवर्ष का सबसे बड़ा और समस्त संसार में जनसंख्या की दृष्टि से छठे नम्बर का नगर, जो किसी समय समस्त भारत की और इस समय पश्चिमी बंगाल की राजधानी है। इस शहर की आबादी सन् १७१० में बारह

हजार, सन् १८७१ में ६ लाख ३३ हजार और १९६१ में उपनगरों सहित ६० लाख के करीब हो गई ।

कलकत्ता बहुत पुराना नगर नहीं है। नवाबी युग अर्थात् सन् १६०० से पहले इस नाम का कोई शहर अस्तित्व में नहीं था। उस समय बंगाल की राजधानी मुर्शिदाबाद थी जो अपने वैभव और ऐश्वर्य के लिए संसार में प्रसिद्ध थी।

भारत में अंग्रेजों के प्रवेश के पश्चात् ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने शाहजहाँ बादशाह से आदेश लेकर हुगली में अपना कारखाना खोला था। कुछ समय पश्चात् बंगाल के तत्कालीन नवाब से झगड़ा हो जाने के कारण नवाब ने कम्पनी के कर्मचारियों को हुगली से निकाल दिया। तब ये लोग "जाब चारनाक" नामक अंग्रेज के नेतृत्व में "सूतानट्टी" नामक गाँव में पहुँचे। यह गाँव उस समय उस स्थान पर आबाद था जहाँ पर इस समय "हाटखोला" और 'गोआबागान" नामक मुहल्ले स्थापित हैं। इस गाँव के आसपास दलदल और जंगल फैला हुआ था। सूतानट्टी गाँव के पास ही डिही कालीकोठा और गोविन्दपुर नामक दो गाँव और थे। ये तीनों गाँव उस समय "बेहाला" के राय लोगों की जमींदारी में थे। यही "कालीकोठा" नामक गाँव आगे चलकर कलकत्ते के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जिस स्थान पर इस समय बड़ा बाजार और डलहौजी स्कायर बने हुए हैं, वहीं पर पहले काली-कोठा नामक ग्राम बसा हुआ था और गोविन्दपुर नामक ग्राम वर्तमान बेलियाघाटा रोड, संक्रीकरो, वेलिंगटन स्कायर और हेस्टिंग्जस्ट्रीट होता हुआ जो टेढ़ामेढ़ा रास्ता हुगली नदी को नमक के क्षेत्र से मिलाता है, उसी स्थान पर अवस्थित था। फोर्ट विलियम और किले का मैदान भी इसी ग्राम से सम्बन्धित था।

इन गाँवों के बीच से एक कच्ची सड़क कलकत्ते से उत्तर ३० मील हाली शहर तक और दक्षिण छः मील बारीसा तक जाती थी। इस समय इस कच्ची सड़क के स्थान पर बने हुए पक्के रोड के किनारे पर चीतपुर रोड, चौरंगी, भवानीपुर और कालीघाट बसे हुए हैं। हाटखोला जो इस समय बड़ी-बड़ी इमारतों से देदीप्यमान हो रहा है, उस समय हाट लगने की जगह थी। हाटखोले का नाम

खानदान उस समय करोड़पति समझा जाता था जो बेहाला में रहता था।

कुछ इतिहासकारों के मत से कलकत्ता शहर अंग्रेजों का ही बसाया हुआ है, मगर कई ऐसे प्रमाण भी मिलते हैं कि अंग्रेजों के आने के पहले आर्मेनियन लोग इस स्थान पर बस चुके थे। ये लोग अंग्रेजों से पहले सैकड़ों वर्षों से ईरान की खाड़ी के रास्ते भारतवर्ष में व्यापार करने के लिए छोटी-छोटी नावों पर बैठकर आते रहते थे। ये लोग भी ईसाई थे। इन्हीं के नाम पर कलकत्ते का आर्मेनियन स्ट्रीट नामक बाजार बसा हुआ है और इसी आर्मेनियन स्ट्रीट में इनका आर्मेनियन गिर्जा बना हुआ है जिसका निर्माण सन् १७०७ में हुआ था। अर्थात् पलासी की लड़ाई से ५० वर्ष पूर्व इस गिरजे का निर्माण 'आगानजर" नामक व्यक्ति के नेतृत्व में हुआ था। जिस जमीन पर गिरजा बना हुआ है वह आर्मेनियन लोगों का कब्रस्तान था। इसके सम्बन्ध में इस गिरजे में आर्मेनियन भाषा में एक लेख लगा हुआ है उसका आशय इस प्रकार है—

यह स्वर्गाभिमानी मुकियास की पत्नी रजा बीबी की कब्र है जो २१ जुलाई १६३० को हमेंशा के लिए इस संसार से चल बसी।"

इसी आर्मेनियन व्यापारी "मुकियास" के नाम पर "मुकियास स्ट्रीट" और "मुकियास लेन" बने हुए थे जो इस समय "कैलास बोस स्ट्रीट" के नाम से प्रसिद्ध है। इससे पता चलता है कि अंगरेजों से काफी पहले आर्मेनियन लोग इस स्थानपर व्यापार करते थे।

"जॉब चारनाक" के साथ आनेवाले अंग्रेजों ने बेहाला के राय खानदान से 'सूतानट्टी" "कालीकोठा" और गोविन्दपुर ये तीनों गाँव खरीद लिये और तीन ही वर्षों में लाल दीघी के चारों ओर अंग्रेजों की बस्तियाँ कायम हो गईं। इन बस्तियों के सभी मकान कच्ची मिट्टी के बने हुए थे। इसके पश्चात् अंग्रेज व्यवसायियों ने क्रमशः ३५ गाँव और खरीद लिये। सन् १७०४ में अंगरेजों ने 'जनरल पोस्ट ऑफ़िस' के पास एक किला बनवाया।

सन् १७०६ में अंग्रेज लोगों ने उस स्थानपर पक्का मकान बनवाया जहाँपर इस समय "राइटर्स बिल्डिंग" बनी हुई है। उसके पश्चात् अंग्रेजों की कई इमारतें और गोदाम तेजी से बनने लगे और डलहौजी स्क्वायर तथा उसके आसपास की जगह अंग्रेजी मुहल्ले के रूप में परिवर्त्तित हो गई।

कम्पनी ने इस अंग्रेजी क्षेत्र में इंग्लैंड के ढङ्ग का एक 'कारपोरेशन' भी सन् १७०८ में स्थापित किया जिसमें एक मेयर और नौ एल्डरमेन नियुक्त हुए। यह कारपोरेशन सफाई की व्यवस्था, नई सड़कों का निर्माण और किराया वसूल करने का काम करता था। इसके मेयर का ऑफिस उस स्थान पर था जहाँ इस समय सेण्ट एण्ड्रूज चर्च बना हुआ है।

अंग्रेजों के प्रसिद्ध किले 'फोर्ट विलियम' का निर्माण सन् १७५७ में प्रारम्भ हुआ और सन् १७७३ में वह बनकर तैयार हो गया। इसके पश्चात् अंग्रेज लोग लाल बाजार और बहू बाजार की ओर बढ़ने लगे।

इसके पश्चात् चौरंगी बसाने का उपक्रम हुआ और कई अंग्रेज उद्योगपतियों ने तथा ईस्टइण्डिया कम्पनी के उच्च अधिकारियों नें बङ्गलेनुमा ऐसे मकान बनवाने प्रारम्भ किये जिनके चारों तरफ बगीचे और फुलवारियाँ रहती थीं।

सन् १८४० में सेण्टपाल का गिरजा बना। सन् १८०१ में म्युनिसिपल बोर्ड की स्थापना हुई और इसी वर्ष फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना हुई। जिसके माध्यम से अंग्रेजों को इस देश की भाषाओं का ज्ञान कराया जाने लगा। सन् १८७० में पानी की सुविधा के लिए पलता में वाटरवर्क्स की स्थापना की गई। इससे साफ किया हुआ हुआ पानी नलों के द्वारा जनता को मिलने लगा। सन् १८७६ में नये म्यूनिसिपल कारपोरेशन की स्थापना हुई जिसमें एक चेयरमेन एक वाइस चेयरमेन और ७२ कमिश्नर रक्खे गये। सन् १८७४ में सुप्रसिद्ध हर्क साहब के बाजार (न्यू मार्केट) की स्थापना हुई। सन् १८९१-९२ में हरिसन रोड नामक सुप्रसिद्ध बाजार की स्थापना हुई। सन् १८८९ में सर्क्यूलर रोड के पूर्व और दक्षिण का बहुत सा भाग कारपोरेशन के अधिकार में आ गया।

भारत की सबसे पहली युनिवर्सिटी कलकत्ता में सन् १८५७ में स्थापित हुई और यहीं पर सबसे पहली सार्वजनिक लायब्रेरी 'इम्पीरियल लायब्रेरी' की स्थापना हुई। यहीं से सबसे पहला समाचार पत्र "हिकीज गजट" अंग्रेजी में "समाचार दर्पण" बंगला में और "उदन्त मार्तण्ड" हिन्दी में प्रकाशित हुआ।

औद्योगिक क्षेत्र में कलकत्ता

औद्योगिक क्षेत्र में कलकत्ता सारे भारतवर्ष में अग्रणी रहा है। बंगाल की भूमि बहुत उपजाऊ होने के कारण कच्चा माल यहाँ काफी मात्रा में उत्पन्न होता है। मशीन युग के पहले यहाँ से ढाके की मलमल, तन्जेब इत्यादि अनेक प्रकार की चीजें यूरोप जाती थीं। अंग्रेजी काल में यहाँ पर जूट और चाय उद्योग का बहुत विकास हुआ। इसके अतिरिक्त लोहा उद्योग में भी अंग्रेजों ने यहाँ पर प्रगति की। बहुत समय तक इन उद्योगों पर अंग्रेज कम्पनियों का ही एकाधिपत्य रहा। सन् १९१९ से बिड़ला, हुकुमचन्द इत्यादि उद्योगपतियों ने जूट उद्योग में प्रवेश किया। मगर सन् १९४७ से यहां के अधिकांश उद्योग भारतीय उद्योग-पतियों के हाथ में आ गये।

राजनैतिक क्षेत्र में कलकत्ता

राजनैतिक क्षेत्र में भी कलकत्ता भारत में करीब-करीब सबसे आगे रहा। सन् १८५७ के गदर की चिनगारी पहले पहल कलकत्ते में ही चमकी और उसका प्रारम्भ मङ्गलपाण्डे की फाँसी से हुआ। सन् १८८५ में बम्बई में जब 'ऑल इण्डिया कांग्रेस' की स्थापना हुई तब उसके पहले सभापति कलकत्ता के उमेशचन्द्र बनर्जी बनाये गये। कांग्रेस की स्थापना के नौ वर्ष पहले सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के नेतृत्व में इण्डियन ऐसोसिएशन नामक पहली राजनैतिक संस्था की कलकत्ता में स्थापना हुई।

सन् १९०५ में 'बङ्गभङ्ग आन्दोलन' के समय तो कलकत्ता और बंगाल की राजनीति में एक तूफान आ गया। हिंसात्मक क्रान्तिकारी आन्दोलनों का यहाँ सबसे पहले संगठन हुआ। जिसका मार्गदर्शन 'ढाका अनुशीलन समिति' नामक संस्था करती थी। रासबिहारी घोष, अरविन्द घोष, इत्यादि कई बड़े-बड़े नेता इस आन्दोलन के

समर्थक थे । इस सिलसिले में कनाईलाल दत्त, बटुकनाथ इत्यादि कई नौ जवान युवकों ने हँसते-हँसते फाँसी के तख्ते पर अपनी बलि चढ़ायी ।

कांग्रेस के सत्याग्रह आन्दोलन के समय भी कलकत्ता किसी से पीछे नहीं रहा । देशबन्धु चित्तरंजनदास, जे० के० सेन गुप्ता, सुभासचन्द्र बोस, विधानचन्द्र राय इत्यादि नेताओं ने महात्मा गांधी के कन्धे से कन्धा मिलाकर इस आन्दोलन के संचालन में बराबरी से योगदान दिया ।

इसके बाद महायुद्ध के समय कलकत्ते के ही सुभासचन्द्र बोस ने "आजाद हिन्द फौज" का निर्माण कर भारतीय स्वाधीनता के इतिहास में एक नवीन सुनहला पृष्ठ जोड़ दिया ।

सामाजिक क्षेत्र में कलकत्ता

अंगरेजी राज्य की स्थापना के पहले बंगाल अत्यन्त भीषण सामाजिक कुरीतियों के दारुण जाल में फँसा हुआ था । जातिपांति की कठोर व्यवस्थाएँ, विधवा स्त्रियों की दुरावस्था, सतीप्रथा आदि अनेक प्रकार की सामाजिक कुरीतियाँ यहाँ के सामाजिक जीवन को दग्ध कर रही थी ।

इन सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ आवाज बुलन्द करने वाले राजा राममोहन राय कलकत्ते के निवासी थे । उस अन्धकार पूर्ण युग में इसी महान् व्यक्ति ने साहसपूर्वक सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ अपनी आवाज बुलन्दकर कलकत्ते में ब्राह्म समाज की स्थापना की । आगे जाकर सारे भारतवर्ष के प्रमुख नगरों में इसकी शाखाएँ स्थापित हो गई । इसी महान् व्यक्ति ने अंग्रेज लोगों से मिलकर सतीप्रथा के विरुद्ध सख्त कानून बनवाया । इन्हीं की परम्परा में "केशवचन्द्र सेन" भी महान् समाज सुधारक हुए और इन्हीं का अनुगमन कर "ईश्वर- चन्द्र विद्यासागर" ने बंगाल के सामाजिक क्षेत्र में अमर कीर्ति प्राप्त की ।

साहित्यिक क्षेत्र में कलकत्ता

साहित्यिक क्षेत्र में तो कलकत्ते के बंगाली समाज ने राष्ट्रीय ही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की । विश्व कवि रवीन्द्र नाथ टैगोर की गीताञ्जलि पर संसार का अन्तर्राष्ट्रीय नोबल पुरस्कार प्राप्त हुआ । कविता के क्षेत्र में विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर तथा माइकेल मधुसूदन दत्त, उपन्यासों के क्षेत्र में बंकिमचन्द्र और शरद्चन्द्र चटर्जी, नाटकों के क्षेत्र में द्विजेन्द्रलाल राय और गिरीशचन्द्र घोष इत्यादि महान् साहित्यकारों की सेवाओं का मूल्यांकन करना आज भी कठिन है ।

आध्यात्मिक क्षेत्र में कलकत्ता

महान् योगी रामकृष्ण परमहंस की दिव्य ज्योति से बंगाल और कलकत्ते का आध्यात्मिक क्षेत्र आज भी जगमगा रहा है । उनके शिष्य महान् तत्वाचिंतक स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय अध्यात्म वाद का डङ्का अमरीका में भी जोर शोर से बजाया था । उनका साहित्य भारत के आध्यात्मिक साहित्य का एक मूल्यवान अङ्ग है । महान् योगी अरविन्द भी कलकत्ते के ही थे । जिन्होंने बाद में पाण्डेचेरी में अपना योगाश्रम स्थापित करके सारे संसार का ध्यान भारतीय योग विद्या की तरफ आकर्षित किया । उनका निर्मित किया हुआ दिव्य साहित्य भारतीय योग के विद्यार्थियों के लिए एक प्रकाशस्तम्भ का काम कर रहा है ।

इसी प्रकार विज्ञान के क्षेत्र में सर जगदीशचन्द्र वसु, प्रफुलचन्द्र राय इत्यादि महान् व्यक्तियों ने अपना-पूरा योगदान दिया है ।

इस प्रकार कुल ढाई सौ बरस की उम्र का यह कलकत्ता शहर जीवन के सभी क्षेत्रों में समस्त भारत का एक प्रकार से नेतृत्व कर रहा है और विश्व के प्रमुख नगरों में इसका महत्वपूर्ण स्थान हो गया है ।

कलचुरी राज-वंश

भारतवर्ष का एक प्राचीन और प्रसिद्ध राजवंश, जिसका शासन प्राचीन युग में चेदिराज्य या बुन्देलखण्ड में था । इस राजवंश की राजधानी जबलपुर के पास 'त्रिपुरी' नामक नगर में थी जो इस समय 'तिऊर' के नाम से एक छोटे गाँव के रूप में विद्यमान है । यह राजवंश पुराणों में वर्णित हैहय क्षत्रिय राजवंश के 'सहस्रार्जुन' के वंशजों में था ।

ईसा की तीसरी शताब्दी में अर्थात् सन् २४९ ई० में कलचुरी-वंश का 'त्रैकुटक' संवत् प्रारंभ हुआ था। अतः यही सन् कलचुरी-राजवंश की स्थापना का माना जाता है, किन्तु कलचुरी वंश का वास्तविक उत्थान ८वीं सदी से माना जाता है, जो १२वीं शताब्दी तक बराबर बना रहा।

इस राजवंश में 'शंकरगण' नामक एक प्रसिद्ध व्यक्ति हुआ। जो ८वीं सदी में लक्ष्मणराज राष्ट्रकूट गोविन्द तृतीय का सामन्त था। इसके पुत्र 'कोकल' प्रथम का विवाह चंदेल-वंश की राजकुमारी के साथ हुआ था। इसी समय से कलचुरी-राजवंश की राजशक्ति क्रमशः बढ़ने लगी और शंकरगण द्वितीय या शांकिल के समय में यह बहुत अधिक बढ़ गई। शांकिल का समय सन् ८७८ से सन् ९०० ईसवी तक था। इस राजा ने कलिंग और कौशल के सोमवंशियों को परास्त कर अपना राज्य-विस्तार किया था।

शांकिल के बाद बालहर्ष' और उसके बाद 'केयूरवर्ष' इस वंश में राजा हुए। केयूरवर्ष इस वंश का बड़ा प्रतापी और विजेता नरेश था। इसका शासन सन् ९२५ से सन् ९५० तक था। इसने रत्नपुर नामक नगर का निर्माण करके उसको अपनी राजधानी बनाया था। महान् कवि शेखर का 'विद्धशालभञ्जिका' नामक नाटक सबसे पहले इसी राजा के दरबार में खेला गया था। इसकी पुत्री 'कुणाल देवी' राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष तृतीय को ब्याही थी।

केयूरवर्ष के पश्चात् उसका उत्तराधिकारी लक्ष्मणराज द्वितीय हुआ। इसकी पुत्री 'बोन्था देवी' का विवाह चालुक्य-नरेश 'विक्रमादित्य' के साथ हुआ, और जो 'तैलप' द्वितीय की माता थी।

इसके कुछ समय पश्चात् धारा नगरी के परमार-नरेश 'मुञ्ज' ने इस राज्य पर आक्रमण करके राजधानी 'त्रिपुरी' पर अधिकार कर लिया था, किन्तु थोड़े ही समय पश्चात् इस वंश के उत्तराधिकारी 'गांगेयदेव' विक्रमादित्य ने वापस उसे प्राप्त कर लिया। इसका समय ईसवी सन् १०१५ से सन् १०४१ तक था।

इस वंश में यह अत्यन्त प्रतापी और कीर्त्तिशाली शासक था। इसने सोना चाँदी और ताँबे की कई मुद्राएँ ढलवाई थीं जिनमें से कुछ अभी तक मिलती हैं। इन मुद्राओं का अनुकरण इसके बाद वाले कई राजाओं ने तथा मुहम्मद गौरी तक ने किया था।

कन्नौज के प्रतिहार राजाओं की गिरती हुई हालत से लाभ उठा कर इस राजा ने उनके विस्तृत प्रदेश को जीत लिया। बनारस भी उसके अधीन था।

गांगेय-राज ने चालुक्यों से त्रिकलिंग और तेलंगाना भी जीत लिया। अलबेरुनी ने भी अपने वर्णन में इस प्रतापी राजा का उल्लेख किया है। चेदी के शिलालेखों से मालूम होता है कि इसने भी 'विक्रमादित्य'' की उपाधि-ग्रहण की थी। इसका एक लेख सन् १०३७ का लिखा हुआ प्राप्त हुआ है। कुछ लेखों में यह भी लिखा हुआ है कि वृद्धावस्था में यह राजा प्रयाग जाकर रहने लगा था और वहीं १०३८ के करीब इसकी मृत्यु हुई तथा इसके साथ सौ रानियाँ सती हुईं।

इसके बाद इसका पुत्र कर्ण राजगद्दी पर बैठा। यह इससे भी अधिक प्रतापी निकला। इसका विवेचन हम इसी भाग में कर्ण-चेदिराज के नाम से कर चुके हैं।

कर्ण की पत्नी 'अवेल्ल देवी' हूण जाति की राजकन्या थी, यह भी बड़ी साहसी वीरांगना थी। इसका वर्णन हम पहले भाग में अवेल्ल-देवी के प्रकरण में कर चुके हैं। कर्ण के पश्चात् उसका अवेल्ल देवी रानी से उत्पन्न पुत्र यशःकर्ण गद्दी पर बैठा। इसके समय में राज्य का बहुत सा हिस्सा इसके हाथ से निकल गया। इसकी मृत्यु ११२४ ई० में हुई।

यशःकर्ण के पश्चात् उसका पुत्र "गजकर्णदेव" गद्दी पर बैठा। मेवाड़ के गुहिलोत राजवंश की लड़की आल्हण देवी से इसका विवाह हुआ था। आल्हण देवी का एक शिलालेख सन् ११५५ का लिखा हुआ मिलता है उस समय सम्भवतः गजकर्ण की मृत्यु हो चुकी थी और उसका पुत्र नरसिंह वर्मन नाबालिग होने से राज्य का काम आल्हण देवी चला रही थी।

नरसिंह वर्मन के तीन शिलालेख ११५५, ११५८ और ११५९ के मिले हैं। इस राजा की युवावस्था में ही मृत्यु हो गई। इसका राज्यकाल ११५२ से ११७० तक माना जाता है। ऐसा समझा जाता है कि इस राजा की

लड़की अथवा बहन पृथ्वी राज चौहान की माता थी।

नरसिंह वर्मन के बाद उसका भाई जयसिंह गद्दी पर बैठा। उसने सम्भवतः ११७८ तक राज्य किया। उसके बाद उसका पुत्र विजय सिंह, उसके बाद अजय सिंह और उसके बाद त्रैलोक्य वर्मन कलचुरी वंश के राजा हुए। उसके बाद सम्भव है मुसलमानों के आक्रमण के धक्के में इस राजवंश का भी अन्त हो गया हो।

इस राजवंश के सिक्कों पर दो हाथी और उनके बीच लक्ष्मी का चित्र है और झण्डेश्वर नन्दी का चित्र है।

कल्याणी के कलचुरी

बारहवीं शताब्दी में कलचुरी वंश की एक शाखा का उदय दक्षिणभारत के कर्नाटक प्रान्त में हुआ। सन् ११२८ ई० में कल्याणी के चालुक्य सम्राट् सोमेश्वर तृतीय ने कलचुरी वंश के 'परम्मदी' नामक सरदार को बीजापुर का शासक बनाया था। परम्मदी का पुत्र "विज्जल कलचुरी" बड़ा साहसी वीर और महत्वाकांक्षी था। चालुक्य सम्राट् 'जयसिंह' तृतीय ने उसे महामण्डलेश्वर बना दिया। मगर उसके पश्चात् चालुक्य-नरेश तैलप तृतीय की अयोग्यता का लाभ उठाकर विज्जल ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया और महाराज तैलप तृतीय को गिरफ्तार करके सन् ११५६ में उसने अपने आपको कल्याणी का सम्राट् घोषित कर दिया और अपना संवत् भी चलाया।

उसी वर्ष के एक शिलालेख में उसका उल्लेख 'कलचुरी भुजबल चक्रवर्ती त्रिभुवन मल्ल' के विरुद के साथ किया गया है। सन् ११६७ तक इस राजा ने राज्य किया।

इसी राजा के समय में स्वामी 'बसवेश्वर' नामक सन्त कर्नाटक में अवतीर्ण हुए जिन्होंने उस प्रदेश में एक प्रबल धार्मिक क्रान्ति करके 'वीरशैव मत' का प्रचार किया।

विज्जल के पश्चात् इस वंश में उसके पुत्र सोमेश्वर, सोविदेव और आहवमल्ल नामक तीन राजाओं ने सन् ११८२ ईसवी तक राज्य किया। इन लोगों के शासनकाल में 'देवगिरि' के यादव और द्वार समुद्र के होयसल राजवंशों ने कलचुरी राज्य पर लगातार आघात किये। सन् ११८३ ई० में चालुक्य-नरेश सोमेश्वर चतुर्थ ने कल्याणी पर फिर से अधिकार कर लिया।

इस प्रकार सन् १२१० इसवी में इस राजवंश का पूर्णरूप से अन्त हो गया।

कलेंडर

वर्ष भर की तारीख, वार और महीनों की जानकारी देनेवाला चार्ट या नक्शा।

सारे संसार में भिन्न-भिन्न प्रकार के अनेक कलेंडर या पञ्चाङ्ग प्रचलित हैं। इन कलेंडरों में 'रोमन' 'भारतीय' 'यहूदी' और 'इस्लामी' कैलेंडर प्रमुख हैं। मगर इन सब में रोमन कलेंडर जिसे अन्तर्राष्ट्रीय कलेंडर भी कहते हैं—को यह गौरव प्राप्त है कि उसका प्रयोग सारे संसार में किया जाता है। यह कलेंडर संसार में प्रचलित दूसरे कलेंडरों की अपेक्षा अधिक सरल और स्पष्ट है। मगर इसको यह स्थिति दो हजार वर्षों में कई प्रकार के उलट-फेरों के बाद प्राप्त हुई है।

अब से करीब दो हजार वर्ष पहले रोमन-साम्राज्य में इस कलेंडर का प्रचलन शुरू हुआ था। उस समय के रोमन-कलेंडर के अनुसार वर्ष में केवल ३०४ दिन होते थे और एक वर्ष दस महीनों में विभाजित रहता था। किसी महीने में बहुत कम दिन होते थे और किसी महीने में ज्यादा।

ऑगस्टस नामक रोमन-सम्राट् ने सेक्टीलिस नामक महीने का नाम जो पहले ३० दिन का होता था, अपने नाम से बदल कर आगस्टस रख दिया और इस महीने के दिन ३० से बढ़ाकर ४६ कर दिये। इसके बदले में फरवरी महीने के दिन २५ से घटाकर ६ कर दिये। इसी अगस्टस महीने का नाम आगे चलकर अगस्ट हो गया।

रोम के शक्तिशाली सम्राट् जूलियस सीजर ने जूलियन-कलेंडर चलाया। उसने फरवरी को बढ़ाकर २८ दिन का और अगस्त को घटा कर २७ दिन का कर दिया। उसने अपनी स्मृति में 'क्विंटिलिस' नामक महीने का नाम बदल कर

जूलियस कर दिया, जो बाद में चलकर जुलाई ही गया। उसने साल में और ६६ दिन जोड़कर ३०४ के स्थान पर ३७० दिन का साल कर दिया। और प्रत्येक चार वर्षों के बाद फरवरी में १ दिन और जोड़ दिया जिसे आज कल 'लिप' वर्ष कहा जाता है।

इसी तरह उसने साल को १० महीनों के स्थान पर १२ महीनों का कर दिया।

पोप ग्रेगरी के संशोधन

किन्तु जूलियस द्वारा चलाये गये जूलियन-कलैंडर में भी बहुत-सी भूलें रह गई थीं। अतएव १६वीं सदी के प्रारंभ में रोम के पोप ग्रेगरी तेरहवें ने इस कलेंडर में बहुत से महत्वपूर्ण संशोधन किये। उसने अपना कलेंडर पहली जनवरी सन् एक से आरंभ किया और बतलाया कि जूलियन कलेंडर के अनुसार पड़ने वाले दिन ५ अक्टूबर सन् १५८२ को १५ अक्टूबर सन् १५८२ माना जायगा। उसने वर्ष के प्रत्येक महीने के दिनों को भी निश्चित किया। पोप ग्रेगरी के द्वारा संशोधित किया हुआ यही कलेंडर आज संसार में प्रमाणभूत माना जाता है। पोप ग्रेगरी के इस कैलेंडर के अनुसार पृथ्वी सूर्य के चारों ओर अपनी परिक्रमा ३६५ दिन ६ घंटे ९ मिनट और ९ सेकेंड में पूर्ण करती है। अतः वर्ष के ३६५ दिन बीतने के बाद ६ घंटे, ९ मिनट और ९ सेकंड का जो बढ़ता हुआ समय शेष रहता है, उसको बराबर करने के लिए हर चौथे वर्ष फरवरी में एक दिन बढ़ाना पड़ता है।

इस कैलेंडर के बारहों महीने के नाम रोमन देवी-देवताओं के नाम पर रखे गये हैं। सबसे बड़े रोमन देवता 'जैनुस' के नाम पर जनवरी, फसल काटने के त्यौहार 'फेरुआ' के नाम पर फरवरी, कृषि के देवता 'मेरीटस' के नाम पर मार्च, रोमन देवता 'मर्करी' की माँ के नाम पर मई, विवाह की देवी 'जूनो' के नाम पर जून, जूलियस सीजर के नाम पर जुलाई और सम्राट् आगस्टस के नाम पर अगस्त महीने का नामकरण हुआ।

शेष सितम्बर से लेकर दिसम्बर तक के महीनों के नाम ७ से लेकर १० तक की रोमन-संख्याओं के कारण पड़े।

भारतीय कैलेंडर

भारतवर्ष में बौद्ध, विक्रम, शक, वीरनिर्वाण, बंगाली तथा कुछ और भी कलेंडर प्रचलित हैं, मगर इन सब में विक्रम-संवत् का अधिक प्रचलन है। यह संवत् उज्जैन के के प्रतापी सम्राट विक्रमादित्य के द्वारा चलाया हुआ माना जाता है। यह संवत् ईसा से ५७ वर्ष पूर्व २३ फरवरी को प्रारम्भ हुआ था। विक्रम संवत् के अनुसार साधारण वर्ष में ३५५ दिन होते हैं और १० दिन की कमी प्रति तीसरे वर्ष १ अधिक मास देकर पूरी की जाती है।

शक-कैलेंडर

वैसे भारतवर्ष में विशेष रूप से विक्रम-पञ्चाङ्ग ही काफी लोक-प्रिय है। पर तिथियाँ घटते-बढ़ते रहने से साधारण जनता को उससे कुछ असुविधा होती है। अतः देश भर में एक रूपता लाने के लिये २२ मार्च सन् १९५७ से भारत सरकार ने शक-संवत् में उचित संशोधन करके उसे राष्ट्रीय कलेंडर का रूप दिया।

इस कलेंडर के अनुसार साधारण वर्ष में ३६५ दिन और लीप' वर्ष में ३६६ दिन होते हैं। साधारण वर्ष में साल के शुरू में चैत महीने से लेकर क्वांर महीने तक ६ महीने ३० दिन के और क्वार से लेकर फागुन तक के ६ महीने ३१ दिन के होते हैं। जिस साल लीप-वर्ष होता है उस साल चैत्र भी ३१ दिन का होता है। शक संवत् में अब चैत्र मास प्रति वर्ष २२ मार्च से आरम्भ होता है है और लीप-वर्ष में २१ मार्च से प्रारम्भ होता है।

हिजरी कैलेंडर

१६ जुलाई सन् ६२२ से प्रारम्भ होता है। जब कि इस्लाम-धर्म के प्रवर्तक हजरत मुहम्मद मक्का को छोड़कर मदीना चले गये थे। यहूदी कैलेंडर ईसा से ३७६९ वर्ष पूर्व से प्रारम्भ होता है। यही समय उनके मत से सृष्टि के आरम्भ का है।

बंगाली कैलेंडर का प्रारम्भ सन् १५५५-५६ से प्रारम्भ होता है। मुगल-सम्राट् अकबर के समय में कृषि और मालगुजारी के कार्यों में सहायता पहुँचाने के लिए बंगाली वर्ष का प्रारम्भ किया गया था।

कलश-राज

कश्मीर के लोहर-राजवंश में उत्पन्न राजा अनन्तदेव का पुत्र, जिसका समय सन् १०७२ से सन् १०८९ तक था।

कश्मीर के इतिहास में लोहर-कुल के कलश-राज का समय अत्यन्त अत्याचार, प्रजा-पीड़न और दुष्टता का काल रहा है।

इसका वर्णन करते हुए कश्मीर के प्रसिद्ध कवि और इतिहासकार 'कल्हण' अपनी 'राज-तरंगिणी' की सप्तम तरंग में लिखते हैं कि—कश्मीर-सम्राट अनन्तदेव अपने दुराचारी पुत्र 'कलश' से इतने दुखी थे और उसके अत्याचार से वह इतने क्रुद्ध हो गये थे कि वह अपनी राजधानी छोड़कर 'विजयेश्वर' में चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने रातोरात कलश के 'पुत्र 'हर्ष' को विजयेश्वर बुलाकर उसे कश्मीर-राज्य का 'उत्तराधिकारी' घोषित कर दिया।

अनन्तदेव की मृत्यु के पश्चात् कलश ने हर्ष से युद्ध करने का विचार किया, मगर इसी बीच सामन्तों के बीच-बिचाव से कलश और हर्ष में सन्धि हो गई और कलश ने हर्ष को प्राण-रक्षा का वचन देकर अपना उत्तराधिकारी स्वीकार कर लिया।

उसके पश्चात् विद्रोही सामन्तों ने भड़का कर हर्ष को कलश के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए तैयार कर लिया। विद्रोह पकड़ा गया—हर्ष को बन्दी बना लिया गया और उसे चतुःशाल-मण्डप नामक स्थान में रखा गया।

मगर इतने से ही कलश की प्रतिहिंसा शान्त नहीं हुई। युवराज के साथ उसकी दबी हुई प्रतिहिंसा ने बर्बर-रूप धारण कर लिया था। उसने क्रोध में आकर हर्ष की पत्नियों का अपहरण किया और उनके साथ शत्रु की पत्नियों जैसा आचरण किया।

हर्ष की पत्नियों में राजा 'नुक्क' की अपूर्व सुन्दरी पुत्री 'सुलभा' भी थी। राज-वैभव को कलश की ओर ढलता देखकर उसने लोक-लाज को छोड़कर श्वसुर का प्रेम जीतना चाहा। अनीति की मदिरा पीकर वह इतनी मतवाली हो उठी कि उसने अपने पति हर्ष को भोजन में विष मिलाकर खिलाने का प्रयत्न किया, किन्तु उसका यह षड्यंत्र विफल हो गया।

इस गर्हित पातक ने सम्राट के मन को पतित किया और भयंकर विषय-वासनाओं ने उसके शरीर को रोग-ग्रस्त कर दिया। अपनी मृत्यु निकट जानकर कलश मार्तण्ड-मंदिर चला गया। उस समय उसने हर्ष को युवराज बनाने का प्रयत्न किया, मगर धूर्त मंत्रियों ने हर्ष के स्थान पर उसके भाई 'उत्कर्ष' को युवराज घोषित कर दिया और इसके बाद शीघ्र ही इस अत्याचारी शासक का अन्त हो गया।

कल्हण कवि

कश्मीर के प्रसिद्ध इतिहासकार, संस्कृत के महाकवि तथा सुप्रसिद्ध ग्रन्थ राज-तरंगिणी के लेखक, जिन्होंने सन् ११४८ से लेकर सन् ११५१ तक 'राज-तरंगिणी' नामक महान इतिहास-ग्रन्थ की रचना की। कल्हण के पिता "चम्पक" कश्मीर के लोहर-वंशी सम्राट् 'हर्षदेव' के, सन् १०८९ से ११०१ ई० तक प्रधान मंत्री रहे थे।

कल्हण-कृत राज-तरंगिणी, संस्कृत का एक अमर महाकाव्य और इतिहास-ग्रन्थ है। इसमें प्राचीन काल से कश्मीर के राजाओं का वृत्तान्त दिया हुआ है।

बाल्यकाल से राजसभा के सम्पर्क में रहने के कारण 'कल्हण' ने उस समय की राजकीय घटनाओं को निकट से देखा था। इसी से उन्हें इतिहास लिखने में बहुत सफलता मिली।

राज-तरंगिणी पश्चिमी विद्वानों के इस 'आरोप' का करारा जवाब है कि भारतीयों में वैज्ञानिक ढंग से इतिहास लिखने की प्रवृत्ति नहीं रही।

कल्हण की राजतरंगिणी में एक लौकिक संवत् का वर्णन किया गया है, जो सम्भव है उस समय कश्मीर में प्रचलित रहा होगा। यह लौकिक संवत ईसवी सन् से करीब ३०५६ वर्ष पुराना था, जो शायद कलियुगी संवत् से भी अधिक प्राचीन है।

राज-तरंगिणी में कश्मीर का इतिहास गोनन्द-वंश के इतिहास से प्रारंभ किया गया है। लिखा गया है कि गोनन्द वंश के ५२ राजाओं ने २२६८ वर्ष तक राज्य किया, मगर

यह सब वर्णन बहुत अस्पष्ट और अतिशयोक्तियों से भरा हुआ है।

मौर्य-सम्राट अशोक, कुशाण सम्राट कनिष्क और हूण-सम्राट मिहिरकुल के समान विदेशी विजेताओं को भी गोनन्द-वंश के अन्तर्गत घिसपिस कर दिया गया है।

राज-तरंगिणी में वर्णित कश्मीर के इतिहास में अधिकतर यह बात देखने को मिलती है कि वहाँ के राजाओं का वातावरण हमेशा धूर्त, कुटिल और पतित राज कर्मचारियों के द्वारा प्रभावित रहा है! अनेक राजा जो अपने शासन काल के प्रारम्भ में अत्यन्त न्यायी, उदार और महत्वाकांक्षी थे, वे ही अपने उत्तर-काल में इन दुष्ट षड्यंत्रकारियों के चक्कर में पड़कर भ्रष्ट, अत्याचारी और दुराचारी हो गये।

दूसरी बात यह भी मालूम होती है कि उन दिनों कश्मीर में यौन-सदाचार की महत्ता बहुत कम हो गई थी। बहुत से पुरुष राजा गणिकाओं और डोमकन्याओं के चक्कर में फँस गये थे और इसी प्रकार राज घराने की बहुत सी रानियाँ जैसे 'सुगन्धा देवी' 'दिद्दारानी' सुलभा' (हर्षदेव की पत्नी) 'वप्पट देवी इत्यादि रानियाँ दुष्ट लोगों के चक्कर में पड़कर अपने चरित्र को दाँव पर लगा चुकी थीं। रानियों के द्वारा इस प्रकार सदाचार-हीनता के दृश्य भारतीय इतिहास में अन्यत्र शायद ही कहीं देखने को मिले।

गोनन्द-वंश के पश्चात् के वंशों का इतिहास कल्हण कवि ने बड़े ही, व्यवस्थित, सुन्दर और काव्यमय ढंग से प्रस्तुत करके संस्कृत के इतिहास-ग्रन्थों में एक नवीन परम्परा कायम कर दी। इसके लिए भारतवर्ष का इतिहास-साहित्य उनके ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकता।

कलाख्

प्राचीन असीरियन-साम्राज्य का एक नगर जो किसी समय दजला और ऊपरलीजाब नाम की नदियों के संगम पर बसा हुआ था।

किसी समय यह स्थान असुर-साम्राज्य की राजधानी रहा था। इसका निर्माण ईसा से पूर्व १४ वीं शताब्दी में हुआ था।

पुरातत्व-विभाग के द्वारा की गई खुदाइयों में इस स्थान पर अनेक राज-प्रासादों के खण्डहर मिले हैं, जो भिन्न-भिन्न राजाओं के द्वारा निर्मित किये गये थे।

इस नगर की खुदाइयों में पंख वाले विशाल सिंहों की मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं जो लन्दन के 'म्युजियम' में रखी हुई हैं। इस नगर के चारों ओर विशाल परकोटा खींचा हुआ था। कलाख् के इसी परकोटे के अनुकरण पर अरबी-भाषा में 'किला' शब्द का प्रयोग जारी हुआ। किला शब्द कलाख् शब्द का ही अपभ्रंश है।

कलाल

भारतवर्ष में शराब बनाने और बेचने वाली एक जाति जिसे 'कलवार' भी कहते हैं।

रामायण, महाभारत तथा पुराणों में इस जाति का उल्लेख 'शौण्डिक' के नाम से किया गया है। कलालों के अन्दर ४० उपजातियाँ हैं।

महामहोपाध्याय डा० गंगानाथ झा ने मनुस्मृति पर टिप्पणी लिखते हुए शौण्डिक-जाति को द्विज बताया है, पर 'मोनियर विलियम्स' नामक अंग्रेज विद्वान ने शौंडिक जाति को मनुस्मृति के आधार पर संकर-वर्ण बतलाया है।

कुछ समय पूर्व इस जाति के कुछ विद्वानों ने कलवारों के इतिहासों की खोज कर उन्हें 'हैहय' क्षत्रियवंश के वंशज बतलाया है और कलवारों की सभा ने इसी निर्णय को स्वीकार कर कलवारों को 'हैहय क्षत्रिय' घोषित किया है।

कल्याणी

भारत के दक्षिणात्य प्रदेश में मध्यकाल की एक प्रसिद्ध नगरी जो ११ वीं शताब्दी में उत्तर चालुक्य-वंश के प्रसिद्ध राजा सोमेश्वर के द्वारा बसाई गई थी।

सुप्रसिद्ध इतिहासकार चिन्तामणि विनायक वैद्य के मतानुसार यह नगरी निजाम राज्य के 'बैदर' नामक स्थान के निकट बसाई गयी थी। कुछ अन्य इतिहासकारों के मत से बंबई के समीप कल्याण नामक नगर ही वह स्थान था। कुछ इतिहासकार कल्याणी को कर्नाटक प्रदेश में मानते हैं।

मध्ययुग के प्रसिद्ध उत्तर चालुक्य-राजवंश के राजा सोमेश्वर ने कुल परम्परागत शत्रु चोलों के अधिक निकट होने के कारण यह नया नगर बसाकर यहाँ पर अपनी राजधानी स्थापित की थी ?

उत्तर चालुक्य-राजवंश

इस नगरी में उत्तर चालुक्य-राजवंश का बड़ा वैभव रहा। इस वंशके प्रसिद्ध राजा सोमेश्वर ने राजा 'भोज' को हराकर धारा नगरी पर अधिकार कर लिया।

सोमेश्वर का दूसरा पुत्र विक्रमादित्य उससे भी अधिक वीर और प्रतापी हुआ। कश्मीर के प्रसिद्ध कवि 'विल्हण' ने उसकी प्रशस्ति में "विक्रमांक देव-चरित", नामक प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थ की रचना की। जिसमें उस समय की घटनाओं का विशद वर्णन किया गया है। इस काव्य से मालूम होता है कि सोमेश्वर के जीवन-काल में ही उसका दूसरा पुत्र विक्रमादित्य अपनी बुद्धिमत्ता और वीरता के लिए प्रसिद्ध हो गया था। उसने 'चेर' 'सिंहल' 'गंगकोंड' 'चोल' 'वेंगी' "वंग" और आसाम को भी जीत लिया था। कवि विल्हण ने अपने आश्रमदाता के पराक्रम का वर्णन करते हुए कुछ अतिशयोक्ति से काम लिया है, पर इसमें सन्देह नहीं कि विक्रम ने सम्पूर्ण दक्षिण-भारत को जीत लिया था।

विक्रमादित्य ने सन् १०७६ से ११२६ तक ५० वर्ष राज्य किया।

विक्रम के पश्चात् उसका पुत्र सोमेश्वर तृतीय सिंहासन पर बैठा। यह बड़ा विद्वान् और पराक्रमी था। इसके लिखे हुए प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अभिलषितार्थ-चिन्तामणि' में राजनीति, युद्ध-शास्त्र, अश्व-शास्त्र, गज-शास्त्र, ज्योतिष, तर्क इत्यादि अनेक विषयों पर विवेचन किया गया है।

इस राजा ने ११ वर्ष तक राज्य किया। इसके बाद इसका पुत्र 'जगदेक मल्ल' और उनके बाद उसका भाई तैलप द्वितीय राजा हुए। उसके बाद इस राजवंश की शक्ति बहुत क्षीण हो गयी और इनके एक माण्डलिक 'विज्जल' कलचुरी नामक सरदार ने विद्रोह करके कल्याणी में कलचुरी-वंश की सत्ता स्थापित की।

इस कलचुरी-वंश का पूर्ण परिचय हम इस ग्रन्थ में कलचुरी-राजवंश शीर्षक के नीचे दे चुके हैं।

कलिंग

प्राचीन भारतीय इतिहास का एक प्रसिद्ध जनपद और राज्य, जो पूर्वी समुद्र-तट पर तामलुक से गंजाम-पर्यन्त फैला हुआ था। उसकी उत्तरी सीमा गंगा-नदी को स्पर्श करती थी। दक्षिण में मध्य गंजाम के उपरान्त घने वन फैले हुए थे। पूर्व में भारतीय महासागर पड़ता था। और पश्चिमी सीमा मध्यप्रदेश की अमर कण्टक-माला तक पहुँचती थी। समय समय पर इस प्रदेश की सीमाएँ घटती बढ़ती रहती थीं।

वर्तमान उड़ीसा भी उस समय कलिंग देश का ही अङ्ग था। उसमें 'उत्कल' 'कंगोद और कोशल' (दक्षिणी गंजाम)--ये तीन देश' सम्मिलित थे। इससे इसको 'त्रिकलिंग' देश भी कहा जाता था।

महाभारत में 'कलिंग' देश का वर्णन एक वन्य प्रदेश के रूप में हुआ है, जिसका राजा चित्रांगद था।

बौद्ध ग्रन्थों में कलिंग देश और उसकी राजधानी 'दन्तपुर' के अनेक उल्लेख पाये जाते हैं।

मगर जैन साहित्य में इस प्रदेश का बहुत काफी और व्यवस्थित उल्लेख पाया जाता है। कलिंग की सबसे प्राचीन और उपलब्ध सामग्री जैन-परंपरा से सम्बन्धित है। बहुत प्राचीन काल से इस देश और राज्य के इष्टदेव 'कलिंग-जिन' थे। यह कलिंग जिन भगवान महावीर के जन्म से पहले भी कलिंग-देश में प्रतिष्ठित थे।

प्रोफेसर राखालदास बनर्जी के अनुसार बहुत प्राचीन काल से उड़ीसा जैन-धर्म का एक प्रमुख गढ़ बना हुआ था।

ईसा से करीब ६ सौ वर्ष पूर्व कलिंग देश पर 'जित शत्रु' नामक राजा राज्य करता था। इस राजा की पुत्री यशोदा से जैनियों के २४ वें तीर्थंकर भगवान् महावीर का विवाह हुआ था और उनको प्रिय दर्शना नामक कन्या हुई थी।

ईसवी सन् पूर्व ४२४ में मगध के राजा 'नन्दिवर्धन' ने कलिंग पर आक्रमण करके विजय प्राप्त की थी और वहाँ पर प्रतिष्ठित कलिंग-जिनकी भव्य मूर्तियाँ अपने साथ 'पाटलिपुत्र' ले गया था।

उसके पश्चात् ईसवी सन् पूर्व ३६४ में मगध-नरेश महानन्द के खिलाफ जो क्रान्ति हुई, उसमें कलिंग-राज्य पुनः स्वतंत्र हो गया।

ईसवी सन् पूर्व २६१ के लगभग अपने राज्य के आठवें वर्ष में एक भारी सेना लेकर सम्राट् 'अशोक' ने कलिंग' के ऊपर आक्रमण किया। इस युद्ध में लाखों लोगों का नर-संहार हुआ। और कलिंग 'मौर्य—साम्राज्य' का अँग बन गया।

इसके पश्चात्' कलिंग के इतिहास में एक नवीन और प्रतापी राजवंश की स्थापना हुई। इस राजवंश का नाम 'ऐल-राजवंश' था इसका सबसे बड़ा प्रतापी राजा 'कलिंग चक्रवर्ती' खारवेल था।

सम्राट् खारवेल का जन्म १६० ईसवी पूर्व में हुआ था। इस सम्राट् का एक इतिहास प्रसिद्ध शिलालेख उड़ीसा प्रदेश की आधुनिक राजधानी 'भुवनेश्वर' से ३ मील की दूरी पर बने हुए 'हाथी गुम्फा' नामक एक प्राचीन गुफा-मन्दिर की छतपर खुदा हुआ प्राप्त हुआ है। १७ पंक्तियों का यह महत्वपूर्ण लेख ८४ वर्गफीट के क्षेत्र में लिखा हुआ है।

इस शिलालेख में सम्राट् खारवेल के द्वारा किये गये एक-एक वर्ष के कार्यों का उल्लेख किया गया है। इससे मालूम होता है कि अपने राज्य के प्रथम वर्ष में इस राजा ने आँधी, तूफान आदि-दैवी, प्रकोपों से नष्ट हुए कलिंग-नगर के गोपुर, प्राकार, प्रासादों आदि का जीर्णोद्धार करवाया और सरोवरों और झरनों पर बान्ध बँधवाये।

अपने शासन के ८ वें वर्ष में सम्राट् खारवेल ने अपनी विशाल सेना के साथ उत्तरायण की विजय-यात्रा की। मगध पर आक्रमण किया। गोरथ-गिरि पर भीषण युद्ध करके राजगृह-नरेश को त्रस्त किया। उसके भय से यवनराज 'दिमित्री' भी मथुरा से भाग गया।

अपने राज्य के ६ वर्ष में उसने याचकों को बड़े-बड़े दान दिये। ब्राह्मणों को भरपेट भोजन कराया और 'अर्हन्तों' की पूजा की तथा नदी के दोनों तटपर ३८ लाख मुद्रा व्यय करके 'महाविजय-प्रासाद' नामक एक विशाल राजमहल बनवाया। ११ वें वर्ष में उसने दक्षिण देश को विजय किया और ११३ वर्ष पहले से चले आये तामिल राजाओं को छिन्न-भिन्न कर दिया। १२ वें वर्ष में उसने उत्तरापथ के राजाओं में, अपने आक्रमण के द्वारा आतंक उत्पन्न किया और उन्हें अस्त व्यस्त कर दिया। मगध पर आक्रमण करके उसने अपने हाथियों को 'गांगेय' नामक राजमहल में प्रविष्ट कराया और पूर्वकाल में 'नन्द राजा' के द्वारा अपहृत की गई "कलिंग जिन" की भव्य प्रतिमा को वापस अपने राज्य में ले आया।

१३ वें वर्ष में इस राजा ने 'सुपर्वत-विजय चक्र' में स्थित 'कुमारी-पर्वत' पर अपनी राजभक्त प्रजा-द्वारा पूजे जाने के लिए अर्हन्तों की स्मृति में 'निषद्यकाएँ' निर्माण करवाईं। तपस्वी मुनियों के निवास करने के लिए कई गुफाएँ बनवाईं और अर्हन्त-मन्दिर के निकट एक सुन्दर और विशाल सभा-मण्डप बनवाया। जिसके मध्य में एक बहुमूल्य रत्न-जटित 'मान-स्तम्भ' स्थापित करवाया। इस सभा-मण्डप में उसने समस्त मुनियों का एक सम्मेलन किया, जो चारों दिशाओं से उसमें सम्मिलित होने के लिए उसमें आये थे। इस मुनि-सम्मेलन में इस राजा ने भगवान महावीर की दिव्य-ध्वनि में उच्चारित शान्तिदायक 'द्वादशाङ्ग सूत्रों' का पाठ कराया और उन सूत्रों के उद्धार का प्रयत्न किया।

यह शिलालेख ऐतिहासिक महत्व की दृष्टि से प्राचीन भारत के समस्त उपलब्ध शिलालेखों में अधिक महत्वपूर्ण समझा जाता है। राखाल दास बनर्जी के मत से यह लेख पौराणिक वंशावलियों की पुष्टि करता है और ऐतिहासिक काल-गणना को ईसा की ५ शताब्दी पूर्व तक पहुँचा देता है।

सम्राट् खारवेल के पश्चात् पहली शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक खारवेल का वंश राज्य करता था।

उसके पश्चात् आन्ध्र शातवाहन के राजा गौतमी-पुत्र 'शातकर्णी' ने कलिंग पर विजय प्राप्त की। २ री सदी में शातवाहनों का पतन होनेपर अयोध्या के निवासी इक्ष्वाकु-वंशीय वीर पुरुष दत्त नामक व्यक्ति ने कलिंग देश पर अपना राज्य स्थापित किया।

ईसा की ५ वीं और छठीं शताब्दी में कलिंग-देश में ४ राजवंशों का उदय हुआ।

(१) कर्नाटक के गंगवंश की एक शाखा ने कलिंग के दन्तपुर को अपनी राजधानी बनाकर पूर्वी गंगवंश की स्थापना की और ई० सन् ४६७ से अपना गंग-सम्वत् भी प्रचलित किया।

इस वंश में इन्द्रवर्म प्रथम, हस्तिवर्म, इन्द्रवर्म द्वितीय इत्यादि राजा हुए, मगर इस वंश का सबसे अधिक उत्थान ११ वीं और १२ शताब्दी में हुआ। इस काल में वज्रहस्त देव, राजराजा चोड़गंग और नरसिंह देव नामक अत्यन्त प्रतापी नरेश इस वंश में हुए।

इन प्रतापी नरेशों के बाद यह राज्य नागवंश के अधिकार में चला गया, जो गिरता-पड़ता १८ वीं सदी तक चलता रहा।

(२) दूसरा वंश तोषली के भौमकरों का था। प्राचीन नगरी तोषली को इस वंश ने अपना केन्द्र बनाया। वर्तमान क्योंझर-राज्य प्रायः इसी प्रदेश में है। इसका शासक भञ्जीवंश उड़ीसा के सर्वश्रेष्ठ राजवंशों में समझा जाता है। सम्भव है, वर्तमान भञ्जीवंश प्राचीन भौमकरों का ही वंशज हो।

(३) तीसरा वंश कोंगद का शैलोद्भव वंश था। इस वंश का संस्थापक पुलिन्दसेन का पुत्र शैलोद्भव था। इस वंश के राजाओं ने ५ वीं सदी के मध्य से ८ वीं सदी तक राज्य किया।

(४) चौथा वंश सोमवंश था। इसका सम्बन्ध कलिंग-देश के कोशल प्रान्त से था। इसकी पहली शाखा ने चौथी सदी से ६ ठीं सदी तक और दूसरी शाखा ने छठी शताब्दी से १२ वीं शताब्दी तक शासन किया।

उपरोक्त चार वंशों के अतिरिक्त महाकोशल के कलचूरी और वेंगी के पूर्व चालुक्य भी ७ वी सदी से कलिंग की राजनीति में भाग लेने लगे थे।

उसके पश्चात् चोल-सम्राटों ने भी साम्राज्य का कलिंग तक विस्तार किया था। मुसलमानी काल में भी बंगाल के शासक और दक्षिण के बहमनी-नरेश इस देश के लिए बराबर लड़ते-झगड़ते रहे।

१८ वीं सदी में मराठों ने इस देश पर आक्रमण किया और नागपुर के राघोजी 'भोंसले ने यहाँ शासन किया।

धार्मिक दृष्टि से ईसा से पूर्व ६ठीं शताब्दी से ईसा की दूसरी शताब्दी तक यह देश जैन-धर्म के प्रभाव में रहा।

इसके पश्चात् ३ री सदी से ८ वीं सदी तक यहाँ पर बौद्ध धर्म और शैवधर्म का प्रभाव रहा।

१२ वीं सदी में राजा चोड़गंग के द्वारा पुरी नामक स्थान में सुप्रसिद्ध 'जगन्नाथ मन्दिर' की प्रतिष्ठा होने के उपरान्त जगन्नाथ की उपासना ही इस देश का प्रधान धर्म हो गया।

कोणार्क के प्रसिद्ध सूर्य-मन्दिर का निर्माण भी इसी युग में हुआ। (ज्योतिप्रसाद जैन — भारतीय इतिहास)

(आगे के इतिहास की पूरी जानकारी के लिए इस ग्रन्थ के दूसरे भाग में उड़ीसा का वर्णन भी देखें।)

करेन्स्की

रूस में जारशाही के अन्त और बोल्शेविक सरकार के संगठन के मध्यवर्ती काल में रूस की अस्थायी सरकार का युद्ध मन्त्री। जो मई १९१७ से अक्टूबर १९१७ तक अपने पदपर रहा।

रूस में जारशाही के पतन के पश्चात् स्थिति बहुत डाँवाडोल होगई। बोल्शेविक नेता लेनिन उस समय रूस में नहीं था। फरवरी क्रान्ति से मध्यवर्गी और उच्च वर्गीय लोग आगे आ गये और उन्हींलोगों ने अपनी सरकार बना ली थी मगर लोग इस सरकार से बिलकुल खुश नहीं थे और वे उसके विरुद्ध बगावत करने को तैयार थे। १६ अप्रैल को लेनिन रूस में आ गये। तब मई महीने में अस्थायी सरकार में कुछ परिवर्तन किया गया और समाजवादी नेता करेन्स्की युद्ध मन्त्री बनाया गया। करेन्स्की ने जर्मनी के खिलाफ युद्ध को और भी जोर से चलाने का प्रयत्न किया। मगर रूसी जनता इस महान् विनाशकारी युद्ध के पक्ष में नहीं थी। क्योंकि इस युद्ध पर प्रतिदिन चार करोड़ रूबल खर्च हो रहे थे। सरकार अन्धाधुन्ध नोट छापकर इस पैसे की पूर्ति कर रही थी। मुद्रास्फीति के कारण चीजों के भाव आसमान को छू रहे थे। कारखानों को कच्चा माल न मिलने से वे बन्द होते जा रहे थे। जिससे जुलाई महीने तक २०६ कारखाने बन्द होने से

करीब ५०००० मजदूर बेकार हो गये। १७ जुलाई को करीब पाँच लाख मजदूरों ने अस्थायी सरकार के विरुद्ध जबर्दस्त प्रदर्शन किया। करेन्स्की को पता लगा कि वह अपने प्रभाव को तेजी से खोता जा रहा है।

२५ अगस्त १९१७ को करेन्स्की ने राजपरिषद् की बैठक मास्को में बुलाकर यह चाहा कि उसके द्वारा सैनिक अधिनायकत्व कायम करके अपने शासन को मजबूत कर लिया जाय। मगर बोल्शेविक पार्टी की केन्द्रीय समिति ने उसी समय चार लाख मजदूरों का प्रदर्शन संगठित किया। सभी जगह के मजदूरों ने हड़ताल कर दी।

उस समय लेनिन हेलसिंकी (फिनलैंड) में छिपकर रह रहे थे और वहीं से वे केन्द्रीय बोलशेविक पार्टी को आवश्यक आदेश भेजते रहते थे। २७ सितम्बर १९१७ को लेनिन ने केन्द्रीय समिति को दो बड़े महत्वपूर्ण पत्र भेजे। इन पत्रों में एक पत्र "बोलशेविकों को राज्यसत्ता अवश्य अधिकार में ले लेना चाहिए" और दूसरा पत्र "मार्क्सवाद और विद्रोह" पर था। इन पत्रों के आधार पर बोल्शेविक केन्द्रीय-समिति ने बड़े जोर से सशस्त्र विद्रोह की तैयारी शुरू कर दी।

इसी तैयारी के परिणाम स्वरूप २५ अक्टूबर को प्रसिद्ध क्रांति हुई। रात को दो बजकर दस मिनट पर बोल्शेविकों ने अस्थायी सरकार के प्रधान स्थान हेमन्त-प्रासाद पर अधिकार कर लिया।

करेन्स्की ने हेमन्त-प्रासाद से भागकर कजाक जनरल क्रास्नोफ से मिलकर फिर अधिकार प्राप्त करने की कोशिश की। क्रास्नोफ ने २८ अक्टूबर को पेट्रोग्राड के समीप जास्को येसेल (आधुनिक पुश्किन) पर अधिकार कर लिया। तब राजधानी के मजदूर बड़ी तादाद में क्रान्ति सेना के साथ क्रास्नोफ से लड़ने गये। उनको उधर जाते देखकर इधर क्रान्ति विरोधी लोगों ने बोल्शेविक सरकार का तख्ता उलटने का प्रयत्न किया। मगर उन्हें सफलता नहीं मिली। ३१ अक्टूबर को क्रान्तिकारियों ने जनरल क्रास्नोफ की सेना को करारी हार दी और २ नवम्बर को क्रान्ति विरोधी शक्तियों ने बोल्शेविक सत्ता के सम्मुख अन्तिम रूप से आत्म समर्पण कर दिया।

कल्याण

हिन्दी भाषा में धार्मिक और सांस्कृतिक विषयों का प्रतिपादन करनेवाला एक सुप्रसिद्ध मासिक पत्र जिसका प्रकाशन गोरखपुर से श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार के सम्पादन में जनवरी सन् १९२६ में प्रारम्भ हुआ।

आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति के बहते हुए तीव्र प्रवाह में भी संसार के अंदर एक विचारधारा ऐसी है जो मानव जाति पर पड़नेवाले इस नूतन संस्कृति के प्रभावों को चिन्ता की दृष्टि से देखती है और मनुष्य जिस तेजी के साथ विज्ञान की सृजनात्मक शक्ति की अपेक्षा उसको विनाशक शक्ति की ओर आकृष्ट हो रहा है उसे संसार के लिए कल्याणकर नहीं समझती। साथ ही इस नवीन सभ्यता के कारण मनुष्य की मनोवैज्ञानिक स्थिति में जो परिवर्तन हो रहे हैं उसे भी शंका की दृष्टि से देखती है।

भारतवर्ष में भी इस प्रकार की विचारधारा के कुछ लोगों का यह विश्वास है कि संसार में छाई हुई इस अशांति और युद्धलिप्सा को मिटाकर स्थायी शान्ति और अहिंसक भावनाओं को उत्पन्न करने के मूल भूत तत्व भारतवर्ष की प्राचीन संस्कृति में निहित है और उन्हीं को ग्रहण करने से संसार मौजूदा समस्याओं पर विजय प्राप्त कर सकता है।

"कल्याण" मासिक पत्र इसी विचार-धारा का प्रतीक है और अपने जन्मकाल से ही वह इस विचारधारा के प्रचार में लगा हुआ है।

इस कार्य के लिए उसने भारत के पुराण, महाभारत, रामायण, उपनिषद् इत्यादि तमाम प्राचीन सुप्रसिद्ध साहित्य को विशेषाङ्कों के रूप में निकाल-निकाल कर अत्यन्त सस्ते मूल्य में जनता के अन्दर प्रचारित किया। भारतवर्ष के उच्चतर विद्वानों से लेख लिखवाकर इस पत्र में प्रकाशित किये जाते हैं। उत्तम कागज, उत्तम छपाई और उत्तम श्रेणी के चित्रों से सुसज्जित इस पत्र के विशेषाङ्क एक लाख तक की संख्या में प्रकाशित होते हैं और भारतवर्ष के समस्त हिन्दी-भाषी-क्षेत्रों में तथा अन्यत्र भी इसका प्रचार है।

आधुनिक संस्कृति के तीव्र तूफान के सम्मुख इस प्रकार के प्रयास अत्यन्त छोटे ही हैं मगर दृढ़ निश्चयी

और कर्मशील पुरुष इस पर ध्यान न देकर अपने कर्म क्षेत्र में मन्थरगति से बढ़ते जाते हैं। ऐसे कार्यों के परिणाम तत्काल नहीं भावी इतिहास के परदे पर दृष्टिगोचर होते हैं।

कल्प सूत्र

जैनाचार्य्य भद्रबाहु (ई० पू० ३१० के करीब) द्वारा रचित श्वेताम्बर जैनियों का एक पूजनीय ग्रन्थ। जिसको देवर्द्धिगणि क्षमा श्रमण द्वारा की गई वल्लभी वाचना में फिर से संग्रहीत किया गया। यह वांचना वीर निर्वाण संवत् ९८० में अर्थात् विक्रम संवत् ५१० में वल्लभी नगरी में हुई थी।

कल्प सूत्र श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय का एक पवित्र ग्रन्थ है। इसमें जैनियों के २४ तीर्थकरों में से तेईस तीर्थङ्करों का संक्षेप में और भगवान महावीर का चरित्र विस्तार पूर्वक वर्णित किया गया है। भगवान महावीर के सत्ताईस पूर्व भवों का, तपश्चर्य्या की स्थिति में उनपर आये हुए महाभयंकर उपसर्गों का, कैवल्य प्राप्ति के पश्चात् उनके समवशरण में सम्मिलित होने वाले इन्द्रभूति इत्यादि ग्यारह गणधरों का विवेचन बड़ी ललित भाषा में किया गया है। जिस प्रकार भाद्रपद मास में वैष्णव मन्दिरों पर सारे भारत में एक सप्ताह तक श्री मद्भागवत का पाठ होता है उसी प्रकार भाद्रपद मास में ही पर्यूषण पर्व के आठ पवित्र दिनों में सारे भारत के श्वेताम्बर जैन मन्दिरों में कल्प सूत्र का प्रवचन होता है। भगवान महावीर से केवल दो शताब्दी बाद इसकी रचना होने के कारण ऐतिहासिक दृष्टि से भी इस ग्रन्थ का बड़ा महत्व है और भगवान महावीर के इतिहास पर यह ग्रंथ प्रमाणभूत माना जाता है।

कविता-साहित्य

विश्व साहित्य का अध्ययन करने पर यह बात स्पष्ट मालूम होती है कि मनुष्य की वाणी ने जब साहित्य का रूप धारण किया तो सबसे पहले वह कविता के रूप में ही साहित्य के अन्तर्गत प्रकट हुई। संसार के सभी देशों के साहित्य का प्रारम्भ हमें काव्य के रूप में ही मिलता है गद्य का विकास बहुत बाद में साहित्य के अन्तर्गत [illegible] होता है। अब हमें यह देखना है कि भिन्न-भिन्न देशों के साहित्य में काव्य के विकास की यह धारा किस रूप में प्रवाहित हुई।

संस्कृत काव्य

संसार के प्राचीनतम साहित्य वेदों में ऋग्वेद सबसे प्राचीन माना जाता है। इस वेद के सूक्त त्रिष्टुभ, गायत्री, जगती इत्यादि छन्दों में लिखे गये हैं। प्रत्येक छन्द चार पदों का है। इन छन्दों की भाषा प्राचीन. आर्यों की साहित्यिक भाषा थी जिसे पाणिनी के व्याकरण ने व्यवस्थित रूप दिया। सरल और सम्मोहक भाषा में ऋग्वेद के सूक्त अत्यन्त सुन्दर और मार्मिक हैं। सामवेद गेय मंत्रों की संहिता है इसमें ७५ ऋचाओं को छोड़कर शेष सब ऋग्वेद की है। सामवेद के मन्त्र अत्यन्त सुन्दर और संगीत के परिचायक हैं। यजुर्वेद यज्ञमंत्रों की संहिता है। इसी प्रकार अथर्व वेद में भी यंत्र, मंत्र, तंत्र के रूप में काव्य का विकास हुआ है। अथर्ववेद में वरुण के प्रति कहे गये कुछ मन्त्र तथा राज्यारोहण के समय पढ़े जानेवाले मन्त्र काव्य की शालीनता में बहुत बढ़े हुए हैं।

वेदों से निकलकर संस्कृत का काव्य साहित्य ऐतिहासिक परम्परा में प्रवेश करता है। इस परम्परा में हमें सबसे पहले आदि कवि वाल्मीकि के दर्शन होते हैं। जिन्होंने अयोध्या के राजा रामचन्द्र की जीवनकथा को लेकर संसार प्रसिद्ध "रामायण" महाकाव्य की रचना थी। इस आदि महाकाव्य का समस्त भारत के परवर्त्ती साहित्य, सभ्यता और जीवन के आदर्शों पर ऐसा महान प्रभाव पड़ा जैसा संसार भर के किसी दूसरे महाकाव्य का नहीं पड़ा। वाल्मीकि के राम और सीता तब से लेकर हजारों वर्षों के बाद आज तक भी भारत के करोड़ों नर नारियों के आराध्यदेव हैं, वे उनके धर्म के आदर्श हैं, उनकी सभ्यता के आदर्श हैं, उनकी मानवता के आदर्श हैं, उनके जीवन के आदर्श हैं और उनके राजा के आदर्श हैं। रामचन्द्र के बिना भारतीय जीवन को पहचानना कठिन है। महर्षि वाल्मीकि ने सरल भाषा, सुन्दर शैली, प्रौढ़ विचार और

अजस्र माधुर्य्य के साथ रामायण के रूप में जिस महान काव्य को प्रस्तुत किया है, इतिहास के कई युग बीत जाने पर भी आज तक वह न केवल भारतीय साहित्य में बल्कि समग्र विश्व-इतिहास में अनुपम है, बेजोड़ है।

रामायण के पश्चीत् भारतीय काव्य साहित्य में जो दूसरी महान रचना सामने आती है वह महाभारत है। इसके रचयिता महर्षि व्यास हैं। जिनको भगवती सरस्वती का महान् आशीर्वाद प्राप्त था। इस महाकाव्य में कुरुवंश के उद्भव से लेकर कौरव पाण्डवों के बीच में हुए महाभारत युद्ध का वर्णन है। मगर इस वर्णन के अन्तर्गत इस महाकवि ने संसार की उत्पत्ति से लेकर, मनुष्य के जीवन में प्रतिदिन उपस्थित होनेवाली समस्याओं का, धर्म अर्थ, काम और मोक्ष के सभी सूक्ष्म तत्वों का, सामाजिक प्रश्नों का और राज्य व्यवस्था का ऐसा विश्लेषण किया है जो संसार के अन्य किसी साहित्य में मिलना असम्भव है। महाभारत की प्रसिद्ध लड़ाई प्रारम्भ हो रही है। दोनों पक्षों की सेनायें अपनी अपनी व्यूह रचना करके जमी हुई हैं। उनके बीच में कृष्ण अर्जुन का रथ लेकर युद्ध के मैदान में जाते हैं। अर्जुन देखता है कि उसके सामने लड़ने को कौन खड़े हैं? उसके पितामह भीष्म, उसके गुरु द्रोणाचार्य्य तथा ~~उसके~~ भाई बंधु, सभी तो उसके परिवार के हैं, जिनके साथ वह बचपन से खेलता कूदता आया है। उन्हीं बन्धु जनों से उसे लड़ना होगा। कदापि नहीं, राज्य के बटवारे के लिए, भूमि के टुकड़े के लिए, संसार के वैभव के लिए मैं इनसे लड़ूँगा। नहीं यह नहीं हो सकता, राज्य मिले चाहे न मिले, मैं इनकी हत्या नहीं करूँगा। वह मोह के वश होकर धनुष बाण रख देता है और कृष्ण को रथ वापस ले चलने का आग्रह करता है।

ऐसे संक्रमण काल में कृष्ण के द्वारा उसके मोह को दूर करने के लिए श्रीमद्भागवद्गीता का उपदेश होता है। यह श्रीमद्भगवद्गीता सारे महाभारत का जैसे निचोड़ है और समग्र संसार के साहित्य को जैसे चुनौती है। इस अठारह अध्यायों की छोटी पुस्तक में जैसे मानव जीवन की समस्त समस्याओं का, मनुष्य के कर्तव्य और धर्म का, ज्ञान और कर्म का, काम और निष्काम का निरूपण कर दिया गया है। समस्त संसार में, मानव जाति के सम्मुख कोई समस्या ऐसी नहीं जिसका हल गीता में न हो। उसके पश्चात् शान्ति पर्व में बाणों की शय्या पर पड़े हुए इच्छा मृत्यु भीष्म पितामह के द्वारा अर्जुन को दिया हुआ उपदेश जैसे सहस्रों धाराओं में झर झर करता हुआ समस्त मानव जाति को दिया जाने वाला शान्ति का एक महान सन्देश है। कहने को चाहे जो कह ले मगर वास्तविकता के धरातल पर क्या विश्व साहित्य में इसकी तुलना कहीं मिल सकती है।

समस्त महाभारत में अठारह सर्ग और एक लाख श्लोक हैं। यह महाकाव्य ओजपूर्ण शैली में कई प्रकार के श्लोकों में निर्मित किया गया है। अंग्रेजी इतिहासकारों के अनुमान के अनुसार इसकी रचना एक व्यक्ति ने नहीं अनेक व्यक्तियों की है और इसका निर्माण समय वे लोग ई० पूर्व ५०० से लेकर ई० सन् २०० के बीच मानते हैं। मगर भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में उनकी कई धारणाएँ जैसे गलत निकली हैं वैसे यह धारणा भी गलत हो सकती है। भारतीय इतिहासकार इस विषय पर अनुसन्धान कर रहे हैं।

महाभारत ही की तरह भारत के पुराण साहित्य में भी काव्य और अलंकारों की अजस्र धारा बही है। ये पुराण गिनती में अठारह हैं। जिनमें आर्यजाति के भिन्न-भिन्न देवताओं की कथाओं का काव्य-शैलो में वर्णन किया गया है। इनका रचनाकाल भिन्न भिन्न है।

इनके पश्चात् संस्कृत काव्य साहित्य भिन्न-भिन्न धाराओं में बहता हुआ "कालिदास" पर आकर ठहरता है।

कालिदास के काल के सम्बन्ध में इतिहासकारों में मतभेद है। कुछ इतिहासकार उन्हें ई० सन् से पूर्व ५७ वर्ष में होने वाले शकारि विक्रमादित्य का समकालीन मानते हैं और कुछ इतिहासकार गुप्तवंशीय द्वितीय चन्द्रगुप्त को ही विक्रमादित्य मानकर कालिदास को उसकी सभा का रत्न मानते हैं।

अगर कालिदास का समय ईसा से पूर्व ५७ वर्ष माना जाता है तो ईसा की पहली सदी में होनेवाले "बुद्ध चरित" नामक महाकाव्य के रचयिता "अश्वकोष" कालिदास के पश्चात् कालीन ठहकते हैं और यदि कालिदास द्वितीय चन्द्रगुप्त के समकालीन थे तो वे अश्वघोष के बाद के ठहरते हैं। जो भी हो मगर यह निश्चय है कि इन दोनों महान्

कवियों की रचनाओं पर एक दूसरे का प्रभाव निश्चित रूप से पड़ा है।

कालिदास के महाकाव्यों में रघुवंश और काव्यों में कुमार सम्भव, मेघदूत और ऋतु संहार इस समय उपलब्ध हैं। (विशेष वर्णन कालिदास नाम के अन्तर्गत इसी भाग में देखें)।

अश्वघोष की रचनाओं में "बुद्ध चरित" "सौन्दरानन्द" दो महाकाव्य बहुत प्रसिद्ध हैं। इस महाकवि के कुछ काव्यों और नाटकों के कुछ अंश तुरफाना में भी मिले हैं। अश्वघोष के पश्चात् चौथी सदी के करीब भी "अवदानशतक" "दिव्यावदान" इत्यादि बौद्ध काव्यों की रचना हुई।

इनके पश्चात् सातवीं सदी के अन्त में महाकवि "माघ" का नाम दृष्टिगोचर होता है। इस महाकवि का शिशुपाल वध नामक काव्य भी संस्कृत साहित्य में एक प्रकाश स्तम्भ की तरह दिखलाई पड़ता है।

ईसा की नौंवी सदी संस्कृत साहित्य में अनेक महाकाव्यों की रचना की शताब्दी है। इसी काल में जैन साहित्य में भी कई महाकाव्यों की रचना हुई। जिन सेनाचार्य और उनके शिष्य गुणभद्राचार्य इसी शताब्दी में हुए। जिन्होंने "आदि पुराण" और "हरिवंश पुराण" के समान अत्यन्त सुन्दर महाकाव्यों की रचना की। माणिक्य सूरि द्वारा रचित यशोधर चरित और अमरचन्द का पद्मानन्द काव्य की इसी काल की रचना है। इसी काल में अर्थात् राजा अवन्ति वर्मन के समय में कश्मीर में भी कई महाकाव्यों की रचना हुई जिनमें कवि रत्नाकर के द्वारा पचास सर्गों और ४३२१ पद्येमि लिखा हुआ "हर विजय", शिव स्वामी का 'काफिणभ्युदय" इत्यादि काव्य उल्लेखनीय हैं। इसी काल में आनन्दवर्द्धन नामक कवि ने अर्जुन चरित और राजशेखर ने "हरविलास" नामक महाकाव्य की रचना की थी जो इस समय अप्राप्य है।

बारहवीं सदी में कन्नौज के राजा जयचन्द राठौड़ के दरबारी कवि श्री हर्ष ने बाईससर्गों में नैषधीय चरित नामक सुन्दर महाकाव्य की रचना की जिसमें नलदमयन्ती के चरित्र के वर्णन में करुणारस की धार बहा दी है। इसी समय जैन कवियों में वाग्भट्ट, अभयदेव और धर्माभ्युदय नामक काव्य के रचयिता हरिश्चन्द्र भी हुए जिन्होंने बड़े सुन्दर काव्यों की रचना की।

चम्पू काव्य

संस्कृत साहित्य में "चम्पू काव्य" नामक काव्य के एक विशिष्ट अंग की रचना भी प्रचुरता से हुई जिसमें गद्य और पद्य दोनों मिश्रित रहते हैं। इन चम्पू काव्यों में जैन कवि सोमदेव (दसवीं सदी) द्वारा रचित 'यशस्तिलक चम्पू' हरिश्चन्द्र द्वारा रचित 'जीवन्धर चम्पू' राजाभोज द्वारा रचित रामायण चम्पू (ग्यारहवीं सदी) इत्यादि चम्पू उल्लेखनीय हैं।

बारहवीं सदी के अन्त में रचित्त महाकवि "जयदेव" का राधा और कृष्ण के प्रणय और विरह का प्रदर्शक "गीतगोविन्द" काव्य भी संस्कृत साहित्य की एक अमूल्य निधि है। इतना मधुर संगीत पूरक काव्य संस्कृत साहित्य में दूसरा नहीं है।

इसी प्रकार शतक काव्यों में भतृहरि रचित श्रृंगारशतक, वैराग्यशतक, नीतिशतक, कश्मीरी कवि अमरू का अमरू शतक, बाण का चण्डीशतक इत्यादि प्रसिद्ध हैं।

सोलहवीं सदी में सम्राट शाहजहाँ के समय में पण्डितराज जगन्नाथ संस्कृत काव्य के क्षेत्र में बहुत प्रसिद्ध हुए उनके गंगालहरी और भामिनी विलास नामक काव्य, सुन्दर शब्द रचना और अपने माधुर्य गुण के कारण बड़े प्रसिद्ध हैं।

प्राकृत काव्य

संस्कृत भाषा के इतिहास के साथ ही भारतीय साहित्य में प्राकृत भाषा का इतिहास भी जुड़ा हुआ है। प्राकृत का मतलब है स्वाभाविक या बोलचाल की भाषा और संस्कृत का अर्थ है संस्कार की हुई भाषा।

जिस प्रकार वैदिक साहित्य का विकास अधिकतर संस्कृत भाषा में हुआ उसी प्रकार जैन साहित्य का विकास प्रधान रूप से प्राकृत भाषा में हुआ। जैनियों के प्रायः अधिकतर धर्म ग्रन्थों और सूत्रों की रचना प्राकृत भाषा में हुई। आचारंग, उत्तराध्ययन, सूत्रकृतांग, दशवैकालिक, भगवती इत्यादि सभी आगम ग्रन्थों की रचना प्राकृत भाषा में हुई। इन सब विषयों का विवेचन यथा स्थान पर किया जावेगा। यहाँ पर हमें सिर्फ प्राकृत भाषा में लिखे गये काव्य ग्रन्थों का विवेचन करना है—

प्राकृत काव्य ग्रन्थों में हमें सबसे पहले "गाथा सप्तशती" नामक उत्कृष्ट काव्य ग्रन्थ के दर्शन होते हैं। इसकी रचना और संग्रह आन्ध्र शातवाहन नरेश हाल के द्वारा की गई है। जिनका समय ईसा की पहली सदी के आसपास माना जाता है। इस ग्रन्थ में ७०० प्राकृत गाथाएँ हैं। इनमें बहुत सी गाथाएँ लेखक के द्वारा रची गई हैं और बहुत सी उस समय की लोककथाओं से संग्रहीत की गई है। इन गाथाओं में प्रेम, शृंगार और करुणा रस की धाराएँ बहती हुई दृष्टिगोचर होती हैं। इस ग्रन्थ में काव्य के आनन्द के साथ साथ बहुत से ऐतिहासिक तथ्य भी प्रकट होते हैं।

इसी प्रकार की एक दूसरी सप्तशती की रचना जैन कवि जयवल्लभ ने की जिसका नाम "वजालग्गइन" है। राजा धर्मदास रचित "उवएसमाला" में जैन मुनियों और श्रावकों के आचार का निरूपण ५४० छन्दों में किया गया है। यह ग्रन्थ महावीर निर्वाण के कुछ समय बाद ही तैयार किया गया। आगे की शताब्दियों में इस ग्रन्थ पर अनेक टीकाओं की रचना हुई।

आठवीं सदी में प्रसिद्ध आचार्य हरिभद्र सूरि ने "उपदेश पद" नामक धार्मिक काव्य की एक हजार छन्दों में रचना की। इन्हीं हरिभद्र सूरि द्वारा रचित "समराइच कहा" नामक प्राकृत चम्पूकाव्य में जीवन के अध्यात्मिक दृष्टिकोण का बड़ा सुन्दर विवेचन किया गया है। उद्योतन सूरि द्वारा लिखा हुआ "कुवालय माला" नामक काव्य भी प्राकृत काव्य के क्षेत्र में एक प्रकाश स्तम्भ है।

अपभ्रंश भाषा भी प्राकृत और मागधी के परिवार की भाषा है। इस अपभ्रंश साहित्य को सुप्रसिद्ध जैनचार्य हेमचन्द्र ने उपदेशमाला, त्रिषष्ठि शलाका पुरुष आदि कई बहुमूल्य रचनाओं से स्मृद्ध किया। आचार्य्य हेमचन्द्र अपभ्रंश भाषा के "पाणिनी" माने जाते हैं। विक्रम की आठवीं और दसवीं सदी के बीच में स्वयंभूदेव और उनके पुत्र त्रिभुवनदेव हुए जिन्होंने हरिवंश पुराण और पउमचरित्र (रामायण) की रचना की। दसवीं सदी में धनपाल नामक कवि ने 'भावी संयता" नामक कथा काव्य की रचना की जिसका अंग्रेजी अनुवाद जर्मन विद्वान हरमन-जेकोबी ने १९१८ में प्रकाशित किया। इसी धनपाल कवि ने १८००० गाथाओं में हरिवंश पुराण की भी रचना की।

प्रवर सेन द्वारा रामायण की घटना पर आधारित "सेतुबन्ध" नामक काव्य भी बड़ा सुन्दर और भावपूर्ण है। आठवीं सदी में कन्नौज के राजा यशोवर्मन के राज कवि वाकपति राज ने "गाउड़वाले" नामक काव्य की रचना की जिसमें देहाती जीवन का बड़ा सुन्दर चित्रण किया।

फिर भी इतना जरूर मानना पड़ेगा कि प्राकृत भाषा का महत्व शृंगारपूरक काव्यों की अपेक्षा धार्मिक काव्यों और ग्रन्थों के कारण ही अधिक है।

बेबीलोनियन साहित्य के काव्य

भारतीय संस्कृति ही की तरह मध्य एशिया के मेसोपेटोमिया क्षेत्र में विकसित होने वाली, सुमेरियन, बेबिलोनियन और असीरियन सभ्यताएँ भी इतिहास के अत्यन्त प्राचीन युग में विकसित हुई थीं। इन तीनों सभ्यताओं का समय ईसा से ३००० वर्ष पूर्व से लेकर ६०० वर्ष पूर्व तक माना जाता है।

बेबिलोनियन सभ्यता का बहुत सा साहित्य ईंटों पर कीलनुमा क्यूनीफार्म लिपि में खुदा हुआ है। इस प्रकार की हजारों ईंटों का संग्रह असुर सम्राट बनिपाल ने अपने संग्रहालय में करवाया था। यह संग्रह पुरातत्व विदों की खोज से अभी प्राप्त हुआ है।

इस साहित्य से पता चलता है हजारों बरस पूर्व के उस युग में भी बेबिलोनियन सभ्यता में अच्छे-अच्छे काव्यों की रचना हुई थी।

इनमें से एक काव्य का नाम "गिल्गमेष" है यह उस समय की लिपि में बारह बड़ी-बड़ी ईंटों पर खुदा हुआ है। इस काव्य में उस समय होने वाले जल प्रलय की कहानी बड़े ही मनमोहक और सुन्दर ढंग से कही गई है। यह कहानी जिउसुदू नामक एक प्राचीन व्यक्ति ने अपने वंशधर "गिलामेष" को सम्बोधन करके कही है (इस काव्य का पूरा वर्णन "गिल्गमेष" नाम के अन्तर्गत अगले भाग में देखें।)

इसी साहित्य का एक दूसरा काव्य "इर्रा" है। इस काव्य में उक्त सभ्यता के प्रधान देवता "इर्रा" के द्वारा मानव जाति पर किए हुए भयंकर कोप का वर्णन है। जिसके कारण

इन राज्यों के आसपास के राज्यों से भयंकर युद्ध होते हैं। जिनमें बहुत बड़ा नरसंहार होता है अन्त में "बेबीलोन" की विजय होती है।

इसी साहित्य का एक काव्य "एनुमा-एलिश" भी है यह काव्य सात ईंटों पर खुदा हुआ है। इस काव्य में पाँच सौ से ऊपर गाथाएँ हैं। इस काव्य में उनके देवता मार्डुक अक्कादी की कहानी है जो स्वर्गलोक का नेता बन गया था। इसमें देवताओं की उत्पत्ति और उनके पारस्परिक युद्धों का बड़ी रोचक भाषा में वर्णन किया गया है। इसमें संसार की उत्पत्ति, उसकी व्यवस्था, मनुष्य की उत्पत्ति आदि सभी विषयों का उसी प्रकार वर्णन किया गया है जैसा भारतीय पुराणों में देखने को मिलता है।

इन काव्यों के अतिरिक्त अक्कादी साहित्य में संस्कृत साहित्य की तरह बहुत से पुराणों की भी रचना हुई। इन पुराणों और काव्यों से मालूम होता है। कि भारतीय साहित्य का इस साहित्य पर बड़ा महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा था।

यूनानी काव्य

संस्कृत और अक्कादी काव्यों ही की तरह यूनानी काव्यों की परम्परा भी बहुत प्राचीन है और इस परम्परा का आदि कवि "होमर" माना जाता है। संस्कृत साहित्य के आदि कवि वाल्मीकि की तरह यूरोप में ग्रीक के आदि कवि होमर की बड़ी प्रतिष्ठा है। होमर का समय ईसा से नौ सदी पूर्व माना जाता है।

होमर के "ईलियड" और 'ओडेसी" दो महाकाव्य बहुत प्रसिद्ध हैं। ईलियड नामक महाकाव्य की कथा अर्गेसि नगर के राजा आगमेम्नन के भाई की पत्नी संसार की प्रसिद्ध सुन्दरी हेलेन का ट्रायनगर के राजकुमार द्वारा अपहरण और उसके विरोध में राजा आगमेम्नन द्वारा ट्रायनगर पर डाले गये घेरे और भयंकर युद्ध की कथा पर आधारित है।

होमर का दूसरा काव्य ओडेसी ट्रायनगर के युद्ध के प्रसिद्ध वीर इलिसिज की जीवन कथा पर आधारित है जो ट्रायनगर के युद्ध के पश्चात् दस वर्ष तक जहाजों पर द्वीप २ का भ्रमण करता रहता है और उसकी सुन्दर तथा साध्वी पत्नी पेनीलोप उसका इन्तिजार करती रहती है। दूसरे अनेक सम्पन्न व्यक्ति उससे विवाह का प्रस्ताव करते हैं मगर वह सबसे इन्कार कर देती है। इलिसीज का पुत्र अपने पिता को खोजकर लाता है और फिर पति-पत्नी का मिलन होता है। इसी कथानक पर "ओडेसी" के वीर काव्य की रचना की गई है।

होमर के काव्य यूरोप में इतने लोक प्रिय हुए कि उनको गा-गाकर सुनाने वाले लोगों की एक जाति ही बन गई जो "होमरीडी" के नाम से प्रसिद्ध थी।

होमर के पश्चात् यूनानी साहित्य में हीसाइड (Hesiod) का नाम विशेष प्रसिद्ध है जो एक किसान था। इसने किसानों के जीवन और उनपर आने वाली कठिनाइयों के सम्बन्ध में अपने काव्यों की रचना की। इसने भी अपने काव्यों में होमर द्वारा प्रयुक्त "वीर छन्द" का ही प्रयोग किया।

वीर छन्द की काव्य परम्परा के बाद यूनानी साहित्य में लिरिक काव्यों का प्रचार हुआ। ये लिरिक काव्य "सोलो" और कोरस दो प्रकार के होते थे। "सोलो" लीरिक अकेले गाये जाते थे और कोरस लीरिक समूह रूप में। लिरिक काव्यों के प्रारम्भिक रूप में ग्रीक कवि अल्कायूस (Alcacus) और सैफो (Sapho) नामक कवियित्री का नाम बहुत प्रसिद्ध है। सैफो का समय ई० सन् पूर्व ६५० है। एफ्रोदिते नामक ग्रीकदेवी की पूजा के लिए महिलाओं का एक दल साथ लेकर वह अपने लिरिकों का मधुर गान करती थी। उसकी शैली अत्यन्त सरल, मधुर और हृदयस्पर्शी थी। उसके काव्य में नारी हृदय की भावुकता के स्पष्ट दर्शन होते थे। उसके जीवनकाल से आगे की करीब चौदह शताब्दियों तक उसकी कविताओं का यश चारों ओर फैलता रहा। उसके अनुकरण पर अनेक कवियों ने अपनी कविताओं की रचना की।

"सोलो" लिरिक के पश्चात् यूनानी साहित्य में "कोरस" लिरिक की परम्परा चली। कोरस लिरिक समूहबद्ध रूप में धार्मिक भावनाओं का प्रचार करने के लिए गाये जाते थे। इस प्रकार के कोरस लिरिकों की रचना में "अल्कमन" "इबिकस" "पिण्डार" इत्यादि कवियों के

नाम उल्लेखनीय हैं। इन्हीं कोरस लिरिकों से आगे चलकर नाटक और ट्रेजिडी (दुःखान्त नाटक) का विकास हुआ। जिसका मूल प्रवर्त्तक एस्किलिस नामक प्रसिद्ध नाटककार था जिसका समय ईसा से पूर्व ५२५ से लेकर ४५५ तक था।

इसके पश्चात् ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में यूनानी-काव्यों का केन्द्र एथेन्स से हट कर सिकन्दरिया में आ गया। इस काल में यूनानी काव्य के अन्तर्गत कालीमेकस और अपोलोनियस नामक दो कवि विशेष प्रसिद्ध हुए। ग्रीक कविता का यह युग हेल्मोनिक युग के नाम से प्रसिद्ध है।

चीनी काव्य

चीनी कविताओं का इतिहास बहुत पुराना हैं। पुरातत्व विभाग के प्रयत्नों ने चीन के कई प्राचीन खण्डहरों को खोद कर प्राचीन काल की बहुत-सी ऐतिहासिक सामग्री ढूँढ़ निकाली है। जिसमें प्राचीन कविताओं का "शिह-चिंग" नाम का संग्रह भी प्राप्त हुआ है। इस संग्रह में ईसा से दो हजार वर्ष पूर्व से लेकर ईसा से ७०० वर्ष पूर्व तक की कविताओं का संग्रह है। यद्यपि उस काल के किसी प्रसिद्ध कवि का नामोल्लेख इसमें नहीं मिलता। इस संग्रह का सम्पादन चाऊ राजवंश के समय में हुआ था।

इसके पश्चात् चीनी काव्यों के इतिहास में प्रसिद्ध चू-युआन (Chw-yuan) (ई० पू० ३२८–२८५ तक) का आता है जिसने मिलो नदी में डूब कर आत्महत्या की थी। इस कवि की रचना "ली-साओ" शोक के अवसर पर गाये जानेवाले मर्सिया के रूप में हैं।

इसके पश्चात् प्रसिद्ध तांग राजवंश के सम्राट् ताई सुंग के समय में अर्थात् ईसा की सातवीं शताब्दी में चीनी काव्य की बहुत उन्नति हुई। इस काल में करीब २००० कवियों ने अपनी रचनाओं से चीनी काव्य साहित्य को स्मृद्ध किया। इन कवियों में वांग-वेई (सन् ६९९ से ७५९) ली-पो (सन् ७०१ से ७६२ तक) टू-फू (सन् ७१२ से ७७० तक) और पो-चू-यी (सन् ७७२ से ८४८ तक) विशेष प्रसिद्ध हैं। इनमें से वांगवेई धार्मिक काव्य का, ली-पो रोमाण्टिक काव्य का, टू-फू यथार्थवादी काव्य का और पोच-टू राजनैतिक कविताओं का सम्राट था।

इस युग के प्रधान ७७ कवियों की ३११ प्रसिद्ध कविताओं संग्रह अठारहवीं सदी में प्रकाशित किया गया जो आज भी चीनी जनता को अद्‌भुत प्रेरणा दे रहा है। ये कविताएँ चीनी जनसमाज की पठित और अपठित सारी जनता की जबान पर बसी हुई हैं।

ग्यारहवीं और बारहवीं सदी के प्रसिद्ध कवियों में सू-टुंग-पो (१०३६–११०१) लू-यो (११२५–१२१०) और लि-चिंग-याउ नामक महिला कवियत्री का नाम बहुत प्रसिद्ध है। इनमें ली-चिग-याऊ एक प्रसिद्ध कवियत्री के रूप में अमर है।

सत्रहवीं और अठारहवीं सदी के चीनी काव्य साहित्य में युआन-मेई (१७१६-१७९८) चांग-शिह-चुआन विशेष उल्लेखनीय हैं। युआन-मेई चीन में अठारहवीं सदी का सबसे बड़ा कवि माना जाता है। उस काल की अठारह महिला कवियत्रियाँ उसकी शिष्याएँ थीं। उसकी कविताओं के साथ उसकी शिष्या कवियत्रियों की कविताओं का संग्रह "सुई-युआन-सान शिह-चुंग के नाम से प्रकाशित हुआ।

च्यांग-शिह-चुआन चीन के तत्कालीन तीन प्रसिद्ध कवियों में से एक था उसकी कविताएँ ३१ खण्डों में प्रकाशित हुई।

उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के चीनी कवियों में चाउ-शू-जैन (१८८१-१९३६) कुओ–मो–जो (१८९२) हू-शिह (१८९१) लिन-मुतांग (१८९५) इत्यादि के नाम उल्लेखनीय है।

लैटिन-काव्य

जिस प्रकार संस्कृत भारत वर्ष की कई भाषाओं की जननी है उसी प्रकार लैटिन भाषा भी यूरोप की फ्रेंच, स्पेनिश, इटालियन इत्यादि कई भाषाओं की जननी मानी जाती हैं।

लैटिन काव्यों की परम्परा के प्रारम्भ में हमें लीवियस आण्ड्रोनिकस नामक कवि पता चलता है जिसका समय ई० पू० २८४ से २०४ तक माना जाता है। इस कवि ने महाकवि होमर के "ओडेर्सा" काव्य का लैटिन भाषा में अनुवाद किया था।

लीवियस के पश्चात् क्विण्टस इनियस का नाम प्राचीन लैटिन साहित्य में विशेष प्रसिद्ध है जिसने अठारह सर्गों में

''एनाल्स'' नामक प्रसिद्ध वीर काव्य की होमर परम्परा के वीर छन्दों में रचना की। इनियस को लैटिन साहित्य के पिता की तरह माना जाता है। इसका समय ई० पू० २६६ से १६६ तक माना जाता है।

इसके पश्चात् लैटिन साहित्य में व्यंग साहित्य की प्रतिष्ठा करनेवाले कवि लूसीलियस का नाम उल्लेखनीय है। तत्कालीन रोम के सामन्त कुलों के विलासपूर्ण जीवन का वास्तविक चित्रण लूसिलियस की व्यंगपूर्ण कविताओं में बड़े सुन्दर ढङ्ग से चित्रित हुआ है। इसका समय ई० पू० १८० से ई० पू० १०३ तक माना जाता है।

मगर लैटिन काव्य परम्परा का पूर्ण विकास ऑगस्टस सीजर के युग में हुआ। जबकि संसार प्रसिद्ध महान् कवि वर्जिल, होरेस, प्रोपेरियस, ओविद इत्यादि महान् कवियों ने अपनी अमर रचनाओं से इस साहित्य को सम्पन्न किया।

वर्जिल का महाकाव्य ''ज्योर्जिक्स'' लैटिन भाषा का अमरकाव्य है, जो अपने माधुर्य्य, ओज, ध्वनि इत्यादि सभी बातों में अतुलनीय है। वर्जिल का समय ई० पू० ७० से ई० पू० १९ तक था। वर्जिल के साथ ही ''होरेस'' का नाम भी लैटिन काव्यों के इतिहास में अक्षुण्ण है। इसका समय ई० पू० ६५ से ई० पू० ९ तक था। यह प्रधानतया ''ओड'' या कसीदों का महान् कवि था। इसके कसीदों के संग्रह ने लिरिक काव्यों के अन्तर्गत अपनी अक्षुण्ण कीर्त्ति को स्थापित किया।

कटुलस, प्रोपेर्टियस और ओविद नामक कवियों ने अपनी-अपनी प्रेमिकाओं से प्रेरणा पाकर अपने प्रसिद्ध लैटिन काव्यों की रचना की। इनकी प्रेमिकाओं के नाम क्रमशः ''लेस्बिया'' ''सिन्थिया'' और ''कोरिन्ना'' था। प्रोपर्टियस की तीन खण्डों में संगृहीत एलेजियों (मार्सिया) में उसकी सुन्दर काव्य कला नमूना देखने को मिलता है। और ''ओविद'' के द्वारा दस हजार छन्दों में लिखा हुआ ''मेतामारफोसेज'' नामक संसार का इतिहास काव्यकला की दृष्टि से अनुपम है।

मध्यकालीन युग में लैटिन काव्यों के इतिहास में प्रमुख रूप में महाकवि दांते नाम विशेष प्रसिद्ध है। दांते की विशेष रचनाएँ यद्यपि इटालियन भाषा में है और वह इटालियन भाषा का पक्षपाती भी था, फिर भी लैटिन-भाषा में भी उसने बहुत कुछ लिखा। लैटिन भाषा में उसकी रचना ''दि वुल्गारी एलोक्वेन्तिया'' विशेष प्रसिद्ध है।

सत्रहवीं सदी में महाकवि मिल्टन ने भी अपनी कई कविताएँ लैटिन में ही लिखी।

उसके पश्चात् यूरोप के भिन्न-भिन्न देशों में अपनी राष्ट्रीय भाषाओं का विकास हो जाने से लैटिन का महत्व उसी प्रकार कम होता गया जिस प्रकार भारत में प्रान्तीय भाषाओं का विकास हो जाने से संस्कृत का महत्व कम हो गया।

फ्रेञ्च काव्य

फ्रेञ्च काव्यों का प्रारम्भ भी अन्य देशों के साहित्य की भांति वीरगाथाओं से ही प्रारम्भ होता है। सबसे पहले मध्यकालीन फ्रेञ्च साहित्य में हमें ''रोलां के गीत'' नामक काव्य देखने को मिलता है जिसका रचना काल ग्यारहवीं सदी के अन्त में माना जाता है। इसमें सम्राट शार्लमेन महान् के वीरतापूर्ण शौर्य्य की कथाएँ बड़ी ओजस्वी भाषा में प्रस्तुत की गई हैं। शार्लमेन के अतिरिक्त और भी कई वीर गाथाओं का इसमें समावेश है।

इसी के साथ-साथ छोटी-छोटी काव्यबद्ध वीरगाथाओं का जिन्हें फ्रेञ्च भाषा में ''ले'' (Lay कहते हैं फ्रेञ्च साहित्य में बहुत प्रचार हुआ।

चौदहवीं और पन्द्रहवीं सदी में फ्रेञ्च साहित्य में ''लिरिक काव्यों'' की रचना भी होना प्रारम्भ हुई। लिरिक काव्यों के कलाकारों में फ्रान्सोइस विलों (Francois Villon) का नाम उसके ''तैस्तामां'' नामक काव्य की वजह से प्रसिद्ध है। पुनर्जागरण या रेनेन्सा के युग में फ्रेञ्च साहित्य में लिरिक काव्यों का अधिक विकास हुआ। इस युग के कवियों में क्लीमेण्ट मारोट (Clement marot) जोकिम-डु-बैले (Joachim-Du-Bellay) मॉरिस सेव (Maurice-Sceve) लुईस लैबै (Louise-

Labe) इत्यादि कवियों ने फ्रेञ्च साहित्य को विशेषरूप से समृद्ध किया।

सत्रहवीं सदी में फ्रेञ्च काव्यों का विकास ट्रेजिडी और कॉमेडी नाटकों के रूप में हुआ। उन्हें स्वतंत्र रूप से काव्य नहीं कहा जा सकता। इस काल के कवियों या नाटककारों में "पियर कार्नेल" (Pierre Corneille , जीन रेसिन (Jean Racion) मौलियर (Moliere , इत्यादि साहित्यकारों के नाम बहुत उल्लेखनीय हैं।

इसके पश्चात् उन्नीसवीं सदी में फ्रेञ्च साहित्य में फिर से लिरिक काव्यों का प्रचार प्रारम्भ हुआ। इस युग के लिरिक कलाकारों में "लामार्टिन" (Lamartine) अलफ्रेड-डीं-मस्केट (Alfred-De-Musect) विग्नी (Vigny) इत्यादि कवियों ने अपनी सुन्दर और शालीन रचनाओं से फ्रेञ्च साहित्य में नवजीवन का संचार किया। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में फ्रेञ्च कविता में "परनासी" नामक एक नवीन कविता की परिपाटी अस्तित्व में आई। इस पद्धति में सुन्दर भाषा, विषयों की विविधता, भावों की स्वाभाविकता पर और गोपनीय यौन सम्बन्धों के विवेचन पर विशेष बल दिया जाता था। इस पद्धति के कवियों में जोसे मारिआ-डी-हार्डिया (Jose-Maria-de-Heredia) "लेकोण्ट डी-लिस्ले" (Leconte-De-Lisle) चार्ल्स बोदलेयर (Charles Bawdelaire) इत्यादि के नाम प्रसिद्ध है।

अंग्रेजी काव्य

अंग्रेजी काव्यों का वास्तविक और योजनाबद्ध प्रारम्भ महाकवि जिओफ्रे चॉसर से माना जाता है जिसका जन्म सन् १३४० में और मृत्यु सन् १४०० में हुई।

अंग्रेजी के काव्य इतिहास में पहला ख्याति प्राप्त कवि "चॉसर" ही माना जाता है। इसकी रचनाओं में "ट्रायल्स एण्ड क्रिसिडी" "दी लीजेण्ड ऑफ गुड विमेन" और कैण्टरबरी टेल्स" नामक तीन रचनाएं बहुत प्रसिद्ध हैं। पहली रचना "ट्रायल्स एण्ड क्रिसीडी" में क्रिसीडी के प्रति ट्रायल्स का निर्मल प्रेम और क्रिसीडी की उपेक्षा और धूर्तता का वर्णन बड़ी ही सजीव और हृदयग्राही काव्यधारा में किया गया है दूसरी रचना "दी लीजेण्ड ऑफ गुड विमेन" में कई इतिहास प्रसिद्ध स्त्रियों के प्रेम और विरह का वर्णन है। तीसरी रचना कैण्टर बरी टेल्स में कैण्टर बरी जाने वाले तीर्थ यात्रियों की साहसपूर्ण और रोमांचक कहानियां बड़े प्रभावशाली शब्दों में चित्रित की गई हैं।

चॉसर के समकालीन कवियों में "जॉनगावर" और विलियम लेंगलेण्ड का नाम भी उल्लेखनीय है।

सोलहवीं सदी के मध्य में अंग्रेजी काव्य-धारा पर इटाली के महाकवि पेट्रार्क का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। इस समय के अंग्रेज कवि अर्ल ऑफ़ सरे और थामसवेट ने इटालियन सॉनेट के चौदह पंक्तियों वाले मुक्तछन्द का प्रयोग अपनी कविताओं में करना प्रारम्भ किया। सॉनेट की यह छन्द परम्परा आगे जाकर अंग्रेजी काव्यों में अत्यन्त लोकप्रिय हुई और मारलो, शेक्सपीयर, सिडनी, कीट्स और वडसवर्थ के समान अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के कवियों ने भी अपने काव्यों में इसका उपयोग किया।

सोलहवीं सदी के महान् अंग्रेज कवियों में आयलैंण्ड निवासी एडमण्ड स्पेन्सर का नाम बहुत प्रसिद्ध है। इसने अपनी प्रतिभा से अंग्रेजी भाषा और काव्य को प्रगति का एक नवीन मोड़ दिया। उसकी रचनाएं "दी शैपर्ड्स कैलेण्डर" और "फ़ेयरी क्वीन" के नाम से प्रकाशित हुई।

इसी शताब्दी में संसार प्रसिद्ध नाटककार शेक्सपीयर और सुप्रसिद्ध कवि क्रिस्टोफ़र मार्लो भी अवतीर्ण हुए। अंग्रेजी काव्य के क्षेत्र में इन्होंने युगान्तर उपस्थित कर दिया। मार्लो की "हीरो एण्ड लीयण्डर" तथा शेक्सपीयर की "वीनस एण्ड एडोनिस" "रेप ऑफ़ लुक्रीस" इत्यादि रचनाएं उस समय की महान् काव्य सम्पदा का परिचय देती है। इसी प्रकार माइकेल ड्रेटन और सेम्युएल डेनियन भी इस शताब्दी के प्रसिद्ध कवि थे।

जॉन डोने (John Donne) भी सोलहवीं शताब्दी में अंग्रेजी साहित्य के अन्तर्गत एक क्रान्तिकारी कवि के रूप में प्रसिद्ध है। इसने अपनी कविताओं में इटालियन सॉनेट की शैली और पुरानी उपमाओं को एक दम छोड़ कर नवीनशैली और नवीन उपमाओं का प्रचलन प्रारम्भ किया। सत्रहवीं सदी के अंग्रेज धार्मिक कवियों पर उसका काफी प्रभाव पड़ा।

सत्रहवीं सदी अंग्रेजी काव्य के इतिहास में एक अमर सदी है। इस सदी ने अंग्रेजी साहित्य को जॉन मिल्टन के समान महान् कवि प्रदान किया। जो समय और राष्ट्रीयता की सीमा को लांघ कर समग्र संसार के महाकवि के रूप प्रकट हुआ। इसके सुप्रसिद्ध काव्यों में "कोमस" "पैराडाइज लॉस्ट" और पैराडाइज रिगेण्ड" विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। पैराडाइज लॉस्ट में ईव और एडम का संघर्ष और पैराडाइज रिगेण्ड में क्राइस्ट और शैतान के संघर्ष को चित्रित करने में उसने अपनी कलम तोड़ दी। संसार भर के चुने हुए काव्यों में मिल्टन के काव्य अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। सैम्यूअल वटलर और जॉन ड्राइडन भी इस शताब्दी के प्रसिद्ध कवि हैं।

अठारहवीं सदी के प्रसिद्ध कवियों में अंग्रेजी साहित्य के अन्तर्गत अलेक्भ्फोण्डर पोप का नाम बहुत प्रसिद्ध है जो प्रधानतः व्यंग कृतियों का कवि था। इसकी रचनाओं में "दी रेप ऑफ द लॉक" "डन्सियाड" इत्यादि प्रसिद्ध हैं। इस कवि की शैली का आगामी कवियों पर भी काफी असर पड़ा।

ओलिवर गोल्डास्मिथ भी अठारहवीं शताब्दी का एक प्रसिद्ध कवि है इसकी रचनाओं में "ट्रेव्हलर" और "डिजर्टेडविलेज" विशेष प्रसिद्ध है। इसी सदी में "जेम्सटॉमसन" नामक कविने प्राकृतिक सौन्दर्य के निरूपण में "सिक्स सीजन्स" नामक ऋतुओं के सौन्दर्य्य को वर्णन करनेवाला काव्य लिखा जो कालिदास के 'ऋतुसंहार" काव्य की तरह है। प्राकृतिक सौन्दर्य्य का निरूपण करने वाला अंग्रेजी साहित्य में सम्भवतः यह पहला काव्य था जो इंगलैण्ड के जन समाज में बहुत लोक प्रिय हुआ।

इसी शताब्दी में अंग्रेजी साहित्य के अन्तर्गत "एलेजी" या विषाद पूर्ण काव्यों का प्रादुर्भाव हुआ। ऐलेजी काव्यों के कवियों में टॉमसग्रे, विलियम कोलिन्स, राबर्ट बर्न्स इत्यादि कवि प्रसिद्ध है।

उन्नीसवीं सदी अंग्रेजी साहित्य में रोमाण्टिक काव्यों के सृजन के लिए प्रसिद्ध है। इस प्रणाली के अन्तर्गत टामस चेटरटन, वर्ड्सवर्थ, कोलरिज, स्कॉट, बायरन, शैली, कीट्स इत्यादि महाकवियों ने प्रकट होकर अपनी महान् कवित्वशक्ति से अंग्रेजी काव्य साहित्य को समृद्ध किया। ('विशेष वर्णन अंग्रेजी साहित्य के इतिहास के अन्तर्गत प्रथम खण्ड में देखें)।

इसी शताब्दी के कवियों में टेनिसन और ब्राउनिंग ने ने भी अंग्रेजी काव्य साहित्य पर अपनी अमर छाप लगा दी। विक्टोरिया-काल के कवियों में टेनिसन सबसे महान् माना जाता है। इसकी अनेक रचनाओं में "ईडिल्स ऑफ दी किंग" "इन मेमोरियम्" "लाक्सलेहाल" 'दी प्रिन्सेस" 'मॉड" "दी डेथ ऑफ इनोन" "ड्रीम ऑफ फेअर विमेन" "दी पैलेस ऑफ आर्ट" इत्यादि रचनाएँ विशेष प्रसिद्ध हैं। राबर्ट ब्राउनिंग दार्शनिक विचार धारा का कवि था उसने कई नाटकों और एकांङ्की की भी रचना की थी।

उन्नीसवी सदी के उत्तरार्द्ध के कवियों में मैथ्यू आर्नोल्ड, एडवर्ड फिट्जरलैण्ड, क्रिश्चियन रोसेट्टी, टॉमसन इत्यादि कवि प्रमुख माने जाते हैं। एडवर्ड फिटजरलैण्ड केवल ऊमर खैय्याम की रुबाइयों का अनुवाद करके ही अंग्रेजी साहित्य में अमर हो गया।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं सदी के प्रारम्भ में काव्य-साहित्य में रोमांटिक परम्परा समाप्त हो गई। इस सदी की कविताओं में विषाद, करुणा और प्रणय की भावनाओं का बाहुल्य हो गया था। इस सदी के कवियों में आस्कर वाइल्ड, अर्नेस्ट डाउसन, हॉसमेन इत्यादि कवियों के नाम उल्लेखनीय है।

जार्ज पंचम के शासन काल में अंग्रेजी काव्य साहित्य में "जार्जियन पोएट्स" नामक लिरिक कविता की एक विशेष प्रणाली आस्तित्व में आई। इस प्रणाली की उस काल के आलोचकों ने बड़ी कठोर आलोचना की। इस दल के कवियों में "रूपर्ट ब्रूक" "वाल्टर डि लामेर" "जेम्स एल रॉय फ्लेकर" विशेष उल्लेखनीय है।

बीसवीं सदी के अन्यान्य कवियों में ईलियट और "यीट्स" के नाम विशेष प्रसिद्ध हैं। ईलियट की कविताओं का संग्रह "प्रूफराक" के नाम से सन् १९१७ में प्रकाशित हुआ। "दी वेस्ट लैण्ड" भी उसकी एक प्रसिद्ध रचना है जिसका काफी प्रचार हुआ।

जर्मन-काव्य

संसार के अन्य देशों की तरह जर्मन साहित्य का प्रारम्भ भी वीर काव्यों से होता है। तेरहवीं सदी में रचित "दस निबे लुंगेनलीड" (Das Nibe lungen lied) नामक काव्य उस युग के जर्मन वीर काव्यों में प्रधान है। इसके रचयिता का ठीक-ठीक पता नहीं है। इस काव्य की कथा राजा गुन्थर और हूण सरदार आटिला के दरबार से सम्बन्ध रखती है।

बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी में जब कि जर्मनी में होहेनस्टाफेन वंश का राज्य था उस समय वहां पर वीर गाथाओं के "एपिक" काव्यों की रचना हुई। इन एपिक काव्यों के कवियों में "हार्तमान (Hartmann) बुलफ्राम (Wol Frain) और "गाटफ्रीड" (Gott fried) विशेष प्रसिद्ध हैं। इनमें से बुलफ्राम की रचना "पार्जीवाल" मध्यकालीन जर्मनी की श्रेष्ठ काव्य रचना है।

राजस्थान की चारण जाति की तरह मध्य काल के जर्मन राजदरबार में मिनेसांगर नामक दरबारी कवि रहते थे जो लोक-गीतों की रचना करते थे। इन लोकगीतों में वीर, करुणा, प्रणय, संयोग वियोग के चित्रण इतने सजीव रूप से हुए हैं कि आज भी जर्मन साहित्य में उनका स्थान है। इन कवियों ने तरह तरह के लोक गीतों में वीर काव्यों की रचना कर मध्यकालीन जर्मन काव्य साहित्य को समृद्ध किया है। ऐसे कवि और गायक लोग "मिनेसागर" (Minnesanger) नाम से प्रसिद्ध थे। ऐसे मिनेसांगर लोगों में "राइनमार" (Reinmar) और वाल्थर (Walther) के नाम विशेष प्रसिद्ध हैं। आगे जाकर इसी परम्परा में तानहाउसरे (Tannhauser) नामक प्रसिद्ध गायक पन्द्रहवीं सदी में हुआ। जिसने वाल्थर के अनुकरण पर ही अनेक लोक गीतों की रचना की।

पन्द्रहवीं सदी के अन्त और सोलहवीं सदी के प्रारम्भ में जर्मन काव्यों में गीतों की एक और परम्परा प्रारम्भ हुई। इन गीतों को गाने वाले लोग "माइस्तेर सिंगर" कहलाते थे। इस प्रकार गाये जाने वाले गीत अलंकारों से बोझिल और कठिन शैली के होते थे। माइस्तेर सिंगर परम्परा में "हान्स साक्स" (Hans Sachs) नामक व्यक्ति बहुत प्रसिद्ध हुआ। जिसके रचे हुए गीतों की संख्या चार हजार से अधिक है। यह प्रसिद्ध कवि प्रसिद्ध ईसाई सुधारक मर्टिन लूथर का समकालीन था।

सोलहवीं सदी में ही यूरोप में विशेष कर इटली के साहित्यिक क्षेत्र में ह्यूमेनिस्ट या मानवता वादी विचार धारा का प्रादुर्भाव हुआ। जर्मन साहित्य पर भी इस विचार धारा का बड़ा असर पड़ा। इस विचार धारा के अन्तर्गत जर्मन साहित्य में "जोहान्स रूखलिन" डेसीडोरियस इरेस्मस" और "उलरिच वान हुट्टेन" के नाम विशेष प्रसिद्ध हैं। इन कवियों ने धर्मसंस्था और चर्च के विशेषाधिकारों का जमकर विरोध किया और इस क्षेत्र में विशद साहित्य की रचना थी। इसी परम्परा में सैबेस्टेइन ब्रेण्ट की पुस्तक नारेन्शिफ (मूर्खों की नौका) ने बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की और इस काव्य के कई भाषाओं में अनुवाद हुए।

अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में जर्मन काव्य साहित्य में आधुनिक युग का प्रादुर्भाव होता है। इस युग का प्रवर्तक "जॉन ग्राटफीड हर्डर" था जिसने "स्तूर्म उण्ड ड्रांग" (Stnrm und Drang) नामक एक नवीन साहित्यिक आन्दोलन को जन्म दिया जिसका मतलब "तूफान और आग्रह" होता है। उसने तर्कवादी यांत्रिक दृष्टिकोण का प्रबल विरोध किया और देश के लोक गीतों में निहित विशिष्ट सौन्दर्य की तरफ लोगों का ध्यान आकृष्ट किया।

हर्डर के इस आन्दोलन को जर्मन काव्य साहित्य के प्रकाशमान नक्षत्र महाकवि गेटे और शीलर ने सहारा दिया। महाकवि गेटे एक प्रकार से हर्डर का शिष्य ही कहा जा सकता है। हर्डर के सम्पर्क में आकर उसने "स्तूर्म एण्ड ड्रांग" आन्दोलन को अभूतपूर्व चेतना प्रदान की। गेटे की काव्यधारा परम्परागत अलङ्कार, पिङ्गल और सब प्रकार के साहित्यिक बन्धनों को तोड़ मरोड़ कर स्वच्छन्द गति से पहाड़ी झरने की तरह कल-कल नाद करती हुई बह निकली। ऐसी मधुर, ऐसी प्रवाही और ऐसी ओज पूर्ण काव्य धारा अभी तक जर्मन जनता ने नहीं सुनी थी। लोक गीतों की परम्परा में उसका "हाइड्रेन रोस्लाइन" नामक संग्रह सन् १७७१ में प्रकाशित हुआ जो समय की मर्यादा का उपहास करता हुआ आज की

जर्मन साहित्य को प्रेरणा दे रहा है। दूसरी ओर उसकी "प्रोमेथियस" नामक रचना भी बहुत लोकप्रिय हुई। उसकी अन्य रचनाओं में "फॉस्ट" (नाटक) टॉरिस में इफीजेनी" "एग्माट" (काव्यपूर्ण नाटक) 'विलहेम मेइस्तर" (उपन्यास) इत्यादि रचनाएं बहुत लोकप्रिय हुई।

गेटे ही का समकालीन फ्रेडरिक शिलर भी जर्मन काव्य-साहित्य का एक प्रकाशमान नक्षत्र था। शिलर की महान् काव्यशक्ति ने भी समस्त संसार पर अपना प्रभाव डाला है। यह भी हर्डर का शिष्य और "स्तूर्म एण्ड ड्रांग" आन्दोलन का प्रबल समर्थक था। इसके नाटकों में इसकी काव्य प्रतिभा का पूर्ण परिचय मिलता है।

सन् १८४८ की यूरोप व्यापी औद्योगिक क्रान्तियों के पहले ही जर्मन जनता के मानस में क्रान्ति की भावनाओं का प्रादुर्भाव हो गया था और उसका असर साहित्य और कविता पर भी पड़ने लगा था। जिसके परिणाम स्वरूप जर्मन काव्य की धारा रोमेण्टिक क्षेत्र से हटकर यथार्थ वादी क्षेत्र में आ गई।

इस युग का सबसे प्रसिद्ध कवि हाइनारिख हाईने था। जो रोमेण्टिक कविता का अन्तिम और यथार्थवादी कविता का पहला कवि समझा जाता है। जीवन के प्रारम्भ में उसने कोमल भावनाओं से पूर्ण प्रणय सम्बन्धी रोमाण्टिक कविताओं की रचना की। पर बाद में औद्योगिक क्षेत्र में बढ़ते हुए पूँजीपति और मजदूरों के संघर्ष को बड़े जोरदार शब्दों में उसने अपनी कविता में स्थान दिया। यह फ्रेंच दार्शनिक सेण्ट साइमन का अनुयायी था। इस कवि ने जर्मनी में यथार्थवादी कवियों की एक नवीन श्रेणी को कायम किया।

कविता के क्षेत्र में इस यथार्थ वादी युग के साथ साथ उन्नीसवीं सदी के अन्त में प्रकृति वादी कविताओं का भी प्रादुर्भाव हुआ। प्रकृतिवादी कविता के क्षेत्र में आर्नो होल्फ (Arno Holz) गरहार्ट हाफ्मैन (Gerhart Hauptmann) इत्यादि कवि विशेष रूप से प्रसिद्ध हुए।

सन् १६३३ में जर्मनी में नाजी वाद का बोलबाला हुआ जिसके परिणाम स्वरूप नाजी रोमाण्टिक वाद साहित्य का जन्म हुआ। इस युग के काव्य साहित्य में नीत्शे और स्टेफनजार्ज का नाम विशेष प्रसिद्ध है। इन्हीं के सिद्धान्तों के अनुकरण पर इस काल के कवियों ने अपनी कविताओं की रचनाएँ कीं।

फारसी काव्य का विकास

ईसा की ६ शताब्दी से फारसी काव्य का प्रारम्भ माना जाता है। फारसी काव्य का पहला कवि 'रूदागी' माना जाता है।

मगर फारसी-काव्य में युगान्तर करने वाले कवियों में पहला नाम 'फिरदौसी' का आता है। इस कवि का समय ११ वीं शताब्दी में था और यह मुहम्मद गजनवीं का समकालीन था।

इस महान् कवि ने ३५ वर्ष परिश्रम करके अपने महाकाव्य शाहनामा को पूरा किया। इस शाहनामे में प्राचीन युग के ईरानी-पराक्रम का सजीव, भावपूर्ण, वीरोचित और प्रभावपूर्ण भाषा में वर्णन किया गया है। इस काव्य की धारा पहाड़ी निर्झर के समान कलकलनाद करती हुई बहती है।

इसी काल में फारसी-भाषा के अन्तर्गत 'सूफीवाद' की कविताओं का प्रवेश हुआ, जिसने फारसी-साहित्य को एक नया मोड़ दे दिया। ईरान के लोग इस्लाम की धार्मिक कट्टरता को पूरी तरह जज्ब नहीं कर पाये थे और उनके कलापूर्ण मस्तिष्क इस कट्टरता से निकल कर जीवन का यथार्थ आनन्द उठाने की ओर झुकते जा रहे थे। इन्हीं भावनाओं ने सूफीवाद की प्रवृत्तियों को जन्म दिया।

सूफी वाद के महान् कवियोंमें अल-फराबी, जलालुद्दीन रूमी, इब्न अबुलखैर, अल-गजाली, मंसूर, शम्स-तबरेज इत्यादि कवि विशेष प्रसिद्ध हुए।

१२ वीं सदी में फारसी के महान कवि उमर खय्याम ने पैदा होकर फारसी की कविता में एक शानदार युग की प्रतिष्ठा की। उसने अपनी कविताओं में धार्मिक कट्टरता, कर्मकाण्ड और परलोक के खिलाफ आवाज बुलन्द करके इसी जीवन में सभी प्रकार के सुखों को उपभोग कर लेने की प्रवृत्ति का जोरदार समर्थन किया। नारी, मदिरा और सौन्दर्य के सम्बन्ध में की हुई, उसकी रुबाईयाँ न केवल

फारसी-साहित्य को, प्रत्युत समस्त विश्व-साहित्य को आलोकित कर रही हैं। संसार की प्रायः बहुत सी भाषाओं में इनके अनुवाद हो चुके हैं।

तेरहवीं शताब्दी में 'शेखसादी' ने पैदा होकर अपनी कविताओं तथा "गुलिस्ताँ" और 'बोस्ताँ' नामक अपने दो ग्रन्थों द्वारा फारसी साहित्य को अमर कर दिया। शेखसादी विश्व-साहित्य का महान् कलाकार था।

चौदहवीं शताब्दी में फारसी-साहित्य का महान्-कलाकार 'हाफिज' हुआ जिसकी कविताओं का संग्रह 'साकीनामा के नाम से प्रसिद्ध है। हाफिज सूफी-कवि-शृंखला का अन्तिम कवि था। प्रेम और मदिरा की शृंगारिक कविताएँ भी उसने 'सूफीवाद के सिद्धान्तों के प्रकाश में की है।

१५ वीं सदी में फारसी का महान् कवि 'जामी' माना जाता है। इसका पूरा नाम 'नूरुद्दीन अब्दुर्रहमान जामी' था। ईरान के सबसे प्रसिद्ध कवियों के सप्तर्षि-मण्डल में जामी भी एक नक्षत्र की तरह जगमगा रहा है। उसका 'हफ्त नवरंग' नामक काव्य फारसी—साहित्य में कल्पना-शक्ति का मौलिक और सुन्दर चित्र उपस्थित करता है।

जामी के पश्चात् फारसी—साहित्य में और भी अनेकों कवि हुए, मगर ऐसे कवि बहुत कम हुए जो विश्व-साहित्य में अंकन किये जा सकें।

भारत वर्ष में भी फारसी के कुछ श्रेष्ठ कवि हुए जिनमें 'अमीर खुसरो" 'बदायूनी' 'फैजी' 'सर महम्मद इकबाल' इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं।

(फारसी-साहित्य का विशेष परिचय इस ग्रन्थ के दूसरे खण्ड में ईरानी साहित्य, शीर्षक के अन्तर्गत पृष्ठ ४४८ पर देखें)

उर्दू काव्य का विकास

भारतवर्ष में मुसलमानी शासन की स्थापना के पश्चात् हिन्दी और फारसी के सम्मिश्रण से जिस एक नवीन भाषा का विकास हुआ, उसे 'उर्दू' कहते हैं।

उर्दू-भाषा का विकास दिल्ली, लखनऊ और दक्षिण में अलग-अलग ढंग से हुआ। दक्षिणी उर्दू-साहित्य के विकास में बीजापुर और गोलकुंडा के नवाबों ने काफी सहयोग दिया। वहाँ के नवाब स्वयं भी कवि थे और कवियों के आश्रयदाता भी थे।

दक्षिणी क्षेत्र के उर्दू-कवियों में 'मुहम्मद-कुली कुतुब शाह' 'अब्दुल्ला कुतुबशाह', सुल्तान इब्राहिम शाह द्वितीय, हाशिमी और मुहम्मद शफीउद्दीन 'वली' का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

दिल्ली-केन्द्र के उर्दू-काव्य में प्रारंभिक युग के अन्तर्गत 'आरजू' 'आबरू' 'मजमून' 'मजहर' 'एकरंग' इत्यादि के नाम मशहूर हैं।

मध्यकालीन युग में अर्थात् सन् १७४३ से १८४३ तक के महान् कवियों में 'मीर' 'सौदा' 'दर्द' और 'मीरहसन' नामक चार कवियों के नाम प्रकाश-स्तंभ की तरह उर्दू-साहित्य में जगमगा रहे हैं।

दिल्ली-केन्द्र के उत्तरकाल में अर्थात् १८ वीं और १९वीं सदी के बीच में 'मोमिन' 'जौक' और 'गालिब' इत्यादि महान् कवियों ने अपनी महान् कवित्व-शक्ति से उर्दू-साहित्य को गौरवान्वित्त किया।

लखनऊ-केन्द्र के प्रसिद्ध कवियों में 'नासिख' 'दर्क' 'रश्क' 'मुर्नार' 'आबाद' 'आतिश' 'रिन्द' नवाब गाजी-उद्दीन हैदर' नवाब 'सआदत अली खाँ' और नवाब 'वाजिद अली शाह' के नाम विशेष प्रसिद्ध हैं।

इसी प्रकार लखनऊ केन्द्र के उत्तरकाल में 'अमीर' 'मीनाई' 'दाग' इत्यादि के नाम बहुत प्रसिद्ध हुए।

उर्दू-साहित्य के वर्तमानकाल में महम्मद हुसेन 'आजाद' अल्ताफ हुसेन 'हाली' 'अकबर इलाहाबादी' 'मुहम्मद इकबाल' 'बजनारायण चकबस्त' शब्बीर हुसेन 'जोश' मुंशी नौबतराय 'नजर' ब्रजमोहन दत्तात्रय 'कैफी' रघुपति सहाय 'फिराक' सुखदेव प्रसाद 'बिसमिल' आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। (उर्दू-काव्य का पूरा वर्णन इस ग्रंथ के दूसरे भाग में 'उर्दू-साहित्य के अन्तर्गत देखें।)

हिन्दी काव्य का विकास

हिन्दी काव्य के विकास को साधारणतया ५ भागों में विभक्त किया जाता है। पहला भक्ति-काल—जिसके नेता तुलसीदास, दूसरा रीति या शृंगार-काल जिसके नेता बिहारी, तीसरा खड़ी बोली काल जिसके नेता मैथिलीशरण गुप्त, चौथा छायावादी काल जिसके नेता 'निराला' या 'प्रसाद' माने जा सकते हैं और पाँचवाँ प्रयोगवादी या प्रगतिवादीकाल जिसके नेता के सम्बन्ध में अभी तक कोई निश्चित मत नहीं है।

इस विभाग के बावजूद हिन्दी-साहित्य के सर्वोच्च कीर्ति-स्तम्भ पर हम महाकवि तुलसीदास को बैठे हुआ देखते हैं। जो काल और विभाग के भेद की परवाह न करते हुए समस्त संसार के काव्य-क्षेत्र में अपनी विजय-दुन्दुभि बजा रहे हैं। बड़े-बड़े राजमहलों से लेकर उन छोटी-छोटी झोपड़ियों में जिनमें मिट्टी के तेल का दीया जलता है—इस महाकवि की वाणी समान भाव से गंगा की धारा की तरह बह रही है।

संसार के जितने अधिक लोका-समुदाय ने, पठितों ने पढ़कर और अपठितों ने सुनकर इस महान् कविको हृदयंगम किया है, उसकी जोड़ संसार भर में कहीं देखने को नहीं मिलती। संसार में बड़े-बड़े कवि हुए हैं, 'होमर' 'मिल्टन' शेक्सपियर, वाल्मीकि, व्यास, कालिदास इत्यादि जिनकी जोड़ संसार में मिलना मुश्किल है, पर जन-वाणी का कवि तुलसीदास के समान इनमें भी कोई नहीं मिलेगा।

हिन्दी काव्य का गौरव अनेक कवियों ने बढ़ाया है, मगर तुलसीदास ने इस अमर काव्य के अन्दर अपनी वाणी से जो महान् शक्ति प्रदान की है, उसकी तुलना दुर्लभ है।

भक्ति-काल के कवियों में कबीर दास का भी महत्व बहुत अधिक है। यह केवल कवि ही नहीं, बल्कि धर्म-प्रचारक भी थे और अपने सिद्धान्तों का प्रचार करने में इनकी जो वाणी निकली, वह कविता के रूप में प्रस्फुटित हुई।

सूरदास भी भक्तिकाल के महान् कवि हैं। जिस प्रकार तुलसीदास ने अपना आराध्य राम को मानकर सारी श्रद्धांजलि उनको अर्पित की है, उसी प्रकार सूरदास ने कृष्ण को अपना आराध्य मानकर अपने काव्य में उन्हीं को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है। काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से यद्यपि सूरदास के काव्य बहुत सुन्दर हैं, पर जन-सम्पर्क की दृष्टि से तुलसीदास की तरह वे जन-समाज के मुँहपर इतनी व्यापकता से न आ सके। /

भक्ति-रस की कविताओं में मीराबाई का नाम भी स्थिर और अमर है। जिसको काल की रेखाएँ नहीं मिटा सकतीं।

वैसे मीराबाई कवियित्री नहीं थीं। छन्द, पिंगल और अलंकार-शास्त्र का उन्हें ज्ञान नहीं था। मगर उनके हृदय का एक-एक कण अपने प्रियतम—अपने आराध्य-देव के प्रेम-रस में सराबोर था। उसी प्रेम-रस से जो धाराएँ निकलीं, वे ही अमर-काव्य के रूप में परिणित हो गई हैं।

'अरी, मैं तो प्रेम-दिवानी, मेरा दर्द न जाने कोय'

यह प्रेम का दीवानापन ही उनकी कविता का मूल-स्रोत था और यह दर्द ही उनके एक-एक शब्द से परिलक्षित होता है।

रसखान भी भक्तियुग के एक महान् कवि थे। मुसलमान होते हुए भी अपने आराध्य कृष्ण के प्रति अपने हृदय की, जो भक्ति-पूर्ण भावनाएँ इनके अन्तरंग से निकली हैं, उन्होंने इनकी कविता को कविता-साहित्य में अमर कर दिया है—

'या लकुटी अरु कामरिया पर, राज तिहूँ पुर को तजि डारौं'

वास्तव में रसखान ने भक्ति-रस के अन्दर महानता प्राप्त की थी।

रीति-युग या श्रृंगार-काल के कवियों में 'बिहारी' सर्व श्रेष्ठ हैं। अपनी रचना में छोटे-छोटे दोहों को अपना आधार बनाकर इस महान कवि ने श्रृंगार की जिन दिव्य अनुभूतियों को अपने काव्य में प्रकट किया है, वे हिन्दी-साहित्य की एक निधि हैं। बिना किसी प्रकार की अश्लीलता और उच्छृंखलता के, बिना किसी प्रकार को उद्दाम वासनाओं को अपनी कविताओं में रखे हुए, सहज और सीधे शब्दों में श्रृंगार-रस का प्रदर्शन इस महाकवि ने बड़े मनोमोहक ढंग से किया है।

"अमी-हलाहल-मद भरे, श्वेत-श्याम रतनार।
जियत-मरत-झुकि-झुकि-परत, जेहि चितवत इकबार ॥"

नारी के नेत्रों की ऐसी सुन्दर उपमा कहाँ देखने को मिलेगी।

महाकवि देव, मतिराम, पद्माकर आदि भी रीतिकाल के प्रसिद्ध कवियों में माने जाते हैं। २० वी शताब्दी के रीतिकालीन कवियों में जगन्नादास 'रत्नाकर' नाथूराम 'शंकर' शर्मा इत्यादि कवि प्रसिद्ध माने जाते हैं!

२० वीं सदी के प्रारंभ में हिन्दी-कविता में ब्रजभाषा का स्थान खड़ीबोली लेने लगी। इसका प्रारंभ यद्यपि भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्र से ही हो चुका था, पर इस क्षेत्र के सबसे महान कवि मैथिलीशरण गुप्त और अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' हुए।

मैथिली-शरण गुप्त ने हरिगीतिका-छन्दों में सरल भाषा के अन्तर्गत-'जयद्रथ बध', 'भारत-भारती' आदि सम सामयिक काव्यों की रचना कर, सोई हुई भारतीय जनता को अंकुश लगाकर जगाने का प्रयत्न किया। इनकी कविताओं की जन-साधारण में बहुत प्रतिष्ठा हुई और यह बहुत शीघ्र जन-मानस की जबान पर आ गईं। भारतीय जनता के जागरण के इतिहास में इस कवि का नाम नहीं भुलाया जा सकता। इसी कारण स्वतंत्र भारत की सरकार ने इनको 'राष्ट्र-कवि' के सम्माननीय गौरव से अभिषिक्त किया।

अयोध्यासिंह उपाध्याय का 'प्रिय-प्रवास' नामक महाकाव्य भी खड़ीबोली की परम्परा में एक अत्यन्त सुन्दर रचना है, मगर इसकी छन्द-परम्परा और भाषा संस्कृत-निष्ठ और कठिन होने से इसकी लोक-प्रियता साहित्यकारों तक ही सीमित रही।

खड़ी बोली के इसी क्षेत्र में पं० श्रीधर पाठक, जबलपुर के पं० माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, झालरापाटन के गिरिधर शर्मा नवरत्न, 'त्रिशूल' आदि कवि भी विशेष उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं से खड़ी बोली के कविता-साहित्य को बहुत सम्पन्न किया।

इसके पश्चात् हिन्दी-साहित्य में छायावाद के युग का प्रारंभ होता है। इस युग के प्रधान कवियों में 'निराला', जयशंकर 'प्रसाद', महादेवी वर्मा, सुमित्रानन्दन पन्त इत्यादि कवियों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' इस युग की सर्व-श्रेष्ठ रचना मानी जाती है।

'छायावाद-युग' के साथ ही साथ हिन्दी-काव्य-परम्परा में कुछ ऐसे कवि भी हुए जिन्होंने पूरी तौर से छायावाद, को न अपनाते हुए भी उसीके अनुकरण पर अपनी श्रेष्ठ कविताओं से हिन्दी-साहित्य को सम्पन्न किया। इन कवियों में बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', भगवती चरणवर्मा, शिवमंगल सिंह 'सुमन', रामधारी सिंह 'दिनकर' गोपालसिंह नैपाली इत्यादि कवियों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

इन्हींके साथ प्रसिद्ध कवि हरिवंश राय 'बच्चन' ने प्रसिद्ध कवि उमर खैय्याम के अनुसरण पर—हाला-प्याला वाद पर अपनी सुप्रसिद्ध रचना 'मधुबाला' और 'मधुशाला' के द्वारा हिन्दी-साहित्य में मादकता और मदहोशी की एक अपूर्व लहर पैदा कर दी। इन्होंने उमर खैय्याम की प्रसिद्ध रुबाइयों का भी हिन्दी में बड़ा सुन्दर अनुवाद प्रस्तुत किया।

आजकल और-और साहित्यों की तरह हिन्दी में भी पश्चिमी देशों के अनुकरण पर प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की कविताओं का प्रयोग प्रारम्भ हो गया है, मगर अभीतक इस क्षेत्र में कोई ऐसा युग-प्रवर्तक कवि दिखलाई नहीं देता, जो सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर सके।

बंगला-काव्य का विकास

बंगला-काव्य के विकास का इतिहास ४ युगों में विभाजित किया जा सकता है। जिसमें पहला सिद्ध-युग दूसरा माइकेल-युग, तीसरा रवीन्द्र-युग और चौथे को प्रयोग-वादी युग कहा जा सकता है।

(१) सिद्ध-युग का प्रारम्भ-काल सन् ७६० ई० से माना जाता है। और इस युग का पहला कवि 'लूईपाद' माना जाता है। जिसने बौद्ध-गान और दोहा नामक ग्रन्थ की रचना की थी। यह 'सहजिया' नामक एक सम्प्रदाय के प्रवर्तक भी माने जाते हैं।

इन चौरासी सिद्धों का बहुत सा साहित्य आज भी उपलब्ध है। इन सिद्धों ने जिस सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया, वह सहजिया-सम्प्रदाय है। यह सम्प्रदाय बंगाल में इन सिद्धों के युग से आजतक किसी न किसी रूप में विद्यमान रहा है और इसने कितने ही रूपों में बंगाली-साहित्य को प्रभावित किया है। इस साहित्य में आगे जाकर मंगल-साहित्य का विकास हुआ। इस मंगल-साहित्य में धर्म-मंगल, शिव-मंगल, मनसा-मंगल, चण्डी-मंगल, कालिका-मंगल इत्यादि कई प्रकार की परम्पराएँ आरम्भ हुईं।

धर्म-मंगल की परम्परा में मयूर भट्ट, शिवमंगल की परम्परा में रामकृष्ण राय, मनसा-मंगल की परम्परा में

द्विज वंशीदास पहले और श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। इन परम्पराओं में और भी बहुत से कवि हुए हैं। चण्डी-मंगल की परम्परा में मुकुन्द राम, भारतचन्द इत्यादि भी बड़े प्रसिद्ध कवि हुए।

सिद्ध-साहित्य का दूसरा युग श्रीकृष्ण-कीर्तन सम्बन्धी काव्य-धारा से प्रारम्भ हुआ। जिसे आगे चलकर 'चैतन्य महाप्रभु' ने अत्यन्त प्रमुख और प्रबल बना दिया। इस युग के प्रधान कवि 'चण्डीदास' माने जाते हैं।

इसी युग में 'कृत्तिवास' नामक कवि ने 'रामायण' का प्रसिद्ध अनुवाद किया। कृत्तिवास की रामायण बंगला-साहित्य की नींव का पत्थर मानी जाती है। कृत्तिवास का जन्म सन् १३४६ ई० के फरवरी महीने में हुआ था।

इसके कुछ समय पश्चात् कवीन्द्र परमेश्वर' नामक कवि ने 'महाभारत' का बंगला में अनुवांद किया।

इसके पश्चात् प्राचीन बंगाली काव्य-परम्परा का स्वरूप नई काव्यधारा में परिवर्तित हुआ और इस सन्धिकाल के पहले कवि ईश्वरचन्द्र गुप्त हुए जो बंगला के पहले पत्रकार भी थे। मगर बंगला साहित्य में युगान्तर करके एक नवीन काव्य-धारा बहा देने का श्रेय 'माइकेल मधुसूदन दत्त को मिला।

माइकेल मधुसूदन दत्त

माइकेल मधूसूदनदत्त पहले अंग्रेजी के बड़े भक्त थे। आरंभ में इन्होंने अंग्रेजी में ही काव्य-रचनाएँ प्रारंभ कीं। इंगलैंड भी गये। अंग्रेज स्त्रियों से एक के बाद एक—दो शादियाँ भी कीं। मगर अन्त में बंगाली-भाषा ने ही उनका सबसे अधिक सत्कार किया। बंगाली भाषा में इनके अनेक काव्य और नाटक प्रकाशित हुए, मगर इनकी सबसे क्रान्तिकारी रचना 'मेघनाद बध' साबित हुई। यह अपने युग का सर्वश्रेष्ठ काव्य ठहराया गया। इस काव्य को लक्ष्य करके परमहंस रामकृष्ण देव, ने कहा था—'तुम्हारे देश में यह एक अद्भुत प्रतिभाशाली पुरुष उत्पन्न हुआ था। मेघनाद-बध जैसा काव्य तुम्हारी बंग-भाषा में तो है ही नहीं, भारतवर्ष में भी ऐसा काव्य दुर्लभ है। तुम्हारे देश में इसी मेघनाद-बध काव्य को, जो बंगभाषा का मुकुट-मणि है, अपदस्थ कराने के लिए 'छछूँदर-बध' काव्य लिखा गया।

"इस समय यही मेघनाद-बध काव्य हिमालय-पहाड़ की तरह आकाश-भेदकर खड़ा है। जो लोग इसका दोष दिखाने में ही व्यस्त थे, उनके आक्षेप कहाँ उड़ गये। नूतन छन्द में और जिस ओजस्विनी भाषा में मधुसूदन अपना काव्य लिख गये हैं—उसे साधारण जन क्या समझेंगे।"

माइकेल मधुसूदन के इस युग में -'कृष्णचन्द्र मजूमदार' 'विहारीलाल चक्रवर्ती' 'हेमचन्द्र वन्द्योपाध्याय' इत्यादि कवि भी प्रसिद्ध हुए।

रवीन्द्रनाथ टैगोर

इसके पश्चात् बंगाली काव्य में एक नवीन युग के प्रादुर्भाव के साथ विश्व-कवि 'रवीन्द्रनाथ ठाकुर' अवतीर्ण होते हैं। कवि रवीन्द्रनाथ में ऋषियों जैसी दार्शनिक अनुभूति, यथार्थ दर्शन, साक्षात् अनुभव और अनन्त जिज्ञासा भरी हुई थी। बंगला-भाषा की जिस सामर्थ्य की ओर माइकेल मधुसूदन दत्त ने संकेत किया था, रवीन्द्रनाथ ने उस सामर्थ्य की महत्ता को सिद्ध करके बतला दिया। उनके काव्य-ग्रन्थों में 'गीताञ्जलि' काव्य सबसे श्रेष्ठ माना जाता है, जिस पर उन्हें सन् १९१३ ई० में अन्तर्राष्ट्रीय 'नोबल प्राइज' प्राप्त हुआ और वह बंगाली-कविता के क्षेत्र से उठकर विश्व-कविता क्षेत्र में आ गये।

रवीन्द्र-युग में बंगला-साहित्य में और भी कई महान् कवि उत्पन्न हुए। जिनमें प्रियम्बदा देवी, सतीशचन्द्रराय, रमणी-मोहन घोष, प्रमथनाथ चौधरी, सत्येन्द्रनाथ दत्त, करुणानिधान वन्द्योपाध्याय, इत्यादि कवि बहुत प्रसिद्ध हुए।

इसके बाद प्रथम महायुद्ध के पश्चात् बङ्गाली कविताओं ने एक नवीन मोड़ लिया और बंगाली-कविता अन्तरंग के ऊर्ध्वमुखी मानव को झटक कर स्थूल जगत के स्थूल तत्वों के भोग के मोह में आ गई। इस नवीन धारा के पहले कवि 'मोहितलाल मजूमदार' थे। मजूमदार आरंभ में रवीन्द्र के अत्यन्त भक्त थे, किन्तु सन् १९२४ ई० से यह रवीन्द्र के अत्यन्त विरोधी हो गये। मोहितलाल के काव्य में अति आधुनिकवाद का विलासी-रूप अभिव्यक्त हुआ है।

इसी युग में 'नजरुल-इस्लाम' नामक कवि हुए। इन्होंने 'अग्नि-वीणा' नामक काव्य-संग्रह द्वारा यथार्थतः एक विद्रोह भावना की अग्नि प्रज्वलित कर दी। इनका

दूसरा काव्य 'धूमकेतु' सन् १९२२ ई० में प्रकाशित हुआ। इन दोनों काव्य-ग्रन्थों ने नजरुल को अत्यन्त लोक-प्रिय बना दिया।

मोहितलाल की परम्परा, अति आधुनिकवाद में भी इन्होंने कई रचनाएँ कीं। इसी परम्परा में 'प्रेमेन्द्र मित्र' और 'बुद्धदेव वसु' भी प्रसिद्ध कवि हुए।

इस आधुनिकवाद या प्रगतिवाद में की कही जाने वाली प्रतिभाओं ने 'आधुनिक' को जो रूप दिया, उसमें दो बातें स्पष्ट हैं। पहली देह-सम्भोगी यौवन-सौन्दर्य और यौन-आकांक्षा को विविध भावस्तरों में चित्रित करना। दूसरी छन्द तथा भाषा में अनोखी उत्क्रान्ति और रवीन्द्रनाथ की परिपाटी, स्वरूप, भाषा और भाव—सबका बहिष्कार।

इस नई प्रयोगवादी कविता का सबसे अधिक विकास 'जीवानन्द दास' में हुआ। इन्होंने व्यवस्था-पूर्वक रवीन्द्रीय तत्वों का परित्याग किया। इसी क्षेत्र में जीवानन्द दास के पश्चात् इस प्रयोगवादी क्षेत्र में 'विष्णुदेव' ने जीवानन्द के पद-चिन्हों पर चलने का प्रयत्न किया। मगर सन् १९४१ के पश्चात् यह मार्क्सवादी हो गये। सुधीन्द्रनाथ दत्त भी इसी क्षेत्र के कवि माने जाते हैं। इनमें भी वही अनात्मवादिता, बुद्धि में अनास्था और इन्द्रिय-ग्राह्य अनुभूतियों का महत्व पाया जाता है।

इस प्रकार सिद्ध युग, माइकेल युग और रवीन्द्र युग के बीच विकास पाता हुआ बंगाली-साहित्य इस समय प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के युग में लहरें ले रहा है। मगर माइकेल युग या रवीन्द्र-युग की तरह कोई युगप्रवर्तक या अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त कवि इसमें पैदा हुआ हो - ऐसा दिखलाई नहीं पड़ता।

गुजराती काव्य का विकास

गुजराती-काव्य के विकास का इतिहास ईसा की १३ वीं सदी के मध्य से प्रारम्भ होता है जब कि जैन-धर्म के माननेवाले जैन-कवियों और आचार्यों ने 'रासा' या 'रास' नामक एक विलक्षण प्रकार की काव्य-रचना करके जन-समूह को धर्म और नीति के मार्ग पर चलाने का प्रयत्न किया।

गुजराती के मनसुखलाल कीरतचन्द नामक एक विद्वान् ने इस प्रकार के तीन चार सौ जैन-रासाओं की उपयोगी सूची प्रकट की है जिनकी रचना ईसा की १३ वीं सदी से १६ वीं सदी तक हुई है।

इन 'रासों' में जयनन्द सूरि का 'क्षेम-प्रकाश' गुणरत्न सूरि का "भरत बाहुबलि" (सन् १३५३) विजयभद्र का और "शीलरास" (सन् १३५४) उदयवन्त विजयभद्र सूरि का 'गौतम स्वामी' (सन् १३५५) और हरसेवक का 'मदनरेखा' (सन् १३५६) उल्लेखनीय हैं।

इसके पश्चात् ईसा की १५ वीं सदी में गुजराती-साहित्य के अन्तर्गत भक्तिमार्ग और कृष्णभक्ति का युग प्रारम्भ होता है जिसका सबसे बड़ा प्रतीक महान् भक्त नरसी मेहता के रूप में दिखलाई देता है।

नरसी मेहता

गुजरात के प्रसिद्ध भक्तकवि नरसी मेहता का जन्म सन् १४१५ ई० में और मृत्यु सन् १४८१ ई० हुई।

नरसी मेहता का काव्य साधारणतया दो प्रकार का है। एक शृंगारपूरक और दूसरा भक्ति पूरक। पर अन्त में उनका शृंगार भी भक्ति में लीन हो जाता है। इनकी शैली में भाषा का पाण्डित्य नहीं दिखलाई पड़ता। प्रभु की भक्ति में ओतप्रोत होकर इन्होंने जो कुछ कहा सरल भाषा में सीधे सादे ढंग में कहा है और इसी कारण सैकड़ों वर्ष बीत जाने पर भी आज गुजरात के घर घर में इनके पद बड़े प्रेम से गाये जाते हैं। महात्मा गान्धी ने भी अपनी प्रार्थना-पुस्तक (आश्रम-भजनावली) में सबसे पहले इन्हीं के पद—'वैष्णव जन तो तेने कहिये जो जानें पीर पराई रे' को पहला स्थान दिया है।

इसी युग में गुजराती—साहित्य के अन्तर्गत 'भालण' (ई० सन् १४३६–१५३६) 'भीम' (ई० सन् १४८४) 'पद्मनाभ' (ई० सन् १४५६) इत्यादि कवियों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

१६ वीं सदी के गुजराती-कवियों में 'बच्छराज' 'तुलसी' जैन कवि 'कुशललाभ' और 'लावण्य समय' इत्यादि कवि उल्लेखनीय हैं।

ज्ञानीभक्त अक्खा

१७ वीं सदी के गुजराती-साहित्य को गुजराती के महान् ज्ञानी-भक्त 'अक्खा' ने प्रकाशित किया है। अक्खा अहमदाबाद के समीप जेतलपुर नामक ग्राम के रहने वाले एक सुनार थे। अक्खा का जन्म सन् १६१५ में और मृत्यु सन् १६७५ ई० में हुई।

गुरु की खोज में अक्खा ने कई स्थानों पर भ्रमण किया। पर अन्त में काशी के अन्तर्गत एक झोपड़ी में रहने वाले 'ब्रह्मानन्द' सन्यासी को इन्होंने अपना गुरु बनाया।

अक्खा की रचनाओं में 'अक्खे-गीता' 'चित्त-विचार-संवाद' 'पञ्चीकरण' 'अनुभव-विन्दु' 'ब्रह्म-लीला' आदि प्रसिद्ध हैं।

इनकी भाषा में अधिक प्रौढ़ता नहीं है मगर अपने भावों को प्रकट करने में वह काफी असर-कारक है। किसी विषय की कड़वी टीका करने में, और बिना किसी भय के बुराइयों की फजीहत करने में—कटाक्ष करने में अक्खा वेजोड़ हैं। गुजराती भाषा में इस क्षेत्र में उनका मुकाबला करनेवाला कोई दूसरा नहीं है।

भक्त-अक्खा गुजराती-साहित्य में युग-प्रवर्तक कवि माने जाते हैं। इनकी कविताएँ भक्ति-मार्ग की अपेक्षा ज्ञान-मार्ग पर अधिक आधारित हैं। तत्वज्ञान में, प्रेमानन्द प्रकृति में और मनुष्य-स्वभाव का वर्णन करने में अक्खा की कविताएँ समर्थ हैं।

प्रेमानन्द

अक्खा के पश्चात् होनेवाले कवियों में 'प्रेमानन्द' को बिना किसी शंका के गुजराती-साहित्य का 'कविशिरोमणि' कहा जा सकता है। अपनी प्रखर बुद्धि से इस महाकवि ने गुजराती में एक ऐसे महान् साहित्य का सृजन किया, जो अपनी विविधता और समृद्धि में आज भी बेजोड़ है।

प्रेमानन्द का जन्म सन् १६३६ ई० में और मृत्यु सन् १७३४ ई० में हुई। इनके लिखे हुए ग्रन्थों में ३६ ग्रन्थ अबतक उपलब्ध हैं, जो प्रायः सभी पौराणिक उपाख्यानों पर आधारित हैं।

प्रेमानन्द की कविताएँ नदी के प्रवाह की तरह जन-मानस को मुग्ध करती हुई, गुजरात के गाँव-गाँव, शहर-शहर और मुहल्ले-मुहल्ले में प्रातःकाल होते ही गाई जाती है।

प्रेमानन्द के पश्चात् के कवियों में 'श्यामल भट्ट' (सन् १७०० से सन् १७६६ ई०) 'मुकुन्द' (सन् १६६५ ई०) 'देवीदास' 'शिवदास' 'विष्णुदास' 'नरहरि, 'रत्नेश्वर' तथा इसी काल के जैन-कवियों में 'आनन्दघन' (सन् १६३०) इत्यादि कवियों के नाम उल्लेखनीय हैं।

१८ वीं सदी में चारों ओर की राजकीय अशान्ति के कारण गुजराती-काव्य की गति कुण्ठित हो गई। इस काल में 'वल्लभ' भट्ट के द्वारा गुजराती के प्रसिद्ध 'गरबा-साहित्य' का अच्छा विकास हुआ। इनका बनाया हुआ 'कजोड़ा का गरबा' गुजरात में बहुत लोकप्रिय हुआ।

इसके पश्चात् अठारहवीं सदी के अन्त और उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में 'धीरा भगत, (सन् १७५३ से १८२५) 'नीराँत भगत' (सन् १७७० से १८४६) 'बापू साहब गायकवाड़' (सन् १७७९ से १८३४) 'भोज भगत' (सन १७८५ से १८५०) 'गिरिधर' (सन् १८३६) 'रणछोड़ भगत' 'ब्रह्मानन्द' 'मुक्तानन्द' 'निष्कुलानन्द' 'कृष्णाबाई, 'दीवाली बाई', 'राधाबाई' इत्यादि कवि और कवियित्रियों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

दयाराम

गुजराती-साहित्य को गौरव के शिखर पर आरूढ़ करने वाले तीन महाकवियों में अन्तिम महा कवि 'दयाराम' हैं। गुजराती साहित्य के अग्रभाग को, जिस प्रकार नरसी मेहता ने और मध्यभाग को प्रेमानन्द ने आलोकित किया, उसी प्रकार उसके पिछले भाग को दयाराम ने अपनी काव्य-शक्ति और मधुरता से आलोकित किया है। गुजराती-साहित्य को उच्चतम शिखर पर पहुँचाने वाले—ये तीन कवि गुजराती के महान कवि हैं। दयाराम की कविता गुजराती-साहित्य के मन्द पड़ते हुए दीपक का अन्तिम प्रकाश है।

दयाराम का जन्म ई० सन् १७७७ में नर्मदा-तट पर अवस्थित 'चन्दोड़' नामक ग्राम में हुआ था। इनकी किशोरावस्था, कृष्ण की किशोरावस्था की तरह चान्दोड़ की युवतियों में 'रास' रचने में व्यतीत हुई। इन नव युतियों के साथ तूफान मस्ती करने में दयाराम को बड़ा आनन्द आता था। दयाराम अपने ही समान तूफानी युवकों को इकट्ठे करके नर्मदा के घाट पर जाने वाली

रमणियों पर कंकड़ फेंककर या उनको दूसरी तरह छेड़कर अपना समय व्यतीत करते थे।

इसी प्रकार एक सोनारिन से झगड़ा हो जाने पर इनको अपना गाँव छोड़कर बाहर करनाली गाँव में चला जाना पड़ा वहाँ पर वे स्वामी 'केशवानन्द' के शिष्य हो गये।

इस प्रकार अपनी तूफानी किशोरावस्था को पारकर इस कवि ने कविता के क्षेत्र में अपनी शक्तियों का विकास किया। इसकी की हुई रचनाओं में इस समय ४८ रचनाएँ उपलब्ध हैं। इन रचनाओं में कुछ रचनाएँ धर्म-संबन्धी, कुछ नीति सम्बन्धी और कुछ सूफी-कवियों की तरह रहस्यवाद से परिपूर्ण हैं।

दयाराम की भाषा ही उसकी कविता का विशिष्ट गुण है। इसकी भाषा सरल, शुद्ध, संस्कारी और अर्थ-गौरव वाली है। दयाराम के शब्द-लालित्य की कद्र देखना हो तो सूरत और बड़ौदे की प्रसिद्ध "गरबा" गायिकाओं के 'गरबा-नृत्य' को देखना चाहिए। उस समय गानेवाली और सुननेवाले उस गान और नृत्य में एक तान होकर अपना भान भूल जाते हैं।

आधुनिक युग में गुजराती-साहित्य के अन्तर्गत 'दलपत राम' (सन् १८२० से १८६८) सर्वदा शंकर' (सन् १८३३ से १८८६) 'भोलानाथ' साराभाई, मणिलाल द्विवेदी, हरिलाल ध्रुव, नरसिंह राव दिवेटिया, मणिशंकर भट्ट, नानालाल दलपतराम, दौलतराम पंड्या इत्यादि कवियों के नाम बहुत उल्लेखनीय हैं। इनकी रचनाओं ने गुजराती साहित्य को बहुत समृद्ध किया है।

कविवाल्ला गीत

बंगाली-साहित्य के गीतों की एक परम्परा, जो करीब १८ वीं शताब्दी के मध्य से प्रारम्भ हुई।

बंगला-साहित्य में 'कविवाल्ला गीत' सामान्य लोक-भूमि के गीत माने जाते हैं। इन गीतों की गायक-मण्डली में स्त्री-पुरुष दोनों ही होते हैं। इस मण्डली का प्रमुख कथनकर्ता, रचनाकार कवि होता है।

ये मण्डलियाँ राधा-कृष्ण-विषयक या शिव-विषयक गीत गाती हैं। खड़े होकर गीत गाने के कारण इन्हें 'दण्ड कवि कहा जाता है।

इन कविवाल्ला-मण्डलियों में आगे जाकर प्रतियोगिता की भावनाओं का भी समावेश हुआ। एक से अधिक कविवाल्ला मंडलियाँ जहाँ जमा होती हैं, वहाँ तीव्र प्रतियोगिता चल पड़ती हैं। एक मण्डली का प्रधान 'आशु-कविता' के द्वारा दूसरी मण्डली पर तरह-तरह के व्यंग और फबतियाँ कसता है। उसका जवाब दूसरी मण्डली का प्रधान और भी अधिक कटु व्यंग्यों से देता है।

इस प्रकार आपस में गालियों की बौछार शुरू हो जाती है और कभी-कभी मारपीट की नौबत भी आ जाती है। मध्य भारत में जिस तरह 'तुर्रा क लंगी' के खेलवाले आशु कविता के द्वारा एक दूसरे पर व्यंग्य कसते हैं, यही हाल कवि वाल्ला मण्डलियों का है।

इन कविवाल्ला गीतों के गीतकारों का अभी तक जो पता चला है, उसके अनुसार 'रघू मोची' इसका पहला गीतकार माना जाता है। यह १६ वीं सदी में हुआ था। इसी के समकालीन 'रसू नरसिंग' 'रामरसू' और लालू नन्दलाल'—ये तीन कवि और थे, जो कविवाल्ला-गीतों की रचना करते थे।

१६ वीं सदी से १९ वीं सदी तक इस क्षेत्र में करीब ३४ कवियों के नाम मिलते हैं। इनमें पुर्तगाल का 'एंटनी' कविवाल्ला विशेष उल्लेखनीय है। इसने पुर्तगाली होते हुए भी बंगला में कविवाल्ला गीत काव्यों के लिए काव्य-मण्डली बनायी थी और ठेठ बंगाली की तरह कविवाल्ला गीतों की प्रतियोगिता में भाग लेता था।

कविवाल्ला-काव्य-परम्परा में 'दाशरथी राय' का नाम भी विशेष प्रसिद्ध है। हालाँ कि यह पूरी तरह कविवाल्ला नहीं थे। इनका जन्म सन् १८०४ में हुआ था। इनका प्रेम एक नीच जाति की स्त्री से हो गया था। इस स्त्री ने एक कविवाल्ला-मण्डली खड़ी की थी। दाशरथी इस मण्डली के लिए गीत बनाते थे। बाद में कुछ लोगों के कहने से इन्होंने कविवाल्ला मण्डली को छोड़ दिया और

एक नई शैली का गीत निकाला जो 'पाञ्चाली' के नाम से मशहूर हुआ। इन पाञ्चाली गीतों की लोक-प्रियता उस समय में बहुत बढ़ गई थी।

बंगला-भाषा के प्रथम पत्रकार ईश्वरचन्द्र गुप्त ने भी कविवाल्ला मण्डली के लिए बहुत से गीत और कवितायें लिखी थीं। प्राचीन परिपाटी के यह अन्तिम कवि माने जाते हैं।

कश्मीर

भारतवर्ष के उत्तरी शीर्ष-स्थान पर, राष्ट्रीय मुकुट की तरह, हिमालय की उपत्यकाओं में बसा हुआ एक रमणीक प्रान्त, जिसका इतिहास अत्यन्त प्राचीन और गौरवपूर्ण है।

प्राचीन पौराणिक परम्पराओं के अनुसार कल्प के प्रारम्भ से छे मन्वन्तर तक हिमालय के मध्य में अगाध जल से परिपूर्ण 'सती-सर' नाम का एक महान् सरोवर था। वैवस्वत नाम के सप्तम मन्वन्तर में महर्षि 'कश्यप' ने ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि देवताओं के द्वारा उस सरोवर में रहनेवाले 'जलोद्भव' नाम के असुर को मरवाकर उस सरोवर को पाटकर उसपर 'कश्मीर-मण्डल' की स्थापना की।

कश्मीर की महिमा का वर्णन करते हुए महाकवि 'कल्हण' अपने 'राज-तरंगिणी' नामक ग्रन्थ में लिखते हैं कि—"तीनों लोक में 'भूलोक' सबसे श्रेष्ठ है। भूलोक में भी 'कोबेरी' या उत्तर दिशा की शोभा उत्तम है। उसमें भी हिमालय-पर्वत प्रशंसनीय है और हिमालय-पर्वत पर भी 'कश्मीर-मण्डल' के समान परम रमणीक स्थान दूसरा नहीं है। चक्रधर, विजयेश, केशव एवं ईशान आदि पुनीत देवालयों से युक्त कश्मीर प्रदेश का कोई स्थान ऐसा नहीं है, जिसको तीर्थ नहीं कहा जा सके। पुण्य बल से ही इस प्रदेश पर विजय प्राप्त की जा सकती है—शस्त्र बल से नहीं! अतएव कश्मीर-वासी केवल परलोक से ही डरते हैं, शत्रुओं से नहीं डरते।"

कश्मीर की शोभा का वर्णन करते हुए स्वामी रामतीर्थ ने एक बार कहा था—

"अगर फिरदौस बररूए जमीनस्त।
हमीनस्तो हमीनस्तो हमीनस्त॥"

अर्थात् पृथ्वीपर यदि कहीं स्वर्ग है तो यही है—यही है और यही है।

ऐतिहासिक परिचय

कश्मीर का इतिहास बहुत प्राचीन है और इस इतिहास का व्यवस्थित रूप कश्मीर के महाकवि कल्हण के द्वारा १२ वीं सदी में लिखे गये 'राज-तरंगिणी' नामक ग्रन्थ से प्राप्त होता है।

राज-तरंगिणी कश्मीर के राजाओं के जीवन पर एक अत्यन्त सुन्दर, सरस और ललित संस्कृत-भाषा में लिखा हुआ मनोहर महाकाव्य है। काव्य के गुणों, अलंकारों और अतिशयोक्तियों से भरा-पूरा होनेपर भी यह ग्रन्थ विशुद्ध ऐतिहासिक तथ्यों से भी भरपूर है और इसीलिए प्राचीन भारतीय इतिहास-ग्रन्थों में ऐतिहासिक तथ्य और काल-गणना की दृष्टि से पहला स्थान इसी ग्रन्थ को दिया जाता है।

फिर भी 'ईसा' की ७ वीं शताब्दी के पहले तक दिया हुआ 'गोनन्द-वंश के राजाओं का इतिहास बहुत अस्पष्ट और कहीं-कहीं भ्रान्ति में डालने वाला भी है। ऐसा मालूम होता है कि मौर्य-वंशीय सम्राट 'अशोक' कुशाण-वंशीय सम्राट 'कनिष्क' और हूण-वंशीय राजा 'मिहिरकुल' इन सब विदेशी राजाओं का इतिहास भी गोनन्द-वंश के साथ मिलकर घिस-पिस हो गया है, जिससे वास्तविकता का पता लगाना कठिन होता है।

गोनन्द-वंश

राज तरंगिणी के अनुसार कश्मीर पर महाभारत के सम कालीन गोनन्द-वंश का शासन प्रारम्भ हुआ था। इस वंश के ५२ राजाओं ने २२६८ वर्ष तक कश्मीर पर शासन किया।

इस वंश का संस्थापक 'गोनन्द' धर्मराज युधिष्ठिर का समकालीन था। उसके बाद कई राजाओं का इतिहास अन्धकाराच्छन्न है।

उसके बाद इस वंश में 'लव' 'कुशेशयाक्ष' 'सुवर्ण' 'जनक' और 'शचीनर' नामक राजाओं का नाम आता है।

इसके बाद राजा 'शकुनी' का प्रपौत्र एवं सत्य-प्रतिज्ञ 'अशोक' नामक राजा पृथ्वी का शासक हुआ। वह बड़ा पुण्यात्मा था। जैनधर्म को स्वीकार करके उसने 'शुष्क-लेत्र' और वितस्ता नाम के दो स्थानों पर दो स्तूप बनवाये। उसने 'वितस्तास्त्रपुर' के धर्मारण्य-विहार में बहुत ऊँचा जैन-मन्दिर बनवाया। इसी परम प्रतापी राजा ने धन-जन से परिपूर्ण ९६ लाख दिव्य भवनों से विभूषित 'श्रीनगर' नामक बहुत बड़ा नगर बसाया। इसी राजा ने विजयेश्वर के समीप अशोकेश्वर नाम के दो प्रासाद बनवाये।[1]

अशोक के पश्चात् उसका पुत्र 'जलौक' बड़ा प्रतापी राजा हुआ। इस परमवीर राजा ने सर्वत्र फैले हुए दुष्ट म्लेच्छों को परास्त करके और भी कई देशों को विजय किया। इसकी पटराणी का नाम 'ईशान देवी' था।

राजा जलौक के बाद राज-तरंगिणी में राजा दामोदर और उसके बाद कुशाण वंशीय राजा 'हुष्क' 'जुष्क' और 'कनिष्क' के नाम आते हैं। ये तीनों राजा तुरुष्क होते हुए भी बड़े पुण्यवान और प्रतापी थे। कनिष्क ने 'कनिष्कपुर' नामक सुन्दर नगर की स्थापना की थी। इन राजाओं ने बहुत से बौद्ध-मठों का भी निर्माण करवाया था। उस समय कश्मीर-मण्डल में जाज्वल्यमान बौद्ध-भिक्षुओं का प्राबल्य था।।

कनिष्क के समय का निरूपण करते हुए राज-तरंगिणी में लिखा है कि—'उस समय भगवान् बुद्ध का निर्वाण हुए १२० वर्ष बीते थे। इस हिसाब से कनिष्क का समय ईसा से से पूर्व ३०० वर्ष से अधिक होना चाहिए।

मगर आधुनिक इतिहासकार कनिष्क का समय ईसवी सन् ७८ में मानते हैं और उसी को शक संवत का प्रवर्तक भी मानते हैं।

इस प्रकार राज-तरंगिणी की काल-गणना और आधुनिक इतिहास कारों की कनिष्क के सम्बन्ध की गई कालगणना में ३०० वर्ष से अधिक का अन्तर पड़ता है। मगर इतिहासकारों के अन्दर भी कनिष्क के काल-निर्णय के सम्बन्ध बड़े मत-भेद पाये जाते हैं। ऐसी स्थिति में काल-गणना-सम्बन्धी यह अन्तर विशेष आश्चर्य की चीज नहीं है।

राज-तरंगिणी के अनुसार सुप्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु 'नागार्जुन', भी उस समय कश्मीर में था और वह 'सर्वेश्वर' या 'बोधिसत्व' माना जाता था।

इसके पश्चात् कश्मीर का राज-सिंहासन 'अभिमन्यु, नामक राजा के हाथ में गया। जिसने 'अभिमन्युपुर' नगर बसाया और वहाँ पर भगवान् शंकर का परम वैभव-सम्पन्न मन्दिर भी बनवाया। यह राजा कट्टर शैव था और इसने कश्मीर से बौद्ध-धर्म को हटा देने का बहुत प्रयत्न किया। अभिमन्यु की कई पुश्तों के पश्चात् कश्मीर का राज-सिंहासन हूण-विजेता 'मिहिरकुल' के हाथ में आया। यह मिहिरकुल ईसा की ६ठीं सदी के मध्य में मालवा के राजा 'यशोधर्मन' से हार कर कश्मीर पहुँच गया और वहाँ के राजा को मारकर राज-सिंहासन पर बैठ गया।

राज-तरंगिणी में लिखा है कि—यह राजा यमराज के समान भीषण और दुष्ट स्वभाव का था। इसके शासन काल में उत्तरीय प्रदेश म्लेच्छों से भर गया था। रात-दिन मरे हुए हजारों मनुष्यों के शवों से परिवेष्ठित वह राजा अन्तःपुर में भी पिशाच के समान भयंकर दीखता था। कश्मीर के प्रवेश-द्वार पर खड्ड में गिरकर चिंघाड़ते हुए एक हाथी का आर्तनाद सुनकर मिहिरकुल को बड़ा आनन्द हुआ। इसलिए उस शब्द को बार-बार सुनने के लिए उसने उस खड्ड में सौ जीवित हाथी और गिरवा दिये। इस प्रकार इस राक्षस राजा ने ७० वर्ष तक राज्य किया।

इसके पश्चात् कश्मीर के इतिहास में गोनन्द-वंश के सुप्रसिद्ध, प्रतापी राजा 'मेघवाहन' का नाम आता है। ऐसा मालूम होता है कि मेंघ-वाहन जैन-धर्मावलम्बी था। क्योंकि राज्या-भिषेक के साथ ही उसने राज्य भर में जीव-हिंसा बन्द करने की घोषणा की और जीव-हिंसा के द्वारा जीवकोपार्जन करने वालों को खजाने से काफी धन देकर पवित्र धन्वे के द्वारा जीविकोपार्जन करने के योग्य बना दिया।

---

[1] १—कई इतिहासकार 'मौर्य-वंशीय सम्राट अशोक, और राज-तरंगिणी में वर्णित राजा अशोक को एक ही समझते हैं और उनका ख्याल है कि 'श्री नगर' की स्थापना सम्राट अशोक के द्वारा ही हुई।

कल्हण लिखते हैं कि—"साक्षात् 'जिनदेव' के समान अहिंसक उस राजा ने यज्ञों के अन्दर पशु-बलि के स्थान पर आटे से बनाये हुए पशु और घृतपशु के बलिदान से काम चलाये जाने के आदेश दिये।"

मेघवाहन की रानी 'अमृतप्रभा' ने विदेशी भिक्षुओं के निवासार्थ अमृत-भवन नामक एक बहुत ऊँचा विहार बनवाया। मेघवाहन ने ३४ वर्ष तक राज्य किया और उसके बाद उसके पुत्र 'प्रवरसेन' ने ३० वर्ष तक राज्य किया।

उसके पश्चात् मेघवाहन का पौत्र प्रवरसेन द्वितीय इस वंश में बड़ा प्रतापी हुआ। इसने अपनी विशाल सेना के साथ 'दिग्विजय' करके अनेक राजाओं को पराजित किया। उसके पूर्वजों का जो सिंहासन उज्जैन के राजा 'विक्रम' ने अपने यहाँ मँगवा लिया था, उसे वह पुनः उज्जैन से कश्मीर ले आया। इस राजाने वितस्ता नदी के तीर पर एक विशाल नगर का निर्माण भी करवाया था।

इसके बाद गोनन्द-वंश में 'रणादित्य' नामक राजा बड़ा प्रजाप्रिय, दयालु, न्यायी और उदार शासक हुआ। रणादित्य की रानी का नाम 'रणारम्भा' था। कल्हण कवि लिखते हैं कि—'रघुवंश में भगवान् राम तथा गोनन्द-वंश में राजा रणादित्य—दोनों ने अपनी प्रजा को स्वर्ग का सुख प्राप्त कराया। इसी कारण इन दोनों का प्रजा-प्रेम संसार में अनुपम माना जाता है।'

गोनन्द-वंश के अन्तिम राजा 'बालादित्य' ने अपनी पुत्री 'अनंगलेखा' का विवाह एक कायस्थ-कुल में उत्पन्न 'दुर्लभवर्धन' के साथ कर दिया। यही दुर्लभवर्धन बालादित्य के पश्चात् कश्मीर का राजा हुआ और इसका वंश कर्कोटक 'वंश' के नाम से मशहूर हुआ।

कर्कोटक-राजवंश

कर्कोटक-राजवंश में कुल १५ राजा हुए। इन राजाओं में दुर्लभ-वर्धन, चन्द्रापीड़, ललितादित्य प्रथम और जयापीड़ प्रथम बड़े प्रतापी राजा हुए। इस कर्कोटक-राजवंश का विस्तृत परिचय इस ग्रंथ के इसी खण्ड में कर्कोटक-राजवंश नामक शीर्षक के नीचे दिया गया है।

उत्पल-राजवंश

कर्कोटक-राजवंश के राजाओं में, जयापीड़ प्रथम के पश्चात् कोई ऐसा प्रतापी राजा नहीं हुआ, जो राज्य की प्रतिष्ठा को स्थिर रख सके। राजाओं के कमजोर हो जाने से तंत्रियों और दूसरे राजपुरुषों के हाथ में सारी राज-शक्ति चली गई। वे लोग राजवंश के जिस पुरुष को चाहते, पैसा लेकर उसे राज-सिंहासन पर बिठा देते और जिसे चाहते उसे राजगद्दी से उतार कर फिर दूसरे को बैठा देते। इन शक्तिशाली पुरुषों में जयापीड़ के पुत्र 'ललितादित्य' द्वितीय की कलवार पत्नी 'जयादेवी' का भाई उत्पल सबसे ज्यादा चतुर और राजनीतिज्ञ था। इसी उत्पल के हाथों में कर्कोटक-राजवंश का सिंहासन आया और इसका राजवंश 'उत्पल-राजवंश' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इस उत्पल-वंश का पहला राजा उत्पल का पौत्र 'अवन्तिवर्मा' हुआ।

अवन्तिवर्मा उत्पल-वंश का अत्यन्त प्रतापी और भाग्यशाली राजा हुआ। अवन्तिवर्मा के समय में कश्मीर का वैभव उन्नति की मंजिल पर पहुँच गया था। उसका राजमन्त्री 'शूर' बड़ा योग्य और राजनीतिज्ञ था। अवन्तिवर्मा के साम्राज्य में 'मुक्ताकण' 'शिव स्वामी' 'ध्वन्यालोक' के रचयिता कवि 'आनन्द वर्धन' और 'हर-विजय' ग्रन्थ के निर्माता कवि 'रत्नाकर'—ये चार विद्वान् बहुत प्रसिद्ध हुए। पूर्वकाल में राजा मेघवाहन के शासन-काल की तरह अवन्तिवर्मा के शासन-काल में भी १० वर्ष तक प्राणि-हिंसा सर्वथा बन्द थी।

राजा अवन्तिवर्मा के शासन में एक बार भीषण दुर्भिक्ष पड़ा। इससे प्रजा बड़े भयंकर कष्ट में पड़ गई। ऐसे समय में राज-तरंगिणी के अनुसार 'सूय्य' नामक एक वैज्ञानिक और इंजीनियर ने कश्मीर की नदियों के बाँध बँधवाकर उनके प्रवाहों के मार्ग को बदल कर—कश्मीर की बहुत सी भूमि को उपजाऊ बना दिया। त्रिग्रामी की बाँई ओर से सिन्धु और दाहिनी ओर से आनेवाली वितस्ता-ये दोनों नदियाँ पहिले वन्यस्वामी के मन्दिर के पास मिलती थीं, अब वे दोनों नदियाँ 'सूय्य' के द्वारा निर्मित 'श्रीनगर' के समीप नये संगम-स्थल पर मिलती हैं। जैसे

मंत्रशास्त्री मंत्र-बल से नागिन को अपने वश में कर लेता है, उसी प्रकार उस बुद्धिमान सूय्य ने लपलपाती तरंगरूपिणी जिह्वाओं से युक्त नागिन-स्वरूपा नदियों को वश में करके उन्हें अपनी इच्छानुसार विभाजित कर दिया। वितस्ता नदी के दोनों तटपर सात योजन लम्बा पाषाण-सेतु बन जाने के कारण 'महापद्म'-सरोवर' का जल नियन्त्रित हो गया।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न नदियों का जल उपयोग में लेकर उसने वहाँ की चारों नदियों के प्रभाव से कश्मीर को हरे-भरे खेतों से परिपूर्ण कर दिया।

कल्हण लिखते हैं कि "इस देश का जो उपकार महर्षि कश्यप और बलराम भी नहीं कर सके थे, उसे सूय्य ने अपने कर्म-कौशल के प्रभाव से कर दिखलाया। उत्तम सुभिक्ष के समय भी जिस कश्मीर देश में एक 'खारी' चावल का दाम दो सौ दीनार से कम नहीं होता था, सूय्य के प्रताप से वहीं पर एक 'खारी' चावल ३६ दीनार में बिकने लगा। महापद्म-सरोवर से निकली हुई जमीन एवं वितस्ता नदी के तटपर सूय्य ने 'सूय्यपुर' नामक एक नगर बसाया। उस दिगन्तव्यापी सरोवर के तटपर उसने मछलियों तथा पक्षियों की हिंसा निषिद्ध कर दी।

अवन्तिवर्मा की मृत्यु सन् ८८३ में (लौकिक संवत् ३९५९) हुई। उसके पश्चात् इस वंश का दूसरा राजा 'शंकर वर्मा' हुआ। शंकरवर्मा ने भी सेना लेकर बहुत से क्षेत्रों को विजय किया। अपने शासन के अन्तिमकाल में शंकरवर्मा क्रूर और अत्याचारी हो गया। इसकी रानी का नाम 'सुगन्धा' था।

शंकरवर्मा की मृत्यु सन् ९०१ (लौकिक संवत् ३९५७) में हुई उसके पश्चात् गोपालवर्मा राजा हुआ, जिसने केवल दो वर्ष राज्य किया।

इसके बाद कश्मीर के शासन की बागडोर शंकरवर्मा की विधवा रानी 'सुगन्धा' देवी के हाथ में आयी। विधवा अवस्था में इस रानी सुगन्धा का प्रेम-सम्बन्ध प्रभाकरवर्द्धन नामक एक राज्याधिकारी के साथ हो गया था। उसने भी सिर्फ दो वर्ष तक इस राज्य का शासन चलाया।

उसके पश्चात् इस वंश में 'चक्रवर्मा' नामक एक राजा हुआ। इस राजा ने 'रंग' नामक एक डोम की 'हंसी' नामक कन्या से विवाह करके उसको महारानी बना दिया। चक्रवर्मा ने बुद्धिभ्रष्ट राजा की तरह और भी कई अत्याचार किये। जिससे क्रुद्ध होकर 'डामर' जाति के लोगों ने उसके शयनागार में घुसकर सन् ९३७ ई० (लौकिक संवत् ३९९३) में उसकी हत्या कर डाली।

चक्रवर्मा के मारे जाने के पश्चात् उत्पलवंश का सबसे बड़ा पापी, नीच, पितृघाती और दुष्ट 'उन्मत्त अवन्तिवर्मा' नाम का राजा हुआ।

कल्हण कवि लिखते हैं कि "उस दुष्ट" की पापमयी कथा के संस्पर्श से भयभीत होकर मेरी कवितारूपी सरस्वती स्थगित सी हो रही है, किन्तु मैं उसे डरी हुई घोड़ी की भाँति किसी तरह धक्का देकर आगे बढ़ा रहा हूँ। जैसे जल से जायमान बड़वानल जल को ही खाता है, उसी प्रकार इस राजारूपी दुष्ट राक्षस ने अपने पिता के कुल को ही अपना आहार बनाया। अपने पिता को उसने 'जयेन्द्र-विहार' में कैद कर दिया और एक रात को कुछ हत्यारों को भेजकर उसने अपने पिता की हत्या करवा दी। उसके साथी 'पर्वगुप्त' ने इस राजा को बहका कर उसके द्वारा राजकुल के सभी मनुष्यों को मरवा डाला।

अन्त में सन् ९३९ ई० (लौकिक संवत् ३९९५) में इस राजा की मृत्यु हुई।

इसके पश्चात् ही दूसरे वंश का 'यशस्कर' नामक व्यक्ति कश्मीर के 'राजसिंहासन' का अधिकारी हुआ। यशस्कर शुरू-शुरू में बड़ा न्यायी और उदारचेता राजा था। लेकिन अपने शासन के अन्तिम समय में 'लल्ला' नाम की एक वेश्या पर आसक्त हो जाने और उसके मायाजाल में फँसने के कारण इस राजा का भी पतन हुआ और अन्त में वह भयंकर रोग से ग्रसित होकर ९ वर्ष तक राज्य करके सन् ९४८ ई० में मर गया। (लौ० सं० ४००४)

गुप्त-वंश

इसके पश्चात् 'गुप्तवंश' के 'संग्रामगुप्त' का लड़का 'पर्वगुप्त' कश्मीर-मण्डल का राजा बना। इसने केवल दो वर्ष तक राज्य किया।

इसके बाद पर्वगुप्त का पुत्र 'क्षेमगुप्त' कश्मीर का राजा हुआ। यह अत्यन्त दुराचारी और लम्पट राजा था। इस क्षेमगुप्त का विवाह 'लोहर' दुर्ग के शासक 'सिंहराज' की कन्या–कश्मीर की मशहूर 'दिद्दारानी' के साथ हुआ।

क्षेमगुप्त का देहान्त सन् ९५८ ई० (लौ० सं० ४०१४) में हुआ।

क्षेमगुप्त की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र 'अभिमन्यु' राजा हुआ, मगर राज्य की असली बागडोर 'दिद्दारानी' के हाथ आई। दिद्दारानी एक अत्यन्त महत्वाकांक्षिणी, कुटिल और चरित्रहीन स्त्री थी। अपने सौन्दर्य के जादू और राजनैतिक बुद्धि से कई बार उसने कठिन राजनैतिक परिस्थितियों पर विजय पाई और शासन के मार्ग में आने वाले सब कण्टकों को दूर कर राज्य को निष्कण्टक बना दिया।

सन् ९७२ ई०(लौ० सं० ४०२८) में राजा 'अभिमन्यु' की क्षय-रोग से मृत्यु हो गई। इसका दिद्दारानी को बड़ा दुःख हुआ और थोड़े समय के लिए उसकी धार्मिक प्रवृत्तियाँ जाग्रत हुईं। इसी काल में उसने अपने दिवङ्गत पुत्र अभिमन्यु की स्मृति में 'अभिमन्युपुर' नामक नगर बसाकर उसमें 'अभिमन्यु स्वामी' का मन्दिर बनाया। इसने अपने पति की स्मृति में 'कंकणपुर' नामक नगर और स्वयं अपनी स्मृति में 'दिद्दापुर' नामक नगर बसाया।

मगर इसके कुछ ही समय पश्चात् उसकी भोग-वासना फिर जाग्रत हो उठी और उस भोग-वासना के मार्ग में बाधक अपने पौत्र 'नन्दीगुप्त' और 'त्रिभुवन' को उसने मरवा डाला और भैंसे चलाने वाले 'तुङ्ग' नामक एक सुन्दर और बलिष्ठ युवक के प्रेम-जाल में फँस गई।

इस प्रेम-लीला के बीच में जो भी बाधाएँ उसको नजर आईं, उनको उसने दूर कर दिया। कश्मीर की गद्दी पर उस समय उसने अपने सबसे छोटे पौत्र 'भीमगुप्त' को बिठा रखा था, मगर जब भीमगुप्त का रंगढंग भी उसने अपने विरुद्ध देखा तो उसे भी जेल में डलवाकर मरवा दिया और सन् ९८० ई० (लौ० सं० ४०३६) वह स्वयं ही कश्मीर-मण्डल की गद्दी पर आसीन हो गई।

तुंग पर दिद्दारानी का प्रगाढ़ प्रेम था। उसने सिंहासन के सारे अधिकार उसे सौंप दिये थे। तब वहाँ के मंत्रियों ने राज्य में विप्लव मचाने के लिए दिद्दारानी के भतीजे 'विग्रहराज' को कश्मीर बुलवाया। विग्रहराज ने वहाँ आकर तुङ्ग के खिलाफ कुछ ब्राह्मणों से 'अनशन' प्रारंभ करवा दिया। तब राजनीतिकुशल दिद्दा ने उन ब्राह्मणों में से कुछ ब्राह्मणों को काफी सोना देकर उनमें आपस में फूट डलवा दी, जिससे ब्राह्मणों का अनशन अपने आप बन्द हो गया और विग्रहराज वापस चला गया।

उसके बाद तुंग ने कई विद्रोहियों को जान से मरवा दिया और कई को कश्मीर से निर्वासित करवा दिया। उसके बाद तुंग ने राजपुरी के शासक 'पृथ्वीपाल' को पराजित कर दिया और विरोधी डामरों के समुदाय को समूल नष्ट कर डाला।

सन् १००३ ई० (लौ० सं० ४०३६) में दिद्दारानी का देहान्त हो गया और उसके भाई के पुत्र 'लोहर-वंश' के संग्रामराज के हाथ में कश्मीर की गद्दी आई।

लोहर-राजवंश

रानी दिद्दा के बाद उसका भतीजा लोहर-वंश का संग्रामराज कश्मीर की गद्दी पर आया, मगर दिद्दा के मर जाने पर भी सारी राजशक्ति 'तुंग' के ही हाथ में रही। अनेक लोगों ने तुंग के खिलाफ कई बार विद्रोह किये, मगर वे सब विद्रोह तुंग की शक्ति को बढ़ाने में ही सहायक हुए।

इस समय काबुल की गद्दीपर शाहीराजा त्रिलोचनपाल आसीन था। उस पर महम्मुद गजनवी ने आक्रमण किया था। इस आक्रमण के विरुद्ध शाही राजा त्रिलोचनपाल की मदद पर मुसलमान-सेनापति के विरुद्ध लड़ने के लिए तुंग के सेनापतित्व में एक विशाल सेना भेजी गई। मगर इस लड़ाई में तुंग की सेना पराजित हो गई।

इसके बाद तुंग का प्रभाव कम हो गया और एक दिन विरोधियों के प्रहार से वह मारा गया।

सन् १०२८ ई० (लौकिक संवत् ४०८४) में राजा संग्रामराज की मृत्यु हुई और उसके बाद उसका अल्पवयस्क पुत्र 'अनन्तदेव' कश्मीर की राजगद्दी पर आया। यह राजा बड़ा पराक्रमी, प्रतापी और उदार था। राजा अनन्तदेव को अपने शासनकाल में

कई भयानक लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं, जिसमें इस राजा ने अपने शौर्य और पराक्रम का अभूतपूर्व परिचय दिया। 'ब्रह्मराज' नामक उसका एक सेनाधिकारी विद्रोही होकर कुछ म्लेच्छ राजाओं और डामरों तथा अन्य सहायकों के साथ कश्मीर पर चढ़ आया। कश्मीर की सेना से इनका भयंकर युद्ध हुआ, पर इसमें विजय अनन्तदेव की हुई।

राजा अनन्तदेव की रानी का नाम 'सूर्यमती' या 'सुभटा' था। यह बड़ी बुद्धिमती, उदार और राजनीति-कुशल थी। राजा अनन्तदेव इसी की सलाह से राज्य के सारे कार्य किया करता था।

अनन्तदेव का मंत्री 'हलधर' बड़ा योग्य राजनीतिज्ञ और कार्य-कुशल था। इसने राजा अनन्तदेव को भीषण संकटों से बँचाया।

अनन्तदेव का पुत्र 'कलश' था। राजपुत्र कलश कुछ दुराचारी मित्रों के सहयोग में पड़कर बड़ा दुराचारी और पर-दारालोलुप हो गया था और उसके साथी उसे अनन्तदेव के हाथ से राज-सत्ता ले लेने को उकसा रहे थे। उधर अनन्तदेव अपने पुत्र के अत्याचारों से दुखी होकर अपनी रानी और अन्य परिजनों को लेकर ईसवीं सन् १०९९ में (लौकिक संवत् ४१५५) 'विजययेश्वर-क्षेत्र' में जा पहुँचा और वहीं रहने लगा।

यहीं पर राजा अनन्तदेव ने कलश के पुत्र हर्षदेव को बुलाकर उसका राज्याभिषेक कर दिया। इससे क्रुद्ध होकर कलश ने अनन्तदेव के विजयेश्वर वाले स्थान में आग लगवादी। उस भीषण अग्निकाण्ड से राजा अनन्तदेव के समस्त उपकरण एवं सारा विजयेश्वर-पट्टन जलकर खाक हो गया। इस भयानक सर्वनाश के आघात से रानी सूर्यमती अत्यन्त दीन और निराश हो गई। उसे बड़ी कठिनाई से जलते हुए घर से बाहर निकाला गया। राजा कलश उस समय अपने महल की छत पर खड़ा-खड़ा अपने माता-पिता की यह हालत देखकर ताली पीट-पीट कर हँस रहा था।

राजा अनन्तदेव वहाँ से हटकर अपनी रानी के साथ वितस्ता नदी के उस पार चला गया और वहीं पर सन् १०९९ की कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा के दिन उसका देहान्त हो गया।

राजा अनन्तदेव की जीवितावस्था में ही उनका पुत्र राजा 'कलश' कश्मीर का राजा हो चुका था। उसने अपने पिता के साथ जो भयंकर अत्याचार किये, उसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। उसने शुरू-शुरू में अपने पुत्र हर्ष को युवराज बना दिया। मगर बाद में हर्ष के द्वारा विद्रोह करने पर उसे जेल में डाल दिया और हर्ष की रानियों को पकड़ कर उनके साथ बर्बरतापूर्ण बलात्कार किया। (कलशराजा का पूरा परिचय 'कलशराज' शीषक के अन्तर्गत इसी भाग में दिया गया है।) सन् ११०९ में (लौकिक संवत् ४१६५) कलशराज का देहान्त हुआ।

कलशराज के पश्चात् उसका द्वितीय पुत्र उत्कर्ष कुछ समय के लिए कश्मीर की गद्दी पर बैठा। मगर थोड़े ही समय में उसका राज्यकाल समाप्त हो गया और हर्षदेव कश्मीर की गद्दी पर आया।

कल्हण कवि के पिता 'चम्पक' इसी हर्षदेव के प्रधान मंत्री थे। इसलिए इस राजा का इतिहास राज-तरंगिणी में बहुत विस्तार के साथ दिया गया है।

हर्षदेव के शासन की मीमांसा करते हुए 'राज-तरंगिणी' में कल्हण कवि लिखते हैं कि "राजा हर्षदेव के कथा-प्रसंग में सब तरह के अच्छे कार्यों का सूत्रपात तथा उन कार्यों की असफलता का वर्णन करना पड़ेगा। इस कथा में सब तरह की सुव्यवस्था का निश्चय और उस निश्चय में राजनैतिक सूझ-बूझ का अभाव भी दिखाई देगा। राजा हर्षदेव की कथा प्रारंभ में बहुत उदारता भरी और अन्त में परधन-अपहरण की पराकाष्ठा से ओतप्रोत है। इसमें करुणा के आधिक्य का सौन्दर्य तथा हिंसा की अधिकता के कारण भीषणता भी भरी हुई है। धार्मिक सुकृत्य की अधिकता के कारण यह कथा लालित्य युक्त है और पापाचार की बाहुल्यता से कलंकित भी है। यह कथा वन्दनीय होकर भी निन्दनीय है। कौतुकप्रद होती हुई भी उपहासास्पद है। कमनीय होने पर भी शोचनीय है। वांछनीय होते हुए भी अपकीर्ति के योग्य है और स्मरण रखने के योग्य होते हुए भी त्याज्य है।"

मतलब यह है कि राजा हर्षदेव का प्रारम्भिक राजकाल अपने सुशासन और उदार व्यवहार के कारण बड़ा लोक-प्रिय रहा। इस राजा ने प्रार्थियों की प्रार्थना सुनने के लिए अपने महल के चारोंओर बड़े बड़े घंटे बँधवा दिये थे। उनकी ध्वनि सुनते ही यह प्रार्थी से मिलने के लिए तैयार हो जाता था। और उनकी शिकायतों को तुरत दूर कर देता था।

अपने छोटे भाई 'विजयमल्ल' पर हर्षदेव का बड़ा प्रेम था। क्योंकि उत्कर्ष के विरुद्ध हर्ष का साथ देकर उसने कश्मीर का राज्य 'हर्ष' को दिलवाया था। मगर दरबारी लोगों ने विजयमल्ल की भावनाओं को भड़काया, जिसके परिणामस्वरूप विजयमल्ल ने हर्ष के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और इस विद्रोह में विजयमल्ल मारा गया।

इसके साथ ही हर्षदेव ने दरबारियों के बहकावे में आकर राज्य के प्रधान सेनापति और अपने छोटे भाई 'कन्दर्प' को देश निकाला कर दिया और 'विजयराज' का बध करवा दिया।

राज-दरबार के इन दो सशक्त स्तम्भों के टूटते ही वहाँ पर अनीति और दुराचार का बोलबाला हो गया। स्वार्थी सामन्त विवेक-भ्रष्ट होकर मेंढों की तरह एक दूसरे से टकराने लगे और राजा हर्ष पूरी शक्ति से राज्य के वीर सामन्तों का निर्मम बध करवाने लगा। कश्मीर की घाटी में आये दिन किसी एकान्त सरोवर, खड्ड या वन-प्रदेश में करुण चीत्कार गूँजता और राज्य का कोई जाज्वल्यमान नक्षत्र टूटकर विलीन हो जाता। धम्मट तन्वंग और उसके ४ किशोर पुत्र, उत्कर्ष का ज्येष्ठ पुत्र 'डोम्ब' और विजयमल्ल के छोटे पुत्र—सभी बारी-बारी से सम्राट् की रक्त-लिप्सा के शिकार हो गये।

अतीत का भावुक और मनीषी हर्ष अब मर चुका था। और उसके स्थानपर एक ऐसा निरंकुश तथा अत्याचारी हर्ष प्रकट हुआ, जो इतिहास-पटल पर अनीति के असंख्य गहरे धब्बे छोड़ गया।

इसी समय किसी दुष्ट दरबारी ने कर्णाटक के राजा 'परमिड्डी' की महारानी अनिन्द्य सुन्दरी 'चन्दला' का सुन्दर चित्र हर्षदेव के सम्मुख उपस्थित कर दिया। उस चित्रपर राजा इतना मोहित हो गया कि उसने उसी समय प्रतिज्ञा की कि मैं कर्नाटक-राजा को पराजित कर जबतक इस देवांगना को अपनी राज-महिषी बना लूँ तबतक कच्चे कपूर का सेवन न करूँगा।

इन सब बातों से तथा दिन-रात सुन्दरी स्त्रियों के साथ उपभोग करते रहने से राजा हर्ष का खजाना खाली हो गया। तब इस राजा ने वहाँ के देव-मन्दिरों को लूटने का उद्योग प्रारम्भ किया। सबसे पहले उसने भीमकेशव के सुप्रसिद्ध मन्दिर की अपार सम्पदा को लूटा। उसके पश्चात् देश के सभी विशाल मन्दिरों को लूटने और उनकी मूर्तियों को तोड़-फोड़ कर नष्ट करने की आज्ञा दे दी। अत्याचारी हर्ष के इस राक्षस अभियान से रण-स्वामी और मार्तण्ड-स्वामी के मन्दिरों को छोड़कर कश्मीर के सारे मन्दिर अपवित्र हो गये। सम्राट् के कुकृत्यों से कश्मीर की जनता त्रस्त हो गई और यह समझने लगी कि हर्ष के रूप में किसी राक्षस ने जन्म लिया है जो कश्मीर मण्डल को नष्ट करके ही छोड़ेगा। लोग आर्त-भाव से भगवान को पुकारने लगे।

इसी समय कश्मीर के रंगमंच पर 'उच्चल' और 'सुस्सल' दो भाई प्रकट हुए। ये इसी राजवंश में उत्पन्न हुए थे। उच्चल और सुस्सल ने राजा हर्ष की अनीति को देखकर राजा हर्ष के खिलाफ विद्रोह कर दिया। प्रथम विद्रोह में राजकीय सेना ने विद्रोही-सेना को पराजित कर दिया। इस विजय के उपलक्ष्य में राजा हर्ष ने मूर्ति तोड़ने के अभियान को और तीव्र कर दिया और परिहास-केशव के मन्दिर से परिहास-केशव की मूर्ति को उखड़वा कर फेंक दिया। परिहास केशव का मन्दिर कश्मीर के भव्यतम उपासना-गृहों में एक था। इस मूर्ति के नष्ट होते ही सारी राजधानी में एक भयंकर सन्नाटा छा गया।

इस घटना से क्षुब्ध होकर उच्चल और सुस्सल—दोनों राजकुमारों ने अपने विद्रोह को और भी तीव्र कर दिया। इसी समय हर्ष ने उच्चल और सुस्सल के पिता वृद्ध मल्लराज की हत्या करवा दी। इससे दोनों भाई और भी उत्तेजित हो उठे। और उन्होंने तीव्र वेग से राजधानी पर आक्रमण कर दिया। हर्ष को वहाँ से भागना पड़ा और अन्त में श्मशान में बनी हुई एक भिक्षुक की कुटिया में उसने

आश्रय लिया और इसी कुटिया में उच्चल के सैनिकों ने आकर हर्ष की हत्या कर डाली।

राजा हर्ष की मृत्यु ईसवी सन् ११२१ (लौकिक संवत् ४१७७) में हुई।

हर्ष के पश्चात् कश्मीर के सिंहासन पर इसी राजवंश का राजा 'उच्चल आया। उच्चल राजा ने अपने शासन-काल में कायस्थों के मूलोच्छेदन करने का भारो अभियान किया। कई कायस्थों को उसने मरवा दिये और कइयोंको बहुत अपमानित किया। ईसवी सन् ११३१ (लौकिक वर्ष ४१८७) में उच्चल की उसके विरोधियों ने हत्या कर डाडी।

उचल के पश्चात् कश्मीर-मण्डल में भयंकर अराजकता का सूत्रपात हो गया। महीने-महीने भर में वहाँ पर राजा वदलने लगे। एक बार तो ऐसा अवसर आया कि एक ही दिन में तीन राजा बने और बिगड़ गये।

उच्चल के भाई 'सुस्सल' ने भी कुछ समय तक कश्मीर पर राज्य किया। मगर वह भी कश्मीर की अराजकता को दूर करने में सफल नहीं हुआ। और उसके पश्चात् लगातार दो सौ वर्षों तक कश्मीर में आराजकता का दौर-दौरा चलता रहा।

मुसलमानी-शासन का प्रारंभ

जिस समय कश्मीर राज्य में इस प्रकार की अराजकता फैली हुई थी, उस समय उसके आस-पास के प्रदेशों में मुसलमानी धर्म और मुसलमानी शासन का प्रचार बड़े जोरों से बढ़ रहा था। कश्मीर-राज्य भी उसकी क्रूर दृष्टि' से नहीं बचा।

ईसवी सन् १३३६ में 'शाह मीर' नामक एक मुसलमान ने कश्मीर के अन्तिम हिन्दू राजा की विधवा रानी को गद्दी से हटाकर उस पर अपना अधिकार कर लिया।

शाहमीर के वाद कई मुसलमान नरेश कश्मीर की गद्दी पर बैठे, पर वे सबके सब अत्यन्त कमजोर और अयोग्य निकले।

ईसवी सन् १४२० में 'झैनुल-अबुलदीन' (Zainul Abuldin) कश्मीर की गद्दी पर बैठा। वह एक योग्य और उदार प्रकृति का राजा था। खेती की उन्नति के लिए उसने कई नहरें और पुल बनवाये। वह बड़ा खेलाड़ी था और ब्राह्मणों पर भी बड़ी कृपा रखता था। ब्राह्मणों से जो 'पोल-टैक्स' लिया जाता था। वह उसने माफ कर दिया। इतना ही नहीं उसने कई ब्राह्मणों को जागीरें भी प्रदान की थीं। मुसलमान होते हुए भी उसने कई हिन्दू-मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाया और हिन्दुओं की विद्या को उत्तेजन दिया। उसने विदेशों से कई प्रकार की कारीगरी की वस्तुएँ मँगवाकर एकत्रित की थीं। मगर इसके बाद होने व ले राजा फिर बड़े कमजोर और अयोग्य निकले।

सन् १५३२ ई० में 'मिर्जाहैदर' नामक एक मुगल-सरदार ने कश्मीर पर आक्रमण करके विजय प्राप्त की और वह वहाँ का राजा बन गया मगर उसकी मृत्यु के पश्चात् कश्मीर में फिर अराजकता हो गई।

मुगल-साम्राज्य में कश्मीर

ईस्वी सन् १५८६ में सम्राट अकबर ने कश्मीर पर विजय प्राप्त को, जिसके फल-स्वरूप कश्मीर मुगलो के झंडे के नीचे आ गया। स्वयं सम्राट अकबर तीन बार कश्मीर गये थे और वहाँ उन्होंने 'हरी-पर्वत' नामक एक किला बनवाया था।

अकबर के बाद जहाँगीर मुगल सिंहासन पर बैठे। सम्राट जहाँगीर का तो कश्मीर पर बहुत अधिक प्रेम था। कश्मीर का सुप्रसिद्ध 'शालीमार-बगीचा' और 'निशातबाग' सम्राट जहाँगीर के द्वारा ही बनवाए गये थे। मुगलों का शासन साधारणतया सुसभ्य था और जो कानून-कायदे उस समय उपयोग में लिए जाते थे—वे भी बड़े उत्तम थे।

औरंगजेब के शासन-काल में प्रसिद्ध यात्री 'बर्नियर कश्मीर में आया था। उसने लिखा है कि—

"कश्मीर-निवासी इस समय सुखी और समृद्ध हैं। ये लोग हिन्दुस्तानियों से अधिक बुद्धिमान और निपुण हैं। कविता बनाने की शक्ति और अन्य कलाओं के ज्ञान में वे पर्शियन लोगों को भी मात करते हैं और बड़े फुर्तीले तथा मेहनती भी हैं।…… कश्मीर भारतवर्ष का 'नन्दन-कानन' है। सारा देश एक खुशनुमा बगीचे के समान है। जिसमें स्थान-स्थान पर तरह-तरह के फूल, अंगूर की बेलें और गेहूँ तथा चावल के खेत बड़े भले मालूम होते हैं।"

मुगल-साम्राज्य के कमजोर पड़ जाने के पश्चात् कश्मीर अफगानों के अमानुषिक शासन के भीतर आ गया। अफगानों का शासन कश्मीर के लिए, ईश्वर का अभिशाप था। ये लोग प्रजा का रक्त चूसने में तनिक भी नहीं हिचकिचाते थे। आदमी का सिर काट लेना इन लोगों के लिए एक फूल तोड़ने से अधिक महत्व नहीं रखता था। ये लोग हिन्दुओं को बोरों में भर-भरकर तालाब में फेंकवा देते थे। इन कई कारणों की वजह से हजारों हिन्दू कश्मीर छोड़-छोड़कर भाग गये और जो बाकी बचे, वे मुसलमान बना लिए गये।

इस प्रकार सन् १८१८ में कश्मीर की ८० प्रतिशत जनता मुसलमान हो चुकी थी।

इस अत्याचार से बचने के लिए कश्मीरवासियों ने महाराज रणजीत सिंह का सहारा लिया। जम्मू के महाराजा गुलाबसिंह की सहायता से सन् १८१८ में महाराज रणजीत सिंह ने कश्मीर पर अधिकार कर लिया और कश्मीर एक बार फिर हिन्दू-शासन में आ गया।

हिन्दू-शासन में आने पर भी कश्मीरियों की समस्या का हल नहीं हुआ। सिक्ख-लोग कश्मीरियों को बड़ी हल्की निगाह से देखते थे और राज्य ने उन पर भारी-भारी टैक्स लगा रखे थे, जिससे वहाँ की प्रजा अत्यन्त त्रस्त थी।

सन् १८४१ में महाराज रणजीत सिंह की मृत्यु हुई और उसके बाद सन् १८४६ से 'डोगरा-वंश' के राजा 'गुलाब सिंह' का कश्मीर पर अधिकार हुआ।

डोगरा-राजवंश

पंजाब और कश्मीर के बीच का प्रदेश 'डोगरा' कहलाता है और यहाँ रहने के कारण राजा गुलाब सिंह के पूर्वज डोगरा कहलाते थे। ये लोग पहले अवध और राजपूताने में रहते थे। वहाँ से वे धीरे-धीरे पंजाब की ओर बढ़े और अन्त में डोगरा-प्रदेश के 'मीरपुर' नामक ग्राम में रहने लगे। यहाँ से यह वंश तीन शाखाओं में विभक्त हो गया। एक शाखा ने 'चम्बा' को, एक ने 'काँगड़ा' को और एक ने 'जम्मू' को अपना केन्द्र बनाया।

गुलाब सिंह इसी जम्मू वाली शाखा में उत्पन्न हुए। सन् १७७८ में रणजीत सिंह की सेना ने जब जम्मू पर आक्रमण किया, तब गुलाबसिंह ने ऐसा पराक्रम दिखलाया कि रणजीत सिंह उन पर बहुत प्रसन्न हुए और जब जम्मू पर सिक्खों का अधिकार हो गया तब रणजीत सिंह ने वह राज्य गुलाब सिंह को दे डाला और साथ ही उन्हें राजा का सम्माग-सूचक खिताब भी दिया।

राज्य मिलने के १५ वर्ष के अन्दर-अन्दर गुलाब सिंह और उनके भाइयों ने मिलकर आस-पास के छोटे-मोटे सरदारों पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। गुलाब सिंह के प्रधान सेनापति सरदार 'जोरावर सिंह' का नाम इस इतिहास में बड़ा गौरवपूर्ण है। यह व्यक्ति अत्यन्त वीर और पराक्रमी था। इसने अपनी सेना के साथ 'बदख्श' और 'बलूचिस्तान' पर आक्रमण करके विजय प्राप्त की। इन्हीं के नेतृत्व में एक सिक्ख-सेना ने 'तिब्बत' पर आक्रमण किया था पर मौसम प्रतिकूल होने से वे वहाँ मारे गये और उनकी सेना भी वहाँ तहस-नहस हो गई।

महाराज रणजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात् पञ्जाब के के अन्दर एक प्रकार की अराजकता सी छा गई और उसके फलस्वरूप सन् १८४६ की जनवरी में 'अलीवाल' नामक स्थान पर अंग्रेजी सेना के साथ सिक्ख-सेना का युद्ध हुआ, जिसमें सिक्ख-सेना को पराजित होना पड़ा। सिक्खों की तरफ से जम्मू-नरेश गुलाब सिंह ने अंग्रेजों के पास सन्धि का पैगाम भेजा। ९ मार्च सन् १८४६ को सिक्खों और अंग्रेजों के बीच एक संधि हुई, जिसके अनुसार सिक्खों ने कश्मीर, हजारा तथा व्यास और सिन्धु नदी के बीच का सारा पार्वतीय प्रान्त-अंग्रेज-सरकार को दे डाला।

इस सन्धि के एक सप्ताह बाद राजा गुलाबसिंह और अंग्रेजों के बीच और एक दूसरी सन्धि हुई। इस सन्धि के अनुसार राजा गुलाब सिंह एक स्वतन्त्र शासक बना दिये गये और उन्हें पुश्त-दर-पुश्त के लिए सिन्धु नदी के पूर्व और राबी नदी के पश्चिम के तमाम प्रान्त—जिनमें चम्बा और लाहौर भी शामिल थे—दे दिये गये। राजा गुलाबसिंह ने इसके बदले में अंग्रेज-सरकार को ७५ लाख रुपये एकमुश्त-नगद तथा एक घोड़ा, १२ बकरियाँ और ३ शाल जोड़ियाँ प्रति वर्ष देना स्वीकार किया और साथ ही तय हुआ कि आपने निकटवर्ती पहाड़ी प्रदेशों में जरूरत

आ पड़ने पर गुलाब सिंह अपनी सम्पूर्ण सेना के साथ अंग्रेजों की सहायता करेंगे और ब्रिटिश सरकार भी बाहरी आक्रमणकारियों से उनकी रक्षा करेगी।

इस प्रकार सन् १८४६ में कश्मीर का शासन-सूत्र महराज गुलाब सिंह के हाथ में आया। ११ वर्ष तक महाराजा गुलाब सिंह ने पूरे कश्मीर पर राज्य किया।

सन् १८५७ ई० में महाराजा गुलाब सिंह का देहान्त हुआ। गुलाब सिंह के बाद उनके पुत्र 'रणवीर सिंह' कश्मीर की गद्दी पर आये। सन् १८५७ के गदर में इन्होंने ब्रिटिश-सरकार को बड़ी मदद पहुँचाई, जिससे प्रसन्न होकर भारत-सरकार ने इन्हें दत्तक लेने का अधिकार प्रदान किया।

ईसवी सन् १८७७ में इनके समय में अति-वृष्टि होने के कारण कश्मीर में भयंकर अकाल पड़ा, जिसके कारण वहाँ की बहुत बड़ी जन-संख्या का संहार हो गया। गाँव के गाँव उजड़ गये और श्रीनगर शहर की आबादी आधी रह गयी।

सन् १८८२ में राजा रणवीर सिंह का देहान्त हुआ। इनके पश्चात् इनके बड़े पुत्र 'प्रताप सिंह' कश्मीर की गद्दी पर बैठे। राजा प्रताप सिंह के समय में कश्मीर में कई प्रकार के शासन-सुधार हुए। जनता पर लगे हुए कुछ टैक्स भी कम कर दिये गये। बेगार प्रथा भी उठा दी गई। शिक्षा-संस्थाओं में वृद्धि की गई और स्यालकोट से लेकर जम्मूतक रेलवे-लाइन बनाई गई।

राजा प्रताप-सिंह की मृत्यु के बाद उनके भतीजे 'हरिसिंह' कश्मीर की गद्दी पर आये। सन् १९२६ ई० में इनका राज्यारोहण बड़ी धूमधाम से हुआ। इन्हीं के समय में 'शेख अब्दुल्ला' के नेतृत्व में कश्मीर में राजनैतिक संस्था 'नेशनल कान्फ्रेन्स' की स्थापना हुई और भारत के दूसरे राज्यों की तरह यहाँ भी राजनैतिक आन्दोलन का सूत्रपात हुआ।

सन् १९४७ ई० के अगस्त में भारतवर्ष के स्वाधीन होने पर रियासतों के विलीनीकरण का प्रश्न उपस्थित हुआ। जिसके अनुसार प्रत्येक राजा को अधिकार था कि वह अपनी इच्छा के अनुसार भारत या पाकिस्तान—किसी भी देश में अपना विलीनीकरण कर सके।

मगर महाराज हरीसिंह कुछ समय तक किसी भी निर्णय पर न पहुँच कर टाल-मटूल करते रहे। इसी बीच पाकिस्तान के उकसाने से कबायली लोगों ने एकाएक बड़ी तेजी से कश्मीर पर हमला कर दिया और देखते-देखते एक तिहाई कश्मीर पर अधिकार कर श्रीनगर तक पहुँचने का उपक्रम करने लगे। इस महान् विपत्ति को एकाएक सिरपर आते देखकर महाराज हरिसिंह काँप उठे और उन्होंने तत्काल भारत देश में कश्मीर का विलीनीकरण स्वीकार करके कबाइलियों कीबाढ़ तुरन्त रोकने के लिये भारत सरकार से प्रार्थना की। भारत-सरकार ने तुरन्त आनन-फानन में जनरल 'करिअप्पा' के सेनापतित्व में कश्मीर की रक्षा का प्रबन्ध किया और कबायलियों की बाढ़ जहाँ की तहाँ रोक दी गई। भारत-सरकार अगर चाहती तो ४–५ दिन में कबायलियों के द्वारा जीता हुआ कश्मीर का हिस्सा भी ले सकती थी, पर ऐसा न करके प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने 'युद्ध-विराम-रेखा' पर लड़ाई समाप्त कर इस प्रश्न को न्याय के लिए विश्व के सबसे बड़े संगठन 'राष्ट्र-संघ' में पेश कर दिया।

राष्ट्र-संघ में जाने के पश्चात् इस प्रश्न की खूब छिछा लेदर हुई। चूँकि पाकिस्तान सीटो सन्धि का सदस्य था। इसलिए अमेरिका, ब्रिटेन इत्यादि तमाम पश्चिमी शक्तियों ने उसकी पीठ थपथपाना और भारत पर बेजा दबाव डालना शुरू किया। सिर्फ रूस और उसके साथी कुछ देशों के बल पर भारत का पक्ष टिका रहा।

कई बार यह प्रश्न 'सुरक्षा परिषद' में भी उपस्थित किया गया। भारतवर्ष की तरफ से अपना पक्ष पेश करने के लिए प्रसिद्ध धारा शास्त्री श्री कृष्ण मेनन वहाँ पर जाते रहे। कई घंटों तक अपनी लम्बी वक्तृता देकर उन्होंने भारतीय पक्ष का समर्थन किया, मगर जिन लोगों की आँखों पर पक्षपात के रंगीन चश्मे चढ़े हुए थे, उन पर ऐसी वक्तृताओं का क्या प्रभाव होता?

राष्ट्र-संघ के अन्दर इस प्रश्न को पेश करना सही कदम था या गलत कदम—इसका निर्णय तब मालूम पड़ा, जब सन् १९६४ ई० में श्रीमती 'इन्दिरा गान्धी' ने प्रेसिडेंट जानसन के साथ हुई वार्ता में खुलेआम इस गलती को स्वीकार कर लिया।

सन् १९५२ ई० में कश्मीर में लोक तांत्रिक-पद्धति से ग्राम चुनाव करवा कर कश्मीर-सरकार को स्थापना की गई। और महाराज हरिसिंह के पुत्र-'कर्णसिंह' को सदरे-रियासत और पहले शेख अब्दुल्ला को तथा बाद में बख्शी गुलाम मुहम्मद को प्रधान मंत्री बनाया गया।

भारत के संविधान में कश्मीर के सम्बन्ध में ३७० नंबर की एक स्वतंत्र धारा रखकर कश्मीर की स्थिति अन्य रियासतों से कुछ भिन्न रखी गई। और पर राष्ट्रनीति, रक्षा तथा यातायात केन्द्रीय सरकार के अधीन रखकर शेष बातों में कश्मीर को स्वतंत्र बना दिया गया। भारतीय संविधान में धारा ३७० का रखना सही कदम था या नहीं इस सम्बन्ध में अब सभी लोगों के दिलों में एक शंकासी पैदा हो रही है। और यह विचार जोर पकड़ता जा रहा है कि इस धारा का रखना एक गलत कदम था और अब इसे संविधान से निकाल देना चाहिए।

चीनी युद्ध के समय में भारत की कमजोर स्थिति को देखकर पश्चिमी राष्ट्रों ने भारत और पाकिस्तान में एक बार और समझौते का प्रयत्न करके भारत पर दबाव डाला। जिसके फल स्वरूप भारत और पाकिस्तान के अधिकारियों के ५-६ सम्मेलन हुए। प्रधान मंत्री नेहरू ने अपनी स्वाभाविक उदारता के वश होकर इस मामले में अधिक से अधिक उदारता बतलाने का प्रयत्न किया। मगर जहाँ नींव का पत्थर ही गलत होता है, वहाँ समझौता किस आधार पर ठहर सकता है। अतः सब प्रयत्न बेकार हुए।

सन् १९६४ के प्रारम्भ में कश्मीर के अन्दर एक अभूत पूर्व घटना घटी। हजरत पैगम्बर के पवित्र बाल जिस मस्जिद में रखे हुए थे, वहाँ से वे चोरी हो गये। इस घटना को लेकर सारे कश्मीर में और भारत के सारे मुसलमानों में एक अजीब तहलका मच गया। चारों ओर अशांन्ति छा गई और कश्मीर में एक अराजकता पूर्ण वातावरण पैदा हो गया। गनीमत हुई कि कुछ ही दिनों के बाद बाल वापस मिल गये और उनको फिर से यथा स्थान स्थापित कर दिया गया। मगर इस घटना से बख्शी गुलाम मुहम्मद पर से कश्मीर की जनता का विश्वास उठ गया।

इस घटना का फायदा उठाकर उसको खूब बढ़ा-चढ़ाकर पाकिस्तान ने तत्काल इस मामले को सुरक्षा-परिषद में उठा दिया। पाकिस्तान के विदेश मंत्री "भुट्टो" ने कश्मीर की अराजक स्थिति को बतलाते हुए बड़ा करुण-क्रन्दन करके लोगों का ध्यान इस समस्या की ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया, मगर दैव-योग से इस बार भारत का प्रतिनिधित्व जस्टिस छागला के समान अनुभवी, विद्वान और कानून-शास्त्र में मँजे हुए व्यक्ति कर रहे थे। बहुत थोड़े और तुले हुए शब्दों में जस्टिस छागला ने शुरू से लेकर अभी तक कश्मीर की स्थिति का, जो सुन्दर विश्लेषण किया—वह न्याय और कानून के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखने के योग्य हैं। उन्होंने अकाट्य तर्कों के द्वारा कश्मीर के सम्बन्ध में भारतीय नीति को स्पष्ट शब्दों में घोषित किया और भारत के अन्तर्गत कश्मीर का विलीनीकरण 'अन्तिम सत्य है' इसको भलीभाँति सिद्ध कर दिया।

अन्त में 'सुरक्षा-परिषद्' बिना किसी अन्तिम निर्णय पर पहुँचे हुए दोनों पक्षों को आपस में बैठकर विचार-विनिमय के द्वारा इस प्रश्न को सुलझाने की सलाह देकर समाप्त हो गई, और बात वहीं पर रह गई जहाँ से शुरू हुई थी।

पवित्र बाल की चोरी और अन्य घटनाओं से कश्मीर की स्थिति कुछ ऐसी हो गई कि जिसमें भारत-सरकार की सलाह पर कश्मीर-सरकार को शेख अब्दुला को जेल से छोड़ना पड़ा। जेल से छूटने के पश्चात् कई दिनों तक उन्होंने कश्मीरी जनता के सामने कई ऊल-जलूल भाषण दिये। बाद में दिल्ली आकर उन्होंने प्रधान मंत्री नेहरू और अन्य मंत्रियों से कश्मीर की समस्या के समाधान के लिए कई दिनों तक वार्तालाप किया।

उसके बाद पाकिस्तान जाकर उन्होंने राष्ट्रपति अयूब और वहाँ के अन्य अधिकारियों से वार्तालाप किया। मगर अभी तक तो इस समस्या के समाधान का कोई हल नहीं निकल पाया है और यह ज्यों-की-त्यों उसी हालत में भूल रही है जिस हालत में शुरू के दिन में भूल रही थी।

कश्मीर का प्राकृतिक वैभव

कश्मीर की प्राकृतिक सम्पदा बड़ी अद्भूत, आकर्षक और अनन्त है। शोभा के आगार महान् हिमालय की सम्पूर्ण सम्पदायें जैसे इस श्रीधाम में आकर केन्द्रित हो गई हैं। सैकड़ों मीलों के क्षेत्र में विस्तीर्ण अनन्त हरियाली, पहाड़ खण्डों में से स्थान-स्थान पर बहते हुये निर्मल जल के कल-कलनाद करते हुए निर्झर, पहाड़ों के गर्भ को चीर कर बहती हुई बड़ी-बड़ी नदियाँ, बर्फ से ढकी हुई पहाड़ों की चोटियाँ, केशर की क्यारियाँ, सेव और अंगूर के बगीचे, और किन-किन चीजों का वर्णन किया जाय ये सब प्रकृति की उस महान् कारीगरी को नमन कर रही है जिसने उन्हें पैदा किया।

जम्मू से निकलते ही कश्मीर की महान् प्राकृतिक शोभा का प्रारम्भ हो जाता है। अनन्त हरियाली के बीच कहीं हजार फुट नीचे खड्ड के किनारे पर और कहीं हजार फीट ऊची पहाड़ी की तलहटी में साँप की तरह रेंगती हुई बस चली जाती है। यह प्राकृतिक शोभा सैकड़ों मील तक एक सी देखने को मिलती है।

श्रीनगर इस विशाल क्षेत्र का प्रधान केन्द्र है। वहाँ जाने पर यह मालूम होता है कि शहरी सभ्यता के विकास की दृष्टि से अभी यह नगर बहुत पीछे है मगर प्रकृति का महान् आशीर्वाद इसे प्राप्त है। चारों ओर ऊँची-ऊँची पहाड़ियों से घिरा हुआ और ऊलर झील की अनुपम जलीय शोभा से शोभित यह नगर अप्सराओं के क्रीडा क्षेत्र की तरह जान पड़ता है। ऊँची पहाड़ की टेकरी पर बना हुआ शंकराचार्य का स्मारक आज भी जैसे भारतीय सभ्यता का डंका पीट रहा है और सम्राट् जहाँगीर के द्वारा लगाये हुए शालिमार बाग और निशात बाग तथा उनमें बहते हुए पानी के झरने आज भी मुगल कालीन वैभव की याद दिलाते हैं।

कश्मीर के प्राकृतिक वैभव की अन्तिम शोभा अमरनाथ में देखने को मिलती है जो अपने अलौकिक प्राकृतिक प्रति वैभव के साथ-साथ हिन्दुओं का पूजनीय तीर्थ भी है। वर्ष यहाँ पर यात्रा भरती है और उसमें समस्त भारत के यात्री उसी प्रकार भाग लेते हैं जैसे बद्री नारायण की यात्रा में लेते हैं।

पहल गाम और गुलमर्ग भी कश्मीर की घाटी के प्राकृतिक वैभव में अपना जोड़ नहीं रखते। कश्मीर आने वाले यात्री अपने समय का एक हिस्सा इन स्थानों पर भी बिताते हैं।

कश्मीर में केशर की क्यारियाँ भी उसके प्राकृतिक वैभव को बढ़ाने में बहुत सहायक हैं। भारतवर्ष में केशर की क्यारियों का दृश्य अन्यत्र कहीं भी देखने को नहीं मिलेगा। सिर्फ यूरोप में स्विट्जरलैंड के अन्दर ही ये केशर की क्यारियाँ दिखलाई पड़ेंगी।

कश्मीर का साहित्यिक वैभव

अपने प्राकृतिक वैभव की तरह कश्मीर का साहित्यिक वैभव भी अत्यन्त सुन्दर और समृद्धिशाली है। भगवती प्रकृति की तरह भगवती सरस्वती की भी इस क्षेत्र पर महान् कृपा रही है और इस स्वर्गोपम प्राकृतिक वैभव के बीच में संस्कृत के महान् साहित्य की सृष्टि हुई है।

कश्मीर के साहित्य में सबसे प्राचीन नाम हमें कवि भर्तृमेंठ का देखने को मिलता ये राजा मातृगुप्त के सम कालीन थे अर्थात् पांचवीं सदी के पूर्वार्द्ध में हुए थे। इन्होंने "हयग्रीव ववध्र" नामक काव्य लिखा था इस पर राजा मातृगुप्त ने इन्हें बहुत सम्मानित किया था और आगे राज शेखर ने इन्हें वाल्मीकि का अवतार माना था। मगर इनका कोई काव्य अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है।

इनके तीन शताब्दी बाद कश्मीर के साहित्य में महान् कवि रत्नाकर दिखलाई पड़ते हैं जिन्होंने 'हर विजय" नामक महाकाव्य की ५० सर्गों और ४३२१ पद्यों में रचना की अपने काव्य के प्रारम्भ में इन्होंने स्वयं इस काव्य की प्रशंसा करते हुए लिखा है—

ललित मधुरा सालङ्कारा प्रसाद मनोहरा
विकट यमक श्लेषो द्वारप्रबन्ध निरर्गलाः।
असदृश मतिश्चित्रे मार्गे ममोद्गिरतो गिरो,
न खलु नृपते चेतो वाचस्पते रपि शंकते।

अर्थात्—इस काव्य कीं ललित, मधुर, प्रासाद मनोहर विकट यमक तथा श्लेष से मण्डित, चित्र मार्ग में अद्वितीय

वाणी को सुनकर बृहस्पति के चित्त में भी शङ्का उत्पन्न हो जाती है।'

इस काव्य में शंकर के द्वारा अन्धक असुर के वध की कथा का वर्णन किया गया है, मगर अपनी महान मोहक और रंगीन कल्पनाओं के द्वारा प्रांजल भाषा में कवि ने जिस जगत् का निर्माण किया है, वह संस्कृत-साहित्य में अद्भुत है। सचमुच इस महान कवि ने काव्य के क्षेत्र में माघ के समान महाकवि को भी मात देती है। महाकवि रत्नाकर चिप्पट जयापीड और अवन्तिवर्मा के समकालीन थे। इनका समय सन् ८०० से ८८४ तक था।

शिवस्वामी

शिव स्वामी भी कश्मीर के निवासी थे। स्वयं शैव मतावलम्बी होने पर भी इन्होंने "चन्द्रमित्र" नामक एक बौद्ध आचार्य की प्रेरणा से बौद्धसाहित्य के एक प्रसिद्ध अवदान को महाकाव्य के रूप में चित्रित किया। इस काव्य का नाम "कप्फिण चरितम्" है। बौद्ध-साहित्य में दक्षिण देश के राजा 'कप्फिण' का आख्यान विशेष रूप से प्रसिद्ध है। इसी चरित्र को उन्होंने २० सर्गों में नाना प्रकार के छन्दों में चित्रित किया है। इस काव्य में उत्कृष्ट शृंगार, शान्त और वीर रस की धाराएँ बह गई हैं। शिवस्वामी वास्तव में एक महान् और प्रतिभाशाली कवि थे।

क्षेमेन्द्र

क्षेमेन्द्र का जन्म कश्मीर के एक धनाढ्य ब्राह्मण कुल में हुआ था। इनके पिता का नाम प्रकाशेन्द्र था। ये आचार्य अभिनवगुप्त के शिष्य थे। ये कश्मीर के राजा अनन्तदेव और कलशराज के समकालीन थे। अर्थात् ग्यारहवीं शताब्दी के मध्यकाल में हुए थे। इनकी रचनाओं में रामायण मञ्जरी, ब्रह्मकथा मंजरी, दशावतार चरित्र, बोधिसत्वावदान कल्पमाला, आदि रचनाएँ संस्कृत को उच्चकोटि की काव्य-रचना के सुन्दर उदाहरण हैं।

विल्हण

राजा कलशराज के समय (१०६३–१०८९) में ही कश्मीर में सुप्रसिद्ध कवि विल्हण हुए। सम्भवतः कलशराज के अत्याचारों से क्षुब्ध होकर ये दक्षिण की यात्रा पर चले गये और दक्षिण में चालुक्यवंशी राजा विक्रमादित्य के आश्रय में रहने लगे। वहाँ पर इन्होंने "विक्रमांक देवचरित" नामक एक अत्यन्त सुन्दर काव्य ग्रन्थ विक्रमादित्य के जीवन पर लिखा जो संस्कृत का एक उत्कृष्ट काव्य ग्रन्थ माना जाता है। वहाँ से ये गुजरात गये उस समय गुजरात में 'कर्ण सोलंकी' राज्य करता था। उसके जीवन की एक घटना पर इन्होंने 'कर्ण-सुन्दरी' नामक एक सुन्दर नाटिका की संस्कृत में रचना की।

कल्हण

'राजतरिंगणी" नामक सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थ के रचयिता 'कल्हण' राजा हर्षदेव के समकालीन थे। इनके पिता चम्पक राजा हर्षदेव के मन्त्री थे। सन् ११५० में इन्होंने राजतरंगिणी-ग्रन्थ की रचना समाप्त की जो एक उत्कृष्ट कलाकृति के साथ ही एक प्रामाणिक इतिहास-ग्रन्थ माना जाता है। कल्हण का विशेष परिचय "कल्हण" नाम के अन्तर्गत इसी भाग में देखें।

मङ्खक

मंखक कवि भी बारहवीं शताब्दी में हुए। ये कश्मीर के राजा जयसिंह के सभापण्डित थे। इन्होंने 'श्रीकण्ठ चरित्र' नामक एक महाकाव्य की रचना भगवान् शंकर और त्रिपुर असुर के युद्ध की घटनाओं पर की। यह महाकाव्य पच्चीस सर्गों में समाप्त हुआ। इस महाकाव्य की कविता बहुत उच्च कोटि की है और उसका साहित्यिक मूल्य भी बहुत अधिक है। वास्तव में कश्मीरी कवियों की कविता का एक राग ही अलग है जिसकी माधुरी सहृदयों को बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है।

काव्य-क्षेत्र ही की तरह दर्शन शास्त्र के क्षेत्र में भी कश्मीर में कुछ विभूतियाँ बड़ी प्रसिद्ध हुईं।

उद्भट

उद्भट कश्मीर के राजा जयापीड की सभा के विद्वान थे। ये आठवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में हुए थे।

उद्भट की सुप्रसिद्ध रचना "काव्यालंकार सारसंग्रह" है। यह अलंकार-शास्त्र का ग्रन्थ है। इसकी टीका मुकुल भट्ट के शिष्य प्रतिहारेन्दुराज ने सन् ९५० ई० में की थी।

आनन्दवर्द्धन

आनन्दवर्द्धन का नाम संस्कृत साहित्य के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है। इन्होंने "ध्वन्यालोक" ग्रन्थ लिखकर इस शास्त्र के सिद्धान्त को सदा के लिये आलोकित कर दिया है। ध्वन्यालोक संस्कृत साहित्य में नवीन युग का उत्पादक ग्रन्थ है। अलंकार शास्त्र में इसका वही स्थान है जो वेदान्त में वेदान्त-सूत्रों का है। इसके प्रत्येक शब्द में ग्रन्थकार की मौलिकता एवं सूक्ष्म विवेचनशक्ति का परिचय मिलता है। आनन्दवर्द्धन राजा अवन्तिवर्मा के समकालीन अर्थात् नौवीं सदी के मध्य में हुये थे।

अभिनव गुप्त

तंत्रशास्त्र, दर्शनशास्त्र तथा साहित्य शास्त्र के अभिनव गुप्त एक प्रसिद्ध आचार्य थे। इनका समय ९५० ई० के करीब है।

आचार्य अभिनव गुप्त आचार्य आनन्दवर्द्धन की परम्परा में थे। इन्होंने आनन्दवर्द्धन के प्रसिद्ध ग्रन्थ ध्वन्यालोक पर अपनी सुप्रसिद्ध "लोचन" नामक टीका लिखी जिसमें उन्होंने इस ग्रन्थ के सिद्धान्तों को विशद रूप में समझाया है।

उनकी दूसरी कृत्ति भरतमुनि के नाट्य-शास्त्र पर 'अभिनव भारती' नामक टीका है जो भरत नाट्यशास्त्र पर एक मात्र उपलब्ध टीकाग्रन्थ है।

तंत्रशास्त्र पर उनका "तंत्रालोक" ग्रन्थ एक प्रकार से तंत्रशास्त्र का विश्व-कोष ही है। इसमें तंत्रशास्त्र के सिद्धांत और प्रक्रियाओं का विस्तार से विवेचन किया गया है। यह ग्रंथ सत्ताईस अध्यायों में समाप्त हुआ है।

अभिनव गुप्त की दर्शनशास्त्र सम्बन्धी रचनाओं में "भगवद्गीतार्थ संग्रह", "परमार्थ सार" इत्यादि रचनाएँ बड़ी महत्वपूर्ण हैं।

कई विद्वानों का मत है कि महाभाष्य के रचयिता पातंजलि को व्याकरण के इतिहास में और वाचस्पति मिश्र को अद्वैत वेदांत के इतिहास में जो गौरव प्राप्त है वही गौरव अभिनव गुप्त को तंत्रशास्त्र और अलंकारशास्त्र के इतिहास में प्राप्त है।

कुन्तक और महिम भट्ट

ये दोनों आनन्दवर्द्धन के ध्वनिशास्त्र के विरोधी आचार्य थे। दोनों कश्मीर के निवासी थे और ग्यारहवीं सदी में हुए थे। कुन्तक ने "वक्रोक्ति जीवित" और महिम भट्ट ने "व्यक्ति विवेक" नामक रचनाएँ कीं।

इस प्रकार दिखाई देता है कि कश्मीर की साहित्य-सम्पदा का विकास ईसा की नौवी सदी से बारहवीं सदी तक बहुत हुआ। खास कर राजा जयापीड़ और अवन्ति वर्मा का समय कश्मीर के साहित्यिक इतिहास का स्वर्ण-युग कहा जा सकता है।

कस्तूरबा गान्धी

महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गान्धी की धर्मपत्नी।

करतूर बा गान्धी का जन्म काठियावाड़ के पोरबन्दर नगर में श्री गोकुलदास मानक जी के यहाँ हुआ था। १४ वर्ष की आयु में गान्धीजी के साथ उनका विवाह सम्पन्न हुआ।

महात्मा गान्धी अपने जीवन के प्रारम्भ से ही 'सादा जीवन और उच्च विचार' के अनुयायी रहे। उनके जीवन में भोग की अपेक्षा त्याग का ही अधिक प्राबल्य रहा।

कस्तूरबा ने भी अपने पति के पद-चिह्नों पर त्याग और साहसपूर्ण जीवन को अपनाया और गान्धीजी के साथ कन्धे-से-कन्धा मिलाकर उनके सेवा-कार्य में सहयोग दिया।

दक्षिण-अफ्रीका के सत्याग्रह के सिलसिले में एक अवसर पर उन्होंने गान्धीजी से कहा था कि—"तुम मुझसे इस बात की चर्चा नहीं करते, इसका मुझे दुःख है। मुझमें ऐसी क्या कमी है कि मैं जेल नहीं जा सकती। मेरे बच्चे जिस चीज को सह सकें, आप सब सह सकें और मैं न सह सकूँ—ऐसा आप सोचते कैसे हैं। मुझे इस लड़ाई में शामिल होना ही पड़ेगा।"

वह मृत्यु-पर्यन्त गान्धी जी तथा राष्ट्र की सेवा में लगी रहीं। अनेक बार जेल जाकर भाँति-भाँति की कठोर यातनाएँ उन्होंने सहन कीं, मगर उनका उत्साह तनिक भी कम न हुआ। वह अपने व्यक्तित्व को बिल्कुल भूलकर सम्पूर्ण

रूप से बापूमय हो गईं थीं और बापू की सेवा में ही उन्होंने स्वयं को खपा दिया ।

अन्त में २२ फरवरी सन् १९४४ ई० के दिन, जिस समय महात्मा गान्धी आगा खाँ महल में नजरबन्द थे—वहीं पर इस महान् नारी का देहान्त हो गया ।

कत्सूरा

सन् १९०१ ई० में जापानी-मन्त्रि-मण्डल का प्रधान मन्त्री ।

मई सन् १९०१ में प्रिंस 'इतो' के मन्त्रिमण्डल द्वारा त्याग-पत्र दिये जानेपर 'कत्सूरा' नामक सेनापति के नेतृत्व में जापान का नया मंत्रिमण्डल बना । कत्सूरा मारक्विस यामागाता का अनुयायी था । लोक तन्त्रीय शासन से उसे अधिक प्रेम नहीं था । उसे अपनी स्थल और जल सेना की सहायता का पूरा भरोसा था । इसलिए पार्लियामेंट के समर्थन की वह अधिक चिन्ता नहीं करता था । वह केवल एक योग्य सेनापति ही नहीं था, प्रत्युत एक कुशल राजनीतिज्ञ भी था ।

सन् १९०२ ई० में कत्सूरा-मन्त्रिमण्डल ने ब्रिटेन के साथ एक सन्धि की थी । उसमें कत्सूरा की राजनीतिज्ञता का अच्छा प्रमाण मिला ।

कत्सूरा के शासन-काल में ही सन् १९०४ में इतिहास-प्रसिद्ध 'रूस-जापान' का युद्ध हुआ । रूस-जापान-युद्ध में शुरू से ही जापानी सेनाओं को जो असाधारण सफलता प्राप्त हो रही थी, उसके कारण कत्सूरा-मन्त्रिमण्डल जापानी जनता में बहुत लोक-प्रिय हो गया था, और इसीलिए वह कई वर्षों तक कायम रहा ।

मगर रूस-जापान-युद्ध की समाप्ति के पश्चात् 'पोर्ट्स-माउथ' में जो सन्धि हुई, उसकी शर्तें जापानी जनता को पसन्द नहीं आई । खास करके रूस से हरजाना न लेकर कत्सूरा-मन्त्रिमण्डल ने एक ऐसा कार्य किया था, जिससे जापानी जनता बहुत रुष्ट थी । इस प्रबल विरोध के कारण दिसम्बर १९०५ में कत्सूरा-मंत्रीमंडल ने त्याग-पत्र दे दिया ।

कमलापति सिंहानियाँ

भारतवर्ष के एक प्रसिद्ध उद्योगपति, भारत के सुप्रसिद्ध उद्योग-प्रतिष्ठान जे० के० इंडस्ट्रीज के संस्थापक ।

सेठ कमलापति सिंहानियाँ मूलतः राजस्थान के निवासी थे, मगर उत्तर प्रदेश के कानपुर में आकर इन्होंने अपना व्यवसाय प्रारम्भ किया और शुरू से ही औद्योगिक विकास की ओर लक्ष्य दिया । उस समय भारत वर्ष में औद्योगिक क्षेत्र की स्थिति अधिक मजबूत नहीं थी, फिर भी लाला कमलापति का उत्साह अडिग था ।

सन् १९११ में इन्होंने 'जे० के० काटन स्पीनिंग ऐण्ड वीविंग मिल्स' की स्थापना की और इस प्रकार कपड़ा मिल के क्षेत्र में प्रवेश किया । इसके सिवाय इन्होंने सन् १९२१ ई० 'कमला आइस फैक्टरी' सन् १९३१ में 'जे० के० जूट मिल्स' सन् १९३२ में 'एम० पी० शूगर मिल्स' सन् १९३३ में 'काटन मैन्यू फैक्चरर्स' और सन् १९३४ में 'जे० के० आयर्न ऐण्ड स्टील कम्पनी लिमिटेड' की स्थापना की ।

इन सभी औद्योगिक प्रतिष्ठानों में इनको काफी सफलता मिली । जिससे जे० के० औद्योगिक प्रतिष्ठान का विकास दिन-पर दिन बढ़ता गया और आज तो यह प्रतिष्ठान समस्त भारत वर्ष के ५—७ विशाल औद्योगिक प्रतिष्ठानों में एक माना जाता है और भिन्न-भिन्न प्रकार के अनेक उद्योगों में इसकी प्रगति जारी है ।

कहानी-साहित्य

मानव-जाति की आदिम अवस्था से कहानी कहने की प्रथा और उन कहानियों से मनोरञ्जन करने का रिवाज चला आता है । घर की बड़ी-बूढ़ी दादियों के द्वारा छोटे बच्चों के मनोरञ्जन के लिए सन्ध्याकाल में तरह-तरह की कहानियाँ कहने की प्रथा बहुत प्राचीन काल से संसार के सभी देशों में चली आ रही है ।

इन कहानियों में राजा और रानी की कहानियाँ, देवी-देवताओं की कहानियाँ और भूत-प्रेतों की कहानियाँ-प्रधान हुआ करती थीं, मगर तब तक कहानी के साहित्यिक रूप का विकास नहीं हुआ था ।

कहानी के साहित्यिक रूप का विकास संसार में हम सबसे पहले भारतीय साहित्य में होता हुआ देखते हैं जब कि ऋग्वेद की मंत्र-संहिता में हमें अनेक रोचक कहानियों की सूचना मिलती है ।

साहित्यिक कहानियों का और अधिक विकास, हमें महाभारत, श्री मद्भागवत, रामायण तथा अन्य पुराण-ग्रन्थों में, जैन-धर्म के कथा-साहित्य में और बौद्ध-धर्म के ग्रन्थों में देखने को मिलता है ।

इसके पश्चात् भारतीय कथा-साहित्य में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त करने वाले ग्रन्थ 'पञ्चतन्त्र' का नाम मिलता है । 'पञ्चतंत्र' विश्व-कथा-साहित्य को भारतीय कथा साहित्य के द्वारा दी हुई एक महत्वपूर्ण देन है ।

पञ्चतंत्र की कहानियाँ बहुत प्राचीन हैं । ३ री शताब्दी में लिखे हुए ग्रन्थ 'बृहत् कथा' तथा 'तंत्र-आख्यायिका' के रूप में उसका मौलिक रूप आज भी हमारे सामने विद्यमान है ।

पञ्चतंत्र की इन कहानियों का अनुवाद ईसा की ६ ठीं सदी में पहलवी भाषा में और ईसा की ८ वीं सदी के मध्य में अरबी-भाषा में प्रस्तुत किया गया । अरबी-भाषा के इस अनुवाद से लेटिन, ग्रीक, जर्मन, फ्रेंच, स्पेनिश तथा अंग्रेजी आदि भाषाओं में १६ वीं शताब्दी तक अनुवाद होते रहे ।

पञ्चतंत्र के सिवा नारायण पंडित के द्वारा लिखे हुए 'हितोपदेश' तथा कश्मीर के कवि सोमदेव-कृत 'कथा—सरित्सागर', शिवदास नामक लेखक की 'वैताल-पंचविंशतिका' तथा 'सिंहासन द्वात्रिंशिका' इत्यादि ग्रन्थ संस्कृत के कथा-साहित्य में विशेष उल्लेखनीय हैं ।

जैन-साहित्य के भगवती-सूत्र आदि के अन्तर्गत भी कथाओं का निरूपण बड़ी सुन्दरता के साथ हुआ है । इसके अतिरिक्त हेम चन्द्राचार्य के द्वारा लिखे हुए 'त्रिषष्ठि शलाका पुरुषचरित्र' और दिगम्बर साहित्य के 'आराधना कथा-कोष' 'हरिवंश-पुराण' 'पद्म-पुराण' इत्यादि ग्रन्थ अत्यन्त सुन्दर-सुन्दर कथाओं से भरे पड़े हैं ।

ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में आचार्य भद्रबाहु के द्वारा रचित 'कल्पसूत्र' नामक ग्रन्थ में भगवान् महावीर के २७ पूर्वभवों की कहानियाँ बड़ी ही रोचक शैली में लिखी हुई मिलती हैं ।

बौद्ध-धर्म की जातक कथाओं में ५५० कथाओं का संग्रह है । इन में विपुल ऐतिहासिक, भौगोलिक और सामाजिक घटनाओं का बड़ा रोचक वर्णन हमें मिलता है ।

'दिव्यावदान' तथा 'अवदान-शतक' में भगवान बुद्ध के पूर्व जन्म से सम्बन्धित कहानियाँ मिलती हैं ।

इस प्रकार संस्कृत का कथा-साहित्य व्यापक, विस्तृत तथा विशाल है जिसका प्रभाव भारत के बाहर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों पर भी बहुत गहरा पड़ा है ।

विदेशी कहानी साहित्य

विदेशी कहानी-साहित्य के अन्तर्गत सबसे पहले हमें यूनान का संसार-प्रसिद्ध कहानीकार 'ईसाप' दिखलाई पड़ता है । इसका समय ईसा पूर्व छठी शताब्दी में माना जाता है इसकी कहानियाँ सारे संसार में, प्रत्येक देश, प्रत्येक काल और प्रत्येक वर्ग में बड़े चाव से पढ़ी जाती हैं ।

ईसाप की कहानियाँ छोटी-छोटी, मगर अत्यन्त बुद्धिमानी पूर्ण और सारगर्भित होती हैं । सारे संसार की भाषाओं में उनके अनुवाद हो चुके हैं । इन कहानियों के दो संग्रह पेरिस और जर्मनी से मूल ग्रीक भाषा में प्रकाशित हुए हैं । इनमें पेरिस से प्रकाशित 'एमिली शाम्ब्री' संस्करण में ३५८ कहानियों का और 'टायब्नर' की ग्रीक-ग्रन्थमाला से प्रकाशित संस्करण में ४२६ कहानियों का संग्रह है ।

इन कहानियों के अतिरिक्त भारतीय पुराणों की तरह यूनानी-पुराणों की कथाएँ, मिस्र की लोक-कथाएँ, यहूदियों के धर्म-ग्रन्थ की कथाएँ इत्यादि भी संसार के कहानी-साहित्य का महत्वपूर्ण अंग है ।

बेबीलोनियन-संस्कृति के हाल ही में प्राप्त 'गिल्गमेश' नामक काव्य में 'प्रलय की कहानी' बड़े ही सुन्दर रूप में पढ़नेको मिलती है ।

इसके बाद कहानी-साहित्य का मँजा हुआ साहित्यिक रूप हमें अरबी साहित्य में लिखित 'अलिफ-लैला की कहानियों में देखने को मिलता है । इस ग्रन्थ में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि पञ्चतन्त्र की तरह इसमें भी एक कहानी में से दूसरी कहानी निकलती है । इन कहानियों में कई स्थानों पर 'रोमांस' 'कामुकता' और स्त्री-पुरुषों की रंगरेलियों का वर्णन ऐसे ढंग से किया गया है, जिसको आजकल की भाषा में अश्लील भी कहा जा सकता है ।

ये कहानियाँ 'शहरयार' नामक शाहजादे को 'शहजाद' नामक वजीरजादी सुनातीं है। शहरयार का नियम था कि प्रतिदिन एक अनुपम सुन्दरी को अपने महल में बुलाता और रात भर उसके साथ रहकर सुबह उसको मरवा डालता। वजीरजादी ने यह कहानियाँ इस ढंग से कहना शुरू कीं कि सवेरे जब उसको मारने का समय आता तब वह कहानी अधूरी रह जाती और कहानी इतनी मोहक होती थी कि शहरयार की उत्कण्ठा वजीरजादी की जान को एक दिन और माफ करने को मजबूर कर देती।

इस प्रकार एक हजार कहानियाँ एक दूसरी में से निकलती हुई कहकर वजीरजादी ने एक हजार दिन निकाल दिये। इसी बीच उसको शहरयार से तीन पुत्र भी हो जाते हैं और शहरयार का वह जल्लादी कानून भी समाप्त हो जाता है।

अलीफलैला की कहानियों के संसार की अनेक भाषाओं में पूरे और संक्षिप्त अनुवाद भी हुए हैं और संसार का नवयुवक समाज इनको बड़े चाव से पढ़ता है।

आधुनिक कहानियाँ

आधुनिक ढंग के कहानी-साहित्य का जन्म उपन्यासों के जन्म के साथ होता हुआ देखा जाता है।

१८ वीं शताब्दी में उपन्यासों के साथ-साथ उपन्यासकारों ने छोटे रूप में लघु उपन्यासों या कहानियों की रचना की। वास्तव में देखा जाय तो कहानी उपन्यास का ही एक छोटा रूप होता है। इनकी कथा-वस्तु, चरित्र-चित्रण और भाषा का विकास उपन्यासों की तरह मगर छोटे-क्षेत्र में होता है। उपन्यासों की तरह कहानियों में लम्बे-चौड़े विवाद और चरित्रों के विकास को स्थान नहीं होता। इसमें थोड़े शब्दों के अन्तर्गत लेखक को अपने मन का भाव प्रकट करना पड़ता है। इसीलिए आगे जाकर १९ सदी में कहानी-साहित्य ने अपना एक स्वतन्त्र रूप ग्रहण कर लिया। जो उपन्यास-साहित्य से किसी कदर स्वतन्त्र समझा जाता है।

इस आधुनिक कहानी साहित्य में सबसे पहले पश्चिम में अमेरिका के प्रसिद्ध लेखक एडगर-एलेन-पो का नाम आता है। एडगर-एलेन-पो ने आधुनिक कहानी के मूल सिद्धान्त और उसके प्रभाव की एकता या केन्द्रीयता स्थापित की। इसका समय सन् १८०९ से सन् १८४९ था। इसी समय रूस के अन्दर निकोलाई-गोगोल नामक लेखक ने अपनी कहानियों में यथार्थवादी जीवन का चित्र प्रस्तुत किया।

इसके पश्चात् कहानी-साहित्य के क्षेत्र में फ्रांस के महान लेखक 'मोपांसा' और रूस के महान लेखक 'चेखव' ने एक नवीन युग का प्रवर्तन किया। इन दोनों ही लेखकों ने किसानों और निम्न वर्ग के लोगोंके निराशा और विषाद से परिपूर्ण जीवन का चित्रण किया। मोपांसा के चरित्र अतिरञ्जित, कृत्रिम भावुकता से युक्त और मानवीय वासनाओं के चित्रण करने वाले हैं और चेखव के चरित्र बौद्धिक प्रमाण, स्वप्नभंग और नियति के शिकार हैं।

मोपांसा के अन्तर्गत वर्णन की सरलता और स्वाभाविकता है और चेखव की विशेषता उसकी प्रहसन युक्त शैली और प्रवाह-युक्त भाषा है। इस प्रकार ये दोनों महान लेखक विश्व के आधुनिक कहानी-साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।

इंगलैंड में स्टीवेंसन और किपलिंग ने इंगलैंड के अन्तर्गत कहानी-साहित्य का नेतृत्व किया। ये दोनों कहानीकार एडगर-एलेन-पो और मोपांसा से प्रभावित थे।

चीन और जापान में भी कहानी साहित्य का अच्छा विकास हुआ और लू-तुन नामक कहानीकार ने चीन के कहानी साहित्य का और आकुता-गोवा नामक कहानीकार ने जापान के कहानी-साहित्य का नेतृत्व किया।

भारतीय भाषाओं के अन्तर्गत भी यहाँ के कहानी-लेखकों ने कहानी साहित्य के अन्तर्गत एक सुन्दर इतिहास का निर्माण किया। यद्यपि इन भारतीय लेखकों ने वास्तविक प्रेरणा पश्चिम से प्राप्त की, पर यहाँ के सामाजिक जीवन और संस्कृति का चित्रण करने में उन्होंने अत्यन्त मौलिक सूझ-बूझ का परिचय दिया।

बंगला कहानी

सबसे पहले सामाजिक जीवन को चित्रण करने वाली—पारदर्शी कहानियों का उदय हम बँगला-साहित्य में होता हुआ देखते हैं। बंगला-साहित्य में कहानियों का आरंभ विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर से समझना चाहिए। सन् १८९१ ई० से इन्होंने कहानियाँ लिखना प्रारम्भ किया।

उनकी कहानियाँ स्त्री-पुरुषों के जीवन की सामान्य घटनाओं पर खड़ी की गई हैं। इनमें विषय-वैविध्य ही नहीं, बल्कि शैलीगत वैविध्य भी है। छोटी कहानियाँ रवीन्द्रनाथ ठाकुर के लिए सामान्य जगत् के भावों के गहरे संवेदन के रहस्य को समझने के प्रयोग हैं।

रवीन्द्र बाबू के पश्चात् छोटी कहानियों के क्षेत्र में प्रभातकुमार मुकुरजी को बहुत ख्याति मिली। रवीन्द्रबाबू ने इनको कवि बनने से रोका और कहानी लिखने की प्रेरणा दी।

सन् १९०० से सन् १९३१ ई० तक मुकुर्जी की कहानियों के १२ संग्रह प्रकाशित हुए। समाज के सामान्य जीवन के जिस यथार्थ चित्रण की ओर रवीन्द्र बाबू ने नवीन लेखकों को प्रेरणा दी थी वही यथार्थ प्रभात मुकुरजी की कहानियों में प्रदर्शित हुआ। किन्तु प्रभात बाबू ने जिस यथार्थ का चित्रण किया था, वह केवल कड़ुवा और खट्टा नहीं था, वह जिन्दगी के प्रेम से परिपूर्ण था।

इसके बाद बंगाली-कहानी-साहित्य को शरतचन्द्र चटर्जी ने एक नया मोड़ दिया। इन्होंने अपनी कहानियों में बंगाल के सामाजिक जीवन का मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत किया। उन्होंने कथा-वैचित्र्य और घटना चक्र के विकास को कम महत्व देकर चरित्र-चित्रण और उसकी बारीकियों को बहुत अधिक महत्व दिया। प्रधान रूप से शरद बाबू उपन्यासकार थे मगर कहानियों के क्षेत्र में भी इन्होंने अच्छी ख्याति अर्जन की।

सन् १९२३ ई० से बँगला-कहानी-साहित्य में भी दूसरे साहित्य क्षेत्रों की तरह प्रगतिवादी परंपरा का प्रारंभ हुआ। इसी वर्ष चार लेखकों के द्वारा लिखी हुई चार गल्पों का सग्रह 'झाड़ेर ढोला' के नाम से प्रकाशित हुआ। यह पुस्तक तो छोटी थी, मगर इसमें कहानी क्षेत्र में आनेवाले नवीन भविष्य की गहरी छाया विद्यमान थी। प्रगतिवादी क्षेत्र में श्री शैलजानन्द मुकुरजी ने विशेष ख्याति उपार्जित की।

इसी प्रकार जगदीशचन्द्र गुप्त, विभूतिभूषण बनर्जी, प्रबोधकुमार सान्याल, परशुराम, प्रेमेन्द्र मित्र इत्यादि लेखकों ने भी बंगला के कहानी-साहित्य को समृद्ध किया।

हिन्दी-कहानी-साहित्य

हिन्दी के कहानी-साहित्य का प्रारम्भ १६ वीं शताब्दी से होता है जब कि भक्त-कवि गोकुलनाथ के द्वारा 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' की रचना हुई।

उसके पश्चात् १८ वीं सदी में इंशा-अल्ला खाँ के द्वारा रानी केतकी की कहानी लिखी गई।

इसके पश्चात् भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्र के द्वारा 'एक अद्भुत-अपूर्व स्वप्न' और राजा शिवप्रसाद 'सितारे-हिन्द' के द्वारा लिखा हुआ 'राजा भोज का सपना'—ये दोनों रचनाएँ कहानियों की कोटि में रखी जा सकती हैं, मगर वास्तविक कहानी-कला के आदर्श इनमें दिखलाई नहीं देते।

आधुनिक कहानी-कला का प्रारम्भ हिन्दी-साहित्य में सन् १९०० से आरम्भ होता है, जब कि 'सरस्वती' मासिक पत्रिका में कहानियों का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। हिन्दी की सबसे पहली कहानी पं० किशोरीलाल गोस्वामी के द्वारा लिखी हुई 'इन्दुमती' के नाम से प्रकाशित हुई। इसके साथ ही अन्य भाषाओं से अनुवाद की हुई कहानियाँ भी प्रकाशित होती रहीं।

सन् १९०९ में वृन्दावनलाल वर्मा की 'राखीबन्द भाई' और मैथिलीशरण गुप्त की 'नकली किला' नामक कहानियाँ प्रकाशित हुईं।

इसी समय में बंग-महिला की 'दुलाईवाली' कहानी सन् १९०७ ई० की सरस्वती' में प्रकाशित हुई। बहुत से लोग इसी को हिन्दी की पहली कहानी मानते हैं।

इसके पश्चात् हिन्दी-कहानी-साहित्य में जयशंकर प्रसाद, गंगाप्रसाद श्री वास्तव और चन्द्रधर शर्मा गुलेरी—ये तीन लेखक प्रकट होते हैं और हिन्दी में विशुद्ध मौलिक कहानियों का प्रारम्भ होता है।

प्रेमचन्द-युग

लेकिन हिन्दी कहानी साहित्य को नया जीवन और नई अनुभूति प्रदान करने का श्रेय 'प्रेमचन्द' को है। हिन्दी-कहानी-साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचन्द को एक युग-

निर्माता कहा जा सकता है। उनकी पहली कहानी 'पञ्च परमेश्वर' सन् १९१६ ई० में प्रकाशित हुई।

उसके पश्चात तो उनके सप्त-सरोज, प्रेम द्वादशी, प्रेम-पचीसी इत्यादि कई कहानी-संग्रह और फुटकर कहानियाँ प्रकाशित हुईं। हिन्दी-संसार में इनकी कहानियाँ जितनी लोक-प्रिय हुईं, उतनी किसी लेखक की नहीं हुई। उनकी समस्त कहानियों का संग्रह 'मान-सरोवर' के नाम से ६ खंडों में प्रकाशित हो चुका है।

प्रेमचन्द्र की प्रणाली में लिखनेवाले लेखकों में बाबू बद्रीनाथ 'सुदर्शन' का नाम भी उल्लेखनीय है। 'सुदर्शन-सुधा' 'तीर्थ-यात्रा' नामक इनके कई कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

पं० विश्वम्भरनाथ शर्मा' 'कौशिक' का नाम भी हिन्दी-कहानी-साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण माना जाता है। उन्होंने करीब ३ सौ कहानियाँ लिखी हैं जो फुटकर और कई संग्रहों में प्रकाशित हो चुकी हैं।

हिन्दी-कहानी-साहित्य में आचार्य चतुरसेन शास्त्री भी एक प्रकाश-स्तम्भ की तरह हैं। इनकी कहानियों का विकास बड़े ही सुन्दर ढंग से होता है। उनकी महत्ता इसी बात में है कि वे छोटी छोटी सामाजिक तथा ऐतिहासिक घटना को आकर्षक तथा मनोरञ्जक बना देते हैं। उनके पात्रों के चरित्र-चित्रण में सजीवता और स्वाभाविकता होती है। और उनकी भाषा व्यावहारिक और अकृत्रिम रहती है।

इसी युग में राय कृष्णदास, विनोद शंकर व्यास, शिव पूजन सहाय तथा राजा राधिकारमणसिंह का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है।

इसके बाद हिन्दी कहानी-कला में एक नवीन मोड़ आता है और इस मोड़ पर हम सबसे पहले जैनेन्द्र कुमार को देखते हैं। जैनेन्द्रकुमार ने अपने पात्रों के चरित्र-चित्रण में मानव जीवन के साधारण पहलू को छोड़कर दार्शनिक ढंग से चरित्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करना प्रारम्भ किया। हिन्दी-कहानी-साहित्य में यह नवीन वस्तु थी। चरित्र-प्रधान कहानियाँ लिखने में तथा असाधारण परिस्थितियों में पात्रों का सूक्ष्म मनो-वैज्ञानिक विश्लेषण करने में वे एक अद्भुत और अद्वितीय लेखक हैं।

ऐतिहासिक कहानियों के लिखने में श्री वृन्दावन लाल वर्मा का नाम उनके उपन्यासों की तरह ही प्रसिद्ध है।

कहानी-कला का तीसरा युग सन् १९३१ ई० से प्रारंभ होता है। इस युग के कहानी लेखकों में श्री भगवती प्रसाद वाजपेयी का स्थान महत्वपूर्ण है। इनकी कहानियों के पात्रों में सजीवता और स्वाभाविकता अधिक रहती है। वे जिस वस्तु का वर्णन करते हैं, उसकी जीती-जागती तस्वीर हमारे सामने उपस्थित हो जाती है।

इसी युग में कहानी-कला के क्षेत्र में भगवती चरण वर्मा ने भी अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। हास्य और व्यंग्य का पुट देकर मानव-जीवन के चिरन्तन सत्यों का उद्घाटन, जितना इनकी कहानियों में हुआ है, उतना अन्यत्र देखने को नहीं मिलता।

इसी युग के कहानी-कारों में श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार सच्चिदानन्द हीरानन्द 'अज्ञेय, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', कमलकान्त' वर्मा, इलाचन्द्र जोशी, देवेन्द्र सत्यार्थी, राजेन्द्र यादव इत्यादि लेखकों के नाम भी उल्लेखनीय है ये सब हिन्दी कहानी साहित्य के महारथी हैं।

महिला-कहानीकारों में श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान, ऊषादेवी मित्र, सत्यवती मल्लिक, कमलादेवी चौधरी, अमृता 'प्रीतम, सरस्वती मल्लिक, मन्नू भंडारी, कमलात्रिवेणी शंकर, चन्द्रकिरण सोनरिक्सा के नाम उल्लेखनीय हैं। इन लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं से हिन्दी के कहानी साहित्य को समृद्ध बनाया है।

संसार की बहती हुई हवा का प्रभाव हिन्दी कहानी साहित्य पर भी पड़ा और यहाँ भी प्रगतिवाद की परम्परा का प्रारम्भ हुआ। कहानी का क्षेत्र राजमहलों और मध्य-वर्ग से हटकर गरीब और शोषित मानव समाज का चित्रण करने में संलग्न हो गया। हिन्दी कहानी साहित्य में इस क्षेत्र में लिखने वाले कई कहानी लेखक हैं और पत्र पत्रिकाओं में विशेष कहानियाँ इसी तरह की प्रकाशित होती हैं। फिर भी अभी तक इस क्षेत्र में प्रेमचन्द या जैनेन्द्र की तरह कोई युग निर्माता कलाकार हुआ ही ऐसा दिखलाई नहीं पड़ता।

काउनिट्फ़-रांटबर्ग

अठारहवीं शताब्दी में आस्ट्रिया का चान्सलर और वहाँ का प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ। इसका जन्म सन् १७११ में और मृत्यु सन् १७९४ में हुई।

काउनिट्फ़-रांटबर्ग आस्ट्रिया की साम्राज्ञी मेरियाथेरिसा का समकालीन और उसका मंत्री था। आस्ट्रिया के राजकुल के अधिकारों की रक्षा करना ही उसके जीवन का ध्येय था। कुछ समय तक वह बेलजियम का गवर्नर भी रहा था। आया-ला-शापेल की शान्ति-सभा में इसने जिस बुद्धिमानी से आस्ट्रिया के अधिकारों का प्रतिपादन किया, उससे यह सारे यूरोप में प्रसिद्ध हो गया और साम्राज्ञी ने इसे अपना निजी सलाहकार बना लिया। सन् १७९४ में इसकी मृत्यु हो गई।

काओत्सू

चीन के प्रसिद्ध 'तांग-राजवंश' का पहला सम्राट जिसका शासन-काल सन् ६१८ ई० में प्रारम्भ हुआ।

चीन के अन्तर्गत 'हान-वंश' के शक्तिशाली राजाओं का शासन ईसा की तीसरी शताब्दी में समाप्त हो गया था।

इसके बाद कोई सुदृढ़ केन्द्रीय शासन न होने कारण चीन की राजनैतिक एकता भंग हो गई और सन् २२० ई० के करीब चीन तीन भागों में विभक्त हो गया। यह स्थिति ईसवी सन् की ७ वीं सदी तक रही।

इसी समय सन् ६१८ ई० में सम्राट 'काओत्सू' ने तांग-वंश की स्थापना कर चीन को फिर से एकताबद्ध किया।

सम्राट काओत्सू बड़ा वीर और महत्वाकांक्षी शासक था। उसने सारे चीन को जीत कर फिर एक विशाल-साम्राज्य का निर्माण किया। दक्षिण-पूर्वी एशिया में 'अनाम' और 'कम्बोडिया' को भी उसने विजय कर लिया। इस प्रकार उसके साम्राज्य की पश्चिमी सीमा 'कैस्पियन-सागर' तक विस्तृत हो गई थी।

काओत्सू के शासन-काल में चीन की सर्वांगीण उन्नति हुई।

काकातीय-राजवंश

मध्यकाल में दक्षिणी भारत का एक उल्लेखनीय राजवंश, जिसने सन् १११६ से सन् १३०० तक राज्य किया।

काकातीय लोग अपने को सूर्यवंशी कहते थे। इनका राज्य आन्ध्र में पूर्वी घाट के ऊपर था, जिसकी राजधानी "अभ्रम कौण्ड" थी जो आगे जाकर "वारङ्गल" के नाम से प्रसिद्ध हुई। प्रारम्भ में यह राजवंश पश्चिमी चालुक्यों का मांडलिक था।

सन् १११७ में इस वंश में "प्रोल" नामक व्यक्ति हुआ जिसने अपने स्वतंत्र राज्य की स्थापना की। इस राजा ने सन् ११६० तक राज्य किया। इसका एक शिलालेख भी उपलब्ध हुआ है।

प्रोल के बाद उसका पुत्र "रुद्र" इस वंश का प्रतापी राजा हुआ। इसने कई शहरों पर आक्रमण कर उन्हें ध्वस्त किया और वहाँ के लोगों को ओरंगलू में बसाया। इसकी सत्ता इतनी प्रबल हो गई थी कि कांची से लेकर विन्ध्याचल तक के सब राजा इससे डरते थे। इस राजा ने कई देवालयों का निर्माण करवाया और कई विद्वानों और कवियों को आश्रय दिया।

रुद्र का छोटा भाई महादेव ११८१ में गद्दी पर बैठा। यह सम्भवतः सन् ११९८ में यादव लोगों के युद्ध में मारा गया।

महादेव का पुत्र गणपति देव हुआ। इसने सन् ११९८ से १२६० तक पूरे बासठ वर्ष राज्य किया। यह भी बड़ा प्रतापी था। इसने पोल, कलिंग, सेउर, कर्नाट, लाट इत्यादि कई राजाओं से युद्ध किये। इसके समय के कई शिलालेख उपलब्ध हुए हैं जिनमें सबसे अन्तिम सन् १२५० का है।

इस राजा के समय तक इस राज्य में जैन-धर्म का अच्छा प्रभाव था। मगर इस राजा के समय में "तैलगु-महाभारत" का रचयिता "टिक्कन सोमय्य' नामक विद्वान हुआ। इसने शास्त्रार्थ में जैन-विद्वानों को पराजित कर दिया। उसी समय से इस राज्य में जैनियों का पतन-प्रारम्भ

हुआ। राजा गणपतिदेव शैव-धर्मका अनुयायी हो गया और उसने जैनियों पर अत्याचार भी किये।

राजा गणपतिदेव के कोई लड़का नहीं था। इसलिए उसकी लड़की "रुद्रम्मा" ने उसके बाद तीस वर्ष तक राज्य किया। यह इस वंश की अन्तिम शक्तिशाली और महान रानी थी। इसके बाद इस वंश की गद्दी पर प्रतापरुद्र नामक राजा बैठा। यह विद्या-प्रेमी और विद्वानों का संरक्षक था। वैद्यनाथ ने-अलंकार शास्त्र पर जो प्रसिद्ध ग्रन्थ बनाया वह इसी राजा को समर्पित किया हैं। इसीलिए उस ग्रन्थ को "प्रताप रूद्रीय भी कहते हैं।

सन् १३२१ में मुहम्मद तुगलक ने इस राजवंश को परास्त कर इसका अन्त कर दिया।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि मध्य प्रदेश का बस्तर-राजवंश इसी 'काकातीय राजवंश' का वंशज है।

काकातोमी

जापान के इतिहास में "फूजीवारा" वंश की नींव डालने वाला इतिहास-प्रसिद्ध पुरुष जो आठवीं सदी के प्रारम्भ में हुआ।

काकातोमी ने सोगा-वंश की सत्ता को खतम करके फ़ूजीवारा वंश की नींव डाली और जापान के सम्राट् को कठपुतली बनाकर सारी सत्ता अपने हाथ में ले ली। इस व्यक्ति ने जापान के इतिहास में बड़ा नाम कमाया। इसने जापानी सरकार के संगठन में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन किये। इसी के समय में जापान की राजधानी सन् ७६४ में 'क्योटो' में स्थापित की गई जो बाद में ग्यारह सौ वर्षों तक बदस्तूर चलती रही।

अन्त में जापान के दाईम्मों लोगों के विद्रोह के द्वारा इस वंश की सत्ता का सन् ११५६ में अन्त हो गया।

काकुस्थ वर्मन

दक्षिणी भारत में कदम्ब-राजवंश का एक राजा जिसका समय ई० सन् ४०० के लगभग माना जाता है।

काकुस्थवर्मन कदम्ब-नरेश मयूरवर्मन के पौत्र भागीरथ का पुत्र था। यह एक प्रतापी नरेश, राजनीतिज्ञ और दीर्घजीवी था। गंग, गुप्त और वकाटक राजाओं के साथ इसने कदम्ब-राजकुमारियों का सम्बन्ध करके सबसे मैत्री-सम्बन्ध स्थापित कर लिये। यह राजा सम्भवतः गुप्तसम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का समकालीन था। इसके लेख से प्रकट होता है कि इसके राज्य में जैनधर्म का बहुत प्रभाव था और यह स्वयं जैन-मन्दिरों और विद्वानों को संरक्षण देता था। ऐसा समझा जाता है कि यह राजा अस्सी वर्ष की अवस्था में मृत्यु को प्राप्त हुआ।

काकेशस

सोवियट संघ का एक विशाल प्रायद्वीप जो काला सागर और कैस्पियन सागर के मध्य में स्थित है। 'काकेशस' पर्वत की उत्तरी और दक्षिणी पर्वत श्रेणियों के बीच की समतल भूमि पर यह प्रदेश बसा हुआ है। इसका क्षेत्रफल ८०००० वर्गमील के करीब और जन-संख्या एक करोड़, दस लाख है।

काकेशस-प्रदेश रूस के तेल उद्योग का मुख्य केन्द्र है। रूस में पैदा होने वाले सम्पूर्ण तेल का पचास प्रतिशत इस प्रदेश में पैदा होता है। तेल के संसारप्रसिद्ध बाकू, मैकाप और ग्रेजनी के कूप—इसी प्रदेश में स्थित हैं। संसार की सर्वश्रेष्ठ मैगनीज की खदान भी इसी प्रदेश में गोजिया नामक क्षेत्र में स्थित है।

दीर्घजीवी मनुष्य

इस प्रदेश की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इस प्रदेश के लोग बहुत दीर्घजीवी होते हैं। विश्व के कुछ प्रमुख जरा-विशेषज्ञ डाक्टरों ने कुछ समय पूर्व काकेशस का दौरा किया था। उन्होंने इस प्रदेश में देखा कि यहाँ अस्सी-अस्सी नब्बे-नब्बे साल के व्यक्ति जवानों की तरह कुलांचे भरते दिखाई पड़ते हैं। कोई भी परिवार ऐसा नहीं है जिसमें सौ सवा सौ साल का कोई व्यक्ति न हो।

सोवियट डाक्टरों के एक दल ने स्टॉलिन की जन्म-भूमि जार्जिया के सर्वेक्षण से पता लगाया कि इस छोटे से क्षेत्र में सौ या इससे अधिक उम्र के २१०० व्यक्ति मौजूद थे। ये लोग इस अवस्था में भीं इतने सबल और क्रियाशील होते हैं जितने कि दूसरे देशों में चालीस वर्ष के व्यक्ति होते हैं।

मखमूद ईवाजोव नामक व्यक्ति की मृत्यु पूरे १५० वर्ष की उम्र में सन् १९६० में हुई। यह काकेशस का एक किसान था अन्तिम समय तक वह अपने खेत के काम करता रहता था उसके २३ बेटे-बेटियाँ थीं। आखिरी सन्तान सौ वर्ष की उम्र में हुई थी। मृत्यु के समय उसकी सबसे बड़ी लड़की की उम्र १२० वर्ष की थी। उसके निजी परिवार में १७५ पोते-पोती थे।

दक्षिणी पश्चिमी काकेशस के काले सागर वाले छोर के अबखजिया प्रदेश में "मामसीर नूट" नामक एक पर्वतारोही सन् १९५६ में १५८ साल का था। उसी के गाँव का "खापर नूट" नामक व्यक्ति जब मरा तो उसकी आयु १५५ साल की थी। उसके जनाजे में एडलीबा मझाका नामक उसका एक दोस्त शामिल हुआ था। उसकी उम्र १५० वर्ष की थी।

जार्जिया से कुछ ही दूर बसे हुए ओसेटिया नगर में "टेलसे एब्रीजवे" नामक एक महिला १५० वर्ष की उम्र में मरी। शिराली मुस्लीमोव नामक व्यक्ति जो १५८ वर्ष का है। इस उम्र में भी रोज प्रातः काल घोड़े पर बैठकर घूमने जाता है। शराब और तम्बाकू को इसने जीवन भर छुआ भी नहीं।

द्वितीय विश्व-युद्ध के पहले डा० इवान वोसिलेविंग नामक एक जरा-विज्ञानी ने इस प्रान्त का दौरा किया था। उनकी धारणा है कि यहाँ के लोगों की लम्बी उम्र के कारण यहाँ की स्वास्थ्यप्रद पर्वतीय जल-वायु है। दूसरे इनका खान-पान परिश्रम शीलता इत्यादि भी है।

काकेशस के वृद्ध लोगों की तन्दुरुस्ती का यह हाल है कि जिन ७२ व्यक्तियों से इस बारे में पूछ-ताछ की गई, उनमें से केवल १९ व्यक्ति ऐसे थे, जिन्हें कुछ देखभाल की आवश्यकता थी। शेष सब लोग स्वस्थ थे। उनके हृदय और गुर्दे बराबर काम कर रहे थे। नींद बिना किसी परेशानी के आती थी। भूख जरूर कुछ कम हो गई थी, मगर जो भी खाते थे पचा लेते थे।

जहाँ तक सेक्स का सम्बन्ध है, इनमें से अधिकांश लोग काफी समय पूर्व यौनसहवास से अवकाश ले चुके थे। मगर कुछ लोग ऐसे भी थे जिनकी यौन-शक्ति ९० और १०० वर्ष की उम्र में भी अक्षुण्ण थी।

कागज

मनुष्य की वाणी और विचारों को लिपिबद्ध करने का एक सर्व प्रमुख साधन। जो लिखने, पुस्तकें और अखबार छापने तथा महत्वपूर्ण दस्तावेज लिखने के काम में आता है।

कागज के आविष्कार के पूर्व

अभी तक के अनुसन्धानों से जो पता लगा है उससे कागज बनाने की कला का ज्ञान मनुष्य को हुए दो ढाई हजार वर्ष से अधिक नहीं हुए। मगर लिखने की कला उससे पहले भी मानव जाति के अन्दर प्रचलित थी। उस समय भिन्न-भिन्न देशों के मनुष्य लिखने के लिए भिन्न-भिन्न वस्तुओं का व्यवहार करते थे।

प्राचीन मिश्र में शुरू-शुरू में राजा महाराजा लोग अपने लेखों को पत्थर पर खुदवाया करते थे। मिश्र के पिरामिडों पर खोदी हुई प्राचीन लिपियाँ इस बात का उदाहरण है।

बेबीलोनियन और असीरियन संस्कृति के समय में राजा लोग बड़ी बड़ी ईंटों पर कीलनुमा अक्षरों में अपने लेख और पुस्तकों को खुदवा कर सुरक्षित रखते थे। इन लोगों की यह लिपि "क्यूनीफार्म" लिपि के नाम से प्रसिद्ध है। निनवे नगर की खुदाई में असुर बनिपाल के समय का एक संग्रहालय प्राप्त हुआ है जिसमें इस प्रकार की हजारों ईंटों का संग्रह है। इन ईंटों पर "गिल्गमेष" इत्यादि बड़े बड़े काव्य लिखे हुए प्राप्त हुए हैं।

प्राचीन रोम में सीसे और पीतल की पतली-पतली चद्दरों पर लेखों और पुस्तकों को खोद-खोदकर सुरक्षित रक्खा जाता था। रोमनगर में सीसे पर खुदी हुई ऐसी पुस्तक मिली थी जिसका आकार चार इञ्च लम्बा और तीन इञ्च चौड़ा है। प्राचीन रोम के सैनिक अपनी तलवार की पीतल की म्यान पर अपना वसीयत नामा खोदकर रखते थे। कानून की कई धाराएँ भी इन पीतल की चद्दरों पर खोदकर रक्खी जाती थीं।

प्राचीन यूनान में लकड़ी के तख्तों पर कानून की पुस्तकें खोदकर रक्खी जाती थीं। सोलन के कानून लकड़ी के तख्तों पर खुदे हुए हैं। इस कानून पुस्तक का नाम "अक्सीनस" (Axones) है। जिस लिपि में यह चीजें

खुदी हुई हैं उस लिपि को ग्रीक भाषा में किरविस (Kyrbies) कहते हैं। लकड़ी के ऊपर मोम लगा कर उस पर पैनी सलाइयों से यह लिपि खोंदी जाती थी। इस प्रकार काठ के तख्तों को एक स्थान पर इकट्ठा करने से जो पुस्तक तैयार होती थीं उसे कडेक्स (Codex) कहते थे।

भारतवर्ष में कागज के पहले वृक्ष के बड़े २ पत्तों पर यहाँ के शास्त्र लिखे जाते थे। इनमें भोजपत्र और ताड़पत्र ये दो प्रकार के पत्ते विशेष रूप से काम में लिये जाते थे। लंका और ब्रह्म देश में भी लोग लिखने के लिए ताड़ पत्र का ही अधिक प्रयोग करते थे। दक्षिणी भारत के प्रसिद्ध जैन तीर्थ श्रवण बेल गोला में दिगम्बर जैन समाज के परम पूजनीय "धवल" "जयधवल" और "महाधवल" नामक विशाल ग्रन्थ आज भी भोजपत्र या ताड़पत्र पर लिखे हुए विद्यमान हैं। और भी कई स्थानों पर कई जैन ग्रन्थ भोजपत्र और ताड़पत्रों पर लिखे हुए पाये जाते हैं।

इसी प्रकार कई प्रकार के वृक्ष की छालों और रेशमी वस्त्रों पर भी लेख लिखने की प्रथाएँ चालू थीं।

कागज का प्रारम्भ

शुरू-शुरू में कागज का पूर्वरूप की तरह पेपिरस एएटीकोरियम (Papirus Anti Quorum) नामक घास से पेपिरस या पेपिरी नामक लिखने के कागज की तरह एक वस्तु सम्भवतः मिश्र में तैयार की गई। यही कागज का पूर्व रूप था। नैश नामक एक लेखक के एक्सोडस (Exodus) नामक ग्रन्थ से पता चलता है कि ईसा से करीब चौदह सौ वर्ष पहले भी मिस्र में इस पेपिरी का काफी प्रचार था जो ईसा के तीन सौ वर्ष बाद तक रहा। इसी पेपिरी शब्द से अंग्रेजी के पेपर शब्द की व्युत्पति हुई।

मिस्र के पुरोहित लोग इस पेपिरी पर अपनी धर्म कथा लिखकर उन्हें बेचते थे। शुरू शुरू में केवल मिस्र के लोग ही ऐसी पेपिरी बना सकते थे। उसके बाद यूनान और रोम के लोग भी पेपिरी बनाना सीख गये। रोम के लोगों ने इस पेपिरी का नाम अपने सम्राट ऑगस्टस के नाम पर "अगस्टास" रक्खा था और उससे हलके दर्जे की पेपिरी का नाम अपनी साम्राज्ञी के नाम पर "लेवियान" रक्खा था।

प्लायनी के इतिहास से मालूम होता है कि उस समय यूनान और रोम के लोगों का यह विश्वास था कि उत्तम श्रेणी की पेपिरी बनाने के लिए मिश्र देश की नील नदी का जल आवश्यक होता है क्योंकि उस पानी में गोन्द जैसा चमकदार पदार्थ रहता था जिससे पेपिरी में चमक आ जाती थी।

इसके बाद यूरोपीय इतिहासकारों के मतानुसार सबसे पहले लुग्दी बनाकर उस लुगदी से कागज बनाने का कार्य सबसे पहले चीन में हानवंश के राज्यकाल में ईस्वी सन् ९५ से प्रारम्भ हुआ। ये लोग बाँस की छाल, रुई, रेशम और दूसरे वृक्षों की छालों को कूट कर उससे लुगदी बनाते थे और उसी लुगदी से तत्कालीन छोटे यंत्रों से कागज बनाते थे।

चीन के पश्चात् कागज बनाने की यह कला अरब लोगों ने सन् ७०५ में सीखी और सन् ७०६ में उन्होंने समरकन्द में कागज का पहला कारखाना खोला।

बारहवीं सदी में अरब से कागज बनाने की कला यूरोप में पहुँची। और सबसे पहले स्पेन में रुई से कागज बनाने का एक कारखाना खुला। सन् ११५० में इस कारखाने का कागज बहुत प्रसिद्ध हो गया। वहाँ से यह कागज पूर्व और पश्चिम सब दूर जाया करता था। बारहवीं सदी के अन्त तक यूरोप में सब दूर रुई से बने हुए कागजों का व्यापार चालू हो गया था।

इसके बाद तेरहवीं सदी से यूरोप में सन से कागज बनाने का काम प्रारम्भ हुआ। यह कागज रुई के कागज से अधिक मजबूत और अधिक सुन्दर होता था।

चौदहवीं सदी में इङ्गलैण्ड, फ्रांस, इटली और स्पेन में कागज बनाने के अनेक कारखाने स्थापित हो चुके थे।

सन् १३७० में जर्मनी के नूरेम्बर्ग नगर में और इंग्लैंड के हर्टफोर्ड शायर के स्टेमेनैज नामक नगर में कागज का पहला कारखाना स्थापित हुआ। इसी समय कागज ढालने के तथा लुगदी कूटने के साँचे और कैंचिया भी तैयार हुईं। इन्हीं साँचों में उस समय व्हेल्लम (Vellum) कागज बनाये जाते थे।

ई० सन् १७९९ में फ्रांस के मुसोडिडो नाम के व्यक्ति ने सब प्रकार के तंतुओं से कागज बनाने की एक प्रणाली

निकाली और सन् १८०१ में इस प्रणाली को इङ्गलैंड में प्रचारित किया। इसके बाद कई लोगों ने इस प्रणाली से भी उत्तम जाति के कागजों को बनाना प्रारम्भ किया।

सन् १६६६ में इङ्गलैंड में फुलस्केप कागज बनना प्रारंभ हुआ। सम्राट् चार्ल्स प्रथम ने अपना खजाना खाली होते देखकर कुछ व्यवसायियों को इस फुलस्केप कागज का कण्ट्राक्ट दे दिया था। उस समय इस कागज में जलीय अक्षरों में राजचिन्ह छापा जाता था। मगर क्रामवेल के समय में वह राजचिन्ह मिटा कर उसकी जगह मूर्ख की टोपी (Foolscap) और उसके साथ घंटे का चित्र छापा जाने लगा। तब से यह कागज फुल स्केप के नाम से प्रसिद्ध हुआ। बाद में वह चिन्ह मिटा दिया गया, मगर उसका नाम ज्यों का त्यों कायम रहा।

चीन के लोग भी विभिन्न प्रकार के घास, पेड़ों की छालों तथा बाँस से कई प्रकार के कागज बनाते थे। वहाँ पर 'हो-सि' नामक एक प्रकार का कागज बनाया जाता था जो मुर्दे को जलाने के काम में आता है। इसके अतिरिक्त घाव पर पट्टी बाँधने के, पुड़िया बनाने के, दवाइयों की पुड़िया बनाने के, खाते बही बनाने के, छापने के, चित्र छापने के अनेकों प्रकार के कागज भिन्न-भिन्न उपादानों से बनाये जाते थे। वहाँ पर इण्डिया पेपर (India Paper) नामक भी एक कागज बनता था जो बहुत उत्तम कोटि का होता था।

नैपाल और भूटान के लोग भी हाथ से कागज बनाने की कला में बड़े प्रवीण थे भूटान में "नैपाली कागज" के नाम से एक कागज तैयार होता है जो Oaphne Canalina नामक वृक्ष-जिसे वहाँ महादेव का फूल कहते हैं की छाल से बनाया जाता है। यह कागज बहुत उत्तम कोटि का होता था। नैपाल में ऐसे कागज पर लिखी हुई कुछ पुस्तकें सुरक्षित हैं। जिन्हें बहुत प्राचीन समझा जाता है। इससे मालूम होता है कि भूटान में कागज बनाने की कला बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है।

भारतवर्ष में भी मध्य काल में कागज बनाने की कला का काफी विकास हो चुका था।

मुसलमानी काल में भारत के अन्दर कई प्रकार के कागज बनते थे। इनमें तीन प्रकार के कागज प्रधान थे। (१) सफेद (२) जरफसान और (३) टिकलीदार।

सफेद कागज कौड़ियों से घिसकर चिकना किया जाता था। जरफसान कागज सुनहला और रुपहला होता था और टिकलीदार में छोटी-छोटी सुनहली और रूपहली टिकलियाँ होती थी। लिखने के कार्य में विशेषतर सफेद कागज ही काम में आता था। यह कागज बहुत मजबूत, चिकना और टिकाऊ होता था। जैनियों के प्राचीनशास्त्र, व्यापारियों के खाते-बही, तथा मूल्यवान सनदें इसी कागज पर लिखे जाते थे।

भारतवर्ष में बंगाल, विहार, भूटान, नैपाल, अहमदाबाद, सूरत, धारवाड, कोल्हापुर, औरंगाबाद, दौलताबाद, कोटा और जयपुर में हाथ से कागज बनाने सैकड़ों कारखाने थे और हजारों कारीगर इस काम में लगे हुए थे। औरंगाबाद का कागज सबसे उत्कृष्ट माना जाता था। इसके बात दौलताबाद के बहादुरखानी और माधोगिरी कागज दूसरे नंबर के माने जाते थे।

वहाँ पर एक आफसानी नामक कागज बनता था। कानज बनाते समय इसकी लुगदी में सोने का बहुत बारीक चूर्ण मिला दिया जाता था, जिससे स्वर्ण का यह सूक्ष्मांश सारे कागज में फैल जाता था और वह कागज बड़ा चमकदार दिखलाई पड़ता था। राजपरिवार के बड़े-बड़े लोग इसी कागज पर अपना राजकाज करते थे।

कागज का मशीन उद्योग

मशीन-युग का प्रारम्भ होने पर और-और चीजों की तरह कागज का उद्योग भी मशीनों के द्वारा चलाया जाने लगा। मशीन-उद्योग से बना हुआ कागज बहुत सस्ता और सर्वत्र सुलभ होने से हाथ कागज का उद्योग उसकी प्रतिस्पर्द्धा में धीरे-धीरे कमजोर पड़ता हुआ नष्ट-प्रायः हालत में पहुँच गया।

भारतवर्ष में मशीनी-कागज का उद्योग सन् १८७० ई० में प्रारम्भ हुआ, जबकि हुगली नदी के तट पर कागज बनाने का पहला कारखाना स्थापित किया गया।

सन् १८८० ई० में भारत-सरकार ने देशी-कागज-उद्योग को प्राथमिकता देने का वचन दिया, जिससे इस उद्योग के विस्तार को प्रेरणा मिली।

सन् १८७८ ई० में लखनऊ के अन्तर्गत 'अपर-इण्डिया कूपर-पेपर मिल्स' की स्थापना हुई। यह मिल यद्यपि बहुत छोटी है, मगर भारत में कागज मिलों की 'पायोनियर' मानी जाती है।

सन् १८८८ ई० में सुप्रसिद्ध 'टीटागढ़ पेपर मिल्स' की और सन् १८८९ में 'बंगाल पेपर मिल्स' की स्थापना हुई। इन दोनों मिलों ने मशीनी-कागज के उद्योग को एक नया मोड़ दे दिया।

उसके बाद सन् १९०० ई० तक भारत में कागज की ७ मिलों की स्थापना हो गई और उनका उत्पादन १९ हजार टन प्रतिवर्ष हो गया। सन् १९४३ ई० में पेपर-मिलों की संख्या १५ हो गई और उनका उत्पादन एक लाख टन सालाना हो गया। सन् १९५३ ई० में पेपर मिलों की संख्या १९ हुई और उनका उत्पादन १ लाख ३९ हजार ७ सौ टन हो गया। सन् १९५९ में यह उत्पादन २ लाख ९४ हजार टन पर पहुँच गया।

कागज-उद्योग का कच्चा माल

कागज-उद्योग के लिए सबसे प्रमुख कच्चामाल बाँस है। इस बाँस की आवश्यकता पूरी करने के लिए बाँसों के बड़े-बड़े जंगल लगाये गये हैं। सन १९५५ तक हमारे कागज उद्योग को ३ लाख २५ हजार टन बाँसों की आवश्यकता पड़ती थी, मगर कागज उत्पादन के आगामी लक्ष्य के पूरा करने में हमें करीब १९ लाख टन बाँस की प्रतिवर्ष आवश्यकता होगी। देश में कितना बाँस निरन्तर उपलब्ध होता रहेगा, इसके लिए कागज का केन्द्रीय बोर्ड प्रयत्न शील है और कागज की लुगदी बनाने के लिए सावा घास गन्ने की छोई, यूकेलिप्टस इत्यादि वृक्षों की लकड़ियों पर भी प्रयोग किये गये हैं और इनमें सफलता भी प्राप्त हुई है।

अखबारी कागज की समस्या का भी हल करने का प्रयत्न किया जा रहा है। कुछ वर्ष पूर्व सारा का सारा का अखबारी कागज विदेशों से आयात किया जाता था। अब भारत-सरकार ने राष्ट्रीय क्षेत्र में नेफा के अन्तर्गत एक विशाल कागज के मिल की स्थापना की है। इसमिल की उत्पादन-क्षमता ३० हजार टन प्रति वर्ष है। इस क्षेत्र में और भी विस्तार करने की योजना हो रही है।

काँग्रेस इंडियन नेशनल

भारतवर्ष की सबसे बड़ी और महान् राष्ट्रीय संस्था, जिसकी स्थापना 'इंडियन नेशनल काँग्रेस' के नाम से सन् १८८५ ई० में उमेशचन्द्र बनर्जी के सभापतित्व में बम्बई में हुई थी और जिसने शुरू से अन्त तक भारतीय स्वाधीनता-संग्राम का सञ्चालन कर अंग्रेजी साम्राज्य की पराधीनता से देश को मुक्त किया।

(इस महान् संस्था का पूरा इतिहास इस ग्रन्थ के दूसरे भाग में 'इंडियन नेशनल काँग्रेस' शीर्षक के अन्तर्गत देखें।)

काँग्रेस अमेरिकन

अमेरिका की महान् राष्ट्रीय संस्था। जिसकी स्थापना सन् १७६५ ई० के अक्टूबर में न्यूयार्क नगर के अन्दर टामस-जैफर्सन' नामक व्यक्ति के नेतृत्व में हुई और जिसने इंगलैंड के साम्राज्यवादी पंजे से अमेरिका को मुक्त कर उसे एक स्वतंत्र राष्ट्र का रूप दिया। 'अमेरिकन काँग्रेस' का पूरा इतिहास इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में 'अमेरिकन, शीर्षक के अन्तर्गत देखें।

काङ्गड़ा

पंजाब का एक ऐतिहासिक किला और नगर जो हिमालय के एक ऊँचे मैदान पर बसा हुआ है जिसका इतिहास काफी पुराना है।

कहा जाता है कि यह प्रदेश अति प्राचीन काल से आर्य-सभ्यता का केन्द्र रहा है। महाभारत के समय में यहाँ पर चन्द्रवंशी-राजा राज्य करते थे। ये लोग अपने को "कटोच" कहते थे। जब तक तोपों का आविष्कार नहीं हुआ, तब तक यह किला अजेय माना जाता था। बाणगंगा और मत्तूनी नामक दो छोटी नदियों के संगम पर

यह किला बना हुआ है। दोनों नदियों के संगम पर एक बहुत छोटा भूखण्ड हैं वहाँ पर एक गहरी खाई खोदी हुई है और किले का मुख्यद्वार इसके बाद पड़ता है। नदियों की ओर से किले की दीवारें करीब ३०० फुट ऊँची हैं।

'आर्कियालॉजिकल सर्वे' की रिपोर्ट में इस किले का इतिहास इस प्रकार दिया हुआ है :—

"महमूद गजनवी ने सन् १००९ में आक्रमण करके इस किले पर अधिकार जमाया मगर ३५ वर्ष के पश्चात् यह किला फिर कटोच वंश के अधिकार में आ गया ईस्वी सन् १३३७ में पुनः महमूद तुगलक ने इसे ले लिया। उसके बाद सन् १३५१ में फिरोज तुगलक ने फिर इसे ले लिया। जब सन् १६५१ में सम्राट् जहाँगीर ने उस पर अधिकार जमाया, तब यह स्थायीरूप से मुसलमानों के अधिकार में आ गया। मुगलों का बल घटने पर कटोच-वंशी संसारचन्द्र द्वितीय ने फिर ई० सन् १७८६ में इस पर कब्जा कर लिया। संसारचन्द्र ने सन् १८०९ में यह रणजीत सिंह को दे दिया और सन् १८४६ में यह किला सिक्खों से अंग्रेजों को प्राप्त हुआ। सन् १९०० तक इस किले में ब्रिटिश-सेना रहती थी। सन् १९०५ के प्रबल भूकम्प में यह किला ध्वस्त हो गया।"

इस किले के मुख्य भाग में लक्ष्मीनारायण और शीतला के दो मन्दिर बने हुए थे, जो भूचाल में नष्ट हो गये। एक अम्बिका का मन्दिर भी वहाँ बना हुआ है जिसको भूचाल से क्षति काफी पहुँची। अम्बिका के दक्षिण में दो जैन-मूर्तियाँ स्थापित हैं। जिनमें एक केवल एक चरण है और दूसरी आदिनाथ की मूर्ति है। इस मूर्ति के आसन पर एक लेख है जो सम्भवतः सन् १४६६ का है।

"काङ्गड़ा नगर में एक इन्द्रेश्वर का मन्दिर भी बना हुआ है जो सम्भवतः इन्दुचन्द्र नामक राजा के द्वारा बनाया गया था। इस मन्दिर के पास भी दो जैन मूर्तियाँ हैं जिनमें एक पर लोक-काल-वर्ष ३० लिखा हुआ है। इस मूर्ति का समय सन् ११५४ के आसपास माना जाता है। मन्दिर का सभामण्डप भूचाल से नष्ट हो गया है पर शेष मन्दिर और मूर्तियाँ ज्यों की त्यों हैं।" (सर्वे पृ० १६)

कांगड़ा जिले का सबसे प्रसिद्ध और पूज्य स्थान वज्रेश्वरी का मन्दिर है। यह कांगड़ा नगर के भवन नामक बाहरी भाग में बना हुआ है। यह स्थान प्राचीन समय से अत्यन्त पवित्र माना जाता है। पुराने मन्दिर का द्वार अभी तक अखण्ड है और उसके चौखटे के एक लेख से पता चलता है कि यह लेख "श्री महम्मद" के समय बनाया गया था। कनिंघम के मत से यह महम्मद सन् १५२३ से १५५६ तक दिल्ली में राज्य करता था इस मन्दिर की स्थापना के समय कांगड़ा में संसारचन्द्र राजा था।

काङ्गड़ी–गुरुकुल

आर्य्य समाज के सुप्रसिद्ध नेता स्वामी श्रद्धानन्द के प्रयत्न से स्थापित—प्राचीन भारतीय गुरुकुल-शिक्षा-पद्धति पर आधारित, एक सुप्रसिद्ध शिक्षा-संस्था। जिसकी स्थापना १६ मई सन् १९०० में गुजरानवाला में हुई और सन् १९०२ ई० में वहाँ से उठाकर काँगड़ी में स्थापित किया गया।

आर्य-समाज के संस्थापक-स्वामी दयानन्द ने समाज सुधार सम्बन्धी भिन्न-भिन्न विषयों पर गहराई से विचार किया था। अतः समाज-सुधार की मूलभूत बुनियाद, शिक्षा के सम्बन्ध में भी उनके द्वारा गहराई से विचार किया जाना स्वाभाविक ही था।

उस समय भारत वर्ष में ब्रिटिश-सरकार के द्वारा संस्थापित शिक्षा-संस्थाओं का वास्तविक स्वरूप दृष्टिगोचर होने लग गया था। मेकाले के समान अंग्रेज विद्वानों ने भारतीय इतिहास, भारतीय साहित्य और भारत वर्ष के आदर्श महान पुरुषों की उपेक्षा कर तथा उन्हें कल्पित बनाकर भारतीय युवकों को 'अंग्रेजियत' के रंग में रंगने का प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया था।

इस शिक्षा का उद्देश्य बताते हुए एक बार मैकाले ने कहा था कि—'इस शिक्षा का उद्देश्य भारतीयों का एक ऐसा दल पैदा करना है जो रंग और रक्त में तो भारतीय हो, परन्तु रुचि, मति तथा आचार-विचार में अंग्रेज हो।'

इसके परिणाम-स्वरूप इन विद्यालयों में भारतीय इतिहास और भारतीय साहित्य की उपेक्षा कर इंग्लैंड के इतिहास

और अंग्रेजी साहित्य के अध्ययन पर विशेष ध्यान दिया जाता था। परिणाम यह होता था कि इन विद्यालयों से निकले हुए ग्रेज्यूएट यह तो जानते थे कि आठवें विलियम ने कितने विवाह किये और जितने तलाक दिये, परन्तु वे लोग यह नहीं जानते थे कि विक्रमादित्य नामे का कोई राजा था या नहीं और समुद्रगुप्त ने कहाँ-कहाँ विजय प्राप्त की। उनमें अधिकतर व्यक्तियों को यही सिखाया जाता था कि राम, कृष्ण, विक्रमादित्य, वाल्मीकि, व्यास—ये सब नाम कल्पित हैं। इन नामों के कोई महापुरुष हुए ही नहीं। क्योंकि भारत का इतिहास तो उसी समय से प्रारम्भ होता है जब सिकन्दर ने भारत में प्रवेश किया था।

इस प्रकार की राष्ट्र-विघातक यह शिक्षा-पद्धति, उस महान् स्वामी दयानन्द को कैसे सहन होती! उन्होंने अपने ग्रन्थ-सत्यार्थ प्रकाश में इस शिक्षा-पद्धति का तीव्र खण्डन कर प्राचीन भारत की गुरुकुल-पद्धति का समयानुसार कुछ सुधारों के साथ तीव्र समर्थन किया।

स्वामी दयानन्द के शिक्षा-सम्बन्धी इन विचारों का उनके शिष्य स्वामी श्रद्धानन्द पर बड़ा जबर्दस्त प्रभाव पड़ा और उन्होंने सन् १८९८ ई० में इस प्रकार के 'गुरुकुल' को स्थापित करने की विधिवत् योजना आर्य-समाज की केन्द्रीय समिति के सम्मुख रखी और तत्काल इसके लिए चन्दा करने में जुट गये।

शुरू-शुरू में सन् १९०० ई० के अन्तर्गत पञ्जाब के गुजरान वाला स्थान पर इसका प्रारंभ किया गया। मगर यह भूमि प्राचीन गुरुकुलों के आदर्श के अनुकूल नहीं थी। यह देखकर नजीबाबाद के प्रसिद्ध रईस मुंशी अमनसिंह ने स्वामी श्रद्धानन्द को हिमालय की उपत्यका में गंगा के तट पर स्थित 'काँगड़ी' ग्राम में १२ सौ बीघे भूमि का विशाल भूमि-खण्ड गुरुकुल की स्थापना के लिए दान में दे दिया। यह भूमिं सभी प्रकार से प्राचीन गुरुकुलों के आदर्श के अनुकूल थी।

सन् १९०२ ई० में गुजरान वाला से हटाकर काँगड़ी-क्षेत्र में ३४ विद्यार्थियों के साथ फूस की झोपड़ियों में इस महान संस्था का श्रीगणेश हुआ। स्वामी श्रद्धानन्द की एकनिष्ठ लगन और आर्यसमाज के प्रयत्नों से इसका बड़ी तेजी से विकास होने लगा।

सन् १९०७ ई० में गुरुकुल में 'महाविद्यालय' की स्थापना हुई। सन् १९२१ में वेद, आयुर्वेद, कृषि और आर्टस महाविद्यालयों को बनाने का निश्चय किया गया।

मगर इसके कुछ ही समय पश्चात् सन् १९२४ में गंगा की भीषण बाढ़ से इस संस्था पर भीषण विपत्ति आई और इसकी इमारतों को भारी नुकसान पहुँचा। तब भविष्य में ऐसे प्राकृतिक प्रकोप से बचने के लिए सन् १९३० में इस गुरुकुल को गंगा के पूर्वी तट से हटा कर पश्चिमी तट पर ले आया गया। पश्चिमी तट की आबहवा भी पूर्वी तट की अपेक्षा विशेष उत्तम और स्वास्थ्य प्रद है।

इस गुरुकुल की शिक्षा-पद्धति में ६ वर्ष की आयु से विद्यार्थी को भर्ती किया जाता है और १४ वर्ष के अध्ययन के बाद उसकी शिक्षा समाप्त की जाती है। तब तक विद्यार्थी को वहाँ सरल एवं तपस्यामय जीवन बिताना पड़ता है।

इस गुरुकुल में चरित्र-निर्माण, शारीरिक विकास तथा बौद्धिक और मानसिक विकास की ओर भी पूर्ण ध्यान दिया जाता है। सबसे महत्वपूर्ण बात इस संस्था की यह है कि यहाँ पर सभी प्रकार की उच्च शिक्षाएँ हिन्दी-भाषा के माध्यम से दी जाती हैं। इस गुरुकुल में वेद, वेदांग दर्शन-शास्त्र, इतिहास, संस्कृत, आयुर्वेद, कृषि तथा वैज्ञानिक विषयों की उच्च शिक्षा देने का प्रबन्ध है। इसके लिए इस संस्था में 'वेद-महाविद्यालय' 'आर्टस महाविद्यालय' आयुर्वेद-महाविद्यालय, विज्ञान-महाविद्यालय, और कृषि-विद्यालय बने हुए हैं। यहाँ के स्नातकों को 'वेदालंकार' 'विद्यालंकार' और 'आयुर्वेदालंकार' की उपाधियाँ दी जाती हैं।

दो वर्ष का स्नातकोत्तर पाठ्य-क्रम पास करने के बाद 'वाचस्पति' की उपाधि दी जाती है। उसके पश्चात् किसी खास विषय पर 'रिसर्च' करने पर 'विद्या-मार्तण्ड' की उपाधि प्राप्त होती है।

सन् १९६० में ९ अप्रैल से १२ अप्रैल तक ६० वर्ष पूरे हो जाने के उपलक्ष्य में इस गुरुकुल की 'हीरक-जयन्ती' बड़े ठाट-बाट के साथ मनाई गई।

काङ्ग–ही

चीन के मंचू-राजवंश का एक प्रतापी सम्राट्। जिसका शासन-काल सन् १६६१ से सन् १७२२ तक था।

कांग-ही मंचू-राजवंश का दूसरा सम्राट् था। यह सम्राट् संस्कृति, कला तथा साहित्य का बड़ा प्रेमी था। यह कनफ्यूशस का पक्का अनुयायी था।

सम्राट् कांग-ही ने चीनी-भाषा का एक बड़ा कोष तैय्यार करवाया। जिसमें चालीस हजार से ज्यादा शब्द चिह्न थे। इसी सम्राट् ने "टू-शू-ट्सी-चेंग" नामक एक वृहत् सचित्र विश्व-कोष भी तैय्यार करवाया, जिसके १६२८ खण्ड थे और प्रत्येक खण्ड दो सौ पृष्ठों का था। इसी प्रकार चुआन-ट-आङ्गशिह नामक कविताओं का एक विशाल संग्रह भी तैय्यार करवाया जिसमें तांगकालीन २२०० कवियों की कविताओं का संग्रह और उनका भाष्य भी था। इस प्रकार अपने महान् साहित्यिक और सांस्कृतिक कार्य्यों से यह सम्राट् विश्व-साहित्य में अमर हो गया।

इसी सम्राट् के समय में विदेशी लोगों ने चीन की भूमि में प्रवेश करना प्रारम्भ किया। प्रारम्भ में सम्राट् ने विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन देने के लिए चीन के सारे बन्दरगाह विदेशी व्यापार के लिए खोल दिये, मगर जब इन विदेशियों की बदमाशी का उसे पता लगा तो वह चौंक पड़ा और उसने तत्काल इन विदेशियों की साजिश से साम्राज्य को बचाने के लिए उनके व्यापार पर और ईसाई-धर्म के प्रचार पर कड़े प्रतिबन्ध लगा दिये।

फिर भी यह सम्राट् विदेशियों के पंजों से साम्राज्य की रक्षा न कर सका और थोड़े ही दिनों के बाद इन विदेशियों के पंजे चीन की भूमि पर मजबूती से गड़ गये।

काङ्गो

कांगो नदी के किनारे पर बसा हुआ अफ्रिका का एक प्रान्त, जो कुछ समय पूर्व बेल्जियम-सरकार का उपनिवेश था। सन् १९६० ई० में यह बेल्जियम-सरकार की अधीनता से मुक्त होकर एक स्वतंत्र प्रजातंत्र राष्ट्र की तरह घोषित किया गया।

इस प्रदेश का क्षेत्रफल ७ लाख २ हजार ४० वर्ग मील है। इसके पूर्व में रूवाँडा, उत्तर में फ्रेंच भूमध्य अफ्रिका, पूर्व में टाँगानिका झील और दक्षिण में उत्तरी रोडेशिया का प्रान्त स्थित है।

इसकी राजधानी कांगो नदी पर स्थित 'लियोपोल्ड-विले' में है। 'स्टेनले-विले' तथा 'एलीजाबेथ-विले' इस राज्य के प्रमुख व्यापारिक केन्द्र हैं।

यह प्रदेश मैंगनीज, जस्ता, लोहा, शीशा, चाँदी, सोना तथा युरेनियम की खदानों से भरा हुआ है। यहाँ की 'शिंकोलाबवे' नामक खदान संसार की प्रसिद्ध यूरेनियम की खदानों में से एक है।

काँगो का प्रदेश सन् १८७६ ई० से पहले एक स्वतंत्र भू-भाग की तरह ही था। इसके पश्चात् यह बेल्जियम के राजा 'लियोपोल्ड' द्वितीय की उपनिवेश-लोलुपता का शिकार हुआ। सन् १८७६ में बेल्जियम-नरेश ने अफ्रिका में खोज तथा सभ्यता का प्रचार करने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय समिति की स्थापना की। सन् १८८४ ई० में बेल्जियम-राजा के संरक्षण के अधीन यह एक स्वतन्त्र राज्य बनाया गया और सन् १९०७ ई० में यह पूरी तरह से बेल्जियम-राज्य में मिला लिया गया। तभी से यह देश बेल्जियम का एक उपनिवेश बन गया।

द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात् सारे संसार में उपनिवेश-वाद के विरुद्ध जो प्रबल लहर उठी, उससे काँगो भी नहीं बच पाया। काँगो की जनता ने 'लुलुम्बा' नामक एक व्यक्ति के नेतृत्व में बेल्जियम-उपनिवेशवाद के खिलाफ आन्दोलन करना प्रारम्भ किया। जिसके परिणाम-स्वरूप बेल्जियम को भी काँगो की स्वाधीनता स्वीकार करनी पड़ी और उसने उसे एक स्वाधीन राष्ट्र की तरह घोषित कर दिया।

स्वाधीन होने के पश्चात् काँगो के पहले प्रधान मंत्री वहाँ के जन नेता पैट्रिट लुलुम्बा निर्वाचित किये गये, मगर बेल्जियम वालों को यह सारी घटनाएँ पसन्द नहीं आ रही थीं और उनकी नीयत भी साफ नहीं थी। उन्होंने 'कटाँगा' के 'शोम्बे' को स्वाधीन-कटाँगा का प्रलोभन देकर लुलुम्बा के विरोध में खड़ाकर दिया। लुलुम्बा के खिलाफ चारों तरफ भयंकर षड्यंत्र होने लगे। जिसके फल स्वरूप अन्त में इस व्यक्ति की नृशंसता-पूर्ण हत्या कर

दी गईं। लुलुम्बा की हत्या से सारे अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में एक तहलका सा मच गया। राष्ट्र-संघ भी इस घटना से सिहर उठा और उसने काँगो की स्थिति को समझने और वहाँ शान्ति स्थापित करने के लिए महामंत्री 'हैमरशील्ड' को भेजा और अन्तराष्ट्रीय क्षेत्रों से कुछ सेनाएँ भी वहाँ पर भेजी गईं। भारत से भी ६ हजार सेना वहाँ पर शान्ति स्थापित करने के लिए भेजी गई।

मगर कांगों में शान्ति स्थापित नहीं हुई। वहाँ के विद्रोह का अन्त नहीं हुआ और अन्त में इन्हीं षड्यन्त्रों में हैमरशील्ड का बलिदान हो गया।

एक बार जिस हवाई जहाज पर वे जाने वाले थे, उसमें षड्यंत्रकारियों ने कुछ विस्फोटक-पदार्थ रख दिये जिससे थोड़े समय बाद जहाज में विस्फोट हुआ और हैमरशील्ड काल के ग्रास हो गये।

डॉग हैमरशील्ड की मृत्यु से अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में फिर आतंक छा गया, मगर शोम्बे की गति-विधियाँ उसी प्रकार चालू रही। बेल्जियम और रोंडेशिया से उसे गुप्त रूप से सहायताएँ मिलती रहीं। सैनिक-झड़पें भी बराबर होती रहीं। समझौते की बातें भी कई बार चलती और टूटती रहीं। अन्त में लोगों के बीच-बिचाव से कुछ समझौता हुआ और अब तो यह भी पढ़ने में आया है कि काँगों के राष्ट्रपति कासाबूबू ने मंत्रिमंडल बनाने के लिये शोम्बे को आमंत्रित किया है।

काच

एक पार-दर्शक पदार्थ, जिससे शीशी, बोतल, दर्पण तथा कई प्रकार की वस्तुओं का निर्माण होता है।

काँच का उद्योग मानव-जाति के अन्दर कब से प्रारंभ हुआ, इसका ठीक-ठीक पता लगाना कठिन है। क्योंकि यह पदार्थ बहुत प्राचीन-काल से मनुष्य-जाति के अन्दर चला आ रहा है।

प्राचीन मिस्र के अन्दर खुले साँचों के द्वारा काँच का निर्माण ईसा से १५०० वर्ष पहले से प्रारम्भ हुआ। साँचों के द्वारा काँच की तश्तरियाँ, कटोरे इत्यादि का निर्माण किया जाता था। उस समय मिस्र काँच-निर्माण का एक प्रमुख केन्द्र था।

उसके बाद फिनीशिया देश के लोगों ने फूँकनी के द्वारा गर्म काँच को फूँकने की क्रिया का आविष्कार किया। इस क्रिया के आविष्कार से काँच के उद्योग में एक नया जीवन आया। यह आविष्कार ईसा से पूर्व सम्भवतः चौथी सदी में हुआ था।

ईस्वी सन् के प्रारंभ में रोम और वेनिस में भी प्रचुर मात्रा में काँच का उत्पादन होने लगा था।

प्राचीन भारत के लोग भी काँच के उपयोग से परिचित थे। रामायण, महाभारत इत्यादि कई प्राचीन ग्रंथों में काँच के उपयोग का उल्लेख हुआ है। प्राचीन भारत की खोदाइयों में बहुत से प्राचीन काँच के टुकड़े प्राप्त हुए हैं।

मुसलमानी काल में राज-महलों और बड़े-बड़े धनिकों के आवास-गृहों में रोशनी के लिए लगे हुए बड़े-बड़े झाड़ और फानूस विकसित काँच-उद्योग की परम्परा के सूचक हैं।

आधुनिक काँच-उद्योग का इतिहास १६ वीं सदी से प्रारम्भ होता है। सन् १५५७ ई० में सीसयुक्त-स्फटिक का लन्दन में आविष्कार हुआ। सन् १६६८ ई० में पट्टिका-काँच ढालने की विधि का पेरिस में आविष्कार हुआ। सन् १८८० में जर्मनी के वैज्ञानिक 'शॉट' और 'एबी' ने 'लैंस' आदि बनाने के योग्य कई प्रकार के काँचों का आविष्कार किया। सन् १८६६ ई० में न्यूयार्क प्रान्त के कार्निङ्ग नगर में सबसे पहले बिजली के 'बल्बों' का आविष्कार हुआ। सन १८६६ ई० में काँच बनाने के लिए पूर्ण स्वचालित यन्त्र 'ओवेन' का निर्माण हुआ। सन् १६०१ ई० में काँच-प्रदाहक' 'बुक' नामक यन्त्र का निर्माण हुआ। सन् १६१५ ई० में ताप-प्रतिरोधक, पाइरेक्स नामक काँच का निर्माण हुआ, जो गरम करके ठंडे पानी में डुबो देने पर भी नहीं तड़कता।

सन् १६२८ ई० में 'सेफ्टी ग्लास' का निर्माण हुआ, जो चोट लगने पर तड़क तो जाता है, मगर टूट कर अलग नहीं होता। यह मोटरकारों में लगाया जाता है। सन् १६३१ में काँच के धागों और वस्त्रों का निर्माण हुआ। सन् १६०२ में संयुक्त-राज्य अमेरिका और बेल्जियम में 'लिबी ओवेन्स' और 'फूर-काल्ट' प्रणालियों के द्वारा काँच की चद्दरों का निर्माण होना प्रारम्भ हुआ।

भारतीय-कॉंच उद्योग का विवरण १६ वीं शताब्दी से प्रारम्भ होता है। उस समय यहाँ से अनिर्मित काँच और काँच बनाने के रासायनिक पदार्थ यूरोप और उत्तरी इटली को निर्यात किये जाते थे। आधुनिक मैशीन-पद्धति से भारत में काँच का उद्योग सन् १८७० से प्रारम्भ हुआ, मगर बहुत लम्बे समय तक यह उद्योग निराशा और असफलताओं के बीच गुजरता रहा। अन्त में द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् भारत के कई उद्योगपतियों ने आधुनिक मशीनों और साज-सज्जाओं के साथ इस उद्योग में प्रवेश किया। इधर जनता में भी काँच के बर्तनों की माँग बढ़ने लगी। फलस्वरूप अब भारत का काँच-उद्योग संतोष-जनक ढंग से प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रहा है।

भारत के कॉंच-उद्योग में चूड़ी-उद्योग का महत्व भी बहुत अधिक है। भारतवर्ष के महिला-समाज में चूड़ी सौभाग्य का चिन्ह मानी जाती है। कॉंच की चूड़ी का उद्योग प्रधान रूप से फीरोजाबाद में १६ वीं सदी से चल रहा है और अब तो इस उद्योग ने भिन्न-भिन्न प्रकार के कई सुन्दर और आकर्षक डिजाइनों का निर्माण कर महत्वपूर्ण उन्नति कर ली है। (नागरी-प्रचारिणी विश्व-कोश)

काञ्चीपुरम् (काञ्जीवरम्)

प्राचीन भारत की एक सुप्रसिद्ध 'पुनीत नगरी' जो दक्षिण काशी के नाम से भी प्रसिद्ध है। यह नगर मद्रास नगर से ४५ मील दक्षिण-पश्चिम में स्थित है।

सहस्त्रों वर्षों से जो सप्तपुरियाँ हिन्दू-जनता के समक्ष समग्र भारत की एकता का सूत्र, सुस्पष्ट करती आई हैं, जिन्होंने उत्तर और दक्षिण के भेद-भावों की दीवार को गिराकर सम्पूर्ण हिन्दुस्तान को एक राष्ट्र के रूप में खड़ा होने की प्रेरणा दी है, उनमें उत्तर की काशी और दक्षिण की काञ्चीं का नाम अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

'काञ्चीपुरम्' भारत के प्राचीन इतिहास की स्वर्णपुरी रही है। भारत के प्राचीन साहित्य में इस नगरी की पवित्रता का स्थान-स्थान पर वर्णन किया गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी इस नगरी का महत्व कम नहीं है।

४ थी से ६ वीं शताब्दी के मध्य यह नगरी दक्षिण' भारत के पराक्रमी पल्लव-राजवंश की राजधानी रही। उन दिनों में इस नगरी में जिस कला-कौशल और सांस्कृतिक मानदण्डों की स्थापना हुई, उनका प्रभाव सारे दक्षिण भारत पर पड़ा।

पल्लववंशी सम्राटों के शासन-काल में यहाँ 'कैलास नाथ' और 'बैंकुण्ठ पेसमाल' आदि के उन भव्य मन्दिरों का निर्माण हुआ, जिन्होंने इस नगरी के महत्व को बहुत बढ़ा दिया।

पल्लववंशी सम्राटों के पश्चात् काञ्चीपुरम् में चोलवंशी राजाओं का राज्य स्थापित हुआ। इस राजवंश ने भी पाषाणों की छाती चीर कर कई देवालयों का निर्माण करवाया। यहाँ के मन्दिरों में उनके द्वारा उत्कीर्ण कराये गये अगणित चित्रों से आज भी अतीत के स्वर्णिम इतिहास के पन्ने, नेत्रों के सामने उभर आते हैं।

चीन का सुप्रसिद्ध यात्री हुएनसंग ७वीं सदी में काञ्ची आया था। उसने अपने यात्रा-विरण में लिखा है कि—'यह नगर ६ मील के घेरे में फैला हुआ एक विशाल नगर था। यह नगर शिक्षा, न्याय और वीरता का केन्द्र था। इस नगर में जैन-धर्म का प्रभाव सबसे अधिक था और उसके बाद ब्राह्मण तथा बौद्ध दूसरे स्थान में थे।'

इससे पता चलता है कि पल्लव-राजवंश के राजाओं ने जैन-धर्म, जैनाचार्य और जैन-देवालयों को विशेष रूप से आश्रय प्रदान किया था और इन्हीं की वजह से सारे कर्नाटक में उस समय जैन-धर्मका बोल बाला हो गया था।

चोल राजवंश के समय में काञ्ची से दो मील दूर दक्षिण में 'पिल्ला पलइयम्' नामक सुप्रसिद्ध जैनियों के मन्दिर का निर्माण हुआ था। जैनियों का यह अत्यन्त पुराना और प्रसिद्ध मन्दिर है। इसका कलात्मक निर्माण, चित्रकारी, रँगाई और स्थापत्य कला उत्कृष्ट श्रेणी की है। इसका निर्माण चोलवंश के राजाओं ने अपने उन्नति-काल में करवाया था।

उसके बाद विजय-नगर शासन-काल में इस मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया गया।

सन १३१० ई० में मुसलमानों के आक्रमण से चोल-राजवंश का पतन हो गया, मगर उसके कुछ ही दिन पश्चात् हरिहर और बुक्काशय ने सुप्रसिद्ध 'विजयानगरम्' राज्य की सुदृढ़ नींव रखी। विजयानगरम् के हिन्दू-राजवंश के समय में भी राजा कृष्णदेव राय ने दो बड़े-बड़े विशाल मन्दिरों का निर्माण कराया।

काञ्चीपुर नगर दो भागों में विभक्त है। विष्णु-कांची और शिवकाञ्ची। शिवकाञ्ची में शिव-मन्दिर और विष्णुकाञ्ची में विष्णु-मन्दिर अवस्थित है। शिवकाञ्ची के दर्शनीय स्थानों में एकाम्रनाथ और कामाक्षीदेवी के मन्दिर विशेष उल्लेनीय हैं। एकाम्रनाथ महादेव का आदिलिंग समस्त दक्षिण भारत में बहुत प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि इस मन्दिर के आँगन में एक बहुत पुराना आम का वृक्ष है और उसी की वजह से इस मन्दिर का नाम 'एकाम्रनाथ' रखा गया है।

विजयनगर साम्राज्य के समय में यह नगर उन्नति की चरम सीमा पर था। सन १६६४ ई० में विजयनगर-साम्राज्य के पतन होने पर यह नगरी मुगल-साम्राज्य के अधीन हुई, जो सन् १७५२ तक मुगल साम्राज्य के अधीन रही। सन् १७५२ में लार्ड क्लाइव ने इसको 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' के अधिकार में ले लिया। उसके बाद इस नगर के लिए अंग्रेजों और फ्रांसीसियों में छीना-झपटी होती रही। काञ्ची-नगर और उसके आसपास के ग्रामों में बुनकरों की संख्या बहुत अधिक है। रेशमी वस्त्रों के उत्पादन का यह प्रमुखतम केन्द्र है। यहाँ की बनी हुई साड़ियाँ सारे भारतवर्ष में लोकप्रिय हैं।

काङ्कार्डेट

नैपोलियन बोनपार्ट के द्वारा रोमन-चर्च की फ्रांस में पुनः स्थापना के लिए सन् १८०१ ई० में पोप से की हुई सन्धि 'काङ्कार्डेट' कहलाती है।

इस सन्धि के द्वारा घोषित किया गया कि फ्रान्स की जनता का बहुमत रोमन कैथोलिक धर्म को मानने वाला है। अतः फ्रान्स में इसी धर्म को राजकीय धर्म घोषित किया जाता है। बिशप तथा चर्च के अन्य पदाधिकारियों की नियुक्ति कौंसिल के द्वारा की जावेगी, मगर उसके लिए पोप की स्वीकृति लेना आवश्यक होगी। इस संधि के अनुसार चर्च का राज्य से पृथक अस्तित्व समाप्त हो गया। चर्च भी एक प्रकार से राज्य की अधीनता में आ गया। यद्यपि नाम मात्र को पोप का आधिपत्य भी शेष रक्खा गया था।

काजी

इस्लामी राज्यों में न्यायविभाग का न्यायाधीश जिसे जनता के अपराधों का निर्णय करने का अधिकार होता था।

शुरू-शुरू में इस प्रकार के अपराधों का निर्णय खलीफा लोग ही किया करते थे। मगर जब इस्लाम का विस्तार बहुत अधिक हो गया, तब खलीफा ऊमर ने न्याय-विभाग को धर्माधिकारी काजियों के हाथ में सौंप दिया। इस प्रकार के काजियों में सबसे पहले अबूमूसा अशअरी की नियुक्ति 'कूफा' में सन् ६३८ के करीब की गई थी। मूसा की नियुक्ति के समय हजरत ऊमर ने एक पत्र लिखा था। इस पत्र में कजा विभाग या न्याय विभाग सम्बन्धी आदेशों या कार्यों का सम्पूर्ण विधान लिख दिया गया था। इस पत्र में वचन का पालन करने, न्याय की उपेक्षा न करने, किसी के साथ पक्षपात न करने और शक्तिहीनों के प्रति उदारता का व्यवहार करने पर बड़ा जोर दिया गया था। काजी के लिए उसमें यह भी आदेश था कि वह ठण्डे दिल से गवाहों और प्रमाणों पर विचार करने के बाद ही किसी फैसले को दे।

खलीफा हारूं-अल-रशीद के समय में काजियों के अधिकारों में और वृद्धि हुई और सर्वसाधारण के हितों की रक्षा, दस्तावेजों की जाँच-पड़ताल इत्यादि अनेक अधिकार उनके हाथ में आ गये। खलीफा हारू-अल-रशीद के समय में अबू-यूसुफ नामक काजी खलीफा के प्रधान न्यायधीश थे। खलीफा ने इनको काजी-अल-कजा की उपाधि दी थी। इन्होंने "किताब-अल-खराज" नामक एक कानूनी पुस्तक की भी रचना की थी। इनका समय सन ७३१ से ७९८ तक था। भारतवर्ष में भी मुसलमानी-राज्यकाल में 'काजी' लोगों को न्याय करने की तथा धर्म सम्बन्धो और भी कई सत्ताएँ प्राप्त थीं।

अलाउद्दीन खिलजी के समय में काजी "अला-उलमुल्क" प्रधान काजी थे। जब अलाउद्दीन खिलजी ने दिग्विजय करने के बाद एक नवीन मजहब जारी करने के सम्बन्ध में राय पूछी तो काजी अलाउल मुल्क ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि 'मजहब और कानून खुदाताला के बस की चीजें हैं। इन्सान की तमन्ना से वे कभी पैदा नहीं हो सकतीं। आदिम काल से उनकी व्यवस्था नबियों और पैगम्बरों के द्वारा होती चली आ रही है। इसलिए तुम इस विचार को छोड़ दो।' अलाउद्दीन ने उनकी सलाह मान कर अपना विचार छोड़ दिया।

सम्राट् अकबर के समय में "अब्दुल्ला सुलतानपुरी" प्रधान काजी थे। बादशाह हुमायूँ ने इन्हें "मखदुलमुल्क" की उपाधि दी थी। 'कानून' और 'हदीस' इनकी जबान पर रहते थे। हुमायूँ के बाद शेरशाह के पुत्र सलीमशाह के दरबार में भी ये प्रधान काजी बनाये गये। वहाँ पर इन्होंने मेहन्दी-सम्प्रदाय के गुरु शेख अल्लाई को 'कुफ्र' का फतवा देकर सरे दरबार में मरवा डाला था। कुछ दिनों बाद सम्राट अकबर से मतभेद हो जाने पर मुल्ला सुल्तानपुरी, सम्राट का 'काफिर' तथा 'शीया' कहकर अपमान करने लगे। तब मजबूर होकर सम्राट ने उनको सन् १५७९ में 'मक्का' भेज दिया।

अबदुल्ला सुल्तानपुरी के बाद शेख अब्दुल नबी साम्राज्य के सबसे बड़े काजी बनाये गये। सम्राट अकबर शेख के जूतों को उठाने में अपना गौरव समझता था और इन्हें सब काजियों के ऊपर अध्यक्ष बना दिया था।

एक बार मथुरा के एक ब्राह्मण को कुफ्र के मामले में कत्ल करवा देने के कारण सम्राट अकबर इनसे बहुत नाराज हुआ और इनको भी उसने मक्का भेजवा दिया।

इस प्रकार इस्लामी-शासन के समय में काजियों के अधिकार बहुत बढ़े हुए थे और सबसे ~~बड़े~~ काजी को 'काजी-उल-उज्जात' कहा जाता था।

काजी अहमद

एक मुसलमान इतिहासकार, जो सन् १५६७ ई० में हुए। इनका लिखा हुआ 'नुसक्-ए-जेहन-आरा' ग्रन्थ है, जिसमें इस्लाम की स्थापना से लेकर हिजरी सन् ९७२ तक की घटनाओं का उल्लेख किया गया है।

काजी अजीम खाँ

आगरे के एक प्रसिद्ध मुसलमान चिकित्सक, जो सन् १५५१ ई० में विद्यमान थे। उस समय चिकित्सा के क्षेत्र में यह बहुत प्रसिद्ध थे। आगरे में यमुना के तीर पर इन्होंने एक सुन्दर बगीचा लगवाया था, जो अब भी टूटी-फूटी हालत में "हकीम के बाग' के नाम से प्रसिद्ध है।

काटजू कैलासनाथ (डाक्टर)

भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध धाराशास्त्री, राजनैतिक नेता, स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत के होम मिनिस्टर और उसके बाद मध्यप्रदेश के मुख्य मंत्री। जिनका जन्म सन् १८८७ ई० में मध्य प्रदेश के जावरा नगर में हुआ।

सन् १९०७ ई० में डा० कैलासजाथ काटजू ने इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से एल० एल० बी० की और सन् १९०८ ई० में एम० ए० की डिग्री प्राप्त की। उसके पश्चात् ६ वर्ष तक डा० काटजू ने कानपुर डिस्ट्रिक्ट कोर्ट में कानून की प्रैक्टिस की। सन् १९१३ ई० में इन्होंने इलाहाबाद युनिवर्सिटी से मास्टर ऑफ-लाज (L. L. M.) की की उच्च डिग्री प्राप्त की।

उसके बाद सन् १९१४ ई० में डा० काटजू ने इलाहाबाद हाईकोर्ट में अपनी प्रैक्टिस शुरू की। इसके आगे 'डाक्टरेट' की डिग्री लेने के लिए इन्होंने 'क्रिमिनल एंड एक्श्नेबल कॉंस्पिरेसीज' पर एक गवेषणा पूर्ण 'थीसिस' लिख कर इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में पेश किया, जिस पर १९२० ई० में यूनिवर्सिटी ने इनको 'डाक्टर ऑफ लाज' की उपाधि प्रदान की।

उसके बाद स० १९१४ ई० से सन् १९३७ ई० तक डा० काटजू ने इलाहाबाद हाईकोर्ट में शानदार और गौरवपूर्ण कानून की प्रैक्टिस की। इस प्रैक्टिस में उन्होंने ऐसे उलझन पूर्ण, सनसनीदार और प्रसिद्ध केसों की ओर

अपीलों की पैरवी की, जिससे सारे भारतवर्ष के कानूनी क्षेत्र में इनकी प्रसिद्धि हो गई।

सुप्रसिद्ध 'मेरठ-षडयंत्र केस' की भी इन्होंने सन् १६३० ई० में क्रान्तिकारियों की ओर से, इलाहाबाद हाई कोर्ट में, पैरवी की थी। इससे भी इनके यश में बहुत वृद्धि हुई।

इस प्रकार की सेवाओं से जनता में इनकी लोकप्रियता बहुत बढ़ गई। और सन् १६३६ ई० में ये इलाहाबाद म्युनिसिपैलिटी के अध्यक्ष चुने गये। सन १६३७ में जब उत्तर प्रदेश सरकार में पहली काँग्रेस मिनिस्ट्री बनी तब उसके ६ मिनिस्टरों में डाक्टर काटजू भी एक मिनिस्टर बनाये गये और कानून न्याय तथा विकास का विभाग इनके जिम्मे किया गया।

सन् १६३६ ई० में द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ होने पर व्यक्तिगत सत्याग्रह के सिलसिले में डा० काटजू को १८ महीने की सजा पाकर जेल में जाना पड़ा।

सन् १६४२ ई० के 'भारत छोड़ो', आन्दोलन के सिलसिले में यह फिर गिरफ्तार किये गये और फिर जेल गयें। मगर कठिन बीमारी के कारण अप्रैल सन १६४३ में छोड़ दिये गये।

सन् १६४६ ई० यूनाइटेड नेशन में खाद्य और कृषि सम्बन्धी कमीशन के संगठन में भारत-सरकार ने डा० काटजू के नेतृत्व में अपना एक डेलीगेशन भेजा था। वहाँ पर इन्होंने तीन महीने तक कार्य किया।

सन् १६३७ ई० में सरदार वल्लभभाई पटेल की अध्यक्षता में निर्मित 'भारत-विधान-निर्मात्री-समिति' के डा० काटजू भी एक सदस्य बनाये गये।

स्वाधीनता-प्राप्ति के पश्चात् डा० काटजू सन १६४७ ई० में उड़ीसा के और सन् १६४८ ई० में बंगाल के गवर्नर बनाये गये।

उसके पश्चात् सन् १६५१ में ये केन्द्रीय सरकार के 'होम मिनिस्टर' बनाये गये। सन १६५५ तक डा० काटजू ने इस उत्तरदायित्व पूर्ण पद पर कार्य किया। उसके बाद केन्द्रिय सरकार में ये सुरक्षा-मंत्री बनाये गये, जहाँ सन् १६५८ तक इन्होंने काम किया।

सन् १६५७ से सन १६६२ तक डा० काटजू मध्य-प्रदेश सरकार के मुख्य मंत्री-पद पर रहे।

जिस समय डा० काटजू केन्द्रिय सरकारमें होम मिनिस्टर-पद पर थे, उस समय मन्दसोर जिले में भानपुरा-जनपद के पास चम्बल नदी पर 'गान्धी-सागर' बाँध बँधवाने में डा० काटजू ने पूरा उद्योग किया। इन्हीं की वजह से इस बाँध का उद्‌घाटन करने के लिए प्रधान मंत्री पं० नेहरू इस स्थान पर आये और यह कहने में किसी प्रकार की अतिशयोक्ति न होगी कि डा० काटजू की वजह से ही यह विशाल बाँध बँधकर तैयार हुआ। इस बाँध की वजह से राजस्थान और मध्यप्रदेश का बहुत बड़ा क्षेत्र बिजली के प्रकाश से जगमगा उठा और इसके द्वारा कटी हुई नहरों से हजारों एकड़ भूमि शस्य-श्यामला हो रही है।

डा० काटजू साहित्य में भी दिलचस्पी रखते हैं और हिन्दी तथा अंग्रेजी में इन्होंने कुछ ग्रन्थों की रचना भी की है।

डा० काटजू उन प्रसिद्ध व्यक्तियों में से एक हैं, जिन्होंने भारतीय कानून, राजनीति और शासन के इतिहास में अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया है।

काटुलस वेलेरियस

(Valerius Katules)

लैटिन भाषा का एक प्रसिद्ध कवि जिसका समय ई० पू० ८४ से ई० पू० ५४ तक है।

काटुलस वैरोना का निवासी था। इस कवि को कविता की मूल प्रेरणा इसकी प्रेमिका "क्लोडिया" से मिलती थी। इस सुन्दर और चञ्चल नारी ने अपनी मोहकता का जादू काटुलस पर डाल रक्खा था और उसी के प्रभाव से इसकी कविताओं में प्राणों का संचार होता था। काटुलस की कविताओं में गहरी अनुभूति, रोमान्स और हृदय की पीड़ा के दर्शन होते हैं। यूरोप में प्रचलित लिरिक की काव्य-धारा पर इस प्राचीन कवि का बड़ा प्रभाव पड़ा है।

काँट-डी-निकालो

इटली के वेनिस नगर का एक भ्रमणकारी यात्री। जिसने सन १४१६ ई० से सन् १४४४ ई० तक संसार के सारे प्रधान प्रधान देशों का भ्रमण करके वहाँ का बड़ा रोचक वृत्तान्त

लिखा। भारतवर्ष में भी यह आया था। तत्कालीन भारतीय जीवन, वेश-भूषा और रीति-रिवाजों का उसने बड़ा सुन्दर वर्णन किया है।

काण्ट (काण्ट इमानुएल)

जर्मनी का एक सुप्रसिद्ध दार्शनिक, तत्वचिन्तक और वैज्ञानिक किसका जन्म अप्रैल सन् १७२४ में जर्मनी के कोनिग्ज वर्ग नगर में और मृत्यु सन् १८०४ में हुई।

काण्ट के मातापिता ईसाई धर्म के पायटिज्म सम्प्रदाय या भक्ति मार्ग के अनुयायी थे, इसलिए काण्ट के मन पर भी उनके धार्मिक संस्कारों का काफी प्रतिबिम्ब पड़ा।

काण्ट के माता पिता की आर्थिक स्थिति संतोष जनक नहीं थी। इसलिए उसका अध्ययन काल बड़े कष्ट में बीता। किसी प्रकार मैट्रिक पासकर वह विश्वविद्यालय में भरती हुआ और अपने जीवन के ७ वर्ष उसने अध्ययन में बड़े कष्ट के साथ व्यतीत किये।

सन् १७४६ ई० में काण्ट के पिता की मृत्यु हो गयी। पिता की मृत्यु के कारण उसे जीविका उपार्जन करने के के लिए मजबूर होकर पढ़ना छोड़ना पड़ा और ट्यूशन करके अपना गुजारा करना पड़ा। इस प्रकार ६ वर्ष कोनिग्ज वर्ग से ६० मील दूर जूट्सकेन नामक नगर में उसे व्यतीत करने पड़े।

सन् १७५५ ई० में उसने तत्वज्ञान सम्बन्धी एक मौलिक ग्रन्थ लिखकर 'कोनिग्ज बर्ग' विश्वविद्यालय से डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त कर ली। उसके बाद उसने इसी विश्वविद्यालय में अवैतनिक प्रोफेसर की जगह प्राप्त कर ली। इस श्रेणी के प्रोफेसरों को कॉलेज से कोई वेतन नहीं मिलता था। विद्यार्थियों से जो कुछ शुल्क मिल जाता उसी पर उन्हें गुजर करना पड़ता था। इस कारण उसकी आर्थिक स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ।

अन्त में सन् १७७० ई० में जाकर उसे फिलासोफी के वैतनिक प्रोफेसर की जगह मिल गई और वह जीवन भर इसी स्थान पर काम करता रहा।

कॉंट आजन्म अविवाहित ही रहा। शुरू-शुरू में तो अपनी गरीबी के कारण उसने अपना विवाह नहीं किया। फिर जब अच्छे दिनों में एक स्त्री से प्रेम भी हुआ तो उस स्त्री ने धोखा देकर दूसरे पुरुष से विवाह कर लिया और कांट की इच्छा ज्यों की त्यों रह गई। फिर जब उसने देखा कि उसकी विवाह की उमर बीत चुकी है तब उसने आजीवन अविवाहित रहने का ही निश्चय कर लिया।

अपने जीवन के इन अत्यन्त कठिनाई पूर्ण प्रसंगों में भी काँट का अध्ययन और मनन बराबर चालू रहा। और उसने आलोचनात्मक दर्शन या क्रिटिकल फिलासफी के नाम से एक नवीन दार्शनिक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उस समय सारे यूरोप में पुनर्जागरण के प्रभाव से बड़े-बड़े तत्वज्ञानी तत्व-चिन्तन के क्षेत्र में प्रकट हो रहे थे और नये-नये दार्शनिक सिद्धान्तों की स्थापना हो रही थी। काण्ट के तत्वज्ञान को समझने के लिए इन पूर्ववर्ती विचारधाराओं को संक्षेप में समझना आवश्यक है।

बेकन का संवेदनावाद

एक ओर 'फ्रांसिस बेकन' का संवेदनावाद प्रचलित हो रहा था। बेकन का कथन था कि मनुष्य को जो कुछ भी ज्ञान होता है, वह इन्द्रियों के द्वारा होता है। हमारी इन्द्रियों पर वाह्य पदार्थों का प्रतिबिम्ब गिरता है। इन्द्रियाँ मन में संवेदना उत्पन्न करती हैं और इन संवेदनाओं से सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है। मनुष्य अपनी कल्पना शक्ति और विवेक-शक्ति के द्वारा जो विचार उत्पन्न करता है, वे विचार मकड़ी के जाले के समान होते हैं। जिस तरह मकड़ी अपने ही शरीर से धागे निकाल कर सुन्दर जाला बनाती है और वह फूँक मारने से उड़ जाता है, उसी प्रकार कल्पना और विवेक शक्ति के द्वारा बनाया हुआ विचारों का महल अनुभव के द्वारा तत्काल गिर पड़ता है।

मतलब यह कि बेकन के मत से इन्द्रियों की संवेदना ही सच्चा ज्ञान देने वाली शक्ति है। कल्पना और विवेक शक्ति के द्वारा प्राप्त किया हुआ ज्ञान सिर्फ धोखा है।

अपनी इसी विचार-प्रणाली के कारण बेकन यूरोप में 'संवेदनावाद' का प्रथम आचार्य माना गया है।

डेकर्ट का विवेकवाद

दूसरी ओर फ्रेंच तत्वज्ञानी 'डेकार्ट' एक दूसरे ही सिद्धान्त का प्रतिपादन कर रहा था। उसका सिद्धान्त था

कि हमारी इन्द्रियाँ हमें धोखा दे देती हैं। वे अनेक बार मन में केवल आभास ही उत्पन्न करती हैं, जिससे हमें दृष्टिभ्रम हो जाता है, श्रुति भ्रम हो जाता है। अतएव हमें वाह्य-सृष्टि का सच्चा ज्ञान नहीं होपाता। हमारी बुद्धि भी निरपेक्ष विश्वास के योग्य नहीं। कई बार वह असत्य निर्णयों को सत्य सिद्ध कर देती है। इसी तरह गणित-शास्त्र के सिद्धान्तों के सच्चे होने में भी सन्देह उत्पन्न हो जाता है और इस प्रकार अन्त में हम 'संशयवाद' के सिद्धान्त पर आ जाते हैं, परन्तु इस संशयवाद में केवल एक पदार्थ के लिए सन्देह नहीं रहता। सन्देह होने के लिए सन्देही का होना आवश्यक है। "मैं विचार करता हूँ।" इसमें भी मैं का अस्तित्व है। अतएव इस सन्देहवाद में से भी आत्मा के अस्तित्व का सुदृढ़ प्रमाण मिल जाता है। इस एक सत्य के सहारे शेष सत्य वस्तुएँ भी सिद्ध हो जाती हैं। आत्मा की सन्देह-वृत्ति के द्वारा आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है। परन्तु सन्देह वृत्ति से युक्त आत्मा, अपूर्ण और सदोष होती है। अपूर्ण और सदोष आत्मा की कल्पना सापेक्ष है। उसे जानने के लिए पूर्ण और दोष-रहित आत्मा की कल्पना अवश्य ही करनी होती है। यही कल्पना पूर्ण और दोष रहित परमेश्वर की कल्पना है।

इस प्रकार दो तत्व हमारे सामने उपस्थित होते हैं। एक जीवात्मा और दूसरा परमात्मा। अब रह गई वाह्य-सृष्टि। उसका अस्तित्व भी स्पष्ट सिद्ध होता है। जबकि परमात्मा सर्वगुण सम्पन्न है, तो उसके गुणों में सत्य के गुण का अन्तर्भाव सिद्ध होता है। अतएव सर्व गुण सम्पन्न परमात्मा किसी को धोखा नहीं देता। इसीलिए हमारी इन्द्रियों को जो पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं, वे सत्य होना ही चाहिए। नहीं तो यह अपत्ति होगी कि परमात्मा ने हमें धोखा देने वाली इन्द्रियाँ देकर भ्रम में डाल दिया है। इस प्रकार इस सृष्टि में मौलिक रूप से तीन पदार्थ सिद्ध होते हैं। जीवात्मा, परमात्मा और जड़ सृष्टि। परमात्मा पूर्ण है। उसी ने जीवात्मा और जड़ सृष्टि का निर्माण किया है। जीवात्मा ज्ञानमय और अवकाश रहित पदार्थ है और जड़ सृष्टि अज्ञान एवं अवकाश सहित है।

डेकार्ट का यह तत्वज्ञान 'विवेकवाद' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

जॉन लॉक

बेकन और डेकार्ट की विचारधारा के साथ इंग्लैंड के जानलॉक नामक तत्वज्ञानी की एक तीसरी विचारधारा भी उस समय प्रचलित थी। यह इंग्लैंड का रहनेवाला था। जॉनलॉक वैसे संवेदनावाद के सम्बन्ध में बेकन का ही टीकाकार था। फिर भी इसके कुछ ऐसे भी सिद्धान्त थे जो बेकन से भिन्न थे।

लॉक ने प्रतिपादन किया है कि मनुष्य को सम्पूर्ण ज्ञान इन्द्रिय संवेदना के द्वारा ही प्राप्त होता है। वह मनुष्य की विवेक शक्ति के अस्तित्व को मानता जरूर है मगर साथ ही यह भी कहता है कि ज्ञान के विषय में विवेक का स्थान गौण है। इतना जरूर है कि संवेदना के द्वारा जो ज्ञान उत्पन्न होता है विवेक उस ज्ञान के संयोग से अधिक ज्ञान प्राप्त करता है।

लॉक का कथन है कि मनुष्य का मन शुरू में कोरे कागज के समान होता है। सबसे पहले इन्द्रिय संवेदना के द्वारा ही उसमें संस्कार होते हैं और फिर उसके द्वारा विचार बनते हैं।

डेकार्ट के समान लॉक भी सृष्टि में तीन पदार्थ मानता है। इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त संवेदना के द्वारा हमें जिस ज्ञान की प्राप्ति होती है वह बाह्य सृष्टि है। हमारी सारी संवेदना और ज्ञान के अन्दर आत्मा के अस्तित्व का बोध होता है इसलिए दूसरा तत्व "आत्मा" हुआ। और कार्य्य कारण की परम्परा को मानने से इस कार्य्य रूप महान् सृष्टि का कोई कारण अवश्य होना चाहिए इस तर्कना से हमें सबके कारण रूप परमात्मा के अस्तित्व का बोध होता है।

ह्यूम का अज्ञेयवाद

चौथी विचारधारा ह्यूम की थी। उसकी सारी विचारधारा का अन्त संशयवाद में होता था। संवेदना, आत्मा, परमात्मा किसी भी तत्व के अस्तित्व को वह नहीं मानता था। वह कार्य्य कारण भाव की परम्परा को भी नहीं मानता था। सारी ढूँढ़ खोज के बाद उसने कहा कि "मानवीय मन के लिए ज्ञान का प्राप्त होना असाध्य है इसलिए सन्देहवाद ही सच्चा है।"

काण्ट की विचारधारा

तत्वज्ञान की इन भिन्न२ विचार प्रणालियों का अध्ययन करने का अवसर काण्ट को बखूबी मिला। उसने जब ह्यूम के विचारों को पढ़ा जो कि दर्शन शास्त्र की मूल नींव पर ही कुठाराघात करने वाले थे। तब उसे अनुभव होने लगा कि इन तत्व प्रणालियों में कहीं न कहीं कोई मौलिक भूल अवश्य हो गई है। अतएव उसने तत्व ज्ञान का मूल स्रोत से अध्यमन किया और एक बिलकुल नवीन और मौलिक विचारधारा को जन्म दिया जो परीक्षणवाद या आलोचनात्मक दर्शन (क्रिटिकडेर प्रोक्टेस्केन) के नाम से प्रसिद्ध हुई।

उसने अपने इस तत्वज्ञान को अपने ग्रंथ के तीन भागों में प्रतिपादित किया है। पहले ग्रंथ में उसने सबसे पहले "शुद्ध विवेक" की परीक्षा की। यही उसके तत्वज्ञान का मूलग्रन्थ है। उसका दूसरा ग्रन्थ सदसद् विवेक परीक्षा के विषय पर लिखा गया। इस ग्रन्थ में उसने नीतिशास्त्र विषयक विचारों का विवेचन किया। उसका तीसरा ग्रन्थ "भावना की परीक्षा" पर आधारित है। काण्ट का यह ग्रंथ उसके तत्वज्ञान का आधार स्तम्भ है। तीनों ग्रन्थों में मानवीय मन की तीन शक्तियों अर्थात् विवेक शक्ति, इच्छा शक्ति और भावना शक्ति का विवेचन किया गया है।

विवेक शक्ति का विवेचन करते हुए काण्ट ने लिखा है कि मनुष्य की विवेक शक्ति एक पृथक्करणात्मक शक्ति है विधायक शक्ति नहीं। विवेक की शक्ति इतनी ही है कि वह संवेदनाओं का पृथक्करण करके, उसमें से अनुमान के द्वारा सिद्धान्तों का निरूपण कर ले। मगर विवेक के द्वारा नूतन ज्ञान की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती। अतएव यह कहना कि सम्पूर्ण ज्ञान विवेक के द्वारा होता है भ्रमपूर्ण है।

इन्द्रिय संवेदना के सम्बन्ध में काण्ट का मत है कि यह बात सच है कि सम्पूर्ण मानवीय ज्ञान का प्रारम्भ इन्द्रिय संवेदना से होता है किन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिए कि सम्पूर्ण ज्ञान संवेदनात्मक ही है। संवेदना ज्ञान का एक अंग है। इस अंग को बुद्धि की सहायता मिले बिना उसे ज्ञान का रूप प्राप्त नहीं हो सकता। संवेदना और बुद्धि के संयोग से ही ज्ञान की उत्पत्ति होती है।

इस प्रकार उसने अपने परीक्षणात्मक तत्वज्ञान में विवेकवाद और संवेदनावाद दोनों प्रणालियों को एक दूसरे की पूरक सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। उसने संवेदनावाद और विवेकवाद दोनों से सत्य का अंश अपने तत्व- ज्ञान में ग्रहण किया और भली प्रकार सिद्ध कर दिया कि मानवीय ज्ञान में संवेदना और विवेक दोनों ही वस्तुओं का अस्तित्व है और उनकी समान उपयोगिता है।

इसके पश्चात् कैण्ट का दर्शन ह्यूम ही की तरह अज्ञेय वाद के सिद्धान्त पर आता है। वह विवेकवादियों के इस मत को स्वीकार नहीं करता जिसमें वे कहते हैं कि बाह्य सृष्टि, आत्मा का अमरत्व और परमात्मा का ज्ञान हमें विवेक के द्वारा प्राप्त हो सकता है। काण्ट का मत है कि आत्मा का मूल स्वरूप क्या है ? उसके गुण क्या हैं ? वह नाशवान है या अमर है ? वह शरीर के आधार पर ही रहता है या शरीर के आधार के बिना भी रह सकता है ? ये सब प्रश्न ऐसे हैं जिनको मनुष्य की बुद्धि हल नहीं कर सकती। ये प्रश्न अतीन्द्रिय ज्ञान के हैं और ऐसा ज्ञान होना हमारी बुद्धि के लिए असम्भव है। हमारी बुद्धि इन्द्रियों की संवेदना से मर्यादित है वह स्वतंत्र शक्ति नहीं है। बुद्धि का काम तो इतना ही है कि वह संवेदनाओं का इन्द्रियों पर संस्कार कर देती है। इसी प्रकार बाह्य सृष्टि का वास्तविक ज्ञान भी हमें संवेदनाओं के द्वारा सम्पूर्ण रूप से नहीं हो सकता।

इस तरह काण्ट ने सिद्ध किया है कि तत्वज्ञान को बुद्धि के द्वारा जान लेना असम्भव है। यद्यपि यह बात सत्य है कि मानवीय ज्ञान के द्वारा विवेक शक्ति को आत्मा, सृष्टि का स्वरूप और परमेश्वर की कल्पनाएँ सूझती हैं तथापि ये कल्पनाएँ अतीन्द्रिय होने के कारण इनका वास्तविक ज्ञान मनुष्य को होना असम्भव है। काण्ट की इस विचारधारा को "बौद्धिक अज्ञेयवाद" कहा जाता है।

इस प्रकार काण्ट ने इस बौद्धिक अज्ञेयवाद के द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि सृष्टि, आत्मा और परमात्मा का ज्ञान बुद्धि के द्वारा प्राप्त नहीं हो सकता। मगर इसके सिवाय भी मनुष्य के अन्दर कोई ऐसी शक्ति है जिसके द्वारा इन अज्ञेय तत्वों पर विश्वास उत्पन्न हो सके। इस पर काण्ट का कहना है कि बुद्धि द्वारा इन प्रश्नों का हल न

होने पर भी मनुष्य के मन की अन्य शक्तियों के द्वारा इन प्रश्नों का हल किया जा सकता है और इसके साथ ही काण्ट का तत्वज्ञान नैतिक प्रश्नों की ओर मुड़ जाता है।

काण्ट का कथन है कि मनुष्य में अनेक प्रकार की वासनाएँ होती हैं। मगर पशुओं से उसको अलग करने वाली उसकी विवेकशक्ति उन वासनाओं को हमेशा नैतिक नियंत्रण में रखती है। मनुष्य की विवेक शक्ति उसे आज्ञा देती रहती है कि विवेकी मनुष्य होने के कारण तुम्हारे कुछ निश्चित कर्त्तव्य हैं जिन्हें विना किसी प्रकार के फल की आशा किये करना चाहिए। इस प्रकार मनुष्य वासनाओं पर नियंत्रण करके विवेक की पूजा करता है। इसी स्थान से नीतिशास्त्र का उद्‌गम होता है। इस विना शर्त्त की आज्ञा से ही सम्पूर्ण नीति के नियम निकले हैं।

नीतिशास्त्र का पहला सिद्धान्त यह है कि मनुष्य को अपने कर्त्तव्य कर्म का ज्ञान होना चाहिए। "मुझे अमुक कार्य करना ही चाहिए क्योंकि यह मेरा कर्तव्य है। बाह्य सृष्टि में लागू होने वाला कार्य कारणभाव मुझ पर नहीं लग सकता क्योंकि मैं विवेकी मनुष्य हूँ। बाह्य सृष्टि से भिन्न सद्‌सद विवेक का निर्णय देने वाली कोई शक्ति मेरे में हैं और वह शक्ति मेरी आत्मा है। इस प्रकार नीति विषयक सद्‌सद् विवेक शक्ति की आज्ञा द्वारा आत्मा का स्वतन्त्र एवं कार्य कारण भाव रहित अस्तित्व सिद्ध होता है। आत्मा के सम्बन्ध में हमारी बुद्धि ऐसा सिद्‌धान्त नहीं निकाल सकती क्योंकि आत्मा के स्वतन्त्र अस्तित्व की कल्पना ही अतीन्द्रिय है। इसी प्रकार इसी नीति विषयक भावना से हमारी अतीन्द्रिय शक्ति आत्मा के अमरत्व की भी खोज निकालती है।

इसी प्रकार जब हमारी विवेक शक्ति यह कहती है। कि सद्‌गुणी और सदाचारी मनुष्य को हमेशा सुखी और दुराचारी और दुरात्मा को हमेशा दुखी रहना चाहिए। मगर वास्तविक संसार में हमें ऐसा दिखलाई नहीं पड़ता। कई बार देखा जाता है कि दुराचारी और दुरात्मा पुरुष अन्त तक सुख, शान और शौकत को भुगतते हैं और सदाचारी और धर्मात्मा मनुष्य जीवन भर दुःख उठाते रहते हैं। तब हमारी विवेकबुद्धि इसका कारण नहीं बतला सकती और वह निरुत्तर हो जाती है। उस समय हमारी भावना सहजही में पुनर्जन्म और परमेश्वर का अस्तित्व मानने को तैयार हो जाती है और हमारी अतिन्द्रिय शक्ति परमात्मा के अस्तित्व को स्वीकार करने के लिए बाध्य हो जाती है।

सारांश यह कि जो बातें बुद्धि के द्वारा, शास्त्र के द्वारा और संवेदमात्मक ज्ञान के द्वारा सिद्ध नहीं होती, वे बातें हम अपने नैतिक अनुभव के द्वारा सिद्ध कर सकते हैं।

अतएव तत्वज्ञान का महल बौद्धिक अनुभव पर खड़ा न करके (क्योंकि वहाँ हमें अज्ञेयवाद और जड़वाद निरुत्तर कर देते हैं) नैतिक अनुभव की पुख्ता नींव पर पर उठाना चाहिए। ऐसा न कहना चाहिए कि हमें "आत्मा, परमात्मा, सृष्टि आदि अतीन्द्रिय पदार्थों का ज्ञान हो गया है बल्कि यह कहना चाहिए कि इनके विषय में हमारी विवेक श्रद्धा उत्पन्न हो गई है।"

इसके बाद अपने तीसरे ग्रंथ (क्रीटिकडेर उरथील स्क्रैफ्ट) में काण्ट ने जड़ और चेतन जगत् में जो सौन्दर्य दिव्यता, प्रयोजन और रचना चातुर्य्य नजर आता है उसका विवेचन किया है। इस विवेचन से मनुष्य को मालूम होने लगता है कि इस कलापूर्ण जगत् का कोई न कोई कर्त्ता अवश्य है। अतएव जैसे हमें अपने नैतिक अनुभव द्वारा आत्मा और परमात्मा में श्रद्धा उत्पन्न होती है। उसी प्रकार सौन्दर्य्यानुभूति के द्वारा भी हम परमात्मा का अतीन्द्रिय अनुभव कर सकते हैं। थोड़े से शब्दों में काण्ट के तत्वज्ञान को हम इस प्रकार कह सकते हैं—

"हम आत्मा और परमात्मा को दृष्टि द्वारा और बुद्धि द्वारा नहीं देख सकते क्योंकि ये पदार्थ अतीन्द्रिय हैं। इसलिए इनके सम्बन्ध में अज्ञेयवाद स्वीकार करना ही श्रेष्ठ है, मगर नीतिशास्त्र और नैतिक अनुभव के द्वारा हमारे मन में आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध में सकारण और विवेकपूर्ण श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है और हमारी सौन्दर्य्यानुभूति विषयक धारणा इस महान सृष्टि को देखकर स्वभावतः उस परमात्मा के सम्मुख हमें नतमस्तक कर देती है और ऐसा भान होने लगता है जैसे वह हमारे सामने साक्षात् खड़ा है।

परमात्मा के विषय में हम सिर्फ इतना ही जान सकते हैं। और इतना जानना भी कुछ कम नहीं है।

काएटोर जार्ज (George Cantor)

जर्मनी के एक प्रसिद्ध गणित शास्त्री जिनका जन्म सन् १८४५ में और मृत्यु सन् १६१८ में हुई।

काएटोर जार्ज का जन्म पीट्रोग्राड के एक यहूदी परिवार में हुआ था। बर्लिन विश्वविद्यालय में इन्होंने गणित शास्त्र, दर्शन और भौतिक विज्ञान का अध्ययन किया। सन् १८६७ में गणित के एक अनिर्णीत सवाल के हल करने पर इन्हें पी० एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई।

सन् १८७४ में गणित के सम्बन्ध में इनका काएटर सिद्धांत नामक क्रान्तिकारी शोध पत्र प्रकाशित हुआ। इस शोध पत्र के पश्चात् इन्होंने और कई शोध पत्र प्रकाशित किये जिससे गणित संसार में इनकी प्रसिद्धि हो गई।

काठमांडू

स्वाधीन नैपाल-राज्य की राजधानी, जो बागमती और विष्णुमती नदी के संगमस्थल पर 'नागार्जुन' पहाड़ी पर अवस्थित है। इसकी ऊँचाई समुद्र की सतह से ४५०० फीट है और यहाँ की जन-संख्या १०६५८० है।

ऐसा समझा जाता है कि 'काठमांडू' की स्थापना सन् ७२३ ई० में 'गुणकामदेव' नामक व्यक्ति के द्वारा हुई। पहले इसका नाम 'मञ्जुपट्टन' था। सन् १५६६ ई० में राजा लक्ष्मणसिंह मल्ल ने नगर के मध्य में सन्यासियों के लिए विशुद्ध काष्ठ का एक विशाल काठ-मन्दिर और साधु-मण्डप का निर्माण करवाया। इसी काठ-मण्डप से 'काठमाण्डू' नाम निकला।

पहले यह नगर चारों ओर प्राचीर से वेष्टित था और उस पर बीच-बीच में कई सुन्दर तोरण बने हुए थे, मगर अब यह सब खण्डहर की हालत में पड़े हुए हैं।

काठमांडू में एक दूसरे प्रकार के मन्दिर भी देखे जाते हैं, जो स्तम्भ पर गुम्बज रखकर बनाये गये हैं। 'तलेजू' नामक मन्दिर देखने में ब्रह्मदेशीय मन्दिर से मिलता है। लोगों के कथनानुसार इसे सन् १५४६ ई० में राजा 'महेन्द्र मल्ल' ने बनवाया था। अनेक मन्दिरों के सामने उनके प्रतिष्ठाता प्राचीन राजाओं की, पत्थर की मूर्तियाँ बनी हुई हैं।

उत्तर-पूर्व के सिंहद्वार पर सिंह द्वार से होकर निकलने पर दक्षिण की ओर 'रानी पोखरी' नामक एक विशाल दीर्घिका मिलती है। इस दीर्घिका के मध्यस्थल में एक मन्दिर है। मन्दिर के दक्षिण में एक विशाल प्रस्तर की हस्तिपीठ पर राजा 'प्रताप मल्ल' की मूर्ति बनी हुई है। यही राजा इस मन्दिर और दीर्घिका के निर्माता थे।

इसके बाद दक्षिण की ओर एक मैदान आता है। इस मैदान के पश्चिम में प्राचीन सेनापति 'भीमसेन थापा' का 'दबरा' नामक २५० फीट ऊँचा पत्थर का स्तम्भ बना हुआ है। इस स्तम्भ की गठन-प्रणाली बहुत सुन्दर है। यह स्तम्भ सन १८५६ ई० में बिजली के गिरने से टूट गया था। सन् १८६६ में इसकी फिर वापस मरम्मत हुई।

काठमाण्डू नगर में विशेष रूप से नेवारी, ठाकुरी, गुरंग और गोरखा—ये चार प्रकार की जातियाँ रहती हैं। गोरखा लोग अपनी युद्ध-कला, सैनिक साहस और वीरता के कारण सारे संसार में प्रसिद्ध हैं।

यहाँ के मन्दिरों में पशुपति-नाथ, बोधनाथ, स्वयंभूनाथ तथा हनुमानडीक दर्शनीय हैं। पशुपतिनाथ नेपाल-राज्य के इष्टदेव हैं और इनके वार्षिक मेले में दूर-दूर के यात्री दर्शन करने आते हैं। यहां के घरेलू उद्योगों में लकड़ी का उद्योग प्रमुख है। हाल ही में भारत-सरकार की सहायता से भारत को नैपाल से मिलाने के लिए करीब १३० मील लंबा 'त्रिभुवन-राजपथ' रक्सौल से काठमाण्डू तक बनाया गया है। हवाई-यात्रा के लिए भी काठमाण्डू के लिए 'हवाई-सर्विस' शुरू हो गई है।

काठियावाड़

भारतवर्ष के पश्चिमी तटपर बसा हुआ एक प्रायद्वीप। इसके उत्तर पश्चिम में काच्छ की खाड़ी तथा दक्षिण पूर्व में कैम्बे की खाड़ी है। अंग्रेजी सरकार के समय में यह प्रान्त बम्बई प्रान्त के अन्तर्गत था। और इसमें कई देशी रियासतें सम्मिलित थीं। अब यह सौराष्ट्र के नाम से प्रसिद्ध है और गुजरात प्रान्त का एक अङ्ग है। इसका ऐतिहासिक परिचय "सौराष्ट्र" नाम के अन्तर्गत इस ग्रन्थ में यथा स्थान किया जावेगा।

काण्डला बन्दरगाह

काण्डला-बन्दरगाह सौराष्ट्र प्रान्त के समुद्र तट पर नव विकसित किया हुआ बन्दरगाह है। कराची बन्दरगाह के पाकिस्तान में चले जाने से उस कमी को पूरा करने के लिए सन् १९४९ ई० में हैवर्ग-बन्दरशाह के नमूने पर काण्डला का निर्माण-कार्य शुरू हुआ। इस बन्दरगाह का अन्तर्विस्तार (Hinterland) तीन लाख वर्ग मील के करीब है। और इसकी सीमा में गुजरात प्रान्त के सिवाय राजस्थान, पंजाब, हिमाचल प्रदेश और कश्मीर तक का विस्तार आ जाता है।

सन् १९५५ ई० काण्डला-बन्दरगाह सलाहकार-समिति ने काण्डला-बन्दरगाह की उन्नति के लिए इस बन्दरगाह में मुक्त-व्यापार-क्षेत्र बनाने की एक योजना केन्द्रीय सरकार के सामने पेश की। इस योजना ने केन्द्रीय सरकार का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया और उसने इस बन्दरगाह में मुक्त-व्यापार-क्षेत्र घोषित करना स्वीकार करके १९ जनवरी सन् १९६१ के दिन उसका प्रारम्भ कर दिया।

काण्डला के मुक्त-व्यापार-क्षेत्र की सरकारी घोषणा होते ही इस स्थान ने देश भर के तथा विदेशों के उद्योग-पतियों और साहसी व्यापारियों का ध्यान अपनी ओर खींच लिया। इस बन्दरगाह में बड़े-बड़े विशाल माल भरने के गोदाम बनाने के लिए तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के कारखाने डालने के लिए खुली हुई जमीन लीज पर दी जाती है। इस मुक्त-व्यापार क्षेत्र में उद्योग और व्यापार दोनों क्षेत्रों के सन्तोष के लिए कच्चा माल और आधा तैयार किया माल आयात करने दिया जाता है। यह मुक्त व्यपार क्षेत्र शुरू में १९ एकड़ भूमि में निर्मित किया गया। आवश्यकतानुसार इस क्षेत्र में बढ़ती होती जावेगी। इस क्षेत्र के आसपास चारों ओर तारों की ऊँची बाढ़ लगाई हुई है। इस क्षेत्र से जानेवाले और यहाँ आनेवाले माल पर कस्टम अधिकारियों की पूरी निगरानी रहेगी।

यह बन्दरगाह सभी प्रकार की आधुनिक सामग्रियों से सुसज्जित है। इसमें २७०० फुट लम्बी गहरे पानी की जेटी है जिस पर चार जहाज आसानी से खड़े हो सकते हैं। इस बन्दरगाह से प्रतिवर्ष दस लाख टन का आयात निर्यात होता है।

काण्डला के समीप ही "गांधीधाम" नामक एक नवीन नगर की स्थापना ७००० एकड़ भूमि पर की गई है। इस नगर की जनसंख्या चालीस हजार से अधिक होगई है। पन्द्रह करोड़ से अधिक रुपया इस बन्दरगाह और गांधीधाम के निर्माण कार्य्य में खर्च हो चुका है।

काणे पाण्डुरंग वामन

(डाक्टर, महामहोपाध्याय)

दक्षिणी भारत के सुप्रसिद्ध विद्वान, धाराशास्त्री और इतिहासकार, महाहोपाध्याय डा० पाण्डुरंग वामन काणे, जिनका जन्म ७ मई सन् १८८० को रत्नागिरि जिले में पर्शराम नामक स्थान पर हुआ।

डॉ० काणे संस्कृत-भाषा, साहित्य, वेद, कर्मकाण्ड, प्राचीन भारतीय इतिहास, मीमांसा और पुरातत्व-विद्या के प्रकाण्ड पण्डित हैं। इनका सबसे अधिक अध्ययन पूर्ण ग्रन्थ "धर्म शास्त्र का इतिहास" है जिसके बहुत बड़े-बड़े पाँच खण्ड तो निकल चुके हैं और अभी और निकलना बाकी हैं। धर्मशास्त्र का इतिहास, उन के गम्भीर अध्ययन, प्रकाण्ड पाण्डित्य और बहुमुखी प्रतिभा का प्रमाण है। पूर्व और पश्चिम के कई विद्वानों ने इसे "विश्व-ज्ञान-कोष" की संज्ञा दी है।

डॉ० काणे ने सन् १९०३ में अंग्रेजी और संस्कृत में एम० ए० परीक्षाएँ पास कीं। सन १९०८ में उन्होंने लॉ की परीक्षा (L. L. B.) पास की तथा १९१२ में उन्होंने हिन्दू-मुसलिम कानूनों में मास्टर ऑफ-लॉ (L. L. M.) की डिग्री प्राप्त की। सन १९१७ से १९३३ तक वे 'बम्बई लॉ कॉलेज' में प्राध्यापक रहे। साथ ही बम्बई, बनारस, नागपूर और ढाका, विश्वविद्यालयों की बी० ए०, एम० ए०, पी० एच० डी० आदि परीक्षाओं में वे संस्कृत भाषा को परीक्षक भी रहे। सन् १९४१ में उन्हें महामहोपाध्यय की पदवी प्राप्त हुई और उसी समय दो वर्ष के लिए वे बम्बई विश्व-विद्यालय के उपकुलपति भी रहे।

इलाहाबाद युनिवर्सिटी ने उन्हें डाक्टर आफ लिटरेचर की उपाधि से विभूषित किया । डा० काणे अखिल भारतीय प्राच्यविद्या-सम्मेलन, नागपुर और अखिल भारतीय इतिहास-सम्मेलन बालतेर के अध्यक्ष भी रहे ।

डा० काणे का जीवन—सादाजीवन और उच्चविचार (Simple living & high thinking) का प्रत्यक्ष उदाहरण है । उनका जीवन अत्यन्त सादा और नियमित है ।

कात्यायंन-वररुचि

पाणिनी के व्याकरण पर सुप्रसिद्ध वार्तिक लिखने वाले आचार्य्य, जिन्होंने कुछ काव्य ग्रन्थों की भी रचना की थी और जिनके सम्बन्ध में यह भी कहा जाता है कि वे मगध नरेश नन्द के मंत्री भी थे । इनका समय ईसापूर्व चौथी शताब्दी माना जाता है ।

कात्यायन वररुचि के सम्बन्ध में किसी निश्चित निर्णय पर पहुँचने में इतिहासकारों को बड़ी कठिनाई पड़ती है क्योंकि कात्यायन और वररुचि नामों के कई व्यक्ति संस्कृत साहित्य में हुए ।

पाणिनी व्याकरण पर वार्तिक लिखने वाले कात्यायन मुनि का नाम भी वररुचि था दूसरी तरफ प्राकृत प्रकाश नामक प्राकृत भाषा के प्राचीन व्याकरण बनाने वाले का नाम भी वररूचि था और एक ऐसे वररूचि भी हुए जो कवि थे और जिनके पद्य कई सूक्ति ग्रन्थों में संग्रहीत हैं ।

कथा सरित्सागर नामक ग्रन्थ में कात्यायन वररूचि के के जन्म का वर्णन करते हुए लिखा है कि "पुष्पदन्त नामक महादेव के एक अनुचर ने अभिशापित होकर कौशाम्बी नगरी में सोमदेव ब्राह्मण के घर में जन्म लिया वही कात्यायन वररूचि के नाम से विख्यात हुआ ।"

इसी कथा सरितसागर में आगे चलकर लिखा है कि "वररुचि कात्यायन पाटलिपुत्र के नन्द राजा के मंत्री थे । इन्होंने "वर्ष उपाध्याय" नामक पण्डित से सब प्रकार की विद्याएँ पढ़ीं । व्याकरण के तो ये आचार्य ही थे ।"

डा० भण्डारकर ने कथा सरित्सागर से उल्लिखित कथा को प्रामाणिक मानकर वररुचि का समय ईसा से से पूर्व चौथी सदी में माना है ।

कात्यायन वर रुचि द्वारा रचित वार्त्तिक पाणिनी-व्याकरण के लिए अत्यन्त महत्व पूर्ण साबित हुए हैं । इन्हीं वार्त्तिकों के आधार पर आगे चलकर पातञ्जलि ने महा भाष्य की रचना की । पातंजलि ने अपने महाभाष्य में वर रुचि द्वारा रचित एक "कण्ठाभरण" नामक काव्य का भी उल्लेख किया है जो इस समय अनुपलब्ध है । इससे पता लगता है कि कात्यायन वररुचि अपने समय के महाकवि भी रहे थे ।

प्राकृत-प्रकाश ग्रन्थ के रचयिता वररुचि कात्यायन इन वररुचि से भिन्न थे । इनका समय सम्भवत् ईसा की छठी शताब्दी में था ।

कातो (Kato)

लैटिन भाषा के गद्य का पहला गद्यकार जो रोम का निवासी था । जिसका समय ई० पू० २३४ से ई० पू० १४६ तक है ।

कातो का दूसरा नाम सेन्सोर (Censor) भी था यह प्रसिद्ध वक्ता और लेखक था । रोम की राष्ट्रीय परम्परा का वह कट्टर समर्थक था । ग्रीक विचार धारा उसे पसन्द नहीं थी । उसकी लेखन शैली और भाषण शैली बड़ी प्रौढ़ और तेजस्वी थी ।

कातेना

इटली के वेनिस नगर का एक चित्रकार जिसका समय सन् १४७० से १५३१ तक था ।

चित्रकला में कातेना जोवानी बोलिनी नामक चित्रकारका शिष्य था । इसके चित्रों का संग्रह वेनिस के सेंट फ्रान्सिस चर्च में सुरक्षित है ।

कादम्बरी

महाकवि बाणभट्ट रचित संस्कृत का एक महान गद्य काव्य और उपन्यास जिसकी रचना ईसा की सातवीं सदी में हुई ।

संसार के साहित्य में कुछ महान् व्यक्तित्व और उनकी कुछ रचनाएँ ऐसी होती हैं जो उस साहित्य को गौरव के

शिखर पर पहुँचा देती है। जो विश्व साहित्य के आँगन में चन्द्रमा की तरह प्रकाश पहुँचाती है। कादम्बरी भी संस्कृत साहित्य के आंगन में एक ऐसे ही प्रकाश पुंज की की तरह है जो सारे साहित्य को प्रकाशित करता है और जो विश्व साहित्य को एक चुनौती है।

कादम्बरी के कथानक का विकास एक प्रेमकथा के रूप में होता है मगर वह प्रेम कथा बीसवी सदी की प्रेम कथा नहीं है। वह एक ऐसे युग की प्रेम कथा है, जिसके एक एक शब्द में एक सम्पन्न संस्कृति के, उच्च नैतिकता के, महान् संयम के और अद्भुत बलिदान के दर्शन होते हैं। जिसमें भोग के साथ योग के, वासना के साथ संयम और श्रेष्ठतम शृंगार और रसिकता के साथ एक मर्यादा के भी दर्शन होते हैं।

एक छोटी कहानी को लेकर उसमें इस महान् विद्वान ने अपने रचना कौशल से, अपने शब्द सौन्दर्य्य से, अलंकारों और उपमानों से और जीवन के गहनतम अनुभवों से जो महान प्राण प्रतिष्ठा की है वह अनुपम है। भिन्न-भिन्न रंगों की कल्पना कूँची से इस महान चितेरे ने जिस महाश्वेता के, जिस कादम्बरी के, जिस चन्द्रापीड़ के और जिस वैशायापन के चित्रों का अवतरण किया है वह संसार में दुर्लभ है। भिन्न-भिन्न अवसरों पर वर्णनात्मक शैली में जीवन के जिन महान सत्यों का इसने दर्शन कराया है वे अद्भुत हैं।

घटना क्रम की विचित्रता भी इस ग्रंथ में बड़े अनूठे ढंग से विकसित हुई हैं। जो स्थान-स्थान पर पाठक को एक आश्चर्यजनक, एक आनन्ददायक विस्मय में डालती रहती हैं और पाठक उत्सुकता के साथ आगे की घटना को प्रतीक्षा करता रहता है।

काव्य सौन्दर्य की माधुरी में डूब जाने के कारण कई स्थानों पर कवि का विवेचन इतना विस्तृत हो गया है कि उससे घटनाक्रम शिथिल पड़ जाता है और पाठक कुछ ऊबने की स्थिति में आ जाता है और भाषा भी अलंकारों से कुछ अधिक बोझिल होती हुई दिखलाई पड़ती है। मगर इसमें कवि का दोष नहीं है। उसकी लेखनी भाव मुग्ध होकर जब कल्पना में विचरण करने लगती है तब उसको रोकने की शक्ति किसी में नहीं रहती।

कादम्बरी का कथानक संक्षेप में इस प्रकार है—

महाराज शूद्रक की राजसभा में एक दिन एक चाण्डाल की अतीव सुन्दरी कन्या, एक तोते के पींजरे को लेकर आती है और निवेदन करती है कि 'महाराज! यह तोता अत्यन्त ज्ञानी, समझदार और विवेकशील है। यह रत्न आपके समान राजाओं के महल में ही शोभा पा सकता है इसलिए इसे मैं आपके पास लाई हूँ।"

राजा ने यह सुनकर जब तोते की तरफ देखा तो तत्काल तोते ने अपना बायाँ पैर उठा कर नमस्कार करते हुए यह श्लोक पढ़ा—

स्तनयुग मश्रु स्नातं, समीपतरवर्त्ति हृदयशोकाग्नेः।
चरित विमुक्तहारे, व्रतमिव भवतो रिपु स्त्रीणाम्॥

तोते के मुँह से यह श्लोक सुनकर राजा बड़ा विस्मित हुआ। उसने उस तोते से उसका जीवन वृत्तान्त कहने को कहा। तोते का जाबालि मुनि के द्वारा बताया हुआ जीवन वृतान्त ही इस महान काव्य की मूल कथा है।

तोते ने जाबालि ऋषि द्वारा कही हुई कहानी को बताते हुए कहा—

उज्जयिनी नगरी में तारापीड़ नामक एक राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम विलासवती और उसके मंत्री का नाम शुकनास था। राजा और मंत्री दोनों ही निःसन्तान होने के कारण बड़े दुःखी रहते थे। बड़ी मनौतियों के पश्चात् राजा तारापीड़ को चन्द्रापीड़ और मंत्री शुकनास को वैशम्पायन नामक एक-एक पुत्र की प्राप्ति हुई। राजा और मंत्री के इन दोनों पुत्रों में बचपन से ही जिस स्नेह भाव का उदय हुआ वह जीवन भर एक सा बना रहा। किशोरावस्था आने पर चन्द्रपीड़ को युवराज पद पर आसीन कर दिया गया। युवराज पद पर आसीन होने के पहले शुकनास मंत्री ने आशीर्वाद देते हुए उसे सत्ता, यौवन, धन और लक्ष्मी की मोहकता से सतर्क रहने का जो उपदेश दिया, उसका थोड़ा सा वर्णन बाण कवि की भाषा में इस प्रकार है—लक्ष्मी का विवेचन करते हुए मंत्री शुकनास कहते हैं—

"कल्याण के अभिलाषी आप पहले लक्ष्मी को ही देखिए। जिस तरह कमल वन में भ्रमरी विचरती है उसी

प्रकार लक्ष्मी वीरों के तलवार रूपी वन में भ्रमण करती है। यह पारिजात की पत्ती से राग, खण्डित चन्द्रमा की कला से वक्रता, इन्द्र के घोड़े उच्चैः श्रवा से चंचलता, कालकूट विष से मोहनी शक्ति, वारुणी मदिरा से मद, और कौस्तुम मणि से अतिशय नैष्ठुर्य्य, इन सब अवगुणों को अपने साथ ही लेकर पैदा हुई है। उपरोक्त सब वस्तुएँ समुद्र मंथन से लक्ष्मी के साथ ही पैदा हुई थीं और इसी से अपने हर एक साथी का एक-एक गुण इसने ग्रहण कर लिया है।"

"इस दुष्टा (लक्ष्मी) के समान अपरिचित इस संसार में कोई वस्तु नहीं है। पहले तो इसका मिलना ही कठिन है फिर यदि किसी प्रकार मिल भी जाय तो इसका सम्हालना मुश्किल हो जाता है। खूब मजबूत गुणरूपी रस्सियों से बाँधने पर भी यह भाग जाती है। हजारों अति गर्वीले वीरों द्वारा तलवार रूपी वल्लरी के पींजरों में बन्द करके रखने पर भी यह निकल जाती है।

यह न परिचय का ख्याल करती है, न कुल की मर्यादा देखती है, न रूप की ओर निहारती है, न शील पर दृष्टिपात करती है, न शास्त्रीय ज्ञान सुनती है, न धर्म का पालन करती है, न सत्य को कुछ समझती है। यह तो आकाश में दीखने वाले गन्धर्व नगर के समान देखते-देखते गायब हो जाती है।

इस प्रकार की यह दुराचारिणी लक्ष्मी जिस राजा को वरण करती है उसी को दुराचार, अत्याचार और अहंकार के पथ पर आरूढ़ कर देती है। माथे पर छत्र लगते ही उनकी सत्यवादिता उड़ जाती है। जयजयकार का कोलाहल सुनते ही उनका मनुष्यत्व गायब हो जाता है।

"अतएव हे राजकुमार चन्द्रापीड़। कठोर राजशासन के व्यवहार तथा इस महा मोहकारी यौवन के चक्र में तुम ऐसा प्रयत्न करो जिससे लोग तुम्हारा उपहास न करें, साधु जन तुम्हारी निन्दा न करे, गुरूजन तुम्हें धिक्कार न दें, तुम्हारे मित्रगण तुम्हें उलहना न देने पांय, कामी लोग तुम्हारी बुराई न करे, चतुर लोग तुम्हें ठगें नहीं, लम्पट जन तुमसे धन न झूँसे, धूर्त तुम्हें धोखा न दे सकें, स्त्रियाँ तुम्हें लुभा न सकें, लक्ष्मी तुम्हारी विडम्बना न करे, और विषय वासना तुम्हें प्रमादी न बना सकें।

"अन्त में मेरा आशीर्वाद है कि तुम अपने पिता के द्वारा प्रदत्त इस यौवराज्य पद के सभी सुखों का उपभोग करो। अपने कुल क्रम से चले आते हुए राज्यभार का वहन करो, शत्रुओं का मस्तक नीचा करो, अपने बन्धुजनों का उत्कर्ष करो और दिग्विजय के लिए निकल पड़ो।"

मंत्री का आशीर्वाद पाकर युवराज चन्द्रापीड़ दिग्विजय के लिए निकल पड़ता है। दिग्विजय करता हुआ वह हेम कूट पर्वत के पास पहुँचता है। एक दिन कुछ सैनिकों को साथ लेकर वह मृगया के लिए निकलता है। वहाँ पर किन्नर किन्नरी के एक जोड़े को देखकर वह उनका पीछा तेजी से करता है। दूर निकल जाने पर उसके सब साथी छूट जाते हैं और वह आगे बढ़ता हुआ अच्छोद सरोवर नामक एक रमणीक सरोवर के किनारे जा पहुँचता है।

वहीं पर उसे शिवजी के मन्दिर में तपस्विनी के रूप में 'महाश्वेता" नामक युवती सुन्दरी के दर्शन होते हैं। वह शिवजी के सामने एक मनोहर संगीत का गान कर रही थी।

संगीत समाप्त होने पर उस कन्या ने चन्द्रापीड़ को देखा और उसे कहा "अतिथि! मैं आपका स्वागत करती हूँ। आप यहाँ कैसे आये? अच्छा अब उठिये और चलकर मेरा आतिथ्य स्वीकार कीजिए" चन्द्रापीड़ अत्यन्त विनीत भाव प्रदर्शित करता हुआ उसके साथ उसकी कन्दरा पर जाता है। उस कन्दरा में एक तपस्वी की आवश्यकतानुसार एक भिक्षा पात्र और एक तूम्बी रक्खी हुई थी। कन्या ने पत्ते के दोने में कुछ फ़ल मूल और जल देकर अतिथि का सत्कार किया।

अब चन्द्रापीड़ को उसका वृतान्त जानने की उत्कण्ठा हुई, वह कहने लगा।

"भगवती! आपने जन्म लेकर देवताओं, ऋषिओं, गन्धर्वों, यक्षों या अप्सराओं में से किसके वंश को अनुगृहीत किया है? ऐसे फूल सदृश सुकुमार नवयौवन में आपने यह सन्यास व्रत क्यों लेलिया है? कहाँ यह अवस्था, यह सुन्दर आकार, कहाँ यह लावण्य और कहाँ यह कठोर तपस्या!" मुझे तो यह सब बड़ा अद्भुत लग रहा है। असंख्य सिद्ध साधुओं से भरे तथा देव-लोक में प्राप्य दिव्य

आश्रम को त्यागकर आप निर्जन वन में अकेली क्यों रह रही है और फिर वह कौन सी युक्ति है जिससे इस प्रकार कष्ट सहते हुए भी आप का शरीर गोरा और लावण्य युक्त वना हुआ है। अन्यत्र मैंने ऐसा होते हुए न देखा है और न सुना ही। अतएव आप अपने जीवन का वृतान्त बताकर मेरे कुतुहल को दूर कीजिये।"

चन्द्रापीड के इस प्रश्न को सुनकर वह तपस्विनी कन्या बड़े-बड़े आँसुओं को बहाती हुई रोने लगी। वह कहने लगी कि राजपुत्र! मुझ जैसी क्रूर-हृदया, अभागियी और पापिनीं नारी के वैराग्य की नीरस-गाथा को सुनकर आप क्या करेंगे। फिर भी आपका कुतूहल बढ़ा हुआ है तो सुनिये—

"एक दिन मैं अपनी माता के साथ इसी अच्छोद-सरोवर में स्नान करने आई। यहाँ पर अकस्मात् मुझे एक बड़ी मोहक सुगन्ध का अनुभव हुआ। उस सुगन्ध की टोह में जब मैं आगे बढ़ी तो मुझे दो अत्यन्त सुन्दर ऋषि-कुमारों के दर्शन हुए। उनमें से एक ऋषि-कुमार के कान में एक पुष्प-मञ्जरी लगी हुई दिखायी दी। जहाँ से उस सुगन्ध का स्रोत उड़ रहा था। मैंने उन ऋषि-कुमारों को प्रणाम किया और उस सुगन्धित मञ्जरी का विवरण पूछा। तब उनमें से एक ऋषि-कुमार ने कहा कि मेरे इस साथी का नाम 'पुण्डरीक' है यह महामुनि 'श्वेतकेतु' के पुत्र हैं और यह मंजरी पारिजात की है। तब पुण्डरीक ने वह मंजरी अपने कान में से निकालकर मेरे कान में पहना दी। उसी समय उसकी अनजान में उसकी रुद्राक्ष-माला गिर पड़ी। उसे उठाकर मैंने अपने गले में पहन लिया और चलते समय मैंने इस माला के बदले, उसे अपना हार दे दिया।

उस समय की महाश्वेता की मनःस्थिति का वर्णन करते हुए महाकवि लिखते हैं कि—

"जब जंगल में पुण्डरीक से अलग होकर महाश्वेता अपने घर आ गई तब वह सीधे अपने अन्तःपुर में चली गई। उसके विछोह से शोकाकुल रहने के कारण यह भी न जान सकी कि मैं घर आ गई या वहीं खड़ी हूँ। मैं अकेली हूँ कि परिजनों से घिरी हुई हुँ। मैं चुप हूँ या बोल रही हूँ। मैं जागती हूँ या सो गई हूँ। मैं सुख में हूँ या दुख में हूँ। यह कोई उत्सव है कि व्यसन है। कामदेव के क्रिया कलाप से अनभिज्ञ होने के कारण मैं यह भी न सोच सकी कि कहाँ जाऊँ, क्या करूँ? क्या देखूँ! क्या कहूँ—किससे कहूँ और इसका क्या प्रतिकार हो सकता है?"

उधर पुण्डरीक की भी यही हालत हो रही थी। उसका साथी 'कपिञ्जल' अपने मित्र की खराब हालत देखकर महाश्वेता को उसका सन्देश देने के लिए माला लेने का बहाना करके महाश्वेता के द्वार पर आता है और महश्वेता के पास अपना सन्देश भेजता है। पुण्डरीक के साथी कपिञ्जल का वर्णन करते हुए महाकवि लिखते हैं कि—

"जैसे रूप का साथी यौवन, यौवन का साथी कामदेव, कामदेव का साथी वसन्त और वसन्त का साथी दक्षिणी पवन होता है, उसी प्रकार पुण्डरीक का साथी कपिञ्जल महाश्वेता की 'कञ्चुकी' के पीछे चन्द्रमा की चाँदनी के पीछे-पीछे बालरवि के सुनहले प्रकाश सा चल रहा था।"

जब महाश्वेता ने उसके आने का कारण पूछा तो कपिञ्जल ने महाश्वेता के वियोग में मदहोश अपने साथी की दुरवस्था का वर्णन करते हुए कहा—"राजकन्ये! मैं क्या कहूँ! लज्जा के वशीभूत होंने के कारण मेरी वाणी मनोगत भावों को व्यक्त करने में समर्थ नहीं हो रही है। कहाँ तो कन्द-मूल खाकर बनवास करने वाले शान्त प्रकृति के मुनि जन और कहाँ यह कामदेव की विविध कामचेष्टाओं से युक्त राग बहुल प्रपंच! पर वास्तविकता यह है कि अनुचित होते हुए भी पुण्डरीक आपके विरह में अत्यन्त दुर्दशाग्रस्त हो गया है। जब मैंने उसकी इस कार्य के लिए भर्त्सना की, तब उसने मेरा हाथ थाम कर कहा कि—"मित्र! अधिक कहने से क्या मतलब? तुम सब तरह से स्वस्थ हो, क्योंकि अभी सर्प-विष के समान भयंकर काम-वाणों के लक्ष्य नहीं बने हो। औरों को उपदेश देना सरल काम है, किन्तु उपदेश ऐसे व्यक्ति को देना चाहिए, जिसकी इन्द्रियाँ और मन काबू में हो। जो भला-बुरा देख सकता हो। देख-सुनकर उस पर विचार कर सकता हो और यह निर्णय कर सकता हो कि क्या शुभ है और क्या अशुभ। लेकिन मित्र! मेरी तो यह सारी पूँजी समाप्त हो

चुकी है। उपदेश देने का समय बीत गया। विवेचन की बेला भी अब नहीं रही। मेरे अंग-अंग जैसे जले जा रहे हैं। हृदय उबल रहा है। आँखें धधक रही हैं। सारा शरीर जला जा रहा है। ऐशी दशा में जो तुम उचित समझो करो।"

कपिञ्जल के द्वारा पुण्डरीक की यह हालत सुनकर महाश्वेता जैसे आनन्द के अमृतमय सरोवर में डूब गयी। मानो रति-रस-सम्पन्न समुद्र में उतर गयी। मानो समस्त सुखों के ऊपर जा बैठी और सभी उत्सवों की पराकाष्ठा पर पहुँच गयी। वह सोचने लगी कि यह मेरे लिए बड़े सौभाग्य की बात है कि मेरी तरह ही मदन उन्हें भी सता रहा है। वह उसी रात 'तरलिका' से परामर्श करके पुण्डरीक से मिलने चली किन्तु सरोवर के समीप पहुँचते ही उसने कपिञ्जल का विलाप सुना। जब पास पहुँची तो देखा कि पुण्डरीक एक शिलाखण्ड पर मृतक होकर पड़ा हुआ है और कपिञ्जल उसे सँभाले हुए रो रहा है।

महाश्वेता यह कहते २ मूर्छित हो गयी। सचेत होने पर फिर महाश्वेता कहने लगी कि "पुण्डरीक को मृत जानकर मैंने तरलिका से चिता तैयार करने को कहा। उसी समय दिव्य तेज से युक्त एक तेजस्वी पुरुष आकाशमण्डल से उतरा और उसने कहा कि—"पुत्री महाश्वेता! तुम अपने प्राण मत छोड़ना। क्योंकि इसी जन्म में तुम्हारी पुण्डरीक से फिर भेंट होगी।" यह कह कर वह दोनों हाथों से पुण्डरीक का शव उठाकर आकाश में उड़ गया। पुण्डरीक का साथी भी उसके साथ-साथ आकाश में उड़ गया।

महाश्वेता बोली कि—"हे राजकुमार! तभी से तपस्या का व्रत लेकर अपने प्रियतम के इन्तजार में शंकर भगवान की आराधना करती हुई इसी स्थान पर रह रही हूँ। यहाँ तरलिका के सिवाय कोई दूसरा मेरे साथ में नहीं रहता।

चित्ररथ गन्धर्व की कन्या 'कादम्बरी' मेरी सखी है। उसने जब मेरा यह हाल सुना तो उसने भी यह प्रतिज्ञा कर ली कि जब तक मेरी सखी ऐसा महान दुःख भोगेगी तब तक मैं भी विवाह न करूँगी। [illegible] उसके माता पिता बड़े दुखी हो रहे हैं और कादम्बरी को समझाने के लिए मुझे बुलवाया है।"

दूसरे दिन महाश्वेता चन्द्रापीड़ को लेकर कादम्बरी के यहाँ गई। कादम्बरी चन्द्रापीड़ को देखते ही उस पर मोहित हो गई। चन्द्रापीड़ ने कादम्बरी को प्रणाम किया। उसके बाद चन्द्रापीड़ को एक सुसज्जित भवन में क्रीड़ा-पर्वत पर ठहरा दिया गया। रात्रि में कादम्बरी चन्द्रापीड़ से मिलने गई। चन्द्रापीड़ अभी लेटा ही था कि 'केयूरक' ने आकर उसे खबर दी कि देवी 'कादम्बरी' उससे मिलने आ रही है।

चन्द्रापीड़ उसे देखकर शिला खण्ड से उतर आया। उसके पश्चात् चन्द्रापीड़ ने कहा—"देवि! केवल दृष्टिपात से सन्तुष्ट होजाने वाले हम जैसे सेवकों को तो सम्भाषण का अवसर ही न मिलना चाहिए। फिर इतने बड़े अनुग्रह की तो बात ही न्यारी है। आपकी कृपा और स्नेह प्राप्त करने के योग्य मैं अपने में कोई ऐसा गुण नहीं देखता। आपकी अतिशग सरल एवं अभिमान शून्य मधुर सुजनता ही हम जैसे नवागन्तुक सेवकों पर भी इतनी असाधारणकृपा बरसाती है—इसे मैं अपना अहोभाग्य समझता हूँ। वह सेवक धन्य है, जिस पर आपका अधिकार हो। यह शरीर तो बस परोपकार के लिए ही है। पर यह जीवन अर्पण करने में भी मैं लज्जा का अनुभव करता हूँ। फिर भी मैं यह बैठा हूँ। यह मेरा शरीर है—यह जीवन है और यह समस्त इन्द्रिया समक्ष उपस्थित हैं। इनमें से आपको को रुचे उसे स्वीकार करके मुझ जैसे सेवक का मान बढ़ाइये।"

आज बीसवीं सदी के प्रेम-कथा-नायकों के साथ जब हम इस प्राचीन युग के प्रेम नायक की तुलना करते हैं तो कितना महान अन्तर मालूम होता है। यौवनावस्था में स्वाभाविक युवक का कामनापूर्ण हृदय 'चन्दापीड' ने भी पाया था। सौन्दर्य का आकर्षण, भावनाओं का आवेग, विचारों की उत्तेजना उसके अन्दर भी थी। मगर इन सब चीजों के साथ मर्यादा का एक बन्धन था। नदी कलकल नाद करती हुई बह रही थी, मगर उसके दोनों किनारे सुरक्षित थे। आज की प्रेम कहानियों में वे किनारे और वे

मर्य्यादाएँ टूट चुकी हैं। उस समय की प्रेम-कथाओं में में और आज की इन प्रेम कथाओं में सबसे बड़ा यही मौलिक अन्तर है।

उसके बाद चन्द्रापीड़ महल में जाकर कादम्बरी से मिला और महाश्वेता से अनुमति माँगकर अपनी छावनी में लौट आया।

दूसरे दिन उसकी छावनी में फिर कादम्बरी का सन्देश आया और वह फिर कादम्बरी से मिलने के लिए गया। वहाँ से जब वह अपने शिविर में लौटा तो उसे तुरन्त उज्जयिनी लौट आने के लिए उसके पिता का आदेश मिला।

तब चन्द्रापीड़ ने वैशम्पायन को बुलाकर कहा कि "पिताजी की आज्ञा से मैं उज्जयिनी जारहा हूँ। तुम सेना को साथ में लेकर बाद में आजाना और वह तत्काल उज्जयिनी के लिए रवाना हो गया।

कई दिन बाद उज्जयिनी में भी कादम्बरी का दूत 'केयूरक' आ पहुँचा और चन्द्रापीड़ के वियोग में कादम्बरी की विरह-अवस्था का चन्द्रापीड़ से वर्णन किया। जिसे सुन कर चन्द्रापीड़ अत्यन्त व्यथित हुआ और उसने केयूरक के साथ 'पत्रलेखा" को हेमकूट भेजते हुए कहा कि—"केयूरक! तुव चलो मैं वैशम्पायन से मिलकर तुरन्त वहाँ आता है। मगर जब उसे मालूम हुआ कि वैशम्पायन सेना के साथ न आते हुए 'अच्छोद-सरोवर" पर ही रह गया है तो वह सीधा महाश्वेता के आश्रम में अच्छोद-सरोवर पर जा पहुँचा।

वहाँ जाकर उसने देखा कि महाश्वेता अत्यन्त उदास भाव से बैठी हुई आँसू बहा रही है। जब चन्द्रापीड ने उससे रोने का कारण पूछा, तो उसने कहा कि—"एक दिन एक ब्राह्मण का पुत्र मेरे समक्ष आकर काम-सम्बन्धी अनर्गल बातें करने लगा। मैंने उसे बहुत समझाया और रोका। फिर भी जब उसने नही माना तब मैंने उसे पक्षी बन जाने का शाप दिया। मेरे शाप देते ही वह धरती पर गिरकर मर नया। बाद में मुझे मालूम हुआ कि वह आप का मित्र वैशम्पायन था।"

वैशम्पायन की मृत्यु का हाल सुनते ही चन्द्रापीड़ बेहोश हो गया और तत्काल उसके प्राण निकल गये। कादम्बरी ने जब वहाँ आकर चन्द्रापीड की यह हालत देखी तो वह भी मूर्छित होकर गिर पड़ी।

इसी समय चन्द्रपीड़ के शरीर से एक दिव्य ज्योति निकली और उसने कहा कि—'बेटी महाश्वेता! कादम्बरी! धीरज मत छोड़ना। तुम दोनों के प्रियतम इसी जन्म में तुमसे फिर मिलेंगे। चन्द्रापीड़ के शरीर को तुम जलाना या गाड़ना मत! इसे कहीं सुरक्षित रखना!"

इतनी कथा कहने के बाद महर्षि जाबालि बोले कि—"तपस्विनी महाश्वेता ने जिस वैशम्पायन को पक्षी हो जाने का शाप दिया था—वह पक्षी यही तोता है।" उनकी यह बात सुनते ही मुझे अपने पूर्वजन्म की सभी बातें स्मरण हो आई और पंख निकलते ही एक दिन मैं घूमने-फिरने का बहाना करके महाश्वेता के आश्रम की ओर उड़ा, मगर रास्ते में एक बहेलिए ने मुझे अपने मजबूत जाल में फँसा लिया और एक पींजड़े में बन्दकर मुझे इस चाण्डाल-कन्या के हाथों में सौंप दिया। कुछ दिनों बाद यह चाण्डाल कन्या मुझे इस सुनहरे पींजड़े में रखकर आप की सेवा में ले आई।"

राजा 'शूद्रक' ने तोते के मुँह से यह कहानी सुनकर उस चाण्डाल-कन्या को बुलवाया। चाण्डाल-कन्या ने राजा के सामने आकर कहा कि—"हे चन्द्रदेव के अवतार शूद्रक! आपने अपना और इस तोते का सारा वृतान्त सुन लिया। मैं इसकी माता 'लक्ष्मी' हूँ। अब तक जैसे बनी मैंने इसकी रक्षा की। अब आप दोनों दिव्य पुरुष अपना-अपना यह कलेवर त्यागकर संसार के सुखों का उपभोग करें!"

चाण्डाल कन्या की बात सुनते ही राजा को अपने पूर्व भव का स्मरण हो आया।

इसके पश्चात् ही महाश्वेता के आश्रम में कादम्बरी के द्वारा सेवित चन्द्रापीड़ के शरीर में पुनः प्राणका सञ्चार हो आया। और उसी समय पुण्डरीक भी स्वर्गलोक से पृथ्वी पर उतर आया। शुभ लग्न के बीच, तमाम परिजनों की उपस्थिति में, कादम्बरी का चन्द्रापीड के साथ और महाश्वेता का पुण्डरीक के साथ अत्यन्त सुखद वातावरण में विवाह सम्पन्न हुआ और इसी आनन्द पूर्ण वातावरण

में 'वाणभट्ट' के महान गद्यकाव्य "कादम्बरी" का भी पटाक्षेप हुआ।

संस्कृत-साहित्य की यह महानिधि आज भी संसार में महाकवि वाण की कीर्ति को अक्षुण्ण बनाये हुए हैं।

कादूसी

इटली के सुप्रसिद्ध 'फ्लोरेंस' नगर का एक प्रसिद्ध चित्रकार, जिसका जन्म सन् १५६० ई० में और मृत्यु सन् १६१० ई० में हुई।

कादूसी सुप्रसिद्ध चित्रकार 'जुकेरो' का शिष्य था। एक बार जुकेरो के साथ वह स्पेन की राजधानी 'मैड्रिड' गया। वहाँ पर उसकी कला को देखकर स्पेन का राजा 'फिलिप' द्वितीय बड़ा खुश हुआ और उसको उसने अपने पास ही रख लिया। उसके बनाये हुए चित्रों का संग्रह मैड्रिड के गिर्जाघर में सुरक्षित है।

कादीस

दक्षिणी स्पेन का एक अति सुन्दर नगर और बन्दरगाह। यह नगर ५ मील समुद्र में घुसे हुए एक भूभाग पर स्थित है। अपनी सुरक्षित स्थिति के कारण यह नगर स्पेन का एक प्रधान व्यवसायिक केन्द्र बन गया है। इस नगर के विशाल और सुन्दर भवन एक ही आकार के और व्यवस्थित ढंग से बने हुए होने के कारण स्पेन के सुन्दरतम नगरों में इसकी गणना है।

कानपुर

समस्त भारत में पाँचवें नम्बर का और उत्तर प्रदेश में सबसे बड़ा औद्योगिक नगर। जो दिल्ली-मुगलराय मेन लाइन पर गंगा-नदी के दाहिने किनारे पर बसा हुआ है। यह नगर लखनऊ से ४२ मील और इलाहबाद से ११५ मील दूरी पर अवस्थित है।

इस नगर से लगा हुआ पुराना कानपुर नामक एक स्थान है। इसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह राजा 'कर्ण' के द्वारा बसाया गया था। फिर भी प्राचीन इतिहास की दृष्टि से इस नगर का अधिक महत्व नहीं है।

सन् १७६४ ई० में अवध के नवाब 'शुजाउद्दौला' के 'बक्सर' के प्रसिद्ध युद्ध में पराजित होने पर नवाबी शासन में इस नगर ने अधिक महत्व पकड़ा।

उसके बाद कानपुर नगर का वास्तविक महत्व तब प्रकट हुआ, जब 'नाना साहब' ने इस स्थान को विद्रोह का केन्द्र बना कर सन् १८५७ ई० के 'स्वाधीनता-युद्ध' का संचालन किया। सन् १८५७ ई० के स्वतंत्रता-युद्ध में मेरठ और कानपुर ये दोनों शहर बहुत ही अग्रगण्य रहे थे।

फिर भी कानपुर नगर का वास्तविक महत्व उसके औद्योगिक विकास के कारण ही है। सबसे पहले सन् १८६१ ई० में यहाँ पर सूती-वस्त्र बनाने की पहली मिल खुली और ज्यों-ज्यों रेलवे का प्रसार होता गया त्यों-त्यों यहाँ पर नये-नये कारखाने खुलते गये।

"ब्रिटिश इण्डिया-कारपोरेशन", नामक अंग्रेज-कम्पनी ने यहाँ पर 'लाल-इमली' नामक ऊनी-कपड़े की मिल तथा चमड़े और सूती वस्त्र के कारखाने खोले।

उसके बाद राजस्थान के प्रसिद्ध उद्योग-पति सेठ कमलापति सिंघानियाँ और उत्तर प्रदेश के उद्योगपति जे० पी० श्रीवास्तव ने कानपुर के औद्योगिक विकास में अपना महत्वपूर्ण भाग अदा किया।

सेठ कमलापति सिंघानिया ने सन् १९११ ई० में एक कपड़े की मिल और उसके कुछ समय पश्चात् एक जूट मिल की स्थापना की, जो सारे उत्तर प्रदेश में पहली जूट मिल थी।

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् कानपुर नगर का औद्योगिक विकास बहुत तेजी के साथ हुआ। चमड़े के कारबार में यह उत्तर प्रदेश का सबसे बड़ा केन्द्र बन गया। फिर भी यहाँ का प्रधान उद्योग सूती वस्त्र का ही माना जा सकता है। सूती वस्त्रों की यहाँ पर १६ मिलें हैं। जिनमें 'स्वदेशी मिल' नामक मिल तो भारतवर्ष की बहुत बड़ी कपड़ा-मिलों में से एक है।

इसी प्रकार प्लास्टिक-उद्योग, इंजीनियरिंग-उद्योग, साबुन-उद्योग और काँच-उद्योग से सम्बन्ध रखनेवाले भी

यहाँ अनेक कारखाने हैं। मतलब यह कि औद्योगिक दृष्टि से यह नगर भारतवर्ष का अत्यन्त महत्वपूर्ण केन्द्र स्थान है। यहाँ की जनसंख्या ६४७७६३ है।

कापालिक

शैव सम्प्रदाय के पाशुपत-मत की एक शाखा, जिसे 'कापालिक' कहते हैं। इस सम्प्रदाय की उत्पत्ति का समय ईसा से पूर्व दूसरी शताब्दी में माना जाता है।

कापालिक सम्प्रदाय शैव सम्प्रदाय का वह अंग है जिसमें वामाचार अपनी चरम सीमा में पाया जाता है। कापालिक-सम्प्रदाय की साधनाएँ वज्रयानी—सम्प्रदाय की साधनाओं से बहुत मिलती-जुलती है। इस सम्प्रदाय में स्त्रियों को 'कपालिनी' नाम से सम्बोधित किया गया है। यह सम्प्रदाय शिव और शक्ति के संयुक्त रूप को ही समर्थ और प्रभाव शाली मानता है। शिव और शक्ति के इस मिलन-सुख को कापालिक अपनी कपालिनी के माध्यम से अनुभव करता है और उसी सुख को 'महासुख' की संज्ञा देता है। मदिरा या सोम को कापालिक शक्ति-सहित शिव का प्रतीक मानता है और उसको पीकर मदोन्मत्त हो वह कपालिनी के साथ विहार करते हुए अपने को कैलास-स्थित शिव उमा की तरह अनुभव करता है। मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन—इन 'पञ्चमकारों के साथ कापालिक, शाक्त और वज्रयानी सिद्धों का समान रूप से सम्बन्ध था।

कापालिक सम्प्रद्राय का संस्थापक 'लकुलीश या 'लकुटीश' नामक सिद्ध माना जाता है।'

(ना० वि० को०)

कापिजा-पीटर

रूस के एक सुप्रसिद्ध परमाणु-शक्ति विशेषज्ञ और वैज्ञानिक, जिनका जन्म सन् १८६४ ई० में 'कोस्टांड्रट' नामक स्थान में हुआ।

अपनी प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त कर के 'कापिजा' कैम्ब्रिज में प्रसिद्ध परमाणु-शक्ति के आविष्कारक स्वर्गीय लार्ड 'रदर फर्ड' के शिष्य हो गये और वहाँ इन्होंने परमाणु-विघटन-अनुसन्धान के क्षेत्र में विशेष दक्षता प्राप्त करली। सन् १६२४ ई० में इनकी नियुक्ति केवेण्डिश की प्रयोगशाला में चुम्बकीय अनुसन्धान के सहायक निर्देशक के रूप में हुई और सन् १६३२ ई० तक ये यहाँ काम करते रहे।

सन् १६३४ ई० में जब आप रूस गये तो सोवियट सरकार ने इनको पुनः देश से बाहर जाने की अनुमति नहीं दी और उनके लिए मास्को में ही कैवेण्डिश प्रयोग-शाला के मुकाबले की प्रयोग-शाला बनवादी गई। जिससे कि वह अपना अनुसन्धान कार्य बराबर कर सकें।

कुछ समय के बाद वह 'मास्को' की 'इंस्टीट्यूट फार फिजिकल प्रोब्लेम्स' के डाइरेक्टर भी बना दिये गये।

कॉफ़ी

एक पेय पदार्थ जो चाय की तरह बनाकर पिया जाता है, और जो मानवीय शरीर में चाय की अपेक्षा अधिक स्फूर्तिदायक असर बतलाता है। यह वस्तु काफी (Coffea Arabica) वृक्ष के फलों को भूनकर उनकी बुकनी बनाकर तैयार की जाती है।

जब तक संसार में चाय का अधिकतम रूप में प्रचार नहीं हुआ था तबतक संसार के कई देशों में उत्तेजक पेय पदार्थ के रूप में काफी का प्रयोग किया जाता था।

काफी का प्राचीन इतिहास पन्द्रहवीं सदी के मध्य से प्रारम्भ होता हुआ मालूम पड़ता है। जब शेख शहाबुद्दीन धमानी नामक एक व्यक्ति ने दक्षिण अफ्रीका के उपकूल में काफी का व्यापार होते देखकर अदन में सबसे पहले कॉफ़ी की एक दुकान खोली थी। शेख शहाबुद्दीन की मृत्यु सन् १४७० में हो गई। इससे पता चलता है कि पन्द्रहवीं सदी में अरब में इस वस्तु का प्रचार हो गया था।

सन् १५५४ ई० में कुस्तुन्तनिया में काफी के एक होटल की स्थापना हुई और सन् १५७१ तक यह वस्तु यमन, मक्का, दामास्कस और अलेपी में फैल गई। सन् १५७३ में रनडल्फ़ नामक यूरोपियन को इस वस्तु का परिचय मिला।

अरब देशों में काफ़ी का प्रचार होने से इस्लाम के धर्म प्रचारकों ने कॉफी के खिलाफ आवाज उठाना प्रारम्भ किया। क्योंकि मसजिद और दरगाह की अपेक्षा लोग कॉफी हाउसों में बहुत अधिक जाने लगे थे। इस चीज के प्रचार को रोकने के लिए वहाँ की सरकार ने काफी के आयात पर काफ़ी टैक्स भी लगा दिया।

ग्रेट ब्रिटेन में सबसे पहली कॉफी की होटल चाय की होटल से पाँच वर्ष पूर्व सन् १६५२ में खुली। उसके बाद धीरे-धीरे इन होटलों की संख्या बढ़ने लगी और इनमें ग्राहकों की भारी भीड़ इकट्ठी होने लगी। यह देखकर इंगलैण्ड के बादशाह चार्ल्स द्वितीय ने सन् १६७५ में काफी होटलों के विरुद्ध एक राज्यादेश निकाला।

फ्रान्स में सन् १६४० से कॉफी का प्रचार शुरू हुआ और सन् १६६९ में पैरिस नगर में पहला कॉफी हाऊस खोला गया। उसके पश्चात् सारे यूरोप में काफी का प्रचार बड़ी तेजी से होने लगा। मगर सन् १८४७ से चाय का प्रचार अधिक बढ़ जाने से इसका प्रचार कम हो गया।

भारतवर्ष में काफी का प्रचार कैसे हुआ इसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि बाबा बूदन नामक एक मुसलमान फ़कीर अनुमानतः अठारहवीं सदी में मक्का से वापिस लौटते हुए अपने साथ काफी के ७ बीज लेकर आये थे और मैसूर में जिस पहाड़ी पर उनका स्थान था वहाँ पर उन्होंने इन बीजों को लगा दिया। यह पहाड़ी अब भी बाबा बूदन की टेकरी के नाम से प्रसिद्ध है। उसके बाद इन वृक्षों की बहुत वृद्धि होने लगी और क्यानन नामक एक अंग्रेज ने बाबा बूदन की पहाड़ी से दक्षिण में काफी का बगीचा लगाया।

इसके बाद तो काफी की खेती का बहुत विस्तार हुआ। और सन् १८८३-८४-८५ में भारत के दक्षिण पथ में १८६५०० एकड़ भूमि में कॉफ़ी की फसल बोई गई।

काफी की खेती का सबसे अधिक विस्तार अमेरिका में हुआ। ब्राझील इसकी उत्पत्ति का सबसे बड़ा केन्द्र है। उसके पश्चात् कोस्टारिका, ग्वाटेमाला, वेन जुइला, गायना पेरू, जामेका इत्यादि स्थानों पर भी इसकी पर्याप्त उत्पत्ति होती है।

इसके अतिरिक्त आस्ट्रेलिया के क्वीन्स लैण्ड में तथा दक्षिणी पूर्वी एशिया के जावा, सुमात्रा, बोर्निया, मलाया, स्याम, सिंगापुर इत्यादि क्षेत्रोंमें भी काफी का बड़ा उत्पादन होता है।

लेकिन काफी के लिए जावा और ब्राझील की जमीन सबसे उत्तम साबित हुई है। यहाँ की जमीन में काफी का उत्पादन भी बहुत होता है और यहाँ को पैदा हुई काफी क्वालिटी में भी सर्व श्रेष्ठ होती है।

चाय के उद्योग से काफी के उद्योग को बहुत धक्का लगा। फिर भी ज्यों-ज्यों समय बीतता जा रहा है त्यों-त्यों अब लोग वापस कॉफी की तरफ आकृष्ट होते जा रहे हैं। पाश्चात्य सभ्यता के ऊँचे सर्कलों में अब फिर से चाय का स्थान कॉफी लेने लगी है और उँचे घरों में अब अतिथि का सत्कार भी चाय की अपेक्षा कॉफी से अधिक किया जाता है।

इसका कारण यह है कि कॉफी में स्फूर्तिदायक गुण चाय से अधिक मात्रा में रहता है। इसमें "कैफ़ीन" नामक स्नायुमण्डलो को उत्तेजना देने वाला पदार्थ चाय से अधिक मात्रा में रहता है तथा चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से भी यह चाय की अपेक्षा अधिक उत्तम सिद्ध हुई है इसलिए इसका प्रचार बढ़ना स्वाभाविक है।

काफूरमलिक

अलाउद्दीन खिलजी का एक मशहूर और विजेता सेनापति। जो शुरू में गुजरात के राजा कर्ण बघेला का नौकर था।

जब कर्ण बघेला की सेना को अलाउद्दीन की सेना ने पराजित कर दिया तो विशाल लूट के धन के साथ वह सेना कर्ण बघेला की रानी कमला देवी और उसके इस नौकर को भी लूट के माल में ले गई। यह नवयुवक बड़ा हट्टाकट्टा और दीखने में सुन्दर था। अलाउद्दीन ने इसको देखते ही इस पर अपने संरक्षण का हाथ रख दिया और उसकी कृपा से इसका तेजी से विकास होने लगा। अला-

उद्दीन ने इसको "मलिक" की उपाधि भी प्रदान की। और उसे अपनी सेना में एक बड़ा पद दे दिया।

उन दिनों देवगिरि में यादववंश के राजा रामचन्द्रदेव राज्य करते थे। वे अलाउद्दीन के संरक्षण में थे, और उसको एक नियत कर दिया करते थे। मगर इन दिनों उन्होंने कर देना बन्द कर दिया था। तब सन् १३०७ में अलाउद्दीन ने मलिक काफूर के सेनापतित्व में उनके खिलाफ एक सेना भेजी। इस युद्ध में मलिक काफूर ने बड़ी बहादुरी से यादव सेना को पराजित कर पूरे राज्य को बुरी तरह से लूटा और यादव राजा को पूर्ण अपमानयुक्त संधि करने को मजबूर किया।

इस विजय से मलिक काफूर का सितारा एकदम ऊरूज पर आगया। बादशाह अलाउद्दीन ने इसको वीरता से प्रभावित हो इसे वारंगल के राजा प्रतापरुद्रदेव के विरुद्ध सन् १३०९ में, होयसल के राजा वीर वल्लाल के विरुद्ध सन् १३१० में मदुरा के पाण्ड्य राजा वीरसेन के विरुद्ध सन् १३११ में युद्ध करने को भेजा। मलिक काफूर ने इन सब राजाओं को बुरी तरह से हराया। इनके राज्यों को निर्दयता पूर्वक रौंदा और लूटा। देवमन्दिरों का विध्वंस कर उनकी अपार सम्पत्ति को लूटा और करीब-करीब सारे दक्षिणापथ में सुलतान के झण्डे को गाड़कर अलाउद्दीन के वैभव को आसमान पर पहुँचा दिया।

इन सारी जीतों से काफूर का दिमाग आसमान पर पहुँच गया। वह सुलतान अलाउद्दीन को कठपुतली की तरह नचाने लगा। अन्त में उसे स्वयं बादशाह बनने की धुन हुई। जिसके परिणाम स्वरूप उसने किसी षडयत्र के द्वारा कुछ खिला-पिलाकर अलाउद्दीन को सन् १३१६ में इस लोक से विदा कर दिया।

अलाउद्दीन की मृत्यु के पश्चात् मलिक काफूर ने उसके तीन बड़े शाहजादों को राज्य से वंचित कर छोटे शाहजादे को गद्दी पर बैठाया और उसके खिलाफ भी षडयंत्र करने लगा। इस प्रकार इसने अपने दुश्मनों की संख्या बढ़ाली जिसके परिणामस्वरूप एक दिन अकस्मात् ही इसकी हत्या कर डाली गई।

काबुल

अफगानिस्तान की राजधानी और वहाँ का एक प्रसिद्ध और प्राचीन नगर। जो एक लम्बे समय तक भारतीय शासन के अधीन रहा। इसके उत्तर में हिन्दुकुश पर्वत और पश्चिम में कन्दहार के दर्रे हैं।

काबुल का क्षेत्र भारतवर्ष में प्रवेश करने वाले विजेता आक्रमणकारियों के प्रवेश द्वार की तरह रहा है। सिकन्दर महान, बाबर तथा नादिरशाह के आक्रमण इसी मार्ग से होकर हुए।

सम्राट् कनिष्क के समय में यह क्षेत्र भारतीय साम्राज्य के अन्तर्गत था। उसके बाद मुगल साम्राज्य में भी बाबर से लेकर नादिरशाह के आक्रमण तक यह क्षेत्र मुगल साम्राज्य का अंग था। नादिरशाह के आक्रमण के पश्चात् अफगानिस्तान का एक स्वतंत्र राज्य के रूप में उदय हुआ।

काबुल का नगर आधुनिक युग की सब प्रकार की साज सज्जाओं से युक्त एक सुन्दर नगर है। सुन्दर राजमार्गों, आलीशान इमारतों और बढ़िया सड़कों के कारण नगर रचना की दृष्टि से यह नगर परिपूर्ण है। यह नगर टर्की, बुखारा, पाकिस्तान इत्यादि सभी स्थानों से सड़कों के द्वारा सम्बन्धित है।

काबुल का ऐतिहासिक वर्णन इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में "अफगानिस्तान" नामके अन्तर्गत दिया गया है।

काबेट विलियम

इंग्लैण्ड के सुप्रसिद्ध लेखक, राजनीतिज्ञ और उदार विचारों के पोषक विद्वान। जिनका जन्म सन् १७६२ में और मृत्यु सन् १८३५ में हुई।

काबेट का जन्म एक किसान परिवार में हुआ था। इसलिए किसानों के प्रति उनके हृदय में स्वाभाविक सहानुभूति थी। उन दिनों इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति का सूत्रपात हो रहा था और बड़े-बड़े कारखानेदार, जमींदारों और किसानों की जमीनों को लेकर अपनी औद्योगिक जमीदारियों का विस्तार कर रहे थे।

काबेट विलियम को यह सारी स्थिति देखकर बड़ा मानसिक आघात पहुँचता था और वे उसके निवारण का उपाय सोचते रहते थे। अन्त में वे किसी तरह अपने गाँव से निकलकर अमेरिका चले गये। आठ बरस तक वहाँ पर उन्होंने अपने सिद्धान्तों का खूब प्रचार किया और आठ वर्ष पश्चात् इंग्लैंड आकर सन् १८०२ में उन्होंने "दी पोलिटिकल रजिस्टर" नामक पत्र का सम्पादन प्रारम्भ किया। सन् १८३२ में वे पार्लमेंट के सदस्य चुने गये और वहाँ पर भी उन्होंने किसानों का पूरी तरह समर्थन किया। कावेट के लेखों का संग्रह ५० बड़े बड़े भागों में प्रकाशित हुआ। इनमें "रूरल्स राइड्स", "लिगेसी टू वर्क्स" "कॉटेज इकानमी" इत्यादि संग्रह विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। इंग्लैण्ड के औद्योगिक क्रान्तियुग के इतिहास में इस व्यक्ति का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। कई बड़े-बड़े लेखकों ने "कावेट" की जीवनी और उनके साहित्य पर बड़े-बड़े ग्रन्थों की रचना की है।

काम-सूत्र

महर्षि वात्स्यायन के द्वारा लिखित संस्कृत साहित्य में कामशास्त्र का प्रधान और उत्कृष्ट ग्रन्थ।

कामशास्त्र के ज्ञान को प्राप्त करने की उत्कण्ठा मनुष्य प्रकृति के अन्तर्गत आदिम काल से चली आती है। पुरुष और स्त्री के बीच होने वाले यौन सम्बन्धों में प्रकृति ने एक ऐसा दुर्दमनीय आकर्षण रख दिया है कि मनुष्य क्या धर्म से, क्या शिक्षा से और क्या नैतिक सिद्धान्तों से उसका प्रतिकार करने में असमर्थ रहा है। फिर प्रकृति ने इस यौन सम्बन्ध के द्वारा प्रजनन की उस महान् शक्ति का आविष्कार किया है, जिस पर सारे संसार की उत्पत्ति का दारोमदार है।

ऐसे महत्वपूर्ण विषय को शास्त्रीय ज्ञान की परिधि में लेने की प्रवृत्ति का उदय भी विवेकशील मनुष्यों में समय-समय पर प्रकट हुआ है। जिसके द्वारा मनुष्य की इस अनियंत्रित प्रवृत्ति को किसी रूप में नियन्त्रित किया जा सके।

भारतवर्ष के अन्तर्गत भी मनुष्य-जाति की यौन-प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में शास्त्रीय ज्ञान की प्राप्ति के लिए बहुत पुराने समय से प्रयत्न हो रहे हैं।

कामशास्त्र की उत्पत्ति और उसकी परम्परा का विवेचन करते हुए, वात्स्यायन मुनि ने अपने काम-सूत्र के प्रथम अध्याय में लिखा है कि—"प्रजापति ने संसार की उत्पत्ति करके उसकी उन्नति और सन्तान-परम्परा को कायम रखने के हेतु, धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति के निमित्त एक लाख अध्यायों में उपदेश दिया। इसमें से 'मनु' ने धर्म सम्बन्धी तत्वों को लेकर धर्म-शास्त्र की और बृहस्पति ने अर्थ शास्त्र के सिद्धान्तों को लेकर अर्थशास्त्र की स्वतंत्र रूप में रचना की। इसी प्रकार भगवान् महादेव के अनुचर नन्दी ने उसमें से कामसूत्र के तत्वों को ग्रहण कर एक हजार अध्यायों में कामसूत्र का उपदेश दिया।

इस प्रकार इस शास्त्र का प्रवर्तक मूल रूप से नन्दी को ही मानना चाहिये। नन्दी के इस कामसूत्र का संक्षेप महर्षि उद्दालक के पुत्र श्वेतकेतु ने पाँच सौ अध्यायों में किया और उसके पश्चात पञ्जाब-निवासी बाभ्रव्य ने उसे और संक्षिप्त करके कामसूत्र को एक सौ पचास अध्यायों में निर्मित किया। बाभ्रव्य के पश्चात् इस क्षेत्र में चरायण, सुवर्णनाम, घोटक मुख, गोनार्दीय, गोणिका पुत्र और कुचुमार नामक आचार्य भी हुए। लेकिन इनकी कृतियाँ एकाँगी तथा बाभ्रव्य की की रचना अत्यन्त विस्तृत होने के कारण वात्स्यायन मुनि ने इन सबका सारांश लेकर सर्वसाधारण के लिए इस 'कामसूत्र' की रचना की।

काम के स्वरूप की व्याख्या करते हुए वात्स्यायन मुनि लिखते हैं कि—"कामशास्त्र में काम शब्द से तात्पर्य उस सुखानुभव से होता है, जो स्त्री-पुरुष के यौन सम्बन्ध से प्राप्त होता है।"

कामसूत्र के अध्ययन की आवश्यकता बतलाते हुए वात्स्यायन मुनि कहते हैं कि "मनुष्य के अन्तर्गत कामप्रवृत्ति इतनी उत्तेजक, अनियंत्रित और वेगवाही होती है कि यदि उस पर किसी प्रकार का शास्त्रीय या सामाजिक नियन्त्रण न रखा जाय या मनुष्य इस प्रवृत्ति का शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किए बिना अनियंत्रित रूप से इसका प्रयोग करे तो समाज में अनाचार और व्यभिचार का दौर दौरा हो जाता है। क्योंकि मनुष्य केवल सन्तानोत्पत्ति के लिए ही नहीं, आनन्द के लिए नित्य प्रति सम्भोग की क्रिया में प्रवृत्त रहता है। आनन्द की सम्यक् रूपेण प्राप्ति के लिए

कतिपय प्रक्रियाओं की आवश्यकता होती है, उनका ज्ञान शास्त्र के बिना कैसे हो सकता है। अतः कामसूत्र का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। जो व्यक्ति इन काम-कलाओं में जितना ही निपुण होगा, उतनी ही सफलता उसको अपने दाम्पत्य-जीवन में प्राप्त होगी।"

वात्स्यायन के काम-सूत्र में ७ अधिकरण हैं। पहले अधिकरण में ५ अध्याय हैं। इस अधिकरण में कामसूत्र के अध्ययन की आवश्यकता, स्त्रियों के लिए ६४ कलाओं का विवेचन, रसिक-व्यक्ति की दिनचर्य्याँ और रात्रिचर्य्या तथा भिन्न-भिन्न प्रकार की नायक और नायिकाओं का वर्णन किया गया है।

रसिक पुरुष की दिनचर्या का वर्णन करते हुए वात्स्यायन मुनि लिखते हैं कि "नागरिक को चाहिए कि प्रतिदिन स्नान करे, दूसरे दिन उबटन करे, तीसरे दिन साबुन का का प्रयोग करे। दिन में बारह बजे और रात्रि में भोजन करे, सायंकाल में संगीत की गोष्ठी करे। कमरे को दशांग, गूगल और धूप आदि सुगन्धित द्रव्यों से सुरभित कर दे और शुभ्रशय्या पर बैठकर प्रेमिका की प्रतीक्षा करे।"

नायक के निवास-स्थान का वर्णन करते हुए बताया गया है कि नायक का वासस्थान जलाशय के समीप या ऐसी जगह बना होना चाहिये, जहाँ अन्य किसी साधन से जल सुलभ हो। इस निवास के आस-पास गृह-वाटिका भी होनी चाहिए। जिसमें काम-क्रीड़ार्थ लताकुंज तथा शीत-गृह आदि भी यथास्थान बने हों। शयन-गृह में पलंग के शिरोभाग की ओर लकड़ी की चौकी पर इष्ट देवता की मूर्ति की स्थापना करे। पलंग की ऊँचाई के बराबर एक वेदिका होनी चाहिए। जिस पर सुगन्धित तेल, इत्र, पुष्पमाला, ताम्बूल और शृंगार की अन्य सामग्रियाँ रखी हुई हों। संगीत के लिए वीणा खूँटी पर लटकी हुई हो। चौपड़, पासा, सतरंज इत्यादि खेलने का सामान भी वहाँ हो। कमरे के बाहर मैना, तोता, बुलबुल इत्यादि पक्षियों के पिंजरे लटके हुए हों। बाहर वाटिका में किसी वृक्ष की सघन डाली में झूला पड़ा हुआ हो—ऐसे सुन्दर निवास में भाग्यवान नायक अपनी अनुकूल प्रेमिकाओं के साथ जीवन के सर्वोच्च आनन्द का उपभोग करते हैं।

कामसूत्र के दूसरे अधिकरण में १० अध्याय और १७ प्रकरण हैं।

इस अधिकरण में महर्षि वात्स्यायन ने अनुकूल यौन सम्बन्ध का वर्णन करते हुए प्रतिपादित किया है कि संसार में स्त्री और पुरुषों के यौन सम्बन्ध की अनुकूलता मिलना ही सबसे बड़ी समस्या है। जिस भाग्यवान मनुष्य को अनुकूल यौन की पत्नी या प्रेमिका प्राप्त हो जाती है, वह संसार के सर्वोच्च सुख का उपभोग करता है। छोटी सी झोपड़ी में रहकर और रूखा-सूखा खाकर भी अपनी पत्नी के साथ उसे जिस स्वर्गोपम आनन्द का अनुभव होता है वह बड़े-बड़े राजमहलों में लाखों की सम्पदा के साथ रहने वाले राजपुरुषों को भी नहीं होता। जिस प्रकार अनुकूल यौन सम्बन्ध विधाता के आशीर्वाद की तरह प्राप्त होता है, उसी प्रकार प्रतिकूल यौन-सम्बन्ध वाले दम्पतियों को जीवन के अन्यान्य सब सुख उपलब्ध होने पर भी जीवन का वास्तविक आनन्द उन्हें प्राप्त नहीं होता और स्वस्थ हालत में होते हुए भी वे एक प्रकार की गहरी निराशा, अशान्ति और अतृप्ति के कारण जीवन में गहरी उदासीनता का अनुभव करते हैं।

इस प्रकार अनुकूल यौन-संबंध की प्राप्ति के लिए कामसूत्रकार ने 'चण्डवेग' 'मध्यवेग' और 'मन्दवेग' के अनुसार समस्त स्त्रियों और पुरुषों को तीन-तीन भागों में विभक्त किया है। मन्दवेग वाले पुरुष को 'शश', मध्यवेग वाले को 'वृष' और चण्डवेग वाले पुरुष विभाग को 'अश्व' की संज्ञा दी गई है। इसी प्रकार मन्दवेग वाली स्त्री को 'मृगी' मध्यवेग वाली को 'बड़वा' तथा चण्डवेग वाली को 'हस्तिनी' की संज्ञा दी गई है। समरति या अनुकूल सेक्स के लिए शश के साथ मृगी का, वृष के साथ बड़वा का तथा अश्व के साथ हस्तिनी का संयोग श्रेष्ठ माना गया है। इसी प्रकार प्रतिकूल संबंध के उच्चरत और उच्चतर रत और नीचरत तथा नीचतर रत इस प्रकार कई प्रकार के भेद किये गये हैं।

इसी प्रकार इस अधिकरण में यौन-सम्बन्ध की पूर्ववर्ती क्रियाओं का जो कि इस क्रिया के आनन्द को बढ़ाने में सहायक होती है—ऐसी चुम्बन, आलिंगन, इत्यादि क्रियाओं का विस्तार से वर्णन किया गया है।

इसके साथ ही इस अधिकरण में कुछ ऐसी अप्राकृतिक यौन क्रियाओं का भी उल्लेख किया गया है जो आज की समाज-व्यवस्था में हेय और घृणित समझी जाती हैं। इस प्रकार की अनैसर्गिक और घृणित क्रियाओं का प्रयोग ऐसे शास्त्रीय ग्रंथ में क्यों किया गया—इसका समाधान करते हुए वात्स्यायन मुनि कहते हैं कि—"किसी भी शास्त्रीय पद्धति के अन्तर्गत उस विषय की अच्छी और बुरी सब क्रियाओं का वर्णन किया जाता है। इसलिए मनुष्य को किसी कार्य का अनुकरण केवल इसी आधार पर नहीं करना चाहिए कि वह शास्त्रोक्त है। बल्कि उसकी उपादेयता और आवश्यकता पर भी विचार करना चाहिए। जैसे आयुर्वेद में गो-मांस, नर-मांस और श्वान-मांस के भी रस, गुण, वीर्य और विपाक का वर्णन किया गया है, मगर केवल इसी कारण से ये वस्तुएँ मनुष्यों के उपयोग में नहीं आ सकतीं। उसी प्रकार कामसूत्र के अन्दर वर्णित अप्राकृतिक क्रियाएँ भी मानव-जाति के लिए त्याज्य ही हैं।

कामसूत्र के तीसरे अधिकरण में सब प्रकार की विवाह पद्धतियों का विवेचन करते हुए वर और कन्या का चुनाव किस प्रकार और किन गुणों के आधार पर करना चाहिए—इसका विवेचन किया गया है। विवाह के पश्चात् प्रथम मिलन या सुहागरात के समय नवोढ़ा पत्नी को किस प्रकार विश्वास में लिया जाय, इस विषय का विवेचन किया गया है।

सुहाग रात का यह विवेचन बड़ा महत्वपूर्ण है। जीवन का यह अवसर अत्यन्त सुन्दर होने पर भी अत्यन्त नाजुक है और अत्यन्त आनन्द पूर्ण होने पर भी मनुष्य के काम शास्त्र सम्बन्धी अज्ञान की वजह से कभी-कभी जीवन भर के लिए दुःख पूर्ण हो जाता है।

काम सूत्र के चौथे अधिकरण में पत्नी का कर्तव्य और अपनी सपत्नियों के साथ उसके व्यवहार का वर्णन किया गया है। जिस घर में पति की कई पत्नियाँ रहती हैं, उसमें आपस के झगड़े से हमेशा अशान्ति रहती है। इस अशान्ति को कैसे मिटाया जाय। बड़ी पत्नी, छोटी पत्नियों के साथ किस प्रकार का व्यवहार करे और पति उन सबको किस प्रकार समान दृष्टि से देखे, इस विषय में आवश्यक निर्देश दिये गये हैं।

पांचवें अधिकरण में पर-स्त्री सम्बन्धी विषयों का विवेचन किया गया है। बतलाया गया है कि परस्त्री का सम्बन्ध नैतिक दृष्टि से एक कम त्याज्य है। आचार्य कहते हैं कि 'मनुष्य की रागावस्था जब काम की दसों अवस्थाओं को पार कर चरमावस्था को प्राप्त हो जाय और मरणासन्न स्थिति उत्पन्न हो जाय तब केवल प्राण की रक्षा के लिए ही यह दुष्कर्म क्षम्य समझा जा सकता है।"

इसके पश्चात् इस अधिकरण में इन पर-दारा-नायिकाओं के स्वभाव, वासना और उनको आकर्षित करने के तरीकों का वर्णन किया गया है और ऐसे सम्बन्धों को स्थापित करने के लिए जो मध्यस्थ दूतियाँ प्रयुक्त होती हैं, उनके सम्बन्ध का विस्तृत विवेचन किया गया है।

छठे अधिकरण में वेश्याओं के आचरण, उनके क्रिया-कलाप और धनी लोगों को ठगने की कला इत्यादि का विवेचन किया गया है।

और सातवें अधिकरण में कामोत्तेजक, सौन्दर्य वर्धक, उबटन आदि अनेक प्रकार की उपयोगी औषधियों का वर्णन किया गया है।

इस प्रकार महर्षि वात्स्यायन का काम-सूत्र सम्बन्धी यह ग्रन्थ प्राचीन साहित्य में अपने विषय का बेजोड़ ग्रन्थ है। मगर आज के युग में, जबकि संसार के स्त्री-पुरुष वासनाओं की घुड़ दौड़ में तेजी के साथ आगे बढ़ते जा रहे हैं और मर्यादाएँ टूटती जा रही हैं, ऐसे युग में यह ग्रन्थ कहाँ तक सहायक होगा। यह नहीं कहा जा सकता।

कामशास्त्र के क्षेत्र में पश्चिम के विद्वानों ने वैज्ञानिक दृष्टि से जो अनुसन्धान किये हैं, उनके सम्मुख यह गन्थ यदि पुराना मालूम पड़े तो कोई आश्चर्य नहीं, मगर पुराना पन ही इसकी वह विशेषता है, जो इसके महत्व को कायम रखे हुए है।

काम-विज्ञान

मनुष्य की सैक्स (यौन-सम्बन्ध) सम्बन्धी प्रवृत्तियों और प्रजनन क्रिया के वैज्ञानिक रूप का दिग्दर्शन कराने वाला विज्ञान।

प्राणी की सृष्टि करने के साथ ही प्रकृति ने उसमें भूख, नींद और कामवासना की तीन ऐसी दुर्दमनीय प्रवृ-

त्तियों को रख दिया है कि इन प्रवृत्तियों ने कभी उसे शान्ति से न रहने दिया। इन दुर्दमनीय प्रवृत्तियों के कारण मनुष्य को हमेशा संघर्ष की स्थिति में से गुजरना पड़ा। मानव समाज का सारा इतिहास इन्हीं संघर्षों से भरा पड़ा है।

सेक्स की समस्या मानवजाति के लिए हमेशा एक गम्भीर, अज्ञेय और ज्वलन्त समस्या के रूप में उपस्थित रही है। प्रकृति ने मनुष्य के सेक्स सम्बन्धी अङ्गों की रचना, बनावट और उससे सम्बन्धित मनोरचना ऐसे अनोखे ढंग से की है कि उसमें से अनुकूल सेक्स की खोज एक बड़ी समस्या बन गई है। जिन स्त्री-पुरुषों को भाग्य वशात अनुकूल सेक्स की प्राप्ति हो जाती है उनके मिलन आनन्द की उपमा दूसरे किसी आनन्द से नहीं दी जा सकती। इस धरती पर रहकर भी वे स्वर्ग के आनन्द का उपभोग करते हैं। और जो दम्पत्ति दुर्भाग्यवश प्रतिकूल सेक्स से सम्बन्धित हो जाते हैं उनके पास सब प्रकार के सुख, वैभव और उत्तम स्वास्थ्य के रहते भी वे जीवन का सच्चा आनन्द उठाने में असमर्थ रहते हैं। उन्हें अपने जीवन में हमेशा एक ऐसा अभाव और उदासीनता अनुहोती है जिसका वे निदान नहीं कर पाते। और इसी अभाव और उदासीनता को दूर करने के लिए वे समाज में अनैतिक परम्पराएँ कायम कर बैठते हैं।

मनुष्य का विवेक युगयुगान्तरों से सेक्स प्रवृत्ति के इन गूढ रहस्यों को खोजने में प्रयत्नशील है, और उसका यह प्रयत्न ही कामशास्त्र की उत्पत्ति का उद्गम स्थान है। मनुष्य जब इस प्रयत्न को एक सुव्यवस्थित और शास्त्रीय-रूप देता है तो वही कामशास्त्र बन जाता है।

संसार के सब देशों और सब सभ्यताओं में इस विषय पर अनुसन्धान हुए हैं।

भारतवर्ष के अन्तर्गत प्राचीन काल में कामशास्त्र के कई प्रसिद्ध आचार्य्य हुए। इनमें महर्षि वत्स्यायन का नाम सबसे प्रधान हैं। उन्होंने कामसूत्र नामक महत्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की। जिसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं।

मध्यकाल में भी भारतवर्ष में कई लोगों ने इस विषय पर रचनाएँ की हैं। इनमें कश्मीर के अन्तर्गत दामोदर गुप्त, और कोका पण्डित का (कोकशास्त्र या रतिरहस्य के रचयिता) तथा अनंग रंग के रचयिता कल्याणमल्ल, नागर सर्वस्व के रचयिता पद श्री, शृंगार दीपिका के रचयिता 'हरिहर' और शृंगार सार के रचयिता 'चित्रधर' का नाम उल्लेखनीय है।

सिगमण्ड फ्रायड

पश्चिम में भी इस विषय पर सैकड़ों विद्वानों ने एक बहुत बड़े साहित्य का निर्माण किया है मगर इन सब में "फ्रायड़" का नाम बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है। फ्रायड ने पूर्ण वैज्ञानिक पद्धति से मनुष्य की सेक्स प्रवृत्ति का अध्ययन कर अपने सिद्धान्तों की स्थापना की है। फ्रायड़ की इन खोजों से कई प्राचीन मान्यताएँ असत्य सिद्ध हो गई हैं। फ्रायड के अतिरिक्त "मेरी स्टोप्स" नामक महिला लेखिका का नाम भी इस विषय की खोजों के सम्बन्ध में उल्लेखनीय समझा जाता है। इनके अतिरिक्त "फिजिया लॉजी ऑफ सेक्स" के रचयिता "कैनेथ वालकर" तथा "सेक्सुएल साइड ऑफ मेरिज" के रचयिता डॉ० एम० जे० एक्सनर का नाम भी उल्लेखनीय है।

फ्रायड का कथन है कि—संसारभर में मनुष्य की सेक्स प्रवृत्ति के सम्बन्ध में अत्यन्त गोपनीयता, और अप्राकृतिक दमनकारी रुख रखने से समाज की भयंकर हानि हुई है। संसार के सभी धर्मों ने मनुष्य की सेक्स प्रवृत्ति को अत्यन्त भयंकर समझकर तरह-तरह से उसको दबाने का प्रयत्न किया है।

मगर इतिहास बतलाता है ज्यों-ज्यों इस प्रवृत्ति को दबाने और इसको गोपनीय रखने का प्रयत्न किया गया है त्यों-त्यों इस प्रवृत्ति ने उतने ही प्रबल वेग से विस्फोटक रूप ग्रहण किया है। जिसके परिणामस्वरूप समाज में अनाचार और व्यभिचार का बोलबाला हुआ है। इसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप संसार के अनेक धर्मों में लिंग पूजा और योनि पूजा का व्यापक प्रचार हुआ। और इसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप मन्दिरों में देवदासियों और रोमन कैथोलिक चर्चों में भिक्षुणियाँ (Nuns) अस्तित्व में आई और इन्होंने उन पूजा गृहों को व्यभिचार के केन्द्र बना दिये।

इन बातों से स्पष्ट जाहिर है कि सेक्स की प्रवृत्ति पर तरह-तरह के बन्धन लगा देने पर भी और इसको संसार का सबसे बड़ा पाप घोषित कर देने पर भी, इस प्रवृत्ति ने

धर्म के प्रधान स्थानों पर ही अपनी विजय का झण्डा गाड़ दिया। इससे मालूम होता है कि मनुष्य की दुर्दमनीय सेक्स प्रवृत्ति नैतिक और धार्मिक बन्धनों से दबाई नहीं जा सकती। इसे तो उचित मार्ग देना ही होगा।

इसलिए इस वास्तविक तथ्य को समझना आवश्यक है कि समाज को इन दुर्घटनाओं से बचाने के लिए सेक्स प्रवृत्ति से सम्बन्धित पूर्ण जानकारी स्वस्थ शिक्षा का एक आवश्यक अंग होना चाहिए।

सेक्स के मुख्य उद्देश्य की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि सेक्स का मूल उद्देश्य संसार के अनेक भागों में प्रजनन या सन्तान की प्राप्ति माना गया है मगर प्राणी-विज्ञान की दृष्टि से यह चीज लिंग भेद शील प्राणियों के लिए सच होने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि कहीं भी कोई प्राणी सिवाय सुखप्राप्ति के और किसी कारण से यौन-सम्बन्ध करते हैं। सेक्स का असली उद्देश्य तो आनन्द प्राप्ति ही रहता है। आनन्द-प्राप्ति को गौण करार देकर प्रजनन को ही सेक्स का मुख्य उद्देश्य बतलाने की चेष्टा एक धार्मिक विचारको विज्ञान के सिर पर जबर्दस्ती लाद देना है।

मनुष्य की सेक्स प्रक्रिया की अनुभूति जननेन्द्रियों से प्रारम्भ होकर शरीर के प्रत्येक अङ्ग और सम्पूर्ण शरीर पर ही आनन्द की विजयपताका फहरा कर साँस नहीं लेती बल्कि मन के राज्य में भी शत और सहस्त्र धाराओं में वह आनन्द को प्रवाहित कर देती है। मगर इसमें सबसे बड़ी शर्त्त यह है कि ऐसे स्त्री पुरुषों के यौन-जीवन में अनुकूलता और भार साम्य हो। एक ऐसा व्यक्ति जो अन्य सब-तरह से सुखी और स्वस्थ है पर यदि उसे यह आभास होता है, कि वह अपनी स्त्री को यौन-क्रिया में सन्तुष्ट नहीं कर पाता, या वह स्वयं उसकी स्त्री से आनन्द और सन्तोष की प्राप्ति नहीं कर सकता तो उसका जीवन कभी सुखी नहीं हो सकता। उसकी अन्तरात्मा को कभी सन्तोष नहीं मिल सकता।

डॉ० जी० वी० हैमिल्ट अपने ग्रन्थ "ए रिसर्च इन मैरिज" में लिखते हैं कि सेक्स प्रक्रिया के सौ अवसरों में से कम से कम बीस अवसरों में भी मनुष्य को पूर्ण तृप्ति और आनन्द की पराकाष्ठा प्राप्त नहीं होती हो, तो यह समझना चाहिए कि उनके आगे का जीवन विपत्ति पूर्ण है।"

बात यह है कि यदि सेक्स प्रक्रिया में स्त्री और पुरुष दोनों का सम्पूर्ण रूप से सक्रिय सहयोग न हो तो वह स्थिति आनन्द दायक नहीं हो सकती। उस स्थिति में पुरुष और स्त्री दोनों को पूर्ण असन्तोष में से गुजरना पड़ता है। जिसके फल स्वरूप अनेक प्रकार के स्नायाविक और मानसिक रोग हो जाते हैं।

इसलिए सैक्स को पूर्ण सफलता के लिए जहाँ स्त्री और पुरुष का अनुकूल सैक्स होना जरूरी है, वहाँ उसके साथ ही सेक्स प्रक्रिया के पूर्व स्त्री और पुरुष दोनों को द्रवित और पूर्ण रूप से उत्तेजित करने के लिए चुम्बन, आलिगन इत्यादि प्राथमिक क्रियाओं का होना अत्यन्त आवश्यक है। पूर्वी और पश्चिमी दोनों स्थानों के काम शास्त्रियों ने इन पूर्व प्राथमिक क्रियाओं के महत्व को समझ कर इनका विस्तृत विवेचन किया है। इन प्राथमिक क्रियाओं के बिना सेक्स प्रक्रिया एक भद्दी पाशविक क्रिया मात्र रह जाती है और उसमें वह तृप्ति पैदा नहीं हो सकती।

सेक्स-क्रिया के सम्बन्ध में सबसे बड़ी गलती जो पुरुष करता है वह यह हैं कि वह बिलकुल शारीरिक तरीके से चलता है। और अपनी साथिन को मानसिक रूप से पूर्ण तैयार किये बिना ही वह इस प्रक्रिया में लग जाता है। इसके परिणाम स्वरूप तृप्ति के अभाव में स्त्रियाँ उदासीन और चिड़चिड़ी हो जाती हैं और पुरुष को समझ में नहीं आता कि वह क्या करे?

इस प्रकार काम जीवन की अव्यवस्था और अज्ञान के कारण लाखों मनुष्य जीवन के वास्तविक आनन्द से वंचित रह जाते हैं। इसलिए अनुकूल सेक्स और काम शास्त्र के के पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति जीवन के वास्तविक आनन्द के लिए प्रत्येक स्त्री पुरुष के लिए आवश्यक है।

कामशास्त्र और ब्रह्मचर्य्य

मनुष्य की काम प्रवृत्ति का दमन करने के लिए संसार के अनेक धर्मों में ब्रह्मचर्य की किसी न किसी रूप में व्यवस्था रक्खी गई है मगर भारतीय शास्त्रों में इस वस्तु

के महत्व का जितनी गहराई और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रतिपादन किया गया है उतना अन्यत्र कहीं भी देखने को नहीं मिलेगा।

हिन्दू धर्मशास्त्रों में बतलाया गया है कि मनुष्य की काम-प्रवृति उसकी शक्ति का ही एक रूप है। मानवीय शक्ति जिस प्रकार एक गलत रास्ते पर जाकर बड़े बड़े अनर्थ कर डालती है उसी प्रकार यदि उसको सही रास्ते पर लगा दिया तो उससे बड़े-बड़े कल्याणकारी कार्य भी हो सकते हैं। काम-शक्ति भी एक बड़ी प्रचंड शक्ति है। इसलिए मनुष्य अपनी इस शक्ति को सेक्स प्रवृत्ति से हटाकर यदि इसका उदात्तीकरण कर ले या इस शक्ति को उर्ध्वरेता करके, इसका मार्ग भोग से बदल कर योग की तरफ कर दे, काम से हटाकर इसको निष्काम की तरफ मोड़ दे तो यही शक्ति उसके कल्याण का सर्वोच्च साधन बन सकती है। यह परिवर्तित शक्ति मनुष्य के अन्तर्गत स्वास्थ्य, दिव्य तेज और पारदर्शी ज्ञान की उत्पत्ति कर देती है। इसी शक्ति के द्वारा भीष्म पितामह ने मृत्यु पर विजय प्राप्त कर इच्छा-मृत्यु की स्थिति प्राप्त कर ली थी।

सिद्धान्त रूप से यह वस्तु अत्यन्त उत्तम और मानव मनःस्थिति को उच्चता प्राप्त करने वाली मालूम होती है और इसकी सचाई पर भी कोई सन्देह नहीं हो सकता। मगर इस पर आचरण करने वाले ब्रह्मचारियों का जब इतिहास देखा जाता है तो मुट्ठी भर लोगों को छोड़कर ब्रह्मचर्य के दिव्य तेज के उदाहरण बहुत कम देखने को मिलते हैं और यही कारण है कि ब्रह्मचर्य्य का गुणगान करने वाले बड़े-बड़े ऋषि भी अपने आश्रम में पत्नियों को रखते थे।

आधुनिक युग में भारत के अन्तर्गत उत्कृष्ट ब्रह्मचर्य का एक तेजपूर्ण उदाहरण स्वामी दयानन्द में देखने को मिलता है। जिनके महान् तेज से आसपास की धरा काँपती थी। मगर करोड़ों मनुष्यों में केवल एक या मुट्ठी भर उदाहरणों से किसी भी वस्तु को नियम रूप से नहीं माना जा सकता।

बात यह है कि काम प्रवृत्ति को केवल दमन करने से ही वास्तविक "ब्रह्मचर्य" की प्राप्ति नहीं हो सकती। वास्तविक ब्रह्मचर्य की प्राप्ति तो तभी हो सकती है जब उस कामशक्ति को योगबल के द्वारा पूर्ण रूप से उर्ध्वरेता कर दिया जाय। मगर यह शक्ति हर एक व्यक्ति को प्राप्त नहीं हो सकती। परिणाम यह होता है कि दमन की हुई यह काम शक्ति, कहीं क्रोध के रूप में, कहीं चिड़चिड़ाहट के रूप में और कहीं ब्रह्मचर्य के झूठे अहंकार के रूप में प्रकट होकर मनुष्य के स्वास्थ्य और उसके मनोबल को गिरा देती है और ऐसे ब्रह्मचारी की हालत साधारण गृहस्थ से भी गई बीती हो जाती है।

डॉ० मारेस्तां नामक फ्रेंच वैज्ञानिक का कथन है कि—"पूर्ण ब्रह्मचर्य शारीरिक या मानसिक किसी भी दृष्टि से हितकर नहीं है। जबर्दस्ती कामेच्छा को दमन करने वाला व्यक्ति दिनरात 'सेक्स' सम्बन्धी विषय पर सोचा करता है। जिस प्रकार भूख से पीड़ित मनुष्य खाने के विषय में ही अधिक सोचते हैं उसी प्रकार ये अभागे दिन में चौबीस घंटे कामोत्तेजक विचारों, स्वप्नों तथा उड़ानों में निमग्न रहते हैं। उनको अपनी सारी शक्ति इस शक्ति का प्रतिरोध करने में लगा देना पड़ती है। इसलिए किसी भी अच्छे कार्य को करने का न तो इन्हें समय रहता है और न शक्ति ही रहती है।" ऐसे लोगों को ब्रह्मचारी के अपेक्षा 'कुँआरे' कहना ही अधिक उपयुक्त होगा।

कामशास्त्र और गोपनीयता

यद्यपि संसार के कामशास्त्र के आचार्यों ने कामशास्त्र के ज्ञान को गोपनीय रखने की निन्दा की है और इसको बड़े-बड़े अनर्थों की जड़ बतलाया है। फिर भी संसार के समाजशास्त्रियों, धर्माचार्यों और राज व्यवस्थापकों ने इस शास्त्र को विशेषतया गोपनीय रखने में ही समाज का कल्याण समझा। यहाँ तक कि साम्यवादी समाज-व्यवस्था को छोड़कर आधुनिक युग की उत्कृष्ट समाज व्यवस्थाओं में भी इस शास्त्र पर कम या ज्यादा किसी प्रकार का प्रतिबन्ध रक्खा गया है। खासकर इसके अश्लील कहे जाने वाले अंश पर तो कठोर प्रतिबन्ध है।

बात यह है कि प्रकृति ने सेक्स के सम्बन्ध में मनुष्य को इतना उतावला और आवेगपूर्ण बनाया है, कि जवानी के प्रारंभ होते-होते, उसका दौड़ता खून, उसके उठते हुए अंग और उसकी भींगती हुई मसे उसमें सेक्स की भावना को अपने आप जाग्रत कर देती हैं। एक तरुण पुरुष के

अन्तर्गत एक तरुणी स्त्री को देखकर, एक युवती के अन्दर एक युवक को देख कर, स्वयमेव एक ऐसी भाव लहरी दौड़ जाती है, जिसे किसी शास्त्रीय ज्ञान की आवश्यकता नहीं पड़ती। फिर उन लोगों के आस-पास का वातावरण, उनके भाई भौजाइयों की रंगरेलियां, ये सब चीजें उनको स्वयमेव इस वस्तु का ज्ञान करा देती है। इस काम के लिए इन्हें किसी भी अ-आ को पढ़ने की आवश्यकता नहीं होती।

ऐसे स्वयमेव उत्तेजना पूर्ण विषय को शास्त्रीय ज्ञान के द्वारा और उत्तेजना पूर्ण बना देना शायद राज्य व्यवस्थापकों और समाज शास्त्रियों ने उचित नहीं समझा और इस विषय को नियंत्रण में रखने में ही उन्होंने शायद समाज का कल्याण समझा। यही कारण है कि काम शास्त्रियों की सब दलीलों के बावजूद भी उन्होंने मनुष्य की सेक्स प्रवृत्ति सम्बन्धी साहित्य को खुला रूप न देने में ही हित समझा हो।

फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि कामशास्त्र ~~सम्बन्धी~~ इस गोपनीयता और प्रतिबन्ध से मानव समाज का कल्याण साधन हुआ हो बल्कि इस ज्ञान की अपूर्णता से समाज का अकल्याण ही अधिक हुआ है। इस विषय का विवेचन ऊपर किया जा चुका है।

कामरूप

भारत के आसाम प्रान्त का पौराणिक युग का प्राचीन नाम जो अपनी तंत्र विद्या और जादू टोने के लिए हमेशा प्रसिद्ध रहा है।

प्राचीन काल का कामरूप आजकल के आसाम से अधिक विस्तृत था और उसमें उत्तरी बंगाल और भूटान का हिस्सा भी शामिल था। इस प्रदेश की राजधानी "प्रागजोतिषपुर" में थी जो गौहाटी के आसपास बसा हुआ था।

कामरूप एक अत्यन्त प्राचीन देश था। हिन्दू पुराण ग्रन्थों में इस प्रदेश का उल्लेख कई स्थानों पर कई प्रकार से आया है।

कालिका पुराण के अनुसार कामदेव को महादेव के क्रोधानल से भस्मीभूत होने के पश्चात् यहीं पर फिर से अपना स्वरूप प्राप्त हुआ था इसी से इसका नाम "कामरूप पड़ा।"

इसी प्रदेश में बैठकर ब्रह्मा ने नक्षत्रों की रचना की थी अतः उस स्थान का नाम "प्राग्जोतिषपुर" पड़ा। उस युग में कामरूप प्रदेश अत्यन्त पवित्र माना जाता था। कालिका पुराण में इस सम्बन्ध की एक कथा इस प्रकार लिखी हुई है।

"प्राचीन काल में महापीठ कामरूप में जाकर वहाँ के देवताओं की पूजाकर और वहाँ की नदियों में नहाकर अनेक व्यक्ति स्वर्ग चले जाते थे। पार्वती के भय से वहाँ पर यमराज का प्रवेश निषिद्ध हो गया था। जिससे यमराज के स्वाभाविक कर्म को बड़ा धक्का पहुँच गया था। तब यमराज ने ब्रह्मा से कहा—"हे विधाता। मनुष्य कामरूप में नहाकर, वहाँ का जल पीकर, मरने के बाद कामाख्या देवी और शिव के पार्श्वचर हो जाते हैं। हमारा वहाँ पर अधिकार न होने से हम उन्हें किसी प्रकार की बाधा नहीं पहुँचा सकते। इससे सृष्टि का व्यतिक्रम भंग हो रहा है। इसका कोई उचित उपाय होना चाहिए।"

तब ब्रह्मा यमराज को लेकर विष्णु के पास गए और वे सब मिलकर शिव के पास गये। सब बात सुनकर शिव अपने गणों के साथ कामरूप गये। वहाँ जाकर उन्होंने देवी उग्रतारा और अपने गणों से कहा कि यहाँ से तुरन्त सब लोगों को भगा दो। शिव की आज्ञा पाते ही देवी उग्रतारा ने सब लोगों को भगाना शुरू किया। इसी चक्कर में वहाँ पर बसे हुए वसिष्ठ मुनि को भी निकालने देवी पहुँच गई। इस अपमान से वशिष्ठ मुनि अत्यन्त क्रोधित हुए और उन्होंने देवी को शाप दिया—

"हे वामे! हम मुनि हैं। फिर भी तुम हमें भगाने की चेष्टा कर रही हो। इसलिए हमारा अभिशाप है कि तुम मातृ गण के साथ इस प्रदेश में वाममत से वेद विरुद्ध पूजित होओगी। तुम्हारे प्रमथगण म्लेच्छ रूप से इस कामरूप में वास करेंगे। हम शम, दम, गुण विशिष्ट तपो निरत मुनि हैं। महादेव ने बिना सद्सद विवेक के म्लेच्छों की भाँति हमें भगाने की आज्ञा दी है। इसलिए वे भी म्लेच्छों की भाँति भस्म और आस्थि धारण कर इस कामरूप में रहेंगे और यह कामरूप देश तब तक

म्लेच्छ परिवृत रहेगा और इसके सारे तंत्र बेकार हो जाएँगे जब तक स्वयं विष्णु यहाँ पर नहीं आवेंगे।"

वशिष्ठ के इस शाप से कामरूप के नागरिक म्लेच्छ बन गये। उग्रतारा वामा हुई और महादेव भी म्लेच्छ की तरह फिरने लगे। एकदम कामरूप वेद मंत्र हीन हो गया। तब विष्णु ने आकर उस शाप से कामरूप को मुक्त किया।"

कालिका पुराण में ही कामरूप के पहले राजा "नरकासुर" का विस्तार से वर्णन दिया हुआ है। इससे मालूम होता है कि सबसे पहले नरकासुर ने ही कामरूप में देवी कामाख्या के मन्दिर का निर्माण करवाया था।

नरकासुर के बाद उसके पुत्र भगदत्त को श्रीकृष्ण ने कामरूप की राजगद्दी पर बिठाया था। भगदत्त ने महाभारत के युद्ध में कौरवों के पक्ष में पाण्डवों से युद्ध किया था।

इसके पश्चात् इस प्रदेश पर पुष्पवर्मन नामक व्यक्ति ने वर्मन राजवंश की स्थापना कर यहाँ का राज्य प्राप्त किया। पुष्पवर्मन के पश्चात् इस राजवंश में समुद्रवर्मा, बलवर्मा, कल्याण वर्मा, गणपति वर्मा, महेन्द्र वर्मा, नारायण वर्मा, मूर्तिवर्मा, स्थितिवर्मा और सुस्थित वर्मा नामक राजा हुए। सुस्थित वर्मा का पुत्र भास्कर वर्मन इस राज्य में बड़ा प्रतापी नरेश हुआ। भास्करवर्मन कन्नौज नरेश हर्षवद्धन का परम मित्र और मालवराज देवगुप्त का परम शत्रु था।

भास्कर वर्मन तथा उसके बाद का ऐतिहासिक वर्णन इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में आसाम के वर्णन में दिया गया है।

कामाख्या-देवी

कामरूप प्रदेश में गौहाटी के समीप कामाख्या नामक पहाड़ी पर बना हुआ देवी कामाख्या का मन्दिर जो समस्त भारत के प्रधान शक्ति पीठों में से एक है।

कालिका पुराण में कामाख्या पीठ की स्थापना का वर्णन करते हुए लिखा है कि—

"दक्ष के यज्ञ में महादेव का अपमान होने पर सती यज्ञ के हवन कुण्ड में कूद पड़ी। महादेव उसके शरीर को कन्धे पर उठाकर पागलों की तरह सब दूर घूमने लगे। सती के उस शरीर में से उसके अङ्ग टूट-टूट कर जिन स्थानों पर गिरे उन सभी स्थानों पर शक्ति पीठों की स्थापना हो गई। उसका एक अङ्ग कामरूप में भी गिरा और उसी स्थान पर देवी कामाख्या के शक्ति पीठ की स्थापना हुई।

कामख्या का शक्ति पीठ तांत्रिक लोगों का अत्यन्त पूजनीय क्षेत्र रहा है। बड़े-बड़े प्रसिद्ध तान्त्रिकों ने इस क्षेत्र में तन्त्र विद्या की सिद्धि प्राप्त की। सारे आसाम और बंगाल के एक हिस्से में कामाख्या देवी की पूजा का बड़ा महत्व है।

कामख्या देवी की वजह से आसाम की नारियों ने भी बड़ी तांत्रिक शक्ति प्राप्त कर ली थी और ऐसा कहा जाता है कि किसी समय में यहाँ पर एक बड़े प्रभावशाली स्त्री राज्य की स्थापना भी हुई थी। यहाँ की स्त्रियों के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की चमत्कार पूर्ण कहानियाँ सारे देश के स्त्री समाज में फैली हुई हैं और लोक गीतों में भी इन चमत्कारों का वर्णन आया है।

सन् १५६६ में प्रसिद्ध हिन्दू द्वेषी "काला पहाड़" कामरूप में कामाख्या देवी के मन्दिर को तोड़ने गया। उस समय यह स्थान कूच बिहार के राजा नर-नारायण के अधीन था। मगर राजा काला पहाड़ से उस मन्दिर की रक्षा न कर सके। काला पहाड़ ने कामाख्या देवी के सारे मन्दिर और पीठ स्थान को तोड़-फोड़ कर नष्ट कर दिया उसके बाद राजा नर-नारायण ने अपने भाई के सहयोग से इस मन्दिर का पुन निर्माण करवाया।

कामरान मिरजा

मुगल बादशाह बाबर का दूसरा पुत्र, हुमायूँ का छोटा भाई। जिसकी मृत्यु सन् १५५७ में हुई।

सम्राट बाबर ने कामरान को अपने जीवन काल में ही कन्धार का राज्य दे दिया था। बाबर की मृत्यु के बाद हुमायूँ ने उसे पंजाब और काबुल तथा कन्दहार का प्रदेश काम-

रान को देकर उसे बिदा कर दिया। मगर कामरान बराबर अपने भाई हुमायूँ के खिलाफ विद्रोह करता रहा। अन्त में शेरशाह से पराजित होकर हुमायुँ सन् १५४० में काबुल को ओर चला तो कामरान ने पहले ही वहाँ पहुँचकर काबुल पर अधिकार कर लिया।

सन् १५४५ में हुमायूँ ने ईरान के सम्राट तहमास्य की सहायता से आक्रमण कर काबुल और कन्दहार के प्रदेश जीत लिये। मगर अगले साल कामरान ने फिर इस प्रदेश पर अधिकार कर लिया। तब हुमायूँ ने फिर आक्रमण कर कामरान को हराकर उसे बन्दी बना लिया। मगर कामरान के क्षमा माँगने पर फिर उसे छोड़ दिया।

इस प्रकार कामरान के प्रति हुमायूँ बराबर भाई के के कर्त्तव्य को निभाता रहा मगर कामरान हमेशा उसके साथ विद्रोह करता रहा। अन्तिम बार तंग आकर उसने कामरान को पकड़ कर उसकी आँखें निकलवा कर मक्का भेज दिया जहां सन १५५७ में उसकी मृत्यु हो गई।

कामबख्श

मुगलसम्राट औरंगजेब आलमगीर का छोटा पुत्र जिसका जन्म सन् १६६७ में और मृत्यु सन् १७०८ में हुई।

कामबख्श बादशाह औरंगजेब की उदयपुरी महल नामक बेगम का पुत्र था। प्रारम्भ में इसको औरंगजेब ने दक्षिण का सूबेदार बनवाकर भेजा था किन्तु इसने अपने बड़े भाई बहादुर शाह की अधीनता स्वीकार न कर अपने [illegible] सिक्का चला दिया। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् भाइयों के साथ संघर्ष में सन् १७०८ में यह मारा गया।

कामराज

मद्रास प्रान्त के रहने वाले कांग्रेस के एक प्रमुख नेता कांग्रेसी शासन में मद्रास के मुख्यमंत्री, कामराज योजना के प्रवर्तक, और सन् १९६४ में अखिल भारतीय कांग्रेस के अध्यक्ष।

कांग्रेस के इतिहास में एक योग्य और सफल कार्यकर्ता की दृष्टि से "कामराज" का अच्छा नाम है। एक मुख्यमंत्री की हैसियत से इन्होंने मद्रास के शासन का बड़ी दक्षता से संचालन किया।

मगर "कामराज" की विशेष प्रसिद्धि तब हुई जब वे कांग्रेस का आन्तरिक सुधार करने के लिए मुख्यमन्त्री पद को छोड़कर "कामराज योजना" के नाम से एक योजना लेकर देश के सम्मुख आये। इस योजना का मूल उद्देश यह था कि राज्यशासन में फँसे हुए योग्य और अनुभवी व्यक्ति राज्य-पदों को छोड़कर कांग्रेस संगठन में आकर संस्था का आंतरिक सुधार करने में अपने जीवन को लगा दें।

इस योजना के अनुसार देश के प्रायः सभी केन्द्रीय मंत्रियों, राज्य के मुख्य मंत्रियों और अन्य मंत्रियों ने अपने इस्तीफे प्रधान मंत्री पं० जवाहर लाल नेहरू के पास पेश कर दिये।

पं० नेहरू ने इन इस्तीफों में से केन्द्रीय मंत्री मुरार जी देसाई, पाटील, जगजीवन राम और लाल बहादुर शास्त्री के तथा राजमंत्रियों में से बख्शी गुलाम महम्मद, पटनायक, चन्द्रभान गुप्ता और भगवन्त राय मण्डलोई के इस्तीफे मंजूर कर उन्हें संगठन में काम करने को भेज दिया।

देश के राजनैतिक इतिहास में उस समय "कामराज-योजना" का बड़ा नाम हो गया। मगर आगे जाकर इसके कोई ठोस परिणाम निकले हों, और कांग्रेस संगठन में इसके कोई क्रान्तिकारी असर हुए हों ऐसा नहीं कहा जा सकता।

सन् १९६४ के जून मास में पं० जवाहर लाल नेहरू के देहान्त के पश्चात्, देश के नवीन प्रधान मंत्री के चुनाव के समय में भी कांग्रेस अध्यक्ष कामराज ने बड़ी दृढ़ता, बुद्धिमानी और दूरदर्शिता का परिचय दिया और उन्हीं के प्रयत्न से नवीन प्रधानमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री का निर्विरोध चुनाव बड़ी शांति के साथ सम्पन्न हो गया जिससे अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई।

कामराज एक सुदृढ़ नीति के, बुद्धिमान और दूरदर्शी व्यक्ति हैं।

कामा भीकाजी

पारसी जाति की एक प्रसिद्ध क्रान्तिकारिणी महिला श्रीमती कामा। जिनका जन्म सम्भवतः सन् १८७५ के करीब बम्बई में हुआ था।

श्रीमती 'कामा' के पिता का नाम सोराबजी कावसजी पटेल था। कामा का पूरा नाम भिकाजी था और पिता इन्हें भिक्कू कहकर पुकारते थे। किशोर अवस्था से ही इस लड़की की राजनैतिक और सामाजिक कार्यों में प्रवृत्ति होने से चिन्तित होकर इनके पिता ने इनका विवाह रुस्तमजी कामा से कर दिया। मगर इनकी प्रवृत्तियों से इनके पति की प्रवृत्तियाँ न मिल सकीं जिससे इन्हें पति से अलग होने को मजबूर होना पड़ा।

इसके पश्चात् श्रीमती कामा चिकित्सा के लिए लन्दन गयीं। वहाँ प्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्यामजीकृष्ण वर्मा से उनका परिचय हो गया। उन दिनों श्यामजीकृष्ण वर्मा ब्रिटिश प्रगतिवादी वर्गों में भारतीय आजादी के पक्ष में प्रचार कर रहे थे। कामा उनके भाषणों से बड़ी प्रभावित हुईं। और शीघ्र ही लन्दन के 'हाइड पार्क' में भारतीय स्वाधीनता पर श्रीमती कामा के भी भाषण होने लगे। ब्रिटिश अधिकारी उनके इन भाषणों से चौकन्ने हो गये और उन्होंने श्रीमती कामा को गिरफ्तार करने का निश्चय किया।

मगर इसकी भनक पड़ते ही श्रीमती कामा ब्रिटिश चैनल को पारकर फ्रान्स चली गईं। वहाँ पर उन्होंने एक छोटा सा बोर्डिङ्ग हाऊस खोल दिया और ३५ वर्ष तक वह यहीं पर रहीं। वहीं से उन्होंने भारत के पक्ष में लोकमत जाग्रत करने के लिए पूरे यूरोप का दौरा किया और जगह-जगह के क्रान्तिकारियों से मिलीं।

उनकी इन प्रतिक्रियाओं से ब्रिटिश सरकार अत्यन्त सशंकित थी। पहले तो उसने फ्रांस की सरकार से इन्हें माँगा, मगर फ्रांस सरकार के इन्कार करने पर ब्रिटिश सरकार ने इनके भारत-प्रवेश पर पाबन्दी लगा दी। इस कार्यवाही का उत्तर श्रीमती कामा ने 'बन्दे मातरम्" नामक पत्र का प्रकाशन करके दिया।

उन दिनों अर्थात् सन् १९०८ के आसपास कामा का छोटासा बोर्डिङ्ग हाउस प्रसिद्ध भारतीय क्रान्तिकारियों का तीर्थ बना हुआ था। बहुत से भारतीय क्रान्तिकारी उनसे सलाह करने वहाँ आया करते थे। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी वीर सावरकर, लाला हरदयाल, श्यामजीकृष्ण वर्मा वीरेन्द्र नाथ चट्टोपाध्याय, एम० पी० टी० आचार्य इत्यादि व्यक्तियों ने कई बार उनसे भेंटें की थीं।

सन् १९०८ में जर्मनी में अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन हुआ, जिसमें भारतीय प्रतिनिधि की हैसियत से श्रीमती कामा को भी निमंत्रण मिला। वहाँ पर पूरी बाहों के ब्लाउज और साड़ी में लिपटी हुई श्रीमती कामा जब भाषण देने को खड़ी हुईं तो इस भारतीय नारी को देखकर वहाँ के दर्शक चकित हो गये।

स्वाधीन भारत का पहला राष्ट्रीय झण्डा

श्रीमती कामा ने भारत में ब्रिटिश सत्ता के भ्रष्टाचार के विरुद्ध एक कठोर भाषण देते हुए सम्मेलन के संयोजकों के प्रति आभार प्रदर्शन किया और अकस्मात् साड़ी की लपेट में से एक बण्डल निकाला और १८ अगस्त १९०८ के दिन तालियों की गड़गड़ाहट के बीच में उस बण्डल में से एक 'तिरंगा झण्डा' निकालकर टस्ट गर्ट (जर्मनी) में लहरा दिया। इसी झण्डे ने भविष्य में भारत के स्वतंत्रता-प्रेमियों को संगठित होने और संग्राम में जूझ पड़ने को प्रेरित किया। झण्डा लहराने के साथ ही उन्होंने जोरदार शब्दों में कहा कि "अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष करो—यह ईश्वर की आज्ञा है।"

प्रथम महायुद्ध के समय ब्रिटिश सरकार के पुनः अनुरोध करने पर फ्रान्स की सरकार ने श्रीमती कामा को पेरिस के पास ही एक पुराने किले में कैद कर दिया। वहाँ से वह शान्ति संधि होने पर छोड़ी गईं।

सन् १९३५ में बृद्ध और अशक्त हो जाने पर उन्होंने अपनी मातृभूमि का दर्शन करना चाहा। उन्होंने भारत के वाइसराय को लिखा कि "मैं पराधीन भारत में जीवित नहीं रहना चाहती, बल्कि मैं वहीं आकर मरना चाहती हूँ, जहाँ पर मेरा जन्म हुआ था" इस पर भारत-सरकार ने उनसे राजनैतिक कार्य न करने की प्रतिज्ञा लेकर भारत आने की इजाजत दे दी। भारत पहुँचने के समय वे बहुत बीमार थीं। इससे उन्हें 'बी० डी० पारसी जनरल अस्पताल' में

भरती करवा दिया गया। यहीं पर अगस्त १९३९ ई० में उनकी मृत्यु हो गई।

कामाकुरा-शोगनशाही

जापान का एक प्रसिद्ध राजवंश, जिसने जापान में 'शोगुन' की प्रसिद्ध प्रथा को कायम किया। यह शोगुनशाही सन् ११५९ में स्थापित हुई और करीब सात सौ वर्षों तक जापान के शासन पर पूर्ण अधिकारों के साथ छाई रही।

शोगुन प्रथा स्थापित होने के पहले जापान सम्राट के प्रतिनिधि रूप में वहाँ पर फूजीवारा राजवंश शासन कर रहा था। सम्राट को इसने एक कठपुतली की तरह बना रक्खा था। जिससे सम्राट् और दाइम्यो नामक जमींदार लोग फूजीवारा वंश से बड़े असन्तुष्ट थे।

इन्हीं दाइम्यो नामक जागीरदार लोगों में "योरीतामा" नामक एक बड़ा प्रभावशाली व्यक्ति हुआ। इसने सन् ११५२ में फूजीवारा वंश की सारी शक्ति को समाप्त कर दी। इससे प्रसन्न होकर सम्राट् ने इसको सी-ए-ताई-शोगुन की पूर्ण सत्तासम्पन्न उपाधि प्रदान की और साम्राज्य की वास्तविक सत्ता "योरीतामा" को सौंप दी।

उस समय जापान की राजधानी "क्योटो" में थी। मगर वहाँ के लोगों का जीवन अत्यन्त विलासपूर्ण हो गया था। इसलिए "योरीतामा" ने अपनी सैनिक राजधानी क्योटो से हटाकर "कामाकुरा" नामक स्थान पर बनाई। इसी राजधानी के नाम पर यह कामाकुरा शोगुनशाही के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस वंश की सत्ता सन् १३१३ तक अर्थात् डेढ सौ वर्षों तक कायम रही। उसके बाद योरीतामा के वंश से निकलकर यह शोगुनशाही दूसरे वंश के हाथ में चली गई।

कामाकुरा शोगुनशाही के समय में जापन की सर्वतोमुखी उन्नति हुई। उस युग में कामाकुरा वैभव के शिखर पर पहुँच गया था। कई स्थानों पर मन्दिरों का निर्माण हो रहा था। धार्मिक व्याख्यान और रचनाएँ प्रस्तुत हो रही थीं। जापान के सेना नायक और जनता में बौद्ध धर्म का व्यापक प्रचार हो रहा था और उसके साथ ही साथ साहित्य, चित्रकला, मूर्तिकला, भवन निर्माण कला सभी क्षेत्रों में पूर्ण विकास हो रहा था।

इस काल में जापानी साहित्य में भी एक युगान्तर हो रहा था। चीन और जापान के समन्वय से एक राष्ट्रीय लिपिबद्ध भाषा का भी इसी काल में विकास हो रहा था। इस समय की दो प्रसिद्ध साहित्यिक कृतियाँ "हेई-के-मोनो-गातारो" और गेनपेयी सेवी सुई की बहुत प्रसिद्ध हैं। इनमें हेई (क्वटो) और गेंजी के उत्थान-पतन का करुण चित्र कविता में पद्यबद्ध किया गया है। इस युग के साहित्य में बौद्ध धर्म की छाया होने से उसमें नैराश्य का पुट अधिक पाया जाता है।

इसी काल में जापान में कामो-नो-चोयेई नामक प्रसिद्ध कवि हुआ। इसकी रचना होजोकी बड़ी प्रसिद्ध है जिसमें उस काल की करुण चेतना और नैराश्य का सजीव चित्र अंकित किया गया है।

कामायनी

हिन्दी काव्य साहित्य में छायावाद के महान् कवि श्री जयशंकर प्रसाद का एक सुन्दर और दार्शनिक भावों से युक्त प्रसिद्ध काव्य। जिसका प्रकाशन सन् १९३९ में हुआ।

हिन्दी काव्य साहत्य को "कामायनी" छायावादी युग की एक महान् और गौरवपूर्ण देन है। इसके द्वारा एक मधुर काव्यधारा के साथ २ एक सुन्दर दर्शन परम्परा को कवि ने उपस्थित किया है।

मनु, श्रद्धा और इडा के द्वारा कवि ने मानवीय मन और उसमें श्रद्धा (विश्वास) और इडा (बुद्धि) के द्वारा होने वाले उत्थान और पतन और इस उत्थान और पतन से उस मन में उत्पन्न होने वाली अनेक भावनाओं की तरंगों का बड़ी अभिराम और रोचक शैली में वर्णन किया है। इस वर्णन में सृष्टि की आदि से अभी तक होने वाले मानवीय मन के विकासक्रम का इतिहास भी आ गया है।

कामायनी काव्य का प्रारम्भ एक विशाल जल प्रलय की घटना से प्रारम्भ होता है। इस जल प्रलय में सारा देवलोक और उसकी ऋद्धि समृद्धि नष्ट हो जाती। केवल एक मनु किसी प्रकार उस जल प्रलय से बचते हैं। वे एक

नौका पर बहते-बहते हिमालय के एक शिखर पर जा पहुँचते हैं। इसी घटना के प्रारम्भ से इस काव्य का प्रारम्भ होता है। और ऐसे समय में मानवीय मन में उठने वाली अनेक प्रकार की भावनाओं का पन्द्रह सर्गों के रूप में कवि ने चित्रण किया है। ये पन्द्रह सर्ग—(१ , चिंता (२) आशा (३) श्रद्धा (४) काम (५) वासना (६) लज्जा (७ कर्म (८) ईर्ष्या (९) ईडा (१०) स्वप्न (११) संघर्ष (१२) निर्वेद (१३ दर्शन (१४) रहस्य (१५) आनन्द नाम से इस काव्य में जुड़े हुए हैं। इस प्रकार चिंता से इस काव्य का प्रारम्भ होकर आनन्द में इसकी समाप्ति होती है।

चिंता—इस विशाल जल प्रलय को देखकर तथा सारे विश्व में अपने आपको एकाकी समझकर मनु के मन में तरह-तरह की चिंताएँ पैदा होती हैं।

ओ चिंता की पहली रेखा अरी विश्ववन की व्याली।
ज्वालामुखी स्फोट के भीषण प्रथम कम्पसी मतवाली।।
हे अभाव की चपल बालिके! री ललाट की खलरेखा।
हरी भरी सी दौड़धूप, ओ जल माया की चलरेखा।

आशा—मनु के मन में छाई हुई चिन्ता के इस निबिड़ अन्धकार में अकस्मात् प्रकाश की एक पतली रेखा की तरह आशा की एक किरण चमक जाती है।

उषा सुनहले तोर बरसती, जय लक्ष्मी सी उदित हुई।
उधर पराजित कालरात्रि भी जग में अन्तर्निहित हुई।।
वह विवर्ण मुख त्रस्त प्रकृति का आज लगा हँसने फिर से।
वर्षा बीती हुआ सृष्टि में शरद विकास नये सिर से।।

आशा की इस किरण को पाकर मनु में एक नवीन चेतन का संचार हुआ। उन्होंने सोचा कि हो सकता है मेरी ही तरह और भी कोई व्यक्ति इस महाप्रलय से बच गया हो? वे प्रतिदिन ऐसे व्यक्ति की खोज में रहने लगे। उन्हें अपना एकाकी पन बुरी तरह से अखर रहा था। उनकी एकमात्र वासना किसी साथी को पाकर उस एकाकी जीवन को पूर्ण बनाने की प्रेरणा दे रही थी।

श्रद्धा—इसी तरह एक दिन जब मनु आशा और निराशा के बीच झूल रहे थे उन्हें अचानक एक मीठी संगीतपूर्ण आवाज सुनाई पड़ी—

"कौन तुम? संसृति जलनिधि के तीर फेंकी मणि एक,
कर रहे निर्जन का चुपचाप, प्रभा की धारा से अभिषेक"

मनु इस मोहिनी आवाज को सुनकर चौंक पड़े। उन्हें आगन्तुक की वाणी में संगीत की सी मादकता का अनुभव हुआ। मनु ने अपनी दुख पूर्ण कहानी "श्रद्धा" को कह सुनाई और उससे उसका परिचय पूछा। श्रद्धा ने अपना परिचय दिया और फिर मनु से पूछा—

तपस्वी! क्यों हो इतने क्लान्त? वेदना का यह कैसा वेग
आह! तुम कितने अधिक हताश बताओ यह कैसा उद्वेग

फिर जब मनु अपनी अधीरता का वर्णन करते हैं तब—

कहा आगन्तुक ने सस्नेह "अरे तुम इतने हुए अधीर,
हार बैठे जीवन का दाँव, जीतते मरकर जिसको वीर।
तप नहीं, केवल जीवन सत्य, करुण यह क्षणिक दीन अवसाद
तरल आकांक्षा से है भरा सोरहा आशा का आल्हाद।।

उसके बाद श्रद्धा मनु को आश्वासन देती है। कहती है मैं तुम्हारी सहचरी बनकर, तुम्हारे जीवन यज्ञ में सहायता दूँगी। मेरे हृदय समुद्र में दया, माया, ममता आदि कोमल भावों के अनेक रत्न भरे हैं। उन्हें तुम ग्रहण करो और फूल की तरह तुम महक उठो।

और यह क्या तुम सुनते नहीं विधाता का मंगल वरदान,
शक्तिशालि हो विजयी बनो, विश्व में गूँज रहा जयगान।
डरो मत अरे अमृत सन्तान, अग्रसर है मंगलमय वृद्धि,
पूर्ण आकर्षण जीवन केन्द्र, खिची आवेगी सफल समृद्धि।

इस प्रकार मनु और श्रद्धा परस्पर परिचय में आते हैं।

काम—इस के पश्चात् काव्य की रंगभूमि में "काम" का प्रवेश होता है। कामदेव ने स्वयं अपना परिचय और साथ ही अपनी पुत्री कामायनी या श्रद्धा का परिचय भी दिया। कामने कहा —"हे मनु संसार की वास्तविक शक्ति प्रेम में ही है। उसी प्रेम का सन्देश सुनाने के लिए पवित्रता की प्रतिमूर्ति इस श्रद्धा कामायनी ने हमारे यहाँ जन्म लिया है। वही इस संघर्ष और संताप मय जीवन में शान्ति और शीतलता प्रदान करती हैं। यदि तुम उसे पाना चाहो तो अपने को उसके योग्य बनाओ।

इसके बाद मनु और श्रद्धा ने अपनी गृहस्थी जमाना प्रारम्भ किया। देखते ही देखते चारों ओर धान के खेत,

दूध देनेवाले पशु और अन्य सब सामग्रियों का संग्रह हो गया। मनु सामग्री जुटाते और श्रद्धा उसको सजाती। इस प्रकार उनकी गृहस्थी चल निकली। मगर अभी तक उनके जीवन में वासना का प्रवेश नहीं हुआ था।

वासना—जब जीवन में शान्ति बढ़ती गई तब वासना का उद्रेक होना स्वाभाविक था। एक दिन जब उनकी वासना पूर्ण दृष्टि ने श्रद्धा को देखा तो बोल उठे।

कहा मनु ने तुम्हें देखा अतिथि कितनी बार,
किन्तु इतने तो न थे तुम दबे छवि के भार।
पूर्व जन्म कहूँ कि था स्पृहणीय मधुर अतीत,
गूँजते जब मधुर घन में, वासना के गीत।।

मनु के मधुर वचनों को सुनकर श्रद्धा का नारी हृदय मधुर भावनाओं से ओतप्रोत हो गया। वह बोली हे प्रेम रूप! आज सम्पूर्ण आत्म समर्पण ही मेरे जीवन का प्रधान लक्ष्य हो गया है। और वह लज्जा से अवनत हो गई।

लज्जा—इसी समय "लज्जा" उन दोनों के बीच में में आकर खड़ी हो जाती है। श्रद्धा उसे देखकर चौंक पड़ती ~~है और~~ कहती है तुम कौन हो, जो दो प्रेमियों के बीच में बाधा बनकर आई हो। लज्जा कहती है—

"उज्ज्वल वरदान चेतना का सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं,
जिसमें अनन्त अभिलाषा के सपने सब जगते रहते हैं।
मैं उसी चपल की धात्री हूँ गौरव महिमा हूँ सिखलाती,
ठोकर जो लगने वाली है उसको धीरे से समझाती।।

तब श्रद्धा उससे पूछती है कि क्या मेरे जीवन पथ का तुम ठीक से पथ निर्देश कर सकोगी। आज मेरे मन में मैं अपने आप को लुटाकर पूर्ण आत्म समर्पण कर देने की इच्छा हो रही है।

लज्जा ने कहा—'हे श्रद्धा। तुम यह क्या कह रही हो? अखिल मानव जाति के कल्याण के लिए तुम अपना यह सुनहला जीवन तो पहले ही अर्पित कर चुकी हो। इसलिए हे देवी! मानव के मन में निरन्तर जो देवासुर संग्राम चल रहा है उसे अपने जीवन के अमृत से सींच दो।

कर्म—वासना की परितृप्ति के साथ-साथ कर्म की भावना का उदय हुआ। मनु की इच्छा एक 'यज्ञ" करने की हुई, मगर यज्ञ करने के लिए उसे कोई "पुरोहित" नहीं मिल रहा था। इसी समय जल प्रलय से बचे हुए किलात और आकुलि नामक दो असुर जो बहुत दिनों से मद्य और मांस के अभाव से बुभुक्षित हो रहे थे, वहाँ आये और वे मनु के यज्ञ के पुरोहित बन गये। उस यज्ञ में सैकड़ों पशुओं का बलिदान कर दिया गया। पशुओं की आर्त पुकार, रुधिर को बहती हुई नदी और हड्डियों के ढेर से वह स्थान बड़ा डरावना हो गया था।

श्रद्धा को मनु की इस प्रवृत्ति से बड़ी घृणा हुई। वह यज्ञ में सम्मिलित नहीं हुई। वह अपनी गुफा में जाकर पड़ गई। फिर भी जीवन की तीव्र वासना उसे उत्तेजित कर रही थी। मनु सोमरस से भरा हुआ पात्र लेकर उसे मनाने को गये। श्रद्धा को उस समय झपकी आ रही थी मनु ने अपने कोमल स्पर्श से उसे जगा दिया।

श्रद्धा ने जागकर मनु के द्वारा यज्ञ में की हुई पशु बलि की बड़ी निन्दा की। उसने कहा संसार के प्राणियों का अपने प्राणों पर क्या कुछ भी अधिकार नहीं है? क्या तुम्हारी नवीन मानवता का यही रूप होगा।

मनु ने कहा—"श्रद्धा! मगर क्या अपने जीवन के आनन्द का कुछ भी मूल्य नहीं है? इस दो दिन के जीवन में इन्द्रिय सुख ही वास्तविक सुख है। जीवन की समाप्ति के साथ ही सब कुछ समाप्त हो जाता है।

श्रद्धा ने कहा—मनुष्य की यह स्वार्थ वृत्ति तो विनाश कारक है। वास्तविक मानवता तो इसमें है कि हम स्वयं सुखी रहें और सारे प्राणिजगत् के सुख की अभिलाषा करें।

अस्तु! मनु ने किसी प्रकार समझौता कर श्रद्धा को मनाया और अपने हाथ से सोमरस का पात्र श्रद्धा के ओठों पर लगाया और फिर दोनों ही मदोन्मत्त हो वासना के नशे में खो गये।

ईर्ष्या—श्रद्धा के साथ सुख का उपभोग करते हुए मनु को धीरे-धीरे विरक्ति होने लगी। इस विरक्ति को दूर करने के लिए वे शिकार खेलने में लीन हो गये। इधर श्रद्धा को गर्भ रह गया। उस गर्भ की सुरक्षा के निमित्त वह तकली कातकर अपना समय व्यतीत करने लगी। एक दिन जब मनु शिकार से लौटकर आये तो श्रद्धा ने मनु का हाथ पकड़ कर कहा—'आओ, मैं तुम्हें वह नयी दुनिया

दिखाऊँ जो मैंने बसाई है । मनु को लेकर वह गुफा में गई और उसने आने वाले बालक के लिए बनाया हुआ कुंज कुटीर और बेंत का बनाया हुआ झूला दिखलाया और कहा—"यह घोंसला तो बनकर तैयार हो गया मगर इसमें चहचहाने वाला पंछी अभी तक नहीं आया । उसीके इन्तजार में मैं तकली कातकर अपना समय काटती हूँ । मेरा वह आगन्तुक जब आवेगा तब उसके मधुर कलरव से यह कुटिया संगीतमय हो जावेगी ।"

यह सुनते ही मनु का हृदय ईर्ष्या से ओतप्रोत हो गया उसने कहा हे श्रद्धा ! तुम तो अपने बच्चे को लेकर अपने जीवन को भरा-पूरा कर लेगी और मैं मृगतृष्णा की तरह शान्ति की खोज में भटकता रहूँगा ।

"तुम फूल उठोगी लतिकासी, कंपित कर सुख, सौरभ, तरंग,
मैं सुरभि खोजता भटकूँगा, वन-वन बन कस्तूरी कुरंग ।

यह मुझ से नहीं होगा । तुम अपने सुख में सुखी रहो, मुझे अपने दुःख के साथ अकेला छोड़ दो । यह कहकर मनु श्रद्धा को वहाँ अकेली छोड़कर, किसी अज्ञात देश की यात्रा पर निकल गये ।

इसी समय कामदेव का भीषण अभिशाप उन्हें आकाशवाणी की तरह सुनाई पड़ा । "अरे मनु ! श्रद्धा के महत्व को न समझने के कारण तुमने उसे तिलांजलि दे दी । तुमने जीवन के वास्तविक महत्व को नहीं समझा । इन्द्रियों का भोग विलास ही तुम्हारे लिए परम सत्य हो गया । तुम्हारी यह विपरीत बुद्धि ही तुम्हें पथभ्रष्ट कर रही है । तुम्हारी यह नवीन सृष्टि कभी शान्ति प्राप्त नहीं करेगी और नित्य नयी समस्याएँ तुम्हारी सृष्टि को उलझाती रहेंगी ।

श्रद्धा से वंचित मनु के हृदय को तब एकाएक सरस्वती नदी के किनारे पर बुद्धिरूपिणी "इडा" के दर्शन होते हैं ।

"इडा" साक्षात् बुद्धि का अवतार थी । वह अपने एक हाथ में कर्म और दूसरे हाथ में विज्ञान को सम्हाले हुए थी । "इडा" ने जब मनु का परिचय जान लिया तो उसने कहा कि "मैं तुम्हारा स्वागत करती हूँ । मुझे ऐसे ही कर्मशील पुरुष की आवश्यकता थी । देखो मेरा यह सारस्वत प्रदेश भूकम्प के धक्के से नष्ट भ्रष्ट हो गया है । इसका फिर से निर्माण करना है । क्या तुम इस कार्य में मेरा सहयोग कर सकते हो ?"

मनु ने कहा—मैं तैयार हूँ । मगर मेरी बुद्धि कुछ काम नहीं कर रही है । भाग्य की ठोकरे खाते खाते मैं मैं बहुत निराश हो गया हूँ । इसलिए तुम मेरा पथ-प्रदर्शन करो ।

इडा ने कहा—मनुष्य को अपनी शक्ति के अतिरिक्त किसी दूसरे पर निर्भर न रहना चाहिए । जो मनुष्य अपनी बुद्धि पर भरोसा रखकर कर्मक्षेत्र में चल पड़ता है उसे रोकने की ताकत किसी में नहीं है । यह प्रकृति अनेक विविधताओं की समष्टि है । पर उनका आविष्कार करने वाला कोई होना चाहिये । अपने भाग्य के निर्माता और निर्णायक तुम अपने आप हो । विज्ञान के बल पर तुम जड़ में भी जीवन फूक सकते हो ।

इडा से प्रेरणा पाकर मनु उत्साहित हो गये और उस उजड़े हुए देश का पुनर्निर्माण करने में लग गये ।

स्वप्न—इधर मनु इडा से प्रेरणा पाकर पूरे उत्साह के साथ सारस्वत नगर का निर्माण करने में लगे थे । उधर श्रद्धा उस गुफा में अत्यन्त उदासीन अवस्था में अपना जीवन व्यतीत कर रही थी । एक दिन उसने एक अद्भुत स्वप्न देखा । उस स्वप्न में उसने देखा कि—"मनु ने इडा के निर्देश पर चलकर उजड़े हुए नगर को फिर से बड़ा सुन्दर बना दिया है । विज्ञान के बल से उन्होंने देश और काल पर विजय पाली है । और ऊँचे भवन में मनु इडा के साथ आसव ढाल रहे हैं—

इडा ढालती थी वह आसव जिससे बुझती प्यास नहीं ।
तृषित कंठ को पीपीकर भी, जिस पर है विश्वास नहीं ।।

इसके बाद श्रद्धा ने देखा कि मनु मदिरा के नशे में मत्त होकर "इडा" के प्रति वासना प्रकट करते हैं । इडा उनके प्रेम को ठुकरा देती है और मनु उसको जबर्दस्ती आलिंगन पाश में बाँध लेते हैं । वह भय से चिल्ला उठती है और सब दूर भयंङ्कर अशान्ति का कोलाहल मच जाता है ।"

श्रद्धा इस अद्भुत स्वप्न को देखकर काँप उठती है । उधर सारस्वत नगरी के निर्माण के पश्चात् मनु को बड़ा अहङ्कार हो जाता है और वे स्वेच्छता चार पूर्ण शासन में

प्रवृत्त हो जाते हैं । इससे उनकी प्रजा एक दम विद्रोह कर देती है । मनु अपनी आसुरी शक्ति से प्रजा के विद्रोह को निर्दयता पूर्वक दबा देते हैं मगर अन्त में महान् शक्ति भगवान शङ्कर का बाण आकर मनु को घायल कर देता है ।

निर्वेद—विद्रोह समाप्त हो जाता है । मनु के घायल शरीर के पास अत्यन्त उदास भाव से इडा बैठी हुई है । इसी समय एक बालक का हाथ पकड़े हुए श्रद्धा वहाँ प्रवेश करती है । मनुको घायल अवस्था में देखकर वह उनके शरीर पर हाथ का स्पर्श करती है । मनु की मूर्छा टूटती है और अपने पास श्रद्धा को देखकर उनकी आँखों से आँसू बहने लगते हैं । उसी समय श्रद्धा पुत्र से पिता का परिचय करवाती है । पास ही खड़ी "इडा" को देखकर मनु का मन घृणा से भर जाता है । और वे श्रद्धा से कहते हैं—"हे श्रद्धा ! मुझे तू यहां से दूर बहुत दूर कहीं लेकर चल । वास्तव में बात यह है कि मेरे हृदय के क्षुद्रपात्र में तुम्हारा यह स्नेह दान समा नहीं सका आज मैं अपने को सर्वथा निराधार और निस्सहाय पाता हूँ ।"

इसके बाद जब सब लोग सो जाते हैं तब मनु सबको छोड़कर किसी अज्ञात दिशा को निकल पड़ते हैं । सवेरे उनको वहाँ न देखकर श्रद्धा और उसका पुत्र उनकी खोज में निकल पड़ते हैं । इडा भी पीछे पीछे चलती है । श्रद्धा ने देखा कि इडा किसी विशेष उद्देश को लेकर उसके पीछे पीछे आ रही है । तब श्रद्धा ने अपने बालक को सम्बोधित कर कहा रे वत्स ! तुम इडा के साथ रहकर [illegible] नीतिपूर्वक राष्ट्र का संचालन करो । "इडा" विज्ञानमयी है, तुम श्रद्धामय हो, "इडा" विज्ञान है, तुम ज्ञान हो । तुम दोनों एक दूसरे के पूरक हो इसलिए निर्भय होकर कर्म करो ।

सरस्वती नदी के तट पर श्रद्धा का मनु से पुनर्मिलन होता है । मनु कहते हैं–श्रद्धा तुम अपने सर्वस्व उस बालक को इडा के हाथ लुटाकर भी किस प्रकार धीरज रक्खे हुए हो

श्रद्धा ने कहा - हे मनु ! मनुष्य देकर कभी रंक नहीं होता । मुक्त हस्त से देना और मुक्त हस्त से ग्रहण करना यही तो जीवन है । इतना कह कर श्रद्धा ने मनु को एक अद्भुत दृश्य दिखलाया ।

सामने अन्तरिक्ष में एक महान् प्रकाश फैल गया और उस प्रकाश के बीच ताण्डव नृत्य करते हुए नटराज शिव की कल्याण मूर्ति दिखलाई पड़ी । उनके दोनों चरणों की गतिविधि में सृजन और संहार की शक्ति भरी हुई थी और समस्त पाप-पुण्य उस शक्ति पुंज के दिव्य प्रकाश में भस्मीभूत हो रहे थे ।

इसके बाद श्रद्धा और मनु उन नटराज के समीप पहुँचने को चल पड़े । वहाँ पहुँच कर श्रद्धा ने मनु को इच्छा, ज्ञान और कर्म के प्रतीक तीन प्रकाशमान बिन्दुओं के दर्शन कराये ।

रहस्य—श्रद्धा ने कहा लाल रंग का मध्य बिन्दु मनुष्य की इच्छा का प्रतीक है । शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध ये पाँचो चीजें इस इच्छा को ही मध्य बिन्दु बनाकर घूमती रहती हैं । इसीसे मानवीय मन में वासना और लालसा की लहरें उठती रहती है समस्त मनोभावों का चक्र इस इच्छा के द्वारा ही चलता है ।

दूसरा जो श्याम रंग का बिन्दु है वह मनुष्य का कर्म है । इस क्षेत्र में मनुष्य का जीवन मशीन के पुरजे की तरह घूमता रहता है । इच्छा लोक के वे आनन्दपूर्ण और कल्याणकर नियम यहाँ अभिशाप की तरह सिद्ध होते हैं । इस क्षेत्र में संघर्ष का निरन्तर कोलाहल मनुष्य को चैन नहीं लेने देता । बड़े-बड़े आयोजनों के उत्तरदायित्व का अहंकार अपने कन्धे पर ढोता हुआ मनुष्य शान्ति प्राप्त नहीं कर पाता ।

श्रद्धा ने कहा—हे मनु ! वह अत्यन्त श्वेत और उज्ज्वल जो तीसरा बिन्दु है वह ज्ञानलोक है । यहाँ के प्राणी सृष्टि के रहस्य और किसी अलौकिक सत्ता का दर्शन करने में दत्तचित हैं । त्याग और तपस्या ही इनका परम ऐश्वर्य्य है । पर ऊपर से शांत दिखाई पड़ने पर भी इनका मन विकारों की छाह में शंकाकुल बना रहता है । सब कुछ प्राप्त होने पर भी जीवन के रस से ये अछूते हैं ।

संसार में इच्छा, कर्म और ज्ञान का सामञ्जस्य नहीं होता यही जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना है । इतना कह-कर श्रद्धा मुसकराई । उसकी मुसकराहट में वे तीनों लोक

घुल मिलकर एक हो गये। और उसी समय शंकर के डमरू का नाद उन्हें सुनाई पड़ा।

आनन्द—मनु को जिसकी खोज थी वह उन्हें मिल गया। इसी समय इडा और श्रद्धा का पुत्र मानव भी उन्हें खोजते हुए वहाँ आ निकले। वहाँ पहुँचने पर उन्होंने देखा कि मनु समाधि में लीन हैं और पास ही फूलों की अंजलि लिए श्रद्धा खड़ी है। मानव ने देखते ही श्रद्धा की गोद भर दी। इडा उसके चरणों पर झुक गई और धर्म इडा के पीछे सिर झुकाए खड़ा हो गया।

मनु ने मुसकराकर कहा—

मनु ने कुछ मुसक्याकर कैलास ओर दिखाया।
बोले देखो यहाँ पर कोई नहीं पराया॥
हम अन्य न और कुटुम्बी हम केवल एक हमी है।
तुम सब मेरे अवयव हो जिसमें कुछ नहीं कमी है॥
शापित न यहाँ है कोई तापित पापी न यहाँ है।
जीवन वसुधा समतल है समरस है जो कि जहाँ है॥

× × ×

समरस थे जड़ या चेतन, सुन्दर साकार बना था।
चेतनता एक बिलसत, आनन्द अखण्ड घना था॥

कान्तार-साहित्य (Camtares)

स्पेनी भाषा का दसवीं सदी का साहित्य जिसे कान्तार साहित्य बोला जाता है।

इस साहित्य का प्रारम्भ स्पेनियों की विजय से होता है। इस साहित्य में युद्ध, हत्या, रक्तपात, और प्रतिहिंसा की घटनाओं का ही विशेष समावेश है। इस प्रकार के वीर साहित्य का सुघड़ और क्रमबद्ध रूप "इल-कान्तार-द-मिओकिद" नामक एपिक में मिलता है। इसकी रचना सन् ११४० में हुई और यूरोप के अन्य देशों में यह "किद" के नाम से प्रसिद्ध है।

कामो-नो-चौयेई

जापान के मध्य युग का एक प्रसिद्ध कवि, जिसका जन्म सन् ११५४ में और मृत्यु सन् १२१६ में हुई।

कामाकुरा युग का यह एक प्रसिद्ध कवि था। इसकी रचनाओं में "होजोकी" (दस वर्ग फुट की एक झोपड़ी) "मुक्याशो" और शीकी की मोनोगातारी (चार ऋतुओं की कहानी) विशेष प्रसिद्ध है। यह करुणा रस और नैराश्य जीवन के अंकन में सफल कवि था।

कायस्थ

भारत वर्ष की एक सुप्रसिद्ध जाति, जो राजकीय क्षेत्र में लिखने पढ़ने से सम्बन्ध रखने वाले कार्यों में नीचे से लेकर ऊपर तक के सभी क्षेत्रों में, जैसे पटवारी से लेकर सेक्रेटरी तक के पदों पर काम करती रही है।

कायस्थ जाति की उत्पत्ति बहुत प्राचीन काल से मानी जाती है और इस जाति के मूल पुरुष चित्रगुप्त माने जाते हैं। भविष्य पुराण के अनुसार इनका विवाह धर्म शर्मा नामक ब्राह्मण की पुत्री इरावती से हुआ था

कायस्थ शब्द का अर्थ लेखक या राज्य लेखक होता है। विष्णु स्मृति और ब्रहद् पाराशर स्मृति में राजसभा के लेखक को ही कायस्थ कहा गया है। शुक्र नीति से भी यह मालूम होता है कि हिन्दू राजाओं के समय में कायस्थ ही सेना विभाग का हिसाब रखने, कर वसूल करनें, और न्यायलय के कागजों को लिखने के लिए लेखक के रूप में रक्खे जाते थे। इसके अतिरिक्त कई स्थानों पर संधिविग्रहिक का काम भी कायस्थ लोगों के जिम्मे रहता था।

इसीसे राय बहादुर गौरी शंकर हीराचन्द्र ओझा जैसे कुछ प्रतिष्ठित इतिहासकारों का मत है कि "बारहवीं शताब्दी तक कायस्थ शब्द का प्रयोग किसी जाति विशेष के लिए नहीं, बल्कि राजकर्मचारियों और अहलकारों के अर्थ में लिया जाता था। ब्राह्मण, क्षत्रिय वगैरह जो लोग लेखक या अहलकारी का काम करते थे वे कायस्थ कहलाते थे। पहले कायस्थों की कोई अलग जाति नहीं थी। कायस्थ अहलकार का ही पर्याय शब्द था, जैसा कि आठवीं सदी के कोटा के के पास कणसुवा नामक एक ग्राम के शिला लेख से पाया जाता है"

मगर जब हम सन् ११५० में लिखे हुए कश्मीरी कवि कल्हण के प्राचीन इतिहास ग्रन्थ राज तरंगिणी को देखते हैं तो उसमें एक जाति के रूप में कायस्थ का स्पष्ट उल्लेख देखने को मिलता है। कर्कोटक नामक जिस राजवंश ने

करीब २६० वर्षों तक कश्मीर में वैभवपूर्ण राज्य किया और जिसमें ललितादित्य के समान परम प्रतापी राजा हुआ था वह वंश कायस्थ जाति की ही एक शाखा था। इसी प्रकार कायस्थों से रुष्ट होकर कश्मीर के राजा उच्चल ने कायस्थों को नष्ट करने और उनको अपमानित करने का जो भारी अभियान किया और इस सम्बन्ध में स्वयं कल्हण कवि ने कायस्थों के सम्बन्ध में अपने अभिमत प्रकट किये हैं उससे स्पष्ट मालूम होता है कि उस समय कायस्थ लोग कश्मीर में एक सबल जाति के रूप में विद्यमान थे और उनकी ज्यादतियों से तङ्ग आकर ही राजा प्रजा उनके विरुद्ध हो गये थे।

इसके अतिरिक्त यह भी मालूम होता है कि उस समय कायस्थों में गौत्रों की स्थापना भी हो चुकी थी। खासकर श्री वास्तव गोत्र के सम्बन्ध में कई उल्लेख पाये जाते हैं। अजयगढ़ दुर्ग के राजा भोजवर्मा के समय की बारहवीं सदी की दो शिलालिपियाँ मिली हैं। जिनमें श्रीवास्तव वंश का परिचय दिया हुआ है। श्री वास्तव कायस्थों के सिवा माथुर, भट नागर, शकसेन, निगम, गौड़ इत्यादि विभिन्न गौत्रों के कायस्थ चौदहवीं सदी तक ऊँचे ऊँचे राजपदों पर रहे थे। इण्डियन एण्टिक्वायरी तथा इतिहास वेत्ता कनिंघम, फ्लीट, इत्यादि के द्वारा संग्रहीत शिलालेखों में माथुर, सक्सेना निगम इत्यादि राज्याधिकारियों के उल्लेख आये हैं।

फिर यदि बारहवीं सदी तक कायस्थ जाति के रूप में अस्तित्व में नहीं आयी थी तो फिर इसका कौन से समय में जाति के रूप में अस्तित्व आया, कौन उसका संस्थापक था और किस प्रकार इन भिन्न २ गौत्रों का निर्माण हुआ इसका कोई प्रमाण भूत उत्तर इतिहासकारों के पास नहीं है।

इससे यह मानना ही युक्ति संगत मालूम होता है कि बारहवीं सदी के पहले भी जातिरूप में कायस्थ जाति का अस्तित्व था। इनके गोत्रों का निर्माण हो चुका था। भारत वर्ष के एक बहुत बड़े विस्तार में इनका विस्तार हो चुका था। जिनमें कश्मीर, पंजाब, उत्तर प्रदेश और बंगाल में इनका विस्तार अधिक हुआ। बंगाल और उत्तर प्रदेश के कायस्थों में कुछ मौलिक भेद भी हो गये।

बंगाल के कायस्थ

बंगाल के कायस्थ यज्ञोपवीत धारण नहीं करते। ऐसा कहा जाता है कि पाल राजवंश के शासन काल में बंगाल का राजवल्लभ नामक कायस्थ वैदिक आचार छोड़कर बौद्ध तान्त्रिक हो गया था तभी से वहाँ की कायस्थ जाति ने यज्ञोपवीत संस्कार छोड़ दिया था। इसी से बंगाली समाज के कई पण्डितों ने बंगाली कायस्थों को शूद्र कहकर घोषित किया था।

बंगाल के कायस्थों में १५ वीं शताब्दी में श्री शंकर देव" नामक एक प्रसिद्ध महात्मा हुए। आसाम में बहुत से लोग इनके अनुयायी हो गये थे। इनके प्रधान शिष्य माधवदेवने 'महा पुरुषीय' नामक एक सम्प्रदाय की स्थापना की थी।

बंगाली कायस्थों में कई छोटे-छोटे राजवंश भी थे। बंगाल के कायस्थ गौत्रों में 'सिंह' 'दत्त' "घोष" 'दास' मित्र, वसु इत्यादि गौत्र प्रसिद्ध है।

उत्तर प्रदेश के कायस्थ

उत्तर प्रदेश के कायस्थ भी अपने को चित्रगुप्त के वंशज बतलाते हैं। इन लोगों की परम्परा के अनुसार चित्रगुप्त को उनकी इरावती और सुदाक्षिणा नामक पत्नियों से कुल बारह पुत्र हुए। इरावती के चारु, सुचारु, चित्राश्र, मतिभान, चित्रचारु, अरुण और अतीन्द्रिय नामक और सुदक्षिणाके भानु, विभानु, विश्वभानु और वीर्य्यभानु नामक चार पुत्र हुए।

इन बारह पुत्रों में से चारु मथुरा गये और इनके वंशज 'माथुर' नाम से प्रसिद्ध हुए। सुचारु गौड़ में जाकर रहने लगे और उनके वंशज 'गौड़' कहलाये। चित्राश्र भट्टनदी के किनारे पर जाकर रहे और उनके वंशज भटनागर कहलाये। भानु 'श्रीवास' नामक स्थान में जाकर रहे और उनके वंशज श्रीवास्तव के नाम से प्रसिद्ध हुए। इसी प्रकार हिमवान् से अम्बष्ठ, मतिमान से सखिसेन, और विभानु से सूर्य्यध्वज नामक शाखाएं निकलीं।

आजकल उत्तर प्रदेश के कायस्थ प्रधानतः १२ श्रेणियों में विभक्त हैं (१) श्रीवास्तव (२) भटनागर (३)

शकसेन (४) अम्बष्ठ (५) अष्ठान (६) वाल्मीक (७) माथुर, (८) सूर्य्यध्वज (९) कुलश्रेष्ठ (१०) करण (११) गौड़ और (१२) निगम। इनके अतिरिक्त उन्नाव जिले में एक उनाई शाखा भी देखी जाती है।

उत्तर प्रदेश के कायस्थों में अकबर के राजस्व सचिव टोडरमल, महाराज नवलराय, पटना के शासनकर्त्ता राजा रामनारायण इत्यादि के नाम बहुत प्रसिद्ध हैं।

बिहार

उत्तरप्रदेश के कायस्थों की तरह बिहार में भी कायस्थों की बारह श्रेणियां हैं। बिहारी कायस्थ यज्ञोपवीत धारण करते हैं। बिहारी कायस्थों की बारह शाखाओं के नाम एक दो नामों को छोड़कर उत्तर प्रदेश के नामों ही की तरह है और इनके रीति रिवाज भी प्रायः समान ही हैं। हां देश भेद से उनमें कुछ अन्तर जरूर पड़ गया है।

इसी प्रकार मिथिला, उड़ीसा, राजपूताना, मध्यप्रदेश, मद्रास, गुजरात इत्यादि प्रान्तों में भी कायस्थ जाति की कई श्रेणियां पाई जाती हैं। दक्षिण में पाई जाने वाली 'प्रभु' जाति भी कायस्थों की एक शाखा है। यह प्रभु जाति चार श्रेणियों में विभाजित है। चान्द्रसेनी प्रभु, ध्रुव प्रभु, दमन प्रभु और ब्रह्म क्षत्रिय।

चान्द्र सेनी प्रभु कायस्थ अपने आपको अयोध्या के क्षत्रिय राजा चन्द्रसेन के वंशज बतलाते हैं। इनके सम्बन्ध में स्कन्द पुराण के रेणुका महात्म्य में लिखा है कि 'परशुराम ने क्षत्रिय संहार की अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए सहस्त्रार्जुन और चन्द्रसेन को मारडाला। परन्तु चन्द्रसेन की गर्भवती रानी भागकर दालभ्य ऋषि के आश्रम में चली गई। परशुराम उसकी खोज में वहां गये। तब दालभ्य ऋषि ने उस रानी को उनके समक्ष उपस्थित कर दिया और उसके गर्भस्थ पुत्र की प्राण भिक्षा मांगली। परशुराम ने इस शर्त्त पर प्राण भिक्षा दी कि उसके वंशज आगे से तलवार ग्रहण न कर लेखनी ग्रहण करेंगे और सैनिक के स्थान पर लेखक के कार्य्य से जीविका उपार्जन करेंगे। उसी रानी को 'सोमराज' नामक पुत्रकी प्राप्ति हुई और इसी सोमराज के वंशज 'प्रभु-कायस्थ' नाम से प्रसिद्ध हुए।

कॉरडोबा

प्राचीन स्पेन का एक सुप्रसिद्ध नगर जिसका वैभव ८ वीं शताब्दी से १३ वीं शताब्दी के मध्य तक 'मूर' लोगों के शासन में अत्यन्त उरूज पर रहा।

सन् ७११ ई० में अरब-सेनापति 'तरीक' समुद्र पारकर के अफ्रीका से स्पेन में पहुँचा और 'जिब्राल्टर' पर जाकर उतरा। उसी तरीक के नाम पर इस स्थान का नाम 'जबुरुलत्तरीक' या जिब्राल्टर पड़ा।

अपनी धुंआधार शक्ति से दो साल के भीतर ही अरब लोगों ने सारा स्पेन जीत लिया और कुछ दिनों के बाद 'पुर्तगाल' को भी अपने राज्य में मिला लिया।

इस प्रकार स्पेन उस बड़े इस्लामी साम्राज्य का अंग बन गया जो अफ्रिका के एक सिरे से लगाकर ठेठ मंगोलिया की सरहद तक फैला हुआ था।

मगर सन् ७४९ ई० में अरबस्तान के अन्तर्गत उमैय्या खलीफों के खिलाफ अब्बासी-वंश ने विद्रोह करके, उमैय्या वंश को नष्ट कर अब्बासी-खिलाफत की स्थापना कर दी। उस समय स्पेन का अरबी गवर्नर उमैय्या वंश का था। उसने अब्बासी-खिलाफत को मानने से साफ इनकार कर दिया।

इस तरह स्पेन का सम्बन्ध अरब साम्राज्य से बिल्कुल टूट गया और स्पेन के अरब लोग स्वतंत्र रूप से वहाँ का शासन करने लगे। ये लोग वहाँ पर मूर जाति के नाम से मशहूर थे। इनकी राजधानी 'कुर्तुबा' या कारडोबा थी। इस स्थान पर रहकर इन लोगों ने ८०० वर्षों तक स्पेन के एक बहुत बड़े हिस्से पर अपना प्रभुत्व रखा। इन लोगों के शासन-काल में कारडोबा का वैभव अपनी चरम सीमा पर पहुँचा हुआ था। उस समय कहा जाता है कि इस नगर में ६० हजार मकान और कोठियाँ थीं, २ लाख छोटे मकान थे, ८० हजार दुकानें थीं। ३७८० मस्जिदें थीं और ७०० सार्वजनिक स्नानागार थे, सम्भव है ये आँकड़े अतिरञ्जित हों, लेकिन इन से शहर की विशालता का अन्दाज तो लगायां ही जा सकता है। वहाँ बहुत से पुस्तकालय भी थे।

जिनमें अमीर का शाही पुस्तकालय सब से बड़ा था। इसमें ४ लाख किताबें थीं। कॉरडोवा का विश्व-विद्यालय सारे योरप में और पश्चिमी एशिया में मशहूर था। इस विश्व-विद्यालय में दूर दूर से विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने आते थे। अरबी-दर्शन का असर पैरिस, ऑक्सफर्ड आदि यूरोप के बड़े विश्व-विद्यालयों और इटली के उत्तरी विश्वविद्यालयों तक फैल गया था। ८ वीं सदी से लेकर ११ वीं शताब्दी के शुरू तक कारडोवा का साम्राज्य लगभग सारे स्पेन पर फैला हुआ था। दक्षिणी फ्राँस का भी कुछ हिस्सा इसमें शामिल था। मगर उसके बाद धीरे-धीरे इस साम्राज्य का पतन होना प्रारंभ हुआ और अन्त में सन् १२३६ ई० में 'कैस्टाइल' के ईसाई बादशाह ने कॉरडोवा को पूरी तरह फतह कर लिया।

कॉरडोवा के इस वैभव के सम्बन्ध में एक इतिहास लेखक ने लिखा है कि—"मूर लोगों ने कॉरडोवा के उस अद्भुत साम्राज्य को संगठित किया था जो मध्यकाल का एक चमत्कार था। जब सारा यूरप जंगलीपन, अज्ञान और लड़ाई झगड़ों में डूबा हुआ था, तब अकेले इसी राज्य ने विद्या और सभ्यता की मशाल से पश्चिमी दुनियाँ को रोशन और चमकदार बनाये रखा।

कान्स्टेण्टाईन

प्राचीन रोम साम्राज्य के पूर्वी भाग का प्रतापी सम्राट् जिसका शासन काल सन् ३०६ ई० में प्रारम्भ हुआ।

इस समय रोमन साम्राव्य अस्त व्यस्त हो रहा था। तब कान्स्टेण्टाइन ने जनता की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया। उस समय तक ईसाई मठ अच्छी शक्ति प्राप्त कर चुके थे। कान्स्टेण्टाइन उनके सहयोग से साम्राज्य में शान्ति स्थापन करने में सफल हुआ। इसके समय में राजधर्म हो जाने के कारण ईसाई धर्म ने भी बहुत उन्नति की।

कान्स्टेण्टाइन ने साम्राज्य के पूर्वी प्रदेश में बाइजोण्टियम नामक नगर को अपनी राजधानी बनाया। बाद में इसी सम्राट् के नाम पर यह नगर कान्स्टेण्टिनोपल के नाम से प्रसिद्ध हुआ और रोम साम्राज्य के दो भागों में विभाजित होने पर यह नगर ही पूर्वी रोम साम्राज्य की राजधानी बना।

कार्डिनल

रोम साम्राज्य में ईसाई पादरियों के प्रतिनिधि जो कार्डिनल के नाम से प्रसिद्ध थे।

साधारण जनों के अधिकार से गिरजों के उद्धार का कार्य द्वितीय निकोलस ने किया। सन् १०५६ में उसने एक घोषणा निकाली, जिसके द्वारा पोप के निर्वाचन का अधिकार बादशाह तथा रोम की प्रजा दोनों के हाथ से छीनकर सदैव के लिए कार्डिनलों के हाथ में दे दिया गया। रोमन प्रजा में कार्डिनलों की संस्था अभीतक विद्यमान है। जो पोप का चुनाव करती है।

कार्थेज

उत्तरी अफ्रीका के समुद्र तट पर प्राचीन काल का एक समृद्ध और शक्तिशाली नगर और राज्य जिसकी स्थापना ई० पू० ८१४ में हुई थी।

ईसा से पूर्व नौंवी शताब्दी में पैलेस्टाइन के उत्तर में भूमध्य सागर के तट पर फिनिशियन जाति के लोग बसते थे। टायर और सीडोन इनके प्रमुख नगर थे। समुद्र तट पर बसे हुए होने के कारण फिनिशियन लोग जहाज बनाने और समुद्री व्यापार करने में बड़े निपुण थे।

ई० पू० ८१४ में टायर के कुछ फिनिशियन व्यापारी उत्तरी अफ्रीका के समुद्री तट पर कार्थेज नामक बस्ती बसा कर वहीं से अपना व्यापार करने लगे। क्योंकि इनके निजी प्रदेश पर पड़ौसी राज्यों के निरन्तर हमले होते रहने के कारण ये लोग बड़े परेशान रहते थे।

धीरे-धीरे टॉयर और सीडोन के और भी बहुत से व्यापारी कार्थेज में आकर बस गये। जिनके कारण कार्थेज भूमध्य सागर में व्यापार का बड़ा महत्वपूर्ण केन्द्र होगया और वह एक समृद्ध और शक्तिशाली नगर बन गया।

अब कार्थेज के निवासियों ने तत्कालीन रोम साम्राज्य की विस्तार नीति को अपना कर अफ्रिका के समुद्र तट से स्पेन के समुद्र तट के साथ भूमध्यसागर के विविध द्वीपों को अपनी जल शक्ति के बल से जीतकर अपने साम्राज्य का निर्माण करना प्रारम्भ किया। कार्सिका और सर्डीनिया द्वीपों पर भी उन्होंने अपना अधिकार लिया। सिसली द्वीप का भी बहुत बड़ा हिस्सा जीतकर इन्होंने अपने साम्राज्य में मिला लिया।

दूसरी ओर रोम भी इटली में अपना साम्राज्य स्थापित कर चुका था और वह चाहता था कि सिसली को भी जीतकर अपने साम्राज्य में मिला ले।

ऐसी स्थिति में रोम का कार्थेज के साथ संघर्ष प्रारम्भ होना स्वाभाविक था और इन दोनों में संघर्ष प्रारम्भ हो गया। रोम और कार्थेज के ये संघर्ष इतिहास में "प्यूनिक युद्ध" के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये युद्ध ई० पू० २४१ में प्रारम्भ हुए। रोम की सेना ने इसमें अद्भुत वीरता प्रदर्शित की। अपनी जल शक्ति का विकास करके उसने शीघ्र ही सिसली, सार्डिनिया और कार्सिका को जीत लिया।

मगर कार्थेज इससे निराश नहीं हुआ। हैनिवाल नामक एक वीर सेनापति के नेतृत्व में उसने स्थल मार्ग से इटाली पर आक्रमण किया। उत्तरी अफ्रीका, स्पेन और फ्रांस होती हुई उसकी सेना ने इटली में प्रवेश किया और उत्तरी इटली को विजय करती हुई वह रोम के समीप जा पहुँची। मगर अन्त में रोम की सेनाओं के सामने हैनीवाल को परास्त होना पड़ा और ई० पू० १४६ में रोम की सेनाओं ने कार्थेज को बुरी तरह ध्वस्त कर दिया। इस प्रकार सौ वरस के प्रसिद्ध प्यूनिक युद्धों ने कार्थेज की शक्ति को पूरी तरह बरबाद कर दिया और यह सारा साम्राज्य रोम साम्राज्म में मिला लिया गया।

क्राफर्डलौंग

ऐलोपैथी चिकित्सा में क्लोरोफार्म के आविष्कारक जिनका जन्म उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में जर्जिया में हुआ।

डॉक्टर क्रेफर्ड लौंग ऐलोपैथिक चिकित्सा क्षेत्र में प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने मूर्च्छा कारक द्रव पदार्थ या क्लोरोफार्म के द्वारा रोगी को चेतनाहीन कर उसका सफलता पूर्वक ऑपरेशन किया था। यद्यपि इस वस्तु के आविष्कार श्रेय इसके चार वर्ष बाद सन् १८४६ में मैसा चुसटैसा के प्रसिद्ध ऑपरेशनकर्ता डॉ० जे० सी० कोलिन्स और विलियम मार्टिन नामक एक दन्त चिकित्सक को मिला।

मगर इसके चार वर्ष पहले सन् १८४२ में ही डॉ० क्रेफर्ड लौंग एक रोगी पर इसका सफलतापूर्वक प्रयोग कर चुके थे। उनके पास गले के पृष्ठ भाग में हुई दो गठानों वाला एक रोगी आया। डॉ० क्रेफर्ड ने उसे कहा कि वे ऑपरेशन से पूर्व उसे एक तरल पदार्थ सुँघायेंगे और उन्होंने एक तौलिए पर मूर्च्छाकारक ईथर छिड़क कर रोगी को सुँघा दिया और उसका ऑपरेशन सफलता पूर्वक कर दिया।।

यद्यपि उन्होंने इस प्रकार के ऑपरेशन का दावा नहीं किया। पर संयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटेन की चिकित्सा पत्रिकाओं ने चेतना शून्य करके प्रथम ऑपरेशन करने का श्रेय डॉ० क्रेफर्ड लौंग को ही दिया।

कार्ल बर्नहार्ड (Carl Bernhard)

डेनमार्क के साहित्य का एक प्रसिद्ध कहानीकार जिसका जन्म सन् १७९८ में और मृत्यु सन् १८६५ में हुई।

कार्ल बर्नहार्ड डेन साहित्य का प्रसिद्ध कहानी कार था उसकी कृतियाँ डेनमार्क के लोक साहित्य में अपना विशेष स्थान रखती हैं!

कार्नेल पियर

(Pierre Corneille)

सत्रहवीं सदी का एक प्रभाव शाली फ्रेंच नाटककार जो फ्रान्स के प्रतापी सम्राट चौदहवें लुई का समकालीन था। जिसका समय सन् १६१२ से सन् १६८४ तक था।

शुरू शुरू में कार्नेल ने कॉमेडी या सुखान्त नाटक लिख कर अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन प्रारम्भ किया। मगर

बाद में ट्रेजिडी (दुःखान्त) और कॉमेडी मिश्रित रचना लिखकर लोगों को चकित कर दिया। उसने तत्कालीन बहादुर सैनिकों के चरित्र का चित्रण करने में अच्छी सफलता मिली।

कार्नेल ने नाटकीय रंगमंच के लिए कई नाटकों की रचना थी। इनके नाटकों की सफलता देखकर फ्रेञ्च रंगमंच के कवि रिशालू ने इन्हें अपनी 'पालेकार दिनाल थेआट्र' के कवि मण्डल में सम्मिलित करलिया। इनको सबसे पहले दुःखान्त नाटक 'मेदे' ने इनकी प्रसिद्ध को बहुत बढ़ा दिया। इनके दूसरे नाटक ल-सिंड की फ्रेञ्चएकेडेमी ने बड़ी कटु आलोचना की। इस आलोचना के बाद कारनेल विशुद्ध दुःखान्त नाटक लिखने में प्रवृत्त हुए। इन नाटकों में 'होरास' 'सिना' और 'पोलियूट' नामक नाटक बहुत लोक प्रिय हुए।

कारनेल के नाटकों में कल्पना की रंगीनी तथा काव्य-प्रतिभा का अधिक विकास न होकर तर्कवाद का विशेष विकास देखा जाता है। इनकी मृत्यु सन् १६८४ में हुई।

काराम्जिन

(Nikolay mikhailovich Karamzin)

अठारहवीं सदी के पुश्किन युग में रूस का एक प्रसिद्ध इतिहासकार, जिसका जन्म सन् १७६६ में और मृत्यु सन् १८२६ में हुई।

रूस में यह एलेक्ज़ेण्डर प्रथम का युग था। जिसने सिंहासन पर आते ही साहित्य सम्बन्धी सभी प्रतिबन्ध उठा दिये। जिससे साहित्यकारों की प्रतिभा के विकास के लिए मुक्त वातावरण तैयार हो गया। इसी वातावरण में काराम्जिन की प्रतिभा का विकास हुआ। उसने सन् १८०२ में में अपना एक रिव्यू निकालना प्रारम्भ किया। इस रिव्यू में उसने साहित्य और आलोचना को काफी स्थान दिया। उसकी सबसे प्रसिद्ध रचना "रूस का इतिहास" था जो बारह खण्डों में समाप्त हुआ। पहली बार रूसी गद्य में में लिखे गये इस ग्रन्थ को बड़ी सफलता मिली और उसका नाम रूसी गद्य के इतिहास में अमर हो गया।

कार्टर (हावर्ड कार्टर)

इंगलैण्ड का सुप्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता जिसने मिश्र के प्राचीन तूतन खामेन नामक नरेश की समाधि को खोदकर पुरातत्व के क्षेत्र में अमर कीर्ति प्राप्त कर ली।

हावर्ड कार्टर का जन्म सन् १८७३ में और मृत्यु सन् १९३९ में हुई।

सद् १९०७ में कार्टर ने मिस्र में इस समाधि को को ढूँढ़ने का कार्य प्रारम्भ किया। और ४ नवम्बर १९२२ के दिन वे इस समाधि को खोज निकालने में सफल हुए।

यद्यपि गत तीन हजार वर्षों में अनेक खानाबदोश लुटेरों ने मिस्री नरेशों की इन समाधियों को खोद-खोद कर लूट लिया था मगर यह समाधि किसी प्रकार काल के भयङ्कर प्रहारों से बच गई थी।

इस समाधि में सम्राट तूतन खामेन की मोमियायी सोने की पेटिका में रक्खी हुई थी। यह पेटिका लकड़ी की दो सन्दूकों में सुरक्षित थी। ये तीनों पेटियाँ संगमरमर के एक बड़े सन्दूक में बन्द थी। राजा की मोमियायी के गले में सोने का हार और कमर में सोने का कमरबन्द पड़ा हुआ था।

समाधि के अन्दर चार कमरे थे। जिनमें शयनागार की शैय्याएँ, शस्त्रास्त्र तथा राजकीय वैभव की प्रतीक अनेकों प्रकार की विलास सामग्रियाँ बिखरी हुई पाई गई।

इस समाधि के तहखाने की एक दीवार पर एक लेख लिखा हुआ था। जिसका अनुवाद इस प्रकार है। 'फेरो की समाधि, जो कोई इसे छेड़ेगा उसे यमराज अपने पंखों पर बैठाकर ले जावेगा।"

जिस समय कार्टर ने इस समाधिगृह में प्रवेश किया उस समय उसके साथ २० अंग्रेज और थे। उनमें से चार-पाँच व्यक्तियों की इस लेख के अनुसार अकाल मृत्यु हो गई। कार्टर के संरक्षक लार्ड कैनेरवान एक वर्ष बाद ही चल बसे, मगर कार्टर ने उसके बाद भी १७ वर्ष तक जीवन सुख का उपभोग किया।

तूतन खामेन मिस्र के अठारहवें राजवंश के राजा आमेनहोतेप चतुर्थ का दामाद था। आमेन होतेप चतुर्थ ने

अपनी राजधानी थीब्रीज से हटाकर आखेतातीन नामक नवीन बसाये हुए नगर में स्थापित की थी और आतोज के सिवाय सभी देवताओं के मन्दिरों का विध्वंस करा दिया था। जिससे मिश्र की जनता में बड़ा असन्तोष पैदा हो गया था। और राजा को सन्यास लेकर भाग जाना पड़ा था।

तूतनखामेन ने गद्दी पर बैठते ही वापस अपनी राजधानी थीब्रीज में स्थापित की और प्राचीन देवता "अमोन' की पूजा फिर से चालू कर दी। जिससे मिश्र की जनता इससे बड़ी सन्तुष्ट रही। मगर सिर्फ ५ वर्ष राज्य करके ईसा से १३५३ वर्ष पूर्व इस राजा की मृत्यु हो गई। उसी की समाधि की सुरक्षित अवस्था में खोज करके हावर्ड कार्टर ने पुरातत्व क्षेत्र में युगान्तर कर दिया।

कार्लजुंग

मनोविश्लेषण प्रक्रिया का अध्ययन करने वाले एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक। जिनका जन्म सन् १८७५ में कोनस्टेन्स झील के किनारे बसे हुए कैसविल स्थान (स्विटजरलैण्ड) में हुआ।

कार्लजुंग जन्म से ही प्रतिभाशाली थे। केवल दस वर्ष की उम्र में ही वे स्विट्जरलैंड की तीन भाषाओं जर्मनी, फ्रेंच और इटालियन के साथ-साथ लैटिन के भी अच्छे जानकार हो गये।

वेसल, ज्यूरिच तथा पेरिस के विश्वविद्यालयों में अध्ययन करने के बाद कार्लजुंग सिगमण्ड फ्रायड नामक प्रसिद्ध कामशास्त्री तथा मनोवैज्ञानिक के साथ काम करने लगे।

इसके पश्चात् कार्लजुंग मनोरोग चिकित्सा पर पाठ्य पुस्तक लिखने वाले "यूजीन बर्गोल्जी" के जूरिख में स्थित क्लिनिक में काम करने लगे। सन् १९०५ में इस क्लिनिक का संचालन भार कार्लजुंग के कंधों पर आ गया। मनोविज्ञान के विद्यार्थी "स्प्लिट पर्सनेलिटी" या पृथक व्यक्तित्व की जिस मानसिक स्थिति से परिचित हैं उसी "स्किजोफ्रेनिया" के मनोविकार का धैर्य पूर्ण अध्ययन कार्लजुंग इस क्लिनिक में करते रहे।

सन् १९११ तक जुंग फ्रायड के मनोविश्लेषण के विद्यार्थी एवं चिकित्सक रहे। उसके बाद वे अपने नवीन सिद्धान्त "विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान" की चिकित्सा करने लगे।

मनोविश्लेषण विज्ञान का अध्ययन करने के लिए प्रति वर्ष कुछ समय के लिए कार्लजुंग एकान्त स्थल पर चले जाते थे और वहाँ एकाग्र होकर अध्ययन करते थे। उनका विश्वास था कि अध्ययन करने के लिए उन्हें साधना और ध्यान की आवश्यकता है और प्रत्येक अध्ययनशील व्यक्ति को चिन्तन और मनन के लिए साधना और एकान्त की आवश्यकता होती है।

कार्लजुङ्ग के मनोविज्ञान सम्बन्धी सिद्धान्तों की शिक्षा देने के लिए सन् १९४८ में ज्यूरिच के अन्तर्गत कार्लजुङ्ग इन्स्टटीयूट की स्थापना की गई। सन् १९६१ में इस प्रसिद्ध मनोविज्ञान शास्त्री का देहान्त हो गया।

कार्ल ए० गैलेरूप

(Karl A. Gjellerup)

सन् १९१७ में नोबलप्राइज का अर्द्धांश विजेता डेनमार्क का प्रसिद्ध साहित्यकार कार्ल गैलेरूप जिसका जन्म सन् १८५७ में हुआ।

कार्ल गेलेरूप डेनमार्क के एक पादरी के लड़के थे। इस लेखक ने अनेक विषयों पर अपनी रचनाएँ की हैं। अपने नाटकों में उन्होंने ग्रीक सौन्दर्यानुभूति के साथ क्रिश्चियन धर्म के सिद्धान्तों का सामंजस्य किया है। इनकी दो प्रसिद्ध कहानियाँ "दी पिलग्रिम कामनिता" और "मीन" का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद हुआ और ये बड़ी लोकप्रिय हुईं। इनके उपान्यासों में "एन आइडियालिज्म" और "पास्टमान्स" काफी प्रसिद्ध है।

इनकी "पिलग्रिम कामनिता" में भगवान् बुद्ध की एक जीवन घटना का उल्लेख है। "कामनिता" अवन्ती नामक नगरी के एक व्यापारी का लड़का था। बीस वर्ष की अवस्था में वह कौशाम्बी के राजा उदयन के पास राजदूत बनाकर भेजा गया। यहीं से उसकी यात्रा प्रारम्भ होती है। कहानी में यथार्थवाद के साथ गूढ़ रहस्य का सामंजस्य कर दिया गया है।

कार्ल ग्येलेरूप की कला और साहित्य का जर्मनी में भी बड़ा सम्मान था। इसलिए जब उन्हें नोबल प्राइज प्राप्त हुआ तो जर्मनी में बड़ा हर्ष मनाया गया।

कार्ल स्पिटलर

सन् १९१९ में नोबल पुरस्कार विजेता स्विट्जरलैण्ड के प्रसिद्ध साहित्यकार "कार्ल स्पिटलर" जिनका जन्म सन् १८४५ में लीस्टल नामक स्थान में हुआ।

कार्ल स्पिटलेर के पिता पोस्ट ऑफिस के एक अधिकारी थे। स्पिट्लर बचपन से ही कला और संगीत के प्रेमी थे। उनकी पहली रचना "प्रोमेथियस एपीमेथियस" नाम से प्रकाशित हुई और सन् १८८३ में इनकी "एक्ट्रा मण्डना" नामक रचना प्रकाशित हुई। इस रचना में इन्होंने सृष्टि रचना का इतिहास विनोदपूर्ण ढंग से बतलाया है।

इनकी सबसे प्रसिद्ध और प्रौढ़ रचना "ओलम्पियन स्प्रिङ्ग" है। कई समालोचकों ने उनकी इस रचना को आधुनिक युग की दैवी रचना कहकर सम्मानित किया है और इसकी तुलना महाकवि शैली के प्रोमेथियस अनबाउण्ड और कीट्स के "इण्डीमियन" नामक काव्यों से की है।

स्पिट्लर जर्मन कविता के भी अपने देश में प्रतिनिधि माने जाते हैं। उनके गद्य पर गेटे और शिलर का प्रभाव स्पष्ट दिखलाई पड़ता है।

नोबल पुरस्कार मिलने से पूर्व यूरोप के महान् साहित्यकार रोम्यांरोलां ने स्पिट्लर के विषय में लिखते हुए कहा था कि—"मेरे खयाल में स्पिट्लर इस समय यूरोप के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं और यही एक ऐसे कवि हैं जो प्राचीन कीर्ति को पहुँच गये हैं ······आश्चर्य तो यह है कि दुनिया इस चमत्कृत प्रभा के पास से गुजर कर भी उसके प्रकाश से वंचित है।'

सन् १९३१ में इस महाकवि का लूसर्न में देहान्त हो गया।

कार्ल-मार्क्स

कम्यूनिज्म के सिद्धान्तों का वैज्ञानिक ढंग से विवेचना करने वाला महान् विचारक। जिसका जन्म सन् १८१८ में और मृत्यु सन् १८८३ में हुई।

कार्लमार्क्स का जन्म जर्मनी के एक यहूदी परिवार में हुआ था। यह वह समय या जब यूरोप में मशीन युग का आविर्भाव होने से, क्रमागत औद्योगिक क्रान्ति का सूत्रपात हो रहा था। जिसके कारण पूंजी और मजदूरी के बीच का संघर्ष बढ़ता जा रहा था।

कार्लमार्क्स के दिल पर शुरू से ही इस वातावरण का असर पड़ने लगा और पूंजी पतियों के द्वारा होने वाले श्रमजीवियों के शोषण को देखकर उसके हृदय में तीव्र विद्रोह की भावनाएं उत्पन्न होने लगी।

अपने इन उग्र विचारों के कारण उसे जर्मनी छोड़ने को बाध्य होना पड़ा और वह वहां से फ्रान्स चला आया। फ्रान्स में उसकी भेंट "ऐंगल्स" नामक व्यक्ति से हुई, जो आगे चलकर जीवन भर उसका साथी और सहायक रहा।

फ्रान्स से कार्ल-मार्क्स लन्दन आया और यहीं पर उसे अपने सिद्धान्तों के अनुकूल, लेखन और प्रचार करने का वातावरण मिला।

कार्ल-मार्क्स ने इतिहास का एक नवीन दृष्टिकोण से अध्ययन किया। उसने इतिहास की भौतिकवादी और आर्थिक (Meterialistic Interpretation of History) व्याख्या करते हुए बतलाया कि "धर्म, सत्य, नीति, न्याय आदि अमूर्त विचारों की अपेक्षा मनुष्य पर आर्थिक विषयों का अधिक प्रभाव पड़ता है। इतिहास गतिशील है और वह यह सिद्ध करता है कि उत्पादन, विनिमय तथा वितरण की प्रणाली में परिवर्त्तन होने से सामाजिक तथा राज नैतिक अवस्था में परिवर्त्तन होना आवश्यक है। उत्पादन तथा वितरण की पद्धति में परिवर्तन हो जाने से हमारे जीवन-मार्ग और विचारों में भी परिवर्तन होना आवश्यक है।

उसने बतलाया कि "धर्म सामन्ती लोगों के द्वारा पिलाया जाने वाला ऐसा अफीम का नशा है जिसे पिलाकर वे मजदूरों को यह समझाने का प्रयत्न करते हैं कि उनकी

आर्थिक दुरावस्था का कारण उनके पूर्व जन्म के पापों का फल है और उन्हें अपनी इसी हीन अवस्था में सन्तुष्ट रहना चाहिए। उसने बतलाया धर्म सम्बन्धी ये सिद्धान्त पूंजीवाद और साम्राज्यवाद के समर्थक आचार्यों के दिमाग की उपज है। वास्तव में संसार का स्थायित्व आर्थिक सिद्धान्तों पर है और उत्पादन तथा वितरण की की इस शोषण नीति का ही परिणाम था जिसने साम्राज्यवाद के वेष में पूँजीवादी देशों को सम्पूर्ण संसार को विभाजित करने के लिए युद्ध करना अवश्यम्भावी कर दिया।

वर्ग युद्ध का सिद्धांत

Theory of class Struggle

कार्लमार्क्स ने बतलाया कि मानव-जीवन की भौतिक अवस्थाओं के कारण ही सामाजिक परिवर्तन और राजनैतिक क्रान्तियां होती हैं। उसने बतलाया कि हर प्रकार के समाज में दो प्रकार के वर्ग होते हैं। एक शोषक दूसरा शोषित। इन वर्गों के हित परस्पर विरोधी होते हैं और इनके संघर्ष की कहानी में ही इतिहास गति करता है। दास प्रथा के युग तथा सामान्त शाही युग के समाप्त होने पर उसके स्थान पर अब पूंजीवाद का जन्म हुआ। मगर ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि कभी न कभी पूंजीवाद का भी अवश्य अन्त होगा। मूल्य के श्रम सम्बन्धी सिद्धान्त (Labour theory of Value) के अनुसार मूल्य की उत्पत्ति श्रम से होती है। वास्तव में पूंजी एकत्रित श्रम ही है। जिसे अन्याय से पूंजी पतियों ने हथिया रक्खा है और जिसके द्वारा वे श्रम जीवियों का शोषण करते हैं। पूँजीवादी केवल समाज के आर्थिक जीवन पर ही नियंत्रण नहीं रखते वरन देश की सरकार और धर्माधिकारियों पर भी वे अपना नियंत्रण रखते हैं और श्रमिकों को कुचलने के लिए इनका प्रयोग करते हैं। वे उत्पादित वस्तुओं के मुनाफे पर अपना एकाधिकार स्थापित कर लेते हैं और बेचारे मजदूर पेट की समस्या से लाचार होकर न्यूनतम मजदूरी लेने को बाध्य हो जाते हैं और उद्योगपति उत्पादित वस्तु के अधिकांश भाग को स्वयं रख लेता है।

इस प्रकार क्रमशः उद्योग पतियों के प्रति मजदूर वर्ग का असन्तोष बढ़ता जाता है। जो आगे चलकर हिंसात्मक वर्ग संघर्ष का रूप ग्रहण कर लेता है। ज्योंही ये लोग अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संगठित हो जाएंगे त्योंही क्रान्ति प्रारम्भ हो जावेगी।

इस प्रकार कार्ल-मार्क्स क्रान्ति के द्वारा सम्पूर्ण मानव-जाति की मुक्ति का स्वप्न देखता है। यद्यपि यह क्रान्ति सर्वहारा मजदूरों की ओर से की जावेगी। पर इससे सारे संसार में वर्गहीन समाज की स्थापना होगी। इसी क्रान्ति की भूमिका तैयार करने के लिए उसने सन् १८४८ में एक घोषणा-पत्र जारी किया। जो कम्यूनिस्ट–मेनिफिस्टो के नाम से प्रसिद्ध है इस मैनि फिस्टों में क्रान्तिकारी कार्यों को करने के लिए एक क्रम भी बतलाया गया है और यह विश्वास दिलाया गया है कि इस महान क्रान्ति में अन्तिम विजय सर्वहारा मजदूर वर्ग की होगी। (पूरा वर्णन कम्यूनिज्म नाम के साथ इसी भाग में देखें)।

कार्ल-मार्क्स के अनुसार इस क्रान्ति की दो अवस्थाएँ होगी (१) संकट कालीन क्रान्तिकारी अवस्था जिसमें कुछ समय के लिए राज्य का अस्तित्व रहेगा (२) साम्यवाद की अन्तिम अवस्था जिसमें राज्य का अस्तित्व समाप्त हो जावेगा और देश में वर्गहीन समाज की स्थापना होगी।

कार्ल-मार्क्स वैधानिक उपायों द्वारा क्रान्ति की सफलता में विश्वास नहीं करता। उसके मत से हिंसात्मक क्रान्ति के द्वारा ही पूँजीवाद और साम्राज्यवाद का अन्त किया जा सकता है। इसलिए उसका यह दृढ़ विश्वास है कि रक्त रंजित क्रान्ति के द्वारा पूँजीपतियों का दमन करके ही क्रान्ति पूर्ण सफलता को प्राप्त कर सकती है।

कार्ल-मार्क्स संकटकालीन स्थिति में प्रजातांत्रिक राज्य का पक्ष पाती नहीं। उसके मत से इस काल में मजदूर वर्ग की ऐसी सर्व शक्तिसम्पन्न, अनियंत्रित सरकार होना चाहिए जो पूँजीवाद और साम्राज्यवाद की जड़ों का उच्छेदन करने में मजदूर वर्ग का पूरा पूरा साथ दें।

इसके बाद दूसरी अवस्था में अर्थात् पूँजीवाद और साम्राज्यवाद का अन्त हो जाने पर राज्य का अस्तित्व बिलकुल अनावश्यक हो जाता है। इसलिए उसके मत से

उत्तर क्रान्तिकारी अवस्था में राज्य को पूर्णतया समाप्त कर देना चाहिए। वर्ग संघर्ष की समाप्ति पर राज्य के अस्तित्व आधार ही टूट जावेगा और वह स्वयं अपनी मौत मर जावेगा (The State will Wither Away and die) इस विषय का पूरा विवेचन 'कार्लमार्क्स' ने अपने सुप्रसिद्ध और विशाल ग्रन्थ 'केपिटल' में किया है। यह ग्रन्थ कम्यूनिस्ट साहित्य में वेद ग्रन्थों की तरह प्रामाणिक और आदरणीय माना जाता है।

कार्ल-मार्क्स की इन घोषणाओं और केपिटल इत्यादि ग्रन्थों के प्रकाशन ने सारे संसार के मजदूर और किसान वर्ग में जागृति की एक ऐसी प्रबल लहर दौड़ा दी जैसी इससे पहले इतिहास के किसी भी युग में आजतक कभी पैदा नहीं हुई थी। गरीब, शोषित और साधनहीन मजदूरवर्ग कार्ल-मार्क्स को एक अवतार, एक पैगम्बर और एक त्राता के रूप में देखने लगा। सारे संसार में इस विचार धारा की लहर पहुँच गई।

मगर सबसे पहले इस क्रान्ति के आचार्य की विचार धारा को क्रियात्मक रूप इसकी मृत्यु के ३४ वर्ष बाद लेनिन ने रूस में इतिहास-प्रसिद्ध अक्टूबर क्रान्ति में सफलता प्राप्त करके दिया। जारशाही के अत्याचारों से पीड़ित रूस की त्रसित जनता ने सबसे पहले जारशाही का तख्ता उलटकर सोविएट शासन की स्थापना करके इस महान् दार्शनिक के स्वप्न को साकार किया।

कार्ल-मार्क्स की विचारधारा एकदम मौलिक और इतिहास के प्रवाह को मोड़ देने वाली है। सी० ई० एम० जोड नामक विद्वान के मतानुसार 'कार्ल-मार्क्स प्रथम सामाजिक लेखक हैं, जिसकी रचना वैज्ञानिक कही जा सकती है। उसने केवल अपनी इच्छा के समाज की रूप रेखा का ही चित्रण नहीं किया वरन उन स्थितियों का भी भी विवेचन किया है जिनके अनुसार इनका विकास होना चाहिए।

रूस के पश्चात् चीन के समान विशाल-देश ने भी इस क्रान्ति को सफल बनाकर अपने यहाँ कम्यूनिस्ट शासन की स्थापना की। और भी कुछ छोटे-छोटे देशों ने इस पद्धति को अपनाया। फिर भी सारे संसार में यह विचारधारा लोक प्रिय नहीं हो सकी और इसके बढ़ते हुए प्रवाह को रोकने के लिए प्रजातंत्रीय देशों ने भी संगठित और मजबूत मोर्चा स्थापित किया। जिसने इस प्रवाह की गति को बहुत मन्द कर दिया।

इसका कारण इस विचारधारा में कुछ ऐसी मौलिक त्रुटियों रह जाना था जो मानव-स्वभाव और प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध जाती थीं। इसलिए संसार के कई बड़े-बड़े विचारकों ने उन्हें पसन्द नहीं किया। दूसरे सोवियट संघ की स्थापना के ४५ वर्ष और चीनी सरकार की स्थापना के बीस वर्ष के उपरान्त भी, भौतिक विज्ञान और शिक्षा के क्षेत्र में अत्यन्त तरक्की कर लेने पर भी, कुछ मूलभूत मानवीय समस्याएँ ऐसी बनी हुई हैं जिनका हल करने में ये राज्य असफल रहे हैं। इन समस्याओं में व्यक्ति स्वातंत्र्य और विचार-स्वाधीनता का हनन, राष्ट्रीयता और अन्तराष्ट्रीयता का विरोध तथा सहकारी खेती की असफलता के कारण पूँजीपति देशों से अनाज मँगवाना इत्यादि समस्याएँ प्रधान हैं। कार्ल-मार्क्स के सिद्धान्तों की रूस और चीन के द्वारा भिन्न-भिन्न अर्थ-व्यञ्जक टीकाएँ तथा इन दोनों महान् देशों के गम्भीर मतभेद इत्यादि चीजों ने भी तटस्थ मानव के मस्तिष्क में इस विचारधारा की सफलता के सम्बन्ध में एक गम्भीर प्रश्नवाचक चिह्न खड़ा कर दिया है। जिसका पूरा विवेचन हम "कम्यूनिज्म" शब्द के अन्दर कर आये हैं।

जो कुछ हो सफलता और असफलता का निर्णय करना इतिहास का काम है मगर यह तो मानना ही पड़ेगा कि कार्ल-मार्क्स एक मौलिक विचारक, महान तत्व चिंतक और क्रान्ति का एक महान अग्रदूत था। जिसने सारी मानव-जाति को एक नवीन दिशा का ज्ञान कराया और जिसकी आवाज पर आज भी अर्थात् उसकी मृत्यु की एक शताब्दी के बाद भी एक करोड़ के करीब व्यक्ति श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे हैं।

कार्ल तावास्तस्त्येना

फिनलैण्ड का एक प्रसिद्ध कवि जिसका जन्म सन् १८६० में और मृत्यु १८९८ में हुई।

इस कवि ने फिनलैण्ड के साहित्य में नये छन्द का निर्माण कर पुरानी छन्द प्रणाली को तोड़ दिया। नये छन्द में की गई ये कविताएँ भाव, प्रेरणा और रूप सभी विषयों में अभी तक प्रचलित कविताओं से भिन्न और नवीन थीं। कविताओं के सिवाय इस साहित्यकार ने कई मौलिक उपन्यासों की भी रचना की। उसने अपने उपन्यासों में नारी की स्वतंत्रता के समान कई महत्वपूर्ण सामाजिक प्रश्नों पर भी विवेचना की।

कार्लफेल्ट एरिक एक्सेल

मृत्यु के पश्चात् सन् १९३१ में नोबल प्राइज प्राप्त करने वाले स्वीडन के महान कवि और साहित्यकार एरिक एक्सेल कार्लफ्रेल्ट जिनका जन्म २० जुलाई सन् १८६४ को और मृत्यु सन् १९३१ में हुई।

कार्लफैल्ट की पहली रचना "सांग्स ऑफ लव एण्ड वाइल्डरनेस (Songs of Love & wilderness) सन् १८९५ में जब वे ३१ वर्ष के थे प्रकाशित हुई। इस रचना में उन्होंने स्वीडन के गांवों और वहां के स्त्री पुरुषों की भावनाओं का कला पूर्ण ढङ्ग से वर्णन किया।

इस ग्रन्थ का दूसरा और तीसरा खण्ड फ्रिडोलिन पोएट्री (Fridolin's Poetry) के नाम से सन् १८९८ और १९०१ में प्रकाशित हुए।

कार्लफ्रेल्ट की कुल कविताएं छः जिल्दों में प्रकाशित हुई। उनकी अन्तिम कविता दी हार्न ऑफ आउटमन मानी जाती हैं।

नोबेल प्राइज एकेडेमी ने सन् १९२० से ही कई बार कार्लफ़ेल्ट को पुरस्कार देने का प्रस्ताव किया। मगर चूंकि कार्लफ्रेल्ट स्वयं इस एकेडेमी के मंत्री और सदस्य थे इसलिए वे बराबर दृढ़ता पूर्वक पुरस्कार लेने से इन्कार करते रहे। अन्त में उनकी मृत्यु पर उन्हें यह सम्मान सन् १९३१ में दिया गया और पुरस्कार की रकम इनके तीनों बच्चों को देदी गई।

कार्वर-वाशिंगटन

नीग्रो जाति के एक प्रसिद्ध कृषि विज्ञानशास्त्री। जिनका जन्म सन् १८६२ के करीब अमेरिका की मिसूरी स्टेट के डॉयमण्ड ग्रोव नामक स्थान पर हुआ और मृत्यु सन् १९४४ में हुई।

जिस समय कार्वर का जन्म हुआ, उस समय अमेरिका में गुलामी की प्रथा बड़े जोरों से प्रचलित थी। कार्वर भी इन गुलाम-विक्रेताओं के फन्दे में आ गये और गोरे लोग इन्हें उठाकर गुलामों की मण्डी में बेचने को ले जाने लगे। उसी समय एक दयालु व्यक्ति मोसेज कार्वर को इस लड़के की हालत पर बड़ी दया आई और उसने इस लड़के के बदले में अपना घोड़ा देकर उसे छुड़ा लिया।

मोसेज कार्वर के नाम पर ही इस नीग्रो लड़के का नाम जार्ज कार्वर रख दिया गया और अपने दयालु मालिक की देख रेख में भविष्य का यह वैज्ञानिक बड़ा होने लगा।

बचपन से ही कार्वर को जड़ी बूटियों का बड़ा शौक था। इनके जेब हमेशा तरह-तरह की जड़ी बूटियों से भरे रहते थे और एकान्त में ये उनको बड़े ध्यान से देखते थे। इससे लोग इन्हें 'पौधों का डॉक्टर" भी कहते थे।

कुछ दिनों बाद दयालु मालिक ने इस लड़के को पढ़ने के लिए नीग्रो लोगों के एक स्कूल में भरती करवा दिया। वहां की पढ़ाई खतम कर कार्वर ने शहरों के बड़े स्कूलों में पढ़ना प्रारम्भ किया और कपड़े धोकर अपनी जीविका चलाने लगे। सन् १८९४ में उन्होंने सिम्पसन कॉलेज से डिग्री प्राप्त करली और वे उसी कॉलेज में वनस्पति विज्ञान के अध्यक्ष बना दिये गये। और वहीं पर उन्होंने कृषि विज्ञान के विषय में अनुसन्धान करना प्रारम्भ दिये।

उस समय दक्षिणी अमेरिका में बहुत सी जमीन बंजर पड़ी हुई थी। बराबर एक ही एक कपास की फसल होती रहने के कारण शेष जमीन की उपजाऊ शक्ति भी कम होती जा रही थी। कार्वर ने अनुभव किया कि एक ही एक वस्तु की उपज होने से जमीन की उपजाऊ शक्ति बहुत कम हो जाती है। इसलिए उन्होंने कपास की भूमि में

मूंगफली बोने को किसानों को सलाह दी। उनके इस प्रयोग को बड़ी सफलता मिली और मूंगफली की बहुत बढ़िया फसल तैय्यार हुई।

मगर उस समय मूंगफली की उपयोगिता का लोगों को ज्ञान न था इसलिए मूंगफली को खरीदने वाला किसानों को कोई नहीं मिला और वे लोग इनसे बड़े असन्तुष्ट हो गये।

तब डॉ० कार्वर ने मूंगफली की उपयोगिता पर अपने प्रयोग करना प्रारम्भ किये। इसमें उन्हें काफी समय लगा मगर अन्त में सफलता प्राप्त हो गई और १९२१ में वैज्ञानिकों की एक कांग्रेस में उन्होंने अपनी खोजों को बतलाने के लिए भाषण देने की अनुमति मांगी। उन्हें केवल दस मिनिट का समय दिया गया। वे दो भारी थैलों को लेकर मंच पर पहुँचे और मूंगफली तथा शकरकन्द की उपयोगिता पर उन्होंने भाषण देना प्रारम्भ किया।

उनका भाषण इतना दिलचस्प था कि लोग आश्चर्य चकित हो गये। दो घण्टे तक लगातार बोलते रहने पर भी न तो अध्यक्ष ने उन्हें समय की सूचना दी और न किसी ने उनको टोका। उन्होंने मूंगफली से १५० और शकरकन्द से २०० उपयोगी चीजों का निर्माण कर डाला था।

उनके इन प्रयोगों के प्रकाशित होने पर मूंगफली और शकरकन्द के भाव बहुत बढ़ गये और ये चीजें बाजार में नजर आना बन्द हो गईं।

बाद में कार्वर की प्रतिभा का बहुत विकास हुआ। उन्होंने मिट्टी से रंग, कीचड़ से रबर और मामूली जड़ी-बूटियों से कई कीमती दवाओं का आविष्कार कर डाला।

कार्वर की इन खोजों से समाज में तहलका मच गया। कई करोड़ पति व्यवसायी इनके आविष्कारों को पेटेन्ट करवाने के लिए इनके आसपास चक्कर काटते थे मगर उन्होंने अपने किसी आविष्कार को पेटेन्ट नहीं करवाया और जनता के उपयोग के लिए सबको खुला कर दिया।

सन् १९३५ में सरकार ने उन्हें एक उद्योग विभाग में बहुत उंचा पद दिया जहां वे जीवन भर नई-नई खोजें करते रहे।

सन् १९४० में जब वे बीमार पड़े तब उन्होंने अपनी सारी पूँजी दान में दे दी। उनकी सम्पत्ति से 'कार्वरफाउण्डेशन' नामक प्रसिद्ध संस्था का निर्माण किया गया। जहां पर कृषि-विज्ञान पर खोजें की जाती हैं और नीग्रो जाति के विद्यार्थियों को पढ़ने के लिए हर प्रकार की सुविधाएं दी जाती हैं।

कार्डूसी जिओसुए

(Giosue Cardueci)

इटालियन भाषा का एक कवि और राजनीतिज्ञ, जिसका जन्म सन् १८३५ में और मृत्यु सन् १९०७ में हुई।

कवि होने के साथ-साथ कार्डूसी गद्य लेखक और समालोचक भी था। वह प्राचीन काव्य और काव्य शास्त्र का गम्भीर विद्वान था। प्राचीन युग की स्मृतियों को पुनर्जीवित करने के लिए उसने "यूवेनेलिया" नामक काव्य ग्रन्थ की रचना की। उसकी कवि प्रतिभा का सर्वाधिक विकास उसके "रोमे दुओवे" "ओदी बारबरे" इत्यादि कविता संग्रहों में हुआ।

सन् १९०६ में कार्डूसी को नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इटली की राजनैतिक विचार धारा में एकरूपता लाने को भी उसने प्रयास किया।

कारावज्जो

इटली का एक प्रसिद्ध चित्रकार जिसका जन्म सन् १५७३ में इटली के मिलान नगर के समीप एक ग्राम में हुआ और मृत्यु सन् १६१० में हुई।

कारावज्जो एक मिस्त्री का लड़का था। १९ वर्ष की उम्र में वह रोम गया और वहाँ पर उसने "दे आर पिनो" को अपना गुरु बनाया। कारावज्जो ने तत्कालीन यूरोपियन चित्रकला में एक नवीन युग का प्रारम्भ किया। सन् १५९८ और १६०० बीच उसकी तीन प्रसिद्ध कला कृतियाँ "सेण्ट मैथ्यू और देवदत्त" "सेण्ट मैथ्यु की पुकार" और "सेण्ट मैथ्यू का बलिदान" प्रकाश में आईं। जिनकी वजह से

सारे रोम में उसकी कला लोकप्रिय हो गई। इन चित्रों में उसने बिलकुल एक नवीन भावना का संचार किया जिससे इन चित्रों की सारे देश में धूम मच गई।

केवल ३७ वर्ष की अवस्था में उसकी मृत्यु हो गई। मगर इस थोड़े से समय में ही उसने पाश्चात्य चित्रकला के इतिहास में अपना नाम अमर कर दिया।

कार्नवालिस (गवर्नर जनरल)

भारतवर्ष का अंग्रेज गवर्नरजनरल जिसका जन्म सन् १७३८ में लन्दन में हुआ और मृत्यु सन् १८०५ में गाजीपुर में हुई। यह कार्नवालिस के अर्ल का बड़ा पुत्र था।

लार्ड कार्नवालिस एक सुयोग्य सैनिक, राजनीतिज्ञ, ईमानदार और कुशल शासक था। शिक्षा को समाप्त कर वह सेना में भरती हो गया। अमेरिकन सिविल वार में कार्नवालिस अंगरेज सेना का सेनापति था। शुरू २ में तो इसने एक दो बार अमेरिकन सेनाओं को पराजित किया पर अन्त में सन् १७८१ में इसको अमेरिकन सेना के सामने आत्म-समर्पण करना पड़ा और उसी समय से अमेरिका में ब्रिटिश राज्य का खातमा होगया।

सन् १७८६ में कार्नवालिस मेक पुर्सन के पश्चात् भारत का गवर्नर जनरल बनाया गया। यह ईस्टइण्डिया कम्पनी के इतिहास में एक महत्व पूर्ण घटक था।

जिस समय कार्नवालिस यहां आया उस समय विलियम पिटका 'इण्डिया ऐक्ट' पास हो चुका था। जिसके अनुसार पार्लमेंट ने गवर्नर जनरल और उसकी कौन्सिल को आदेश दिया कि वे बोर्ड ऑफ़ कण्ट्रोल के डॉयरेक्टरों से अनुमति लिये बिना किसी भी राजा से युद्ध अथवा सन्धि न करें।

मगर उस समय दक्षिणी भारत में टीपू सुलतान अंग्रेजी राज्य को पूरी तरह नष्ट करने का पूरा प्रयत्न कर रहा था और सन् १७८७ में उसने टर्की और फ्रान्स में सैनिक सहायता प्राप्त करने के लिए अपने दूत भेजे थे। इसके दो वर्ष बाद उसने अंग्रेजों के मित्र ट्रावनकोर के राजा पर भी हमला कर दिया। यह सारी कार्यवाही लार्ड-कार्नवालिस को सहन नहीं हुई और उसने निजाम और पेशवा के साथ मिलकर सन् १७६० में स्वयं अपने सेना पतित्व में टीपू पर हमला कर दिया। इस लड़ाई में टीपू की सेनाएं हार गईं और उसने तीन करोड़ रुपया हर्जाना देकर कार्नवालिस से सन्धि की।

कार्नवालिस के शासन काल की सबसे महत्व पूर्ण घटना बंगाल में इस्तमुरारी बन्दोबस्त की स्थापना है। इस बन्दोबस्त के द्वारा जमीन की मालगुजारी की जो हमेशा घटती बढ़ती रहती थी एक दर निश्चित कर दी गई। इस बन्दोबस्त से सरकार, जमींदार और किसान तीनों की स्थिति पर प्रभाव पड़ा। सरकार को इससे काफी नुकसान उठाना पड़ा। क्योंकि भविष्य में जमीन की कीमतें बढ़ जाने पर भी वह लगान नहीं बढ़ा सकती थी। जमीदारों को इससे बड़ा लाभ हुआ। उनकी हालत पहले से बहुत अच्छी हो गई जिससे वे अंग्रेजी राज्य के प्रति बड़े राजभक्त बन गये। मगर किसानों को इससे विशेष लाभ नहीं हुआ। जमीदारों के अत्याचार उनपर बराबर चलते रहे। इस अत्याचार से उनकी रक्षा के लिए बाद में सन् १८५९ में बङ्गाल टैनेन्सी ऐक्ट पास किया गया।

सन् १७६३ में लार्ड कार्नवालिस वापस इंग्लैण्ड चला गया। सन् १७६७ में वह आयर्लैंण्ड भेजा गया वहाँ हर्बर्ट के विद्रोह को दबाकर उसने शान्ति स्थापित की। सन् १८०५ में वह दुबारा भारत का गवर्नर जनरल होकर आया किन्तु उसी वर्ष गाजीपुर में उसकी मृत्यु हो गई।

कार्लि-गुफा

पूना बम्बई रोड के मध्य में दक्षिण दिशा में पर्वत की उपत्यका में बनी हुई बौद्ध-धर्म के हीनयान सम्प्रदाय की गुफा। इसके निर्माण का समय ई० पू० पहली सदी में माना जाता है।

इस गुफा में एक सुन्दर मन्दिर खुदा हुआ है। भारतवर्ष में पर्वत के अन्दर खुदे हुए मन्दिर कई स्थानों पर विद्यमान हैं। किन्तु कार्लि की तरह गठन वैचित्र्य कहीं भी देखने को नहीं मिलती। निर्जन में उपासना करने के लिए बौद्धमतावलम्बियों ने इसे बनाया था। गुफा के सम्मुख भाग में सिंह द्वार बना हुआ है। सिंहद्वार के दोनों

तरफ पचास फुट के दो स्तम्भ खड़े किये गये थे जिनमें से एक अभी विद्यमान है इनकी बनावट अशोककालीन स्तम्भों की तरह थी।

सिंह द्वार के पार होने पर एक दूसरा द्वार मिलता है उसका विस्तार करीब ५० फीट होगा। उसके दोनों पार्श्व में दो स्तम्भ बने हैं। दोनों स्तम्भ अष्ट पहलू हैं। इसके बाद आगे बढ़ने पर मन्दिर में प्रवेश करने के तीन द्वार हैं। इनमें से बीच का द्वार बौद्ध परिव्राजकों के लिए बना था। इन द्वारों के ऊपर मेहराबदार उजालदान बने हुए हैं। जिनसे छन-छन कर बड़ा सौम्य प्रकाश गुहा में प्रवेश करता है।

इन द्वारों में प्रवेश करने के बाद अभ्यन्तर की अपूर्व शोभा देखकर मन में एक अद्भुत भाव का संचार होता है। कैसी शिल्पचातुरी! कैसा असम्भव परिश्रम! दोनों पार्श्व पर दो बरामदे दोनों ओर चले गये हैं। बीच में नाट्यमन्दिर का मण्डप है। जिसकी लम्बाई १२४ फीट चौड़ाई ४७ फुट और ऊँचाई ४० फुट है। दोनों तरफ की दीवारों के अन्दर थोड़ी-थोड़ी दूर पर बड़े सुन्दर स्तम्भ बने हुए हैं। जिनकी कुल संख्या ३७ है। इन स्तम्भों की कारीगरी अत्यन्त आश्चर्यजनक है। हरएक स्तम्भ के ऊपर दो-दो हाथी के मस्तक बने हुए हैं और प्रत्येक हाथी के मस्तक पर मिथुन प्रतीक खोदे हुए हैं।

इस गुफा के बाहर के सिंह स्तम्भ पर एक लेख खुदा हुआ है। लोक परम्परा के अनुसार महाराजा भूतिया देवभूति ने लेख के ये अक्षर खुदवाये थे। पाश्चात्य इतिहासकारों के अनुसार भूतिराजा का समय ई० पू० ७८ में माना जाता है।

कारनेगी-एण्ड्रू

अमेरिका के प्रसिद्ध धन-कुबेर, उद्योगपति और बड़ी-बड़ी संस्थाओं के व्यापक एण्ड्रू कारनेगी जिनका पूरा परिचय इस ग्रंथ के दूसरे भाग में "एण्ड्रू कारनेगी" नाम के साथ दिया गया है।

कार्लाइल टामस

इग्लैण्ड के एक सुप्रसिद्ध दार्शनिक, नीतिविज्ञान के आचार्य और इतिहासकार जिनका जन्म सन् १७९५ में और मृत्यु १८८१ में हुई।

कारलाइल के पिता ईसाई धर्म के पादरी या धर्माचार्य थे। प्रारम्भ में उनका प्रधान विषय गणित था मगर बाद में उनका झुकाव दर्शनशास्त्र की तरफ हो गया और इस क्षेत्र में उन्होंने अक्षय कीर्ति सम्पादन कर ली।

इनका सबसे पहला क्रान्तिकारी ग्रन्थ 'सार्टन रिसार्टस' के नाम से प्रकाशित हुआ। कारलाइल ने इस ग्रन्थ में जिन नैतिक और दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया, वे इंग्लैण्ड की तत्कालीन जनता के लिए नवीन और दुरूह थे। मगर फ्रान्स की राज्य-क्रान्ति के कारण उनके विचारों को बल मिला और उनकी लोकप्रियता बढ़ाई।

उनकी दूसरी रचना "आन हीरोज एण्ड हीरोवर्शिप" (महान् पुरुष और उनकी पूजा) नाम से निकली। इस ग्रन्थ में भी उन्होंने इतिहास के अध्ययन के साथ अपने दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया।

उनकी तीसरी रचना "पास्ट एण्ड प्रोभेण्ट" भी बड़ी लोकप्रिय हुई। इसमें उन्होंने वर्तमान समाज व्यवस्था में पूँजीवाद की आलोचना और मजदूर संगठन की उपयोगिता का समर्थन किया।

कारलाइल का महत्व एक साहित्यकार की अपेक्षा एक दार्शनिक और नैतिक प्रवचनकार के रूप में अधिक है। उन्होंने उस समय की भौतिकवादी प्रवृत्तियों को ललकार कर कहा था कि संसार ईश्वरमय है, मनुष्य एक नैतिक प्राणी है जिसका उत्कर्ष धन और वैभव पर नहीं बल्कि नैतिक और आध्यात्मि विकास पर निर्भर है।

कार्लाइल की भाषा, लम्बे-लम्बे वाक्यों से परिपूर्ण, पेचीदी, और चिन्तनशील है। उनके शब्दों की परम्परा अटूट है और उनका प्रवाह अविच्छिन्न है।

कालविन

सोलहवीं सदी के प्रारम्भ में, यूरोप के अन्तर्गत मार्टिन लूथर द्वारा प्रचारित रिफार्मेशन (Reformation) आन्दोलन का व्याख्याकार प्रसिद्ध दार्शनिक "जानकालविन" जिसका जन्म सन् १५०९ में और मृत्यु १५६४ में हुई।

कालविन एक फ्रेञ्च दार्शनिक था। इसका जन्म "पिकार्डी" नामक स्थान पर एक कैथोलिक परिवार में हुआ था।

जिस समय कालविन क्षेत्र में आया उस समय यूरोप एक अभूत पूर्व बौद्धिक और मनोवैज्ञानिक उथल-पुथल का केन्द्र बना हुआ था। चारों ओर पुनर्जागरण (Renaissance) और सुधार आन्दोलन (Reformation) की लहरें मध्यकाल के समाप्त होने और नवीन-युगके आरम्भ की सूचनाएँ दे रही थीं।

पर मध्य-युग का सब से बड़ा आधार-स्तम्भ "रोमन-चर्च" अभी भी अपनी उसी शान के साथ खड़ा था और समय के प्रबल थपेड़ों का उपहास करते हुए उसकी अनियंत्रित सत्ता अभी भी किसी प्रकार चल रही थी। कन्सीलियर आन्दोलन असफल हो चुका था पर वहां की जनता में चर्च के विरुद्ध जो भावनाएँ पैदा होगईं थीं वे बराबर बढ़ती जा रहीं थीं।

रिफार्मेशन आन्दोलन का सबसे बड़ा नेता मार्टिन लूथर था। इस आन्दोलन ने रोमनचर्च की सार्वभौम सत्ता पर जबर्दस्त आक्रमण किया और इस भावना को कि "सारा यूरोप ईसाई धर्म की एक ईकाई है और उसका सर्वोपरि प्रधान ईश्वरीय सत्ता द्वारा नियुक्त रोमन चर्च का पोप है" यूरोप की जनता के मन से निकाल दिया।

जॉन कालविन भी इसी रिफार्मेशन आन्दोलन का एक प्रवक्ता था। यद्यपि मार्टिन लूथर के साथ कई बातों में उसका मत भेद था।

जॉन कालविन का लिखा हुआ इन्स्टीट्यूशन ऑफ क्रिश्चियन रिलीजन (Institutions of Christian Religion) ग्रन्थ बड़ा प्रसिद्ध हुआ। इस ग्रन्थ में उसने प्रोटेस्टेण्ट धर्म की तर्कसम्मत, तथा विचारपूर्ण व्याख्या की है जिसकी तुलना टॉमस एक्वीनास द्वारा की हुई कैथोलिक धर्म की व्याख्या के साथ की जा सकती है।

इस ग्रन्थ का पहला उद्देश्य तो प्रोटेस्टण्टवाद के खिलाफ उस समय किये जाने वाले उन आक्षेपों का जवाब देना था जिनमें प्रोटेस्टण्टवाद को नास्तिक और जनता का शत्रु कहा जाता था। प्रोटेस्टण्ट धर्म की साफ-सुथरी व्याख्या करके उक्त लांछनों से उसे मुक्त करने का इस ग्रन्थ में प्रयास किया गया है।

इस ग्रन्थ का दूसरा उद्देश्य एक ऐसी शक्ति की खोज करना था जो प्रोटेस्टण्टों के लिए भी उसी प्रकार एक आधार स्तम्भ का काम करे जिस प्रकार रोमन चर्च कैथोलिक सम्प्रदाय के आधार स्तम्भ का काम कर रहा था,

कालविन ने इस ग्रन्थ में प्रतिपादित किया है कि मानवीय समाज के लिए ईश्वर द्वारा प्रदत्त कानून के दो भाग हैं। पहले भाग में वे कानून हैं जो ईश्वर के प्रति मनुष्य के कर्त्तव्य का निर्धारण करते हैं और दूसरे भाग में वे कानून आते हैं जो मनुष्य के प्रति मनुष्य के कर्त्तव्य और व्यवहार का निर्णय करते हैं। इन दोनों कानूनों का समाज में सुचारु रूप से योग क्षेम करने के लिए ईश्वरने दो शक्तियों का निर्माण किया है। पहले कानून के योग-क्षेम के लिए धर्माचर्यों का और दूसरे कानून के योग-क्षेम के लिए राजा का।

धर्माचार्य्यों का कार्य्य केवल यह देखना है कि शासन की व्यवस्था मनुष्य के आध्यात्मिक लक्ष्य की विरोधी न होने पावे। इसके अतिरिक्त राज्य के लौकिक शासन में में हस्तक्षेप करने का धर्म-संस्था को अधिकार नहीं है।

पर आगे चलकर फिर यही दार्शनिक कहता है कि "राज्य और चर्च भिन्न-भिन्न होते हुए भी एक दूसरे से पूर्ण रूप से पृथक् नहीं है। स्वाभाविक रूपसे उनके अनुशासन एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। दोनों की स्थापना ईश्वरीय कानून का योग क्षेम करने के लिए हुई है। इस लिए इन दोनों संस्थाओं का सहयोग रहना आवश्यक है। राज्य को मूर्ति पूजा, नास्तिकता तथा धर्म की निन्दा करने वालों का दमन करना चाहिए तथा चर्च के बनाये हुए सिद्धान्त तथा नीति के माप दण्ड का योगक्षेम समाज में करने के लिए मदद देना चाहिए।

कालविन राज्य की शक्ति को भी ईश्वर-प्रदत्त और मोक्ष की प्राप्ति का एक बाह्य साधन समझता था। वह राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि समझता था इसलिए उसके आदेशों की अवज्ञा के वह विरुद्ध था। फिर भी उसने लिखा है कि छोटे-छोटे न्याय-रक्षकों का कर्तव्य है कि वे राजा की शक्ति को नियंत्रित रक्खे। उसकी आततायी प्रवृत्तियों का शमन करे और उनसे जनता की रक्षा करे। यदि वे ऐसा नहीं करते हैं तो अपने कर्तव्य से विमुख होते हैं। उसने यह भी कहा कि यदि राजा कोई ऐसा कार्य करना

चाहे जो ईश्वर की आज्ञा के विरुद्ध तो जनता को उसका पालन कदापि नहीं करना चाहिए।

मगर ईश्वर की आज्ञा क्या है, इसका निरपेक्ष निर्णय कालविन स्वयं भी नहीं कर सका। उस समय भिन्न-भिन्न व्यक्ति बाइबिल के आदेशों की भिन्न-भिन्न और परस्पर विरोधी व्याख्या करते थे और एक विचारक दूसरे विचारक की व्याख्या को गलत बतलाया था। ऐसी स्थिति में लोगों को कालविन की व्याख्या से सन्तोष नहीं होता था। इसलिए लोग यह अनुभव करने लगे थे कि एक राज्य में एक ही धर्म को लादने का प्रयत्न शान्ति तथा व्यवस्था के लिए हितकर नहीं है और एक ऐसे धर्म निरपेक्ष राज्य की लोग कल्पना करने लगे थे जिसमें धर्म और न्याय पर्यायवाची शब्द न हों। वे लोग महसूस करने लगे थे कि धर्म के विशेष आधार के बिना भी राजसत्ता अपना काम कर सकती है। इस विचार प्रणाली को कालबिन के पश्चात् प्रसिद्ध दार्शनिक 'जीनबोदां' ने प्रतिपादित किया। जिसे कालविनवाद का विकास कहा जा सकता है।

कालविन का प्रभाव उस समय इतना अधिक बढ़ गया था कि सारे यूरोप में इसके सम्प्रदाय कायम हो गये थे। यह सम्प्रदाय हूजीनाट्स (Huguenots) और प्रेसवेटेरियन्स (Presbyterians) के नाम से प्रसिद्ध थे।

कॉन्सीलियर आन्दोलन की असफलता के पश्चात् जॉन कालविन ने यद्यपि चर्च और राज्य की निरंकुशता का ही समर्थन किया मगर उसके अनुयायी हूजीनाट्स लोगों ने एक हद तक उदारवाद की परम्परा को स्थापित किया। इसी से कहा जाता है कालविन सिद्धान्त का पहला प्रभाव राजा की सत्ता को निरंकुश करना और उसका अन्तिम प्रभाव व्यक्तिगत स्वतंत्रता और जनतंत्र की भावनाओं का पोषण करने में हुआ।

कालिंजर

उत्तरप्रदेश के बान्दा जिले में अवस्थित एक गाँव और पहाड़ी किला जो बान्दा से ३५ मील दक्षिण में है।

कालिंजर बहुत प्राचीन काल से हिन्दू लोगों के एक पवित्र तीर्थ स्थान के रूप में रहा है। रामायण उत्तरकांड, महाभारत वन पर्व तथा हरिवंश पुराण, गरुड़ पुराण, मत्स्य पुराण, पद्मपुराण इत्यादि पुराणों में इसका उल्लेख पाया जाता है।

पद्म पुराण के कालिंजर महात्म्य में लिखा है कि

"अर्थ योजन विस्तीर्णं तत् क्षेत्रं मम मन्दिरम्
कालंजरेति विख्यातं मुक्तिदं शिव सन्निधौ

अर्थात्—आधे योजन में विस्तृत यह क्षेत्र ही हमारा (शिव का) मन्दिर है। शिव सान्निध्य युक्त यही कालंजर मुक्तिदायक है।

सुप्रसिद्ध मुसलमान इतिहासकार फरिश्ता के अनुसार ईसा की सातवीं सदी में केदार नामक किसी व्यक्ति ने कालिंजर दुर्ग का निर्माण करवाया था।

मौखरी राजवंश और प्रतिहारों के समय में कालिंजर कन्नौज के शासनान्तर्गत था। यद्यपि यहाँ पर चन्देल वंश के लोग राज्य करते थे, पर वे कन्नौज के प्रतिहारों के अधीनस्थ थे। चन्देलों के वंश में राजा हर्ष का पुत्र यशोवर्मन अधिक पराक्रमी हुआ। इसका समय सन् ९२५ से ९५४ तक था। इसी के समय से चन्देल राजवंश एक स्वतन्त्र राजवंश की तरह अस्तित्व में आने लगा और हर्ष के पुत्र धंग ने (९५४–१०१२) इस राजवंश को एक दम स्वतन्त्र कर दिया। चन्देल राजा धंग ने सन् ९९० में महमूद गजनवी के आक्रमण के विरुद्ध भटिण्डा के राजा जयपाल की ससैन्य मदद की थी।

धंग का पुत्र गण्ड भी बड़ा प्रतापी और शक्तिशाली था सन् १००८ में उसने महमूद गजनवी के आक्रमण के विरुद्ध राजा आनन्दपाल शाही की बहुत बड़ी मदद की थी।

सन् १०१९ में और उसके बाद कन्नौज पर सुप्रसिद्ध विजेता महमूद गजनवी के दो आक्रमण हुए। दूसरे आक्रमण में कन्नौज के प्रतिहार राजा राज्यपाल ने महमूद गजनवी की अधीनता स्वीकार कर ली।

जब यह बात कालिंजर के राजा गण्ड और ग्वालियर के कछवाहा राजा को मालूम हुई तो उन्होंने राज्यपाल की इस कायरता से क्रोधित हो कन्नौज पर आक्रमण करके राज्यपाल को मार डाला।

जब महमूद गजनवी को राज्यपाल के मारे जाने की बात मालूम हुई तो उसने इसका बदला लेने के लिए कालिंजर के दुर्ग पर सन् १०२३ में आक्रमण किया।

उस समय कालिंजर का दुर्ग अपनी मजबूती में बेजोड़ था। इतिहासकार निजामुद्दीन का कथन है कि "मजबूती के खयाल से यह किला हिन्दुस्तान में अपनी सानी नहीं रखता था। फिर भी चन्देल राजा ने ३०० हाथी सुलतान को भेंट कर सुलह का पैगाम भेजा और सुलतान ने भी चन्देल राजा को १५ जिले देकर सन्धि कर लीं। इस चन्देल राजा "गण्ड" का ही दूसरा नाम "चन्द्रराय" था और इसी राजा "गण्ड" को निजामुद्दीन ने "नन्द" नाम से लिखा है।

इसके पश्चात् सन् १२०२ में कुतुबुद्दीन ने कालिंजर पर विजय प्राप्त कर वहाँ पर एक मसजिद का निर्माण करवाया। लेकिन उसके थोड़े समय पश्चात् ही यह किला फिर चन्देलों के हाथ में आ गया। सन् १२५१ में दिल्ली के सुलतान ने इस पर फिर आक्रमण कर इस पर विजय प्राप्त की मगर उसके तुरन्त बाद ही चन्देलों ने फिर इसे अपने अधिकार में ले लिया।

सन् १५४५ में पठान बादशाह शेरशाह ने कालिंजर के किले पर घेरा डाला। २२ मई को शेरशाह कीं तोप का गोला पहाड़ से टकरा कर वापस उसी के बारूदखाने में आ गिरा जिससे भयङ्कर विस्फोट के साथ आग लग गई। शेरशाह उसी अग्निकाण्ड में घायल होकर मर गया। मगर कालिंजर का किला उसकी सेना ने जीत लिया।

सम्राट् अकबर के समय में यह किला राजा बीरबल को जागीर के रूप में प्राप्त हुआ। उसके पश्चात् यह स्थान बुन्देलों के अधिकार में आया। काफी समय तक यह किला बुन्देलों के अधिकार में रहा। बुन्देला वीर छत्रसाल की मृत्यु के पश्चात् पन्ना के राजा हरदेव ने इस किले पर अधिकार कर लिया। पन्ना के राजवंश का भी कुछ समय तक इस किले पर अधिकार रहा। उसके बाद यह किला मराठों के अधिकार में और उसके बाद अंग्रेजों के अधिकार में आया। सिपाही विद्रोह के समय थोड़ी-सी अंग्रेज सेना ने इस किले की रक्षा की थी। सन् १८८६ में यह किला तोड़ डाला गया। मध्यकाल में कालिंजर का दुर्ग अपनी मजबूती के कारण सारे भारत में प्रसिद्ध था।

पहले कालिंजर का किला चारों ओर मजबूत प्राचीरों से घिरा हुआ था। इसमें प्रवेश करने के लिए चार सिंह द्वार थे। जिनमें तीन के नाम रेवा फाटक, कामता फाटक और पन्ना फाटक थे।

एक पवित्र तीर्थ स्थान के रूप में भी इस स्थान की बड़ी प्रसिद्धि है। इस क्षेत्र में चट्टान काटकर बनाई हुई नीलकंठ महादेव की विशाल प्रतिमा है। इसके अतिरिक्त भैरव कुण्ड नामक स्थान पर काल भैरव की विशालकाय मूर्ति बनी हुई है। इस मूर्ति के निचले हिस्से में पहाड़ काटकर एक गुफा बनाई हुई है। इसके सिवाय हिरण्य बिन्दु, कोटि तीर्थ, पाताल गंगा, सीताकुण्ड आदि पवित्र स्थानों ने भी इस तीर्थ के महात्म्य को बहुत बढ़ा दिया है।

कालहस्ती

मद्रास प्रान्त का एक हिन्दू तीर्थ जो सुवर्णमुखी नदी के तीर पर मद्रास रेलवे की उत्तरी-पश्चिमी शाखा के त्रिपति नामक स्टेशन से थोड़ी दूर पर अवस्थित है।

कालहस्ती एक तीर्थ स्थान है। वहाँ पर कई देव मन्दिर बने हुए हैं। उनमें शिव-मन्दिर ही प्रधान है। कालहस्ती के महात्म्य में बतलाया गया है कि ब्रह्मा ने तपस्या करने के लिए कैलास पर्वत के शिखर का एक अंश लाकर यहाँ स्थापित किया था। इससे इसे दक्षिण कैलास भी कहते हैं। इस मन्दिर में महादेव की वायुमूर्ति स्थापित है।

शिव-मन्दिर से दक्षिण पर्वत के पार्श्व में मणि कुण्डेश्वर का मन्दिर है। इस मन्दिर में आसन्न मृत्यु लोगों को ले जाकर दाहिनी करवट पर सुला देते हैं। वहाँ के लोगों का विश्वास है कि मृत्यु के समय में वह करवट बदल कर बाईं करवट कर देने से दाहिने कान से जीव निकलता है। और मृत व्यक्ति सद्गति को पाता है। मणि कुण्डेश्वर मन्दिर से दक्षिण की ओर ब्रह्मा का मन्दिर बना हुआ है। माघ महीने में दस दिन तक इस स्थान में मेला लगता है। जिसमें बहुत से लोग एकत्रित होते हैं।

काला पहाड़

मुर्शिदाबाद के अफ़गान नवाब सुलेमान कर्रानी का सेनापति था। हिन्दूधर्म, हिन्दू जनता और हिन्दू देवी-

देवताओं के भयङ्कर खिलाफ था और जिसने इनका विध्वंस करने में पिछले सब रेकार्डों को तोड़ दिया।

काला पहाड़ शुरू-शुरू में किसी ब्राह्मण कुल में पैदा हुआ था। उस समय इसका नाम राजू था। कहा जाता है कि किसी मुसलमान लड़की के साथ इसका प्रेम हो गया था और वह उससे विवाह करना चाहता था। मगर ब्राह्मण जाति ऐसे विवाह को स्वीकार करने को तैयार नहीं थी। फलतः यह मुसलमान हो गया और अफगान सुलेमान कर्रानी की सेना में भर्ती हो गया।

[illegible] में कुछ शक्ति आते ही हिन्दू धर्म के खिलाफ इसने भयङ्कर रूप से जिहाद बोल दिया। मूर्ति-भंजन में वह अत्यन्त निर्दयी और दुराग्रही था जिससे उसकी पाशविकता चरम सीमा पर पहुँच गई थी।

काला पहाड़ का सबसे पहला आक्रमण उड़ीसा पर हुआ। उस समय उड़ीसा पर मुकुन्द देव के पुत्र ओड़िया गोविन्द राज्य करता था। काला पहाड़ का आक्रमण होते ही ओड़िया गोविन्द देव जगन्नाथ मन्दिर की निजी प्रतिमा को लेकर दीवाल कूद कर भाग गया। उसके बाद काला पहाड़ ने उस मन्दिर को बुरी तरह से तोड़-फोड़ कर नष्ट कर दिया। सब मूर्तियों को टुकड़े-टुकड़े कर दिया और वहाँ का अपार धन लूट कर वह वापस फिरा।

जगन्नाथ मन्दिर को नष्ट करने के बाद वह अपनी सेना लेकर आसाम को चला। आसाम पर उस समय कूचबिहार के राजा नरनारायण का राज्य था। उसके सेनापति शंखध्वज को बुरी तरह से हराकर काला पहाड़ ने कामाख्या देवी के प्रसिद्ध मन्दिर को नष्ट-भ्रष्ट कर हाजो के अनेक मन्दिरों को तोड़ा और लूटा। ऐसा कहा जाता है कि पूर्व में आसाम, पश्चिम में काशी, और दक्षिण में उड़ीसा इस क्षेत्र में शायद ही कोई मन्दिर ऐसा हो जो काला पहाड़ के क्रूर आघात से बचा हो। यह भी कहा जाता है कि उसके नक्कारे की आवाज को सुनते ही देव-मूर्तियाँ स्वयं काँप उठती थीं।

फिर जब सम्राट् अकबर की सेना ने दाऊद खाँ पर आक्रमण किया उस समय उस युद्ध में लड़ते हुए काला पहाड़ मारा गया।

कालिदास

संस्कृत भाषा के महान्‌कवि। रघुवंश, मेघदूत, अभिज्ञान शाकुन्तल इत्यादि महान् काव्यों के रचनाकार। जिनका समय कुछ इतिहासकार ईसा से ५७ वर्ष पूर्व विक्रम संवत् के प्रवर्त्तक उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य के समकालीन और कुछ इतिहासकार गुप्त वंशीय सम्राट द्वितीय चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समकालीन मानते हैं।

कालिदास का काल निर्णय

यह बात दोनों ही पक्ष के इतिहासकार मानते हैं कि कालिदास विक्रमादित्य नामक किसी राजा के दरबारी नवरत्नों में से एक थे। मगर ये विक्रमादित्य कौन थे और कब हुए इस सम्बन्ध में इतिहास कारों में बड़ा मतभेद है। इस मतभेद के मूल प्रवर्त्तक अंग्रेज इतिहासकार कीलहार्न माने जाते हैं।

हमारे देश में, विशेषकर मालवा में, जनश्रुतियों के अन्तर्गत सैकड़ों स्थानों पर वीर विक्रमादित्य का नाम आता है और सब दूर यह विश्वास किया जाता है कि वे बड़े बुद्धिमान, विद्वानों के आश्रयदाता और प्रजा के लिए अपना सर्वस्व निछावर कर देने वाले राजा थे। उन्होंने शक जाति के आक्रमणकारियों को भारी पराजय देकर "शकारि" की उपाधि ग्रहण की और इस विजय के उपलक्ष्य में अपना एक सम्वत् चलाया जो इस्वी सन् से ५७ वर्ष पूर्व सितम्बर की अठारह तारीख गुरुवार को प्रारम्भ हुआ।

मगर डा० कीलहार्न को इन परम्पराओं पर विश्वास नहीं हुआ। परिणाम स्वरूप इस विषय पर उन्होंने "इण्डियन एण्टिक्वायरी" के कई अंकों में एक लेखमाला लिख डाली और यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि इस संवत् का जो नाम इस समय चल रहा है पहले वह नहीं था। पहले यह संवत् मालव संवत् के नाम से प्रचलित था। कई शिलालेखों, ताम्रपत्रों इत्यादि के आधार पर उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि सातवीं सदी से पहले के लेखों पर कहीं भी विक्रम संवत् का प्रयोग नहीं देखा जाता। सब लेखों में "मालवानां गण स्थित्या" का प्रयोग किया जाता था। आगे इस सम्वत् का नाम

कैसे बदला गया इस विषय का विवेचन करते हुए डा० कीलहार्न कहते हैं कि—

"छठवीं शताब्दी में यशोधर्मा नामक एक प्रतापी राजा मालवे में राज्य करता था। इसका दूसरा नाम हर्षवर्द्धन भी था। सन् ५४४ ई० में उसने मुलतान के पास करूर नामक स्थान पर हूणों के प्रसिद्ध राजा मिहिरकुल को मारकर हूण जाति का तहस नहस कर डाला। इस महान् विजय के उपलक्ष्य में उसने विक्रमादित्य की उपाधि ग्रहण की और तब से उसका नाम हर्षवर्द्धन विक्रमादित्य हो गया। इसी जीत की खुशी में उसने पुराने प्रचलित मालव सम्वत् का नाम बदल कर अपनी उपाधि के अनुसार "विक्रम संवत्" घोषित कर दिया। साथ ही उसने एक बात और भी की। उसने कहा इस सम्वत् को ६०० वर्ष का पुराना मान लेना चाहिए क्यों कि नये सम्वत् का ज्यादा आदर न होगा। इसलिए मालव सम्वत् ५४४ में ५६ वर्ष अपनी तरफ से जोड़कर उसने उस सम्वत को ६०० वर्ष पुराना घोषित कर दिया।

इस विचार पद्धति और कल्पना का खण्डन करते हुए भारत के प्रसिद्ध इतिहासकार राय बहादुर चिन्तामणि राव वैद्य ने लिखा है कि—

"क्या यशोधर्मा के किसी शिलालेख में या किसी शासन पत्र में नया संवत् चलाने की या पुराने संवत को नये में बदलने की किसी बात का उल्लेख किया हुआ मिलता है? और दूसरा प्रश्न यह होता है कि कोई भी समझदार राजा किसी दूसरे के सम्वत् का उल्लेख अपने नाम से क्यों करेगा, और क्यों उस सम्वत् की संख्या में ५६ का अङ्क और मिलाकर सारी गणना को ही गड़बड़ कर देगा। किसी विजेता राजा को दूसरे के चलाये हुए सम्वत् को अपना कहने में क्या लज्जा का अनुभव न होगा। जब कि वह आसानी से अपना नया संवत् चला सकता है। किसी के संवत् का नाम बदल कर अपने नाम से चलाना और उस घटना की याद को बिना कारण ६०० वर्ष पहले फेंक देना अत्यन्त अस्वाभाविक बात है।"

"भारत वर्ष का इतिहास देखने से मालूम होता है कि जितने विजेता राजाओं ने संवत् चलाये हैं सबने अपने नाम से नये संवत् ही चलाये हैं। युधिष्ठिर, कनिष्क, शालिवाहन, श्री हर्ष इत्यादि अनेक राजाओं ने अपने-अपने नाम से ही संवत् चलाये थे और यदि यशोधर्मा ने ऐसा किया भी होता तो उसका उल्लेख उस युग के लेखों में कहीं न कहीं जरूर होना चाहिए था।"

"इससे डॉ० कीलहार्न और उनकी दलीलों को युक्तियुक्त नहीं माना जा सकता। ऐसी स्थिति में यही मालूम होता है कि ईसा से ५७ वर्ष पूर्व मालवा में विक्रमादित्य नामक कोई राजा जरूर था मगर ऐसा सिद्ध करने के लिए प्राचीन साहित्य या लेखों के कुछ प्रमाण भी होना चाहिए जो उसके अस्तित्व की पुष्टि कर सके।'

"ईस्वी सन् ६८ में शात वाहन वंश के 'हाल' नामक एक राजा ने 'गाथासप्तशती' नामक प्राचीन महाराष्ट्रीय भाषा में एक पुस्तक लिखी है। उसके चौंसठवें पद्य का संस्कृत रूपान्तर इस प्रकार है—

संवाहन सुख रसतोषितेन, ददता तव करे लक्षम्।
चरणे न विक्रमादित्य चरितमानु शिक्षितं तस्याः

इस श्लोक में राजा विक्रमादित्य की उदारता का वर्णन है। इससे पता चलता है कि हाल-नरेश के पहले विक्रमादित्य नामक कोई दानी राजा अवश्य हुआ। अब इस बात का प्रमाण होना आवश्यक है कि उन विक्रमादित्य ने शकों को पराजित किया था वा नहीं?"

"विन्सेण्ट स्मिथ ने अपने प्राचीन भारत वर्ष के इतिहास में लिखा है कि ईसा से १५० वर्ष पहले शक जाति ने उत्तर पश्चिम के रास्ते से इस देश में प्रवेश किया। इन शकों की दो शाखाएं होगईं। एक शाखा ने तक्षशिला और मथुराकी तरफ अपना अधिकार जमाया और ये क्षत्रप के नाम से प्रसिद्ध हुए। ई० सन् से १०० वर्ष पहले तक इनके सिक्कों से इनका पता चलता है। उसके बाद इनका पता नहीं लगता। दूसरी शाखा वालों ने ईसा की पहली शताब्दी में काठियावाड़ को अपने अधिकार में कर लिया और धीरे-धीरे, उज्जैन तक का क्षेत्र इनके अधिकार में आ गया। बाद में इन्हें गुप्त वंशी राजाओं ने हराकर उत्तर की ओर भगा दिया।' मगर विन्सेण्ट स्मिथ ने यह नहीं बतलाया कि पहली शाखा के शकों का विनाश किसने किया। या वे बिना लड़े ही अपना राज्यपाट छोड़कर चले गये। ऐसी स्थिति में यह सहजही में कहा जा सकता

है कि इस पहली शाखा का विनाश शकारि विक्रमादित्य ने किया और इसी विजय के उपलक्ष्य में उसने अपना संवत् चलाया।"

इसकी पुष्टि में कि गुप्त साम्राज्य के पहले भी विक्रम संवत् का उल्लेख होता था एक प्राचीन लेख पेशावर के पास 'तख्तेवाही' नामक स्थान में प्राप्त हुआ है। यह लेख पार्थियन राजा गुड़फर्स के समय का है। यह राजा भारत के उत्तर पश्चिमी अञ्चल का स्वामी था। इस लेख में १०३ का अङ्क आया है। पर संवत् का नाम नहीं है। डाक्टर पलीट और विन्सेण्ट स्मिथने इस अंक को विक्रम संवत् का ही सूचक माना है। इससे मालूम होता है कि विक्रम संवत् ईसा की तीसरे सदी तक भी भी प्रचलित थी और केवल मालवा में ही नहीं कश्मीर और पंजाब में भी इसका प्रचार था।

"इस पर भी यदि कोई इस संवत् का प्रवर्त्तक मालवाधिपति शकारि विक्रमादित्य को न माने और उसकी उत्पत्ति ईसा की छठी शताब्दी में बतलाने की चेष्टा करे तो इसे हठ और दुराग्रह के सिवा क्या कहा जा सकता है।"

"इस प्रकार यदि शकारि विक्रमादित्य का होना ई० पू० ५७ में साबित होता है तो कालिदास का समय भी वही माना जाना युक्ति संगत होगा।"

इस प्रकार 'कालिदास' के काल निर्णय पर दो विचार धाराएं विशेष रूप से प्रचलित हैं जिनका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं।

कालिदास का साहित्यक गौरव

कालिदास के साहित्यिक गौरव के विषय में सुप्रसिद्ध विद्वान और दार्शनिक अरविन्द घोष ने मदरास के इण्डियन रिव्यू नामक पत्र में एक लेख लिखते हुए लिखा था कि—

"वाल्मीकि, व्यास और कालिदास के ग्रन्थों में प्राचीन भारत का इतिहास विद्यमान है। ये तीनों महापुरुष आत्मा की भिन्न २ तीन अवस्थाओं या शक्तियों के उदाहरण हैं। ये शक्तियाँ नैतिक, मानसिक और पाञ्चभौतिक हैं। वाल्मीकि के काव्यों में भारतीयों की नैतिक अवस्था के, व्यास के काव्यों में मानसिक अवस्था के और कालिदास के काव्यों में पाञ्चभौतिक अवस्था के चित्रण हैं।"

"कालिदास की तर्कना शक्ति बहुत अच्छी थी। शृंगार और करुणा रस के वर्णन में वे सिद्ध हस्त थे। कालिदास में प्रधान गुण यह था कि वे प्रत्येक काव्योपयोगी सामग्री को—काव्य के प्रत्येक अंश को—बड़े ही कौशल से अत्यन्त सुन्दर बना देते थे। अपने वर्णनीय विषयों की हूबहू मूर्ति को पाठकों के सम्मुख जीती जागती खड़ी कर देने का जैसा कौशल कालिदास में पाया जाता है वैसा दूसरे किसी कवि में नहीं पाया जाता।"

इसी शक्ति के साथ अपनी सौन्दर्य कल्पना की सर्वश्रेष्ठ शक्ति को मिलाकर वे अपने काव्य चित्रों की रचना करते थे। वे जैसे उत्तम विषय की कल्पना कर सकते थे वैसे ही उसे खूब सूरती के साथ सम्पन्न कर देते थे।"

"उन्होंने संस्कृत भाषा के भण्डार से बहुत ही ललित छन्दों और भावपूर्ण सरल शब्दों को चुनकर अपनी कविता में उपयोग किया है। इससे उनकी रचना देववाणी की तरह मालूम होती है। कालिदास की भावोद्बोधन शक्ति इतनी उत्तम थी कि पिछले हजार वर्ष के संस्कृत साहित्य में उसी की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है।"

"कालिदास का कुमार सम्भव बहुत उत्तम काव्य है। उसमें शिव और पार्वती के विवाह की कथा है। वास्तव में कवि ने उसमें पुरुष और प्रकृति के संयोग का चित्र बनाया है। इस काव्य में कवि ने स्पष्ट रूप से बतलाया है कि जीवात्मा किस प्रकार ईश्वर की खोज करता है और कैसे उसे प्राप्त करता है। इस तरह कवि ने जीवन सम्बन्धी दो बड़े आध्यात्मिक और दार्शनिक तत्वों को इस काव्य के द्वारा प्रकट कर दिया है।"

कालिदास की रचनाएँ

कालिदास की रचनाओं पर बंगला में राजेन्द्रनाथ देव विद्याभूषण नामक विद्वान ने "कालिदास" नामक एक अत्यन्त महत्वपूर्ण समालोचनात्मक ग्रन्थ की रचना की थी। इसमें उन्होंने बतलाया हैं कि—

रघुवंश—कालिदास के काव्यों में रघुवंश सबसे श्रेष्ठ है। इसकी श्रेष्ठता का कारण यह है कि इसमें इस महाकवि ने सृष्टि नैपुण्य का सबसे अच्छा चित्र खींचा है। इस काव्य में रघुवंश के संस्थापक रघु का जन्म, उसकी दिग्विजय

का वर्णन, इन्दुमती का स्वयंवर, रघु पुत्र अज का इन्दुमती से विवाह, विमान से एक फूलमाला का गिरना और उसकी चोट से इन्दुमती का मरण, अजका विलाप तथा दसवें सर्ग से लेकर पन्द्रहवें सर्ग तक रामचन्द्र के चरित्र का वर्णन तथा अन्तिम चार सर्गों में नाना राजाओं के चरित्र का सरसरी वर्णन और अन्तिम उन्नीसवें सर्ग में अग्निवर्ण के कामुक चरित्र का बड़ी मार्मिकता से वर्णन किया गया है। रघुवंश की सारी कथा विशेषकर "रघु" "राम" और "अग्निवर्ण" के इर्दगिर्द घूमती रहती है। इनमें से "रघु" शक्ति और साम्राज्य का प्रतीक है। रामचन्द्र कर्त्तव्यशीलता और प्रजारंजन के प्रतीक हैं, और अग्निवर्ण कामुकता, विलास और वासनाओं का ज्वलन्त प्रतीक है।

मेघदूत—मेघदूत में भी कालिदास की प्रतिभा का सर्वतोमुखी विकास हुआ है। अभिशाप से ग्रसित होकर यक्ष अपनी प्रिय यक्षिणी से एक वर्ष के लिए अलग कर दिया जाता है। इस विरह काल को यक्ष बड़ी कठिनाई से व्यतीत करता है मगर जब आषाढ़ के मेघ गरजने लगते हैं और बिजलियाँ चमकने लगती हैं तब तो उसका विरह कातर हृदय एकदम विकल हो उठता है और वह मेघ को दूत बनाकर उसके द्वारा अपनी प्रेमिका को जो सन्देश भेजता है वही सन्देश महान् कवि की कल्पनाशक्ति से मेघदूत के रूप में प्रकट हुआ है। पूर्वमेघ में उसने मेघ को अपनी प्रेयसी के पास पहुचने तक सारे मार्ग का वर्णन किया है। इस वर्णन में भारत की तत्कालीन भौगोलिक परिस्थिति का दिग्दर्शन हो जाता है और उत्तर मेघ में प्रिया के वासस्थान अलकापुरी का, अपनी प्रेयसी यक्षिणी का, करुण मदाक्रान्ता में मधुर गति से जो वर्णन किया गया है उसमें उसके हृदय की वेदना झरने की तरह शत, सहस्रमुखी होकर बह निकलतो है। संसार के लिरिक काव्यों में मेघदूत वास्तव में एक बेजोड़ काव्य है।

अभिज्ञान शाकुतन्ल—नाटक के क्षेत्र में कालिदास का 'अभिज्ञान शाकुन्तल' संसार के नाट्य क्षेत्र में अपना श्रेष्ठ अस्तित्व रखता है। इसके वर्णन की सुकुमारता, कथा वस्तु का गठन, चरित्र चित्रण की उच्चता, कविता का धारा प्रवाह और शैली की मनोरमता सभी अनुपम है। इस नाटक को पढ़ते-पढ़ते जर्मनी का महान कवि गेटे हर्षोन्मन्त होकर नाचने लगा। और कह उठा—

> Wouldst thou see springs blossoms—
> and the Fruits of its decline
> Wouldst thou see by what the souls
> enraptured feasted fed
> Wouldst thou see have this earth and
> heaven in one Sole name combine
> I name thee Oh Sakuntla! and all
> Atonce is said

विक्रमोर्वशी—विक्रमोर्वशी का कथानक ऋग्वेद के पुरुरवा और उर्वशी की कहानी से लिया गया है। उर्वशी को देखकर राजा पुरुरवा प्रेम में पागल हो जाता है। इन्द्र के आदेश से कुछ काल के लिए उर्वशी उसकी प्रेम पिपासा को शान्त करती है, मगर जब उसकी अवधि पूरी हो जाती है तब प्रणय सुख जनित राजा की मोहनिद्रा एकाएक टूटती है और पुरुरवा का दिगन्तव्यापी विलाप दिगन्त में छा जाता है। करुणा की एक वेगवती धारा नाटक में वह निकालती है।

माल विकाग्नि मित्र—इस नाटक में शुंग वंशीय सम्राट् पुष्यमित्र के पुत्र विदिशा के राजा अग्निमित्र के साथ मालविका के प्रणय सम्बन्ध का उल्लेख है।

ऋतु संहार—इसमें छहो ऋतुओं का काव्यमय भाषा में वर्णन है—

बंगला के प्रसिद्ध नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय लिखते हैं—

'हमारा जन्म सार्थक है, क्योंकि जिस देश में कालिदास और भवभूति ने जन्म लिया था उसी देश में हम पैदा हुए हैं, और जिस भाषा में इन महती रचनाओं की सृष्टि हुई है वह हमारी ही भाषा है। अनेक शताब्दियों के पहले इन दोनों महा कवियो ने जिस नारी चरित्र का चित्र खींचा था वे शकुन्तला और सीता हमारी गृहलक्ष्मी—स्वरूपिणी होकर, हमारे गार्हस्थ्य जीवन की अधिष्ठात्री देवी होकर, आज भी हिन्दुओं के घरों में विराज रही है। हम समझते हैं, हम जानते हैं, हम अनुभव करते हैं कि ये दोनों चरित्र जगत् में केवल हमारी ही सम्पत्ति है और

किसी की नहीं। एक साथ इतनी लज्जा से झुकी हुई, इतनी सुन्दरी, इतनी पवित्र, इतनी भोली, इतनी कोमल हृदया, इतनी अभिमानिनी, इतनी निःस्वार्थ सेविका और इतनी कष्ट सहिष्णु ये दोनों रमणियां हमारी ही हैं और किसी की नहीं। धन्य कालिदास! धन्य भवभूति! (अभिज्ञान शाकुन्तल का पूरा वर्णन इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में देखें।)

कालिकाचार्य्य

[illegible] एक प्रसिद्ध जैनाचार्य्य, जिनका समय ई० स० पूर्व ७४ में माने जाता है।

उस समय उज्जयिनो नगरी में "गर्दभिल्ल" नामक राजा राज्य करता था। जैन परम्पराओं के अनुसार यह राजा बड़ा कामी और परदारालोलुप था। जैनाचार्य्य कालिकाचार्य्य की गृहस्थ अवस्था की बहन "सरस्वती" उस समय अपने रूप और लावण्य के लिए बड़ी प्रसिद्ध थी। उसके सौन्दर्य्य की कीर्ति को सुनकर राजा गर्दभिल्ल ने सरस्वती का अपहरण कर लिया।

इससे कालिकाचार्य्य बड़े दुखी हुए। उन्होंने राजा गर्दभिल्ल से अपनी बहन को छोड़ने की बड़ी प्रार्थना की मगर राजा गर्दभिल्ल ने उनकी प्रार्थना पर कोई ध्यान नहीं दिया। तब हिन्दुस्तान के दूसरे राजाओं के पास भी वे गये कि किसी प्रकार गर्दभिल्ल पर प्रभाव डालकर उनकी बहन को मुक्ति दिला दे। मगर किसी भी राजा ने गर्दभिल्ल से दुश्मनी लेना स्वीकार नहीं किया।

तब लाचार होकर कालिकाचार्य्य ईरान के समोप राज्य करने वाले शक राजाओं के पास गये और उनको अपनी विपत्ति कथा सुनाई। इन शक राजाओं ने उस समय काठियावाड़ पर अधिकार कर लिया था और वे आगे बढ़ना चाहते थे। कालिकाचार्य्य की कहानी को सुनते ही उन्होंने उज्जैन पर आक्रमण करने की योजना बनाली और उज्जैन पर आक्रमण कर, गर्दभिल्ल को पद भ्रष्ट कर, उज्जैन पर अधिकार कर लिया और कालिकाचार्य्य की बहन सरस्वती उन्हें वापस दिलवा दी। भारत के कई इतिहासकारों ने कालिकाचार्य्य के इस कार्य्य को देशद्रोह कहकर उनकी निन्दा की है।

विक्रमादित्य शायद इसो राजा गर्दभिल्ल का पुत्र होगा। जिसने ई० पूर्व ५७ में उज्जैन से शकों को निकाल कर वापस अपने राज्य को प्राप्त किया और शकारि की उपाधि ग्रहण कर अपना संवत् चलाया।

धार्मिक क्षेत्र में कालिकाचार्य्य एक युग प्रवर्त्तक आचार्य्य थे। इन्होंने जैन सूत्रों के पद्य बद्ध प्रकरणों का अनुवाद करके 'गण्डिकानुयोग' की प्रवृत्ति जैन साहित्य में चलाई। और प्रथमानुयोग के नाम से एक कथा विषयक अमर सिद्धान्त ग्रन्थ की रचना की। इसी प्रकार इन्होंने लोकानुयोग में 'कालक-संहिता' नामक निमित्त विषय की एक संहिता की रचना की थी।

कालिकाचार्य्य का विहार क्षेत्र भी बहुत विस्तृत था। पूर्व में पाटलि पुत्र तक जाकर उन्होंने संघ को अपने कर्त्तव्य का ज्ञान कराया। दक्षिण में प्रतिष्ठान पुर में चातुर्मास कर वहां पंचमी से चतुर्थी को सांवत्सरिक पर्व की घोषणा की और उत्तर पश्चिम में फारस की खाड़ी तक पहुँच कर उन्होंने शाही राजाओं पर अपना प्रभाव डाल कर उन से सहायता प्राप्त कर गर्दभिल्ल का नाश करवाया।

कालिका चार्य की मृत्यु अनुमानतः ई० सन् पूर्व ६२ में हुई।

कालिनिन

(मिखाइल इवानोविच कालिनिन)

सोविएट रूस में कम्यूनिस्ट दर्शन के एक सुप्रसिद्ध व्याख्याकार। कम्यूनिस्ट सिद्धान्तों की व्याख्या पर सन् १६२६ से सन् १६४५ तक इनके कई भाषण कम्यूनिस्ट संगठनों में हुए।

मिखाइल इवानोविच कालिनन ने सोवियट राज्य के सर्वोच्च संगठन के नेता के रूप में २५ वर्षों से भी ज्यादा समय तक अथक रूप से काम किया। उन्होंने सोवियट युवकों की कम्यूनिस्ट शिक्षा की समस्याओं पर बहुत अधिक ध्यान दिया। सोवियट युवकों को उन्होंने जो सीख दी वह बहुत ही भावपूर्ण और सरल है। इस शिक्षा में कालिनिन के अनुभवपूर्ण जीवन की झाँकी देखने को मिलती है।

काल्डर (पीटर रिची काल्डर)

इंग्लैंड में विज्ञान के जनसम्पर्क अधिकारी और प्रसिद्ध लेखक। जिनका जन्म सन् १९०६ में स्कॉटलैण्ड में हुआ।

पीटर रिची काल्डर के पिता स्कॉटलैण्ड की एक जूट मिल में मजदूर थे। जो आगे जाकर अपनी योग्यता से एक कारखाने के मैनेजर बन गये।

काल्डर ने १५ वर्ष की उम्र में ही शार्टहैण्ड लिपि का ज्ञान प्राप्त कर हाई स्कूल छोड़ दिया और प्रेस-रिपोर्टर का काम करने लगे। उन्होंने लन्दन के 'डेलीन्यूज' नामक पत्र में सन् १९३० तक वैज्ञानिक अनुसन्धान के रिपोर्टर का काम किया।

प्रारम्भ से ही "काल्डर" को वैज्ञानिक विषयों में बड़ी अभिरुचि थी और वे इस विषय का ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रसिद्ध वैज्ञानिकों के सम्पर्क में रहते थे। और 'डेली हेरल्ड' पत्र में नियमित रूप से वैज्ञानिक विषयों पर लेख भी लिखते थे।

काल्डर की पहली रचना "वर्थ ऑफ दी फ्यूचर" सन् १९३४ में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में विज्ञान की अभी तक की उपलब्धियों का विवरण था।

द्वितीय महायुद्ध के समय उन्होंने अपने लेखों तथा "दि लेसन ऑफ लन्दन" "कैरी आन लन्दन" नामक पुस्तकों के द्वारा ब्रिटिश जनता की शूरता, उस पर आने वाली मुसीबतों और नागरिक सुरक्षा की अपर्याप्त तैयारी का बड़ा ज्वलन्त चित्र खीचा। इसके परिणामस्वरूप वे विदेश विभाग की प्रचार शाखा के योजना अधिकारी बनाये गये।

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् काल्डर के जीवन का सबसे महत्वपूर्ण अध्याय प्रारम्भ हुआ। १९४७ में वे यूनेस्को में ब्रिटिश प्रतिनिधि मण्डल के सदस्य बनाये गये। इसी वर्ष विश्व-खाद्य कृषि संगठन द्वारा बुलाये गये 'अकाल निवारक संघ' के वे विशेष सलाहकार बनाये गये। इसी सिलसिले में उन्होंने भूख की समस्या पर "कामन सेन्स अबाउट ए स्टार्विङ्ग" नामक प्रसिद्ध और प्रमाणिक पुस्तक प्रकाशित की।

प्रो० काल्डर की सबसे महत्वपूर्ण और प्रसिद्ध रचना "आफ्टर दी सेवेंथ डे" है। इस ग्रन्थ में उन्होंने मानव के अभी तक के बौद्धिक विकास, अणुयुद्ध, और जन संख्या के विस्तार की विभीषीका का वर्णन करके यह विश्वास प्रकट किया है कि विज्ञान के द्वारा विश्वमें स्वर्ण युग की स्थापना की जा सकती है। इसी प्रकार वैज्ञानिक विषयों पर उन्होंने बीस से अधिक महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखी हैं। जिनका संसार की उन्नीस भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।

इन पुस्तकों के द्वारा उन्होंने विज्ञान के कठिन टैकनिकल विषयों को साधारण सीधी भाषा में लिखकर जनगम्य बना दिया है। इसके उपलक्ष्य में सन् १९६० में उन्हें "कलिंगपुरस्कार" प्राप्त हुआ।

सन् १९६१ में एडिनबरा विश्वविद्यालय ने उनको अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार का प्रोफेसर नियुक्त किया। मगर दिक्कत यह थी कि प्रोफेसर होने के लिए उनके पास किसी भी प्रकार की कोइ डिग्री नहीं थी। वे तो केवल हाई स्कूल पास कर कर्मक्षेत्र में निकल पड़े थे और विधान के अनुसार बिना डिग्री के कोई व्यक्ति विश्व-विद्यालय में प्रोफेसर नहीं बन सकता था अन्त में एक बहुत पुराने कानून के आधार पर विश्वविद्यालय ने उन्हें एम० ए०. की डिग्री प्रदान की और इस प्रकर यह वैधानिक बाधा दूर की गई।

कालेलकर (दत्तात्रय बालकृष्ण)

भारतीय तत्वज्ञान और गान्धी सिद्धान्त के अधिकारी प्रवक्ता। शिक्षाशास्त्री और पत्रकार काका कालेलकर। जिनका जन्म सन् १८८५ ई० में महाराष्ट्र के सतारा नामक स्थान पर हुआ।

काका कालेलकर की शिक्षा पूना के सुप्रसिद्ध फर्गुसन कालेज में हुई। पूना उस समय भारतवर्ष की हिंसात्मक क्रान्तिकारी गति विधि का प्रमुख केन्द्र बना हुआ था और वहाँ ऐसी राजनैतिक संस्थाएं थीं जो हिंसात्मक उपायो से अंग्रेजी राज्य को उखाड़ फेंकना चाहती थी। काका कालेलकर भी ऐसी संस्थाओं के सम्पर्क में आये मगर उनके जीवन पर विशेष प्रभाव लोकमान्य तिलक और स्वामी विवेकानन्द का पड़ा।

बम्बई विश्वविद्यालय से बी० ए० की डिग्री प्राप्त कर इन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश किया। शुरूशुरू में कालेलकर बेलगांव के गणेश विद्यालय के प्रधान अध्यापक की जगह काम करने लगे। इस संस्था के बन्द हो जाने पर इन्होंने बड़ौदा के गंगानाथ सार्वजनिक विद्यालय के प्रिंसिपल के स्थान पर काम करना प्रारम्भ किया, मगर इस संस्था की राष्ट्रीय गतिविधि अंग्रेज अधिकारियों को फूटी आँख भी नहीं सुहाती थी, परिणाम स्वरूप बड़ौदा नरेश पर दबाव डालकर उन्होंने इस संस्था को बन्द करवा दिया।

संस्था के बन्द होजाने पर भी कालेलकर पुलिस की निगाहों के हमेशा शिकार बने रहे और हमेंशा खुफिया पुलिस इन्हें तंग करती रही। एक बार मौका पाकर खुफिया पुलिस को चकमा देकर ये गायब हो गये और एक दाढ़ी वाले साधु के रूप में हिमालय के प्रसिद्ध स्थानों का भ्रमण करने लगे। उनका यह भ्रमण सत्य और अध्यात्म विद्या की खोज का भ्रमण था।

सन् १९१४ में कालेलकर गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के शान्ति निकेतन में पहुँच गये और वहाँ दंभू बाबू के नाम से अध्यापन का काम करने लगे।

कुछ समय पश्चात् अपनी दक्षिणी अफ्रीका की लड़ाई को समाप्त करके महात्मा गांधी विश्राम करने के लिए शांति निकेतन में आये। यहीं पर काका कालेलकर, महात्मा गांधी के सम्पर्क में आये। कुछ दिनों तक के इस सम्पर्क में जब जीवन को सब समस्याओं का समाधान उन्हें गांधी जी के सिद्धान्तों में मिल गया तब उन्होंने उनके नेतृत्व में काम करना स्वीकार कर लिया और तब से बराबर ३३ वर्ष तक उन्होंने महात्मा गांधी के नेतृत्व में आजादी की लड़ाई पूरी निष्ठा के साथ लड़ी।

केवल आजादी की लड़ाई में ही इन्होंने गांधी जी का साथ नहीं दिया मगर पूरी गांधी विचारधारा का पारदर्शी ढंग से अध्ययन किया। इनका अध्ययन इतना गहरा है कि गांधी विचार धारा के जो चार पारदर्शी तत्वचिंतक माने जाते हैं उनमें एक नाम इनका भी है। इन चार तत्व चिंतकों के नाम महादेव भाई देसाई, विनोबा भावे, किशोर लाल मश्रुवाला और काका कालेलकर हैं।

गांधी विचार धारा के प्रमुख प्रवक्ता होने के अतिरिक्त काका कालेलकर एक प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री, पत्रकार और साहित्यकार भी हैं। महात्मा गाँधी के नवजीवन और यंग इण्डिया पत्रों का इन्होंने बड़ी योग्यता से सम्पादन किया। गांधी जी द्वारा स्थापित गुजरात विद्यापीठ नामक राष्ट्रीय विद्यालय के ये आठ वर्ष तक उप कुलपति रहे।

इसी काल में काका कालेलकर ने साहित्य के क्षेत्र में भी अपनी बहुमूल्य सेवाएं अर्पित की। मातृभाषा न होने पर भी गुजराती भाषा में इन्होंने अपनी प्रतिभा का का पूर्ण प्रकाशन किया। इनकी गुजराती रचनाएं इतनी लोकप्रिय हुई कि गुजरात के प्रत्येक विद्याप्रेमी घर में उनका प्रचार हुआ, और मैट्रिक से लेकर एम० ए० क्लासों तक के पाठ्य क्रम में वे स्वीकार हुई।

गुजराती के अतिरिक्त हिन्दी और मराठी भाषाओं में भी इनकी रचनाएँ बड़ी लोकप्रिय हुई। इन तीनों भाषाओं तथा अंग्रेजी में अभी तक उन्होंने करीब ५० ग्रन्थों की रचना की है। महाकवि रवीन्द्रनाथ की गीताञ्जलि पर इन्होंने तीन खण्डों में मराठी भाषा में भाष्य किया है।

काका कालेलकर भारतीय बुनियादी तालीम बोर्ड, हिंदुस्तानी प्रचार सभा, गांधी विचार परिषद इत्यादि अनेक संस्थाओं के अध्यक्ष रह चुके हैं। देश को स्वाधीनता की लड़ाई में कई बार वे जेलों की यात्रा भी कर चुके हैं।

कालेवाला

फिनलैण्ड के साहित्य का एक वीर काव्य, जिसका संग्रह एलियस लौनराट नामक विद्वान ने किया। इस काव्य में 'कालेवा' और पोहयाला नामक दो जातियों की लड़ाइयों का वर्णन है। इसके शब्द चित्र अत्यन्त हृदयग्राही और मार्मिक हैं। फिनलैण्ड के साहित्य और संगीत पर इस वीर काव्य का बड़ा प्रभाव पड़ा। इसकी रचना सन् १८३५ में हुई।

क्लाइव राबर्ट

भारतवर्ष में अंग्रेजी सत्ता का प्रथम प्रतिष्ठाता। जिसका जन्म सन् १७२५ की २९ सितम्बर को ग्रेटब्रिटेन के श्राप

शायर (Shropshire) के मारकेट ड्रेटन नामक स्थान में हुआ और मृत्यु सन् १७७४ की २२ नवम्बर को कुछ लोगों के अनुसार आत्महत्या के द्वारा हुई।

बचपन में क्लाइव अत्यन्त उद्दण्ड, नटखट और स्वेच्छाचारी था। इसने अपनी स्कूल के कुछ आवारा लड़कों की एक जमात बना ली थी। ये लोग मारकेट ड्रेटन के बाजार की दुकानों में कभी कभी डाके भी डालते थे। इसलिए इनके उपद्रव से बचने के लिए वहाँ के दुकानदारों को इस जमात को रोजाना कुछ पैसे देना पड़ते थे।

अपने पुत्र की ऐसी हालत से तंग आकर क्लाइव के पिता ने उसको ईस्ट इण्डिया कम्पनी में ४०) मासिक की एक क्लर्क की नौकरी दिलवाकर मद्रास भेज दिया। किसी प्रकार सन् १७४४ में मद्रास पहुँचकर इसने क्लर्की का काम प्रारम्भ किया।

उस समय अंग्रेजों और फ्रान्सीसियों के बीच पूरा तनाव पैदा हो रहा था और फ्रांसीसियों की शक्ति बढ़ी हुई थी। जिसके फल स्वरूप मारीशस के फ्रेंच्च गवर्नर लैबर डॉन ने मदरास पर आक्रमण करके वहाँ अधिकार कर लिया और अंगरेजों ने वहाँ से भागकर सेण्ट डेविड के किले में आश्रय ग्रहण किया।

मगर फ्रेंच लोगों ने अंगरेजों का पीछा करते हुए सेण्ट डेविड के किले पर भी घेरा डाल दिया। इस कठिन समय में क्लाइव ने एक वीर सैनिक की तरह हथियार ग्रहण करलिये और जब तक एडमिरल ग्रिफिन के द्वारा बाहर से सहायता प्राप्त न हुई तब तक उसने बड़े साहस से सेण्ट डेविड दुर्ग की रक्षा की।

सेण्ट डेविड की रक्षा के इस उद्योग में क्लाइव की काफी ख्याति हुई और उसे कम्पनी की ओर से एक प्रतिष्ठा सूचक पद भी मिला।

इसके बाद क्लाईव कलकत्ता जाकर वहाँ कम्पनी का काम करने लगा।

क्लाइव की भाग्योन्नति का दूसरा अवसर तब आया जब सन् १७४८ में दक्षिण के निजाम की मृत्यु हो गई। और फ्रेंच गवर्नर डुप्ले ने मिरजा पाहजंग को दक्षिण का निजाम और चन्दा साहब को कर्नाटक का नवाब बनादिया।

मगर अंगरेजों ने चन्दा साहब को कर्नाटक का नवाब मानने से इन्कार कर दिया और करनाटक के भूतपूर्व नवाब के लड़के मुहम्मद अली को करनाटक का वास्तविक अधिकारी घोषित कर दिया, और उसे त्रिचनापल्ली के किले में बिठा दिया। यह सुनकर चन्दा साहब ने एक बड़ी सेना के साथ त्रिचना पल्ली पर घेरा डाला दिया।

तब मदरास के गवर्नर ने क्लाइव को ५०० सेना देकर अर्काट विजय करने के लिए भेजा। अर्काट के युद्ध में क्लाइव ने जिस साहस और धैर्य्य का परिचय दिया उससे उसकी कीर्ति बहुत बढ़ गई। सिर्फ पाँच सौ सैनिकों के द्वारा उसने अर्काट के रक्षक दो तीन हजार सिपाहियों को परास्त कर दुर्ग पर अधिकार कर लिया। उस दुर्ग की रक्षा के लिए चन्दा साहब ने अपने पुत्र राजा साहब के मातहत चार पाँच हजार सेना को भेजा तो किले के अन्दर से क्लाइव के सैनिकों ने गहरी मार-मारकर इस सेना को भी मार भगा दिया। इस सारी लड़ाई में उसके केवल छ सैनिक मारे गये।

इस विजय से क्लाइव की कीर्ति सब दूर फैल गई। इसके कुछ समय पश्चात् एडमण्ड मास्कलन की पुत्री मार्गरेट से क्लाइव का विवाह हुआ और वह इस देश से वापस इंग्लैण्ड चला गया।

सन् १७५५ में क्लाइव दूसरी बार भारतवर्ष में कम्पनी की सम्पूर्ण सेनाओं का लेफ्टिनेंट कर्नल बनकर आया।

दूसरी बार यहाँ आने पर क्लाइव ने कम्पनी के राज्य का विस्तार करने के लिए बड़े-बड़े राजनैतिक दाँव खेले और सब में पूर्ण सफलता प्राप्त की। बंगाल के नबाब अलीवर्दीखाँ की मृत्यु हो जाने पर जब नबाब सिराजुदौला ने अंग्रेजों के खिलाफ कड़ा रुख अपनाया तो क्लाइव ने सिराजुदौला के प्रधान सेनापति मीरजाफ़र को तथा सेठ अमीचन्द को गुप्त रूप से अपनी ओर मिलाकर विश्वासघात के द्वारा प्लासी की लड़ाई में सिराजुदौला की ५० हजार सेना को पराजित कर मीरजाफ़र के लड़के से सिराजुदौला का बध करवा दिया और अंग्रेजों की कठपुतली मीरजाफर को बंगाल का नबाब बना दिया।

गद्दीपर बैठते ही मीरजाफ़र ने क्लाइव की सलाह से हिन्दू राजाओं, को हटाकर उनके स्थान पर मुसलमानों को नियुक्त करना प्रारम्भ किया। जिससे सारे हिन्दू राजा मीर जाफ़र के विरुद्ध हो गये।

इसी समय क्लाइब को सारे भारतवर्ष में अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना की कल्पना आई और उसने ७ जनवरी सन् १७५९ को इंग्लैण्ड के प्रधान मंत्री बिलियम पिट को एक 'पत्र' भेजा। जिसका कुछ अंश इस प्रकार है—

'अंग्रेजी फौज की कामयाबी के जरिये एक महान् क्रान्ति इस देश में की जाचुकी है। उस क्रान्ति के बाद एक संधि की गई है जिससे कम्पनी को भारी फ़ायदे हुए हैं। मुझे मालूम है कि इन सब बातों की तरफ अंग्रेज जाति का ध्यान आकर्षित हो चुका है। किन्तु मौका मिलने पर अभी बहुत कुछ किया जा सकता है। दो साल की मेहनत और तजुर्बे से मैंने इस देश की हुकूमत के विषय में और यहां के लोगों के स्वभाव के सम्बन्ध में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया है। उससे मैं साहस के साथ कह सकता हूँ कि ऐसा मौका जल्दी ही आने वाला है। क्योंकि मौजूदा नवाब बूढ़ा है और उसका लड़का जालिम और निकम्मा है। ऐसी हालत में केवल दो हजार अंग्रेजों की छोटी-सी सेना हमें दोनों ओर से बेखटके कर देगी।

'हिन्दुस्तान के लोगों को अपने राजाओं के प्रति किसी प्रकार का प्रेम नहीं है। इसलिए इस काम में हमें कोई कठिनाई नहीं होगी। इतना अवश्य है कि बिना अंग्रेज जाति की सहायता के अकेली कम्पनी इतने बड़े राज्य की व्यवस्था नहीं कर सकती''विचारणीय बात यह है कि यह सारा नक्शा अपनी मातृभूमि पर बिना किसी प्रकार को बोझ डाले बनाया जा सकता है।"

इस के बाद सन् १७६० में क्लाइव वापिस इंग्लैण्ड चला गया और सन् १७६५ में तीसरी बार फिर भारत आया। इससे मालूम होता है कि भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की कल्पना करने में, उसकी नींव डालने में और उसकी नींव को मजबूत बनाने में क्लाइव का कितना गहरा हाथ था।

पर कम्पनी की स्थिति मजबूत करने के साथ-साथ क्लाइव ने अपना निजी धन बनाने में भी कसर न रक्खी। इस धन से क्लाइव ने शार्पशायर, सरे इत्यादि स्थानों अपनी बड़ी-बड़ी इमारतें बनवा डालीं।

इन सब बातों से इंग्लैण्ड में उसकी बड़ी निन्दा होने लगी। नवाब लोगों से उसने जो धन लूटा था और अमीचन्द के साथ उसने जैसा व्यवहार किया था उसकी चर्चा पार्लमेंट में सरे आम होने लगी। तब पार्लमेंट ने क्लाइव के सारे केस की जांच के लिए एक कमेटी नियुक्त की। इस कमेटीने उससे ऐसे टेढ़े-मेढ़े सवाल किये कि क्लाइव भन्ना उठा और उसने कहा—'कमेटी मुझसे इस प्रकार के प्रश्न कर रही है जैसे किसी भेड़ बकरी चुराने वाले से किये जाते हैं।' पर इससे कमेटी के रुख में कोई फ़र्क नहीं आया और अन्त में पार्लमेंट ने क्लाइव को मीरजाफर से गैरकानूनी धन हड़पने के अपराध में अपराधी करार दिया।

इन सब बातों का क्लाइव के मनपर ऐसा भयङ्कर असर पड़ा कि कई इतिहास कारों के मत से उसने सन् १७७४ में जहर खाकर आत्महत्या करली। उस समय उसकी उम्र केवल ४९ वर्ष की थी।

कालूराम जैनाचार्य

जैन श्वेताम्बर तेरा पंथी सम्प्रदाय के आठवें धर्माचार्य।

करीब ढाई सौ, तीन सौ वर्ष पहले श्वेताम्बर जैन स्थानकवासी सम्प्रदाय में "भिक्खू" नामक एक साधु हुए। ये एक मौलिक विचारक और तत्वचिंतक व्यक्ति थे। उस समय के प्रचलित विश्वासों और शास्त्र के किये जाने वाले अर्थों पर उन्हें कुछ शङ्का हुई और उन्होंने इनका एक नवीन और मौलिक ढंग से विवेचन करना प्रारम्भ किया और अपना एक स्वतंत्र पंथ "तेरापन्थ" के नाम से स्थापित किया।

जैन धर्म में दान और दया की अभी तक जिस रूप में व्याख्या होती आ रही थी आचार्य भिक्खू ने उसे गलत बताया और इन विषयों की व्याख्या पर उन्होंने एक नवीन विचारधारा का निर्माण किया। इस प्रकार जैन धर्म में चले आने वाले अनेक पंथों में एक नवीन पंथ की ओर वृद्धि हुई।

आचार्य भिक्खू के सम्प्रदाय का विशेष स्वागत बीकानेर स्टेट के थली प्रान्त में विशेष रूप से हुआ। जहाँ पर इस तेरा पंथ के हजारों अनुयायी बन गये।

आचार्य भिक्खू की परम्परा में आठवें स्थान पर आचार्य कालूराम पूज्य हुए। ये बड़े प्रभावशाली व्यक्तित्व के धर्माचार्य थे। राजस्थान के जिस स्थान पर इनका चातुर्मास होता था उस स्थान पर कलकत्ते से इनके हजारों भक्त स्पेशल ट्रेनों के द्वारा वहाँ पर पहुँच कर इकट्ठा होते थे। और लाखों रुपयों का आगत स्वागत में खर्च होता था।

आचार्य कालूराम के देहान्त के पश्चात् आचार्य तुलसी इस सम्प्रदाय के नवीन आचार्य हुए जो इस समय विद्यमान हैं। आचार्य्य तुलसी भी अत्यन्त विद्वान, शास्त्रज्ञ और समन्वय नीति के पक्षपाती हैं। इन्होंने राजस्थान की संकीर्ण सीमा को छोड़ कर अपने विहार के क्षेत्र में काफी वृद्धि की और कलकत्ता जाकर वहां पर भी चातुर्मास किया। आचार्य तुलसी के भाषण इतने व्यापक होते हैं कि जैनों को छोड़कर अजैन लोग भी उन भाषणों को बड़ी दिलचस्पी से सुनते हैं।

आचार्य तुलसी ने "अणुव्रत संघ" के नाम से एक नवीन संघ की स्थापना की है और उनका कहना है कि अणुव्रत के नियमों पर चल कर ही युद्धोन्माद से ग्रस्त विश्व में शांति स्थापना की जा सकती है।' उनका यह अणुव्रत आन्दोलन पंचशील के सिद्धान्तों पर आधारित है। देश के कई बड़े-बड़े नेताओं ने आचार्य तुलसी से अणुव्रत सिद्धान्तों पर विचारों का आदान-प्रदान कर आचार्य तुलसी के प्रति श्रद्धा और अणुव्रत आन्दोलन के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की है।

काशी (वाराणसी)*

भारत वर्ष की अत्यन्त प्रसिद्ध, प्राचीन और पवित्र नगरी। जिसकी महिमा से भारत का प्राचीन साहित्य भरा पड़ा है।

सुप्रसिद्ध इतिहास कार डॉ॰ मोतीचन्द अपने 'काशी का इतिहास' नामक वृहद् पुस्तक की सुन्दर भूमिका में काशी का परिचय देते हुए लिखते हैं—

'धर्म, शिक्षा, और व्यापार से काशी का घना सम्बन्ध होने के कारण इस नगरी का इतिहास केवल राजनैतिक इतिहास न रहकर एक ऐसी संस्कृति का इतिहास बन गया है जिसमें भारतीयता का पूरा दर्शन होता है। समय के बदलते चलचित्र का स्पष्ट प्रभाव काशी के इतिहास पर भी देख पड़ता है पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि काशी की संस्कृति का जो नकशा प्राचीन काल में बना, वह अनेक परिवर्त्तनों के होते हुए भी मूल में ज्यों का त्यों बना रहा। मध्यकालीन बनावट, गन्दगी, और ठगहारियाँ इत्यादि कमजोरियों के होते हुए भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि बनारस उस सभ्यता का सर्वथा परिपोषक रहा है जिसे हम भारतीय सभ्यता कहते हैं और जिसके बनाने में अनेक मत मतान्तरों और विचारधाराओं का सहयोग रहा है। यह नगरी हिन्दू विचारधारा का केन्द्र तो थी ही मगर यहाँ अशोक के समय में बौद्ध धर्म भी खूब फूला फला। तीर्थंकर पार्श्वनाथ की जन्म भूमि होने के कारण जैन भी इस नगरी पर अपना अधिकार समझते हैं। इस तरह भिन्न-भिन्न धर्मों और संस्कृतियों का पवित्र संगम बन जाने से काशी भारत के कोने-कोने में बसनेवालों का पवित्र तीर्थस्थल बन गई। अगर एक सीमित क्षेत्र में सारे भारत की झांकी लेना हो तो वह काशी में ही देखने को मिल सकती है। विविध भाषाओं के बोलने वाले, नाना वेष भूषाओं के पहनने वाले, तरह-तरह के भोजन करने वाले, तरह-तरह के रीति रिवाज मानने वाले, काशी में सिर्फ एक ध्येय यानी तीर्थ यात्रा के उद्देश्य से न मालूम कितने प्राचीन काल से इकट्ठे होते हैं।...यह निश्चित है कि बहुरूपी भारतीय सभ्यता के समन्वय में काशी का बहुत बड़ा हाथ रहा है है और शायद इसी से काशी के प्रति हिन्दुओं का इतना आकर्षण है।"

काशी नगरी का प्रधान महत्व धर्म, सभ्यता और शिक्षा के एक महान् केन्द्र, पवित्र तीर्थ स्थान और गंगा नदी की वजह से है। राजनैतिक दृष्टि से विशेष कर यह दूसरे बड़े साम्राज्यों का अङ्ग बनकर रही है। कभी मगध

---

* डॉ॰ मोतीचन्द लिखित "काशी का इतिहास" के आधार पर।

साम्राज्य में, कभी कान्यकुब्ज साम्राज्य में और कभी देहली के साम्राज्य में इसका अस्तित्व रहा है। स्वतंत्र रूप से जनपद युग में भारत के सोलह प्रधान जनपदों में इसका भी एक स्वतंत्र अस्तित्व था मगर बाद में यह कौशल जनपद में मिला दी गई। इसलिए राजनैतिक महत्त्व की अपेक्षा काशी का धार्मिक महत्त्व ही सर्वोपरि है।

पुराणों में काशी

काशी के सम्बन्ध में प्राचीन पुराणों में अनेक प्रकार की परम्पराएँ देखने को मिलती हैं। स्कन्द पुराण के अन्तर्गत काशी खण्ड के अनुसार स्वयंभू मनु के समय एक बार ६० वर्ष का भयङ्कर अकाल पड़ा जिससे लोग घर छोड़ कर पहाड़ों पर चले गये और मांस खाकर जीवन-यापन करने लगे। अन्त में ब्रह्मा ने राजा रिपुंजय को जो बड़ा तपस्वी था, काशी का राजा बनाया, जिससे वृष्टि होने लगी और प्रजा सुखी हुई। पर भक्त राजा ने राज-ग्रहण करते समय वचन ले लिया था कि मेरे राज्यकाल में कोई देवता काशी में न रहे। इससे महादेवजी सब देवताओं के साथ मन्दार पर्वत पर चले गये। सहस्रों वर्षों के बाद काशी में आने के लिए उत्सुक देवगणों के लिए काशी का हाल जानने के लिए शिवजी ने चौंसठ योगिनियों को भेजा जो, यहीं आकर रह गईं। इनके बाद सूर्य्य, ब्रह्मा आदि कई देवता आये और सब यहीं रह गये। अन्त में ढुंढिराज गणेश आये जिनके प्रयत्न से रिपुंजय के पुत्र दिवोदास स्वर्ग को गये और सब देवता यहाँ पर बस गये।

त्रेता युग में राजा सुहोत्र के पुत्र काश हुए जिनके पुत्र काश्य या काशिराज ने काशीपुरी बसाई। काश्य के उत्तराधिकारी केतुमान ने इसे अपनी राजधानी बनाया। इसके बाद हर्यश्व और उसके पुत्र सुदेव नामक दो राजाओं को हैहय वंशीय राजाओं ने मार डाला। सुदेवका पुत्र दिवोदास द्वितीय हुआ। जिसने दुर्ग बनवाकर नगरी को सुदृढ़ बनाया।

काशी के पौराणिक इतिहास में राजा दिवोदास का नाम बहुत प्रसिद्ध है। इस राजा के सम्बन्ध में कई प्रकार की घटनाएं पुराणों में देखने को मिलती है।

काशी खण्ड के बांसठवें अध्याय में दिवोदास के सम्बन्ध की एक कथा का उल्लेख करते हुए लिखा है कि—

काशी के राजा दिवोदास ने काशी से "शिव" को छोड़कर सब देवताओं को निकाल दिया। इसका बदला लेने के लिए देवताओं ने काशी को सहायता देना बन्द कर दिया। मगर दिवोदास अपने वचन पर अडिग रहे। अन्त में देवताओं ने दिवोदास को धोखा देने की बात सोची। गणेश ने दिवोदास को इस बात के लिए राजी कर लिया कि अठारह दिन के बाद उत्तर दिशा की ओर से एक तेजस्वी ब्राह्मण आनेवाला है वह उनसे जो कुछ कहे उसकी बात को वे जरूर मान लें। तब अठारहवें दिन स्वयं विष्णु ब्राह्मण का रूप धारण करके दिवोदास के पास आये और उन्होंने दूसरे देवताओं को काशी में आने देने के लिए दिवोदास से आदेश ले लिया।

इस प्रकार की और भी कहानियों से मालूम होता है कि दिवोदास काशी का एक प्रतापी राजा रहा। मगर मध्यदेश का हैहयवंशी राजा भद्रश्रेण्य काशीराज दिवोदास को हमेंशा तङ्ग करता रहता था। तब दिवोदास ने पूरब में गोमती के किनारे एक दूसरा नगर बसाया और वह वहीं रहने लगा। भद्रश्रेण्य ने काशी को जीत लिया और क्षेमेन्द्र नामक राक्षस ने वाराणसी पर अपना अधिकार कर लिया। राजा दिवोदास हैहय राजा दुर्दम के साथ युद्ध करता हुआ मारा गया। इसके बाद दिवोदास के वंश, हैहय वंश और क्षेमेन्द्र वंश में यह संघर्ष एक लम्बे समय तक चलता रहा। दिवोदास के पुत्र प्रतर्दन ने अपना राज्य हैहय वंश से वापस जीत लिया। और प्रतर्दन के पौत्र अलर्थ ने क्षेमेन्द्र को मारकर वाराणसी पर वापस कब्जा कर लिया।

भद्रश्रेण्य की चौथी पुश्त में हैहय वंश में अर्जुन कार्त्त वीर्य्य नामक राजा हुआ, जो अयोध्या के राजा त्रिशंकु और हरिश्चन्द्र का समकालीन था।

सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र का भी काशी से बहुत गहरा सम्बन्ध रहा। ऋषि विश्वामित्र के जिम्मे अपना राजपाट करके वे काशी में ही आकर एक डोम के यहाँ बिके थे। उनकी स्मृति में बना हुआ हरिश्चन्द्र घाट और

उस डोम के वंशज अभी भी काशी में विद्यमान है ऐसा कहा जाता है।

ऐसा समझा जाता है कि राजा प्रतर्दन राजा रामचन्द्र के समकालीन थे। इस वंश का चौबीस पीढ़ी तक राज्य करने के बाद महाभारत के युद्ध में अन्त हुआ।

इन पौराणिक उल्लेखों से पता चलता है कि राजा हरिश्चन्द्र के समय तथा उससे पहले भी काशी एक पवित्र नगरी की तरह भारत में प्रसिद्ध थी।

बौद्ध साहित्य में काशी

बौद्ध-ग्रन्थों तथा जातकों में भी काशी का वर्णन कई स्थानों पर आया है। इनसे मालूम होता है कि बुद्ध के जन्म से कुछ शताब्दियों पहले काशी पर ब्रह्मदत्त-वंश का राज्य था। काशी सोलह जनपदों में एक प्रमुख जनपद था।

बौद्ध जातकों से यह भी पता चलता है कि काशी जनपद और कौशल जनपद में हमेशा संघर्ष चलता रहता था। इनमें कभी एक पक्ष की विजय होती थी, कभी दूसरे पक्ष की। इस प्रकार के संघर्षों में काशी जनपद धीरे-धीरे कमजोर पड़ता गया और ईसा से पूर्व छठी शताब्दी में वह कौशल जनपद में मिला लिया गया।

जिस समय भगवान् बुद्ध ने इसिपट्टन में धर्मचक्र प्रवर्त्तन किया। उस समय काशी में "यश" नामक एक श्रेष्ठि पुत्र रहता था। उसके पास धन और वैभव की कमी न थी। सब ऋतुओं में रहने योग्य अलग-अलग महल उसके लिए बने हुए थे। रात-रात भर नाच-रंग होता रहता था।

एक बार भगवान बुद्ध का उपदेश सुनने वह मृगदाव में पहुँच गया और भगवान बुद्ध का उपदेश सुनकर उसने प्रव्रज्या या दीक्षा ग्रहण की। इसके बाद यश के माता-पिता, उसके रिश्तेदार और मित्रों ने प्रव्रज्या ग्रहण की और फिर तो काशी नगरी में प्रव्रज्या ग्रहण करने की लोगों में जैसे होड़ लग गई।

उसी समय बुद्ध ने अपना यह अमर उपदेश दिया—

"हे भिक्षुओ! बहुजनहिताय, बहुजन सुखाय, लोकों पर अनुकम्पा करने के लिए और देवताओं तथा मनुष्यों का हित करने के लिए विचरण करो। आरम्भ में कल्याण कर, मध्य में कल्याण कर और अन्त में कल्याण कर, धर्म का शब्दों और भावों में उपदेश करके सर्वांश में परिपूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य्य का प्रकाश करो।"

डॉ० मोतीचन्द अपने 'काशी का इतिहास' में लिखते हैं कि—

'वाराणसी से उद्घोषित बुद्ध का यह अमर-सन्देश हजारों भिक्षुओं के द्वारा इस देश के कोने-कोने में फैला। साथ ही साथ नदी, नद और भीषण रेगिस्तानों को पार करता हुआ जापान से लेकर अफगानिस्तान तक और सुवर्ण भूमि से लेकर सिंहल तक फैला था।"

जैन साहित्य में काशी

बौद्ध साहित्य की तरह जैन साहित्य भी काशी सम्बन्धी अनुश्रुतियों से भरा हुआ है। जैन परम्परा के अनुसार उनके पहले तीर्थंकर ऋषभदेव ने काशी नगरी की स्थापना की। जैनियों के तेईसवें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ का जन्म ईसा से आठ शताब्दी और महावीर से २५० वर्ष पूर्व बनारस में ही हुआ था। इनके पिता अश्वसेन बनारस के राजा थे। तीस वर्ष की उम्र में इन्होंने श्रमणधर्म ग्रहण किया और सत्तर वर्ष उपदेश देकर सम्मेद-शिखर पर निर्वाण प्राप्त किया।

सातवें तीर्थंकर "सुपार्श्वनाथ" का जन्म भी काशी के भदैनी मुहल्ले में हुआ था। भगवान् पार्श्वनाथ की जन्मभूमि भेलूपुर और सुपार्श्वनाथ की जन्मभूमि भदैनी—दोनों स्थानों पर विशाल जैन मन्दिर बने हुए हैं।

ग्यारहवें तीर्थङ्कर श्रेयांसनाथ का जन्म सिंहपुरी या सारनाथ में और आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभु का जन्म सारनाथ के पास ही चन्द्रपुरी में हुआ था। इस प्रकार काशी को एक नहीं चार-चार तीर्थंकरों की जन्म-भूमि होने का सौभाग्य प्राप्त है।

इस प्रकार जैन साहित्य में भी 'काशी नगरी' बड़ी पवित्र और पूजनीय समझी जाती है।

इसके पश्चात् मौर्य्य, कण्व, शुंग और आन्ध्र राजवंश के राज्यों में काशी इन साम्राज्यों का एक अङ्ग बन कर रहा।

गुप्त साम्राज्य में काशी

मौर्य्य और शुङ्ग युग से निकल कर काशी जब गुप्त साम्राज्य के स्वर्ण युग में प्रवेश करती है उस समय सचमुच यह नगरी "ज्ञानपुरी" का रूप धारण कर लेती है। इस स्वर्ण युग में जीवन रस से छलछलाती हुई, तेज पूर्ण संस्कृति के साथ-साथ संस्कृत भाषा और साहित्य का चरम उत्कर्ष सामने दिखाई देने लगा। "काशिका" की रचना उसी युग की देन है जिसके कारण काशी के विद्वानों में पाणिनीय व्याकरण का पठन-पाठन जोर पकड़ गया।

डॉ० वासुदेव शरण लिखते हैं कि—"लेकिन काशी जैसे शिक्षा केन्द्र ने जिस क्षेत्र में सबसे अधिक उन्नति की। वह वेदों का अध्ययन और अध्यापन था। इस विषय की जानकारी देने वाली जो मोहरें राजघाट की खुदाई में प्राप्त हुई हैं वे भारतीय शिक्षा के इतिहास में बेजोड़ हैं। इन मुद्राओं की रचना काशी के कल्पनाशील कलाकारों की प्रतिभा का नमूना है। इस मुद्रा पर एक आश्रम का चित्र अंकित किया हुआ है। उसके मध्य में जटाधारी आचार्य खड़े हैं और अपने हाथ के कमण्डुल से वृक्षों को सींच रहे हैं। दोनों ओर ब्रह्मचारी भाव मुद्रा में खड़े हुए हैं यही काशी का ब्रह्मवर्द्धन स्वरुप था।"

"इस युग में काशी के अन्तर्गत ऋग्वेद की शिक्षा के लिए "बृह्वृच्चरण" कृष्ण यजुर्वेद की शिक्षा के लिए "चरक चरण" सामवेद की शिक्षा के लिए "छन्दोग्य चरण" चारों वेदों की शिक्षा के लिए चतुर्विद्य और तीन वेदों की शिक्षा के लिए "त्रिविद्य विद्यालय" चलते थे। सम्भवतः "श्री सर्वत्र विद्य" नामक विद्यालय वेदांगो और शास्त्रों की शिक्षा के लिए था। काशी का जैसा अनुपम उत्कर्ष गुप्तकाल में हुआ वैसा फिर कभी देखने में नहीं आया। धर्म, ज्ञान और अर्थ इन तीनों का अपूर्व समन्वय इस युग की काशी में हुआ और नगर के जीवन पर धर्म-तीर्थ, मोक्षतीर्थ और अर्थतीर्थ के आदर्शों की छाप सदा के लिए अंकित हो गई। जो आज तक काशी के मनस्वी नागरिकों को अनुप्राणित करती हैं।"

गुप्त साम्राज्य के अन्तर्गत इस क्षेत्र की बहुत उन्नति हुई। सम्राट् हर्षवर्द्धन के समय में काशी उसके साम्राज्य का एक महत्वपूर्ण अङ्ग थी। इसी समय प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएनसांग भारतवर्ष में आया और उसने अपने विवरण में काशी का आंखों देखा वर्णन लिखा।

ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी में कलचुरी-राजवंश के राजा कर्णराज ने काशी को विजय किया। इस राजा को प्रबन्ध चिन्तामणि ग्रन्थ में 'काशिराज' नाम से सम्बोधित किया गया है। इस राजा ने काशी में "कर्णभैरव" के मन्दिर का निर्माण करवाया। इसी शताब्दी में बंगाल के पाल वंशीय राजा महीपाल ने भी (संवत् १०८३) काशी में कई मन्दिरों का निर्माण करवाया और धर्मचक्र का जीर्णोद्धार करवाया।

गाहड़वाल राजवंश

ईसाकी बारहवीं सदी में कान्यकुब्ज (कन्नौज) में गाहड़वाल वंश के राजा चन्द्रदेव ने प्रतिहारों की सत्ता समाप्त करके गाहड़वाल-राजवंश का सूत्रपात किया।

गाहड़वाल राजवंश का काशी से बहुत निकटवर्ती सम्बन्ध रहा। रायबहादुर चिंतामणि वैद्य तथा अन्य कई इतिहासकारों के मत से गाहड़वाल राजाओं ने कन्नौज के साथ-साथ काशी को भी अपनी दूसरी राजधानी बनाया। मगर डॉ० मोतीचन्द ने अपने काशी के इतिहास में 'काशी' को ही गाहड़वाल राजवंश की प्रधान राजधानी माना है। फारसी के इतिहासकारों ने भी गाहड़वाल राजाओं को 'काशी के राजा' नाम से ही लिखा है।

गाहड़वाल राजवंश में चन्द्रदेव के पश्चात् मदनपाल और उसके बाद गोविन्दचन्द बहुत प्रतापी हुए। गोविन्दचन्द का विवाह पीठिका के छिक्कौर-वंशीय राजा देवरक्षित की पुत्री कुमारदेवी से हुआ था। कुमारदेवी बौद्धधर्म को मानने वाली थीं। गोविन्दचन्द के समय के चालीस पत्र मिले हैं जिनमें पन्द्रह पत्र केवल बनारस के हैं। गाहड़वाल युग में बनारस की धार्मिक, शैक्षणिक, इत्यादि सभी प्रकार की सर्वतोमुखी उन्नति हुई इस युग में कई मन्दिरों का भी निर्माण हुआ। •

मुसलमानी आक्रमण

गाहड़वाल वंश के राजा जयचन्द्र के समय में काशी पर शाहबुद्दीन गौरी का भीषण आक्रमण हुआ। सन् ११९३ में शाहबुद्दीन गौरी ने चांदावार तथा इटावा की दो

लड़ाइयों में गाहड़वाल राजा जयचन्द को पूर्ण रूप से परास्त कर दिया और उसकी राजधानी काशी में पहुंच कर उसे बुरी तरह लूटा, देव मन्दिरों को तोड़ा और लूट का सामान १४०० ऊँटों पर लादकर ले गया।

गौरी के बाद दिल्ली के तख्त पर गुलामवंश आसीन हुआ। गुलाम वंश के सम्राटों ने बनारस में तोड़े हुए हिन्दू मन्दिरों के अमले से कई मसजिदें बनवाईं। इनमें दारानगर से हनुमानफाटक की सड़क पर अढाई कंगूरेवाली मसजिद प्रधान है। इस मसजिद का गुम्बज दर्शनीय है। इसका निचला भाग हिन्दू-मन्दिरों के अमले से बना है। इस मसजिद के दूसरे मंजिल पर सन् ११९० का एक संस्कृत-लेख लगा है, जिसमें कुछ मन्दिरों और इमारतों के बनने का उल्लेख है।

चौखम्भा मुहल्ले की चौबीस खम्भेवाली मसजिद भी सम्भवतः इसी युग की बनी हुई है। इसी प्रकार राजघाट की मसजिद और पलंगशरीफ के पास की मसजिद भी इसी युग की अर्थात् तेरहवीं सदी के आरम्भ की बनी हुई मालूम होती है।

गुलामवंश के बाद बल्बन-वंश और उसके बाद खिलजी वंश दिल्ली के राजसिंहासन पर आया। खिलजी वंश में अलाउद्दीन बड़ा प्रतापी राजा हुआ। इसने हिन्दू धर्म को मटियामेट करने का पूरा प्रयत्न किया, मगर इसका ज्यादा लक्ष्य दक्षिण की तरफ ही रहा। बनारस इसकी चपेट से बच गया। इस युग में अर्थात् सन् १२९६ में पद्मेश्वर नामक व्यक्ति ने विश्वनाथ मन्दिर के सामने पद्मेश्वर का एक मन्दिर बनवाया और दूसरे वं.रेश्वर नामक व्यक्ति ने मणिकर्णिकेश्वर का मन्दिर बनवाया। इससे मालूम होता है कि अलाउद्दीन के युग में काशी में नये मन्दिरों का निर्माण भी होने लगा था।

खिलजी वंश के बाद तुगलक वंश दिल्ली के राजसिंहासन पर आया। इस वंश के प्रसिद्ध राजा मुहम्मद तुगलक के समय में जिनप्रभसूरि नामक एक प्रसिद्ध जैनाचार्य हुए। इन जैनाचार्य का मुहम्मद तुगलक पर काफी प्रभाव था। इन्होंने "विविध तीर्थकल्प" नामक एक ग्रन्थ लिखा। जिसमें सम्पूर्ण भारत के जैन तीर्थों का वर्णन है। इस ग्रन्थ में काशी का भी बड़े विस्तार से वर्णन हुआ है।

इस ग्रन्थ के अनुसार उस समय बनारस चार भागों में विभक्त था। (१) देववाराणसी जिसमें विश्वनाथ का मन्दिर बना हुआ था इस देववाराणसी में जैनचतुर्विंशति पट्ट की उस समय भी पूजा होती थी (२) राजधानी वाराणसी - इसमें यवन राजकर्मचारी लोग रहते थे। (३) मदन वाराणसी और (४) विजय वाराणसी। आचार्य्य लिखते हैं कि इस नगरी में लौकिक तीर्थों की गणना करने में कौन समर्थ हो सकता है।

इससे पता चलता है कि चारों ओर मुसलमानी अत्याचार होने पर भी चौदहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में काशी में सैकड़ों मन्दिर बने हुए थे और यहाँ की धार्मिक प्रतिष्ठा पहले ही की तरह सारे भारत में फैल रही थी। सम्राट् अल्तमश के समय में विश्वनाथ-मन्दिर का भी फिर से निर्माण हो गया था।

मुगल साम्राज्य में काशी

मुगल साम्राज्य के समय में शाहजहाँ और औरंगजेब के पहले तक बनारस में शान्ति रही। अकबर की धार्मिक उदारता और टोडरमल तथा राजा मानसिंह के प्रयत्नों से बनारस फिर चमक उठा। सम्राट् अकबर के राजत्वकाल में राल्फफ़िच नामक एक अंगरेज यात्री सन् १५८३ में बनारस आया था। इसने तत्कालीन बनारस का अच्छा चित्र खींचा है। इससे मालूम होता है कि बनारस के लोग उस समय सुखी और समृद्ध थे। यह शहर उस समय बंगाल के व्यापार का बड़ा केन्द्र था और यहाँ के बने हुए कपड़े बड़े प्रसिद्ध थे। इसी समय में राजा टोडरमल के प्रयत्न से काशी में विश्वनाथ मन्दिर का पुनर्निर्माण हुआ।

सन् १६२७ में बादशाह शाहजहाँ गद्दी पर बैठा। यह एक कट्टर मुसलमान था। उसके गद्दीपर बैठने के कुछ समय पश्चात् इस्लाम के धर्माधिकारियों ने सम्राट् के सामने काशी के विरुद्ध कान भरना प्रारम्भ किये। सम्राट् को बतलाया गया कि जहाँगीर के राज्य में बनारस बुतपरस्तों का प्रधान अड्डा बन गया है और बुतपरस्त लोग वहाँ सैकड़ों नये मन्दिरों का निर्माण करवा रहे हैं।

तब सन् १६३२ ई० में एक बादशाही हुक्म जारी हुआ कि बनारस में या साम्राज्य में और भी दूसरी जगह जितने [illegible] मन्दिर हैं उन्हें तोड़ दिया जाय। इस

आदेश के अनुसार अकेले बनारस जिले में ७६ अधबने मन्दिर तोड़े गये।

सन् १६५६ में बादशाह औरंगजेब दिल्ली की गद्दीपर आया। औरंगजेब इस्लाम धर्म का कट्टर अनुयायी था। इसने गद्दीपर अपने पैर मजबूत होते ही हिन्दू-मन्दिरों के खिलाफ सन् १६६६ में एक आदेश निकाला, जिसमें सब सूबेदारों को आदेश दिया कि—"वे अपनी इच्छा से काफिरों के तमाम मन्दिरों और पाठशालाओं को गिरा दें और सब प्रकार की मूर्तिपूजा सम्बन्धी शास्त्रों का पठन-पाठन और मूर्तिपूजा को बन्द कर दें।"

दो सितम्बर सन् १६६६ को इस आज्ञा के अनुसार औरंगजेब के अधिकारियों ने विश्वनाथ मन्दिर को गिरा दिया और उसके ऊपर ज्ञानवापी की मसजिद उठा दी गई।

इसी झपेटे में बिन्दुमाधव का मन्दिर भी आ गया और बिन्दु माधव के मन्दिर को तोड़ कर वहां भी मसजिद बनवायी गई। बिन्दुमाधव का मन्दिर पंचगंगा से राम-घाट तक फैला हुआ था और इसके अहाते में राम और मंगला गौरी के मन्दिर और पुजारियों के मकान बने हुए थे। इन सबको तोड़ कर इनकी जगह एक बहुत उंची धरहरों वाली मसजिद बनादी गई।

रुस्तम अली

औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् काशी के इतिहास में मीररुस्तम अली का नाम विशेष उल्लेखनीय माना जाता है। सन् १७३० ई० में इन्होंने ८ लाख रुपये साल पर बनारस का बन्दोबस्त अपने हाथ में ले लिया। मीररुस्तम अली बड़े ही शौकीन मिजाज के व्यक्ति थे। बनारस का प्रसिद्ध 'बुढ़वा मंगल' का मेला इन्होंने ही चलाया, ऐसा माना जाता है। कुछ लोग इस मेले को चेतसिंह का चलाया हुआ मानते हैं।

इसके बाद बनारस के इतिहास में बनारस-राज्य के संस्थापक मनसाराम का नाम आता है। मनसाराम रुस्तम अली की नौकरी में थे। इनके पिता का नाम मनोरंजन सिंह था। मनसाराम की राजनैतिक बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण और दूरदर्शी थी और राजनैतिक महत्वाकांक्षा इनमें शुरू से ही थी। इन्होंनें चुपचाप रुस्तम अली के खिलाफ षड्यंत्र करके और रुस्तम अली की मालगुजारी से चार लाख रुपये अधिक मालगुजारी देना कबूल करके मुहम्मदकुलीखाँ के जरिये बनारस की जमींदारी की 'सनद' लिखवा ली। सनद लिखवाने के कुछ समय पश्चात ही मनसाराम की मृत्यु हो गयी और उनकी गद्दी पर 'बरिवंडसिंह' बैठे।

बलवन्त सिंह

गद्दी पर बैठते ही बलवन्तसिंह ने २१७७५ रुपये मुहम्मद शाह को नजराना भेजकर उससे 'राजा' का खिताब और कसवार वगैरह तीन और मौजों की जमींदारी अपने नाम करवाली। बलवन्त सिंह भी बहुत साहसी और महत्वाकांक्षी पुरुष थे।

जब नवाब सफदर जंग किसी लड़ाई के सिलसिले में दिल्ली गये, तब उनके तहसीलदारों को बलवन्त सिंह ने अपने क्षेत्रों से निकाल दिये और इलाहाबाद के सहकारी प्रान्ताध्यक्ष अलीकुली खाँ को परास्त कर के उसके कुछ परगने दबा लिये।

सन् १७५४ ई० में इन्होंने गंगापुर की गढ़ी को सुरक्षित न समझ कर रामनगर का किला बनवाया। नवाब सफदर जंग की मृत्यु होने के बाद नवाब शुजा-उद्दौला के समय में बरिबण्ड सिंह ने चुनार को जीतने का प्रयत्न किया, मगर इसमें उन्हें सफलता नहीं हुई।

सन् १७५७ ई० में इन्होंने गाजीपुर सरकार पर अधिकार कर लिया।

बक्सर की लड़ाई में बलवन्त सिंह नवाब की तरफ से ७ हजार सेना लेकर गये थे, मगर वहाँपर उन्होंने लड़ाई नहीं की। बक्सर के युद्ध के बाद यह लौट आये और लतीफपुर चले गये। इन्होंने ३० वर्षों तक शासन किया और अपने सुदीर्घ शासन-काल में अपने साहस, नीति निपुणता और चतुरता से ९६ परगनों को अधिकृत कर बनारस, गाजीपुर, जौनपुर और चुनार की चार सरकारों का एक विशाल राज्य बना लिया।

सन् १७७० ई० में राजा बरिबण्ड सिंह की मृत्यु हो गयी।

चेतसिंह

राजा बरिबण्ड सिंह के पश्चात् चेतसिंह बनारस की गद्दीपर बैठे। उस समय वारन हेस्टिंग्ज कलकत्ते का गवर्नर जनरल था और मि० फ्रांक बनारस के रेजिडेण्ट थे। उस

समय कलकत्ते के ऊँचे राजकीय क्षेत्र में हेस्टिंग्ज और फ्रान्सिस के बीच गहरे मतभेद चल रहे थे। बनारस के रेजिडेण्ट मि० फ़ोक फ्रांसिस के सहायक थे और वारन हेस्टिंग्ज के खिलाफ षड्यन्त्र कर रहे थे। समझा जाता है कि चेतसिंह ने भी वारनहेस्टिंग्ज के विरुद्ध मि० फोक और फ्रांसिस का साथ दिया जिससे वारन हेस्टिंग्ज चेतसिंह का सख्त दुश्मन हो गया।

अवसर आते ही हेस्टिंग्ज ने बनारस के रेजिडेण्ट मि० फोक को हटाकर उसके स्थान पर टॉमस ग्रेहम की नियुक्ति बनारस के रेजिडेण्ट की जगह कर दी।

इसके बाद वारन हेस्टिंग्ज ने चेतसिंह को तंग करना शुरू किया। सन् १७७८ में चेतसिंह से निश्चित करके अलावा पाँच लाख रुपये और माँगे गये। दूसरे साल इन पाँच लाख रुपयों के अतिरिक्त लड़ाई के लिए २ हजार घुड़सवार भी माँगे गये।

हेस्टिंग्ज के इस व्यवहार से चेतसिंह अत्यन्त दुःखी हुआ। उसने हेस्टिंग्ज को समझाने के सभी नम्रतापूर्ण प्रयत्न किये और इस भारी टैक्स को कम करने का निवेदन किया।

मगर हेस्टिंग्ज टस से मस न हुआ और इस टैक्स को वसूल करने के लिए ४ तैलंगाना बटालियनों के साथ स्वयं बनारस आ पहुँचा।

उसके बाद हेस्टिंग्ज और चेतसिंह की फौजों में भयंकर लड़ाई हुई। एक बार हेस्टिंग्ज की सेनाओं को चेतसिंह की फौजों ने करारी पराजय देकर भगा भी दिया और उसके बहुत से सिपाहियों को मार भी डाला। मगर अन्त में चेत सिंह को बाढ़ग्रस्त गंगा में कूदकर भागना पड़ा।

चेतसिंह के स्थान पर वारन हेस्टिंग्ज ने बरिबण्ड सिंह के नाती महीपनारायण सिंह को गद्दी पर बैठाया। उनके दीवानी और फ़ौजदारी के अधिकारों को छीन लिया गया और उनका सालाना टैक्स बढ़ा कर चालीस लाख रुपया कर दिया गया। इसी समय बनारस अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया और राजाओं की गद्दी रामनगर में स्थापित हुई।

महीपनारायण सिंह के पश्चात बनारस की राजगद्दी पर इस राजवंश के उदितनारायण सिंह, ईश्वरी नारायण सिंह, प्रभुनारायण सिंह और आदित्यनारायण सिंह और विभूतिनारायण सिंह क्रमशः आसीन हुए। विभूतिनारायण सिंह के समय में इस स्टेट का उत्तर प्रदेश में विलीनीकरण हो गया।

वारेन हेस्टिंग्ज के शासन में काशी

काशी को ब्रिटिश शासन या कम्पनी के शासन में मिला लेने के बाद गवर्नर जनरल वॉरन हेस्टिंग्ज ने शहर में दीवानी और फौजदारी अदालतें कायम करवाईं और शहर की सुरक्षा का प्रबन्ध भी किया जो प्रायः अठारहवीं सदी की अराजकता में नष्ट हो गया था और चारों तरफ गुण्डे बदमाशों का जोर बढ़ गया था। सन् १७८१ में वॉरन हेस्टिंग्ज ने एक हुक्मनामा जारी किया जिसका आशय इस प्रकार है :—

"सभी बड़े-बड़े नगरों और जिलों का यह रिवाज है कि नगर निवासियों के जान और माल की सुरक्षा के लिए अधिकार पूर्ण व्यवस्था की जाय। पर अभी तक बनारस के लोगों के लिए ऐसी व्यवस्था नहीं बनी है। हालांकि यहाँ पर सारे हिन्दुस्तान से यात्री लोग आते हैं और सारा हिन्दू समाज इस नगर को श्रद्धा की निगाह से देखता है। इस लिए यह आवश्यक है कि बनारस की सुरक्षा का प्रबन्ध किया जाय। इसलिए सपरिषद् गवर्नर जनरल अपने तथा कम्पनी के अधिकार से यह आदेश देते हैं—

"बनारस के नागरिकों की रक्षा या न्यायव्यवस्था के लिए एक ऐसे अधिकार सम्पन्न व्यक्ति की नियुक्ति की जाय जिसका बनारस के निवासियों और तीर्थयात्रियों पर पूरा अधिकार हो। इस पद के अधिकारी को "हाकिम" कहा जावेगा।'

हाकिम की आज्ञाओं को दाद देने के लिए तीन अधिकारी नियुक्त किये जावेंगे। इन तीन अधिकारियों के जिम्मे तीन विभाग रहेंगे। ये तीन अधिकारी (१) शहर कोतवाल (२) फौजदारी अदालत का दारोगा और (३) दीवानी अदालत का दारोगा होंगे।

(१) शहर कोतवाल का कर्तव्य होगा कि वह खून खराबी डाका, चोरी तथा शान्ति भंग करने वालों को पकड़ कर फौजदारी अदालत के सामने पेश करे। उसे यह भी अधिकार होगा कि वह गुण्डों को दंगा, फसाद और हत्या करने से रोके। तथा ऐसे लोगों को बीस कोड़े लगाने तक की सजा दे सके। कोतवाल तथा उसके सहायकों की नियुक्ति तथा बरख्वास्तगी का अधिकार हाकिम को होगा और वह हाकिम का जवाबेदार समझा जावेगा।

२—फौजदारी अदालत में एक दारोगा और तीन विद्वान मौलवी रहेंगे। इन्हें फौजदारी क़ानून की जानकारी होना आवश्यक है। हर एक मुकदमें की जांच करके उसका फतवा या फैसला ये हाकिम के पास भेजेंगे और हाकिम उस पर दस्तखत करके वापस इन्हें लौटा देगा ताकि वे उस फैसले पर अमल करें। ये लोग भी कोतवाल की तरह हाकिम के ताबेदार रहेंगे।

३—दीवानी अदालत में एक दारोगा और तीन मुन्सिफ रहेंगे। यह अदालत लेन, देन, खरीद, बेच, विवाह, उत्तराधिकार आदि दीवानी मामलों का निर्णय हिन्दुओं के लिए हिन्दू कानून के अनुसार और मुसलमानों के लिए इस्लामी कानून के अनुसार करेगी। हिन्दू कानून की जानकारी के लिए दो हिन्दू पण्डित और इस्लामी कानून की जानकारी के लिए मौलवी इनकी सहायता के लिए रहेंगे।

इस हुक्म के अनुसार "अली इब्राहीम खां" अक्टूबर सन् १७८१ में काशी नगर के पहले हाकिम बनाये गये। और मिर्जा बांकेबेग खां शहर के पहले कोतवाल नियुक्त हुए। आगे चलकर आधुनिक काल में कोतवाल राधेश्याम शर्मा ने काशी की गुंडागिरी को समाप्त करने में बड़ा नाम कमाया।

हेस्टिंग्ज के सुधारों के पश्चात् सन् १७८७ में जोनेथम डंकन बनारस के रेजिडेण्ट होकर आये। इनकी रेजिडेण्टी के समय में बनारस में अनेक प्रकार के सुधार हुए। अपनी कार्य कुशलता और सहानुभूतिपूर्ण रुख के कारण वे सारी जनता में "बड़े भाई" के नाम से मशहूर हो गये।

सन् १७९७ में मि० डंकन चले गये और उनके जाते ही बनारस में फिर विद्रोह की आग सुलग उठी। इस विद्रोह के नेता अवध के पदच्युत नवाब वजीर अली थे। अंग्रेज सरकार ने इन्हें अवधकी नवाबी से पदच्युत करके सआदत अली को अवध का नवाब बना दिया था। इससे ये अंग्रेजों के बड़े विरुद्ध हो गये थे और उनकी सत्ता को उलटने का षड्यंत्र करते रहते थे। तब अंग्रेज सरकार ने इन्हें काशी से हटाकर कलकत्ता भेजने का निश्चय किया। वजीर अली को जब यह मालूम पड़ा तो वे २०० हथियार बन्द सिपाहियों को लेकर रेजिडेण्ट "चेरी" के बँगले पर उनसे मुलाकात करने का बहाना करके पहुँचे और वहां उन्होंने रेजिडेण्ट चेरी और उनके सेक्रेटरी इवांस को मार डाला और उसके बाद ही जिलाधीश डेविस के बँगले पर हमला कर दिया। किसी प्रकार डेविस और उनके परिवार की जान बची। अन्त में अंगरेजी फौज के आने पर वजीर अली बनारस से भाग गये। उनके बहुत से साथी मार डाले गये या पकड़े गये और किसी प्रकार यह विद्रोह शान्त हुआ। बाद में वजीर अली पकड़े गये और उन्हें पहले फोर्ट विलियम कलकत्ता में और बाद में वेल्लोर में रक्खा गया। वहीं उनकी मृत्यु हुई।

काशी में दूसरा विद्रोह सन् १८०९ में हिन्दू मुसलमानों के दंगे के रूप में हुआ। यह दंगा ज्ञानवापी की मसजिद को लेकर उठा और अन्त में बढ़ते-बढ़ते सारे नगर में फैल गया। मुसलमानों ने लाटभैरों और औरंगजेब की बनाई मसजिद के बीच वाले चालीस फुट ऊँचे एक स्तम्भ को तोड़ डाला और लाटभैरों के मन्दिर को अपवित्र करने के लिए वहाँ एक गाय की हत्या कर डाली।

फिर तो हिन्दुओं का पारा एकदम तेजी पर आ गया। उन्होंने जहाँ मुसलमान मिला उसको मारा, जहाँ मसजिद देखी उसको तोड़ी और चारो ओर आग लगाना प्रारम्भ कर दी और पचासों मसजिदों को जमीन्दोज कर दिया। सारे शहर में आग लगी हुई थी। कई बाजार जल रहे थे और जुलाहों के मुहल्ले की तो मिट्टी पलीद हो चुकी थी। उस समय यहाँ के मजिस्ट्रेट मि० बर्ड थे। उन्होंने बड़ी कठिनाई से स्थिति पर काबू किया मगर उसके पहले इस दंगे की आग में सैकड़ों व्यक्ति मारे जा चुके थे।

इसके बाद सन् १८५२ में काशी में नागरों को बलवा हुआ। उस समय बनारस के कलक्टर मि० गबिन्स थे। इस विद्रोह में भी बहुत लोगों की जानें गयीं। यह विद्रोह १ अगस्त से ५ अगस्त तक पूरे पाँच दिन चलता रहा।

उसके बाद सन् १८५७ के गदर की लहर भी बनारस में आई। थोड़े बहुत उपद्रव भी हुए। मगर अन्त में इन सब चीजों पर काबू पा लिया गया और बनारस इस विद्रोह की विभीषिका से कई अंशों में बच गया।

सन् १८५७ के बाद सारे देश की तरह बनारस में भी अंगरेजी सल्तनत के पंजे मजबूती से जम गये और यहाँ शान्ति स्थापित हो गई। यहाँ की कला और वाणिज्य भी उन्नति करने लगे और यहाँ की देव पूजा और यात्रा भी खूब ठाट से चलने लगी।

काशी के मन्दिर

काशी के मन्दिर और देवालयों का इतिहास बड़ा अद्‌भुत और विचित्र है। कितनी बार ये तोड़ दिये गये, कितनी बार इनके सामानों से बड़ी-बड़ी मसजिदें तैयार कर दी गईं। मगर फिर फिर कर ये ज्यों के त्यों हो गये। आक्रमणकारियों ने जितनी शीघ्रता से इन्हें तोड़ा, भक्तों ने उससे अधिक शीघ्रता से फिर बना डाला। अभिमानी आक्रमणकारी समय की ठोकरों से चूर-चूर हो गये। उनके साम्राज्य भी समाप्त हो गये। मगर काशी के घण्टे और घड़ियाल आज भी उसी शान के साथ बज रहे हैं जिस शान से प्राचीन काल में बजते थे। आज भी छोटे बड़े हजारों मन्दिर काशी की गली-गली में बने हुए भक्त लोगों की निष्ठा का परिचय दे रहे हैं।

श्री विश्वनाथ मन्दिर

काशी के धर्म स्थानों में सबसे महत्वपूर्ण घटक श्री विश्वनाथ का मन्दिर है। यही बाबा विश्वनाथ सारे भारत की हिन्दू जाति का आकर्षण बिन्दु है। सन् ११९४ में मुसलमानों के आक्रमण ने जब काशी के सब मन्दिरों को भूमिसात कर दिया तो उस चपेट में विश्वनाथ का मन्दिर भी ध्वस्त हो गया। मगर सम्राट अल्तमश के समय में यह मन्दिर फिर से बनाया गया और इसकी पूजा के लिए गुजरात के प्रसिद्ध सेठ वस्तुपाल ने एक लाख रुपया भेजा।

उसके बाद सम्राट अकबर के साम्राज्य काल में बनारस में फिर विश्वनाथ की स्थापना हुई और मानसिंह तथा टोडरमल के प्रयत्नों से इस नगरी को नया जीवन मिला।

औरंगजेब के समय में विश्वनाथ मन्दिर पर फिर भीषण विपत्ति आई और बनारस के तीन प्रसिद्ध मन्दिर विश्वनाथ मन्दिर, कृतिवासेश्वर मन्दिर और बिन्दु माधव मन्दिर तोड़कर मसजिदों में बदल दिये गये।

इसके १२५ वर्ष बाद सन् १७८५ के करीब इन्दौर की महारानी अहिल्या बाई ने विश्वनाथ मन्दिर का फिर से निर्माण कराया। जो इस समय विद्यमान है। वारन हेस्टिंज की आज्ञा से इस पर नौबत खाना बनवाया गया और महाराज रणजीत सिंह ने इसके शिखर पर सोना चढ़वाया। ज्ञानवापी का मण्डप सन् १८२८ में बायजाबाई सिन्धिया ने बनवाया। इसी प्रकार अठारहवीं सदी में काशी नगरी के उत्थान में मराठों ने भी बहुत योग दिया। उन्होंने यहाँ पर बहुत से मन्दिरों का निर्माण किया।

विश्वनाथ मन्दिर के अतिरिक्त

बनारस के मन्दिरों में संकट मोचन हनुमान का मन्दिर, संकठा देवी का मन्दिर, अन्नपूर्णा का मन्दिर, दुर्गा मन्दिर, केदारनाथ मन्दिर इत्यादि मन्दिर बहुत प्रसिद्ध हैं जहाँ हजारों दर्शनार्थी जाते रहते हैं।

हिन्दुस्तान में पूजित अनेकानेक देवीदेवताओं के मन्दिर आपको बनारस में देखने को मिलेंगे। यहाँ तक कि वेश्याओं की देवी 'मेनका' का मन्दिर भी यहाँ पर देखने को मिलेगा। जहाँ साल भर में एक बार बनारस की समस्त वेश्याएँ संगीत और नृत्य के रूप में अपनी श्रद्धांजलि देवी मेनका को अर्पित करती हैं।

मन्दिरों का ऐसा जमघट हिन्दुस्तान में कहीं अन्यत्र देखने को नहीं मिलेगा। इस नगरी में छोटे-बड़े करीब १५०० मन्दिर बने हुए हैं। लार्ड बेलेंशिया नामक अंगरेज ने यहाँ के मन्दिरों का वर्णन करते हुए लिखा है कि—

"गंगा के किनारे असंख्य छोटे बड़े मन्दिर हैं। जिनमें बहुत से तो घाटों तक चले आये हैं। ये मन्दिर एक सा पत्थर के इतने मजबूत बने हुए हैं कि बाढ़ के समय गंगा की तीव्र धारा का भली प्रकार मुकाबिला कर सकते हैं। कुछ मंदिर तो रंग और सुनहले काम से सुसज्जित है और कुछ सादे ही बने हुए हैं।

घाट और अखाड़े

गंगा के किनारे चन्द्राकार रूप में बने हुए श्रेणीबद्ध घाट काशी की अपूर्व शोभा है।

बनारस के घाटों का वर्णन करते हुए डा० मोतीच काशी के इतिहास में लिखते हैं—

'सन् १८३२ तक बनारस के अधिकतर घाट बनकर तैयार हो चुके थे। यदि हम भेलूपुरा से नदी के बहाव के साथ-साथ नाव पर चलें तो सबसे पहले हमें अस्सी घाट और नाला मिलता है। इसके पार कई अखाड़े हैं। जिनमें बड़े गूदड़ जी का अखाड़ा जो रीवां वालों की तरफ से चलता था और छोटे गूदड़ जी का अखाड़ा प्रधान थे। ये दोनों अखाड़े अठारहीं सदी में कायम हुए थे। इनके अतिरिक्त दिगम्बरी अखाड़ा, वेद अखाड़ा, पण्डितजी का अखाड़ा और विष्णुपंथी अखाड़ा तथा दादूपंथी अखाड़ा भी यहाँ पर है।

अस्सी से आगे बढ़ने पर तुलसी घाट मिलता है जहाँ सन् १६२३ में महाकवि तुलसीदास की मृत्यु हुई। तुलसी घाट के आगे हनुमान घाट पड़ता है। इसी घाट के ऊपर एक मकान में श्री बल्लभाचार्य रहते थे। इसके बाद शिवाला घाट है जहाँ निरंजनियों और निर्वाणियों के अखाड़े हैं। इसके बाद राय बलदेव सहाय और वच्छराज के घाट पड़ते हैं। बलदेव सहाय के घाट को अब आनन्दमयी घाट कहते हैं।

खिड़की घाट के पहले सुप्रसिद्ध हरिश्चन्द्र घाट बना हुआ है। जनश्रुति के अनुसार सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र ने इसी स्थान पर डोम की नौकरी की थी। उस डोम का वंश अभी भी इस घाट पर रहता है। इस घाट पर स्मशान भी बना हुआ है।

इसके बाद खिड़की घाट पड़ता है, जो राजा बरिबण्ड सिंह के इंजीनियर बैजनाथ मिश्र ने बनवाया था और जहाँ से गंगा में कूद कर चेतसिंह भागे थे। इसके बाद केदार घाट, चौका घाट, नारद घाट, अमृतराव घाट, गंगा महल, भुवनेश्वर, पांडे घाट, चौसठी घाट, राना घाट और मुंशी घाट पड़ते हैं।

इसके बाद दशाश्वमेध घाट पड़ता है यह घाट काशी के पाँच प्रधान घाटों में से एक है। दशाश्मेध घाट से मिला हुआ अहिल्या बाई का घाट है।

इसके बाद मान मन्दिर घाट पड़ता है जो आमेर के राजा मानसिंह ने यात्रियों को ठहरने के लिए बनाया था। आगे जाकर उन्हीं के वंश के सवाई जयसिंह द्वितीय ने प्रसिद्ध वेधशाला का इस घाट पर निर्माण करवाया। इस वेधशाला का नक्शा समरथ जगन्नाथ नाम के जयसिंह के एक ज्योतिषी ने बनाया था।

मान मन्दिर के बाद मीरघाट पड़ता है। इसको पहले जरासन्ध घाट कहते थे। इसके बाद उमरावगिरि घाट और उसके बाद जलसाई अर्थात् स्मशान घाट पड़ता है।

मणिकर्णिका घाट काशी का बहुत प्राचीन तीर्थ है। इसका उल्लेख सातवीं सदी में भी मिलता है। इस घाट पर राजा बिड़ला की ओर से एक धर्मशाला बनी है जिसमें आसन्न मृत्यु मनुष्यों को मुक्ति प्राप्ति के लिए लाकर रक्खा जाता है।

मणिकर्णिका के बाद वीरेश्वर घाट, सिंधिया घाट, संकटा घाट और भोंसला घाट बने हुए हैं। भोंसला घाट पर नागपूर के राजा ने नरनारायण का मन्दिर उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में बनवाया था।

भोंसला घाट के बाद यज्ञेश्वर घाट, रामघाट, मङ्गलागौरी घाट और दलपत घाट पड़ते हैं।

पंचगंगा घाट पर हिन्दुओं के विश्वास के अनुसार गंगा, धूतपापा, जीर्णनन्दा, किरणा और सरस्वती ये पाँच नदियाँ आकर मिलती हैं और इसलिए यह काशी का मुख्य तीर्थ माना जाता है। इस घाट को श्रीपतराव नामक एक महाराष्ट्रियन ब्राह्मण ने बनवाया था।

पंचगंगा के बाद ब्रह्माघाट और दुर्गाघाट का निर्माण सन् १७४० में नारायण दीक्षित आयगाँव करने कराया इन घाटों के बाद राजमन्दिर घाट, लालघाट, गायघाट, त्रिलोचन घाट, महूघाट, तेलियानाला, प्रह्लादघाट और राजघाट पड़ते हैं।

बनारस के सन्त महात्मा और साहित्यकार

हम ऊपर लिख आये हैं कि काशी का वास्तविक महत्व यहां के राजनेताओं की वजह से उतना नहीं जितना यहां के धर्म नेताओं, संतों, साहित्यकारों और महात्माओं की वजह से रहा है। इसका महत्व एक राजक्षेत्र की तरह नहीं एक धर्म क्षेत्र और एक सांस्कृतिक क्षेत्र की तरह है।

इस सम्बन्ध में यह नगरी हमेशा भाग्यशाली और सम्पन्न रही है। प्राचीन युग में जैनधर्म के तीर्थंकर पार्श्वनाथ और भगवान् बुद्ध के उपदेश से यह नगरी पवित्र हुई। इसका वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं।

स्वामी रामानन्द—मध्य काल में स्वामी रामानन्द का नाम काशी के इतिहास में बड़ा महत्व पूर्ण माना जाता है। ये पहले रामानुज सम्प्रदायके थे। परम्पराओं के अनुसार स्वामी रामानन्द का जन्म सन् १२९९ में प्रयाग के एक ब्राह्मण कुल में हुआ था। बारह बरस की उम्र में ये बनारस आये और वैष्णव संत राघवा चार्य्य के शिष्य होकर विशिष्टा द्वैतवादी हो गये। मगर छुआछूत, जातिवाद और खानपान की संकीर्ण प्रवृत्ति से ऊब कर रामानन्द रामानुजी सम्प्रदाय से निकल गये और उन्होंने अपना एक स्वतंत्र मत चलाया और मूढ़ धार्मिक विश्वासों से ऊपर उठकर उन्होंने प्रेम और भक्ति का एक नया रास्ता दिखलाया। उनके शिष्यों में एक ब्राह्मण, एक चमार, एक राजपूत और एक स्त्री भी थी। जुलाहा वंश के कबीर साहब भी इनके शिष्यों में बतलाये जाते हैं। इन सब फकीरों ने गाँव-गाँव घूमकर अपने मत का प्रचार किया।

कबीर—रामानन्द के सम्प्रदाय में कबीर साहब का बहुत बड़ा स्थान है। कबीर साहब एक महान क्रान्तिकारी सन्त, कवि और बुराइयों को खुले शब्दों में ललकारने वाले महात्मा थे। कबीर का पूर्ण परिचय इसी भाग में "कबीर" शीर्षक के नीचे दिया गया है।

बल्लभाचार्य—जिस समय बनारस में कबीर बुराइयों को ललकार रहे थे और निर्गुण प्रेम का पाठ सबको पढ़ा रहे थे। उसी समय काशी में एक नये महात्मा वल्लभाचार्य का अविर्भाव हुआ। वल्लभाचार्य के मातापिता तैलंग ब्राह्मण थे। सन् १४७९ में वल्लभाचार्य का जन्म मध्य प्रदेश में हुआ। उसके बाद वे अपने माता पिता के साथ मथुरा चले गये मगर थोड़े ही समय के बाद पिता का देहान्त हो जाने पर वे बनारस में आकर बस गये। यहीं पर उन्होंने बादरायण के ब्रह्म सूत्र और गीता पर भाष्य लिखे। और एक नवीन सम्प्रदाय की स्थापना की। वल्लभाचार्य के द्वारा प्रचारित मत शुद्धाद्वैत कहलाया। इन्होंने रामानन्द के विशिष्टा द्वैत और शंकराचार्य के ब्रह्मवाद को अस्वीकृत किया। इनका चलाया हुआ मत पुष्टि मार्ग कहलाया। इसकी प्रधान गद्दी पहले मथुरा में और फिर नाथ द्वारा में स्थापित हुई।

काशी के संतों में तैलंग स्वामी, भंगड़ भिक्षुक और कीनाराम औघड़ का नाम भी बहुत प्रसिद्ध है। कीनाराम औघड़ का काशी में एक अस्तर भी बना हुआ है जहाँ पर प्रति वर्ष मेला लगता है। इस मेले में खूब नाच गाना होता है।

नारायण भट्ट—काशी के महान् पण्डितों और विद्वानों में नारायण भट्ट का नाम भी बहुत प्रसिद्ध है। इन्होंने अकबर के काल में टोडरमल की सहायता से विश्वनाथ मन्दिर की पुनः स्थापना की। नारायण भट्ट के पिता मूलतः दक्षिण भारत में पैठन नामक स्थान के निवासी थे। सन् १५१४ में नारायण भट्ट का जन्म हुआ, और उसके कुछ समय पश्चात् यह परिवार स्थायी रूप से काशी में आकर बस गया। यह एक आश्चर्य जनक बात है कि इस परिवार के लोग तीन सौ बरस तक बनारस के गण्यमान्य पण्डित रहते आये।

नारायणभट्ट ने काशी में हिन्दू धर्म और संस्कृति के उत्तर भारतीय सिद्धान्तों के विरुद्ध हिन्दू संस्कृति और जीवन के दक्षिण भारतीय सिद्धान्तों का प्रति पादन किया। नारायण भट्ट ने भिन्न-भिन्न विषयों पर करीब-अट्ठाईस ग्रन्थों का निर्माण किया। जिनमें धर्म-प्रवृत्ति प्रयोग रत्न वृत्त रत्नाकर (टीका) इत्यादि रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। इन्होंने अपने समय के बड़े-बड़े शास्त्रियों को शास्त्रार्थ में पराजित किया।

तुलसीदास—महान कवि तुलसीदास यद्यपि पूर्णरूपेण काशी के निवासी नहीं थे फिर भी काशी से उनका घना सम्बन्ध रहा और उनके जीवन का अन्तिम समय यहीं पर व्यतीत हुआ। ऐसी स्थिति में काशी उनके गौरव से वंचित नहीं रह सकती।

तुलसीदास ने रामचरित मानस में भक्ति और आदर्श की जो धारा बहाई उसने मुगलकालीन भारत में हिन्दू धर्म की रक्षा कर ली। नहीं तो हिन्दू घोर अन्धकार के गड्ढे में बराबर गिरते ही जाते। अनेक अत्याचारों को झेलते हुए भी हिन्दुओं के सामने तुलसीदास के राम का एक [illegible] आदर्श था, जो उनके सूने जीवन में एक भक्ति की [illegible] ऐसी दौड़ाकर उन्हें अपने भीतरी और बाहरी कष्टों से मुक

करने के लिए तैयार करता था। रामभक्ति ने कर्मकांड मय हिन्दूधर्म की शुष्कता दूर करके उसमें रसधार बहा दी।

वि० सं० १६८० में गोस्वामी तुलसीदास का अस्सी घाट पर देहान्त हुआ।

कवीन्द्राचार्य—सत्रहवीं सदी में बनारस के सर्वश्रेष्ठ पण्डित कवीन्द्राचार्य सरस्वती थे। वे संस्कृत और हिन्दी दोनों ही भाषाओं के पण्डित थे। बादशाह शाहजहाँ ने इन्हें 'सर्व विद्या निधान' की पदवी से और काशी के पण्डितों ने 'कवीन्द्र' की पदवी से अलंकृत किया था। इनकी प्रसिद्ध रचनाओं में 'कवीन्द्र कल्पद्रुम', 'पंचपद चन्द्रिका', 'दशकुमार टीका' इत्यादि उल्लेखनीय है।

रामानन्द त्रिपाठी—पं० रामानन्द त्रिपाठी का नाम भी उन विद्वानों में है जिन्होंने अपनी विद्वता और भावुकता से काशी के गौरव को ऊपर उठाया। रामानन्द त्रिपाठी सरयूपारी ब्राह्मण थे और सत्रहवीं सदी के मध्य में काशी में विद्यमान थे। सम्राट् शाहजहाँ के पुत्र दाराशिकोह से इनके बहुत अच्छे सम्बन्ध थे और दाराशिकोह की प्रेरणा से इन्होंने 'विराड् विवरण' नामक ग्रन्थ की रचना की। रामानन्द संस्कृत भाषा के प्रतिभाशाली और भावुक कवि थे।

संस्कृत के इन उद्भट विद्वानों के साथ-साथ काशी में व्रज भाषा के भी अच्छे-अच्छे कवि हुए। बनारस के राजा उदितनारायण सिंह और ईश्वरीप्रताप नारायण सिंह का दरबार अच्छे-अच्छे कवियों से भरा हुआ रहता था। राजा उदितनारायण सिंह के समय में गोकुलनाथ, गोपीनाथ और मणिदेव नामक तीन कवियों ने मिलकर सम्पूर्ण महाभारत का व्रजभाषा की कविता में २००० पृष्ठों में अनुवाद किया। इस ग्रन्थ के निर्माण में पचास वर्ष लगे और काशी नरेश के लाखों रुपये खर्च हुए।

राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द—हिन्दी गद्य का विकास करने और उसको प्राथमिक रूप देने में काशी राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द का नाम अत्यन्त खनीय है। राजा शिवप्रसाद अत्यन्त दूरदर्शी, के उतार-चढ़ाव को समझने वाले, व्यवहार सिद्ध। इन्होंने हिन्दी गद्य में इतिहास तिमिर नाशक इत्यादि पुस्तकें लिखीं। इनकी भाषा में यद्यपि उर्दू शब्दों की भरमार होती थी। फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि हिन्दी के उखड़े हुए पैर जमाने में इनका योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण था।

भारतेंदु हरिश्चन्द्र—मगर हिन्दी गद्य को सर्वांश में आधुनिक रूप देने का श्रेय काशी के भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को है। राजा शिवप्रसाद द्वारा चलाया हुआ उर्दू हिन्दी का यह खिचड़ी रूप भारतेन्दु को पसन्द नहीं आया और उन्होंने संस्कृत की पदावली की ओर झुकता हुआ एक नया रूप हिन्दी भाषा को दिया। इनके द्वारा रचित अनेक हिन्दी रचनाएँ अभी भी हिन्दी के गौरव को बढ़ा रही हैं।

जयशंकरप्रसाद—आधुनिक युग के कवियों और लेखकों में काशी के श्री जयशंकर प्रसाद का नाम विशेष उल्लेखनीय है। ये हिन्दी काव्य में छायावाद युग के प्रवर्तकों में माने जाते हैं। इनका 'कामायनी' नामक काव्य हिन्दी साहित्य को छायावाद युग की एक महान् देन है। इसके अतिरिक्त प्राचीन भारत के इतिहास प्रसिद्ध राजाओं पर इन्होंने कई सुन्दर नाटकों की भी रचना की।

बाबू श्यामसुन्दर दास—हिन्दी गद्य साहित्य के विकास में काशी के बाबू श्यामसुन्दर दास का नाम भी नहीं भुलाया जा सकता है। इन्होंने अनेक लेखकों को प्रोत्साहन देकर हिन्दी में लिखने को प्रेरित किया। इन्हीं के प्रयत्नों से काशी में नागरी प्रचारणी सभा भी स्थापना हुई जिसने हिन्दी के प्राचीन और महत्वपूर्ण साहित्य के प्रकाशन में महत्वपूर्ण योग दान दिया।

डॉ० भगवान दास—दार्शनिक और तत्वचिंतन के क्षेत्र में अपनी महत्वपूर्ण रचनाएँ अर्पित करने में काशी के डॉ० भगवान दास का नाम अमर है। सब तरह से सम्पन्न होते हुए भी डॉ० भगवान दास का जीवन ऋषियों की तरह था। उनका मन हमेशा तत्वचिंतन में डूबा रहता था।

बाबू शिवप्रसाद गुप्त—गांधी-युग और भारतीय स्वाधीनता के युग में पूर्ण मनोयोग से सहयोग देने वाले और आधुनिक काशी के सांस्कृतिक निर्माण में महत्वपूर्ण

योग देने वाले बाबू शिवप्रसाद गुप्त भी काशी के आधुनिक इतिहास में एक प्रकाश स्तम्भ की तरह हैं। हिन्दी भाषा में उत्तम साहित्य का प्रकाशन करने के लिए इन्होंने ज्ञान मण्डल प्रकाशन की और हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र को उन्नत करने के लिए बहुत घाटा उठाकर भी इन्होंने "आज" और "स्वार्थ" के समान प्रसिद्ध पत्रों का प्रकाशन प्रारम्भ किया। काशी के सांस्कृतिक क्षेत्र में इन्होंने भारत माता मन्दिर, काशी विद्यापीठ इत्यादि संस्थाओं की स्थापना की। कबीर चौरा का विशाल अस्पताल इन्हीं की स्मृति में चल रहा है।

प्रेमचन्द—उपन्यासों के क्षेत्र में काशी के श्री प्रेमचन्द ने एक नवीन युग का आविर्भाव करके अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की। हिन्दी भाषा में उच्च कोटि के प्रथम उपन्यासकार प्रेमचन्द ही माने जाते हैं। पात्रों के चरित्र चित्रण और मानसिक द्वन्दों का चित्रण करने में इन्हें अभूतपूर्व सफलता मिली है।

इसके अतिरिक्त काशी के वैज्ञानिक क्षेत्र में डॉ० सम्पूर्णानन्द, समालोचना के क्षेत्र में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नाटकों के क्षेत्र में राधाकृष्ण दास, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जय शंकर प्रसाद, उपन्यासों के क्षेत्र में बाबू देवकीनन्दन खत्री, किशोरी दास वाजपेयी, प्रेमचन्द, ऐतिहासिक ग्रन्थ निर्माण में डा० वासुदेव शरण डॉ० भगवत्शरण उपाध्याय इत्यादि कोषकारों में बाबू रामचन्द्र वर्मा, सम्पादन के क्षेत्र में बाबूराव विष्णु पराड़कर इत्यादि धुरन्धर व्यक्तियों ने काशी के गौरव को बढ़ाया है।

काशी नागरी प्रचारणी सभा

काशी के गौरव को बढ़ाने और हिन्दी का प्रचार करने में काशी नागरी प्रचारणी सभा की सेवाएँ भी अत्यन्त बहुमूल्य हैं। हिन्दी भाषा में शब्दकोष, वैज्ञानिक कोष, भाषा तथा साहित्य का इतिहास, प्राचीन दुर्लभ ग्रन्थों का प्रकाशन तथा विश्वकोष के प्रकाशन द्वारा इस सभा ने हिन्दी की महती सेवा की है।

काशी की पत्र-पत्रिकाएँ

काशी में सबसे पहला पत्र राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द के प्रयत्न से सन् १८४५ में 'बनारस अखबार' के नाम से प्रकाशित हुआ। इसके बाद भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के द्वारा 'कवि वचन सुधा' नामक पत्र सन् १८६८ से प्रकाशित होना प्रारम्भ हुआ। इसके बाद भारतेन्दु बाबू ने सन् १८७४ में लड़कियों के लिए 'बालाबोधिनी' पत्रिका और नवयुवकों के लिए 'हरिश्चन्द्र मैगनीज' निकालना प्रारम्भ किया। इसके पश्चात् 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' 'काशी पत्रिका इत्यादि प्रकाशित हुए।

सन् १८८४ में बाबू रामकृष्ण वर्मा के सम्पादन में 'भारत जीवन' नामक साप्ताहिक पत्र काशी से प्रकाशित हुआ जो बराबर ४० साल तक चला। सन् १८८४ में 'पीयूष-प्रवाह' पत्रिका पं० अम्बिका दत्त व्यास ने निकाली। यह पत्रिका भी काफी लोकप्रिय हुई। इसके बाद 'धर्म सुधावर्षन' 'धर्म प्रचारक' सन् १८६२ में, 'आर्य-मित्र' 'गौ-सेवक' 'व्यापार-हितैषी' 'व्यापारी और कारीगर' सन् १६०८ में वाणिज्य सुखदायक १६११ में 'विनोद-वाटिका' इत्यादि और भी कई पत्र पत्रिकाएँ प्रकाशित होते रहे। सन् १६०६ में श्री जयशंकर प्रसाद ने सरस्वती के मुकाबले में 'इन्दु' पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इसके सम्पादक अम्बिका प्रसाद गुप्त थे। मगर थोड़े दिन चल कर यह बन्द हो गया।

मगर काशी की सम्पादन कला का वास्तविक विकास बाबू शिवप्रसाद गुप्त के हाथों से हुआ। जब उन्होंने सन् १६२२ से 'आज' और 'स्वार्थ' नामक दैनिक और मासिक पत्रों का प्रकाशन प्रारम्भ किया। हिन्दी के दैनिक पत्रों में 'आज' एक प्रकाश स्तम्भ की भाँति सिद्ध हुआ। और सुप्रसिद्ध सम्पादकाचार्य बाबूराव विष्णु पराडकर के सम्पादन में तो यह पत्रकार कला के चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया था।

आज के पश्चात् काशी से 'संसार' 'बनारस' 'गाण्डीव' इत्यादि दैनिक पत्र भी इस समय प्रकाशित हो रहे हैं।

काशी की कला

काशी की कला के इतिहास का मौर्य काल से लेकर ईसा की १२ वीं शताब्दी तक की मिली हुई सामग्रियों से पता चलता है। सारनाथ से मिली हुई कला-मूर्तियों में कला की दृष्टि से सुन्दर 'अशोक स्तम्भ' का शीर्षक है। इसका आकार खिले हुए कमल की तरह है।

बनारस के राजघाट की खुदायी में मिली हुई कुछ 'चकिये' मौर्य-कालीन सभ्यता का प्रदर्शन करती हैं। ऐसी

चकिए तक्ष शिला, कोसम, पाटलीपुत्र और वैशाली की खोदाई में भी मिली है।

कुषाण—युग में बनारस की कला को विशेष प्रोत्साहन मिला और मथुरा की कला के अनुकरण पर यहाँ की कला का विकास हुआ।

सन् १९०५ ई० में श्री ओएरटेल को बुद्ध की एक विशाल मूर्ति मिली। इस मूर्ति का निर्माण ईसवीं सन् पूर्व ८१ में हुआ माना जाता है। यह कनिष्क के राज्य का तीसरा वर्ष था। यह मूर्ति मथुरा से बन कर काशी आयी थी। यह भगवान बुद्ध की सब से पहली मूर्मि थी। समझा जाता है कि सम्राट् कनिष्क के पहले बौद्ध धर्म में मूर्तियों का रिवाज नहीं था।

बुद्ध की इस मूर्ति के अनुकरण पर बनारस के कारीगरों ने दूसरी और तीसरी शताब्दी में स्थानीय कला के मेल से एक नवीन मूर्ति कला का सृजन प्रारम्भ किया।

बनारस की इस नवीन मूर्तिकलाने करीब छह सौ वर्ष के निरन्तर चातुर्य्य के पश्चात् एक अपूर्व रूप ग्रहण किया। डॉ० मोतीचन्द के अनुसार "इस कला में आध्यात्मिकता और लावण्य व्यञ्जना का एक ऐसा आकर्षक समिश्रण पाया जाता है जैसा और किसी युग की कला में नहीं पाया जाता। गुप्त युग में रूप भेद, प्रमाण, भाव, लावण्य और सादृश्य तो कला के गुण हैं ही पर इन सब के ऊपर इस कलामें उस अपूर्व आध्यात्मिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति पाई जाती है जो केवल योग द्वारा ही अनुभूत हो सकती है। अगर हम यों कहें कि भारतोय कला के इतिहास की अनेक धाराओं का गुप्त काल की कला में अपूर्व समिश्रण है तो ठीक ही होगा।"

इसके अतिरिक्त काशी में मिट्टी के रंग बिरंगे बर्त्तन बनाने वाले कुम्भकार, खिलौने बनाने वाले शिल्पी इत्यादि कई प्रकार के कलाकार प्राचीन काल से ही रहते आये हैं

पर काशी की कला का सर्वोत्कृष्ट नमूना यहाँ के बने हुए रेशम और जरी के वस्त्रों में मिलता है। इस प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख बौद्ध जातकों में "कास्सेयक" या "वाराणसेय्यक" नाम से देखने को मिलता है। आज भी काशी के बने रेशम और जरी के वस्त्र संसार का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं।

काशी के पर्व और त्यौहार

काशी अपने पर्व, त्यौहार और रागरंग के लिए हमेशा से प्रसिद्ध रहा है। "आठ बार और नौ त्यौहार" वाली कहावत यहाँ हूबहू चरितार्थ होती है। हर तरह के त्यौहार में जीवन को राग, रंग और मौज मजा से युक्त बना देना काशी के लोगों के स्वभाव में शामिल होगया है। नाच, गायन, कव्वाली, हंसी, मजाक, भाँग छानना इत्यादि सभी चीजों के लिए काशी बड़ा प्रसिद्ध रहा है। थोड़े खर्च में, सादगी के साथ हंस खेलकर त्यौहार मना लेने की क्रिया बनारस के अतिरिक्त भारत वर्ष के दूसरे किसी भी हिस्से में नहीं है।

इतिहास के अत्यन्त प्राचीन युग के साहित्य में भी बनारस के रागरंग और यहाँ पर मनाये जाने वाले त्यौहारों का उल्लेख आया है। प्राचीन काल के त्यौहारों में दीवाली, छत्रमंगल, हस्ति मंगल, मदिरोत्सव इत्यादि त्यौहार मनाये जाते थे।

इस समय जो त्यौहार बनारस में मनाये जाते हैं उनका मासिक विवरण इस प्रकार है।

चैत्रमास—इस महीने में नवरात्रि का मेला, गनगौर का मेला और रामनवमी का मेला प्रधान है। नवरात्रि में नौ दिन तक भक्त लोग एक-एक दिन नौ दुर्गाओं के दर्शन करने जाते हैं। यह मेला दुर्गाकुण्ड पर लगता है। गन गौरका मेला राजमन्दिर में लगता है। यह त्यौहार मारवाड़ियों का चलाया हुआ है। रामनवमी का मेला रामघाटपर लगता है। चैत्र कृष्ण त्रयोदशी को वारुणी का त्यौहार मनाया जाता है पहले इस त्यौहार पर लोग शराब पीते थे अब भंग छानते हैं।

वैशाख—इस महीने में नरसिंह चतुर्दशी का मेला बड़े गनेश पर लगता है। इस मेले में नरसिंह लीला दिखाई जाती है।

जेठ—इस महीने में गाजी मियाँ का मेला बकरिया कुण्ड पर लगता है। गंगा दशमी का मेला पंच गंगाघाट पर लगता है इस मेले में खूब नाच गाना होता है। इसी प्रकार इस महीने में निर्जला एकादशी और स्नान यात्रा

का मेला भी लगता है। ज्येष्ठ कृष्ण अमावस्या को स्त्रियाँ बड़के पेड़ और सावित्री का पूजन करती हैं।

असाढ़—असाढ़ में जगन्नाथ की रथयात्रा असाढ़ शुक्ल २-३-४ को बेनीराम के बाग में और पट-परीक्षा का मेला गुरु पूर्णिमा को चौकाघाट में लगता है।

श्रावण—श्रावण के हर रविवार को वृद्धकाल पर, हर मंगल को दुर्गाजी पर, हर सोमवार को सारनाथ पर और हर वृहस्पतिवार को फातमान पर मेला लगता है। दुर्गाजी के मेले में और फातमान के मेले में वार-वनिताओं का खूब नाच-गान होता है। इस प्रकार सारे श्रावण भर बनारस मस्ती में झूमता रहता है। इस महीने में नागपंचमी का मशहूर मेला नाग कुआँ पर लगता है। रक्षाबन्धन का पवित्र त्यौहार भी बनारस में बड़ी शान के साथ मनाया जाता है। बहनें भाई को राखी बाँधती है।

भादों—इस महीने में कजरी-तीज का मेला शंखूधारा और ईसरगंगी पर बड़े ठाट-बाट से लगता है। बनारस की गौनहारिनों की कजली और नाच इन मेलों में होते हैं। मेले के सिवाय इस अवसर पर बनारस के घर-घर और मोहल्ले २ में कजरी की मस्तानी राग छायी हुई रहती है। इसी प्रकार भादों में लोलार्क छठ का मेला असी के समीप लोलार्क कुण्ड पर, वामन द्वादशी का मेला चित्रकूट और बरना संगम पर, तथा सोरहिया का सोलह दिन का मेला लक्ष्मीकुण्ड पर लगता है। अनन्त चौदस से रामनगर में रामलीला प्रारम्भ हो जाती है। जन्माष्टमी का त्यौहार भी काशी में बड़े ठाठ बाट से मनाया जाता है।

कुँवार—कुवार महीना में रामलीला के उत्सव बनारस में कई स्थानों पर बड़े ठाट बाट से मनाये जाते हैं। नाटी इमली के भरत मिलाप में लाखों आदमी सम्मिलित होते हैं। इसी प्रकार यहाँ बंगालियों द्वारा दुर्गापूजा का उत्सव भी बड़ी शान शौकत के साथ मनाया जाता है।

कार्तिक—कार्तिक में धनतेरस का मेला चौखम्भा पर तथा ठठेरी बाजार में, उसके दूसरे दिन नरक चौदस का मेला भदैनी और मीरघाट में, दीवाली का उत्सव सारे नगर में, तथा यम द्वितीया या भाईदूज का मेला जमघाट पर लगता है। भाईदूज के दिन सब बहनें अपने भाइयों को टीके निकालती हैं और उनके मुँह में मिठाई देती हैं। इस सारे महीने में प्रातःकाल के समय असंख्य नर-नारी गंगा के घाटों पर कार्तिक स्नान करते हुए दिखलाई पड़ते हैं। इस समय गंगा के घाटों की अपूर्व शोभा हो जाती है। कार्तिक कृष्णा चतुर्थी को चेतगंज की नकटैय्या का और शुक्ला चतुर्थी को नागनथैया का मेला अत्यन्त कलापूर्ण और आकर्षक होता है।

अगहन—इस महीने के पहले मंगल को बरना नदी पर पियाले का मेला लगता है। इस मेले में कालका और सहजा को शराब का भोग लगाया जाता है और शराब पीकर लोग खूब नाचते गाते हैं। इसमें नीची जाति के लोग विशेष सम्मिलित होते हैं। इसी महीने की कृष्ण पक्षीय ७-८ को पंचकोशी का मेला लगता है। पिशाचमोचन पर इस महीने में 'लोटा भंटा' का मेला लगता है। इसमें लोग रोटी बनाकर बैंगन के भुरते के साथ खाते हैं। अगहन की पूर्णिमा को नगर पूर्णिमा का मेला होता है।

माघ—माघ शुक्ल ४ को बड़े गणेश पर भारी मेला लगता है। माघ महीने के हर सोमवार को रामनगर के वेदोव्यास नामक स्थान पर एक मेला लगता है। बसन्त पंचमी को सरस्वती पूजा का उत्सव मनाया जाता है।

फागुन—इस महीने की कृष्णा त्रयोदशी को महाशिवरात्री का मेला विश्वनाथ-मन्दिर पर बड़े विशाल रूप में लगता है। शिव को प्रसन्न करने के लिए इस दिन लोग भाँग-बूटी छानते हैं।

होली का त्यौहार बनारस में बड़े रागरंग, आनन्द और मस्ती के साथ मनाया जाता है। फगुवे का यह उत्सव एकादशी से पूर्णिमा तक मनाया जाता है। रंगभरी एकादशी को विश्वनाथ मन्दिर में खूब अबीर गुलाल का आदान प्रदान होता है। दुलहण्डी के दिन सबेरे सारे बनारस में रंगभार, गाली गलौज, कीचड़मस्ती, अश्लील गाने इत्यादि की खूब धूम रहती है। दुपहर में लोग नहा धोकर श्वेत वस्त्र पहन कर अबीर की झोली लेकर निकलते हैं। पहले वे इस त्यौहार की अधिष्ठात्री चौसठी देवी के दर्शन करते हैं। फिर जान पहचान के दोस्त मित्रों, भाई बन्धुओं से गले मिलकर उनको अबीर लगाते हैं। फिर

इनमें से बहुत से शौकीन मिज़ाज के लोग होलियाँ और कबीर गाते हुए दालमण्डी में बार-वनिताओं के घरों के सम्मुख जाकर खूब रंगरेलियाँ करते हैं।

होली के बाद पहले मंगल वार को गंगाजी में बुढ़वा मंगल का मेला लगता था। कुछ लोगों के मतानुसार इस मेले का प्रारम्भ मीर रुस्तम अलीने और कुछ के मत से चेतसिंह ने किया था। इस मेले में बहुत से बजड़े और नौकाएं खूब सजाकर गंगाजी में छोड़ दिये जाते थे। बनारस के तमाम बड़े-बड़े शौकीन मिजाज़ के लोग इकट्ठे होते थे और बनारस की तमाम नामांकित नर्तकियों के नाच और गानों से काशी का वातावरण मादक हो उठता था। इस मेले में मैना नामक नर्तकी ने बड़ी प्रसिद्धि पाई थी। यह मेला चार दिनतक चलता था। अब यह बन्द हो गया है।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है जितने त्यौहार और मेले बनारस में होते हैं और जिस शान और राग रंग के साथ बनारस के लोग इन्हें मनाते हैं वैसे हिन्दुस्तान के अन्य किसी शहर में नहीं मनाये जाते हैं। काशी नगरी हमेशा अपनी मस्ती और मौज मजे के लिए सुप्रसिद्ध रही है। भाँग बूटी, पान की गिलौरियाँ, सैलसपाटा और नाच मुजरा यहाँ के जीवन का प्रधान अंग रहा है। यहाँ की नर्तकियों ने संगीत और नृत्य की कला के क्षेत्र में समय समय पर काफी यश और कीर्तिका सम्पादन किया है। यहाँ के भाण्ड भी अपनी कला के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं। यहाँ की गौनिहारिनें भी यहाँ के नगरनिवासियों का मनोरंजन करने में अपना पार्ट अदा करती हैं। तीतर और बटेर की लड़ाई करानेवाले, बुलबुल पालनेवाले, कबूतरबाज और पतंगबाज भी यहाँ के शहर की मस्ती को बढ़ाने में अपनी कला का इस्तेमाल करते हैं। जिन्दगी का कोई रंगीन पहलू ऐसा नहीं है जिसके दर्शन काशी में न होते हों।

इसके साथ ही गुण्डागिरी, पण्डागिरी और ठगहरी के क्षेत्र में भी बनारस किसी से पीछे नहीं हैं। बड़े-बड़े जुए के अड्डे, वामाचारियों के अड्डे इत्यादि भी यहाँ बहुत रहे हैं। आजकल कुछ कम हो गये हैं। साण्डों की लड़ाई भी बनारस की एक दर्शनीय वस्तु है जो अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलेगी।

काशी की शिक्षण संस्थाएँ

अपनी शिक्षण संस्थाओं के लिए काशी हमेशा से सारे भारत में प्रसिद्ध रहा है। उच्च जातियों में यज्ञोपवीत के समय यज्ञोपवीत लेने वाले को काशी जाकर विद्या प्राप्त करने का दस्तूर अदा किया जाता है।

गुप्त साम्राज्य के समय में काशी शिक्षा का बहुत बड़ा केन्द्र था। राजघाट की खुदाई में मिली हुई मुद्राओं से पता चलता है कि उस काल में काशी में आन्वीक्षिकी, त्रयीवार्ता, दण्डनीति और शाश्वती इन चार प्रकार की, विद्याओं की शिक्षा देने वाली शिक्षण संस्थाएँ विद्यमान थीं। इसी प्रकार ऋग्वेद की शिक्षा देने वाली, सामवेद पढ़ाने वाली भी अलग-अलग पाठशालाएँ थीं। ऐसा समझा जाता है कि उस समय काशी के हर एक मन्दिर के साथ-साथ एक पाठशाला रहती थी।

गाहड़वाल युग में भी काशी शिक्षा का बहुत बड़ा केन्द्र था। अलबेरूनी के अनुसार बनारस और कश्मीर उस समय संस्कृत ज्ञान, विज्ञान और शिक्षा के बहुत बड़े केन्द्र थे। बनारस के पण्डितों और पाठशालाओं में उस समय सिद्ध मातृका अक्षर चलते थे।

गाहड़वाल राजा गोविन्दचन्द के युग में काशी में दामोदर पण्डित नामक एक प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री हुए थे। ये यजुर्वेद की वाजसनेयी शाखा को मानने वाले, सूर्य भक्त और ज्योतिष के पाँच सिद्धान्तों के पण्डित थे। इस युग में अर्थात् बारहवीं सदी के काशी विद्यार्थी सिर घुटाते थे, लम्बी चोटी रखते थे और धोती पहनते थे।

अठारहवीं सदी में भी काशी में संस्कृत शिक्षा का वही प्रबन्ध था जो मुगलकाल में या उससे भी पहले से चला आ रहा था। विद्यार्थियों को काशी के गुरु निःशुल्क पढ़ाते थे और साथ ही साथ उनके भोजन और रहने का भी प्रबन्ध करते थे। इसके लिए उन्हें राजाओं तथा धनी लोगों से पर्याप्त सहायता मिलती थी।

बनारस संस्कृत कॉलेज

पहली जनवरी सन् १७६२ को पण्डित काशीनाथ की प्रेरणा से यहाँ के रेजिडेण्ट जोनेथन डङ्कन ने बनारस में संस्कृत शिक्षा के लिए एक कॉलेज खोलने का प्रस्ताव गर्वनर जनरल वारन हेस्टिंज के पास भेजा और उन्होंने तत्काल उस प्रस्ताव को मंजूर कर उसके लिए बीस हजार रुपये की मंजूरी दे दी। कालेज के पहले प्रधान आचार्य पं० काशीनाथ बनाये गये। और इनका वेतन दो सौ रुपया प्रतिमास निश्चित किया गया।

काशी में अंगरेजी शिक्षा के अधिक प्रचार का श्रेय राजा जय नारायण घोषाल को है। सितम्बर सन् १८१४ में जब वारने हेस्टिंग्ज बनारस आये तब जयनारायण स्कूल की नींव पड़ी। इस स्कूल का प्रबन्ध एंडलिंग्टन नामक एक पादरी देखते थे और इस में विद्यार्थियों को अंगरेजी बाइबिल, इतिहास, फारसी, गणित, भूगोल और अंग्रेजी पढ़ाई जाती थी।

सन् १८३० में इण्डियन सेमिनरी स्कूल के नाम से एक अंग्रेजी स्कूल की काशी में स्थापना हुई और १८३६ में इसका नाम बदल कर गवर्नमेण्ट स्कूल कर दिया गया। सन् १८५२ में इस स्कूल की विशाल इमारत बनी जिसमें तेरह हजार पौण्ड खर्च हुआ। इस समय इस स्कूल के प्रिंसिपल मि० बैलेण्टाइन नामक एक अंगरेज थे।

इसके पश्चात् काशी में अंग्रेजी शिक्षा के लिए क्वीन्स कॉलेज, कटिंग मेमोरियल स्कूल, हरिश्चन्द्र कॉलेज, दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कॉलेज, बंगालीटोला हाईस्कूल, सनातन धर्म कॉलेज, उदयप्रताप कॉलेज, सेण्ट्रल हिन्दू कॉलेज, थिआसोफिकल नेशनल हाई स्कूल, बसन्त कॉलेज फॉर विमेन्स इत्यादि अनेक शिक्षा संस्थाओं का निर्माण हुआ। जो इस समय भी शान के साथ चल रही हैं।

काशी के संस्कृत विद्यालयों में संस्कृत कॉलेज को छोड़कर अनेक विद्यालय मारवाड़ी व्यापारियों की ओर से चल रहे हैं। इन विद्यालयों में (१) मारवाड़ी संस्कृत कॉलेज, (२) टिकमाणि संस्कृत कॉलेज (३, श्री चन्द्र महाविद्यालय (४) बिड़ला संस्कृत विद्यालय (५` विशुद्धानन्द विद्यालय (६) सांगवेद विद्यालय विशेष उल्लेखनीय है। इनके सिवाय भी छोटी बड़ी पचासों संस्कृत पाठशालाएं चल रही है।

हिन्दू विश्वविद्यालय काशी

मगर काशी को सब से बड़ा शैक्षणिक गौरव तब प्राप्त हुआ जब महामना मदनमोहन मालवीय ने ज्ञान की इस उर्वरा भूमि में हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की।

सन् १६०४ में काशी नरेश प्रभुनारायणसिंह के सभापतित्व में मिण्टहाउस की एक सभा में मालवीय जी ने हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव रक्खा। कुछ समय के पश्चात् प्रयाग में सनातन धर्म सभा के अधिवेशन में यह निश्चय हुआ कि इस संस्था के लिए कम से कम एक करोड़ रुपया इकट्ठा किया जाय।

इसी बीच थियोसोफिकल सोसायटी तथा भारतीय राजनीति की प्रसिद्ध नेत्री श्रीमती एनीबीसेण्ट ने और दरभंगा के महाराज रामेश्वर सिंह ने भी काशी में इसी प्रकार के विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए अलग-अलग योजनाएँ बनाई। इस प्रकार एक ही स्थान में, एक ही समय में तीन-तीन विश्वविद्यालयों की योजनाएँ बन गई जिनका सफल होना सम्भव नहीं था।

तब पं० मालवीय जी, श्रीमती एनीबीसेण्ट और महाराजा दरभङ्गा से मिले और उनके साथ हिन्दू विश्वविद्यालय की योजना पर कई बार विचार किया और अन्त में सन् १६११ में अथक उद्योग और परिश्रम के द्वारा उन्होंने उन्हें अपने पक्ष में कर लिया। तब पण्डित मालवीय और दरभंगा नरेश इस सम्बन्ध में भारत के वायसराय लार्ड हार्डिंज और शिक्षा मंत्री बटलर से मिले। इन लोगों ने कुछ शर्तों के साथ इस कार्य में सरकारी सहायता देने का बचन किया।

दिसम्बर सन् १६११ में हिन्दू विश्वविद्यालय सोसायटी का रजिस्ट्रेशन हुआ। इस सोसायटी के अध्यक्ष महाराज दरभंगा और मंत्री सर सुन्दरलाल बनाये गये।

अब इस संस्था के लिए धन इकट्ठा करने को डेपूटेशन मिला। इस डेपूटेशन में मालवीयजी के सा

दरभंगा नरेश भी थे। इस डेपूटेशन ने बंगाल, बिहार, संयुक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त, पंजाब और राजपूताने की कुछ रियासतों का दौरा किया और नवम्बर १६१३ तक इस कोष में ८२ लाख रुपये के वचन और करीब ४२ लाख रुपये नगद हकट्ठे कर लिये।

इस बीच में सेण्ट्रल हिन्दू कॉलेज के ट्रस्टियों ने वह कॉलेज हिन्दू विश्वविद्यालय को सौंपना तय कर लिया और सन् १६१५ में बड़ी कौन्सिल में हिन्दू यूनिवर्सिटी एक्ट भी पास हो गया।

४ फरवरी सन् १६१६ को वसन्त पंचमी के दिन बड़े समारोह के साथ अनेकों राजा, महाराजा, जमींदार, श्रीमंत और कई प्रान्तों के गवर्नरों की उपस्थिति में वाइसराय लार्ड हार्डिंज ने हिन्दू विश्वविद्यालय का शिलान्यास किया। हिन्दू विश्वविद्यालय के इतिहास में यह दिन चिरस्मरणीय है।

अब विश्वविद्यालय की इमारतें बनाने के लिए जमीन खरीदी गई जिसमें कुछ जमीन राजा प्रभुनारायण सिंह ने अपनी ओर से विश्वविद्यालय को दान में दी और सन् १६१८ में सर गंगाराम की देखरेख में इमारतें बनाने का काम प्रारम्भ किया गया। तीन वर्ष में बहुत सी इमारतें बनकर तैयार हो गई और सन् १६२१ में प्रिन्स ऑफ वेल्स के हाथों से विश्वविद्यालय का उद्घाटन किया गया।

उद्घाटन के पश्चात् महामना मालवीय जी के सतत प्रयत्नों से इस संस्था की दिन दूनी और रात चौगुनी उन्नति होने लगी। विश्वविद्यालय का पहला कॉलेज सेण्ट्रल हिन्दू कालेज था। उसके बाद प्राच्यविद्या कॉलेज, आयुर्वेदिक कॉलेज, ट्रेनिंग कॉलेज, लॉ कॉलेज, महिला कॉलेज, इंजीनियरिंग कॉलेज, माइनिंग कॉलेज, संगीत कॉलेज, फौजी शिक्षा कॉलेज, और विशाल लायब्रेरी इत्यादि अनेकानेक संस्थाओं की इस विश्वविद्यालय में स्थापना होती गई। और आज तो शायद अपनी व्यापकता और विशालता में सारे भारत में यह विश्व विद्यालय सबसे पहला है।

विश्वविद्यालय नगर लगभग दो मील लम्बे और एक मील चौड़े क्षेत्र में बसा हुआ है। इस भूमि में २१ मील लम्बी कई सड़कें बनी हुई हैं। इन सड़कों के किनारे २०००० वृक्ष लगे हुए हैं। इस भूमि में बड़े-बड़े आयुर्वैदिक वनस्पतियों के उद्यान भी बने हुए हैं। स्थान-स्थान पर कई खेल के मैदान भी बने हुए हैं। विद्यार्थियों के रहने के लिए दस से अधिक बड़े-बड़े विशाल छात्रावास और शिक्षकों के रहने के लिए सैकड़ों बँगले बने हुए हैं।

इस प्रकार काशी हिन्दू विश्वविद्यालय अपनी शान शौकत और विविध विषयों की शिक्षा के द्वारा काशी के गौरव को उच्च शिखर पर पहुँच रहा है।

काशी विद्यापीठ

महात्मा गांधी के द्वारा संचालित राष्ट्रीय आन्दोलन के समय देश में कई स्थानों पर राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना हुई। काशी में भी बाबू शिवप्रसाद गुप्त ने इस समय में काशी विद्यापीठ नामक एक राष्ट्रीय विद्यालय की सन् १६२२ में स्थापना की। शहर से बाहर बनारस छावनी स्टेशन के रास्ते पर दो बड़े-बड़े विशाल बगीचों में इमारतें बनवाकर या मरम्मत करवा कर इस विद्यापीठ को प्रारम्भ किया गया। इसके निर्माण में कई लाख रुपये खर्च हुए। बीच में राजनैतिक कारणों से विद्यापीठ बन्द करना पड़ा। इस समय यह विद्यापीठ चल रहा है और इसके साथ एक विशाल पुस्तकालय भी है।

काशी की विचित्रताएँ

काशी के सम्बन्ध में ऊपर जो वर्णन किया गया है उससे मालूम पड़ता है कि—

काशी—भारतवर्ष में धर्म ध्यान की, ज्ञान विज्ञान की, राग रंग की और मौज मजे की नगरी है। वाणिज्य व्यापार, कला कौशल, मेहनत मजदूरी सभी क्षेत्रों में यहाँ के लोग प्रवीण हैं, मगर इन सब बातों के करते हुए भी यहाँ के लोग 'जीवन के आनन्द' को एक क्षण के लिए भी नहीं भूलते। मशीन के इस युग में जबकि दुनिया के सभी शहरों के लोग मशीन की तरह कार्यव्यस्त होकर जीवन के वास्तविक आनन्द को भूल गये हैं, इस नगरी में आज भी प्राचीन युग की तरह जीवन का आनन्द लहरें मारता हुआ दिखाई देता है।

काशी—साहित्य और कला का केन्द्र है। युगों-युगों से यह नगरी भारतवर्ष को साहित्य और कला सम्बन्धी महत्वपूर्ण सम्पदा देती रही है। कबीरदास, तुलसीदास, भारतेन्दु,

प्रसाद, भारतरत्न डा० भगवानदास इत्यादि बड़े-बड़े अनेकों साहित्यकारों की सेवाएँ इस नगरी को प्राप्त हुईं।

काशी—बाबा विश्वनाथ की नगरी है जिनके भूत भावनरूप का दर्शन करने के लिए पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों दिशाओं से ठट्ठ के ठट्ठ लोग उस समय भी उमड़ पड़ते थे जब आने जाने के लिए रेलें नहीं बनी थीं।

काशी—भगवान पार्श्वनाथ की नगरी है। जहाँ पर सुपार्श्वनाथ, चन्दा प्रभु, श्रेयांसनाथ और पार्श्वनाथ के समान चार-चार तीर्थंकरों ने अवतीर्ण होकर जैन-धर्म के गौरव को बढ़ाया था।

काशी—गंगा माई की पवित्र नगरी है। यहाँ की गंगा में प्रति वर्ष लाखों देश-विदेश के यात्री स्नान कर, सूर्य को अर्घ्य चढ़ाकर अपने जन्म-जन्मान्तर के पापों को काटने की चेष्टा करते हैं।

काशी—धर्माचार्यों की नगरी है। पार्श्वनाथ, कबीर साहब, वल्लभाचार्य और शंकराचार्य जैसे महान नेताओं ने अपने धर्म-ज्ञान से इस नगरी को अलंकृत किया है।

काशी—पं० मदनमोहन मालवीय, डॉ० भगवानदास और बाबू शिवप्रसाद गुप्त के समान उदार चेताओं की नगरी है जिन्होंने अपनी महान सेवाओं और प्रेरणाओं से उसे इस युग की श्रेष्ठ नगरी बना दिया।

काशी—वार, त्यौहार और पर्वों की नगरी है। जहाँ प्रतिदिन किसी न किसी स्थान पर कोई न कोई उत्सव और गाना-बजाना होता रहता है और बड़े-बड़े त्यौहारों पर तो यह नगरी अपने घाटों सहित नव वधू की तरह सज जाती है। धनतेरस के दिन यहाँ की ठठेरा बाखल की सजावट इन्द्रपुरी की तरह हो जाती है।

काशी—यहाँ की वारांगनाएँ और यहाँ की सौन्दर्य्य-हाट प्राचीन काल से बहुत प्रसिद्ध रही हैं। प्राचीन काल के कवियों ने अपने ग्रन्थों में काशी की वारांगनाओं के वैभव की बहुत चर्चा की है। बौद्ध जातकों में काशी की 'अड्ढकासी' नामक वेश्या की बड़ी प्रशंसा की गई है। पाँचवीं सदी के श्यामिलक कवि ने काशी की 'पराक्रमिका' नामक वेश्या की और आठवीं सदी में कश्मीर के दामोदर गुप्त ने काशी की 'मालती' नामक वेश्या की बड़ी प्रशंसा की है। आधुनिक युग में भी यहाँ की कई नामांकित नर्तकियों ने संगीत और नृत्य के क्षेत्र में काफी ख्याति प्राप्त की है। काशी का 'दालमण्डी' नामक बाजार भारतवर्ष का एक प्रसिद्ध सौन्दर्य्य, कला और वासनाओं का केन्द्र रहा है।

काशी—दङ्गलों की नगरी है। नागपंचमी पर यहाँ कुश्ती के दङ्गल होते हैं। श्रावण महीने में यहाँ कजली और आल्हा के दङ्गल होते हैं। सर्दी की ठण्डी रातों में यहाँ कव्वाली के दङ्गल होते हैं। मकर संक्रान्ति पर यहाँ पतंगबाजी, तीतर-बटेर और बुलबुलों के दङ्गल होते हैं। गर्मियों में यहाँ तैराकी और नौकाओं के दङ्गल होते हैं जिनमें हजारों दर्शक मनोरंजन करते हैं।

काशी—गलियों और घाटों का नगर है। एक चन्द्रकार रूप में गंगाजी पर जिस प्रकार विशाल क्षेत्र में यहाँ घाटों की श्रेणी बनी हुई है, वैसी संसार के किसी नगर में किसी नदी पर देखने को नहीं मिलेगी। इन घाटों से निकली हुई गलियाँ आपको सारे शहर में जाल की तरह बिछी हुई मिलेंगी। काशी के एक सिरे से प्रारम्भ करके काशी के दूसरे सिरे तक आप गलियों ही गलियों में जाकर पहुँच सकते हैं। इस प्रकार की गलियाँ कहीं भी दूसरे शहर में देखने को न मिलेंगी। वैशाख और जेठ के झुलसाने वाले महीनों में भी ये गलियाँ 'एअर कण्डीशण्ड' रहती हैं। गलियों में गन्दगी बहुत रहती हैं, पर सफाई भी दिन में दो बार होती है।

काशी—यहाँ की गुण्डागिरी भी बड़ी अद्भुत है। दिन दहाड़े भरी सड़क पर लोगों को गण्डासा मार कर हत्या कर देना यहाँ मामूली बात है। समय-समय पर ऐसे केस यहाँ दर्ज हो ही जाते हैं।

काशी—गुण्डों की ही तरह काशी के साण्ड भी बड़े प्रसिद्ध हैं। बीच बाजार में साण्डों की लड़ाई जैसे भयंकर रूप में यहाँ देखने को मिलेगी ऐसी कहीं भी न मिलेगी।

काशी—बाबा, जोगियों की नगरी है। हर तरह के साधु, सन्त, बाबा और तान्त्रिक यहाँ पर देखने को मिलेंगे। इनमें कुछ लोग वास्तव में सिद्ध और पहुँचे हुए होते हैं। मगर अधिकांश लोग अपनी वेष-भूषा की आड़ में मौज

मस्ती से खाते-पीते हैं। भक्तों की किसी के पास कोई कमी नहीं है। औघड़, कापालिक, वाममार्गी, नागा इत्यादि सभी प्रकार के साधु इस भूमि में विचरण करते हुए देखे जाते हैं।

काशी—देवी-देवताओं की नगरी है। हिन्दू-धर्म का कोई देवता ऐसा नहीं जिसका मन्दिर यहाँ न हो। करीब-करीब पन्द्रह सौ मन्दिर इस नगरी में बने हुए हैं। संसार के अधिकांश घण्टे-घड़ियालों की आवाज इस युग में जहाँ बहुत मन्द पड़ चुकी हैं, वहाँ काशी के घण्टे-घड़ियाल आज भी प्रतिदिन उसी धूम-धाम से बजते हैं जैसे हजार बरस और दो हजार बरस पहले बजते थे। संकटमोचन हनुमान के स्थान पर परीक्षा के समय में बनारस के हजारों विद्यार्थी पास होने की मनौती लेकर प्रतिदिन वहाँ साष्टांग दण्डवत करते तथा प्रसाद चढ़ाते हैं।

काशी- भिन्न-भिन्न संस्कृतियों का एक अद्भुत समन्वय है। बंगाली, दक्षिणी, मद्रासी, राजस्थानी, जैन, बौद्ध, शैव, वैष्णव-सभी संस्कृतियों का इस नगरी में एक अपूर्व सम्मेलन देखने को मिलता है।

काशी—शौकीन मिजाज लोगों की नगरी है। यहाँ के व्यापारी, साहित्यकार, पण्डित, आचार्य, विद्यार्थी यहाँतक कि साधु, बाबा तक भी बड़े शौकीन मिजाज होते हैं। मघई पान की गिलौरियाँ चबाना यहाँ के शौकीनों का पहला शौक है। चुन्नटदार श्वेत मलमल का कुरता और धोती, पहनना, बढ़िया तैल और इत्र लगाना, नौका में घूमना, संकटमोचन और सारनाथ का दर्शन करना, शाम को किसी महफिल की शोभा बढ़ाना या गहिरेबाज इक्कों पर बैठकर सैर को निकलना ये सब यहाँ के शौकीन लोगों के प्रधान शौक हैं।

काशी—प्राचीन काल से समस्त भारतवर्ष में शिक्षा का एक महान् केन्द्र रहा है। देश के कोने-कोने से संस्कृत विद्या का अध्ययन करने के लिए हजारों विद्यार्थी यहाँ आते थे। गुरुओं के आश्रम में उन्हें शिक्षा, खाना और रहना निःशुल्क प्राप्त होता था। आज भी काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय के कारण सारे देश में शिक्षा का एक महान् केन्द्र बना हुआ है। देश भर के हजारों विद्यार्थी प्रतिवर्ष यहाँ पर कला और विज्ञान के भिन्न-भिन्न अंगों की शिक्षा ग्रहण करने आते हैं और उनसे शहर की रौनक बढ़ी हुई रहती है।

काशी—रेशमी और जरी के कामों का एक अत्यन्त प्रसिद्ध केन्द्र बहुत पुराने समय से बना हुआ है। यहाँ के कारीगरों के हाथ की बनाई हुई महीन जरी और रेशम की साड़ियों का कलात्मक रूप देखकर स्वयं कला भी निहाल हो उठती है और मनुष्य वाह-वाह कर उठता है। यह कारीगरी अभी भी यहाँ बहुत सुरक्षित है।

काशी—सुप्रसिद्ध लंगड़ा आम, मघई पान, रामनगरी बेर, बनारसी आँवला और इलाहाबादी अमरूदों की नगरी है। प्रकृति के प्रसाद से ये उत्कृष्ट वस्तुएँ उसे प्राप्त हैं और यहाँ से सारे देश में भेजी जाती हैं।

काशी—सत्व, रज और तम तीनों गुणों की मिश्रित नगरी है। यहाँ पर बड़े-बड़े योगी, दार्शनिक, तपस्वी, साहित्यकार और व्यापारी भी रहते हैं साथ ही बड़े-बड़े गुण्डे, बदमाश, व्यभिचारी और ठगों को भी इस महा नगरी में आश्रय मिलता है।

मतलब यह कि 'काशी तीन लोक से न्यारी' वाली कहावत आज भी इस नगरी के लिए चरितार्थ है। भिन्न-भिन्न प्रकार की जितनी विचित्रताओं का समूह इस क्षेत्र में देखने को मिलेगा वैसा शायद संसार में अन्यत्र कहीं भी देखने को नहीं मिलेगा। भगवान् शंकर की यह नगरी अत्यन्त प्राचीन काल से सारे भारतवर्ष के लिए गौरव की वस्तु रही है और आज भी है। इसीसे यहाँ के लोग कहते हैं—

चना, चबेना, गंगजल, जो पुरवै करतार—
काशी कबहुँ न छोड़िये, विश्वनाथ दरबार।

डॉ० वासुदेव शरण लिखते हैं कि काशी ज्ञान की पुरी है और गंगा ब्रह्मदेवी है, ये काशी के अध्यात्म-सूत्र हैं। इन्हीं की नित्य नई-नई व्याख्या काशी के जीवन की सार्थकता है। यदि ज्ञान इस मानव जीवन के लिए आवश्यक है और उस ज्ञान का अन्तिम प्रयोजन ब्रह्म का साक्षात्कार है तो इन दोनों की उपलब्धि काशी में होना चाहिए। तभी काशी में निवास करने और गंगा में स्नान करने की सार्थकता है।

काशीप्रसाद जायसवाल

भारतवर्ष के एक सुप्रसिद्ध इतिहासकार और पुरातत्वज्ञ जिनका जन्म उन्नीसवीं सदी के अन्तिम चतुर्थांश में हुआ और मृत्यु बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में हुई।

डॉ० जायसवाल पटने से प्रकाशित होने वाले "पाटलिपुत्र" नामक साप्ताहिक पत्र के सम्पादक थे। इतिहास सम्बन्धी खोजों का इन्हें प्रारम्भ से ही शौक था। प्राचीन भारत के इतिहास के सम्बन्ध में इनके निकाले हुये तथ्य और खोजें बड़ी प्रामाणिक मानी जाती हैं और देश के कई गण्यमान्य इतिहासकार अपने ग्रन्थों में प्रमाण रूप से जायसवाल की खोजों के उद्धरण देते हैं।

काशीरामदास

बंगला-साहित्य में महाभारत के प्रसिद्ध अनुवादकर्ता जिनका जन्म सोलहवीं सदी के अन्त में और मृत्यु सन् १६७८ के करीब हुई।

काशीरामदास वर्दवान जिले के इन्द्राणी परगने के एक गाँव के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम प्रियंकर था।

काशीरामदास महाभारत का बंगला-भाषा में अनुवाद कर प्रसिद्ध हो गये। इनके पहले भी "सञ्जय" "कवीन्द्र परमेश्वर" "द्विजअभिराम" "नित्यानन्द घोष" "द्विज कविचन्द्र" इत्यादि कई लेखकों ने महाभारत या उसके किसी पर्व का बंगला में अनुवाद किया था।

मगर इन सबमें काशीरामदास के अनुवाद को सबसे अधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई। काशीरामदास के अनुवाद में निजी कल्पनाओं का बड़ा अद्‌भुत समावेश है। कई विशेष स्थानों पर कवि की प्रतिभा का प्रकाश दिखाई पड़ता है। कवि ने अपनी कृति का स्तर लोक क्षेत्रीय रक्खा है। गहरे आध्यात्मिक दर्शन से उसका सम्बन्ध नहीं, वह भक्ति की भावनाओं से ओत-प्रोत है।

काशीरामदास महाभारत के केवल आदिपर्व, सभापर्व, वनपर्व और विराट्पर्व के कुछ अंश का ही अनुवाद कर पाये। इसके बाद उनके अधूरे काम को उनके पुत्र नन्दराम ने पूर्ण किया।

कास्ट्रो

क्यूबा के राष्ट्रपति। जिनका जन्म १३ अगस्त सन् १९२७ ई० को ओरियंट प्रान्त के 'मयारीनगर' में हुआ था। उनके पिता ऐंजल-रुजदि कास्ट्रो, स्पेन से क्यूबा आये थे और गन्ने की खेती में उन्होंने लाखों रुपये उपार्जित किये थे। बाल्यकाल में कास्ट्रो ने इन्हीं खेतों में काम किया था और जवानी में इसी स्थान पर विद्रोही सेनाओं का संचालन भी किया।

सन् १९४५ में उन्होंने कालेज से दीक्षान्त उपाधि पायी। उसी समय से वे सरकार के विरुद्ध एक विद्रोही-दल में शामिल हो गये। अपनी सरकार की नीतियों का वह सदैव विरोध करते रहे।

इसके कुछ समय पश्चात् १० मार्च सन् १९५२ को 'बाटिस्टा' नामक एक व्यक्ति ने सैनिक-विद्रोह के द्वारा क्यूबा की सरकार का तख्ता उलट दिया और स्वयं वहाँ का शासन हाथ में लेकर वहाँ का 'तानाशाह' बन गया।

देश की बागडोर हाथ में आ जाने पर बाटिस्टा ने क्यूबा में आतंक का राज्य कायम कर दिया और हर तरह के विरोध को संगीनों की नोक से कुचल दिया।

कास्ट्रो ने बाटिस्टा के अत्याचारों को समाप्त करने के लिए अपने छोटे भाई के साथ विद्रोहियों का एक दल संगठित किया और २६ जुलाई सन् १९५३ को 'सान्तिसस्पेरे' और 'क्यूबा' में सैनिक-चौकियों और सरकारी भवनों पर हमला बोल दिया, परन्तु यह विद्रोह सरकारी सेनाओं ने बुरी तरह से कुचल दिया। कास्ट्रो पकड़ लिये गये और उन्हें १५ वर्ष की सजा का सख्त दण्ड सुना दिया गया। मगर सन १९५५ में आम रिहाई के समय कास्ट्रो भी मुक्त कर दिये गये।

मुक्त होकर कास्ट्रो क्यूबा न जाकर पहले न्यूयार्क और फिर मैक्सिको में गये और वहाँ पर रहने वाले क्यूबा-वासियों का मजबूत संगठन किया।

२ दिसम्बर सन् १९५६ को कास्ट्रो अपने छोटे भाई

और ८० अन्य विद्रोहियों के साथ एक पुराने बोट में क्यूबा के तट पर उतरे पर यहाँ उतरते ही उनपर आक्रमण हुआ। उनमें से कुछ मारे गये और बाकी 'मायस्त्रा' की पहाड़ियों में भाग गये।

इसके बाद कास्ट्रो ने क्यूबा में बाटिस्टा के विरुद्ध जो विद्रोही भावनाएँ फैली हुई थीं, उनको अद्भुत रूप से संगठित किया। जिसके फल-स्वरूप जनवरी सन १९६० में जेनरल बाटिस्टा भाग खड़ा हुआ और फीडेल कास्ट्रो की सेनाओं ने क्यूबा में प्रवेश किया।

क्यूबा की राज-सत्ता हाथ में आने के बाद फीडेल कास्ट्रो ने क्यूबा का नवीनीकरण प्रारंभ किया। जिसके फलस्वरूप उनको अमेरिका से विरोध मोल लेना पड़ा। क्योंकि राजनैतिक रूप से स्वतंत्र होने पर भी 'क्यूबा' आर्थिक दृष्टि से अमेरिका की पराधीनता में रहा है। क्योंकि वहाँ की अर्थ-व्यवस्था के सबसे मजबूत आधार चीनी उद्योग पर अमेरिका का नियंत्रण था।

फीडेल कास्ट्रो ने जब इस आर्थिक दासता से मुक्ति पाने के लिए कदम उठाना प्रारम्भ किये तो अमेरिका बिगड़ उठा।

दूसरी तरफ कास्ट्रो ने अमेरिका से मोर्चा लेने के लिए रूस के साथ साठ-गाँठ करना प्रारंभ किया। रूस ने अमेरिका के समीप ऐसा सुविधा जनक अड्डा पाने के अवसर को हाथ से न छोड़ा और उसने अपने जहाजों और पनडुब्बियों को क्यूबा के तट पर भेजना प्रारम्भ किया और अमेरिका को धमकी दी कि वह स्वतन्त्र क्यूबा के मामले में हस्तक्षेप न करे, वर्ना रूसी 'राकेट' क्यूबा की रक्षा करने को तैयार हैं।

मगर अमेरिका ने इस नाजुक प्रसंग पर बड़ी दृढ़ता और साहस से काम लिया और रूस को चेतावनी दे दी कि अमुक-अमुक समुद्री सीमा के भीतर रूसी जहाज और पनडुब्बियाँ प्रवेश न करें, वर्ना उन्हें तबाह कर दिया जायगा, और इस चेतावनी के साथ ही अपनी जल-शक्ति को तुरन्त उन सीमाओं पर जाने का आदेश दिया।

अमेरिका के इस सख्त कदम से रूस आश्चर्य में आ गया और उसने क्यूबा के मामले में आगे बढ़ाये हुए कदमों को पीछे हटा लिया। रूस की इस दुर्बल नीति की उस समय अन्तर्राष्ट्रीय संसार में काफी मजाक और आलोचना हुई, मगर राजनीति में तो ऐसा होता ही है।

रूस की इस कमजोरी से कास्ट्रो के हौसले भी कुछ ठंडे पड़ गये और उधर से आने वाले जोश-खरोश पूर्ण समाचार भी बन्द हो गये और ऐसा मालूम होता है कि अब वहाँ पर साधारणतया वैधानिकशासन चल रहा है।

काहिरा (कैरो)

सुप्रसिद्ध प्राचीन मिश्र देश की वर्त्तमान राजधानी, अफ्रीका महाद्वीप का सबसे बड़ा नगर, जो नील नदी के दक्षिणी किनारे पर नदी तथा उत्तर पश्चिमी पहाड़ के अंतिम छोर पर स्थित है।

काहिरा नगर की स्थापना सन् ११६९ में "जोहार" नामक एक सेनानायक ने मिश्र को जीतकर की थी। सन् ११७७ में सलादीन नामक सुलतान ने इस नगर के चारों ओर पत्थर का मजबूत परकोटा बनवाया। सन् १३५७ में यहाँ की सबसे दर्शनीय मसजिद "सुलतान हसन" का निर्माण हुआ। इस समय सारे नगर में २५० से अधिक मसजिदें बनी हुई हैं।

काहिरा का "अल अजहर" नामक विश्वविद्यालय सारे इस्लामी जगत् का एक प्रमुख शिक्षा केन्द्र है। इस विश्वविद्यालय में सभी, इस्लामी देशों के विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने को आते हैं। काहिरा नगर का इस्माइलिया महल मिश्र का राज निवास है और आब्दीन महल में मिश्र का शासकीय और संसदीय कार्य का संचालन होता।

काहिरा इस समय सारे विश्व के राजनीतिज्ञों का एक आकर्षण केन्द्र बना हुआ है। यहाँ के राष्ट्रपति नासिर खाँ एक प्रभावशाली और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ हैं।

मुसलमानी राष्ट्रों को एक सूत्र में बाँधने के लिए सन् १९४५ में काहिरा में "अरब लीग" नामक एक संस्था का संगठन किया गया। इस संगठन में शुरू-शुरू में मिश्र, ईराक, जोर्डन, सीरिया, लेबनान, सऊदी अरब, सूडान, ट्यूनिशिया, यमन और मोरक्को शामिल हुए। फिर मतभेद होने पर कुछ राष्ट्र इसमें से निकल भी गये।

काहिरा के मुख्य बाजार "खान-अल-खलीली" तथा मुस्की नामक गली हैं।

परिशिष्ट

अकारादिक्रम के सिलसिले में कुछ नाम जो भूल से छूट गये थे परिशिष्ट के रूप में नीचे दिये जा रहे हैं।

कालीमेकस

प्राचीन यूनान का एक प्रसिद्ध कवि जिसका जन्म ईस्वी सन् पूर्व ३१० में और मृत्यु ई० पू० २४० में हुई। यह सिकन्दरिया के प्रसिद्ध पुस्तकालय का पुस्तकाध्यक्ष था।

कालीमेकस यूनान के हैल्लीनिक युग का एक प्रसिद्ध कवि था। सिकन्दर महान् की संसारव्यापी विजयों के कारण दूर-दूर के देशों में ग्रीक साहित्य के केन्द्र स्थापित हो गये थे। इनमें सिकन्दरिया का केन्द्र सबसे बड़ा था।

इस समय ग्रीक कविता के अन्तर्गत प्राचीनतावादी और रोमाण्टिक दो प्रकार की परम्पराएँ प्रचलित थीं। पहली परम्परा का नेता अपोलोनियस था जो होमर की वीर काव्य परम्परा का प्रवर्तक था और दूसरी रोमाण्टिक परम्परा का प्रवर्तक "कालीमेकस" था। इन दोनों परम्पराओं में कॉफी संघर्ष चला। मगर अन्त में कालीमेकस की विचारधारा ही सफलीभूत हुई और ग्रीक साहित्य में रोमांटिक कविताओं का बोलबाला हो गया। आगे चलकर रोमन कवियों पर और उसके बाद सारे यूरोपियन साहित्य पर इस काव्य परम्परा का प्रभाव पढ़ा।

कामता प्रसाद जैन डॉक्टर

हिन्दी भाषा में जैन साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान लेखक और सम्पादक जिनका जन्म सन् १९०१ में हुआ।

श्री कामता प्रसाद जैन रॉयल एशियाटिक सोसायटी लन्दन, भारतीय इतिहास परिषद वाराणसी, दी कैसरलिंग फ्री फिलासफी सोसायटो जर्मनी, वर्ल्डपीस मिशनरी टीरेंटी कनाड़ा इत्यादि अन्तर्राष्ट्रीय साहित्यिक संस्थाओं के सदस्य हैं। इनके अतिरिक्त "सुदर्शन" (दैनिक) बीर आदर्श "जैन" "अहिंसा वाणी" "वायस ऑफ अहिंसा" इत्यादि पत्र पत्रिकाओं के ये सम्पादक रह चुके हैं तथा अब भी हैं।

जैन साहित्य के प्रकाशन में श्री कामता प्रसाद जैन की सेवायें बहुमूल्य हैं। छह खण्डों में प्रकाशित इनका जैन इतिहास जैन साहित्य में एक महत्वपूर्ण प्रकाशन है। इसी प्रकार "भगवान महावीर" "भगवान पार्श्वनाथ" "महावीर तथा बुद्ध" "अहिंसा और उसका विश्व व्यापी प्रभाव" "विचार और वितर्क" "बाहुबलि गोमटेश्वर" इत्यादि इनकी रचनाओं ने जैन साहित्य के अनुसन्धान में बड़ा महत्वपूर्ण भाग अदा किया है।

श्री कामता प्रसाद जैन को "जैन इतिहास" की खोज पर वि० सो० वा० जैन ऐकेडेमी द्वारा "डॉक्टर ऑफलॉज" और धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन पर नेशनल कॉलेज ड्यूकमेनियन चर्च टोरेण्टो कैनाडा के द्वारा डॉ० ऑफ फिलासफी" की उपाधि प्राप्त हुई।

कांग-यू-वेंई

उन्नीसवीं सदी के अन्त और बीसवीं सदी के प्रारम्भ में चीनी साहित्य का एक क्रान्तिकारी साहित्यकार। जिसका जन्म सन् १८५२ में और मृत्यु सन् १९२७ में हुई।

उन्नीसवीं सदी में चीन के अन्तर्गत क्रान्ति की जो लहर प्रवाहित हुई उसने वहाँ के साहित्य को भी बहुत प्रभावित किया। कांग-यू-वेंई इस काल का प्रभावशाली लेखक था। इसने अपनी लेखनी से उस समय के विचारों में एक तूफान पैदा कर दिया। राजनीति, दर्शन, साहित्य इत्यादि सभी क्षेत्रों में इसकी रचनाओं ने एक युगान्तर उपस्थित कर दिया।

कारेल-हीनेक-माचा

जेकोस्लाविया का एक प्रसिद्ध कवि जिसका जन्म सन् १८१० में और मृत्यु सन् १८३६ में हुई।

कारेल-हीनेक-माचा रोमाण्टिक स्कूल का कवि था। सिर्फ छब्बीस वर्ष की उम्र में ही इसकी मृत्यु हो गई मगर इस छोटी सी उमर में ही उसने अपनी कविताओं से जेक-भाषा के साहित्य को एक नवीन धारा प्रदान की। इसकी मृत्यु के बाद ही इसकी कविताओं का विशेष आदर हुआ।

कार्ल-ऑगस्ट

अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में जर्मनी के "वाइमर" नगर का डयूक।

कार्ल ऑगिस्ट जर्मनी के इतिहास में एक प्रसिद्ध कलाप्रेमी, ज्ञान संरक्षक और उदार व्यक्ति हुआ है।

इसके समय में जर्मनी का वाइमर नगर यूनान के प्राचीन एथेन्स नगर की तरह ज्ञान और कला का केन्द्र हो गया था।

इसी डयूक की संरक्षा में जर्मनी के गेटे, हर्डर, शिलर इत्यादि महान् कवियों ने अपने साहित्य का विकास कर अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की थी। कार्ल ऑगस्ट का शिक्षक "क्रिस्टोफ़ मार्टिन हीलैण्ड" था। यह वह व्यक्ति था जिसकी प्रतिभा का प्रभाव हर्डर और गेटे पर पड़ा था। यह एक उच्चकोटि का उपन्यासकार भी था।

कालिन्स-विलियम

अंग्रेजी साहित्य में विषादपूर्ण कविताओं को लिखने वाला एक कवि जिसका जन्म सन् १७२१ में और मृत्यु १७५६ में हुई।

कॉलिन्स की रचनाओं में "औड टू इवनिंग" "डर्ज इन सिम्बोलिन" इत्यादि रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। इन कविताओं के एक-एक शब्द में विषाद की गहरी छाया मँडराती है।

क्लाउडिओ-मोण्टेबर्डी

इटली का एक सुप्रसिद्ध ओपेरा गायक जिसका जन्म सन् १५६७ में और मृत्यु सन् १६४३ में हुई।

क्लाउडिओ ने इटाली में सुप्रसिद्ध ओपेरा नाट्यकला के प्रारम्भ और प्रचार में बड़ा महत्वपूर्ण भाग अदा किया।

कार्लोपोर्टा

इटालियन साहित्य का एक सुप्रसिद्ध यथार्थवादी कवि जिसका जन्म सन् १७७५ में और मृत्यु सन् १८२१ में हुई। इसकी रचना "जियोवानिन बोंगी" बहुत प्रसिद्ध है।

कॉमेडिया डेलआर्टे

इटाली में प्रारम्भ होनेवाली सत्रहवीं सदी की एक प्रसिद्ध और लोकप्रिय रंगमंचीय शैली।

इस नाट्यकला में सुखान्त या कॉमेडी नाटकों के अभिनय होते थे। इसके दृश्यों में एक विशेष प्रकार की सेटिंग रहती थी। इसका प्रत्येक दृश्य अभिनेता की स्वनिर्मित बुद्धि पर आधारित रहता था। जिस प्रकार भारतवर्ष में भाण्डों की नकल और माच के तमाशे गांवों में हुआ करते थे उसी प्रकार आचार हीन और कुरुचिपूर्ण प्रदर्शन इन खेलों में हुआ करते थे। ओपेरा की भांति ही इन खेलों का प्रचार भी सारे यूरोप में इटालियन कम्पनियों ने ही किया। जो बड़े ठाट-बाट से यूरोप में भ्रमण करती रहती थीं।

कारपेण्टर-मैल्कम-स्कॉट

अमेरिका के द्वारा संचालित दूसरी अन्तरिक्ष उड़ान में उड़ने वाले सफल यात्री, कारपेण्टर मैल्कम स्कॉट, जिनका जन्म १ मई सन् १६२५ को हुआ।

२४ मई १६६२ गुरुवार का दिन अमेरिका के अन्तरिक्ष अभियान कार्य-क्रम के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा, जब कि अन्तरिक्ष यात्री मैल्कम स्कॉट कारपेण्टर ने "औरोरा-सेव्हन" नामक अन्तरिक्ष यान में सवार होकर पृथ्वी की तीन परिक्रमाएँ कीं। और इस प्रकार अमेरिका की द्वितीय अन्तरिक्ष उड़ान को सफल बनाया। इस उड़ान में प्रति घण्टा १७,५३२ मील की गति से उड़ान भरते हुए ४ घण्टे ५६ मिनिट में उन्होंने पृथ्वी की तीन परिक्रमाएँ पूरी कीं।

कारपेण्टर का जन्म १ मई सन् १९२५ को बोल्डेर (कोलराडा) में हुआ था। सन् १९४३ में माध्यमिक स्कूल की पढ़ाई समाप्त कर वे अमेरिकन नौ सेना में उड्डयन शिक्षार्थी के रूप में भरती हो गये। सन् १९४९ में उन्होंने "कोलोराडा" विश्वविद्यालय से उड्डयन इञ्जीनियरिंग की स्नातकीय उपाधि प्राप्त करली।

कर्नल जान एच० गवैन जूनियर द्वारा की गई अन्तरिक्ष की प्रथम कक्षागत उड़ान के दौरान कारपेण्टर को वैकल्पिक अन्तरिक्ष यात्री की तरह चुना गया था। उसके पश्चात् सन् १९६२ में प्रधान यात्री की तरह उन्होंने अन्तरिक्ष की सफल उड़ान भर कर अमेरिकन इतिहास में अपना रेकार्ड कायम कर दिया।

ऐकेडेमी

उच्चज्ञान शोधक और प्रचारक संस्था, जिसमें उच्च साहित्य के निर्माण और पठन-पाठन की व्यवस्था रहती है।

सब से पहली ऐकेडेमी सम्भवतः ई० सन् से ३८६ वर्ष पूर्व यूनान के ऐथेन्स नगर में महान् तत्व ज्ञानी अफलातून या प्लेटो के द्वारा स्थापित की गई थी। इसमें अफलातून के रिपब्लिक (Republic) नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ में दी हुई उच्च शिक्षा की रूपरेखा के अनुसार गणित, ज्योतिष, तर्क, न्याय, नीति और प्रशासन की शिक्षा दी जाती थी और अनुसन्धान किये जाते थे।

सिकन्दरिया ऐकेडेमी

सिकन्दर महान की मृत्यु के पश्चात् ई० पू० तीसरी शताब्दी में उसके सेनापति टॉलमी ने सिकन्दरिया नगर में ऐकेडेमी की तरह एक विशाल ज्ञान-संशोधक संस्था की स्थापना की। इस संस्था में बड़े-बड़े विद्वान ज्ञान की खोज में संलग्न रहते थे। यूक्लिड, ऐरेस्टोस्थर्नीज (प्रसिद्ध गणितज्ञ) हिप्पार्कस (प्रसिद्ध ज्योतिषी) आर्किमिडस इत्यादि इतिहास प्रसिद्ध ग्रीक तत्ववेत्ताओंने इसी संस्था के संरक्षण में अपने अनुसन्धान किये थे। इसी प्रकार के अनेक विद्वानों के कारण सिकन्दरिया उस समय संसार का सबसे बड़ा ज्ञान केन्द्र बन गया था।

बैतुल-अल-हिकमा

अब्बासी खलीफा अल-मामून के समय में अर्थात् आठवीं सदी में बगदाद में "बैतुल-अल-हिकमा" नामक एक ज्ञान-शोधक संस्था की स्थापना हुई थी। इसी शोध-केन्द्र में "इब्राहीम-अल-फ़जरी" नामक एक अरबी विद्वान ने भारतीय साहित्य के गणित ज्योतिष के एक ग्रन्थ का अनुवाद "अल-सिन्द-हिन्द" नाम से किया। इस ग्रन्थ के द्वारा भारतीय अङ्क-प्रणाली का अरब लोगों को पहले पहल परिचय हुआ और उम्हीं के द्वारा यह अङ्क प्रणाली संसार में फैली।

इसी प्रकार की एक ज्ञान-संस्था दसवीं सदी में बगदाद में "इलवा-अल-सफा" के नाम से स्थापित हुई जिसमें विश्व-कोष, शब्द कोष और महान् पुरुषों की जीवनियों पर अनुसन्धान होते थे।

इटालियन ऐकेडेमी

सन् १६९० में रोम के अन्तर्गत एक ऐकेडेमी की आर्काडिया के नाम से स्थापना हुई। इसका प्रधान उद्देश्य इटालियन कविताओं को आडम्बर और कुरुचि से मुक्तकर शुद्ध मर्यादा में प्रतिष्ठित करना था। इसके सदस्यों में प्रसिद्ध समालोचक ग्राविना और क्रेसिम्बेनी भी थे। अठारहवीं सदी में इस ऐकेडेमी की शाखाएं समस्त इटाली में फैल गईं। इस ऐकेडेमी की क्रियाशीलता का प्रभाव अन्य लोगों पर भी काफी पड़ा।

फ्रेञ्च ऐकेडेमी

सन् १६३४ में लुई चौदहवें के शासन काल में फ्रेञ्च ऐकेडेमी की स्थापना हुई। फ्रेञ्च ऐकेडेमी की स्थापना ने रेनेन्सा या पुनर्जागरण के आन्दोलन को राष्ट्रीय बना कर उसे स्थायित्व प्रदान किया। भाषा, साहित्य और उसमें रची जाने वाली रचनाओं को उसके अधिकारी सदस्य

निश्चित करते थे। साथ ही अपनी प्रतिभा से फ्रान्स के सफलतम साहित्यकार उसका मार्गदर्शन भी करते थे।

कार्नेगी इन्स्टीट्यूट

इसी प्रकार की एक ज्ञान-संस्था २८ जनवरी सन् १९०२ को अमेरिका के वाशिंगटन नगर में कार्नेगी इन्स्टीट्यूशन के नाम से स्थापित हुई। इसके लिए अमेरिका के धन कुवेर कार्नेगी ने दो करोड़ पचास लाख डॉलर दिये थे।

इस संस्था की ओर से कैलीफोर्निया के विलसन पर्वत पर ५८८६ फीट की ऊँचाई पर एक विशाल वेधशाला की स्थापना की गई है जिसमें ग्रहों पर महत्वपूर्ण अनुसन्धान होते हैं। इसके अतिरिक्त साहित्य, विज्ञान, कला-कौशल आदि पर भी इस संस्था में अनुसन्धान किये जाते हैं।

ऐकेडेमी का शब्द अब तो सारे संसार में व्यापक रूप से प्रचलित हो गया है। और संसार के सभी सभ्य देशों में भिन्न-भिन्न प्रकार के ज्ञान पर अनुसन्धान करने वाली अनेक एकेडेमियों की स्थापना हो चुकी है। भारत में भी केन्द्रीय सरकारों और राज्य सरकारों ने कई एकेडेमियों की स्थापना की हुई हैं।

सम्मति

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल :

श्री चन्द्रराज भण्डारी हिन्दी के पुराने और प्रसिद्ध साहित्य-सेवी हैं। उन्होंने "वनौषधि चन्द्रोदय" नामक भारतीय वनस्पतियों का विश्व-कोष आज से लगभग बीस वर्ष पूर्व प्रकाशित किया था।

उसी संग्रहात्मक प्रतिभा और परिश्रम का सदुपयोग करते हुये अब आपने "विश्व इतिहास-कोष" नामक महान् ग्रन्थ का लेखन प्रारम्भ किया है।

इस ग्रंथ का प्रथम खण्ड मेरे सामने है। इसे देखकर मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हुई हैं।

इस भाग में लगभग ५५० ऐतिहासिक व्यक्तियों, देशों और संस्थाओं के परिचय अकारादि क्रम से बहुत ही लोकग्राह्य सरल शैली में दिये गये हैं। भारतवर्ष और विश्व के अनेक देशों के महापुरुषों का परिचय एक ही स्थान में पाठकों के लिये इस कोष में सुलभ हैं। राजनीति, धर्म, दर्शन साहित्य और कला इन सभी क्षेत्रों में जिन व्यक्तियों ने कोई उल्लेखनीय कार्य किये हैं और जिनके परिश्रम से मानव-जाति का इतिहास समृद्ध बना हैं उनका यह सुलभ परिचय हिन्दी संसार के लिये विशेष उपयोगी होगा ऐसी आशा है। मैं ऐसे ज्ञान-वर्द्धक आयोजन की हृदय से सफलता चाहता हूँ।

विशेषतः शिक्षण संस्थाओं में ऐसे ग्रन्थ का व्यापक प्रचार लाभप्रद होगा।

COMPILED

081136

GURUKUL KANGRI LIBRARY
Accession 19.9.84
Class on
Cat on
Tag etc 26/9/85
Checked
Any Other 20-9-08
30.9.85